हिन्दी

विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,

सिद्धान्त-वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम, आर, ए, एस,

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित।

त्रयोदश भाग

परमार—पुराण (ब्रह्मवैवर्त्त)

THE

ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. XIII.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prāchyavidyāmahārnava,

Siddhānta-vāridhi, Sabda-ratnâkara, Tattva-chintāmani, M. R. A. S.

Compiler of the Bengali Encyclopædia ; the late Editor of Bangiya Sâhitya Parishad and Kâyastha Patrikâ ; author of Castes & Sects of Bengal, Mayurabhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism ; Hony. Archæological Secretary, Indian Research Society, Member of the Philological Committee, Asiatic Society of Bengal &c. &c. &c.

Printed by B. Basu. at the Visvakosha Press.

Published by

Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu

9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta

1927.

हिन्दी विश्वकोष

(त्रयोदश भाग)

परमार—राजपूतजातिको एक प्रधान शाखा। राजपूतोंको ३६ शाखाओंके मध्य जो चार शाखा अग्निकुलसे उत्पन्न हुई हैं, उन्होंमेंसे परमार एक है। अंग्रेज ऐतिहासिकोंके अनुवर्त्ती हो कर बहुतोंने इस श्रेणीको 'प्रमार' नामसे उल्लेख किया है। किन्तु प्राचीन शिलालिपि, ताम्रशासन और प्राचीन संस्कृत ग्रन्थादिमें 'परमार' नाम ही देखा जाता है।

किस प्रकार इस श्रेणीको उत्पत्ति हुई और परमार नाम क्यों पड़ा, वह पद्मगुप्तके नवसाहसाङ्करचित उदयपुर (ग्वालियर)से आविष्कृत मालवराजाओंकी शिलाप्रशस्ति, नागपुरकी शिलालिपि और बहुतसे ताम्रशासनमें इस प्रकार लिखा है—पुराकालमें एक समय महर्षि वशिष्ठ अर्बुद (आबू) गिरिके ऊपर वास करते थे। विश्वामित्र बलपूर्वक उनकी कामधेनु हर लाए। वशिष्ठके प्रभावसे अग्निकुण्डसे एक वीर पुरुष निकला जिन्होंने अकेले शत्रुकी सेनाको निधन कर डाला। शत्रुको मार कर धेनु साथ लिये जब वे वशिष्ठके पास पहुंचे, तब वशिष्ठने उनसे कहा, "तुम 'परमार' अर्थात् शत्रुहन्ता पार्थिवेन्द्र होगे।" तदनुसार उस महावीरके वंशधर भी परमार नामसे प्रसिद्ध हुए।

राजपूत-इतिवृत्तलेखक टाडसाहबने इस परमार श्रेणीके मध्य पुनः ३५ शाखाएं निर्देश की हैं, यथा—

१ मोरी—गुहिलवंशीयके अनुवर्त्ती चित्तोरके राजगण।

२ सोडा—मरुस्थलीके अन्तर्गत ग्रात भूभागके सामन्तराजगण।

३ सङ्कला—पुगल और मारवाड़के सामन्तगण।

४ खैर—इस शाखाकी राजधानी खैरालमें है।

५ उमरा सुमरा—पूर्वतन मरुस्थलवासी, मुसलमान धर्मावलम्बी।

६ विहिल—चन्द्रावतीके राजगण।

७ महीपावत—मेवारके अधीन विजोलीके सामन्तगण।

८ बलहार—उत्तरमरुस्थलवासी।

९ काबा—पूर्वकालमें सौराष्ट्रमें प्रसिद्ध थे। अभी सिरोहतिमें अति सामान्य हैं।

१० उमता—मालव प्रदेशस्थ उम्मतबारके राजगण।

११ रेहार
१२ धुन्धा
१३ सोरातिया
१४ हरिहर } मालववासी छोटे छोटे सामन्त।

इसके अलावा चावन्द, खेजर, सगरा, बड़कोटा, पुनी, सम्पाल, भीबा, कालपुषर, काल्मा, कोहिला, पया, काहोविया, धन्द, देवा, बरहर, जिपरा, पोसरा, धुन्ता, निकुम्भ और टीका आदि कई एक शाखाओंका पता मिलता है । इनके मध्य अधिकांश इस्लाम धर्मावलम्बी हैं और सिन्धु नदीके दूसरे किनारे जा कर रहते हैं, टाडसाहबने लिखा है—एक समय समस्त मरुस्थली भूभाग परमारराजपूतोंके दखलमें था । इनकी विभिन्न शाखाओंने महेश्वर, धारा, माण्डु, उज्जयिनी, चन्द्रभागा, चित्तौर, आबू, चन्द्रावती, मझोव, मयदाना, परमावती, अमरकोट, बेखेर, लोदर्वा और पत्तन आदि स्थानों पर एक समय ही अधिकार जमाया था और वहां नगर भी बसाया था ।

उक्त स्थानोंमें परमारगण किस समय राजत्व करते थे, उसका कोई प्रकृत धारावाहिक इतिहास नहीं मिलता ।

अधिक दिनकी बात नहीं है, डाक्टर बुहलर आदि पुराविदोंके यत्नसे मालवके परमार राजाओंका इतिहास बहुत कुछ संगृहीत हुआ है । मालवके प्रबल पराक्रान्त परमार राजवंशका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है ।

मालवके नानास्थानोंसे आविष्कृत शिलालिपि और पद्मगुप्तके 'नवसाहसाङ्कचरित'-से जो वंशावली पाई गई है वह इस प्रकार है—
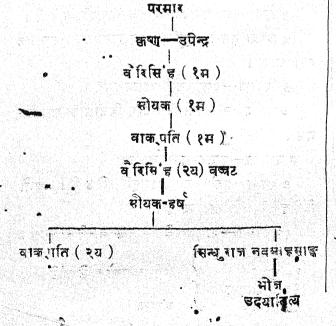
उपेन्द्र कृष्णराजने अपनी भुजबलसे मालवराज्य जीता । किस समय यह मालवराज्य इनके अधिकारमें आया, उसका आज तक भी ठीक ठीक पता नहीं चला है । ८वीं शताब्दीके शेष भागमें इनका अभ्युदय स्वीकार किया जा सकता है ।

उपेन्द्रके बाद उनके पुत्र वैरीसिंह, वैरीसिंहके पुत्र सीयक, सीयकके पुत्र वाक्पति इन सबका कोई विशेष परिचय नहीं मिलता । शिलालिपिसे केवल इतना ही जाना जाता है कि ये तीनों ही महावीर थे और अनेक याग-यज्ञ किये थे ।

वाक्पतिके उत्तराधिकारी २य वैरीसिंह थे । इनका दूसरा नाम था वज्रटस्वामी । वज्रटके पुत्रका नाम श्रीहर्षदेव था जो सीयक नामसे मशहूर थे । मेरुतुङ्गको प्रबन्धचिन्तामणिमें इनका 'सिंहभट' लिखा है । पद्मगुप्तका लिखना है कि सीयक बड़ुपाटीके राजा थे और इन्होंने एक हूण राजाको परास्त किया था (१) । उदयपुरकी प्रशस्तिमें लिखा है, कि इन्होंने युद्धक्षेत्रमें खोट्टिगदेवकी लक्ष्मी ग्रहण की थी । यह खोट्टिग राष्ट्रकूट-वंशीय मान्यखेटके एक राजा थे । ८९३ सम्वत्में उत्कीर्ण इनका ताम्रशासन पाया जाता है । इधर धनपालके 'पाईलच्छी नाममाला' नामक ग्रन्थमें लिखा है कि, 'जब विक्रमगतके १०२९ वर्ष (९७२-७३ ई०)में मन्नखेड़ (मान्यखेट) मालवाधिपतिसे आक्रान्त हो कर लूटा गया था, उसी समय यह ग्रन्थ रचा गया ।' इससे जाना जाता है, कि ९७२-७३ ई०में श्रीहर्षदेवने मान्यखेट पर आक्रमण किया था और सम्भवतः इसी युद्धमें खोट्टिगदेवने प्राणत्याग वा राज्यत्याग किया । पद्मगुप्तने श्रीहर्षदेवकी महिषी बड़जा का नाम उल्लेख किया है । उन्हींके गर्भसे सुप्रसिद्ध (२य) वाक्पति उत्पन्न हुए । १०३१ विक्रमसम्वत्में (९७४ ई०में) उत्कीर्ण वाक्पतिका प्रथम ताम्रशासन पाया जाता है । इससे जान पड़ता है, कि उनके पिता श्रीहर्षदेव मान्यखेटकी सम्पद पा कर भी उसका अधिक दिन तक उपभोग कर न सके ।

(१) यह हूणजाति शकजातिकी एक शाखा नहीं है। राजपूतोंके ३६ कुलोंमेंसे यह एक है । Tod's Rajasthan, Vol. I, pp. 82 (London ed.)

नवसाहसांकचरित, शिलालिपि और वाक्‌पतिके ताम्रशासनसे इनके अनेक नामान्तर पाये जाते हैं, यथा—उत्पलराज, मुञ्ज, अमोघवर्ष, पृथिवीवल्लभ और श्रीवल्लभ।

ये स्वयं विद्वान्, कवि, विद्योत्साही, काव्यामोदी और दिग्विजयी वीर थे। प्रबन्धचिन्तामणि, भोजप्रबन्ध, नानाकाव्यसंग्रह और अलङ्कारग्रन्थमें मुञ्जवाक्‌पतिराजकी कविता उद्धृत हुई है।

इस वाक्‌पतिकी सभामें राजकवि पद्मगुप्त 'दशरूप' नामक प्रसिद्ध अलङ्कारग्रन्थरचयिता धनञ्जय, पिङ्गल-टीकाकार हलायुध और धनपाल प्रभृति पण्डितगण रहते थे। धनञ्जयके भाई और 'दशरूपावलोक' नामक दशरूपके टीकाकार धनिक अपनेको महाराज उत्पलराज (वाक्‌पति) 'महासाध्यपाल' बतलाये गये हैं। उदयपुरकी प्रशस्तिमें लिखा है, कि इन्होंने कर्णाट, लाट, केरल और चोलदेशको जय किया था। इन्होंने युवराजको जीत कर और उनके सेनापतिको मार कर त्रिपुरी जीतनेके लिये खड्ग उठाया था। उक्त 'युवराज' चेदिके कलचुरिवंशीय एक राजा थे। प्रबन्धचिन्तामणि-कारने लिखा है कि मुञ्जने सोलह बार चालुक्यराज २य तैलपको जीता था। किन्तु अन्तिम बार उनके भाग्यने पलटा खाया। इस बार मन्त्री रुद्रादित्यके परामर्शसे गोदावरी नदी पार कर तैलपकी राज्यसीमा पर ज्यों ही पहुंचे, त्यों ही वे शत्रुसे परास्त हुए और कैद कर लिये गये। बन्दी अवस्थामें वाक्‌पतिने अति सुललित करुणरसाश्रित कविताकी रचना की थी। कुछ दिन बाद जब यह मालूम हो गया है, कि वे भागनेकी चेष्टा कर रहे हैं, तब गलेमें फांसी डाल कर उन्हें मार दिया। पद्मगुप्त अथवा मालवराजाओंकी किसी शिलालिपिमें उक्त प्रसङ्ग लिखित नहीं रहने पर भी मेरुतुङ्गकी वर्णनाको मिथ्या नहीं कह सकते। कारण चालुक्य राजाओंकी शिलालिपि और ताम्रशासनमें तैलपकर्तृक वाक्‌पतिका दमनप्रसङ्ग सविस्तार वर्णित हुआ है।

अमितगतिके 'सुभाषितरत्नसन्दोह'में लिखा है, कि उन्होंने १०५० विक्रमसम्वत् (९९३-४ ई०)-में मुञ्जके राजत्वकालमें उक्त ग्रन्थ सम्पूर्ण किया। इधर चालुक्य-शासनलिपिसे जाना जाता है कि तैलपने ९१९ शकाब्द (९९७-८ ई०)-में इस लोकका परित्याग किया। इस हिसाबसे ज्ञान पड़ता है, कि परमारराज मुञ्जवाक्‌पति ९९५से ९९७ ई०के अन्दर किसी समय मारे गए होंगे।

मुञ्ज वा २य वाक्‌पतिके बाद उनके अनुज सिन्धुराजने राज्यलाभ किया। नवसाहसाङ्कचरितके मतसे उनके विरुद थे 'नवसाहसाङ्क' और 'कुमार नारायण'। इनका नाम ले कर पद्मगुप्तने 'नवसाहसाङ्कचरित'की रचना की। किसी किसी प्रबन्धमें इनका नाम सिन्धुल वा सीन्धल लिखा गया है।

सिन्धुराजके प्रथम जीवनकी कथा पद्मगुप्त अथवा किसी शिलालिपिमें लिखी नहीं है। किन्तु मेरुतुङ्ग प्रबन्धचिन्तामणिमें इस प्रकार लिखा है,—

'सिन्धुराजका स्वभाव उतना अच्छा न था। इस कारण वाक्‌पति उनके प्रति अति कठोर व्यवहार करते थे। यहां तक कि उन्होंने एक समय सिन्धुराजके आचरण पर अत्यन्त क्रुद्ध हो उन्हें निर्वासित किया था। सिन्धुराज गुजरातमें जा कर अहमदाबादके निकटवर्त्ती कासह्रदनगरके समीप आ कर रहने लगे। कुछ दिन बाद वे मालवको लौट आए। इस बार मालवाधिप मुञ्जवाक्‌पति भी उनके साथ अच्छी तरह पेश आये। कुछ दिन बाद फिर उनकी दुश्चरितता पूर्ववत् जारी हो गई इस बार वे चक्षुहीन और काष्ठपिञ्जराबद्ध हुए। इस समय उनके पुत्र भोजने जन्मग्रहण किया। धीरे धीरे भोजकी उमर बढ़ने लगी। एक दिन मुञ्जने भविष्यत्‌वाणी सुनी कि, 'भोज उनके महाशत्रु हैं।' मुञ्जने उसी समय उनका शिर काट डालनेके लिए हुक्म दे दिया। किन्तु उनका आदेश प्रतिपालित होनेके पहले ही भोजने उनके निकट कुछ श्लोक लिख भेजे। श्लोक पढ़ कर मुञ्जका हृदय दहल गया। उसी समय उन्होंने हुक्म लौटा लिया। मुञ्जने भोजको यौवराज्यमें अभिषिक्त किया।'

उदयपुर प्रशस्तिमें लिखा है, कि सिन्धुराजने हूणोंको जीता था। फिर पद्मगुप्त लिखते हैं, कि ये हूण और कोशलराज तथा वागड़, लाट और मुरलोंको पराजय

किया था। पद्मगुप्तने सिन्धुराजको नागकन्याका परिणयप्रसङ्ग बहुत चढ़ा बढ़ा कर वर्णित किया है,—

नागकन्याका नाम था शशिप्रभा। शर्त यह ठहरी कि सोनेका पद्म पानेसे सिन्धुराजके साथ उनका विवाह होगा। नर्मदासे ५० गव्यूति दूर रत्नवती नगरीमें वज्राङ्कुश नामक एक असुर रहता था। उस राक्षसको मार कर सिन्धुराजने सोनेका पद्म पाया। सिन्धुराजके मन्त्रीका नाम था यशोभट्ट-रमाङ्गद।

सिन्धुराजने कबसे कब तक राज्य किया, ठीक ठीक मालूम नहीं। पर पद्मगुप्तकी वर्णना पढ़नेसे जान पड़ता है कि उन्होंने मुञ्जकी मृत्युके बाद ८।९ वर्ष तक राज्यशासन किया।

सिन्धुराजके बाद भारतप्रसिद्ध भोजराज मालवके सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। ये पण्डित समाजमें 'धाराधिप' नामसे प्रसिद्ध थे। इनके जैसा विद्वान्, सुविवेचक, कवि, दार्शनिक और महावीर मालवमें न कोई हुए और न कोई होंगे। उदयपुरकी प्रशस्तिमें लिखा है,—

"साधितं विहितं दत्तं ज्ञातं यद्गू यन्न केनचित्।
किमन्यत् कविराजस्य श्रीभोजस्य प्रशस्यते ॥"

'कविराज भोजराजको अधिक प्रशंसा क्या करूं, उन्होंने जो साधन किया था, जो दान किया था और जो जाना था, वैसा और कोई नहीं हो सकता।'

उक्त शिलालिपिसे ही जाना जाता है कि भोजराजने चेदीश्वर, इन्द्ररथ, तोग्गल, भीम तथा गुर्जर, लाट, कर्णाट और तुरुष्कके अधिपतियोंके साथ वारतर युद्ध किया था। किन्तु सब जगह उनकी जय हुई थी वा नहीं, इसमें सन्देह है। कारण चालुक्यराज २य जयसिंहके ९४१ शकाब्द (१०१९-२० ई०)-की लिपिमें वे 'भोजपद्मके चन्द्रस्वरूप' अर्थात् भोजराजके यशोद्दीप्तिहारी और मालवचमू-अनुसरणकारी और विध्वंसकारी नामसे वर्णित हुए हैं। इससे बोध होता है कि भोजराजने कल्याणके चालुक्यराज्य पर आक्रमण किया था, पर सफलतालाभ कर न सके। भीमकी पराजयके सम्बन्धमें मेरुतुङ्गने लिखा है कि भीम जिस समय सिन्धुजयमें लिप्त थे, उस समय भोजने कुलचन्द्र नामक एक दिगम्बर जैनको दलबलके साथ अनहिलवाढ़ जीतने भेजा था। बहुत आसानीसे पत्तन अधिकृत हुआ। विजेता राजद्वार पर अपनी गोटी जमा कर और जयपत्र ले कर चले आये।

बिह्लणका विक्रमाङ्कचरित पढ़नेसे जान पड़ता है, कि जयसिंहके उत्तराधिकारी चालुक्यराज (२य) सोमेश्वरने (१०४२-१०६८ ई०में) धारानगर पर चढ़ाई की और भोज अपनी राजधानी छोड़ कर भागनेको बाध्य हुए।

नागपुरप्रशस्ति और मेरुतुङ्गकी प्रबन्धचिन्तामणिमें लिखा है, कि चेदिराज कर्ण और गुर्जरराज चालुक्य-भीम दोनोंने ही मिल कर भोजराज पर आक्रमण किया। इस आक्रमणसे भोजका अधःपतन हुआ।

भोजकी ठीक किस समय मृत्यु हुई, मालूम नहीं। 'राजमृगाङ्ककरण'से जाना जाता है, कि ९६४ शक (१०४२-४३ ई०)में भोजराज जीवित थे। फिर बिह्लणके विक्रमाङ्कचरित (१८।९६)से ज्ञात होता है कि जिस समय बिह्लण मध्यप्रदेशमें उपस्थित हुए, उस समय भी भोजराज जीवित थे। बिह्लणने भी लिखा है, कि काश्मीरपति कलस और भोजनरेन्द्र दोनों ही कविबान्धव और एक समय जीवित थे। इस हिसाबसे १०६२ ई०के कुछ पहले भोजराजकी मृत्यु हुई थी, इसमें सन्देह नहीं। महाराजाधिराज भोजके नाम पर अनेकों स्मृतिनिबन्ध प्रचलित हैं। इसके अलावा राजमार्त्तण्ड नामक योगसूत्रटीका—राजमार्त्तण्ड, राजमृगाङ्ककरण और विद्वज्जनवल्लभ नामक ज्योतिष, समराङ्गण नामक वास्तुशास्त्र, शृङ्गारमञ्जरीकथा नामक काव्य आदि अनेक ग्रन्थ भोजराजके बनाये हुए हैं।

भोजराजके बाद उदयादित्यदेव नामक इस परमारवंशीय एक राजाका नाम पाया जाता है। उन्होंने शत्रुकरकवलित धाराराज्यका बहुत आसानीसे उद्धार किया और धरणीवराहके मन्दिरका संस्कार कर विख्यात हुए। किस समय उदयादित्य सिंहासन पर बैठे, ठीक ठीक मालूम नहीं।

युक्तप्रदेश और अयोध्याप्रदेशवासी भुंइहार जातिके कुलज्ञोंका कहना है, कि उदयादित्य निर्विवादपूर्वक

राज्यभोग कर न सकी। उनके भाई जगत्पालने उन्हें घरसे निकाल दिया था। पीछे वे कतिपय अनुचरों और पुरोहितोंके साथ अयोध्याराज्यके अन्तर्गत वनवासा नामक ग्राममें जा कर रहने लगी। इस वन्शके शुक्ला लोग अपनेको उदयादित्यका सन्तान बतलाते हैं।

उसके बाद हम लोग पिपलिया नगरके ताम्रशासन और भोपालमें प्राप्त उदयवर्मके (१२५६ संवत्में उत्कीर्ण) ताम्रशासनसे भोजवंशीय महाराजाधिराज यशोवर्म देव, उनके पुत्र महाराजाधिराज जयवर्म देव, पीछे महाकुमार लक्ष्मीवर्म देव, उनके बाद हरिश्चन्द्र पुत्र महाकुमार उदयवर्म देवका नाम पाते हैं। शेषोक्त महाकुमार द्वय भोजवंशीय थे वा नहीं तथा जयवर्म देवके साथ उनका कोई सम्बन्ध है वा नहीं, ठीक ठीक मालूम नहीं होता। लेकिन शेषोक्त ताम्रशासनमें 'जयवर्म देवराज्ये व्यतीते' इत्यादिका प्रयोग रहनेसे बोध होता है, कि उस समय भोजवंशीयजयवर्म देवका राजत्वकाल कितना बीत चुका था और उदयवर्म देव उन्हींके अधीनस्थ अथच राजवंशीय महामण्डलिक वा महासामन्त थे। वे नर्मदापुर (वर्त्तमान नर्मदा तीरस्थ होसङ्गाबाद) नामक स्थानमें राजत्व करते थे।

परमार (सं० पु०) शौनकऋषिके एक पुत्रका नाम।

परमार्थ (सं० पु०) परमः श्रेष्ठः अर्थः। १ उत्कृष्ट पदार्थ, सबसे बढ़ कर वस्तु। २ वास्तव सत्ता, सारवस्तु। ३ मोक्ष। ४ दुःख या सर्वथा अभावरूप सुख।

परमार्थता (सं० स्त्री०) सत्यभाव, याथार्थ्य।

परमार्थवादी (हिं० पु०) तत्त्वज्ञ, ज्ञानी, वेदान्ती।

परमार्थविद् (सं० त्रि०) परमार्थं वेत्ति विद्-क्विप्। १ परमार्थवेत्ता। २ ईश्वरतत्त्वज्ञ।

परमार्थविन्द (सं० त्रि०) परमार्थ-विन्द-क। १ तत्त्वज्ञानी। २ श्रेष्ठ धनलाभकारी।

परमार्थसुप्त (सं० त्रि०) यथार्थ निद्रित।

परमार्थी (सं० त्रि०) १ तत्त्वजिज्ञासु, यथार्थ तत्त्वको ढूंढ़नेवाला। २ मुमुक्षु, मोक्ष चाहनेवाला।

परमार्हत (सं० त्रि०) परमः अर्हन् देवता उपास्यतया अस्त्यस्य, परमार्हत् अच्। १ जैनराजभेद। २ कुमारपालका नामान्तर।

परमावटिक (सं० पु०) वेदकी एक शाखा।

परमाह (सं० पु०) शुभदिन, अच्छा दिन।

परमीकरणमुद्रा (सं० स्त्री०) देवताओंको आह्वानाङ्ग-मुद्राभेद, तन्त्रके अनुसार देवताओंके आह्वानकी एक मुद्रा। इसमें हाथके दोनों अंगूठोंको एकमें गांठ कर उंगलियोंको फैलाते हैं। इसे महामुद्रा भी कहते हैं।

परमृत्यु (सं० पु०) परस्या मृत्युर्यस्य। काक, कौवा। रोगादिसे अथवा आपसे आप कौवेकी मृत्यु नहीं होती, इसीसे इसको परमृत्यु कहते हैं।

परमेक्षु (सं० पु०) अणुके एक पुत्रका नाम।

परमेश (सं० पु०) परमः ईशः। परमेश्वर, विष्णु।

परमेश—हिन्दीके एक कवि। ये संवत् १८६६में उत्पन्न हुए थे। इनके कवित्त हजारामें पाये जाते हैं।

परमेशदास—हिन्दीके एक कवि। ये साधारण श्रेणीके थे। इनका कविताकाल संवत् १८७८ कहा जाता है। इन्होंने दशकुरसागर नामक ग्रन्थ बनाया।

परमेशवन्दीजन—एक सुप्रसिद्ध हिन्दी-कवि। ये सातवां जिला रायबरेलीके रहनेवाले थे। सं० १८८६में इनका जन्म हुआ था। फुटकर इनकी कविताएं पायी जाती हैं।

परमेश्वर (सं० पु०) परमश्चासौ ईश्वरश्चेति। १ जगत्-सृष्ट्यादिकारक सगुण त्रिमूर्त्तिक ब्रह्म, संसारका कर्त्ता और परिचालक सगुणब्रह्म। २ विष्णु। ३ शिव। स्त्रियां ङीप्। ४ परमेश्वरी, दुर्गा।

"देवकी मथुरायान्तु पाताले परमेश्वरी।"

(देवीभाग० ३।३०।७०)

आत्मा, ब्रह्म, परमात्मा आदि अर्थमें भी परमेश्वरका बोध होता है।

परमेश्वर—१ आर्यभटसिद्धान्तटीकाके प्रणेता। २ कवीन्द्रचन्द्रोदयधृत एक कवि।

परमेश्वरतन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रभेद।

परमेश्वरदत्त—वैराग्यप्रकरण नामक ग्रन्थके प्रणेता।

परमेश्वरदत्त—गणाध्याय नामक ग्रन्थके रचयिता।

परमेश्वरवर्मा—पल्लववंशीय एक राजा। इन्होंने पेरुवडुक्कुके युद्धमें वल्लभराजकी सेनाको परास्त किया था।

परमेषु (सं० पु०) अणुका पुत्र, परमेक्षुका नामान्तर।

परमेष्ट (सं॰ पु॰) महानिम्बक्षुप।

परमेष्ठ (सं॰ पु॰) परमे चिदाकाशे सत्यलोके वा तिष्ठति स्था-क, अलुक् समास, अम्बाम्बेति षत्वं। १ चतुर्मुखब्रह्म, प्रजापति।

परमेष्ठिन् (सं॰ पु॰) परमे व्योम्नि चिदाकाशे ब्रह्मपदे वा तिष्ठतीति स्था-इनि, स च कित् (परमे कित्। उण ४।१०) ततोऽलुक् षत्वञ्च। १ ब्रह्मा वा अग्नि प्रभृति देवता। २ विष्णु। ३ महादेव। ४ जिनविशेष। ५ शालग्रामविशेष। इसका लक्षण ब्रह्मपुराणमें इस प्रकार लिखा है—परमेष्ठिनारायणकी आभा शुक्ल, पद्मचक्रसमायुक्त, आकृति विचित्र और पृष्ठदेश अति उत्कृष्ट छिद्रयुक्त है। अन्यविध—इनकी आभा लोहित, एक चक्र बिम्बाकृति रेखा और अति पुष्कल शुषिर। पुराणसंग्रहमें लिखा है—परमेष्ठिनारायण शुक्ल आभा युक्त, चक्र और पद्मसमन्वित, वर्त्तुलाकृति, पीतवर्ण और पृष्ठदेश शुषिरयुक्त है। वैश्वानरसंहितामें लिखा है, कि परमेष्ठिनारायण रक्ताभ, चक्र और पद्मसंयुक्त, पृष्ठदेश पर छिद्राकृत शुषिर, वर्त्तुल और पीतवर्ण के हैं। यह परमेष्ठिनारायण भुक्तिमुक्तिप्रदायक माने जाते हैं। ६ गुरुविशेष। ७ अजमीढ़के एक पुत्रका नाम। ८ परमस्थानस्थित। ९ इन्द्रद्युम्नके पुत्रका नाम। १० प्रजापति और उनके पुत्र। ११ गरुड़। १२ चाक्षुष-मनु। १३ विराट् पुरुष।

परमेष्ठिनी (सं॰ स्त्री॰) परमेष्ठिन् स्त्रियां ङीप्। १ ब्राह्मी-क्षुप, ब्राह्मी जड़ी। २ परमेष्ठीकी शक्ति, देवी। ३ श्री। ४ वाग्देवी।

परमेष्ठी (सं॰ पुं॰) परमेष्ठिन् देखो।

परमैश्वर्य (सं॰ क्ली॰) परमं ऐश्वर्यं। श्रेष्ठ ऐश्वर्य।

परम्पर (सं॰ पु॰) परं पिपर्त्तीति पॄ-अच्, 'तत्पुरुषे कृति' अलुक समासः। १ प्रपौत्रादि, प्रपौत्रतनय, बेटा, पोता, परपोता आदि। २ मृगमद, कस्तूरी। (स्त्री॰) ३. अनुक्रम, एकके बाद एक।

परम्परा (सं॰ स्त्री॰) परम्पर-टाप्। १ अन्वय। २ सन्तान, अपत्य। ३ वध। ४ हिंसा। ५ परिपाटी। ६ अनुक्रम, एकके बाद एक।

परम्पराक (सं॰ क्ली॰) परम्परया कायते प्रकाशते इति कै-क, परम्परास्थापितपशुहननात् तथात्वं। यज्ञार्थपशु-हनन, यज्ञके लिए पशुका वध। पर्याय—शमन, प्रोक्षण, घातन और वध।

परम्परागत (सं॰ त्रि॰) क्रमागत, वंशानुक्रमसे आगत, पितृपितामहसे प्राप्त या प्रचलित।

परम्पराप्राप्त (सं॰ त्रि॰) १ पुरुषानुक्रमसे लब्ध, पुरुषानु-क्रमसे पाया हुआ। २ जनश्रुति, प्रवाद।

परम्परासम्बन्ध (सं॰ त्रि॰) श्रेणीवद्धरूपसे आगत, एकके बाद एक सम्बन्धयुक्त।

परम्परीण (सं॰ त्रि॰) परांश्च परतरांश्च अनुभवति परम्पर-ख (परावराधमोत्तमपूर्वाच्च। पा ५।२।१०) परम्पराप्राप्त, वंशानु-क्रमसे प्राप्त

परयंक (सं॰ पु॰) पर्यङ्क देखो।

परयस्तापह्नुति (सं॰ स्त्री॰) पर्यस्तापह्नुति देखो।

पररमण (सं॰ पु॰) जो पुरुष पत्नीको छोड़ दूसरी स्त्रीके साथ रमणकी अभिलाषा करे, लम्पट, उपपति।

परर (सं॰ पु॰) पिपर्त्ति देहादिकं पूरयतीति पॄ-बाहुल-कात् अरु। केशराजशाक, नीलभृङ्गराज (Eclipta pro-trata) नीली भंगरैया।

पररूप (सं॰ त्रि॰) परस्य रूपमिव रूपं यस्य। दूसरेके रूपके जैसा रूपवाला।

परलत (हिं॰ पु॰) एक जङ्गली पेड़ जिसकी जड़ और छाल दवाके काममें आती हैं और लकड़ी इमारतोंमें लगती हैं।

परलय (हिं॰ स्त्री॰) सृष्टिका नाश वा अन्त, प्रलय।

परला (सं॰ त्रि॰) १ पटोलवृक्ष। २ दूसरी तरफका, उस ओरका, उरलाका उलटा।

परलोक (सं॰ पु॰) परो लोकः। १ लोकान्तर, दूसरा लोक, स्वर्गादि। मृत्युके बाद जिस लोकमें गति होती है, उसे परलोक कहते हैं। २ इस लोकका विपरीत, स्वर्गलोक। ३ स्थानविशेष। वृहत्संहितामें लिखा है, कि यह स्थान मुक्ताफलका आकर है और यहां जो मुक्ताफल उत्पन्न होता है, वह काला, उजला अथवा पीला और विषम है। वह पारलौकिक मुक्ता नामसे प्रसिद्ध है।

परलोकगत (सं॰ त्रि॰) परलोकं गतः २या-तत्। स्वर्ग-प्राप्त, मृत, मरा हुआ।

परलोकगम (सं॰ पु॰) परलोके लोकान्तरे गमो गमनं यस्मात्। मृत्यु।

परलोकगमन (सं० क्लो०) परलोके गमनं। मृत्यु, मरण।

परलोकप्राप्ति (सं० स्त्री०) लोकान्तरमें गति, मृत्यु।

परलोवैषण (सं० स्त्री०) परलोकको गवेषणा।

परवत् (सं० त्रि०) परः नियोजकतयाऽस्त्यस्य मतुप् मस्य व। पराधीन, परवश।

परवनार—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण अर्काट जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह अक्षा० ११° ३१´ उ० और देशा० ७८° ४३´ पू०से निकल कर कुड्डालूरके निकट समुद्रमें गिरी है।

परवर (हिं० पु०) १ परवल। २ आँखका एक रोग।

परवरदिगार (फा० पु०) १ पालन करनेवाला। २ ईश्वर।

परवरिश (फा० स्त्री०) पालन-पोषण।

परवल (हिं० पु०) १ एक लता जो टट्टियों पर चढ़ाई जाती और जिसके फलोंकी तरकारी होती है। यह सारे उत्तरीय भारतमें पञ्जाबसे लेकर बङ्गाल आसाम तक होती है। पूरबमें पानके भीटों पर परवलकी बेलें चढ़ाई जाती हैं। फल चार पांच अङ्गुल लम्बे और दोनों सिरोंकी ओर पतले या नुकीले होते है। फलोंके भीतर गूदेके बीच गोल बीजोंकी कई पंक्तियां होती हैं। परवलकी तरकारी पथ्य मानी जाती है और ज्वरके रोगियोंको दी जाती है। वैद्यकमें परवलके फल कटु, तिक्त, पाचन, दीपक, हृद्य, वृष्य, उष्ण, सारक तथा कफ, पित्त, ज्वर, दाहको हटानेवाले माने जाते हैं। जड़ विरेचक और पत्ते तिक्त तथा पित्तनाशक कहे गये हैं। पर्याय—कुलक, तिक्तक, पटु, कर्कशफल, कुलज, वाजिमान, लताफल, राजफल, वरतिक्त, अमृताफल, कटुफल, राजनामा, बीजगर्भ, नागफल, कुष्ठारि, कासमर्दन, ज्योत्स्नी और कच्छघ्नी। २ चिचड़ा जिसके फलोंकी तरकारी होती है।

परवश (सं० त्रि०) परस्य परेषां वा वशः वशीभूतः। पराधीन, जो दूसरेके वशमें हो। पर्याय—परायत्त, पराधीन, परच्छन्द, परवान्।

जो कुछ काम पराधीन हैं, उन्हें यत्नपूर्वक छोड़ देना चाहिए और जो अपने वशमें हों, उन्हें यत्नपूर्वक करना चाहिए। (मनु ४।१५९)

परवश्य (सं० त्रि०) जो दूसरेके अधीन हो, जो दूसरेके इच्छानुसार काम करता हो, पराधीन।

परवश्यता (सं० स्त्री०) पराधीनता।

परवस्तु—आचार्यचम्पू नामक चम्पूकाव्यके रचयिता।

परवा (हिं० पु०) १ कटोरीके आकारका बरतन जो मिट्टीका बना होता है, कोसा। (स्त्री०) २ पड़वा, परिवा पक्षकी पहली तिथि। ३ एक प्रकारकी घास।

परवा (फा० स्त्री०) १ व्यग्रता, चिन्ता, आशङ्का, खटका। २ आसरा, भरोसा। ३ ख्याल, ध्यान।

परवाई (हिं० स्त्री०) परवा देखो।

परवाच्य (सं० त्रि०) निन्दित, जिसे दूसरे बुरा कहते हों।

परवाज (फा० स्त्री०) उड़ान।

परवाणि (सं० पु०) परं धर्मं वाणयति प्रकाशयति वण शब्दे णिच् तत इन्। धातूनामनेकार्थत्वादत्र प्रकाशार्थः। १ धर्माध्यक्ष। २ वत्सर। परं शत्रुं सर्पमित्यर्थः। वाणयतीति। ३ कार्त्तिकेयवाहन, मयूर, मोर।

परवाद (सं० पु०) परस्य वादः। १ दूसरेका अपवाद, दूसरेकी निन्दा। परः वादः। २ उत्तरवाद। ३ प्रवाद।

परवादिन् (सं० पु०) प्रत्यर्थीके प्रति उत्तरवादी, दूसरेकी निन्दा करनेवाला।

परवान (हिं० पु०) १ सीमा, मिति, अवधि। २ प्रमाण, सबूत। ३ सत्यबात, यथार्थ बात।

परवानगी (फा० स्त्री०) अनुमति, आज्ञा, इजाजत।

परवाना (फा० पु०) १ आज्ञापत्र। २ पतङ्ग, फतिंगा, पंखी।

परवाया (हिं० पु०) चारपाईके पायोंके नीचे रखनेकी वस्तु।

परवाल (हिं० पु०) प्रवाल देखो।

परवासिका (सं० स्त्री०) बांदा, बंदाक, परगाछा।

परवासिनी (सं० स्त्री०) परवासिका देखो।

परवासी (सं० त्रि०) प्रवासी, दूसरेके घरमें रहनेवाला।

परवाह (सं० पु०) बहनेका भाव।

परवाह (फा० स्त्री०) १ चिन्ता, आशङ्का, व्यग्रता, खटका। २ भरोसा, आसरा। ३ ध्यान, ख्याल।

परवीरहन् (सं० त्रि०) शत्रुपक्षीय योद्धाओंका वधकर्त्ता, दुश्मनको सेनाको मारनेवाला।

परवेख (हिं० पु०) बहुत हलकी बदलीके बीच दिखाई पड़नेवाला चन्द्रमाके चारों ओर पड़ा हुआ घेरा, चान्दकी अथाई, मण्डल।

परवेश्म (सं० क्लो०) स्वर्ग, बैकुण्ठपुरी, परपुरुषकी रहनेका घर।

परव्यूहविनाशन (सं० पु०) अत्रु पक्षीय व्यूहभेदकारो।

परव्रत (सं० पु०) परं व्रतं यस्य। धृतराष्ट्र।

परश (सं० क्लो०) स्पृशतीति पृषोदरादित्वात् साधुः। १ रत्नविशेष, पारसपत्थर। इसके स्पर्शसे ही धातु स्वर्णत्वको प्राप्त होती है, इसी लिये इसका नाम स्पर्शमणि पड़ा है। २ स्पर्श, छूना।

परशबार—मध्यप्रदेशके बालाघाट जिलेको ऊँची भूमि पर अवस्थित एक गण्डग्राम। यह अक्षा० २१° १८' उ० और देशा० ८०° २०' पू०के मध्य, समूचो अधित्यकाभूमिके बीचमें बसा हुआ है और इसके चारों ओर धनधान्यपूरित समृद्धिशाली तीस ग्राम देखनेमें आते हैं।

परशव्य (सं० त्रि०) परशवे हितं हितार्थे यत्। परशुका हितकर, परशुके योग्य।

परशाला (सं० पु०) १ परशाखा, बाँदा। २ परगृह, दूसरेका घर।

परशासन (सं० क्लो०) दूसरेका आदेश।

परशु (सं० पु०) परान् शत्रून् शृणाति हिनस्ति अनेनेति पर-शृ-कु, डिच्च (आङ् परयोः खनि शृभ्यां डिच्च। उण् १।३४) अस्त्रविशेष, एक हथियारका नाम, कुठार, कुल्हाड़ी, तबर, भलुवा। पर्याय—पर्शु, परश्वध, पर्श्वध, स्वधिति और कुठार।

यह प्राचीन हिन्दुओंका युद्धास्त्रविशेष था। वैशम्पायनीय धनुर्वेदमें इस अस्त्रकी जो वर्णना लिखी है, उसके अनुसार यह एक प्रकारकी कुल्हाड़ी कहा जा सकता है। इसमें एक डंडेके सिरे पर एक अर्द्धचन्द्राकार लोहेका फल लगा रहता है। यह पहले लड़ाईके काममें आता था। स्वयं भृगुमुनिके पुत्र नारायणावतार परशुरामने यह अस्त्र धारण कर पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया था। परशुराम देखो।

ऋग्वेदादि अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थोंमें भी इस अस्त्रकी तीक्ष्ण धारका विषय लिखा है। (ऋक् ७।१०४।२१)

परशुचि (सं० पु०) उत्तममनुके पुत्रभेद, उत्तममनुके एक पुत्रका नाम।

परशुच्छिन्न (सं० पु० स्त्री०) कुठारिया नामक वृक्ष।

परशुधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच्, परशोर्धरः ६-तत्। १ गणेश। २ परशुराम। ३ परशु धारण करनेवाला।

परशुमत् (सं० त्रि०) परशुः विद्यतेऽस्य, मतुप्। परशुयुक्त, परशुधारी।

परशुयाकोट—अयोध्याप्रदेशके अन्तर्गत बलई-खेड़ासे दो कोस पश्चिममें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। यहां पूर्वसे पश्चिमको ओर विस्तृत इसी नामका एक बड़ा स्तूप है। प्रवाद है, कि बलिराज नामक एक बाईसवंशीय राजाने परशुया (परशु) नामक एक अहीर नौकरके लिए एक मन्दिर और बहुतसे घर बनवा दिये थे। इस ध्वंसावशिष्ट स्तूपकी लम्बाई १४०० फुट और चौड़ाई २०० फुट है। इसके पूर्वांशमें ३५ फुट ऊँची भूमिके ऊपर जो ईंटोंकी दीवार पाई गई है, वह हिन्दूदेवमन्दिरकी जैसी है। यहांसे ५०० फुट पश्चिममें और भी एक मन्दिरकी दीवार देखी जाती है। दोनों मन्दिरके चारों ओर प्राचीरपरिवेष्टित था जिसका चिह्न अभी भी पाया जाता है।

परशुराम (सं० पु०) परशुना कुठाराख्यशस्त्रेण रामः रमणं यस्य। भगवदवतारभेद।

"अवतारे षोडशमे पश्यन् ब्रह्मद्रुहो नृपान्।
त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रमकरोन्महीम्॥"

(भागवत १।२ अ०)

पर्याय—जामदग्न्य, पर्शुराम, परशुरामक, भार्गव, भृगुपति, भृगूत्तापति।

महाभारतमें लिखा है, कि महात्मा जह्नुके पुत्र अज, अजके पुत्र बलाकाश्व और बलाकाश्वके पुत्र कुशिक थे। कुशिकने इन्द्रको पुत्ररूपमें पानेकी आशासे कठोर तपोनुष्ठान किया। इस पर देवराज प्रसन्न हो स्वयं उनके औरससे जन्मग्रहण कर गाधि नामसे विख्यात हुए। महाराज गाधिके सत्यवती नामक एक रूपवती कन्या थी। उस कन्याको कुशिकतनयने भृगुनन्दन ऋचीकके हाथ समर्पण किया। भगवान् ऋचीकने निज प्रियतमाके पतिव्रतागुण पर प्रसन्न हो उन्हें तथा उनके पिता महाराज गाधिके पुत्रलाभके लिये दो पृथक् पृथक् चरु प्रस्तुत किये और सत्यवतीको बुला कर कहा, 'अपनी माताको एक चरु खानेको देना और दूसरा तुम

खाना। प्रथम चरु खानेसे निश्चय हो तुम्हारी माता एक क्षत्रिय निसूदन वीरपुत्र प्रसव करेगी और द्वितीय चरु खानेसे तुम एक शान्तस्वभाव धैर्यशाली तपोनिरत पुत्रका मुख देखोगी।' इतना कह कर ऋचीक तपस्याके लिये वन चले गये। इस समय गाधि तीर्थयात्राप्रसङ्गमें सस्त्रीक ऋचीकके आश्रममें पहुंचे। पितामाताको देख कर सत्यवती पुलकित हृदयसे दोनों चरु ले माताके समीप गई और आद्योपान्त सब बात कह सुनाई। इस पर गाधिमहिषी फूली न समाई और भूलसे उसने अपना चरु कन्याको दिया तथा कन्याका चरु आप खाया। इस प्रकार भ्रमवशतः माताका चरु खानेसे सत्यवतीका गर्भ धीरे धीरे भीषणाकार होने लगा। ऋचीकने पत्नीके गर्भकी ऐसी हालत देख उससे कहा, 'प्रिये! तुम्हारी माताने अपना चरु तुम्हें खिलाया है और तुम्हारा चरु उसने खाया है। इस कारण तुम्हारे गर्भसे जो पुत्र होगा वह निश्चय ही अति क्रूरकर्मा और क्रोधपरायण तथा तुम्हारा भाई तपोनिरत और ब्रह्मतेजःसम्पन्न होगा। मैंने तुम्हारे चरुमें ब्रह्मतेज और तुम्हारी माताके चरुमें क्षत्रतेज दिया था। इस कारण तुम्हारी माताका पुत्र ब्राह्मण और तुम्हारा पुत्र क्षत्रिय होगा, इसमें सन्देह नहीं।' ऋचीकके इतना कहने पर सत्यवती फूट फूट कर रोने लगी और पतिके चरण पर गिर कर बोली, 'भगवन्! मेरा पुत्र क्षत्रधर्मावलम्बी होगा, ऐसा कहना आपको उचित नहीं है।' ऋचीकने कहा, 'इसमें मेरा क्या दोष! तुम चरुभोजनदोषसे ही अति क्रूरकर्मा पुत्र प्रसव करोगी, यह टलनेको नहीं। विशेषतः तुम्हारे पिताके वंशमें ब्राह्मण उत्पन्न होगा, यह मैं पहलेसे ही जानता हूं।' इस पर सत्यवती गिड़गिड़ा कर बोली, 'यदि आपका वाक्य अन्यथा होनेको नहीं, तो जिससे आपके पौत्र क्षत्रधर्मावलम्बी हो कर जन्मग्रहण करें, वैसा उपाय कर दीजिए; किन्तु आपको दया करके शान्तगुणावलम्बी पुत्र प्रदान करना होगा।' महात्मा ऋचीक प्रियतमाके सानुनय विनय पर सहमत हो गये। यथाकाल सत्यवतीने शान्तस्वभाव जमदग्निको और उनकी माताने विश्वामित्रको प्रसव किया। (शान्तिपर्व ४८ अ०)

वनपर्वमें यह विवरण कुछ और प्रकारसे लिखा है—

"महर्षि ऋचीक जब विवाह करनेके लिये उपस्थित हुए, तब राजा गाधिने उनसे कहा, 'हम लोग कन्याके विवाहमें एक हजार ऐसे अश्व पणमें लेते हैं जिनका शरीर पाण्डुवर्णका हो, कानका भीतरी भाग लाल और बाहरी भाग काला हो तथा जो चलनेमें बहुत तेज हों।' ऋचीकने वैसे ही घोड़े वरुणसे ला कर दिये। जहां वे सब अश्व उतरे थे, वह स्थान अश्वतीर्थ नामसे प्रसिद्ध हुआ। राजा गाधिने सहस्र अश्व पा कर कान्यकुब्जमें गङ्गाके किनारे ऋचीकके साथ सत्यवतीको सौंप दिया। ऋचीकका विवाहकार्य जब शेष हुआ, तब उनके पिता भृगु उनको देखने आये। पुत्र और पुत्रवधू दोनोंने उनकी पूजा की। भृगुने प्रसन्न हो कर वधूसे कहा, 'अपने इच्छानुसार वर मांगो, मैं देता हूं।' सत्यवतीने अपने तथा अपनी माताके पुत्रके लिये प्रार्थना की। इस पर भृगुने दो भाग चरु दे कर कहा कि, 'तुम और तुम्हारी माता ऋतुस्नान करके यथाक्रम उडुम्बर और अश्वत्थवृक्षका आलिङ्गन करना। मैंने तुम्हारे तथा तुम्हारी माताके लिये बहुत यत्नसे ये चरु प्रस्तुत किये हैं।' इतना कह कर भृगुजी चल दिये। किन्तु राजदुहिता और रानीने भृगुके आदेशके विपरीत कार्य किया। बहुकालके बाद जब भृगुको दिव्यज्ञानसे कुल बातें मालूम हो गईं, तब वे पुनः पुत्रवधूके पास आये और बोले, 'भद्रे! तुम्हारी माताने विपर्ययक्रमसे तुम्हें वञ्चित किया है, इस कारण तुम्हारा पुत्र ब्राह्मण हो कर क्षत्रियवृत्तिका अवलम्बन करेगा और तुम्हारी माताका पुत्र महावीर्य क्षत्रिय हो कर भी ब्रह्मचारी होगा।' यह सुन कर सत्यवतीने श्वशुरको पुनःपुनः प्रसन्न कर प्रार्थना की, 'मेरा पुत्र वैसा न हो, पौत्र हो तो हो।' भृगुने 'वैसा ही होगा' कह कर सत्यवतीको सान्त्वना दी।

यथासमय सत्यवतीने तेजोमय और कान्तिविशिष्ट जमदग्निको प्रसव किया। यह जमदग्नि समस्त धनुर्वेद और चारों शास्त्रोंसे अवगत थे। पीछे प्रसेनजित् राजाके निकट उपस्थित हो कर उन्होंने उनकी रेणुका नाम्नी कन्याका पाणिग्रहण किया। रेणुकाके गर्भसे पांच पुत्र हुए, रुमण्वान्, सुषेण वसु, विश्वावसु और कनिष्ठ परशुराम। मतान्तरसे उन पञ्चपुत्रोंके नाम ये हैं—वसु, विश्वावसु,

हृष्टवान्, वृहत्‌कण्व और कण्व। परशुराम सभी भाइयों से तो छोटे थे, पर थे यथेष्टगुणसम्पन्न। (वनपर्व)

विष्णु, मत्स्य, भागवत, कालिकापुराण और सह्याद्रि-खण्डके रेणुका-माहात्म्यमें लिखा है, कि जमदग्निने इक्ष्वाकुवंशीय रेणुराजकी कन्या रेणुकासे विवाह किया था। उन्हींके गर्भसे क्षत्रियनिहन्ता परशुरामकी उत्पत्ति हुई। सह्याद्रिखण्डमें लिखा है, 'चैत्रमास पुनर्वसु नक्षत्र तृतीया तिथिको रेणुकाके गर्भसे परशुरामने जन्म ग्रहण किया। शान्तिपर्वमें लिखा है—परशुरामने गन्ध-मादन पर्वत पर महादेवको प्रसन्न कर उनके वरसे अतितेजो-मय परशु अस्त्र प्राप्त किया था।

सह्याद्रिखण्डमें लिखा है, कि भार्गवने महादेवसे अस्त्रशिक्षा प्राप्त कर पीछे विघ्नराज गणेशसे परशुविद्या सीखी थी। इसी परशुसे ही वे परशुराम नामसे प्रसिद्ध हुए।

महाभारतमें लिखा है—एक दिन रेणुका स्नान करनेके लिये नदीमें गई थी। वहां उसने राजा चित्ररथ-को अपनी स्त्रीके साथ जलक्रीड़ा करते देखा और काम-वासनासे उद्विग्न हो कर घर आई। जमदग्नि उसकी यह दशा देख बहुत कुपित हुए और उन्होंने अपने चार पुत्रोंको एक एक करके मातृवधकी आज्ञा दी। पर स्नेहवश किसीसे ऐसा न हो सका। इस पर जमदग्नि-ने उन चारों पुत्रोंको शाप दिया जिससे वे हतचेतन हो पड़े। इतनेमें परशुराम आये। जमदग्निने उनसे कहा, 'तुम इस पापीयसी माताका वध करो, इसके लिए जरा भी दुःख न करना।' परशुरामने आज्ञा पाते ही माताका सिर काट डाला। इस पर जमदग्निने प्रसन्न हो कर वर मांगनेके लिए कहा। परशुराम बोले 'पहले तो मेरी माता-को जिला दीजिए और फिर यह वर दीजिये कि मैं परमायु प्राप्त करूं, मेरे भ्रातृगण प्रकृतिस्थ हों तथा युद्धमें मेरे सामने कोई न ठहर सके।' जमदग्निने ऐसा ही किया। एक दिन राजा कार्त्तवीर्य-सहस्रार्जुन जमदग्निके आश्रम पर आये। आश्रम पर रेणुकाको छोड़ कर और कोई न था। रेणुकाने कार्त्तवीर्यको आते देख उनकी यथोचित पूजा की, पर कार्त्तवीर्य युद्धमदसे उन्मत्त हो उस पूजासे शान्त न हुए वरन् आश्रमके पेड़ पौधोंको उजाड़ होम-धेनुका बछवा ले कर चल दिए। इस पर होमधेनु रोदन करने लगी। परशुरामको जब इसकी खबर लगी, तब वे तुरन्त दौड़े और जा कर कार्त्तवीर्यकी सहस्र भुजाओंको भालेसे काट डाला। सहस्रार्जुनके कुटु-म्बियों और साथियोंने एक दिन आ कर जमदग्निसे बदला लिया और उन्हें बाणोंसे मार डाला। परशुरामने आश्रम पर आ कर जब यह देखा, तब पहले तो बहुत विलाप किया, फिर सम्पूर्ण क्षत्रियोंके नाशकी प्रतिज्ञा की। उन्होंने शस्त्र ले कर सहस्रार्जुनके पुत्र पौत्रादिका वध करके क्रमशः सारे क्षत्रियोंका नाश कर डाला। परशु-रामकी इस क्रूरता पर जब ब्राह्मण-समाजमें उनकी निन्दा होने लगी तब परशुराम दयासे खिन्न हो वनमें चले गये। एक दिन विश्वामित्रके पौत्र परावसुने परशुरामसे कहा, "अभी जो यज्ञ राजा ययातिके देवलोकसे पतनके कारण हुआ था उसमें न जाने कितने ही प्रतापी क्षत्रिय राजा आए थे; तुमने पृथ्वीको जो क्षत्रियविहीन करनेकी प्रतिज्ञा की थी वह सब व्यर्थ थी। अभी केवल जनसमाजमें तुम वृथा आत्मश्लाघा कर रहे हो। सचमुचमें तुम महावीर क्षत्रियोंके डरके मारे इस पर्वत पर जा छिपे हो।' फिर क्या था, इतना सुनते ही परशु-राम आगबबूला हो उठे और पुनः शस्त्र धारण किया। पहले इन्होंने जिन सब क्षत्रियोंको छोड़ दिया था, वे अभी प्रबलपराक्रान्त हो कर पृथ्वीका शासन कर रहे थे। उन्हें देखते ही परशुरामके क्रोधका पारा चढ़ आया और उन सबका बालबच्चोंके सहित संहार किया। कुछ दिन बाद गर्भस्थ क्षत्रिय सन्तान जो जन्म लेती थीं, उन्हें भी परशुराम यमपुर भेजने लगे। इस समय कितनी ही गर्भ-वती स्त्रियोंने बड़ी कठिनतासे इधर उधर छिप कर अपनी रक्षा की थी। उन सबके नाम क्षत्रिय शब्दमें देखो।

महावीर परशुरामने इस प्रकार पृथिवीको निःक्षत्रिय करके अन्तमें अश्वमेध यज्ञ किया और उसमें सारी पृथ्वी कश्यपको दान दे दी। पृथ्वी क्षत्रियोंसे सर्वथा रहित न हो जाय इस अभिप्रायसे कश्यपने परशुरामसे कहा, "अब यह पृथ्वी हमारी हो चुकी, अब यहां रहना तुम्हें उचित नहीं है, सो तुम दाक्षिणको ओर चले जाओ।" परशुरामने वैसा ही किया। जब वे समुद्रके

किनारे पहुंचे, तब समुद्रने उनके रहनेके लिए शूर्पारक नामक स्थान प्रस्तुत कर दिया। परशुराम वहीं रहने लगे। (शान्तिपर्व ४९ अ०)

वनपर्वमें फिर लिखा है कि, परशुरामने इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय कर समन्तपञ्चकके पांच ह्रद रुधिरसे भर दिए थे और उन्हीं ह्रदोंमें पितृतर्पण करके पितामह महर्षि ऋचीकका दर्शन पाया था। ऋचीकने रामको क्षत्रियवध करनेसे मना किया। इस पर रामने यज्ञ द्वारा देवेन्द्रको परितृप्त करके ऋत्विकोंको पृथ्वी दान दे दी। ब्राह्मणोंने कश्यपके आदेशसे उस वेदीको खण्ड खण्ड करके आपसमें विभाग कर लिया और उसीसे वे सब ब्राह्मण पीछे खाण्डवायन कहलाने लगे। रामने कश्यपको पृथ्वी दान दे कर महेन्द्र नामक शैलेन्द्र पर तपस्या की और वहीं वे रहने लगे।

(वनपर्व ११७ अ०)

वाल्मीकि रामायणके आदिकाण्डमें लिखा है, कि जब रामचन्द्र शिवका धनुस् तोड़ सीताको व्याह कर लौट रहे थे, तब परशुरामने उनका रास्ता रोका और सामने जा कर कहा, 'तुमने शैवधनु तोड़ दिया है, यह सुन कर मैं एक और धनुस् लाया हूं, यह वैष्णव धनुस् है; शैवधनुसे किसी अंशमें कम नहीं है। विष्णुने यह धनुस् महर्षि ऋचीकको दान दिया था। उन्होंने फिर मेरे पिताको दिया और मैंने इसे पिताजीसे पाया है। यदि तुम इस पर बाण चढ़ा सकोगे, तो मैं तुम्हारे साथ युद्ध करूंगा।' राम धनुस् पर बाण चढ़ा कर बोले, "जमदग्निपुत्र! अब इस बाणसे मैं आपकी गतिका अवरोध करूं या तपसे अर्जित आपके लोकोंका हरण करूं।" परशुरामने हततेज तथा चकित हो कर कहा, "मैंने सारी पृथ्वी कश्यपको दानमें दे दी है, इससे मैं रातको पृथ्वी पर नहीं सोता। मेरी गतिका अवरोध न करो, लोकोंका हरण कर लो।" इस पर रामने लक्ष्य करके शरत्याग किया जिससे परशुरामके तपोबलसञ्चित लोक नष्ट हो गये। जामदग्न्य रामसे इस प्रकार पूजित हो कर महेन्द्रपर्वत पर चले आये। (७५-७६ सर्ग)

रामायण और महाभारतके किसी स्थानमें परशुरामको भगवदवतार नहीं बतलाया है। परवर्त्तीकालमें मत्स्य, विष्णु आदि पुराणोंमें ये भगवान्‌के छठे अवतार और भागवतपुराणमें सोलहवें अवतार माने गए हैं।

फिर सह्याद्रिखण्डके रेणुका-माहात्म्यमें परशुरामको पूर्ण अवतार और उनकी माता रेणुका (दूसरा नाम एकवीरा)-को स्वयं अदिति गङ्गा पार्वती बतलाया है। उनका व्यभिचारदोष छिपानेके लिए उक्त ग्रन्थमें कुछ और ही उपाख्यान लिखा है। रेणुकामाहात्म्य देखो।

सह्याद्रिखण्डसे जाना जाता है, कि परशुरामने ही समुद्रसे कोङ्कणका उद्धार कर वहां ब्राह्मणवास स्थापित किया। बहुतोंका कहना है, कि कोङ्कणस्थ ब्राह्मणगण परशुरामकी सृष्टि है। कोकणस्थ ब्राह्मण, केरल मलबार आदि शब्द देखो। केरलोत्पत्ति नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि परशुरामने अहिच्छत्रसे ब्राह्मण ला कर केरलमें बसाया और समस्त जनपद उन्हें अर्पण किया।

बनारस जिलान्तर्गत तुर्त्तीपारके निकटवर्त्ती खैरागढ़का प्राचीन नाम भार्गवपुर है। प्रवाद है, कि इसी स्थानमें परशुरामका जन्म हुआ था। खैरागढ़से ३ कोस पश्चिम रखाई नामका एक ह्रद है। यहांके लोगोंका कहना है, कि परशुरामने जब सहस्रार्जुनका वध किया, तब उसीके रक्तसे उक्त ह्रद बना है। स्कान्दपुराणीय जैमिनिसंहिता, रेणुकामाहात्म्य आदि ग्रन्थोंमें परशुरामका विषय बहुत बढ़ा चढ़ा कर लिखा है।

परशुराम—गुजरात प्रदेशके अन्तर्गत बागर राज्यके एक राजपूत राजा। फिरिस्तामें लिखा है, कि इन्होंने गुजरातके सुलतान बहादुरके साथ युद्ध कर जब अन्तमें आत्मसमर्पण किया, तब उनके पुत्र इस्लामधर्ममें दीक्षित हुए।

परशुराम—१ एक ग्रन्थकार, कर्णके पुत्र। इन्होंने ईशावास्योपनिषट्टीका, गृह्यसूत्रव्याख्या और महारुद्रपद्धति नामक ग्रन्थोंकी रचना की है।

२ रसराजशिरोमणिके प्रणेता।

३ कृष्णदेवके पुत्र पाटीलीलावती विवरण और भूपालवल्लभके रचयिता।

परशुराम—यमुनापुरके एक राजा, सूर्यवरके पौत्र और हरिलमिश्रके पुत्र। ये परशुरामप्रकाशके रचयिता खण्डेरायके प्रतिपालक थे।

परशुराम—१ हिन्दीके एक कवि। दिग्विजयभूषणमें इनके कवित्त पाये जाते हैं।

२ एक हिन्दी-कवि। आप व्रजके रहनेवाले थे। सम्वत् १६६०में आपका जन्म हुआ था। आपके पद रामसागरोद्भवमें मिलते हैं। आप बड़े भक्त तथा श्रीभट्ट और हरिव्यासजीके सिद्धान्तके अनुयायी थे। आपने अपनी सुन्दर कवित्वशक्तिका उपयोग भगवद्गुणवर्णनमें किया है।

परशुरामक्षेत्र—पनालाके अन्तर्गत एक गिरिगुहा।

परशुरामशुक्ल—एक ग्रन्थकार। दिनकरकृत शान्तिसारमें इनका विषय लिखा है।

परशुरामथापा—नेपालके सीमान्तप्रदेशका एक शासनकर्त्ता। १८१५ ई०में जब अङ्गरेजसैन्य नेपाल पर चढ़ाई करनेको अग्रसर हुई थी, तब इन्होंने ४००० गुर्खा ले कर बागमती नदीके किनारे उनका सामना किया था। किन्तु इस युद्धमें ये दलबलके साथ मारे गये और अङ्गरेजोंने 'तराई' प्रदेश भारतसीमाभुक्त कर लिया।

नेपाल देखो।

परशुराम-त्रिम्बक—एक महाराष्ट्रसचिव। ये पहले किन्हई ग्रामके ग्राममें सामान्य 'कुलकरणी'का काम करते थे। धीरे धीरे इनकी प्रतिभा चारों ओर जग उठी। राजाराम, रामचन्द्रपन्थ और शम्भाजी आदि महाराष्ट्र-सैनिक पुरुषगण जब मुगलोंके हाथसे दुर्गकी रक्षा कर रहे थे, ठीक उस समय परशुराम अपने वीर्य और बुद्धिका यथेष्ट परिचय दे कर जनसाधारणमें प्रसिद्ध हो गए थे। १६९८ ई०में औरङ्गजेबने गिञ्जी दुर्गको घेर लिया। पीछे वे सतारा दुर्ग जीतनेके लिए आगे बढ़े और एक पत्र लिख कर रामचन्द्रपन्थको पूना भेजा। वह पत्र त्रिम्बकजीके हाथ पड़ा। वे षड़यन्त्र समझ कर प्रकाश्यरूपसे रामचन्द्रके विरुद्धाचारी हो गये। औरङ्गजेब और उनके पुत्र आजमशाहने सतारा दुर्गके सामने छावनी डाली और युद्धके लिए अग्रसर हुए। शिवाजीके शिक्षित सेनापति प्रयागजी प्रभु हवलदारने प्राणपणसे मुगलसैन्यके साथ युद्ध किया। इस युद्धमें प्रयागजीने अपनी खूब वीरता तो दिखलाई, पर उन्हें दलबलके साथ दुर्गमें आश्रय लेना पड़ा। कुछ दिन बाद दुर्गके भीतर रसद आदि घट गई। तब उन्होंने बचावका कोई उपाय न देख आत्मसमर्पण करनेको संकल्प किया। पीछे परशुराम त्रिम्बकने निर्भय हो पार्ली दुर्गके मध्य प्रवेश करके विश्वस्त द्वारा आजमशाहका मुंह बन्द कर दिया जिससे उन्होंने इस ओरसे बिलकुल चेष्टा हटा ली। परशुरामने इच्छानुसार रसद आदि ले कर प्रयागजीकी सेनाके आहारार्थ भेज दी।

सतारा दुर्गके अधःपतनके एक मास बाद अर्थात् १७०० ई०के मार्चमासमें राजारामकी मृत्यु हुई। पीछे उनकी स्त्री ताराबाईने परशुरामको राजकार्य चलानेके लिए प्रतिनिधिके पद पर नियुक्त किया। उनको ऊपर दुर्गादिकी देखरेखका भार भी सौंपा गया।

प्रतिनिधि त्रिम्बकजीने १७०६ ई०में मुगलोंसे वसन्तगढ़ और सतारा दुर्ग जीत लिया। १७०७ ई०में जुल्फीकर खाँके परामर्शसे औरङ्गजेबके द्वितीय पुत्र आजमशाहने जब शाहुको छोड़ दिया, तब शाहुने परशुरामको सतारा दुर्ग प्रत्यर्पण करनेका आदेश लिख भेजा, किन्तु त्रिम्बकजीने उनकी बात पर कान न दिया। अन्तमें गुप्त रहस्य न जानते हुए त्रिम्बकजी अपने अधीनस्थ मुसलमान सेनापति शेखमीरासे अवरुद्ध हुए। शेख मीराने सतारा दुर्ग विपक्षियोंके हाथ समर्पण किया। १७१२ ई०में शाहुने गदाधर प्रह्लादकी प्रार्थनासे छुड़ा कर परशुराम प्रतिनिधिको मानके साथ स्वपद पर अधिष्ठित किया। प्रतिनिधिने अपने पुत्र कृष्णजी भास्करको दुर्गादिरक्षणका भार सौंपा और अपने शाहुके विरुद्धाचारी हो कोल्हापुरका प्रतिनिधित्व ग्रहण किया। उनके ऐसे व्यवहारसे असन्तुष्ट हो शाहुने उन्हें जानसे न मार कर पुनः कैदमें रखा। इसके कुछ दिन बाद शाहुने प्रतिनिधिके द्वितीय पुत्र श्रीप्रतापके वीरत्वसे प्रसन्न हो परशुराम त्रिम्बकको पुनः मुक्ति दी। १७२० ई०में जब निजाम-उल्-मुल्क दाक्षिणात्यके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए, तब त्रिम्बकजीकी मृत्यु हुई। उनकी मृत्युके बाद पेशवा बालाजी विश्वनाथ दिल्लीसे स्वदेश लौटने भी न पाए थे कि प्रतिनिधिके पुत्र श्रीप्रताप पितृपद पर अधिकार कर बैठे।

परशुरामदेव—निम्बार्कसम्प्रदायीके एक गुरु। ये हरिव्यासदेवके शिष्य और हरिवंशदेवके गुरु थे।

परशुरामपुर—अयोध्या प्रदेशके प्रतापगढ़ जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यहां एक मन्दिरमें "चौहार्जा" नामक एक शक्ति (पार्वती)-की मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। यहांके लोगोंका ऐसा विश्वास है, कि दक्षयज्ञके समय पार्वती-की देहका अंश इस स्थान पर गिरा था। यहांके पुरोहितोंका कहना है, कि बनाफर-वीर अलहा इस देवी-की उपासना करते थे। यहां देवीपूजाके लिए अनेक यात्री आते हैं।

परशुराम भाऊ-पट्टवर्द्धन—एक महाराष्ट्रीय योद्धा। तासगांववासी पटवर्द्धनवंशधरोंके ये अधिनायक थे। १७७२ ई०में पेशवा नारायण रावकी हत्या और रघुवा (रघुनाथराव)-के महाराष्ट्रसिंहासन-ग्रहणसे राज्य भरमें खलबली मच गई। रघुवाने जब देखा कि वे मन्त्रि-दलके विरुद्ध युद्ध नहीं कर सकते, तब उन्होंने हैदर-अलीके साथ सन्धि कर ली।

१७७५ ई०में अंग्रेजोंके साथ रघुनाथकी सूरतमें जो सन्धि हुई थी उसके अनुसार वे कृष्णानदीके दक्षिण कूल तक विस्तीर्ण महाराष्ट्रभूभाग छोड़ देनेके लिये कृतसङ्कल्प हुए। इधर हैदरने भी सैन्य और अर्थ दे कर उनकी सहायता करनेका वचन दिया। १७७६ ई०में उक्त शर्त कागज पर लिखी जानेके बाद हैदरने ससैन्य सावनूर प्रदेश तक आक्रमण करके अपना अधिकार फैला लिया। इस पर पूनाकी मन्त्रिसभा चुप चाप न रह सकी, उनके विरुद्ध कोन्हर राव त्रिम्बक-पट्टवर्द्धन और पाण्डुरङ्गपन्थ भेजे गये। हैदरके सेनापति महम्मद अलीखाँके युद्धमें कोन्हर मारे गये और पाण्डुरङ्ग बन्दी हुए। अन्तमें १७७७ ई०को तासगाँव-के अधिनायक परशुरामभाऊने सैन्य संग्रह करके निजाम सैन्यके साथ हैदरके विरुद्ध युद्धक्षेत्रमें कदम रखा। जब वे कृष्णानदी पार कर गये, तब उन्हें मालूम हुआ कि निजाम सैन्यके अध्यक्ष इब्राहिमबेगने हैदरअलीसे रिश्वत ली है। अतः वे अपनेको जोखिम-में न डालनेकी इच्छासे वापिस चले गए। हैदर चुप चाप बैठा न रहा। उन्होंने कोल्हापुरके राजमन्त्री यशोवन्तरावका साथ दिया। परशुरामने लौट कर कोल्हापुर पर आक्रमण किया और अकिवात नामक दुर्गको जीत लिया। १७७८ ई०में कीत्तूरके देशाई सरदार इराप्पाने हैदरकी सहायतासे गोकाक नामक स्थान अपने अधिकारमें कर लिया। १७७९ ई०में परशुरामने पेशवाके लिये केवल गोकाक ही नहीं जीता, साथ साथ इराप्पाको भी कैद कर लेते आये। १७८३ ई० तक यह स्थान पेशवाके अधिकारमें था, पीछे उन्होंने युद्ध-व्ययकी बाबतमें यह भूसम्पत्ति पट्टवर्द्धनोंको दे दी।

उसी वर्ष रघुनाथने भग कर सूरतमें जनरल गडार्ड-का आश्रय लिया इस पर पूनाके मन्त्रिदलने अंग्रेजोंके ऐसे आचरणसे अप्रसन्न हो हैदरअली और निजामके साथ सन्धि कर ली तथा अंगरेजोंको भारतसे निकाल भगानेका सङ्कल्प किया। कोल्हापुरराजको भी इस दलमें योग देनेके लिये अनुरोध किया गया। शर्त्त यह ठहरी कि मनोली और चिकोड़ी नामक स्थान कोल्हापुर-राजको लौटा दिये जाएँगे, पर १२ वर्षके भीतर उक्त दोनों स्थानके राजस्वसे युद्ध-व्ययके लिये परशुरामभाऊ १५ लाख रुपये वसूल कर लेंगे। सुतरां उल्लिखित समय तक वहांके राजस्व वसूलका भार परशुरामके ऊपर हो रहेगा। १७८१ ई०के मार्च मासमें नाना फड़नवीशके आदेशसे उन्होंने १२००० सैन्य ले कर कर्नल गडार्ड पर धावा बोल दिया। १७८६ ई०में परशुरामने तोगेल सरदारोंसे मनोली दुर्ग जीत कर अपने अधिकारमें कर लिया।

१७८५ ई०में टीपू सुलतान निर्गुण्ड नामक स्थान-को जीत कर हिन्दुओंके ऊपर घोर अत्याचार करने लगे। त्वक्छेद करके कितने हिन्दुओंका जातिनाश किया। इस कारण भारी सङ्कटमें पड़ कर सैकड़ों ब्राह्मणसन्तानने आत्मजीवन विसर्जन किये थे। महाराष्ट्र सचिव नाना फड़नवीश चुपचाप बैठे न रहे। इसका प्रतिशोध लेनेकी कोशिश करने लगे। बीचमें दो युद्ध भी हुए। आखिरको १७८७ ई०में टीपूने कुछ स्थान महाराष्ट्रोंको दे कर सन्धि तो कर ली, पर पीछे उन्होंने पुनः महाराष्ट्रों पर चढ़ाई कर दी। १७९० ई०में टीपू सुलतानको दमन करनेकी इच्छासे अंगरेज, महाराष्ट्र और निजामके बीच सन्धि हुई। अंगरेज और निजामकी सेनाने परशुरामका साथ दिया। इस

युद्धमें महाराष्ट्र सैन्यके अध्यक्ष बन कर परशुरामभाऊ आगे बढ़े। अंगरेजोंकी सहायतासे परशुरामने श्रीरङ्गपत्तन तकके जो सब स्थान टीपूसे जीत लिये, उनका शासन भार धुन्धुपन्थ गोखलेके ऊपर सौंप दिया और इस प्रकार आप निश्चिन्त हो बैठे। १७९२ ई०में इस युद्धका अवसान हुआ। इतिहासमें यही तृतीय महिसुर युद्धके नामसे प्रसिद्ध है।

महिसुर-युद्धके शेष हो जाने पर श्रीरङ्गपत्तनमें जो सन्धि स्थापित हुई, उससे तुङ्गभद्रानदी तकके स्थान, परेशगढ़ और कोप्पुर देशाइयोंके अधिकृत स्थान जो एक समय टीपू सुलतानके अधिकारमें थे वे सबके सब महाराष्ट्र सीमान्तर्भुक्त हो कर परशुरामके शासनाधीन हुए। उन्होंने कोप्पुर नगरमें एक मामलतदारको नियुक्त करके यह नवलब्ध स्थान धारवारके अधीन रख छोड़ा। श्रीरङ्गपत्तनसे लौट कर परशुरामने देखा कि धुन्धुपन्थ गोखले कोप्पुरके देशाई सरदारोंसे अर्थसंग्रह करके अपनी क्षमता बढ़ा रहे हैं। अतः उन्हें गोखले-की क्षमताका ह्रास करनेकी चिन्ता पड़ी। १७९३ ई०में उन्होंने कोल्हापुरराजके विरुद्ध अस्त्रधारण करके उनका अभिमान चूर किया था। १७९५ ई०में माधव-रावकी मृत्यु होने पर बाजीरावके राज्यारोहणके उप-लक्षमें परशुराम पूना लाये गये और यहां उनके साथ नाना फड़नवीशका विवाद हो गया। इसके बाद मुगलसैन्यके उपर्युपरि आक्रमणसे तंग आ कर महा-राष्ट्र-सचिव नाना फड़नवीशने सेनानायकोंसे सलाह ले परशुरामभाऊको सर्वश्रेष्ठ सेनापतिके पद पर वरण किया। उन्होंने मुगलछावनी पर आक्रमण करनेके लिये पिण्डारी और अन्यान्य अश्वारोही सेनाओंको हुकुम दिया। १७९६ ई०के मार्च मासमें मुगलसेना-पतिके साथ परशुरामका घमसान युद्ध हुआ। इस युद्धमें लाल खांके आक्रमणसे वे विशेषरूपसे आहत हुए। उसी साल महाराष्ट्र-सिंहासनके लिये दत्तकपुत्र ले कर अंगरेज कर्मचारी मैलेट (Mr. Malet) और नाना फड़नवीशमें घोर तर्क उपस्थित हुआ। इधर बाजीरावने मसनद पानेके लिये सिन्धियाके सचिवको अपनी मुट्ठीमें कर लिया और सिन्धियापतिको लिख भेजा कि वे उन्हें सिंहासन लेनेमें यदि विशेष सहायता करें, तो स्वयं बाजीराव उन्हें ४ लाख रुपये-की सम्पत्ति देंगे।

यह उपाय काममें लानेके पहले ही नाना फड़न-वीशको सब बातें मालूम हो गईं। उन्होंने उपस्थित विपद् समझ उसी समय परशुराम भाऊको बुला और उनका कान भर दिया। परशुराम तासगाँवसे शिवनेरी दुर्ग जो १२ कोस दूर था, ४८ घंटेमें पहुंचे और वहां बाजीरावको पेशवा बनाऊंगा, यह प्रस्ताव सबके सामने प्रकट किया। पहले तो किसीने उनकी बात पर विश्वास न किया, पीछे मूढ़ बाजीरावने परशुराम को गोपुच्छ और गोदावरीका पवित्र जल छुला कर शपथ कराया और आप दुर्गसे उतर कर अपने भाई चिम-नाजी अप्पाके साथ भावी राजधानीको ओर अग्रसर हुए। अमरतराव परशुरामके आदेशसे उस दुर्गमें बन्दी रहे। बाजीरावने पूना आ कर नाना फड़नवीश-के साथ फिरसे दोस्ती कर ली। बाजीरावके इस अन्याय आचरण पर क्रुद्ध हो कर बल्लभटट्टने सिन्धिया-पतिको पूनाकी ओर ससैन्य अग्रसर होनेके लिये प्रार्थना की। फड़नवीश कुछ डर भी गये, तो भी परशुरामभाऊने सतर्कभावसे युद्ध करनेकी उन्हें सलाह दी। किन्तु युद्ध नहीं हुआ। नाना फड़न-वीशने किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो कर युद्ध करना नहीं चाहा। वे सिन्धियाके डरसे पुरन्दर होते हुए सतारा-की ओर चल दिये। बाजीराव और परशुराम पूना-में रहे। सिन्धियाराज जब पूना गये, तब बाजीराव और परशुरामने उनकी खूब खातिर की। बल्लभट्टने बहुत सोच विचारके बाद बाजीरावको पदच्युत करके कैद कर लिया और परशुरामकी सलाह पा कर मधु-रावकी विधवा पत्नीने चिमनाजी अप्पाको दत्तकपुत्र-रूपमें ग्रहण किया। चिमनाजी पेशवाके पद पर नियो-जित तो हुए पर परशुराम मन्त्रिपद पर रह कर राज-कार्यको देख रेख करेंगे, ऐसा स्थिर हुआ।

परशुराम मन्त्रिपद पर प्रतिष्ठित हो कर चिमनाजी-को पूनानगर ले गये और उनकी अनिच्छा रहते हुए भी उन्हें १७९६की २६वीं मईको पेशवाके पद पर

वरण किया। परशुरामने अपने पद पर प्रतिष्ठित रह कर प्रतिज्ञा की कि सिन्धियाको विपद् पड़ने पर वे यथेष्ट आर्थिक सहायता करेंगे। अर्थ-संग्रहके लिये उन्होंने निजामअलीके मन्त्री मशिर-उल-मुल्कको कारागारसे मुक्त कर दिया।

चिमनाजीके पेशवापद पानेके दूसरे ही दिन परशुरामने नाना फड़नवीशसे पूना आ कर नूतन-शासन-भार ग्रहण करनेका प्रस्ताव किया। लेकिन नाना नहीं आये—कोङ्कणको ओर भाग गये। बल्लभभट्टने परशुरामको सिन्धियासैन्य ले कर नानाका पीछा करनेका हुकुम दिया। परशुरामने वैसा तो नहीं किया, पर उनको सभी जागीर छथिया कर सिन्धियाराजको अर्पण कर दी और पूनाका राजप्रासाद अपने लिये रख छोड़ा।

यही परशुराम और नाना फड़नवीशके विवादका एकतम कारण था। नाना फड़नवीशने बाबाराव फड़के, तुकाजी होलकर और रायजी पाटेल द्वारा सिन्धियाराजके साथ गुप्तभावसे यह षड़यन्त्र रचा कि यदि वे लोग बाजीरावको सिंहासन पर बिठा सकें और बल्लभभट्टको कैद करें, तो वे (नाना) उन्हें परशुरामभाऊ पटवर्द्धनकी सभी जागीर, अहमदनगर दुर्ग और दश लाख रुपये आयकी सम्पत्ति प्रदान करेंगे। इधर नानाने कोल्हापुर-राजको भुलावेमें डाल कर परशुरामभाऊ पर आक्रमण करनेके लिये उन्हें उत्तेजित किया। १७८६ ई०में वर्षाके बाद कोल्हापुरके सरदारने परशुरामके अधिकृत प्रदेश और बल्लभगढ़ दुर्गको लूट लिया। पीछे तासगाँवमें घेरा डालने और उसे अच्छी तरह लूटनेके बाद उन्होंने परशुरामका घर जला दिया। नाना फड़नवीशने राघोजी भोंसले, निजाम अली और अंगरेजोंकी प्रतिश्रुत सहायतासे पुनरुद्दीप्त हो २७ अक्तूबरको बल्लभभट्टको कैद कर लिया और परशुरामभाऊको भी कैद करनेके लिये मशिर-उल-मुल्क तथा नारूपाल्य चक्रदेवके अधीन सेना भेजी। परशुराम चिमनाजी अप्पाको साथ ले कर शिवनेरी दुर्गकी ओर भागे, पर राहमें पकड़े गये और कैद कर लिये गये। बाजीराव नाना फड़नवीशकी सहायतासे मसनद पर आरूढ़ हुए, पर उनका वह सद्भाव न रहा। बाजीरावने सताराराजकी सहायतासे नानाके सहकारी बाबूराव कृष्ण और नाना फड़नवीशको कैद कर लिया। किन्तु सताराराजके व्यवहारसे असन्तुष्ट हो बाजीराव क्षुब्ध हो गये। दोनों ही युद्धका आयोजन करने लगे। सिन्धियाराजने सताराका पक्ष अवलम्बन किया। मधुराव रस्तिया सतारा आक्रमणसे विफलप्रयत्न हो मालगाँव लौट आये। इस समय परशुराम मधुराव रस्तियाके भाई आनन्दरावके निकट माण्डूग्राममें कैद थे। बाई नगरमें ला कर वे इस शर्त पर छोड़ दिए गये, कि वे (परशुराम) पेशवाके लिए सैन्य-संग्रह करके युद्ध करेंगे।

पेशवाके आदेशसे और रस्तियाकी सहायतासे थोड़े ही दिनोंके अन्दर बहुतसे मनुष्य आ कर परशुरामके सैन्यदलमें मिल गये। परशुराम दश हजार सेना ले नदी पार कर साताराकी ओर अग्रसर हुए। कई दिनों तक सतारा दुर्गमें घेरा डाले रहनेके बाद राजाने आत्म-समर्पण किया। अभीष्ट सिद्ध हो चुका, ऐसा देख परशुरामने क्षमाप्रार्थी हो अपनी सेनाको बिदा किया, कि वे उनका पूर्व वेतन न दे सकेंगे। सबोंने तो मान लिया, पर बाजीराव कब माननेवाले थे। उन्होंने दश लाख रुपये खिसारा ले कर परशुरामका पिण्ड छोड़ा। १७९८ ई०में महाराष्ट्रोंके साथ टीपू सुलतानका विवाद उपस्थित हुआ। नाना फड़नवीशने परशुरामके पुत्र अप्पा साहबको सेनानायकके पद पर अभिषिक्त करनेकी इच्छा प्रकट की। लेकिन उन्होंने यह पद लेना न चाहा। इस पर नाना फड़नवीशने परशुरामभाऊको उक्त पद देनेका विचार किया। ऐसा होनेसे जो कुछ मनोमालिन्य दोनोंमें था सो मिट गया और मित्रता स्थापित हुई। परशुरामने अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए कहा, यदि इन्हें धारवार जिला और कर्णाटक राज्यका कुछ भाग जागीर तौर पर मिले तथा बाजीरावने पहले जो उन्हें जुर्माना किया था, यदि वे माफ कर दें तो वे (परशुराम) वर्त्तमान समयमें महाराष्ट्रवाहिनी परिचालनका भार ग्रहण कर सकते हैं। इस युद्धमें टीपू सुलतानकी हार हुई। इतिहासमें यह ४र्थ महिसुर-युद्ध नामसे वर्णित है।

जब एक ओर सुलतानदमनका उद्योग हो रहा था, तब दूसरी ओर कोल्हापुरराजने सहकारी चितुरसिंह की सहायतासे पेशवाके विरुद्ध अस्त्रधारण किया था। परशुराम जब सतारा जीत कर लौटे, तब विद्रोही चितुरसिंहने वरणानदीके उत्तर रस्तियाकी रक्षित सेना को रोक रक्खा। कोल्हापुरराज और धुन्धुपन्थ गोखलेने परशुरामके विरुद्ध अस्त्रधारण करके तासगाँव आदि परशुरामके जागीरभुक्त नाना स्थान अपने अधिकारमें कर लिए। नाना फड़नवीशने कोई उपाय न देख ४र्थ महिसुर युद्धके लिये संग्रहीत सेनाको परशुरामकी अध्यक्षतामें कोल्हापुर भेज दिया। नाना फड़नवीशने परशुरामभाऊको हुकुम दिया, कि जिससे कोल्हापुरराज अग्रसर न हो सकें उसी पर विशेष ध्यान रहे। परशुरामने पहले दक्षिण युद्धमें जा कर घाटप्रभा और मालप्रभा नामक दोनों पर्वतके मध्यस्थित समस्त दुर्गों पर अधिकार जमाया। सितम्बर मासमें वे दलबलके साथ गोवासे कोल्हापुर जाते हुए चिकोड़ी पहुंचे। निपानी ग्रामसे २ मील पूर्व और चिकोड़ीके समीप पत्तनकोड़ी नामक ग्राममें कोल्हापुरराज और चितुरसिंह छिप रहे थे। परशुरामने इसी स्थानमें उन पर आक्रमण कर दिया। युद्धमें परशुरामकी हार हुई। वे भीषण रूपसे आहत और बन्दी हुए। उस आघातसे ही उनकी मृत्यु हुई *।

परशुराममिश्र—१ एक विख्यात ज्योतिर्विद्। इन्होंने जातकचन्द्रिकाटीका, जातकचन्द्रिकामणिटीका, जातकाभरणटीका, जातकालङ्कारटीका, ताजिकचिन्तामणिटीका, भावचिन्तामणिटीका, मुहूर्त्तचिन्तामणिटीका आदि कई एक ग्रन्थोंकी रचना की है। २ मथुराचम्पू नामक ग्रन्थके रचयिता।

* किसी किसीका कहना है, कि विश्वासराव नामक कोई व्यक्ति परशुरामकी मृतदेह ले कर कोल्हापुरराजके समीप उपस्थित हुए। राजाने उसी समय उनकी देह टुकड़े टुकड़े कर डालनेकी आज्ञा दी। १८१२ ई०में बाजीरावने स्वयं एलफिन्सटन साहबसे कहा था, कि यह बात सर्ववादीसम्मत होने पर भी कोल्हापुर यहां तक कि सतारामें जहां कोल्हापुरराजकी शत्रुता ली है, कोई भी इसे स्वीकार नहीं करता।

परशुराममुनि—विद्याकल्पसूत्र नामक ग्रन्थके प्रणेता। इस ग्रन्थको कोई कोई परशुरामसूत्र भी कहते हैं।

परशुरामशास्त्री—एक प्रसिद्ध पण्डित। इन्होंने क्षयमास संसर्पमासकार्याकार्यनिर्णय और क्षयमाससंसर्पमासकार्याकार्यनिर्णयखण्डन नामक दो ग्रन्थ प्रणयन किये हैं।

परशुरामश्रीनिवास—एक महाराष्ट्र-प्रतिनिधि। १७७७ ई०के समीपवर्त्ती किसी समयमें उनके पिता प्रतिनिधि भवानीरावकी मृत्युके बाद इनका जन्म हुआ। जन्मसे ही इन्होंने प्रतिनिधिका पद प्राप्त किया। युवावस्थामें ये साहसी होने पर भी इनकी मानसिक वृत्तियां उतनी तेज न थीं। बाल्यकालमें नाना फड़नवीशके कर्तृत्वाधीनमें रह कर इन्होंने नाना विषयोंमें शिक्षा प्राप्त की थी। इनकी माता और बलवन्तराव फड़नवीशके शासनाधीनमें श्रीनिवासकी एक पैतृक जागीर थी। परशुरामने अपने हाथमें इस सम्पत्तिका भार ग्रहण करनेकी इच्छा अपनी माताके सामने प्रकट की। माता भी पुत्रको आशा दे कर वञ्चित करने लगी। उद्धतप्रकृतिके प्रतिनिधि बलपूर्वक जमीनका अधिकार लेनेके लिए अग्रसर हुए। पेशवा बाजीरावने दोनोंका मनोमालिन्यभाव लक्ष्य किया था, लेकिन जब उन्होंने देखा कि पटवर्द्धनोंसे प्रतिनिधिकी सहायता मिलनेकी आशा नहीं है, तब उन्होंने परशुरामको दण्ड देनेकी इच्छासे बलवन्त फड़नवीशका पक्ष अवलम्बन किया और उन्हें कैदमें रक्खा। इस दारुण विपद्में परशुरामके सहकारियोंने छिप कर अपनी जान बचाई, किसीने परशुरामको बचानेकी चेष्टा न की। उन लोगोंने ऐसा समझ लिया था मानो परशुरामको यावज्जीवन कारागारमें ही रहना पड़ेगा। उनकी एकमात्र स्त्रीने माताकी इच्छानुसार कार्य करनेके लिए बहुत कुछ उन्हें समझाया बुझाया, लेकिन कठोर प्रकृतिके प्रतिनिधिने एक भी न मानी—उलटे उस पर अप्रसन्न हो उससे बोलना तक भी बन्द कर दिया। इतना ही नहीं, वे स्त्री पर इतने रंज हो गए कि भविष्यमें उसे स्त्रीरूपमें ग्रहण नहीं करूंगा, ऐसी प्रतिज्ञा भी कर ली। इसके बाद इन्होंने किसी तेलीकी स्त्री (तेलिन)को अपनी अभिमत भार्याके रूपमें ग्रहण

किया। ब्राह्मण हो कर इस प्रकार खुल्लम खुल्ला तेलीकी कन्याका सहवास करना, जनसमाजमें इसकी बड़ी निन्दा उठी। लेकिन वे इसकी कुछ भी परवाह न करते थे। उस तेलिनने प्रतिनिधिकी ऐसी दुर्घटना सुन कर समाजमें जा बहुतसे लोगोंको अपने दलमें मिला लिया और वसोता दुर्गके जिस स्थानमें परशुराम कारावद्ध थे, उस स्थान पर आक्रमण कर उन्हें मुक्त किया। मुक्त होनेके साथ ही परशुरामने पन्थप्रधानकी अधीनता अस्वीकार कर अपनेको सताराराजके भृत्य बतलाते हुए तमाम घोषणा कर दी। इस समय उनके अधिकारभुक्त नोरा और वरणा नामक स्थानके अधिवासियोंमें विद्रोहिताका आभास झलकने लगा। परशुराम स्वयं वहां गए और उनका साथ दिया। धीरे धीरे उनके पूर्वतन सहयोगियोंने आ कर विद्रोहिदलको पुष्ट किया। अब परशुरामने इस सैन्यसंख्याको ले कर अपनी माता और बलवन्तराव फड़नवीशके पक्षीय लोगों पर निष्ठुर अत्याचार आरम्भ कर दिया। जो सब कृषक उनके दलभुक्त थे, वे लूटका माल पा कर और भी उनके अनुरक्त हो गए परशुरामके अद्भुत साहस रहने पर भी उनकी बुद्धिवृत्ति और कार्यकारिता शक्ति उतनी प्रबल न थी। जिस असीम साहससे इन्होंने विद्रोही-दलकी परिचालना की थी, कि यदि बाजीराव अङ्गरेजोंकी सहायता न लेते, तो वे कभी भी विद्रोहदमनमें कृतकार्य नहीं हो सकते थे। युद्धके लिए सज्जित होनेके पहले गोखले दलबलके साथ वहां पहुंच गए। इस पर परशुरामके सहकारियोंने पर्वत पर जा कर उनसे सैन्यसंख्या बढ़ाने कहा, लेकिन उनकी बात पर ध्यान न दे कर इन्होंने वसन्तगढ़के निकट गोखलेके साथ लड़ाई ठान दी। युद्धके प्रारम्भमें ही परशुरामकी कितनी सेनाएं भाग चलीं, पीछे वे सिर्फ एक योद्धा ले कर लड़ने लगे। इस युद्धमें इनका एक हाथ नष्ट हो गया और सिर पर भीषण आघात लगा।

शत्रुओंने इन्हें मृत समझ कर लड़ाई बन्द कर दी, लेकिन कुछ समय बाद इन्हें होश आया और ये उठ कर खड़े हुए। बाजीरावने इन्हें पूना नगरमें यावज्जीवन कैद रखा और पूर्वोक्त जागीरको कुछ अंश इनके भरणपोषणके लिये निर्दिष्ट कर दिया। महाराष्ट्रराज्यके सभी दुर्ग बाजीरावके हाथ लगे, केवल वसोता दुर्ग इनके अधिकारसे बाहर था। श्रीनिवासप्रणयिनी वह तेलीरमणी अदम्य उत्साहसे ८ मास तक इस दुर्गकी रक्षा करती रही। पीछे दुर्गमें जो रसद थी उसमें आग लग जानेके कारण वह आत्मसमर्पण करनेको बाध्य हुई। बापुगोखलेने आ कर प्रतिनिधिका समस्त धनरत्न अपहरण कर लिया और बाजीरावके आदेशसे वे इन सब जीते हुए दुर्गोंके अधिकारी हुए।

परशुरामेश्वर—उड़ीसाके भुवनेश्वरक्षेत्रके अन्तर्गत भुवनेश्वर मन्दिरके समीप एक देवमन्दिर। इसका कारुकार्य तथा गठनप्रणाली उतनी अच्छी नहीं है।

परशुवन (सं० क्लीं०) परशुवत् पत्रयुक्तं वनं मध्यलो० कर्मधा०। नरकभेद, एक नरकका नाम जिसके पेड़ोंके पत्ते परशुकी-सी तीखी धारके हैं। इसीलिए यह नरकका नाम परशुवन पड़ा।

परश्चत्वारिंश (सं० त्रि०) चत्वारिंशकी ऊर्ध्व संख्या, चालीसके आगेकी संख्या।

परश्वध (सं० पु०) पर + श्वि अन्येभ्योऽपीति ड, ततः परश्वं दधाति धा-क। कुठार, परशु, कुल्हाड़ी।

परश्वधिन् (सं० त्रि०) परशुधारी।

"गदी लांगली चक्री शरी चर्मी परश्वधी॥" (हरिवंश २१८ अ०)

परश्वस् (सं० अव्य०) पर श्वस्, पृषोदरादित्वात् साधुः। आगामी दिनका दूसरा दिन, परसों।

परश्रेयस् (सं० क्ली०) परामुक्ति। परम उत्कर्ष लाभ कर अन्तमें मोक्षप्राप्ति होती है।

परस् (सं० अव्य०) परस्मात् परस्मिन् परो वा पञ्चम्यार्थं बाहु० असि। दूसरेसे वा दूसरेके विषयमें।

परसंसा (हिं० पु०) प्रशंसा देखो।

परस (हिं० पु०) १ स्पर्श, छूना, छूनेकी क्रिया या भाव। २ स्पर्शमणि, पारस पत्थर।

परसङ्ग (सं० त्रि०) १ दूसरेका सङ्ग वा बन्धुता। २ दूसरेके साथ विवाहित। ३ प्रसङ्ग।

परसङ्गत (सं० त्रि०) १ दूसरेके साथ मिलित वा विवाहित। २ द्वन्द्वयुद्धमें लिप्त।

परसञ्चारक (सं० पु०) १ देशभेद, एक देशका नाम। २ इसी नामके देशवासी।

परसंज्ञक (सं॰ पु॰) परा श्रेष्ठा संज्ञा यस्य, ततः कप्। आत्मा।

परसन (हिं॰ पु॰) १ छूनेका भाव। २ छूना, छूने का काम।

परसना (हिं॰ क्रि॰) १ स्पर्श करना, छूना। २ स्पर्श कराना, छुलाना। ३ किसीके सामने भोज्य पदार्थ रखना, परोसना।

परसन्न (हिं॰ वि॰) प्रसन्न देखो।

परसम्बन्ध (सं॰ पु॰) दूसरेके साथ सम्बन्ध, आत्मीयता, कुटुम्बिता।

परसवर्ण (सं॰ पु॰) समानवर्णः सवर्णः परेण सवर्णः ३-तत्। पर या उत्तरवर्त्ती वर्णके समान वर्ण।

परसस्थान (सं॰ त्रि॰) परवर्त्ती वर्णके समान वर्ण।

परसा (हिं॰ पु॰) परशु, फरसा, कुठार, कुल्हाडी, तब्बर।

परसात् (सं॰ अव्य॰) पर-चसात्। दूसरेको देना।

परसात्कृता (सं॰ स्त्री॰) विवाहिता दुहिता, दूसरेके साथ जिस बालिकाका विवाह हुआ हो।

परसाद—ये भाषाके कवि थे। इनका जन्म सम्वत् १६८०में हुआ था। ये उदयपुरके महाराणाके दरबारी कवि थे। इनकी कविताकी प्रसिद्धि कुछ कम नहीं है।

परसाना (हिं॰ क्रि॰) स्पर्श कराना, छुलाना।

परसामान्य (सं॰ पु॰) गुण कर्म समवेत सत्ता।

परसाल (फा॰ क्रि॰वि॰) १ गत वर्ष, पिछले साल। २ आगामी वर्ष, अगले साल।

परसाल (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी घास जो पानीमें पैदा होती है। इसे परसारी भी कहते हैं।

परसिद्ध (हिं॰ वि॰) प्रसिद्ध देखो।

परसिया (हिं॰ स्त्री॰) हंसिया।

परसी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी छोटी मछली जो नदियोंमें होती है।

परसीया (हिं॰ पु॰) एक पेड़ जिसकी लकड़ीसे मेज, कुरसी इत्यादि बनाई जाती हैं और जो मन्द्राज तथा गुजरातमें बहुतायतसे होता है। इसकी लकड़ी स्याह, सख्त और मजबूत होती है।

परसु (हिं॰ पु॰) परशु देखो।

परसूक्ष्म (सं॰ पु॰) एक सूक्ष्म परिमाण जो आठ परमाणुओंके बराबर माना गया है।

परसेद (हिं॰ पु॰) प्रस्वेद देखो।

परसेवा (सं॰ स्त्री॰) परेषां सेवा। दूसरेकी सेवा।

परसों (हिं॰ अव्य॰) १ आगामी दिनसे आगेके दिन, आनेवाले कलसे एक दिन आगे। २ गत दिनसे पहले दिन, बीते हुए कलसे एक दिन पहले।

परसोर (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका धान जो अगहनमें तैयार होता है।

परस्तर (सं॰ त्रि॰) तरः तरणीयः, परः सातिशयं तरः, पारस्करादित्वात् साधु। अत्यन्त तरणीय।

परस्तात् (सं॰ अव्य॰) पर-पञ्चम्याद्यर्थे अस्ताति। पञ्चम्याद्यर्थ-वृत्तिपर शब्दार्थ, दूसरेसे या दूसरेके विषयमें इत्यादि रूप।

परस्त्री (सं॰ स्त्री॰) परेषां स्त्री। परकीया नारी, दूसरेकी स्त्री। साधुगण दूसरेकी स्त्रीके प्रति माताके जैसा व्यवहार करते हैं।

परस्त्रीगमन (सं॰ पु॰) पराई स्त्रीके साथ सम्भोग।

परस्पर (सं॰ त्रि॰) परः परः 'सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये समासवच्च बहुलं' इति वार्त्तिकोक्त्या समासवद्भावे पूर्वपदस्य सुर्वक्तव्यः। १ अन्यान्य, इतरेतर। (अव्य॰) २ एक दूसरेके साथ, आपसमें।

परस्परानुमति (सं॰ स्त्री॰) परस्परकी अनुमति, एक दूसरेकी सलाह।

परस्परोपमा (सं॰ स्त्री॰) एक अर्थालङ्कार जिसमें उपमानकी उपमा उपमेयको और उपमेयकी उपमा उपमानको दी जाती है। इसे 'उपमेयोपमा' भी कहते हैं।

परस्मैपद (सं॰ क्ली॰) परस्मै परार्थं परबोधकं पदं। दश लकारके पूर्व नौ विभक्ति हैं, दूसरे नौ विभक्ति आत्मनेपदकी हैं। "शेषात् कर्त्तरि परस्मैपद" (पाणिनि) यथाक्रमसे परस्मैपदकी विभक्ति लिखी जाती है।

लट् और ऌट—तिप्, तस्, अन्ति। सिप्, थस्, थ। मिप्, वस्, मस्। पाणिनीके मतसे अन्तिको जगह झि, ऐसा रूप निर्दिष्ट हुआ है। लोट—तुप्, ताम् अन्तु। हि, तं, त। आनि, आव, आम। लङ्—दिप्, ताम्, अन्। सिप्, तं, त। पं, व, म। लुङ्

और ल्ट‌ङ्‌में भी यही विभक्ति होती है। लिट्—णल्, अतुस्, उस्। थल्, अथुस्, अ। णल्, व, म। लुट्—ता, तारौ, तारस्। तासि, तास्थस्, तास्थ। तास्मि, तास्वस्, तास्मस्। लिङ्—यात्, याताम्, युस्। यास्, यातं, यात। याम्, याव, याम। लोङ्—यात्, यास्तां, यासुस्। यास्, यास्तं, यास्त। यासं, यास्व, यास्म। इस सब विभक्तियोंका नाम परस्मैपद है। जो सब धातु परस्मैपदी हैं, उनके उत्तर परस्मैपद अर्थात् उपर्युक्त विभक्ति होती हैं।

परस्मैपदिन् (सं० त्रि०) परस्मैपद-इनि। धातुभेद, जिन सब धातुके उत्तर परस्मैपद विभक्ति होती है, उन्हें परस्मैपदी कहते हैं।

परस्वध (सं० पु०) परस्वध निपातनात् ग्रस्य-सत्वं। परश्वध, कुठार, कुल्हाड़ी।

परहन् (सं० त्रि०) परं हन्ति हन् क्विप्। परहननकारी, दूसरेको मारनेवाला।

परहारी (हिं० पु०) जगन्नाथजीके मन्दिरके पुजारी जो मन्दिरमें ही रहते हैं।

परहित (सं० त्रि०) परमङ्गलाभिलाषी, दूसरेको भलाई चाहनेवाला, हिताकाङ्क्षी।

परहितरचित (सं० पु०) पञ्चक्रम नामक ग्रन्थके टीकाकार।

परहितराज—चालुक्यवंशीय एक राजा।

परहित बानोबेगम—सम्राट् शाहजहान्‌की कन्या। इसका जन्म कन्धारी बेगमके गर्भसे हुआ था। १०८६ हिजरीमें इसकी मृत्यु हुई।

परहिया (पहाड़िया)—पलामू जिलावासी पार्वतीय जातिभेद। इनके जो सब श्रेणीविभाग देखे जाते हैं, वे साधारणतः पशुपक्ष्यादि नामसे उत्पन्न हैं। धेरोयर, गाञ्ज और मनझी यही तीन इनकी वंशोपाधि हैं। बाग (व्याघ्र), गीध (गृध्र), फणिगा (फतिङ्गा), कौवा (काक), मैना (पंछी), नाग (सर्प), तेजिङ्गा (जोंक) और गड़ाई, आफिया आदि भिन्न भिन्न श्रेणी है। ये लोग 'धरतीमाय' (धरित्रीदेवी)-की और गोरेत नामक देवताकी उपासना करते हैं।

परहेज (फा० पु०) १ बुरी बातोंसे बचनेका नियम, बुराइयों और दोषोंसे दूर रहना। २ स्वास्थ्यको हानि पहुंचानेवाली बातोंसे बचना, रोग उत्पन्न करनेवाली या बढ़ानेवाली वस्तुओंका त्याग, खाने पीनेका संयम।

परहेजगार (फा० पु०) १ संयमी, परहेज करनेवाला, कुपथ्य न करनेवाला। २ दोषोंसे दूर रहनेवाला। बुराइयोंसे बचनेवाला।

परहेजगारी (फा० स्त्री०) १ दोषों और बुराइयोंका त्याग। २ संयम, परहेज करनेका काम।

परहेलना (हिं० क्रि०) तिरस्कार करना, निरादर करना।

पराँचा (हिं० पु०) १ तख्ता, पटरी। २ तख्तोंकी पाटन जो आस पासके तलसे ऊंचाई पर हो और जिस पर उठ बैठ सकते हों, पाटन। ३ बेड़ा।

पराँठा (हिं० पु०) घी लगा कर तवे पर सेंकी हुई चपाती।

परा (सं० अव्य०) १ विमोक्ष। २ प्राधान्य। ३ प्रातिलोम्य। ४ धर्षण। ५ आभिमुख्य। ६ भृशार्थ। ७ विक्रम। ८ गति। ९ वध। उपसर्गविशेष—इस उपसर्गका अर्थ है, १० भङ्ग। ११ अनादर। १२ प्रत्यावृत्ति। १३ न्यग्भाव।

परा (सं० स्त्री०) पॄ-अच्, ततष्टाप्। १ वन्ध्या कर्कोटकी, बांझ ककोड़ा। इसका गुण—लघु, कफनाशक, व्रणशोधक, सर्प या विसर्प विषनाशक और तीक्ष्ण। (भाव प्र०) २ नाभिरूप मूलाधारसे प्रथमोदित नादस्वरूप वर्ण, चार प्रकारकी वाणियोंमें पहली वाणी जो नादस्वरूपा और मूलाधारसे निकली हुई मानी जाती है। पूरयति सागरं भक्तमनोरथम् पॄ-अच्-टाप्। ३ गङ्गा। ४ वह विद्या जो ऐसी वस्तुका ज्ञान कराती है जो सब गोचर पदार्थोंसे परे हो, उपनिषद्-विद्या, ब्रह्मविद्या। ५ नदीविशेष, एक नदीका नाम। पारा देखो। ६ गायत्री। ७ एक प्रकारका सामगान। (त्रि०) ८ श्रेष्ठ, उत्तम। ९ जो सबसे परे हो।

परा (हिं० पु०) १ रेशम खोलनेवालोंका लकड़ीका बारह चौदह अङ्गुल लम्बा एक औजार। २ पंक्ति, कतार।

पराओबाड़ी—इलाहाबादके हमीरपुर जिलान्तर्गत एक

ग्राम। यहां एक प्राचीन कूपमें ७५५ सम्वत्में उत्कीर्ण एक शिलालिपि देखी जाती है।

पराक (सं॰ पु॰) परं अत्यन्तं आकं दुःखं उपवासादिजन्य शारीरिकादिक्लेशो यत्र, यस्माद्वा। १ व्रतविशेष, पराकव्रत।

"यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनं।
पराकनाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः॥"
(मनु ११।२१५)

इस व्रतमें जितेन्द्रिय हो कर बारह दिनों तक उपवास करना होता है। इसे पराकव्रत कहते हैं। यह व्रत सब प्रकारके पापोंका नाशक है। इस पराकव्रतमें पञ्चधेनु दान करना होता है और यह व्रत पञ्च प्राजापत्यव्रतके जैसा माना गया है। इसका विशेष विवरण प्रायश्चित्ततत्त्व और प्रायश्चित्तविवेकमें लिखा है। २ खड्ग, तलवार। ३ क्षुद्र रोगविशेष, एक रोगका नाम। ४ जन्तुविशेष, एक जन्तुका नाम।

पराके (सं॰ अव्य॰) पर-अक बाहुलकात् ङे। दूर।

पराकाश (सं॰ पु॰) १ वाक्य द्वारा प्रतिज्ञात और कार्यमें अकृत अर्थकी परीक्षा, वचनके अनुसार कार्य नहीं करनेकी परीक्षा। २ शतपथब्राह्मणके अनुसार दूरदर्शिता।

पराकाष्ठा (सं॰ स्त्री॰) १ गायत्रीभेद। २ ब्रह्माकी आधी आयु। ३ परिसीमा, चरमसीमा, सीमान्त, हद।

पराकोटि (सं॰ स्त्री॰) १ ब्रह्माकी आधी आयु। २ पराकाष्ठा।

पराक्पुष्पा (सं॰ स्त्री॰) अपामार्ग, चिचड़ी, चिरचिटा।

पराक्पुष्पी (सं॰ स्त्री॰) पराक्पुष्पा देखो।

पराक्रम (सं॰ पु॰) पराक्रमतेऽनेन क्रम-घञ् (नोदात्तोपदेशस्य। पा ७।३।३४) इति न वृद्धिः। १ शक्ति, बल, सामर्थ्य। पर्याय—द्रविण, तर, सह, बल, शौर्य, स्थाम, शुष्म, प्राण, मह, शुष्म और सामर्थ्य। २ विक्रम, पुरुषार्थ, पौरुष। ३ उद्योग। ४ निष्क्रान्ति। ५ विष्णु।

पराक्रम—१ चोलवंशीय एक राजा। चोल देखो।

२ पाण्ड्यवंशीय नृपभेद। ये सम्भवतः १३७० ई॰को मदुरामें राजत्व करते थे। इनका पूरा नाम था आमिकाण्ड पराक्रम पाण्ड्य। १२४८ ई॰की उत्कीर्ण शिलालिपिमें इनका नामोल्लेख है। ३ उक्त वंशीय एक दूसरे राजाका नाम। इसका पूरा नाम त्रिभुवन-चक्रवर्त्ती पराक्रम पाण्ड्यदेव था। १५४६ शकमें उत्कीर्ण इनकी एक प्रशस्ति पाई गई है। दक्षिण भारतमें उक्त राजवंशधरोंको निर्मित अनेक कीर्त्ति देखी जाती हैं।

पराक्रमकेशरिन् (सं॰पु॰) पराक्रमे केशरीव। १ विक्रमकेशरी, विक्रममें सिंहकी तुल्य। २ विक्रमकेशरी राजाके एक पुत्रका नाम।

पराक्रमज्ञ (सं॰ त्रि॰) पराक्रमं शत्रुबलं जानातीति ज्ञा-क। जो शत्रुके पराक्रमको जान सके।

पराक्रमवत् (सं॰ त्रि॰) पराक्रमःविद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। विक्रमशाली, पराक्रमयुक्त।

पराक्रमबाहु (महत्)—सिंहलद्वीपके एक राजा। ये बौद्ध धर्मावलम्बी थे और बौद्धधर्मका प्रश्रय देनेके लिये मठ, विहार और नाना स्थानोंमें मन्दिरादि बनवाये थे। इस कारण जनतासे इन्हें महत् और लङ्केश्वरकी उपाधि मिली थी। ११२६ ई॰में इनके पिताकी मृत्युके बाद राजपरिवारके मध्य राज्याधिकार ले कर बड़ी गड़बड़ी उठी। इस कारण प्रायः २२ वर्ष तक युद्ध चलता रहा। अन्तमें युद्ध-विग्रहादिके शान्त होने पर ११५३ ई॰में पराक्रमने सिंहासन प्राप्त किया। लङ्काकी राजधानी अनुराधापुरके श्रीहीन होने पर पुलस्तिनगर राजधानी रूपमें गिना जाने लगा। इसी नगरमें पराक्रम बाहुका अभिषेक कार्य सम्पन्न हुआ था। अपने राजत्वके आठवें वर्षमें इन्होंने दक्षिण सिंहलके अधिपतिको परास्त कर उनका राज्य अपने राज्यमें मिला लिया*। नरेन्द्रचरितावलोकनप्रदीपिका नामक सिंहलदेशीय ऐतिहासिक ग्रन्थ पढ़नेसे मालूम होता है, कि रामन्न देशाधिपतिके साथ राजा पराक्रमका विशेष सद्भाव था। रामन्नाधिपतिने दुष्ट लोगोंकी सलाहसे सिंहलराज दूतको कैद कर लिया। इसके अलावा जम्बूद्वीपराज

* चतुर्थ महेन्द्रके पुत्र काश्यप नामक एक चोलराजने जब सिंहलका सिंहासन पानेकी कोशिश की, तब विजयबाहुने उन्हें परास्त किया था। (Jour. R. A. S. Vol. VII p. 154) युद्धके बाद शान्ति स्थापित हुई। सम्भवतः पराक्रमबाहु इन्हींके निकट उपढौकनादि भेजते थे।

काश्यपके † निकट सिंहलराजने जो उपढौकन और पत्रादि भेजे थे उन्हें भी रोक रक्खा। पराक्रमवाहुने कुपित हो कर अपने देशवासियोंकी एक सभा की जिसमें यह स्थिर हुआ, कि रामन्नराज या तो यमपुर भेजे जायं या राजाके निकट बन्दी कर लाये जायं। दैवज्ञश्रेष्ठ दमिलाधिकारी सेनापति हो कर अग्रसर हुए। रामन्नराज पराजित और बन्दी हो कर सिंहलराजके सामने लाए गए ‡। मदुराधिपति पराक्रम पाण्ड्य जब कुलशेखरसे उत्पीड़ित किए गए, तब उन्होंने पराक्रमवाहुकी शरण ली। सिंहलराजने अपने महामन्त्री लङ्कापुरदण्डनाथको कुलशेखरके नाशका हुकुम दिया। कुलशेखर पराजित और बन्दी हुए। रामेश्वरके निकट लङ्कापुरदण्डनाथ द्वारा प्रतिष्ठित जयस्तम्भमें यह कीर्त्ति घोषित हुई है। ११६८ ई०में इन्होंने कम्बोज और अरमन ¶ तथा चोल और पाण्ड्य राज्य पर आक्रमण किया। इनकी पत्नी पाण्ड्यराज-पुत्री लीलावतीकी स्वनामाङ्कित मुद्रा आज भी पाई जाती है। स्वामीकी मृत्युके बाद लीलावतीने ११८७, १२०९ और १२११ ई०में तीन बार राज्याधिकार पाया था। ये भी स्वामीकी तरह विद्यानुरागिणी थीं।

पराक्रमवाहु त्रिपिटकके अनुसार बौद्धधर्म-रक्षाके विशेष पक्षपाती थे। इस कारण युद्धविग्रहादि नाना विप्लव रहते हुए भी इन्होंने बौद्धग्रन्थसमन्वित १३० विद्यामन्दिर बनवाये। अभिधानप्पदीपिका नामक एक कोष इन्हींके राजत्वकालमें रचा गया है। ११८६ ई०में इनकी मृत्यु हुई। कोई कोई निःशङ्कमल्ल और महापराक्रम वाहुको एक ही व्यक्ति मानते हैं। §

पराक्रमवाहु ३य—सिंहलद्वीपके एक बौद्ध राजा। इन्होंने १२६६से १३०१ ई० तक राज्यशासन किया था। इन्होंने पितृस्थापित मन्दिरादिका पुनर्निर्माण, चोलराज्यसे श्रमण ला कर देशवासियोंको 'त्रिपिटक' शिक्षा-दान, दक्षिण भारतके नाना स्थानोंसे बौद्धग्रंथ संग्रह और बौद्धधर्म पुस्तकादिका विचारके लिए एक सङ्घ स्थापित किया था। 'पूजावलि' नामक एक ऐतिहासिक ग्रंथ इनके राजत्वकालमें रचा गया है।

पराक्रमवाहु ४र्थ—सिंहलद्वीपके एक बौद्ध राजा। इन्होंने १३१४से १३१८ ई० तक राजत्व किया था।

पराक्रमवाहु ५म—सिंहलके एक बौद्ध राजाका नाम। १३३० ई०को इनके राजत्वके दशवें वर्षमें उत्कीर्ण शिलाफलकसे जाना जाता है, कि इन्होंने देवराज विष्णुके उद्देशसे भूमिमहाविहारके समीप एक नारिकेल-स्तूप निर्माण किया था।

पराक्रमवाहु ६ष्ठ—सिंहलवासी एक प्रबल पराक्रान्त बौद्ध राजा। कलम्बो बन्दरके निकटवर्त्ती जयवर्द्धनपुर नामक नगर (वर्त्तमान कोट्ट)-में १४१०से १४६२ ई० तक इन्होंने राजत्व किया था। माता सुनेत्रादेवीके स्मरणार्थ इन्होंने सम्वत् १४५३में एक बुद्धमन्दिरकी प्रतिष्ठा की थी।

पराक्रमवाहु ७म—सिंहलद्वीपवासी एक बौद्ध राजा। सम्भवतः १५०५से १५२५ ई० तक इन्होंने राज्यशासन किया था। पिहित, माया और रुहुन नामक सिंहलके इन्हीं तीन विभागोंने उनकी अधीनता स्वीकार की थी। राज-महाकल्याणीय नामक स्थानकी शिलालिपिसे जाना जाता है, कि ये २०५२ बुद्ध-सम्वत्सरमें लङ्काके सिंहासन पर आरूढ़ हुए।

पराक्रमवाहुवीरराजनिःशङ्कमल्ल—सिंहलके एक राजा। महापराक्रमवाहुकी मृत्युके बाद ये ११८७ ई०में राज्य-सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। पराक्रमवाहुके राजत्वकालके शेषभागमें उत्कीर्ण जो तीन शिलाफलक पाए गए हैं, उनमें ऐसा लिखा है, मानो पराक्रमवाहु सिंहलद्वीप वासियोंसे कह रहे हैं कि वे स्वदेशीयके मध्य किसीको राजा न बना कर भारतवासी किसी क्षत्रिय नरपतिको राजपद पर प्रतिष्ठित करें। यही कारण है, कि कलिङ्गके अन्तर्गत सिंहपुराधिपति राजा

† Jour. R. A. S. Vol. VII p. 155 & J. A. S. B. Vol. XLI. 197.

‡ Jour. A. S. B. Vol XLI. p. 190.

¶ कोई कोई इस स्थानको आराकान वा ब्रह्मदेशके अन्तर्गत बतलाते हैं। Ind. Ant. Vol. XVII p. 126. लेकिन राजावली, राजरत्नावली और महावंशमें इस स्थानको करमण्डल-कूलमें अवस्थित बतलाया है।

§ J. R. A. S. Vol. VII. p. 154.

जरगोपके पुत्र निःशङ्कमल्ल निर्वाचित हो कर सिंहलमें आमन्त्रित हुए और राजपद पर प्रतिष्ठित किये गये। ११५७ ई०में इनका जन्म हुआ था। सिंहासन पर बैठ कर इन्होंने "श्रीलङ्काधिकालिङ्ग पराक्रमबाहु—वीरराज-निःशङ्कमल्ल-अप्रतिमल्ल-लङ्केश्वर महाराज"की उपाधि पाई। पाण्ड्यराज्यजय, पुष्करिण्यादि खनन और मन्दिरादिका निर्माण छोड़ कर इनके राजत्वकालमें और कोई विशेष घटना न घटी। इनके वीरबाहु नामक एक पुत्र और सर्वाङ्गसुन्दरी नामक एक कन्या थी। प्रजाकी सुविधाके लिए इन्होंने करसंग्रहकी प्रथा जारी की, किन्तु प्रजाको असंतोष कर कोई भी कर इन्होंने ग्रहण नहीं किया। ११९६ ई०में इनकी मृत्युके बाद पुत्र वीरबाहुने एक वर्ष तक राज्य किया, पीछे रानी लीलावतीने पुनः राज्याधिकार पाया।

पराक्रमबाहु 'महत' देखो।

पराक्रमिन् (सं० त्रि०) पराक्रमः अस्यास्ति इनि। १ पराक्रमयुक्त, जिसके पराक्रम हो, बलिष्ठ, बलवान्। २ बहादुर, वीर। ३ पुरुषार्थी, उद्योगी, उद्यमी।

पराग (सं० पु०) परा गच्छतीति गम-ड। १ पुष्पधूलि, वह धूलि वा रज जो फूलोंके बीच लम्बे केसरों पर जमा रहता है। पर्याय—सुमनोरज, कौसुमरेणु, पुष्परेणु। २ धूलि, रज। ३ स्नानीय द्रव्यविशेष, एक प्रकारका सुगन्धित चूर्ण जिसे लगा कर स्नान किया जाता है। ४ गिरिप्रभेद, एक पर्वत। ५ विख्याति। ६ उपराग। ७ चन्दन। ८ स्वच्छन्द गमन। ९ कर्पूररज, कपूरकी धूल वा चूर्ण।

पराग—भाषाके एक कवि। काशीनरेश महाराज उदयनारायणसिंहकी सभामें ये रहते थे। इन्होंने अमरकोषके तीनों काण्डोंका भाषामें अनुवाद किया।

परागकेशर (सं० पु०) फूलोंके बीचमें वे पतले लम्बे सूत जिनकी नोक पर पराग लगा रहता है। इन्हें पौधोंकी पुं० जननेन्द्रिय समझना चाहिए।

परागति (सं० पु०) १ शिव, महादेव। (स्त्री०) २ गायत्री।

परागदृश् (सं० त्रि०) बहिर्दृष्टि।

परागना (हिं० क्रि०) अनुरक्त होना।

परागपुष्प (सं० पु०) धूलीकदम्ब।

परागवसु (सं० पु०) परावसुका नामान्तर।

परावसु देखो।

परागम (सं० पु०) शत्रुका आगमन वा आक्रमण।

पराङ्ग (सं० क्ली०) शरीरका अधः वा पश्चात्भाग, शरीरका पिछला हिस्सा।

पराङ्गद (सं० पु०) परं अङ्गं कायोऽस्त्यो शिवत्वं ददातीति दा-क। शिव, महादेव।

पराङ्गव (सं० पु०) पराङ्गं जलवृद्धा प्रचुरशरीरं वाति प्राप्नोतीति वा-क। समुद्र।

पराङ्मुख (सं० त्रि०) पराक् प्रतिलोमगामिमुखं यस्य। १ विमुख, मुंह फेरे हुए। पर्याय—पराचीन। २ प्रतिकूल, विरुद्ध। ३ निवृत्त। ४ उदासीन, जो ध्यान न दे। (पु०) ५ तन्त्रोक्त मन्त्रविशेष।

पराङ्मुखता (सं० स्त्री०) पराङ्मुखस्य भावः, तल-टाप्। पराङ्मुखत्व, पराङ्मुखका भाव, प्रतिकूलता।

पराच् (सं० त्रि०) परा अञ्चतीभि परा-अञ्च-क्विप्। १ प्रतिलोमगमनाश्रय, प्रतिलोमगामी, उलटा चलनेवाला। २ ऊर्ध्वगामी। ३ बाह्योन्मुख। ४ परोक्षगम्य, अप्रत्यक्षगम्य। (पु०) ५ अप्रत्यक्षगामी दूसरेको आत्मादि। ६ परगामी बाह्यपदार्थबोधक, प्रत्यग्-रूपात्मभिन्न।

पराचित (सं० त्रि०) परेण आचितः, पालितः। परपुष्ट, दूसरे द्वारा प्रतिपालित। पर्याय—परिस्कन्द, परजात और परैधित।

पराची (सं० स्त्री०) परा-अञ्च-क्विन् स्त्रियां ङीप्। १ अनुलोम द्वारा आवृत्ता ऋक्। २ परिवर्त्तिना विट्कृतिभेद।

पराचीन (सं० त्रि०) परा अञ्चति अनभिमुखो भवतीति क्विप् (ऋत्विग्दधृक्। पा ३।२।५९) १ पराङ्मुख, विमुख। २ प्राचीन, पुराना।

पराचैस् (सं० अव्य०) पराङ्मुख।

पराजय (सं० पु०) पराजयतीति जि-अप्। रणमें भङ्ग। उपलक्षण, विद्या, विवाद आदि भी रण शब्दके मध्य जानना चाहिए, पराभव। पर्याय—भङ्ग, हार, हानि।

पराजय (हिं० स्त्री०) विजयका उलटा, हार, शिकस्त।

पराजिका (हिं० स्त्री०) परज नामकी रागिनी।

पराजित् (सं॰ पु॰) चक्रकवचके एक पुत्रका नाम।

पराजित (सं॰ त्रि॰) परा-जि कर्मणि क्त। कृतपराजय, पराभूत, विजित, परास्त, हारा हुआ। पर्याय—हारित, विजित और निर्जित।

पराजिष्णु (सं॰ त्रि॰) जयी, विजेता।

पराञ्ज (सं॰ पु॰) परान् अनक्तीति अञ्ज व्यक्तौ अच्। १ तैल निष्पीड़न-यन्त्र। २ फेन। ३ छुरिकादल।

पराञ्जन (सं॰ क्ली॰) पराञ्ज देखो।

पराण (सं॰ पु॰) परा-अण-विच्, ततो णत्वं। १ प्राण। (क्ली॰) २ सामभेद।

पराणुत्ति (सं॰ स्त्री॰) विताड़न, दूरीकरण, भिन्नस्थानमें प्रेरण।

पराण्डा—बम्बई प्रदेशके अहमदनगर जिलान्तर्गत एक दुर्ग और नगर।

परातंस (सं॰ पु॰) १ ताड़ित। २ वह जिसको धक्का दे कर निकाल दिया गया हो।

परात (हिं॰ स्त्री॰) थालीके आकारका एक बड़ा बरतन जिसका किनारा थालीके किनारेसे ऊंचा होता है। यह आटा गूंधने, हाथ पैर धोने आदिके काम आता है।

परातर (सं॰ त्रि॰) अत्यन्त दूरतर।

परात्पर (सं॰ पु॰) परात् श्रेष्ठादपि परः श्रेष्ठः। १ श्रीकृष्ण, विष्णु। भगवान् विष्णुसे और कोई दूसरा श्रेष्ठ नहीं है, इसलिए वे ही एकमात्र परात्पर हैं। २ परमात्मा। (त्रि॰) ३ सर्वश्रेष्ठ, जिसके परे कोई दूसरा न हो।

परात्प्रिय (सं॰ पु॰) परादपि प्रियः। तृणविशेष, उलपतृण। एक घास जो कुशकी तरहको होती है और जिसमें जौ या गेहूंके से दाने पड़ते हैं। इसकी बालोंमें ठंठ नहीं होते।

परात्मन् (सं॰ पु॰) परः आत्मा। १ परमात्मा, परब्रह्म। परस्य आत्मा ६-तत्। २ दूसरेकी आत्मा।

परादद (सं॰ त्रि॰) जिस प्रकार शत्रुको पराजय हो उसी प्रकार दानकारी।

परादन (सं॰ पु॰) परं उत्कृष्टमदनं यस्य, यद्वा परान् शत्रून् अत्ति वा आदयति, अद-ल्युः णिच्-ल्युर्वा पारसी घोटक, फारसका घोड़ा।

परादान (सं॰ क्ली॰) परस्मै आदानं सम्यक्‌दानं। परोपकारके लिए दयादि द्वारा क्षपणादिको सम्यक्‌दान।

पराधि (सं॰ पु॰) परस्य आधिः। १ दूसरेका दुःख, दूसरेकी मानसपीड़ा। परः आधिः। २ अत्यन्त मानसपीड़ा।

पराधीन (सं॰ त्रि॰) परस्य परेषां वा अधीनः। परवश, जो दूसरेके अधीन हो, जो दूसरेके तावेमें हो। पर्याय—परतन्त्र, परवान, नाथवान्।

"स्वाधीनवृत्तेः साफल्य न पराधीनवृत्तिता।
ये पराधीनकर्माणो जीवन्तोऽपि च ते मृताः॥"

(गरुड़पु॰ ११३॰ अ॰)

पराधीनता (सं॰ स्त्री॰) पराधीनस्य भावः, तल ततः टाप्। पराधीनका भाव, परतन्त्रता, दूसरेकी अधीनता।

परान (हिं॰ पु॰) प्राण देखो।

पराना (हिं॰ क्रि॰) भागना।

परानसा (सं॰ स्त्री॰) परानित्यतया परा-अण्-करणे बाहुल॰ अस्-स्त्रियां टाप्। चिकित्सा। बहुतोंका कहना है, कि इस शब्दमें पत्वपाठ अर्थात् पराणसा ऐसा पढ़ना ठीक है।

परान्त—देशभेद, एक देशका नाम।

परान्तक (सं॰ पु॰) परोऽन्तुकः। १ सर्वनाशक महादेव। महादेव सबोंका नाश करते हैं, इसीलिये इन्हें परान्तक कहते हैं। २ सीमान्तदेश।

परान्तकराय—चोलवंशीय एक राजा। इन्होंने मदुराका ध्वंस किया था, इस कारण इनका और एक दूसरा नाम था मधुरान्तक।

परान्तकाल (सं॰ पु॰) परं संसारोत्तरं अन्तःकालः। मुमुक्षुओंको संसारहानि, देहान्तकाल, मृत्युका समय।

जो संसारी हैं उनका जब देहान्तकाल उपस्थित होता है, तब उसे अन्तकाल और मुमुक्षुको जब संसारहानि अर्थात् भोग और देहादिका अन्तकाल उपस्थित होता है, तब उसे परान्तकाल कहते हैं। संसारियोंका मृत्युके बाद पुनः जन्म होता है, इसलिए उसका नाम अन्तकाल तथा मुमुक्षुओंका मृत्युके बाद फिरसे

जन्म नहीं होता, इसलिए उसका नाम परान्तकाल है।

परान्तिका (सं० स्त्री०) गीतिरूप मात्राछन्दभेद।

परान्तिज—१ बम्बई प्रदेशके अहमदाबाद जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यह उक्त जिलेके उत्तर-पूर्व कोणमें अवस्थित है तथा यह स्थान साधारणतः शीतल और स्वास्थ्यकर है। पानीके रहते हुए भी यहां फसल उतनी नहीं उपजती। जिलेका अधिकांश स्थान पर्वतावृत्त और वनमय है। सिर्फ शावरमती नदीके किनारे जो नीची जमीन है, उसीमें अच्छी फसल लगती है। इसमें कुल दो शहर और १५८ ग्राम लगते हैं। भूपरिमाण ४४८ वर्गमील है।

२ उक्त उपविभागका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २३° २६´ उ० और देशा० ७२° ५४´ पू०के मध्य, अहमदाबादसे १६॥ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यह समृद्धिशाली शहर है और यहां साबुन तैयार करनेके छः कारखाने हैं। साबुन ही यहांका प्रधान वाणिज्यद्रव्य है। यहांकी प्राचीन कीर्त्तियोंमें जम्मामस्जिद, बच्चवाव, रन्दलगव और बखानदीके तीरवर्त्ती मलकेश्वर महादेवका मन्दिर ही प्रधान है।

परान्न (सं० क्ली०) परस्य अन्नं। १ परकर्त्तृक शस्यपाकज द्रव्यमात्र, दूसरेका दिया हुआ भोजन। शास्त्रमें परान्न भोजन निषिद्ध बतलाया है—

"परान्नं परवासश्च नित्यं धर्मरतस्त्यजेत्॥" (स्मृति)

धर्मरत व्यक्तिको परान्न और परवासका सदा परित्याग करना चाहिये। संयम और पारणके दिन परान्न विशेष निषिद्ध है। परान्न-भक्षण करके यागादि करनेसे वह निष्फल होता है। परान्न भोजन कर यदि तीर्थगमन किया जाय, तो बहुत कम फल प्राप्त होता है। एकादशीतत्त्वमें लिखा है, कि जिसका अन्न भोजन कर पुत्रोत्पादन किया जाय, वह पुत्र उसीका होता है। क्योंकि अन्नसे रेतोत्पन्न होता है और रेत ही सन्तानका कारण है। महागुरुनिपात होनेसे जब तक सम्वत्सर पूरा न हो जाय, तब तक परान्न भोजन विशेष निषिद्ध है। परान्न भोजनमें इस प्रकार प्रतिप्रसव लिखा है, कि गुरु, मातुल, श्वशुर और भ्राताका अन्न सेवन किया जा सकता है, इसको गिनती परान्नमें नहीं है।*

फिर शास्त्रमें ऐसा भी लिखा है, कि ब्राह्मणके अन्न-भोजनसे दरिद्रता, क्षत्रियके अन्नसे प्रेष्यता, वैश्यके अन्नसे शूद्रता और शूद्रान्नसे नरक होता है।

"ब्राह्मणान्नेन दारिद्र्यं क्षत्रियान्नेन प्रेष्यतां।
वैश्यान्नेन भु शूद्रत्वं शूद्रान्नैर्नरकं व्रजेत्॥"

(एकादशीतत्त्व)

तन्त्रमें लिखा है कि जो परान्न भोजन करते हैं, उनकी मन्त्रसिद्धि नहीं होती, वरं हानि होती है।

* संयमके दिन परान्न त्याज्य हैं।—

"कांस्यं मांसं मसूरञ्च चणकं कोरदूषकम्।
शाकं मधु परान्नञ्च त्यजेदुपवसन् स्त्रियम्॥"

(एकादशीतत्त्व)

पारणदिनमें त्याज्य है।—

"अभ्यङ्गञ्च परान्नञ्च तैलं निर्माल्यलंघनम्।
तुलसीचयनं द्यूतं पुनर्भोजनमेव वा॥
वस्त्रपीडां तथा क्षारं द्वादश्यां वर्जयेद्बुधः॥"

परान्नभोक्ताका यागादि निष्फल है।—

"परपाकेण पुष्टस्य द्विजस्य गृहमेधिनः।
इष्टं दत्तं तपोऽधीतं यस्यान्नं तस्य तद्भवेत्॥"

परान्न-भोजन द्वारा पुत्रोत्पादनमें दोष है, यथा—

"यस्यान्नेन तु भुक्तेन भार्यां समधिगच्छति।
यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाद्रेतः प्रवर्त्तते॥"

(एकादशीतत्त्व)

परान्न-भोजन करके तीर्थगमनमें भी फल थोड़ा है।—

"षोड़शांशं स लभते यः परान्नेन गच्छति।
अर्द्धं तीर्थफलं तस्य यः प्रसंगेन गच्छति॥"

महागुरुनिपातमें त्याज्य है।—

"अन्यश्राद्धं परान्नञ्च गन्धं माल्यञ्च मैथुनम्।
वर्जयेत् गुरुपाते तु यावत्पूर्णो न वत्सरः॥"

(शुद्धितत्त्व)

परान्नभोजनमें प्रतिप्रसव वचन।—

"गुर्वन्नं मातुलान्नं वा श्वशुरान्नं तथैव च।
पितृपुत्रस्य चैवान्नं न परान्नमिति स्मृतिः॥"

(एकादशीतत्त्व)

(त्रि०) परान्नं नित्यमस्त्यस्य अर्शादि अच्। २ परान्नोपजीवी, जो दूसरेका अन्न खा कर अपना गुजारा करता है। इसका पर्याय परपिण्डाद है।

परान्नपरिपुष्ट (सं० पु०) दूसरेके दिये हुए अन्नादिके भोजनसे परिवर्द्धित शरीर।

परान्नभोजी (सं० त्रि०) जो दूसरेका अन्न खाता हो।

पराप (सं० त्रि०) परा गता आपो यस्मात्, अच् समासान्तः (अवर्णान्ताद्वा। पा ६।३।९८) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या पक्षे अप ईदभावः। परागत जलापादन।

परापर (सं० क्ली०) परमापिपर्त्ति आ-पृ-अच्। १ परुषकफल, फालसा। परञ्च अपरञ्च तयोः समाहारः। २ पर और अपर।

परापरगुरु (सं० पु०) परमादपि परः श्रेष्ठः परापरः, पृषोदरादित्वात् साधुः, परापरश्चासौ गुरुश्चेति। गुरुविशेष, तन्त्रमें भगवतीको परापरगुरु कहा गया है।

"आदौ सर्वत्र देवेशि मंत्रदः परमो गुरुः।
परापरगुरुस्त्वं हि परमेष्ठी त्वहं गुरुः॥"
(वृहन्नीलतंत्र २ प०)

परापरत्व (सं० क्ली०) परापरस्य भावः त्व। परत्व और अपरत्वयुक्त भाव, परापरता।

परापरेत (सं० त्रि०) १ पश्चादनुसरण। २ श्रेणीबद्धरूपमें दूसरे मनुष्यको ओर जाना।

परापारतुक (सं० त्रि०) गर्भस्रावसम्बन्धीय।

परापुर (सं० त्रि०) परा स्थूलाः पूः, समासान्तविधेरनित्यत्वात् न समासान्तः। स्थूल देह।

पराप्रष्ठोभूत (सं० त्रि०) दूसरेको पाठ सिखानेवाला।

पराप्रसादमन्त्र (सं० पु०) प्रसादनकारी गुह्यमन्त्रविशेष।

पराबर (सं० क्ली०) सामभेद।

पराभक्ति (सं० स्त्री०) परा उत्कृष्टा भक्तिः। सख्यभक्ति, श्रीकृष्णके प्रति गोपिनियोंकी उत्तमा आनुरक्ति।

पराभव (सं० पु०) पराभूयते इति पराभवनमित्यर्थः, परा-भू-अप्। १ पराजय, हार। २ तिरस्कार, मानध्वंस। पर्याय—न्यक्कार, तिरस्क्रिया, पराभाव, विप्रकार, परिभव, अभिभव, अत्याकार, निकार और विनाश। बहुत जगह पराभाव ऐसा पाठ है, वहां आर्षप्रयोगवशतः अप न हो कर घञ् प्रत्यय हुआ है। ३ बृहस्पतिके षष्टियुगके अन्तर्गत पांचवां वर्ष। यह वर्ष समफली है और इसमें अग्नि, शस्त्रपीड़ा आदि रोग होते हैं तथा गो और ब्राह्मणको विशेष भय रहता है।]

पराभावुक (सं० त्रि०) पतन या ध्वंसशील।

पराभिक्ष (सं० पु०) परमाभिक्षते आ-भिक्ष अण्। वानप्रस्थभेद। इसमें दूसरेके घरसे थोड़ी भिक्षा मांगनी पड़ती है।

पराभिध (सं० क्ली०) कुङ्कुम, केसर, जाफरान।

पराभूत (सं० त्रि०) पराभूयते स्म, परा-भू-क्त। १ पराजित, हारा हुआ। २ नष्ट, ध्वस्त।

पराभूति (सं० स्त्री०) परा-भू-क्तिन्। पराजय, हार।

परामर्श (सं० पु०) परामृश्यते इति परामर्शनमित्यर्थः, परा-मृश भावे घञ्। १ युक्ति, विवेचन, विचार। पर्याय—वितर्क, उन्नर, विमर्षण, अध्याहार, तर्क और ऊह। न्यायशास्त्रमें व्याप्तिविशिष्ट पक्षधर्मता ज्ञानको परामर्श कहते हैं।

परामर्श होनेसे ही अनुमिति ज्ञान होता है। व्याप्तिविशिष्टके साथ वैशिष्ट्यावगाहिज्ञान ही अनुमितिजनक है। अनुमिति व्याप्तिज्ञान कारण और परामर्श व्यापार है। यह व्यापार अर्थात् परामर्श होनेसे ही अनुमितिज्ञान होता है।

किसी मनुष्यने पाकस्थान आदिसे धुआँ निकलते देख, उसमें अग्निकी व्याप्ति स्थिर की, अर्थात् जहां जहां धुआँ है वहां वहां अग्नि भी है, ऐसा निश्चय किया। बाद किसी समय उसने पहाड़ पर धुआँ देखा। पहले पाकस्थान आदिमें धुआँ देख कर उसे धूम वह्निका व्याप्य है, ऐसा स्मरण हुआ और होके वह्निव्याप्य धूमवान् पर्वत है, ऐसा बोध हुआ। जहां धुआँ है, वहां अग्नि भी है; अतएव इस पर्वत पर जब धुआँ देखा जाता है, तब यह पर्वत वह्निमान् है, ऐसा परामर्श हुआ। बाद वह्निमान् पर्वत इसी प्रकार स्थिर हुआ। २ निर्णय। ३ अनुमान। ४ सलाह, मन्त्रणा। ५ पकड़ना, खींचना। ६ स्मृति, याद।

परामर्शन (सं० क्ली०) १ स्मरण, चिन्तन। २ विचारकरण, विचार करना। ३ मन्त्रणा करना, सलाह करना। ४ खींचना।

परामर्शी (सं० त्रि०) १ स्मृत्यारूढ़। २ निर्देशक, परामर्श देनेवाला। परामर्शन देखो।

परामर्ष (सं० पु०) परामर्श देखो।

परामाणिक—१ नापित-जातिकी एक शाखाकी पदवी। २ कंसेरियोंकी उपाधिभेद। कोई कोई इस परामाणिक शब्दकी जगह प्रामाणिक ऐसा भी लिखते हैं।

परामृत (सं० क्लो० परममृतं वारि यस्मात्। १ वर्षण, मेघादिवर्षण, उपल, ओला। परं अमृतं अमरणधर्मकं ब्रह्मात्मभूतं यस्य। २ मोक्ष। (त्रि०) ३ मुक्त, जो मृत्युके बन्धनसे छूट गया हो।

परामृष्ट (सं० त्रि०) परामृश्यते स्म, मृश कर्मणि क्त। १ सम्बन्धयुक्त। २ कृतपरामर्श, निर्णय किया हुआ। ३ विवेचित, विचारा हुआ। ४ जिसको सलाह दी गई हो। ५ पीड़ित। ६ पकड़ कर खींचा हुआ।

परायचा फा० पु०) १ सिले सिलाए कपड़े बेचनेवाला। २ कपड़ोंके कटे टुकड़ोंको टोपियां आदि बना कर बेचनेवाला।

परायण (सं० त्रि०) परं केवलं आसक्तिस्थानं। १ अत्यन्तासक्त, निरत, लगा हुआ। यथा—धर्मपरायण, धर्ममें अतिशय आसक्त। २ तत्पर, प्रवृत्त। ३ अभीष्ट। ४ गत, गया हुआ। (पु०) परं उत्कृष्टं पुनरावृत्तिरहितं स्थानं यस्य। ५ विष्णु। ६ भाग कर शरण लेनेका स्थान, आश्रय। ७ नित्यप्रतिष्ठा। (क्लो०) ८ आग्रहके साथ नियुक्त, अनुरक्त या युक्त। किसी शब्दके बाद रहनेसे इसका अर्थ दूसरा हो जाता है। जैसे, क्रोधपरायण= क्रोधके वशीभूत। नरकपरायण=नरक जानेवाला, इत्यादि।

परायणवत् (सं० त्रि०) परायणं विद्यतेऽस्य परायणमतुप-मस्य व। परायणयुक्त।

परायति (सं० स्त्री०) परा-अय गतौ बाहुलकात् अति। १ प्रत्यक् गन्ता, पीछे जानेवाला। २ उत्कृष्टा आयति, उत्तर काल। आ यम-क्तिन्, परस्य आयतिः आयत्तता यत्र। ३ पराधीन, जो दूसरेके वशमें हो। (त्रि०) ४ तद्युक्त।

परायत्त (सं० त्रि०) परस्य परेषां वा आयत्तं। पराधीन, परवश।

पराया (हिं० वि०) १ जो आत्मीय न हो, जो स्वजनोंमें न हो। २ अन्यका, दूसरेका।

परायुणा (पड़रायुणा)—गोरखपुर जिलेकी एक तहसील। यहां जो सब ध्वंसावशेष अभी हैं, उनके देखनेसे यह स्थान प्राचीन पाकपुरी जैसा ज्ञात होता है।

पाक देखो।

परायुस् (सं० त्रि०) ब्रह्मा।

परार (हिं० वि०) दूसरेका, पराया, गैर, बिराना।

परारध (हिं० पु०) परार्द्ध देखो।

परारि (सं० अव्य०) पूर्वतरे वत्सरे इत्यर्थे परभावः आरि च सम्वत्सरे (सद्यः परुत्परारीति। पा ५।३।२२) पूर्वतर वत्सर, गत तृतीय वर्ष। इस परारि शब्दका केवल सप्तम्यर्थ होता है अर्थात् गत तीसरे वर्षमें, ऐसा अर्थ होगा।

परारित्न (सं० त्रि०) परारि भव, (चिरपरुत्परारिभ्यस्त्नो वक्तव्यः। पा ४।३।२३ वार्त्तिक इत्यस्य वार्त्तिकोक्तो त्न। पूर्वतर वत्सरसम्बन्धीय।

पराक (सं० पु०) पराञ्चतीति परा-अञ्च-अन्। कारवेल्ल, करेला।

पराकक (सं० पु०) पराञ्चतीति परा-अञ्च-अकः। प्रस्तर, पत्थर।

परार्थ (सं० त्रि०) परस्मै इदं अर्थेन सह नित्यसमासः। १ परनिमित्तिक, जो दूसरेके लिये हो। परः अर्थः उद्देश्यो यस्य। २ जिसका उद्देश प्रधान हो। (पु०) परस्य अर्थः ६-तत्। ३ पर प्रयोजनादि, दूसरेका काम।

परार्द्ध (सं० क्लो०) परार्द्धति सर्वोत्कृष्टतया वर्द्धते इति ऋध-अच्। १ दशमध्यसंख्या, सबसे बड़ी संख्या, वह संख्या जिसे लिखनेमें अठारह अङ्क लिखने पड़ें, एक शङ्ख, १००००००००००००००००। २ ब्रह्माकी आयुका आधा काल। ३ कुङ्कुम, केसर। ४ उशीर, गंड़ड़की जड़। ५ चन्दन।

परार्द्धि (सं० पु०) विष्णु।

परार्द्ध्य (सं० त्रि०) परार्द्ध परार्द्धसंख्यावत् प्रधानत्वं अर्हतीति यत्, यद्वा परस्मिन् अर्द्धे भवः, यत् (परावराधमोत्तमपूर्वाश्च। पा ४।३।५) १ प्रधान, श्रेष्ठ। २ सर्वाधिकसंख्या, शेषसंख्या।

परार्बुद (सं० पु०) एक प्रकारका कीड़ा।

परावत् (सं० अव्य०) परा-अव-बाहुलकात् अति। १ दूर देश। २ प्रकृष्टतम।

परावत (सं॰ क्ली॰) परा-अव बाहुलकात् अतच्। परूषकफल, फालसा।

परावन (हिं॰ पु॰) १ पलावन, एक साथ बहुतसे लोगोंका भागना, भगदड़, भागड़। २ गांवके लोगोंका घरके बाहर डेरा डाल कर पूजा और उत्सव करनेकी रीति।

परावर (सं॰ त्रि॰) १ सर्वश्रेष्ठ। २ अगला पिछला, निकटका दूरका, इधरका उधर का। (क्ली॰) ३ परूषकफल, फालसा।

परावरा (सं॰ स्त्री॰) परश्च अवरश्च विषयत्वे नास्त्यस्याः, अच् टाप्। १ विद्याभेद, एक प्रकारकी विद्या। (त्रि॰) परस्मादप्यवरः। २ श्रेष्ठतम, सबसे उत्तम।

परावर्त्त (सं॰ पु॰) परा वर्त्तते इति परा-वृत-अप्। १ परिवर्त्त, विनिमय, अदल बदल। २ प्रत्यावर्त्तन, पलटनेका भाव, लौटाना, पलटाव।

परावर्त्तन (सं॰ क्ली॰) परा-वृत-णिच्-ल्युट्। प्रत्यावर्त्तन, पलटनेका भाव।

परावर्त्त्यव्यवहार (सं॰ पु॰) १ परिवर्त्तनीय व्यवहार, पुनर्वार विचार प्रार्थना (Appeal), मुकदमेकी फिरसे जांच, मुकदमेके फैसलेका फिरसे विचार। २ मुकदमेका फिरसे फैसला।

परावर्त्तित (सं॰ त्रि॰) परा-वृत णिच्-क्त। प्रत्यावर्त्तित, पलटाया हुआ, पीछे फिरा हुआ।

परावय (सं॰ त्रि॰) परावर यत्। परावरी-सम्बन्धीय।

परावलि—पूर्व राजपूतानान्तर्गत एक प्राचीन शहर। यह परोलीसे ३॥ कोस उत्तर-पूर्व और ग्वालियर-दुर्गसे ८ कोस उत्तर अवस्थित है। यहां एक ऊंची भूमिके ऊपर कारुकार्ययुक्त एक सुन्दर प्राचीन मन्दिर तथा दक्षिण-पूर्व उपत्यका पर लगभग एक सौसे अधिक बड़े और छोटे मन्दिर विद्यमान हैं। यहांके अधिवासियोंका कहना है, कि यह शहर पहले 'धारोन' नामसे प्रसिद्ध था और धारोन, कुतवाल तथा सुहनिया ये तीन निकटवर्त्ती भिन्न भिन्न नगर एक थे। उस समय इसकी लम्बाई १२ कोस थी।

स्तूपके ऊपर निर्मित प्राचीन मन्दिरसंलग्न ढौलपुरके महाराजका बनाया हुआ एक छोटा किला और चौयाफ या नामक एक आच्छादित कूप है; (इसके प्राचीरके ऊपर शिलाखण्ड पर लिखा है, ग्वालियरके "तोमरराजवंशीय महाराजाधिराज श्रीकीर्त्तिसिंहदेव सम्वत् १५२८।") कूपकी दक्षिणस्थ उपत्यका पर अवस्थित भूतेश्वर शिवमन्दिर (इस मन्दिरके उत्तर-पश्चिममें ८ घरोंमेंसे एकमें ११०७ सम्वत्की उत्कीर्ण एक शिलालिपि है।), इसके अलावा उपत्यकाके मध्यस्थित विष्णुमन्दिर, लिङ्गमन्दिर और एक बड़े मन्दिरका चत्वर देखने योग्य तथा कौतूहलोद्दीपक है।

परावसु (सं॰ पु॰) परागतं यज्ञाख्यं वसु धनं यस्मात्। १ शतपथ ब्राह्मणके अनुसार असुरोंके पुरोहितका नाम। २ रैभ्यमुनिपुत्रभेद, रैभ्यमुनिके एक पुत्रका नाम। ३ गन्धर्वभेद, एक गन्धर्वका नाम। ४ विश्वामित्रके एक पौत्रका नाम।

परावह (सं॰ पु॰) परा वहतीति वह अच्। वायुके सात भेदोंमेंसे एक। यह वायु परिवह वायुके अन्तःस्थित है।

परावा (हिं॰ वि॰) पराया देखो।

परावाक (सं॰ पु॰) पराभव-वचन, तिरस्कारकी बात।

पराविद्ध (सं॰ पु॰) परा-व्यध-क्त। १ कुबेर। २ प्रत्याविद्धमात्र।

परावृज् (सं॰ पु॰) परा वृनक्ति तपसा पापं वर्जयति परा-वृजो वर्जने क्विप्। ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

परावृत्त (सं॰ त्रि॰) १ पलटा या पलटाया हुआ, फिरा हुआ। २ बदला हुआ।

परावृत्ति (सं॰ स्त्री॰) परा-आ-वृत-क्तिन्। १ प्रत्यावृत्ति, जिस रास्तेसे गया हो उसी रास्तेसे फिर लौटना। २ परिवर्त्त, पलटने या पलटानेकी क्रिया या भाव, पलटाव। ३ मुकदमेका फिरसे विचार या फैसला।

परावेदी (सं॰ स्त्री॰) परमुत्कर्षमाविन्दतीति विद्-अण्, स्त्रियां ङीप्। बृहती, कटाई, भटकटैया।

पराशपुर—अयोध्या प्रदेशके गोण्डा जिलेके अन्तर्गत दो समृद्धिशाली ग्राम। यह गोण्डा नगरसे ७॥ कोस दक्षिण-पश्चिम और नवाबगञ्जसे कर्णैलगञ्ज जानेवाले रास्तेके समीप बसा हुआ है। जो गोण्डराज घर्घरा नदीमें डूब मरे थे, उन्होंके पुत्र राजा पराशराम कल-

हंसने लगभग ४०० वर्ष पहले यह ग्राम बसाया था। इनके वंशधर पराशपुरके राजा और गुवारियाके कलहंसियोंके सरदार उक्त ग्रामके पूर्वांश एक सुवृहत् मृत्तिकानिर्मित गृहमें आज भी वास करते हैं। यह ग्राम आटा नामसे प्रसिद्ध है। इसका यह नाम पड़नेका कारण यह है, कि उक्त वंशधरके प्रथम पुरुष बाबूलाल शाह नामक एक व्यक्तिने पराशपुरके निकट शिकार करते समय एक फकीरको सड़ा हुआ माँस खाते देखा। फकीरने बाबूलालको देख उन्हें भी मांस खानेको कहा। पीछे फकीर भोजनमें अनिच्छा देख कर शाप देगा, ऐसा जान वे बड़े ही भयभीत हुए। किन्तु देखते न देखते वह मांस आटाके रूपमें परिणत हो गया। पश्चात् वह पात्र बाबूलालके निर्मित दुर्गके सामने गाड़ दिया गया। उसी समयसे यह स्थान 'आटा' नामसे प्रसिद्ध है।

पराशर (सं० पु०) परान् आशृणाति, शृ हिंसायां अच। १ नागभेद, एक सर्पका नाम। २ ऋषिभेद, ये वशिष्ठपुत्र शक्तिके औरस और अदृश्यन्तीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। इनकी नामनिरुक्तिके विषयमें इस प्रकार लिखा है—

"परासुः स यतस्तेन वशिष्ठः स्थापितोमुनिः।
गर्भस्थेन ततो लोके पराशर इति स्मृतिः॥
(भारत० १।१७६।३)

जब ये गर्भमें थे उसी समय वशिष्ठने अपनी मृत्यु चाही थी। इसीसे इनका पराशर नाम पड़ा है।

महाभारतके आदि पर्वमें लिखा है, कि महर्षि वशिष्ठके सौ पुत्रोंमेंसे शक्ति बड़े थे। अदृश्यन्तीके साथ इनका विवाह हुआ था। एक दिन शक्ति जङ्गलमें विचरण कर रहे थे, इसी बीच इक्ष्वाकुवंशीय कल्माषपाद नामक एक राजा शिकारसे अत्यन्त क्लान्त हो जहां शक्ति टहल रहे थे वहां जा पहुंचे। वह रास्ता बड़ा ही तंग था, एकसे अधिक मनुष्य उस हो कर जा नहीं सकते थे। राजाने शक्तिसे राह छोड़ देनेके लिये बहुत कहा, लेकिन शक्तिने उनकी एक भी न मानी। इस पर दोनोंमें विवाद खड़ा हुआ। राजा अत्यन्त क्रुद्ध हो कर राक्षसकी तरह उन्हें कशाघात करने लगे। चोटके मारे शक्ति मूर्च्छित हो पड़े और राजाको इस प्रकार शाप दिया, 'मैं तपस्वी हूं, तूने राक्षसकी तरह मुझ पर प्रहार किया, इस कारण आजसे तू राक्षस हो जा।" राजा इसी प्रकार एक और ऋषिसे शापाभिभूत हुए थे। शापाभिभूत राजाने उसी समय राक्षस हो कर पहले शक्तिको ही भक्षण किया। इस प्रकार धीरे धीरे वशिष्ठके सौ पुत्र विनष्ट हुए।

वशिष्ठके सौ पुत्र जो विनष्ट हुए वह सिर्फ विश्वामित्रके कौशलसे। वशिष्ठदेवने पुत्रशोकसे नितान्त कातर हो स्वशरीरपातके लिये लाखों चेष्टा की, पर फल कुछ भी न निकला। एक दिन वे पुनः अपने आश्रमको लौट रहे थे, इसी बीच पीछेकी ओरसे वेदध्वनि सुन कर उन्होंने पूछा, 'वेदध्वनि कौन कर रहा है?' अदृश्यन्तीने कहा, 'मैं आपकी ज्येष्ठपुत्रवधू अदृश्यन्ती हूं। आपने जो वेदध्वनि सुनी है, वह मेरे गर्भस्थ द्वादशवर्षीय पुत्रकी जानिये।" इस पर वशिष्ठदेव अदृश्यन्तीके गर्भमें एक सन्तान है, ऐसा जान फूले न समाये और घरकी ओर लौटने लगे। राहमें एक राक्षस अदृश्यन्ती पर टूट पड़ा। वशिष्ठदेवने उसे मन्त्र द्वारा जलप्रक्षेप किया जिससे उसका शाप विमोचन हो गया। ये ही इक्ष्वाकुवंशीय कल्माषपाद थे।

घर लौट कर अदृश्यन्तीने शक्तिके जैसा एक पुत्र प्रसव किया। वशिष्ठदेवने स्वयं उसके जातकर्मादि शेष किये। वह पुत्र जिस समय गर्भमें था, उसी समय वशिष्ठदेवने जीवन विसर्जन करनेका सङ्कल्प किया था, इसीसे वह पुत्र पराशर कहलाये। पराशर जन्मसे वशिष्ठको ही पिताके जैसा मानते थे। एक दिन उन्होंने अपनी माता अदृश्यन्तीके सामने वशिष्ठको पिता कह कर पुकारा। यह सुन कर अदृश्यन्तीकी आँखें डबडबा आईं और वह बोली, 'तुम जिन्हें पिता समझते हो, वह तुम्हारे पिता नहीं हैं--पितामह हैं। जंगलमें एक राक्षस तुम्हारे पिताको खा गया है।' यह सुनते ही पराशरने सर्वलोक संहार करनेका संकल्प किया। पराशरका भीषण सङ्कल्प सुन कर वशिष्ठदेवने उन्हें पापकर्मसे रोकना चाहा, पर वे न तो इस सङ्कल्पका परित्याग कर सके और न क्रोधको ही रोक सके।

अन्तमें उन्होंने एक राक्षससत्रका अनुष्ठान किया। अपने पिता शक्तिके विनाशका स्मरण करते हुए वे आबालवृद्ध सभी राक्षसोंको दग्ध करने लगे। इस समय वशिष्ठदेवको भी रोकनेका साहस न हुआ। क्रमशः सभी राक्षस दग्ध होने लगे। अनन्तर पुलस्त्य और पुलह आदि ऋषियोंने ब्राह्मणकी ओरसे पराशरसे जा कर कहा, 'तात! ये सब राक्षस तुम्हारे पितृवधका हाल कुछ भी नहीं जानते – बिलकुल निर्दोष हैं, क्यों इस प्रकार अनर्थक सृष्टिका ध्वंस कर रहे हो। अब हम लोगोंके अनुरोधसे इस भयानक हत्याको रोको और यज्ञ शेष करो। विशेषतः तपस्वि-ब्राह्मणोंका यह धर्म नहीं है, शान्ति ही उनका परम धर्म है। तुम रोषपरतन्त्र हो कर इस भयानक यज्ञका अनुष्ठान करके केवल हमारा प्रजाका समुच्छेद कर रहे हो। तुम्हारे पिताको राक्षसने जो भक्षण किया था उसमें उनका कुछ भी दोष नहीं। तुम्हारे पिता आत्मदोषसे ही इस लोकसे स्वर्गको चले गये हैं, नहीं तो, तुम्हारे पिताको भक्षण करे, ऐसी राक्षसमें शक्ति कहां? विश्वामित्र ही इन सबके मूल कारण हैं। तुम्हारे पिता और उनके सहोदरगण तथा राजा कल्माषपाद सभी देवताओंके साथ स्वर्गमें रहते हैं। तुम्हारे पितामह वशिष्ठदेव इन सब विषयोंसे अच्छी तरह जानकार हैं। अभी तुम अपना यज्ञ समाप्त करो, इसीमें तुम्हारा मंगल है।' पराशरने उनके आदेशानुसार यज्ञ समाप्त किया और सभी राक्षससत्रके लिये जो अग्नि संस्थापित हुई थी, उसे हिमालयके उत्तरपार्श्व महारण्यमें फेंक दिया। वहां वह अग्नि आज भी प्रतिपर्वमें राक्षस, वृक्ष और प्रस्तरको दग्ध किया करती है।

(भारत आदिपर्व १७५से १८२अ०)

इसी पराशरसे वेदविभागकर्त्ता कृष्णद्वैपायन व्यास उत्पन्न हुए। देवीभागवतमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है – एक समय पराशर तीर्थयात्राके उपलक्षमें समस्त देश पर्यटन करते हुए यमुनाके किनारे पहुंचे। वहां उन्होंने यमुना पार कर देनेके लिये धीवरसे कहा। धीवर उस समय दूसरे काममें लगा हुआ था, इस कारण मुनिको पार कर देनेके लिये उसने अपनी पालिता कन्या मत्स्यगन्धासे कहा। वसुकन्या मत्स्यगन्धा धीवरके आदेशानुसार यह काम करनेको तैयार हो गई। अनन्तर वह नाव जब यमुनाके बीच पहुंची, तब पराशर मुनि उस चारुलोचना मत्स्यगन्धाको देख कर दैवघटनावशतः कामातुर हो पड़े। उपभोग करनेकी कामनासे मुनिवरने अपने दाहिने हाथसे उसका दाहिना हाथ पकड़ कर कहा, "मैं नितान्त कामपीड़ित हो गया हूं, मेरा अभिलाष पूरा करो।" इस पर मत्स्यगन्धा बोली, "आप महर्षि वशिष्ठके वंशधर हैं और समस्त वेद-वेदान्तादि-शास्त्रविशारद तथा अति तपस्वी हैं। अतः आप अपने कुल, शील और धर्मके विगर्हित कार्यमें क्यों प्रवृत्त हुए हैं। मेरा यह शरीर मत्स्यगन्धसे परिपूर्ण है, तो भी क्यों आप इस प्रकार मेरे कुरूपवेष पर लट्टू हो रहे हैं? आप इस दुष्ट बुद्धिका परित्याग करें।' इतने पर भी मत्स्यगन्धाने जब देखा, कि मुनि नितान्त ही कामपीड़ित हैं और उसके सभी उपदेश निष्फल जा रहे हैं, तब उसने मुनिसे कहा, 'अभी आप धैर्यावलम्बन करें, पहले पार हो जांय, पीछे जो इच्छा हो सो कीजिये।' यह सुन कर पराशरने हाथ छोड़ दिया। जब नाव दूसरे किनारे लगी, तब पराशरने पुनः कामातुरभावसे उसका हाथ पकड़ा। इस पर मत्स्यगन्धाने कांपती हुई मुनिसे कहा, 'मुनिवर! कामोपभोग समानरूपता होनेसे ही सुखकर हुआ करता है। मेरा शरीर अतिशय दुर्गन्धसे परिपूर्ण है, अतएव कुछ कालके लिये ठहर जाइये।' इतना सुनते ही पराशरने क्षणभरमें उसे चारुवदना, सर्वाङ्गसुन्दरी और योजनगन्धा बना दिया। कन्याने मुनिकी उपभोगाभिलाषी देख फिरसे कहा, 'मुनिवर, अभी दिन है, तटस्थित सभी मनुष्य विशेषतः मेरे पिताजी देख लेंगे। यह पशुवत् अति जघन्यकर्म है और शास्त्रमें भी दिवा-विहार निषिद्ध बतलाया है। अतः जब तक रात न हो जाय, तब तक आप प्रतीक्षा कीजिए।' पराशरने इस वाक्यको युक्तिसङ्गत समझ कर उसी समय तपके प्रभावसे चारों ओर कुज्झटिकामय कर दिया जिससे सब दिशाओंमें अन्धकार छा गया। अनन्तर मत्स्यगन्धाने पराशरको बहुत विनीत स्वरसे कहा, 'मुनिवर! मैं अभी कन्या हूं, आप उपभोगके बाद ही जहां इच्छा होगी चले जांयगे। किन्तु आपका वीर्य अमोघ है, मुझे

निश्चय ही गर्भधारण करना पड़ेगा। ब्रह्मन्! पीछे मेरी क्या गति होगी, सो आप मुझे बता दीजिए।' इस पर पराशरने कहा, आज हमारा प्रियकार्य सम्पादन करके फिर तुम कन्या ही होगी। इस पर भी यदि तुम्हें डर हो, तो अभिलषित वर मांगो। मत्स्यगन्धाने इस प्रकार वर मांगा, 'मेरे पिता, माता वा अन्य कोई भी इस विषयको जान न सके और जिससे मेरा कन्याव्रत भङ्ग न हो वही कार्य कीजिए। आपसे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह आप हीके समान तेजस्वी और गुणी होवे। मेरे शरीरमें यह सौगन्ध सदा एकसी बनी रहे और मेरा यह यौवन सर्वदा नवनवरूपमें विराजमान रहे।'

यह सुन कर पराशरने कहा, 'सुन्दरि! तुम्हारे गर्भसे जो पुत्र जन्म लेगा, वह विष्णुके अंशसे उत्पन्न हो कर त्रिभुवनमें विख्यात होगा। तुम यह निश्चय जानो कि किसी विशेष कारणवशतः ही मैं तुम पर आसक्त हुआ हूं, नहीं तो इसके पहले आज तक कभी भी मुझे इस प्रकारका मोह उपस्थित नहीं हुआ था। तुम्हें देख कर इस प्रकार कामाविभूत होनेके दैव ही एकमात्र कारण हैं। अतएव दैवकी अतिक्रम करना किसीका भी साध्य नहीं है। यदि ऐसा नहीं होता, तो कब सम्भव था कि मैं तुम्हारे दुर्गन्धमय शरीर पर आसक्त हो जाता। तुम्हारा पुत्र पुराण-कर्त्ता, वेदज्ञ और वेदका विभाग-कर्त्ता होगा।'

ऋषिवर पराशरने सत्यवतीको इस प्रकार वशमें करके उसके साथ उपभोग किया और पीछे यमुनामें स्नान करके वे उसी समय वहांसे चल पड़े। सत्यवतीने उसी समय गर्भधारण किया और द्वितीय कन्दर्पसदृश एक पुत्र प्रसव किया। पुत्रने जन्म लेते ही मातासे कहा, 'आप अभी घर लौट जावें, मैं इसी स्थान पर तपस्या करूंगा', जब कभी आपको मेरा प्रयोजन पड़ेगा उसी समय आप मेरा स्मरण करेंगी, स्मरणमात्रसे ही मैं आपके पास पहुंच जाऊंगा।' इसके बाद सत्यवती भी पिताके घर चली गई। यह पुत्र द्वीपमें उत्पन्न हुआ था, इस कारण उसका नाम द्वैपायन पड़ा। (देवीभा० २।२ अ०)

पराशर ऋषिने एक संहिता रची है जिसमें कलियुगकी कर्त्तव्याव्यवस्था सन्निवेशित है। इसमें लिखा है—

"कृते तु मानवो धर्मस्त्रेतायां गौतमः स्मृतः।
द्वापरे शङ्खलिखितौ कलौ पराशरः स्मृतः॥" (पराशरसं०)

सत्ययुगमें मनूक्त धर्म प्रधान है, त्रेतायुगमें गौतम, द्वापरमें शङ्ख और लिखित तथा कलियुगमें एकमात्र पराशरका मत ही ग्रहणीय है। इस संहितामें १२ अध्याय हैं। प्रथम अध्यायमें युगभेदसे धर्मादिभेदकथन, २य अध्यायमें आचारधर्म और गृहधर्मादिकथन, ३य अध्यायमें अशौचव्यवस्था और आत्महत्यादि दोष, ४र्थ अध्यायमें प्रायश्चित्तमत, अन्त्येष्टिक्रिया और कुशपुत्तलिकादिकथन, ५म अध्यायमें प्राणिदष्ट प्रायश्चित्त व्यवस्था, ६ष्ठ अध्यायमें प्राणिवध प्रायश्चित्त कथन, ७म अध्यायमें द्रव्यशुद्धि प्रभृति, ८म अध्यायमें गोवधादि प्रायश्चित्त, ९म अध्यायमें गोवधापवाद प्रभृति, १०म अध्यायमें अगम्यागमनादि प्रायश्चित्त, ११श अध्यायमें अमेध्यभक्षणादि प्रायश्चित्त, १२श अध्यायमें प्रायश्चित्ताङ्ग स्नानभेदादि।

पराशर संहितामें इन सब विषयोंकी व्यवस्था सन्निवेशित हुई है। पराशरके साथ अन्य मन्वादिसंहिताका विरोध होने पर भी कलिकालमें पराशरका मत ही ग्रहणीय है।

ये विष्णुपुराण और पराशर-उपपुराणके वक्ता थे।

२ आयुर्वेद तन्त्रकारक ऋषिभेद। ३ इन्द्र।

पराशर—१ होराशास्त्र वा पाराशरीहोरा नामक एक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता।

२ एक ज्योतिर्विद्। वराहमिहिर कृत बृहज्जातकग्रन्थमें इनका उल्लेख है।

३ कृषिपद्धतिके प्रणेता।

४ गृह्यसूत्रव्याख्याके रचयिता।

५ पुराणरत्न नामक ग्रन्थके प्रणेता।

६ योगोपदेश नामक एक योगशास्त्रके प्रणेता।

पराशर—गोत्रभेद। बिहारवासी ब्राह्मण, राजपूत, बाभन आदि जातियोंमें; उड़ीसाके 'करणों'में तथा बङ्गालके ब्राह्मण, कायस्थ, तांती, मधुनापित, ताम्बुली, सुवर्णवणिकमें यह गोत्र प्रवर्त्तित देखा जाता है।

पराशर दास—कैवर्त्तजातिकी एक शाखाका नाम।

पराशर भट्ट—१ एक विख्यात पण्डित। ये वत्साङ्कके पुत्र

और बङ्केश्वरके कुलपुरोहित थे। यष्टप ', क्षमाषोडशी, गणरत्नकोषस्तोत्र (श्रीरङ्गराजस्तोत्र और स्तोत्ररत्न), यमकरत्नाकर, वेदान्तसार, विष्णुसहस्रनामभाष्य (यह ग्रन्थ इन्होंने श्रीरङ्गेश्वरके कहने पर बनाया) आदि ग्रन्थ इनके बनाए हुए हैं।

२ इनका दूसरा नाम रङ्गनाथ था। इन्होंने भागवतपुराणदर्पण वा विष्णुसहस्रनामभाष्य नामक एक ग्रन्थ प्रणयन किया।

पराशरिन् (सं० पु०) पराशरेण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रं पराशरं तद्वियतेऽस्याध्ययनाधेति णि, इनच, पराशरोति कृत्वः। पाराशरी, चतुर्थाश्रमी।

पराशरीय (पाराशर्य)—गुजराती ब्राह्मणोंको एक शाखा। काठियावाड़ प्रदेशके दक्षिणपूर्वांशमें ये लोग वास करते हैं।

पराशरेश्वर (सं० पु०) स्कन्दपुराणवर्णित दाक्षिणात्यके शिवलिङ्गभेद।

पराशरेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) शिवपुराणके उत्तरखण्डमें वर्णित दाक्षिणात्यके अन्तर्गत तीर्थभेद। यहां स्नान करनेसे पुण्यकी प्राप्ति होती है।

पराशवाड़—वशिष्ठगोत्रीय नेपाली ब्राह्मणोंका एक दल।

पराशस् (सं० स्त्री०) पराशसन, पराङ्मुख हिंसन।

पराशातयितृ (सं० पु०) शत्रुको हिंसा करनेवाला।

पराश्रय (सं० त्रि०) परो आश्रयो यस्य। १ अन्याश्रित जो दूसरेके आश्रयमें हो। (पु०) २ पराधीनता। ३ दूसरेका अवलम्ब, पराया भरोसा, दूसरेका सहारा।

पराश्रया (सं० स्त्री०) लताविशेष, परगाछा, बांदा, बंदाक। पर्याय—बन्दा, वृक्षादनी, वृक्षरुहा, जीवन्तिका, वशिनी पुत्रिणी, वन्द्या और परपुष्टा।

पराश्रित (सं० त्रि०) १ दूसरेके आश्रित, पराधीन। २ जिसे दूसरेका आसरा हो, जिसका काम दूसरेसे ही चलता हो।

परास (सं० पु०) १ दूरता, किसी स्थानसे उतनी दूर जितनी दूरी पर उस स्थानसे फेंको हुई वस्तु गिरे। २ पलाश देखो।

परासङ्ग (सं० पु०) १ अवरोध, शोणितरोध। २ दूसरे पुरुषमें आसक्ति।

परासन (सं० क्ली०) परा-अस-भावे ल्युट्। १ मारण, वध। परं आसनं। २ श्रेष्ठासन, उत्तम आसन।

परासिन् (सं० त्रि०) १ इष्टकादि निक्षेप द्वारा दूरताका परिमाण। (स्त्री०) २ एक रागिनीका नाम।

पलाश्री देखो।

परासु (सं० त्रि०) परा-गताः अस्थिता असवो यस्य। मृत, मरा हुआ। जिसको प्राणवायु निकल गई हो, उसे परासु कहते हैं। इसको परीक्षाका विषय वैद्यकग्रन्थमें इस प्रकार लिखा है,—जिसका उच्छ्वास अत्यन्त दोघ वा कृस्व, स्पन्दनहीन, दन्त प्रतिकोण, पक्ष्म जटाबद्ध, दोनों नेत्र प्रकृतिहीन, विकृतियुक्त, अत्युत्पिण्डित, प्रविष्ट, कुटिल, विषम तथा प्रस्रुत हों, उसे परासु जानना चाहिए। (चरक इन्द्रिय ४ अ०) मृत्यु देखो।

परासुता (सं० स्त्री०) परासोर्मृतस्य भावः, तल-टाप्। १ मृतत्व, मृत्यु, मौत। २ निद्रापरवशता।

परास्कन्दिन् (सं० पु०) परान् आस्कन्दितुं शीलमस्य आ-स्कन्द-णिनि। चोरभेद, एक प्रकारका चोर, डकैत।

परास्त (सं० त्रि०) परास्यते स्म, परा-अस-क्त। १ निरस्त, पराजित, हारा हुआ। २ प्रभावहीन, दबा हुआ। ३ ध्वस्त, विजित।

परास्तोत्र (सं० क्ली०) उत्कृष्ट स्तव।

परास्य (सं० त्रि०) निक्षेपयोग्य।

पराह्न (सं० पु०) परमुत्तरवर्त्ति अह, ततः टच्। (राजाहःसखिभ्यष्टच्। पा ५।४।९१) परदिन, दूसरा दिन।

पराहाट—सिंहभूम जिलेके अन्तर्गत एक क्षुद्र सामन्तराज्य। भूमिका परिमाण ७९१ वर्ग मील है। इसमें कुल ३८० ग्राम लगते हैं।

यहांके राजाओंको वंश-आख्याके सम्बन्धमें दो स्वतन्त्र इतिहास पाये जाते हैं। पराहाटके सरदारगण पहले सिंहभूमके राजा समझे जाते थे। इस राजवंशके आदिपुरुष जिन्होंने सबसे पहले राज्योपाधि पाई उनके विषयमें इस प्रकार चारताख्यान सुना जाता है। किसी समय एक भुंइया वन काटने गया, वहां उसने वृक्षके कोटरमें एक बालकको देख पाया। घर ला कर वह उस बालकका लालन-पालन करने लगा। धीरे धीरे वह बालक भुंइया जातिका एक प्रधान नेता हो गया। बहुत बचपनसे ही

यह बालक पौरी वा पहाड़ीदेवीकी उपासना किया करता था। किन्तु 'सिंह' उपाधिधारी राजपरिवारवर्गका कहना है, कि वे क्षत्रिय हैं और उनके शरीरमें राजपूतोंका रक्त भरा हुआ है। ये लोग कहते हैं, कि हम लोगोंके पूर्वपुरुष जिन्होंने सबसे पहले यहां आ कर सिंहासन लाभ किया वे मारवाड़वासी और कदम्बवंशी राजपूत थे। जगन्नाथ-दर्शनकी कामनासे वे श्रोक्षेत्र जाते समय इसी स्थान हो कर गये थे और उसी समय यहांके अधिवासियोंने उन्हें अपना राजा चुन लिया था। कुछ समय बाद सिंहभूमके पूर्वदिकस्थ भुंइया लोगोंके साथ कोलहनवासी तर्कीकोलोंका विवाद उपस्थित हुआ। राजाने दलबलके साथ कोलोंका साथ दिया। युद्धमें जब भुंइयाकी हार हुई, तब क्षत्रियराज भुंइया और कोल दोनों जातिके सरदार राजा हो गए।' दोनों ही गल्पमें कोल वा भुंइयाके ऊपर आधिपत्यकी कथा है, किन्तु कौन गल्प सत्य है, इसका निर्णय करना कठिन है। सभी सद्वंशीय पराहाट सरदारोंको राजपूत वंशोद्भव बतलाते हैं।

पराहाट वा सिंहभूमका सामन्तराज्य चारों ओर पर्वतसे घिरे रहनेके कारण महाराष्ट्रगण इस पर चढ़ाई नहीं कर सकते थे। पूर्वकालसे ले कर १८१८ ई० तक यहांके राजाओंने स्वाधीनभावसे राज्य किया था। अन्तमें उसी साल घनश्यामसिंहदेवने अङ्गरेजोंके साथ मित्रता कर ली। सराईकेलाके अधिपति विक्रमसिंह और खर्सुयाँराज बाबू चैतन्यसिंहके ऊपर शासन-क्षमता और महाराज उपाधि पानेके लिये तथा तर्कीकोलोंको दमन करने और राजा विक्रमसिंहसे कुछ देवमूर्त्तियां पानेकी आशासे पोड़ाहाटके राजा अङ्गरेजराजके साथ मित्रतासूत्रमें आवद्ध हुए और मित्रराजरूपमें गिने जाने लगे। अङ्गरेजराजने सराईकेला और खर्सुयांके ऊपर उनका आधिपत्य स्वीकार नहीं किया वरं उनसे वार्षिक १०१ रु०का कर निर्द्धारित कर दिया और उनके राजकीय आईन वा कार्यादि सम्बन्धमें अङ्गरेजराज किसी प्रकारका हस्तक्षेप नहीं करेंगे, ऐसा अङ्गीकार किया गया। इस शर्त पर १८२० ई०की १ली फरवरीको अङ्गरेजराजने कई एक सन्धिपत्र स्वाक्षर कर लिये। उस पत्रके अनुसार उक्त सरदारोंने स्थानीय विद्रोहदमनके समय सैन्य दे कर अपने अधिकृत स्थानकी रक्षा की थी। १८१८ ई०में पोड़ाहाटराजने सराईकेलापतिसे जो विग्रहमूर्त्तिके लिये दावा किया था, १८२३ ई०में अङ्गरेज गवर्नमेण्टके आदेशानुसार उन्होंने वह विग्रह पुनः प्राप्त किया। १८३७ ई०में इनकी अवस्था शोचनीय हो जाने पर अङ्गरेजोंने कोलहानका शासनभार अपने हाथ ले लिया और उक्त राजाको मासिक ५००) रु० देनेका बन्दोवस्त कर दिया। १८५७ ई०में चाईवासामें जब विद्रोह उपस्थित हुआ, तब पोड़ाहाटके शेषराजा अर्जुनसिंहने विद्रोह-दमनका भार अङ्गरेज गवर्नमेण्टके हाथ सौंप दिया। कुछ समय बाद राजा स्वयं अंग्रेजके विरुद्ध षड़यन्त्र रचने लगे, फलतः अंग्रेजसे बन्दी हो कर यावज्जीवन वाराणसीधाममें भेज दिये गये। तभीसे यह प्रदेश अंग्रेजोंके कर्त्तृत्वाधीनमें चला आ रहा है।

पराह्ण (सं० पु०) परञ्च तदहश्चेति कर्मधा० (अह्नोऽह्न एतेभ्यः। पा ५।४।८८) इति अह्नादेशः ततो णत्वं। अपराह्ण, दिनका पिछला भाग, दोपहरके बादका समय, तीसरा पहर।

परि (सं० अव्य०) पृ-इन्। १ सर्वतोभाव, अच्छी तरहसे। २ वर्जन। ३ वराध। ४ शेष। ५ इत्थम्भूत। ६ आख्यान। ७ भाग। ८ लीप्सा। ९ आलिङ्गन। १० लक्षण। ११ दोषाख्यान। १२ निरसन। १३ पूजा। १४ व्याप्ति। १५ भूषण। १६ उपरम। १७ शोक। १८ सन्तोषभाषण।

परि—संस्कृत उपसर्गोंमेंसे एक। इसके लगानेसे शब्दमें अर्थोंकी वृद्धि होती है। १ सर्वतोभाव, अच्छी तरह। २ अतिशय। ३ वीप्सा। ४ इत्थभाव। ५ चिह्न। ६ भाग। ७ त्याग। ८ नियम।

लक्षण—इत्थम्भूत, आख्यान, भाग और वीप्साके अर्थमें प्रति, परि तथा अनुके कर्मवचनीय संज्ञा होती है, अर्थात् इन सबोंके अर्थमें द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे,—'लक्षणार्थे वृक्षं प्रतिपर्यनु वा विद्योतते विद्युत्। इत्थम्भूताख्याने भक्तो विष्णुं प्रतिपर्यनु वा। भागे लक्ष्मीः हरिं प्रति पर्यानुवा, हरेर्भाग इत्यर्थः। वृक्षं वृक्षं प्रति

पर्यनु वा सिञ्चति।' इन सब उदाहरणोंमें प्रत्येक स्थलमें परि शब्दके योगमें द्वितीया विभक्ति हुई है। वर्जनार्थमें परि शब्दके योगमें पञ्चमी विभक्ति होती है।

द्यूत, व्यवहार तथा पराजयके अर्थमें अक्ष शलाका और संख्यावाचक शब्दमें 'परि'के साथ समास होता है। 'द्यूते अक्ष' विपरीत' वृत्त'' अक्षपरि; इसी प्रकार 'शलाकापरि, एकपरि' इत्यादि होंगे।

परिंश (सं० पु०) लेश, थोड़ा, छोटा।

परिक (हिं० स्त्री०) खराब चाँदी, खोटी चाँदी।

परिक—राजपूतानावासी ब्राह्मणोंकी एक शाखा। माड़वार और बूंदी प्रदेशमें इन लोगोंका वास है।

परिकथा (सं० स्त्री०) परितः कथा। १ कथाभेद, वाङ्मयभेद, एक कहानीके अन्तर्गत उसीके सम्बन्धकी दूसरी कहानी। २ धर्मसंक्रान्त वार्त्तालाप, धर्मविषयक कहानी।

परिकम्प (सं० पु०) परितः कम्पो यस्मात्, वा परिकम्प्यतेऽनेन परिकम्प-करणे घञ्। १ भय, डर। २ परितः कम्प, सब प्रकारसे हिलना डोलना।

परिकर (सं० पु०) परिकीर्यते इति परि-कृ-अप्। (ऋदोरप्। पा ३।३।५७) वा परिक्रियतेऽनेनेति कृ-घ। १ पर्यङ्क, पलंग। २ परिवार। ३ समारम्भ, तैयारी। ४ वृन्द, समूह। ५ प्रगाढ़। ६ विवेक, ज्ञान। ७ सहकारी, अनुयायियोंका दल, अनुचरवर्ग, लवाजमा। ८ अलङ्कारविशेष, एक अलङ्कार जिसमें अभिप्राय भरे हुए विशेषणोंके साथ विशेष्य आता है। यथा—

"अंगराज! सेनापते! द्रोणोपहासिन्।
कर्ण! रक्षैनं भीमाद्दुःशासनम्॥" (साहित्यदर्पण)

दुःशासनको भीम द्वारा निपीड़ित देख अश्वत्थामाने उपहासरूपमें कर्णसे कहा, "हे कर्ण! तुम अङ्गदेशके राजा, सम्प्रति सेनापति तथा द्रोणके उपहासकारी हो; अतः भीमसे दुःशासनकी रक्षा करो।" कर्णको दुःशासनकी रक्षा करना उचित था; किन्तु वे अभी उनकी रक्षा न कर सके। इसीलिये अश्वत्थामाने कर्णके प्रति 'अङ्गराज, सेनापते तथा द्रोणोपहासिन्' इन तीन विशेषणोंका साभिप्राय प्रयोग किया है; सुतरां यहां परिकर अलङ्कार हुआ। ९ समन्वित। १० संयुक्तहस्त। यथा, 'बद्धपरिकर।' ११ भृत्य, नौकर। १२ संयम, धारण। १३ नाटकादिके मुखमें उत्क्षेप, परिकर प्रभृति विन्यास करने होते हैं। इसका लक्षण—समुत्थित अर्थका अर्थात् काव्यार्थका जो विस्तार है, उसे परिकर कहते हैं। पहले काव्यार्थको विस्तृति करनी चाहिये।

परिकरमा (हिं० स्त्री०) परिक्रमा देखो।

परिकराङ्कर (सं० पु०) एक अलङ्कार जिसमें किसी विशेष्य या शब्दका प्रयोग विशेष अभिप्राय लिये हो। जैसे, "बामा, भामा, कामिनी, कहि बोलो प्राणेश। प्यारी कहत लजात नहिं, पावस चलत विदेश॥" यहां बामा (जो वाम हो) आदि शब्द विशेष अभिप्राय लिये हुए हैं। नायिका कहती है, कि जब आप मुझे छोड़ विदेश जा रहे हैं, तब इन्हीं नामोंसे पुकारिए, प्यारी कह कर न पुकारिए।

परिकर्त्तन (सं० क्ली०) १ अधच्छेद। २ छेदनवत् अनुभाव।

परिकर्त्तृ (सं० पु०) परिकरोतीति परि-कृ-तृच्। अनूढ़ज्येष्ठमें कनिष्ठके विवाहके याजक। बड़ेकी शादी न होनेसे पहले छोटेके विवाहकर्ममें ये मन्त्रादि पाठ करते हैं।

परिकर्त्तिका (सं० स्त्री०) १ कर्त्तनवत् पीड़ा, काटनेकी तरह दर्द। २ वमन और विरेचनकी व्यापद्विशेष।

परिकर्मन् (सं० क्ली०) परिक्रियते इति परि-कृ-मनिन्। १ कुङ्कुमादि द्वारा शरीरशोभाधानरूप संस्कार, देहमें केसर, चन्दन, उबटन आदि लगाना, शरीरसंस्कार मात्र। पर्याय—अङ्गसंस्कार, प्रतिकर्म्म। (पु०) परितः कर्म यस्य। २ परिचारक, सेवक।

परिकर्मी (सं० त्रि०) परिकर्म विद्यतेऽस्य, परिकर्म-इनि। परिकर्मा, सब काम करनेवाला नौकर।

परिकर्ष (सं० पु०) परि-कृष-भावे घञ्। १ समाकर्षण। कर्षस्य वर्जनं, अव्ययीभावः। २ कर्षवर्जन।

परिकर्षण (सं० क्ली०) खींच कर नाना स्थानोंमें ले जाना।

परिकर्षी (सं० त्रि०) खींच ले जानेवाला।

परिकलित (सं० क्ली०) परिकल-भावे-क्त। आकलन, ग्रहण।

परिकल्कन (सं॰ पु॰) प्रवञ्चना, शठता, दगाबाजी।

परिकल्प (सं॰ क्लो॰) १ स्थिरनिश्चय। २ रचना, बनावट। ३ आमन्त्रण। ४ निर्देश।

परिकल्पन (सं॰ पु॰) १ मनन, चिन्तन। स्त्रियां टाप्। २ रचना, बनावट।

परिकल्पित (सं॰ त्रि॰) परि-कल्प-क्त। १ अनुष्ठित। २ सज्जित। ३ निर्दिष्ट, निश्चित, ठहराया हुआ। ४ स्थिरीकृत, स्थिर किया हुआ। ५ रचित, मनमें सोच कर बनाया हुआ। ६ वृथानुमानलब्ध, मनमें गढ़ा हुआ। मनगढ़ंत।

परिकाङ्क्षित (सं॰ त्रि॰) परित्यक्तं काङ्क्षितं अभिलाषो येन। १ तपस्वी। २ सम्पूर्ण अभिलाषयुक्त।

परिकायन (सं॰ पु॰) वेदकी एक शाखाका नाम।

परिकीर्ण (सं॰ त्रि॰) परि-कॄ-क्त। १ व्याप्त। २ विस्तृत, फैला हुआ। ३ समर्पित।

परिकीर्त्तन (सं॰ क्लो॰) १ उच्चैःस्वरमें कीर्त्तन, ऊंचे स्वरसे कीर्त्ति, खूब गाना। २ आरोपित गुणवर्णन, गुणोंका विस्तृत वर्णन, अधिक प्रशंसा।

परिकीर्त्तित (सं॰ त्रि॰) १ प्रशंसित, प्रशंसा किया हुआ। २ उच्चारित, उच्चारण किया हुआ। ३ कथित, कहा हुआ। ४ गीत, गाया हुआ।

परिकुलत्तिराय—नागराजभेद। गङ्गवंशीय नरपति ३य माधवके वंशधर।

परिकूट (सं॰ क्लो॰) परि सर्वतो भूषितं कूटं। १ पुरद्वारकूटक, नगर या दुर्गके फाटक परकी खाई। (पु॰) २ नागराजभेद, एक नागराजका नाम।

परिकूल (सं॰ क्लो॰) परितः कूलः। दोनों ओर स्थित कूल।

परिकृश (सं॰ त्रि॰) परि सर्वतो भावे कृशः। सर्वतोभावसे कृश, अतिशय क्षीण, अत्यन्त दुबला।

परिकृष्ट (सं॰ पु॰) १ आचार्यभेद। (त्रि॰) २ सर्वतोभावसे कर्षित।

परिकेश (सं॰ अव्य॰) केशस्योपरि। केशका उपरिभाग, बालका अगला हिस्सा।

रिकोप (सं॰ पु॰) अत्यन्त क्रोध।

परक्रम (सं॰ पु॰) परि-क्रम-भावे घञ्। (नोदात्तोपदेश- स्येति। पा ७।३।३४) इति उपधाया न वृद्धिः। १ क्रीड़ार्थ पद द्वारा गमन, इतस्ततः पादविहार, टहलना। २ प्रदक्षिण, परिक्रमा, फेरी देना, चारों ओर घूमना। पृथिवीके चारों ओर प्रदक्षिण करनेसे अशेष पुण्यसञ्चय होता है। वराहपुराणमें लिखा है,—

> "शृणु भद्रे महापुण्यं पृथिव्यां सर्वतो दिशं।
> परिक्रम्य यथास्थानं प्रमाणगणितं शुभं॥
> भूम्याः परिक्रमे सम्यक् प्रमाणं योजनानि च।
> षष्ठिकोटिसहस्राणि षष्ठिकोटिशतानि च॥
> तीर्थान्येतानि देवाश्च तारकाश्च नभःस्थले।
> गणितानि समस्तानि वायुना जगदायुषा।" इत्यादि।

इसमें और लिखा है, कि एक बार मथुरा-प्रदक्षिण करनेसे ही इन सबके प्रदक्षिण करनेके फल मिलते हैं।

परिक्रमण (सं॰ क्लो॰) परि-क्रम-ल्युट्। १ परिक्रम, गमन, टहलना, मन बहलानेके लिए घूमना। २ प्रदक्षिण, चारों ओर घूमना, फेरी देना।

परिक्रमसह (सं॰ पु॰) परिक्रमं विहारं सहते इति सह-पचाद्यच्। छागल, बकरा।

परिक्रमा (सं॰ स्त्री॰) १ देवमन्दिरके चारों ओर सीमाके रूपमें जो सब छोटे छोटे देवमन्दिर वा गृहादि रहते हैं, उन्हें उक्त मन्दिरको परिक्रमा कहते हैं। २ किसी तीर्थस्थान या मन्दिरके चारों ओर घूमनेके लिए बना हुआ रास्ता। ३ चारों ओर घूमना, चक्कर, फेरी। ४ मन्दिरके चारों ओर स्थित प्राचीर।

परिक्रय (सं॰ पु॰) परि-क्री-अच्। १ विक्रीत वस्तुको फिर खरीदना, विनिमय, मोल, खरीद। २ नियत काल भृति द्वारा स्वीकरण। परिक्रयके कारण कारकमें विकल्पसे सम्प्रदानता अर्थात् चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा,—शतेन शताय वा परिक्रीतः।

परिक्रयण (सं॰ क्लो॰) परि-क्री-ल्युट्। परिक्रय, खरीद, मोल।

परिक्रिया (सं॰ स्त्री॰) परितः क्रिया। १ परिखादि वेष्टन, खाई आदिसे घेरनेकी क्रिया। २ एकाह यागभेद, एक प्रकारका एकाह यज्ञ जो स्वर्गकी कामनासे किया जाता है।

परिक्लिष्ट (सं॰ त्रि॰) परि-क्लिश-क्त। १ परिक्षत, नष्ट भ्रष्ट। २ अतिक्लिष्ट। ३ उक्त।

परिक्लेद (सं० पु०) परि-क्लिद-घञ्। अतिशय क्लेद आर्द्रता, भींगा हुआ।

परिक्लेदिन् (सं० त्रि०) परिक्लेदोऽस्त्यस्येति। परिक्लेदयुक्त।

परिक्लेश (सं० पु०) परि-क्लिश-घञ्। अतिशय क्लेश, अत्यन्त दुःख।

परिक्लेष्ट (सं० त्रि०) परि-क्लिश-तृच्। १ अतिशय श्रान्त। २ कष्टदायक, तकलीफ देनेवाला।

परिक्वणन (सं० पु०) परि-क्वण-कर्त्तरि-ल्युट्। मेघ, बादल।

परिक्षत (सं० त्रि०) परि-क्षण-क्त। १ भ्रष्ट। २ नष्ट।

परिक्षय (सं० पु०) परि-क्षिणोति क्षि-अच्। १ ध्वंस, विनाश। २ पतन।

परिक्षव (सं० पु०) क्षुत, छींक।

परिक्षा (सं० स्त्री०) कर्दम, मृत्तिका, कीचड़।

परिक्षाण (सं० क्ली०) परि-क्षै भावे ल्युट्। परीक्षा, इम्तहान।

परिक्षाम (सं० क्ली०) परि-क्षै-क्त, तत क्षामादेशः परितः क्षामः। अतिकृश, क्षयप्राप्त, अत्यन्त दुबला, शुष्क

परिक्षालन (सं० क्ली०) परि-क्षाल-ल्युट्। १ परिक्षालनीय वस्तु, जल, पानी। २ धौतकरण, धोनेकी क्रिया या भाव।

परिक्षित् (सं० पु०) परि सर्वतो भावेन क्षीयते हन्यते दुरितं येन, परि क्षि क्विप् वा परिक्षीणेषु कुरुषु क्षियति इष्टे इति क्विप्। १ अभिमन्युके पुत्रका नाम। पर्याय—परीक्षित्, परीक्षीत। परिक्षित नामकी निरुक्तिके विषयमें लिखा है, कि कुरुके नाश होने पर यह पुत्र उत्पन्न हुआ था, इसी कारण इसका नाम परिक्षित् हुआ। परीक्षित् देखो। २ कुरुपुत्रविशेष। ३ अविक्षित् पुत्र। ४ पर्याय द्वारा निवासकारी। ५ परिक्षय, क्षीण।

परिक्षिप्त (सं० त्रि०) परितः क्षिप्यते स्म इति क्षिप्-क्त। १ परिखादि द्वारा वेष्टित, खाई आदिसे घेरा हुआ। २ सर्वतो भावसे क्षेपयुक्त।

परिक्षीण (सं० त्रि०) परि-सर्वतोभावे क्षीणः। अतिशय क्षीण, क्षयप्राप्त, अत्यन्त दुबला पतला।

परिक्षेप (सं० पु०) परितः क्षिप्यते विषयवासनाया जीवात्मा येन परि क्षिप करणे घञ्। १ इन्द्रिय। २ अभिस्खलन, चारों ओर घूमना। ३ निक्षेप।

परिक्षेपक (सं० त्रि०) परि-क्षिप ताच्छील्ये वुञ्। परितः स्खलनशील, परिक्रमशील, घूमनेवाला, फेरा लगानेवाला।

परिक्षेपिन् (सं० त्रि०) परि-क्षिप-ताच्छील्ये-घिनुन्। परितः क्षेपणशील, चारों तरफ घूमनेवाला।

परिखना (हिं० क्रि०) १ मार्ग प्रतीक्षा करना, आसरा करना, इंतजार करना। २ परीक्षा करना, इम्तहान करना, पहचानना, जांचना।

परिखा (सं० स्त्री०) परितः खन्यते इति खन-ड। (अन्येष्वपीति। पा ३।२।१०१) राजाधानी आदि वेष्टन खात, राजधानी, दुर्ग आदिको घेरनेवाली खाई, खंदक खाई। इसका पर्याय खेय है। दुर्ग और राजनगर परिखा द्वारा घेरने होते हैं।

इसका परिमाणादि—जो सब स्थान शत्रुसे बचाना हो, उसके चारों ओर एक सौ हाथ चौड़ी और दश हाथ गहरी खाई खोदवानी चाहिए तथा प्रवेशद्वार बहुत ही छोटा होना चाहिए।

परिखात (सं० क्ली०) परितः खातं। १ परिखा, खाई, खंदक। २ परिखननकर्म, खोदनेका काम।

परिखाज (हिं० स्त्री०) गाड़ीके पहियेकी लीक।

परिखीकृत (सं० त्रि०) अपरिखाः परिखाः कृताः अभूततद्भावे च्वि, ततो दीर्घः। जो परिखायुक्त हो, जिसमें पहले खाई न थी पर अभी खाई हो।

परिखेद (सं० पु०) परितः खेदः। १ अत्यन्त खेद बहुत दुःख, नितान्त क्लेश। २ परिश्रम, मेहनत। ३ अवसाद, क्लान्ति।

परिख्यात (सं० त्रि०) परितः सर्वतोभावेन ख्यातः प्रथितः। विख्यात, प्रसिद्ध, मशहूर।

परिग (सं० त्रि०) परि गच्छति गम-ड। चारों तरफ घूमनेवाला, फेरा लगानेवाला।

परिगण (सं० पु० क्ली०) गृह, घर।

परिगणन (सं० क्ली०) परि-गण भावे ल्युट्। १ सर्वतोभावसे गणन, सम्यक् रीतिसे गिनना, भलीभांति गिनना। २ गणना करना, गिनना, शुमार करना। ३ विधि और निषेधशास्त्रका विशेषरूपसे कीर्त्तन।

परिगणना (सं॰ स्त्री॰) परिगणन।

परिगणनीय (सं॰ त्रि॰) परि-गण-अनियर्। परिगणनाके योग्य, संख्या करनेके उपयुक्त, गिनने लायक।

परिगणित (सं॰ त्रि॰) १ सर्वतोभावसे गणनायुक्त, संख्यात, गिना हुआ, जिसकी गिनती हो चुकी हो। २ विधिनिषेधमें विशेषरूपसे कथित।

परिगण्य (सं॰ त्रि॰) परि-गण-यत्। परिगणनाके योग्य, गिनने लायक।

परिगत (सं॰ त्रि॰) परि-गम-क्त। १ प्राप्त, मिला हुआ। २ विस्मृत, जिसे भूल गए हों। ३ ज्ञात, जाना हुआ। ४ चेष्टित। ५ गत, बीता हुआ, गया गुजरा। ६ वेष्टित, घेरा हुआ। ७ मृत, मरा हुआ।

परिगदित (सं॰ त्रि॰) परि-गद-क्त। परिकथित, कहा हुआ।

परिगदितिन् (सं॰ त्रि॰) परिगदितं तदुक्तमनेन इष्टादित्वादिनि। परिगदितकर्त्ता, परिकथनकारी।

परिगर्भिक (सं॰ पु॰) बालरोगभेद, बालकोंको होनेवाला एक प्रकारका रोग भावप्रकाशमें लिखा है—जो बालक गर्भिणी माताका दूध पीता है, उसे प्रायः कास, अग्निमान्द्य, वमि, तन्द्रा, कृशता, अरुचि और भ्रम तथा उदरकी वृद्धि होती है। बालकोंमें ये सब लक्षण देखनेसे उन्हें परिगर्भिक कहते हैं। उक्त रोग होनेसे अग्निप्रदीपक औषधका प्रयोग करना चाहिए और अग्निप्रदीप्त होनेसे ये आप ही आप जाते रहते हैं।

परिगर्वित (सं॰ त्रि॰) बहुत गर्ववाला, भारी घमण्डी।

परिगर्हण (सं॰ क्ली॰) परि-गर्ह-ल्युट्। अत्यन्त गर्हण, अतिशय निन्दा।

परिगह (हिं॰ पु॰) कुटुम्बी, संगी साथी या आश्रित जन।

परिगहन (सं॰ क्ली॰) परि-गह-भावे ल्युट्, क्षुभ्नादित्वात् न णत्वं। अत्यन्त गहन, बहुत अन्धकार।

परिगीति (सं॰ स्त्री॰) छन्दोभेद, एक छन्दका नाम।

परिगुण्ठित (सं॰ त्रि॰) छिपाया हुआ, ढका हुआ।

परिगुण्डित (सं॰ त्रि॰) धूलसे छिपा हुआ, गर्देसे ढका हुआ।

परिगूढ़ (सं॰ त्रि॰) परि-गुह-क्त। अत्यन्त गुप्त, बहुत छिपा हुआ।

परिगृद्ध (सं॰ त्रि॰) अधिक भक्षणशील, बहुत खानेवाला।

परिगृहीत (सं॰ स्त्री॰) परिग्रह-कर्मणि-क्त। १ स्वीकृत, जो ग्रहण किया गया हो, उपात्त। २ मिला हुआ, शामिल।

परिगृहीति (सं॰ त्रि॰) परि-ग्रह-क्तिन् तत इटो दीर्घः। १ परिग्रह, ग्रहण करना। (त्रि॰) परिग्रह-क्यप्। २ ग्रहणयोग्य, लेने लायक।

परिगृह्यवत् (सं॰ त्रि॰) परिगृह्य मतुप् मस्य व। परिगृह्ययुक्त।

परिगृह्या (सं॰ त्रि॰) विवाहिता स्त्री, धर्मपत्नी।

परिग्रह (सं॰ पु॰) परिग्रहणमिति परिग्रह-अप् (ग्रहवृदनिश्चिगमश्च। पा ३।३।५८) १ प्रतिग्रह, दान लेना, ग्रहण करना। २ सैन्यपश्चात्भाग, सेनाका पिछला भाग। ३ पत्नी, भार्या, स्त्री। ४ परिजन, परिवार। ५ आदान, लेना। ६ स्वीकार, अङ्गीकार, आदरपूर्वक कोई वस्तु लेना। ७ मूल, कन्द। ८ शाप। ९ शपथ, कसम। १० राहुग्रस्तस्थित भास्कर। ११ वेतन, तनखाह। १२ हस्त, हाथ। १३ विष्णु। जो विष्णुकी शरण लेते हैं, उन्हें विष्णु सब तरहसे ग्रहण करते हैं। इसीसे इसका नाम परिग्रह हुआ है। १४ अनुग्रह, कृपा, मिहरबानी। १५ जैनशास्त्रोंके अनुसार तीन प्रकारके गतिनिबन्धन कर्म—द्रव्यपरिग्रह, भावपरिग्रह और द्रव्यभावपरिग्रह। १६ कुछ विशिष्ट वस्तुएं संग्रह न करनेका व्रत। १७ साधन।

परिग्रहक (सं॰ त्रि॰) परिग्रहकर्त्ता, परिग्रह करनेवाला।

परिग्रहण (सं॰ क्ली॰) १ सर्वतोभावसे ग्रहण, सब प्रकारसे लेना, पूर्णरूपसे ग्रहण करना। २ वस्त्रपरिधान, कपड़े पहनना।

परिग्रहमय (सं॰ त्रि॰) परिग्रह-स्वरूपे मयट्। १ परिग्रह स्वरूप, स्त्री पुत्रादि। परिग्रहः मतुप, मस्य व। २ परिग्रहयुक्त, स्त्री पुत्रादि सम्मिलित।

परिग्रहवत् (सं॰ त्रि॰) परिग्रहः मतुप् मस्य व। परिग्रहयुक्त, स्त्रीपुत्रादिसमन्वित।

परिग्रहिन् (सं० त्रि०) परिग्रहः विद्यतेऽस्य, परिग्रह-इनि। परिग्रहयुक्त, स्त्री-पुत्रादिके साथ।

परिग्रहीतृ (सं० त्रि०) परि-ग्रह-तृच्। १ दत्तकग्रहण-कारी पिता, वह जो पोष्यपुत्र लेता है। २ ग्रहण-कारी, लेनेवाला।

परिग्राम (सं० पु०) ग्रामके सामनेका भाग, गांवकी ओर।

परिग्राह (सं० पु०) परि-ग्रह-घञ् (परौ यज्ञे। पा ३।३।४७) यज्ञवेदिविशेष, एक विशेष प्रकारकी यज्ञवेदी।

परिग्राह्य (सं० त्रि०) परि-ग्रह-ण्यत्। ग्रहणीय, ग्रहणके योग्य, लेने लायक।

परिघ (सं० पु०) परिहन्यतेऽनेनेति परि हन-अप्, ततो घादेशश्च। (परौ घः। पा ३।३।८४) १ लौहमय लगुड़, लोहांगो, गंड़ासा। पर्याय—परिघातन, परिघातक। भारतवर्षमें पूर्व समय युद्धमें इसी अस्त्रका व्यवहार होता था। धनुर्वेदमें लिखा है, कि यह अस्त्र सुगोल और लम्बाईमें साढ़े तीन हाथका होता था। २ परि-घात, परितोऽनन। ३ ज्योतिषके अन्तर्गत २७ योगोंमें से १८वां योग। कोई शुभ कर्म करनेसे इस योगका आधा छोड़ देना चाहिये। जन्मकालमें यह योग पड़नेसे मनुष्य वंशकुठार, असत्यसाक्षी, क्षमाविहीन, स्वल्प व गेका और शत्रुविजयी होते हैं। ४ अर्गल, अगड़ी। ५ मुद्गर। ६ शूल, वर्छी, भाला। ७ कलस, जलपात्र, घड़ा। ८ कांचघट, कांचका घड़ा। ९ गोपुर, पुर-द्वार, फाटक। १० सद्म, घर। ११ कार्त्तिकानुचर-भेद, कार्त्तिकका एक सेवक। १२ चण्डालविशेष। परिघ इस शब्दके 'र' के स्थान पर 'ल' करनेसे पलिघ ऐसा शब्द बनता है। १३ प्रतिबन्ध, व्याघात, बाधा। १४ मूढ़गर्भविशेष। १५ तीर। १६ पर्वत, पहाड़। १७ वज्र। १८ शेषनाग १९ जल, पानी। २० चन्द्र। २१ सूर्य। २२ स्थल। २३ आनन्द और सुखकी निवारक विद्या। २४ वे बादल जो सूर्यके उदय वा अस्त होनेके समय उसके सामने आ जायं।

परिघट्टन (सं० क्लो०) परि-घट्ट-ल्युट्। सर्वतोभावसे घट्टन, सब प्रकारसे घोटनेकी क्रिया वा भाव।

परिघट्टित (सं० त्रि०) परि-घट्ट क्त। सम्यक् घर्षित।

परिघमूढ़गर्भ (सं० पु०) वह बालक जो प्रसवके समय योनिके द्वार पर आ कर अगड़ीकी तरह अटक जाय।

परिघर्म (सं० त्रि०) परि-घृ-मन्। यज्ञाङ्ग महावीरपात्र पतित फेनादिका क्षरण।

परिघर्म्य (सं० पु०) परिघर्म स्येदं यत्। महावीराङ्ग घर्मसम्बन्धिपात्र, यज्ञमें काम आनेवाला एक विशेष-पात्र।

परिघा (पर्घा)—मुङ्गेर, भागलपुर और सन्थाल परगना वासी कृषिजीवि जातिविशेष। दूसरेका कार्य करके अथवा खेती बारी द्वारा ये लोग अपनी जीविका चलाते हैं।

इनकी वाह्य आकृति और शरीरादिकी गठन देखनेसे ऐसा मालूम पड़ता है, कि ये लोग द्राविड़ अथवा प्राचीन अनार्य जातिके हैं। इनमें प्रवाद है, कि किसी हिन्दू-देवताने आवश्यकतानुसार अपने पसीनेसे एक योद्धाकी सृष्टि की। यही व्यक्ति परिघा जातिका आदि पुरुष है। किसी किसीका कहना है कि परशुरामने जब पृथ्वीको निःक्षत्रिय करनेकी प्रतिज्ञा की थी, तब कितने ही राज-पूतोंने युक्तप्रदेशसे भाग कर इस अञ्चलमें आश्रय ग्रहण किया था। आते समय उन्होंने अपने अपने यज्ञोपवीतको सोननदीके जलमें फेंक कर गुप्तभावसे आत्मरक्षा की थी। तभीसे वे लोग 'पलिया' कहलाने लगे। दिनाज-पुरके पलियागण कोचवंशोद्भव होने पर भी वे लोग अपनी राजपूतवंशकी आख्या देते हैं। इस प्रकार ऐसी कितनी द्राविड़ शाखाएं हैं जो अपनेको राजपूत बतला कर सौभाग्यवान् समझती हैं। मालूम होता है, कि उसी पालियासे इस परिघा जातिकी उत्पत्ति है। फिर किसी किसीका अनुमान है, कि किसी समय भुंइया लोगोंने तद्देशवासी हिन्दुओंकी रीति नीति और आचार व्यवहारका अनुकरण किया था और धीरे धीरे वे ही हिन्दूके मध्य गण्य हो कर परिघा कहलाने लगे।

भागलपुरके परिघाके मध्य दो स्वतन्त्र श्रेणी विभाग हैं, सूपापर्वा और पलियारपर्वा। कुम्हार, मांझी, मराव, मारिक, ओझा, पात्र, राय, राउत और शियार आदि कई विभिन्न पदवियां इनमें प्रचलित देखी जाती हैं।

इन लोगोंमें बालिका और वयस्का कन्याका विवाह

प्रचलित है। बालिकाविवाह हो इनमें विशेष आदरणीय समझा जाता है। कन्या यदि विवाहके पहले ऋतुमती हो जाय, तो समाजमें उसको निन्दा होती है। मांगमें सिन्दूर देना हो विवाहका प्रधान अङ्ग है। यदि स्त्री वन्ध्या अथवा दुश्चरित्रा रहे, तो स्वामी दूसरा विवाह कर सकता है। ऐसी हालतमें स्वामी यद्यपि स्त्रीको छोड़ भी देता है, तो भी स्त्रीको जाति नष्ट नहीं होती, वरं वह दूसरे पुरुषसे विवाह कर संसारी हो सकती है। स्त्रीत्याग करके अन्य पत्नीग्रहणका कोई नियम नहीं है।

इनके नित्यनैमित्तिक कार्यादि विशेष आदरणीय नहीं हैं। इस विषयमें हिन्दुओंके साथ किसी किसी अंशमें विसदृश भाव देखा जाता है। निम्नश्रेणीके मैथिल-ब्राह्मण इनकी याजकता करते हैं। शवदेहको अन्त्येष्टिक्रिया हिन्दू-सी होती है। तेरहवें दिन मृतका श्राद्धकार्य सम्पन्न होता है। यदि कोई व्यक्ति असीमसाहसी कार्यसे आत्मजीवन विसर्जन कर दे, तो वे लोग एक गोलाकार शुष्क मृत्तिकास्तम्भ बना कर मृत व्यक्तिके नाम पर (उपदेवता जान कर) उक्त स्तम्भकी पूजा करते हैं और छागबलि तथा मिष्टान्न उपहार देते हैं।

परिघात (सं० पु०) परिहन्यते अनेन परि-हन्-घञ्, ततः उपधाया वृद्धिः नस्य तः। १ परिघ अस्त्र लोहांगी, गंड़ास। २ हनन, हत्या, मार डालना।

परिघातन (सं० क्ली०) १ परिघास्त्र, वह अस्त्र जिससे किसीकी हत्या की जा सकती हो। २ हनन, हत्या। ३ प्रतिबन्ध, व्याघात, बाधा। ४ आघात, चोट।

परिघाती (सं० त्रि०) परि-हन-णिनि। १ हननकारी, हत्याकारी, मार डालनेवाला। २ अवज्ञाकारी।

परिघृष्टिक (सं० त्रि०) परितः घृष्टं घाद्यत्वेनास्त्यस्य ठन्। वानप्रस्थभेद।

परिघोष (सं० पु०) परितो घोषो यस्मिन्। १ मेघशब्द, बादलका गरजना। २ शब्द, आवाज। ३ अवाच्य।

परिचक्र (सं० पु०) द्वाविंशति अवदानककी शाखाभेद, बाईस अवदानककी एक शाखाका नाम।

परिचक्रा (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नगरीका नाम।

परिचक्षा (सं० स्त्री०) परि-चक्ष-भावे अ, सार्वधातुकत्वात् न ख्याञादेशः। १ निन्दा। परि-वर्जने-अ २ वर्जन, मनाही।

परिचक्ष्य (सं० त्रि०) परि-वर्जने-चक्ष-ण्यत्, वर्जनार्थत्वात् न ख्याञादेशः। वर्जनीय, छोड़ने लायक।

परिचतुर्दश (सं० त्रि०) परिहीनश्चतुर्दश यतः, ततः ड समासान्तः। एकाधिक चतुर्दशरूप, पञ्चदश संख्यान्वित, पन्द्रह।

परिचना (हिं० क्रि०) परचना देखो।

परिचपल (सं० त्रि०) परि सर्वतोभावेन चपलः। अति चपल, जो किसी समय स्थिर न रहे, जो हर समय हिलता डुलता या घूमता फिरता रहे।

परिचय (सं० पु०) परि-समन्तात् चयनं बोधो ज्ञानमित्यर्थः परि-चि-अप्। १ विशेषरूपसे ज्ञान, अभिज्ञता, विशेष जानकारी। पर्याय—संस्तव, प्रणय। २ नादकी एक अवस्थाका नाम। ३ अभ्यास, मश्क। ४ किसी व्यक्तिके नाम-धाम या गुणकर्म आदिके सम्बन्धकी जानकारी। ५ जान पहचान। ६ प्रमाण, लक्षण।

परिचयवत् (सं० त्रि०) परिचयः विद्यतेऽस्य, परिचय-मतुप्, मस्य व। परिचययुक्त।

परिचर (सं० पु०) परितश्चरतीति परि-चर पचाद्यच्। १ युद्धके समय शत्रुके प्रहारसे रथरक्षक, वह सैनिक जो रथ पर शत्रुके प्रहारसे उसकी रक्षा करनेके लिये बैठाया जाता था। २ प्रजाकामन्त्र व्यवस्थापनकारी। ३ सेनाविषयमें राजाका दण्डनायक, सेनापति। पर्याय—परिधिस्थ, सहाय। ४ परिचर्याकारक, अनुचर, भृत्य, खिदमतगार, टहलुवा। ५ रोगीकी सेवा करनेवाला, शुश्रूषाकारी।

जो विशेषरूपसे उपचारज्ञ, अतिशय कार्यदक्ष तथा शौचसम्पन्न हों और जिनका प्रभुके प्रति विशेष अनुराग हो, वे ही परिचरके उपयुक्त हैं। सुश्रुतमें लिखा है, कि स्निग्ध, आनन्दित, बलवान्, रोगीकी रक्षा करनेमें सर्वदा नियुक्त, वैद्यका आज्ञाकारी और अश्रान्त, ये सब गुण रहनेसे परिचर कहाता है।

परिचरकर्म (सं० क्ली०) सेवाका कार्म।

परिचरजा (हिं० स्त्री०) परिचर्या देखो।

परिचरण (सं० पु०) परि-चर-ल्युट् । परिचर्या, सेवा, खिदमत, टहल ।

परिचरणकर्म (सं० क्लो०) परिचरणं सेवैव कर्म । परिचर्या सेवा, खिदमत । वैदिक पर्याय—इरज्यति, विधेम, सपर्यति, नमस्यति, दुरस्यति, ऋध्नोति, ऋणद्धि ऋच्छति, सपति और विवासति ।

परिचरणीय (सं० त्रि०) परि-चर-अनीयर् । परिचर्याके योग्य, सेवाके लायक ।

परिचरत (हिं० स्त्रो०) प्रलय, कयामत ।

परिचरितव्य (सं० त्रि०) परि-चर-तव्य । परिचर्याके योग्य, सेवाके लायक ।

परिचरिता (सं० त्रि०) परि-चर-तृच् । परिचर्याकारक, सेवक, शुश्रूषाकारी, सेवा करनेवाला ।

परिचर्जा (हिं० स्त्रो०) परिचर्या देखो ।

परिचर्त्तन (सं० क्लो०) अश्वरज्जु भेद ।

परिचर्मण्य (सं० क्लो०) चर्मखण्ड ।

परिचर्या (सं० स्त्रो०) परिचर्यते परिचरणमित्यर्थः परि-चर (परिचर्यापरिसर्येति । पा ३।३।१०१) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या श, यक् च इति निपात्यते । १ सेवा, शुश्रूषा, खिदमत । पर्याय—वरिवस्या, शुश्रूषा, उपासन, परिसर्या, उपासना, उपास्ति और शुश्रूषणा । पिता, माता, गुरु, आत्मा तथा अग्नि प्रभृतिकी यत्नपूर्वक परिचर्या करनी चाहिए । २ रोगीकी शुश्रूषा ।

परिचर्यावत् (सं० त्रि०) परिचर्या विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व । जिसकी परिचर्या की गई हो । २ माननीय ।

परिचायक (सं० पु०) १ परिचय या जान पहचान करानेवाला । २ सूचित करनेवाला, जतानेवाला ।

परिचाय्य (सं० पु०) परिचीयते इति (अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः । पा ३।१।१३१) इत्यनेन साधु । १ यज्ञाग्नि, यज्ञकी अग्नि । पर्याय—समूह्य, उपचाय्य । २ यज्ञाग्निकुण्ड, यज्ञका अग्निकुण्ड । सिद्धान्तकौमुदीमें लिखा है, कि परिचाय्य शब्दका अर्थ अग्नि है, किन्तु अग्नि शब्दसे वह्नि वा आग नहीं वरन् अग्निधारणार्थ स्थलविशेष समझना चाहिए । (त्रि०) ३ सेव्य, शुश्रूषणाई ।

परिचार (सं० पु०) परि-चर भावे घञ् । १ सेवा, खिदमत, टहल । २ टहलने या घूमने फिरनेके लिए निर्दिष्ट स्थान ।

परिचारक (सं० त्रि०) परिचरतीति परि-चर ण्वुल् । १ सेवक, भृत्य, नौकर, टहलू । पर्याय—भृत्य, दासेर, दासेय, दास, गोप्यक, चेटक, नियोज्य, किङ्कर, प्रैष्य, भुजिष्य, डिङ्गर, चेट, गोप्य, पराचित, परिस्कन्द, परिकर्मी । २ रोगादिके समय जो सेवा शुश्रूषा करता है (Nurse) । परिचारक रोगमुक्तिका एक अङ्ग है । उत्तम परिचारकके गुणसे दुरूह रोग भी आरोग्य होता है । आयुर्वेदशास्त्रमें शुश्रूषाभिज्ञ, कार्यकुशल, प्रभुभक्त और शुचिव्यक्ति श्रेष्ठ परिचारक कहे गए हैं । ३ देवमन्दिर आदिका कार्य अथवा प्रबन्धकर्त्ता ।

परिचारण (सं० क्लो) परि-चर-णिच्-ल्युट् । १ सेवा, खिदमत, टहल । २ सहवास करना, संग करना वा रहना । ३ सेवाके लिए अपेक्षा करना ।

परिचारना (हिं० क्रि०) सेवा करना, खिदमत करना ।

परिचारिक (सं० पु०) परिचारे प्रसृतः ठन् । दास, सेवक, खिदमतगार ।

परिचारिका (सं० स्त्री०) दासी, सेविका, मजदूरनी ।

परिचारिन् (सं० त्रि०) परिचारः अस्त्यर्थे इनि । १ इतस्ततः भ्रमणकारी, इधर उधर घूमनेवाला । २ सेवक, टहलू, चाकर ।

परिचार्य (सं० त्रि०) परिचर्यतेऽसौ इति परि-चर कर्मणि ण्यत् । सेव्य, सेवा करने लायक, जिसकी सेवा करना उचित हो ।

परिचालक (सं० पु०) १ परिचालनकारी, नेता, चलानेवाला, चलनेके लिए प्रेरित करनेवाला । २ सञ्चालक, किसी कामको जारी रखने तथा आगे बढ़ानेवाला । ३ गति देनेवाला, हिलानेवाला ।

परिचालकता (सं० स्त्री०) परिचालन करनेकी क्रिया, भाव वा शक्ति (Conductivity) । जिस गुणके रहनेसे सभी जड़ वस्तुएं एक परमाणुसे दूसरे परमाणुमें ताप सञ्चालन करती हों, उन्हें प्रबल परिचालक (Good Conductors) और इसके विपरीत गुणसम्पन्न होनेसे दुर्बल परिचालक (Bad Conductors) कहते हैं ।

परिचालन (सं० पु०) १ कार्यका निर्वाह करना, कार्य-

क्रम जारी रखना। २ चलाना, चलनेके लिए प्रेरित करना। ३ गति देना, हिलाना, हरकत देना।

परिचालित (सं० त्रि०) १ निर्वाह किया हुआ, बराबर जारी रखा हुआ। २ चलाया हुआ, चलनेमें लगाया हुआ। ३ जिसे गति दी गई हो, हिलाया हुआ।

परिचित् (सं० त्रि०) परितश्चीयते चि कर्मणि क्विप्। १ चारों ओर स्थापित। (त्रि०) २ परिचयकर्त्ता, जान पहचान करनेवाला।

परिचित (सं० त्रि०) परि-चि-कर्मणि क्त। १ परिचय-विशिष्ट, ज्ञात, अभ्यस्त, जिसका परिचय हो गया हो, जाना-बूझा, मालूम। २ अभिज्ञ, वह जो किसीको जान चुका हो, वाकिफ़। ३ जान पहचान करनेवाला, मिलने जुलनेवाला, मुलाकाती। ४ जैनदर्शनके अनुसार वह स्वर्गीय आत्मा जो दो बार किसी चक्रमें आ चुकी हो। ५ सञ्चित, इकट्ठा किया हुआ, ढेर लगा हुआ।

परिचिति (सं० स्त्री०) ज्ञाप्ति, परिचय, अभिज्ञता, जानकारी।

परिचिन्तक (सं० त्रि०) चिन्ताशील, अनुध्यानकारी।

परिचुम्बन (सं० क्ली०) सप्रेम चुम्बन, भरपूर प्रेम या स्नेहसे चुम्बन करना।

परिचेय (सं० त्रि०) परि-चि-कर्मणि य। १ परिचययोग्य, जान पहचान करने लायक, साहब सलामत या राही रस्म रखने काबिल। २ अभ्यसनीय। ३ सञ्चय करने या ढेर लगाने लायक।

परिचो (हिं० स्त्री०) परिचय, ज्ञान।

परिच्छत् (परिक्षित्)—एक कोचराज। बङ्गालके उत्तरांश और कोचविहारके पार्श्ववर्ती कोचहाजो प्रदेशमें ये राज्य करते थे। वर्त्तमान ग्वालपाड़ा जिला और निम्न आसाम तथा ब्रह्मपुत्रके वामकूल पर कराईवाड़ी परगनेके हातशिला (हस्तिशैल)से ग्वालपाड़ामें उक्त नदीके झुकाव तक उक्त राज्य फैला हुआ था। इसकी पूर्वसीमा कामरूप थी। जिस समय कोचविहारके सिंहासन पर राजा लक्ष्मीनारायण वर्त्तमान थे, उसी समय अर्थात् अकबर शाहके पुत्र जहांगीर बादशाहके राजत्वकालसे पहले ये इस प्रदेशमें शासन करते थे। सम्राट् जहांगीरके राजत्वके ८वें वर्ष (१६१२ ई०) में इन्होंने सोसङ्ग (१) परगनेके जमींदार रघुनाथको सपरिवार बन्दी कर रखा। इस पर उक्त जमींदारने बङ्गालके शासनकर्त्ता शेख अलाउद्दीन फतेपुरी इस्लाम खाँके निकट परिच्छत्के नाम पर नालिश की। शेख अलाउद्दीनने जब यह जाना कि सचमुचमें परिच्छत्ने रघुनाथको सपरिवार कारारुद्ध किया है, तब उन्होंने उन्हें रघुनाथके परिवार-वर्गको छोड़ देनेके लिये कहला भेजा। लेकिन परिच्छत्ने उनकी बात अनसुनी कर दी। अलाउद्दीन कोचविहारपति लक्ष्मीनारायणकी तरह उन्हें विनयावनत न देख आगबबूला हो उठे और उनका राज्य छीन लेनेके लिए सेना तैयार करने लगे।

सेनापति मुकरम खाँ युद्धार्थ छह हजार अश्वारोही बारह हजार पदाति और पांच सौ छोटे जहाज ले कर कोचहाजोकी ओर अग्रसर हुए। सम्मुखवाहिनी सेनादल ले कर कमाल खाँने हातशिलामें छावनी डाली और धुबड़ीदुर्गकी ओर अग्रसर हो कर परिच्छत् पर आक्रमण किया। उक्त दुर्गमें परिच्छत् पांच सौ अश्वारोही और दश हजार पदातिके साथ अवरुद्ध हुए। एक मास तक अवरोध तथा उपर्युपरि तोप-वृष्टिके कारण बहुत-सी सेना मर गई। बाद परिच्छत्ने अपने निवासस्थान खेलासे सेनापतिके निकट सन्धिका प्रस्ताव कर भेजा और रघुनाथके परिवारवर्गको छोड़ देनेमें स्वीकृत हुए। किन्तु सेनापतिने दुर्ग पर अधिकार कर लिया और सन्धिका संवाद बङ्गाल-नवाबके पास भेजा। बङ्गाधिप इस पर राजी न हुए बरन् उन्होंने परिच्छत्का राज्य छीन लेने तथा उन्हें कैद कर लानेका आदेश दिया। अतः फिर लड़ाई छिड़ गई। परिच्छत्ने अपनी मर्यादारक्षाके लिये वर्षाके बीतने पर ४८० अश्वारोही, १० हजार सैन्य और २० हाथी ले कर धुबड़ी पर आक्रमण किया। इस बार मुसलमान सैनिकोंके पांव उखड़ गए और वे खेलाकी ओर चले। नवाबकी सेनाने धुबड़ीको छोड़ कर गदाधरनदीमें परिच्छत्की सेना पर चढ़ाई की। वहां एक क्षुद्र नौयुद्ध हुआ। परिच्छत्ने

(१) यह मैमनसिंहके अन्तर्गत है और ब्रह्मपुत्रके पूर्वांशमें गारो और कराईवाड़ी पर्वतके मध्य अवस्थित है।

जलयुद्धमें मुगलसेनाका सामना न कर खेलामें आश्रय लिया। किन्तु यहां आ कर भी वे निश्चिन्त न रह सके। उन्होंने सुना, कि उनके पितामह-भ्राता कोचविहार-राज लक्ष्मीनारायण उनके विरुद्ध मुगलसैन्यके साथ योगदान कर उन पर चढ़ाई करनेको उद्यत हुए हैं। इस पर वे बनासनदीके तीरवर्त्ती बुद्धनगरमें भाग गये। खेला पर आक्रमण कर मुगलोंने उनका पीछा किया। परिच्छत्‌ने अब अपनी रक्षाका कोई उपाय न देख आत्मसमर्पण किया। मुकरम खाँ धनरत्न और परिच्छत्‌को बन्दी कर ढाकाकी ओर अलाउद्दीन इस्लाम खाँके पास चल दिये। उसी समय अलाउद्दीनको मृत्यु हो गई। अब अलाउद्दीनके पुत्र होसंग और मुकरम खाँ दिल्लीश्वर जहांगीरके पास यह संवाद देनेको बाध्य हुए। जहांगीरने परिच्छत्‌को दिल्ली भेज देनेकी आज्ञा दी। परिच्छत् भी उक्त आदेशानुसार विचारार्थ सम्राट्‌के समीप भेज दिए गये।

राजा परिच्छत्‌की ऐसी दुरवस्था देख उनके भाई बलदेवने आसामराज स्वर्गदेवकी शरण ली और पुत्र चन्द्रनारायण ब्रह्मपुत्रके दक्षिण सोलमारी परगनेमें रहने लगे। इन दोनोंने भी अपनी पूर्व सम्पत्तिका उद्धार करनेके लिए मुगल-सैन्यके साथ युद्ध किया था। किन्तु उपर्युपरि कई एक युद्धोंके बाद उन्होंने भी जीवन विसर्जन किया।

परिच्छत्‌गढ़—युक्तप्रदेशके मीरट जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह मीरट नगरसे ७ कोस दूरी पर अवस्थित है। प्रवाद है, कि यहां जो प्राचीन किलेके चारों ओर नगर बसा हुआ है, अर्जुनके पौत्र परिचित्‌ने वह नगर और दुर्ग निर्माण किया था। विगत शताब्दीमें गुर्ज्जर जातिके अभ्युदयके समय राजा नयनसिंह द्वारा उस दुर्गका जीर्णसंस्कार हुआ था। १८५७ ई०में उक्त किलेका कुछ अंश तोड़ दिया गया है और अभी उसमें पुलिस रहती है। गङ्गासे ले कर अनुपशहर तक जो खाई गई है, वह इसी नगरके समीप हो कर बहती है।

परिच्छद (सं० पु०) परिच्छाद्यतेऽनेनेति परि-च्छद्-णिच ततो घ (पुंसि संज्ञायां। पा ३।३।११८) ततो उपधाह्रस्वः। १ परिवार, परिजन, कुटुम्ब। २ हस्ती, अश्व, वस्त्र, कम्बलादि उपकरण, वेश, पोशाक, पहनावा। ३ आच्छादन, कपड़ा जो किसी वस्तुको ढक सके या छिपा सके, ढकनेवाली वस्तु, पट। ४ असबाब, सामान। ५ अनुचर, राजा आदिके सब समय साथ रहनेवाले नौकर। ६ राजचिह्न।

परिच्छन्द (सं० पु०) परिच्छन्दतेऽनेन परि-छदि संवरणे घञ्। परिच्छद, पोशाक, पहनावा।

परिच्छन्न (सं० त्रि०) परिच्छदः कर्त्तरि, कर्म्मणि वा क्त। १ परिच्छदविशिष्ट, वस्त्रयुक्त, जो कपड़े पहने हों। २ परिष्कृत, साफ किया हुआ। ३ आच्छादित, छिपा हुआ, ढका हुआ। ४ सज्जित, सजाया हुआ। ५ भूषित।

परिच्छित्ति (सं० स्त्री०) परि-छिद भावे क्तिन्। १ अवधारण, निश्चय, ज्ञान बोध। २ परिच्छेद, सीमा, इयत्ता, हद। ३ सीमा द्वारा दो वस्तुओंको एक दूसरासे बिलकुल जुदा कर देना, विभाग, बांट।

परिच्छेद (सं० पु०) परि-छिद् भावे करणादौ च घञ्। १ विभाजन, काट कर विभक्त करनेका भाव, खण्ड या टुकड़े करना। २ ग्रन्थविच्छेद, ग्रन्थसन्धि, ग्रन्थ या पुस्तकका ऐसा विभाग या खण्ड जिसमें प्रधान विषयके अङ्गभूत पर स्वतन्त्र विषयका वर्णन या विवेचन होता है, अध्याय, प्रकरण।

ग्रन्थके विषयानुसार उसके विभागोंके नाम भी भिन्न भिन्न होते हैं। काव्यमें प्रत्येक विभागको सर्ग, कोषमें वर्ग, अलङ्कारमें परिच्छेद तथा उच्छ्वास, कथामें उद्घात, पुराण और संहितादिमें अध्याय, नाटकमें अङ्क, तन्त्रमें पटल, ब्राह्मणमें काण्ड, संगीतमें प्रकरण, इतिहासमें पर्व और भाष्यमें आह्निक कहते हैं। इसके अतिरिक्त पाद, तरङ्ग, स्तवक, प्रपाठक, स्कन्ध, मञ्जरी, लहरी, शाखा प्रभृति भी परिच्छेदके स्थानापन्न हुआ करते हैं। परिच्छेदका नाम विषयके अनुसार नहीं, किन्तु संख्याके अनुसार होता है। ३ सीमा, अवधि, इयत्ता, हद। ४ अंश, भाग। ५ इयत्तारूपसे अवधारण, दो वस्तुओंको स्पष्ट रूपसे अलग अलग कर देना, परिभाषा द्वारा दो वस्तुओं या भावोंका अन्तर स्पष्ट कर देना। ६ निर्णय, निश्चय, फैसला।

परिच्छेदक (सं० क्ली०) १ सीमा, इयत्ता, हद। २ परिमाण, मिकतो, नाप या तौल। (त्रि०) ३ विच्छेद,

सीमा या इयत्तानिर्धारित करनेवाला, हद मुकर्रर करनेवाला। ४ पृथक् करनेवाला, विलगानेवाला।

परिच्छेदकर (सं० पु०) समाधिभेद, एक प्रकारकी समाधि।

परिच्छेद्य (सं० त्रि०) परि-छिद-कर्मणि-ण्यत्। १ परिमेय, गिनने, नापने या तोलने योग्य। २ अवधार्य, निश्चय करने योग्य। ३ विभाज्य, बांटने योग्य।

परिच्युत (सं० त्रि०) १ भ्रष्ट, स्खलित, पतित। २ जाति या पंक्तिसे बहिष्कृत, बिरादरीसे निकाला हुआ।

परिच्युति (सं० स्त्री०) स्खलन, भ्रंश, पतन, गिरना।

परिछन (हिं० पु०) परछन देखो।

परिछा—मन्दिरादिके परिचारक पुरोहित। ओड़िसामें जगन्नाथदेवके मन्दिरके पुरोहितोंमें प्रधान व्यक्ति इसी नामसे पुकारे जाते हैं।

परिछाहीं (हिं० स्त्री०) परछाईं देखो।

परिछिन्न (हिं० वि०) परिच्छिन्न देखो।

परिजंक (हिं० पु०) पर्यङ्क देखो।

परिजटन (हिं० पु०) पर्यटन देखो।

परिजन (सं० पु०) परिगतो जनः। १ परिवार, आश्रित या पोष्यवर्ग। २ सदा साथ रहनेवाला सेवक, अनुचरवर्ग।

परिजनता (सं० स्त्री०) परि-जन भावे तल ततः टाप्। १ पराधीनता, अधीनता। २ परिजन होनेका भाव।

परिजन्मन् (सं० पु०) परिजायते इति परि-जन-मन् निपातनात् साधु। १ चन्द्र। २ अग्नि। पर्यं जनोति अज्ञः परिपूर्वस्य मन्, अकारलोपः, ततः निपात्यते। ३ परिगन्ता।

परिजपित (सं० त्रि०) अनुच्चस्वरसे आराधना करना, धीरे-धीरे मन्त्रोच्चारित।

परिजप्त (सं० त्रि०) मुग्ध, मोहित।

परिजय्य (सं० त्रि०) जेतुं शक्य जय्य, परितो जय्य। जो चारों ओर जय करनेमें समर्थ हो, सब ओर जीत सकनेवाला।

परिजल्पित (सं० क्ली०) परिजल्पि भावे क्त। काव्यभेद, दयाक, चित्रजल्पका दूसरा भेद। चित्रजल्प देखो।

परिज्मा (सं० स्त्री०) उत्पत्तिस्थान, आदिजन्मभूमि।

परिजाड्य (सं० त्रि०) मूर्खता, जड़ता।

परिजात (सं० त्रि०) उत्पन्न, जन्मा हुआ।

परिजोङ्—भूटान सीमान्तमें हिमालय शिखर पर अवस्थित एक गिरिपथ। यह समुद्रपृष्ठसे प्रायः सात हजार फुट ऊंचे पर अवस्थित है।

परिज्ञप्ति (सं० स्त्री०) १ कथोपकथन, बातचीत। २ प्रत्यभिज्ञान, पहचान।

परिज्ञा (सं० स्त्री०) १ सम्यक् ज्ञान। २ सूक्ष्मज्ञान। ३ निश्चयात्मक ज्ञान, संशयरहित ज्ञान।

परिज्ञात (सं० त्रि०) १ अवधारित, जाना हुआ। २ विशेष रूपसे जाना हुआ।

परिज्ञातृ (सं० त्रि०) १ जो सब विषयोंके जानकार हों। २ परिदर्शक। ३ ज्ञानी, बुद्धिमान्।

परिज्ञान (सं० क्ली०) परि-ज्ञा-ल्युट्। १ सूक्ष्म ज्ञान, भेद अथवा अन्तरका ज्ञान। २ सम्यक् ज्ञान, पूर्ण ज्ञान, किसी वस्तुका भलीभांति ज्ञान।

परिज्ञेय (सं० त्रि०) ज्ञातव्य, जानने योग्य।

परिज्जलन् (सं० त्रि०) १ चारों ओर व्याप्त भूमि, जो जमीन चारों ओर फैली हुई हो। २ इतस्ततः गमनकारी, इधर उधर जानेवाला।

परिज्जमा (सं० पु०) १ चन्द्रमा। २ चारों ओर प्रसर्पित अग्नि।

परिज्य (सं० त्रि०) परि-ज्-क्वि। चारों ओर गमन।

परिज्वन् (सं० पु०) परि-जु-कनिन् (श्वन्नु क्षन् पूषन्निति। उण. १।१५८) १ इन्द्र। २ अग्नि। ३ सेवक। ४ यज्ञ करनेवाला। ५ इन्द्र।

परिडीन (सं० पु०) किसी पक्षीकी वृत्ताकार गतिमें उड़ान, किसी पक्षीका चक्कर काटते हुए उड़ना।

परिडीनक (सं० क्ली०) परि डी-क्त-ततः स्वार्थे कन्। परिडीन देखो।

परिणत (सं० त्रि०) परिणमति स्म परि-णम क्त। १ पक्व, पका हुआ, पक्का। २ रसादिमें परिवर्त्तित, पचा हुआ। ३ अति नम्र या नत, बिलकुल या बहुत झुका हुआ। ४ प्रौढ़, पुष्ट, बढ़ा हुआ। ५ अवस्थान्तरित, रूपान्तरित, बदला हुआ।

परिणतप्रत्यय (सं० त्रि०) जिस कार्यका फल परिपक्व हुआ हो।

परिणति (सं॰ स्त्री॰) परि-नम-क्तिन्। १ अवनति, झुकाव, नीचेकी ओर झुकना। २ अवस्थान्तरप्राप्ति, विकृति, बदलना। ३ अवसान, अन्त। ४ परिपाक, पकना या पचना। ५ प्रौढ़ावस्था, प्रौढ़ता, पुष्टि, पुख्तगी। ६ वार्द्धक्य, वृद्धता, बुढ़ाई।

परिणद्ध (सं॰ त्रि॰) परि-नह-क्त। १ बद्ध, बाँधा हुआ। २ परिवृत्त, लपेटा हुआ, मढ़ा हुआ। ३ विस्तीर्ण, चौड़ा, विशाल। ४ प्रवृद्ध, खूब बढ़ा हुआ।

परिणमन (सं॰ क्ली॰) १ रूपान्तरप्राप्ति। २ उत्तरावस्था।

परिणमयितृ (सं॰ त्रि॰) १ नमनकारयिता। २ परिपाचयिता।

परिणय (सं॰ पु॰) परिणयनं परि-नी-अच्। विवाह, दारपरिग्रह, व्याह, शादी।

परिणयन (सं॰ पु॰) दारपरिग्रह, विवाह करनेकी क्रिया, व्याहना।

परिणयसम्बन्धजात (सं॰ पु॰) धर्मपत्नीका गर्भजात, वह जो धर्मपत्नीके गर्भसे उत्पन्न हुआ हो।

परिणाम (सं॰ पु॰) परिणम-घञ्। १ विकार, प्रकृतिका अन्यथा भाव। २ प्रकृतिका ध्वंसजन्य विकार। ३ चरम, शेष। ४ अर्थालङ्कारभेद। इसका लक्षण—

"विषयात्मतयारोप्ये प्रकृतार्थोपयोगिनि।
परिणामो भवेत्तुल्यातुल्याधिकरणो द्विधा॥"
(साहित्यद॰ १०।६७८)

आरोप्यमान वस्तु जब आरोप विषयसे अभिन्नरूपमें अथ प्रस्तुत कार्यकी उपयोगी होती है, तब परिणाम अलङ्कार होता है। जहां प्रकृतार्थके उपयोगि विषयमें विषयीका आरोप होता है वहां परिणाम अलङ्कार होता है। यह परिणाम दो प्रकारका है, तुल्याधिकरण और व्यधिकरण। इसका तात्पर्य यह कि जहां एक वर्णनीय विषयमें अन्य एक वस्तुका आरोप किया जाता है और वह आरोप्यमान वस्तु अभिन्नरूपसे प्रकृत विषयकी उपयोगी होती है, वहां यह अलङ्कार हुआ करता है।

उदाहरण—

"स्मितेनोपायनं दूरादागतस्य कृतं मम।
स्तनोपपीडमाश्लेषः कृतो द्यूतेपणस्तया॥" (साहित्यद॰)

नायक नायिकासे कहता है, कि मैं दूरसे आ रहा हूं और तुमने हास्य द्वारा इसका उपायन (उपढौकन) किया है। यहां पर नायक नायिकाका समागम वर्णनीय विषय है, नायकको नायिकाका हास्य-उपढौकन देना प्रकृत वर्णनीय विषयका उपयोगी हुआ है और वह उपायनरूपसे आरोपित है, इसीसे यहां यह अलङ्कार हुआ।

"वनेचराणां वनितासखानां दरीगृहोत्सङ्गनिषक्तभासः।
भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः॥"
(साहित्यद॰)

रात्रिकालमें दरीगृहनिर्गत किरणयुक्त ओषधिलताएं वनितासह वनचरोंको सुरतक्रीड़ामें तैलहीन प्रदीपका कार्य करती हैं, यहां पर सुरतक्रीड़ा वर्णनीय विषय है। इसमें प्रदीपकी आवश्यकता है; किन्तु प्रदीपके नहीं रहनेसे किरणयुक्त ओषधिलताएं इसका कार्य करती हैं। अतएव प्रदीपके बदले आरोपित वस्तु प्रकृतविषयकी उपयोगी हुई है, इस कारण परिणाम-अलङ्कार हुआ।

प्रकृतविषयमें किसी एक वस्तुका आरोप होनेसे रूपक अलङ्कार होता है। परिणामकी जगह भी रूपक अलङ्कार हो सकता है, इस प्रकार आशङ्का करते हुए आलङ्कारिकोंने इसका निराकरण किया है। परिणाम अलङ्कारमें जो आरोप होगा वह वर्णनीय विषयका सम्पूर्ण उपयोगी होगा, किन्तु रूपकमें वह नहीं होता। आरोपमात्र ही रूपकालङ्कारका विषय है और जहां आरोप अभिन्नरूपसे प्रकृतार्थका उपयोगी होगा, वहीं परिणाम अलङ्कार हुआ करता है। परिणाम और रूपकमें इस प्रकार प्रभेद जानना होगा।

५ यह परिदृश्यमान जगत् प्रकृतिका परिणाम है। सांख्यदर्शनमें इस परिणामका विषय विस्तृतरूपसे लिखा है, यहां पर उसका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

प्रकृति परिणामशीला है। एक चित्‌शक्तिके सिवा और सभी परिणामी हैं। प्रकृति क्षणमात्र भी परिणत हुए बिना नहीं रह सकती। सभी समय प्रकृतिका परिणाम हुआ करता है। जब जगत् नहीं था, प्रकृतिकी जो अवस्था महाप्रलय, अव्यक्त और प्रधान संज्ञा कहलाती

थी उस अवस्थामें भी प्रकृतिके परिणामका विराम न था। परिणामवादी कपिलका कहना है, कि परिणाम दो प्रकारका है, सदृशपरिणाम और विसदृश परिणाम। परिणाम, परिवर्त्तन, अवस्थान्तर, स्वरूपप्रच्युति इन सब शब्दोंका एक ही अर्थमें प्रयोग किया जाता है।

सांख्य और वेदान्तदर्शनमें परिणाम और विवर्त्त ले कर ही विवाद चला आ रहा है। वेदान्तवादी परिणामको स्वीकार नहीं करते। वेदान्तसारमें परिणाम और विवर्त्तका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

"सतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विकार इत्युदाहृतः।
अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्त्त इत्युदाहृतः॥" (वेदांतसार)

स्वरूपकी अन्यथा हो कर जो कारण कार्य उत्पन्न करता है, उसका नाम विकारी वा परिणामी कारण है। जैसे, दुग्ध दधिके प्रति परिणाम-कारण है। अर्थात् दुग्धका स्वरूप जो दुग्धत्व है, वह विनष्ट होनेसे ही दधि होता है। दुग्ध दधिके आकारमें परिणत होता है और स्वरूपका प्रकारान्तर न हो कर जो कारण कार्य उत्पन्न करता है, उसका नाम विवर्त्त है। जैसे, रज्जु सर्पके प्रति विवर्त्त कारण है। यहां पर वस्तुका विकार नहीं होता, वस्तुस्वरूप ही रहता है; पर केवल रज्जुमें सर्पका भ्रम हुआ करता है। महामति शङ्कराचार्यने वेदान्तदर्शनकी टीकामें इस परिणामवादका खण्डन किया है। इस विषय पर पीछे विचार किया जायगा।

पहले सदृश और विसदृश दो प्रकारके परिणामोंका उल्लेख हो चुका है, महाप्रलयकालमें जो परिणाम होता है, वह परिणाम सदृश परिणाम है। जब सत्त्व सत्त्वरूपमें, रजः रजोरूपमें, तमः तमोरूपमें परिणत होता है, तब उसीको सदृशपरिणाम कहते हैं। जब विसदृश परिणाम आरब्ध होता है, तभी जगत्‌रचनाका आरम्भ है। जगत्-अवस्था आनेसे प्रकृति नूतन नूतन विसदृश परिणाम प्रसव करने लगती है। विसदृश परिणामका विवरण है, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि गुणोंकी उत्पत्ति और उसीके बदले या परस्परानुप्रवेशमें विभिन्न वस्तुका जन्म। ये दो प्रकारके परिणाम सर्वकालके निमित्त नियमित है अर्थात् अतिदूर अतीतकालसे अनन्त भविष्यत्‌कालके निमित्त नियमित हैं। स्वाभाविक वा सहज जान कर जिसे अपरिणामी समझता हूं, वह भी प्रकृत अपरिणामी नहीं है। चन्द्र, सूर्य, जल और वायु इनमें कोई भी अपरिणामी नहीं है। लेकिन इन सब पदार्थोंका परिणाम अत्यन्त मृदु और सूक्ष्म है। वस्तुका तीव्र परिणाम शीघ्र अनुभूत होता है। चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी, महाजल और महावायु आदि मृदुपरिणाममें आवद्ध रह कर उनकी जीर्णता अनुभवगोचरमें नहीं आनेसे भी युक्तिगोचरमें आती हैं। मृदु परिणामकी चरमसीमा ही सदृश परिणाम जाननेका दृष्टान्त है। तीव्रपरिणामकी इतनी तीव्रता है, कि पूर्वक्षणमें समुत्पन्न वस्तुका परिणाम परक्षणमें ही अनुभूत होता है। फिर मृदुपरिणामकी इतनी मृदुता है, कि वह हजारों वर्षमें भी अनुभूत नहीं होती। इसीसे कहा गया है कि मृदुपरिणामकी चरमसीमा ही सदृशपरिणाम है। सदृश और विसदृश ये दो प्रकारके परिणाम रहनेसे ही प्रकृतिमें कभी प्रलय और कभी जगत् होता है। गुणपरिणामके तारतम्यानुसार अचिरात् किसी किसी वस्तुका विकार वा परिणाम देखा जाता है। फिर किसी किसी वस्तुका परिणाम ऐसा है जो हम लोगोंके जीते-जी अनुभूत न हो कर हम लोगोंकी सन्तानके अनुभूतिगोचर उपस्थित होगा। प्रकृतिके ही विशेष विशेष परिणामका नाम है जन्म, मृत्यु, जरा, लय, बाल्य, यौवन, वार्द्धक्य, जीर्णता, सभ्यता आदि। कल सूर्यको हम लोगोंने जिस अवस्थामें देखा था, आज उसकी वह अवस्था नहीं है—परिणाम हुआ है, ऐसा जानना चाहिए। कल जिस जगत्‌प्राण वायुका सेवन किया था, आज उसका भी परिणाम हो गया है। आदिसर्गकालमें तथा कपिलके समयमें पृथ्वीका अथवा पृथ्वी परके प्राणीका जैसा स्वभाव था, आज हम लोगोंके समयमें वैसा नहीं है—बहुत कुछ परिवर्त्तित हुआ है। आज हम लोगोंके समयमें जो चल रहा है, हम लोगोंके बाद वह नहीं रहेगा, परिवर्त्तित होगा। परिणामस्वभाव प्रकृतिके तदुत्पन्न पृथ्वीके और तदाश्रित स्थावरजङ्गमात्मक वस्तुके अनिर्वाच्य परिणामकी कथा सोचना भी कठिन व्यापार है। प्रकृति परिणामशीला है। आदिविद्वान् कपिलने स्थिर किया है, कि प्रकृति जड़, अस्वाधीन अथवा जगत्‌की

निर्माणकर्त्री है। प्रकृति-परिणामसे जगत्की उत्पत्ति होती है, यह पहले ही कहा जा चुका है। प्रकृति जड़ है, जड़वस्तु आपसे आप प्रवृत्त नहीं होती, यदि कदाचित् कभी हो भी जाय, तो उसकी वह प्रवृत्ति सर्वथा अनियमित अर्थात् शृङ्खलाहीन रहती है। ज्ञान-शक्ति नहीं रहनेसे कोई भी कभी नियमित कार्य नहीं कर सकता। ऐसे नियमयुक्त और ऐसे कौशलपूर्ण जगत्-का निर्माण क्या जड़-प्रकृतिके केवल परिणामसे सम्भव है? कभी नहीं। ज्ञानशून्या जड़-प्रकृति यदि इसकी कर्त्री होती, तो इस प्रकार सुशृङ्खला नहीं रहती। इसीसे कोई कोई अनुमान करते हैं, कि अव्याहतेच्छा-ज्ञानसम्पन्न सर्वशक्तिमान् कोई एक कर्तृपुरुष इसके अधिष्ठाता वा नियामक हैं। उन्होंने ही प्रकृति द्वारा सुनियमसे जगत्की सृष्टि की है।

इसके उत्तरमें कपिल कहते हैं, कि सो नहीं, प्रकृति के परिणामसे जगत्की उत्पत्ति हुई है, स्थिति होती है और पीछे लय होगा। रथ एक अचेतन वस्तु है, चेतनावान् पुरुष उस पर बैठ कर जिस तरह अपने इच्छानुसार नियमितरूपसे उसे चलाता है, अथवा सुवर्ण-खण्ड एक जड़पदार्थ है, कोई कुशली स्वर्णकार उसका अधिष्ठाता वा कर्त्ता हो कर जिस प्रकार उसे कुण्डलादि आकारमें परिणामित करता है, प्रकृतिके सम्बन्धमें वैसा परिणामक वा वैसा प्रेरणकर्त्ता कोई नहीं है। वैसे अधिष्ठाताका अनुमान निष्प्रयोजन है। प्रकृति जड़ है, अतः रथनियन्ता सारथिकी तरह उसके किसी स्वतन्त्र नियन्ता रहनेकी कल्पना प्रयोजनीय नहीं समझी जाती। प्रकृति अस्वाधीन है, इस कारण उसे परिणामित करनेके लिये कर्मकारकी तरह पृथक् व्यक्ति रहनेकी जरूरत नहीं होती। अनादि अनन्त पुरुष ही उसके अधिष्ठाता हैं और निजशक्ति ही उसके परिणामकी प्रयोजक है।

कपिलसूत्रमें लिखा है, 'तत्सन्निधानात् अधिष्ठातृत्वं मणिवत्" जिस प्रकार सन्निधानवशतः इच्छादिगुणशून्य जड़स्वभाव अयस्कान्तमणि लोहके सम्बन्धमें सचेतन अधिष्ठाताकी तरह कार्यकारी होती है, उसी प्रकार सान्निध्यविशेषवशसे निर्गुण निष्क्रिय आत्मा ही तादृशी प्रकृतिके अधिष्ठाता वा प्रेरकका कार्य सम्पन्न कर सकती है।

जिस प्रकार लौह और चुम्बक दोनों ही जड़स्वभावके हैं, इच्छादि गुणशून्य और स्वयं प्रवृत्तिरहित अथच परस्पर सन्निहित होनेके साथ ही एक दूसरेके शरीरमें विक्रिया (लौहशरीरमें चलन और चुम्बक शरीरमें आकर्षकभाव) उपस्थित करते हैं, उसी प्रकार आत्माके निष्क्रिय और इच्छाशून्य तथा प्रकृतिके जड़ और स्वतः प्रवृत्तिरहित होने पर भी सन्निधान विशेषके बलसे प्रकृति-शरीरमें परिणामशक्तिका उदय हुआ करता है। जड़-स्वभाव होनेसे अनियमित परिणामकी आशङ्का अलीक आशङ्का है। क्योंकि नियमितरूपमें परिणत होना ही प्रकृतिका स्वभाव है। तदनुसार प्रत्येक वस्तु ही नियमित परिणामके अधीन है। दुग्धका दधि भिन्न कर्दम परिणाम नहीं होता, चूर्णयुक्त हरिद्रा रक्तवर्ण ही होती है—कृष्णवर्ण नहीं होती। प्रकृति और प्राकृत पदार्थ-के नियमित परिणामके विषयमें विज्ञान, ज्योतिष, वैद्यक आदि सभी शास्त्र साक्ष्य देनेमें समर्थ हैं। सांख्य-कारिकामें लिखा है, "सलिलवत् प्रति गुणाश्रयविशेषात्" मेघ-निर्मुक्त सलिल एक है, एक रूप और एक रस है। किन्तु वह एक और एकरसात्मक जल पृथ्वी पर आ कर नाना प्रकारके पार्थिव विकारोंके संयोगसे अर्थात् ताल और ताली प्रभृति विभिन्न बीज भावापन्न हो कर भिन्न भिन्न रूपों और भिन्न भिन्न रसोंमें परिणत होता है। ताल-बीज या तालवृक्षने जिसे आकर्षण किया, वह एक रस हुआ, नारिकेलने जिसे आकर्षण किया, वह अन्यरस हुआ। अतएव एक ही जल जिस प्रकार कारणविशेषके संसर्गसे भिन्न भिन्न फलों और भिन्न भिन्न वस्तुओं-में कटु, तिक्त, कषाय आदि भिन्न भिन्न रस उत्पन्न करता है, उसी प्रकार प्रकृतिनिष्ठगुणत्रयके एक एक गुणके अभिभव और एक एक गुणके समुद्भव होनेसे प्रबल संयोग द्वारा दुर्बल गुण विकृत हो जाता है। अतएव प्रकृतिके नियमित परिणामके लिये प्रकृतिकी निज शक्ति वा स्वतःसिद्ध स्वभाव छोड़ कर स्वतन्त्र प्रेरक रहना सङ्गत नहीं है।

प्रकृतिका प्रथम परिणाम—प्रकृतिका प्रथम विकाश महत्तत्त्व है।

सृष्टिके प्रारम्भमें असंसारी और अशरीरी आत्माके सन्निधिवशतः प्रकृतिके मध्य प्रथम प्रस्फुरण होता है। शास्त्रमें लिखा है, कि रजोगुणसे सृष्टि, सत्त्वगुणसे पालन और तमोगुणसे संहार होता है। इससे यह जाना जाता है, कि पहले गुणसमुदायके साम्यभङ्गके सबसे पहले रजोगुणने सत्त्वगुणको उद्रिक्त किया था। इसी कारण सत्त्वगुण सबसे पहले महत्तत्व (जिसका अन्त नहीं है—निर्मल विकाश)को प्रादुर्भूत हुआ था। महत्तत्त्व हृदयङ्गम करनेके लिये वर्त्तमान प्राणिनिचयकी बुद्धिके बीजस्थान पर विचार करना होता है। इस प्रकार विचार करनेसे देखा जाता है, कि प्रत्येक अन्तःकरण हरिहरमूर्त्तिकी तरह द्विमूर्त्तिमें अवस्थित है। उसकी एक मूर्त्ति वा परिणाम मनन और अध्यवसाय नामसे तथा दूसरी मूर्त्ति वा परिणाम अभिमान और अहं नामसे परिचित है। 'मैं' 'मैं हूं' 'वस्तु' 'वस्तु है' 'मेरा' 'मेरे करनेका' इत्यादि प्रकारके निश्चयात्मक विकाशका नाम अध्यवसाय और ज्ञानशक्ति है। प्रकृतिका प्रथम परिणाम यही ज्ञानशक्ति सहजातस्वरूपमें जीवकी अन्तरात्मामें निरन्तर संलग्न है। ज्ञानशक्तिकी समष्टि ही महान् है। महान् और पूर्णज्ञान एक चीज है। पूर्णज्ञान शक्ति सांख्योक्त महत्तत्व और बुद्धि-तत्त्व शब्दका अभिधेय है। जो महान् पुरुष इस महान् बुद्धितत्त्वमें पूर्णरूपसे प्रतिविम्बित होता है, वे ही सांख्योक्त पुरुष हैं। इन्हें ईश्वर भी कह सकते हैं। भूलोक, द्युलोक, अन्तरीक्षलोक, चन्द्रलोक, सूर्यलोक, ग्रहलोक, नक्षत्रलोक, ब्रह्मलोक आदि सभी लोकोंके सभी पदार्थ इस महान् पुरुषके अधीन हैं। प्रकृतिका प्रथम परिणाम महत्तत्व नामक व्यापक बुद्धि है। मेरा ज्ञान, तुम्हारा ज्ञान, उसका ज्ञान, चन्द्र सूर्य आदि लोकस्थिति-का ज्ञान इत्यादि क्रमसे उसी उसी देहमें परिच्छिन्न हो कर शोभता है। हम लोग जिस प्रकार इस हस्त-पदादिविशिष्ट देहके ऊपर मैं और मेरा इस अभि-मानको निक्षेप किये हुए हैं, उसी प्रकार सांख्योक्त पुरुष सम्पूर्ण बुद्धितत्त्व वा अन्तःकरणसमष्टिके ऊपर मैं और मेरा इत्याकार अभिमान निक्षेप किये हुए हैं। हम लोग जिस प्रकार अपने हस्तपदादिको जिधर तिधर चलाते हैं, उसी प्रकार पुरुष भी अन्तःकरणको प्रेरण कर सकता है। कपिलने कहा है, 'महदाख्यं आद्यं कार्यं तन्मनः।" प्रकृतिका प्रथम परिणाम यह है—सर्वदा समुत्पन्ना विषयावरक्ता बुद्धि को अवगाह्य खण्ड खण्ड विषयरागिका परित्याग कर निरवच्छिन्न केवल अथवा विशुद्ध बुद्धि ही महत्तत्त्व है, ऐसा जानना होगा पहले केवल चिदात्मपुरुष और प्रकृति थी। जब प्रकृतिके विसदृश परिणाममें जगत् आरम्भ हुआ, तब प्रकृतिके प्रथम परिणाममें अर्थात् महत्तत्त्व नामक बुद्धिमें चिदात्मका अनुरञ्जन छोड़ अन्य पदार्थका अनुरञ्जन नहीं था और न उसका परिच्छेदक ही था। सुतरां वह अपरिच्छिन्न था। पीछे प्रकृतिसे जितना ही स्थूल सूक्ष्मविकार प्रादुर्भूत हुआ है, उतना ही वह विषय-परिच्छिन्न और मलिन हो गया है। प्रकृतिका प्रथम महत्तत्त्व ही जगद्बीज है। इस महत्तत्त्वसे अर्थात् इस महत्तत्त्वके परिणामसे ही चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है। जब इस जगत्कार्यकी रचना आरम्भ नहीं हुई, उस समयकी अवस्थाका भगवान् मनुने ऐसा वर्णन किया है—

> 'आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातम लक्षणम्।
> अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥" (मनु १ अ०)

यह जगत् पहले प्रकृतिलीन था। प्रकृतिमें लीन रहना ही लय या प्रलय है। जो अवस्था अभी लोगोंसे अज्ञात, अलक्ष्य और अप्रतर्क्य है अर्थात् जिस अवस्थामें प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्दादि प्रमाण नहीं था, प्रमाण-का विषय जो प्रमेय पदार्थ है, वह भी नहीं था, वही अवस्था प्रायः महासुषुप्तिके सदृश थी।

जिस तरह हम लोगोंकी गाढ़ी नींद टूटनेके साथ ही आंख मींजते न मींजते अज्ञानतम दूर हो जाता और ज्ञानविकाशका उदय होता है, उसी तरह नितान्त दुर्लक्ष्यरूप प्रलय प्रकृतिके परिणामसे जगत्की निद्रा टूटनेके साथ ही प्रकृतिगर्भमें सूक्ष्म जगत्के अभिव्यञ्जक (अङ्कुरस्वरूप) तमोभङ्गकारक सृष्टिसामर्थ्ययुक्त महत्तत्त्व-का आविर्भाव हुआ। ज्योंही जगत्की निद्रा टूटी त्योंही महान् विकाशका उदय हुआ। सूक्ष्म जगत् अलक्ष्यसे उसके गात्रमें अङ्कित हुआ। यही प्रकृतिका

प्रथम परिणाम है। अब द्वितीय परिणामके विषय पर कुछ विचार करना आवश्यक है। यह विषय जान लेना उचित है, कि ज्ञानशक्तिकी अनुगामिनी इच्छाशक्ति, इच्छाशक्तिकी अनुगामिनी क्रियाशक्ति और क्रियाशक्तिकी अनुगामिनी सृष्टिशक्ति है।

प्रकृतिका द्वितीय परिणाम अहंतत्त्व है—

"प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारः।" (सांख्यकारिका २२)

प्रकृतिसे महत् और महत्से अहंकारकी उत्पत्ति होती है, यही प्रकृतिका द्वितीय परिणाम है। पूर्वोक्त प्रथम परिणामके अर्थात् मैं हूं इत्यादि सहजात निश्चया त्मिकावृत्तिके एकदेशमें जो अहंवृत्ति संलग्न है, वही प्रकृतिका द्वितीय परिणाम है और अहंतत्त्व इस नामसे प्रसिद्ध है। यह अहंतत्त्व प्रत्येक आत्माके आश्रित है। यह अहं एक एक गणनाकी व्यष्टि और समस्त गणनाकी समष्टि है। अहं, अभिमान और अहंतत्त्व नाम-भेदमात्र है। महत्तत्त्वके साथ अहंतत्त्वका प्रभेद यह है कि महत्तत्त्वके अन्तर्गत मैं अलक्ष्योत्पन्न है और अहंतत्त्वका मैं लक्ष्यपूर्वक उत्पन्न है। अहंका प्रधान लक्ष्य आत्माका जीवभाव है। यही प्रकृतिका द्वितीय परिणाम है। अब प्रकृतिके तृतीय परिणामका विषय लिखा जाता है।

प्रकृतिका तृतीय परिणाम इन्द्रिय और तन्मात्र है।

पहले कहा गया है, कि प्रकृतिका प्रथम परिणाम महत्तत्त्व और महत्तत्त्वका परिणाम अहंतत्त्व है। इस अहंतत्त्वसे जो विचित्र परिणाम हुआ है, वही सांख्यशास्त्रमें इस प्रकार लिखा है—अहङ्कार तत्त्वके दो परिणाम हैं,—इन्द्रिय और तन्मात्र। जिस प्रकार एक दुग्धसे द्विविध परिणाम वा विकार अर्थात् छेना और छेनेका जल उत्पन्न होता है, उसी प्रकार एक अहंतत्त्वके परिणामसे द्विविध विकार उत्पन्न हुए हैं, इन्द्रिय और तन्मात्र। इन्द्रियगण स्वच्छ और प्रकाशस्वभावका तथा तन्मात्रगण अस्वच्छ और अप्रकाशस्वभावका है। दोनोंका आकार भी भिन्न है। इन्द्रिय और तन्मात्रका तुल्याकार तथा तुल्यस्वभावयुक्त नहीं होनेका कारण यह है, कि अहंतत्त्वस्थित रजोगुणने अहंतत्त्वको उसी प्रकारके विभिन्न आकार और स्वभावमें विकृत किया था। प्रकृतिका परिणाम अत्यन्त विचित्र और बोधातीत है, इसीसे अहंतत्त्वसे प्रकाशस्वभाव (एकादश इन्द्रिय) और जड़स्वभाव (पञ्चतन्मात्र) उत्पन्न हुआ। कपिलने कहा है—"इत्येष प्राकृतः सर्गः," "अबुद्धिपूर्वकस्त्वेषः" यही अबुद्धिपूर्वक सृष्टि अर्थात् प्राकृतिक सृष्टि है। इसके बाद ब्राह्मी सृष्टि है। हम लोग जिस प्रकार सलिल, सूत्र और मृत्तिकादि ले कर बुद्धिपूर्वक घटपटादिका निर्माण करते हैं, उसी प्रकार प्रकृतिसृष्ट वस्तु द्वारा नियमित रूपसे यह सृष्टि हुई है।

पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय और मन तथा पञ्चतन्मात्र ये सोलह पदार्थ अहंतत्त्वके ही परिणाम हैं। एकादश इन्द्रियोंका ऐसा और कौन परिणाम कहा जा सकता है? मन उभय इन्द्रिय है, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्मेन्द्रियको मन परिचालन करता है, इसीसे मनको उभय इन्द्रिय कहा गया है। भाव शब्दसे जायमान वस्तु समझी जाती है। जो जो वस्तु उत्पन्न होती है, उसीकी वृद्धि, ह्रास, परिवर्त्तन और विनाश होता है। वस्तुके ऐसे परिणामको अन्यान्य दार्शनिक पण्डितोंने भावविकार शब्दसे अभिहित किया है। भावविकार ग्रस्त नहीं है, ऐसी जन्यवस्तु अप्रसिद्ध अर्थात् नहीं है। सांख्यके मतसे पुरुष व्यतीत अपरिणामी कोई पदार्थ ही नहीं है।

पहले ही कहा जा चुका है, "परिणामस्वभावा हि भावाः ना परिणम्य क्षणमप्यवतिष्ठन्ते।" सभी भाव परिणामी हैं, बिना परिणत हुए क्षणकाल भी नहीं रह सकते। इस वस्तुमें जो परिणामधर्म है, वह प्रत्यक्षसिद्ध है। मन भी जन्मवान् है, इसीसे मनको भी भावविकारग्रस्त बतलाया है।

पहले जो पञ्चतन्मात्रकी कथा कही गई है, उसी पञ्चतन्मात्रसे पञ्चमहाभूत हुआ है। इस प्रकार चतुर्विंशति तत्त्व ही प्रकृतिका परिणाम है। इस प्रकृतिके परिणामसे जगत् उत्पन्न और विनष्ट होता है। फल जो कुछ होता है, वह प्रकृतिके परिणामसे हुआ करता है।

विशेष विवरण प्रकृति शब्दमें देखो।

महामति शङ्कराचार्य प्रकृतिके परिणामसे जो जगत्‌को सृष्टि और नाश होता है, इसे स्वीकार नहीं करते

और इस मतका उन्होंने जोरसे खण्डन किया है। भगवान् शङ्कराचार्यका कहना है, कि सांख्यशास्त्रमें जो प्रधानके बाद परिणामी महत्तत्त्व और अहंतत्त्वका उल्लेख है, वह क्या लोक, क्या वेद किसीसे उपलब्ध नहीं होता। किन्तु परिणामी महत् है, अहङ्कार जो सांख्ययोगका कल्पित है, वह लोक और वेद दोनोंमें ही अप्रसिद्ध है।

सांख्यवक्ता कपिल सत्त्वादिगुणकी साम्यावस्थाको प्रधान कहते हैं। कपिलके मतसे गुणत्रय छोड़ कर और कुछ भी नहीं है। उसे कार्यप्रवृत्त (सृष्ट्युन्मुख) और कार्यनिवृत्त (प्रलयोन्मुख) करनेके लिये कोई भी नहीं है। पुरुष हैं सही, लेकिन वे उदासीन और निष्क्रिय हैं, इस कारण वे किसीके न तो प्रवर्त्तक हैं और न निवर्त्तक। सुतरां यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रधान अनपेक्ष हैं, अथच प्रवृत्त होते हैं। यदि यही सच मान लिया जाय, तो वह कभी महत्तत्त्वादि भावमें परिणत होते और कभी नहीं होते हैं। लेकिन यह युक्तिसङ्गत वा प्रामाण्य नहीं है। शङ्कराचार्यने परिणामवादको स्वीकार न कर अर्थात् यह जगत् प्रकृतिका परिणाम है, ऐसा न बतला कर यह जगत् ब्रह्मका विवर्त्त है, यही स्थिर किया है। यद्यपि यह मत अवैदिक है, तो भी वेदके अतिसन्निहित है, इस प्रकार स्वीकार कर उन्होंने सांख्यसे परिणामवादका निराकरण किया है।

(वेदान्तभाष्य २ अ०)

५ रूपान्तर-प्राप्ति, बदलनेका भाव या कार्य, बदलना। ६ पकने या पचनेका भाव, पाक। ७ परिपुष्टि, वृद्धि, विकास। ८ वृद्ध होना, बड़ा होना। ९ फल, नतीजा।

परिणाम—एक विख्यात वैष्णवधर्मप्रचारक। ये अपने मतसे वैष्णवधर्मका प्रवर्त्तन करके विख्यात हुए। खेड़ा जिलेमें इनका समाधिमन्दिर आज भी वर्त्तमान है।

परिणामक (सं० त्रि०) परिणाम-स्वार्थे-कन्। १ परिणाम। २ परिणामयुक्त।

परिणामदर्शिन् (सं० त्रि०) परिणामं शेषं पश्यति दृश-णिनि। सूक्ष्मदर्शी, भविष्य या होनहारको जान सकनेवाला, सोच विचार कर काम करनेवाला।

परिणामदर्शी (हिं० पु०) परिणामदर्शिन् देखो

परिणामदृष्टि (सं० स्त्री०) परिणामे दृष्टिः। भविष्यत् दृष्टि, आगामी फलकी ओर दृष्टि।

परिणामन (सं० पु०) १ पूर्ण पुष्ट तथा वर्द्धित करना। २ जाति वा संघका उद्दिष्ट वस्तुको अपने काममें लाना।

परिणामवाद (सं० पु०) वह सिद्धान्त जिसमें जगत्की उत्पत्ति नाश आदि नित्यपरिणामके रूपमें मानी जाती हैं।

परिणामशूल (सं० पु०) परिणामे परिपाके चरमावस्थायां शूलं यस्य वा परिणामे भुक्तान्नादेः परिपाके उत्पद्यते शूलं यस्मात्। शूलरोगविशेष। खाया हुआ अन्न जब पचता है, तब यह रोग उत्पन्न होता है, इसीसे इसको परिणामशूल कहते हैं। इसमें भोजन पचनेके समय पेटमें पीड़ा होती है। भावप्रकाशमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—स्वकीयकारणसे अर्थात् रसादि द्वारा कुपित बलवान् वायु समीपस्थ हो कफ और पित्तको दूषित करके परिणामशूल उत्पादन करती है। परिणामशूल भुक्तद्रव्यकी जीर्णावस्थामें उत्पन्न होता है। वातजादि भेदसे परिणामशूलका लक्षण संक्षेपमें लिखा जाता है। वातज परिणामशूलमें आध्मान, आटोप, मलमूत्रकी रुद्धता, ग्लानि और कम्प होता है। स्निग्ध और उष्ण क्रिया द्वारा यह रोग उत्पन्न होता है। पैत्तिकपरिणामशूलमें पिपासा, दाह, ग्लानि और घर्मोद्गम होता है। कटु, अम्ल और लवणरसयुक्त द्रव्यसेवनसे यह रोग बढ़ता और शीतक्रियासे घटता है। श्लैष्मिक परिणामशूलमें वमि, हृल्लास, संमोह और अल्प वेदना होती है। यह वेदना दीर्घकालस्थायी हो जाती है। कटु और तिक्तरस सेवन करनेसे यह रोग प्रशमित होता है, उक्त दो दोषोंके मिलित लक्षण द्वारा द्विदोषज और त्रिदोषमें मिलित लक्षण द्वारा त्रैदोषिक परिणामशूल जाना जाता है।

त्रिदोषज परिणामशूलमें रोगीका मांसबल और जठराग्नि क्षीण हो कर असाध्य हो जाती है। यह तो परिणामशूलका लक्षण लिखा गया, अब इसकी चिकित्साका विषय लिखा जाता है। परिणामशूलरोगको दूर करनेके लिये पहले उपवास, वमन और विरेचनका प्रयोग करना चाहिए। मदनफलका काढ़ा दूधके साथ और कान्तार, पौण्ड्रक, इक्षुरस अथवा नीमका काढ़ा या तितलौकीका

रस भर पेट पिला कर रोगीको वमन कराना चाहिए। निसोथ वा दन्तोमूलके चूर्णको रेंड़ीके तेलके साथ पिलानेसे विरेचन होता है, इससे परिणामशूल बहुत जल्द दूर हो जाता है।

विड़ङ्गका तण्डुल, त्रिकटु, निसोथ, दन्ती और चीता इनका चूर्ण बराबर बराबर भाग ले सबका परिमाण जितना हो उसके दूने गुड़के साथ मोदक बना कर २ रत्तीकी गोली बनावे। उष्ण जलके साथ इसका सेवन करनेसे त्रिदोषजन्य परिणामशूल जाता रहता है। कचूर, तिल और गुड़को समान भाग दूधमें पीस कर चाटनेसे तीन रातके अन्दर परिणामशूल दूर हो जाता है। शम्बुकभस्म चूर्णको उष्ण जलके साथ आध तोला करके पान करनेसे परिणामशूल उसी समय प्रशमित हो जाता है। लोह, हरीतकी, पिप्पली और कचूरका चूर्ण समभाग ले कर आध तोले घी और मधुके साथ लेहन करनेसे परिणामशूल नष्ट होता है। जलसंयुक्त सुपक्व नारिकेलके मध्य सैन्धव भर कर ऊपरसे मट्टीका लेप दे। पीछे उसे उपलेकी अग्निमें जला कर उसके मध्यका सैन्धवयुक्त नारिकेल यथामात्रा पिप्पलीके साथ सेवन करे। इससे सब प्रकारका परिणामशूल नष्ट हो जाता है। (भावप्रकाश)

गरुड़पुराणमें लिखा है—लौहचूर्ण और त्रिफलाचूर्णको मधुके साथ सेवन करनेसे परिणामशूल प्रशमित होता है।

"लौहचूर्णं समायुक्तं त्रिफलाचूर्णमेव वा।
मधुना स्वादितं रुद्र परिणामाख्यशूलनुत्॥"

हारितसंहिताके चिकित्सितस्थानके ८वें अध्यायमें परिणामशूलकी चिकित्साका विशेष विवरण लिखा है। भैषज्यरत्नावलीमें इसकी चिकित्साका विषय इस प्रकार लिखा है—

परिणामशूल—तिक्त और मधुरद्रव्य द्वारा वमन, विरेचन और वस्तिक्रिया उपकारक है। दो तोले कचूरचूर्ण और उतने ही गुड़का दूधके साथ पायस बना कर सेवन करनेसे प्रबल परिणामशूल नष्ट होता है। शम्बूकके गर्भस्थित मांसको निकाल कर उसका आवरण भस्म कर डाले। पीछे एक या दो माशा भर उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे परिणामशूल उसी समय प्रशमित हो जाता है। अन्नका परित्याग कर भरसंयुक्त दधिके साथ मटर और जौका सत्तू खानेसे परिणामशूल बहुत जल्द दूर हो जाता है। तिल, सोंठ, हरितकी और शम्बूकको एक साथ मिला कर तोले भरकी गोली बनावे। इसका यथानियम सेवन करनेसे परिणामशूल विनष्ट हो जाता है। इसके अलावा सामुद्राद्यचूर्ण, धात्र्यमृतलौह, पिप्पलीघृत, बीजपूराद्यघृत, कोलादिमण्डूर, क्षीरमण्डूर आदि औषधियां परिणामशूलमें विशेष हितकर मानी गई हैं।

(भैषज्यरत्नाकर शूलाधि०) शूलरोग देखो।

परिणामित्व (सं० पु०) परिवर्त्तनशीलता, बदलनेका स्वभाव या धर्म।

परिणामिनित्य (सं० त्रि०) जो परिणामशील हो कर नित्य या अविनाशी हो, जिसकी सत्ता स्थिर रहे पर रूप आकार आदि बदलता रहे। सांख्यदर्शनके अनुसार प्रकृति परिणामिनित्य है और पुरुष अथवा आत्मा अपरिणामिनित्य।

परिणामी (सं० त्रि०) परि-णम-णिनि। १ परिणामयुक्त, जिसका परिणाम हो। सांख्यदर्शनके अनुसार प्रकृति और पुरुष इन दोनोंमेंसे प्रकृतिका ही परिणाम होता है, पुरुषका नहीं। प्रकृति ही परिणामिनी है।

सृष्टिके पहले प्रकृति और पुरुष ये ही दो पदार्थ थे, अतः ये दोनों ही जगत्‌कारण नहीं हैं। दोनोंकी पूर्ववर्त्तिता रहने पर भी कारणताज्ञापक अन्वय और व्यतिरेक इन दोनों युक्तियोंके बलसे एक हीको कारणता अर्थात् केवल प्रकृतिकी कारणता अर्थात् प्रकृतिके परिणामसे जगत् उत्पन्न होता है, केवल प्रकृति ही परिणामिनी है, ऐसा स्थिर हुआ है। २ जो परिवर्त्तन स्वीकार करे, बदलनेवाला। प्रकृति और परिणाम देखो।

परिणाय (सं० पु०) परितो नायमदक्षिणतो नयनं। १ किसी वस्तुको जिस दशामें चाहे चलाना, सब ओर चलाना। २ चौसर, शतरंज आदिके गोटीको चलाना। ३ विवाह, ब्याह।

परिणायक (सं० पु०) परि-नी-ण्वुल्। १ सेनापति। २ स्वामी, भर्त्ता, पति। ३ पथप्रदर्शक, नेता, चलानेवाला।

परिणायकरत्न (सं० पु०) बौद्ध-चक्रवर्त्ती राजाओंके सप्त-धन अथवा सात कोषोंमेंसे एक।

परिणाह (सं० पु०) परिनह्यतेऽनेन इति परिणह घञ्। १ विस्तार, विशालता, फैलाव, चौड़ाई। २ दीर्घश्वास, लम्बी सांस।

परिणाहवत् (सं० त्रि०) परिणाह वलादित्वात्, बाहु० मतुप्, मस्य व। विस्तारयुक्त, फैला हुआ।

परिणाहवान (हिं० वि०) प्रशस्त, फैला हुआ।

परिणाहिन् (सं० त्रि०) परिणाह-वलादित्वादिनि। परिणाहयुक्त, विस्तृत, फैला हुआ।

परिणिंसक (सं० त्रि०) परि-णिनि चुम्बनार्थे क, ततो ण्वुल्। १ चुम्बनकारी, चूमनेवाला। २ भक्षणकारी, खानेवाला।

परिणिंसा (सं० स्त्री०) परि-निं-स-अ, टाप्। १ चुम्बन, चूमना। २ भक्षण, खाना।

परिणिनंसु (सं० त्रि०) १ परिणत होनेमें इच्छुक। २ तिर्यक् प्रहारेच्छु।

परिणीत (सं० त्रि०) परि-नी-क्त। १ विवाहित, जिसका ब्याह हो चुका हो। २ समाप्त, सम्पन्नकृत, पूर्ण।

परिणेता (हिं० पु०) स्वामी, पति।

परिणेतृ (सं० पु०) परिनयतीति परि-नी-तृच्। १ भर्त्ता, स्वामी। २ चारों ओर नजर रखनेवाला।

परिणेय (सं० त्रि०) परि-नी-यत्। १ परित नयनीय, चारों ओर नजर रखनेवाला। २ विवाहके योग्य।

परित—बम्बई प्रदेशवासी रजकजाति। इनका कहना है, कि पूर्व समयमें ये लोग जातिके कुणवी थे। किन्तु जबसे इन्होंने कपड़े धोनेकी वृत्ति आरम्भ की, तभीसे ये परित कहलाने लगे। ये लोग पहले कहां रहते थे और कब इस देशमें आये, कुछ भी मालूम नहीं। पुरुषोंके नामके अन्तमें 'मेहतर' (दलपति) और स्त्रियोंके नामके अन्तमें 'बाई' शब्दका प्रयोग देखा जाता है अभङ्गे, आदमनी, आरावेड़, विराट, बरड़, बेडोंडे, बोम्बले, भागवत्, दलवी, देशाई, गवली, गायकवाड़, गैवाराईकर, कादम्ब, काटे, कोथले, लान्दगे, मूनि, फन्द, रावत, रोकड़, सालुङ्के, ससाने, शीर्षात्, शोन्सले, सोनाम्बे, तरोते और ानेअर नाम ह इनके मध्य कई एक विभिन्न पदवीयुक्त थाक देखे जाते हैं। एक पदवीयुक्त होनेसे इनके मध्य विवाह नहीं होता। आम्रपत्र, रुईका पेड़, सफेद अकवन, कंगनीका डंठल, कदम्बपत्र वा पुष्प एवं 'कर्त्तक' लता ये पांचो पल्लव ही इनके विवाहके 'देवक' हैं। अहमदनगरके अन्तर्गत अगदगांवकी बहिरोवा (भैरवा) देवी, पूनाके दावलमलिक, तुलजापुरकी देवी और जेजुरीके खण्डोवा इनके प्रधान उपास्य देवता हैं।

परितगण साधारणतः दो भागोंमें विभक्त हैं—परित और कदुपरित। कहीं कहीं परित, उच्चपरित और निम्नपरित ये तीन भाग देखे जाते हैं। कदुपरित जातिमें निकृष्ट है और भिन्न जातिके संस्रवसे उत्पन्न हुआ है। दोनों सम्प्रदायके लोग एक साथ बैठ कर नहीं खाते और न अपने अपने कन्या-पुत्रका आदान-प्रदान ही करते हैं। सामाजिक प्रकृतिमें ये लोग कुणवियोंके जैसे हैं। दूधके लिये गो-महिष और खनेके लिये छागलादि तथा पालित पक्षियोंका पालन करते हैं। ये लोग उत्सवके उपलक्षमें तथा उपवासादिमें स्नान करते हैं। एतद्भिन्न ये लोग प्रतिदिन खानेके पहले स्नान न करके केवल हाथ पैर धो लेते हैं। स्नानके बाद ये पुष्पचन्दन द्वारा गृहस्थित देव-पूजा करते हैं। गो और शूकरका मांस छोड़ कर ये लोग अन्य सभी प्रकारके मांस खाते हैं और मादकताके लिए मद्य तथा भंग पीते हैं। पुरुष लोग शिखा रखते हैं। स्त्री-पुरुष दोनोंका परिच्छद हिन्दूके जैसा होता है और कुणवी जातिकी तरह विशेष कार्योपलक्षमें पुरुष और स्त्री दोनों ही अलङ्कार पहनना पसन्द करते हैं। शहरके अधिवासी परित लोग एकमात्र रजकवृत्ति द्वारा और ग्रामवासिगण उक्त वृत्तिके अलावा कृषिकार्य द्वारा भी जीविकानिर्वाह करते हैं। ये लोग प्रतिदिन सवेरे कपड़े ले कर नदी किनारे जाते और ग्रामको कपड़े आदि धो कर घर लौटते हैं। स्त्रियां घरका काम काज कर पुरुषोंको कपड़े धोने अथवा हल चलानेमें सहायता देती हैं। अन्यान्य समयमें इन्हें ब्राह्मण लोग यद्यपि कुणवियोंके जैसा समझते हैं, तो भी जब ये कपड़े धो कर लाते हैं, तब कुणवीकी अपेक्षा बहुत ही

निकृष्ट समझे जाते हैं। क्योंकि उस समय ब्राह्मणगण परितोंके द्वारा स्पृष्ट होने पर अशुचि समझ स्नान कर लेते हैं। ब्राह्मणगण इनके धौतवस्त्रको तुलसीपत्रके जलसे शुद्ध करके पहनते हैं। विवाहादिमें जब 'सम्मुख' (वरको माका कन्याका मुख देखना) प्रथा अनुष्ठित होती है, उस समय पदतलमें बिछानेके लिए एक विस्तृत वस्त्र परितोंको देना होता है। कार्त्तिकमासके दीवाली उत्सवमें ये लोग सन्ध्याके एक मट्टीके थालमें प्रदीप, पान और धान्य रख कर प्रत्येक गृहस्थके दरवाजे जाते और आरती करते हैं। जो कुछ पैसे उनसे प्राप्त होते, उन्हें ले कर वे घर लौटते हैं।

ये लोग कृष्णवर्ण और मध्यमाकृतिके होते हैं। इनका मुख गोल, नाक मोटी और चिपटी होती है। आकृतिगत सौसादृश्यमें 'कुरुवर' राखाल जातिके साथ बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। प्रायः सभी जातियोंके हाथका पाचित अन्न ये लोग ग्रहण करते हैं। कन्याका १०।१२ वर्षमें और पुत्रका १६।२० वर्षके मध्य विवाह होता है। विधवा-विवाह और बहुविवाहकी प्रथा इनमें प्रचलित है।

वरके पिता जब विवाहका दिन निश्चित कर देते हैं, तब कन्याके पिता वर, वरकर्त्ता और उनके आत्मीय स्वजनोंको निमन्त्रित करके अपने घरके निकटस्थ एक निर्दिष्ट भवनमें ला रखते हैं। दूसरे दिन बालकको हल्दी लगाई जाती है और एक चतुरस्र स्थानके चारों कोनेमें चार जलपूर्ण कलसी रख कर उसके गलेमें सूता लपेटते हैं। जब उस चतुष्कके मध्य बालकको स्नान कराया जाता है, तब चारों ओर चार मनुष्य उंगली उठाये खड़े रहते हैं। स्नानके बाद बालक वहिर्वेष्टित सूतेके नीचे आ कर खड़ा रहता है और एक सधवा स्त्री प्रदीप और धान्य ले कर उसे वरण करती है। इधर कन्याके घरमें भी कन्याको उसी प्रकार स्नान कराया जाता है। विवाहके दिन पात्रको नवीन वेशभूषासे सज्जित करके कन्याके घर लाते हैं और कन्याको बाईं ओर वरको भी एक टूल पर बिठाते हैं। इस समय उन दोनोंके मस्तक पर एक हरिद्राचिह्नित वस्त्र रखा जाता है। ब्राह्मण पुरोहित आ कर दोनोंको धान्यसे आशीर्वाद करते हैं और कन्याके गलेमें मङ्गलसूत्र तथा पीछे कन्याके वाम और वरके दक्षिण हाथमें हल्दीको जड़के साथ 'कङ्कण' वा सूता बांध देते हैं। उस दिन ग्रामको वरकन्या दोनों ही वरके घर जाते समय राहमें मारुतकी पूजा करते हैं। इनके विवाहका मन्त्र-तन्त्र कुछ भी नहीं है। कन्याको कम्बल पर बिठा कर वरका पिता कन्याकी मांगमें सिन्दूर दान करता और उसकी गोदमें पांच नारियल तथा पांच खजूर देता है। कन्याके पुष्पोत्सवमें पांच दिन तक अशौच रहता है, पीछे शुभदिनमें स्त्रीको स्वामीके निकट भेज देते हैं।

ये लोग कुछ अंशमें ब्राह्मणधर्मसेवी और कुछ अंशमें लिङ्गायतोंके अनुकरणकारी हैं। ब्राह्मणोंके प्रति इनकी जैसी भक्ति है, लिङ्गायतजंगमोंके प्रति भी वैसी ही है। मुसलमान फकीरके ऊपर भी इनका विशेष अनुराग रहता है। विवाहके समय ब्राह्मण लोग पौरोहित्य करते और मृत्युके बाद लिंगायत प्रथानुसार कब्र देनेके लिए जङ्गम आ कर याजन करते हैं। जो सब मनुष्य शवदेह गाड़नेके लिए कब्र-स्थान तक जाते हैं, वे लौटते समय कुछ दूब अपने साथ लाते हैं। जहां मानवदेहसे प्राणवायु वहिर्गत हुई थी, उस स्थान पर रखे हुए जलपात्रमें उस दूबको डाल देते हैं। तीसरे दिन उत्तम उत्तम अन्नव्यञ्जनादि ले कर वे कब्रके सामने खड़े होते और प्रेतके उद्देश्यसे उन्हें वहीं रख छोड़ते हैं। दशवें दिन ज्ञातिभोजन होता है।

जो लिङ्गायत इनके वंशपरम्पराके गुरु हैं, वे 'मादिवलाप्प' कहाते हैं। बेलगाम जिलेकी यल्लमादेवी इनकी कुलदेवी हैं। हिन्दू-पर्वादिमें ये लोग योगदान देते और आषाढ़ तथा कार्त्तिकमासकी शुक्लाएकादशी और शिवरात्रमें उपवास करते हैं। भविष्यद्वाणी, सामुद्रिकविद्या और डाकिनी योगिनीकी कथा पर इनका पूरा विश्वास है। स्त्रीके प्रसूत होने पर ४ दिन तक अशौच रहता है। पांचवें दिन ज्ञातशिशु और प्रसूतिको स्नान कराया जाता है। उस दिन षष्ठीपूजा और उपस्थित कुटुम्बोंको मांस तथा मिष्टान्न भोजन कराया जाता है और तेरहवें दिन पुत्रका नामकरण होता है। सामाजिक किसी प्रकारका गोलमाल वा विवाद

उपस्थित होने पर पञ्चायत बुलाई जाती है। गुरु आ कर सभापतिका आसन ग्रहण करते हैं।

परित: (हिं० अव्य०) १ सब ओर, चारों ओर। २ सम्पूर्ण रूपसे, सर्वतोभावसे, सब प्रकारसे।

परितकन (सं० क्लो०) इतस्ततः भ्रमण, इधर उधर घूमना फिरना।

परितक्मन् (सं० क्लो०) परि-तक हसने मनिन्। परितोगमन, चारों ओर जाना।

परितत्नु (सं० त्रि०) परि-तन-त्नु। सर्वतोव्याप्त, सब कहीं फैला हुआ।

परितप्त (सं० त्रि०) परि-तप-क्त। १ परितापयुक्त, क्लेशका अनुभव करता हुआ। २ अत्यन्त गरम, तपा हुआ, जलता हुआ।

परितप्ति (सं० स्त्री०) परि-तप-क्तिन्। १ परिताप, क्लेश, व्यथा, दुःख। २ तपन, जलन, दाह, गरमी।

परितर्कण (सं० क्लो०) १ विवेचना। २ एकाग्र चिन्ता।

परितर्कित (सं० त्रि०) सम्यक् विवेचित, वादानुवाद द्वारा स्थिर किया हुआ।

परितर्पण (सं० त्रि०) १ परितुष्टिकर, खुश करनेवाला। (क्लो०) २ सम्यक् तृप्ति।

परितर्पित (सं० त्रि०) जिसे तृप्ति कराई गई हो।

परितस् (सं० अव्य०) परित: देखो।

परिताप (सं० पु०) परि सर्वतोभावेन तप्यतेऽनेन परि-तप-घञ्। १ दुःख, सन्ताप, मनस्ताप। २ नरकान्तर, एक विशेष नरकका नाम। ३ मानसिक दुःख या क्लेश, संताप। ४ पश्चात्ताप, पछतावा। ५ भय, डर। ६ कम्प, कंपकंपी। ७ अति उष्णता, अत्यन्त जलन, गरमी, आँच।

परितापिन् (सं० त्रि०) परिताप अस्त्यर्थे इनि। १ परितापयुक्त, जिसको परिताप हो। २ परितापकर्त्ता, पीड़ा देनेवाला, सतानेवाला।

परितारणीय (सं० त्रि०) परितारणके योग्य।

परितिक्त (सं० त्रि०) १ अत्यन्त तिक्त, बहुत तीता। (पु०) २ निम्बवृक्ष, नीम (Melia Azedarach)।

परितुष्ट (सं० त्रि०) परि-तुष-क्त। १ खूब सन्तुष्ट, जिसकी पूर्ण रीतिसे संतोष हो गया हो। २ प्रसन्न, खुश,

परितुष्टि (सं० स्त्री०) परि-तुष-क्तिन्। १ परितोष, संतोष। २ प्रसन्नता, खुशी।

परितृप्त (सं० त्रि०) परितृप कर्त्तरि क्त। सम्यक् तृप्तियुक्त, अघाया हुआ।

परितोष (सं० पु०) परि,तुष-घञ्। १ तृप्ति, संतोष। २ प्रसन्नता, खुशी।

परितोषक (सं० त्रि०) १ सन्तुष्ट करनेवाला। २ प्रसन्न करनेवाला।

परितोषण (सं० त्रि०) १ जिससे तुष्टि हो। (क्लो०) परि सर्वतो भावेन तोषणं। २ तुष्टि, सन्तोष।

परितोषयितृ (सं० त्रि०) परितोषकारी, संतोष करनेवाला।

परितोषवत् (सं० त्रि०) परितोष विद्यतेऽस्य, परितोष मतुप्, मस्य व। परितोषयुक्त, सन्तुष्ट।

परितोषिन् (सं० त्रि०) परितोष अस्त्यस्य इनि। परितुष्ट, सन्तुष्ट।

परितोषी (हिं० वि०) संतोषशील, संतोषी।

परित्यक्त (सं० त्रि०) जो त्याग दिया गया हो।

परित्यक्तृ (सं० पु०) परित्यजति त्यज-तृच्। परित्यागकारी, त्यागने छोड़ने या फेंकनेवाला।

परित्यज् (सं० स्त्री०) परि-त्यज-क्विप्। परित्यागी।

परित्यजन् (सं० पु०) परित्यागकी क्रिया, त्यागना, छोड़ना।

परित्यज्य (सं० त्रि०) परि-त्यज-यत्। परित्यागके योग्य, फेंकने छोड़ने या निकालने लायक।

परित्याग (सं० पु०) परित्यजनमिति परि-त्यज-घञ्। सर्वतोभावसे वर्जन, त्यागनेका भाव, अलग कर देना, छोड़ना।

परित्यागसेन (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

परित्यागिन् (सं० त्रि०) परित्याग-अस्त्यर्थे इनि। परित्यागयुक्त, त्याग करनेवाला, छोड़नेवाला।

परित्याजन (सं० क्लो०) परित्याग, छोड़ना निकालना।

परित्याज्य (सं० त्रि०) परि-त्यज-ण्यत्। परित्यागके योग्य, छोड़ने या निकालने लायक।

परित्रस्त (सं॰ त्रि॰) परि-त्रस-क्त। भीत, डरा हुआ।

परित्राण (सं॰ क्ली॰) परित्रायते इति परि-त्रै-ल्युट्। १ रक्षण, किसीको रक्षा करना, विशेषतः ऐसे समयमें जब कोई उसे मार डालनेको उद्यत हो। पर्याय-पर्याप्त, हस्तधारण। २ आत्मरक्षण, अपनी रक्षा। ३ शरीरके बाल, रोंगटे।

परित्रात (सं॰ त्रि॰) परित्रै-क्त। रक्षित, जिसकी रक्षा की गई हो।

परित्रातव्य (सं॰ त्रि॰) परि-त्रा-तव्य। परित्राणके योग्य।

परित्रातृ (सं॰ त्रि॰) परि-त्रा-तृच्। परित्राणकर्त्ता, बचानेवाला।

परित्रायक (सं॰ त्रि॰) परित्राता, रक्षा करनेवाला।

परिदंशित (सं॰ त्रि॰) परिदंशो जातोऽस्य तारकादित्वादि तच्। कृतसन्नाह, बखतरसे भलीभांति ढंका हुआ जिरहपोश।

परिदर (सं॰ पु॰) दन्तरोग भेद (Sponginess of Gums) दांतोंका एक रोग। इसमें मसूड़े दांतोंसे अलग हो जाते हैं और थूकके साथ रक्त निकलता है। वैद्यकके अनुसार यह रोग पित्त, रुधिर और कफके प्रकोपसे होता है।

परिदर्शन (सं॰ क्ली॰) परि-दृश-ल्युट्। १ सम्यक्‌रूपसे अवलोकन, भलीभांति देखना। २ दर्शन, अवलोकन, देखना।

परिदष्ट (सं॰ त्रि॰) १ जो काट कर टुकड़े टुकड़े कर दिया गया हो। २ दंशित, काटा हुआ।

परिदान (सं॰ क्ली॰) परिदीयते इति परि-दा-भावे ल्युट्। परिवर्त्त, लौटा देना, वापस कर देना, फिरा देना।

परिदाय (सं॰ पु॰) परि-दा-घञ्। परिमोद, सुगन्धि, खुशबू।

परिदायिन् (सं॰ पु॰) परित्यज्य शास्त्रधर्मं ददातीति परि-दा-णिनि। वह व्यक्ति जो ऐसे व्यक्तिको अपनी कन्या दान करे जिसका बड़ा भाई अविवाहित हो। इस प्रकारका विवाह शास्त्रमें निषिद्ध बतलाया है। जो उक्त पात्रको अपनी कन्या देता है और जो विवाह करता है दोनों ही पतित होते हैं।

परिदाह (सं॰ पु॰) परि-दह-घञ्। १ अत्यन्तदाह, या जलन। २ मानसिक पीड़ा या व्यथा, शोक, संताप।

परिदाहिन् (सं॰ त्रि॰) परिदाह अस्त्यर्थे इनि। परिदाहयुक्त।

परिदीन (सं॰ त्रि॰) परि सर्वतोभावेन दीनः। अत्यन्त मानसिक क्लिष्ट, जिसको अतिशय मानसिक दुःख हो, अत्यन्त खिन्न चित्त।

परिदुर्बल (सं॰ त्रि॰) परि अतिशयेन दुर्बलः। अति दुर्बल, बहुत कमजोर।

परिदेव (सं॰ पु॰) परिदेवन, अनुशोचन, दुःख।

परिदेवक (सं॰ पु॰) परिदेवयतीति परिदेव ण्वुल्। परिदेवनकारी, अनुशोचनकारी, विलाप करनेवाला।

परिदेवन (सं॰ क्ली॰) परि दिव ल्युट्। अनुशोचना, अनुतापन, विलाप करना।

परिदेवना (सं॰ स्त्री॰) परिदेवयतीति परि दिवि युच्। (ण्यासश्रन्थो युच्। पा ३।३।१०७) ततष्टाप्। शोकनिमित्त विलाप दुःखके कारण कलपना।

परिदेवित (सं॰ त्रि॰) परि देवि-क्त। १ विलाप। २ दुःखित।

परिदेविन् (सं॰ त्रि॰) परि-दिव-ताच्छील्ये णिनि। परिदेवनशील, विलापकारी।

परिद्रष्टृ (सं॰ त्रि॰) परि दृश-तृच्। परिदर्शनकारी, दर्शन करनेवाला।

परिद्वीप (सं॰ पु॰) गरुड़के एक पुत्रका नाम।

परिद्वेषस् (सं॰ त्रि॰) सर्वतोभावसे विरुद्धाचारी।

परिध (हिं॰ पु॰) परिधि देखो।

परिधर्षण (सं॰ क्ली॰) परि-धृष-ल्युट्। आक्रमण, चढ़ाई, धावा।

परिधान (सं॰ क्ली॰) परिधीयते यत्, परि धा-कर्मणि ल्युट्। परिधेय वस्त्र। पर्याय—अन्तरीय, उपसंव्यान, अधोंऽशुक।

"वरं वनं व्याघ्रगजादिसेवितं जलेन हीनं बहुकण्टकावृतं।
तृणानिशय्या परिधानवल्कलं न बन्धुमध्ये धनहीनजीवितम्॥"

(पञ्चतन्त्र ५।२३)

२ किसी वस्तुसे अपने शरीरको चारों ओरसे छिपाना, कपड़े लपेटना। ३ कपड़ा पहनना। ४ धोती आदि नीचे पहननेके वस्त्र। ५ स्तुति, प्रार्थना, गायन आदिका समाप्त करना।

परिधानीय (सं० त्रि०) परि-धा-अनीयर। १ परिधानके योग्य, पहनने लायक। २ परिधेय वस्त्रादि, जो पहना जाय।

परिधापन (सं० क्लो०) परि-धापि-ल्युट्। १ परिधेय-वस्त्र। २ पहनानेकी क्रिया।

परिधापनीय (सं० त्रि०) परि-धाप-अनीयर्। परिधान-के योग्य।

परिधाय (सं० पु०) परिधीयतेऽत्र, परि-धा-घञ्। १ जल-स्थान। २ परिच्छेद, आधार। ३ परिधान, वस्त्र, पहनावा। ४ नितम्ब, चूतड़।

परिधायक (सं० पु०) १ आच्छादक, ढकने, लपेटने य चारों ओरसे घेरनेवाला। २ घेरा, बाड़ा, रुंधान। ३ चहारदीवारी।

परिधारण (सं० क्लो०) परि-धारि-ल्युट्। १ प्रतिवन्धक रोकनेवाला, बचानेवाला। २ धारण करना, सहारना, उठाना।

परिधार्य (सं० त्रि०) परि-धृ-ण्यत्। परिधारणयोग्य रक्षणीय, बचाने लायक।

परिधावन (सं० पु०) पहननेकी प्रेरणा करना, पहनवाना।

परिधाविन् (सं० त्रि०) १ परिधावनकारी, भ्रमणकारी। (पु०) २ षष्टि संवत्सरके अन्तर्गत एक संवत्सर, वृहस्पतिके ६० वर्षके युगचक्र या फेरेमेंसे ४६वां या २०-वां वर्ष।

परिधि (सं० पु०) परिधीयतेऽनेन परि-धा-कि (उपसर्गे घोः किः। पा ३।३।९२) १ परिवेश, रेखागणितमें वह रेखा जो किसी वृत्तके चारों ओर खींची हुई हो। २ सूर्य चन्द्र आदिके आस पास देख पड़नेवाला घेरा, मण्डल। ३ वह रेखा जो किसी गोल पदार्थके चारों ओर खींचनेसे बने गोल वस्तुकी चौहद्दी बनानेवाली रेखा। ४ किसी प्रकार-का विशेषतः किसी वस्तुकी रक्षाके लिये बनाया हुआ घेरा, बाड़ा, रुंधन या चहारदीवारी। ५ यज्ञीयतरु-शाखा, यज्ञकुण्डके आस पास गाड़े जानेवाले तीन खूंटे। इन खूंटोंके नाम दक्षिण, उत्तर और मध्यम होते थे। ६ कक्षा, नियत या नियमित मार्ग। ७ परिधेय, कपड़ा, वस्त्र, पोशाक।

परिधिस्थ (सं० पु०) परिधौ तिष्ठति परिधि-स्था-क। १ परिचारक, परिचर, सेवक। २ वे सैनिक जो रथके चारों ओर इसलिये खड़े कराये जाते थे कि शत्रुके प्रहारसे रथ और रथीकी रक्षा करते रहें।

परिधिपतिखेचर (सं० पु०) महादेव, शिव।

परिधीर (सं० त्रि०) गभीर, अत्यन्त धीर।

परिधूपित (सं० त्रि०) धूप द्वारा सुवासित, सुगन्धीकृत।

परिधमन (सं० क्लो०) सुश्रुतोक्त तृष्णारोगका एक उपद्रव जिसमें एक विशेष प्रकारकी कै आती है।

परिधमायन (सं० क्लो०) सुश्रुतोक्त उदारभेद।

परिधसर (सं० त्रि०) परि सर्वतोभावेन धूसरः। अति-शय धूसरवर्ण।

परिधेय (सं० त्रि०) परिधातुं शक्यं परि-धा-यत् (अचोयत्। पा ३।१।९७) आत इत्, ततः गुणः। १ परिधानीय, पहनने लायक। (क्लो०) २ परिधानोपयुक्त वस्त्रादि, कपड़ा, पोशाक।

परिध्वंस (सं० पु०) परि ध्वन्स घञ्। १ नाश, मिटना। २ अत्यन्त नाश, बिलकुल मर मिट जाना।

परिध्वंसिन् (सं० त्रि०) परिध्वन्स शीलार्थे इनि। ध्वंस-शील, नाश होने लायक।

परिनगर—बम्बई प्रेसिडेन्सीके सिन्धुप्रदेशके थर और पार्कर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह वर्तमान विरवा नगरके समीप अवस्थित है। बलमेरनिवासी यशो परमार नामक किसी राजाने इस नगरको बसाया। प्रवाद है, कि मुसलमान-आक्रमणसे इस नगरकी प्राचीन कीर्त्तियां विध्वस्त हो गईं। यहां सफेद पत्थर-के बने हुए कितने जैन-मन्दिरोंका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है।

परिनन्दन (सं० त्रि०) परिनन्द-णिच्-ल्यु, क्षुभ्नादित्वात् न णत्वं। १ सन्तोषकारक। (क्लो०) भावे ल्युट्। २ सन्तोषकरण।

परिनय (हिं० पु०) परिणय देखो।

परिनिन्दा (सं० स्त्री०) अतिशय निन्दा।

परिनिम्न (सं० त्रि०) अतिशय निम्न।

परिनिर्वाण (सं० क्लो०) अति निर्वाण, पूर्ण मोक्ष।

परिनिर्वाति (सं० स्त्री०) निर्वाण-गति, निर्वाण-मुक्ति

परिनिर्विवप्सु (सं० त्रि०) परि-निर्-वप-सन्-तन उ। जो दान करनेमें अभिलाषी हों।

परिनिर्वृत (सं० त्रि०) परितो निर्वृतः। सम्यक् रूपसे निर्वाणप्राप्त।

परिनिर्वृति (सं० स्त्री०) मोक्ष, मुक्ति।

परिनिश्चय (सं० पु०) स्थिरनिश्चय।

परिनिष्ठा (सं० स्त्री०) परि-नि-स्था-भावे अ, ततः टाप्। १ पर्यवसान, समाप्त। २ पूर्णता। ३ अभ्यास अथवा ज्ञानकी पूर्णता।

परिनिष्ठित (सं० त्रि०) १ पूर्णसम्पन्न, समाप्त। २ पूर्ण अभ्यस्त, पूर्ण कुशल।

परिनैष्ठिक (सं० त्रि०) सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ।

परिन्यास (सं० पु०) १ काव्यमें वह स्थल जहां कोई विशेष अर्थ पूरा हो। २ नाटकमें आख्यान बीज अर्थात् मुख्य कथाकी मूलभूत घटनाको संकेतसे सूचना करना।

परिपक्व (सं० त्रि०) परि-पच-क्त। १ परिपाकयुक्त, अच्छी तरह पका हुआ। २ परिणत, पूर्ण विकसित, प्रौढ़। ३ बहुदर्शी, जो बहुत कुछ देख सुन चुका हो, तजुरवेकार। ४ प्रवीण, निपुण, उस्ताद। ५ सम्यक् रीतिसे जीर्ण, जो बिलकुल हजम हो गया हो।

परिपक्वता (सं० स्त्री०) परिपक्व होनेकी क्रिया या भाव। २ बहुदर्शिता।

परिपण (सं० क्ली०) परिपण्यते व्यवह्रियतेऽनेन, परि-पण-घ। मूलधन, पूंजी।

परिपतन (सं० क्ली०) परि-पत-ल्युट्। अत्यन्त उड्डयन।

परिपति (सं० पु०) सर्वव्यापी, वह जो हर स्थानमें उपस्थित हो।

परिपद् (सं० स्त्री०) परिपद्-क्विप्। १ जाल, फंदा। २ जीव, प्राणिमात्र।

परिपदिन् (सं० पु०) शत्रु, दुश्मन।

परिपन्थ (सं० पु०) पन्थानं वर्जयित्वा व्याप्य वा तिष्ठति पथि-अच्। वह जो रास्ता रोके हुए हो।

परिपन्थक (सं० पु०) परिपन्थयति दोषादिकं प्राप्नोतीति परि-पथि-ण्वुल्। शत्रु, दुश्मन।

परिपन्थिक (सं० पु०) परि-पन्थ-ठक्। शत्रु, दुश्मन।

परिपन्थित्व (सं० क्ली०) परिपन्थिनो भावः, परिपन्थिन् भावे त्व। परिरोधन, रुकावट, अड़ंगा।

परिपन्थिन् (सं० त्रि०) परिसर्वतो भावेन दोषाख्यानं पन्थयितुं शीलमस्य ; परि-पन्थ-णिनि। १ शत्रु, दुश्मन। २ विरुद्ध कार्य करनेवाला, प्रतिकूल आचरण करनेवाला। वेदमें ही यह प्रयोग युक्तियुक्त है, किन्तु दूसरी जगह उपचारवशतः प्रयोग हुआ करता है।

परिपरिन् (सं० पु०) परिपरि (छन्दसीति। पा ५।२।८९) इति निपात्यते। १ शत्रु, दुश्मन। २ नाना स्थान भ्रमणकारी तस्करविशेष, वह चोर जो नाना स्थानोंमें भ्रमण करता हो।

परिपवन (सं० पु०) परि-पू-करणे ल्युट्। चालनी, चलनी।

परिपशव्य (सं० त्रि०) व्याप्तो परिः, पशोरिदं यत्, ततः प्रादि-समासः। सकल पशु-सम्बन्धी।

परिपाक (सं० पु०) परिपच्यते इति परि-पच-घञ्। १ पकनेका भाव, पकना या पकाया जाना। २ पचनेका भाव, पचाया जाना। ३ बहुदर्शिता, तजुर्वेकारी। ४ निपुणता, प्रवीणता, उस्तादी। ५ कर्मफल, विपाक, फल, नतीजा। ६ प्रौढ़ता, पूर्णता।

परिपाकिनी (सं० स्त्री०) परिपाकः परिपाकशक्तिः विद्यतेऽस्याः, परिपाक-इनि-ङीप्। त्रिवृत्, निसोथ।

परिपाचन (सं० त्रि०) १ सम्यक् पचनशील, जो अच्छी तरह पच जाय। (क्ली०) २ अच्छी तरह पचना। ३ वह जो पूरी तरह पच जाय।

परिपाचना (सं० स्त्री०) किसी पदार्थको पूर्ण पक्व अवस्थामें लाना।

परिपाचयितृ (सं० त्रि०) परिपाचनकारी, अच्छी तरह पचानेवाला।

परिपाटल (सं० त्रि०) जिसका रंग पीलापन लिये लाल हो, जर्दी लिए लाल रंगका।

परिपाटलित (सं० त्रि०) पीले और लाल रंगमें रंगा हुआ, जो पीला और लाल रंग मिला कर रंगा गया हो।

परिपाटि (सं० स्त्री०) परिपाटनं, परि-पट-स्वार्थे णिच्, अच इ, वा परि भागेन पाटिः पाटनं गतिर्यस्याः। १ पारिपाट्यविशिष्ट। पर्याय—आनुपूर्वी, आवृत्। २ अनुक्रम। पर्याय—आनुपूर्व, आनुपूर्वक, परिपाटी, क्रम।

परिपाटी (सं० स्त्री०) परिपाटि-ङीष्। १ अनुक्रम, श्रेणी, सिलसिला। २ प्रणाली, रीति, शैली, ढंग। ३ पद्धति, रीति, चाल। ४ अङ्कगणित।

परिपाठ (सं० पु०) सम्यक् गणन, आनुपूर्विक कथन।

परिपाठक (सं० त्रि०) आनुपूर्व पाठ वा प्रकाशकारी।

परिपाण (सं० पु० क्लो०) १ परितः पालन, परिरक्षण। २ परिपालक।

परिपाण्डु (सं० त्रि०) १ पाण्डु वर्ण, बहुत हलका पीला, सफेदी लिए हुए पीला। २ दुर्बल, क्षग, क्षीण।

परिपातन (सं० क्लो०) निपातन, नष्ट करना।

परिपाद (सं० अ य०) पादवर्जन करके।

परिपान (सं० क्लो०) पानीय, जल।

परिपार्श्व (सं० क्लो०) पार्श्व, बगल।

परिपार्श्वचर (सं० त्रि०) निकट वा बगलमें चरने वा जानेवाला।

परिपार्श्ववर्त्ती (सं० त्रि०) निकटवर्त्ती, नजदीकका।

परिपालक (सं० त्रि०) परिरक्षक, रक्षा करनेवाला।

परिपालन (सं० क्लो०) १ परिरक्षण, देखरेख, निगरानी। २ रक्षा, बचाव।

परिपालयितृ (सं० त्रि०) परि पालि-तृच्। रक्षक, परिपालक।

परिपाल्य (सं० त्रि०) पालनयोग्य, जो रक्षा या पालन करनेके लायक हो।

परिपिच्छ (सं० पु०) प्राचीन कालका एक आभूषण जो मोरकी पूंछके परोंसे बनता था।

परिपिञ्जर (सं० त्रि०) पिङ्गल वा रक्तवर्ण, हलके लाल रंगका।

परिपिण्डीकृत (सं० त्रि०) जो पिण्डाकारमें परिणत किया हो।

परिपिपालयिषा (सं० स्त्री०) पालन वा रक्षण करनेकी इच्छा।

परिपिष्ट (सं० त्रि०) परि-पिष-क्त। दलित, कुचला हुआ।

परिपिष्टक (सं० क्लो०) परि-पिष-क्त संज्ञायां कन्। सीसक, सीसा।

परिपीड़न (सं० क्लो०) १ पेषण, पिसान। २ उत्पीड़न, अत्यन्त पीड़ा पहुंचाना या देना। ३ अनिष्टकरण, नुकसान पहुंचाना।

परिपीड़ा (सं० स्त्री०) १ पेषण, पिसान। २ पीड़ा या कष्ट देना।

परिपीवर (सं० त्रि०) अति मोटा, बहुत मोटा या तगड़ा।

परिपुटन (सं० क्लो०) १ भेदन, छेदना। २ पाककरण, पाक करना।

परिपुष्करा (सं० स्त्री०) कर्कटोभेद, गोडुंबककड़ी, गोंडुबा।

परिपुष्ट (सं० त्रि०) परि-पुष-क्त। १ परिवर्द्धित, जिसकी वृद्धि पूर्ण रीतिसे हुई हो। २ परिपोषित, जिसका पोषण भलीभांति किया गया हो।

परिपुष्टता (सं० स्त्री०) १ सम्यक्वृद्धि। २ परिपुष्टि।

परिपूजन (सं० क्लो०) सम्यक्पूजा, उत्तम रीतिसे पूजन वा उपासना।

परिपूत (सं० त्रि०) १ विशुद्ध, अति पवित्र। (क्लो०) २ अपतुष धान्य, ऐसा धान जिसकी भूसी या छिलका अलग कर लिया गया हो, छांटा हुआ धान।

परिपूरक (सं० त्रि०) १ परिपूरणकारी, भर देनेवाला, लबालब कर देनेवाला। २ समृद्धिकर्त्ता, धनधान्यसे भरनेवाला। ३ सम्पूर्ण।

परिपूरण (सं० क्लो०) १ पूरणकरण, पूरा करना। २ सम्पूर्णतासाधन।

परिपूरित (सं० त्रि०) परिपूर्ण, खूब भरा हुआ, लबालब। २ सम्पूर्ण, समाप्त किया हुआ।

परिपूर्ण (सं० त्रि०) परि-पूर-क्त। १ सम्पूर्ण, पूरा किया हुआ। २ पूर्णतृप्त, अघाया हुआ। ३ सम्यक् रीतिसे व्याप्त, खूब भरा हुआ।

परिपूर्णता (सं० स्त्री०) परिपूर्णस्य भावः तल्-टाप्। सम्पूर्णता, आभोग।

परिपूर्णत्व (सं० क्लो०) सम्पूर्णत्व, परिपूर्णता।

"दृश्यते परिपूर्णत्वं मुखचन्द्रस्य ते सखि।
न जाने कं चकोरं हि विधाता पालयीष्यति॥" (उद्भट)

परिपूर्णचन्द्रविमलप्रभ (सं० पु०) बौद्धशास्त्रवर्णित समाधिभेद, एक प्रकारकी समाधि जिसका वर्णन बौद्ध शास्त्रोंमें मिलता है।

परिपूर्णसहस्रचन्द्रवती (सं० स्त्री०) इन्द्रकी एक स्त्री-का नाम।

परिपूर्णाहतरश्मि (सं० पु०) चन्द्रमा।

परिपूर्णार्थ (सं० त्रि०) पूर्णार्थ, पूरा करनेके लिये।

परिपूर्णेन्दु (सं० पु०) पूर्णचन्द्र।

परिपूर्ति (सं० स्त्री०) परिपूर्णता, परिपूर्ण होनेकी क्रिया या भाव।

परिपृच्छक (सं० पु०) जिज्ञासा करनेवाला, पूछनेवाला।

परिपृच्छा (सं० स्त्री०) परि-प्रच्छ-आप्। जिज्ञासा, प्रश्न करना, पूछना।

परिपृच्छानिका (सं० स्त्री०) विचार्य्य विषय, वह बात जिसको ले कर वाद प्रतिवाद किया जाय।

परिपेल (सं० क्ली०) परि-पेल-अच्। कैवर्त्तीमुस्तक, केवटी मोथा।

परिपेलव (सं० त्रि०) १ अत्यन्त कोमल, बहुत सुकुमार। (क्ली०) २ कैवर्त्तीमुस्तक, केवटी मोथा (Cyperus Rotundus)

परिपेल्ल (सं० क्ली०) १ जलजाततृणविशेष, पानीमें होनेवाली एक प्रकारकी घास। २ जलमुस्तक, जलका मोथा, केवटी मोथा।

परिपोट (सं० पु०) परि-पुट-घञ्। १ परिपुटन। २ कर्ण-पालिगत रोगभेद, कानका एक रोग। इसमें लौकका चमड़ा सूज कर खाल छोड़ने लगता है, इसमें लाल रंगका हो जाता है और उसमें पीड़ा होती है। यह रोग प्रायः कानमें भारी बाली आदि पहननेसे होता है।

परिपोटक (सं० त्रि०) त्वक्भेदक, परिपुटक।

परिपोटन (सं० क्ली०) १ भेदन। २ परिपोट।

परिपोष (सं० पु०) पूर्णपुष्टि या वृद्धि।

परिपोषण (सं० क्ली०) परि-पुष-ल्युट्। १ परिपुष्टि। २ रक्षणपेक्षण। ३ पालन।

परिपोषणीय (सं० त्रि०) परिपोष-अनीयर्। परि-पोषणयोग्य, पालने लायक।

परिप्रश्न (सं० पु०) युक्तायुक्त प्रश्न, जिज्ञासा।

परिप्राप्ति (सं० स्त्री०) लाभ, मिलना।

परिप्राप्य (सं० क्ली०) करणीय, करने योग्य।

परिप्रार्श्व (सं० क्ली०) परिपार्श्व, नैकट्य।

परप्री (सं० त्रि०) प्रौढ़, तर्पण, क्षिप्र, कटुत्तरपद-प्रकृतिस्वरत्व। प्रीणयिता, सब प्रकारसे संतुष्ट करने-वाला।

परिप्रुष् (सं० त्रि०) परि-प्रुष-क्विप्। परितः गन्ता।

परिप्रेप्सु (सं० त्रि०) परि-प्र आप सन्-उ। १ पानेमें इच्छुक। २ परिपालनमें अभिलाषी। ३ इच्छुक, अभिलाषी।

परिप्रेषण (सं० क्ली०) परि-प्रेष-ल्युट्। १ चारों ओर भेजना, जिधर इच्छा हो उधर भेजना। २ निर्वासन, किसी विशेष स्थान या देशसे निकाल देना। ३ परि-त्याग देना।

परिप्रेषित (सं० त्रि०) परि-प्रेष-क्त। १ प्रेरित, भेजा हुआ। २ निर्वासित, निकाला हुआ। ३ परित्यक्त, त्यागा हुआ।

परिप्रेष्य (सं० पु०) परि-प्रेष-यत्। १ परिचर, दास, टहलुआ। (त्रि०) २ प्रेरणयोग्य, भेजने लायक।

परिप्लव (सं० त्रि०) परि-प्लु-अच्। १ अस्थिर, चंचल, कांपता हुआ। २ गतियुक्त, चलता हुआ, बहता हुआ। (पु०) ३ प्लावन, बाढ़। ४ अत्याचार, जुल्म। ५ नौका, नाव। पुराणानुसार एक राजकुमारका नाम जो सुखीनल राजाका लड़का था।

परिप्लवमान (सं० त्रि०) पानीमें बहनेवाला।

परिप्लवा (सं० स्त्री०) परि-प्लव-टाप्। यज्ञीय दर्वीभेद, यज्ञमें काम आनेवाली एक प्रकारकी करछी या चिमचा।

परिप्लाव्य (सं० अव्य०) १ प्लावित होना। २ जलमें डुबोना।

परिप्लुत (सं० त्रि०) परि-प्लु-क्त। १ प्लावित, डूबा हुआ। २ आर्द्र, भीगा हुआ। ३ कम्पित, कांपता हुआ। (क्ली०) ४ लम्फ, फलांग, छलांग।

परिप्लुता (सं० स्त्री०) १ मदिरा, शराब। २ मैथुन-वेदनायुक्त स्त्री-अङ्गभेद, वह योनि जिसमें मैथुन या मासिक रजःस्रावके समय पीड़ा हो।

परिप्लुष्ट (सं० त्रि०) जला हुआ, भुना हुआ।

परिप्लोष (सं० पु०) १ जलन, दाह। २ जलना, भुनना, तपना। ३ शरीरके भीतरकी गरमी।

परिफुल्ल (सं० त्रि०) १ सम्यक् विकसित, खूब खिला

हुआ। २ खूब खुला हुआ, अच्छी तरह खुला हुआ। ३ रोमाञ्चयुक्त, जिसके रोंगटे खड़े हों।

परिबन्धन (सं० क्लो०) चारों ओरसे बांधना, अच्छी तरह बाँधना, जकड़ कर बांधना।

परिबर्ह (सं० पु०) परिबर्ह।

परिबर्ह (सं० पु०) परिबृह्यतेऽनेन बर्ह-घञ्। १ राजाओंके हाथी घोड़ों पर डाली जानेवाली झूल। २ राजाके छत्र, चंवर आदि, राजचिह्न या राजाका साज सामान। ३ निरर्थके व्यवहारकी वस्तुएं, वे चीजें जिनको गृहस्थोंमें अत्यावश्यकता हो। ४ सम्पत्ति, दौलत, माल असबाब।

परिबर्हण (सं० क्लो०) परि-बर्ह ल्युट्। १ राजाङ्ग हस्ति-अश्वपरिच्छदादि, राजाओंके हाथी घोड़ों पर डाली जानेवाली झूल। २ परिवृद्धि, समृद्धि, बढ़ती। ३ पूजा, उपासना।

परिबर्हवत् (सं० पु०) उपकरण वचन।

परिबाध (सं० स्त्री०) चारों ओर बाधा।

परिबाधा (सं० स्त्री०) १ पीड़ा, कष्ट, बाधा। २ श्रान्ति, श्रम, मिहनत।

परिबारद्वीप—भारतमहासागरस्थ एक द्वीप। यहांके अधिवासी पपुआवासियोंके जैसे देखनेमें लगते हैं, किन्तु अपेक्षाकृत खर्वाकार होते हैं।

परिबृंहण (सं० क्लो०) परि-बृंह-ल्युट्। १ समृद्धि, उन्नति, बढ़ती। २ अङ्गीभूत शास्त्र या ग्रन्थ, वह ग्रन्थ अथवा शास्त्र जो किसी अन्य ग्रन्थ या शास्त्रके विषयकी पूर्त्ति या पुष्टि करता हो।

परिबृंहित (सं० त्रि०) १ समृद्ध, उन्नत। २ अङ्गीभूत, किसीसे जुड़ा या मिला हुआ।

परिबृढ़ (सं० त्रि०) यथेष्ट, काफी। २ युक्त, मिला हुआ। ३ कर्त्ता, श्रेष्ठ।

परिबृढ़तम (सं० क्लो०) १ ब्रह्म। २ श्रेष्ठतम।

परिबोध (सं० पु०) परि-बुध-घञ्। ज्ञान।

परिबोधन (सं० क्लो०) १ दण्डकी धमकी दे कर कोई विशेष कार्य करनेसे रोकना, चिताना। २ ऐसी धमकी या भयप्रदर्शन, चितावनी।

परिबोधना (सं० स्त्री०) परिबोधन।

परिभक्ष (सं० त्रि०) परद्रव्य-भक्षणकारी, दूसरोंका माल खानेवाला।

परिभक्षण (सं० क्लो०) परि-भक्ष-ल्युट्। सम्पूर्ण रूपसे भोजन, बिलकुल खा डालना, सफाचट कर देना।

परिभक्षा (सं० स्त्री०) आपस्तम्ब सूत्रके अनुसार एक विशेष विधान।

परिभक्षित (सं० त्रि०) परि-भक्ष-क्त। १ खाद्यादिसे वञ्चित। २ क्षयप्राप्त, कृतभक्षण।

परिभग्न (सं० त्रि०) परि-भञ्ज क्त। कृतभञ्जन।

परिभङ्ग (सं० पु०) सर्वतोभावसे भङ्ग, चूर चूर।

परिभय (सं० पु०) परि-भी-अप्। अत्यन्त भय।

परिभर्त्सन (सं० क्लो०) तिरस्करण, भयप्रदर्शन।

परिभव (सं० पु०) परि-भू अप्। १ अनादर, तिरस्कार, अवज्ञा। २ पराजय, पराभव।

परिभवन (सं० क्लो०) परि-भू ल्युट्। परिभव, अनादर या तिरस्कार करना।

परिभवनीय (सं० त्रि०) परि-भु-अनीयर्। पराभव-योग्य।

परिभविन् (सं० त्रि०) परि-भूताच्छील्ये इनि। परि-भवनशील, अपमानकारी, तिरस्कार करनेवाला।

परिभाव (सं० पु०) परि-भू-घञ् (परौभुवोऽवज्ञाने। पा ३।३।५५) परिभव, अनादर, तिरस्कार।

परिभावन (सं० क्लो०) १ संयोग, मिलन, मिलाप। २ चिन्ता, फिक्र।

परिभावना (सं० स्त्री०) १ चिन्ता, सोच, फिक्र। २ साहित्यमें वह वाक्य या पद जिससे कुतूहल या अतिशय उत्सुकता सूचित अथवा उत्पन्न हो। नाटकमें ऐसे वाक्य जितने अधिक हों उतना ही अच्छा समझा जाता है।

परिभाविन् (सं० त्रि०) परि-भू ग्रहादित्वात् भूतेऽर्थे णिनि। १ सर्वतोभावसे परिभवयुक्त, तिरस्कृत या अपमानित। (पु०) २ तिरस्कार या अपमान करनेवाला।

परिभाष् (सं० स्त्री०) परि-भाष् क्विप्। १ उत्साहित करना। २ कोई बात कहना। ३ परामर्श देना।

परिभाषक (सं० त्रि०) निन्दक, निन्दा द्वारा किसीका अपमान करनेवाला, बदगोई करनेवाला।

परिभाषण (सं० स्त्री०) परि-भाष-ल्युट्। १ सनिन्द उपालम्भ, निन्दा करते हुए उलाहना देना। २ ऐसा उलाहना जिसके साथ निन्दा भी हो, लानत मलामत, फटकार। मनुस्मृतिके अनुसार गर्भिणी, आपद्ग्रस्त, वृद्ध और बालकको और किसी प्रकारका दण्ड न दे कर केवल परिभाषणका दण्ड देना चाहिए। ३ बोलना चालना या बातचीत करना, भाषण, आलाप। ४ नियम, दस्तूर, कायदा।

परिभाषणीय (सं० त्रि०) परि भाष-अनीयर्। परिभाषणके योग्य, भर्त्सनीय, निन्दाके लायक।

परिभाषा (सं० स्त्री०) परि-भाष-अच् ततष्टाप्। १ परिष्कृत भाषण, स्पष्ट कथन, संशयरहित कथन या बात। २ पदार्थविवेचनायुक्त अर्थकथन, किसी शब्दका इस प्रकार अर्थ करना जिसमें उसकी विशेषता और व्याप्ति पूर्णरीतिसे निश्चित हो जाय। पर्याय—प्रज्ञप्ति, शैली, सङ्केत, समयकार। परिभाषा संक्षिप्त और अति व्याप्ति, अव्याप्ति रहित होनी चाहिये। जिस शब्दकी परिभाषा हो वह उसमें न आना चाहिये। जिस परिभाषामें ये दोष हों वह शुद्ध परिभाषा नहीं होगी बल्कि दुष्ट परिभाषा कहलावेगी। ३ किसी शास्त्र, ग्रन्थ, व्यवहार आदिकी विशिष्ट संज्ञा, ऐसा शब्द जो शास्त्र विशेषमें किसी निर्दिष्ट अर्थ या भावका संकेत मान लिया गया हो, पदार्थविवेचकों या शास्त्रकारोंकी बनाई हुई संज्ञा। जैसे, गणितकी परिभाषा, वैद्यककी परिभाषा, जुलाहोंकी परिभाषा। वैद्यक वा वेदान्त शास्त्रज्ञानकी सुविधाके लिये परिभाषाका जानना आवश्यक है। जिन सब शब्दोंके ग्रन्थविशेषमें जो निर्दिष्ट अर्थ परिकल्पित हुआ है, उसीको परिभाषा कहते हैं।

दीप जिस प्रकार अन्धकारको नाश कर प्रकाश देता है, उसी प्रकार परिभाषा द्वारा कठिनसे कठिन शब्दोंका अर्थ अनायास मालूम हो जाता है वक्ता अपना आशय पारिभाषिक शब्दोंमें प्रकट करे, ऐसी बोल चाल जिसमें शास्त्र या व्यवसायकी विशेष संज्ञाएं काममें लाई गई हों। ५ सूत्र लक्षण विशेष, सूत्रके छः लक्षणोंमेंसे एक। ६ निन्दा, परिवाद, शिकायत, बदनामी।

परिभाषित (सं० त्रि०) परि-भाष-क्त। कथित, जो अच्छी तरह कहा गया हो। २ जिसकी परिभाषा की गई हो।

परिभाषिन् (सं० त्रि०) परि-भाष-इनि। कथनयुक्त, बोलनेवाला।

परिभाष्य (सं० त्रि०) कहनेयोग्य, बताने लायक।

परिभुक्त (सं० त्रि०) परि-भुज-क्त। उपभुक्त, जिसका भोग किया जा चुका हो।

परिभू (सं० त्रि०) परि-भू क्विप्। १ सर्वतोभावसे व्याप्तियुक्त, जो चारों ओरसे घेरे या आच्छादित किये हो। २ नियामक। ३ परिपालक। यह शब्द ईश्वरका विशेषण है।

परिभूत (सं० त्रि०) परि-भू-क्त। १ तिरस्कृत, जिसका तिरस्कार किया गया हो। २ अनादृत, जिसका अनादर किया गया हो। पर्याय—अवगणित, अवमत, अवज्ञात, अवमानित, अभिभूत, अप्रस्तुत। ३ पराजित, हारा या हराया हुआ।

परिभूति (सं० स्त्री०) परि-भू-क्तिन्। १ परिभाव, निरादर, तिरस्कार। २ श्रेष्ठता।

परिभूषण (सं० पु०) १ सजानेकी क्रिया या भाव, सजावट या सजाना। २ वह शान्ति जो किसी विशेष प्रदेश या भूखण्डका राजस्व किसीको दे कर स्थापित की जाय। ३ ऐसी शान्ति या सन्धिकी स्थापना।

परिभूषित (सं० त्रि०) शृङ्गाररहित, सजाया हुआ, बनाया या संवारा हुआ।

परिभेद (सं० पु०) शस्त्रादिका आघात, तलवार तीर आदिका घाव, जख्म।

परिभेदक (सं० त्रि०) १ भेदनकारी, काटने फाड़ने या छेदनेवाला। (पु०) २ खूब गहरा घाव करनेवाला मनुष्य या हथियार।

परिभोक्तृ (सं० त्रि०) १ जो दूसरेके धनका उपभोग करे। २ जो गुरुके धनका उपभोग करे।

परिभोग (सं० पु०) परि-भुज-घञ्। १ उपभोग, भोग। २ स्त्री-प्रसङ्ग, मैथुन।

परिभ्रंश (सं० पु०) १ विच्युति, पतन, गिराव या गिरना। २ पलायन, भागना।

परिभ्रंशन (सं० क्ली०) परिच्युति, स्खलन।

परिभ्रम (सं० पु०) परि-भ्रम-अच् । १ पर्यटन, भ्रमण, भटकना । २ किसी वस्तुके प्रसिद्ध नामको छिपा कर उपयोग, गुण, सम्बन्ध आदिसे उसका संकेत करना, सीधे सीधे न कह कर और प्रकारसे कहना । ३ भ्रम, भ्रांति, प्रमाद ।

परिभ्रमण (सं० क्ली०) परि-भ्रम-ल्युट । १ पर्यटन, इधर उधर टहलना, भटरगश्ती करना । २ घूमना, चक्कर खाना । ३ परिधि, घेरा ।

परिभ्रष्ट (सं० त्रि०) १ च्युत, पतित, गिरा हुआ । २ पलायित, भागा हुआ ।

परिभ्रामी (सं० त्रि०) परिभ्रमण करनेवाला, भटकनेवाला ।

परिमण्डल (सं० पु०) परि सर्वतो मण्डलं । १ वर्त्तुलाकार, गोल । २ परमाणुपरिमाण, जिसका मान परमाणुके बराबर हो । (पु०) ३ पुरुषविशेष । ४ मशक, एक प्रकारका विषैला मच्छर । (स्त्री०) ५ लक्षणान्वित रमणीविशेष । ६ पर्वतविशेष । ७ गोलाकार वा आवर्त्त विशिष्ट । ८ चन्द्रमाके चारों ओरकी ज्योतिश्छटा । ९ परिधि, घेरा, दायरा ।

परिमण्डलकुष्ठ (सं० पु०) एक प्रकारका महाकुष्ठ, मण्डलकुष्ठ ।

परिमण्डलता (सं० स्त्री०) परिमण्डल-भावे-तल् । वर्त्तुलता, गोलाई ।

परिमण्डलित (सं० त्रि०) परिमण्डलोऽस्य सञ्जातः परिमण्डल तारकादित्वादि तच् । गोलाकार आवर्त्तविशिष्ट ।

परिमन्थर (सं० त्रि०) अत्यन्त मन्द, धीरा या धीमा ।

परिमन्द (सं० त्रि०) १ परिश्रान्त, बहुत थका हुआ । २ अत्यन्त क्लान्त, अत्यन्त शिथिल या सुस्त ।

परिमन्दता (सं० स्त्री०) क्लान्तिजनकता, ग्लानि, अवसाद ।

परिमन्यु (सं० त्रि०) कोपपरिवृत, क्रोधसे भरा हुआ ।

परिमर (सं० पु०) परिम्रियतेऽस्मिन् परि-मृ-आधारे अप् । वायु, हवा ।

परिमर्द (सं० पु०) परि-मृद-भावे घञ् । १ घर्षण । २ नाशन । ३ हिंसन ।

परिमर्दन (सं० क्ली०) परि-मृद-ल्युट् । परिमर्द ।

परिमर्श (सं० पु०) परि-मृश-घञ् । १ घर्षण । २ परामर्श, विचार ।

परिमर्ष (सं० पु०) ईर्ष्या, कुढ़न, चिढ़ ।

परिमल (सं० पु०) परिमलते सुगन्धि पार्थिवकणां धरतीति मल-अच । १ विमर्दन, मलनेका कार्य । २ वह सुगन्धि जो कुङ्कुम आदि सुगन्धित पदार्थोंके मले जानेसे उत्पन्न हो । ३ कुङ्कुमादि मर्दन, कुङ्कुम आदिका मलना या उबटना । ४ उत्तम गन्ध, सुवास, खुशबू । ५ पण्डित समूह, पण्डितोंका समुदाय । ६ मैथुन, संभोग, सहवास । ७ एक ग्रन्थकार । क्षेमेन्द्रने इसका नामोल्लेख किया है ।

परिमलज (सं० त्रि०) सम्भोगजनित सुख, जो सुख मैथुनसे प्राप्त हो ।

परिमाण (सं० क्ली०) परिमीयतेऽनेन, परि-मा-करणे ल्युट् । माप, वह मान जो नाप या तौलके द्वारा जाना जाय ।

नैयायिकोंके मतसे मानव्यवहारका कारण ही परिमाण है, परिमित व्यवहारके असाधारण कारणको ही परिमाण कहते हैं । यह चार प्रकारका है—अणु, महत्, दीर्घ और ह्रस्व । अनित्य परिमाण संख्याके लिये आता है । द्व्यणुकादिका जो परिमाण है, वह अनित्य है, क्योंकि यह संख्याजन्य है । परमाणुका परिमाण द्व्यणुकादिके परिमाणका प्रतिकारण नहीं है ।

जिस उपायसे तरल अथवा कठिन द्रव्यकी उपयुक्त माप जानी जाती है, उसीको परिमाणविद्या कहते हैं ।

भारतीय आर्योंके मध्य स्मरणातीत कालसे परिमाण प्रसङ्ग पाया जाता है । मनुष्य जितने ही सभ्य होते हैं, सामाजिक हिसाब किताबमें वे उतने ही विशेष नियम रखते हैं । इस प्रकार जब आर्य सभ्यता बढ़ने लगी थी, उस समय वाणिज्यमें चारों ओर सुशृङ्खलता स्थापनके लिये उनके मध्य परिमाणके नाना उपाय उद्भावित हुए थे । किसी किसी यूरोपीय पण्डितका विश्वास है, कि मिस्रवासियोंसे ही भारतीय आर्योंने मापका उपाय पहले पहल सीखा । फिर किसीका कहना है, कि अनेक माप द्राविड़ोंके संस्रवसे आर्य द्वारा उद्भावित हुई हैं । किन्तु अनुसन्धान द्वारा ऐसा जाना गया है,

कि भारतमें जो परिमाण प्रचलित हैं, वे भारतीय आर्यों-से ही कल्पित हुए हैं।

ऋक्‌संहितामें (६।४७।२२-२३ ऋकमें) 'कोश' और 'कोशयो' शब्दका उल्लेख है। यथा—

"प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात्।"

हे इन्द्र! प्रस्तोकने तुम्हारे स्तवकारोंको (मुझे) सुवर्णपूर्ण दश कोश और दश अश्व दिये हैं।

"दशाश्वान् दश कोशान् दश वस्त्राधिभोजना।
दशहिरण्यपिण्डान् दिवोदासादसानिषं॥"

हमने दिवोदाससे दश अश्व, दश सुवर्णकोश, वस्त्र, प्रचुर भोज्य और दश हिरण्यपिण्ड पाये हैं।

उपरोक्त दो ऋकोंमें 'कोश' और 'कोशयो' शब्दका जो उल्लेख है उससे किसी निर्दिष्ट वजन या मापका बोध होता है (१)। विशेषतः अन्तमें दश हिरण्य-पिण्डका उल्लेख रहनेसे कोई विशेष सन्देह नहीं होता।

ऋक्‌संहिता और अथर्वसंहितामें 'निष्क' शब्दका उल्लेख देखनेमें आता है (२)। सायणाचार्यने 'निष्क' शब्दका अर्थ 'हार' लगाया है (३) किन्तु इधर बहुत पहलेसे ही निष्क शब्दसे विशेष वजनकी सुवर्ण मुद्राका ही बोध होता था। अभी जिस तरह मोहरकी माला बहुतसे लोग गलेमें पहनते हैं, उसी तरह वैदिक समयमें निष्ककी माला पहनी जाती थी। यह 'निष्क' शब्द देख कर भी प्राचीन मुद्रा-परिमाणका बहुत कुछ आभास पाया जाता है (४)।

वेदसंहिता विषयकर्म निर्वाहके लिये आविर्भूत नहीं हुई है, इसीसे श्रुतिके मध्य परिमाणका प्रकृष्ट उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं हुई। लेकिन शुक्ल यजुर्वेदीय शतपथब्राह्मणमें (१२।७।२) "हिरण्यं सुवर्णं शतमानम्" और माधवके कालनिर्णयधृत "सुवर्णशलाकानि यवत्रय परिमितानि" इत्यादि श्रुतिवाक्य द्वारा वैदिक कालमें जो परिमाणकी प्रथा प्रचलित थी उससे और कुछ भी सन्देह रहने नहीं पाता। शतपथब्राह्मणमें जो 'शतमान' शब्द है, मनुसंहितामें वह परिमाणविशेष है। कात्यायनके वार्त्तिकमें भी इस शतमानका उल्लेख है। माधवाचार्यने जो 'सुवर्णशलाका'का उल्लेख किया है, कोई कोई अनुमान करते हैं कि वही भारतकी प्राचीन छेनी काटनेकी मुद्रा है। आज भी तेलगू भाषामें 'शलाकु' शब्दसे मुद्राचिह्न समझा जाता है।

पाणिनिका एक सूत्र है, "रूपादाहतप्रशंसयोर्यप्।" (५।२।१२०) अर्थात् आहत वा प्रशंसार्थमें रूप शब्दके उत्तर मत्वर्थमें यप् प्रत्यय होता है। यहां आहतरूप्य अर्थात् रुपयेके जैसा द्रव्य समझा जाता है। काशिकाकारने भी लिखा है, कि 'आहतं रूपमस्य, रूप्यो दीनारः।' इस 'रूप्य'-से ही यहांका रूपी या रुपया हुआ है। मुद्रा शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

उपरोक्त प्रमाण द्वारा बहुत कुछ जाना जाता है, कि निर्दिष्ट आकार वा वजनकी मुद्रा वैदिक समयमें प्रचलित थी। वैदिककालमें होमादि कार्यके लिये घृतका विशेष प्रयोजन पड़ता था, इसीसे वैदिक ग्रन्थोंमें घृतका परिमाण स्पष्ट रूपसे लिखा है—

"घृतप्रमाणं वक्ष्यामि माषकं पञ्चकृष्णलम्।
मासकानि चतुःषष्टि पलमेकं विधीयते॥
द्वात्रिंशत्पलिकं प्रस्थं मागधैः परिकीर्त्तितम्।
आढकस्तु चतुःप्रस्थं चतुर्भिर्द्रोणमाढकैः॥
द्रोणप्रमाणं विज्ञेयं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।
द्वादशास्यधिकैर्नित्यं पलानां पञ्चभिः शतैः॥"

घृतका परिमाण—

५ कृष्णल (रत्ती) =१ माष··· (प्रायः ८·७५ ग्रेन)
६४ माषक= १ पल ······ (५६० ग्रेन)
३२ पल=१ मागधप्रस्थ (१७९२० ग्रेन)
४ मागधप्रस्थ=१ आढक (७१६८० ग्रेन)
४ आढक = १ द्रोण (२८६७२० ग्रेन)

---

(१) औरङ्गजेबके समयमें भ्रमणकारी वर्णियर जब इस देशमें आये थे, उस समय भी इसी प्रकारका निर्दिष्ट वजन प्रचलित था।

(२) निष्कं वा घा कृणवते स्रजं वा दुहितर्दिवः।
(ऋक् ८।४७।१५)
"कृत्यां कृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रतिमुञ्चत।"
(अथर्वस० ८।१४।३)

(३) "निष्कं हारं।" (ऋग्भाष्य २।३३।१०)

(४) पाणिनिने भी "शतसहस्रान्ताच्च निष्कात्" (५।२।११९) इस सूत्रमें निष्कमुद्राका उल्लेख किया है।

मनु, याज्ञवल्क्य आदिकी स्मृति और बहुपुराण ग्रन्थमें विभिन्न द्रव्योंके परिमाणका विषय विस्तृत भावसे वर्णित है। मनु (८।१३२-१३६), याज्ञवल्क्य (१।३६१) और नारदने संख्यापरिमाण जो निर्णय किया है वह इस प्रकार है—

८ त्रसरेणु = १ लिक्षा।
३ लिक्षा = १ राजसर्षप।
३ राजसर्षप = १ गौरसर्षप।
६ गौरसर्षप = १ यव।
३ यव = १ कृष्णल (रत्ती वा गुंजा)

वैद्यकमें संख्यापरिमाण इस प्रकार लिखा है—

३० परमाणु = १ त्रसरेणु वा वंशी
८६ वंशी = १ मरीचि (सूर्यकिरण)
६ मरीचि = १ राजिका।
८ सर्षप = १ यव।
४ यव = १ गुंजा (रत्ती)

सुश्रुतमें पल-कुडवादि परिमाण इस प्रकार लिखा है—

१२ धान्य = १ माषा वा सुवर्णमाषा।
१६ माषा = १ सुवर्ण।
२१ माषा = १ धरण।
३॥ धरण = १ कर्ष।
४ कर्ष = १ पल।
४ पल = १ कुड़व।
४ कुड़व = १ प्रस्थ।
४ प्रस्थ = १ आढ़क।
४ आढ़क = १ द्रोण।
१०० पल = १ तुला।
२० तुला = १ भार। मतान्तरसे
१० भारका १ आचित।

ज्ञानयोगीश्वरके मतसे १० आधारका एक भार होता है।

मनु और याज्ञवल्क्यादिके मतसे सुवर्णका परिमाण—

५ कृष्णल = १ माष।
१६ माष = १ कर्ष, अक्ष (तोला)।
४ कर्ष = १ पल (निष्क)।
१० पल = १ धरण।

याज्ञवल्क्यके मतसे ५ सुवर्णका एक पल।

उक्त स्मृतिकारोंके मतसे रजतपरिमाण—

२ रक्तिका = १ माषक।
१६ माषक = १ धरण वा पुराण।
१० धरण = १ शतमान वा पल।
८० रक्तिका = १ पण वा कार्षापण।

नारदके मतसे २० माषका एक कार्षापण और बृहस्पतिके मतसे २० माषका एक पल होता है। सुतरां ४ प्रकारका माष पाया जाता है—५ रक्तिका एक प्रकारका माष, (नारदके मतसे) ४ रत्तीका एक माष, (बृहस्पतिके मतसे) १६ रक्तिकाका एक माष और चतुर्थ प्रकारका माष २ रक्तिकाका होता है।

किसीके मतसे ५ सुवर्णका और किसीके मतसे १५० सुवर्णका एक निष्क होता है। १०८ सुवर्ण वा तोलकका एक अलङ्कार, पल वा दीनार माना गया है।

गोपालभट्टने स्मृतिसे मणिकार (जौहरी) का परिमाण इस प्रकार संग्रह किया है—

६ राजिका = १ माषक वा हेम धानक।
४ हेमधानक = १ मल, धरण वा टङ्क।
२ टङ्क = १ कोण।
२ कोण = १ कर्ष।

पुराणादिमें धान्यादिका परिमाण लिखा है, किन्तु सभी पुराणोंमें एक-सा नहीं है।

वराहपु०के मतसे—	भविष्य और स्कन्दके मतसे—
१ मुष्टि = १ पल	२ पल = १ प्रसृति।
२ पल = १ प्रसृति	२ प्रसृति = १ कुड़व।
८ मुष्टि = १ कुञ्चि	४ कुड़व = १ प्रस्थ।
८ पुष्कल = १ आढ़क	४ प्रस्थ = १ आढ़क।
४ आढ़क = १ द्रोण	४ आढ़क = १ द्रोण।
	२ द्रोण = १ कुम्भ।

भविष्यके मतसे १६ द्रोणका १ खारी, स्कन्दके मतसे २० द्रोणका एक कुम्भ और १० कुम्भकी १ वाह होता है।*

* संस्कृतविद् कोलब्रुक साहब कृष्णलसे अंगरेजी Com की उत्पत्ति बतलाते हैं। उन्होंने लिखा है, कि १८ इञ्चका १

वराहपुराणमें प्रस्थका चौथाई भाग 'सेतिका' नामसे वर्णित है। हेमाद्रिके मतसे सेतिका कुड़वका हो नामान्तर है। समयप्रदोप स्मृतिसार, रत्नाकर और कल्पतरु आदि निबन्धकारियोंके मतसे सेतिका कुड़वके हो समान है, लेकिन १२ प्रसृतिका एक कुड़व होता है। लक्ष्मोधरने स्पष्ट लिखा है: कि साधारण मनुष्यको १२ अञ्जलि प्रमाणका नाम कुड़व है। वाचस्पति मिश्रने भो यहो स्वीकार किया है। कुल्लूकभट्टके २० द्रोणका एक कुम्भ स्वीकार करने पर भो उनके मतसे २०० पलका एक द्रोण होता है। जातुकर्णके मतसे ५१२ पलका एक कुम्भ, रत्नाकरके मतसे २० प्रस्थ और दानविवेकके मतसे १००० पलका १ कुम्भ होता है।

बृहत्राजमार्त्तण्डमें एक परिमाणका उल्लेख है जो कहीं भो नहीं मिलता। यथा—

२० तोलकका १ सेर, २ सेरका १ प्रभ।

आईन इ-अकबरीमें लिखा है, कि भारतके किसो किसी स्थानमें पहले १८ दामका १ सेर और किसो स्थानमें २२ दामका १ सेर चलता था। किन्तु अकबरके राज्यारम्भमें २८ दामका सेर हुआ। पोछे सम्राट्ने ३० दामका एक सेर ठोक कर दिया। २० माष वा ५ टङ्कका १ दाम, मतान्तरसे २० माष ७ रत्तिकाका १ दाम होता है। इस हिसावसे राजमार्त्तण्डवार्णित सेर और आईन-इ-अकबरोका सेर एक हो समझा जाता है।

भविष्य, स्कन्द और पद्मपुराणमें जो माप वर्णित हैं वह एक समय मिथिलामें प्रचलित थो ऐसा चण्डेश्वरके संग्रहसे जाना जाता है। द्रोणके सिवा चण्डेश्वरने और भो कई परिमाणोंका उल्लेख किया है। यथा—

४ द्रोण = १ माणिका।

४ माणिका = १ खारो।

२० खारो = १ वाह।

गोपालभट्टने एक और प्रकारका धान्यपरिमाण उद्धृत किया है—

४ आयु: = १ प्राच ?

४ प्राच ? = १ विल्व।

४ विल्व = १ कुड़व।

४ कुड़व = १ प्रस्थ।

४ प्रस्थ = १ खारो*।

४ गोणो = १ द्रोणिका।

भू-परिमाणके सम्बन्धमें मार्कण्डेयपुराण (४९।३७-३८)-में इस प्रकार लिखा है,—

११ † परमाणु = १ त्रसरेणु।

११ त्रसरेणु = १ महोरजः।

११ महोरजः = १ वालाग्र (केशाग्र)

११ वालाग्र = १ लिक्षा।

११ यूका = १ यवोदर।

११ यवमध्य = १ अङ्गुल।

६ अङ्गुल = १ पद।

२ पद = १ वितस्ति।

२ वितस्ति = १ हस्त।

४ हस्त = १ धनुर्दण्ड।

हाथ होनेसे ५८३२ घन इञ्चका १ खारो होता है। सुतरां १ खारी = २ बुसल, २ पेक और १ २/३ गेलन। इस हिसावसे १ कुम्भ = १ १/४ खारी = ३ बुसल और ३ गेलन। लक्ष्मीधरकी स्मृतिकल्पतरुके मतसे ३ १/२ तोलकका १ पल और १ खारीका वजन १४३३६ तोलक = २१५ पौंड (Avoirdupois) तथा १ कुम्भका वजन १७९२० तोलक = १६८ पौंड। इस प्रकार एक वाहका वजन प्राय: १ टनके बराबर होता है।

* लीलावतीटीकामें लिखा है—'किसी पात्रके चारों ओरका परिसर एक एक हाथ करके होनेसे उसे घनहस्त कहते हैं। मगधमें इसका नाम है 'खारोक' जो षडकोणी हुआ करता है। उत्कलका खारोक गोदावरीके दक्षिणांशमें प्रचलित है। वहां १६ द्रोणका एक खारी, ४ आढकका १ द्रोण, ४ प्रस्थका १ आढक और ४ कुड़वका १ प्रस्थ होता है। कुड़व घनहस्ताकार होगा, इसका ३ १/२ अंगुलि करके परिसर रहेगा और मृत्तिका अथवा तद्वत् किसी द्रव्यका बना होगा।'

इस हिसावसे कुड़व १३ १/२ घन अङ्गुलका होता है। किन्तु लक्ष्मीधरने कल्पतरुमें लिखा है,—कुड़वका विस्तार ४ अङ्गुलि और गभीरता भी उतनी ही है, इस प्रकार १ कुड़व ६४ घनअङ्गुलका होता है।

† कोलब्रूक साहबने जो मार्कण्डेयपुराणका वचन उद्धृत किया है, उसमें परमाणुसे ले कर यवमध्य पर्यन्त ११ स्थानोंमें ८ संख्या निर्दिष्ट है। (Colebroke's Essays, Vol.I. p. 536)

२ धनुक = १ नाड़िका।

२००० धनु = १ गव्यूति।

४ गव्यूति = १ योजन।

मार्कण्डेयपुराणके अन्य एक स्थानमें लिखा है—

२१ अङ्गुष्ठ = १ अरत्नि।

१० अङ्गुष्ठ = १ प्रादेश।

आदित्यपुराणके मतसे २ अरत्नि = १ किष्कु।

हारीतके मतसे किष्कु और हस्त एक है, ४ किष्कु = १ लव।

किन्तु आदित्यपुराणके मतसे ३० धनुका १ लव, २००० धनुका १ क्रोश, २ क्रोशको १ गव्युति, २ गव्युतिका १ योजन और विष्णुपुराणके मतसे १००० धनुका १ कोस होता है। किन्तु गोपालभट्टने प्राचीनमतका उद्धृत करके लिखा है, 'विदेशीय भ्रमणकारिगण ४००० धनुका १ योजन मानते हैं।' * लीलावतीमें इस प्रकार लिखा है—

८ यव = १ अङ्गुलि।

२४ अङ्गुलि = १ हस्त।

४ हस्त = १ दण्ड (= १ धनुः)

२००० दण्ड = १ कोस। १० हस्त = १ वंश।

४ कोस = १ योजन। २० वंश = १ निरङ्ग।

कालपरिमाण।

मनुके मतसे—	वराहपुराणके मतसे—
१८ निमेष = १ काष्ठा	६० क्षण = १ लव।
३० काष्ठा = १ कला।	६० लव = १ निमेष।
३० कला = १ क्षण।	६० निमेष = १ काष्ठा।
१२ क्षण = १ मुहूर्त्त।	६० काष्ठा = १ अतिपल।
३० मुहूर्त्त = १ अहोरात्र।	६० अतिपल = १ विपल।
१५ अहोरात्र = १ पक्ष।	६० विपल = १ पल।
२ पक्ष = १ मास।	६० पल = १ दण्ड।
२ मास = १ ऋतु।	६० दण्ड = १ अहोरात्र।
६ ऋतु = १ अयन।	६० अहोरात्र = १ ऋतु।
२ अयन = वत्सर।	

भविष्यपुराणके मतसे— १००० संक्रमको १ त्रुटि, १०० त्रुटिका १ तत्पर, ३ तत्परका निमेष।

सूर्यसिद्धान्तके मतसे	गोपालभट्टधृत विष्णुपुराणके मतसे—
६ प्राण = १ विकला।	६ प्राण = विनाड़िका।
६० विकला = १ दण्ड।	६० विनाड़िका = १ घटि।
६० दण्ड = १ दिन।	६० घटि = १ अहोरात्र।
	३० अहोरात्र = १ मास।
	१२ मास = १ वर्ष।

मुसलमानी अमलका वजन इस प्रकार था। (हफ़्तकुलजममें लिखा है)

१ यव = १ हब्बत (अर्थात् बीज)

२ हब्बत = १ तसु।

४ यव = १ किराट (कर्कट)

८ यव = १ दाङ्ग।

४८ यव = १ मिस्काल।

३०६ यव या ४¾ मिस्काल = १ अस्तर वा सीर (सेतक)।

७¾ मिस्काल = १ ओकोयत (औंस)

१२ मिस्काल = १ रटल (पौंड)।

२४ मिस्काल = १ मन।

१७ मन = २ कौलजत्।

---

* बौद्धशास्त्रवित् रिज डेभिडने नाना बौद्धग्रन्थोंसे इस प्रकार योजन परिमाण स्थिर किया है—

स्थानके नाम।	ग्रन्थमतसे दूरत्व।	वर्त्तमान दूरत्व।	प्रतियोजनमें कितना मील
काशीसे उरुबेल	१६ योजन	१२८ मील	८ मील।
काशीसे तक्षशिला	१२० योजन	८५० ,,	७¾ ,,
नलन्दासे राजगृह	१ योजन	८ ,,	८ ,,
कुशीनगरसे राजगृह	२५ ,,	१५० ,,	७ ,,
श्रावस्तीसे ,,	४५ ,,	२७५ ,,	७ ,,
गङ्गासे राजगृह	५ ,,	३५ ,,	८ ,,
अनुराधपुरसे दिदिविहार।	८ ,,	५४ ,,	७¾ ,,
अनुराधपुरसे श्रीपादशैल	१५ ,,	१०० ,,	७१॥ ,,

उपरोक्त प्रमाणानुसार यह जाना जाता है, कि पूर्वकालमें ७॥ से ८ मीलका १ योजन माना जाता था। (Rhys David's Ancient coins and Measures of Ceylon द्रष्टव्य)

वर्त्तमान समयमें इस देशमें जिस नियमसे संख्या परिमाणादि स्थिर किया जाता है, वह नीचे देते हैं—

४ कौड़ीका ऽ१ एक गंडा।
५ गंडेका ऽ।० एक पैसा।
२० गंडेका /) एक आना।
८० गंडेका ।०) चार आना।
१६ आनेका १) एक रुपया।

मुद्राविभाग।

२ अद्धीकी ऽ१ दमड़ी
२ दमड़ीका ऽ१ दुकड़ा वा छदाम
२ दुकड़ेका १ अधेला
२ अधेलेका १ एक पैसा।
२ पैसेका ऽ१० एक डबल पैसा या टका
२ डबल पैसेका /) एक आना।
२ आनेकी ॥) एक दुअन्नी।
२ दुअन्नीकी ।०) एक चवन्नी।
२ चवन्नीकी ॥) एक अठन्नी।
२ अठन्नीका वा ४ चवन्नीका १) एक रुपया।
१६ रुपयेकी १ एक मोहर (सोना)।

अंगरेजीमें ३ पाईका एक पैसा और १२ पाईका एक आना होता है।

कौड़ीका अठारह अंश माना गया है,—३ क्रान्तकी १ कौड़ी, ४ काकको एक कौड़ी, ५ वट्टकी १ कौड़ी, ६ ऋतुकी १ कौड़ी, ७ समुद्रकी १ कौड़ी, ८ वसुकी १ कौड़ी, ९ दन्तकी १ कौड़ी, १० दिक्की १ कौड़ी, ११ रुद्रकी १ कौड़ी, १२ सूर्यकी १ कौड़ी, १५ तिथिकी १ कौड़ी, १६ कलाकी १ कौड़ी, १७ शङ्खकी १ कौड़ी, २७ भोकी १ कौड़ी, १४ भुवनकी १ कौड़ी, १३ तम्बोलक १ कौड़ी, ८० तिलकी १ कौड़ी, ३२० रेणुकी १ कौड़ी, १२८० वहरकी १ कौड़ी।

अंगरेजी मुद्राका परिमाण।

४ फार्दिङ्गकी	१ पेनी।
१२ पेंसका	१ शिलिङ्ग।
५ शिलिङ्गका	१ क्राउन।
२० शिलिङ्गका	१ पौंड या साभरेन।
२१ शिलिङ्गकी	१ गिन्नी।

एक शिलिङ्ग करीब आठ आनेके बराबर होता है। एक फ्लोरिनका एक रुपया होता है।

वैद्यका वजन।

४ धानकी	१ रत्ती।
६ रत्तीका	१ आना।
१० रत्तीका	१ माशा।
८ माशेका	१ तोला

वैद्यका वजन छोड़ कर स्वर्ण रौप्य आदि तौलमें १२ माशेका एक तोला होता है।

डाक्टरी वजन।

२० ग्रेनका	१ स्क्रुपल।
३ स्क्रुपलका	१ ड्राम।
८ ड्रामका	१ औंस।
१२ औंसका	१ पौंड।

१८० ग्रेनका एक तोला सुतरां १ पौंड ३ तोला।

डाक्टरी औषधकी माप।

६० मिनिमका	१ ड्राम।
८ ड्रामका	१ औंस।
१६ औंसका	१ पाइण्ट।
१२ औंसका	१ छोटा पाइण्ट।

१ औंस करीब आध छटांकके और १ पाइण्ट करीब आध सेरके समान होता है।

देशीय प्रथासे साधारण द्रव्यादिका वजन।

४ चवन्नीका	१ तोला
५ तोलेकी	१ छटांक ऽ/
४ छटांकका	१ पाव ऽ।०
४ पावका	१ सेर ऽ१
५ सेरकी	१ पन्सेरी ऽ५
१० सेरकी	१ धरा।०
४ धारा या ८ पन्सेरी वा ४० सेरका	मन १ऽ

सेरका परिमाण सब जगह एक-सा नहीं है, कहीं ६० तोलेका, कहीं ८० तोलेका और कहीं १०० तोलेका सेर होता है। ८० तोलेका सेर पक्की और ६० तोलेका कच्चो सेर कहलाता है। पक्की वजनको छटांक = तोला।

भूमिकी माप।

२० फुरकीको	१ धुरकी।
२० धुरकीका	१ धूर।
२० धूरका	१ कट्ठा।
२० कट्ठेका	१ बीघा।

भूमिकी अंगरेजी रैखिक माप।

३ सूतका	१ जौ।
४ जौका	१ इञ्च वा बुसल।
१२ इञ्चका	१ फुट।
१॥ फुटका	१ हाथ।
३ फुट वा २ हाथका	१ गज।
१७६० गजका	१ मील।
२ मीलका	१ कोस।

६ गजका एक फादम् (जल मापनेका परिमाण), ५॥० गजका एक पोल, ४० पोलका एक फर्लाङ्ग, ८ फर्लाङ्गका एक मील, ३ मीलका एक लीग, ७$\frac{9}{2}$ या ७०९२ इञ्चका एक लिङ्क, २२ गजका एक चेन वा १०० लिङ्क (Link)।

लम्बाईका परिमाण।

३ खड़े या ८ पड़े जौका	१ अङ्गुल।
४ अङ्गुलको	१ मुट्ठो।
२ मुट्ठीका	१ बिलश्त।
२ बिलश्तका	१ हाथ = १८ इञ्च।
२ हाथका	१ गज।
२ गज वा ४ हाथका	१ दण्ड (धनु)
२००० दण्ड वा ८००० हाथ	१ कोस।
४ कोसका	१ योजन।

दूसरो रीति।

१ इलाही गज = ३३ इञ्च।

३ इलाही गजका	१ बाँस।
२० बाँसका	१ जरीब।

अंगरेजी भूमिकी वर्गमाप।

१४४ वर्ग इञ्चका	१ वर्ग फुट।
९ वर्ग फुटका	१ वर्ग गज।
१८० वर्ग फुटका	१ वर्ग पौवा।
७२० वर्ग फुटका	१ वर्ग कट्ठा।
१४४०० वर्ग फुटका	१ वर्ग बीघा।

४८४० वर्ग गज = एक एकड़, एक एकड़ = ३ बीघा ॥० कट्ठा, ६४० एकड़का एक वर्ग मील।

१७२८ घन इञ्चका	१ घनफुट।
२७ घनफुटका	१ घनगज।
१२८२४ घनअंगुलोका	१ घनहाथ।
८ घनहाथका	१ घनगज।

वस्त्रादिकी माप।

८ जौका	१ अङ्गुल।
३ अङ्गुलको	१ गिरह।
४ गिरहका	१ बित्ता।
८ गिरह या २ बित्तेका	१ हाथ।
२ हाथका	१ गज।

कागजका हिसाब।

जिस्ता ताव पचीसको, होत कबौं चौबीस।
दश जिस्ता गड्डी भई, रीमहिं जिस्ता बीस।

अर्थात्

२५ तावका	१ जिस्ता
१० जिस्तेकी	१ गड्डी
२० जिस्तेका	१ रीम
१० रीमका	१ बेल।

कभी २४ तावका भी एक जिस्ता होता है।

कलम आदिकी गणना।

१२ टायका	१ डजन।
१२ डजनका	१ ग्रोस।
२४ टायका	१ बण्डिल।
२० टायका	१ स्कोर।

कालपरिमाण

६० अनुपलका	१ विपल।
६० विपलका	१ पल।
६० पलका	१ दण्ड या घड़ी।
७॥ दण्डका	१ पहर।
८ पहर वा ६० दण्डका	१ दिन।
७ दिनका	१ सप्ताह।
२ सप्ताह वा १५ दिनका	१ पक्ष।

२ पक्ष वा ३० दिनका	१ महीना।
१२ महीनेका	१ वर्ष।
१२ वर्षका	१ युग।

अंगरेजी कालपरिमाण।

६० सेकेण्डका	१ मिनट।
६० मिनटका	१ घंटा।
२४ घंटेका	१ दिन।
७ दिनका	१ सप्ताह।
५२ सप्ताह और एक दिनका	१ वर्ष।

एक वर्षके प्रकृत समयका परिमाण ३६५ दिन ५ घंटा ४८ मिनट ४८ सेकेण्ड अथवा ३६५ दिन १५ दण्ड ३१ पल ५८ विपल होगा।

अंगरेजीमें द्रव्यादिकी वजनप्रणाली।

१६ ड्रामका	१ औंस।
१६ औंसका	१ पौंड।
१४ पौंडका	१ स्टोन।
२८ पौंडका	१ क्वार्टर।
४ क्वार्टरका	१ हण्ड्रेडवेट वा हंडर।
२० हंडरका	१ टन।

७२ पौंड = ३५ सेर, १ पौंड = ऽ॥० आध सेरसे कुछ कम (३८ भरी वजन), ४ औंस = आध छटांकसे कुछ कम (प्राय: २ भरी ७ आना), एक हंडर = १।४।)॥ एक मन चौदह सेर सात छटांकसे कुछ ज्यादा। १ टन = २७ मन ८ सेर १२ छटांक।

परिमाणक (सं॰ क्लो॰) परिमापक, दिग्दर्शन, बैरोमोटर यन्त्रादि।

परिमाणफल (सं॰ क्लो॰) क्षेत्रफल, भूमिके मध्यगत स्थानका परिमाण।

परिमाणवत् (सं॰ त्रि॰) परिमाण विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। परिमाणयुक्त, परिमाणविशिष्ट।

परिमाणिन् (सं॰ त्रि॰) परि-माण-इन्। परिमाणविशिष्ट।

परिमाता (सं॰ त्रि॰) नापनेवाला, पैमाइश करनेवाला।

परिमाद (सं॰ पु॰) परि-मद-घञ्। महाव्रतस्तोत्रके अन्तर्गत सोलह सामभेद।

परिमान (हिं॰ पु॰) परिमाण देखो।

परिमार्ग (सं॰ पु॰) परि-मृज-घञ्। परिमार्जना, परिष्कार करना।

परिमार्गण (सं॰ क्लो॰) अन्वेषण, खोजना या ढूंढ़ना।

परिमार्गितव्य (सं॰ त्रि॰) अन्वेषणीय, खोजने या ढूंढ़ने लायक।

परिमार्गिन् (सं॰ त्रि॰) अन्वेषणकारी, खोजने या खोजमें किसीके पीछे जानेवाला।

परिमार्ग्य (सं॰ त्रि॰) परि-मृज-ण्यत्। १ परिमृज्य, परिशोधनीय। २ अन्वेषणीय।

परिमार्ज (सं॰ त्रि॰) परि-मृज-घञ्। परिष्कार करना, साफ सुथरा करना, मांजना।

परिमार्जक (सं॰ त्रि॰) परिशोधक, धोने या मांजनेवाला।

परिमार्जन (सं॰ क्लो॰) परि-मृज-ल्युट्, ततो वृद्धिः। १ मधुमस्तक, एक विशेष मिठाई जो घी मिले हुए शहदके शीरेमें डुबाई हुई होती है। २ परिष्करण, परिशोधन, मांजना। ३ मधुतैलपाक।

परिमार्जित (सं॰ त्रि॰) १ धोया वा मांजा हुआ। २ परिष्कृत, साफ किया हुआ।

परिमित् (सं॰ स्त्री॰) घरके बोम वरगा आदि।

परिमित (सं॰ त्रि॰) परि-मा-क्त, परितो मितं वा। १ युक्त, मिला हुआ। २ परिमाणविशिष्ट, जिसका परिमाण हो वा ज्ञात हो। ३ कृतपरिमाण, तौला हुआ। ४ यथार्थ परिमाण, न अधिक न कम। ५ अल्प, थोड़ा, कम।

परिमितकथा (सं॰ त्रि॰) १ जो उचितसे अधिक न बोलता हो। २ अल्पभाषी, कम बोलनेवाला।

परिमिति (सं॰ स्त्री॰) परि-मा-क्तिन्। भूमिमानशास्त्र, क्षेत्रविद्या। ज्यामितिशास्त्रमें प्रतिपादित वस्तु (भूमि आदि)-का परिमाण निर्देश करनेके लिये इस ग्रन्थमें जिस प्रयोग द्वारा उन सब पदार्थोंका प्रकृत परिमाण वा आयतन क्या है, वही निर्दिष्ट हुआ है। किसी वस्तुके ऊपरी तल वा बहिर्देश, क्षेत्रफल, वस्तु वा जीव आदिकी आकृतिके व्यापकत्व अर्थात् उस उस वस्तु वा जीवने अपना अपना शरीरायतनप्रयुक्त कितना स्थान अधि

कार किया है, उसका घनपरिमाण और गृह,वाटिका, उद्यान आदिकी भूम्यादिका परिमाण इस शास्त्रानुसार निर्णीत होता है। ज्यामिति अथवा त्रिकोणमिति शास्त्र-निष्पादित अनेक प्रतिज्ञाएं आसानीसे परिमिति अङ्क विद्याकी सहायता द्वारा निष्पन्न की जा सकती हैं, किसी एक वस्तुका परिमाण निर्देश करनेमें उस जातिकी वस्तु का अन्य एक आंशिक विभाग लेना होता है। ज्यामिति शास्त्रमें उसे Magnitude वा आयतनांश और अङ्क-विद्यामें Measuring unit वा परिमाणांश कहते हैं। जिस प्रकार कोई एक निर्दिष्ट रेखा (Straight line) नापनेमें उस मापके परिमाणक १ इञ्च, १ लिङ्क अथवा १ फुट आदि परिमाणांशकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार किसी एक समतलक्षेत्रकी भूमिका परिमाण लेनेमें पहले उस भूमिका वर्गक्षेत्रफल (Square area) निकालना आवश्यक है। इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि एक एक क्षुद्र वर्गइञ्चकी परिमाण-समष्टिसे इसी प्रकार एक वृहत् जमीनका परिमाण स्थिर हुआ है। किसी एक चतुष्कोण वस्तुका, जिसकी लम्बाई १० इञ्च और चौड़ाई ५ इञ्च है, परिमाण स्थिर करनेमें लम्बाई द्वारा चौड़ाईको गुना करना होगा। इससे जो वर्गगुणफल (१०×५=५० वर्गइञ्च) होगा, वही उक्त वस्तुका आधार वा व्यापकायतन है।

एक जमीन कितना बीघा, कितना कट्ठा है वह जाननेमें ज्यामितिशास्त्रकी अवलम्बनीय समान्तररेखा, सरल रेखा, समकोणी त्रिभुज, पञ्चकोणी, षट्कोणी, अष्टकोणी, वृत्त वा परिधि आदि निरूपित गणनाकी सहायतासे सहजमें जिस उपाय द्वारा भूमिका परिमाण स्थिर होता है, परिमितिशास्त्रमें उसे क्षेत्रव्यवहार वा Surveying कहते हैं। भूम्यादिके जरीबकार्यका परिमाण-वाचक जो क्षुद्र अंश जनसाधारणमें धार्य है, अंगरेजीमें उसे Link कहते हैं। हम लोगोंके देशमें जिस प्रकार अङ्गुलि, हस्तप्रभृति परिमाणदण्डकी सहायतासे भूम्यादिकी जरीब कट्ठे बीघेमें परिणत होती है, अंगरेजीमें उसी प्रकार लिङ्कसे एकड़ और वह एकड़ हम लोगोंके परिमाणानुसार बीघेमें रूपान्तरित होता है। यदि कोई जमीन ५७५ लिङ्क लम्बी और ४२५ लिङ्क चौड़ी हो, तो वह कितने बीघेकी होगी? पहले दो राशियोंको परस्पर गुना करनेसे जमीनका वर्गफल २४४३७५ हुआ। किन्तु १००००० वर्गलिङ्ककी एक एकड़ जमीन होती है, यह माप स्वतः सिद्ध है। अतएव पूर्वोक्त २४४३७५ वर्ग-लिङ्कको निम्नोक्त १००००० वर्गलिङ्क द्वारा भाग देनेसे भागफल २·४४३७५ एकड़ होगा। अब एकड़ परिमाण शब्दके तालिकानुसार आसानीसे बीघेमें और दशमलव भिन्नको भी पुनः विभाग करके रूड़, पार्चस अथवा कट्ठे, धूर आदिमें रक्खा जा सकता है।

त्रिकोण और चतुष्कोण आकृतियुक्त भूमिका परिमाण सहजमें निकाला जाता है। पहले ही कहा जा चुका है, कि एक चतुष्कोणका परिमाण उसकी लम्बाई और चौड़ाईके गुणनफलसे जाना जाता है। इससे यह मालूम होता है, कि समान्तर दो रेखाओंकी मध्यवर्त्ती समरेखाके ऊपर स्थापित दो त्रिभुज परस्पर समान होते हैं सुतरां इस प्रकार एक त्रिभुज चतुर्भुजका अर्द्धांश होगा, इसमें संदेह नहीं। त्रिभुजका परिमाण जाननेमें उसके आधार (Base)से लम्ब रेखा (Perpendicular,)के अर्द्धांशको गुना करनेसे गुणनफल जो हो, उसका अर्द्धांश उक्त त्रिभुजभूमिका परिमाण होगा। चतुर्भुज, पञ्चकोणी, अष्टकोणी और दश कोणी आदिका परिमाण निम्नलिखित उपायसे निकाला जाता है।

किसी एक चतुर्भुजको (Quadrilateral figure) विभक्त कर सकनेसे ही उसकी परिमाणसंख्या भी निर्देश की जा सकती है। परन्तु समरेखाविशिष्ट और समकोणयुक्त पञ्चकोणी अष्टकोणी वा द्वादशकोणी आदि (Regular polygon) चिह्नित भूमिका परिमाण निर्देश करनेमें उक्त क्षेत्रकी भुजसमष्टिका अर्द्धांशले कर उसमें केन्द्र (Centre)से किसी एक पार्श्वरेखामें लम्बमान ऋजुरेखा (Perpendicular) की संख्यासे गुना करो। गुणनफल जो होगा उसीको उक्त क्षेत्रका परिमाण जानो। साधारणकी सुविधाके लिये नीचे बहु-समबाहु और समकोणी (Regular polygon) क्षेत्रका परिमाण जाननेके लिये एक तालिका दी गई है। इस तालिकाकी व्यवहारप्रणाली इस प्रकार है—

किसी एक बहुरेखायुक्त समकोणी और समबाहु Regular polygon चेत्रकी किसी बाहुका वर्गफल ले कर उसमें निम्नलिखित तालिका प्रदत्त-क्षेत्रफलके साथ गुना करो। गुणनफल जो होगा, उसीको उपस्थित क्षेत्रकी भूमिका परिमाण जानो।

बहु भुजविशिष्ट क्षेत्र	सीमा रेखा	रेखाद्वयके मध्यवर्ती कोणका अर्द्धांश	सीमाकी एक रेखा एक होनेसे उसका परिमाण	सीमारेखा एक होनेसे उसकी लम्ब रेखाका परिमाण
समकोण त्रिभुज	३	३०°	०.४३३०१२७	०.२८८६७५१३४६
,, चतुर्भुज	४	४५°	१.	०.५
समबाहु पञ्चकोण	५	५४°	१.७२०४७७४	०.६८८१९०९६०२
,, षट्कोण	६	६०°	२.५९८०७६२	०.८६६०२५४०३८
,, सप्तकोण	७	६४ २/७°	३.६३३९१२४	१.०३८२६०६९८४
,, अष्टकोण	८	६७ १/२°	४.८२८४२७१	१.२०७१०६७८१२
,, नवकोण	९	७०°	६.१८१८२४२	१.३७३७३८७०९७
,, दशकोण	१०	७२°	७.६९४२०८८	१.५३८८४१७६८६
,, एकादशकोण	११	७३ ७/११°	९.३६५६३९९	१.७०२८४३६१९४
,, द्वादशकोण	१२	७५°	११.१९६१५२४	१.८६६०२५४०३८

उदाहरण—किसी एक पञ्चकोणको एक सीमारेखा यदि २० फुटकी हो, तो उसके वर्गफल ४०० को १.७२०४७७४से गुना करनेसे गुणनफल जो ६८८.१९०८ फुट होगा, वही उक्त क्षेत्रका परिमाण है।

वृत्तके सम्बन्धमें भी परिमिति शास्त्रमें अनेक प्रणालियां लिखी हैं। किसी एक वर्त्तुलक्षेत्रकी परिधि, उसके व्यासको ३.१४१५९से गुना करनेसे जो फल होगा, उसके समान है। यह भी जान लेना उचित है, कि वर्त्तुलाकार क्षेत्रका भूमिपरिमाण निर्देश करनेमें निम्नलिखित नियमोंका अवलम्बन करनेसे वह सहजमें निकाला जा सकता है। (१) वृत्तके अर्द्धांशको व्यासार्द्धसे गु ा करनेसे जो फल होता है, वही भूमिका परिमाण है। (२) व्यासके वर्गफलको ७.८५४से गुना करनेसे जमीनका क्षेत्रफल निकल आता है। (३) परिधिके वर्गफलको .०७९५७७५से गुना करनेसे जो गुणनफल होगा, वही जमीनका प्रकृत क्षेत्रफल है।

किसी एक ठोस वस्तुका परिमाण निकालना हो, तो उसकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई तीनोंको आपसमें गुना करो, इस प्रकार जो गुणनफल होगा, वही उस वस्तुका परिमाण है। पिरामिड (Pyramid) अथवा किसी कोणाकार (Cone) वस्तुका परिमाण निकालनेमें उसकी तलभूमिके परिमाणफलको उसकी लम्बरेखाके परिमाणसे गुना करो। गुणनफल जो होगा उसका तृतीयांश ही उस परामिडका परिमाण होगा। किसी एक टोस गोलाकार (Sphere or Solid circle) वस्तुका परिमाण उसकी परिधिको व्याससे गुना करनेसे जाना जाता है। जिस गोलवृत्तका व्यास ३६ इञ्च है, उसका परिमाण ३६ × ३.१४१५९२६ = ४०७१.५०४ वर्ग इञ्च होगा। इस गोलवृत्तका यदि समूचा क्षेत्रफल निकालना हो, तो उसके व्यासके घनगुन (Cube) अर्थात् ३६^3 को ५.२३५६२ से गुना करो अथवा क्षेत्रफलको व्यासके छठें भागसे गुना करनेसे जो गुणनफल होगा, वही उस ठोस गोलाकार वस्तुका परिमाण है। यथा—४०७१.५०४ × $\frac{1}{6}$ × ३६ = २४४२९.०२४ ठोस इञ्च (Solid inch)। प्रथमोक्त प्रमाणानुसार ३६^3 × ५.२३६२ गुना करनेसे भी गुणनफल २४४२९.०२४ होता है। समतलक्षेत्रादिकी जरीब वा मापका विषय क्षेत्रव्यवहार, शब्दमें विशेषरूपसे आलोचित हुआ है। क्षेत्रव्यवहार देखो।

परिमिति (हिं० स्त्री) मर्यादा, इज्जत।

परिमिलन (सं० क्ली०) सम्यक् मिलन, अच्छी तरह मिलना।

परिमुख (सं० त्रि०) मुखमण्डलके चारों ओर।

परिमुक्त (सं० त्रि०) सम्यक् रूपसे मुक्त, पूर्ण रूपसे स्वाधीन।

परिमुग्ध (सं० त्रि०) सुन्दर साथ साथ सरल।

परिमुच्य (सं० त्रि०) मोचनके योग्य।

परिमूढ़ (सं० त्रि०) परि-मुह-क्त। १ व्याकुल। २ आलोड़ित, विचलित, मथित। ३ क्षोभित।

परिमूढ़ता (सं॰ स्त्री॰) १ व्याकुलता। २ भ्रम। ३ विरक्ति।

परिमूर्णी (सं॰ स्त्री॰) वृद्धा, बूढ़ी।

परिमृज् (सं॰ त्रि॰) परि-मृज्-क्विप्। परिष्कारकरण, धोना या मांजना।

परिमृज्य (सं॰ त्रि॰) परि-मृज-क्यप्, (मृजेर्विभाषा। पा ३।१।११३) परिष्कृत, साफ किया हुआ या मांजा हुआ।

परिमृष्ट (सं॰ त्रि॰) १ परिमार्जित, धोया या साफ किया हुआ। २ स्पृष्ट, जिसको छुआ गया हो। ३ अधिक्षत, पकड़ा हुआ। ४ जिससे परामर्श किया गया हो।

परिमृष्टि (सं॰ स्त्री॰) परिष्करण, धोना, मांजना।

परिमेय (सं॰ त्रि॰) १ जो नापा या तोला जा सके, नापने तौलनेके योग्य। २ सङ्कुचित, थोड़ा। ३ जिसके नापने या तौलनेका प्रयोजन हो।

परिमोक्ष (सं॰ पु॰) परितोमोक्षः परित्यागः। १ मलत्याग, हगना। २ विष्णु। ३ परित्याग, छोड़ना। ४ सम्यग्मुक्ति, पूर्णमोक्ष।

परिमोक्षण (सं॰ क्लो॰) परि-मोक्ष-ल्युट्। १ परित्याग। २ मुक्ति। ३ मोक्ष। ४ मलत्याग। ५ धौतक्रिया द्वारा परिष्कार करना।

परिमोटन (सं॰ क्लो॰) चटचट शब्द।

परिमोष (सं॰ पु॰) परि-मुष-घञ्। स्तेय, चोरी।

परिमोषक (सं॰ पु॰) परि-मुष-ण्वुल्। परिमोषणकारी, चोरी।

परिमोषिन् (सं॰ त्रि॰) परि-मुष्णातीति परि-मुष-णिनि। चौर्यस्वभावपन्न, जिसको स्वभावसे ही चोरी करनेकी प्रवृत्ति हो।

परिमोहन (सं॰ क्लो॰) परि-मुह-ल्युट्। वशीकरण, किसीकी बुद्धि या मनको पूर्ण रूपसे अपने अधिकारमें कर लेना।

परिमोहित (सं॰ त्रि॰) १ आलोड़ित, मथित। २ चेतनहीन। ३ अन्तर्बोधशून्य।

परिम्लान (सं॰ त्रि॰) १ हीनप्रभ, कुम्हलाया हुआ, मलिन।

परिम्लायिन् (सं॰ पु॰) परि-म्ला-णिनि। १ तिमिररोग भेद। इसका कारण रुधिरमें मूर्च्छित पित्त होता है। इसमें रोगीको सभी दिशाएं पीली या प्रज्वलित दिखाई पड़ती हैं।

परियज्ञ (सं॰ पु॰) परित उभयतो विहितो यज्ञोऽस्य। उभयतः विहित यज्ञ, वह छोटा यज्ञ या विधान जिसको अकेले करनेकी विधि न हो, किन्तु जो किसी अन्य यज्ञके साथ उसके पहले या पीछे किया जाय।

परियत्त (सं॰ त्रि॰) परिवेष्टित, चारों ओरसे घिरा हुआ।

परियष्टा (सं॰ पु॰) वह मनुष्य जो अपने बड़े भाईसे पहले सोमयाग करे।

परिया (तामिल परेयाम)—दाक्षिणात्यवासी एक आदिम जाति। किसी किसीका कहना है, कि 'परे'का अर्थ ढक्का (नगारा) है, इसी अर्थसे परैया अर्थात् ढक्का वाद्यकारजाति नाम पड़ा है। किन्तु कोई कोई भाषातत्त्वविद् इसे स्वीकार नहीं करते। उनके मतसे परैयाका मूल अर्थ है 'पहाड़िया' या पार्वतीय। जिस तरह गौड़ीयशाखाके मध्य 'चण्डाल' है, उसी तरह द्राविड़ शाखाके मध्य 'परिया' है।

समाज-बाह्य सभी जातियां ले कर यह परिया-समाज गठित होने तथा दाक्षिणात्यहिन्दू-समाजमें नितान्त हीन समझे जाने पर भी ये लोग अपनेमें उच्च-नीच जातिभेद स्वीकार करते हैं। इनके मध्य १८ विभाग हैं जिनमेंसे कुछके नाम नीचे दिये जाते हैं—

वल्लवप्पड़ई, तातप्पड़ई, तङ्गलानपड़ई, तुर्णलिप्पड़ई, कुलिप्पड़ई, तिप्पड़ई, मुरशप्पड़ई, मोट्टप्पड़ई, अम्पप्पड़ई, वट्टुकप्पड़ई, आलियप्पड़ई, कोलियप्पड़ई, वेलिप्पड़ई, वेट्टियाप्पड़ई, शङ्खप्पड़ई, इनमेंसे वल्लवप्पड़ई श्रेणी ही सबसे श्रेष्ठ समझी जाती है।

परिया लोगोंका कहना है, कि हमारी उत्पत्ति ब्राह्मणोंके गर्भसे है और हम ब्राह्मणोंके बड़े भाई होते हैं। वेङ्कटाचार्यने कुलशङ्करमालामें लिखा है, कि उर्वशीके पुत्र वशिष्ठने अरुन्धती नामकी एक चण्डालीसे विवाह किया था। इस चण्डालीके गर्भसे १०० पुत्र उत्पन्न हुए। इनमेंसे पिताका आदेश मान लेनेवाले ४ पुत्र तो चार वर्णोंके मूलपुरुष हुए और पिताकी आज्ञाकी अवज्ञा करनेवाले ९६ पुत्रोंको पञ्चमवर्ण या परियाकी संज्ञा मिली।

परिया लोगोंका आचार व्यवहार दूसरे वर्णोंसे बिलकुल पृथक् है। ये लोग अपर निम्नश्रेणीको अपने समाजमें मिलने नहीं देते और न उच्च श्रेणीमें प्रवेश करनेकी चेष्टा ही करते हैं। इस जातिके लोग अधिकतर चौकीदारी, भंगी या मेहतरका काम अथवा शूद्रकिसानके खेतमें मजदूरी करते हैं। स्वभावसे ये शान्त, नम्र और परिश्रमी होते हैं। त्रिवाङ्कुड़, महिसुर आदि स्थानोंमें जिस राहसे ब्राह्मण वा नायर चलते हैं उस राहसे परिया लोग नहीं चल सकते। यदि संयोगवश राहमें मुलाकात हो जाय, तो ब्राह्मण स्नान करके शुद्ध हो लेते हैं। यदि कोई परिया किसी तरह नायरको छू ले, तो वह नायरके हाथसे उचित दण्ड पाता है। जिस ग्राममें ब्राह्मणोंका वास है उस ग्राममें परिया घुस नहीं सकता। दाक्षिणात्यके विभिन्न प्रदेशोंमें ये लोग होलेया, घेर, महार वा परवारी नामसे प्रसिद्ध हैं। इस जातिके लोग अधिकतर चौकीदारी, भंगी या मेहतरका काम करते हैं। ये देवीके उपासक हैं और विशेषतः पार्वती या कालीकी मूर्त्तियोंकी पूजा करते हैं। सामाजिक सम्बन्धमें ये बड़े रक्षणशील हैं। पूजाकालमें उच्च वर्णके कोई भी ब्राह्मण इनका पौरोहित्य नहीं करते।

परियाके मध्य भी कितने साधुओं और कवियोंने जन्म ग्रहण किया है। इनमेंसे 'कुरल' ग्रन्थ-प्रणेता तिरुवल्लव नायनर और उनकी भगिनी अव्वै (आवियर), वैष्णवकविमालवर तिरुप्पान् और शैव साधु नन्दनका नाम उल्लेखयोग्य है।

परियाण (सं० क्ली०) चारों ओर गमन, घुमाई फिराई।

परियाणि (सं० पु०) चलती हुई गाड़ी।

परियाणीय (सं० त्रि०) १ भ्रमणसम्बन्धी। २ रक्षाकरणयोग्य, बचाने लायक।

परियात (सं० त्रि०) १ जो भ्रमण या पर्यटन कर चुका हो। २ कहींसे लौटा हुआ, आया हुआ।

परियार—१ अयोध्या प्रदेशके उन्नाव जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह अक्षा० २६°३७'४५" उ० तथा देशा० ८०°२१'४५" पू०के मध्य उन्नाव नगरसे ७ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। प्रवाद है, कि पहले यह स्थान जङ्गलसे परिवृत था, महामुनि वाल्मीकि इस वनाश्रममें* रहते थे। रामचन्द्रके आदेशसे लक्ष्मणने सीताको इसी स्थानमें 'परिहार' किया था। इस कारण यह स्थान परिहार या परियार नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस ग्रामके चारों ओर 'मड़ना' नामक जो विस्तीर्ण झील है, वह श्रीरामके पुत्र लव और कुशकी 'महारण'-भूमि समझी जाती है। इस मड़ना झीलके कूलवर्त्ती सोमेश्वर महादेव-मन्दिरके सन्निकट और गङ्गाके दोनों किनारे आज भी अनेक तीरोंके फल भूगर्भमें पाये जाते हैं। यहां गङ्गाके किनारे जो सब मन्दिर हैं, वे वर्त्तमान समयके बने हुए हैं। पहाड़के ऊपर वजीर मीर अलमसअली खांके किलेका ध्वंसावशेष गङ्गातीरसे देखा जाता है। यहां प्रति वर्ष कार्त्तिककी पूर्णिमामें लाखसे अधिक मनुष्य गङ्गा और झीलमें स्नान करने आते हैं।

२ बिहारवासी शाकद्वीपिब्राह्मणोंका एक 'पुर' वा थाक।

३ मन्द्राज प्रदेशके पूना जिलावासी निम्न श्रेणीकी जातिविशेष। विठुरई देखो।

परियोग (सं० पु०) परि-युज-भावे घञ्। परितः योग, दोनों ओर योग।

परियोग्य (सं० पु०) वेदकी एक शाखा।

परिरक्षक (सं० त्रि०) परि-रक्ष-ण्वुल्। रक्षाकर्त्ता, सब प्रकारसे बचानेवाला।

परिरक्षण (सं० क्ली०) परि-रक्ष-ल्युट्। सर्वतोभावसे रक्षा करना, सब प्रकार या सब ओरसे रक्षा करना।

परिरक्षणीय (सं० त्रि०) परि-रक्ष-अनीयर्। रक्षाके योग्य।

परिरक्षा (सं० स्त्री०) परिपालन।

परिरक्षित (सं० त्रि०) उत्तम रूपसे रक्षित।

परिरक्षितव्य (सं० क्ली०) परि-रक्ष-तव्य। परिरक्षणीय, सर्वतोभावसे रक्षाके योग्य।

परिरक्षितिन् (सं० त्रि०) रक्षाकारी, चौकीदार।

परिरक्षिष्ट (सं० त्रि०) परि-रक्ष-तृच्। परिरक्षक।

परिरक्षिन् (सं० त्रि०) रक्षाकारी, बचानेवाला।

---

* इस ग्रामके पास ही गङ्गाके किनारे बिठुर नगरमें आज भी वाल्मीकिकी कुटी विद्यमान है। एक समय गङ्गाके दोनों किनारेका स्थान वाल्मीकिका आश्रम कहलाता था।

परिरक्ष्य (सं० त्रि०) रक्षाके योग्य।

परिरथ्य (सं० पु०) रथाङ्गभेद, रथका एक अंग।

परिरथ्या (सं० स्त्री०) प्रचारमार्ग, चौड़ा रास्ता।

परिरम्भ (सं० पु०) परिरभ्यते इति परि-रभि-घञ्। ततो नुम् (रभेरशब्लिटोः। पा ७।१।६३) आलिङ्गन।

परिरम्भन (सं० क्ली०) परि-रभ ल्युट्। आलिङ्गन।

परिरम्भिन् (सं० त्रि०) परिरम्भः विद्यतेऽस्य परि रम्भ-इनि। संश्लेषयुक्त, आलिङ्गनयुक्त।

परिराटक (सं० त्रि०) परि-रट-ताच्छील्ये वुञ्। समन्तात् रटनशील, चारों ओर जानेवाला।

परिराटिन् (सं० त्रि०) परि-रट-ताच्छील्ये घिनुन्। समन्तात् रटनशील।

परिराप् (सं० पु०) १ पापरूप राक्षस। २ परिवादकारी, निन्दक।

परिरापिन् (सं० त्रि०) परामर्श द्वारा वृत्तिविधानकारी।

परिरोध (सं० पु०) परि-रुध-घञ्। सम्यक् अवरोध रुकावट, अड़ंगा।

परिल (सं० त्रि०) परितो लाति ला-क। परितोग्राहक।

परिलघु (सं० त्रि०) १ अतिलघु, बहुत छोटा। २ अत्यन्त शीघ्र पचनेके कारण अति लघुपाक।

परिलङ्घन (सं० क्ली०) इतस्ततः लम्फन, फलांग या छलांग मारना।

परिलिखन (सं० पु०) १ रगड़ या घिस कर किसी चीज-का खुरदरापन दूर करना। २ चिकना और चमकदार करना, पालिश करना।

परिलिखित (सं० त्रि०) रेखासे परिवेष्टित, रेखासे घिरा हुआ।

परिलुप्त (सं० त्रि०) परि-लुप-क्त। १ नाशप्राप्त, नष्ट, विनष्ट। २ क्षतिग्रस्त जिसको क्षति या अपकार किया गया हो।

परिलेख (सं० पु०) परि-लिख-घञ्। १ परितो लेखन-साधनद्रव्य, कूंची या कलम जिससे रेखा या चित्र खींचा जाय। २ चित्रका स्थूलरूप जिसमें केवल रेखाएं हों, रंग न भरा गया हो, ढाँचा। ३ चित्र, तसवीर। ४ उल्लेख, वर्णन।

परिलेखन (सं० क्ली०) यज्ञस्थानके सब ओर रेखादि रचना।

परिलेखना (हिं० क्रि० समझना, मानना, खयाल करना।

परिलेहिन् (सं० पु०) कर्णरोगभेद, कानका एक रोग जिसमें कफ और रुधिरके प्रकोपसे कानकी लोलक पर छोटी छोटी फुंसियां निकल आती हैं और उनमें जलन होती है।

परिलोप (सं० पु०) परि-लुप-घञ्। १ हानि, नुकसान। २ विलाप।

परिवंश (सं० पु०) प्रतारण, धोखा, छल।

परिवक्रा (सं० स्त्री०) १ गोलाकार वेदीभेद। २ नगरी-भेद।

परिवत्स (सं० पु०) वत्सका अपत्य।

परिवत्सर (सं० पु०) १ संवत्सर पञ्चकके अन्तर्गत वत्सर-विशेष। वृहत्संहितामें लिखा है, कि संवत्सर, परि-वत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर ये पांच वत्सर युगवत्सरके अन्तर्गत हैं, षष्टिसंवत्सरके नहीं। परिवत्सरके अधिपति सूर्य हैं। इस वत्सरके प्रारम्भमें वृष्टि होती है। २ एक समस्त वर्ष, एक पूरा साल।

परिवत्सरीण (सं० त्रि०) समस्त वर्षव्यापी, जिसका सम्बन्ध सारे वर्षसे हो।

परिवत्सरीय (सं० त्रि०) समस्तवर्ष सम्बन्धीय।

परिवदन (सं० क्ली०) परि-वद ल्युट्। परिवाद, निन्दा, बदगोई।

परिवर्ग (सं० पु०) परि-वृज-घञ्। परितो वर्जन, सर्वतोभावसे वर्जन।

परिवर्ग्य (सं० त्रि०) परिवर्जनीय, त्यागने योग्य।

परिवर्जक (सं० त्रि०) परिवर्जयति परिवर्जि-ण्वुल्। परित्यागकारी, छोड़नेवाला।

परिवर्जन (सं० क्ली०) परिवर्ज्यते परित्यज्यते प्राणोयेन, परि-वृज-णिच्-ल्युट्। १ मारण। भावे ल्युट्। २ परि-त्याग। कौन कौन द्रव्य परिवर्जनके योग्य है, उसका विषय कूर्मपुराणमें इस प्रकार लिखा है—एकशय्या, एकासन, एकपंक्ति, भाण्ड, पक्वान्नमिश्रण, याजन, अध्ययन, योनि, सहभोजन, सहाध्याय और सहयाजन इन ग्यारहोंको साङ्कर्य कहते हैं। इनके समीप रहनेसे पाप संक्रामित होता है, इसीसे इनका वर्जन करना उचित है।

जिस देशमें सम्मान, प्रीति, बान्धव और किसी प्रकारका विद्यालाभ नहीं है, उस देशको छोड़ देना चाहिये। गरुड़पुराणमें लिखा है, कि मूर्ख ब्राह्मण, अयोद्धा क्षत्रिय, जड़वैश्य और अक्षरसंयुक्त शूद्र दूरसे ही परिवर्जनीय हैं। कुभार्या, कुमित्र, कुराजा, कुबन्धु, कुसौहृद्य और कुदेशका परित्याग विधेय है।

परिवर्जनीय (सं० त्रि०) परि-वृज-णिच्-अनीयर्। परिवर्जनके योग्य, त्यागने लायक।

परिवर्जित (सं० त्रि०) परि-वृज-णिच्-क्त। परित्यक्त, त्यागा हुआ।

परिवर्त्त (सं० पु०) परिवर्त्तनमिति परि-वृत-भावे-घञ्। १ विनिमय, बदला। २ कूर्मराज। ३ विवर्त्तन-आवृत्ति, घुमाव, चक्कर। ४ जो बदलेमें लिया या दिया जाय, बदल। ५ युगान्तकाल, किसी काल या युगका अंत। ६ ग्रन्थका परिच्छेद, अध्याय, बयान। ७ पुराणानुसार मृत्युके पुत्र दुस्सहके पुत्रोंमेंसे एक। मार्कण्डेय पुराणमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—मृत्युके दुस्सह नामका एक पुत्र था जिसका विवाह कलिकी कन्या निर्माष्टिके साथ हुआ था। निर्माष्टिके गर्भसे अनेक पुत्र उत्पन्न हुए जो सबके सब जगद्व्यापी थे। इन पुत्रोंमें परिवर्त्त तीसरा था। यह एक स्त्रीके गर्भको दूसरी स्त्रीके गर्भसे बदल दिया करता था, किसी वाक्यका भी वक्ताके अभिप्रायसे विरुद्ध या भिन्न अर्थ कर दिया करता था। इसीसे इसका परिवर्त्त नाम पड़ा। इसके उपद्रवसे गर्भको रक्षा करनेके लिये सफेद सरसों और रक्षोघ्न मन्त्रसे इसकी शान्ति की जाती है। इसके पुत्र विरूप और विकृत भी उपद्रव करके गर्भपात करते हैं। इनके रहनेके स्थान डालियोंके सिरे, चहारदीवारी, खाई और समुद्र हैं। जब गर्भिणी स्त्री इनमेंसे किसीके पास पहुंचती है तब ये उसके गर्भमें घुस जाते और फिर बराबर एकसे दूसरे गर्भमें जाया करते हैं। इसके बार बार जाने आनेसे गर्भ गिर पड़ता है। इसी कारण गर्भावस्थामें स्त्रीको वृक्ष, पर्वत, प्राचीर, खाई और समुद्र आदिके पास घूमने फिरनेका निषेध है। (मार्कण्डेयपु० ५१ अ०) परिवर्त्तते परि-वृत-अच्। ८ परिवृत्तियुक्त धनादि। ९ विवाहादि कार्यमें आपसका कन्या पुत्रका आदान-प्रदान। विवाह देखो। १० स्वरसाधनकी एक प्रणाली जो इस प्रकार है—

आरोही—सा ग म रे, रे म प ग, ग प ध म, म ध नि प, प नि सा ध, ध सा रे नि, नि रे ग सा। अवरोही—सा ध प नि, नि प सा ध, ध म ग प, प ग रे म, म रे सा ग, ग सा नि रे, रे नि ध सा।

परिवर्त्तक (सं० त्रि०) १ घूमनेवाला, फिरनेवाला, चक्कर खानेवाला। २ घुमानेवाला, फिरानेवाला, चक्करदेनेवाला। ३ बदलनेवाला, विनिमय करनेवाला। ४ परिवर्त्तन योग्य, जो बदला जा सके। ५ युगका अन्त करनेवाला। (पु०) ६ मृत्युके पुत्र दुस्सहका एक पुत्र। परिवर्त्त देखो।

परिवर्त्तन (सं० क्ली०) परि-वृत-ल्युट्। १ आवर्त्तन, घुमाव, फेरा। २ विनिमय, दो वस्तुओंका परस्पर अदल बदल। ३ जो किसी वस्तुके बदलेमें लिया या दिया जाय, बदल। ४ दशान्तर, बदलने या बदल जानेकी क्रिया या भाव, तबदीली। ५ किसी काल या युगकी समाप्ति।

परिवर्त्तनीय (सं० त्रि०) परि-वृत्-अनीयर्। परिवर्त्तनके योग्य, बदलने लायक।

परिवर्त्तिका (सं० स्त्री०) लिङ्गगतरोगभेद, उपस्थकी पीड़ा। इसका लक्षण भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है—अतिशय मदन, पीड़न वा अभिघात द्वारा व्यानवायु कुपित हो कर जब लिङ्गगत चर्मका आश्रय करती है, तब वात संसृष्टप्रयुक्त लिङ्गका चर्म स्फीत होता है और शिश्नाग्रका अधःस्थित चर्मकोष ग्रन्थिकोषमें लम्बमान हो जाता है। कभी कभी वेदनाके साथ दाह और पाक उपस्थित होता है। इसी आगन्तुक वातज रोगको परिवर्त्तिका कहते हैं। यह कफानुविद्ध होनेसे कठिन और कण्डुयुक्त हो जाता है।

इसकी चिकित्सा—परिवर्त्तिका रोगमें घृतको म्रक्षण करके मांसादि वातघ्न द्रव्य द्वारा स्वेद दें और तीन वा पांच रात तक शाल्वणादि उपनाहका प्रयोग करें। पीछे घृतादि अभ्यङ्ग द्वारा धीरे धीरे चर्मको यथास्थानमें लावें। शिश्नके अग्रभागको पीड़न करके जब चर्म अच्छी तरह प्रविष्ट हो जाय, तब शिश्नाग्रमें

स्वेद और उपनाह दे कर वातनाशक वस्तिक्रिया विधेय है। रोगी को स्निग्ध द्रव्य खानेके लिये देवें।

(भावप्र० क्षुद्ररोगाधि०)

परिवर्त्तित (सं० त्रि०) १ जिसका आकार या रूप बदल गया हो, बदला हुआ। २ जो बदलेमें मिला हुआ हो।

परिवर्त्तिन् (सं० त्रि०) [परिवर्त्तितुं शीलमस्य, शीलार्थे णिनि। १ परिवर्त्तनशील, बार बार बदलनेवाला। २ विनिमय करनेवाला। ३ जो बराबर घूमता रहता हो, जिसका घूमनेका स्वभाव हो। (स्त्री०) ४ विष्टुति-भेद।

परिवर्त्तिनी (सं० स्त्री०) भादों शुक्लपक्षकी एकादशी।

परिवर्त्ती (हिं० वि०) परिवर्त्तिन् देखो।

परिवर्त्तुल (सं० त्रि०) पूर्ण गोलाकार, खूब गोल।

परिवर्त्मन् (सं० त्रि०) प्रदक्षिणा करता हुआ, जो किसी वस्तुके चारों ओर घूम रहा हो।

परिवर्द्धन (सं० क्ली०) परि-वृध-ल्युट्। सम्यक् रूपसे वृद्धिकरण, संख्या, गुण आदिमें किसी वस्तुको खूब बढ़ती होना।

परिवर्द्धित (सं० त्रि०) परि-वृध-णिच्-क्त। १ वृद्धि-प्रापित, बढ़ाया हुआ। २ बढ़ा हुआ।

परिवर्मन् (सं० त्रि०) वर्मावृत, बक्तरसे ढका हुआ, जिरहपोश।

परिवर्ह (सं० पु०) परि-वर्ह-घञ्। परिच्छद, राजचिह्न चामरछत्रादि, चंवर, छत्र आदि राजत्वकी सूचक वस्तुएं।

परिवसथ (सं० पु०) परितो वसन्त्यत्र परि-वस-उपसर्गे वसोरिति अथ्। ग्राम, गांव।

परिवह (सं० पु०) परि सर्वतोभावेन वहतीति परि-वह-अच्। १ सप्तवायुके अन्तर्गत षष्ठ वायु, सात पवनोंमेंसे छठा पवन। कहते हैं, कि यह सुवह पवनके ऊपर रहता है और आकाशगंगाको बहाता तथा ध्रुव तारेको घुमाता है। २ अग्निकी सात जीभोंमेंसे एक।

परिवा (हिं० स्त्री०) किसी पक्षकी पहली तिथि, पड़िवा।

परिवाद (सं० पु०) परि सर्वतो दोषोक्तेन वादः कथनं, परि-वद-भावे घञ्। १ अपवाद, निन्दा। २ मनुस्मृतिके अनुसार ऐसी निन्दा जिसकी आधारभूत घटना या तथ्य सत्य न हो, झूठी निन्दा। ३ लोहेके तारोंका वह छल्ला जिससे वीणा या सितार बजाया जाता है, मिजराब।

परिवादक (सं० त्रि०) परिवदतीति परि-वद-ण्वुल्। १ परिवादकर्त्ता, निन्दा करनेवाला। २ वीनकार, बीन बजानेवाला।

परिवादिन् (सं० त्रि०) परिवदतीति परिवदितुं शील-मस्य वा, परि वद-शीलार्थे कर्त्तरि णिनि। परिवाद-कर्त्ता, निन्दक।

परिवादिनी (सं० स्त्री०) वह बीन जिसमें सात तार होते हैं।

परिवाप (सं० पु०) परि सर्वत उप्यते इति परि-वप-घञ्। १ पर्यूप्ति, वपन। २ जलस्थान। ३ परिच्छद। ४ मुण्डन।

परिवापन (सं० क्ली०) परि-वप-णिच्-ल्युट्। १ मुण्डन। २ परिवाप।

परिवापित (सं० त्रि०) परिवाप्यते स्म, परि-वप-णिच्-क्त। १ मुण्डित। २ परिवापनमें नियोजित।

परिवाप्य (सं० त्रि०) परिवाप्ययोग्य या मुण्डनयोग्य।

परिवार (सं० पु०) परिव्रियतेऽनेन परि-वृ-करणे घञ्। १ एक ही कुलमें उत्पन्न और परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाले मनुष्योंका समुदाय, परिजनसमूह, कुटुम्ब। २ खड्गकोष, तलवारकी खोली, नियाम। ३ परिच्छद, कोई ढकनेवाली चीज। ४ वे लोग जो किसी राजा या रईसकी सवारीमें उसके पीछे उसे घेरे हुए चलते हैं, परिषद्। ५ वे लोग जो अपने भरण पोषणके लिये किसी विशेष व्यक्तिके आश्रित हों, आश्रितवर्ग। ६ एक स्वभाव या धर्मकी वस्तुओंका समूह, कुल।

परिवारण (सं० क्ली०) १ परिच्छेद, आवरण। २ कोष, खोल, म्यान।

परिवारवत् (सं० त्रि०) परिवारो विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य वं। १ आवरणयुक्त, जिसके आवरण हो। २ परिवारयुक्त, जिसके परिवार हो।

परिवास (सं० पु०) १ रहन, घर। २ प्रवास, परदेशका निवास। ३ सुवास, सुगन्ध। ४ बौद्ध धर्ममेंसे किसी अपराधी भिक्षुका बाहर किया जाना।

परिवासन (सं० क्ली०) परिवास्यतेऽनेन परि-वास-ल्युट्। १ यज्ञीयवेदाच्छादनानुकूल व्यापारविशेष। २ खण्ड, टुकड़ा।

परिवासस् (सं० क्ली०) सामभेद।

परिवाह (सं० पु०) पर्युह्यते तृणादिकं येन, परि-वह-घञ्। १ परीवाह, ऐसा प्रवाह या बहाव जिसके कारण पानी ताल तालाब आदिकी समाईसे अधिक हो जाता हो। २ जलनिर्गमप्रणाली, फालतू पानी निकलनेका मार्ग, अतिरिक्त पानीका निकास। ३ मुहाना। ४ राजोपहार योग्य वस्तु, राजाको भेंट देने योग्य वस्तु।

परिवाहवत् (सं० त्रि०) परिवाह-विद्यतेऽस्य मतुप्, मस्य व। प्रवाहयुक्त।

परिवाहिन् (सं० त्रि०) प्रवाहशील, उबल या उफन कर बहनेवाला।

परिविंशत् (सं० स्त्री०) पूर्ण विंशति।

परिविक्रयिन् (सं० त्रि०) विक्रयशील, बेचनेवाला।

परिविक्षोभ (सं० पु०) परि-वि-क्षुभ-घञ्। १ सम्पूर्ण क्षोभनशील। २ हानिकर।

परिविण्ण (सं० पु०) परि-विद-क्त। परिवित्त, वह मनुष्य जिसका छोटा भाई उससे पहले अपना विवाह कर ले।

परिवितर्क (सं० क्ली०) परीक्षा प्रश्न।

परिवित्त (सं० पु०) परि-विद-क्त, न दस्य नः। वह मनुष्य जिसका छोटा भाई उससे पहले अपना विवाह कर ले।

परिवित्ति (सं० पु०) परिवर्जनं, विन्दति लभते इति परि-विद क्तिच्। विवाहित व्यक्तिका अविवाहित ज्येष्ठ भ्राता।

परिविद्ध (सं० त्रि०) परि-व्यध-क्त। १ परितोविद्ध, सब ओर या सब प्रकारसे विधा हुआ। (पु०) २ कुबेर।

परिविन्दक (सं० पु०) परिविन्दति परि-विन्द-ण्वुल्। परिवेत्ता, वह व्यक्ति जो जेठे भाईसे पहले अपना विवाह कर ले।

परिविन्दत् (सं० पु०) परित्यज्य ज्येष्ठभ्रातरं विन्दति अग्न्याधानभार्यादिकं लभते इति परि-विद-शतृ। परिवेदनकर्त्ता, बड़े भाईसे पहले विवाह करनेवाला छोटा भाई। ज्येष्ठका विवाह नहीं होनेसे कनिष्ठका विवाह नहीं होगा, यही शास्त्रविधि है और सभी धर्मशास्त्रोंमें इस कार्यको निन्दित बतलाया है। किन्तु शास्त्रमें इसका प्रतिप्रसव भी देखनेमें आता है। इसका विषय उद्वाहतत्त्वमें इस प्रकार लिखा है—

"देशान्तरस्थक्लीवैकवृषणानसहोदरान्।
वेश्यामिसक्तपतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः॥
जड़मूकान्धबधिरकुब्जवामनकुण्ठकान्।
अतिवृद्धानभार्यांश्च कृषिसक्तान् नृपस्य च॥
धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतः कारिणस्तथा।
कुलटोन्मत्तचौरांश्च परिविन्दन् न दुष्यति॥"
(उद्वाहतत्त्वधृतछन्दोगपरिशिष्ट)

ज्येष्ठ सहोदर यदि परदेशमें रहे, (शास्त्रमें देशान्तरका अर्थ ऐसा लिखा है—जहांकी भाषा विभिन्न है और गिरि महानदी आदि बीचमें पड़ती हैं उसे देशान्तर कहते हैं अथवा दश दिनमें जहांकी वार्त्ता सुनाई न दे, उसे भी देशान्तर कहते हैं। बृहस्पतिके मतसे ६० योजन दूर और किसी किसीके मतसे ४० वा ३० योजन दूरका स्थान देशान्तर कहलाता है। शुद्धिचिन्तामणिके मतसे जो स्थान ४० योजनसे ले कर ६० योजन तक दूर हो, जहांकी भाषामें प्रभेद पड़ता हो तथा गिरि और महानदी आदिका व्यवधान हो, उसे देशान्तर कहते हैं।*) क्लीव, एकवृषण अर्थात् जिसके केवल एक अण्ड है, वेश्यासक्त, पतित और शूद्रतुल्य (मनुने शूद्रतुल्यका लक्षण ऐसा बतलाया है;—जो ब्राह्मण गोरक्षक, वाणिजिक, कारुकुशीलव, प्रेष्य एवं वार्धुषिक अर्थात् सूद खानेवाला है, उसे शूद्र कहते हैं।‡), अतिरोगी, जड़, मूक, अन्ध, बधिर,

* देशान्तपरिभाषायां बृहस्पतिः—
'वाचो यत्र विभिद्यन्ते गिरिर्वा व्यवधायकः।
महानद्यन्तरं यत्र तद्देशान्तरमुच्यते॥
देशनामनदीभेदान् निकटोऽपि भवेद्यदि।
तत्तु देशान्तरं प्रोक्तं स्वयमेव स्वयम्भुवा।
दशरात्रेण या वार्ता यत्र न श्रूयतेऽथवा॥'
(बृहस्पतिः)
'देशान्तरं वदन्त्येके षष्टियोजनमायतं।
चत्वारिंशत् वदन्त्येके त्रिंशदेके तथैव च॥"

‡ शूद्रतुल्यानाह मनुः—

कुब्ज, वामन, कुष्ठी, अतिवृद्ध, भार्याहीन अर्थात् जो शास्त्रनिषिद्ध भार्यासम्बन्धयुक्त हो, कामकारी शास्त्रका विधान नहीं माननेवाला अर्थात् यथेच्छाचारी, दत्तक और चोर इन सब गुणोंसे युक्त यदि ज्येष्ठ भ्राता हो, तो कनिष्ठ विवाह कर सकता है; इसमें कोई दोष नहीं बतलाया गया है। यदि ज्येष्ठ भ्राता देशान्तरमें हो, तो तीन वर्ष तक उसकी प्रतीक्षा कर विवाह करना उचित है, यही शास्त्रसङ्गत है। फिर कहीं पर लिखा है—

"द्वादशैव तु वर्षाणि ज्यायान् धर्मार्थयोगतः।
न्याय्यः प्रतीक्षितुं भ्राता श्रूयमाणः पुनः पुनः॥
उन्मत्तः किल्विषी कुष्ठी पतितः क्लीव एव वा।
राजयक्ष्मामयावी च न न्याय्यः स्यात् प्रतीक्षितुं॥"

(उद्वाहतत्त्व)

इस वचनसे जाना जाता है, कि ज्येष्ठ यदि धर्मार्थ के लिये कहीं चला जाय, तो उसके लिये १४ वर्ष तक प्रतीक्षा करे, किन्तु यदि वह उन्मत्त, पापी, कुष्ठी, पतितादि हो, तो उसकी प्रतीक्षा न करनी चाहिये। प्रायश्चित्तविवेकमें लिखा है, कि विद्योपार्जनके लिये यदि परदेश गया हो, तो ब्राह्मण १२ वर्ष, क्षत्रिय १० वर्ष, वैश्य ८ वर्ष और शूद्र ६ वर्ष प्रतीक्षा करे। उशनाका कहना है, कि ज्येष्ठ यदि विवाह न करे और विवाह करनेकी अनुमति छोटेको दे दे, तो वह विवाह कर सकता है, इसमें दोष नहीं*।

किन्तु प्रायश्चित्तविवेकके मतसे ज्येष्ठ यदि विवाह करनेकी अनुमति भी दे दे, तो भी कनिष्ठ विवाह नहीं कर सकता है। परन्तु जिस ज्येष्ठने विषयविरक्त हो कर योगमार्गका अवलम्बन किया है अथवा जो पूर्वोक्त रूपसे पतित हुआ है, वैसी हालतमें कनिष्ठ विवाह कर सकता है।

परिविन्दिन (सं० पु०) परिवेत्ता, परिविंदक।

परिविन्न (सं० पु०) परि-विद्-क्त, इस नः, नकारेण व्यवहारात् न णत्वं। परिवेत्ता, परिविन्दक।

परिविविदान (सं० पु०) बड़े भाईसे पहले विवाह करनेवाला छोटा भाई।

परिविष्ट (सं० त्रि०) १ परिवृत, घेरा हुआ। २ परोसा हुआ।

परिविष्टि (सं० स्त्री०) परि-विश-क्तिच्। १ परिचर्या, सेवा, टहल। २ व्याप्ति, घेरा।

परिविष्णु (सं० अव्य०) विष्णुं विष्णुं परिहृत्याव्ययी भावः। सर्वतोविष्णु, सभी जगह विष्णु।

परिविहार (सं० पु०) परितो विहारः। सम्यक् विहार, भलीभाँति विहार।

परिविह्वल (सं० त्रि०) सम्यक् रूपसे क्षोभित वा उत्तेजित।

परिवी (सं० स्त्री०) परि-व्ये-क्विप् सम्प्रसारणे दीर्घः। १ परिवारित। २ परितःस्यूत।

परिवीक्षण (सं० क्ली०) परितोवीक्षणं। १ सर्वतोभावसे अवलोकन, अभिनिवेशपूर्वक दर्शन। २ घेरा हुआ, लपेटा हुआ। ३ आच्छादित, ढका हुआ, छिपाया हुआ।

परिवीत (सं० त्रि०) परि-व्येञ्-क्त सम्प्रसारणे दीर्घः। १ परिवेष्टित, घिरा हुआ, लपेटा हुआ। २ आच्छादित, ढका हुआ, छिपाया हुआ।

परिवृंहण (सं० क्ली०) परि-वृन्ह-णिच्-ल्युट्। वर्द्धीकरण।

परिवृंहित (सं० त्रि०) परितोवृंहितं। १ सर्वतोभावसे दीप्तिविशिष्ट। २ सर्वतोभावसे करि गर्जित। ३ सर्वतोभावसे वृद्धिविशिष्ट। ४ सर्वतोभावसे ध्वनिविशिष्ट।

परिवृक्ण (सं० त्रि०) परि-व्रश्च-क्त। १ छिन्न, कटा हुआ। (पु०) २ छिन्न हस्तपाद, कटा हुआ हाथ पांव।

परिवृत्त (सं० त्रि०) परि वृज क्त। परित्यक्त, छोड़ा हुआ।

परिवृढ़ (सं० त्रि०) परि-सर्वतोभावेन वृंहति वर्द्धते इति वृहि वृद्धौ कर्त्तरि क्त, निपातनात् हकारलोपः, निष्ठा तस्य ढत्वञ्च। अधिप, प्रभु, स्वामी।

"गोरक्षकान् वाणिजिकान् तथा कारुकुशीलवान्।
प्रेष्यान् वार्द्धुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत॥"

(उद्वाहतत्त्व)

* उशनाः—"ज्येष्ठभ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव कारयेत्।
अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शङ्खस्य वचनं यथा॥
वशिष्ठः—अग्रजोऽस्य यदानग्निरधिकायं त्वनुजः कथं।
अग्रजानुमतः कुर्यादग्निहोत्रं यथा विधि॥
एतेन विवाहस्त्वनुमत्यापि दोषायेति प्रायश्चित्तविवेकः।"

(उद्वाहतत्त्व)

परिवृत (सं॰ त्रि॰) परि सर्वतोभावेन वृतः। आवृत, ढका, छिपाया या घिरा हुआ।

परिवृति (सं॰ स्त्री॰) परि सर्वतोभावेन वृतिः। वेष्टन, ढकने, घेरने या छिपानेवाली वस्तु।

परिवृत्त (सं॰ त्रि॰) परि-वृत-क्त। १ परितोवृत्त, ढका, छिपाया या घिरा हुआ। २ समाप्त।

परिवृत्तार्द्धमुख (सं॰ त्रि॰) जिसने आधा मुंह घुमाया है।

परिवृत्ति (सं॰ स्त्री॰) परिवर्जने वर्त्तते इति परि-वृत-क्तिन्। १ परिवेत्ता। २ घुमाव, चक्कर, गरदिश। ३ वेष्टन, घेरा। ४ विनिमय, अदला, बदला। ५ समाप्ति, अन्त। ६ एक शब्द या पदको दूसरे ऐसे शब्द या पदसे बदलना जिससे अर्थ वही बना रहे। (पु॰) ७ एक अर्थालङ्कार जिसमें एक वस्तुको दे कर दूसरोके लेने अर्थात् लेन देन या अदल बदलका कथन होता है।

इस अलङ्कारके दो प्रधान भेद हैं—एक समपरिवृत्ति, दूसरा विषमपरिवृत्ति। पहलेमें समानगुण या मूल्यको और दूसरेमें असमानगुण या अमूल्यकी वस्तुओंके अदल बदलका वर्णन होता है। इन दोनोंके दो दो अवान्तरभेद होते हैं। समके अन्तर्गत एक उत्तम वस्तुका उत्तमसे विनिमय; दूसरा न्यून वस्तुका न्यूनसे विनिमय है। इसी प्रकार विषमके अन्तर्गत उत्तम वस्तुका न्यूनसे और न्यूनका उत्तमसे विनिमय होता है।

इसका उदाहरण इस प्रकार है—

"दत्त्वा कटाक्षमेणाक्षी जग्राह हृदयं मम।
मया तु हृदयं दत्त्वा गृहीतो मदनज्वरः॥"

(साहित्यदर्पण)

हे हरिणलोचने! तुमने कटाक्ष द्वारा मेरा मन हरण कर लिया और मैंने भी हृदय द्वारा मदनज्वर ग्रहण किया है। यहां पर पूर्वचरणमें कटाक्ष द्वारा हृदय ग्रहण और परचरणमें हृदय द्वारा मदनज्वर ग्रहण किया गया है, इस कारण प्रथमार्द्धमें समान द्रव्य द्वारा और परार्द्धमें न्यून द्वारा विनिमय हुआ है, अतएव यहां पर परिवृत्ति अलङ्कार हुआ।

परिवृत्तिसह (सं॰ त्रि॰) परिवृत्तिं परावृत्तिं सहते सह-अच्। यौगिकशब्दभेद।

परिवृद्ध (सं॰ त्रि॰) प्राप्तवृद्धि, खब बढ़ा हुआ।

परिवृद्धि (सं॰ स्त्री॰) परिवर्द्धन, खूब बढ़ती।

परिवृक्ति (सं॰ पु॰) परिविक्ति शब्दका पाठान्तर।

परिवृंहित (सं॰ त्रि॰) परि-वृंह-क्त। १ सर्वतो भावसे वृद्धिविशिष्ट। २ सर्वतोभावसे उद्यमविशिष्ट।

परिवेत्ता (हिं॰ पु॰) वह व्यक्ति जो बड़े भाईसे पहले अपना विवाह कर ले या अग्निहोत्र ले ले।

परिविन्दत् देखो।

परिवेत्तृ (सं॰ पु॰) परित्यज्य ज्येष्ठं भ्रातरं विन्दति भार्यामग्न्यादिकं वा लभते विद्-तृच् (ण्वुल्‌ तृचौ। पा ३।१।१३३) वह व्यक्ति जो बड़े भाईसे पहले अपना विवाह कर ले।

परिवेद (सं॰ पु॰) परि-विद-घञ्। परिज्ञान, पूरा ज्ञान।

परिवेदक (सं॰ पु॰) परि-विद-ण्वुल्। परिवेत्ता, परिवेदन कारो।

परिवेदन (सं॰ क्ली॰) परि-विद-ल्युट्। १ विवाह। २ अन्याधान, अग्निहोत्रके लिये अग्निकी स्थापना। ३ परिज्ञान, पूरा ज्ञान। ४ विचरण, भ्रमण, घूमना। ५ विद्यमानता, मौजूदगो। ६ लाभ, प्राप्ति। ७ भारो दुःख या कष्ट। ८ वादविवाद, बहस।

परिवेदना (सं॰ स्त्री॰) विदग्धता, तीक्ष्णबुद्धिता, चतुराई।

परिवेदनीया (सं॰ स्त्री॰) परि-विद-अनीयर्, स्त्रियां टाप्। परिवेदनाली, उस मनुष्यको स्त्री जिसने बड़े भाईसे पहले अपना व्याह कर लिया हो।

परिवेदिनी (सं॰ स्त्री॰) परिवेदोऽस्त्यस्यामिति इनि, ङीप्‌ च। परिवेत्ताकी स्त्री।

परिवेश (सं॰ पु॰) परितो विशतीति परि-विश्-घञ्। वेष्टन, परिधि, घेरा।

परिवेष (सं॰ पु॰) परितो विष्यते व्याप्यतेऽनेन विष-व्यापने घञ्। १ परिवृत्ति, परिधि, सूर्यका मण्डल। इसका विषय वृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है—

"संमूर्च्छिता रवीन्द्वोः किरणाः पवनेन मण्डलीभूताः।
नानावर्णाकृतयस्तन्वभ्रे व्योम्नि परिवेषाः॥"

(वृहत्सं॰ ३४)

सूर्य वा चन्द्रको किरण पटलसंस्थित हो कर जब वायु द्वारा मण्डलीभुत हो जाती है, तब आकाशमें

नानावर्ण आकृतिविशिष्ट मण्डल बन जाता है, इसीको परिवेष कहते हैं। रक्त, नील, पाण्डुर, कपोत, धूम्र, शबल, हरिद्वर्ण और शुक्लवर्णका परिवेष यथाक्रम इन्द्र, यम, वरुण, निऋति, वायु, महादेव, ब्रह्मा और अग्निसे उत्पन्न माना गया है। धनद कुबेरका परिवेष कृष्णवर्ण है और परस्पर गुणाश्रय हेतु जो मुहुर्मुहु प्रविलीन होता है, वह अल्प फलद परिवेष वायुकृत है। जो परिवेष चाषपक्षी, शिखी, रौप्य, तैल क्षीर और जलके समान आभाविशिष्ट, अकालसम्भूत, अविकलवृत्त और स्निग्ध है, वह परिवेष सुभिक्ष और कल्याणकर माना गया है। जो परिवेष गगनानुचारी, अनेक आभाविशिष्ट, रक्तसन्निभ, रूक्ष और असमग्रशकट, शरासन तथा शृङ्गाटक सदृश अवस्थित है, वह पापकर होता है। परिवेष मयूरग्रीवासदृश होनेसे अतिवृष्टि, बहुवर्ण होनेसे नृपवध, धूमवर्ण होनेसे भय, इन्द्रधनु सदृश वा अशोककुसुमसदृशप्रभाविशिष्ट होनेसे युद्ध होगा, ऐसा जानना चाहिये। जिस ऋतुमें परिवेष एक वर्ण योगसे बहुल, स्निग्ध क्षुरकी तरह स्वल्प मेघ द्वारा व्याप्त होगा वा सूर्यकिरण पीतवर्णकी होगी, उस समय तत्क्षणात् वृष्टि होती है। प्रतिदिन अहर्निश सूर्य और चन्द्रका परिवेष रक्तवर्ण होनेसे नरेन्द्रवध समझा जाता है। फिर जिसके लग्न और दशमराशिमें सूर्य तथा चन्द्र परिविष्ट हों, उसकी भी मृत्यु होती है।

हिमवण्डल परिवेष सेनापतिके भयजनक है, किन्तु अत्यन्त शस्त्रकोपकर नहीं है। हिमवण्डल वा तदधिक मण्डलवान् परिवेषमें शस्त्रकोप, युवराजभय और नगररोध हुआ करता है। कोई ग्रह, चन्द्र वा नक्षत्र यदि परिवेष द्वारा निरुद्ध हो, तो तीन दिनमें वृष्टि वा एक मासमें विग्रह होगा, ऐसा जानना चाहिये। फिर होरा और लग्नाधिपति वा जन्मनक्षत्रका परिवेष होनेसे राजाका अशुभ होता है। शनि परिवेष-मण्डलगत होनेसे क्षुद्र धान्य नष्ट करते और स्थावर तथा कृषकोंके हननकारी हो कर वातवृष्टि उत्पादन किया करते हैं। मङ्गलके परिवेषगत होनेसे कुमार सेनापति और सैन्यका विद्रव तथा अग्नि और शस्त्रजातभय होता है। वृहस्पतिके परिवेषगत होनेसे पुरोहित, अमात्य और राजाओंको कष्ट होता है। बुधपरिवेषगत होनेसे मन्त्री, स्थावर और लेखकोंको परिवृद्धि तथा सुवृष्टि होती है। शुक्र परिविष्ट होनेसे क्षत्रिय और राजाओंको कष्ट तथा दुर्भिक्ष होता है। केतु परिवेषगत होनेसे क्षुधा, अनल, मृत्यु, राजा और शस्त्रका भय रहता है। राहु परिविष्ट होनेसे गर्भभय और व्याधि तथा नृपभय उपस्थित होता है। एक परिवेषके अभ्यन्तर दो ग्रह रहनेसे युद्ध और रवि, चन्द्र तथा शनि इन तीन ग्रहोंके परिविष्ट होनेसे क्षुधा और वृष्टिजनित भय होता है। चार ग्रहोंके परिविष्ट होनेसे अमात्य और पुरोहितकेसाथ राजाकी मृत्यु होती है। पञ्चादि ग्रहोंके परिवेषगत होनेसे जगत् मानो प्रलयकालके जैसा हो जाता है। ताराग्रह अर्थात् मङ्गलादि पञ्चग्रह अथवा नक्षत्रगण यदि पृथक् रूपसे परिवेषगत हों अथच उदित न हों, तो नरेन्द्रवध होता है। प्रतिपदादि चतुर्थी पर्यन्त तिथिमें परिवेष होनेसे क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंका विनाश होता है। पञ्चमीसे ले कर सप्तमी तककी तिथिमें श्रेणी, पुर और कोषका अशुभ, अष्टमीमें परिवेष होनेसे युवराजका और तत्परिस्थित तीनों तिथिमें परिवेष होनेसे राजाका द्वादशीमें पुररोध और त्रयोदशीमें होनेसे शस्त्रमोक्ष होता है। चतुर्दशीमें परिवेष होनेसे रानीको, पूर्णिमा और अमावस्यामें होनेसे राजाको कष्ट होता है। परिवेषके अभ्यन्तर यदि रेखा देखी जाय, तो नगरवासियोंको और परिवेषके बाहर रेखा रहनेसे गमनशील व्यक्तिको कष्ट पहुंचता है। ग्रहभुक्ति वा कर्मविभाग करनेसे जिस देशके भागमें परिवेषका वर्ण रूक्ष और श्याम होगा, उस देशकी पराजय होती है। स्निग्ध, श्वेतवर्ण वा दीप्तिशाली परिवेष जिनके भागमें पतित होते हैं, उनकी जय समझी जाती है। (वृहत्संहिता ३४ अ०)

२ परिवेषण, परसना या परोसना। ३ परिधि, घेरा। ४ कोई ऐसी वस्तु जो चारों ओरसे घेर कर किसी वस्तुकी रक्षा करती हो। ५ शहरपनाहकी दीवार, परकोटा, कोट।

परिवेषक (सं० पु०) परिवेषतीति परि-विष-ण्वुल्।

परिवेषणकर्त्ता, परसनेवाला। जो परिवेषण करेंगे उन्हें स्नान कर अङ्गमें चन्दन लेप उत्तम वस्त्रमाल्यादि पहनना चाहिये। जो विप्रभक्तिपरायण, प्रसन्नहृदय, प्रभुभक्त, स्वकार्यकुशल, प्रौढ़, वदान्य, शुचि और कुलीन आदि गुणोंसे सम्पन्न हैं, वे ही राजाके परिवेषक होने योग्य हैं।

परिवेषण (सं० क्लो०) परि-विष-णिच् ल्युट्। १ वेष्टन-परिधि, घेरा। २ परसना, परोसना। ३ सूर्य या चन्द्र आदिके चारों ओरका मण्डल। ४ भोजनार्थ भोजनपात्र-में अन्नादिका दान, श्राद्धमें अन्नादि विभाग कर देना। इसका विषय मनुने इस प्रकार कहा है—

"पाणिभ्यान्तूपसंगृह्य स्वयमन्नस्य वर्द्धितं।
विप्रान्तिके पितॄन् ध्यायन् शनकैरुपनिक्षिपेत ॥"
(मनु ३।२२४)

अन्नपूर्ण पात्र स्वयं दोनों हाथमें ले कर परिवेषणके लिये पितरोंका स्मरण करते हुए ब्राह्मणोंके समीप रखे। दोनों हाथसे न धारण कर जो अन्न लाया जाता है वा परिवेषण किया जाता है, दुष्टचेता असुरगण उसे उप-हरण करते हैं। शाकसूपादि व्यञ्जन पयः, दधि घृत और मधु ये सब द्रव्य परिवेषणके पहले अति सावधान हो कर अनन्यमनसे पृथ्वी पर रखें। विविध प्रकारकी भोज्यसामग्री, नाना प्रकारके फलमूल, हृदयग्राही मांस और पानीय ये सब क्रमशः समाहितमनसे श्राद्ध-निम-न्त्रित ब्राह्मणके समीप रख कर बहुत सावधानीसे उन्हें परिवेषण करने होते हैं। परिवेषणके समय परिवेष्य-माण भोज्यद्रव्यका गुण-कीर्त्तन करना होता है। उस समय अश्रुपात करना तथा असत्य बोलना बिलकुल निषेध है। (मनु ३।२२४-२३०) श्राद्धकालमें किस प्रकार ब्राह्मणको परिवेषण करना होता है, इसका विषय श्राद्धतत्त्वमें विशेषरूपसे लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां अधिक नहीं दिया गया। परिवेषणके समय अन्नपात्र संस्थापित करे, पीछे उस अन्नको दूसरे पात्रमें रख कर दोनों हाथसे परिवेषण करना उचित है। मैथिल ब्राह्मण केवल दाहिने हाथसे परिवेषण करना बतलाते हैं, पर यह युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि शास्त्रमें लिखा है, कि एक हाथसे दिया हुआ अन्न और शूद्रका अन्न खाना नहीं चाहिये। वशिष्ठवचनमें भी लिखा है, कि एक हाथसे दत्तान्न पदार्थ, लवण और व्यञ्जनादि प्रदत्त होनेसे भोक्ता केवल पापमात्र भोजन करते हैं, अतएव एक हाथसे परिवेषण नहीं करना चाहिये।

परिवेषवत् (सं० त्रि०) परिवेषः विद्यतेऽस्य परिवेष मतुप् मस्य व। १ परिवेषयुक्त, परिवेष्टित। २ परि-मण्डलयुक्त।

परिवेषिन् (सं० त्रि०) परिवेषोऽस्त्यस्य इनि। परिवेष-विशिष्ट, परिविष्ट।

परिवेषिका (सं० स्त्री०) परिवेषति या परि-विष-ण्वुल्, स्त्रियां टाप्, अत इत्वञ्च। परिवेषणकर्त्ती, परि-वेषणकारी स्त्री। इसका लक्षण इस प्रकार है—

"स्नाता विशुद्धवसना नवधूपितांगी
कर्पूरसौरभमुखी नयनाभिरामा।
बिम्बाधरा शिरसि बद्धसुगन्धिपुष्पा
मन्दस्मिता क्षितिभृतां परिवेषिका स्यात् ॥" (पाकराजेश्वर)

परिवेषिका स्त्री स्नान कर विशुद्ध वस्त्र पहने और वे नवधूपिताङ्गी हों, उनके मुखसे कर्पूरकी सुगन्ध निकलती रहे, वे नयनाभिरामा हों, उनके अधर बिम्ब-फलके सदृश हों, मस्तक सुगन्धित पुष्पोंसे आच्छादित रहे और वे ईषत्हास्यमुखी हों।

परिवेष्टन (सं० क्लो०) परि-वेष्ट ल्युट्। १ चारों ओरसे वेष्टन या घेरना। २ आच्छादन, छिपाने, ढकने या लपेटनेवाली चीज। ३ परिधि, घेरा, दायरा।

परिवेष्टा (हिं० पु०) परिवेषक, परसनेवाला।

परिवेष्टित (सं० त्रि०) परि-वेष्ट-क्त। चारों ओरसे वेष्टित या घिरा हुआ। पर्याय—परिक्षिप्त, वलयित, निवृत, परिष्कृत, परीत।

परिवेष्टृ (सं० त्रि०) परि-विष-तृच्। परिवेषणकारी, परसनेवाला।

परिवेष्टव्य (सं० त्रि०) परि-विष-कर्मणि-तव्य। परि-वेषणयोग्य, परसने लायक।

परिवेष्टि (सं० त्रि०) परि-वेष्ट-तृच्। परिवेष्टक, परिवेष्टनकारी।

परिव्यक्त (सं० त्रि०) सम्यक् रूपसे प्रकाशित, खूब स्पष्ट या प्रकट।

परिव्यय (सं० पु०) १ सम्यक् व्यय। २ दाम। ३ पण्य-द्रव्य।

परिव्ययण (सं० क्ली०) आच्छादन करना, ढकना।

परिव्ययणीय (सं० त्रि०) पुनरावृत्तियोग्य।

परिव्याध (सं० पु०) परिसर्वतोभावेन विध्यतीति परि-व्यध-ण। (श्याद्व्यधेति। पा ३।१।१४१) १ अम्बुवेतस, जलबेंत। २ द्रुमोत्पल, कनेर। ३ ऋषिभेद, एक ऋषि-का नाम। (त्रि०) ४ चारों ओरसे वेधनकारक, चारों ओरसे वेधने या छेदनेवाला।

परिव्रण्य (सं० त्रि०) परिभ्रमणयोग्य।

परिव्रज्या (सं० स्त्री०) परि-व्रज-भावे-क्यप्, स्त्रियां टाप्। १ तपस्या। २ इतस्ततः भ्रमण, इधर उधर घूमना। ३ भिक्षुककी भांति जीवन बिताना, लोहेकी चूड़ी आदि धारण करना और सदा भ्रमण करते रहना।

परिव्रढ़िमन (सं० पु०) परि-व्रढ़-दृढ़ादित्वादिमनिच्। आधिपत्य।

परिव्राज् (सं० पु०) परिवर्ज्य पुत्रादिकं व्रजति परि-व्रज-क्विप् दीर्घः। १ भिक्षु, यति, संन्यासी। पुत्रदारादि तथा सभी कर्मोंका परित्याग कर जो दूसरे आश्रमको ग्रहण करते हैं उन्हें परिव्राज् कहते हैं।

गरुड़पुराणमें लिखा है कि जिन्होंने सब आरम्भोंका परित्याग किया है, जो निष्परिग्रह, सभी जीवोंके प्रति द्रोहशून्य, सुख दुःखमें समान, बाह्य और अभ्यन्तर शौचसम्पन्न, जितेन्द्रिय, ध्यान और धारणाशील तथा भाव-विशुद्ध हैं, वे ही परिव्राजक कहलाते हैं। २ वह संन्यासी जो सदा भ्रमण करता रहे।

परिव्राज (सं० पु०) परित्यज्य सर्वान् विषयभोगान् गृहाश्रमात् व्रजतीति परि-व्रज-संज्ञायां कर्त्तरि घञ्। परिव्राजक, भिक्षुक।

परिव्राजक (सं० पु०) परि-व्राज-स्वार्थे कन्, परिव्रजतीति परि-व्रज-ण्वुल् वा परिव्राट्। जो सब प्रकारके विषय-भोगोंका परित्याग कर परिभ्रमण किया करते हैं, उन्हें परिव्राजक कहते हैं। पर्याय—चतुर्थाश्रमी, भिक्षु, कर्मन्दी, पाराशरी, मस्करी, संन्यासी, श्रमण, परिव्राज्, पाराशरी, व्रजक।

परिव्राजि (सं० स्त्री०) परि-व्रज-णिच्-इन्। श्रावणी क्षुप, गोरखमुंडी।

परिव्राजी (सं० स्त्री०) परिव्राजि देखो।

परिव्राट् (सं० पु०) १ परिव्राज, परिव्राजक।

परिशङ्कनीय (सं० त्रि०) परिशङ्कते इति परि-शङ्क-अनीयर्। सर्वतोभावसे शङ्काविषय, अत्यन्त शङ्काके योग्य।

परिशङ्किन् (सं० त्रि०) परि-शङ्का-अस्त्यर्थे इनि। अत्यन्त शङ्कायुक्त, जिसमें बहुत संदेह हो।

परिशप (सं० पु०) १ अभिसम्पात, अभिशाप। २ तिर-स्कार।

परिशमित (सं० त्रि०) १ निर्वापित। २ दूरीभूत।

परिशाश्वत (सं० त्रि०) जो सदा एक-सा रहे।

परिशिष्ट (सं० क्ली०) परितः शिष्टः, शिष-क्त। १ परिशेष-विशिष्ट, पुस्तक या लेखका वह अंश जिसमें ऐसी बातें लिखी गई हों जो यथास्थान देनेसे छूट गई हों और जिनके देनेसे पुस्तकके विषयकी पूर्त्ति होती हो। जैसे, छन्दोगपरिशिष्ट, गृह्यपरिशिष्ट आदि। २ किसी पुस्तकका वह अतिरिक्त अंश जिसमें कुछ ऐसी बातें दी गई हों जिनसे उसकी उपयोगिता या महत्व बढ़ता हो, ज़मीमा। (त्रि०) ३ अवशिष्ट, छूटा हुआ, बचा हुआ।

परिशीलन (सं० क्ली०) परि-शील-ल्युट्। १ अतिशय अनु-शीलनचर्या, सब बातों या अंगोंको सोच समझ कर पढ़ना। २ स्पर्श, लग जाना या छू जाना। ३ आलिङ्गन।

परिशुद्ध (सं० त्रि०) सर्वतोभावसे शुद्ध, परिष्कृत।

परिशुद्धि (सं० स्त्री०) १ निर्मलता, पूर्ण शुद्धि। २ दोषखण्डन, छुटकारा, रिहाई। ३ पापविमुक्त, पापसे छुटकारा।

परिशुश्रूषा (सं० स्त्री०) सर्वतोभावसे शुश्रूषा, सम्यक् रीतिसे सेवा, टहल।

परिशुष्क (सं० क्ली०) परितः शुष्कं शुष-क्त। १ मांस-व्यञ्जनभेद, तला हुआ मांस। पहले मांसको अच्छी तरह घीमें भून कर पीछे जलमें सिद्ध करे। बाद उसमें जीरा आदि डाल दे, इसीको परिशुष्क कहते हैं। (त्रि०) २ सर्वतोनीरस, बिलकुल सूखा हुआ, अत्यन्त रसहीन।

परिशून्य (सं० त्रि०) सम्यक् प्रकारसे शून्य वा विरहित।

परिशृत (सं० क्ली०) सुरा, मद्य।

परिशेष (सं० पु०) परि-शिष-घञ्। १ समाप्ति,

अन्त। २ परिशिष्ट। ३ जो कुछ बच रहा हो। (त्रि०) ४ अवशिष्ट, बाकी बचा हुआ।

परिशेषण (सं० क्लो) परि-शिष-ल्युट्। परिशेष, वह जो बाकी बच रहा हो।

परिशोध (सं० पु०) परि-शुध भावे घञ्। १ पूर्ण-शुद्धि, पूर्ण सफाई। २ ऋणशोध, ऋणको बेबाकी।

परिशोधन (सं० क्लो०) परि-शुध-ल्युट्। १ परिशोध, पूर्ण रीतिसे शुद्धि करना, अंग प्रत्यंगकी सफाई करना। २ ऋणका दाम दाम दे डालना, कर्जकी बेबाकी।

परिशोष (सं० पु०) परि-शुष-भावे-घञ्। सर्वतोभावसे शुष्कता, पूरी सफाई।

परिशोषण (सं० क्लो०) परि-शुष-ल्युट्। परिशोष, सब प्रकारसे शुष्कता।

परिशोषिन् (सं० त्रि०) परि-शुष्-णिनि। परिशोषयुक्त, परिशोषविशिष्ट।

परिश्रम (सं० पु०) परि-श्रम घञ्, न वृद्धिः। १ परि-श्रान्ति, थकावट, मांदगी। पर्याय—श्रम, क्लम, क्लेश, प्रयास, आयास, व्यायाम। २ उद्यम, मिहनत, मशक्कत।

परिश्रमापह (सं० त्रि०) परिश्रमं अपहन्ति इति परिश्रम-अप-हन् ड। परिश्रम अपनोदनकारी (वायु, जल प्रभृति)।

परिश्रमी (सं० त्रि०) उद्यमी, श्रमशील, मिहनती।

परिश्रय (सं० पु०) परि-श्रि-अच्, (एरच्। पा ३।३।५६) १ सभा, परिषद्। भावे अच्। २ आश्रय, रक्षास्थान, पनाहकी जगह। ४ वेष्टन, घेरा।

परिश्रयण (सं० क्लो०) परि-श्रि-ल्युट्। वेष्टन, घेरा।

परिश्रान्त (सं० त्रि०) परि-श्रम कर्त्तरि क्त। सर्वतो-भावसे श्रान्तियुक्त, बहुत थका हुआ।

परिश्रान्ति (सं० स्त्री०) परि-श्रम-भावे-क्तिन्। क्लान्ति, थकावट, मांदगी।

परिश्राम (सं० पु०) क्लान्ति, थकावट।

परिश्रित् (सं० त्रि०) परि-श्रि-क्विप् तुगागमश्च। १ सूक्ष्मपाषाण। २ यज्ञिष्टक समसंख्यक पाषाणखण्ड, यज्ञमें काम आनेवाला पत्थरका एक विशिष्ट टुकड़ा।

परिश्रुत (सं० त्रि०) परि-श्रु-क्त। १ सर्वतोभावसे श्रवणविशिष्ट, जिसके विषयमें यथेष्ट सुना या जाना जा चुका हो, प्रसिद्ध, मशहूर। (पु०) २ कुमारानुचरभेद।

परिश्लिष्ट (सं० त्रि०) परि-श्लिष-क्त। आलिङ्गित।

परिश्लेष (सं० पु०) परि-श्लिष भावे घञ्। आश्लेष, आलिङ्गन, गले मिलना।

परिषण्ड (सं० क्लो०) वाटिकादिका अंशभेद।

परिषण्डवारिक (सं० पु०) भृत्य, नौकर।

परिषत् (सं० स्त्री०) परिषद् देखो।

परिषत्त्व (सं० क्लो०) परिषदो भावः, 'तस्य भावे' इति त्व। परिषद्का धर्म या भाव।

परिषद् (सं० स्त्री०) परितः सीदन्त्यस्यां, परि-सद् अधिकरणे क्विप्, (सदिरप्रतेः। पा ८।३।६६) इति षत्वं। १ प्राचीन कालकी विद्वान् ब्राह्मणोंकी सभा।

> "दशावरा वा परिषद् यं धर्मं परिकल्पयेत्।
> त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत्॥
> त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः।
> त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत् स्यात् दशावरा॥"
> (मनु १२।११०-१११)

दश अथवा तीनसे न्यून न हो, ऐसी वृत्तिस्थित धर्मज्ञ ब्राह्मणोंकी सभाको परिषद् कहते हैं। इस परि-षद्से जो धर्म निरूपित होगा, वह सभीके शिरोधार्य है, इसे कोई भी लङ्घन नहीं कर सकता। तीन वेदके अध्येता, अनुमानज्ञ, तार्किक, पदार्थनिरुक्तिकुशल और मानवादि धर्मशास्त्र जिन्होंने पढ़ा है, ऐसे कमसे कम दश ब्रह्मचारी, गृहस्थ वा वानप्रस्थ ले कर परि-षद् करे। धर्मनिर्णयके विषयमें जो परिषद् बैठेगी वह ऋक् यजुः सामवेदके जाननेवाले कमसे कम तीन ब्राह्मण ले कर की जायगी। वे तीनों जो कुछ निर्णय कर देंगे, उसीके अनुसार सबको चलना पड़ेगा। जिनके कोई व्रत नहीं है, वेदाध्ययन नहीं है, जो जातिमात्रके ब्राह्मण हैं, ऐसे हजारों व्यक्ति होने पर भी उन्हें ले कर परिषद् नहीं बैठानी चाहिये। ये लोग जो कुछ उपदेश देंगे वह ग्रहणीय नहीं है। चरकमें विमानस्थानके अष्टम अध्यायमें लिखा है, कि परिषद् दो प्रकारकी है,—ज्ञानवती परिषद् और मूढ़परिषद्। साधारणतः परिषद् तीन प्रकारकी बतलाई गई है—

सुहृद्-परिषद्, उदासीन-परिषद् और प्रतिनिविष्टपरिषद् । प्रतिनिविष्ट-परिषद् ज्ञान, विज्ञान, वचन, प्रतिवचन और शक्तिसम्पन्न होना उचित है, मूढ़-परिषद्में किसीके भी साथ जल्पना करना विधेय नहीं है। २ सभा, मजलिस। ३ समूह, समाज, भीड़ ।

परिषद (सं० पु०) परितः सीदतीति परि-सद्-अच् । १ सदस्य, सभासद् । २ सवारी या जुलूसमें चलनेवाले वे अनुचर जो स्वामीको घेर कर चलते हैं, परिषद् । ३ मुसाहब, दरबारी ।

परिषद्य (सं० पु०) परिषदमर्हतीति परिषद्-यत् । १ सभाई, सदस्य । २ प्रेक्षक, दर्शक । ३ पर्याप्त ।

परिषद्वन् (सं० त्रि०) चारों ओरसे वर्त्तमान परिचारक ।

परिषद्वल (सं० त्रि०) परिषदस्यास्तीति परिषद्-वलच् (रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच् । पा ५।२।११२) सभासद्, सदस्य ।

परिषिक्त (सं० त्रि०) १ सिञ्चित, जो सींचा गया हो । २ जिस पर छिड़काव किया गया हो ।

परिषीवण (सं० क्ली०) परि-सिव-भावे ल्युट् । षत्वं ततो दीर्घश्च, निपातनात् सिद्धं । १ ग्रन्थीकरण, गांठ देना । २ सीना ।

परिषूति (सं० स्त्री०) परि-सू प्रेरणे क्तिन् । ततः षत्वं । प्रेरण, चारों ओर भेजना ।

परिषेक (सं० पु०) परि-सिच-घञ्, ततः षत्वं । परिषेचन, सिंचाई । २ छिड़काव । ३ स्नान ।

परिषेचक (सं० पु०) परि-सिच-ण्वुल, ततः षत्वं । १ क्षेपणकारी, सींचनेवाला, । २ छिड़कनेवाला ।

परिषोड़श (सं० त्रि०) जो सोलह संख्यामें पूरा होता है ।

परिष्कन्न (सं० त्रि०) परि-स्कन्द्-क्त, दस्य तस्य च नः (परेश्च । पा ८।३।७४) इति षत्वे षत्वं । १ परिष्कन्द, दूसरेसे पाला हुआ । २ परिपुष्ट, मोटा ताजा । (पु०) ३ भृत्यविशेष । ४ दत्तक पुत्र । ५ परपुष्ट व्यक्ति ।

परिष्कन्द (सं० पु०) वह संतति जिसको उसके माता पिताके अतिरिक्त किसी औरने पाला पोसा हो ।

परिष्कर (सं० पु०) परि-कृ-भावे बाहुलकात् अप्, सुट्-षत्वं । रथकी रचादि ।

परिष्कार (सं० पु०) परिष्क्रियतेऽनेन परि-कृ-घञ्, ततः सुट् (सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे । पा ६।१।१३७) परिनिवीति । पा ८।३।७०) इति षत्वं । १ अलङ्कार, भूषण । २ संस्कार, शुद्धि, शोधन । ३ शोभा । ४ सज्जितकरण, सजावट । ५ निर्मलीकरण, स्वच्छता, निर्मलता । ६ संयम ।

परिष्कारण (सं० पु०) १ वह जो पाला पोसा गया हो । २ दत्तक पुत्र ।

परिष्क्रिया (सं० स्त्री०) परि-कृ-श, सुट् स्त्रियां टाप् । १ परिष्कारकरण, शुद्ध करना । २ मांजना, धोना । ३ संवारना, सजाना ।

परिष्कृत (सं० त्रि०) परिष्क्रियते स्म इति परि-कृ-क्त, सुट् ततः षत्वं । १ भूषित, सजाया हुआ । २ वेष्टित, घिरा हुआ । ३ शुद्ध किया हुआ, साफ किया हुआ ।

परिष्कृतभूमि (सं० स्त्री०) परिष्कृता यज्ञार्थं पशुवन्धनाय यज्ञपात्रासादनाय चाहितसंस्कारा भूमिः । वेदि, विशुद्धभूमि ।

परिष्टवन (सं० पु०) सम्यक् प्रकारसे स्तुति करना, खूब तारीफ करना ।

परिष्टवनीय (सं० त्रि०) परिष्टवन ।

परिष्टि (सं० स्त्री०) परि-इष-क्तिन्, शकन्ध्वादित्वात् पररूपत्वं । सर्वतः अन्वेषण, चारों ओर खोजना ।

परिष्टुति (सं० स्त्री०) परि-स्तु-क्तिन्, ततः षत्वं यात् परस्य तस्य च ट । स्तुति, स्तव, प्रशंसा, तारीफ ।

परिष्टुभ् (सं० त्रि०) परि-स्तुभ-क्विप् । धनश्च ।

परिष्टोभ (सं० पु०) स्तुतियुक्त सामभेद, एक प्रकारका स्तुतियुक्त साम गान ।

परिष्टोम (सं० पु०) परितः स्तूयते नानावर्णवत्वादिति, स्तु-मन् ततः षत्वं केचित्तु परेः स्तौतिं प्रति अनुपसर्गत्वात् न षः इत्युक्त्वा परिस्तोम इति कल्पयन्ति । गजपृष्ठस्थित चित्रकम्बल, वह कपड़ा जिसे हाथी आदिकी पीठ पर शोभाके लिये डाल देते हैं, भूल ।

परिष्ठल (सं० क्ली०) परितः स्थलं (विकुशमि परिभ्यः स्थलं । पा ८।३।९६) इति षत्वं । चारों ओरका स्थल ।

परिष्ठा (सं० स्त्री०) परि स्था-क्विप् षत्वं । परिवेष्टन करके स्थित ।

परिष्यन्द (सं० पु०) परि-स्पन्द-घञ्, ततः षत्वं । १ नदी, दरिया । २ प्रवाह, धारा । ३ द्वीप, टापू ।

परिष्यन्दिन् (सं० त्रि०) परिष्यन्द अस्त्यर्थे इनि । प्रवाहमाण, बहता हुआ ।

परिष्वक्त (सं० त्रि०) आलिङ्गित, जिसका आलिङ्गन किया गया हो ।

परिष्वङ्ग (सं० पु०) परि-स्वञ्ज-घञ् । (परिनिवीति । पा ८।३।७०) षत्वं । आलिङ्गन, गले मिलना ।

परिष्वजान (सं० त्रि०) परिष्वजमान ।

परिष्वज्य (सं० त्रि०) आलिङ्गनयोग्य ।

परिष्वञ्जन (सं० क्ली०) परि-स्वञ्ज-ल्युट् ततः षत्वं आलिङ्गन, गलेसे लगना ।

परिष्वञ्जल्य (सं० पु० क्ली०) गृहादिमें व्यवहार्य तैजसभेद ।

परिष्वञ्जीयस् (सं० त्रि०) दृढ़ आलिङ्गनवद्ध ।

परिष्वष्किन (सं० क्ली०) इतस्ततः लम्फमान, इधर उधर उछलना कूदना ।

परिसंख्या (सं० स्त्री०) परि-सम्-ख्या-अङ् । १ परिगणना, गिनती । २ काव्यालङ्कारविशेष, एक अर्थालङ्कार जिसमें पूछी या बिना पूछी हुई बात उसीके सदृश दूसरी बातको व्यंग्य या वाच्यसे वर्जित करनेके अभिप्रायसे कही जाय । यह कही हुई बात और प्रमाणोंसे सिद्ध विख्यात होती है । यह शब्द और अर्थके भेदसे दो प्रकारकी होती है ।

उदाहरण—

"किं भूषणं सुदृढमत्र यशो न रत्नं
किं कार्यमार्यचरितं सुकृतं न दोषः ।
किं चक्षुरप्रतिहतं धिषणा न नेत्रं
जानाति कस्त्वदपरः सदसद्विवेकं ॥"

सुदृढ़ भूषण क्या है ? यश, रत्न नहीं ; कार्य क्या है ? आर्यचरित, दोष नहीं ; अप्रतिहत चक्षु क्या है ? धिषणा (बुद्धि), नेत्र नहीं । एतद्भिन्न दूसरा कौन मनुष्य सदसद्विवेक जानता है । यहां पर प्रश्नपूर्वक व्यवच्छेद किया गया है, अर्थात् सुदृढ़ भूषण क्या है ? इस प्रश्नमें रत्न सुदृढ़ भूषण नहीं है, यश ही सुदृढ़भूषण रत्न है, तत्सदृश अर्थात् रत्न सदृश यश द्वारा रत्न व्यवच्छेद्य हुआ है, इसीसे यहां पर परिसंख्या अलङ्कार हुआ । अन्य स्थलमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये ।

यहां पर रत्नादिका यशादि शब्द द्वारा व्यवच्छेद हुआ है, इस कारण यह शाब्द है । प्रश्नपूर्वक अर्थ द्वारा व्यवच्छेदका उदाहरण—

"किमाराध्यं सदा पुण्यं कश्च सेव्यः सदागमः ।
को ध्येयो भगवान् विष्णुः किं काम्यं परमं पदं ॥"

सदा आराध्य क्या है ? पुण्य, सेवनीय क्या है ? आगम, ध्येय कौन है ? भगवान् विष्णु, प्रार्थनीय क्या है ? परमपद । यहां पर आराध्य क्या है, तो पुण्य, पाप आराध्य नहीं है, यही प्रतीत होता है, इसीसे यहां अर्थवशतः पापादिका व्यवच्छेद होनेके कारण अर्थ परिसंख्या अलङ्कार हुआ ।

अप्रश्नपूर्वक उदाहरण—

"भक्तिर्भवे न विभवे व्यसनं शास्त्रे न युवतिकामास्त्रे ।
चिन्ता यशसि न वपुषि प्रायः परिदृश्यते महतां ॥"

महत् व्यक्तियोंकी भक्ति ईश्वरमें है, विभवमें नहीं; आसक्ति शास्त्रमें हैं, युवतिकामास्त्रमें नहीं, चिन्ता यशमें है, शरीरमें नहीं; प्रायः यही देखा जाता है । यहां पर प्रश्नपूर्वक नहीं है अथच विभवादि शब्दका व्यवच्छेद हुआ है, इस कारण यहां परिसंख्या अलङ्कार हुआ । (सा० १० प०) ३ विधिभेद ।

परिसंख्यात (सं० त्रि०) परि-सं-ख्या-क्त । परिगणित, गिना हुआ ।

परिसंख्यान (सं० क्ली०) परि-सं-ख्या-ल्युट् । परिगणन, गिनती ।

परिसंघुष्ट (सं० त्रि०) चारों ओर शब्दायमान ।

परिसंत्यज्य (सं० त्रि०) परित्याग योग्य, छोड़ने या त्यागने लायक ।

परिसंवत्सर (सं० अव्य०) ऊर्ध्वं संवत्सरात् अव्ययीभावः । वत्सरके ऊर्ध्व, एक वर्षके बाद ।

परिसख्य (सं० त्रि०) पूर्ण सख्यतायुक्त ।

परिसञ्चर (सं० पु०) सृष्टिकालादूर्ध्वं सञ्चरति परि-सम्-चर अच् । सृष्टिप्रलयकाल ।

परिसन्तान (सं० पु०) परि-सम्-तन-घञ् । तन्त्री, तार ।

परिसभ्य (सं० पु०) सभायां साधुः यत् । सभ्य, सभासद ।

परिसमन्त (सं० पु०) किसी वृत्तके चारों ओरकी सीमा ।

परिसमापन (सं० क्लो०) सम्यक्‌रूपसे समाधाकरण, भलोभांति समाप्त करना।

परिसमाप्त (सं० त्रि०) बिलकुल समाप्त, निश्शेष।

परिसमाप्ति (सं० स्त्री०) परितः समाप्तिः। परिशेष, अन्त।

परिसमुत्सुक (सं० त्रि०) अत्यन्त उत्सुक, उद्विग्न, चिन्ताकुल।

परिसमूहन (सं० क्लो०) परि-सम्-उह भावे ल्युट्। १ यज्ञकी अग्निमें समिधा डालना। २ तृण आदिको आगमें झोंकना।

परिसर (सं० पु०) परिसरत्यत्र, परि-सृ-घ। १ नदी या पहाड़के आस पासकी भूमि, किसी घरके निकटका खुला मैदान। २ मृत्यु, मौत। ३ विधि, तरोका। ४ शिरा, नाड़ी।

परिसरण (सं० क्लो०) परि-सृ-ल्युट्। १ इतस्ततः भ्रमण, टहलना। २ पराभव, हार। ३ मृत्यु, मौत।

परिसर्प (सं० पु०) परि समन्तात् सर्पणं, परि-सृप-घञ्। १ परिक्रिया, किसीके चारों ओर घूमना। २ परिजनादि द्वारा वेष्टन, अपने कुटुम्बोंसे घिरा हुआ। ३ सर्वतोभावसे गमन, घूमना फिरना। ४ सर्पविशेष, एक प्रकारका सांप। ५ कुष्ठरोगविशेष, सुश्रुतके अनुसार १८ क्षुद्र कुष्ठोंमेंसे एक। इसमें छोटी छोटी फुंसियां निकलती हैं जो फूट कर फैलती जाती हैं। उन फुंसियोंसे पोप भी निकलती है। ६ साहित्य-दर्पणके अनुसार नाटकमें किसीका किसोको खोजमें भटकना जब कि खोजी जानेवाली वस्तुके जानेको दिशा या अवस्थितिका स्थान अज्ञात हो, केवल मार्गके चिह्न आदिके सहारे उसका अनुमान किया जाय। जैसे, शकुन्तला नाटकके तोसरे अङ्कमें दुष्यन्तका शकुन्तलाको खोज करना।

परिसर्पण (सं० क्लो०) परि-सृप-ल्युट्। प्रसरण, चलना। २ रेंगना।

परिसर्पिन् (सं० त्रि०) परिसर्प-अस्त्यर्थे इनि। परिसर्पयुक्त, गन्ता, जानेवाला।

परिसर्या (सं० स्त्री०) परिसरणमिति सृ-गतौ (परिचर्या परिसर्येति। पा ३।३।१०१) इति सूत्रस्य वार्त्तिकोक्त्या निपातनात् सिद्धं। १ परिसार, सब जगह घूमना फिरना। २ भूमि पर सर्वतो भ्रमण। ३ सर्वस्व। ४ अनुसरण। ५ सेवा।

परिसहस्र (सं० त्रि०) सहस्रका पूरण।

परिसाधन (सं० क्लो०) १ निष्पादन, समाप्त करना। २ परम विषयका साधन।

परिसान्त्वन (सं० क्लो०) सर्वतोभावसे सान्त्वना-करण, परस्पर मिलन।

परिसामन् (सं० क्लो०) सामभेद।

परिसारक (सं० त्रि०) परि-सृ-ण्वुल्। चारों ओर गमनशील, भटकनेवाला।

परिसारिन् (सं० त्रि०) परि-सार-अस्त्यर्थे इनि। भ्रमणकारी, घूमनेवाला।

परिसिद्धिका (सं० स्त्री०) मण्डविशेष, वैद्यकमें एक प्रकारको चावलको लपसी।

परिसीमा (सं० स्त्री०) १ चारों ओरको सीमा, चौहद्दी। २ सोमा, हद।

परिसीर्य (सं० क्लो०) हलसंयुक्त चर्मबन्धनी, चमड़ेकी डोरी जो हलमें बंधी रहती है।

परिस्कन्द (सं० पु०) परिस्कन्दतीति परि-स्कन्द-अच्। (परेश्च। पा ८।३।७४) इति पक्षे षत्वा भावः। १ परपुष्ट, वह जिसका पालन पोषण उसके पिताके अतिरिक्त किसी औरने किया हो।

परिस्कन्न (सं० पु०) परि-स्कन्द-क्त, तस्य च नः पक्षे षत्वाभावः। परिस्कन्द।

परिस्तर (सं० पु०) परि-स्तृ-अच्, पक्षे षत्वाभावः। इधर उधर छितराना।

परिस्तरण (सं० क्लो०) परि-स्तृ-ल्युट्। १ विक्षेपण, छितराना, फेंकना। २ फैलाना, तानना। ३ आवरण करना, लपेटना।

परिस्तान (फा० पु०) १ वह कल्पित लोक या स्थान जहां परियां रहती हों। २ वह स्थान जहां सुन्दर मनुष्यों विशेषतः स्त्रियोंका जमघटा हो।

परिस्तोम (सं० पु०) परिस्तूयते प्रशस्यते नानी वर्ण-वत्त्वात् परि-स्तु-मन् वा परिगतः स्तोमोऽत्र। गजपृष्ठ-स्थित चित्रकम्बल, हाथो आदिको पीठ पर डाला जाने-वाला चित्रित वस्त्र, झूल।

परिस्थान (सं० क्लो०) स्थिति, रहनेका घर।

परिस्पन्द (सं० पु०) परिस्पन्द अधिकरणे घञ्। १ कुसुम-प्रकरादि और पत्रावलोकी रचना। २ परिकर। ३ परिवार। भावे घञ्। ४ सर्वतो भावसे स्पन्द, कंपकंपो। ५ मर्दन, दबाना।

परिस्पन्दन (सं० क्लो०) परि सर्वतोभावेन स्पन्दते इति परिस्पन्द-ल्युट्। १ सम्यक् कम्पन, बहुत अधिक हिलना, खूब कांपना। २ कम्पन, कांपना।

परिस्पन्दमान (सं० त्रि०) परिस्पन्दते इति परिस्पन्द-शानच्। सर्वतोभावसे कम्पमान।

परिस्पर्द्धा (सं० स्त्री०) धन, बल, यश आदिमें किसीके बराबर होनेकी इच्छा, मुकाबिला, लागडाट।

परिस्पर्द्धिन् (सं० त्रि०) परि-स्पर्द्ध-इनि। स्पर्द्धाकारी, मुकाबिला या लागडाट करनेवाला।

परिस्फुट (सं० त्रि०) १ व्यक्त, प्रकाशित। २ सम्यक्-रूपसे विकसित, खूब खिला हुआ। ४ विकसित, खिला हुआ।

परिस्मापन (सं० क्लो०) आश्चर्योद्दीपन, विस्मय या कुतूहल उत्पन्न करना।

परिस्यन्द (सं० पु०) परि-स्यन्द-भावे घञ्। परिस्यन्द, क्षरण, झरना, जैसे हाथीके मस्तकसे मदका परिस्यन्द।

परिस्यन्दिन् (सं० त्रि०) परि-स्यन्द-अस्त्यर्थे इनि। परिस्यन्दयुक्त, क्षरणयुक्त।

परिस्रव (सं० पु०) परि-स्रु-भावे अप्। १ परितः क्षरण, टपकना, चूना। २ मन्द प्रवाह, झिरझिरा कर बहना।

परिस्राव (सं० पु०) परि-स्रु-णिच्-अच्। १ परिस्रव-जनक उपद्रवभेद, सुश्रुतके अनुसार एक रोग। इसमें गुदासे पित्त और कफ मिला हुआ पतला मल निकलता रहता है। कड़े कोठेवालेको मृदु विरेचन देनेसे जब उभरा हुआ सारा दोष शरीरके बाहर नहीं हो सकता, तब वही दोष उपर्युक्त रीतिसे निकलने लगता है। इसमें कुछ कुछ मरोड़ भी होता है। इससे अरुचि और सब अंगोंमें थकावट होती है। कहते हैं, कि यह रोग वैद्य अथवा रोगीकी अज्ञताके कारण होता है।

परिस्रावण (सं० क्लो०) जलपरिस्रावक पात्रभेद, वह बरतन जिससे पानी टपका कर साफ किया जाय।

परिस्राविन् (सं० त्रि०) परिस्राव अस्त्यर्थे इनि वा परि-स्रु-ताच्छील्ये णिनि। १ निरन्तर स्रावशील, हमेशा बहनेवाला। २ क्षरणशील, चूने, रसने या टपकनेवाला। (पु०) ३ एक प्रकारका भगन्दर। इसमें फोड़ेसे हर समय गाढ़ा मवाद बहता रहता है। कहते हैं, कि यह कफके प्रकोपसे होता है। फोड़ा कुछ कुछ सफेद और बहुत कड़ा होता है। पोड़ा उतनी नहीं होती।

भगन्दर देखो।

परिस्राव्युदर (सं० क्लो०) उदररोगभेद।

परिस्रुत् (सं० स्त्री०) परिस्रवतीति परि-स्रु-क्विप् तुक् च। १ वरुणात्मजा। २ मद्य, शराब। ३ क्षरण। (त्रि०) ४ सर्वतोभावसे क्षरित, निचोड़ा हुआ।

परिस्रुत (सं० त्रि०) परितः स्रूयते स्म (गत्यर्थेति। पा ३।४।७२) इति कर्त्तरि-क्त। १ स्रावयुक्त, जो चू या टपक रहा हो। २ सर्वतोभावसे क्षरित, टपकाया हुआ, निचोड़ा हुआ। (पु०) ३ पुष्पसार, फूलोंका सार, इत्र।

परिस्रुत-दधि (सं० क्लो०) परिस्रुतं दधि। वस्त्र-गालित दधि, ऐसा दही जिसका पानी निचोड़ लिया गया हो। वैद्यकमें ऐसे दहीको वातपित्तनाशक, कफकारी और पोषक लिखा है।

परिस्रुता (सं० स्त्री०) परिस्रुत स्त्रियां टाप्। १ द्राक्षा-मद्य, अंगूरी शराब। २ वारुणी।

परिहणन (सं० क्लो०) परि-हन ल्युट्। सम्यक् नाश, क्षय।

परिहत (हिं० स्त्री०) १ हलके अंतिम और मुख्य भागको वह सोधी खड़ी लकड़ी जिसमें ऊपरकी ओर मुठिया होती है और नीचेकी ओर हरिस तथा तरेली या चौभी ठुँकी रहती है। २ एक नगरा। इसमें तरेलीकी लकड़ी अलगसे नहीं लगानी पड़ती किन्तु इसका निचला भाग स्वयं ही इस प्रकार टेढ़ा होता है, कि उसीको नोकदार बना कर उसमें फाल ठोंक दिया जाता है।

परिहत (सं० त्रि०) मृत, मरा हुआ।

परिहनु (सं० अव्य०) हन्वोरुपरि अव्ययो भावः। १ हनुका उपरिदेश। (त्रि०) ततः परिमुख्यादित्वात् ण्य। २ परिहण्य, जो हनुके ऊपरमें उत्पन्न हो।

परिहर (सं० पु०) परि-हृ अप्। परिहार।

परिहर—लोहरडंगावासी कुम्हारजाति।

परिहरण (सं० क्ली०) परि-हृ ल्युट्। १ परिवर्जन, त्याग। २ किसीके बिना पूछे अपने अधिकारमें कर लेना, छीन लेना। ३ निराकरण, दोष अनिष्टादिका उपचार या उपाय करना।

परिहरणीय (सं० त्रि०) परि-हृ-अनीयर्। १ परिहरण के योग्य, छीन लेने लायक। २ त्यागयोग्य, छोड़ या तज देने योग्य। ३ उपचार योग्य, हटाने या दूर करने-योग्य।

परिहर्त्तव्य (सं० त्रि०) परि-हृ-तव्य। त्यागयोग्य, तजने लायक।

परिहर्षण (सं० त्रि०) सम्यक् हर्षयुत।

परिहव (सं० पु०) सम्यक् आवाहन।

परिहस्त (सं० अव्य०) हस्तस्य परि, परिवर्जने अव्ययीभावः। हस्तका परिवर्जन।

परिहाटक (सं० क्ली०) १ अलङ्कारविशेष। २ वलय, कंकण।

परिहाण (सं० क्ली०) परि हा-ल्युट्। क्षति, क्षय, ह्रास।

परहानि (सं० स्त्री०) परिक्षय, विशेष हानि।

परिहार (सं० पु०) परि-ह्रियतेऽनेनेति परि-हृ-घञ्। १ अवज्ञा। २ अनादर। ३ दोष वचनका परिहरण, दोषादि को दूर करने या छुड़ानेका कार्य। ४ त्याग, तजनेका काम। ५ गोपन, छिपानेकी क्रिया। ६ विजित द्रव्यादि, लड़ाईमें जीता हुआ धनादि। ७ स्थानविशेष, मनुके अनुसार एक स्थानका नाम। ८ दोषापनय, दोषादिको दूर करनेकी युक्ति या उपाय। ९ उपेक्षा। १० पशुओंके चरनेके लिये परती छोड़ी हुई सार्वजनिक भूमि, चरहा। ११ कर या लगानकी माफी, छूट। १२ खण्डन, तरदीद।

परिहार—सूर्य और चन्द्रवंशीय राजपूत जातिकी स्वतन्त्र शाखा। ये लोग साधारणतः 'अग्निकुल' नामसे प्रसिद्ध हैं। प्रवाद है, कि आबूपर्वत पर जब मुनि लोग यज्ञ करते थे, उसी समय अनलकुण्डसे कई एक वीर्यवान् पुरुष उत्पन्न हुए *। परिहारवंशके आदिपुरुषरूपमें जिन्होंने जन्म लिया था, मुनियोंने उन्हीं पर यज्ञद्वारको रक्षाका भार सौंपा। इसी महापुरुषसे उनके वंशधरगण बहुत प्राचीन कालसे अपने पूर्वपुरुषका वंशपरिचय देते हैं †।

कलचुरीके राजाने कालञ्जर जीत कर परिहारोंको अपने अधीन कर लिया था। उस समय कालञ्जरप्रदेश परिहारराजके अधिकारभुक्त था। कलचुरीराजने अपनी विजयकीर्त्ति फहरानेके लिये उसी साल (२४९ ई०)में कलचुरी वा चेदिसम्वत् चलाया।

ये लोग अपनेको बुन्देलखण्ड और रेवावासी चन्देल तथा बघेलजातिसे भी पूर्वतन बतलाते हैं। महोवा-खण्डमें लिखा है, कि बारहवीं शताब्दीमें चन्देलराज परमालके मन्त्री परिहार राजपूतवंशीय थे।

कच्छवाहावंशीय राजाओंके राज्यशासनके बाद ११२९से ले कर १२११ ई० तक ग्वालियर प्रदेशमें परमालदेव आदि सात राजाओंने राज्य किया था ‡।

इसके बाद सुलतान शामस-उद्दीन-इ-अलतमसको ग्वालियर (उचहरप्रदेश) आक्रमणसे ही यहां मुसलमानी राज्य संस्थापित हुआ। (१)

* Cunningham's Arch. Sur, Report of India Vol. XXI. p. 93.

इस यज्ञसे चाहमान, परमार, परिहार आदि चार 'अग्निकुल' राजपूत जातिकी उत्पत्ति हुई। चाहमान, परमार आदि देखो।

† Ptolemy ने पोरवरोई (Porvaroi) नामक एक बहुप्राचीन समृद्धिशाली जातिकी कथाका उल्लेख किया है। ये लोग विंवहरी, बहुरियन और मुलताई आदि नगरोंमें राज्य करते थे। प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहम इन लोगोंको परिहार बतला गये हैं। (Cunningham's Arch. Rept. IX 55)

‡ उनके नाम ग्वालियर शब्दमें देखो।

(१) Tabakat-i-Nasiri, 1. p. 611. किन्तु फेरिस्तामें लिखा है, कि ११९६ ई०में बहाउद्दीन तुगलने जब ग्वालियर पर आक्रमण किया, तब परिहारराज सारङ्गदेवने कुतुब उद्दीन आइबकको स्वदेश रक्षाके लिये बुलाया। आइबकने स्वयं आ कर ग्वालियरको जीता और वहां अपना अधिकार अच्छी तरह जमा लिया। ६०७ हिजरीको कुतब-पुत्र आरामके शासनकालमें हिन्दुओंने फिरसे इस प्रदेश पर दखल जमाया। १२३२ ई० तक परिहार राजाओंके राज्य करनेके बाद उनके

परमारराजके परिहारमन्त्रीके प्रधान वंशधरसे जो आज भी गजनीके सामन्तराज्यमें वास करते हैं, सुना जाता है, कि वे गोविन्ददेवके वंशसम्भूत हैं और हमीर पुराधिपति परिहारवंशीय विख्यात राजा भाभारसिंहके पौत्र सारङ्गदेव उनके पूर्वपुरुष हैं। उक्त सारङ्गदेव मारवाड़ प्रदेशमें रहते थे। कर्नल टाडने लिखा है—मन्दावर (१) नगरमें परिहारोंकी राजधानी थी। कन्नौजसे विताड़ित राठोर सरदार चन्दने विश्वासघातकता से परिहारोंको राज्यसे मार भगाया और उनका सम्पूर्ण राज्य अपने दखलमें कर लिया (२)।

कुमारी, सिन्धु और चम्बल नदीके सङ्गम स्थल पर २४ ग्राम मिला कर एक परिहार-उपनिवेश स्थापित हुआ है। ये लोग पहले ठगोविद्रोहियोंके साथ मिल कर बहुत अत्याचार करते थे। आज भी कुमारी और चम्बल नदियोंके मध्यवर्ती सन्दय तालुकका उपस्वत्व 'ठाकुर' उपाधिधारी परिहारवंशीय जमींदारगण भोग कर रहे हैं।

युक्तप्रदेश और अयोध्याप्रदेशके एतावा जिलावासी परिहार लोग दस्युवृत्ति द्वारा जीविकानिर्वाह करते थे। यमुना, चम्बल, सिन्धु, कुमारी और पाहुज आदि पञ्चनदी प्रवाहित दुर्गम स्थानमें ये लोग छिप कर रहते और समय समय पर अपने औद्धत्यका परिचय देते थे। (३)

नाहरदेव नामक किसी परिहार सरदारने पृथ्वीराजके साथ युद्ध किया था (१)। दिल्लीपति अनङ्गपालको पराजय के बादसे इस प्रदेशमें उनका अभ्युत्थान देखा जाता है। वर्त्तमान समयमें ये लोग चौहान और सेङ्गर राजपूत जातिके साथ आदान-प्रदान करके अपने समाजमें उन्नत हुए हैं।

उन्नाव जिलेके सिकन्दरपुर परगनेके अन्तर्गत 'चौरासी' ग्रामके जमींदार लोग परिहारवंशके हैं। इनकी वंश-आख्यासे जाना जाता है, कि ये लोग काश्मीरराज्यके श्रीनगरसे यहां आ कर बस गये। उक्त वंशविवरणमें लिखा है कि, "सम्राट् हुमायुन्‌के राजत्वकालमें यमुनाके ऊपर तीरवर्त्ती जिगोनिवासी किसी परिहार-राजपुत्रके साथ परेण्डावासी एक दीक्षित कन्याका विवाह हुआ। बारातमें परेण्डा जाते समय ये लोग कुछ कालके लिये चरोसी ग्राममें ठहर गये। यहां उन्होंने एक दुर्ग देख कर पूछा, 'दुर्गाधिपति कौन है?' जब उन्हें मालूम हुआ, कि दुर्गाधिप शूद्रजातिका है, तब उस समय वे और कुछ नहीं बोले, वर और कन्या ले कर सीधे घरको चल दिये। पीछे होली उत्सवके दिन भागी सिंह नामक किसी सरदारने दलबलके साथ रातको आ कर दुर्ग पर अधिकार कर लिया।" (२) अभी वह सम्पत्ति उनके मध्य छोटे छोटे खण्डोंमें विभक्त हो गई है।

पश्चिममें कच्छवाहा और चौहानोंके साथ इनका विवाह होता है। ये लोग कालपी पर अधिकार कर गौतमोंके साथ विवाह किया करते थे। पीछे चन्देलसे पराजित हो कर ये उस समयमें शान्त हो गये। आजमगढ़-वासियोंका कहना है, कि गहरवाड़ जातिके द्वारा नरवार प्रदेशसे भगाये जाने पर ये लोग महमदाबाद परगनेमें आ कर बस गये। जलौनवासी परिहारगण बियास और गौतम शाखाके राजपूतोंको अपनी कन्या देते हैं, किन्तु उनके घरसे कन्यादि ग्रहण नहीं करते। फिर ये लोग कच्छवाहा, भदौरिया, चन्देल और राठोर आदिके घर अपने पुत्रका विवाह करते हैं। हमीरपुरवासी परिहार लोग मैनपुरी चौहान, भदौरिया, यादोन और राठोर

वंशका लोप हुआ। बादमें यहां मुसलमानोंका प्रभाव चारों ओर फैल गया और उन्होंने अपने हाथमें राजशासनका भार ग्रहण किया। Briggs' Firishta, Vol, I. p. 202.

(१) संस्कृत भाषामें इसका नाम मन्दोदी है। यह वर्त्तमान योधपुर नगरसे ५ मील उत्तर अवस्थित है। यहांका भग्नावशिष्ट मन्दिर, भास्कर्ययुक्त प्रतिमूर्त्ति और शिलालिपि देख कर टाडने लिखा है, "The remains of it bring to mind those of Volterra or Cortona and other ancient cities of Tuscany." L. 109

(२) Annals of Rajasthan, Vol. 1. p. 108-9.

(३) Census Rept. N. W. P. 1865 1, App. 85.

(१) Annals of Rajasthan, Vol. 1. p. 103.

(२) Elliotts' Chronicles of Unas, p. 58.

राजपूतोंके घर कन्याका तथा दीक्षित, वियास, चन्देल, गौतम, सेङ्गर, कानपुरवासी गौड़ और चौहान राजपूतोंके घर पुत्रका विवाह देते हैं। आगराके परिहार लोग अपनेको काश्यप गोत्रके बतलाते हैं।

प्राचीनतम उचहर राज्यमें परिहार राजाओंको कृत पूर्वतन कीर्त्तियोंका ध्वंसावशेष ७वीं-८वीं शताब्दीके पूर्व समयमें निर्मित था, ऐसा अनुमान किया जाता है। यहांके बिलहरी ग्राममें लक्ष्मणसेन परिहार कृत 'लक्ष्मण-सागर' एवं अन्य राजाका निर्मित 'सिङ्गौरगढ़' नामक एक सुविस्तीर्ण दुर्ग उल्लेखयोग्य है।

परिहारक (सं० त्रि०) परि-हृ-ण्वुल्। परिहारकारी, परिहार करनेवाला।

परिहारिन् (सं० त्रि०) परि-हृ णिनि। परिहारकारी, परिहरण करनेवाला।

परिहार्य (सं त्रि०) परि-हृ-ण्यत्। १ परिहारयोग्य। (पु०) २ अलङ्कारभेद, वलय, कंकण।

परिहास (सं० पु०) परि-हस-भावे-घञ्। १ परिहसन, हंसी, दिल्लगी, ठट्ठा।

परिहासपुर—काश्मीरराज्यके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। राजतरङ्गिणीमें लिखा है, कि राजा ललितादित्यने (७२७-७६० ई०में) यह नगर बसाया। यह वेहात नदीके पूर्व या दक्षिण कूल पर वर्त्तमान सम्बल ग्रामके निकट अवस्थित है। इस नगरकी प्राचीन कीर्त्तियोंका ध्वंसावशेष इधर उधर विच्छिन्न देखनेमें आता है। अबुलफजल अपने ग्रन्थमें लिख गये हैं, कि एक समय सिकन्दरने (१३८९-१४१३ ई०के मध्य) इस नगरके बड़े बड़े मन्दिरोंको तहस नहस कर डाला था। इनमेंसे एक मन्दिरकी ईंटोंके मध्य एक ताम्रफलक पाया गया है जिसमें लिखा है कि "११०० सौ वर्ष बाद यह मन्दिर सिकन्दरसे विध्वस्त होगा।" अबुलफजल और फिरिस्तावर्णित ताम्रशासनकी कथा कहां तक सत्य है, कह नहीं सकते।

परिहास्य (सं० त्रि०) परि-हस-ण्यत्। परिहसनीय, परिहासयोग्य।

परिहित (सं० त्रि०) परि-धा-क्त। १ पहना हुआ, ऊपर डाला हुआ। २ आच्छादित, चारों ओरसे छिपाया हुआ। ३ चारों ओर स्थित।

परिहीण (सं० त्रि०) १ सर्वतोभावसे हीन, सब प्रकारसे दुःखी और दरिद्र, फटे हालवाला। २ परित्यक्त, त्यागा हुआ।

परिहृत् (सं० त्रि०) परि-हृ-क्विप्, तुगागमश्च। १ पतित, भ्रष्ट, गिरा हुआ, पामाल। २ नष्ट, बरबाद, तबाह।

परिहृति (सं० स्त्री०) परि-हृ-क्तिन्। सर्वतोभावसे हानि, क्षय।

परिहृत् (सं० त्रि०) गमनपूर्वक हन्ता।

परिह्वृत् (सं० त्रि०) परिपीड़ित।

परिह्वृति (सं० स्त्री०) सर्वतोभावसे पीड़ा, परिबाधा।

परी (फा० स्त्री०) १ फारसीकी प्राचीन, कथाओंके अनुसार कोहकाफ पहाड़ पर बसनेवाली कल्पित स्त्रियां। ये अग्नेय नामकी कल्पित सृष्टिके अन्तर्गत मानी गई हैं। इनका सारा शरीर तो मानव स्त्रीका-सा ही माना गया है, पर विलक्षणता यह बताई गई है कि इनके दोनों कंधों पर पर होते हैं। इन परोंके सहारे ये गगन-पथमें विचरती फिरती हैं। इनका सौन्दर्य फारसी उर्दू साहित्यमें आदर्श माना गया है, केवल बहिश्तवासिनी हूरोंको ही सौन्दर्यकी तुलनामें इनसे ऊंचा स्थान दिया गया है। फारसी उर्दूकी कवितामें ये सुन्दर रमणियोंका उपमान बनाई गई हैं। २ परीसी सुन्दर स्त्री, निहायत खूबसूरत औरत। जैसे, उसकी सुन्दरताका क्या कहना, खासी परी है।

परीक्षक (सं० क्ली०) परि-ईक्ष-ण्वुल्। प्रमाण वा तर्क द्वारा निरूपक, परखने या जांचनेवाला।

परीक्षण (सं० क्ली०) परि-ईक्ष-ल्युट्। १ परीक्षा, जांच, पड़ताल। २ राजकर्त्तृक चरादि द्वारा अमात्यादिका भावतत्त्वनिरूपण। ३ वास्तुतत्त्वावधारण। ४ सर्वतोभावसे दर्शन।

परीक्षा (सं० स्त्री०) परित ईक्षतेऽनया परि-ईक्ष-अ (गुरुश्च हलः। पा ३।३।१०२) ततष्टाप्। १ गुणदोष-विवेचन, तर्कप्रमाणादि द्वारा वस्तुका तत्त्वावधारण, दोष-गुणानुसन्धान। परीक्षा करनेसे, दोष क्रिया है वा नहीं, इसका पता लग जाता है। घट, अग्नि आदि द्वारा परीक्षा की जाती है।

"घटोऽग्निरुदकञ्चैव विषं कोषश्च पञ्चमम्।
षष्ठञ्च तण्डुलं प्रोक्तं सप्तमं तप्तमाषकम्
अष्टमं फालमित्युक्तं नवमं धर्मजं स्मृतं।
दिव्यान्येतानि सर्वाणि निर्दिष्टानि स्वयम्भुवा॥"

(बृहस्पति)

घट, अग्नि, उदक, विष, कोष, तण्डुल, तप्तमाषक, फाल और धर्मज इन सब दिव्यों द्वारा परीक्षा करनी होती है। पापी ये सब दिव्य करके यदि उत्तीर्ण हो सके, तो समझना चाहिये, कि उसकी प्रकृत परीक्षा हुई। चैत, अग्रहायण और वैशाख ये तीन मास परीक्षा-काल बतलाये गये हैं। घट द्वारा जो परीक्षा की जाती है, वह सभी ऋतुओंमें होती है। शिशिर, हेमन्त और वर्षामें अग्निपरीक्षा, शरत् और ग्रीष्ममें जलपरीक्षा, हेमन्त और शिशिरमें विषपरीक्षा तथा कोषपरीक्षा सभी ऋतुओंमें हो सकती है। नारदसंहितामें लिखा है, कि शीतकालमें जलशुद्धि, उष्णकालमें अग्निशोधन, वर्षाकालमें विष और प्रवातमें तुलापरीक्षा नहीं करनी चाहिये।

पूर्वाह्णकालमें सब प्रकारकी परीक्षा की जा सकती है। अपराह्ण, सन्ध्या और मध्याह्नकालमें एक भी परीक्षा कर्त्तव्य नहीं है।

"पूर्वाह्णे सर्वदिव्यानां प्रदानं परिकीर्त्तितम्।
नापराह्णे न सन्ध्यायां न मध्याह्ने कदाचन॥" (नारद)

शपथ (परीक्षा)-के विषयमें और भी लिखा है, कि जो शपथ देवता, पिताके चरण और पुत्र, दारा तथा सुहृदके मस्तक छू कर किया जाता है, उसे भी परीक्षा कह सकते हैं। यह शपथ सामान्य अपराध पर बतलाया गया है।

"सत्यवाहनशस्त्राणि गोवीजकनकानि च।
देवतापितृपादांश्च दत्तानि सुकृतानि च॥
स्पृशेत् शिरांसि पुत्राणां दाराणां सुहृदान्तथा।
अभियोगेषु सर्वेषु कोषपानमथापि वा॥
इत्येते शपथाः प्रोक्ताः मनुना स्वल्पकारणात्॥"

(नारद)

सामान्य अपराधमें इस प्रकारका शपथ करनेसे उसे विशुद्ध जानना चाहिये। इस परीक्षाको सामान्य परीक्षा कह सकते हैं। ज्योतिषमें लिखा है, कि बृहस्पति सिंहस्थित, मकरस्थित वा अस्तमित होनेसे तथा मलमासमें जयाकांक्षी व्यक्ति द्वारा परीक्षा कर्तव्य नहीं है रविशुद्धि और शुक्र तथा गुरु अस्तमित होनेसे एवं अष्टमी, चतुर्दशी, शनि और मङ्गलवारमें परीक्षा निषेध है।

ब्राह्मणकी परीक्षा घट द्वारा, क्षत्रियकी हुताशन द्वारा, वैश्यकी सलिल द्वारा, शूद्रकी विष द्वारा, एवं द्विज और सबोंकी परीक्षा कोष द्वारा करनी चाहिये।

व्रतधारी अति आर्त्त, व्याधिग्रस्त, तपस्वी और स्त्री इनका दिव्य (परीक्षा) निषेध बतलाया है। शूलपाणिने अन्यान्य शास्त्रोंके साथ एकमत हो कर स्थिर किया है, कि इनका जो दिव्य निषेध है, सो तुलापरीक्षाके सिवा और इनकी कोई परीक्षा नहीं होगी। कात्यायनके वचनमें लिखा है, कि लौहशिल्पीको अग्निकी परीक्षा, अम्बुसेवीको जलपरीक्षा और मुखरोगीको तण्डुल परीक्षा नहीं करनी चाहिये।

नारदवचनमें लिखा है—क्लीव, आतुर, सत्त्वहीन, परितापान्वित, बाल और वृद्ध इनकी परीक्षा घटसे करनी चाहिये। आर्त्तकी तोयशुद्धि, पित्तरोगीका विष, श्वित्री, अन्ध और कुनखीका अग्निकर्म, स्त्री और बालकका मज्जन, निरुत्साह, व्याधिकृश और आर्त्त इनका जलदिव्य निषिद्ध है। विचारक अपराधकी विवेचना कर धर्म शास्त्रानुसार परीक्षा करें। जहां साक्षियोंको समता हो, वहां विचारक प्रतिज्ञा करावें और प्राणान्तिक विवाद होने पर साक्षीके विद्यमान रहते भी दिव्यका प्रयोग करें।

दिव्य तत्त्वमें इसका विशेष विवरण लिखा है, विस्तारके भयसे यहां अधिक नहीं लिखा गया।

घटादि दिव्यका विशेष विवरण तत्तत् शब्दमें और दिव्य शब्दमें देखो।

भिषक् रोगीको उत्तमरूपसे परीक्षा करें, पीछे औषध-निर्वाचन विधेय है।

"बुद्धिः पश्यन्ति या भावान् बहुकारणयोगजान्।
युक्तिस्त्रिकाला सा ज्ञेया त्रिवर्गः साध्यते यया॥
एषा परीक्षा नास्त्यन्या यया सर्वं परीक्ष्यते।
परीक्ष्यं सदसच्चैव तया नास्ति पुनर्भवः॥"

(चरक सूत्र० ११ अ०)

अनेक कारणवशतः जो उत्पन्न होता है, बुद्धि द्वारा यदि वह अपगत हो जाय, तो उसे त्रिकाला युक्ति कहते हैं। इसके द्वारा त्रिवर्ग साधित होता है और सभी परीक्षा की जाती है। भिषक् रोगीके पास जा कर इस प्रकार परीक्षा करें,—दर्शन, स्पर्शन और प्रश्न इन तीन प्रकारसे रोगीकी परीक्षा करनी होती है। दर्शन द्वारा परमायु, रोगकी साध्यता और असाध्यतादि, स्पर्शन द्वारा शीतलता, उष्णता, मृदुता और कठिनता तथा नाड़ीपरीक्षा प्रभृति और प्रश्न द्वारा उदरकी लघुता, गुरुता, पिपासा, अतृष्णा, क्षुधा, अक्षुधा तथा बला-बलादिकी परीक्षा करे। रोगीको जब तक अच्छी तरह देखा न जाय और प्रश्न न पूछा जाय अथवा सम्यक् प्रकारसे अवस्थाका वर्णन न किया जाय, तब तक प्रकृत रोगका पता लगाना कठिन है। नेत्र, जिह्वा और मूत्र आदि देख कर परीक्षा करनी होती है। प्रथम नेत्रपरीक्षा—वायुके प्रकोपसे नेत्र रूक्ष, धूम्र और अरुणवर्ण हो जाते हैं तथा दृष्टिस्तब्धता होती है। पित्त-प्रकोपसे नेत्र हरिद्राखण्डकी तरह वा रक्त अथवा हरित-वर्ण और दाहयुक्त होते हैं तथा रोगी प्रदीपका प्रकाश सह्य नहीं कर सकता। कफके प्रकोपसे नेत्र स्निग्ध, अश्रुपूर्ण, शुक्लवर्ण, ज्योतिविहीन और बलान्वित होते हैं। दो दोषोंकी अधिकता होनेसे नेत्रमें भी मिश्रित दोष झलकने लगता है। त्रिदोषके प्रकोपसे चक्षु अत्यन्त अन्त-र्निविष्ट और उनका प्रान्तभाग उन्मीलित तथा चक्षुसे अनवरत अश्रुपात होता है। जिह्वापरीक्षा करनेमें वायु-के प्रकोपसे जिह्वा शाकपत्रकी तरह आभाविशिष्ट, रूक्ष और स्फुटित होती है। पित्तप्रकोपसे जिह्वा रक्त अथवा श्यामवर्णकी तथा कफके प्रकोपसे परिलिप्तप्राय, आर्द्र और शुक्लवर्णकी हो जाती है। मूत्रपरीक्षा करनेमें मूत्र वायुके प्रकोपसे पीतवर्ण, पित्तके प्रकोपसे रक्त या नील-वर्ण, रक्तके गुणसे रक्तवर्ण और कफके प्रकोपसे श्वेत-वर्णका हो जाता है। शरीरकी शीतलता और उष्णतादि पहले शरीर पर हाथ रख कर पीछे नाड़ीकी परीक्षा कर जानी जाती है। नाड़ी पुरुषके दाहिने हाथकी और स्त्रीके बाएँ हाथकी देखनी होगी। तीन उँगली दाहिने या बाएं हाथ पर रख कर नाड़ीपरीक्षा करनेसे शारीरिक सुख दुःख जाना जाता है। स्नानके बाद, निद्रित अवस्थामें, क्षुधित, पिपासार्त्त, आतपताड़ित वा व्यायामादि द्वारा क्लान्त व्यक्तियोंकी नाड़ीपरीक्षा कर्त्तव्य नहीं है। क्योंकि इन सब अवस्थामें नाड़ीकी गति सम्यक् रूपसे नहीं जानी जा सकती। (भावप्र० १ ख०)

विशेष विवरण नाड़ी शब्दमें देखो।

२ वह कार्य जिससे किसीको योग्यता, सामर्थ्य आदि जानी जाय, इम्तहान। ३ अनुभवार्थ प्रयोग, आज-माइश। ४ निरीक्षण, जांचपड़ताल, मुआयना। ५ समालोचना, समीक्षा, निरीक्षा।

परीक्षित् (सं० पु०) परि सर्वतोभावेन क्षीयते हन्यते दुरितं येन परि-क्षि-वधे क्विप् तुक् च वा परीक्षीणेषु कुरुषु क्षियते इष्टे उपसर्गस्य दीर्घत्वं क्विप् घञादौ क्वचिद्भवेत्, इति उपसर्गस्य दीर्घत्वं। १ अर्जुनके पोते, उत्तराके गर्भसे उत्पन्न अभिमन्युके पुत्र। महाभारतमें लिखा है, कि कुल परिक्षीण होने पर इस बालकने जन्म-ग्रहण किया था, इस कारण इनका परीक्षित् नाम पड़ा।'*

इनकी कथा अनेक पुराणोंमें आई है। महाभारतमें लिखा है, कि जिस समय ये उत्तराके गर्भमें थे, द्रोणाचार्य-के पुत्र अश्वत्थामाने गर्भमें ही इनको हत्या कर पाण्डु-कुलका नाश करना चाहा। इस अभिप्रायसे उन्होंने ऐषीक नामके महास्त्रको उत्तराके गर्भमें प्रेरित किया। इसका फल यह हुआ, कि गर्भसे परीक्षित्का छः मास-का झुलसा हुआ मृत पिण्ड बाहर निकला। भगवान् कृष्णचन्द्र पाण्डुकुलका नाम लोप करना चाहते नहीं थे, इसलिये उन्होंने अपने योगबलसे मृत भ्रूणको जीवित कर दिया। परिक्षीण या विनष्ट होनेसे बचाये जानेके कारण इस बालकका नाम परीक्षित् रखा गया।

(सौप्तिकपर्व १६ अ० और आदिपर्व ९५ अ०)

युधिष्ठिरादि पाण्डव संसारसे भलीभांति उदासीन हो चुके थे और तपस्याके अभिलाषी थे। अतः वे शीघ्र

---

* "परिक्षीणे कुले जातो भवत्वयं परीक्षिन्नामेति।" (१। ९५। ८४)

तथा—"परिक्षीणेषु कुरुषु सोत्तरायामजीजनत्।
परिक्षीदभवत्तेन सौभद्रस्यात्मजो बली॥" (१।४९।१५)

हो इन्हें हस्तिनापुरके सिंहासन पर बिठा द्रौपदी समेत तपस्या करने चले गये। ब्राह्मणोंके उपदेशानुसार परीक्षित् राज्यपालन करने लगे।

यथासमय इन्होंने माद्रवती नामक एक राजकन्याका पाणिग्रहण किया जिनके गर्भसे जनमेजय उत्पन्न हुए। (आदि० ९५ अ०) कोई कोई कहते हैं, कि इन्होंने राजा उत्तरकी इरावती नामक कन्यासे विवाह किया था और उन्हींके गर्भसे जनमेजय आदि चार पुत्र उत्पन्न हुए। (भागवत १।१६।२)

परीक्षित्ने महाभारत युद्धमें कुरुदलके प्रसिद्ध महारथी कृपाचार्यसे अस्त्र-विद्या सीखी थी और उन्हें ही गुरु बना कर गङ्गातट पर तीन अश्वमेध यज्ञ किये थे। कहते हैं, कि अन्तिम यज्ञमें देवताओंने प्रत्यक्ष आ कर बलि-ग्रहण किया था।

परीक्षित् जब कुरुजाङ्गलमें रहते थे, उस समय एक दिन इन्होंने सुना कि, कलियुग उनके राज्यमें घुस आया है और अधिकार जमानेका मौका ढूंढ़ रहा है। यह अप्रिय वार्त्ता सुन कर ये उसे राज्यसे निकाल बाहर करनेके लिये ढूंढने निकले। सरस्वती नदी पार हो कर इन्होंने देखा, कि एक गाय और एक बैल अनाथ कातर भावसे खड़े हैं और एक शूद्र जिसका वेष-भूषण तथा ठाट-बाट राजाके समान था, डंडेसे उन्हें मार रहा है। बैलके केवल एक ही पैर था। पूछने पर परीक्षित्को बैल, गाय और राजवेषधारी शूद्र तीनोंने अपना अपना परिचय दिया। गाय पृथ्वी थी, बैल धर्म था और शूद्र कलिराज। धर्मरूपी बैलके सत्य, तप और दयारूपी तीन पैर कलियुगने मार कर तोड़ डाले थे, केवल एक पैर दानके सहारे वह भाग रहा था, उसे भी तोड़ डालनेके लिये कलियुग बराबर उसका पीछा कर रहा था। धर्मरूपी वृषसे इतनी बात जान कर परीक्षित्को कलियुग पर क्रोध हुआ और उसे मारनेके लिये खड्ग उठाया। कलि राजवेष छोड़ कर राजाके चरण पर लेट रहा और बहुत गिड़गिड़ा कर बोला "मेरे रहनेके लिये कोई स्थान बतला दीजिए।" इस पर परीक्षित्को दया आ गई और उन्होंने उसके रहनेके लिये जुआ, स्त्री, मद्य, हिंसा और सोना ये पांच स्थान बतला दिये। ये पांच स्थान छोड़ कर अन्यत्र न रहनेकी कलिने प्रतिज्ञा की। राजाने पांच स्थानोंके साथ साथ मिथ्या, मद, काम, हिंसा और वैर ये पांच वस्तुएं भी दे डालीं। (भागवत १।१७ अ०)

इस घटनाके कुछ समय बाद महाराज परीक्षित् एक दिन आखेट करने निकले। कलियुग बराबर इस ताकमें था कि, किसी प्रकार परीक्षित्का खटका मिटा कर अकण्टक राज करें। राजाके मुकुटमें सोना था ही, कलियुग उसमें घुस गया। राजाने एक हिरनके पीछे घोड़ा छोड़ा। बहुत दूर तक पीछा करने पर भी वह न मिला। एक तो राजा ६० वर्षके बूढ़े, दूसरे थकावटके कारण उन्हें प्यास लग गई थी। एक वृद्ध मुनि मार्गमें मिले। राजाने उनसे पूछा कि क्या इस राह हो कर कोई हिरन भागा है? मुनि मौनी थे, इसलिये राजाके प्रश्नका कुछ उत्तर न दे सके। थके और प्यासे परीक्षित्को मुनिके इस व्यवहारसे बड़ा क्रोध हुआ। राजाको यह मालूम नहीं, कि मुनिने मौनव्रत अवलम्बन किया है, कारण उनके सिर पर कलियुग सवार था। उन्होंने निश्चय कर लिया कि, मुनिने घमण्डके मारे हमारी बातका जवाब नहीं दिया है और इस अपराधका उन्हें कुछ दण्ड होना चाहिये। पास ही एक मरा हुआ सांप पड़ा था। राजाने कमानकी नोकसे उसे उठा कर मुनिके गलेमें डाल दिया और अपनी राह ली।

उस ऋषिके गोगर्भसे उत्पन्न शृङ्गी नामक एक महातेजस्वी पुत्र था। किसी कामसे वह बाहर गया था, लौटते समय रास्तेमें उसने सुना, कि कोई आदमी उसके पिताका अपमान करके उनके गलेमें मृत सर्पकी माला पहना गया है। कोपशील शृङ्गीने पिताके इस अपमानकी बात सुनते ही हाथमें जल ले कर शाप दिया, 'जिस पापात्माने मेरे पिताके गलेमें मृत सर्प पहनाया है, आजसे सात दिनके भीतर तक्षक नामका सर्प उसे डस ले।' आश्रममें पहुंच कर शृङ्गीने पितासे अपमान करनेवालेको उपयुक्त शाप देनेकी बात कही। ऋषिको पुत्रके अविवेक पर दुःख हुआ और उन्होंने शमीक गौरमुख नामक एक शिष्य द्वारा परीक्षित्को शापका समाचार कहला भेजा, ताकि वे सतर्क रहें।

परीक्षित्‌ने ऋषिके शापको अटल समझ कर अपने लड़के जनमेजयको राजसिंहासन पर बिठा दिया और सब प्रकारसे मरनेके लिये प्रस्तुत हो कर अनशनव्रत करते हुए श्रीशुकदेवजीसे श्रीमद्भागवतकी कथा सुनी। सातवें दिन ब्रह्मर्षि काश्यप राजाके निकट आ रहे थे। राहमें नागराज तक्षक उनसे मिला और बोला, 'ब्राह्मण! इतनी तेजीसे कदम बढ़ाये कहां जा रहे हो? काश्यपने उत्तर दिया, 'आज भुजङ्गराज तक्षक कुरुकुलप्रदीप राजा परीक्षित को दग्ध करेगा, सो मैं उन्हें आरोग्य करने जाता हूं।' इस पर तक्षकने कहा, 'मैं ही तक्षक हूं! मेरे डसनेसे क्या तुम उन्हें जिला सकते हो? कभी नहीं, मेरे इस अद्भुत वीर्यको देखो।' इतना कह कर उसने एक वृक्ष पर दांत मारा, जो तत्काल जल कर भस्म हो गया। काश्यपने अपनी विद्यासे उसे पूर्ववत् हरा भरा कर दिया। इस पर तक्षकने कहा कि, 'तुम जिस आशा पर राजा यहां जा रहे हो, वह आशा मैं यहीं पूरी कर देता हूं, लौट जावो।' ब्रह्मर्षिके स्वीकार करने पर तक्षकने बहुत सा धन दे कर उन्हें लौटा दिया। परम धार्मिक परीक्षित् सुरक्षित प्रासादमें बड़ी सावधानीसे बैठे हुए थे, कि इसी बीच छद्मवेषमें आ कर तक्षकने उन्हें डस लिये और विषकी भयङ्कर ज्वालासे उनका शरीर भस्म हो गया। (भारत आदि ५० अ०)

देवी भागवतमें लिखा है, कि शापका समाचार पा कर परीक्षितने तक्षकसे अपनी रक्षा करनेके लिये एक सात मंजिल ऊंचा मकान बनवाया और उसके चारों ओर अच्छे अच्छे सर्पमन्त्रज्ञाता और सुहरा रखनेवालों को तैनात कर दिया। सातवें दिन जब तक्षकको हस्तिनापुरमें यह हाल मालूम हुआ, तब वह बहुत घबराया और किस तरह यह काम पूरा हो, इसी चिन्तामें रात दिन बेचैन रहा। अन्तको परीक्षित तक पहुंचनेका उसे एक उपाय सूझ पड़ा। उसने अपने एक सजातीय सर्पको तपस्वीका रूप दे कर उसके हाथमें कुछ फल दे दिये और एक फलमें बहुत छोटे कीड़ेका रूप धर कर आप जा बैठा। जब वह तपस्वी सर्प सुरक्षित प्रासाद तक पहुंचा, तब पहरेदारोंने उसे अन्दर जानेसे मना किया, लेकिन राजाको खबर मिलने पर उन्होंने उसे अपने पास बुलवा लिया और फल ले कर उसे बिदा कर दिया। एक तपस्वी मेरे लिये यह फल दे गया है, अतः इसके खानेसे अवश्य उपकार होगा, यह सोच समझ कर उन्होंने और फल तो मंत्रियोंमें बांट दिये, पर उसको अपने खानेके लिये काटा। काटनेके साथ ही उसमेंसे एक छोटा कीड़ा बाहर निकला जिसका रंग तांमड़ा और आंखें काली थीं। परीक्षित कीड़ा देख कर विस्मित हो गये और मन्त्रियोंसे बोले, 'सूर्य अस्त हो रहे हैं, अब तक्षकसे मुझे कोई भय नहीं। परन्तु ब्राह्मणके शापको मानरक्षा करनी चाहिए, इसलिये इस कीड़ेसे डसनेकी विधि पूरी करा लेता हूं।' यह कह कर उन्होंने उस कीड़ेको गलेमें लगा लिया। परीक्षितके गलेसे स्पर्श होते ही यह नन्हा-सा कीड़ा भयंकर सर्प हो गया और उसके दंशनके साथ परीक्षितका शरीर भस्मसात् हो गया। इस प्रकार तक्षकने राजाका विनाश कर गगनको प्रस्थान किया।

(देवीभाग १२० १० अ०)

परीक्षितकी मृत्युके बाद कलियुगसे छेड़ छाड़ करनेवाला कोई न रहा और वह उसी दिनसे अकंटक भावसे शासन करने लगा। पिताकी मृत्युका परिशोध लेनेके लिये जनमेजयने सर्पयज्ञ किया जिसमें सारे संसारके सर्प मन्त्रबलसे खिंच आए और यज्ञकी अग्निमें उनकी आहुति हुई। २ कंसका एक पुत्र। ३ अयोध्याके एक राजा। ४ अनश्वके एक पुत्र।

परीक्षित (सं० पु०) परीक्षीणे कुरुकुले क्षीयतिस्म ईष्टेस्म इति परि-क्षि-क्त, उपसर्गस्य दीर्घत्वं। १ अभिमन्युपुत्र। परीक्षित् देखो। (त्रि०) २ कृतपरीक्षा, जिसकी परीक्षा की गई हो।

परीक्षितव्य (सं० त्रि०) परि-ईक्ष-तव्य। परीक्षणीय, जिसका इम्तहान या आजमाइश या जांच की जा सके।

परीक्षिन् (सं० त्रि०) परि-ईक्ष-इनि। परीक्षाकारक, युक्ति और प्रमाणादि द्वारा जो परीक्षा लेते हैं।

परीक्ष्य (सं० त्रि०) परि-ईक्ष-ण्यत्। १ परीक्षाके योग्य। २ जिसकी परीक्षा करना उचित या कर्त्तव्य हो।

परीछम (हिं० पु०) पैरमें पहननेका चांदीका एक गहना।

परीक्षा (हिं० स्त्री०) परीक्षा देखो।

परीजाद (फा० वि०) अत्यन्त रूपवान्, बहुत सुन्दर।

परीज्या (सं० स्त्री०) यज्ञाङ्ग पूजाभेद, परियज्ञ।

परीणस् (सं० त्रि०) परि-नस-क्विप्। १ व्यापक। २ चारों ओरसे बद्ध। ३ महत्, बड़ा।

परीणसा (सं० अव्य०) परि-नस-ड्याप्सो बाहु० आत् दीर्घः। बहु पदार्थ।

परीणह (सं० स्त्री०) परि-नह-भावे क्विप्, 'नहि वृतीत्यादिना' पूर्वपदस्य दीर्घः। १ परीणहन, आच्छादन। २ परितोबन्धन। ३ तत्कर्म। ४ कुरुक्षेत्रस्थ जनपदभेद।

परीणाय (सं० पु०) परितो नयनं, परि-नी-घञ् 'उपसर्गे दीर्घत्वं क्विप् [घञादौ क्वचित् भवेत्' इति पाक्षिको दीर्घः। गांवके चारों ओरकी वह भूमि जो गांवके सब लोगोंकी सम्पत्ति समझी जाती थी।

परीत (सं० त्रि०) परि-इ-क्त। परिवेष्टित, घिरा हुआ।

परीतत् (सं० त्रि०) परि-तन्-क्विप् (नहिवृति वृषिव्यधीरुचि पा ६।३।११६) इति पूर्वपदस्य दीर्घः। सर्वतोभावसे विस्तृत।

परीताप (सं० पु०) परि-तप-घञ्, घञिदीर्घः। परिताप।

परीति (सं० स्त्री०) पुष्पाञ्जन, फूलोंसे बनाया हुआ सुरमा।

परीतिन् (सं० त्रि०) परिवेष्टित, घिरा हुआ।

परीतोष (सं० पु०) परि-तुष-घञ्, घञि दीर्घः। परितोष, सन्तोष।

परीत्त (सं० त्रि०) १ सीमाबद्ध, महदूद। २ सङ्कीर्ण, सङ्कुचित, तंग।

परीदाह (सं० पु०) परि-दह-घञ्, ततो दीर्घः। परिदाह।

परीध्य (सं० त्रि०) प्रज्वलन वा जलानेके योग्य।

परीप्सा (सं० स्त्री०) पर्याप्तुमिच्छा, परि-आप-सन् ततो अ, स्त्रियां टाप्। १ पानेकी इच्छा। २ त्वरता।

परीप्सु (सं० त्रि०) पानेका इच्छुक।

परीबंद (फा० पु०) १ कलाई पर पहननेका स्त्रियोंका एक गहना। २ कुश्तीका एक पेच। ३ बच्चोंके पांवमें पहनानेका एक आभूषण। इसमें घुंघरू होते हैं।

परीभाव (सं० पु०) परिभाव्यते इति परि-भावि घञ् वैकल्पिकदीर्घश्च। परिभाव, अनादर।

परीमन् (सं० त्रि०) १ दैव, देवता सम्बन्धी। २ प्रचुर।

परीर (सं० क्ली०) पूर्यतेऽनेनेति पृ-ईरन् (कॄगॄपॄ कटीति। उण् ४।३०) १ कारवेल्ल, करेलेकी बेल। २ करेला।

परीरम्भ (सं० पु०) परिरभ्यते इति परि-रभ-घञ्, भावे वैकल्पिक दीर्घत्वं। परिरम्भ, आलिङ्गन।

परीरू (फा० वि०) अति सुन्दर, बहुत रूपवान्, खूबसूरत।

परीवर्त्त (सं० पु०) परि-वृत-घञ् (उपसर्गस्य-घञीति। पा। ६।३।१२२) इति दीर्घः। १ परिवर्त्तन। पर्याय—प्रतिदान, नैमेय, विनिमय, परिवर्त्त, वैमेय, निमय, परिदान। २ कूर्मराज, कच्छप।

परीवाद (सं० पु०) परि-वद भावे घञ्, ततो दीर्घः। दोषोद्भास,। पर्याय—कुत्सा, निन्दा, जुगुप्सा, गर्हा, गर्हण, निन्दन, कुत्सन, परिवाद, जुगुप्सन, आक्षेप, अवर्ण, निर्वाद, अपक्रोश, भर्त्सन, उपक्रोश, अपवाद, अववाद। २ वीणादि वादन।

परीवार (सं० पु०) परिव्रियतेऽनेनेति परि-वृ-घञ्, उपसर्गस्य दीर्घः। १ खड्गकोष, म्यान। २ जङ्गम, परिजन। ३ परिच्छद, छत्र, चंवर आदि सामग्री।

परीवाह (सं० पु०) परितो वहत्यनेनेति परि-वह-घञ्। ततो दीर्घश्च। १ जलोच्छ्वास। २ द्रव द्रव्यका प्रवाह। ३ राजयोग्यवस्तु।

परीशान (फा० वि०) परेशान, हैरान।

परीशानी (फा० स्त्री०) परेशानी।

परीषह (सं० पु०) जैनशास्त्रोंके अनुसार त्याग वा सहन। ये नीचे लिखे २२ प्रकारके हैं—१ क्षुधापरिषह या क्षुत्परीषह, २ पिपासापरीषह, ३ शीतपरीषह, ४ उष्णपरीषह, ५ दंशमशकपरीषह, ६ अचेलपरीषह या चेलपरीषह, ७ अरतिपरीषह, ८ स्त्रीपरीषह, ९ चर्यापरीषह, १० निषद्यापरीषह या नैषधिकापरीषह, ११ शय्यापरीषह, १२ आक्रोशपरीषह, १३ वधपरीषह, १४ याचनापरीषह या यंचापरीषह, १५ अलाभपरीषह, १६ रोगपरीषह, १७ तृणपरीषह, १८ मलपरीषह, १९ सत्कारपरीषह, २० प्रज्ञापरीषह, २१ अज्ञानपरीषह, और २२ दर्शनपरीषह या संपक्तपरीषह।

परीष्टि (सं० स्त्री०) परि-इष-क्तिन् । १ गवेषणा । २ अनुसन्धान, अन्वेषण । ३ परिचर्या, सेवा । ४ अभिलाष, इच्छा ।

परीसार (सं० पु०) परि-सृ-घञ्, ततो दीर्घः । १ परिसर्या । २ सर्वतोगमन, इतस्ततः भ्रमण, इधर उधर घूमना ।

परीहार (सं० पु०) परिहरणमिति परि-हृ घञ्, ततो दीर्घः । अवज्ञा, अनादर ।

परीहास (सं० पु०) परि-हस-घञ्, ततो दीर्घः । परिहसन, उपहास । पर्याय—द्रव, केलि, क्रीड़ा, लीला, नर्म, परिहास, केलिमुख, देवन ।

परु (सं० पु०) पिपर्त्तीति पूर्त्ती पॄ बाहुलकात् उ । १ समुद्र । २ स्वर्गलोक । ३ ग्रन्थि, गांठ । ४ पर्वत, पहाड़ । ५ परूषकवृक्ष ।

परुई (हिं० स्त्री०) भड़भूंजेकी वह नाद जिसमें डाल कर वह अन्न भूनता है ।

परुच्छेप (सं० पु०) परुषि शेफोऽस्य पृषोदरादित्वात् साधुः । ऋषिभेद, दिवोदास ।

परुत् (सं० अव्य०) पूर्वस्मिन् वत्सरे, इति । (सद्यः परुदिति । पा ५।३।२२) इति पूर्वस्य परभावः, उत्‌च । गतवत्सर, परवर्ष ।

परुत्न (सं० त्रि०) परुत् गत वत्सरे भवः, (चिर परुत् परारिभ्यस्त्नो । वक्तव्यः । पा ४।३।२३ वार्त्तिक) इति त्न । परवत्सरमें भव, जो गत वर्षमें हुआ हो ।

परुद्वार (सं० पु०) परु समुद्रः पर्वतो वा द्वारमिव यस्य । घोटक, घोड़ा ।

परुल (सं० पु०) परुद्वार, घोड़ा ।

परुष (सं० क्ली०) पिवर्त्ति अलं बुद्धिं करोतीति उषच् (पॄनहि कलिभ्य उषच् । उण् ४।७५) १ निष्ठुर वाक्य, कठोर बात । २ नीलझिण्टी, नीली कटसरैया । ३ खरदूषणका एक सेनापति । ४ तीर, वाण । ५ सरकंडा, सरपत । (त्रि०) ६ कठोर, कड़ा, सख्त । ७ अप्रिय लगनेवाला, जिसका ग्रहण दुःखदायक हो । ८ निष्ठुर, निर्दय, न पिघलनेवाला ।

परुषता (सं० स्त्री०) १ कर्कशता, कठोरता, कड़ाई । २ श्रुतिकटुता, कर्कशता । ३ निर्दयता, निष्ठुरता ।

परुषत्व (सं० पु०) परुषता ।

परुषा (सं० स्त्री०) १ काव्यमें वह वृत्ति, रीति या शब्दयोजनाकी प्रणाली जिसमें टवर्गीय द्वित्त, संयुक्त, रेफ और श, ष आदि वर्ण तथा लम्बे लम्बे समास अधिक आये हों । २ रावी नदी । ३ फालसा ।

परुषाक्षर (सं० पु०) कर्कश वचन, कठोर बात ।

परुषाह्व (सं० पु० एक प्रकारकी नरकट ।

परुषित (सं० त्रि०) परुषोऽस्य सञ्जातः, परुष-इतच् । कर्कशभाषी, कठोर वचन बोलनेवाला ।

परुषिमन् (सं० पु०) परुष-अस्त्यर्थे इमन् । परुषयुक्त, जिसका व्यवहार बहुत कठोर हो ।

परुषीकृत (सं० त्रि०) अपरुषः परुषः कृतः, अभूत-तद्भावे च्वि, ततः दीर्घः । जो पीछे परुष किया गया हो ।

परुषेतर (सं० त्रि०) परुषादितरः । कोमल, मुलायम ।

परुषोक्ति (सं० स्त्री०) परुषा उक्तिः । १ निष्ठुर कथन, कठोर वचन । (त्रि०) परुषा उक्तिर्यस्य । २ निष्ठुर वाक्यवादी, कठोर वचन बोलनेवाला ।

परुषोक्तिक (सं० त्रि०) परुषमेव उक्तिर्यस्य, ततः स्वार्थे कन् कप्, वा । निष्ठुर वक्ता, कठोर बात बोलनेवाला ।

परुस् (सं० क्ली०) पॄ-उस् (अर्त्ति-पॄ वपि यजितनीति । उण् २।११८) १ ग्रन्थि, गांठ । २ परुषफल, फालसा

परूंगा (हिं० पु०) हिमालय पर्वत पर होनेवाला एक प्रकारका शाहबलूत ।

परूष (सं० क्ली०) पॄ-ऊषन् । फलवृक्षभेद, फालसा (Xylocarpus Granatum) । पर्याय—परूषक, नागदलोपम, परुष, अल्पास्थि, परापर, नीलचर्म, गिरिपीलू, परावत, नीलमण्डल, परु । गुण—अम्ल, कटु, कफज, पीड़ा और वातनाशक । अपक्व परूषका गुण—पित्तवृद्धिकारक और उष्ण । पक्वका गुण—मधुर, रुचिप्रद, पित्त और शोफनाशक । भावप्रकाशके मतसे—अपक्वकषाय, अम्ल, पित्तकर और लघु, पक्व मधुर, शीत, विष्टम्भी, वृंहण, हृद्य, तृष्णा, पित्त, दाह, अस्र, ज्वर, क्षय और वायुनाशक । हारीतके मतसे यह सब प्रकारका सन्निपातनाशक है । चरकसूत्र-स्थान २३ अध्याय और सुश्रुत सूत्रस्थान ४६ अध्यायमें इसके गुणका विषय लिखा है ।

परूषक (सं॰ क्ली॰) परूष-स्वार्थे कन्। परूषफल, फालसा।

परूषकस्थली—ब्रह्माण्डपुराणवर्णित जनपदभेद। इसका वर्त्तमान नाम पेशावर है।

परूषकादि (सं॰ पु॰) परूषक आदियंत्र। गणभेद। परूषक, वरा, द्राक्षा, कटफल, कतकफल, राजाह्व, दाड़िमशाक ये सब द्रव्य परूषकादिगण है। इस गण द्वारा जो कषाय प्रस्तुत होता है, उसे भी परूषकादि कहते हैं। इसका गुण—तृष्णा, वात और मूत्रनाशक। (वाभट सूत्रस्थान १५ अ॰)

परे (हिं॰ अव्य॰) १ दूर, उस ओर, उधर। २ अतीत, बाहर, अलग। ३ ऊपर, उत्तर, बढ़ कर। ४ पीछे, बाद।

परेई (हिं॰ स्त्री॰) १ पण्डुकी, फाखता, डौकी। २ मादा कबूतर, कबूतरी।

परेखना (हिं॰ क्रि॰) १ सब ओर या सब पहलुओंसे देखना, जांचना। २ प्रतीक्षा करना, आसरा देखना।

परेग (हिं॰ स्त्री॰) लोहेकी कील, छोटा कांटा।

परेट (अं॰ पु॰) परेड देखो।

परेड (अं॰ पु॰) १ वह मैदान जहां सैनिकोंको युद्ध-शिक्षा दी जाती है। २ सैनिकशिक्षा, कवायद।

परेण्डा—निजाम राज्यके नलदुर्ग जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर और दुर्ग। यह अक्षा॰ १८° १६´ २०´´ उ॰ और देशा॰ ७५° ३०´ १८´´ पू॰, अहमदनगर जिलेके सीमान्त प्रदेशमें अवस्थित है। बाह्मनीराज २य महम्मद शाहके प्रधान मन्त्री महमूद ख्वाजा गवान्ने यह दुर्ग बनवाया था। १६०५ ई॰में मुगलसेनाने जब अहमदनगरको जीता, तब यह नगर कुछ समयके लिये निजामशाही राजाओंकी राजधानीमें परिणत हुआ था। १६३० ई॰में सम्राट् शाहजहान्के सेनापति आजमखाँने तथा १६३३ ई॰में राजपुत्र शाह सुजाने इस दुर्ग पर आक्रमण किया था, पर जीत न सके थे। अभी यह नगर ध्वंसप्राय होने पर भी दुर्ग-की अवस्था अच्छी है।

परेत (सं॰ त्रि॰) परं लोकमितः। १ मृत, मरा हुआ। (पु॰) २ भूतान्तर भूतयोनिविशेष, एक भूत योनिका नाम। ३ प्रेत।

परेतभूमि (सं॰ स्त्री॰) परेतानां मृतानां भूमिः। प्रेत भूमि, श्मशान।

परेतराज (सं॰ पु॰) परेतेषु मृतेषु राजते इति राज टीसो (सत्सूद्विषेति। पा ३।२।६१) इति क्विप्, वा परेतानां प्रेतानां राट्। प्रेतराज यम।

परेतवास (सं॰ पु॰) परेतानां वासः। श्मशानभूमि प्रेतोंका आवासस्थल।

परेता (हिं॰ पु॰) १ सूत लपेटनेका जुलाहोंका एक औजार। २ पतंगकी डोर लपेटनेका बेलन। यह बाँसकी गोल और पतली चिपटी तीलियोंसे बनाया जाता है। इसके ठीक बीचमें एक लंबी और कुछ मोटी बांसकी छड़ होती है। इसके दोनों किनारे पर गोल चक्कर होते हैं। इन चक्करोंके बीच पतली पतली तीलियोंका ढांचा होता है। इसी ढांचे पर डोरी लपेटते हैं। परेता दो प्रकारका होता है। एकका ढांचा सादा और खुला होता है और दूसरेका पतली चिपटी तीलियोंसे ढंका रहता है। पहलेको चरखी और दूसरेको परेता कहते हैं।

परेद्यवि (सं॰ अव्य॰) परस्मिन्नहनि (सद्यः परुदिति। पा ५।३।२२) इति निपातनात् साधु। परदिन, दूसरा दिन।

परेद्युस् (सं॰ अव्य॰) परदिन, दूसरे दिन।

परेप (सं॰ त्रि॰) परा गता आपो यत्र (द्वान्तरुपसर्गे॰ भ्योऽप ईत्। पा ६।३।९७। 'अवर्णान्ताद्वा' वार्तिक) इति ईत्। पराप, जिससे जल निकल गया हो।

परेव (हिं॰ पु॰) आकाश, आसमान।

परेल—बम्बई नगरके उत्तर उपकण्ठस्थित एक प्रधान नगर। यह विक्टोरिया टरमिनससे दो कोसकी दूरी पर अवस्थित है। पहले यूरोपीय वणिकगण इस रमणीय-स्थानमें रहते थे। आज भी यहां गवर्मेण्ट-प्रासाद वर्त्तमान है। यह प्रासाद पहले जेसुइट सम्प्रदायका गिरजा और कनभेण्ट था। जब बम्बई प्रदेश अंगरेजोंके हाथ आया, उस समय जेसुइटोंके बन्दोरा कालेजके अध्यक्ष अनेक जमीन अधिकार कर बैठे। अंगरेजोंने उक्त अधिकार ग्राह्य नहीं किया। इस पर जेसुइटोंने (१६८९-९० ई॰में) अंगरेजोंके विरुद्ध

अस्त्रधारण किया, इस युद्धमें सोदी जातिके लोगोंने जेसुइटोंको सहायता की। युद्धमें जेसुइटोंकी हार हुई और अंगरेजराजने सोदियोंसे धर्म-मन्दिर तथा तदधिकृत स्थान छीन लिये। १७२० ई०में जेसुइटगण बम्बईसे मार भगाये गये और रोमन कैथलिक सम्प्रदायका धर्मपरिचालनभार अंगरेज गवर्मेण्टसे कार्मेलाइटों (Carmelites)-के हाथ सौंपा गया। बिशप होबरने लिखा है, कि परेलका गिरिजा मन्दिर १६६५ ई० तक एक पारसीके अधीन था, पीछे अंगरेजकर्मचारियोंने उसे छीन लिया। १७७६ ई०में हरनबि साहबने सबसे पहले गवर्नर जनरल हो कर इस दुर्गमें पदार्पण किया था।

परेलो (हिं० पु०) ताण्डवनृत्यका प्रथम भेद। इसमें अङ्गसंचालन अधिक और अभिनय थोड़ा होता है। इसका एक नाम 'देसी' भी है।

परेवा (हिं० पु०) १ पण्डुक पक्षी। २ कबूतर। ३ कोई तेज उड़नेवाला पक्षी। ४ तेज चलनेवाला पत्रवाहक, चिट्ठीरसां, हरकारा।

परेश (सं० पु०) परः ईशः। १ ईश्वर। २ विष्णु, ३ ब्रह्मा।

परेशगढ़—बम्बई प्रदेशके बेलगांव जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यहां गवर्मेण्टके अधिकारमें ११० और जमींदारोंके अधीन २३ ग्राम हैं। भूपरिमाण ६४० वर्गमील है।

परेशजीभोंसले—महाराष्ट्र सरदार नागपुरपति रघुजी भोंसलाका पुत्र। पिताके मरनेके बाद १८१६ ई०में इन्होंने पितृसिंहासन प्राप्त किया। मानसिक और शारीरिक दौर्बल्यके कारण ये राजकार्य चला नहीं सकते थे, इस कारण जनसाधारणके आग्रहसे इनके ज्ञातिसम्पर्कीय मधुजी भोंसले (अप्पासाहब) सर्वाध्यक्ष नियुक्त हुए। उक्त मधुजीने आरगांवके युद्धमें विशेष दक्षताके साथ अपने बलवीर्यका परिचय दिया था। सुचतुर महाराष्ट्र-सेनापतिने अपने पदको दृढ़ रखनेकी इच्छासे राजकर्मचारियोंकी सलाह लिये बिना मूर्ख राजाको समझा बुझा कर अंग्रेजोंके साथ सन्धि करनेका प्रस्ताव किया। उसी सालकी २७वीं मईको एक सन्धि स्थापित हुई जिसके अनुसार कम्पनी बहादुर नागपुरराजको घर और बाहरके शत्रुसे बचानेके लिये राजी हुए और इधर महाराष्ट्र-सरदारको भी यह कबूल करना पड़ा कि, वे अंग्रेजोंको सहायताके लिये एक दल अश्वारोही, ६ हजार पदाति और एक दल यूरोपीय कमानवाही सैन्यदल रखनेके लिये ७॥० साढ़े सात लाख रुपये देंगे। इसके अलावा उन्हें अपने खर्च पर तीन हजार अश्वारोही और दो पदाति रखने होंगे। इस कार्यके लिये राजपुरुषोंके मध्य विरोध खड़ा हुआ। कितने ही अप्पाके शत्रु हो कर खड़े हुए, यहां तक कि स्वयं पेशवा भी उनके विरुद्ध चाल चलने लगे। अप्पा साहबने अपनेको विपद्ग्रस्त देख कर १८१७ ई०को १ली फरवरीको रातको परेशजीको हत्या कर डाली।

परेशान (फा० वि०) उद्विग्न, व्याकुल।

परेशानी (फा० स्त्री०) व्याकुलता, उद्विग्नता, व्यग्रता।

परेष्टुका (सं० स्त्री०) परैरिष्यते इति इष बाहुलकात्। तु, स्वार्थे कन्, स्त्रियां टाप्। बहुप्रसूतागाभी, वह गाय जिसने अनेक बच्चे जने हैं।

परेहा (हिं० पु०) वह जमीन जो हल चलानेके बाद सींची गई हो।

परैधित (सं० त्रि०) परैरेधितः सम्वर्द्धितः। १ अौदासीन्य द्वारा परपुष्ट, दूसरेसे पाला पोसा हुआ। पर्याय—पराचित, परिस्कन्द, परजात। (पु०) २ कोकिल, कोयल।

परैना (हिं० पु०) पैना देखो।

परैनी—बुन्देलखण्डके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह कियान् वा केननदीके किनारे अवस्थित है। यहां पत्थरकी बनी हुई अनेक प्रतिमूर्त्तियां देखी जाती हैं।

परोक्ष (सं० क्ली०) अक्ष्णोः परं। १ अप्रत्यक्ष, चक्षुका अगोचर, अनुपस्थिति। (पु०) परोक्षमस्यास्तीति अच्। २ तपस्वी। तपस्वियोंके श्रुति और आप्तवाक्यादिजनित ज्ञान हैं, इस कारण परोक्ष शब्दसे तपस्वीका बोध होता है। ३ ययातिपौत्र, अनुका पुत्र। (त्रि०) परोक्ष परोक्षत्वं विद्यतेऽस्य 'अर्श आदिभ्योऽच्' इति अच्। ४ परोक्षज्ञानविशिष्ट; जिसने श्रुति और आप्तवाक्यादि-

जनित ज्ञान हो। ५ जो प्रत्यक्ष न हो, जो सामने न हो। ६ गुप्त, छिपा हुआ।

परोक्षत्व (सं० क्लो०) परोक्षस्य भावः, त्व। चक्षुके अगोचरका भाव, अदृश्य होनेको क्रिया या भाव।

परोक्षवृत्ति (सं० स्त्री० परोक्षा वृत्तिः। चक्षु-अगोचर-कार्य।

परोक्षार्थ (सं० क्लो०) अदृष्ट अर्थ, अदृश्य विषय वा वस्तु।

परोट (सं० पु०) घृतनिक्त रोटिकाभेद, घीमें पकाई हुई एक प्रकारको रोटी।

परोढ़ा (सं० स्त्री०) परेण ऊढ़ा। परकर्तृक विवाहिता।

परोता (हिं० पु०) १ एक प्रकारका टोकरा जो गेहूंके पयालसे पञ्जाबके हजारा जिलेमें बहुत बनता है। २ आटा, गुड़, हल्दी, पान आदि जो किसी शुभ कार्यमें हज्जाम, भाट आदिको दिये जाते हैं। पड़ोता देखो।

परोन—मध्यभारतकी गूणा सब-एजेन्सीके अधीनस्थ अङ्गरेज-रक्षित एक सामन्तराज्य जो ग्वालियर-राजके अधिकारभुक्त है। भूपरिमाण ६० वर्गमीलके लगभग है। यहांके राजवंशोयगण अपनेको अयोध्याके कच्छवंशीय राजपूत बतलाते हैं। पहले ये लोग नरवारके 'ठाकुर' कहलाते थे। दौलतराव सिन्धियाने नरवार-सरदार मधुसिंहकी पैतृक सम्पत्ति छीन ली। इसपर मधुसिंहने उत्तेजित हो कर उपर्युपरि सिन्धिया राज्य पर आक्रमण किया और उसे अच्छी तरह लूट कर नौ दो ग्यारह हो गये। उनके उपद्रवसे सिन्धिया-राजको प्रजा विशेष उत्त्यक्त हुई और स्वयं राजा भी विचलित हो गए। अतः उन्होंने मधुसिंहसे मेल करना चाहा। अङ्गरेज रेसिडेण्टकी मध्यस्थतासे मधुरावने १८१८ ई०में परोनराज्य और छः ग्रामोंका शासन-भार ग्रहण तो किया, लेकिन शर्त यह ठहरी, कि उनके ऊपर जिस तरह अङ्गरेजराज कटाक्ष रखेंगे, उसी तरह उन्हें भी सिन्धिया-सीमान्त पर दस्युका उपद्रव रोकनेमें यत्नवान् होना पड़ेगा। इनके वंशधर राजा मानसिंहने १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोहके समय विद्रोही दलका साथ दिया था; किन्तु १८५८ ई०में उन्होंने उपयुक्त तनखाह पा कर अङ्गरेजोंकी अधीनता स्वीकार कर ली और अपनी पैतृक-सम्पत्ति वापिस पाई। विद्रोही तांतिया-तोपीको पकड़नेके लिये उन्होंने जो अङ्गरेजोंकी सहायता की थी, उसके लिये अङ्गरेजराजने उन्हें वार्षिक हजार रुपये मूल्यकी सम्पत्ति जागीरमें दी।

१८८७ ई०में मानसिंहकी मृत्यु होने पर उनके नाबालिग पुत्र गजनधरसिंह पितृपद पर अभिषिक्त हुए। गजनधरसिंहके बाद १८९९ ई०में महेन्द्रसिंह राजसिंहासन पर बैठे। इनकी उपाधि 'राजा' है। जनसंख्या छः हजारके लगभग है, सैकड़े पीछे ८२ हिन्दू हैं। इस राज्यमें ३१ ग्राम लगते हैं जिनमेंसे सुन्दरी सबसे बड़ा है। यहांके पुरातन दुर्ग-प्राचीरका कुछ अंश सिपाही-विद्रोहके समय अङ्गरेजी-सेनासे तहस नहस कर डाला गया है।

परोना (हिं० क्रि०) पिरोना देखो।

परोपकार (सं० पु०) परेषामुपकारः। दूसरोंका उपकार, दूसरोंके हितका काम। परोपकार करनेसे अशेष पुण्यलाभ होता है। पूर्व समयमें दधीचि आदि मुनियोंने अपने प्राण खो कर भी परोपकार किया था। ऋषिगण परोपकारके लिये अपने प्राणका भी विसर्जन कर देते हैं। परोपकार करना सभी धर्मस्वरूपा तथा सभी धर्मज्ञोंकी सम्मति है। परोपकार द्वारा जो पुण्यसञ्चित होता है, वह शत अश्वमेधयज्ञके सदृश है।

"एष मे प्रवरो जातिं शुद्धधर्मप्रदो विधिः।
परोपकरणादन्यत् सर्वमल्पं स्मृतं बुधैः॥"

परोपकारक (सं० पु०) वह जो दूसरोंकी भलाई वा हित करे।

परोपकारिन् (सं० त्रि०) उपकृ-णिनि परेषामुपकारी। जो दूसरेका उपकार करे, औरोंका हित करनेवाला।

परोपजाप (सं० पु०) शत्रुओंके मध्य परस्पर विच्छेद करना।

परोबाहु (सं० त्रि०) परो बाहुर्बन्धो यस्य, निपातनात् सुट्। परमबन्धयुक्त।

परोरजस् (सं० त्रि०) रजसः परः, सुट्, निपातनात् साधु। १ रागाभाग। २ विमुक्त।

परोरना (हिं० क्रि०) अभिमन्त्रित करना, मन्त्र पढ़ कर फूंकना।

परोल (अं॰ पु॰) वह संकेतका शब्द जिसे सेनाका अफसर अपने सिपाहियोंको बतला देता है और जिसके बोलनेसे पहरे परके सिपाही बोलनेवालेको अपने दलका समझ कर आने जानेसे नहीं रोकता।

परोलक्ष (सं॰ क्लो॰) लक्षात् परः, सुट्, निपातनात् साधु। लाखसे अधिकको संख्या।

परोली—गङ्गातीरवर्ती एक प्राचीन ग्राम। यह कानपुर नगरसे प्रायः ७ कोस दक्षिणमें अवस्थित है। यहां प्राचीन मन्दिरादिका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है।

परोवरं (सं॰ अव्य॰) १ परम्परानुक्रमसे। २ सिरसे ले कर पैर तक।

परोवरीण (सं॰ त्रि॰) परांश्चावरांश्चानुभवति (परोवरपरम्परपुत्रपौत्रमनुभवति। पा ५।२।१०) ततः अवरस्योत्वं निपात्यते। श्रेष्ठाश्रेष्ठयुक्त, जिसमें बुरा भला दोनों ही गुण हों।

परोवरीयस् (सं॰ त्रि॰) परश्च वरीयांश्च निपातनात् पूर्वपदे सुट्। अत्यन्त श्रेष्ठ परमात्मा।

परोष्णिह् (सं॰ स्त्री॰) वैदिक छन्दोभेद।

परोष्णी (सं॰ स्त्री॰) परः शत्रुरुष्णो यस्याः। १ तैलपायिका, तेलचटा नामका कीड़ा। २ काश्मीर देशस्थित नदी विशेष।

परोस (हिं॰ पु॰) परोल देखो।

परोसना (हिं॰ क्रि॰) खानेके लिये किसीके सामने तरह तरहके भोजन रखना, परसना।

परोसा (हिं॰ क्रि॰) एक मनुष्यके खाने भरका भोजन जो थाली या पत्तल पर लगा कर कहीं भेजा जाता है।

परोसी (हिं॰ पु॰) पड़ोसी देखो।

परोसैया (हिं॰ पु॰) खानेके लिये भोजन सामने रखनेवाला, वह जो भोजन परसता हो।

परोहन (हिं॰ पु॰) वह जिस पर सवार हो कर यात्रा की जाय। जैसे घोड़ा, बैल, गाड़ी आदि।

परोहा (हिं॰ पु॰) चमड़ेका बड़ा थैला जिससे किसान कुओंसे पानी निकाल कर खेत सींचते हैं, मोट, चरस।

परौका (हिं॰ स्त्री॰) वह भेड़ जो पूरी जवानी होने पर भी बच्चा न दे, बांझ भेड़।

परौता (हिं॰ स्त्री॰) वह चादर या कपड़ा जिससे अनाज बरसाते समय हवा करते हैं। इसे 'परती' भी कहते हैं।

परौती (हिं॰ स्त्री॰) पड़ती देखो।

पर्कट (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका बगला।

पर्कटि (सं॰ स्त्री॰) पृच्सम्पर्के बाहुलकादटि। प्लक्ष वृक्ष, पाकरका पेड़।

पर्कटी (सं॰ स्त्री॰) पर्कटि बह्वादिभ्यश्च (पा ४।१।४५) इति ङीष्। प्लक्षवृक्ष, पाकरका पेड़। पर्याय—प्लक्ष, जटी, कमण्डलुतरु, कपीतन, चीरी, सुपार्श्व, कमण्डलु, शृङ्गी, अवरोह, शाखी, गर्दभाण्ड, पीतन, दृढ़प्ररोह, प्लक्षक, प्रवङ्ग, महाबल। गुण—कटु, कषाय, शिशिर, रक्तदोष, मूर्च्छा, भ्रम और प्रलापनाशक। भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—कषाय, शिशिर, व्रण, योनिरोग, दाह, पित्त, कफ, अस्र, शोथ और रक्तपित्तनाशक है।

पर्कटी (हिं॰ स्त्री॰) पर्कट बगले की मादा।

पर्कार (हिं॰ पु॰) परकार देखो।

पर्काला (हिं॰ पु॰) परकाला देखो।

पर्गना (हिं॰ पु॰) परगना देखो।

पर्चा (हिं॰ पु॰) परचा देखो।

पर्चाना (हिं॰ क्रि॰) परचाना देखो।

पर्चून (हिं॰ पु॰) परचून देखो।

पर्चूनिया (हिं॰ पु॰) परचूनी देखो।

पर्चूनी (हिं॰ स्त्री॰) परचूनी देखो।

पर्ज (हिं॰ पु॰) परज देखो।

पर्जनी (सं॰ स्त्री॰) परं स्वाश्रयं जनयतीति पर-जन-णिच्, 'कर्मण्यण्' इति अण्, स्त्रियां ङीष्। दारुहरिद्रा, दारुहल्दी।

पर्जन्य (सं॰ पु॰) पर्षति सिञ्चति वृष्टिं ददातीति पृषु-सेचने (पर्जन्यः। उण् ३।१०३) इति निपातनात् षकारस्य जकारत्वे साधुः। १ इन्द्र। २ शब्दायमान मेघ। ३ मेघ, बादल। ४ कश्यप ऋषिकी स्त्रीके एक पुत्र का नाम जिसकी गिनती गन्धर्वोंमें होती है।

पर्जन्यघोष (सं॰ त्रि॰) मेघवत् गर्जनशील, मेघके समान शब्द करनेवाला।

पर्जन्यपत्नी (सं॰ स्त्री॰) पर्जन्यः पतिरिवास्याः पत्य न् ङीप्। १ वर्षा। २ इन्द्रकी पत्नी, शचीदेवी

पर्जन्यरेतस् (सं० त्रि०) पर्जन्यो रेतो यस्य। नलभेद।
पर्जन्यवृद्ध (सं० त्रि०) पर्जन्य द्वारा प्राप्त वृद्धि।
पर्जन्या (सं० स्त्री०) पर्जन्य-टाप्। दारुहरिद्रा, दारुहल्दी।
पर्ण (सं० क्लो०) पिपर्त्तीति पृ-न (धा पृवस्यजयतिभ्यो न। उण् ३।६) वा पर्णयतीति पर्ण अच्। १ पत्र, पत्ता। २ ताम्बूल, पान। पिपर्त्ति पालयति गगनपातादिति पृ-न। ३ पक्ष, डैना। ४ पलाशवृक्ष।
पर्णक (सं० पु०) पर्ण-स्वार्थे कन्। १ पर्णशब्दार्थ। २ ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम जो पार्णकि गोत्रके प्रवर्त्तक थे। ३ सुनिषण्णशाक।
पर्णकपूर (सं० पु०) पानकपूर।
पर्णकार (सं० पु०) पर्णं ताम्बूलं करोति उत्पादयति पर्ण-कृ-अण्। पान बेचनेवाली एक जाति जो तंबोली या बरई कहलाती है। बरई देखो।
पर्णकुटिका (सं० स्त्री०) पर्णकुटी।
पर्णकुटी (सं० स्त्री०) पर्णैः निर्मिता कुटी, मध्यपदलो० कर्मधा०। पत्रमात्ररचित क्षुद्रगृह, केवल पत्तोंकी बनी हुई कुटी।
पर्णकूर्च (सं० पु०) एक प्रकारका व्रत। इसमें तीन दिन तक ढाक, गूलर, कमल और बेलके पत्तोंका क्वाथ पीना होता है।
पर्णकृच्छ्र (सं० पु०) पर्णसाध्यं कृच्छ्रं व्रतं यत्र। पत्रकृच्छ्रव्रत। इसमें पहले दिन ढाकके पत्तोंका, दूसरे दिन गूलरके पत्तोंका, तीसरे दिन कमलके पत्तोंका और चौथे दिन बेलके पत्तोंका क्वाथ पी कर पांचवें दिन कुशका जल पिया जाता है। यह व्रत पापनाशक माना गया है।
पर्णखण्ड (सं० पु०) पर्णमेव खण्डो यस्य, पुष्पादिहीनत्वात् तथात्वं। १ पुष्पहीन वनस्पति, वह वनस्पति जिसमें फूल न लगते हों। २ ताम्बूलका एकांश। ३ पर्णसमूह, पत्तोंका ढेर।
पर्णखण्डेश्वर—औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—रस, गन्धक मनःशिला और विष प्रत्येकके समभागको एक साथ पीस कर सम्हालूके पत्तोंके रस और अदरखके रसमें तीन बार करके भावना दे। पीछे एक रत्तीकी गोली बनावे। इसे पानके साथ सेवन करनेसे ज्वर अति शीघ्र नाश हो जाता है। (भैषज्यर० ज्वराधिकार)
पर्णचोरपट (सं० पु०) महादेव, शिव।
पर्णचोरक (सं० पु०) पर्णं चोरयतीति पर्ण-चोरि-ण्वुल्। चोरक नामक गन्धद्रव्य, भटेउर।
पर्णदत्त—गुप्त-वंशीय सम्राट् स्कन्दगुप्तके अधीन सुराष्ट्र प्रदेश (वर्त्तमान काठियावाड़)-के एक शासनकर्त्ता। ये स्वदेशपालक वीर और शत्रुओंके यमस्वरूप माने जाते थे।
पर्णधि (सं० स्त्री०) तीरका वह स्थान जहां पर दिये जाते हैं।
पर्णध्वंस (सं० त्रि०) पर्ण-ध्वन्स्-कर्त्तरि क्विप्। पर्णध्वंसकर्त्ता।
पर्णनर (सं० पु०) पर्णैः पलाशपत्रैः निर्मितो नरः नराकारः पुत्तलकः। पलाशपत्र द्वारा रचित नराकार पुत्तल, पलासके पत्तोंका किसी मृत व्यक्तिका वह पुतला जो उसकी अस्थियां आदि न मिलनेकी दशामें दाहकर्म आदिके लिये बनवाया जाता है। जहां पितादिकी अस्थि नहीं पाई जाती, वहां यह पर्णनर दाह करके अशौच ग्रहणपूर्वक अन्त्येष्टिक्रिया करनी होती है। विधिपूर्वक दाह नहीं करनेसे उसका अशौच वा श्राद्धादि निषिद्ध है; इसीसे अस्थिके नहीं मिलने पर उस शवके प्रतिनिधि स्वरूप पर्णनर निर्माणपूर्वक प्रायश्चित्तानुष्ठान करके उसका दाह करना होता है। इसका विषय शुद्धितत्त्वमें इस प्रकार लिखा है—अस्थि नहीं मिलने पर ३६० पलाशके पत्तोंसे पुरुषकी प्रतिकृति बनावे। इनमेंसे मस्तक ४० पत्तोंका, गला १० का, वक्षःस्थल ३० का, जठर २० का, दोनों बाहु १०० का, १० पत्तोंकी दशों उंगलियां, दोनों वृषण ६ का, शिश्न ४ का, दोनों जरु १०० का, जङ्घा और जानु ३० का तथा १० पत्तोंकी पैरकी दशों उंगलियां कल्पित करे। इन सब पत्तोंको ऊर्णासूत्रसे लपेट कर यवपिष्ट द्वारा लेपन कर दे। इसके बाद उसका मन्त्रपूर्वक दहन करना होता है।

"अस्थिनाशे पलाशानां त्रीणि षष्टिशतानि च।
पुरुषप्रतिकृतिं कृत्वा दहेत मन्त्रपूर्वकम्॥

अशीत्यर्द्धन्तु शिरसि ग्रीवायां दश योजयेत्।
उरसि त्रिंशतं दद्यात् विंशतिं जठरे तथा॥
बाहुभ्याञ्च शतं दद्यात् दद्यादंगुलिभिर्दश।
द्वादशार्द्धं वृषणयोरष्टार्द्धं शिश्न एव च॥
ऊरुभ्यान्तु शतं दद्यात् त्रिंशतं जानुजंघयोः।
पदांगुलिषु दश एतत् प्रेतस्य लक्षणम्॥
ऊर्णासूत्रेण संवेष्ट्य यवपिष्टेन लेपयेत्॥"
(शुद्धितत्त्वधृत आश्वलायनगृह्यपरि०)

पूर्वोक्तरूपसे पलाशपत्र द्वारा जो नर प्रस्तुत होता है, उसे पर्णनर कहते हैं। शुद्धितत्त्वधृत आदिपुराणमें लिखा है, कि अस्थिके नहीं मिलने पर पलाशपत्र अथवा शरपत्र द्वारा पुरुषकी प्रतिकृति बनावे। इससे ऐसा सिद्धान्त हुआ, कि आचार और योग्यताके कारण शरपत्र द्वारा पुत्तलक बना कर मस्तकादि पर पलाशपत्र रखे। पीछे उसे ऊर्णासूत्रसे वेष्टन कर यवपिष्टका लेप दे। यही पर्णनर कहलायगा। यदि पित्रादि किसीकी मृत्यु हो जाय और उसकी अस्थि न मिले, तो अशौचके मध्य पर्णनरदाह करनेसे उसी अशौचकालमें शुद्धि होगी। अशौचकाल बीत जानेके बाद पर्णनर-दाह करनेसे त्रिरात्राशौच होता है उसके बाद शुद्धि होती है।

पर्णनरदाहके बाद यदि फिरसे अस्थि मिल जाय तो उसका दाह करे, किन्तु पिण्डादि दान नहीं करना होगा। कारण विष्णुने कहा है, कि जो अनग्निक है वे त्रिपक्ष बीत जाने पर पर्णनर दाह करें, त्रिपक्षके भीतर न करें। इससे अधिक समय बीत जाने पर कृष्ण पक्षकी अष्टमी और दर्श (अमावस्या) तिथिमें दाह करके तीन दिन तक अशौच मान कर पिण्डादि दान करे। रघुनन्दनने इस वचनके मर्मानुसार स्थिर किया है, कि अशौचकालके मध्य यदि पर्णनरदाह न हो, तो त्रिपक्षके मध्य न करे, उसके बाद करे। त्रिपक्षके बाद कृष्णाष्टमी वा अमावस्याके दिन दाह विधेय है।

"पुत्राश्चेदुपलभ्येरन् तदस्थीनि कदाचन।
तदलाभे पलाशस्य सम्भवे हि पुनः क्रिया॥"
"त्रिपक्षे तु गते पर्ण-नरं दद्यादनग्निकः।
त्रिपक्षाभ्यन्तरे राजन् नैव पर्णनरं दहेत्॥
तदूर्ध्वमष्टमी प्राप्यदर्शे वापि विचक्षणः॥" (शुद्धितत्त्व)

अष्टमीको पर्णनर दाहका विधान है। अष्टमी शब्दसे शुक्ला और कृष्णा दोनोंका ही बोध हो सकता है, ऐसी हालतमें किस अष्टमीको पर्णनरदाह होगा, इसकी मीमांसा इस प्रकार हैं—सभी पितृकार्य कृष्णपक्षमें ही विहित हैं, अतः यह पर्णनरदाह शुक्लाष्टमीमें न हो कर कृष्णाष्टमीमें ही होगा। (शुद्धितत्त्व)

मुहूर्त्तचिन्तामणि और तट्टीका पीयूषधारामें लिखा है, कि प्रेत संस्कार दो प्रकारका है, प्रत्यक्षशरीरका और तत्प्रतिकृतिका। इनमेंसे प्रत्यक्ष शरीरके संस्कारमें शुभाशुभ दिनका विचार नहीं करना होता है अर्थात् मृत्युके बाद ही शवका अग्निकार्य करनेसे दोष नहीं होगा। किन्तु प्रतिकृतिकी जगह यह नियम नहीं है, वहां शुभाशुभ दिनका विचार आवश्यक है। प्रतिकृति-संस्कारमें अर्थात् पर्णनरादि दाहमें तीन प्रकारका काल बतलाया है, प्रथम अशौचके मध्य, द्वितीय वर्षाभ्यन्तरमें, और तृतीय सम्वत्सरके बाद। यदि अशौचके मध्य प्रतिकृति संस्कार करना हो, तो यथासम्भव दिनशुद्धिका विचार करना होता है, किन्तु वर्षके मध्य वा बाद यदि प्रति-कृति संस्कार हो, तो दिनशुद्धिका विचार अवश्य करना होता है। शुक्र, शनि और मङ्गलवारको; अमावस्या चतुर्दशी, त्रयोदशी, प्रतिपद्, एकादशी और षष्ठी इन सब तिथियोंमें; मूला, ज्येष्ठा, आर्द्रा और अश्लेषा, पूर्वाषाढा, पूर्वभाद्रपद और पूर्वफल्गुनी, भरणी, मघा, पुष्या और रेवती नक्षत्रमें तथा त्रिपुष्करयोगमें प्रतिकृति-दाह नहीं करना चाहिये।

"एकादश्यान्तु नन्दायां सिनीवाल्यां भृगोर्दिने।
नभस्ये च चतुर्दश्यां कृत्तिकासु त्रिपुष्करे॥
न कुर्यात् गुरुशुक्रास्ते पौषे स्वापे मलिम्लुचे।
विलम्बितं प्रेतकार्यं गयां गोदावरीं विना॥
प्रेतकार्याणि कुर्वीत श्रेष्ठं तत्रोत्तरायणम्।
कृष्णपक्षे च तत्रापि वर्जयेत् तु दिनक्षयम्॥
(मुहूर्तचिन्तामणि एवं तट्टीका)

इस मतसे अमावस्याके दिन प्रतिकृतिदाह निषिद्ध है। किन्तु रघुनन्दनने शुद्धितत्त्वमें लिखा है—

"पर्णनरं दहेन्नैव विना दर्शं कथंचन।
अस्थ्यलाभे तु दर्शेतु ततः पर्णनरं दहेत्॥
नरः पर्णं दहेन्नैव प्राक् त्रिपक्षात् कथंचन।
त्रिपक्षे तु गते दद्यात् दर्शे प्राप्ते ह्यनग्निकः॥" (शुद्धितत्त्व)

इस वचनके अनुसार जाना जाता है कि अमावस्याके ही दिन पर्णनरदाह प्रशस्त है। किन्तु मुहूर्त्तचिन्तामणिके मतसे यह निषिद्ध बतलाया गया है।

गया और गोदावरी छोड़ कर गुरु और शुक्रके अस्तमें पौष तथा विष्णुशयनमें प्रतिकृतिदाह और व्यतीपातयोग तथा वैधृतयोगमें पर्णनरादिका दाह नहीं करना चाहिये। प्रतिकृतिसंस्कार क्यों करना होता है? किसी स्थानमें जा कर जिसकी दैवात् मृत्यु हो गई है और जिसकी मृतदेहका पता नहीं है, उसका प्रतिकृतिदाह करके श्राद्धादिकर्म करना होता है। जिसकी लाश नहीं मिलती, उसकी अस्थि संग्रह कर दाह करना होगा और यदि अस्थि भी न मिले, तो पर्णनररचित शव करके उसका दाह विधेय है।

छन्दोगसूत्रमें लिखा है, कि यदि शरीर विनष्ट हो जाय, तो उसकी अस्थि संग्रह कर क्षीरोदकमें धो डाले, पीछे कृष्णाजिनमें पुरुषाकृति करके दाह करे। यदि अस्थि भी न पाई जाय, तो पलाशपत्र द्वारा कृष्णाजिनमें पुरुषाकृतिदाह करे। पलाशपत्र निम्नलिखित नियमसे संस्थापन करना होता है—

४० मस्तक पर, १० ग्रीवा पर, २० वक्षस्थल पर, ३० उदर पर, ५० करके दोनों हाथों पर १००, उंगली पर ५, ७० करके दोनों पैरों पर, पादाङ्गुलि पर ५ करके १०, शिश्नदेश पर ८, वृषण पर १२ इनके अलावा ८० पलाशपत्रोंसे अवयवकी कल्पना करके यह पत्ररचित अवयव तैयार करे। पीछे उसे कृष्णाजिन पर रख कर दाह करे। इस शवप्रतिकृतिदाहका नाम पर्णनरदाह है।

मुहूर्त्तचिन्तामणि और उसकी टीका पीयूषधारामें इसका विशेष विवरण लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां अधिक नहीं लिखा गया।

पर्णनाल (सं० क्ली०) पत्तोंकी नाल या डंठल।

पर्णपिण्डीत (सं० पु०) मदनवृक्ष।

पर्णप्रास्थिक—जनपदभेद।

पर्णभेदिनी (सं० स्त्री०) पर्णानि भिनत्तीति पर्ण-भिद्-णिनि, स्त्रियां ङीप्। प्रियङ्गु।

पर्णभोजन (सं० पु०) पर्णान्येव भोजनं यस्य, पर्णानि भुङ्क्ते इति वा पर्ण-भुज कर्त्तरि-ल्यु। १ छागल, बकरा। (त्रि०) २ पत्रभोजिमात्र, जो केवल पत्ते खा कर रहता हो।

पर्णमणि (सं० पु०) पर्णवर्णो मणिः मध्यलो० कर्मधा०। १ हरिन्मणि, पन्ना। २ भौतिक अस्त्रभेद।

पर्णमय (सं० त्रि०) पर्णस्य विकारः, विकारे मयट् (द्व्यचश्छन्दसि। पा ४।३।१५०) पर्णका विकार।

पर्णमाचाल (सं० पु०) पर्णं माचालयतीति पर्ण-आ-चल-णिच्-अण्, निपातनात् विभक्तेर्लोपाभावः, बाहुलकात् मुम् वा। कर्मरङ्गवृक्ष, कमरखका पेड़। (Averrhoa carembola)।

पर्णमुच् (सं० त्रि०) पर्णानि मुञ्चत्यत्र मुच आधारे क्विप्। वृक्षका पर्णमोचनाधार शिशिरकाल।

पर्णमूल (सं० क्ली०) पर्णानां मूलं। ताम्बूलमूल।

पर्णमृग (सं० पु०) पर्णचरो मृगः पशुः। पशुभेद, पेड़ों पर रहनेवाले पशु, जैसे बंदर आदि। सुश्रुतमें मद्गु, मूषिक, वृक्षशायिका, वकुश, पुतिघास और वानर आदिको पर्णमृग बतलाया है। इनके मांसका गुण—मधुर, गुरुपाक, वृष्य, चक्षुष्य, शोणितमें हितकर, मलमूत्रवर्द्धक एवं कास, अर्श और श्वासनाशक। (सुश्रुत सूत्रस्थान ४६ अ०)

पर्णय (सं० पु०) इन्द्रसे निहत असुरभेद, एक असुरका नाम जिसे इन्द्रने मारा था।

पर्णरुह (सं० पु०) पर्णं रोहत्यत्र रुह-आधारे क्विप्। पर्णजननाधार वसन्त काल।

पर्णल (सं० त्रि०) पर्ण-अस्त्यर्थे सिध्मादित्वात् लच्। पत्रयुक्त, जिसमें पत्ते हों।

पर्णलता (सं० स्त्री०) पर्णप्रधाना लता। ताम्बूलीलता, पानकी बेल।

पर्णवत् (सं० त्रि०) पर्ण विद्यतेऽस्य, पर्ण-मतुप्, मस्य व। पत्रयुक्त वृक्ष।

पर्णवल्क (सं० पु०) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

पर्णवल्ली (सं० स्त्री०) पर्णप्रधाना वल्ली। पलाशीलता।

पर्णवाद्य (सं० क्ली०) पत्रसञ्चालन द्वारा उत्थित शब्द।

पर्णवी (सं० त्रि०) पर्णमिव अजति, अज-क्विप्, ततः अजेर्वीभावः। खग, पक्षी।

पर्णवीटिका (सं॰ स्त्री॰) पर्णस्य वीटिका। लवङ्गो क्षत ताम्बूल, पानका बीड़ा।

पर्णशद (सं॰ पु॰) पर्णानि शद्यन्ते शीर्यन्ते यत्र शद-सञ्ज्ञायां आधारे घ। १ पतित पर्णस्थितिदेश। २ तद्रूप सद्रभेद।

पर्णशय्या (सं॰ स्त्री॰) पर्णरचिता शय्या मध्यलो॰ कर्मधा॰। पत्ररचित शय्या, पत्तोंका बिछौना।

पर्णशबर (सं॰ पु॰ स्त्री॰) पर्णभक्षणकरः शबरो-यत्र। १ देशभेद, पुराणानुसार एक देशका नाम। २ इस देशको रहनेवाली आदिम अनार्य जाति जो कदाचित् अब विनष्ट हो गई हो। ये लोग पेड़के पत्तों-को गांथ कर अपनी लज्जाका निवारण करते थे। ये आदिम अनार्य जाति थे, युद्धविग्रहादिमें भी विशेष पटु थे। टलेमो इन्हें Phullitae नामसे उल्लेख कर गये हैं। आगर नगरमें इनकी राजधानी थी। कोई कोई उक्त आगरको वर्त्तमान सागर मानते हैं। मार्कण्डेयपुराणमें भी इस जाति और देशका उल्लेख है। (मार्क॰ पु॰ ५८।१८) शबर देखो।

पर्णशबरी—उपदेवीविशेष। नेपाल प्रदेशमें ये 'आर्य-पर्णशबरी' तारादेवी नामसे प्रसिद्ध हैं। पत्रभूषणसे ही ये हमेशा भूषित रहती हैं। इनके नामका कवच पहननेसे समस्त बाधा और विघ्न नाश होते हैं। "भग-वती पिशाचीच पाशपरशुधारिणी" इस प्रकार अस्त्र-मालाविभूषिता पिशाची देवीकी वर्णना पाई जाती है। उपासनाकालमें 'ओं पिशाचपर्णशवरि ह्रीं हः हुं फट् पिशाचि स्वाहा' यह मन्त्र उच्चारण करना पड़ता है। पर्णशबरीसाधनका विषय साधनमाला-तन्त्रमें विस्ताररूपसे लिखा है।

(साधनमालातन्त्र ८० पटल)

पर्णशाला (सं॰ स्त्री॰) पर्णरचिता शाला। १ पत्र-रचित कुटीर, पत्तोंकी बनी हुई कुटी। पर्याय—उटज, पर्णोटज। २ मध्यदेशस्थित ग्रामविशेष। यह देश गङ्गा और यमुनाके मध्यवर्त्ती है तथा यामुनगिरिके निम्न-देशमें अवस्थित है। यह स्थान बहुत रमणीय है और ब्राह्मण लोग यहां वास करते हैं। (भारत १३।५८३)

पर्णशाला—मन्द्राजप्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत एक तीर्थक्षेत्र। यह भद्राचलम नगरसे १० कोस दूरमें अव-स्थित है।

पर्णशालाग्र (सं॰ पु॰) भद्राश्ववर्षस्थित कुलाचलभेद, पुराणानुसार भद्राश्ववर्षके एक पर्वतका नाम।

पर्णशुष् (सं॰ पु॰) पर्णं शुष्य-त्यत्र, शुष-आधारे क्विप्। हुचका पत्रशोषक शीतकाल।

पर्णस (सं॰ त्रि॰) पर्णस्यादूरदेशादि। पर्णतृणादि-त्वात् स। पर्णका अदूर देशादि।

पर्णसि (सं॰ पु॰) पॄ-पूरणे असि णुक् च (सानसि वर्णसि पर्णसीति। उण् ४।१०७) १ पद्म, कमल। २ जल-गृह, पानीमें बना हुआ घर। ३ शाक, साग। ४ आभ-रणक्रिया।

पर्णा—युक्त प्रदेशके आगरा जिलान्तर्गत पणाहाट तह-सीलका एक गण्डग्राम। यहां यमुनाके दाहिने किनारे पर्वतके ऊपर एक दुर्ग बना हुआ है।

पन्ना देखो।

पर्णाटक (सं॰ पु॰) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

पर्णाद (सं॰ त्रि॰) पर्णमत्ति व्रतार्थं अद-अण्। १ व्रत जन्य पत्रभक्षक, किसी व्रतके उद्देश्यसे पत्ते खा कर रहनेवाला। (पु॰) २ ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम। ३ दमयन्ती प्रेरित एक ब्राह्मण। नल और दमयन्ती देखो।

पर्णाल (सं॰ पु॰) १ नौकाभेद। २ कोदालीविशेष। ३ क्षुद्र युद्ध।

पर्णाल—दाक्षिणात्यके बीजापुर राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह कोल्हापुर नगरसे ६ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। बीजापुरराज आदिल खांके सेनापति रुस्तम खां १६६० ई॰में इस दुर्गके समीप महाराष्ट्रवीर शिवाजी द्वारा परास्त हुए थे। इसके बाद यहां शिवाजी-के साथ बीजापुर-सेनापति खाजानेकनामका फिरसे युद्ध हुआ था। तभीसे यह दुर्ग महाराष्ट्रोंके अधिकार-में रहा। पीछे १६९० ई॰में औरङ्गजेबकी आज्ञासे मुकावर खांने पर्णालमें घेरा डाला और शम्भूको परास्त कर उक्त दुर्ग ले लिया। वर्त्तमान मानचित्रमें यह स्थान पनालानामसे प्रसिद्ध है। पणाला देखो।

पर्णाशन (सं॰ पु॰) पर्णं अश्नाति भक्षयतीति अश-ल्यु, पर्णानामशनो वा। १ मेघ, बादल। (त्रि॰) २ पत्रभोजि-

मात्र, जो केवल पत्ते खा कर रहता हो।

पर्णाशा—१ इलाहाबाद प्रदेशके बांदा जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह इलाहाबाद नगरसे ८॥ कोस दक्षिण-पूर्व गङ्गा और तमसा नदीके सङ्गमस्थल पर बसा है।

२ पारियात्रपर्वतसे निःसृत एक नदी। इसका दूसरा नाम है पर्णवहा। महाभारतमें सभापर्वके ९वें अध्यायमें यह महानदी और शोणमहानद नामसे उल्लिखित हुई है

३ उक्त नदी तीरवर्त्ती एक नगर। टलेमीने इसका उल्लेख किया है।

पर्णास (सं॰ पु॰) पर्णैरसति दीप्यति शोभते इति अस-दीप्तौ अच्। तुलसी।

पर्णासि (सं॰ पु॰) पर्ण-अस-बाहुलकात्-इन्। १ तुलसी। २ कृष्णार्जक।

पर्णाहार (सं॰ त्रि॰) पर्णं पत्रं आहारो यस्य। व्रतके लिये पत्रभोजी, जो व्रतके उद्देश्यसे पत्ते खा कर रहता हो।

पर्णिक (सं॰ त्रि॰) पर्णं पण्यमस्य ठन् (किशरादिभ्यष्ठन्। पा ४।४।५३) पर्णविक्रेता, पत्ते बेचनेवाला।

पर्णिका (सं॰ स्त्री॰) १ स्थलपद्म। २ पृश्निपर्णी, पिठवन नामकी लता। ३ शालपर्णी, मानकन्द। ४ अग्निमन्थ, अरणी।

पर्णिन् (सं॰ पु॰) पर्ण अस्त्यर्थे इनि। १ वृक्ष, पेड़। २ शालपर्णी, सरिवन। ३ पृश्निपर्णी, पिठवन। ४ अप्सराभेद। ५ तेजपत्र, तेजपत्ता। ६ पलाशवृक्ष। ७ सप्तवर्णवृक्ष।

पर्णिनी (सं॰ स्त्री॰) १ शालपर्णी, सरिवन। २ कल्याणघृत। ३ पृश्निपर्णी, पिठवन। ४ माषपर्णी, मषवन।

पर्णिनीद्वय (सं॰ क्ली॰) माषपर्णी और मुद्गपर्णी।

पर्णिल (सं॰ त्रि॰) पर्ण अस्त्यर्थे पिच्छादित्वादिलच्। पर्णविशिष्ट।

पर्णीय (सं॰ त्रि॰) पर्ण उत्करादित्वात् छ (उत्करादिभ्यश्छ। ४।२।९०) पर्णसम्बन्धीय।

पर्णीर (सं॰ पु॰) सुगन्धवाला।

पर्णोटज (सं॰ क्ली॰) पर्णनिर्मितं उटजं, मध्यलो॰ कर्मधा॰। पर्णशाला।

पर्णोत्स (सं॰ पु॰) पर्णानां उत्सः। काश्मीरस्थ जनपदभेद

पर्ण्य (सं॰ त्रि॰) पर्ण-यत्। पर्णका हितकर, पर्णसम्बन्धीय।

पर्त (हिं॰ स्त्री॰) परत देखो।

पर्त्तुगाल—पुर्त्तगाल देखो।

पर्त्तुगीज—पुर्त्तगीज देखो।

पर्त्त (सं॰ त्रि॰) रक्षासाधनभूत।

पर्दनी (हिं॰ स्त्री॰) धोती।

पर्दा (हिं॰ पु॰) परदा देखो।

पर्दानशीन (हिं॰ वि॰) परदानशीन देखो।

पर्द्द (सं॰ पु॰) पृ-बाहुलकात् द। १ केशसमूह। पर्द्द अपनोत्सर्गे-अच्। २ अपानोत्सर्ग, अपान वायुका त्याग, पाद। ३ केशगुच्छ, सिरके बाल। ४ घनकेश, घने बाल।

पर्द्दन (सं॰ क्ली॰) पर्द ल्युट्। वातकर्म, वायुनिःसरण, पादना।

पर्प (सं॰ क्ली॰) पृ-पालनादौ निपातनात् पप्रत्यये न सिद्धं (खष्पशिल्पशष्पवाष्परूपपर्पतल्पाः। उण् ३।२८) १ नवतृण। २ गृह। ३ खञ्जवाह्यशकट।

पर्पट (सं॰ पु॰) पर्प-अटन्। १ स्वनामख्यात ह्रस्व क्षुप, पित्तपापड़ा (Oldenlandia baflora)। पर्याय—त्रियष्टि, तिक्त, चरक, रेणु, तृष्णारि, वरक, अरक, शीत, शीतप्रिय, पांशु, कल्पाङ्ग, कर्मकण्टक, कृशशाख, प्रगन्ध, सुतिक्त, रक्तपुष्पक, पित्तारि, कटुपत्र, वक्र। गुण—शीतल, तिक्त, पित्तश्लेष्मा, ज्वर, रक्त, दाह, अरुचि, ग्लानि, मद और भ्रमनाशक। भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—पित्त, अस्र, भ्रम, तृष्णा और कफज्वरनाशक, संग्राही, शीतल, तिक्त, लघु, वातवर्द्धक और दाहनाशक। २ पिष्टकभेद। गुण—लघु और रूक्ष।

उरदकी दालको पानीमें भिगो कर उसकी भूसी निकाल लेते हैं, पीछे उसे धूपमें सुखा कर चक्कीमें पीसते हैं। इस प्रकार जो आटा तैयार होता है उसका नाम धूमसी है। इस धूमसीमें हींग, हल्दी, नमक, जीरा आदि मसाला डाल कर बहुत पतली पतली रोटी बनाते हैं। पीछे उस रोटीको अङ्गारकी अग्नि पर गरम कर लेनेसे पर्पट तैयार होता है। यह पर्पट अत्यन्त मुखरोचक, अग्निप्रदीपक, पाचक, रूक्ष और किञ्चित्

गुरु माना गया है। मूंगकी दालका जो पर्पट बनता है, वह भी धूमसोक्त पर्पटको तरह हितकर है।

पर्पटक (सं० पु०) पर्पट-स्वार्थे कन्। पर्पट।

पर्पटद्रुम (सं० पु०) १ कोङ्कणदेश-प्रसिद्ध कुम्भीवृक्ष। २ गुग्गुलका पेड़।

पर्पटादि (सं० पु०) १ क्वाथौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—पित्तपापड़ा २ तोला, पाकार्थ जल ३२ तोला, शेष ८ तोला। यह पित्तज्वरको एक उत्कृष्ट औषध है। यदि पित्तपापड़ा, रक्तचन्दन, सुगन्धवाला और कचूर कुल मिला कर २ तोलेसे पूर्ववत् क्वाथ प्रस्तुत करके सेवन किया जाय, तो वह विशेष फलप्रद होता है।

(भैषज्यरत्ना० ज्वराधि०)

पर्पटी (सं० स्त्री०) पर्पट-ङीप्। १ सौराष्ट्रमृत्तिका, गोपीचन्दन। २ उत्तरदेशभव सुगन्धिद्रव्य, पपड़ी। पर्याय—रञ्जनी, कृष्णा, जतुका, जननी, जनी, जतुकृष्णा, संस्पर्शा, जतुकृत्, चक्रवर्त्तिनी। गुण— तुवर, तिक्त, शिशिर, वर्णकृत्, लघु और विष, व्रण, कण्डू, कफ, पित्त, अस्र और कुष्ठनाशक। ३ पानड़ो।

पर्पटीरस (सं० पु०) औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—पारा एक भाग और गन्धक दो भाग, इन्हें भृङ्गराजके रसमें हल करते हैं। पीछे उसमें चतुर्थांश ताम्र और लौह भस्म मिला कर लौहपात्रमें पाक करते हैं। जब यह कर्दमके जैसा हो जाता है, उस समय उसे गोबरके ऊपर रखे हुए केलेके पत्ते पर पर्पटीवत् रख देते हैं। बादमें उसे चूर कर सम्हालूके रसमें एक दिन तथा जयन्ती, घृतकुमारी अड़ूस, ब्रह्मयष्टि, त्रिकटु, भृङ्गराज, चीता और मुण्डिरी प्रत्येकके रस वा क्वाथमें सात दिन भावना दे कर ज्वलन्त अङ्गार पर स्वेद देते हैं। इसकी मात्रा ४ रत्ती और अनुपान हरीतकी, सोंठ तथा गुलञ्चका क्वाथ है। यह श्लेष्मज्वरघ्न माना गया है।

(रसेन्द्रसारस० ज्वराचि०)

अन्यविध—रक्तपित्तरोगमें पित्तपापड़ेके रसमें अभ्रभस्म अथवा अड़ूस, द्राक्षा और हरीतकीके क्वाथमें चीनी अथवा योगवाही रसका प्रयोग करना चाहिए।

(रसेन्द्रसारस० रक्तपित्तचि०)

पर्परीक (सं० पु०) पिपर्त्तीति पृ-ईकन् (फर्फरीकादयश्च। उण् ४।१९) १ सूर्य। २ वह्नि। ३ जलाशय।

पर्परीण (सं० पु०) पृ-यङ्लुक्, बाहु० इनन्। १ पर्व। २ पर्णवृन्तरस। ३ पर्णशिरा। ४ पत्रचूर्णरस। ५ द्यूतकम्बल।

पर्पिक (सं० पु० स्त्री०) पर्पेण गच्छतीति पर्प ठन्। खञ्ज, लंगड़ा।

पर्पादि (सं० पु०) पाणिन्युक्त शब्दगणभेद। पर्प, अश्व, अश्वत्थ, रथ, जाल, न्यास और व्याल पर्पादिगण हैं।

पर्फरीक (सं० क्लो०) स्फुर-ईकन् पर्फरीकादयश्च' इति निपातनात् साधुः। किसलय, नवपल्लव।

पर्ब (हिं० पु०) पर्व देखो।

पर्बत (हिं० पु०) पर्वत देखो।

पर्बती (हिं० वि०) पहाड़सम्बन्धी, पहाड़ी।

पर्मगुड़ि—नगरभेद।

पर्माड़ि (सं० पु०) कर्णाटराजके एक पुत्रका नाम।

पर्यम (सं० पु०) कड़ाह, बड़ी कड़ाही।

पर्यगु (सं० पु०) परितो न गच्छन्ति पापे वाचः यस्मात् इन्द्रिय नियन्ता, जितेन्द्रिय।

पर्यग्नि (सं० पु०) १ यज्ञके लिये छोड़े हुए पशुकी अग्नि ले कर परिक्रमा करना। २ वह अग्नि जो हाथमें ले कर यज्ञकी परिक्रमा की जाती है।

पर्यग्निकृत (सं० त्रि०) अग्नेः परितः कृतः। चारों ओर अग्निवेष्टन द्वारा कृतसंस्कार।

पर्यङ्क (सं० पु०) परितोऽङ्ग्यते इति परि-अक-घञ्। १ खट्टा, पलंग। पर्याय—मञ्च, मञ्चक, पल्यङ्क, पर्यस्तिका परिकर, अवसक्थिका। २ योगका एक आसन। ३ एक प्रकारका वीरासन। ४ नर्मदानदीके उत्तर ओरके एक पर्वतका नाम जो विन्ध्यपर्वतका पुत्र माना जाता है।

पर्यङ्कपादिका (सं० स्त्री०) पर्यङ्कस्येव पादोऽस्याः, ठन् टाप् च। कोलशिम्बी, काले रंगकी सेम, सुअरासेम।

पर्यङ्कबन्ध (सं० पु०) पर्यङ्कस्य योगपट्टस्य बन्धः बन्धनः बन्ध-घञ्। पर्यङ्कबन्धन।

पर्य्यङ्कबन्धन (सं॰ क्ली॰) पर्य्यङ्क-वत् यद्बन्धनं। वस्त्रादि द्वारा पृष्ठ जानु और जङ्घा बन्धन।

पर्य्यङ्क्र (सं॰ पु॰) अश्वमेध यज्ञसम्बन्धीय प्रथम यूपमें बन्धनीय पञ्चदश संख्यक पशुभेद।

पर्य्यटन (सं॰ क्ली॰) परितोऽटनं भ्रमणं परि-अट भावे ल्युट्। पुनः पुनः गमन, घूमना फिरना। पर्याय—व्रज्या, अटाट्या।

पर्य्यनुयुक्त (सं॰ त्रि॰) जिज्ञासित, जो पूछा गया हो।

पर्य्यनुयोग (सं॰ पु॰) परितोऽनुयोगः पृच्छा, परि-अनु-युज-घञ्। जिज्ञासा, पूछना।

पर्य्यनुयोज्य (सं॰ त्रि॰) परि-अनु-युज-कर्मणि ण्यत्। निग्रहोपपत्ति द्वारा चोदनीय, प्रेरणीय।

पर्य्यनुयोज्योपेक्षण (सं॰ क्ली॰) गौतमोक्त निग्रहस्थान भेद।

पर्य्यन्त (सं॰ पु॰) परितोऽन्तं प्रादि समासः। १ शेष-सीमा। २ समीप, पास। ३ पार्श्व, बगल। (अव्य) ४ तक, लौं।

पर्य्यन्तभू (सं॰ स्त्री॰) पर्य्यन्तस्य शेषसीमायाः भूः पृथिवी। नदी, नगर और पर्वतादिको उपान्तभूमि। पर्याय—परिसर।

पर्य्यन्तिका (सं॰ क्ली॰) परितः सर्वतोभावेन अन्तिका, गुणादीनां नाशिका। गुणभ्रंश, गुणनाश।

पर्य्यन्तीकृत (सं॰ त्रि॰) सम्पादित, जो समाप्त किया गया हो।

पर्य्यन्य (सं॰ पु॰) पर्जन्य पृषोदरादित्वात् साधुः। १ इन्द्र। २ शब्दायमान मेघ, गरजता हुआ बादल। ३ मेघशब्द, बादलकी गरज।

पर्य्यन्य (सं॰ पु॰) पर्जन्य देखो।

पर्य्यय (सं॰ पु॰) परि क्रमशः अयो गमनं। क्रमोल्लङ्घन, किसी नियम या क्रमका उल्लंघन। पर्याय—अतिपात, उपात्यय, विपर्यय, अत्यय, अतिपतन, व्यत्यय, अतिक्रम।

पर्य्ययण (सं॰ क्ली॰) परितोऽयते गच्छत्यनेन परि-अय-ल्युट्। अश्वसज्जा, जीन।

पर्य्यवनद्ध (सं॰ त्रि॰) अपर्याप्तरूपमें उत्पन्न वा जात।

पर्य्यवदात (सं॰ त्रि॰) १ उत्तमरूपसे परिच्छन्न। २ परिष्कृत। ३ सौष्ठवसम्पन्न वा ज्ञानयुक्त।

पर्य्यवदापयितृ (सं॰ पु॰) दाता, वह जो विभाग कर देता है।

पर्य्यवधारण (सं॰ क्ली॰) यथायथ निरूपण।

पर्य्यवरोध (सं॰ पु॰) बाधा, अड़ंगा।

पर्य्यवसान (सं॰ क्ली॰) परि-अव-सो-भावे ल्युट्। १ अन्त समाप्ति, खातमा। २ अन्तर्भाव, शामिल हो जाना। ३ राग, क्रोध। ४ ठीक ठीक अर्थ निश्चित करना।

पर्य्यवसानिक (सं॰ त्रि॰) शेष अवस्थाप्राप्त।

पर्य्यवसायिन् (सं॰ त्रि॰) परि-अव-सो णिनि। पर्य्यवसानशील।

पर्य्यवसित (सं॰ त्रि॰) परि-अव सो कर्मणि क्त। १ पूर्वापरालोचन द्वारा अवधारित अर्थ। २ निष्कृष्टार्थ।

पर्य्यवस्कन्द (सं॰ पु॰) रथादिसे लम्फप्रदानपूर्वक अवतरण।

पर्य्यवस्था (सं॰ स्त्री॰) परितोऽवस्थानं परि-अव-स्था-अङ्। (आतश्चोपसर्गे। पा ३।३।१०६) प्रतिपक्षवाद।

पर्य्यवस्थातृ (सं॰ त्रि॰) पर्य्यवतिष्ठते इति-परि अव-स्था तृच्। पर्य्यवस्थानकर्त्ता, विरोधी।

पर्य्यवस्थान (सं॰ क्ली॰) परितोऽवतिष्ठतेऽनेन परि-अव-स्था करणे ल्युट्। १ विरोध। २ सर्वतोभावसे अवस्थित।

पर्य्यवस्थित (सं॰ त्रि॰) रागान्वित, क्रोधयुक्त।

पर्य्यश्रु (सं॰ त्रि॰) अश्रुजलसे स्नान, अश्रुपूर्ण।

पर्य्यसन (सं॰ क्ली॰) परि-अस-क्षेपे भावे ल्युट्। १ अपसारण। २ दूरीकरण। ३ परितः क्षेपण, चारों ओरसे क्षेपण।

पर्य्यस्त (सं॰ त्रि॰) परितोऽस्तः क्षिप्तः, अस-क्षेपे-क्त। १ पतित। २ हत। ३ सर्वतः प्रसृत, विस्तृत। ४ विक्षिप्त। ५ प्रसारित। ६ दूरीकृत। ७ उद्वर्त्तित।

पर्य्यस्तवत् (सं॰ त्रि॰) पर्य्यस्त अस्त्यर्थे मतुप्, मस्य-व। पर्य्यस्तयुक्त, पर्य्यस्त अर्थ सम्बन्धीय।

पर्य्यस्तापह्नुति (सं॰ स्त्री॰) वह अर्थालङ्कार जिसमें वस्तुका गुण गोपन करके उस गुणका किसी दूसरेमें आरोपित किया जाना वर्णन किया जाय।

पर्य्यस्ति (सं॰ स्त्री॰) पर्य्यस्यते शरीरं यत्र परि-अस-क्षेपे, आधारे भावे वा क्तिन्। १ पल्यङ्क, पलंग। २ दूरीकरण, अलग करना, हटाना।

पर्यस्तिका (सं० स्त्री०) पर्यस्ति स्वार्थे कन्-टाप्। खटा, खाट, पलंग।

पर्याकुल (सं० त्रि०) परितः आकुलः। १ अतिशय व्याकुल, बहुत घबराया हुआ। २ स्खलितगति। ३ अतिव्यस्त।

पर्याकुलत्व (सं० क्लो०) पर्याकुल-भावे त्व। व्याकुलता, व्याकुल भाव।

पर्याख्यान (सं० क्लो०) परि-चक्षिङ्-ल्युट् (चक्षिङः ख्याञ्। पा २।४।५४) इति ख्यादेशः, वा परित आख्यानं। परितःकथन, आख्यान।

पर्यागत (सं० त्रि०) पक्व, पक्का।

पर्यागलत् (सं० त्रि०) परि-आ-गल-शतृ। चोतत्, चरत्।

पर्याचान्त (सं० क्लो०) परितः आचान्तं। भोजनके समय पत्तलों आदि पर रखा हुआ वह भोजन जो एक पंक्तिमें बैठ कर खानेवालोंमेंसे किसी एक व्यक्तिके बीचमें ही आचमन कर लेने अथवा उठ खड़े होनेके बाद बच रहता है। ऐसा अन्न जूठा और दूषित समझा जाता है। ऐसी हालतमें एक पंक्तिमें खानेके लिये जितने मनुष्य बैठे हुए हैं उन्हें सबको यह अन्न परित्याग करना चाहिये। मनुटीकामें कुल्लूकने लिखा है—

"उमान्नं सूतिकान्नञ्च पर्याचान्तमनिदिशम्॥"

(कुल्लक

उग्रान्न, सूतिकान्न और पर्याचान्त-अन्नका परित्याग करना चाहिये। याज्ञवल्क्यसंहिताकी मुद्रित पुस्तकमें 'पर्यायान्न' ऐसा पाठ देखनेमें आता है, लेकिन वह प्रमादिक है।

पर्याचित (सं० त्रि०) परि-अ-चि-क्त। आचित, व्याप्त।

पर्याण (सं० क्लो०) परितो याति गच्छत्यनेनेति परि-या-ल्युट्, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ अश्वपृष्ठका आसन, घोड़की पीठ परका पलान। २ अश्वसज्जा, घोड़ेकी साज जीन।

पर्याणहन (सं० क्लो०) सोमोऽनसि स्थितः, समन्तादान-ह्यतेऽनेन परि-आ-नह कारणे ल्युट्। सोमशकटोपरि-गत पटकुटीरूप तद्बन्धनोपायपदार्थ।

पर्यादान (सं० क्लो०) १ शेष, अन्त। २ क्षय, नाश।

पर्याप्त (सं० त्रि०) परि-आप-भावे क्त। १ यथेष्ठ, काफी, पूरा। २ प्राप्त, मिला, हुआ। ३ शक्तिसम्पन्न, जिसमें शक्ति हो। ४ समर्थ, जिसमें सामर्थ्य हो। ५ परिमित। (क्लो०) ६ तृप्ति, संतोष। ७ शक्ति, ताकत। ८ निवारण। ९ प्राचुर्य, यथेष्ट होनेका भाव। १० सामर्थ्य। ११ योग्यता।

पर्याप्तभोग (सं० त्रि०) भोगातिशय्य।

पर्याप्ति (सं० स्त्री०) परि-आप-क्तिन्। १ सम्यक् प्राप्ति। २ परित्राण। ३ मरणोद्यतका निवारण। ४ प्रकाश। ५ प्राप्ति। ६ तृप्ति। ७ शक्ति। ८ नैयायिकोंका मतप्रसिद्ध स्वरूप सम्बन्धविशेष। यह सम्बन्ध सभी पदार्थोंका विशिष्टबुद्धिनियामक है। अतएव यह पदार्थभेदसे नाना प्रकारका है। यथा—यह एक घट है, यह दो घट है इत्यादि पर्याप्ति प्रतीतिसाक्षिक है। द्वितीयाव्युत्-पत्तिवादमें गदाधर भट्टाचार्यने लिखा है, कि पर्याप्ति दो प्रकारकी है, अर्द्ध पर्याप्ति और पूर्ण पर्याप्ति। इनमेंसे जहां अधिकके निरासके लिये जो पर्याप्ति निवेशित होती है, वहां इसे अर्द्धपर्याप्ति कहते हैं। जैसे—'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' इत्यादिकी जगह साध्यतावच्छेदक वह्नित्वनिष्ठा पर्याप्ति है; यही अर्द्धपर्याप्ति है। फिर जहां न्यून धारण-के निमित्त जो पर्याप्ति निवेशित होती है, वहां उसे पूर्णपर्याप्ति कहते हैं। जैसे—'पर्वतो न महानसीय वह्निमान्' पर्वत पर वह्नि है, लेकिन महानससम्बन्धीय वह्नि पर्वत पर नहीं है, इत्यादि जगह साध्यतावच्छेदकी-भूत महानसीयत्वविशिष्ट वह्नित्वनिष्ठा पर्याप्ति है। यही पूर्णपर्याप्ति है। (द्वितीयाव्युत्पत्तिवाद)

पर्याप्लाव (सं० पु०) परि-आ-प्लु-घञ्। १ अभिप्लव शब्दार्थ। २ परित आप्लाव, चारों ओरसे डुबाना, बोरना।

पर्याय (सं० पु०) परि-इन गतौ घञ् (परावनुपात्यय इनः। पा ३।३।३८) १ पर्ययण, क्रम, सिलसिला, परम्परा। पर्याय—आनुपूर्वी, आहत, परिपाटी, आनुक्रम, आनुपूर्व्य, आनुपूर्वक, परिपाटि। २ प्रकार। ३ अव-सर, मौका। ४ निर्माण, बनानेका काम। ५ द्रव्यधर्म। ६ क्रम द्वारा एकार्थवाचक शब्दको पर्याय कहते हैं। ७ सम्पर्कविशेष, दो व्यक्तियोंका वह पारस्परिक सम्बन्ध जो दोनोंके एक ही कुलमें उत्पन्न होनेके कारण होता

है। ८ अर्थालङ्कारविशेष, वह अर्थालङ्कार जिसमें एक वस्तुका क्रमसे अनेक आश्रय लेना वर्णित हो।

पर्यायक्रम (सं॰ पु॰) १ एकके बाद दूसरेका अधिष्ठान, क्रमसे बढ़ती। २ मान या पद आदिके विचारसे क्रम, बड़ाई छोटाई आदिके विचारसे सिलसिला।

पर्यायच्युत (सं॰ त्रि॰) स्वाधिकार पदसे भ्रष्ट; पर्यायक्रमसे जिसकी पदोन्नति न हुई हो।

पर्यायवचन (सं॰ क्ली॰) एकार्थप्रकाशक-शब्द।

पर्यायवाचक (सं॰ त्रि॰) पर्यायः वाचको यत्र। १ जिसमें पर्यायवाचक शब्द हो। २ पर्यायशब्दका वाचक।

पर्यायवृत्ति (सं॰ स्त्री॰) एकको त्याग कर दूसरेको ग्रहण करनेकी वृत्ति, एकको छोड़ कर दूसरेको ग्रहण करना।

पर्यायशयन (सं॰ क्ली॰) पर्यायेण क्रमेण शयनं। प्रहरिकादिका क्रमानुसारसे शयन, पहरेदारों आदिका क्रमसे अपनी अपनी बारीसे सोना। पर्याय—उपाशय, विशाय।

पर्यायशब्द (सं॰ पु॰) पर्यायवाचको शब्दः। पर्यायवाचक शब्द, एक पर्याय शब्द।

पर्यायशस् (सं॰ अव्य॰) पर्याय-चशस्। पर्यायक्रमसे, समय समयमें।

पर्यायान्न (सं॰ क्ली॰) पर्याचान्त देखो।

पर्यायिक (सं॰ पु॰) सङ्गीत वा नृत्यादिका अङ्गभेद।

पर्यायिन् (सं॰ त्रि॰) १ चारों ओर वेष्टित वा आगत। २ पर्यायानुक्रमसे।

पर्यायोक्त (सं॰ त्रि॰) पर्यायेण उक्तं। १ क्रमसे उक्त, जो सिलसिलेवार कहा गया हो। (क्ली॰) २ अर्थालङ्कारभेद, वह शब्दालङ्कार जिसमें कोई बात साफ साफ न कह कर कुछ दूसरी वचनरचना या घुमाव फिरावसे कही जाय, अथवा जिसमें किसी रमणीय मिस या व्याजसे कार्य साधन किये जानेका वर्णन हो।

पर्यारिण् (सं॰ त्रि॰) परि-ऋ-णिनि। १ परित आन्ति-युक्त।

पर्याली (सं॰ अव्य॰) परि-आ-अल-ई ऊर्य्यादि। हिंसा।

पर्यालोचन (सं॰ क्ली॰) परि-आ-लोच भावे ल्युट्। १ सम्यक् विवेचन, अनुशीलन, अच्छी तरह देख भाल। २ वितर्क।

पर्यालोचना (सं॰ स्त्री॰) पर्यालोचन-टाप्। १ सर्वतोभावसे आलोचना, किसी वस्तुकी पूरी देखभाल, पूरी जाँच पड़ताल।

पर्यावर्त्त (सं॰ पु॰) परि-आ-वृत-घञ्। १ संसारमें फिरसे आ कर जन्मग्रहण। २ लौटना, वापस आना।

पर्यावर्त्तन (सं॰ क्ली॰) परि-आ-वृत-ल्युट्। १ सूर्यकी पश्चिमवर्त्तिनी छायाके पूर्वदिक्वर्त्तिरूपमें परिवृत्ति।

पर्याविल (सं॰ त्रि॰) परित आविलः। अतिशय कलुष, बहुत मैला।

पर्यास (सं॰ पु॰) पर्यस्यते इति परि-अस-घञ्। १ पतन, गिरना। २ हनन, वध, मार डालना। ३ परिवर्त्त, फिराव, घुमाव। ४ वह्निष्पवमानगत तीन प्रकारके तृचोंमेंसे अन्तिम तृच्। ५ नाश।

पर्यासन (सं॰ क्ली॰) परि आ-अस-ल्युट्। १ चारों ओर घूमना, परिक्रमा करना। २ किसीको घेर कर बैठना, चारों ओर बैठना।

पर्याहार (सं॰ पु॰) परि-आ-हृ-घञ्। १ एक जगहसे दूसरी जगह ले जाना। २ नाला, घाटी। ३ कलसी। ४ क्षुपविशेष।

पर्युक्षण (सं॰ क्ली॰) परित उक्षणं। तूष्णीम्भावसे जलादिका चारों ओर सेचन, श्राद्ध, होम या पूजा आदिके समय यों ही अथवा कोई मन्त्र पढ़ कर चारों ओर जल छिड़कना। ऋग्वेदी बिना मन्त्रके ही और सामवेदी मन्त्रपाठके साथ पर्युक्षण करते हैं। सामवेदीके पर्युक्षणके विषयमें गोभिलगृह्य-सूत्रमें इस प्रकार मन्त्र लिखा है—"अग्निमुपसमाधाय परिसमुह्य दक्षिणजान्वक्तो दक्षिणेनाग्निं, देवसवितः प्रसुवेति प्रदक्षिणमग्निं पर्युक्षेत् सकृत त्रिर्वा।" (गोभिल)

पर्युक्षणी (सं॰ स्त्री॰) वह पात्र जिससे पर्युक्षणका जल छिड़का जाता है।

पर्युत्थान (सं॰ क्ली॰) सम्यक्रूपसे उत्थान, अच्छी तरहसे उठना।

पर्युत्सुक (सं॰ त्रि॰) परित उत्सुकः। १ उत्कण्ठित, व्याकुल। २ अनुरक्त आसक्त, लीन।

पर्युदञ्चन (सं॰ क्ली॰) पर्युदञ्चति इति परि-उद्-अञ्च-

ल्युट् (कृत्यल्युटो बहुलं । पा ३।३।११७) १ ऋण, कर्ज । भावे ल्युट् । २ उद्धार।

पर्युदय (सं० अव्य०) उदयस्य सामीप्यं, सामीप्ये अव्ययीभावः । उदय सामीप्य, सूर्योदय समीप होनेका समय।

पर्युदस्त (सं० त्रि०) पर्युदस्यते इति परि-उत्-अस्-क्त । १ पर्युदासविशिष्ट, फल और प्रत्यवाय शून्यता द्वारा वारण। पर्युदास देखो। २ निवारित, निषिद्ध। ३ पराभूत, हारा हुआ। ४ हीनबल, जिसकी शक्ति रह न गई हो।

पर्युदास (सं० पु०) परि सर्वतोभावेन उदास्यते विधियेन, परि-उत्-अस-घञ् । नञ्‌भेद । नञ् दो प्रकारका है, पर्युदास और प्रसज्यप्रतिषेध। जो कार्य निषिद्ध बतलाया गया है और यदि वह किया जाय, तो उस कार्यमें कार्यजन्य फल और तज्जन्य प्रत्यवाय नहीं होनेसे वहां पर्युदास नञ् होता है।

सामान्यशास्त्र द्वारा जहां प्राप्तनिषेध अर्थात् निषिद्ध होगा, उसीका नाम पर्युदास है। (श्राद्धविवेक)

जहां विधिको प्रधानता और निषेधकी अप्रधानता समझी जाय तथा उत्तरपदमें नञ्‌का प्रयोग न हो, वहीं पर्युदास नञ् हुआ करता है। 'रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत' रातको श्राद्ध नहीं करना चाहिये, यहां पर 'न' यही निषेध पर्युदास नञ् है। क्योंकि यहां पर विधिको प्रधानता और निषेधको अप्रधानता समझी गई है, 'श्राद्धं कुर्वीत' यहां पर यही विधि है, कि श्राद्ध करना ही होगा, यहो विधिकी प्रधानता हुई है। रातको 'न' यह निषेध है। श्राद्ध मत करो, सो नहीं, रात्रीतरकालमें श्राद्ध करो, यही समझा जाता है। दूसरे शास्त्रोंमें भी सभी जगह श्राद्धका विधान हुआ है, इस कारण श्राद्धकरणके साक्षात् सम्बन्धमें अन्वय हुआ है। विध्यर्थवाचक लिङ् प्रत्यय अर्थात् 'कुर्वीत' इसी लिङ् प्रत्यय द्वारा विधिकी प्रधानता हुई और विध्यर्थवाचक लिङर्थमें नञर्थके साथ अन्वय नहीं होनेसे निषेधकी अप्रधानता हुई। अन्योन्याभावमें भेद, अर्थात् मत करो, यह न समझ कर रात्रि भिन्न कालमें करो, यही भेद नञ्‌का अर्थ हुआ। भेदरूप निषेधका साक्षात् अन्वय हुआ है, विध्यर्थबोधक लिङर्थका अन्वय नहीं होता। इसीसे निषिद्धकी अप्रधानता हुई। ऐसे ही स्थान पर पर्युदास नञ् होता है, ऐसा स्थिर करना चाहिये। (मलमासतत्त्व) प्रसज्यप्रतिषेध देखो।

"जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः।
अगृध्नुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत्॥"

(रघु १ स० । साहित्यद० ७ परि० पर्युदासनञ्‌का उदाहरण)

पर्युपस्थान (सं० क्लो०) परि-उप-स्था-ल्युट् । परिचर्या, सेवा।

पर्युपासक (सं० त्रि०) परि-उप-आस ण्वुल् । पर्युपासनाकारी, सेवक, सेवा करनेवाला।

पर्युपासन (सं० क्लो०) परि-उप-आस ल्युट् । सेवा, सत्कार ।

पर्युपासित (सं० त्रि०) परि-उप-आस-क्त । पर्युपासक, सेवक।

पर्युप्ति (सं० स्त्री०) परि-वप भावे क्तिन् । चारों ओर वपन, चारों ओर बीज डालना या बोना।

पर्युषण (सं० पु०) सेवा, पूजा। जैनियोंके मध्य, जो समय तीर्थङ्करको पूजाका प्रशस्त काल है, उसे वे पर्युषण कहते हैं। इस समय तीर्थङ्करकी पूजाके उपलक्षमें महोत्सव होता है। जैन शब्द देखो।

पर्युषित (सं० त्रि०) परित्यज्य स्वकालमुषितम्, वद-क्त । व्युष्ट, बासी, जो ताजा न हो, एक दिन पहलेका। पर्युषित पुष्पादि द्वारा देवताकी पूजा नहीं करनी चाहिए, करनेसे वह निष्फल होता है।

"अपर्युषितनिश्छिद्रैः प्रोक्षितैर्जन्तुवर्जितैः।
स्वीयारामोद्भवैर्वापि पुष्पैः संपूजयेद्धरिम्॥"

(योगिनीतन्त्र)

जो सब फूल पर्युषित न हों तथा जो छिद्रशून्य, जन्तुवर्जित और निजोद्यानजात हों, ऐसे फूलोंसे देवताकी पूजा करनी चाहिए। पर्युषित पुष्प ही निषिद्ध हैं, सो नहीं, किन्तु पूर्वोक्त वचनका प्रतिप्रसव है, यथा—

"बिल्वपत्रञ्च माघ्यञ्च तमालामलकीदलम्।
कह्लारतुलसी चैव पद्मञ्च मुनिपुष्पकम्॥
एतत् पर्युषितं न स्यात् यच्चान्यत् कलिकात्मकम्॥"

(योगिनीतन्त्र)

बिल्वपत्र, मात्री पुष्प, तमाल, आमलकीदल, कह्लार, तुलसी, पद्म और जो कलिकात्मक कोरक हैं वे पर्युषित नहीं होते।

"तुलसीलग्नपुष्पाणि पद्मं गंगोदकं कुशाः।

न पर्युषितदोषोऽत्र छिन्नभिन्नं न दुष्यति॥" (स्मृति)

तुलसीदल संलग्न पर्युषित पुष्प और पद्म, गङ्गोदक, कुश इनमें पर्युषित दोष नहीं लगते अर्थात् पर्युषित होने पर भी इनसे देवताओं पूजा कर सकते हैं।

पर्युषित अन्न खाना नहीं चाहिए। शास्त्रमें लिखा है, कि पर्युषितान्न, उच्छिष्टान्न, श्वस्पृष्ट, पतितदृष्टा उदक्यो संस्पृष्ट और पर्याचान्त अन्न परिवर्जनीय है। पर्युषित भोजन तामस भोजन है। पर्युषित द्रव्य खानेसे केवल धर्महानि ही नहीं होती वरन् शरीर भी अस्वस्थ होता है।

पर्युषितभाजिन् (सं० त्रि०) पर्युषितं व्युष्टं भुङ्क्ते इति भुज णिनि। व्युष्टद्रव्य भोक्ता, बासी पदार्थ खानेवाला।

पर्युहण (सं० क्ली०) परि-ऊह-भावे ल्युट्। परिसमूहन, अग्निके चारों ओर मार्जन।

पर्येत (सं० त्रि०) आक्रमिता।

पर्येषण (सं० क्ली०) परि-इष-ल्युट्। अन्वेषण, छानबीन।

पर्येष्टव्य (सं० त्रि०) परि-इष-तव्य। पर्येषणीय' अन्वेषणयोग्य।

पर्येष्टि (सं० स्त्री०) परि-इष-क्तिन्। पर्येषणा, अन्वेषण, छानबीन।

पर्येहि (सं० त्रि०) परि-आ-ईह-इन्। समन्तात् चेष्टाकारक।

पर्लाकिमेड़ी—मन्द्राज प्रदेशके गञ्जाम जिलान्तर्गत एक भू-सम्पत्ति। यह अक्षा० १८° ४६´ उ० और देशा० ८५° ४´ पू०, चिकाकोलके निकट अवस्थित है। बहुप्राचीन कालसे यहांके राज-उपाधिधारी जमींदारगण इस भूसम्पत्तिका उपसत्त्व भोग करते आ रहे हैं। सारी जमींदारीका भूपरिमाण ७६४ वर्गमील है जिनमेंसे ३५४ वर्गमील स्थान 'मालिया' वा पार्वतीय वन्यभूमिमें परिणत है। यहांकी निम्न और समतल जमीन पर ७२३ और पार्वतीय उच्चभूमि पर ११८ ग्राम बसे हुए हैं।

वर्त्तमान जमींदारवंश अपनेको उड़ीसाके गाङ्गवंशीय गजपतिराजके वंशधर बतलाते हैं। यहांके पार्वतीय अंशमें २१ 'बिशोई'सामन्त और २३ 'दौरा' सरदार राजाकी अधीनता स्वीकार करते हैं और बन्धुतासूत्रसे सभी राजसम्मानरक्षार्थ प्रतिवर्ष कुछ कुछ कर दिया करते हैं।

१७६८ ई०में राजा नारायण देवके विरुद्ध अंगरेजराजने कर्नल पिचको भेजा। जलयुद्धमें पराजित हो कर राजाने अंगरेजोंकी वश्यता स्वीकार की। किन्तु परवर्त्ती समयमें जब राजाने सन्धि तोड़ दी, तब १७८८ ई०में अंगरेजोंने अपने हाथमें इस प्रदेशका शासन-भार ले लिया; फिर कुछ कालके बाद लौटा दिया। राजाको दुर्बलप्रकृतिका देख कर पिण्डारियोंने १८१६ ई० में इस प्रदेश पर धावा बोल दिया। पीछे १८१९ ई०में राज्यके मध्य विद्रोह उपस्थित होने पर मि० थैकरे उक्त विद्रोहदमनमें नियुक्त हुए। पुनः १८३२ ई०में राष्ट्रविप्लवके समय जेनरल टेलर दलबलके साथ यहां पहुंचे थे। १८३५ ई०में शान्ति स्थापित हुई थी। १८५६-५७ ई०में पुनः विद्रोहानल भभक उठा, किन्तु वह सहजमें शान्त किया गया।

पर्ला-किमेड़ीसे प्राप्त महाराज इन्द्रवर्माके ताम्रशासनसे जाना जाता है, कि गाङ्गवंशीय नृपतिगण यहां राज्य करते थे। सुतरां राजा उपाधिधारी जमींदारोंके गाङ्गवंशका परिचय नितान्त अमूलक प्रतीत नहीं होता। महाराज इन्द्रवर्माने ९१ गाङ्गवत्सरमें यह शासन दान किया।

पर्लि—१ सह्याद्रि पर्वतकी एक शाखा। यह समुद्रपृष्ठसे तीन हजार फुट ऊंची है।

२ उक्त पर्वतकी शाखाके ऊपर अवस्थित एक ग्राम। यह सतारा नगरसे ६ मील पश्चिममें अवस्थित है। यहां समतल क्षेत्रसे १०४५ फुट ऊपरमें पर्लिदुर्ग निर्मित है।* दुर्गकी चतुःसीमा १८२४ गज है।

* पर्लि दुर्गका दूसरा नाम सज्जनगढ़ वा सुजनगढ है, जब महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीके गुरु रामदास स्वामी यहां रहते थे, उस समय अनेक महापुरुष उनके दर्शन करने आते थे। महाजनोंके समागमसे इस दुर्गका सज्जनगढ नाम पड़ा।

उत्तर-दक्षिण और दक्षिण-पश्चिममें यथाक्रम यावटेश्वर, सतारा और नाङ्गा नामक पर्वत शिखर इसे शत्रुके आक्रमणसे बचाता है। दुर्गमें प्रवेश करनेके केवल दो द्वार हैं। सतारा नगरसे दुर्ग जानेको राह पर एकमात्र उर्मोड़ोनदी पार करनी पड़ती है। पर्लि-ग्रामसे उत्तरकी ओर दुर्गद्वार जानमें जो रास्ता गया है वह प्रायः १२९० गज लम्बा है।

दुर्गके भीतर भग्नप्राय एक मुसलमान मसजिद और तीन हिन्दूमन्दिर हैं। रामचन्द्रके उद्देशसे निर्मित मन्दिर दुर्गके मध्य भागमें खड़ा है। इसके उत्तरांशमें एक सुदीर्घ दीर्घिका है जिसका जल बहुत मीठा लगता है। दुर्गद्वारके सामने ही एक छोटी बस्ती है जहां प्रायः ६० घर परवारि जातिका वास है, एतद्भिन्न पर्लिग्राममें ब्राह्मण और बनिया अधिक संख्यामें रहते हैं। ग्रामवासी कूप वा उर्मोड़ोनदीसे जल ला कर पीते हैं। प्रति सोमवारको यहां हाट लगती है। १६२७ ई०में शिवाजीने अपने गुरु रामदास स्वामीको (१६०८-१६८१ ई० में जीवित थे) यह स्थान दान दिया था। रामदासके सम्बन्धमें नाना अलौकिक प्रसङ्ग सतारामें सुने जाते हैं। पर्लिग्रामके मध्यस्थलमें रामदास मन्दिरके चारों ओर उनके शिष्योंका वास है। पत्थर और ईंटसे स्वामीजीके शिष्य आकाबाई और दिवाकर गोसाईंने जो मन्दिर १६८० ई०में निर्माण किया, शिरगांववासी परशुरामभाऊने १८०० और १८३० ई०में उसका जीर्णसंस्कार करा दिया। पीछे यवटेश्वरनिवासी बैजनाथ भागवतने उसका बरामदा जहां तहां ठीक कराया। प्रतिवर्ष फरवरी मासमें यहां एक मेला लगता है।

पर्लिग्रामके उत्तर-पश्चिममें हेमाड़ पन्थियोंके जो दो पुरातन मन्दिर विद्यमान हैं वे पूर्वमुखी हैं। उत्तरकी अपेक्षा दक्षिणका मन्दिर भग्नप्राय है और प्राचीन प्रतीत होता है। १६७२ ई०में शिवाजीकी सेनाने यह स्थान जीता था। १६९९ ई०में मुगलोंने जब सतारा अवरोध किया, तब प्रतिनिधि परशुराम त्रिम्बकने पर्लि दुर्गसे रसद इकट्ठी की थी। १७०० ई०के अप्रिल मासमें सतारा मुगलोंके हाथ लगा, पीछे उन्होंने पर्लिमें भी घेरा डाला। इस पर महाराष्ट्रगण दुर्ग छोड़ कर भाग चले। सम्राट् औरङ्गजेबने इस दुर्गका 'नौरङ्ग' नाम रखा था।† १७९० ई०में यह स्थान 'नहिस दुर्ग' सरकारके सदररूपमें गिना जाने लगा। १८१८ ई०में यह स्थान अंगरेजोंके अधिकार-भुक्त हुआ। १८५७ ई०में घोर सिपाहीविद्रोहके समय यहां दस्युका उपद्रव खूब जोर शोर था। पीछे पारस्य युद्धसे प्रत्यागत अंगरेजी सेनाने आ कर उनका दमन किया।

पर्व (सं० क्ली०) १ वंशग्रन्थि, बांसकी गांठ। २ अङ्गुल्यादिग्रन्थ, अङ्गुलिकी गांठ या गिरह। ३ पर्वन् देखो।

पर्वक (सं० क्ली०) पर्वणा ग्रन्थिना कायतीति कै-क। ऊरुपर्व, पैरका घुटना।

पर्वकार (सं० त्रि०) अपर्व पर्व तत्तुल्यक्रियं करोति, पर्व-कृ-अण्। धनलोभादि द्वारा अपर्वकी दिन पर्वोक्त कर्मकारक, वह जो धनके लोभसे पर्वके दिनका काम और दिनोंमें करे।

पर्वकारिन् (सं० त्रि०) पर्व करोतीति पर्व-कृ-णिनि। पर्वकार देखो।

पर्वकाल (सं० पुं०) पर्वणः कालः। १ पर्वसमय, पर्वका समय, पुण्यकाल। २ पर्वके दिन चन्द्रमाका क्षयकाल। जैसे, अमावस्या, चतुर्दशी आदि।

पर्वगामिन् (सं० पुं०) पर्वसु चतुर्दश्यष्टम्यादि गच्छति स्त्रियमिति, पर्व-गम-णिनि। वह जो पर्वके दिन स्त्रीके साथ भोग करे। शास्त्रमें पर्वके दिन स्त्री-सम्भोग निषिद्ध बतलाया गया है। पर्वके दिन स्त्रीके साथ भोग करनेवाला मनुष्य नरकका अधिकारी होता है। पर्वन् देखो।

पर्वगुप्त—काश्मीरके एक राजा। ये पहले मन्त्री थे। बाद इन्होंने अपने कौशलसे राजसिंहासन पर अधिकार

वर्ष पहले दिल्लीके सम्राट्से यह दुर्ग स्थापित हुआ था। पीछे १७७५ ई० में नारोवल्लल सोनी नामक किसी मामलातदारने इसका कुछ अंश परिवर्द्धित किया। इसके द्वारदेशके ऊपर पारस्यभाषामें लिखित एक शिलालिपि है। दुर्गकी अवस्था शोचनीय है।

† Elliott's Muhomedan Historian Voll. VII, p. 367.

किया था। ये अत्यन्त पापात्मा थे। २४ लौकिकाब्दकी कृष्ण दशमीके दिन ये राज्यारोहण हुए और २६ लौकिकाब्दकी भाद्रकृष्ण त्रयोदशीके दिन इस लोकसे चल बसे। काश्मीर देखो।

पर्वणा (सं० स्त्री०) पर्व पूर्त्तौ करणे ल्युट्। १ पूर्त्तिकरण, पूरा करनेकी क्रिया या भाव। (पु०) २ एक राक्षसका नाम।

पर्वणिका (सं० स्त्री०) नेत्रके पर्वगत रोगभेद, आंखके सन्धिस्थानमें होनेवाला एक रोग। पर्याय—पर्वणी, पार्वणी और पर्वणीका।

पर्वणी (सं० स्त्री०) १ पूर्णिमा, पौर्णमासी। २ सुश्रुतोक्त चक्षुके सन्धिस्थानगत रोगभेद। इसका लक्षण—यदि नेत्रके सन्धि-स्थानमें दाह और शूलविशिष्ट ताम्रवर्ण सूक्ष्म गोलाकार शोफ हो, तो उसे पर्वणी कहते हैं। यह रोग पित्तजन्य होता है।

पर्वत (सं० पु०) पर्वति पूरयतीति पर्व पूरणे अतच्। (भृ मृ-दृशि यजि पर्वीति। उण् ३।१००) वा पर्वणि भागाः सन्त्यत्र। १ पहाड़। पर्याय—महीध्र शिखरी, क्ष्माभृत्, अहार्य, धर, अद्रि, गोत्र, गिरि, ग्रावा, अचल, शैल शिलोच्चय, स्थावर, सानुमान्, पृथुशेखर, धरणीकीलक कुट्टार, जीमूत, धातुभृत्, भूधर, स्थिर, कलोर, काटकी, शृङ्गी, निर्झरी, अग, नग, दन्ती, धरणीध्र, भूभृत्, क्षितिभृत्, अवनीधर, कुधर, धराधर, प्रस्थवान्, वृत्तवान्।

(राजनि० शब्दर० प्रभृति)

कालिकापुराणमें लिखा है—पर्वत दो प्रकारका है एक पाषाणमय स्थावर और दूसरा तदन्तर्गत देह। स्थावर मूर्त्ति पर्वतके अन्तरमें स्थित है। यह शरीरको पुष्टि और तृप्तिविधायक है। पुराकालमें विष्णुने जगत्की स्थितिके लिये पर्वतोंको कामरूपी बनाया। पर्वतोंका यह स्थावरशरीर विशीर्ण हो जानेसे इनका प्रकृत शरीर सर्वदा दुःखाकुल होता है। मार्कण्डेयपुराणमें जम्बूद्वीपके संस्थानवर्णनमें लिखा है—

पृथिवी कुल शताईकोटि विस्तृत है। इसमेंसे जम्बूद्वीपका विस्तार और दैर्घ्य एक लाख योजन होगा। हैमवान्, हेमकूट, ऋषभ, मेरु, नील, श्वेत और शृङ्गी ये पृथ्वीके वर्ष-पर्वत हैं। इन वर्ष-पर्वतोंके मध्यस्थलमें दो महापर्वत हैं जिनका विस्तार दो लाख योजन है। इनके दक्षिण और उत्तरमें यथाक्रम दो दो करके जो पर्वत हैं, उनका परस्पर विस्तार दश दश सहस्र योजन माना गया है।

प्राच्यादि दिक्भागोंमें यथाक्रम मन्दर, गन्धमादन, विपुल और सुपार्श्व पर्वत प्रतिष्ठित हैं; ये सभी केतुपादप-शोभित हैं। इनके मध्य मन्दरका केतुपाद। कदम्ब, गन्धमादनका जम्बूवृक्ष, विपुलका अश्वत्थ और सुपार्श्वका केतुपादप वटवृक्ष है। इन सब पर्वतोंका आयामपरिमाण ग्यारह सौ योजन है। जो सब पर्वत पूर्वकी ओर हैं, उनका नाम जठर, देवकूट और परस्पर एकत्र सन्निवद्ध आनील और निषध है। निषध और पारिपात्र ये दोनों ही पर्वत मेरुके पश्चिम पार्श्वमें और कैलास तथा हिमवान् ये दो महाचल मेरुके दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित हैं। ये सब पूर्व-पश्चिममें आयत और सागरके मध्य प्रविष्ट हुए हैं। शृङ्गवान् और जारुधि ये दो पर्वत मेरुके उत्तरकी ओर पड़ते हैं। इन सब पर्वतोंको मर्यादा पर्वत कहते हैं।

इसके अतिरिक्त शीतान्त, चक्रमुञ्ज, कुलीर, शंख, कङ्कवान्, मणिशैल, वृषवान्, महानील, भवाचल, सुविन्दु, मन्दर, वेणु, सुमेघ, निमेष और मन्दरके पूर्वमें महाचल, देवशैल, त्रिकूट, शिखराद्रि, कलिङ्ग, पतङ्गक, रुचक, सानुमान्, ताम्रक, विशाखवान्, श्वेतोदर, समल, वसुधार, रत्नवान्, एकशृङ्ग, महाशैल, गजशैल, पिशाचक, पञ्चशैल, कैलास और हिमवान् ये सब पर्वत मेरुके दक्षिणपार्श्वमें अवस्थित है। सुचक्षु, शिशिर, वैदुर्य, पिङ्गल, पिञ्जर, भद्र, सुरस, कपिल, मधु, अञ्जन, कुक्कुट, कृष्ण, पाण्डुर, सहस्रशिखर, पारिपात्र, शृङ्गवान् ये सब पर्वत मेरुके पश्चिम और विष्कम्भपर्वतके बाहरमें सन्निवद्ध हैं। शङ्कुकूट, ऋषभ, हंसनाभ, कपिलेन्द्र, नील, स्वर्णशृङ्ग, शतशृङ्ग, पुष्पक, मेघपर्वत विरजाख्य, वराहाद्रि, मयूर और रुचिर ये सब पर्वत उत्तरकी ओर अवस्थित हैं।

महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षपर्वत, विन्ध्य और पारिपात्र ये सात कुलपर्वत हैं। इन सब कुलपर्वतोंके

समीप अन्यान्य सहस्र सहस्र पर्वत हैं। उनके सभी सानु विस्तृत, उच्छ्रित, विपुलायत और अति मनोज्ञ हैं कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर, दर्दुर, वातस्वन, वैद्युत, मैनाक, स्वरस, तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि, रोचन, पाण्डुर, पुष्प, उज्जयन्त, रैवत, अर्बुद, ऋष्यमूक, गोमन्त, कूटशैल, कृतस्मर, श्रीपर्वत, क्रोड़ और इनके अलावा अन्यान्य सैकड़ों पर्वत हैं। (मार्कण्डेयपुराण ५४ ५५ अ०)

सभी पर्वतोंके मध्य हिमवान्, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, शृङ्गवान्, महेन्द्र, मेरु, माल्यवान्, गन्धमादन, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्य, परिपात्र, कैलास, मन्दर, लोकालोक और उत्तरमानस ये २० श्रेष्ठ पर्वत हैं।

वराहपुराणमें लिखा है, कि जो सब श्रेष्ठ पर्वत हैं उन पर देवता वास करते हैं। इन सब पर्वतोंके मध्य शान्त नामक पर्वत पर महेन्द्रका क्रीड़ाभवन है। इस क्रीड़ाभवनमें पारिजात-वृक्ष विद्यमान है। उसके पूर्वकी ओर कुञ्जर नामका पर्वत है जिस पर दानवोंके आठ पुर हैं। इसी प्रकार वज्रकेतु पर्वत पर राक्षसोंके अनेक पुर हैं। महानील पर्वत पर किन्नरोंके पन्द्रह हजार पुर हैं। ये सब पुर सोनेके बने हुए हैं। चन्द्रोदय पर्वत पर नागोंका आवास-स्थान है। कुञ्जर पर्वत पर पशुपति हमेशा वास करते हैं। वसुधार पर्वत पर वसुओंकी आवास-भूमि है। वसुधार और रत्नधार इन दो पर्वतों पर यथाक्रम ८ और ७ पुर हैं। इन सब पुरोंमें अष्टवसु और सप्तर्षिगण वास करते हैं। एकशृङ्ग-नामक पर्वत पर प्रजापति चतुर्वक्त्र-ब्रह्माकी वासभूमि है। गजपर्वत पर भगवती महाभूतोंसे परिवेष्टित हो कर वास करती है। वसुधार पर्वत पर मुनि, सिद्ध और विद्याधरगण रहते हैं। इस पर्वत पर अनेक पुर हैं जिनका तोरण और प्राकार बहुत बड़ा है। यहां अनेक पर्वत नामक युद्धशाली गन्धर्वगण वास करते हैं जिनमें से एक पिङ्गलराज राजाधिराज हैं। पञ्चकूट पर राक्षस, शतशृङ्ग पर दानव और यक्षोंके सौ पुर हैं। प्रमेदके पर्वतके पश्चिम देव, दानव और सिद्धादिके पुर हैं तथा इसके मस्तकदेश पर वृहत्सोमशिला है जिस पर प्रति पर्वमें सोम अवतीर्ण होता है। उसके उत्तरमें त्रिकूट-पर्वत है जहां ब्रह्मा वास करते हैं। इस पर्वतके किसी स्थान पर वह्निआयतन है जिस पर अग्निदेव मूर्त्तिमान् हो कर विराजित हैं, देवगण उनकी उपासना कर रहे हैं। उत्तरकी ओर शृङ्गोच्चपर्वत पर देवताओंका आयतन हैं। इसके मध्य पूर्वकी ओर नारायणका आयतन, मध्यमें ब्रह्मा और पश्चिममें शङ्करकी अवस्थान-भूमि है। इसके उत्तर जातुरूक महापर्वत पर तीन योजन मण्डल नन्दज नामक एक सरोवर है। इस सरोवरमें नागराजका वास है। यही सब देवपर्वत हैं। इनको शिलाप्रभृतिका वर्ण हेम, रजत, रत्न, वैदुर्य और मनःशिला सदृश है। (वराहपुराण)

पहले सभी पर्वतोंके पक्ष (पर) थे। अग्निपुराणमें लिखा है, कि पुराकालमें सभी पर्वत विष्णुको मायासे सपक्ष हुए थे। पक्ष पा कर ये सब पर्वत जहां जहां अवस्थित थे, वहींसे उड़ पड़े। विधाताने असुरोंका स्थान जलार्णवमें निर्दिष्ट किया था, किन्तु ये सब पर्वत पश्चिमकी ओरसे उड़ते हुए समुद्रमें गिर पड़े। इस पर देवता और असुरोंमें विरोध खड़ा हुआ। देवताने युद्धमें जय लाभ कर पर्वतके पक्ष काट डाले, केवल मैनाकके पक्ष रहने दिये। पर्वतोंके पक्ष काट कर देवताओंने उन्हें अपने अपने स्थानमें सन्निवेशित किया।

पर्वतमें वर्णनीय विषय—

"शैले मेघौषधीधातुवंशकिन्नरनिर्झराः।
शृंगपाद महारत्न-वनजीवाद्युपत्यकाः॥"

(कविकल्पलता)

पर्वतका वर्णन करनेमें मेघ, औषधि, धातु, वंश, किन्नर और निर्झर, शृङ्ग, पाद, गुहा, रत्न, वन, जीवादि और उपत्यका इन सब विषयोंको वर्णना करनी होती है।

मत्स्यपुराणमें कृत्रिम पर्वतदानका विषय देखनेमें आता। दश प्रकारके कृत्रिम पर्वत प्रस्तुत करके ब्राह्मणोंको यथाविधि दान करनेसे अशेष पुण्य प्राप्त होता है। १० प्रकारके पर्वत ये हैं—

"प्रथमो धान्यशैलः स्याद्द्वितीयो लवणाचलः।
गुडाचलस्तृतीयस्तु चतुर्थो हेमपर्वतः॥
पञ्चमस्तिलशैलःस्यात् षष्ठः कार्पासपर्वतः।

सप्तमो घृतशैलश्च रत्नशैलस्तथाष्टमः ॥
राजतो नवमस्तद्वत् दशमः शर्कराचलः ।
वक्ष्ये विधानमेतेषां यथावदनुपूर्वशः ॥"

(मत्स्यपुराण ७७ अ०)

प्रथम धान्यपर्वत, द्वितीय लवण, तृतीय गुड़ाचल, चतुर्थ हेमपर्वत, पञ्चम तिलाचल, षष्ठ कार्पासपर्वत, सप्तम घृतशैल, अष्टम रत्नशैल, नवम राजतपर्वत और दशम शर्कराचल है। उक्त दश प्रकारके कृत्रिम पर्वत प्रस्तुत करके दान करने होते हैं। इसका विधान इस प्रकार है—अयन, विषुव दिन वा पुण्यकाल, व्यतीपात, दिनक्षय, शुक्लतृतीया, ग्रहण, विवाह, उत्सव वा यज्ञोपलक्षमें, अमावस्या वा पूर्णिमा तिथि तथा शुभदिनमें धान्यशैलादि यथानियम प्रस्तुत करके दान करे। निम्नलिखित नियमसे धान्यादिपर्वत प्रस्तुत करना होता है। पहले उत्तर दिशामें एक चौकोन मण्डप बनावे। उस स्थानको अच्छी तरह गोबरसे लेप कर वहां कुश बिछा दे। वह धान्यपर्वत सहस्रद्रोण-परिमित होगा और यही सबसे श्रेष्ठ माना गया है। पांच सौ द्रोणका मध्यम और तीन सौ द्रोणका धान्यपर्वत छोटा होता है। धान्यपर्वत प्रभृति देखो।

लवणपर्वतका विधान—जो विधिपूर्वक लवणाचल दान करते हैं वे निःसन्देह शिवलोकको जाते हैं। १६ द्रोण लवणका उत्तम, ८ द्रोणका मध्यम और ४ द्रोणका कनिष्ठ लवणाचल होता है। वित्तहीन व्यक्ति एक द्रोणसे ऊपरका भी लवणाचल बना कर दान कर सकता है। जिससे पर्वत बनावे, उसके चतुर्थांशसे विष्कम्भ पर्वत बनाना होता है। बाकी इसके सभी कार्य धान्यपर्वत दानके नियमानुसार करने होते हैं। निम्नलिखित मन्त्रका पाठ करके दान करे। दानमन्त्र—

"सौभाग्यरससम्भूतो यतोऽयं लवणो रसः ।
तदात्मकत्वेन च मां पाहि पापान्नगोत्तमः ॥
यस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कटा लवणं विना ।
प्रियश्च शिवयोर्नित्यं तस्मात् शान्तिप्रदो भव ॥
विष्णुदेहसमुद्भूतो यस्मादारोग्यवर्द्धनः ।
तस्मात् पर्वतरूपेण पाहि संसारसागरात् ॥"

इसी मन्त्रसे लवणाचल दान करे। यथाविधि इस पर्वतका दान करनेसे पहले एक कल्प तक उमालोकमें वास करके पीछे परागति लाभ होती है। धान्यादि जिन दश प्रकारके पर्वतदानका विषय लिखा है, उनका विवरण उन्हीं सब शब्दोंमें देखो। (मत्स्यपुराण ७७ अ०)

बहुदूर विस्तृत प्रस्तर-बहुल अत्युच्च शिखरविशिष्ट भूखण्डका नाम पर्वत कहनेसे हम लोग जो समझते हैं, हिमालय, विन्ध्य, सह्याद्रि नामसे भी वही भाव हम लोगोंके हृदयङ्गम होता है। जिन्होंने कभी भी पर्वत नहीं देखा है। उनके लिये पर्वतका अर्थ केवल उच्चभूमिकी धारणामात्र है। हिमालयादि अति उच्च गिरिश्रेणीको छोड़ कर जो सब (पहाड़) उच्चस्थान वा दो समतलक्षेत्रके मध्य प्राचीररूपमें दण्डायमान हैं, उन्हें भी पर्वत कहते हैं। किन्तु परस्परकी उच्चता और निम्नता जाननेके लिये पृथक् पृथक् नामानुसार वह विशेषता लक्षित हुई है। पर्वत, गिरिमाला, क्षुद्रपर्वत वा पहाड़ और पत्थरमय उच्चभूमि यथाक्रम अङ्गरेजीमें Mount or Mountain, Mountain-range or Chain, hill, hillock and rocks नामसे प्रसिद्ध हैं।

पर्वत कहनेसे ही जो केवल अजानित रसमिश्रित मृत्तिकाके सिवा और कुछ भी बोध नहीं होगा, सो नहीं। पर्वत धनधान्यका आकर है। पर्वतगह्वरमें नाना वर्णोंका प्रस्तर छोड़ कर स्वर्णरौप्यादि धातुकी खान, हीरक माणिक्यादि मूल्यवान् मणि, कोयला, हरिताल, खड़ीप्रभृति मृत्तिकाजात प्रयोजनीय द्रव्य तथा गणनातीतकालसे मृत्तिकाप्रोथित जीवदेहकी प्रस्तरीभूत अस्थियाँ (Fossils) पाई जाती हैं। क्रमशः मट्टी दृढ़ हो कर कठिन पत्थरमें परिणत हो गई है। वह मृत्तिकानिहित जीवदेह भी क्रमशः मृत्तिकाके साथ प्रस्तरमें रूपान्तरित हुए होने पर भी उसकी पूर्वतन आकृति भ्रष्ट नहीं होती। ये सब जीवकङ्काल प्राप्त होनेसे कालका अनन्तत्व और जगदात्माका असीमत्व निर्णीत होता है। जिस प्रकार पर्वतके भीतर भागमें नाना जातीय पदार्थ विद्यमान हैं, उसी प्रकार उपरी भाग भी नाना प्रकारके जीवजन्तु और वृक्षादिसे शोभायमान हैं।

पर्वतके ऊपर नाना जातीय हिंस्र और शान्तस्वभावके पशु, सरीसृपादि, नाना वर्णोंमें रञ्जित पक्ष्यादि और

शाल, तमाल, चन्दन आदि मूल्यवान् वृक्ष तथा औषधि लता उत्पन्न होती है। एतद्भिन्न उपत्यकादिमें क्षुद्राकार जलराशिके मध्य मध्य और उभय तीरवर्त्ती समतल-क्षेत्र पर (Terraces) तरह तरहके अनाजोंकी खेती होती है। पर्वतगात्र हो कर कितनी स्रोतस्विनी इतस्ततः विक्षिप्त हुई हैं। कितनी स्रोतःमाला प्रकृष्ट नदीके आकारमें भिन्न भिन्न देशोंमें बहती हुई तत्-तीरवर्त्ती भूमिसमूहको उर्वरा बनाती हैं। नदीके साथ बहती हुई मृत्कणा (Sediments) कभी कभी पेड़ आदिमें रुक कर जमा हो जाती हैं, जिससे चर पड़ जाता है। नदीस्रोतमें सूक्ष्म सूक्ष्म वालुकाकणा जिस प्रकार मृत्तिका, पीछे द्वीप और नगरमें पर्यवसित हो जाती है उसी प्रकार अनन्तकालव्यापी भूमिके अदृष्टसे कब क्या परिवर्त्तन होता है, कौन कह सकता। इस सृष्टजगत् पर अणु परमाणु कालके अनन्तस्रोतमें बह कर तथा प्राकृतिक विवर्त्तनसे परिभ्रमित हो कर पुनः पुनः परिवर्त्तन और रूपान्तर ग्रहणमें परिदृश्यक जगत्वासीको आलोक प्रदान करता है। कौन कह सकता, कि जो आज जनसाधारणके सामने पर्वत प्रतीयमान होता है, वह कल क्या था?

सभी पदार्थतत्त्वविदोंका कहना है, कि जल जगत्‌का प्रथम सृष्ट पदार्थ है। यूरोपीय वैज्ञानिक पण्डितगण भी इसे स्वीकार करते हैं। स्रष्टाने पहले जलकी सृष्टि की, धीरे धीरे उससे मट्टीका उद्भव हुआ। इसीसे पृथिवीकी सृष्टि है। तेजसे सूर्य, सूर्यसे उत्ताप, जलसे उत्तापसंयोग द्वारा वाष्प, वाष्पसमष्टिसे मेघ, मेघ घना होनेसे जल होता है। प्रकृतिका आवर्त्तन ठीक इसी प्रकार है। पृथिवीके जिस प्रकार एक बार अपने पथ पर घूमनेसे दिन रात और ३६५ दिनमें सूर्यका परिवेष्टन करनेसे वत्सर होता है, उसी प्रकार ईश्वरकी इच्छाके परिवर्त्तनसे जल और जलके परिवर्त्तनसे मट्टी तथा वाष्प बनती है। उधर मट्टीको छेद कर उन्नत जलराशि कहीं प्रस्रवण, कहीं ह्रद, कहीं नदीका आकार धारण कर बहती है। पहले ही लिखा जा चुका है, कि जलसे मट्टी उद्भूत हुई है, अब फिर उस प्राकृतिक नियमका व्यतिक्रम होता है।

बहती हुई नदी जलकी गति द्वारा जो पथ काटती है उस पथकी उभयपार्श्ववर्त्ती भूमि जलस्रोतसे विधौत होने पर क्षयप्राप्त हो जाती है। नीचेकी ओर जानेवाला यह जलस्रोत यदि कोमल मट्टीके अभावमें दृढ़ मट्टी वा पर्वतगात्रमें आ कर स्पर्श करे, तो क्षणकालके लिए वह रुक कर पुनः वक्रगतिमें अपना पथ निकाल लेता है। किन्तु जब जल पर्वत हो कर बहता है, तब देखा जाता है कि वालुकाकणा जलस्रोतसे भिन्न स्थानमें प्रवाहित हो कर जमा हो जाती है। क्रमशः वह नवानीत वालुका जल और मृत्तिकाके सहयोगसे दृढ़ीभूत होने लगती है। जलाघातसे चूर्णीकृत पर्वतगात्र जिस प्रकार वालुकामें परिणत हो जाता है, उसी प्रकार वह वालुकाराशि भी धीरे धीरे प्रकृतिवशतः प्रस्तरवत् कठिन हो जाती है।

नदीगर्भमें बालू आदिके रुक जानेसे जिस प्रकार डेल्टाकी उत्पत्ति होती है, पृथ्वीके ऊपर भी उसी प्रकार चर (Silt) पड़ कर एक एक मृतिकास्तर (Strata or bed) बन जाता है। मृतकागर्भमें कभी कभी किसी दैव विपर्ययसे निहित वनसमूह जिस प्रकार मृत्तिका और जलादिके सहयोगसे दृढ़ हो कर 'कोयले'-में रूपान्तरित होती है, उसी प्रकार मट्टीका चर भी किसी अभावनीय रससे सिक्त हो कर क्रमशः भिन्नाकृतिको प्राप्त होता है। किसी पर्वतकी सम्मुखस्थ समतल भूमिसे लेकर पार्वतीय उच्चभूमि तकका विशेषरूपसे पर्यवेक्षण करनेसे जाना जा सकता है, कि विभिन्न समयमें निहित मृतिकास्तर भूगर्भस्थ आभ्यन्तरिक प्रक्रियाके अनुसार क्रमशः दृढ़से दृढ़तर आकारमें परिणत होता है। कारण पार्वतीय देशस्थ समतल क्षेत्रादि खनन करनेसे नीचेकी ओर जितनी ही वालुकामिश्रित मृत्तिकाराशि बाहर निकलती है, उतना ही विभिन्न प्रकारके प्रस्तरका स्तर देखनेमें आता है। इस प्रकार स्थानविशेषसे कहीं बालूपत्थर (Sandstone), कहीं चूनापत्थर (Lime-stone), कहीं दानादार (Granite), कहीं बोलमाला, कहीं स्लेट (Slate) आदि नाना जातीय पत्थरोंका स्तर पाया जाता है। उपरि-उक्त मृत्तिकासंयुक्त अथवा दृढ़ प्रस्तरमय बालू,

बालूपत्थर, 'लोम' (Loam) जीवदेह और उद्भिज्जादि जड़ित प्रस्तरीभूत मृत्तिका और बालू, दृढ़ कर्दम वा चूनापत्थरको भूतत्त्वविदोंने पार्वतीय स्तर (Stratified rocks) बतलाया है। ये सब मृत्तिकानिहित दृढ़-स्तराकृति भूम्यंश देखनेसे अनुमान होता है, कि किसी समय यह पर्वतभूमि जलके मध्य निक्षिप्त रह कर ऐसी विकृत अवस्थाको प्राप्त हुई है। विशेष पर्यालोचना करनेसे यह भी मालूम होता है, कि जिस प्रकार एक स्थानमें कर्दमात्र जलसे स्तर जम कर धीरे धीरे दृढ़ीभूत हो पत्थरमें (Sedimentary rocks) परिणत होती है, अन्यान्य स्थानोंमें भी उसी प्रकार मछलीके ऊपरी भागको तरह प्रस्तरखण्ड (Shales) कहीं स्लेट, कहीं कोयले, कहीं अभ्रके आकारमें रूपान्तरित होता है। अभ्रकी खानमें मट्टीका आकार जिस प्रकार काचवत् चमकीला, पतला, मछलीके छिलकेकी तरह कठिन, काला और धूसर-वर्णयुक्त हो जाता है उसी प्रकार मछलीके छिलकेकी तरह दृढ़ मृत्तिकामात्र ही Crystalline rocks नामसे प्रसिद्ध है। ऐसे प्रस्तर-स्तरके मध्यस्थलमें जीवदेहके कोई चिह्न देखनेमें नहीं आता; किन्तु उसका कोई कोई अंश ऐसा विकृत है कि उसकी सूक्ष्मरूपसे आलोचना करने पर मालूम होता है, कि वह अंश एक समय तरल पदार्थ था, धीरे धीरे रूपान्तरित हो कर ऐसी अवस्थामें पहुंच गया है। भूतत्त्वशास्त्रमें इस जातिका प्रस्तर Gneiss कहलाता है। क्योंकि यह सहजमें अनुमान किया जाता है कि एक समय वे सब स्थान स्तरीभूत (Stratified) थे, उसी समयसे क्रमशः अग्निके उत्तापसे अथवा गुरु चाप और उत्तप्त जल (Heated water under great pressure)से अनुत्ताप विमिश्रित रहनेके कारण किसी अज्ञात कारण द्वारा उसके अन्तर्निहित पदार्थादि रासायनिक क्रियायोगसे अवस्थान्तर (Chemical change)को प्राप्त हुआ है। पीछे वह फिरसे नये भावमें संगठित हो कर नये आकारमें दिखाई पड़ता है। स्तरीभूतप्रस्तर कालक्रमसे Gneiss-में रूपान्तरित होता है, इस कारण लोग उसे Metamorphic प्रस्तर कहते हैं।

स्तरीभूत (Stratified) और रूपान्तरित (Metamorphic)के अलावा और भी दो जातिके पर्वतका अस्तित्व देखा जाता है। वह आग्नेय (Volcanic) और दानादार (Granitic)-के भेदसे दो प्रकारका है। इनकी उत्पत्ति भी प्रथमोक्त दोनों पर्वतोंसे स्वतन्त्र है। इनकी गठन स्तरीभूत-प्रस्तर-सी नहीं है। इनके प्रस्तर कठिन और भारी, बीच बीचमें गह्वर और उसके मध्य खनिज-पदार्थादि निहित होते हैं। किसी प्राचीन-कालमें भूगर्भके मध्यसे यह प्रस्तरराशि गलित तरल पदार्थरूपमें (Molten rock) उत्थित हो कर स्तरादिके नीचे अथवा समतलक्षेत्र पर प्रवाहित हुई थी। पीछे शीतलवायु वा जलके संस्रवसे शीतलता प्राप्त कर उक्त तरल धातु दृढ़ीभूत होती गई। इसके अलावा पुनः स्तरीभूत प्रस्तरके सट्टंश क्रमशः स्तर पड़ कर वह क्षुद्राकार पर्वतमें परिणत हो गई है। आसनसोलसे नोनिया-नाला और रानीगञ्जसे बराकरके मध्यवर्त्ती तथा बम्बई-प्रदेशमें कई जगह इस जातिका पत्थर देखनेमें आता है। साधारणतः ये सब पर्वत शाखा प्रशाखा व्यापी होते हैं। ये कहीं तो जमीनके मध्य छिपे हैं, केवल एक आध खण्ड पत्थर मस्तक उठा कर पर्वतका निदर्शन देता है, कहीं वह तरल पत्थर उच्च निम्न पर्वताकार-में स्थित रह कर पूर्व अस्तित्वका प्रमाण देता है। ऐसे पर्वतके उपलखण्ड गात्रसंलग्न नहीं है, परस्पर स्वतन्त्र है, केवल एक दूसरेमें लगे हुए हैं। कोयलेकी खान और बालूपत्थर (Sand-stone)के मध्य यह पर्वत-शिखा विस्तारित रह कर बांध (Dyke)का काम करती है। बांध वा बृहत् प्राचीररूपी आग्नेयपर्वत भू-गर्भके अन्तरतम स्थानसे निकलता है। यहां निम्न-प्रदेशमें उत्तप्त तरल-पार्वतीय पदार्थके सहयोगमें रह कर यदि बालूपत्थरका संस्पर्श हो, तो वह बालूप्रस्तर-मय स्थान भाँवेंकी तरह कठिन और दुर्भेद्य हो जाता है। पश्चिम भारतमें, नागपुरसे बम्बईप्रदेश तकके विस्तृत स्थानमें इस जातिके पर्वतका अस्तित्व देखनेमें आता है। पत्थरका आकार बहुत काला होता है।

एक समय यहां आग्नेयपर्वत था। कालक्रमसे उसकी क्रिया बन्द हो गई है। उत्थित गलितधातु

और भस्म प्रभृति प्रवाहित हो कर एक स्थानमें जम गई है और आखिरको पहाड़में परिणत हुई है। इस जातिके पर्वतका आकार साधारण पर्वतसे स्वतन्त्र है। इसका गात्रपार्श्व ऊंचा और दुरारोह है; किन्तु ऊपरी तल प्रायः चिपटा और समतल है। इस प्रकारका पर्वत साधारणतः Trappean वा rock वा Trap-dyke नामसे प्रसिद्ध है। इस श्रेणीके अलावा आग्नेय पर्वतसे निकला हुआ द्रवपदार्थमें संगठित और भी एक जातिका पर्वत देखा जाता है; किन्तु निष्प्रयोजन जान कर उसका विशेष हाल नहीं दिया गया। आग्नेय पर्वतसे स्वभावतः आग निकलती है। एक समय इटलीके हार्कुलेनियस और पम्पियाई नगर पर्वतोत्थित तरल वह्निसे जल गया था। अभी उस नगरके आविष्कृत होने पर भी आग्नेय पर्वतकी मर्यादा सभीको हृदयङ्गम है। तरल अग्नि मृत्तिकामें पर्यवसित हुई है। कौन कह सकता कि वह क्रमशः प्रस्तरमें परिणत नहीं होती? जिस आग्नेय पर्वतसे आज भी धूम और कर्दमादि निकलते हैं, उस पर जन-मानव वास नहीं कर सकते। आग्नेयपर्वत छोड़ कर अन्यान्य पर्वतों पर नाना जातिके लोग रहते देखे जाते हैं।

आग्नेयपर्वत देखो।

आग्नेयपर्वतघटित द्रवपदार्थोंसे उत्पन्न पर्वत (Volcanic rocks) जिस प्रकार है, ग्रेणिटिक (Granitic rocks) पर्वत भी ठीक उसी प्रकार उत्पन्न होता है। इण्डियन पर्वतमाला पर जिस प्रकार आग्नेयपर्वतज द्रवधातु भूगर्भसे उत्थित हो कर पृथ्वी वक्ष पर विस्तारित हो पर्वताकार धारण करती है, ग्रेणिटिक पर्वतकी उत्पत्ति ठीक उसकी विपरीत है। इसमें पार्वतीय तरल-पदार्थ समूह भूगर्भ भेद करके मृत्तिकाके अभ्यन्तर प्रवाहित हो किसी दृढ़ पर्वतसे आहत होता है। क्रमिक घात-प्रतिघातसे वह उष्ण जल शीतल हो कर पर्वतके आकारमें रूपान्तरित होता है। बहुत समयके बाद समुद्रके जलसे वा नदीप्रवाहसे मृत्तिकाराशि विधौत हो कर अथवा किसी अभावनीय कारणसे वह दृष्टिगोचर होता है। हिमालय पर्वत पर कहीं कहीं ऐसा ही होते देखा जाता है। इसकी बाह्य आकृति, खनिजपदार्थसंयोग और आभ्यन्तरिक गठन ठीक Metamorphic जातीय पर्वतकी सी है। इस पर केवल खनिजपदार्थका स्तर नहीं पड़ता।

पूर्वोक्त Stratified वा Sedimentary, Metamorphic, Volcanic और Granitic पर्वतोंके मध्य सबोंकी बाह्य आकृति प्रायः एक दूसरेकी अनुरूप है। जिस अभूतपूर्व क्रियाके संयोगसे धातुज पदार्थ दृढ़ीभूत हुए हैं, उनका विश्लेषण छोड़ कर स्वतन्त्रता पानेका और कोई दूसरा उपाय नहीं है। पहलेकी उत्पत्ति मृत्तिका, कर्दम, वायु और चूनापत्थरका स्तर जमनेसे होती है। दूसरा भूगर्भस्थ उष्ण जल अथवा उत्तापकी प्रक्रियासे स्तरीभूत पत्थर जम कर मछलीके छिलकेके समान पट्टोंके आकारमें रूपान्तरित होता है। किन्तु Volcanic और Granitic पर्वतमाला भूगर्भके मध्य किस प्रकार और किसके संयोगसे द्रववस्तुके शीतल होनेसे उत्पत्ति लाभ करती है, उसे जाननेका कोई उपाय नहीं है। समुद्र अथवा नदीवक्ष पर चर पड़ जानेसे जो सब पर्वत उत्पन्न हुए हैं अथवा जिनकी उत्पत्ति स्वाभाविक है, उनका हम लोग पर्यवेक्षण कर सकते हैं। भूगर्भनिहित तरल प्रस्तररूप द्रवपदार्थोंका लक्ष्य करना हम लोगोंकी शक्तिसे बाहर है। प्रधानतः प्रथमोक्त पर्वत ही हम लोगोंके लिये तथा जीव-इतिहासके लिये विशेष आदरकी वस्तु है। इसके मध्यसे बहुत दिन पहले प्रोथित जीवदेह और उद्भिज्जादिकी प्रस्तरीभूत अस्थि प्राप्त होनेसे जगत्‌का भारी उपकार हुआ है। यही भूतत्त्वमें Fossils वा 'प्रस्तरास्थि' नामसे प्रसिद्ध है। निहित प्रस्तरास्थि (Fossil remains)-से जगत्‌के अन्धकारमय सत्यादि युगका इतिहास प्रकट होता है। जब दो विभिन्न देशोंमें किसी स्तरीभूत-प्रस्तरके मध्य एक जातिके जीवकी प्रस्तरास्थि निहित देखी जाती है, तब यह स्पष्ट अनुमान किया जाता है, कि विभिन्न स्थानोंमें होनेसे भी इस स्तरीभूत प्रस्तरने एक समयमें उत्पत्ति लाभ की है। इससे यह भी बोध होता है, कि उस समय जगत्‌में इसी एक जातिका जीव सभी देशोंमें व्याप्त था। वे सब पर्वत एक समयमें गठित (Of same formation) होनेके कारण उनका एक ही नाम रखा

गया है। जिस समय भारतके आसामप्रदेशमें खसिया पर्वतमाला गठित हुई, ठीक उसी समय इङ्गलैण्डके केण्ट और सासेकस् प्रदेशका खड़ीमय (Chalk) पर्वत संगठित हुआ था। इस कारण भूतत्त्वविदोंने उस समयमें उत्पन्न पर्वतमालाको retaceous formation वा उस समयका Cretaceous period (खड़ीयुग) नाम रखा है *। पृथ्वीके यावतीय स्थानों पर इस प्रकार एक एक समयमें उत्पन्न पर्वतको भूतत्त्वविदोंने उसके समसामयिक कालके मध्य समावेशित किया है।

यूरोपीय भूतत्त्वविद्गण विभिन्न देशोंमें भूगर्भस्थ मृत्तिकास्तर और पर्वतादिके भूगर्भके मध्य गठनकालका निरूपण ले कर जिस सिद्धान्त पर पहुंचे हैं, वर्त्तमान समयसे सर्वप्राचीनतम स्तर जो आज तक आविष्कृत हुए हैं उनकी एक तालिका नीचे दी जाती है।

Post-Tertiary or Quarternary	१ वर्त्तमान Alluvium, २ Pleistocene,
Tertiaray or Cainozoic	३ Pliocene इस युगमें जीवदेहकी ४ Miocene प्रस्तरास्थि प्रचुर परि- ५ Oligocene माणमें पाई जाती है। ६ Eocene
The Secondary or Mesozoic	७ Cretaceous, ८ Jurassic, ९ Triassic,
Primary or Prleozoic	१० Permian or Dyas, ११ Carboniferous, १२ Devonian, १३ Silurian, १४ Cambrian or Primordial Silurian,
Archian, Azoic or Eozoic	१५ Fundamental Gneiss.

हम लोगोंके देशमें सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि इन चार युगोंमें जिस प्रकार बहुकालव्यापी समयका उल्लेख है, भूतत्त्वशास्त्रमें भी उसी प्रकारके समयका उल्लेख देखनेमें आता है। उन प्राचीनतम समयमें जीवित देहादिकी प्रस्तरास्थिका अनुशीलन करनेसे हम लोग जान सकते हैं, कि सत्य-त्रेतादि युगका वर्णित जीवेतिहास बहुत कुछ विश्वास्य है और दोनोंके मध्य विशेष सामञ्जस्य देखा जाता है।

भूतत्त्वका विशेष विवरण यहां नहीं दिया गया। पृथिवी और भूतत्त्व शब्दमें उसका विषय देखो।

अब यह जानना आवश्यक है, कि भूमि आदिकी उच्चता और निम्नता क्यों हुई? हम लोग साधारणतः देखते हैं, कि समुद्रके निकटवर्त्ती स्थानोंकी अपेक्षा उससे दूरवर्त्ती स्थान ऊंचे हैं। यनद्दीससे कलकत्ता नगर ऊंचे पर है, फिर कलकत्तेसे काशी, काशीसे लाहोर, लाहोरसे शिमला, शिमलेसे हिमालयका सर्वोच्चशृङ्ग धवलागिरि ऊंचा दिखाई देता है। इसका कारण क्या है? भूतत्त्वविद्गण विशेष आलोचना करके भूगर्भस्थ उत्तापको ही इसका एकमात्र कारण बतलाते हैं। यह अन्तर्निहित अग्नि बीच बीचमें इतनी तापयुक्त और वेगवती हो जाती है, कि वह तापयोगसे विक्षिप्त वा विताड़ित हो कर भूगर्भस्थ प्रस्तरमय पदार्थों (Great Masses of Stony Matters) में जा मिलती है, पीछे उक्त पदार्थको द्रव करके ऊपर उठाती और वह धातुज द्रवपदार्थ अन्तमें जम कर क्रमशः पर्वतमें परिणत होता है। इसी प्रकार आग्नेय पर्वतकी सृष्टि है। आग्नेय पर्वतकी सहायतासे जिस प्रकार पर्वत वा देश समूह उत्थित हो कर जनसाधारणमें प्रकाश पाता है, उसी प्रकार कहीं कहीं इस आभ्यन्तरिक अग्निकी प्रक्रियाके बलसे देश और नगरादि भूगर्भमें शायित हो कर ह्रद और जलाशयादिमें परिणत होते देखा जाता है। अन्तर्निहित अग्नि वा उसका उत्तापस्रोत भूमिकम्पका एकमात्र कारण है। भूमिकम्पसे कोई स्थान रसातलको पहुंचता और कोई समतल रेखासे ऊपर जा ठहरता है। देखना चाहिये कि पूर्वापर इस प्रकारकी घटना कहीं घटी है वा नहीं। १८१८ ई०, १६ जूनको जो भारतव्यापी भूमिकम्प हुआ उससे कच्छप्रदेशका सिन्द्रिग्राम और दुर्ग सिन्धुगर्भ तथा रणप्रदेश समुद्रगर्भशायी हुआ। किन्तु कुछ दिन बाद ही पुनः रणप्रदेशके समीप एक दूसरे स्थानमें उच्च और बहुदूर विस्तृत एक मृत्तिकास्तूप जम कर जलसे ऊपर

* लैटिन भाषामें Cretaceus शब्दका अर्थ Chalk वा खड़ी है।

उठ गया। यह स्तूप अभी 'अल्लाबांध' नामसे प्रसिद्ध है। १८२२ ई०में भलपारिसो नगर हठात् ३ फुट ऊपर उठा था। १८३५ ई०में सेण्टा-मेरिया द्वीपके समीप एक पर्वतांश (Rocky-flat) समुद्रगर्भसे इतना ऊपर उठ गया कि ज्वारका जल ऊपर चढ़ आनेसे भी (High Water Mark) वह कमसे कम १५ फुट ऊपर ही रह जाता था। १८३८ ई०के भूमिकम्पसे लिमस द्वीप * (Island of Lemus) हठात् ८ फुट ऊंचा उठ गया। उसी दिन १८९८ ई०में जून मासके भूमिकम्पसे आसामके ग्वीलंगसदरका कुछ अंश जलमग्न हो कर वह स्थान ह्रदाकारमें परिणत हो गया है, उसी प्रकार मन्द्राज उपकूलमें पुलिकट ह्रदसे सद्रस और दक्षिण अर्काटसे तञ्जोर आदि नाना स्थानोंमें भूमिको इस प्रकार उन्नति संघटित हुई है।

भूमिकम्प ही जो भूमिको अवनति और उन्नति (Depression and Elevations)का एकमात्र कारण है, सो नहीं। भूम्यादिकी हठात् उन्नति साधारणमें विस्मयकर होने पर भी, देशवासियोंके अलक्ष्यसे जो सब भूमि धीरे धीरे उत्थित हो कर कुछ वर्षोंके बाद पूर्वाधिकृत स्थानको अपेक्षा आकृति और भी बड़ी हो गई है, वही आश्चर्यका विषय है।

वेद और पुराणादि ग्रन्थोंमें हिमालयादि भारतीय प्राचीन पर्वतोंका उल्लेख है। विभिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न जातिके मध्य किसी किसी पर्वतका माहात्म्य बहुत बढ़ा चढ़ा कर कल्पित हुआ है। ओलिम्पस पर्वत पर ग्रीक और रोमीय देवदेवीगण विहार करती थीं। श्रीकृष्णने गोवर्द्धन पर्वत धारण कर इन्द्रके प्रकोपसे व्रजवासियोंको रक्षा की थी। कैलास पर हरगौरीका विलासभवन और कुवेरका आरामस्थान है। मन्दर पर्वत पर इन्द्रादिदेवगण पुष्पसौरभके आघ्राणसे उन्मत्तप्राय हो कर विचरण करते थे। मेरु-पर्वत पर वैदिक देवता इन्द्रका वासस्थान है। सेरवल-पर्वतके निकट बेदोयिन्-अरवगण जाते समय जूता उतार कर सम्मान दिखाते हैं। जवलमुनादसत् पर्वत पर, मोजेसके साथ जिहोभाका कथोपकथन हुआ था, इस कारण अरववासियोंके मध्य वह विशेष मान्य हैं। आरारट पर्वत पर नोआके जहाजने लग कर धार्मिकोंकी रक्षा की थी। जैनशास्त्रमें गिर्नार और पलिटाना, तुलजा (सौराष्ट्रके अन्तर्गत), पार्श्वनाथ प्रभृति पर्वत देवाधिष्ठित हैं। राजपूतानेका आबू-पर्वत भी गोरखनाथ मन्दिर आदिके लिये जनसाधारणमें विशेष आदरणीय है।

२ देवर्षिविशेष।

"कश्यपान्नारदश्चैव पर्वतोऽरुन्धती तथा।" (अग्निपु०)

नारदके साथ पर्वत ऋषिको विशेष मिलता थी। ये चक्रसंहिताके ८।१२।८, १०४ और १०५ ऋकके ऋषि थे। ३ मत्स्यविशेष। इसका गुण वायुनाशक, स्निग्ध, बल और शुक्रकारक है। ४ वृक्ष। ५ शाकभेद। ६ संन्यासिविशेष।

जो ध्यान और धारणका अवलम्बन करके पर्वतमूलमें अवस्थान करते हैं और अति शीघ्र ही सारात्सार वस्तु जान सकते हैं, उन्होंको पर्वत कहते हैं। ७ गन्धर्वभेद। (भारत १।१८७ अ०)

८ सध्याके गर्भजात धर्मके पुत्र देवभेद। ९ पौर्णमासका पुत्रभेद। १० सम्भूतिके गर्भसे उत्पन्न मरीचिके एक पुत्रका नाम। ११ राजा पुरूरवाके एक मन्त्री। १२ पाणिनि उक्त जनपदभेद। परिव्राजक यूएन-चुवङ्गने इस स्थानको प-ल-फ-तो बतलाया है। यह पञ्जाबके अन्तर्गत सरकोट जिलेमें अवस्थित है। *

पर्वतकाक (सं० पु०) पर्वते जातः काकः। द्रोणकाक, डोमकौआ। ये प्रायः पहाड़ पर ही रहते हैं।

पर्वतच्युत् (सं० त्रि०) पर्वत-च्युत्-क्विप्। जलक्षरणकारी, जलदाता।

पर्वतज (सं० त्रि०) पर्वताज्जायते यः पर्वत-जन-ड। (पञ्चम्यामजातौ। पा ३।२।९८) पर्वतजातमात्र, जो पर्वतसे उत्पन्न हुआ है।

पर्वतजा (सं० स्त्री०) १ नदी। २ पार्वती, गौरी। हिमगिरिसे उत्पन्न होनेके कारण इनका नाम पर्वतजा पड़ा।

* पाश्चात्योनियाके पश्चिम उपकूलमें।

* Arch. Sur. Vol. V. p. 107.

पर्वततृण (सं० क्लो०) पर्वतजाततृण, पहाड़ पर होनेवाली एक प्रकारकी घास, संड। पर्याय—तृणाढ्य, पर्वाढ्य, मृगप्रिय। गुण—बल और पुष्टिकर।

पर्वतनिम्ब (सं० पु०) महानिम्ब।

पर्वतपति (सं० पु०) पर्वतानां पतिः ६-तत्। हिमालय।

पर्वतभेद (सं० पु०) करञ्जोड़िपाषाणभेद।

पर्वतभेदी (सं० पु०) पाषाणभेद।

पर्वतमोचा (सं० स्त्री०) पर्वतोद्भवा मोचा, मध्यपदलो० कर्मधा०। गिरिकदली, पहाड़ी केला।

पर्वतराज (सं० पु०) पर्वतानां राजा (राजाहःसखिभ्यष्टच् पा ५।४।९१) इति टच्। १ हिमालय पर्वत। २ बहुत बड़ा पहाड़।

पर्वतराजपुत्री (सं० स्त्री०) पर्वतराजस्य पुत्री। दुर्गा।

पर्वतवासिन् (सं० त्रि०) पर्वते वसतीति पर्वत-वस-णिनि। १ गिरिवासिमात्र, पहाड़ पर रहनेवाला। (स्त्री०) २ आकाशमांसी। ३ गायत्री। ४ काली।

पर्वतवासिनी (सं० स्त्री०) पर्वतवासिन् देखो।

पर्वतात्मजा (सं० स्त्री०) पर्वतस्य आत्मजा। दुर्गा।

पर्वताधारा (सं० स्त्री०) पर्वत आधारः यस्याः। पृथ्वी। पुराणमें लिखा है कि महेन्द्रादि अष्टकुल-पर्वत पृथ्वीको धारण किये हुए हैं।

पर्वतारि (सं० पु०) पर्वतस्य अरिः शत्रुः ६ तत्। पर्वतोंके शत्रु, इन्द्र। कहते हैं, कि इन्द्रने एक बार पहाड़ोंके पर काट डाले थे, इसीसे उनका यह नाम पड़ा।

पर्वतावृध (सं० त्रि०) पर्वत-आ-वृध-क्विप्। पर्वतसे वर्द्धित।

पर्वताशय (सं० पु०) पर्वते आशेते इति आ-शी-शयने अच्। मेघ, बादल।

पर्वताश्रय (सं० पु०) पर्वतं आश्रयो वासस्थानं यस्य। १ शरभ, महासिंह। (त्रि०) २ पर्वतवासिमात्र, पहाड़ पर रहनेवाला।

पर्वताश्रयिन् (सं० त्रि०) पर्वत-आ-श्रि-णिनि। पर्वत-निवासी, पहाड़ी।

पर्वतास्त्र (सं० पु०) प्राचीन कालका एक अस्त्र। इसके फेंकते ही शत्रुकी सेना पर बड़े बड़े पत्थर बरसने लगते थे, अथवा अपनी सेनाके चारों ओर पहाड़ हो जाते थे जिससे शत्रुका प्रभञ्जनास्त्र रुक जाता था।

पर्वतिया (हिं० पु०) १ नैपालियोंकी एक जाति। २ एक प्रकारका कद्दू। ३ एक प्रकारका तिल।

पर्वती (हिं० वि०) १ पहाड़सम्बन्धी, पहाड़ी। २ पहाड़ों पर पैदा होनेवाला।

पर्वतीय (सं० त्रि०) पर्वते भवः पर्वत-छ (विभाषा मनुष्ये। पा ४।२।१४४) १ पर्वतसम्बन्धी, पहाड़ी। २ पहाड़ पर रहनेवाला। ३ पहाड़ पर पैदा होनेवाला।

पर्वतेश्वर (सं० पु०) पर्वतानामीश्वरः। १ पर्वतराज, हिमालय। २ मुद्राराक्षसवर्णित एक राजा। इनका दूसरा नाम था शैलेश्वर। काश्मीर, कुलूत और मल्ल जातिकी वासभूमिके मध्यवर्ती हिमालय तटदेश पर ये राज्य करते थे।

पर्वतेष्ठा (सं० त्रि) पर्वते तिष्ठति स्था-क्विप्, वेदे षत्वं। पर्वत पर अवस्थित।

पर्वतोद्भव (सं० पु०-क्लो०) १ हिङ्गुल, शिंगरफ। २ पारद, पारा।

पर्वतोद्भूत (सं० क्लो०) अभ्रकधातु, अबरक।

पर्वतोर्मि (सं० पु०) मत्स्यविशेष, एक प्रकारका मछली

पर्वधि (सं० पु०) पर्वाणि अमावस्यापूर्णिमयोः ह्रास-वृद्धिं दधाति पर्व-धा-कि। चन्द्रमा।

पर्वन् (सं० क्लो०) पर्वतीति पर्व-गतौ बाहुलकात् कनिन्, वा पिपर्त्तीति पॄ-वनिप् (स्नामदिपद्यर्त्तिपॄ-शकिभ्यो वनिप्। उण् ४।११३) १ उत्सव। २ ग्रन्थि, गांठ। ३ प्रस्ताव। ४ लक्षणान्तर। ५ दर्श और प्रतिपद्की सन्धि, पूर्णिमा और प्रतिपद्की सन्धि। ६ ग्रन्थविच्छेद, जैसे महाभारत-का अष्टादशपर्व। ७ क्षण। ८ भङ्गी। ९ अपर्व, धर्म, पुण्यकार्य अथवा उत्सव आदि करनेका समय। पुरा-णानुसार चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा और संक्रान्ति ये सब पर्व कहलाते हैं। पर्वके दिन स्त्री-प्रसङ्ग करना अथवा मांस मछली आदि खाना निषिद्ध है। जो यह सब काम करता है, वह विण्मूत्र जन नामक नरकमें जाता है। पर्वके दिन उपवास, नदी-स्नान, श्राद्ध, दान और जप आदि करना चाहिये। १० दर्शान्त पूर्णिमारूप काल। ११ अंश, भाग।

१२ यज्ञ आदिके समय होनेवाला उत्सव या कार्य। १३ सूर्य अथवा चन्द्रमाका ग्रहण। १४ प्रतिपदासे ले कर पूर्णिमा अथवा अमावस्या तकका समय। १५ दिवस, दिन। १६ सन्धिस्थान, वह स्थान जहां दो चीजें, विशेषतः दो अङ्ग जुड़े हों। १७ अवसर मौका।

पर्वन्धर (पुरबन्दर) –१ बम्बईप्रदेशके अन्तर्गत काठियावाड़के सूरत विभागका एक देशीय सामन्तराज्य। यह अक्षा० २१° १४' से २१° ५८' उ० तथा देशा० ६९° २८' से ७०° पू०के मध्य अवस्थित है। भूमिका परिमाण ६३६ वर्गमील है। इसमें कुल १ प्रधान शहर और ८४ ग्राम लगते हैं।

बर्दापर्वतके ढालू देशसे ले कर समुद्रतीरवर्त्ती समतलक्षेत्र तक सभी भूभाग इस राज्यके अन्तर्गत हैं। भादर, सोर्ती, वर्त्तु, मिनसार और वर्त्तात आदि नदियां यहां बहती हैं। समुद्रके किनारे जिस भावरमें वृष्टिका जल जमा रहता है, वह 'घेर' कहलाता है। समुद्रका लवणाक्त जल भावरमें आ कर गिरनेसे वहां लवणके सिवा और कुछ भी उत्पन्न नहीं होता। सुमिष्ट जलपूर्ण भावरमें धान चने आदि अनाज उपजते हैं। मोधोयाराका घेर नामक भावर सबसे बड़ा है। 'गङ्गाजल' नामक सुमिष्ट जलयुक्त भावर किन्दरो खाड़ीके निकट अवस्थित है। 'पुरन्दरपत्थर' नामक यहांका चूनापत्थर विशेष विख्यात है। इस प्रस्तरकी प्रभूत परिमाणमें बम्बई रफ़नी होती है। कच्छ उपसागरके किनारे कच्छप, शम्बूक आदि अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। पर्वन्धर, माधवपुर और मियानी नामक बन्दर ही यहांका प्रधान है।

१८०७ ई०में अङ्गरेजोंके साथ यहांके सरदारगण सन्धिसूत्रमें आवद्ध हुए। वर्त्तमान सरदार राणा श्रीविक्रमजित् जेठवावंशीय राजपूत हैं। जेठवा लोगोंने यहां प्रायः डेढ़ सौ वर्ष तक राज्य किया। इन्हें ११ तोपोंकी सलामी मिलती है। इनके खूनी असामीका विचार करनेकी क्षमता है। राज्यके सभी विचारकार्य ये स्वयं देखते हैं। इन्हें अङ्गरेजराज, गायकवाड़ और जूनागढ़के नवाबको प्रतिवर्ष कर देना पड़ता है। इनकी टकशालमें जो चांदीका सिक्का ढलता है, वह कोरी कहलाता है। तांबेके सिक्केका नाम 'दोका' है। *

२ उक्त राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २१° ३७' उ० और देशा० ६९° ३८' पू०के मध्य अरबसागरके उपकूल पर अवस्थित है। अधिक रेट पर शुल्क वसूल होने पर भी यहां वाणिज्यकी विशेष उन्नति देखी जाती है। मलवार उपकूल, कोङ्कणदेश, सिन्धु, बेलूचिस्तान, पारस्य उपसागर, अरब और अफ्रिकाके साथ यहांका वाणिज्य व्यवसाय चलता है। नगर दुर्ग द्वारा सुरक्षित है। इस राज्यका प्राचीन नाम सुदामापुरी है।

पर्वपुष्पी (सं० स्त्री०) पर्वसु ग्रन्थिषु पुष्पं यस्याः स्त्रियां ङीप्। १ नागदन्ती नामक क्षुप। २ रामदूती तुलसी।

पर्वपूर्णता (सं० स्त्री०) पर्वणः पूर्णता। १ सम्भार, आयोजन, उत्सवका उद्योग। २ उत्सवकी परिपूर्णता।

पर्वभेद (सं० पु०) पर्वणः भेदः। १ पर्वविशेष। २ सन्धिभङ्गरोगभेद।

पर्वमूल (सं० क्ली०) चतुर्दशी और अमावस्याके मध्यवर्त्ती मुहूर्त्त।

पर्वमूला (सं० स्त्री०) पर्वणि पर्वणि मूलं यस्याः। श्वेतदूर्वा, सफेद दूब।

पर्वयोनि (सं० पु०) पर्वग्रन्थिरेव योनिरुत्पत्तिकारणं यस्य। वह वनस्पति आदि जिसमें गांठ हों। जैसे ऊख।

पर्वर (हिं० पु०) परवल देखो।

पर्वरिश (फा० स्त्री०) पालन-पोषण, पालना पोसना।

पर्वरीण (सं० क्ली०) पर्व रीण पृषोदरादित्वात् साधुः १ पर्व। २ गर्व। ३ मारुत। ४ पर्णशिरा। ५ मृतक। ६ द्यूतकम्बल। ७ पर्णचूर्णरस।

पर्वरुट (सं० पु०) दाड़िमवृक्ष।

पर्वरुह (सं० पु०) दाड़िम, अनार।

पर्ववत् (सं० त्रि०) पर्व मतुप् मस्य व। पर्वयुक्त, पर्वविशिष्ट।

पर्ववल्ली (सं० स्त्री०) पर्वप्रधाना ग्रन्थिबहुला वल्लीलता। मालादूर्वा, दूब।

---

* ३२ दोकेकी एक कोरी। तीन कोरीका १ रुपया = २ शि०

पर्वशस् (सं० अव्य०) पर्वन् वारार्थे चशस्। पर्व पर्वमें, सन्धि सन्धिमें।

पर्वस (सं० अव्य०) प्रति पर्वमें, पर्व पर्वमें।

पर्वसन्धि (सं० पु०) पर्वणोः सन्धिः। १ पूर्णिमा अथवा अमावस्या और प्रतिपदाके बीचका समय, वह समय जब कि पूर्णिमा अथवा अमावस्याका अन्त हो चुका हो और प्रतिपदाका आरम्भ होता हो। २ सूर्य अथवा चन्द्रमाको ग्रहण लगनेका समय, वह समय जब कि सूर्य अथवा चन्द्रमा ग्रस्त हो। ३ घुटने परका जोड़।

पर्वा (हिं० स्त्री०) १ परवाह देखो। २ प्रतिपदा देखो।

पर्वाण—बिहारप्रान्तके भागलपुर जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह नारोदगढ़ परगनेसे निकल कर लगभग ३ मील दूरी तक बहती हुई सिंहेश्वर नामक स्थान पर धसान नदीमें मिल गई है। इस सङ्गमस्थान पर एक शिवमन्दिर बना हुआ है। शिवलिङ्गके ऊपर गङ्गाजल चढ़ानेके लिये बहुतसे मनुष्य इस पवित्र क्षेत्रमें आते हैं। यहांसे दोनों नदियां पर्वाण नामसे ३० मील तक बहती हुई अहशाल जिलेके पड़िया काटना नामक फड़किया परगनेमें प्रवेश करती हैं। लगभग पचास मन बोझकी नाव इस नदीमें आ जा सकती है।

पर्वाण (परमान)—बम्बई द्वीपकी पर्वतवासी जाति। ये सबके सब कृषिजीवी हैं। रमणियोंके परिच्छदादि हिन्दुस्थानवासीकी तरह हैं। इन लोगोंका कहना है, कि ये लोग राजपूतानेसे आ कर यहां बस गए हैं।

पर्वाणधारा—काबुलके अन्तर्गत एक नदी और उपत्यकाभूमि। यहांसे हिन्दूकुश पर्वतका पाददेश पार करने पर बहुतसे गिरिपथ नजर आते हैं। पर्वाण गिरिपथमें चेंगिजको दलबलके साथ खारिजमके सुलतान जलालउद्दीनने १२२१ ई०में हराया था। १८४० ई०में जनरल सेलपरिचालित अङ्गरेज-सैन्य अफगानराज दोस्त महम्मद द्वारा आक्रान्त हुई। इस युद्धमें अङ्गरेजोंके पक्षमें पांच सेनापति हत और आहत हुए थे।

पर्वाणिया—नारायणीवासी हिन्दू जातिकी एक शाखा।

पर्वानगी (हिं० पु०) परवानगी देखो।

पर्वाना (हिं० पु०) परवाना देखो।

पर्वावधि (सं० पु०) पर्वणः अवधिः। पर्वग्रन्थि।

पर्वास्फोट (सं० पु०) पर्वणः आस्फोटः। अङ्गुलि पर्वका आस्फोटन। शास्त्रमें उंगली मटकाना निषिद्ध है।

"उच्चैःप्रहसनं कासं ष्ठीवनं कुत्सनं तथा।
जृम्भनं गात्रभंगञ्च पर्वस्फोटञ्च वर्जयेत॥"
(कामन्दकी ५।७१)

पर्वाह (सं० पु०) पर्व दिन, उत्सवदिन।

पर्वाह (हिं० स्त्री०) परवाह देखो।

पर्विणी (हिं० स्त्री०) पर्व देखो।

पर्वित (सं० पु०) पर्वग्रन्थिर्जातमस्य। पर्वतमत्स्य एक प्रकारकी मछली (Silurus pobda)।

पर्वेश (सं० पु०) पर्वणामीशः। ग्रहणकालभेद, फलितज्योतिषके अनुसार कालभेदसे ग्रहण समयके अधिपति देवता।

बृहत्संहिताके अनुसार ब्रह्मा, चन्द्र, इन्द्र, कुबेर, वरुण, अग्नि और यम ये सात देवता क्रमशः छः छः महीनेके ग्रहणके अधिपति देवता हुआ करते हैं। इसीसे इन सातोंको पर्वेश कहते हैं। भिन्न भिन्न पर्वेशके समय ग्रहण होनेका भिन्न भिन्न फल होता है। ग्रहणके समय ब्रह्मा यदि अधिपति हो तो द्विज और पशुओंकी वृद्धि, मङ्गल, आरोग्य और धनसम्पत्तिकी वृद्धि; चन्द्रमा हो तो आरोग्य और धनसम्पत्तिकी वृद्धिके साथ साथ पण्डितोंको पीड़ा और अनावृष्टि; इन्द्र हो तो राजाओंमें विरोध, शरदऋतुके धान्यका नाश और अमङ्गल; कुबेर हो तो धनियोंके धनका नाश और दुर्भिक्ष; वरुण हो तो राजाओंका अशुभ; प्रजाका मङ्गल और धान्यकी वृद्धि; अग्नि हो, तो धान्य, आरोग्य, अभय और अच्छी वर्षा तथा यम हों, तो अनावृष्टि, दुर्भिक्ष और धान्यकी हानि होती है। इसके अलावा यदि और समयमें ग्रहण हो तो क्षुधा, महामारी और अनावृष्टि होती है।

पर्शनीय (हिं० वि०) स्पर्श करने योग्य, छूने लायक।

पर्शान (सं० क्ली०) पार्श्वस्थानं पृषोदरादित्वात् साधुः। १ पार्श्वस्थान। २ मेघ, बादल। (त्रि०) ३ पीड्यमान।

पशु (सं० पु०) परं शत्रुं शृणातीति पर-शृ-कु, सच डित् (आङ् परयोः खनिशृभ्यां डिच्च। उण् १।३४) वा स्पृशति शत्रुनिति स्पृश-शुन्-धातोश्च पृ-आदेशः। (स्पृशैः

श्रण् शुनौ पृ-च। उण् ५।२७) १ परशु। २ भृगो। ३ एक प्राचीन योद्धा जातिका नाम जो वर्त्तमान अफगानिस्तान-को एक देशमें रहती थी। ४ पार्श्वस्थित अस्थि।

पर्शुका (सं॰ स्त्री॰) पशु रिव प्रतिकृतिः (इवे प्रतिकृतौ। पा ५।३।९६) इति कन्, स्त्रियां टाप्। पिञ्जर, छातो परको हड्डी।

पर्शुपाणि (सं॰ पु॰) पर्शुः परशुः पाणौ यस्य। १ गणेश। २ परशुराम। परशुरामके हाथमें हमेशा परशु रहता था।

पर्शुमय (सं॰ त्रि॰) परशुको तरह आकारविशिष्ट।

पर्शुराम (सं॰ पु॰) पर्शुधारी रामः, शाकपार्थिवादि-वत् समासः। परशुराम। ये परशुके साथ उत्पन्न हुए थे। परशुराम देखो।

"भारावतरणार्थाय जातः परशुना सह।
सहजः परशुस्तस्य न जहाति कदाचन॥"
(कालिकापु॰ ७८ अ॰)

पर्शुल (सं॰ त्रि॰) पर्शुः तदाकारमस्थि ततः सिध्मादि-त्वात् लच्। पार्श्वास्थियुक्त।

पर्शुस्थान—एक प्राचीन जनपद। यहाँ पर्शु जातिके लोग रहा करते थे। चीनपरिव्राजकने इस स्थानका फ-ल-स-य-न नामसे वर्णन कर गये हैं। आजकल यह प्रान्त वर्त्तमान अफगानिस्तानके अन्तर्गत है। परशुक देखो।

पर्श्वध (सं॰ पु॰) परश्वं दधातीति परश्व-धा-क, पृषो-दरादित्वात् साधुः। कुठार।

पर्श्वादि (सं॰ पु॰) पर्शु आदि करके पाणिन्युक्त गणभेद। स्वार्थमें पर्श्वादि शब्दके उत्तर अण् प्रत्यय होता है। गण यथा—पर्शु, असुर, रक्षस्, वाह्लीक, वयस्, वसु, मरुत्, सत्वत्, दशार्ह, पिशाच, अशनि, कार्षापण। (पाणिनि)

पर्ष (सं॰ पु॰) निष्ठुर, कठोर।

पर्षद् (सं॰ स्त्री॰) परिसीदन्त्यस्यां परि-सद्-क्विप् (सदिरप्रतेः। पा ८।३।६६) इति बाहुलकात् षत्वं, इकारलोपश्च। सभा।

पर्षदल (सं॰ त्रि॰) पर्षद् सभा विद्यते ग्रस्य पर्षद् (रजः कृषीति। पा ५।२।११२) इति वलच्। पारिषद्, सभासद्।

पर्षन् (सं॰ त्रि॰) पारयितव्य विषय।

पर्षिक (सं॰ त्रि॰) पर्षः पूरणं अस्त्यर्थे ठन्। पूरण-युक्त।

पर्हेज (फा॰ पु॰) १ रोग आदिके समय अपथ्य वस्तुका त्याग, रोगके समय संयम। २ बचना, अलग रहना, दूर रहना।

पर्हेजगार (फा॰ वि॰) पर्हेज करनेवाला।

पलंग (हिं॰ पु॰) अच्छी चारपाई, अच्छे गोड़े, पाटी और बुनावटकी चारपाई।

पलंगड़ी (हिं॰ स्त्री॰) १ पलंग। २ छोटा पलंग।

पलंगतोड़ (हिं॰ पु॰) १ एक औषधि जिसका मुख्य गुण स्तम्भन है। यह वीर्यवृद्धिके लिये भी खाई जाती है। (वि॰) २ निठल्ला, आलसी, निकम्मा।

पलंगदंत (फा॰ पु॰) जिसके दांत चीतेके दांतोंकी तरह कुछ कुछ टेढ़े होते हैं।

पलंगपोश (हिं॰ पु॰) पलंग पर बिछानेकी चादर।

पलंगिया (हिं॰ स्त्री॰) छोटा पलंग, खटिया।

पलंजी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी घास।

पलंड़ी (हिं॰ स्त्री॰) नावमेंका वह बांस जिससे पाल खड़ी की जाती है।

पल (सं॰ पु॰) पलतीति पल-अच्। १ आमिष, मांस। २ समयका एक बहुत प्राचीन विभाग जो ⅖ मिनट या २४ सेकंडके बराबर होता है, घड़ी या दंडका ६०वां भाग, ६० विपलके बराबर समय। ३ धानका सूखा डंठल जिससे दाने अलग कर लिये गये हों, पयाल। ४ प्रतारणा, धोखेबाजी। ५ गति, चलनेकी क्रिया। ६ तुला, तराजू। ७ एक तोल जो ४ कर्षके बराबर होता है। कर्ष प्रायः एक तोलेके बराबर होता है, पर यह मान इसका बिलकुल निश्चित नहीं है। इसी कारण पलके मानमें भी मतभेद है। वैद्यकमें इसका मान ८ तोला और अन्यत्र चार तोला या तीन तोला ४ माशा भी माना जाता है। ८ मूर्ख। ९ दृगञ्चल, पलक। पहले साधारण लोग पल और निमेषके कालमानमें कोई अन्तर नहीं समझते थे। अतः आंखके परदेका प्रत्येक पलमें एक बार गिरना मान कर उसे भी पल या पलक कहने लगे। १० समयका अत्यन्त छोटा विभाग,

क्षण, आन, लहज़ा। कहीं इसे स्त्रीलिंग भी बोलते हैं।

पल—१म, ये ष्टिफिनके बाद ७५७ ई०में रोमके पोप-पद पर नियुक्त हुए। इनके साथ लङ्गोवार्डके राजाका विवाद हुआ था। ७६८ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

पल—२य, ये १४६४ ई०में २य पायासके पद पर अभिषिक्त हुए। इन्होंने यूरोपीय खृष्टानराजपुत्रोंको तुर्कीके विरुद्ध धर्मयुद्ध करनेके लिये उभाड़ा। तुर्क लोग इस समय इटली-आक्रमणकी तैयारियां कर रहे थे। इनके यत्नसे इटलीके विभिन्न प्रदेशोंमें शान्ति स्थापित हुई। ग्रीक और रोमीय भाषामें लिखित नास्तिक-मतवादकी शिक्षाके लिये रोमनगरमें जो विद्यालय खोला गया था, उसे उन्होंने ही उठा दिया। उक्त विद्यालयके अनेक सहयोगी कारारुद्ध हुए और बुरी तरहसे पीटे गये थे। १४७१ ई०में पलकी मृत्यु हुई।

पल—३य, इनका असल नाम अलेकसन्दर फर्णिज था। १५३४ ई०में क्लेमेण्टके बाद ये पोपसिंहासन पर अधिष्ठित हुए। इन्होंने दण्डविधालदत्त स्थापन, जेसुइट सम्प्रदायकी प्रतिष्ठा और ५म चार्लसके धर्मविरोधका उन्मोचन करनेमें तथा इङ्गलैण्डराज ८म हेनरीका विरुद्धचारी हो कर उनका दमन करनेमें विशेष दक्षता दिखलाई थी।

पल—४र्थ, (जान पीटर कराफा) १५५५ ई० में अस्सी वर्षकी अवस्थामें ये पोपसिंहासन पर बैठे। इन्होंने रानी एलिजाबेथकी इङ्गलैण्डसिंहासनप्राप्तिमें बाधा डाली और कहा, 'अवैधकन्या होनेके कारण एलिजाबेथ सिंहासनकी अधिकारिणी नहीं हो सकती, क्योंकि इङ्गलैण्ड पोपकी जागीरमात्र है।' १५५८ ई०में इन्होंने विधर्मियोंके विरुद्ध अनुज्ञा प्रचार की। उसी साल इनका देहान्त भी हुआ।

पल—५म, (कामिलो वर्घिज) १६०६ ई०में ११वें लीओकी मृत्यु होने पर इन्होंने पोपपद प्राप्त किया और भिनिसकी सिनेट सभाके साथ विवाद कर उक्त सभाको धर्माधिकारच्युत बतलाते हुए घोषणा कर दी। इसके बाद प्रजातन्त्रके विरोधी हो कर जब इन्होंने सैन्यसंग्रह किया तब १६०७ ई०में सम्राट् और अन्यान्य राजाओंकी मध्यस्थतामें यूरोपमें भी शान्ति स्थापित हुई। इन्हींके उद्योगसे रोमनगर नाना प्रकारके भास्करकार्य-खोदित पुत्तलिका, चित्रपट और जलप्रणालीसे सुशोभित हुआ था। इन्हींसे इटलीके धनवान् बाघिज-वंशकी प्रतिष्ठा हुई। १६२१ ई०में इन्होंने जीवनलीला शेष की।

पल—१म रूष-सम्राट्, रानी कैथरिनके गर्भसे उत्पन्न पीटरके पुत्र। १७७४ ई०में इन्होंने हेसिडारमष्टाडके भूम्यधिपतिकी कन्या विलहेलमिनाके साथ विवाह किया। १७७६ ई०में विलहेलमिनाकी मृत्यु हुई और इन्होंने फिर प्रूसियाराज-परिवारभुक्त उर्टेम्बर्ग राजपुत्रीको ब्याहा। १७९६ ई०में माता २य कैथरिनकी मृत्यु होने पर ये सम्राट्के पद पर अभिषिक्त हुए। राजपद पा कर पहले इन्होंने कस्त्रियस्को, निम्नविग आदिको कारागारसे छुड़ाया और १७९८ ई०में अष्ट्रिया-राजके साथ मिल कर फ्रान्सके विरुद्ध युद्धयात्रा की। पीछे इटली-आक्रमणके लिये इन्होंने सेना भेजी, लेकिन किसी कारणवश उन्हें फिर वापिस बुला लिया। तदनन्तर स्वराज्यवासी अङ्गरेजोंका इन्होंने सर्वस्व छीन लिया और धीरे धीरे प्रजा पर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। जब लार्ड नेलसनसे उक्त लोग कोपिनहेगेनमें परास्त हुए, तब राजकर्मचारिगण सम्राट्के आचरण पर बड़े ही चिढ़ गये। वे लोग जानते थे, कि इस समय सम्राट् उक्त कार्यमें उलझे हुए हैं, सो उन्होंने षड़यन्त्र करके दोपहर रातको सम्राट्के घरमें प्रवेश किया और धमकी दे कर उनसे कहा, 'आप सिंहासन परित्यागके लिये पत्र पर हस्ताक्षर कर दीजिये, अन्यथा आपके पक्षमें अच्छा नहीं होगा।' राजाने उनका प्रस्ताव स्वीकार न किया और दोनोंमें हाथापाई होने लगी। अन्तमें उन्होंने राजाका गला घोंट कर प्राण ले लिया। उनकी मृत्यु पर नगरवासिगण बड़े प्रसन्न हुए थे।

पलई (हिं० स्त्री०) १ पेड़की नरम डाली या टहनी। २ पेड़के ऊपरका भाग, सिरा, नोक।

पलक (सं० पु०) पल-स्वार्थे कन्। १ क्षण, पल, दम, लहमा। २ आंखके ऊपरका चमड़ेका परदा जिसके गिरनेसे आंख बंद होती और उठनेसे खुलती है। हिन्दीमें इसका व्यवहार स्त्रीलिङ्गमें होता है।

पलकर्ण (सं॰ पु॰) धूपघड़ीके शंकुकी उस समयकी छायाकी लम्बाई जब मेष संक्रान्तिके मध्याह्नकालमें सूर्य ठीक विषुवत् रेखा पर होता है।

पलकदरिया (हिं॰ वि॰) अति उदार, बड़ा दानी।

पलकनेवाज (हिं॰ वि॰) छनमें निहाल कर देनेवाला, बड़ा दानी।

पलकपीटा (हिं॰ पु॰) १ आंखका एक रोग। इसमें बरौनियां प्रायः झड़ जाती हैं, आखें बराबर भपकती रहती हैं और रोगी धूप या रोशनीकी ओर नहीं देख सकता। २ वह मनुष्य जिसे पलकपीटा हुआ हो, पलक पीटेका रोगी।

पलका (हिं॰ पु॰) पलंग, चारपाई।

पलक्या (सं॰ स्त्री॰) पलकं मांसं तद्वृद्धये हितं पलक-यत्. स्त्रियां टाप्। पालङ्क्यशाक, पालकका साग।

पलक्ष (सं॰ पु॰) वलक्ष, पृषोदरादित्वात् साधु। १ श्वेतवर्ण, सफेद रंग। (त्रि॰) २ श्वेतवर्णयुक्त जिसका रंग सफेद हो।

पलक्षार (सं॰ पु॰) पलस्य मांसस्य क्षार इव उत्पादकत्वात्। शोणित, रक्त, लहू, खून। मांस खानेसे वह परिपाक हो कर रक्त हो जाता है, इसीसे पलक्षार शब्दसे रक्तका बोध होता है।

पलखन (हिं॰ पु॰) पाकरका पेड़।

पलखेरा—मध्यप्रदेशके कन्दारा जिलान्तर्गत एक जमीं-दारी सम्पत्ति। भूपरिमाण ३८ वर्गमील है। इसमें कुल २१ ग्राम लगते हैं। १८५६ ई॰से यह सम्पत्ति कामठा राजाओंके अधिकारभुक्त हुई है। यहांके सर-दार और अधिवासिगण कुनबी जातिके हैं।

पलगण्ड (सं॰ पु॰) पलं मांसं तद्वत् गण्डति भित्तौ मृदा-दिना लिम्पतीति गण्ड-अच्। लेपक, कच्ची दीवारमें मिट्टीका लेप करनेवाला।

पलगुरलपल्ली—मन्द्राज प्रदेशके कड़ापा जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह कड़ापा नगरसे १८॥ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है।

पलङ्कट (सं॰ त्रि॰) पलं मांसं कटति आकुञ्चितं करो-तीति पल-कट बाहुलकात् खच् मुम्-च। भयशील, भीरु, डरपोक।

पलङ्कर (सं॰ पु॰) पलं मांसं करोतीति पल-कृ-अच् (तत्पुरुषे कृतीति। पा ६।३।१४) इति द्वितीयायाः अलुक्। पित्त।

पलङ्कष (सं॰ त्रि॰) पलं कषतीति कष-हिंसायां अच् ततो द्वितीयायाः अलुक्। १ राक्षस। २ गुग्गुल।

पलङ्कषा (सं॰ स्त्री॰) पलङ्कष-टाप्। १ गोक्षुरक, गोखरू। २ रास्ना। ३ गुग्गुल। ४ किंशुक, पलाश, टेसू। ५ मुण्डीरी, गोरखमुण्डी। ६ लाक्षा, लाह। ७ क्षुद्रगोक्षुरक, छोटा गोखरू। ८ महाश्रावणी। ९ मक्षिका, मक्खी।

पलङ्कषी (सं॰ स्त्री॰) पलङ्कषा देखो।

पलङ्कषादितैल (सं॰ पु॰) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—गुग्गुल, वच, हरीतकी, आकन्दमूल, सर्षप, जटामांसी, भूतकेशी, ईषलाङ्गला, लशुन, अतीस, दन्ती, कूट, गृध्र प्रभृति मांसाशी पक्षियोंकी विष्ठा इन सबका मिश्रित चूर्ण १ सेर, छागमूत्र १६ सेर, तैल ६ सेर। इस तैलके लगानेसे अपस्मार जाता रहता है।

पलचर (हिं॰ पु॰) राजपूतजातिके पुराणोक्त उपदेवता विशेष। इसके विषयमें लोगोंका विश्वास है, कि यह युद्धमें मृतव्यक्तियोंका रक्त पीता और आनन्दसे नाचता कूदता है।

पलटन (हिं॰ स्त्री॰) १ अंगरेजी पैदल सेनाका एक विभाग। इसमें दो वा अधिक कम्पनियां अर्थात् २००-के करीब सैनिक होते हैं। २ सैनिकों अथवा अन्य लोगोंका समूह जो एक उद्देश्य या निमित्तसे एकत्र हो, दल, समुदाय, झुण्ड।

पलटना (हिं॰ क्रि॰ अ॰) १ किसी वस्तुकी स्थिति उलटना, ऊपरके भागका नीचे या नीचेके भागका ऊपर हो जाना। २ अच्छी स्थिति या दशा प्राप्त होना, किसीके दिन फिरना या लौटना। ३ आमूल परिवर्त्तन हो जाना, काया पलट हो जाना। ४ लौटना, वापस होना। ५ मुड़ना, पीछे फिरना। (क्रि॰ स॰) ६ किसी वस्तुकी अवस्था उलट देना, काया पलट देना। ७ बदलना, एकको हटा कर दूसरेको स्थापित करना। ८ लौटाना, फेरना, वापस करना। ९ बार बार उलटना, फेरना। १० एक बातको अन्यथा करके दूसरी कहना, एक बातसे

मुका कर दूसरी कहना। ११ उलटी वस्तुको सीधी और सीधीको उलटी करना।

पलटा (हिं॰ पु॰) १ पलटनेको क्रिया या भाव, ऊपर से नीचे और नीचेसे ऊपर होनेकी क्रिया या भाव २ प्रतिफल, बदला। ३ नावमें वह पटरी जिस पर नावका खेनेवाला बैठता है। ४ गानमें जल्दी जल्दी थोड़से स्वरों पर चक्कर लगाना, गाते समय ऊंचे स्वर तक पहुंच कर खूबसूरतीके साथ फिर नीचे स्वरोंकी तरफ मुड़ना। ५ कुश्तीका एक पेंच। इसमें जब ऊपरवाला पहलवान नीचे पड़े हुए पहलवानकी कमर पकड़ता है, तब नीचेवाला पट्ठा अपने दहिने पैरके पंजे ऊपरवालेकी टाँगोंके बीचसे डाल कर उसको बाई टाँगको फंसा लेता है और दहिने हाथसे उसको बाई कलाई पकड़ कर झटकेके साथ अपनी दहिनी ओर मुड़ जाता है और ऊपरका पहलवान चित गिर जाता है। ६ लोहे या पीतलको बड़ी खुरचनी। इसका फल चौकोर न हो कर गोलाकार होता है। इससे बटलोहीमेंसे चावल निकालते और पूरी आदि उलटते हैं।

पलटाना (हिं॰ क्रि॰) १ लौटाना, फिरना, वापस करना। २ बदलना।

पलटी (हिं॰ स्त्री॰) पलटा देखो।

पलटे (हिं॰ क्रि॰ वि॰) प्रतिफलस्वरूप, बदलेमें, एवजमें।

पलड़ा (हिं॰ पु॰) तुलापट, तराजूका पल्ला।

पलता (फलता)—बङ्गालके २४ परगनेके अन्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा॰ २२° ४७´ ३०´´ उ॰ तथा देशा॰ ८८° २४´ पू॰, गङ्गानदीके बाएं किनारे बारकपुरसे १ कोस उत्तरमें अवस्थित है।

पलथा (हिं॰ पु॰) १ कलाबाजी, विशेषतः पानीमें मारनेको क्रिया या भाव। पलथी देखो।

पलथी (हिं॰ स्त्री॰) एक आसन जिसमें दहिने पैरका पंजा बाएं और बाएं पैरका पंजा दहिने पट्ठेके नीचे दबा कर बैठते हैं और दोनों टांगें ऊपर नीचे हो होकर दोनों जांघोंसे दो त्रिकोण बना देती हैं। जिस आसनमें पंजेको स्थापना उपर्युक्त प्रकारसे न हो कर दोनों जांघोंके ऊपर अथवा एकके ऊपर दूसरेके नीचे हो उसे भी पलथी ही कहते हैं।

पलद (सं॰ त्रि॰) पलं मांसं ददाति सेवनेन दा-क। १ सेवन द्वारा मांसकारक द्रव्यभेद, वह द्रव्य जिसके खानेसे मांसकी वृद्धि हो। २ देशभेद। (स्त्री॰) ३ नगरीभेद।

पलदादि (सं॰ पु॰) पलदो आदि करके अण् प्रत्यय निमित्त पाणिन्युक्त शब्दगणभेद। यथा—पलदी, परिषद्, रोमक, वाहिक, कलकीट, बहुकीट, जलकीट, कमलकीट, कमलकीकर, कमलभिदा, गोष्ठी, नैकती, परिखा, शूरसेन, गोमती, पटच्चर, उदपान, यकृल्लोम। (पाणिनि ४।२।१२०)

पलना (हिं॰ क्रि॰) १ पालनेका अकर्मक रूप, ऐसी स्थितिमें रहना जिसमें भोजन वस्त्र आदि आवश्यकताएं दूसरेको सहायता या कृपासे पूरी हो रही हों, दूसरेका दिया भोजन वस्त्रादि पा कर रहना, पाला या पोसा जाना। २ खा पी कर हृष्टपुष्ट होना, मोटा ताजा होना। ३ कोई पदार्थ किसीका देना।

पलनाड़—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा॰ १६° १०´ से १६° ४४´ उ॰ तथा देशा॰ ७८° १४´ से ८०° पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १०४१ वर्गमील और जनसंख्या १५२६३८ है। इसमें ८६ ग्राम लगते हैं। जिलेके पश्चिमांशमें विस्तीर्ण घना जङ्गल है। यहां श्वेत मार्बल प्रस्तर अधिक परिमाणमें पाया जाता है, इसीसे इसका नाम पलनाड़ वा पालनाड़ पड़ा है। *

औरङ्गलके गणपति राजाओंके समयमें यहांके सरदारोंने युद्ध-विग्रहादिमें विशेष पराकाष्ठा दिखलाते हुए अक्षयख्याति लाभ की थी। पलनाटी-विरुल-भागवतम् नामक वीरचरिताख्यानमें उक्त वीरोंको जीवनी लिखी है। १२५५ और १३०८ शकमें उत्कीर्ण शिलालिपिमें भी उसका प्रमाण मिलता है। १५०८ ई॰में पलनाड़वासियोंने महोल्लाससे पुर्त्तगीजोंको पुलिकटमें परास्त कर कुलिम् बन्दरसे भगा दिया था। इस युद्धमें पुर्त्तगीजोंकी विशेष क्षति हुई थी।

* पाल शब्दका अर्थ दूध है। पत्थर दूधके जैसा सफेद होनेसे ही ऐसा नाम पड़ा है। किसी किसीका कहना है, कि 'कुटिराच्छन्न देश'के अर्थमें ही पलनाड़ नाम हुआ है। तेलगू भाषामें इसका प्रकृत नाम पल्लिनाडु या पलनाडु है।

पलनि (पयनि) १—मन्द्राजप्रदेशके मदुरा जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १०° ८′ से १०° ४२′ उ० और देशा० ७७° १५′ से ७७° ५५′ पू० के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५८८ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः १८५०५० है। इसमें पलनि नामका एक शहर और ११७ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १०° २८′ और देशा० ७७° ३१′ पू०, दिण्डिगलसे १७ कोस पश्चिम और मदुरासे ३४॥ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या सत्तरह हजारसे ऊपर है। १८८६ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। यहां एक प्राचीन दुर्ग है। पार्श्ववर्त्ती वराहपर्वतके प्राचीन शिवमन्दिरके लिये इस स्थानका माहात्म्य अधिक है।

यहांका देवमन्दिर दक्षिण भारतमें पवित्र तीर्थक्षेत्र माना जाता है। मन्दिर पत्थरका बना हुआ है। उच्च प्रवेशद्वारके ऊपरकी छत और दीवार नाना प्रकारके कारुकार्योंसे मण्डित है। पर्वतके ऊपरके मन्दिरमें जानेके लिये एक सीढ़ी लगी हुई है। मन्द्राज और दूरवर्त्ती स्थानवासी अपनी मानसिक सिद्धिके लिये अपने अपने हाथमें दूध लिये आते हैं। पैदल इतनी दूर आने पर भी वह दूध नष्ट नहीं होता। जिसका दूध नष्ट हो जाता, वह अपनेको अभागा समझता है। उसकी अभीष्ट सिद्धिकी और सम्भावना नहीं रह जाती।

स्थलपुराणमें इसका माहात्म्य लिखा है। इस पवित्र तीर्थमें उत्सवके समय बहुसंख्यक लोग समागम होते हैं। यहां अनेक प्राचीन शिलालिपियां भी देखी जाती हैं।

नगरके नामानुसार यहांका पर्वत पलनि नामसे प्रसिद्ध है। पर्वतके शिखरदेशस्थ शिवमन्दिरको छोड़ कर एक विष्णुमन्दिर भी देखा जाता है जिसके गर्भगृहके चारों ओर अनेक शिलालिपियां हैं। इन शिलालिपियोंमेंसे कितनीमें सुन्दर पाण्ड्यदेवका नाम उत्कीर्ण है। एतद्भिन्न पर्वतके पादमूलमें शिवमन्दिर और भास्करकार्ययुक्त पुष्करिण्यादि देखी जाती हैं। पलनि पर्वतसे १ कोस उत्तर आदिवम्भम नामक स्थानमें तिरुवरणुमगुड़ि मन्दिरका कारुकार्य अतीव सुन्दर है। मन्दिरमें शनिदेवकी मूर्त्ति नीलवर्णका परिच्छद पहने काकवाहन पर बैठी हुई है।

३ निकटवर्त्ती गिरिमाला। यह अक्षा० १०° १′ से १०° २६′ उ० और देशा० ७७° १४′ से ७७° ५२′ पू०के मध्य अवस्थित है। इस गिरिमालाकी लम्बाई ५४ मील और चौड़ाई १५ मील है। इसका दूसरा नाम वराहगिरि, वडगिरि और कन्नन्देनन है। इसके उत्तरमें कोयम्बतोर और त्रिचीनपल्ली, पूर्वमें मदुरा और तञ्जोर, दक्षिणमें तिन्नेवल्ली और त्रिवाङ्कुड़राज्य तथा पश्चिममें पश्चिमघाट पर्वत है। इस गिरिमालाने प्रायः ८०० वर्गमील स्थान घेर लिया है। इसका सर्वोच्च शिखर ७००० फुट और निम्नांश ३०००से ४००० फुट ऊंचा है। पर्वतके ऊपर कई एक गिरिपथ हैं जिनमेंसे पश्चिमकी ओर त्रिवाङ्कुड़ और पूर्वमें मदुरा जानेके लिये दो पथ दक्षिणभारतीय रेलवेकी अमनायकनुर नामक ष्टेशनके पथसे मिल गये हैं। पर्वतसे ष्टेशन २० कोस दूर पड़ता है। यहां नाना जातीयके पशु-पक्षी देखनेमें आते है।

पर्वतके ऊपरी भाग पर मनाड़ी, कुनुवर वा कोरावर, कराकत्-वेल्लालर, शेठी और पलियर जाति वास करती है। कोरावर जाति पर्वतकी आदिम अधिवासी है। प्रायः चार शताब्दी पहले ये लोग कोयम्बतोरसे यहां आ कर बस गये हैं और खेती-बारी द्वारा अपना गुजारा चलाते हैं। यहांकी भूमिके ये ही लोग प्रधान अधिकारी हैं। ये लोग गाय भैंस आदि पालते हैं। इनकी सांसारिक अवस्था दूसरोंकी अपेक्षा सच्छल प्रतीत होती है। इनकी विवाह-प्रथा बहुत अच्छी है, विवाहके समय अपने सभी आत्मीय उपस्थित होते हैं। विवाहमें प्रचुर अर्थ-व्यय होनेके कारण, ये लोग परस्पर विवाहका सम्बन्ध स्थिर कर रखते हैं। इस प्रकार स्वजातिके मध्य तीन चार विवाह सम्बन्ध स्थिर हो जाने पर विवाह उत्सव आरम्भ होता है। विवाहमें उपस्थित व्यक्तियोंका भोजन-व्यय निर्वाहके लिये प्रत्येक गृहस्थको कुछ न कुछ चन्दा देना ही पड़ता है। इन लोगोंमें बहु-विवाह और पति-पत्नीत्यागकी प्रथा प्रचलित है। पश्चिम कोरावरोंमें एक नूतन आचार देखा जाता है। यदि कोई व्यक्ति पुत्रके

अभावमें अपनी सम्पत्ति निज कन्याको दे दे, तो वह कन्या किसी वयःप्राप्त युवकसे विवाह नहीं कर सकती, वरन् एक अजातश्मश्रु बालकके साथ वह ब्याही जाती है। स्त्री अपने स्वजातीय किसी मनोमत पुरुषके संसर्गसे सुतोत्पादन कर सकती है। वह बालक पीछे अपने मातृधनका अधिकारी होता है। इस प्रकारका आचार ले कर कभी कभी भारी गोलमाल उपस्थित होता है। ये लोग शैव होने पर भी प्रधानतः पर्वतीय देवता वल्लापामकी पूजा करते हैं।

कर्कोटबे-ज्ञातगण बहुत पहलेसे यहां वास करते हैं। ये लोग परिमिताचार होते हैं। मांस-मछली, अफीम और तमाकू सेवनमें ये हमेशा लगे रहते हैं। तिलके बदले ये लोग शरीरमें घी लगाते हैं। वेल्लालरोंके जैसा ये लोग भी वस्त्र और कर्णालङ्कार पहनना बहुत पसन्द करते हैं। मन्दिरादिमें ब्राह्मण लोग और श्राद्धादिमें पण्डारामगण याजकता करते हैं। स्त्री वन्ध्या होने पर स्वामी स्त्रीकी सलाह ले कर दूसरा विवाह कर सकता है, किन्तु यदि दूसरे कारणसे वह विवाह करना चाहे, तो स्त्रीके रहते नहीं कर सकता। इन लोगोंमें विधवा-विवाह प्रचलित है।

पलनिवासी श्रेठीगण प्रायः धनवान् हैं। अन्यान्य व्यक्तियोंमें विवाद खड़ा होने पर ये लोग मध्यस्थ हो कर उसे निबटा देते हैं। पर्वतजात पण्यद्रव्य ले कर ये लोग वाणिज्य-व्यवसाय करते हैं।

पलियारगण पलनि-पर्वतके आदिम निवासी हैं। ये लोग एक प्रकारसे असभ्य होते हैं। इनमेंसे कोई कोई कोरावर जातिके निकट दासत्व शृङ्खलमें आबद्ध हैं। किन्तु इन लोगोंने कोरावर तथा अन्यान्य पार्वतीय जातिको नाना विषयोंमें ऋणी बना रखा है। ये लोग पहाड़ी लताओंका इस्तेमाल जानते हैं। ये लोग कभी कभी देवताओंको मन्त्र द्वारा वश करके अथवा जादू-विद्यासे रोगीका मन मुग्ध करके रोग आरोग्य कर देते हैं। देवाराधनके समय ये लोग पुरोहिताई करते हैं। स्वभावतः ये लोग विनयी और नम्र तथा व्याघ्रादि शिकारमें बड़े सिद्धहस्त होते हैं। शिकारकार्य इनका आमोद-जनक है। भूत पिशाचोंकी पूजादि करना ही इनका प्रधान धर्म है। इन लोगोंमें एकसे अधिक विवाह करनेका नियम नहीं है। खाद्य-द्रव्यमें इनका उतना विचार नहीं है। 'रागी' नामक पहाड़ी पेड़से ये लो 'भोज' नामक मद्य प्रस्तुत करते हैं। पर्वतवासी जातियां उस मद्यको बड़े चावसे पीती हैं।

यहां चावल, लहसुन, सरसों, गेहूं जौ आदि नाना शस्योंकी खेती होने पर भी कहवेकी खेती ही विशेष यत्नसे देखी जाती है। १८८३ ई०में २०५८ कहवेके बगान थे। अभी क्रमशः खेतीकी वृद्धि पर ही लोगोंका लक्ष्य है। जलवायुकी अवस्था प्रायः नेपालराजधानी काठमण्डूकी-सी है। यहां कोड़ईकनल नामका एक स्वास्थ्यनिवास है जहां लोगोंकी संख्या दिनों दिन बढ़ती जा रही है। इस स्वास्थ्यनिवासके चारों ओरकी जमीन उर्वरा है। यहां सभी प्रकारकी विलायती साग सब्जीकी खेती होती है।

पललप्रिय (सं० पु०) पललमामिषं प्रियं यस्य। १ द्रोण-काक, डोम कौआ। (त्रि०) २ मांसाशी, मांस खा कर रहनेवाला।

पललभची (हिं० पु०) मांसाहारी, मांस खा कर रहने वाला।

पलभा (सं० स्त्री०) पलस्य भा दीप्तिर्यत्र। विषुवद्-दिनाईका शङ्कुछाया, धूप घड़ीके शङ्कुकी उस समयकी छायाकी चौड़ाई जब मेष संक्रान्तिके मध्याह्नमें सूर्य ठीक विषुवत् रेखा पर होता है। पर्याय पलविभ, विषुवत्प्रभा।

पलमकोट—मन्द्राज प्रदेशके तिन्नवेली जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। एक समय यह नगर सुदृढ़ दुर्गसे सुरक्षित था। आज भी उस ध्वंसावशिष्ट दुर्गका थोड़ा थोड़ा चिह्न लक्षित होता है।

पलरा (हिं० पु०) पलड़ा देखो।

पलल (सं० क्ली०) पलति पल्यतेऽनेन वा पलगतौ कल (वृषादिभ्यश्चित्। उण् १।१०८) १ मांस। २ पङ्क, कीचड़। ३ तिलचूर्ण, तिलका चूर। इसका गुण—मधुर, रुचिकर, पित्तवर्द्धक, अस्र, बल और पुष्टिकारक है। ४ सेवन तिलचूर्ण, तिल और गुड़ अथवा चीनीके योगसे बनाया हुआ लड्डू, तिलकुट। इसमें

मलकारक, बल्य, वातनाशक, कफ और पित्तवर्द्धक, वृंहण, गुरु, वृष्य, स्निग्ध और मूत्रनिवृत्तक गुण माना गया है। ५ तिलपुष्प, तिलका फूल। (पु०) पलं मांसं लाति। लाक। ६ राक्षस। ७ मल, मैल। ८ शैवाल, सिवार। ९ प्रस्तर, पत्थर। १० शव, लाश। ११ खीर, दूध। १२ बल, ताकत। (त्रि०) १३ नीला और मुलायम।

पललज्वर (सं० पु०) पललस्य मांसस्य ज्वर इव। पित्त।

पललप्रिय (सं० पु०) पललं प्रियं यस्य। १ द्रोणकाक, डोम कौआ। (त्रि०) २ मांसभक्षी, मांस खा कर रहनेवाला।

पललाशय (सं० पु०) पललं आ-शेते इति शीङ् शयने अच्। १ गण्डरोग, कोड़ा। २ अजीर्णरोग, बदहजमी।

पलव (सं० पु०) पलं पलायनं वाति हिनस्ति नाशयतीति पल-वा-क। मत्स्यधारणोपाय, एक प्रकारका झाबा जिसमें मछलियाँ फंसाई जाती हैं। पर्याय—प्लव, पञ्जराखेट। जलाशयमें जब पानी थोड़ा रहता है तब पलवसे मछली सहजमें पकड़ी जाती है।

पलवल (हिं० पु०) परवल देखो।

पलवा (हिं० पु०) १ ऊखके ऊपरका नीरस भाग जिसमें गांठें पास पास होती हैं, अगौरा, कौंचा। २ ऊखके गाड़े जो बोनेके लिये पालमें लगाये जाते हैं। ३ एक घास जिसे भैंस बड़े चावसे खाती है। यह हिसारके आस पास पञ्जाबमें होती है, पलवन। ४ अञ्जुली, चुल्लू।

पलवान (हिं० पु०) पलवा देखो।

पलवाना (हिं० क्रि०) किसीसे पालन कराना, पालनमें किसीको प्रवृत्त करना।

पलवार (हिं० पु०) १ ईख बोनेका एक ढंग। इसमें अंखुए निकलनेके बाद खेतको रूखे पत्तों रहट्ठों आदिसे अच्छी तरह ढक देते हैं। इस तरह ढकनेसे खेतकी तरी बनी रहती है जिससे सिंचाईकी आवश्यकता नहीं होती। करैली वा काली मिट्टीमें यही ढंग बरता जाता है। अन्यत्र भी यदि सींचनेका सुभीता या आवश्यकता न हो, तो इसी ढंगको काममें लाते हैं। २ एक प्रकारकी बड़ी नाव जिस पर माल असबाब लाद कर भेजते हैं, पटैला।

पलवारी (हिं० पु०) नाव खेनेवाला मल्लाह।

पलवाल (हिं० त्रि०) हृष्टपुष्ट, बलवान्।

पलवैया (हिं० पु०) भरण-पोषण करनेवाला, पालन करनेवाला, खिलाने-पिलानेवाला।

पलशा—दाक्षिणात्यके सताराजिलावासी ब्राह्मण जातिकी एक शाखा। कोङ्कणस्थ ब्राह्मणगण इनको शत्रुताभावसे मांसखादक वा पलाशिन नामसे पुकारते हैं। कल्याणके अन्तर्वर्ती पलसवलि ग्राममें वास करनेके कारण इनका यह नाम पड़ा है। ये लोग मराठीभाषा बोलते और कर्मठ, अतिथियों, मितव्ययी और सुसभ्य होते हैं। पुरोहित, गणक, चिकित्सक वा भिक्षुकवृत्ति द्वारा इनका गुजारा चलता है। इनका पहनावा देशवासियोंके जैसा होता है। ये लोग यजुर्वेदीय वाजसनेय माध्यन्दिन शाखाभुक्त हैं।

पलसि—दाक्षिणात्यके सतारा जिलान्तर्गत कराड़-औंधपुरका एक छोटा ग्राम। यहांं अधित्यकाके ऊपर कुलदुर्ग नामका एक प्राचीन किला है जिसका आयतन १२० एकड़से कम नहीं होगा। गढ़से १०० फुट नीचे 'मान' नामकी उपत्यका है। दक्षिण-पश्चिमकी ओर और भी कितने ध्वंसावशेष देखे जाते हैं। पनहालवासी भोजराजके विरुद्ध विद्रोही हो कर कोलिराजने ये सब दुर्गभवन और खाइयां बनवाई थीं।

पलसेएट (महात्मा)—जेरुसलवासी खृष्टप्रेरित एक महापुरुष। इनका असल नाम था सल। ये यहूदी पितामाताके गर्भजात और गमलियलके शिष्य थे। फरासीसियोंके विद्यालयमें इन्होंने पढ़ना लिखना सीखा और विशेष आग्रहसे खृष्टधर्मका अनुसरण किया था। ३४ ई०में जब खृष्टधर्मके लिये ष्टिफेनने आत्मोत्सर्ग किया उस समय पल वहां उपस्थित थे। सानहेद्रिम द्वारा खृष्टान निग्रहमें डमस्कस नगर भेजे जाने पर, पलको राहमें ही खृष्टानोंके त्राणकर्त्तासे मुलाकात हो गई। उनके प्रेमसे विह्वल हो पलने उनके शिष्य रूपमें डमस्कसनगरमें प्रवेश

किया। यहां धर्ममन्दिरमें लोग इन्हें महात्मा पल कहने लगे। इसके बाद ही पलने खृष्टधर्मके प्रचारमें आत्मजीवन उत्सर्ग करके 'एपसल' (खृष्टभक्त)की आख्या प्राप्त की। इनकी उन्मादकर वक्तृतासे फिलिक्स कम्पित हो उठे। एथेन्सवासी दिवनिसस ने इनका मत ग्रहण किया था। ६६ ई०में रोमनगरमें सेण्ट-पलका मस्तक देहसे विच्छिन्न हो गया।

२ दक्षिण अमेरिकाके ब्रजिलप्रदेशके अन्तर्गत एक नगर। यह समुद्रतीरसे १८ कोस और राईजिनरोसे ८५ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यहां वाणिज्यकी विशेष उन्नति देखी जाती है। यहां जितने घर हैं सभी मट्टीके बने हुए हैं।

पलस्तर (हिं० पु०) मट्टी चूने आदिके गारेका लेप जो दीवार आदि पर उसे बराबर सीधी और सुडौल करनेके लिये किया जाता है, लेट।

पलस्तरकारी (हिं० स्त्री०) पलस्तर करने या किए जानेकी क्रिया या भाव, पलस्तर करने या होनेका काम।

पलस्नि (सं० त्रि०) १ पलित, वृद्ध, पका हुआ। २ दीर्घायुयुक्त, अधिक उमरवाला।

पला (हिं० पु०) १ निमिष, पल। २ तेलकी पली। ३ तराजूका पलड़ा, पल्ला।

पलाग्नि (सं० पु०) पलस्य मांसस्य अग्निः। पित्तधातु।

पलाग्र (सं० क्ली०) पलस्य अग्रं सारांशः। मांससारांश।

पलाङ्ग (सं० पु०) पलं मांसं तत्प्रधानं अङ्गं यस्य। शिशुमार, सूंस।

पलाण्डु (सं० पु०) पलस्य मांसस्य अण्डमिवाचरतीति (मृगय्वादयश्च। उण् १।३८) इति कुप्रत्ययेन साधुः। मूलविशेष, प्याज (Allium Cepa)। पर्याय—सुकन्दक, लोहितकन्द, तीक्ष्णकन्द, उष्ण, मुखदूषण, शूद्रप्रिय, क्रमिघ्न, दीपन, मुखगन्धक, बहुपत्र, विश्वगन्ध, रोचन, सुकुन्दक। गुण—कटु, बल्य, कफ, पित्त और वमनदोषनाशक, गुरु, बलकर, रोचन और स्निग्ध। भावप्रकाशके मतसे—पलाण्डु यवनेष्ट, दुर्गन्ध और दूषक। प्याज सारे भारतमें उत्पन्न होता है।

भिन्न भिन्न देशोंमें प्याजका विभिन्न नाम देखा जाता है; बङ्गला—पियाज, पलाण्डु, अरबी—बजल, पारसी—पीयाज, सिन्धु और गुजराती—डुङ्गरी; बम्बई—प्याज, कन्द; मराठी और कच्छ कन्दा; तामिल—वेल्ल-वेङ्गायम् इरुल्लि, इर-वेङ्गायम्; तेलगु—बुल्लिगड्डलू निरुल्लि; कनाड़ी—वेङ्गायम्, निरुल्लि, कुन्वली; मलय—बावङ्ग; सिङ्गापुर—लूनू; अंगरेजी—Onion; फरासी—Oignon और जर्मनी—Zwiebel

कार्तिक, अगहन, पूस और माघ मासमें प्याजकी खेती होती है। प्याजकी कलीके ऊपर जो पुष्प लगता है, उसे बीज कहते हैं। इस बीजकी यत्नपूर्वक रक्षा करनेसे दूसरे वर्ष उससे बढ़िया प्याज उत्पन्न होता है। इसके पत्ते पतले, लम्बे और सुगन्धराजके पत्तोंके आकारके होते हैं। गांठमें ऊपरसे नीचे तक केवल छिलके ही छिलके होते हैं। बीज अथवा प्याजको जमीनके अन्दर गाड़नेसे थोड़े ही दिनोंमें अङ्कुर उग आते हैं जिसे प्याजकी कली कहते हैं। देशी बीजकी अपेक्षा विलायती बीज विशेष आदरणीय नहीं है। प्याज बहुत दिन रखा जाता है और कम सड़ता है। भावप्रकाशमें लिखा है, कि प्याज और लहसुन दोनोंमें समान गुण हैं। यह मांस और वीर्यवर्द्धक, पाचक, सारक, तीक्ष्ण, कण्ठशोधक, भारी, पित्त और रक्तवर्द्धक, बलकारक, मेधाजनक, आंखोंके लिये हितकारी, रसायन तथा जीर्णज्वर, गुल्म, अरुचि, खांसी, शोथ, आमदोष, कुष्ठ, अग्निमान्द्य, क्रमि, वायु और श्वास आदिका नाशक माना जाता है। जो लहसुन और प्याज खाते हैं, उनके लिये मद्यमांस और अम्ल द्रव्य हितकर है। किन्तु प्याज खानेवालोंको व्यायाम, रौद्र, अत्यन्त क्रोध, जलदुग्ध और गुड़का परित्याग करना चाहिये। (भावप्रकाश)

शास्त्रमें पलाण्डु-सेवन द्विजातियोंके लिये विशेष निषिद्ध बतलाया गया है। यथा—

"पलाण्डुं विट्‌वराहञ्च छत्राकं ग्राम्यकुक्कुटं।
लशुनं गृञ्जनं चैव जग्ध्वा चान्द्रायणञ्चरेत्॥"
(याज्ञ: १।१७६)

पलाण्डु, वटवराह, छत्राक प्रभृति यदि द्विजातिगण भक्षण करें, तो उन्हें चान्द्रायण करना होता है। मनुने भी लिखा है—

"लशुनं गृञ्जनञ्चैव पलाण्डुं कवकानि च ।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च ॥"

(मनु ५।५)

लहसुन, गाजर और प्याज आदि द्विजातियोंके अभक्ष्य हैं। कुल्लूकने इस श्लोककी टीकामें लिखा है, "द्विजातीनामभक्ष्याणि । द्विजातिग्रहणं शूद्रव्युदासार्थं ।" ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन्हीं तीनों वर्णोंके लिये पलाण्डु-भक्षण विशेष निषिद्ध है; किन्तु शूद्रके लिये नहीं है। सभी धर्मशास्त्रोंने द्विजातियोंको प्याज और लहसुन खानेसे मना किया है। मनुमें दूसरी जगह लिखा है, कि द्विज यदि जान बूझ कर पलाण्डु भक्षण करे, तो वह पतित होता है। पलाण्डु-भक्षक पतित प्रायश्चित्त करके विशुद्ध हो सकता है।

"पलाण्डुं गृञ्जनञ्चैव मत्या जग्ध्वा पतेद् द्विजः ।"

(मनु ५।१९)

यह तरकारी या मांसके मसालेके काममें आता है। यह बहुत अधिक पुष्ट माना जाता है। इसकी गन्ध बहुत उग्र और अप्रिय होती है जिसके कारण इसका अधिक व्यवहार करनेवालोंके मुंह और कभी कभी शरीर या पसीनेसे भी विकट दुर्गन्ध निकलती है। एक दिन प्याज खानेसे दूसरे दिन मलमूत्रमें भी उसकी गन्ध पाई जाती है।

फारक्रय और भकेलिन (Fourcroy और Vauquelin) नामके दो डाक्टरोंने प्याजसे एक प्रकारका तैल-निर्यास निकाला जो शीघ्र ही उड़ गया। किमिया विद्याकी सहायतासे उन्होंने उसका विश्लेषण करके देखा कि इसमें गन्धक, शुभ्रपदार्थ (Albumen), चीनी, गोंदकी तरहका लसीला पदार्थ, फस्फरिक एसिड, साइट्रेट-आव-लाइम और लिगनिन् पदार्थ मिले हुए हैं। मदिराकी तरह प्याजके रसमें भी फेन आ जाता है। लहसुनके तेलके जैसा इसके तेलमें भी आलिलसलफाइड (Allyl-sulphide) है और दोनों ही प्रायः समानगुणविशिष्ट हैं।

प्याजके मूल वा कन्दसे कटु आस्वादयुक्त तैल निकलता है जो उत्तेजक वा चेतनाजनक माना गया है। यह मूत्रोत्पादक और श्लेष्मानिःसारक औषधरूपमें भी व्यवहृत होता है। ज्वर, उदरी, श्लेष्मा (Catarrh) और कण्ठश्वास (Chronic Bronchitis), वायुशूल और रक्तपित्तरोगमें अकसर इसका प्रयोग किया जाता है। बहिःप्रयोगमें भी यह चर्मप्रदाहक और जला कर देनेसे पुलटिसका काम करता है। कविराजोंमतसे यह उष्ण और तिक्त है तथा उदराध्मान रोगमें विशेष उपकारी है। इसकी तीव्रगन्धसे सर्पादि विषाक्त सरीसृप नजदीक आ नहीं सकते। मतान्तरसे इसका गुण कामोद्दीपक और वायुनाशक है। कच्चा प्याज खानेसे रज और मूत्र अधिक परिमाणमें निकलता है। जहां बिच्छू आदिने काटा हो, वहां प्याजका रस लगा देनेसे ज्वाला निवृत्त हो जाती है। प्याजके भीतरका गूदा अग्निमें उत्तप्त करके कानके भीतर देनेसे कर्णशूल आरोग्य हो जाता है। कभी कभी प्याजको चर कर उसका गरम रस कानमें डालनेसे वेदना जाती रहती है। कन्दके सिवा इसके बीजसे एक प्रकारका निर्मल वर्णहीन तेल निकलता है जो नाना औषधोंमें काम आता है। मूर्च्छागत और गुल्मवायुरोग (Fainting and hysterical fits)में यह उग्रगन्ध 'स्मेलिंसल्ट'का काम करती है। इससे अन्तस्थ पेशियोंकी क्रिया बलवान् रहती है और कभी भी उसका अवसाद नहीं होता। पाण्डुरोग, अर्श, गुदभ्रंश और अलर्करोग (Hydrophobia)में यह अधिक व्यवहृत होता है। इनका व्यवहार करनेसे जड़ैया (जूड़ी) दूर होती है और क्षयकाशरोगमें सर्दी होने नहीं पाती। सामान्य सर्दीमें प्याजके काढ़े और गलक्षतरोगमें सिरकेके साथ इसका प्रयोग करनेसे उपकार दिखाई देता है।

प्याजके रस और सरसोंके तेलको एक साथ मिला कर शरीरमें लगानेसे गेठियावातरोग आरोग्य होता है। नोआखाली प्रदेशमें जब विसूचिकारोगका प्रकोप देखा जाता है, तब छोटे छोटे बच्चोंके गलेमें प्याजकी माला पहना देते हैं अथवा दरवाजे पर उसे लटका देते हैं। उनका विश्वास है कि प्याजमें ऐसा गुण है कि वह प्लेगको आने नहीं देता। यथार्थमें प्याज दुर्गन्धनाशक है। वायुमें दुर्गन्धजनित अस्वास्थ्यकर गुण प्लेग आदि संक्रामक-रोगकी उत्पत्तिका कारण और शरीरका

हानिकारक है। एकमात्र प्याज ही ऐसी दूषित वायुको विशुद्ध कर सकता है। प्याज खानेसे भूख बढ़ती है। सिरकेके साथ पका कर इसे खानेसे पाण्डु, प्लीहा और अजीर्ण रोगमें विशेष उपकार होता है। पागल कुत्तेके काटनेसे क्षतस्थान पर ताजे प्याजका रस लगा देना चाहिए। आभ्यन्तरिक प्रयोगसे भी क्षतके अतिशीघ्र आरोग्य हो जानेकी सम्भावना है। डा० एल् केमिरण साहबने लिखा है, कि बङ्गाली लोग प्याज खाते हैं, इस कारण उनके शीतादरोग नहीं होता। प्याजका रस ४से ८ औंस तक दो औंस चीनीके साथ मिला कर रक्तक्षरणशील अर्श रोगीको खिलानेसे अति शीघ्र फायदा दिखाई देता है। सवेरे और शामको एक एक प्याज काले मिर्चके साथ खानेसे मलेरियाघटित ज्वर आरोग्य होता है। प्याजका मुंह काट कर उस पर जला हुआ चूना लगा कर वृश्चिकक्षतस्थान पर घिस देनेसे ज्वाला बहुत कुछ दब जाती है।

डाक्टर वेरिणके मतसे कच्चा प्याज नींद लाता है। मूर्च्छारोगमें इसका रस उत्कृष्ट उत्तेजक औषध है। मूर्च्छाके समय वह रस रोगीकी नाकमें लगाना होता है। किसी एक बरतनमें यदि कुछ प्याजको बन्द करके जहां गोबर जमा किया जाता है वहां जमीनके नीचे चार मास तक गाड़ कर रख दे, तो प्याजकी कामोद्दीपक शक्ति बढ़ती है। आमाशय वा आमरक्तरोगमें प्याजका अधिक प्रयोग होते देखा जाता है। एक ग्रेन अफीमको प्याजके भीतर भर कर उत्तप्त क्षारयुक्त अग्निमें आधा सिद्ध करके रोगीको खिलानेसे कठिन आमरक्तका उपशम होता है। तीन प्याजकन्दकी मुट्ठी भर इमलीकी पत्तियोंके साथ रोगीको खिलानेसे वह विरेचक औषधका काम करता है। प्याजको चूर कर उसका ताजा रस अर्काघात वा सरदी गरमीसे पीड़ित रोगीके शरीरमें अच्छी तरह लगानेसे भारी उपकार होता है। प्रायः देखा जाता है, कि उत्तर भारतवासी ग्रीष्मकालमें अपनी अपनी सन्तानको उत्ताप वायु (लूह)से बचानेके लिये गलेमें प्याज बांध देते हैं, आमाशयमें तेज वृद्धि करनेके लिये साधारणतः प्याज जला कर बालकोंको खिलाया जाता है।

हिन्दूशास्त्रमें प्याजको अशुद्ध बतलाया है, इस कारण धर्मप्राण हिन्दूमात्र ही प्याज स्पर्श नहीं करते। मुसलमान और यूरोपीयगण बिना प्याजके तरकारी आदि बनाते ही नहीं। निम्नश्रेणीके हिन्दूगण व्यञ्जनादिके अभावमें भात अथवा रोटीके साथ कच्चा प्याज खाते हैं।

साइबेरिया राज्यमें एक जातिका पलाण्डु उत्पन्न होता है जिसका नाम है Stone leek or rock onion Allium fisteulosum। यूरोपमें सभी समय प्याज नहीं मिलता, इस कारण व्यञ्जनादिमें यही दिया जाता है। हिमालय पर्वतजात पलाण्डु (A. leptophyllam) धर्मकारक और साधारण प्याजसे भाल होता है। परू (A. Porum, अरबी-किराथ) नामक पलाण्डु पूर्व राज्यसे यूरोप खण्डमें लाया गया था। फरोयाके समय इजिप्टवासिगण 'परू' वपन करते थे। लिखित ग्रन्थ पढ़नेसे जाना जाता है, कि सम्राट् नेरोने पहले पहल इस बीजका यूरोपजगत्‌में प्रचार किया। वेल्सवासिगण सैक्सनोंकी पराजयके उपलक्षमें छठीं शताब्दीसे इस जातिके प्याजका चिह्न धारण करते आ रहे हैं। जंगली प्याज (A. Rubellium) उत्तर-पश्चिम-हिमालयखण्ड पर लाहोर तक विस्तृत स्थानमें उत्पन्न होता है। इसकी पत्तियोंका दल मोटा होता है। इसका कन्द कच्चा और सिझा कर खाया जाता है। स्थान विशेषसे इसके और भी दो नाम सुने जाते हैं, बरनी प्याज और चिरि प्याजी। मोजेसके समय इजिप्टमें प्याजकी खेती होती थी। हिरोदोतसने ४१३ ई०-सन्‌के पहले जिस शिलालिपिका उल्लेख किया है उसमें लिखा है कि, 'इजिप्टके पिरामिड् निर्माणकार्यमें जो सब मजदूर काम करते थे, उन्होंने ४२८८०० पौण्डका प्याज खाया था।'

पलाद (सं० पु०-स्त्री०) पलं मांसं अत्तीति अद-भक्षणे (कर्मण्यण्। पा ३।२।१) इति अण्। १ राक्षस। (त्रि०) २ मांसभक्षक।

पलादन (सं० पु०-स्त्री०) पलं मांसं अत्तीति पल-अद-ल्यु। १ राक्षस। (त्रि०) २ मांसभक्षणशील।

पलान (हिं० पु०) गद्दी या चारजामा जो जानवरोंकी पीठ पर लादने या चढ़नेके लिये कसा जाता है।

पलानना (हिं० क्रि०) १ घोड़े आदि पर पलान कसना, गद्दी या चारजामा कसना या बांधना। २ चढ़ाईकी तैयारी करना, धावा करनेके लिये तैयार होना।

पलानी (हिं० स्त्री०) १ छप्पर। २ पानके आकारका एक गहना जिसे स्त्रियां पैरमें पंजेके ऊपर पहनती हैं।

पलान्न (सं० क्ली०) पलं मांसं तेन सह पक्वमन्नं, मध्य-पदलोपि कर्मधारयः। मांसादियुक्त सिद्ध अन्न, चावल और मांसके मेलसे बना हुआ भोजन, पुलाव। पाक-राजेश्वरमें इसकी पाकप्रणाली इस प्रकार लिखी है—छाग मांस १ शराव, घृत मांसका चौथाई भाग, दार-चीनी ३ माशा, लवङ्ग ३ माशा, इलायची ३ माशा, तण्डुल १ शराव, मिर्च २ तोला, तेजपत्र १ तोला, कुङ्कुम १ माशा, अदरक २ तोला, लवण ६ तोला, धनिया २ तोला, द्राक्षा (? शरावका पादार्द्ध। पहले छागमांसको सूक्ष्म-रूपसे चूर्ण करके शुष्क प्रलेह पाक करनेके बाद दूसरे बरतनमें तेजपत्र बिछा दे और तब ऊपरसे थोड़ा अखण्ड गन्धद्रव्य डाल दे। चावलको जलमें अर्द्धसिद्ध करके उसका मांड़ पसा ले और उसमें थोड़ा गन्धद्रव्य मिला कर इस अर्द्धसिद्ध तण्डुलका मांसके ऊपर अच्छी तरह सजा कर रख दे। इस प्रकार दो वा तीन बार सजा कर रखना होता है। पीछे इसके ऊपर बचा हुआ घी छिड़क दे और दो दण्ड तक आंच देते रहे। ऐसा करनेसे वह भलीभांति सिद्ध हो जायगा। मांस यदि न दिया जाय, तो उसके बदलेमें मछली, फल-मूलादि भी दे सकते हैं। इसमें गन्धद्रव्यको दधिके साथ मिला कर देना होता है।

पलाप (सं० पु०) पलं मांसं आप्यते प्राप्यते बाहुल्येन अत्र, पल-आप-घञ्। १ कण्ठपाशक। २ हस्तिकपोल, हाथीका कपोल, कनपटी आदि।

पलापहा (सं० स्त्री०) नेत्राञ्जन।

पलामू—बिहार और उड़ीसाके छोटानागपुर उपविभाग-का एक जिला। यह अक्षा० २३° २०´ से २४° ३९´ उ० और देशा० ८३° २०´ से ८४° ५८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४९१४ वर्गमील है। इसके उत्तरमें शाहाबाद और गया; पूर्वमें गया, हजारीबाग और रांची; दक्षिणमें रांची और सुरगुजा राज्य तथा पश्चिममें युक्तप्रदेशके सुरगुजा और मिरजापुर जिला है।

इस जिलेका अधिकांश पर्वतमालासे घिरा है सोननदी जिलेके उत्तरांशमें बह गई है। यहांके जङ्गल-में बाघ, चीता, सम्बर, छगसार, नीलगाय और जङ्गली कुत्ते पाये जाते हैं। यहांका तापपरिमाण ७४°से ८४° और वार्षिक वृष्टिपात ४९ इञ्च है।

पलामू जिलेका इतिहास १६०३ ई०के पहलेका नहीं मिलता। उस समय चेरोवंशने रक्सेल राजपूतोंको भगा कर अपना आधिपत्य जमा लिया। इस वंशने प्रायः २०० वर्ष तक राज्य किया। इस वंशके प्रधान मेदनीराय थे जिन्होंने १६५८से १६७२ ई० तक शासन किया। इन्होंने अपना राज्य गया, हजारीबाग और सुरगुजा तक फैला लिया था। यहां जो दुर्ग हैं, उनमें-से एक इन्हींका बनवाया हुआ है। दूसरे दुर्गकी नींव इनके लड़केने डाली थी, पर वे इसे पूरा कर न सके। उस समय मुसलमानोंने कई बार पलामू पर चढ़ाई की और राजाको कर देनेके लिये बाध्य किया। दूसरे वर्ष दाऊद खांने यहांके दुर्ग पर अधिकार जमा लिया। १७२२ ई०में राजा रणजित्राय मारे गये और उनके छोटे लड़के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए। तदनन्तर जयकृष्ण राय उन्हें सिंहासनच्युत कर आप गद्दी पर बैठ गये। कुछ वर्ष बाद जयकृष्णराय गोलीके आघातसे पञ्चत्वको प्राप्त हुए और उनके परिवारवर्ग प्राण ले कर सिगरा भागे। यहां उन्होंने उद-वन्तराम नामक एक कानूनगोके यहां आश्रय लिया। उदवन्त १७७० ई०में वृद्ध राजाके पोते गोपालरायको गवर्मेण्ट-एजेण्ट कप्तान कामकके पास पटना ले गये और सारा हाल कह सुनाया। इस पर कप्तानने राजाको सेनाको अच्छी तरह परास्त कर पलामूके उचित उत्त-राधिकारी गोपालरायको सिंहासन पर बिठाया। किन्तु दुर्भाग्यवश दो वर्ष पीछे गोपालरायने कानूनगो-की हत्यामें दुष्टोंका साथ दिया और इस अपराधमें उन्हें कठिन कारावासकी सजा हुई। १७८४ ई०को पटनेमें उनकी मृत्यु हुई। इसी समय बसन्तराय भी जो उनके कारावासके समय गद्दी पर बैठे थे, करालकालके गाल-में पतित हुए। तदनन्तर १८१३ ई०में चुरामनराय राज-सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इस समय पलामू जिले

पर ब्रिटिश-गवर्मेण्टको बहुत देन हो गई थी और उन्होंने १८१४ ई०में इसे अङ्गरेजी-राज्यमें मिला लिया। उसी समयसे पलामकी दिनों दिन उन्नति होती जा रही है।

यहांकी जनसंख्या करीब ६१८६०० हैं। इसमें डालटनगञ्ज और गढ़वा नामके दो शहर और ३१८४ ग्राम लगते हैं। यहांकी प्रधान उपज बैसाखी और भदई है। इस जिलेमें कोयलेकी अनेक खानें देखनेमें आती हैं। डालटनगञ्ज और औरङ्गामें जो कोयलेका खान है उसका आहाता प्रायः ८७ वर्गमील है। यहाँ तांबा भी पाया जाता है, पर काफी नहीं। इस जिलेसे चमड़े, लाह, घी, तेलहन, बांस और कोयलेकी रफ्तनी तथा दूसरे दूसरे देशोंसे नमक, चीनी, करासन तेल, चावल, घी, तांबेके बरतन और सरसोंकी आमदनी होती है। १८९७ और १९०० ई०में यहां दुर्भिक्ष पड़ा था।

विद्या-शिक्षामें यह जिला बहुत पीछे पड़ा हुआ है। यहांका डालटनगञ्जका हाई स्कूल बहुत प्रसिद्ध है। स्कूलके सिवा यहां चार चिकित्सालय भी हैं।

पलायक (सं० त्रि०) पलाय-ण्वुल्। पलायनकारी, भागनेवाला, भग्गू।

पलायन (सं० क्ली०) पलाय्यते पलाय भावे ल्युट्। भयादिहेतु स्थानान्तर गमन, भागनेकी क्रिया या भाव। पर्याय—अपयान, संदाव, द्रव, विद्रव, उपक्रम, संद्राव, उद्द्राव, प्रद्राव, उद्द्रव, सन्द्राव, द्राव, शृगालिका, अपक्रम, चक्रम।

पलायमान (सं० त्रि०) पलाय-शानच्। पलायनकारी, भागता हुआ।

पलायित (सं० त्रि०) पलाय-क्त। पलायन विशिष्ट, भागा हुआ। पर्याय—नष्ट, गृहीतदिक्, तिरोहित।

पलायिन् (सं० त्रि०) पलाय-णिनि। पलायक, भग्गू।

पलाल (सं० पु०-क्ली०) पलति शस्यशून्यत्वं प्राप्नोतीति पाल-कालन (तमि विशि विडीति। उण् १।११७) वा पलं अलतीति अल-अण्। १ शस्यशून्य धान्यनाल, धानका रूखा डंठल, पयाल। २ अन्य किसी पौधेका सूखा डंठल, तृण, तिनका।

पलालजशाक (सं० पु०-क्ली०) पलालजातशाक, एक प्रकारका साग।

पलालदोहद (सं० पु०) पलालं दोहदं यस्य। आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

पलाला (सं० स्त्री०) उन सात राक्षसियोंमेंसे एक जो लड़कोंको बीमार करनेवाली मानी जाती हैं।

पलाली (सं० स्त्री०) मांससमूह।

पलाश (सं० क्ली०) पलं गतिं कम्पनं अश्नुते व्याप्नोतीति अच्। १ पत्र, पत्ता। २ पलाशपुष्पादि, ढाकका फूल। (पु०) पलाशानि पर्णानि सन्त्यत्र अच्। ३ स्वनामख्यातपुष्प वृक्षविशेष। (Butea frondosa) पलास, ढाक।

संस्कृत पर्याय—किंशुक, पर्ण, वातपोथ, याज्ञिक, त्रिपर्ण, वक्रपुष्प, पूतद्रु, ब्रह्मवृक्षक, ब्रह्मोपनेता, काष्ठद्रु। गुण—कषाय, उष्ण और क्रिमिदोषनाशक। इसके पुष्पका गुण—उष्ण, कण्डू और कुष्ठनाशक। इसके बीजका गुण—कण्डू, दद्रु और त्वग्दोषनाशक। इसका पुष्प चार प्रकारका होता है, रक्त, पीत, सित और नील।

भावप्रकाशके मतसे इसका पर्याय—किंशुक, पर्णी, याज्ञिक, रक्तपुष्पक, क्षारश्रेष्ठ, वातपोथ, ब्रह्मवृक्ष, समिद्वर। गुण—अग्निदीपक, शुक्रवर्द्धक, सारक, उष्णवीर्य, व्रणनाशक, गुल्मघ्न, कषाय, कटु, तिक्तरस, स्निग्ध, गुह्यजात, रोगनाशक, भग्न-सन्धानकारक, त्रिदोष, क्रिमि, अर्श और ग्रहणीनाशक। पलाशपुष्प—मधुर, विपाक, कटु, तिक्त और कषायरस, वायुवर्द्धक, धारक, शीतवीर्य, कफ, रक्तपित्त, मूत्रकृच्छ्र, पिपासा, दाह, वातरक्त और कुष्ठनाशक। पलाशफल—लघु, उष्णवीर्य, कटु, विपाक, रूक्ष, प्रमेह, अर्श, क्रिमि, वायु, कफ, कुष्ठ, गुल्म और उदररोगनाशक। (भावप्र०)

पद्मपुराणमें लिखा है, कि पलाशवृक्ष ब्रह्मका स्वरूप है। ब्रह्मा पार्वतीके शापसे पलाशवृक्षरूपमें उत्पन्न हुए थे।

"अश्वत्थरूपो भगवान् विष्णुरेव न संशयः।
रुद्ररूपो वटस्तद्वत् पलाशोब्रह्मरूपधृक्॥
दर्शनस्पर्शसेवासु ते वै पापहराः स्मृताः।
दुःखापद्व्याधिदुष्टानां विनाशकारिणो ध्रुवं॥"

(पद्मोत्तरखं० १६० अ०)

यह पलाशवृक्ष ब्रह्मस्वरूपधारी है। इसका दर्शन, स्पर्श और सेवा करनेसे पाप नाश होता है। यह दुःख, आपद् और व्याधियुक्त व्यक्तियोंका दुःखादिनाशक है। ऋषियोंने जब सूतसे प्रश्न किया, 'महाराज! ब्रह्मा किस कारण पलाशवृक्षरूपी हुए थे', तब सूतने उत्तरमें ऐसा कहा था, "एक दिन हरपार्वती सुरत क्रीड़ामें रत थीं। उस समय देवताओंने उन्हें बाधा डालनेके लिये अग्निको वहां भेजा। अग्निके अत्याचार पर पार्वती बहुत बिगड़ीं और क्रुद्ध हो कर शाप दिया। उसी शापसे ब्रह्मा पलाश-वृक्षरूपमें उत्पन्न हुए।"*

शतपथब्राह्मणमें लिखा है—ब्रह्माके मांससे इस वृक्षकी उत्पत्ति है, इसी कारण यह ब्रह्माका स्वरूप माना जाता है।†

यह वृक्ष सारे भारतवर्षमें, ब्रह्मामें और उत्तर-पश्चिम हिमालय देशसे ले कर झिलम नदीतट तक विस्तृत स्थानमें उत्पन्न होता है। यह मझोले आकारका होता है। इसकी लकड़ी बड़ी टेढ़ी मेढ़ी होती है, सहजमें टूट कर वृक्षको नष्ट कर देती है। इसी कारण कभी कभी अंगरेजीमें इसे Bastard teak कहते हैं।

भारतके समतलक्षेत्रमें तथा छोटे छोटे पहाड़ोंसे आवृत देशोंमें यह वृक्ष पुष्पके भारसे लद कर अपनी सुन्दर शोभासे दूसरे दूसरे वृक्षोंको मात करता है। प्रस्फुटित लोहित पुष्पभाराक्रान्त वृक्षकी उज्ज्वल प्रभासे सारा देश मानो दीप्तिमय हो जाता है। भारतवासिगण इस पेड़के अंग प्रत्यंगका गुण जानते हुए भी इसका विशेष आदर नहीं करते। इसका फूल छोटा, अर्द्धचन्द्राकार और गहरा लाल होता है। फूलको प्रायः टेसू कहते हैं और उसके गहरे लाल होनेके कारण अन्य गहरी लाल वस्तुओंको "लाल टेसू" कह देते हैं। फूल फागुनके अन्त और चैतके आरम्भमें लगते हैं, उस समय पत्ते तो सबके सब झड़ जाते हैं और पेड़ फूलोंसे लद जाता है जो देखनेमें बहुत ही भला मालूम होता है। फूल झड़ जाने पर चौड़ी चौड़ी फलियां लगती हैं जिनमें गोल और चिपटे बीज होते हैं। फलियोंको पलाशपापड़ा या पलाशपापड़ी और बीजोंको पलासबीज कहते हैं।

पलाशवृक्षके छिलकेको काट देनेसे अथवा स्वभावतः ही इसके गात्रमें छेद होनेसे एक प्रकारका गोंद निकलता है। यह गोंद चुनिया गोंद वा बेङ्गल-किनो, युक्तप्रदेशमें कमरकस, बम्बई अञ्चलमें चिनियागोंद, पलाशका गोंद, किनिआ-गोंद नामसे प्रसिद्ध है। जब वृक्ष-गात्रसे यह निर्यास बाहर निकलता है, तब वह लाल मटरके जैसा देखनेमें लगता है। पहले यह कांचके जैसा स्वच्छ रहता है, पीछे पुराना होने पर अस्वच्छ और गाढ़े रंगका हो जाता। इसके बाद गोंदका वह लाल दाना आपसे आप चूर होने लगता है। यह धारकता-गुणविशिष्ट है।

शुष्क गोंदको थोड़ा दबानेसे ही वह चूर चूर हो जाता है। पीछे जलमें भिगो कर उसे साफ करना होता है। इस गोंदको जलमें अच्छी तरह मिला कर ऊपरसे पारसलफेट-आव-आइरन (Persulphate of iron) डाल देनेसे यह सब्जवर्णका हो जाता है। पीछे इसमें किसी प्रकारका अम्ल देनेसे मिश्रित जलका वर्ण कमला नीबूके जैसा हो जाता है। कष्टिक-पटाशयोगसे उसका वर्ण सिन्दूरके जैसा लाल, अधिक प्रयोगसे क्रमशः धूसरसे पतला रंग हो जाता है। कष्टिक-सोडा और

* ऋषयः ऊचुः—कथं वृक्षत्वमापन्ना ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
एतत्कथय सर्वज्ञ संशयोऽत्र महान् हि नः।"
सूत उवाच—"पार्वतीशिवयो देवैः सुरतं कुर्वतोः किल।
अग्निं ब्राह्मणवेशेन प्रेष्य विघ्नं कृतं पुरा॥
ततस्तु पार्वती क्रुद्धा शशाप त्रिदिवौकसः।
रेतःसेकसुखं भ्रंशात् कम्पमाना तदा रुषा॥"
पार्वत्युवाच—"क्रिमिकीटादयोऽप्येते जानन्ति सुरते सुखं।
तस्मात् मम सुखभ्रंशाद् यूयं वृक्षत्वमाप्स्यथ॥"
सूत उवाच—"एवं सा पार्वती देवी अशपत् क्रुद्धमानसा।
तस्माद्वृक्षत्वमापन्ना ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥"
(पद्मोत्तरखं १६० अ०)

† "मांसेभ्य एवास्य पलाशः समभवत्। तस्मात् स बहुरसो लोहित मिवहि मांसं ते नैवेनं तद्रूपेण स मर्द्धयत्यन्तरे खादिरा भवन्ति बाह्ये पलाशाः।"
शत० ब्रा० १।३।४।४) (शत०ब्रा० ६।६।३।७)

एमोनियाके योगसे इसमें दूसरा ही रंग निकल आता है। कार्बनेट-आव-पटाश और सोडा देनेसे इसका रंग गाढ़ा हो जाता है; किन्तु कपास, रेशमी, वा पशमीने वस्त्रमें इसका रंग नहीं खुलता। रोशनीके नजदीक इस गोंदको रखनेसे वह धीरे धीरे जल कर राख हो जाता है, किन्तु उससे किसी प्रकारकी गन्ध नहीं निकलती। मुखमें डालनेसे वह स्वभावतः नरम होता है।

भारतवर्ष और यूरोपखण्डमें इसका गोंद धारकता गुणयुक्त औषधरूपमें व्यवहृत होता है। वस्त्रादिको रंगानेमें तथा चमड़े आदिको परिष्कार करनेमें इसका व्यवहार देखा जाता है। नील (Blue-indigo)को चूर कर परिष्कार करनेमें इसका अधिक प्रयोजन पड़ता है। कागज तैयार करनेमें इसका गोंदरूपमें व्यवहार कर सकते हैं। चर्म प्रस्तुत करनेके समय इससे चर्म अधिक नर्म नहीं होता, केवल उसमें पक्का रंग चढ़ आता है। इसके पुष्पसे उत्तम और उज्ज्वल पीतवर्णका रंग तैयार होता है। चैत्र वा वैशाखमें जब पुष्प प्रस्फुटित होता है, तब इसे तोड़ कर धूपमें सुखा लेते अथवा सूखे पुष्पको ही चूर कर रख देते हैं। ठंढे जलमें उस चूरको डालनेसे अथवा उत्तप्त जलमें उबालनेसे उत्कृष्ट रंग बनता है। विभिन्न वस्तुओंके सहयोगसे पलाशसे विभिन्न रंग प्रस्तुत होता है। शुद्ध पलाश-पुष्पके रंगसे कपड़ा रंगाया जाता है। कभी कभी एलकाली, फिटकरी, चून अथवा सज्जीमट्टी (Wood-ash) द्वारा उत्तमरूपसे कपड़ेको सिद्ध कर पीछे उक्त द्रव्यादि-मिश्रित पलाशपुष्पके रंगमें उसे डुबोए रखे। जलके मध्य वस्त्र कुछ काल तक सिक्त हो जाने पर उसे निकाल ले और रंगमिश्रित जलको आंच पर चढ़ा कर कुछ समय तक उबाले। पीछे जब वह जल ठंढा हो जाय, तब उसमें फिर कपड़े डाल दे। तदनन्तर उसे पुनः आंच पर चढ़ानेसे कपड़ेमें उत्तम रंग निकल आता है। कपड़ेका रंग ललाई लिये हुए कुछ पीला होता है। खास कर होलीके अवसरमें भारतवासी हिन्दूगण इस प्रकारका रंगीन वस्त्र पहनना पसन्द करते हैं। सज्जीमट्टी, फिटकरी आदिसे रंगकी उज्ज्वलता बढ़ती है। पलाशपुष्पमें हरसिंहार (Nyctanthes Arbor-tristis), लटकान् (Bixa Orellana), अलौस (Morinda Tinctoria), हल्दी (Curcuma longa), बक्कम (Caesalpinia Sappan), प्रभृति उद्भिज्ज मिलानेसे पलाशपुष्पके हरिद्र-वर्णकी वृद्धि होती है। गमवेदक (Plecospermum pinosum) नामक पौधा पलाशके रंगमें मिलनेसे उसमें रेशम-सी उज्ज्वलता आती है। रंगको फीका करनेमें हरि वा हर (Terminalia chebula), लोध (Symplocos racemosa) और थैकोल (Garcinia pedunculata) आदि उद्भिद् मिलानेसे वर्णकी पृथक्ता देखी जाती है। ताजे पुष्पके रसमें फिटकरी-मिश्रित जल डालनेसे वह परिष्कार हो जाता है। पीछे उस मिश्रित रंगको किसी पात्रमें रख कर धूपमें सुखा लेनेसे उसका वर्ण 'गाम्बोज' (Gamboge)-से उत्कृष्ट हो जाता है।

इसके फूलकी बुकनी कर लेनेसे वह भी अबीरका काम देती है। होली आदि उत्सवमें उसका व्यवहार होता है। शृङ्गारबीजकी बुकनी कर उसमें गुलेला रंग मिलानेसे एक तरहका अबीर बनता है।

अबीर देखो।

छालसे एक प्रकारका रेशा निकलता है जिसको जहाजके पटरोंकी दरारोंमें भर कर भीतर पानीको रोका जाता है। जड़की छालसे जो रेशा निकलता है उसकी रस्सियां बटी जाती हैं। दरी और कागज भी इससे बनाया जाता है। इसके काठसे देशी चन्दनकाठ प्रस्तुत किया जा सकता है। पलाशपापड़ा वा पलाशबीजसे एक प्रकारका स्वच्छ और निर्मल तेल बनता है जिसका व्यवहार औषधमें होता है। इसकी पतली डालियोंको उबाल कर एक प्रकारका कत्था तैयार किया जाता है जो कुछ घटिया होता है और बङ्गालमें अधिक खाया जाता है।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि इसके निर्यासमें धारकतागुण है। सुकुमार बालक, बालिका और कोमल प्रकृतिकी रमणीजातिके लिये यह एक महौषध है। इसका गोंद अच्छी तरह चूर कर १०से २० ग्रेन तक दारचीनीके साथ सेवनीय है। थोड़ी अफीमके साथ इसका सेवन करनेसे आरोग्यशक्ति बढ़ती है। उदरामय

और अजीर्ण रोगमें इसका टटका रस विशेष उपकारी है। क्षयकाश और रक्तस्राव-सम्बन्धीय रोगमें, साधारण क्षत और बहुकालस्थायी गलक्षत रोगमें भी इसके सद्यो-निर्मित रसमें विशेष उपकार होता है।

कोङ्कनदेशमें ज्वररोगमें भी इसका प्रयोग देखा जाता है। शाङ्गत्वक्की अस्वच्छता (Opacities of the cornea) और अर्बुपक्ष (Pterygium) रोगमें चक्रदत्तने सैन्धव लवण (Rock-salt)-के साथ इसके सेवनकी व्यवस्था बतलाई है।

इसके बीजका कृमिनाशक औषधरूपमें व्यवहार किया जा सकता है। किसी किसी चिकित्सकका कहना है, कि इसका बीज सेण्टोनाइन (Santonine)का काम करता है। अन्त्रके मध्य गोलाकार कृमि (Lumbrici or round warm) दिखाई देनेसे बीजका सेवन विशेष लाभजनक है। बीजको पहले जलमें डुबो रखे, पीछे फूल जाने पर उसका छिलका भलीभांति अलग कर दे और तब उसे सुखा कर चूर कर ले। तीन दिन तक क्रमशः तीन बार करके ५से २० ग्रेन मात्रा-में इस बीजचूर्णका सेवन करे। पीछे चौथे दिनमें कुछ अण्डी तेल (Caster-oil)-का सेवन करना होता है। डा० अस्वाल्ड (Dr, Oswald) ऐसा स्वीकार करते हैं, कि उन्होंने इसके प्रयोगसे विशेष उपकार प्राप्त किया है। यह कृमिरोगमें उपकारक है, किन्तु जब किसी किसी रोगीके पक्षमें इसका कृमिनाशकगुण कार्य-कर नहीं होता, तब मुहुर्मुहुः विरेचन, वमन और मूत्रकोषकी यन्त्रणा बढ़ती है। इसी कारण विज्ञ-चिकि-त्सकगण बहुत सावधानीसे इसका व्यवहार करते हैं। शाङ्गधरसंहिता और भावप्रकाशमें पलाश-बीजकी उपकारिताके सम्बन्धमें लिखा है। दोनों ही ग्रन्थकारोंने इसके मृदु विरेचकत्व और कृमिनाशकत्व गुणका उल्लेख किया है। नीबूके रसके साथ इसके बीजको अच्छी तरह मर्दन कर किसी स्थानमें प्रलेप देनेसे चर्मका प्रदाह बढ़ता है और वह स्थान विलष्टरकी तरह लाल हो जाता है। इसके प्रलेपसे सभी प्रकारकी दाद (Ringworm, Dhobie's itch) जाती रहती है।

पुष्पका गुण—धारक, निर्मलताकारक, मलवृद्धि-कर और कामोद्दीपक माना जाता है इसकी पुलटिस देने से मूत्रस्राव अथवा रजःस्राव हो कर पेटकी सूजन कम हो जाती है। गर्भावस्थामें स्त्रियोंके उदरामय होने-से इसका प्रयोग अवश्य करना चाहिये। कोषप्रदाहमें बाहरमें प्रलेप देनेसे ज्वालाकी शान्ति होती है। फलका गुण—धारक, बलकारक और कामोद्दीपक। व्रण अथवा फुंसी होने पर, उदराध्मानजनित पेटकी वेदनामें, कृमि और अर्श रोगमें इसका प्रयोग विशेष हितकर है। अद-रकके साथ इसका छिलका पीस कर खिलानेसे सर्प-दंशनजन्य विषज्वाला शान्त होती है। डा० सेपार्ड (Dr, T, W, Sheppard)ने लिखा है, कि अफीम-जात मर्फिया (Morphia)को धवस्त करनेमें पलाश-काष्ठके कोयलेकी विशेष आवश्यकता है। गाय, भैंस आदि इसकी पत्तियां बड़े चावसे खाती हैं।

वेदादिग्रन्थोंमें पलाश-वृक्षकी कथा लिखी है। नन्दनकाननस्थ इन्द्राणीका अङ्गरागकर पारिजात पुष्प ही मर्त्यधाममें गन्धहीन पलाश कहाता है। सोम (चन्द्र) पलाशप्रिय हैं। इसकी लकड़ी नवग्रहजाग-जन्य होमादिमें व्यवहृत होती है। पलाशपुष्पसे देवादि-की पूजा होती है। वसन्त उत्सवमें और होली पर्वमें लोग पलाश-पुष्पके रंगसे रंगे हुए वसन्ती कपड़ा पहनते हैं। बौद्ध लोग पलाशवृक्षको पवित्र समझते हैं। इसके पत्तेकी तीन फका कहीं कहीं ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर नामसे पुकारी जाती है *। ब्राह्मणोंकी उपनयनक्रियामें पलाश-दण्डकी आवश्यकता होती है। प्राचीन कवियोंने पलाशपुष्पकी रमणियोंके उत्कृष्ट कर्णाभरणरूपमें वर्णन कर पलाशकी विशेष प्रशंसा की है। इसका फूल अत्यन्त सुन्दर तो होता है, पर उसमें गन्ध नहीं होती। इसी विशेषता पर भी बहुत-सी उक्तियां कही गई हैं।

४ पलाशके फलपुष्प प्रभृति। ५ शठी, कचूर। पलं मांसमश्नातीति पल-अश अण्। ६ राक्षस, मांस खानेके कारण राक्षसका पलाश नाम पड़ा है। ७ हरित। ८ मगधदेश। ९ शासन। १० परिभाषण। ११ पाश।

* चतुर्मासमाहात्म्यमें इसकी पूजाविधि कल्पित हुई है

१२ किंशुक। १३ भूमिकुष्माण्ड। १४ एक पक्षी। (त्रि०) १५ हरिद्वर्णविशिष्ट। १६ निर्दय, कठोर।

पलाशक (सं० पु०) पलाश संज्ञायां कन्। १ शठी, कचूर। २ पलाशवृक्ष, पलाश, ढाक, टेस। ३ लाक्षा, लाह। ४ किंशुक, पलासका फूल।

पलाशगढ़—मध्यप्रदेशके चण्डा जिलान्तर्गत एक भूसम्पत्ति भूपरिमाण २६२ वर्गमील है। इसमें कुल ८५ ग्राम लगते हैं। महाराष्ट्रोंने चण्डा जीत कर यहांके दुर्ग पर अधिकार जमाया था। पहले वैरागढ़के कोई गोंड़ राजपूत यहांके सरदार थे। अभी यह साहगांवके गोंड़राजाके अधीन है।

पलाशगन्धजा (सं० स्त्री०) एक प्रकारका वंशलोचन।

पलाशगांव—१ दाक्षिणात्यके विशाखपत्तन जिलान्तर्गत नवरङ्गपुर तालुकका एक ग्राम।

२ मध्यप्रदेशके भण्डारा जिलान्तर्गत एक भूसम्पत्ति जो पर्वतके ऊपर नवागांव ह्रदसे ७ मील पूर्व अवस्थित है।

पलाशच्छदन (सं० क्ली०) तमालपत्र।

पलाशतरुज (सं० पु०) पलाशतरु जन-ड। कोमल पलाशपल्लव, पलासकी कोंपल।

पलाशतरुशोणित (सं० क्ली०) पलाशवृक्षका निर्यास।

पलाशदे—बम्बईप्रदेशके खान्देश जिलान्तर्गत एक ग्राम। यहां गोर्या और तासोनदीके सङ्गमस्थल पर कारुकार्यविशिष्ट रामेश्वरका मन्दिर अवस्थित है।

पलाशदेव—पूना जिलेमें भीमानदी तीरवर्त्ती एक प्राचीन ग्राम। पहले यह स्थान रत्नपुर नामसे प्रसिद्ध था। यहां तीन सुन्दर शिवमन्दिर हैं।

पलाशन (सं० पु०) शारिका, मैना।

पलाशनिर्यास (सं० पु०) पलाशस्य निर्यासः। पलाशका गोंद। गुण—ग्राही, ग्रहणी, मुखजरोग, कास और स्वेदोद्गमनाशक।

पलाशपर्णी (सं० स्त्री०) पलाशस्य पर्णमिव पर्णं यस्याः, गौरादित्वात् ङीष्। अश्वगन्धा, असगन्ध।

पलाशबाड़ी—आसामके कामरूप जिलान्तर्गत एक मण्डग्राम। यह अक्षा० २६° ८' उ० और देशा० ९१° ४५' पू०के मध्य अवस्थित है।

पलाशविलार—बम्बईप्रदेशके खान्देश जिलान्तर्गत एक क्षुद्रराज्य। दक्षराज्य देखो।

पलाशशातन (सं० पु०) वृक्षपत्र छेदनेका अस्त्रभेद।

पलाशाख्य (सं० पु०) पलाशस्य आख्या इव आख्या यस्य, वा पलाशं पलाशगन्धमाख्यातीति आ-ख्या-क। नाड़ीहिङ्गु, नाड़ी हींग।

पलाशादि (सं० पु०) पलाश आदि करके पाणिन्युक्त शब्दगणभेद। यथा—पलाश, खदिर, शिंशपा, स्पन्दन, पुलाक, करीर, शिरीष, यवास और विकङ्कत। विकारार्थमें पलाशादि शब्दके उत्तर अञ् प्रत्यय होता है। यथा—पलाशस्यविकारः पालाश, खादिर इत्यादि।

पलाशान्ता (सं० स्त्री०) पलाशं अन्ते यस्याः, वा पलाशानां पत्राणां अन्तो गन्धवान् यस्याः। गन्धपत्रा, वनकचूर।

पलाशिका (सं० स्त्री०) विदारीकन्द।

पलाशिन् (सं० पु०) पलाशं विद्यतेऽस्य पलाश-इनि। १ वृक्ष, पेड़। पलं मांसमश्नातीति अश-णिनि। २ राक्षस। ३ चोरिवृक्ष, खिरनी। ४ शठी, कचूर। स्त्रियां टाप्। ५ नदीविशेष, एक नदी जो शुक्तिमत् पर्वतसे निकली है। ६ रैवतक पर्वतसे निःसृत नदीविशेष। (त्रि०) ७ पत्रविशिष्ट, पत्रयुक्त। ८ मांसहारी।

पलाशिल (सं० त्रि०) पलाशस्यादूरदेशादि काशादिभ्य इलः, इति पलाश-इल। पलाशके असन्निकृष्ट देशादि।

पलाशी (सं० स्त्री०) पलाश गौरादित्वात् ङीष्। लाक्षा, लाह। पर्याय—पलवल्ला, पर्णवल्ली, पलाशीका, सुरपर्णी, सुपर्णी, दीर्घपत्री, रसाम्ला, अम्लिका, भल्लातकी, काञ्जिका। इसमें मधुर और पित्तवर्द्धकगुण माना गया है।

पलाशी—बङ्गालके नदिया जिलान्तर्गत एक युद्धक्षेत्र। यह अक्षा० २३° ४७' उ० और देशा० ८८° १७' पू०के मध्य भागीरथी नदीके पूर्वी किनारे अवस्थित है। अङ्गरेज सेनापति लार्ड क्लाइवने असीम साहससे बङ्गेश्वर सिराज-उद्दौलाको इस विख्यात युद्धक्षेत्रमें परास्त कर अङ्गरेजोंका गौरव बढ़ाया था। इसी युद्धके बादसे ही बङ्गालमें अङ्गरेजोंकी गोठ जम गई थी।

युद्धके समय जिस आम्रवनमें २००० पेड़ थे, जहां क्लाइव ससैन्य छिप रहे थे, १८०१ ई० तक पलाशीके युद्धक्षेत्रमें वह आम्रवन पूर्णभावमें दिखाई देता था। लेकिन अभी यहां केवल एक पेड़ रह गया है, शेष भागीरथीकी बाढ़से उन्मूलित हो कर जहां तहां बह गये। एक समय यहां डकैत लोग निर्भयसे वास कर दस्युवृत्ति चरितार्थ करते थे। कलकत्तेसे कृष्णनगर होते हुए पैदल बहरमपुर जानेमें पलाशी हो कर जाना पड़ता है।

सिराज-उद्दौला, महाराज नवकृष्ण, क्लाइव आदि देखो।

पलाशीय (सं० त्रि०) पलाशमस्त्यस्य पलाश छ। (उत्करादिभ्यश्च: । पा ४।२।९०) पत्रयुक्त, पत्रविशिष्ट।

पलास (हिं० पु०) ढाकका पेड़। पलाश देखो।

पलासना (हिं० क्रि०) सिल जानेके बाद जतेको कांट छांट कर ठीक करना। जूतेका फालतू चमड़ा आदि काटना।

पलासपापड़ा (हिं० पु०) पलासको फली जो औषधके काममें आती है, पलासपापड़ी, ढकपन्ना।

पलासपापड़ी (हिं० स्त्री०) पलासपापड़ा।

पलिंजो (हिं० स्त्री०) एक घास जिसके दानोंको दुर्भिक्ष के दिनोंमें अकसर गरीब लोग खाते हैं।

पलिक (सं० त्रि०) पलं मानत्वेनास्त्यस्य ठन्। पलपरिमित द्रव्य, जो तौलमें एक पल हो।

पलिका (हिं० पु०) खाट, चारपाई।

पलिक्नी (सं० स्त्री०) पलितमस्या: अस्तीति 'अर्श आदिभ्योऽच्' इति अच्, 'छन्दसि क्नमेके' इति तस्य क्न ङीप् च। १ बालगर्भिणी गाभी, वह गाय जो पहली हो बार गाभिन हुई हो। (त्रि०) २ श्वेतकेशा, जिसके बाल पक गये हों, बुड्ढी।

पलिगार—जातिविशेष। पोलिगार देखो।

पलिघ (हिं० पु०) परिहन्यतेऽनेनेति परि-हन्-अप् घादेशश्च (परौ घ: । पा ८।२।२२) ततो रस्य ल। १ काचकलस, कांचका घड़ा। २ घट, घड़ा। ३ प्राचीर, प्राकार, चारदीवारी। ४ गोपुर, फाटक। ५ गोष्ठक, गाय रहनेका घर। ६ अर्गल, अगरी या व्योंड़ा।

पलित (सं० क्ली०) पलि-भावे क्त, वा फलनमिति फलइतच्, फस्य पत्वं (फलेरितजादेश्च प: । उण् ५।३४) १ सिरके बालोंका उजला होना, बाल पकना।

"गृहस्थस्तु यदा पश्येत् वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्॥" (मनु ६।२)

गृहस्थ जब देखें कि उनके बाल सफेद हो गये हों, चमड़े में शिथिलता आ गई हो तथा उनके पुत्र भी हो चुके हों, तब वे अरण्य-आश्रयका ग्रहण करें अर्थात् पुत्रके ऊपर संसारका भार अर्पण कर जीवनका अवशिष्टकाल धर्मकार्यमें व्यतीत करें। २ वैद्यकके अनुसार एक क्षुद्ररोग। इसमें क्रोध, शोक और श्रमके कारण शारीरिक अग्नि और पित्त सिर पर पहुंच कर बालोंको वृद्ध होनेसे पहले उजला कर देते हैं।

"क्रोधशोकश्रमकृत: शरीरोष्मा शिरोगतः।
पित्तञ्च केशान् पचति पलितं तेन जायते॥" (निदान)

पलितचिकित्सा—लौहचूर्ण २ तोला, आमकी गुठलीका गूदा १० तोला, आंवला ४ तोला, हरीतकी ४ तोला और बहेड़ा इन सब द्रव्योंको एक साथ पीस कर लोहेके बरतनमें रात भर रखे, पीछे मस्तक पर इसका लेप देनेसे बालकी सफेदी जाती है। अन्यविध—तेल चार सेर, कल्कार्थ गाम्भारीफल, झिण्टिकापुष्प, केतकीमूल, लौहचूर्ण, भृङ्गराज, हरीतकी, बहेड़ा और आमलकी प्रत्येक आध पाव, यथानियम इस तेलको पाक कर लौहपात्रमें एक मास तक जमीनके नीचे गाड़ कर रखे, पीछे इस तेलको शरीरमें लगानेसे अति शुभ्रवर्ण केश भी घोर कृष्णवर्ण हो जाता है।

त्रिफला, नीलपत्र, भृङ्गराज और लौहचूर्ण इनके समान भागको मेषमूत्रके साथ पीस कर लेपन करनेसे केश कृष्णवर्ण हो जाते हैं। (भावप्रकाश क्षुद्ररोग०)

३ शैलज, भूरिछरीला। ४ गुग्गुलु, गुग्गुल। ५ ताप, गरमी। ६ कर्दम, कीचड़। ७ केशपाश, बालोंकी लट। ८ कपालरोग। ९ मिर्च। (त्रि०) १० वृद्ध, बूढ़ा। ११ श्वेत, पका हुआ।

पलितग्रह (सं० पु०) पुष्पवृक्षविशेष, तगर, गुलचांदनी।

पलितङ्करण (सं० क्ली०) अपलितं पलितं क्रियतेऽनेन च्वऽर्थं पलित-कृ-ख्युन्, ततो मुम् च (आढ्य सुभ-

स्थूलपलितेति। पा ३।२।५६) अपलितको पलित करना, जो श्वेत नहीं था उसे श्वेत करना।

पलितम्भविष्णु (सं॰ त्रि॰) अपलितः पलितो भवति च्व्यर्थे पलित खिष्णुच् ततो मुम् (कर्त्तरि भुवः खिष्णुच् खुकञौ। पा ३।२।५२) अपलितका पलितभाव।

पलितिन (सं॰ त्रि॰) पलित अस्त्यर्थे इनि। पलितयुक्त, पके बालोंवाला।

पलिती (हिं॰ वि॰) जिसको पलित रोग हुआ हो, पलित रोगवाला।

पलिनी (सं॰ स्त्री॰) कृष्ण-उडुम्बर, काकडूमर।

पलिनेशिया प्रशान्तमहासागरस्थ एक द्वीपपुञ्ज। न्युजि-लैण्ड प्रभृति द्वीप इसके अन्तर्गत हैं। यह विषुवत्-रेखाके ३०° उत्तर-दक्षिण अक्षांशमें और फिलिपाइन द्वीपके पूर्वमें अवस्थित है। १८वीं शताब्दीके प्रथम भागमें कप्तान कुकने इस स्थानका परिदर्शन कर द्वीपसमूहका आमूलवृत्तान्त प्रकाशित किया।

किस प्रकार इस द्वीपोंकी उत्पत्ति हुई, यह अद्भुत और ईश्वर-सृष्टिका गुणगरिमा-प्रकाशक है। भूतत्त्वों (भौगो-विद्यावित्)ने परिश्रम करके यह स्थिर किया है, कि प्रवाल कीटोंकी सहायतासे समुद्रगर्भसे पलिनेशियाका अधिकांश द्वीप निर्मित हुआ है। प्रवालकी यह अद्भुतकीर्त्ति बुद्धिको अगम्य है। प्रवालकीटके ऊपर मट्टीका स्तर पड़ कर प्रशान्त महासागरका सम्पूर्ण परिवर्तन हुआ है। पहले जहां नीलवर्ण ऊर्मिमाला लहराती थी, अभी वहां सैकड़ों द्वीप अमृतमय फल-मूलसे सुशोभित हो कर हास्य करते हैं।

समुद्रसे ये सब द्वीप देखनेमें बड़े ही सुन्दर लगते हैं हरिद्वर्ण तरुशाखा और लता फलपुष्पसे विभूषित हो कर समुद्रतरङ्गमें प्रतिफलित होती है। 'पुरेट' वृक्षको प्रकाण्ड शाखाके निम्नभागमें छोटे छोटे कुटीर स्वभावकी शान्ति सम्पादन करते हैं। उपत्यकाभागमें शस्यराशि मन्द मन्द वायुके वेगसे सञ्चालित हो कर अपूर्व शोभा विकिरण करती है। इस द्वीपकी भूमि जैसी उर्वरा है, जलवायु भी वैसा ही उत्कृष्ट है। यहां नाना प्रकारके फलमूल उत्पन्न होते देखे जाते हैं। 'ब्रेडफ्रूट' नामक कटहलके जैसा एक प्रकारका फल है, जिसे इस द्वीपके लोग बड़े चावसे खाते हैं। यह वृक्ष बहुत लम्बा और सुदूर स्थानव्यापी होता है। इसकी पत्तियां १६।१७ इञ्च लम्बी होती और वर्ष भरमें इसमें तीन चार बार फल लगते हैं। पका फल पीला दिखाई देता है। इस वृक्षके तख्तेसे गृह और नौकादि बनाई जाती हैं। इसके वल्कलके रेशेसे वहांके लोग परि-धेय वस्त्र प्रस्तुत करते हैं। यहां आलू, अराहट, नारि-यल, कदली और ईख उत्पन्न होती है।

ईसाई मिशनरियोंकी सहायतासे देशवासी ईखसे चीनी प्रस्तुत करनेको सिख गये हैं। अङ्गूर, कमलानीबू और इमली आदि वृक्ष पहले इस द्वीपमें नहीं होते थे, किन्तु अभी तमाम देखनेमें आते हैं।

यहांके लोग बहुत लम्बे होते हैं। अङ्ग प्रत्यङ्गकी गठन अति सुन्दर होती है। ये लोग स्वभावतः बलिष्ठ और आर्यसम होते हैं। इनका ललाट चौड़ा, नेत्र लम्बा, उज्ज्वल और कृष्णवर्ण, नासिका तिलपुष्पकी तरह, ओष्ठ मांसल, दन्त अति शुभ्र, कर्ण कुछ दीर्घ, केश कोमल और चक्राकार तथा गात्रका वर्ण पिङ्गल होता है। स्त्रियां पुरुषकी अपेक्षा छोटी होने पर भी अन्य लोगोंकी देशवासी रमणियोंसे साधारणतः दीर्घ होती हैं। ये कुछ कुछ ताकत भी रखती हैं। सर-दारगण साधारण लोगोंसे दीर्घाकृति और समधिक बलिष्ठ होते हैं। इन लोगोंका कहना है कि कृष्णवर्ण बलका लक्षण है। काले मनुष्योंको देखनेसे ही वे उन्हें बलिष्ठ समझते हैं।

ये लोग धीरप्रकृति और प्रसन्नस्वभावसम्पन्न तथा आतिथेय होते हैं। ये लोग जैसे अधिक परिश्रम नहीं करते, वैसे ही खाते भी कम हैं। यूरोपियनोंके आगमनके पहले यहां युद्धमें नरहत्या, भ्रूणहत्या और नरबलि प्रायः देखी जाती थी। खृष्टधर्म-प्रचारकोंके यत्नसे इस नृशंस व्यापारका अन्त हो गया है। प्रत्येक युद्धमें रुधिरकी नदी बहती थी। डंडा, तीर, भाला और धनुस, इनके प्रधान युद्धास्त्र थे। युद्धारम्भके पहले ये लोग 'ओरो' देवके निकट नरबलि देते थे और पुरो-हितोंके नाना उपचारसे देवपूजा करने पर सभी एकाग्र चित्तसे उनकी सहायता चाहते थे। इसके बाद युद्ध-

तरी-सज्जा, युद्धास्त्र समार्ज्जन और सैन्यसंग्रह आरम्भ होता था। स्त्रियां भी स्वामीकी पदानुवर्त्ती हो कर युद्धक्षेत्रमें जीवनदान करनेसे कुण्ठित नहीं होती थीं। 'राण्डि' नामक नगरवासी कोटी देशमें 'ति' लता बांध कर 'ति' पत्रावृत तलवार हाथमें लिये सैनिकोंको उत्तेजित करती थे। युद्धमें जो मनुष्य पकड़े जाते वे या तो चिरदास बनाये जाते थे या देवताके सामने उनकी बलि दी जाती थी।

१७६० ई०में अंगरेजी जहाज सबसे पहले इस द्वीपमें आया। १७८७ ई०में कप्तान विलसन अठारह मिशनरियोंके साथ ओटाहिटी द्वीपमें अवतीर्ण हुए। इन महापुरुषोंके अनुग्रहसे द्वीपवासियोंने नाना प्रकारके शिल्पकर्मोंका अभ्यास कर लिया है। अभी सभी लोग यूरोपियनोंका अनुकरण करने लग गये हैं।

पलिवैल—मन्द्राजप्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह अमलापुरसे ६ कोस उत्तरपश्चिममें अवस्थित है। यहांके श्रीकोपेश्वरस्वामीके मन्दिरमें १३ शिलालिपि उत्कीर्ण हैं।

पलिया (हिं० पु०) घटेरुआ, पशुओंका एक रोग। इसमें उनका गला फूल आता है।

पलियार—दाक्षिणात्यकी आनिमलय पर्वतवासी जाति-विशेष। पलनि देखो।

पलियोग (सं० पु०) परियोग।

पलिहर (हिं० पु०) वह खेत जो बरसातमें बिना कुछ बोए केवल जोत कर छोड़दिया गया हो, चौमासा। ईख, शकरकंद, गेहूं, अफीम आदि बोनेके लिये प्रायः ऐसा करते हैं। अन्य धान्योंके लिये बहुत कम पलिहर छोड़ते हैं।

पली (सं० स्त्री०) गृहमक्षिका।

पली (हिं० स्त्री०) तेल घी आदि द्रव पदार्थोंको बड़े बरतनसे निकालनेका लोहेका एक उपकरण। इसमें छोटी करछीके बराबर एक कटोरी होती है।

पलीजक (सं० पु०) पलित नामो दानव।

पलीत (हिं० पु०) १ भूत, प्रेत, शैतान। (वि०) २ दुष्ट, पाजी। ३ धूर्त, चालाक, काइयां।

पलीता (फा० पु०) १ बत्तीके आकारमें लपेटा हुआ वह कागज जिस पर कोई यन्त्र लिखा हो। इस बत्तीकी धूनी प्रेतग्रस्त लोगोंको दी जाती है। २ बररोहको कूट और बट कर बनाई हुई वह बत्ती जिससे बन्दूक या तोपके रंजकमें आग लगाई जाती है। ३ एक विशेष प्रकारकी कपड़ेकी बत्ती जिसे कहीं कहीं पन-शाखे पर रख कर जलाते हैं। (वि०) ४ बहुत क्रुद्ध, क्रोधसे लाल, आगबबूला। ५ द्रुतगामी, तेज दौड़ने या भागनेवाला।

पलीती (हिं० स्त्री०) बत्ती, छोटा पलीता।

पलीद (फा० वि०) १ अशुचि, अपवित्र, गंदा। २ घृणास्पद। ३ नीच, दुष्ट। (पु०) ४ भूत, प्रेत।

पलुआ (हिं० पु०) १ सनकी जातिका एक पौधा। २ पालतू, पाला हुआ।

पलूचना (हिं० क्रि०) देना।

पलेट (हिं० स्त्री०) १ लम्बी पट्टी, पटरी। २ कपड़ेकी वह पट्टी जो कोट, कुरते आदिमें नीचेकी ओर उनके किसी विशेष अंशको कड़ा या सुन्दर बनानेके लिए लगाई जाय, पट्टी।

पलेटन (हिं० पु०) छापेके यन्त्रमें लोहेका वह चिपटा भाग जिसके दबावसे कागज आदि पर अक्षर छपते हैं।

पलेथन (हिं० पु०) १ वह सूखा आटा जिसे रोटी बेलनेके समय इसलिये लोई पर लपेटते और पाटे पर बखेरते हैं कि गीला आटा हाथ या बेलन आदिमें न चिपके, परथन। २ किसी हानि या अपकारके पश्चात् उसीके सम्बन्धसे होनेवाला अनावश्यक व्यय, किसी बड़े खर्चके पीछे होनेवाला छोटा पर फजूल खर्च।

पलेनर (हिं० पु०) काठका छोटा चिपटा टुकड़ा। इससे प्रेसमें कसे हुए फरमेंके उभरे हुए टाइप बराबर किये जाते हैं।

पलेना (हिं० पु०) पलेनर देखो।

पलेव (हिं० पु०) १ पलिहरको वह सींचाई या छिड़-काव जिसे बोनेके पहले तरीकी कमीके कारण करते हैं, हलकी सिंचाई। २ जूस, शोरबा। ३ आटा या पिसा हुआ चावल जो शोरबेमें उसे गाढ़ा करनेके लिये

डाला जाता है। जहाँ मसाला नहीं या कम डालना होता है, वहाँ इसे डाल कर काम चलाते हैं।

पलोटना (हिं॰ क्रि॰) १ पैर दबाना या दाबना। २ पलटना देखो। ३ कष्टसे लोटना पोटना, तड़फड़ाना।

पलोथन (हिं॰ पु॰) पलेथन देखो।

पल्टन (हिं॰ स्त्री॰) पलटन देखो।

पल्टा (हिं॰ पु॰) पलटा देखो।

पल्टदासी—वैष्णव सम्प्रदायविशेष। पल्टूदाससे यह पन्थ प्रवर्त्तित होनेके कारण इसका नाम पल्टूदासी पड़ा है। गोविन साहब इनके गुरु थे। काशीधामके अन्तर्गत अहिरौला और भीरकुड़ा ग्राममें इनका अड्डा है। प्रवाद है, कि नवाब शाहदतअलीके राजत्वकालमें पल्टूदासने यह धर्ममत चलाया था। १७९८ ई॰की २८वीं जनवरीको शाहदत अलीने अयोध्याका नवाबी पद प्राप्त किया। सम्भवतः उन्हींके राजत्वकालमें यह मत प्रवर्त्तित हुआ है।

अयोध्यामें पल्टूदासकी गद्दी आज भी विद्यमान है। वहाँ चैत्रमासकी रामनवमीको सरयूस्नानके उपलक्षमें एक मेला लगता है। मेलेमें इस पन्थके लोग अधिक संख्यामें एकत्रित होते और गद्दीके महन्थको प्रचुर अर्थदान तथा नाना प्रकारके द्रव्यजात प्रदान करते हैं। उनके शिष्य पलाटूदास, पलाटूके शिष्य रामकृष्णदास, रामकृष्णके शिष्य रामसेवक दास ४० वर्ष पहले गद्दी पर विद्यमान थे।

पल्टूदासी उदासीन गलेमें तुलसीकाठकी माला पहनते हैं। ये लोग सफेद मट्टीसे नासिकाके अग्रभागसे ले कर केश पर्यन्त ऊर्ध्वपुण्ड्र करते, कौपीन पहनते और पोले कुरते, टोपी आदिका व्यवहार करते हैं। इनमेंसे कोई कोई केश वा श्मश्रुकी रक्षा करते हैं और कोई मुण्डन करा डालते हैं। एक दूसरेसे मुलाकात होने पर 'सत्यराम' उच्चारण करते हैं।

अयोध्या, नेपाल और लखनऊ प्रदेशमें इस सम्प्रदायके गृहस्थ वास करते हैं। रामकृष्णादि विष्णुके अवतारमें उनका विश्वास है; किन्तु प्रधान प्रधान उदासीन लोग इस पर विश्वास नहीं करते। पल्टूदासने स्वयं कृष्णके उपाख्यानको रूपक बतलाया है—

"मनोरूपी यमुना नदी प्रवाहित है, ज्ञानरूपी मथुरा नगरी अवस्थित है, विश्वासरूपी गोकुल ग्राम उत्पन्न हुआ है। यशोदा और देवकी शान्तिरूपा प्रकृति हैं। नन्द और वसुदेव सद्गुरु तथा यदुकुल प्रीतिस्वरूप हैं। जीव और ब्रह्मरूप कृष्ण और बलदेवने अहङ्काररूप कंसका ध्वंस किया है। विवेक वृन्दावनस्वरूप है, सन्तोष कदम्बवृक्षरूपमें विराजित है। शरीरको अभ्यन्तरस्थित दया गोप और गोपाल है। सन्देहरूप औराधिकाने तत्त्वरूप नवनीत बलपूर्वक ग्रहण कर भक्षण किया है।"

पल्टूदास कोई भी तीर्थ नहीं मानते थे और न गङ्गायमुनादि पुण्यसलिला नदीमें स्नान ही करते थे। पल्टूदासके किसी किसी वचनमें योगानुष्ठान और षट्चक्रभेदका प्रसङ्ग वा सूचना देखनेमें आती है।

पल्टूदासने और भी कई जगह कहा है, कि रामनामसे हृदयके मध्य एक प्रकारका गुरु गुरु शब्द उत्थित होता है। इस शब्दसे यमराज भय खाते हैं। कामनीकाञ्चन-त्याग और साधुसङ्गमें उपवेशनपूर्वक सतर्क रहना ही धर्माचरणका एकमात्र उपाय है।

ये लोग निर्गुण उपासक हैं, कभी भी देव प्रतिमूर्त्तिकी अर्चना नहीं करते; सुतरां अपने भजनालयमें प्रतिमाका प्रतिष्ठा भी नहीं करते। ये नानकपन्थी आदि सम्प्रदायोंके एक श्रेणीभुक्त माने जाते हैं। रामात् निमात् आदि सम्प्रदायिक वैष्णव इन्हें पाषण्ड बतला कर घृणा दृष्टिसे देखते हैं। वे लोग एक साथ बैठनेकी बात तो दूर रहे, कभी भी इनका अङ्गस्पर्श नहीं करते। यदि दैवात् कभी गात्रस्पर्श हो भी जाय, तो अपनेको अशुचि और पापग्रस्त समझ कर स्नान कर लेते हैं।

पल्थी (हिं॰ स्त्री॰) पलथी देखो।

पल्यूलन (सं॰ क्ली॰) १ क्षारयुक्तजल। २ शस्त्रकी धार। ३ परिमाणभेद।

पलमनेर—१ मन्द्राजप्रदेशके उत्तर अर्काट जिलेका एक उपविभाग। भूमिका परिमाण ४४७ वर्गमील है। टीपूसुलतानकी पराजय और मृत्युके बाद यह स्थान अंगरेजोंके हाथ लगा।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान नगर। यह समुद्रपृष्ठसे

२२४७ फुट ऊंचा नीलगिरिपथके शीर्षदेश पर अक्षा० ११° ११´ ३०´´ उ० और देशा० ७६° ४७´ १७´´ पू०के मध्य अवस्थित है। नीलगिरिपर्वतका स्वास्थ्यनिवास निर्वाचित होनेके पहले यह स्थान यूरोपीय लोगोंका मनोरम वासस्थान था। यहांकी गङ्गास्मा-उपत्यका देखने योग्य है। हनुमान्के उद्देशसे निर्मित एक प्राचीन मन्दिर यहां विद्यमान है।

पल्यङ्क (सं० पु०) परितोऽङ्क्यतेऽत्र इति परि-अकि लक्षणे घञ् (परेश्च घाङ्कयोः। पा ८।२।२२) इति रस्य ल। पर्यङ्क, पलंग, खाट।

पल्ययन (सं० क्लो०) परितः अयति गच्छति अनेन परि-अय गतौ ल्युट्, रस्य लत्वं। पर्याण, घोड़े की पीठ पर बिठानेकी गद्दी, पलान।

पल्यवर्चस (सं० क्लो०) पल्यं वर्चः समासे अच्, समासान्त। उत्तमतेजः।

पल्यशन (सं० पु०) वृश्चिक।

पल्ल (सं० पु०) पल्यति गत्यादि प्राचुर्यं गच्छतीति पल-पचाद्यच्। १ स्थूलकुशूलक, अन्न रखनेका स्थान, बखार, कोठार। २ पाल जिसमें पकनेके लिये फल रखे जाते हैं। ३ नेपालवासी जातिविशेष। ४ पलाल, पयाल।

पल्लदम—१ मन्द्राजप्रदेशके अन्तर्गत कोयम्बतुर जिलेका एक उपविभाग। भूपरिमाण ७४२ वर्गमील है।

२ उक्त उपविभागका प्रधान नगर और सदर। यहां एक प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है।

पल्लव (सं० पु०-क्लो०) पल्यते इति पल-क्विप्, लूयते इति लव, लू-अप्, ततः पल् चासौ लवश्चेति। १ नवपत्रादियुक्त शाखाग्रपर्व, नये निकले हुए कोमल पत्तोंका समूह, कोंपल। पर्याय—किसलय, प्रवाल, नवपत्र, बल, किसल, किशल, किशलय, विटप, पल्लयौवन। २ विस्तार। ३ बल। ४ अलक्तराग, आलताका रंग। ५ वलय, हाथमें पहननेका कङ्कण। ६ चपलता, चञ्चलता। ७ नृत्यमें हाथकी एक विशेष प्रकारकी स्थिति। ८ पल्लवदेश। ९ पल्लवदेशका निवासी। १० तेजपत्र, तेजपत्ता। ११ दक्षिणका एक राजवंश। पल्लवराजवंश देखो।

पल्लवक (सं० पु०) पल्लवेन शृङ्गारेण कायतीति पल्लव-कै-क। १ वेश्यापति। पल्लव इव कायतीति। २ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। कोई कोई पल्लवक शब्दका अर्थ 'अशोकवृक्ष' लगाते हैं।

पल्लवग्राहिन् (सं० त्रि०) पल्लव-ग्रह-णिनि। पल्लवग्राहक, किसी विषयका सम्यक् ज्ञान न रखनेवाला।

पल्लवद्रु (सं० पु०) पल्लव प्रधानो द्रुः। अशोकवृक्ष।

पल्लवमय (सं० त्रि०) पल्लव-स्वरूपे मयट्। पल्लवस्वरूप।

पल्लव-राजवंश—दाक्षिणात्यका एक प्राचीन राजवंश। एक समय यह राजवंश उड़ीसासे ले कर दक्षिणमें पिनाकिनी नदीके मुहाने और कङ्कणकर्णाटसे ले कर तुङ्गभद्रा तक विस्तीर्ण भूभागमें राज्य करते थे। इस प्रदेशसे आविष्कृत पल्लवराजाओंकी शिलालिपि और ताम्रशासन तथा अनेक प्राचीन कीर्तियां उसका प्रत्यक्ष प्रमाण देती हैं।

किस समय इस राजवंशका पहले पहल आविर्भाव हुआ, यह आज भी अच्छी तरह जाना नहीं जाता। किसी यूरोपीय पुराविदोंका विश्वास है, कि मनु, रामायण, महाभारत और पुराणमें भारतके उत्तरदिग्वासी जिस पह्लव वा पल्लव जातिका उल्लेख है, वे ही दाक्षिणात्यमें पल्लव नामसे प्रसिद्ध थे (१)। फिर किसीका कहना है, कि पार्थियाके लोग ही पल्लव कहलाते थे (२)। किसी दूसरे यूरोपीयका विश्वास है, कि कुरुम्बर जाति ही पल्लव कहलाती थी (३)।

वराहमिहिरने बृहत्संहितामें पल्लवोंको भारतके दक्षिण पश्चिमवासी बतलाया है। पल्लवराजाओंके इतिहाससे भी जाना जाता है, कि वे लोग एक समय

(१) Journal of the Royal Asiatic Society. Vol. XVII. p. 218 (N. S.)

(२) Journal of the Asiatic Society of Bangal, Vol. VI p. 386 n. महाभारतादिमें भी पार्थियन जाति पारद नामसे वर्णित हुई है। पल्लव और पारद ये दोनों स्वतन्त्र जाति हैं।

(३) Dr. Oppert's Original Inhabitants of the Bharatavarsa

दाक्षिणात्यके पश्चिमांश बदामी नामक स्थानमें राज्य करते थे। इसमें पह्लव और पल्लव ये दोनों एक ही जातिके समझे जाते हैं सही, पर पल्लवराजाओंको सैकड़ों शिलालिपियां और ताम्रशासन पढ़नेसे ऐसा बोध नहीं होता। पल्लवोंको सामयिक बहुलिपियोंमें भी इन्होंने अपनेको द्रोणपुत्र अश्वत्थामा वंशीय और भरद्वाजके गोत्रका बतलाया है।४

सम्भवत: सम्राट् अशोकके समयमें पह्लवोंने गुजरातमें प्राधान्य और प्रवेश लाभ किया था। इसके कुछ समय बाद नासिककी गुहामें उत्कीर्ण शिलालिपिसे जाना जाता है, कि गौतमीपुत्रने पल्लवोंको जीता था। प्रसिद्ध शाहराज रुद्रदामको गिरनरलिपिमें लिखा है, कि उनके महासामन्त दक्षिणापथाधिपति शातकर्णीने दो बार पह्लवोंको परास्त किया था। रुद्रदामकी लिपिमें एक जगह लिखा है, कि सुराष्ट्रमें रुद्रदामके अधीन सुविशाख नामक एक पह्लव क्षत्रप थे। उन्हींके नेतृत्वमें सुदर्शन-ह्रदका असाध्य बांधनिर्माण कार्य सुसाध्य हुआ था।५

एक समय पह्लवगण दाक्षिणात्यके पश्चिम उपकूलमें प्रबल हो उठे थे। महावंशसे जाना जाता है कि (१५७ ई०में) पल्लवराजसे बहुसंख्यक बौद्धभिक्षु सिंहल भेजे गये थे।

किस समय पल्लवोंने अमरावती, बदामी वा काञ्चीपुरका आधिपत्य लाभ किया था, ठीक ठीक मालूम नहीं।

पल्लवराजाओंके समय जितनी शिलालिपि और ताम्रशासन आविष्कृत हुए हैं, उनमेंसे डाकर बुर्नेल साहबके मतसे विजयस्कन्दवर्माके राजत्वकालमें उनकी पुत्रवधू विजयबुद्धवर्माको पत्नीप्रदत्त ताम्रशासन ही सर्वप्राचीन है। प्राय: ४थी शताब्दीमें यह शासन उत्कीर्ण हुआ।६ किन्तु हम लोगोंका विश्वास है, कि बेल्लारी जिलेमें आविष्कृत प्राकृतभाषामें लिखा हुआ शिवस्कन्दवर्माका ताम्रशासन उससे प्राचीन है। इस ताम्रशासनको लिपि देखनेसे वह ३री शताब्दीकी लिपि प्रतीत होती है।७

शिवस्कन्दवर्मा काञ्चीपुरमें राजत्व करते थे। इन्होंने अग्निष्टोम, वाजपेय और अश्वमेधयज्ञ किया था और महाराजाधिराज उपाधि पाई थी। शेषोक्त दो ताम्रशासनको प्राकृतभाषा देखनेसे बोध होता है, कि केवल बौद्धोंके प्रभावसे प्राकृतभाषा आदृत नहीं हुई। पूर्वकालमें ब्राह्मणोंके मध्य संस्कृत भाषाका प्रचार रहने पर भी हिन्दूराजाओंकी सभामें प्राकृतभाषा व्यवहृत नहीं होती थी।

उक्त शिवस्कन्दवर्माके साथ दूसरे दूसरे पल्लवराजाओंका क्या सम्पर्क था, वह मालूम नहीं। गण्टूरसे आविष्कृत ताम्रशासनमें एक पल्लवराजवंशकी वंशावली इस प्रकार पाई गई है।
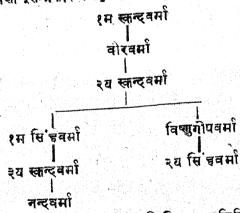
प्रसिद्ध सम्राट् समुद्रगुप्तकी शिलास्तम्भलिपिसे जाना जाता है, कि उन्होंने 'काञ्चेयक' विष्णुगोपवर्माको परास्त किया था।८ इस हिसाबसे काञ्चीपति विष्णुगोप ४थी शताब्दीके लोग होते हैं। गुप्तराजवंश देखो। सुतरां

(४) कांचीपुरके कैलासनाथके मन्दिरमें उत्कीर्ण शिलालिपिमें लिखा है कि ब्रह्माके पुत्र अंगिरा, अंगिराके पुत्र बृहस्पति, बृहस्पतिके पुत्र संयु, संयुके पुत्र भरद्वाज, भरद्वाजके पुत्र द्रोण, द्रोणके पुत्र अश्वत्थामा और अश्वत्थामाके पुत्र पल्लव थे। अमरावतीसे आविष्कृत सिंहवर्माकी प्रशस्तिमें लिखा है कि अश्वत्थामाने 'मदनी' नामक एक अप्सरासे विवाह किया था। उसीके गर्भसे पल्लवका जन्म हुआ और पल्लवसे ही पल्लववंशकी उत्पत्ति हुई है।

भरद्वाज भिन्न शालंकायन गोत्रीय पल्लवराजके नाम पाये जाते हैं। इनकी संख्या बहुत कम है।

( ) Journal Bombay, As. Soc. XIII. p. 815.

(६) Dr. Burnell's South Indian Palaeography

) Epigraphica Indica, Vol. 1. plates 1. III.

(८) Dr. Fleet's Inscriptionnum Indicarum Vol. III. P. T

विष्णुगोपके प्रपितामह स्कन्दवर्मा ३य शताब्दीके लोग हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

विष्णुगोपवर्मा महावीर थे। इन्होंने अश्वमेधयज्ञ किया था।८ इनके पुत्र सिंहवर्माने भी नानादेश जीत कर अच्छा नाम कमा लिया था। ३य स्कन्दवर्माके पुत्र नन्दिवर्मा नाना यागयज्ञकृत और ब्राह्मणादि गुरु भक्त थे। इस कारण वे पल्लवोंके मध्य 'धर्ममहाराज' नामसे प्रसिद्ध थे। १०

मामल्लपुरके गणेशमन्दिरमें उत्कीर्ण लिपि पल्लवराज नरसिंहका और शालुवङ्कुप्पमके अतिरणचण्डेश्वरके मन्दिरमें उत्कीर्ण शिलालिपिमें पल्लवराज अतिरणचण्डका नाम खोदित है। इसके अलावा काञ्चीपुरके कैलासनाथस्वामीके मन्दिरकी शिलालिपियोंसे जो एक राजवंशकी तालिका पाई गई है, वह इस प्रकार है —

राजा उग्रदण्ड वा लोकादित्य।
(इन्होंने चालुक्यराज रणरसिक (रणराग)-को युद्धमें परास्त किया)
|
राजसिंह वा सिंहविष्णु *
नरसिंहविष्णु और नरसिंहपोतवर्मन्
(इन्होंने रङ्गपताकासे व्याह किया था)
|
महेन्द्रवर्मा—१म

नन्दीवर्माकी उत्कीर्ण लिपिमें हम लोग एक और सम्पूर्ण वंशावली देखते हैं। उक्त लिपिमें सिंहविष्णुके बाद राजा महेन्द्रवर्मा १म, पल्लवसिंहासन पर बैठे।

महेन्द्रवर्मा-१म,
|
नरसिंहवर्मा—१म,
(इन्होंने चालुक्यराज पुलोकेशीको परास्त कर नगर ध्वंस किया।)
|
महेन्द्रवर्मा—२य,
|
परमेश्वरवर्मा-१म,
(इन्होंने चालुक्यराज विक्रमादित्य १मको परास्त किया)
|
नरसिंहवर्मा-२य,
|
परमेश्वरवर्मा-२य,
|
नन्दीवर्मा
|
पल्लवमल्ल नन्दीवर्मा।

कैलासनाथ मन्दिरके चारों ओर नित्यविनीतेश्वर, राजसिंहेश्वर और रानीरङ्गपताका स्थापित शिवमन्दिर तथा महेन्द्रवर्मेश्वरका मन्दिर आदि असंख्य कीर्त्तियां देखी जाती हैं।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि पल्लवराजाओंने परम्पराक्रमसे ब्रह्मासे अपनी उत्पत्तिकी कल्पना की। कैलासनाथके मन्दिरमें जैसा वर्णन है अमरावतीके स्तम्भगात्रमें खोदित लिपि उसका प्रमाण है §।

उक्त शिलालिपिसे और भी कितने पल्लवराजाओंके नाम पाये जाते हैं—

(१) महेन्द्रवर्मा
|
(२) सिंहवर्मा-१म
|
(३) अर्कवर्मा (अर्कवर्माके बाद उग्रवर्मा राजा हुए। सम्पर्क जाना नहीं जाता।)
|
(४) उग्रवर्मा
|
(६) नन्दीवर्म (५) (श्रीसिंहविष्णुके पुत्र इनके बाद राजा हुए)
|
(७) सिंहवर्मा-२य,

( ) Indian Antiquary, Vol. V. p. 50.

(१०) Mr. Foulkes' Salem District manuel Vol. 1. p. 3.

* दक्षिण अर्काट जिलेके विल्लुपुरम तालुकके अन्तर्गत पनमलई पर्वतके गुहामन्दिरमें जो उत्कीर्ण शिलालिपि है, उसमें उनका नाम विहदरणजय लिखा है।

§ अमरावतीकी स्तम्भलिपिके अनुसार ब्रह्माके पुत्र भरद्वाज, भरद्वाजके पुत्र अंगिरा, अंगिराके पुत्र बुधामा, बुधामाके पुत्र द्रोण, द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके औरस और मदनी अप्सराके गर्भसे पल्लवका जन्म हुआ। प्रसवके बाद अप्सरा जातपुत्रको पल्लवादिसे ढँक कर भग गई। तभीसे उनका नाम पल्लव पड़ा है। (Madras Journal of Literature and Science 1886-87

राजा सिंहवर्मा २य, उत्तरदेश जीतनेकी आशासे तथा अपना दिग्विजयार्जित यशको स्थापनाके लिये सुमेरुपर्वत पर गये। वहां कुछ दिन ठहर कर पर्यटनजनित क्लेशको दूर करनेके लिये इन्होंने हरिचन्दन वृक्षकी सुशीतल छाया और वायुका सेवन किया। पीछे वे भागीरथी, गोदावरी और कृष्णानदी पार कर वीतराग बुद्धके पवित्रचैत्र धान्यघट नगरीमें * पहुंचे और बुद्धदेवकी पूजा करने लगे।

त्रिशिरापल्ली (त्रिचिनापल्ली) पर्वतस्थ गुहाकी स्तम्भलिपिमें पल्लवराज गुणभर (पुरुषोत्तम, शत्रुमल्ल और सत्यसन्ध इनका विरुद) कावेरी नदीप्रवाहित देशमें राज्य करते थे। इन्होंने चोल राजाओंको परास्त कर उनका राज्य अपने अधिकारमें कर लिया।

पल्लवराजवंशका पूर्वापर इतिहास पढ़नेसे हम लोग देखते हैं, कि एक ओर जिस प्रकार चालुक्यवंश दाक्षिणात्यमें अपनी प्रतिपत्ति विस्तारमें चेष्टित थे, दूसरी ओर पल्लवराजगण अपने पूर्वगौरवकी रक्षामें उसी प्रकार यत्नवान् थे। इस कारण दोनों ही राजवंशमें रात दिन युद्ध चलता था। इस प्राचीन राजवंशका प्रकृत और धारावाहिक इतिहास नहीं मिलने पर भी आज तकके आविष्कृत ताम्रशासन और शिलालिपिसे यह स्पष्ट जाना जाता है, कि पल्लवराजगण चालुक्यवंशकी प्रतिष्ठाके पहले दाक्षिणात्य भूमिमें राज्य करते थे।

जब चालुक्यराज जयसिंह सिंहासन पर अधिष्ठित थे, तब हम लोग त्रिलोचन पल्लवको राजपद पर प्रतिष्ठित देखते हैं। राजा त्रिलोचन वीर नीनस्थके समसामयिक थे। त्रिलोचनके समान प्रतापशाली राजा दाक्षिणात्यमें कोई भी न था। इन्होंने ही चालुक्यराज जयसिंहको परास्त कर यमपुर भेज दिया था। जयसिंहके पुत्रका नाम था राजसिंह वा रणराग। इन्होंने फिरसे चालुक्य-सैन्य परिचालित करके पल्लवराज्य पर अधिकार जमाया। चालुक्यराजने पल्लवराजकन्यासे विवाह कर दोनों दलमें शान्ति स्थापित की। ये ही चालुक्यवंशके दक्षिण भारतके प्रथम प्रतिष्ठाता थे। इस समय पल्लवराजाओंमेंसे कुछ बुद्धसेवक थे। प्राचीन कादम्बराजाओंके प्रदत्त ताम्रशासनसे हम लोगोंको पता लगता है, कि राजा मृगेशवर्माने पल्लवोंको परास्त किया था। उनके लड़के राजा रविवर्माने भी दिग्विजय कालमें पल्लवराज विष्णुगोपवर्माको (१) और काञ्चीराज चण्डदण्ड पल्लवको परास्त कर अपना प्रभाव फैलाया (२)। पल्लवराजगण जब पलक्कद राजधानीमें राज्य करते थे, उस समय राजा नैराज्यपल्लवके साथ विक्रमादित्य चालुक्यका घनघोर युद्ध चला था। विक्रमादित्यके पुत्र राजा विनयादित्य-सत्याश्रयने भी पल्लवके विरुद्ध अस्त्र धारण किया था। इनके पूर्वतन राजा पुलोकेशीने भी काञ्चीपुर और वातापी नगरमें पल्लवराजको हराया था। इसके बाद पल्लवराजने पुनः वातापी पर अपना अधिकार जमा लिया। इस समय काञ्चीपुर राज्य अक्षुस था। कालक्रमसे पल्लवराजाओंकी क्षमता ह्रास होनेसे १०वीं शताब्दीमें चोलराज परकेशरिवर्माके पुत्र वीरचोलने पल्लवोंसे तोण्डमण्डलम् जीत लिया (३)। वेल्लोरराष्ट्रान्तर्गत माङ्गलुर ग्राम दानोपलक्षमें राजा सिंहवर्माके राजत्वके ८वें वर्ष जो ताम्रशासन उत्कीर्ण हुआ है उससे पता लगता है, कि पलक्कदके बाद पल्लवराजाओंने दशनपुरमें राजधानी बनाई थी।

---

* धान्यघट वा धन्यघटक संस्कृत धान्यकटक शब्दका अपभ्रंश है। धान्यघटक अमरावतीका सर्वप्राचीन नाम है। तामिल भाषामें 'क' की जगह 'घ' लिखनेका नियम है।

(१) पुराविद् डा० बुर्नेलने विष्णुगोपवर्मा और अत्तिवर्माकी लिपिकी अक्षरालोचना करके स्थिर किया है, कि चौथी शताब्दीमें पल्लवराजधानी तोण्डईनाडू नगरमें इसी प्रकारका अक्षर प्रचलित था। इस अक्षरको उन्होंने पूर्व चेर या पल्लव-अक्षर बतलाया है। फिर विष्णुगोपवर्मा ११वीं शताब्दीमें वर्त्तमान थे। (Sewell's Dynasties of Southern India p. 71.)

(2) Indian Antiquary Vol. VI. p. 25-30, and Dynasties of the Kenarese Dist, p. 9.

(३) इस घटनाका प्रकृत समयनिरूपण ले कर पुराविदोंमें मतभेद देखा जाता है। यह युद्ध ३००० खृ० पूर्वाब्दसे १०वीं शताब्दीके मध्यवर्त्ती किसी समयमें हुआ था; मतभेद होनेका यही कारण है।

प्रसिद्ध चीन-परिव्राजक फाहियान जब दाक्षिणात्यमें परिदर्शन करने गये, उस समय पल्लववंशीय राजगण काञ्चीपुर और वेङ्गीनगरमें राज्य करते थे। इसके प्रायः दो शताब्दी बाद चालुक्यराज कुब्जविष्णुवर्द्धनने पल्लवोंको पराजय कर वेङ्गी नगर पर अधिकार किया था। पीछे ७म शकमें देखते हैं, कि चालुक्य-राज २य विक्रमादित्यने (६५५-६६८ शकमें) पल्लव-राज नन्दिपोतवर्माको परास्त किया। एतद्भिन्न ८वीं शताब्दीमें राजपुत्र क्षेमगोलकने जैनधर्म ग्रहण करके बौद्धोंको काञ्चीधामसे सिंहलमें मार भगाया। तदनन्तर राष्ट्रकूटवंशीय राजा ध्रुव-निरुपमसे पल्लव परास्त हुए और तत्परवर्त्ती राजा ३य गोविन्दने काञ्चीपति दन्तिगको विशेष रूपसे पराजय किया था।* इसके कुछ समय बाद कोङ्गुराज गण्डदेव महारायने पल्लवोंको अपने अधीन कर लिया था। इसके अनन्तर पल्लवमल्ल नन्दिवर्माके ताम्रशासनसे जाता है, कि उन्होंने शवर-राज उदयन निषादराज, पृथिवीव्याघ्र और पाण्डुराजके साथ युद्ध किया था।†

पल्लववंशीय राजगण बौद्ध और ब्राह्मण्य-धर्मके सेवक थे। इधर जिस प्रकार उन्होंने बौद्धधर्मके प्रचारके लिये अमरावती नगरीमें बुद्धमन्दिर, स्तूप और महा-मल्लपुरके वृहत् रथविहार आदि निर्माण कराये, उधर उसी प्रकार ब्राह्मणसेवाकी पराकाष्ठा दिखा कर देव-सेवानुरत और विद्यानुशीलनमें निरत ब्राह्मणोंको ताम्रशासनके अनुबल पर असंख्य असंख्य भूमि भी दान की थी। उक्त राजवंशधरगण प्रतिष्ठितदेव-मन्दिरका खर्च बर्च चलानेके लिये अकुण्ठित हृदयसे भूसम्पत्ति दान कर गये हैं। इन सबकी आलोचना करनेसे साफ साफ प्रतीत होता है, कि चीन-परिव्राजक फाहियान वर्णित वृत्तान्त नितान्त अमूलक नहीं है। उनका लिखित ग्रन्थ पढ़नेसे मालूम होता है, कि पल्लवराजाओंके समय 'दक्षिण-राज्यमें श्रमण, ब्राह्मण और भिन्न भिन्न धर्मावलम्बी व्यक्तिगण स्वच्छन्द भावसे एकत्र वास करते थे।' इनके राजत्वकालमें दक्षिण-भारतमें विदेशीवाणिज्य उन्नतिकी चरमसीमा तक पहुंच गया था।* यह तत्सामयिक इतिहास पढ़नेसे जाना जाता है। वाणिज्यके कारण भिन्न भिन्न धर्माव-लम्बियोंका पल्लवराज्यमें वास करना कोई असम्भव नहीं है।

परवर्त्ती चीन-परिव्राजक युएनचुवङ्गके भ्रमण-वृत्तान्तसे हम लोगोंको पता लगता है, कि दाक्षिणात्य जाते समय जिस राह हो कर वे आगे बढ़े थे, उसके चारों ओर बौद्धमन्दिर, मठ और सङ्घाराम विराजित थे। इनमेंसे कितने उस समय भी पूर्ण प्रभासे देदीप्य-मान थे। परवर्त्तीका आक्रमणसे ध्वंस होता जा रहा था और उसके समीपवर्त्ती भग्नप्राय हिन्दूमन्दिर

* Ind. Ant. Vol. VII. p. 273-84

† Fleet's Kanerese Dynastic's, p. 34.

* "While these considerations lead to the conclusion that the *Kings* of the Pallavas were powerful, enlightened and prosperous, the sources of their great prosperity are not far to seek. The central Emporium of the whole of the commerce between India and the Golden Chersonese and the region to the further East, and so of every *Sea*-b and beyond India between China and the Western world was within their Territory; and all the Diamonds then known to the world more also within their dominions and had probably supplied every diamond which up to that time had ever adorned a diadem. The bulk of that commerce went southwards from that "Locus unde solvunt in Chrysen navigantes" in coasting vessels around Cape Kumari to the port of departure for the markets of the West in the western coasts. The merchants laden with commodities would need to be protected along the wild roads across the Peninsula and could well afford to pay for the protection Fah. Hian's "certain Sum of money to King the country"

For these reasons the conditions to me to be irresistible that Fah. Hian's 'Kingdom called Thathseu' is the great Kingdom of the Pallavas of [illegible]n-chi, Ind. Ant. Vol. VII. p. 7.

जो पल्लवराजवंशको उज्ज्वल कीर्त्तिकी घोषणा करता है, कुछ समय हुआ, विष्णुपूजक ‡ चालुक्यराजके हाथ लग गया है। आज भी पल्लवराजधानीमें प्राचीन कीर्त्तिसमूहका ध्वंसावशेष लक्षित होता है।

पल्लवसारतैल (सं० क्लो०) औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—तिल तैल ४ सेर, त्रिफलाका रस ४ सेर, जल १६ सेर, शेष ४ सेर, भृङ्गराजरस, शतमूलीका रस, दुग्ध और कुष्माण्डरस प्रत्येक ४ सेर, लाक्षा १ सेर, जल १६ सेर, शेष ४ सेर, काँजी ४ सेर, कल्कार्थ पीपर, हरीतकी, द्राक्षा, त्रिफला, नीलोत्पल, यष्टिमधु, क्षीरकाकोली प्रत्येक १ पल; गन्धद्रव्य कर्पूर, नखी, मृगनाभी, गन्धविरजा, जैत्री और लवङ्ग प्रत्येक ४ तोला; इस तैलके लगानेसे वायु और पित्तजनित विविध पीड़ाकी शान्ति होती है। यह ग्रहणी और प्रमेह आदि रोगोंमें प्रयोज्य है। इसके व्यवहारसे बलवीर्यको वृद्धि होती है।

पल्लवाद (सं० पु०) हरिण, हिरन।

पल्लवाङ्कुर (सं० पु०) पल्लवस्य अङ्कुरो यत्र। १ शाखा। पल्लवस्य अङ्कुरः। २ पल्लवका अङ्कुर।

पल्लवाधार (सं० पु०) पल्लवस्य आधारः। शाखा, डाली।

पल्लवास्त्र (सं० पु०) कामदेव।

पल्लवाह्वय (सं० क्लो०) तालीशपत्र।

पल्लविक (सं० त्रि०) पल्लवः शृङ्गाररसोऽस्त्यस्मिन् वा पल्लव ठन्। कामुक, लम्पट।

पल्लवित (सं० त्रि०) पल्लवः सञ्जातोऽस्य 'तारकादिभ्य इतच्' इति इतच्। १ सपल्लव, जिसमें नए नए पत्ते निकले या लगे हों। २ विस्तृत, लम्बा चौड़ा। ३ लाक्षारक्त, लाख या आलमें रंगा हुआ। ४ लहलहाता, हरा भरा। ५ रोमाञ्चयुक्त, जिसके रोंगटे खड़े हों। (क्लो०) ६ लाक्षारङ्ग, लाखका रंग।

पल्लविन् (सं० पु०) पल्लवाः सन्त्यस्य पल्लव-इनि। १ वृक्ष, पेड़। (त्रि०) २ पल्लवविशिष्ट, जिसमें पल्लव हों।

पल्ला (हिं० क्रिवि०) १ दूर। (पु०) २ किसी कपड़ेका छोर, आंचल। ३ दूरी। ४ अधिकारमें, पास। ५ ओर, तरफ। ६ दुपल्ली टोपीका एक भाग। ७ चद्दर या गोन जिसमें अन्न बांध कर ले जाते हैं। ८ पटल, किवाड़। ९ पल्लव। १० तीन मनका बोझ। ११ बोरा। १२ तराजूमें एक ओरका टोकरा या डलिया, पलड़ा। १३ कैंचीके दो भागोंमेंसे एक भाग। (फा० वि०) १४ परला देखो।

पल्लावरम—मन्द्राज प्रदेशके चिङ्गलपुत जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १२° ५७´ ३०´´ उ० और देशा० ८०° १३´ पू०के मध्य सेण्टजार्ज दुर्गसे ५॥ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहांके संन्यावासके सन्निकट कितने ही प्राचीन चकमकीनिर्मित अस्त्र आविष्कृत हुए हैं। निकटवर्ती पञ्चपाण्डव पर्वत पर भी बहुतसे ध्वंसावशेष देखे जाते हैं।

पल्लि (सं० स्त्री०) पल्लतीति पल्ल-'सर्वधातुभ्य इन्' इति इन्। १ ग्रामक। २ कुटी। ३ कुटीसमुदाय। ४ ग्राम। ५ गृह। ६ स्थान। ७ गृहगोधिका।

पल्लिका (सं० स्त्री०) पल्लि-स्वार्थे कन् ततष्टाप्। गृहगोधिका, छिपकली।

पल्लिवाह (सं० पु०) पल्लिं कुटीं वाहयति निर्वाहयतीति पल्लि-वाह-णिच्-अण्। तृणभेद, एक प्रकारकी घास।

पल्ली (सं० स्त्री०) पल्लि 'कृदिकारादिति' वा ङीष्। १ स्वल्पग्राम, छोटा गांव, खेड़ा। २ कुटी। ३ नगरभेद। ४ गृहगोधी, छिपकली। पर्याय—मुषली, गृहगोधा, विशम्बर, ज्येष्ठ, कुड्यमत्स्य, पल्लिका, गृहगोलिका, माणिक्य, भित्तिका, गृहोलिका प्रभृति। मनुष्यके शरीर पर इसके गिरनेसे निम्नलिखित फल होता है। मनुष्यके दाहिने अङ्ग पर गिरनेसे स्वजनधनवियोग और बाएँ अङ्ग पर गिरनेसे लाभ; वक्षःस्थल, मस्तक, पृष्ठ और कण्ठ पर गिरनेसे राज्यलाभ और कर, चरण तथा हृदय पर गिरनेसे सुखलाभ होता है। (ज्योतिःसारस०)

पल्ली—दाक्षिणात्य-वासी दासजाति। ब्राह्मणोंकी दास्यवृत्ति करना इनकी प्रधान उपजीविका है।

पल्लीवाल—ब्राह्मणजातिकी शाखाभेद। राठोरोंके मारवाड़ प्रदेशमें वास करनेके पहले ये लोग पल्लीमें राज्य करते थे, इसीसे इनका पल्लीवाल नाम पड़ा है। किस

‡ परवर्त्ती पल्लवराजगण शैव थे।

प्रकार इन्होंने पल्लीका अधिकार पाया, इसका पता लगाना कठिन है। किन्तु पल्ली नगरसे ले कर पालिटाना तकके स्थानोंमें आज भी उनकी कीर्त्तियां देखी जाती हैं। १२वीं शताब्दीमें जब कन्नोजराज शिवजीने पल्ली पर आक्रमण किया, उस समय पल्लीवाल ब्राह्मणगण यहां राज्य करते थे। मुसलमानोंके मारवाड़ आक्रमण करने पर वे लोग जयपालमीर, बीकानेर, धात और सिन्धु-उपत्यकामें आ कर रहने लगे।

पल्लू (हिं॰ पु॰) १ दामन, छोर, आंचल। २ चौड़ी गोट, पट्टा।

पल्लेदार (हिं॰ पु॰) १ वह मनुष्य जो गल्लेके बाजारमें दूकानों पर गल्लेकी गांठमें बांध कर दूकानसे मोल लेनेवालोंके घर पर पहुंचा देता है, अनाज ढोनेवाला मजदूर। २ गल्लेकी दूकान पर वा कोठियोंमें गल्ला तौलनेवाला आदमी।

पल्लेदारी (हिं॰ स्त्री॰) १ पल्लेदारका काम। २ अनाजकी दूकान पर अनाज तौलनेका काम।

पल्वल (सं॰ पु॰ क्ली॰) पलति गच्छति विपल्यस्मिन् वा पल गतौ वा पा पाने वलच् प्रत्ययेन निपातनात् सिद्धं (सानसिवर्णसिपर्णसीति। उण् ४।१०७) अल्पसरः। क्षुद्र-जलाशय, छोटा तालाब या गड्ढा।

"अल्पं सरः पल्वलं स्याद् यत्र चन्द्रंगे रवौ।
न तिष्ठति जलं किंचित् तत्सर्वंवारि पाल्वलं॥"

(भावप्रकाश)

जिस जलाशयमें थोड़ा जल रहता है और चन्द्रमाके मृगशिरा नक्षत्रमें जानेसे कुछ भी जल रहने नहीं पाता उसे पल्वल कहते हैं। ऐसे पल्वलके जलका नाम पाल्वल है। इस जलका गुण—अभिष्यन्दि, गुरु, स्वादु और त्रिदोषकृत्। (भावप्र॰)

पल्वलावास (सं॰ पु॰) कच्छप, कछुआ।

पल्वल्य (सं॰ त्रि॰) पल्वल-यत्। पल्वलमय, जलमय।

पव (सं॰ पु॰) पवननिति पूञ्‌शोधने, भावे अप्, वा पुनातीति पू-अच्। १ निष्पाव, भूसी निकालना, ओसाना। २ वायु, हवा। (क्ली॰) पूयतेऽनेन पुञ्‌शि शोधे-अप्। (पा ३।३।४३) ३ गोमय, गोबर।

पवई (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी चिड़िया। इसकी छाती खैर रंगकी, पीठ खाकी और चोंच पीली होती है।

पवन (सं॰ पु॰) पुनातीति पू-बहुलमन्यत्रापीति युच्। १ निष्पाव, भूसी निकालना। २ वायु, हवा। 'पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहं।' (गीता १०।३१) ३ अन्तःरोच सञ्चारी वायु। सिद्धान्तशिरोमणिमें ८ प्रकारके वाह्य पवनका उल्लेख है। इनमेंसे आवह, प्रवह, उद्वह, संवह, सुवह, परिवह और परावह प्रभृति प्रसिद्ध हैं। ४ प्राणवायु। ५ उत्तममनुके पुत्रविशेष। ६ कुम्भकारोंके आमघटादिका पाकस्थान, कुम्हारका आवां। ७ जल, पानी। ८ पवित्रीकरण। ९ विष्णु। १० अनाजकी भूसी अलग करना। ११ श्वास, सांस। (त्रि॰) १२ प्रयत, पवित्र।

पवन-अस्त्र (हिं॰ पु॰) वायुदेवताका अस्त्र। कहते हैं, कि इसके चलानेसे बड़े वेगसे वायु चलने लगती है।

पवन-कुमार (सं॰ पु॰) १ हनुमान्। २ भीमसेन।

पवनगढ़—चम्पानिरके अन्तर्गत एक गिरिदुर्ग। १८०३ ई॰में कर्णल वडिंटनने किलेदारको युद्धमें परास्त कर इस दुर्ग पर अधिकार कर लिया था।

पवनचक्की (हिं॰ स्त्री॰) हवाके जोरसे चलनेवाली चक्की या कल। प्रायः चक्की पीसने अथवा कुएं आदिसे पानी निकालनेके लिये यह उपाय करते हैं कि चलाई जानेवाली कलका संयोग किसी ऐसे चक्करके साथ कर देते हैं जो बहुत ऊंचाई पर रहता है और हवाके झोंकोंसे बराबर घमता रहता है। उस चक्करके घूमनेके कारण नीचेकी कल भी अपना काम करने लगती है।

पवन-चक्र (सं॰ पु॰) चक्कर खाती हुई जोरकी हवा, चक्रवात, बवंडर।

पवनज (सं॰ पु॰) १ हनुमान्। २ भीमसेन।

पवनतनय (सं॰ पु॰) पवनस्य तनयः। १ पवनका पुत्र, हनुमान्। २ भीमसेन।

पवननन्द (सं॰ पु॰) १ हनुमान्। २ भीम।

पवननन्दन (सं॰ पु॰) १ हनुमान्। २ भीम।

पवनपति (सं॰ पु॰) वायुके अधिष्ठाता देवता।

पवन-परीक्षा (सं॰ स्त्री॰) ज्योतिषियोंकी एक क्रिया। इसके अनुसार वे आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमाके दिन वायुकी दिशाको देख कर ऋतुका भविष्य कहते हैं।

पवन-पुत्र (सं॰ पु॰) १ हनुमान्। २ भीमसेन।

पवनवंश—दक्षिण सिंहभूमिवासी 'भुइया' जातिकी शाखा।

पवनवाण (सं॰ पु॰) वह वाण जिसके चलानेसे हवा वेगसे चलने लगे।

पवनवाहन (सं॰ पु॰) अग्नि।

पवनविजय (सं॰ पु॰) पवनं श्वासवायुं विजयतेऽनेन वि-जि-करणे-अप्। देहस्थित श्वास और प्रश्वास वायुकी गतिसे शुभाशुभसूचक ग्रन्थभेद।

इस ग्रन्थसे श्वास और प्रश्वास वायु द्वारा शुभ और अशुभ फल जाना जाता है अर्थात् किस नासिका द्वारा श्वास प्रवेशित होनेसे और किस नासिका द्वारा प्रश्वास लेनेसे कैसा फलाफल होगा उसका विषय इस ग्रन्थमें वर्णित है। गरुड़पुराणमें लिखा है,—महादेवने हरिसे यह वृत्तान्त सुन कर पार्वतीसे कहा था, 'हे देवि! देहके मध्य नाना जातीय बहुसंख्यक नाड़ियां हैं। नाभिके अधोदेशमें इनका स्कन्ध है। इस स्कन्धसे सभी अङ्कुर निकल कर शरीरमें व्याप्त हैं। इनमेंसे तीन श्रेष्ठ हैं, वामा, दक्षिणा और मध्यमा। वामा सोमात्मिका, दक्षिणा रवितुल्या और मध्यमा अग्निस्वरूपा है। वामा अमृतरूपिणी हो कर जगत् आप्यायित करती है, दक्षिणा रौद्रभागसे जगत् शुष्क करती, इत्यादि। (गरुड़पु॰ ६७ अ॰) पहले जिन वामा, दक्षिणा और मध्यमाका उल्लेख किया गया है, उन्हें ईड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना कहते हैं। अति संक्षिप्तभावमें इनका फलाफल नीचे दिया जाता है।

तत्त्वादिके उदयानुसार श्वास और प्रश्वास हुआ करता है। वाम नासिकाके श्वास-उदयके निरूपित समयमें यदि दक्षिणनासिकामें अथवा दक्षिण नासिकाके श्वास-उदयके निरूपित समयमें वाम नासिकामें श्वास उदय हो, तो उस व्यक्तिका उस दिन अशुभ और नुकसान होता है। जब वाम नासिकासे श्वास निर्गम हो, उस समय शुभ कर्म करनेसे शुभ होता है। यात्रा, दान, विवाह और वस्त्रालङ्कार धारण प्रभृति कार्य इस समय करना उचित है। दक्षिण नासिका हो कर श्वास प्रवेशके समय जितने प्रकारके क्रूर कर्म हैं उन्हें करनेसे कार्यसिद्धि होती है। इस समय युद्ध-यात्रा, द्यूत, स्नान, भोजन, मैथुन, व्यवहार, भय और भङ्ग प्रभृति सभी कार्य कर सकते हैं।

जब सुषुम्नामें श्वासका उदय हो, उस समय शुभ वा अशुभ कोई भी कार्य न करें; कार्यका अनुष्ठान करनेसे निष्फल होता है। इस समय एकमात्र योगसाधनादिका अनुष्ठान ही विधेय है। यात्राके समय जिस नासिका हो कर श्वास निकले, यदि उसी ओरका पद आगे बढ़ावे, तो कार्यकी सिद्धि होती है। दक्षिण नासिकामें श्वास प्रवेशके समय षट्कर्म अर्थात् मारण, मोहन, स्तम्भन, उच्चाटन और वशीकरण आदिका अनुष्ठान करनेसे सिद्धिलाभ होता है। सोम, शुक्र बुध और वृहस्पतिवारको वाम नासिकामें श्वास प्रवेशके समय कोई कार्य करनेसे वह सिद्ध नहीं होता। शुक्लपक्ष होनेसे विशेष फल प्राप्त होता है। रवि, मङ्गल और शनिवारको दक्षिण-नासापुटमें श्वास प्रवेशके समय जिस किसी कार्यका अनुष्ठान किया जाय, वह सुसिद्ध होता है। विशेषतः कृष्णपक्षमें यह अधिक फलप्रद है। दक्षिणनासिका हो कर वायु निकलनेसे दक्षिण और पश्चिमकी ओर तथा वाम-नासापुट हो कर वायुके निकलनेसे पूर्व और उत्तरकी ओर यात्रा निषेध है। इसका लङ्घन करके यात्रा करनेसे अनिष्ट होनेकी सम्भावना है। यात्राकालमें जिस नासिकामें श्वासका उदय होगा, पहले वही पद आगे बढ़ावे, ऐसा करनेसे यात्रादि सिद्ध होती है। जमीन पर शनि और मङ्गलवारको ७ बार, रवि और सोमवारको १० बार, बुध और शुक्रवारको एक पैर तथा वृहस्पतिवारको दोनों पैर फेंक कर यात्रा करनेसे शुभ होता है। यदि कहीं किसी विशेष कार्यके लिये जाना हो, तो उस समय जिस नासिकासे वायु निकले उस ओरके हाथसे नासिका स्पर्श कर, वामनासिका हो कर वहन कालमें जमीन पर ४ बार और दक्षिणनासिका हो कर वहन कालमें ५ बार पदाघात कर यात्रा करनेसे शुभ होता है। प्रातःकालमें उठनेके समय जिस नासिका हो कर वायु वहन हो, उस ओरके हाथसे मुंहको स्पर्श करके उठनेसे वाञ्छित फललाभ होता है, इत्यादि। (पवनविजय स्वरोदय) स्वरोदय देखो।

पवन-व्याधि (सं॰ पु॰) पवनः वायुरोग एव व्याधिरस्य। १ उद्धव, श्रीकृष्णके सखा। २ वायुरोग।

पवनसंघात (सं॰ पु॰) दो ओरसे वायुका आ कर आपसमें जोरसे टकराना जो दुर्भिक्ष और दूसरे राजाके आक्रमणका लक्षण माना जाता है।

पवन-सुत (सं॰ पु॰) १ हनुमान्। २ भीमसेन।

पवना (हिं॰ पु॰) झञ्ज, पौना।

पवनात्मज (सं॰ पु॰) पवनस्य आत्मजः पुत्रः। १ हनुमान्। २ भीमसेन। ३ अग्नि।

"आकाशाद्वायुः वायोरग्निः" (श्रुति)

वायुसे अग्नि उत्पन्न हुई है, इसीसे अग्निको पवनात्मज कहते हैं।

पवनाल (सं॰ पु॰) पवनाय निष्पावाय अलति पर्याप्नोतीति अल-पर्याप्तौ अच्। धान्यविशेष, पुनेरा नामका धान्य (Andropogon saccharatus)। पर्याय—देवधान्य, चर्णाह्न, जुइन, जुनल, वोजपुष्प, पुष्पगन्ध। गुण—हितकर, स्वादु, लोहित, श्लेष्म और पित्तनाशक, अवृष्य, तुवर, रूक्ष, क्लेदकारी और लघु।

पवनाश (सं॰ पु॰) पवनं वायुं अश्नाति भक्षयतीति अश-भोजने कर्मण्यण्, इति अण्। सर्प, सांप।

पवनाशन (सं॰ पु॰) पवन-अश-ल्यु। १ सर्प। सर्प केवल हवा पी कर रहता है, इसीसे पवनाशनके अर्थसे सर्पका बोध होता है। (त्रि॰) २ वायुभक्षणमात्र जो केवल हवा पी कर ही रहता हो।

पवनाशनाश (सं॰ पु॰) पवनाशस्य सर्पस्य नाशो यस्मात् वा पवनाशनं सर्पमश्नातीति अश-अण्। १ गरुड़। २ मयूर, मोर।

पवनाशिन् (सं॰ पु॰) पवन-अश-णिनि। १ सर्प, सांप। (त्रि॰) २ जो हवा खा कर रहता हो।

पवनास्त्र (सं॰ पु॰) पुराणानुसार एक प्रकारका अस्त्र। कहते हैं, कि इसके चलानेसे बहुत तेज हवा चलने लगती थी।

पवनी (हिं॰ स्त्री॰) गांवोंमें रहनेवाली वह प्रजा या नीच जाति जो अपने निर्वाहके लिये क्षत्रियों, ब्राह्मणों अथवा गांवके दूसरे रहनेवालोंसे नियमित रूपसे कुछ पाती है।

पवनेश्वर (सं॰ पु॰) पवनेन स्थापितः ईश्वरः ईश्वरलिङ्ग। काशीस्थित शिवलिङ्गभेद।

पवनेष्ट (सं॰ पु॰) पवने वायुरोगे इष्टः। १ महानिम्ब, बकायन। २ निम्बवृक्ष, नीबूका पेड़।

पवनाम्बुज (सं॰ क्ली॰) पवनं पवित्रं अम्बुजमिव पृषोदरादित्वात् साधुः। परूषकवृक्ष, फालसा।

पवमान (सं॰ पु॰) पवते शोधयतीति पूङ् शोधने शानच् ततो मुमागमः (पूङ्यजोः शानन्। पा ३।२।१२८) १ वायु, समीर। २ स्वाहादेवीके गर्भसे उत्पन्न अग्निके एक पुत्रका नाम। स्वाहादेवीके तीन पुत्र थे, पावक, पवमान और शुचि। ३ निर्मथ्याग्नि। इसे गार्हपत्याग्नि भी कहते हैं। ४ सोम, चन्द्रमाका नामान्तर। ५ ज्योतिष्टोम यज्ञमें साम्या कर्तृक गेय स्तोत्रभेद, ज्योतिष्टोम यज्ञमें साम्यासे गाथा जानेवाला एक प्रकारका स्तोत्र। ६ विरादभेद।

पवमानात्मज (सं॰ पु॰) पवमानस्य वायोरात्मजः। हव्यवाहन, अग्नि।

पवमानवत् (सं॰ त्रि॰) पवमानः विद्यतेऽस्य, पवमान-मतुप मस्य व। पवमानयुक्त, स्तोत्रविशिष्ट।

पवमानहविस् (सं॰ क्ली॰) पवमान अग्निके उद्देश्यसे देने योग्य हविः।

पवमानेष्टि (सं॰ स्त्री॰) पवमानस्य अग्नेः इष्टिः यागः। अग्नियज्ञ, पवमानहविः।

पवयितृ (सं॰ त्रि॰) पू-णिच् तृच्। पवित्रता सम्पादनकारी।

पवर (हिं॰ स्त्री॰) पंवरि देखो।

पवरिया (हिं॰ पु॰) पौरिया देखो।

पवर्ग (सं॰ पु॰) वर्णमालाका पांचवां वर्ग जिसमें प, फ, ब, भ, म ये पांच अक्षर हैं।

पवष्टिक (सं॰ पु॰) ऋषिभेद।

पवाँर (हिं॰ पु॰) १ पमार, पवाड़। २ क्षत्रियोंकी एक शाखा। परमार देखो।

पवाँरना (हिं॰ क्रि॰) १ फेंकना, गिराना। २ खेतमें छितरा कर बीज बोना।

पवाई (हिं॰ स्त्री॰) १ एक फर्द जूता, एक पैरका जूता। २ चक्कीका एक पाट।

पवाका (सं॰ स्त्री॰) पुनातीति पूञ्, आप् प्रत्ययेन निपातनात साधुः (बलाकादयश्च । उण् ४।१४) वात्या, चक्रवात ।

पवाड़ (हिं॰ पु॰) चकबड़ ।

पवाड़ा (हिं॰ पु॰) पंवाड़ा देखो ।

पवाना (हिं॰ क्रि॰) भोजन कराना, खिलाना ।

पवार (हिं॰ पु॰) परमार देखो ।

पवारु (सं॰ पु॰) कारवेल्ल ।

पवि (सं॰ पु॰) पुनातीति पूञ् शोधने इ, (अचू इः । उण् ४।१३८) १ वज्र । २ बिजली, गाज । ३ वाक्य । ४ स्नुही वृक्ष, थूहर । ५ मार्ग, रास्ता ।

पवित (सं॰ त्रि॰) पूयतेस्म पूङ्-क्त ततः इड़ागमः (पूङश्च । पा ७।२।५१) १ पूत, पवित्र, शुद्ध । (क्ली॰) २ मिर्च ।

पविताई (हिं॰ स्त्री॰) शुद्धि, पवित्रता, सफाई ।

पवितृ (सं॰ त्रि॰) पुनातीति पू-तृच् । पवित्रताकारक ।

पवित्र (सं॰ क्ली॰) पूयतेऽनेनेति पू (पुवः संज्ञायाम् । पा ३।२।१८५) इति इत्र । १ वर्षण, मेंह, बारिश । २ कुश । ३ ताम्र, तांबा । ४ पयः, दूध । ५ जल, पानी । ६ घर्षण, रगड़ । ७ अर्घोपकरण । ८ यज्ञोपवीत, जनेऊ । ९ घृत, घी । १० मधु । ११ कुशकी बनी हुई पवित्री जिसे श्राद्धादिमें अंगुलियोंमें पहनते हैं । १२ शुद्धद्रव्य । पर्याय—पूत, मेध्य, शुद्ध, शुचि, पुण्य और पूतिवत् । १३ तिलवृक्ष, तिलका पेड़ । १४ पुत्रजीवाका वृक्ष । १५ कात्तिकेयका एक नाम । १६ महादेव । १७ विष्णु । (त्रि॰) १८ शुद्ध, निर्मल, साफ ।

पवित्रक (सं॰ क्ली॰) पवित्र-कन् वा पवित्रे पयसि कायतीति कै-क । १ जाल । २ सनके सूतका बना हुआ जाल । ३ क्षत्रियका यज्ञोपवीत । पवित्र स्वार्थे कन् । ४ कुश । ५ दमनक, दौनेका पेड़ । ६ उदुम्बर, गूलरका पेड़ । ७ अश्वत्थ, पीपरका पेड़ ।

पवित्रता (सं॰ स्त्री॰) पवित्रस्य भावः, पवित्र-तल्, टाप् । शुद्धि, स्वच्छता, सफाई, पाकीजगी ।

पवित्रधान्य (सं॰ क्ली॰) पवित्रं धान्यं नित्यकर्मधा॰ । यव, जौ ।

पवित्रपति (सं॰ पु॰) पवित्रस्य पतिः । पवित्रपालक, विशुद्ध पालक ।

पवित्रपाणि (सं॰ त्रि॰) पवित्रं पाणौ यस्य । पवित्र हस्त, कुशहस्त हो कर धर्म कर्म करना होता है ।

पवित्रपूत (सं॰ त्रि॰) पवित्रेण पूतः । पवित्र वस्तु द्वारा विशुद्ध ।

पवित्ररथ (सं॰ त्रि॰) पवित्रः रथः यस्य । एक राजा ।

पवित्रवत् (सं॰ त्रि॰) पवित्रं विद्यतेऽस्य पवित्र-मतुप्, मस्य व । पावनरश्मिसंयुक्त ।

पवित्रवति (सं॰ स्त्री॰) क्रौंच द्वीपकी एक वनस्पति ।

पवित्रा (सं॰ स्त्री॰) पवित्र-टाप् । १ तुलसी । २ नदीभेद । ३ हरिद्रा, हलदी । ४ अश्वत्थ, पीपल । ५ शमीवृक्ष । ६ रेशमके दानोंकी बनी हुई रेशमी माला जो कुछ धार्मिक कार्योंके समय पहनी जाती है । ७ श्रावणके शुक्लपक्षकी एकादशी ।

पवित्रात्मा (हिं॰ वि॰) जिसकी आत्मा पवित्र हो, शुद्ध अन्तःकरणवाला ।

पवित्रारोपण (सं॰ क्ली॰) पवित्रस्य यज्ञोपवीतस्य आरोपणं प्रदानं यत्र । श्रीकृष्णसम्प्रदानक उपवीत दानरूप उत्सवविशेष, एक उत्सव जिसमें भगवान् श्रीकृष्णको यज्ञोपवीत पहनाया जाता है ।

श्रावणमासकी शुक्ला द्वादशीको वैष्णवगण भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णका पवित्रारोपणोत्सव करें ।

श्रीकृष्णका यह पवित्रारोपण कब होना चाहिये, हरिभक्तिविलासमें इस प्रकार लिखा है—

"श्रावणस्य सिते पक्षे कर्कटस्थे दिवाकरे ।
द्वादश्यां वासुदेवाय पवित्रारोपणं स्मृतं ॥
सिंहस्थे वा रवौ कार्यं कन्यायान्तु गतेऽथ वा ।
तस्यामेव तिथौ सम्यक् तुलासंस्थे कथंचन ॥"

(विष्णु रहस्य)

श्रावणकी शुक्ला द्वादशीके दिन पवित्रारोपण होगा । यदि किसी विघ्नवशतः उक्त मासमें न हो सके, तो भाद्र, आश्विन वा कार्त्तिक मासमें कर सकते हैं । दूसरे दूसरे विधानोंसे यह प्रतीत होता है कि वैष्णवोंके लिये यह पवित्रारोपण अवश्य कर्त्तव्य है । भाद्रादि मासमें और शुक्ला द्वादशीके दिन यह करना होता है ।

मन्त्रतन्त्रप्रकाशमें लिखा है, कि श्रावण मासमें किसी प्रकारका विघ्न होनेसे हरिशयन शेष होनेके पहले को पवित्रक अर्पण विधेय है । श्रावण मास मुख्य और तदतिरिक्त काल गौण है । हरिशयनके शेष होने पर यह दान नहीं करना चाहिये विष्णु रहस्य आदिमें लिखा है, कि जिन्होंने सभी तीर्थोंमें स्नान और सभी यज्ञ समाप्त किये हैं, पर शास्त्रानुसार पवित्रदान नहीं किया, उनका पूर्वार्जित फल भी निष्फल है । इस कारण इसका अनुष्ठान करना हर-एकका अवश्य कर्त्तव्य है । विष्णुरहस्यमें लिखा है, कि विष्णुको पवित्रदान करनेसे मुक्ति मिलती है और स्त्रीपुरुषका कीर्त्तिप्रद, पवित्र तथा सुख-सम्पद्का कारण है। यह पवित्रदान सभी प्रकारके पुण्योंसे उत्तम है। एक वर्ष जनार्दन विष्णुकी पूजा करनेमें जो फल लिखा है, इस पवित्रदानसे भी वही फल प्राप्त होता है। यह पापसे मुक्त और भवबन्धनसे निष्कृतिलाभ करता है, इस कारण इसका नाम 'पवित्र' पड़ा है। पवित्रारोपणविधि—

सुवर्ण, रजत, ताम्र, क्षौम, सूत्र, पद्मसूत्र वा कार्पास सूत्र द्वारा यह पवित्र प्रस्तुत करे । सूत्रको त्रिगुण करके पीछे उसे फिरसे त्रिगुण कर ले । इस प्रकार प्रस्तुत होने पर उसे पवित्र कहते हैं । इस पवित्रको पञ्चगव्यमें शोधन और विशुद्ध जलमें धो डाले, पीछे मूल मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करके अभिमन्त्रण करे। इसके आद्यभागमें ३६, मध्यमें २४ और अन्तमें १२ ग्रन्थि दे। ये सब ग्रन्थि सुवृत्त और मनोरम हों । उत्तम पवित्रमें अङ्गुष्ठ पर्व परिमाणान्तर, मध्यममें उसका आधा और कनिष्ठमें उसका भी आधा है । इस प्रकार पवित्र निर्माण करके द्वादशीके दिन श्रीकृष्णको अर्पण करे । पवित्रारोपणके पूर्व दिन अधिवास कार्य करके परवर्ती द्वादशीमें प्रातःकृत्यादि यथाविधान करनेके बाद पवित्रदान करना होता है दानके समय नाना प्रकारके वाद्य, उत्सव और नाम संकीर्त्तनका होना आवश्यक है । श्रीकृष्ण तथा उनके परिवारादिकी पूजा समाप्त करके निम्नलिखित मन्त्र पाठ करनेके बाद पवित्र अर्पण करे ।

"कृष्ण कृष्ण नमस्तुभ्यं गृहाणेदं पवित्रकम् ।
पवित्रकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ॥
पवित्रकं कुरुष्वाद्य यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।
शुद्धो भवाम्यहं देव त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥"

पीछे श्रीकृष्णकी महापूजाके समापन, स्तुति और नमस्कारके बाद इष्ट प्रार्थना करे ।

"वनमालां यथा देव ! कौस्तुभं सततं हृदि ।
तद्वत् पवित्रतन्तूंश्च पूजाञ्च हृदये वह ॥
जानताजानता वापि न कृतं यत्तवार्चनं ।
केनचिद्विघ्नदोषेण परिपूर्णं तदस्तु मे ॥"

इस प्रकार पवित्र अर्पण करके मास, पक्ष, त्रिरात्र वा अहोरात्र पर्यन्त रख कर इनका विसर्जन करना होता है । हरिभक्तिविलासमें इसका विशेष विवरण लिखा है विस्तार हो जानेके भयसे यहां अधिक नहीं लिखा गया ।

पवित्रारोहण (सं० क्लो०) पवित्रस्य यज्ञोपवीतस्य, आरोहणं सम्प्रदानं यत्र । पवित्रारोपण ।
पवित्रारोपण देखो ।

कालिकापुराणमें लिखा है कि प्रायः सभी देवताओंको पवित्र रोहण करना होता है । आषाढ़ और श्रावणमासकी शुक्लपक्षीय अष्टमीको दुर्गाका परमप्रीतिकर पवित्रारोहण करे । श्रावणमाससे ही देवीका पवित्र निर्माण करे । आषाढ़ और श्रावणमासमें सभी देवताओंके पवित्रारोहण कर्त्तव्य है । जो देवोद्देशसे पवित्रार्पण करते हैं, उनके सम्वत्सर शुभ होता है । तिथि समुदायके मध्य कुबेरकी प्रतिपद्, लक्ष्मीकी द्वितीया, भवभाविनीदेवीकी तृतीया और उनके पुत्रकी चतुर्थी, सोमराजकी पञ्चमी, कार्त्तिकेयकी षष्ठी, भास्करकी सप्तमी, दुर्गाकी अष्टमी, मातृकाओंकी नवमी, वासुकिकी दशमी, ऋषियोंकी एकादशी, चक्रपाणिकी द्वादशी, अनङ्गकी त्रयोदशी, महादेवकी चतुर्दशी और ब्रह्मा तथा दिक्पालोंकी पौर्णमासी तिथि पवित्रारोहण में प्रशस्त है । जो सब मनुष्य देवताओंके लिये इस पवित्रारोहण क्रियाका अनुष्ठान नहीं करते, उनके सम्वत्सरकृत पूजाका फललाभ नहीं होता । सुतरां यत्न पूर्वक इसका अनुष्ठान करना सबोंका कर्त्तव्य है ।

पवित्रनिर्माणके विषयमें पहले दर्भसूत्र, उसके बाद पद्मसूत्र, सुपवित्रक्षौम और उसके अभावमें कार्पाससूत्र और पट्टसूत्र आवश्यक है। अन्यान्य सूत्र द्वारा पवित्र-निर्माण न करे। गन्ध और सुरभिमाल्य द्वारा पवित्रको यथोचित अर्चना करना चाहिए। कन्या अथवा पतिव्रता और सच्चरित्रा स्त्रियोंका पवित्र-सूत्र कातनेका अधिकार है। दुःशीला नारी कभी भी पवित्रके सूत न काते। सूचिभिन्न, दग्ध, भस्म वा धूम द्वारा अभिगुण्ठित सूत्र पवित्रनिर्माणमें वर्जनीय है और जो सूत्र उपभुक्त, मूषिकदष्ट, रक्तादि द्वारा दूषित, मलिन और नीलराग-युक्त है वह भी वर्जनीय है। उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ भेदसे तीन प्रकारका पवित्र होता है। २७ गुणित सूत्रका जो पवित्र बनाया जाता है, वह कनिष्ठ, ५४ गुणितका मध्यम और १०८ गुणित सूत्रका पवित्र उत्तम माना गया है। यह पवित्र दिव्यलोकका उत्पादक और स्वर्ग तथा मोक्षका साधक है। महादेवीको दान करनेसे शिवसायुज्य लाभ होता है। वासुदेवको दान करनेसे विष्णुलोकमें गति होती है। अष्टोत्तर-सहस्रसूत्रके निर्मित पवित्रको रत्नमाला कहते हैं। रत्नमालासंज्ञक पवित्र दान करनेसे कोटिसहस्रकल्प स्वर्गलोकमें रह कर अन्तमें शिवत्व प्राप्त होता है। इस प्रकार अष्टोत्तर-सहस्रसूत्र द्वारा जो पवित्र बनता है, उसे नागहार कहते हैं। इसका दान करनेसे सूत्रसंख्यानुसार उतना ही कल्प स्वर्गलोकमें वास होता है। अष्टोत्तरसहस्र तन्तुसे हरिके निमित्त जो पवित्र प्रस्तुत होता है, उसका नाम वनमाला है। वनमाला पवित्र दान करनेसे विष्णुसायुज्य लाभ होता है। पहले जिस कनिष्ठ पवित्रका उल्लेख किया गया है, वह नाभिदेश-प्रमाणका होगा और उसमें १२ ग्रन्थि रहेंगी। मध्यम पवित्र ऊरु पर्यन्त और २४ ग्रन्थियुक्त उत्तम पवित्र जानुपर्यन्त लम्बमान और ३६ ग्रन्थिका होना चाहिये। नागहार नामक पवित्रमें यथाविधि एक सौ आठ ग्रन्थि बनाना विधेय है। जिस रंगसे पवित्र-निर्माण करे, ग्रन्थि उस रंगके सूतसे न बना कर अन्य रंगसे बनावे।

पवित्रदानके पूर्व दिन अधिवास करके दूसरे दिन उसमें मन्त्रन्यास करे। पवित्रकी सभी ग्रन्थियोंमें अङ्गुष्ठके अग्र भाग द्वारा मन्त्रगण करके न्यास करे। इस प्रकार मन्त्रन्यास करने पर पवित्र देवीके अङ्गमें योजित होता है। दुर्गातन्त्रमन्त्र द्वारा तत्त्वन्यास करना कर्त्तव्य है। एक यज्ञपात्रमें सभी पवित्रको रख कर उस पात्रमें उत्तम गन्ध और पुष्पादि रखने होते हैं। पीछे उसमें न्यास करना होता है। उस पवित्रमें कुङ्कुम, उशीर, कर्पूर और चन्दनादिका विलेपन आवश्यक है। इसके बाद न्यासादि समाप्त करके दुर्गातन्त्रके अनुसार दुर्गा-वो द्वारा देवीके मस्तकमें पवित्र अर्पण करे। जिन जिन देवताओंका पूजाविधान जिस जिस प्रकार है, उसी उसी विधानके अनुसार उन देवताओंकी पूजा करके पवित्रार्पण विधेय है।

इसमें नानाविध नैवेद्य, पेय, अनेक प्रकारके पिष्टक, मोदक, नारिकेल, खर्जूर, पनस, आम्र प्रभृति विविध फल, सभी प्रकारके भक्ष्य और भोज्य, मद्य, मांस, ओदन, गन्धपुष्प, मनोहर धूपदीप और वसनभूषण प्रभृति उप-चार देने होते हैं। रात्रिको नट और वेश्या द्वारा नृत्य-गीत करा कर आनन्दचित्तसे रात्रि जागरण करे। इस उत्सवमें द्विजातियोंके साथ ब्राह्मण, ज्ञाति और कुटुम्बादिको भोजन कराना होता है। पवित्रारोहण सम्पन्न हो जाने पर सुवर्ण, गो-प्रभृति दक्षिणा दे कर विसर्जन करना होता है। इसका दान करनेसे वात्स-रिक पूजा करनेका फल मिलता है तथा मानव शत-कोटीकल्प देवीके गृहमें वास करते हैं। कालिकापुराण-के ५६ अध्यायमें और गरुड़पुराणके २४ अध्यायमें इसका विशेष विवरण लिखा है।

पवित्राश्म (सं० पु०, सनका बना हुआ डोरा जो प्राचीन-कालमें भारतमें बहुत पवित्र माना जाता था।

पवित्रित (सं० त्रि०) पवित्रमस्य सञ्जातः तारकादि-त्वादि तच्। शुद्ध किया हुआ, निर्मल किया हुआ।

पवित्रिन् (सं० त्रि०) पवित्र अस्त्यर्थे इनि। पवित्रतायुक्त।

पवित्री (सं० स्त्री०) कुशका बना हुआ एक प्रकारका छल्ला जो कर्मकाण्डके समय अनामिकामें पहना जाता है।

पविधर (सं० पु०) वज्रधारण करनेवाले, इन्द्र।

पविन्द (सं० पु०) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

पविमत् (सं० पु०) सामभेद।

पवीढ (सं० त्रि०) पू-ह्वच् वेदे इटो दीर्घः। शोधक।

पवीनव (सं० पु०) गर्भोपद्रावक असुरभेद, अथव वेदके अनुसार एक प्रकारके असुर जिनके विषयमें लोगोंका विश्वास था कि ये स्त्रियोंका गर्भ गिरा देते हैं।

पवीर (सं० क्ली०) १ आयुध, अस्त्र, हथियार। २ वज्र। ३ हलकी फाल।

पवीरव (सं० पु०) पवेः वज्रस्य रवः, वेदे दीर्घः। १ वज्र या वज्रका शब्द।

पवीवत् (सं० त्रि०) पवीरं विद्यतेऽस्य मतुप्, मस्य व। फालसंयुक्त, जिसमें फाल लगी हो।

पवेरना (हिं० क्रि०) छितरा कर बीज बोना।

पवेरा (हिं० पु०) वह बोआई जिसमें हाथसे छितरा या फेंक कर बीज बोया जाय।

पव्य (सं० त्रि०) पू-यत्। १ शोध्य। (पु०) २ यज्ञपात्रादि।

पशम (हिं० स्त्री०) १ बहुत बढ़िया और मुलायम ऊन जो प्रायः पञ्जाब, काश्मीर और तिब्बतकी बकरियों परसे उतरता है और जिससे बढ़िया दुशाले और पशमीने आदि बनते हैं। पश्वादिका लोम ही प्रकृत पशम कहलाता है। किन्तु भारतवर्षसे छागलादिके लोमको यूरोपमें रफ्तनी हो कर कोमल, मोटे और नरम सूतके आकारमें बंडल बांध कर जो सब द्रव्य पुनः भारतादि नाना देशोंमें भेजे जाते हैं, वे साधारणतः पशम वा ऊन कहलाते हैं। दक्षिण भारतके अधित्यकाप्रदेश, नीलगिरि-पर्वतमाला, महिसुरसे समग्र दाक्षिणात्य, खान्देश, गुजरात, बरार, मालवा, राजपूताने, हरियाने और दिल्लीप्रदेश तथा हिमालय पर्वतके अधिकांश स्थान, काश्मीर और भोटराज्यमें भेड़ और बकरेके शरीर पर जो रोएं उत्पन्न होते हैं, उन्हींको प्रधानतः 'पशम' कहते हैं। चामरोगी और तिब्बतदेशीय लामा नामक बकरेके रोएंसे शाल प्रस्तुत होता है, इस कारण वहांके लोग बड़े यत्नसे भेड़े और बकरे आदिको पालते हैं। दाक्षिणात्यमें भी इसी उद्देशसे बकरे पाले जाते हैं। इससे बढ़िया दुशाले और पशमीने प्रस्तुत होते हैं जो बेचनेके लिये नाना स्थानोंमें भेजे जाते हैं। शीतप्रधान देशोंमें ये सब वस्त्र शीतनिवारणमें विशेष उपयोगी हैं। हिमालयके निकटवर्त्ती और उत्तरवर्त्ती शीतप्रधान देशोंमें शीतकी अधिकताके कारण पशमीने कपड़ेकी जरूरत पड़ती है, इस कारण वहांके लोग भेड़का अधिक आदर करते हैं।

विभिन्न देशोंमें पशमके पृथक् पृथक् नाम है। पशम, ऊल—बङ्गला ; सुफ, वाबर, ताफतिक—अरबी ; यांमो—चीन ; उन्द—दिनेमार ; Wol—ओलन्दाज ; लिने—फरासी ; Wolle—जर्मनी ; ऊन—गुजराती, Lana—इटली और स्पेन ; बुलु—मलय ; पशम, पुन, पश्—पारसी ; Welna—पोलैण्ड ; La, Laa—पुर्त्तगाल; Wolna, Seherst—रूस ; लोमऊर्ण—संस्कृत; Woo-or-oo-स्काट ; ऊल—स्वेडन और बच्चु—तेलगू।

महामति बार्निस (Sir A Barnes)-ने लिखा है, कि तुर्किस्तानके बोखारा और समरकन्द जिलेजात छागलके लोम, काबुलजात पशुलोमसे बहुत ही उत्कृष्ट, किन्तु तिब्बतदेशीय मेषके लोमकी अपेक्षा पूर्णमात्रामें निकृष्ट होते हैं। काश्मीरदेशमें जो विख्यात शाल दुशाले बनते हैं, वे समरकन्दके छागलके लोम और तिब्बतीय मेषकी पशमके मेलसे ही बनाये जाते हैं, इसीसे तुर्किस्तानजात उस पशुके लोमकी सारे पञ्जाबके अन्तर्गत अमृतसरनगरमें आमदनी होती है। काबुलजात छागलके लोम किसी देशमें नहीं भेजे जाते। स्वदेशवासियोंके परिच्छदमें ही वे सब खप जाते हैं। काबुलके दुंबा Fat-tailed Sheep) नामक भेड़से श्वेत लोम प्रभूत परिमाणमें पाया जाता है जो उस देशमें पशम-ई-बुराक कहलाता है। इससे निर्मित वस्त्रको 'बुराक' और छागलज लोमसे प्रस्तुत परिच्छदादिको 'पट्ट' कहते हैं। वे यह भी कहते हैं, कि काबुलके प्रायः अधिकांश स्थानमें पशमके लिये छागलादि पाले जाते हैं। लहोनी और खिलजी जाति ही लोमके लिये भेड़े, बकरे आदि चराया करती है। लोमसंग्रहके व्यवसायमें ये ही लोग प्रधान हैं। यहां एक प्रकारका सुगन्धित पौधा उत्पन्न होता है, जिसके खानेसे लोम बढ़ते और परिष्कार होते हैं।

दुंबा नामक मेषके लोमसे निर्मित वस्त्र और गलीचा

प्रभृति भारतवर्षमें बेचनेके लिये भेजी जाती हैं। पेशावर, काबुल, कन्दहार, हिराट और खिलात आदि स्थानोंके चारों ओरके प्रदेशमें तथा लवणपर्वत पर (Salt-range) भेड़े अधिक संख्यामें रहते हैं। इन भेड़ोंसे प्रचुर परिमाणमें पशम उत्पन्न होती है और वाणिज्यव्यपदेशमें शाल और वस्त्रादि बनानेके लिये भारतवर्ष तथा अन्यान्य स्थानोंमें भेजी जाती है। पेशावर और काबुलजात दुम्बाका लोम ही साधारणतः काबुली पशम वा 'पुत' कहाता है।

पञ्जाब प्रदेशमें साधारणतः जो सब पशम शाल बनानेके काममें आती हैं, वह नीचे लिखा जाता है ;—

१ शालकी पशम। तिब्बतदेशके बकरेके ठीक चमड़ेके ऊपर और मोटे रोएंके नीचेकी तहमें जो बारीक पशम होती है वह स्वभावतः मुलायम और शाल बनानेमें विशेष उपयोगी है। इस जातिकी सर्वोत्कृष्ट पशम तर्फान, किचार और चीनप्रदेशसे काश्मीर लाई जाती है। काश्मीरके महाराज इस जातिकी पशमको खरीद कर लेते और उन्हींके कर्त्त्वाधीनमें कीमती शाल दुशाले तैयार होते हैं। अमृतसर, लुधियाना, नूरपुर और जलालपुर आदि स्थानोंमें विस्तृत शालका कारबार है।

२ काबुल और पेशावरजात दुम्बाजातिके मेषकी पशम। इससे विख्यात रामपुरी चादर तैयार होती है।

३ वाहवशाही वा किर्मानी पशम। यह पारस्य उपसागरके तीरवर्त्ती किर्मानदेशजात मेषके लोमसे उत्पन्न होती है। स्वनामख्यात काश्मीरी शालके खापको मुलायम बनानेके लिये यह लोम मिलाया जाता है।

४ काबुली बकरेकी 'पुत्' नामक पशम।

५ ऊंटके कोमल लोम। इससे एक प्रकारका वस्त्र तैयार होता है।

६ समतल क्षेत्रस्थ मेषादिके लोम।

पञ्जाबमें जिन सब बकरोंके लोम बेचे जाते हैं उन्हें 'जाट' कहते हैं। जाटसे देशवासिगण रस्सी, चटाई आदि बनाते है। तिब्बत प्रान्तवर्त्ती हिमालयदेशमें जिन सब बकरोंके लोम पाये जाते हैं, उन्हें 'लेना' कहते हैं। गारो पर्वतके निकटवर्त्ती स्थानमें मानसरोवर और उससे भी पूर्वांशमें शाल प्रस्तुतकी उपयोगी प्रकृष्ट पशम पाई जाती है।

भारतवर्षसे पशम प्रधानतः इङ्गलैण्ड (Great Britain), फ्रान्स और अमेरिका आदि सुसभ्य जगत्में भेजी जाती है। उधर इङ्गलैण्डके नानास्थानोंमें और यूरोपके शीतप्रधान देशोंमें नाना जातीय पशुओंके गात्रावरक चर्म और दृढ़ लोमावलिके मध्यभागमें पशम नामके जो सूक्ष्म लोम उत्पन्न होते हैं, वे शाल बनात आदि पशमीने बनानेके काममें आते हैं। चामरी-गो, किर्घिज देशीय उष्ट्र, लाहोरके कश्मसार, आइवेक्स (Ibex) नामक पार्वतीय छागल और तातार तथा चीनतातार देशीय कुत्तोंके कोमल लोमसे नाना प्रकारके गात्रवस्त्र, थैली, बेग, तम्बू, अंगरखे, बिछावनकी चादर, कम्बल, मलीदा, रस्सी और जूड़ा बांधनेके फीते आदि द्रव्य प्रस्तुत होते हैं।

छागलसे पशम-संग्रहके लिये शीतप्रधान देशोंमें विस्तृत व्यवसाय होता है। इसीसे वहांके लोग छागल और मेषका प्रतिपालन करते हैं। मेषसे बढ़िया और चमकीली पशम उतारनेमें मेषादिके स्वास्थ्य और आहार पर विशेष ध्यान रखना उचित है। जिन सब पार्वतीय अंशोंमें छागलादि विचरण करते हैं वहांकी लताएं तथा तृणादि बलकारक हैं वा नहीं तथा वहांकी आबहवा और भूम्यादि सूखी है वा गीली आदि बातें मेषपालकोंको जानना नितान्त आवश्यक है। क्योंकि अस्वास्थ्यकर स्थानमें रहनेसे पालित छागादिको कष्ट पहुंच सकता है। रोगग्रस्त पशुसे उत्कृष्ट पशम नहीं मिलती, ऐसे पशुसे जो पशम पाई जाती है, वह साधारणतः रूक्ष, उज्ज्वलता-विहीन और अल्पमात्रामें होती है। इस कारण भ्रमणशील जातिमात्र ही स्थानपरिवर्त्तन करनेके पहले विशेष परीक्षा द्वारा जमीन निर्वाचन कर लेते हैं। धातुके मल वा भस्मावशेष संयुक्त स्थानमें छागादिकी पशम नष्ट हो जाती है; किन्तु चिकने और पङ्कमय मृत्तिकावृत स्थानमें पशमकी अधिकता और कोमलता बढ़ती है। गलदेशसे पुच्छ पर्यन्त पृष्ठदण्डके ऊपरी भाग पर विस्तृत लोम सर्वापेक्षा कोमल होते हैं। मेरिनो छागलके लोमसे जो वस्त्र बनता है, वह मेरिनो वा मेरून नामसे प्रसिद्ध है।

इन सब छागलोंके साधारणतः निम्नलिखित कई रोग देखनेमें आते हैं।

मस्तिष्कोदक (Hydrocephalus), संन्यास (Apoplexy), मस्तिष्क-प्रदाह (Inflamation of the brain) होनेसे पशु क्रमशः कमजोर हो जाता है और उसमें चलने फिरनेकी शक्ति नहीं रह जाती । वायुके प्रकोपसे खाद्यादिके साथ उदरकी स्फीति, यकृत्‌युक्त पीड़ा और वेदना, उदर-गह्वरमें रक्तस्रोत, उदरामय, कासरोग, फुसफुसका प्रदाह, स्तन-प्रदाह आदि रोग इनके स्वास्थ्यके हानिकारक हैं और कभी कभी उनसे प्राण भी निकल जानेका डर रहता है। एक दलमें यदि कासरोग हो जाय, तो वह तमाम दलोंमें फैल जाता है।

पशमके तारतम्यानुसार पशुके लोम साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त हैं। चाङ्गथान, तफोन और किर्मान आदि स्थानोंकी पशम सर्वोत्कृष्ट होती है और इसीसे कश्मीरी शाल दुशाले बनते हैं । उससे निम्न लादक, रोदक, स्पिति, रामपुर, बसहिर और खोटान आदि स्थानोंकी पशम ले कर अमृतसर, नूरपुर, लुधियाना आदि स्थानोंके शालका व्यवसाय चलता है। चामरी-गो और आइबेक्स नामक भेड़के लोमसे चामर बनते हैं।

पेशावर, काबुल, कन्दहार और किर्माणी वा पारसीय पशम द्वितीय श्रेणीकी है। इसके बाद अन्यान्य सभी पशुओंके लोम इससे निकृष्टतर समझे जाते हैं।

भारतवर्षसे पशुकी पशम इङ्गलैण्ड आदि यूरोपखण्डमें और अमेरिकादेशमें भेजी जाती तथा वहांसे पुनः विभिन्न आकारमें इसकी आमदनी भारतवर्षमें होती है। इङ्गलैण्ड और अन्यान्य स्थानीय बकरी तथा कुत्तोंके लोमसे निर्मित एक प्रकारका शाल भारतवर्षमें भेजा जाता है, जो विलायती शाल कहलाता है । ऐसे शालका मूल्य बहुत होता है। भक्करसे जो पशम बम्बई नगर आती है वह धुल-देशम नामसे प्रसिद्ध है। लुधियानेमें तातारदेशीय छागलोंकी पशमसे पशमीने तैयार होते हैं। वह पशम सूती कपड़े और लोईकी बनी वस्तुओंमें बदली जाती है। व्यवसायिगण घर ला कर पशमको चुनते और बारीक तथा मोटी पशमको अलग अलग रखते हैं । बाद उन्हें चावलके जलमें अच्छी तरह भिगो कर सूत प्रस्तुत करते हैं। बारीक पशमके सूतसे रामपुरी चादर और अपेक्षाकृत मोटी पशमसे नाना प्रकारके पशमीने बनते हैं। उत्तर-एशिया, चीन और भारतवर्षमें पशमीनेका अधिक आदर है।

कम्बल, नामदा, चादर, तम्बूके कपड़े, लोई, पट्टू, मलीदा आदि शीतकालके आवश्यकीय उपकरण पशमसे तैयार होते हैं। एतद्भिन्न इसके साथ पटसन, मखमल और रेशम मिला कर टेबुल आदि पर बिछानेके लिये नाना प्रकारके गलीचे बनाये जाते हैं। जो खूब मजबूत और टिकाऊ होते हैं।

बहु प्राचीनकालसे पशमका वाणिज्य चला आ रहा है। भारतकी बात तो दूर रहे यूरोपखण्डमें भी पहले पशमका आदर था। ई०सन्‌के पहले रोमन और ग्रीक लोग पशमीनेकी कदर करते थे। भारतमें मेसिडेनीय युद्धके बाद ग्रीक लोग भारतवर्ष आ कर पशमीने बनानेके तरीके सीख गये। रोमवासी स्त्री-पुरुष दोनों ही पशमके कपड़े पहनते थे। बाइबल धर्मपुस्तकमें भी पशमीनेका प्रसङ्ग है। भारतकी प्राचीन पशमके वाणिज्यकी कथा बहुतसे लोग स्वीकार करते हैं।*

पशमी (फा० वि०) लोमसम्बन्धीय, ऊनका बना हुआ।

पशमीना (फा० पु०) १ पशम। २ पशमका बना हुआ कपड़ा या चादर आदि।

पशव्य (सं० त्रि०) पशोरिदं पशवे हितं वा पशु-यत्। १ पशुसम्बन्धि। २ पशुहितकर।

पशु (सं० पु०) अविशेषेण सर्वं पश्यतीति दृश-कु (अर्जि दृशि कम्यमिपंसीति । उण् १।२८) वा पशयन्ति पश्यन्ति पार्श्वस्थाभ्यां हिताहितं, पश-कु। चतुष्पद और लाङ्गुलविशिष्ट जन्तुविशेष।

भाषारत्नमें कणादने इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है,—'लोमवल्लांगुलवत्वं पशुत्वं' लोम और लाङ्गुलविशिष्ट जन्तुको पशु कहते हैं। अमरकोषमें पशुभेद स्थानमें इन सब पशुओंका उल्लेख है, सिंह, व्याघ्र, तरक्षु, वराह, कपि, भल्लुक, खड्गी, महिष, शृगाल, बिड़ाल,

* And we have indirect evidence from various quarters to show the prevelence of a similar custom, in the East generally, in early times. (Eng. Cyclo. Art. & Sc. Vol. V. p. 997

गोधा, श्वावित्, हरिण, कृष्णसार, न्यङ्कु, रङ्कु, शम्बर, रौहिष, गोकर्ण, पृषत, एण, ऋक्ष, रोहित, चमर, गन्धर्व, शरभ, राम, सृमर, गवय, शश, खड्गाश, गो, उष्ट्र, छाग, मेष, खर, हस्ती और अश्व। पशुके दो भेद देखनेमें आते हैं, ग्राम्य पशु और वन्य पशु। इनमें से गो, अवि, अज, अश्व और अश्वतर तथा गर्दभ और पैठोनसी ये सात ग्राम्य पशु तथा महिष, वानर, ऋक्ष, सरीसृप, रुरु, पृषत और मृग ये सात वन्य पशु हैं।

छागादिमें पशुपदका प्रयोग हुआ करता है।

"उष्ट्रो वा यदि वा मेषश्छागो वा यदि वा हयः।
पशुस्थाने नियुक्तानां पशुशब्दोऽभिधीयते॥"

(यज्ञपार्श्व)

उष्ट्र, मेष, छाग और अश्व ये सब पशु स्थानमें नियुक्त होते है, इस कारण इन्हें पशु कहते हैं। वैद्यकके मतसे पशु भूमय और जाङ्गल दो प्रकारका है। इन सब पशुओंके मांसका गुण मांस शब्दमें देखो। अवैध भावसे पशुहिंसा नहीं करनी चाहिये। जो अवैधरूपसे पशुका हनन करते हैं, वे उस पशुके रोम संख्यानुसार घोर नरकमें वास करते हैं।

"वसेत् स नरके घोरे दिनानि पशुरोमभिः।
सम्मितानि दुराचारो यो हन्त्यविधिना पशून्॥"

(गरुडपु० ६५ अ०)

विधिपूर्वक पशु-हिंसा दोषणीय नहीं है। तिथितत्त्वमें मीमांसित हुआ है, कि वैधहिंसाजनित किसी प्रकारका पाप नहीं होता। किन्तु सांख्यतत्त्वकौमुदीमें वाचस्पतिमिश्रने लिखा है, कि वैधपशुहिंसामें भी पाप है। इस जगह ऐसा वचन है, 'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि' भूतमात्रको हिंसा न करे, यह सामान्य विधि है। 'अग्निषोमीयं पशुमालभेत' अग्नि षोमयज्ञमें पशुको हिंसा कर सकते हैं, यह विशेष विधि है। इस विशेष विधि द्वारा सामान्य विधिका खण्डन हुआ; अर्थात् वैधहिंसामें कोई दोष नहीं। रघुनन्दन और मीमांसकोंका भी यही मत है। किन्तु वाचस्पतिमिश्रने विचार करके कहा है, कि यह सामान्य और विशेष विधि नहीं है। ये दोनों स्वतन्त्र विषय हैं। 'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि' इस विधि द्वारा हिंसा मात्रको निषेध है और हिंसा अनर्थकरी है इस वचनमें यह भी समझा गया। 'अग्निषोमीयं पशुमालभेत' अग्निषोम यज्ञमें पशुहनन विधेय है, यह पशुहनन यज्ञका उपकारक है। यज्ञमें पशुको हिंसा करनेसे यज्ञको उपकार होता है, किन्तु इसमें कोई पाप नहीं होता, ऐसा नहीं समझा जाता है। वैधहिंसामें पशुहननजन्य पाप भी होता है और यज्ञ सम्पूर्ण होने पर पुण्य भी होता है। इसीसे याज्ञिकोंको पशुहनन करनेसे नरक और यज्ञपूर्ण होनेसे स्वर्ग ये दोनों ही फल प्राप्त होते हैं। यही वाचस्पति मिश्रका मत है। विशेष विवरण वैध-हिंसा शब्दमें देखो।

पशुओंके अधिष्ठात्री देवताका विषय इस प्रकार लिखा है,—सिंहके अधिष्ठात्री देवता दुर्गा, शरभके प्रजापति, एणके वायु, मेषके चन्द्रमा, शशकके नक्षत्रसमूह, कृष्णसारके स्वयं हरि, गाभिके शतक्रतु, गवयके समस्त भुवन, शल्लकके अष्टमङ्गल, गजके गणेश्वर विष्णु, अश्वके द्वादशादित्य और छागलके अधिष्ठात्री देवता अनल हैं। (मत्स्यसूक्तंतन्त्र और पटल)

देवताके समीप पशु-बलि देनेमें लक्षणान्वित पशु को बलि देनी होती है। छागपशुकी बलि देनेमें ब्राह्मणका श्वेत वर्ण छागल, क्षत्रियका रक्त और श्वेत, वैश्यका गौर और शूद्रका नानावर्ण-विशिष्ट छाग ही प्रशस्त है।

"श्वेतञ्च छागलञ्चैव ब्राह्मणस्य विशिष्यते।
रक्तं श्वेतं क्षत्रियस्य वैश्यस्य गौरमेव च॥
नानावर्णं हि शूद्रस्य सर्वेषामञ्जनप्रभं॥" (योगिनीतन्त्र)

२ प्रमथ। ३ देव। ४ प्राणिमात्र। ५ पागल। ६ यज्ञ। ७ संसारियोंकी आत्मा। ८ यज्ञ-उडुम्बर। ९ साधकोंके तीन भावोंमेंसे प्रथम भाव। पशुभाव देखो।

मत्स्यसूक्ततन्त्रमें लिखा है, कि जो प्रतिदिन दुर्गापूजा, विष्णुपूजा और शिवपूजाका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें पशु कहते हैं। १० दर्शन।

पशुकर्म (सं० क्ली०) पशुक्रिया, यज्ञ आदिमें पशुका बलिदान।

पशुकल्प (सं० पु०) पशोः यज्ञाङ्गपशोः कल्पो विधानं। यज्ञादिमें विहित पशुके उपकरणादि और संस्कारादि कर्म।

पशुका (सं० स्त्री०) १ क्षुद्र पशु। २ हरिणभेद, एक प्रकारका हिरन।

पशुकाम (सं० त्रि०) गोमेषादि पानेके अभिलाषी ।

पशुक्रिया (सं० स्त्री०) पशोरिव क्रिया कार्य्यं । मैथुन ।

पशुगन्धा (सं० स्त्री०) अजगन्धा ।

पशुगायत्री (सं० स्त्री०) पशुकर्णजप्या गायत्री । तन्त्रकी रीतिसे बलिदान करनेमें एक मन्त्र जिसको बलिपशुके कानमें उच्चारण किया जाता है । मन्त्र यह है—

"पशुपाशाय विद्महे शिरश्छेदाय धीमहि तन्नः पशुः प्रचोदयात्"

(दुर्गोत्सवतन्त्र)

पशुघ्न (सं० त्रि०) पशुं हन्ति हन-क । पशुघातक ।

पशुचर्या (सं० स्त्री०) पशूनां चर्या, आचरणं । १ स्वेच्छाचार । २ पशुके समान विवेकहीन आचरण, जानवरोंकी-सी चाल ।

पशुचित् (सं० त्रि०) यज्ञाग्निवत् पशुचयनकारी ।

पशुतन्त्र (सं० क्ली०) पशूनां तन्त्रं । १ अनेक उद्देशसे एक जातिका पशुग्रहण । २ पशुघोन । ३ पशुकल्प, पशुत्व ।

पशुता (सं० स्त्री०) पशोर्भावः, पशु-तल्, ततः टाप् । १ पशुका भाव । २ मूर्खता और औद्धत्य, जानवरपन ।

पशुतृप् (सं० त्रि०) पशुओंके तर्पयिता ।

पशुत्व (सं० पु०) पशुका भाव, जानवरपन ।

पशुद (सं० त्रि०) पशुं ददाति दा-क । पशुदाता ।

पशुदा (सं० स्त्री०) कुमारकी अनुचरी एक मातृकादेवी ।

पशुदेवता (सं० स्त्री०) १ पशुओंके अधिष्ठात्री देवता । २ पशुभेदसे देवताविशेष । जिस जिस उद्देशसे पशुबलि दी जाती है, वही वही देवता पशुदेवता कहलाते हैं ।

पशुधर्म (सं० पु०) पशूनामिव यथेष्टमैथुनादिरूपो धर्मः । यथेष्ट मैथुनादि सम्पादक पशुतुल्य धर्म ।

"अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः ।
मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेणे राज्यं प्रशासति ॥"

(मनु ९।६६)

पशुधर्म द्विज और पण्डितोंके लिये निन्दनीय है । राजा वेणके शासनकालमें यह मानव समाजमें प्रवर्त्तित हुआ है । शास्त्रमें पशुधर्मको विरुद्धधर्म बतलाया है । द्विजातिके मध्य विधवा अथवा निःसन्तान नारी पुत्रके लिये स्वामी भिन्न अन्य पुरुषके साथ नियोजिता नहीं हो सकतीं । कारण जो उन्हें ऐसे धर्ममें नियुक्त करते हैं, वे निःसन्देह आर्यधर्मका उल्लङ्घन करते हैं । विवाहके मन्त्रादिमें ऐसा नहीं लिखा है कि, 'एककी स्त्रीसे अन्यका नियोग हो सकता है' और विवाहसम्बन्धीय शास्त्रमें ऐसी विधि भी नहीं कि विधवाओंका पुनर्विवाह हो सकता है । यही भगवान् मनुने पशुधर्म कहा गया है । (मनु ९।६४ ६५)

पशुनाथ (सं० पु०) पशूनां नाथः ६-तत् । १ शिव । २ पशुस्वामी । ३ सिंह ।

पशुप (सं० त्रि०) पशून् पाति पा-क । १ पशुपालक । २ पशुओंका पति ।

पाशुपतास्त्र (सं० पु०) महादेवका शूलास्त्र ।

पशुपति (सं० पु०) पशूनां स्थावरजङ्गमानां पतिः । १ शिव, महादेव । महादेवका पशुपति नाम पड़नेका कारण इस प्रकार लिखा है ।

"ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च पशवः परिकीर्त्तिताः ।
तेषां पतिर्महादेवः स्मृतः पशुपतिः श्रुतौ ॥"

(चिन्तामणिधृतवचन)

ब्रह्मासे लेकर स्थावर पर्यन्त सभी पशु कहलाते हैं । महादेव इन सब पशुओंके पति हैं, इसीसे महादेवका पशुपति नाम पड़ा है । वराहपुराणमें लिखा है,—

"अहंच सर्वविद्यानां पतिराद्यः सनातनः ।
अहं वै पतिभावेन पशुमध्ये व्यवस्थितः ॥
अतः पशुपतिर्नाम तं लोके ख्यातिमेष्यति ॥"

(वराहपुराण)

शिवजी कहते हैं, कि मैं ही सब विद्याके आदि और पति हूं तथा पशुके मध्य पतिभावमें व्यवस्थित होता हूं, इसीसे लोग मुझे 'पशुपति' कहते हैं । नकुलीश-पाशुपत दर्शनके मतसे पशुपति महादेव ही परमेश्वर हैं । सर्वदर्शनसंग्रहमें लिखा है, कि जीवमात्र ही पशुपदवाच्य है । जीवका अधिपति होनेके कारण पशुपति ही परमेश्वर कहलाते हैं । इस दर्शनका मत यह है, कि कोई काम करनेमें जिस प्रकार हम लोगोंको हाथ पैरकी सहायता लेनी पड़ती है, उसी प्रकार पशुपति परमेश्वरने बिना किसी वस्तुकी सहायताके ही जगज्जाल

पदार्थोंका निर्माण किया है। इस लोगोंसे जो सब काम किया जाता है, उसका भी कारण वही पशुपति है। अतः उन्हें समस्त कार्योंका मूल कारण कह सकते हैं। विशेष विवरण पाशुपत शब्दमें देखो।

शैवदर्शनके मतमें भी पशुपति-शिव ही परमेश्वर हैं और जीवगण पशुपदवाच्य। किन्तु नकुलीशके पाशुपत-दर्शनके मतानुसार महादेवके कर्मादिको निरपेक्ष-कर्तृत्व सम्पन्न बतलाया है। शैवदर्शन यह मत स्वीकार नहीं करते। इस मतसे जिस व्यक्तिने जैसा कर्म किया है, परमेश्वर शिव उसे वैसा ही फल देते हैं, यह युक्तिसिद्ध है। इस दर्शनमें पशु, पति और पाशके भेदसे पदार्थको तीन प्रकारका बतलाया है। पति पदार्थ भगवान् शिव हैं और वे भी हैं जिन्होंने शिवत्वपद प्राप्त किया है। पशु शब्दसे जीवात्माका बोध होता है। यह जीवात्मा महत्. क्षेत्रज्ञादि पदवाच्य, देहादिभिन्न सर्वव्यापक, नित्य, अपरिच्छिन्न, दुर्ज्ञेय और कर्त्तास्वरूप है। यह पशुपदार्थ भी फिर तीन प्रकारका है, विज्ञानाकल, प्रलयाकल और सकल। एकमात्र मलस्वरूप पाशयुक्त जीवको विज्ञानाकल, मल और कर्मरूप पाशद्वययुक्तको प्रलयाकल तथा मल, कर्म और माया इस पाशत्रयबद्धको सकल कहते हैं। इनके मध्य समाप्तकलुष और असमाप्तकलुष भेदसे विज्ञानाकल जीव भी दो प्रकारका है। इनमेंसे समाप्तकलुष विज्ञानाकल जीवको परमेश्वर अनुग्रहपूर्वक अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्तिक, श्रीकण्ठ और शिखण्डी इन्हीं विद्येश्वरके पद पर तथा असमाप्तकलुषोंको मन्त्रस्वरूप नियुक्त करते हैं। यह मन्त्र सात कोटि है। प्रलयाकल जीव भी दो प्रकारका है, पक्व-पाशद्वय और अपक्वपाशद्वय। पक्वपाशद्वयको मुक्तिपद प्राप्त होता है और अपक्वपाशद्वयको पूर्यष्टकदेह धारण कर स्वकर्मानुसार तिर्यक् मनुष्यादि विभिन्न योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। (सर्वदर्शनस०)

इस दर्शनका अन्यान्य विवरण पाशुपत और शैवदर्शन शब्दमें देखो।

२ हुताशन, अग्नि। ३ औषधि, दवा। ४ नेपालदेशस्थित शिवलिङ्गभेद। यह पीठस्थान पशुपति नाम से प्रसिद्ध है।

"नेपाले च पशुपतिः केदारे परमेश्वरः।"

पशुपति १ एक ग्रन्थकार। ये वङ्गेश्वर लक्ष्मणसेनके गुरु हलायुधके बड़े भाई और वात्स्यगोत्रीय धनञ्जयके पुत्र थे। इन्होंने श्राद्धतत्त्व और पशुपति-पद्धति इन दो ग्रन्थोंकी रचना की।

२ ग्वालियर राज्यके एक प्राचीन राजा। ये जगद्विख्यात राजा तोरमाणके पुत्र थे। पिता और पुत्रका उत्कीर्ण शिलालिपिसे जाना जाता है कि ये सम्भवतः २८५-३१० ई०के मध्य जीवित थे।

३ विजयानाग्रामके महाराजवंशकी उपाधि।

पशुपतिनाथ—भारत-विख्यात पवित्र शैवतीर्थ, यह नेपाल-राज्यके मध्य अवस्थित है। जिस शैल शिखर पर पशुपतिनाथ महादेवकी मूर्त्ति स्थापित है, वह गिरिदेश भी पशुपति कहलाता है। यहांसे पुण्य सलिला वाग्मती नदी निकल कर काठमाण्डू राजधानीकी ओर चली गई है। पशुपतिका पार्वतीय क्षेत्र वनराजिविराजित और हिन्दू तथा बौद्ध मन्दिर एवं विहारादिसे सुशोभित है। पर्वतकी एक ओर धोबीकोला नदी प्रवाहित है और दूसरी ओर वागमती इस पुण्यमय अधित्यकादेशको बाएं किनारे पर छोड़ती हुई चली गई है। ठीक इसके विपरीत ओर वागमतीके दक्षिण किनारे बुद्धनाथ और दानदेवका विख्यात मन्दिर स्थापित है। यह स्थान पाटन राज्यके अन्तर्गत है। प्रवाद है, कि ई०सन्‌के पहले सम्राट् अशोक इस पर्वत पर गुह्येश्वरी मन्दिर देखने आये थे। उनको आदेशसे मन्दिरके चारों ओर चार आदि-बुद्धकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित हुई। उनकी उपयुक्त कन्याने भिक्षुकी हो कर यावज्जीवन अपना समय उसी मन्दिरमें बिताया। रमणी-जीवनकी पराकाष्ठा दिखा कर उन्होंने अपने नाम पर और अपने खर्चसे 'चारु-विहार' नामक एक विहारकी स्थापना की। मन्दिरमें बुद्ध और ताराओंकी प्रतिकृति खोदित रहनेसे ऐसा मालूम पड़ता है, कि एक समय बौद्धप्रभाव यहां पूर्ण प्रभासे प्रतिभात था। पशुपतिके वर्नाशके उत्तर दानदेवमन्दिरमें आदिबुद्धकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। निवारराज धर्मदत्तने सबसे पहले पशुपतिका महादेवमन्दिर बनवाया। मन्दिरादिका विवरण नेपाल, काठमाण्डू और पाटन शब्दमें देखो।

विश्वेश्वर, केदारनाथ और बदरीनाथ शिवलिङ्गका माहात्म्य जैसा है, नेपालका पशुनाथ भी वैसे ही सर्वत्र पूजित हैं। प्रति वर्ष बहुसंख्यक लोग इस देवमूर्त्तिके दर्शन करने आते हैं।

वाग्मती तीरवर्त्ती प्राचीन देवपाटन नगरमें पशुपतिका मन्दिर प्रतिष्ठित है। अभी देवपाटनका पूर्व सौन्दर्य जाता रहा, अधिकांश स्थान टूट फूट गया है। काठमण्डू नगरसे ३॥ मील उत्तर-पूर्वमें मन्दिर अवस्थित है। वर्त्तमान मन्दिर त्रितल और ५० फुट ऊंचा है।

प्रवाद है, कि रानी गङ्गादेवीने ७०५ ने॰सं॰ (१८८५ ई॰)में इस मन्दिरका संस्कार किया। मन्दिरके चार द्वार हैं और चारों ओर धर्मशाला है। गर्भगृहके मध्यस्थलमें प्रस्तरनिर्मित महादेवकी मूर्त्ति हैं। मूर्त्तिकी ऊंचाई ३॥ फुट है और इसके चार मुख तथा आठ भुजाएं हैं। दाहिने हाथमें चार रुद्राक्ष माला और प्रत्येक बाएं हाथमें कमण्डलु है। मथुरा और उदयगिरिमें गुप्तसमयकी इसी प्रकारकी दो मूर्त्तियां देखी जाती हैं। पूजाके पहले देवमूर्त्तिके गात्रसे स्वर्ण-अलङ्कार उतार दिये जाते हैं। देवमन्दिर संलग्न अनेक शिलालिपियोंमें राजा और अन्यान्य व्यक्तियोंसे प्रदत्त भूम्यादिका उल्लेख है।

महाभारत आदिपर्वमें लिखा है कि अर्जुनने गोकर्णतीर्थमें पशुपतिनाथके दर्शन किये थे।

पशुपल्वल (सं॰ क्ली॰) पशुप्रियं पल्वलं क्षुद्रजलाशय उत्पत्तिस्थानत्वेनास्त्यस्य, अच्। कैवर्त्तीमुस्तक, केवटीमोथा।

पशुपा (सं॰ स्त्री॰) पशु-पा-क्विप्। १ गोप, ग्वाला। २ पशुपालक।

पशुपाल (सं॰ त्रि॰) पशून् पालयति पालि-अण्। १ पशुओंको पालनेवाला, जो वृत्ति ले कर पशुओंको पालता हो।

"पश्नी च पशुपालश्च परिवेत्ता निराकृतिः।
ब्रह्मविट् परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एव च॥"
(मनु ३।१५४)

यदि ब्राह्मण जीविकाके लिये पशुपालन करे, तो उसे हव्य कव्यमें भोजन न करावे। २ ईशान कोणस्थित देशभेद, ईशान कोणमें एक देश जहांके निवासी पशुपालन द्वारा ही अपना निर्वाह करते हैं।

(बृहत्सं॰ १४।३३)

पशुपालक (सं॰ त्रि॰) पशु पालयति पशु-पालि-ण्वुल्। पशुपालनकर्त्ता, पशु पालनेवाला।

पशुपाश (सं॰ पु॰) पशूनां पाशः। पशुका पाश-बन्ध पशुओंका बन्धन। २ पशुरूप जीवका बन्धन। शैवदर्शनमें पशु शब्दको जीव बतलाया है। मल, कर्म, माया और रोधशक्तिके भेदसे पाश चार प्रकारका है। स्वाभाविक अशुचिको मल कहते हैं। जिस प्रकार तण्डुल तुषसे आच्छादित रहता है, उसी प्रकार वह मल ढक् और क्रियाशक्तिको आच्छादन किये हुए हैं। धर्माधर्मको कर्म, प्रलयावस्थामें जिसमें सभी कार्य लीन हो जाते हैं और फिरसे सृष्टिके समय जिससे उत्पन्न होते है उसीको माया तथा पुरुषतिरोधायक जो पाश है, उसे रोधशक्ति कहते हैं। पशुरूप जीव इन्हीं चार प्रकारके बन्धनोंसे बन्धे हुए हैं।

(सर्वदर्शनसंग्रहधृत॰ शैवदर्शन)

पशुपाशक (सं॰ पु॰) पशूनामिव पाशो बन्धनं यत्र, ततः कप्। रतिबन्धविशेष, एक रतिबन्धका नाम।

"स्त्रियमानतपूर्वाङ्गी दृग्पादान्तः पदद्वयं।
ऊर्द्ध्वं स्त्रियं रमेत् कामी बन्धोऽयं पशुपाशकः॥" (रतिम॰)

पशुपुष्पदेव—किरातवंशीय एक राजा। इन्होंने १२३४ कलियुगमें पशुपतिके मन्दिरका जीर्ण-संस्कार किया।

पशुप्रेरण (सं॰ क्ली॰) पशूनां प्रेरणं। गवादिका चालन। इसका पर्याय उदज है।

पशुबन्ध (सं॰ पु॰) १ यज्ञविशेष। २ पशुबन्धन।

पशुबन्धक (सं॰ पु॰) पशुओंको बांधनेवाला द्रव्य, डोरी, रस्सी।

पशुभर्त्तृ (सं॰ पु॰) पशूनां भर्त्ता। शिव, महादेव।

पशुभाव (सं॰ पु॰) पशोर्भावः इत्तत्। १ पशुत्व। २ साधकोंकी मन्त्रसिद्धिका प्रकार विशेष। इसीको साधनाका प्रथम अङ्ग बतलाया है। रुद्रयामलमें लिखा है कि भाव तीन प्रकारका है, दिव्य, वीर और पशु। इन तीनों भावोंमें दिव्यभाव उत्तम, वीरभाव मध्यम और पशुभाव

अधम माना गया है। जो इस त्रिविध भावका अवलम्बन करते हैं, उनके गुरु, मन्त्र और देवता पृथक् पृथक् रूपमें निर्णीत हैं। मन्त्रसिद्धि करनेमें भावका अवलम्बन करना नितान्त प्रयोजनीय है। क्योंकि बहुविध जप, होम और कायक्लेशादि द्वारा उपासना करनेमें प्रवृत्त होने पर भी एकमात्र उत्कृष्ट भावालम्बन व्यतीत मन्त्रसिद्धि हो ही नहीं सकती। दिव्य अथवा वीरभावग्रहीत व्यक्तिको बहुत जल्द मन्त्रसिद्धि होती है। पशु-भावमें सिद्धिलाभ अनायास नहीं होता। जो निरन्तर वेदाभ्यास और वेदार्थको चिन्ता करते हैं तथा जिन्होंने सर्व प्रकारको निन्दा, हिंसा, आलस्य, लोभ, मोह, काम, क्रोध, मद और मात्सर्यका परित्याग किया है, वे ही पशुभावमें सिद्धिलाभ कर सकते हैं। जिन्होंने पहले दिव्यभाव, बाद वीरभाव और अन्तमें पशुभाव इन तीनों भावोंका विशेषत्व समझा है तथा पञ्चतत्त्वार्थका भाव समझ कर दिव्याचारमें ही रात दिन मन लगाया है वे ही साधुओंके मध्य श्रेष्ठ हैं और अणिमादि अष्टविध ऐश्वर्यमें समन्वित हो कर शिवकी तरह जगत्‌में विहार कर सकते हैं। निरन्तर शुचिभावमें रहनेसे उनका आनन्दमय चित्त आपसे आप ध्यानधारणादिमें निमग्न होता है। इस कारण किसी एक निर्जन प्रदेशमें निःसन्देह उनका सिद्धिलाभ होता है।

कुब्जिकातन्त्रके सप्तम पटलमें लिखा है, कि तीनों भावोंके मध्य पशुभाव ही निकृष्ट है। जो पशुभावमें आराधना करते हैं, वे केवल पशुकी तरह होते हैं। जो रात्रिकालमें यन्त्र-स्पर्श वा मन्त्रका जप नहीं करते, उनके बलिदानमें संशय, तन्त्रमें सन्देह, मन्त्रमें अक्षरबुद्धि, गुरुदेवमें अविश्वास, प्रतिमामें शिलाज्ञान, और देवसमूहमें भेदबुद्धि वर्त्तमान है; जो निरामिषसे देवताकी पूजा, अज्ञानवशतः निरन्तर स्नान और सबोंकी निन्दा करते हैं, वे ही पशुभावालम्बी अधम कहलाते हैं।

पशुभावावलम्बोके पक्षमें रात, दोपहर अथवा शामको देवीका पूजन करना कर्त्तव्य नहीं है। ऋतुकालमें स्त्रीगमन, पर्वपञ्चकमें मांसादि त्याग और अलावा इसके वेदमें जिन सबका विधान है, उन्हीं सबका अनुष्ठान करना कर्त्तव्य है। इस तन्त्रमें भी दिव्य और वीरभाव ही श्रेष्ठ बतलाया गया है। पशुभाव निकृष्ट है और इस भावमें सभी मन्त्र केवल अक्षररूपी ही होते हैं अर्थात् पशुभावमें जो उपासना करते हैं, उनके मन्त्रकी तेजी बिलकुल लुप्त हो जाती है। अतएव साधकोंको चाहिये कि वे कभी भी वीरभावका त्याग कर पशुभावमें उपासना न करें।

(निरुत्तरतन्त्र १ पटल)

रुद्रयामलके द्वितीय पटलमें लिखा है, कि पशुभावस्थित मानव यदि नित्यश्राद्ध, सन्ध्या, पूजा, पितृतर्पण, देवतादर्शन, पीठदर्शन, गुरुका आज्ञापालन और देवताओंका पूजन करे, तो वे महासिद्धि लाभ कर सकते हैं।

रुद्रयामलके छठें पटलमें दूसरी जगह लिखा है, कि पशुभावावलम्बी नारायण सदृश हैं। वे आकस्मिक सिद्धिलाभ कर शङ्ख चक्र गदा पद्म हाथमें लिये गरुड़के ऊपर बैठ कर बैकुण्ठ नगर जाते हैं। जो साधक व्यक्ति क्रमान्वयसे तीनों भावोंका अवलम्बन करके राज्य, धन, मान, विद्या और मोक्ष इनमेंसे जिस किसीको इच्छा करें, उन्हें वही प्राप्त हो जाता है।

पिच्छिलातन्त्रके ५१वें पटलमें लिखा है कि जन्मसे ले कर १६ वर्ष तक पशुभाव, बाद ५० वर्ष तक वीरभाव, और पीछे दिव्यभाव होता है। इन तीनों भावोंका ऐक्यज्ञान ही कुलाचार है। मनुष्य कुलाचार द्वारा ही देवमय होते हैं। मानसिक धर्म ही भाव है जिसका अभ्यास मन द्वारा ही करना होता है।

प्राणतोषिणी तन्त्रमें भावत्रयका विस्तृत विवरण देखो।

पशुमत् (सं० त्रि०) पशु-मतुप्। पशु-सम्बन्धीय, पशुयुक्त।

पशुमार (सं० अव्य०) पशुमिव मारयित्वा णमुल्। पशुकी तरह हिंसा। ऐसे अर्थमें णमुल् प्रत्यय होनेसे 'मारयति' का अनुप्रयोग होता है। संस्कृतमें अनुप्रयोगके साथ ही प्रयोग हुआ करता है। यथा 'पशुमारं मारयति, पशुमारममारयत्' इत्यादि।

पशुमारक (सं० त्रि०) पशुवधयुक्त।

"ईजे च क्रतुभिर्घोरैर्दीक्षितः पशुमारकैः ।
देवान् पितॄन् भूतपतीन् नानाकामो यथा भवान् ॥"
(भाग० ४।२७।११)

आपका तरह राजा पुरञ्जन नाना प्रकारको काम नाओंके वशवर्त्ती हो भयानक पशुमारक यज्ञका अनुष्ठान करके देवता और पितरोंको अर्चना करते हैं।

पशुमोहनिका (सं० स्त्री०) मुह्यतेऽनया मुह-ल्युट्, स्वार्थे कन् टापि अत इत्वं, पशूनां मोहनिका। कटोलता, कटुवली।

पशुयज्ञ (सं० पु०) पशुकरणको यज्ञः वा पशुना यज्ञः। पशु नामक यागभेद। पशुद्रव्य द्वारा यज्ञ करना होता है। इस यज्ञका विधान आश्वलायनश्रौत सूत्रमें उल्लिखित हुआ है।

"क्षालनं दर्भकूर्चेण सर्वत्र स्रोतसां पशोः।
तुष्णीमिच्छाक्रमेण स्याद्वपार्थे पार्णदारुणी ॥"
(कर्मपुराण)

पशुरक्षि (सं० पु०) गोपाल, ग्वाला।

पशुरक्षिन् (सं० पु०) पशुरक्षा अस्त्यर्थे इनि। पशुपालक, वह जो पशुको रक्षा करता हो।

पशुरज्जु (सं० स्त्री०) पशूनामश्वादीनां बन्धनाय रज्जुः। पशु बन्धनरज्जु पशु बांधनेको रस्सी। पर्याय—दामनी, बन्धनी।

पशुराज (सं० पु०) पशूनां राजा, ततः समासान्त टच्, (राजाहःसखिभ्यष्टच्। पा ५।४।९१) सिंह।

पशुलक्ष (सं० पु०) एक प्राचीन देशका नाम।

पशुवत् (सं० त्रि०) पशु इव, इवार्थे वति। पशुतुल्य।

पशुवर्द्धन (सं० क्ली०) पशूनां वर्द्धनं ६-तत्। यज्ञमें पशुके संपुष्टताविधायक व्यापारभेद, यज्ञकार्यमें पशुको जिससे वृद्धि हो, वैसे व्यापार विशेषका नाम पशुवर्द्धन है। इसका विषय आश्वलायन गृह्यसूत्र (४।८।८) में लिखा है।

पशुविद् (सं० त्रि०) पशु स्वराहकारी।

पशुशीर्ष (सं० क्ली०) पशूनां शीर्षं ६-तत्। पशुमस्तक।

पशुश्रपण (सं० क्ली०) यज्ञादिमें उत्कृष्ट पशुरन्धन।

पशुष (सं० त्रि०) पशुषु सीदति सद-ड-षत्वं। पशु विषयमें स्थित अन्न, चीर दधि प्रभृति।

पशुष्ठ (सं० त्रि०) पशुषु तिष्ठति स्था-क, ततः षत्वं। पशुके मध्य अवस्थित।

पशुसख (सं० पु०) पशूनां सखा, ६ तत्, ततः समासान्त टच्। पशुका सखा, शूद्रका नामभेद।

पशुसनि (सं० त्रि०) पशुं सनोति ददाति सन् इन्। पशुदायक।

पशुसमाम्नाय (सं० पु०) १ यज्ञादिमें हन्तव्य पशुको गणना। २ वाजसनेय संहिताका एक विभाग।

पशुसाधन (सं० क्ली०) पशुओंको साधनेका काम।

पशुहरीतकी (सं० स्त्री०) पशूनां हरीतकीव, हित कारित्वात्। आम्रातकफल, आमड़ेका फल।

पशुहव्य (सं० क्ली०) पशूनां हव्यं। पशुमांस।

पशू (हिं० पु०) पशु देखो।

पश्चा (सं० अव्य०) पश्चात् वेदे पृषोदरादित्वात् साधुः। पश्चात्। वैदिक प्रयोगमें हो ऐसा पद सिद्ध हुआ करता है। आर्ष प्रयोगमें कहीं कहीं अपर शब्दको जगह पश्चा देश होता है। यथा—

कैलाशो हिमवांश्चैव दक्षिणेन महाचलौ।
पूर्वपश्चायतावेतौ।" (मार्क०पु० ५४।२४)

पश्चाच्चर (सं० त्रि०) पश्चात्गमनकारी, पीछे पीछे चलने वाला।

पश्चाच्छ्रमण (सं० पु०) बौद्धभिक्षुभेद।

पश्चात् (सं० अव्य) अपरस्मिन् अपरस्मात् अपरो वा वसति आगतो रमणीयं वा, इति अपरस्य पश्चभाव आतिश्च प्रत्ययोऽस्तातिविषये (पश्चात्। पा ५।३।३२) १ पीछे, पीछेसे, बाद। (पु०) २ प्रतीची, पश्चिम दिशा। ३ शेष, अन्त। ४ अधिकार।

पश्चात्कर्ण (सं० पु०) कर्णका बहिर्भाग वा पृष्ठदेश।

पश्चात्कर्म (सं० क्ली०) १ वैद्यकोक्त बलवर्णाग्निकार्य, वैद्यकके अनुसार वह कर्म जिससे शरीरके बल, वर्ण और अग्निको वृद्धि हो। ऐसा कर्म प्रायः रोगको समाप्ति पर शरीरको पूर्व और प्रकृत अवस्थामें लानेके लिये किया जाता है। भिन्न भिन्न रोगोंके लिये भिन्न भिन्न प्रकारके पश्चात्कर्म होते हैं। २ पेयादि अन्नका संसर्जन। ३ निवृत्तातङ्कके अनुबन्धोपचरणके निमित्त जो किया जाता है, उसे पश्चात्कर्म कहते हैं।

सुश्रुतमें लिखा है, कि कर्म के तीन भेद हैं, पूर्वकर्म, प्रधानकर्म और पश्चात्कर्म। (सुश्रुत सूत्रस्था० ५ अ०)

पश्चात्काल (सं० पु०) परवर्त्तीकाल।

पश्चात्तर (सं० त्रि०) पश्चात्सम्बन्धीय।

पश्चात्ताप (सं० पु०) पश्चात् अप्रतीऽकार्य्ये कृते चरमे तापः। वह मानसिक दुःख या चिन्ता जो किसी अनुचित कामको करनेके उपरान्त उसके अनौचित्यका ध्यान करके अथवा किसी उचित या आवश्यक कामको न करनेके कारण होती है, अनुताप, अफसोस, पछतावा।

पश्चात्तापिन् (सं० त्रि०) पश्चात्ताप अस्त्यर्थे इनि। पश्चात्तापयुक्त, पछतावा करनेवाला।

पश्चात्सद् (सं० पु०) पश्चात् सीदन्तीति सद् क्विप्। पश्चाद्दिक्स्थित देवता।

पश्चादह्न (सं० अव्य०) अह्नका पश्चाद्भाग।

पश्चादपवर्ग (सं० त्रि०) पश्चात् निष्पादित।

पश्चादुक्ति (सं० स्त्री०) पीछेका कथन, बादमें कहना।

पश्चाद्दोष (सं० पु०) ऊषाका शेष भाग।

पश्चाद्भाग (सं० पु०) पृष्ठभाग।

पश्चाद्वात (सं० पु०) पश्चिम वायु।

पश्चानुताप (सं० पु०) पश्चात् अनुताप, अफसोस, पछतावा।

पश्चान्मारुत (सं० पु०) पश्चिमकी ओर प्रवाहित वायु।

पश्चारुज (सं० पु०) बालकोंका रोगभेद। यह कदन्न खानेवाली स्त्रियोंका दूध पीनेवाले बालकोंको होता है। इस रोगमें बालकोंको गुदामें जलन होती है, उनका मल हरे वा पीले रंगका हो जाता है और उन्हें बहुत तेज ज्वर आने लगता है। यह रोग अतिकष्ट-दायक है। इसमें रक्तचन्दन, अनन्तमूल, श्यामालता आदिका प्रलेप और अवलेह प्रशस्त है।

पश्चार्द्ध (सं० त्रि०) अपरस्यार्द्धस्य इति (अपरस्यार्द्धे पश्चभावो वक्तव्यः। पा २।१।५८ वार्त्तिक) इत्यस्य पश्चभावः। शेषार्द्ध, अपरार्द्ध।

पश्चार्द्ध (सं० त्रि०) पृष्ठदेश सम्बन्धीय।

पश्चिम (सं० त्रि०) पश्चाद्भवं (अग्रादि पश्चात् डिमच्। पा ४।३।२३ वार्त्तिक) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या डिमच्। १ पश्चाद्भव। जो पीछेसे उत्पन्न हुआ हो। २ चरम, शेष, अंतिम। (पु०) ३ वह दिशा जिसमें सूर्य अस्त होता है, पूर्व दिशाके सामनेकी दशा। पर्याय—प्रतीची, वारुणी, प्रत्यक्। पश्चिमदिक्स्थित वायुका गुण—तीक्ष्ण, कफ, मेह, शोषक, सद्यःप्राणहर, दुष्ट और शोषकारी।

राजवल्लभके मतसे अग्नि, वपुः, वर्ण, बल और आरोग्यवर्द्धक, कषाय, शोषण, रोचन, विशद, लघु, जलका लघुतासम्पादक, शैत्य और वैमल्यकारक। फलितज्योतिषमें मिथुन, तुला और कुम्भ राशिको पश्चिमका पति बतलाया है।

पश्चिमघाट—दाक्षिणात्यके बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत एक पर्वतमाला। भारतके पश्चिम उपकूलमें दीवार रूपमें दण्डायमान रहनेके कारण इसने समुद्रतरङ्ग और शत्रुसे बचानेके लिए तीरभूमिको सुदृढ़ कर रखा है। विन्ध्य-पर्वतकी पश्चिमाभिमुखी शाखाकी शेष सीमासे ले कर यह क्रमशः दक्षिणकी ओर त्रिवाङ्कुड़ राज्यके उत्तर तक फैल गई है। समुद्रतीरसे कहीं कहीं यह पर्वत सुदीर्घ और अत्युच्च सीढ़ीकी तरह दिखाई देता है। अधिकांश जगह इसकी ऊंचाई प्रायः २००० फुट है, समुद्रतटवर्त्ती शिखर प्रायः ४७०० फुट ऊंचा है। किन्तु दक्षिण सीमामें जहां यह पर्वतमाला पूर्वघाट पर्वतमालासे मिल गई है, वहां कहीं कहीं इसकी ऊंचाई ७००० से ८७६० फुट दिखाई देती है।

पूर्व और पश्चिमघाट पर्वतके सङ्गमस्थल पर जो त्रिकोणाकार अधित्यकाभूमि अवस्थित है, वह स्वभावतः १००० से ३००० फुट ऊंची है। यहां इतस्ततः जो सब शिखरश्रेणी देखनेमें आती हैं उनकी ऊंचाई प्रायः ४००० फुट है। इनमेंसे दक्षिण-भारतका विख्यात स्वास्थ्यनिवास नीलगिरि पर्वतस्थ ओटाकामण्ड उपत्यका समुद्रपृष्ठसे ७००० फुट ऊंची है। दक्षिण डोडाबेत्ताशिखर ८७६० फुट ऊपर अपना सिर उठाये खड़ा है। एतद्व्यतीत बम्बईनगरसे २० कोस दक्षिण-पूर्वमें भोरघाट नामक गिरिसङ्कट (२०७ फुट ऊंचा) है। यही गिरिसङ्कट प्राचीनकालमें समुद्रकूलसे दाक्षिणात्यमें प्रवेश करनेका

एकमात्र पथ समझा जाता था। बम्बई नगरके उत्तर पूर्व थलघाटसङ्कट (१८१२ फुट ऊंचा) है। वेन-गुर्ला बन्दरसे बेलगामके हैमानिवासमें जानेका एक और भी पथ है। पालघाट नामक उपत्यकामें जानेके जो जो पथ हैं, वे भी पालघाटसङ्कट कहलाते हैं। यह स्थान १० कोस विस्तीर्ण है। मन्द्राज जानेके लिये इस स्थान हो कर और मध्यभारत जानेके लिये बेपुरके निकट हो कर एक रेलपथ गया है।

पश्चिमघाट पर्वत भेद कर कोई भी नदीप्रवाह मध्यभारतसे पश्चिमसागरमें नहीं गिरा है। गोदावरी, कृष्णा और कावेरी नामक तीनों नदियां इसी पर्वत प्रवाहित जलराशिसे पुष्ट हो कर मन्द्राजप्रदेश होती हुई पूर्वसमुद्रमें गिरती हैं। अति प्राचीनकालसे भारतके पूर्व दक्षिण भूभागमें हिन्दूराजाओंके राजत्वका निदर्शन है सही, किन्तु इस सुदृढ़ पश्चिमांशमें हिन्दू राज-वंशको वैसी प्रतिष्ठा देखी नहीं जाती। पश्चिममें समुद्रतटसे पूर्वकी ओर पश्चिमघाट गिरिमालाका मध्य-वर्त्ती स्थलभाग कोङ्कण कहलाता है। यह कोङ्कण राज्य बहुप्राचीनकालसे अवस्थित हैं। कोङ्कण देखो। नायर जाति ही यहांके अधिक स्थानोंमें राज्य करती है। जब महाराष्ट्रकेशरी शिवाजी दक्षिण भारतके सिंहासन पर अधिष्ठित थे और उनके परवर्त्ती महाराष्ट्र-राजगण जब महाराष्ट्रगौरवकी रक्षामें लगे हुए थे, उस समय इस पर्वतमालाके नाना स्थान और प्रत्येक गिरिपथ दुर्भेद्य दुर्गसे सुरक्षित था।

पर्वत पर तालजातीय बड़े बड़े वृक्ष और विभिन्न प्रकारके पशुपक्षी देखनेमें आते हैं। वर्षाऋतुमें इस पर्वतमें जगह जगह जलनिर्गमके लिये जो सब प्रपात हैं, उनका दृश्य उस समय बड़ा ही मनोरम लगता है। यहांका गार्सप्पा नामक प्रपात ८३० फुट ऊपरसे गिरता है।

पश्चिमजन (सं० पु०) भारतवर्षके पश्चिमदिक्स्थ देश-वासी, पाश्चात्य व्यक्ति।

पश्चिमदेश (सं० पु०) रोमक सिद्धान्तोक्त जनपदभेद।

पश्चिमप्लव (सं० पु०) वह भूमि जो पश्चिमकी ओर झुकी हो।

पश्चिमयामकृत्य (सं० पु०) बौद्धोंके अनुसार रातके पिछले पहरका कर्त्तव्य।

पश्चिमरात्र (सं० पु०) पश्चिमं रात्रेः, एकदेशिसमासे अच् समासान्तः। रात्रिका शेष भाग। कोई कोई कहते हैं, कि एकदेशिसमास कालवाचक शब्दके साथ हुआ करता है। यदि ऐसा हो, तो 'मध्यरात्र' प्रभृति शब्द नहीं हो सकते।

पश्चिमवाहिनी (सं० त्रि०) पश्चिम दिशाकी ओर बहने-वाली।

पश्चिमसागर (सं० पु०) आयरलैण्ड और अमेरिकाके बीचका समुद्र, एटलाण्टिक महासागर।

पश्चिमा (सं० स्त्री०) सूर्यास्तका दिशा, प्रतीची, वारुणी, पच्छिम।

पश्चिमाचल (सं० पु०) एक कल्पित पर्वत। इसके विषयमें लोगोंकी यह धारणा है कि अस्त होनेके समय सूर्य उसीकी आड़में छिप जाता है। इसका नाम अस्ता-चल भी है।

पश्चिमानूपक (सं० पु०) नृपभेद, एक राजा।

पश्चिमार्द्ध (सं० पु०) शेषार्द्ध, अपरार्द्ध।

पश्चिमी (हिं० वि०) १ पश्चिमको ओरका, पश्चिमवाला। २ पश्चिमसम्बन्धी, जैसे, पश्चिमी-हिन्दी।

पश्चिमोघाट (सं० पु०) बम्बई प्रान्तकी पश्चिम ओरकी एक पर्वतमाला। पश्चिमघाट देखो।

पश्चिमोत्तर (सं० स्त्री०) पश्चिमायाः उत्तरस्या दिशोऽन्त-राला दिक् 'दिङ्नामान्यन्तराले' इति समासः। वायु-कोण, पश्चिम और उत्तरके बीचका कोन।

पश्त (फा० पु०) खम्भा।

पश्ता (फा० पु०) तट, किनारा।

पश्तो (हिं० पु०) १ ३॥ मात्राओंका एक ताल, इसमें दो आघात होते हैं। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है— तिं, तक, धिं, धा, गे। २ भारतकी आर्य भाषाओंमेंसे एक देशी भाषा। इसमें फारसी आदिके बहुतसे शब्द मिल गये हैं। यह भाषा भारतकी पश्चिमोत्तर सीमासे ले कर अफगानिस्तान तक बोली जाती है।

पश्म (फा० पु०) बकरी भेड़ आदिका रोयां, ऊन। विशेष विवरण पशम शब्दमें देखो।

पश्मीना (हिं० पु०) एक प्रकारका बहुत बढ़िया और मुलायम ऊनी कपड़ा। यह काश्मीर और तिब्बत आदि पहाड़ी तथा ठंढे देशोंमें बहुत अच्छा और अधिकतासे बनता है।

पश्य (सं० अव्य०) दृश् बाहुलकात् श। १ प्रशंसा। २ विस्मय। ३ दर्शक।

पश्यत् (सं० त्रि०) दृश-शतृनतः 'दृशेः पश्य' इति पश्यादेशः। १ दर्शक, देखनेवाला। दृश-शतृ। २ दृश्यमान।

पश्यतिकर्मन् (सं० पु०) पश्यतिदर्शनमेव कर्म यस्य। दर्शनकर्म, वह जिसका काम केवल देखना हो। वैदिक पर्याय—चिक्यात्, चाकनत्, आचक्ष, चष्टे, विचष्टे, विचर्षणि, विश्वचर्षणि, अवचाकशत्।

(निघण्टु ३ अ०)

पश्यतोहर (सं० त्रि०) पश्यन्तं जनमनादृत्य हरतीति हृङ् हरणे अच् (षष्ठी चानादरे। पा २।३।३८) इति अनादरे षष्ठी, ततः (वाग्दिक्पश्यद्भ्यो: युक्तिदण्डहरेषु। पा ६।३।२१ वार्त्तिक) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या षष्ठ्याः अलुक्। चोर, वह जो आँखोंके सामने चीज चुरा ले। जैसे, सुनार आदि।

पश्यन्ती (सं० स्त्री०) पश्यति या दृश् शतृ ङीप् ततः नुम् (श्यप् श्यनोर्नित्यं। पा ७।१।८१) १ मूलाधारोत्थित हृदयगत नादरूपवर्ण, नादकी उस समयकी अवस्था या स्वरूप जब कि वह मूलाधारसे उठ कर हृदयमें जाता है।

"मूलाधारात् प्रथममुदितो यस्तु तारः पराख्यः।
पश्चात्पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धियुङ्मध्यमाख्यः॥"

(अलंकारकौ०)

भारतीय शास्त्रोंमें वाणी या सरस्वतीके चार चक्र माने गये हैं—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। मूलाधारसे उठनेवाले नादको परा कहते हैं; जब वह मूलाधारसे हृदयमें पहुंचता है तब पश्यन्ती कहलाता है; वहांसे आगे बढ़ने और बुद्धिसे युक्त होने पर उसका नाम मध्यमा होता है और जब वह कण्ठमें आ कर सबके सुनने योग्य होता है, तब उसे वैखरी कहते हैं। २ वाग्विशेष। सूक्ष्मा, द्योतितार्था और अनपायिनी वाक्यको पश्यन्ती कहते हैं। ३ ईक्षणकर्त्री, दर्शिनी स्त्री।

पश्व-इष्टि (सं० त्रि०) पशुसाधनयज्ञ, पशुनामका यज्ञ।

पश्वयन (सं० क्ली०) यागभेद।

पश्वयम (सं० पु०) एक प्रकारका दैविक यज्ञ।

पश्वयन्त्र (सं० त्रि०) पशोरिदं वा० ऊङ्, ततः पश्वश्चासौ यन्त्रश्चेति कर्मधा०। पशुनिर्गमार्थं यन्त्रभेद।

पश्ववदान (सं० क्ली०) पशोरङ्गविशेषस्य अवदानं छेदनं। पशुका अङ्गविशेष छेदन।

पश्वाचार (सं० पु०) पशूनां तन्त्रोक्ताधिकारिविशेषाणामाचारः। तन्त्रोक्त आचारभेद।

"वेदोक्तेन यजेद्देवीं कामसंकल्पपूर्वकम्।
स एव वैदिकाचारः पश्वाचारः स उच्यते॥"

(आचारभेदतन्त्र)

कामना और सङ्कल्पपूर्वक वेदोक्त विधानसे जो देवीकी पूजा की जाती है, वही वैदिकाचार है। इसी वैदिकाचारको पश्वाचार कहते हैं। दिव्य, वीर और पशु इन तीन भावोंमें साधक साधना करें। किन्तु कलिकालमें दिव्य और वीराचार विहित नहीं है अर्थात् कोई भी साधक वीरभावमें साधना न करे। कलिमें केवल पश्वाचार ही प्रशस्त है। सभी साधकोंको पशुभावमें पूजा करनी चाहिये। इसी पशुभावसे साधकको मन्त्र-सिद्धि होगी।

"दिव्यवीरमयो भावः कलौनास्ति कदाचन।
केवलं पशुभावेन मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥"

(महानिर्वाणतन्त्र०)

निम्नलिखित नियमोंके पालन करनेको पश्वाचार कहते हैं। यथा—नित्यस्नान, नित्यदान, त्रिसन्ध्या जप और पूजा, निर्मल वस्त्रपरिधान, वेदशास्त्रमें दृढ़ ज्ञान, गुरु और देवतामें भक्ति, मन्त्रमें दृढ़ विश्वास, पितृ और देवपूजा, बलि, श्राद्ध और नित्यकर्म, शत्रु और मित्रको समदर्शन, गुरुके अतिरिक्त दूसरेका अन्न परित्याग, कदर्य और निष्ठुर कार्यका परिवर्जन। देवनिन्दकके साथ मुलाकात हो जानेसे उसके साथ बातचीत न करनी चाहिये। सर्वदा सत्य बोलना चाहिये झूठ कभी भी न बोलना चाहिये, जो इस प्रकारके आचरण करते, उन्हें पश्वाचारी कहते हैं।

(कुब्जिकातन्त्र० ७ पटल) पशु और पश्वाचारी देखो।

पश्वाचारी—शक्ति-उपासक सम्प्रदायविशेष। पशु भावमें

शक्तिसाधनाकारी पश्वाचारी और दूसरे वीराचारी कह-लाते हैं। पशुभाव देखो।

पशुभाव और पश्वाचारके साथ वीरभाव तथा वीरा-चारका प्रभेद यह है कि वीरभाव और वीराचारमें मद्यमांसका व्यवहार है, पशुभाव और पश्वाचारमें वह निषिद्ध है।

कुलार्णवमें इन दो प्रधान आचारोंको विभाग कर सात प्रकारमें निष्पन्न किया है। यथा—वेदाचार (१) सर्वापेक्षा उत्तम, वेदाचारको अपेक्षा वैष्णवाचार उत्तम, वैष्णवाचारकी अपेक्षा शैवाचार उत्तम, शैवाचारसे दक्षिणाचार उत्तम, दक्षिणाचारसे सिद्धान्ताचार और भी उत्तम, सिद्धान्ताचारसे कौलाचार श्रेष्ठ, कौलाचारसे ऊपर और कुछ नहीं है। (कुलार्णवपञ्चम खण्ड)

ये सब आचार किस प्रकारके हैं, तन्त्रमें उनका विव-रण विशदरूपसे लिखा है। क्रमानुसार वैष्णवादि आचारका विषय लिखा जाता है।

वैष्णवाचार—वेदाचारके व्यवस्थानुसार सर्वदा लिखित कार्य करनेमें तत्पर रहे। मैथुन और तत्स-क्रान्त कथाकी जल्पना कभी न करे। हिंसा, निन्दा, कुटिलता, मांसभोजन, रात्रिमें माला और यन्त्र-स्पर्श आदि कार्य सर्वतोभावसे वर्जनीय है।

(नित्यातन्त्र १ पटल)

शैवाचार—वेदाचारके नियमानुसार शैव और शाक्ताचारकी व्यवस्था की गई है। शाक्तकी विशेषता यह है कि उसमें पशुहत्याका विधान है।

(नित्यातन्त्र १ प०)

दक्षिणाचार—वेदाचारके नियमानुसार भगवतीकी पूजा और रात्रियोगमें विजया ग्रहण करके तद्गत-चित्तसे मन्त्रका जप करे। (नित्यातन्त्र १ पटल)

वामाचार—कुलस्त्रीकी पूजा विधेय है। इसमें मद्य-मांसादि पञ्चतत्त्व (२) और खपुष्पका (३) व्यव-हार करना होता है, इसीको वामाचार कहते हैं। वामास्वरूपा हो कर परमाशक्तिकी पूजा करनी होती है।

(आचारभेदतन्त्र)

सिद्धान्ताचार—शुद्ध हो या अशुद्ध हो, सभी द्रव्य शोधन द्वारा विशुद्ध होते हैं, सिद्धान्ताचारका यही लक्षण है। समयाचार तन्त्रके द्वितीय पटलमें लिखा है कि जो व्यक्ति अहरहः देवपूजामें अनुरक्त रह कर तथा दिवाभागमें विष्णुपरायण हो कर रात्रिकालमें साध्यानुसार और भक्तिपूर्वक यथाविधि मद्यादिका दान तथा सेवन करता है, उस सिद्धान्ताचारीको सभी फल प्राप्त होते हैं। (समयाचारतन्त्र २ पटल)

कौलाचार—यथार्थमें कौलाचारका कोई नियम नहीं है, स्थानास्थान, कालाकाल और कर्माकर्मका कुछ विचार करना नहीं होता। महामन्त्रसाधनमें दिक् और कालका नियम नहीं है। तिथि और नक्षत्रादिका भी नियम नहीं है। कहीं शिष्ट, कहीं भ्रष्ट और कहीं भूत-पिशाच तुल्य इस प्रकार नाना वेशधारी कौलसमु-दाय पृथ्वी पर विचरण करते हैं। कर्दम और चन्दनमें, पुत्र और शत्रु में, श्मशान और गृहमें तथा काञ्चन और तृणमें जिसके भेदज्ञान नहीं है, वही व्यक्ति कौल कह-लाता है।

---

(१) वेदाचार शब्दसे यहां वैदिककर्मका अनुष्ठान समझा नहीं जाता; तन्त्रमें आचारविशेषको वेदाचार कहा है—

"वेदाचारं प्रवक्ष्यामि शृणु सर्वाङ्गसुन्दरि।
ब्राह्मेमुहूर्ते उत्थाय गुरुं नत्वा स्वनामभिः॥
आनन्दनाथशब्दान्ते पूजयेदथ साधकः।
सहस्राराम्बुजे ध्यात्वा उपचारैस्तु पञ्चभिः॥
प्रजप्य वाग्भववीजं चिन्तयेत परमांकलाम्॥"

हे सर्वाङ्गसुन्दरि! वेदाचारका हाल कहता हूं, सुनो। साधक ब्राह्ममुहूर्तमें उठ कर गुरुका नाम ले, पीछे 'आनन्द' यह शब्द उच्चारण करके उन्हें प्रणाम करे। सहस्रापद्ममें ध्यान कर पञ्च उपचार द्वारा पूजा करके और वाग्भववीज अर्थात् यह मन्त्र जप करके परम कलाशक्तिकी चिन्ता करे। इत्यादि

(नित्यातन्त्र)

(२) पञ्चमकार देखो।

(३) तन्त्रोल्लिखित गुप्त विषयविज्ञापक सांकेतिक शब्द है। खपुष्प शब्दसे रजस्वला स्त्रियोंका रज समझा जाता है। इसी प्रकार स्वयम्भूपुष्प वा कुसुम शब्दसे प्रथम रज, कुण्ड-पुष्पसे सधवा स्त्रीका रज, गोलकपुष्पसे विधवाका रज और वज्र-पुष्प कहनेसे चण्डालिनीका रज जानना चाहिये।

श्यामारहस्यमें लिखा है, कि जो भीतरसे शाक्त, बाहरसे शैव और मध्यभागसे वैष्णव हैं, वैसे नाना-वेशधारी योगी कौल कहलाते हैं।

"अन्तःशाक्ता वहिः शैवाः सभायां वैष्णवा मताः।
नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले॥"

वीराचारीसे पश्वाचारीमें मद्यमांसादिका व्यवहार निषिद्ध रहने पर भी दोनों आचारमें ही पशुवलिका विधान है (१)। पशुवलिदान तन्त्रोक्त शक्ति-उपासनाका एक प्रधान अङ्ग है। तदनुसार गो व्याघ्र मनुष्य प्रभृति कोई भी जीव पशुवलिके अयोग्य नहीं है।

तन्त्रादिमें सात प्रकारके आचारका लक्षण और व्यवस्था निरूपित होने पर भी शास्त्रोंके मध्य प्रधानतः दो ही सम्प्रदाय देखनेमें आते हैं, दक्षिणाचारी और वामाचारी। जो प्रकाश्यभावमें वेदाचारके नियमानुसार भगवतीकी अर्चना करते और वामाचारियोंके अनुष्ठेय-मद्यव्यवहार और शक्तिसाधनादि नहीं करते वे ही साधारणतः दक्षिणाचारी नामसे प्रसिद्ध हैं। वे लोग सुरापान तो नहीं करते हैं, पर पश्वाचारके नियमानुयायी इच्छाक्रमसे थोड़ा बहुत वलिदान अवश्य देते हैं। काशीनाथप्रणीत दक्षिणाचारतन्त्रराजमें इनके कर्त्तव्या-कर्त्तव्यका विशेष विवरण लिखा है।

मद्यादि दान और सेवन वामाचारियोंका अवश्य कर्त्तव्य है। जो साधक इसका उल्लङ्घन करते हैं उनको किसी प्रकार सिद्धि नहीं होती है। श्यामारहस्यमें लिखा है—मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा (२) और मैथुन इस पञ्चमकारसे महापातक विनष्ट होता है। दिवा-कालमें इसका व्यवहार करनेसे पीछे हास्यास्पद होना पड़ता है, इस कारण रात्रिकालमें इसका अनुष्ठान बतलाया गया है।

निरुत्तरतन्त्रके प्रथम पटलमें लिखा है,—साधक रात-को कुलक्रिया और दिनको वैदिकक्रिया करे। इसी प्रकार भिन्न भिन्न योगीकी साधना करके योगिवर्गके दिवारात्र देवीकी अर्चना करे। (निरुत्तरतन्त्र १ प०)

पूजा दो प्रकारकी है—वाह्यपूजा और अन्तर्याग। गन्ध, पुष्प, भक्ष्य और पानीय प्रदानादि द्वारा जो पूजा की जाती है, उसका नाम वाह्यपूजा और चितरूपपुष्प, प्राणरूपधूप, तेजोरूप दीप, वायुरूप चामर आदि कल्पित उपचारादि द्वारा जो आन्तरिक साधन किया जाता है उसका नाम अन्तर्याग है। षट्चक्रभेद इस अन्तर्यागका प्रधान अङ्ग है। षट्चक्र देखो।

ऐसा लिखा है, कि साधक अपने गुरुके उपदेशा-नुसार शरीरस्थ वायुके योगसे अग्निकी गति द्वारा कुण्ड-लिनी शक्तिको उत्तेजित करे। पीछे हुं इस वीजमन्त्र-का उच्चारण करके उन्हें चेतन करे और चित्रिणी नाड़ी मध्यगत पथ हो कर मूलाधारसे आज्ञा पर्यन्त छः पद्मों को तथा मूलाधार, अनाहत और आज्ञा इन तीन पद्मोंमें अवस्थित तीन शिवको भेद कर डाले। अनन्तर कुण्ड-लिनीको सहस्रदल कमल पर स्थापन करके तन्निश्रित परम शिवके साथ संयुक्त करे। इसके बाद दोनोंके संयोगसे उत्पन्न परमामृत पान करके पूर्वोक्त कुलपद्म हो कर कुण्डलिनीको मूलाधारपद्ममें लाना होता है। इस प्रकार अन्तर्याग साधनमें प्रवृत्त जो सब वीराचारी व्यक्ति मद्य-मांसादि द्वारा भगवतीकी उपासना करते हैं, तन्त्रके मतसे वे ही उनके प्रियसाधक हैं (३)।

(कुलार्णव)

(१) वलि दो प्रकारकी है, राजसिक और सात्त्विक। मांस रक्तादिविशिष्ट वलिको राजसिक अथा मूंग, पायस, घृत, मधु और शर्करायुक्त एवं रक्तमांसादि वर्जित वलिको सात्त्विक वलि कहते हैं।

कालिकापुराणमें चण्डिका भैरवादि शक्ति-उपासनामें जीव कह कर उल्लेख है। वलि द्वारा मुक्तिसाधन और इस वलि द्वारा स्वर्गसाधन होता है। किन्तु किसी किसी शास्त्रमें यह नरक-साधनके जैसा उक्त हुआ है।

"मदर्थे शिव ! कुर्वन्ति तामसा जीवघातनम्।
अकल्प कोटिनि ये तेषां वासो न संशयः॥" (पद्मपु०)

(२) "मद्यं मांसञ्च मत्स्यञ्च मुद्रा मैथुनमेव च।
मकारपञ्चकञ्चैव महापातकनाशनम्॥" (श्यामारहस्य)

मनुष्य मद्यके साथ जो उपकरण सामग्री भक्षण करते हैं, उन्हींका नाम मुद्रा है।

(३) शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, बौद्ध, पाशुपत, सांख्य-

वीराचारी लोग बीच बीचमें चक्र करके देवदेवीको साधना करते हैं। स्त्रीचक्र कैसा है, सो नीचे दिया जाता है,—

साधक चक्राकारमें वा श्रेणीक्रमसे अपनी अपनी शक्तिके अनुसार ललाट पर चन्दन लगावे और युग युग क्रमसे भैरव-भैरवीके भावमें उपवेशन करे तथा मध्यस्थित किसी स्त्रीको साक्षात्‌कालो समझ कर मद्य मांसादि द्वारा उसकी अर्चना करे। कैसी स्त्रीका इस प्रकार पूजन करना होता है, गुप्तसाधनमें उसकी विधि इस प्रकार लिखी है,—

नटस्त्री, कापाली, वेश्या, रजकी, नापितकी भार्या ब्राह्मणी, शूद्रकन्या, गोपकन्या, मालाकारकी कन्या ये नौ प्रकारकी स्त्रियां कुलकन्या हैं। विशेषतः परपुरुष गामिनी विदग्धा होने पर सभी स्त्री कुलस्त्री ही होती हैं। रूपवती, युवती, सुशीला और भाग्यवती स्त्रियोंकी यदि यत्नपूर्वक पूजा करे, तो सिद्धिलाभ अवश्य होता है, इसमें सन्देह नहीं। (१)

उक्त चक्रगत परपुरुष ही इन समस्त कुलस्त्रियोंके पति हैं, कुलधर्मसे विवाहित पति पति नहीं हैं। पूजा-काल भिन्न अन्य समयमें कभी भी परपुरुषको चित्तमें न लावे—पूजाकालमें वेश्याकी तरह सबोंसे परितुष्ट रहे। (उत्तरतन्त्र) निरुत्तरतन्त्रमें दूसरी जगह इस प्रकार लिखा है,—आगमोक्त पति शिवस्वरूप हैं, वे ही गुरु हैं। वे ही पति कुलस्त्रियोंके प्रकृत पति हैं। विवाहित पति पति नहीं हैं। कुलपूजासे विवाहित पतिका त्याग करनेसे दोष नहीं होता। केवल वेदोक्त कार्यमें विवाहित पतिका त्याग निषिद्ध बतलाया है।

साक्षात् कालीरूपा उक्त कुलनारीकी पूजा करके मद्य शोधनादिपूर्वक पान करना होता है। ललाटमें सिन्दूरचिह्न और हाथमें मदिरासव धारणपूर्वक गुरु और देवताका ध्यान करके पान करनेकी विधि है। (प्राणतोषिणी) हाथमें सुरापात्र ले कर तद्गतचित्तसे इस प्रकार वन्दना करनी होती है—

"श्रीमद्भैरवशेखरप्रविलसच्चन्द्रामृतप्लावितं
क्षेत्राधीश्वरयोगिनीसुरगणैः सिद्धैः समाराधितम्।
आनन्दार्णवकं महात्मकमिदं साक्षात् त्रिखण्डामृतं
वन्दे श्रीप्रथमं कराम्बुजगतं पात्रं विशुद्धिप्रदम्॥"

(श्यामारहस्य)

इस प्रकार विशेष विशेष मन्त्र द्वारा पांच बार पात्रकी वन्दना करके पांच पात्र ग्रहण करे। पीछे जब तक इन्द्रियां (दृष्टि और मन) चञ्चल न हो जाय, तब तक पान करते रहें। इसके बाद पान करनेसे पशुपान किया जाता है, ऐसा जानना चाहिए। चक्रादिके कल्याण और तदीय विपक्षियोंके विनाशके उद्देश्यसे शान्तिस्तोत्रका पाठ करे। तदनन्तर आनन्दस्तोत्रका पाठ करके अन्यान्य कुलकार्यका अनुष्ठान करे। कुल-भैरव स्वरूप साधक मद्यपान करके स्तव पाठ करे और कुलस्त्रीसंगमें प्रवृत्त हो कर कुलकार्यका अनुष्ठान विधेय है। इसके अनन्तर आनन्दोल्लासका आरम्भ होता है। (इस व्यापारका सविशेष वर्णन अत्यन्त अश्लील है। इसकी व्यवस्था कुलार्णवके पञ्चमखण्डमें लिखी है।)

मनुष्यका मन कितना ही विकृत क्यों न हो, तो भी मनुष्यके सामने वैसा काम करनेमें लज्जा आती है। प्राणतोषिणीतन्त्रमें लिखा है, कि चक्रके मध्य मदिरामुग्ध व्यक्तियोंको देख कर हास्य और निन्दा न करे और न उस चक्रकी वार्त्ता ही प्रकट करे, उनके समीप भोजन

कलामुखव्रत, दक्षिणाचार, दार्शनिक, वामाचार, सिद्धान्ताचार, और वेदाचारादि सबोंका मत है, कि बिना मद्यमांसके पूजा करनेसे वह निष्फल होती है। इनके मतसे सुरा शक्तिस्वरूप, मांस शिवस्वरूप और इस शिव-शक्तिका भक्त भैरवस्वरूप है। इन तीनोंका एकत्र समावेश होनेसे आनन्दस्वरूप मोक्षकी उत्पत्ति होती है। (कल्पतरु)

(१) रेवतीतन्त्रमें चण्डाली, यवनी, बौद्धा, रजकी आदि ६४ प्रकारकी कुलस्त्रियोंका विवरण है। निरुत्तरतन्त्रकारका कहना है, कि ये सब शब्द वर्ण वा वर्णसंकर बोधक नहीं हैं, कार्य वा गुणके विज्ञापक हैं। विशेष कार्योंके अनुष्ठानके हेतु सभी वर्णोद्भवा कन्या इस प्रकार विशेष विशेष संज्ञा पाती हैं। जैसे, पूजा द्रव्य देख कर जो कोई वर्णोद्भवा कन्या रजोवस्था प्रकाश करती है, उसे रजकी कहते हैं। जो कोई वर्णोद्भवा रमणी अपनेको पश्वाचारीसे छिपावे, उसे गोपिनी कहते हैं, इत्यादि।

करे, अहित आचरणमें विरत रहे, भक्तिपूर्वक उनको रक्षा करे और यत्नपूर्वक छिपाये रक्खे।

तन्त्रमें लतासाधनादि और भी अधिकतर लज्जाकर और घृणाकर व्यापारका उल्लेख है। इसी कारण उसका वर्णन नहीं दिया गया। सामान्यतः लता-साधनमें एक स्त्रीको भगवती मान कर मद्यपानादिके साथ उसकी साधना करनी होती है। इसमें उसके शरीरके गुह्यागुह्य नानास्थानोंमें मन्त्रजप एवं अपने और उसके अङ्ग विशेषकी पूजा वन्दनादि पुरःसर स्त्री-पुरुषघटित व्यापारानुष्ठानकी पराकाष्ठा प्रदर्शित हुई हैं। तन्त्रविहित सुरापान और परस्त्रीगमन आदिकी तरह मारण, उच्चाटन प्रभृति नरहत्या और परपीड़ा भी शास्त्रीय क्रियाके मध्य गिनी जाती है।

ऊपरमें जो नाना प्रकारके साधकोंकी कथा लिखी हैं वह पश्वाचारी और वीराचारी दोनों सम्प्रदायके मतसे सिद्ध है; किन्तु शवसाधन ही वीराचारियोंका प्रधान साधन है। वीराचारी देखो।

पश्विज्या (सं॰ स्त्री॰) पशुना इज्या। पशुसाध्य यागभेद। इस यागका विषय कात्यायन श्रौतसूत्र (५।४।१)में लिखा है।

पश्विष्टका (सं॰ स्त्री॰) पशुना इष्टका ३-तत्। अग्नि-चयनार्थ इष्टका भेदसे पशुयाग। पांच प्रकारकी इष्टकाओंमेंसे पश्विष्टका एक है।

पश्विष्टि (सं॰ स्त्री॰) पशुयागाङ्ग इष्टिभेद।

पश्वेकादशिनी (सं॰ स्त्री॰) एकादशपरिमाणमस्य डिनि ङीप्, पशुना एकादशिनी। पशुयागभेद। देवताकी एकादश पशु द्वारा यज्ञ करना होता है, इसी-से इसे पश्वेकादशिनी कहते हैं। एकादश पशु यथा—आग्नेय,सारस्वत, सौम्य, पौष्ण, वार्हस्पत्य, वैश्वदेव, ऐन्द्र, मारुत, ऐन्द्राग्न, सावित्र और वारुण। पशु देखो।

पषा (हिं॰ पु॰) श्मश्रु, दाढ़ी।

पषाण (हिं॰ पु॰) पाषाण देखो।

पषान (हिं॰ पु॰) पाषाण देखो।

पष्ठवाह, (सं॰ पु॰) पृष्ठेन वहति पृष्ठं भारं वहति वह ण्वि, पृषोदरादित्वात् साधुः। पञ्चवर्षीय भारवह वृष, पांच वर्षका वह बछड़ा जो बोझ ढो सकता हो।

पसंगा (हिं॰ पु॰) १ वह बोझ जिसे तराजूके पल्लोंका बोझ बराबर करनेके लिये तराजूकी जोतीमें हलके पल्लेकी तरफ बांध देते है, पासंग। २ तराजूके दोनों पल्लोंके बोझका अन्तर जिसके कारण उस तराजू पर तौली जानेवाली चीजकी तौलमें भी उतना ही अन्तर पड़ जाता है। (वि॰) ३ बहुत ही थोड़ा, बहुत ही कम।

पसंद (फा॰ वि॰) १ रुचिके अनुकूल, मनोनीत, जो अच्छा लगे। (स्त्री॰) २ अच्छा लगनेकी वृत्ति, अभि-रुचि।

पसंदा (हिं॰ पु॰) १ एक प्रकारका कबाब जो मांसके कुचले हुए टुकड़ोंसे बनाया जाता है। २ मांसके एक प्रकारके कुचले हुए टुकड़े, पारचेका गोश्त।

पस (फा॰ अव्य॰) इसलिये, इस कारण, अतः।

पसई (हिं॰ स्त्री॰) पहाड़ी राई जो हिमालयकी तराई और विशेषतः नेपाल तथा कमाऊंमें होती है। इसकी पत्तियां गोभीके पत्तोंकी तरह होती हैं। इसकी फसल जाड़ेमें तैयार होती है। बाकी सब विषयोंमें यह साधारण राईकी ही तरह होती है।

पसकारण (फा॰ वि॰) कायर, डरपोक।

पसघ (हिं॰ पु॰) पसंगा देखो।

पसताल (हिं॰ पु॰) एक प्रकारकी घास जो पानीके आस पास बहुतायतसे होती है और जिसे पशु बड़े चावसे खाते हैं। कहीं कहीं गरीब लोग इसके दानों या बीजोंका व्यवहार अनाजकी भांति भी करते हैं।

पसनी (हिं॰ स्त्री॰) अन्नप्राशन नामक संस्कार। इसमें बच्चोंको प्रथम बार अन्न खिलाया जाता है।

पसर (हिं॰ पु॰) १ करतल पुट, आधी अंजली, गहरी की हुई हथेली। २ विस्तार, प्रसार, फैलाव। ३ रातके समय पशुओंको चरानेका काम। ४ आक्रमण, धावा, चढ़ाई।

पसरकटाली (हिं॰ स्त्री॰) भटकटैया, कटाई।

पसरन (हिं॰ स्त्री॰) गन्धप्रसारणी, पसारनी।

पसरना (हिं॰ क्रि॰) १ आगेकी ओर बढ़ना, फैलना। २ विस्तृत होना, बढ़ना। ३ पैर फैला कर सोना, हाथ पैर फैला कर लेटना।

पसरहा (हिं० पु०) पसरहट्टा देखो।

पसरहट्टा (हिं० पु०) वह हाट या बाजार जिसमें पंसारियों आदिकी दूकानें हों, वह स्थान जहां वन-ओषधियां और मसाले आदि मिलते हैं।

पसराना (हिं० क्रि०) पसारनेका काम दूसरेसे कराना, दूसरेको पसारनेमें प्रवृत्त करना।

पसली (हिं० स्त्री०) मनुष्यों और पशुओं आदिके शरीरमें छाती परके पञ्जरकी आड़ी और गोलाकार हड्डियोंमेंसे कोई हड्डी।

साधारणतः मनुष्यों और पशुओंमें गलेके नीचे और पेटके ऊपर हड्डियोंका एक पञ्जर होता है। मनुष्यमें इस पञ्जरमें उभयपार्श्व बारह बारह हड्डियाँ होती हैं। ये हड्डियां पश्चात्भागमें रीढ़में संयुक्त रहती हैं और उसके दोनों ओरसे निकल कर उभयपार्श्व होती हुई आगे छाती और पेटकी तरफ आती हैं। पसलियोंके अगले सिरे सामने आ कर छातीकी ठीक मध्यरेखा तक नहीं पहुंचते बल्कि उससे कुछ पहले ही खतम हो जाते हैं। ऊपरकी जो सात सात हड्डियां रहती हैं, वे कुछ बड़ी होती हैं और छातीके मध्यकी हड्डीसे जुड़ी रहती हैं। इसके बादकी नीचेकी ओरकी हड्डियां या पसलियां क्रमशः छोटी होती जाती हैं और प्रत्येक पसलीका अगला सिरा अपनेसे ऊपरवाली पसलीके नीचेके भागसे जुड़ा रहता है। इस प्रकार अन्तिम या सबसे नीचेकी पसली जो कोखके पास होती है सबसे छोटी होती है। नीचेकी जो दो पसलियाँ हैं, उनके अगले सिरे छातीकी हड्डी तक तो पहुंचते ही नहीं, साथ ही वे अपने ऊपरकी पसलियोंसे भी जुड़े हुए नहीं होते। इन पसलियोंके बीचमें जो अन्तर होता है उसमें मांस तथा पेशियाँ रहती हैं। श्वास लेते समय मांस पेशियोंके सुकड़ने और फैलनेके कारण ये पसलियाँ भी आगे बढ़ती और पीछे हटती दिखाई देती हैं। साधारणतः इन पसलियोंका उपयोग हृदय और फेफड़े आदि शरीरके आभ्यन्तरिक कोमल अङ्गोंको बाहर आघातोंसे बचानेके लिये होता है। पशुओं, पक्षियों और सरीसृपों आदिकी पसलीकी हड्डियोंकी संख्यामें प्रायः बहुत कुछ अन्तर होता है और उनकी बनावट तथा स्थिति आदिमें भी बहुत प्रभेद होता है। पसलीकी हड्डियोंकी सबसे अधिक संख्या साँपोंमें होती है। उनमें कभी कभी दोनों ओर दो दो सौ हड्डियां होती हैं।

पसवपेश (हिं० पु०) पसोपेश देखो।

पसवा (हिं० पु०) हलका गुलाबी रंग।

पसही (हिं० पु०) तिन्नीका चावल।

पसा (हिं० पु०) अञ्जली।

पसाई (हिं० स्त्री०) पसताल नामकी घास जो तालोंमें होती है।

पसाना (हिं० क्रि०) १ सिद्ध चावलका बचा हुआ पानी निकालना या अलग करना, भातमेंसे माँड़ निकालना। २ किसी पदार्थमें मिला हुआ जलका अंश चुआ या बहा देना, पसेव निकालना या गिराना।

पसार (हिं० पु०) १ पसरनेकी क्रिया या भाव, फैलाव। २ विस्तार, लम्बाई और चौड़ाई आदि।

पसारना (हिं० क्रि०) विस्तार करना, फैलाना, आगेकी ओर बढ़ाना।

पसारी (हिं० पु०) १ तिन्नीका धान, पसवन, पसेहो। २ पंसारी देखो।

पसाव (हिं० पु०) वह जो पसाने पर निकले, माँड़, पीच।

पसावन (हिं० पु०) १ किसी उबाली हुई वस्तुमेंका गिराया हुआ पानी। २ माँड़, पीच।

पसिंजर (अं० पु०) यात्री, विशेषतः रेल या जहाजका यात्री। २ मुसाफिरोंके सवार होनेकी वह रेलगाड़ी जो प्रत्येक स्टेशन पर ठहरती चलती है और जिसकी चाल डाकगाड़ीकी चालसे कुछ धीमी होती है।

पसीजना (हिं० क्रि०) १ किसी घन पदार्थमें मिले हुए द्रव अंशका गरमी पा कर या और किसी कारणसे रस रस कर बाहर निकलना। २ दयार्द्र होना, चित्तमें दया उत्पन्न होना।

पसीना (हिं० पु०) शरीरमें मिला हुआ जल। यह कठिन परिश्रम करने अथवा गरमी लगने पर सारे शरीरसे निकलने लगता है। स्वेद देखो।

पसु (हिं० पु०) पशु देखो।

पसूज (हिं० स्त्री०) वह सिलाई जिसमें सीधे तोपे भरे जाते हैं।

पसूजना (हिं० क्रि०) सिलाई करना, सीना।

पसूता (हिं० स्त्री०) जिस स्त्रीने अभी हालमें बच्चा जना हो, प्रसूता, जच्चा।

पसूम (फा० वि०) कठोर।

पसेउ (हिं० पु०) पसेव देखो।

पसेरी (हिं० स्त्री०) पांच सेरका बाट, पंसेरी।

पसेव (हिं० पु०) १ वह तरल पदार्थ जो किसी पदार्थके पसीजने पर निकले, किसी चीजमेंसे रस कर निकला हुआ जल। २ स्वेद, पसीना। ३ वह तरल पदार्थ जो कच्ची अफीमको सुखानेके समय उसमेंसे निकलता है। इस अंशके निकल जाने पर अफीम सूख जाती है और खराब नहीं होती।

पसेवा (हिं० पु०) सोनारोंकी अंगीठी पर चारों ओर रहनेवाली चारों ईंटें।

पसोपेश (फा० पु०) १ दुबिधा, आगा पीछा, सोच विचार। २ हानि लाभ, भला बुरा।

पस्त (फा० वि०) १ परास्त हारा हुआ। २ क्लान्त, थका हुआ। ३ अधीनस्थ, दबा हुआ।

पस्तकद (फा० वि०) नाटा, वामन।

पस्तहिम्मत (फा० वि०) भीरु, डरपोक, कायर।

पस्ताना (हिं० क्रि०) पछताना देखो।

पस्तावा (हिं० पु०) पछतावा देखो।

पस्ती (फा० स्त्री०) १ नीचे होनेका भाव, निचाई। २ कमी, न्यूनता, अभाव।

पस्ती (हिं० स्त्री०) पश्ती देखो।

पस्त्य (सं० क्ली०) अपस्त्यायन्ति सङ्घीभूय तिष्ठन्ति जीवा यत्र, अप-स्त्यै-क, निपातनादुपसर्गस्य अकार लोपः। गृह, घर।

पस्त्यसद् (सं० पु०) देवयजनगृहमें अवस्थित।

पस्त्यावत् (सं० त्रि०) पस्त्यमस्त्यस्येति मतुप् मस्य व, ततो दीर्घः। गृहयुक्त, प्राचीन वंशादि गृहयुक्त।

पस्पश (सं० पु०) सन्दर्भग्रन्थभेद। यह महाभाष्यका प्रथमाह्निकात्मक है।

पस्सर (अं० पु०) जहाजका वह कर्मचारी जो खलासियों आदिको वेतन और रसद बांटता है, जहाजका खजानची या भण्डारी।

पस्सीबबूल (हिं० पु०) एक प्रकारका पहाड़ी विलायती बबूल। यह जङ्गली नहीं होता बल्कि बोने और लगानेसे होता है। हिमालयमें यह ५००० फुटकी ऊंचाई तक बोया जा सकता है। प्रायः घेरा बनाने या बाढ़ लगानेके लिये यह बहुत ही उत्तम और उपयोगी होता है। जाड़ेमें इसमें खूब फूल लगते हैं जिनमेंसे बहुत अच्छी सुगन्ध निकलती है। यूरोपमें इन फूलोंसे कई प्रकारके इत्र और सुगन्धित द्रव्य बनाये जाते हैं।

पहंसुल (हिं० स्त्री०) हंसियाके आकारका तरकारी काटनेका एक औजार।

पहचनवाना (हिं० क्रि०) पहचाननेका काम कराना।

पहचान (हिं० स्त्री०) १ पहचाननेकी क्रिया या भाव। २ पहचाननेकी सामग्री, किसी वस्तुकी विशेषता प्रकट करनेवाली ऐसी बातें जिनकी सहायतासे वह अन्य वस्तुओंसे अलग की जा सके। ३ पहचाननेकी शक्ति या वृत्ति। ४ भेद या विवेक करनेकी क्रिया या भाव। ५ जान पहचान, परिचय।

पहचानना (हिं० क्रि०) १ किसी वस्तु या व्यक्तिको देखते ही जान लेना कि वह कौन व्यक्ति क्या वस्तु है। २ विवेक करना, बिलगाना, तमीज करना। ३ किसी वस्तुका गुण या दोष जानना। ४ किसी वस्तुकी शरीराकृति, रूप रंग अथवा शक्लसूरतसे परिचित होना।

पहटना (हिं० क्रि०) १ भगा देने अथवा पकड़ लेनेके लिये किसीके पीछे दौड़ना, खदेड़ना। २ धारको रगड़ कर तेज करना, पना करना।

पहटा (हिं० पु०) १ पाटा देखो। २ पेठा देखो।

पहन (फा० पु०) वह दूध जो बच्चेको देख कर वात्सल्य भावके कारण माँकी छातियोंमें भर आवे और टपकनेको हो।

पहनना (हिं० क्रि०) परिधान करना, शरीर पर धारण करना।

पहनवाना (हिं० क्रि०) किसी औरके द्वारा किसीको कुछ पहनाना।

पहना (फा० पु०) पहन देखो।

पहनाई (हिं० स्त्री०) पहननेकी क्रिया या भाव। २ जो पहनानेके बदलेमें दिया जाय, पहनानेकी मजदूरी।

पहनाना (हिं० क्रि०) किसीके शरीर पर पहननेकी कोई चीज धारण कराना।

पहनावा (हिं० पु०) १ परिच्छद, परिधेय, पोशाक। २ सिरसे पैर तकके ऊपर पहननेके सब कपड़े, पाँचो कपड़े। ३ वे कपड़े जो किसी खास अवसर पर देश या समाजमें पहने जाते हों। ४ कपड़े पहननेका ढंग या चाल।

पहपट (हिं० पु०) १ एक प्रकारका गीत जो स्त्रियां गाया करती हैं। २ कोलाहल, हल्ला, शोरगुल। ३ गुप्त अपवाद या निन्दा, ऐसी बदनामी जो कानाफूसी द्वारा की जाय। ४ छल, धोखा, ठगी, फरेब। ५ अपवादका शोर, बदनामीकी जोर शोरसे चर्चा।

पहपटबाज (हिं० पु०) १ हल्ला करने या करानेवाला, फसादी, शरारती। २ धोखेबाज, छलिया, फरेबी।

पहपटबाजी (हिं० स्त्री०) १ कलहप्रियता, झगड़ालूपन। २ छलियापन, ठगी, मक्कारी।

पहपटहाई (हिं० स्त्री०) बातका बतंगड़ करनेवाली, झगड़ा लगानेवाली।

पहर (हिं० पु०) १ युग, समय, जमाना। २ अहोरात्रका अष्टम भाग, एक दिनका चतुर्थांश, तीन घण्टेका समय।

पहरना (हिं० क्रि०) पहनना देखो।

पहरा (हिं० पु०) १ रक्षकनियुक्ति, रक्षा अथवा निगहबानीका प्रबन्ध, चौकी। २ एक साथ काम करते हुए चौकीदार, रक्षकदल, गारद। ३ निर्दिष्ट स्थानमें किसी विशेष वस्तु या व्यक्तिकी रक्षा करनेका कार्य, रखवाली हिफाजत, निगहबानी। ४ एक पहरेदार या पहरेदारोंके एक दलका कार्यकाल, नियुक्ति, तैनाती। एक व्यक्ति अथवा एक रक्षकदलकी नियुक्ति पहले एक पहरके लिये होती थी। उसके बाद दूसरे व्यक्ति या दलकी नियुक्ति होती थी और पहलेको छुट्टी मिलती थी। उपर्युक्त प्रबन्ध, कार्य और कार्यकालका 'पहरा' नाम पड़नेका यही कारण जान पड़ता है। ५ पहरेमें रहनेकी स्थिति, हिरासत, हवालात, नजरबन्दी। ६ रातमें निश्चित समय पर रक्षकका भ्रमण या चक्कर। ७ चौकीदारकी आवाज। ८ आ जानेका शुभ या अशुभ प्रभाव, पैर रखनेका फल। ९ युग, समय, जमाना।

पहराना (हिं० क्रि०) पहनाना देखो।

पहरावनी (हिं० स्त्री०) वह पोशाक जो कोई बड़ा छोटेको दे, खिलअत।

पहरावा (हिं० पु०) पहनावा देखो।

पहरी (हिं० पु०) १ रक्षक, पहरेदार, चौकीदार। २ एक जाति जिसका काम पहरा देना होता था। फिलहाल इस जातिके लोग भिन्न भिन्न व्यवसाय करने लग गये हैं। लेकिन पूर्व समयमें इस जातिके लोग पहरा देनेके सिवा और कोई काम नहीं करते थे। ग्राममें रहनेवाले पहरी अब तक अधिकतर चौकीदार ही होते हैं। ये लोग सूअर भी पालते हैं। प्रायः चतुर्वर्णके हिन्दू इनका स्पर्श किया हुआ जल नहीं पीते।

पहरुआ (हिं० पु०) पहरू देखो।

पहरू (हिं० पु०) पहरा देनेवाला, चौकीदार, रक्षक, संतरी।

पहल (हिं० पु०) किसी वस्तुकी लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई अथवा गहराईके कोनों अथवा रेखाओंसे विभक्त समतल अंश, बगल, तरफ। २ रजाई तोशक आदिसे निकाली हुई पुरानी रूई जो दबनेके कारण कड़ी हो जाती है। ३ जमी हुई रूई अथवा ऊन। ४ किसी कार्य, विशेषतः ऐसे कार्यका आरम्भ जिसके प्रतिकारमें कुछ किये जानेकी सम्भावना हो, छेड़। ५ तह, परत।

पहलदार (हिं० वि०) जिसमें पहल हो, जिसमें चारों ओर अलग अलग बंटी हुई सतहें हों।

पहलनी (हिं० स्त्री०) सोनारोंका एक औजार। इसमें वे कोढ़ेको पहना कर उसे गोल करते हैं। यह लोहेका होता है।

पहलवान (फा० पु०) १ कुश्ती लड़नेवाला बली पुरुष, कुश्तीबाज। २ वह जिसका शरीर यथेष्ट हृष्ट पुष्ट और बलयुक्त हो, मोटा तगड़ा और ठोस शरीरका आदमी।

पहलवानी (फा० स्त्री०) १ कुश्ती लड़नेका काम, कुश्ती लड़ना। २ कुश्ती लड़नेका पेशा, मल्ल व्यवसाय।

३ बलकी अधिकता और दाव पेच आदिमें कुशलता।
पहलवी (फा० पु०) पह्लवी देखो।
पहला (हिं० वि०) १ एकको संख्याका पूरक, प्रथम, औवल। (पु०) २ जमो हुई पुरानो रुई, पहल।
पहलू (फा० पु०) १ बगल और कमरके बोचका वह भाग जहां पसलियाँ होती हैं, कच्चका अधोभाग, पार्श्व, पांजर। २ करवट, बल, दिशा। ३ किसो वस्तुके पृष्ठदेश परका समतल कटाव, पहल। ४ सैन्यपार्श्व, सेनाका दहिना या बायां भाग। ५ पार्श्वभाग, बाजू, बगल। ६ पड़ोस, आस पास। ७ सङ्केत, गुप्त सूचना, गूढ़ाशय। ८ विचारणोय विषयका कोई एक अंग, गुण दोष, भलाई बुराई आदिकी दृष्टिसे किसो वस्तुके भिन्न भिन्न अङ्ग।
पहले (हिं० अव्य०) १ आरम्भमें, सब प्रथम, शुरूमें। २ पूर्वकालमें, बीते समयमें, अगले जमानेमें। ३ देश क्रममें प्रथम, स्थितिमें पूर्व।
पहलेज (हिं० पु०) एक प्रकारका खरबूजा। यह लम्बोतरा होता है और स्वादमें गोल खरबूजेको अपेक्षा कुछ होन होता है।
पहलेपहल (हिं० अव्य०) सर्व प्रथम, पहलो बार।
पहलौंठा (हिं० वि०) पहलौठा देखो।
पहलौंठो (हिं० स्त्री०) पहलौठी देखो।
पहलौठा (हिं० वि०) प्रथम गर्भजात, पहलो बारके गर्भसे उत्पन्न।
पहलौठो (हिं० स्त्री०) प्रथम प्रसव, पहले पहल बच्चा जनना।
पहाड़ (हिं० पु०) १ प्राकृतिक रीतिसे बना हुआ पत्थर चूने मट्टी आदिको चट्टानोंका ऊंचा और बड़ा समूह, गिरि। विशेष विवरण पर्वत शब्दमें देखो। २ किसो वस्तुका बहुत भारो ढेर। ३ दुस्साध्य काम। दुष्कर काम, अति कठिन कार्य। ४ वह जिसको समाप्त या शेष न कर सके, वह जिससे निस्तार न हो सके। ५ अतिशय गुरु वस्तु, बहुत बोझल चीज।
पहाड़खाँ—बलूच जातीय एक योद्धा। इन्होंने सम्राट अकबरके अधीन हारावतोराज सुरजनके पुत्र दाउदके विरुद्ध और पीछे बङ्गालमें युद्ध किया था। ९८८ हिजरीमें इन्होंने गाजोपुरके 'तुयुलदार'का पद पाया। आज भी गाजोपुरके लोग फौजदार पहाड़खाँको स्मृति नहीं भूले हैं। यहांको पहाड़खाँकी समाधि और सरोवर देखने योग्य है। गाजोपुरसे ये एक समय महमदाबादमें मसूमखाँके विरुद्ध भेजे गये थे। इसके दो वर्ष बाद ये गुजरातके पाटनके निकटवर्त्ती मंसाला-रणक्षेत्रमें उपस्थित हुए। उस युद्धमें शेरखाँ-कुलादिकी हार हुई।

(अकबरनामा)

पहाड़पुर—१ अयोध्या प्रदेशके अन्तर्गत एक परगना। २ पञ्जाबके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। ३ दिनाजपुरके अन्तर्गत एक प्राचोन गण्डग्राम। यहां एक समय हिन्दूका राज्य था। उस समयके अतिप्राचोन हिन्दूमन्दिरका ध्वंसावशेष और कुछ प्राचीन देवमूर्त्तियां बाहर हुई हैं। किसीका कहना है, कि वे सब बौद्धकीर्त्ति हैं, लेकिन एक बार देखनेसे हो वे ब्राह्मण्यकीर्त्ति-सो प्रतीत होती हैं।
पहाड़सिंह—अंगरेजभक्त फरिदकोटके एक राजा।

फरिदकोट देखो।

पहाड़सिंगरा—मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलेका एक छोटा गोण्डराज्य। भूपरिमाण २० वर्गमील है। राज्यके तिहाई स्थानमें धान और ईखकी खेती होती है।

१८५८ ई०में यहांके राजाने सिपाहोविद्रोहमें साथ दिया था, लेकिन पोछे अंगरेज गवर्मेण्टने उनका अपराध क्षमा कर दिया। वृटिश-गवर्मेण्टको १४० रुपये करमें देने पड़ते हैं।
पहाड़ा (हिं० पु०) किसो अङ्कके एकसे लेकर दस तकके साथ गुणा करनेके फल जो सिलसिलेके साथ दिये गए हों, गुणनसूचो।
पहाड़िया (हिं० वि०) पहाड़ी देखो।
पहाड़िया—विहार और उड़ोसाके अन्तर्गत सन्थाल परगनावासो पार्वत्य जातिविशेष। ये लोग साधारणतः मल्लार नामसे मशहूर हैं और विहारको आदिम असभ्य जाति माने जाते हैं। इन लोगोंका कहना है कि पर्वत पर वास करनेके लिये जगदीश्वरने जिस प्रथम मानव जातिकी सृष्टि की, वर्तमान पहाड़िया उन्हींके एकमात्र वंशधर हैं।

अंगरेजी राज्यके पहले इन लोगोंके मध्य दस्यु-वृत्ति और यथेच्छाचार प्रभृति अनियम प्रचलित थे। नीतिशास्त्रका बहुत कुछ पदानुसरण करने पर भी जिघांसावृत्ति और निष्ठुरता इनका प्रधान अवलम्बन था। इस कारण नीतिके वशवर्त्ती हो कर ये लोग जो कार्य करते हैं, वह अत्यन्त असभ्य और नीचजनोचित है। ग्रामका प्रधान व्यक्ति (मांझी) ही सभी प्रकारके कार्योंका विचार करता है।

ये लोग आत्माकी देहान्तरप्राप्ति पर विश्वास करते हैं। 'मृत्युके बाद कर्मके फलाफल-अनुसार मृत व्यक्तिकी आत्मा सुख और दुःख भोग करती है' यह महावाक्य जगदीश्वरने उनके आदिपुरुषसे कहा था। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक ईश्वरका आदेश पालन करता है और स्वजातियोंकी क्षति, अवमानना, पीड़न और हत्या आदि कार्योंमें लिप्त नहीं रहता तथा जो सुबह और शामको जगदीश्वरकी उपासना करता है, मृत्युके बाद उसकी आत्मा ईश्वरके पास लाई जाती है। वे (ईश्वर) प्रीत हो कर कुछ दिन तक उसे अपने पास रखते, बाद तत्कृत पुण्यकर्मके पारितोषिकस्वरूप उसे धराधाम भेज देते हैं। इस प्रकार पवित्रात्मा हो संसारमें आ कर राजा वा सरदार रूपमें जन्म ग्रहण करती है। किन्तु यदि वह उच्चपदाधिष्ठित व्यक्ति ऐश्वर्यमदसे मत्त हो कर ईश्वरका अमनोयोगी और कृतघ्न हो जाय, तो ईश्वर-के आदेशसे उस व्यक्तिका पुनः निकृष्ट पशुयोनिमें जन्म होता है। आत्महत्या महापाप है; जो आत्महत्या द्वारा ईश्वरका अप्रीतिभाजन होता है, उसकी कलुषित आत्मा स्वर्गद्वारमें घुस नहीं सकती—अनन्तकाल तक उसे स्वर्ग और पृथ्वीके मध्यवर्त्ती व्योमलोकमें भटकना पड़ता है। मृत्युके बाद हत्याकारीकी आत्मा भी इसी प्रकार दुर्गतिको प्राप्त होती है। हत्या, सतीत्वनाश प्रभृति महापाप ईश्वरसे घृणित समझे जाते हैं। यदि कोई उक्त प्रकारके पापकर्ममें लिप्त रह कर भी उसे छिपाना चाहता है अथवा षड़यन्त्र करके उस दोषको दूसरेके मत्थे मढ़ता है, तो उसका वह पाप द्विगुणित होता है और आखिरकार वह ईश्वरसे भारी दण्ड पाता है।

मलारगण जगदीश्वरको 'बेदो' कह कर पुकारते हैं। सूर्यदेव ईश्वरके निदर्शनरूपमें बेदो वा बेरो नामसे पूजित होते हैं। अपर पर देवताओंकी पूजाके पहले प्रथमतः इनकी पूजा करके बलि चढ़ाते हैं।

इस प्रदेशमें अंगरेजागमनसे ही पहाड़ियोंके मध्य विशेष उन्नति हुई है। मलार भिन्न पहाड़ियोंके मध्य माल और कुमार नामके दो और भी स्वतन्त्र थाक हैं। मलारगण ईसाधर्मावलम्बियोंकी तरह सभी प्रकारके खाद्य खाते हैं। इसके अलावा वे मृत पशुका मांस खानेमें भी बाज नहीं आते। ये लोग स्वभावतः डरपोक होते हैं। भिन्न देशवासीका आगमन इनके लिये दुःखद हो जाता है।

ये लोग स्वभावतः ही परिष्कार परिच्छन्न हैं; इनकी आकृति अपेक्षाकृत खर्व है। अङ्गसौष्ठवमें ये लोग विलक्षण पटु होते हैं। केशविन्यास इनकी जातीय उन्नतिकी पराकाष्ठा दिखाता है। पुरुष भी स्त्रीकी तरह जूड़ा बांधते हैं। टसर, रेशम आदिके वस्त्र और पगड़ीका ये लोग व्यवहार करते हैं। स्त्रियां अन्यान्य धातुओंके अलङ्कारकी अपेक्षा प्रवालकी माला पहनना बहुत पसन्द करती हैं। इन लोगोंमें बहुविवाह प्रथा प्रचलित है। यदि कोई व्यक्ति दो वा दोसे अधिक स्त्री छोड़ कर मर जाय, तो उसकी स्त्री देवरसे अथवा स्वसम्पर्कीय अन्य देवरसे विवाह कर सकती है।

साधारणतः ये लोग शवदेह गाड़ते हैं और प्रत्येक कब्रके ऊपर एक एक पत्थर रख छोड़ते हैं। पुरोहितकी देह ये लोग कभी भी नहीं गाड़ते, बल्कि उसे खाट पर सुला कर जंगल ले जाते और किसी वृक्षकी शीतल छायामें पत्तोंसे ढक कर घर लौट आते हैं। संक्रामक रोगमें मृत व्यक्तिकी भी यही दुर्दशा होती है। मृत व्यक्तिका ज्येष्ठ पुत्र सम्पत्तिका अर्द्धांश पाता है और अर्द्धांश शेष पुत्र-कन्याके बीच बांट दिया जाता है। भांजा मातामह वा मामाकी सम्पत्तिका अधिकारी नहीं होता। यदि उपरि-उक्त एक वर्षके भीतर किसीकी भी स्त्री मर जाय, तो वह विवाह नहीं कर सकता।

पहाड़ी (हिं० वि०) १ जो पहाड़ पर रहता या होता हो। २ पहाड़सम्बन्धी, जिसका सम्बन्ध पहाड़से हो।

(स्त्री०) ३ छोटा पहाड़। ४ पहाड़के लोगोंकी गानेकी एक धुन। ५ सम्पूर्ण जातिकी एक प्रकारकी रागिनी। इसके गानेका समय आधी रात है।

पहाड़ी—दाक्षिणात्यवासी जातिविशेष। पर्वत पर वास करनेके कारण इसका पहाड़ी नाम पड़ा है। पहले असभ्य रहने पर भी ये लोग सुसभ्य हो गये हैं। पूना अञ्चलके पहाड़ी खेती बारी करके अपनः गुजारा करते हैं। लेकिन इन लोगोंकी संख्या बहुत कम है। इनका आदिवास कहां था, किसीको भी आज तक मालूम नहीं। ये लोग मराठी भाषा बोलते हैं। निरामिष वा आमिष, मद्य मांस प्रभृति किसी भी खाद्यमें आपत्ति नहीं करते। ये लोग मादक वस्तुका अधिक व्यवहार करते हैं। रवि और मङ्गलवारको जब तक ये लोग गांजा और मद्य पी नहीं लेते, तब तक कोई काम नहीं करते हैं। हिन्दूदेवदेवीकी पूजा इन लोगोंमें प्रचलित है। देशस्थ ब्राह्मण इनके पुरोहित होते हैं।

सन्तान प्रसूत होनेके बाद भी वे उसकी नाभि काट डालते और उसे तथा प्रसूतिको स्नान करा देते हैं। प्रथम तीन दिन तक शिशुकी जान केवल मधु और अंडीके तेलसे बचाई जाती हैं। चौथे दिनसे प्रसूति बच्चेको दूध पिलाने लगती है। जातकर्म, अन्नप्राशन, विवाह और और्ध्वदेहिक क्रिया बहुत कुछ निम्नश्रेणीके मराठियों-सी होती है। इनमें बहुविवाह और बाल्य विवाह प्रचलित है। किसीकी मृत्यु हो जाने पर उसके पुत्र और ज्ञाति वृन्दको दश दिन तक अशौच रहता है। इन लोगोंमें पञ्चायत भी है।

पहार (सं० पु०) पहाड़ देखो।

पहारी (हिं० वि०) पहाड़ी देखो।

पहिचान (हिं० स्त्री०) पहचान देखो।

पहिचानना (हिं० क्रि०) पहचानना देखो।

पहिनना (हिं० क्रि०) पहनना देखो।

पहिनाना (हिं० क्रि०) पहनाना देखो।

पहिनावा (हिं० पु०) पहनावा देखो।

पहिया (हिं० पु०) १ गाड़ी, इंजन अथवा अन्य किसी कलमें लगा हुआ लकड़ी या लोहेका चक्र। यह अपनी धुरी पर घूमता है और इसके घूमने पर गाड़ी या कल भी चलने लगती है, चक्का। २ किसी कलका वह चक्राकार भाग जो अपनी धुरी पर घूमता है, लेकिन जिसके घूमनेसे समस्त कलको गति नहीं मिलती, पर उसके अंश विशेष अथवा उससे सम्बन्ध अन्य वस्तु या वस्तुओंको मिलती है, चक्कर।

यद्यपि धुरी पर घूमनेवाले प्रत्येक चक्रको पहिया कहना उचित होगा तथापि बोलचालमें किसी चलनेवाली चीज अथवा गाड़ीके जमीनसे लगे हुए चक्रको ही पहिया कहते हैं। पहिया कलका अधिक महत्वपूर्ण अङ्ग है। उसका उपयोग केवल गति देने होमें नहीं होता, गतिका घटना बढ़ना, एक प्रकारकी गतिसे दूसरे प्रकारकी गति उत्पन्न करना आदि कार्य भी उससे लिये जाते हैं। पहियेके प्रसिद्ध पुर्जे ये सब हैं— पुट्ठी, आरा, बेलन, आवन, धुरा, खोपड़ा, तितुला, लाग, हाल आदि।

पहिरना (हिं० क्रि०) पहनना देखो।

पहिराना (हिं० क्रि०) पहनाना देखो।

पहिरावना (हिं० क्रि०) पहनाना देखो।

पहिरावनि (हिं० स्त्री०) पहनावा देखो।

पहिला (हिं० वि०) १ प्रथम प्रसूता, पहले पहल ब्याई हुई। २ पहला देखो।

पहिले (हिं० अव्य०) पहले देखो।

पहिलौठा (हिं० वि०) पहलौठा देखो।

पहिलौठी (हिं० वि०) १ पहलौठी देखो। (स्त्री०) २ पहलौठी देखो।

पहुंच (हिं० स्त्री०) १ किसी स्थान तक अपनेको ले जानेकी क्रिया या शक्ति, किसी स्थान तक गति। २ प्राप्तिसूचना, प्राप्ति, रसीद। ३ प्रवेश, पैठ, गुजर, रसाई। ४ किसी स्थल पर्यन्त विस्तार, किसी स्थान तक लगातार फैलाव। ५ अभिज्ञताकी सीमा, जानकारीका विस्तार, परिचय। ६ मर्म या आशय समझनेकी शक्ति, पकड़।

पहुंचना (हिं० क्रि०) १ गति द्वारा किसी स्थानमें प्राप्त

या उपस्थित होना। २ एक स्थिति या अवस्थासे दूसरी स्थिति या अवस्थाको प्राप्त होना। ३ कहीं तक विस्तृत होना। ४ गूढ़ अर्थ अथवा आन्तरिक आशयको ज्ञात कर लेना। ५ प्रविष्ट होना, घुसना, पैठना। ६ प्राप्त होना, मिलना। ७ समझनेमें समर्थ होना, दूर तक डूबना, जानकारी रखना। ८ समकक्ष होना, तुल्य होना। ९ अनुभूत होना, अनुभवमें आना।

पहुँचा (हिं॰ पु॰) मणिबन्ध, अग्रबाहु और हथेलीके बीचका भाग, कलाई, गट्टा।

पहुँचाना (हिं॰ क्रि॰) १ किसी उद्दिष्ट स्थान तक गमन कराना, उपस्थित कराना, ले जाना। २ किसीके साथ इसलिये जाना जिसमें वह अकेला न पड़े। ३ समकक्ष कर देना, समान बना देना। ४ परिणामके रूपमें प्राप्त कराना, अनुभव कराना। ५ प्रविष्ट कराना, घुसाना, पैठाना। ६ किसीको स्थिति-विशेषमें प्राप्त कराना। ७ कोई चीज ला कर या ले जा कर किसीको प्राप्त कराना।

पहुँची (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका आभूषण जो हाथकी कलाई पर पहना जाता है।

पहुनई (हिं॰ स्त्री॰) पहुनाई देखो।

पहुना (हिं॰ पु॰) पाहुना देखो।

पहुनाई (हिं॰ स्त्री॰) १ अतिथि रूपमें कहीं जाना या आना, मेहमान हो कर जाना या आना। २ अतिथि-सत्कार, मेहमानदारी, खातिर तवाजा।

पहुनी (हिं॰ स्त्री॰) पहुनाई देखो।

पहुवी (हिं॰ स्त्री॰) वह पच्चर जो पल्ला या धरन आदि चीरते समय चिरे हुए अंशके बीचमें इसलिये दे देते हैं कि आरेके चलानेके लिये काफी फासला रहे।

पहुम (हिं॰ स्त्री॰) पुहमी देखो।

पहुरी (हिं॰ स्त्री॰) वह चिपटी टाँकी जिससे गढ़े हुए पत्थर चिकने किये जाते हैं, मठरनी।

पहेरी (हिं॰ स्त्री॰) पहेली देखो।

पहेली (हिं॰ स्त्री॰) १ किसी वस्तु या विषयका ऐसा वर्णन जो दूसरी वस्तु या विषयका वर्णन जान पड़े और बहुत सोच विचारसे उस पर घटाया जा सके, बुझौवल।

पहेलियोंकी रचनामें प्रायः ऐसा देखा जाता है, कि जिस विषयकी पहेली बनानी होती है उसके रूप, गुण, कार्य आदिको किसी अन्य वस्तुके रूप, गुण, कार्य बना कर वर्णन करते हैं जिससे सुननेवालेको थोड़ी देर तक वही वस्तु पहेलीका विषय मालूम होती है। लेकिन समस्त लक्षण और और जगह घटानेसे वह अवश्य समझ सकता है कि इसका लक्ष्य कुछ दूसरा ही है। जैसे, पेड़में लगे हुए भुट्टेकी पहेली है—"ही थी मन भरी थी। राजाजीके बागमें दुशाला ओढ़े खड़ी थी।" आवश्यकतावश यह किसी स्त्रीका वर्णन जान पड़ता है। कभी ऐसा भी करते हैं, कि कुछ प्रसिद्ध वस्तुओंके प्रसिद्ध विशेषताएं पहेलीके विषयकी पहचानके लिये देते हैं और साथ ही यह भी बतला देते हैं कि वह इन वस्तुओंमेंसे कोई नहीं है। जैसे, धागेसे संयुक्त सूईकी पहेली—"एक नयन वायस नहीं, बिल चाहत नहिं नाग। घटै बढ़ै नहिं चन्द्रमा, चढ़ी रहत सिर पाग।" कुछ पहेलियोंमें उनके विषयका नाम भी रख देते हैं। जैसे 'देखो एक अनोखी नारी, गुण उसमें एक सबसे भारी। पढ़ी नहीं यह अचरज आवै, मरना जीना तुरत बतावै।" इस पहेलीका उत्तर नाड़ी है जो पहेलीके नारी शब्दके रूपमें वर्तमान है। अलङ्कारशास्त्रमें आचार्योंने इस प्रकारकी रचनाको एक अलङ्कार माना है। प्रहेलिका देखो।

बुद्धिके अनेक व्यायामोंमें पहेली बूझना भी एक अच्छा व्यायाम है। बालकोंको पहेलियोंका बड़ा चाव होता है। इससे मनोरञ्जनके साथ उनकी बुद्धिकी सामर्थ्य भी बढ़ती जाती है।

२ गूढ़ अथवा दुर्ज्ञेय व्यापार, घुमावफिरावकी बात।

पह्नव (सं॰ पु॰) अमत्युधारिम्लेच्छजाति विशेष। इस जातिके लोग पहले क्षत्रिय थे, पीछे म्लेच्छभावापन्न होनेके कारण म्लेच्छ कहलाने लगा।

पह्निका (सं॰ स्त्री॰) अपर क्रु, वा॰ ङ, संज्ञायां कन् कापि अत इत्वं अपेरलोपः। नारिपुष्पी।

पह्लव (सं॰ पु॰) एक प्राचीन जाति, प्रायः प्राचीन पारसी या ईरानी। विस्तृत विवरण पह्लवी शब्दमें देखो।

पह्लवी—ईरान राज्यकी एक प्राचीन भाषा। पारसिकोंके अधिकांश शास्त्रग्रन्थ इसी भाषामें लिखे हुए हैं। इनका मूल धर्मग्रन्थ "जन्द अवस्ता" जिस भाषामें लिखा है, उसका नाम क्या है, मालूम नहीं। उस मूल ग्रन्थकी टीका, निघण्टु अथवा जो सब अनुवाद अभी प्राचीन धर्मग्रन्थके जैसा पारसिकोंके निकट आहृत होते हैं, उनकी भाषाका नाम उन सब ग्रन्थोंमें जन्द और मूल-ग्रन्थकी भाषाका नाम आवस्तिक भाषा बतलाया है। यूरोपीय पण्डित लोग भूलसे 'जन्द अवस्ता'की भाषा-को ही जन्द भाषा कहा करते हैं, लेकिन वह ठीक नहीं है। पारसिक लोग इसे स्वीकार नहीं करते। पारसिक भाषामें 'जन्द'से किसी ठीक भाषाका अर्थ बोध नहीं होता। पारसिकोंके ग्रन्थमें जहां "जन्द" शब्द-का व्यवहार होते देखा जाता है, वहीं उसके द्वारा किसी पह्लवी भाषामें लिखित पारसिक धर्मग्रन्थकी टीका निघण्टु वा अनुवादका ही बोध होता है। सुतरां "जन्द ग्रन्थोंकी भाषा ही 'पह्लवी' भाषा है। किन्तु 'जन्द-अवस्ता' नामक मूलग्रंथकी भाषा पह्लवी नहीं है, उस-की भाषा पारसिकोंकी 'आवस्तिक' भाषा कही जायगी।

पह्लवी भाषाका विवरण देनेके पहले इस नामके विषय-में कुछ कह देना आवश्यक है। आँकताई नामक फरासी पण्डितका कहना है, कि आधुनिक पारस्य भाषामें (जिसे बोलचालमें पारसी वा फारसी कहते हैं, उसमें) पाह्लू शब्दका अर्थ है "प्रान्त" वा पार्श्व। इससे वे 'पह्लव'-का अर्थ 'प्रान्तदेशीय भाषा' लगाते हैं। डा० हौगका कहना है, कि बहुतेरोंके यह अर्थ स्वीकार करने पर भी एक प्रान्तवर्त्ती भाषा जो एक समय सारे ईरान राज्यकी भाषा हो गई थी, वह असम्भव है। कोई कोई 'पह्लव'का 'वीर' अर्थ करके 'पह्लवी'का अर्थ श्रेष्ठ भाषा लगाते हैं। इस प्रकारकी व्युत्पत्ति समी-चीन नहीं है। पारसिक आभिधानिकोंने "पह्लव" अर्थमें ईरान साम्राज्यका तन्नामीय एक प्रदेश और नगरका नाम उल्लेख किया है। फिरदौसीका कहना है, कि 'दोघान' अर्थात् ग्रामके नायक पह्लवीकी विस्मृत कथाओंकी आज भी रक्षा करते हैं। इससे जाना जाता है, कि पह्लवीभाषा तन्नामक नगरकी न भी हो, पर प्रदेशकी भाषा अवश्य है। बहुतोंका कहना है, कि आधुनिक इस्पाहन, राय, हमदान, निहावन्द और आजर-बिजान प्रदेश बहु-पुरातन पह्लवप्रदेशके अन्तर्गत थे। यदि ऐसा हो, तो उसीको प्राचीन मिडिया राज्यका अति प्राचीन नाम कहना होगा। किन्तु किसी भी अरब वा पारस्य-देशीय ऐतिहासिकने मिडिया राज्यको 'पह्लव' कह कर उल्लेख नहीं किया। कीआटरमियरका कहना है, कि पह्लव प्राचीन पार्थिया-राज्यका अति प्राचीन नाम है। ग्रीक लोग इस पार्थिया राजका उल्लेख कर गये हैं। आर्षकीदीयोंकी राज-उपाधि 'पह्लव' थी, कीआटरमियरने यह आर्मिनियों-के ग्रन्थसे भी प्रमाणित किया है। पार्थियगण अपने-को सर्वापेक्षा युद्धप्रिय और वीरजाति समझते थे। सुतरां 'पह्लव' और 'पहलवान' शब्दसे पारसिक लोग तथा 'पलहवीग' शब्दसे आर्मिनिया लोग जो 'वीर', 'युद्धप्रिय' इत्यादि वीरपर्याय समझते हैं, वह अन्याय नहीं है। पह्लवोंका शौर्यवीर्य एक समय ईरान छोड़ कर भारतमें भी फैला हुआ था, जिसका प्रमाण रामायण, महाभारत और मनुसंहितामें मिलता है। साधारणतः भारतवासी पह्लव शब्दसे उस समयके पारस्य-वासी जनसाधारणको समझते थे। पह्लव और पारद देखो।

पार्सिपोलिस, हमदान, विहुस्तान आदि स्थानोंमें पर्वत पर तथा भग्न स्तूपादिमें आक्किमिनीय राजाओं-की जो कोणाकार अक्षरोंकी उत्कीर्ण लिपि पाई गई है, उसमें 'पार्थव' नामक एक जातिका उल्लेख है। यही 'पार्थव' ग्रीक और रोमकोंका उल्लिखित पार्थीय है। डा० हौगका ऐसा विश्वास है, कि यही पार्थीय वा पार्थव यथासमय 'पह्लव' हो गया है। उनका कहना है, कि ईरानीय लोग 'र'की जगह 'ल' और 'थ'की जगह 'ह' उच्चारण करते हैं; यथा, आवस्तिक 'मिथ्र' (संस्कृत मित्र) शब्द पारस्यभाषामें 'मिहिर' हो गया है। कोई कोई कहते हैं, कि यदि ऐसा हो, तो पार्थियाको पारसिक कहना होगा; लेकिन सो नहीं है। सम्भवतः पार्थिय लोग स्कीथीय (शक) वंशीय किसी शाखाके होंगे। डा० हौग इस अनुमानको ठीक नहीं बत-लाते। जब हमलोग देखते हैं, कि पार्थीयगण यथार्थमें

पांच सौ वर्ष तक पारस्यके अधीश्वर थे और रोमकोंके साथ युद्धमें उन्हें प्रतिहत करते थे, तब पार्थीयगण ही 'पह्लव' हैं इसमें और सन्देह नहीं रहता। ये लोग पह्लवी शब्दसे इस प्रकार सामान्यतः प्राचीन पारस्यवासी साधारणको ही समझते थे। मुसलमान ऐतिहासिकोंने अन्ततः 'पह्लव' शब्दका इसी अर्थमें व्यवहार किया है। इबन होकल नामक अरबी ऐतिहासिकने फार्स* देशके विवरणमें लिखा है, कि पारस्यमें फारस, पह्लवी और अरबी ये तीन भाषा प्रचलित हैं। फारसीमें लोग बातचीत करते हैं। पह्लवीमें सभी इतिहास लिखा हुआ है। अनुवाद भिन्न देशका कोई भी मनुष्य यह भाषा नहीं समझता। अरबी भाषामें वे कागजात तैयार करते हैं, राजनीतिक काम काज भी उसी भाषामें होता है।

इन सबसे यह जाना जाता है, कि 'पह्लवी' नाम किसी एक देश वा युगके साथ संश्लिष्ट नहीं है। यहां तक कि हजार वर्ष पहले फिरदौसीके समयमें (१००० ई०में) कोणाकार अक्षरकी शिलालिपि, शासनीय शिलालिपि और मुद्रालिपिकी तथा अवस्ताकी भाषा पह्लवी नामसे ही अभिहित होती थी। उस समय अन्य सभी लिपियोंका विशेष विवरण जाना नहीं जाता था और पह्लवी कहनेसे शासनीयकालमें लिखने पढ़नेकी व्यवहृत भाषा ही समझी जाती थी। फलतः पारस्यवासी पह्लवी शब्दका 'अति प्राचीन पारसिक' अर्थ छोड़ कर और किसी भी अर्थका व्यवहार नहीं करते थे। शासनीय, आर्षकादीय, आर्कसिनीय, कायानीय वा पिस्दादीय प्रभृति अति प्राचीन पारस्यकी किसी भी जातिकी कथा बोलनेमें ही मध्ययुगके पारस्यवासी पह्लवी शब्दका व्यवहार करते थे।

जो कुछ हो, शासनीय वंशके अधिकारमें जो भाषा लिखने पढ़नेमें व्यवहृत होती थी, बहुत समय तक केवल उसी भाषाको पारस्यवासी पह्लवी कहा करते थे। उस भाषाका नमूना अति अल्प परिमाणमें आज भी वर्त्तमान है। उसकी अक्षरमाला आवस्तिक अक्षरमाला-सी है; किन्तु एकका प्रत्येक अक्षर दूसरेके प्रत्येक अक्षरसे नहीं मिलता है। डा० होगने उन सबकी पह्लवी भाषाका प्रथम गणनीय स्तर मान लिया है। फिरदौसीकी भाषाकी तरह विशुद्ध ईरानी भाषा वा अति प्राचीन कालकी विशुद्ध ईरानी भाषासे शासनीय युगकी पह्लवी भाषाका आकार दूसरी तरहका है। उस पह्लवीमें सेमितीक भाषाके शब्दका प्राचुर्य देखा जाता है। शासनीय युगकी अपेक्षा प्राचीन पह्लवीमें सेमितीक शब्दका प्राचुर्य भी अधिक है। शासनीय युगकी प्रथमावस्थाकी उत्कीर्ण लिपियोंकी भाषा देखनेसे मालूम पड़ता है, कि सेमितिक शब्दमें ईरानी रीतिसे कितने ईरानी शब्द मिला कर वह भाषा लिखी गई है।

ईसाजन्मके तीन चार सौ वर्ष पहले भी पह्लवी भाषामें सेमितीक शब्दका सामान्य संश्रव था, ऐसा देखा जाता है। निनिभा नगरमें जगह जगह इस प्रकारकी भाषामें खोदित लिपि ही उसका प्रमाण है। निनिभाकी वे सब लिपियां ईसाजन्मकी पूर्ववर्त्ती ७वीं शताब्दीकी होंगी।

डा० होग अनुमान करते हैं, कि प्राचीन पह्लवीमें सेमितीक शब्दका जो प्राचुर्य है उसे देखनेसे मालूम पड़ता है, कि वह आसिरीय भाषासे उत्पन्न हुआ है, पर कोणाकार अक्षरमें उत्कीर्ण आसिरीय लिपिकी भाषासे बहुत पृथक् है। पह्लवीभाषाकी सुनीठन सम्पन्न अवस्था हम लोग शासनीय युगके प्रथम कालवर्त्ती राजाओंकी शिलालिपि और मुद्रालिपिमें ही देखने पाते हैं।

पारस्यमें मुसलमानी अधिकार होने तक उस देशकी भाषामें अरबीसे बहुसंख्यक सेमितीक शब्द प्रविष्ट हुए हैं। पह्लवीभाषामें जो सब सेमितीक शब्द जिस भावमें मिश्रित हुए हैं, अरबी शब्द उनसे सम्पूर्ण पृथक् हैं। आधुनिक पारस्यभाषामें संज्ञा और विशेषण शब्द प्रधानतः अरबी शब्द हैं, किन्तु क्रियापद प्रायः अरबी नहीं है। पह्लवीमें जो सब सेमितीक शब्द मिले हुए हैं, वे केवल संज्ञा और विशेषण ही नहीं

* पारस्यदेशको अरबी लोग फार्स कहते हैं।

हैं। आधुनिक फारसीमें जो शब्द सेमितीक नहीं हैं, प्राचीन पह्लवीमें केवल वे ही सेमितीक हैं अर्थात् प्रायः समस्त सर्वनाम, अव्यय, साधारण क्रियापद, अनेक क्रियाओंके विशेषण और संज्ञापद ये ही सेमितीक हैं। प्रथम दश संख्यावाचक शब्द भी सेमितीक हैं, किन्तु अधिकांश विशेषण सेमितीक नहीं हैं। आधुनिक फारसीमें जो सब अरबी शब्द हैं, पह्लवी-भाषामें उनमेंसे प्रत्येकका ईरानी प्रतिशब्द पाया जाता है। पह्लवीभाषामें लिखनेमें सेमितीक शब्दोंका ईरानी प्रतिशब्द लिखना वा नहीं लिखना लेखकके ऊपर निर्भर है। किन्तु सर्वनाम और अव्यय शब्दोंके ईरानी प्रतिशब्दका व्यवहार होता ही नहीं। इस कारण बहुतोंका प्रतिशब्द स्थिर करना भी दुर्घट हो गया है। पह्लवीमें इस प्रकार सेमितीक शब्दका बाहुल्य रहने पर भी उनके स्वजातीय विभक्तियां नहीं हैं। प्राचीन शासनीय लिपिमें सेमितीक विभक्तिकी वर्त्तमानता भी देखी जाती है। इस प्रकार सेमितीकशब्दका बाहुल्य रहने पर भी उनके स्वजातीय विभक्तियां नहीं है। इस तरह पह्लवीभाषा लिखनेकी पुनः दो रीति हो गई हैं, एक शासनीय रीति और दूसरी काल्दीय रीति। काल्दीय रीतिसे सेमितीक शब्दमें सेमितीक विभक्ति नहीं रहती, उसके बदले काल्दीय विभक्ति रहती है। "राजाओंका राजा" इस अर्थमें शासनीय पह्लवीमें "मालकान् मालका" और काल्दीय पह्लवीमें "मालकीन् मालका" ऐसा पद होता है।* ईरानी बहुवचनकी विभक्ति 'इन्'का व्यवहार हुआ है। एतद्भिन्न सेमितीक रीतिसे क्रियापदका कोई रूपान्तर नहीं होता, किन्तु काल्दीय रीतिसे क्रियापदमें अनेक प्रकारके ईरानी प्रत्यय लगते हैं।

उक्त दो प्रकारकी रीति देख कर डा० हौग अनुमान करते हैं, कि पह्लवी भाषा किसी समय किसी जातिकी कथोपकथनकी भाषा न थी। ईरानी लोग सेमितीकोंसे लिखन-प्रणाली सीखते हैं। अक्षरका उच्चारण सीख कर वे भावप्रकाशक कितने सेमितीक शब्दको सेमितीक आकारमें ही अपनी भाषामें ग्रहण करते हैं। किन्तु जिस भावप्रकाशके लिये उन्होंने जो शब्द ग्रहण किया, उस शब्दको सेमितीक अक्षरगत उच्चारणका त्याग करके ईरानी लोगोंने अपनी भाषाके तद्भावव्यञ्जक शब्दके उच्चारणसे ही उस शब्दका उच्चारण करना आरम्भ किया; अर्थात् मालका शब्द सेमितीक शब्द है जिसका अर्थ सेमितीक भाषामें 'राजा' और ईरानी भाषामें 'शाह' है। अब ईरानी लोगोंने सेमितीक अक्षर लिख कर उससे अपना "शाह" शब्द लिखनेके लिये सेमितीक वर्णमालासे विभिन्न वर्णयोजनाका कष्ट स्वीकार न कर 'शाह' शब्दके अर्थप्रकाशक सेमितीक 'मालका' शब्दका ही सम्पूर्ण ग्रहण किया और उसके अक्षरगत मूल उच्चारणका त्याग कर वे उसे 'शाह' शब्दमें उच्चारण करने लगे। इस प्रकार ईरानीने लिखा सेमितीकशब्द 'मालका' किन्तु उसे पढ़ा 'शाह'। जिन सब ईरानी शब्दोंके सेमितीक प्रतिशब्द नहीं मिले, केवल उन्हें ही लिखनेके लिये ईरानी लोगोंने सेमितीक वर्णमालाके वर्णगत उच्चारणके आधार पर वर्णयोजना द्वारा शब्दगठन कर ली और लिखने पढ़ने द्वारा क्रमशः जो भाषा गठित हुई, वही पह्लवी है। सेमितीक शब्द संग्रह करके वाक्यकी शृङ्खलाकी रक्षाके लिये निज भाषानुयायीने जिन सब विभक्ति प्रत्ययादिका योग कर लिया, उनसे शब्दोंका कुछ रूपान्तर भी हो गया। पीछे असल शब्दमें भी कुछ कुछ परिवर्त्तन हो गया है, जैसे—

सेमितीक शब्द।	अर्थ।	ईरानी उच्चारण।	परिवर्त्तितरूप।
अबु ...	पिता	पिदु—आपिदर	पिदर।
आम ...	माता	माद—अमिदर	मादर।

अरबी इब्नमुकाफा पह्लवीके इस सेमितीक शब्दांशको 'जवारिश' शब्दसे उल्लेख कर गये हैं। फारसीमें भी यह शब्द 'आजवारिस' वा 'उजवारिस' नामसे उल्लिखित है। पह्लवीमें इसे 'हुजवारिस' वा 'औजवारिसन' कहते हैं। 'हुजवारिस' शब्दसे केवल सेमितीक शब्दका ही बोध नहीं होता, अप्रचलित ईरानी शब्दका भी बोध

---

* यही सेमितीक 'मालका' शब्द अभी 'मालेक' 'मालिक' 'मलिक' हो गया है, जिसका अर्थ है अधिकारी।

होता है। समस्त हुजवारिसको एक तालिका संगृहीत है जिसमें उसका सेमितीक वर्णगत उच्चारण और ईरानी उच्चारण आवस्तिक अक्षरमें लिखा है। पहले ही कहा जा चुका है, कि अवस्ता शब्दके पह्लवी अनुवादका जिस प्रकार जन्द नामसे उल्लेख हुआ है, उसी प्रकार इस हुजवारिसकी तालिकामें ईरानी प्रतिशब्दोंका पाजान्द नामसे उल्लेख किया गया है।

दो तीन शासनीय शिलालिपियोंमें राजा पापकान और उनके पुत्र १म शापुर (२२६-२७० ई०)के नाम पाये जाते हैं। ये नाम तीन भाषामें लिखे हुए हैं,—ग्रीक, शासानीय पह्लवी और काल्दीय पह्लवी। शासनीय पह्लवी रीतिसे प्राचीन शासनीय राजगण लिपि लिखाते थे। वही क्रमशः परिवर्त्तित हो कर उत्तरकालवर्त्ती शासनीय राजाओंको व्यवहार्य लिपि हो गई। इसीका नाम काल्दीय पह्लवी है। तीन सौ ई०-सन्‌के पहले ही इस लिपिका व्यवहार भी बन्द हो गया।

अभी पह्लवी-भाषामें जो सब ग्रन्थ हैं, उन्हींका थोड़ा बहुत विवरण नीचे दिया जाता है।

कुल ग्रन्थ दो भागोंमें विभक्त हैं। एक भाग अवस्ता शास्त्रका अनुवाद है और दूसरेका मूल अवस्तामें नहीं मिलता। अनुवाद ग्रन्थोंमें एक पंक्ति मूल और एक पंक्ति अनुवाद रहता है। उसमें केवल मूलमें भाषान्तरमात्र रहता है। कहीं कहीं व्याख्या और कहीं दीर्घ टीका भी देखी जाती है। अमौलिक पह्लवी ग्रन्थमें धर्मविषयकी व्याख्या की गई है, दो चारमें ऐतिहासिक उपाख्यान भी रहते हैं। इनमेंसे किसी किसी पुस्तकका पाजान्द रीतिमें लिखित संस्करण भी है। पाजान्द आवस्तिक अक्षर वा फारसी अक्षरमें लिखा हुआ है। आवस्तिक अक्षरमें पाजान्द रीतिसे लिखित ग्रन्थका इस प्रकार फारसी अनुवाद रहता है। संस्कृत वा गुजराती व्याख्यामूलक और फारसी ग्रन्थ अनुवादमूलक है।

रिभायत नामक पुस्तक केवल फारसी अक्षरमें ही लिखी है। उसमें गृहस्थ और धर्मकर्मकी रीति-नीतिका तर्कवितर्क एवं मीमांसा रहती है। इस श्रेणीमें फारसी कविताओंमें रचित अनेक पाजान्द ग्रन्थोंका अनुवाद है। ये सब ग्रन्थ दो सौसे साढ़े तीन सौ वर्ष पहलेके बने हुए प्रतीत होते हैं।

इस भाषामें वन्दीदाद, यश्न्, विशपरद, हादोखत-नस्क, विशतास्प यश्त्, चिदाक आविस्तक-इ-गासान प्रभृति आवस्तिक अनुवाद ग्रन्थ हैं और निरङ्गीस्तान, करहाङ्ग-इ-ओम्-खदुक, आफ्रिन-इ-दहमान प्रभृति आवस्तिक वचन और व्याख्यासंग्रह ग्रंथ, बजार्ड-रुद-दिनी, दिनकरद, दादिस्तान-इ-दिनी, बुन्दाहिस वा जन्द आकाश, मिनोकाइ-अरद, वाहमन यश्त् प्रभृति ग्रन्थ विख्यात हैं।

पह्लिका (सं० स्त्री०) जलकुम्भी।

पांईंबाग (फा० पु०) महलोंके आस पास या चारों ओर बना हुआ छोटा बाग। इसमें प्रायः राजमहलकी स्त्रियां सैर करनेको जाती हैं। ऐसे बागोंमें प्रायः सर्वसाधारणके जानेकी मनाही होती है।

पाँक (हिं० पु०) पङ्क, कीचड़।

पाँका (हिं० पु०) पाँक देखो।

पाँख (हिं० पु०) पंख, पर।

पाँखड़ी (हिं० स्त्री) पखड़ी देखो।

पाँखुरी (हिं० स्त्री०) पखुड़ी देखो।

पाँग (हिं० पु०) गंगबरार, कछार, खादर।

पाँगल (हिं० पु०) ऊंट।

पाँगा (हिं० पु०) पांगानोन देखो।

पाँगानोन (हिं० पु०) समुद्री नमक। इसका गुण चरपरा और मधुर, भारी, न बहुत गरम और न बहुत शीतल, अग्निप्रदीपक, वातनाशक और कफकारक होता है।

पाँच (हिं० वि०) १ जो तीन और दो हो, चारसे एक अधिक। (पु०) २ पांचकी संख्या या अङ्क। ३ बहुत लोग, कई एक आदमी। ४ जाति-बिरादरीके मुखिया लोग, पंच।

पाँचक (हिं० पु०) पञ्चक देखो।

पाँचमहाल—बम्बईप्रदेशके गुजरातके पूर्वसीमावर्त्ती अङ्गरेजाधिकृत एक जिला। यह अक्षा० २२° १५' से २३° ११' उ० और देशा० ७३° २२' से ७४° २८' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १६०६ वर्गमील है। इसमें पांच उपविभाग रहनेके कारण इसका पांचमहाल नाम

पड़ी है। यह जिला दो भागोंमें बंटा है। पश्चिमी भाग और पूर्वीभाग। पश्चिमीभागके उत्तरमें लूनावड़राज्य, सुन्थ और सनजेली; पूर्वमें बारियाराज्य, दक्षिणमें बरोदाराज्य और पश्चिममें भी बरोदाराज्य तथा माही नदी है। पूर्वीभागके उत्तरमें चिलकारीराज्य और कुशानगढ़, पूर्वमें पूर्वीयमालवा और अनासनदी, दक्षिणमें पश्चिमीमालवा और पश्चिममें सुन्थराज्य, सनजेली औरबारिया है।

इस जिलेमें माही छोड़ कर और सभी छोटी छोटी नदियां हैं। अनास और पानम ग्रीष्मकालमें सूख जाती हैं। इस जिलेके गोधड़ा उपविभागमें ओर्वादा नामक जो ह्रद है, उसका जल कभी भी सूखने नहीं पाता। एतद्भिन्न यहां प्रायः ७५० बड़ी बड़ी पुष्करिणियां और असंख्य कूप हैं।

जिलेके दक्षिण-पश्चिमकोणमें पोआ या पावागढ़ नामक एक पर्वत है। इसका शिखरदेश वहांके समतलक्षेत्रसे प्रायः २५०० फुट ऊंचा है। इस उच्चस्थान पर पहले एक दुर्ग अवस्थित था। जिलेकी आबहवा अच्छी है।

चम्पानेर शहरका इतिहास ही इस जिलेका इतिहास है। ८वीं शताब्दीमें चम्पानेर हिन्दूराजाओंसे स्थापित हुआ। उस समय यह एक समृद्धिशाली स्थान था। १०१२ ई०में भी तूअर राजगण इस प्रदेश तथा पावादुर्गके अधीश्वर थे। पीछे चौहान राजाओंने यह दुर्ग दखल किया। १४१८ ई०में मुसलमानगण इस स्थान पर आक्रमण कर अकृतकार्य हो कर भाग गये थे। १७६१-१७७० ई०के मध्य सिन्धियाराजने इस प्रदेशको जीता और १८०३ ई० तक उनके वंशधरोंने इसका भोग किया। उसी सालके अन्तमें कर्णल वल्डिंटनने इस पर आक्रमण कर पूरा अधिकार जमा लिया। १८०४ ई०में अङ्गरेजराजने यहांका शासनभार फिरसे सिन्धियाके हाथ सुपुर्द किया। पीछे १८५३ ई०में अङ्गरेजोंने सदाके लिये इसका शासनभार अपने हाथ ले लिया। चम्पानेर नगरका अभी ध्वंसावशेषमात्र देखा जाता है। ३५०-१३०० ई० तक यहां अनहलवाड़ाके तूअरोंने और पीछे १४८४ ई० तक चौहानोंने राज्य किया। उस समयसे ले कर १५३६ ई० तक चम्पानेर नगर गुजरातकी राजधानीरूपसे गिना जाता था।

इस जिलेमें ४ शहर और ६८८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या प्रायः २६१०२० है। यहांकी भाषा गुजराती है। इस प्रदेशके पांचमहाल जिलेमें अनेक खानें हैं। यहांसे अनाज, महुएके फूल, देवदार और तेलहनकी रफ्तनी गुजरात होती है और गुजरातसे तमाकू, नमक, नारियल, मसाले और लोहे पीतल आदि चीजें लाई जाती हैं। १८५३, १८५७, १८६१, १८६४ और १८७७ ई०में अनावृष्टिके कारण यहां भारी अकाल पड़ा था।

विद्या-शिक्षामें यह जिला बहुत पीछे पड़ा हुआ है। पर धीरे धीरे लोगोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट होता जा रहा है। अभी यहां कुल डेढ़ सौ स्कूल हैं जिनमेंसे केवल एक हाई स्कूल है। स्कूलके सिवा १ अस्पताल और ५ चिकित्सालय हैं।

पांचर (हिं० स्त्री०) कोल्हूके बीचमें जड़े हुए लकड़ोंके छोटे छोटे टुकड़े। ये टुकड़े गन्नेके टुकड़ोंको दबानेमें जाठके सहायक होते हैं।

पांचवां (हिं० वि०) जो क्रमसे पांचके स्थान पर पड़े, पांचके स्थान पर पड़नेवाला।

पांचा (हिं० पु०) १ किसानका एक औजार। इससे वे भूसा घास आदि समेटते वा हटाते हैं। इसमें चार दांते और एक बेंट होता है, इसीसे इसका पांचा नाम पड़ा है। (वि०) २ पञ्चाल देशका रहनेवाला। ३ पंचालदेश-सम्बन्धी।

पांचालिका (हिं० स्त्री०) पाञ्चाली देखो।

पांचा (हिं० स्त्री०) तालाबोंमें होनेवाली एक प्रकारकी घास।

पांचें (हिं० स्त्री०) किसी पक्षकी पांचवीं तिथि, पञ्चमी।

पांजना (हिं० क्रि०) टीन, लोहे, पीतल आदि धातुके दो या अधिक टुकड़ेको टांके लगा कर जोड़ना, झालना, टांका लगाना।

पांजर (हिं० पु०) १ बगल और कमरके बीचका वह भाग जिसमें पसलियां होती हैं, छातीके अगल बगलका भाग। २ पसली। ३ पार्श्व, पास, बगल, सामीप्य।

पांजा (हिं० स्त्री०) नदीका पानी घुटनों तक या उससे भी कम हो जाना।

पाँझ (हिं० वि०) पांजी देखो।

पाँड़क (हिं० पु०) पंडुक देखो।

पाँड़रा (हिं० पु०) एक प्रकारकी ईख।

पाँड़ोस (हिं० स्त्री०) तलवार।

पाँड़े (हिं० पु०) १ सरयूपारी, कान्यकुब्ज और गुजराती आदि ब्राह्मणोंकी एक शाखा। २ कायस्थोंकी एक शाखा। ३ पण्डित, विद्वान्। ४ अध्यापक, शिक्षक। ५ रसोइया, भोजन बनानेवाला।

पाँति (हिं० स्त्री०) १ पङ्क्ति, कतार। २ अवली, समूह। ३ एक साथ भोजन करनेवाले बिरादरीके लोग, परिवार-समूह।

पाँयँचा (फा० पु०) १ पाखानों आदिमें बना हुआ पैर रखनेका वह स्थान जिस पर पैर रख कर शौचसे निवृत्त होनेके लिये बैठते हैं। २ पायजामेकी मोहरी जिससे जाँघसे ले कर टखने तकका अंग ढका रहता है।

पाँयँता (हिं० पु०) पलंग या खाटका वह भाग जिसकी ओर पैर किए जाते हैं, पैंताना।

पाँवँ (हिं० पु०) पांव देखो।

पाँवँड़ा (हिं० पु०) पावंडा देखो।

पाँवँड़ी (हिं० स्त्री०) पावंडी देखो।

पाँवरी (हिं० स्त्री०) १ पावंडी देखो। २ सोपान, सीढ़ी। ३ उपानह, जूता। ४ पैर रखनेका स्थान। ५ पैरी, ड्योढ़ी। ६ बैठक, दालान।

पांशन (सं० त्रि०) पशि-ल्यु पृषोदरादित्वात् दीर्घः। दूषक।

पांशव (सं० पु०) पांशोर्लवणविशेषस्य विकारः, पांशु-अण्। लवणविशेष, रेहका नमक। पर्याय—रोमक, औद्भिज्ज, वसुक, वसुपांशु, ऊषरज, औषर, ऐरिण, और्व, सत्त्व। गुण—तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, दीपन, दाहशोषकर, ग्राही और पित्तकोपकर।

पांशु (सं० पु०) पांशयति नाशयति आत्मानमिति पशि नाशने कु दीर्घश्च (अर्जिदृशिकमीति। उण् १।२८) १ धूलि, रज। २ प्रत्यार्थ चिरसञ्चित गोमय, गोबरकी खाद। ३ पर्पट, पित्तपापड़ा। ४ कर्पूर विशेष, एक प्रकारका कपूर। ५ भूसम्पत्ति। ६ बालुका, बालू।

पांशुका (सं० स्त्री०) केवड़ेका पौधा।

पांशुकासीस (सं० पु०) कसीस।

पांशुकूल (सं० पु०) १ चीथड़ों आदिको सी कर बनाया हुआ बौद्ध भिक्षुओंके पहननेका वस्त्र। २ वह दस्तावेज या कागज जो किसी विशिष्ट व्यक्तिके नाम न लिखा गया है।

पांशुचत्वर (सं० पु०) ओला।

पांशुज (सं० पु०) नोनी मट्टीसे निकाला हुआ नमक।

पांशुपत्र (सं० पु०) वथुआ साग।

पांशुभव (सं० क्ली०) मृत्तिकालवण।

पांशुभिक्षा (सं० स्त्री०) धातकी वृक्ष।

पांशुर (सं० पु०) १ खञ्जनघोटक, लूला घोड़ा। २ दंशक, डाँस।

पांशुरागिनी (सं० स्त्री०) महामेदा।

पांशुराष्ट्र (सं० क्ली०) जनपदभेद, एक देशका नाम।

पांशुल (सं० त्रि०) १ परस्त्रीगामी, लम्पट, व्यभिचारी। २ मलिन, मैला, धूल या मट्टीसे ढँका हुआ। (पु०) ३ पूतिकरञ्ज। ४ शिव।

पांशुलवण (सं० क्ली०) औद्भिदलवण, पांगानोन।

पांशुला (सं० स्त्री०) १ कुलटा। २ रजस्वला। ३ केतकी। ४ भूमि।

पाँस (हिं० स्त्री०) १ शराब निकाला हुआ महुआ। २ खाद। ३ किसी वस्तुको सड़ाने पर उठा हुआ खमीर।

पाँसना (हिं० क्रि०) खेतमें खाद देना।

पांसव (सं० पु०) पांशव देखो।

पांसव्य (सं० त्रि०) पांसुभव, जो धूलसे उत्पन्न हो।

पाँसा (हिं० पु०) हाथीदाँत या किसी हड्डीके बने चार पांच अङ्गुल लम्बे बत्तीके आकारके चौपहल टुकड़े जिनसे चौसरका खेल खेलते हैं। ये संख्यामें ३ होते हैं। प्रत्येक पहलमें कुछ बिन्दुसे बने रहते हैं। उन्हीं बिन्दुओंकी गणनासे दाँव समझा जाता है।

पांसिन् (सं० त्रि०) दोषी, अपराधी।

पाँसी (हिं० स्त्री०) सूत या डोरी आदिका बना हुआ वह जाल जिसमें भूसा आदि बांधते हैं।

पांसु (सं० पु०) पंश-कु दीर्घश्च। धूलि, रज।

पांसुक (सं० पु०) १ धूलि, रज। २ पांशुलवण।

पांसुका (सं० स्त्री०) रजस्वला स्त्री।

पांसुकासीस (सं० क्लो०) पांसुरिव कासीसं। कसीस।

पांसुकुली (सं० स्त्री०) पांसुना कोलति आकुलीभवतीति कुल-क, ततस्त्रियां ङीष्। राजमार्ग।

पांसुकूल (सं० क्लो०) पांशोः कूलमिव। अनामपट्टोलिका, वह दस्तावेज या कागज जो किसी विशिष्ट व्यक्तिके नाम न लिखा गया हो।

पांसुकृत (सं० त्रि०) जो धूलमें परिणत हो गया हो।

पांसुक्षार (सं० पु०) पांसुरिव क्षारं। क्षारलवण, पांगा नमक।

पांसुखुर (सं० पु०) अश्वके पादतलस्थित रोगभेद, घोड़ोंका एक रोग जो उनके पैरोंमें होता है।

पांसुचत्वर (सं० पु०) पांसुभिश्चत्वर इव। घनोपल, ओला।

पांसुचन्दन (सं० पु०) पांसुश्चिताभस्मरजश्चन्दनमिव यस्य। शिव, महादेव।

पांसुचामर (सं० पु०) पांसुधूलिश्चामर इव यस्य। १ पटवास, तंबू, बड़ा खेमा। २ दूर्वाढ्यायुक्त तटभूमि, तालाब या नदीका वह किनारा जो दूबसे आच्छादित रहता है। ३ वर्द्धापक। ४ प्रशंसा। ५ पुरोटी। ६ धूलिगुच्छक, धूलका ढेर।

पांसुज (सं० क्लो०) पांसोर्जायते पांसु-जन-ड। पांशुलवण, पांगानोन। पर्याय—ऊष, उद्भिद, पाक्य, लवण, पटु। गुण—भेदक, पाचन और पित्तकारक।

पांसुजक्षार (सं० पु०) मृत्तिकालवण।

पांसुजालिक (सं० पु०) विष्णुका नामान्तर।

पांसुपटु (सं० क्लो०) पांशुलवण, पांगानोन।

पांसुपत्र (सं० क्लो०) पांसुः कर्पूर इव सुगन्धिपत्रमस्य। वास्तूक, बथुआ नामका साग।

पांसुभव (सं० क्लो०) मृत्तिकालवण।

पांसुभिक्षा (सं० स्त्री०) धातकीवृक्ष, धौका पेड़।

पांसुमर्दन (सं० पु०) मृद्यतेऽसाविति मृद-ल्युट्, मर्दन ततः पांसुः मर्दनो यत्र। केदारभूमि।

पांसुर (सं० पु०) पांसुं चिरसञ्चित-गोमयादिकमुत्पत्तिस्थान राती ति पांसु-रा-क। १ दंशक, डांस। २ पीठसर्पी, लंगड़ा। ३ खञ्ज, लूला। (त्रि०) ४ पांशुविशिष्ट।

पांसुरागिणी (सं० स्त्री०) पांसुरागो विद्यतेऽस्याः इनि, स्त्रियां ङीप् च। महामेदा।

पांसुराष्ट्र (सं० क्लो०) देशभेद।

पांसुरी (हिं० स्त्री०) पसली देखो।

पांसुल (सं० पु०) पांशुर्विद्यतेऽस्य पांसु-लच् (सिध्मादिभ्यश्च। पा ५।२।९७) १ हर, महादेव। २ पापी। ३ पुंश्चल, परस्त्रीसे प्रेम करनेवाला। ४ शम्भुका खट्वाङ्ग। ५ लावपक्षी। ६ केतकीवृक्ष। ७ पूतिकरञ्ज, कंजा।

पांसुलवण (सं० क्लो०) पांशुलवण देखो।

पांसुला (सं० स्त्री०) पांसुल-टाप्। १ कुलटा। २ रजस्वला। ३ भूमि। ४ केतकी।

पाइका (अं० पु०) नापके विचारसे छापेके टाइपोंका एक प्रकार। इसकी चौड़ाई ⅙ इञ्च होती है। अक्षरोंकी मोटाई आदिके विचारसे इसके और भी कई भेद होते हैं।

पाइप (अं० पु०) १ नल या नली। २ पानीको कल, नल। ३ एक प्रकारका अङ्गरेजी बाजा जो बाँसरीके आकारका होता है। ४ हुक्केका नल।

पाइरा (हिं० पु०) रकाब जिस पर घोड़ेकी सवारीके समय पैर रखते हैं। रकाब देखो।

पाई (हिं० स्त्री०) १ किसी एक ही निश्चित घेरे या मण्डलमें नाचने या चलनेकी क्रिया, गोड़ापाही। २ जोलाहोंका एक ढाँचा जो बेतोंका बना होता है और जिस पर तानेके सूतको फैला कर उसे खूब माँजते हैं। ३ छापेके घिसे हुए और रद्दी टाइप। ४ दीर्घ आकारसूचक मात्रा। इसे अक्षरको दीर्घ करनेके लिये लगाते हैं। ५ घोड़ोंकी एक बीमारी। इसमें उनके पैर सूज जाते हैं और वे चल नहीं सकते। ६ एक पैसा। ७ एक छोटा सिक्का जो एक आनेका १२वाँ वा एक पैसेका तीसरा भाग होता है। ८ छोटी सीधी लकीर जो किसी संख्याके आगे लगानेसे एकाईका चतुर्थांश प्रकट करती है। ९ स्त्रियोंके आभूषण रखनेकी पिटारी। १० छोटी खड़ी रेखा जो किसी वाक्यके अन्तमें पूर्णविराम सूचित करनेके लिये लगाई जाती हो। ११ एक छोटा लम्बा कीड़ा। यह घुनकी तरह अन्नको विशेषतः धानको खा जाता अथवा खराब कर देता है और जमने योग्य नहीं रहने देता।

पाईता (हिं॰ पु॰) एक वर्णवृत्त। इसमें एक सगण, एक भगण और एक सगण होता है।

पाउंड (अं॰ पु॰) १ सोनेका एक अङ्गरेजी सिक्का जो २० शिलिङ्गका होता है। पहले यह १५) का, लेकिन अब १०)का माना जाता है। इसका भाव घटता बढ़ता रहता है। २ एक अंगरेजी तौल जो लगभग सात छटांकका होता है।

पाउडर (अं॰ पु॰) १ कोई वस्तु जो पीस कर धूलके समान कर दी गई हो, चूर्ण, बुकनी। २ एक प्रकारका विलायती बना हुआ मसाला या चूर्ण। स्त्रियां और नाटकके पात्र अपने चेहरे पर उसको रंगत बदलने और शोभा बढ़ानेके लिये लगाते हैं।

पाक (सं॰ पु॰) पच भावे घञ्। १ पचन, छोदन, रोंधना। २ रन्धन, रसोई। पाकराजेश्वरमें लिखा है,—

"भर्जनं तलनं स्वेदः पचनं क्वथनं तथा।
तान्दूरं पुटपाकश्च पाकः सप्तविधो मतः।"

भर्जन, तलन, स्वेद, पचन, क्वथन, तान्दूर और पुटपाक ये सात प्रकारके पाक हैं। इनमेंसे केवल पात्रमें भर्जन, स्नेह द्रव्यमें तलन, अग्निके उत्तापमें स्वेदन, जलमें पचन, सिद्ध द्रव्यके रसग्रहणमें क्वथन, दारवद्ध तप्तयन्त्रमें तान्दूर और ऊर्द्धाग्नितापसे पुटपाक किया जाता है। तण्डुलादि छेदन, स्थालीमार्जन, अधःसन्तापन, आश्रोतन और परोक्षान्त व्यापार विशेषको पाक कहते हैं।

"नित्यं नूतनभाण्डेन कर्त्तव्यः पाक एव च।
अथवा पक्षपर्यन्तं ततस्त्याज्यं मनीषिभिः॥"

ब्रह्मवैवर्त्तके मतसे प्रतिदिन नूतन भाण्डमें पाक करना चाहिये। यदि उसमें असक्त हो, तो पंद्रह दिन तक एक पात्रमें पाक कर पीछे उसे फेंक दे।

श्राद्धकालमें पाक प्रकारादिका विषय निर्णयसिन्धुमें इस प्रकार लिखा है—श्राद्धमें अपने हाथसे ही अन्नपाक करे, दूसरेसे न करावे। यदि इसमें नितान्त असमर्थ हो, तो स्त्रीसे, स्त्रीके अभावमें बान्धवसे पाक करा सकते हैं।

दीपकलिकाधृत आश्वलायन वचनमें लिखा है,—समान प्रवर, मित्र, सपिण्ड और गुणान्वित व्यक्ति द्वारा पाक करानेमें कोई दोष नहीं। यह विधि केवल असमर्थ पक्षमें बतलाई गई है, समर्थपक्षमें नहीं।

व्यास-वचनमें लिखा है—गृहिणी स्नान करके यत्नपूर्वक पाक करे और पाककार्य निष्पन्न हो जाने पर पुनः स्नान कर ले। रजस्वला, पाषण्ड, पुंश्चली, पतिता, विधवा, वन्ध्या, अन्यगोत्रजा, अङ्गकर्णी, चतुर्थाहःस्नाता रजस्वला और मातृ वा पितृवंशज भिन्न अपर स्त्री द्वारा पाक कार्य न करावे। स्तनन्धय, गर्भिणी वा गर्भिणीको भी पाक करनेका अधिकार नहीं है।

पाकभाण्डका विषय हेमाद्रिमें इस इस प्रकार लिखा है—

"सौवर्णान्यथ रौप्याणि कांस्यताम्रोद्भवानि च।
मार्त्तिकान्यपि सद्यानि नूतनानि दृढ़ानि च॥"

सुवर्ण, रौप्य, कांस्य वा ताम्रनिर्मित पात्र अथवा नूतन और दृढ़ मृत्तिकापात्रमें पाक करे। वायुपुराणमें लिखा है, कि लौहपात्रमें कभी भी श्राद्धका अन्न पाक न करे, करनेसे पितृगण उसे ग्रहण नहीं करते। अयसके मध्य कालायस विशेष निन्दनीय है। विवाहमें, माता और पित्रादिके प्रेतकार्यमें, क्षय दिनमें और यज्ञकालादिमें नूतनपात्रमें पाककार्य करना होता है।

"विवाहे प्रेतकार्ये च मातापित्रोः क्षयेऽहनि।
नव भाण्डेन कुर्वीत यज्ञकाले विशेषतः॥" (यम)

पाककालमें शूद्रको अग्नि न दे, देनेसे वह शूद्रान्न समझा जाता है। ब्राह्मण यदि वह अन्न भक्षण करें, तो वे शूद्रत्वको प्राप्त होते हैं।

"शूद्रायाग्निञ्च यो दद्यात् पाककाले विशेषतः।
शूद्रपाकं भवेदन्नं ब्राह्मणे शूद्रतामियात्॥"
(ब्रह्मवै॰पु॰)

मत्स्यसूक्तके ४२वें पटलमें लिखा है, कि पूर्व वा उत्तरमुखी हो कर मध्याह्नकालमें अन्नपाक करे। सायंकालमें अग्निकोणाभिमुख हो कर पाक करनेसे वह अमृत तुल्य होता है। धर्मकामी पूर्वमुखमें और पतिकामी पश्चिममुखमें पाक करे। दक्षिणमुखमें पाक करनेसे शोक और हानि तथा ईशान कोणमें पाक करनेसे दरिद्र होता है। ताम्रपात्रमें पाक करनेसे चक्षुहानि और मणिमयपात्रमें पाक करनेसे क्षय होता है।

उदुम्बर काष्ठ, कदम्बदल, शाल, कारमर्द, शिरीष, वज्रहत-काष्ठ, भेरण्ड और शाल्मलिकाष्ठसे पाक न करे, करनेसे वह निष्फल होता है। पाककालमें एक ही बार जल दे दे, पीछेसे न दे। (मत्स्यसूक्त ४२ पटल)

३ परिणति। ४ स्तन्यपायी शिशु, दुधमुंहा बच्चा। ५ वृद्धत्वहेतु केशकी धवलता, बुढ़ापेमें बालका पकना। ६ स्थाल्यादि। ७ राष्ट्रादि। ८ भङ्ग। ९ भीति। १० असुरभेद। इन्द्रने इसका विनाश किया था। पाकशासन देखो। ११ फलपाकाधिकरणकालभेद।

"पक्षाद्भानोः सोमस्य मासिकोऽङ्गारकस्य वक्रोक्तः।
आ दर्शनाच्च पाको बुधस्य जीवस्य वर्षेण॥"

(बृहत् सं ९७ अ०)

भानुका पाककाल पक्षपर्यन्त, चन्द्रका मास, मङ्गलका वक्रानुसारी दिन, बुधका दर्शन पर्यन्त और बृहस्पतिका वर्षाकाल पर्यन्त हुआ करता है। शुक्रका पाक षण्मासमें, शनिका एक वर्षमें, राहुका अर्द्ध वर्षमें और सूर्यग्रहणमें वर्ष-पर्यन्त तथा त्वाष्ट्र और कीलकका पाक सद्य हुआ करता है। धूमकेतुका त्रिमासमें, श्वेतका सप्तरात्रान्तमें और परिवेष, इन्द्रचाप, सन्ध्या तथा अभ्रसूचीका सप्ताह पर्यन्त पाक होता है। शीतोष्णका व्यतिक्रम, अकालजात फल पुष्पादि, स्थिर और चरका अन्यत्व तथा प्रसूतिविकृतिका पाक चार मासमें होता है। अक्रियमाण कार्यकरण (जो काम कभी नहीं किया हो, उसे करना अथवा अनिच्छासे या हठात् करना), भूमिकम्प, अनुत्सव, दुरिष्ट, अशोष्यका शोषण और स्रोतका अन्यत्व इन सबका फलपाक छः मासमें होता है। कीट, मूषिक, मक्षिका, मृग, विहङ्ग और मारुत अथवा जलमें लोष्ट्रका तरण, ये सब तीन मासमें, अरण्यमें कुक्कुरीका प्रसव, जंगलीका ग्राममें सम्प्रवेश, मधुनिलय, तोरण और इन्द्रध्वज, ये सब एक वर्षमें वा कुछ अधिक समयमें, शृगाल और गृध्रसमूह दश दिवसमें, तूर्यरव सद्यः और आक्रुष्ट, वल्मीक और पृथिवीविदारण एक पक्षमें पाकजनित फल प्राप्त होता है। अनग्निप्रदेशका प्रज्वलन, घृत, तैल और वसादिवर्षण सद्यः पाक प्राप्त होता है। छत्र, चिति, यूप, हुतवह और बीजगणका एक सप्ताहमें, मतान्तरमें छत्र और तोरणका फल मास पर्यन्त होता है। अत्यन्त विरुद्ध जीवका परस्पर स्नेह, आकाशमें भूतोंका शब्द, मार्जार और नकुलके साथ मूषिकका द्वन्द्व इनका फल एक महीनेमें होता है। गन्धर्वपुर, रसविकृति और हिरण्यविकृति मास पर्यन्त; समस्तादिक, ध्वज, आलय, पांशु और धूम द्वारा आकुल होनेसे एक मासमें फल मिलता है। यदि कथित समयमें फल न दिखाई दे, तो उसके द्विगुण समयमें अधिकतर फल होता है। किन्तु कनक, रत्न और गो प्रदानादि शान्ति द्वारा द्विजगणसे यदि विधिवत् उपशमित न हो, तो द्विगुण समयमें पाक होगा; इत्यादि। पाकका विस्तृत विवरण बृहत्संहिताके ९७ अध्यायमें विशेषरूपसे लिखा है।

१२ खाये हुए पदार्थके पचनेकी क्रिया। जो कुछ खाया जाता है, वह जाठराग्निसे पच जाता है। इस पाकका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—

भुक्त द्रव्यका सम्यक्‌रूपसे परिपाक होने पर गुण तथा अप्रशस्तरूपसे दोष उत्पन्न होता है। किसी किसीका मत है, कि प्रत्येक रसमें परिपाक हुआ करता है। कोई कहते हैं, कि मधुर, अम्ल और कटु इन तीन प्रकारके रसोंसे ही पाक होता है, लेकिन यह युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि द्रव्यगुण और शास्त्रकी पर्यालोचना कर देखनेसे यही प्रतीत होता है, कि अम्लरसका पाक नहीं है, कारण अग्निमान्द्य होनेसे पित्त ही विदग्ध हो कर अम्लरसमें परिणत होता है। यदि अम्लरसका पाक स्वीकार किया जाय, तो लवणरसका भी अन्यप्रकारका पाक सम्भव है। किन्तु ऐसा नहीं होता; श्लेष्मा विदग्ध हो कर ही लवणत्वको प्राप्त होती है। किसी किसीका कहना है, कि मधुररस परिपाकमें मधुर और अम्लरस अम्ल ही रहता है। इस प्रकार सभी रस अविकृत रहते हैं। इसका उदाहरण यों है—थालीका दूध पाक होनेके समय मधुर ही रहता है और धान, जौ, मूंग आदिके जमीन पर छिड़कनेसे बादमें भी उनका स्वभाव नहीं बदलता। किसी किसीका मत है, कि मृदुरस बलवान् रसका अनुगामी होता है। इस विषयमें इस प्रकार विविध अनवस्था

दोष लगता है। अतएव ऐसा स्थिर हुआ कि शास्त्रमें दो प्रकारके पाक बतलाये गये हैं, मधुर और कटु। इनमेंसे मधुर पाकमें गुरु और कटु पाकमें लघु होता है। पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश ये गुणानुसार गुरु और लघु दो प्रकारमें विभक्त किये जाते हैं। पृथ्वी और अप् गुरु तथा अवशिष्ट तीन लघु हैं।

द्रव्य परिपाकके समय पृथिवी और जलका गुण अधिक परिमाणमें रहनेसे मधुरपाक और अग्नि, वायु वा आकाशका गुण अधिक परिमाणमें रहनेसे कटुपाक होता है। (सुश्रुत सूत्रस्था० ४० अ०) क्या क्या द्रव्य गुरुपाक और क्या लघुपाक है, इसका विषय सुश्रुतसूत्रस्थानके ४५वें अध्यायमें विशेष रूपसे लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं दिया गया।

पुटपाकका विषय पुटपाकमें देखो।

चक्रदत्तमें लौहपाकका विषय इस प्रकार लिखा है— भक्तिपूर्वक ईश्वरको प्रणाम करके लौह, पित्तल वा मृण्मयपात्रमें लकड़ीको धीमी आंच पर लोहका पाक करे। शेष पाकमें त्रिफलाका क्वाथ, घृत और दुग्ध डाल दे। पाककालमें लोहेके हत्थेसे बार बार घोंटते रहे। यदि औषध बरतनकी पेंदीमें जम जाय, तो उसी समय हत्थेसे खुरच दे। लौहका शेष पाक तीन प्रकारका है—मृदु, मध्य और खर। ये तीन प्रकारके पाक यथाक्रम वायु, पित्त और कफके पक्षमें हितकर हैं। लौह जब कीचड़की तरह दर्वीमें संलग्न हो जाता है, तब उसे मृदुपाक और जब दर्वीसे सहजमें गिर पड़ता है, उसमें जरा भी रहने नहीं पाता, तब उसे मध्यपाक कहते हैं। खरपाक होनेसे दर्वीमें संलग्न हो नहीं होता। किसी किसीका कहना है, कि जब प्रलेप देनेसे दर्वीमें नहीं लगता, गिर पड़ता है और वह चूहेकी मिट्टीके सदृश हो जाता है, तब उसे मृदुपाक तथा जिसका अर्द्धांश चूर्ण और अर्द्धांश चूहेकी मिट्टीके जैसा हो जाता है, उसे मध्यपाक और बालुका पुञ्जकी तरह होनेसे उसे खरपाक कहते हैं। ये हो तीन प्रकारके पाक सबोंके लिये गुणकारक हैं, कभी भी इनका गुण विफल नहीं होता। प्रकृतिभेदसे गुणदोषका भेद यदि होता भी है, तो बहुत थोड़ा। पाक शेष होने पर उसे उतार कर त्रिकत्वादिका चूर्ण मिला दे। (चक्रदत्त रसायनाधि० पाकविधि) वाभट कल्पस्थानमें लिखा है, कि घृत-पाकमें जब फेनका निकलना बन्द हो जाय, तब जानना चाहिये कि प्रकृत घृतपाक हुआ है और तैलपाकमें भी फेनके निकलने पर पाककी सिद्धि समझी जाती है। इस मतसे पाक तीन प्रकारका है, मन्द, चिक्कण और खर (वाभट-कल्पस्था० ६ अ०) (त्रि०) १४ पाककर्त्ता, रसोई बनाने वाला।

पाक (फा० वि०) १ पवित्र, शुद्ध, सुथरा। २ समाप्त, बेबाक। ३ पापरहित, निर्मल, निर्दोष। ४ साफ।

पाककृष्ण (सं० पु०) पाके कृष्णं फलं यस्य। १ कृष्ण-फलपाक, करौंदा। २ करञ्जवृक्ष।

पाककृष्णफल (सं० पु०) १ पानीय आमलक, करौंदा। २ करञ्जवृक्ष।

पाकज (सं० क्ली०) पाकाज्जायते इति पाक-जन-ड। १ पाकलवण, कचिया नमक। २ परिणामशूल। (त्रि०) ३ पाकजात।

पाकट (अ० स्त्री०) जेब, थैली।

पाकठ (हिं० वि०) १ पका हुआ। २ पुराना, तजरबेकार। ३ बली, मजबूत।

पाकड़ (हिं० पु०) पाकर देखो।

पाकतस् (सं० अव्य०) पाक-तस्। किसी प्रकार, किसी तरह।

पाकता (सं० अव्य०) पाकः विपक्कप्रज्ञः स्वार्थे ता। विपक्व-प्रज्ञ, पुराना, तजरबेकार।

पाकदामन (फा० वि०) निष्कलङ्क और विशुद्ध स्त्री, पतिव्रता, सती।

पाकदामिनी (फा० स्त्री०) सतीत्व, पतिव्रत्य, शुद्धचरि-त्रता।

पाकदूर्वा (सं० स्त्री०) पाकयुक्ता दूर्वा मध्यपदलोपि कर्मधा०। परिपक्व दूर्वा, पुरानी दूब।

पाकद्विष् (सं० पु०) पाकाय दैत्याय द्वेष्टि द्विष-क्विप्। पाकशासन, इन्द्र।

पाकपत्तन—पञ्जाबके अन्तर्गत मंटोगमारी जिलेका एक नगर। यह अक्षा० ३०° २०´ उ० और देशा० ७३° २५´

५° पू°, शतद्रु नदीके किनारे अवस्थित है। इसका प्राचीन नाम अजुधान है। जनरल कनिंहम अलेकसन्दरके ऐतिहासिकोंके लिखित शूद्रकों (Oxodrake)-के अधीनस्थ एक नगरके साथ इस नगरकी तुलना कर गये हैं। मुसलमान-दिग्विजयी महमूद, तैमूर आदि इसी स्थान पर नदी पार हुए थे। मुसलमान फकीर फरिद उद्दोनके नाम पर इस नगरका नामकरण हुआ है। इस मुसलमान-भक्तने सारे दक्षिण पञ्जाबको मुसलमानी धर्ममें दीक्षित किया। यही कारण है, कि दूर दूर देशोंके मुसलमान यहां तक कि अफगानिस्तान और मध्यएशियासे असंख्य यात्री यहां समागम होते हैं। मुहर्रमके उपलक्षमें उनकी संख्या साठ हजार तक हो जाती है। यहां उक्त फकीरका एक विग्रह है। इसमें जो कुछ आमदनी होती है, उसका उपभोग फकीरके वंशधर करते हैं। इस नगरकी स्थिति तथा सड़क साधारणतः सुन्दर है। यह शहर वाणिज्यका एक प्रधान स्थान है। गेहूं, उरद, गुड़ और चीनीका अधिक व्यवसाय होता है। यहां सरकारी अदालत और पुलिस-स्टेशन, पोष्ट-आफिस, टाउनहाल, बालिका-विद्यालय आदि कितनी हो साधारण अट्टालिकाएं हैं।

पाकपात्र (सं° क्लो°) पाकसाधनं पात्रं मध्यलो°। पाकसाधनपात्र, वह बरतन जिसमें भोजन पकाया या रखा जाय; जैसे, बटलोई, हंडो आदि।

पाकपुटो (सं° स्त्री°) पाकाय पुटो। कुम्भशाला, आवां।

पाकफल (सं° पु°) पाकक्षम-फलमस्य। फलपाक, करौंदा।

पाकभाण्ड (सं° क्लो°) पाकाय पाकस्य भाण्डं। पाकपात्र, वह बरतन जिसमें कुछ पकाया या रखा जाय।

पाकमत्स्य (सं° पु°) पाकः पाकयुक्तो मत्स्यो यत्र। १ मत्स्यव्यञ्जन। इसका पर्याय मत्स्यल है। २ समुद्रजात मत्स्यविशेष, समुद्रमें होनेवाली एक प्रकारकी मछली। ३ कोटविशेष, एक प्रकारका कोड़ा।

पाकयज्ञ (सं° पु°) पाकसाधनो यज्ञः मध्यलो°। १ वृषोत्सर्ग और गृहप्रतिष्ठादिका होम, चरुहोमाङ्गक कर्म।

प्रायश्चित्तहोममें अग्निका नाम विधु और पादयज्ञमें साहस रखा गया है। २ ब्रह्मयज्ञसे अन्य पञ्च महायज्ञके अन्तर्गत वैश्वदेव, होमबलिकर्म, नित्यश्राद्ध और अतिथि भोजनात्मक चार प्रकारके महायज्ञ।

"ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोड़शीं॥" (मनु २।८६)

अष्टकादि भी पाकयज्ञ नामसे प्रसिद्ध है। आश्वलायन गृह्यसूत्रमें पाकयज्ञ तीन प्रकारका बतलाया गया है।

पाकयज्ञिक (सं° पु°) पाकयज्ञं करोतीति पाकयज्ञ-ठञ्। १ पाकयज्ञ कर्त्ता, पाकयज्ञ करनेवाला। २ वह पुस्तक जिसमें पाकयज्ञका विधान हो। ३ वह जो पाकयज्ञसे उत्पन्न हो।

पाकयज्ञिय (सं° त्रि°) पाकयज्ञमर्हति पाकयज्ञ-घ। पाकयज्ञार्ह।

पाकर (हिं° पु°) समस्त भारतवर्षमें होनेवाला एक वृक्ष। यह पञ्चवटोंमें माना जाता है। इसके पत्ते खूब हरे और आमकी तरह लम्बे पर उससे कुछ अधिक चौड़े होते हैं। यह वृक्ष बिना लगानेसे नहीं उगता है और ७ ८ वर्षमें तैयार हो जाता है। इसकी घनी छायाके विषयमें कवियोंने बड़ी प्रशंसा की है। इसकी छालसे बड़े बारीक और मुलायम सूत तैयार किये जा सकते हैं। नरम फलों या गोदोंको जंगली और देहाती मनुष्य प्रायः खाते हैं। हाथी तथा अन्य पशु इसके पत्ते बड़े चावसे खाते हैं। इसकी लकड़ीसे केवल कोयला तैयार होता है। वैद्यकमें इसे कषाय, कटु, शीतल, व्रण, योनिरोग, दाह, पित्त, कफ, रुधिरविकार, सूजन और रक्तपित्तको दूर करनेवाला माना है।

पाकरञ्जन (सं° क्लो°) पाकं पच्यमानं रञ्जयतीति रञ्ज-णिच्-ल्युट्। तेजपत्र, तेजपत्ता।

पाकरिपु (सं° पु°) इन्द्र।

पाकल (सं° क्लो°) पाकं लातीति ला-क। १ कुष्ठौषधि, कोढ़को दवा। २ कुञ्जरज्वर, हाथीका बुखार। ३ अनिल, वायु। ४ अनल, आग। ५ सन्निपात ज्वरविशेष। इसमें पित्त प्रबल, वात मध्य और कफ होन अवस्थामें होता है तथा इनके बलाबलके अनुसार इन तीनों दोषों उपाधियां उसमें प्रकट होती हैं। इसका रोगी प्रायः तीन दिनमें मर जाता है। (त्रि°) ६ व्रणादिकारक।

पाकलि (सं० स्त्री०) कर्कटी, काकड़ा सींगी।

पाकशाला (सं० स्त्री०) पाकस्य शाला गृहं। रन्धन-गृह, रसोईका घर, बावरचीखाना।

सुश्रुतमें लिखा है, कि प्रशस्त दिशामें तथा प्रशस्त स्थानमें गवाक्षयुक्त पाकशाला बनावे। पाकशालामें रसोईके बरतन पवित्र रहें और पाककार्य आत्मीय-वर्गसे किया जाय। राजाको उचित है, कि वे पाक-शालामें कुलीन, धार्मिक, स्निग्ध, निर्लोभ, सरल, कृतज्ञ, प्रियदर्शी और क्रोध, कार्कश्य, मात्सर्य, मत्तता तथा आलस्यवर्जित, क्षमाशील, शुद्ध, नम्र, दयालु, अपरि-श्रान्त, अनुरक्त, प्रतारणाहीन आदि सद्गुणविभूषित चिकित्साकुशलवैद्यको पाकशालाके अध्यक्षरूपमें नियुक्त करें। विशेष रूपसे स्वभावकी परीक्षा करके पूर्वोक्त गुणयुक्त पुरुष अथवा स्त्रीको पाककार्यमें नियुक्त करना विधेय है। पाकशालाके जो अध्यक्ष बनाये जायेंगे उन्हींके कथनानुसार सबको चलना होगा।

(सुश्रुत कल्पस्था० १ अ०)

पाकशासन (सं० पु०) शास्तीति शास-ल्यु, पाकस्य शासनः शास्ता। इन्द्रने पाक नामक प्रसिद्ध असुरको मारा था, इसीसे वे पाकशासन कहलाये।

"पाकं जघान तीक्ष्णाग्रैर्मार्गणैः कंकवाससैः।
तत्र नाम विभुर्लेभे शासनत्वात् शरैर्दृढैः॥
पाकशासनतां शत्रुः सर्वामरपतिर्विभुः॥"

(वामनपु०)

पाकशासनि (सं० पु०) पाकशासनस्यापत्यं इञ्। (अत इञ्। पा ४।१।९५) इन्द्रपुत्र, जयन्त।

पाकशुक्ला (सं० स्त्री०) पाके परिणामे शुक्ला। खड़िया मट्टी।

पाकसंस्थ (सं० त्रि०) पाकः संस्था यस्य। पाकसाध्य यज्ञ-भेद।

पाकसुत्वन् (सं० पु०) पाकेन परिपक्केन मनसा सुनोति सोमाभिषवं करोति सु-क्वनिप्, तुकच्। सोमाभिषव-कर्त्ता यजमान।

पाकस्थली (सं० स्त्री०) उदरका वह स्थान जहां आहार द्रव्य जठराग्नि या पाचक रसकी क्रियासे पचता है, पक्वाशय।

पाकहन्तृ (सं० पु०) पाकस्य तन्नामः असुरस्य हन्ता। पाकशासन, इन्द्र।

पाकागार (सं० पु०) रसोई घर।

पाकातीसार (सं० पु०) अतीसाररोगभेद।

पाकात्यय (सं० पु०) चक्षुरोगभेद, आंखोंका एक रोग। त्रिदोषके कुपित होने पर यह रोग उत्पन्न होता है। इसमें आँखका काला भाग सफेद हो जाता है। आरम्भ-में इसमें एक फोड़ा होता है और आँखोंसे गरम आंसू गिरते हैं। पुतलीका सफेद हो जाना त्रिदोषका कोप सूचित करता है। इस दशामें यह रोग असाध्य समझा जाता है। (सुश्रुत उत्तरत० ६ अ०)

पाकारि (सं० पु०) पाकमृच्छतीति ऋ गतौ इन्। १ श्वेतकाञ्चन, सफेद कचनारका वृक्ष। पाकस्य अरिः ६-तत्। २ पाकशासन इन्द्र।

पाकारु (सं० त्रि०) पाकेन सुखपाकेन अरुर्व्रणं, पाकस्य अन्नादि पाकस्य वा अरुः क्षतं। १ सुखपाक द्वारा क्षत। २ अन्नपाकनाशक अग्निमान्द्य।

पाकिन् (सं० त्रि०) पच बाहुलकात् घिनुन् ततः कुत्वं। १ पाककर्त्ता। २ पाकयुत। ३ लघुपाकी।

पाक्रिम (सं० त्रि०) पाकेन निर्वृत्तं, पाकभावप्रत्यय-न्तादि मप्। पक्क, पाकनिष्पन्न।

पाकी (फा० स्त्री०) निर्मलता, पवित्रता, शुद्धता। २ परहेजगारी।

पाकीजा (फा० वि०) १ पवित्र, पाक। २ सुन्दर, खूबसूरत। ३ निर्दोष, बेऐब।

पाकु (सं० त्रि०) पच-उण्, न्यंक्वादित्वात् कुत्वं। पाचक, रसोई बनानेवाला।

पाकुक (सं० पु०) पचतीति पच पाके उकन् कादेशश्च। (पचिनश्योर्ण कन्कनुमौ च। उण् २।३०) सूपकार, पाचक, रसोइया।

पाकेट (हिं० पु०) १ पैकेट देखो। २ जेब

पाकेट (अं० पु०) जेब, खीसा।

पाकौर—बिहार और उड़िसाके अन्तर्गत सन्थाल परगने-का पूर्वी उपविभाग। यह अक्षा० २४° १४' से २४° ४९' उ० और देशा० ८७° २३' से ८७° ५५' पू०के मध्य अव-स्थित है। भूपरिमाण ६८३ वर्गमील है। इसका पश्चिमी

भाग तो पथरीला है, पर पूर्वी भाग उर्वरा है जिसमें खेती बारी होती है। यहांकी जनसंख्या २३८६४८ है। इसमें कुल १०५५ ग्राम लगते हैं जिनमेंसे पाकौर ही प्रधान है। यहां ई० आई० रेलवेको बड़ो स्टेशन और एक हाई स्कूल भी है।

पाक्य (सं० क्लो० पच्यतेऽनेन पच-ण्यत् (ऋहलोर्ण्यत्। पा ३।१।१२४) ततः कुत्वं। १ विड़्लवण, काला नमक। २ पांशुलवण, सांभरनमक। ३ यवक्षार, जवाखार। ४ शोरा। (त्रि०) ५ पचनीय, पचने योग्य, जो पच सके।

पाक्यक्षार (सं० पु०) १ यवक्षार, जवाखार। २ शोरा।

पाक्यज (सं० क्लो०) काचलवण, कचिया नमक।

पाक्या (सं० स्त्री०) १ सर्जिक्षार, सज्जो। २ यवक्षार, जवाखार। ३ सौवर्चललवण। ४ मृत्तिका लवण।

पाक्यापट् (सं० क्लो०) पाक्यलवण।

पाक्याह्व (सं० पु०) यवक्षार।

पाक्षपातिक (सं० त्रि०) पक्षपातयुक्त।

पाक्षायण (सं० त्रि०) पक्षस्यायं पक्षे भवः पक्षेण निर्वृत्त इति वा, पक्ष फक् (वुड्छणकठजिलेति। पा ४।२।८०) १ पक्षसम्बन्धी, जो पक्षसे सम्बन्ध रखता हो। २ जो पक्षमें एक बार हो या किया जाय।

पाक्षिक (सं० त्रि०) पक्षे तिष्ठतीति पक्ष-ठक्। १ पक्षपाती, किसी विशेष व्यक्तिका पक्ष करनेवाला, तरफदार। २ पक्षिघातक, पक्षियोंको मारनेवाला। पक्षे पक्षान्तरे भवतीति। ३ पक्षकालभव, जो पक्ष या प्रतिपक्षमें एक बार हो या किया जाय; जैसे, पाक्षिक पत्र या बैठक। ४ पक्ष या पखवाड़ेसे सम्बन्ध रखनेवाला। ५ दो मात्राओंका।

पाखंड (हिं० पु०) पाखण्ड देखो।

पाख (हिं० पु०) १ महीनेका आधा, पन्द्रह दिन। २ मकानको चौड़ाईकी दीवारोंके वे भाग जो ठाठके सुभीतेके लिये लम्बाईको दीवारोंसे त्रिकोणके आकारमें अधिक ऊंचे किये जाते हैं और जिन पर लकड़ोंका वह लम्बा मोटा और मजबूत लट्ठा रखा जाता है जिसको बड़ेर कहते हैं।

पाखण्ड (सं० पु०) पातीति पा-क्विप्, पाः त्रयीधर्मस्तं खण्डयतीति खण्डि-भिंदने पचाद्यच्। १ पाषण्ड, वेद-विरुद्ध आचार।

'पालनाच्च त्रयीधर्मः पाशब्देन निगद्यते।
"तं खण्डयति ते यस्मात् पाखण्डास्तेन हेतुना।
नाना व्रतधरा नाना-वेशाः पाखण्डिनो मताः॥"

त्रयीधर्मका पालन करनेसे उसे 'पा' और जो इस 'पा'का खण्डन करते हैं, उन्हें पाखण्ड कहते हैं। २ वह व्यय जो किसीको धोखा देनेके लिये किया जाय, बकभक्ति, छल। ३ वह भक्ति या उपासना जो केवल दूसरोंके दिखानेके लिये की जाय और जिसमें कर्त्ताकी वास्तविक निष्ठा वा श्रद्धा न हो, ढोंग, आडम्बर, ढकोसला। ४ नीचता, शरारत। (त्रि०) ५ पाखंड करनेवाला, पाखण्डो।

पाखण्डो (सं० त्रि०) १ वेदविरुद्ध आचार करनेवाला। पाषण्डिन् देखो। २ दूसरोंको ठगनेके निमित्त अनेक प्रकारके आयोजन करनेवाला, ठग, धोखेबाज। ३ बनावटी धार्मिकता दिखानेवाला, कपटाचारी, बगलाभगत।

पाखर (हिं० स्त्री०) १ राल चढ़ाया हुआ टाट या उससे बनी हुई पोशाक। २ लोहेकी वह झूल जो लड़ाईके समय रक्षाके लिये हाथी वा घोड़े पर डाली जाती है, चार आईना।

पाखरी (हिं० स्त्री०) टाटका बना हुआ वह विस्तरा जिसे गाड़ीमें पहले बिछा कर तब अनाज भरा जाता है।

पाखा (हिं० पु०) १ कोना, छोर। २ पाख देखो।

पाखानभेद (हिं० पु०) पखानभेद।

पाखाना (फा० पु०) १ वह स्थान जहां मल त्याग किया जाय। २ भोजनके पाचनके बाद बचा हुआ मल जो अधोमार्गसे निकल जाता है, गू, गलीज।

पाग (हिं० स्त्री०) १ पगड़ो। कहते हैं, कि पगड़ी पहले पैरके घुटने पर बांध कर तब सिर पर रखी जाती थी, इसीसे यह नाम पड़ा। (पु०) २ पाक देखो। ३ वह शीरा या चाशनी जिसमें मिठाइयां वा दूसरी खानेकी चोजें डुबा कर रखी जाती हैं। ४ वह दवा या पुष्टई जो चीनी या शहदके शीरेमें पका कर बनाई जाय और जिसका सेवन जलपानके रूपमें भी कर सकें।

पागना (हिं० क्रि०) मीठी चाशनीमें सानना या लपेटना।

पागल (सं० त्रि०) पा-रक्षणं तस्मात् गलति, आत्मरक्षणात् विच्युतो भवतीति गल-अच्। १ उन्मत्त, जिसका दिमाग ठीक न हो।

पागलको जो कन्या देते हैं उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है। उन्मादरोगग्रस्त होने पर उसे पागल कहते हैं। नाना कारणोंसे मानसिक विकार उपस्थित हो कर यह रोग उत्पन्न होता है।

इस रोगका विवरण उन्माद शब्दमें देखो।

२ क्रोध, शोक वा प्रेम आदिके उद्वेगमें जिसको भला बुरा सोचनेकी शक्ति जाती रही हो, जिसके होश हवास दुरुस्त न हो, आपेसे बाहर। ३ मूर्ख, नासमझ, बेवकूफ।

पागलखाना (हिं० पु०) वह स्थान जहां पागलोंको रख कर उनका इलाज किया जाता है।

पागलपन (हिं० पु०) १ वह भीषण मानसिक रोग जिससे मनुष्यकी बुद्धि और इच्छाशक्ति आदिमें अनेक प्रकारके विकार होते हैं। उन्माद, बावलापन। उन्माद देखो। २ बेवकूफी।

पागला—बङ्गदेशमें मालदह जिलान्तर्गत एक नदी। यह गङ्गासे निकल कर छोटी भागरथी नामक एक छोटी शाखाके साथ मिल गई है और ८६ मील दीर्घ एक द्वीपके चारों ओर घूम कर पुनः गङ्गामें गिरी है। वर्षाकालमें इसमें बड़ी बड़ी नावें जाती आती हैं।

पागली (हिं० स्त्री०) पगली देखो।

पागुर (हिं० पु०) जुगाली देखो।

पाङ्गाशी—यशोहर जिलेके सर्वोत्तर प्रान्तमें मातभङ्गानदीकी एक शाखा। इसका दूसरा नाम कुमार है। ग्रीष्मकालमें मातभङ्गा नदीके साथ इसका संयोग दूर हो जाता है।

पाङ्क्त (सं० त्रि०) पङ्क्तौ भवः पंक्ति-उत्सादित्वात् अञ्। १ पंक्तिभव। २ दशाक्षरपादक छन्दोभेदयुक्त। (पु०) पंक्ति संख्यास्यस्य अण्। ३ तत्संख्या अवयवयुक्त पशु। ४ पुरुष। ५ सोमलताभेद।

पाङ्क्तता (सं० स्त्री०) श्राद्धकालमें एक पंक्तिमें बैठ कर खानेका अधिकार।

पाङ्क्तेय (सं० त्रि०) १ पंक्तिस्थित, एक पंगतमें रहनेवाला। २ एक पंक्तिमें भोजनार्ह, जो एक पंगतमें बैठ कर खा सकता हो।

पाङ्क्त्य (सं० त्रि०) पाङ्क्तेय, एक पंगतमें बैठ कर भोजन करनेवाला।

पाङ्क्त (सं० पु०) मूषक जातिविशेष, मूसेकी एक जाति।

पाङ्गुल्य (सं० क्ली०) पङ्गुता।

पाचक (सं० क्ली०) पचतीति पच-ण्वुल्, पित्तरसेन भुक्तद्रव्य पचनादस्य तथात्वं। १ पित्तविशेष।

"पाचकं भ्राजकञ्चैव रञ्जकालोचके तथा।
साधकञ्चैव पञ्चेति पित्तनामान्यनुक्रमात्॥"

(शब्दच०)

पित्त पाचक, भ्राजक, रञ्जक, लोचक और साधक इन पांच नामोंसे पुकारा जाता है। जिससे भुक्तान्न परिपाक हो, उसे पाचक कहते हैं। भावप्रकाशमें लिखा है, कि पाचकपित्त भुक्तान्न परिपाक करता है और शेषाग्नि बलवृद्धि तथा रसमूत्रपुरीषको विरेचन करती है।

"पाचकं पचते भुक्तं शेषाग्निबलवर्द्धनं।
रसमूत्रपुरीषाणि विरेचयति नित्यशः॥" (भावप्रकाश)

विशेष विवरण पित्तमें देखो।

(पु०) पचतीति पच-ण्वुल्। २ अग्नि। सुश्रुतमें लिखा है, कि देहस्थित जो पित्त है वही अग्निपदवाच्य है। देहमें पित्त छोड़ कर और किसी प्रकारकी अग्नि नहीं है। दहन और परिपाक विषयमें पित्त ही अधिष्ठित रह कर अग्निके जैसा काम करता है। इसीको अन्तराग्नि कहते हैं। कारण देहमें जब अग्नि मन्द हो जाय, तब जिससे पित्तकी वृद्धि हो ऐसे द्रव्यका सेवन विधेय है। पित्त पक्वाशय और आमाशयमें रह कर किस प्रणालीसे आहारको परिपाक करता है और आहारजनित रस वायु, पित्त, कफ, मूत्र और पुरीष आदिको किस प्रकार एक दूसरेसे अलग करता है, वह प्रत्यक्ष तो नहीं होता, पर पित्त ही उस स्थानमें रह कर अग्निक्रिया द्वारा देहमें शेष चार पित्तस्थानकी क्रियामें सहायता पहुंचाता है। उस पक्व और आमाशयके

मध्यस्थित पित्तमें पाचक नामक अग्नि अधिष्ठान करती है। यकृत् और प्लीहाके मध्य जो पित्त है, उसे रञ्जक अग्नि कहते हैं। वही अग्नि आहारसम्भूत रसको लाल बनाती है। जो पित्त हृदयस्थानमें संस्थित है, उसका नाम साधक अग्नि है। इसीसे मनके सभी अभिलाष पूरे होते हैं। जो पित्त दृष्टिस्थानमें है, उसमें आलोचक नामक अग्नि रहती है। इसी अग्निसे पदार्थका रूप अथवा प्रतिबिम्ब ग्रहीत होता है। त्वक्‌में जो पित्त संस्थित है उसमें भ्राजकाग्नि रहती है। तैलमर्दन, अवगाहन, आलेपन आदि क्रिया द्वारा जो सब स्नेह द्रव्य शरीरमें लिप्त होते हैं, इसी पित्तसे उन सब द्रव्योंका परिपाक और देहकी छायाका प्रकाश होता है। (सुश्रुतसूत्रस्था० २१ अ०) पित्तका विषय पित्त शब्दमें देखो।

३ सूपकार, जो पाककार्य सम्पन्न करता है, उसे पाचक कहते हैं, रसोइया। सुश्रुत कल्पस्थानमें लिखा है, कि राजा विशेषरूपसे परीक्षा करके पाचक नियुक्त करें। पाचकको देख रेख करनेके लिये एक सद्गुण सम्पन्न वैद्यको उसके अध्यक्षरूपमें रखें। राजा जो पाचक रखेंगे, उसमें निम्नलिखित गुणका रहना आवश्यक है—

कुलीन, धार्मिक, स्निग्ध, सर्वदा कार्यतत्पर, निर्लोभ, सरल, कृतज्ञ, प्रियदर्शन, क्रोधादिशून्य, आलस्यवर्जित, जितेन्द्रिय, क्षमाशील, शुचि, नम्र, प्रतारणाहीन प्रभृति। आहार ही प्राणधारणका मूल है। इसीसे उक्त गुण सम्पन्न एक पाचकको सद्वैद्यके अधीन रखना उचित है। पाचक और परिचारक प्रभृति सभी वैद्यके अधीन रहेंगे। (सुश्रुत कल्पस्थान १ अ०)

"पुत्रपौत्रगुणोपेतः शास्त्रज्ञो मिष्टपाचकः।
शूरश्च कठिनश्चैव सूपकारः स उच्यते॥"
(चाणक्य)

पुत्र, पौत्र और गुणयुक्त, शास्त्रज्ञानी, मिष्टपाचक अर्थात् जो उत्तम पाक कर सके और शूर तथा कठिन होनेसे उसे सूपकार (पाचक) कहते हैं। सूपकार देखो।

४ अन्नादि पाककारक औषध, वह औषध जो भोजनको पचाने और भूख तथा पाचन शक्तिको बढ़ानेके लिये खाई जाती है। (त्रि०) ५ जो किसी कच्ची वस्तुको पचावे वा पकावे।

पाचका (सं० स्त्री०) कर्कटी।

पाचन (सं० क्ली०) पाच्यते अनेनेति पच्-णिच्-करणे ल्युट्। १ प्रायश्चित्त। २ दोषपाचक क्वाथौषधि, वह औषधि जो आम अथवा अपक्व दोषको पचावे। ज्वरादि रोगसमूहमें पाचनौषधके व्यवहारका विधान लिखा है। चक्रपाणिदत्तने रोगभेदसे नाना प्रकारके पाचन निर्देश किये हैं।

पाचन-प्रदानका काल—

"ज्वरितं षडहेऽतीते लघ्वन्नप्रतिभोजितं।
सप्ताहात् परतोऽस्तब्धे मासे स्यात् पाचनं ज्वरे॥"
(चक्रदत्त ज्वरचि०)

ज्वरयुक्त व्यक्तिको ६ दिनके बाद पाचन औषधका सेवन कराना चाहिये। पाचनका परिमाण—

"द्व्यरत्तिकमाषेण गृहीत्वा तोलकद्वयं।
दत्त्वाम्भः षोडश गुणं ग्राह्यं पादावशेषितं॥" (परिभाषा)

पाचन औषध प्रायः काढ़ा करके दी जाती है। यह औषध १६ गुने पानीमें पकाई जाती है और चौथाई रह जाने पर व्यवहारमें लाई जाती है। ज्वरादि सभी रोगोंमें पाचनकी व्यवस्था है। यह क्वाथौषध आम अथवा अपक्व दोषको पचाती है, इसीसे इसको पाचन कहते हैं।

चक्रपाणिदत्तने प्रत्येक रोगके लिये अलग अलग पाचन बतलाया है जो कुल मिला कर २२२ होते हैं। यथाक्रम उनके नाम नीचे दिये जाते हैं।

ज्वराधिकार सर्वज्वरमें—१ नागरादि; वातिक ज्वरमें २ विल्वादि पञ्चमूली, ३ पिप्पलीमूलादि, ४ किरातादि, ५ रास्नादि, ६ विल्वादि पञ्चमूल्यादि, ७ पिप्पल्यादि, ८ गुडूच्यादि, ९ द्राक्षादि; पैत्तिकज्वरमें १० कलिङ्गादि, ११ तिक्तादि, १२-१३ लोध्रादि (लोध्रादि पाचन दो प्रकारका है), १४ यवपटोल, १५ दुरालभादि, १६ त्रायमाणादि, १७ मृद्वीकादि, १८ पर्पटकादि, १९ विश्वादि, २० पर्पटादि, २१, २२, २३ द्राक्षादि (द्राक्षादि पाचन ३ प्रकारका है), २४ धन्याकादि; कफज्वरमें २५ मातुलुङ्गादि, २६ कटुकादि, २७ निम्बादि, २८ सिन्धुवारादि, २९ आमलक्यादि, ३० त्रिफलादि, ३१ दशमूली वा वासकक्वाथ, ३२ मुस्तादि; वातपैत्तिक

ज्वरमें ३३ लवङ्ग, ३४ त्रिफलादि, ३५ किरातादि, ३६ निदिग्धिकादि, ३७ पञ्चभद्र, ३८ मधुकादि; पित्तश्लेष्मिक ज्वरमें ३९ पटोलादि, ४० गुडूच्यादि, ४१-४२ चातुर्भद्रक पाठासप्तकद्वय, ४३ गुडूच्यादिगण, ४४, कण्टकार्यादि, ४५ वासादि, ४६ पटोलादि, ४७ अमृताष्टक, ४८ पटोलादि, ४९ क्षुद्रादि ; वातश्लेष्मिक-ज्वरमें—५० धान्यपटोल, ५१ मुस्तादि, ५२ पञ्चकोल, ५३ पिप्पल्यादिक्वाथ, ५४ आरग्वधादि, ५५ क्षुद्रादि, ५६ दशमूल, ५७ मुस्तादि, ५८ दार्वादि ; त्रिदोषज्वरमें—५९ चतुर्भद्रपञ्चमूल, ६० बृहत् पञ्चमूली, ६१ स्वल्पपञ्चमूली, ६२ दशमूल, ६३ चतुर्दशाङ्ग, ६४-६५ अष्टादशाङ्ग (यह पाचन दो प्रकार का है), ६६ मुस्तादि, ६७ अपराष्टादशाङ्ग, ६८ शठ्यादि, ६९ बृहत्यादि, ७० भार्ग्यादि, ७१ द्विपञ्चमूल्यादि, ७२ दशमूल्यादि, ७३ मातुलुङ्गादि, ७४ मातुलुङ्गाद्रक रसयुक्त दशमूल, ७५ व्योषादि, ७६ त्रिवृत्तादि ; जीर्णज्वरमें—७७ निदिग्धादि, ७८ पिप्पल्यादि ; सन्ततज्वरमें—७९ मधुकाद्य, ८० कलिङ्गकादि, ८१ पटोलशारिवादि ८२ निम्बपटोलादि, ८३ किराततिक्तादि, ८४ गुडूच्यामलकादि, ८५ मुस्तादि ; तृतीयज्वरमें—८६ महौषधादि ; चातुर्थक ज्वरमें—८७ वासाधात्र्यादि ; ज्वरातीसारमें—८८ पाठादि, ८९ नागरादि, ९० ह्रीबेरादि, ९१ बृहत् गुडूच्यादि, ९२ उशीरादि, ९३ पञ्चमूल्यादि, ९४ कलिङ्गादि, ९५ वत्सकादि, ९६ श्वदंष्ट्रादि, ९७ नागरादि, ९८ मुस्तकादि, ९९ धनादि, १०० दशमूलीशुण्ठी, १०१ किरातादि।

अतीसारमें—१०२ धान्यपञ्चक, १०३ धान्यचतुष्क, १०४ कञ्चटादि, १०५ किराततिक्तादि, १०६ कुटजादि, १०७ विल्वादि क्वाथ, १०८ पटोलादिक्वाथ, १०९ कुटजादि, ११० समङ्गादि, १११ कुटजक्वाथ, ११२ वत्सकादि, ११३ कुटजदाड़िम्ब। ग्रहणीरोगमें—११४ नागरादि, ११५ सड़्षणविश्वादि। आमाजीर्ण रोगमें—११६ धान्यशुण्ठी। पाण्डुरोगमें—११७ फलत्रिकादि। रक्तपित्तमें—११८ खर्जूरादि जल। राजयक्ष्मा रोगमें—११९ धन्याकादि, १२० अश्वगन्धादि, १२१ दशमूलादि। कासाधिकारमें—१२२ पिप्पली चूर्णयुक्त पञ्चमूली, १२३ पौष्करादि, १२४ पिप्पलीचर्णयुक्त दशमूली, १२५ कटफलादि, १२६ कण्टकारीक्वाथ। हिक्कारोगमें—१२७ अमृतादि, १२८ कुष्ठचूर्णयुक्त दशमूली, १२९ कुलत्थादि, १३० शृङ्ग्यादि। छर्दि विकारमें—१३१ भ्रष्टमुद्गकषाय, १३२ गुडूच्यादि, १३३ पर्पटक्वाथ, १३४ गुडूची शीतकषाय, १३५ विल्वफलगुडूचीकषाय, १३६ जम्ब्वादिवारि। मूर्च्छाधिकारमें—१३७ महौषधादि, १३८ दुरालभाक्वाथ। उन्मादाधिकारमें—१३९ घृतादियुक्त दशमूल। अपस्माररोगमें—१४० दशमूली कल्याणघृत। वातरोगमें—१४१ पञ्चमूली वा दशमूलीक्वाथ, १४२ दशमूली, १४३ माषबलादि, १४४ दशमूल्यादि, १४५ माषादि, १४६ वातघ्नदशमूलीकषाय, १४७ एरण्डतैलयुक्त दशमूलादि, १४८ शेफालीक्वाथ, १४९ एरण्डतैलयुक्त पञ्चमूली, १५० एरण्डतैलयुक्त दशमूली वा शुण्ठीक्वाथ, १५१ गुग्गुलयुक्त गुडूची त्रिफलाक्वाथ।

वातरक्तरोगमें—१५२ अमृतादि, १५३ वत्सादनीक्वाथ, १५४ वासादि, १५५ गुडूचीक्वाथ, १५६ गुडूचीकषाय। ऊरुस्तम्भमें—१५७ शिलाजत्वादियुक्त दशमूली, १५८ भल्लातकादि, १५९ पिप्पल्यादि। आमवातमें—१६० शठ्यादि, १६१ पुनर्नवाक्वाथ, १६२ रास्नादशमूल, १६३ एरण्डतैलयुक्त दशमूल वा शुण्ठीक्वाथ, १६४ रास्नापञ्चक, १६५ रास्नासप्तक, १६६ गोक्षुरशुण्ठी, १६७ कणायुक्त दशमूली। शूलरोगमें—१६८ बलादि, १६९ विश्वादि, १७० हिङ्गुपुष्करमूलयुक्तविश्वैरण्ड यवक्वाथ, १७१ करञ्जादि, १७२ बृहत्यादि, १७३ शतावर्यादि, १७४ त्रिफलादि, १७५ मधुकक्वाथ, १७६ शिग्रुक्वाथ, १८० पटोलादि, १८१ विल्वादि, १८२ रुचकरुत्र्यादि, १८३ रुचकादि, १८४ हिङ्ग्वादिचूर्णयुक्त दशमूलीका क्वाथ, १८५ एरण्डसप्तक, १८६ एरण्डद्वादशक। उदावर्त्ताधिकारमें—१८७ श्यामादिगणक्वाथ, अनाहरोगमें भी यही पाचन विधेय है। हृद्रोगमें—१८८ स्नेहलवणयुक्त दशमूली १८९ नागरक्वाथ, १९० वचा वा निम्बकषाय, १९१ हिङ्ग्वादिचूर्णयुक्त यवक्वाथ, १९२ लवणक्षारयुक्त दशमूली। मूत्रकृच्छ्ररोगमें—१९३ अमृतादि, १९४ तृणपञ्चमूल, १९५ शतावर्यादि, १९६ हरीतक्यादि, १९७ श्वदंष्ट्रा वा विश्वकषाय, १९८ बृहत्यादि, १९९ यवक्षारयुक्त गोक्षुरबीजक्वाथ, २०० त्रिकण्टकादि, २०१ अतिबलाकषाय।

मूत्राघातमें—२०२ शिलाजतुयुक्त वीरतरादिक्काथ, २०३ दुरालभारस वा वासाकषाय। अश्मरीरोगमें—२०४ वरुणत्वगादि, २०५ वीरतरादिगणक्काथ। २०६ शुण्ठ्यादि, २०७ वरुणक्काथ, २०८ वरुणाकल्कयुक्त वरुणत्वककषाय, २०९ शिग्रुक्काथ, २१० नागरादि, २११ वरुणत्वगादि, २१२ श्वदंष्ट्रादि, २१३ एलादि। मेहरोगमें—२१४ दूर्वादि, २१५ त्रिफलादि, २१६ खर्जूरादि, २१७-२२०, २२१ कषायचतुष्टय, २२२ छिन्नावल्लिकषाय, २२३ कदरादि, २२४ अग्निमन्थकषाय, २२५ पाठादि, २२६ त्रिफलादि, २२७ फलत्रिकादि, २२८ कटङ्कटेर्य्यादि, २२९ त्रिफलादि, २३० कुटजादि।

उदररोगमें—२३१ त्रिवृतकल्कयुक्त आरग्वधक्काथ वा एरण्डक्काथ, २३२ शिग्रुक्काथ, २३३ दशमूलादि, २३४ हरीतक्यादि, २३५ एरण्डतैल वा गोमूत्रयुक्त दशमूली, २३६ पुनर्णवाष्टक, २३७ पुनर्णवाचतुष्क।

शोथरोगमें—२३८ शुण्ठ्यादि, २३९ दशमूल, २४० त्रिवृतादि, २४१ अभयादि, २४२ पुनर्णवासप्तक, २४३ गुग्गुलयुक्त पुनर्णवादि वा दशमूलक्काथ, २४४ हिंसाद्यादि, २४५ पुनर्णवाक्काथ। अन्त्रवृद्धिरोगमें—२४६ रुबुतैलयुक्त दशमूल, २४७ रास्नादि। विद्रधिरोगमें—२४८ पुनर्णवादि, २४९ त्रिवृतकल्कयुक्त त्रिफलाक्काथ, २५० दशमूली कषाय, २५१ वंशत्वगादिक्काथ।

उपदंशरोगमें—२५२ पटोलादि, २५३ त्रिफलाक्काथ, २५४ जयादिक्काथ। भग्नरोगमें—२५५ न्यग्रोधादि, २५६ नवकषाय, २५७ पटोलादि, २५८ धात्रीखदिरक्काथ। शीतपित्तमें—२५९ पटोलारिष्टजल। अम्लपित्तरोगमें—२६० निस्तुषयवादि, २६१ शृङ्गवेरपटोलक्काथ, २६२-२६३ पटोलादि (यह पाचन दो प्रकारका है), २६४ यवादि, २६५ दशाङ्ग, २६६ फलत्रिकादि, २६७ पटोलादि, २६८ छिन्नोद्भवादि, २६९ पटोलादि, २७० सिंहास्यादि।

विसर्परोगमें—२७१ पञ्चमूलत्रय, २७२ मुस्तादि, २७३ धात्र्यादि, २७४ नवकषाय, २७५ अमृतादि, २७६-२७७ पटोलादि (यह पाचन दो प्रकारका है), २७८ भूनिम्बादि, २७९ दुरालभादि, २८० कुण्डल्यादि।

मसूरीरोगमें—२८१ दुरालभादि, २८२ निम्बादि, २८३-२८४ पटोलादि (यह पाचन दो प्रकारका है), २८५ पटोलमूलादि, २८६ खदिराष्टक, २८७ अमृतादि, २८८ जातीपत्रादि, २८९ गवेधुमधुकक्काथ, २९० वराक्काथ वा खदिराष्टक, २९१ निम्बादि।

मुखरोगमें—२९२ बृहत्यादि, २९३ दार्व्वादि वा हरीतकीकषाय, २९४ कटुकादि। मुखपाकरोगमें—२९५ जातीपत्रादि, २९६ पटोलादि, २९७ पञ्चकल्क वा त्रिफलाकषाय, २९८ दार्व्वीक्काथ, २९९ सप्तच्छद यष्टि वा आम्रादिकषाय, ३०० पटोलादि, ३०१ त्रिफलादि। प्रदररोगमें—३०२ दार्व्वादि। योनिव्यापद् रोगमें—३०३ गुडूची, त्रिफला वा दन्तीक्काथ। गर्भावस्थामें—३०४ चन्दनादि, ३०५ बृहत् क्षीरोद्यादि। स्तनरोगमें—३०६ हरिद्रादि वा वचादिक्काथ, ३०७ दशमूलक्काथ, ३०८ अमृतादि, ३०९ त्रिफलादि, ३१० भार्ग्यादि, ३११ सप्तन त्रिफलाक्काथ। सूतिकारोगमें—३१२ सूतिकादशमूल, ३१३ सहचरादि, ३१४ दशमूली। मक्कलशूलरोगमें—३१५ पिप्पल्यादिगणक्काथ। वातरोगमें—३१६ हरिद्रादि, ३१७ विल्वादिक्काथ, ३१८ समङ्गादि, ३१९ नागरादि, ३२० सशर्करलाजयुक्त विल्वमूलकषाय, ३२१ पटोलादि। विषरोगमें ३२२ कटभ्यादि। (चक्रपाणिदत्त)

चक्रपाणिदत्तके बतलाये हुए यही ३२२ प्रकारके पाचन हैं। एतद्भिन्न और भी कितने पाचन वैद्यकग्रन्थमें देखनेमें आते हैं। ऊपर जिन सब पाचकोंके नाम लिखे गये, उनके मध्य एक नामके अनेक पाचन हैं, किन्तु अधिकारभेदसे एक नामका पाचन होने पर भी उसमें भिन्न भिन्न पदार्थ हैं। भावप्रकाशमें लिखा है—

"न प्रशाम्यति यः शोथं प्रलेपादिविधानतः।
द्रव्याणि पाचनीयानि दद्यात् तत्रोपनाहने॥"

व्रण जहां प्रलेपादि द्वारा उपशम न हो, वहां पाचन द्रव्यका उपनाह प्रदान विधेय है।

शणमूल, सोहिञ्जनका फल, तिल, सर्षप और तीसी इन सब द्रव्योंका सत्तू, पुराबीज और अन्यान्य उष्ण द्रव्य व्रणका पाचन है।

(त्रि०) ३ पाचयिता, पचानेवाला, हाजिम। भावप्रकाशमें लिखा है, कि यदि कोई वस्तु खानेसे अजीर्ण हो, तो जिस वस्तुके खानेसे उस अजीर्ण वस्तुका परिपाक होता है, उसी वस्तुको उसका पाचन कहते हैं।

कटहल पचानेके लिये केला, केला पचानेके लिये घी और घी पचानेके लिये जंभीरी नीबूका रस प्रशस्त है। नारियल और तालबीज पचानेके लिये तण्डुल और आम पचानेके लिये दूधका सेवन करना चाहिये।

महुवा, बेल, पियार, फालसा, खजूर और निर्मली पचानेके लिये निम्बबीजजनित पय, घृत और तक्रका सेवन करे। खजूर और पानीफल अजीर्ण होने पर सोंठ अथवा नागरमोथेका सेवन तथा यज्ञडूमर, अश्वत्थादिका फल और पाकर खानेसे अजीर्ण होने पर सोंठ अथवा नागरमोथेके काढ़ेको बासी करके पीना चाहिये। तण्डुल खानेसे अजीर्ण होने पर दुग्ध, दुग्ध अजीर्ण होने पर अजवायन और चिउड़ा अजीर्ण होने पर पीपरके साथ अजवायन खानेसे तुरत पच जाना है। यष्टिक तण्डुल अजीर्ण होने पर दधिको पीनेसे, ककड़ी फल गेहूंसे और गेहूं, उरद, चना तथा मूंग इन सबका परिपाक धतूरेके फलसे होता है। कंगनीधान, श्यामाधान, खजूर, मृणाल, केसर, चीनी, पानीफल और मधुफल अजीर्ण होने पर नागरमोथेका सेवन विधेय है। विदलकृत सामग्री कांजी द्वारा, पिष्टान्न शीतल जल द्वारा और खिचड़ी सैन्धव द्वारा परिपाक होती है। जम्बीर द्वारा माषिण्डर (पापड़), मूंग द्वारा पायस, लवण द्वारा वेशवार, लाङ्ग द्वारा फेनी, सोहिञ्जन द्वारा पर्पट, पिपरामूल द्वारा लड्डू, पिष्टक और सट्टक तथा मण्ड द्वारा कचौड़ी हजम होती है। स्नेह (तैलादि), हरिद्रा, हिङ्गु, लवङ्ग, इलायची, धनिया, जीरा, अदरक, सोंठ, दाड़िमादि अम्लरस, मिर्च और सैन्धव चूर्ण इन सबके परिपाकके लिये संस्काराद्य अन्नका सेवन करे। यदि मछली और मांस अधिक खा लिया हो, तो कांजी पी ले, इससे बहुत जल्द हजम हो जाता है। अपक्व आम्र द्वारा मत्स्य और आम्रबीज द्वारा मांस, यवक्षार द्वारा कच्छपका मांस, शुक और पाण्डुवर्ण पारावत, नीलकण्ठ तथा कपिञ्जलका मांस खाने पर अजीर्ण होनेसे कोगमूलको पीस कर जलके साथ सेवन करना चाहिए। तिलके पौधेके क्षारक्षार द्वारा सभी प्रकारके मांस, खैरकी लकड़ीके क्षारसे चञ्चुकसाक, श्वेतसर्षप और बथुआसाक, श्वेतसर्षप द्वारा पालनशाक, केबुकशाक, करेला, बैंगन, मूली, पोई, कद्दू, परवल और ओल परिपाक होता है।

मट्ठेसे दूध, कुछ गरम मांड़से गायका दूध और सैन्धव नमकसे भैंसका दही जीर्ण होता है। त्रिकटु खानेसे रसाल, खण्ड खानेसे शुण्ठ, नागरमोथेसे ईख और अदरकका रस पचता है। गेरूमट्टी और चन्दनसे पुरातन मद्य, उष्ण द्रव्यसे शीतल द्रव्य और रससे क्षारसमूह जीर्ण होता है। जलपान करनेसे यदि अजीर्ण हो जाय, तो सोने या चाँदीको अग्निमें सन्तप्त करके जलमें डाल दे। इस प्रकार सात बार करते रहे, पीछे उस जलको पीनेसे अच्छी तरह परिपाक हो जाता है।

(भावप्र० मध्यख० अग्निमान्द्यधि०)

जिन सब द्रव्योंकी बात ऊपर लिखी गई, उन सब द्रव्योंको खानेसे भुक्तद्रव्य परिपाक होता है, इस कारण उन्हें पाचन कहते हैं। (पु०) ४ अम्लरस, खट्टा रस। ५ अग्नि, आग। ६ रक्तेरण्ड, लाल अंडी।

"पाषाणभेदी मरिचं यमानी जलशीर्षकम्।
शुण्ठीचव्यं गजकणा शृंगादिः पाचनो गणः॥"

(अर्कप्रकाश)

पाषाणभेदी, मिर्च, अजवायन, जलशीर्षक, कचूर, चई, गजकणा और शृङ्गी इन सब द्रव्योंका नाम पाचनगण है।

पाचनक (सं० पु०) पच्यतेऽनेनेति पच-णिच्-ल्यु, ततः संज्ञायां कन्। टङ्कनक्षार, सोहागा।

पाचनगण (सं० पु०) पाचन ओषधियोंका वर्ग। जैसे, कालीमिर्च, अजवायन, सोंठ, चव्य, गजपीपल, काकड़ासिंगी आदि।

पाचनशक्ति (सं० स्त्री०) वह शक्ति जो भोजनको पचावे, हाजमा।

पाचनी (सं० स्त्री०) पच्यते भुक्तद्रव्यादिकं यया, पच-णिच्-ल्युट् स्त्रियां ङीप्। १ हरीतकी, हड़। (त्रि०) २ परिपाचक।

पाचनीय (सं० त्रि०) पच-णिच्-अनीयर्। पाच्य, पकाने या पचाने योग्य।

पाचयितृ (सं० त्रि०) पच-णिच्-तृच्। १ पाचक, रसोइया। २ पचानेवाला, हाजिम।

पाचँर (हिं॰ पु॰) पचँर देखो।

पाचल (सं॰ पु॰) पाचयतीति पच-णिच्, बाहुलकात् कलन्। १ पाचक। २ अग्नि। ३ रन्धनद्रव्य। ४ वायु। (क्ली॰) पाचं पाचनं लातीति ला-क। ५ पाचन।

पाचिका (सं॰ स्त्री॰) पाचक-टाप्, अत इत्वं। पाककर्त्री, रसोई बनानेवाली स्त्री, रसोईदारिन।

पाची (सं॰ स्त्री॰) पाचयति स्वपत्ररसादिप्रलेपादिना परिपक्वयति व्रणादि पच-णिच्, (सर्वधातुभ्य इन्, ततोङीष्) लताविशेष, पाची या पच्ची नामकी लता। पर्याय—मरकतपत्नी, हरितलता, हरितपत्रिका, पत्नी, सुरभि, मालारिष्टा, गारुत्मतपत्रिका। गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, कषाय, वातदोष, ग्रह और भूतविकारनाशक, त्वग्दोषप्रशमक और व्रणका हितकर।

पाच्छा (हिं॰ पु॰) बादशाह देखो।

पाच्य (सं॰ त्रि॰) पच-आवश्यके ण्यत्, आवश्यकार्थत्वात् न कुत्वं। अवश्यपचनीय, जो अवश्य पचाया या पकाया जा सके।

पाछ (हिं॰ स्त्री॰) १ जन्तु या पौधेके शरीर पर छुरीको धार आदि मार कर ऊपर ऊपर किया हुआ घाव जो गहरा न हो। २ वह चीरा जो किसी वृक्ष पर उसका रस निकालनेके लिये किया जाता है। ३ वह चीरा जो पोस्तेके डोडे पर नहरनीसे लगाया जाता है। इससे गोंदके रूपमें अफीम निकलती है।

पाछना (हिं॰ क्रि॰) जन्तु या पौधेके शरीर पर छुरीको धार इस प्रकार मारना कि वह दूर तक न धंसे और जिससे केवल ऊपर ऊपरका रक्त आदि निकल जाय, चिरना।

पाज (हिं॰ पु॰) पाँजर।

पाजरा (हिं॰ पु॰) एक वनस्पति जिससे रंग निकाला जाता है।

पाजस् (सं॰ क्ली॰) पाति रक्षतीति पात्यनेनेति वा पा रक्षणे असुन् जुड़ागमश्च (पातेर्बले च जुट् च)। १ बल। २ अन्न।

पाजस्य (सं॰ पु॰) छाती और पेटकी बगलका भाग, पाँजर।

पाजा (हिं॰ पु॰) पायजा देखो।

पाजामा (फा॰ पु॰) पैरमें पहननेका एक प्रकारका सिला हुआ वस्त्र। इससे टखनेसे कमर तकका भाग ढका रहता है। इसके टखनेकी ओरके अन्तिम भागको मुहरी या मोरी, जितना भाग एक एक पैरमें होता है उसे पायचा, दोनों पायचोंके मिलानेवाले भागको मियानी, कमरकी ओरके अन्तिम भागको जिसमें इजारबंद रहता है, नेफा और जिस सूत या रेशमके बंधनेको नेफेमें डाल कर कसते हैं, उसे इजारबंद कहते हैं। पाजामेके कई भेद होते हैं, चूड़ीदार, बरदार, अरबी, पतलूननुमा, कलीदार, पेशावरी, काबुली और नेपाली। चूड़ीदार पाजामा घुटनेके नीचे इतना तंग होता है कि सहजमें पहना या उतारा नहीं जा सकता। जब यह पहना जाता है, तब घुटनेके नीचे बहुतसे मोड़ पड़ जाते हैं। इसके दो भेद होते हैं—आड़ा और खड़ा। आड़की काट नीचेसे ऊपर तक आड़ी और खड़की खड़ी होती है। कभी कभी इसमें मोहरीकी तरफ तीन बटन लगते हैं। उस दशामें मोहरी और भी तंग रखी जाती है। बरदार पाजामा घुटनेके नीचे और ऊपर बराबर चौड़ा होता है। इसकी एक एक मुहरी एक हाथसे कम चौड़ी नहीं होती। अरबी पाजामेकी मोहरी चूड़ीदारसे अधिक ढीली होती है और यह अधिक लम्बा न होनेके कारण सहजमें पहन लिया जाता है। पतलूननुमाकी मोहरी बरदारसे कम और अरबीसे अधिक चौड़ी होती है। आज कल इसी पाजामेका रवाज अधिक है। कलीदार या जनाना पाजामा नेफेकी तरफ कम और मोहरीकी तरफ अधिक चौड़ा रहता है। इसके नेफेका घेरा १ गज और मोहरीका २½ गिरह होता है। इसमें बहुत-सी कलियां होती हैं। इन कलियोंका चौड़ा भाग मोहरीकी ओर और तंग भाग नेफेकी ओर होता है। पेशावरी पाजामा कलीदारका प्रायः उलटा होता है। काबुली और नेपाली भी इसी प्रकारके होते हैं।

पाजामेका व्यवहार इस देशमें कबसे आरम्भ हुआ, ठीक ठीक मालूम नहीं। अधिकांश लोगोंका ख्याल है, कि यह मुसलमानोंके साथ यहां आया। पूर्व समयमें यहांके लोग धोती पहना करते थे। परन्तु पहाड़ियों

और शीतप्रधान देशोंमें आज कल इसका जितना व्यवहार है उससे संदेह हो सकता है, कि पहले भी उनका काम इसके बिना न चलता रहा होगा। फिलहाल हिन्दू मुसलमान दोनों पाजामा पहनते हैं, पर मुसलमान अधिक पहनते हैं।

पाजी (हिं० पु०) १ पैदल सेनाका सिपाही, प्यादा। २ रक्षक, चौकीदार। (वि०) ३ दुष्ट, लुच्चा, कमीना।

पाजीपन (हिं० पु०) दुष्टता, कमीनापन।

पाजेब (फा० स्त्री०) पैरोंमें पहननेका स्त्रियोंका एक गहना। यह चाँदीका होता है और इसमें घुँघरू टके होते हैं, नूपुर, मंजीर।

पाञ्चकपाल (सं० त्रि०) पञ्चकपालस्थायमिति अण्, (तस्येदम्। पा ४।३।१२०) पञ्चकपाल यज्ञसम्बन्धी।

पाञ्चगतिक (सं० त्रि०) पञ्चगतियुक्त।

पाञ्चजनी (सं० स्त्री०) पञ्चजन नामक प्रजापतिकी कन्या असिकी।

पाञ्चजनीन (सं० त्रि०) पाञ्चजने साधुः पञ्चजन-खञ्। (प्रतिजनादिभ्यः खञ्। पा ४।४।९९) जो पांच जनके प्रति साधु व्यवहार करते हैं।

पाञ्चजन्य (सं० पु०) पञ्चजने दैत्यविशेषे भवः (पञ्चजनादुपसंख्यानम्। पा ४।३।५८ वार्त्तिक) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या ञ्यः। १ विष्णुशङ्ख, विष्णु जिस शंखको धारण करते हैं उस शंखका नाम पाञ्चजन्य है। (गीता १।१०) पञ्चजन नामक दैत्यसे यह शंख पाया गया था, इसीसे इसका नाम पाञ्चजन्य पड़ा है। हरिवंशमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—

भगवान् विष्णुने गुरुदक्षिणामें अपने गुरु सान्दीपनि मुनिको उनका पुत्र ला देनेकी प्रतिज्ञा की। इस कारण वे समुद्रके किनारे जा जलमें घुस पड़े। इस पर समुद्र हाथ जोड़े कृष्णके सामने आ उपस्थित हुए और कृष्णने अपने आनेका सारा हाल उनसे कह सुनाया। जब कृष्णको मालूम हुआ, कि पञ्चजन नामक एक महादैत्य तिमिरूप धारण कर गुरु-पुत्रको निगल गया है, तब वे उसी समय दैत्यके समीप पहुँचे। वहां कृष्णने पञ्चजनको मार कर अपने गुरुपुत्रको छुड़ाया और उसका शंख भी ले लिया। यही शङ्ख देवता और मनुष्यके मध्य पाञ्चजन्य नामसे विख्यात हुआ था। (हरिवंश ८८।१५-१८) पञ्चभिः काश्यपवशिष्ठप्राणाङ्गिरसच्यवनैः निर्वृत्तः ष्यञ्। २ अग्नि। महाभारतके वन पर्वमें लिखा है—

उकथ्य और मार्कण्डेयने धर्मिष्ठ और ब्रह्माके सदृश यशस्वी एक पुत्र पानेकी कामनासे बहुवर्षव्यापी घोर तपस्याका आरम्भ कर दिया। जब काश्यप, वशिष्ठ, प्राणपुत्र प्राण, अङ्गिराके पुत्र च्यवन और सुवर्चक इन पांचोंने अग्नि महाव्याहृति मन्त्र द्वारा ध्यान किया, तब महतीज्वालासमन्वित, पञ्चवर्णविशिष्ट, जगत्‌को सृष्टि करनेमें समर्थ एक तेज उत्पन्न हुआ। उसका मस्तक प्रज्वलित अग्निवर्ण-सा, दोनों बाहु सूर्यसदृश प्रभान्वित, त्वक् और नेत्र सुवर्णके समान कान्तियुक्त तथा दोनों जङ्घा कृष्णवर्णकी थी। उक्त पांचोंने तपस्या द्वारा उस तेजको पञ्चवर्ण किया, इसीसे वे पाञ्चजन्य नामसे प्रसिद्ध हुए। (भारत ३।२१८ अ०) ३ हारीत मुनिवंशीय दीर्घबुद्धिपुत्र। ४ पुराणानुसार जम्बूद्वीपके एक भागका नाम।

पाञ्चजन्यधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच्, पाञ्चजन्यस्य धरः। विष्णु।

पाञ्चजन्यायनि (सं० त्रि०) पाञ्चजन्यस्य अदूरदेशादि चतुरर्थ्यां कर्णादि फिञ्। पाञ्चजन्य सन्निकृष्ट देशादि।

पाञ्चदश (सं० त्रि०) पञ्चदश्यां भवः कालत्वेऽपि सन्धिवेलादित्वादण्। पञ्चदशीभव।

पाञ्चदश्य (सं० पु०) पञ्चदशभिः सामधेनीमन्त्रैः प्रकाश्यः ष्यञ्। पञ्चदश सामधेनी मन्त्र द्वारा प्रकाश्य अलौकिक वह्नि। (भाग० ६।४।२७)

पाञ्चनख (सं० त्रि०) पञ्चनख-अण्। पञ्चनख सम्बन्धी, पञ्चनखभव।

पाञ्चनद (सं० त्रि०) पञ्चनद-अण्। पञ्चनदसम्बन्धी

पाञ्चभौतिक (सं० त्रि०) पञ्चभ्यो भूतेभ्य आगतः ठक्, द्विपदवृद्धिः। आकाशादि भूतपञ्चकारब्ध देहादि, पांचों भूतों या तत्त्वोंसे बना हुआ शरीर। जीवात्माके पाञ्चभौतिक देहपरिग्रहका नाम जन्म और इसका नाश ही मृत्यु है। कोई कोई देहको पाञ्चभौतिक नहीं मानते— कोई इसे चातुर्भौतिक और कोई एकभौतिक बतलाते

है। शरीरमें पार्थिवांशका भाग अधिक है, इसीसे शरीरको पार्थिव भी कहते हैं। देहमें पार्थिवांशका भाग आधा है।

पाञ्चमाह्निक (सं० त्रि०) पञ्चमदिन-सम्बन्धीय।

पाञ्चमिक (सं० त्रि०) पञ्चमयुक्त।

पाञ्चशब्दिक (सं० त्रि०) पञ्चशब्दके अन्तर्गत कोई एक।

पाञ्चरात्र (सं० पु०) पञ्चरात्रमतावलम्बी।

पञ्चरात्र देखो।

पाञ्चलिका (सं० स्त्री०) पञ्चाली स्वार्थे अण्, ततः कन्, ततष्टापि अत इत्वं। पञ्चालिका, वस्त्रादि निर्मित पुत्तलिका।

पाञ्चवर्षिक (सं० त्रि०) पञ्चवर्षाः प्रमाणमस्य ठञ्, तस्य वा न लुक्। पञ्चवर्षवयस्क, जिसकी उमर पांच वर्षकी हो।

पाञ्चशब्दिक (सं० त्रि०) पञ्चभिः शब्दैः निवृत्तं, तेन निर्वृत्तं। (पा ५।१।३१) इति ठक्। पञ्च प्रकार शब्द द्वारा निष्पादित वाद्यभेद, करताल, ढोल, बीन, घंटा और भेरी आदि पांच प्रकारके बाजे।

पाञ्चशर (सं० त्रि०) पञ्चशर वा कामदेव-सम्बन्धीय।

पाञ्चार्थिक (सं० पु०) पञ्चार्थाः सन्त्यत्र (अत इनि ठनौ। पा ५।२।११५) इति ठन्। पाशुपतशास्त्र। इसमें पाशादि पञ्च पदार्थ दिखलाये गये हैं।

पाञ्चाल (सं० क्ली०) पञ्चाल एव पञ्चाल स्वार्थे-अण्। १ शास्त्र। (पु०) पञ्चभिः प्रधानाभिर्नदीभिरलति पर्याप्नोतीति पञ्चाल स्वार्थे अण्। २ देशविशेष, द्रुपदराज-नगर। पञ्चाल देखो। ३ पञ्चालदेशवासी, पञ्चाल-देशका रहनेवाला। ४ ब्रह्मदत्तका सहचरविशेष। ५ बढ़ई, नाई, जुलहा, धोबी, चमार इन पांचोंका समुदाय। (त्रि०) ६ पञ्चालदेशोद्भव, पञ्चालदेशमें होनेवाला। ७ पञ्चाल देशका रहनेवाला।

पाञ्चालक (सं० त्रि०) पञ्चाल, स्वार्थे-कन्। पञ्चाल।

पाञ्चालिका (सं० स्त्री०) पाञ्चाली स्वार्थे कन् ततो ह्रस्वष्टापः च। १ वस्त्र वा दण्डादिकृत पुत्तलिका, गुड़िया, कपड़े आदिकी पुतली। पर्याय—पुत्तलिका, पञ्चालिका, शालभञ्जी, पञ्चाली। २ रीतिविशेष, साहित्य-में एक प्रकारकी रीति या वाक्यरचनाप्रणाली।

पाञ्चाली (सं० स्त्री०) पञ्चभिर्वर्णैरलतीति अल अच्, गौरादित्वात् ङीष्। १ पाञ्चालिका, गुड़िया। २ पञ्चाल देशकी भाषा। पञ्चाल-अण्, स्त्रियां ङीप्। ३ पाण्डवोंकी स्त्री द्रौपदीका एक नाम जो पञ्चाल-देशकी राजकुमारी थी। पर्याय—कृष्णा, पाण्डुशर्मिला, पार्वती, याज्ञसेनी, वेदिजा, सैरन्ध्री, नित्ययौवना। ४ रीतिविशेष, साहित्यमें एक प्रकारकी रीति या वाक्य-रचना-प्रणाली। इसमें बड़े बड़े पांच छः समासोंसे युक्त और कान्तिपूर्ण पदावली होती है। इसका व्यवहार सुकुमार और मधुर वर्णनमें होता है। किसी किसीके मतसे गौड़ी और वैदर्भी वृत्तियोंके सम्मि-श्रणको भी पाञ्चाली कहते हैं। ५ पिप्पली, पीपल। ६ स्वरसाधनकी एक प्रणाली।

पाञ्चाल्य (सं० त्रि०) १ पञ्चालसम्बन्धीय। (पु०) २ पञ्चालदेशके राजपुत्र।

पाञ्जि (सं० पु०) पितृभेद।

पाञ्चिक (सं० पु०) यक्षदलपति।

पाञ्जर्य (सं० त्रि०) पञ्जर-सम्बन्धीय।

पाट (हिं० पु०) १ एक प्रसिद्ध पौधा। यह चक्षुको परिष्कार रखता है, इस कारण इसका अंगरेजी वैज्ञा-निक नाम 'करकरास' (Corchorus) पड़ा है।

पाटका अंगरेजी नाम जूट वा जिउसमेलो (Jute or Jew's mellow), फरासी नाम जूट, मौआभ डिस जुइफ्स, कर्ड टेक्सटाइल (Jute, mauve des juifs, Corde textile), जर्मन जूट (Jute), बङ्गला पाट, ब्रह्मदेशीय नाम फेटकयून (Phetcwoon) संस्कृत जूट वा जट।

इनके कुल ३६ भेद हैं जिनमेंसे ८ भारतवर्षमें पाये जाते हैं। इन आठमेंसे दो मुख्य हैं और प्रायः इन्हींकी खेती की जाती है। किसी किसी जातिके पाटकी पत्तियां कड़ुई होती हैं। यह कड़ुई पत्तियां कृमि आदि रोगोंमें महोपकारी मानी गई हैं।

तिक्तपाटका वैज्ञानिक नाम करकोरस-एकुटाङ्गुलस (Corchorus Acutangulus) है। इसके काण्डदेशका अधिकांश रेशेसे आवृत रहता है। पत्तेकी दोनों भागमें बालकी तरह बहुत बारीक पदार्थ नजर आते हैं।

बीजकोष इञ्च भरका होता है और इससे ३।४ शाखाएं निकलती हैं। यह दो प्रकारका होता है, एकका मलदेश कुछ कुञ्चित तथा दूसरेका छोटा छोटा और चिपटा बीज होता है।

इस जातिका पाट भारतवर्ष और सिंहलद्वीपमें जहां अधिक गरमी पड़ती है, उत्पन्न होता है। वर्षा और शीतकालमें इसमें फल लगते हैं। इस जातिके पाटकी खेती नहीं होती। भारतवर्षके अनेक स्थानोंमें तथा ब्रह्मदेशमें यह अकसर जंगली अवस्थामें देखा जाता है।

बाफुलीपाट (Corchorus Antichorus) इसका पंजाबी नाम बाफुल्लि, कूराखड़, बोफाली, बाबुना और सिन्धु देशीय नाम सुधिरी है। यह युक्तप्रदेशसे पञ्जाबके मध्य, सिन्धुदेशमें, काठियावाड़के दक्षिण-पश्चिम भागमें, गुजरातमें और दाक्षिणात्यप्रदेशमें पाया जाता है। इसका आकार कण्टकाकोर्ण वन्य लताके समान होता है। भारतवर्षको मरुभूमिमें जो सब पुष्प पाये जाते हैं, वे इसी जातिके हैं। यह अभी अफगानिस्तान, अफ्रिका आदि स्थानोंमें बहुत मिलता है। इससे अच्छे रेशे नहीं निकलते, विशेष कर यह औषधमें व्यवहृत होता है। इसका गुण शीतल और मेहरोगमें महोपकारी माना गया है।

नरछापाट (Corchorus Capsularis) विशेषतः बंङ्गाल और आसाममें बोया जाता है। वनपाटकी अपेक्षा इसके रेशे अधिक उत्तम होते हैं। नरछेका पौधा वनपाटके पौधेसे ऊंचा होता है और पत्ती तथा कली लम्बी होती है। वनपाटकी पत्तियां गोल, फूल नरछेसे बड़े और कलीको चोंच भी नरछेसे कुछ अधिक लम्बी होती है। नरछेकी पत्तियांको जलमें कुछ काल तक डुबोये रखनेके बाद वह जल पीनेसे रक्त-आमाशय, ज्वर प्रभृति रोगको शान्ति होती है। इसके बीजको भुन कर एक प्रकारका तेल निकालते हैं जो दीयेमें जलाया जाता है। वनपाटको बम्बईमें हिरणखोरी और भुपाली कहते हैं। सिन्धुदेशमें इस पाटसे जो रेशे निकलते हैं उनसे रस्सी बनाई जाती है।

एक प्रकारका और पाट होता है जिसे चीन-नलिता पाट (Corchorus Capsularis) कहते हैं। यह चीनदेशसे पहले पहल भारतवर्षमें लाया गया। कौरठन नगरके निकट कई शताब्दी तक इसकी खेती होती थी और वहां इसे वोमयो कहते थे। मालवदेशके लोग इसे रापितुसजिमा कहते हैं। किन्तु ललितपाट इजिप्ट और सिरियाके अधिवासियोंके निकट परिज्ञात था, उसका प्रमाण मिलता है। यह शाकके बदलेमें व्यवहृत होता था। ग्रीकलोग जिसे कारकोरस कहते थे और अभी जो कारकोरस कहाता है, दोनों एक नहीं है। क्योंकि ग्रीक कारकोरस शब्दका अर्थ चक्षुरोगविनाशक है, किन्तु यहांके कारकोरसमें वह गुण नहीं है। इस जातिके पाटकी बहुत दिन तक अलेप्पाके निकट खेती होती थी और शाक सब्जीकी तरह इसका व्यवहार होता था। इसका फरासी नाम मम डिफुई है।

खृष्टीय शताब्दीके प्रारम्भमें इसकी खेती इजिप्टमें होने लगी। वहां इसे मलोकिच् (Mellowkych) और क्रिटेमोलचिया कहते हैं। इन नामके साथ भारतवर्षीय नामका कोई सादृश्य नहीं है। १८वीं शताब्दीके मध्यभागमें यूरोपियनोंने इसका विषय पहले पहल सुन पाया। थोड़े ही दिन हुए हैं, कि इसका गुण सब किसीको मालूम हो गया। यह ज्वर, उदरामय आदि रोगोंमें व्यवहृत होता है। पूर्ववङ्गाल और सन्थाल परगनेके लोग इसकी पत्तियोंका शाककी तरह व्यवहार करते हैं।

इसके सिवा और भी दो प्रकारका पाट है जिन्हें Moulchia Corchorus और Travense Corchorus Trilocularsii कहते हैं। शेषोक्त जातिके पाटका बीज बम्बईके बाजारमें राजजीरा नामसे बिकता है।

प्रायः अर्द्ध शताब्दी पहले इस देशके दरिद्र मनुष्य अपने अपने घरमें पाटके कपड़े बना कर पहनते थे। किसी किसी असभ्य जातिके मध्य आज भी इस प्रकारके कपड़ेका व्यवहार देखा जाता है। किन्तु सभ्यताविस्तारके साथ साथ वस्त्रकी आवश्यकता भी बढ़ गई है। पाटसे यह आवश्यकता पूर्ण हुई है। किन्तु यूरोपसे अल्पमूल्यमें वस्त्रादिकी आमदनी होनेके कारण इस देशके वस्त्रव्यवसायको विशेष क्षति हुई है। विदेशीय वाणिज्यमें दिनों दिन पाटका आदर बढ़ जानेसे इसकी खेतीकी खूब उन्नति हुई है और कृषकोंके लिये यह अत्यन्त

लाभजनक भी हुआ करता है। भारतवर्ष, ब्रह्मा, चीन, अमेरिका, अष्ट्रेलिया और इजिप्ट देशसे जिन सब अनाजोंकी रफ़्तनी होती है उनके लिये बोरेकी विशेष आवश्यकता पड़ती है। इस कारण पाटकी खेती पर लोगोंने विशेष ध्यान दिया है, लाभ भी इसमें काफी है। पहले बोरे हाथसे बनाये जाते थे, पर अभी इङ्गलैण्डमें पटसनकी रफ्तनी हो जानेसे वहां कलमें बातकी बातमें अनेक बोरे तैयार होने लगे हैं। सरकारी रिपोर्टसे जाना जाता है, कि १८२८ ई०में पहले पहल ३६४ हज़र पाटकी रफ्तनी यूरोपमें हुई। इसके कुछ समय बाद ही स्काटलेण्डमें पाटके बोरेकी कल हो जानेसे इस देशके लोगोंने देखा, कि अब हाथके बने हुए बोरोंके व्यवसायमें बहुत धक्का पहुंचेगा, इस कारण उन्होंने भी बोरोंकी अनेकों कल यहां खोल दीं। स्काटलैण्डके दण्डीनगरमें पहले पहल टाटकी कल स्थापित हुई। पीछे १८५४ ई०में जार्ज आकलैण्ड नामक किसी अङ्गरेजने श्रीरामपुरके निकट टाटकी कल खोल दी जो अभी 'वेलिंटन मिल' नामसे प्रसिद्ध है। इसके कुछ दिन बाद ही बराहनगर, गौरीपुर और कलकत्तेके चारों ओर टाटकी कलें स्थापित हुईं। १८६९-७० ई०की सरकारी रिपोर्टसे जाना जाता है, कि उक्त सालमें ६४४१८६२ बोरे हाथ और कलसे इस देशमें तैयार हुए थे। १८७८-८० ई०में ५५९०८००० बोरोंकी विदेशमें रफ्तनी हुई थी। यूरोप और इस देशमें अनेकों कलके खुल जानेसे पाटकी विशेष आवश्यकता पड़ती है, इस कारण देशवासियोंके लिये पाटकी खेती विशेष लाभजनक हो गई है और प्रतिवर्ष पाटकी रफतनी उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है।

पटसनकी बोआई भदई अनाजोंके साथ होती है और कटाई उसी समय होती है जब उसमें फूल लगते हैं। इस समय न काट लेनेसे रेशे कड़े हो जाते हैं। बीजके लिये थोड़ेसे पौधे खेतमें एक किनारे छोड़ दिये जाते हैं, शेष काट कर और गट्ठोंमें बाँध कर कर नदी, तालाब या गड्ढेके जलमें गाड़ दिये जाते हैं। तीन चार दिन बाद निकाल कर डंठलसे छिलकेको अलग कर लेते हैं। फिर छिलकोंको पत्थरके ऊपर पछाड़ते हैं और थोड़ी थोड़ी देरके बाद पानीमें धोते हैं। ऐसा करनेसे कड़ी छाल कट कर धुल जाती है और नीचेकी मुलायम छाल निकल आती है। छिलके या रेशे अलग करनेके लिये यन्त्र भी है, परन्तु भारतीय किसान उसका उपयोग नहीं करते। यन्त्र द्वारा अलग किए हुए रेशोंकी अपेक्षा सड़ा कर अलग किये हुए रेशे अधिक मुलायम होते हैं। कुड़ाए और सुखाए जानेके बाद रेशे एक विशेष यन्त्रमें दबाए अथवा कुचले जाते हैं। जब तक यह क्रिया होती रहती है, रेशों पर जल और तेलके छींटे देते रहते हैं। १०० सौ मन पाट पर प्रायः २० मन जल और २½ ढाई मन तेल लगता है। ऐसा करनेसे उनकी रुखाई और कठोरता दूर हो कर कोमलता, चिकनाई और चमक आ जाती है। आज कल पटसनके रेशोंसे तीन काम लिये जाते हैं— मुलायम लचीले रेशोंसे कपड़े तथा टाट बनाए जाते हैं, कड़े रेशोंसे रस्से रस्सियां और जो इन दोनों कामोंके अयोग्य समझे जाते हैं उनसे कागज बनाया जाता है। रेशोंकी उत्तमता अनुत्तमताके विचारसे भी पटसनके कई भेद हैं। जैसे, उत्तरिया, देशवाल, देशी, डोरा या डौरा, नारायनगंजी, सिराजगंजी, करीमगञ्जी, मीरगञ्जी। इनमें उत्तरिया और देशवाल सर्वोत्तम है। पटसनके रेशे अन्य वृक्षों या पौधोंके रेशेसे कमजोर होते हैं। रंग इसके रेशों पर चाहे जितना गहरा या हलका चढ़ाया जा सकता है। चमक, चिकनाई आदिमें पटसन रेशमका मुकाबिला करता है। जिस कारखानेमें पटसनके सूत और कपड़े बनाये जाते हैं, उसको 'जूटमिल' कहते हैं और जिस यन्त्रमें दाब पहुंचा कर रेशोंको मुलायम और चमकीला बनाया जाता है उसे 'जूटप्रेस' कहते हैं।

उपरोक्त इत्यादि छोड़ कर पाटसे एक प्रकारका मद्य तैयार होता है। पाट तन्तुके परित्यक्त अंशके साथ सलफिउरिक एसिड मिलाने एक प्रकारका सक्कर बनता है। इसी सक्करसे मद्य प्रस्तुत होता है। अनाजसे जो मद्य तैयार किया जाता है उससे यह बहुत कुछ मिलता जुलता है। इसे अङ्गरेजीमें Jute's whiskey वा पाटका मद्य कहते हैं। इसका व्यवहार उतना अधिक नहीं होता है।

पाटक (सं० पु०) पाटयति शोष्यतीति पाट-ण्वुल्। १ महानिष्कु। २ कटकान्तर। ३ वाद्य। ४ अचादि चालन। ५ मूलद्रव्यापचार। ६ रोध। ७ ग्रामैकदेश। (त्रि०) ८ छेदक। ९ भेदक।

पाटकरण (सं० पु०) शुद्ध जातिके रागोंका एक भेद।

पाटच्चर (सं० पु०) पाटयन् छिन्दन् चरतीति चर-पचाद्यच्, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ चोर। (त्रि०) पटच्चरदेशभव। पटच्चर देखो।

पाटन (सं० क्लो०) पट-णिच्-भावे ल्युट्। छेदन।

पाटन—अयोध्याप्रदेशके उन्नाव जिलान्तर्गत पाटन परगनेका एक नगर। यह लोननदीके किनारे अवस्थित है। यहां मुसलमान फकीरको समाधिके निकट वर्ष भरमें दो बार मेला लगता है। इस मेलेमें प्रायः तीन लाख मनुष्य एकत्रित होते हैं। सबोंका ऐसा विश्वास है, कि उक्त मृत फकीर उन्मादग्रस्त लोगोंको आरोग्य कर सकते हैं। इसीसे यहां जितने पागल लाये जाते हैं उन्हें सम्मुखस्थित वृक्षमें रात भर बांध रखते हैं। यहां एक अंगरेजी विद्यालय है।

पाटन—१ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत सतारा जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० १७° ८' से १७° ३४' उ० और देशा० ७३° ३८' से ७४° ४' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४३८ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसका अधिकांश स्थान पर्वतपूर्ण है। पूर्वको ओर कोयना, तारलो और कोल उपत्यका कृष्णानदीको समतलभूमिसे मिल गई है। इस उपविभागके पूर्वी भागमें ज्वार और ईख उत्पन्न होती है। नदीके तीरवर्त्ती स्थान छोड़ कर अन्य स्थानोंमें ग्रीष्मकालमें जल दुष्प्राप्य हो जाता है। यहांकी आबहवा शीतल और स्वास्थ्यकर है, किन्तु वर्षाकालमें ज्वरका प्रादुर्भाव देखा जाता है। इसमें ८ नगर और २७१ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १७° २२' उ० और देशा० ७३° ३८' पू०के मध्य सतारा नगरसे २५ मील दक्षिण-पश्चिम कोयना और केरला नदीके सङ्गमस्थल पर अवस्थित है। यह नगर दो भागोंमें विभक्त है,—एक भागमें डाकघर, सरकारी अदालत, स्कूल, बाजार और आनरेरी मजिष्ट्रेटका प्रासाद है तथा दूसरे भागमें रामपुर नामक एक सुन्दर उपवन है।

पाटन—१ गुजरातके अन्तर्गत बरोदा राज्यका एक उपविभाग। भूपरिमाण ४०२ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः १०४१३६ है। इसमें पाटन और वलिसना नामके २ शहर तथा १४० ग्राम लगते हैं। सरस्वती नदी उपविभागके मध्य हो कर बह गई है। यहांका राजस्व प्रायः ३२६०००) रु० है।

२ उक्त उपविभागका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २३° ५१' उ० और देशा० ७२° १०' पू० बनासनदीको शाखा सरस्वती नदीके किनारे अवस्थित है। यहां जैनोंके अनेक पुस्तकागार हैं। इन पुस्तकालयोंमें जो प्राचीन ग्रन्थ हैं, वे ताड़के पत्तों पर लिखे हुए हैं और बहुत सावधानीसे रक्षित हैं। नगरके बाहर सुन्दर हर्म्यादिके अनेक चिह्न नजर आते हैं। अनहलवाड़पाटन गुजरातका एक अति प्राचीन और विख्यात नगर है। ७४६से ११९४ ई०तक यहां राजपूतवंशीय राजाओंको राजधानी थी और मुसलमानी राज्यके समय भी यह एक प्रधान स्थान माना जाता था। इस शहरमें राजा भीमसेनकी रानी उदयमतीका बनाया हुआ तालाब आज भी वर्त्तमान है। यह तालाब ११वीं शताब्दीमें खुदवाया गया था और रानीबाग नामसे प्रसिद्ध है। सोलङ्की वंशके राजा जयसिंहसिद्धने मालवाके राजा यशोवर्माके विरुद्ध युद्धयात्रा करनेके पहले यहां 'सहस्र लिङ्ग तालाब' नामका एक जलाशय शिवके उद्देशसे बनवाया था। अभी इसका नामनिशान भी नहीं है, केवल मैदानके बोचमें मुसलमान राजप्रासादका खंडहर दीख पड़ता है। इसी जलाशयके किनारे हुमायूं और अकबरके मन्त्री बैरामखाँ मक्का जाते समय मारे गये थे। यहां बाण राजाका (१४६७ ई०) एक समाधिस्तम्भ है। नगरके दक्षिण खाँ सरोवर नामका एक बड़ा तालाब है। कहते हैं, कि यह सरोवर किसी मुसलमानने खुदवाया था। शहरमें तलवार, रेशम और पशमीने तैयार होते हैं। आधुनिक नगर महाराष्ट्रोंसे बसाया गया है। यह चारों ओर उच्च प्राचीरसे परिवेष्टित है। यहां डाकघर, अस्पताल और गुजराती तथा महाराष्ट्री भाषा सीखनेके अनेक स्कूल हैं।

पाटन (किशोरीपाटन)—राजपूतानेके बुन्दिराज्यका एक प्रधान ग्राम। यह अक्षा० २५° १७′ उ० और देशा० ७५° ५८′ पू०के मध्य चम्बलनदीके बाएं किनारे अवस्थित है। किशोरीपत्तन अति प्राचीन नगर समझा जाता है। यहां तक कि ऐतिहासिकोंने महाभारतके समयमें यह नगर विद्यमान था, ऐसा बतलाया है। किन्तु नगरकी आकृति देखनेसे यह उतना पुराना प्रतीत नहीं होता। यहां दो प्राचीन लिपियां मिलती हैं, एक ३५ सम्वत्की खोदी हुई बहरामघाट पर सतीके मन्दिरमें और दूसरी १५२की एक निकटवर्त्ती मन्दिरमें। अभीसे बहुत पहले परशुराम नामक एक व्यक्तिने एक महादेवका मन्दिर बनवाया था जो क्रमशः नष्टभ्रष्ट हो गया। पीछे छत्रपालके राजत्वकालमें यह फिरसे बनाया गया। छत्रपालके पितामह महाराव रतनजीने किशोरीदेवके मन्दिरकी नीवं डालते न डालते प्राणत्याग किया। बादमें छत्रशालने उस अधूरे कामको पूरा किया था। मन्दिरमें विष्णुकी एक मूर्त्ति है।

पाटन—राजपूतानेके जयपुर राज्यके अन्तर्गत तुआरवती जिलेकी एक जागीर। घोरवंशने जब दिल्ली पर अधिकार जमाया, तब तुआरवंशीय राजगण दिल्ली छोड़ कर इसी जागीरमें आ कर रहने लगे। तभीसे यह स्थान उन्हींके अधिकारमें चला आ रहा है।

पाटन—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत जब्बलपुर जिलेका एक ग्राम। यहां अनाजका सामान्य वाणिज्य होता है।

पाटन—नेपालका सबसे बड़ा शहर। यह अक्षा० २७° ४१′ उ० और देशा० ८५° २०′ पू०के मध्य, राजधानी काठमण्डूसे १२ मील दक्षिणपूर्व बाघमती नदीके दाहिने किनारे उच्चभूमि पर अवस्थित है। नेपाल जय करनेके पहले तीन भागोंमें विभक्त था और नेवारवंशीय एक राजा यहां वास करते थे। इस समय यह नगर अत्यन्त समृद्धिसम्पन्न था। १७६८ ई०में पृथ्वीनारायणने यह नगर अच्छी तरह लूटा और प्रधान प्रधान अधिवासियोंको मार डाला। यद्यपि प्राचीन नगरकी अधिवासियोंकी संख्या अभी ६००००से कम नहीं है, तो भी नगरका पूर्व सौन्दर्य नहीं है। नगरके गृह मन्दिरादि भग्न हो जानेसे दिनों दिन इसकी श्री नष्ट होती जा रही है। इसके दरबारगृह और मन्दिर क्रमशः भग्न हो गये हैं और नेवार लोग अर्थाभावसे उनका जीर्णसंस्कार नहीं कर सकते। नगर-अधिकारके समय मन्दिरमें जितनी जागीर संश्लिष्ट थी, सभी पृथ्वीनारायणने छीन ली; केवलमात्र हिन्दूमन्दिरकी कुछ जागीरमें उन्होंने हाथ नहीं लगाया था। इसी कारण हिन्दू-मन्दिर आज भी उन्नत दशामें है; किन्तु बौद्धमन्दिरका प्रायः अधिकांश भग्न हो गया है। अधिवासीकी तुलनामें नगर बहुत ही बड़ा है। अधिकांश गृह शून्यावस्थामें दीख पड़ते हैं। चारों ओर खण्डहर ही नजर आते हैं। नगरकी आकृति गोलाकार बुद्धचक्र-सी है। दरबारस्थान नगरके मध्यस्थलमें अवस्थित है। नगरप्राचीरके द्वारसे रास्ता आ कर यहां मिल गया है। शहरका पथ विस्तृत तो है, पर परिष्कार नहीं रहता। दरबार स्थानका उत्तर भाग अभी भग्नावस्थामें पड़ा है। पश्चिम भागमें देवतली नामक एक पञ्चतल मन्दिर है। दक्षिणभाग पूर्णरूपसे विध्वस्त हो गया है। पश्चिमभागमें राजप्रासाद अवस्थित है। पाटनके नेवारोंमेंसे अधिकांश बौद्ध और राजगण हिन्दूधर्मावलम्बी थे। नगरके अन्यान्य भागमें चतुष्कोण भूमिके ऊपर बहुतसे मन्दिर हैं। दरबार-स्थलके दक्षिण-पूर्व कोणमें जो चतुष्कोण भूमि है, वही उत्सवके समय मत्स्येन्द्रनाथका रथ जा कर ठहरता है। यहां एक झरना है। अनेक चतुष्कोण भूमिके ऊपर बौद्धमन्दिर हैं जिन्हें विहार कहते हैं। पहले इन विहारोंमें बौद्ध-उदासी और उनके शिष्य रहते थे। नेपालमें बौद्धधर्मकी अवनतिके साथ साथ इन विहारोंकी भी अवनति हो गई है। प्रधान विहारकी संख्या प्रायः पन्द्रह और क्षुद्रविहारकी संख्या सौसे अधिक है। ये सब विहार प्रायः द्वितल और इष्टक-निर्मित हैं। द्वारदेशमें अनेक देवदेवियोंकी प्रतिमूर्त्तियां खोदित हैं। नगरके बहिर्भागमें बड़े बड़े चार बौद्ध-मन्दिर और एक हिन्दू देवीमन्दिर है। इसका दूसरा नाम ललितपत्तन भी है। राजा ललितने यह नगर बसाया था, इस कारण यह नाम पड़ा है। यह शहर राजधानी काठमण्डूके साथ एक सेतुसे संयुक्त है।

पाटन (हिं० स्त्री०) १ पाटनेकी क्रिया वा भाव, पटाव। २ मकानकी पहली मंजिलसे ऊपरकी मंजिलें। ३ जो कुछ पाट कर बनाया जाय, कच्ची या पक्की छत। ४ सर्पका विष उतारनेके मन्त्रका एक भेद। जिसको साँपने काटा हो उसके कानके पास पाटनमन्त्र चिल्ला कर पढ़ा जाता है।

पाटना (हिं० क्रि०) १ किसी नीचे स्थानको उसके आस पासके धरातलके बराबर कर देना। २ तृप्त करना, सींचना। ३ दो दीवारोंके बीच या किसी गहरे स्थानके आर पार धरना, लकड़ीके बल्ले आदि बिछा कर आधार बनाना। ४ किसी चीजको रेलपेल कर देना, ढेर लगा देना।

पाटनी—पूर्ववङ्गवासी एक निम्नजाति। स्थानभेदसे ये लोग पाटुनी, पाटनी और डोमपाटनी कहलाते हैं। नाव चलाना, मछली पकड़ना और टोकरी बनाना इनका जातीय व्यवसाय है।

इनके शरीरकी गठन देख कर कोई कोई पाश्चात्य मानवतत्त्ववित् इन्हें द्राविड़जाति सम्भूत बतलाते हैं। किसीका विश्वास है, कि ये लोग पहले डोम थे, आज भी रङ्गपुर आदि अनेक स्थानोंमें ये लोग डोमपाटनी कहलाते हैं। कहीं कहीं लोग इन्हें गङ्गापुत्र वा घाटमांझी भी कहते हैं। परशुरामकी जातिमालाके मतसे रजकके औरस और वैश्यकन्याके गर्भसे इस जातिकी उत्पत्ति है। किन्तु पाटनी लोगोंका कहना है, कि उनके आदिपुरुष माधवने मिथिला जाते समय श्रीरामचन्द्रको पार किया था। श्रीरामचन्द्रके स्पर्शसे ही उसकी नाव सोनेमें परिणत हो गई थी। किन्तु माधव इसे समझ न सका और 'मेरा सर्वनाश हुआ', ऐसा कह कर विलाप करने लगा। इस पर रामचन्द्रजी बोले, "तुम्हारी नाव शुद्ध सोना हो गई है, तुम्हें इसकी कुछ भी खबर नहीं? तुम्हारी इस निर्बुद्धिताके कारण तुम्हारे सभी वंशधर नाव चलायेंगे। मरनेके बाद तुम स्वर्गमें जा कर वैतरनी नदीका पाटनी होगे।"

इनके नीच जातित्वके सम्बन्धमें एक प्रवाद सुना जाता है—राजा बल्लालसेनने पद्मावती नामक एक पाटनीकन्याके रूप पर मोहित हो कर उससे विवाह कर लिया। उसके पाकस्पर्श-उत्सवके समय पाटनी लोग यथासमय वहाँ पहुँच न सके, इस कारण उनकी गिनती पतित और नीच जातिमें की गई।

पाटपाट (सं० त्रि०) अतिशय पटु।

पाटमहिषी (हिं० स्त्री०) पटरानी, प्रधान रानी।

पाटरानी (हिं० स्त्री०) वह रानी जो राजाके साथ सिंहासन पर बैठ सकती है, प्रधान रानी।

पाटल (सं० क्ली०) पाटली वर्णोऽस्यास्तीति पटल-अर्श आदित्वादच्। १ पाटलीपुष्प। इस पुष्पको कोई कोई गुलाबपुष्प भी कहते हैं।

"पाटलाशोकवकुलैः कुन्दैः कुरुवकैरपि॥" (भाग० ४।६।१४)

२ श्वेतरक्तवर्ण, उजला और लाल रंग मिलानेसे जो रंग बनता है उसको पाटलवर्ण कहते हैं, गुलाबी रंग। ३ आशुधान्य। गुण—अत्युष्ण, बहुनिष्यन्दी और त्रिदोषकारक। ४ वृक्षविशेष, पाड़रका पेड़। पाटला देखो। ५ रोहिषतृण। (त्रि०) ६ पाटलवर्णयुक्त।

पाटलक (सं० त्रि०) पाटल-स्वार्थे-कन्। पाटल।

पाटलकीट (सं० पु०) एक प्रकारका कीड़ा।

पाटलद्रुम (सं० पु०) पाटलस्य पाटलपुष्पस्य द्रुमो वृक्षः। पुन्नागवृक्ष, गजचम्पक।

पाटला (सं० स्त्री०) पाटली वर्णोऽस्त्यस्याः। १ दुर्गा। २ पुष्पवृक्षविशेष, पाड़रका पेड़। यह भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है। यथा, तामिल-पद्रि, तैलङ्ग—कलगोरु और कलिगोट्टु चेट्टु, महाराष्ट्र—पाड़ली, कनाड़ी हादरी।

संस्कृत पर्याय—पाटलि, अमोघा, काचस्थाली, फलेरुहा, कृष्णवृन्ता, कुवेराक्षी, ताम्रपुष्पी, कुम्भिका, सुपुष्पिका, वसन्तदूती, स्थाली, स्थिरगन्धा, अम्बुवासी, कालवृन्ती, मधुदूती, कालास्थली, अलिवल्लभा, कामदूती, कुम्भी, तोयाधिवासिनी। गुण—तिक्त, कटु, उष्ण, कफ, वात, शोफ, आध्मान, वमि, श्वास और सन्निपातनाशक। भावप्रकाशके मतसे—तुवर, अनुष्ण, त्रिदोष, अरुचि, हिक्का और तृष्णानाशक। फूलका गुण—कषाय, मधुर, शीतल, हृद्य, कफ और अस्रनाशक। इसके फलका गुण—पित्त, अतीसार और दाहनाशक, हिक्का और रक्तपित्तकारक।

इस वृक्षको उत्पत्तिका विवरण वामनपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—भगवान् ब्रह्मा शिवलिङ्गपूजादिकी विधिका निर्णय कर जब स्वधाम लौट गये, तब महादेव वहां विचरण करने लगे। इसी बीच कन्दर्पने धनुस में तीर चढ़ा कर ज्यों ही महादेव पर फेंकना चाहा, त्यों ही महादेवको कोपदृष्टि उस पर पड़ी और वह दग्धप्राय हो गया। धनुस् उसके हाथसे गिर कर पांच टुकड़ोंमें हो गया। जिस स्थल पर मुष्टिबद्ध था, वहांसे चम्पकवृक्ष, जहां शुभाकार बन्धन स्थान वज्रभूषित था वहांसे बकुल और जहां इन्द्रनीलविभूषित कोटी थी वहांसे पाटलीवृक्ष उत्पन्न हुआ। (वामनपुराण ५ अ०) ३ रक्तलोध्र। ४गणिकारिका। ५ श्वेतपाटलवृक्ष। ६ मुष्कवृक्ष। ७ वृहन्नीलतन्त्रवर्णित एक तीर्थ। यहां पाटलेश्वरोदेवी अवस्थान करती हैं।

पाटला (हिं० पु०) एक प्रकारका बढ़िया सोना। यह भारतमें ही शुद्ध करके काममें लाया जाता है। यह बंक सोनेसे कुछ हलका और सस्ता होता है।

पाटलादि (सं० पु०) विल्वादिदशमूल कषाय। यह शोथनाशक है।

पाटलापुष्पवर्णक (सं० क्ली०) पद्मकाष्ठ।

पाटलापुष्पसन्निभ (सं० क्ली०) पाटलापुष्पस्य सन्निभा आदयो यत्र। पद्मकाष्ठ।

पाटलाभ (सं० पु०) रक्तालुक।

पाटलावती (सं० स्त्री०) १ नदीभेद। २ दुर्गा।

पाटलि (सं० स्त्री०) पाटि-भावे-वज्, पाटो दीप्तिस्तं लातीति ला-इ (अच इः। उण् ४।१३८) १ पाटलापुष्पवृक्ष। २ घण्टापाटलि। ३ कटभीवृक्ष। ४ मुष्कवृक्ष।

पाटलिक (सं० पु०) पाटि बाहु० अलि, ततः संज्ञायां कन्। अन्य धर्मज्ञ।

पाटलिपुत्र (सं० क्ली०) पाटलीपुत्र, स्वनामख्यात नगरभेद। पर्याय—कुसुमपुर, पुष्पपुर पाटलिपुत्रक।

ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है—

"उदायी भविता तस्मात् त्रयोविंशत् समा नृपः।
स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयम्।
गंगाया दक्षिणे कूले चतुरस्रं करिष्यति॥"

उदायी २३ वर्ष राज्य करेंगे। वे ही गङ्गाके दक्षिने किनारे चतुरस्र कुसुमपुर नगरका निर्माण करेंगे। जैनोंके स्थविरावलीचरित्रमें लिखा है—

पुष्पभद्रपुरमें पुष्पकेतु नामक एक राजा रहते थे। उनकी पत्नीका नाम था पुष्पवती। इनके गर्भसे पुष्पचूल नामक एक पुत्र और पुष्पचूला नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। पुष्पवतीने जैनागम भिन्न और सभीको कष्टप्रद समझ कर श्रावकीधर्म ग्रहण किया। पीछे वे कितने श्रावकोंके साथ गङ्गाके किनारे प्रयागतीर्थमें आईं।

यहां गङ्गागर्भमें अर्णिकापुत्रको देह पर्यवसित हुई। उनके मस्तकको मकरादि जलजन्तु नदी किनारे घसीट लाये। किसी एक दिन दैवयोगसे उनके मस्तक पर पाटलाबीज गिर पड़ा। कुछ दिन बाद मस्तकको खोपड़ीको भेद कर एक पाटलावृक्ष निकल आया। यह पाटलावृक्ष क्रमशः बहुत विशाल हो गया। किसी एक नैमित्तिकने पाटलीवृक्षका प्रभाव जान कर कहा था, कि यह स्थान सब प्रकारकी समृद्धियोंसे सम्पन्न होगा। राजा उदायीको जब इसकी खबर लगी, तब उन्होंने पाटलाद्रुमको पूर्व दिक्‌से पश्चिम तथा उत्तर और दक्षिण क्रमसे एक चतुरस्रपुर बसाया। पाटलीवृक्षसे इस नगरका आरम्भ हुआ था, इस कारण इसका नाम पाटलीपुत्र पड़ा। राजा उदायीने इस पुरमें बड़े बड़े जैनमन्दिर, गज और अश्वशालायुक्त प्रकाण्ड प्रकाण्ड राजप्रासाद, नाना प्रकारकी सौधमाला, पण्यशाला, औषधालय और बृहत्‌गोपुर आदि निर्माण किये। यह नगर देखनेसे मालूम पड़ता है, मानो साक्षात् आर्हतधर्मके विस्तारके लिये ही यह प्रतिष्ठित हुआ है।

बौद्धोंका 'महापरिनिब्बानसुत्त' नामक पालिग्रन्थ पढ़नेसे इस प्रकार जाना जाता है,—भगवान् बुद्ध शेष बार नालन्दासे वैशाली जाते समय पहले पाटली ग्राममें आये। यहां अधिवासियोंने एक 'अवसथागार' वा विश्रामागार निर्माण किया था। यह स्थान वैशाली और राजगृहके मध्यवर्त्ती उच्च पथ पर अवस्थित था। जब इस विश्रामागारमें बुद्धदेव ठहरे हुए थे, तब उन्होंने कहा था, कि इस ग्राममें बहुजनाकीर्ण नगर होगा और यह स्थान अग्नि, जल तथा विश्वासघातकताका आघात सहे

सकेगा। इस समय मगधराजके दो मन्त्री सुनोध और वेससकार वृजियोंके आक्रमणसे देशको रक्षा करनेके लिये नगर बना रहे थे। इसी नगरद्वार हो कर बुद्ध-देव गुजरे। जहां ये नदी पार हुए थे, वह स्थान गोतमघाट नामसे प्रसिद्ध हुआ।

महावंशमें भी लिखा है,—महाराज अजात-शत्रुके पुत्र उदय (उदायी)-ने यह पाटलीपुत्र नगर बसाया।

महाराज चन्द्रगुप्त और उनके पोते अशोकके समय इस नगरीकी यथेष्ट श्रीवृद्धि हुई थी। इस समय ग्रीस-का यवनराजदूत पाटलीपुत्रकी राजसभामें रहता था। ग्रीकदूत मेगास्थनीजकी वर्णनासे जाना जाता है, कि इस नगरकी लम्बाई ८० ष्टेडिया (प्राय: ८ कोस) तथा चौड़ाई १५ ष्टेडिया थी और यह चारों ओर खाई-से परिवेष्टित था। समस्त राजधानीका आयतन प्रायः २२० ष्टेडिया वा २५½ मील था। ग्रीक ऐतिहासिक मोरियनने लिखा है, कि हिरण्यवाह (Erannaboas) और गङ्गाके सङ्गमके निकट पाटलीपुत्र अवस्थित रहा। महाभाष्यमें पतञ्जलिने भी लिखा है, 'अनुशोणं पाटलिपुत्रं' अर्थात् शोणके ऊपर पाटलिपुत्र बसा हुआ था। शोण और हिरण्यवाह एक ही नदी है।

दिवदोरसने लिखा है—हैराक्लिस (बलराम)ने यह नगर बसाया। किन्तु इसके मूलमें कोई ऐतिहासि-कता नहीं है।

भविष्य ब्रह्मखण्डमें पाटलीपुत्रकी नामोत्पत्तिके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है —

'अङ्ग भूमिके निकट गङ्गाके दहिने किनारे पाटली-पुत्र नामक एक परम सुन्दर नगर है। कुशनाभके पुत्र महाबल-पराक्रान्त गाधि नामक एक राजा थे। उनके सर्वलक्षणान्वित एक कन्या थी जिसका नाम पाटली था। वह कन्या विश्वामित्रसे बड़ी और विविध विद्यासे विभूषित थी। एक दिन त्रेतायुगके शेष समयमें कौण्डिन्यमुनिके पुत्र विवाह करनेके लिये जाबालमुनिके आश्रममें मन्त्र लेने गये। जाबालमुनिने उन्हें आकर्षणी सिद्धविद्या और मन्त्रादि सिखा दिये। अनन्तर मुनिपुत्र कृतविद्य हो कर वहांसे मगधदेशको चल दिये। वहां पहुंच कर उन्होंने देखा, कि एक रमणीय आश्रममें कामशास्त्राभिज्ञ और विविधकलानिपुण कामिनियोंके कामदमनकारी मूर्त्तिमान् मदनके समान च्यवन नामक एक मुनि वास करते हैं। मुनिपुत्र वसन्तसमागममें दारपरिग्रह करनेके लिये च्यवनमुनिके आश्रममें पहुंचे और मुनिसे एक कन्याके लिये प्रार्थना की। च्यवनने कहा, 'हे मुनिपुत्र! पाटली नामक गाधिराजके एक परम सुन्दरी कन्या है। वह कन्या विद्या और अन्यान्य सौन्दर्यके हेतु पृथिवी पर अतुलनीया है। अतः हे वत्स! तुम मन्त्रबलसे उसे हरण कर अपनी स्त्री बना लो।' च्यवनके आदेशसे मुनिपुत्र छद्मवेशमें गाधिराज-भवन पहुंचे और मन्त्रबल द्वारा अन्तःपुरके किसी घरसे कन्याको चुरा आकाशपथ हो कर हवामें उड़ गये। रात भर इसी प्रकार भ्रमण करते करते जब सवेरा हुआ, तब वे भागीरथीके दक्षिण पार्श्वस्थ कच्छभूमि पर एक निविड़ वनमें पतित हुए। वहां पाटलीने मुनिपुत्रसे कहा, 'हे प्राणेश्वर! हम दोनोंके नाम पर यहां एक उत्तम नगरका निर्माण कीजिये।' पाटलीकी बात सुन कर मुनिपुत्रने मन्त्रबलसे वहांके जंगलोंको काट कर पाटलीपुत्र नामक एक नगर बसाया। तभीसे यह नगर पाटलीपुत्र नामसे प्रसिद्ध हुआ है। इस नगरके सम्बन्धमें और भी अनेक भविष्यद्वाणी हैं जिनमेंसे एकसे पता चलता है, कि उस नगरमें क्षत्रियोंके घर नानक नामक एक महाज्ञानी जन्म लेंगे। जन्म लेनेके साथ ही वे मानवका अज्ञान दूर करेंगे और विषय-वासनाका त्याग कर नाना स्थानोंमें भ्रमण करेंगे।

मेगास्थनीजकी वर्णनसे मालूम होता है, कि मौर्य वंशके समय पाटलीपुत्रमें (Palibothra) काष्ठ-निर्मित गृहादि शोभित थे। मौर्यराजने अपने रहनेके लिये प्रस्तरके प्रासाद और कुछ प्रस्तरगृह बनवाये थे।

चीनपरिव्राजक फाहियान (४००-४१५ ई०के मध्य) पाटलीपुत्र देख कर ऐसा लिख गये हैं—

'इस नगरमें महाराज अशोक राज्य करते थे। नगरके मध्यस्थलमें राजप्रासाद अवस्थित था। सम्राट् अशोकके आदेशसे यक्षगण द्वारा इसका कोई कोई अंश बनाया गया था। बड़े बड़े पत्थरोंसे प्राकार, तोरण

और द्वार इस प्रकार बनाये गये हैं, कि देखनेसे हो मालूम पड़ता है, कि वे मानवकृत नहीं है।'

६३७ ई०में चोनपरिव्राजक यूएनचुवङ्ग पाटलीपुत्र पधारे थे। उन्होंने लिखा है, 'गङ्गाके दक्षिण ७० लोग विस्तृत प्राचीन नगर अवस्थित है। यद्यपि यह प्राचीन नगर बहुत पहले हो मानवशून्य और विध्वस्त हो गया है, तो भी इसके प्राचीरको भित्ति विद्यमान है। पूर्व समयमें यहांके राजप्रासादमें अनेकों पुष्प विकीर्ण रहते थे, इस कारण यह नगर पुष्पपुर वा कुसुमपुर नामसे पुकारा जाता था।'

पाटलीपुत्रकी नामोत्पत्तिके सम्बन्धमें उक्त चोनपरिव्राजकने ऐसा लिखा है, 'एक अशेष शास्त्रवित् और बहुगुणशाली ब्राह्मण थे। यथासमय उनका विवाह नहीं होनेके कारण वे मन हो मन बहुत दुःख करते थे। एक दिन उनके साथियोंने हंसी-ठठोलमें एक पाटली वृक्षके तले उनका कृत्रिम विवाह कर दिया। ब्राह्मणको सचमुच ऐसा विश्वास हो गया, मानो कन्याके माता-पिताने हो उन्हें एक सुन्दरी कन्या प्रदान की है। क्रमशः सूर्य अस्त हो चले। उनके साथी लोग सभी घर लौटे, पर उक्त ब्राह्मण उसी पाटलीवृक्षके तले हो बैठे रहे; रातको देवप्रभावसे वहां प्रकाश हो उठा। ब्राह्मणने देखा, कि सचमुच एक वृद्ध आ कर उन्हें कन्या दान कर रहा है। यहां कुछ दिन रहनेके बाद ब्राह्मण अपने घर गये और आत्मीयवर्गको विवाहका सम्वाद कह सुनाया। पीछे वे उन्हें ले कर उसी पाटलीवनमें आये। पूर्व स्थानमें पहुंच कर अट्टालिका और ब्राह्मणकी वधूको देख कर वे सबके सब विस्मित हो पड़े। वधूके पिताने आ कर उनका यथेष्ट आदर सत्कार किया। वे सभी पुलकित हो अपने अपने घर लौटे। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। यथासमय ब्राह्मणके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उन्होंने एक दिन पत्नीसे कहा, 'मैं तुम्हारे विच्छेदको सह्य नहीं कर सकता; किन्तु ऐसे निर्जन स्थानमें कब तक रहूंगा?' पतिकी बात सुन कर वह पितासे जा बोली। ससुरने जमाईके रहनेके लिये एक हो दिनके मध्य अनेक लोगोंकी सहायतासे एक सुन्दर अट्टालिका बनवा दी। पाटलीतरुके नीचे ब्राह्मणका विवाह हुआ था और वहीं उनका घर भी बनाया गया, इस कारण यह स्थान कुसुमपुरके बदलेमें 'पाटलीपुत्रपुर' नामसे प्रसिद्ध हुआ।

यूएनचुवङ्गने यहां प्राचीन प्रासादके ध्वंसावशेषके मध्य उच्च अशोकस्तम्भ, बहुशत सङ्घाराम, बहुस्तूप और देवमन्दिरका भग्नावशेष देखा था। उनके समयमें उक्त प्राचीन पाटलीपुत्रके उत्तर गङ्गाके किनारे प्रायः सहस्र गृहविशिष्ट एक क्षुद्रनगर अवस्थित था।

उपरोक्त वर्णनसे जाना जाता है, कि ८वीं शताब्दीके प्रथम भाग तक पाटलीपुत्र एक महानगरमें गिना जाता था। ७वीं शताब्दीके पहले हो इसका ध्वंस हो चुका था और इस प्रकार बुद्धदेवका भविष्य वाक्य भी सफल हुआ। चीन लेखक मतोनलिनने लिखा है, कि ७५६ ई०में 'होल' (हिरण वा हिरण्यवाह) नदीका किनारा तोड़ कर यह अन्तर्हित हो गया। इससे कोई कोई अनुमान करते हैं, कि शोण वा हिरण्यवाह नदीकी गतिके परिवर्त्तनके साथ प्राचीन पाटलीपुत्रका विलोप हो गया। (१)

सम्भवतः इस समय प्राचीन पाटलीपुत्रसन्निहित चीनपरिव्राजकवर्णित वही क्षुद्र नगर पाटलीपुत्र कहलाता होगा। क्योंकि उसके बाद पालराज धर्मपालके शासनमें भी उनकी राजधानी पाटलीपुत्रका उल्लेख पाया जाता है; सम्भवतः यह नवपाटलीपुत्र होगा। यह पाटलीपुत्र भी कुछ समय तक उन्नत दशामें था। यहांके ब्राह्मण पण्डितगण विदेशीय हिन्दूराजाओंसे सम्मानलाभ करते थे। गुर्जरके राष्ट्रकूटराज नित्यवर्षने पाटलीपुत्र-विनिर्गत वेन्नपभट्टके पुत्र सिद्धभट्टको ८३६ शकमें लाट-देशके अन्तर्गत तेन्नग्राम दान किया था (२)। किन्तु इस

(१) शोण नदीकी गति अनेक परिवर्तित हुई है। जो शोण एक समय पाटलीपुत्रके ठीक पार्श्वमें बहती थी, अभी वह पटनाके पश्चिम १२ मील दूर चली गई है।

शोणनदीके गति-परिवर्त्तनका विस्तृत विवरण Cunningham's Arch. Sur. Reports, Vols. VIII and XI द्रष्टव्य।

(२) Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society, Vol. XVIII

समय पाटलीपुत्र राजधानीमें गिना जाता था वा नहीं सन्देह है। इस समय गौड़ और विहारमें पालराजधानी स्थापित हो जानेसे पाटलीपुत्रका ह्रास हो गया है। अभी सब कोई वर्त्तमान पटना नगरको ही पाटलीपुत्र कहा करते हैं। किन्तु वर्त्तमान पटना शहरमें प्राचीन पाटलीपुत्रका कुछ भी चिह्न नहीं है। डाक्टर वाडेल (Dr. Waddell) साहबने सम्प्रति पटना शहरके मध्य जिस जिस स्थानको खोद कर जो सब पुराकीर्त्तियां निकाली हैं, उनसे उन्होंने पटनाके उस अंशको प्राचीन पाटलीपुत्र बतलाया है। यह स्थान और वे सब ध्वंसावशेष मौर्य राजधानी पाटलीपुत्र वा इसकी प्राचीन स्मृति है, ऐसा बोध नहीं होता (१)। वे सब प्राचीन पाटलीपुत्रके उत्तरवर्त्ती नवपाटलीपुत्रके ध्वंसावशेष हो सकते हैं। पटनेकी पाटनीदेवीके मन्दिरमें कितनी ही तान्त्रिक देवदेवियोंकी मूर्त्ति देखी जाती हैं। उनकी गठनादि देख कर ऐसा बोध होता है, कि वे सब पवित्र मूर्त्तियां नवपाटलीपुत्रके समृद्धिकालमें बनाई गई थीं।

पाटलिमन् (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन पाटलः पाटल-इमन्। अतिशय पाटलवर्ण।

पाटली (सं० स्त्री०) पाटलि-स्त्रियां ङीष्। १ कटभीवृक्ष। २ मुष्ककवृक्ष। ३ देशावली और भविष्य ब्रह्मखण्ड-वर्णित वङ्गदेशके अन्तर्गत मनादके निकटवर्त्ती एक प्राचीन गण्डग्राम। ४ पटनेकी अधिष्ठात्रीदेवी। ५ गाधिकी पुत्री जिसके अनुरोधसे पाटलीपुत्र बसा।

पाटली (हिं० स्त्री०) लकड़ीकी एक बल्ली। इसमें बहुतसे छेद होते हैं और प्रत्येक छेदमेंसे मस्तूलकी एक एक रस्सी निकाली जाती है। इससे रातमें किसी विशेष रस्सीको अलग करनेमें कठिनाई नहीं पड़ती।

पाटलीतैल (सं० क्ली०) तैलौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली— पाढरकी छालके ८ सेरका ६४ सेर पानीमें काढ़ा बनावे। चौथाई रह जाने पर ८ सेर सरसोंके तेलमें डाल कर फिर धीमी आंचमें उसे पकावे। तैलमात्र रह जाने पर छान कर उसे काममें लावे। इसके लगानेसे जले हुए स्थानकी जलन, पीड़ा और चेप बहना दूर होता है। इससे चेचककी भी शान्ति होती है।

पाटलोपल (सं० पु०) पाटलः उपलः कर्मधा०। श्वेत और रक्तवर्ण मणिभेद, एक मणि जिसका रंग सफेदी लिये लाल होता है, लाल।

पाटव (सं० क्ली०) पटोर्भावः, कर्म वा (इगन्ताच्च लघुपूर्व्वात्। पा ५।१।१३१) पटु अण्। १ पटुता, निपुणता, चतुराई। २ दार्ढ्य, दृढ़ता, मजबूती। ३ आरोग्य।

पाटविक (सं० त्रि०) पाटवं पटुत्वमस्त्यस्य पाटव-ठन्। १ पटु, कुशल। २ धूर्त्त।

पाटवी (हिं० वि०) १ पटरानीसे उत्पन्न। २ कौषेय, रेशमी।

पाटसन (हिं० पु०) पटसन, पटुआ।

पाटहिका (सं० स्त्री०) पाटहं पटहावयवः तद्दाकृतिरस्त्यस्याः पटह-ठन्-टाप्। १ गुञ्जा, घुंघची। (त्रि०) पटहे तद्वाद्ये प्रसृतः ठक्। २ पटहवाद्यवादक, पटह बजानेवाला।

पाटा (सं० स्त्री०) पाठा पृषोदरादित्वात् साधुः। पाठा, पाढ़।

पाटा (हिं० पु०) १ पीढ़ा। २ दो दीवारोंके बीच बांस, बल्ली, पटिया आदि दे कर बनाया हुआ आधारस्थान जिस पर चीजें रखी जाती हैं।

पाटागोनिया—दक्षिण अमेरिकाके अन्तर्गत एक देश। यह अक्षा० ६४° ५०' से ५२° ५५' दक्षिण तथा देशा० ६३° से ७६° पश्चिमके मध्य अवस्थित है। इसके पूर्व-भागमें एटलाण्टिक महासागर, उत्तरमें ब्यूनस आइरस, उत्तर-पश्चिममें चीली, पश्चिममें प्रशान्त महासागर और दक्षिणमें मेगेलनप्रणाली है। पाटागोनिया दो भागोंमें विभक्त है,—एक भाग समतल है और दूसरा पर्वतसे परिपूर्ण। पार्वत्य प्रदेशका अधिकांश जङ्गलसे आवृत है। इन सब जङ्गलोंमें बड़े बड़े पेड़ पाये जाते हैं। जंगली जन्तुओंमें हरिण, जलहस्ती आदि देखे जाते हैं। समतल प्रदेश छोटे छोटे पहाड़ों और बालूसे परिपूर्ण है।

समतल और पार्वत्यप्रदेशके अधिवासियोंके मध्य

(१) Dr. Waddell's Pataliputra नामक ग्रन्थमें विस्तृत विवरण द्रष्टव्य।

पार्थक्य देखा जाता है। समतल प्रदेशके अधिवासी हमेशा घोड़ेकी पीठ पर भ्रमण करते हैं, इसीसे उन्हें पाटागोनिया कहते हैं।

पाटागोनियाके अधिवासी बहुत लम्बे होते हैं। इनकी ऊंचाई ६ः फुटसे कम नहीं होती। ये लोग शिकारमें बड़े सिद्धहस्त होते हैं। इन लोगोंमें बहु-विवाह प्रचलित है और चौर्यवृत्ति बहुत आदरणीय समझी जाती है। यहां तक कि पात्र चोरी करनेमें जब तक पक्का नहीं हो जाता, तब तक उसका विवाह होता ही नहीं। ये लोग प्रायः चमड़ेके तम्बूमें वास करते हैं।

पाटिका (सं॰ स्त्री॰) १ एक दिनकी मजदूरी। २ एक पौधा। ३ छाल या छिलका।

पाटित (सं॰ त्रि॰) पाट्यते स्म इति पट णिच्-क्त। क्षत-पाटन, पाटा हुआ। पर्याय—दारित, भिन्न।

पाटियाल—पूर्व बङ्गवासी एक जाति। ये लोग अपनेको कायस्थ बतलाते हैं, लेकिन उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। ये लोग अकसर चटाई बुन कर अपना गुजारा चलाते हैं।

पाटी (सं॰ स्त्री॰) पाटयतीति पाटि-इन (सर्वधातुभ्य इन्। उण् ४।११७) स्त्रियां वा ङीष्। १ बलाखुप, खरैंटी। २ अनुक्रम, परिपाटी, रीति। ३ गणनादिका क्रम, जोड़, बाकी, गुणा, भाग आदिका क्रम। ४ श्रेणी, पंक्ति, आवलि।

पाटी (हिं॰ पु॰) १ लकड़ीकी वह प्रायः लम्बोतरी पट्टी जिस पर विद्यारम्भ करनेवाले छात्र गुरुसे पाठ लेते वा लिखनेका अभ्यास करते हैं, तख्ती। २ पाठ, सबक। ३ लकड़ीका वह गोला, चिपटा वा चौकोर पतला बल्ला जो खाटकी लम्बाईके बलमें दोनों ओर रहता है। ४ चटाई। ५ माँगके दोनों ओर तेल, गोंद वा जलकी सहायतासे कंघी द्वारा बैठाए हुए बाल जो देखनेमें बराबर मालूम हों, पट्टी, पटिया। ६ खपरैल-का नरियाका प्रत्येक आधा भाग। ७ जंती। ८ शिला, चट्टान। ९ मछलियां पकड़नेके लिए बहते पानीको मट्टीके बांध वा वृक्षोंकी टहनियां आदिसे रोक कर एक पतले रास्तेसे निकालने और वहां पहरा बिठानेकी क्रिया।

पाटीकूट (सं॰ पु॰) पाटीं कुटतीति कुट-क। चित्रकवृक्ष।

पाटीगणित (सं॰ क्ली॰) पाट्या परिपाट्या गणितं। गणितशास्त्र, अङ्कविद्या। लीलावतीकी टीकामें पाटी-गणितका ऐसा अर्थ देखनेमें आता है, "पाटीनाम संकलित-व्यवकलितगुणनभजनादीनां क्रमः, तया युक्तं गणितं पाटी गणितं।" (लीलावतीटीका)

पाटी शब्दसे सङ्कलन, व्यवकलन, भाग, गुण आदि-का क्रम समझा जाता है और जो इस क्रम द्वारा युक्त अर्थात् क्रमानुसार गणित है, उसीको पाटीगणित कहते हैं।

पाटीर (सं॰ पु॰) चन्दनविशेष, एक प्रकारका चन्दन।

पाटूपट (सं॰ त्रि॰) पाटी-अच् निपातनात् णिलुक्, छिल-मध्यामस्य ऊकृच। पाटक।

पाटूर (सं॰ पु॰) पश्वादिकी पञ्जरास्थिका निकटस्थ प्रत्यङ्गविशेष, पशु आदिके शरीरका वह अंग जो उसके पंजरेकी हड्डीके निकट रहता है।

पाटूनी (हिं॰ पु॰) वह मल्लाह जो किसी घाटका ठेके-दार हो।

पाटेश्वर—सतारासे ७ मील दक्षिण पूर्वमें अवस्थित एक पहाड़। इसके उत्तर पश्चिमभागमें देगांव, निगड़ी और भारतगांवके सङ्गमस्थल पर बहुतसे गुहामन्दिर हैं। यहां जानेमें देगाँवसे जो रास्ता चला गया है वही सबसे सुविधा-जनक है। इसी रास्तेपर गणपतिकी एक प्रकाण्ड प्रति मूर्त्ति है। जहां पहाड़ ढालवां हो गया है, वहां एक छोटे गह्वरमें वृषकी प्रतिमूर्त्ति और एक पुष्करिणी देखी जाती है। इसके पूर्वमें गोसावियोंका एक मठ और दक्षिण-पूर्वमें महादेवका मन्दिर है। इस मन्दिरके पूरबवाले घरमें रमकोवा और पश्चिमवाले घरमें गरुड़की प्रतिमूर्त्ति स्थापित है। मन्दिरके मध्यभागमें पाटेश्वरके पश्चिम पार्वतीकी प्रतिमूर्त्ति विद्यमान है। एतद्भिन्न गणपति, मारुति, जटाशङ्कर, विष्णु आदिके विग्रह हैं। सभी मन्दिर और प्राङ्गण प्रस्तरनिर्मित हैं। मन्दिरनिर्माताका नाम परशुराम नारायण है। इस मन्दिरसे प्रायः १०० गज दूर पर बहुत-सी गुहाएं देखी जाती हैं जिनमें असंख्य लिङ्ग विद्यमान हैं। यहांसे थोड़ी ही दूर पर अग्निका मन्दिर है जिसमें अग्निदेवकी प्रतिमूर्त्ति स्थापित है।

अग्निदेवके मन्दिरके पास ही एक ओर मन्दिरमें षष्ठी-देवीकी दो प्रतिमूर्त्तियां हैं। उक्त गुहाएं ३'५ फुट गहरी हैं, परन्तु अत्यन्त अन्धकारपूर्ण हैं। इसके पूर्वमें भीमकुण्ड नामक एक छोटी पुष्करिणी है।

पाटोश्रा (पटवा)—पश्चिमाञ्चलवासी जातिविशेष। ये लोग पट्ट या रेशमके धागेसे गहना गूंथते हैं, इसीसे इनका यह नाम पड़ा है। प्रवाद है, कि स्वरपार्वतीके विवाह समय एक स्वर्णहार कुछ हीरेका खण्ड लाया, किन्तु उसे गूंथनेके लिए कोई आदमी नहीं मिला। तब महादेवने पाटोश्रा जातिकी सृष्टि की। पञ्जाबमें जो सब पाटोश्रा हैं वे अपनेको क्षत्रियवंशोद्भव और मिर्जापुरके सिंह उपाधिधारी पाटोश्रा अपनेको एक श्रेणीके कतोच-राजपूत बतलाते हैं। किन्तु गहना गूंथनेके कारण उनका पाटोश्रा नाम पड़ा है, ऐसा मालूम होता है।

इन लोगोंके मध्य भिन्न भिन्न श्रेणियां हैं और हर एक श्रेणीमें आदान-प्रदान चलता है। ये लोग साधारणतः वैष्णव, कबीरपन्थी और सत्नामी दलभुक्त हैं तथा महावीर महादेव, नारायण आदिकी पूजा करते हैं। इनमेंसे कोई नानकपन्थी हैं और माघमासके शेषमें ग्रन्थपूजा करते हैं। पूजास्थलमें विवाहिता भिन्न अविवाहित स्त्रियां नहीं जा सकतीं।

ये लोग अकसर गहना गूंथ कर जीवनयात्रा निर्वाह करते हैं। कोई कोई रेशमी वस्त्र और रेशमी फीता आदि भी प्रस्तुत करते हैं।

पाट्य (सं० क्ली०) पट्टस्य इदम् (तस्येदम्. पा ४।३।१२०) १ पट्टशाक, एक प्रकारका साग। गुण—मधुर, दुर्जर और गुरुपाक। २ पटसन।

पाठ (सं० पु०) पठनमिति पठ भावे घञ्। १ शिष्यका अध्यापन, पढ़ना। पर्याय—महायज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, पाठना पाठन, अध्ययन, अध्यापन, अध्यापना, अभ्यसन, निपाठ, निपठ। पुराणादि पाठ यथाशास्त्र करना होता है। पहले 'ओं नराय नमः, ओं नरोत्तमाय नमः, ओं देव्यै नमः, ओं सरस्वत्यै नमः और ओं व्यासाय नमः' इस प्रकार प्रणाम करके पाठ करना होता है।

मार्कण्डेयपुराणमें पाठके १८ दोषोंकी कथा लिखी है। यथा—

"शंकितं भीतमुद्घुष्टमव्यक्तमनुनासिकम्।
विस्वरं विरसञ्चैव विश्लिष्टं विषमाहतं॥
काकस्वरं शिरसिता तथा स्थानविवर्जितः।
व्याकुलं तालहीनञ्च पाठदोषाश्चतुर्दश।
संगीतं शिरसः कम्पमनल्पकण्ठमनर्थकम्॥"

शङ्कित, भीत, उद्घुष्ट, अव्यक्त, अनुनासिक, विस्वर, विरस, विश्लिष्ट, विषमाहत, काकस्वर, शिरसित, स्थानापवर्जित, व्याकुल, तालहीन ये चौदह तथा संगीत, शिरःकम्प, अल्पकण्ठ और अनर्थक ये अठारह प्रकारके पाठदोष हैं। जो पाठक पाठ करें, उन्हें ये सब दोष वर्जन करना चाहिये। पाठ करते समय पाठकको बीच बीचमें सप्तस्वरसमायुक्त हो जहां जैसा रस होगा, वहां वैसा ही रसादि दिखला कर पाठ करना चाहिये।

"सप्तस्वरसमायुक्तं काले काले विशाम्पते।
प्रदर्शयन् रसान् सर्वान् वाचयेद्वाचको नृप॥"

(तिथितत्त्व)

पाठ करते समय पुस्तकको किसी आधार पर रख एकाग्रचित्त हो पाठ करे। पाठकालीन पुस्तक पर हाथ रख कर पढ़नेसे वह अल्प फलयुक्त होता है। चण्डीपाठ स्वयं लिखित वा जो पण्डित द्वारा लिखा न हो—किसी अब्राह्मण द्वारा लिखा गया हो, उसका पाठ करनेसे फल नहीं होता। पढ़ने ऋषिच्छन्द आदि न्यास करके स्तोत्रपाठ करना होता है। सङ्कल्पित स्तोत्रपाठमें संख्याकी गणना करके पाठ करे अर्थात् अमुक स्तोत्रको इतनी संख्या तक पाठ करूंगा, इस प्रकार सङ्कल्प करनेके बाद पढ़ना होता है। पढ़ते पढ़ते जब तक अध्याय समाप्त न हो जाय, तब तक विश्राम नहीं करना चाहिये। यदि अध्यायके बीच दैवात् विश्राम किया जाय, तो उस अध्यायको पुनः आदिसे पढ़ना होता है। देवीमाहात्म्यपाठमें ऋषिच्छन्दादिका पाठ करना होता है।

जो रसभावादिसमन्वित हो कर पाठके समय जिससे अर्थ बोध हो, इस प्रकार स्पष्ट पढ़ सकते हों उन्हें व्यास कहते हैं।

गुरुके निकट वेदपाठ करनेमें निम्नलिखित नियमानुसार पाठ करना होता है। विशुद्धचित्तसे पहले

आचमन करके उत्तरकी ओर बैठ पाठ करे। पाठनिषेधकालमें पाठ न करे। मनुवचनमें लिखा है, कि चन्द्र और सूर्यग्रहणमें पाठ करना मना है। इस पर याज्ञवल्क्यने लिखा है, कि जहां ग्रस्तास्त हो, वहीं तीन दिन पाठ निषेध है, नहीं तो एक दिन। सन्ध्यागर्जन, भूकम्प, उल्कापात, पञ्चदशी, चतुर्दशी, अष्टमी, राहुसूतक और श्राद्धमें भोजन वा प्रतिग्रह करके नहीं पढ़ना चाहिये। किसी किसीके मतानुसार शुक्लप्रतिपद्‌में भी पाठ वर्जनीय है। किन्तु निम्नलिखित व्यासवचनमें प्रतिपद्‌मात्रको निषिद्ध जानना चाहिए।

"सा च यौधिष्ठिरी सेना गांगेयशरताडिता।
प्रतिपत्पाठशीलानां विद्येव तनुतां गता॥" (व्यास)

प्रतिपत् और अष्टमी आदि यदि लेशमात्र भी रहे, तो उस दिन पाठ निषेध जानना चाहिए। वेद सभी भूतोंके चक्षुःस्वरूप हैं, अतएव ब्राह्मणको ये सब निषिद्ध दिन छोड़ कर वेदपाठ करना चाहिये। अयन, विषुव, हरिशयन और बोधनमें तथा पर्वदिनमें पाठ निषेध है। सन्ध्यागर्जन होने पर जो वेद पाठ करते हैं, उनकी आयु, विद्या, यश और भक्ति नष्ट होती है।

पाठक (सं॰ पु॰) पाठयति अध्यापयतीति पठ-णिच्-ण्वुल्। १ उपाध्याय, पढ़ानेवाला। २ धर्मभाणक, धर्मोपदेशक। ३ वाचक, पढ़नेवाला। पाठ देखो। ४ गौड़, सारस्वत, सरयूपारीण, गुजराती आदि ब्राह्मणोंका एक वर्ग।

पाठच्छेद (सं॰ पु॰) पाठस्य छेदः ६-तत्। १ पाठका विच्छेद। २ यति।

पाठदोष (सं॰ पु॰) पढ़नेका वह ढंग वा पढ़नेके समयकी वह चेष्टा जो निन्द्य और वर्जित है।

पाठन (सं॰ क्ली॰) पठ-णिच्-भावे ल्युट्। १ अध्यापन। २ पाठक।

पाठना (सं॰ स्त्री॰) पठ-णिच्-युच्, स्त्रियां टाप्। अध्यापना।

पाठपद्धति (सं॰ स्त्री॰) पढ़नेकी रीति वा ढंग।

पाठप्रणाली (सं॰ स्त्री॰) पढ़नेकी रीति वा ढंग।

पाठभू (सं॰ स्त्री॰) पाठस्य भूर्भूमिः स्थानं। १ ब्रह्मारण्य। २ वेदादि पाठस्थान।

पाठभेद (सं॰ पु॰) वह भेद या अन्तर जो एक ही ग्रन्थकी दो प्रतियोंके पाठमें कहीं कहीं हो, पाठान्तर।

पाठमञ्जरी (सं॰ स्त्री॰) पाठस्य अभ्यासस्य मञ्जरीव। पक्षिणी विशेष, एक प्रकारकी मैना।

पाठशाला (सं॰ स्त्री॰) पाठस्य अध्ययनस्य गृहं ६-तत्। अध्ययनगृह, विद्यालय, चटसाला।

पाठशालिनी (सं॰ स्त्री॰) पाठशाल-णिनि ङीप्। सारिका पक्षी, एक प्रकारकी मैना।

पाठा (सं॰ स्त्री॰) पठ्यते बहुगुणवत्तया कथ्यते इति पठ-कर्मणि घञ्, अजादित्वात् टाप्। लताविशेष, पाट। संस्कृत पर्याय—अम्बष्ठा, अम्बष्ठिका, प्राचीना, पापचेलिका, यूथिका, स्थापनी, श्रेयसी, वृद्धकर्णिका, एकाष्ठीला, कुचेली, दीपनी, वनतिक्तिका, तिक्तपुष्पा, वृहत्तिक्ता, शिशिरा, वृकी, मालती, वरा, देवी, वृत्तपर्णी। यह एक बड़ी लता है और भारतवर्षके सिन्धु, पञ्जाब, सिंहलद्वीप और सिङ्गापुरके मध्यवर्ती ग्रीष्मप्रधान देशोंमें तथा हिमालयकी उपत्यका पर पाई जाती है। इसके पत्ते कुछ नोकदार गोल, फूल छोटे सफेद और फल मकोयके से होते हैं। फलोंका रंग लाल होता है। यह दो प्रकारकी होती है, छोटी और बड़ी। गुण दोनोंके समान हैं। बहुधा लोग घाव पर इसकी टहनीको बांधे रहते हैं। वे समझते हैं कि इसके रहनेसे घाव बिगड़ या सड़ न सकेगा। इसकी सूखी जड़ मूत्राशयकी जलनमें लाभदायक होती है, पक्वाशयकी पीड़ामें भी इसका व्यवहार किया जाता है। जहां सांपने काटा या बिच्छूने डंक मारा हो वहां भी ऊपरसे इसके बांधनेसे लाभ होता है।

वैद्यकके मतसे इसका गुण—तिक्त, गुरु, उष्ण, वातपित्त, ज्वर, पित्तदाह, अतीसार और शूलनाशक तथा भग्नसन्धानकारक है। भावप्रकाशके मतसे इसको शूल, ज्वर, छर्दि, कुष्ठ, अतीसार, हृद्रोग, दाह, कण्डु, विष, श्वास, क्रिमि, गुल्म और गलव्रणनाशक माना है।

पाठादशक (सं॰ क्ली॰) स्तन्यशोधकगणभेद। स्तन्यके दुष्ट होने पर इसका सेवन हितकर है। गण यथा—पाठा, शुण्ठी, देवदारु, मुस्ता, मूर्वा, गुडूची, इन्द्रयव, किराततिक्त, रोहिणी और सारिवा इन दश द्रव्योंको पाठादशक कहते हैं। (चरकसू॰ ४ अ॰)

पाठादिकषाय (सं० पु०) १ कषायौषधभेद। पाठा, उशीर और वासक इन तीन द्रव्योंको एकत्र कर कषाय प्रस्तुत करनेसे यह कषाय बनता है। इसका गुण—ज्वर, अरोचक, तृष्णा और मुखवैरस्यनाशक। २ अन्य कषायभेद। प्रस्तुत प्रणाली—पाठा, इन्द्रयव, भूनिम्ब, मुस्ता, पर्पटक, अमृत और जयन्ती इन सब द्रव्योंके कषायको पाठादिकषाय कहते हैं। इसके सेवनसे आम अतीसार विनष्ट होता है।

पाठादितैल (सं० क्लो०) तैलौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—कटुतैल १ सेर, कल्कार्थ आकनादि, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, पीपल, जातीपत्र और दन्तीमूल कुल मिला कर १६ तोला, जल ४ सेर; इस तेलका यथानियम पाक कर सेवन करनेसे पक्वीनस रोग प्रशमित होता है।

पाठाद्यचूर्ण (सं० क्ली०) चूर्णौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—पाठा, बेलसोंठ, चित्रकमूल, त्रिकटु, जम्बुत्वक्, दाड़िमत्वक्, धातकीपुष्प, कटुकी, अतिविषा, मुस्ता, दारुहरिद्रा, भूनिम्ब और इन्द्रयव इन सबका बराबर बराबर भाग ले कर चूर्ण बनावे। सब चूर्णका परिमाण जितना हो उसमें उतना ही कुटजत्वक्‌चूर्ण उत्तमरूपसे मिलावे। इसीको पाठाद्यचूर्ण कहते हैं। इसका अनुपान चावलका जल और मधु बतलाया गया है। इसके सेवनसे ग्रहणी रोग जाता रहता है। (चक्रदत्त)

पाठाद्वय (सं० क्ली०) पाठा और पाटल, पाढ़ और पाढ़र

पाठान्तर (सं० क्लो०) अन्यः पाठः पाठान्तरं। १ अपर पाठ, एक ही पुस्तकको दो प्रतियोंके लेखमें किसी विशेष स्थल पर भिन्न शब्द वाक्य अथवा क्रम। २ पाठान्तर होनेका भाव, पाठका भेद।

पाठार्थिन् (सं० त्रि०) पाठ-अर्थ-णिनि। पाठाभिलाषी।

पाठालय (सं० पु०) पाठशाला।

पाठि (सं० पु०) पाठ-इन्। पृष्ठ, पेज, पन्ना।

पाठिक (सं० त्रि०) प्रकृत पाठविशिष्ट।

पाठिका (सं० स्त्री०) पाठ-स्वार्थे-कन् टापि अतइत्वं। १ पाठ। २ पढ़ानेवाली।

पाठित (सं० त्रि०) पठ-णिच्-क्त। अध्यापित, पढ़ाया हुआ, सिखाया हुआ।

पाठिन् (सं० पु०) पाठेव आकृतिर्विद्यते यस्य पाठा-इनि। १ चित्रकवृक्ष, चीता। (त्रि०) २ पाठ करनेवाला, पाठक।

पाठीकुट (सं० पु०) पाठीं कुटतीति कुट-क। चित्रकवृक्ष, चीतेका पेड़।

पाठीन (सं० पु०) पाठिं पृष्ठं नमयतीति, पाठि-नम-णिच-ड (ततो दीर्घः। पा ६।३।१३७) १ मत्स्यविशेष, पहिना वा पढिना नामकी मछली। पर्याय-सहस्रदंष्ट्र, वोदाल, वोदालक। गुण-श्लेष्मल, स्निग्ध, मधुर, कषाय, बल्य वृष्य, कटु, रुचिकर, वात और पित्तनाशक। २ पाठक। ३ गुग्गुल।

पाठेय (सं० त्रि०) पाठायां भवः नद्यादित्वात् ढक्। पाठाभव, जो पाठासे हो।

पाठ्य (सं० त्रि०) पाठ्यते इति पठ-ण्यत् (ऋहलोर्ण्यत्। पा ३।१।१२४) पठनीय, जो पढ़ने योग्य हो।

पाड़ (हिं० पु०) १ धोती साड़ी आदिका किनारा। २ पायठ, मचान। ३ पुश्ता, बांध। ४ लकड़ीकी टट्टरी, कटकर, चह। ५ वह तख्ता जिस पर खड़ा करके फांसी दी जाती है। ६ दो दीवारोंके बीच पटिया दे कर या पाट कर बनाया हुआ आधारस्थान।

पाड़र (हिं० स्त्री०) पाटल नामक वृक्ष।

पाडल (हिं० पु०) पाटल देखो।

पाडलीपुर (हिं० पु०) पाटलिपुत्र देखो।

पाडसाली—दक्षिण भारतमें रहनेवाली जुलाहोंकी एक जाति। बाग्लकोट आदि स्थानोंमें इस जातिके जुलाहे पाये जाते हैं। लिङ्गायतोंसे इनमें बहुत कम अन्तर है। ये भी गलेमें लिङ्ग पहनते और शिरमें भस्म लगाते हैं। लिङ्ग पहननेके कारण ये लोग मछली मांस और ब आदिका सेवन नहीं करते। ये प्रतिदिन स्नान और लिङ्गपूजा करते हैं। वस्त्र बुनना ही इनका पैटक व्यवसाय है। इनमें बाल्य-विवाह और विधवा-विवाह प्रचलित है। ये एक गोत्रमें विवाह करते हैं।

पाड़ा (हिं० पु०) १ महल्ला, टोला। २ भारतीय महासागरमें मिलनेवाली एक मछली। यह प्रायः तीन फुट लम्बी होती है।

पाड़िनी (सं० स्त्री०) मृद्भाण्ड, मट्टीका बरतन, हाँड़ी।

पाढ़ (हिं० पु०) १ पाटा। २ लकड़ीकी वह छोटी सोढ़ी जिसके डंडे कुछ ढालू होते हैं। ३ सुनारोंका एक औजार जिससे नक्काशी करते हैं। ४ कुएँके मुंह पर रखी हुई लकड़ीकी चह, पाड़। ५ वह पीढ़ा या पाटा जिस पर बैठ कर सुनार लुहार आदि काम करते हैं। ६ वह मचान जिस पर फसलकी रखवालीके लिये खेतवाला बैठता है।

पाढ़र (हिं० पु०) पाड़रका पेड़।

पाढ़ल (हिं० पु०) पाटल देखो।

पाढ़ा (हिं० पु०) एक प्रकारका हिरन। इसकी खाल पर सफेद चित्तियां होती हैं।

पाढ़ो (हिं० स्त्री०) १ सूतकी एक लच्छी। २ वह नाव जो यात्रियोंको पार पहुंचानेके लिये नियत हो।

पाण (सं० पु०) १ व्यापार, तिजारत, खरीद बिक्री। २ दाँव, बाजी। ३ कर, हाथ। ४ प्रशंसा।

पाणि (सं० स्त्री०) पणायन्ते व्यवहरन्तास्यामिति पण-इण् (अशिपाणाय्योरुडायलुकौ च। उण् ४।१३२) आय-प्रत्ययस्य लुक् च। १ पण्यवीथी, हट्ट, हाट। (पु०) पणायन्ते व्यवहरन्त्यनेनेति पण-ड, तत इण्। २ हस्त, हाथ। पर्याय—पञ्चशाख, शय, सम, हस्त, कर, भुज, कुलि, भुजदल। गर्भस्थित बालकके दो महीनेमें हाथ होता है। ३ कुलिकवृक्ष, घुंघचीका पेड़। ४ कर्षपरिमाण।

पाणिक (सं० त्रि०) पणेन क्रीतं। १ जो खरीदा जा सके, सौदा। २ कुमारानुचर-मातृभेद। ३ कर, हाथ।

पाणिकच्छपिका (सं० स्त्री०) कच्छपः कूर्मस्तदाकारो-ऽस्त्यस्याः कच्छप-ठन्, टापि अत इत्वं पाणिभ्यां कृता कच्छपिका। कूर्ममुद्रा।

पाणिकर्ण (सं० पु०) शिव, महादेव।

पाणिकर्मन् (सं० पु०) पाणिभ्यां वादनरूपं कर्म यस्य। १ महादेव। (त्रि०) २ पाणि द्वारा वादक, हाथसे बाजा बजानेवाला।

पाणिका (सं० पु०) १ एक प्रकारका गीत वा छन्द। २ चम्मचके आकारका एक पात्र।

पाणिकूर्चा (सं० स्त्री०) १ कुमारानुचर मातृभेद।

पाणिखात (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

पाणिगृहीत (सं० त्रि०) पाणिभ्यां गृहीतः। पाणि द्वारा जो ग्रहण किया गया हो, विवाहित।

पाणिगृहीती (सं० स्त्री०) पाणिर्गृहीतो यस्याः (पाणि-गृहीती भार्यायां। पा ४।१।५२) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या ङीष्। विधिपूर्वक विवाहिता सवर्णा स्त्री, धर्मशास्त्रा-नुसार व्याही हुई स्त्री। मनुमें लिखा है, कि पाणि-ग्रहण संस्कार सवर्णा स्त्रीमें होता है, अन्यवर्णमें नहीं होता, इसीसे यहां सवर्णा स्त्रीका ही बोध होगा।

पाणिग्रह (सं० पु०) पाणिर्गृह्यतेऽत्र ग्रह-आधारे अप्। विवाह।

पाणिग्रहकर (सं० पु०) वह जिसने पाणिग्रहण किया हो।

पाणिग्रहण (सं० क्ली०) पाणिर्गृह्यतेऽत्र ग्रह-आधारे ल्युट्। १ विवाह। २ विवाहकी एक रीति जिसमें कन्याका पिता उसका हाथ वरके हाथमें देता है।

विवाह देखो।

पाणिग्रहणिक (सं० त्रि०) पाणिग्रहणं प्रयोजनमस्य ठक्। १ विवाहाङ्ग मन्त्र, विवाहमें पढ़ा जाने-वाला मन्त्र। आश्वलायन गृह्यसूत्रके "अर्यमनं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत" (आश्व०गृ० १।७।१७)से लगा कर १८वें सूत्र तकके मन्त्र "पाणिग्रहणिक" कहाते हैं। २ विवाहसम्बन्धी। ३ विवाहमें दिया जानेवाला।

पाणिग्रहणीय (सं० त्रि०) १ पाणिग्रहणयोग्य। (क्ली०) २ विवाहमें दिया जानेवाला उपहार।

पाणिग्रहीतृ (सं० पु०) पाणिं गृह्णाति ग्रह-तृच्, तत इट्, इटो दीर्घश्च। पाणिग्रहणकर्त्ता, पति।

पाणिग्राह (सं० पु०) पाणिं गृह्णाति ग्रह-अण्। पाणि-ग्रहणकर्त्ता, पति।

पाणिघ (सं० पु०) पाणिं पाणिना वा हन्ति हन-ठक्। (पाणिघताडघौ शिल्पिनि। पा ३।२।५५) ततः टिलोपो घत्वञ्च निपात्यते। १ वह जो हाथसे कोई बाजा बजावे, मृदङ्ग ढोल आदि बजानेवाला। २ हाथसे बजाए जाने-वाले मृदङ्ग ढोल आदि बाजे। ३ शिल्पी, कारीगर।

पाणिघात (सं० पु०) पाणिना हन्तीति हन् अभिक्षि-प्यादण्। १ पाणिताड़नमात्र, हाथसे मारनेकी क्रिया या भाव। हन्-भावे घञ्, ततः पाणिना घातः हननं। २ पाणि द्वारा हनन, थप्पड़, मुक्का।

पाणिघ्न (सं० त्रि०) पाणौ हन्ति हन-ठक्, ग्रेरे शिल्पिनि निपातनात् साधुः। हस्ततालवादक।

पाणिज (सं० पु०) पाणौ जायते जन-ड (सप्तम्यां जनेर्डः। पा ३।२।९७) १ नख, नाखून। २ नखी। ३ अङ्गुलि, उंगली।

पाणितल (सं० क्ली०) पाणेस्तलं। १ हस्तका अधोभाग, हाथका निचला हिस्सा। २ करतल, हथेली। ३ परिमाणविशेष, वैद्यकमें एक परिमाण जो दो तोलेके बराबर होता है।

पाणिधर्म (सं० पु०) पाणिग्रहणाख्यो धर्मः मध्यपदलोपि कर्मधा०। पाणिग्रहणरूपधर्म, विवाहसंस्कार।

पाणिन (सं० पु०) पणिनो मुनेर्गोत्रापत्यं पणिन्-अण् (गाथि विदथिकेशिगणिपाणिनश्च। पा ६।४।१६५) इति न टिलोपः। पाणिनि मुनि। पाणिनि देखो।

पाणिनि (सं० पु०) पणिनो मुनेर्युवापत्यं पणिन्-इञ्, न टिलोपः। एक प्रसिद्ध मुनि। आहिक, दाक्षीपुत्र, शालङ्की, पाणिन और शालातुरीय ये सब इनके नामान्तर हैं।

संस्कृत भाषामें सर्वप्रधान और सर्वप्राचीन (प्रकृत) व्याकरणरचयिताका नाम पाणिनि है। क्या भारत, क्या पाश्चात्यदेशके पण्डितोंके निकट पाणिनिका व्याकरण शब्दविद्यामें अपूर्व और अद्वितीय ग्रन्थके जैसा समादृत होता आ रहा है। पाणिनिका असामान्य शब्दज्ञानभाण्डार देख कर उनके आविर्भावकाल, उनके परिचय, उनके समयमें संस्कृतभाषाकी अवस्था तथा उनके वार्त्तिककार और भाष्यकारके साथ उनके भाषासम्बन्ध आदिका विचार करनेके लिये ख्यातनामा यूरोपीय संस्कृतवित् और इस देशके संस्कृतप्रिय पुराविद्गणमात्र ही अग्रसर हुए हैं। किन्तु बड़े ही आश्चर्यका विषय यह कि इस गुरुतर तत्त्वनिर्णयमें कोई भी एक दूसरेके साथ एक मत अवलम्बन कर न सके। इस कारण संक्षेपमें उन लोगोंका मत उद्धृत कर पाणिनिके प्रकृत परिचयसंग्रहकी चेष्टा करना आवश्यक है।

कल्पित परिचय।

अध्यापक मोक्षमूलरने सोमदेवके कथासरित्सागरसे यह गल्प उद्धृत किया है:—

"पुष्पदन्त नामक महादेवके एक अनुचर था जिसने गौरीके शापसे पतित हो कर कौशाम्बी नगरीमें सोमदत्त नामक एक ब्राह्मणके औरससे जन्मग्रहण किया। उनका नाम रखा गया कात्यायन वररुचि। जन्मके कुछ बाद ही इस प्रकार आकाशवाणी हुई—"यह शिशु श्रुतिधर होगा और वर्षपण्डितके निकट समस्त विद्या लाभ करेगा। व्याकरणशास्त्रमें इसका असाधारण ज्ञान रहेगा और वर अर्थात् समस्त प्रधान विषयोंमें रुचि रहेगी, इस कारण 'वररुचि' नामसे प्रसिद्ध होगा।" आगे चल कर ऐसा ही हुआ भी। बाल्यकालसे ही उनमें असीम बुद्धि और स्मृतिशक्तिका सञ्चार दीख पड़ा। एक दिन उन्होंने एक नाटकका अभिनय देख कर माताके निकट आद्योपान्त उसकी आवृत्ति कर दी। उपनयनके पहले व्याड़ीके मुखसे प्रातिशाख्य सुन कर उन्हें कण्ठस्थ कर लिया था। पीछे उन्होंने वर्षके निकट नाना शास्त्रोंमें पाण्डित्यलाभ कर व्याकरणशास्त्रमें पाणिनिको पराजय किया। किन्तु अन्तमें महादेवके अनुग्रहसे पाणिनिने विजयश्री प्राप्त की। कात्यायनने महादेवकी क्रोधशान्तिके लिये पाणिनिविरचित व्याकरण पाठ कर उसका संशोधन और पूर्णता सम्पादन की। यही कात्यायन मगधाधिप नन्दके मन्त्रिपद पर अभिषिक्त हुए थे।"

उक्त गल्पानुसार मोक्षमूलरने पाणिनिको मगधराज नन्दके समसामयिक अर्थात् ४थी शताब्दीमें लोग स्थिर किया है (१)। प्रसिद्ध जर्मनपण्डित बोथलिं (२), अध्यापक लासेन (३), डाक्टर बुह्लर (४), अध्यापक पिटर्सन (५) और पण्डित तारानाथ तर्कवाचस्पति महाशयने भी यही अभिप्राय प्रकट किया है। (६)

---

(१) Max Muller's Ancient Sanskrit Literature.

(२) Dr. Bothlingk's Panini, Band II. p. XIV.

(३) Indische Alterthumuskunde, II. p. 864.

(४) Dr. Buhler's Indian Studies.

(५) Peterson's Edition of Ballabhadeva's Subhashitavali.

(६) पण्डित तारानाथ तर्कवाचस्पतिप्रकाशित सिद्धान्तकौमुदी २य भाग।

किन्तु उक्त संस्कृतविदोंका मत और विश्वास नितान्त भ्रमविजृम्भित समझा जाता है। जैसा आरब्योपन्यास है, संस्कृतसाहित्यमें कथासरित्सागर भी वैसो ही एक गल्पकी पुस्तक है। आरब्योपन्यासके मध्य जिस प्रकार अनेक ऐतिहासिक राजाओंका उल्लेख रहते हुए भी उसे ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं मानते, कथासरित्सागर भी उसी प्रकार ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है। सुतरां उक्त ग्रन्थमें नन्दराजका नाम देख कर पाणिनिविषयक गल्प ऐतिहासिक सत्य है, ऐसा नहीं कह सकते।

जर्मनपण्डित वेबरका मत है, कि पाणिनि १४० ई०में विद्यमान थे। (७)

अध्यापक गोल्डष्टुकरने गभीर आलोचना करके पाणिनिविचारविषयक एक विस्तीर्ण प्रस्ताव लिखा है। उस ग्रन्थमें उन्होंने यह प्रमाण करनेकी चेष्टा की है, कि निरुक्तकार यास्कके बाद और वाजसनेय प्रातिशाख्यरचयिता कात्यायनके पहले पाणिनि आविर्भूत हुए। उनका आविर्भावकाल बुद्धदेवसे कुछ पूर्ववर्त्ती है। (८)

डाक्टर लिबिक (Liebich) ने 'पाणिनिके साथ भारतीय साहित्य और व्याकरणका सम्बन्ध' विषयक एक विस्तृत प्रस्ताव जर्मन भाषामें प्रकाशित किया है। उनके मतसे—

'पाणिनि सम्भवतः ईसाजन्मसे ३०० वर्ष पहले आविर्भूत हुए थे। गृह्यसूत्र जिस समय रचा गया, पाणिनि प्रायः उसी समयके लोग हैं। ऐतरेयब्राह्मण और वृहदारण्यक उपनिषद् पाणिनिके पूर्ववर्त्ती तो हैं, पर भगवद्गीताकी रचना उनके पीछे हुई है। (९)

इसके अतिरिक्त पिटर्सन साहबने यह प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है, कि वैयाकरण पाणिनिने ही 'जाम्बूवतीविजय' और 'पातालविजय' नामक दोनों काव्य रचे हैं। इस सम्बन्धमें उन्होंने जैनकवि राजशेखरका निम्नलिखित श्लोक प्रमाणस्वरूप ग्रहण किया है;—

"स्वस्ति पाणिनये तस्मै यस्य रुद्रप्रसादतः।
आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बूवतीजयम्॥"*

बड़े ही आश्चर्यका विषय है, कि प्रसिद्ध संस्कृतवित् डाक्टर बुहलर भी पिटर्सनका पक्ष समर्थन करनेमें अग्रसर हुए हैं। (१०)

परवर्त्ती आलोचनासे यह सिद्ध होगा कि उपरोक्त विभिन्न मत समीचीन नहीं हैं।

प्रकृत परिचय।

पतञ्जलिके महाभाष्य और हेमचन्द्रकी अभिधानचिन्तामणिकी सहायतासे जो सामान्य परिचय मिला है, वह इस प्रकार है—

पाणिनिके पितामहका नाम देवल और माताका नाम दाक्षी था। माताके नामानुसार वे 'दाक्षीपुत्र' वा 'दाक्षेय' नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। गन्धारके अन्तर्गत शलातुरमें उनका जन्म हुआ था, इस कारण उनका दूसरा नाम 'शालातुरीय'† भी है।

चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्ग जब शलातुर देखने आये थे, तब उन्हें पाणिनिके विषयका जो कुछ पता लगा वह इस प्रकार है,—

'अति पूर्वकालमें बहुसंख्यक वर्णमाला थी। ब्रह्मा और इन्द्रने मानवके उपयोगी वर्णनियम स्थापन किये। नाना शाखाओंके ऋषिगण उनमेंसे प्रत्येक वर्णमालाके नाना भेदोंसे अवगत हुए। वंशपरम्परासे वही चला आ रहा था। किन्तु छात्रगणकी उतनी शक्ति नहीं रहनेके कारण वे वर्णमाला समझ नहीं सकते थे। विशेषतः मानवकी परमायु धीरे धीरे घटते घटते १०० वर्ष ही

(७) Webers' History of Sanskrit Literature.

(८) Goldstucker's Manava-kalpo sutra, preface.

(९) Panini, Ein Beitrag zur keuntniss der Indischen Literature and grammatik, von der Dr. Liebich.

* महाराज लक्ष्मणसेनके समसामयिक श्रीधरदासने भी अपने सदुक्तिकर्णामृतमें 'दाक्षीपुत्र' नाम दे कर एक श्लोक संग्रह किया है। मालूम पड़ता है, कि यही नाम देख कर उपरोक्त अध्यापक साहबने वैयाकरण पाणिनिको काव्यरचयिता माना है।

(१०) Indian Antiquary, Vol. X. p. 41.

† पाणिनिकी अष्टाध्यायीमें भी यह शालातुरीय (४।३।९४) नाम देखा जाता है।

गई।† इसी समय ऋषि पाणिनि उत्पन्न हुए। जन्म लेनेके बाद ही वे इन सब विषयोंसे जानकार हो गये थे। कालक्रमसे वर्णमाला भूल जानेका उपक्रम हो गया। इस पर पाणिनिने अक्षररचना और शब्दविद्याको सुशृंखलाको स्थापन करना चाहा। शब्दविद्या पढ़नेके लिये समाधिस्थ होने पर उन्होंने 'ईश्वर' (महेश्वर) देवके दर्शन किये। महेश्वरने उन्हें अभीष्ट विषय समझा दिया। महेश्वरको सहायता और उपदेश पा कर वे घर लौटे। पीछे वे तन्मय हो कर अपनी कार्यसिद्धिके लिये अग्रसर हुए। अन्तमें उन्होंने बहु संख्यक शब्द संग्रह कर सहस्र श्लोकात्मक एक अक्षर और शब्दतत्त्वमूलक (व्याकरण) ग्रन्थ लिखा। यह ग्रन्थ उन्होंने देशके महाराजके निकट भेज दिया। राजाने महा अमूल्य रत्न कह कर उसे ग्रहण किया और शासनलिपि द्वारा राज्य भरमें घोषणा कर दी, कि यह ग्रन्थ सभी अपने काममें लावें और दूसरोंको पढ़ावें। जो मनुष्य इस ग्रन्थको आद्योपान्त पढ़ जायगा उसे सहस्र स्वर्णमुद्रा उपहार मिलेंगी।(१)

† यूएनचुवंगका यह प्रारम्भ अंश बहुत कुछ काल्पनिक समझा जाता है।

(१) उक्त आख्यायिका-वर्णनके बाद चीनपरिव्राजकने पाणिनिके पुनर्जन्मकी वर्णना करके बौद्धधर्मकी प्रधानता दिखलाई है। वह गल्प इस प्रकार है—

'शलातुर नगरमें एक स्तूप है। यहां किसी अर्हत्‌ने एक पाणिनिमतावलम्बीको बौद्धधर्ममें दीक्षित किया था। उनके मरनेके पांच सौ वर्ष बाद एक महा अर्हत् काश्मीरवासियोंको दीक्षित कर उक्त स्थानमें आये। यहां आ कर उन्होंने देखा कि एक ब्रह्मचारी एक बालकको प्रहार कर रहा है। अर्हत्‌ने उस ब्राह्मणसे पूछा, 'तुम इसे क्यों मार रहे हो?' ब्राह्मणने जवाब दिया, 'मैं इतनी मेहनतसे इसको शब्दविद्या सिखाता हूं, पर यह बारम्बार भूल जाता है, याद नहीं रखता।' अर्हत्‌ने फिर ब्रह्मचारीसे कहा, 'शब्दविद्याशास्त्रके प्रणेता पाणिनिका नाम शायद मालूम पड़ता है, कि तुमने सुना है।' ब्राह्मणने उत्तर दिया, 'इस नगरके सभी बालक उन्हींके मतावलम्बी (शिष्य) हैं, सभी उनके महद्‌गुणका सम्मान करते हैं। उनकी स्मृतिकी स्थापनाके लिये जो प्रतिमूर्त्ति प्रतिष्ठित हुई थी, वह आज भी विद्यमान है।' इस पर अर्हत्‌ने कहा, 'तुम जिस बालकको सिखाते हो, वही बालक पाणिनि है। लौकिक शब्दविद्याप्रकाशके लिये इसने वृथा समय नष्ट किया; इसी कारण इसे अनेक बार जन्म लेना पड़ा है।' इत्यादि नाना तरहकी बात कह कर अर्हत्‌ने उस बालकको बौद्धधर्ममें दीक्षित किया। पीछे ब्राह्मण भी अर्हत्‌की कथा पर मुग्ध हो कर दीक्षित हुए।

पाणिनीय शिक्षा (२), पतञ्जलिके महाभाष्य आदि बहु प्राचीन ग्रन्थोंमें महेश्वरप्रसादसे पाणिनिका व्याकरणरचनाप्रसङ्ग वर्णित है। नन्दिकेश्वरकृत काशिकामें भी लिखा है, कि पाणिनिको इष्टसिद्धिके लिये ही महेश्वरने चौदह प्रत्याहार प्रकाशित किये थे। (३)

उक्त विवरण व्यतीत पाणिनिके व्यक्तिगत परिचयके सम्बन्धमें और अधिक कुछ भी जाना नहीं जाता।

पाणिनिकी अष्टाध्यायी।

पाणिनिने जो व्याकरण बनाया है उसका नाम अष्टाध्यायी है। यह आठ अध्यायोंमें विभक्त है। इसका दूसरा नाम 'अष्टक' पाणिनीय" भी है। इसके प्रति अध्यायमें चार चार करके पाद और समूचे ग्रन्थमें ३९८६ सूत्र हैं। इनमेंसे वैयाकरणिकगण ३ या ४ सूत्रको पाणिनिके बनाये हुए नहीं मानते। (४)

(२) "शंकरः शांकरीं प्रादात् दाक्षीपुत्राय धीमते।
वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य देवीं वाचमिति स्थितिः॥
येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः॥"
(पाणिनीय शिक्षा)

(३) नन्दिकेश्वर चतुर्दशसूत्र-व्याख्यास्थलमें लिखा है—
"नृत्यावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।
अत्र सर्वत्र सूत्रेषु अन्त्यं वर्णश्चतुर्दशम्।
धात्वर्थं समुपाविष्टं पाणिन्यादीष्टसिद्धये॥
(नन्दिकेश्वरकृत काशिका)

(४) जर्मन पण्डित बोथलिं अष्टाध्यायीके ४।१।१६६, ४।१।१६७, ४।३।१३२, ५।१।३६, ६।१।६२, ६।१।१०० और ६।१।१३७ इन सात सूत्रोंको पाणिनिविरचित नहीं मानते। वे इन सातोंको पहले वार्त्तिकके मध्य और पीछे सूत्रपाठके मध्य गिनते हैं। किन्तु अध्यापक गोल्डष्टुकरने इसका प्रतिवाद करते हुए लिखा है, कि इन सात सूत्रोंमेंसे ४।३।१३२, ५।१।३६ और

पाणिनिको अष्टाध्यायीसे उनकी जन्मभूमिके निकटवर्त्ती जनपदसमूह और तत्पूर्ववर्त्ती शाब्दिकोंके नाम तथा तत्कालीन शब्दशास्त्रकी अवस्था निर्णीत हो सकती है।

कापिशी, फलनु, वर्णु, सुवास्तु, वरण, पर्श्वस्थान, वाहीक, साङ्कल, शाकल, पर्वत, मालव्य और चौद्रक्य, ये सब स्थान वर्त्तमान पञ्जावके पश्चिम और पश्चिमोत्तरांशमें तथा अफगानिस्तानकी पूर्वसीमाके मध्य अवस्थित है। मालव्य और चौद्रक्य इन दोनोंको छोड़ कर और सभी नाम ऋग्वेदादि प्राचीन वैदिक ग्रन्थोंमें भी देखे जाते हैं। इन जनपदोंके नामादिकी पर्यालोचना करनेसे मालूम पड़ता है, कि जिस पवित्र पञ्चनदके किनारे ऋक्‌संहिताका विमल मन्त्रसमूह पहले पहल गाया गया था, उसी पवित्र जनपदमें पाणिनि भी आविर्भूत हुए थे।

पाणिनिके पूर्ववर्त्ती शाब्दिकगण।

अष्टाध्यायीके सूत्रसे पाणिनिके पूर्वतन कुछ शाब्दिक और आचार्यके नाम पाये जाते हैं;—

अत्रि, आङ्गिरस, आपिशलि, कठ, कलापी, काश्यप, कुत्स, कौण्डिन्य, कौरव्य, कौशिक, गालव, गौतम, चरक, चाक्रवर्म, छागलि, जावाल, तित्तिरी, पाराशर्य, पोला, बभ्रु, भारद्वाज, भृगु, मण्डूक, मधुक, यस्क, वड़वा, वरतन्तु, वशिष्ठ, वैशम्पायन, शाकटायन, शाकल्य, शिलालि, शौनक और स्फोटायन।

पाणिनिका कालनिर्णय।

पाश्चात्य और इस देशके पण्डितगण कथासरित्सागरके ऊपर निर्भर कर जो कालनिर्णय कर गये हैं, वह काल्पनिक प्रतीत होता है। अध्यापक गोल्डष्टुकरका विश्वास है, कि पाणिनि बुद्धदेवके पूर्ववर्त्ती थे, लेकिन कितने दिनके पूर्ववर्त्ती थे सो मालूम नहीं। डाक्टर रामकृष्णगोपाल भण्डारकरके मतसे पाणिनि प्रायः खृष्टपूर्व ८वीं शताब्दीमें विद्यमान थे और निरुक्तकार यास्क पाणिनिके पीछे प्रादुर्भूत हुए (५)। हम लोगोंके ख्यालसे पाणिनि इससे भी बहुत पहलेके हैं, पीछे वही प्रमाणित भी होगा।

कात्यायन और पतञ्जलि।

यहांके देशीय और पाश्चात्य पण्डितोंने स्वीकार किया है, कि पतञ्जलि खृष्टपूर्व २य शताब्दीमें और कात्यायन खृष्टपूर्व ४थी शताब्दीमें आविर्भूत हुए थे।

कात्यायन पाणिनिका वार्त्तिक लिख कर चिरप्रसिद्ध हुए हैं। गोल्डष्टुकरप्रमुख पण्डितोंका कहना है, कि पाणिनिके समर्थन वा पोषकताके लिये वार्त्तिक रचा नहीं गया, बल्कि पाणिनिको दोषोद्‌घाटनपूर्वक समालोचना करनेके लिये ही रचा गया है। किन्तु यह प्रकृत नहीं है। पाणिनिकी विवृति ही कात्यायनका वार्त्तिक है। महाभाष्यप्रदीपकी टीकामें नागेशभट्टने कहा है, 'सूत्रमें जो कहा नहीं गया अथवा दुर्बोधभावमें कहा गया है, वे सब विषय सहजमें जाननेके लिये जो आलोचना की गई, उसीका नाम वार्त्तिक है। यथार्थमें वार्त्तिककी आलोचना करनेसे भी यही प्रतीत होता है। सुतरां वार्त्तिक पाणिनिका दोषप्रकाशक समालोचन ग्रन्थ है, ऐसा नहीं कह सकते। (६)

पाणिनि और कात्यायन।

पाणिनि जिस समय और जिस प्रदेशके व्यक्ति हैं, उस समय तथा उस प्रदेशके विद्वत्‌समाजने प्रचलित भाषाका ही व्यवहार किया है। जिस प्रकार प्राचीन वैदिकी भाषा सैकड़ों वर्ष पीछे जनसाधारणके निकट दुर्बोध्य हो जानेके कारण पाणिनिके समयसे ही उस भाषाकी शिक्षाके लिये स्वतन्त्र व्याकरण और स्वतन्त्र अभिधानका प्रयोजन हुआ था, वार्त्तिककार कात्यायनके समयमें भी उसी प्रकारकी पाणिनीय भाषा जनसाधारणके निकट अप्रचलित और दुर्बोध्य हो जानेसे उसकी

६।१।६२ तीन सूत्रके सम्बन्धमें सन्देह हो सकता है, पर तीन सूत्र ही तत्तत् पूर्ववर्त्ती सूत्रके वार्त्तिक हैं, ऐसा महाभाष्यकारने निर्देश किया है।

(५) Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society, Vol. XVI (1885), p. 314.

(६) डाक्टर वेबर आदि जर्मन पण्डितोंका विश्वास है, कि वाजसनेय-प्रातिशाख्यके रचयिता और वार्त्तिकके कात्यायन दोनों अभिन्न व्यक्ति हैं, लेकिन इस सम्बन्धमें अब भी गभीर आलोचनाका प्रयोजन है।

स्वतन्त्र वृत्तिकी नितान्त आवश्यकता हुई थी। अध्यापक गोल्डष्टुकर और जर्मन पण्डित लिबिक (Liebich)-ने पाणिनि तथा कात्यायनके समयकी भाषाकी इस प्रकार विभिन्नता दिखलाई है।

१ पाणिनिके समयमें व्याकरण सम्बन्धीय जो सब नियम प्रचलित थे, वे कात्यायनके समयमें अशुद्ध और अप्रचलित हुए थे।

२। पाणिनिके व्यवहृत अनेक शब्दार्थ कात्यायनके समयमें प्रचलित नहीं थे।

३। पाणिनिके समयमें जिस शब्दका जो अर्थ प्रचलित था, कात्यायनके समयमें उसका बहुत रूपान्तर हो गया।

४ पाणिनिके समयमें जो शब्दशास्त्र पढ़ा जाता था, वह कात्यायनके समयमें बिलकुल अपरिज्ञात था।

उपरोक्त आलोचनासे यही प्रतिपन्न होता है, कि पाणिनि और कात्यायन सौ दो सौ वर्षके आगे पीछेके नहीं हैं। पाणिनि कात्यायनके सैकड़ों वर्ष पहलेके हैं, इसमें सन्देह नहीं।

पाणिनि, व्याड़ि और शौनक।

किसी पाश्चात्य पण्डितने लिखा है, कि पाणिनिके पहले व्याड़िका 'संग्रह' नामक एक ग्रन्थ वर्त्तमान था। मालूम पड़ता है, कि कथासरित्सागरके गल्पसे ही ऐसा सिद्धान्त हुआ है। व्याड़ि पाणिनिके पूर्ववर्त्ती थे, पाणिनीय व्याकरण वा दूसरे किसी ग्रन्थसे उसका प्रमाण नहीं मिलता, बल्कि महाभाष्यकारने व्याड़िको पाणिनिके परवर्त्ती बतला कर ही उल्लेख किया है—

"आपिशल-पाणिनीय-व्याडीय-गौतमीयाः, एकं पदं वर्जयित्वा सर्वाणि पूर्वपदानि, तत्र न ज्ञायते कस्य पूर्वपदस्य स्वरेण भवितव्यमिति।" (६।२।३६ सूत्रमें महाभाष्य) वार्त्तिककारके "अभ्यर्हितञ्च" (२।२।३४) इस सूत्रके अनुसार पतञ्जलिने आपिशलि प्रभृतिको अपने अपने आचार्यके पौर्वापर्यमूलक बतला कर ही स्थिर किया है (७)। इसके अनुसार आपिशलिके बाद पाणिनि और पाणिनिके बाद व्याड़ि होते हैं।

(७) एसियाटिक सोसाइटीसे प्रकाशित श्रीयुक्त सत्यव्रत-सामश्रमि-सम्पादित 'निरुक्त'का ४र्थ भाग द्रष्टव्य।

पाणिनि और यास्क।

पण्डित सत्यव्रत सामश्रमीने यह दिखलानेकी चेष्टा की है, कि कात्यायनके बहुत पहले यास्क हुए, बाद यास्कके बहुत पहले पाणिनि और पाणिनिके बहुत पहले वेदसंहिता। उन्होंने इस सम्बन्धमें ऐसा प्रमाण दिया है, कटकसंहिता (८।१३।५)में 'सूर्या' शब्दका प्रयोग है, किन्तु इस समय सूर्या शब्दसे सूर्यकी पत्नी ऐसा अर्थ प्रचलित न था, पाणिनिके समयमें प्रचलित हुआ। यास्कने भी पाणिनिके अनुवर्त्ती हो कर "सूर्या—सूर्यस्य पत्नी" (१३।१।७) ऐसा अर्थ लगाया है। फिर वह देख कर कात्यायनने "सूर्यद्देवताम् चाप्" (वार्त्तिक४।१।४८) यह सूत्र किया है।

पाणिनि कात्यायन और यास्कसे बहुपूर्ववर्त्ती थे, इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं,—पाणिनिसूत्रमें ऋण शब्दकी वृद्धिका विधान नहीं है। उनके समयमें 'प्रणम्' 'अपर्णम्' 'वत्सतरर्णम्' इत्यादिका प्रयोग देखा जाता है। किन्तु निरुक्तसे जाना जाता है, कि यास्कके समयमें 'प्रपार्णम्'का प्रयोग चला था। उनके बहुपरवर्त्ती कात्यायनने 'ऋणदशाभ्यां च' इत्यादि (६।१।८९) वार्त्तिकसूत्र करके 'प्रार्ण' शब्दका साधन किया है। किन्तु उनके समयमें नितान्त अप्रचलित था, इस कारण उन्होंने 'प्रपार्ण' शब्द साधनेकी चेष्टा न की।

यास्क पाणिनिके परवर्त्ती थे, इसका स्पष्ट प्रमाण पाया गया है। निरुक्तमें कई जगह पाणिनिका सूत्र उद्धृत अथवा उसकी सहजबोध्य वृत्ति लिखी है। विशेषतः निरुक्तके कई स्थानोंमें "पृषोदरादीनि यथोपदिष्टं" (पा ६।३।१०९) यह पाणिनीय सूत्र उद्धृत रहनेसे यास्क पाणिनिसे परवर्त्ती थे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं रहता। फिर भी निरुक्तकी आवश्यकताके सम्बन्धमें यास्कने "व्याकरणस्य कार्त्स्न्यं स्वार्थसाधनञ्च" इत्यादि उक्ति द्वारा निरुक्त जो व्याकरणका परिशिष्टस्वरूप है, वह विवृत किया है।

अब यह जाना गया, कि पाणिनि यास्कके पूर्ववर्त्ती थे; किन्तु कितने पूर्ववर्त्ती थे, साफ साफ मालूम नहीं। 'गवियुधिभ्यां स्थिरः' (८।३।९५) 'वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्' (४।३।९८) इत्यादि सूत्रोंमें पाणिनिने युधिष्ठिर, वासुदेव

और अर्जुनका नामोल्लेख किया है। किन्तु "एजेः खश्" (३।२।२८) यह सूत्र प्रणयन करके भी उन्होंने जनमेजयका नामोल्लेख नहीं किया। उनके 'पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः' (४।३।११०) इत्यादि सूत्रोंमें पाराशर्य व्यासका नामोल्लेख रहने पर भी उनके पुत्र शुकदेव (वैयासकि)का नाम नहीं है। इससे कोई कोई अनुमान करते हैं, कि व्यास और युधिष्ठिरके बाद, शुकदेवादिके समयमें और परीक्षित्पुत्र जनमेजयके कुछ पूर्व पाणिनि आविर्भूत हुए थे। उनके समयमें चार वेद, ऐतरेयब्राह्मण, बृहदारण्यक उपनिषद्, षड्-दर्शन, गालव, गोतम आदिका धर्मशास्त्र विशेष प्रचलित था। किन्तु उस समय भी अधिकांश उपनिषद्, वेदके कोई कोई प्रातिशाख्य, आरण्यक, फिट्सूत्र और आजकलकी भृगुप्रोक्तमनुसंहिता प्रचलित न थी। उनके समयमें लिपिकार्य जारी था। पञ्जाबके किसी किसी अंशमें 'यवनानी' लिपिका प्रचार था। उनके पूर्ववर्त्ती शाब्दिकोंके मध्य शाकल्यने वेदका पदपाठ आविष्कार किया, बाभ्रव्य और गालवने क्रमपाठ प्रकाशित किया। काशकृत्स्न मीमांसकके जैसा गण्य हुए थे, आपिशलिने साम तन्त्रका प्रचार किया और शाकटायनने एक असम्पूर्ण अष्टक्तन्त्र व्याकरणकी रचना की। किन्तु पाणिनिके पहले और किसीने भी ऐसा सर्वाङ्गसुन्दर व्याकरण प्रकाशित नहीं किया।

कोई कोई एक उद्भट श्लोकके आधार पर कहते हैं, कि पाणिनिके पहले 'माहेश' नामक एक बृहत् व्याकरण रचा गया था। उसमें जो रत्न है, पाणिनिरूप गोष्पदमें उसका रहना सम्भव नहीं।

उक्त उद्भट वाक्य यथार्थमें उत्कट है। वह आधुनिक समयमें किसी पाणिनिद्वेषीसे रचा गया है, इसमें सन्देह नहीं। वास्तविकमें माहेश नामक किसी स्वतन्त्र व्याकरणका अस्तीत्व ही नहीं है। प्रसिद्ध पण्डित मधुसूदन सरस्वतीने अपने प्रस्थानभेद नामक ग्रन्थमें पाणिनीय अष्टाध्यायी, उसके ऊपर कात्यायनरचित वार्त्तिक और उसके ऊपर पतञ्जलिकृत महाभाष्य इन तीन ग्रन्थोंको वेदाङ्ग और 'माहेश्वरव्याकरण' बतलाया है। पाणिनिने ही सबसे पहले सर्वाङ्ग सुन्दर व्याकरण प्रकाशित किया था, इस कारण विद्वत्समाजमें वे ही संस्कृत भाषाके आदि व्याकरणकर्त्ताके जैसा कीर्त्तित और समादृत होते आ रहे हैं।

पातालविजय और जाम्बूवतीविजय आदि व्याकरणकर्त्ताके करप्रसूत नहीं समझे जाते। पर हां, क्षेमेन्द्र, राजशेखर, श्रीधरदास प्रभृतिकी उक्तियोंसे बोध होता है, कि १०वीं शताब्दीके भी बहुत पहले वे दो काव्य रचे गये थे। उन दो काव्योंके रचयिताके नाम भी पाणिनि रहनेके कारण परवर्त्ती कवियोंने पाणिनि कविके कवित्व पर मुग्ध हो कर उन्हें अष्टाध्यायि-रचयितासे अभिन्न ही समझ लिया था।

पाणिनीय दर्शन।

पाणिनीय दर्शन नामक एक दर्शनका विषय सर्वदर्शनसंग्रहकारने प्रकाशित किया है। सर्वदर्शनसंग्रहके मतसे इस दर्शनमें क्या वैदिक, क्या लौकिक, सभी संस्कृत शब्द व्युत्पादित हुए हैं। ऐसा कोई संस्कृत शब्द ही नहीं जिसके साथ पाणिनि-दर्शनका सम्पर्क न हो। फलतः कैसा भी संस्कृत शब्द क्यों न हो, अनुसन्धान करनेसे एक प्रकार सभी शब्द साधित और व्युत्पादित हो सकते हैं। पाणिनिदर्शनके समान समस्त पद-साधनविषयमें और कोई भी दूसरा ग्रन्थ नहीं है। कलापादि अन्यान्य आधुनिक व्याकरण द्वारा भी कितने पद साधित हो सकते हैं, पर उन सब व्याकरणों द्वारा वेदव्याख्याकरणेच्छु धार्मिक जनोंका सम्पूर्ण उपकार नहीं झलकता। क्योंकि आधुनिक वैयाकरणियोंने वैदिक शब्दसाधनके उपायस्वरूप स्वतन्त्र सूत्रादिकी रचना न की। व्याकरणको सहजबोधग करनेके लिये वैयाकरणियोंने वैदिक प्रकरण न रचा। इस दर्शन (वैदिक और लौकिक)-में सभी संस्कृत शब्द साधित और व्युत्पादित हो जानेसे इसके शब्दानुशासन और व्याकरण ये दो नाम पड़े हैं।

व्याकरणशास्त्र प्रधान वेदाङ्ग है अर्थात् वेदके शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दोग्रन्थ और ज्योतिषभेदसे जो छः अङ्ग हैं, उनमेंसे प्रधान अङ्ग व्याकरण है।

जिस प्रकार यज्ञादिरूप कर्मके प्रधान अङ्गको निष्पत्ति होनेसे अन्यान्य गुणीभूत अङ्गके अननुष्ठानके लिये स्वर्गादिस्वरूप प्रकृत फलकी कोई हानि नहीं होती, उसी प्रकार जो व्यक्ति षड़ङ्ग वेदके अध्ययनमें अशक्त हो कर वेदाङ्गका प्रधान व्याकरणशास्त्र अध्ययन करता है, उसकी भी षड़ङ्ग-वेदाध्ययनके लिये प्रकृत फलप्राप्तिविषयमें कोई क्षति नहीं होती। अतः सभी मनुष्योंके लिये व्याकरणशास्त्रका पाठ अवश्यकर्त्तव्य और हितकर है, यह सिद्ध हुआ। इस दर्शनका अध्ययन करने और संस्कृत भाषामें व्युत्पत्ति रहनेसे नाना उपकार और वेदादिशास्त्रोंकी रक्षा होती है तथा साधुशब्दके प्रयोगादि द्वारा जनसमाजमें असीम सुख्याति, असामान्य सम्मान और असदृश विद्यानन्दभोग कर अन्तमें स्वर्गवास होता है। पाणिनिदर्शन पढ़नेसे ये सब अभीष्ट लाभ होते हैं। "एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सुष्ठुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग् भवतीति" (सर्वदर्शनस०) एक शब्द यदि सम्यक् प्रकारसे ज्ञात हो कर यथायथ प्रयुक्त हो, तो वह शब्द स्वर्ग और लोकमें कामधुक् होता है। श्रुतिमें लिखा है—

"चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य।
त्रिधाबद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आविवेश॥"
(श्रुति)

भाष्यकारने इसकी जो व्याख्या की है, वह इस प्रकार है,—इस पाणिनिदर्शनके चार शृङ्ग अर्थात् चार पद है,—जातनाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात; लडादि विषय भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानकाल इसके पादस्वरूप हैं। व्यङ्ग और व्यञ्जकके भेदसे दो शीर्षदेश है, यह नित्य और अनित्य है। सप्तहस्त तिङ्के साथ सुप्‌प्रभृति सप्तविभक्ति सप्तहस्तवाच्य है। उरः, कण्ठ और शिर इन तीन जगहोंमें यह बद्ध है। प्रसिद्ध वृषभरूपमें आरोपित हुआ है अर्थात् अर्थबोधपूर्वक शब्दादिके उच्चारणादि करनेसे साक्षात् फलप्रद होता है, नहीं तो केवल रोरवो अर्थात् शब्दकर्मा। महोदेव=महादेव मरणधर्मा मनुष्योंके प्रति आविष्ट हो।

इस दर्शनके मतसे जगत्‌का निदानस्वरूप स्फोटाख्य निरवयव नित्यशब्द ही परब्रह्म है।

"अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरं।
विवर्त्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥" (सर्वदर्शनस०)

अक्षरशब्दतत्त्व ही अनादि निधन ब्रह्म है जिससे अर्थात् जिस शब्दतत्त्वसे जागतिक प्रक्रियाएं अर्थभावमें विवर्त्तित हुआ करती हैं।

इस मतसे शब्द दो प्रकारका है—नित्य और अनित्य। नित्यशब्द स्फोट है, तद्भिन्न वर्णात्मक शब्दसमूह अनित्य। वर्णातिरिक्त स्फोटात्मक जो एक नित्यशब्द है, उसके विषयमें अनेक युक्तियां प्रदर्शित हुई हैं। इनमेंसे प्रधान युक्ति यह है, कि यदि स्फोट स्वीकार न किया जाय, तो केवल वर्णात्मक शब्द द्वारा किसी तरह अर्थबोध नहीं हो सकता। और भी, यह सभी स्वीकार करते हैं, कि अकार, गकार, नकार और इकार ये चार वर्ण स्वरूप जो अग्नि शब्द है, उससे वह्निका बोध होता है। किन्तु वह केवल उन चार वर्णों द्वारा सम्पादित नहीं हो सकता। कारण, यदि उन चार वर्णोंके प्रत्येक वर्ण द्वारा वह्निका बोध होता, तो केवल अकार अथवा गकारका उच्चारण करनेसे ही वह्निका बोध नहीं होता है, सो क्यों? इस दोषपरिहारके लिये वे चारों वर्ण एकत्र हो कर वह्निका ज्ञान उत्पन्न कर देते हैं। यह कहना भी बालकता प्रकाशमात्र है, क्योंकि सभी वर्ण आशु विनाशी हैं, आगेके वर्णकी उत्पत्तिके समय पहलेके वर्ण विनष्ट हो जाते हैं। सुतरां अर्थबोधकी बात तो दूर रहे, उनके एकत्र अवस्थानकी भी सम्भावना नहीं रहती। इसीसे यह स्वीकार करना पड़ेगा, कि उन चार वर्णों द्वारा प्रथमतः स्फोटकी अभिव्यक्ति अर्थात् स्फुटता उत्पन्न होती है, पीछे स्फुटस्फोट द्वारा वह्निका बोध होता है।

यहां पर कोई कोई पूर्वोक्त रीतिक्रमसे पूर्वपक्ष करते हैं, कि प्रत्येक वर्ण द्वारा स्फोटकी अभिव्यक्ति स्वीकार करनेसे पूर्वोक्त प्रत्येक वर्ण द्वारा अर्थबोधस्थलीय दोष होता है और समुदाय वर्ण द्वारा अभिव्यक्ति स्वीकार करनेसे भी वही दोष होता है। अतएव जब दोनों ही पक्षमें यह दोष है, तब स्फोट स्वीकारका प्रयोजन ही क्या? इसका सिद्धान्त ऐसा है, जिस प्रकार एक बार पाठ द्वारा ही पाठ्यग्रन्थका तात्पर्य अवधारित नहीं होता, किन्तु बार बार आलोचना द्वारा वह दृढ़रूपमें अवधारित होता है, उसी प्रकार प्रथमवर्ण

अकार द्वारा स्फोटको किञ्चिन्मात्र स्फुटता उत्पन्न होने पर भी सम्पूर्ण स्फुटता उत्पन्न नहीं होती; पीछे द्वितीय और तृतीयादि वर्ण द्वारा स्फुटतर और स्फुटतम हो कर स्फोट वह्निका बोध होता है। किञ्चिन्मात्र स्फुट होनेसे ही जो स्फोट अर्थबोधक होता है, सो नहीं। जिस प्रकार नील, पीत और रक्तादि वर्ण के सान्निध्यवशत: एक स्फटिक मणि ही कभी नील, कभी पीत और कभी रक्तरूपमें प्रतीयमान होती है, उसी प्रकार स्फोट एकमात्र होने पर भी घट और पटादिरूपमें विभिन्न वर्ण द्वारा अभिव्यक्त हो कर घट और पटादि-रूप भिन्न भिन्न अर्थका बोधक होता है।

इस स्फोटको ही शाब्दिकोंने सच्चिदानन्द ब्रह्म बतलाया है। सुतरां शब्दशास्त्रको आलोचना करते करते क्रमशः अविद्याकी निवृत्ति हो कर मुक्तिपद प्राप्त होता है। अत: व्याकरण अध्ययनका फल जो मुक्ति है, उसे भी प्राचीन पण्डितोंने एकवाक्यसे स्वीकार किया है। व्याकरणशास्त्र मुक्तिका द्वारस्वरूप, वाङ्मलापह चिकित्सा-तुल्य और सभी विद्यामें पवित्र है। अथवा यह व्याकरण-शास्त्र सिद्धिसोपानका प्रथम पदार्पण स्थान है अर्थात् जो सिद्ध होनेका अभिलाषी है उसे प्रथमतः व्याकरणकी उपासना करनी होती है। यह पाणिनिदर्शन मोक्षमार्ग-के मध्य सरल राजवर्त्म स्वरूप है। (सर्वदर्शनसंग्रह)

पाणिनि मुनिने जिस अष्टाध्यायी व्याकरणकी रचना की है, वही पाणिनिदर्शन है। इसमें संज्ञा, सन्धि, धातु, समास, कृत्, तद्धित आदि व्याकरणोक्त सभी विषय सन्निवेशित हुए हैं। विस्तार हो जानेके भयसे सब विषय नहीं दिखलाये गये। इस पाणिनिदर्शनका तात्पर्य वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्डमें भर्तृहरिने विस्तारित भावमें लिखा है। व्याकरण देखो।

पाणिनी (सं० स्त्री०) नीलापराजिता।

पाणिनीय (सं० त्रि०) पाणिनिना प्रोक्तं उपदिष्टं वा पाणिनि छ (वृद्धाच्छ। पा ४।२।११४) १ पाणिनिकृत। २ पाणिनिप्रोक्त, पाणिनिका कहा हुआ। ३ पाणिनिभक्त, पाणिनिमें भक्ति रखनेवाला। ४ पाणिनिका ग्रन्थ पढ़नेवाला।

पाणिनीयदर्शन (सं० पु०) पाणिनिका अष्टाध्यायी व्याकरण। "सर्वदर्शनसंग्रह"कारने पाणिनीय व्याकरणको भी दर्शनको श्रेणीमें स्थान दिया है। इस दर्शनके मतसे स्फोट नामक निरवयव नित्य शब्द ही जगत्‌का आदि कारण रूप परब्रह्म है। पाणिनि देखो।

पाणिन्धम (सं० त्रि०) पाणिं धमतीति ध्मा शब्दाग्नि-संयोगयोः खश्, मुम् च (उग्रं पश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च। पा ३।२।३७) १ हस्तकर्म सम्बन्धीय अग्निसंयोगकर्त्ता, पाणितापक। २ पाणिद्वारा शब्दकर्त्ता, पाणिवादक।

पाणिन्धय (सं० त्रि०) पाणिभ्यां धयति पिबतीति धेट पाने 'नाडी मुष्टयोश्च' इत्यत्र चकारात् खश् सुष्टिपाणिनासिकात् धमश्च' इति सूत्रात् खश् प्रत्ययेन साधुः। पाणि द्वारा पानकर्त्ता

पाणिपथ—पञ्जाबके अन्तर्गत कर्णाल जिलेका एक उप-विभाग और नगर। पानीपत देखो।

पाणिपल्लव (सं० पु०) अङ्गुलि, उंगलियाँ।

पाणिपात्र (सं० त्रि०) पाणिरेव पात्रं यस्य। जिसको हस्ततल पात्रस्वरूप हो।

पाणिपाद (सं० क्ली०) पाणी च पादौ च द्वयोः समा-हार: तत: क्लीवत्वं। पाणि और पादका समाहार।

पाणिपीड़न (सं० क्लो०) पाणेः पीड़नं ग्रहणं यत्र। १ पाणिग्रहण, विवाह। २ क्रोधादि द्वारा हस्तमर्दन, क्रोध, पश्चात्ताप आदिके कारण हाथ मलना।

पाणिप्रणयिन् (सं० स्त्री०) स्त्री।

पाणिप्रदान (सं० क्लो०) १ हस्तदान। २ हस्त द्वारा शपथ करना।

पाणिबन्ध (सं० पु०) पाणिर्बध्यतेऽत्र बन्ध आधारे घञ्। विवाह।

पाणिभुज (सं० पु०) पाणिनेव भुज्यते दीयतेऽनेन चार्वादि हवि:, यद्वा पाणिरिव भुज्यते यज्ञादिस्थले व्यवह्रियते भुज-क्विप्। १ उडुम्बरवृक्ष, गूलरका पेड़। पाणिना भुङ्क्ते भुज-क्विप्। (त्रि०) २ पाणिकरणक-भोक्ता।

पाणिमणिका (सं० स्त्री०) मणिबन्धास्थि।

पाणिमन्थ (सं० पु०) करञ्जवृक्ष।

पाणिमर्द (सं० पु०) पाणिं मृद्नातीति पाणि-मृद्-अण् (कर्मण्यण्। पा ३।२।१) करमर्दक, करौंदा।

पाणिमानिक (सं० पु०) तोलकद्वय, दो तोले।

पाणिमुक्त (सं० क्लो०) पाणिभ्यां मुक्तं परित्यक्तं। अस्त्र, हथियार।

पाणिमुख (सं० त्रि०) पाणिः विप्रपाणि मुखमिव येषां। पितृगण।

पाणिमूल (सं० क्ली०) बाहुमूल, कलाई।

पाणिरुह (सं० पु०) पाणौ रोहतीति रुह-क (इगुपधज्ञेति। पा ३।१।१३५) १ नख, नाखून। २ अङ्गुलि, उंगली। ३ नखी नामक गन्धद्रव्य।

पाणिवाद (सं० त्रि०) पाणिं पाणिना वा वादयतीति वद-णिच् अण्। १ पाणिघ, मृदङ्ग, ढोल आदि बजानेवाला। २ हस्तताड़क, ताली बजाना। पाणिना वाद्यते इति वद-णिच् कर्मणि घञ्। (क्ली०) ३ मृदङ्गादि, मृदङ्ग, ढोल आदि बाजे।

पाणिरेखा (सं० स्त्री०) हथेली परकी लकीरें।

पाणिवादक (सं० त्रि०) पाणिं पाणिना वा वादयतीति वद-णिच् ण्वुल्। १ पाणिवाद, मृदङ्ग आदि बजानेवाला। २ ताली बजानेवाला।

पाणिसंग्रहण (सं० क्लो०) १ हाथ पकड़ना। २ हाथ घुमाना।

पाणिसर्ग्या (सं० स्त्री०) पाणिभ्यां सृज्यतेऽसौ 'पाणौ सृजेर्ण्यत् वाच्यः' इति ण्यत् प्रत्ययेन साधुः (चजोः कु घिण्ण्यतोः। पा ७।३।५२) इति कुत्वं। रज्जु, रस्सी।

पाणिस्वनिक (सं० त्रि०) पाणिस्वनः प्रयोजनमस्य ठक्। हस्ततालदायक, ताली बजानेवाला।

पाणिहता (सं० स्त्री०) पुष्करिणी। ललितविस्तरमें लिखा है, कि देवताओंने एक बार हाथसे पृथ्वीको ठोंक दिया जिससे वहां एक पुष्करिणी निकल आई।

पाणिहाटी—हुगली जिलेमें भागीरथीके किनारे अवस्थित एक ग्राम।

पाणिहोम (सं० पु०) पाणौ होमः ७-तत्। एक विशेष होम जो अधिकारी ब्राह्मणके हाथसे किया जाता है।

पाणी (हिं० पु०) पाणि देखो।

पाणीतक (सं० पु०) कुमारानुचरभेद, कार्त्तिकेयका एक गण।

पाणीतल (सं० क्लो०) पाणितलं निपातनात् दीर्घः। तोलकद्वय, दो तोले।

पाणीसर्या (सं० स्त्री०) रज्जुलक्षण, एक प्रकारकी घास।

पाणीकरण (सं० क्लो०) पाणौ क्रियतेऽनेन अस्मिन् वा, कृ-ल्युट्, सप्तम्याः अलुक्। विवाह, पाणिग्रहण।

पाण्ड (सं० त्रि०) पण्ड एव स्वार्थे अण्। पण्ड, नपुंसक, हिजड़ा।

पाण्डक (सं० पु०) एक वैदिकाचार्य।

पाण्डर (सं० क्ली०) पाण्डरो वर्णोऽस्त्यस्येति अच्। १ कुन्दपुष्प। २ गैरिक, गेरू। (पु०) पाण्डरः शुक्लवर्णः अस्त्यस्येति अच्। ३ मरुवकवृक्ष, मरुवा। पड़िआर, दौना। ४ शुक्लवर्ण, सफेद रंग। ५ पर्वतविशेष, पुराणानुसार एक पर्वतका नाम जो मेरु पर्वतके पश्चिममें है। ६ ऐरावत कुलोत्पन्न नागविशेष, महाभारतके अनुसार ऐरावतके कुलमें उत्पन्न एक हाथीका नाम। ७ पक्षिविशेष, ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है, कि यह पक्षी जिसके घर पर बैठता है, उसके घरमें विपद्‌की आशङ्का होती है।

> "गृध्रः कंकः कपोतश्च उलूकः श्येन एव च।
> चिल्लश्च धर्मचिल्लश्च भासः पाण्डर एव च॥
> गृहे यस्य पतन्त्येते गेहं तस्य विपद्यते॥"
>
> (ज्योतिस्तत्त्व)

८ पानड़ी। (त्रि०) ९ तद्वर्णविशिष्ट, सफेद रंगका।

पाण्डरपुष्पिका (सं० स्त्री०) पाण्डरं शुक्लवर्णं पुष्पं यस्याः, कप्, ततः कापि अत इत्वं। शीतलावृक्ष।

पाण्डरा (सं० स्त्री०) छः हाथवाली पद्मपाणिकी शक्तिमूर्त्ति। इसके मस्तक पर अमिताभ बुद्धकी मूर्त्ति रहती है। बाएं हाथमें बोतलकी तरह एक पदार्थ, दक्षिण ओरके एक हाथमें चक्र, वज्राङ्कुश और तर्जनीके मध्य मणि रहती है। एतद्भिन्न दोनों बगलमें दो स्त्रीमूर्त्ति खड़ी हैं। दाहिनी ओरकी स्त्रीके हाथमें एक बोतल और मणि तथा बाईं ओरकी स्त्रीके बाएं हाथमें पद्म और दाहिने हाथमें गोलाकार एक पदार्थ है। इस प्रकारकी प्रतिमूर्त्ति कुर्किहार और नेपालमें पाई गई है। किसी किसीका कहना है, कि यह बुद्ध-अमिताभकी शक्ति है।

पाण्डव (सं॰ पु॰) पाण्डोस्तदाख्यया प्रसिद्धस्य राज्ञोऽपत्यं पाण्डु-अञ् (ओरञ्। पा ४।१।७१) १ पाण्डु-नन्दन, पाण्डु राजाके क्षेत्रज धर्मादिसे जात युधिष्ठिरादि पुत्रगण। पाण्डवोंकी उत्पत्तिका विषय महाभारतमें इस प्रकार लिखा है—

धर्मात्मा पाण्डु माद्री और कुन्ती नामक दो पत्नियोंके साथ अरण्यमें रहते थे। मुनिके शापसे पाण्डुकी सन्तानोत्पादनशक्ति रुद्ध हो गई थी; इसीसे वे हमेशा उदास रहा करते थे। पुत्र नहीं होनेसे मनुष्य पितृ-ऋणसे उद्धार नहीं पाता, इस कारण एक दिन पाण्डुने धर्मपत्नी कुन्तीको निर्जन स्थानमें बुला कर कहा, 'कुन्ति! मैं मुनिके शापसे पुत्रोत्पादनमें अक्षम हूं, अतएव तुम इस आपत्कालमें पुत्रोत्पादनकी चेष्टा करो। देखो! धर्मवादिगण सदासे कहते आये हैं, कि सन्तान इस त्रिलोकके मध्य धर्ममय प्रतिष्ठा स्वरूप हैं। यागानुष्ठान, दान और तपस्या उत्तमरूपसे अनुष्ठित होने पर भी निःसन्तान व्यक्तिके लिये वह पवित्रकारी नहीं होती। यहां तक कि निःसन्तान व्यक्तिका कोई भी लोक शुभावह नहीं है।' कुन्ती पाण्डुको यह बात सुन कर बहुत नम्र स्वरसे बोली, 'हे धर्मज्ञ! मैं आपकी धर्मपत्नी हूं और आप पर ही अनुरक्त हूं; तब फिर इस प्रकार मुझे कहना आपको उचित नहीं। क्योंकि आपके सिवा मैं कभी भी परपुरुषके साथ गमन करनेकी इच्छा नहीं रखती।' धर्मज्ञ पाण्डुने कुन्तीदेवीके इस प्रकार युक्तियुक्त वाक्य सुन कर पुनः उनसे उत्तम धर्मसंयुक्त वाक्य कहा, 'कुन्ति! तुमने जो कुछ कहा वह सत्य है; किन्तु हे राजपुत्रि! वेदविद्गण यह भी कहते हैं, कि धर्म हो चाहे अधर्म, भर्त्ता भार्यासे जैसा कहेंगे, भार्याको वैसा ही करना कर्त्तव्य है। विशेषतः मुनिके शापसे पुत्रोत्पादनशक्ति मुझमें जरा भी रह न गई है, अथच पुत्रलाभका अभिलाष नितान्त प्रबल है, सो हे शुभे! मैं पुत्रदर्शनकी कामनासे तुम्हें प्रसन्न करता हूं। सुकेशि! तुम मेरे नियोगानुसार समधिक तपःसम्पन्न ब्राह्मणसे गुणवान् पुत्र-उत्पादन करो। तुम्हींसे मैं पुत्रवान् व्यक्तियोंकी गति लाभ करूंगा।' पतिव्रता कुन्ती स्वामीके ऐसे विविध उपदेशपूर्ण वाक्य सुन कर बोली, "राजन्! मैं बाल्यावस्थामें जब पिताके घर थी, उसी समय मैंने अतिथिसेवामें दुर्वासा ऋषिको परितुष्ट किया था। इस पर उन्होंने मुझे अभिचारमन्त्रयुक्त वरदान दे कर कहा था, 'तुम इस मन्त्र द्वारा जिस किसी देवताका आह्वान करोगी, वे चाहे सकाम हों चाहे अकाम, उसी समय तुम्हारे वशीभूत हो जायेंगे और उन्हींके कृपाप्रसादसे तुम्हें पुत्र होगा।' अतः हे राजन्! ब्राह्मणका वाक्य अन्यथा होनेको नहीं। अभी वही समय आ उपस्थित हुआ है। यदि आपकी अनुज्ञा हो, तो उस मन्त्र द्वारा किसी देवताका आह्वान करूं और तदनुरूप कार्य कर सकूं।" इस पर पाण्डुने कहा, 'हे शुभे! तुम अभी इस विषयमें यत्नवती होओ और धर्मका आह्वान कर सन्तानोत्पादन करो। क्योंकि धर्म ही देवताओंमें पुण्यात्मा हैं। वे हम लोगोंको किसी तरह अधर्मयुक्त नहीं करेंगे और जनता भी इसे धर्म ही समझेगी। धर्मप्रदत्त पुत्र निश्चय ही धार्मिक होगा।' पतिव्रता कुन्ती स्वामीके ऐसे वाक्य सुन कर प्रणतिपूर्वक उनकी आदेशानुवर्त्तिनी हुईं।

कुन्तीने जब सुना कि गान्धारीने एक वर्षका गर्भधारण किया है, तब उन्होंने गर्भके लिये अक्षय धर्मका आह्वान कर उसी समय उनकी पूजा की। अनन्तर मन्त्रके प्रभावसे धर्मदेव सूर्यतुल्य विमान पर चढ़ कुन्तीके समीप पहुंचे और मुसकराते हुए बोले, 'कुन्ति! तुम्हें क्या चाहिए।' कुन्तीने धर्मदेवसे पुत्रकी प्रार्थना की। अनन्तर कुन्तीने योगमूर्त्तिधारी धर्मके सहयोगसे सर्वप्राणीहितकर एक पुत्र प्राप्त किया। कार्त्तिक मासकी शुक्ल पञ्चमीको चन्द्रयुक्त ज्येष्ठानक्षत्रमें अभिजित् नामक अष्टम मुहूर्त्तमें दोपहरके समय कुन्तीने पुत्र प्रसव किया। पुत्रके जन्मते ही आकाशवाणी हुई, कि पाण्डुका यह प्रथम पुत्र धर्मपरायण व्यक्तियोंमें श्रेष्ठ, विक्रान्त, नरोत्तम, भूमण्डलका एकाधिपति, त्रिलोकविश्रुत तथा 'युधिष्ठिर' नामसे प्रसिद्ध होगा। पाण्डुने यह धर्मपरायण पुत्र पा कर पुनः कुन्तीसे कहा, 'पण्डित लोग क्षत्रिय जातिको बलिष्ठ कहा करते हैं, अतएव तुम एक बलवान् पुत्रके लिये प्रार्थना करो।' अनन्तर

कुन्तीने स्वामीकी यह बात सुन कर वायुका आह्वान किया और उनकी पूजादि कर लज्जावनतमुखी हो कुछ मुसकराती हुई बोलीं, 'हे सुरोत्तम! मुझे महाकाय बलवान् सर्वदर्पप्रभञ्जन एक पुत्र दीजिए।' इस वायुसे महाबाहु भीमपराक्रम भीमने जन्म ग्रहण किया। इस समय आकाशवाणी हुई, कि यह बालक बलवानोंमें श्रेष्ठ होगा। भीमके जन्म लेते न लेते एक अद्भुत घटना घटी। कुन्ती बाघकी आशङ्कासे उद्विग्न हो सहसा उठ खड़ी हुईं। अपनी गोदमें सोये हुए वृकोदरका उन्हें जरा भी ध्यान न रहा। भीम जब पर्वतके ऊपर गिरा, तब उसके गात्रस्पर्शसे सभी शिलाएं चूर चूर हो गईं। यह अद्भुत व्यापार देख कर पाण्डु बड़े ही प्रसन्न हुए। इसी दिन दुर्योधनका भी जन्म हुआ।

पाण्डु इन दो पुत्रोंको पा कर पुनः सोचने लगे, कि किस प्रकार एक और प्रधान तथा लोकश्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हो। इन्द्र देवताओंके राजा और प्रधान हैं, वे अपरिमेय बल और उत्साहसम्पन्न हैं तथा उनका वीर्य और द्युति अप्रमेय हैं। अतएव इन्द्र द्वारा एक और पुत्र उत्पादन करनेसे मेरे मनोरथ सफल हो जायंगे। बाद पाण्डुने ऋषियोंसे सलाह ले कर कुन्तीके साथ एक वर्ष तक इन्द्रकी आराधना की। इन्द्रने प्रसन्न हो कर पाण्डुको अभिलषित वर दिया। इस पर पाण्डुने कुन्तीसे कहा, 'देवराज इन्द्र परितुष्ट हुए हैं, अतः अभिलषित पुत्र उत्पादन करो।' यह सुन कर कुन्तीने इन्द्रका आह्वान किया जिससे अर्जुन उत्पन्न हुए। इस पुत्रके जन्म होते ही आकाशमण्डल महागम्भीर शब्दसे गूंज उठा और आकाशवाणी हुई कि यह पुत्र कार्त्तवीर्यसदृश वीर्यवान्, शिवितुल्य पराक्रमशाली और पुरन्दर सदृश अजेय होगा। यह पुत्र सब प्रकारके सद्गुणोंसे सम्पन्न हो कर इस जगतीतलमें विशेष ख्याति लाभ करेगा। इसके बाद आकाशमण्डलमें तुमुल शब्दसे दुन्दुभि बजने लगी, महाकोलाहल शब्द हो उठा, अनवरत पुष्पवृष्टि होने लगी, अप्सरागण नाचने लगीं और नाना प्रकारकी शुभसूचक घटनावली उपस्थित हुई।

पीछे पाण्डुने पुनः पुत्रलोभसे धर्मपत्नी कुन्तीसे नियोग करनेकी इच्छा प्रकट की। इस पर कुन्ती बोलीं, 'धर्मवेत्तागण आपद्कालमें भी चतुर्थ पुत्रकी प्रशंसा नहीं करते; कारण चतुर्थ पुरुषके संसर्गसे स्वैरिणी और पञ्चम पुरुषके संसर्गसे वेश्या होती है। हे विद्वन्! आप यह धर्म जानते हुए भी क्यों प्रमादग्रस्तकी तरह इसका अतिक्रम करते और फिरसे सन्तानके लिये मुझे कहते हैं।' पाण्डु कुन्तीकी यह धर्मसङ्गत कथा सुन कर स्थिर हुए और तीनों पुत्रके साथ दिन बिताने लगे।

एक दिन माद्रीने पाण्डुको निर्जनप्रदेशमें देख कर कहा, 'महाभाग! मेरे लिये यह बड़े ही दुःखकी बात है, कि हम दोनों पत्नी समान हैं, किन्तु अभी भाग्यक्रमसे कुन्तीके गर्भसे आपके पुत्र हुए हैं। कुन्ती यदि मेरे लिये सन्तानोत्पत्तिका उपाय कर दे, तो मैं बड़ी उपकृत होऊंगी और उससे आपका भी हितसाधन होगा। कुन्ती मेरी सपत्नी है, इस कारण उससे मेरी नहीं पटती। यदि आप उससे कहें, तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो सकता है।' इस पर पाण्डुने आह्लादित हो कुन्तीको एकान्तमें ले जाकर कहा, 'हे कल्याणि! जिससे मेरा वंश विच्छिन्न न हो जाय और मेरे पूर्वपुरुषोंके तथा तुम्हारे पिण्डलोपकी सम्भावना न रहे, मेरी प्रीतिके लिये वैसा ही एक काम तुम्हें करना होगा। अतः माद्रीके गर्भसे जिससे हमें एक पुत्र हो जाय, उसका कोई उपाय कर दो।' इस पर कुन्ती राजी हो गई और माद्रीको बुला कर कहा, 'तुम अपनी इच्छानुसार किसी एक देवताका स्मरण करो, उसीसे तुम्हें एक पुत्र प्राप्त होगा।' तब माद्रीने मन ही मन सोच विचार कर अश्विनीकुमारका स्मरण किया। अश्विनीकुमारने वहां पहुंच कर नकुल और सहदेव नामक निरुपमरूपसम्पन्न दो यमजपुत्र उत्पादन किये। उसी समय आकाशवाणी हुई, कि सत्त्वरूपगुणोपेत ये दोनों कुमार तेज और रूपसम्पत्ति द्वारा अश्विनीकुमारको भी अतिक्रम कर जायंगे। वहांके ब्राह्मणोंने ये सब अद्भुत कार्य देख कर प्रसन्न हो आशीर्वाद दिया और बालकोंका नाम रखा। कुन्तीके पुत्रोंमेंसे बड़ेका नाम युधिष्ठिर, मध्यमका नाम भीमसेन तथा तृतीयका नाम अर्जुन और माद्रीके दोनों पुत्रोंमेंसे पूर्वज पुत्रका नाम नकुल तथा अपर पुत्रका नाम

सहदेव रखा गया। पाण्डुके ये पाँचों पुत्र बचपनसे ही बलशाली थे। यही पञ्चपुत्र पञ्चपाण्डव नामसे प्रसिद्ध हुए।

(भारत आदिपर्व १२०, १२१, १२२, १२३ अ०) पाण्डवोंका विशेष विवरण पाण्डु और तत्तत् शब्दमें देखो।

२ टेलेमीवर्णित (पञ्जाबका) हिदास्पेस (वितस्ता) नदीतीरवर्त्ती एक जनपद और इसके वासी। (Pan-duovoi)

पाण्डवगढ़—बम्बई प्रदेशका एक दुर्ग। कहते हैं, कि पन-हालके सरदार भोजने इस दुर्गका निर्माण किया। १६४८ ई०में यह दुर्ग बीजापुर राजाके अधीन था। १६७६ ई०में शिवाजीने इस दुर्ग पर अपना अधिकार जमाया। १७०१ ई०में यह गढ़ औरङ्गजेबके सेनापतिके हाथ सुपुर्द किया गया। १७१३ ई०में बालाजी विश्वनाथने महा-राष्ट्र-सेनापति चन्द्रसेन यादवके डरसे भाग कर इस गढ़में आश्रय लिया था। पीछे हैवतरावने अहमद-नगरसे आ कर उसकी सहायता की थी। १८१७ ई०में आप्पासाहेबके विद्रोहके समय विद्रोहियोंने इस दुर्गको अपनाया। पीछे १८१८ ई०के अप्रिल मासमें मेजर ईडासे यह दुर्ग अधिकृत हुआ। यहां बहुतसी गुहाएं हैं जिनमें शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित है।

पाण्डवनगर (सं० पु०) दिल्ली।

पाण्डवाभील (सं० पु०) अभीः अभयं लातीति ला-क, पाण्डवोऽभीलो यस्मात्, वा पाण्डवानामभिश्रमभयं लातीति वा। श्रीकृष्ण।

पाण्डवायन (सं० पु०) पाण्डवानामयनं रक्षणं यस्मात्। श्रीकृष्ण।

पाण्डविक (सं० पु०) कृष्णचटक, काली गौरिया।

पाण्डवीय (सं० त्रि०) पाण्डवस्येदं, 'वृद्धाच्छः' इति पांडव-छ। पांडव सम्बन्धीय।

पाण्डवेय (सं० त्रि०) पाण्डोरियं इत्यञ्, ङीप् च, पाण्डवी, कुन्ती, माद्री च तयोरपत्यं इति ढक्। १ पाण्डव। २ अभिमन्युके पुत्र राजा परीक्षित्।

पाण्डार (सं० पु० स्त्री०) पण्डस्यापत्यं आरक्। पण्डका अपत्य।

पाण्डि (सं० पु०) लौहविशेष।

पाण्डित्य (सं० क्ली०) पण्डितस्य भावः कर्म वा (वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च। पा ५।१।१२३) पण्डित-ष्यञ्। पण्डितोंका धर्म वा कर्म, विद्वत्ता, पण्डिताई।

पाण्डु (सं० पु०) पडि-गतौ (मृगय्वादयश्च। उण् १।३७) इति कुप्रत्ययः, निपातनात् धातोर्दीर्घश्च। १ पाण्डुरफली-क्षुप। २ पटोल, परवल। ३ शुक्ल पीत मिश्रितवर्ण। पर्याय—हरित, पाण्डुर, पाण्डर। रक्त और पीत मिश्रित वर्ण ही पाण्डुर कहाता है। अमरटीकामें भरतने लिखा है—

"पांडुरस्तुरक्तपीतभागी प्रत्यूषचन्द्रवत्।
पांडुस्तु पीतभागार्द्धः केतकीधूलिसन्निभः॥"

रक्त और पीतमिश्रित वर्ण ही पाण्डुर वर्ण है। यह देखनेमें प्रत्यूषकालके चन्द्रमा-सा लगता है। ४ स्वनामख्यात नृपति। इसी नृपतिसे पाण्डववंश उत्पन्न हुआ है। महाराज शान्तनुके पुत्र विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें व्यासदेवसे इस राजाने जन्मग्रहण किया था। महा-भारतमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—

महाराज विचित्रवीर्यने काशिराजकी अम्बिका और अम्बालिका नामक दो कन्याका पाणिग्रहण किया। विचित्रवीर्य उन दो रमणियोंके साथ एकादिक्रमसे सात वर्ष तक विहार करके यौवनकालमें ही भयङ्कर यक्ष्म-रोगसे आक्रान्त हुए। अनेक प्रकारकी चिकित्सा करने पर भी वह शान्त न हुआ। अकालमें ही वे इस काल-रूपी रोगके करालगालमें फंस कर अस्तमित सूर्यकी तरह अदृश्य हो गये।

विचित्रवीर्यकी माता सत्यवती पुत्रशोकसे नितान्त कातर हो गईं। अनन्तर दोनों पुत्रवधुओंको आश्वासन दे कर उन्होंने भीष्मसे कहा, 'हे भारत! कुरुवंशीय शान्तनु राजाका वंश, कीर्त्ति और पिण्ड एकमात्र तुम पर ही प्रतिष्ठित है। तुम सब प्रकारके धर्मोंसे अवगत हो। इस कारण मैं विशेष आश्वस्त हो कर तुम्हें किसी एक धर्मकार्यमें नियुक्त करूंगी। वह कार्य धर्मानु-सार करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। हे पुरुषश्रेष्ठ! तुम्हारे प्रिय भाई मेरे पुत्र विचित्रवीर्य बिना कोई पुत्र छोड़े ही बचपनमें स्वर्गधामको चल बसे हैं। तुम्हारे भाईकी दोनों महिषी रूपयौवन-सम्पन्ना हैं और पुत्रकी कामना

करती हैं। अतः तुमसे मेरा अनुरोध है, कि वंशपरम्परा-की रक्षाके लिये मेरे नियोगानुसार उन दो वधुओंसे पुत्र उत्पादन करके धर्मको रक्षा करो तथा विवाह करके राज्य पर अभिषिक्त हो भारतराज्य चलाओ।'

माता और सुहृदोंके इस प्रकार अनेक धर्मसंयुक्त वचन कहने पर भीष्म विनय और नम्रताके साथ मातासे बोले, 'मातः! आपने जो कुछ कहा, वह धर्मयुक्त है, इसमें सन्देह नहीं; पर हे मातः! आपके लिये मैंने जो सत्य प्रतिज्ञा की थी वह किसीसे छिपी नहीं है। अतएव मैं सत्यकी रक्षाके लिये त्रैलोक्य तो दूर रहे, यहां तक कि अतिदुर्लभ देवलोकका भी राज्य परित्याग कर सकता हूं अथवा इससे अधिक और जो हो सकता है, उसका भी त्याग कर सकता हूं। परन्तु सत्य-पथसे मैं कभी भी विचलित न होऊंगा।'

सत्यवतीने भीष्मकी ऐसी कठोर प्रतिज्ञा सुन कर कहा, 'तुम्हारा कहना तो बिलकुल सत्य है, पर शान्तनुवंशकी आपदवस्था पर जरा विचार कर जो युक्तिसिद्ध हो, वही करो।' इस पर भीष्म बोले, 'मातः! भारतवंशकी सन्तानवृद्धिके लिए उपयुक्त उपाय कहता हूं, सुनिये। किसी गुणवान् ब्राह्मणको धन द्वारा निमन्त्रण कर विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें पुत्रोत्पादन कीजिए।' इस पर लज्जासे स्खलितवाक्य हो सत्यवतीने भीष्मसे कहा, 'भारत! तुम जो कुछ कहते हो, वह सभी युक्तियुक्त है। परन्तु तुम्हारे प्रति विश्वासके हेतु हमारे वंशकी विस्तृतिके लिये जो मैं कहूंगी, उस आपद्धर्मका तुम प्रत्याख्यान नहीं कर सकते। हमारे वंशमें तुम ही धर्म, तुम ही सत्य और तुम ही एक परमगति हुए हो। अतएव मेरा सत्य वाक्य श्रवण कर जो कर्त्तव्य हो, वही करो।

मेरे पिता धार्मिक थे। उनके धर्मकर्मके लिये एक नाव थी। एक दिन नवयौवनकालमें पिताके बदले मैं ही नाव खेनेके लिये गई हुई थी, उसी समय परमर्षि पराशर यमुनानदी पार होनेके लिये मेरी नाव पर चढ़ गये। मैं उन्हें नदीके पार कर रही थी, इसी समय वे कामार्त्त हो मुझे मीठी मीठी बातोंसे प्रलोभित करने लगे। शापके भयसे मेरा कुछ भी वश न चला। अनन्तर उन्होंने चारों ओर अन्धकार फैला दिया जिससे तनिक भी दिखाई न पड़ने लगा। पहले मेरे शरीरसे अपकृष्ट मत्स्यगन्ध निकलती थी, सो उन्होंने मन्त्रके बलसे उसे दूर कर दिया और उसके बदलेमें सौरभ प्रदान कर मुझसे कहा, 'तुम इस यमुनाद्वीपमें हो इस गर्भका परित्याग कर पुनः कन्यावस्थामें हो रहोगी।' इतना कह कर महर्षि चल दिये और मेरे गर्भसे एक महायोगी महर्षिने जन्म लिया जो द्वैपायन कहलाये। वही भगवान् ऋषि तपोबलसे चारों वेदोंका विभाग कर व्यास नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। मेरे आदेशानुसार वे तुम्हारे भाईके क्षेत्रमें उत्तम पुत्रोत्पादन कर सकते हैं। उन्होंने हमसे पहले कहा था, 'प्रयोजन पड़ने पर मुझे स्मरण करना, मैं उसी समय पहुंच जाऊंगा।' यदि तुम कहो, तो इसी समय उनका स्मरण करती हूं।' इस पर भीष्म सहमत हो गए। अतः सत्यवतीने व्यासदेवका स्मरण किया। व्यासदेवने उसी समय उपस्थित हो कर मातासे निवेदन किया, 'मातः! किस लिए आपने मेरा स्मरण किया है, कृपा करके कहें, मैं इसी समय उसे कर डालता हूं।' इस पर सत्यवतीने कहा, 'दैवविधानक्रमसे तुम मेरा प्रथम पुत्र हो और विचित्रवीर्य कनिष्ठ था। यह शान्तनुतनय सत्यविक्रम भीष्म सत्यप्रतिज्ञाके लिये राज्यशासन वा अपत्य उत्पादन करनेमें सहमत नहीं हैं। अतएव हे अनघ! मैं जो कहती हूं, सो सुनो। अपने भ्राता विचित्रवीर्यके प्रति स्नेहानुबन्ध, कुरुवंशरक्षा तथा प्रजापालनके लिए मेरा नियोग तुम्हें सम्पादन करना उचित है। तुम्हारे कनिष्ठ भ्राताके देवकन्यासदृशी रूपयौवनसम्पन्ना दो भार्या हैं जो धर्मानुसार पुत्रकी अभिलाषिणी हैं। तुम अभिमत पात्र हो, अतएव उन दो महिषियोंसे इस कुलके तथा वंश परम्परा विस्तारके उपयुक्त सन्तान-उत्पादन करो।' व्यासदेवने इसे स्वीकार कर लिया और कहा, 'दोनों वधू एक वर्ष तक व्रत धारण किये रहें। पीछे उन्हें मित्रावरुण सदृश पुत्र प्रदान करूंगा। व्रतानुष्ठान किये बिना कामिनी मेरे निकट नहीं आ सकती।' इस पर सत्यवती बोलीं, 'पुत्र! देवियां जिससे अभी गर्भवती हो जायं, वही उपाय करो। राज्यमें राजाके नहीं रहने पर प्रजा अनाथ हो कर विनष्ट हो जायगी, सभी क्रियाएं लुप्त हो

जायंगी, वृष्टि नहीं होगी और पीछे देवगण अन्तर्हित हो जायंगे। सुतरां तुम अभी इन्हें गर्भाधारण कराओ।' व्यासने 'वैसा ही होगा' यह कह कर पहले अम्बिकाकी गर्भमें धृतराष्ट्रको उत्पादन किया। धृतराष्ट्र देखो।

पीछे अम्बालिकाके ऋतुस्नाता होने पर सत्यवतीने उससे कहा, 'तुम्हारे एक देवर हैं जो आज दोपहर रातको तुम्हारे पास आयंगे। तुम अप्रमत्त हो कर उनकी प्रतीक्षा करना।' महर्षि उक्त समयमें अम्बालिकाके निकट पहुंचे। अम्बालिका ऋषिका उग्ररूप देख कर डरके मारे पाण्डुवर्ण हो गई। व्यासने उसे भीता, विषण्णा और पाण्डुवर्णा देख कर कहा, 'तुम मुझे विरूप देख कर पाण्डुवर्णा हुई हो, इस कारण तुम्हारा पुत्र भी पाण्डुवर्ण होगा और पीछे 'पाण्डु' नामसे प्रसिद्ध होगा।' इतना कह कर व्यासदेव जब घरसे निकल पड़े, तब सत्यवतीने उन्हें सन्तानका विषय पूछा। व्यासदेवने बालकका पाण्डुवर्ण होनेका विषय कह सुनाया। अनन्तर यथाकालमें अम्बालिकाने उत्तम श्रीयुक्त पाण्डुवर्ण एक कुमार प्रसव किया। आगे चल कर वह पुत्र पाण्डु कहलाये।

धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर जन्मसे ही भीष्मकर्तृक पुत्रवत् प्रतिपालित, स्वजातिविहित संस्कारनियमसे संस्कृत, व्रत और अध्ययनमें निरत तथा श्रम और व्यायामकुशल हो कर यथासमय यौवनावस्थाको प्राप्त हुए। पाण्डु धनुर्वेदादि सभी शास्त्रोंमें पारदर्शी हो उठे। कुन्तिभोजकन्या कुन्तीने स्वयम्बरमें पाण्डुको ही वरमाला पहनाई। इसी प्रकार कुन्तीके साथ पाण्डुका विवाह हुआ। पीछे भीष्मदेवने मद्रकन्या माद्रीके साथ पाण्डुका एक और विवाह करा दिया। पाण्डुकी ये दोनों पत्नियां असामान्य रूपवती और नानाविध सद्गुणसम्पन्ना थीं। अनन्तर पाण्डु कुन्ती और माद्रीके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे। भार्याके साथ तीस वर्ष तक विहार करके इन्होंने भूमण्डल जीतनेके लिये यात्रा कर दी।

भूमण्डल पर जितने राजा थे सभी पाण्डु द्वारा पराभूत हुए। राजाओंने इन्हें कृताञ्जलिपुटसे प्रणाम कर मणिमुक्ताप्रवालादि उपढौकन दे सन्तोषविधान किया। सभी कहने लगे कि शान्तनुकी कीर्त्ति नष्टप्राय हो गई थी, अभी पाण्डुने उसका पुनरुद्धार किया। जिन सब राजाओंने कुरुओंका धन और राज्य हरण किया था, पाण्डुने निज भुजबलसे उन्हें परास्त कर सब लौटा लिया। इस प्रकार पाण्डुने विजयलाभ कर हस्तिनापुर प्रवेश किया। अनन्तर धर्मात्मा पाण्डुने धृतराष्ट्रकी आज्ञा ले कर बाहुबल-विजित धनराशि भीष्मको, सत्यवतीको और माता अम्बालिकाको उपहारमें दे दी। धृतराष्ट्रने वीरवर पाण्डुकी विक्रमार्जित धनराशिसे पांच महायज्ञ किये। इन पांच महायज्ञोंमें इतना धन खर्च हुआ था कि उससे शतसहस्र दक्षिणायुक्त शत अश्वमेध हो सकते थे।

अनन्तर निरलस पाण्डु कुन्ती और माद्रीके साथ जङ्गल चले गये। वहां वे सुखसेव्य प्रासादनिलय और शुभशय्याका परित्याग कर अतिशय मृगयासक्त हो आनन्दसे रहने लगे। एक दिन राजा पाण्डुने मृगव्यालनिषेवित महारण्यमें विचरण करते करते एक यूथपति मृगको देखा जो मैथुनधर्ममें आसक्त था। पीछे इन्होंने तीक्ष्ण और आशुग पञ्चशर द्वारा उस मृग और मृगीको विद्ध कर डाला। कोई महातेजस्वी तपोधन ऋषिपुत्र मृगरूप धारण कर भार्याके साथ क्रीड़ा कर रहे थे—वे दोनों वही मृग और मृगी थे। शराघातसे व्याकुल हो कर वे पृथ्वी पर गिर पड़े और मनुष्यकी बोलीमें विलाप करते हुए उन्होंने पाण्डुसे कहा, 'राजन्! कामक्रोधयुक्त बुद्धिहीन पापरत व्यक्ति भी ऐसा नृशंस कर्म नहीं करते। तुमने मृगवध किया है, इस कारण मैं तुम्हारी निन्दा नहीं करता, पर ऐसे समयमें निष्ठुराचरण न कर मेरे मैथुनकाल तक तुम्हें ठहर जाना उचित था। मैं कुतूहलाक्रान्त हो कर इस मृगीसे सन्तान उत्पादन करनेके लिये मैथुनाचरण कर रहा था, पर तुमने उसे विफल कर दिया। कुरुवंशमें तो तुमने जन्म लिया है, पर यह तुम्हारे लिये उपयुक्त कर्म नहीं हुआ। शास्त्रज्ञ और धर्मार्थतत्त्वविद् तथा स्त्रीसम्भोगके विशेषज्ञ हो कर भी तुमने जो अस्वर्ग्य कर्म किया सो ठीक नहीं। मैं मृगवेषधारी फलमूलाहारी मुनि हूं, मेरा नाम किमिन्दम है। मैं लोकलज्जासे मृगीमें मैथुनाचरण कर रहा

था। मेरे अल्पसिकालमें ही तुमने मेरा प्राणसंहार किया—मृगरूपावस्थामें तुमने मेरा वध किया, इस कारण तुम्हें ब्रह्महत्याका पाप न लगेगा। किन्तु तुमने जो यह निष्ठुर व्यवहार किया, इस पर तुम्हें शाप देता हूं कि तुम जब स्त्री-संसर्ग करोगे, तब मेरे सदृश अतृप्त मनसे मृत्युमुखमें पतित होगे। जिस कान्ताके साथ तुम संसग करोगे, पीछे वह भी भक्तिपूर्वक तुम्हारी अनुगामिनी होगी।' इस प्रकार शाप देते हुए मृगरूपधारी मुनिके प्राणपखेरू उड़ गये।

तदनन्तर पाण्डुने उस मृत ऋषिको अतिक्रम कर भार्याके साथ अनुतप्त और दुःखित हो बहुत विलाप किया और मन ही मन यह स्थिर कर लिया कि भिक्षाश्रमका अवलम्बन करके ही इस पापका प्रायश्चित्त करूंगा। यह सोच कर पाण्डुने अपने तथा अपनी दोनों स्त्रियोंके शरीर पर जो कुछ आभूषण थे उन्हें ब्राह्मणको दान दे अनुचरोंसे कहा, 'तुम लोग हस्तिनापुर जा कर यह खबर दो, कि पाण्डुने अर्थ, काम और परम प्रियतम स्त्रीके संसर्गादिका परित्याग कर प्रव्रज्याश्रम अवलम्बन किया है और वे सबके सब जंगल चले गये हैं।' आज्ञा पाते ही अनुचरगण हस्तिनापुरको चल दिये। इधर पांडु फलमूलाहारी हो दोनों पत्नियोंके साथ नागशत पर्वत पर जा कर रहने लगे। यहां पांडु कठोर तपोनुष्ठान करके ब्रह्मर्षि सदृश हो उठे। एक दिन पांडुने स्वर्गपुर जानेकी इच्छा ऋषियोंके सामने प्रकट की। इस पर ऋषियोंने उन्हें निषेध कर दिया और कहा कि अपुत्र व्यक्तिके लिये स्वर्ग जानेका द्वार नहीं है। यह सुन कर पांडुने स्वक्षेत्रमें ब्राह्मण द्वारा पुत्रोत्पादन करनेका पक्का विचार कर लिया और यह वृत्तान्त कुन्तीको एकान्तमें कह सुनाया। पतिव्रता कुन्तीने स्वामीके अभिप्रायानुसार धर्म, वायु और इन्द्रसे यथाक्रम युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन नामक तीन पुत्र और माद्रीने अश्विनीकुमारसे नकुल तथा सहदेव नामक दो पुत्र प्रसव किये।

पाण्डव देखो।

पाण्डुके ये पांचों पुत्र पञ्चपाण्डव नामसे प्रसिद्ध हुए। इन पुत्रोंको देख कर पांडु पर्वतके ऊपर सुखसे कालयापन करने लगे।

एक दिन प्राणियोंके सम्मोहनकारी वसन्तऋतुमें पाण्डु भार्याके साथ विचरण कर रहे थे। इस समय सभी दिशाएं पुष्पगन्धसे आमोदित थीं, कोकिलका कुहूरव प्रतिध्वनित होता था, मधुकरनिकर गूंज रहे थे, मृदुमधुरमलय पवनहिल्लोलसे पुष्पमेंसे पराग झड़ता था; इस प्रकार वसन्तका सर्वतोभावसे विकाश देख पांडुके हृदयमें मन्मथका वासस्थान हुआ। माद्री भी राजाके पीछे पीछे विचरण कर रही थी। राजा निर्जन स्थानमें कमललोचना ललनाको देखते ही हठात् अधीर हो उठे, किसी भी तरह धैर्य रख न सके। सुतरां उन्होंने एकाकिनी धर्मपत्नीको बलपूर्वक धारण किया। इस समय देवी माद्री यथासाध्य प्रतिषेध करने लगी, किन्तु राजा नितान्त कामपीड़ित थे उन्हें जरा भी आगे पीछेकी सुधि न थी। सुतरां जीवनान्तकारी पूर्वोक्त अभिशापके भयने उनके हृदयमें स्थान न पाया। उस समय मदनके आज्ञानुवर्त्ती पांडुने विधिसे प्रेरित हो कर ही मानो शापजन्य भयका परित्याग किया और जीवननाशके लिये ही वे बलपूर्वक माद्रीको धारण कर मैथुनधर्मके अनुगामी हुए। उस कामात्मा पुरुषकी बुद्धि साक्षात्कालसे विमोहित हो कर इन्द्रियग्राम मन्थनपूर्वक चैतन्यके साथ विनष्ट हुई। सुतरां वह परमधर्मात्मा कुरुनन्दन पांडु भार्याके साथ सङ्गत हो कर कालधर्ममें नियोजित हुए। अनन्तर माद्री हतचेतन भूपालको आलिङ्गन कर पुनः पुनः उच्चैःस्वरसे आर्त्तनाद करने लगी। पीछे पुत्रोंके साथ कुन्ती और माद्रीके दोनों पुत्र वह शोकसूचक शब्द सुन कर जहां राजा मरे पड़े थे वहां पहुंच गये। माद्रीसे कुल वृत्तान्त सुन कर वे सबके सब भारी विलाप करने लगे। बाद कुन्तीने माद्रीसे कहा, 'मैं सती होती हूं, तू बालकोंका प्रतिपालन करना।' इस पर माद्री बोली, 'मैंने स्वामीको पकड़ रखा है—भागने नहीं दिया है, अतः मैं ही सती होऊंगी कारण मैं कामरससे तृप्त भी न होने पाई थी, कि इसी बीचमें वे इस दशाको प्राप्त हुए। तुम बड़ी हो, अतएव मुझे ही सती होनेकी आज्ञा दो। मेरे ही साथ गमन करते हुए वे विनष्ट हुए हैं, अतः इनका अनुगमन करना मेरा ही अधिकार है और शास्त्र भी यही कहता है।'

इतना कह कर मद्रराजदुहिता उसी समय चिताग्निस्थ नरश्रेष्ठ पाण्डुकी अनुगामिनी हुई'।

अनन्तर महर्षिगण कुन्ती, पञ्चपाण्डव और उन दो मृत देहको ले कर हस्तिनापुर गये। वहां पहुंच कर उन्होंने आद्योपान्त सारा वृत्तान्त भीष्म और धृतराष्ट्रसे कह सुनाया। सभी पाण्डुके लिये शोक प्रकाश करने लगे। पीछे धृतराष्ट्रने विदुरको पाण्डुका प्रेतकार्य करनेका आदेश दिया। विदुरने आज्ञा पाते ही भीष्मके साथ परमपवित्र स्थानमें पाण्डुका सत्कारकर्म किया। पञ्चपाण्डव भीष्म और धृतराष्ट्रके यत्नसे शशिकलाकी तरह दिनों दिन बढ़ने लगे। (भारत आदिपर्व १०२से १२७ अ०)

५ नागभेद। ६ श्वेतहस्ती। ७ सितवर्ण। ८ रोगविशेष, पाण्डुरोग। सुश्रुतमें पाण्डुरोगका विषय इस प्रकार लिखा है,—

अतिरिक्त स्त्रीसंसर्ग, अम्ल, लवण और मद्यसेवन, मृत्तिकाभक्षण, दिवानिद्रा और अतिशय तीक्ष्णद्रव्यका सेवन, इन सब कारणोंसे रक्तदूषित हो कर त्वक् पाण्डुवर्ण हो जाता है। त्वक्के पाण्डुवर्ण होनेसे ही पाण्डुरोग उत्पन्न होता है। यह रोग चार प्रकारका माना गया है, पृथक् पृथक् दोषजन्य तीन प्रकारका, सन्निपातजन्य एक प्रकार। चारों प्रकारमें ही पाण्डुभावकी अधिकता होनेके कारण इसे पांडुरोग कहते हैं। त्वक्का स्फोटन अर्थात् चमड़ेका फट जाना, ष्ठीवन, गात्रका अवसाद, मृत्तिकाभक्षण, अक्षिगोलकका शोथ, मूत्रपुरीषकी पीतवर्णता और अजीर्ण ये सब पांडुरोगके पूर्वरूप हैं। कामल, कुम्भकामल, हलीमक और लाघरक ये सब पांडुरोगके अन्तर्गत माने गये हैं।

चक्षु और देह कृष्णवर्ण, शिरासमूहमें आकीर्ण और पुरीष, मूत्र, नख तथा मुख कृष्णवर्ण और अन्यान्य वायुजन्य उपद्रव होनेसे उसे वायुज पांडु; चक्षु और देह पीतवर्ण, शिरासमूहमें आकीर्ण और पुरीष, मूत्र तथा नख पीतवर्ण और पित्तजन्य अन्यान्य उपद्रव होनेसे उसे पित्तजपाण्डु कहते हैं। सन्निपातज पांडुरोगमें सभी प्रकारके लक्षण देखे जाते हैं।

पांडुरोगके शेषमें पित्तलवर्ग, अम्ल और मद्य आदि पिलकर द्रव्यका सहसा सेवन करनेसे मुख पांडुवर्ण हो जाता है। विशेषतः प्रथमावस्थामें तन्द्रा और दुर्बलता होती है। जब उससे शोथ और ग्रन्थिस्थानमें वेदना मालूम पड़े, तब उसे कुम्भकामल कहते हैं। इसमें अङ्गमर्द, ज्वर, भ्रम, अवसाद, तन्द्रा और क्षय आदि लक्षण रहनेसे उसे लाघरक और वातपित्तका लक्षण अधिक रहनेसे हलीमक कहते हैं। इसमें अरुचि, पिपासा, वमन, ज्वर, ऊर्ध्वगत पीड़ा, अग्निमान्द्य, कण्ठगत शोथ, दुर्बलता, मूर्च्छा, क्लान्ति और हृदयकी पीड़ा आदि उपद्रव होते हैं।

भावप्रकाशमें पांडुरोगका विषय इस प्रकार लिखा है,—पांडुरोग पांच प्रकारका है, यथा—वातज, पित्तज कफज, सन्निपातज और मृत्तिका भक्षणजात। कोई कोई कहते हैं, कि मृत्तिकाभक्षण द्वारा धातु दूषित हो कर पांडुरोग उत्पन्न होता है। सुतरां मृद्भक्षणज पांडुरोग दोषज पांडुसे पृथक् नहीं है। ऐसा नहीं होने पर भी उससे पृथक् रूपसे निर्देश करनेका कारण यह है, कि मृद्भक्षण द्वारा दूषित दोष केवल पांडुरोग ही उत्पन्न करता है, दूसरा रोग नहीं।

इस रोगका निदान—मैथुन, अम्ल और लवणसंयुक्त द्रव्य, मद्यपान, मृत्तिकाभक्षण, दिवानिद्रा और अतिशय तीक्ष्णद्रव्य सेवन द्वारा दुष्ट दोष रक्तको दूषित करके चर्मको पाण्डुवर्ण बना देता है। पाण्डुरोग होनेके पहले निम्नलिखित लक्षण देखनेमें आते हैं। यथा—चर्म ईषद् विदार, ष्ठीवन, अङ्गावसाद, मृत्तिकाभक्षणेच्छा और चक्षुगोलकमें शोथ तथा मलमूत्रकी पीतवर्णता और भुक्तद्रव्यका अपाक होना।

वातज पाण्डुका लक्षण—वातिक पाण्डुरोगमें चर्म, मूत्र और चक्षु आदि रूक्ष, कृष्ण वा अरुणवर्ण, कम्प, शरीरवेदना, अनाह, भ्रम और शूलादि होता है। पाण्डुवर्णका उल्लङ्घन कर कृष्ण वा अरुणवर्ण नहीं होता और यदि ऐसा भी हो, तो उसे पाण्डुरोग नहीं कह सकते। क्योंकि सुश्रुतमें लिखा है, कि सभी प्रकारके पाण्डुरोगमें पांडुता अधिक रहती है, इसीसे उसको पांडुरोग कहते हैं। अतएव यहां पर पाण्डुवर्णके साथ कृष्ण वा अरुणवर्ण समझना चाहिये।

पित्तज पाण्डु रोगमें चर्म नख, मल और मूत्र, तथा समूचा शरीर पीतवर्ण हो जाता है। शरीरमें जलन होती है, प्यास अधिक लगती है और ज्वर आ जाता है।

कफज पाण्डुरोगका लक्षण—श्लैष्मिक पाण्डुरोगमें कफस्राव, शोथ, तन्द्रा, आलस्य और शरीर अतिशय गुरु तथा चर्म, मूत्र, चक्षु और मुखका वर्ण सफेद हो जाता है। जो पाण्डुरोगके हेतुकर सब प्रकारके द्रव्य सेवन करता है उसका दोष (वायु, पित्त और कफ) दूषित हो कर अति दुःसह त्रैदोषिक पाण्डुरोग उत्पादन करता है। इसमें त्रिदोषके मिलित लक्षण देखनेमें आते हैं।

मृत्तिका-भक्षणकारी मनुष्यकी वायु, पित्त वा कफ कुपित होता है अर्थात् कषाय मृत्तिकाद्वारा वायु, क्षार मृत्तिका द्वारा पित्त और मधुर मृत्तिका द्वारा कफ कुपित हो जाता है। मृत्तिका अपने रूक्षगुण द्वारा रस रक्तादि धातु समूह और भुक्तद्रव्यको रूक्ष करके स्वयं अपक्व रह कर रसवहादि स्रोतोंको पूरण और रुद्ध करती है तथा इन्द्रियोंका बल, तेज, वीर्य और ओजोधातु नष्ट करके शीघ्र ही बल, वर्ण और अग्निनाशक पाण्डुरोग उत्पादन कर देती है। इसमें तन्द्रा, आलस्य, कास, श्वास, शूल और सर्वदा अरुचि होती है तथा पेटके भीतर कीड़े उत्पन्न होते हैं। अक्षिगोलक, गण्ड, भ्रू, पद, नाभि और शिश्नदेशमें शोथ होता है तथा रक्त और कफ समन्वित मल बहुत निकलता है।

पाण्डुरोगका असाध्य लक्षण।—पाण्डुरोगमें ज्वर, अरुचि, हृल्लास, वमि, पिपासा और क्लान्ति होनेसे तथा रोगीके क्षीण और इन्द्रियशक्तिविहीन होनेसे उसे परित्याग कर देना चाहिये। त्रिदोषज पाण्डु भी चिकित्साके वहिर्भूत है। बहुत दिनका पाण्डुरोग यदि कालक्रमसे समस्त धातुओंको अतिशय रूक्ष बना दे वा उदररूपमें परिणत हो जाय, तो उसे असाध्य जानना चाहिये। अचिरात् पाण्डु यदि शोथयुक्त हो, तो भी वह साध्य नहीं है। पाण्डुरोगीको यदि हरिद्वर्ण कफसंयुक्त अथच विबद्ध थोड़ा थोड़ा मल निकले, तो रोगको असाध्य जानना चाहिये। जो पाण्डुरोगी अत्यन्त क्लान्त, वमि-मूर्च्छा और पिपासासे अभिभूत हो तथा घर्म द्वारा जिसका शरीर अत्यन्त प्रलिप्तकी तरह मालूम पड़े, उसका रोग भी असाध्य है। जिसके दन्त, नख और चक्षु पाण्डुवर्ण हों तथा सभी वस्तु पाण्डुवर्ण दीख पड़े उसके भी जीनेकी आशा नहीं रहती।

जिस पाण्डुरोगीके हस्तपदादिमें शोथ और शरीरका मध्यदेश क्षीण हो जाय अथवा हस्तपदादि क्षीण और शरीरके मध्यदेशमें शोथ हो जाय, उसका रोग आरोग्य नहीं होगा, ऐसा जानना चाहिये। जिस पाण्डुरोगीके गुह्य, मुख, शिश्न और मुष्कदेशमें शोथ हो जाय तथा ग्लानि, संज्ञाराहित्य, अतिसार और ज्वर हो, तो रोगीको चाहिये कि उसकी चिकित्सा न करे।

पाण्डुरोगाक्रान्त व्यक्ति यदि पित्तकारक सामग्रीको अधिक मात्रामें सेवन करे, तो उससे वर्द्धित पित्त उसके रक्त और मांसको दूषित करके कामलरोग उत्पादन करता है कामलरोगीके चक्षु, चर्म, नख अत्यन्त हरिद्रावर्ण, मल और मूत्र पीत वा रक्तवर्ण तथा शरीर बेंगके जैसा वर्णविशिष्ट हो जाता है। इसके अलावा इन्द्रिय शक्तिका ह्रास, दाह, भुक्त द्रव्यका अपाक, दुर्बलता और देहकी अवसन्नता तथा अरुचि होती है।

कामलारोगका विवरण कामला शब्दमें देखो।

पाण्डुरोगीका वर्ण यदि हरित्, श्याम और पीतवर्ण हो तथा बल और उत्साहका ह्रास, मन्दाग्नि, मृदुवेगयुक्त ज्वर, स्त्रीप्रसङ्गमें अनुत्साह, शरीरवेदना, श्वास, पिपासा, अरुचि और भ्रम उपस्थित हो, तो उसे हलीमक कहते हैं। हलीमकरोग वायु और पित्तसे उत्पन्न होता है।

पाण्डुरोगकी चिकित्सा—पाण्डुरोगमें दोषका विचार कर घृतके साथ ऊर्ध्व अधोभाग संशोधन और प्रचुर परिमाणमें घृत मधुके साथ हरीतकी-चूर्णका सेवन विधेय है। हरिद्रा अथवा त्रिफलाके साथ पाक किया हुआ घृत अथवा तिल्वक घृतका पान हितकर है। विरेचक द्रव्यका घृतके साथ पाक करके अथवा घृतके साथ विरेचक द्रव्य सेवन करनेसे भी यह रोग प्रशमित होता है। ४ तोले निसोथको गोमूत्रमें पाक कर उसे अथवा आरग्वधादिके क्वाथको पान करे। लौहरजः, त्रिकटु और विड़ङ्ग, इनके चूर्णको घृत और मधुके साथ वा त्रिफलायुक्त हरिद्रा वा शास्त्रविहित अपर

योगघृत और मधुसह सेवन करे। दोष थोड़ा थोड़ा करके घटाना चाहिये, एकबारगी घटानेसे शरीर क्षीण हो जाता है। आमलकीरस और इक्षुरसका मन्थ प्रस्तुत कर मधुके साथ भोजन वा बृहती, कण्टकारी, हरिद्रा, शुकाख्या, दाड़िम और काकमाची इन सबके कल्क तथा क्वाथके साथ घृत पाक करके सेवन विधेय है। दुग्धके साथ यथासाध्य पिप्पलीका सेवन करनेसे यह रोग प्रशमित होता है। यष्टिमधुके क्वाथ और चूर्णका समान भागमें मधुके साथ लेहन, त्रिफला और लौहचूर्णका दीर्घकाल तक गोमूत्रके साथ सेवन, प्रवाल, मुक्ता, रसाञ्जन, शङ्खचूर्ण, काञ्चन और गिरिमृत्तिकालेहन, अर्द्धसेर छागविष्ठा, विट्लवण, हरिद्रा और सैन्धव प्रत्येकका एक एक पल चूर्ण मिला कर मधुके साथ लेहन, लौहमण्डूर, चित्रक, विड़ङ्ग, हरीतकी और त्रिकटु ये सब समभाग और सबके समान स्वर्णमाक्षिकको गोमूत्रके साथ पाक करके मधुसह अवलेह प्रस्तुत करे। विभीतक, लौहमल, कचूर और तिल इनके चूर्णको यथेष्ट गुड़में मिला कर गोली बनावे। पीछे तक्रके साथ उसका सेवन करे। इससे अति प्रबल पाण्डु भी जाता रहता है। सज्जीमिट्टी, हिङ्गु और चिरायता सबको मिला कर उरदके समान गोली बनावे। पीछे उष्ण जलके साथ उसे सेवन करनेसे यह रोग निवृत्त होता है। मूर्वा, हरिद्रा और आमलकीको सात दिन तक गोमूत्रमें भावित कर लेहन करना चाहिये।

वृषगन्धा और चीतेके मूलको दो तोले गरम जलके साथ अथवा सोहिंजनके बीज और लवणका दुग्धके साथ सेवन करे। न्यग्रोधादिका शीतल क्वाथ चीनी और मधुके साथ पान करे। विड़ङ्ग, मोथा, त्रिफला, अजवायन, पद्मक, त्रिकटु और मूर्वालता, इनका चूर्ण गुड़शर्करा, घृत, मधु और सारगणके क्वाथमें पाक करके लेह प्रस्तुतपूर्वक घण्टापाटलिके पात्रमें रखे। इसका सेवन करनेसे पाण्डु, कामल और शोथकी शान्ति होती है। (सुश्रुत चिकि० ४५ अ०)

भावप्रकाशके मतसे चिकित्सा—जारित लौहको गोमूत्रमें ७ दिन भावना दे कर दुग्धके साथ यथामात्रामें सेवन करनेसे पाण्डुरोग प्रशमित होता है। गोमूत्रसाधित मण्डूर गुड़के साथ खानेसे पाण्डु और परिणामशूल नष्ट होता है। मण्डूरको ७ बार सन्तप्त करके गोमूत्रके मध्य डाल कर शोधन करे। अनन्तर उसका चूर्ण, घृत और मधु मिश्रित कर लेहन करनेसे पांडुरोग चंगा हो जाता है।

इस पांडुरोगमें पुनर्णवादि मंडूर अति उत्तम औषध है। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—४८ पल मंडूरको १८२ पल गोमूत्रमें पाक करे। आसन्न पाकमें पुनर्णवादिका चूर्ण यथा—पुनर्णवा, निसोथ, त्रिकटु, विड़ङ्ग, देवदारु, चीता, कुट, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, त्रिफला, दन्ती, चई, इन्द्रयव, कटुकी, पिप्पलीमूल, मोथा, कर्कटशृङ्गी, कृष्णजीरा, अजवायन और कायफल इन सब द्रव्योंका चूर्ण एक एक पल करके २४ पल प्रस्तुत करे। पीछे गुड़के साथ गोली बना कर तक्रद्वारा आलोड़नपूर्वक पान करना होता है। इस औषधको स्वयं अश्विनीकुमारने बनाया है। इससे पांडु, कामल, हलीमक, ज्वर, कास, यक्ष्मा आदि रोग प्रशमित होते हैं। नवायसचूर्ण-सेवनसे भी यह रोग जाता रहता है।

त्रिफला, गुलञ्च अथवा दारुहरिद्रा वा निम्बके शीतकषायमें मधु डालकर सबेरे पान करनेसे कामलारोग विनष्ट होता है। त्रिफला, गुलञ्च, अडूस, चिरायता और निम्ब इसके क्वाथमें मधु डाल कर सेवन करनेसे पांडु, कामला और हलीमक दूर हो जाता है।

त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विड़ङ्ग, चई, चीता, दारुहरिद्रा, दारुचीनी, स्वर्णमाक्षिक, पिप्पलीमूल और देवदारु प्रत्येकका दो दो पल अर्थात् २८ पल ले कर पृथक् रूपसे चूर्ण करे। पीछे सभी औषधोंसे द्विगुण परिमाण शोधित अञ्जन सदृश मंडूर ५६ पल, आठ गुण अर्थात् एक मन सोलह सेर गोमूत्रके साथ पाक करे। पीछे उपरिउक्त त्रिफलादिको आसन्न पाकमें डाल कर उतार ले और दो तोलेकी गोली बनावे।

रोगीको अग्निके बलाबलके अनुसार मात्रा निर्द्धारित करके तक्रके साथ सेवन करावे। औषध जीर्ण होने पर हितकर पथ्य सेवनीय है। यह औषध पाण्डुरोगमें विशेष फलप्रद है। पाण्डुरोगीको यव, गोधूम और

शालितण्डुलकृत अन्न, जाङ्गलमांस तथा मूंग, अरहर और मसूर आदिका आहार दिया जा सकता है। (भाव प्रकाश पाण्डुरोगाधिकार)

भैषज्यरत्नावलीके पाण्डुरोगाधिकारमें लिखा है, कि चिकित्सासाध्य पाण्डुरोगमें पहले पञ्चतिक्तादि घृतका सेवन, वमन और विरेचन करावे। पीछे मधुके साथ हरीतकी चूर्ण आदिकी व्यवस्था कर दे। इस रोगमें हरिद्राका क्वाथ और कल्कमें सिद्ध त्रिफलाका क्वाथ वा कल्कमें सिद्ध विरेचक द्रव्य पक्वघृत अथवा वाताधिकारोक्त तैन्दुक घृत वा घृतके साथ विरेचक औषध सेवनीय है।

वातज पाण्डुरोगमें स्निग्ध क्रिया, पैत्तिकमें तिक्त अथच शीतल, श्लैष्मिकमें कटु और रूक्ष उष्ण तथा मिश्रपीड़ामें मिश्रित क्रिया करनी होगी।

पाण्डुरोगमें अञ्जन, नस्य, नवायसलौह, त्रिकत्रयादि लौह, पुनर्णवादि मण्डूर, पञ्चामृत लौह मण्डूर, चन्द्रसूर्यात्मकरस, प्राणवल्लभरस, पञ्चाननवटी, पाण्डुसूदन रस, त्र्यूषणादि मण्डूर, पुनर्णवा तैल, हरिद्राद्यघृत, मूर्वाद्यघृत, व्योषाद्यघृत और आनन्दोदयरस ये सब औषध पाण्डुरोगमें हितकर हैं। इन सब औषधकी प्रस्तुत प्रणाली उन्हीं सब शब्दोंमें देखो। (भैषज्यरत्ना०)

रसेन्द्रसारसंग्रहके पाण्डुरोगाधिकारमें निम्बादि लौह, धात्रीलौह, पञ्चाननवटी, प्राणवल्लभरस, त्रिकत्रयादिलौह, विड़ङ्गादिलौह, त्रैलोक्य सुन्दररस, दार्व्यादिलौह, चन्द्रसूर्यात्मकरस, पाण्डुसूदनरस, मण्डूरवज्रवटक, लध्वानन्दरस, सप्तोहलौह और त्र्यूषणादिमण्डूर ये सब औषध तथा इनकी प्रस्तुतप्रणाली लिखी है। (रसेन्द्रसारस०)

यूरोपीय पण्डितगण पाण्डुरोग (Jaundice)का विषय इस प्रकार बतलाते हैं। पित्तनिःस्रावकी अल्पता वा अवरुद्धताके कारण जब रक्तके साथ पित्त मिश्रित हो कर चक्षु, गात्रचर्म और मूत्रको पीतवर्ण कर देता है, तब उसे जण्डिस् (Jaundice) कहते हैं। किसी किसीका कहना है, कि अवरुद्धतावशतः पित्तकोष और पित्तनालीके पित्तसे परिपूर्ण हो जाने पर शिरा और लिम्फैटिक द्वारा पित्तका रंग शोषित हो कर चर्मादि पीतवर्ण हो जाता है। फिर कोई कोई कहते हैं, कि स्वभावतः शोणितमेंसे पित्तका वर्णज पदार्थ यकृत् द्वारा बहिर्गत हो जाता है। किन्तु यदि किसी कारणवश यकृत्की क्रियाका व्यतिक्रम हो जाय, तो रक्तमें क्रमशः पित्तका वर्णज पदार्थ सञ्चित हो जाता है और उसीसे चर्मादि देखनेमें पीतवर्ण लगते हैं।

इस व्याधिके उत्पन्न होनेसे चर्म, मस्तिष्क, स्नायुसमूह और यन्त्रादि पीतवर्ण हो जाता है। अवरुद्धताजनित पीड़ा होनेसे यकृत् और पित्ताधार वर्द्धित होता है। पीड़ाकी प्रथमावस्थामें मूत्र पीताभ होता है; पीछे क्रमशः चर्म पीतवर्णमें परिणत हो जाता है। ओष्ठ और दन्तमाड़ी इसी वर्णकी हो जाती है। मूत्रका भी रंग भिन्न भिन्न रंगोंमें पलट जाता। रासायनिक परीक्षा करनेसे इसमें पित्त और पित्ताम्ल पाया जाता है। मल कठिन, दुर्गन्धयुक्त और शुभ्र कर्दम-सा हो जाता है। तैलाक्त पदार्थमें अरुचि, तिक्तोद्गार आदि लक्षण देखे जाते हैं। घर्म, लार, दुग्ध और अश्रुजलमें पित्त दिखाई देता है। धीरे धीरे चर्मकण्डूयन आरम्भ होता है। अलसता, दुर्बलता, प्रलाप आदि मस्तिष्ककी विकृति भी लक्षित होने लगती है।

चिकित्सा।—अवरुद्धताजनित पीड़ा दूर करनेके लिये अन्त्र, त्वक् और मूत्रयन्त्रकी क्रिया बढ़ानेकी चेष्टा करनी चाहिये। त्वक्की क्रिया सुचारुरूपसे करनेके लिये उष्ण जलमें स्नान तथा गात्रकण्डूयन निवारण करनेके लिये जलमें एलकेलाइन् दे कर स्नान करना कर्त्तव्य है। कोष्ठ परिष्कार करनेके लिये मृदुविरेचक और खनिज जल (Mineral water)की व्यवस्था करे। लौहघटित औषध और अन्यान्य बलकारक औषध व्यवस्थेय है। पित्तनिःसारक औषधकी व्यवस्था करनी होगी। इन सब औषधोंमें ब्लुपिल, टैरेक्सेसाई, नाइट्रोम्यूरियेटिक एसिड़ डिल, पडोफिलिन, यार्इरिडिन आदि प्रधान है। यकृत्का प्रदाह रहने पर गरम जलका सेंक देना होता है। आहारार्थ तरल और बलकारक औषध व्यवस्थेय है। चरबी और शर्करायुक्त द्रव्य बिलकुल निषिद्ध है।

शातातपीय कर्मविपाकमें लिखा है, कि मेषका वध

करनेसे पाण्डुरोग होता है । "उरसे निहते चैव पाण्डुरोगः प्रजायते ॥" (शाता०) (स्त्री०) ९ माषपर्णी। १० पाण्डुवर्ण स्त्री। ११ देशभेद। (त्रि०) १२ पांडुवर्णयुक्त।

पाण्डुक (सं० पु०) पाण्डु संज्ञायां कन्। १ पाण्डुरोग। २ पाण्डु राजा। ३ पांडुवर्ण। ४ पटोल, परवल। ५ सर्जरस।

पाण्डुकण्टक (सं० पु०) पांडुवर्णानि कण्टकान्यस्य अपामार्ग।

पाण्डुकम्बल (सं० पु०) पांडुवर्णः कम्बलः कर्मधा० १ श्वेतप्रावार, राजास्तरण-कम्बलभेद, शाल। २ प्रस्तरभेद, एक प्रकारका पत्थर।

पाण्डुकम्बलिन् (सं० पु०) पांडुवर्णकम्बलेन परिवृतः पांडुकम्बल इनि (पाण्डुकम्बलादिनिः। पा ४।२।११) १ पांडुवर्ण कम्बलावृत रथ। (त्रि०) २पांडुकम्बलयुक्त।

पाण्डुकरण (सं० क्लो०) पांडुकर्म। पाण्डुकर्मन् देखो।

पाण्डुकर्मन् (सं० क्लो०) शुक्लवर्णसम्पादन सुश्रुतोक्त व्रणको उपक्रमण चिकित्साभेद, सुश्रुतके अनुसार वर्ण चिकित्साका एक अङ्ग। इसमें फोड़के अच्छे हो जाने पर उसके काले दागको औषधकी सहायतासे दूर करते और वहांके चमड़ेको फिर शरीरके वर्णका कर देते हैं।

सुश्रुतमें लिखा है, कि यदि फोड़ेके अच्छे हो जाने पर दुरूढ़ताके कारण उसके स्थान पर काला दाग हो, तो कड़वी तूंबीको तोड़ कर उसमें बकरीका दूध डाल दे और दूधमें सात दिन तक रोहिणी फल भिगोए रखे। इसके अनन्तर उस फलको गीला ही पीस कर फोड़ेके दाग पर लगावे तो वह दाग दूर हो जायगा।

पाण्डुकेश्वर—युक्तप्रदेशके कुमायूं विभागके अन्तर्गत गढ़वाल जिलेमें अवस्थित एक पुण्यस्थान। प्रवाद है, कि पांडवोंने यहां कठोर व्रतका अवलम्बन किया था, इसीसे इसका नाम पांडुकेश्वर पड़ा है। यहां योगबदरीके मन्दिरमें विष्णुपूजा होती है। यह विग्रह मनुष्यको तरह बड़ा और इसका कुछ अंश सोनेका बना हुआ है। कहते हैं, कि यह प्रतिमूर्त्ति आकाशसे पृथ्वी पर गिरी थी। योगबदरीके मन्दिरमें राजा ललित शूरदेवकी एक खोदित लिपि पाई गई है। उस लिपिमें लिखा है, कि राजा ललित शूरदेवने उत्तरायण संक्रान्तिके दिन नारायणको तीन ग्राम दान दिये थे। वह उत्तरायण संक्रान्ति मालूम पड़ता है, कि ८५३ ई०की २२वीं दिसम्बरको पड़ी थी।

पाण्डुचसा (सं० स्त्री०) हस्तिनापुरका एक नाम।

पाण्डुतरु (सं० पु०) पांडुवर्णस्तरुः कर्मधा०। धववृक्ष, धौका पेड़।

पाण्डुता (सं० स्त्री०) पांडु-भावे तल, स्त्रियां टाप्। पांडुत्व, पीलापन।

पाण्डुतीर्थ (सं० क्लो०) तीर्थभेद।

पाण्डुदुकूल (सं० क्लो०) पाडुवर्णं दुकूलं। पांडवर्णदुकूल।

पाण्डुनाग (सं० पु०) पांडुवर्णः नाग इव, वा नाग इव पांडुरिति राजदन्तादिवत् समासः। १ पुन्नागवृक्ष। २ श्वेतहस्ती, सफेद रंगका हाथी। ३ श्वेत सर्प, सफेद रंगका सांप।

पाण्डुपञ्चाननरस (सं० पु०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—लौह, अभ्र और ताम्र प्रत्येक एक पल। त्रिकटु, त्रिफला, दन्तीमूल, चई, कृष्णजीरा, चीतामूल, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, निसोथमूल, मानमूल, इन्द्रयव, कुटकी, देवदारु, वच, मोथा, प्रत्येक २ तोला कुल जितना हो उससे दूना मंडूर, मंडूरसे ८ गुन गोमूत्र। पहले गोमूत्रमें मंडूरपाक करे। पाक सिद्ध हो जाने पर लौह और अभ्र आदि द्रव्य उसमें डाल दे। यही पाण्डुपञ्चाननरस है। इसका अनुपान उष्ण जल बतलाया गया है। सवेरे उठ कर इस औषधका सेवन करनेसे पांडु, हलीमक आदिरोग जाते रहते हैं। पांडुरोगाधिकारमें यह एक उत्तम औषध है। (भैषज्यरत्ना० पांडुरोगा०)

पाण्डुपत्री (सं० स्त्री०) पांडुपत्रमस्य इति जातित्वात् ङीष्। रेणुका नामक गन्धद्रव्य। पर्याय—राजपुत्री, नन्दिनी, कपिला, द्विजा, भस्मगन्धा, कौन्ती, हरेणुका।

पाण्डुपुत्र (सं० पु०) पांडुके पुत्र, पाण्डव।

पाण्डुपुत्रा (सं० स्त्री०) ककटिका, ककड़ी।

पाण्डुप्रहारिणी (सं० स्त्री०) शिग्रुवृक्ष।

पाण्डुपृष्ठ (सं० त्रि०) पांडु पृष्ठं यस्य। १ पांडु वर्ण पृष्ठयुक्त, जिसकी पीठ सफेद हो। २ अकर्मण्य, निकम्मा।

पाण्डुफला (सं० पु०) पाण्डूनि फलानि यस्य। १ पटोल, परवल। स्त्रियां टाप्। २ चिभिंटा।

पाण्डुफूल (सं० पु०) परवल।

पाण्डुभाव (सं० पु०) पांडुता।

पाण्डुभूम (सं० त्रि०) पांडुभूमिरत्र (कृष्णोदकपाण्डु-संख्यापूर्वाया भूमेरजिष्यते। पा ५।४।७५) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या अच् समास: । पांडुवर्ण भूमियुक्त देश।

पाण्डुमत्स्य (सं० पु०) शुक्लमत्स्य, सफेद मछली।

पाण्डुमृत्तिक (सं० त्रि०) पांडु: मृत्तिका यत्र। पांडु वर्ण मृत्तिकायुक्त।

पाण्डुमृत्तिका (सं० स्त्री०) १ श्वेतखरी, खड़िया, दुधिया मट्टी। २ रामरज, पीली मट्टी।

पाण्डुमृत् (सं० स्त्री०) पांडु: पांडुवर्णा मृत् मृत्तिका यत्र। १ पांडुभूमि। २ घटी, घड़ी।

पाण्डुसिवास—बम्बईप्रदेशके रेवाकान्य विभागके अन्तर्गत २६ क्षुद्रराज्योंका नाम। परिमाणफल १४७ वर्ग मील है। जलवायु स्वास्थ्यकर है। इसके मध्य धान, ईख और जुन्हरी प्रधान हैं।

पाण्डुर (सं० पु०) पाण्डुरस्यास्तीति (नगपांशु पाण्डुभ्यश्च। पा ५।२।१०७) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या र। १ श्वेतपीत मिश्रितवर्ण। २ श्वेतवर्ण, सफेद रंग। ३ कामला रोग। ४ श्वित्ररोग। ५ माषपर्णी। ६ धववृक्ष, धोका पेड़। ७ धवलयावनाल, सफेद ज्वार। ८ कपोत, कबूतर। ९ मरुवकवृक्ष। १० शुक्लखड़ी, सफेद खड़िया। ११ वक, बगला। १२ सितोदपर्वतके पश्चिममें अवस्थित पर्वतभेद। १३ श्वेतकुष्ठ, सफेद कोढ़। १४ कार्त्तिकेयके एक गणका नाम। (त्रि०) १५ पीला, जर्द। १६ श्वेत, सफेद।

पाण्डुरङ्ग (सं० पु०) १ पटरङ्ग, एक प्रकारका साग। यह वैद्यकके अनुसार तिक्त और लघु तथा क्रमि, श्लेष्मा और कफको नाश करनेवाला माना जाता है। २ विष्णुका अवतारभेद। इस नामकी विष्णुमूर्त्तिका कोलापुरके अन्तर्गत पण्टरी नामक स्थानमें पूजन होता है। इसी मूर्त्तिके नामसे 'पण्टरी' ग्रामका पांडुरङ्ग नाम पड़ा है। स्कन्दपुराणीय पांडुरङ्गमाहात्म्यमें इस स्थान और उक्त देवताका माहात्म्य वर्णित है।

पाण्डुरङ्ग—१ पञ्चरत्नप्रकाश नामक संस्कृतग्रन्थके रचयिता। २ 'अद्वैतजलजात' नामक संस्कृत ग्रन्थकार। इनके पिताका नाम नारायण था। किसीका मत है, कि आनन्दतीर्थ विरचित विष्णुतत्त्वनिर्णयको 'विष्णुतात्पर्यनिर्णय' नामक जो टीका है, वह इन्हींकी बनाई हुई है।

पाण्डुरच्छद (सं० पु०) श्वेतकवृक्ष।

पाण्डुरता (सं० स्त्री०) पाण्डुर-भावे तल्, टाप्। पाण्डुरका भाव वा धर्म।

पाण्डुरद्रुम (सं० पु०) कुटजवृक्ष, कुड़ेका पेड़, कुरैया।

पाण्डुरपृष्ठ (सं० त्रि०) पांडुरं पृष्ठं यस्य। दुर्लक्षणरूप, पांडुर पृष्ठयुक्त, जिसकी पीठ सफेद हो।

पाण्डुरफली (सं० स्त्री०) पांडुरं फलं यस्याः ङीप्। क्षुद्र क्षुपभेद, एक छोटा क्षुप।

पाण्डुरा (सं० स्त्री०) १ माषपर्णी, मषवन। २ शुक्लयूथिकावृक्ष। ३ कर्कटिका, ककड़ी।

पाण्डुराग (सं० पु०) दमनक क्षुप, दौना।

पाण्डुरागप्रिय (सं० पु०) वकुलवृक्ष, मौलसिरीका पेड़।

पाण्डुरेक्षु (सं० पु०) पांडुर: पांडुरवर्ण: इक्षुः कर्मधा०। श्वेत इक्षु, सफेद ईख।

पाण्डुरोग (सं० पु०) स्वनामख्यात रोग। पाण्डु देखो।

पाण्डुलिपि (सं० पु०) पांडुलेख, लेख आदिका वह पहला रूप जो काट छाँट या घटाने बढ़ाने आदिके लिये तैयार किया जाय, मसौदा।

पाण्डुलेख (सं० पु०) पांडुलिपि, मसौदा।

पाण्डुलोमशा (सं० स्त्री०) पाण्डूनि लोमानीव अङ्गान्यस्त्यस्याः। १ माषपर्णी मषवन। (त्रि०) २ पांडुवर्णलोमयुक्त, जिसके रोएं सफेद हों।

पाण्डुलोमा (सं० स्त्री०) पाण्डूनि लोमानीव अङ्गान्यस्त्यस्याः। १ माषपर्णी, माषवन। (त्रि०) २ पाँडुवर्ण-लोमयुक्त, जिसके रोएं सफेद हों।

पाण्डुवा (सं० पु०) वह जमीन जिसकी मीट्टीमें बालू

भी मिला हो, बलुई मट्टीवाली जमीन, दोमट जमीन।

पाण्डुशर्करा (सं० स्त्री०) पाण्डुः शर्करा इव यस्यां रोगावस्थायां। रोगविशेष, एक प्रकारका प्रमेह।

पाण्डुशर्मिला (सं० स्त्री०) द्रौपदी।

पाण्डुसोपाक (सं० पु०) प्राचीन कालकी एक वर्णसंकर जाति। इसकी उत्पत्ति मनुके अनुसार वैदेही माता और चण्डाल पितासे है। कहते हैं, कि इस जातिके लोग बांसकी चोजें दौरियां, टोकरे आदि बना कर अपना निर्वाह करते थे।

"चण्डालात् पाण्डुसोपाकस्त्वक्सारव्यवहारवान्।"

(भा० १२।६८।२६)

पाण्डुसूदनरस (सं० पु०) पाण्डुरोगनाशक औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, ताम्र, जयपाल और गुग्गुलके समान भागको घीके साथ मर्दन कर गोली बनावे। इस गोलीका प्रतिदिन सेवन करनेसे पाण्डुरोग अतिशीघ्र प्रशमित होता है। इसमें शीतल जलपान और अम्लाहार निषेध है।

पाण्ड्य (सं० पु०) पाण्डुः देशोऽभिजनोऽस्य तस्य राजा वा डयन्। १ पाण्डुदेशवासी। २ पाण्डुदेशके राजा। वृहत्संहितामें यह देश दक्षिणकी ओर निर्दिष्ट हुआ है। (वृहत्सं० १४ अ०)

पाण्ड्य दाक्षिणात्यके दक्षिणसीमास्थित समुद्रकूलवर्त्ती एक प्राचीन राज्य है। यह प्राचीन द्राविड़का सर्वदक्षिण अंश है। वर्त्तमान तिरुवाङ्कुड़ और मन्द्राजके दक्षिण, कोचीन राज्यके पूर्व तथा यहांके मनार उपसागरके उत्तर जो विस्तीर्ण भूभाग है, वही एक समय प्राचीन पाण्ड्यदेश कहाता था।

पाण्ड्यदेश अति प्राचीनकालसे भारतीय आर्यों के निकट परिचित है। पाणिनिकी अष्टाध्यायीमें इस जनपदका उल्लेख है। रामायणके समय इस प्रदेशके एक ओर केरल और दूसरी ओर चोल जनपद विस्तृत था।

रामायणसे जाना जाता है, कि इस प्रदेशमें चित्र-चन्दनवन द्वारा समाच्छन्ना और प्रच्छन्नह्रोपवारि-विशिष्टा ताम्रपर्णीनदी प्रवाहित थी, पांड्यनगर प्राकार द्वारा परिवेष्टित था। इसका पुरद्वार मुक्तामणि विभूषित और सुवर्णनिर्मित् कपाट द्वारा अलङ्कृत था। इसके बाद ही समुद्र विस्तृत था।

महाभारतमें लिखा है, "युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञ-कालमें चोलराज और पांड्यराज मलयगिरिसे हेमकुम्भ-समास्थित चन्दनरस, दर्दुरगिरिसे चन्दनागुरुसम्भार, समुज्ज्वल मणिरत्न और सुवर्णखचित सूक्ष्मवस्त्र आदि संग्रह कर उपस्थित तो हुए थे, पर वे द्वारलाभ कर न सके।"

"मलयाद्दर्दुराच्चैव चन्दनागुरुसञ्चयान्।
मणिरत्नानि भास्वन्ति काञ्चनं सूक्ष्मवस्त्रकम्॥
चोलपांड्यावपि द्वारं लेभाते न ह्युपस्थितौ।"

(महाभारत २।५१।३४-३५)

महाभारतके उक्त वर्णनसे जाना जाता है, कि उस समय पाण्ड्यदेशमें कोई भी आर्यराज राजत्व नहीं करते थे। यदि वैसा होता, तो वे कदापि इन्द्रप्रस्थके द्वार परसे लौट नहीं आते। पर हां, यह स्थान बहुत प्राचीन कालसे ही किसी समृद्धिशाली जाति द्वारा शासित होता था, इसका रामायणसे हम लोगोंको पता लगता है। किसी किसी पाश्चात्य ऐतिहासिकका विश्वास है, कि पुराणमें जिस द्राविड़ और चोलजातिका उल्लेख है, वही पाण्ड्य समझी जाती है। किन्तु पाण्ड्य और चोल जो स्वतन्त्र जनपद है, वह उपरोक्त महाभारत और रामायणसे प्रमाणित होता है। प्राचीन शिलालिपिसे जाना जाता है, कि चोलदेशकी राजधानी काञ्ची और पाण्ड्य देशकी राजधानी मथुरापुरी (मदुरा) किसी समय रामेश्वरमें थी।

ष्ट्राबो, प्लिनी, प्लूटार्क आदि पाश्चात्य ऐतिहासिकोंके वर्णनसे भी प्राचीन पाण्ड्यराज्यके सम्बन्धमें कुछ कुछ जाना जाता है।

ष्ट्राबो और इउसीबियसने लिखा है, कि (रोमक-राज) अगस्तस सीजर जिस समय अन्तिवक नगरमें रहते थे, उस समय उनके निकट पाण्डियन्‌राजने दूत भेजा था। रोमाधिपतिको पाण्ड्यराजने यह कह कर पत्र लिखा, कि वे ६०० राजाओंके ऊपर कर्त्तृत्व करते और अगस्तसके साथ मित्रता करना चाहते हैं। शर्मणचेगस (Zarmanochegus = छागशर्मा) नामक भरोच (Baragaza)-वासी एक व्यक्ति वह पत्र ले कर गये थे। वे अगस्तसके साथ एथेन्स नगर पहुंचे। यहां उन्होंने कलयान (Calanas)-की तरह रोमक

सम्राट‌्के सामने चितामें बैठ कर शरीर परित्याग किया। उनका समाधिस्थान प्लुटार्कके समय तक 'भारतीय समाधि' नामसे प्रसिद्ध था। मेगास्थनीजने 'पाण्डियन्' (Pandion), पेरिप्लसने पांडिमण्डल (Pandimandal) और टलेमीने Pandionis Mediterranea तथा Modura Regia Pandionis नामोंसे इस राज्यका उल्लेख किया है। टलेमिकथित Modura आज भी 'मदुरा' नामसे प्रसिद्ध है। पेरिप्लसने लिखा है, कि कुमारी (Comari) और कुमारीके निकटवर्त्ती कोलखी (Kolkhi) आदि स्थान पाँडियनराजके अधीन थे। पेरिप्लसके समय मलवार उपकूलसे ले कर मदुरा और तिन्नेवेली तकके सभी स्थान पांड्यराजके अन्तर्गत रहे तथा कोलखै नगर मुक्ता आहरणके लिये प्रसिद्ध था।

उपनिवेश शब्द देखो।

मदुराके समीप नदीगर्भमें रोमकोंकी अनेक ताम्र-मुद्रा पाई गई हैं। इससे बहुतोंका अनुमान है, कि मदुरामें रोमकोंने उपनिवेश स्थापन किया था।

पूर्वकालमें रोमकोंके साथ पश्चिम-भारतका जो विस्तृत वाणिज्य चलता था, उसमें सन्देह नहीं। पांड्यराज्यके मध्य कोलखै एक प्रधान वाणिज्य स्थान समझा जाता था।

पांड्य जो एक अति प्राचीन राज्य था, उसका प्रमाण सिंहलदेशीय महाकाव्य महावंश नामक ग्रन्थमें भी मिलता है। इस ग्रन्थका प्रथमांश महानाम द्वारा ४५८से ४७७ ई०के मध्य रचा गया। इस ग्रन्थके अनुसार सिंहल देशके प्रथम राजा विजयने पांड्यराज-कन्याका पाणिग्रहण किया था।

देशीय और विदेशीय प्राचीन ग्रन्थोंमें कई जगह पांड्यराज्यका उल्लेख रहने पर भी पांड्यराजाओंका धारावाहिक इतिहास नहीं मिलता। दाक्षिणात्यके इतिहास-लेखकोंने कितनी ही आख्यायिकाओंसे राजाओंकी जो तालिका दी है उसे ऐतिहासिक नहीं मान सकते। उसकी गिनती आख्यायिकामें की गई। लेकिन उनमेंसे जो ऐतिहासिक सत्य है, उसीकी तालिका यहां दी जाती है:*—

१। कुलशेखर, ये चन्द्रवंशीय और मदुराके प्रतिष्ठाता थे।

२। मलयध्वज—चोलराज सुरसेनकी कन्या काञ्चनमालाके साथ इनका विवाह हुआ था। इनके एक भी पुत्र न था, केवल ततातकै नामकी एक कन्या थी।

३। ततातकै—कहते हैं, कि इनका सुन्दर नामक छद्मवेशी शिवके साथ विवाह हुआ था। किसीका कहना है, कि सिंहलके राजा विजयने इनको ब्याहा था। ये मीनाक्षी और इनके स्वामी सुन्दर नामसे आज भी मदुरामें पूजित हैं।

४। उग्रपाण्ड्य (हारधारी)—काञ्चीपुरके चोलराज सोमशेखरकी कन्या कान्तिमतीको इन्होंने ब्याहा था। इस समय पांड्य, चोल और चेर राजाओंके मध्य अच्छा सद्भाव था।

५ वीर पांड्य।

६। अभिषिक्त पांड्य।

७। विक्रम पांड्य—इनके समयमें चोलोंने जैन धर्मका अवलम्बन और मदुरा पर आक्रमण किया था।

८। राजशेखरपांड्य—विद्वान् और दीर्घजीवी थे।

९। कुलोतुङ्ग पांड्य।

१०। अनन्तगुण पांड्य—इनके शासनकालमें जैनोंने पुनः मदुरा पर आक्रमण किया।

११। कुलभूषण पांड्य—इनके समयमें चैदिदेशनिवासी एक शबरने मदुरा पर आक्रमण और अवरोध किया। किन्तु वे सिंहसे मारे गये और राजधानी शत्रुके हाथ जाने न पाई। चोलोंने शैवधर्म अवलम्बन किया था। पांड्योंके साथ उनका उतना सद्भाव नहीं था।

१२। राजेन्द्र पांड्य—चोल और पांड्योंके मध्य अत्यन्त सद्भाव था। किन्तु जबसे राजसिंहने प्रवञ्चना करके चोलराज-कन्याको ब्याहा था, तबसे दोनोंकी नहीं पटती थी। चोलोंने पांड्यराज्य पर आक्रमण किया, किन्तु वे ही परास्त हुए।

१३। राजेश पांड्य।

१४। राजगम्भीर पांड्य।

१५। पांड्यवंशप्रदीप पांड्य।

* तालिकामें पुत्रानुक्रमसे नाम लिखा गया है।

१६। पुरुहूत पांड्य।

१७ पांड्यवंशपताका पांड्य।

१८। सुन्दरेश्वर पादशेखर पांड्य—इन्होंने अनेक मन्दिर बनवाये। इनके समयमें चोलोंने पांड्यराज्य पर आक्रमण किया। पांड्यराजने पराजित हो कर मदुरा नगरमें शरण ली। किन्तु चोलाधिपति दुर्गके एक गढ़ेमें गिर कर पञ्चत्वको प्राप्त हुए और उनकी सेना नगरका अवरोध परित्याग कर वापिस चली गई।

१९। वरगुण पांड्य—इन्होंने चोल और तोण्ड-मण्डलको मदुराराज्यभुक्त किया। विख्यात गायक भद्र इन्होंके समयमें वर्त्तमान थे। चोलोंने जब पांड्यराज्य पर चढ़ाई करना चाहा, तब वरगुणने उन्हें आक्रमण करके परास्त किया और चोलराज्यमें मार भगाया। भद्र चेरराजके निकट भेजे गये और उन्हें वहां बहु-मूल्य उपढौकन मिले।

२०। राजराज पांड्य।

२१। सुगुण पांड्य।

२२। चित्रव्रत पांड्य।

२३। चित्रभूषण पांड्य।

२४। चित्रध्वज पांड्य।

२५। चित्रवर्मा पांड्य।

२६। चित्रसेन पांड्य।

२७। चित्रविक्रम पांड्य।

२८। राजमार्त्तण्ड पांड्य।

२९। राजचूड़ामणि पांड्य।

३०। राजशार्दूल पांड्य।

३१। द्विजराज कुलोतुङ्ग पांड्य।

३२। आयुध प्रवीण पांड्य।

३३। राजकुञ्जर पांड्य।

३४। परराज भयङ्कर पांड्य।

३५। उग्रसेन पांड्य।

३६। महासेन पांड्य।

३७। शत्रुञ्जय पांड्य।

३८। भीमरथ पांड्य।

३९। भीमपराक्रम पांड्य।

४०। प्रतापमार्त्तण्ड पांड्य।

४१। विक्रमकञ्चुक पांड्य।

४२। युद्धकोलाहल पांड्य।

४३। अतुलविक्रम पांड्य।

४४। आतुलकीर्त्ति पांड्य।

४५। कीर्त्तिविभूषण पांड्य—इनके शासनकालमें महाप्रलय उपस्थित हुआ था जिससे सभी मनुष्य विध्वंस हुए थे। मदुराके यह राजवंश अपनेको चन्द्रवंशोद्भव बतलाते थे। इससे जाना जाता है, कि मदुरामें कोई नूतन वंश राज्य करते थे और वे अपनेको सिंहासन पर दृढ़ करनेके लिये पुरातन वंशोद्भव कहा करते थे।

४६। वंशशेखर पांड्य—इन्होंने मदुरा नगरको शत्रुके हाथसे बचानेके लिये चारों ओर खाई खुदवाई और दुर्ग निर्माण किये। चोलराज विक्रमने पांड्य-राज्य पर आक्रमण किया, किन्तु पराजित हो कर वे लौट जानेको बाध्य हुए। काव्यशास्त्रकी उन्नतिके लिये इन्होंने तामिल विद्यालयका संस्थापन किया।

४७। वंशचूड़ामणि पांड्य।

४८। प्रतापशूरसेन पांड्य।

४९। वंशध्वज पांड्य।

५०। रिपुमर्द्दन पांड्य।

५१। चोलवंशान्तक पांड्य।

५२। चेर-वंशान्तक पांड्य।

५३। पांड्यवंशेश पांड्य।

५४। वंशचूड़ामणि पांड्य।

५५। पांड्येश्वर पांड्य।

५६। कुलध्वज पांड्य।

५७। वंशविभूषण पांड्य।

५८। सोमचूड़ामणि पांड्य।

५९। कुलचूड़ामणि पांड्य।

६०। राजचूड़ामणि पांड्य।

६१। भूपचूड़ामणि पांड्य।

६२। कुलेशपांड्य—ये विद्वान् थे, पर अत्यन्त गर्वित थे।

६३। अरिमर्दन पांड्य—इनके सुचतुर मन्त्री माणिक्यने किसी द्वीपसे आगत जैनोंको तर्कवितर्कमें परास्त किया था। काञ्चीके चोलराजने जैन धर्मका

परित्याग किया। उनके आदेशसे चोलनिवासी जैन कोल्हू में पीस डाले गये।

६४। जगन्नाथ पांड्य।

६५। वीरबाहु पांड्य।

६६। विक्रम पांड्य।

६७। सुरभि पांड्य।

६८। कुङ्कुम पांड्य।

६९। कर्पूर पांड्य।

७०। कारुण्य पांड्य।

७१। पुरोत्तम पांड्य।

७२। शत्रुशासन पांड्य।

७३। कुब्ज या सुन्दर पाण्ड्य। कुब्ज तामिलभाषामें कून वा सुन्दरपाण्ड्य नामसे विख्यात हैं। इन्होंने चोलराजको परास्त कर उनकी कन्या वनितेश्वरीका पाणिग्रहण किया और चोलराजमन्त्रीको अपना प्रधान मन्त्री बनाया। पाण्ड्यराजके जैनधर्म अवलम्बन करने पर उनकी स्त्रीने विख्यात शैवपुरोहित ज्ञानसम्बन्धमूर्त्तिको बुलवाया। इस शैवपुरोहितकी अनुकम्पासे राजाने जैनधर्मका परित्याग किया और उस समय जितने जैन थे, सबोंको मरवा डाला। इन्होंने चोलराज्य तथा तञ्जोर और उरैयुर नगरको भस्मसात् किया। इनके शासनकालमें मदुरामें अरबदेशीय लोग रहते थे।

७४। वीरपाण्ड्य चोल—इन्होंने चोलदेशमें राज्य करना आरम्भ किया। ये पाण्ड्यदेशके प्राचीन राजवंशके शेष राजा थे।

कुन वा सुन्दर पांड्यके सम्बन्धमें ऐतिहासिकोंके मध्य नाना प्रकारके मतभेद हैं, किन्तु इस छोटे प्रबन्धमें उनका विचार करना असम्भव है। लेकिन इस सम्बन्धमें इतना तो अवश्य कहा जा सकता है, कि सुन्दर पांड्य नामक कई एक राजाओंने राज्य किया था और इसका प्रमाण भी मिलता है। राजेन्द्र कुलोत्तुङ्ग चोलके छोटे भाईने अपना नाम सुन्दर पांड्य रखा था। वे ग्यारहवीं शताब्दीके शेष और बारहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें जीवित थे। अमीरखुशरू आदि मुसलमान ऐतिहासिकोंने ऐसा उल्लेख किया हैं, कि १३११ ई०में मदुरामें सुन्दर पांड्य नामक एक राजा राज्य करते थे। इनके अलावा और भी कितने राजाओंके नाम सुन्दर-पांड्य थे, इसमें सन्देह नहीं। मार्कोपोलोने अपने जल-यात्रावर्णनके समय जो 'सेन्दरबुन्दि' (Sender Bundi) नामक उल्लेख किया है, उससे सुन्दर पांड्यका ही बोध होता है। चिदम्बरमें जो खोदित लिपि है उसमें लिखा है, कि राजेन्द्र वा कोप्परकेशरीवर्माने पांड्यराज्य जीतनेके बाद अपने कनिष्ठ भ्राता गङ्गै-कोण्डनचोलको वहांका राजा बनाया और उनका नाम 'सुन्दर पांड्यचोल' रखा। पांड्यवंशके शेष राजा निःसन्तान थे तथा उनके मरने पर उनके जारज पुत्रोंमें विवाद खड़ा हुआ और जिसने जहां सुविधा पाई उसने वहीं अपना अधिकार जमा लिया।

किसी किसी पुरातत्त्वविद्‌का कहना है, कि पांड्यदेशमें कुल ४१ राजा राज्य करते थे जिनकी तालिका नीचे दी जाती है। श्रीताल नामक ग्रन्थके साथ टेलर साहबकी प्रकाशित हस्तलिखित पुस्तककी तालिका मिला कर देखनेसे मालूम पड़ता है, कि पहले २४ और अन्तिम राजाका नाम ठीक दिया गया है। किन्तु इन ४१ राजाओंकी तालिकामें कुछ भ्रम रह सकता है। क्योंकि खोदित लिपिमें जो सब नाम पाये गये हैं उनके साथ इस तालिकाके नाम नहीं मिलते।

१। सोमशेखर पांड्य। इस राजपुत्रने अन्तमें पांड्यसिंहासन पर अधिकार किया, वह सर्ववादि-सम्मत है। इन्होंने २० वर्ष राज्य किया।

२। कर्पूरसुन्दर पांड्य।

३। कुमारशेखर पांड्य।

४। कुमारसुन्दर पांड्य।

५। सुन्दरराज पाण्ड्य।

६। चपम खराज पांड्य।

७। मेरुसुन्दर पांड्य। इस राजाने चोल और चेर-राज्यको अपने अधीन कर लिया था।

८। इन्द्रवर्म पांड्य। इन्होंने चोलराजको कारागारसे छुड़ा कर स्वराज्यमें बसाया और उनकी कन्यासे विवाह कर लिया।

९। चन्द्रकुलदीप पांड्य।

१०। मीनकेतन पांड्य।

११। मोनध्वज पांड्य। इन्होंने चोलराज-कन्याका पाणिग्रहण किया। चोलराजके कोई सन्तानादि न रहनेके कारण इन्होंके छोटे लड़के चोलदेशमें राज्य करने लगे।

१२। मकरध्वज पांड्य। ये दिग्विजयी थे।

१३। मार्त्तण्ड पांड्य।

१४। कुवलयानन्द पांड्य। ये समुद्रमें बहुत दूर तक वाणिज्य करते थे और वाणिज्य द्वारा ही इन्होंने प्रचुर धन कमा लिया था। किन्तु दैवदुर्योगसे समुद्रमें ही इनके प्राण निकले। इनके एक कन्या थी जिसका विवाह कुण्डल पांड्यसे हुआ था।

१५। कुण्डल पाण्ड्य। इन्होंने मदुराका शासन करनेमें अनिच्छा प्रकट की।

१६। शत्रुभीकर पाण्ड्य।

१७। शत्रुसंहार पाण्ड्य।

१८। वीरवर्मा पाण्ड्य। इन्होंने मलयालदेश फतह किया।

१९। वीरबाहु पाण्ड्य।

२०। मुकुटवर्द्धन पांड्य। ये चोलोंके साथ युद्धमें मारे गये।

२१। वज्रसिंह पांड्य।

२२। वर्मकुलोत्तुङ्ग पांड्य—इन्होंने चोलोंको परास्त किया।

२३। अति वीरराम पांड्य। इन्होंने चोलोंकी सहायतासे अनेक देश जीते थे।

२४। कुलवर्द्धन पांड्य।

२५। सोमशेखर पांड्य।

२६। सोमसुन्दर पांड्य।

२७। राजराज पांड्य।

२८। राजकुञ्जर पांड्य।

२९। राजशेखर पांड्य।

३०। राजवर्म पांड्य।

३१। रामवर्म पांड्य।

३२। भरतराज पांड्य।

३३। कुमारसिंह पांड्य।

३४। वीरसेन पांड्य।

३५। प्रतापराज पांड्य।

३६। वीरगुणराज पांड्य।

३७। कुमारचन्द्र पांड्य।

३८। वरतुङ्ग पांड्य।

३९। चन्द्रशेखर पांड्य।

४०। सोमशेखर पांड्य।

४१। पराक्रम पांड्य—कहते हैं, कि इन्होंने कितने वैदेशिकोंको युद्धमें परास्त कर सिंहासन पर अधिकार जमाया था। इनके पहले देशमें अराजकता फैली हुई थी। ये मुसलमान सेनापति मालिक नायेब (मालिक काफुर) द्वारा देशसे निकाल दिये गये।

ऊपर जो ४१ राजाओंकी तालिका दी गई है, वह उतनी भ्रान्तिमूलक प्रतीत नहीं होती। जो कुछ हो, खोदित लिपि और वैदेशिक ग्रन्थकारोंसे क्या संग्रह किया जा सकता है, वही देखना चाहिये। सिंहलदेशीय इतिहासमें लिखा है, कि ८४० ई०में पाण्ड्यराजने सिंहलकी राजधानी पर आक्रमण किया, किन्तु प्रचुर अर्थ पा कर वे स्वदेश लौट गये। इसके कुछ दिन बाद पांड्यराजपुत्र विद्रोही हुए और सिंहलवासियोंकी सहायतासे मदुरा नगर पर अधिकार जमाया तथा उसे अच्छी तरह लूटा भी।

चोलाधिपति राजराज (१०२३-१०६४) और राजेन्द्रकुलोत्तुङ्गके (१०६४-१११३) शासनकालमें सिंहलवासियोंके साथ चोलोंका अनेक बार युद्ध हुआ। सिंहलदेशके इतिहासमें पांड्योंका कोई उल्लेख नहीं रहनेके कारण ऐसा अनुमान किया जाता है, कि पांड्यराज्य इस समय सम्पूर्णरूपसे चोलोंके अधीन था। १०६४ ई० पांड्यदेशके प्राचीन राजवंशके शेष राजाका शासनकाल है, ऐसा बहुतेरे अनुमान करते हैं। लेकिन यह कहां तक सत्य है, कह नहीं सकते। पर हां, चिदम्बरमें जो खोदित लिपि है, उसके पढ़नेसे जाना जाता है, कि चोलराज राजेन्द्रने पांड्यदेशके राजा विक्रमपांड्यके पुत्र वीरपांड्यको परास्त करके पांड्यराज्य अधिकार किया था। इस खोदित लिपिमें राजेन्द्रका नाम 'कोप्परकेशरी' लिखा है। राजा राजेन्द्रके सम्बन्धमें और भी कितनी खोदित लिपियां पांड्यराज्यकी शेष

सोमा कुमारिका अन्तरीपके निकट एक पुरातन मन्दिर-में पाई गई हैं। इससे पांड्यराज्य किस प्रकार निस्तेज हो गया था, यह जाना जाता है। राजेन्द्र चोलके राजत्वके पहले सिंहलद्वीपमें तरह तरहका गोलमाल उपस्थित हुआ। चतुर्थ मिहिन्दु (महेन्द्र) १०२३ ई०-में सिंहासन पर बैठे। इस समय सिंहलद्वीपमें वास करनेके लिये इतने मनुष्य इकट्ठे हुए, कि १०२३ ई०में उन्होंने ही प्रधानता लाभ की और मिहिन्दु भाग जाने-को वाध्य हुए। इसके २६ वर्ष बाद अर्थात् १०५८ ई०में चोलोंने राजा मिहिन्दुको कैद कर भारतवर्ष भेज दिया और सिंहलद्वीपका शासन करनेके लिये एक चोलराज-प्रतिनिधिको नियुक्त किया। राजेन्द्रचोलकी मृत्युके बाद १०७१ ई०में सिंहल-राजपुत्र वीरवाहुने बहुत कष्टसे चोलोंको मार भगाया और स्वदेशमें फिरसे स्वाधीनता स्थापित की। इस समय सिंहलद्वीपके भिन्न भिन्न अंशोंमें विक्रमपाण्ड्य, जगत्पांड्य, पराक्रमपांड्य आदि नामोंके कितने पांड्यराजाओंने राज्य किया।

पाण्ड्यदेशके राजा कुलशेखरने सिंहलाधिपति परा-क्रमवाहुके शत्रुओंकी सहायता की थी, इस कारण पराक्रमवाहुने शत्रुओंका दमन करके पाण्ड्यराजके विरुद्ध युद्धयात्रा की और रामेश्वर तथा उसके निकट-वर्त्ती स्थान जीत लिये। पांड्यराज सिंहासनच्युत हुए और उनकी जगह पर उनके पुत्र वीरपांड्य बिठाए गये। कुलशेखर चोलोंकी सहायतासे पुनः सिंहासन पानेकी कोशिश करने लगे, किन्तु उनका मनोरथ पूरा न हुआ। वे सम्पूर्णरूपसे पराजित हुए और अन्तमें आत्मसमर्पण करनेको वाध्य हुए। पराक्रमवाहुने उन पर दया दरसाते हुए उन्हें स्वराज्य पर प्रतिष्ठित किया और चोलराज्यका जो अंश सिंहलवासियोंने जीत लिया था उसे दिलवा दिया। यह घटना ११७१ वा ११७३ ई०में हुई थी। इसका प्रमाण सिंहलद्वीपमें दम्बूल नामक स्थानकी खोदित लिपिसे मिलता है। उस लिपि-में यह भी लिखा है, कि पराक्रमवाहुने रामेश्वरमें निःशङ्केश्वरका मन्दिर बनवाया और कुछ काल तक वहीं वास किया।

कुछ वर्ष पहले मदुरा जिलेके तिरुमङ्गल तालुकमें जो सब खोदित लिपियां पाई गई हैं उनमें लिखा है, कि कुलशेखर १२०० ई०में पांड्य सिंहासन पर बैठे और १२१३ ई० तक उन्होंने राज्य किया। पराक्रम-वाहुका जिस समय शासन आरम्भ हुआ था, वह समय यदि ठीक हो, तो जो कुलशेखर पराक्रमवाहुसे पराजित हुए वे इनके उत्तराधिकारी थे, ऐसा अनुमान किया जाता है।

प्रसिद्ध भ्रमणकारी मार्को पोलोने मदुराराज्यके सम्बन्धमें जो लिखा है उसे पढ़नेसे जाना जाता है, कि १२९२ ई०में सुन्दर पांड्यदेव मदुरामें राज्य करते थे। मुसलमान इतिहासवेत्ता वासफ और खुशरूके मतसे सुन्दरपांड्यका १२९३ ई०में देहान्त हुआ।

उक्त दो इतिहासवेत्ताके मतानुसार "कलेशदिवर" (कुलशेखरदेव)ने ४० वर्षसे ज्यादा दिन तक राज्य किया और १३१० ई०में वे अपने पुत्र सुन्दरसे मार दिये गये। पितृहन्ता सुन्दरने १३१० ई०में मदुराके सिंहासन पर बैठ कर अपने भाई वीरको परास्त किया। पीछे जब वीरने भी मनारवर्मूलकी सहायतासे उन्हें पराजय किया, तब वे जान ले कर दिल्लीको भागे। इस प्रकार वीरने सिंहासन प्राप्त किया; किन्तु अलाउद्दीन खिलजीके सेनापति मालिक काफुरने वीरको परास्त कर मदुराको अच्छी तरह लूटा। सुन्दरने अरोकला नामक स्थान मुसलमानोंको छोड़ दिया। इसके अनन्तर नाना प्रकारका गोलमाल उपस्थित हुआ। चोलराज्य ध्वंस-प्राय हो गया और विजयनगर राज्यके समुत्थान तक देशमें अराजकता फैली रही। इस समय प्राचीन पांड्य राज्य विपर्यस्त हो गया था, इसमें सन्देह नहीं।

पांड्यदेशमें जिन सब मुसलमान राजाओंने राज्य किया था, उनकी तालिका नीचे दी जाती है।

मालिक नायबकाफुर	१३१०-१३१६ ई० तक
अलाउद्दीन खाँ	१३१६-१३१८ „
उत्तुमउद्दीन खाँ	१३१८-१३२३ „
(उनके जमाई) कुतबउद्दीन खाँ	१३२३-१३२७ „
नकलउद्दीन खाँ	१३२७-१३३४ „
सवाद मलिक } आहद मलिक }	१३३४-१३४६ „

फन्दक मलिक   १३४६-१३५८ ई० तक

१३७२ ई०में कम्पन उदेयरने मदुराका सिंहासन बलपूर्वक कब्जा किया। (मध्यवर्त्ती १४ वर्षका विषय कुछ भी मालूम नहीं।) काञ्चीपुरमें जो खोदित लिपि पाई गई है उसमें लिखा है, कि कम्पन उदेयर मदुराके निकटवर्ती किसी स्थानसे मुसलमानोंके साथ युद्ध करने आये थे । इससे जाना जाता है, कि वे विजयनगरके राजा बुक्करायसे भेजे गये थे (१३५०-१३७८)। १३७० ई०के बादसे तथा १६२३ ई० तक खोदित लिपिमें पांड्यों का जो विषय लिखा है, वह परस्पर विरुद्ध है। मदुरामें उदेयरवंशीय निम्नलिखित तीन राजाओंने राज्य किया—

पहले कम्पन, पीछे उनके लड़के एम्बन और तब एम्बनके श्यालक परकाश । १४०४ ई०में परकाश- का राजत्व शेष हुआ। किन्तु काञ्चीपुर और अन्यान्य स्थानोंकी खोदित लिपिमें एक और वंशने मदुरामें राज्य किया था, ऐसा लिखा है। इसके बाद नायकोंका प्रथम उल्लेख देखा जाता है।

लक्कन नायक मत्तनन नायक	दोनोंने मिल कर १४०४-१४५१ ई० तक राज्य किया।

१४५१ ई०में लक्कननायक प्राचीन पाण्ड्यराज- वंशोद्भव चार राजपुत्रोंको मदुरा लाए । इनमेंसे जो सर्वप्रथम थे, उनका जन्म पाण्ड्यराजके औरस और किसी नर्त्तकीके गर्भसे हुआ था। ये सभी राजा हुए और सबोंने मिल कर ४८ वर्ष तक राज्य किया। इनके नामोंकी तालिका नीचे दी जाती है,—

सुन्दर तोड़ महाविलवनाथ राय कलैयर सोमनार अञ्जाद पेरुमल मुत्तरस तिरुमलै महा विलवनाथ राय	१४५१—१४९८

इस समय विजयनगरके राजगण महाप्रताप- शाली हो उठे थे। उन्होंने पाण्ड्य और चोलराज्य पर अधिकार जमा लिया था। १४९८ ई०में नायकवंशीय एक राजाने आ कर सिंहासन पर अधिकार जमाया । नायकवंशमें निम्नलिखित कुछ राजाओंने राज्य किया,—

नरस नायक	१४९८—१५०० ।
तिम्न नायक	१५००—१५१५ ।
नरस पिल्लै	१५१५—१५१८ ।

(नरस पिल्लै किस प्रकार राजा हुए, मालूम नहीं। १५१५ और १५१६ ई०की जो सब खोदित लिपियां पाई गई हैं, उनमें नरसपिल्लै विजयनगरके राजा विख्यात कृष्णदेवरायके भृत्य थे, ऐसा लिखा है।)

कुरुकुरु तिम्मप्प नायकन्	१५१८-१५२४ ।
कत्तियम कामय नायकन्	१५२४-१५२६ ।
चिन्नप्प नायकन्	१५२६-१५३० ।
अय्यकारै वैयप्प नायकन्	१५३०-१५३५ ।
विश्वनाथ नायकन् अय्यर	१५३५-१५४४ ।
वरदप्प नायकन्	१५४४-१५४५ ।
दुम्बिचि नायकन्	१५४५-१५४६ ।
विश्वनाथ नायकन्	१५४६-१५४७ ।
विट्ठलराज	१५४७-१५५८ ।

इनके अलावा तीन और नायकवंशीय राजाओंने राज्य किया। बाद पांड्यवंशीय एक राजा हुए थे जिन- को तञ्जोरके राजाने राज्यसे निकाल दिया था। पीछे विजयनगरके सेनापति विजयोने तञ्जोरराजको पराभूत किया। विजयनगरके सेनापतिके पुत्रने पिताको परा- जित करके सिंहासनको अपनाया। इनका नाम था विश्वनाथ नायक।

इन नायकवंशीय राजाओंके समसामयिक कितने ही पांड्यराजाओंके नाम पाये जाते हैं । इससे जाना जाता है, कि पांड्यवंशीय या तो यथार्थमें देशके राजा थे या पांड्यदेशके दक्षिण भागमें राज्य करते थे और मदुरा तथा उसके निकटवर्त्ती स्थान नायकोंके अधीन था। बहुतोंका यह भी अनुमान है, कि इस समय पांड्यवंशीय लोग जीवितमात्र थे, राज्यमें मध्य उनका किसी प्रकारका प्रभुत्व न था। जो कुछ हो, नीचे पांड्यराजाओंका विषय लिखा जाता है। पराक्रम पांड्यने १३६५ ई०से राज्य करना आरम्भ किया। दक्षिण त्रिवाङ्कुड़के अन्तर्गत कोट्टार नामक स्थानसे प्राप्त खोदित लिपि उनके ५म वर्ष (१३७० ई०)में उत्कीर्ण हुई। इस समयके मुसलमान-इतिहासमें लिखा है, कि बाह्मनीवंशीय मुजाहिद शाहने १३७४

ई०में विजयनगर और कमारिका अन्तरीपके मध्यवर्ती स्थान लूटा।

रामनादके निकटवर्ती तिरुत्तरकोशमङ्गै नामक स्थानमें जो खोदित लिपि पाई गई है, उससे १३७४ से ले कर १४३१ ई०के मध्यवर्ती समयका कुछ इतिहास मिलता है। इस खोदित लिपिके अनुसार वीर पांड्य १३८३ ई०में और कुलशेखर १४०२ ई०में राज्य करते थे।

पोन्नन पेरुमल पराक्रम पांडियन् १४३१ ई०से राज्य करने लगे थे। प्रवाद है, कि पोन्ननके पहले उनके पिता काशीकण्ठपराक्रम पांडियन् राज्य करते थे।

वीरपांड्यका शासनकाल १४३७ ई०से आरम्भ हुआ। एक खोदित लिपिसे जाना जाता है, कि १४८० ई०में भी वीरपांड्य नामक एक राजा राज्य करते थे।

पराक्रम पांड्य १५१६ ई०में राजा हुए। उन्होंने कब तक राज्य किया, मालूम नहीं। पीछे वल्लभदेव वा अतिवीरराम १५६५ ई०में राजा हुए। तेङ्काशीमें वल्लभदेवकी जो खोदित लिपि है उसमें १५६२ ई०से इनका आरम्भ लिखा है। तञ्जोर जिलेके एक मठमें जो खोदित लिपि है उसमें लिखा है, कि अतिवीररामका ... ई०में देहान्त हुआ। इनके बाद सुन्दर ... हुए। ये अत्यन्त विद्योत्साही थे और ... कविता आज भी बहुत आदरसे पढ़ी ...

... जो विवरण दिया गया है, उसके विरुद्धमत ... कितनी खोदित लिपि भी देखी जाती है। ...त्-वन्दनल्लूर नामक स्थानमें जो खोदित लिपि ...में, वरतुङ्ग, राम, वीरपांड्य यथाक्रम १५७८, ... १५८८ ई०में राज्य करते थे, ऐसा लिखा है। ...के बाद सुन्दर पांड्यने १६१०से १६२३ ई० तक राज्य किया। मदुरा और रामनाद देखो।

पाण्ड्यवाट (सं० पु०) पांड्यदेशस्थित मुक्ताका आकारभेद।

पाण्ड्रा—बराकरसे ८ मील पश्चिम और ग्रेण्डट्रङ्क रोडसे डेढ़ मील उत्तरमें अवस्थित एक गण्डग्राम। मानभूम जिलेके राजा यहां रहते हैं। यहां बहुतसे प्राचीन मन्दिर देखे जाते हैं। पूर्वकालमें यह एक प्रधान स्थान था। एक मन्दिरके जीर्णसंस्कारके समय एक खोदित लिपि पाई गई थी। प्रवाद है, कि पाण्डवोंने यह मन्दिर बनवाया था और उन्हींके नाम पर पाण्ड्रा नामकी उत्पत्ति हुई है।

पाण्ड्रेथन—काश्मीरके अन्तर्गत एक पुरातन ग्राम। यहां जो मन्दिर है, वह काश्मीरी स्थापत्य और शिल्पनैपुण्यका एक उज्ज्वल दृष्टान्त है। यह मन्दिर एक पुष्करिणीके मध्य अवस्थित है। मन्दिरमें तैर कर या नाव द्वारा जाना होता है। पहले यह मन्दिर तिमंजिला था, लेकिन अभी ऊपरी भाग गिर पड़ा है।

पाण्य (सं० त्रि०) पण व्यवहारस्तुत्योः ण्यत्। स्तुत्य, प्रशंसा करने योग।

पाण्यास्य (सं० पु०) पाणिरेव आस्यं यस्य। ब्राह्मण।

पात (सं० पु०) पत-घञ्। १ पतन, गिरनेकी क्रिया या भाव। पातयति चन्द्रसूर्यौ छादयतीति पत-णिच्-अच्। २ राहु। ३ खगोलमें वह स्थान जहां नक्षत्रोंकी कक्षाएं क्रान्तिवृत्तको काट कर ऊपर चढ़ती या नीचे आती हैं। यह स्थान बराबर बदलता रहता है और इसकी गति वक्र अर्थात् पूर्वसे पश्चिमको है। इस स्थानका अधिष्ठाता देवता राहु है। ४ गिरानेकी क्रिया या भाव। जैसे, अश्रुपात, रक्तपात। ५ टूट कर गिरनेकी क्रिया या भाव। जैसे उल्कापात, द्रुमपात। ६ नाश, ध्वंस, मृत्यु। जैसे, देहपात। ७ पड़ना या जा लगना। जैसे, दृष्टिपात, भूमिपात। (त्रि०) ८ त्राता, बचानेवाला। ९ पतनकर्त्ता, गिरानेवाला।

पात (हिं० पु०) १ कानमें पहननेका एक गहना, पत्ता। २ चाशनी, किवाम, पत्त। ३ कवि। ४ पत्र, पत्ता।

पातक (सं० क्ली०) पातयति अधोगमयति दुष्क्रियाकारिणमिति, पत-णिच्-ण्वुल्। नरकसाधन पाप, वह कर्म जिसके करनेसे नरक जाना पड़े। पर्याय—अशुभ, दुष्कृत, दुरित, पाप, एनस्, पाप्मान्, किल्विष, कलुष, किण्व, कल्मष, वृजिन, तमस्, अंहस्, कल्क, अघ, पङ्क।

प्रायश्चित्तविवेकके मतानुसार पातकके ९ भेद हैं, यथा—१ अतिपातक, २ महापातक, ३ अनुपातक,

४ उपपातक, ५ सङ्करीकरण, ६ अपात्रीकरण, ७ जातिभ्रंशकर, ८ मलावह और ९ प्रकीर्णक।

इन सब पापोंका विवरण तत्तत् शब्दमें देखो।

काय और वाङ्मनसकृत दश प्रकारके पाप हैं, यथा—अदत्तका उपादान, अवैधहिंसा, परदारगमन, ये तीन कायिक पातक ; पारुष्य, असत्य, पैशुन्य और असम्बन्ध प्रलाप ये चार वाङ्मय पातक और दूसरेके द्रव्य पर अभिध्यान, मन ही मन अनिष्ट चिंता और मिथ्याभिनिवेश ये तीन मानसिक पातक हैं।

पातकका विवरण पाप शब्दमें देखो।

पातकिन् (सं० त्रि०) पातकोऽस्यास्तीति इनि। पातकयुक्त, पापी, कुकर्मी, वदकार।

पातकुलन्दा—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत शम्बलपुर जिलेकी एक प्राचीन जागीर। यह शम्बलपुर नगरसे ३५ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहांके अधिवासिगण कृषिकार्य करके जीविका-निर्वाह करते हैं और सरदार गोन्दवंशीय हैं। इन्होंने १८५८ ई०के गदरमें विद्रोहियोंका साथ दिया था। किन्तु वृटिश-गवर्मेण्टने यह अपराध पीछे माफ कर दिया।

पातकोट—मन्द्राजप्रदेशके कर्नूल जिलान्तर्गत एक ग्राम यह नन्दिकोटकरसे १० मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यहांके तीन मन्दिरोंमें तीन खोदित लिपि देखी जाती हैं।

पातगुण्टा—मन्द्राजप्रदेशका एक ग्राम। यह रायपुरसे ८ मील दक्षिण-पूर्वमें पड़ता है। यहां एक खोदित लिपि है।

पातघाबरा (हिं० वि०) वह मनुष्य जो पत्तेके खड़कने पर भी घबड़ा जाय, बहुत अधिक डरपोक।

पातङ्ग (सं० पु०) पतङ्गस्य सूर्यस्यापत्यं इञ् (अत इञ्। पा ४।१।९५) १ शनैश्चर। २ यम। ३ कर्ण। ४ वैवस्वत मुनि। ५ सुग्रीव।

पातञ्जल (सं० क्ली०) पतञ्जलिना स्वनामविश्रुतमहर्षिणा प्रणीतं प्रोक्तं वा अण्। १ पाणिनिसूत्र और उसका वार्तिकव्याख्यानरूप ग्रन्थ। पतञ्जलि देखो।

२ पतञ्जलिमुनिप्रणीत पादचतुष्टयात्मक योगकाण्डनिरूपक दर्शन शास्त्रविशेष। (पहले इस दर्शनशास्त्रका परिचय दे कर अन्तमें पतञ्जलि और पातञ्जलदर्शनका उत्पत्तिकाल लिखा जायगा।)

भगवान् पतञ्जलिमुनिसे प्रणीत होनेके कारण इस दर्शनका नाम पातञ्जलदर्शन पड़ा है और इसमें योगका विषय विशेषरूपसे निर्दिष्ट रहनेके कारण यह योगशास्त्र नामसे भी प्रसिद्ध है ; पदार्थनिर्णयविषयमें सांख्यदर्शनके साथ एकमत है, इसीसे इसको 'सांख्यप्रवचन' भी कहते हैं।

पातञ्जलदर्शनका मुख्य विषय।

सांख्यमतप्रवर्त्तक महर्षि कपिलने जिस प्रकार प्रकृति और महत् तत्त्व आदि पचीस तत्त्वोंको स्वीकार किया है, उसी प्रकार पतञ्जलिके मतानुसार भी वही पचीस तत्त्व हैं। कपिल जीवातिरिक्त सर्वनियन्ता, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् लोकातीत परमेश्वरकी सत्ता स्वीकार नहीं करते, पर भगवान् पतञ्जलिने युक्तिप्रदर्शन-पूर्वक ईश्वरकी सत्ता प्रतिपादन की है। इसीसे कपिलदर्शनको कोई कोई निरीश्वर सांख्य और पातञ्जलदर्शनको सेश्वर सांख्य कहा करते हैं।

सांख्यदर्शनका विषय सांख्यदर्शनमें देखो।

पातञ्जलदर्शन चार पादोंमें विभक्त है। इसके प्रथम पादमें योगशास्त्र करनेकी प्रतिज्ञा, योगके लक्षण, योगके असाधारण उपाय स्वरूप जो अभ्यास और वैराग्य हैं, उनका स्वरूप और भेद, सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात भेदसे समाधिविभाग, सविस्तार योगोपाय, ईश्वरका स्वरूप और प्रमाण, उनकी उपासना और तत्फल, चित्तविक्षेप, दुःखादि, चित्तविक्षेप और दुःखादिका निराकरणोपाय तथा समाधिप्रभेद आदि विषय प्रदर्शित हुए हैं। द्वितीय पादमें क्रियायोग, क्लेशका निर्देश, स्वरूप, कारण और फल, कर्मका प्रभेद, कारण, स्वरूप और फल, विपाकका कारण और स्वरूप, तत्त्वज्ञानरूप विवेकख्यातिका अन्तरङ्ग और वहिरङ्गभेदसे कारण जो यमनियमादि है, उनका स्वरूप और फल तथा आसनादिका लक्षण, कारण और फल; तृतीय पादमें योगके अन्तरङ्गस्वरूप जो धारणा, ध्यान और समाधि हैं, उनका स्वरूप, परिणाम और प्रभेद तथा विभूतिपदवाच्यकी सिद्धि और चतुर्थ पादमें सिद्धिपञ्चक, विज्ञानवाद

निराकरण, साकारवाद संस्थापन और कैवल्य प्रदर्शित हुआ है। ये चारों पाद यथाक्रम योगपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद नामसे पुकारे जाते हैं।

महर्षि पतञ्जलिने छब्बीस तत्त्व स्वीकार किये हैं। इन छब्बीस तत्त्वोंमें सभी पदार्थ अन्तर्भूत हुए है। इनके सिवा और पदार्थ नहीं है। चौबीस तत्त्व और पुरुष ये पचीस तत्त्व सांख्यदर्शनमें विशेषरूपसे दिखलाये गये हैं। इन सब तत्त्वोंका विवरण सांख्यदर्शन शब्दमें देखो। पतञ्जलिके मतसे छब्बीसवां तत्त्व परमेश्वर है।

योगका लक्षण।

मनकी वृत्तियोंको रोकनेका नाम योग है। योग शब्दके अनेक अर्थ रहने पर भी यहां चित्तवृत्तिके निरोधको अर्थात् विषयसुखसे प्रवृत्तचित्तको रोकने और ध्येय वस्तुमें स्थापित कर तन्मात्रके ध्यानविशेषको योग कहते हैं। अन्तःकरणका नाम चित्त है। योगियोंके मतसे मनोवृत्ति असंख्य होने पर भी उनके अवस्थाविभाग अनेक नहीं हैं।

चित्तका भेद और लक्षण।

क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्धके भेदसे चित्तकी अवस्था पांच प्रकारकी है। मनुष्यके कितने ही प्रकारकी मनोवृत्तियां क्यों न हों, वे इन्हीं पांचके अन्तर्गत हैं।

रजोगुणका उद्रेक होनेसे जिस अवस्थामें चित्त अस्थिर हो कर सुखदुःखादिजनक विषयमें प्रवृत्त होता है अर्थात् जिस अवस्थामें मन स्थिर नहीं रहता, एक विषयमें निविष्ट नहीं होता, यह हो, वह हो कह कर सर्वदा अस्थिर रह जोंकको तरह एक आधार छोड़ कर दूसरा और दूसरा छोड़ कर तीसरा पकड़नेमें व्यतिव्यस्त रहता है, वही चित्तकी क्षिप्तावस्था है।

जब मन कर्त्तव्याकर्त्तव्यको अग्राह्य करके कामक्रोधादिके वशीभूत तथा निद्रा और तन्द्राके अधीन होता है—आलस्यादि विविध तमोमय वा अज्ञानमय अवस्थामें निमग्न रहता हैं, तब उसे मूढ़ावस्था कहते हैं। तमोगुणके उद्रिक्ततानिबन्धन कर्त्तव्याकर्त्तव्य विचारमें मूढ़ हो कर क्रोधादिवशतः चित्तका सर्वदा विरुद्ध कार्यमें प्रवृत्त होना ही मूढ़ावस्था है।

विक्षिप्तावस्थाके साथ पूर्वोक्त क्षिप्तावस्थाका बहुत ही कम प्रभेद है। वह प्रभेद यह है, कि चित्तके पूर्वोक्त प्रकार चाञ्चल्यके मध्य क्षणिक स्थिरता है। मनका स्वभाव चञ्चल होने पर भी बीच बीचमें वह स्थिर हो जाता है, उस प्रकार स्थिर होनेका नाम ही विक्षिप्त है। चित्त जब दुःखजनक विषयका परित्याग कर सुखजनक वस्तुमें स्थिर होता है, चिराभ्यस्त चाञ्चल्यका परित्याग कर क्षणकालके लिये अवलम्बनशून्य सरीखा हो जाता है वा केवलमात्र सुखास्वादमें निमग्न रहता है, तब उसको विक्षिप्तावस्था कहते हैं।

एकाग्र और एकतान ये दो शब्द एक ही अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। चित्त जब किसी एक बाह्य वस्तु अथवा आभ्यन्तरीण वस्तुका अवलम्बन कर निर्वातस्थ निश्चल निष्कम्प दीपशिखाकी तरह स्थिर वा अविकम्पित भावमें वर्त्तमान रहता है अथवा चित्तकी रजस्तमोवृत्तिके अभिभूत हो जानेसे केवलमात्र सात्त्विकवृत्तिका उदय होता है, तब एकाग्र अवस्था हुई है, ऐसा जानना होगा।

एकाग्र अवस्थाके साथ निरुद्धावस्थाके अनेक प्रभेद हैं। एकाग्र अवस्थामें चित्तका कोई न कोई अवलम्बन अवश्य रहता है, पर निरुद्धावस्थामें वह नहीं रहता। उस समय चित्त अपनी कारणीभूत प्रकृतिको प्राप्त कर कृतकार्यकी तरह निश्चेष्ट रहता है—दग्धसूत्रकी तरह केवलमात्र संस्कारभावापन्न हो कर रहता है। सुतरां उस समय उसका किसी भी प्रकार विसदृश परिणाम नहीं रहता। ऐसी अवस्थाका नाम निरुद्धावस्था है। इन पांच प्रकारकी चित्तवृत्तियोंमें प्रथमोक्त तीन अवस्थाके साथ योगका कुछ भी सम्पर्क नहीं है। योगसे सुख होता है, यह जान कर विक्षिप्त चित्तमें कभी योगसञ्चार हो भी सकता है, पर वह स्थायी नहीं होता। इस कारण पूर्वोक्त तीन अवस्था योगकी उपयोगी नहीं हैं। एकाग्र और निरुद्ध इन दो अवस्थामें योग होता है। इन दोनोंमें निरुद्ध अवस्था ही एकमात्र श्रेष्ठ है। यह निरुद्ध अवस्था सहजमें बोधगम्य होनेकी नहीं। यह अवस्था पानेके लिये योगीको पहले उपाय द्वारा चित्तकी क्षिप्त, मूढ़ और

विक्षिप्त अवस्था दूर करनी होती है। जब निरुद्ध अवस्थाका चरम होता है, तब पुरुष द्रष्टृस्वरूपमें अवस्थान करते हैं। उस समय और किसी प्रकारका चित्तका धर्म नहीं रहता। यही अवस्था योगीका चरम उद्देश्य है। इस समय चित्तकी कोई अवस्था ही नहीं रहती।

चित्तवृत्ति।

चित्तकी अवस्थाविशेषको चित्तवृत्ति कहते हैं। यह चित्तवृत्ति पांच प्रकारकी है जिनमेंसे फिर प्रत्येकके दो भेद हैं, क्लिष्ट और अक्लिष्ट। क्लेशदायक होनेके कारण क्लिष्ट और क्लेश (संसारदुःख) नाशक होनेके कारण अक्लिष्ट नाम पड़ा है। विषयके साथ सम्पर्क होते ही चित्त जिस विषयाकारको प्राप्त होता है, उसके उस विषयाकारप्राप्ति होनेका नाम ही वृत्ति है। देहस्थ इन्द्रिय और बहिःस्थ विषय इन दोनोंके सम्बन्धवशतः मनकी विविध अवस्था वा परिणाम होते हैं। इन सब मनःपरिणामका नाम ही वृत्ति है और इसीको हम लोग ज्ञान कहते हैं। विषय असंख्य है, सुतरां वृत्ति भी असंख्य है। वृत्ति असंख्य होने पर भी उसकी श्रेणी वा प्रकारगत विभाग असंख्य नहीं है। यह क्लिष्ट और अक्लिष्ट इन दो भागोंमें विभक्त की जा सकती है। राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि वृत्तियां क्लेश अर्थात् संसारी दुःखकी कारण हैं, इस हेतु उन्हें क्लिष्ट और श्रद्धा, भक्ति, करुणा आदि वृत्तियां उनकी विपरीत अर्थात् दुःख निवृत्ति रूप मोक्षकी कारण हैं अतः उन्हें अक्लिष्ट कहते हैं। क्लिष्ट वृत्तियां हेय और अक्लिष्ट वृत्तियां उपादेय हैं। योगके समय इन क्लिष्ट और अक्लिष्ट सभी प्रकारकी वृत्तियां रोकनी होती हैं।

जिन पांच प्रकारकी चित्तवृत्तियोंकी कथा लिखी गई हैं, वे ये हैं,—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृतिवृत्ति। इनमेंसे प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम ये तीन प्रकारकी प्रमाणवृत्ति हैं। प्रमाण देखो।

मिथ्याज्ञान वा भ्रमज्ञानको विपर्यय कहते हैं। जो ज्ञान विषयदर्शनके बाद अन्यथा हो जाता है, उस ज्ञानका नाम विपर्यय है। जैसे—रज्जु सर्प, शुक्ति रजत वा मरुमरीचिका प्रभृति। वस्तु नहीं है अथच शब्दजन्य एक प्रकारकी मनोवृत्ति उत्पन्न होती है; ऐसी मनोवृत्तिका नाम विकल्प है। इसका दृष्टान्त आकाशकुसुम है। आकाशकुसुम नहीं है, अथच यह सुनते ही मनमें एक प्रकारकी वृत्ति उत्पन्न होती है। जिसमें सभी मनोवृत्तियां लीन रहती हैं, उस अज्ञानका अवलम्बन कर जब मनोवृत्ति उदित रहती है, तब उसे निन्द्रा कहते हैं। वस्तुके एक बार अनुभूत अर्थात् प्रमाणवृत्तिमें आरूढ़ होनेसे वह फिर नहीं जाती—संस्काररूपमें प्रतिष्ठित रहती है, उसीको स्मृति कहते हैं। तात्पर्य यह कि जाग्रत् अवस्थामें जो देखा और सुना जाता है, चित्तमें उसका संस्कार आबद्ध होता है। उद्बोधकके उपस्थित होने पर वह संस्कार वा शक्तिविशेष प्रबल हो कर चित्तमें उस पूर्वानुभूत वस्तुका स्वरूप पुनरुदित कर देता है। इसीका नाम स्मृति है।

अभ्यास और वैराग्य।

अभ्यास और वैराग्य द्वारा उक्त सभी प्रकारकी वृत्तियोंका निरोध होता है। जिससे राजस और तामसवृत्तिका उदय न हो ऐसे यत्नविशेषको अभ्यास कहते हैं। अभ्यासका संक्षेप लक्षण यह है, कि विषयाभिनिवेशका त्याग कर चित्तको यत्नपूर्वक बार बार एकाग्र करना और उसके पूर्वसाधक यमनियमादि योगाङ्गका अनुष्ठान करना। जिस प्रकार यत्न द्वारा चित्तकी एकाग्रता प्रतिष्ठित होती है, उसी प्रकार यत्न और तद्रूप अनुष्ठान करनेका नाम अभ्यास है। इस अभ्यासको दीर्घकाल तक यदि श्रद्धापूर्वक कर सकें, तो क्रमशः दृढ़ वा अविचलित हो जाता है। दृष्ट विषय और शास्त्रप्रतिपाद्य विषय युगपत् उभय विषयोंमें ही सम्पूर्णरूपसे निस्पृह होनेसे वशीकार नामका वैराग्य उत्पन्न होता है। ऐहिक और पारलौकिक सुखभोगेच्छाका परित्याग करनेसे क्रमशः उत्कृष्ट वैराग्य होता है। अनेक चेष्टा करने पर वैराग्य उपस्थित होता है। उसके बाद अर्थात् उस प्रकारके परवैराग्यके उत्पन्न होने पर ही आपसे आप पुरुषख्याति वा प्रकृतिपुरुषका पार्थक्यज्ञान (साक्षात्कार) होता है। उस समय उसके गुण अर्थात् प्रकृतिके प्रति भी वितृष्णा उत्पन्न होती है। प्राकृतिक ऐश्वर्य उस समय उसे और प्रलोभित कर नहीं सकता। सुतरां वे निर्विघ्नसे निरोधसमाधिका आश्रय करके कालातिपात करनेमें समर्थ होते हैं।

समाधि।

समाधि सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात भेदसे दो प्रकार की है। वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता इन चार प्रकारोंकी अवस्था वा प्रभेदके रहनेके कारण सम्प्रज्ञात समाधि पुनः चार भागोंमें विभक्त हुई है। भाव्यपदार्थके विस्पष्ट ज्ञान रहता है, इस कारण प्रथमोक्त समाधिका नाम सम्प्रज्ञात और किसी प्रकारकी वृत्ति वा ज्ञान नहीं रहनेके कारण शेषोक्त समाधिका नाम असम्प्रज्ञात है। समाधि देखो।

असम्प्रज्ञात समाधि हो निर्वीज समाधि है, सम्प्रज्ञात वैसी नहीं है। सम्प्रज्ञात समाधि भी दो प्रकारकी है, विदेह-लय और प्रकृति-लय। जो मुमुक्षु हैं, वे इसकी किसी प्रकार भी इच्छा नहीं करते। जो विदेहलय और प्रकृतिलय नहीं हैं, अर्थात् जो कैवल्याभिलाषी हैं, उनके क्रमशः श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, प्रज्ञा और समाधि उत्पन्न होती है। प्रथमतः योगके प्रति आत्मतत्त्व, साक्षात्कारके प्रति श्रद्धा, पीछे वीर्य, वीर्यके बाद स्मृति, स्मृतिके बाद एकाग्रता, एकाग्रताके बाद तद्विषयक प्रज्ञा और प्रज्ञालाभके बाद ही उनके उत्कृष्टतम समाधि उत्पन्न होती है, उसीसे वे प्रकृतिनिर्मुक्तता वा कैवल्यलाभ करते हैं। कार्यप्रवृत्तिके मूलीभूत संस्कारविशेषका नाम सम्वेग है। यह सम्वेग जिनका तीव्र है, उन्हें शीघ्र ही समाधि लाभ होती है। महर्षि पतञ्जलिने समाधिलाभका एक सुगम उपाय निर्द्धारण किया है। वह उपाय है एकमात्र ईश्वरोपासना।

ईश्वर और ईश्वरोपासना।

ईश्वरोपासना करनेमें कायिक, वाचिक और मानसिक सभी व्यापार ईश्वरके अधीन हैं, ऐसा समझे। जब जो कार्य करे, फलके प्रति दृष्टि न रखे और सुखका अनुसन्धान किये बिना सभी कार्य उस परमगुरु परमेश्वर पर सौंप दे। सभी समय केवल उन्हींका ध्यान करे। अकपट और पुलकित हो कर इस प्रकार अनवरत करनेसे ईश्वरोपासना सिद्ध होगी। उस समय यह जानना चाहिये, कि अभिलषित सिद्धिमें और अधिक विलम्ब नहीं है। ईश्वर क्या है? जब तक इसका कुछ बोध नहीं होगा, तब तक उनके प्रति विशिष्ट भक्ति होनेकी सम्भावना नहीं है। इसीसे भगवान् पतञ्जलिने ईश्वरका लक्षण इस प्रकार निर्देश किया है,—क्लेश, कर्म, विपाक और आशय जिन्हें स्पर्श नहीं कर सकता, निखिल संसारी आत्मा और मुक्तात्मासे जो पृथक् वा स्वतन्त्र हैं, वे ही ईश्वर हैं। ईश्वर देखो।

ये परमेश्वर नित्य, निरतिशय, अनादि और अनन्त हैं। उनमें निरतिशय ज्ञान रहनेके कारण वे सर्वज्ञ हैं अर्थात् उनमें सर्वज्ञताका अनुमापक परिपूर्ण ज्ञानशक्ति विद्यमान है, अन्य आत्मामें वह नहीं है। जिस प्रकार अल्पताका चूड़ान्त दृष्टान्त परमाणु और वृहत्त्वकी शेष सीमा आकाश है, उसी प्रकार ज्ञानशक्तिकी अल्पताकी पराकाष्ठा क्षुद्रजीव और उसके आतिशय्यकी पराकाष्ठा ईश्वर हैं। वे पूर्व पूर्व सृष्टिकर्त्ताओंके भी गुरु अर्थात् उपदेष्टा हैं। किसी कालके द्वारा वे परिच्छिन्न नहीं हैं, सभी कालोंमें उनकी विद्यमानता है। उनके वाचक शब्द प्रणव है, उस प्रणव मन्त्रका जप और उसके अर्थका ध्यान करना ही उनकी उपासना है। सर्वदा प्रणवजप और प्रणवार्थ ध्यान करते करते चित्त जब निर्मल हो जाता है, तब उस प्रत्यक् चैतन्यका ज्ञान अर्थात् शरीरान्तर्गत आत्मसम्बन्धीय यथार्थज्ञान उत्पन्न होता है। बाद और कोई भी विघ्न नहीं रहता तथा निर्विघ्नसे समाधि लाभ होती है।

समाधिका विघ्न।

अयोगी अवस्था (विषयभोगवस्था) में यथार्थ आत्मज्ञान और समाधिलाभ नहीं होनेका जो कारण है, उसका नाम विघ्न है। विघ्न अनेक है, किन्तु प्रधान विघ्न ये ही हैं—व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्ध-भूमिकत्व और अनवस्थितत्व। धातुवैषम्य निमित्त ज्वरादिको व्याधि, अकर्मण्यताको स्त्यान, योग किया जाय वा नहीं इत्यादि सन्देहको संशय, अनवधानताको प्रमाद, योगसाधनमें औदासीन्यको आलस्य, योगमें प्रवृत्तिके अभावके हेतुभूत चित्तके गुरुत्वको अविरति, योगाङ्ग भ्रान्तिको भ्रान्तिदर्शन, समाधि भूमिकी अप्राप्तिको

अलब्धभूमिकत्व और समाधिमें चित्तके अस्थैर्यको अनवस्थितत्व कहते हैं। रजोजन्य अस्थिरता वा चलचित्तता योग वा समाधिका प्रबल विघ्न है। चित्त स्थिर नहीं होनेके और भी कितने कारण हैं। दुःख, दौर्मनस्य, अङ्गकम्पन, श्वास, प्रश्वास ये भी विक्षेपके जनक और समाधिके प्रबल विघ्न हैं।

चित्तप्रसाद।

ये सब विघ्न निवारणके लिये एकतत्त्व अभ्यास करे। ध्यानके समय मन जिससे दूसरी ओर न जाय—उसी वस्तुमें स्थिर रहे, इस पर विशेष ख्याल रखना उचित है। इसके अलावा और भी एक उपाय है; यथा—सुख, दुःख, पुण्य और पाप विषयमें यथाक्रम मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षाकी भावना करे; क्योंकि इसीसे चित्तकी प्रसन्नता होती है। एकाग्रता शिक्षाके पहले चित्तको परिष्कार करना होता है। अपरिष्कृत वा मलिन चित्त सूक्ष्म वस्तुके ग्रहणमें असमर्थ हो कर इतस्ततः विक्षिप्त होता है—स्थिर वा समाहित नहीं होता। इसीसे दूसरेके सुख, दुःख, पुण्य और पापके प्रति मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा करना ही श्रेय हैं। दूसरेका सुख देख कर सुखी होने और ईर्षा नहीं करनेसे ईर्षामल दूर हो जाता है। दूसरेके दुःख पर दुःखी होनेसे विद्वेषमल वा परापकारचिकीर्षा नहीं रहती, दूसरेके पुण्य पर प्रसन्न होनेसे असूयामल जाता रहता है। इसीसे सुखितके प्रति मैत्री, दुःखितके प्रति करुणा, पुण्यवान्के प्रति मुदिता और पापीके प्रति उपेक्षा करना ही योगशास्त्रका मत है।

चित्त निर्मल होने पर उसे स्थिर वा एकतान करनेका एकमात्र प्राणायाम ही सुगम उपाय है। पहले शास्त्रोक्त प्रणालीका अवलम्बन करके गुरूपदेशको क्रमशः नासिका द्वारा प्रस्तमय वाह्यवायु ग्रहण, पश्चात् परिमितरूपमें उस वायुका धारण अनन्तर उसका धीरे धीरे परित्याग करना होता है। प्राणायाम देखो।

यह प्राणायाम यदि सुसिद्ध हो, तो मनका जो कुछ विक्षेप है, वह दूर हो जाता है। निर्दोष और निर्विक्षेप चित्त उस समय आपसे आप सुप्रसन्न, सुप्रकाश वा एकाग्रयोग्य हो जाता है। इस प्रकार करते करते विषयवती प्रवृत्ति अर्थात् गन्धादि साक्षात्काररूप प्रज्ञा उत्पन्न होती है; मन उसीमें स्थिर हो जाता है। इस उपाय द्वारा चित्तके निर्मल होने पर उसका यथेच्छ-प्रयोग किया जाता है। निर्मल चित्त जब जिस विषयको पकड़ेगा, उस समय उसी विषयमें वह स्थिर और तन्मय हो जायगा। इससे क्रमशः चित्तमें एकाग्रता दिनों दिन बढ़ती रहेगी। इस प्रकार एकाग्रताकी वृद्धि होनेसे हृत्पद्मके मध्य एक प्रकारकी ज्योति वा आलोकका उदय होता है। उस ज्योति वा आलोककी तुलना है हो नहीं। यह निस्तरङ्ग और निष्कल्लोल क्षीरोदार्णवतुल्य मनोहर और प्रशान्त है। इस आलोक वा ज्योतिके उदय होनेसे और कोई भी शोक रहने नहीं पाता। इसीसे उस आलोकका 'विशोक' नाम रखा गया है। ऐसी अवस्था होने पर सम्प्रज्ञात समाधि वा उत्कृष्टतम योग शीघ्र ही उपस्थित होता है।

भगवान् पतञ्जलिने चित्तको स्थिर करनेका एक और सुगम उपाय बतलाया है। वह इस प्रकार है—जिस किसी मनोज्ञ वस्तुका स्मरण होनेसे मन प्रफुल्ल और शान्त होता है, एकाग्रता शिक्षाके निमित्त उसका भी ध्यान श्रेय है। पूर्वोक्त मैत्री भावनादि द्वारा चित्तके निर्मल और वाञ्छित तत्त्वमें उत्कट मनोनिवेश वा एकाग्रता अभ्यास सिद्ध होने पर चित्त स्थिरस्वभावको प्राप्त होता है। उस समय सूक्ष्मतम परमाणुसे ले कर वृहत्तम परमात्मा पर्यन्त सभी वस्तु उसके ग्राह्य, प्रकाश्य वा वश्य हो जाती हैं। उस समय चित्त वृत्तिशून्य हो कर स्फटिकमणिकी तरह तन्मयभाव धारणमें सक्षम होता है। एकाग्र शिक्षाका नियम यह है, कि पहले ग्राह्य अर्थात् ज्ञेय पदार्थका अवलम्बन करके एकाग्रता-अभ्यास करना होता है। ज्ञेय वस्तु दो प्रकारकी है, स्थूल और सूक्ष्म। प्रथमतः स्थूलमें चित्तस्थिरका आरम्भ करना होता है, वह अभ्यस्त हो जाने पर क्रमशः मन, बुद्धि, अहङ्कार आदि आभ्यन्तरीण सूक्ष्म वस्तुका अवलम्बन करना होता है। इन्द्रियमें चित्तस्थैर्य दृढ़ होनेसे जीवात्माका मनलय होता है, धीरे धीरे सम्प्रज्ञात समाधि लाभ होती है।

समाधिके भेद और अवस्था।

समाधि फिर चार प्रकारको है—सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार और निर्विचार। चित्त जब स्थूलमें तन्मय होता है, तब यदि उसके साथ विकल्पज्ञान रहे, तो वह तन्मयता सवितर्क और यदि विकल्प ज्ञान न रहे, तो वह निर्वितर्क है। सविचार और निर्विचार योग भी इसी प्रकार है। इन दोनोंके आलम्बनीय विषय सूक्ष्म वस्तु है। इनमेंसे प्रथम पञ्चभूत है, तदपेक्षा सूक्ष्म तन्मात्र और इन्द्रिय, तदपेक्षा सूक्ष्म अहंतत्त्व, पीछे महतत्त्व और सबसे अन्तमें प्रकृति है। सूक्ष्मविषयक योगकी सीमा यहीं तक है सही, किन्तु परमात्म योग वा परब्रह्मयोग इससे भी सूक्ष्म और स्वतन्त्र है।

यही चार प्रकारकी समाधि सबीजसमाधि है। इन सब समाधियोंमें संसारावस्थाका बीज रहता है। इस चार प्रकारकी समाधियोंमें निर्विचार समाधि ही श्रेष्ठ है। इस निर्विचारके भलीभांति अभ्यस्त होनेसे ही चित्तका स्वच्छस्थित प्रवाह दृढ़ होता है—कोई दोष वा किसी प्रकारका क्लेश अथवा मालिन्य रहने नहीं पाता। सर्वप्रकाशक चित्तसत्त्व उस समय नितान्त निर्मल हो जाता है और आत्मा भी विज्ञात होती है। इस समय जो उत्कृष्ट और निर्मल प्रज्ञा अर्थात् ज्ञानालोक आविर्भूत होता है, उसका नाम समाधिप्रज्ञा है। इस समाधिप्रज्ञाका दूसरा नाम ऋतम्भराप्रज्ञा है। यह प्रज्ञा केवल ऋत अर्थात् सत्यको ही प्रकाश करती है। उस समय भ्रम और प्रमादका लेश भी नहीं रहता। योगिगण इस ऋतम्भराप्रज्ञा द्वारा सभी वस्तुतत्त्वको यथावत् साक्षात्कार करते हैं। इस प्रज्ञाके साथ अन्य किसी भी प्रज्ञाकी तुलना नहीं होती। यह सम्प्रज्ञातवृत्ति जब निरुद्ध होती है, तब सर्वनिरोध नामक निर्वीजसमाधि उत्पन्न होती है। योगी लोग बहुकालसे निरोधाभ्यास करते थे, अभी उस अभ्यासके बलसे उनके चित्तका वह अवलम्बन भी निरुद्ध वा विलीन हो गया। चित्त जिस बीजका अवलम्बन करके वर्त्तमान था, वह भी जब नष्ट हो गया, तब योगीके निर्वीजसमाधि हुई है, ऐसा स्थिर करना होगा। यह निर्वीज समाधि ज्यों ही परिपाकको प्राप्त हुई, चित्तने त्यों ही अपनी जन्मभूमि प्रकृतिका आश्रय लिया। प्रकृति भी स्वतन्त्र हुई और परमात्मा भी प्रकृतिके बन्धनसे मुक्त हुए। उसके फिर शरीर वा जन्ममरण कुछ भी नहीं होगा। यही पुरुषका प्रधान उद्देश्य है और इसी लिये योगकी आवश्यकता हुई।

क्रियायोग और ज्ञानयोग।

समाधि लाभ करनेमें पहले क्रियायोग आवश्यक है। योग दो प्रकारका है, ज्ञानयोग और क्रियायोग। पहले जिन सब योगोंकी कथा लिखी गई वे ज्ञानयोग हैं; ज्ञानयोगके अधिकारी सभी नहीं हैं। जिनका चित्त निर्मल हुआ है वे पहले क्रियायोगका अनुष्ठान करें। तपस्या, स्वाध्याय (वेदाभ्यास) और ईश्वरप्रणिधान इन तीन प्रकारकी क्रियाओंका नाम क्रियायोग है। श्रद्धापूर्वक शास्त्रोक्त व्रतादिका अनुष्ठान करनेका नाम तपस्या, प्रणव आदि ईश्वरवाचक शब्दका जप अर्थात् अर्थस्मरणपूर्वक उच्चारण और अध्यात्मशास्त्रके मर्मानुसन्धानमें रहनेका नाम स्वाध्याय तथा भक्तिश्रद्धापूर्वक ईश्वरार्पितचित्त हो कर कार्य करनेका नाम ईश्वरप्रणिधान है। यही क्रियायोग एकमात्र समाधि होनेके पूर्व निमित्त और क्लेशविनाशका प्रधान कारण है। उक्त तीन प्रकार अथवा तीन प्रकारमेंसे किसी एक प्रकारके क्रियायोगका अवलम्बन करके उसका अभ्यास करनेसे धीरे धीरे वह दृढ़ हो जाता है। इस समय सभी क्लेश क्षीण हो जाते हैं और समाधिशक्ति भी उत्पन्न होती है। क्लेश कितने प्रकारका है, भगवान् पतञ्जलिने उसका विषय इस प्रकारका कहा है,—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पांच प्रकारके मनोधर्मका नाम क्लेश है। यह पांच प्रकारका क्लेश अयथार्थज्ञान वा मिथ्याज्ञान छोड़ कर और कुछ भी नहीं है। यह मिथ्या ज्ञान जिससे न बढ़े, उसके प्रति प्रत्येकका ध्यान रखना अवश्य कर्त्तव्य है। चित्तके क्लेश नामक धर्मोंको दग्ध कर सकनेसे ही योगी हो जाता है। क्लेशके मध्य अविद्या ही प्रधान है; अनित्य, अशुचि, दुःख और अनात्मपदार्थके ऊपर यथाक्रम नित्य, शुचि, सुख और आत्मता ज्ञानका नाम अविद्या है। तात्पर्य यह कि जो जिसके स्वरूप

नहीं है, उसमें उसका ज्ञान होनेका नाम अविद्या है। यही अविद्या अन्यान्य क्लेशसमूहकी जड़ है। इसी अविद्यासे अन्यान्य क्लेश उपस्थित होते हैं। जीव देहग्रहणके साथ ही साथ अविद्याके वशीभूत हो कर अस्मिताके अधीन हो जाता है। दृक्शक्ति जो दर्शनशक्तिके साथ एकीभूतकी तरह प्रकाश पाती है, दोनोंकी इस एकीभाव प्राप्तिका नाम अस्मिता है। आत्माका नाम दृक्शक्ति और बुद्धि तत्त्वका नाम दर्शन शक्ति है। चित्स्वरूप आत्मा बुद्धिवृत्तिमें प्रतिबिम्बित होती है, इस कारण वह बुद्धिवृत्ति प्रकाश पाती है। जीवको अपनी बुद्धि वा चित्तको चैतन्यसे पृथक् नहीं जानना अर्थात् बुद्धिके प्रति जो अहंरूप 'मैं' ज्ञान आरोपित हुआ है, वही मैं और मेरी इत्याकार प्रतीतिका नाम अस्मिता है। इस अस्मितासे राग नामक क्लेशकी उत्पत्ति होती है। सुखके अनुशय (अनुवृत्ति)का नाम राग है। सुखका एक बार अनुभव करनेसे पुनः उसे पानेकी प्रबल इच्छा होती है। इसी आसक्तिविशेषका नाम राग है। इसी रागसे क्रमशः द्वेषकी उत्पत्ति होती है। दुःखजनक विषयमें जो विद्वेष भाव है, उसे द्वेष कहते हैं। इस दोषके रहनेसे ही मनुष्य क्लेशकर यागादिमें प्रवृत्त नहीं होते। चित्तमें यह द्वेष बद्धमूल हो कर वर्त्तमान रहनेमें ही जीव अभिनिवेशके लिये बाध्य होता है। अभिनिवेशका लक्षण इस प्रकार है,—बार बार मरणदुःखभोग करनेसे चित्तमें तत्तावतका संस्कार वा वासना सञ्चित वा बद्धमूल होती आ रही है। इन्हीं सब वासनाओंका नाम स्वरस है। इस स्वारस्य द्वारा ज्ञानी अज्ञानी सभी जीवोंके चित्तमें उस प्रकारका भाव अर्थात् अलक्ष्यरूपमें मरणदुःखकी छाया वा स्मृति नामक सूक्ष्माकारा वृत्ति आरूढ़ होती है; इस आरूढ़ वृत्तिका नाम अभिनिवेश है। एक बार दुःखका अनुभव होनेसे उस दुःखप्रदवस्तुके प्रति विद्वेष और वह जिससे फिर न हो, उसकी प्रति चेष्टा वा इच्छाविशेष उत्पन्न होती है। दुःखका अन्त मरण है, पूर्व जन्ममें अनुभूत जो असह्य मरण दुःख है उसकी वासनावशतः अर्थात् उसके स्मरणवशतः इस जन्ममें जो मरनेका भय उपस्थित होता है, उसे अभिनिवेश कहते हैं। इस जगत्में प्राणीमात्रके ही अन्तःकरणमें अभिनिवेश सर्वदा जागरूक रहता है। यह पञ्चविध क्लेश क्रियायोग द्वारा एकबारगी नष्ट तो नहीं होते, पर इस क्रियायोगके अनुष्ठानसे सूक्ष्म हो जाते हैं। जब ये सूक्ष्म हो जायंगे, तब इन्हें प्रतिलोमपरिणाम द्वारा चित्तसे दूर करना होगा। चित्त जब समाधि-अनलसे दग्ध हो कर स्वीय कारण अस्मितामें लीन होगा, तब उसके समस्त क्लेशसंस्कार आपसे आप तिरोहित हो जायंगे। क्लेशकी वृद्धि अर्थात् सुख दुःखादिके आकारका परिणाम केवल ध्यान द्वारा ही तिरोहित होता है। क्लेशपञ्चकके विनाशके लिये पहले क्रियायोग और पीछे ध्यानयोग अवलम्बनीय है।

इन सब क्लेशोंका मूल कर्माशय है। यह कर्माशय दो प्रकारका है, दृष्टजन्मवेदनीय और अदृष्टजन्मवेदनीय। वर्त्तमान शरीर द्वारा कृत दृष्टजन्मवेदनीय और जन्मान्तरीय शरीर द्वारा कृत अदृष्टजन्मवेदनीय है। यदि क्रियायोग और ध्यानयोगादि द्वारा क्लेशसमूहको दग्ध न किया जाय, तो चिरकाल तक शुभाशुभ कर्मोंमें जड़ित रहना पड़ेगा—कभी भी समाधि वा मुक्तिलाभ नहीं होगा। यदि क्लेश और क्लेशमूल कर्माशय वियोगी हो जाय, तो समाधि समीपवर्ती कह कर स्थिर करना होगा। जिसके कोई क्लेश नहीं है, वह किस लिये आसक्तिपूर्वक कार्य करेगा? जिसके कोई स्पृहा नहीं है, कामना नहीं है, राग वा द्वेष नहीं है, उसे द्रव्य वा विषयोपलक्षमें मनोविकार वा सुख दुःख ही क्यों होगा? जिसके कोई उद्वेग नहीं है, उसे द्रव्यके अभाव वा अप्राप्तिसे कुछ भी शोक नहीं होगा। वह अनायास और निरुद्वेगसे सुखासीन हो कर समाधिका अनुभव कर सकता है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

मूल अर्थात् कर्माशय रहनेसे ही उसे विपाक अर्थात् फलस्वरूप जाति, जन्म, मरण, जीवन और भोग करना ही होगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं। इस जाति प्रभृतिका फल आह्लाद और परिताप है। क्योंकि यह पुण्य और पापरूप कारणसे उत्पन्न होता है। इसीसे इसके परिणाममें दुःख है, वर्त्तमान अर्थात् भोगकालमें

दुःख है और पश्चात् वा स्मरणकालमें भी दुःख है। योगी लोग सांसारिक सुखमें दुःख मिला हुआ जान कर उस सुखको दुःख ही समझते हैं। योगियोंका मनोविकार नष्ट होनेसे ही उन्हें सुख है। ईश्वर और आत्मतत्त्वमें चित्त स्थिर होनेसे ही सुख है, मनोलय होनेसे उन्हें और भी सुख है। वह सुख दृश्य भोगमें नहीं है, इसी कारण वे दृश्य समुदायको दुःखमें गिनती करते हैं।

इनके मतसे अनागत अर्थात् भविष्यत् दुःख ही हेय है। जिससे भविष्यमें और दुःख न हो, वही करना कर्त्तव्य है। योगीको अनागत अर्थात् भविष्यत् दुःखनिवारणकी चेष्टा करनी चाहिये। द्रष्टा आत्मा और दृश्य अन्तःकरण इन दोनोंका संयोग रहना ही दुःखका कारण है। अन्तःकरण (बुद्धि) के साथ पुरुषका संयोग रहनेसे ही दुःखादि उत्पन्न होते हैं। बुद्धिके ऊपर पुरुष वा आत्माकी अभेद भ्रान्ति वा आत्मसम्पर्क कल्पित हुआ है, इसी कारण पुरुष सुखदुःखादि विकारमें विकृतप्राय हुए हैं; वस्तुतः उसके सुखदुःखादि कुछ भी नहीं है।

प्रकृत और तदुत्पन्न जो कुछ भूतभौतिक हैं, वे सभी पुरुषके भोग और अपवर्गके निमित्त हुए हैं। ये अविवेकीके भोग और विवेकीके मोक्ष उत्पादन करते हैं। जड़स्वभाव लोह जिस प्रकार सम्पूर्णरूपसे इच्छाविहीन और चलत्शक्तिरहित हो कर भी चुम्बकके निकट प्रचलित और सक्रिय होता है, उसी प्रकार प्रकृति भी चिदात्माके सन्निधानवशतः सुखदुःखादि नाना आकारोंमें परिणत होती है। किन्तु जिन्होंने योगादि द्वारा इन्हें प्रकृतिका धर्म स्थिर किया है, उसके और कोई यन्त्रणादि नहीं है।

इस प्रकार संयोगका मूल कारण अविद्या है अर्थात् भ्रान्तिज्ञान वा भ्रान्तिज्ञानका संस्कार है। योगाभ्यास द्वारा वह अविद्या यदि विनष्ट हो जाय, तो उस पुरुषके साथ प्रकृतिसंयोग वा भोक्तृभोग्यभाव नहीं रहता; सुतरां पुरुष उस समय मुक्त हो जाते हैं। जड़सम्बन्धवर्जित हो कर भी वे उस समय अपने चिद्‌घन स्वभावमें प्रतिष्ठित रहते हैं। योगी जो कोई कार्य करें, उन्हें इस प्रकार ध्यान रहना चाहिये मानो उनके अविद्यानाश हो कर विवेकलाभ हुआ है। योगाङ्गानुष्ठान द्वारा चित्तकी मलिनता नष्ट होने पर ज्ञानकी दीप्ति होती है और उस दीप्ति वा उस प्रकाशकी अवधि विवेकख्याति है। उत्कट श्रद्धापूर्वक योगाङ्गका अनुष्ठान करते करते क्रमशः थोड़ा थोड़ा करके चित्तमल उन्मार्जित होता है। उस समय प्रकाशशक्ति धीरे धीरे बढ़ती जाती है, पीछे विवेकख्याति हो कर आत्मसाक्षात् होता है।

योगांगका विषय।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और सम्प्रज्ञात समाधि ये योगाङ्ग हैं। इनमेंसे कोई तो योगका साक्षात्कारण या कोई परम्परा सम्बन्धमें उपकारक मात्र हैं। भगवान् पतञ्जलिने यमादिका लक्षण इस प्रकार बतलाया है,—

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच प्रकारके कार्योंका नाम यम है। इस यम नामक योगाङ्गके साथ साथ नियम नामक योगाङ्गानुष्ठान सर्वथा प्रयोजनीय है। शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान इन पाँच प्रकारकी क्रियाओंका नाम नियम है। इन सब योगाङ्गानुष्ठानके समय वितर्क उपस्थित होता है। वितर्क योगका एक प्रधान विघ्न है। हिंसा और द्वेष प्रभृति तामसमनोवृत्तिका नाम वितर्क है। यह फिर तीन प्रकारका है, स्वेच्छापूर्वक वा स्वयंकृत, दूसरेके अनुरोधसे कृत और अनुमोदनादि द्वारा निष्पादित। ये तीनों वितर्क योगीके लिये परिहार्य हैं। यमादि साधन पूर्ण होने पर इस प्रकार फल हुआ करता है।

पहले अहिंसा—चित्तके हिंसाशून्य होनेसे अहिंसा धर्म यदि प्रबल पराकाष्ठाको प्राप्त हो, तो उसके निकट हिंस्र जन्तु अहिंस्र हो कर रहेगा। जिस योगीने अहिंसा प्रतिष्ठित की है, कैसा ही हिंस्र क्यों न हो उसके निकट हिंस्र स्वभावका परित्याग करेगा ही। यही कारण है, कि तपोवनमें योगियोंकी तपोमहिमासे हिंस्र जन्तुगण अपने हिंस्र स्वभावका परित्याग कर विचरण करते हैं।

वाक्य और मनसे मिथ्याशून्यताको सत्य कहते हैं। जिस योगीकी यह सत्यप्रतिष्ठा हुई है, वे जिस किसी वाक्यका प्रयोग करेंगे, वही सत्य होगा। यदि वे कहें, कि वन्ध्याके पुत्र होगा, तो उनके वाक्यबलसे निश्चय वैसा ही होगा।

परद्रव्य अपहरण स्वरूप चौर्यके अभावको अस्तेय कहते हैं। अस्तेय प्रतिष्ठित होनेसे और कुछ भी अप्राप्त नहीं रहता—अमूल्य रत्नादि भी समीपमें पहुंच जाता है; कोई भी रत्नादि दुष्प्राप्य नहीं रहता। इन्द्रियदोषशून्यताको ब्रह्मचर्य कहते हैं। यह ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित होनेसे वीर्यलाभ होता है। ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठित योगीके एक ऐसी असाधारण शक्ति उत्पन्न होती है, कि वे जिसको जो उपदेश देंगे, वह फलीभूत होगा ही। योगीकी जब अपरिग्रह वृत्ति स्थिर वा दृढ़ होगी, तब उनके अतीत, अनागत और वर्त्तमान जन्मवृत्तान्त स्मरण होगा। उस समय उनसे कुछ भी अज्ञेय रहने न पायेगा।

शौचसिद्धि द्वारा अपने शरीरके प्रति तुच्छ ज्ञान उत्पन्न होता है और परसङ्गेच्छा भी निवृत्त होती है। शौच दो प्रकारका है, बाह्य शौच और अभ्यन्तर शौच। इनमेंसे बाह्य शौचका अभ्यास करते करते आत्मशरीरके प्रति एक प्रकारकी घृणा उत्पन्न होती है।

उस समय और जलबुद्‌बुदके समान मरणधर्मी तथा मलमूत्रादिमय अन्नविकार शरीरके प्रति कोई आस्था वा आदर नहीं रहता एवं परशरीर-संसर्गकी इच्छा भी निवृत्त होती है। आभ्यन्तर शौचका आरम्भ करनेसे पहले सत्त्वशुद्धि, पीछे सौमनस्य, एकाग्रता, इन्द्रियजय और आत्मदर्शनकी क्षमता उत्पन्न होती है। भावशुद्धिरूप आभ्यन्तर शौच जब चरमसीमाको प्राप्त होता है, तब अन्तःकरण ऐसा अभूतपूर्व सुखमय और प्रकाशमय हो जाता है, कि उस समय कुछ भी खेदानुभव नहीं करता—सर्वदा पूर्ण और परितृप्त रहता है। इस पूर्ण परितृप्तिका नाम है सौमनस्य। सौमनस्यके उत्पन्न होनेसे एकाग्रशक्ति प्रादुर्भूत होती है अथवा एकाग्र हो कर सहज हो जाती है। एकाग्रशक्तिके उत्पन्न होनेसे इन्द्रिय-जय होती है। इसी इन्द्रियजयसे चित्त आत्मदर्शनमें समर्थ होता है।

सन्तोष सिद्ध होने पर योगी एक प्रकारका अनुपम सुख प्राप्त करता हैं। वह सुख विषयनिरपेक्ष है। तपस्या दृढ़ होनेसे शरीर और मनका शक्तिप्रतिबन्धक वा ज्ञानका आवरण नष्ट हो जाता है। सुतरां तपःसिद्ध योगी शरीर और इन्द्रियके ऊपर यथेच्छरूपसे क्षमताका परिचालन कर सकते हैं। उस समय उनके इच्छानुसार शरीर अणु वा वृहत् हो सकता है। योगीके स्वाध्याय द्वारा इष्टदेवता-दर्शनमें क्षमता उत्पन्न होती है। ईश्वरप्रणिधानमें जब चित्तनिवेश परिपक्वताको प्राप्त होता है, तब अन्य कोई साधन नहीं करने पर भी उत्कृष्ट समाधि लाभ होती है। जिस योगीने ईश्वरका प्रणिधान किया है, उन्हें और कोई योगानुष्ठान नहीं करना होता। एक ईश्वरप्रणिधानसे ही सभी योगसाधन होते हैं। जिससे शरीरमें किसी प्रकारका उद्वेग उपस्थित न हो, ऐसे भावमें उपवेशन करनेका नाम आसन है। योगका उपकारक आसन सीखना विशेष कष्टजनक तो है, पर इसका अभ्यास हो जानेसे यह स्थिर और सुखजनक हो जाता है। योगाङ्ग आसन जब तक उत्तमरूपसे आयत्त नहीं होते, तब तक वे विघ्नकारी होते हैं; इसी लिए पहले दृढ़तर यत्नपूर्वक जिससे आसन शीघ्र जय हो जाय वही करना योगियोंके लिये सर्वतोभावसे विधेय है। आसनके जय हो जाने पर शीतग्रीष्मादि द्वारा अभिहत होना नहीं पड़ता और प्राणायाममें भी विशेष सहायता पहुंचती है। श्वासप्रश्वासका स्वाभाविक गतिभङ्ग कर देनेसे उसे शास्त्रोक्त नियमके अधीन करने वा स्थानविशेषमें विधृत करनेका नाम प्राणायाम है। आसन सिद्ध होनेसे ही यह दुःसाध्य कार्य सहजमें हो जाता है, नहीं तो यह बड़ा ही दुष्कर है। प्राणायाम तीन प्रकारका है, बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तरवृत्ति और स्तम्भवृत्ति। ये त्रिविध प्राणायाम देश, काल और संख्या द्वारा दीर्घ तथा सूक्ष्मरूपमें सिद्ध होते देखे जाते हैं। प्राणायाम सिद्ध होनेसे ही चित्तको यथेच्छरूपसे नियोग किया जाता है।

इसी प्रकार यम, नियम, आसन और प्राणायाम द्वारा प्रत्याहार नामक योगाङ्ग अभिसम्पन्न हो जाता है।

चक्षुरादि इन्द्रियं जिस रूपादिके प्रति धावित होती हैं, उस ओरसे उसकी गतिको लौटा लेनेका नाम प्रत्याहार है। इस प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियां वशीभूत हो जाती हैं, उस समय समाधि हाथके तले है, ऐसा कहनेमें भी कोई अयुक्ति नहीं। प्रकृतिको वशीभूत करनेका प्रधान उपाय योग है। योग एक वृक्षस्वरूप है, यमनियमादि अनुष्ठान उसके उत्पादक बीज हैं, आसन और प्राणायामादि द्वारा वह अङ्कुरित, प्रत्याहारादि द्वारा पुष्पित पीछे धारणा, ध्यान और समाधि द्वारा फलवान् हो जाता है। चित्तको देशविशेषमें बांध रखनेका नाम धारणा है। रागद्वेषादिशून्य हो कर पूर्वोक्त प्रकारकी मैत्र्यादि भावना द्वारा निर्मल चित्त हो यम नियमादिसे सिद्ध किसी एक योगासन पर बैठ प्राणायामादि अनुष्ठान द्वारा इन्द्रियोंकी स्व स्व वृत्तिका प्रत्याहार कर उसे चित्तके निकट समर्पण करना होगा। वैसे चित्तको किसी एक वस्तुमें दृढ़रूपसे धारण करनेका नाम धारणा है। यह धारणा स्थायी होने पर क्रमशः ध्यानपदवाच्य हो जाती है। अर्थात् उस धारणीय पदार्थमें यदि प्रत्यय (चित्तवृत्ति)की एकतानता उत्पन्न हो, तो वह ध्यान कहाता है। धीरे धीरे वह ध्यान जब केवल मात्र ध्येय वस्तुमें ही उद्भासित वा प्रकाशित करेगा, अपने स्वरूपका मैं ध्यान करता हूं इत्यादि प्रकारका भेदज्ञान लुप्त कर देगा, तब उसे समाधि कहेंगे।

ध्यानके दृढ़ होनेसे ही उसकी परिपाक दशामें, अन्य ध्यानका रहना तो दूर रहे, ध्यानज्ञान भी नहीं रहता। उसका कारण यह है, कि चित्त उस समय सम्पूर्णरूपसे ध्येय वस्तुमें लीन रहता और ध्येयस्वरूप वा ध्येयाकारको प्राप्त होता है। सुतरां चित्त स्वरूप शून्यकी तरह—नहीं रहनेके समान हो जाता है, अतएव उस समय और कोई ज्ञान नहीं रहता। इस प्रकार चित्तावस्था उपस्थित होनेसे ही समाधि हुई, ऐसा स्थिर करना होगा।

भगवान् पतञ्जलिने धारणा, ध्यान और समाधि इन तीनोंका नाम संयम रखा है। इस संयमके जय होनेसे प्रज्ञा नामक उत्कृष्ट बुद्धिका प्रकाश प्रादुर्भूत होता है।

यह संयम नामक योगाङ्ग पूर्वोक्त यमनियमादिकी अपेक्षा समाधिका अन्तरङ्ग अर्थात् (साक्षात्) साधन है। यमनियमादि द्वारा शरीरकी जड़ता निवृत्ति, इन्द्रियकी तीक्ष्णता और चित्तकी निर्मलता उपस्थित होती है। संयम द्वारा चित्तकी सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म पदार्थोंमें समाहित किया जाता है। सुतरां पूर्वोक्त अङ्ग समाधिका बहिरङ्गसाधन और संयम उसका अन्तरङ्गसाधन है।

चित्तके क्षिप्तादि राजसिक परिणामका नाम व्युत्थान और केवलमात्र विशुद्ध सत्त्व परिणामका नाम निरोध है। चित्तकी सम्प्रज्ञात अवस्था और पूर्वोक्त प्रकारकी वैराग्य अवस्था ये दोनों ही यथाक्रम व्युत्थान और निरोध हैं। जब इन दो परिणामोंका संस्कार यथाक्रम अभिभूत और प्रादुर्भूत होता है, तब व्युत्थान संस्कार अभिभूत हो कर निरोध संस्कार पुष्ट हो जाता है। उस समय चित्त निरोध नामक अवसरका अनुगत होता है। ऐसे आनुगत्य अर्थात् ऐसी अवसर-प्राप्ति वा तुष्णीभाव प्राप्तिका नाम निरोधपरिणाम है। संस्कार दृढ़ होनेसे ही उसके प्रभावसे निरोधपरिणामकी प्रशान्तवाहिता वा स्थैर्य प्रवाह उत्पन्न होता है।

संयम द्वारा चित्तगत सभी कर्मसंस्कार (धर्माधर्म वा पापपुण्य) प्रत्यक्ष होते हैं और उस समय योगी पूर्वजन्मका वृत्तान्त जान सकते हैं। जीवने पूर्वजन्म और इस जन्ममें जो कुछ कर्म किये हैं और कर रहा है, वे सभी उसके चित्तक्षेत्रमें अति सूक्ष्मभावसे बीजमें अङ्कुरशक्तिकी तरह संस्काररूपमें निहित रहते हैं। वे सब संस्कार उस समय प्रत्यक्षकी तरह बोध होते हैं और इससे योगी सभी वृत्तान्त जान सकते हैं। उस समय उसके पूर्वजन्म और इस जन्मके सभी वृत्तान्त स्मरण हो आते हैं। इस स्मरणके सिवा उसके विपाकस्वरूप कर्मफलादि कुछ भी भोग करने नहीं होते।

चित्त-संयम।

भगवान् जैगीषव्यने संयम द्वारा आत्मनिष्ठ संस्कार साक्षात् करने पर उन्हें दशकल्पका जन्मवृत्तान्त स्मरण हुआ था। एक दिन आवट्य नामक किसी योगीने जैगीषव्यसे पूछा था, 'भगवन्! आप दशमहाकल्प तक बार बार सुर, नर और तिर्यक् योनिमें उत्पन्न हुए थे, अथच आपकी बुद्धि अभिहत नहीं हुई। आपने जिस जन्ममें

किस शरीरसे किस प्रकार सुख और दुःखका अनुभव किया सो हमें कृपा कर कहिये।' इस पर जैगीषव्यने कहा था, 'आयुष्मन्! मैंने बार बार देवता, मनुष्य और पश्वादि हो कर जो कुछ अनुभव किया, वह सभी दुःख है, एक भी सुख नहीं'।' आवट्यने फिर पूछा, 'तब क्या प्रकृतिवशित्व जिसके प्रभावसे लोगोंके इच्छानुसार ही दिव्य और अक्षय भोग उपस्थित होते हैं, आपके निकट सुख नहीं है?' भगवान् जैगीषव्य बोले, 'प्रकृतिवश्यता सुख तो है, पर वह लौकिक सुखको अपेक्षा उत्तम है, कैवल्यको अपेक्षा नहीं। कैवल्यके साथ तुलना करनेमें वह दुःख समझा जाता है, सुख नहीं। जीवका जब तक तृष्णारूपी सूत्र छिन्न नहीं होगा, तब तक सभी दुःख है।'

संयमसंस्कार साक्षात् कर सकनेसे ही इस प्रकार पूर्वजन्मादिका ज्ञान हुआ करता है। संस्कारके साक्षात् होने पर परचित्तज्ञान तो होता है, पर उसके आलम्बनोंका (उस समय जो विषय सोचते हैं उनका) ज्ञान नहीं होता, क्योंकि वे सब विषय उसके तात्कालिक संयमके अविषय हैं। उन्होंने उस समय संस्कारके प्रति ही संयम किया था, अन्य किसीके भी प्रति नहीं। सुतरां वे जो सोचते हैं, योगी वह जान नहीं सकते। ये सब जाननेके लिये पृथक् प्रणिधान वा संयमको आवश्यकता है।

योगी यदि कर्मके प्रति संयमका प्रयोग करें, तो अपरान्त ज्ञान (मृत्युविषयक ज्ञान) हो सकता है। उस समय वे मृत्यु कब होगी इत्यादि विषय प्रत्यक्ष रूपसे देख सकते हैं। योगीके पूर्वोक्त मैत्री, करुणा और मुदिता नामक मनोभाव विशेषके प्रति संयमी होनेसे उस भावकी उत्कर्षता होती है। उस समय वे उस भावमें बलीयान् होते हैं। भावमात्रमें बलीयान् हो सकनेसे ही वे प्राणिमात्रके सुखदाता और सुहृद् हो जाते हैं तथा इच्छामात्रसे ही दुःखित जीवका दुःखोद्धार किया जाता है। जगत्में कहां क्या होता है, किस नियमसे किस भावमें सांसारिक कार्य चलता है, सूर्यसंयमी योगी वह अच्छी तरह जान सकते हैं। चन्द्रमें चित्तसंयमसे तारामण्डलका यथार्थ तत्त्व प्रतिभात होता है और ध्रुवतारेमें कृतसंयमी होनेसे तारोंकी गति मालूम हो जाती है।

शरीरके मध्यस्थलमें नाड़ीमंडल है। इस नाड़ीमंडल वा नाभिचक्रमें चित्तसंयम करनेसे कायव्यूह अर्थात् शारीरिक संस्थान ज्ञात हो सकता है।

कण्ठकूपके नीचे और उरःप्रदेशमें कूर्म नामक नाड़ी है। इस नाड़ीमें चित्तसंयम करनेसे शरीर और मनकी स्थिरता उत्पन्न होती है। मूर्द्धस्थित तेजोविशेषमें कृतसंयमी होनेसे सिद्धपुरुषोंके दर्शन और उनके साथ सम्भाषणादि किये जाते हैं। योगी यदि प्रतिभाके प्रति चित्तसंयम करें, तो सभी विदित हो सकते हैं। संयम द्वारा इत्यादि प्रकारकी सामर्थ्य लाभ हुआ करती है। वहिर्मुखमें अकल्पित मनोवृत्तिका नाम महाविदेह है। इस महाविदेह नामक धारणाविशेषमें संयमी होनेसे प्रकाशका आवरण क्षय होता है। प्रत्येक भूतके स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वयित्व और अर्थवत्त्व ये पांच प्रकारके रूप वा अवस्थाविशेष हैं। इसके प्रति संयम करनेसे भूतको जय होती है। इसे महाभूतजय भी कहते हैं।

अष्टसिद्धि और उसके लाभका उपाय।

महाभूतजय होने पर अणिमादि अष्टसिद्धि वा अष्टैश्वर्य लाभ होते हैं। अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व, ईशित्व और यत्रकामावसायिता इन आठ प्रकारको महासिद्धियोंका नाम ऐश्वर्य है। ईश्वरके इस प्रकार स्वतःसिद्ध अष्टमहागुण हैं। वे सब गुण वा तत्सदृश गुण साधनबलसे अन्य आत्मामें भी आविष्ट होते हैं। सुतरां वे सब महागुण ऐश्वर्य नामसे प्रसिद्ध हैं। संयम द्वारा यदि भूतका प्रागुक्त स्थूलरूप जय किया जाय, तो उससे प्रथमोक्त चतुर्विध महासिद्धि; संयम द्वारा यदि प्रागुक्तभूतको स्वरूप-अवस्था साक्षात् की जाय, तो प्राकाम्य नामक महासिद्धि; भूतसमूहका सूक्ष्मरूप विजित होनेसे वशित्व नामक महासिद्धि; अन्वयरूप विजित होनेसे ईशित्वसिद्धि और अर्थवत्त्वस्वरूप विजित होनेसे यत्र-कामावसायिता नामक चरम ऐश्वर्य लाभ होता है। अणिमासिद्धि आयतन वा प्रमाणमें वृहत् होने पर भी संयमबलसे अणु होनेकी शक्ति है। यहां तक कि योगी यदि अणिमा

शक्ति लाभ कर सकें, तो वे सूर्य-मरीचिका अवलम्बन करके सूर्यलोक जा सकते हैं।

लघिमा गुरुभार होने पर भी अतिशय लघु होनेकी सामर्थ्य है। महिमा क्षुद्र हो कर भी पर्वतादि प्रमाण होनेकी शक्ति है। इसे कोई कोई गरिमासिद्धि कहते हैं। प्राप्ति अर्थात् इच्छामात्रमें दूरस्थ वस्तुको निकट लानेकी शक्ति है। प्राकाम्य इच्छाशक्तिका अव्याघात है, मनमें जब जो इच्छा होगी, वही इच्छा पूर्ण करनेमें सामर्थ्य है। वशित्व भूत और भौतिक पदार्थोंको वशीभूत करनेकी शक्ति है। ईशित्व सभी भूतादि पदार्थोंके प्रति कर्त्तृत्व करनेकी शक्ति है। यत्र कामावसायित्व सत्यसङ्कल्पता, भूत और भौतिक वस्तुके प्रति वे जब जिस शक्तिके उद्देशसे सङ्कल्प करते हैं, वे सब वस्तुएं उसी समय तद्रूप शक्तिविशिष्ट हो जाती हैं। योगी इसके बलसे विषको अमृत और अमृतको विष कर सकते हैं।

यह अष्ट महासिद्धि लाभ होने पर उसके साथ साथ और भी दो सिद्धि होती हैं। भूतगुण द्वारा उनको शारीरिक क्रियाका प्रतिबन्धक नहीं होना और शरीरसम्पत्ति उत्तम होना ये दो सिद्धियां कायसम्पत् और कायिक धर्मको अव्याघात कहलाती हैं। रूप, लावण्य, बल, वज्रतुल्य दृढ़शरीर वा वेगशालिता प्रभृति शारीरिक गुण विशेषका नाम कायसम्पद् है। योगी इन्द्रियादि जय द्वारा जब प्रकृति और पुरुषका पार्थक्यज्ञान अनुभव करते हैं, तब उनकी अविद्या नष्ट हो जाती है और कैवल्य तथा स्वरूपप्रतिष्ठारूप स्थितिप्रसादलाभ होता है। सुतरां उस समय वे मुक्त वा कृतकृत्य हो जाते हैं।

चार प्रकारके योगियोंका लक्षण।

योगसिद्धिके पहले नाना प्रकारके विघ्न और प्रलोभन आ उपस्थित होते हैं। इस समय योगीको प्रलुब्ध वा विघ्नभयसे योगका परित्याग न करना चाहिये। योगी अवस्थाके अनुसार चार प्रकारके हैं; तदनुसार उनके भिन्न भिन्न नाम पड़े हैं। यथा—प्रथमकल्पिक, मधुभूमिक, प्रज्ञाज्योति और अतिक्रान्तभावनीय।

जो केवल योगाभ्यासमें लगे रहते हैं, उनका योग अविचलित वा दृढ़ नहीं होता। संयमाभ्यासमें रत रह कर जो संयमकालमें किसी प्रकारकी सिद्धि नहीं देखते, केवलमात्र उनका अल्प ज्ञानालोक प्रकाशित होता है। ऐसे योगीका नाम प्रथमकल्पिक है। जिसने इस अवस्थाका अतिक्रम कर मधुमती नामक अवस्था पाई है, पूर्वोक्त ऋतम्भरा नामक प्रज्ञा जय कर भूत और इन्द्रियोंको वशीभूत किया है, उन्हें मधुभूमिक योगी कहते हैं। जो इस अवस्थाका अतिक्रम कर देवताओंसे अक्षोभ्य हुए हैं और पूर्वोक्त स्वार्थसंयमके विषयमें सिद्ध होनेके लिये तत्पर हैं, उनका नाम प्रज्ञाज्योति है। जो इस अवस्थाका भी अतिक्रम कर अत्यधिक विवेकज्ञानसम्पन्न हुए हैं और जिनके समाधिकालमें किसी प्रकारकी विघ्नाशङ्का उद्भव नहीं होती, उनका नाम अतिक्रान्तभावनीय है।

इन चतुर्विध योगियोंके मध्य जो प्रथमकल्पिक हैं, वे कोई सिद्धपुरुष वा देवदर्शन नहीं पाते। सुतरां देवगण कर्त्तृक उनके आमन्त्रण वा प्रलोभनकी सम्भावना नहीं है। देवगण केवल पूर्वोक्त मधुभूमिकादि त्रिविध योगियोंको ही प्रलोभित और आमन्त्रित करते हैं। योगिगण यदि उन सब दिव्यभोग और अद्भुत पदार्थोंके दर्शन कर विमोहित हो जायं, तो उनका योग भ्रष्ट हो जायगा। उनका योगारूढ़ अवस्थामें किसी प्रकार अद्भुत वा अलौकिक दृश्य देख कर उस पर मुग्ध होना विडम्बना मात्र है। क्योंकि ऐसा होनेसे उनका जो संसार है, वही संसार रहेगा। कैवल्यलाभकी आशा सुदूरपराहत होगी।

योगीके क्रमशः तारक ज्ञान लाभ होता है। वह ज्ञान संसारसमुद्रसे तरण करता है, इस कारण उसका तारक नाम पड़ा है। योगबलसे बुद्धितत्त्व निर्मल होने पर बुद्धिनिष्ठ रजः और तमोगुण निःशेषमें विदूरित होता है। उस समय और किसी प्रकारकी वृत्ति उदित नहीं होती—उस समय बुद्धि स्थिर, गम्भीर, निश्चल और निर्मल रहती है। सुतरां निवृत्तिक अवस्था प्राप्त होती है। बुद्धिद्रव्यमें तद्रूप अवस्था होनेका नाम सत्त्वशुद्धि है। जिस नित्य शुद्ध आत्मामें कल्पित भोग तिरोहित होता है उसीका दूसरा नाम आत्मशुद्धि है। सत्त्वशुद्धि

और आत्मशुद्धि समानरूपमें साधित होनेसे आत्माका कैवल्य होता है तथा इसीको मोक्ष कहते हैं। समस्त योगी और प्रत्येक पुरुषका यही परम लक्ष्य है।

पूर्वोक्त सभी सिद्धियां जन्म, औषध, मन्त्र, तपस्या और समाधिसे उत्पन्न होती देखी जाती हैं। सभी व्यक्तियोंके संसारका कारण एकमात्र प्रकृति और पुरुष संयोग है। वह प्रकृतिपुरुषसंयोग पूर्वोक्त अविद्यावशतः ही हुआ करता है। उस अविद्याको विनाशक केवल विवेकख्याति है। एतद्भिन्न अविद्याका उन्मूलक उपायान्तर नहीं है। प्रकृति प्रभृति जड़पदार्थसे पुरुष पृथक्भूत है, ऐसे ज्ञानका नाम ही तत्त्वज्ञान वा विवेकख्याति है। जिस प्रकार धन होनेसे निर्धनताका स्वरूप दैन्य नहीं रहता, उसी प्रकार अविद्याविरोधी विवेकख्याति जिसकी चित्तभूमिमें उपस्थित होती है, उसके चित्तसे अविद्या तिरोहित हो जाती है। अविद्याके विनष्ट होनेसे तत्कार्य प्रकृति और पुरुषसंयोग भी विनष्ट होगा। ऐसा होनेसे ही संसारका मूलोच्छेद होगा। इस प्रकार विवेकख्याति द्वारा संसारकी निवृत्ति होनेसे ही पुरुषका कैवल्य होता है।

कैवल्य।

जवाके निकट उसके प्रतिबिम्बसे स्वच्छस्फटिक भी रक्त प्रतीयमान होता है। जवासे दूर स्फटिक कभी भी रक्त प्रतीयमान नहीं होता, प्रत्युत उसकी स्वाभाविक शुभ्रताका ही अनुभव होता है। उसी प्रकार पुरुषके निर्लेप और स्वच्छ होने पर भी वे संसार-दशामें ही चित्तगत सुखदुःखादिके आभासमात्रमें मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं, मैं कर्त्ता हूं, इत्यादि अभिमानोंमें लिप्त होते हैं। संसारके निवृत्त होने पर और इस प्रकार अभिमान उत्पन्न नहीं होता। उस समय पुरुषकी स्वाभाविक चिन्मात्रस्वरूप केवलरूपता ही रहती है। वही केवल रूप कैवल्य वा मुक्ति कहाता है। कैवल्यलाभ ही योगीका एकमात्र चरमोद्देश्य है। भगवान् पतञ्जलिने कैवल्यपादमें कैवल्यका ही स्वरूप निर्देश किया है। विस्तार हो जानेके भयसे उस विषय पर और अधिक विचार नहीं किया गया।

त्रिगुणा प्रकृति और तत्प्रसूता बुद्धि अपने अवयवीभूत किसी एक गुणके विकारसे विकृत हो कर रूपान्तर वा विकृतिको प्राप्त होती है, चित्स्वरूप पुरुष उस प्रकार विकृत नहीं होते। सूर्य जिस प्रकार निर्मल जलमें प्रतिविम्बित होते हैं, पुरुष भी उसी प्रकार प्रकृतिमें प्रतिविम्बित हुआ करते हैं। विवेकख्याति द्वारा क्रमशः पुरुषके कैवल्य लाभ करने पर प्रकृतिमें वे फिर प्रतिविम्बित नहीं होते। पहले ही कहा जा चुका है, 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानं।' (पात०सूत्र) उस समय वे केवल एकमात्र द्रष्टस्वरूपमें अवस्थान करते हैं। योगका यही चरमफल है।

चिकित्सा शास्त्र जिस प्रकार रोग, रोगहेतु, आरोग्य और आरोग्यहेतुभेदसे चतुर्व्यूह है, उसी प्रकार वह योगशास्त्र भी हेय, हेयहेतु, मोक्ष और मोक्षहेतु नामक चतुर्व्यूह है। दुःखमय संसार ही हेय है। यही संसार एकमात्र दुःखका कारण है। जब तक संसारनिवृत्ति नहीं होगी, तब तक दुःखके हाथसे निष्कृतिलाभका कोई उपाय नहीं। इसीसे 'हेयं दुःखमनागतं' अनागत दुःख ही हेय पदवाच्य है। जिससे और भविष्यद्दुःख न हो, वही करना आवश्यक है। प्रकृति और पुरुषसंयोग ही हेयका हेतु है, दुःखका एकमात्र कारण प्रकृति और पुरुषका संयोग है। जब तक प्रकृति और पुरुषका संयोग रहेगा, तब तक दुःखका हेतु रहेगा ही।

प्रकृति और पुरुषसंयोग-निवृत्तिरूप कैवल्य ही मोक्ष है। योगादि द्वारा प्रकृति और पुरुषसंयोग निवृत्त हो कर मोक्ष वा कैवल्य होता है। मोक्षका कारण ही एकमात्र विवेकख्याति है। मोक्षलाभ करनेमें जिससे विवेकख्याति हो, उसके प्रति चेष्टा करना ही सर्वतोभावसे विधेय है। यही सांख्यमें हेय, हेयहेतु, हान और हानोपाय नामसे अभिहित हुआ है। (पातञ्जल द०)

पतञ्जलिका परिचय और आविर्भावकालनिर्णय।

योगसूत्रकार पतञ्जलिका परिचय बड़ा ही अस्पष्ट है। वे किस समय आविर्भूत हुए थे, ठीक ठीक मालूम नहीं। किसीका कहना है, कि पतञ्जलि स्वयं शेष वा अनन्त देव हैं। षड्गुरुशिष्यने कात्यायनकी वेदानुक्रमणिकाके भाष्यमें लिखा है—

"यत्प्रणीतानि वाक्यानि भगवांस्तु पतञ्जलिः।
योगाचार्यः स्वयं कर्त्ता योगशास्त्रनिदानयोः॥"

जिनके बनाये हुए वाक्योंको भगवान् पतञ्जलिने व्याख्या की, वे ही स्वयं योगाचार्य, निदान और योगशास्त्रके प्रणेता हैं।

षड़्गुरुशिष्यका कहना है, कि पातञ्जलयोगसूत्रकार पतञ्जलिने पाणिनि व्याकरणके व्याख्यास्वरूप 'महाभाष्य' और वैद्यक ग्रन्थकी रचना की। किन्तु हम लोगोंके खयालसे योगसूत्रकार पतञ्जलि और महाभाष्यकार पतञ्जलि ये दोनों एक व्यक्ति नहीं थे। क्योंकि महाभाष्यकारके बहुत पहले कात्यायनने अपने वार्त्तिक (६।१।९४)में पतञ्जलिका स्पष्ट नामोल्लेख किया है। एतद्भिन्न कात्यायनके वार्त्तिकमें योगशास्त्रप्रतिपाद्य अनेक शब्द भी देखे जाते हैं। अतः योगसूत्रकार पतञ्जलि कात्यायनके पूर्ववर्त्ती थे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

किसी किसीका मत है, कि योगसूत्रकार पतञ्जलि पाणिनिके पूर्वतन थे। किन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता। पाणिनिने कहीं पर भी पतञ्जलि या पातञ्जल अथवा पातञ्जलदर्शन-प्रतिपाद्य किसी पारिभाषिक शब्दका उल्लेख नहीं किया। लेकिन योगशास्त्रका मूलतत्त्व पाणिनिके पहले भी प्रचलित रह सकता है।

किसीका कहना है, कि वृहदारण्यक उपनिषद्में जिस काप्य पतञ्जलका नाम है, वे ही योगशास्त्रकार पतञ्जलि हैं। किन्तु इस सम्बन्धमें अनुमानके भिन्न कोई प्रमाण नहीं है। वृहदारण्यक-वर्णित महर्षि याज्ञवल्क्य योगशास्त्रप्रचारक थे, किन्तु पतञ्जलिका नाम तक भी वृहदारण्यकमें नहीं है। श्वेताश्वतर और गर्भ, निरालम्ब, योगशिखा, योगतत्त्व प्रभृति आथर्वण उपनिषद्में योगतत्त्वका स्पष्ट आभास पाया जाता है, किन्तु वह पतञ्जलि प्रवर्त्तित योगसूत्रमूलक है या नहीं, ठीक ठीक मालूम नहीं।

ब्रह्माण्डपुराणमें एक संहिताकार पतञ्जलिका इस प्रकार परिचय है:—

(१) पराशरपुत्र वेदव्यास, उनके शिष्य (२) जैमिनि, जैमिनिके पुत्र (३) सुमन्तु, सुमन्तुके पुत्र (४) सुत्वा, सुत्वाके पुत्र (५) सुकर्मा, सुकर्माके शिष्य (६) पौष्यिञ्जि वा पौष्यिञ्जि, इनके शिष्य (७) कुथुमि, कुथुमिके पुत्र (८) पराशर, पराशरके पुत्र (९) प्राचीनयोग और प्राचीनयोगके पुत्र (१०) पतञ्जलि।

ब्रह्माण्डपुराणोक्त संहिताकार पतञ्जलि सामवेदके कौथुमशाखाप्रवर्त्तक कुथुमिके प्रपौत्र और पराशरके पौत्र कहला कर 'कौथुम पाराशर्य' नामसे भी अभिहित हुए हैं। (ब्रह्माण्डपुराण अनुषंगपाद ६५।४३)

पुराणमें कोई कोई नाम रूपकभावमें वर्णित हुआ करता है। इससे मालूम होता है, कि पतञ्जलिके पिता प्राचीनयोगका नाम भी रूपक है। सम्भवतः इन्होंने प्राचीन योगमार्गका अवलम्बन किया होगा इसीसे इनका नाम 'प्राचीनयोग' पड़ा।

किसी किसीने लिखा है, कि पराशरपुत्र व्यासने अपने वेदान्तसूत्र (२।१।३)में 'एतेन योगः प्रत्युक्तः' इत्यादि उक्ति द्वारा पतञ्जलिप्रवर्त्तित योगसूत्रका ही उल्लेख किया है। किन्तु उपरोक्त तालिका द्वारा जब देखा जाता है, कि पाराशर्य व्यास पतञ्जलिके ऊर्ध्वतन १०म पुरुष थे तब प्राचीनयोगके पुत्र पतञ्जलि किस प्रकार वेदान्तसूत्रकथित योगमार्गके प्रवर्त्तक हो सकते हैं? हम लोगोंका विश्वास है, कि वेदान्तसूत्रकारने प्राचीन योगका विषय ही उल्लेख किया है, किन्तु उस समय भी पातञ्जल योगसूत्र रचित नहीं हुआ था। याज्ञवल्क्यसंहिता, महाभारत आदि बहुप्राचीन ग्रन्थोंसे जाना जाता है कि महर्षि याज्ञवल्क्य आरण्यकने भी योगशास्त्रका प्रचार किया। ब्रह्माण्ड प्रभृति पुराणोंसे मालूम होता है, कि वे पाराशर्य व्यासके समसामयिक थे। योगीयाज्ञवल्क्य नामक योगशास्त्रमें लिखा है, कि महर्षि याज्ञवल्क्यने ही सबसे पहले योगशास्त्रका प्रचार किया। इससे बोध होता है, कि वेदान्तसूत्र ग्रथित होनेके समय याज्ञवल्क्यका योगशास्त्र प्रचलित हुआ था। उनसे बहुत पहले पतञ्जलिने निरीश्वर सांख्यमत समर्थन करके उसे प्रत्यक्षमूलक सेश्वरदर्शनमें परिणत करनेके लिये 'सांख्य-प्रवचनयोगसूत्र' नाम दे कर मत प्रवर्त्तन किया। इन्होंने पूर्वतन योगियोंका मत ही विशदरूपसे और अभिनवभावमें प्रचार किया, इस कारण उनका मत 'पातञ्जलदर्शन'

नामसे प्रसिद्ध है जो षड़्दर्शनके मध्य सर्वश्रेष्ठ दर्शन है। योग और योगशास्त्र शब्दमें अपरापर विवरण देखो।

पतञ्जलिने जिस योगसूत्रकी रचना की है उसके ऊपर भाष्य और अनेकों वृत्ति रची गई हैं, यथा—

१। व्यासरचित पातञ्जल-सांख्यप्रवचनभाष्य और वैयासिक भाष्य।

२। विज्ञानभिक्षुरचित योगवार्त्तिक।

३। वाचस्पतिमिश्ररचित पातञ्जलसूत्रभाष्यव्याख्या तिलक।

४। नागेश वा नागोजो रचित पातञ्जलसूत्रवृत्ति-भाष्यव्याख्या।

५। अनन्तरचित योगसूत्रार्थचन्द्रिका वा योग-चन्द्रिका।

६। आनन्दशिष्यरचित योगसुधाकर। (योग-सूत्रवृत्ति)

७ उदयङ्कर-रचित योगवृत्तिसंग्रह।

८। उमापतित्रिपाठिकृत योगसूत्रवृत्ति।

९। क्षेमानन्ददीक्षितकृत न्यायरत्नाकर वा नव-योगकल्लोल।

१०। गणेशदीक्षितकी पातञ्जलवृत्ति।

११। ज्ञानानन्दविरचित योगसूत्रवृत्ति।

१२। नारायणभिक्षु वा नारायणेन्द्रसरस्वतीकृत योगसूत्रगूढ़ार्थद्योतिका।

१३। भवदेवकृत पातञ्जलीयाभिनवभाष्य।

१४। भवदेवरचित योगसूत्रवृत्तिटिप्पण।

१५। भोजराजकृत राजमार्त्तण्ड।

१६। महादेवरचित योगसूत्रवृत्ति।

१७। रामानन्दसरस्वतीकृत योगमणिप्रभा (वैयासिकभाष्यसम्मत)।

१८। रामानुजकृत योगसूत्रभाष्य।

१९। वृन्दावन शुक्लरचित योगसूत्रवृत्ति।

२०। शङ्कर वा शिवशङ्करकृत योगवृत्ति।

२१। सदाशिवरचित पातञ्जलसूत्रवृत्ति।

२२। राघवानन्दयतिकृत पातञ्जलरहस्य।

२३। श्रीधरानन्दयतिकृत पातञ्जलरहस्यप्रकाश।

आर्यपञ्चाशीति नामक एक योगग्रन्थ देखा जाता है। किसीके मतसे यह ग्रन्थ पतञ्जलिप्रणीत और वैष्णवमत-परिपोषक है। अभिनवगुप्तरचित शैवमत-पोषक एक और योगग्रन्थ मिलता है।

पातञ्चिन् (सं० पु०) पतञ्चो तच्छब्दोऽस्त्यध्याये अनु-वाके वा विमुक्तादित्वादण्। (पा ५।२।६१) १ पतञ्चि शब्दयुक्त अध्याय। २ अनुवाक।

पातन (सं० क्लो०) पत-णिच् भावे ल्युट्। १ पारेके आठ संस्कारोंमेंसे पांचवां संस्कार। इसके तीन भेद हैं—ऊर्ध्वपातन, अधःपातन और तिर्यक्‌पातन।

ऊर्ध्वपातन—तीन भाग पारद और एक भाग ताम्र चूर्णको मिला कर जंबीरी नीबूके रसमें उसे पीस पिण्डाकार बनावे। पीछे निम्नभाण्डमें उस पिण्डको रख कर ऊर्ध्वभाण्डके नीचे लेप लगावे और ऊपरसे पानी भर दे। अनन्तर सन्धिस्थानको अच्छी तरह बन्द कर अग्निसन्तापसे पारद आहरण करे। ऐसा करनेसे निम्नदेशमें ताम्रवङ्ग वङ्गादि दोष गिर पड़ेगा और ऊर्ध्वदेशमें सबकञ्चुक वर्जित निर्मल पारद उठ आयगा। यही ऊर्ध्वपातन है।

अधःपातन—गन्धक और जम्बीर रसके साथ पारदको एक दिन तक घोंट कर पिण्डाकार बनावे। अनन्तर शुकशिम्बा, सोहिञ्जन, अपामार्ग, सैन्धवलवण और श्वेतसर्षपको एक साथ पीस कर उसमें मिला दे। पीछे ऊर्ध्वभाण्डके मध्यभागमें लेप और अधोभागमें जल देवे। बाद दोनों भाण्डके सन्धिस्थलमें लेप दे कर ऊपर भाग पर अग्नि रख दे। पीछे पुट देनेसे ऊर्ध्व-भाण्डमेंसे पारद जलमें गिर पड़ेगा। इसी अधःपातन पारदको काममें लाना चाहिये।

तिर्यक्‌पातन—एक घड़ेमें पारद और दूसरेमें जल भर दे। इन दोनों घड़ोंको तिर्यक्‌भावमें रख कर मुखसन्धि पर लेप लगावे। पीछे पारदपूर्ण घटको नीचे आँच देनेसे पारद तिर्यक्‌भावमें जलमें गिर पड़ेगा। यही तिर्यक्‌पातन है। (रसेन्द्रसारस०) २ विस्तारण। ३ विध्वंस। ४ विनाशन। ५ पतनकारक।

पातनीय (सं० त्रि०) पत-णिच्-अनीयर्। पातनयोग्य, गिराने लायक।

पातवंदी (हिं० स्त्री०) एक नकशा। इसमें किसी जायदादकी अंदाजन मालियत और उस पर जितना देना था कर्ज हो, वह लिखा रहता है।

पातयितृ (सं० त्रि०) पत-णिच्-तृच्। पातनकर्त्ता, गिरानेवाला।

पातराज (सं० पु०) एक प्रकारका सर्प।

पातल्य (सं० क्ली०) पातनशील।

पातव्य (सं० त्रि०) पा-तव्य। १ रक्षितव्य, रक्षा करने योग्य। २ पानयोग्य, पीने लायक।

पातशाह (हिं० पु०) बादशाह देखो।

पातशाही (हिं० वि०) बादशाही देखो।

पाता (हिं० वि०) १ रक्षा करनेवाला। २ पीनेवाला।

पाताबा (फा० पु०) १ मोजा। २ चमड़ेका वह लम्बा टुकड़ा जो ढीले जूतेको चुस्त करनेके लिये उसमें डाला जाता है, सुखतला।

पातामाड़ी—आसामके ग्वालपाड़ा जिलेका एक ग्राम। यह धुबड़ीसे ८ मील दक्षिण ब्रह्मपुत्रनदके किनारे अवस्थित है। यहांसे काफी पाटकी रफ्तनी होती है। यहां एक डाकघर है और प्रति सप्ताह एक बड़ी हाट लगती है।

पातार (हिं० पु०) पाताल देखो।

पातारी—मझवार जातिकी एक शाखा। इस जातिनिर्देशक पातारी शब्दकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें दो मत हैं। किसीका कहना है, कि संस्कृत पत्रवर्णिक अर्थात् लेखक शब्दसे इसकी उत्पत्ति हुई है। इससे साबित होता है, कि ये लोग पहले गोन्द मझवारोंके पुरोहित थे और वंशावलि-लेखकका काम करते थे। फिर कोई गोन्द भाषाके पात (पवित्र स्थान) शब्दसे पातारी शब्दकी उत्पत्ति बतलाते हैं।

मिर्जापुरके पातारी चार श्रेणियोंमें विभक्त हैं। इन चार भागोंके फिर कई एक थाक हैं।

पातारी लोगोंका कहना है, कि ये लोग पहले मझवार थे और सभी सात भाइयोंके वंशधर थे। पुरोहितका अभाव हो जानेसे इन्होंने कनिष्ठ भाईके वंशधरको पुरोहितके कार्य पर नियुक्त किया। तभीसे मझवार लोग इनकी पुरोहिता करते आ रहे हैं।

इनकी विवाह-पद्धति मझवारोंको विवाहपद्धतिसी है। लेकिन मझवारोंसे इन लोगोंमें कच्ची उमरमें ही विवाह होता है। इन लोगोंमें बहु विवाह और विधवा-विवाह प्रचलित है। ये लोग हिन्दू महाब्राह्मणोंकी तरह शवके वस्त्रादि ग्रहण करते हैं, इस कारण लोग इन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं।

पाताल (सं० क्ली०) पतन्त्यस्मिन् दुष्क्रियावन्त इति पत-आलञ्, (पतिचण्डिभ्यामालञ्। उण् १।११६) पादस्य तले वर्त्तते इति पृषोदरादित्वात् साधुरित्येके। १ विवर, गुफा, बिल। २ बड़वानल। ३ बालकके लग्नसे चौथा स्थान। ४ स्वनाम ख्यात भुवनविशेष, पृथ्वीके नीचेके सात लोकोंमेंसे सातवां। पर्याय—अधोभुवन, बलिसद्म, रसातल, नागलोक, अधः, उरगस्थान।

पाताल सात माने गये हैं—अतल, नितल, वितल, गभस्तिमत्, तल, सुतल और पाताल।

"अतलं नितलञ्चैव वितलञ्च गभस्तिमत्।
तलं सुतलपातालं पातालानि तु सप्त वै॥" (शब्दरत्ना०)

पद्मपुराण पातालखण्डमें इस प्रकार लिखा है,—

पाताल ७ है, पहला अतल, दूसरा वितल, तीसरा सुतल, चौथा तलातल, पांचवां महातल, छठां रसातल और सातवां पाताल। ये सात पाताल स्वर्गके अधिक सुखकर स्थान हैं, इसीसे इनका मुनियोंने बिलस्वर्ग नाम रखा है। यह पाताल समृद्धभवन, उद्यान, विहार, आक्रीड़ और चत्वर आदि द्वारा सुशोभित है। अधोदेशमें दशयोजन विस्तृत जो स्थान है, उसे अतल कहते हैं। इस अतल नामक पातालमें मयपुत्र महामाय रहता है। यह महामाय ८६ प्रकारकी मायाकी सृष्टि करता है। इसके अधोदेशमें अयुत योजनविस्तृत वितल नामक पाताल है जहां भगवान् हाटकेश्वर हर और सुपार्श्वद प्रभृति भूतगण तथा स्वयं भवानी वास करती हैं। यहां हाटकी नामक एक अति विस्तृत सुतल नामका पाताल है। इस सुतल पातालमें स्वयं बलि वास करते हैं। सुतल पातालके अधोदेशमें तलातल पाताल है। यहां मायाके आश्रयस्वरूप मयदानव प्रतिष्ठित हैं। इसके निम्नदेशमें महातल नामका

पाताल है, जहां सर्पगण कुटुम्ब और बन्धुबान्धवों सहित गरुड़के भयसे भीत हो कर वास करते हैं। इसके तलदेशमें रसातल है। यहां दानवगण इन्द्रके भयसे भीत हो कर रहते हैं। इसके भी तलदेशमें जो पाताल है वहां वीरश्रेष्ठ नागलोकके सभी अधिपति विद्यमान हैं। (पद्मपुराण पाताल० १,२,३ अ०)

अग्निपुराणमें लिखा है, कि अतल, सुतल, वितल, गभस्तिमत्, महातल, रसातल और पाताल ये सात पाताल हैं। इन सात पातालोंमें यथाक्रम कृष्ण, शिला, नील, रक्त, पीत, श्वेत और कृष्ण ये सात प्रकारकी मृत्तिका है।

विष्णुपुराणके मतसे अतल, वितल, नितल, गभस्तिमत्, महातल, सुतल और पाताल ये सात पाताल हैं। इन सब पातालोंमेंसे प्रत्येक पातालका परिमाण एक योजन है। इनकी भूमि यथाक्रम कृष्ण, शुक्ल, अरुण, पीत, शर्करा, शैल और काञ्चनमय है। इन पातालोंमें महानाग और सर्पगण वास करते हैं। ये सब पाताल स्वर्गलोकसे भी बढ़ कर है। सूर्य और चन्द्रमा यहां प्रकाशमात्र देते हैं; गरमी तथा सरदी नहीं दे सकती। इन पातालोंके नीचे शेषाख्या जो तामसी तनु है, पण्डितगण जिसे अनन्त कहते हैं, जिस अनन्तदेवकी फणामणिके अग्रभाग पर यह पृथ्वी कुसुमकी तरह विद्यमान है, उस अनन्तदेवके वीर्य और शक्तिका पार पाना किसीमें सामर्थ्य नहीं है। जिस समय अनन्तदेव मदाघूर्णितलोचन हो कर जंभाई लेते हैं, उस समय पर्वत और तोयनिधि आदिके साथ पृथ्वी कांप उठती है।

(विष्णुपुराण २।५ अ०)

पातालका विषय देवीभागवतमें इस प्रकार लिखा है,—अन्तरीक्षके अधोदेशमें पृथिवी सौ योजन विस्तृत है। इस पृथ्वीके नीचे सात विवर हैं जिन्हें पाताल कहते हैं। इनमेंसे प्रत्येकका आयाम और उच्छ्राय अयुत योजन है। इन सब स्थानोंमें सभी समय सब प्रकारका सुखभोग किया जाता है। इन सात पातालोंमेंसे पहले पातालका नाम अतल, दूसरेका वितल, तीसरेका सुतल, चौथेका तलातल, पांचवेंका महातल, छठेंका रसातल और सातवेंका नाम पाताल है। ये सब पाताल बिलस्वर्ग नामसे प्रसिद्ध हैं और स्वर्गसे भी समधिक सुखप्रद हैं। यह पाताल काम, भोग, ऐश्वर्य और सुखसमृद्धिसे परिपूर्ण है। यहां बलशाली दैत्य, दानव और सर्पगण पुत्रकलत्रादिके साथ वास करते हैं। ये सभी मायावी, अप्रतिहत-संकल्प तथा वासनाविशिष्ट हैं। यहां सब कोई सब समय आनन्दपूर्वक वास करते हैं। मायाके अधीश्वर मयदानवने इन सब विवरोंमें इच्छानुसार नाना प्रकारकी पुरी, मणिरत्नसे सुशोभित हजारों विचित्र वासगृह, अट्टालिका और समस्त गोपुर निर्माण किये हैं। यह स्थान विविध कृत्रिम भूविभागसे समाकीर्ण और विवरपतियोंके उत्कृष्ट गृहपरम्परासे अलंकृत है। पातालकी जलराशि नाना जातीय विहङ्गवर्गसे विमण्डित, ह्रद स्वच्छसलिलसे परिपूर्ण और पाठीनमत्स्योंसे समलङ्कृत है। यह स्थान सब तरहसे सुखप्रद है। दिन वा रात कभी भी यहां किसी प्रकारका भय नहीं रहता। सर्पोंकी शिरोमणिकी आलोकप्रभासे कभी भी यहां अन्धकार नहीं होता। यहां आधिव्याधि नहीं है। अधिक क्या, वलीपलित, ज्वर, जीर्णता, विवर्णता आदि वयोवस्था यहांके अधिवासियोंको कोई क्लेश नहीं दे सकती। यहां एकमात्र भगवान्‌के तेज तथा सुदर्शनचक्रके सिवा और किसीसे उन्हें मृत्युभय नहीं रहता। क्योंकि भगवान्‌का तेज प्रविष्ट होनेसे भयवशतः उनकी रमणियोंका गर्भपात हो जाता है।

अतल पातालमें मयपुत्र बल वास करते हैं। इन्होंने ८६ प्रकारकी मायाकी सृष्टि कर रखी है। इनके द्वारा सभी प्रकारके प्रयोजन वा अभीष्ट सिद्ध होते हैं।

मायावी इनकी किसी न किसी मायाका अवलम्बन करते हैं। इस परम मायावीबलके जृम्भात्याग करनेके बाद सर्वलोक मोहजनक विविध रमणी उत्पन्न हुई थीं। इन तीनोंका नाम है पुंश्चली, स्वैरिणी और कामिनी। जब कोई पुरुष मिल जाता, सभी कामिनियां उसे प्रलोभित करके सम्यक्‌प्रकारसे आलाप और विभ्रमादिके साथ प्रसन्न करती हैं। इस प्रकार हाटकरसका उपयोग करनेसे वे अपने मनमें समझते हैं, कि मैं स्वयं ईश्वर हूं, सिद्ध हो गया हूं तथा अपनेको ऐश्वर्य विशिष्ट समझ कर बार बार इसी प्रकार कहा करते हैं।

द्वितीय विवरका नाम वितल है। यह वितल भूतलके अधोदेशमें प्रतिष्ठित है। सर्वदेवपूजित भगवान् भव हाटकेश्वर नाम ग्रहण कर स्वकीय पार्षदोंसे परिवृत हो प्रजापति ब्रह्माकी सृष्टिके सविशेष सम्बर्द्धनार्थ भवानीके साथ वहां विराजमान हैं। इन दोनोंके वीर्यसे उत्पन्न हाटकी नामकी नदी बहती है। इस नदीमें हाटक नामक सुवर्ण आविष्कृत होता है। दैत्योंकी स्त्रियां इस सोनेको बड़े यत्नसे धारण करती हैं।

वितलके अधोदेशमें सुतल प्रतिष्ठित है। यह अन्यान्य विवरोंसे श्रेष्ठ माना गया है। वैरोचन बलि इस सुतलमें वास करते हैं और वे ही यहांके अधिपति हैं। सुतल सब प्रकारकी सुख-समृद्धियोंसे परिपूर्ण है। इसके ऐश्वर्यकी कथा क्या कही जाय, स्वयं भगवान् विष्णु आठ पहर चक्र ले कर पहरा देते हैं। किसी समय राजा रावण दिग्विजयमें बाहर निकले थे। इन्होंने जब इस सुतलमें प्रवेश किया, तब भगवान् हरिने भक्तके प्रति दया दरसा कर पादाङ्गुष्ठ द्वारा उन्हें अयुत योजन दूर फेंक दिया था। बलि वासुदेवके प्रसादसे सुतलराज्यके राजपद पर प्रतिष्ठित हैं।

इस सुतलके अधोवर्त्ती विवरका नाम तलातल है। त्रिपुराधिपति दानवेन्द्र मय इस पर आधिपत्य करते हैं। महादेव इनके तीनों पुरोंको दग्ध कर अन्तमें इनकी भक्तिसे प्रसन्न हो गये थे और उन्हें फिर जिला दिया था। यह मय मायाविदोंका आचार्य और विविध मायाओंमें निपुण हैं। भयङ्करप्रकृति वाले निशाचरनिकर सब प्रकारकी कार्यसमृद्धिके लिये इनकी उपासना किया करते हैं।

इस तलातलके बाद परम विख्यात महातल है। यहां क्रोधवावश कद्रुके अपत्य सर्पगण वास करते हैं। इनके अनेक मस्तक हैं। कुहक, तक्षक, सुषेण और कालिय नामक सर्प प्रधान हैं। ये हमेशा गरुड़के भयसे उद्विग्न रहते हैं। ये सब नागगण अपने अपने पुत्र कलत्रादिसे परिवृत हो सुखसे विहार करते हैं।

महातलके अधोवर्त्ती विवरका नाम रसातल है। दैत्य, दानव और पणि नामक असुरगण यहांके अधिवासी हैं। अलावा इनके हिरण्यपुरनिवासी निवातकवचगण और देवताओंके प्रतिद्वन्द्वी कालेय नामक असुरगण वास करते हैं। ये सबके सब बड़े तेजस्वी हैं। भगवान्‌के तेजसे ये हतविक्रम हो कर इस विवरमें वास करते हैं।

इसके अधोदेशमें पाताल है। इस पातालमें नागलोकके अधिपति वासुकीके सामने सर्पगण और शङ्ख, कुलिक, श्वेत, धनञ्जय, महाशङ्ख, धृतराष्ट्र, शङ्खचूड़, कम्बल प्रभृति परम अमर्षविशिष्ट सुविशाल फणासम्पन्न और अत्युत्कृष्ट विषपूर्ण सर्पगण निवास करते हैं। इस पातालके मूलप्रदेशमें तीन हजार योजन अन्तर पर भगवान्‌की अनन्तरूपिणी तमोमयी कला विराजती है। (देवीभाग० ८।१८,१९,२० अ०)

इसके सिवा पातालका विस्तृत विवरण गरुड़पु० ५७ अ०, ब्रह्मपु० १९ अ०, एकाम्रपु० ९ अ० और जैनमत 'लोकप्रकाश' नामक ग्रन्थमें देखो।

पातालकेतु (सं० पु०) पातालवासी दैत्यभेद।

पातालखण्ड (सं० पु०) पाताललोक।

पातालगरुड़ाह्वा (सं० पु०) पातालगरुड़ी लता।

पातालगरुड़ी (सं० स्त्री०) १ लताविशेष, छिरिहटा, छिरेंटा। पर्याय—वत्सादनी, सोमवल्ली, तिक्ताङ्गा, मेचकाभिधा, तार्क्षी, सोमपर्णी, गारुड़ी, दीर्घकान्ता, दृढ़कान्ता, महाबली, दीर्घवल्ली, दृढ़लता। गुण—मधुर, पित्त, दाह, अस्रदोष और विषदोषनाशक, बलकर, सन्तर्पण तथा रुचिकर। २ तिक्तालावा, तितलौकी।

पातालतुम्बी (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी लता। यह प्रायः खेतमें होती है और इसमें पीले रंगके बिच्छूके डंकके-से कांटे होते हैं। वैद्यकमें इसे चरपरी, कड़वी, विषदोषनाशक तथा प्रसूत कालीन अतिसार, दांतकी जड़ता और सूजन; पसीना तथा प्रलापवाले ज्वरको दूर करनेवाली माना है। पर्याय—गर्त्तालाम्बु, भूतुम्बी, देवी, वल्मीकसंभवा, दिव्यतुम्बी, नागतुम्बी, शक्रचापसमुद्भवा।

पातालनिलय (सं० पु०) पाताले पातालं वा निलयो यस्य। १ दैत्य। २ सर्प।

पातालनृपति (सं० पु०) सीसक, सीसा।

पातालयन्त्र (सं० क्ली०) पातति जारणाद्यर्थं पारदादिकं

पत आलच्, पाताल नाम यन्त्रं। १ औषध पाकार्थ यन्त्रविशेष, वह यन्त्र जिसके द्वारा कड़ी औषधियां पिघलाई जाती हैं। इस यन्त्रमें एक शीशी या मट्टीका बरतन ऊपर और नीचे रहता है। दोनोंके मुंह एक दूसरेसे संलग्न रहते हैं और सन्धिस्थल पर कपड़मट्टी कर दी जाती है। ऊपरवाली शीशी वा बरतनमें औषधि रहती है और मुंह पर कपड़ेकी बारीक सूराखवाली डाट लगा दी जाती है। नीचे पात्रके मुंह पर डाट नहीं रहती। फिर नीचेके पात्रको एक गड्ढेमें रख देते हैं और उसके गले तक मट्टी या बालू भर देते हैं। ऊपरके पात्रको सब ओरसे कंडों या उपलोंसे ढक कर आग लगा देते हैं। इस गरमीसे औषधि पिघल कर नीचेके पात्रमें आ जाती है। २ वह यन्त्र जिसमें ऊपरके पात्रमें जल रहता है, नीचेके पात्रको आंच दी जाती है और बीचमें रसकी सिद्धि होती है।

पातालवासिनी (सं० स्त्री०) नागवल्लीलता।

पाताली (हिं० स्त्री०) ताड़के फलके गूदेकी बनाई हुई टिकिया। इसे गरीब लोग सुखा कर खानेके काममें लाते हैं।

पातालौकस् (सं० पु०) पातालमोकः स्थानः यस्येति। १ शेषनाग। २ बलि। (त्रि०) ३ पातालवासिमात्र, जिसका घर पातालमें हो।

पाति (सं० पु०) पाति रक्षतीति पा-अति (पातेरतिः। उण् ४।१) प्रभु, स्वामी।

पाति (हिं० स्त्री०) १ पत्ती, पर्ण, दल। २ पत्रिका, पत्र, चिट्ठी।

पातिक (सं० पु०) पातः पतनं जले निमज्जनोन्मज्जनमेवास्त्यस्येति पात-ठन्। शिशुमार, सूस नामक जलजन्तु (Gangetic porpoise)।

पातित (सं० त्रि०) पत-णिच्-क्त। १ निक्षिप्त। २ अधःकृत।

पातित्य (सं० क्ली०) पतित-ष्यञ्। १ पतित होने या गिरनेका भाव, गिरावट। २ अधःपतन, नीच या कुमार्गी होनेका भाव।

पातिन् (सं० त्रि०) पतनशील, गिरनेवाला।

पातिली (सं० स्त्री०) पातिः सम्पातिः पक्षियूथं लीयतेऽत्र, ली-ड, ङीष् च। १ पक्षी पकड़नेका फंदा। पातिः स्वामी लीयतेऽस्यां। २ नारी। ३ मृत्पात्रभेद, हांड़ी।

पातिव्रत (सं० पु०) पातिव्रत्य देखो।

पातिव्रत्य (सं० क्ली०) पतिव्रता भावे ष्यञ्। पतिव्रता होनेका भाव। स्त्रियोंका पातिव्रत्य ही एक धर्म है। पतिव्रता देखो।

पातिसाहि (सं० पु०) बादशाह देखो।

पाती (हिं० स्त्री०) १ प्रतिष्ठा, इज्जत, लज्जा। २ पत्र, चिट्ठी। ३ वृक्षके पत्ते, पत्ती।

पातुक (सं० त्रि०) पति-उकञ् (लषपतपदस्थेति। पा ३।२।१५४) १ पतनशील, गिरनेवाला। (पु०) २ प्रपात, झरना। ३ जलहस्ती, जलहाथी।

पातुर—बरारके अकोला जिलान्तर्गत बलापुर तालुकका एक शहर। यह अक्षा० २०° २७´ उ० और देशा० ७६° ५८´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या छः हजारके करीब है। इस नगरको लोग पातुर शेख बाबू कहा करते हैं। प्रवाद है, कि शेख अबदुल अजीज नामक एक मुसलमान फकीर जो शेख बाबू नामसे प्रसिद्ध थे १३०८ ई०में दिल्लीसे यहां आ कर रहने लगे। एक समय इन्होंने महम्मद बिन तुगलकको सख्त रोगसे बचा दिया था, इस कारण महम्मद इनकी बड़ी खातिर करते थे। यहां दश वर्ष रहनेके बाद उनकी मृत्यु हो गई। महम्मदने उनकी कब्र पर एक समाधि मन्दिर बनवा दिया और शहरका नाम पातुर शेख बाबू रखा। उस समाधि-मन्दिरका १६०६-७में बैराम खांके लड़के खान-इ-खान-खानासे संस्कार हुआ। प्रति वर्ष जनवरी मासमें यहां एक भारी मेला लगता है। यहां बौद्धोंका एक विहार भी है।

पातुर (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी।

पातुरनी (हिं० स्त्री०) पातुर देखो।

पात्त (सं० पु०) पापियोंका उद्धार करनेवाला, पापियोंका त्राता।

पात्तार—सारन जिलेका एक ग्राम। यहांसे प्रति वर्ष प्रायः ५२००) मन चावलकी रफतनी होती है।

पातृ (सं० त्रि०) पाति रक्षति पिबति वा पा-तृच्। १ रक्षक, बचनेवाला। (पु०) २ गन्धपत्र। ३ तृणभेद।

पात्तिगणक (सं॰ क्लो॰) पत्तिगणकस्य भावः उद्गात्रादित्वात् अञ्। (पा ५।१।१२९) सेनागणक कर्म और उसका भाव।

पात्नीवत (सं॰ पु॰) पत्नी विद्यतेऽस्य मतुप्, मस्य व, तच्छब्दोऽस्यत्र विमुक्तादित्वादण्। पत्नीवच्छब्दयुक्त। १ अध्याय। २ अनुवाक।

पात्नीशाल (सं॰ त्रि॰) पत्नीशाला सम्बन्धीय।

पात्य (सं॰ क्लो॰) पत्युर्भावः यक्। १ पातिता, पतित होनेका भाव। २ पतनीय, गिरनेयोग्य।

पात्र (सं॰ त्रि॰) पाति रक्षति क्रियामाधेयं वा पिवन्त्यनेनेति वा पा-ष्ट्रन् (सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्। उण् ४।१५८) १ नाना गुणालंकृत, नाना गुणसम्पन्न। (क्लो॰) २ आधेयभूत वस्तु, वह वस्तु जिसमें कुछ रखा जा सके। पर्याय—अमत्र, भाजन, भाण्ड, कोश, कोष, पात्री, कोशी, कोषी, कोषिका, कोशिक। ३ योग्य। ४ राजमन्त्री। ५ तीरद्वयान्तर, नदीके दोनों किनारोंके बीचका स्थान, पाट। ६ पर्ण, पत्ता। ७ नाट्यानुकर्त्ता, नाटकके नायक नायिका आदि। ८ आढ़क परिमाण। वैद्यकमें एक तौल जो चार सेरके बराबर होती है। ९ स्रुवादि, यज्ञीय होमादि साधन। इस पात्रका लक्षण कात्यायन श्रौतसूत्र (१।३।३१) और इसके भाष्यमें विशेषरूपसे वर्णित है। धर्मप्रदीपमें लिखा है—

"आज्यस्थाली च कर्त्तव्या तैजसद्रव्यसम्भवा।
महीमयी वा कर्त्तव्या सर्वास्वाज्याहुतीषु च॥
आज्यस्थाल्याः प्रमाणं तु यथाकामन्तु कारयेत्।
सुदृढामव्रणां भद्रामाज्यस्थालीं प्रचक्षते॥"

आज्यस्थाली तैजसद्रव्यकी होवे, अभावमें मृण्मयकी भी हो सकती है। इसका परिमाण इच्छा पर निर्भर है। यह सुदृढ़ और अव्रण होवे।

देवीपुराणमें लिखा है—हेम अथवा रौप्य पात्रसे अर्घ्य देनेसे आयु, राज्य और पुत्रादि लाभ, ताम्रपात्रसे सौभाग्य और मृण्मयपात्रसे धर्म लाभ होता है। विवाह, यज्ञ, श्राद्ध और प्रतिष्ठा आदिमें पात्र देना होता है। बिना पात्रके ये सब कार्य सिद्ध नहीं होते। इसीसे पात्रको श्रेष्ठ यज्ञाङ्ग बतलाया है। देवपूजाङ्गका ३६ उंगलीका पात्र प्रशस्त और २७ उंगलीका मध्यम बतलाया गया है। इस पात्रको नाना प्रकारका तथा विचित्र रूपोंका बनाना चाहिये। इसकी आकृति पद्म, शङ्ख वा नीलोत्पलसी होनी चाहिये। जो बिना पात्रका अनुष्ठान करते हैं, उनकी सभी क्रियाएं निष्फल होती हैं। (देवीपुराण)

पात्रक (सं॰ क्लो॰) १ थाली, हांड़ी आदि पात्र। २ वह पात्र जिसमें भीख मांग कर रखी जाय।

पात्रकटक (सं॰ पु॰ क्लो॰) भिक्षापात्रका कड़ा।

पात्रट (सं॰ पु॰) पात्रा इव पिवन्निव वा अटतीति अट-अच। १ कर्पटक, भिखमंगा। (त्रि॰) २ कृश, दुबला पतला।

पात्रटीर (सं॰ पु॰) पात्रेव रक्षन्निव पिबन्निव वा अटतीति अट-बाहुकात् ईरन्। १ उचित व्यापारयुक्त मन्त्री, वह मन्त्री जो यथोपयुक्त कार्य करता है। २ लौहपात्र। ३ कांस्यपात्र। ४ रजतपात्र। ५ सिंहाण। ६ पावक। ७ पिङ्गाश। ८ वायस। ९ कङ्क। स्त्रियां जातित्वात् ङीष्। १० धारक।

पात्रतरङ्ग (सं॰ पु॰) प्राचीनकालका ताल देनेका एक प्रकारका बाजा।

पात्रता (सं॰ स्त्री॰) पात्रस्य भावः, पात्र-भावे तल् स्त्रियां टाप्। १ पात्रत्व, उपयुक्तता, पात्रका धर्म।

"अपात्रः पात्रतां याति यत्र पात्रो न विद्यते।"
(उज्ज्वल ४।१५८)

जहां उपयुक्त पात्र नहीं मिलता, वहां अपात्र भी पात्र समझा जाता है। केवल विद्या द्वारा ही नहीं, तपस्या द्वारा भी पात्रता लाभ होती है।

"न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता।
यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धिपात्रं प्रकीर्त्तितं॥"
(याज्ञ॰ १।२००)

पात्रत्व (सं॰ पु॰) पात्रता, पात्र होनेका भाव।

पात्रदबरू—बम्बईप्रदेशकी एक नर्त्तकी जाति। ये नगर और बड़े बड़े ग्राममें रहती हैं। कणाड़ी इनकी भाषा है और मलहारी देव उपास्य देवता हैं। ये लोग देखनेमें सुश्री और परिष्कार परिच्छन्न होती हैं। इनका पहनावा इस अञ्चलकी ब्राह्मणकन्या सरीखा है। लेकिन पर्वादि उपलक्षमें नाच करनेके लिये ये बहुमूल्य पोशाक पहन लेती हैं। नृत्यगीत ही इनका प्रधान व्यवसाय है।

जब ये नाच करती हैं, तब इनका भाई वा पुत्र ढोल और सारङ्गी बजाता है। ये लोग अतिथिधर्मपरायण होतीं और बिना देवपूजाके जल तक भी नहीं पीती हैं। हिन्दू-पात्रदयरू ब्राह्मणोंको भक्ति करतीं और गुरुसे मन्त्र लेती हैं। इनका भूतप्रेतादिमें खूब विश्वास है। सन्तानके जन्म लेने पर ये सोनेकी अंगूठीसे उसको नाक छूतीं और नाड़ीछेदन करनेके पहले मुखमें मधु डाल देती हैं। पांचवें दिन षष्ठीदेवीको पूजा होती है और तेरहवें दिन सन्तानका नामकरण तथा तीसरे माससें कर्णवेध होता है। जब कन्या सात वर्षकी होती है, तब शुभदिन देख कर अन्यान्य नर्त्तकियां निमन्त्रित होती हैं। इस दिन कन्या स्नान करके वाद्ययन्त्र नूपुर आदिकी पूजा करती है और उसी दिनसे नाच गान सीखना आरम्भ कर देती है। बारह वर्षकी उमरमें वह मादल नामक वाद्ययन्त्रके साथ व्याही जाती और उस उपलक्षमें ब्राह्मणको दान दिया जाता तथा भोज, नाच, गान आदि बड़ी धूमधामसे होता है। कन्याका प्रथम ऋतुकाल उपस्थित होनेके पहले ही एक प्रणयी चुन लिया जाता है और प्रथम ऋतु होनेके बाद चौथे दिनसे कन्याको उक्त पुरुषके साथ कमसे कम एक मास तक सहवासके लिये छोड़ दिया जाता है। पीछे कन्या यावज्जीवन उसका रुम्मान करती है। इस जातिमें कन्या ही मातृ-सम्पत्तिकी उत्तराधिकारिणी होती है।

पात्रदुष्टरस (सं॰ पु॰) केशवदासके मतसे एक प्रकारका रसदोष। इसमें कवि जिस वस्तुको जैसा समझता है रचनामें उसके विरुद्ध कर जाता है। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं,—

'कपट कृपानी मानी, प्रेमरस लपटानी, प्राननिको गंगाजीको पानी सम जानिये। स्वारथ निधानी परमारथकी रजधानी कामकी कहानी केशोदास जग मानिये। सुबरन उरझानी, सुधा सो सुधार मानी सकल सयानी सानी ज्ञानी सुख दानिये। गौरा और गिरा लजानी मोहे, पुनि मूढ़ प्रानी, ऐसी बानी मेरी रानी विधुकै बखानिये। (केशव)

पात्रपाक (सं॰ पु॰) भेषजादि परिपाक वा क्वाथ।

पात्रपाणि (सं॰ पु॰) छोटे छोटे बच्चोंका अनिष्टकारी उपदेवभेद।

पात्रपाल (सं॰ पु॰) पात्रं पालयतीति पाल 'कर्मण्यन्' इति अण्। पात्ररक्षक।

पात्रशेष (सं॰ पु॰) खा कर छोड़ा हुआ अन्नादि, उच्छिष्ट, जूठा।

पात्रसंस्कार (सं॰ पु॰) संस्क्रियते इति सम्-क्रि-घञ्, पात्रस्य संस्कारः, शुद्धिः। १ भाजनशुद्धि, पात्रशुद्धि। २ पुरोटि।

पात्रसञ्चार (सं॰ पु॰) मध्याह्नभोजनके बाद पात्रस्थानान्तरकरण, खानेके बाद जूठे बरतनोंको अलग उठा कर रखना।

पात्रसात् (सं॰ व्य॰) पात्र देयार्थे चसात्। सत्पात्रमें देय, सत्पात्रमें न्यस्त।

पात्रहस्त (सं॰ त्रि॰) जिसके हाथमें पात्र हो।

पात्रासादन (सं॰ क्ली॰) पात्राणामासादनं ६-तत्। यज्ञपात्रको यथास्थान रखना।

पात्रि—१ बम्बई प्रदेशके काठियावाड़के अन्तर्गत झालावार विभागका एक छोटा राज्य। परिमाण ४० वर्गमील है। राज्यकी आय ८०००) रु॰ है जिनमेंसे ५२३५) रु॰ वृटिश गवर्मेण्टको करमें देने पड़ते हैं।

२ बम्बईके अहमदाबाद जिलान्तर्गत विरामगाँव तालुकका एक शहर। यह अक्षा॰ २३° ११' उ॰ और देशा॰ ७१° ५३' पू॰ अहमदनगर शहरसे ५८ मील पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या छः हजारके करीब है। नगर प्राचीरसे घिरा है और इसके मध्य भागमें एक गढ़ है। रुई, शस्य और गुड़ यहांको प्रधान वाणिज्य वस्तु है। यहां एक डाकघर है।

पात्रिक (सं॰ त्रि॰) पात्रस्य वापः ठन्, पात्रवाप चेत्रादि, स्त्रियां जातित्वात् ङीष्, पात्रिकी पात्रं सम्भवति, अवहरति आहरति वा ठञ्। पात्रापहारकादि।

पात्रिन् (सं॰ त्रि॰) पात्र-प्रस्त्यर्थे इनि। १ पात्रयुक्त, जिसके पास बरतन हो। २ जिसके पास सुयोग्य मनुष्य हो। (स्त्री॰) ३ छोटे छोटे बरतन। ४ एक छोटी भट्ठी जिसे एक स्थानसे दूसरे स्थान पर उठा कर ले जा सकते हैं।

पात्रिय (सं॰ स्त्री॰) पात्रमर्हति पात्र-घ (पात्राद्घंश्च। पा ५।१।६८) १ पात्रार्ह, पात्रके योग्य। २ जिसके साथ एक थालीमें भोजन किया जा सके, सहभोजी।

पात्रीण (सं० त्रि०) पात्र-ख (आढकाचितपात्रात् खोऽन्यतरस्याम्। पा ५।१।५३) पात्रावहारकादि।

पात्रीय (सं० क्ली०) पात्रे साधु पात्र-बाहुलकात् छ। १ यज्ञपात्र। (त्रि०) २ पात्रसम्बन्धीय।

पात्रीर (सं० पु०) पात्री राति, पात्रीं राती वा रा-क। यज्ञद्रव्य।

पात्रेबहुल (सं० पु०) पात्रे भोजनसमये एव बहुलाः नतु कार्ये, पात्रे समितादित्वात् आक्षेपे गम्ये अलुक्-समासः। वे जो काम काज कुछ भी नहीं करते, पर खानेके समय उपस्थित हो जाते हैं।

पात्रेसमित (सं० त्रि०) पात्रे भोजन-समये एव समितः सङ्गतः, पात्रे समितादित्वात् अलुक् समासः। १ कार्यकालमें अक्षम और भोजनके समयमें सङ्गत अर्थात् जो भोजनकालमें उपस्थित हो जाते हैं, पर कार्य कालमें नहीं रहते। (पु०) २ पापविशेष।

"निधाय हृदये पापं यः परं शंसति स्वयं।
स पात्रे समितोऽथ स्यात्— ॥" (शब्दमाला)

३ उक्त लक्षणोक्त पापयुक्त पुरुष। जो मनुष्य हृदयमें पाप रख कर मीठी बातें करता है, उसे पात्रेसमित कहते हैं।

पात्रेसमितादि (सं० पु०) आक्षेप अर्थं अलुक्समासादि निमित्त शब्दगणभेद। गण ये हैं—पात्रेसमित, पात्रेबहुल, उदुम्बरमशक, उदुम्बरकृमि, कूपेकच्छप, अवटेकच्छप, कूपमण्डूक, कुम्भमण्डूक, उदपानमण्डूक, नगरकाक, नगरवायस, मातरिपुरुष, पिण्डीशूर, पितरिशूर, गेहेशूर, गेहेनर्दी, गेहेक्ष्वेडी, गेहेविजिती, गेहेव्याड़, गेहेमेही, गेहेदाही, गेहेदृप्त, गेहेधृष्ट, गर्भेतृप्त, आखनिकबक, गोष्ठेशूर, गोष्ठेविजिती, गोष्ठेक्ष्वेडी, गोष्ठेपटु, गोष्ठेपण्डित, गोष्ठेप्रगल्भ, कर्णेटिरिटिरा, कर्णेचुरचुरा।" (पाणिनीय गणपाठ)

पात्रोपकरण (सं० क्ली०) पात्रस्य पात्राणां वा उपकरणं उपभूषणं। पात्रका उपभूषण, कौड़ी आदि पदार्थ जिन्हें टांक कर बरतनोंको सजाते हैं।

पात्र (सं० क्ली०) पततीति पत-क्विप्, पतं अधःपतन्तं जनं त्रायते त्रै-क, ततः स्वार्थे अण्। पापि त्राता, वह जो पापियोंको बचाता हो।

पात्रता (सं० स्त्री०) पात्रस्य भावः तल्, टाप्। विद्यातपस्याचारयुक्तता।

पात्र्य (सं० त्रि०) पात्र यत् (पात्राद्घंश्च। पा ५।१।६८) पात्रिय, पात्रार्ह।

पाथ (सं० क्ली०) १ जल, पानी। (पु०) पातीति पाथुट्, निपातनात् साधुः। २ सूर्य। ३ अग्नि। ४ आकाश। ५ वायु। ६ अन्न।

पाथ (हिं० पु०) मार्ग, रास्ता, राह।

पाथना (हिं० क्रि०) १ ठोंक पीट कर सुडौल करना, गढ़ना, बनाना। २ किसीको पीटना, ठोंकना, मारना। ३ किसी गीली वस्तुसे साँचेके द्वारा वा बिना साँचेके हाथोंसे थोप, पीट वा दबा कर बड़ी बड़ी टिकिया या पटरी बनाना।

पाथनाथ (सं० पु०) समुद्र।

पाथनिधि (सं० पु०) समुद्र।

पाथरवत्—बम्बईप्रदेशवासी एक जाति। ये लोग पूना जिलेमें सब जगह देखे जाते हैं। इनका पहनावा महाराष्ट्रीयोंके जैसा होता है। ये लोग परिष्कार परिच्छन्न, परिश्रमी, मितव्ययी, सुशृङ्खल और अतिथ्य होते हैं। पत्थरमें देवता जन्तु आदिकी मूर्त्ति खोदना ही इनका जातिगत व्यवसाय है। ये लोग हिन्दू देवदेवीकी पूजा करते हैं। इनमें विधवा-विवाह प्रचलित है, किन्तु यह विवाह अति निर्जनस्थानमें ही सम्पन्न होता है। ये लोग मृतदेहका सत्कार करते हैं। जातिभेदप्रथा भी इन लोगोंमें प्रबल है।

पाथस् (सं० क्ली०) पाति रक्षति जीवानिति पा असुन् थुट् च (उदके थुट् च। उण् ४।२०४) १ जल। २ अन्न। ३ आकाश।

पाथस्पति (सं० पु०) वरुण।

पाथा (हिं० पु०) १ एक तौल जो एक दोन कच्चे चार सेरकी होती है। इसका व्यवहार देहरादून प्रान्तमें अन्न नापनेके लिये होता है। २ खलिहानमें राशि नापनेका एक बड़ा टोकरा। प्रायः यह टोकरा किसी नियत मानका नहीं होता। लोग इच्छानुसार भिन्न भिन्न मानोंका व्यवहार करते हैं। यह बेंतका बना होता है और इसकी बाढ़ बिलकुल सीधी होती है। कहीं कहीं

इसे लोग चमड़ेसे मढ़ भी लेते हैं। इसका दूसरा नाम पाथी और नली है। ३ उतनी भूमि जितनीमें एक पाथा अन्न बोया जा सकता हो। ४ हलकी खोंपी जिसमें फाल जड़ा रहता है। ५ कोल्हू हांकनेवाला। ६ अन्न में लगनेवाला एक छोटा कीड़ा।

पाथि (हिं॰ पु॰) १ समुद्र। २ आँख। ३ प्राचीनकाल-का एक प्रकारका शरबत। यह मट्ठेके पानी और दूध आदिको मिला कर बनाया जाता था और इससे पितृ-तर्पण किया जाता था, कीलाल। ४ घाव परको पपड़ी, खुरंड।

पाथिक्, (सं॰ पु॰ स्त्री॰) पथिकस्यापत्यं पथिक-शिवा दित्वादण्, (पा ४।१।११२) पथिकका अपत्य।

पाथिकार्य (सं॰ पु॰) पथिकार-कुर्वादित्वात् ण्य। (पा ४।१।१५१) पथिकारका अपत्य वा अंश।

पाथिक्य (सं॰ क्ली॰) पथिकस्य भावः पुरोहितादित्वात् यक्, (पा ५।१।१२८) पथिकत्व।

पाथिस् (सं॰ पु॰) पिबति नद्यादि जलमाकर्षतीति पा-इसिन् शुगागमश्च (उण् २।११५) १ समुद्र। २ चक्षु, आँख। ३ कीलाल। ४ घाव परको पपड़ी, खुरंड।

पाथेय (सं॰ क्ली॰) पथि साधुरिति पथिन्- ढञ्, (पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ् । पा ४।४।१०४) १ पथिव्ययि-तव्य द्रव्य, वह द्रव्य जो पथिक राह खर्चके लिये ले जाता है, राहखर्च। २ वह भोजन जो पथिक अपने साथ मार्गमें खानेके लिये बांध कर ले जाता है, रास्ते-का कलेवा। ३ कन्याराशि।

पाथेयक (सं॰ त्रि॰) पाथेय धूमादित्वात् वुञ्। (पा ४।२।१२७) पथका सम्बलयुक्त, जिसके पास राह खर्च हो।

पाथोज (सं॰ क्ली॰) पाथसि जले जायते इति जन-ड। कमल, पद्म।

पाथोद (सं॰ पु॰) पाथो जलं ददातीति दा-क। मेघ, बादल।

पाथोधर (सं॰ पु॰) धरति धारयतीति वा धृ-अच्। पाथसो धरः, पाथो धारयतीति धारि-अच्, ह्रस्व इत्येके। मेघ, बादल।

पाथोधि (सं॰ पु॰) पाथांसि धीयन्तेऽत्र धा-कि। समुद्र।

पाथोनिधि (सं॰ पु॰) पाथांसि जलानि निधीयन्तेऽस्मिन् इति नि-धा-कि। समुद्र।

पाथोभाज् (सं॰ त्रि॰) पथ वा स्थानभोगी।

पाथ्य (सं॰ त्रि॰) पाथसि भावः वेदे ड्यत्। १ आकाशमें रहनेवाला। २ हवामें रहनेवाला। ३ हृदयाकाशमें रहनेवाला।

पाद (सं॰ पु॰) पद-करणे घञ्, पद्यते गम्यते अनेनेति वा घञ्। १ चरण, पैर, पांव। गर्भस्थित बालकके द्वितीय मासमें पैर होता है। पर्याय—पत्, अङ्घ्रि, चरण, अंह्रि।

पाद द्वारा पाद आक्रमण, उच्छिष्ट लङ्घन और संहत पाणि द्वारा शिरःकण्डूयन नहीं करना चाहिये। दूसरे शास्त्रमें पाद चालनादिको भी निषिद्ध बतलाया है।

कभी भी पाद द्वारा पादचालन नहीं करना चाहिए। दोनों पैर अग्निमें प्रतापन और कांस्यपात्रमें धारण करना मना है। ब्राह्मण, गो, अग्नि, नृप और सूर्यको ओर भूल कर भी पादप्रसारण न करे। २ ऋग्वेदीय मन्त्र-चतुर्थांश। ३ श्लोकचतुर्थांश। ४ बुध्न। ५ वृक्षमूल। ६ तुरीयांश। ७ चतुर्थ भाग। ८ शैलप्रत्यन्त पर्वत। ९ महाद्रिके समीप अवस्थित क्षुद्र पर्वत। १० मयूख। ११ किरण। १२ शिव। १३ चिकित्साके चार अंग। सुश्रुतमें लिखा है, कि वैद्य, रोगी, औषध और परि-चारक ये चार पाद चिकित्साकार्य-साधनके उपयोगी हैं। वैद्य यदि गुणवान् हो और रोगी शेष तीन गुणविशिष्ट हो, तो कठिनसे कठिन रोग भी थोड़े ही समयमें आरोग्य हो जाता है। जिस प्रकार उद्गाता, होता और ब्रह्मा इन तीनोंके रहने पर भी बिना आचार्यके यज्ञ नहीं होता, उसी प्रकार चिकित्साके शेष तीन पाद गुणविशिष्ट होने पर भी बिना वैद्यके चिकित्सा-कार्य सम्पन्न हो ही नहीं सकता। जो वैद्य शास्त्रार्थ-पारदर्शी, दृष्टकर्मा, स्वयं कार्यक्षम, लघुहस्त, शुचि, शूर, औषध और यन्त्र आदि चिकित्साके सर्वप्रकार उप-करणोंसे सुसज्जित, प्रत्युत्पन्नमति, बुद्धिमान्, व्यवसायी, विशारद और सत्यधर्मपरायण हों, वे ही चिकित्सा-कार्यके प्रथम पाद गिने जाते हैं। जो रोगी आयुष्मान्, बुद्धिमान्, साध्य, द्रव्यवान्, आस्तिक और वैद्यके मतानु-

गामी हैं, वे चिकित्साकार्यके द्वितीय पाद तथा जो औषध प्रशस्तदेशमें उत्पन्न और उत्तम दिनमें उखाड़ी गई हो, जो मनको प्रीतिकर, गन्धवर्णरसविशिष्ट, दोषघ्न, अग्लानिकर हो जो विपर्ययमें भी कोई विकार न करती हो तथा उपयुक्त काल और उपयुक्त मात्रामें रोगीको दी जाती हो, वही चिकित्साका तृतीय पाद है। जो परिचारक स्निग्ध, बलवान्, रोगीके प्रति यत्नशील हों; जो दूसरेकी निन्दा न करते हों, जो वैद्यवाक्यके अनुगामी और कठिन परिश्रमी हों, वे ही परिचारक चिकित्साकार्यके चतुर्थ पाद बतलाये गये हैं। (सुश्रुतकल्पस्थान ३४ अ०)

१४ ग्रन्थांशविशेष, पुस्तकका विशेष अंश। जैसे, पातञ्जलका समाधिपाद, साधनपाद आदि। १५ ऋषिविशेष। पद भावे घञ्। १६ गमन, पदकी क्रिया। यह शब्द जब किसीके नाम या पदके अन्तमें लगाया जाता है, तब वक्ताका उसके प्रति अत्यन्त सम्मानभाव तथा श्रद्धा प्रकट करता है। जैसे, कुमारिलपाद, गुरुपाद, आचार्यपाद, आदि।

पाद (हिं० पु०) अधोवायु, वह वायु जो गुदाके मार्गसे निकले, गोज़।

पादक (सं० त्रि०) पादे गमने कुशलः आकर्षादित्वात् कन् (पा ५।२।६४) १ गमनकुशल, जो खूब चलता हो। २ चतुर्थांश, चौथाई। (पु०) स्वल्पार्थे-कन्। ३ क्षुद्रपद, छोटा पैर।

पादकटक (सं० पु०) पादस्य कटक इवेति। नूपुर। हंसकी आकृतिका एक प्रकारका गहना जो पैरमें पहना जाता है। इसका पर्याय हंसक है।

पादकीलिका (सं० स्त्री०) नूपुर।

पादकृच्छ्र (सं० पु०) एक प्रायश्चित्त व्रत। यह व्रत चार दिनका होता है। इसमें पहले दिन तक एक बार दिनमें, दूसरे दिन एक बार रातमें खा कर फिर तीसरे दिन अयाचित अन्न भोजन करके चौथे दिन उपवास किया जाता है। इस व्रतकी दूसरी विधि भी मिलती है। उसमें पहले दिन रातमें एक बारका परसा हुआ भोजन कर दूसरे दिन उपवास किया जाता है। तीसरे और चौथे दिन फिर यही विधि क्रमसे दुहराई जाती है।

पादक्रमिक (सं० त्रि०) पदक्रमं अधीते वेद वा उक्थादित्वात् ठक्। (पा ४।२।६०) जो पदक्रमका अध्ययन करते वा जानते हों।

पादक्षेप (सं० पु०) पादस्य क्षेपः। पदविक्षेप।

पादगण्डिर (सं० पु०) गच्छति चर्वति पूयरक्तादि यस्मात् यत्र वा पादे गड्-किरच्, ततो राजदन्तादिवत् परनिपातनात् साधुः। श्लीपद, फीलपाँव। श्लीपद देखो।

पादग्रन्थि (सं० पु०) ग्रन्थ्यः पादः मयूरव्यंसकादित्वात् पूर्वनिपातः। ग्रन्थपाद।

पादग्रन्थि (सं० पु०) पादस्य ग्रन्थिरिव। १ गुल्फ, एड़ी और घुट्टीके बीचका स्थान

पादग्रहण (सं० क्ली०) पादयोर्ग्रहणमिति ग्रह-भावे ल्युट्। अभिवादन, पैर छू कर प्रणाम करना। जिसके हाथमें समिधा, जल, जलका घड़ा, फूल, अन्न तथा अक्षतमेंसे कोई पदार्थ हो, जो अशुचि हो, जो जप या पितृकार्य करता हो, उसका पैर न छूना चाहिये। अभिवादन और प्रणाम देखो।

पादग्राहिन् (सं० त्रि०) पाद-ग्रह-णिनि। जो पादग्रहण करता हो।

पादघृत (सं० क्ली०) पादयोर्लेपनार्थं घृतं मध्यलोपि०। दोनों पादके अभ्यञ्जनार्थ घृत।

पादचतुर (सं० पु०) पादे पदव्यापारे गमनादौ चतुरः। पादचत्वर देखो।

पादचत्वर (सं० पु०) १ छाग, बकरा। २ अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़। ३ बालूका भीटा। ४ ओला। (त्रि०) ५ दूसरेका दोष कहनेवाला, चुगलखोर।

पादचारिन् (सं० पु०) पद्भ्यां चरतीति चर-गतौ णिनि। १ पदाति, पैदल। (त्रि०) २ पद द्वारा गमनशील, जो पैरोंसे चलता हो।

पादचिह्न (सं० क्ली०) पादयोश्चिह्नं ६-तत्। दोनों पैरका निशान।

पादज (सं० पु०) पादाभ्यां जायते जन-ड। १ पादजात-शूद्र। ब्रह्माके पादसे शूद्रकी उत्पत्ति हुई है, इससे पादज शब्दसे शूद्रका बोध हुआ है। (त्रि०) २ पादोद्भवमात्र, जो पैरसे उत्पन्न हुआ हो।

पादजल (सं॰ क्ली॰) पादप्रक्षालनं जलं मध्यलो॰ कर्मधा॰। १ पादोदक, वह जल जिसमें किसीके पैर धोए गए हों। २ तक्र, मट्ठा। (त्रि॰) ३ चतुर्थांशमित जलयुक्त।

पादजाह (सं॰ क्ली॰) पादस्य मूलं कर्णादित्वात् जाहच् (पा ५।२।२४) पादमूल।

पादटीका (सं॰ स्त्री॰) वह टिप्पनी जो किसी भाग, पृष्ठके नीचे लिखी गई हो, फुटनोट।

पादतल (सं॰ क्ली॰) पादस्य तलं। चरणका अधोग्रन्थिके पैरका तलवा।

पादतस् (सं॰ अव्य॰) पाद-तसिल्। पादसे वा पादमें।

पादत्र (सं॰ त्रि॰) पादौ त्रायते त्रै-क। १ पादरक्षक, जो पैरकी रक्षा करे। (क्ली॰) पादयोस्त्राणं यस्मात्। २ पादुका, खड़ाऊं, जूता।

पादत्राण (सं॰ पु॰) पादत्र देखो।

पाददलित (सं॰ त्रि॰) पदाक्रान्त, पददलित, पैरसे कुचला हुआ।

पाददारिका (सं॰ स्त्री॰) पादगत क्षुद्ररोगभेद, बिवाई नामका रोग। इसमें पैरका तलवा स्थान स्थानमें फट जाता है।

पाददाह (सं॰ पु॰) पादौ दहति पाद-दह-अण्। सुश्रुतोक्त वातव्याधिभेद, सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका रोग। यह पित्तरक्तके साथ वायु मिलनेके कारण होता है। इसमें पैरोंके तलवोंमें जलन होती है।

पादधावन (सं॰ पु॰) १ पैर धोनेकी क्रिया। २ वह बालू या मट्टी जिसको लगा कर पैर धोया जाय।

पादधावनिका (सं॰ स्त्री॰) पैर धोनेके लिये बालू या मट्टी।

पादनख (सं॰ पु॰) पैरकी उंगलियोंका नाखून।

पादना (हिं॰ क्रि॰) अपानवायुका त्याग करना, वायु छोड़ना।

पादनालिका (सं॰ त्रि॰) पदालङ्कारभेद, पैरमें पहननेका गहना।

पादनिष्वृत् (सं॰ त्रि॰) गायत्रीभेद।

पादनिष्क (सं॰ पु॰) निष्कका चौथाई भाग।

पादन्यास (सं॰ पु॰) पादयोः न्यासः ६-तत्। १ पादविक्षेप, पैर रखना। २ नृत्य, नाचना।

पादप (सं॰ पु॰) पादेन मूलेन पिबति रसानिति पा-क। १ वृक्ष, पेड़। वृक्ष अपनी जड़ या पैरके द्वारा रस खींचते हैं, अतः वे पादप कहलाते हैं। पादौ पाति रक्षतीति पा-रक्षणे क। २ पादपीठ, पीढ़ा। ३ द्रमोत्पल, कनियारी।

पादपखण्ड (सं॰ क्ली॰) पादप-समूहे खण्ड च्। पादप-समूह, जङ्गल।

पादपद्धति (सं॰ स्त्री॰) १ पदपद्धति, रास्ता। २ पगडंडी।

पादपद्म (सं॰ क्ली॰) पादौ पद्ममिव। चरणपद्म, चरणकमल।

पादपरुहा (सं॰ स्त्री॰) पादपे वृक्षे रोहतीति रुह-क। वन्दाकवृक्ष, बांदा नामका पेड़।

पादपा (सं॰ स्त्री॰) पादौ पाति रक्षतीति पा-क-टाप्। पादुका।

पादपाश (सं॰ पु॰) पादस्य पाशः। अश्वदाम, वह रस्सी जिससे घोड़ोंके पिछले दोनों पैर बांधे जाते हैं, पिछाड़ी।

पादपाशी (सं॰ स्त्री॰) पादपाश-स्त्रियां गौरादित्वात् ङीष्। १ शृङ्खला, कोई सिकड़ी या सिकड़। २ बेड़ी।

पादपीठ (सं॰ क्ली॰) पादस्य पीठम्। पादस्थापनासन, पैरका आसन, पीढ़ा।

पादपीठिका (सं॰ स्त्री॰) पादपीठं साधनत्वेनास्त्यस्या इति पाद-पीठ-ठन्। १ नापितादिशिल्प, नाईको सिल्ली। २ पादपीठ, पीढ़ा।

पादपूरण (सं॰ क्ली॰) पादस्य पूरणं ६-तत्। १ किसी श्लोक वा कविताके किसी चरणको पूरा करना। २ वह अक्षर या शब्द जो किसी पदको पूरा करनेके लिये उसमें रखा जाय।

पादप्रक्षालन (सं॰ क्ली॰) पादयोः प्रक्षालनम्। चरण-धावन, पैर धोना। इसमें मेधाजनक, पवित्र और आयुष्कर तथा अलक्ष्मी और कलिपापनाशक गुण माना गया है।

"पादप्रक्षालनं पाद-मलरोगश्रमापहं।
चक्षुःप्रसादनं वृष्यं रक्षोघ्नं प्रीतिवर्द्धनं॥"
(सुश्रुतचिकि॰ २४ अ॰)

आह्निकतत्त्वमें लिखा है, कि आचमन करनेके पहले पाणि और पाद धो लेना उचित है। देवलने लिखा है, कि पूर्वमुख खड़े हो कर पादप्रक्षालन करना चाहिये। देवकार्यमें उत्तर मुख हो कर और पितृकार्यमें दक्षिण मुख हो कर पादप्रक्षालन प्रशस्त है।

"प्रथमं प्रांमुखः स्थित्वा पादौ प्रक्षालयेच्छनैः।
उदंमुखो वा दैवत्ये पैतृके दक्षिणामुखः॥"

गोभिलने लिखा है, कि पहले वाम पाद पीछे दक्षिणपाद धोना चाहिये। 'सव्यं पादमवनेनिजे इति सव्यं पादं प्रक्षालयति। 'दक्षिणं पादमवनेनिजे' इति दक्षिणं पादं प्रक्षालयति।' (आह्निकतत्त्व)

आश्वलायन श्रौतसूत्रमें लिखा है, कि ब्राह्मण यदि ब्राह्मणका पादप्रक्षालन करना चाहे, तो उसे पहले दक्षिण पाद पीछे वाम पाद धोना चाहिये। किन्तु शूद्रको पहले वाम पाद पीछे दक्षिण पाद धोना उचित है। परन्तु स्वयंसे पैर धोनेके समय पहले वाम पाद पीछे दक्षिण पाद धोवे। वाचस्पतिमिश्रने दक्षिण पाद धोनेके बाद जो वाम पाद धोनेकी कथा लिखी है, वह युक्तिसङ्गत नहीं है।

पादप्रणाम (सं० पु०) साष्टाङ्ग दण्डवत, पांव पड़ना।

पादप्रतिष्ठान (सं० पु०) पादपीठ, पदासन, पीढ़ा।

पादप्रधारण (सं० क्लो०) पादौ प्रधार्य्यते कण्टकादिभ्यो रक्षितेऽनेनेति, प्र-धृ-णिच्-ल्युट्। पादुका, खड़ाऊं।

पादप्रहार (सं० पु०) पादस्य पादेन वा प्रहारः। पदाघात, लात मारना, ठोकर मारना।

पादबद्ध (सं० त्रि०) पादश्लोकमें रचित, श्लोकका एक चरणयुक्त।

पादबन्ध (सं० पु०) पादशृङ्खल, पैरोंमें बांधनेकी जंजीर, बेड़ी।

पादबन्धन (सं० क्लो०) पादयोर्गोमहिषादीनां यद्बन्धनं। १ गो-महिषादिका बन्धन, घोड़े, गधे, बैल आदि जानवरोंके पैर बांधना। २ गोमहिषादिका पादबन्धनद्रव्य, वह चीज जिससे उनके पैर बांधे जायं।

पादभाग (सं० पु०) पादयोर्भागः ६-तत्। १ चरणका अधोभाग। पैरके नीचेका भाग, तलवा। २ चतुर्थांश, चौथाई।

पादभाज् (सं० त्रि०) पादं भजति भज-ण्वि। पादभजनाकारी, जो चौथाई पा सकता है।

पादभुज (सं० पु०) शिव, महादेव।

पादमुद्रा (सं० स्त्री०) पदचिह्न, पैरके दाग।

पादमूल (सं० क्लो०) पादयोर्मूलं ६-तत्। १ चरणाधोभाग, पैरका निचला भाग। २ चरणसमीप। ३ प्रत्यन्त पर्वतका अधोभाग, पहाड़की तराई।

पादरक्ष (सं० त्रि०) पादं रक्षति रक्ष-अण्। १ चरणरक्षक पादुकादि, वह जिससे पैरोंको रक्षा हो। २ रथचरणरूप चक्ररक्षक।

पादरक्षण (सं० क्लो०) पादयो रक्षणं यस्मात्। १ पादुका। २ पादका रक्षण।

पादरजस् (सं० क्ली०) पादयो रजः। पदधूलि, चरणोंकी धूल।

पादरज्जु (सं० स्त्री०) पादबन्धनार्थो रज्जुः। १ हस्तिपादबन्धनरज्जु, वह रस्सी या सीकड़ आदि जिसमें हाथीके पैर बांधे जायं। इसका पर्याय पारी है। २ चरणबन्धनदाममात्र, पैर बांधनेकी रस्सी।

पादरथी (सं० स्त्री०) पादस्य रथो क्षुद्रो रथ इव। पादुका, खड़ाऊं।

पादरा—१ बम्बई प्रदेशके मध्य बड़ोदाराज्यका एक उपविभाग। परिमाणफल २५० वर्गमील है। अधिकांश जमीन समतल है। आय ७६६६७०) रु०की है। यहां अधिकतर रूईकी खेती होती है।

२ बड़ोदा राज्यके उक्त उपविभागके मध्य एक नगर। यह अक्षा० २२° १४´ ३०˝ उ० और देशा० ७३° ७´ ३०˝ पू०के मध्य बड़ोदा नगरसे १४ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहांसे बड़ोदा तक एक वालुकामय रास्ता चला गया है। यहां शुल्कगृह (कोनघर), डाकघर और एक गुजराती पाठशाला है।

पादरी—ईसाई धर्मका पुरोहित जो अन्य ईसाइयोंका जातकर्म आदि संस्कार और उपासना कराता है। यह शब्द पुर्त्तगीज Padre शब्दसे लिया गया है। पहले यह शब्द केवल कैथलिक धर्मयाजकोंके सम्बन्धमें व्यवहृत होता था, किन्तु अभी समस्त ईसाई-धर्मयाजकोंके लिये भी प्रयुक्त होता है। चीन देशमें 'पातिलो' शब्द पादरी अर्थमें व्यवहृत होता है।

पादरोग (सं० पु०) पादयो रोगः। पादगतरोग।

पादरोह (सं० पु०) पादेन मूलेन रोहति रुह-अच्। वटवृक्ष, बड़का पेड़।

पादरोहण (सं० पु०) पादैर्मूलैः, रोहतीति रुह-ल्यु। वटवृक्ष, बड़का पेड़।

पादलिप्त—एक विख्यात जैन ग्रन्थकार। ये ४६७ वीराब्दमें

वर्त्तमान थे। इन्होंने भद्रबाहु और वज्रस्वामीकृत ग्रन्थोंका सार संग्रह कर 'शत्रुञ्जयकल्प' नामक ग्रन्थ लिखा है। तरङ्गवती नामकी आख्यायिका इन्हींकी बनाई हुई है।

पादलेप (सं॰ पु॰) पादका प्रलेप, अलता महावर आदि।

पादवत् (सं॰ त्रि॰) पाद मतुप् मस्य व। पादविशिष्ट, पदके जैसा।

पादवन्दन (सं॰ क्ली॰) पादयोर्वन्दनं ६-तत्। पादग्रहणपूर्वक प्रणाम, पैर पकड़ कर प्रणाम करना। गुरुजनोंको प्रणाम करनेमें पादवन्दन करना होता है। मनुमें लिखा है, कि गुरुपत्नी यदि युवती हो, तो युवक उनका पादग्रहण कर अभिवादन न करे।

"गुरुपत्नी तु युवतिर्नाभिवाद्येह पादयोः।
पूर्णषोडशवर्षेण गुणदोषौ विजानता॥" (मनु)

पादवल्मीक (सं॰ पु॰) पादे वल्मीक इव। श्लीपदरोग, पीलपांव नामक रोग। श्लीपद देखो।

पादविक (सं॰ पु॰) पदवीं अनुधावतीति पदवी-ठक्। (माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति। पा ४।४।३७) पथिक, मुसाफिर।

पादविग्रह (सं॰ पु॰) पादस्य अवयवस्य विग्रहः। १ अवयवग्रहण। (त्रि॰) २ पादमित अवयवयुक्त।

पादविदारिका (सं॰ स्त्री॰) अश्वका पादरोगविशेष, घोड़ोंका एक रोग। इसमें उनके पैरोंके निचले भागमें गांठें हो जाती हैं।

पादविन्यास (सं॰ पु॰) पैर रखनेकी क्रिया या ढंग।

पादविरजस् (सं॰ स्त्री॰) पादोविरजा धूलिविहीनो यस्याः। १ पादुका, खड़ाऊं। २ देवता।

पादवीथी (सं॰ स्त्री॰) पादपीठ, पीढ़ा।

पादवृत्त (सं॰ पु॰) १ ऋक्प्रातिशाख्यवर्णित उदात्तसे छेद द्वारा विभक्त स्वरितभेद। २ वृत्तका पादांश, ह्रस्व और दीर्घ पदांश।

पादवेष्टनिक (सं॰ पु॰) वह जिससे पाद वेष्टित हो, मोजा।

पादव्याख्यान (सं॰ त्रि॰) पदव्याख्यान-ठञ्। पदव्याख्यान-सम्बन्धीय।

पादशलाका (सं॰ स्त्री॰) शलाकावत् पादास्थि। शलाकाकी तरह पैरकी हड्डी।

पादशाखा (सं॰ स्त्री॰) पादस्य शाखेव। १ पादाङ्गुलि, पैरकी उंगली। २ पादाग्र, पैरकी नोक।

पादशाह (फा॰ पु॰) बादशाह।

पादशाहजादा (फा॰ पु॰) राजकुमार, बादशाहजादा।

पादशिष्टजल (सं॰ क्ली॰) चतुर्थांशावशिष्ट पक्व जल, वह जल जो औटाने पर चौथाई रह जाय। वैद्यकमें ऐसा जल त्रिदोषनाशक माना जाता है।

पादशैली (सं॰ स्त्री॰) १ नूपुर। (पु॰) २ घूंघर, कसाई।

पादशुश्रूषा (सं॰ स्त्री॰) पादयोः शुश्रूषा। चरणसेवा, पैर दबाना।

पादशृङ्गी (सं॰ स्त्री॰) मेषशृङ्गी।

पादशेष (सं॰ क्ली॰) पादावशिष्ट, वह जिसका पादमात्र रह गया है।

पादशैल (सं॰ पु॰) पादः महाद्रिसमीपस्थः क्षुद्रपर्वतः स एव शैलः। प्रत्यन्त पर्वत।

पादशोथ (सं॰ पु॰) पादोद्भवः शोथः, शाकपार्थिवादिवत् समासः। वैद्यकमें एक प्रकारका रोग जिसमें पैरमें सूजन आ जाती है। जो शोथ किसी अन्य रोगका उपद्रव स्वरूप न हो कर आप ही आप उत्पन्न होता है, वह असाध्य शोथ समझा जाता है। जो शोथ पुरुषके पदमें उत्पन्न हो कर मुखकी ओर और स्त्रियोंके मुखसे उत्पन्न हो कर पदकी ओर जाता है, वह शोथ भी असाध्य है। शोथ देखो।

पादशौच (सं॰ क्ली॰) पादयोः शौचं ६-तत्। पादप्रक्षालन।

पादशलाका (सं॰ स्त्री॰) पैरकी नली।

पादसंहिता (सं॰ स्त्री॰) एकचरण श्लोकके भीतरके शब्दकी एकता।

पादसुप्ति (सं॰ स्त्री॰) पादस्पर्श शून्यता।

पादस्तम्भ (सं॰ पु॰) अवलम्बदण्ड, वह लकड़ी जो किसी चीजको गिरनेसे रोकनेके लिये सहारेके तौर पर लगा दी जाय।

पादस्फोट (सं॰ पु॰) पादस्य स्फोटः, पादं स्फोटयतीति वा स्फुट-कर्मण्यण् इत्यण्। रोगविशेष, वैद्यके अनुसार ग्यारह प्रकारके क्षुद्र कुष्ठोंमेंसे एक प्रकारका कुष्ठ। पर्याय—विपादिका, स्फुटी, स्फुटि। इसमें

पैरोंमें काले रंगकी फुंसियाँ होती हैं जिनमेंसे बहुत पानी बहता है। इसे विपादिका भी कहते हैं। और यदि यही रोग हाथोंमें हो जाय तो उसे विचर्चिका कहते हैं। विशेष विवरण कुष्ठ शब्दमें देखो।

पादस्वेदन (सं० क्लो०) पैरसे पसीना निकलना।

पादहर्ष (सं० पु०) एक रोग जिसमें पैरोंमें प्रायः झुन झुनी होती है।

पादहारक (सं० त्रि०) पादाभ्यां ह्रियतेऽसौ पादशब्दात् निपातनात् कर्मणि ण्वुल् प्रत्ययान्तः, वा (कृत्यल्युटो बहुलं। पा ३।३।११३) १ चरण द्वारा हरणकर्त्ता। (क्लो०) २ चरण द्वारा हरण करनेकी क्रिया।

पादहीन (सं० त्रि०) पादेन हीनः ३-तत्। १ त्रिपादात्मक पदार्थ, जिसके तीन ही चरण हों। २ चरणशून्य, जिसके चरण न हों।

पादहीना (सं० स्त्री०) आकाशलता।

पादाकुल (हिं० पु०) पादाकुलक देखो।

पादाकुलक (सं० क्लो०) मात्रावृत्त भेद, चौपाई।

पादाक्रान्त (सं० त्रि०) पददलित, पैरसे कुचला हुआ, पामाल।

पादाग्र (सं० क्लो०) पादयोरग्रं ६-तत्। चरणाग्रभाग, पैरकी नोक।

पादाघात (सं० पु०) पादयोराघातः। पदाघात।

पादाङ्गद (सं० क्लो०) पादस्य अङ्गदमिव। नूपुर।

पादाङ्गुलिक (सं० क्लो०) पादयोरङ्गुलीयकं। पादाङ्गुलि, पैरकी उँगली।

पादात् (सं० पु०) पादाभ्यामतति गच्छतीति अत-क्विप्। पदाति, पैदल सिपाही।

पादात (सं० क्लो०) पदातीनां समूहः, पदाति (भिक्षादिभ्योऽण्। पा ४।२।३८) पदाति समूह।

पादाति (सं० पु०) पादाभ्यामततीति अत-इन्। पदाति, पैदल सिपाही।

पादातिक (सं० पु०) पादातिरेव स्वार्थे कन्। पदाति।

पादानुध्यात (सं० त्रि०) पदानुस्मृति, पितृपदानुचिन्तन।

पादानोन (हिं० पु०) काला नमक।

पादान्त (सं० पु०) पादयोरन्तः समीपः। पादसमीप, पैरके निकट।

पादान्तर (सं० क्लो०) पदप्रान्त, पाँवका शेषभाग।

पादान्तिक (सं० क्लो०) पादयोरन्तिकं ६-तत्। पादसमीप।

पादाभ्यङ्ग (सं० पु०) पादयोरभ्यङ्गः। दोनों पदमें तेलमर्दन। पैरमें तेल मलनेसे शरीर स्निग्ध होता है। गुण—कफ और वातनाशक, धातुपोषक, मृजा, वर्ण और बलप्रद, निद्राकर, देह-सुखजनक, स्वरवत्, पादरोगनाशक और पादत्वककी कोमलता-सम्पादक।

पादाभ्यञ्जन (सं० क्लो०) पादयोरभ्यञ्जनं ६-तत्। पादलेपनार्थ घृतादि, वह घी या तेल जो पैरमें मला जाय।

पादाम्बु (सं० क्लो०) पादमितमम्बु यत्र। तक्र, मठा।

पादाम्भस् (सं० क्लो०) पादप्रक्षालनमम्भः। पादशौच जल। पादधौत जलको दूर फेंक देना चाहिए।

पादायन (सं० पु० स्त्री०) पादस्य ऋषेर्गोत्रापत्यं पादअश्वादित्वात् फञ् (पा ४।१।११०) पाद नामक ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

पादारक (सं० पु०) पाद-इव ऋच्छतीति ऋ-ण्वुल्। पोलिन्द, नावको लम्बाईमें दोनों ओर लकड़ोंकी पट्टियोंसे बना हुआ वह ऊंचा और चौरस स्थान जिस पर यात्री बैठते हैं।

पादार्द्ध (सं० क्लो०) पादस्य अर्द्धं ६-तत्। पादका अर्द्धक, आठवाँ भाग।

पादालिक (सं० पु०) धुन्धुमार।

पादालिन्दी (सं० स्त्री०) पाद-इव अलिन्दो यत्र, गौरादित्वात् ङीष्। नौका, नाव।

पादावर्त्त (सं० पु०) पाद इव आवर्त्तते इति आ-वृत-अच्। कूपादिसे जल निकालनेका यन्त्र, अरहट या रहट।

पादावसेचन (सं० क्लो०) पादयोरवसेचनं ६-तत्। पादप्रक्षालन, पैर धोना।

पादाविक (सं० पु०) अव-रक्षणे भावे घञ्, पादेन अवः रक्षणं, तत्र पादावे पादेन शरीरादिरक्षणे नियुक्तः (तत्र नियुक्तः। पा ४।४।६९) इति ठक्, वा पादातिक पृषोदरादित्वात् साधुः। पदाति, पैदल सिपाही।

पादाष्ठील (सं० पु०) पादगुल्फ, एड़ी।

पादासन (सं० क्लो०) पाँव रखनेका आसन, पीढ़ा।

पादिक (सं० त्रि०) पादेन चतुर्थांशेन जीवति वेतनादित्वात् ठक् (पा ४।४।१२) १ चतुर्थांशवृत्तियुक्त, किसी वस्तुका चौथाई भाग। (पु०) २ पादपरिमाण। ३ पादकृच्छ्र नामक प्रायश्चित्तव्रत।

पादिन् (सं० पु०) पादोऽस्त्यस्येति पाद-इनि। १ पादयुत जलजन्तुगण, पैरवाले जलजन्तु। भावप्रकाशके मतसे कुम्भीर, कूर्म, नक्र, गोधा, मकर, शङ्कु, घण्टिक, शिशुमार आदि जन्तु पादी कहलाते हैं। इनके मांसका गुण—मधुररस, स्निग्ध, वातघ्न, पित्तनाशक, शीतवीर्य, शरीरका उपचयकारक, मलवर्द्धक, शुक्रजनक और बलकारक। (त्रि०) २ चतुर्थांशभागी, जो चौथाईका हिस्सेदार हो।

पादीय (सं० त्रि०) पदवाला, मर्यादावाला। जैसे, कुमारपादीय। जिस शब्दके आगे यह लगाया जाता है उसके समान पदवाला सूचित करता है। प्राचीन कालमें अभिजात वर्गके लोगोंको जो पदवियां दी जाती थीं, वह उसी प्रकारकी होती थी।

पादु (सं० स्त्री०) गमन।

पादुक (सं० त्रि०) पद्यते गच्छतीति पद-उकञ्। (लषपत पदेति। पा ३।२।१५४) गमनशील, चलनेवाला।

पादुका (सं० स्त्री०) पादूरेव पादू-स्वार्थे कन्, ततो ह्रस्वः स्त्रियां टाप्। काष्ठचर्मादि निर्मित पादाच्छादन, जूता, खड़ाऊं। पर्याय—पादू, उपानह, पन्नद्धा, पादरचिका, प्राणिहिता, पन्नद्धी, पादरथी, कोषी। ज्योतिस्तत्त्वधृत वचनमें लिखा है, कि शरीरत्राणकामी व्यक्तियोंको सर्वदा पादुका पहन कर चलना चाहिये।

"वर्षापोदिके छत्री दण्डी रात्र्यटवीषु च।
शरीरत्राणकामो वै सोपानत्कः सदा व्रजेत्॥" (ज्योति०)

वैद्यकके मतसे पादुकाधारण वृष्य, ओजस्य, चक्षुका हितकर, सुखप्रचार, आयुष्य, बल और पादरोगनाशक माना गया है। इसे धारण नहीं करनेसे अनारोग्य, अनायुष्य, इन्द्रियनाश और चक्षुदृष्टिकी हानि होती है। (वैद्यकनि०)

पादुकाका सर्वदा व्यवहार करना उचित है। पादुका दान करनेसे अशेष पुण्य होता है। जो मनुष्य ब्राह्मणको पादुका दान करते हैं, उन्हें कभी भी मानसिक कष्ट नहीं होता।

"दह्यमानाय विप्राय यः प्रयच्छत्युपानहौ।
न तस्य मानसो दाहः कदाचिदपि जायते॥" (अग्निपु०)

महाभारतके आनुशासनिक पर्वाध्यायमें छत्र और उपानहके विषयमें एक उपाख्यान इस प्रकार है,—एक समय युधिष्ठिरने भीष्मसे पूछा था, "श्राद्ध और विविध पुण्यकर्मके उपलक्षमें जो छत्र तथा उपानह प्रदानकी प्रथा प्रचलित है उसे किस महात्माने चलाया? इन दोनों पदार्थोंकी उत्पत्ति ही किस प्रकार हुई? और इनका दान श्राद्धादिमें क्यों किया जाता है? आप सविस्तार कह सुनाइये।" पितामह भीष्मदेवने यह सुन कर उत्तर दिया, 'पुराकालमें एक समय भगवान् जमदग्नि क्रीड़ा करनेके लिये धनुषमें तीर चढ़ा कर फेंकते थे और उनकी पत्नी रेणुका निक्षिप्त तीरोंको उठा कर उन्हें देती जाती थी। इस प्रकार करते करते दोपहर हो गया, तो भी वे तीर फेंकते ही रहे। एक बार पूर्ववत् तीर छोड़ कर उन्होंने रेणुकाको लाने कहा। रेणुका उसी समय तीर लानेके लिये दौड़ीं; एक तो ज्येष्ठ मासका दिन था, दूसरे दोपहरका समय। पतिव्रता रेणुका ऐसे भीषण समयमें भी स्वामीकी आज्ञानुवर्त्तिनी हुईं; लेकिन उनका मस्तक और पद जलने लगा। वे कुछ काल तक वृक्षकी छायामें ठहर गईं और विश्रामके बाद शर हाथमें ले कर स्वामीके निकट पहुंचीं। इस समय वे शापके भयसे कांप रही थीं और शरीर पसीनेसे तर हो रहा था। जमदग्नि अत्यन्त क्रुद्ध हो कर बार बार पूछने लगे कि इतनी देरी क्यों हुई? रेणुकाने स्वामीको क्रुद्ध देख गिड़गिड़ा कर कहा, 'भगवन्! मुझ पर आप क्रोध न करें। सूर्यकी किरणने मेरे मस्तक और पदतलको नितान्त सन्तप्त कर दिया था जिससे मैं कुछ कालके लिये वृक्षकी छायामें ठहर गई थी, विलम्ब होनेका यही कारण है।'

इस पर तेजस्वी जमदग्नि सूर्य पर बहुत बिगड़े और रेणुकासे बोले, 'आज मैं अस्त्रतेजके प्रभावसे तुम्हारे दुःखदाता सूर्यका निपात कर दूंगा।' इतना कह कर महर्षि धनुषमें तीर चढ़ाए सूर्यकी ओर खड़े हो

गए। सूर्यदेवने उन्हें योद्धाके भेषमें देख ब्राह्मणवेश धारण कर लिया और उनके समीप आ कर कहा, 'भगवन्! दिवाकरने आपका क्या अनिष्ट किया है जो आप उसे विनाश करनेको उतारू हैं। वे तो लोकरक्षादिके लिये स्वर्गमें अवस्थित हैं और अपने किरणजाल द्वारा क्रमशः रसाकर्षण कर वर्षाकालमें इस ससद्वीपा पृथ्वी पर रसवर्षण करते हैं। उन्होंसे औषध और लताएं हरी भरी हैं तथा जीवोंका प्राणस्वरूप अन्न उत्पन्न होता है। आप यह सब विषय अच्छी तरह जानते हैं। मैं हाथ जोड़ कर कहता हूं कि आप सूर्यको निपातित न करें।'

दिवाकरके ब्राह्मणवेशमें इस प्रकार प्रार्थना करने पर भी जमदग्निका क्रोध शान्त न हुआ। पुनः ब्राह्मणवेशी सूर्यने प्रणाम कर कहा, 'सूर्य अन्तरीक्षमें सर्वदा परिभ्रमण करते हैं अतएव आप किस प्रकार उस चञ्चलको विद्ध कर सकेंगे।' इस पर जमदग्निने कहा, 'ब्रह्मन्! ज्ञान-चक्षुके प्रभावसे मुझे ऐसा मालूम पड़ता है, कि तुम ही सूर्य हो और तुम किस समय परिभ्रमण करते तथा किस समय स्थिरभावमें रहते हो, वह मैं अच्छी तरह जानता हूं। तुम मध्याह्नकालमें आध निमिष नभोमण्डलमें विश्राम करते हो, मैं उसी समय तुम्हें विद्ध करूंगा'। इतना सुन कर सूर्यदेवने जमदग्निकी शरण ली। जमदग्निने हंसते हुए सूर्यसे कहा, 'जब तुमने मेरी शरण ली, तब फिर तुम्हें किसी बातका डर नहीं। अभी तुम एक ऐसा उपाय निकालो जिससे कि तुम्हारे उत्तापके प्रभावसे राहमें मेरी पत्नीको जाने आने में कष्ट न हो।' इस पर दिवाकरने छत्र और पादुका प्रदान कर उन्हें कहा, 'भगवन्! मेरी कठोर किरणसे मस्तक और चरणको रक्षा करनेके लिये आप इस छत्र और पादुकाको ग्रहण करें। आजसे अक्षयफलप्रद छत्र और पादुका पवित्र दान-कार्यमें प्रचलित होगी।' इस प्रकार छत्र और पादुकाका सूर्यदेवसे ही प्रचार हुआ है। इन दो वस्तुओंका दान त्रिलोकके मध्य अति पवित्र कार्य समझा जाता है। जो ब्राह्मणोंको शतशलाकायुक्त शुभ्र छत्र प्रदान करते हैं, उनके मरने पर अतुल सुखलाभ होता है और वे अप्सरा तथा द्विजातियोंसे समादृत हो कर इन्द्रलोकमें वास करते हैं। ब्राह्मणको पादुका दान देनेसे इस लोकमें नानाविध सुख और परलोकमें स्वर्गलाभ होता है। (भारत अनुशासन ९६ अ०)

देवगृहमें पादुका पहने नहीं जाना चाहिये। यदि जाय, तो पहले चर्मकार योनिमें पीछे शूकर और कुक्कुरयोनिमें जन्म होता है। अन्तमें वह फिर मानवजन्म लाभ करता है।

"वहन्नुपानहौ पद्भ्यां यस्तु मामुपचक्रमेत्।
चर्मकारस्तुजायेत वर्षाणान्तु त्रयोदश॥
तत्र जन्मपरिभ्रष्टः शूकरो जायते पुनः।
शूकराच्च परिभ्रष्टः श्वा च तत्रैव जायते।
ततः श्वत्वात् परिभ्रष्टो मानुष्यैव जायते।
मद्भक्तश्च विनीतश्च अपराध विवर्जितः॥" (वराहपु०)

देवीपुराणमें लिखा है, कि देवताकी पादुका निर्माण कर उसकी पूजा करे; यह देवपादुका मणिरत्न अथवा सुवर्णकी बनी हो। यदि इसमें असमर्थ हों, तो देवदारु वा चन्दनकी भी बना सकते हैं। पादुकापरिमाण ६ अङ्गुल कहा गया है।

"मणिरत्नमयी कार्या हेमरूप्यमयी पि वा।
चन्दनेनापि कर्त्तव्या पादुकाप्रतिमापि वा॥
श्रीपर्णी श्रीद्रुमा चापि देवदारुमय पि वा।
षडङ्गुला च सा कार्या पादुके पूजयेत् सदा॥"
(देवीपुराण)

पित्रु प्रभृति गुरुजनोंकी पादुकाका पूजन प्रचलित है। रुद्रयामलके गुरुपादुकास्तोत्रमें लिखा है—

"पादुकापञ्चकस्तोत्रं पञ्चवक्त्राद्विनिर्गतं।
षडाम्नायफलोपेतं प्रपञ्चे चातिदुर्लभं॥"
(रुद्रयामल)

पादुकाकार (सं० पुं०) पादुकां करोतीति कृ-'कर्मण्यण्' इति अण्। चर्मकार, मोची।

पादुकाकृत् (सं० पु०) पादुकां करोतीति कृ क्विप्। चर्मकार।

पादू (सं० स्त्री०) पद्यते गम्यते सुखेन ययेति पद-ऊ णित् च (णिदूकविपदतेः। उण् १।८७) पादुका, खड़ाऊं।

पादूकृत् (सं० पु०) पादूं करोति कृ-क्विप्-तुक् च। चर्मकार।

पादोदक (सं० क्ली०) पादप्रक्षालनजातमुदकं शाक-पार्थिवादिवत्समासः । १ चरणधौतजल, वह जल जिसमें पैर धोया गया हो। २ चरणामृत । देवताका चरणामृत पीना चाहिये ।

"हृदि रूपं मुखे नाम नैवेद्यमुदरे हरेः ।
पादोदकञ्च निर्माल्यं मस्तके यस्य सोऽच्युतः ॥"

(पद्मपुराण उ० १०० अ०)

जिनके हृदयमें सर्वदा हरिका रूप जागरूक है, उदरमें नैवेद्य और पादोदक तथा मस्तक पर निर्माल्य है और जो सर्वदा उनका नाम स्मरण किया करते हैं, वे स्वयं अच्युतस्वरूप हैं तथा जो भक्तिपूर्वक तुलसी-युक्त पादजल पान करते, वे प्रेमयुक्त भक्ति लाभ करते हैं।

गौतमाम्बरीष संवादमें लिखा है—जिसका गात्र हरिके पादोदकसे छुआ जाता है, उसके कुलमें मैं (विष्णु) दास हो कर रहता हूं। जिन व्यक्तिको शाल-ग्रामका पादोदक प्राप्त नहीं हुआ, उन्हींके लिये निखिल तीर्थ कहे गये हैं *।

स्कन्दपुराणके कार्त्तिकेय माहात्म्यमें लिखा है, कि जो शालग्रामशिलातोय द्वारा अभिषिक्त होते हैं, उनको गङ्गास्नानका फल मिलता है ।‡

जितने तीर्थ और ब्रह्मादि देवता हैं, वे विष्णु-पादोदकके १६वें भागके भी समान नहीं हैं । गङ्गा, प्रयाग और यमुना आदिका जल किसी समय पापक्षय कर सकता है, पर भगवान् विष्णुका पादोदक सद्यः पापक्षय करता है ।

* "येषां धौतानि गात्राणि हरेः पादोदकेन वै ।
अम्बरीषकुले तेषां दासोऽस्मि वशगः सदा ॥
राजन्नेतानि तावच्च तीर्थानि भुवनत्रये ।
यावन्न प्राप्यते तोयं शालग्रामाभिषेकजम् ॥"

(पद्मपु० गौतमाम्बरीषस०)

‡ "गृहेऽपि वसतस्तस्य गङ्गास्नानं दिने दिने ।
शालग्रामशिलातोयैर्योऽभिषिञ्चति मानवः ॥
यानि कानि च तीर्थानि ब्रह्माद्या देवतास्तथा ।
विष्णुपादोदकस्यैते कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥"

(स्कन्दपु० कार्त्तिकमा०)

"गंगाप्रयागगयनैमिषपुष्कराणि
पुण्यानि यानि कुरुजांगलयामुनानि ।
कालेन तीर्थसलिलानि पुनन्ति पापं
पादोदकं भगवतः प्रपुनाति सद्यः ॥" (नृसिंहपुराण)

पद्मपुराणके देवदूतविकुण्डलसंवादमें लिखा है, कि सभी मनुष्योंको प्रतिदिन शालग्राम-पादोदक पीना चाहिये। उनके पापनाशके लिये पञ्चगव्यादि सेवन और कोटी तीर्थस्नान आदिकी कुछ भी आवश्यकता नहीं। भक्तिपूर्वक पादोदक सेवन करनेसे मुक्ति भी हो सकती है।

पद्मपुराणके श्रीयमधूम्रकेतुसंवाद और पुलस्त्यभगी-रथसंवादमें लिखा है, कि जो शालग्राम शिलोदक बिन्दु-मात्र भी पान करते हैं वे सब प्रकारके पापोंसे मुक्त हो कर मुक्तिमार्ग पर अधिरोहण करते हैं। पादोदक सभी तीर्थोंसे पवित्र और कोटी हत्याका पापनाशक है। इसे मस्तक पर लेनेसे अथवा पानेसे सभी देवता परि-तुष्ट होते हैं। कलिमें हरिका पादोदक सेवन करनेसे सब प्रकारके पापोंका प्रायश्चित्त होता है।

"शालग्रामशिलातोयं बिन्दुमात्रं तु यः पिबेत् ।
सर्वपापैः प्रमुच्येत मुक्तिमार्गे कृतोद्यमः ॥"

(पद्मपु० यमधूम्रकेतुस०)

"पादोदकस्य माहात्म्यं भगीरथ वदामि ते ।
पावनं सर्वतीर्थेभ्यः हत्याकोटिविनाशनं ॥
धृते शिरसि पीते च सर्वास्तुष्यन्ति देवताः ।
प्रायश्चित्तन्तु पापानां कलौ पादोदकं हरेः ॥"

(पद्मपु० पुलस्त्यभगीरथस०)

हरिभक्तिविलासमें पादोदकको भूयसी प्रशंसा लिखी है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां कुल नहीं लिखा गया, संक्षेपमें नीचे लिखा जाता है।

विष्णुपादोदकके माहात्म्यसे एकमात्र शङ्कर ही अव-गत हैं, इसीसे उन्होंने विष्णुपादोद्भवा गङ्गाको मस्तक पर धारण किया है। जिसके उदरमें विष्णुका नैवेद्य और पादोदक है, उसकी देहमें पाप अवस्थान नहीं कर सकता, बाहर और भीतरसे वे पवित्र रहते हैं *।

* "पादोदकस्य माहात्म्यं देवो जानाति शंकरः ।
विष्णुपादच्युता गंगा शिरसा येन धारिता ॥

पादोदकका माहात्म्य सभी शास्त्रोंमें वर्णित है। समुद्रको मत्स्यगणना जिस प्रकार असम्भव है, पादोदकका माहात्म्य लिखना भी उसी प्रकार है, विशेषत: पादोदक यदि तुलसीदल मिश्रित हो, तो उसकी बात और क्या कही जाय। इससे शत चान्द्रायणका फल प्राप्त होता है।

विष्णुका पादोदक पान कर मोहवशत: जो अशुचिशङ्कासे पुन: आचमन करते हैं, वे ब्रह्महा होते हैं।

(हरिभक्तिवि०)

"विष्णोः पादोदकं पीत्वा पश्चादशुचिशङ्कया।
आचामति च यो मोहात् ब्रह्महा स निगद्यते ॥

श्रुतिश्च भगवान् पवित्रो भगवत्पादौ पवित्रौ पादोदकं पवित्रं न तत्पान आचमनीयं यथा हि सोम इति। सौपर्णे च—

"विष्णुपादोदकं पीत्वा भक्तपादोदकं तथा।
य आचामति संमोहात् ब्रह्महा स निगद्यते ॥"

(हरिभक्तिविलास)

पादोदर (सं० पु० स्त्री०) पाद उदरे यस्य। सर्प, सांप।

पादोपजीविन् (सं० पु०) सन्देशवह, दूत।

पाद्धत (सं० क्ली०) पद्धतीनां समूहः भिक्षादित्वादण्। (पा ४।२।३८) पद्धतिसमूह।

पाद्य (सं० क्ली०) पादार्थमुदकं पाद-यत् (पादार्घाभ्याञ्च। पा ५।४।२५) पादप्रक्षालनार्थ जल, वह जल जिससे पूजनीय व्यक्ति या देवताके पैर धोए जाय। षोड़शोपचारमें पहले आसन, पीछे स्वागत और अन्तमें पाद्य तथा दशोपचारपूजामें पहले ही पाद्य देना होता है। दुर्गोत्सवपद्धतिमें लिखा है—

"पादार्थमुदकं पाद्यं केवलं जलमेव तत्" (दुर्गोत्सव०)

स्थानं नैवास्ति पापस्य देहिनां देहमध्यत:।
सवाह्याभ्यन्तरं यस्य व्याप्तं पादोदकेन वै ॥
पादोदकं विष्णुनैवेद्यमुदरे यस्य तिष्ठति।
नाश्रयं लभते पापं स्वयमेव विनश्यति ॥
महापापग्रहग्रस्तो व्याप्तो रोगशतैरपि।
हरेः पादोदकं पीत्वा मुच्यते नात्र संशय: ॥
शिरसा तिष्ठते येषां नित्यं पादोदकं हरेः।
किं करिष्यन्ति ते लोके तीर्थकोटी मनोरथै: ॥"

(हरिभ० धृत स्कन्दपु०)

रघुनन्दनने लिखा हैं, कि श्यामाक, दूर्वा, पद्म और विष्णुक्रान्ता इनके साथ मिला हुआ जल देवपूजाका पाद्य कहलाता है।

पात्रमें करके पाद्य देना होता है। यह पात्र लौह, ताम्र, रजत वा सुवर्णका होना चाहिये। इसका विस्तार ६ अङ्गुल, उत्सव ४ अङ्गुल, ओष्ठ एक अङ्गुल और नासिका ४ अङ्गुलकी बनावे। सभी देवपूजामें ऐसा ही पाद्य-पात्र देना होता है। जिस जलसे देवताके पैर धोए जाते हैं उससे हाथ नहीं धोए जा सकते। यही कारण है, कि पैर धोनेके जलको 'पाद्य' और हाथ धोनेके जलको 'अर्घ' कहते हैं।

पाद्यक (सं० त्रि०) पाद्य प्रकारवचनार्थे कन् (स्थूलादिभ्य: प्रकारवचने कन्। पा ५।४।३) पाद्यप्रकार, पाद्य होनेका एक भेद।

पाद्यार्घ (सं० पु०) १ पैर तथा हाथ धोने या धुलानेका जल। २ वह धन या सम्पत्ति जो किसीकी पूजामें दी जाय, भेंट। ३ पूजासामग्री।

पाधा (हिं० पु०) १ आचार्य, उपाध्याय। २ पण्डित।

पान (सं० क्ली०) पा-पाने भावे ल्युट्। १ द्रवद्रव्यका गलाध:करण, किसी द्रवपदार्थको गलेके नीचे घूंट घूंट करके उतारना, पीना। २ भाजन, पानीका बरतन, कटोरा, प्याला। पा-रक्षणे भावे ल्युट्। ३ रक्षण, रक्षा। पीयते खगादिभिर्यत्र, पा अधिकरणे ल्युट्। ४ कुल्या, नहर। पीयते यत्, कर्मणि ल्युट्। ५ जल। ६ शौण्डिक, कलवार। ७ मद्यपान, शराब पीना। मद्यपानको सभी शास्त्रोंमें निषिद्ध बतलाया है।

"पानमक्षा: स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमं।
एतत्कष्टतमं विद्यात् चतुष्कं कामजे गणे ॥"

(मनु ७।५०)

मद्यपान, अक्षक्रीड़ा, स्त्रीसम्भोग और मृगया ये सब कामज व्यसन हैं। मद्यपानका अन्यान्य विवरण मद्यपानशब्दमें देखो। ८ नि:श्वास। ९ अस्त्रका तीक्ष्णाग्रता सम्पादन व्यापारभेद, वह चमक जो शस्त्रोंको गरम करके द्रव पदार्थमें बुझानेसे आती है, पानी, आब। खड्ग और असि आदिमें पान देनेसे उनकी धार तेज हो जाती है। वराहसंहिता और शुक्रनीतिमें इस प्रकार लिखा है—

अस्त्र उत्तमरूपसे प्रस्तुत करनेमें पहले यह जानना आवश्यक है, कि कौन लौहास्त्र किस प्रकार और कितनी बार दग्ध करके पीटना होता है। अस्त्र केवल पानके गुणसे ही दृढ़ और तीक्ष्ण धारयुक्त होते हैं। इसीसे अस्त्रनिर्माताको पहले पानके विषयसे अच्छी तरह जानकार होना चाहिये। पान यदि उत्तमरूपसे दिया जाय, तो अस्त्र अति प्रशस्त होता है। पानके पाकका विषय केवल सुननेसे ही मालूम नहीं हो सकता, बल्कि अपनी आंखोंसे देखने और स्वयं करनेसे उसका पूरा ज्ञान होता है। पान देनेको संस्कृतमें पायन भी कहते हैं। अस्त्रादि प्रस्तुत होने पर उसे परिष्कृत करके धारके मुख पर लवण अथवा कोई दूसरा क्षारमृत्तिकाद्रव्य लगावे। पीछे उस प्रलिप्त धारको अग्निमें दग्ध करके जल वा किसी अन्य तरल पदार्थमें डुबो दे, इसीको पायन वा पान कहते हैं।

बृहत्संहितामें पानका विषय इस प्रकार लिखा है—जो लक्ष्मी लाभ करना चाहते हों वे अपने शस्त्रमें रुधिर द्वारा, जो गुणवान् पुत्रकी कामना करते हों, वे घृत द्वारा और जो अक्षय वित्तके अभिलाषी हैं वे अपने शस्त्रमें जल द्वारा पान दे। शुक्राचार्यका भी यही मत है। यदि घोड़ी, ऊंटनी और हथनीके दूधसे पान दिया जाय, तो पानकार्य द्वारा सम्यक्‌रूपसे अर्थकी सिद्धि होती है। मत्स्यपित्त, हरिणी, घोड़ी और बकरीके दूधके साथ ताड़ी मिला कर पान देनेसे शस्त्र ऐसा तीक्ष्ण हो जाता है, कि उससे हाथीकी सूंड़ भी काट सकते हैं। अकवनके दूध, दग्ध मेषशृङ्गकी कालो, पारावत और चूहेकी विष्ठाको एक साथ मिला कर तैलमथित शस्त्रकी धार पर प्रलेप दे। पीछे उसमें किसी पूर्वोक्त द्रव्य द्वारा पान करे। इस प्रकार पान करनेसे उसकी धार इतनी दृढ़ हो जाती है, कि पत्थर पर आघात करनेसे भी उसका कोई नुकसान नहीं होता केलेकी जड़की राख और मट्ठेको मिला कर किसी बरतनमें एक दिन तक रख छोड़े। दूसरे दिन उसका पान देनेसे शस्त्रकी धार बड़ी ही दृढ़ हो जाती है और पत्थर पर तो क्या यहां तक कि लोहे पर आघात करनेसे भी वह नहीं टूटती।

इसके सिवा पान देनेकी और भी अनेक विधि हैं, किन्तु वे सब पान तीरके फलमें व्यवहृत होती हैं। विष अथवा विषवत् द्रव्यका पान देनेसे वह शस्त्र बड़ा भीषण हो जाता है। उसके आघातसे यदि थोड़ा भी रक्त निकले, तो उसे प्राणसंहारक जानना चाहिये। शस्त्रमें पान देनेके समय विभिन्न प्रकारकी गन्ध निकलती है। उस गन्धसे शस्त्रका भविष्यत् शुभाशुभ जाना जाता है और पानके समय अस्त्रको जो दग्ध करना होता है, उस समय जैसा वर्ण वा रंग निकलता है, उससे भी भविष्यत् शुभाशुभ अनुमित होता है। यथा—करवीर, उत्पल, हस्तिमद, घृत, कुङ्कुम और चम्पाकी तरह गन्ध निकलनेसे उस शस्त्रको शुभदायक समझना चाहिये। यदि गो-मूत्र अथवा पङ्क, मेद, कूर्म, चरबी, रक्त वा क्षारके समान गन्ध निकले, तो वह शस्त्र अशुभ होता है। दाहकालमें यदि वैदुर्य, कनक वा विद्युत्‌की तरहका वर्ण हो, तो शुभ अन्यथा अशुभ समझा जाता है।

सुश्रुतमें लिखा है, कि रोगीके व्रणादि छेद वा भेद करनेमें शस्त्रोंका व्यवहार आवश्यक है, इस कारण सबसे पहले वही उपाय करना चाहिये जिससे उनकी धार तेज रहे। इसी धारके लिये शस्त्रोंमें पायन अर्थात् पान देना होता है। यह पान तीन प्रकारका है, क्षार, जल और तैल। पान देनेमें शस्त्रको अग्निमें दग्ध करके प्रयोजनानुसार क्षारजलमें, विशुद्ध जलमें अथवा तेलमें डुबोना होता है। शल्य अथवा अस्थिच्छेदन करनेमें शस्त्रमें क्षारपान, मांसके छेदन, भेदन वा पाटन करनेमें विशुद्ध जल-पान और शिरा विद्ध अथवा स्नायुच्छेदन करनेमें तैलपान प्रशस्त है। (सुश्रुत सूत्रस्थान ८ अ०)

शस्त्र देखो।

१० पेयद्रव्य, पीनेका पदार्थ। ११ मद्य, शराब। १२ जल, पानी। १३ प्याऊ, पौसाला। १४ जय। (त्रि०) पाति रक्षतीति पा-ल्यु। १५ रक्षाकर्त्ता, रक्षा करनेवाला, बचानेवाला।

पान (हिं० पु०) १ पत्ता। २ एक प्रसिद्ध लता जिसके पत्तोंका बीड़ा बना कर खाते हैं। विशेष विवरण ताम्बूल शब्दमें देखो। ३ पानके आकारकी चौकी या तावीज जो हारमें रहती है। ४ ताशके

पत्तोंके चार भेदोंमेंसे एक। इसमें पत्ते पर पानके आकारकी लाल बूटियां बनी रहती हैं। ५ जूतेमें पानके आकारका वह रंगीन या सादे चमड़ेका टुकड़ा जो एंड़ीके पीछे लगता है। ६ लड़ी, गून। (स्त्री०) ७ सूतकी मांड़ीसे तर करके ताना करना।

पान—उड़ीसासे उत्तर और छोटानागपुरके दक्षिण तथा पश्चिम प्रदेशवासी नीचजातिविशेष। स्थानभेदसे ये लोग पंडा, पाँड़, पाँव, बराइक और महतो कहलाते हैं। उड़ीसामें इनके पांच विभाग हैं—ओड़पान वा उड़ियापान, बूनोपान, बेतपान वा राजपान, पान-वैष्णव और पबदिया।

साधारणतः पूर्णवयस्का नहीं होनेसे पान-बालिका का विवाह नहीं होता। ओड़पानश्रेणीके समृद्धिशाली व्यक्तियोंके मध्य केवल बाल्यविवाह प्रचलित है। उड़ीसा-के पानवैष्णव ही पानोंको पुरोहिताई करते हैं। छोटा-नागपुरके नागेश्वर पान भी यह कार्य करते हैं। वर द्वारा कन्याके मस्तक पर सिन्दूरदान और वर तथा कन्याका हस्तबन्धन ही इनके विवाहका प्रधान अङ्ग है। इन लोगोंमें विधवा-विवाह प्रचलित है। मृतस्वामीके छोटे भाईसे विवाह करना ही युक्तियुक्त है। परित्यक्ता रमणी फिरसे विवाह कर सकती है।

स्थानभेदसे इनके मध्य नाना प्रकारके निकृष्ट हिन्दू-धर्म प्रचलित है। उड़ीसा और सिंहभूममें पान लोग वैष्णव-धर्मका पालन करते हैं और मृतदेह गाड़ते हैं। लोहरडगामें दाह और समाधि दोनों ही प्रचलित है।

सामाजिक विषयमें पान लोग अति निकृष्ट होते हैं। ये लोग गाय, सूअर आदिका मांस खाते और शराब पीते हैं।

पानक (सं० क्ली०) पानाय कायतीति कै-क। पानद्रव्य-विशेष, विशेष क्रियासे बनाया हुआ खट्टा तरल पदार्थ जो पीनेके काममें आता है, पना।

पानीय, पानक और मद्य मट्टीके बरतनमें देना चाहिए। पानक शब्दका व्यवहार पुंलिङ्गमें भी होता है। पानक और प्रपाणक एकपर्याय शब्द है।

भावप्रकाशमें लिखा है,—परिष्कृत चीनी शीतल जलमें घोल कर उसमें इलायची, लवङ्ग, कपूर और मिर्च मिलानेसे उसे शर्करोदक वा चीनीका पना कहते हैं। गुण—शुक्रवर्द्धक, शीतल, सारक, बलकारक, रुचि-जनक, लघु, मधुररस, वातघ्न, रक्तपित्तनाशक तथा मूर्च्छा, वमि, पिपासा, दाह और ज्वरनाशक।

आम्रफलका पना—कच्चे आमको पानीमें सिद्ध कर हाथसे खूब मथ दे। बाद उसमें चीनी, ठंढा पानी, कपूर और मिर्च मिला दे; इसीको आम्रफलका पानक कहते हैं। भीमसेनकृत यह पानक अन्यान्य पानकोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। गुण—सद्यःरुचिकारक और बलकर तथा इसका सेवन करनेसे इन्द्रियां शीघ्र ही परितृप्त होती हैं।

निम्बूफल-पानक वा नीबूका पना—एक भाग कागजी नीबूके रसमें छः भाग चीनीका रस मिला कर उसमें लवङ्ग और मिर्च डालनेसे उत्कृष्ट पानक बनता है। गुण—अत्यन्त अम्लरस, वायुनाशक, अग्निप्रदीपक, रुचिकारक तथा सभी आहारीय द्रव्यका परिपाक-जनक।

अम्लिकापानक वा पकी हुई इमलीका पना—पकी हुई इमलीको पानीमें अच्छी तरह मथ कर उसमें चीनी, मिर्च, लवङ्ग और कपूर मिला दे। जब यह उत्तम सुगन्धयुक्त हो जाय, तब इसे प्रस्तुत हुआ-सा जानना चाहिए। गुण—वायुनाशक, किञ्चित् पित्त और कफ-कारक, अत्यन्त रुचिकर और अग्निप्रदीपक।

धन्याकपानक या धनियेका पना—धनियेको भली-भांति पीस कर कपड़ेमें छान ले। बाद इसमें चीनीका पना और कर्पूरादि सुगन्ध द्रव्य मिला कर मिट्टीके एक नये बरतनमें रखे। इसी प्रकार यह पानक बनता है। यह पित्तनाशक माना गया है।

सुश्रुतमें लिखा है, कि अम्लरसयुक्त वा अम्लविहीन गौड़पानक (गुड़का पना) गुरुपाक और मूत्रवृद्धिकर है। वह मिस्री, द्राक्षा और शर्करायुक्त होनेसे अम्लरस-विशिष्ट, तीक्ष्ण और शीतल होता है। द्राक्षाका पानक श्रम, मूर्च्छा, दाह और तृष्णानाशक तथा परूषक और कोलका पानक सुखप्रिय और विष्टम्भी माना गया है।

इसके सिवा वाभट सूत्रस्थानके छठें अध्यायमें और भी अनेक प्रकारके पानकका विषय लिखा है, विस्तारके भयसे वह यहां नहीं दिया गया।

पानकपूर (सं॰ पु॰) स्वनामख्यात वृक्ष।
पानकी (सं॰ स्त्री॰) पाण्डुरोगभेद।
पानकुम्भ (सं॰ पु॰) पानपात्र, जलका कलस।
पानगोष्ठिका (सं॰ स्त्री॰) पानस्य पानाय वा गोष्ठिका। पानसभा, वह स्थान जहां तान्त्रिक लोग एकत्र हो कर मद्यपान तथा कुछ पूजन आदि करते हैं। इसका पर्याय आपान है।

श्यामारहस्यमें लिखा है, कि पहले सब कोई चक्राकारमें वा पंक्तिरूपमें भिन्न भिन्न आसन पर पद्मासन लगाए बैठें। उनके ललाटमें चन्दन और मस्तक पर पुष्प सुशोभित रहें। यदि इस चक्रके मध्य गुरु हों, तो गन्धादि द्वारा उनकी पूजा करे और उनके पात्रमें पुष्प दे कर उन्हें प्रणाम करे; यदि चक्रके मध्य गुरु न हों, तो उस पात्रको जलमें फेंक देवे। इस प्रकार उपवेशन करके पात्रमें मद्य भर कर ज्येष्ठादिक्रमसे पीना शुरू कर दे। शास्त्रानुसार पानपात्रोंकी वन्दना करनी होती है। दूसरे तन्त्रशास्त्रमें लिखा है, कि मस्तक पर सिन्दूर तिलक भी देना होता है।

मद्यपान देखो।

पानठ (सं॰ त्रि॰) पाने कुशलः बाहुलकात् अठच्। पानकुशल।
पानड़ी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी सुगन्धित पत्ती जो प्रायः मीठे पेय पदार्थों तथा तेल और उबटन आदिमें उन्हें सुगन्धित करनेके लिये छोड़ी जाती है।
पानदान (हिं॰ पु॰) १ वह डिब्बा जिसमें पान और उसके लगानेकी सामग्री रखी जाती है, पनडब्बा। २ वह डिबिया जिसमें पानके बीड़े रखे जाते हैं, गिलौरीपान, खासदान।
पानदोष (सं॰ पु॰) मद्यपानका व्यसन, शराबखोरीकी लत।
पानन (हिं॰ पु॰) हिमालयकी तराई और उत्तरीय भारतके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें मिलनेवाला मझोले आकारका एक प्रकारका पेड़। इसकी पत्तियां जाड़ोंमें झड़ जाती हैं। लकड़ी पकने पर लाल रंगकी चिकनी और भारी होती है और बहुत दिन तक रहती है। इस लकड़ीसे सजावटकी चीजें गाड़ी तथा घरके संगहे बनाए जाते हैं। इसका गोंद दवाके काममें आता है।
पानप (सं॰ त्रि॰) पानं पेयं मद्यादि पिबति पा-पाने क। सुरापायी, शराबी, पियक्कड़।
पानपात्र (सं॰ क्ली॰) पानस्य पेयमद्यादेः पात्रं। १ मद्यपानपात्र, वह पात्र जिसमें मद्यपान किया जाता है। पर्याय—चषक, सरक, अनुतर्षण, अनुतर्ष, पारी और पारीक।

"ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः।"

(मार्क॰ ८२।२९)

जब भगवती महिषासुरके साथ युद्ध करने चली थीं, उस समय कुबेरने भगवतीको पानपात्र दिया था।

मद्यपान देखो।

मद्यपान करते समय एक आसन पर बैठ कर पृथक् पृथक् पात्रमें मद्यपान करना चाहिये। एक पात्रमें पान करनेसे नरककी गति होती है। २ पानभाजन, गिलास।
पानभाजन (सं॰ क्ली॰) पानाय पानस्य वा भाजनं पात्रं। दानपत्र, कांसा।
पानभाण्ड (सं॰ क्ली॰) पानस्य पानाय वा भाण्डं। पानपात्र।
पानभू (सं॰ स्त्री॰) पानभूमि, वह स्थान जहां एकत्र हो कर लोग शराब पीते हैं।
पानभूमि (सं॰ स्त्री॰) पानभू देखो।
पानमङ्गल (सं॰ क्ली॰) पानगोष्ठी। पानगोष्ठी देखो।
पानमद (सं॰ पु॰) नशा।
पानमात्रा (सं॰ स्त्री॰) पानस्य मात्रा। सुरापानमें प्रशस्त मात्रा। परिमाणसे यदि मद्यपान किया जाय, तो उससे दृष्टि क्षुब्ध नहीं होती और न मन ही विचलित होता है। परिमाण मद्यपान ही अच्छा है। इसका विपरीत होनेसे वह मद्य विष सदृश हो जाता है।

"यावन्न चलते दृष्टिः यावन्न क्षोभते मनः।
पानमात्रा परा तावत् विपरीता विषोपमा॥" (शौनक)

पानवणिज (सं॰ पु॰) शराब बेचनेवाला, कलवार।
पानविभ्रम (सं॰ पु॰) मद्यपानजात रोगभेद।

पानात्यय देखो।

पानशौण्ड (सं॰ त्रि॰) पाने शौण्डः ७-तत्। सुरादि पानदक्ष, जो शराब खूब पीता हो।

पानस (सं० क्ली०) पनसस्य इदं, पनसफले भवं तत्फलस्य विकार-इति वा अण्। १ पनसभव मद्य, प्राचीनकालकी एक प्रकारकी शराब जो पनस (कटहल)-से बनाई जाती थी। (त्रि०) २ पनससम्बन्धी, कटहलसे सम्बन्ध रखनेवाला।

पानहो (हिं० स्त्री०) जूता।

पाना (हिं० क्रि०) १ अपने पास या अधिकारमें करना, प्राप्त करना, लाभ करना, हासिल करना। २ भेद पाना, पता पाना। ३ साक्षात् करना, देखना। ४ अनुभव करना, भोगना, उठाना। ५ कृतकर्मका भला या बुरा परिणाम भोगना। ६ किसीको दी हुई चीज वापस मिलना या कोई खोई हुई चीज फिर मिलना। ७ पास तक पहुंचना। ८ भोजन करना, आहार करना, खाना। ९ ज्ञानप्राप्त करना, समझना, जानना। १० समर्थ होना, सकना। ११ पास तक पहुंचना। १२ किसी बातमें किसीके बराबर पहुंचना। (पु०) १३ पानेका हक, पावना। १४ प्राप्तव्य, जिसे पानेका हक हो।

पानागढ़—१ मध्यप्रदेशके जब्बलपुर जिलान्तर्गत जब्बलपुर तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २३° १७' उ० और देशा० ८०° २' पू०के मध्य, जब्बलपुर नगरसे ८ मील पूर्वमें अवस्थित है। निकटवर्ती खानमें लोहा पाया जाता है। यहां ईखकी खेती होती है।

२ बङ्गाल देशमें वर्द्धमान जिलान्तर्गत एक प्राचीन और वर्द्धिष्णु।

पानागार (सं० पु०) पानस्य आगारः ६-तत्। पानगृह, वह घर जहां बहुतसे लोग मिल कर शराब पीते हों।

पानात्यय (सं० पु०) पानाद्धेतोः जातो योऽत्ययः, रोगविशेष। मदात्ययरोग, मद्यपानजनित रोग-का विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है,—अतिरिक्त मद्यपानसे तरह तरहकी पीड़ा उत्पन्न होती है। पानजन्य रोग चार प्रकारका है—पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और पानविभ्रम। इनमेंसे स्तम्भ, अङ्ग-मर्द, हृदयमें वेदना, तोद और कम्प ये सब वायुज मदात्ययके लक्षण; स्वेद, प्रलाप, मुखशोष, दाह, मूर्च्छा, मुख और चक्षुकी पीतवर्णता ये सब पित्तज पानात्ययके लक्षण; वमन, शीत और कफस्राव श्लेष्म-जन्य पानात्ययके लक्षण और सन्निपातजमें उक्त सभी लक्षण देखे जाते हैं। शरीर उष्ण और भार, मुख-वैरस्य, श्लेष्माकी अधिकता, अरुचि और मलमूत्ररोध ये सब परमदके लक्षण; तृष्णा, शिरोवेदना, सन्धिभेद, आध्मान, अम्लरसका उद्गीरण और गात्रज्वाला ये सब पानाजीर्णके लक्षण हैं। यह रोग पित्तके बिगड़नेसे होता है। हृदयमें वेदना, वमन, ज्वर, मूर्च्छा, कफ-स्राव, ऊर्ध्वगत रोग, विदाह, सुरा, अन्न वा अन्नजात भक्ष्यद्रव्यमें द्वेष ये सब पानविभ्रमके लक्षण; अधरोष्ठ स्थूल और उत्तरोष्ठका अपेक्षाकृत क्षुद्र होना, अतिशय-शीत, दाह और मुखका तैलाक्त होना ये सब अतिपानके लक्षण हैं। उक्त सभी लक्षण होनेसे रोगीको असाध्य जानना चाहिये। पानाहत होनेसे जिह्वा, ओष्ठ और दन्त कृष्ण वा नीलवर्ण, नेत्र पीत और रक्ताभयुक्त, हिक्का, ज्वर, वमन, कम्प, पार्श्वशूल, काश और भ्रम ये सब लक्षण होते हैं।

इसकी चिकित्सा—शुक्त, मिर्च, आर्द्रक, यमानी, कुष्ठ, सौवर्चल ये सब द्रव्य प्रचुर परिमाणमें संयोग करके मद्यपान करनेसे वायुकी शान्ति होती है; अथवा द्राक्षा, यमानी, कचूर, हींग और सौवर्चलके साथ पान करे। आम्रातक, दाड़िम, मातुलङ्ग इन सबका आनूप-वर्गके मांसके साथ सेवन, पित्तप्रवणताकी जगह मधुरवर्गका क्वाथ, गन्ध द्रव्य और मधु तथा शर्कराके साथ सेवन एवं प्रचुर परिमाणमें इक्षुरसके साथ मद्य-पान करके थोड़ी देर बाद वमन करे। लाव और तीतरके मांसका रस और अम्लरहित मुद्गयूष, घृत और चीनीके साथ सेवन विधेय है। कफ जन्य पाना-त्ययमें बिल्वफल और बेंतसके रसके साथ मद्यपान करके कफका त्याग करते रहे। तिक्त और कटु द्रव्यके साथ यूष यवान्न, जाङ्गलमांस और श्लेष्मनाशक अन्यान्य द्रव्यका सेवन करे। सर्वदोषज होनेसे पूर्वोक्त सभी क्रियाएं और द्विदोषज होनेसे दोषकी प्रधानताका विचार कर प्रतिक्रिया करनी होती है।

पानात्ययमें ये सब योग विशेष उपकारी हैं,—गुड़-त्वक्, नागकेशर, पिप्पली, इलायची, यष्टिमधु, धनिये,

कृष्णजीरक और मिर्चका चूर्ण समान भाग ले कर प्रचुर कपित्थरस, जल और परुषकके साथ संयोग करके पान करे। लोध्र, पद्म, करवीर, अन्यान्य जलज पुष्प, पद्मकाष्ठ और सारिकादिगण इन सबके साथ शीतल जलका सेवन करे। यष्टिमधु, कटुकी, द्राक्षा, खीरेका मूल, कपासका मूल और गोखरू इनका समान भाग ले कर पानीय प्रस्तुत करे। गाम्भारी, देवदारु, विट्लवण, दाड़िम, पिप्पली और द्राक्षा इनके जलमें पानक प्रस्तुत करके बीजपुरके रसके साथ पान करनेसे पानजन्य रोगकी शान्ति होती है। द्राक्षा, चीनी, मधु, कृष्णजीरा, धनिये, पिप्पली और त्रिवृत्के साथ अथवा फलाम्लके रस और सौवर्चलके साथ पानीय प्रस्तुत करके पान करनेसे पानात्यय रोग प्रशमित होता है।

तितलौकी, अपामार्ग, कुटजबीज, वकपुष्प और उडुम्बरको दूधमें पाक करके पाव भर पी लेनेके बाद वमन कर दे। पीछे सूर्यास्तके बाद मद्यपान करे।

गुड़त्वक्, पिप्पली, नागकेशर, विट्लवण, हिङ्गु, मिर्च और इलायची इन सबके साथ फलाम्ल पान अथवा उष्णोदकके साथ सैन्धव, विट्लवण, गुड़त्वक्, चव्य, इलायची, हींग, पिप्पली, पिप्पलीमूल, कचूर और गुड़के साथ भोजन करनेसे यह रोग बहुत कुछ चंगा हो जाता है। अथवा द्राक्षा, कपित्थ और दाड़िम इनका पानक प्रस्तुत कर पान करनेसे पानविभ्रमकी शान्ति होती है। अथवा प्रचुर परिमाणमें मधु, शर्करा, आम्रातक और कोलके रसके साथ पानक; अथवा खजूर, बेत, करीर, परुषक, द्राक्षा, त्रिवृत्, चीनी, गाम्भारी वा यष्टिमधु और उत्पलको ठंढे पानीमें मिला कर पान करे। क्षीरिवृक्षका अङ्कुर, मृणाल, जीरक, नागकेशर, तेजपत्र, पद्म, पद्मकाष्ठ, आम्रातक, करञ्ज, कपित्थ, कोल, वृक्षाम्ल, वेतफल, जीरक और दाड़िम इनके सेवनसे पानात्यय प्रशमित होता है। मनोहारिणी कामिनीका समागम भी पानात्ययमें विधेय है।

दाड़िम और अमड़ा प्रभृति अम्लफलका रस, चीनी, दारुचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, जीरक, पिप्पली, मिर्च इनके चूर्णका समान भाग ले कर पान करे। मौथा, यष्टिमधु, लाक्षा, दारुचीनी, बहुवार वृक्षाङ्कुर, कृष्णजीरक, द्राक्षा, पिप्पली और नागकेशर इन्हें दूधमें आलोड़ित करके कुछ गरम रहते ही सुरा वा आसवके साथ प्रचुर परिमाणमें पान करे। जब तक यह विधिपूर्वक प्रस्तुत नहीं किया जायगा, तब तक इसके सेवनसे कोई फल नहीं होता है।

मद्यविरत व्यक्ति यदि सहसा अधिक परिमाणमें मद्य पान करे, तो पानात्ययजन्य विकार उत्पन्न होता है। मद्यकी अग्नि वायवीयगुणसे जलवाही स्रोत शुष्क हो कर तृष्णा पैदा होती है। इस समय रक्त, लोध, पद्ममूल और मुद्गपर्णीके साथ हिमजल प्रस्तुत करके पिप्पली मिला कर पान करे। घृत, तैल, चरबी, मज्जा और दधिको भृङ्गराजरसके साथ पान कर अञ्जनका व्यवहार करनेमें बिल्व और यवके क्वाथमें सर्वगन्धा पीस कर और पाक कर व्यवहार करे। रसविशिष्ट भोजन तथा शीतल और सुगन्धि पानक दोषानुसार प्रयोज्य है।

पानजन्य उष्णता पित्तरक्तसे वृद्ध हो कर त्वक्में आश्रय लेती है और घोरतर दाह उत्पादन करती है। इसमें भी पित्तजन्य दाहकी तरह चिकित्सा विधेय है। प्रथमतः सर्वाङ्गमें चन्दनलेपन, शिशिरोदक और शीतल द्रव्यसे शय्या प्रस्तुत करके उस पर शयन, हार और मृणालवलययुक्त कामिनीका स्पर्श, उत्पल शय्या पर शयन करके नलिनीपत्र वीजन, अभिलषित गन्धसेवन, कमलकह्लारदल सञ्चारित वनानिलसेवन इस तरह नाना प्रकारकी विलासोपयोगी शैत्यक्रिया और उसके साथ साथ कामिनीका अङ्गस्पर्श ये सब क्रियाएं विशेष हितकर हैं।

पित्तज पानात्ययमें कामिनीसम्भाषण वा संसर्ग विशेष उपकारी है। सर्वदेहस्थित रक्त उद्रिक्त हो कर अतिशय दग्ध होनेसे देह और दोनों नेत्र ताम्रवर्ण, सुवरागन्धविशिष्ट तथा शरीर अग्निविकीर्णकी तरह दग्ध हो जाता है। ऐसी हालतमें रोगीके दोषानुसार आहारकी व्यवस्था करनी चाहिये।

मर्मस्थानमें अभिघात जन्य जो दाह उत्पन्न होता है, वह असाध्य है। बाहरमें शीतल और भीतरमें दाह रहने पर उसे भी असाध्य समझना चाहिये।

पूर्वोक्त प्रक्रिया द्वारा अतिरिक्त मद्यपानजनित पीड़ा प्रशमित होती है। (सुश्रुत उत्तरत० ४७ अ०)

पानापुर—बिहार और उड़ीसा प्रदेशके सारन जिलेका एक कृषिप्रधान नगर।

पानार—बिहार और उड़ीसा प्रदेशके पुर्णिया जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह पहले दक्षिण-पूर्वकी ओर सुलतानपुर और हवेली परगनेके मध्य हो कर बहती हुई दक्षिणकी ओर गङ्गा नदीमें गिरी है।

पानिक (सं० पु०) १ पानविक्रयकारी, वह जो शराब बेचता हो। २ कलवार।

पानिप (हिं० पु०) १ द्युति, कान्ति, चमक। २ पानी।

पानिल (सं० क्ली०) पानमाधारत्वेनास्त्यत्र इति इलच्। पानपात्र।

पानी (हिं० पु०) १ एक प्रसिद्ध द्रव द्रव्य जो पारदर्शक, स्निग्ध और स्वादरहित होता है। विशेष विवरण जल शब्दमें देखो। २ वृष्टि, वर्षा, मेघ। ३ वह पानीका-सा पदार्थ जो जीभ, आंख, त्वचा, घाव आदिसे रस कर निकले। जैसे, पसीना, पसेव। ४ चमक, ओप, आब। ५ कोई वस्तु जो पानी जैसी पतली हो। ६ वह द्रव पदार्थ जो किसी चीजके निचोड़नेसे या उससे निथर कर निकले, अर्क, रस, जूस। ७ प्रतिष्ठा, मान, इज्जत। ८ तलवार आदि धारदार हथियारोंके लोहेका वह हलका स्याह रंग और उस पर चींटीके पैरके चिह्नोंकीसे अकृत्रिम चिह्न जिनसे उसकी उत्तमताकी पहचान होती है, जौहर, आब। ९ वीर्य, शुक्र, नुत्फा। १० वर्ष, साल। ११ मुलम्मा। १२ एकबारगी गीली, नरम या मुलायम चीज। १३ बार, फिर, दफा। १४ जलवायु, आबहवा। १५ परिस्थिति, सामाजिक दशा। १६ पुंस्त्व, मरदानगी, जीवट, हिम्मत। १७ घोड़े आदि पशुओंकी वंशगत विशेषता या कुलीनता। १८ पानीकी तरह ठंढा पदार्थ। १९ द्वन्द्वयुद्ध, कुश्ती या लड़ाई आदि। २० मद्य, शराब। २१ पानीकी तरह फीका या स्वादहीन पदार्थ। २२ अवसर, समय, मौका।

पानीतराश (फा० पु०) जहाज या नावके पेंदेमें वह बड़ी लकड़ी जो पानीको चीरती है।

पानीदार (हिं० पु०) १ चमकदार, आबदार। २ माननीय, इज्जतदार, आबरूदार। ३ आत्माभिमानी, जीवटवाला, मरदाना, आनवाला।

पानीदेवा (हिं० वि०) १ तर्पण या पिण्डदान करनेवाला। २ पुत्र, बेटा। ३ स्ववंशीय, अपने कुलका।

पानीपत—१ पञ्जाबके अन्तर्गत कर्नाल जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २९° ११' से २९° ३०' उ० और देशा० ७६° ३८' से ७७° १०' पू० यमुनानदीके किनारे अवस्थित है। भूपरिमाण ४६२ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखके करीब है। इसमें पानीपत नामका एक शहर और १७२ ग्राम लगते हैं। राजस्व तीन लाख रुपयेसे ज्यादा है।

२ पञ्जाबके अन्तर्गत कर्नाल जिलेका एक विध्वस्त नगर और प्रसिद्ध युद्धक्षेत्र। यह अक्षा० २९° २४' उ० और देशा० ७६° ५८' पू०के मध्य दिल्लीसे ५३ मील उत्तर ग्रैण्ड ट्रङ्क रोडके किनारे अवस्थित है। यहांकी जनसंख्या प्रायः २६९१४ है। पानीपत एक प्राचीन नगर है और पाण्डव तथा कौरवोंके युद्धके पहले विद्यमान था। इसीके पास कुरुक्षेत्र है जिसमें महाभारतका युद्ध हुआ था।

कुरुक्षेत्र देखो।

पानीपतके निकट जो तीन प्रसिद्ध युद्ध हुए उनसे उत्तर-भारतका भाग्यपरिवर्त्तन हुआ। इसके समीप जो प्रान्त है, उसके मध्य हो कर भारतवर्षकी उत्तर-पश्चिम सीमा तक एक रास्ता चला गया है। पानीपतक्षेत्र बहु विस्तृत और समतल है। बीच बीचमें जहां पानी है वहां घास और कांटे उग गये हैं। एतद्भिन्न अधिकांश स्थान बालुकामय है। देखनेसे मालूम पड़ता है मानो युद्धक्षेत्र होनेके लिये ही इसकी सृष्टि हुई थी।

१५२६ ई०में बाबरका इब्राहिमलोदीके साथ प्रथम युद्ध हुआ। इब्राहिमलोदीकी सैन्यसंख्या १०००० और बाबरकी उससे बहुत कम थी। सबेरेसे ले कर शाम तक युद्ध होता रहा। इब्राहिमलोदीकी सम्पूर्णरूपसे हार हुई। ३० वर्ष बाद अर्थात् १५५६ ई०में बाबरके पौत्र अकबरने पठानराज शेरशाहके हिन्दू-सेनापति हिमूको परास्त कर भारतवर्षमें मुगल-प्राधान्य पुनः संस्थापन किया। १७६१ ई०की ७वीं जनवरीको अहमदशाह दुर्रानीका मरहटोंके साथ इसी स्थान पर युद्ध हुआ

था। मरहटोंकी सेना चक्रभावमें सजी हुई थी, छोटी बड़ी कमान सामनेमें रख दी गई थीं। मध्य भागकी रक्षा स्वयं पेशवाके पुत्र, वाम पार्श्वकी रक्षा इब्राहिम खाँ तथा दक्षिण पार्श्वकी रक्षा होलकर और सिन्धिया कर रहे थे। मुसलमानी सेनाके वामभागमें रोहिला सेना और दक्षिणभागमें पारसी सेना डटी हुई थी। प्रातःकालमें युद्ध आरम्भ हुआ। मरहटोंने पहले बिना लक्ष्यके ही कमान छोड़ कर बहुत बारूद नष्ट कर दी; उन लोगोंने विशेष सावधानीसे काम नहीं लिया। इतना होने पर भी फरासी सेनापति द्वारा सुशिक्षाका फल दिखाई देने लगा। शीघ्र ही प्रायः ८००० रोहिला सेना युद्धमें अक्षम हो पड़ी। भाऊने मुसलमानी सेनाके मध्यभाग पर आक्रमण करके उसे छिन्न भिन्न कर डाला। दिनके १ बजे मुसलमानी सेना पुनः अग्रसर होने लगी। यदि कुछ काल तक मरहटे और ठहर जाते, तो अवश्य ही उनकी जीत होती, पर थोड़े समयके बाद ही पेशवाके पुत्र घायल हुए और भाऊ मारे गये। होलकर और सिन्धियाने भी रणसे पीठ दिखाई। मरहटासेना नायकविहीन हो कर तितर बितर हो गई। प्रायः ४०००० मरहटा-सेना निहत हुई।

आधुनिक पानीपत नगर कर्नालके दक्षिण भागमें अवस्थित है। यह चारों ओर प्राचीरसे वेष्टित है और इसमें १५ तोरणद्वार हैं।

नगरके चारों ओर यमुनानदीकी पुरातन खाल है। यमुनानदीके दूसरे किनारे रेल हो जानेसे पानीपतके वाणिज्यमें बहुत धक्का पहुंचा है। इस स्थानसे ताम्रपात्र, देशी वस्त्र, कम्बल, छुरी आदि रपतनी होती है। पहले यह शहर कर्नाल जिलेका एक प्रधान सदर था, किन्तु यहांका जलवायु अस्वास्थ्यकर होनेसे सदर कचहरी कर्नाल उठ कर चली गई। पानीपतकी प्रधान प्रधान अट्टालिकाओंके मध्य म्युनिसिपल हाल, डाकघर, स्कूल, जज-अदालत आदि उल्लेखयोग्य हैं। यहां १८६७ ई०में म्युनिसिपलिटी स्थापित हुई है। यहांका राजस्व तीस हजार रुपये है।

पानीफल (हिं० पु०) सिंघाड़ा।

पानीय (सं० क्ली०) पीयते इति पा-अनीयर्। १ जल। २ पानार्ह द्रव्यविशेष, शरबत। पानक देखो। (त्रि०) ३ पातव्य, रक्षणीय। अग्निपुराणमें लिखा है, कि जो सुखकी कामना करते हैं, उन्हें सर्वदा पानीयदान करना चाहिये।

"एतत्ते कथितं विप्र मम लोके तु दुर्लभम्।
पानीयं सन्ततं तस्मात् दातव्यं सुखमिच्छता॥
अतोऽर्द्धं कारयेत् कूपं वापीं वा बहुपल्वलं।
बहुलोकाकुले देशे सर्वसत्वोपजीवितं॥" (अग्निपु०)

पानीयदानके पीछे निम्नलिखित मन्त्रपाठ करना होता है।

"पानीयं प्राणिनः प्राणाः पानीयं पावनं महत्।
पानीयस्य प्रदानेन तृप्तिर्भवति शाश्वती॥" (स्मृति०)

इसका विवरण जलमें देखो।

४ पीने योग्य, जो पीया जा सके।

पानीयकल्याणघृत (सं० क्ली०) घृतौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—घृत ४ सेर, त्रिफला, रेणुका, देवदारु, एलुआ, शालपानि, तगरपादुका, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, श्यामालता, अनन्तमूल, प्रियङ्गु, नीलोत्पलपत्र, इलायची, मञ्जिष्ठा, दन्तीमूल, दाड़िमबीज, नागेश्वर, तालीश, वृहती, मालतीका नवपुष्प, विड़ङ्ग, चकवंड़, कुट, रक्तचन्दन और पद्मकाष्ठ इनमेंसे प्रत्येकका दो दो तोला ले कर १६ सेर जलमें पाक करे। इस घृतका सेवन करनेसे अपस्मार, उन्माद, ज्वर, खाँसी, क्षय, वातरक्त, कण्डु और पाण्डुरोग दूर हो जाते हैं। यह उन्माद रोगकी एक उत्कृष्ट औषध है।

(भैषज्यरत्ना० उन्मादाधि०)

पानीयकाकिक (सं० पु०) पक्षीभेद।

पानीयकुक्कुट (सं० पु०) जलकुक्कुट।

पानीयचूर्णिका (सं० स्त्री०) बालुका, बालू।

पानीयतण्डुल (सं० क्ली०) कष्टशाक।

पानीयनकुल (सं० पु०) पानीये जले नकुल इव। उद्र, ऊदबिलाव।

पानीयपृष्ठज (सं० पु०) पानीय-पृष्ठे जलोपरि जायते जन-ड। कुम्भी, जलकुम्भी।

पानीयफल (सं० क्ली०) जलकन्द फलभेद मखाना।

पानीयभक्तवटिका (सं० स्त्री०) वटिकौषधभेद। प्रस्तुत

प्रणाली—अभ्र, मण्डूर, विड़ङ्ग प्रत्यक १ पल, चई, त्रिकटु, त्रिफला, केशरका मूल, दन्तीमूल, मोथा, पीपर, चीता-मूल, मानकचू, ओल, शुक्लवृहतीका मूल, निसोथका मूल, हुरहुरका मूल, पुनर्णवाका मूल प्रत्येक २ तोला, रस १ तोला, गन्धक १ तोला इन सब द्रव्योंको अदरक के रसमें पीस कर गोली बनावे। इस गोलीका सेवन करनेसे अम्लपित्त, अरुचि और ग्रहणी आदि रोग बहुत जल्द दूर हो जाते हैं। इस औषधके सेवनकालमें जल-धौत अन्न, दधि और काँजी आदि पथ्य हैं तथा पानीफल गुड़, नारियल, दुग्ध और सब प्रकारकी दाल निषिद्ध है। (भैषज्यरत्ना० अम्लपित्त०) रसेन्द्रसारसंग्रहमें इसी औषधको ग्रहणी-अधिकारमें पानीयभक्तवटी बतलाया है।

अन्यविध प्रस्तुत प्रणाली—निसोथ, मोथा, हरीतकी, आमलकी, बहेड़ा, सोंठ, पीपर और मिर्च आठ तोला, पारद और गन्धक प्रत्येक ४ तोला, लौह, अभ्र, विड़ङ्ग प्रत्येक १६ तोला, इन सब द्रव्योंको एक साथ मिला दे, पीछे त्रिफलाके क्वाथमें मर्दन कर गोली बनावे। इसका अनुपान मट्ठा है। बहुत सवेरे उठ कर इस औषधका सेवन करना होता है। इसके सेवन करनेसे अम्लपित्त, शूल, पार्श्व, कुक्षि, वस्ति और मलद्वारकी वेदना, श्वास, कास, कुष्ठ और ग्रहणी आदि रोग दूर हो जाते हैं।
(रसेन्द्रसारसं० अम्लपित्ताधि०)

पानीयमूलक (सं० क्ली०) पानीयमिव मूलं यस्य ततः कप्। सोमराजी, बकुची।

पानीयवटिका (सं० स्त्री०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—४ माशा रस ले कर पहले लाल ईंटके चूरसे उसे मले। पीछे उस ईंटके चूरको अपसारित करके कमरखके रसमें, अदरकके रसमें, कनकधतूरेके पत्तेके रसमें, बीजताड़कमूलके रसमें और घृतकुमारीके रसमें यथाक्रम मर्दन करे। पीछे चावलके जलमें गन्धक डाल कर उसे लोहेके बरतनमें रखे और आँच पर चढ़ावे। तरल हो जाने पर उसमें चीतेका रस डाल कर उसे ठंढा करे। पीछे ४ माशा गन्धक और पूर्वोक्त शोधित पारा एकत्र कर काजल बनावे। शोधित सूक्ष्म ताम्र-पात्रमें काजल लेप कर उसे आमके पत्तेके बने हुए दोनेमें रखे और नीचेसे आँच दे। ऐसा करनेसे क्षण भरमें ताम्र भस्म हो जायगा। लौहचूर्ण १ माशा, स्वर्ण-माक्षिक १ माशा, उक्त प्रकारको ताम्रभस्म ४ माशा इन सबको एक साथ मर्दन कर भृङ्गराज, सम्हालू, ज्योतिष्मती, लालचीता, सिद्धि, काकमाचिका, नीलवृक्ष और हस्तिसुण्डलता प्रत्येकके एक एक पल रससे ताम्र दण्ड द्वारा एक एक दिन मर्दन करे।

पूर्वोक्त १२ प्रकारके द्रव्योंके रसमें एक एक दिन मर्दन और शुष्क करके उसमें ४ माशा त्रिकटु चूर्ण मिला दे। पीछे जलमें मल कर और छायामें सुखा कर सरसोंके बराबरकी गोली बनावे। सान्निपातिक ज्वरमें जब रोगी अज्ञान हो जाय, तब उसे गोली खिला कर मोटे कपड़ेसे ऊपरसे ढंक दे। यदि रोगी उसी समय मलमूत्र त्याग करे, तो जानना चाहिये कि रोग बहुत जल्द दूर हो जायगा। पीछे रोगीको दधियुक्त अन्न और यथेच्छा परिमाणमें जल दे कर अभ्यङ्गके निमित्त वातनाशक तेल दे। ऐसा करनेसे ज्वरातिसार और सान्निपातिक ज्वरादि प्रशमित होते हैं।

अन्य प्रकारकी प्रस्तुत प्रणाली—जयन्ती, आकन्द, सम्हालू, अड़ूस, बला, नाटाकरंज, हुड़हुड़, चीता, ब्राह्मी, वनसर्षप, भृङ्गराज, दन्ती, निसोथ, अमलतासके पत्ते, अमरकन्द त्रिपुरभण्डिका, पिप्पली, गजपिप्पली, काकमाचिका, कनकधतूरा, सिद्धि, श्वेत अपराजिता, इनमेंसे प्रत्येकका रस यथाक्रम एक एक कर्ष ले कर प्रस्तरपात्रमें लोहदण्डसे अच्छी तरह घोंटे और तब धूप-में सूखने दे। अनन्तर उसके साथ क्रम क्रमसे थूहरका दूध, अकवन और बटका दूध मिला कर मर्दन करे और उसे पिण्डाकृतिका बनावे। तदनन्तर पारद ४ माशे और गन्धक ४ माशेका कज्जल बना कर उस पिण्डके साथ अच्छी तरह मिला दे। बाद वैक्रान्त, अतीस, कुचला, अभ्र, शृङ्गीविष, हरिताल, गरल, स्वर्णमाक्षिक और मनःशिला प्रत्येक द्रव्य ४ माशा ले कर पूर्वोक्त द्रव्यके साथ मिलावे और अम्लशोधिकाके रसमें घोंट कर तिल भरकी गोली बनावे। प्रतिदिन २० गोली करके अदरकके रस वा जलके साथ रोगीको सेवन करावे। सान्निपातिक विकारमें यह विशेष फलप्रद है।

इस औषधका सेवन करानेसे पुनः पुनः अधिक परिमाणमें जलपान कराना होता है। जगत्‌के उपकारके लिये स्वयं लोकनाथने यह पानीयवटिका बनाई है।

(भैषज्यरत्ना० ज्वराधिका०)

पानीयवर्णिका (सं० स्त्री०) पानीयं वर्णयति प्रकाशयतीति वर्णि-ण्वुल्, टाप् अत: इत्वं। बालुका, बालू।

पानीयशालिका (सं० स्त्री०) पानीयस्य जलस्य वितरणार्थं शालिका शालागृहं। जलावस्थानगृह, वह स्थान जहां प्यासोंको पानी पिलाया जाता है। जो पानीयशाला प्रस्तुत करते हैं, उन्हें अक्षय स्वर्ग प्राप्त होता है।

"कूपारामप्रपाकारी तथा वृक्षादिरोपकः।
कन्याप्रदः सेतुकारी स्वर्गमाप्नोत्यसंशयम्॥"

(उद्वाहतत्त्व)

हेमाद्रिके दानखण्डमें भविष्यपुराणोक्त इस पानीयशालिकाकी दानविधि इस प्रकार लिखी है,—बोल चालमें इसे जलच्छत्र कहते हैं। यह जलच्छत्र-दान विशेष पुण्यजनक है। फाल्गुन मास बीत जाने पर पुरके मध्य पथ वा चैत्यवृक्षके तले एक सुन्दर वनच्छाय मण्डप प्रस्तुत करे। इसमें जलयुक्त मणिकुम्भ और नाना प्रकारके खाद्य द्रव्य रखे। जिस दिन पानीयशालिका स्थापन करे, उस दिन ब्राह्मणादिको भोजन भी कराया जाता है। इस पानीयशालिकाको यदि हो सके तो चार मास, नहीं तो तीन पक्ष तक भी चलावे। सभी ब्राह्मणोंको भर पेट खिला कर सुशीतल जल देवे। इस विधिके अनुसार ग्रीष्मकालमें जो पानीयशालिका करते हैं, उन्हें शत कपिला-दानका फल प्राप्त होता है और अन्तमें वे दिव्य विमान पर चढ़ कर स्वर्गको जाते हैं तथा तीस कोटी वर्ष तक यक्षगन्धर्वादिसे सेवित हो कर स्वर्गमें अवस्थान करते हैं। (हेमाद्रि दानख०)

पानीयशीत (सं० त्रि०) जो बहुत शीतल हो।

पानीयाध्यक्ष (सं० पु०) जलाध्यक्ष।

पानीयामलक (सं० क्ली०) पानीयमामलकं पानीयाख्यं आमलकं वा। प्राचीनामलक, पानी आंवला। इसका गुण—दोषत्रय और ज्वरनाशक, मुखशुद्धि और मलवर्द्धकारक, अम्ल तथा स्वादु।

पानीयालु (सं० पु०) पानीयसम्भूत आलुः। कन्दविशेष, पानी आलू नामक कंद। पर्याय—जलालु, क्षुपालु, बालुक। गुण—त्रिदोषनाशक और सन्तर्पणकारक।

पानीयाश्ना (सं० स्त्री०) पानीयं जलं अश्नातीति अश-बाहुलकात् न, ततष्टाप्। बल्वजा, एक प्रकारकी घास।

पानौरा (हिं० पु०) पानके पत्तेकी पकौड़ी।

पान्तिनाश—अफ्रिकाके मिस्रदेशके अन्तर्गत आलेकसन्द्रिया नगरके एक प्रसिद्ध दार्शनिक पण्डित। प्रायः १८० ई०में आप मलवार-उपकूलके ईसाइयोंके अनुरोधसे ईसा-धर्मप्रचारके लिये उत्साहित हुए। पीछे आपने भारतवर्षकी यात्रा की। किन्तु आप यथार्थमें भारतवर्ष पहुंचे थे वा नहीं, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

पान्थ (सं० त्रि०) पथिकुशलः, पन्थानं नित्यं गच्छतीति (पथो ण नित्यं। पा ५।१।७६) पथः पन्थ च इत्यनेन पन्थादेशे कृते ण। १ पथिक। २ वियोगी, विरही।

पान्थनिवास (सं० पु०) पान्थानां निवासः। पथिकोंके ठहरनेका स्थान, सराय, चट्टी।

पान्थशाला (सं० स्त्री०) पान्थानां शाला ६-तत्। पथिकोंके आहारादि करनेका स्थान, सराय, चट्टी।

पान्थायन (सं० त्रि०) पथोऽदूरदेशादि, पथिन् पक्षादित्वात् फञ्, पन्थादेशः। (पा ४।२।८०) मार्गसे अदूर देशादि।

पान्धुरना—मध्यप्रदेशके छिन्दवाड़ा जिलान्तर्गत सौसर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २१° ३६´ उ० और देशा० ७८° ३२´ पू० छिन्दवाड़ा शहरसे ५४ मील दक्षिण-पश्चिम जामनदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या नौ हजारके करीब है। १८६७ ई०में यहां म्युनिसपलोटी स्थापित हुई है। यहां रुईके दो कारखाने, सरकारी विद्यालय, थाना, डाकबंगला और एक सराय है।

पान्नागारि (सं० पु० स्त्री०) पन्नागारस्य ऋषेरपत्यं पुमान् इञ्। गोत्रप्रवर्तक पन्नागार ऋषिका गोत्रापत्य।

पान्हर (हिं० पु०) एक प्रकारका सरपत।

पाप (सं० क्ली०) पाति रक्षति अस्मादात्मानमिति पा-प पानीविषिभ्यः पः। उण् ३।२३) १ अधर्म, दुरदृष्ट। पर्याय—पङ्क, पाप्मन्, किल्विष, कल्मष, वृजिन, कलुष, एनस्, अघ,

अघ'स., दुरित, दुष्कृत, पातक, तूस्त, कण्व, शल्य, पापक।

निषिद्ध कर्मके अनुष्ठान और विहित कर्मके अननुष्ठानसे पाप होता है। शास्त्रमें जो सब कार्य निषिद्ध बतलाये हैं यदि वे सब कार्य किये जायं और जो कार्य विहित हैं वे यदि न किये जायं, तो पाप होता है। जिस कार्य द्वारा दुःखोत्पत्ति होती है, वही पापपदवाच्य है। पापानुष्ठान करनेसे उसका फलभोग अवश्यम्भावी है।

महानिर्वाणतन्त्रमें पापोत्पत्तिके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—निषिद्ध कर्मके अनुष्ठान और विहित कर्मके त्यागसे पापोत्पत्ति होती है। जीवगण इस पापके फलसे क्लेश, शोक और पीड़ादि पाते हैं। यह पाप दो प्रकारका है, निजका अनिष्टजनन और परका अनिष्टोत्पादन। जिससे निजका अनिष्ट-साधन अर्थात् दुरदृष्ट और रोग आदि हो उसे स्वानिष्टजनन पाप तथा जिससे परका अनिष्ट हो उसे परानिष्टोपपादन पाप कहते हैं। परके अनिष्ट द्वारा जो पाप होता है, राजशासन द्वारा उस पापसे मुक्ति होती है। स्वानिष्ट-मात्रजनन पाप प्रायश्चित्त वा समाधि द्वारा निराकृत होता है। जो पाप दण्ड और प्रायश्चित्त द्वारा दूर न हो उसीसे नरक होता है।

महाभारत-शान्तिपर्वके राजधर्मानुशासनमें इस प्रकार लिखा है।

एक दिन युधिष्ठिरने व्यासदेवसे पूछा था 'भगवन्! इस संसारमें कौन कौन कार्य करनेसे मानवगण पापी होते हैं और कौन कौन कार्य नहीं करनेसे वे मुक्त हो सकते हैं?' उत्तरमें वेदव्यासने कहा, जो मनुष्य विधिविहित कार्यका अननुष्ठान, निषिद्ध कार्यका अनुष्ठान और कपटका व्यवहार करते हैं, वे ही पापी हो कर प्रायश्चित्तानुष्ठानके अधिकारी हैं। जो मनुष्य कपटका व्यवहार करते हैं, जो ब्रह्मचारी हो कर सूर्योदयके बाद बिछावन परसे उठते और सूर्यास्तके समय सो जाते हैं, जो कुनख और श्यावदन्त हैं, जो बड़े भाईके रहते अपना विवाह कर लेते हैं, जो ब्रह्महत्या और परनिन्दा करते हैं तथा जो श्वशुरकी ज्येष्ठा कन्याके अनूढ़ा रहते हो कनिष्ठाका पाणिग्रहण करते हैं, वे ही पापभागी होते हैं—

व्रतध्वंस, द्विजातिहत्या, अपात्रमें दान, सत्पात्रमें कृपणता, जीवका प्राणसंहार, मांसविक्रय, वेदविक्रय, अग्निपरित्याग, गुरु और स्त्रीका प्राणसंहार, बिना कारणके ही पशुच्छेदन, गृहदाह, मिथ्यावाक्यप्रयोग, गुरुके प्रति अत्याचार और मर्यादाका लङ्घन, इन सबको पापोंमें गिनती की गई है। जो इन सब पापकार्यका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें प्रायश्चित्त करना होता है।

स्वधर्मपरित्याग, परधर्म-आश्रय, अयाज्ययाजन, अभक्ष्यभक्षण, शरणागत व्यक्तिका परित्याग, भृत्योंके भरणपोषणमें अनास्था, लवणादि विक्रय, तिर्यग्योनिवध, क्षमता रहते गोग्रासादि नित्य देय वस्तुका अप्रदान, दक्षिणादानमें पराङ्मुखता, ब्राह्मणकी अवमानना, अनुपयुक्त समयमें पुत्रोंको विभाज्य धनदान, गुरुपत्नीहरण और यथासमयमें धर्मपत्नीका सहवास परित्याग, ये सब भी पाप समझे जाते हैं। इनके अनुष्ठानसे प्रायश्चित्त करना होता है।

अब यहां पर कुकर्म करने पर भी जो पाप नहीं समझा जाता वही लिखा जाता है। वेदपारग ब्राह्मण यदि जिघांसापरवश हो कर शस्त्र ग्रहणपूर्वक संग्राममें जूझ पड़े, तो उसका विनाश करने तथा स्वधर्मभ्रष्ट आततायी ब्राह्मणको मारनेमें कोई पाप नहीं होता। अज्ञानवशतः वा उत्कट पीड़ाके समय सुविवेचक चिकित्सकके नियोगानुसार मदिरापान और गुरुके आज्ञानुसार गुरुपत्नीगमन करनेसे पापभागी होना नहीं पड़ता। महर्षि उद्दालकने शिष्य द्वारा ही अपने पुत्र श्वेतकेतुको उत्पादित किया था। जो व्यक्ति गुरुके निमित्त आपत्कालमें ब्राह्मण भिन्न अन्य जातिका धन हरण करते हैं, उन्हें चौर्यजनित पाप नहीं लगता। भोगाभिलाषसे चोरी करनेमें उसका फलभोग अवश्यम्भावी है। अपनी तथा दूसरेकी प्राणरक्षा, गुरुका कार्यसाधन, विवाहसम्पादन और स्त्रीके सन्तोषसाधनके निमित्त मिथ्यावाक्य प्रयोग, ज्येष्ठ भ्राताके पतित होने पर वा प्रव्रज्य अवलम्बन करने पर उसकी अनूढ़ावस्थामें कनिष्ठका पाणिग्रहण और अभियाचित हो कर परस्त्रीसम्भोग, ये सब कार्य करनेसे पाप नहीं होता है। अज्ञानताप्रयुक्त अयोग्य ब्राह्मणको धनदान और सत्पात्रमें अप्रदान,

व्यभिचारिणी स्त्रीका परित्याग, सोमरसका तत्त्व जान कर उसका विक्रय, असमर्थ भृत्यका परित्याग तथा गोरक्षार्थ वनदाह करनेमें कोई पाप नहीं लगता।

मनुष्य यदि एक बार पाप करके फिरसे पापमें प्रवृत्त न होवें, तो वे तपस्या और दान द्वारा उस पूर्वकृत पापसे छुटकारा पा सकते हैं। पाप किये जाने पर दृष्टान्त, शास्त्र, युक्ति और प्रजापतिनिर्दिष्ट विधिके अनुसार प्रायश्चित्त करना होता है।

जो ब्राह्मण अहिंस्र, मितभाषी और परिमितभोजी हो कर पवित्रस्थानमें गायत्रीका जप करें, उनके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। द्विजगण यदि अनावृत स्थानमें उपवेशन, रात्रिको वहां निद्रासेवन, दिन और रातमें तीन तीन बार वस्त्रपरिधानपूर्वक स्नान तथा स्त्री, शूद्र और पतित व्यक्तिके साथ आलापका परित्याग करें, तो वे अज्ञानकृत पापसे मुक्तिलाभ कर सकते हैं।

जो अतिरिक्त पाप वा पुण्यका अनुष्ठान करे, उसे उसका अतिरिक्त फलभोग करना ही होता है। पापकार्यसे विरत हो कर शुभकार्यका अनुष्ठान और धनदान करनेसे मनुष्य निष्पाप हो सकते हैं। महापातक भिन्न सभी पापोंका प्रायश्चित्त है। अन्यान्य भक्ष्याभक्ष्य और वाच्यावाच्य विषयमें ज्ञानकृत और अज्ञानकृत यही दो प्रकारके पाप हैं। ज्ञानकृत पाप गुरु और अज्ञानकृत पाप लघु माना गया है। आस्तिक और श्रद्धान्वित मनुष्य विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करनेसे ही पापसे मुक्त हो सकते हैं। प्रायश्चित्तका विषय प्रायश्चित्त शब्दमें देखो।

दानधर्म पर्वाध्यायमें लिखा है,—पाप दश प्रकारका है—प्राणीहत्या, चौर्य और परदार ये तीन प्रकारके पाप कायिक, असत् प्रलाप, पारुष्य, पैशुन्य और मिथ्या वाक्यकथन ये चार प्रकारके पाप वाचिक तथा परधनमें चिन्ता, सर्वजीवमें दयाशून्यता और कर्मका फल हो, इस प्रकार चिन्ता ये तीन प्रकारके पाप मानसिक हैं। (महाभारत)

वराहपुराणके मथुरामाहात्म्यमें लिखा है कि अन्यस्थलमें पाप करनेसे तीर्थस्थानमें वह प्रशमित होता है और तीर्थस्थलमें जो पाप किया जाता है, वह वज्रलेप हो जाता है। किन्तु मथुरापुरीमें पाप करनेसे वह मथुरामें ही निराकृत होता है। महापुण्यप्रदा इस पुरीमें किसीका भी पाप रहने नहीं पाता।

"अन्यत्र हि कृतं पापं तीर्थमासाद्य गच्छति।
तीर्थे तु यत्कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति॥
मथुरायां कृतं पापं तत्रैव च विनश्यति।
एषा पुरी महापुण्या यस्यां पापं न विद्यते॥"

(मथुरामा०)

मनुसंहितामें लिखा है, कि पाप अतिपातक, महापातक और अनुपातकभेदसे विभिन्न प्रकारका है। इनमेंसे अतिपातक ही विशेष गुरुतर है।

पापका साधारण लक्षण इस प्रकार निर्देश किया जा सकता है। शास्त्रविहित कर्मके नहीं करने और निन्दित कर्मका सेवन करने तथा इन्द्रियमें अत्यन्त आसक्त होनेका नाम ही पाप है। पापका फल अनभ्युदय है। इसीसे पापका प्रायश्चित्त करना होता है पापकी निष्कृति नहीं होनेसे निन्दनीय लक्षणयुक्त हो कर जन्मग्रहण करना पड़ता है। ब्रह्महत्या, सुरापान, ब्राह्मणका सुवर्णहरण, विमातृगमन और इन सब पापकारी व्यक्तियोंके साथ क्रमिक एक वर्ष तक संसर्गसे जो पाप होता है, उसे महापातक कहते हैं। अपना जात्युत्कर्ष जतानेके लिये मिथ्याभाषण, राजाके निकट दूसरेका मृत्युजनक दोषोद्घाटन और गुरुसम्बन्धमें अलीककथन ये सब भी ब्रह्महत्याके समान पाप हैं। अनभ्यास हेतु ब्राह्मणका वेदविस्मरण, वेदनिन्दा, साक्ष्यस्थलमें मिथ्याकथन, मित्रवध, लहसुन और प्याज आदि गर्हित तथा विष्ठा-मूत्रादि अखाद्य द्रव्यका भोजन ये छः सुरापानके समान पाप हैं। गच्छित वस्तुका अपहरण, अश्व, रूप्य, भूमि, हीरक और मणिका अपहरण ये सब सुवर्ण चुरानेके समान पाप हैं; सहोदर भगिनी, कुमारी, चण्डाली, सखा वा पुत्रवधूमें रेतःसेक गुरुपत्नीगमनके समान पाप माना गया है। गोहत्या, अयाज्ययाजन, परस्त्रीगमन, आत्मविक्रय, पिता माता और गुरुत्याग, स्वाध्याय और स्मार्त्ताग्नित्याग, सुतत्याग अर्थात् पुत्रका जातकर्मादि संस्कार नहीं करना, ज्येष्ठका विवाह हुए बिना कनिष्ठका विवाह, अरजस्का कन्यादूषण, वृद्धि द्वारा जीविका, ब्रह्मचारीका स्त्री-

सम्भोग, पवित्र तड़ाग उद्यान अथवा स्त्री वा पुत्र-विक्रय, षोड़श वर्ष बीत जाने पर भी उपनयन नहीं करना, पितृव्य आदि बान्धवत्याग, वेतन ग्रहण कर वेदाध्ययन, वेतनग्राही अध्यापकके निकट वेदाध्ययन, अविक्रेय वस्तुका विक्रय, राजाकी आज्ञासे सुवर्णादि खानमें तथा वृहत् सेतु आदिमें कार्य, औषध नष्ट करना, भार्यादिको जारयोग करके जीविका, श्येनादि आभिचारिक योग वा मन्त्रादि द्वारा निरपराधीका अनिष्टकरण, जलावनके लिए हरेभरे पेड़का काटना, देवपित्रादिके उद्देशसे नहीं केवल अपने लिये पाक-यज्ञादिका अनुष्ठान, अग्न्याधानका अकरण, सुवर्ण व्यतीत अपर द्रव्यकी चोरी, देव, पितृ और ऋषि आदि ऋणका अपरिशोध, श्रुतिस्मृतिविरुद्ध असत्शास्त्रकी आलोचना, नृत्य, गीत और वादित्रोपसेवन, धान्य, ताम्र और लौहादि धातु तथा पशुचौर्य, मद्यपानकारिणी स्त्रीगमन, स्त्रीहत्या, वैश्य और शूद्रहत्या तथा नास्तिकता ये सब पाप उपपातक कहलाते हैं। दण्डादि द्वारा ब्राह्मणपीड़न, अतिशय दुर्गन्ध लहसुन; पुरीषादि और मद्यका आघ्राण, कौटिल्य वा पुरुष-मैथुन ये सब पाप जातिभ्रंशकर हैं। गर्दभ, अश्व, उष्ट्र, मृग, हस्ती, छाग मेष, मत्स्य, सर्प और महिषवध ये सब पाप सङ्करीकरण कहे गये हैं अर्थात् इनसे सङ्करजातित्वकी प्राप्ति होती है।

ब्राह्मण यदि निन्दित लोगसे धनप्रतिग्रह, वाणिज्य, शूद्रसेवा और मिथ्याकथन करे, तो इन सब पापोंसे उन्हें पात्रत्वसे भ्रष्ट होना पड़ता है। कृमि, कीट और पक्षिहनन, किसी प्रकार मद्यसे संसृष्ट हो गया हो, इस प्रकार भक्ष्यद्रव्यका भोजन, फल, काष्ठ और पुष्प चुराना तथा सामान्य उपलक्षमें मनोवैकल्य ये सब मलावह पाप हैं अर्थात् इनसे चित्त-मल उपस्थित होता है। ये सब पाप प्रायश्चित्त द्वारा विनष्ट होते हैं। कोई कोई पण्डित अनिच्छाकृत पापका प्रायश्चित्त है, ऐसा कहते हैं। फिर दूसरे पण्डितोंका कहना है, कि इच्छाकृत पाप प्रायश्चित्त द्वारा और अनिच्छाकृत पाप वेदाभ्याससे नष्ट होता है। किन्तु रागद्वेषादिमोहवशतः इच्छापूर्वक पापके अनेक पृथक् पृथक् प्रायश्चित्त हैं। जो प्रमादादिके कारण पापका प्रायश्चित्त नहीं करते, वे परजन्ममें कुनखी और दुश्चर्मादि रोगाक्रान्त हो कर जन्मग्रहण करते हैं। इन सब चिह्नोंसे वे पातकी समझे जाते हैं। प्रायश्चित शब्द देखो।

पापी यदि लोकसमाजमें पापका ख्यापन, पापके लिये अनुताप, तपस्या और वेदाध्ययन करे, तो उसका पापमोचन हो सकता है। पापी पाप करके यदि जनताके सामने प्रकट कर दे, तो वह उसी प्रकार पापसे मुक्त हो जाता है, जिस प्रकार सर्पकी देहसे केंचुल गिर पड़ती है। जिस परिमाणमें उस पापकारीका मन दुष्कृत कर्मोंकी निन्दा करता है, उसी परिमाणमें उसकी जीवात्मा भी दुष्कृतिसे मुक्त होती है। पाप करके यदि सन्ताप उपस्थित हो, तो वह पापसे मुक्त हो जाता है। परलोकमें कर्मके फलाफलका भोग करना पड़ता है। मन ही मन विशेष आलोचना करके कायमनोवाक्यसे नित्य शुभ कर्मका अनुष्ठान करे। ऐसा करनेसे पापका ख्याल हृदयमें घुसने नहीं पाता। अज्ञानकृत हो चाहे ज्ञानकृत, पापकर्म करके यदि पापमुक्त होना चाहे, तो फिर दूसरी बार पाप न करे। पापका प्रायश्चित्त करके यदि चित्तप्रसाद उत्पन्न न हो, तो फिरसे प्रायश्चित करना होता है। चित्तप्रसाद होनेसे ही जानना चाहिये, कि पापक्षय हुआ है। तपस्विगण तपोबलसे अपने पापका नाश करते हैं। (मनुसं० ११ अ०)

विष्णुसंहितामें लिखा है:—

गृहस्थाश्रमीके काम, क्रोध और लोभ नामक तीन प्रधान शत्रु हैं। मानवगण इन सब शत्रुओंसे आक्रान्त हो कर पापाचरण करते हैं। आचरित सभी पाप अतिपातक, महापातक, अनुपातक, उपपातक जातिभ्रंशकर, सङ्करीकरण, अपात्रीकरण, मलावह और प्रकीर्ण कहलाते है। इन सब पापोंसे आत्मा विनष्ट होती है। अतएव पापसे अलग रहना ही हरएकका मुख्य कर्त्तव्य है।

मातृगमन, कन्यागमन और पुत्रवधूगमन ये तीनों प्रकारके पाप अतिपातक हैं। जो अतिपातक करते हैं, वे अग्निप्रवेश करें, इसके सिवा उनकी और कोई निष्कृति नहीं।

ब्रह्महत्या, सुरापान, ब्राह्मणस्वामिक सुवर्ण (८० रत्तीसे कम नहीं)-का चुराना, गुरुपत्नीगमन और ऐसे पापीके साथ संसर्ग ये पांच प्रकारके पाप महापातक कहलाते हैं। एक गाड़ी पर चढ़ना, एक साथ खाना, एक साथ रहना और एक साथ सोना इत्यादि लघुसंसर्ग है। इससे पतित होना नहीं पड़ता किन्तु पतितोंके साथ एक वर्ष तक निरवच्छिन्न संसर्ग करनेसे पतित होना पड़ता है।

यज्ञदीक्षित क्षत्रियहत्या, वैश्यहत्या, रजःस्वलाहत्या गर्भवतीहत्या, शरणागतहत्या ये सब कर्म ब्रह्महत्याके समान; कूटसाक्ष्य और मित्रहत्या यह सुरापानके समान; ब्राह्मणका भूमिहरण और गच्छित वस्तुका अपहरण यह सुवर्णचौर्यके समान; पितृव्य, मातामह, मातुल, श्वशुर और राजा एतदन्यतमका पत्नीगमन, पितृष्वसृगमन मातृष्वसृगमन, भागिनी और श्रोत्रिय, ऋत्विक्, उपाध्याय इन सबके अन्यतमका पत्नीगमन, भगिनीसखी, सगोत्रा, उत्तमवर्णा, कुमारी, अन्त्यजा, रजःस्वला, शरणागता, प्रव्रज्यावलम्बिनी और न्यासीकृता स्त्रीगमन गुरुपत्नीगमनके समान है।

उत्कर्षजनक मिथ्यावाक्य अर्थात् शूद्रका ब्राह्मण परिचय देना, राजगामी खलता, राजाके निकट दुष्कर्मका अभियोग, गुरुकी अलीक निन्दा, वेदनिन्दा, अधीत वेदविस्मरण, आहित-अग्नित्याग, अपतित माता, पिता, पुत्र और पत्नीत्याग, अभोज्यान्नभोजन अर्थात् चाण्डालादिका अन्नभोजन, अभक्ष्यभक्षण (लहसुनादि खाना), परस्वापहरण, परदारगमन, अनुचितकर्म, यथा—ब्राह्मणके पक्षमें क्षत्रियादिके कर्मका अवलम्बन कर जीविका निर्वाह करना, असत्प्रतिग्रह, क्षत्रियहत्या, वैश्यहत्या, शूद्रहत्या, गोहत्या, अविक्रेय वस्तु (लवणादि)का विक्रय अनुजकर्तृक ज्येष्ठको परिविन्त्तिता, परिवेदन, उसे कन्यादान, प्रतिनियत वेतनग्रहणपूर्वक अध्यापना, प्रतिनियत वेतनदानपूर्वक अध्ययन, द्रुम, गुल्म, वल्ली, लता और औषधका विनाश, स्त्रीको वेश्या बना कर उसीसे जीविका निर्वाह, अभिचार, देवादिके उद्देशसे नहीं केवल अपने लिये पाकादिका अनुष्ठान, अधिकार रहते अग्न्याधान नहीं करना, देवता, पितृ और ऋषिऋण परिशोध नहीं करना, चार्वाकादि असत्शास्त्रचर्चा, नास्तिकता, नटवृत्तिका अवलम्बन करके जीविका निर्वाह, मद्यपायिनी भार्याके साथ संसर्ग ये सब पाप उपपातक कहलाते हैं। ये सब पातकी चान्द्रायण वा पराकव्रत द्वारा विशुद्ध होते हैं।

दण्डादि द्वारा ब्राह्मणको व्यथा देना, लहसुन पुरोषादि आघ्रेय वस्तु और मद्यका आघ्राण करना, कुटिलता, पशुमैथुन और पुंमैथुन ये सब पाप जातिभ्रंशकर; ग्राम्य और आरण्यपशुहिंसा पाप सङ्करीकरण; निन्दितसे धनग्रहण, वाणिज्य और कुसीद द्वारा जीविका-निर्वाह, असत्यभाषण और शूद्रसेवा ये सब पाप अपात्रीकरण; पक्षिहत्या, जलचरहत्या, मत्स्यादि जलज प्राणिहत्या, कृमिहत्या और कीटहत्या, मद्यसंश्लिष्ट द्रव्यभोजन ये सब पाप मलावह कहलाते हैं। जिन सब पापोंका विषय नहीं लिखा गया, वे सब पाप प्रकीर्णक-पदवाच्य हैं।

(विष्णुसं० ३२से ४२ अ०)

इस प्रकार सभी धर्मशास्त्रमें पाप और पुण्यका विषय विशेषरूपसे लिखा है। विस्तारके भयसे अन्य धर्मशास्त्रोक्त पापोंका विषय नहीं लिखा गया। बहुत समयसे अनेकों मनुष्योंने इसका विषय विशेषरूपसे पर्यालोचना की है। पापके लक्षणमें यह कहा जा सकता है, कि जिससे अमङ्गल अशुभ वा दुःख हो, वही पाप है। इसी पापको शास्त्रकारोंने अधर्म बतलाया है।

मीमांसादर्शनमें भी लिखा है—जो अभ्युदय साधनके लिये हो, वही धर्म वा पुण्य और जो अनभ्युदय अर्थात् अमङ्गलके लिये हो वही अधर्म वा पाप है। यह पाप नित्यकर्मका अकरण, निषिद्धका आचरण और वेदोक्त प्रत्यवाय साधन द्वारा हुआ करता है। इसका फल पतन है। जो जैसी अवस्थामें रहता है, पाप द्वारा उसका उसी अवस्थासे पतन होता है। (मीमांसादर्शन)

अपना दोष छिपाने और दूसरेका दोष प्रकाश करनेसे पाप होता है।

"स्वदोषगोपनं पापं परदोष प्रकाशनम्।
ईर्षाविद्धं वाक्यदुष्टं निष्ठुरत्वं षडम्बरम्॥"

(वामनपु० ५८ अ०)

साङ्कर्य नामक पापोंका विषय कूर्मपुराणके उपविभागमें इस प्रकार लिखा है,—

पापोके साथ एक खाट पर सोने, एक पंक्तिमें बैठने, एक बरतनमें खाने, पापोके याजन और अध्यापन वा एकत्र अध्ययन और उसके समीप वास करनेसे संक्रामित होता है। इसीसे ये सब पाप साङ्कर्य पाप कहलाते हैं। (कूर्मपु० उपवि० १५ अ०)

गरुड़पुराणके नोतिसारमें इस प्रकार लिखा है—

पापोके साथ आलाप, उसका गात्रसंस्पर्श, एकत्र वास, सहभोजन, एकासन पर उपवेशन, एकत्र शयन और गमन द्वारा एक घटसे दूसरे घटमें जिस प्रकार जल जाता है, उसी प्रकार पाप संक्रामित होता है। इस प्रकार प्रजाके पाप करने पर राजा और राजाके पाप करने पर प्रजा उसका उपभोग करती है। स्त्रीका पाप स्वामी और स्वामीका पाप स्त्री, गुरुका पाप शिष्य और शिष्य का पाप गुरु तथा यजमानका पाप पुरोहित और पुरोहितका पाप यजमान पाता है।

प्रत्येक व्यक्तिको पापसे दूर रहना उचित है। इसीसे सर्वदा सज्जनका साथ और पापोका परित्याग करनेको बतलाया गया है। पापोका संसर्ग करनेसे उसीके समान बुद्धि हो जाती है।

इसीसे पापोका त्याग करनेकी शास्त्रकारोंने व्यवस्था दी है। पापोके प्रायश्चित्त द्वारा व्यवहार्यता और पापक्षय दोनों ही होते हैं अर्थात् पापोके प्रायश्चित्त करने पर उसका पाप जाता रहता है और उसे ले कर समाजमें व्यवहार किया जा सकता है। किन्तु बहुतसे पाप ऐसे हैं जिनका नाश तो होता है, पर व्यवहार्यता नहीं होती।

पापियोंका यदि दर्शन किया जाय, तो पापभागो होना पड़ता है। इसका विषय ब्रह्मवैवर्त्त पुराण श्रीकृष्णजन्मखण्डके ७८वें अध्यायमें इस प्रकार लिखा है।

"पापं यद्दर्शने तात ! कथयामि निशामय।
दुःस्वप्नं पापबीजञ्च केवलं विघ्नकारणं ॥"

(ब्रह्मवै० ७८ अ०)

गो और ब्रह्मघातक, कृतघ्न, कुटिल, देवघ्न, पितृमातृघ्न, विश्वासघाती, मिथ्यासाक्ष्य प्रदाता, अतिथिनिराशकारी, ग्रामयाजी, देवस्व और ब्राह्मणस्वापहारी, अश्वत्थघाती, दुष्ट, अदोक्षित, अनाचारी, सन्ध्याहीन द्विज, देवल, वृषवाह, शूद्रका सूपकार, शवदाही और आज्ञाभोजी, देवता और ब्राह्मणनिन्दक, शूद्रको विधवा, चण्डाल, व्यभिचारिणी स्त्री, सर्वदा क्रोधयुक्त, दुष्ट, ऋणग्रस्त, जारज, चोर, मिथ्यावादो, शरणागतघाती, मांसापहारो, वृषलीपतिब्राह्मण, ब्राह्मणोगामोशूद्र, वार्द्धषिक द्विज (सूदखोर ब्राह्मण) और विमाता, माता, श्वश्रू, भगिनी, गुरुपत्नी, पुत्रवधू, भ्रातृवधू, मातृष्वसा, पितृष्वसा, भागिनेयवधू, पितृव्यस्त्री, रजःस्वला स्त्री ये सब अगम्या हैं। इनके साथ गमन करते हुए यदि कोई इन्हें देखे अथवा स्पर्श करे, तो ब्रह्महत्याका पाप होता है। यदि दैवात् इन्हें देख भी ले, तो सूर्यदर्शन करके हरिस्मरण करना होता है। यदि इच्छा करके देखे, तो उन्हींके समान उसे भी पाप भोगना पड़ता है। इस कारण साधु लोग पापभीत हो कर उन्हें अवलोकन नहीं करते।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि पापोके संसर्गसे पाप संक्रामित होता है। पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें कौन कौन कार्य करनेसे किस परिमाणमें पाप संक्रामित होता है, उसका विषय इस प्रकार लिखा है। पुण्य और पाप करनेसे कर्त्ता हो उसका फलभोगो होता है। किन्तु इनके साथ संसर्ग अर्थात् एकत्र मैथुन, एक यानमें गमन और एक पात्रमें भोजन करनेसे पुण्य तथा पापका अर्द्धांश भागो होना पड़ता है। इसी प्रकार स्पर्शन और भाषणसे दशांश, दर्शन, श्रवण और चिन्तासे शतांश लाभ करते हैं। जो परनिन्दा, पैशुन्य और धिक्कार करते है, वे अपना पुण्य उन्हें दे कर उनका पाप स्वयं लेते हैं। पत्नी, भृत्य, शिष्य वा सजातीय मनुष्य पुण्य वा पापसे जिस प्रकार सहायता करते हैं, वे तदनुसार पुण्य और पापके फलभोगी होते हैं।

यदि कोई व्यक्ति दूसरेका धन चुरा कर पुण्यकर्मका अनुष्ठान करे, तो धनवाला हो पुण्यभोगो और कर्मकर्त्ता पापभोगी होता है। यदि कोई ऋणशोध न कर परधामको चल बसे, तो ऋणदाता उस रुपयेके परिमाणमें पुण्यलाभ करते हैं और ऋणग्रहीता नरक जाते हैं। राजा प्रजाके पुण्य और पापके षष्ठांशभागी होते हैं। गुरु शिष्यके, स्वामी स्त्रीके, पिता पुत्रके पाप और पुण्यके अर्द्धांशभागी होते हैं। (पद्मपु० उत्तरख० १५७ अ०)

२ अनिष्ट, अहित, बुराई। ३ वध, हत्या। ४ अपराध,

कसूर, जुर्म । ५ पापबुद्धि, बुरी नीयत, बदनीयती, खोट। ६ कोई क्लेशदायक कार्य या विषय, परेशान करनेवाला काम या बात। ७ पापग्रह, क्रूरग्रह, अशुभ-ग्रह। ८ कठिनाई, मुश्किल, संकट। (त्रि०) ९ पाप-युक्त, पापिष्ठ, पापी। १० दुष्ट, दुराचारी, बदमाश। ११ नीच, कमीना। १२ अमङ्गल, अशुभ।

पापक (सं० क्ली०) पापमेव स्वार्थे कन्। १ पाप। (त्रि०) २ पापयुक्त।

पापकर्मन् (सं० पु०) पापं कर्म कर्मधा०। १ पापकार्य, निषिद्ध कर्म, वह काम जिसके करनेमें पाप हो। (त्रि०) पापं कर्म यस्य। २ पापकारी, पाप करनेवाला।

पापकर्मा (हिं० वि०) पापी, पातकी।

पापकर्मी (हिं० वि०) पापी, पाप करनेवाला।

पापकल्प (सं० त्रि०) दुष्कर्मी, पापकर्मसे जीविका चलानेवाला।

पापकारिन् (सं० त्रि०) पापं करोति कृ-णिनि। पाप-कार्यकारी, पापी।

पापकृत् (सं० त्रि०) पापं कृतवानिति पाप-कृ-क्विप्, तुक् च। (सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः। पा ३।२।८९) पाप-कर्त्ता, जो पापका अनुष्ठान करता है, बदमाश।

पापकारी व्यक्ति पापख्यापन, अनुताप, तपस्या, अध्य-यन, दान और दम इन सब द्वारा पापसे मुक्तिलाभ करते हैं।

पापकृत्तम (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन पापकृत् तमप्। अतिशय पापी।

पापकृत्या (सं० स्त्री०) पापकरण।

पापक्षय (सं० पु०) पापस्य क्षयः ६-तत्। १ पापका नाश, पापोंका नष्ट होना। (क्ली०) पापस्य क्षयो यत्र। २ वह स्थान जहां जानेसे पापोंका नाश हो, तीर्थ।

पापगण (सं० पु०) छन्दःशास्त्रके अनुसार ठगणका आठवाँ भेद।

पापग्रह (सं० पु०) पापोऽशुभकारी ग्रहः। १ फलित-ज्योतिषके अनुसार कृष्णाष्टमीसे शुक्लाष्टमी तकका चन्द्रमा, वह चन्द्रमा जो देखनेमें आधेसे कम हो। २ फलितज्योतिषके अनुसार सूर्य, मंगल, शनि और राहु-केतु ये ग्रह अथवा इनमेंसे किसी ग्रहसे युक्त बुध। ये ग्रह अशुभ फलकारक माने जाते हैं।

पापघ्न (सं० पु०) पापं हन्तीति पाप-हन-टक्। (अम-नुष्यकर्त्तृके च। पा ३।२।५३) १ तिल। तिलदान करनेसे पापनाश होता है इसीसे पापघ्न शब्दसे तिलका बोध होता है। (त्रि०) २ पापनाशक, जिससे पाप नष्ट हो।

पापघ्नी (सं० स्त्री०) तुलसी।

पापचारी (सं० त्रि०) पापमाचरति आ-चर-णिनि। पापा-चरणकारी, पाप करनेवाला।

पापचेतस् (सं० त्रि०) पापं चेतः यस्य। पापबुद्धि, पापिष्ठ।

पापचेलिका (सं० स्त्री०) पापमशुभं चेलति गच्छतीति चेल-ण्वुल्, टाप्, कापि अत इत्वं। पाप।

पापचेली (सं० स्त्री०) पापचेल गौरादित्वात् ङीष्। पाठा।

पापजीव (सं० पु०) पापाः जीवाः। पुराणानुसार स्त्री, शूद्र, हूण और शबर आदि जीव।

पापड़ (हिं० पु०) १ उर्द अथवा मूंगकी धोईके आटेसे बनाई हुई मसालेदार पतली चपाती। इसके बनानेकी विधि यह है, कि पहले आटेको हींग, लटजीरे आदिके खार अथवा सोडा मिले हुए पानीमें गूंधते हैं। फिर उसमें नमक, जीरा, मिर्च आदि मसाला दे कर और तेल चुपड़ चुपड़ कर बट्टे आदिसे खूब कूटते हैं। अच्छी तरह कुट जाने पर एक तोलेके समान आटेकी लोई करके बेलनसे उसे खूब बारीक बेलते हैं। फिर छायामें सुखा कर रख लेते हैं। भोजन करनेके पहले इसे घी या तेलमें तलते वा यों ही आग पर सेंक लेते हैं। पापड़ दो प्रकारका होता है—सादा और मसालेदार। सादे पापड़में केवल नमक जीरा आदि मसाले ही पड़ते हैं और वह भी थोड़ी मात्रामें। परन्तु मसालेदारमें बहुतसे मसाले डाले जाते हैं और उनकी मात्रा भी अधिक होती है। दिल्ली, आगरा, मिर्जापुर आदि नगरोंका पापड़ बहुत कालसे प्रसिद्ध है। विशेषतः नागरिक हिन्दुओंके भोजमें पापड़ एक आवश्यक व्यञ्जन है। (त्रि०) २ बारीक, पतला, कागज-सा। ३ शुष्क, सूखा।

पापड़ा (हिं० पु०) १ मध्यप्रदेश, बङ्गाल, मन्द्राज आदि-में उत्पन्न होनेवाला छोटे आकारका एक पेड़। इसके पत्ते हर साल झड़ कर नये निकलते हैं। इसकी लकड़ी

भीतरसे चिकनी, साफ और पीलापन लिये भूरे रंगकी तथा कड़ी और मजबूत होती है। उससे कंघी और खराद्की चीजें बनाई जाती हैं। खुदाईका काम भी उस पर अच्छा होता है। इसे वनएडालु भी कहते हैं।

पापड़ाखार (हिं० पु०) केलेके पेड़का खार।

पापड़ी (हिं० स्त्री०) मध्यप्रदेश, पञ्जाब और मन्द्राजमें होनेवाला एक पेड़। इसका धड़ लम्बा होता है। इसकी पत्तियां हर वर्ष झड़ जाती हैं। इसकी लकड़ी पीलापन लिये सफेद होती है और घर, संगहे तथा गाड़ियोंके बनानेमें काम आती है।

पापति (सं० त्रि०) पत-यङ्‌लुक्, पापत-कि। पुनः पुनः पतनशील।

पापत्व (सं० क्ली०) पापस्य भावः पाप-त्व। पापका धर्म, पापका भाव।

पापद (सं० त्रि०) पापं ददाति दा-क। पापदायी, पापदाता।

पापदर्शी (हिं० वि०) अनिष्ट करनेकी इच्छासे देखनेवाला।

पापदृष्टि (सं० त्रि०) १ जिसकी दृष्टि पापमय हो। २ अशुभ या अमङ्गल दृष्टिवाला, जिसकी दृष्टि पड़नेसे हानि पहुंचे।

पापधी (सं० त्रि०) पापमति, मन्दबुद्धि।

पापनक्षत्र (सं० क्ली०) पापानि नक्षत्राणि कर्मधा०। निन्दित नक्षत्र। ज्येष्ठादि नक्षत्रको पापनक्षत्र कहते हैं।

पापनामन् (सं० त्रि०) १ जिसका नाम बुरा हो, अमङ्गल या अभद्र नामवाला। २ अपकीर्त्तियुक्त, बदनाम।

पापनापित (सं० पु०) पापो नापितः कर्मधा०। धूर्त्त-नापित।

पापनाशन (सं० त्रि०) पापं नाशयति नाशि-ल्यु। १ पापनाशक। (पु०) २ विष्णु। ३ शिव। ४ पापनाशका भाव अथवा क्रिया, पापका नाश होना या करना। ५ प्रायश्चित्त, वह कर्म जिससे पापका नाश हो।

पापनाशिनी (सं० स्त्री०) पापस्य नाशिनी। १ शमीवृक्ष। २ कृष्णतुलसीवृक्ष।

पापनिश्चय (सं० त्रि०) पाप करनेको कृतसंकल्प, दुष्कर्म करनेका निश्चय करनेवाला।

पापपति (सं० पु०) पापोत्पादकः पतिः। उपपति, जार।

पापपराजित (सं० त्रि०) निष्कृष्टरूपसे पराजित।

पापपुरुष (सं० पु०) पापः पापमयः पुरुषः। १ पापाकृति पुरुष, पापमयाङ्ग नर, दुष्ट। २ तन्त्रमें माना हुआ एक पुरुष जिसके सम्पूर्ण शरीरका उपादान केवल पाप होता है। भूतशुद्धि करनेके समय वामकुक्षिस्थित पापपुरुषके साथ देहको दग्ध करके चन्द्रसे गलित सुधा द्वारा देहको विरचित करना होता है। भूतशुद्धि प्रकरणमें लिखा है—कि पापपुरुष वाम कुक्षिमें रहता है। इसका वर्ण कज्जलके जैसा घोरकृष्णवर्ण है। इसके मस्तक पर ब्रह्महत्या, दोनों हाथमें सुवर्णस्तेय, हृदय सुरापान युक्त, दोनों कटि गुरुतल्प तथा दोनों पैर उसके संसर्गयुक्त हैं, पातक अङ्ग और प्रत्यङ्ग हैं, रोम उपपातक हैं, चक्षु और श्मश्रु रक्तवर्ण हैं। यह पापपुरुष खड्ग और चर्मधारी है तथा क्रुद्ध रहता है। इसी प्रकार भयङ्कराकृति पापपुरुषका ध्यान करना होता है।

पद्मपुराणके क्रियायोगसारमें लिखा है—जब भगवान्‌ने इस जगत्‌की सृष्टि की, उस समय उन्होंने जगत्‌के दमनके लिए पापपुरुषको भी रचा। इस पापपुरुषकी मूर्त्ति अति भयावह है। ब्रह्महत्या इसका मस्तक, मदिरापान लोचन, सुवर्णस्तेय वदन, गुरुतल्पकी गति कर्ण, स्त्रीहत्या नासिका, गोहत्या बाहु, न्यासापहरण ग्रीवा, भ्रूणहत्या गलदेश, परस्त्रीगति बुकोल, बन्धुलोक वध उदर, शरणागत वध इत्यादि नाभि, गर्वकथा कटिदेश, गुरुनिन्दा सक्थिभाग, कन्याविक्रय शेफःप्रदेश, विश्वास वाक्यकथन पायुदेश, पितृवध अंघ्रिदेश और उपपातक समस्त रोम हैं। यह महाकाय, भयङ्कर और अति कृष्णवर्ण है। चक्षु इसके लाल हैं और यह अपने आश्रितका अतिशय दुःखप्रद है।

पापफल (सं० क्ली०) पापस्य फलम्। १ पापका फल। पापः फलं यस्य। २ अशुभफलदाता, जिसका फल अशुभ हो उसे पापफल कहते हैं।

पापबुद्धि (सं० त्रि०) पापा बुद्धिर्यस्य वा पापे बुद्धिर्यस्य। पापमति, पापचेता, दुष्ट।

पापभक्षण (सं० पु०) कालभैरव शिव।

पापमति (सं० त्रि०) पापे मतिर्यस्य। पापबुद्धि।

पापमय (सं॰ त्रि॰) पापसे ओतप्रोत, पापसे भरा हुआ।

पापमित्र (सं॰ क्ली॰) पापकर्मका सहचर वा बन्धु।

पापमुक्त (सं॰ त्रि॰) पापान्मुक्तः। निष्पाप, पापसे मुक्त। पापकर्त्ता पाप करके यदि उसे सबके सामने प्रकट कर दे अथवा उसके लिये अनुताप, तपस्या, अध्ययन वा दान करे, तो वह पापसे मुक्त हो सकता है।

"ख्यापनेनानुतापेन तपसाध्ययनेन च।
पापकृत् मुच्यते पापात् तथा दानेन चापदि॥"
(मनु)

वराहपुराणमें पापमोचनका विषय इस प्रकार लिखा है—जो सर्वभूतोंमें समदर्शी, जितेन्द्रिय और ज्ञानवान् हैं, वे पापसे मुक्त होते हैं। जो अचय और चयके गुणागुण-परिज्ञाता हैं, हिंसा और लोभसे वर्जित हैं तथा जो गुरुशुश्रूषापरायण आदि सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं वह पापसे मुक्त होते हैं, इत्यादि। प्रायश्चित्त देखो।

पापमोचन—अयोध्याके अन्तर्गत एक तीर्थस्थान। नरहरि नामक एक ब्राह्मणने ब्रह्मवध चोरी आदि अनेक पाप किये थे। पीछे इस तीर्थमें स्नान करनेसे उसके सब पाप दूर हो गये और अन्तमें उसे स्वर्गको प्राप्ति हुई। तभीसे यह स्थान पापमोचन नामसे प्रसिद्ध है। माघमासके कृष्णपक्षमें यहां अनेक यात्री इकट्ठे होते हैं।

पापमोचनी (सं॰ स्त्री॰) चैत्र कृष्णपक्षकी एकादशी।

पापयक्ष्मन् (सं॰ पु॰) १ वास्तुमण्डलस्थित पूज्य गणभेद। २ राजयक्ष्मा, क्षयरोग, तपेदिक।

पापयोनि (सं॰ स्त्री॰) पापा गर्ह्या योनिः। १ तिर्यक् योनि। २ पापहेतुक जन्मभेद।

मानवगण पापानुष्ठान द्वारा विविध पापयोनिमें जन्म लेते हैं। याज्ञवल्क्यसंहितामें इस पापयोनिमें उत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है;—पातकिगण पातकजनित तीव्र दुःखावह दारुण नरकयन्त्रणाका भोग करनेके बाद इस संसारमें पापयोनि प्राप्त करते हैं। ब्रह्मघाती व्यक्ति मृग, कुक्कुर, शूकर अथवा उष्ट्रयोनिमें; सुरापायी व्यक्ति गर्दभ, पुक्कस वा वेणयोनिमें; सुवर्णचोर कृमिकीट वा पतङ्गयोनिमें और विमातृगामी यथाक्रम तृण, गुल्म और लता हो कर जन्म ग्रहण करते हैं। जो परस्त्री वा ब्रह्मस्वका अपहरण करते, उन्हें जनशून्य अरण्यप्रदेशमें ब्रह्मराक्षस; जो परकीय रत्न हरण करते उन्हें हेमकारक नामक पक्षोजाति और जो पत्रशाक हरण करते उन्हें जलशून्य अरण्यप्रदेशमें ब्रह्मराक्षस होना पड़ता है। रत्न चुरानेसे हेमकार नामक पक्षोयोनिमें पत्रहरण करनेसे मयूरयोनिमें, उत्तम गन्ध चुरानेसे कुकुन्दरयोनिमें, धान्य चुरानेसे मूषिकयोनिमें, रथादियान चुरानेसे उष्ट्रयोनिमें, फल चुरानेसे बन्दरयोनिमें, जल चुरानेसे शाकटविल नामक पक्षोयोनिमें, दुग्ध चुरानेसे काकयोनिमें, मुषलादि गृहोपकरण द्रव्य चुरानेसे गृध्रयोनिमें, गोहरण करनेसे गोधायोनिमें, अग्निहरण करनेसे बकयोनिमें, इक्षु आदिका रस चुरानेसे कुक्कुरयोनिमें और लवण चुरानेसे चिरो नामक कीटयोनिमें जन्म होता है। (याज्ञवल्क्य सं॰ ३ अ॰)

पापयोनिमें जन्म होनेका कारण हो पाप है। जो जैसा कर्म करते हैं, वे वैसो हो योनिमें जन्म लेते हैं। उत्कृष्ट कर्म करनेसे उत्कृष्टयोनि तथा अपकृष्ट कर्म करनेसे पापयोनि प्राप्त होती है। यदि दैवक्रमसे पापानुष्ठित हो, तो प्रायश्चित्त करना आवश्यक है।

विष्णुसंहितामें लिखा है, कि पापिगण नरकमें पापका फल भोग करके पीछे तिर्यक् आदि पापयोनियोंमें जन्म लेते हैं। अतिपातकिगण स्थावरयोनिमें, महापातकिगण कृमियोनिमें, अनुपातकिगण पक्षियोनिमें, उपपातकिगण जलजयोनिमें, जातिभ्रंशकर पापिगण जलचरयोनिमें, सङ्करीकरण पापिगण मृगयोनिमें और अपात्रीकरण पापिगण मनुष्यके मध्य अस्पृश्यजातिमें जन्म लेते हैं। प्रकीर्ण पापसे नाना प्रकारको हिंस्रक्रव्यादयोनिमें जन्म होता है। अभोज्य अन्न अथवा अभक्ष्य द्रव्य खानेसे कृमि, चोर, श्येनपक्षी आदि योनि प्राप्त होती है स्त्रियां यदि ये सब पाप करें, तो वे पूर्वोक्त जन्तुओंकी भार्या होती हैं। (विष्णुसं॰ ४६ अ॰)

पावर (हिं॰ पु॰) पापड़ देखो।

पापराजपुरम्—तञ्जोर जिलेमें कुम्भकोणम् तालुकके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह कुम्भकोणसे ६ मोल दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहांके प्राचीन शिवमन्दिरमें खोदित लिपि उत्कीर्ण है।

पापरोग (सं० पु०) पापाख्यो रोगः। १ मसूरीरोग, वसन्तरोग, छोटी माता। २ पापविशेषकृत रोगभेद, वह रोग जो कोई विशेष पाप करनेसे होता है।

विष्णुसंहितामें लिखा है, कि पापिगण पाप करके पहले नरकभोग करते हैं, पीछे तिर्यक् आदि योनिओंमें जन्मग्रहण कर पापरोगग्रस्त हो मानवयोनिमें जन्म लेते हैं। अतिपातकी कुष्ठी, ब्रह्मघाती यक्ष्मारोगी, सुरापायी श्यावदन्त, स्वर्णहारी कुनखी, विमातृगामी अनावृतलिङ्ग, पिशुनकी नासिका दुर्गन्धयुक्त, सूचक पूतिवक्त्र, धान्यचोर अङ्गहीन, वस्त्रापहारक श्वित्ररोगी, अश्वापहारक पङ्गु, देवता और ब्राह्मणक्रोशक मूक, विषदाता लोलजिह्व, अग्निदाता उन्मत्त, गुरुके प्रतिकूलाचारी अपस्माररोगी, गोघाती अन्ध, दीपनिर्वाणकारी काण, वार्द्धुषिक (कुसीदजीवी) भ्रामररोगी, एकाकी मिष्टभोजी वातगुल्मरोगी और ब्रह्मचारी हो कर स्त्रीसम्भोग करनेसे श्लीपदरोगी होता है। इस प्रकार पापकर्म विशेषसे रोगान्वित, अन्ध, कुब्ज, खञ्ज, एकलोचन, वामन, बधिर, मूक, दुर्बल वा क्लीवादि हो कर जन्म ग्रहण करते हैं। (विष्णुसं० ४६ अ०)

पापसे ही रोग होता है। अतः सर्वदा प्रत्येक व्यक्तिका पापके प्रति वितृष्ण होना आवश्यक है।

कर्मविपाक शब्दमें पापोद्भव रोगका विशेष विवरण देखो।

पापरोगिन् (सं० त्रि०) पापरोगोऽस्यास्तीति इनि। पापरोगग्रस्त, जिसे कोई पापरोग हुआ हो।

पापर्द्धि (सं० स्त्री०) पापानां ऋद्धिर्वृद्धिर्यत्र। मृगया, आखेट, शिकार। मृगयासे पापकी ऋद्धि (बढ़ती) होना माना गया है, इसीसे उसको पापर्द्धि संज्ञा हुई।

पापल (सं० क्ली०) १ परिमाणविशेष। (त्रि०) पापं लातीति ला-क। पापग्राहक।

पापलीन (फा० पु०) सूती कपड़ा, एक प्रकारका डोरिया।

पापलोक (सं० पु०) नरक, पापियोंके रहनेका स्थान।

पापलोक्य (सं० त्रि०) नरकसम्बन्धी।

पापवसीयस् (सं० त्रि०) विपर्यस्त।

पापवस्यस (सं० क्ली०) विपर्यय।

पापवाद (सं० पु०) अशुभसूचक शब्द, अमङ्गल ध्वनि, कौवे आदिकी ऐसी बोली जो अशुभसूचक मानी जाय।

पापविनाशन (सं० क्ली०) पापस्य विनाशनं यत्र। १ तीर्थभेद। (त्रि०) २ जहां पाप विनष्ट हो।

पापविनिश्चय (सं० त्रि०) पापः पापे वा विनिश्चयः यस्य। पापकार्यमें कृतसङ्कल्प, जिन्होंने पाप करना ठान लिया है।

पापशमनी (सं० स्त्री०) पापं शम्यतेऽनयेति शम-णिच्, करणे ल्युट् स्त्रियां ङीप्। १ शमीवृक्ष। (त्रि०) २ पापनाशिनी, पापनिवारिणी।

पापशील (सं० त्रि०) पापः शीलं स्वभावो यस्य। दुष्टस्वभाव, निन्दितात्मा।

पापशोधन (सं० पु०) १ पापदूरीकरण, पापनाश। २ तीर्थस्थान।

पापसंशमन (सं० क्ली०) पापस्य संशमनम्। पापदूरीकरण, वह जिससे पाप दूर हो।

पापसङ्कल्प (सं० त्रि०) पापः पापे वा सङ्कल्पः यस्य। पापविषयमें कृतनिश्चय, जिसने पाप करनेका पक्का इरादा कर लिया हो।

पापसम (सं० अव्य०) पापेन तुल्यं तिष्ठद्गु आदित्वाद-व्ययीभावः। पापतुल्य, पापसदृश।

पापसम्मित (सं० त्रि०) तुल्यपापी, समदोषमें दोषी।

पापसूदन (सं० त्रि०) पापं सूदयति पाप-सूद ल्यु। पापनाशक।

पापसूदनतीर्थ (सं० क्ली०) राजतरङ्गिणी-वर्णित पापनाशक तीर्थभेद।

पापहन् (सं० त्रि०) पापं हन्ति हन-क्विप्। पापनाशक।

पापहर (सं० त्रि०) हरतीति हरः पापस्य हरः। १ पापनाशक, पापहारक। स्त्रियां टाप्। २ नदीविशेष।

पापहा (हिं० वि०) पापहन् देखो।

पापाख्या (सं० स्त्री०) पापं आख्याति आ-ख्या-क, स्त्रियां टाप्। बुधकी गतिभेद। जब बुध हस्ता, अनुराधा वा ज्येष्ठा नक्षत्रमें रहता है, उस समय बुधकी गतिको पापाख्या गति कहते हैं।

पापाङ्कुशा (सं० स्त्री०) आश्विनमासकी शुक्ला एकादशी।

पांपा (सं० स्त्री०) पापाह्वया देखो।

पापा (हिं० पु०) १ एक छोटा कोड़ा। यह ज्वार बाजरे आदिको फसलमें प्रायः उस वर्ष लग जाता है जिस वर्ष बरसात अधिक होती है। २ बच्चोंका एक स्वाभाविक बोल या शब्द जिससे वे बापको संबोधित करते हैं, बाबा, बाबू। इस समय प्रायः यूरोपियनों होके बच्चे इस शब्दका प्रयोग करते हैं। ३ प्राचीनकालमें विशप पादरियों और वर्त्तमानमें केवल यूनानी पादरियोंके एक विशेष वर्गकी सम्मानसूचक उपाधि।

पापाचार (सं० त्रि०) १ पापकार्यकारी, दुराचारी, पापी। (पु०) २ पापका आचरण, पापकार्य।

पापात्मन् (सं० त्रि०) पापः पापविशिष्टः आत्मा यस्य, पापे अधर्मे आत्मा यस्येति वा। पापी, पापिष्ठ।

पद्मपुराणके क्रियायोगसारमें लिखा है, कि पापियोंके ८६ योजन विस्तृत सब प्रकारसे दुःखमय स्थान हैं, जहां वे अवस्थान करते हैं। इनमेंसे कहीं अग्नि जलती है, कहीं सन्तप्त कर्दम है, कहीं ताम्रबालुका है, कहीं शस्त्रवृष्टि और कहीं पाषाणवर्षण तथा जलदग्निकी वृष्टि हो रही है। इन्हीं सब कष्टकर स्थानोंमें पापी वास करते हैं।

पापान्त (सं० क्ली०) पापं अन्तयतीति अन्त 'कर्मण्यण्' इति अण्। तीर्थविशेष। इसका नामान्तर पृथूदक और प्रकीर्ण है। इस तीर्थमें स्नान करनेसे सभी पाप दूर हो जाते हैं तथा मन ही मन जो चिन्ता की जाती है, वह फलीभूत होती है।

"तस्मिंस्तीर्थे तु यः स्नाति श्रद्दधानो जितेन्द्रियः।
स प्राप्नोति नरो नित्यं मनसा चिन्तितं फलम्॥
तत्तु तीर्थं सुविख्यातं पापान्तं नाम नामतः।
यस्येह यजतस्तस्य मधु सुस्राव वै नदी॥"

(वामनपु० ३८)

पापापुरी (सं० स्त्री०) अपापपुरी, जैनोंका एक पुण्यक्षेत्र। पावा देखो।

पापाशय (सं० पु०) पाप आशयः यस्य। पापात्मा, अधार्मिक, दुष्ट, पापिष्ठ।

पापाह (सं० पु०) पापमह्नलात् गर्ह्यः अहः टच्समासान्तः। १ अशौच दिन, सूतककाल। २ निन्दित दिन, अशुभ दिन।

पापाह्वी (सं० पु०) सर्प, साँप।

पापिन् (सं० पु०) पापमस्त्यस्येति पाप-इनि। पापयुक्त, पापिष्ठ

पापिनी—मन्द्राज प्रदेशके कोयम्बतुर जिलेके धारापुरम् तालुकके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह काङ्गयमसे ३ कोस उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। यहां तीन अति प्राचीन शिव और विष्णु मन्दिर हैं जिनमें अनेक शिलालिपियां देखी जाती हैं। ग्रामके मध्य एक पुरातन समाधिस्तम्भ है।

पापिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशयेन पापी पाप-इष्ठन्। अतिशय पापयुक्त, बहुत बड़ा पापी, बहुत बड़ा गुनहगार।

पापी (हिं० वि०) १ पापयुक्त, पाप करनेवाला। २ क्रूर, निर्दय। (पु०) ३ वह जो पाप करता हो, अपराधी, दुराचारी।

पापीयस् (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन पापी पाप-ईयसुन्। १ अतिशय पापी। स्त्रियां ङीष। २ पापीयसी।

पापोश (फा० पु०) उपानह, जूता।

पाप्मन् (हिं० पु०) पा-मनिन् (नामन् सीमन्निति। उण् ४।१५१) पुगागमे निपातनात् साधुः। पाप।

पाप्मा (हिं० पु०) १ पाप। (वि०) २ पापी।

पाबंद (फा० वि०) १ बद्ध, अस्वाधीन, कैद। २ जो किसी वस्तुका अनुसरण करनेके लिये बाध्य हो। ३ आचरणमें किसी विशेष बातको नियमपूर्वक रक्षा करनेवाला। (पु०) ४ सेवक, नौकर, दास। ५ घोड़ेकी पिछाड़ी।

पाबंदी (फा० स्त्री०) १ बद्धता, अधीनता। २ नियमितरूपसे किसी बातका अनुसरण। ३ किसी वस्तुके अनुसरणकी आवश्यकता। ४ मजबूरी, लाचारी।

पावदा—मत्स्यविशेष। अंगरेजी मत्स्यतत्त्वविदोंने इस मत्स्यजातिका Callichrous नाम रखा है। यह सात प्रकार है, गाङ्गपावदा, सिन्धिपावदा, बोलपावदा, दागीपावदा, मन्द्राजी पावदा, मलवारीपावदा और देशीपावदा।

गाङ्गपावदा—गङ्गानदीमें पाया जाता है। इसके ऊपरकी दन्तपाटि अविच्छिन्न है।

सिन्धिपावदा—सिन्ध देशकी सिन्धु नदीमें पायी जाता है। चांदीकी तरह यह सफेद दीख पड़ता है। इसके पर और शरीरमें गहरे काले रंगका दाग रहता है।

बोलपावदा—यह डेढ़ फुट लम्बा होता है। इसकी नाकके दोनों बगल दो पांती दांत हैं; किन्तु वे अवि-

च्छिन्न नहीं हैं। इसका भी वर्ण चाँदी-सा सफेद है। इस प्रकारका मत्स्य समस्त भारतवर्ष, सिंहल और आसाम से ले कर मलयद्वीपपुञ्ज तक पाया जाता है।

देशीपावदा—गङ्गा और यमुना नदीमें तथा ब्रह्मदेशमें पाया जाता है। इसका वर्ण रौप्य सदृश शुभ्र है, किन्तु स्कन्धदेशमें एक दाग रहता है।

मन्द्राजीपावदा—मन्द्राज, आसाम और ब्रह्मदेशमें पाया जाता है। यह भी चाँदी-सा सफेद मालूम पड़ता है, किन्तु मेरुदण्डके मध्यभागके ऊपर स्कन्धदेशके चारों ओर कृष्णवर्ण दाग है। नासिकारन्ध्रके दोनों ओर दाँतकी पाँती है, किन्तु वह मध्यभागमें अविच्छिन्न नहीं है।

मलवारीपावदा—मलवार उपकूलमें पाया जाता है। इसका रंग कुछ धूसरवर्ण लिए पीला होता है। नासिकारन्ध्रके ऊपरी भागमें दाँत होते हैं, किन्तु वे अविच्छिन्न नहीं है। इस प्रकारका मत्स्य २० इञ्च तक लम्बा हो सकता है।

देशीपावदा—यह पञ्जाबकी सिन्धुनदीमें, हरिद्वारमें, गङ्गा जहाँ हिमालयपर्वतसे निकली है उस स्थान पर, उड़ीसा, दार्जिलिङ्ग और आसामकी ब्रह्मपुत्र नदीमें पाया जाता है। यह भिन्न भिन्न रंगका होता है। जब्बलपुरमें जो देशीपावदा पाया जाता है, उसकी पीठ पर काला दाग है। दन्त नासिकारन्ध्रके दोनों ओर दो भागोंमें श्रेणीबद्ध, किन्तु विच्छिन्न हैं।

पावना—१ राजशाही और कूचविहार विभागके दक्षिण-पूर्व स्थित एक जिला। इसके उत्तरमें राजशाही, बगुड़ा और मैमनसिंह जिला; पूर्वमें यमुनानदी; दक्षिणमें पद्मावती तथा पश्चिममें राजशाही और नदिया जिला है। यह पद्मानदी द्वारा राजशाही और नदिया जिलेसे तथा यमुना नदी द्वारा मैमनसिंह और ढाका जिलेसे अलग होता है। जिलेका सदर पावना शहर हीमें है। यह इच्छामती नदीके किनारे अक्षा० २३° ४९´ से २४° ४५´ उ० और देशा० ८९° १´ से ८९° ५२´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण १८३९ वर्गमील है। यह जिलेका राजनीतिक प्रधाननगर होने पर भी वाणिज्य विषयमें सिराजगञ्ज ही प्रधान नगर है।

गङ्गा और ब्रह्मपुत्रके सङ्गमस्थल पर पावना जिला बसा हुआ है। यही दो नदियां इस जिलेकी प्रधान हैं। गङ्गा यहां पद्मा नामसे और ब्रह्मपुत्र यमुना नामसे प्रसिद्ध है। पद्माकी प्रधान शाखा इच्छामती शहरके बीच हो कर बहती हुई ब्रह्मपुत्रकी शाखा हरासागरमें मिल गई है। इसके अलावा यहां बहुत सी छोटी छोटी नदियां और खाड़ियां हैं। यहां अनेक बांध और कृत्रिम घाट हैं। वर्षाकालमें नावके सिवा और कोई दूसरी सवारी आने जानेको नहीं मिलती।

पावना पहले राजशाही जिलेके अन्तर्भुक्त था। यह रानीभवानीकी जमींदारीका एक अंश मात्र है। कालक्रमसे जब उस सुविस्तृत जमींदारीका बहुत कुछ अंश नीलाम हो गया, तब पावना राजशाहीसे स्वतन्त्र हुआ। १८३२ ई०में यह नूतन जिलेमें परिणत हो कर जोयाण्ट मजिष्ट्रेट और डिपटी कलक्टरके अधीन हुआ। १८५९ ई०में पूर्ण क्षमता-प्राप्त एक मजिष्ट्रेट कलक्टरके हाथ इस जिलेका भार सौंपा गया। वर्त्तमान समयमें यहां एक सेशन जज, एक मजिष्ट्रेट कलक्टर, दो डिपटी मजिष्ट्रेट, एक सब-जज, मुन्सफ, एक जिलेकी पुलिसका प्रधान साहब कर्मचारी और एक सिविलसार्जन रहते हैं। यहांके सेशन जज ही बगुड़ाके दरबारका कार्य करते हैं। यहाँ एक मध्यवर्त्ती कारागार है। १८४५ ई०में सिराज-गञ्ज महकूमा स्थापित हुआ। उसी समयसे सिराजगञ्ज-की क्रमशः श्रीवृद्धि हुई और वर्त्तमान समयमें यह जिलेका सर्वप्रधान स्थान हो उठा है।

इस जिलेकी पूर्वी सीमाका अनेक परिवर्तन हुआ है। १८२६ ई०में कुष्टिया महकूमा पावनासे पृथक् करके नदिया जिलेके अन्तर्भुक्त किया गया। १७७१ ई०में पांशा थाना फरीदपुरके गोआलन्द महकूमे और कुमारखाली थाना कुष्टिया महकूमेके अधीन हो जानेसे अभी पद्मानदी जिलेकी दक्षिणी सीमामें पड़ती है।

इस जिलेके प्रधान नगर नदीके किनारे अवस्थित हैं। इनमेंसे यमुनातीरवर्त्ती सिराजगञ्ज पटसन व्यवसायमें विशेष प्रधान है। यहां प्रतिवर्ष दो लाख मन पटसनकी आमदनी होती है। सिराजगञ्जके बाद ही शाहजादपुर,

पावना, बेलकूटी और उल्लपाड़ा वाणिज्यविषयमें श्रेष्ठ हैं। इन सब स्थानोंमें पाटकी आमदनी ज्यादा है। पाट छोड़ कर तमाकू, सरसों, तिल, तीसी, चावल, हलदी, अदरक और चमड़ेकी भी आमदनी होती है।

तण्डुल ही इस जिलेके अधिवासियोंका प्रधान खाद्य है। चावलके मध्य आमन और आउस प्रधान हैं। मटर, उड़द, हल्दी आदिकी फसल भी यहां अच्छी लगती है।

पावनाका कपड़ा बहुत मशहूर है। पावना शहर और उससे सात मील पूर्ववर्त्ती दोगाछी ग्राममें पहले बहुतसे ताँती रहते थे। वे एक समय बहुत बढ़िया कपड़ा बुनते थे; एक जोड़ साड़ी या धोती १८)से २०) रु० तकमें बिकती थी। किन्तु अभी मैन्चेष्टरके कारण इसकी खपत नहीं होती। फलतः उक्त ताँतीगण निरुत्साह हो कर उत्कृष्ट वस्त्र नहीं बुनते। बहुतोंने तो वस्त्र बुनना ही छोड़ दिया है।

इस जिलेमें २ शहर और ३७२० ग्राम लगते हैं; जनसंख्या करीब १४२०४६१ है। इनमेंसे मुसलमानोंकी संख्या अधिक होने पर भी वे सभी विषयोंमें हिन्दुओंसे निकृष्ट हैं।

यहांके अधिवासियोंका स्वभाव शान्त है। १८७३ ई०में यहां एक बार प्रजा-विद्रोह हुआ था।

इस जिलेमें बरगाइत वा बरगादा श्रेणीके कृषिजीवी हैं; वे जोतदारोंकी जमीन आबाद करते हैं। जोतदार-गण आधा बीज देते और मालगुजारी नहीं लेते हैं। फसल तैयार हो जाने पर दो समान भागोंमें बांटी जाती है

कृषिजीवी भिन्न इस जिलेके श्रमजीवियोंकी अवस्था भी उतनी बुरी नहीं है। मजदूर साधारणतः ढाई आनेसे साढ़े चार आने तक दैनिक उपार्जन करते हैं।

कृषि और श्रमजीवियोंकी अवस्था मन्द नहीं है, कारण और जिलोंके जैसा यहां दुर्भिक्षका प्रकोप नहीं देखा जाता। इस जिलेमें केवल दो बार दुर्भिक्ष पड़ा है, एक बार १८७४ ई०में और दूसरी बार १८८७ ई०में।

इस जिलेमें पावना, चाटमोहर, दुलाई, मथुरा, सिराजगञ्ज, शाहजादपुर, रायगञ्ज और उल्लपाड़ा नामके थाने लगते हैं। सारे जिलेमें ३८ परगने और २ म्युनिसिपलिटियां हैं।

पावना जिलेका जलवायु स्वास्थ्यकर है। सिराजगञ्ज महकूमेकी कई जगह मलेरियाप्रधान होने पर भी पावना सदरके अनेक स्थान, विशेषतः पश्चिम प्रान्तस्थित ग्राम विशेष स्वास्थ्यकर हैं।

जिलेमें तूफान आदिका उपद्रव भी कम होता है। १८७२ ई०के सितम्बरमासमें एक बार भारी तूफान आया था जिसमें अनेकों वृक्ष और घर तहस नहस हो गये थे, बहुसंख्यक नावें जलमग्न हो गई थीं और बड़ी बड़ी ष्टीमर भी टूट फूट गई थीं।

इस जिलेमें जाने आनेकी बड़ी असुविधा है। पहले ही कहा जा चुका है, कि इस जिलेके पश्चिम प्रान्तस्थित सारा घाट भिन्न और कहीं भी लौहवर्त्म नहीं है। पावना शहर जानेमें उत्तरवङ्ग रेलवेकी कुष्टिया ष्टेशनसे ष्टीमर पर जाना होता है। किन्तु अन्तवर्त्ती स्थानोंमें भ्रमण करना बड़ा ही असुविधाजनक है। यहां एक भी बढिया सड़क नहीं है। जाने आनेके लिये छोटी छोटी नदी नहर आदि तो हैं, पर उस हो कर जानेमें बड़ी दिक्कत उठानी पड़ती है और साथ साथ अधिक समय भी बरबाद होता है। पावना शहरसे पूर्ववर्त्ती दोगाछी ग्राम तक जो रास्ता गया है वह सुन्दर है। राजशाही रोड नामक पावना शहरसे जिलेके पश्चिम प्रान्त तक ३० मील लम्बी जो सड़क चली गई है, उसकी अवस्था अति शोचनीय है।

पावना और सिराजगञ्जके मध्यवर्ती रास्ता असम्पूर्ण है और उतना सुगम भी नहीं है। पावना शहरसे ताँतीबन्द पर्यन्त 'ताँतीबन्दरोड' नामक पथ उतना खराब नहीं है। कुष्टियासे जो ष्टीमर पावना जाती है वह वर्षाकाल भिन्न अन्य समयमें बाजितपुर नामक पद्मानदीके एकघाट ष्टेशन पर रहती है। बाजितपुरसे पावना शहर तक जो रास्ता गया है, वह एक तरहसे अच्छा है। कारण, साहब कर्मचारियोंको अनेक समय इसी पथसे जाना आना होता है।

पावना जिलेसे पटसन, चावल, चने, उड़द, तीसी, कलाय और तेलहनकी रफतनी होती है।

२ पावना जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २३°४८´ से २४°२१´ उ० और देशा० ८९°१´ से ८९°४५´

पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४४२ वर्गमोल और जनसंख्या प्रायः ५८६७४८ है। इसमें पावना नामक एक शहर और १६५८ ग्राम लगते हैं।

२ पावना उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० २४° १' उ० और देशा० ८९° १६' पू०, इच्छामती नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या बीस हजारके करीब है। यहां १८७६ ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। पहले यह शहर डूब जाया करता था, अभी बांध हो जानेसे लोगोंका कष्ट दूर हो गया। यहां सरकारी भवन और कारागार है। १८९८ ई०में एक कालेज भी खुला है। शहरका जलवायु स्वास्थ्यकर है।

पावीर (हिं० पु०) कहारों अथवा डोली ढोनेवालोंकी बोल-चालमें वह स्थान जहां कुछ अधिक पानी हो।

पाम (हिं० स्त्री०) १ वह डोरी जो गोटे किनारी आदिके किनारों पर मजबूतीके लिये बुनते समय डाल दी जाती है। २ लड़, रस्सी, डोरी। (पु०) ३ दानेदार चकत्ते या फुंसियां जो चमड़े पर हो जाती हैं। ४ खाज, खुजली।

पामघ्न (सं० पु०) पाम हन्तीति हन-टक्। गन्धक।

पामघ्नी (सं० स्त्री) पामघ्न-टित्वात् ङीप्। कुटकी।

पामड़ा (हिं० पु०) पावंडा देखो।

पामन् (सं० स्त्री०) पा-मनिन्। १ विचर्चिका, खाज, खुजली। २ पाम देखो।

पामन (सं० त्रि०) पामास्त्यस्य इति (लोमादि पामादि पिच्छादिभ्यः शनेलचः। पा ५।२।१०० इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या 'पामादिभ्यो' नः) न। पामरोगविशिष्ट, जिसे या जिसमें पामरोग हुआ हो। इसका पर्याय कच्छुर है।

पामपुर—काश्मीरका एक नगर। यह भेलमनदीके बाएं किनारे बसा हुआ है और यहां मुसलमानोंकी दो मस्जिदें हैं। यहां जाफरान भी उपजता है। राजतरङ्गिणीमें यह स्थान 'पद्मपुर' नामसे लिखा हुआ है।

पामर (सं० त्रि०) पाम-पापादिदोषाक्रमस्त्यस्येति पामन्- (अश्मादिभ्यो रः। पा ४।२।८०) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या र, ततो न लोपे साधुः। १ खल, दुष्ट कमीना, पाजी। २ नीच, नीच कुल या वंशमें उत्पन्न। ३ अधम, पापिष्ठ, दुश्चरित्र। ४ मूर्ख, निर्बुद्धि, उल्लू।

पामरयोग (सं० पु०) एक प्रकारका निकृष्ट योग। इसके द्वारा भारतवर्षके नट, बाजीगर आदि अद्भुत अद्भुत लागके खेल किया करते हैं। उसके साधनसे अनेक रोगोंका नाश और अद्भुत शक्तियोंकी प्राप्ति होना माना जाता है। कुछ लोग इसे मिस्मेरिजमके अन्तर्गत मानते हैं।

पामरी (हिं० स्त्री०) १ उपरना, दुपट्टा। २ पावंडी देखो।

पामरोद्गार (सं० स्त्री०) पामरं उद्गरति उत्-गृ-अण्, ततो अजादित्वात् टाप्। गुड़ूची, गुड़ूच।

पामवत् (सं० त्रि०) पाम विद्यतेऽस्य पाम-मतुप, मस्य व। पामरोगी।

पामा (सं० स्त्री०) पामन (मनः। पा ४।१।११) इति न ङीप्, नलोपे साधुः। कच्छू, एक प्रकारका क्षुद्रकुष्ठ भेद। भावप्रकाशमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—जिस कुष्ठमें फोड़ेमें अत्यन्त खाज और जलन हो तथा जिससे हमेशा पीब और रक्तादि निकलता रहे उसे पामा कहते हैं। इसकी चिकित्सा—जीरा ८ तोला और सिन्दूर ४ तोला इन्हें आधसेर तेलमें पाक करके प्रयोग करनेसे पामारोग प्रशमित होता है। मञ्जिष्ठा, त्रिफला, लाक्षा, विषलाङ्गला, हरिद्रा और गन्धक इनका चूर्ण करके रौद्रके उत्तापमें तैलपाक करें। पीछे इसका प्रयोग करनेसे पामारोग अतिशीघ्र विनष्ट हो जाता है। इस तेलका नाम आदित्यपाक तेल है। सैन्धव, चक्रमर्द, सर्षप और पिप्पली इन्हें कांजीसे पीस कर क्षतस्थानमें लगानेसे पामा और कण्डूरोग प्रशमित होता है।

सर्षप तेल ४ सेर, कल्कार्थ मिर्च, निसोथ, मोथा, हरिताल, मनःशिला, देवदारु, हरिद्रा और दारुहरिद्रा, जटामांसी, कुट, चन्दन, गोपालककंटी, करवीर, अर्कवनका दूध और गोमयरस प्रत्येक द्रव्य ढाई तोला, विष एक छटांक, जल १६ सेर, गोमूत्र ८ सेर; यथाविधान इस तेलका पाक कर शरीरमें लगाना होता है। इससे कुष्ठ, श्वित्र, क्षतजन्य विवर्णता, कण्डू और पामा आदि रोग अतिशीघ्र प्रशमित होते हैं।

सर्षप तेल १६ सेर, कल्कार्थ मिर्च, निसोथ, दन्ती, अर्कवनका दूध, गोमयरस, देवदारु, हरिद्रा, जटामांसी, कुट, चन्दन, गोपालककंटी, करवीर, हरिताल, मनःशिला, चीता, विषलाङ्गला, मोथा, विड़ङ्ग, चक्रमर्द,

शिरोष, कूटज, निम्ब, गुलञ्च, थूहर, श्यामालता, डहर-करञ्ज, खदिर, सोमराजी, वच और ज्योतिष्मती प्रत्येक आध पाव और विष एक पाव, गोमूत्र एक मन चौबीस सेर। इस तैलको यथाविधान मृदु अग्निके उत्तापमें पाक करके शरीरमें लगानेसे कुष्ठ, व्रण, पामा, विचर्चिका आदि रोग प्रशमित होते हैं और इससे वली, पलित और मुखव्यङ्ग नष्ट होता तथा सुकुमारता बढ़ती है। प्रथम वयस्का स्त्री यदि इस तैलको नस ले, तो वृद्धावस्थामें उसके स्तन नहीं नवते। (भावप्रकाश)

भावप्रकाशके मध्यखण्डमें और भी अनेक औषधका विषय लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं लिखा गया। सभी वैद्यक ग्रन्थोंके कुष्ठाधिकारमें इसके लक्षण और चिकित्सादि लिखी हैं।

गरुड़पुराणमें लिखा है—

"हरिद्रा हरितालञ्च दूर्वागोमूत्रसैन्धवम्।
अयं लेपो हन्ति दद्रुं पामानं वै गरं तथा॥
माहिषं नवनीतञ्च सिन्दुरञ्च मरीचकम्।
पामा विलेपिता नश्येत् बहुलाऽपि वृषध्वज॥"

(गरुड़पु० १९४ अ०)

हरिद्रा, हरिताल, दूर्वा, गोमूत्र और सैन्धव एकत्र करके प्रलेप देनेसे यह प्रशमित होता है। माहिष नवनीत, सिन्दूर और मरीचक इन्हें एकत्र करके प्रलेप देनेसे पामारोग नष्ट होता है।

पामादि (सं० पु०) पाणिन्युक्त गणभेद। पामन्, वामन, वेमन, श्लेष्मन्, कद्रु, वलि, सामन, उष्मन् और कृमि ये सब पामादिगण हैं।

पामारि (सं० पु०) पामायाः अरिः। गन्धक। गन्धक घिस देनेसे पामा जाती रहती है, इसीसे इसको पामारि कहते हैं।

पामाल (हिं० वि०) १ पादाक्रान्त, पददलित, पैरसे मला हुआ। २ सत्यानास, चौपट, बरबाद।

पामाली (फा० स्त्री०) नाश, बरबादी, तबाही।

पामिदी—मन्द्राज प्रदेशके अनन्तपुर जिलान्तर्गत गूती तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १४° ५७´ उ० और देशा० ७७° ३६´ पू०, गूती शहरसे १४ मील दक्षिण पेन्नर नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या १०६५७ है। यह स्थान अत्यन्त अस्वास्थ्यकर है। यहां अनेक तांती वास करते हैं।

पामीर—एशियाके मध्यवर्त्ती एक उच्च भूभाग। पुराणमें यह उपमरु नामसे वर्णित है। पामीर शब्दसे अभी जनमानवकी वासहीन उच्चभूमि समझी जाती है। लेफ्टिनेण्ट उडने १९वीं शताब्दीके आरम्भमें पामीर उपविभागमें शिविर सन्निवेश कर आक्सस नदीका उत्पत्तिस्थल आविष्कार किया। पामीरके पश्चिमभागमें अवस्थित यारकन्द और काशगर तककी भूमि क्रमशः इस प्रकार उन्नत होती गई है, कि ऊपर चढ़ते समय यह नहीं मालूम पड़ता कि किस जगहकी जमीन ऊंची और किस जगहकी नीची है। यह स्थान समुद्रपृष्ठसे १५००० फुट ऊंचा है। ऊपर पहुंचने पर विस्तृत प्रान्तर नयनगोचर होता है। इस प्रान्तरके एक ओर जक्सर्त्तस नदी बहती है और दूसरी ओर काशगरका शिरोभाग वा चित्रल उपत्यका विद्यमान है। पामीरप्रदेशका परिमाण ७०० या ८०० मील होगा। यह प्रदेश पर्वतसे परिपूर्ण है। कौथामान शृङ्गकी ऊंचाई २२५५० फुट, गुरुण्ड पर्वतकी ऊंचाई २०८०० फुट और मुस्ताग पर्वतकी ऊंचाई २५४०० फुट है। इन सब पर्वतोंका ऊपरीभाग तुषारसे हमेशा ढका रहता है। पामीरकी उपत्यकाभूमि अधिकांश अनुर्वरा है। इस उपत्यकासे आक्सस और जक्सर्त्तस यारकन्द और काशगर प्रदेशकी सभी नदियां तथा सिन्धुनदीके गिलघिट प्रदेशकी शाखा निकली है। पामीरकी उपत्यका १२००० फुट तक ऊंची देखी जाती है। यह प्रदेश ह्रदसे परिपूर्ण है और इन सब ह्रदोंसे चार बड़ी बड़ी नदियां उत्पन्न हुई हैं। अक्षा० ३७° १४´ उत्तर और देशा० ७४° १८´ पू० तथा समुद्रपृष्ठसे १३३०० फुटकी ऊंचाई पर पामीरकुल नामक एक छोटा ह्रद है। इस ह्रदके पश्चिमभागसे आक्सस नदीकी दो शाखाएं निकली हैं। ग्रीष्मकालमें यहां डकैतोंका भारी उत्पात सुना जाता है।

पामीरके पूर्वभागमें बोलर नामका जो पर्वत है, वह उत्तरमें थियनशन और दक्षिणमें क्यूएनलम तक विस्तृत है। ७वीं शताब्दीमें यूएनचुवंगने बोलर श्रेणीको पोलोलो और पामीरको पोमिलो नामसे उल्लेख किया है।

पामीर आर्यों का आदि निवास-स्थान था, ऐसा बहुतेरे अनुमान करते हैं। आर्य देखो।

पामोज (हिं० पु०) १ एक प्रकारका कबूतर। इसके पैरको उंगलियां तक परोंसे ढकी रहती हैं। २ वह घोड़ा जो सवारीके समय सवारको पिंडलीको अपने मुंहसे पकड़ता है।

पाम्बम्—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत मदुरा जिलेका एक नगर। यह अक्षा० ९° १७´ उ० और देशा० ७९° १५´ पू०, रामेश्वर द्वीपके पश्चिम प्रान्तमें अवस्थित है। भारत और रामेश्वर द्वीपके मध्यवर्ती पाम्बमप्रणालीके नामसे इस नगरका नामकरण हुआ है। यहांके अधिवासी 'लब्बय' कहलाते हैं। वर्षभरमें छः मास सिंहल द्वीपका राजकार्य इसी स्थानमें सम्पन्न होता है। उस समय यहां अनेक तीर्थयात्री समागम होते हैं जिससे शहरकी जनसंख्या दूनी बढ़ जाती है। एक समय यह स्थान मुक्ता आहरणके लिये विख्यात था। पूर्व-कालमें रामनदके राजागण विपदकालमें यहां आश्रय ग्रहण करते थे। रामेश्वरमें उनका राजप्रासाद था। इस शहरमें जो आलोकगृह है उसकी ऊंचाई ९७ फुट है।

पाम्बम्-भारत और सिंहल द्वीपके मध्यवर्ती कृत्रिम खाल। यह खाल मदुरा जिले और रामेश्वर द्वीपके बीचमें अव-स्थित है। भूविद्याविशारदोंने इस स्थानकी परीक्षा करके कहा है, कि पहले रामेश्वर द्वीप मदुरा जिलेके साथ संलग्न था।

रामेश्वर द्वीपमें जो सब खोदित लिपि हैं उनमें लिखा है, कि १४८० ई०में यहां भारी तूफान आया था जिससे यह योजक टूट फूट गया है। इस भग्नस्थानका संस्कार करनेके लिये कई बार चेष्टा की गई, पर बार बार तूफानके आनेसे सब चेष्टा निष्फल गई। पहले इस स्थान हो कर जहाजादि आ जा नहीं सकते थे, किन्तु जबसे यह स्थान प्रशस्त बना दिया गया है, तबसे छोटे छोटे जहाज बखूबीसे आते जाते हैं। अभी इस खालकी लम्बाई ४२३२ फुट और चौड़ाई ८० फुट है। इसके दक्षिण एक खाल और भी है जिसकी लम्बाई २१०० फुट और चौड़ाई १५० फुट है। इस खालका नाम कल-कड़ी पथ है।

पायत (हिं० स्त्री०) पायंती देखो।

पायंता (हिं० पु०) १ पलंग या चारपाईका वह भाग जिधर पैर रहता है, सिरहानेका उलटा। २ वह दिशा जिधर सोनेवालेके पैर हों।

पायंती (हिं० स्त्री०) पैताना, पायंता।

पायंदाज (फा० पु०) पैर पोंछनेका बिछावन, फर्शके किनारेका वह मोटा कपड़ा जिस पर पैर पोंछ कर तब फर्श पर जाते हैं।

पायंपसारी (हिं० स्त्री०) निमलोका पौधा और फल।

पाय (सं० क्ली०) १ जल। २ परिमाण। ३ पान।

पायक (सं० त्रि०) पानकार, पीनेवाला।

पायक (हिं० पु०) १ धावन, दूत, हरकारा। २ दास, सेवक। ३ पैदल सिपाही।

पायखाना (हिं० पु०) पाखाना देखो।

पायगुड़—लघुशब्देन्दुशेखरके प्रणेता।

पायजामा (हिं० पु०) पाजामा देखो।

पायजेब (हिं० स्त्री०) पाजेब देखो।

पायठ (हिं० स्त्री०) पाइट देखो।

पायड़ा (हिं० पु०) पैंडा देखो।

पायताबा (फा० पु०) खोलीको तरहका पैरका एक पहनावा जिससे उंगलियोंसे ले कर पूरी या आधी टांगें ढकी रहती हैं, मोजा, जुर्राब।

पायदार (फा० वि०) बहुत दिनों तक टिकनेवाला, दृढ़, मजबूत।

पायदारी (फा० स्त्री०) दृढ़ता, मजबूती।

पायन (सं० क्ली०) पान।

पायनघाट—बरारके अन्तर्गत एक उपत्यका। इसी उपत्यकासे पूर्णानदी निकली है। यह अक्षा० २०° २७´ से २८° १०´ उ० तथा देशा० ७६° १०´ से ७८° पू० के मध्य अजंटागिरि और गाबगढ़ गिरिके मध्य अवस्थित है। अमरावती तक इस उपत्यकाका पृष्ठभाग क्रमो-न्नतावनत है। अमरावतीके बाद क्षुद्र गिरिमाला हो कर उत्तर-पश्चिमकी ओर यह फैली हुई है। पर्वतका सान्निध्य छोड़ कर पायनघाटका अन्यान्य स्थान अत्यन्त उर्वरा है। यहां जितनी नदियां हैं, पूर्णा छोड़ कर सभी ग्रीष्मकालमें सूख जाती हैं। शरत्कालमें यह

उपत्यका विविध शस्योंसे हरीभरी दीख पड़ती है, किन्तु ग्रीष्मकालमें वैसी शोभा नहीं रहती।

पायना (सं० स्त्री०) पा-णिच्-भावे युच् स्त्रियां टाप्। अस्त्रादिमें धार करना, शान देना। पान देखो।

पायना—युक्तप्रदेशके अन्तर्गत गोरखपुर जिलेकी देवरिया तहसीलका एक नगर। यह गोरखपुरसे ४ मील दक्षिण-पूर्व गोयरा नदीके बाएं किनारे अवस्थित है। इस स्थानके अनेक अधिवासी नौचालनकार्य करते हैं। यहांके अधिवासियोंमें राजपूत और अहीर प्रधान हैं। सिपाही-विद्रोहके समय पयनाके जमींदारोंने अंगरेजगवर्मेण्टका एक रसदपूर्ण वाष्पीय शकट लूट लिया था। इस कारण बृटिश सरकारने यह नगर उनसे छीन कर मजहौलके राजाको दे दिया।

पायपोश (हिं० पु०) पापोश देखो।

पायमाल (फा० वि०) १ पैरोंसे रौंदा हुआ। २ विनष्ट, बरबाद।

पायमाली (फा० स्त्री०) १ दुर्गति, अधोगति। २ नाश, बरबादी, खराबी।

पायरा (हिं० पु०) १ घोड़ेकी जीन या चारजामेके दोनों ओर लटकता हुआ पट्टा या तसमेमें लगा हुआ लोहेका आधार जिस पर सवारके पैर टिके रहते हैं, रकाब। २ एक प्रकारका कबूतर।

पायल (हिं० स्त्री०) १ नूपुर, पाजेब। २ बांसकी सीढ़ी। ३ तेज चलनेवाली हथनी। ४ वह बच्चा जन्मके समय जिसके पैर पहले बाहर हों।

पायस (सं० पु० क्ली०) पयसो विकारः अण्। १ परमान्न, खीर। हिन्दीमें यह शब्द स्त्रीलिङ्गमें माना गया है। दूधसे तैयार होनेके कारण इसका नाम पायस पड़ा है।

"पायसं परमान्नं स्यात् क्षीरिकापि तदुच्यते॥"

(भावप्र० पूर्वख०)

इसकी पाकप्रणाली—विशुद्ध घृतके साथ तण्डुल मिला कर उसे अर्द्धपक्व दुग्धमें सिद्ध करे। जब अच्छी तरह सिद्ध हो जाय, तब चीनी और घी डाल कर उसे उतार ले। यही विशुद्ध पायस है। इसका गुण—दुष्पाच्य, शरीरका उपचयकारक, बलवर्द्धक, विष्टम्भी और रक्तपित्त, अग्नि तथा वायुनाशक। (भावप्र०)

पाकराजेश्वरमें लिखा है—

'अतप्ततण्डुलो धौतः परिभृष्टो घृतेन च।
खण्डयुक्तेन दुग्धेन पाचितः पायसो भवेत्॥
पायसः कफकृद्बल्यो विष्टम्भी मधुरो गुरुः॥"

(पाकराजेश्वर)

अतप्त तण्डुलको अच्छी तरह धो कर घीमें भुन ले। पीछे उसे दुग्धमें पाक करनेसे ही पायस तैयार हो जायगा। यह कफकारक, बलकर, विष्टम्भी, मधुर और गुरु माना गया है। स्कन्दपुराणके अन्तर्गत काशीखण्डमें लिखा है, कि जो पितरोंके उद्देशसे भक्तिपूर्वक पायस, तिल और मधुसंयुक्त करके गङ्गाजलमें निक्षेप करते हैं उनके पितर सौ वर्ष तक परितृप्त रहते हैं और इस प्रकार परितृप्त हो कर विविध भोग प्रदान करते हैं।

"पितृनुद्दिश्य यो भक्त्या पायसं मधुसंयुतम्।
गुड़सर्पिस्तिलैः सार्द्धं गाङ्गाम्भसि विनिक्षिपेत्॥
तृप्ता भवन्ति पितरस्तस्य वर्षशतं हरे।
यच्छन्ति विविधान् कामान् परितुष्टाः पितामहाः॥"

(काशीख० २७ अ०)

(त्रि०) २ पयोविकार।

"कन्दुपक्वानि तैलेन पायसं दधिशक्तवः।
द्विजैरेतानि भोज्यानि शूद्रगेहकृतान्यपि॥"

(तिथितत्त्वधृत वराहपु०)

कन्दुपक्व, पायस, दधि और शक्तु ये सब द्रव्य शूद्रके गृहमें प्रस्तुत होने पर भी द्विजगण उन्हें खा सकते हैं।

इस वचनके अनुसार किसी किसीका कहना है, कि शूद्रप्रस्तुत पायस यदि ब्राह्मण भोजन करें, तो कोई दोष नहीं। लेकिन पायस शब्दका अर्थ है पयोविकार अर्थात् दुग्धका द्रव्य क्षीरादि। पायसका ऐसा अर्थ करनेसे कोई गोलमाल नहीं रहता। शूद्रगृहमें क्षीर आदि भोजनका निषेध नहीं है।

मनुमें लिखा है, कि पितृगण ऐसी सन्तानके लिये प्रार्थना करते हैं जो मघा त्रयोदशीमें पायस द्वारा श्राद्ध कर सके।

"अपि नः सकुले जायाद्यो नो दद्यात् त्रयोदशीं।
पायसं मधु सर्पिर्भ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च॥"

पायस द्वारा श्राद्ध करनेसे पितृगण एक वर्ष तक परितृप्त होते हैं।

"संवत्सरन्तु गव्येन पयसा पायसेन च।"

(मनु ३।२७१)

(पु०) ३ सलईका गोंद जो विरोजेकी तरहका होता है।

पायसिक (सं० त्रि०) पायसो भक्तिरस्य (अध्यात्मादिभ्यः पा ४।२।१०४) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या ठञ्। पायस भक्तियुक्त।

पाया (हिं० पु०) १ पलंग, कुरसी, चौकी, तख्त आदिमें खड़े डंडे या खंभेके आकारका वह भाग जिसके सहारे उसीका ढांचा या तल ऊपर ठहरा रहता है, गोड़ा, पावा। २ सीढ़ी, जीना। ३ स्तम्भ, खंभा। ४ पद, दरजा, ओहदा, रुतबा।

पायिक (सं० पु०) १ पदातिक, पैदल सिपाही। २ दूत, चर।

पायित (सं० त्रि०) पा-णिच्-क्त। पान दिया हुआ।

पायिन् (सं० त्रि०) पानकारी, पीनेवाला।

पायिनी—मलबार उपकूलमें पालमकोट्टानगरके निकट-वर्त्ती एक पुण्यक्षेत्र। पुष्करखण्डमें इसका माहात्म्य वर्णित है।

पायु (सं० पु०) पाति रक्षति शरीरं मलनिःसारणेनेति, (कृपावाजीति। उण् १।१) इत्युण्, ततः (आतो युक् चिण्-कृतो। पा ७।३।३३) इति युक्। १ मलद्वार, गुदा। पर्याय—अपान, गुद, च्युति, अधोधम, अलद्वार, त्रिवलीक, वलि। गर्भस्थित बालकके यह सप्तम मासमें होता है। पायु एक कर्मेन्द्रिय है। सांख्यके मतानुसार अहङ्कारसे इस इन्द्रियकी उत्पत्ति होती है।

"प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारस्तस्मादेकादशेन्द्रियाणि।"

(तत्त्वकौ०)

रजोगुणांशमें पायुकी उत्पत्ति होती है।

"रजोऽशैः पञ्चभिस्तेषां क्रमात् कर्मेन्द्रियाणि तु।
वाक्पाणपादपायूपस्थाभिधानानि जज्ञिरे॥" (पञ्चद०)

२ स्वनामख्यात भरद्वाजपुत्र। (त्रि०) ३ पालक।

पायुक्षालनभूमि (सं० स्त्री०) पायुक्षालनस्य भूमिः। वह स्थान जहां मलमूत्र त्याग किया जाता है, पाखाना।

पायुक्षालनवेश्मन् (सं० क्ली०) पायुक्षालनस्य वेश्म। मलमूत्र त्यागगृह, पाखाना।

पायुभेद (सं० पु०) चन्द्रग्रहणके मोक्षका एक प्रकार। इसमें मोक्ष या तो नैऋतकोण या वायुकोणमें होता है। यदि नैऋतकोणमें मोक्ष हो, तो उसे दक्षिण पायु-भेद और यदि वायुकोणमें हो तो वाम पायुभेद कहते हैं। इन दोनों प्रकारके मोक्षोंसे सामान्य गुह्यपीड़ा और सुवृष्टि होती है।

पाय्य (सं० क्ली०) मीयतेऽनेनेति मा-माने (पाय्यसान्नाय्येति। पा ३।१।१२९) इति निपातनात् पत्वं युगागमश्च। १ परिमाण। २ पान। ३ जल। (त्रि०) ४ निन्दनीय ५ पाययितव्य।

पार (सं० क्ली०) पारयतीति पार 'पचाद्यच्' इति अच्। १ परतीर, नदीका किनारा। (पु०) पूर्यतेऽनेनेति पृ-घञ्। २ पारद, पारा ३ प्रान्तभाग, छोर। ४ उद्धार। ५ ओर, तरफ।

पारक् (सं० पु०) सुवर्ण, सोना।

पारक (सं० त्रि०) पृ-पूर्त्तौ, पालने प्रीतौ व्यायामे च ण्वुल्। १ पूर्त्तिकारक, पूर्त्ति करनेवाला। २ पालन-कारक, पालन करनेवाला। ३ प्रीतिकारक, प्रीति करने-वाला। ४ पार करनेवाला। ५ उद्धार करनेवाला। ६ पटु, निपुण।

पारकाम (सं० त्रि०) जो दूसरे पार जाना चाहता हो।

पारक्य (सं० क्ली०) पर-स्मै लोकाय हितं, पर ष्यञ्, कुकच। १ परलोकहितकर्म, वह पुण्यकार्य जिससे परलोक सुधरता है। (त्रि०) २ परकीय, दूसरेका, पराया।

पारखद (हिं० पु०) पार्षद देखो।

पारखी (हिं० पु०) १ वह जिसे परख या पहचान हो, वह जिसमें परीक्षा करनेकी योग्यता हो। २ परीक्षक, जांचनेवाला, परखनेवाला।

पारग (सं० त्रि०) पारं गच्छतीति पार-गम-ड। (अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु डः। पा ३।२।४८) १ पारगामी, पार जानेवाला। २ समर्थ, कामको पूरा करनेवाला। ३ पूरा जानकार।

पारगत (सं० पु०) शास्त्रादेः अविद्याया वा पारं गतः।

१ जिन। (त्रि०) २ जिसने पार किया हो। ३ जिसने किसी विषयको आदिसे अन्त तक पूरा किया हो। ४ समर्थ। ५ पूरा जानकार।

पारघाट—पश्चिमघाटपर्वतस्थ एक गिरिसङ्कट। मालकम् नामक स्थानसे ५ मील पश्चिम पारपर और पेटपर नामके दो ग्राम हैं। इन्हीं दो ग्रामोंके निकटसे तथा प्रतापगढ़के ठीक दक्षिणसे यह गिरिसङ्कट आरम्भ हो कर निम्न पहाड़के ऊपरसे कोङ्कण प्रदेश तक चला गया है। पहाड़ पर इस पथकी वक्रगति होनेके कारण अंगरेज लोग इस गिरिसङ्कटको 'कर्कस्क्रु पास' (Corkscrew pass) कहते हैं। पहले इस राह हो कर गवादि पशु और कमान आदि जा सकती थीं। इस गिरिसङ्कटके भिन्न भिन्न स्थानोंमें शुल्क वसूल करनेका घर था। बीजापुर राज्यके मुसलमान सेनापति अफजलखाँ प्रतापगढ़में शिवाजीसे मुलाकात करनेके लिये इसी राह हो कर गए थे। कुमभरली और फिटजेरल्ड नामक गिरिसङ्कटमें रास्ता प्रस्तुत होनेके पहले कोङ्कण प्रदेश जानेका एकमात्र यही प्रधान पथ था।

पारङ्गल—एक गिरिपथ। यह पञ्जाबमें काङ्गरा जिलेसे ले कर लदाखके रूपशु तक विस्तृत है। यह अक्षा० ३२° ३१ उ० और देशा० ७८° १´ पू०के मध्य, समुद्रपृष्ठसे १४४०० फुट ऊंचे पर अवस्थित है। इस पथ हो कर चमरी गो और छोटे छोटे घोड़े जा सकते हैं।

पारचा (फा० पु०) १ टुकड़ा, खण्ड। २ कपड़ा, पट। ३ पोशाक, पहरावा। ४ एक प्रकारका रेशमी कपड़ा। ५ कुएंके मुंहके किनारे पर भीतरकी ओर कुछ बढ़ा कर रखी हुई पटिया या लकड़ी जिसके उस पारसे डोरी लटका कर पानी खींचा जाता है।

पारज (सं० पु०) पारयतीति पार कर्मसमाप्तौ णिच्-अजि (पारेऽजिः। उण् १।१३५) णिलोपः। सुवर्ण, सोना।

पारजायिक (सं० पु०) परजायां गच्छतीति परजाया-ठक् पारदारिक, परस्त्रीगामी।

पारटीट (सं० पु०) प्रस्तर, पत्थर।

पारण (सं० क्ली०) पार-भावे ल्युट् १ किसी व्रत या उपवासके दूसरे दिन किया जानेवाला पहला भोजन और तत्सम्बन्धी कृत्य। पारणा देखो। (पु०) पारयतीति पार-णिच्-ल्यु। २ मेघ, बादल। ३ ऋषिभेद। ४ तृप्त करनेकी क्रिया या भाव। ५ पूरा करनेकी क्रिया या भाव, समाप्ति, खातमा।

पारणा (सं० स्त्री०) पार-युच्-टाप्। उपवास व्रतके दूसरे दिनका प्रथम भोजन, व्रतान्त भोजन।

"पारणं पावनं पुंसां सर्वपापप्रणाशनम्।
उपवासांगभूतञ्च फलदं शुद्धिकारणम्॥
सर्वेष्वेवोपवासेषु दिवापारणमिष्यते।
अन्यथा फलहानिः स्यादृते धारणपारणम्॥" इत्यादि।
(ब्रह्मवैवर्त्त श्रीकृष्णजन्मख० ८ अ०)

पारण अतिशय पवित्र और पापप्रणाशक है। उपवासके बाद दिनको पारणा करनी होती है। पारणा नहीं करनेसे कुछ भी फल नहीं होता। रोहिणीव्रत (जन्माष्टमी) भिन्न अन्य सभी उपवासोंमें दिनको पारणा करनी चाहिये। रोहिणीव्रतमें रातको पारणा करनेसे भी महानिशामें कभी नहीं करनी चाहिये।

पूर्वाह्नमें देवता और ब्राह्मणोंकी अर्चना करके तब पारणा करनी चाहिये। जन्माष्टमीव्रतकी पारणाका विषय इस प्रकार लिखा है—अष्टमी और रोहिणीके रहते पारणा न करे। जब तक अष्टमी या रोहिणी रहेगी, उसके मध्य विशेषता यह है, कि यदि डेढ़ पहर रातके बीच तिथि और नक्षत्रका वियोग न हो, तो भी प्रातःकालमें उत्सवादि करके उसके बाद पारणा करे; उत्सव करके पारणा करना शास्त्रसम्मत है। डेढ़ पहरके बीच यदि इस प्रकार हो, तो भी पूर्वाह्नमें पारणा न करे।

महाष्टमीके उपवासका पारण। नवमीके दिन सवेरे मत्स्य और मांसादि द्वारा पारण करना शास्त्रसम्मत है। इस दिन ब्राह्मणको परितोषरूपसे भोजन करा कर पीछे आप भोजन करे।

"अष्टम्यां समुपोष्यैव नवम्यामपरेऽहनि।
मत्स्यमांसोपहारेण दद्यान्नैवेद्यमुत्तमम्॥
तेनैव विधिनाप्यन्तु स्वयं भुंजीत नान्यथा॥"
(तिथितत्त्व)

किन्तु स्त्रियोंको अष्टमीके पारणमें मांस खाना मना है, वे केवल मत्स्य द्वारा पारणा कर सकती हैं। क्योंकि

स्त्रियोंको मांस खाना शास्त्रमें निषिद्ध बतलाया है। रामनवमीको नवमीके दिन उपवास करके दशमीके दिन पारण करना होता है। एकादशीका उपवास करके द्वादशीके दिन पारणा विधेय है। द्वादशीका लङ्घन करके पारणा न करे, करनेसे विशेष अनिष्ट होता है। किन्तु द्वादशीका प्रथमपाद हरिवासर कहलाता है, इसीसे प्रथमपादका त्याग कर पीछे पारणा करे।

"महाहानिकरी ह्येषा द्वादशी लंघिता नृणाम्।"

विष्णुधर्मोत्तरमें—

"द्वादश्याः प्रथमः पादो हरिवासरसंज्ञितः।
तमतिक्रम्य कुर्वीत पारणं विष्णुतत्परः॥" (तिथ्यादितत्त्व)

श्रवणद्वादशीका पारणकाल—जहां तिथि और नक्षत्रके संयोगमें उपवास हो, वहां जब तक दोनोंका क्षय न हो जाय, तब तक पारण निषिद्ध है। किन्तु इसमें विशेषता यह है, कि यदि नक्षत्रकी वृद्धि हो, तो तिथिक्षयमें अर्थात् एकादशीके अपगममें पारण करे; द्वादशीका लङ्घन कभी भी न करे। शिवरात्रिके उपवासमें भी तिथिके अन्तमें पारण करना होता है।*

पारणके दिन निम्नलिखित बारह द्रव्य वैष्णवोंके लिये विशेष निषिद्ध हैं; कांसेके बरतनमें भोजन, मांस, सुरा, मधु, लोभ, मिथ्याभाषण, व्यायाम, सुरतक्रीड़ा, दिवानिद्रा, अञ्जन, शिलापिष्टवस्तु और मसूर।

सूरिसन्तोषमें लिखा है, कि चणक, कोरदूषक (कोद्रव), शाक और परान्न पारणाके दिनमें भक्षण नहीं करना चाहिये।†

पारणि (सं॰ पु॰) पारणस्य ऋषेरपत्यं इञ्। (पा ४।१।६१) पारण ऋषिका अपत्य।

पारणीय (सं॰ त्रि॰) पार-अनीयर्। पारयोग्य, पूरा करने लायक।

पारत (सं॰ पु॰) विविधव्याधि सङ्कटादिभ्यः पारं तनोतीति तन-ड। १ पारद। पारद देखो। २ जनपदभेद।

पारतन्त्र्य (सं॰ क्ली॰) परतन्त्रस्य भावः परतन्त्र-ष्यञ्। परतन्त्रता, पराधीनता।

पारत्रिक (सं॰ त्रि॰) परत्र भवं परत्र-ठक्। १ पारलौकिक, परलोकसम्बन्धी। २ परलोकभव, मरने पीछे उत्तम गति देनेवाला।

पारथ (हिं॰ पु॰) पार्थ देखो।

पारद (सं॰ पु॰) जरामरणसङ्कटादिभ्यः पारं ददातीति दा-क। धातुविशेष, पारा। पर्याय—रसराज, रसनाथ, महारस, रस, महातेजः, रसलेह, रसोत्तम, सुतराट्, चपल, जैत्र, शिवबीज, शिव, अमृत, रसेन्द्र, लोकेश, दुर्द्धर, प्रभु, रुद्रज, हरतेजः, रसधातु, स्कन्द, स्कन्दांशक, देव, दिव्यरस, रसायनश्रेष्ठ, यशोद, सूतक, सिद्धधातु, पारत, हरबीज, रजस्वल, शिववीर्य, शिवाह्वय।

गुण—क्रमि और कुष्ठनाशक, चक्षुका हितकर और रसायन। पारद भस्म होने पर उसका पूर्ण वीर्य तीन मास तक रहता है। राजनिघण्टमें पारदकी नामनिरुक्ति इस प्रकार लिखी है। विविधव्याधि और जरा मरणादि सङ्कटकालमें यह मानवगणको पार दान करता है, इसीसे इसका पारद नाम पड़ा।

"विविधव्याधिभयोदयमरणजरासंकटेऽपि मर्त्यानाम्।
पारं ददाति यस्मात्तस्मादयं पारदः कथितः॥"
(राजनि॰)

पारदकी उत्पत्तिके विषयमें भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है—महादेवका शुक्र पृथ्वी पर गिरा। उसी शुक्रसे पारदकी उत्पत्ति हुई है। शिवशरीरजात सारपदार्थसे उत्पन्न होनेके कारण इसका वर्ण श्वेत है।

---

* "श्रवणद्वादश्युपवासपारणकालः।
तिथिनक्षत्रसंयोगे उपवासो यदा भवेत्।
तावदेव न भोक्तव्यं यावन्नैकस्य संक्षयः।
विशेषेण महीपालश्रवणं वर्द्धते यदि।
तिथिक्षयेण भोक्तव्यं द्वादशीं नैव लंघयेत्॥"

† कांस्यं मांसं सुरां क्षौद्रं लोभं वितथभाषणम्।
व्यायामं च व्यवायं च दिवास्वप्नं तथाञ्जनम्॥
शिलापिष्टं मसूरांश्च द्वादशैतानि वैष्णवः।
द्वादश्यां वर्जयेन्नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥"

सूरिसन्तोष—
कांसं मांसमसूरं च चणकं कोरदूषकम्।
शाकं मधु परान्नञ्च त्यजेदुपवसन् स्त्रियम्॥"
(तिथ्यादितत्त्व)

यह शिववीर्योत्पन्न पारद वर्णभेदसे चार प्रकारका है, श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण। ये चार प्रकारके पारद यथाक्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहलाते हैं अर्थात् शुक्लवर्ण पारद ब्राह्मण, रक्तवर्ण पारद क्षत्रिय, पीतवर्ण पारद वैश्य और कृष्णवर्ण पारद शूद्र है। इन चार प्रकारके पारदोंके मध्य रोगनाशविषयमें श्वेतवर्ण पारद ही प्रशस्त है तथा रक्तवर्ण पारद रसायनमें पीतवर्ण पारद धातुभेदमें और कृष्णवर्ण पारद आकाश गति-साधन विषयमें हितकर हैं। रसेन्द्र, महारस, चपल, शिववीर्य, रस, सूत और शिवपर्य्यायक शब्द सभी पारदोंके नाम हैं। यह पारद मधुरादि छः रसयुक्त, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, रसायन, योगवाही, शुक्रवर्द्धक, चक्षुका हितकर, समस्त रोगनाशक और कुष्ठरोगमें विशेष हितकर है।

स्वच्छपारद ब्रह्मतुल्य, बद्धपारद जनार्दनसदृश और रञ्जितपारद स्वयं महेश्वर है। मूर्च्छित पारद रोगनाशक, बद्धपारद आकाशगतिसाधक तथा मारित पारद जरानाशक माना गया है। इसी कारण पारद अत्यन्त हितकर है। जो सब रोग असाध्य हैं, किसी भी प्रकारकी चिकित्सासे आरोग्य नहीं होते, वहां पारदके प्रयोगसे मनुष्य, हस्ती और अश्वके वे सब रोग बिलकुल दूर हो जाते हैं।

पारदमें स्वभावतः मल, विष, वह्नि, प्रस्तर, चाञ्चल्य, वङ्ग और नाग ये सब दोष अवस्थित हैं। पारदके ये सब दोष परिहार किये बिना सेवन करनेसे मलदोषसे मूर्च्छा, विषदोषसे मृत्यु, अग्निदोषसे अति कष्टतम गात्रदाह, प्रस्तरदोषसे शरीरकी जड़ता, चाञ्चल्यदोषसे वीर्यनष्ट, वङ्गदोषसे कुष्ठ और नागदोषसे षण्डता होती है। इसी कारण पारदशोधन करना सर्वतोभावमें विधेय है।

पारदमें वह्नि, विष और मल ये तीनों ही दोष प्रधान हैं। इन तीनों दोषोंसे यथाक्रम सन्ताप, मृत्यु और मूर्च्छा उत्पन्न होती है। वैद्योंने पारदके अन्यान्य दोष भी वर्णन किये हैं, किन्तु उक्त तीनों ही दोष विशेष अनिष्टजनक हैं। जो मनुष्य पारदका दोष संशोधन किये बिना ही सेवन करते हैं, उनके अतिकष्टकर रोग और शरीरका विनाश होता है। (भावप्र० पूर्वख०)

यह धातु अतिप्राचीनकालसे प्रचलित है। यह अकसर तरल अवस्थामें ही देखा जाता है। पारद-खानके मध्य स्पेनदेशके अलमाडेन नामक स्थानमें कार्णिवलाय इद्रियकी खान सर्वापेक्षा विख्यात है। इंग्रो, ट्रान्सलभेनिया और जर्मनीके अन्तर्गत डिउवाएटस् नामक स्थानमें भी पारदकी खान हैं। एक समय चीन और जापानमें यथेष्ट पारद मिलता था।

पाश्चात्य पदार्थवित् प्लीनीका कहना है, कि कालियस नामक एक अथेनीयने ५०५ ई०में पारदसे हिङ्गुल प्रस्तुत करनेकी प्रथाकी आविष्कार की। प्लीनीने अलमादनकी पारदखानका विषय उल्लेख किया है। ला प्ले (La Play) नामक एक फरासी भूतत्त्ववित्ने इस खानका परिदर्शन किया था। उन्होंने यह भी लिखा है कि यहां ७०० मनुष्य कार्यमें नियुक्त थे और प्रतिवर्ष २२४४००० पौंड पारद खानसे निकाला जाता था।

पारद जब खानसे निकाला जाता है, उस समय उसमें गन्धक लौह रजत आदि धातु मिश्रित रहती हैं। पीछे सब धातु पृथक् पृथक् कर ली जाती हैं। पारदको अन्यान्य धातुसे पृथक् करनेके लिये विविध उपाय अवलम्बित हुआ है।

अपरिष्कृत पारदको लौहके साथ किसी आवृत पात्रके मध्य रख कर धूपमें छोड़ देते हैं। गरमी पा कर गन्धक लोहेके साथ मिल जाती है और पारद अलग हो जाता है।

पारद तरल और चाँदीके जैसा सफेद होता है। यह गन्ध और स्वादविहीन है तथा वायुके स्पर्शसे बहुत ही कम विकारयुक्त होता है, जलस्पर्शसे तो वह भी नहीं। इसका आपेक्षिक गुरुत्व १३.५६८ है। यह ६७०° तापमें खौल उठता और ४०° डिग्रीमें जम जाता है। कठिन अवस्थामें इससे सीसकको तरह आवाज निकलती है और यह छुरीसे काटा जाता है।

पारद ताप और विद्युत्का परिचालक है, किन्तु अति अल्प परिमाणमें ताप सह्य कर सकता है। ३२°से २१२° डिग्री तक तापके संयोगसे पारद समपरिमाणमें वर्द्धित होता है। विशुद्ध अवस्थामें इसके अल्पपरिमाणमें

रहनेसे वह गोलाकृति धारण करता है। अपरिष्कृत पारद परिश्रुत कर लेनेसे विशुद्ध होता है। कभी कभी तो यह नाइट्रिक एसिडके संयोगसे विशुद्ध किया जाता है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि खानमें पारद प्रायः गन्धकके साथ मिला रहता है। इस मिश्रित पदार्थको हिङ्गुल कहते हैं।

बाजारमें जो सब पारद बिकते हैं, वे हिङ्गुलसे संग्रहीत होते हैं। भारतवर्षमें पारदको खान अधिक नहीं है। नेपालमें कहीं कहीं इसकी खान देखी जाती है। अधिकांश पारद चीन और स्पेनदेशसे यहां आता है। हिङ्गुल सफेद और लाल होता है। नाइट्रिक वा हाइड्रोक्लोरिक एसिड इसके ऊपर कोई काम नहीं करता, किन्तु दोनों एसिड मिल कर हिङ्गुलके १०० भागमें १४·२५ भाग गन्धक और ८५ भाग पारद है।

क्लोरिनके मिश्रणसे जो पारद प्राप्त होता है, उसे क्लोराइड-आव-मर्करी वा हर्नमर्करी कहते हैं। क्लोराइड आव मर्करीमें १०० भागके मध्य क्लोरिन १४·८८ और पारद ८५·११ भाग है।

इसके अतिरिक्त पारद रजत, आयोडिन, सिलेनाइड आदि पदार्थोंके साथ मिश्रित अवस्थामें पाया जाता है। पारद अत्यन्त प्रयोजनीय धातु है। यह अनेक कार्यों में व्यवहृत होता है। दर्पन बनाने, खनिज स्वर्ण और रौप्यको विशुद्ध करने, कलई करनेमें तथा अनेक रोगों-में भी इसका व्यवहार होता है।

पारदमें रोगनाशक शक्ति है, यह भारतवर्ष, अरब और पारस्यदेशके लोग बहुत पहलेसे ही जानते हैं। ये लोग यह भी स्वीकार करते हैं, कि पूर्वदेशीय लोग सबसे पहले पारदका महाव्याधि प्रभृति चर्मरोग चिकित्सामें व्यवहार करते थे। अरब वा भारतवर्षके लोगोंने इस गुणका सबसे पहले आविष्कार किया था वा नहीं, वह आज तक भी स्थिर नहीं हुआ है। यूरोपमें पन्द्रहवीं शताब्दीके शेष भागमें पारदका व्यवहार पहले पहल औषधमें किया गया।

सबसे प्राचीन संस्कृत चिकित्साग्रन्थ चरकमें पारद-का उल्लेख देखा जाता है। चरकने पारदके बदलेमें 'रस' शब्दका व्यवहार किया है, किन्तु रस शब्दका अर्थ पारद है वा नहीं, इसमें बहुतोंको सन्देह है। आठवीं शताब्दीमें इस देशके चिकित्सकोंको 'पारद' शब्दका व्यवहार करते देखा जाता है।

यूरोपीय चिकित्सक अनेक रोगोंमें पारदका प्रयोग करते हैं। पारद और पारदसे जो सब मिश्रपदार्थ उत्पन्न होते हैं, उन्हें शरीरमें लगनेसे कुछ काल तक किसी प्रकारको जलन नहीं होती, पर बाह्यप्रयोग करने-में पारदघटित वीर्यवान् औषधोंका बहुत होशियारीसे व्यवहार करना कर्त्तव्य है। क्षतरोगमें पारदसे प्रस्तुत औषधका प्रयोग करनेसे चार प्रकारके फल उपस्थित होते हैं। यह सङ्कोचक, प्रदाहनाशक, उत्तेजक और पचननिवारकका कार्य करता है। पारदका बाह्य और आभ्यन्तरिक प्रयोग होता है। पारद अन्यान्य धातु और मूलपदार्थके साथ मिश्रित रहता है, यह पहले ही कहा जा चुका है।

कच्चे पारदको ब्लू पिल प्रस्तुत करनेमें जरूरत पड़ती है। ब्लूपिल जुलाबके लिये व्यवहृत होता है। उपदंश-रोगमें ब्लू पिलका कुनैन और अफीमके साथ रोगीको सेवन कराया जाता है। ब्लू पिलका कई दिन तक लगा-तार व्यवहार करनेसे दाँतकी जड़ सूज जाती है और मुखसे राल टपकने लगती है। ऐसी अवस्था होनेसे पारदका सेवन बन्द कर देना उचित है। पहले ब्लू पिल पित्तनिःसारक माना जाता था, किन्तु अभी परीक्षा द्वारा यह स्थिर हुआ है, कि पारदके व्यवहारसे पित्तनिःसा-रणका परिमाण अल्प हो जाता है। पर हाँ, इसका व्यवहार करनेसे शरीरके अन्यान्य यन्त्रोंके कार्यावरोधक दूषित पदार्थ देहसे निकल आते हैं। ब्लूपिलके व्यवहार-से अत्यन्त यातनाप्रद प्रदाह नष्ट होता है। एतद्व्यतीत यकृत और मूत्रग्रन्थिके सङ्कुचित होने पर इसका प्रयोग विशेष लाभदायक है। उपदंश, शोथ आदि रोगोंमें ब्लू पिल व्यवहृत होता है।

अत्यन्त दुर्बलावस्थामें, अवसन्नावस्थामें अथवा रोग जब अत्यन्त पुरातन हो जाय, वैसी अवस्थामें ब्लू पिल-का प्रयोग निषिद्ध है।

ब्लू पिलका अधिक मात्रामें सेवन करनेसे मुखसे राल

बहुत निकलती हैं, रक्त कम हो जाता है, शरीरमें फोड़े निकल आते हैं तथा पक्षाघात आदि स्नायविक विकार आविर्भूत होते हैं। केवल एक ब्ल पिलका सेवन करने से किसी किसीके मुखसे राल निकलती है। इस ब्ल पिल-का बड़ी सावधानीसे व्यवहार करना कर्त्तव्य है।

कच्चे पारेसे ग्रेपाउडर नामक और एक प्रकारकी औषध बनती है। यह औषध बनानेमें २ औंस खड़ी और १ औंस पारा ले कर घिसना होता है। पीछे घिसते घिसते जब पारदविन्दु अदृश्य हो जाय, तब यह औषध तैयार होती है। यह औषध अत्यन्त प्रयोजनीय है। जहां पारदघटित अन्यान्य औषधोंका व्यवहार नहीं किया जा सकता; वहां ग्रेपाउडरका प्रयोग किया जाता है। इसकी मात्रा १से ३ ग्रेन तक है। ग्रेपाउडर धातु-परिवर्त्तक और मृदुविरेचक है। इसके अतिरिक्त यह यकृतविकार और चर्मरोगमें व्यवहृत होता है।

पारद और क्लोरिनके संयोगसे जो दो पदार्थ उत्पन्न होते हैं। उनमेंसे एकका नाम पारक्लोराइड आव-मर्करी और दूसरेका नाम सबक्लोराइड आव मर्करी वा कैलोमेल है।

पारक्लोराइड-आव-मकरी अत्यन्त पचननिवारक और पारदघटित औषधोंकी अपेक्षा वीर्यवान् है। १००० भाग जलके साथ १ भाग पारक्लोराइड मिला कर क्षतस्थान साफ किया जाता है। इस लोशनका उपदंशजनित क्षतमें व्यवहार करनेसे भारी उपकार होता है। इसके सिवा इससे दाद भी धोई जाती है। उपदंश और किसी किसी उदरामयरोगमें इसका आभ्यन्तरिक प्रयोग होता है।

कैलोमेलका वाह्य और आभ्यन्तरिक प्रयोग किया जाता है। आभ्यन्तरिक प्रयोगमें अतिविरेचक, धातुपरि-वर्त्तक और उपदंशविषनाशक है। यह सफेद चूर्णके जैसा होता है और इसमें कोई स्वाद तथा गन्ध नहीं रहती है। यह अति सुन्दरविरेचक, मूत्रकारक और यकृतके कार्यकी वृद्धि करता है। कैलोमेलका अफीमके साथ मिला कर वातरोग और आभ्यन्तरिक प्रदाहमें प्रयोग किया जाता है। इसका दो वा तीन दिनसे अधिक व्यवहार करना उचित नहीं। अधिक दिन व्यवहार करनेसे मुख हो कर राल निकलती है। मस्तिष्कविकार में, वातश्लेष्मरोगमें और प्लेगमें कैलोमेल कभी कभी रोगीको सेवन कराया जाता है। आन्त्रीयज्वर (Typhoid fever)-के प्रथम सप्ताहमें यदि कैलोमेल दो वा तीन बार सेवन कराया जाय, तो ज्वरका प्रकोप बहुत घट जाता है। चर्मरोगमें कैलोमेलका मलहम करके प्रयोग करनेसे उपकार होता है। छोटे छोटे बच्चोंके पक्षमें कभी कभी कैलोमेलका सेवन अत्यन्त उपकारी है। १से २ ग्रेन कैलोमेल शर्कराके साथ जिह्वाके अग्र-भाग पर लगाना होता है। पर हां, अधिक मात्रामें सेवन करानेसे अनिष्ट होता है, अर्थात् उससे लीह खराब हो जाता है।

पारद क्लोरिन व्यतीत अम्लजन, आयोडिन, आमो-निया आदि पदार्थोंके साथ संयुक्त रहता है। इस मिश्रित पदार्थका उपदंश और चर्मरोगमें व्यवहार किया जाता है।

पारदघटित औषध बहुत सावधानीसे व्यवहार करना कर्त्तव्य है। यदि रोगी अत्यन्त दुर्बल वा रक्त-हीन हो जाय, तो इसका सेवन बिलकुल निषिद्ध है। यद्यपि यह उपदंशरोगमें अधिक परिमाणमें व्यवहृत होता है, तो भी प्रलयकालमें रोगीकी अवस्था पर अच्छी तरह विचार कर इसका व्यवहार करना कर्त्तव्य है। पारदघटित औषध अधिक दिन तक सेवन करानेसे बच्चोंके दांत खराब हो जाते हैं।

रसेन्द्रसारसंग्रहमें पारदका विषय इस प्रकार लिखा है—रसके मध्य पारद सबसे श्रेष्ठ है। तत्त्वविदों-ने साध्य और असाध्यरोगमें पारदकी व्यवस्था की है। इसीसे अन्यान्य धातुओंकी अपेक्षा पारद श्रेष्ठ है। इनमें-से भस्म पारद जरा और व्याधिनाशक, मूर्च्छित पारद व्याधिघातक माना गया है। रसेन्द्र, पारद, सूत, सूत-राज, सूतक, शिवतेज: और रस ये सात पारदके नामा-न्तर हैं। किसी किसीके मतसे पारदके नाम ये हैं— शिवबीज, रस, सूत, रसेन्द्र और शिवपर्यायक शब्द।

पारदका लक्षण।—जिस पारदका अन्तर्भाग सुनील तथा वहिर्भाग उज्ज्वल हो और मध्याह्न सूर्यकी किरणके जैसा चमके उसी पारदको औषधके लिये ग्रहण करना

चाहिये। जो पारद धूम्रवर्ण, जिसका वहिर्भाग पाण्डुवर्ण अथवा जो नाना वर्णोंसे रञ्जित हो, वह औषधमें प्रशस्त नहीं है। पारदका जब तक शोधन न किया, तब तक उसका व्यवहार बिलकुल मना है। क्योंकि पारदमें सीसक, रङ्ग, मल, वह्नि, चाञ्चल्य, विष आदि दोष रहते हैं जिनसे व्रण, कुष्ठ, दाह, जाड्य, वीर्यनाश, मृत्यु और स्फोट आदि रोग हो सकते हैं।

इस कारण चिकित्सकोंको चाहिये, कि वे पहले पारदका भलीभांति संशोधन करके तब प्रयोग करें। विशुद्ध पारद अमृतके समान और दोषयुक्त पारद विषके समान है। निर्दोष पारदसे जरा, व्याधि, यहां तक कि मृत्यु भी रुक जा सकती है। अतः पारदका पहले शोधन कर लेना अवश्य कर्त्तव्य है।

पारदशोधन।—शुभ नक्षत्रमें ८०० तोला वा ४००, २००, ८५ वा ४० तोला विशुद्ध पारद ग्रहण करके शोधन करे। ८ तोलेसे कम पारदशोधन वैद्यशास्त्रानुमोदित नहीं है। किसी किसीका कहना है, कि औषध प्रस्तुत करनेमें जितने पारदकी आवश्यकता हो उतना पारद शोधन किया जा सकता है। विज्ञचिकित्सक विशुद्ध दिनमें भक्तिपूर्वक विष्णुका स्मरण करके कुमारी और वटुकार्चन करे। पीछे चार अङ्गुल परिमित गभीर लौह वा पाषाणनिर्मित दृढ़ खलमें निज मन्त्रसे रक्षा विधान करके अनन्य चित्तसे पारदशोधन करे। पारदशोधनमें निम्नलिखित रक्षामन्त्रसे रक्षाकार्य करना होता है। मन्त्र—

"अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोर तरेभ्यश्च।
सर्वतः सर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः॥"

पारदको तप्तखल्लविधि।—छागविष्ठा और तुषको अग्निगर्त्तके मध्य रख कर उसके ऊपर खल्लस्थापन करे, इसीको तप्तखल्ल कहते हैं।

पारदकी निगड़।—अकवन और थूहरके दूध, पलाशबीज, गुग्गुल और त्रिगुणसैन्धव लवणके साथ पारद मर्दन करना होता है। यही पारदकी श्रेष्ठ निगड़ है।

पारदकी साधारण शुद्धि।—पारदमारणद्रव्यके चूर्णको षोड़शांश पारदमें मिला कर प्रत्येक द्रव्य प्रतिदिन सात बार करके मर्दन करे। यही साधारणशुद्धि है।

पारदका विशेष शोधन।—मेषरोम, हरिद्रा, इष्टकाचूर्ण, कालिख इन सब द्रव्योंसे पारदको एक दिन मर्दन करके कांजीसे धो डाले। इससे पारदका नागदोष जाता रहता है। इस प्रकार गंगेरन और आकड़ाचूर्णसे वङ्गदोष, सोनालुचूर्णसे मल, चीताचूर्णसे वह्निदोष, कृष्णधुस्तूरचूर्णसे चाञ्चल्यदोष, त्रिफलाचूर्णसे विषदोष, त्रिकटुचूर्णसे गिरिदोष और गोक्षुरचूर्णके साथ मर्दन करनेसे असह्य अग्निदोष नष्ट होता है। प्रत्येक दोषमें तद्दोषनिवारकचूर्ण षोड़शांश और घृतकुमारीके साथ मर्दन करके उष्ण कांजी द्वारा मृत्पात्रमें प्रक्षालन करे। ऐसा करनेसे सभी पारद दोषवर्जित और विशुद्ध हो जाते हैं।

पारदशोधन विषयमें अनेक मत हैं जो संक्षिप्त भावमें नीचे दिये जाते हैं।

मतान्तर—श्वेतचन्दन, देवदारु, काकजङ्घा, जयन्ती, तालमूली और घृतकुमारीके रसमें एक दिन मर्दन, पीछे उसे यन्त्रपातन करके औषधार्थ पारदका प्रयोग किया जा सकता है।

मतान्तर—हरिद्राचूर्ण और घृतकुमारीके रसमें पारेको एक दिन मर्दन करके यन्त्रपातन करनेसे पारद विशुद्ध होता है।

मतान्तर—पारदका द्वादशांश गन्धक और पारदको एक साथ मिश्रित करके जंबीरी नीबूके रसमें दोपहर तक मर्दन करे, पीछे सात बार यन्त्रपातन करनेसे पारद विशुद्ध होता है।

अन्यप्रकार—जयन्ती, एरण्ड और अदरक प्रत्येकका रस क्रमशः सात सात बार प्रदान करके जब तक वह सूख न जाय, तब तक मलते रहे। पीछे मट्टीके बरतनमें कांजीसे प्रक्षालन करनेसे वह विशुद्ध होता है। इस प्रकार शोधित पारद औषध प्रस्तुत कालमें प्रशस्त है।

मतान्तर—हरिद्रा, इष्टक, कालिख और कांजी इन सब द्रव्योंके साथ पारद मर्दन करके पीछे मेषरोम, हरीतकी, आमलकी, बहेड़ा, चीता, घृतकुमारी, सोंठ, पीपर और मिर्चके साथ मर्दन करनेसे पारद विशुद्ध होता है।

घृतकुमारीका रस, चीतेका क्वाथ और काकमाचिका-का रस इन सब द्रवोंसे एक एक दिन मर्दन करनेसे पारद विशुद्ध होता है।

अन्यप्रकार—लहसुनके रस, पानके रस अथवा त्रिफलाके क्वाथके साथ मर्दन करके कांजीमें धोनेसे पारदका सब दोष दूर हो जाता है।

पारद ऊर्ध्वपातन, अधःपातन और तिर्यक्‌पातन आदि द्वारा विशुद्ध होता है।

ऊर्ध्वपातन यथा—तीन भाग पारद और एक भाग ताम्रचर्ण को मिला कर जम्बीरी नीबूके रसमें मर्दन करके पिण्डाकार बनावे। पीछे निम्नभाण्डमें उस पिण्डको रख कर ऊर्ध्वभाण्डके नीचे द्रवलेपनपूर्वक उसके ऊपर जल दे और सन्धिस्थानको दृढ़बद्ध करके अग्नितत्ताप-से पारद आहरण करे। नीचेकी ओर ताम्रसह वङ्गादि दोष गिर पड़ेगा और ऊपरकी ओर सप्तकञ्चुकवर्जित निर्मल पारद उठ आयेगा। इस प्रक्रियासे पारद ऊपर-की ओर उठता है, इसी कारण इसका नाम ऊर्ध्वपातन पड़ा है।

अधःपातन—गन्धक और जम्बीरी नीबूके रसके साथ पारद एक दिन मर्दन कर पहले पिण्डा-कार बनावे। बाद शुकशिम्बा, सोहिञ्जन, अपा-मार्ग, सैन्धवलवण, श्वेतसर्षप इन सब द्रव्योंको एक साथ पीस कर उसके साथ मिलावे। अनन्तर ऊर्ध्वभाण्डके मध्यभागमें लेप दे कर अधोभाण्डमें जल दे। पीछे दोनों भाण्डके सन्धिस्थलमें लेप दे कर गर्त्तके मध्य उस यन्त्रको रखे और ऊपरी भाग पर अग्नि दे कर पुट दे। ऐसा करनेसे पारद ऊपरसे नीचे जलमें गिरता है। नीचेकी ओर पारेके गिरनेसे इसे अधःपातन कहते हैं।

तिर्यक्‌पातन—एक घड़ेमें पारा और दूसरे घड़ेमें जल रख कर दोनोंको तिर्यक्‌भावमें एकत्र करे। पीछे मुखसन्धिमें लेप दे कर पारदपूर्ण घड़ेके नीचे आंच दे। ऐसा करनेसे पारा तिर्यक्‌भावमें जलके मध्य गिरता है और इसका तिर्यक्‌पातन नाम पड़नेका यही कारण है।

पारदका बोधन—पारेके साथ सीसा और रांगा मिला रहता है। यह दोष विविध पातन द्वारा दूर हो जाता है। इन सब प्रक्रियाओंसे कहीं कहीं निद्रित पारद षण्ढत्वको प्राप्त होता है। इस दोषका नाश करनेके लिये बोधन आवश्यक है। नारियलकी खोपड़ी अथवा कांचके बरतनमें पारा रख कर जलाप्लुत करे। पीछे गजहस्त परिमाणके गर्त्तमें तीन दिन तक रखनेसे पारेका षण्ढत्व दोष दूर हो जाता है।

पारा अष्टकर्म द्वारा विशुद्ध होता है। अष्टकर्म ये है—स्वेदन, मर्दन, उत्थापन, पातन, बोधन, नियामन और दीपन। हिङ्गुलोत्थित पारदग्रहणको जगह जंबीरी और कागजी नीबूके रसमें एक दिन तक हिङ्गुल मर्दन करके ऊर्ध्वपातन यन्त्रसे विशुद्ध पारद ग्रहण करे। यह पारद नाग और वङ्गादि दोष रहित तथा रसकर्ममें प्रशस्त है।

हिङ्गुलाकृष्ट पारद—हिङ्गुलको खण्ड खण्ड करके मृत्पात्रमें रखे और तीन दिन तक जम्बीरी नीबूके रसमें भावना दे। पीछे अमलोनीके रसमें सात बार भावना दे कर जम्बीरी और चांगेरी नीबूके रसमें डुबो दे और हांड़ी-के मध्य रख दे। इसके बाद हांड़ीको पेंदीमें खड़ी लगा कर ऊपरसे ढक्कन रख दे और सन्धिस्थानमें लेप करे। पीछे हांड़ीके नीचे आंच और ऊपरवाले बरतनमें शीतल जल दे। जलके उष्ण हो जाने पर उसे फेंक दे और बार बार शीतल जल देते रहे। इस प्रकार तीस बार करनेका नियम है। इससे निर्मल पारा ऊर्ध्वपतित हो कर जब खड़ी लगे हुए बरतनमें संलग्न हो जाय, तब उसे ग्रहण करे। यह पारद सीसकादि दोषहीन और सकल गुणसम्पन्न है। इस पर कोई कोई कहते हैं, कि पलता मदार और जम्बीरी नीबूके रसमें एक एक प्रहर तक हिङ्गुलको मर्दन करके ऊर्ध्वपातनयन्त्रमें पारद ग्रहण करे।

पारदकी मूर्च्छना।—गन्धक और पारदको मर्दन कर कज्जली करे। घनचापल्यादि दोषरहित होनेसे उसे मूर्च्छित पारद कहते हैं।

मृतपारद वा पारदभस्म।—पारद १६ तोला, गन्धक ८ तोला इन्हें घृतकुमारीके रसमें एक दिन मर्दन कर भूधरयन्त्रमें एक दिन तक पुटपाक करनेसे पारद मृत होता है।

मतान्तरसे—पानके रसमें पारदको मर्द न कर कर्कटाके खोलमें उसे भर दे और वस्त्रके ऊपर मट्टीका लेप दे कर एक दिन गजपुट प्रदान करनेसे पारद मृत होता है। यह भस्मपारद योगवाही और सभी कार्योंमें प्रयोज्य है।

अन्यप्रकार—पारद तीन भाग, गन्धक तीन भाग, सीसक दो आना भर इन्हें एकत्र कर बोतलमें रखे। पीछे मट्टी मिले हुए वस्त्रसे बोतलमें लेप दे कर खड़ीसे मुंह बन्द कर दे। अनन्तर बोतलको हाँड़ीके मध्य रख कर उस हाँड़ीको बालूसे भर दे और तीन दिन तक आंच दे। बादमें बन्धूकपुष्प सदृश अरुणवर्ण पारद भस्मका ग्रहण कर सभी रोगोंमें प्रयोग करे।

पारदभस्म—सोहागा, मधु, लाचा, मेषरोम और भृङ्गराजरस इन सब द्रव्योंके साथ पारेको एक दिन मर्दन कर बालुकायन्त्रमें एक दिन सम्पुट करे। ऐसा करनेसे विशुद्ध कपूर सदृश भस्म उत्पन्न होती है।

पारदभस्म—श्वेत, पीत वा कृष्ण यही तीन प्रकारकी पारदभस्म होती है। पारदकी श्वेतभस्मको सुधानिधिरस वा रसकपूर कहते हैं। पांशुलवण और सैन्धव लवणको पारेके साथ मिला कर थूहरके दूधमें बार बार मर्दन करे। पीछे उसे लोहेके बरतनमें रख कर खड़ीसे मुंह बन्द कर दे और लवणपूर्ण भाण्डके मध्य उसे रख कर एक दिन तक आंच देते रहे। ऐसा करनेसे उसका वर्ण कुन्द वा चन्द्रसदृश हो जाता है, इसीको पारदकी श्वेतभस्म कहते हैं। प्रातःकालमें लवङ्गके साथ ४ रत्ती भर इसका सेवन करनेसे दो प्रहरके मध्य ऊर्ध्व विरेचन होता है। इसमें पुनः पुनः शीतल जलसेचन विधेय है।

पीतभस्म पारद—समान अंश पारद और गन्धक हस्तिशुण्डलता तथा भूम्यामलकीके रसमें सात दिन तक मर्दन कर मूषावद्धपूर्वक बालुकायन्त्रमें धीमी आँचसे दिन रात पाक करे। ऐसा करनेसे पारदकी पीतभस्म प्रस्तुत होती है। इस भस्मका रत्ती भर परिमाणमें पानके साथ सेवन करनेसे क्षुधा, सब प्रकारके उदररोग, अङ्गभङ्गादि दोष और जराका नाश होता है। इसे कोई कोई सर्वाङ्गसुन्दर कहते हैं।

कृष्णभस्म पारद—समान भाग धान्याभ्र और पारदको आदा द्रवरसमें एक दिन तक मर्दन करके उसको कल्कमें वस्त्रका लेप दे। पीछे बत्ती प्रस्तुत करके उसे बार बार रेंडीके तेलसे सींचते रहे। बादमें आँच दे कर उस अधःपतित द्रव पदार्थको किसी बरतनमें रखे और नियामक द्रव्यसे एक दिन मर्दन कर कन्दुकाख्य-यन्त्रमें पातन करे। इस प्रकार पारदकी कृष्णभस्म प्रस्तुत होती है। इसका रोगविशेषमें प्रयोग करनेसे बड़ा ही उपकार होता है।

पारदसेवनसे बुद्धि, स्मृति, प्रभा, कान्ति और वर्ण आदिकी वृद्धि होती है। पारदसेवीके लिये ककाराष्टक द्रव्य अर्थात् कुष्माण्ड, ककड़ी, कलमी, कलिङ्ग, करेला, कुसुम्बिका, कर्कटा और काकमचिका ये ८ प्रकारके द्रव्य विशेष निषिद्ध हैं। (रसेन्द्रसारसंग्रह)

भावप्रकाशमें लिखा है, कि स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, ऊर्ध्वपातन और अधःपातन प्रभृति द्वारा पारद संशोधित होता है।

पारदका स्वेदन नाना प्रकारका है। धान ले कर उसकी भूसी अलग फेंक दे। पीछे उसे जलके साथ किसी एक मट्टीके बरतनमें रख छोड़े। अनन्तर जब उसमें अम्लरसका स्वाद आ जाय, तब उसमें भृङ्गरस, मुण्डि, श्वेतापराजिता, पुनर्णवा ब्राह्मीशाक, गन्धनाकुलि, महाबला, शतावरी, त्रिफला, नीलापराजिता, हंसपदी और चीता ये सब द्रव्य एकत्र कूट कर डाल दे। इसे धान्याम्ल कहते हैं। यह धान्याम्ल पारदके स्वेदनादि सभी कार्योंमें व्यवहृत होता है। धान्याम्लके अभावमें अत्यन्त अम्लभावापन्न आरनालका भी प्रयोग किया जा सकता है।

सोंठ, पीपर, सैन्धव, रायसरसों, हरिद्रा, हरीतकी, बहेड़ा, आमलकी, अदरक, महाबला, नागबला, नट नामक शाक, पुनर्णवा, मेषशृङ्ग, चीता और निशादल ये सब द्रव्य समान भागमें ले कर चाहे सबोंको एक साथ मिला दे या नहीं मिलावे, धान्याम्लके साथ पीस कर उसके चूर्णसे अङ्गुलिपरिमित वस्त्रलेपन करे। पीछे वस्त्रके मध्य पारद रख कर बांध दे। अनन्तर एक पात्रमें अम्ल भर कर दोलायन्त्रमें पारदकी तीन दिन तक पाक करनेसे ही स्वेदन सिद्ध होगा।

अन्यविध—मूलक, चीता, सैन्धव, सोंठ, पीपर, मिर्च, अदरक, सरसों ये सब द्रव्य तथा पारदका सोलहवाँ भाग ले कर एक टुकड़े कपड़ेमें बांध दे। पीछे उसे कांजीके मध्य डाल कर दोलायन्त्रमें एक दिन तक पाक करनेसे पारदका स्वेदन होता है। पारद स्वेदन द्वारा तीव्र और मर्दन द्वारा निर्मल हो जाता है।

पारदका मर्दन।—पहले पारद-चूर्ण और सुरखी द्वारा, पीछे दधि, गुड़, सैन्धव, सरसों और कालिख द्वारा पारदको मर्दन करे। अन्य प्रकार—घृतकुमारी, चीता, सरसों, वृहती और त्रिफलाका क्वाथ ये सब द्रव्य एकत्र कर पारदके साथ तीन दिन तक मर्दन करनेसे पारेका समस्त मल दूर हो जाता है।

पारदका मूर्च्छन।—सोंठ, पीपर, मिर्च, हरीतकी, बहेड़ा, आमलकी, बन्ध्याकन्द, वृहती कण्टकारी, चीता, अर्णा, हरिद्रा, यवक्षार, घृतकुमारी, अकवन और धतूरेके पत्तोंका रस अथवा इन सब द्रव्योंका काढ़ा करके उससे पारदको सात बार मर्दन करे। इसी प्रकार पारदका मूर्च्छन होता है। इससे पारदके सभी दोष निराकृत होते हैं।

ऊर्ध्वपातन।—तूतिया, स्वर्णमाक्षिक और घृतकुमारीके रस द्वारा पारदको इस प्रकार मर्दन करे कि पारद पृथक् रूपसे दृष्टिगोचर न हो। पीछे विद्याधर यन्त्रमें उसका ऊर्ध्वपातन करे।

अधःपातन।—त्रिफला, सोहिञ्जन, चीता, सैन्धव और सरसों इन सब द्रव्यों द्वारा क्वाथ प्रस्तुत करके उसमें पारदको भलीभांति पीसे। अनन्तर यन्त्रके उपरिस्थित पात्रमें लेप दे कर उपले द्वारा भूधरयन्त्रमें पाक करनेसे पारदका अधःपतन होता है। स्वेदनादि द्वारा संशोधित पारद सभी कार्योंमें प्रयोजित हो सकता है।

पारदकी मुख्यदोषनाशक शोधनविधि।—पारदका मलदोष घृतकुमारी द्वारा, अग्निदोष त्रिफला द्वारा और विषदोष चीता द्वारा नष्ट होता है। अतएव इन सब द्रव्योंको एकत्र कर पारदको सात बार मूर्च्छित करनेसे सभी दोष निराकृत होंगे।

पारदका दोषनाशक संक्षिप्त नियम।—घृतकुमारी, चीता, रक्तसर्षप, वृहती और त्रिफला इन सब द्रव्योंका क्वाथ प्रस्तुत करके उससे तीन दिन तक पारदको मर्दन करे। इस प्रकार पारदके सभी दोष दूर हो जाते हैं।

घृतकुमारी और हरिद्रा चूर्ण द्वारा एक दिन तक पारदमर्दन करे, पीछे वन्हौषधिके क्वाथ द्वारा स्वेदित हो जानेसे वह पारद पुनः बलवान् हो जाता है। नागफनी, इमली, वन्ध्या, भृङ्गराज और मुण्डक इन सब द्रव्योंके क्वाथसे स्वेदित होने पर भी पारद बली होता है और चित्रकके रस द्वारा स्वेदित होने पर यह अत्यन्त दीप्तिमान हो जाता है।

पारदकी मारणविधि।—कालिख, पारद, गन्धक और निशादल इनको समान भागको एक साथ मिला कर एक पहर तक मर्दन करे। पीछे एक बोतलमें उस पारदादिको भर कर वस्त्रखण्ड और मृत्तिका द्वारा बोतलमें लेप दे कर सुखा ले। इसके बाद एक हांड़ीके अधोदेशके ठीक मध्यस्थानमें एक छिद्र करे और उस छिद्रके ऊपर बोतल बैठा कर बोतलके चारों ओर बालू भर दे। बालू उसी परिमाणमें देना होगा जिससे बोतलका गला तक ढंक जाय। अनन्तर उस हांड़ीको चूल्हे पर रख कर धीरे धीरे आंच दे। इस प्रकार बारह पहर तक पाक करनेसे पारद भस्म होता है। अनन्तर इसे उतार ले और शीतल हो जाने पर ऊर्ध्वगत गन्धकका परित्याग करके अधोदेशस्थित मारित पारदको ग्रहण करे। यह मारित पारद उपयुक्त मात्रामें यथाविहित अनुपानके साथ सभी कार्योंमें प्रयोग किया जा सकता है।

अन्यविध—अपामार्गके बीजसे दो मूषा प्रस्तुत करे। पीछे काकडूमरके दूधमिश्रित पारदको उन दो मूषाओंके मध्य डाल दे। अनन्तर द्रोणपुष्पबीज, विड़ङ्ग और अरिमेदक चूर्ण करके उक्त मूषाके नीचे और ऊपर वेष्टन कर मृत्तिका-निर्मित मूषाके मध्य स्थापन करे। बादमें पुटपाक करनेसे पारद भस्म होता है। यह यथाविधि प्रयुक्त होनेसे विशेष फलप्रद होता है।

मारित और मूर्च्छित पारदका गुण।—पारदके विशुद्ध रूपसे मारित और मूर्च्छित होने पर निम्नलिखित उपकार होता है। यह पारद कृमिनाशक, कुष्ठापहारक, जयप्रद, दर्शनशक्तिवर्द्धक, मृत्युनाशक, अतिशय वीर्यवर्द्धक,

योगवाही, वार्द्धक्यनाशक, स्मरणशक्ति और ओजो-धातुवर्द्धक, वृंहण, रूप, धातु और शौर्यजनक माना गया है। यह पारद सभी दोषोंका नाशक है, यहां तक कि यह मृत्युका भी नाश कर सकता है। जो कोई असाध्य व्याधि किसी औषधसे आरोग्य नहीं होती, वह पारदका सेवन करनेसे निराकृत होती है।

(भावप्र० पूर्वखण्ड)

पारद शोधित होने पर अमृतके समान हो जाता है। रसके मध्य पारद प्रधान है, इसीसे वैद्यकग्रन्थमें पारद-का 'रस' नाम रखा गया है। रसेन्द्रसारसंग्रहमें जो सब औषध लिखी हैं उनमेंसे प्रायः सभी औषधोंमें पारद है। जिन सब औषधोंमें पारद है, वे प्रायः बलकर होती हैं। हिङ्गुलसे पारा ग्रहण किया जाता है। हिङ्गुलोत्थ पारद सब प्रकारका दोषनाशक है। अतएव यह पारद सभी कार्मोंमें नियोग किया जा सकता है।

रसेश्वरदर्शनके मतानुसार पारदमें सबोंकी सृष्टि हुई है। पारद ही आत्मास्वरूप है। इसका विशेष विवरण रसेन्द्रसारदर्शनमें देखो।

प्राणतोषिणी और मातृकाभेदतन्त्रमें पारदके शिव-लिङ्ग-निर्माण-विधानका विषय इस प्रकार लिखा है—

पारदका शिवनिर्माण करनेमें नाना प्रकारका विघ्न उपस्थित होता है। इसीसे पारदशिवलिङ्गके निर्माण-के समयमें शान्ति स्वस्त्ययनादि करने होते हैं। पारद साक्षात् शिवबीजस्वरूप है, इसीसे कभी इसे ताड़न न करे। ताड़न करनेसे पित्तनाश और तरह तरहके रोग अथवा मृत्यु भी हो सकती है।

"पारदे शिवनिर्माणे नानाविघ्नं यतः प्रिये।
अतएव महेशानि! शान्तिस्वस्त्ययनञ्चरेत्॥
पारदं शिवबीजं हि ताडनं नहि कारयेत्।
ताडनाद्वित्तनाशः स्यात् ताडनाद्वित्तहीनता॥"

(मातृकाभे० ८ पटल)

फिर भी लिखा है,—लक्ष्मी और नारायण पारद-शिवलिङ्गके शतांशका एक अंश भी नहीं हैं। क्योंकि पकार स्वयं विष्णु, आकार कालिका, रकार साक्षात् शिव और दकार ब्रह्मा है, इसीसे पारद ब्रह्मा, विष्णु और शिवात्मक है। जो अपने जीवनमें एक बार भी पारदशिवलिङ्गकी पूजा करते हैं, वे धन्य, ज्ञानी, ब्रह्मवेत्ता और पृथ्वीके राजा हो कर सबोंसे पूजित होते हैं।

"पारदस्य शतांशैको लक्ष्मीनारायणो नहि।
पकारं विष्णुरूपञ्च आकारं कालिका स्वयम्॥
रेफं शिवं दकारञ्च ब्रह्मरूपं न चान्यथा।
पारदं परमेशानि! ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्॥
यो यजेत् पारदं लिंगं स एव शम्भुरव्ययः।
आजन्ममध्ये यो देवि एकदा यदि पूजयेत्॥
स एव धन्यो देवेशि! स ज्ञानी स च तत्त्ववित्।
स ब्रह्मवेत्ता स धनी स राजा भुवि पूज्यते॥"

(प्राणतोषिणीधृत मातृकाभेदत० ८ पटल)

पारदका शिव प्रस्तुत करते समय षोड़शोपचारसे १२ शिवपूजा, जप और होमादि करने होते हैं। इस प्रकार शिवपूजादि करके पारद आहरण करे और उसके ऊपर एक सौ आठ बार जप करे। पीछे प्रणव मन्त्रसे उस पारदको भिण्टिकापत्ररस द्वारा कर्दमके समान बनावे। बादमें यह निर्माण योग्य हो जाने पर इसीसे शिवलिङ्ग प्रस्तुत करे। इस पारदलिङ्गका पूजन करनेसे सभी पाप दूर हो जाते हैं।

(प्राणतोषिणी० मातृकाभेदत० ८ प०)

२ म्लेच्छ जातिविशेष, सगरराजने इस जातिका मस्तक मुड़वा दिया था, तभीसे ये लोग मुक्तकेश हैं।

"कैराता दरदा दर्वा शूरा वैयामकास्तथा।
औदुम्बरा दुर्विभागा पारदाः सह वाह्लिकैः॥"

(भारत ३।५१।१३)

पारद (Parthia)—उक्त पारदजातिके निवासभूत एक प्राचीन देश। यह कास्पीयसागरके दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। प्राचीन कोणाकार शिलालिपिमें यह 'पार्थव', संस्कृत साहित्यमें 'पह्लव' और गुप्त सम्राट्की शिलालिपिमें 'पार्थिव' नामसे उक्त हुआ है। सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक प्लिनीका कहना है, कि इसके पूर्वमें एराई, दक्षिणमें कर्मनाई और एरियानो, पश्चिममें प्रतिति तथा उत्तरमें हिरकानाई नदी है। हैकटम्पिलन इसका प्रधान और एकमात्र प्रसिद्ध नगर है। इसका अंगरेजी नाम पार्थिया (Parthia) है। पारदके अधिवासिगण शक-वंशोद्भव हैं। ये लोग

पारस्य सम्राट्के अधीन थे। जरक्षेस और दरायुसकी सेनाके साथ ये लोग लड़ने गये थे। पारद देशके राजा सुप्रसिद्ध अलेकसन्दरके एक चत्रप वा सामन्त मात्र थे। अलेकसन्दरकी मृत्युके बाद पारदवासियोंने अन्तिगोनस और सिलिओकसकी वश्यता स्वीकार की थी। अन्तमें २५६ ई०के पहले इन्होंने सीरियाके राजाओंकी वश्यता परित्याग कर प्रथम आर्शकेशके शासनाधीन स्वाधीन राज्य संस्थापन किया। इस समयसे पारदराज्य क्रमशः वर्द्धित हो कर यूफ्रेटिस नदीसे ले कर सिन्धुनद तक और आक्सस नदीसे ले कर पारस्योपसागर तक फैल गया था।

पारदराज्य ईसवी सन् २५६के पहलेसे २२६ तक स्थायी रहा। प्रथम आर्शकेश, प्रथम मित्रदात और द्वितीय फ्रवरतीशके समयमें यह यूफ्रेटिस और सिन्धुनद तक विस्तृत था। ई०सन् ५३के पहले रोमक सेनापति क्रासस-के मारे जाने तथा उसके सैन्यदलके ध्वंस हो जानेसे पारदवासियोंका प्रभुत्व और भी बढ़ गया। रोमके प्रधान सेनापति सीजर और मोजरके बीच जब लड़ाई छिड़ी, तब पारदके अधिवासियोंने पम्पीका पक्ष अवलम्बन किया था। सीजरकी मृत्युके बाद इन लोगोंने ब्रूटस और केसरकी सहायता की। ई०सन् ३७के पहलेसे पारदराज्यमें अन्तर्विप्लव आरम्भ हुआ। आखिर २१७ ई०में पारदराज्यके शेष सम्राट् आर्त्तवनको आर्त्त-जरक्षेस नामक किसी सेनापतिने पारदराज्यका यह गोलयोग देख कर स्वयं एक नूतन वंश स्थापन करना चाहा और पारसिकोंको अपनी सहायताके लिये बुलाया। पारसिकोंने एक वृहत् सैन्यदल संग्रह करके क्रमशः तीन युद्धमें पारदवासियोंको परास्त किया। बादमें आर्त्त-जरक्षेसने पारदराजाका समस्त राज्य छीन लिया और नूतन पारस्यराज्यकी प्रतिष्ठा की।

पह्नवी और पारस्य देखो।

पारदषण्डक (सं० पु०) देशविशेष।

पारदर्शक (सं० त्रि०) पारं दर्शयतीति दृशि-ण्वुल्। जिसके भीतरसे हो कर प्रकाशकी किरनोंके जा सकनेके कारण उस पारकी वस्तुएं दिखाई दें।

पारदर्शन (सं० त्रि०) सर्वज्ञ, पारगामी।

पारदर्शिन् (सं० त्रि०) पारं पश्यति दृश णिनि। १ परपारद्रष्टा। २ परिणामदर्शी। ३ विज्ञ। ४ पटु, समर्थ।

पारदारिक (सं० पु०) परेषां अन्येषां दारान् गच्छतीति परदार (गच्छतौ परदारदिभ्यः। पा ४।४।१ वा) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या ठक्। परदाररत, परस्त्रीगामी। जो परदाररत हैं उनके यश, श्री आदि सभी नष्ट होती हैं। परदार-गमन सभी शास्त्रोंमें निषिद्ध बतलाया गया है।

"यः परस्त्रीषु निरतस्तस्य श्रीर्वा कुतो यशः।
स च निन्द्यः पापयुक्तः शश्वत्सर्वसभासु च॥"
(ब्रह्मवै० गणे० २१)

पारदार्य (सं० क्ली०) परदारा दारा यस्य सपरदारः तस्य कर्मेति ष्यञ्। परदारगमन, व्यभिचार।

पारदृश्वन् (सं० त्रि०) पारं दृष्टवान् दृश भूते क्वनिप्। पारद्रष्टा, जिन्होंने पारदर्शन किया हो।

पारदेश्य (सं० त्रि०) परदेशं गत इत्यर्थे ष्यञ् प्रत्यय निष्पन्नः। १ प्रोषित, पारदेशिक, पथिक। परदेशे भवः ष्यञ्। २ परदेशजात।

पारधी (हिं० पु०) १ टट्टी आदिकी ओटसे पशु-पक्षियोंको पकड़ने या मारनेवाला, बहेलिया। २ शिकारी। ३ अहेरी, हत्यारा, बधिक। (स्त्री०) ४ ओट, आड़।

पारन (हिं० पु०) पारण देखो।

पारना (हिं० क्रि०) १ डालना, गिराना। २ लेटाना। ३ कुश्ती या लड़ाईमें गिराना। ४ किसी वस्तुको दूसरी वस्तुमें रखने, ठहराने या मिलानेके लिये उसमें गिराना या रखना। ५ जमीन पर लम्बा डालना, खड़ा या उठा रहने देना। ६ सांचे आदिमें डाल कर या किसी वस्तु पर जमा कर कोई वस्तु तैयार करना। ७ अवस्था आदि उपस्थित होना, बुरी बात घटित करना। ८ किसी वस्तु या विषयके भीतर लेना, शामिल करना। ९ शरीर पर धारण करना, पहनना। १० रखना।

पारनेतृ (सं० त्रि०) पारं नेतृ नी-तृच्। पारनयनकारी, दूसरे किनारे ले जानेवाला।

पारबती (हिं० स्त्री०) पार्वती देखो।

पारमहंस्य (सं० त्रि०) परमहंसेन उक्तम् परमहंसस्य भावः परमहंसेन ज्ञेयं यत् प्राप्यमिति वा परमहंस-ष्यञ्। १ परमहंस सम्बन्धी। २ परब्रह्मधाम। ३ प्रत्यङ्निष्ठारूप। ४ ज्ञानस्वरूप।

पारमाणवाकर्षण (सं° स्त्री°) परमाणुओंका परस्पर आकर्षण। (Molecular attraction)

पारमार्थिक (सं° त्रि°) परमार्थाय परमपुरुषार्थाय हितं इति-ठक्। १ परमार्थयुक्त, परमार्थ सम्बन्धी। २ वास्तविक, जो केवल प्रतीति या भ्रम न हो। ३ परस्पर विभक्त। ४ स्वाभाविक।

पारम्परीण (सं° त्रि°) परम्परायां आगतः खञ्। परम्पराक्रमसे आगत।

पारम्पर्य (सं° स्त्री°) परम्परया आगतम्, अण्, ततो चतुर्वर्णादित्वात् ष्यञ्, परम्परा स्वार्थे ष्यञ् वा। १ आम्नाय। २ कुलक्रम। ३ परम्पराका भाव।

पारम्पर्योपदेश (सं° पु°) पारम्पर्येण गुरुपरम्परया प्राप्तः उपदेशः। उपदेशपरम्परा। पर्याय—ऐतिह्य, इतिह। इस वृक्ष पर यक्षवास करता है, ऐसा वृद्ध लोग कहा करते हैं; इस प्रकारका एक प्रवाद है और बहुत दिनोंसे चला आ रहा है। ऐसे प्रवादका नाम ऐतिह्य वा पारम्पर्योपदेश है। किसी किसी दर्शनकारने इस ऐतिह्यका एक प्रमाण बतलाया है।

पारयिष्णु (सं° त्रि°) पारयुति पार-णिच्-इष्णुच् (णेश्छन्दसि। पा ३।२।१३७) पारगमनमें समर्थ, पारगामी।

पारयुगीन (सं° त्रि°) परयुगे साधुः परयुग-खञ् (प्रतिजनादिभ्यः खञ्। पा ४।४।९९) परयुगमें उत्तम।

पारलौकिक (सं° त्रि°) परलोके भवः, परलोकाय हितः परलोक ठञ् (अनुशतीकादीनाञ्च। पा ७।३।२०) इति सूत्रेणोभयपदवृद्धिः। १ परलोकसम्बन्धी। २ परलोकमें शुभ फल देनेवाला।

पारवत (सं° पु°) पारावत, कबूतर।

पारवश्य (सं° स्त्री°) परवशस्य भावः ष्यञ्। पारतन्त्र्य, परवशता।

पारशगढ़—बम्बईप्रदेशके बेलगांव जिलान्तर्गत एक महकूमा। यह उक्त जिलेके दक्षिण-पूर्व कोणमें अवस्थित है। उत्तरसे दक्षिण-पूर्व तक एक छोटे पहाड़से यह स्थान प्रायः दो समान खण्डोंमें विभक्त है। मालप्रभानदी इस महकूमेके ठीक बीच हो कर बह गई है। ग्रीष्मकालके पहले ही यहांकी छोटी छोटी नदियां सूख जाती हैं और शुष्करितो भी अस्वास्थ्यकर हो जाती है। इस स्थानके उत्तर और पूर्वमें अल्प वृष्टिपात होने पर भी दक्षिण और पश्चिमकी ओर सह्याद्रि पर्वतके निकटवर्ती प्रदेशोंमें काफी वर्षा होती है। सौन्दत्ति ग्राम इस महकूमेका सदर है। यहां एक दीवानी, तथा २ फौजदारी अदालत और समग्र महकूमेमें ७ थाने हैं।

पारशनाथ (पार्श्वनाथ)—हजारीबाग जिलेके पूर्व मानभूम जिलेके निकटवर्त्ती एक पहाड़। यह जैनोंका तीर्थस्थान है और अक्षा° २३°५७´३५´´ उ° तथा देशा° ८६° १०´ ३०´´ पू°के मध्य, समुद्रगर्भसे ४४८८ फुट ऊंचा है। यह पहाड़ देखनेमें बड़ा ही सुन्दर है। जो एक बार इसे देख चुके हैं, वे इसके सौन्दर्यसे मुग्ध हो गये हैं। पहले यह जङ्गलसे आवृत था। किन्तु अभी ऊपर जानेके लिये सुन्दर पथ बना दिया गया है। इसके शिखर देशको जैन लोग 'समेतशिखर' कहते हैं।

यह पहाड़ इष्ट-इण्डियन रेलवेकी गिरीडीह नामक स्टेशनसे १८ मील दूर है। स्टेशनसे यहां आनेके लिये पक्की सड़क बना दी गई है। १८५८ ई°में यह यूरोपीय सैनिकोंके रहनेके लिये स्वास्थ्यकर स्थान समझा गया और उसी साल वासोपयोगी गृहादि भी बनाये गये। किन्तु प्रचुर परिमाणमें जल तथा अङ्गसञ्चालनके लिये उपयुक्त यथेष्ट स्थान नहीं मिलनेके कारण १८६८ ई°में यह छोड़ दिया गया। पहले जहां सैनिक कर्मचारियोंका आवासगृह था, अभी वही डाक-बङ्गला हो गया है।

यहां प्रतिवर्ष प्रायः दश हजार तीर्थयात्री समागम होते हैं। अभी यहां अनेक जैन-मन्दिर बनाये गये हैं। पार्श्वनाथ देखो।

पारशव (सं° पु° स्त्री°) १ सङ्कीर्ण जातिभेद, ब्राह्मण पिता और शूद्रा मातासे उत्पन्न पुरुष या जाति।

> "यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत् सुतम्।
> स पारयन्नेव शवस्तस्मात् पारशवः स्मृतः॥"
>
> (मनु ९।१७८)

ब्राह्मण कामवशतः शूद्रासे जो पुत्र उत्पन्न करते हैं, वही पारशव कहलाता है। पार या श्राद्धादि कार्यमें पारग होने पर भी वह शव अर्थात् मृत्यु तुल्य

है, श्राद्धादि किसी कार्यमें पारग नहीं होता इस से उसका पारशव नाम पड़ा है। याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है, कि ब्राह्मणके औरस और शूद्राके गर्भसे जो जाति उत्पन्न होती है, उसे निषाद वा पारशव कहते हैं। (याज्ञवल्क्य १।९१) २ परस्त्री-तनय, पराई स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र। ३ लौह, लोहा। ४ एक देशका नाम जहां मोती निकलते थे। ५ परशुसम्बन्धीय अस्त्र।

पारशवायन (सं० पु०) पारशवस्य गोत्रापत्यं युवादि अञ्, ततो फञ्। (पा ४।१।१००) पारशवका युवा गोत्रापत्य।

पारशीक (सं० पु०) पारसीक पृषोदरादित्वात् साधुः। पारसीक, देशभेद।

पारश्वध (सं० पु०) परश्वधेन युध्यतेऽसौ परश्वधः प्रहरणमस्येति वा परश्वध-अण्। परशुधारी, कुठारधारी।

पारश्वधिक (सं० पु०) परश्वधः प्रहरणमस्य (परश्वधाः ठञ् च। पा ४।४।५८) परशुहैतिक, कुठारधारी। पर्याय—पारश्वध, पारश्वधायुध।

पारश्वय (सं० क्ली०) सुवर्ण, सोना।

पारस (हिं० पु०) १ एक कल्पित पत्थर, स्पर्शमणि। इसके विषयमें प्रसिद्ध है, कि यदि लोहा उससे छुलाया जाय, तो सोना हो जाता है। इस प्रकारके पत्थरकी बात फारस, अरब तथा यूरोपमें भी रसायनियों अर्थात् कीमिया बनानेवालोंके बीच प्रसिद्ध थी। यूरोपमें कुछ लोग इसकी खोजमें कुछ हैरान भी हुए। इसके रूप रंग आदि तक कुछ लोगोंने लिखे। पर अन्तमें सब ख्याल ही ख्याल निकला। हिन्दुस्तानमें अब तक भी बहुतसे लोग नेपालमें इसके होनेका विश्वास रखते हैं। २ अत्यन्त लाभदायक और उपयोगी वस्तु। ३ खानेके लिये लगाया हुआ भोजन, परसा हुआ खाना। ४ पत्तल जिसमें खानेके लिये पकवान, मिठाई आदि हो। ५ बादाम या खूबानीकी जातिका एक मझोला पहाड़ी पेड़। यह देखनेमें ढाकके पेड़-सा जान पड़ता है और हिमालय पर सिन्धुके किनारेसे ले कर सिक्किम तक होता है। इसमेंसे एक प्रकारका गोंद और जहरीला तेल निकलता है। यह तेल दवाके काममें लाया जाता है। इसे गीदड़ढाक और जामन भी कहते हैं। ६ हिन्दुस्तानके पश्चिम सिन्धुनद और अफगानिस्तानके आगे पड़नेवाला एक देश। पारस्य देखो। (वि०) ७ तन्दुरुस्त, नीरोग, चंगा।

पारसनाथ (हिं० पु०) पार्श्वनाथ देखो।

पारसिक (सं० पु०) पारसीक पृषोदरादि० साधुः। पारसीक। पारसीक देखो।

पारसी—पारस्यका एक आदिम अधिवासी। इनका वर्त्तमान प्रधान वासस्थान गुजरात और बम्बई है। पारस्य राज्यके पारस (Persis) नामक स्थानमें इनका वास था, इस कारण ये पारसी कहलाये। अक्सस् नदीके किनारे जो सब आर्यगण रहते थे उनका एक भाग पूर्वको ओर भारतवर्षमें और दूसरा भाग पश्चिमकी ओर चला गया। जो सब आर्य पश्चिमको ओर चले गये थे, पारसी उन्हींके वंशोद्भूत हैं। करीब ७२० ई०में अरबोंके पारस्य जीतने पर पारसिकोंमेंसे बहुतोंने मुसलमानी धर्म ग्रहण किया। जिन्होंने अपने प्राचीन जरथुस्त्रधर्मका परित्याग कर मुसलमानी धर्मग्रहण करनेसे अस्वीकार किया था, वे पारस्यसे भाग कर पहले खुरासानमें जा कर रहने लगे। यहां प्रायः एक सौ वर्ष रहनेके बाद वे पारस्य उपसागरके अर्मजद्वीपमें चले गये और वहां पन्द्रह वर्ष तक रहे। पीछे वे गुजरातके उत्तर पश्चिमदिक्स्थ दीउ नामक द्वीपमें वास करने लगे। इसके कुछ समय बाद वे गुजरातके दक्षिण प्रान्तमें जा कर चिरस्थायी भावसे रहने लगे हैं। अभी वे लोग बम्बई प्रदेशके अनेक स्थानोंमें भी फैल गये हैं।

मुसलमानोंके अत्याचारसे जो सब पारसी स्वदेशका परित्याग कर भारतवर्ष आये, वे अपने जातीय चरित्र और धर्मको आज भी अक्षुण्ण भावसे रक्षा करते हैं। ये लोग पहले पौत्तलिकता अविश्वास वा "एकमेवाद्वितीयं," भगवान्‌के सिवा और किसीकी भी उपासना नहीं करते थे। भारतवर्षमें आ कर पौत्तलिक हिन्दुओंके संस्रवसे ये लोग यद्यपि अभी आंशिक पौत्तलिक हो गये हैं, तो भी इनका पूर्वविश्वास ज्योंका त्यों बना है—कुछ भी परिवर्त्तन नहीं हुआ है। पहले ये लोग मूर्त्ति बना कर उसकी पूजा तो करते थे, पर

सूय, चन्द्र, पृथिवी, अग्नि, वायु आदिके उद्देशसे वलि नहीं चढ़ाते थे। इन लोगोंको बलिदान-प्रथा कुछ और ही प्रकारकी थी। ये लोग बिना वेदी प्रस्तुत वा अग्नि प्रज्वलित किये ही बलिके पशुको एक पवित्र स्थानमें ले जा कर लता द्वारा उसे बांध देते और देवताके उद्देशसे मन्त्रपाठ करके बलिदान करते थे। पवित्र चिन्ता, पवित्र वाक्य और पवित्र कार्य इन तीनोंसे उनको समस्त नीति सूचित होती थीं। वे लोग झूठ बोलना ना पसन्द करते थे। ऋणग्रहण भी उनके निकट सर्वथा निन्दनीय था क्योंकि ऋणीको बाध्य हो कर झूठ बोलना पड़ता था। उपासना करनेके पहले ये लोग हाथ और पैरको धो कर उपवीत खोल लेते और उपासनाके शेष होने पर फिरसे उसे पहन लेते हैं। उपासनाके आरम्भमें 'सारस' नामक स्वर्गीय दूतकी स्तुति करते हैं। स्त्रियां भी उपासना करती हैं। अग्निपूजा किये बिना ये लोग किसी भी देवताका पूजन नहीं करते।

भारतवर्षीय पारसीगण अपनी तीक्ष्णबुद्धि, शक्ति और व्यवसायबुद्धि-प्रभावसे एक धनवान् और क्षमताशाली जाति गिने जाते हैं। ये लोग स्वधर्मका परित्याग कर कभी भी अन्य धर्म ग्रहण नहीं करते। पारसी पिताके औरस और हिन्दू वा मुसलमान माताके गर्भसे, जिन सब पारसियोंने जन्मग्रहण किया है, उन्हें स्वजातिके मध्य स्थान देने और उपवीत ग्रहण करनेके विषयमें ये लोग विशेष आपत्ति करते हैं।

पारसीगण जरथुस्त्रप्रणीत इक्कीस धर्मग्रन्थोंका उल्लेख करते हैं। इस ग्रन्थसमूहका नाम नस्क है। इसमेंसे अनेक ग्रन्थ अभी नष्ट हो गये हैं। इनके तीन प्रधान ग्रन्थोंके नाम ये हैं—

(१) पांच गाथा अर्थात् सङ्गीत। यह यश्न नामक ग्रन्थका उपासना-अंशमात्र है।

(२) वन्दिदाद अर्थात् कुछ आईन।

(३) यश्त अर्थात् छन्दपूर्ण ग्रन्थ और अन्यान्य देवताका स्तोत्र। एतद्भिन्नविस्पाद नामक एक और भी ग्रन्थ है।

इनमेंसे केवल वन्दिदाद ग्रन्थ सम्पूर्ण है, अन्य तीनका अंशमात्र अवशिष्ट है। ग्रीक, रोमक और वर्त्तमान सभी पारसियोंका कहना है, कि जरथुस्त्र (Zoraoster) इन सब ग्रन्थके प्रणेता हैं।

पारसियोंकी विशेष उपासनाका नाम अहुनवैर्य वा हनोवर है। इस उपासनाके इक्कीस शब्द हैं, प्रत्येक जोरथुस्त्रीयोंका पवित्र मन्त्र है। इन इक्कीस शब्दोंमें पूर्वोक्त नस्क नामक इक्कीस धर्मग्रन्थोंकी कथा है। यह उपासना नीचे लिखी जाती है।

"यथा अहु वैर्यो, अथा रतुश, अशद्‌ चीद्‌ हचा, वंहेउश दजदा मनंहो, श्यओथननाम् अंहेउस मजदे, खशथ्रेम्‌चा अहुराइआ, यिम द्रेगुब्योदधद्‌ वास्तारेम।"

अर्थात्—जगदीश्वरकी इच्छाकी तरह सृष्टिका भी अस्तित्व है, क्योंकि यह सत्यसे उत्पन्न हुई है। इस जगत्‌में चिन्ता वा कार्यसे जो अच्छा काम कर सृष्ट हुआ है, उसका मूल अहुरमज्द है। जब हम लोग दरिद्रको सहायता करने जाते हैं, उस समय अहुरको राजत्व प्रदान करते हैं।

वर्त्तमान पारसी धर्मानुसार ७ अमेशस्पन्द (अंशस्पन्द) हैं, ऐसा अनुमान किया जाता है। इन्हें पारसी लोग अविनश्वर पवित्र पदार्थ समझते हैं।

उत्सवादि।—१ अर्दिबेहेस्त-यशन उत्सव। अग्निदेवता अर्दिबहेस्त अंशस्पन्दके सम्मानार्थ पारसी लोग यह उत्सव करते हैं। इस दिन ये लोग अग्नि-मन्दिरमें दल बांध कर जगदीश्वरकी उपासना करते हैं।

२ आब अर्दुइ-सुर यशन—आब नामक समुद्र देवताके सम्मानार्थ यह उत्सव किया जाता है। पारसी लोग इस उपलक्षमें किसी समुद्र वा नदीके किनारे जा कर जगदीश्वरकी उपासना करते हैं। बम्बईगढ़के मैदानमें इस उपलक्षमें एक बड़ा मेला लगता है।

३ अमरदाद-साल पर्वाह—खुरदाद-साल नामक उत्सवका अंशमात्र है। पारसियोंके सप्तम अंशस्पन्दका नाम अमरदाद है।

४ पतेति नौरोज वा नववर्षोत्सव। पारस्यराज यजदेजार्दके सम्मानार्थ १ली फरवरीको यह मेला लगता है। इस उपलक्षमें पारसी लोग सबोंसे मिलते और दरिद्रोंको दान देते हैं।

५ रापिथ्वर उत्सव। यह भी पारसियोंके अग्नि-

देवता अदिवेहेस्तके सम्मानार्थ होता है।

६ खुरदाद-साल उत्सव जरथुस्त्रके सम्मानार्थ किया जाता है। इन सब उत्सवोंमें पारसी लोग अधिक वाह्याडम्बर नहीं दिखाते।

मृतसत्कार।—पारसीरोगियोंको चिकित्साका भार जिन सब चिकित्सकोंके हाथ रहता है, उन्हें पहले ही कह दिया जाता है, कि वे यदि देखें कि रोगीके बचनेकी आशा नहीं है, तो पहले ही इसकी खबर दे दें। रोगीको शेषावस्थामें होम (सोम) जल पान कराया जाता है। पीछे उसकी मृत्यु होने पर एक निम्नतल गृहके सभी द्रव्योंको स्थानान्तरित करके उसमें मृतदेह रखी जाती है। द्रव्यादि स्थानान्तरित करनेका कारण यह है, कि पारसी लोग मृतदेहको बहुत अपवित्र समझते हैं। बम्बईमें 'निसस सलर' नामक एक श्रेणीके पारसी हैं जिनका काम केवल मृतदेहका वहन करना है। 'निसस' शब्दका अर्थ अपवित्र है। ये लोग 'प्रेतगृह' नामक पारसियोंके मृतसत्कारगृहमें मृत देहको ले जा कर रखते हैं। पारसी इस प्रेतगृहको 'दोखमा' कहते हैं। कुल मिला कर छः प्रेतगृह (Tower of silence) हैं, जिनमेंसे एक दण्डित व्यक्तियोंके लिये और शेष पांच जनसाधारणके लिये निर्दिष्ट हैं। शेषोक्त गृह मलवार पर्वतके शिखर देश पर एक सुन्दर उद्यानके मध्य स्थापित हैं। यहां बहुसंख्यक शकुनी और गृध्रिणी रहती हैं। प्रधान प्रेतगृहका व्यास प्रायः ८० फुट मात्र है। यह कोणाकृति और प्रस्तरनिर्मित है। इसके ठीक मध्यस्थलमें दश फुट गहरा एक कूप है। यह कूप प्रेतगृहके तलदेश तक चला गया है। इस कोणाकृति गृहके चारों ओर एक अत्योच्च प्रस्तरनिर्मित प्राचीर है जिससे यह दुर्ग-सा दीख पड़ता है। पारसीगण पृथिवीको पवित्र समझते हैं, इसी लिये जिससे मृतदेहका दूषित पदार्थ उसमें मिश्रित न हो सके, उन्होंने प्रेतगृहको प्रस्तर पर बनाया है। इस गृहके मध्य तीन समकेन्द्रिक वृत्ताकारमें सज्जित २७ मृतदेह रखनेकी जगह है। उस समकेन्द्रिक वृत्तके चारों ओर पथ हैं जिनके साथ एक दूसरा पथ बाहरके एक द्वारके साथ संलग्न है। द्वार हो कर मृतदेह ढोनेवाले प्रेतगृहके मध्य स्वच्छन्दतासे प्रवेश कर सकते हैं। समकेन्द्रिक तीनों वृत्तोंमेंसे बाहरवाले घरमें पुरुषकी मृतदेह, मध्यस्थ घरमें स्त्रियोंकी मृतदेह और कूपके निकटस्थ क्षुद्रतम वृत्तमें शिशुकी मृतदेह रखी जाती है। मृतदेहको प्रेतगृहमें लाते समय सबसे पहले एक व्यक्ति दो एक रोटी ले कर आगे बढ़ता है। पीछे शववाहक, उनके बाद एक श्वेतवर्ण कुक्कुर और सबके शेषमें शुभ्र-परिच्छदपरिहित पुरोहितगण और मृतव्यक्तिके आत्मीय बन्धुबान्धवगण आगमन करते हैं। मृतदेहको प्रेतगृहके बहिर्द्वारसे ६० हाथकी दूरी पर रख कर कुक्कुरको उसके समीप ले जा कर दिखाया जाता है। बादमें उसे रोटी खानेको दी जाती है। पारसीगण इस प्रथाको 'सगदाद' कहते हैं। इसके बाद शववाहक प्रेतगृहके मध्य मृतदेहको ले जा कर अनावृत कर रखते हैं। इस कार्यके शेष हो जानेसे ही वे उस गृहका त्याग कर निकटवर्त्ती एक जलाशयमें स्नान करते और परिधेय वस्त्रको वहीं छोड़ जाते हैं। मृतदेहको प्रेतगृहमें रखनेके साथ ही शकुनी गृध्र आदि वृक्ष परसे नीचे उतरते और उसे कङ्कालावशिष्ट कर डालते हैं। इसके तीन वा चार सप्ताह बाद वह कङ्काल प्रेतगृहमध्यस्थ स्तूपके मध्य अपसारित किया जाता है जहां वह सदाके लिये रह जाता है।

बाल्यावस्थामें पारसी बालक और बालिका दोनों ही रेशम कुरता पहनते हैं। बालककी सातवें वर्ष-(छः वर्ष तीन मास)-में यज्ञोपवीत दिया जाता है। इसी समयसे वे रेशमी कुरतेका परित्याग कर सदरो (चादर) नामक पवित्र कुरतेका व्यवहार करते हैं। पारसी बालकोंकी धर्मशिक्षा-प्रणाली पहले अति सङ्कीर्ण थी। वे जन्द-अवस्ताके कुछ स्तोत्र मुखस्थ कर लेते थे, पर उसका एक वर्ण भी समझ न सकते थे। कुछ दिन हुए, इस अभावको पूर्ण करनेके लिये पारसियोंने अनेक चेष्टा की है। अभी बालकोंको जरथुस्त्र धर्मके सभी विषयोंकी शिक्षा दी जाती है।

पारसी धूम्रपान नहीं करते। गोमूत्र उनके निकट पवित्र समझा जाता है। इसीसे निद्राभङ्गके बाद वे गोमूत्र ले कर हाथ और मुंहमें देते, पीछे उन्हें धो

डालते हैं। प्रत्येक धार्मिक पारसीको दिनमें सोलह बार उपासना करनी होती है।

सन्तान होनेके बाद १० दिन तक पारसिक रमणियोंको सबसे पृथक् रहना पड़ता है।

पारसियोंमें बहु-विवाह और बाल्य विवाह प्रचलित है। वधू जब तक वयःप्राप्त नहीं होती, तब तक स्वामीके घर नहीं आती है। सभी पारसी स्त्रियाँ प्रायः पतिव्रता होती हैं। वे स्वामीको नाम ले कर नहीं पुकारतीं। गो और शूकरका मांस-भक्षण पारसियोंके पक्षमें निषिद्ध है। ये लोग शराब खूब पीते हैं और खानेके पहले मन्त्रोच्चारण करते हैं।

पारसियोंमें विवाहप्रथा कोई गुरुतर विषय नहीं समझा जाता। यह दोनों पक्षकी सम्मतिके ऊपर निर्भर है। विवाहके उपलक्षमें अकसर आमोद प्रमोद हुआ करता है। भतीजे और बहिनके मध्य भी विवाह हो सकता है। पूर्वकालमें पिताकी मृत्यु होने पर विमाताका पाणिग्रहण निषिद्ध न था।

पारसीगण अपने प्रत्येक राजाके शासनकालसे शककी गणना करते थे। उनके शेषराजा यजदेजार्दके समयसे आज तक १२४५-४६ शक हुए हैं। प्रति वर्ष ३६५ दिनोंका होता है और सौरवत्सरके साथ सामञ्जस्य रखनेके लिये १२० वर्षके बाद १ मास जोड़ दिया जाता है। एक वर्ष १२ मासोंमें विभक्त है। प्रति मास ३० दिनोंका होता है। वर्षके ३६५ दिन पूर्ण करनेके लिये शेष मासमें ५ दिन जोड़ दिये जाते हैं। पारसी मासके नाम ये हैं—फरबरदिन, अर्दिबेहेस्त, खुर्दा, तिर, अमरदाद, शरिवर, मेहेर, आवन, आदर, दे, बाह्मण और असफन्दार।

भारतवर्षीय पारसी शाहनशाही वा रसमी और कादिमी वा चुरिगर नामक दो सम्प्रदायोंमें विभक्त हैं। अधिकांश पारसी प्रथम सम्प्रदायभुक्त हैं। यह श्रेणीविभाग १८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें स्थिर हुआ था। शकगणना और उपासनापद्धतिके विषयमें सामान्य प्रभेदके सिवा दोनों दलमें विशेष पार्थक्य नहीं है।

पारसी (सं॰ स्त्री॰) पारस्यभाषा, पारस्यदेशभव विद्यादि। पारस्य भाषाका अध्ययन शुभ दिन देख कर करना होता है।

"ज्येष्ठाश्लेषा मघामूला रेवती भरणीद्वये।
विशाखाश्चोत्तराषाढ़ा शतभे पापवासरे॥
लग्ने स्थिरे सचन्द्रे च पारसीं रवीं पठेत्॥"
(गणपति-मुहूर्तचिन्तामणि)

ज्येष्ठा, अश्लेषा, मघा, मूला, रेवती, भरणी, विशाखा, उत्तराषाढ़ा और शतभिषा नक्षत्रमें, शनि, मङ्गल और रविवारमें, सचन्द्र स्थिर लग्नमें अरबी और पारसीका अध्ययन करना चाहिये। पारस्यभाषाके अध्ययनमें यही दिन उत्तम हैं।

पारस्य शब्दके शेषमें पारस्य-साहित्यका विषयमें देखो।

पारसीक (सं॰ पु॰) १ देशविशेष, पारस्य देश। २ पारस्य देशका निवासी। ३ पारस्य देशका घोड़ा। पर्याय—वानायुज, पराहन, आरट्टज।

पारसीकयमानी (सं॰ स्त्री॰) पारस्यदेशीय यमानीविशेष, खुरासानी अजवायन। यह पाचक और रुचिकर है। वैद्यकनिघण्टुके मतसे इसका गुण—अग्निदीप्तिकर, तुवर, लघु, त्रिदोष, अजीर्ण, क्रमि, शूल और आमनाशक।

पारसीकवचा (सं॰ स्त्री॰) श्वेतवच, खुरासानीवच।

पारसीकेय (सं॰ त्रि॰) १ पारसीकसम्बन्धीय, पारसदेशसम्बन्धी। (क्ली॰) २ कुङ्कुम।

पारस्कर (सं॰ पु॰) पारं करोति कृ-ट, पारस्करादित्वात् सुड़ागम। १ देशभेद, एक देशका प्राचीन नाम। २ गृह्यसूत्रकारक मुनिभेद।

पारस्करादि (सं॰ पु॰) पाणिनीय गणपाठोक्त शब्दगणभेद। यथा—पारस्करोदेश, कारस्करोवृक्ष, रथस्यानदी, किष्क, प्रमाण, किष्किन्ध्या, गुहा।

पारस्त्रैणेय (सं॰ त्रि॰) परस्त्रियां जातः (कल्याण्यादीनामिनङ्। पा ४।१।१२६) इति ढक्, इनङादेशश्च, तत उभयपदवृद्धिः। परस्त्रीसुत, पराई स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र, जारजपुत्र।

पारस्परिक (सं॰ त्रि॰) परस्परवाला, आपसका।

पारस्य—देशभेद। इसका दूसरा नाम ईरान है। अभी पारस्य और ईरान ये दोनों शब्द एक अर्थमें व्यवहृत होने पर भी उभय शब्दकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें अनेक गोलमाल है।

नामोत्पत्ति

कोणाकार शिलालिपिमें पारस (लैटिन भाषामें पार्सिस शब्द) प्रचलित है और प्राचीनकालमें इस राज्यके उत्तर माद एवं उत्तर-पश्चिममें सुवकी (सुसियाना) राज्य था। इसकी पूर्वतन राजधानीका नाम पारसपली (Persepolis) है।

सबसे पहले अखमनीय (Achaemenian)ने उक्त पारस (Persis) नामक स्थानसे आ कर जो साम्राज्य स्थापित किया और जहां शासनीय (Sassanian) राज्यकी उत्पत्ति हुई, उसे पारस वा पार्सिस राज्य और उसके अधिवासियोंको 'पारसय' कहते थे। इस प्रकार पारस वा पार्सिस नामक स्थानसे इन दो साम्राज्योंकी उत्पत्ति हुई थी, इस कारण ये दो साम्राज्य 'पारसय' वा पारस्य नामसे प्रसिद्ध हुए।

पहले ईरान शब्दसे कुर्दिस्तानसे ले कर अफगानिस्तान तकके भूभागका बोध होता था। कुर्दिस्तानके निकटवर्ती जो ईरान अधित्यका है, वह आर्य लोगोंकी आदि-निवास भूमि समझी जाती है। हिरोदोतसने लिखा है, कि राजा दरायुस अपनेको पारस्य-राजपुत्र पारसीक और आर्यपुत्र आर्य कहते थे तथा प्राचीन उच्च वंशोद्भव मनुष्य अपने नामके पहले आर्य शब्द लगाते थे। जैसे, आर्यराम्न (Ariaramnes), आरिया वार्जेनिस (Ariavargenis)। आर्य लोग जहां रहते थे उस स्थानका नाम आर्याना वा आरियाना (Ariana) है।

प्राचीन मुद्रा और खोदित लिपिमें लिखा है, कि अर्द शीर एरानराज्यके सर्वप्रधान राजा थे। उनका सेनापति एरान कहलाता था। गत ५०० वर्षसे पारस्यदेशके लोगोंने एरानके बदलेमें ईरान शब्दका व्यवहार करना आरम्भ कर दिया है।

प्राचीन ईरान वा उत्तर-मद्रराज्य।

दिग्विजयी अलेकसन्दरकी मृत्युके बाद बाबिलननिवासी बेरोसस (Berosus) लिख गये हैं, कि ईसाजन्मके प्रायः २००० वर्ष पहले मिदस (मद्र) जातिने बाबिलन पर अधिकार किया और उसके ८ राजाओंने यहां २२४ वर्ष तक राज्य किया। किन्तु यह जाति ईरानी थी वा नहीं इस विषयमें बहुतोंको सन्देह है। जो कुछ हो, ईरानराज्यके मध्य अनेक छोटे छोटे राज्य थे और इसके पूर्वभागमें अक्षुस नदीके समीप बखतर (Bactria) नामक जो राज्य था, उसका यथेष्ट प्रमाण मिलता है।

ईरानी प्रदेशके छोटे छोटे राज्य एक समय हगमतान (Ecbatana) नामक साम्राज्यके अन्तर्गत थे। इस साम्राज्यका विवरण बहुत कम जाना जाता है। इस राज्यपतनके बहुत समय बाद ग्रीक इतिहासवेत्ता हिरोदोतस और टिसियसने पूर्वदेशीय लोगोंके मुखसे आख्यायिका सुन कर जो इतिहास लिखा है, उसका अधिकांश अमूलक और अविश्वास्य है। इन दो इतिहास लेखकोंके मध्य जैसा मतभेद देखा जाता है उससे बोध होता है, कि उन दोनोंने ही प्रचलित आख्यायिका सुन कर अपना अपना इतिहास लिखा है।

हिरोदोतसके मतसे ४ और टिसियसके मतसे ८ राजाओंने मिदोयामें राज्य किया। टिसियसका इतिहास निनिभोके ध्वंससे आरम्भ हुआ है। हिरोदोतसके मतसे फ्रवरतिश (Phraortes)-के पुत्र दिवकोश (Deioces)-ने मिदोयराज्य सबसे पहले संस्थापन किया। मिदोयराज्यको प्रतिष्ठाके पहले आसिरीय (वा प्राचीन असुर) राज्य अत्यन्त प्रबल था। इस समय मिदोया छोटे छोटे राज्योंमें विभक्त था। असुरराजने मिदोय-राज्यको अपने अधीनमें लानेके लिये अनेक बार चेष्टा की; किन्तु सम्यक् रूपसे वे फलीभूत न हुए। दिवकशके स्वाधीन होनेके पहले असुरराज्यमें अराजकता फैली थी, ऐसा प्रतीत होता है। दिवकशने ईसाजन्मके पहले ७०८ से ६५६ ई० तक राज्य किया। वे यद्यपि स्वाधीन थे, तो भी असुरोंके निकट पुनः पुनः वश्यता स्वीकार करनेको बाध्य हुए। उनके बाद तीन राजाओंने राज्य किया। अनन्तर फ्रवरतिश (Phraortes)ने ई०सन् ६५६से ६२७के पहले तक राजकार्य चलाया। इन्होंने पारस्य और मिदोयाके दक्षिण-पूर्व भागको जीत कर मिदोयराज्यका पुष्टिसाधन किया। दरायुस (Darius)-की खोदित लिपि पढ़नेसे जाना जाता है, कि इस समय पारस्यदेश छोटे छोटे अंशोंमें विभक्त और भिन्न भिन्न राजाओंके अधीन था।

पारस्यदेश जीते जानेके बाद फ्रवरतिशने एक एक करके अनेक राज्य जीते, किन्तु अन्तमें असुरोंके साथ युद्धमें मारे गये।

फ्रवरतिशको मृत्युके बाद वीरवर हुवक्षत्र (Cyaxares) उनके उत्तराधिकारी हुए, हुवक्षत्रके समय मिदीयगण अति प्रतापशाली हो उठे। वे दल-बलके साथ निनिभी जीतनेके लिये अग्रसर हुए और अनेक युद्धोंमें इन्होंने विजय पाई। किन्तु इस समय शक लोग (Scythians) मिदीय-साम्राज्यमें लूटपाट मचाते थे, इस कारण हुवक्षत्रको स्वदेश लौटना पड़ा। उक्त शकगण किस देशसे आये थे, मालूम नहीं। लेकिन बहुतेरे अनुमान करते हैं, कि ये लोग कास्पोय ह्रदके पूर्वमें अवस्थित तुर्किस्तानके अधित्यकाप्रदेशसे पहले पहल आये। शकोंके साथ संग्राममें हुवक्षत्र जयलाभ कर न सके। अन्तमें उन्होंने शत्रुके हाथसे निष्कृति पानेके लिये सन्धि करनेका बहाना कर शक-सेनापतियोंको आमन्त्रण किया और विषाक्त पानीय द्रव्यका सेवन करा कर उनके प्राण ले लिये। इस प्रकार मिदीय-अधिपतिने शकोंके हाथसे छुटकारा पा कर बाबिलनराजकी सहायतासे ईसाजन्मके पहले ६०७ ई०में निनिभीको नहस नहस कर डाला। असुरराज्यका अधिकांश उनके हाथ लगा और बहुत कम भाग बाबिलनराजको मिला।

इसके बाद हुवक्षत्र लिदीयोंके साथ लड़ाईमें लग गये। उनके अधीनस्थ कितने शककर्मचारियोंने भाग कर लिदीयराजका आश्रय ग्रहण किया। यही ले कर दोनोंमें युद्ध उपस्थित हुआ। इस युद्धके पहले हुवक्षत्रने आर्मेनिया और कप्पादोकियाको जीत लिया था। लिदीयोंके साथ पांच वर्ष तक युद्ध होता रहा। अन्तमें युद्धके समय दार्शनिक थेलिस (Thales)-की भविष्यद्वाणीके अनुसार सूर्यग्रहण लगा। लिदीय लोग भयभीत हो कर सन्धि करनेको बाध्य हुए। गणना द्वारा यह स्थिर हुआ है, कि यह सूर्यग्रहण ५८४ खृ० पू०में हुआ था। इसके कुछ समय बाद हुवक्षत्रको मृत्यु हुई। पीछे उनके लड़के इस्तुविगु (Astyages) सिंहासन पर बैठे।

इस्तुविगुका विषय बहुत कम जाना जाता है। इस समय मिदीयसाम्राज्य सभ्यताके सोपान पर बहुत दूर चढ़ गया था। पारस्यदेशके अधिवासियोंने मिदीय लोगोंसे राजनीतिक और युद्धसम्बन्धीय नियमावली, वेशभूषा आदि सीखी थी। मिदीयोंकी निर्मित अट्टालिकादिका भग्नावशेष अभी देखा नहीं जाता, केवल उनकी निर्मित वृहत्काय सिंहमूर्त्ति आज भी भग्नावस्थामें पड़ी है। प्राचीन पारसिकोंके पुरोहितको मघुस् कहते हैं। हिरोदोतसके मतसे पहले पारसिक पुरोहितगण मिदीयोंमेंसे चुने जाते थे। इससे मालूम होता है, कि मिदीय वा उत्तरमद्रके राजाओंने ही सबसे पहले जरथुस्त्र-धर्म चलाया।

पारस्य राज्य।

इस्तुविगुके बाद मिदीय-साम्राज्यका अधःपतन हुआ और कुरुस (Cyrus) सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इसी समयसे पारस्यराज्यका प्रथम सूत्रपात हुआ। कुरुसका जन्म राजवंशमें हुआ था। कम्बुजीय (Cambyses) उनके पिता थे। बेहिस्तुन नामक स्थानमें दरायुसकी जो खोदित लिपि है उसमें कुरुसकी वंशावली इस प्रकार पाई जाती है:—

अखमनिश (Achaemenes)
|
१ चिशपिश (Teispes)
|
२ कम्बुजीय (Cambyses)
|
३ कुरुस (Cyrus)
|
४ चिशपिश (Teispes)

५ कुरुस	आर्यराम्न (Ariaramnes)
६ कम्बुजीय	विश्तास्प (Hystaspes)
७ कुरुस (Cyrus the great)	
८ कम्बुजीय	दरायुश (Darius)

अखमनिश (Achaemenes) इस राजवंशके आदि पुरुष थे। इनके बाद चिशपिश (Teispes) राजा हुए। ये मिदीयसाम्राज्य स्थापनके पहले ७३० खृ० पू०में जीवित थे। कुरुसकी शिलालिपिसे

मालूम होता है, कि उनके पूर्वपुरुष पारस्यदेशके राजा नहीं थे, केवलमात्र अनसन नामक नगर उनके अधिकारमें था। हिरोदोतसने लिखा है, कि कुरुस इस्तुविगुको कन्यासे उत्पन्न हुए थे। किन्तु यह कहां तक सत्य है, कह नहीं सकते। कुरुसने पारसिकोंकी सहायतासे इस्तुविगुके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। उन्हें दमन करनेके लिये हर्पाग (Harpagus) भेजे गये। किन्तु हर्पागके साथ कुरुसका षड़यन्त्र रहनेके कारण मिदीयसैन्यके एक अंशने विश्वासघातकतापूर्वक युद्धकालमें कुरुसका पक्ष अवलम्बन किया और अवशिष्ट सेना भाग जानेको बाध्य हुई। पीछे इस्तुविगुने स्वयं कुरुसके विरुद्ध युद्धयात्रा की। अन्तमें पराजित और बन्दी हुए। बाबिलनके शिलाफलकमें लिखा है, कि मिदीय-साम्राज्यका पतन ५५८ खृ० पू०में हुआ था। कुरुस इस युद्धके बाद हगमतान (Ecbatana) जीत कर अनसनको लौट गये।

कुरुस (Cyrus)।

(राज्यकाल ५५८ खृ० पू०से ५३० खृ० पू० तक)

हगमतान जीतनेके बाद कुरुस मिदीय साम्राज्यके अधीश्वर हुए। किन्तु इस समय साम्राज्यके दूरवर्त्ती स्थानोंमें विद्रोह उपस्थित हो गया। कुरुस बड़ी मुश्किलसे इन सब प्रदेशोंका शासन करनेमें समर्थ हुए।

राज्यमें सर्वत्र शान्ति स्थापित हो जाने पर कुरुसने मिदीय प्रदेशके अधिपति धनकुवेर क्रेशासके विरुद्ध युद्धयात्रा की। कपदुक (Cappadocia) नामक प्रदेशमें प्रथम युद्ध उपस्थित हुआ। इसमें क्रेशास पराजित हो कर पुनः सैन्य संग्रहके लिये स्वदेशको लौटे। किन्तु कुरुसने दलबलके साथ उनका पीछा कर सम्पूर्णरूपसे उन्हें पराजित और कैद किया। कुरुसने पहले क्रेशासको अग्निमें दग्ध करनेका आदेश दिया, पर अन्तमें उन्हें क्षमा प्रदान की। ५४६ वा ५४७ खृ० पू०में क्रेशासकी पराजय हुई।

मिदीयोंकी स्वाधीनता लोप हो जानेके बाद एशियावासी ग्रीक (यवन) लोगोंके साथ कुरुसका विवाद खड़ा हुआ। ग्रीकोंने बहुत पहले एशिया-माइनरमें उपनिवेश संस्थापन किया था। कालक्रमसे यह प्रदेश बहुनगरपूर्ण और समृद्धिशाली हो उठा। मिदीयगण इन ग्रीकोंको धीरे धीरे अपने वशमें लाये थे। किन्तु क्रेशासको पराजयके बाद उन्होंने कुरुसके अधीन रहनेमें अनिच्छा प्रकट की थी। कुरुसने बहुत कोशिश करके ग्रीकोंको अधीनतापाशमें आबद्ध किया। ग्रीक लोग प्रति वर्ष कर देने और युद्धके समय रणतरि दे कर सहायता करनेमें राजी हुए। पारसिक लोग ग्रीकोंकी आचार-पद्धति और धर्ममें हस्तक्षेप नहीं करेंगे, यह भी स्थिर हुआ।

ग्रीक लोगोंको पराजयके बाद कुरुसने बाबिलन पर अधिकार जमाया। बाबिलनराज आत्मसमर्पण करनेको बाध्य हुए। अनन्तर कुरुसने बाबिलनके निकटवर्त्ती स्थानोंको जीत लिया। फिनिक (Phoenicians) हमिदाद आदि जातियोंने उनकी अधीनता स्वीकार की थी।

दरायुसकी खोदित लिपिमें देखा जाता है, कि पारस्यदेशके समस्त भूभाग, उत्तरमें अक्षु (Oxus) नदीके तीरवर्त्ती स्थान और पश्चिममें अफगानिस्तानका अधिकांश कुरुसके अधिकारमें था। कहते हैं, कि कुरुसने भारतवर्ष पर भी आक्रमण किया था, पर वे कृतकार्य न हो सके थे।

कुरुसकी मृत्युके सम्बन्धमें नाना प्रकारके गल्प प्रचलित हैं; पर वे अपने राज्यके उत्तर-पूर्व किसी असभ्य जातिके साथ युद्धमें मारे गये थे, केवल यही प्रवाद सत्य प्रतीत होता है। कुरुसकी मृत्युके बाद कम्बुजीय (Cambyses)-ने पिताकी मृतदेहको स्वदेश ला कर समाधिस्थ किया था। मुर्घाव नामक स्थानमें उस समाधिका चिह्न आज भी विद्यमान है। यहां एक स्तम्भमें लिखा है, "हम कुरुस राजा अखमनिशके वंशसम्भूत हैं।" पारसिकगण और हिरोदोतस, जेनोफन आदि ऐतिहासिकोंने इन्हें एक आदर्श राजा मान कर अत्यन्त सुख्याति की है। वे एक प्रबलपराक्रान्त राजनीतिकुशल राजा थे, इसमें सन्देह नहीं।

कम्बुजीय (Cambyses)

कुरुस ५२९ ई०सनके पहले वर्दिय (Smerdis) और कम्बुजीय नामक दो पुत्र छोड़ कर परलोकको

सिधारे। उनकी मृत्युके बाद दोनों भाइयोंमें विवाद खड़ा हुआ। दरायुसकी खोदित लिपिमें लिखा है, कि कम्बुजीय छिपके अपने भाईको मार कर सिंहासन पर बैठे। सिंहासन पानेके बाद वे मिस्रदेश जीतनेके लिये अग्रसर हुए थे। मिस्र प्राचीनकालसे ही समृद्धिशाली देश समझा जाता था। इसी कारण कम्बुजीयको मिस्र जीतनेकी इच्छा हुई। मिस्रमें पेलुसियन नामक स्थानमें घनघोर युद्ध छिड़ा। इस युद्धमें मिस्रराज सम्यक्‌रूपसे पराजित हो कर अपनी राजधानी मेम्फिस नगरको भाग गये। मेम्फिस नगर बहुत ही जल्द शत्रुके हाथ आ गया। पारस्यराजने मिस्रवासियोंके प्रति अत्याचारकी पराकाष्ठा दिखलाई थी। पीछे मिस्रराज साममेनितस (Psamenitus) मारे गये। एतद्भिन्न देवमन्दिरका लूटना, भूगर्भमें रचित मृतदेह (Mummy) का दाहन, मिस्रवासियोंके उपास्य वृषवध, लोकहत्या आदि नाना प्रकारके अत्याचार हुए थे। पारस्यराजने इजिप्टराजकी दो कन्याओंका पाणिग्रहण किया।

जब कम्बुजीय मिस्रमें व्यस्त थे, उस समय सहसा उन्होंने सुना कि गौमाता नामक एक व्यक्तिने 'वर्दिय' नाम धारण करके सिंहासन पर अधिकार कर लिया है। यह सम्वाद पाते ही वे उसी समय स्वदेशको चल दिये। किन्तु अपने राज्यमें लौटने भी न पाये, कि राहमें ही वे करालकालके गालमें पतित हुए।

कम्बुजीयकी मृत्युके बाद गौमाता पारस्यका शासन करने लगी और सबोंने उन्हें राजा मान लिया। उन्होंने राजस्वकी दर बहुत घटा दी और थोड़े ही दिनके अन्दर वे सर्वजनप्रिय हो उठे। किन्तु प्राचीन राजवंशोद्भव मनुष्य उनके प्रति विद्वेषी थे। अन्तमें सात व्यक्तियोंके षड़यन्त्रसे ५२१ खृ०पूर्वाब्दके आरम्भमें गौमाता मारे गये और दरायुस (Darius) राजपद पर अभिषिक्त हुए।

दारयवहुश वा दारयवुश (चलित नाम दरायुस Darius)।

दरायुसने सिंहासन पा कर कुरुसकी कन्या और कम्बुजीय तथा राज्यापहारक वर्दियकी पत्नी अतोसासे विवाह किया और जिन छः व्यक्तियोंकी सहायतासे उन्होंने राज्यलाभ किया था उनमेंसे एकको बालबच्चे समेत मरवा डाला। थोड़े ही समयके मध्य चारों ओर अशान्ति फैल गई। अथिना, बाबिलन, पर्मेनिया, मिदीया आदि प्रदेश स्वाधीन हो गये। एक व्यक्ति 'वर्दिय' नाम धारण कर दरायुसके विपक्ष खड़े हुए। बहुतसे लोग उनके साथ मिल गये। दरायुसके उद्यम और बुद्धिकौशलसे यह विद्रोहानल प्रशमित हुआ। आश्रिनीय-विद्रोहदमनके बाद दरायुसने कई एक युद्धोंमें बाबिलनराजको परास्त किया और बहुत दिन तक नगरको घेरे रहनेके बाद बाबिलन पर अधिकार जमाया। इस समय उन्होंने सुना, कि मिदीयाके फ्रवरती विद्रोही हुए हैं और पार्थिव तथा वरकानगण (Hyrcanians)-ने उनका साथ दिया है। दरायुसने विद्रोहदमनके लिये कई दल सेना भेजीं, पर वे शत्रुके हाथसे पराजित हुईं। अन्तमें दरायुसने स्वयं मिदीयाके युद्धक्षेत्रमें उपस्थित हो कर शत्रुओंको परास्त किया।

इस प्रकार नाना स्थानोंमें विद्रोहदमनके बाद दरायुसने सुचारुरूपसे राज्य चलाने पर ध्यान दिया। भविष्यमें जिससे किसी प्रकारका गोलमाल न हो, उसके लिये उन्होंने अपने विस्तीर्ण राज्यको नाना अंशोंमें विभक्त किया और प्रत्येक स्थानमें एक एक क्षत्रप (Satrap) वा शासनकर्त्ता रखा। ये सब शासनकर्त्ता किसी भी प्रकार विरुद्धाचरण न कर सकें, इसके लिये उनकी देखरेखमें एक कर्मचारी नियुक्त किया गया। क्षत्रपके अधीन सेना तो रहती थी, पर उनके शासितप्रदेशमें जो सब दुर्ग थे, वे राजाके अधीन ही रहते थे। इसके अलावा दरायुसने प्रत्येक विभागका राजस्व निर्द्धारित कर दिया। शेषोक्त कार्यके लिये पारसिकगण दरायुस पर अत्यन्त असन्तुष्ट हुए। जो कुछ हो, दरायुसने पूर्वप्रचलित विधिव्यवस्थाकी अनेक उन्नति की, इसमें सन्देह नहीं। इसके बाद वे राज्य फैलानेमें अग्रसर हुए। बेहिस्तून नामक स्थानमें जो कीलाकार लिपि है, उसे पढ़नेसे मालूम होता है, कि उन्होंने सिन्धुनदीको तीरभूमिका आविष्कार कर पीछे भारतवर्ष जीता था, किन्तु यह भ्रमलक है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। मालूम पड़ता है, कि उन्होंने सिन्धुतीरस्थ प्रदेश जीता

था और वही विभाग भारतवर्ष नामसे वर्णित हुआ है।

इस समय शकजाति अत्यन्त पराक्रमशाली हो उठी थी। दरायुसने उन्हें दमन करनेकी इच्छासे ५१५ खृ० पूर्वाब्दमें उनके विरुद्ध युद्धयात्रा कर दी। उन्होंने पुल के सहारे वस्फोरस प्रणाली और दानियुवनदी पार कर शत्रुके राज्यमें प्रवेश किया। उस समय शक लोग भ्रमणशील जाति समझे जाते थे। किसी स्थानमें ये लोग स्थायिभावसे नहीं रहते थे। सुतरां दरायुसने उन्हें सम्मुखयुद्धमें न पाया। अन्तमें जब दुर्गमपथश्रमसे तथा रोगप्रभावसे बहुत-सी सेना विनष्ट हुई, तब दरायुस स्वदेश लौट जानेको बाध्य हुए। इतने दिनों तक पारसिक लोग जो अजेय समझे जाते थे, वह इस युद्धमें बहुत कुछ खर्व हो गया।

इस समय योन (Ionain) और अन्यान्य पारस्यवासी ग्रीक लोगोंने पारस्यराजके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। एथेन्सके अधिवासियोंने उन लोगोंकी सहायतामें बीस जंगी जहाज भेजे थे। ग्रीक लोगोंने मिल कर सार्डिसनगरमें घेरा डाला और उसे जीत लिया। किन्तु नगरस्थ दुर्ग वे जीत न सके। इस युद्धमें पारसिकोंकी वीर्यवत्ताका परिचय पा कर एथेन्सका नौसेनावर्ग स्वदेश लौटनेको बाध्य हुआ; किन्तु तिस पर भी एशियावासी ग्रीक युद्धसे न हटे। सालामिसके निकट जलयुद्धमें उन्होंने पारसिकोंको परास्त किया, पर स्थलयुद्धमें (मिलेतस नगरमें) उन्होंने पारसिकोंसे हार खाई।

ग्रीक लोग बहुत दिनोंसे शत्रुके आक्रमणसे मिलेतसनगरकी रक्षा करते आ रहे थे। अन्तमें पारसिकोंने यूरोपीय ग्रीक लोगोंकी सहायता और विश्वासघातकतासे नगर पर अपनी गोटी जमा ली। पीछे उन्होंने नगरको तहस नहस कर डाला और ग्रीकगण पारसिकोंके वशीभूत हुए।

प्रथम युद्धमें एथेन्सके अधिवासियोंने जो यवनोंकी सहायता की थी, उस अपराधमें दरायुसके जमाई मार्दोनियसने एथेनीयोंको उपयुक्त शास्ति देनेके लिये युद्धयात्रा कर दी। उन्होंने नाचसको जीता और इरेट्रिया नगरको ध्वंस कर डाला। किन्तु सुप्रसिद्ध मारथनके युद्धमें सम्पूर्णरूपसे पराजित हो जानेसे ग्रीक लोग विजयाकांक्षा त्याग देनेको बाध्य हुए।

काम्बुजीयके समयसे ही मिश्र पारसिकोंके अधिकारभुक्त था। दरायुसने नीलनदीसे ले कर लोहित समुद्र तक एक नहर कटवाई थी और राज्यकी उन्नतिमें भी विशेष चेष्टा की थी। किन्तु पारसिकलोग मिश्रवासियोंके इतने अप्रीतिभाजन हो गये थे, कि ४८६ खृ० पूर्वाब्दमें वे सबके सब विद्रोही हो गये। दरायुसका विद्रोहदमनके पहले ही ४८५ खृ० पूर्वाब्दमें शरीरावसान हुआ।

अखमनीयवंशके मध्य दरायुस सर्वप्रधान राजा थे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। वे जैसे बुद्धिमान् थे, वैसे ही उद्यमशील भी थे। ग्रीकलोग साधारणतः पारसिकोंसे घृणा करते थे; किन्तु एस्काइलसने अपने ग्रन्थमें दरायुसको श्रेष्ठ बतलाया है।

क्षयार्षा वा क्षयार्षा (Xerxes) ४८५-४७९ खृ०पू।

दरायुसकी मृत्युके बाद उनके बड़े लड़के क्षयार्षा राजगद्दी पर बैठे। दरायुसकी मृत्युके कुछ पहले ही विद्रोह उपस्थित हुआ था। क्षयार्षा ४८४ खृ० पू०की इस विद्रोहदमनमें समर्थ हुए और उन्होंने अपने भाई अखमनिशको इजिप्टका शासनकर्त्ता बना कर भेजा। इस समय बाबिलनमें विद्रोह चल रहा था। क्षयार्षाने बाबिलनको जीत कर वहां जितने उपासनामन्दिर थे उन्हें तोड़ फोड़ डाला और अधिवासियोंके प्रति घोरतर अत्याचार किया।

माराथनके युद्धमें पारसिकोंने ग्रीक लोगोंके हाथसे जो निग्रहभोग किया था, उसे वे भूले नहीं थे। क्षयार्षाने इस अपमानका बदला लेनेके लिये सङ्कल्प किया और चारों ओरसे सैन्यसंग्रह करना आरम्भ कर दिया। सार्दिस नामक स्थानमें वे सारी सेनाको एकत्र कर ग्रीस जीतनेके लिये अग्रसर हुए। वे प्रसिद्ध थार्मपली नामक गिरिपथमें अल्पसंख्यक स्पार्टनोंको परास्त करनेमें समर्थ तो हुए थे, पर सालामिस युद्धमें वे सम्पूर्णरूपसे परास्त हो स्वदेश लौटनेको बाध्य हुए। ४८० खृ० पूर्वाब्दमें मार्दोनियस पारसिकसेनाओंके साथ प्लाटिया-युद्धमें पराजित हुए और ४७९ खृ० पूर्वाब्दमें मार डाले गये।

इस समय एथेनीयगण जलपथमें अत्यन्त प्रबल हो उठे थे। उन्होंने किमन (Cimon)-के अधीन पारसिकोंके जंगी जहाजका पीछा किया और उन्हें तहस नहस कर डाला। इस लड़ाईके बाद यूरोपमें पारसिकोंकी प्रधानता एक तरहसे विलुप्त हो गई।

त्वयार्षा पहले सार्दिस नामक स्थानमें गये, किन्तु एशियामें ग्रीकोंके आगमनसे डर कर वे अपनी राजधानी लौट जानेको बाध्य हुए। उस समय उनके शरीररक्षक प्रधान सेनापति आर्त्तावनसने अर्तक्षत्रके साथ षड़यन्त्र करके अन्तःपुरके मध्य उन्हें तथा उनके बड़े लड़के दरायुसको छिपके मार डाला।

अर्तक्षत्र (Arta-xerxes) ४६४-४४५ खृ०पू०।

सिंहासन पर बैठ कर अर्तक्षत्रने पहले आर्त्तावसनको ही मार डाला। इस समय अर्तक्षत्रके बड़े भाई विश्तास्प (Hystaspes) वह्लियाके शासनकर्त्ता थे। जब उन्होंने सुना कि उनके छोटे भाईने राजपद प्राप्त किया है, तब वे विद्रोही हो गये और उपरोक्त दोनों युद्धोंमें हार मान कर भाग चले।

अर्तक्षत्रकी सभामें ग्रीसके विख्यात वीर थेमिष्टोक्लिस (Themistocles) स्वदेशके अनिष्टसाधनकी इच्छासे पहुंचे। पारस्यराजने उनको खूब खातिर की और मैन्द्रनदी-तीरस्थ मेगनेसिया नामक स्थान तथा दो और नगर उन्हें अर्पण किये।

इस घटनाके बाद इजिप्टदेशमें घोर तर विद्रोह उपस्थित हुआ। विद्रोहीके हाथसे दरायुसके पुत्र अखमनिश मारे गये। लिबियाके राजा सामेतिकस (Psammetichus)के पुत्र इनरस (Inarus) मिस्रके राजा हुए। इस समय पारसिकोंके साथ एथेनीयोंका विवाद चल रहा था। मिस्रवासियोंकी ओरसे सहायता मांगने पर २०० एथेनीय जंगी जहाज मिस्रदेशमें भेजे गये। उपस्थित नौयोद्धाओंके साथ विद्रोहीदलने मेम्फिस नगर और दुर्गको घेर लिया।

अर्तक्षत्रने वगबुखष (Megabyzus)के अधीन एक दल सेना भेजी। घोरतर युद्धके बाद मिस्रवासी दलबलके साथ पराजित हुए और इनरस शत्रुके हाथमें फंसे तथा यमपुर भेज दिये गये। इसके कुछ समय बाद एथेनीयोंके साथ पारसिकोंकी सन्धि हुई। इस सन्धिके बाद पारसिक लोगोंने फिर कभी भी यवनों (Ionian)-के साथ भीषण युद्ध न किया। पारस्याधिप ग्रीकसेनाओंके शौर्य पर मुग्ध हो कर उन्हें अपने सैन्यदलमें नियुक्त करने लगे।

इस समय पारस्यराज्य अधःपतनोन्मुख हो गया था, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। निहेमियाका विवरण पढ़नेसे मालूम होता है, कि यहां की प्रजा दिनों दिन असन्तोष, अलस और विलासी होती जा रही थी।

अर्तक्षत्र अत्यन्त दुर्बलहृदय और व्यसनासक्त थे। राजकार्यमें उनकी कुछ भी क्षमता वा अनुराग न था। राजकार्य देखनेका भार कर्मचारियोंके ऊपर ही सौंपा गया था। ४२४ खृ० पूर्वाब्दमें उनका देहान्त हुआ।

उनकी मृत्युके बाद उनके लड़के २य क्षयार्षा राजा तो हुए, पर थोड़े ही दिनोंके अन्दर वे अपने एक भाईके हाथसे मारे गये। इस हत्याकारीने प्रायः छः मास तक राज्य किया, पीछे उसके भाई ओकस (Ochus) उसकी हत्या कर दारयवुश नामधारण करके सिंहासन पर बैठे।

२य दारयवुश (दरायुस Darius)

दरायुसको राजपद पर अधिष्ठित देख उनके भाई सिरीय देशमें विद्रोही हो गये। किन्तु दरायुसने उनकी अधीनस्थ ग्रीकसेनाको धन ले कर वशीभूत कर लिया और बहुत आसानीसे विद्रोहियोंका दमन किया। ४१० खृ० पूर्वाब्दमें सामान्य विद्रोहके बाद मिस्र स्वाधीन हो गया।

पिलोपनिसस-युद्धके बाद एथेन्सकी अवस्था शोचनीय हो गई और उसका अधिकार बहुत कुछ जाता रहा। इसी सुयोगमें जब पारसिक लोग समुद्रतीरवर्त्ती स्थानोंको अधिकारमें लानेके लिये प्रयासी हुए, तब तिशफ्रणा और फर्णावाजू नामक दो पारसिक शासनकर्त्ताओंके बीच विवाद खड़ा हुआ और दोनोंने ही स्पार्टनोंसे सहायता मांगी। स्पार्टनोंने अधिकतर क्षमताशाली तिशफ्रणा (Tissaphernes)-का पक्ष अवलम्बन किया और शर्त्त यह ठहरी, कि एशियाखण्डमें जितने ग्रीकनगर हैं उन्हें तिशफ्रणा ग्रहण करेंगे और इसके

बढ़ते वे स्पार्टनोंको सहायता देते रहेंगे। किन्तु उन्होंने स्पार्टनोंके साथ विश्वासघातकता की, इस कारण स्पार्टनोंने उनका पक्ष छोड़ फर्णाबजूका पक्ष अवलम्बन किया। यह सुयोग पा कर आथेनियोंने पारसिकोंका राज्य लूटना आरम्भ कर दिया। अन्तमें फर्णाबजूके कौशलसे आथेनीयोंने सन्धि कर ली। इस समय कुरुस (Cyrus)-ने माद (Media) और कपदुक (Cappadocia)-का शासनभार ग्रहण किया। उन्होंने पारसिकोंको पूर्व-पराजयका प्रतिशोध लेनेके लिये स्पार्टन सेनानायक लसेन्द्रकी सहायतासे आथेनियों पर धावा बोल दिया (४०४ खृ० पू०)। अन्तमें उन्हें सन्धि करनी पड़ी।

स्पार्टन और आथेन्सके बीच जिस समय सन्धि हो रही थी, उसी समय दरायुसकी मृत्यु हुई। उनकी मृत्युके बाद आर्सिका (Arsicas) अर्त्तक्षत्र नाम धारण कर सिंहासन पर बैठे। कुरुस राज्यलाभकी इच्छासे ३०० ग्रीकसेनाको साथ ले राजधानी पहुंचे। किन्तु अपने मित्र तिशफ्रणाको विश्वासघातकतासे विफल-मनोरथ और बन्दी हुए। अन्तमें उन्होंने अपनी माताके अनुरोधसे मुक्तिलाभ किया और इस अपमानका प्रतिशोध लेनेके लिये पहले ग्रीकोंसे संस्थापित नगरोंको जीत कर मिलेतस नगर घेर लिया। पीछे वे कूटनीतिके बलसे १३००० ग्रीकसेनाको संग्रह कर (४०३ खृ० पू०) पारस्य-सिंहासन पर अधिकार जमानेकी इच्छासे अग्रसर हुए। किन्तु तिशफ्रणाको पहलेसे उनका अभिप्राय मालूम था और वे पारस्यराजके निकट चले गये। कुरुस बिना रोक टोकके कुलाकजा तक पहुंचे थे। यहां ग्रीकोंके हाथसे पारसिकोंको हार हुई, किन्तु कुरुसके युद्धमें मारे जानेसे सब आशा धूलमें मिल गई।

इस युद्धमें पारस्यराजकी आभ्यन्तरीण दुर्बलता और भीरुता सम्पूर्णरूपसे प्रकाशित हो गई। मुट्ठी भर ग्रीकसेना जब पारस्य सम्राट्की सारी सेनाको पराजित करनेमें समर्थ हुई, तब ग्रीकगण भी साहसी हो उठे।

कुरुसकी माता परीसतीको जब प्रियपुत्रके मारे जानेकी खबर लगी, तब वे बड़ी बिगड़ीं और इस कार्यमें जितने दुष्ट लिप्त थे, उन्हें एक एक करके विषप्रयोगसे मार डाला। इस पर अर्त्तक्षत्र माताके प्रति असन्तुष्ट हुए, यहां तक कि उन्हें वनवास भेजनेकी इच्छा प्रकट की। किन्तु बिना माताके राजकार्य चलाना उनके लिये दुश्वार था, यह सोच कर उन्हें इस घृणित आदेशको वापिस करना पड़ा।

कुरुसकी मृत्युके बाद तिशफ्रणा राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इस समय स्पार्टनगण बहुत चढ़े बढ़े थे और पारसिकोंके साथ पहले जो सन्धि हुई थी उसे उन्होंने तोड़ दिया तथा आगिसिलसके अधीन एशिया-माइनर पर आक्रमण कर पारसिकोंको कई एक खण्डयुद्धोंमें परास्त किया (४१०१ खृ० पू०)। किन्तु ३८४ खृ०पूर्वाब्दमें जन्मभूमिको विपद्वार्त्ता सुन वे स्वदेश लौटनेको बाध्य हुए। इगस्‌पाटमो नामक स्थानमें पराजित होनेके बाद आथेनीय रणतरीके अधिनायक कोननने साइप्रस द्वीपके अधीश्वर एवागोरसका आश्रय लिया। एवागोरसके परामर्शानुसार जब कोननने पारस्यराजकी सहायता मांगी, तब पारस्यराजने बहुतसे रणपोत भेज दिये। इन रणपोतोंकी सहायतासे कोननने निदस नामक स्थानमें स्पार्टनोंको सम्पूर्णरूपसे परास्त किया और इसी समयसे समुद्रपथमें उनका प्रभाव चिरकालके लिये विलुप्त हो गया। आथेनियोंने यद्यपि जलपथमें स्पार्टनोंको परास्त कर दिया था, तो भी स्थल-पथमें उनका सामना करनेसे वे डरते थे। स्पार्टनोंने आथेनियोंको सम्पूर्णरूपसे वशीभूत करनेके लिये सार्दिसके पारसिक शासनकर्त्तासे सहायता मांगी। पारसिक सेनानायक कभी स्पार्टनका और कभी आथेन्सका पक्ष अवलम्बन करने लगे। अन्तमें अनेक षड्‌यन्त्र और प्रतारणाके बाद ३४७ खृ०पूर्वाब्दमें पारसिकोंके साथ स्पार्टनोंकी सन्धि हुई। इस सन्धिके अनुसार ग्रीसमें स्पार्टनोंकी क्षमता अक्षुण्ण रही और पारसिकोंने एशियामाइनरका समस्तग्रीक-अधिकार, क्लाजोमिनि और साइप्रस द्वीप प्राप्त किया।

इसके पहले इवागोरस साइप्रस द्वीपमें स्वाधीन भावसे राज्य करते थे। उन्होंने प्रकाश्यभावमें आथेन्सकी सहायता की। इस कारण ३८० खृ०पूर्वाब्दमें [illegible] दल पारसिक सेना उनके विरुद्ध भेजी गई और [illegible] वर्ष युद्धके

बाद इवागोरसने पारस्यकी अधीनता स्वीकार की।

इस समय कादुसियोंके साथ युद्ध उपस्थित हुआ। कादुसीय लोग गीलन नामक स्थानमें रहते थे। इन्होंने कभी भी पारस्यको वश्यता सम्पूर्णरूपसे स्वीकार न की। ये लोग हमेशा पारस्यराज्यमें घुस कर देश लूटा करते थे। अर्त्तक्षत्रने उन्हें दमन करनेकी अनेक चेष्टा की। अन्तमें उन्होंने हो प्रचुर अर्थ द्वारा सन्तुष्ट करके उनके हाथसे छुटकारा पाया।

उनके राजत्वका शेषभाग अत्यन्त अशान्तिमय हो उठा। विभिन्न प्रदेशोंके शासनकर्त्ता विद्रोही हो कर स्वाधीन हो गये। यह विद्रोहानल ३य अर्त्तक्षत्रके राजत्वके प्रथम भाग तक धधकता रहा। केवल लिदिया-के शासनकर्त्ता अन्तफरदतिश (Antopphradates)-ने प्रभुका पक्ष नहीं छोड़ा था। उन्होंने राजकीय सेनाओंकी सहायतासे कपदुक आदि स्थानोंमें विद्रोह दमन किया।

३६१ खृ०पूर्वाब्दमें ताको (Tachos)-ने पारसिकों पर इजिप्टमें आक्रमण किया और स्पार्टन सेनापति वृद्ध आगिसिलस उनकी सहायतामें भेजे गये। किन्तु जब ताकोका पुत्र पिताके विरुद्ध खड़ा हुआ, तब ताको पारसिकोंके साथ मिल गये। इस समय पारसिकोंके सविशेष चेष्टा करने पर विद्रोह-दमन हो सकता था, लेकिन इस प्रकार चारों ओर विद्रोहके समय अर्त्तक्षत्रने मानव लीला शेष की। उनकी मृत्युके बाद ओकस और सब भाइयोंको मार अर्त्तक्षत्र (Artaxerxes) नाम धारण करके सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए।

३य अर्तक्षत्र।

इनके राजत्वका प्रथमांश विद्रोह-दमनमें ही व्यतीत हुआ। इस समय पारस्यराज्यको अवस्था बड़ी ही शोचनीय थी। फ्रादगियाके शासनकर्त्ता अर्त्तबाजू (Artabazus)-ने आथेनियोंकी सहायतासे विद्रोही हो राजसेनाओंको परास्त किया। किन्तु पारस्याधिपके भयसे आथेनियोंने सहायता देना बन्द कर दिया। ३५० खृ० पूर्वाब्दमें अर्त्तबाजू माकिदनके राजा फिलिपका आश्रय लेनेमें बाध्य हुए। अन्तमें उनके भाई मेण्टरके अनुरोध करने पर अर्तक्षत्रने उन्हें क्षमा कर दी। इस समय भी मिश्रमें गोलमाल चल रहा था। बहुत समयसे फिनिकीयगण पारस्यके अनुकूल थे, किन्तु ३५२ ई० सन्‌के पहले फिनिकिया और साइप्रसद्वीपके अधिवासियोंने विद्रोही हो कर मिश्रका साथ दिया। इस समय जुदियामें भी विद्रोहानल धधक रहा था। अर्तक्षत्र जब दश हजार वेतनभोगी ग्रीकसैन्य ले कर रणक्षेत्रमें उतरे, तब टेनिस और मेण्टरने उनके साथ सन्धि कर ली। इस समयसे मेण्टर पारस्यराजको विशेष सहायता करने लगे। उन्हींके बुद्धिकौशलसे मिश्रके सेनापतियोंमें कलह उपस्थित हुआ। फलतः मिश्रके लोग अत्यन्त दुर्बल हो पड़े और थोड़े ही समयके अन्दर उन्होंने पारस्यकी अधीनता स्वीकार कर ली। इजिप्टके वशीभूत हो जानेके बाद अर्त्तक्षत्रने पुरस्कारस्वरूप मेण्टरको एशिया-माइनरके पश्चिम भागका शासनकर्त्ता बनाया।

३५० खृ०पूर्वाब्दमें माकिदनपति फिलिपने ग्रीस जीतनेका सङ्कल्प किया और जिससे पारसिक लोग किसी तरह उनके विपक्ष खड़े न हों, उसके लिये भी पारस्यराजके निकट दूत भेजा। पारस्यराज उनके अनुरोधसे कुछ काल तक निरपेक्ष रह कर अन्त (३४० खृ० पू०)में आथेनियोंको सहायता पहुंचाने लगे। आथेनियोंने पारसिकोंके साथ मिल कर फिलिपके हाथसे पेरिन्थ नगरका उद्धार किया। किन्तु ३३८ खृ० पूर्वाब्दमें चिरोणियाके संग्राममें उनके उपस्थित नहीं हो सकने पर फिलिपकी विजय हुई। इस दारुण समयमें ही बगोआ नामक एक दुर्वृत्तके हाथसे अर्तक्षत्र मारे गये।

अर्तक्षत्रके मारे जानेके बाद बगोआने उनके छोटे लड़के आरिसको राजपद पर प्रतिष्ठित किया। किन्तु आरिसने जब पितृ-हत्याका प्रतिशोध लेनेकी चेष्टा की, तब बगोआने सपरिवार उन्हें मार डाला। अपनी क्षमता अक्षुण्ण रखनेके लिये बगोआने राजवंशोद्भूत किसी दूरसम्पर्कीयको ३य दरायुस नाम दे कर राजा बनाया।

३य दरायुस (Darius III)।

राजपद पर प्रतिष्ठित हो कर ३य दरायुसने सबसे पहले बगोआको मरवा डाला। ३य अर्तक्षत्रके राजत्वकालमें इन्होंने कादुसियोंके साथ युद्धमें खूब वीरता दिखलाई। इस पर पुरस्कारस्वरूप इन्हें आर्मेनियाका शासनकर्तृत्व प्राप्त हुआ। किन्तु इसके बाद ही उन्होंने

युद्धमें भीरुता, बुद्धिहीनता और राजकार्यमें अक्षमता दिखलाई। उन्हींके दोषसे पारस्यराज्यका ध्वंस हो गया, इसमें संदेह नहीं।

पारसिकोंने फिलिपके साथ युद्धमें आथेनियोंको सहायता की थी, इस कारण ३३६ खृ॰पूर्वाब्दमें फिलिप ने पारसिकोंके विरुद्ध एक दल सेना भेजी। युद्धमें पारसिकोंकी हार हुई। इसी समय फिलिप शत्रुओंके हाथसे मारे गये, यह खबर पाते ही ग्रीक लोग स्वदेश लौटनेको बाध्य हुए। फिलिपकी मृत्युके बाद अलेक-सन्दरने सबसे पहले ग्रोकमें शान्ति स्थापित करके ३३४ खृ॰पू॰में दिग्विजयकी इच्छासे एशियाकी ओर यात्रा की। पहले उन्होंने ग्राणिकसनदीके किनारे पारसिक सेनाको सम्पूर्णरूपसे विध्वस्त कर सार्दिस पर अधिकार किया। शीतऋतुके प्रारम्भमें पामफिलिया पर्यन्त समुद्र तीरवर्त्ती स्थान उनके अधिकारमें आ गया। अलेकसन्दर जिस समय इस प्रकार जयलाभ कर रहे थे, उस समय उनके विपक्ष एक प्रबल शत्रु खड़ा हुआ। रोडस-द्वीपवासी मेमनन ग्राणिकसके युद्धमें उपस्थित थे। उन्होंने अलेकसन्दरके पश्चाद्भाग पर आक्रमण किया, फलतः वे ग्रोक लौट जानेको बाध्य हुए और मेमननने अपने अधीनस्थ पारसिक-रणतरिकी सहायतासे कितने प्रधान द्वीपों पर अधिकार कर लिया। ग्रीसमें हजारों वीर पुरुष स्वदेशके स्वाधीनता-लाभमें समुत्सुक हो मेमननके आगमनको प्रतीक्षा कर रहे थे। इसी समय अलेकसन्दरके सौभाग्यक्रमसे मेमनन-इस लोकसे चल बसे। उनको मृत्युके बाद पारसिक रणतरियोंका अधिनायकत्व फर्णाबाजूके ऊपर सौंपा गया। किन्तु वे मेमननको प्रणालोके अनुसार कार्य करनेमें अक्षम थे, इस कारण पारस्यराज्य-रक्षाकी आशा विलुप्त हुई।

मेमननकी मृत्युके बाद अलेकसन्दर एशिया-माइ-नरके अन्तर्गत प्रधान प्रधान स्थानोंको हस्तगत कर पारस्यदेशको ओर अग्रसर हुए। सिलुकियाके प्रान्तभाग-में दरायुस स्वयं दलबलके साथ जा धमके। यहां दोनों-में घनघोर युद्ध हुआ जिसमें पारसिक सम्पूर्णरूपसे परा-जित हुए (३३३ खृ॰पू॰)। अलेकसन्दर जैसे साहसी थे वैसे ही सतर्क भी थे। संग्राममें जयलाभके बाद पहले दरायुसका अनुसरण न करके पारसिकगण जिससे पुनः समुद्रपथमें उन्हें व्यतिव्यस्त न कर सकें, इसलिये उन्होंने फिनिकीय उपकूल अधिकार करके पारसिकोंको रणतरिप्राप्तिका पथ बन्द कर दिया। पारसिकोंके अधीनस्थ साइप्रसको रणतरियां स्वदेश लौट गईं और उन्होंने अलेकसन्दरको वश्यता स्वीकार कर ली। टायर, गाजा आदि स्थान बहुत दिन तक अवरोधके बाद अलेकसन्दरके हाथ लगे। इजिप्टके अधिवासी पार-सिकोंके अत्यन्त विद्वेषी थे। अभी अलेकसन्दरके आग-मन पर उन्होंने सहर्ष उनका पक्ष अवलम्बन करके पारसिकोंके हाथसे छुटकारा पाया। अलेकसन्दर इस प्रकार विस्तृत राज्य पा कर ३३१ खृ॰पूर्वाब्दमें सीरिया और मेसोपटेमिया होते हुए आसोरिया पहुंचे और यहां ससैन्य दरायुसके साथ उनकी भेंट हुई। गौगा-मेला नामक स्थानमें जो संग्राम हुआ उसमें दरायुस सम्पूर्णरूपसे पराजित हो कर मिदोया भागनेको बाध्य हुए।

इस युद्धमें प्राचीन पारस्यराज्यका अवसान हुआ। युद्धमें जयलाभके बाद बाबिलन और सुसा अलेकसन्दरके हाथ आया। पीछे उन्होंने सब प्रकारके प्रतिबन्धकोंका अतिक्रम कर पारस्यदेशमें प्रवेश किया, पार्सिपोलिस-को लूटा और राजप्रासादको भस्मसात् कर दिया। दरायुस अलेकसन्दरको अपना पोछा करते देख पूर्व-दिशाको भाग चले। उनके साथ बहुत थोड़ी सेना थी; किन्तु उनके प्रति ग्रोकसेनाओंने इस समय जैसी प्रभु-भक्ति और अनुराग दिखलाया, वह विशेष प्रशंसनीय था। अन्तमें दरायुस बक्ट्रियाके शासनकर्त्ता बेससके हाथमें पतित हुए और बेससने ३३० खृ॰ पूर्वाब्दमें अलेकसन्दरको निकटवर्त्ती देख दरायुसको मार डाला।

दरायुसको मृत्युके बाद बेससने ४र्थ अर्त्तक्षत्र नाम धारण कर अपनेको पारस्यदेशका राजा बतला कर घोषणा कर दो और पारसिक लोग उनको सहायतामें अग्रसर हुए। अलेकसन्दरने बहुत प्रयाससे उन्हें पकड़ा और मार डाला।

अलेकसन्दरके भारतवर्षसे लौटते समय वार्यार्ष

(Baryaxes) नामक एक व्यक्तिने राजाकी उपाधि ग्रहण की। मिदोयाके शासनकर्त्ता उन्हें पकड़ कर अलेकसन्दरके समीप लाये। अलेकसन्दरके आदेशसे उन्हें प्राणदण्ड मिला। इस घटनाके बाद पारस्यदेशमें ग्रीक-शासनकाल आरम्भ हुआ।

ग्रीकशासन।

गौगामेला-संग्रामके बाद अलेकसन्दरने अपनेको एशियाके सम्राट् बतला कर घोषणा कर दी (३३१ खृ०पू०)। अनन्तर पार्सिपोलिसमें राजप्रासादके भस्म-सात् और देसके निहत होने पर पारसिकगण सदा-के लिये अपनी स्वाधीनता लोप हो गई, यह अच्छी तरह समझ सके। अलेकसन्दर देखो।

अलेकसन्दरने अपने इस बहुविस्तृत राज्यको सुशा-सित रखनेके लिये अनेक नगर संस्थापन किये और प्रत्येक नगरमें ग्रीकसेना रख दी। बाबिलन नगरमें उनकी राजधानी हुई। भविष्यमें किसी प्रकारका गोलमाल उपस्थित न हो, इसके लिये उन्होंने सारे राज्यको चौदह भागोंमें विभक्त कर प्रत्येक भागमें एक एक शासनकर्त्ता नियुक्त किया। यह शासन-कर्तृपद ग्रीक और पारसिक दोनों जातिके लोगों-को ही प्राप्त हुआ था। शासनकर्त्ताओंको अपने प्रदेशस्थ सैनिकोंके ऊपर किसी प्रकारकी क्षमता न थी; केवल देशशासनका भार उनके ऊपर सौंपा गया था। वे अपने इच्छानुसार वैदेशिक सैन्यनियोग, अपने नाम पर मुद्राप्रचलन प्रभृति कार्य नहीं कर सकते थे। प्रत्येकको निर्दिष्ट दरसे राजस्व देना पड़ता था। अलेकसन्दरने राजस्वसम्बन्धमें ऐसा सुन्दर नियम चलाया, कि मृत्युके समय उनके कोषागारमें ११२८८५१५०) रुपये जमा थे।

माकिदनवीरने अपने राज्यको चिरस्थायी करनेके लिये ग्रीक और पारसिकोंके मध्य जातिगत प्रभेद उठा दिया और जिससे वे सब एक जातिके समझे जा सकें उसके लिये विशेष चेष्टा की। इस कारण उन्होंने ३०००० पारसिक सेनाको ग्रीक प्रथाके अनुसार युद्ध-विद्यामें सुशिक्षित किया। इनका ग्रीकसेनाके समान सम्मान होता था। इन उभय जातियोंके मध्य जिससे किसी प्रकारका विद्वेष न रहे, उसके लिये उन्होंने ग्रीक और पारसिकोंके मध्य विवाहप्रथा चलाई तथा इसी विषयमें उत्साह देनेके लिये स्वयं तीन पारसिक रम-णियोंका पाणिग्रहण किया।

मिस्रके प्रथानुसार अलेकसन्दरने जब अपनेको आमन-जुपिटरके पुत्र और प्रजाको उपास्य बतला कर घोषित किया, तब बहुतसे लोग इसे स्वीकार करनेको बाध्य तो हुए, पर जरथुस्त्र और आर्य धर्मावलम्बी मनुष्य इस पर घोरतर विद्रोही हो उठे।

पारस्यजयके बाद अलेकसन्दर अत्यन्त विलासी और सुरासक्त हो गए। अनेक प्रकारके शारीरिक अत्या-चारसे और अस्वास्थ्यजनक बाबिलननगरमें वास करनेसे ३२३ खृ० पूर्वाब्दके जून मासमें वे ज्वररोगसे पीड़ित हुए और कुछ दिनके बाद कुटिल कालके गालमें फंसे।

पारसिक और ग्रीकको एक जातिभुक्त करनेकी इच्छा अलेकसन्दरके हृदयमें अत्यन्त प्रबल थी, इसके लिये उन्होंने अनेक तरहके उपाय अवलम्बन किये थे; किन्तु किसी भी तरह वे कृतकार्य न हो सके। उनके सेनापति और मन्त्रिवर्ग इस विषयके पक्षपाती नहीं थे, इस लिये वे अलेकसन्दरके प्रति अत्यन्त असन्तुष्ट हुए थे। माकि-दनवासिगण पारसिकोंकी अपेक्षा अधिक संख्यामें थे भी नहीं। उनकी संख्या बहुत थोड़ी थी और पार-सिकोंके संस्पर्शसे वे विलासी होने लगे। अलेक-सन्दर पारसिकोंके आचार व्यवहारसे ऐसे अनुरागी हो उठे थे, कि वे पारसिक पहनावा पहनते और पारसिक भाषामें ही बोल चाल करते थे। पारसिक-सेनापति अले-कसन्दरकी अभिसन्धि समझ कर उनके प्रति श्रद्धाहीन हो गये थे और तमाम यह घोषणा कर दी कि अले-कसन्दरकी आज्ञाका पालन कोई भी न करे। फलतः राज्य भरमें विद्रोहानल धधक उठा। अलेकसन्दर अपने सेनापतियोंके ऐसे व्यवहारसे नितान्त क्षुब्ध और मर्मा-हत हुए थे।

उस महावीरने निःसन्तानावस्थामें प्राणत्याग किया। उनकी मृत्युके बाद पारस्यमें ४२ वर्ष तक घोरतर अन्तर्विद्रोह होता रहा। एशियामाइनरमें सभी ग्रीकशासनकर्त्ता धीरे धीरे स्वाधीनता अवलम्बन करके परस्पर युद्धमें प्रवृत्त हो गये। बाबिलनके

शासनकर्त्ता सेलुकसने सबोंको युद्धमें परास्त कर एकाधिपत्य लाभ किया। अलेकसन्दर सिन्धुनदी तक अपना अधिकार फैला कर वहाँ एक दल ग्रीकसेना छोड़ गये थे। किन्तु उनकी मृत्युके बाद जो अन्तर्विप्लव उपस्थित हुआ, उसमें हिन्दुओंने ग्रीकसेनाको मार कर मौर्यवंशीय राजाकी अधीनता स्वीकार की।

सेलुकस मौर्यराजके साथ युद्ध करनेके लिये सिन्धनदी पार हुए, किन्तु मगधराजके साथ उनकी सन्धि हो गई। इस सन्धिके अनुसार सेलुकसको ५०० जंगीजहाज और मौर्यराजको सिन्धुनदीके निकटवर्त्ती ग्रीकराज्य मिला और विपद्‌के समय एक दूसरेको सहायता करेंगे, ऐसा दोनोंने अङ्गीकार किया।

सेलुकसने अपने राज्यको १२ भागोंमें विभक्त कर प्रत्येक भागमें एक क्षत्रप वा शासनकर्त्ता नियुक्त किया। उन्होंने टाइग्रिस नदीके किनारे सेलुकिया नामकी राजधानी बसाई। किन्तु ग्रीसमें युद्ध उपस्थित हो जानेसे वे सीरियाके अन्तर्गत अन्तिओक (Antioch) नगरमें ही राजधानी उठा लानेको बाध्य हुए। यहां कुछ काल तक राज्य करनेके बाद वे २८० खृ० पूर्वाब्दमें मारे गये।

अन्तिओक (Antiochus) २८०-२६१ खृ० पू०।

अन्तिओक सेलुकसकी तरह राज्यलोलुप नहीं थे। वे एशियास्थ समस्त ग्रीकराज्यको तीन भागोंमें विभक्त करके उसका एकांश ले कर राज्य करते थे।

उन्होंने अनेक नगर बसाये, ग्रीक उपनिवेश स्थापित किया और मिदीयामें प्रायः १७२ मील तक दीर्घ प्राचीर बनवाया। उनके बड़े लड़केने जब पिताके विरुद्ध अस्त्रधारण किया, तब उन्होंने अपने हाथसे उसका मस्तक काट डाला। २६१ खृ०पू०में अन्तिओकको मृत्यु हुई। पीछे उनके द्वितीयपुत्र अन्तिओक नाम धारण कर सिंहासन पर बैठे।

भारतवर्षमें इस समयकी जो खोदित लिपि है उसमें अन्तिओकका नाम देखनेमें आता है। सेलुकसने मौर्यराजके साथ बन्धुत्व संस्थापन करके उनकी सभामें मेगस्थनीज नामक एक दूतको रख छोड़ा था। मौर्यराजकी मृत्युके बाद उनके वंशीय राजाओंके साथ ग्रीकसम्राटोंका अच्छा सद्भाव था और वे एक दूसरेके पास दूत भेजा करते थे। अशोकने बौद्धधर्ममें दीक्षित हो कर जिस समय अपने अहिंसाधर्मका प्रचार करना आरम्भ किया, उस समय अन्तिओकने उनके कार्य पर विशेष सहानुभूति प्रकट की थी।

२य अन्तिओक (Antiochus II)

२६१–२४६ खृ० पू०।

२य अन्तिओक अत्यन्त सुरासक्त और भोगी थे। वे अपना समय बन्धुवर्गके साथ आमोद-प्रमोदमें बिताते थे। उनके राजत्वके प्रथम भागमें ही ईरानका उत्तर-पश्चिम-भाग राज्यसे विच्छिन्न हो गया और वह्लिकाके शासनकर्त्ताने स्वाधीनता अवलम्बन की। इसके कुछ समय बाद ही पार्थिवगण विद्रोही हो गये। पार्थिवगण (Parthians) भ्रमणशील जाति थे और पशुचारण द्वारा जीविका-निर्वाह करते थे। असकेश और तिरिदत नामक (Teridates) नामक दो भाई वह्लिकामें ओक्सस नदीके किनारे मवेशी चराया करते थे। एक दिन इस प्रदेशके शासनकर्त्ताने अपने कनिष्ठ भाईका अपमान किया जिससे वे विद्रोही हो गये। पीछे उन्होंने शासनकर्त्ताको मार कर असकेशको अपना राजा बतलाते हुए तमाम घोषणा कर दी (२५० खृ० पू०)। इस विद्रोहदमनका और कोई सुयोग उपस्थित न हुआ।

२य सेलुकस (Seleucus II)

२४६-२२६ खृ० पू०।

२य अन्तिओकको मृत्युके बाद सिंहासन ले कर उनके पुत्रोंमें विवाद खड़ा हुआ। कालिनिकस (Callinicus)-की प्ररोचनासे इजिप्टके राजाने वह्लिका तक लूटा। २य सेलुकस पिताका सिंहासन पा कर भाईके साथ युद्धमें लग गये। २४२ खृ०पूर्वाब्दमें अंकरा नामक स्थानमें जो युद्ध हुआ उसमें सेलुकस परास्त हुए और पीछे मालूम हो गया कि वे मारे भी गये। यह सम्वाद पाते ही पार्थिवके राजा तिरिदत (Tiridates)ने दलबलके साथ ग्रीकराज्यमें प्रवेश किया और आन्द्रोगोरसको मार कर उनके अधीनस्थ प्रदेश पर अधिकार जमा लिया। सेलुकसने अपने भाई और इजिप्टके राजाके साथ सन्धि स्थापन करके २२८ खृ० पूर्वाब्दमें तिरिदतके विरुद्ध युद्ध-

याता की। किन्तु इस युद्धमें वे सम्पूर्ण रूपसे परास्त हुए। इस समय अन्तिओक नगरमें चारों ओर अशान्ति फैल गई जिससे वे लौट जानेको बाध्य हुए और पार्थियों-से अपमानका बदला न चुका सके।

२य सेलुकसकी मृत्युके बाद उनके पुत्र सोतारने ३य सेलुकसकी उपाधि धारण कर सिंहासन पर आरोहण किया (२२५-२२३ खृ० पू०)। किन्तु उनकी कच्ची उमरमें मृत्यु हो जानेसे मागनस ३य अन्तिओकके नाम-से सिंहासन पर अभिषिक्त हुए।

३य अन्तिओक (Antiochus III)

२२३–१८७ खृ० पू०।

३य अन्तिओक पहले बाबिलनके शासनकर्त्ताके पद पर अधिष्ठित थे। अभी उन्हें सिंहासन पर समासीन देख मिदोयाके शासनकर्त्ता मोलनने उनके भाई सिकन्दरसे मेल कर राजसेनापतिको परास्त किया और सेलुकिया जीता। पीछे उन्होंने राजोपाधि ग्रहण की। बाबिलन और समस्त सुसियाना प्रदेश, परपोटमिया, मेसोपटे-मिया आदि स्थान शीघ्र ही उनके हाथ लगे। अन्ति-ओकने शत्रुओंको इस प्रकार जयलाभ करते देख स्वयं तायग्रीस नदी पार कर मोलनके भागनेके पथको घेर लिया। मोलन बाध्य हो कर युद्ध करने लगे और अन्तमें सम्पूर्ण रूपसे परास्त और निहत हुए। इस युद्धके बाद ३य अन्तिओक सेलुकिया गये और वहां राज्यशासनका सुबन्दोबस्त करके अपनी राजधानीको लौटे।

अन्तिओककी बहन आर्मेनियाके अधिपतिकी स्त्री थी। आर्मेनियापति पत्नीके षड़यन्त्रसे मारे गये। अन्ति-ओकने आर्मेनिया जा कर सभी विवाद शान्त किया और पीछे बहुसंख्यक सेना ले कर पार्थिवराज्यमें घुस पड़े। युद्धमें पार्थिवगण सम्पूर्ण रूपसे परास्त हुए और पीछे उन्हें अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। पार्थिवोंका युद्ध समाप्त हो जाने पर अन्तिओक वह्लिकाराज्याप-हारक यथेदेमस (Euthydemus)-के साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए और छः वर्ष लड़ते रहनेके बाद सन्धि स्थापित हुई। सन्धिके अनुसार अन्तिओकने यथेदेमसको वह्लिकाका राजा माना और उनके पुत्रके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया। वह्लिकाके राजा इसके बदलेमें अपने समस्त रणहस्ती, सेनाओंको रसद और कुछ अर्थ देनेको बाध्य हुए। इसके अलावा विपद्‌के समय एक दूसरेको सहायता करेंगे, यह भी स्थिर हुआ। इस सन्धिके बाद अन्तिओक काबुल चले गये और वहांसे उन्होंने भारतवर्षीय राजा सुभगसेनके साथ मित्रता कर ली। पीछे राजासे १५० रणहस्ती उपहारमें पा कर वे स्वदेशको चल गये।

अन्तिओक जीवनके शेषभागमें रोमकोंके साथ युद्ध-में परास्त हुए और बहुत धन दे कर अपनी जानको रिहाई पाई। अर्थसंग्रहकी इच्छासे उन्होंने सुसा आ कर बेलदेवका मन्दिर लूटा। इस स्थानके अधिवासी-गण उनका यह कार्य देख कर बड़े बिगड़े और पीछे उन्होंने आक्रमण कर उन्हें यमपुर भेज दिया।

४र्थ सेलुकस (Seleucus Philopator IV)।

अन्तिओककी मृत्युके बाद ४र्थ सेलुकसने १८७ खृ०पू०से १७५ खृ०पू० तक राज्य किया। इनकी मृत्यु-के बाद ४र्थ अन्तिओक (Epiphanes) सिंहासन पर बैठे और प्रजाकी भलाईका उपाय सोचने लगे। किन्तु राजकोषके अर्थशून्य हो जानेसे उन्होंने आर्मेनियामें प्रवेश कर वहांके शासनकर्त्ताको कैद किया और बहुत-से मन्दिर लूटे। इस प्रकार प्रचुर अर्थसंग्रह कर वे स्वदेशको लौटे। ऐसे धर्मविरुद्ध कार्य पर सबके सब असन्तुष्ट और विद्रोही हुए। इस विद्रोहदमनके पहले ४र्थ अन्तिओकका देहान्त हुआ (१६४ खृ०पू०)।

उनके नाबालिग पुत्र यूपेतर ५म अन्तिओक नाम धारण कर सिंहासन पर बैठे। किन्तु दो वर्ष बाद ही वे देमितर सोतरके हाथसे मारे गये।

देमितरसोतर (Demitrius Sotor)

१६२–१५० खृ० पू०।

देमितरके राजपद पर प्रतिष्ठित होनेसे रोमकोंके साथ उनका विवाद खड़ा हुआ। रोमकोंने युद्धमें जयलाभ किया और चारों ओर उनके शत्रुओंको उभाड़ा जिससे देमितर बलहीन हो गया। मिदोयाके शासनकर्त्ताने इस सुयोगमें अपना अधिकार बढ़ाना चाहा और इसी काममें वे रोमनगर गये तथा वहां १६१ खृ०पूर्वाब्दमें राजा बन गये। पीछे उन्होंने आर्मे-नियाके शासनकर्त्ताके साथ सन्धि कर ली जिससे

मिदोयाके पार्श्ववर्त्ती स्थानके अधिवासियोंने उनकी वश्यता स्वीकार की। इसके कुछ समय बाद बाबिलन उनके दखलमें आ गया। इस प्रकार राज्यरत्न देख कर देमितर दलबलके साथ रणस्थलमें पहुंचे और युद्धमें उन्होंने मिदोयाके शासनकर्त्ताका विनाश किया।

१म अन्तिओकके बादसे पार्थि वाधिपति शान्तभावसे राज्य करते थे और १७१ खृ०पू० तक उन्होंने राज्य फैलानेकी जरा भी चेष्टा न की। १७१ खृ०पू०की पार्थिव-नरपति फ्रवती (Phraates)की मृत्युके बाद उनके भाई मित्रदात सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। मित्रदात बुद्धिमान् और साहसी थे। उन्होंने राजपद पर प्रतिष्ठित हो कर राज्यविस्तारकी ओर ध्यान दिया।

इस समय बक्त्रियाधिपति यथैदमके पुत्र देमितर (Demetrius = देवमित्र) भारत जीतनेके लिये अग्रसर हुए। उन्होंने पञ्जाब जीत कर शाकलमें पिताके नाम पर राजधानी बसाई और सिन्धुनदी पार कर पत्तल, सुराष्ट्र तथा भरुकच्छ फतह किया था। किन्तु अन्तमें यूक्रातिदेस् नामक एक व्यक्तिने उनसे बक्त्रियाराज्य छीन लिया।

इसके कुछ समय बाद बक्त्रियामें अन्तर्विप्लव उपस्थित हुआ जो यूक्रातिदेस (Ucratides)की मृत्युके बाद और भी भयङ्कर हो उठा। किसी किसी ऐतिहासिकने लिखा है, कि मित्रदातने ऐसे मौकेमें भारतवर्ष तक अपना राज्य फैला लिया था। पीछे उन्होंने पूर्वभागमें इस प्रकार विजयलाभ करके ग्रीकसाम्राज्यकी ओर दृष्टि डाली। १५० खृ० पूर्वाब्दमें एक व्यक्ति अपनेको अन्तिओक एपीफ़िनीके पुत्र बतला कर उपस्थित हुए। उन्होंने पार्श्ववर्त्ती राजाओंकी सहायतासे देमितरको युद्धमें परास्त कर मार डाला और सिंहासन पर अधिकार कर १४५ खृ०पू० तक राज्य किया। अन्तमें वे टलेमीके साथ युद्धमें परास्त हुए और भागते समय उनके शिकार बन गये। इनकी मृत्युके बाद २य देमितर (Demetrius)ने राज्यलाभ किया। इनके आचरणसे सभी इतने असन्तुष्ट हुए, कि शीघ्र ही एक व्यक्ति सिंहासनप्रार्थी हो कर वहां उपस्थित हुआ। सबोंकी सलाहसे उन्होंने राजोपाधि ग्रहण की। पांच वर्ष युद्धके बाद सीरियाका अधिकांश देमितरके हाथसे निकल पड़ा।

जिस समय एशियामें ग्रीकसाम्राज्यकी ऐसी शोचनीय दशा हो गई थी, उस समय मित्रदातने मिदीय पर आक्रमण किया। इस युद्धमें वे सफल-काम हो कर बरकन प्रदेशको चल दिये। इसके बाद बाबिलन उनके हाथ लगा। अन्तमें १४७ खृ० पू०में जब देमितरके सेनापति उनसे परास्त हुए, तब एशियाका समस्त सीरियाप्रदेश मित्रदातके हाथ आया।

देमितरने ग्रीक और माकिदनोंकी सहायतासे पुनः राज्य पानेकी चेष्टा की। पार्थिवगण कई एक युद्धमें उनसे परास्त हुए; किन्तु १३८ खृ० पू०में मित्रदातके सेनापतिसे देमितरकी सारी सेना विनष्ट हुई और आप बन्दी हुए। मित्रदातने समुचित सम्मान दिखला कर बरकानमें उनका वासस्थान निर्दिष्ट कर दिया और उन्हें अपना जमाई बना लिया। इसी समयसे एशियामें ग्रीकसाम्राज्य सदाके लिये विलुप्त हो गया।

१३८ खृ० पूर्वाब्दको वृद्धावस्थामें मित्रदातका शरीरावसान हुआ। वे ही पार्थिव (Parthian) साम्राज्यके स्थापयिता तथा न्यायपरायण और दयालु भी थे। उन्होंने अन्यान्य देशोंकी उत्कृष्ट पद्धतियां अपने राज्यमें प्रचलित कीं।

पार्थिव (Parthian) राजत्व।

ईरानमें माकिदनिया-राज्यके अधःपतनके साथ साथ पूर्व ईरानमें ग्रीक स्वाधीनताका भी अवसान हुआ। १४० खृ० पू० तक स्वाधीन बक्त्रियाका उल्लेख देखा जाता है। तत्परवर्त्ती प्राचीन मुद्रामें और किसी भी स्वाधीन राजाका नाम नहीं मिलता।

मित्रदातकी मृत्युके बाद उनके पुत्र पिताके उत्तराधिकारी हुए और पिताकी तरह राज्यवृद्धि करने लगे। इस समयकी जो सब मुद्राएं पाई जाती हैं उनमें लिखा है, कि उन्होंने शकों (Scythian)से मार्गियाना नामक स्थान बलपूर्वक अधिकार किया था। इस समय सेलुकसके वंशधर अपना आधिपत्य पुनः संस्थापन करनेके लिये सविशेष चेष्टा कर रहे थे। ७म अन्तिओकने पहले सीरियामें विद्रोहदमन करके

बाबिलन और जेरुसलमको दखल किया। पीछे ८०००० सेनाके साथ वे पार्थियोंके विरुद्ध अग्रसर हुए। पार्थियोंके विद्वेषी अनेक राजा इनसे जा मिले। महा जाब (Great Zib) और अन्य दो युद्धोंमें पार्थियोंके पराजित होने पर अन्तिओकने मिदीयामें प्रवेश किया। वहां शीत ऋतुके आगमन पर दलबलके साथ वे ठहरे ही थे, कि उसी समय सन्धिका प्रस्ताव पेश हुआ। अन्तिओकने अनेक तरहके अन्याय प्रस्ताव किये। पर पार्थियोंको वह मंजूर न हुआ। ग्रीकोंके असद्व्यवहारसे इस स्थानके अधिवासी अत्यन्त उत्यक्त हो उठे और मिदिकसे छिप कर पार्थियोंसे सन्धि कर ली। पार्थियोंने एकाएक उनके शिविर पर धावा बोल दिया और उन्हें अच्छी तरह हराया। इसमें उनकी प्रायः सभी सेना विनष्ट हुई और वे शत्रुके हाथ बन्दी होनेके भयसे पहाड़ परसे जमीन पर कूद पड़े और पञ्चत्वको प्राप्त हुए।

७म अन्तिओकके साथ युद्धकालमें देमितरने मुक्ति पाई थी। युद्ध समाप्त हो जाने पर फ्रावतीने उन्हें फिरसे पकड़नेकी चेष्टा की। इसी समय उनके राज्यके पूर्वांशमें घोरतर विपद् उपस्थित हुई। उन्होंने पहले धन ले कर शकोंको सहायता पहुंचानेका वचन दिया था, किन्तु समय आने पर उन्होंने अपनी प्रतिज्ञाका पालन न किया। इस पर शक लोग बड़े बिगड़े और उनके राज्यमें लूट मार मचने लगे। शकोंके साथ युद्धमें फ्रावती सम्पूर्णरूपसे परास्त हुए और मारे भी गये।

१म अर्तवान (Artabanus I)

फ्रावतीकी मृत्युके बाद अर्त्तवान राजा हुए। कोई कोई कहते हैं, कि शक लोग जयलाभसे सन्तुष्ट हो कर स्वदेशको लौट गये। किसीका यह भी मत है, कि कि अर्तवानने प्रति वर्ष उन्हें कर देना स्वीकार किया था। इनके राजत्वकालमें सिलुकियाके अधिवासियोंने अत्यन्त उत्पीड़ित हो राज्यपहारक यिमेराकी अति निष्ठुर भावसे हत्या की। अर्तवानने हत्याकारियोंको उनकी आंख निकाल लेनेका डर दिखाया, पर तोखारी जातिके साथ युद्धमें निहत हो जानेसे उनकी इच्छा पूरी न हो सकी। उनके पुत्रका नाम २य मित्रदात था।

२य मित्रदात (Mithradates II

२य मित्रदातने पार्थिव-साम्राज्यको पहलेकी तरह उन्नत कर दिया। कहते हैं, कि उन्होंने अत्यन्त साहस-से पार्श्ववर्त्ती राजाओंको परास्त किया और यूफ्रेटिस नदी तक अपना राज्य फैलाया। मेसोपटेमिया पार्थिव-राज्यके अन्तर्भुक्त हो जानेसे रोमकोंके साथ उनका सब-से पहला संस्रव हुआ और ९२ खृ० पू०में सुल्ला (Sulla) जब कपादोकियाको पधारे, उस समय बन्धुत्व स्थापनके लिये मित्रदातका दूत उनके समीप पहुंचा। मित्रदात इस समय कम्मागिनकी रानीके साथ लड़ाईमें उलझे हुए थे। मालूम होता है, कि रोमकगण शत्रुओंको किसी प्रकारकी सहायता न पहुंचावें, इसी आशयसे दूत भेजा गया था।

२य अर्तवान (Artabanus II)।

मित्रदातकी मृत्युके बाद २य अर्तवान सिंहासन पर बैठे। इस समय आर्मेनियाके राजाने सम्राट्की उपाधि धारण की और वे इतने प्रतापशाली हो उठे थे, कि अर्तवान उनके साथ सन्धि करनेको बाध्य हुए। इसके कुछ समय बाद पार्थिवराज्य अन्तर्विद्रोह और बहिःशत्रुके आक्रमणसे भग्नप्राय हो गया। अन्तमें ७७ खृ० पू०को अर्सकिद् सिनात्रक (Arsacid Sinatruces) अस्सी वर्षकी अवस्थामें राजगद्दी पर बैठे और उन्होंने ७ वर्ष तक राज्य किया।

३य फ्रावति (Phraates III)।

एशियामें रोमकसेनापति लुकुलस (Lucullus)-के आगमनके कुछ पहले फ्रावतीने राज्यभार ग्रहण किया। ६८ खृ०पू०में मित्रदात और तायग्रेनिस दोनोंने रोमकोंके विरुद्ध उनसे सहायता मांगी। किन्तु उन्होंने सहायता देना ना-मंजूर किया। कुछ काल तक निरपेक्षभावसे रह कर अन्तमें पम्पीके अनुरोधसे वे आर्मेनिया पर चढ़ाई करनेके लिये उद्यत हो गये। आर्मेनियाधिपतिके पुत्रने पिताके साथ विवाद करके पार्थिव देशमें आश्रय लिया और वहां फ्रावतीकी कन्यासे उसका विवाह हुआ। पुत्रके आगमन पर पिता पार्वत्य प्रदेशको भाग गये। किन्तु इस समय फ्रावतीको स्वदेश लौटा कर तायग्रेनिसने उनके पुत्रको अच्छी तरह हराया। परन्तु पम्पीने

उसकी सहायता की और तायग्रेनिस रोमकों के हाथ आत्मसमर्पण करनेको बाध्य हुए। पम्पोने उनकी प्रति-सम्मान दिखला कर उन्हें फिरसे राजपद पर प्रतिष्ठित किया और उनके पुत्रको जंजीरसे बांध रखा।

रोमकोंने जब देखा, कि अब फ्रावतीसे सहायता लेनेकी कोई जरूरत नहीं है, तब वे उनके राज्यमें घुस पड़े। रोमकोंके इस कार्यमें आपत्ति करके फ्रावतीने पम्पीके निकट दूत भेजा, लेकिन कोई फल न निकला। ६४ खृ० पू०को सोरिया प्रदेशमें पार्थिवोंने तायग्रेनिसको परास्त किया। पीछे पम्पोने मध्यस्थ हो कर दोनोंके बीच झगड़ा तै कर दिया। फ्रावती ५७ खृ० पू०में अपने दो पुत्रोंसे मारे गये। पार्थिव-राजवंशके अधःपतनका यही प्रथम सूत्रपात था।

१म ओरोद (Orodes I)

फ्रावतीके मारे जाने पर पितृघाती १म ओरोदने सिंहासनको सुशोभित किया और अपने भाईको मिदीयाका शासनकर्त्ता बनाया। किन्तु शेषोक्त राजपुत्रके अत्याचार करने पर उन्होंने रोमकोंसे सहायता मांगी। रोमकोंने मिस्र जा कर ओरोदके विरुद्ध अस्त्रधारण किया और युद्धमें उन्हें हराया। ओरोदने सुरेना नामक किसी उच्चवंशीय पार्थिवकी सहायतासे पुनः राज्यलाभ किया और लड़ाईमें हार मानने पर उनके भाईने आत्मसमर्पण किया। आखिरको वे ५४ खृ० पू०में मारे गये। इसी बीच रोमक-सेनापति क्रेसस (Crassus)ने युद्धमें आसानीसे जयी हो सकेंगे, इसी आशासे मेसोपटेमिया पर आक्रमण कर दिया और अल्पसंख्यक पार्थिव सेनाको परास्त किया। इस समय ओरोद और उनके भाईके बीच विवाद चल रहा था। क्रेसस ओरोदके भाईके साथ न मिल कर मेसोपटेमियामें बहुतसी रोमकसेनाको रख लौट आये। पार्थिव सुरेनसने जब रोमकसेनाको अवरुद्ध किया, तब क्रेसस उनकी सहायता करनेके लिए आगे बढ़े। किन्तु कारी नामक स्थानमें जो लड़ाई हुई, उसमें वे जान ले कर भागे। लौटते समय पार्थिवोंके आक्रमणसे उनकी अधिकांश सेना मारी गई और आप शत्रुके हाथमें फंसे तथा मारे गये।

पार्थिवगण इस जयलाभके बाद ५२ खृ० पू०में पुनः रोमकों पर आक्रमण करके सोरियाको लूटने लगे। किन्तु लौटते समय रोमकसेनापतिने पार्थिवोंका पथ रोक कर अन्तिगोनिया नामक स्थानमें उन्हें अच्छी तरह परास्त किया। इस समय मेसोपटेमियाके शासनकर्त्ताने जब राजपुत्रके नाम पर दोषारोपण किया तब ओरोदने अपने पुत्रको राजधानीमें बुला लिया।

रोमकोंके मध्य इस समय अन्तर्विद्रोह चल रहा था। पार्थिवगण ऐसे सुयोगमें भी कुछ कर न सके। पम्पोने सीजरके विरुद्ध पार्थिवोंसे सहायता मांगी। किन्तु जब उन्होंने पार्थिवोंको सोरिया देना न चाहा, तब पार्थिवगण सहायता देनेसे इनकार चले गये। इस कारण पार्थिवोंके साथ रोमकोंकी लड़ाई छिड़ गई। कई एक छोटी छोटी लड़ाइयोंके बाद गिन्दारसके निकट पार्थिवगण सम्यक्‌रूपसे परास्त हुए और ओरोदके पुत्र पकोरा मारे गये।

बूढ़े ओरोदने पुत्रशोकसे अत्यन्त कातर हो द्वितीय पुत्र फ्रावतीको यौवराज्य पर अभिषिक्त किया। फ्रावतीने एक एक करके सब भाइयोंको मरवा डाला। पीछे वे पिताको भी हत्या कर ३७ खृ० पूर्वाब्दमें राजसिंहासन पर बैठे।

४र्थ फ्रावती (Phraates IV)।

ओरोदके समय पार्थिवराज्य उन्नतिकी चरमसीमा तक पहुंच गया था। उनकी मृत्युके बाद पार्थिवराज्यकी अवनति होने लगी। गद्दी पर बैठ कर फ्रावतीने सभी सम्भ्रान्त लोगों और अपने प्राप्तवयस्क पुत्रोंको मार डाला। बहुतसे लोगोंने भाग कर रोमक सेनापति आंटनीका आश्रय लिया। आंटनी उन लोगोंको उत्तेजनासे साहसी हो पार्थिवराज्य पर आक्रमण करनेके लिये अग्रसर हुए। पकोराकी मृत्युके बाद आर्मेनियोंने रोमकोंके साथ मित्रता कर ली थी। आंटनी सन्धिप्रस्तावमें पार्थिवोंको व्यापृत रख सैन्य संग्रह करने लगे और ३६ खृ० पू०में ६०००० पदातिक, ४०००० अश्वारोही तथा अन्यान्य राजन्योंके साथ फ्रावतीने नगरको घेर लिया। मिदीयाके राजा अर्तवासदेश और फ्रावती एकत्र मिल कर युद्धमें प्रवृत्त हुए। आंटनी

परास्त हो कर बड़ी मुश्किलसे आर्मेनियाके प्रान्तभागमें पहुंचे। यदि आर्मेनियाके राजा इस समय सहायता न करते, तो निश्चय था कि रोमकसेना ध्वंसप्राप्त हो जाती है।

जयलाभके बाद फ्रावती और अर्तवानदेशके मध्य लुण्ठित द्रव्यका भाग ले कर विवाद खड़ा हुआ। मिदोयाके अधिपतिने आँटनीसे सन्धिका प्रस्ताव किया। रोमकोंने उनको सहायतामें सेना भेजी, किन्तु आकतियम नामक स्थानमें युद्धके बाद रोमकसेना स्वदेश लौटनेको बाध्य हुई। इसके कुछ समय बाद ही आर्मेनिया और मिदोया पार्थिवोंके हाथ लगा।

इस प्रकार उपर्युपरि जयलाभसे फ्रावती अत्यन्त गर्वित और यथेच्छाचारी हो उठे। उनके आचरण पर प्रजा अत्यन्त रुष्ट हुई और प्रजाप्रभावसे विद्रोही हो कर उन्होंने तिरिदत (Taridates) के ऊपर मन्त्रपरिचालनका भार सौंपा। किन्तु उन्होंने ३० ख़ृ० पूर्वाब्दमें परास्त हो कर रोमकसेनापति अक्टेवियसको शरण ली। उन्होंने अरबोंको सहायतासे दूसरी बार सिंहासन पानेकी चेष्टा की। फ्रावती अकस्मात् आक्रान्त हो कर भाग जानेको बाध्य हुए और तिरिदत उनकी जगह पर बैठे। कुछ काल तक नाना स्थानोंमें भ्रमण करके फ्रावतीने अन्तमें शकोंसे सहायता मांगी। शकोंकी विस्तृत वाहिनीकी गति रोकनेकी तिरिदतमें शक्ति न थी और वे जान ले कर रोमकसम्राट् अगष्टसकी शरणमें पहुंचे। किन्तु अगष्टस उन्हें किसी प्रकारकी मदद देनेसे इनकार चले गये। २० ख़ृ० पू०में रोमकोंके साथ फ्रावतीने सन्धि कर ली। उनकी मृत्युके बाद भाइयोंमें जिससे किसी प्रकारका विवाद खड़ा न हो, उसके लिये उन्होंने छोटे लड़केको अपने पास रख अन्यान्य परिवारवर्गको रोमनगर भेज दिया। उनके कनिष्ठ पुत्र ५म फ्रावतीने वृद्ध पिताको हत्या कर पितृस्नेहका उपयुक्त प्रतिशोध प्रदान किया था।

५म फ्रावती (Phraate v)।

फ्रावतीने सिंहासन पर अधिष्ठित हो कर आर्मेनिया ग्रहण करना चाहा। किन्तु युद्धमें पराजित हो कर वे रोमनगरको भाग गये। अगष्टसको राज्यविस्तारकी इच्छा न थी। फ्रावतीने जब यह स्वीकार किया, कि वे फिर आर्मेनिया पर अधिकार करनेकी चेष्टा न करेंगे, तब अगष्टसने उन्हें मुक्ति प्रदान की। स्वदेश लौटने पर फ्रावतीका विमाताके साथ विवाह हुआ, किन्तु शीघ्र ही विद्रोह उपस्थित हो जानेसे वे रोममें जा छिपे और वहीं उनकी मृत्यु हुई।

राजसिंहासन शून्य हो जाने पर पार्थिवोंने २य ओरोद (Oradse II)को बुलाया। किन्तु उनके निष्ठुर और यथेच्छव्यवहार पर सभी अप्रसन्न हो गए। एक दिन वे शिकार करनेको बाहर निकले और वहीं दूसरेके शिकार बन गये। उनकी मृत्युके बाद राज्यमें घोरतर अराजकता फैल गई। ४र्थ फ्रावतीके एक पुत्र आहत हो कर रोमसे पार्थिया चले गये। किन्तु अधिक काल तक विदेशमें रहनेसे स्वदेशके प्रति उनकी कुछ भी ममता न रही। पार्थिवोंने उनके ऐसे आचरण पर क्रुद्ध हो कर अर्तवान नामक एक व्यक्तिको राजपद पर प्रतिष्ठित करना चाहा। अर्तवान पहले तो हार गये, पर पीछे उन्हींकी जीत हुई।

३य अर्तवान (Artabanus III)

अर्तवान अति चतुर और उद्यमशील राजा थे। उन्होंने केवल स्वराज्यकी ही रक्षा की थी सो नहीं, वरन् विद्रोहके समय वैदेशिक राजाओंसे विशेषतः रोमकोंके साथ युद्धमें विजयी भी हुए थे। आर्मेनियाका प्रभुत्व ले कर रोमकोंके साथ उनका प्रथम विवाद उपस्थित हुआ। रोमकोंने आइवोरियन-अधिपतिके भाई मिवदातको आर्मेनियाका सिंहासन देना चाहा और इसके लिये उन्होंने आइवोरियनोंसे उनको मदद देनेका अनुरोध किया।

अर्तवान प्रथम युद्धमें पराजित हो कर भाग जानेको बाध्य हुए। मिदोया, बाबिलन आदि स्थान शीघ्र ही मिवदातके हाथ लगे। पार्श्ववर्त्ती असभ्य जातियोंकी सहायतासे उन्होंने पुनः स्वराज्याधिकार पाया। वे ३७ ई०में कुछ समयके लिये राज्यच्युत हुए थे। रोमकोंके शासनविधानमें अर्तवानको एकान्त इच्छा थी; किन्तु चोरी और विद्रोह उपस्थित हो जानेसे उनकी इच्छा पूरी न हुई। अन्तमें

दोनों पक्षमें सन्धि स्थापित हुई। ४० ई०में उन्होंने प्राणत्याग किया।

गोतार्ज और वरदानिस (Gotarzes and Vardanes)।

अर्तवानकी मृत्युके बाद वरदानिसने कुछ काल तक राज्य किया, पीछे वे शीघ्र ही राज्यच्युत हुए। गोतार्ज ४१ ई में सिंहासन पर बैठे। किन्तु उनके निष्ठुर व्यवहारसे प्रजा बड़ी असन्तुष्ट हुई और उन्होंने वरदानिसका पक्ष अवलम्बन किया। बक्त्रियामें दोनों सेनाकी मुठभेड़ हुई, किन्तु युद्धके प्रारम्भमें ही सन्धि हो गई। वरदानिसने सिंहासन और गोतार्जने बरकान प्राप्त किया। अनन्तर वरदानिसने सेलुकिया नगर पर आक्रमण किया और ७ वर्ष तक अवरोधके बाद उसे अपने दखलमें कर लिया।

गोतार्ज ४५ ई०में पुनः विद्रोही हुए और अपने नाम पर सिक्का चलाने लगे। वरदानिसने उन्हें एरेन्दिस नामक गिरिपथमें परास्त तो किया, पर लौटते समय गोतार्जने राहमें उन्हें मार डाला।

वरदानिसकी मृत्युके बाद गोतार्जने पुनः सिंहासनको अधिकार किया। वयोवृद्धिके साथ उनके स्वभावमें कोई परिवर्त्तन न हुआ। उन्होंने फिरसे अत्याचार करना आरम्भ कर दिया, इस पर मिहिरदात पार्थिवराज्य ग्रहण करनेके लिये भेजे गये। रोमकगण मिहिरदातके साथ जिउगमा तक आये थे, किन्तु मिहिरदात मेसोपटेमियाके शासनकर्त्ताकी विश्वासघातकतासे गोतार्जके हाथ बन्दी हुए। गोतार्जका ५१ ई०में देहान्त हुआ।

१म बलकाशी (Volagases I)।

गोतार्जकी मृत्युके बाद अत्रपतनपति २य वनोनिस सिंहासन पर बैठे। किन्तु ३ वर्ष राज्य करनेके बाद उनकी मृत्यु हो गई और उनके बड़े लड़के १म बलकाशी राजपद पर अभिषिक्त हुए। अपने भ्रातवर्गके साथ जिससे किसी प्रकारका विवाद न हो, इस लिये उन्होंने अपने भाई पकोराको मिदेया और तिरिदातको आर्मेनिया प्रदेश प्रदान किया। किन्तु रोमक आर्मेनियामें अपनी क्षमताको अक्षुण्ण रखनेकी इच्छासे राज्याकाङ्क्षी वरदानिसके पुत्रको छिप कर सहायता करने लगे। ५८ ई०में बलकाशीने अपने भाईको आर्मेनियाके सिंहासन पर बिठाया, उसके बाद रोमकोंके साथ सन्धि हुई। सन्धिके अनुसार तिरिदातने रोमकसम्राट्से शासनदण्ड ग्रहण किया।

बरकानपतिने विद्रोही हो कर ६१ ई०में स्वाधीनताको प्राप्त की। उन्होंने अलान नामक जातिको अपने राज्यके मध्य हो कर जानेकी अनुमति दी। मिदीयामें आ कर उन लोगोंने देश लूटना आरम्भ कर दिया और राजभ्राता पकोराको राज्यसे निकाल भगाया। बलकाशीने विपदमें पड़ कर रोमकोंसे सहायता मांगी, किन्तु उनकी प्रार्थना स्वीकृत न हुई। अन्तमें ७५ ई०में अलानगण प्रचुर अर्थसंग्रह करके स्वदेश लौटे।

अलान नियहके बाद बलकाशीकी मृत्यु हुई। मृत्युके बाद २य बलकाशी और २य पकोरा नामक दो राजाओंने एकत्र राज्य किया। अन्तमें ८१ ई०को अर्तबान (Artabanus IV)-ने सिंहासन प्राप्त किया।

इस समय पार्थिवराज्य बहुत विप्लुत था। पार्थिव और बरकानके राजा चीनसम्राट्को उपढौकनादि भेजा करते थे। ८७ ई०में चीनसे रोमकसम्राट्के निकट प्रेरित दूत भूमध्यसागर तक पहुंचा। किन्तु समुद्रपथ हो कर जाना अयन्त विपद्‌सङ्कुल जान कर वे स्वदेशको लौट आये।

इस समय तक यफ्रेटिस नदी रोमसाम्राज्यकी पूर्वसीमाके रूपमें गिनी जाती थी, किन्तु सम्राट् एजन आर्मेनियामें रोमकशासनको बद्धमूल करनेके लिये ११२ ई०को आर्मेनियामें प्रवेश किया और बिना खूनखराबीके ही आर्समोसाता नामक स्थान जीता। पीछे धीरे धीरे आर्मेनिया, मेसोपटेमिया, आसीरिया आदि स्थान फतह करने पर पार्थिवगण अन्तर्विद्रोहके कारण रोमकोंको किसी प्रकारकी बाधा न दे सके। जब एजन पारस्य-उपसागरके किनारे पहुंचे, तब सभी विजितप्रदेशोंमें विद्रोहानल धधक उठा और रोमकसेनापति माक्सिमस (Maximus) युद्धमें मारे गये। एजन रोमकोंकी विपद्‌वार्त्ता सुन कर लौट आये और

मेसोपटेमियाके अन्तर्गत अत्रा नामक स्थानको घेर लिया, किन्तु उस पर अधिकार जमा न सके । ११७ ई०में एजनको मृत्यु होने पर हाद्रियन (Hadrian)ने सभी रोमकसेनाको स्वदेशमें बुला लिया ।

३य बलकाशी (Volagases III) ।

२य बलकाशी १४८ ई०में परलोकको सिधारे । पीछे उनके लड़के ३य बलकाशीने सिंहासनको सुशोभित किया । बहुत दिनोंसे आर्मेनिया जीतनेकी उनकी इच्छा थी । १६२ ई०में रोमकसम्राट् आन्टनिनसका मृत्यु हुई । इस सुयोगमें बलकाशीने आर्मेनिया जा कर वहांके अधिपतिको मार भगाया और पकोराको आर्मेनियाका सिंहासन प्रदान किया । कप्पादोकियाको रोमकसेना युद्धमें एक तरहसे निर्मूल हो गई और उक्त प्रदेश भी पार्थियोंके हाथ लगा । रोमक सेनाको पराजय सुन कर इलियस वेरस एशियाखण्डको पहुंचे । इस समय रोमक-सेनाके भग्नोत्साह हो जाने पर वे सन्धिका प्रस्ताव करनेको बाध्य हुए । किन्तु बलकाशीने इसमें अपनी अनिच्छा प्रकट की । वेरसने शीघ्र ही पार्थियोंको पराजय कर आर्मेनिया, मेसोपटेमिया, बाबिलन आदि-प्रदेशोंको जीत लिया । अन्तमें १६६ ई०को सन्धि स्थापित हुई और तदनुसार रोमककोंको मेसोपटेमिया प्रदेश मिला ।

४र्थ बलकाशी (Volagases IV)

३य बलकाशीको मृत्युके बाद ४र्थ बलकाशी सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए । इस समय रोममें अन्तर्विप्लव उपस्थित हुआ और बलकाशीने पेसिनिया निगर (Peesennius-Niger)-का पक्ष अवलम्बन किया । किन्तु निगरको पराजयके बाद उनके प्रतिद्वन्द्वी सिवेरस (Severus)-ने मेसोपटेमिया पर चढ़ाई की और उसे जीत लिया । पार्थियोंने मेसोपटेमिया-अधिकारके समय किसी प्रकारका विपक्षताचरण न किया । किन्तु १९६ ई०में सिवेरस जब आलविनियों-के साथ लड़ाईमें लगे हुए थे, उस समय पार्थियोंने मेसोपटेमिया लूटा और लेटिसनगरमें घेरा डाला । सिवेरसके आगमन पर पार्थिवगण पुनः पश्चात्पद हुए और सेलुकिया तथा कोचो नगर रोमकोंके हाथ लगा । २०१ ई०में सिवसने अत्रा नगरको घेर लिया, किन्तु पराजित हो कर वे भाग जानेको बाध्य हुए ।

५म बलकाशी (Volagases V) ।

४र्थ बलकाशीकी मृत्युके बाद उनके लड़के ५म बलकाशीने राज्य पाया । २१३ ई०में अर्तवान विद्रोही हुए और धीरे धीरे क्षमताशाली हो उठे । फलतः बलकाशीको बाबिलन प्रदेशमें आश्रय लेना पड़ा । इस समय अर्तवानके साथ रोमकोंका युद्ध छिड़ा । अर्तवान-का रोमक-सम्राट्के साथ अपनी कन्याका विवाह नहीं देना ही इस विवादका सूत्रपात था । इसमें रोमक सम्राट् मारे गये और उनके दो सेनापतियोंके युद्धमें पराजित होने पर विवादका अवसान हुआ ।

पारसी (Persis)-के शासनीयगणने ही पार्थिव साम्राज्यको ध्वंस कर डाला । पारसी लोगोंकी जरथुस्त्रधर्ममें प्रगाढ़ भक्ति थी । इष्टखू नामक स्थानमें उन-लोगोंकी अनाहेध (अनाहिता) देवीका मन्दिर था । इस मन्दिरके पुरोहितका नाम था शासन । इन्होंने किसी राजकन्यासे विवाह कर अपने वंशको प्रतिष्ठा की थी । उनके वंशधर दिनों दिन क्षमताशाली होते जाते थे और अर्तवान उनकी उपेक्षा करते आ रहे थे । अन्तमें उन्हों-ने अर्दशीरके युद्धमें अर्तवानको मार कर पार्थिवराज्य अपने दखलमें कर लिया (२२७ ई०में) । इस समय पार्थिवोंका राज्यावसान हुआ ।

शासनीय राजत्वकाल ।

पार्थिव-सम्राटोंके समय पारसी प्रदेश एक छोटा राज्यमें गिना जाता था । यहांके राजगण पार्थिव-राजाओंकी अधीनता स्वीकार करते थे । ३री शताब्दीके प्रारम्भमें पारसी राज्यके छोटे छोटे अंशोंमें वि[illegible]क्त होने पर यहांके राजा बलहीन हो गये थे । पावक नामक एक राजा शिराजक्षेत्रके निकट राज्य करते थे । उन्होंने इष्टखू नामक स्थानको जीत कर वहां अपनी राजधानी बसाई । पावकके पिताका नाम शासन था, इसीसे इस वंशका नाम शासन पड़ा । पावकके पुत्रका नाम शाहपुर और शाहपुरके पुत्रका नाम अर्दशीर था । अर्दशीरको प्रचलित मुद्रामें लिखा है, कि वे २११ वा

२१२ ई०में पार्थिव सिंहासन पर समासीन थे। जरथुस्त्र धर्ममें उनको प्रगाढ़ भक्ति थी। उनके शासनकालमें पुरोहितगण अति क्षमताशाली हो उठे। उन्होंने कर्मान्, सुसियाना आदि स्थान अपने अधिकारमें कर लिये। अर्दशीरको क्षमता दिनोंदिन वर्द्धित होते देख रोमकगण उनके प्रतिद्वन्द्वी हो उठे और २३३ ई०में अलेकसन्दर सिवेरस (Alexanders Severus)ने युद्धमें उन्हें परास्त किया। इसके बाद रोमक और शासनीयोंके बीच वैरिभाव कभी विलुप्त नहीं हुआ। दोनों पक्षमें हमेशा लड़ाई होती थी। इष्टख नामक स्थानमें नाममात्रको उनकी राजधानी थी, सभी राजकार्य टिसिफोन (Otesiphon) नामक स्थानमें होता था। अर्दशीरकी मृत्युके समय शासनीय साम्राज्य बहुत दूर तक फैला हुआ था। जो सब देश अर्दशीरके जयोपार्जित कह कर उल्लिखित हैं, वे यथार्थमें उनके परवर्त्ती राजाओंसे अधिकृत हुए थे। जो कुछ हो, अर्दशीरने जो विस्तृत राज्य संस्थापित किया था, वह चार सौ वर्ष तक वर्त्तमान था।

अहुरमज्द कर्त्तृक १म अर्त्तक्षत्रको राजमुकुट प्रदान। (शाहपुर)

अर्दशीरके जीते जी उनके लड़के शाहपुर यौवराज्य पर अभिषिक्त हुए थे। पिताकी मृत्युके बाद वे सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। उनके राजत्वके प्रारम्भमें ही रोमकोंके साथ उनका विवाद खड़ा हुआ। शाहपुरने दलबलके साथ अन्तिओक नगरमें प्रवेश किया, किन्तु वे रोमकोंसे परास्त हुए। रोमक सेनापति जुलियन जब शासनीय राजधानी पर आक्रमण करनेका उद्योग कर रहे थे, उसी समय एक अरब उनके प्राणका ग्राहक हुआ। उनकी मृत्युके बाद शासनीयोंके साथ सन्धि स्थापित हुई। सन्धिके अनुसार शाहपुरको आर्मेनिया और मेसोपटेमिया मिला। अनन्तर २६२ ई०में रोमकोंके साथ युद्ध खड़ा हुआ जिसमें रोमकसम्राट् वलेरियन (Valerian) शासनीयोंके हाथ बन्दी हुए; किन्तु शाहपुरने पराजित हो कर रणमें पीठ दिखाई। रोमकोंने उनके राज्यमें प्रवेश कर राजधानीको अच्छी तरह लूटा। इस समय शासनीयराज ऐसे बल और अर्थहीन हो गये थे, कि रोमकोंके साथ युद्ध करनेकी उनमें जरा भी शक्ति न रह गई। रोमकगण बिना रोक टोकके ही शासनीय राज्य लूट कर स्वदेशको वापिस गये।

शाहपुरके राजत्वके प्रथम भागमें मनिकीय सम्प्रदायके प्रवर्तक मनिने अपने मतका प्रचार करना आरम्भ किया। इस समय शासनीय स्थापत्यको यथेष्ट उन्नति साधित हुई। शाहपुर नामक स्थानमें इन सब प्राचीन कीर्त्तियोंका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है।

शाहपुरकी मृत्युके बाद २७२से ३१० ई० तक ४ राजाओंने राज्य किया। उनके शासनकालमें कोई विशेष उल्लेख योग्य घटना न घटी अथवा उस समयका कोई विशेष विवरण भी नहीं मिलता।

३१० ई०में २य शाहपुरने राज्यलाभ किया। शाहपुर नाबालिग थे, इसलिये राजकार्य उनकी माता ही चलाती थी। इस समय रोमक राज्यमें ईसा-धर्म बहुत चढ़ा बढ़ा था और पौत्तलिकधर्मकी अवनति थी। ३३८ ई०में जब रोमकोंके साथ युद्ध उपस्थित हुआ, तब पारसिक ईसाई उनके प्रति सहानुभूति दिखलाते थे, इस कारण उन पर घोरतर अत्याचार जारी था। उनका उपासनामन्दिर तोड़ फोड़ डाला गया और सकड़ों पुरोहित प्रस्तराघातसे मार डाले गये। ३३७ ई०में रोमकोंके साथ युद्ध छिड़ा और शाहपुर अनेक सेनाओंके साथ रणक्षेत्रमें उपस्थित हुए। २५ वर्षके बाद इस युद्धका अवसान हुआ। शाहपुरने कई बार रोमकोंको युद्धमें परास्त किया था, किन्तु रोमकोंका दुर्ग सुदृढ़ होनेके कारण वे विजयलाभ न कर सके। अन्तमें रोमकसम्राट् जुलियनने शासनीय-राजधानी पर आक्रमण करनेके लिये शत्रु-राज्यमें प्रवेश किया। किन्तु राजधानी सुरक्षित देख उन्हें लौट जाना पड़ा। लौटते समय शत्रुने उनकी अधिकांश सेना विनष्ट कर डाली और अन्तमें आप भी मारे गये। उनकी मृत्युके बाद रोमकोंके साथ शाहपुरकी सन्धि हुई। इस सन्धिके अनुसार शाहपुरको तायग्रीस नदीकी पूर्वदिकस्थ भूमि और मेसोपटेमियाका कुछ अंश प्राप्त हुआ। सन्धिमें यह भी शर्त थी, कि रोमकगण आर्मेनियाधिपतिकी किसी प्रकारकी सहायता न देंगे। इस सन्धिशर्तसे तथा आर्मेनियाधिपतिके उनके हाथ बन्दी होने पर भी शाहपुर आर्मेनिया पर अधिकार न कर सके। आर्मेनिया छोटे छोटे अंशोंमें विभक्त था और यहांके ईसाई लोग रोमकोंके पक्षपाती थे। रोमकगण छिप कर उनकी सहायता करते थे।

३७१ ई०में रोमकसेनाने प्रकाश्यरूपसे शासनीय सेनाका सामना किया था। किन्तु इस समय गथ लोगोंके रोमकसाम्राज्य पर आक्रमण करनेसे दोनों पक्षमें फिरसे सन्धि हो गई। ३७८ ई०में २य शाहपुर कराल कालके गालमें पतित हुए।

२य शाहपुरकी मृत्युके बाद द्वितीय अर्दशेरने और अर्दशेरके बाद ३य शाहपुरने राज्य किया। इन लोगोंके शासनकालमें कोई विशेष घटना न घटी।

३य शाहपुरके पुत्र यजदेजार्द ३९९ ई०में राजा हुए। पारसिक लोग उन्हें बुद्धिमान् पर अधार्मिक समझते थे। खृष्टधर्मावलम्बियोंके प्रति अनुकम्पा दिखलाना ही इसका कारण समझा जाता था।

३य शाहपुरके राजत्वकालमें ईसा लोग उपासनाकालमें एकत्र हो सकते थे। पीछे उनके प्रधान धर्मयाजक दौत्यकार्यमें नियुक्त हो कर रोमदेशको गये। ४०८ ई०में रोमकसम्राट्के साथ उनकी मित्रता हुई। इस कारण पारस्यके सम्भ्रान्त लोग उन पर अत्यन्त असन्तुष्ट हुए और वरकान प्रदेशमें रहते समय उन लोगोंके षड्यन्त्रसे सहसा उनकी मृत्यु हो गई।

पिताका मृत्यु-सम्वाद पा कर ४र्थ शाहपुरने आर्मेनियासे राजधानीकी ओर यात्रा की, किन्तु वे राहमें ही मारे गये। उनके मरनेके बाद खुसरू नामक एक व्यक्ति सिंहासन पर बैठे। किन्तु शाहपुरके भाई बहरामके राज्यप्रार्थी होने पर वे राजपद छोड़ देनेको बाध्य हुए।

बहराम सर्वदा प्रफुल्लचित्त और कामिनीके सहवासप्रिय थे। राजपद पर प्रतिष्ठित होनेके साथ ही वे ईसाइयोंके प्रति अत्याचार करने लगे। पीछे उन्होंने रोमकोंके साथ विवाद ठान दिया। उनके सेनापतिने रोमकाधीन कनस्तान्तिनोपल पर अधिकार किया।

४२२ ई०में दोनों पक्षमें सन्धि हो गई। इस सन्धिके अनुसार ईसाइयोंके ऊपर जो अत्याचार होता था, वह कुछ समयके लिये बन्द रहा। अनन्तर हूण जातिके साथ पारसिकोंके विवादका प्रथम सूत्रपात हुआ। हूण लोग बक्त्रिया और उसके पार्श्ववर्ती प्रदेशोंमें रहते थे। उनके साथ पांचवीं शताब्दीके शेष भाग तक युद्ध चलता रहा। बहरामकी मृत्युके बाद उनके पुत्र २य यजदेजार्द राजा हुए। इनके समयमें ईसाइयोंके

ऊपर अत्याचार होनेके कारण आर्मेनियामें विद्रोह उपस्थित हुआ। अन्तमें उनके धर्ममें किसी प्रकारका हस्तक्षेप न किया जायगा, ऐसा स्वीकार कर लेने पर विद्रोहानल शान्त हुआ। यजदेजार्दकी मृत्युके बाद उनके दो पुत्रोंमें विवाद खड़ा हुआ। पिरोज हूणकी सहायतासे अपने भाईका विनाश कर सिंहासन पर बैठे। किन्तु सिंहासनप्राप्तिके बाद हूणोंके साथ पुनः युद्ध छिड़ गया। कई एक युद्धोंमें पिरोजकी जीत तो होती गई, पर मरुभूमिमें युद्ध होनेके कारण उन्हें बड़ी बड़ी मुसीबतें उठानी पड़ी थीं। इस कारण वे हूणोंसे सन्धि करनेको बाध्य हुए। ४८४ ई०में पिरोजके सन्धि-भङ्ग करने पर फिरसे विरोध उपस्थित हुआ। इस युद्धमें पिरोज पराजित और निरुद्देश हुए। हूणोंने पारस्यमें प्रवेश कर नगरग्राम लूटा और अत्याचार आरम्भ किया। पारसिकोंके प्रति वर्ष कर देनेमें स्वीकार करने पर हूण लोग स्वदेशको लौटे। पिरोजकी मृत्युके बाद उनके भाई बलाश गद्दी पर बैठे, किन्तु पारसिक पुरोहितोंके विपक्षताचरण करनेसे वे थोड़े दिनोंके अन्दर राज्य-च्युत हुए।

तक-ई-कैसरा वा १म खसरूका भग्न प्रासाद।
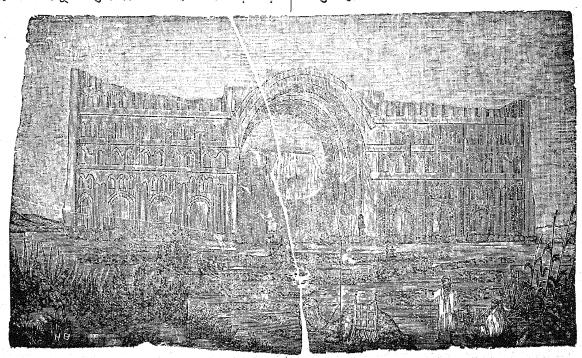
पिरोजके पुत्र १म कबाध ४८८ ई०में सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। पुरोहित और सम्भ्रान्त पारसिकोंकी प्रधानता खर्व करना ही उनका प्रधान लक्ष्य था। किन्तु इससे राज्य भरमें विद्रोहानल धधक उठा और आप शत्रुके हाथ बन्दी हुए। पीछे कबाधने भाग कर हूणोंकी शरण ली और उनकी सहायतासे उन्होंने पुनः राज्य-लाभ किया। ५०२ ई०में वे इच्छापूर्वक रोमकोंके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए थे। उन्होंने पहले आर्मेनिया-की राजधानी पर अधिकार किया। बहुयुद्धके बाद ५०६ ई०में दोनों पक्षमें सन्धि स्थापित हुई। ५३१ ई०में कबाधने सीरिया जीतनेकी चेष्टा की, किन्तु उनकी सभी चेष्टाएं निष्फल हुईं। ५३१ ई०में उनकी मृत्यु हुई और उनके प्रिय पुत्र खसरू सिंहासन पर बैठे।

शासनीय राजाओंके मध्य खसरू सर्वप्रधान थे। इन्होंने अपने सारे राज्यको माप कर राजस्वका परिमाण निर्द्धारित कर दिया जिससे राजकोषकी विशेष उन्नति हुई। उनके राजत्वकालमें नहर काटना, पुल बनाना और नदीमें बांध देना आदि अनेक हितकर कार्य किये गये। ईसाई तथा अन्यान्य धर्मावलम्बी उनके शासन-समयमें सम्पूर्ण निरापद थे। पाश्चात्य सभ्यताके प्रति उनका विशेष ध्यान था। इस कारण उन्होंने अपने राज्यमें पाश्चात्य आचार-व्यवहार और शिल्पविद्याका

खूब प्रचार किया। ५३२ ई०में रोमकोंके साथ उनको सन्धि हुई। इस सन्धिके अनुसार उन्होंने रोमकोंको कई एक स्थान प्रत्यर्पण किये और रोमकगण भी प्रतिवर्ष कर देनेको राजो हुए। असभ्य जातिके आक्रमणसे अपने राज्यको निरापद करके खसरूने ५४० ई०में सीरीय पर आक्रमण किया। अन्तिओक नगर उनके हाथ लगा और वहां उन्होंने प्रचुर धन प्राप्त किया। कुछ वर्ष बाद खसरूने लाजिस्तान जा कर पेत्रा नामक स्थान पर अधिकार जमाया। इस समय मेसोपटेमिया प्रदेशमें युद्ध चल रहा था। अन्तमें ५४८ ई०में रोमकोंने काफो धन दे कर पांच वर्षके लिये सन्धि कर लो।

इस समय अक्षु नदोके किनारे खाकन राज्य प्रबल हो उठा। खसरूने वहांके अधिवासियोंको वशीभूत कर लिया था। उनका राज्य इस समय सिन्धुनदी तक विस्तृत था। ५७१ ई०में उन्होंने येमन प्रदेशको दखल किया। रोमकोंने खाकन और येमनके ईसाइयोंको जो सहायता दो थो, उसके लिये खसरूके साथ पुनः उनका विवाद छिड़ा। रोमकोंने निसिबिस नगरको घेर लिया, किन्तु जोत न सके। खसरूने ५७३ ई०में दारा पर दखल जमाया। ५७५ ई०में उन्होंने कप्पादोकिया तक कदम बढ़ाया था, किन्तु यहां रोमकोंको प्रबल देख उन्हें लौट जाना पड़ा। रोमकगण उनका पोछा करते हुए पारस्याधिकारभुक्त आर्मेनिया तक पहुंचे। किन्तु दूसरे वर्ष खसरूने उन्हें राजारे मार भगाया। ५७८ ई०में ताइबेरियस (Tiberius)-ने रोमकसाम्राज्यको प्राप्त किया और खसरूको मृत्यु हुई।

खसरूको मृत्युके बाद होरमज्द सिंहासन पर बैठे। उस समय भो रोमकोंके साथ युद्ध चल रहा था। तुर्की लोग इसो समय बागो हो गये, किन्तु पारसिक सेनापति बहरामके साथ उनको पूरो हार हुई और कर देना उन्होंने कबूल किया। इसके बाद बहराम रोमकोंके विरुद्ध भेजे गये, किन्तु युद्धमें पराजित होनेसे होरमज्दने उन्हें पदच्युत और अपमानित किया। बहराम इस अपमानका बदला चुकानेके लिये विद्रोही हुए। होरमज्दके पुत्र २य खसरूने उनका साथ दिया। अन्तमें होरमज्द राजच्युत और ५९० ई०में निहत हुए।

होरमज्दको मृत्युके बाद २य खसरू (परवेज) और बहरामके बीच सिंहासन ले कर झगड़ा पैदा हुआ। २य खसरूने युद्धमें हार खा कर मारिश (Maurice)-को शरण लो और अन्तमें मारिश तथा अन्यान्य पारसिकोंको सहायतासे पैतृक राज्यका उद्धार किया। बहराम तुर्किस्तानको भाग गये। खसरूने अपनेको निरापद करनेके लिये एक हजार रोमकोंको शरीररक्षी नियुक्त किया। ६०२ ई०में मारिशके मारे जाने पर फोकस (Phocus) उनके राजसिंहासन पर अधिष्ठित हुए। खसरू मारिशके पुत्रको सहायता देनेके लिये अग्रसर हुए। ६०४ ई०में रोमकोंके विरुद्ध युद्ध ठान दिया गया। २६ वर्ष तक यह युद्ध चलता रहा। प्रथम युद्धमें रोमकगण विपन्न हो पड़े और इनके दमस्कस, जेरुसलम, मिस्र आदि स्थान पारसिकोंके हाथ आये। अन्तमें हेरक्लियस (Heraclius) के कौशलसे रोमको भाग्यलक्ष्मी सुप्रसन्न हुई। ६२७ ई०में खसरू उनसे परास्त हुए और राजधानी छोड़ कर भाग गये। किन्तु कुछ समयके बाद हो शत्रुके हाथमें पड़ कर उन्होंने प्राण विसर्जन किया। २य खसरूको मृत्युके बाद कबाधने राजा हो कर रोमकोंके साथ सन्धि कर ली। परन्तु छः माससे अधिक समय भो न होने पाया था, कि उनका राज्यसुख जाता रहा—वे शत्रुके हाथसे मारे गये। बाद ३य अर्दशोर सात वर्षको अवस्थामें गद्दी पर बैठे। इस समय पारस्यराज्यमें तमाम अराजकता फैल गई, सभो राजशक्ति तो अपनानेको कोशिश करने लगी। वे अपने अपने अभिमत राजपुत्रको सिंहासन पर बिठाना चाहते थे। अन्तमें अनेक हत्याकाण्डके बाद ६३३ ई०में शहरयारके पुत्र यजदेजार्दने राजसिंहासन प्राप्त किया। इस समय मुसलमान लोग अत्यन्त प्रबल हो कर उपर्युपरि पारसिकोंको परास्त करने लगे। अन्तमें कादिसियरको लड़ाईमें अर्दशोरके पीठ दिखाने पर ताइग्रोस नदोका समस्त उपत्यकाभाग मुसलमानोंके हाथ लगा। ६४२ ई०में नेहावन्दके युद्धमें पारसिक सेना एक प्रकारसे विध्वस्त हो गई और सभो शासनीय राज्य अरबोंके हाथ आया।

खलीफाओंका अधिकार।

पारस्यमें शासनियोंकी क्षमता विलुप्त होने पर अरबोंने सभी अधिवासियोंको बलपूर्वक मुसलमानी धर्ममें दीक्षित किया। इस समयसे ले कर ६०० वर्ष तक पारस्यदेश खलीफाओंके अधीन रहा। ओमर, ओथमानअली और ओम्मदीय खलीफाओंके समयमें (६३४से ७५० ई० तक) पारस्यदेश खलीफा-साम्राज्यके एकांशरूपमें गिना जाता था और इस स्थानका राजकार्य चलानेके लिये एक शासनकर्त्ता नियुक्त होते थे। ७५० ई०में खलीफा अब्बासके वंशधरोंने बागदादमें राजधानी बसाई और इस समयसे खुरासान उन लोगोंका अत्यन्त प्रिय स्थान हो गया। खलीफा देखो।

खलीफाओंकी अवनति होने पर पारस्यके अन्यान्य प्रदेशोंके शासनकर्त्ताने स्वाधीनता अवलम्बन की, इस कारण बहुतसे छोटे छोटे राज्य स्थापित हुए। इस समय पारस्यदेश नाममात्रका खलीफाके अधीन था। इन सब छोटे छोटे राज्योंके मध्य खुरासानमें तेहर वंशधरोंने ८२०से ८७२ ई० तक सिस्तान, यार, इराक आदि स्थानोंमें सफ्फरोंने ८६८ से ९०२ ई० तक और पश्चिमपारस्यमें दलिमिवंशने ९३३ से १०५६ ई० तक राज्यशासन किया। ये सब छोटे छोटे राज्य अन्तमें सेलजुक जातिसे विध्वस्त हुई। इसी सेलजुक जातिकी एक शाखा खारिजम नामक स्थानमें राज्य करती थी। उन्होंने क्रमशः क्षमताशाली हो कर पारस्यके अधिकांश स्थानों पर अधिकार कर लिया और गजनी तथा खिरियोंको पारस्यसे मार भगाया। किन्तु कुछ समय बाद सेलजुकगण अन्यान्य जातियोंके साथ चङ्गीज खाँके हाथ परास्त और ध्वंसप्राप्त हुए। चङ्गीजखाँके वंशधरोंने १२५२ से १३३४ ई० तक राज्य किया। पीछे उनकी क्षमता विलुप्त हो जानेसे इयलखानीयगण प्रबल हो उठे। इस समय तैमूरलङ्गने पारस्यदेश पर आक्रमण कर समस्त क्षुद्र राज्योंको ध्वंस कर डाला और वर्त्तमान पारस्य साम्राज्यकी नींव डाली।

वर्तमान पारस्य-राज्यका इतिहास।

वर्त्तमान पारस्य राज्यका इतिहास नाना विभीषिकामय घटना और हत्याकाण्डपूर्ण है। तैमूरलङ्गके समयसे ही वर्त्तमान युग आरम्भ हुआ है। तैमूर और उनके वंशधरोंका विवरण जाफरनामा ग्रन्थमें लिखा है।

तैमूर विख्यात दिग्विजयी थे। इन्होंने १३८१ ई०में खुरासान, मजन्दारन और पीछे एशियामाइनर, अफगानिस्तान, भारतवर्ष आदि देशों पर अधिकार किया। भारतवर्षके इतिहासमें उनका आक्रमण विस्तृतभावसे वर्णित है। उनकी मृत्युके पहले अस्त्राबादसे ले कर रूजीम तक उनकी धाक जम गई थी। तैमूरके जीते-जी उनके तीसरे लड़के मीरनशाहने पारस्यके एक अंशका शासनभार ग्रहण किया था। किन्तु उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जानेसे बागदादप्रदेश पारस्यराज्यसे विच्छिन्न हो गया। अपने मृत्युकालमें तैमूरने १४०५ ई० में पीर-महम्मद नामक एक पौत्रको उत्तराधिकारी बनाना चाहा, किन्तु मीरनके पुत्र इस पर बड़े असन्तुष्ट हुए और उन्होंने बलपूर्वक सिंहासन पर अधिकार कर १४०८ ई० तक राज्य किया। पीछे तैमूरके चौथे लड़के शाहरुखने उन्हें भगा कर राज्यभार ग्रहण किया।

शाहरुख (१४०८-१४४६ ई०) साहसी, दयालु और ऊँचे ख्यालके थे। उनके समयमें समरकन्दसे हीरटमें राजधानी उठ आई। ३६ वर्ष राज्य करनेके बाद शाहरुखकी मृत्यु हुई। पीछे उनके लड़के उलुगवेग सिंहासन पर बैठे। विज्ञान और काव्यशास्त्रमें उनका विशेष अनुराग था। उनके राजत्वकालमें समरकन्द नगरमें विद्यालय और मानमन्दिर स्थापित हुआ। उलुगवेग अपने पुत्रके हाथसे मारे गये। इस घटनाके छः मास बाद उलुगवेगके पुत्रने सैनिकोंके हाथमें प्राण विसर्जन किया। पीछे राजपुत्रोंमें विवाद खड़ा हुआ। बहुत खूनखराबीके बाद हुसेन मिर्जा १४८७ ई०में राजा हुए। उन्होंने १५०६ ई० तक हीरटमें राज्य किया। वे बड़े विद्योत्साही थे। उनकी सभामें अनेक ऐतिहासिक और काव्यशास्त्रविशारद पण्डित पधारे थे। कवियोंमें जामी और हातिफी प्रधान रहे। तैमूरके उपार्जित सुविस्तीर्ण साम्राज्यको सुशासित रखना उनके वंशधरोंकी शक्तिसे बाहर था। पारस्यके पश्चिम भागमें उजानहसन नामक एक तुर्कीसरदार स्वाधीन और अत्यन्त प्रबल हो उठा और समस्त पारस्य

प्रदेशको अपने अधीन कर लिया। उज्जानहसन (हुसेन हसन) को सभामें भिनिससे अनेक बार दूत भेजे गये थे। १४८५ ई०में उज्जानहसनकी स्त्रीने विषप्रयोगसे अपने स्वामीका प्राण हर लिया। उनकी मृत्युके बाद राज्य भरमें घोरतर अराजकता फैल गई। अनेक हत्याकाण्डके बाद अलामुत नामक एक राजपुत्र सिंहासन पर अधिष्ठित हुए।

सुफीवंश (१४९९-१७३१ ई०)

सुफी लोग पहले कास्पीयहृदके दक्षिण-पश्चिममें रहते थे। उनकी धर्मभीरुता और पवित्र स्वभावका विषय सुन कर तैमूर सुफियोंके निकट गये और उन लोगोंके प्रति उन्होंने प्रगाढ़ भक्ति दिखलाई। इसी वंशमें इस्माइल सुफीका जन्म हुआ। वे अठारह वर्षकी उमरमें घर छोड़ कर गीलान चले गये। वहां उन्होंने अल्प-संख्यक सेना संग्रह कर कास्पीयहृदके तीरवर्ती बाकू नगर पर अधिकार किया। इसके बाद सुमाखी नगर उनके हाथ लगा। आखिरकी १४९९ ई०में अलामुतकी लड़ाईमें परास्त कर वे पारस्यके शाह-पद पर अभिषिक्त हुए। अलामुतने दियारबेकर नामक स्थानमें आश्रय ग्रहण किया, किन्तु उनके भाई मुराद एक दल सेना ले कर इस्माइलसे जा भिड़े। पीछे वे भी पराजित होकर भाई-के निकट गये। अन्तमें दोनों भाई इसमाइलके हाथसे मारे गये। १५०१ ई०में इसमाइलने ताब्रिजमें आ कर १५०७ ई०तक निरुपद्रवसे राज्य किया। १५०७ ई०के बाद उजबेकोंने आ कर घोर अत्याचार और लड़ाई ठान दी। १५०८ ई०में चङ्गेज खाँके वंशीय शाह-बेगने समरकन्द, तासखन्द आदि स्थान जीत कर खुरा-सान पर आक्रमण किया, किन्तु थोड़े ही समयके बाद वे दूसरी जगह चले गये। १५१० ई०में खुरासानमें उजबेकका दूसरी बार उत्पात आरम्भ हुआ। उज-बेक सेना देश लूटनेमें व्यग्र हो कर जिधर तिधर चली गई। ऐसे समयमें इसमाइल शाहने उन पर आक्रमण कर सहजमें उन्हें परास्त किया। शाहबेग भागते समय पकड़े और मार डाले गये। इस घटनाके बाद तुर्की सुलतान सलीमके साथ विरोध पैदा हुआ। तुर्कियोंने धर्मान्ध हो कर सुन्नी मुसलमानोंके ऊपर कठोर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। इस पर इसमाइल बड़े बिगड़े और ४०००० तुर्कियोंके प्राण नाश किये। यही लड़ाईका कारण था। सलीमके बहुसंख्यक सेनाके साथ पारस्यराज्यमें प्रवेश करने पर इसमाइलने १५१४ ई०में दलबलके साथ खोई नामक स्थानमें सुलतानका सामना किया। लड़ाईमें इसमाइल-की हार हुई। सुलतान राजधानीमें घुस पड़े और प्रचुर अर्थ-संग्रह कर स्वदेश लौटे। १५१९ ई०में सलीमकी मृत्युके बाद इसमाइलने पुनः स्वराज्यका उद्धार किया। १५२४ ई०में उनकी मृत्यु हुई। ये अत्यन्त स्वधर्मानुरागी और प्रजाप्रिय थे। प्रजा उन्हें 'सियाके राजा' कहा करती थी। इसमाइलकी मृत्युके बाद उनके पुत्र तमास्प शाह गद्दी पर बैठे। १५४३ ई०में मुगल-सम्राट् हुमायुनने उनका आश्रय लिया। हुमायुन् देखो। १५५९ ई०में तुरुष्कके सुलतानके पुत्र विद्रोही हुए और पितासे पराजित हो कर पारस्य-शाहकी शरणमें पहुंचे। इङ्गलैण्डकी अधिश्वरी एलिजाबेथने १५६१ ई०में पारस्यके शाहसे वाणिज्यकी सुविधाके लिये आंटनी जेनकिनसन नामक एक दूतको भेजा, किन्तु कोई फल न निकला।

१५७६ ई०में तमास्पका देहान्त हुआ। पीछे उनके पुत्रोंमें सिंहासनके लिये विवाद खड़ा हुआ। अन्तमें उनके अन्यतम पुत्र २य इसमाइलने अफसर जातिकी सहायतासे अपने भाइयोंको परास्त कर सिंहासन प्राप्त किया। इन्होंने दो वर्षसे भी कम राज्य किया था। २य इसमाइलके बाद उनके बड़े लड़के महम्मद मिर्जा राजपद पर अधिष्ठित हुए। महम्मद-के राजत्वकालमें चारों ओर लड़ाई उपस्थित हुई और इस समय उनके पुत्र भी विद्रोही हो उठे। उनके बड़े लड़के हमजा मिर्जाने विद्रोहियोंका दमन किया। किन्तु वे शीघ्र ही मारे गये और पुनः गोलमाल शुरू हुआ। अन्तमें अब्बासने राजपारिषदोंकी सहायतासे सबोंको हरा कर १५८६ ई०में सिंहासनको अपनाया।

१५८७ ई०में वे उजबेकोंके साथ लड़ाईमें प्रवृत्त हुए और उनसे हरीत तथा खुरासान ले लिया। खुरा-सानमें अन्होंने स्थायी प्रभुत्वकी जड़ मजबूत करनेकी इच्छासे

वहाँ एक दल सेना रक्खो और अपने रहनेके लिये एक प्रासाद भी बनवाया। १६०१ ई०में तुर्कके सुलतानके साथ फिरसे युद्ध छिड़ा। इस युद्धमें सुलतानको सेना पराजित हुई। अन्तमें सुलतानने सन्धि कर ली। सन्धिके अनुसार तुरुष्काधिपने शाहको पूर्वाधिकृत स्थान लौटा दिया। १६०८ ई०में उन्होंने मुगलोंके हाथसे कन्दहारका पुनरुद्धार किया। ७० वर्षकी अवस्थामें १६२८ ई०को उन्होंने जीवन-लीला समाप्त की। ये सुफीवंशके सर्वप्रधान राजा थे। उनका यश चारों ओर फैल गया था। उनके राजत्वकालमें पारस्यराज-सभामें इङ्गलैण्ड, रूसिया, स्पेन, हालैण्ड, पुर्त्तगाल और भारतवर्ष आदि देशोंसे दूत आये थे। पथिकोंकी सुविधाके लिये उन्होंने अनेक पान्थ-निवास, पथ और सेतु बनवाये थे। बड़े लड़के सुफीमिर्जा और उसके दो छोटे भाइयोंका हत्याकार्य छोड़ कर उनका चरित्र निष्कलङ्क था। अन्तिम कालमें उन्होंने पुत्रकी मृत्यु पर खूब पश्चात्ताप किया था और अपने पापके प्राय-श्चित्तस्वरूप सुफीमिर्जाके पुत्रको अपना उत्तराधिकारी चुन रखा था।

अब्बासकी मृत्युके बाद सुफीमिर्जाके पुत्र साम-मिर्जाने १४ वर्ष राज्य किया। ये अत्यन्त निष्ठुर राजा थे। इनके राजत्वकालमें कितने ही असत् कार्य किये गए थे। १६४१ ई०में साममिर्जाकी मृत्यु हुई। बादमें उनके पुत्र २य अब्बासने राज्यभार प्राप्त किया। अब्बासने सोलह वर्षकी अवस्थामें कन्दहार जीता। उनकी सभामें फरासी राजदूत आये थे। अब्बास १६६८ ई०में करालकालके गालमें पतित हुए।

२य अब्बासकी मृत्युके बाद सुलेमानने पारस्यका शाहपद प्राप्त किया। वे दुर्बलहृदय, अत्याचारी और निष्ठुर थे। उनके समयमें उजबेकोंने पुनः खुरासान पर चढ़ाई की और कापचक तुर्कोंने कास्पीयह्रदका तीरवर्त्ती भूभाग लूटा। १६९४ ई०में सुलेमानकी मृत्यु हुई।

सुलेमानकी मृत्युके बाद शाहहुसेन पारस्यके सिंहासन पर बैठे। हुसेन अत्यन्त शान्त और दुर्बल थे। उन्होंने राज्यके मध्य सुरापान बन्द किया। १७१७ ई०में सादुजाई जातिने हीरटमें विद्रोही हो कर अपनी स्वाधीनता घोषणा कर दी। कुर्द जातिने हामदन और उजबेकोंने खुरासानको लूटा।

१७२१ ई०में महमूदने अफगान सेनाको ले कर पारस्य पर आक्रमण किया। उन्होंने शाहकी सेनाको परास्त कर कर्मान जीता और इस्पाहनमें घेर डाला। हुसेनशाह अन्तमें शत्रुके हाथ आत्मसमर्पण करनेको बाध्य हुए। महमूदने नगरमें प्रवेश कर समस्त सम्भ्रान्तों और राजवंशियोंकी हत्या करके राजमुकुट ग्रहण किया। १७२५ ई०में महमूदकी मृत्यु होने पर उनके भाई आसराफ पारस्यके शाहपद पर अधिष्ठित हुए। किन्तु पारस्यमें अफगानकी प्रधानता शीघ्र ही विलुप्त हो गई। हुसेनकी राजच्युतिके बाद २य तमास्पने 'शाह'-की उपाधि धारण की और मजन्दवान नामक स्थानमें भाग कर सेना संग्रह करने लगे। १७२७ ई०में नादिरशाह उनसे आ मिले। नादिरशाह देखो। पहले तमास्पने नादिरकी सहायतासे खुरासानमें अफगानोंको परास्त किया। आसराफने भागते समय वृद्ध हुसेनको मार डाला। पीछे वे भी कन्दहार पहुं-चते समय शत्रुके हाथसे मारे गये। अभी २य तमास्प पारस्यके अधिपति हुए। किन्तु उच्चाभिलाषी नादिरने शीघ्र ही उन्हें सिंहासनच्युत करके अल्प-वयस्क राजपुत्रको अभिषिक्त किया। आखिर १७३६ ई०में इस राजपुत्रकी मृत्यु होने पर नादिरने स्वयं शाहकी उपाधि धारण करके राजपद ग्रहण किया। इसी समयसे पारस्यमें सुफावंशकी प्रधानता विलुप्त हुई।

नादिरशाहने १७३६ ई०में मोघन नामक स्थानमें बड़ी धूमधामके साथ राजमुकुट धारण किया। तद-नन्तर उन्होंने कन्दहार और दिल्ली तक अपना आधिपत्य विस्तार किया। नादिरशाह शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

नादिरके भाई इब्राहिम खाँके तुर्कियोंके हाथसे मारे जाने पर नादिर उन्हें दमन करनेके लिये अग्रसर हुए। प्रथम युद्धमें नादिरकी सेना पराजित और विध्वस्त हुई। नादिर जब अपनी सेनाकी सहायता पहुंचानेके लिये अग्रसर हुए, उस समय उन्हें गहरी चोट लगी। नादिरको अपने पुत्र रिजाकुली पर सन्देह हुआ और

उन्होंने उसे मार ही डाला। इस घटनाके बाद उन्होंने तुर्कीके सुलतानके साथ सन्धि स्थापन की और दिनों दिन वे अत्याचारी तथा सन्दिग्धचित्त होते गये। नादिरके जीवनका शेषभाग सुखसे नहीं बीता। पीछे उनके विरुद्ध किसी प्रकार षड़यन्त्र हो जाये, इस भयसे उन्होंने अनेक सम्भ्रान्त लोगोंकी हत्या कर डाली। अन्तमें उनके अत्याचारसे सबके सब बिगड़ गये और १७४७ ई०में आप यमपुरके मेहमान बने।

नादिरकी मृत्युके बाद पारस्यमें तेरह वर्ष तक घोरतर अराजकता उपस्थित हुई। नादिरका मृत्यु-सम्वाद पा कर अफगानिस्तानमें अहमद अबदाली स्वाधीन हो गये। इधर नादिरके पुत्र और भतीजेमें सिंहासन ले कर विवाद खड़ा हुआ। अन्तमें अलीमर्दन आदिलशाह नाम धारण कर सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए और शीघ्र ही शाहरूखसे सिंहासनच्युत भी किये गये।

शाहरूख सुफीवंशके शेष राजा हुसेनशाहके पौत्र थे। प्रजा उन्हें सिंहासनासीन देख बड़ी ही प्रसन्न हुई। किन्तु वे राजकार्यमें वैसे पटु न थे, इसलिये चारों ओर विद्रोह उपस्थित हुआ। विद्रोही सैयदमहम्मदने उन्हें कारारुद्ध कर अन्धा बना दिया। अन्तमें उनके सेनापति यूसुफअलीने सैयद महम्मदको मार कर उन्हें छुड़ाया। उस समय पारस्यराज्यमें और भी गोलमाल उपस्थित हुआ। अहमदशाह अबदालीने खुरासान पर अपनी गोटी जमाई और क्षमताप्रन्न सेनापतियोंने आपसमें राज्य बांट लिया। उसी समय पारस्यके सिंहासनके लिये तीन मनुष्य प्रतिद्वन्द्वी हो उठे। आखिरकार करीम खाँने सबोंको पराजित कर सिंहासन पर अधिकार किया और सिराजमें अपनी राजधानी बसाई। यहाँ वकील वा राजप्रतिनिधिके रूपमें १८ वर्ष राज्य कर १७७८ ई०में वे इस लोकसे चल बसे।

करीम खाँकी मृत्युके बाद पुनः अराजकता फैली। करीमके भाई जाकीने राजोपाधि ग्रहण की। किन्तु वे शीघ्र ही पराजित और निहत हुए। जाकीकी मृत्युके बाद सादिक खाँ सिराजमें आ कर राजा हुए, किन्तु वे भी अन्तमें जाकीके भतीजे अली मुरादके हाथसे पराजित और निहत हुए। बाद अली मुरादने १७८५ ई०में 'शाह'पद प्राप्त किया। उन्होंने मजन्दरानमें आगा महम्मदको कई एक युद्धमें तो हराया, पर इस्पाहन लौटते समय वे मारे गए। उनकी मृत्युके बाद दो राजा पारस्यके सिंहासन पर बैठे। उनके मरने पर लतीफ अली खाँ राजा हुए। लतीफअली नानागुणसम्पन्न थे और उनकी राजपदप्राप्तिसे प्रजा अत्यन्त आह्लादित हुई थी। आगामहम्मदने इस समय दलबलके साथ सिराजको घेर लिया, किन्तु कुछ समय बाद उनके तेहरानमें चले जानेसे लतीफ अलीने कुछ कालके लिये शान्तिभोग किया था। १७९२ ई०में आगामहम्मद फिरसे आ धमके, किन्तु पराजित हो कर लौट जानेको बाध्य हुए। आगामहम्मदके तीसरी बार ससैन्य सिराजके निकट आने पर लतीफ अलीने कुछ सेनाको साथ ले रातको शत्रुशिविरमें प्रवेश किया और उसे छिन्न भिन्न कर डाला। किन्तु सुबह होने पर महम्मदने अपनी सेनाको ईश्वरोपासना करनेकी आज्ञा दी। लतीफने जब देखा, कि शत्रुकी सेना पुनः इकट्ठी हो गई है, तब वे डरके मारे नौ दो ग्यारह हो गये। ऐसा करनेसे लतीफके भाग्यने पलटा खाया—उन्होंने भग कर कन्दहारमें आश्रय लिया। पीछे १७९४ ई०में राज्योद्धारकी इच्छासे वे पारस्य आये और कर्मानगरको अपने कब्जेमें कर लिया। आगामहम्मदके नगरावरोध करने पर विश्वासघातकतासे नगरका द्वार शत्रुओंके लिये उन्मुक्त हुआ। लतीफ केवल तीन सहचरोंके साथ शत्रुसैन्यको भेद कर भाग गये। इस पर महम्मदने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर अनेक नगरवासियोंको मार डाला। लतीफअली जब बामनगरमें रहते थे तब वहींके शासनकर्त्ताके हाथसे उनकी मृत्यु हुई।

काजरवंश।

लतीफअलीकी मृत्युके बाद आगामहम्मदकी क्षमता बहुत बढ़ गई और इसके साथ साथ रूसियाधिपतिके प्रति उनका विद्वेष उत्पन्न हुआ। इस समय जर्जियाके शासनकर्त्ता हेराक्लियसने पारस्यके अधीनतापाशसे मुक्त होनेके लिये रूसियाकी अधिश्वरी कैथेरिनकी शरण ली। आगामहम्मदने उन्हें स्वराज्यमें लौट आने और उनकी

अधीनता स्वीकार करनेको कहा, किन्तु उसका कोई उत्तर न पा कर वे युद्धके लिये प्रस्तुत हो गये। उन्होंने हेराक्लियसके अधीनस्थ जर्जियन सेनाको पराजित कर रूसियाके अन्तर्गत तिफलिसनगर पर अधिकार किया। इस पर रूसियाके साथ कलह पैदा हुआ। रूस-सेनापति बाकू और सुमाखीने नगरको जीत लिया, किन्तु इस समय रूससम्राज्ञी कैथेरिनकी मृत्यु हो जानेसे युद्ध बन्द हो गया। तिफलिस लूटनेके बाद आगामहम्मदने 'शाह'की उपाधि धारण की और तेहरानमें राजधानी बसाई। १७९६ ई०में खुरासान प्रदेश उनके अधीन आ गया। इस समय रूस लोग फिरसे युद्धके लिये उपस्थित हो गये। आगामहम्मद सैन्य संग्रह करके उनके विरुद्ध जा रहे थे कि इसी समय शिविरके मध्य हठात् उनकी मृत्यु हुई। आगामहम्मदकी मृत्युके बाद सैनिकोंमें गोलमाल उपस्थित हुआ, किन्तु प्रधान मन्त्री हाजी इब्राहिम और मिर्जामहम्मद खाँके बुद्धिकौशलसे सभी गोलमाल दूर हो गया और आगामहम्मदके भतीजे फतेअली सिंहासन पर बैठे।

फतेअलीके राजा होने पर जगह जगह विद्रोह उपस्थित हुआ और खुरासानने शाहरूखके पुत्र नादिरमिर्जाने स्वाधीनता अवलम्बन की। किन्तु फतेअलीके आगमन पर सबोंने उनकी वश्यता स्वीकार कर ली। इस समय जर्जियाके राजाने रूसके जारके सापक्ष सिंहासन छोड़ दिया, किन्तु उनके भाई इसमें सहमत न हुए और उन्होंने रूसके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। युद्धमें उन्होंने हार खा कर पारस्यके शाहका पक्ष अवलम्बन किया। अब फिर दोनोंमें युद्ध छिड़ गया। इस युद्धमें पारसिकोंने खूब वीरता दिखलाई पर उनकी चेष्टा फलवती न हुई। अन्तमें १८१३ ई०को सन्धि स्थापित हुई। सन्धिके अनुसार जर्जिया जारके अधिकार भुक्त हुआ। १८२५ ई०में दोनों राज्यकी सीमा ले कर फिरसे युद्ध आरम्भ हुआ। पारसिकोंकी विजय तो हुई, पर शीघ्र ही फतेअलीके पौत्र महम्मद मिर्जाके अधीन पराजित हुए। १८२७ ई०में पुनः सन्धि हुई और तदनुसार पारस्यके शाह रूसराजको ७ प्रदेश, एरिवन और नखिचेवन नामक दोनों स्थान तथा युद्धका खर्च तीन करोड़ रुपये देनेको बाध्य हुए। १८२१ ई०में तुर्कोंके साथ विवाद पैदा हुआ। तुर्क लोग पारसिक वणिक और तीर्थयात्रीके प्रति अत्याचार करते थे। पारस्य-शाहके बारम्बार मना करने पर भी जब कोई प्रतिकार न हुआ, तब लड़ाई छिड़ गई। तुर्कियोंने पराजित हो कर सन्धि कर ली। सन्धिके अनुसार पारसिकोंके प्रति किसी प्रकारका अत्याचार वा अन्यथा करग्रहण न करेंगे, ऐसा उन्होंने स्वीकार किया। इस घटनाके बाद फतेअलीने खुरासान और मसाद जीत कर हीरटकी यात्रा की और प्रचुर धन हाथ कर स्वदेश लौटे। फतेअलीके राजत्वकालमें इङ्गलैण्ड और भारतवर्षसे पारस्यराजसभामें दूत गया था।

फतेअलीके १८३४ ई०में मरने पर उनके पुत्र महम्मद शाह सिंहासन पर बैठे। उन्होंने अफगानोंसे हीरट, कन्दहार और गजनी आदि स्थान पानेकी इच्छासे ससैन्य हीरटको अवरोध किया, किन्तु अफगानोंने अंगरेज गोलन्दाजसे परिचालित हो कर उन्हें पराजित किया। अन्तमें अङ्गरेजोंकी मध्यस्थतामें सन्धि स्थापित हुई। १८४८ ई०में फतेअलीकी मृत्यु हुई और पीछे नसरउद्दीन शाह पारस्यके सिंहासन पर बैठे। उनके राजत्वकालमें खुरासानमें विद्रोह, बाबी जातिका विद्रोह और इङ्गलैण्डके साथ युद्ध उपस्थित हुआ। खुरासान और बाबी जातिका विद्रोह बहुत जल्द ही निवारित हुआ। क्रिमियाके युद्धकालमें पारस्यके शाहने जारके प्रति सहानुभूति दिखलाई और छुरा कर उनसे मित्रता कर ली। इस पर अंगरेज लोग उन पर बड़े बिगड़े। अन्तमें १८५६ ई०को शाहके हीरट अधिकार करने पर अंगरेजोंने युद्धकी घोषणा कर दी और भारतवर्षसे पारस्यमें सेना भेजी गई। युद्धमें पारस्यकी हार हुई। आखिर १८५७ ई०में दोनों जातिके बीच सन्धि हो गई।

वर्त्तमान पारस्यका प्राकृतिक विवरण।

ईसा-जन्मके बहुत पहले पारस्यराज्य पश्चिममें भूमध्यसागरसे ले कर पूर्वमें सिन्धुनदी तक और उत्तरमें काकेसस पर्वतमालासे ले कर दक्षिणमें पारस्योपसागर तक विस्तृत था। सतरहवीं और अठारहवीं शताब्दीमें

पारस्यराज्यकी सीमा पूर्वमें सिन्धु नदी तक फैली थी, किन्तु पश्चिम प्रान्तमें पारस्यराज्यका अधिकांश वैदेशिक राजाओंके हस्तगत हुआ। रूसके साथ युद्धके बाद पारस्यकी विस्तृति बहुत घट गई है। पारस्यराज्यकी वर्त्तमान सीमा इस प्रकार है,—उत्तरमें कास्पीयह्रद, कुरेनदाघ और कोपेतदाघ नामक पर्वत, पश्चिममें आर्मेनिया और एशिया माइनरकी पर्वतमाला, दक्षिणमें पारस्योपसागर और अरबसागर तथा पूर्वमें परोपनिसस, हिन्दूकुशपर्वत, अफगानिस्तान और बलूचिस्तान।

पर्वतश्रेणी।

पारस्यदेशके पर्वतोंमें दमावन्द और कुहनान पर्वत सबसे ऊंचा है। इन दो पर्वतोंकी ऊंचाई १८६०० और १४००० फुट है। इनके सिवा कुहदिनार और कुहसफेद आदि और भी कितने छोटे छोटे पर्वत हैं। कर्मान और इस्पाहनके मध्य एक विस्तृत मरुभूमि है।

नदी।

पारस्यदेशमें फदरुद, आत्रक, गुर्गान, दियाला, कर्खा, दिज, कारुन आदि प्रधान नदियां हैं।

जलवायु।

कास्पीयह्रदके निकटवर्ती स्थानोंका जलवायु उष्ण और बड़ा ही अस्वास्थ्यकर है। पारसके अधित्यकाओंमें ग्रीष्मकालमें अत्यन्त गरमी और शीतकालमें अत्यन्त ठंढ पड़ती है। पारस्योपसागर और बलूचिस्तानके निकटवर्ती स्थान भी ग्रीष्मप्रधान हैं।

भूमि और उत्पन्न द्रव्य।

पारस्यदेशकी भूमि अत्यन्त उर्वरा है, किन्तु काफी जल नहीं होनेसे तृतीयांश जमीन परती रहती है। कृत्रिम नहर द्वारा जल ला कर कृषिकार्य सम्पन्न होता है। कृषिजात द्रव्योंमें अफीम, तमाकू, रुई, धान आदि प्रधान है। पहले पारसमें रेशम बहुत उत्पन्न होता था और प्रतिवर्ष ७००००००) रु०का रेशम विदेश भेजा जाता था। अभी उसके चतुर्थांश रेशमकी रफतनी होती है। रेशमके बदलेमें यहांके लोगोंने खेतीकी ओर विशेष ध्यान दिया है। यहां अङ्गूर काफी परिमाणमें उपजता है और उससे शराब प्रस्तुत की जाती है। गुलाब आदि नाना प्रकारके सुगन्धित कुसुमोंसे भी पारस्यका उपवन-समूह कुसुमित होता है।

प्राणी।

यहांके गृहपालित पशुओंमें अश्व, अश्वतर, उष्ट्र और वृष ही विशेष प्रसिद्ध हैं। वन्यपशुओंमें सिंह, व्याघ्र, चीताबाघ, शृगाल, खरगोश, वन्यगर्दभ, वन्यमेष, वन्यविड़ाल, पार्वतीय छाग और हरिण प्रधान हैं।

वाणिज्य।

रेशमकी खेती कम हो जानेसे अफीम और धानकी खेतीकी वृद्धि हुई है। अफीम चीन देशमें भेजी जाती है। १८८० ई०में पारस्यसे प्राय: ८४७००००) रु०की अफीम विदेश भेजी गई थी। यूरोपमें पारस्यदेशीय पशमीनोंका आदर अधिक है। यहां प्रति वर्ष प्राय: १०१८८८८०) रु०के द्रव्यांकी आमदनी होती है। विलायतसे आमदनी द्रव्योंमें वस्त्रादि, चीनी, चाय, लौह, ताम्र, इस्पात और पीतलके बरतन प्रधान हैं। इस देशसे प्रतिवर्ष जिन सब द्रव्योंकी रफतनी होती है उसका मूल्य प्राय: ६५१६६२२०) रु० है। रफतनी द्रव्योंका १/२ भाग चीन देशमें, १/४ भाग इङ्गलैण्डमें और १/४ भारतवर्षमें भेजा जाता है। पारस्योपसागरसे अधिक मुक्ता संग्रहीत होती है।

शिल्पद्रव्य।

शिल्पजात द्रव्योंमें स्वर्णमयपात्र, अस्त्रादि, सूक्ष्म सूचिकार्य, वाद्ययन्त्र, शाल और पशमीना प्रधान है।

राजनीतिक विभाग।

पारस्यराज्य ४ बड़े और ६ छोटे अंशोंमें विभक्त है। प्रत्येक भागमें पारस्यराज द्वारा एक शासनकर्त्ता नियुक्त होता है। विभागोंके नाम ये हैं—अदरबैजान, उत्तर-पश्चिम विभाग, खुरासान, दक्षिण पारस्य, अस्त्राबाद, मजन्दरान, गीलान, खमसा, कजविन और गैरस।

जाति।

पारस्यमें विविध जातियोंकी वासभूमि है। यहांके अधिवासियोंमेंसे अधिकांश किसी स्थानमें स्थायी भावसे नहीं रहते। पारस्योपसागरके उपकूलमें अरब

लोगोंका वास है। कुर्दिस्तानमें युद्धप्रिय एक जाति देखी जाती है। इनके अलावा अनेक यहूदी और ईसाई रहते हैं। करमान नामक स्थानमें बहुत कम हिन्दूधर्मावलम्बियोंका वास है। यिज्दमें प्रायः २००० घर प्राचीन अग्निपूजक पारसियोंके हैं।

पारस्यके अधिवासियोंको साधारणतः दो श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं। एक श्रेणी नगरग्राम्यादिमें रहती है और दूसरी मवेशी चरानेके लिये नाना स्थानोंमें चली जाती है। ये लोग पारस्यके शाहको निर्दिष्ट-संख्यक सेना दे कर सहायता किया करते हैं। पारस्यकी जनसंख्या स्थिर करना कठिन है और इस विषयमें मतभेद भी है। १८८१ ई०में जो सरकारी विवरण प्रकाशित हुआ उसमें अधिवासियोंके मध्य नगरवासी १९६३८००, पल्लिग्रामवासी ३७८००००, भ्रमणशील जाति १९०९८००, कुल मिला कर ७६५३६०० है।

शासनप्रणाली।

पारस्यके शाह महम्मदके प्रतिनिधिरूपमें गिने जाते हैं, इसीसे वहांकी प्रजा इनके विरुद्ध कभी नहीं चलती। राजकार्य चलानेके लिये मन्त्रिसभा है। मन्त्रि-सभाका सर्वदा परिवर्त्तन हुआ करता है और उनके मध्य जो कर्मविभाग है, वह शाहकी इच्छाके ऊपर निर्भर करता है। शासनकार्यकी सुविधाके लिए सारा राज्य दश भागमें बांटा गया है। फिर हरएक छोटे छोटे जिलोंमें विभक्त है। प्रत्येक जिलेमें एक हाकिम रहता है, जिसका काम सब विषयोंकी देख भाल और राजस्व जमा करना है। इसके अलावा प्रत्येक ग्राममें एक काटखुदा या मण्डल है।

यहांके लोग सैनिक विभागमें काम करना पसन्द नहीं करते; उन्हें बलपूर्वक सैनिक श्रेणीभुक्त करना पड़ता है। सैन्यगण नियमितरूपसे तनखाह नहीं पाते हैं—प्रायः दो तीन वर्षकी तनखाह बाकी रहती है। पारसिक सेनादल अकर्मण्य और युद्धमें निपुण नहीं हैं। उनके परिच्छद तथा अस्त्र शस्त्रादि अत्यन्त निकृष्ट होते हैं। पदातिक सेना युद्धयात्राके समय गदहेकी पीठ पर चढ़ते हैं। सैन्यगण बहुत कम तनखाह पाते हैं।

अश्वारोही सैन्यका वार्षिक वेतन लगभग ३०) रु० है। सेनाओंको कूचकवायद सिखानेके लिये जो यूरोपीय कर्मचारी नियुक्त होते हैं, सैनिक विभागमें उनको कुछ भी क्षमता नहीं रहती। अधस्तन कर्मचारी (Officer) से उच्चतन कर्मचारीके नाम ये हैं,—नायब (Lieutenant), सरहंग (Lieutenant Colonel) और सर्तिप (Colonel)। पारस्यके शाहकी सैन्यसंख्या कुल १०५५०० है जिसमें ५००० गोलन्दाज, ५३९०० पदातिक, ३१००० अश्वारोही और ७२०० देशरची सेना है। राज्यके हरएक विभाग, जाति और जिलेसे नियमित संख्यक सेना ली जाती है। ईसाई, यहूदी और अग्निपूजक पारसी सेनामें भरती नहीं किए जाते हैं।

राजस्व।

पारस्यराज्यकी आय १९८००००० रु० है। इसमेंसे सैनिकविभागमें ७६००००० रु०; विचारकार्यमें ३६०००००), धर्मयाजकादिके लिए २४००००), वैदेशिक व्यापारमें २८००००), शिक्षाविभागमें १२००००) और अन्यान्य कार्यमें ६००००० रु० खर्च होते हैं। अवशिष्ट अर्थ शाहके राजकोषमें भेजा जाता है। कुल राजस्वका चतुर्थांश शस्यादि द्वारा परिशोध करना होता है। राजकर्मचारिगण नियमित रूपसे हरएक जिलेसे राजस्व इकट्ठा करते हैं। राजस्वका भार अधिकांश श्रमजीवी दरिद्र मुसलमानोंके ऊपर ही पड़ता है। मुसलमानोंके सिवा अन्यधर्मावलम्बी मनुष्योंसे थोड़ा कर लिया जाता है।

जातीय चरित्र।

पारसिकगण साधारणतः प्रफुल्लचित्त, आतिथेय और वैदेशिकोंके प्रति सदय व्यवहार करते हैं। इन लोगोंका गार्हस्थ्य जीवन अत्यन्त प्रशंसनीय है। ये लोग माता-पिताके प्रति असाधारण भक्ति दिखाते और विशेषतः माताके विरुद्ध कोई काम नहीं करते हैं। सन्तानगण प्रायः पिताके सामने खड़ी रहती और उन्हें प्रभु कह कर सम्बोधन करती हैं। पारसमें क्रीतदासप्रथा प्रचलित है, पर उनकी अवस्था खराब नहीं है। पारसिक उन्हें "बच्चा" कह कर पुकारते हैं। वे सब विश्वस्त कार्यमें

नियुक्त होते और कभी भी विश्वासघातकताका काम नहीं करते हैं। दासियोंका मूल्य १५०) से ४००) रु० तक है; किन्तु दासोंका इसकी अपेक्षा बहुत कम है। पारसिकगण अपनी देह तथा अपना पहरावा हमेशा साफ सुथरा रखते हैं। निष्ठुरता इनमें अकसर देखी नहीं जाती। अपराधी कदापि आजीवन कारारुद्ध नहीं रहते—प्रत्येक नववर्षमें वे लोग छोड़ दिए जाते हैं।

वेशभूषा।

पारसिक अकसर सूचिकार्यखचित ढीला कुर्त्ता और पायजामा पहने हुए रहते हैं, कभी कभी साटनका कुर्त्ता भी व्यवहारमें लाते हैं। पुरोहितगण सिर पर मसलिनकी पगड़ी पहनते हैं। उच्चपदस्थ कर्मचारी चमड़ेके कमरबंदका इस्तेमाल करते हैं। साधारण मनुष्य सिरका मध्यभाग वा समूचा मुंड़वा डालते हैं। "काकुल" वा प्रायः दो फोट लम्बा एक गुच्छा बाल मस्तकके उपरिभागमें रखा जाता है। इन लोगोंका विश्वास है, कि मरने पर महम्मद इस बालको पकड़ कर जन्नतमें ले जाते हैं। स्त्रियोंके पहरावेमें बहुत कुछ अदल बदल हुआ है। यहांकी स्त्रियोंका वेश रुचिविरुद्ध है। वे सब अकसर शेमिज वा पिरान पहनती हैं। पिरान गलेसे ले कर घुटनेके कुछ ऊपर तक आता है और शरीरका अवशिष्ट भाग खुला रहता है। शिर पर वे रेशमी वा सूतीका रूमाल लपेट कर ठुड्डीके नीचे गांठ दे देती हैं। इनके सिवा स्त्रियां हार बाजू, बाला आदि तरह तरहके अलङ्कार पहनती हैं। उत्सवके उपलक्षमें ये अपने मुखमण्डलको चित्रित और दोनों नयनोंको कज्जलरागसे रञ्जित करती हैं। ये सब स्त्रियां देखनेमें अकसर खर्व होती हैं। इनके बाल बहुत लम्बे होते हैं। घरसे बाहर निकलनेमें वे समूचे शरीरको कपड़ेसे ढक लेती हैं, केवल दोनों आँखोंकी जगह पर दो छेद रहते हैं। पारस्य देशमें सात वर्ष तक कन्याको पुत्रके जैसा और पुत्रको कन्याके जैसा पहनावा पहनाते हैं।

पारस्य वा ईरानी भाषा।

प्राचीन ईरान राज्यमें जितने प्रकारकी भाषा प्रचलित थी, पारस्य भाषा ही उनकी जड़ है। इसीसे पारस्य भाषाके बदलेमें इसे ईरानी भाषा कहना उचित है। इन्दुयूरोपीय नामक जो सात आदिभाषा हैं, ईरानी भाषा उनमेंसे एक है। यद्यपि इन सात भाषाओंका परस्पर सम्बन्ध सम्यक्‌रूपसे आज भी स्थिरीकृत नहीं हुआ, तो भी इस भाषा और प्राचीन संस्कृत भाषाके मध्य जैसा सौसादृश्य देखा जाता है, उससे मालूम पड़ता है, कि ये दोनों भाषा एक ही मूल भाषासे उत्पन्न और कालक्रमसे परिपुष्ट हो कर पृथक् हो गई हैं। इन दो भाषाओंमें पृथकता यह है, कि संस्कृत भाषामें जहां वाक्यके पहले आद्यक्षर 'स' है, प्राचीन ईरानी वा जन्द भाषामें वहां "ह" वा वर्गके चतुर्थ वर्णकी जगह जन्द भाषामें वर्गका तृतीयवर्ण वा क, ट, प की जगह जन्दमें ख, थ, फ व्यवहृत हुआ है। यथा—

संस्कृत	जन्द	प्राचीन पारस्य	वर्त्तमान पारस्य
सिन्धु	हिन्दु	हिन्दु	हिन्द
सम	हम	हम	हम्
भूमि	बूमि	बूमि	बूम्
धित	दात	दात	दाद्
घर्म	गरेम	गर्म	गर्म्
प्रथम	फ्रतेम	फ्रतम	फ्रदुम्
क्रतु	ख्रतु		

यास्कके निरुक्तसे जाना जाता है, कि एक समय कम्बोज देशमें संस्कृत भाषा प्रचलित थी। पारस्य भाषा जो संस्कृतानुरूप कोई भाषा प्रचलित थी, वह यास्कके बहुपरवर्त्ती पारस्यकी कीलाकार शिलालिपिसे उसका कुछ आभास पाया जाता है। पहले ईरानमें जन्द भाषा प्रचलित थी। जन्द नाम सार्थक नहीं है, इसका प्रकृत अर्थ व्याख्यापुस्तक है। प्राचीन अग्निपूजक पारसिकोंकी अवस्ता नामक धर्मग्रन्थ इस भाषामें लिखा है। अवस्ता ग्रन्थ प्रणीत होनेके बहुत पहले एक दूसरी भाषामें गाथा वा धर्मगीत रचा गया था। यह भाषा जन्दकी प्राचीन आकृतिके सिवा और कुछ नहीं है। गाथाकी भाषाके साथ प्राचीन वैदिक संस्कृतका अत्यन्त सौसादृश्य देखा जाता है। बहुत थोड़ा शब्द परिवर्त्तन करनेसे गाथा प्राचीन वैदिक श्लोकका आकार धारण करती है। गाथा देखो।

अरथुस्त्र-धर्मावलम्बी जब जन्द भाषा नहीं समझ सके, तब अवस्ता ग्रन्थ पह्लवी भाषामें अनुवादित हुआ। जन्द भाषा संस्कृत भाषाकी तरह अत्यन्त प्राचीन है, किन्तु वैयाकरणिक औत्कर्षमें संस्कृतको अपेक्षा बहुत निकृष्ट है। पारस्य भाषा ही पारसिकोंकी आदिभाषा है, अखमनीय वंशके राजत्वकालमें खोदित लिपियां इसी भाषामें लिखी गई हैं। मध्य और जन्दभाषाके साथ इसका एकमात्र प्रभेद यह है, कि इन भाषामें २४ वर्ण हैं और जन्द भाषामें व्यञ्जन 'ए' वा औकारको जगह प्राचीन पारस्य भाषामें 'अ' व्यवहृत होता है। यथा—जन्द 'बैगम', पुरातन प्राचीन पारस्य 'बगम्', संस्कृत 'भगम्'। अथवा जन्द भाषाका 'ज' पुरातन पारस्य भाषामें 'द' व्यवहृत होता है, यथा—संस्कृत 'हस्त', जन्द 'अस्त', प्राचीन पारस्य 'दस्त'। अखमनीय वंशध्वंसके बाद पांच सौ वर्ष तक प्राचीन पारस्यभाषामें लिखित कोई ग्रन्थ वा खोदित लिपि आदि कुछ भी नहीं मिलती।

मध्य समयकी पारस्य भाषाके अनेक रूपान्तर हो गये हैं। पह्लवी भाषा इस भाषाके साथ बहुत कुछ मिलती जुलती है। पह्लवी देखो।

इस समय व्याकरणके नियम बहुत संक्षेप किये गये। विशेषतः पदके एक और बहुवचनमें रूपान्तर बिलकुल उठ गया।

आधुनिक पारस्यभाषा फिरदौसीके समयसे आरम्भ हुई है। व्याकरणके नियमानुयायी शब्दप्रयोग अभी और भी कम हो गया है एवं उक्त ग्रन्थकारके समयसे पारस्य भाषाका थोड़ा ही परिवर्त्तन हुआ है। इस समय अरबी-भाषाकी उन्नति है और बातचीतमें उसका व्यवहार हो जानेसे नव पारस्यभाषामें अनेक अरबी शब्द प्रविष्ट हुए हैं। उच्चारणगत प्रभेदके मध्य पहले प्राचीन पारस्यभाषामें जहां क, त, प उच्चारित होता था, अभी वहां ग, द, ब उच्चारित होने लगा है। यथा—

प्राचीन पारस्य वा जन्द	पह्लवी	नव पारस्य
आप (लिये)	आप	आब
क्लती (स्वयं)	खोत	खोद

एतद्भिन्न अन्यान्य सामान्य पृथक्ता है।

साहित्य।

पारस्यभाषामें काव्यशास्त्रकी किस समय उत्पत्ति हुई, उसके सम्बन्धमें ऐतिहासिकोंके मध्य मतभेद देखा जाता है। बहुतोंका कहना है, कि ४२० ई०में शास-नीय-वंशीय राजा पञ्चम बहरामने पद्यछन्दका उद्भावन किया। कोई कोई कहते हैं, कि समरकन्दके निकट-वर्त्ती सग्द-निवासी अबुलहफने पारस्यभाषामें प्रथम पद्यग्रन्थकी रचना की। हरून अल-रसीदकी मृत्युके बाद ८०८ ई०में अब्बास नामक एक व्यक्तिने खुरासान-में यथार्थमें पद्यरचना करनेका आरम्भ किया और इस समय अरबीभाषाकी प्रधानतासे पारस्यभाषाकी उन्नति करनेमें यद्यपि सब कोई शिथिलयत्न हो गये थे, तो भी यह बिलकुल विलुप्त न हुई थी। इस समय पारस्य-भाषामें बहुत कम ग्रंथादि लिखे जाते थे। १०वीं शताब्दीके पहले चार प्रकारके पद्योंकी सृष्टि हुई, यथा—कसीदा (शोकसूचक वा श्लेषपूर्ण), गजल (गीत), रुबाई (एक प्रकारका छोटा पद्य) और मस-नवी (पयारछन्द)। ११वीं शताब्दीके बादमें महा-काव्य-रचनाका प्रथम सूत्रपात हुआ। इस ग्रंथका यश अभी सभी देशोंमें फैला हुआ है।

नीतिगर्भ और धर्ममूलक ग्रंथकी रचना सुफी-वंशके राजत्वकालसे प्रचारित हुई। इस समय सादि-बुस्तान और गुलिस्तान ग्रंथ रचे गये। इन दोनों ग्रंथों-के पवित्र धर्मभाव और भाषा-नैपुण्यकी प्रशंसा अभी देशोंके लोग करते हैं। पद्यमें मनका भाव सुविशदरूप-से प्रकाशित करनेमें हाफिज पारसिक कवियोंमें अद्वि-तीय थे। वर्त्तमान शताब्दीके प्रारम्भसे पारस्यमें नाटक-का आरम्भ हुआ है। सभी नाटक प्रायः पद्यमें लिखित और धर्मविषयक प्रवादसे गृहीत हैं। इतिहासमें भी पारसिकोंने निपुणता दिखाई है, जाफरनामा आदि ग्रंथ इसके नमूने हैं। पारस्यभाषामें संस्कृत रामायण और महाभारत आदि अनेक ग्रंथ अनुवादित हुए हैं।

पूर्वतन पारसिकोंका धर्म और देवतत्त्व।

आर्य और पारसिकगण बहुत दिनोंसे संसृष्ट थे, यह दोनों जातिकी भाषा और आचार-व्यवहारसे प्रमा-णित होता है। पारसिकदेशमें बहुत सी शिलालिपियां

पाई गई हैं जिनके अक्षर कोणाकार वा कीलकाकृति के हैं। इसकी भाषा संस्कृत वा पालीकी तरह है।

पारसिकोंके प्राचीन शास्त्रका नाम अवस्ता है। यह अवस्ता अनेक भागोंमें विभक्त है। एक एक विभागका नाम यस्न रखा गया है। यह आवस्तिक यस्न शब्द और वैदिकोंका यजन वा यज्ञ शब्द दोनों एक है। अवस्ताके द्वितीय भागमें अर्थात् गाथ नामक पांच परिच्छेदों और अपरापर कई एक अध्यायोंकी भाषा सर्वापेक्षा प्राचीन है। इसका अधिकांश वेदसंहितोक्त सूक्तोंके अनुरूप है और देवताओंका स्तुतिगर्भ श्लोकसमूहसे परिपूर्ण है। यह गाथ शब्द संस्कृत और पालीभाषके 'गाथा' शब्द भिन्न और कुछ भी नहीं है। गाथा देखो।

अवस्ताके द्वितीय विभागका नाम विस्परद है जो २३ अध्यायोंमें विभक्त है। तृतीय विभागका नाम वन्दिदाद है। यह वन्दिदाद अहुरमज्द और जरथुस्त्र इन दोनोंके कथोपकथनात्मक प्रश्नोत्तर स्वरूप है। इसमें धर्माधर्म, कर्त्तव्याकर्त्तव्य आदि अनेक प्रकारकी धर्मनीति सन्निविष्ट हैं। चतुर्थ विभागका नाम है यश्त्। यह देवताओंकी स्तुति और गुणकीर्त्तनसे पूर्ण है। वैदिक इष्टिशब्द और आवस्तिक यश्त् शब्द इन दोनोंका अर्थ और अक्षरसादृश्य स्पष्टतः लक्षित होता है।

यही अवस्ता पारसिकोंका प्रधान धर्मग्रन्थ है। प्राचीन पारसिक भाषाके साथ वैदिक संस्कृतका ऐसा सौसादृश्य देखा जाता है, कि इस भाषाको संस्कृतसे उत्पन्न कह सकते हैं। भारतो आर्य और पारसिक जातिकी जातीय आख्या और भी एक प्रमाणरूपमें ग्रहण की जा सकती है। वेदसंहिता आदि प्राचीन संस्कृतशास्त्रोंमें वैदिकगण आर्य नामसे अभिहित हुए हैं। पूर्वतन पारसिकोंने 'अइर्य' कह कर अपना परिचय दिया है। आर्य और अइर्य ये दोनों एक ही हैं; पर जो कुछ वैलक्षण्य देखा जाता है उसका कारण है इन दोनों जातियोंका विभिन्न देशोंमें वास। दोनोंके शास्त्रसे जाना जाता है, कि हिन्दू और पारसिकगण अपनेको आर्य कहा करते थे।

फिर भी देखा जाता है, कि हिन्दू और पारसिक शास्त्रोक्त वीर तथा व्यक्तिके सुसदृश नाम एवं उपाख्यानादि एक ही रूपमें सन्निवेशित हैं। अति संक्षेपमें दो एक उदाहरण दिये जाते हैं। वेदसंहितामें त्रित और त्रैतन नामक दो व्यक्तियोंका बारम्बार प्रसङ्ग देखनेमें आता है। (ऋक् १।५२।५, १।१०।५९,५।८६।१) अवस्तामें थ्रित और थ्रएतओन नामक दो व्यक्तियोंका उल्लेख है। (वन्दिदाद १ अ० २० अ० ५२ अ०) थ्रितके साथ त्रितका और थ्रएतओनके साथ त्रैतनका संज्ञा-विषयमें जैसा सादृश्य है, उपाख्यानांशमें वैसा लक्षित नहीं होता। किन्तु वैदिक त्रितके साथ आवस्तिक थएतओनका बिलकुल मेल खाता है। वैदिक त्रितने एक सप्तपुच्छ त्रिशिरा सर्पको और आवस्तिक थ्रएतओनने त्रिशिरा, त्रिस्कन्द, षट्पुच्छ और सहस्र शक्तिशाली एक महासर्पका संहार किया था।

पाणिनि प्रभृति ग्रन्थोंमें शास्त्र और पारसिक ग्रन्थोंमें 'केरेशास्प' नामक एक उग्र रणप्रियका नाम देखा जाता है। इन दोनोंका सौसादृश्य देखनेसे ऐसा मालूम पड़ता है, कि ये दोनों व्यक्ति एक हैं। वेदमें काव्य-उशनस नामक एक व्यक्तिका जो उल्लेख है वह अवस्ताके कवउशसे अभिन्न समझा जाता है। इदानीन्तन पारसिक ग्रन्थमें उसका नाम 'काउश' रखा गया है।

हिन्दूशास्त्रोक्त नाभानेदिष्ट और पारसिक नवानजदिस्त इन दो शब्दोंमें विशेष विभिन्नता नहीं है। नवानजदिस्त शब्दका अर्थ है नव्यविधानका अनुगत पद्य और नाभानेदिष्टका मनुका पुत्र वा पौत्र।

इस प्रकार अनुमान किया जा सकता है, कि पारसिक और भारतवर्षीय आर्योंके संश्लिष्ट रहनेसे वह शब्द एक वस्तु-प्रतिपादक था। पीछे देशविशेष और कारण विशेषसे उसका अर्थ भेद हुआ होगा।

कितने देश, प्रदेश और नदीप्रभृतिके नामोंका सादृश्य भी दिखाया जा सकता है। आर्योंके सभी शास्त्रोंमें सरस्वतीका जल अति पवित्र और उसको तीरभूमि पुण्यस्थान मानी गई है। पारसिक धर्मशास्त्र अवस्तामें 'हरखइती' नामक अत्युत्कृष्ट प्रदेशका प्रसङ्ग देखनेमें

आता है। 'हरखइती' सरस्वती शब्दका ही रूपान्तर है। कारण पारसिकगण 'स'-का उच्चारण 'ह'के जैसा करते है। जैसे—सोम, सिन्धु और सुक्रतुकी जगह पारसिकगण होम, हेन्दू और हुखतुस कहते है। 'स्व' इस वर्णकी जगह आवस्तिक भाषामें 'ख' होता है। यथा—स्वप्न और स्वधातकी जगह 'खप्न' और 'खधात' हुआ करता है। इसी प्रकार सरय और सप्तसिन्धु आदि शब्द अवस्तामें 'हरय' और 'हप्तहेन्दु' नामसे प्रयुक्त हुए हैं।

हिन्दू और पारसिक जातिके प्राचीन धर्मादिका जैसा सुचारु सादृश्य है, उससे भी इस विषयमें विशेष अनुकूल कहना होगा। पारसिक और हिन्दूने बहुत दिनों तक एक साथ वास किया था, सुतरां दोनों एक धर्म और एक प्रकारकी आचरणप्रणालीके अनुसार चलते थे। आर्योंके वेद और पारसिकोंके अवस्ताके अन्तर्गत जिन सब विषयोंका सादृश्य देखनेमें आता है, वह उसी अति प्राचीनकालका धर्म है, यह निश्चय-रूपसे कह सकते हैं।

वेदमें मित्र और वरुण नामक दो देवताओंका उल्लेख है। इन दोनोंके उद्देशसे अनेक सूक्त वेदमें सन्निवे-शित हैं। अवस्ताशास्त्रमें और अर्तक्षत्र (Arta-xernes) नामक पारसिक राजाकी शिलालिपिमें तथा हिरोदोतस आदि ग्रीक ग्रन्थकारोंके ग्रन्थमें पार-सिकगण मिथ्र नामक देवताविशेषके उपासक माने गये हैं। आर्योंके वरुण और मित्र देवताके साथ अहुर मज्द तथा मिथ्र देवका सादृश्य है। वरुण और अहुरमज्द दोनों ही अपने अपने उपासकोंके पापके शास्ता और अन्यान्य ऐशिकगुणसम्पन्न प्रधान देवता माने गये हैं।

वरुण देव असुर कह कर प्रसिद्ध थे। पुरा-कालीन पारसिकोंके अन्यान्य उपास्यदेवताका नाम अहुर था। पारसिक असुरप्रधान अर्थात् अहुरमज्द अतिशय उन्नतपद हो कर एकबारगी परमेश्वरके पद पर अधिष्ठित हुए हैं। आवस्तिक अहुरमज्द शब्द संस्कृत असुर-मेधस् शब्दके अनुरूप है। असुर और अहुर शब्द एक ही है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। संस्कृत 'मेधस्' शब्दका अर्थ है प्रज्ञा और आवस्तिक 'मज्दा'-का प्रज्ञावान्।

वरुण और अहुरमज्द एक देवताका नाम होना सम्भवपर है। किन्तु मिथ्र और मित्र देव अभिन्न हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। वेदसंहितामें कहीं कहीं मित्रको दिवाभिमानी देवता बतलाया है। (ऋक् १।२४।७,८।१०,१४ इत्यादि) मिथ्र शब्दका अर्थ सूर्य और बन्धु है। संस्कृत मित्र शब्दके ये दोनों अर्थ ही प्रसिद्ध हैं। मित्र और मिथ्र दोनों ही हिन्दू और पारसिकके संश्लिष्टकालमें साधारण देवता थे, इसमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं। पुरातन पारसिक-गण हिन्दुओंकी तरह वायु, सूर्य, अग्नि और पृथ्वी आदिकी उपासनामें अनुरक्त थे। वैदिक अग्निहोत्रियों की तरह पारसिकगण भी काठमें काठ रगड़ कर अग्नि निकालते थे और अपने घरमें उसी अग्निकी स्थापना करते थे।

अवस्ताके अन्तर्गत गाथ परिच्छेदमें लिखा है, कि जरथुस्त्र स्पितमने अग्नियाजकोंकी विशेष प्रशंसा की है और अपने अङ्गर नामक सम्प्रदायकी ऋत्विकोंके प्रति भक्ति और श्रद्धा करनेका उपदेश दिया है। पारसिक अङ्गर और वैदिक प्रजापति 'अङ्गिरा' ये दोनों एक हैं, ऐसा अनुमान करना असङ्गत नहीं है। वेदसंहितामें अग्निदेव-के साथ अङ्गिराकी विशेष घनिष्ठता है और स्थानविशेष-में अग्निदेवको अङ्गिरा बतलाया है। (ऋक् १।३१।१-२। अग्निके साथ अङ्गिराका विशेष सम्बन्ध था। वे कभी कभी अग्निके प्रतिनिधिरूपमें देवकार्य करते थे, इस प्रकार अनेक प्रसङ्ग वेद और निरुक्त आदिमें मिलते हैं। इन सबकी पर्यालोचना करनेसे 'अङ्गर' और 'अङ्गिरा' एक हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। पारसिक और हिन्दू जब सम्मिलित थे उस समय उन्हींके वंशपरम्पराक्रमसे इस प्रकार अग्निकी उपासना प्रचलित हुई है, यह अनुमान युक्तियुक्त है।

पारसिकोंके अवस्ताशास्त्रमें 'इन्द्र', 'शउर्व' और 'नाओङ्हइत्य' ये तीन नाम वैदिक इन्द्र, शर्व और 'नासत्य' युगलके साथ एक कह कर स्थिर किया जा सकता है। अश्विन् नामक दो देवोंका नाम नासत्य है। हिन्दू और

पारसिकके परस्पर विवादविसम्बादसे शर्व, इन्द्र और नासत्य ये सब अवस्तामें दैत्यस्वरूप वर्णित हुए हैं।

अवस्ताके मध्य 'वयु' 'होम' 'अरमइति' 'अइर्य्यमन्' 'नइर्यसङ्ह' नामक कितने देवता और देवदूतका वर्णन है। वेदमें ये सब देवता यथाक्रम वायु, सोम, अरमति, अर्यमन् और नाराशंस नामसे प्रसिद्ध हैं। कारण दोनोंके मतसे वे सब देवता केवल नामके ही नहीं हैं, कार्यादि भी उनके एकसे हैं। पारसिक 'वयु' बहुदूरस्थित और सर्वगामी वा सर्वव्यापी हैं। वे ऊपरी भाग अर्थात् गगनमण्डलमें काम करते हैं। वैदिक वायुदेव भी इन्हीं लक्षणाक्रान्तके हैं। वेदमें भी अरमतिको एक उपास्य देवता बतलाया है। आवस्तिक 'अरमइति' देवता वा देवपारिषद स्वरूप हैं। वैदिक अरमति और आवस्तिक अरमइति शब्दका अर्थ एक है। दोनोंके ही मतसे अरमतिका अर्थ पृथ्वी है। शास्त्रमें पृथ्वी गोरूपधारिणी मानी गई है। अवस्ताके मतमें भी पृथ्वी गोस्वरूपा है। इस देशमें विवाहके समय 'अर्यमन्' देवता संक्रान्त मन्त्रादि पढ़े जाते हैं। आवस्तिक मतमें भी ठीक वैसा ही हुआ करता है। वैदिक नाराशंस शब्द 'अग्नि, पूषन् और ब्रह्मणस्पति प्रभृति अनेकानेक देवताओंके विशेषणरूपमें व्यवहृत हुआ है। आवस्तिक 'नइर्यसङ्ह' अहुरमज्दके दूतस्वरूप हैं; वेदमें अग्नि और पूषन् देवताको उसी प्रकार दौत्यकार्यमें व्रती देखा जाता है।

इन्द्रका नामान्तर वृत्रहन् और इसका आवस्तिक रूप वेरेथ्रघ्न है। अवस्तामें इन्द्रको दैत्य बतलाया है। किन्तु उनके मतसे वेरेथ्रघ्न पूज्य और भक्तिभाजन यजतविशेषके जैसे वर्णित हैं। ये सब देवता हिन्दू और पारसिकके संस्रष्टकालके उपास्य देवता थे, ऐसा अनुमान किया जाता है। वेदोक्त 'भग' और आवस्तिक 'बग' ये दोनों एक हैं। वैदिक 'भग' एक आदित्यका नाम है और आवस्तिक 'बग' शब्द देवतासूचक।

वैदिक देवताकी संख्या ३३ है और अवस्तामें भी लिखा है, कि ३३ रतुओंने अहुरमज्दका प्रतिष्ठित और अरथस्वधर्मके तत्त्वोंको प्रचलित किया। यही ३३ ख्याति तैंतीस देवता हैं। जब हिन्दू और पारसिकगण संसृष्ट थे, उस समय दोनोंका एक ही धर्म था। क्रमशः हिन्दू और पारसिकके विभिन्न स्थानोंमें रहनेसे पारसिकगण उसका अर्थ भूल गये हैं, ऐसा अनुमान किया जाता है।

उभयजातीय देवताओंकी संज्ञा और स्वरूप विषयमें जैसा सौसादृश्य है, उनके क्रियाकलापमें भी वैसा ही सादृश्य देखा जाता है। इस विषय पर कुछ और कह देना उचित है।

अवस्तामें ऋत्विकका नाम 'आथ्रव' और ऋत्विकविशेषका नाम 'जोता' है। ये दोनों वैदिक 'अथर्वन्' और 'होता' शब्दके ही अनुरूप हैं। पारसिकोंके क्रियाकलापके अनुष्ठानकालमें दुग्ध, नवनीत, मांस, फल, सोमशाखा, सोमरस, वृषलोम, पल्लवपुञ्ज और पिष्टक प्रभृति व्यवहृत होते हैं। हिन्दुओंके वैदिक यज्ञादि कार्यमें भी वही सब द्रव्य आवश्यक हैं।

सोमयाग एक वैदिक प्रधान यज्ञ है। वेदानुसार 'सोम' और पारसिक शास्त्रानुसार 'होम' एक उद्भिदका नाम है। उभय शास्त्रानुसार वह सुवर्ण सदृश रञ्जित मादक और रोगनिवारक है। यह सोम स्वास्थ्यदायक और अमरत्वविधायक एवं एक परमपूजनीय देवता है। इसका रस विहितविधानसे और मन्त्रपूत करके पान करना होता है। दोनों ही शास्त्रमें ये सब कथाएं एकवाक्यसे स्वीकृत हुई हैं।

पारसिकगण जिस क्रियासे सोमरसका निवेदन कार्य व्यवहार करते हैं, उसका नाम है 'इजीश्ने'। उसमें ज्योतिष्टोम नामक वैदिक क्रियाके प्रायः सभी लक्षण लक्षित होते हैं।

पारसिकगण और भी अनेक क्रियाओंका अनुष्ठान करते हैं जिनका नाम है आफ्रिगान, दरुन् और गाहाम्बर। ये तीनों वेदोक्त आप्री, दर्शपौर्णमास और चातुर्मास्य यागके समान समझे जाते हैं। पारसी देखो।

उपनयन विषयमें भी इन दोनों जातिके मध्य सादृश्य देखा जाता है। आर्योंका निर्दिष्ट वयसके भीतर जो उपनयन संस्कार होता है। पारसिकोंमें भी यही नियम देखनेमें आता है। भारतवर्षीय पारसिक सप्तम वर्षमें और कर्मानदेशीय पारसिक दशमवर्षमें उपनीत

होते हैं। वराएतके मतसे अर्थात् पारसिक पण्डितोंके व्यवस्थानुसार बालकगण दशवर्षकी उमरमें पारसिकों-के समाजभुक्त होते हैं। पारसिकोंके अन्यान्य ग्रन्थोंके मतानुसार पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें वे पारसिकधर्म-सम्प्रदायमें प्रविष्ट होते हैं।

अथर्ववेदके अनेकांशमें मन्त्रप्रयोग द्वारा रोगशान्ति, दीर्घायुलाभ, शत्रुविनाश और उत्पातनिवारण आदिकी अनेक व्यवस्था विद्यमान है। अवस्ताके भी किसी किसी अंशमें इसी प्रकारके मन्त्रादि सन्निवेशित हैं। यहां तक कि वेदके साथ अवस्ताके अन्तर्गत यष्‍त् और वन्दिदाद विभागका स्थान मिला कर देखनेसे अनेकानेक वचनोंका सादृश्य देखनेमें आता है।

हिन्दू और पारसिक ये दोनों ही जातियां शास्त्रीय क्रियाविशेषके उपलक्षमें शरीरशोधनार्थ गोमूत्रका व्यवहार करते हैं।

वेदसंहितामें देवप्रतिमा और स्वतन्त्र देवमन्दिरका कोई प्रसङ्ग देखनेमें नहीं आता। पारसिकगण भी पहले इससे जानकार न थे। अतएव जब हिन्दू और पारसिक एक साथ रहते थे, उस समय मूर्तिपूजा और देवालय-प्रतिष्ठाकी रीति प्रचलित थी वा नहीं, इसमें विशेष सन्देह है।

अवस्ताके मध्य वर्णविभागका कोई नियम नहीं है। वेदसंहिताके प्राचीन सूक्तमें इसका कोई सुस्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। वैश्य और क्षत्रिय शब्दका मूल विश और क्षत्र शब्द वेद तथा अवस्ता दोनोंमें ही है, किन्तु सभी जगह जातिवाचक नहीं समझा जाता। पर हां, महाभारतमें लिखा है कि पूर्वकाल-में वर्णभेद नहीं था, पहले सभी ब्राह्मण समझे जाते थे। प्राचीन वैदिक और पारसिक आर्योंके उप-नयन संस्कारसे उक्त भारतीय प्रवाद बहुत कुछ समू-लक प्रतीत होता है। पारसिकगण अपनेको ईरान वा आर्य और दूसरोंको अनीरान् वा अनार्य कहते थे।

हिन्दू और आवस्तिक पारसिकोंके परस्पर पृथक् होनेके पहले परलोकके विषयमें उनका अभिमत क्या था, वह सुस्पष्टभावसे समझा नहीं जाता। किन्तु पार-सिकोंके अवस्ताशास्त्रमें 'यिम' नामक एक अलौकिक-शक्तिसम्पन्न पुरुषका उपाख्यान देखनेमें आता है। यह 'यिम्' वेदोक्त 'यम'-के समान अनुमान किया जा सकता है। वैदिक यम विवस्वन्के और अवस्ताके यिम वीवङ्हवत्के पुत्र हैं। यिम एक परम सौभाग्य-शाली राजा थे। उन्होंने कुछ दिन राज्य करके मनुष्य और अन्यान्य प्राणियोंसे पृथिवीको परिपूर्ण कर दिया। आखिर स्वर्णस्तम्भपरिवेष्टित एक स्थानमें वे निर्वाचित संख्यक अत्युत्कृष्ट मनुष्य तथा पश्वादिको ले गये और वहां कुछ काल तक रह कर उन्हें सुखी किया। उनके अधिकारमें अज्ञान, अधर्म, दीनता, रोग और मृत्यु कुछ भी न था।

वेदसंहितामें भी यमराजको परलोकवासियोंका अधीश्वर माना है। यमलोक कहनेसे साधारणतः दुःखमय स्थानका बोध तो होता है, पर यथार्थमें वैसा नहीं है। यमलोक एक ओर जैसा सुखका आलय है, वैसा ही दूसरी ओर दुःखका। पापात्माके निकट यमा-लय नरक और पुण्यात्माके लिये वही स्थान स्वर्ग है। ऋकसंहितामें पारसिकोंके यिमपल्लवकी तरह यम-लोक सुख और सौभाग्यका निलय माना गया है। यथा —

'हे पवमान सोमदेव! जिस लोकमें अजस्र ज्योतिः और सूर्यतेज अवस्थित है, उसी अमृतमय अक्षयलोकमें मुझे स्थापन करो। जिस लोकमें वैवस्वत (यम) राजा राज्य करते हैं, जहां द्युलोकका अन्तरतम स्थान है और विस्तृत सलिलयुक्त नदी अवस्थित है, वहां मुझे अमर करो।' इत्यादि। (ऋक् ८।६४।२७-११)

वेदोक्त यम परलोकवासियोंके अधीश्वर और द्युलोक-वासी हैं। किन्तु पारसिकोंके यिम अवनी पर अवस्थित हैं और उनका राज्य सुखमय है। आर्योंके यम और पारसिकोंके यिम एक हैं वा नहीं, यह विचारनेका विषय है।

अलावा इसके हिन्दू और पारसिकोंके मध्य पुराण वा उपाख्यानके विषयमें भी अनेक सादृश्य देखनेमें आता है। आर्योंके मतसे पृथिवी सप्तद्वीपा है, प्राचीन पार-सिकोंके मतमें भी पृथिवी ७ भागोंमें विभक्त है। आर्योंने सुमेरु पर्वतको पृथ्वीके मध्यस्थलमें बतलाया

हैं ; पारसिकों ने भी ऐसे मध्यस्थानमें एक पर्वतविशेषका अस्तित्व स्वीकार किया है । दोनों के ही मतसे वह पर्वत देवताओं की निवासभूमि है ।

हिन्दू और पारसिकके जातीयधर्म का विषय जो कुछ लिखा गया, उस पर विचार करनेसे मालूम पड़ता है, कि दोनों ही जाति एक समय वैदिकधर्म का पालन और सूर्य, वायु तथा अग्नि आदिकी उपासना करती थी। जान पड़ता है, कि किसी कारणविशेष-से तथा विभिन्न देशों में अवस्थान करनेसे वे दोनों जातियां बिलकुल स्वतन्त्र हो गई हैं । इनके विवाद और विद्वेषके अनेक कारण हिन्दू और पारसिक दोनों हो शास्त्रों में जाज्वल्यमान हैं ।

हिन्दुओं और पारसिकों के जातीय धर्म के अनेक विषयों में जैसा असाधारण ऐक्य देखा जाता है, ठीक वैसा ही अनेक विषयों में फिर वैपरीत्य भी है। वैदिक देव शब्द पूजास्पद और देवताप्रतिपादक है, किन्तु आवस्तिक दएव वा देव शब्द और इदानीन्तन पारसिक देवो शब्द दैत्यवाचक है। इन्द्र, शर्व और नासत्य वेदोक्त देवता हैं, किन्तु अवस्तामें ये सब दैत्य-निकेतन और निरयसदनमें निर्वासित हुए हैं । इन्होंने यथाक्रम दैत्याधिपति अङ्ग्रमइन्युकी मन्त्रिसभाके द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ सभासदका आसन परिग्रह किया है।

सोमयाग एक प्रधान वैदिक क्रिया है। जरथुस्त्र स्पितमने पूर्वकालीन उस क्रियाका परित्याग कर सोम-रसपानकी भूयसी निन्दा की है। क्रमशः आपसमें विवाद करके पारसिकोंने हिन्दूदेवताओंका और हिन्दुओंने पारसिक देवताओंका निन्दावाद करनेमें एक भी कसर उठा न रखी। इस प्रकार दोनों जातियों के बीच विवादने भीषणरूप धारण किया और दोनों जातियां परस्पर विभिन्न हो गई हैं।

आवस्तिक 'अहुर' शब्दका अर्थ प्रभु और जीवित-वान् है। पारसिकोंके देवताका नाम अहुर और प्रधान देवताका नाम अहुरमज्द है। सायणाचार्य ने वेद-संहितामें कई जगह 'असुर' का अर्थ लगाया है सब जीवों के प्राणदाता। सुतरां यह देवगुणवाचक है। ऋग्वेदसंहिताके १।३५।८ ऋक्के भाष्यमें 'असुरः सर्वेषां प्राणदः' और दशम ऋक्में भी असुर शब्दका वही अर्थ सन्निविष्ट हुआ है। उत्तरकालीन हिन्दूशास्त्रकारोंने असुरों को देवद्वेषी और दैत्य तथा देवताओं को असुरविरोधी बतला कर वर्णन किया है, किन्तु समस्त वेदसंहितामें सुर शब्दका उल्लेख देखनेमें नहीं आता, यह सचमुच आश्चर्यका विषय है, इसमें सन्देह नहीं। असुरने जब पारसिकोंके 'अहुर' हो कर देवताका स्थान दखल किया, उस समयके वा उसके बादके हिन्दुओं ने पार-सिकों के प्रति विद्वेषवशतः असुरविरोधी 'सुर' नामसे अपने देवताकी आख्या प्रदान की, ऐसा अनुमान नितान्त असङ्गत नहीं है। क्रमशः इसी प्रकार एकने दूसरेकी निन्दा की है ।

इधर जिस प्रकार अवस्ताके रचयिताने वेदोक्त कवि और उशिज नामक परमार्थदर्शी ज्ञानियों की निन्दा की है। उधर उसी प्रकार भारतीय हिन्दू ऋषियों ने जरथुस्त्रधर्मीके देवताओंका बारम्बार तिरस्कार किया है। उन सम्प्रदायों के प्रथम व्यक्तिका नाम मघव है जिसे संस्कृतमें मघवा कहते हैं। कीलाकार-शिलालिपिमें वह नाम मगुष् कह कर उल्लिखित है। उन सम्प्रदायों के वीर और भूपतिविशेषका नाम कवा वा कव था, यथा—कवावीस्ताम्प, कवहुश्रव, कवउश। ये साधक, स्वधर्म रक्षक वा राजर्षिविशेष थे। वेदसंहितामें उनके पक्षावलम्बी मनुष्य कवासख नामसे प्रसिद्ध हैं। अवस्ता-के रचयिताने जिस प्रकार इन्द्रादि हिन्दू देवताओं को दुरात्मा दैत्यस्वरूप बतलाया है, उसी प्रकार आर्यों ने भी उल्लिखित मघवा और कवासखों को इन्द्रविद्वेषी तथा इन्द्रदेवको उनके विनाशकारी बतला कर उल्लेख किया है। (ऋक् ५।३४।३)

इन सब विषयों का विशेषरूपसे पर्यालोचना करने-से मनमें नाना प्रकारके सन्देह उपस्थित होते हैं। इससे आपसे आप यह प्रतीत होता है, कि जिस प्रकार जर्मनोंने ईसाधर्मका अवलम्बन करके अपने पूर्वतन देवताओं को दैत्य बतलाया था, उसी प्रकार हिन्दू और पारसिकगण धर्मनिबन्धन विसम्वादवशतः परस्पर विद्वेषभावापन्न हो कर इसी प्रकारके व्यवहारमें प्रवृत्त हुए थे। यहां तक कि, अवस्ताके अन्तर्गत यस्नारिच्छेदकी

एक प्रतिज्ञावलीमें साफ साफ लिखा है 'हम लोगोंने देवताओंको उपासना परित्याग करके अहुर-मज्दको उपासनाका अवलम्बन किया और हम लोग देवताओंके शत्रु हो कर अहुरके भक्त तथा अमेष-स्पेन्तोंके स्तावक और उपासक हुए।' (यश्न १२ अ०)

पुराण और ब्राह्मणादिमें वर्णित देवासुरके युद्ध-विवरणमें भी पारसिकोंका धर्मघटित विरोधवृत्तान्त ही लक्षित होता है। हिन्दुओं और पारसिकोंका यही धर्मविवाद देवासुर-संग्राम है।

पुराण और महाभारतमें हिन्दूवंशीय बहुतसे लोगोंके म्लेच्छभावापन्न होनेकी कथा देखनेमें आती है। शायद पारसिकगण भी उसके मध्य हो सकते हैं।

इन दोनोंके मध्य विरोध होनेका क्या कारण था, उसका निर्णय करना बहुत कठिन है। पर हां, पारसिक कर्त्तृक ईरानी जातियोंके मतानुसार धर्मसंस्थापन और कृषिकार्यके विस्तर प्रचलन प्रभृति ही विरोध और विच्छेदका कारण हो सकता है। यद्यपि एक दिनमें वा एक मनुष्यसे यह महद्व्यापार संघटित नहीं हुआ, तो भी अवस्थानुसार जरथुस्त्रस्पितम नामक महात्मा ही इस गुरुतर विषयके प्रवर्त्तक थे, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। जब आर्यगण पञ्चनद प्रदेशमें रहते थे, उसी समय यह शोचनीय विसम्वाद उपस्थित हुआ। इसी विषम विरोधके प्रभावसे हिन्दू और पारसीगण बिलकुल स्वतन्त्र हो गये हैं।

जरथुस्त्रस्पितमके प्रवर्त्तित सम्प्रदायियोंने वैदिक आर्योंके साथ पृथक् हो कर अपना पूर्ववास सदाके लिए छोड़ दिया। क्रमशः वे पश्चिमोत्तर होते हुए बाह्लीकादि नाना देशोंमें भ्रमण और अवस्थान कर पारस्य-देश गये और वहां उनका नाम पारसी पड़ा। उन लोगोंके शौर्य, वीर्य और ज्ञानज्योतिसे भारत आलोकित हो उठा।

पारस्यकुलीन (सं० पु०) परस्य कुले भवः, प्रतिजनादित्वात् खञ्, ततः परस्यकुलेति अलुक् समासः। परकुलोत्पन्न दत्तकपुत्रादि।

पारस्वत (सं० त्रि०) परस्वत् नामक मृगविशेष-सम्बन्धीय।

पारहंस (सं० त्रि०) परमहंससम्बन्धीय।

पारा (सं० स्त्री०) पारोऽस्त्यस्या इत्यच्, ततष्टाप्। नदीविशेष। यह नदी पारिपात्र पर्वतसे निकली है।

पारा—मानभूम जिलेका एक ग्राम। यह मेदनीपुरसे काश्मीर जानेके रास्ते पर अवस्थित है। पारासे आध मील दूर एक मन्दिर है जहां षड़्भुजा सिंहके ऊपर बैठी हुई एक देवमूर्त्ति प्रतिष्ठित है। सिंहके दोनों पार्श्वमें दो वराह और वराहके ऊपर दो हाथी हैं। यहां जो खोदित लिपि है उसके अनेक अक्षर विलुप्त हो गये हैं। चन्द्रातपके मध्यभागमें वैष्णवीविग्रह है। इसके सिवा यहां और भी कितने मन्दिर देखनेमें आते हैं जिनमेंसे अधिकांश अपेक्षाकृत आधुनिक हैं। पश्चिम भागमें जो मन्दिर है, वह कौतूहलप्रद और देखनेमें उतना खराब नहीं है। इन सब मन्दिरोंमेंसे राधारमणका मन्दिर सबसे सुन्दर और कारुकार्यखचित है। आज तक उसका कोई अनिष्ट नहीं हुआ है।

यहां सर्वापेक्षा प्राचीन और द्रष्टव्य पदार्थोंमें इष्टक और प्रस्तरनिर्मित दो मन्दिर प्रधान हैं। प्रस्तर निर्मित मन्दिर एक समय अत्यन्त वृहत् था, अभी इसका केवल ऊपरी भाग देखनेमें आता है। मन्दिरगात्रमें खोदित प्रतिमूर्त्ति जल और वायुसे विनष्ट हो गई है। मानसिंह जब वङ्गदेशमें रहते थे, उस समय इस मन्दिरका जीर्णसंस्कार हुआ था। मन्दिरके मध्य कृष्णपत्थर पर खोदित दो भुजावाली एक गज लक्ष्मीकी प्रतिमूर्त्ति है। लक्ष्मीके मस्तक पर माला धारण किये हुए दो हाथी अवस्थित हैं। लक्ष्मीकी नाक टूट गई है। मालूम पड़ता है, कि वङ्गदेशमें मानसिंहके आक्रमणके पहले मुसलमानोंने यह कार्य किया गया है। मन्दिरका पश्चाद्भाग अभी मट्टीके नीचे प्रायः ३ फुट धंस गया है। इस मन्दिरके निकट इष्टक-निर्मित एक और मन्दिर विराजमान है। इस मन्दिरके इष्टकका परिमाण १७ इञ्च लम्बा और ११ इञ्च चौड़ा है। यही यहांका सबसे पुराना मन्दिर है। इष्टकनिर्मित होने पर भी इसका अंश टूटा फूटा नहीं है। मन्दिरके मध्य द्विभुजा देवीमूर्त्ति प्रतिष्ठित है। मन्दिरका शिखर देखनेमें बड़ा ही सुन्दर लगता

पासमें वृक्षादिके रहनेसे इसका कुछ अंश टूट फट गया है।

इस मन्दिरके निकट दो छोटे छोटे स्तम्भ हैं। प्रवाद है, कि इन दो स्तम्भोंके ऊपर एक ढेंकली थी और नरमांसलोलुपा रङ्किणी नामक एक राक्षसी उस ढेंकलीसे मनुष्यका चूर चूर कर खाती थी। अधिक प्रजाका क्षय न हो, इस भयसे यहांके राजाने राक्षसीके निकट प्रति दिन एक एक मनुष्य भेजनेकी प्रतिज्ञा की। एक दिन एक परिवारकी बारी आई। वे सबके सब शोकसागरमें डूब गये। उन्हें ऐसी अवस्थामें देख उनके पशुपालकका हृदय दयासे पिघल आया और वह स्वयं उस राक्षसीके पास जानेको राजी हो गया। वह अपनी एक मुट्ठीमें लोहेके चने और दूसरीमें असल चने ले कर राक्षसीके पास गया। उसने लोहेके चने राक्षसीको दे कर कहा, जिसका भोजन पहले शेष होगा वह दूसरेको भक्षण करेगा। राक्षसीकी हार हुई और वह पशुपालकके भयसे भाग कर एक धोबीके पाटके नीचे छिप रही। गोरक्षक राक्षसीके दो कुत्तोंके साथ उसकी तलाशमें निकला और जब वह 'रावस' नामक स्थानमें जंगलके बीच हो कर जा रहा था, उसी समय वह कुत्ते समेत पत्थर हो गया। राक्षसीने जिस धोबीके पाटसे रक्षा पाई थी उसे धलभूमका राजा बना दिया। धलभूमके राजा जातिके रजक हैं और राक्षसी रङ्किणी उनकी उपास्य देवी है। रङ्किणी-मन्दिरमें नियमितरूपसे नरबलि होती थी। अभी गवर्मेण्टने मन्दिरको तोड़ फोड़ डाला है।

पारानगरमें राधारमणका जो मन्दिर है, कहते हैं, मानसिंहके शासनकालमें पुरुषोत्तमदासने उसे बनाया।

पारा (हिं॰ पु॰) १ चांदीकी तरह सफेद और चमकीली एक धातु। विशेष विवरण पारद शब्दमें देखो। (फा॰ पु॰) २ टुकड़ा। ३ वह छोटी दीवार जो चूने गारेसे जोड़ कर न बनी हो केवल पत्थरोंके टुकड़े एक दूसरे पर रख कर बनाई गई हो। ऐसी दीवार बगीचे आदिकी रक्षाके लिये चारों ओर बनाई जाती है।

पारानगर—बगुंजर राजाओंकी प्राचीन राजधानी। यह अलवरसे २८ मील दक्षिण-पश्चिममें एक पहाड़के ऊपर अवस्थित और चारों ओर प्राचीरसे सुरक्षित है। नीलकण्ठ-महादेवके मन्दिरके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है।

नगरका भग्नावशेष प्रायः एक मील तक विस्तृत है। कहते हैं, कि इस स्थानका दुर्ग प्राचीर जयपुरके राजा मधुसिंहसे बनाया गया है। नगरके तलदेशमें मन्दताल नामक एक सुन्दर पुष्करिणी है। नगरका एक प्रवेशद्वार जयपुरके महाराज जयसिंहके नाम पर पुकारा जाता है। इससे मालूम पड़ता है, कि पारा-नगर गतशताब्दीके पहले प्रसिद्ध स्थान था। नगरके मध्य-भागमें लवोरा नामक जो पुष्करिणी है उसका चतुः-पार्श्व देवमन्दिरसे सुशोभित है। भग्नावशेषके मध्य उत्कृष्ट शिवलिङ्गादि विद्यमान हैं। यहांके एक मन्दिर-में भीमकाय जो जैन मूर्त्ति है, उसकी ऊंचाई १६ फुट ३ इञ्च है।

पारानगरके नीलकण्ठका मन्दिर राजा अजयपालसे बनाया गया है। इस मन्दिरमें एक खोदितलिपि पाई गई थी जो अलवरमें वर्त्तमान है। मन्दिरमें गणेशकी प्रतिमूर्त्तिके निकट जो खोदित लिपि है वह १०१० सम्वत्की लिखी हुई है।

मन्दिरमें शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित है। अर्द्धमण्डपके मध्य हो कर मन्दिरमें प्रवेश करना पड़ता है। अर्द्ध-मण्डपके बाद सोलह स्तम्भोंके ऊपर महामण्डप विराजित है। मन्दिरके मध्यभागके पवित्र स्थानसे वे स्तम्भ ३८ फुट ऊंचे हैं। इसके दक्षिणमें अष्टहस्त शिवमूर्त्ति, उत्तरमें नरसिंहमूर्त्ति और पूर्वकी ओर सूर्यदेवकी मूर्त्ति है। इस मन्दिरकी छत कारुकार्य खचित है तथा इसकी चौड़ाई १८ फुट और ऊंचाई ४५ फुट है।

मन्दिरके प्रतिष्ठाता राजा अजयपालका विषय कुछ भी मालूम नहीं। पर हां वे एक बगुंजरके राजा थे, इसमें सन्देह नहीं। पर्वतके नीचे अनेक मन्दिर और विग्रहका भग्नावशेष है।

पारापत (सं॰ पु॰) पारे गिरिनद्यादिपरपारे वा पारा-दप्यापतति लोभादिति पत-अच्। पारावत।

पारापार (सं॰ पु॰) पारञ्च अपारञ्चास्त्यस्येति अच् (अर्श आदिभ्योऽच्। पा ५।२।१२७) पारावार।

पारायण (सं॰ क्लो॰) पारं समाप्तिमयते गच्छति प्राप्नोति नन्द्यादित्वात् नः। १ सम्पूर्णता, समाप्ति। २ समय बांध कर किसी ग्रन्थका आद्योपान्त पाठ।

"वरयेत् ब्राह्मणं शान्तं पारायणकृते तदा॥"
(देवीभाग॰ ३।२६।२७)

पारायण (पुराणपाठ) करनेमें ब्राह्मणको वरण करना होता है अर्थात् गुणवान् ब्राह्मणके ऊपर भार सौंपा जाता है।

पद्मपुराणके पातालखण्डमें लिखा है, कि शुकदेवने ७ दिनमें भागवतका पाठ करके परीक्षित्को सुनाया था। यदि कोई इस भागवतका पाठ कराना चाहे, तो ब्राह्मण द्वारा करावें। जो इस भागवतका पाठ कराते वा सुनते हैं, उनको सद्यः मुक्ति होती है। इसी प्रकारसे पाठको पारायण कहते हैं। इस पारायणमें पाठक बहुत सवेरे नित्यक्रियादि समाप्त करके हाथमें कुश ले देवता, द्विज और गुरुको नमस्कार करे। पीछे भगवान् विष्णुका ध्यान करके द्वैपायन और शुकदेव आदिको भक्तिपूर्वक प्रणाम करे। अनन्तर प्रथम दिनमें हिरण्याक्षवध तक पाठ, द्वितीय दिनमें भरतका चरित, तृतीय दिनमें अमृतमन्थन, चतुर्थ दिनमें हरिजन्म, पञ्चम दिनमें रुक्मिणीहरण, षष्ठ दिनमें उद्धवसंवाद और सप्तम दिनमें समाप्त करना होता है। पाठके समय अध्यायके शेषमें विश्राम करे, यदि दैवात् अध्यायके मध्य ही विश्राम किया जाय, तो पुनः अध्यायके आरम्भसे पाठ करना होगा। जिससे अर्थबोध हो, इस प्रकार साफ साफ पढ़ना उचित है। श्रोतृगण पूर्वमुख बैठ कर भक्तिपूर्वक श्रवण करें, पाठ शेष हो जाने पर पण्डितको उपयुक्त दक्षिणा दे। जो इस प्रकार पारायण या भागवतका पाठ करते अथवा भक्तिपूर्वक सुनते हैं, उन्हें इष्टगति प्राप्त होती है। जहां भागवतपाठ होता है, वहां देवता, मुनि और तपोधनादि उपस्थित रहते हैं। (पद्मपु॰ पातालख॰ पारायणमा॰ ७१अ॰)

पद्मपुराणमें उत्तरखण्डके ६ठे अध्यायमें पारायणका विशेष विवरण लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां कुछ नहीं दिया गया।

संकल्पपूर्वक भागवतादि पुराणका आद्योपान्त पाठ होनेसे ही उसे पारायण कहते हैं। पुराणपाठमें पाठक, धारक, श्रोता और जनसाधारण जिससे अच्छी तरह समझ सके, उसके लिये कथक नियुक्त करना होता है। किसी प्रकारका विघ्न उपस्थित न हो, इसलिये नारायणको तुलसी दान और चण्डीपाठादि करना आवश्यक है। जो यह पारायण दें और जो पाठादि करें उन्हें हविष्याशी होना पड़ता है। ये लोग रात्रिमें कुछ भी खा नहीं सकते। इस समय सभी अति पवित्र भावमें रहें—काम, क्रोध, मद, लोभ, दम्भ आदिका परित्याग करें। वैशाख, अग्रहायण और माघादि पुण्य मासमें पारायण प्रशस्त है। विवाहादिमें जैसा उत्सव किया जाता है, वैसा ही उत्सव इसमें भी विधेय है।

पारायणिक (सं॰ पु॰) पारायणं वर्त्तयति परायण-ठञ् (पारायण-तुरायणेति। पा ५।१।७२) १ पाठक, पाठ करनेवाला, आद्योपान्त पढ़नेवाला। २ छात्र।

पारायणीय (सं॰ क्लो॰) पारायणमधिकृत्य वा प्रवृत्तं पारायण-छ। १। पारायणसम्बन्धी। २ पारायणग्रन्थाधिकारमें प्रवृत्त ग्रन्थभेद।

पारावक (सं॰ पु॰) पॄ-घञ्, पारं वृत्तिं ऋच्छतीति ऋ उकञ्। प्रान्तर।

पारावत (सं॰ पु॰) चट्टान, शिला।

पारार्थ्य (सं॰ क्लो॰) परार्थसम्बन्धीय।

पारावत (सं॰ पु॰) पारे गिरिदुर्गनद्यादिपरपारे आपततीति आ पत अच् पृषोदरादित्वात् पस्य व। १ पक्षिविशेष, कबूतर। पर्याय—छेद्यकण्ठ, कपोत, रक्तलोचन, रभस, पारापत, कलरव, अरुणलोचन, मदनकाकुरव, कामी, रक्तेक्षण, मदनमोहन, वाग्विलासी, कण्ठोरव, गृहकपोतक। २ परेवा, पण्डुक। ३ मर्कट, बन्दर। ४ तिन्दुक, तेंदूका पेड़। ५ गिरि, पर्वत। ६ नागविशेष, एक नागका नाम। ७ सुश्रुतोक्त अस्त्रवर्गके मध्य एक द्रव्य। एक प्रकारका खट्टा पदार्थ। ८ दत्तात्रेयके गुरु।

पारावतक (सं॰ पु॰) ब्रीहिधान्यविशेष, एक प्रकारका धान।

पारावतकलिका (सं॰ स्त्री॰) महाज्योतिष्मती लता, बड़ी मालकंगनी।

पारावतघ्नी (सं० स्त्री०) पारावतं हन्ति हन-ठक पृषो-दरादित्वात् साधुः। १ सरस्वतीनदी। २ पारावारघातिनी।

पारावतपदी (सं० स्त्री०) पारावतस्येव पादोमूलं यस्याः ङीष्, ततो पद्भावः। १ पारावताङ्घ्रि, मालकंगनी। २ काकजङ्घा।

पारावतशकृत् (सं० क्ली०) कपोतविष्ठा, कबूतरका गू। यह अधित रक्तदोषनाशक माना गया है।

पारावताङ्घ्रि (सं० स्त्री०) पारावतस्य अङ्घ्रिरिव अङ्घ्रि मूलं यस्याः। १ ज्योतिष्मतीलता, मालकंगनी। २ महा-ज्योतिष्मतीलता, बड़ी मालकंगनी ३ काकजङ्घा।

पारावताङ्घ्रिपिच्छ (सं० पु०) पारावताङ्घ्रिरिव पिच्छः पश्चात्प्रदेशो यस्य। पारावतभेद, बागदादका कबूतर।

पारावती (सं० स्त्री०) पारावतस्येव ध्वनिरस्यस्या इति अच्, ततो ङीष्। १ गोपगीत, ग्वालोंका गीत। २ नदी-भेद, एक नदीका नाम। ३ लवलीफल, हरफा रेवड़ी।

पारावर (सं० पु०) १ भूधामनवृक्ष। २ पारावार।

पारावर्य (सं० अव्य०) सर्वतोभावसे, सम्यक् रूपसे।

पारावार (सं० क्ली०) पारं नद्यादि परवारं आवृणोतीति आ-वृ-अण्। १ तटद्वय, आर पार, वार पार। २ सीमा, अन्त, हद। ३ समुद्र।

पारावार—१ मन्द्राजप्रदेशके अन्तर्गत त्रिवाङ्कुड़ राज्यका एक उपविभाग। क्षेत्रफल ४७ वर्गमील है। यहां अधिक मनुष्योंका वास है।

२ उक्त उपविभागका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १०° १०´ उ० और देशा० ७६° १६´ पू०के मध्य अवस्थित है। यह वाणिज्यका एक प्रधान स्थान है। पहले यहां सेना रहती थी। टीपूसुलताननें इस नगरका अधिकांश तोड़ फोड़ डाला है।

पारावारीण (सं० त्रि०) पारावारं गच्छतीति पारावार-ख (राष्ट्रावारपारात् घखौ। पा ४।२।९३ वा) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या ख। १ तटद्वयगामी, आर पार करनेवाला। २ समुद्रगामी।

पाराशर (सं० पु०) पराशरस्यापत्यं पुमान् पराशर-अण् (ऋष्यन्धकेति। पा ४।१।११४)·१ व्यासदेव। २ पराशरकृत स्मृतिसंहिताविशेष। कलिकालमें यही पराशरस्मृति समधिक प्रामाण्य है।

"कृते तु मानवो धर्मस्त्रेतायां गौतमः स्मृतः।
द्वापरे शंखलिखितः कलौ पराशर स्मृतः॥"

(पराशरसंहिता)

(क्ली०) पराशरेण कृतमिति अण्। ३ व्यासरचित भिक्षु-सूत्र। ४ उपपुराणविशेष। ५ चक्रदत्तोक्त घृतविशेष। ६ पराशरका छात्रसमूह। ७ पराशररचित ज्योतिर्ग्रन्थ। यह लघु, वृद्ध और वृहत् यही तीन प्रकारका देखा जाता है। परमसुख, भैरव, लक्ष्मीपति, वाणीविलास, सदा-नन्द आदि रचित पाराशरीहोराकी टीका पाई जाती है। श्रीकृष्ण शुक्लने वृहत् पाराशरकी टीका लिखी है। ८ पराशरका पुत्र या वंशज। ९ योगोपदेश नामक योगशास्त्रके रचयिता। (त्रि०) १० पराशरसम्बन्धीय।

पाराशरकल्पिक (सं० त्रि०) पाराशरकल्पः कल्पस्तं वेत्त्यधीते वा (विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेति वक्तव्यं। पा ४।२। ६० वा) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या ठक्। १ पाराशरकल्पा-ध्यायी। २ पाराशरकल्पवेत्ता।

पाराशरि (सं० पु०) पराशरस्यापत्यं (अत इञ्। पा ४।१।९५) १ वेदव्यास। २ शुकदेव। (त्रि०) ३ परा-शरसम्बन्धी।

पाराशरिन् (सं० पु०) पाराशर्येण प्रोक्तं भिक्षुमधीते इति पाराशर्य णिनि ततो यलोपः। १ मस्करी। २ चतुर्थाश्रमी, वेदव्यासके शारीरकसूत्ररूप भिक्षुसूत्रका अध्ययन करनेवाला।

पाराशरीय (सं० त्रि०) पराशरस्यादूरदेशादिः कृशाश्वादि-त्वात् छण्। (पा ४।२।८०) पराशरके समीपका प्रदेश आदि।

पाराशर्य (सं० पु०) पराशरस्यापत्यं पाराशर (गर्गादिभ्यो यञ्। पा ४।१।१०५) इति यञ्। व्यासदेव।

पारि (सं० क्ली०) सुरापानपात्र, प्याला।

पारिकर्मिक (सं० त्रि०) परिकर्मणि नियुक्तः ठञ्। परिकर्मकार्यमें नियुक्त।

पारिकाङ्क्षिन् (सं० पु०) पारयति संसारात् तरयति वा पारं ब्रह्मज्ञानं तत् काङ्क्षति काङ्क्ष-णिनि। तपस्वी, यति-भेद ब्रह्मज्ञानका अभिलाषी।

पारिकुट (सं० पु०) सेवक, भृत्य।

पारिकुद—उड़ीसाके अन्तर्गत चिल्काभीलके पूर्वमें अवस्थित द्वीपपुंज। यहां नमक तैयार होता है। ग्रीष्मके आरम्भमें चिल्काभीलसे जल लाया जाता और उसीसे नमक निकाला जाता है। वर्षाकालमें यह कार्य बन्द हो जाता है। यदि किसी प्रकारका विघ्न उपस्थित न हो, तो १५ दिनमें करीब ८० टन नमक तैयार हो सकता है। काला पहाड़के भयसे जगन्नाथदेव यहां छिपा कर रखे गये थे।

पारिक्षित (सं० पु०) १ परिक्षित्पुत्र जनमेजय। २ अथर्वसंहिताके २०।१२७।७-१० मन्त्रका नाम।

पारिक्षितीय (सं० पु०) परीक्षितके भ्राता।

पारिख (सं० त्रि०) परिखायां भवः पलद्यादित्वात् अण्। (पा ४।२।११०) परिखाभव, परिखासम्बन्धी, परिखाका।

पारिखेय (सं० त्रि०) परिखा प्रयोजनमस्य ठक्। परिखार्थ स्थलादि।

पारिगर्भिक (सं० पु०) १ कपोत, कबूतर। २ परिगर्भिक रोग।

पारिग्रामिक (सं० त्रि०) परिग्रामे भवः ठञ्। ग्रामके परितोभव, जो गाँवके चारों ओर हो।

पारिजात (सं० पु०) पारमस्यास्तीति पारी समुद्रस्तस्मात् जातः। १ पारिभद्रवृक्ष, सुरतरु। समुद्र मथनेके समय यह वृक्ष उत्पन्न हुआ था, इस कारण इसका पारिजात नाम पड़ा है।

"ततोऽभवत् पारिजातः सुरलोकविभूषणम्।
पूरयत्यर्थिनो योऽर्थैः शश्वद् भुवि यथा भवान्॥"
(भागवत ८।८।६)

पारिजात समुद्र मथने पर निकला था और इन्द्रको अमरावतीनगरीमें परिशोभित था। हरिवंशमें इसकी उत्पत्ति और हरणका विषय इस प्रकार लिखा है,—

एक दिन श्रीकृष्ण रुक्मिणीके साथ एक आसन पर बैठे परमानन्दित हो बातचीत कर रहे थे; इसी बीच नारदजी वहां पहुंच गये। श्रीकृष्ण जब नारदकी यथाविधि अर्चना कर चुके, तब नारदने उन्हें एक पारिजात पुष्प प्रदान किया। भगवान्‌ने उसी समय वह पुष्प रुक्मिणीको दे दिया। रुक्मिणीने उस पुष्पको मस्तक पर धारण किया जिससे उनकी शोभा और भी बढ़ गई। नारदने रुक्मिणीसे कहा, 'देवी पतिव्रते! आजसे यह पारिजात तुम्हारे संसर्गसे परम पवित्र हुआ। यह पुष्प कभी भी म्लान नहीं होता और एक वर्ष तक अभिमत गन्ध प्रदान करता है। इच्छानुसार इससे शैत्य और उष्णता आदि प्राप्त हो सकती है। इस पुष्पसे जिस किसी गन्धकी अभिलाषा की जाय उसी समय वह मिलती है। यह सौभाग्यका आधार और धार्मिकोंका धर्मप्रद है। इस पुष्पके धारण करनेसे अशुभ मति दूर हो जाती है। जहां यह पुष्प रहता है वहां किसी प्रकारकी दुर्गन्ध नहीं रहती और सद्‌गन्धसे चारों दिशाएं आमोदित होती हैं। जिस घरमें यह रहता है वहां रोशनीकी भी जरूरत नहीं पड़ती। यहां तक कि, इस पारिजातसे जो कुछ मांगा जाय, वह उसी समय मिल जाता है। यह पुष्प एक वर्षसे ज्यादा किसीके पास नहीं रहता। शची प्रभृति सब कोई इसे धारण करती हैं। एक वर्ष बाद यह फिर अपने वृक्षमें संलग्न हो जाता है।' नारद इस प्रकार पुष्पका गुणानुकीर्त्तन कर ही रहे थे, कि इसी बीच सत्यभामाकी एक दासी वहां आ पहुंची। उसने जब देखा कि कृष्णने रुक्मिणीको पारिजात दिया है, तब वह सत्यभामासे यह कथा जा बोली। यह सम्वाद पाते ही सत्यभामा शोक और लज्जासे अभिभूत हो गईं और क्रोधसे अधीर हो रोषागारमें जा कर पड़ रहीं। भगवान्‌को जब यह मालूम हुआ, तब वे सत्यभामाके पास गये और नाना प्रकारकी सान्त्वना दे कर बोले, 'इस पुष्पका वृक्ष स्वर्गसे ला कर तुम्हारे द्वार पर स्थापित कर दूंगा।' यह सुन कर सत्यभामाका क्रोध कुछ शान्त हुआ। इसी बीच नारदजी वहां पहुंच गये और उन्होंने पारिजात वृक्षकी उत्पत्तिका विषय इस प्रकार कहा।

किसी समय मरीचिनन्दन कश्यपने अदिति पर प्रसन्न हो कर वर मांगनेको कहा। इस पर अदितिने प्रार्थना की, 'यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो यही वर दीजिए जिससे मैं अभिमत भूषणसे भूषित हो सकूं, चिरदिन स्थिरयौवना हो कर पतिपरायणा और धर्मशीला रहूं, रोगशोकादिसे कभी भी अभिभूत न होऊं,

मेरे इच्छानुसार नृत्य गीत आरम्भ हो जाय और मेरी सौभाग्यलक्ष्मीकी दिनों दिन वृद्धि हो।'

इस पर तपनिधि कश्यपने अदितिकी प्रियकामना करके सर्वकामप्रद विशाल परम सुदृश्य पारिजात नामक एक वृक्षकी सृष्टि की। इस वृक्षमें सभी प्रकारके पुष्प लगे हुए हैं। इसकी एक शाखामें पारिजात-पुष्प, दूसरीमें पद्म और तीसरी शाखामें तरह तरहके पुष्प शोभा दे रहे हैं। इसी प्रकार पारिजात वृक्षकी उत्पत्ति हुई। यह वृक्ष गङ्गाके दूसरे किनारे उत्पन्न हुआ था, इस कारण इसका पारिजात नाम पड़ा है। मन्दार-पुष्प भी उसमें प्रस्फुटित होता है, इस कारण इसका दूसरा नाम मन्दार भी है। यह वृक्ष तीन नामोंसे प्रसिद्ध है, कोविदार, पारिजात और मन्दार।

नारदने जब इस प्रकार पारिजात वृक्षका विषय कह कर स्वर्ग जानेकी अनुमति मांगी, तब श्रीकृष्णने कहा, 'आप स्वर्ग तो जाते हैं, पर इन्द्रसे कह कर पारिजात वृक्ष मेरे लिये अवश्य लेते आवेंगे। इन्द्रसे विशेष हठ करने पर निश्चय है, कि वे इसे देनेमें अन्यथा नहीं करेंगे। मैंने सत्यभामाके द्वार पर यह वृक्ष स्थापन करनेकी उससे प्रतिज्ञा की है। मैं कभी भी असत्य नहीं बोलता जिससे मेरी बात रह जाय, वही उपाय करेंगे। आपका अत्याश्चर्य प्रभाव है, यदि आप चेष्टा करेंगे, तो इसका मिलना दुर्लभ नहीं है। मैं इन्द्रका छोटा भाई हूं, मेरी प्रार्थना वे कभी भी अस्वीकार नहीं करेंगे।' श्रीकृष्णसे इतना सुन कर नारदने कहा, 'मैं इन्द्रसे यह वृक्ष लानेकी विशेष चेष्टा करूंगा, लेकिन जहां तक मैं समझता हूं कि वे इसे देंगे नहीं; क्योंकि पहले यह वृक्ष एक बार नष्ट हो गया था। पीछे देवता और दानवोंने मिल कर पर्वतोत्तम मन्दरगिरिसे समुद्र मथ कर इसे निकाला। उस समय महादेवने मन्दरगिरि पर ही उस वृक्षको आरोपण करनेके लिये दूत भेजा। इसी बीच इन्द्र महादेवके पास पहुंच गये और यह वृक्ष उनसे मांग लिया। तभीसे यह इन्द्राणीके क्रीड़ावृक्षरूपमें वहां वर्त्तमान है।

उमापतिने उमाके मनोरञ्जनार्थ मन्दर कन्दर पर दो सौ कोस विस्तृत स्थानमें अति विस्तीर्ण एक पारिजात वनकी सृष्टि की। वह वन ऐसा निविड़ हो गया है, कि वहां चन्द्र और सूर्यकी किरण घुसने नहीं पाती। यहां तक कि सदागतिकी गति भी रुद्ध हो गई है। वहां शीत वा उष्णका जरा भी प्रभाव नहीं है। महादेवके तेजःप्रभावसे वह वन स्वयं प्रभाशाली हो कर शोभा पाता है। उस पारिजात-वनमें प्रमथोंके साथ महादेव तथा मेरे सिवा और किसीका जानेका अधिकार नहीं है। यहां पारिजातवृक्षगण प्रमथोंको अभिलषित रत्न प्रदान करते हैं। उन सब रत्नोंका प्रमथगण ही उपभोग करते हैं। उस पारिजात वनका गुण, सौरभ और प्रभाव इस पारिजातसे कहीं बढ़ा चढ़ा है। वहां सभी पारजातवृक्ष मूर्त्ति परिग्रह कर प्रमथोंके साथ निरन्तर महादेवकी उपासना करते हैं। ये सब वृक्ष पार्वतीके भी प्रिय हैं।

एक दिन पापात्मा अन्धकने बलदर्पसे दर्पित हो इस पारिजातवनमें प्रवेश किया। वह दुरात्मा किसीके हाथसे मरनेवाला नहीं था। उसका बल वृत्रासुरसे भी दशगुना ज्यादा था। इस वनमें प्रवेश करनेके साथ ही वह महादेवके हाथसे मारा गया। अतएव वे भी आपको पारिजात वृक्ष देंगे, ऐसा मुझे विश्वास नहीं होता। कृष्णने पुनः नारदसे कहा, 'यदि इन्द्र सहजमें इसे न देंगे, तो मैं उनके साथ अवश्य युद्ध करूंगा। किन्तु आप यह विषय सबसे आखिरमें कहियेगा।' 'ऐसा ही करूंगा' यह कह कर नारद स्वर्गको चल दिये। वहां पहुंच कर नारदने आद्योपान्त सब वृत्तान्त इन्द्रसे कह सुनाया। इस पर इन्द्रने कहा, 'यह पारिजात स्वर्गकी अमूल्य सम्पत्ति है, मर्त्यलोकमें इसका कोई भी अङ्ग नहीं दिया जा सकता। इसके स्वर्गसे निकल जाने पर फिर कोई भी स्वर्गका आदर नहीं करेगा। इस पारिजातके प्रभावसे मनुष्य मर्त्यलोकमें रह कर स्वर्गसुखका अनुभव कर सकेंगे। यदि मैं यह पारिजात आपको दे दूं, तो देवगण मुझ पर असन्तुष्ट हो जायंगे। इन सब कारणोंसे मैं पारिजात नहीं दे सकता।' अन्तमें नारदने कहा, यदि आप इसे सहजमें न देंगे, तो कृष्णके साथ आपका युद्ध होगा।

अब आप अच्छी तरह सोच विचार कर उत्तर दें और मैं कृष्णसे जा कर कहूं।' इन्द्रने जवाब दिया, 'आप कृष्णसे यह जा कर कह देवें, कि जब मैं स्वर्गका अधिपति हूं, तब साध्य रहते किसीको भी पारिजात नहीं दे सकता। इसके लिये यदि कृष्णसे लड़ना भी पड़े, तो मैं हटूंगा नहीं। पारिजातके स्वर्गसे चले जाने पर धीरे धीरे हम लोगोंका भी प्रभाव जाता रहेगा, तब स्वर्ग और मर्त्य एक हो जायगा। स्वर्गके लिये फिर कोई भी यज्ञादिका अनुष्ठान नहीं करेगा। स्वर्गकी गौरवरक्षा करना मेरा अवश्य कर्त्तव्य है। यही आप जाकर कृष्णसे कह देवें, इस पर कृष्णकी जैसी अभिरुचि हो, वैसा करें।' अनन्तर नारद द्वारका आये और कृष्णसे सब बातें कह सुनाईं।' कृष्णने जब देखा कि अब बिना युद्ध किये पारिजात हाथ नहीं आ सकता, तब वे युद्धकी तैयारी करने लगे। उन्होंने फिर नारदसे कहा, 'आप एक बार और स्वर्ग जायं तथा इन्द्रसे कहें कि वे मुझसे कभी भी युद्धमें जीत नहीं सकते, तब फिर क्यों वृथा युद्ध करके आपसकी मैत्री तोड़ने-को तैयार हैं। कनिष्ठ भाई जान कर यदि वे मुझे पारिजात दे देंगे तो कोई कुछ न कहेगा और सभी गोलमाल जाता रहेगा। इतना कहने पर भी यदि वे अनिच्छा प्रकट करें, तो युद्धके लिए तैयार रहने कह दीजियेगा; मैं शीघ्र ही युद्धयात्रा करूंगा।' नारदने पुन: स्वर्ग जा कर इन्द्रसे यह बात कही। अन्तमें जब इन्द्रने देखा कि अब युद्ध अवश्यम्भावी है, तब उन्होंने बृहस्पतिको बुला कर कुल वृत्तान्त उनसे कह सुनाया। इस पर बृहस्पतिने कहा, 'उधर मैं ब्रह्मलोक गया और इधर तुम मुझसे बिना पूछे मन्त्रभेदपूर्वक विषम अनर्थ कर बैठे हुए हो, अथवा इसमें तुम्हारा दोष ही क्या दिया जाय, भवितव्य ही समस्त घटनाका मूल है। जो कुछ हो, अभी तुम जहां तक सको, सपुत्र जनार्दनके साथ युद्ध करनेको तैयार हो जावो। मैं भी दूसरा उपाय देखता हूं।' इतना कह कर बृहस्पति क्षीरोदसागर-को चल दिये और वहां पहुंच कर कश्यपसे कुल वृत्तान्त कह सुनाया। कश्यपने कहा, 'इन्द्रने जब देव-शर्माकी अनुरूपा पत्नीकी कामना की है, तब मुनिके शापसे इस प्रकारकी घटना घटेगी ही, इसमें सन्देह नहीं। मैंने उस दोषशान्तिके लिये उपवासव्रत आरम्भ कर दिया पर उससे कुछ भी अच्छा फल न निकला। मैंने जिस दोषकी आशङ्का की थी, वही आ घटा। तो भी चेष्टा करता हूं, यदि दैवप्रतिकूल न हुआ, तो एक तरहसे दोनोंको निरस्त कर सकूंगा।' अनन्तर कश्यप अदितिके साथ महादेवका स्तव करने लगे। महादेव प्रसन्न हो वहां पहुंचे और बोले, 'तुमने जिस कारण मेरा स्तव किया है, वह मैं अच्छी तरह जानता हूं। इन्द्र और उपेन्द्र शीघ्र ही स्वास्थ्यलाभ करेंगे। किन्तु कृष्ण पारिजात ले जायंगे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। महेन्द्रने तपःप्रदीप्त देवशर्माकी भार्याके पानेकी इच्छा की थी, उसी तपोवनके शापसे ऐसी घटना घटी है। जो कुछ हो, इसके लिये चिन्ता करने-की कोई जरूरत नहीं।' यह सुन कर कश्यपने हृष्टचित्तसे प्रस्थान किया।

इधर भगवान् श्रीकृष्ण रैवतकपर्वत पर शिकारके बहाने गये और वहांसे सात्यकिको अपने रथ पर बिठा पारिजात चुरानेके लिये देवोद्यानमें घुसे। वनके चारों ओर देवयोद्धाओंका कड़ा पहरा बैठा हुआ था। कृष्णने उन सब देवरक्षकोंके समक्षमें ही अवलीला-क्रमसे पारिजाततरुको उखाड़ कर गरुड़की पीठ पर रख दिया। इस समय पारिजात मूर्त्ति धारण कर केशवके निकट पहुंचा। कृष्णने उसे सान्त्वना दे कर अभय दान दिया। अनन्तर पारिजातको प्रस्थान करते देख श्रीकृष्ण अमरावतीका प्रदक्षिण करने लगे। बादमें पारिजातरक्षकने इन्द्रके पास जा कर इसकी खबर दी। इन्द्र कृष्णके साथ युद्ध करनेको तैयार हो गये। दोनोंमें घमसान युद्ध होने लगा। इस भयङ्कर युद्धसे सारा संसार ध्वंसावस्थामें पहुंच गया, सैकड़ों ज्योतिष्कमण्डल स्वर्गभ्रष्ट हो कर भूतल पर गिरने लगे, जलके ऊपरी भाग पर प्रबल अग्नि धधक उठी। जगत्की रक्षाके लिये ब्रह्माने महर्षि कश्यपको बुला कर कहा, 'तुम वधू अदितिके साथ युद्धस्थलमें जाओ और अपने दोनों लड़कोंको निवारण करो।' इस पर अदिति और कश्यपने युद्धस्थलमें जा कर दोनों

पुत्रोंको युद्धसे रोका। अन्तमें दोनोंने माता और पिताके चरणोंकी वन्दना की। अदितिने इन्द्र और कृष्णसे कहा, 'तुम दोनों सहोदर हो कर क्यों असहोदरके जैसा लड़ रहे हो? जो कुछ हो, इन्द्र! तुम अभी कृष्णको पारिजात दे दो और कृष्ण! तुम पारिजात ले कर द्वारका जावो, वधू सत्यभामाका चिराभिलषित पुण्यकर्म समाप्त हो जाने पर पुनः इस पारिजातको नन्दनवनमें यथास्थान पर रख देना, भूलना नहीं।' कृष्ण पारिजात वृक्ष ले कर द्वारका पहुंचे, यह सुन कर यादवगण फूले न समाये। सत्यभामा भी पारिजात पा कर बहुत प्रसन्न हुईं और पुष्पादि द्वारा पूजादि करने लगीं।

(हरिवंश १२३ अध्यायसे १३४ अ०)

विष्णुपुराणमें पारिजातहरणका उपाख्यान ठीक इस प्रकार नहीं है। इसमें लिखा है, कि कृष्ण सत्यभामाके साथ इन्द्रलोक गये। वहां इन्द्रने इनका विशेष सत्कार किया। पीछे कृष्ण और सत्यभामाने स्वर्गपरिदर्शनके समय नन्दनवनमें पारिजातवृक्ष देखा। इसकी अत्याश्चर्य गन्धसे विमोहित हो कर सत्यभामाने इसे द्वारकापुरी ले जानेके लिये कृष्णसे विशेष अनुरोध किया। श्रीकृष्णने उनके अनुरोधसे वृक्षको उखाड़ लिया और गरुड़की पीठ पर रख कर द्वारकापुरीको रवाना हुए। इस पर पारिजातके रक्षकोंने इन्द्रसे जा कर इसकी खबर दी। इन्द्र बड़े बिगड़े और कृष्णसे लड़नेके लिये आ डटे। युद्धमें इन्द्र पराजित हुए और कृष्ण पारिजात ले कर द्वारकाको आये।

(विष्णुपु० पञ्चम अंश ३०-३१ अ०)

इस पारिजातहरणका उपलक्ष्य करके बहुतेरे कवि संस्कृतभाषामें काव्य, नाटक वा रूपककी रचना कर गये हैं।

२ ऐरावत-कुलजात नागविशेष, ऐरावतके कुलका एक हाथी। ३ ऋषिविशेष। ४ तन्त्रशास्त्रविशेष, एक तन्त्रशास्त्रका नाम। ५ सितोद पर्वतके पश्चिमस्थित पर्वतभेद। ६ कामरूपस्थ शैलभेद। ७ धर्मशास्त्रनिबन्धविशेष। ८ पारिभद्र, फरहद। ९ ललिताभक्त भरद्वाज मुनि-कुलज राजभेद, विभाण्डकके पुत्र। १० चम्पकमुनिगोत्रीय कुमारिकाभक्त नृपभेद। ११ परजाता, हरसिंगार। १२ कोविदार, कचनार।

पारिजातक (सं० पु०) पारिणोऽद्रे र्जातः पारिजातः स्वार्थे कन्। १ देवतरु, फरहद। पर्याय—मन्दार, पारिभद्र। २ परजाता, हरसिंगार।

पारिजातकमय (सं० त्रि०) पारिजात स्वरूपे मयट्। पारिजातस्वरूप। स्त्रियां ङीप्। पारिजातमयी माला।

पारिजातवन (सं० क्ली०) सितान्त पर्वतके उपरिस्थित वनभेद।

पारिजातवत् (सं० त्रि०) पारिजात-मतुप् मस्य व। पारिजातविशिष्ट।

पारिजातसरस्वती (सं० स्त्री०) पारिजातेश्वरी, सरस्वतीभेद। इसके मन्त्रादिका विषय तन्त्रसारमें इस प्रकार लिखा है,—'ओं ह्रीं हसौं ओं सरस्वत्यै नमः' इसी मन्त्रसे इस सरस्वतीका पूजन करना होता है। प्रातःकृत्यादि करनेके बाद ऋष्यादिन्यास और अङ्ग तथा कराङ्ग न्यास करके मूल पूजा करनी होती है। ध्यान इस प्रकार है—

"हंसारूढ़ा हरहसितहारेन्दुकुन्दावदाता
वाणी मन्दस्मिततरमुखी मौलिबद्धेन्दुलेखा।
विद्यावीणामृतमयघटाक्षस्रजा दीप्तहस्ता
श्वेताब्जस्था भवदभिमत प्राप्तये भारती स्यात्॥"

(तन्त्रसार)

इस मन्त्रसे ध्यान करके एकादशाक्षरी मन्त्रसे पूजा करनी होती है। एकादशाक्षरी मन्त्र यथा—'ओं ह्रीं ऐं ओं क्लीं सरस्वत्यै नमः'। पुरश्चरण करनेमें यह १२ लाख बार जपना होता है। आकन्दपुष्प, नागेश्वरपुष्प वा चम्पकपुष्प द्वारा ८ हजार बार होम विधेय है।

इस सरस्वतीकी पूजा वागीश्वरी पूजापद्धतिके क्रमानुसार की जाती है। (तन्त्रसार)

पारिणाय्य (सं० त्रि०) परिणये विवाहकाले लब्धं परिणय-ष्यञ्। परिणयलब्ध धनादि।

पारिणाह्य (सं० त्रि०) परिणाहमर्हतीति पारिणाह-ष्यञ्। गृहोपकरण शय्यासन कुम्भ और कटाहादि, घर गृहस्थीका सामान। जैसे, चारपाई, बरतन, घड़ा इत्यादि।

पारितथ्या (सं० स्त्री०) परितस्तथाभूता परितथा स्वार्थे ष्यञ्। सीमन्तिकास्थित स्वर्णादिरचित पट्टिका, सिर पर बालोंके ऊपर पहननेका स्त्रियोंका गहना। इसका पर्याय बालपाश्या है।

पारितोषिक (सं० त्रि०) परितोषेण लब्धं परितोषादागतं वा परितोष ठक्। १ प्रीतिकर, आनन्दकर। (पु०) २ वह धन या वस्तु जो किसी पर परितुष्ट या प्रसन्न हो कर उसे दी जाय, इनाम।

पारिधेय (सं० त्रि०) परिधौ भवः शुभ्रादित्वात् ढक्। परिधिभव।

पारिध्वजिक (सं० पु०) ध्वजवाहक।

पारिन्द्र (सं० पु०) पारीन्द्र पृषोदरादित्वात् साधुः। सिंह।

पारिपन्थिक (सं० पु०) परिपन्थं पन्थानं वर्जयित्वा व्याप्य वा तिष्ठति पारपन्थ हन्ताति वा ठक्, (परिपन्थञ्च तिष्ठति। पा ४।४।३६) १ स्थायी। २ डाकू, चोर, बटपार।

पारिपाट्य (सं० क्ली०) परिपाट्येव स्वार्थे ष्यञ्। सुशृङ्खला, परिपाटी।

पारिपात्र (सं० पु०) पर्वतभेद, सप्तकुलाचलमेंसे एक।

इस पारिपात्र पर्वतसे निम्नलिखित नदियां निकली हैं—वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्ना, सिन्धु, वेणा, सानन्दिनी, सदानीरा, मही, पारा, चर्मण्वती, नूपी, विदिशा, वेत्रवती, शिप्रा और अवर्णी।

(मार्कण्डेयपुराण ५७।१९-२०)

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि मरुत और मालव जाति इसी पर्वत पर रहती है।

"मरुको मालवाश्चैव पारिपात्रनिवासिनः॥"

(विष्णुपुराण)

वृहत्संहिताके मतसे यह पर्वत कूर्मविभागके मध्यदेशमें अवस्थित है। (वृहत्संहिता १४ अ०)

इस पर्वतका नामान्तर पारियात्र है। पुराणादि प्राचीन ग्रन्थोंमें पारिपात्र और पारियात्र इन दोनों नामोंका उल्लेख देखनेमें आता है। (भागवत ८।१२।२)

इसका वर्त्तमान नाम पत्थर है। जयपुर और मारवाड़के मध्यभागमें जो पर्वतश्रेणि विस्तृत है उसके दक्षिण भागको पाथरगिरिमाला कहते हैं। इतिहासवेत्ता टलेमीने प्रापिओताई (Prapiotai) जातिका वास नर्मदानदीको उपत्यकामें स्थिर किया है। मालूम होता है, कि पारिपात्रपर्वतके अधिवासी ही 'प्रापिओताई' कहलाते हैं। इस गिरिमालाका भूभाग चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्गके समयमें पारियात्र नामसे प्रसिद्ध था। पारियात्र देखो।

पारिपात्रक (सं० पु०) पारिपात्र स्वार्थे कन्। पारिपात्रपर्वत।

पारिपात्रिक (सं० पु०) पारिपात्रपर्वत।

पारिपार्श्व (सं० क्ली०) पारिषद्, अनुचर, अरदली।

पारिपार्श्विक (सं० पु०) परिपार्श्वं वर्त्तते इति परिपार्श्व-ठक्। (परिमुखञ्च। पा ४।४।२९) १ नटभेद, नाटकके अभिनयमें एक विशेष नट जो स्थापकका अनुचर होता है। यह भी प्रस्तावनामें सूत्रधार, नटी आदिके साथ आता है। २ पार्श्वमें अवस्थानकारी सेवकादि, पास खड़ा रहनेवाला सेवक।

पारिपेलव (सं० त्रि०) परिपेलव। परिपेलव देखो।

पारिप्लव (सं० त्रि०) परि-प्लु-अच्, ततः प्रज्ञादित्वादण। १ चञ्चल। २ आकुल। (क्ली०) ३ तीर्थविशेष। यह तीर्थ त्रिलोकविख्यात है। यहां आनेसे अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञका फल प्राप्त होता है।

"ततः पारिप्लवं गच्छेत तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।"
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं प्राप्नोति भारत॥"

(भारत ३।८३।१२)

(पु०) ४ जलपक्षी। ५ पञ्चम मन्वन्तरीय प्रकृतिविशेष। ६ अश्वमेधादि यज्ञमें उच्चार्य आख्यानभेद, अश्वमेध आदि यज्ञोंमें कहा जानेवाला एक आख्यान। ७ नौयान, नाव, जहाज।

पारिप्लवगत (सं० त्रि०) नौकास्थित।

पारिप्लवनेत्र (सं० क्ली०) चञ्चलचक्षु।

पारिप्लवीय (सं० क्ली०) परिप्लव आख्यानसह कार्य होमभेद।

पारिप्लाव्य (सं० पु०) १ हंस। (क्ली०) २ चञ्चलता। ३ आकुलता।

पारिबर्ह (सं० पु०) १ विवाहमें देय उपढौकनादि। २ गरुड़का एक पुत्र।

पारिभद्र (सं० पु०) परितो भद्रमस्मात्, परिभद्रस्ततः प्रज्ञादित्वादण्। १ वृक्षविशेष, फरहद। पर्याय—निम्ब तरु, मन्दार, पारिजातक, रक्तकुसुम, कृमिघ्न, बहुपुष्प, रक्तकेसर। इसका वैज्ञानिक नाम है Erythrina Indica, अं० The Indian Coral tree. यह वृक्ष भारत और ब्रह्मदेशमें सब जगह उत्पन्न होता है। बहुत-से लोग इसे उद्यानमें लगाते हैं। इस वृक्षसे एक प्रकारका कृष्णपिङ्गलवर्णका गोंद निकलता है। रंगके कार्यमें इसको छाल व्यवहृत होती है। वैद्यकके मतसे इसका गुण—वायु, श्लेष्मा, शोथ, मेद और कृमिनाशक माना गया है। इसका पुष्प पित्तरोग और कर्णव्याधिनाशक है। (भावप्रकाश)

इसके पत्रका प्रलेप देनेसे सन्धिज वातरोग प्रशमित होता है और इसका कज्जल चक्षुरोगमें विशेष हितकर है। (सुश्रतसूत्र० ११ अ०)

वर्त्तमान चिकित्सकोंके मतसे इनका त्वक् पित्तघ्न और ज्वरनाशक है। पत्तियोंका प्रलेप मृङ्गारजनित विदारिकामें प्रयोग किया जाता है। ताजी पत्तियोंका रस योजकत्वक्‌रोगमें प्रयोज्य है। कर्णरोगमें कर्णके भीतर इस रसको पिचकारी देनेसे खूब उपकार होता है। दन्तके मूलमें यदि दर्द हो, तो यह रस लगा देनेसे दर्द बहुत कुछ जाता रहता है।

कहीं कहीं इसकी हरी पत्तियां व्यञ्जनमें व्यवहृत होती हैं। त्रिचिनपल्ली अञ्चलमें इसकी पत्तियां गवादिकी उत्कृष्ट खाद्य समझी जाती हैं।

इसकी लकड़ी हलकी होने पर भी बहुत मजबूत होती है और उससे हलका बकस, खिलौने आदि बनाये जाते हैं।

२ देवदारु। ३ सरलवृक्ष। ४ शाल्मलिद्वीपपति यज्ञबाहुके एक पुत्रका नाम। ५ प्लक्षद्वीपका वर्षविशेष। ६ कुष्ठौषध। (क्लो०) ७ उपरत्नविशेष। यह रत्न अत्यन्त निर्मल, जलके समान स्वच्छ, हरिद्वर्ण, अत्यन्त दीप्तियुक्त और देखनेमें बड़ा ही मनोरम होता है।

पारिभद्रक (सं० पु०) पारिभद्र एव स्वार्थे कन्। १ देवदारुवृक्ष। २ निम्बवृक्ष। ३ कुष्ठौषध।

पारिभाव्य (सं० क्लो०) परिभवाय रोगादिनाशाय हितम्, परिभव-ष्यञ्। १ कुष्ठौषध, कुट नामकी ओषधि। २ परिभू या जामिन होनेका भाव।

पारिभाषिक (सं० क्लो०) परिभाषात् आगतम् परिभाषा-ठञ्। परिभाषा द्वारा अर्थबोधक पद। जिन सब शब्दोंका ज्ञान परिभाषा द्वारा हो, उसे पारिभाषिक कहते हैं। शक्तिवादमें गदाधरने लिखा है, कि आधुनिक सङ्केतका नाम परिभाषा है। इस परिभाषा द्वारा अर्थबोधक पद पारिभाषिक कहलाता है।

पारिमाण्डल्य (सं० क्लो०) परिमण्डलस्य परमाणोर्भावः ष्यञ्। अणु या परमाणुका परिमाण।

पारिमुखिक (सं० त्रि०) परिमुखं वर्त्तते इति ठक्, (परिमुखाश्च। पा ४।४।२८) सम्मुखवर्त्ती, सामने रहनेवाला

पारियात्र (सं० पु०) १ पर्वतविशेष। पारियात्र देखो। २ चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्गवर्णित एक राज्य। चीनपरिव्राजकने लिखा है, कि इसके चारों ओरका परिमाण ५०० वर्गमील और राजधानीकी परिधि प्रायः तीन मील है। इस देशमें एक प्रकारका धान उपजता है जो ६० दिनमें ही पकता है। जलवायु उष्ण है तथा यहांके लोग मजबूत और क्रोधी होते हैं। ये लोग विद्यानुरक्त नहीं हैं और विधर्मियोंके प्रति सम्मान दिखाते हैं। राजा जातिके वैश्य हैं और अत्यन्त साहसी तथा युद्धप्रिय हैं। इस देशमें आठ सङ्घाराम थे जिनमेंसे अधिकांश टूट फूट गया है। चीनपरिव्राजकके समयमें यहां हीनयान बौद्धगण रहते थे। उस समय यहां १० देवमन्दिर थे। मथुरासे प्रायः १०० मील दूरमें पारियात्र अवस्थित है।

पारियानिक (सं० पु०) परियानं प्रयोजनमस्य परियान ठक्। मार्गयानयोग्य रथ।

पारिरक्षक (सं० पु०) परिरक्षति आत्मानमिति परि रक्ष-ण्वुल्, ततोप्रज्ञादित्वादण्। तपस्वी, साधु।

पारिल (सं० पु०) परिल अपत्यार्थे शिवादित्वादण्। (पा ४।१।११२) परित: ग्राहकका अपत्य।

पारिवित्य (सं० क्लो०) परिवित्त ष्यञ्। परिवित्तिता।

पारिवृत्त्य (सं० क्लो०) परिवृढ़ दृढ़ादित्वात् ष्यञ्। (पा ५।१।१२३) परिवृढ़का भाव, बड़े भाईके पहले छोटेका विवाह।

पारिव्राजक (सं० क्ली०) परिव्राजकस्य भावः युवादित्वादण्। परिव्राजकका भाव, संन्यास।

पारिव्राज्य (सं० क्ली०) १ परिव्राजकका कर्म या भाव। २ अश्वत्थवृक्षविशेष।

पारिश (सं० पु०) अश्वत्थवृक्षविशेष, पारिसपीपल, पारासपीपल। पर्याय—फलीश, कपिचूत, कमण्डलु, गर्दभाण्ड, कन्दराल, कपीतन, सुपार्श्वक। गुण—दुर्जर, स्निग्ध क्रमि, शुक्र और श्लेष्मावर्द्धक। इसके फलका गुण—अम्ल, मूल, मधुर, कषाय और स्वादु।

पारिगोल (सं० पु०) पिष्टकविशेष, एक प्रकारका पूआ या मालपूआ।

पारिशेष्य (सं० क्ली०) परिशेष-ष्यञ्। परिशेष अवशिष्टांश।

पारिषत्क (सं० पु०) परिषदं तत्प्रतिपादकं ग्रन्थमधीते वेत्ति वा उक्थादित्वात् ठक्। १ परिषद्ग्रन्थाध्येता। २ परिषद्ग्रन्थवेत्ता।

पारिषद (सं० पु०) परिषदि साधुः वा परिषदि तिष्ठति यः, परिषद्-ण। १ सभास्थ, सभामें बैठनेवाला, सभ्य पंच। पर्याय - सभ्य, सभास्तार, सभासत्, परिषद्वल, पर्षद्वल, पारिषद्य, पार्श्वद। २ आनुयायिवर्ग। (त्रि०) ३ परिषद्सम्बन्धी।

पारिषदक (सं० त्रि०) परिषदा कृतम् कुलालादित्वात् वुञ्। (पा ४।३।११८) परिषद्कर्त्तृक कृत। पञ्चसे किया हुआ।

पारिषद्य (सं० पु०) परिषदं समवैति-ण्य (परिषदो ण्यः। पा ४।४।४४) पारिषद, सभ्य।

पारिसपीपल (हिं० पु०) भिंडोकी जातिका एक पेड़। इसमें कपासके डोडेके आकारका फल लगता है जो खानेमें खट्टा होता है। इसमें भिंडोके समान ही सुन्दर पीच दलोंके बड़े बड़े फूल लगते हैं। इसकी जड़ मोटी और छालका रेशा मोटा कसैला होता है। वैद्यकमें इसके फल गुरुपाक, क्रमिघ्न, शुक्रवर्द्धक और कफकारक कहे गये हैं।

पारिसीर्य (सं० त्रि०) परिसीरं सीरं वर्जयित्वा भवम् परिसीर ञ्य। (गम्भीराञ्ञ्यः। पा ४।३।५८) हलवर्जनद्वारा भव, जो हलकी खेतीसे न उपजा हो जैसे, तिन्नीका चावल।

पारिहनव्य (सं० त्रि०) परिहनु प्रतिमुखादित्वात् ञ्य। पा ४।३।५८) हनुका उपरिभव।

पारिहारिक (सं० त्रि०) परिहारे साधुः परिहार-ठञ्। परिहारकर्त्ता, परिहार करनेवाला।

पारिहार्य (सं० पु०) परिह्रियते इति परि-हृ-ण्यत् ततः प्रज्ञादित्वादण्। १ वलय, हाथका कड़ा। (क्ली०) २ परिहारत्व।

पारिहास्य (सं० क्ली०) परिहास-ष्यञ्। १ परिहासका भाव। २ परिहास द्वारा कृत।

पारी (सं० स्त्री०) पारयत्यनयेति पृ-णिच्-घञ् ततो ङीष्। १ पूर। २ जलसमूह। ३ कर्करी। ४ हस्तिपादरज्जु। ५ पात्री। ६ पराग। ७ पानपात्र। ८ दोहनपात्र।

पारी (हिं० स्त्री०) १ बारी, औसरी। बारी देखो। २ गुड़ आदिका जमाया हुआ बड़ा ढोका।

पारीक्षित (सं० पु०) परीक्षितोऽपत्यं इत्यर्थे ण। १ परीक्षितका अपत्य, जनमेजय। २ परीक्षितराज।

पारीण (सं० त्रि०) पारं गामोति पार-ख। पारगमनकारी, पारगामी।

पारीणाह्य (सं० क्ली०) गृहोपकरण, गृहसामग्री।

पारीन्द्र (सं० पु०) पारि पशुस्तस्य इन्द्रः। १ सिंह। २ अजगर सर्प।

पारीरण (सं० पु०) पार्यां जलपूरे रणं यस्य। १ कमठ, कछुआ। २ दण्ड। ३ पटशाक।

पारीश (सं० पु०) पारिसपीपलका पेड़।

पारु (सं० पु०) पिबति रसानिति पा-रु (बाहुलकात् पिबतेश्च। उण् ४।१०१) १ अग्नि। २ सूर्य।

पारुत्क्षेप (सं० क्ली०) सामभेद।

पारुच्छेपि (सं० पु०) आवापभेद।

पारुल—वर्द्धमानके दक्षिणमें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। देशावली और ब्रह्मखण्डमें इस ग्रामका विवरण है।

पारुषक (सं० पु०) १ पुष्पविशेष। (त्रि०) २ कठोर।

पारुष्य (सं० क्ली०) परुषस्य भावः परुष-ष्यञ्। १ अप्रिय वाक्य भाषण, वाक्यकी अप्रियता। इसका पर्याय अतिवाद है। पारुष्य चतुर्विध वाङ्मयपापोंमेंसे एक है।

"पारुष्यमनृतञ्चैव पैशुन्यञ्चापि सर्वशः।
असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥"
(तिथितत्त्व)

परुषवाक्यप्रयोग, अनृत, पैशुन्य और असम्बन्ध प्रलाप ये चार प्रकारके पाप वाङ्मय हैं। २ इन्द्रका वन। ३ अगुरु। (पु०) ४ वृहस्पति।

पारेगाङ्ग (सं० अव्य०) गङ्गायाः पारं 'पारे मध्ये षष्ठ्या वा' इत्यव्ययीभावः। गङ्गाके दूसरे किनारे।

पारेरक (सं० पु०) यथादिः पारमीर्त्तं गच्छतीति ईर-ण्वुल्। खड्ग, एक प्रकारको तलवार या कटार।

पारेवत (सं० पु०-क्लो०) १ फलवृक्षभेद, एक प्रकारका अमरूद। इसके दो भेद हैं, महापारेवत और स्वर्ण-पारेवत। इसका गुण—मधुर, क्रमिनाशक, वातहर, बलकारक, तृष्णा, ज्वर और दाहनाशक, हृद्य, मूर्च्छा, भ्रम, श्रम और शोषनाशक, स्निग्ध, रुचिकर और वीर्य-वर्द्धक है। महापारेवतका गुण—बल और पुष्टिकारक, मूर्च्छा और ज्वरनाशक।

२ द्वीपान्तरभव खर्जूर, द्वीपान्तरमें होनेवाली एक प्रकारकी खजूर।

पारेसिन्धु (सं० अव्य०) सिन्धोः पारं ततोऽव्ययीभावः। सिन्धुके दूसरे किनारे।

पारोक्ष (सं० त्रि०) परोक्ष-अण्। परोक्ष सम्बन्धीय।

पारोक्ष्य (सं० त्रि०) परोक्ष-ष्यञ्। चक्षुके अगोचर।

पारोला—बम्बईप्रदेशके अन्तर्गत खान्देश जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २०° ५६´ २०˝ उ० और देशा० ७५° १४´ ३०˝ पू०, धुलियासे २२ मील पूर्व और मसावर ष्टेशनसे २२ मील पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या ग्यारह हजारके लगभग है। पारोला पहले एक गण्डग्राम था, पीछे हरिसदाशिव दामोदरने इसे नगरमें परिणत किया। यहां जो दुर्ग है वह उन्हींका बनाया हुआ है। गदरके समय यहांके अधिपतिने अंगरेजोंके विरुद्ध अस्त्रधारण किया था, इस कारण यह नगर उनसे छीन लिया गया और दुर्ग तोड़ फोड़ डाला गया। यहां गो, रुई और शस्यका विस्तृत वाणिज्य होता है। यहां डाकघर और स्कूल है।

पारोवर्य्य (सं० क्लो०) प्रवाद।

पार्क (अं० पु०) बड़ा बगीचा, उपवन।

पार्कर—नगरपार्कर देखो।

पार्गड़—एक दुर्ग। यह बेलगामसे ३५ मील पश्चिम सह्यपर्वतके शृङ्गोपरि समुद्रपृष्ठसे २००० फुट ऊंचे पर अवस्थित है। दुर्ग पर चढ़नेके लिये पहाड़ पर सीढ़ी बना दी गई है। दुर्ग और प्रवेशद्वार अभी जीर्णावस्थामें पड़ा है। दुर्गके मध्य भवानीका मन्दिर और दो कमान वर्त्तमान हैं। १६८० ई०में यह दुर्ग शिवाजीके अधीन था। १७४८ ई०में यह बालाजी पेशवाके भतीजे सदाशिवरायके हाथ सौंपा गया। १८४४ ई०में विद्रोहियोंने इस दुर्ग पर आक्रमण करनेकी चेष्टा की थी, पर उनका उद्देश्य सिद्ध न हुआ।

पार्घट (सं० क्लो०) पादे घटते इति अच् ततः पृषोदरादित्वात् साधुः। पांशु, भस्म, राख।

पार्जन्य (सं० त्रि०) पर्जन्य-ष्यञ्। १ पर्जन्यसम्बन्धीय। (क्लो०) २ अस्त्रविशेष।

पार्टी (अं० स्त्री०) १ मण्डली, दल। २ भोज, दावत।

पार्ण (सं० त्रि०) पर्णस्येदं शिवादित्वादण्। १ पर्णसम्बन्धी। २ पर्णसे आगत।

पार्णेर—१ बम्बईप्रदेशके अहमदनगर जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १८° ५०´ से १९° २१´ उ० तथा देशा० ७४° ११´ से ७४° ४४´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७२७ वर्गमील और जनसंख्या सत्तर हजारके करीब है। यह स्थान असमतल और पर्वतसे परिपूर्ण है। यहां बहुत सी अधित्यकाएं हैं जिनमेंसे सबसे ऊंचीका नाम कानहूर है। यह समुद्रतलसे प्रायः २८०० फुट ऊंची है। तालुकके मध्य हो कर बहुत-सी नदियां बहती हैं। यहांकी प्रधान उपज बाजरा, ज्वार और अरहर है। पण्यद्रव्यके मध्य पगड़ी, सूती कपड़ा और कम्बल प्रधान है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १९° उ० और देशा० ७४° २६´ पू०के मध्य अहमदनगरसे २० मील दक्षिण-पश्चिम और सारोला ष्टेशनसे १५ मील पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है। यहां अनेक उत्तमर्णका वास है। इनमेंसे अधिकांश अर्थपिशाच और प्रतारक हैं। १८७४-७५ ई०में इन लोगोंके साथ कृषकोंका विवाद उपस्थित हुआ था, लेकिन

पुलिसके बलसे वह बढ़ने नहीं पाया। यहां प्रति रवि-वारको हाट लगती है।

पार्णेर नगरके समीप दो क्षुद्र नदियोंके सङ्गमस्थल पर सङ्गमेश्वर वा त्रिम्बकेश्वरका मन्दिर अवस्थित है। मन्दिरका अधिकांश टूट फूट गया है, केवल सामनेका प्रवेशद्वार पूर्ववत् बना है। नगरसे कुछ दूर नागनाथ महादेवका प्राचीन मन्दिर है। यहां जो खोदित लिपि है, वह १०१५ शकमें लिखी गई है। नगरद्वारके बहि-र्भागमें अनेक स्तम्भ हैं। कहते हैं, कि ये सब स्तम्भ एक राक्षसके मृत्यूपलक्षमें बनाये गये थे।

२ बम्बईके सूरत जिलेका एक पर्वत। यह अक्षा० २०°३४´ उ० और देशा० ७२° ५७´ पू०, बुलसारसे ४ मील दक्षिण-पूर्व और बम्बईसे १२० मील उत्तरमें अवस्थित है। यह समुद्रपृष्ठसे ५०० फुट ऊंचा है।

पार्थ (सं० पु०) १ पृथिवीपति। पृथाया अपत्यं पुमान्, शिवादित्वादण्। २ पृथापुत्र, अर्जुन। ३ अर्जुन-वृक्ष।

पार्थक्य (सं० क्ली०) १ पृथक् होनेका भाव, भेद। २ वियोग, जुदाई।

पार्थपुर (सं० क्ली०) नगरभेद।

पार्थमय (सं० त्रि०) पार्थ स्वरूपे मयट्। पार्थस्व-रूप।

पार्थव (सं० क्ली०) पृथोर्भावः पृथु-अण्। १ पृथुत्व, विशालता, स्थूलता, मोटाई। (त्रि०) २ पृथु राजसम्बन्धी।

पार्थश्रवस (सं० पु०) पृथुश्रवाका अपत्य।

पार्थसारथि (सं० पु०) श्रीकृष्ण।

पार्थसारथिमिश्र—एक विख्यात मीमांसक, यज्ञपति मिश्रके पुत्र। आप न्यायरत्नमाला नामक तन्त्रवार्त्तिककी टीका, तन्त्ररत्न वा शास्त्रदीपिका नामक जैमिनिसूत्रकी टीका, न्यायरत्नाकर नामक मीमांसाश्लोकवार्त्तिककी टीका आदि ग्रन्थ बना कर विख्यात हो गये हैं।

पार्थिव (सं० क्ली०) पृथिव्या विकारः पृथिव्या भवमिति वा अञ्। १ तगरपुष्प। (पु०) पृथिव्या ईश्वरः (तस्येश्वरः। पा ५।१।४२) इत्यञ्। २ पृथिवीपति, राजा। ३ वत्सरविशेष। पार्थिववत्सरमें सभी देशोंमें पृथिवी शस्यशालिनी होती है। ४ मङ्गलग्रह। ५ मट्टीका बरतन। ६ पार्थिवलिङ्ग, मट्टीका शिवलिङ्ग जिसके पूजनका बड़ा फल माना जाता है। (त्रि०) ७ पृथिवीसम्बन्धी। ८ पृथ्वीसे उत्पन्न, मट्टी आदिका बना हुआ, जैसे पार्थिव शरीर। ९ राजाके योग्य, राजसी।

पार्थिवज (सं० क्ली०) अर्जुनत्वक्, अर्जुन पेड़का छिलका।

पार्थिवता (सं० स्त्री०) पार्थिवस्य भावः तल्, ततो-टाप्। पार्थिवका भाव, पार्थिवत्व।

पार्थिवा (सं० स्त्री०) सौराष्ट्रमृत्तिका।

पार्थिवी (सं० स्त्री०) पृथिव्याः भवा (दित्यदितीति। पा ४।१।८५) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या अञ्, ततो ङीप्। १ सीता। २ उमा, पार्वती।

पार्थुरश्म (सं० पु०) अनेक सामोंके नाम।

पार्थ्य (सं० पु०) पृथोरपत्यं वा यक्। पृथिवंशोद्भव नृपभेद।

पार्पर (सं० पु०) यम।

पार्य (सं० पु०) पारे भवः ष्यञ्। रुद्रभेद।

पार्याप्तिक (सं० त्रि०) पर्याप्ति रेव स्वार्थे क सा अस्त्यस्य प्रज्ञादित्वादण्। १ सम्पूर्ण। (पु०) २ मृगभेद।

पार्लाकोट—मध्यप्रदेशके बस्तार राज्यके उत्तर-पश्चिम सीमान्तवर्त्ती एक जमींदारी। इसके अधीन सात ग्राम हैं। भूपरिमाण ५०० वर्गमील है। इसका प्रधान ग्राम पार्लाकोट है जो अक्षा० १९°४७´ उ० और देशा० ८०° ४३´ पू०के मध्य अवस्थित है।

पार्लामेण्ट (अं० स्त्री०) वह सभा जो देश या राज्यके शासनके लिये नियम बनावे। इस शब्दका प्रयोग विशे-षतः अंगरेजी राज्यको शासन-व्यवस्था निर्धारित करनेवाली महासभाके लिये होता है। इसके सदस्य जनताके भिन्न भिन्न वर्गों द्वारा चुने जाते हैं। अङ्गरेजी-साम्राज्यके भीतर कनाड़ा आदि स्वराज्यप्राप्त देशोंकी ऐसी सभाओंके लिये भी यह शब्द आता है।

पार्वण (सं० पु०) पर्वणि ग्रहणयोग्यः इत्यण्। १ मृग-विशेष। पर्वणि क्रियते यत् इत्यण्। २ अमावस्यादि पर्वसामान्यमें कर्त्तव्यश्राद्ध, वह श्राद्ध जो किसी पर्वमें किया जाय।

"अमावस्यां यत् क्रियते तत् पार्वणमुदाहृतम्।
क्रियते पर्वणि वा यत्तत् पार्वणमुदाहृतम्॥"
(भविष्यपु०)

प्रति अमावस्याके दिन श्राद्ध करना चाहिये और अमावस्या भिन्न जिस किसी पर्वमें श्राद्धादि किये जा ँ, उसे भी पार्वण कहते हैं। ग्रहण और तीर्थादिमें पार्वणश्राद्ध विधेय है। साम, ऋक् और यजुर्वेदियोंकी इस पार्वणश्राद्धकी पद्धति पृथक् पृथक् है। रघुनन्दनने श्राद्धतत्त्वमें इसका विषय बहुत बढ़ा चढ़ा कर लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे वह यहां नहीं दिया गया। इसका विवरण श्राद्ध शब्दमें देखो।

पार्वत (सं० पु०) पर्वते भवः अण्। (विभाषामनुष्ये। पा ४।२।१४४) १ महानिम्ब, बकायन। २ अम्लविशेष। (क्ली०) ३ हिङ्गुल। ४ शिलाजतु, सिलाजित। ५ सीसक, सीसाधातु। (त्रि०) ६ पर्वतसम्बन्धी। ७ पर्वत पर होनेवाला।

पार्वतपीलु (सं० पु०) अक्षोटवृक्ष, अखरोट।

पार्वतायन (सं० पु०) पर्वतस्य ऋषेर्गोत्रापत्यं कफ्। पर्वत ऋषिका अपत्य।

पार्वति (सं० पु०) पर्वत अपत्यार्थे इञ्। पर्वतऋषिका अपत्य।

पार्वतिक (सं० क्लो०) पर्वतमाला।

पार्वती (सं० स्त्री०) पर्वतो हिमाचलस्तस्य तदधिष्ठातृदेवस्येति अपत्यं, अण् ततो ङीप्। १ पर्वतराजदुहिता, दुर्गा। नामनिरुक्ति—

"तिथिभेदे कल्पभेदे पर्वभेदप्रभेदतः।
ख्याती तेषु च विख्याता पार्वती तेन कीर्त्तिता॥
महोत्सवविशेषश्च पर्वस्विति प्रकीर्त्तितम्।
तस्याधिदेवी या सा पार्वतीय परिकीर्त्तिता॥
पर्वतस्य सुता देवी साविर्भूता च पर्वते।
पर्वताधिष्ठातृदेवी पार्वती तेन कीर्त्तिता॥"
(प्रकृतिखण्ड दुर्गोपाख्यान ५४ अ०)

तिथि, कल्प और पर्वभेदसे जो विख्यात हुए वही पार्वती नामसे प्रसिद्ध है। पर्व दिनमें जो सब महोत्सव अनुष्ठित हुए हैं, उन सब महोत्सवोंकी जो अधिष्ठातृदेवी हैं, वही पार्वती कहलाती हैं। पर्वतराज हिमालयकी दुहिता और पर्वतकी अधिष्ठातृदेवी होनेके कारण ही पार्वती नाम पड़ा है। उमा, दुर्गा आदि शब्द देखो।

२ शल्लकी, सलई। ३ गोपालपुत्रिका। ४ द्रौपदी। ५ जीवनी। ६ सौराष्ट्रमृत्तिका। ७ क्षुद्रपाषाणभेदी। ८ धातकी। ९ सैंहली।

पार्वती-१ पञ्जाबके अन्तर्गत काङ्गड़ा जिलेकी एक नदी। यह हिमालय पर्वतके वाजिरिरूपि नामक स्थानसे निकल कर रेवती नदीमें गिरती है। यह नदी जिस उपत्यकासे निकली है, वह शाल आदि वृक्षोंसे परिपूर्ण है। यहांकी जमीन अत्यन्त उर्वरा है और काफी अनाज उत्पन्न होता है।

२ चम्बल नदीकी एक शाखा। वर्षाकाल छोड़ कर इसको पैदल ही पार करते हैं। यह पार्वती नदी विन्ध्यपर्वतसे उत्पन्न हुई है।

पार्वती—राजगिरिसे १० मील उत्तर-पश्चिम और विहारसे ११ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित एक ग्राम। यूएनचुवंग जिस समय भारतवर्ष आये थे, उस समय यहां अनेक बौद्धविहार और मन्दिर थे। आज भी उन सब विहारोंका भग्नावशेष देखनेमें आता है।

पार्वतीचिल (सं० क्लो०) विरजाचेल, याजपुर।

पार्वतीनन्दन (सं० पु०) पार्वत्या नन्दनः। कार्त्तिकेय।

पार्वतीपुर—पूर्वीय बङ्गाल और आसामके दिनाजपुर जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा० २५°४०´ उ० और देशा० ८८°५६´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या लगभग १०८७ है। यहां रेलवेका एक बड़ा जङ्क्सन है।

पार्वतीपुरम्—१ मन्द्राजके विशाखपत्तन जिलेका एक उपविभाग।

२ उक्त उपविभागकी एक जमींदारी। यह अक्षा० १८°३८´ से १८°८´ उ० तथा देशा० ८३°१७´ से ८३°५०´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७८८ वर्गमील और जनसंख्या करीब १६०५२३ है। इसमें इसी नामका एक शहर और ४८२ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त जमींदारीका एक शहर। यह अक्षा० १८°४७´ उ० और देशा० ८३°२६´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या १७३०८ है। यहां सरकारी कचहरी, पुलिस और डाकघर है।

पार्वतीय (सं॰त्रि॰) १ पर्वतभव, पहाड़ पर होनेवाला। २ पर्वतसम्बन्धी, पहाड़का, पहाड़ी।

पार्वतीयकुमार (सं॰ पु॰) पार्वतीयः पार्वतीजातः कुमारः। पार्वतीपुत्र।

पार्वतीलोचन (सं॰ पु॰) तालके साठ भेदोंमेंसे एक।

पार्वतीश्वर (सं॰ पु॰) पार्वत्याः स्थापितः ईश्वरः। काशीस्थित शिवलिङ्गभेद। पार्वतीने काशीमें जिस शिवलिङ्गकी स्थापना की, उसे पार्वतीश्वर कहते हैं। इस शिवलिङ्ग-पूजनसे सब प्रकारके पाप जाते रहते हैं।

पार्वतेय (सं॰ क्ली॰) पर्वते भवं पर्वत-ढक्। १ सौवीराञ्जन, सुरमा। (पु॰) २ सूर्यावर्त्तवृक्ष, हुरहुरका पौधा। ३ गजपिप्पली। ४ धातकीवृक्ष, धायका पेड़। ५ जिङ्गिनी, जिगनी। (त्रि॰) ६ पर्वतजात, पर्वत पर होनेवाला।

पार्वायनान्तीया (सं॰ स्त्री॰) पर्वणोऽयनस्य चान्ते विहिता छन्। इष्टिभेद। पर्व और अयनके अन्तमें इस यज्ञका अनुष्ठान करना होता है, इसीसे इसको पार्वायनान्तीया कहते हैं।

पार्शव (सं॰ पु॰) पर्शुना आयुधेन जीवतीति पर्शु अण्। (पार्श्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ। पा ५।३।११८) पर्शुधारियोद्धा, पर्शुसे युद्ध करनेवाला।

पार्शुका (सं॰ स्त्री॰) पर्शुका, पसली।

पार्श्व (सं॰ पु॰-क्ली॰) स्पृशत इति स्पृश-श्वण्, पृ आदेशश्च (स्पृशेः श्वण् शुनौ च। उण् ५।२७) १ कक्षाधोभाग, काँखके नीचेका भाग, बगल। २ चक्रोपान्त। पर्शूनां समूहः अण्। ३ पर्शुगण। ४ पार्श्वास्थिसमूह। ५ अनृजु उपाय, कुटिल उपाय। ६ सन्निकट, निकटता, समीपता। ७ जैनोंके तेईसवें तीर्थङ्कर। पार्श्वनाथ देखो।

पार्श्वक (सं॰ त्रि॰) अनृजुरुपायः पार्श्वं तेन अन्विच्छति अर्थानिति कन् (पार्श्वेनान्विच्छति। पा ५।२।७५) शठता द्वारा विभवान्वेषी, चालबाजीके सहारे अपनी बढ़ती चाहनेवाला।

पार्श्वग (सं॰ त्रि॰) पार्श्व-गम-ड। १ पार्श्वगत, बगलमें चलनेवाला। (पु॰) २ अनुचर, सहचर।

पार्श्वगत (सं॰ त्रि॰) पार्श्वं गतः द्वितीया तत्पुरुषः। १ पार्श्वस्थ। २ जो निकटमें रहे।

पार्श्वगमन (सं॰ क्ली॰) पार्श्वे गमनं। पार्श्वदेशमें गमन, सहगमन।

पार्श्वचन्द्र—एक प्रसिद्ध जैन पण्डित। इन्होंने १५३७ संवत्‌में वीरभद्रसाधुरचित 'चतुःशरणप्रकीर्णक'का वार्त्तिक रचा।

पार्श्वचर (सं॰ पु॰) पार्श्वे चरतीति चर-अच्। अनुचर, पार्श्ववर्त्ती भृत्य, अरदली।

पार्श्वतस् (सं॰ अव्य॰) पार्श्व (आद्यादिभ्य उपसंख्यानम्। पा ५।४।४४ वा) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या तसिः। पार्श्वसे, बगलसे।

पार्श्वतीय (सं॰ त्रि॰) पार्श्वतोभवः पार्श्व (मुखपार्श्वतसोर्लोपश्च। पा ४।२।१३८ वा) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या छ। पार्श्वभव, जो पार्श्वसे अथवा पार्श्वदेशमें हो।

पार्श्वद (सं॰ पु॰) पार्श्व-दा-क। अनुचर।

पार्श्वदाह (सं॰ पु॰) पार्श्वदेशमें व्यथा।

पार्श्वदेवगणि—एक विख्यात जैन यति। इन्होंने ११६८ सम्वत्‌में हरिभद्र-रचित 'न्यायप्रवेश'की पञ्जिका लिखी है। आख्यानमणिकोष-रचनाकालमें इन्होंने अम्रदेवसूरिको भी सहायता की थी।

पार्श्वदेश (सं॰ पु॰) पार्श्वभाग, बगल।

पार्श्वनाग—एक जैन ग्रन्थकार। इन्होंने १०४२ सम्वत्‌में 'आत्मानुशासन'-की रचना की।

पार्श्वनाथ (सं॰ पु॰) जिनभेद, जैनोंके तेईसवें तीर्थङ्कर।

श्वेताम्बर जैन भावदेवसूरिके पार्श्वनाथ-चरितमें इस प्रकार लिखा है,—वाराणसी पुरीमें इक्ष्वाकुवंशीय अश्वसेन नामक एक राजा थे। राजोचित सभी गुणोंसे विभूषित होनेके कारण इनके भुवनविख्यात यशःसौरभसे दिग्‌दिगन्त आमोदित हो गया था। ये अपना अधिक समय धर्मालोचना और धर्मानुष्ठानमें ही व्यतीत करते थे। इनकी महिषीका नाम था वामा। वामा सभी विषयोंमें विदुषी थीं, पापकर्म भूलसे भी नहीं करती थीं सभी समय पवित्र भावमें रहती थीं। जब कोई पापकर्मका अनुष्ठान करता था, तब ये मन ही मन व्यथित होती थीं। दया दाक्षिण्यादि अपरापर गुण भी इनमें विद्यमान थे।

रमणीकुलकी ललामभूता वामा सचमुच वामा-कुलकी शिरोमणि थीं। एक दिन चैत्रमासकी कृष्ण-पक्षीय चतुर्थी तिथिको विशाखानक्षत्रके योगमें वामाने दोपहर रातको एक अद्भुत स्वप्न देखा जो तीर्थङ्करका जन्मसूचक था। उन्होंने अपने मुखमें गजेन्द्र, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी, माला, शशी, रवि, ध्वज, सरोवर, समुद्र, विमान, अष्टवसु, रत्नराशि और अनिल इन चौदहोंको प्रवेश करते देखा। महिषीका यह स्वप्नदर्श नवृत्तान्त धीरे धीरे राजाको मालूम हो गया। कुछ दिन बाद वामाने दृष्टान्तःकरणसे गर्भधारण किया। इस समय वे कल्पलतिकाकी तरह शोभा पाने लगीं।

स्वर्गसे देवगण आ कर किङ्करकी तरह गर्भवती वामाकी सेवा शुश्रूषा करने लगे और गर्भकालीन जो वस्तु पानेकी उनकी इच्छा होती थी, उसे वे तुरत ला देते थे। धीरे धीरे नवम मास उपस्थित हुआ। पौषमासकी कृष्णपक्षीय दशमी तिथिको विशाखानक्षत्रका योग होनेसे शुभलग्न और शुभ मुहूर्त्तमें दोपहर रातको वामा-देवीने एक पुत्र प्रसव किया। वह पुत्र नीलवर्ण और सर्प चिह्नसे चिह्नित था। प्रसवके बाद ही देवगण दुन्दुभि बजाने और फूलोंकी वर्षा करने लगे। चारों दिशाएं आमोदित हो गईं और तमाम हरा भरा दीख पड़ने लगा। भगवान् हुताशन दक्षिणार्चि हो कर आहुति ग्रहण करने लगे। त्रिविध गुणशाली वायु धीरे धीरे बहने लगी। इस प्रकार और भी कितनी ही माङ्गलिक क्रियाएँ उस समय उपस्थित हुईं। सभी त्रिभुवनवासी आनन्दित हो गये। अधिक क्या, नरक वासी भी कुछ समयके लिये आनन्दसागरमें गोते मारने लगे। जातबालकको भगवान् जिन समझ कर भोगङ्करा प्रभृति अधोलोकनिवासिनी दिक्कुमारिकागण अपने अपने स्थानसे आ कर सूतिकागारके निकट उपस्थित हुईं और जिनको प्रणाम करके पीछे जिनकी माता वामाको भी प्रणाम किया। क्रमशः मेघङ्करा प्रभृति ऊर्ध्वलोकनिवासिनी दिक्कन्याने सूतिकागृहके निकट आ कर फूल बरसाने लगीं। इस प्रकार अन्यान्य बहुसंख्यक देव और देवाङ्गनाने आ कर जातबालकका माङ्गलिक क्रियानुष्ठान-पूर्वक जन्मोत्सव शेष किया।

वामादेवी अपने पुत्रको सुन्दर नेपथ्यसाजसे सज्जित देख बहुत प्रसन्न हुईं। राजा अश्वसेनने पुत्रका जन्मवृत्तान्त सुन कर वार्त्तावहको मुंहमाँगा इनाम दिया और बड़े प्रसन्न हो कर जितने कारावासी थे सभोंको मुक्त किया तथा दिव्याङ्गनाओंको बुलवा कर नाच गान भी कराया। वामादेवीने गर्भावस्थामें एक बार रातको अपने पार्श्वमें एक सर्प देखनेकी बात अपने स्वामीसे कहा। राजाने यह सुन कर अपने नवजात शिशुका 'पार्श्व' नाम रखा। इन्द्रादिष्ट धात्रीगण आ कर पार्श्वका पालन-पोषण करने लगीं। पार्श्वने दिनों दिन देहोपचय लाभ करके शरीरशोभासे जगत्को आलोकित कर दिया। महापुरुषके सभी लक्षण पार्श्वके शरीरमें धीरे धीरे अभिव्यक्त होने लगे। अमानुषाकृति पार्श्वने क्रमशः बाल्यकालका अतिक्रम कर यौवनमें पदार्पण किया। उनका शरीर नौ हाथ लम्बा था। उनकी शरीरशोभासे सभी त्रिभुवनवासी मुग्ध हो गये थे।

एक दिन राजा अश्वसेन अपने आस्थानमण्डपमें बैठे थे, कि इतनेमें एक मनुष्यने आ कर उन्हें प्रणाम किया और विनीत भावसे कहा, 'देव! सर्वविध समृद्धिसम्पन्न सुरम्य हर्म्यशाली कुशस्थल नामक एक परमरमणीय नगर है। वहां नरवर्मा नामके एक राजा रहते हैं। वे बड़े तेजस्वी हैं और मध्याह्नकालीन प्रभाकरकी तरह सर्वोपरि विराजमान हैं। वे सभी धर्मप्रवर्त्तकोंके गुरु हैं, सर्वदा जिनधर्ममें रत और नीतिपूर्वक राज्य-शासनमें तत्पर रहते हैं। उनकी सत्यवादिता और साधुशुश्रूषा जगद्विख्यात है। फिलहाल उन्होंने राज्यभारका परित्याग कर प्रव्रज्याका अवलम्बन किया है। उनके पुत्र प्रसेनजित् अभी राजा हुए हैं। राजा प्रसेनजित् भी परमदयालु और धार्मिक हैं। उनकी कन्याका नाम है प्रभावती। प्रभावती युवती हो कर सचमुच प्रभावती हुई हैं। उनके रूप और गुणसे जागतिक सभी उत्कृष्ट वस्तु परास्त हुई हैं।

"वह त्रिभुवनसुन्दरी प्रभावती एक दिन सखियोंके साथ रमणीय उद्यानमें भ्रमण कर रही थीं, इसी बीच किन्नरियोंने सङ्गीतप्रसङ्गमें पार्श्वनाथके रूपगुणका

कीर्त्तन कर इनकी खूब प्रशंसा की और वे बोलीं, 'इस जगत्‌में पार्श्वनाथ जिस रमणीका पाणिग्रहण करेंगे वह रमणी कुलकी शिरोमणि होगी।' इतना सुनते ही प्रभावतीने उसी समय पार्श्वनाथमें अपना मन प्राण अर्पण कर दिया। प्रभावती उसी दिनसे लज्जा भयका त्याग कर एकान्तचित्तसे हमेशा पार्श्वनाथका ध्यान करने तथा नामसम्बलित गान सुनने लगीं।

"प्रभावती कुसुमधनुके कुसुमशरसे आहत हो कर दिनों दिन नितान्त अधीर होती गई। सखीगण प्रभावती के मदनतापको दूर करनेके लिये चन्दनादि नाना प्रकार के शीतल द्रव्य ला कर उनके शरीरमें लगाती थीं। ऐसा करने पर भी जब कोई फल न निकला, तब उन्होंने राजा तथा रानीसे प्रभावतीका कुल वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुन कर वे दोनों प्रसन्नचित्त हो बोले, 'यह बड़े ही आनन्दकी बात है, कि हमारी कन्या प्रभावती आज अनुरूप वरकी अनुरागिणी हुई है। सचमुच इस त्रिभुवनमें पार्श्वनाथके जैसा योग्य वर और कोई है ही नहीं।' इतना कह कर प्रसेनजित्‌ने जब कन्याकी ओर दृष्टि डाली तब उन्होंने देखा कि वह पार्श्वनाथकी चिन्तासे एकदम क्षय हो गई है। इस पर उन्होंने निश्चय कर लिया, कि मैं शीघ्र ही प्रभावतीको पार्श्वनाथके उद्देशसे स्वयं वरके भेजूंगा। राजा ऐसा सोच ही रहे थे कि कलिङ्गदेशका अधिपति यवन नामक एक उद्धत प्रकृतिका राजा वहां आ धमका और प्रसेनजित्‌का अभिप्राय समझ कर बड़ा बिगड़ा। बाद उसने प्रभावतीका हरण करनेके लिये बहुत‌ संख्यक सेनाके साथ कुशस्थलपुरीको घेर लिया है। यही वृत्तान्त आपसे निवेदन करनेके लिये मैं यहां भेजा गया हूं, अब आपकी जैसी मरजी हो, वैसा करें।"

वाराणसीपति यह सुनते ही आगबबूले हो गये और बोले, 'कुछ चिन्ता नहीं, मैं अभी दलबलके साथ कुशस्थल जा कर दुरात्मा यवनको मार भगाता हूं।' इतना कह कर वे रणभेरी बजा कर सैन्य-सामान्त एकत्र करने लगे। इसी समय पार्श्वनाथ क्रीड़ागृहसे निकल कर पिताके पास आये और कहने लगे, 'पितः! इस जगत्‌में आपके मुकाबले कोई नहीं है, अतएव आप हठात् किसके प्रति इस प्रकार क्रोध करके युद्धके लिये उद्यत हुए हैं।' राजा अश्वसेनने पुत्रसे सारी बातें कह दीं। पुत्र पार्श्वनाथने यह सुन कर स्वयं युद्धमें जानेके लिये पितासे प्रार्थना की। पिताने पुत्रका बाहुबल समझ कर युद्धमें जानेकी अनुमति दे दी। पार्श्वनाथ हाथी पर चढ़ घुड़सवारों, गजारोहियों आदि भूपालों और नानाविध सेनाओंको साथ ले कुशस्थल पहुंचे। वहां पर पार्श्वनाथने पहले दूत भेज कर यवनराजको यह कहला भेजा, कि वे अभी तुरत कुशस्थल छोड़ कर चले जायें। यवनने तो पहले दूतकी बात हंसीमें उड़ा दी और पार्श्वनाथका नाम सुन कर नानाप्रकारकी दर्पकथाका प्रयोग किया; पीछे जब अपने वृद्धमन्त्रीके मुखसे पार्श्वनाथकी माहात्म्य कथा सुनी तब वह डरसे कांपता हुआ पार्श्वनाथके निकट पहुंचा और अपना अपराध स्वीकार कर उनका स्तव करने लगा। पार्श्वनाथने प्रसन्न हो कर उससे कहा, 'मैंने तुम्हारा अपराध तो क्षमा किया पर तुम अभी तुरत कुशस्थलसे चले जाओ, फिर कभी भी ऐसा अनुचित साहस न करना।' इतना कह कर सत्कारपूर्वक पार्श्वनाथने उस यवनराजको बिदा किया। राजा प्रसेनजित्‌ने यह वृत्तान्त सुन कर मन ही मन पार्श्वनाथकी यथेष्ट प्रशंसा की। पीछे मन्त्रीके साथ वहां पहुंच कर उन्होंने अपनी कन्या प्रभावतीका पाणिग्रहण करनेके लिये पार्श्वनाथसे अनुरोध किया। पार्श्वनाथने जब बिना पिता की आज्ञाके पाणिग्रहणमें अनिच्छा प्रगट की, तब प्रसेनजित्‌ने कन्या प्रभावतीको साथ ले पार्श्वनाथके साथ काशी जानेका विचार किया। पार्श्वनाथ भी बड़ी खातिरसे उन्हें अपनी पुरी वाराणसी धाममें ले गये।

वाराणसीपति अश्वसेन पुत्रके आगमन पर बड़े ही प्रसन्न हुए और राजा प्रसेनजित्‌का भलीभांति सत्कार कर उनके आनेका कारण पूछा। पीछे राजाने प्रसेनजित्‌का अभिप्राय जान कर पार्श्वनाथसे विवाह करनेकी कथा पूछी। पार्श्वनाथने संसारकी अनित्यता समझ कर पहले तो विवाह करनेमें असम्मति प्रकट की, पर पीछे बहुत कहने सुनने पर वे राजी हुए। राजा अश्वसेनने शुभलग्नमें विवाहका दिन स्थिर कर बड़ी धूमधामसे पार्श्वनाथका विवाह प्रभावतीके साथ करा दिया।

विवाहके बाद राजाने सबोंको मुंहमांगा दान दे कर विदा किया।

इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। एक दिन पार्श्वनाथने कोठे पर बैठ कर जब काशीपुरीको ओर दृष्टि डाली तब उन्होंने देखा कि काशीपुरवासी लोग झुण्डके झुण्ड नाना प्रकारके पूजोपकरण ले कर जा रहे हैं। पार्श्वनाथके वणिकोंसे पुरीके आकस्मिक महोत्सव और मनुष्योंके जानेका कारण पूछने पर उनमेंसे एकने जवाब दिया, 'प्रभो! इस पुरीमें कठ नामक एक व्यक्ति पञ्चाग्नि द्वारा तपस्या कर रहे हैं। उनकी सेवा करनेके लिये ही ये सब वहां जाते हैं।' यह सुन कर पार्श्वनाथ बड़े आश्चर्यान्वित हुए और अनुचरोंके साथ वहां पहुंच कर उन्होंने देखा कि सचमुच एक व्यक्ति पञ्चाग्नि द्वारा तपस्या कर रहा है। कुछ काल बाद ज्ञानी पार्श्वनाथ वह्निकुण्डमें एक महासर्पको दह्यमान देख दयाकुल हृदयसे कहने लगे, "अहा कैसा अज्ञान! दयाहीन धर्म कभी भी धर्म नहीं हो सकता" इत्यादि। धर्म और दयासम्बन्धीय अनेकों उपदेश दे कर वे वहांसे चल दिये। एक दिन पार्श्वनाथ अपने नोकरोंके साथ उद्यानवाटिकाको देखने गये। वहां उद्यानपालक उद्यानके रमणीय फलपुष्पादिगत प्राकृतिक सभी सौन्दर्य पार्श्वनाथको दिखाने लगा। उद्यानके बीचमें एक प्रासाद था, पार्श्वनाथ उद्यानको शोभा देखते देखते वहीं आ पहुंचे। प्रासादको किसी एक दीवारमें तीर्थङ्कर नेमिकी चरित्रराशि चित्रित देख कर उन्होंने अपने मनमें विवेकको आश्रय दिया और वे मन ही मन कहने लगे, 'अहा! इस महापुरुष नेमिका संसार-वैराग्य जगत्में अतुलनीय है। इस नवीन अवस्थामें ही ये संसारकी अनित्यता समझ कर सभी विषयोंसे विमुख हुए थे और इन्होंने निःसङ्गभावसे कठोर व्रतका अवलम्बन किया था।' पार्श्वनाथ मन ही मन नेमिके इस प्रकार वैराग्यकी कथा सोच ही रहे थे, कि ब्रह्मलोकसे सारस्वतादि देवगण आ कर उन्हें नमस्कार-पूर्वक कहने लगे, 'प्रभो! इस जगत्का मोहजाल छेदन करनेमें आपके सिवा और किसीमें सामर्थ्य नहीं। अतएव त्रिलोकीके उपकारके निमित्त आप तीर्थकी प्रवर्त्तना कीजिए।' इतना कह कर देवगण स्वर्गको चल दिये। इधर पार्श्वनाथने भी सभी प्रियजनोंका परित्याग करके संसारमें आ कर देहिगण जन्ममरणादि नानाविध कष्टभोग करते हैं, उनका किस उपायसे अज्ञान-मोह दूर हो, यह सोचते सोचते रात्रि व्यतीत की। अनन्तर सूर्योदय होने पर वे प्रातःकृत्यादि कर माता पिताके पास गये।

वे मातापिताके निकट अपनी दीक्षाका विषय पूछ कर दरिद्रोंको प्रभूत परिमाणमें धन वितरण करने लगे। उनके धनवर्षणसे जगत्को दारिद्र्यमय दावाग्नि प्रशमित हुई। यहां तक कि नवोद्भिन्न तरुलताके बहानेसे पृथिवी भी मानो पुलकित हो कर उनके दानका अभिनन्दन करने लगी। पार्श्वनाथके दीक्षामहोत्सवमें देश देशके राजाओंने आ कर योगदान किया। तरह तरहके नृत्य, गीत, वाद्य और जय शब्दसे काशीनगरी गूंज उठी। इस समय पार्श्वस्वामी एक शिविकामें बैठ कर संयम करनेके लिये एक रमणीक आश्रममें गये और विशाखानक्षत्रयुक्त पौषमासकी कृष्णा एकादशी तिथिको मुण्डित हो दीक्षित हुए। इसके बाद दूसरे दिन कोपकट नामक स्थानमें धन्यके गृहमें उपस्थित हुए। पार्श्वनाथको अपने घरमें आये देख धन्य फूले न समाये और आनन्दके साथ उन्होंने स्वामीजीका पारणकार्य शेष किया। पार्श्वनाथने जहां बैठ कर पारण किया था, धन्यने वहां उनका एक पादपीठ संस्थापन कर दिया। पीछे पार्श्वनाथ विविध ग्रामों और नगरोंमें विचरण करने लगे। वे धीरे धीरे धरित्रीकी तरह सर्वंसह हो उठे, शरत्कालीन सलिलकी तरह निर्मल हो गये, वह्निके समान तेजस्वी, वायुकी तरह अप्रतिहतगति और आकाशकी तरह निरालम्ब हो उठे। पार्श्वनाथ चरणविन्याससे इस धरित्रीको पवित्र करने लगे। वे कुण्ड नामक सरसीके किनारे प्रतिमारूपमें रहने लगे। इस प्रकार पार्श्वस्वामी कलिकुण्डतीर्थ, शिवापुरी, कौशाम्ब और राजपुर आदि अनेक देशोंमें भ्रमण कर कहीं पतितका उद्धार और कहीं प्रतिमारूपमें अवस्थान करने लगे। राजपुरमें उन्होंने एक सुनिश्रम ब्राह्मणका उद्धार किया। वहांका चैत्य कुक्कुटेश्वर

नामसे प्रसिद्ध हुआ। पीछे पार्श्वनाथ उस पूर्वोक्त कठके साथ कर्मकृतासे मुक्त हुए। अनन्तर वे काशीधामके किसी आश्रममें पहुंच कर तपस्या करने लगे। वहां धातकी वृक्षके नीचे उनके चौरासी दिन बीत गये। चैत्रमासकी कृष्णाचतुर्थी तिथिको जब चन्द्रमा विशाखानक्षत्रमें गये, तब पार्श्वनाथने पूर्वोक्त समयमें अनन्तवें भव केवलज्ञान प्राप्त किया। ज्ञानलाभके बाद वे अर्हत्‌मय हो कर त्रैकालिक सभी विषय जान गये और सभीके दर्शन करने लगे। क्रमशः उनका अलौकिक माहात्म्य प्रकाशित होने लगा। एक दिन राजा अश्वसेन उद्यान पालके मुखसे पुत्रकी वैभव-कथा सुन कर बड़े ही प्रसन्न हुए तथा वामादेवी और प्रभावतीके आनन्दका भी पारावार न रहा। अनन्तर राजा अश्वसेन हाथी घोड़े नाना-प्रकारके राजोपकरण ले कर वामादेवीके साथ उनकी वन्दना करने गये और विविध स्तव करने लगे। प्रभु पार्श्वनाथने भी पिताको बहुत-सी धर्मकथाएं कहते कहते प्रसङ्गाधीन अनेक धर्म-प्रस्ताव किये थे।

तदनन्तर पार्श्वस्वामी विश्वके कल्याणकी कामनासे पुनः देश देशान्तरमें पर्यटन करने लगे। एक दिन भ्रमण करते करते वे पुण्ड्रदेशमें पहुंचे। कुछ दिन बाद वहांसे वे ताम्रलिप्तको चल दिये। वहां सागरदत्त नामक एक युवक श्रावक हो कर पार्श्वनाथके निकट उपस्थित हुए। पार्श्वनाथको धर्मका विषय पूछ कर वे उन्हींसे जैनधर्ममें दीक्षित हुए। पीछे शिव, सुन्दर, सौम्य और जय नामक और भी धर्मजिज्ञासु पार्श्वनाथके शिष्य बने। पार्श्वनाथ वहांसे क्रमशः नागपुरीमें पहुंचे और वहां उन्होंने किसी धनाढ्य अथच पण्डित बन्धुदत्त नामक युवकको विविध धर्मोंके उपदेश दिये। इस प्रकार पार्श्वनाथ तमाम विचरण करने लगे। पार्श्वनाथके केवलज्ञान लाभ करनेके दिनसे ही बहुसंख्यक श्रावक, साधु, ऋषि, साध्वी और केवली आदि उनके अनुगत हुए थे। प्रभु पार्श्वनाथ क्रमशः अपना निर्वाण-काल निकट समझ कर समेतशिखर पर चले गये। उनके आगमन पर शैलराज नाना फूल फलोंसे पूर्ण हो गया। किन्नरीगण गान करने लगीं। सुरेन्द्रके साथ सुरगण वहां पहुंच गये। प्रभु पार्श्वनाथने श्रावण

मासकी शुक्लाष्टमीके दिन अथवा नक्षत्रके योगमें योगावलम्बनपूर्वक स्वीय देहका परित्याग कर मुक्ति-लोकमें प्रस्थान किया। (भावदेवसूरि)

कौशाम्बीके पार्श्वनाथ।
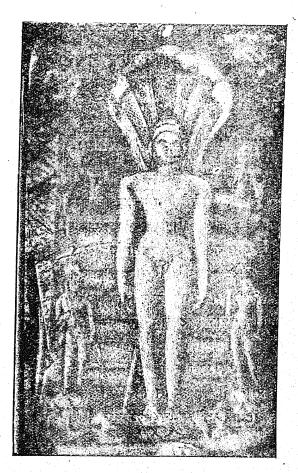
सकलकीर्त्तिके मतानुसार पार्श्वनाथ विश्वसेनके औरस और ब्राह्मीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे।

"श्रील श्रीपार्श्वतीर्थेशो विश्वसेन नृपालये।
ब्राह्मीगर्भे जगन्नाथोऽवतरिष्यति मुक्तये॥"

(पार्श्वनाथचरित्र १०।७१)

दिगम्बर जैन-शास्त्रोंके अनुसार श्रीपार्श्वनाथ स्वामीका जीवनचरित इस प्रकार है,—

अंतिम तीर्थङ्कर श्रीमहावीरस्वामीके निर्वाण-कालसे २५० साल पहले श्रीपार्श्वका जन्म वाराणसी-नगरीमें राजा विश्वसेनकी रानी वामादेवीके उदरसे हुआ था। जिस समय यह भगवान तेरहवें आनत स्वर्गसे माताके गर्भमें आये उसी रातके अन्तिम प्रहरमें माता

वामा देवीको सोलह स्वप्न दिखलाई पड़े। सबसे पहिले उन्होंने ऐरावत तुल्य सुन्दर विशालकाय हाथी देखा; फिर हुंकारता वृषभ, केसरशोभित केसरी, कमलासन पर स्नान करती लक्ष्मी, दो पुष्पमालाएं, सूर्यमण्डल, चन्द्रमण्डल, जलमें क्रीड़ा करती हुई दो मछलियां, जलसे भरे दो सुवर्णकलश, कमलोंसे शोभायमान सरोवर, लहरोंसे शब्द करता हुआ समुद्र, सुन्दर सिंहासन, स्वर्गीय विमान, नागेंद्रका भवन, देदीप्यमान रत्नोंको राशि, निर्धूम जलती अग्नि ये सोलह स्वप्न देखे। इन सबके अन्तमें उन्होंने अपनेमें मुखमें प्रवेश करता वृषभ देखा। इसके बाद उनकी निद्रा भङ्ग हो गई। वे वादित्रोंके शब्द और अपनी कीर्त्तिके गान-श्रवणसे जाग उठीं। नित्य क्रियाओंके कर चुकने पर स्वप्नोंका फल पूछनेके लिए वे पतिके पास गईं। अवधिज्ञानधारी राजा विश्वसेनने इस स्वप्नदर्शनका फल विस्तारपूर्वक बताया और कहा कि तुम्हारे गर्भमें परमपूज्य तीर्थङ्कर भगवान्का जन्म होगा। इसके बाद गर्भ दिन पर दिन बढ़ने लगा। स्वर्गको देवाङ्गनाएं तथा रुचिक पर्वत पर रहनेवाली कुमारिकाएं, जो गर्भमें भगवान्के अवतीर्ण होनेसे छह मास पहिले ही माताकी सेवामें तत्पर हो गई थीं, और भी भक्तिपूर्वक सेवा करने लगीं। जिस दिन पार्श्व भगवान् माता वामाके गर्भमें आये वह वैशाख कृष्ण-द्वितीया थी। नववें महीने पौषकृष्ण एकादशीको भगवान्का जन्म हुआ। उस समय तीनों लोक आनन्दसे ओतप्रोत हो गये। स्वर्गमें देवोंके हर्षका पारावार न रहा, नरकवासियोंको भी कुछ देर तक सुखशांति मिल गई। स्वर्गवासी देवगणने ठाठ बाठसे आ कर भगवान्का जन्मकल्याण मनाया। वाराणसीमें आ कर इन्द्रने शचीको सूतिकागृहमें भेजा। माताको माया-निद्रामें सुला कर और कृत्रिम पुत्र उनके पास रख कर शची भगवान्को ले आई। समस्त देव सुमेरु पर्वत पर पार्श्वनाथको ले गये और वहां उन्होंने विधिपूर्वक एक हजार आठ कलसोंसे अभिषेक किया। इसके बाद वाराणसी नगरीमें राजा विश्वसेनके दरबारमें आ कर इन्द्रने सब वृत्तान्त सुना कर आनन्द प्रकट किया। भगवान् धीरे धीरे बढ़ने लगे; जब उनकी आठ वर्षकी उम्र हुई तब उन्होंने अणुव्रत धारण किये। किशोरावस्थाके आने पर पिताने आपसे विवाह करनेकी प्रार्थना की, परन्तु प्रभु विरक्त थे, संसारकी दशा और विषय भोगोंकी नीरसता जानते थे, इसलिये विवाह करनेके लिये बिलकुल राजी न हुये।

पण्डालसे नवग्रहार्चित पार्श्वनाथ।
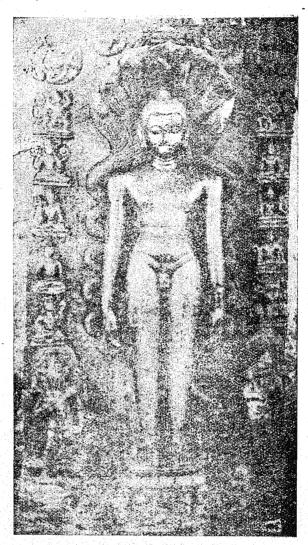
एक दिनकी बात है कि—प्रभु समवयस्क बालकों-के साथ हाथी पर सवार हो गंगा किनारे जा रहे थे। मार्गमें एक जटाधारी तपस्वीको पंचाग्नि तापते देखा। भगवान्ने इस प्रकार जीवोंके नाशक तपको देख कर जटाधारीसे कहा—भाई! यह तप कैसा? इसमें बिलकुल धर्म नहीं है, जीवोंको जिससे कष्ट हो वह धर्म नहीं, अधर्म है। यह सुन कर जटाधारी क्रुद्ध

को बोले:—हम तो इतना कठिन तप कर रहे हैं और इस लड़केको हमसे जीवोंको कष्ट होता दीख रहा है? भगवान्‌ने विवाद करना पसन्द न कर जलते हुए लक्कड़को चीर कर कहा—देखो! इसमें ये दो सांप किस प्रकार जल कर प्राण छोड़ रहे हैं। जटाधारी भगवान्‌के वचनको सच्चा जान मन ही मन बहुत खिन्न। मरते समय भगवान्‌के दर्शनसे सांप सांपिनी धरणेन्द्र और पद्मावती हुए। जटाधारीका जीव पहिले जन्मका भगवान्‌का शत्रु था, वह आयुके अन्तमें मरा और कायक्लेशके प्रभावसे धूमकेतु नामका देव हुआ। भगवान् विरक्त हो स्वयं दीक्षित हुए। उस समय ब्रह्मलोकके देवोंने वैराग्यकी पुष्टि और स्वर्गवासी देवोंने उत्सव मनाया था। दो उपवासके बाद भगवान्‌का प्रथम आहार सेठ धनदत्तके घर हुआ और पञ्चाश्चर्य-वृष्टि हुई। जिस दिन भगवान्‌ने दीक्षा ली वह पौषकृष्ण एकादशी था। एक दिन भगवान् जङ्गलके बीच ध्यानस्थ थे, ऊपरसे भूतपूर्व जटाधरी कमठके जीव धूमकेतुका जाना हुआ। भगवान्‌के प्रभावसे विमानकी गति रुक गई। यह देख धूमकेतुके क्रोधका ठिकाना न रहा। उसने पृथ्वी पर आ भगवान् पर उपसर्ग करना प्रारम्भ किया। तीक्ष्ण हवा बहने लगी, पानी मूसलधार बरसने लगा, बिजली चमकने लगी, भूत बेताल नाचने लगे और कंकर पत्थर बरसने लगे। यह सब होते हुए भी प्रभु पार्श्वका ध्यान विचलित न हुआ। वे निर्ममत्व भावसे सब सहने लगे। इतनेमें जिन सांप सांपिनीके जीव धरणेन्द्र पद्मावती हुए थे वे साहाय्य करने आये। उन्होंने भगवान्‌को अपने शिर पर अधर उठा लिया और ऊपर अपने फणका छत्र तान दिया जिससे भगवान्‌को नीचे ऊपर किसी तरफसे बाधा न हो सके। यह देख धूमकेतु डर कर भाग गया। पार्श्वनाथकी मूर्त्ति पर सर्पका-सा जो फण अङ्कित रहता है वह इसी बातका द्योतक है। उपसर्गके नष्ट हो जाने पर पार्श्वप्रभुको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और देवोंने आ कर समवसरण सभाकी रचना की। यह दिन चैत्रकृष्ण चतुर्थी था। इसके बाद प्रभुने नाना देशोंमें विहार किया। आयुकी समाप्ति समीप आने पर वे सम्मेदशिखर पर्वत पर आ कर विराजमान हुए और वहांसे मुक्ति प्राप्त की। यह दिन श्रावण शुक्लसप्तमी था। इस समय देवोंने आ कर अन्तिम संस्कार किया।

(पं० भूधरदास-कृत पार्श्वचरित)

बारिन्दासे ध्यानी पार्श्वनाथ।

कल्पसूत्रसे जाना जाता है, कि पार्श्वनाथने सौ वर्षकी उम्रमें ७७७ ई० सन्‌के पहले निर्वाणलाभ किया।

विशेष विवरण जैन शब्दमें देखो।

पार्श्वपरिवर्त्तन (सं० क्ली०) पार्श्वस्य पार्श्वेन वा परिवर्त्तनं। १ कटिदान, कर्णिकापरिवृत्ति। २ उत्सवभेद। भाद्रमासकी शुक्ला एकादशीके दिन भगवान् विष्णुने पार्श्व-परिवर्त्तन करके दाहिनी करवट ली थी, इसीसे इस दिन वैष्णव लोग उत्सव मनाते हैं। जो वैष्णव यह उत्सव करते हैं, उनके सभी पाप जड़से नष्ट हो जाते हैं।

"भाद्रस्य शुक्लैकादश्यां शयनोत्सववत्प्रभोः ।
कटिदानोत्सवं कुर्यात् वैष्णवैः सह वैष्णवः ॥"

(हरिभक्तिवि०)

इस पार्श्वपरिवर्त्तन-एकादशीके दिन सबोंको उपवास कर यह उत्सव करना चाहिए। इसीको कटिदानोत्सव कहते हैं। शयनोत्सवकी तरह यह उत्सव किया जाता है। हरिभक्तिविलासमें इसका विशेष विवरण लिखा है। इस एकादशीके दिन निम्न लिखित मन्त्रसे भगवान् विष्णुकी अभ्यर्थना करनी होती है।

"देवदेव जगन्नाथ ! योगिगम्य ! निरञ्जन ! ।
कटिदानं कुरुष्वाद्य मासि भाद्रपदे शुभे ॥
महापूजां ततः कृत्वा वैष्णवान् परितोष्य च ।
देवं स्वमन्दिरे नीत्वा यथा पूर्वं निवेशयेत् ॥"

(हरिभक्तिवि० १५ वि०)

पार्श्वपरिवर्त्तिन् (सं० त्रि०) पार्श्व-परि वृत-णिनि। पार्श्वस्थ, पार्श्ववर्त्ती।

पार्श्वपिप्पल (सं० क्लो०) १ हरीतकीविशेष। २ पारीष-वृक्ष, गजहड़।

पार्श्वभाग (सं० पु०) पार्श्वस्य भागः। १ पक्षभाग, काँख। २ हस्तीप्रभृतिका पार्श्वदेश।

पार्श्वरुज् (सं० स्त्री०) पार्श्वस्थ या रुक्। पार्श्वदेशकी पीड़ा।

पार्श्वल (सं० त्रि०) पार्श्व सिध्मादित्वात् लच्। (पा ४।२ ९७) पार्श्वसमुदाययुक्त।

पार्श्ववक्त्र (सं० त्रि०) पार्श्वे वक्त्रं यस्य। महादेव, शिव।

पार्श्ववर्त्ती (सं० पु०) निकटस्थ जन, मुसाहब।

पार्श्वशय (सं० त्रि०) पार्श्वे शेते शी-अच्। पार्श्वदेशमें शयनकारी, बगलमें सोनेवाला।

पार्श्वशायिन् (सं० त्रि०) पार्श्व-शी-णिनि। जो पार्श्व-देशमें शयन करता हो।

पार्श्वशूल (सं० पु० क्लो०) पार्श्वे जातः शूलः। शूल-रोगविशेष। सुश्रुतमें इन रोगके लक्षणादि इस प्रकार लिखे हैं,—

कुक्षिपादमें वायु रुद्ध हो कर आध्मान और गुड़गुड़ शब्द होता है। इसमें सूई चुभनेकी-सी पीड़ा होती और साँस कष्टसे निकलती है; अन्नकी रुचि और निद्रा कुछ भी नहीं होती। इन्हीं सब लक्षणयुक्त रोगको पार्श्वशूल कहते हैं। यह कफ और वायुके बिगड़नेसे होता है। इसकी चिकित्सा—कुट, हिङ्ग, सोवर्चल, विट, सैन्धव, धनिया और हरीतकी इनका चूर्ण यवके क्वाथके साथ पान करना होता है। इससे हृदय, पायु और वस्तिशूल प्रशमित होता है। इसमें बीजपूरकी मज्जाका दुग्धके साथ पाक करके सेवन, प्लीहोदरविहित घृत वा हिङ्गुके साथ घृतपान हितकर बतलाया गया है। दुग्धके साथ एरण्ड-तैल अथवा मद्य, दधिका पानी, दुग्ध वा मांसरसका सेवन करनेसे पार्श्वशूल जाता रहता है। (सुश्रुत उत्तरतन्त्र० ४२ अ०)

"कफं निगृह्य पवनः सूचिभिरिव निस्तुदन् ।
पार्श्वस्थः पार्श्वयोः शूलं कुर्यादाध्मानसंयुतम् ॥"

(भावप्र०)

वायु पायुदेशमें संश्रित हो कर कफके साथ मिल जाती है। इससे दोनों पार्श्वोंमें शूल होता है और सूई चुभनेकी-सी पीड़ा होती है, सांस कष्टसे निकलती और पेट फूल जाता है। ये सब लक्षण होनेसे पार्श्व-शूल हुआ है, ऐसा जानना चाहिये। गरुड़पुराणके १८९वें अध्यायमें पार्श्वशूलकी औषधका विषय लिखा है।

पार्श्वसंस्थ (सं० त्रि०) पार्श्वे संस्था स्थितिर्यस्य। पार्श्वस्थित, बगलमें होनेवाला।

पार्श्वसूत्रक (सं० पु० क्लो०) अलङ्कारभेद, प्राचीन-कालका एक आभूषण।

पार्श्वस्थ (सं० पु०) पार्श्वे तिष्ठतीति पार्श्व-स्था-क। १ पार्श्वस्थित नट, अभिनयके नटोंमेंसे एक जो पास खड़ा रहता है। (त्रि०) २ समीपस्थित, पास खड़ा रहने-वाला।

पार्श्वस्थित (सं० त्रि०) पार्श्वे स्थितः। पार्श्वदेशमें अव-स्थित, बगलमें रहनेवाला।

पार्श्वादि (सं० पु०) पाणिनीय गणपाठोक्त गणभेद। पार्श्वादि उपपदमें शी-धातुके उत्तर अच् प्रत्यय होता है। गण—पार्श्व, उदर, पृष्ठ, उत्तान, अवमूर्द्ध।

पार्श्वानुचर (सं० पु०) पार्श्वगामी अनुचर, अरदली।

पार्श्वायात (सं० त्रि०) पार्श्व वा निकटमें आया हुआ।

पार्श्वासन्न (सं० त्रि०) निकटमें उपस्थित, हाजिर।

पार्श्वास्थि (सं० क्लो०) पार्श्वस्य अस्थि। शरीरपार्श्वस्थित अस्थि, पसलीकी हड्डी। इसका पर्याय पर्शुका है।

पार्श्विक (सं० त्रि०) पार्श्व-ठक्। १ पार्श्वजात। २ पार्श्वसम्बन्धी। (पु०) ३ वह जो अन्यायसे रुपया कमानेकी फिक्रमें रहता है। ४ सहचर। ५ धोखाबाज, ठग। ६ एक विख्यात और प्राचीन बौद्धाचार्य।

पार्श्वैकादशी (सं० स्त्री०) पार्श्वसम्बन्धिनी हरेः पार्श्वपरिवर्त्तनजन्या एकादशी। भाद्रशुक्ला-एकादशी। भद्रमासकी शुक्ला-एकादशीको हरिका पार्श्वपरिवर्त्तन होता है, इसीसे इसको पार्श्वैकादशी कहते हैं।

पार्श्वोदरप्रिय (सं० पु०) पार्श्वमुदरञ्च ताभ्यां प्रीणाति भोक्तारमिति-प्री क। कर्कट।

पार्श्व्य (सं० पु०) स्वर्ग और मर्त्य।

पार्षकि (सं० पु०) प्रवर-ऋषिभेद।

पार्षत (सं० त्रि०) पृषतस्य विराटनृपस्येदं अण्। १ विराट नृपसम्बन्धी। (पु०) २ विराटके पुत्र धृष्टद्युम्न।

पार्षती (सं० स्त्री०) द्रौपदी।

पार्षद् (सं० पु०) परिषद्, गोठी।

पार्षद (सं० पु०) परिषद् पृषोदरादित्वात् साधुः वा पर्षदि साधुः पर्षदो-ण। १ पारिषद। श्रीकृष्णके पार्षदका विवरण आदिपुराणके १म अध्यायमें वर्णित है। २ मन्त्री। ३ दर्शक। ४ ख्यातनामा व्यक्ति। ५ प्रातिशाख्य। ६ पद्धतिभेद।

पार्षदंश (सं० त्रि०) पृषदंशे भवः उत्सादित्वादञ्। पृषदंश वा विन्दुका अंशभव।

पार्षदक (सं० पु०) पारिषदक।

पार्षदता (सं० स्त्री०) पार्षदस्य भावः, तल्, स्त्रियां टाप्। पारिषद्य।

पार्षदश्व (सं० पु०) पृषदश्वस्य वायोर्नृपभेदस्य वेदं अण्। १ वायुसम्बन्धी। २ नृपभेदसम्बन्धी। ३ गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद।

पार्षदीय (सं० त्रि०) किसी व्याकरणका सूत्रानुमोदित।

पार्षद्य (सं० पु०) पर्षदि साधुः पर्षद-ण्य। १ पार्षद। २ देवानुचर।

पार्षद्वाण (सं० पु०) वेदोक्त व्यक्तिभेद।

पार्षिका (सं० स्त्री०) पर्षिकाकी अपत्य स्त्री।

पार्ष्टेय (सं० त्रि०) पृष्टि वा पञ्जरके मध्यवर्त्ती।

पार्ष्ठिक (सं० त्रि०) पृष्ठे पड़हे भवः, ठञ्। पृष्ठ्य नामक षड़हसम्बन्धी।

पार्ष्णि (सं० पु० स्त्री०) पृष्यते भूम्यादिकमनेनेति पृष (घृणि पृश्नि पार्ष्णिचूर्णिभूर्णि। उण् ४।५२) इति निप्रत्येन निपातनात् साधु। १ गुल्फका अधोभाग, एंड़ी। २सैन्यपृष्ठ। ३ पृष्ठ। ४ जिगीषा। (स्त्री०) ५ उन्मद स्त्री। ६ कुन्ती।

पार्ष्णिक्षेम (सं० पु०) विश्वदेवभेद।

पार्ष्णिग्रहण (सं० क्लो०) पार्ष्णेः ग्रहणम्। पार्ष्णिका ग्रहण, सैन्य पृष्ठादिका ग्रहण।

पार्ष्णिग्राह (सं० पु०) पार्ष्णिं सैन्यपृष्ठं गृह्णातीति ग्रह-अण्। १ पश्चाद्‌पदग्राही, पृष्ठस्थित शत्रु। २ द्वादश प्रकारके राजचक्रके मध्य पृष्ठस्थायी नृप।

पार्ष्णित्र (सं० क्लो०) पार्ष्णिं त्रायते त्रै-क। वह सेना जो पीछेकी ओर रक्षा करती है।

पार्ष्णिवाह (सं० त्रि०) पार्ष्णिं वहति वह-अण्। पृष्ठस्थ कार्यनिर्वाहक, जो पीछे रह कर कार्य सम्पन्न करता है।

पार्ष्णील (सं० त्रि०) पार्ष्णिरस्त्यस्य सिध्मादित्वात् लच्। पार्ष्णियुक्त।

पार्सल (अं० पु०) १ पुलिंदा, बंधी हुई गठरी। २ डाकसे रवाना करनेके लिये बंधा हुआ पुलिंदा या गठरी।

पाल (सं० पु०) पालयतीति पालि अच्। १ पतद्‌ग्रह, पीकदान, ओगालदान। २ पालक, पालनकर्त्ता। ३ चित्रकवृक्ष, चीतेका पेड़। ४ बङ्गालका एक प्रसिद्ध राजवंश जिसने साढ़े तीन सौ वर्ष तक बङ्ग और मगधमें राज्य किया। पालराजवंश देखो।

पाल (हिं० पु०) १ फलोंको गरमी पहुंचा कर पकानेके लिये पत्ते बिछा कर रखनेकी विधि। २ फलोंको पकानेके लिये भूसा या पत्ते आदि बिछा कर बनाया हुआ स्थान। ३ तम्बू, शामियाना, चंदोवा। ४ गाड़ी या पालकी आदि ढाकनेका कपड़ा, ओहार। ५ वह लम्बा चौड़ा कपड़ा जिसे नावके मस्तूलसे लगा कर

इसलिये तानते हैं, जिसमें हवा भरे और नावको ढकेले। ६ कपोतमैथुन, कबूतरोंका जोड़ा खाना। (स्त्री०) ७ ऊंचा किनारा, भोटा, कगार। ८ पानीको रोकनेवाला बाँध या किनारा, मेंड़।

पाल—१ गुजरातके अन्तर्गत माहीकान्थ विभागका एक छोटा राज्य।

२ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत काठियावाड़के हल्लर विभागका एक छोटा राज्य। भूपरिमाण २१ वर्गमील है। इस राज्यके मध्य पांच ग्राम हैं। राजस्व १००००) रु० है जिसमेंसे बड़ोदाके गायकवाड़को १२५०) रु० और जूनागढ़के नवाबको ३८५) रु० करमें देने पड़ते हैं।

पाल—बम्बईके सतारा जिलान्तर्गत कराद तालुकका एक ग्राम। यह अक्षा० १७° २८´ उ० और देशा० ७४° २´ पू०के मध्य, कराद शहरसे २० मील उत्तर-पश्चिम तार्लीनदीके दोनों किनारे अवस्थित है। जनसंख्या तीन हजारसे ऊपर है। पहले इस ग्रामका नाम राजपुर था। यहां खण्डोवा देव पालई नामक किसी भक्तिमती गोपिनीके निकट प्रकट हुए थे और तभीसे इसका नाम पालग्राम पड़ा है। यहां खण्डोवाका जो मन्दिर है वह प्रायः ४०० वर्ष पहलेका बना है। मन्दिरके मध्य खण्डोवाकी मूर्त्तिके अलावा और भी कितनी ही प्रतिमूर्त्तियां हैं। मन्दिरका खर्च चलानेके लिये अनेक देवोत्तर हैं। एतद्भिन्न वृटिशगवर्मेण्ट भी प्रतिवर्ष ३००) रु० देती है। यहां प्रतिवर्ष पौषमासमें एक बड़ा मेला लगता है जिसमें प्रायः ५०००० यात्री उपस्थित होते हैं। मन्दिरप्रवेशके समय प्रत्येक यात्रीको कमसे कम एक पैसा अवश्य देना पड़ता है। यहां म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई थी, पर १८७२-७३ ई०में वह उठा दी गई। महाराष्ट्रोंके अभ्युदयकालमें यह ग्राम प्रधान वाणिज्य स्थान था।

पालउ (हिं० पु०) पालव देखो।

पालक (सं० पु०) पालयतीति पालि-ण्वुल्। १ घोटकरक्षक, साईस। २ चित्रकवृक्ष, चीतेका पेड़। ३ गजज्वर, हाथीका ज्वर। ४ कुष्ठ, कुट। ५ हिङ्गुल। (त्रि०) ६ पालनकर्त्ता, पालनेवाला।

पालक (हिं० पु०) एक प्रकारका साग। इसके पौधेमें टहनियाँ नहीं होतीं, लम्बे लम्बे पत्ते एक केन्द्रसे चारों ओर निकलते हैं। केन्द्रके बीचसे एक सीधा डंठल निकलता है जिसमें फूलोंका गुच्छा लगता है।

पालकजूही (हिं० स्त्री०) दवाके काममें आनेवाला एक छोटा पौधा।

पालकपुत्र (सं० पु०) पुत्रभेद, दत्तकपुत्र, पाला हुआ लड़का।

पालकरी (हिं० स्त्री०) लकड़ीका टुकड़ा जो चारपाईके सिरहानेके पायोंके नीचे उसे ऊंचा करनेके लिये रखा जाता है।

पालकविराज (सं० पु०) एक संस्कृत कवि, औपाल कविराज।

पालकाप्य (सं० पु०) गजवैद्यकप्रणेता ऋषि। पर्याय—करेणुभु, धन्वन्तरि। हस्त्यायुर्वेद देखो।

पालकी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी सवारी जिसे आदमी कंधे पर ले कर चलते हैं, खड़खड़िया, अच्छी डोली पीनस, चौपाल, तामदान इत्यादि इनके कई भेद होते हैं। कहार इसे कन्धे पर ले कर चलते हैं। २ पालकका साग।

पालकोण्डा—१ मन्द्राजप्रदेशके विशाखपत्तन जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १८° २२´से १८° ४७´ उ० और देशा० ८३° ३१´से ८३° ५६´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५०२ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखसे ऊपर है। इसमें पालकोण्डा और राजम नामके दो शहर तथा ३३४ ग्राम लगते हैं। यह पहले एक स्वतन्त्र जमींदारीके रूपमें गिना जाता था। १६वीं शताब्दीमें जयपुरके राजाने यह जमींदारी प्रदान की। यहांके राजा जातिके खन्द थे। पहले यह तालुक विद्यानगरराजका करद राज्य था, किन्तु १७८६ ई०में जब यहांके राजा विद्रोही हो गये, तब यह राज्य छीन कर उनके पुत्रको दे दिया गया। किन्तु ये लोग वंशपरम्परानुक्रमसे कम्पनी बहादुरके विरुद्ध होते आये, अतः १८१८ ई०में एक कलक्टरके ऊपर यहांका शासनभार सौंपा गया। १८३२ ई०में पालकोण्डाके नये राजा प्रकाश्यरूपसे विद्रोही हो गये। इस अपराधमें वृटिश सरकारने उनके हाथसे राज्य छीन लिया और सबोंको कैदमें रखा।

जबसे यह राज्य वृटिश-गवर्मेंटके हाथ आया है, तबसे इसकी उन्नति होती जा रही है। यहांका राजस्व लग-भग ३०४०००) रु० है। पण्यद्रव्यके मध्य नील, चीनी, रुई और शस्य प्रधान है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १८° ३६ उ० और देशा० ८३°४८′ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारके करीब है। यहां सब-मजिष्ट्रेट-की कचहरी, डाकघर और अंगरेजी स्कूल है।

पालकोल्लू—मन्द्राजप्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत नरसपुर तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १६° ३१′ उ० और देशा० ८१° ४४′ पू० नरसपुर शहरसे ६ मील उत्तरमें अवस्थित है। जनसंख्या प्राय: १०८४८ है। डच लोगों-ने १७वीं शताब्दीमें सबसे पहले यहां एक वाणिज्यकी कोठी खोली जो १७८३ ई०में अंगरेजोंके हाथ आ गई। यहांके समाधिक्षेत्रमें १६६२ ई०में डच लोगोंके लिखित प्रस्तरफलक पाये जाते हैं।

पालगिरि—गड़ापासे २६ मील पश्चिममें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। यहां दो खोदित लिपि हैं। यहांके विष्णुमन्दिरकी खोदित लिपिमें विजयनगरके राजा नरसिंहरायके एक दानका विषय लिखा है।

पालघाट—१ मन्द्राजके मलवार जिलेका एक उपविभाग इसमें पालघाट और पोन्नानी नामके दो तालुक लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका एक तालुक। यह अक्षा० १०° २५′से १०° ५८′ उ० तथा देशा० ७६° २५′से ७६° ५१′ पू० के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ३८००८८ है।

३ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १०° ४६′ उ० और देशा० ७६° ३८′ पू०, मन्द्राजके रेलपथसे ३२५ मील दूरमें अवस्थित है। यहांकी जनसंख्या प्राय: ४४१७७ है जिसमें हिन्दूकी संख्या ज्यादा है। मन्द्राज विश्वविद्यालयके अधीन यहां विक्टोरिया नामका एक कालेज है जो १८६६ ई०में स्थापित हुआ है। यह स्थान त्रिवाङ्कुड़ और पूर्व ओरसे मलवारप्रवेशका द्वार-स्वरूप है। पहले यहां एक दुर्ग था जो अभी तोड़ दिया गया है। यहां म्युनिसपलिटी, डाकघर और तारघर है।

पालघाटचेरी—पालघाटके निकटवर्त्ती एक दुर्ग। १७८३ ई०में टीपू सुलतानके साथ युद्धकालमें इस दुर्भेद्य दुर्ग पर कप्तान फुलारटन साहबने अधिकार जमाया। यह दुर्ग मलवार, करमण्डल, कालीघाट, कोचीन और त्रिवाङ्कुड़ राज्यके प्रवेशपथ पर अवस्थित है।

पालघ्न (सं० पु०) पालं चेत्रं हन्तीति हन-ठक्। १ छत्राक, खुमी। २ जलतृण।

पालङ्क (सं० पु०) पाल रक्षणे सम्पदादित्वात् क्विप्, तेन अङ्कयते इति अङ्क-घञ्। १ शल्लकी, पालक साग। २ बाजपक्षी। ३ एक रत्न जो काला, हरा और लाल होता है।

पालङ्की (सं० स्त्री०) पालङ्क गौरादित्वात् ङीष्। १ पालकशाक। २ कुन्दुरु नामका गन्धद्रव्य।

पालङ्क्य (सं० स्त्री०) पालङ्क स्वार्थे ष्यञ्। १ शाक-भेद, पालकशाक। पर्याय—पलङ्क्या, मधुरा, क्षुरपत्रिका, सुपत्रा, स्निग्धपत्रा, ग्रामीणा, ग्राम्यवल्लभा। गुण—ईषत् कटु, मधुर, पथ्य, शीतल, रक्तपित्तनाशक, ग्राहक, परम-तर्पण।

पालङ्क्या (सं० स्त्री०) पालङ्क्य स्त्रियां अजादित्वात् टाप्। १ कुन्दुरु। २ पालङ्कशाक, पालकी।

पालट (हिं० स्त्री०) १ पटेबाजीकी एक चोटका नाम। २ पाला हुआ लड़का।

पालड़ा (हिं० पु०) पलड़ा देखो।

पालती (अ० स्त्री०) जोड़ या सीमनकी तख्ती।

पालतू (हिं० वि०) पाला हुआ, पोसा हुआ।

पालथी (हिं० स्त्री०) पद्मासन, कमलासन, एक प्रकारका बैठना। इसमें दोनों जंघे दोनों ओर फैला कर जमीन पर रखते हैं और घुटनों परसे दोनों टांगें मोड़ कर बायां पैर दाहिने जंघे पर और दाहिना बाएं पर टिकाते हैं।

पालदेव—बुन्देलखण्डकी एक चौबे-जागीर। इसका भूपरिमाण २८ वर्गमील है। १८१२ ई०में यह स्थान कालिञ्जर चौबेवंशके प्रधान दरयावसिंहको अर्पण किया गया था। फिलहाल इसके अधिकारी हैं चौबे जगत्राय। इन्होंने १९०३ ई०में रायबहादुरकी उपाधि ग्रहण की है। यहांकी जनसंख्या लगभग ४५९८ है।

इसमें १८ ग्राम लगते हैं और राजस्व प्रायः १६००) रु० है।

पालन (सं० क्लो०) पाल्यतेऽनेनेति पालि-ल्युट्। (करणाधि- करणयोश्च। पा ३।३।११७) १ सद्यःप्रसूता गाभीका दुग्ध, तुरतको व्याई गायका दूध। २ रक्षण, भरण पोषण, परवरिश। ३ सङ्गीतविशेष, लड़कोंको बहलानेका गीत। ४ अनुकूल आचरण द्वारा किसो बातको रक्षा या निर्वाह भंग न करना, न टालना।

पालनपुर—बम्बईप्रदेशके अन्तर्गत कितने हो देशीय छोटे छोटे राज्य। ये राज्य बम्बई-गवर्मेण्टके अधीन अक्षा० २३° २५´ से २४° ४१´ उ० तथा देशा० ७१° १६´ से ७२° ४६´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ८००० वर्ग- मील है। पालनपुर एजेन्सोके उत्तरमें उदयपुर और शिरोही राज्य, पूर्वमें माहीकान्थ एजेन्सी और पश्चिममें कच्छोपसागर है। एजेन्सोका अधिकांश बालुकामय और वृक्षादिशून्य है। शिरोहीराज्यके निकटवर्त्ती भूभाग पहाड़ और जङ्गलसे परिपूर्ण है। इस स्थानका जासर पहाड़ समुद्रपृष्ठसे ३५०० फुट ऊंचा है। एजेन्सोमें बनास और सरस्वतीनदो सबसे बड़ो है। बनासनदो देवरङ्गसे निकल कर कच्छोपसागरमें गिरती है। वर्षा- काल छोड़ कर और सभो समय बनासनदीमें बहुत कम पानी रहता है। सरस्वतोनदो हिन्दुओंके निकट पवित्र समझो जाती है। यह नदो माहोकान्थ प्रदेशस्थ पहाड़- से निकली है। पहाड़के निकट नदोको गहराई बहुत कम है और कुछ दूर जा कर बालुकागर्भमें सूख गई है। पालनपुर एजेन्सीमें गर्मीके समय इतनी गर्मी पड़ती है कि दिनको कोई भो घरसे निकल नहीं सकता। वर्षाकालमें यहांकी आबहवा खराब हो जातो है। उस समय ज्वरका प्रकोप भो अधिक देखा जाता है। पालनपुर एजेन्सोके मध्य निम्नलिखित १३ देशीय राज्य हैं, यथा—पालनपुर, राधनपुर, थराड़, वाउ, सुईगांव, देवदर, भावर, तेरवारा, काङ्करेज, बराई, शम्भलपुर, मेरवारा और चड़चाट। ये सब क्षुद्र राज्य नाममात्रके दो भागोंमें विभक्त हैं। प्रथमोक्त सात उत्तरभागमें सिनियाके पालिटिकल एजेण्टके कर्त्तृत्वाधीन और शेषोक्त ६ जूनियाके पालिटिकल एजेण्टके अधीन हैं। इन तेरह राज्योंमें पालनपुर, राधनपुर, बराई और तेर- वारा ये चार मुसलमानो राज्य हैं। भावर और काङ्क- रेजके राजा कोलिजातिके हैं तथा अवशिष्ट राज्योंके राजा राजपूत जातिके हैं। इन सब राजाओंके बोच जब कभो विवाद उपस्थित होता है, तब पालिटिकल सुपरिण्टेण्डेण्ट द्वारा उसको निष्पत्ति होती है। १८०५ ई०में पालनपुरके राजाने वृटिश-गवर्मेण्टको प्रधानता स्वोकार को। अन्यान्य छोटे छोटे राज्यों पर जब सिन्धु- देशीय दस्युगण उत्पात मचाने लगे तब वहांके राजाने अङ्गरेजोंसे सहायता मांगो और तभोसे वे वृटिश-गव- र्मेण्टको प्रधानता स्वीकार और राज्यरक्षार्थ व्ययभार- वहन करते आ रहे हैं। पालनपुर एजेन्सोके प्रधान नगर पालनपुर, राधननगर, शामो और फोसा हैं। इन सब राज्योंमें रुई, धान, मकई, गेहूं, ईख आदिको खेतो होती है। यहांसे सोरा, जो, रुई, चम्पाफूलके इतर, गो और घृत आदिको रफ्तनो होती है। आमदनोमें मद्य, तमाकू, फल, गरममसाला, गुड़, चोनी, कपास और रेशमो वस्त्र प्रधान है। रफ्तानो द्रव्य मारवाड़, कच्छ, काठियावाड़, गुजरात और बम्बई भेजे जाते हैं। यहां बहुत बढ़िया घोड़ा कम दाममें मिलता है। पालन- पुर और राधनपुर राजाको दीवानो और फौजदारो विचारका पूरा अधिकार है। अवशिष्ट ११ राज्योंमें कारकुन नियुक्त होते हैं जो सामान्य सामान्य फौज- दारो मुकदमेका विचार करते हैं। अन्यान्य मुकदमेका फैसला पालिटिकल एजेण्ट द्वारा होता है। पालनपुर और राधनपुरमें विद्यालय हैं। इन सब स्थानोंके मुकदमेका पुनर्विचार स्थानोय राजा हो करते हैं। पालनपुर एजेन्सोको वार्षिक आय १२४८५००) रु०को है जिनमेंसे बड़ोदाके गायकवाड़को ५५१२७) रु० करमें देने पड़ते हैं। अल्पवयस्क राजपुत्रोंके शिक्षार्थ पालन- पुरमें विद्यालय स्थापित हुआ है। १८१६ ई०में यहां घोर दुर्भिक्ष पड़ा था जिससे अनेकों मनुष्य करालकाल- के गालमें पतित हुए थे। उस समय अनेक ग्राम जङ्गल- में परिणत हो गये थे।

पालनपुर—१ पालनपुर एजेन्सोके अन्तर्गत एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २३° २७´ से २४° ४१´ उ० तथा देशा०

७१° ५१´ से ७२° ४५´ पू०के मध्य अवस्थित है। इस राज्यमें १ शहर और ४४१ ग्राम लगते हैं। राज्यका दक्षिण और पूर्व भाग जङ्गलसे परिपूर्ण है। समस्त ग्राम विच्छिन्न भावमें अवस्थित और बहुत छोटे छोटे हैं। यहांको पर्वतमाला पर मवेशी आदि चरते हैं। उत्तर-पश्चिमभाग समतल और बालुकामय है। दक्षिण और पूर्वभागकी जमीन उर्वरा है जिससे वहां काफी अनाज उत्पन्न होता है। आबहवा साधारणतः शुष्क और उष्ण है। ज्वरका प्रादुर्भाव अत्यन्त अधिक है और वृष्टिपात २६ इञ्च है। उत्पन्न द्रव्योंमें गेहूं, धान और ईख प्रधान है। पालनपुरके राजा अफगान वंशोद्भूत हैं। सम्राट् हुमायूंके शासनकालमें इनके पूर्वपुरुषोंने बिहार पर अधिकार किया था। सम्राट् अकबरके समय गजनी खाँने अफगानोंको परास्त कर दीवानकी उपाधि पाई और पीछे वे लाहोरके शासनकर्त्ता बनाये गये। १६८२ ई०में उनके वंशधरने सम्राट् औरङ्गजेबसे पालनपुर आदि अनेक स्थान जागीरमें प्राप्त किये। किन्तु मारवाड़के राठोरोंका प्रताप सह्य न कर सकनेके कारण उन लोगोंने पालनपुरमें आश्रय ग्रहण किया। १८१२ ई०में जब फिरोज खाँ अपनी सिन्धिसिमासे मारे गये, तब उनके पुत्र फते खांने अङ्गरेजोंसे सहायता मांगी। तदनुसार अङ्गरेजोंने जनरल हलमिसको उनकी सहायतामें भेजा। सहायता पा कर फतेखाँ १८१३ ई०में राजसिंहासन पर बैठे। पालनपुरके राजा वृटिश-गवर्मेण्टकी ओरसे ११ सलामी तोपें पाते हैं। राज्यकी आय कुल ४४५०००) रु०की है जिनमेंसे ४३७५० रु० बड़ौदाके गायकवाड़को करमें देने पड़ते हैं। राज्यकी सैन्यसंख्या २८४ अश्वारोही और ६८७ पदातिक है।

२ पालनपुर राज्यका शहर और राजधानी। यह अक्षा० २४° ८´ उ० और देशा० ७२° २८´ पू०, दिशासे १८ मील पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या करीब २१०८२ है। हिन्दूकी संख्या सबसे अधिक है। नगर स्वास्थ्यकर नहीं है और ज्वरका अधिक प्रकोप देखा जाता है। यहां चिकित्सालय, डाकघर, तारघर, विद्यालय और साधारण पाठागार हैं।

पालना (हिं० क्रि०) १ पालन करना, भोजन वस्त्र आदि दे कर जीवनरक्षा करना। २ पशु पक्षी आदिको रखना। ३ अनुकूल आचरण द्वारा किसी बातकी रक्षा या निर्वाह करना, न टालना। (पु०) ४ रस्सियोंके सहारे टंगा हुआ एक प्रकारका गहरा खटोला या बिस्तरा। इस पर बच्चोंको सुला कर इधरसे उधर झुलाते हैं।

पालनीका (सं० स्त्री०) त्रायमाना लता।

पालनीय (सं० त्रि०) पाल-अनीयर्। पालनयोग्य।

पालमकोटा—मन्द्राजप्रदेशके तिन्नेवेली जिलेका एक नगर और तालुकका सदर। यह अक्षा० ८° ४४´ उ० और देशा० ७७° ४५´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ३९५४५ है जिनमेंसे हिन्दूकी संख्या ज्यादा है। पहले यहां एक दुर्ग था जो अभी भग्नावस्थामें पड़ा है। यहांका जलवायु स्वास्थ्यकर होनेके कारण साहब कर्मचारी यहां आ कर रहते हैं। यहां १८६६ ई०में म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई है। राजस्व तीस हजार रुपयेसे अधिक है।

पालमनेर—१ मन्द्राजप्रदेशके अन्तर्गत उत्तर अर्काट जिलेका एक तालुक वा उपविभाग। भूपरिमाण ४४७ वर्गमील और आय ५८४३०) रु०की है। यह तालुक समुद्रपृष्ठसे २००० फुट उच्च महिसुर अधित्यकामें अवस्थित है। टीपू सुलतानके राज्यविभागके समय वृटिश गवर्मेण्टको यह तालुक मिला था।

२ उक्त तालुकका सदर। यह अक्षा० १३° ११´ ३० उ० और देशा० ७८° ४७´ १७´´ पू०, चित्तूरसे २६ मील पश्चिम मागली गिरिसङ्कटके ऊपरी भागमें अवस्थित है। यहांका जलवायु अत्यन्त स्वास्थ्यकर है। नीलगिरि ग्रीष्मावासमें परिणत होनेके पहले मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके अंगरेज कर्मचारी वायुसेवनके लिये यहां आते थे। यह एक वाणिज्यप्रधान स्थान है।

पालमपुर—पञ्जाबके अन्तर्गत काङ्गरा जिलेका एक नगर। यह अक्षा० ३१° ४८´ से ३२° २८´ उ० तथा देशा० ७६° २३´ से ७७° २´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २४४३ वर्गमील है। १८६८ ई०में गवर्मेण्टने मध्य-एशियाके साथ वाणिज्यकी उन्नति करनेके लिये यहां वार्षिक मेलेकी सृष्टि की, लेकिन अन्तमें मध्य-

एशिया बहुत कम लोग आने लगे जिससे मेला उठा दिया गया।

पालयितृ (सं॰ त्रि॰) पाल-णिच्-तृच्, पालनकर्त्ता, पालक।

पालराजवंश—गौड़ और मगधका एक पराक्रान्त बौद्ध-राजवंश। साढ़े तीन सौ वर्षसे अधिक समय तक इस वंशने गौड़ और मगधको राजलक्ष्मीका उपभोग किया था। उनका कीर्त्तिकलाप और धर्मप्रभाव गौड़ और मगधवासीके हृदयमें आज भी प्रस्तररेखावत् अङ्कित है। अनेक शिलालिपियों, ताम्र शासनों और वङ्गोय कवियोंकी कवितामालामें उनकी प्रभावमहिमा घोषणा करती है। किन्तु बड़े ही दुःखका विषय है, कि इस प्रथितवंशका धारावाहिक इतिहास आज तक भी सङ्कलित नहीं हुआ है। सुप्रसिद्ध मुसलमान ऐतिहासिक अबुलफजल और भोटदेशीय पण्डित बौद्ध-इतिहासलेखक तारानाथ बहुत दिन हुए, इस पाल-राजवंशका संक्षिप्त इतिहास लिख गये हैं। किन्तु वह उक्त बौद्धराजाओंकी सामयिक लिपिके साथ बिलकुल पृथक् रहनेके कारण अबुलफजल वा तारानाथका विवरण एकान्त प्रवादमूलक और काल्पनिक समझा जाता है। उनके विवरणसे प्रकृत ऐतिहासिक तत्त्वका पता लगाना भी असम्भव है*। एशियाटिक सोसाइटी स्थापनके तीन वर्ष पहले १७८१ ई॰में विलकिन्स साहबने सबसे पहले देवपालका ताम्रशासन और गरुड़-स्तम्भ लिपिका अस्फुट परिचय प्रकाशित किया‡। उसी दिनसे पालराजाओंके प्रकृत तथ्य संग्रहकी भावी आशाका सूत्रपात हुआ। पीछे प्रत्नतत्त्वविदोंके अध्यवसायसे इस राजवंशीय अनेक राजाओंकी शिलालिपि और ताम्रशासन आविष्कृत हुए हैं और हो रहे हैं। पूर्वाविष्कृत सामयिक शासनलिपिकी सहायतासे राजा राजेन्द्रलाल मित्र, प्रत्नतत्त्ववित् कनिंहम डाक्टर होर्नलो और अन्तमें अध्यापक किलहोर्नने इस राजवंशका प्रकृत इतिहास संग्रह करनेकी चेष्टा की है, किन्तु दुःखका विषय है, कि किसीके साथ किसीका मत नहीं मिलता। उनके मतका सारांश नीचे दिया जाता है:—

राजाराजेन्द्रलालके मतसे (१)— पालराजाओंके नाम और राज्यकाल।	कनिंहमके मतसे (२)— पालराजाओंके नाम और राज्यकाल।
१। गोपाल ८५५ ई॰।	गोपाल ८१५ ई॰।
२। धर्मपाल ८७५ ,,।	धर्मपाल ८३० ,,।
३। देवपाल ८९५ ,,।	देवपाल ८५० ,,।
४। विग्रहपाल (१म) ९१५।	राज्यपाल ८८१ ,,।
५। नारायणपाल ९३५ ,,।	शूरपाल ८८७ ,,।
६। राज्यपाल ९५५ ,,।	विग्रहपाल १म ९०० ,,
७। —पाल ९७५ ,,।	नारायणपाल ९१५ ,,।
८। विग्रहपाल २य ९९५ ,,।	राज्यपाल ९४ ,,।

*

अबुलफजलके मतसे पालराजाओंके नाम	भोटदेशीय तारानाथके मतसे। पालराजाओंके नाम
१ भूपाल।	१ गोपाल।
२ धीरपाल।	२ देवपाल।
३ देवपाल।	३ रसोपाल।
४ भूपतिपाल।	४ धर्मपाल।
५ धनपत्पाल।	५ मसुरक्षित।
६ विज्जेनपाल।	६ वनपाल।
७ जयपाल।	७ महीपाल।
८ राजपाल।	८ महापाल।
९ भोजपाल।	९ समुपाल।
१० जगत्पाल।	१० श्रेष्ठपाल।
	११ चनकपाल।
	१२ नैरपाल।
	१३ नयपाल।
	१४ अमरपाल।
	१५ हस्तिपाल।
	१६ क्षान्तिपाल।
	१७ रामपाल।
	१८ यक्षपाल।

‡ Asiatic Researches, VOl. 1.

(१) Mitra's Indo-Aryans, Vol. II. p. 262.

(२) Cunningham's Archaeological Survey Reports, Vol. III. p. 181 and XV. p. 131.

९। महीपाल १०१५ ई०। ९९५ ई०।
१०। नयपाल १०४० ,,। विग्रहपाल ३य ९९० ,,।
११। विग्रहपाल (३य) महीपाल १०१५ ,,।
१२। नयपाल १०४० ,,।
१३। विग्रहपाल ३य १०५५ ,,।
१४। महेन्द्रपाल १०८५ ,,।
१५। रामपाल १११० ,,।
१६। मदनपाल ११३५ ,,।
१७। गोविन्दपाल ११६१ ,,।
१८। इन्द्रद्युम्न १२०० ,,।

राजेन्द्रलालके मतसे ३य विग्रहपालके बाद दो एक राजाओंने राज्य किया। पीछे पालराजलक्ष्मी सेन-राजाओंकी हाथ लगी। प्रत्नतत्त्ववित् कनिंहमके मतसे गोपाल मगधके राजा होने पर भी धर्मपाल ही यथार्थमें वारेन्द्र पर अधिकार कर समस्त गौड़के अधीश्वर हुए थे। प्रथमतः ८३० ई०में धर्मपालका राज्यप्राप्तिकाल स्वीकार करने पर भी फिर अन्तमें उन्होंने कहा है, कि धर्मपाल यथार्थमें ८३१ ई०को राजसिंहासन पर बैठे थे। इसी प्रकार उन्होंने मदनपालका अभिषेककाल ११२६ ई०में स्थिर किया है। उनके मतसे मुसलमान-आगमन पर ही पालवंशीय शेष राजा इन्द्रद्युम्न राज्य खो बैठे थे।

पुराविद् होर्नलो साहब उपरोक्त किसी भी मतको समीचीन नहीं बतलाते। उनका कहना है, कि पालराजाओंने गहरवाड़ राजपूतवंशमें जन्म लिया था। जिस वंशमें कन्नौजके शेष राजा जयचन्द्र उत्पन्न हुए थे, उसी वंशमें पालराजाओंका जन्म हुआ है। इस सम्बन्धमें उन्होंने गौड़ और कन्नौजके राजाओंकी एक तालिका दी है और उसके साथ साथ पालराजाओंका कालनिर्णय भी किया है। उक्त तालिका इस प्रकार है—
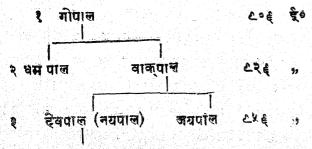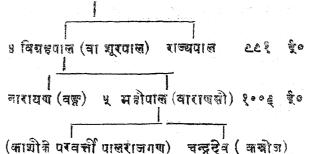
अन्तमें उन्होंने लिखा है, कि १०वीं और ११वीं शताब्दी-में गौड़ वाराणसी तथा पटना ये तीनों स्थान बौद्ध पाल-राजाओंके अधिकारभुक्त थे। किन्तु नारायणपालके समय वङ्गमें ब्राह्मणशासन तथा बिहार और अयोध्यामें बौद्धशासन जारी था। महीपालके बाद बिहार तद्वंशीय बौद्धराजाओंके शासनाधीन रहने पर भी महीपाल-के पुत्र चन्द्रदेवके समयमें कान्यकुब्ज ब्राह्मणके शासना-धीन हुआ था। उन्होंने यह भी लिखा है, कि उक्त नारा-यणपालके समयमें ही वङ्ग सेनवंशके अधीन हुआ।

उपरोक्त प्रत्नतत्त्वविदोंके बाद पालराजाओंका प्रकृत इतिहास और आविर्भावकालका निर्णय करनेमें किसी ने उतना यत्न नहीं किया। केवल अध्यापक किलहोर्न साहबने महीपालदेवके ताम्रशासनके पाठोद्धारकालमें पालराजाओंकी इस प्रकार संशोधित तालिका प्रकाशित की है—

सम्प्रति दिनाजपुरके मनहलिग्राममें आविष्कृत मदनपालदेवके नवाविष्कृत ताम्रशासन, गरुड़स्तम्भ-लिपिकी मूलप्रतिलिपि और देवपालदेवके ताम्रशासन-के वर्त्तमानपाठसे जो तालिका पाई गई है, वह ऊपरकी ४ तालिकाओंसे बहुत कुछ मिलती जुलती है और यही आपातत: पालवंशकी प्रकृष्ट तालिका समझी जा सकती है। यथा—

१म गोपाल देव ।
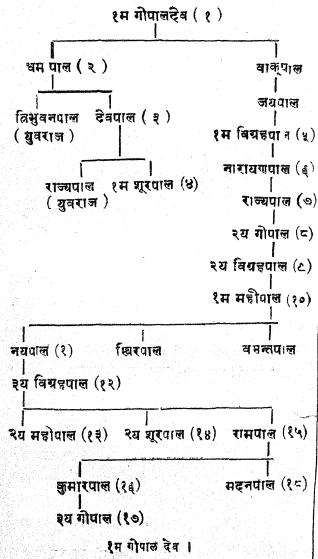
धर्मपालके ताम्रशासनमें लिखा है, कि गोपालदेवके पिताका नाम वप्यट और पितामहका दयितविष्णु था। प्रजावर्गके यत्नसे गोपालने राज्यलक्ष्मी प्राप्त की। गयाकी महाबोधि और नालन्दासे इनके समयकी खोदित शिलालिपि पाई गई है। इन दो स्थानोंकी लिपिसे अनुमान किया जाता है, कि गोपाल मगधके राजा थे और उनकी उपाधि 'परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' थी। तिब्बतीय तारानाथके मतसे ओदन्तपुरी (वर्त्तमान विहार)-के निकटवर्त्ती नालन्दा नामक स्थानमें गोपालने एक बौद्धदेवालय बनवाया था और भद्रराजदुहिता देद्देदेवीका पाणिग्रहण किया था। देद्देदेवीके गर्भसे सुप्रसिद्ध धर्मपालका जन्म हुआ।

धर्मपालदेव ।

पालराजाओंके ताम्रशासनमें लिखित गोपालके बाद उनके पुत्र धर्मपाल मगधके सिंहासन पर बैठे। पाटलीपुत्र नगरमें उनकी राजधानी थी और पौण्ड्रवर्द्धनभुक्ति तकका स्थान उनके अधिकारमें था। भोजमत्स्यादि राजाओंके आग्रह और पञ्चालवासियोंके हर्षसे उन्होंने कान्यकुब्जपतिको स्वराज्यमें अभिषिक्त किया था।

भागलपुरसे प्राप्त नारायणपालदेवके ताम्रशासनसे भी जाना जाता है, कि धर्मपालने इन्द्रराज आदि अरातिवर्गको परास्त कर चक्रायुध नामक राजाको फिरसे महोदय (वा कान्यकुब्ज) राज्यलक्ष्मी प्रदान की थी।

धर्मपालके साथ कान्यकुब्जपतिका युद्धप्रसङ्ग नाना जैन-ग्रन्थोंसे भी जाना जाता है। बप्पभट्टिसूरिचरित, राजशेखरके प्रबन्धकोष और प्रभाचन्द्रसूरिरचित प्रभावकचरितमें लिखा है, कि पाटलीपुरमें शूरपाल (बप्पभट्टि)-का जन्म हुआ। ८०७ सम्वत् (७५१ ई०)-में उनको दीक्षा हुई। इस समय कान्यकुब्जमें यशोवर्मा राज्य करते थे। उनकी मृत्युके बाद उनके लड़के आमराज कान्यकुब्जके सिंहासन पर बैठे। उनके साथ गौड़पति धर्मकी घोर शत्रुता थी। शूरपाल पहले आमराजकी सभामें रहते थे, किन्तु किसी कारण विरक्त हो कर वे लक्ष्मणावती नगरीमें चले गये। इस समय कवि वाक्पति धर्मके प्रधान सभापण्डित समझे जाते थे। वाक्पतिकी सहायतासे शूरपाल गौड़राजसभामें महासम्मानके साथ राजगुरुरूपमें रहने लगा। कुछ दिन बाद आमराजने बड़ी चतुराईसे बप्पभट्टि शूरपालको अपनी सभामें बुलाया। इस पर गौड़राज धर्म बड़े ही दुःखित हुए। उन्होंने आमराजको यह कहला भेजा कि, 'हम दोनोंमें बहुत दिनोंसे शत्रुता चली आ रही है। अब वृथा शस्त्रयुद्ध न कर हमलोग शास्त्रयुद्धमें प्रवृत्त

हो जाय, यही अच्छा है। मेरे राज्यमें वर्द्धनकुञ्जर नामक एक बौद्धपण्डित आये हुए हैं। आपके कोई भी सभा-पण्डित आ कर उनके साथ शास्त्रसंग्राम कर सकते हैं। इस संग्राममें जिनके पक्षकी हार होगी, वे बिना किसी आपत्तिके अपना राज्य छोड़ देंगे।' इस प्रकार धर्मके आह्वान पर आमराजके पक्षसे वप्पभट्टि आ कर विचार-संग्राममें प्रवृत्त हुए। वाक्पतिके कौशलसे वप्पभट्टिकी ही जीत हुई। धर्म अपना राज्य कन्नौजाधिपतिके हाथ समर्पण करनेको बाध्य हुए। किन्तु आमराजने वप्पभट्टिके आदेशसे धर्मराजको गौड़ राज्य प्रत्यर्पण किया। ८९० विक्रम सम्वत् (८३४ ई०)को मगधतीर्थमें आमराजकी मृत्यु हुई।

जैन हरिवंशमें लिखा है, कि ७०५ शकाब्दको उत्तर देशमें इन्द्रायुध नामक एक राजा राज्य करते थे। जैनग्रन्थमें जो समय इन्द्रायुधका राज्यकाल निर्णित हुआ है, प्रभावकचरितादि नाना जैनग्रन्थोंसे ठीक उसी समयमें आमराजका आधिपत्यकाल होता है। इन्द्रायुध ही नारायणपालके ताम्रशासनमें इन्द्रराज नामसे वर्णित हुए हैं। धर्मपाल एक कट्टर बौद्ध और कन्नौजपति आमराज जैनधर्मानुरागी थे।।

वप्पभट्टिसूरिचरित, प्रभावकचरित और प्रबन्ध कोषमें और भी लिखा है, कि आमराजके पुत्र दन्दुकका पाटलीपुत्र नगरमें विवाह हुआ था। वे पितृद्वेषी और नितान्त अधार्मिक थे। उनके आधिपत्यकालमें उनके छोटे लड़के भोजदेवने अपने ननिहाल पाटलीपुत्रमें आश्रय लिया था। पालराजके ताम्रशासनमें लिखा है, कि धर्मपालने पिता चक्रायुधको पुनः कान्यकुब्ज राज्य दान किया था, इस पर पञ्चालवासिगण बड़े प्रसन्न हुए थे। डाक्टर भण्डारकरने स्वीकार किया है, कि प्रायः ७५३ ई०में कन्नौजराज यशोवर्मका देहान्त हुआ था।

इधर जैनग्रन्थानुसार ८३४ ई०में उनके लड़के आमराजकी मृत्यु हुई। इस हिसाबसे आमराजका राज्यकाल प्रायः ८१ वर्ष होता है, पर यह सम्भवपर प्रतीत नहीं होता। जैन हरिवंशके मतसे इन्द्रायुध ७८३ ई०को उत्तरदेशमें राज्य करते थे। इससे स्वीकार करना पड़ेगा, कि उनके पहले आमराज राजा हुए थे और उनके पिताने प्राणत्याग किया था। इस प्रकार ७७५ ई०में आमराजका राज्यारोहणकाल अनुमान किया जा सकता है। जैनग्रन्थमें उनके पुत्र दन्दुकको पितृद्वेषिता और अधार्मिकताका प्रसङ्ग रहनेके कारण अधिक सम्भव है, कि यही दन्दुक पितृराज्य छीन कर इन्द्रायुध वा इन्द्रराजके नामसे प्रसिद्ध थे। पीछे धर्मपालने इस दुर्वृत्त इन्द्रराजको परास्त कर उनके पिता चक्रायुध (आमराज)को फिरसे कन्नौजराज्यमें प्रतिष्ठित किया। सम्भवतः यह घटना ७८३ ई०के कुछ बाद लगभग ७९० ई०में घटी होगी। दन्दुकके राज्यकालमें उनके लड़के भोजदेवने जो पाटलीपुत्रस्थ मातुलालयमें आश्रय ग्रहण किया था, इस प्रसङ्गसे जाना जाता है, कि उस समय भी पाटलीपुत्रमें पाल राजधानी थी।

उपरोक्त विवरणसे यही जाना जा सकता है, कि धर्मपाल देव प्रायः ७८५ ई०में पाटलीपुत्रके सिंहासन पर अभिषिक्त हुए और ७९० ई०के बाद उन्होंने पौण्ड्रवर्द्धनादि पर अधिकार जमाया।

खालिमपुरसे आविष्कृत ताम्रशासनमें उनका ३२ राज्याङ्क निर्दिष्ट है। इस हिसाबसे उन्होंने ३२ वर्षसे अधिक समय प्रायः ४० वर्ष तक राज्यशासन किया था, यह स्वीकार किया जा सकता है।

दीपङ्कर श्रीज्ञानके इतिवृत्तलेखक भोटदेशीय पण्डितके मतसे राजा धर्मपालने विक्रमशिला नामक विहार स्थापित किया और १०८ बौद्धाचार्यके भरण-पोषणके लिये बहुत-सी जमीन दान की। यहां चार सम्प्रदायोंके प्रायः २०० भिक्षु व्याकरण, दर्शन और वलिकर्मकी शिक्षा पाते थे।

धर्मपाल स्वयं बौद्ध होने पर भी ब्राह्मणोंका यथेष्ट आदर करते थे। वारेन्द्रकुलपञ्जीमें लिखा है, कि उन्होंने भट्टनारायणके पुत्र आदिगांई ओझाको गङ्गाके किनारे धमसार नामक स्थान दान किया था। धर्मपालके ताम्रशासनसे भी जाना जाता है, कि महासामन्ताधिपति नारायण वर्माके अनुरोधसे पौण्ड्रवर्द्धनभुक्तिके अन्तर्गत ४ ग्राम नारायणपूजकने लाट देशके ब्राह्मणोंको प्रदान किये थे।

पाल राजाओंके अधिकांश ताम्रशासनमें धर्मपालके एक कनिष्ठ भाई गुणवान् और वीर्यवान् वाक्पाल-देवका तथा धर्मपालके ताम्रशासनमें उनके पुत्र युवराज त्रिभुवनपालका उल्लेख है। किन्तु वाक्पाल और त्रिभुवनपालने किसी समय राज्य किया था वा नहीं, उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

देवपाल देव।

धर्मपालके बाद देवपालको हम लोग पालराजासन पर अभिषिक्त देखते हैं। देवपालके मुङ्गेरसे प्राप्त (३३ सम्वत् अङ्कित) ताम्रशासनमें लिखा है, कि धर्मपालने राष्ट्रकूटराज परबलकी कन्या रन्नादेवीका पाणिग्रहण किया। उसी राजकन्याके गर्भसे देवपाल उत्पन्न हुए। महीपाल आदि परवर्त्ती पालराजाओंके ताम्रशासनमें लिखा है, कि वाक्पालसे जयशील जयपालने जन्मग्रहण किया। श्रीकृष्णचरित द्वारा जिस प्रकार जगत् पवित्र होता है, उसी प्रकार इस जयपाल-चरितसे जगत् पवित्रीकृत हुआ था। इन्होंने धर्मद्वेष्टाओं पर शासन किया था और शत्रुओंको परास्त कर पूर्वज देवपालको अशेष भुवन राज्यसुखका भोग कराया था।

'पूर्वज' देवपालका उल्लेख देख कर पूर्वोक्त प्रत्नतत्त्वविदोंने देवपालको जयपालके सहोदर और वाक्पालके पुत्र बतलाया है; किन्तु देवपाल जयपालके सहोदर नहीं थे, यह देवपालके ताम्रशासनसे ही जाना जाता है। देवपाल जयपालसे बड़े थे, इसी कारण 'पूर्वज' शब्द व्यवहृत हुआ है।

देवपालने जो अपने चचेरे भाई जयपालकी सहायतासे राज्यलक्ष्मीका उपभोग किया था, सो नहीं; उन्हींके ताम्रशासनसे जाना जाता है, कि वे एक महादिग्विजयी राजा थे। गङ्गासे सेतुबन्ध तक उनका राज्य विस्तृत था। नारायणपालके ताम्रशासनमें लिखा है, कि देवपालके आदेशसे जयपालने जयकी आशा छोड़ दी। उनका नाम सुनते ही उत्कलाधिपति अपना पुर छोड़ कर बहुत दूर भाग गये थे। प्राग्ज्योतिषाधिपतिने उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर सामन्तोंके साथ अधीनता स्वीकार की थी।

किन्तु बदालसे आविष्कृत गरुड़स्तम्भलिपिमें लिखा है, कि शाण्डिल्य-वंशीय मन्त्री दर्भपाणिके नीतिकौशलसे राजा देवपालने रेवासे हिमालय तक और अस्तगिरिसे उदयगिरि वरुणालय समुद्र तक सभी राज्य करद किये थे। देवपाल स्वयं सौगत होने पर भी ब्राह्मण साधारणकी विशेष भक्ति श्रद्धा करते थे। राढ़ीय-ब्राह्मण-कुलाचार्य हरिमिश्रने लिखा है—

देववलसे देवपाल गौड़राज्यमें प्रबल राजा हुए थे। वे प्रज्ञा, वाक्य, विवेक और शीलविनयसम्पन्न, गुणाशय तथा श्रीमान् थे। कुलधर्ममें भी इनकी विशेष श्रद्धा थी।

देवपालके समयमें उत्कीर्ण घोषरावांके शिलाफलकमें लिखा है, कि उत्तरापथके नगरहार नामक स्थानसे सर्वशास्त्रविद् वीरदेवका देवपालने यथेष्ट सम्मान किया था। वीरदेव पालराजके अनुग्रहसे बहुत दिनों तक यशोवर्मपुर-विहारमें रहे थे।

प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहमने उक्त यशोवर्मपुरको वर्त्तमान विहार बतलाया है, किन्तु जहांसे वह शिलाफलक पाया गया है, वही घोषरावां ग्राम यशोवर्मपुर समझा जाता है। वाक्पतिके गौड़वधकाव्यमें लिखा है, कि कान्यकुब्जपति यशोवर्मदेवने गौड़ जीत कर किसी गौड़पतिका विनाश किया था। बहुत सम्भव है, कि वही यशोवर्मदेव अपने नाम पर नगर बसा कर गौड़विजयकीर्त्तिकी रक्षा कर गये हैं। पहिले ही लिखा जा चुका है, कि जैनग्रन्थानुसार ८३४ ई०में यशोवर्मपुत्र आमराज (चक्रायुध)-ने मगधतीर्थमें प्राणत्याग किया। वीरदेवकी शिलालिपिमें 'यशोवर्मपुर' पवित्र तीर्थरूपमें वर्णित हुआ है। उनके समयमें यहां वज्रासनविहार बनाया गया था। इससे मालूम पड़ता है, कि देवपालके राजत्वकालमें आमराजने पितृस्थापित यशोवर्मपुरमें अथवा जैनतीर्थ पावापुरीमें प्राणत्याग किया था।

१म शूरपाल।

मुङ्गेरसे प्राप्त देवपालके ताम्रशासनमें लिखा है, कि देवपालने अपने धार्मिकपुत्र राज्यपालको सिंहासन पर अभिषिक्त किया। किन्तु तत्परवर्त्ती किसी ताम्रशासन वा शिलालिपिमें युवराज राज्यपालका राजत्वप्रसङ्ग नहीं

है। इससे अनुमान किया जाता है कि देवपालके राजत्व कालमें ही राज्यपाल कालग्रासमें पतित हुए। जो कुछ हो, बदालको गरुड़स्तम्भलिपिमें देवपालके बाद ही गौड़ाधिप शूरपालका नाम पाया जाता है, किन्तु शिलालिपिमें शूरपाल किनके पुत्र थे, वह स्पष्ट नहीं लिखा है। देवपालके बाद ही इनका प्रसङ्ग रहनेके कारण किसी किसीने इन्हें देवपालका पुत्र अथवा १म विग्रहपालका नामान्तर माना है। पहला अनुमान बहुत कुछ सम्भवपर है, किन्तु दूसरे अनुमानकी कोई सार्थकता नहीं। इस हिसाबसे हम लोग शूरपालको देवपालके वंशधर वा उत्तराधिकारी मानते हैं।

गरुड़स्तम्भलिपिमें लिखा है, कि शूरपाल मानो साक्षात् इन्द्र और प्रजाप्रिय थे। उनके उपदेष्टा वा मन्त्री का नाम केदारमिश्र था। केदारमिश्रके ऊपर निर्भर करके गौड़राजने उत्कल, हूण, द्राविड़ और गुर्जरराजका दर्पचूर्ण किया था। इन्होंने कबसे कब तक राज्य किया, ठीक ठीक मालूम नहीं।

१म विग्रहपाल।

इसके बाद हम लोग जयपालके पुत्र १म विग्रहपाल को गौड़मगधके सिंहासन पर अभिषिक्त देखते हैं। नारायणपालके ताम्रशासनमें लिखा है, कि उन्होंने अजातशत्रुके जैसा जन्मग्रहण किया था। हैहयराजकन्या इनकी स्त्री थी जिसके गर्भसे सुप्रसिद्ध नारायणपालदेवका जन्म हुआ।

विहारसे ७ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित घोषरावांमें वज्रासनविहार है जिसके ध्वंसावशेषसे उक्त विग्रहपालकी अनेक रौप्यमुद्राएं आविष्कृत हुई हैं। बड़े ही आश्चर्यका विषय है, कि उनकी मुद्रा पारस्यके अग्न्युपासक-शासनीय वा शकराजवंशकी मुद्राके सदृश है। मुद्राके ऊपर दाहिनो बगलमें अस्पष्ट राजमुण्ड है और उसके साथ 'श्री' एवं नीचे 'विग्रह' ये सब शब्द लिखे हुए हैं। मुद्राकी पीठ पर शासनीयोंकी अग्निपूजाकी वेदी और दोनों पार्श्वमें होता तथा अध्वर्युकी मूर्त्ति है। बीचमें 'म' अक्षर खुदा हुआ है जो सम्भवतः विग्रहपालका राज्य मगधनिर्देशक है।

कनिंहम और अपरापर प्रत्नतत्त्वविदोंने ९१० ई०में विग्रहपालका राज्यारोहणकाल स्थिर किया है। किन्तु युक्तप्रदेशके सोयडोणी ग्रामसे आविष्कृत शिलालिपिसे जाना जाता है, कि ९६५ सम्वतमें (९०८ ई०में) 'विग्रहपालद्रम्म' वा विग्रहपालकी मुद्रा विशेष प्रचलित थी। इस हिसाबसे विग्रहपाल उससे भी पहले राज्य करते थे, इसमें सन्देह नहीं।

विग्रहपालकी मुद्रा।

नारायणपालदेव।

१म विग्रहपालके बाद उनके लड़के नारायणपालने पालसिंहासन अलङ्कृत किया। भागलपुरसे प्राप्त उनके ताम्रशासनसे जाना जाता है, कि वे एक परमधार्मिक, परम दयालु, प्रजाप्रिय और महावीर थे। तत्परवर्त्ती अन्य पालराजाओंके ताम्रशासनमें लिखा है, कि उन्होंने अपने चरित्र द्वारा न्यायानुसार प्राप्त धर्मासन अलङ्कृत किया है। उनके प्रधान मन्त्री पूर्वोक्त केदारमिश्रके पुत्र गुरवमिश्र थे। गुरवमिश्रने ही बदालमें गरुड़स्तम्भ स्थापित किया था।

राज्यपाल।

नारायणपालके बाद राज्यपाल सिंहासन पर बैठे। मदनपालके ताम्रशासनमें लिखा है, कि उन्होंने समुद्रके मूलदेशको तरह अति गभीरगर्भ युक्तजलाशय और कुलपर्वतके समान प्रकोष्ठविशिष्ट देवालयकी प्रतिष्ठा की और इसीसे इनका नाम तमाम फैल गया था। उन्होंने राष्ट्रकूटराज तुङ्गकी कन्या भाग्यदेवीका पाणिग्रहण किया। भाग्यदेवीके गर्भसे २य गोपालदेव उत्पन्न हुए। राज्यपालने कब तक राज्य किया, ठीक ठीक मालूम नहीं।

२य गोपालदेव।

राज्यपालके बाद उनके लड़के २य गोपाल राज्याधिकारी हुए। महीपाल और मदनपालके ताम्रशासनसे मालूम होता है, कि गोपालने बहुत दिन तक राज्यभोग किया था।

२य विग्रहपालदेव ।

२य गोपालके बाद उनके लड़के २य विग्र पालने आधिपत्य लाभ किया । मदनपालके ताम्रशासनमें लिखा है कि, इनके पिता अतिशय प्रिय, निर्मलचरित्र, सुप्रशिक्षित और दाता थे ।

१म महिपालदेव ।

२य विग्रहपालके बाद उनके लड़के १म महीपाल राजगद्दी पर बैठे । मदनपालके ताम्रशासनमें लिखा है, कि इन्होंने राज्य पा कर शत्रुओंको विनाश किया। तथा निज बाहुबलसे अनधिकृत और विलुप्त राज्यका उद्धार किया ।

१०८३ सम्वत्में उत्कीर्ण १म महीपालदेवकी शिला-लिपिसे जाना जाता है, कि उनका राज्य वाराणसी तक विस्तृत था । उन्होंने तथा उनके दोनों लड़के स्थिर-पाल और वसन्तपालने काशीमें ईशान और चित्रघण्टादि सैकड़ों कीर्त्तिरत्न स्थापित किये ।

राजेन्द्रचोलके दिग्विजयज्ञापक तिरुमलयकी गिरि-लिपिसे जाना जाता है, कि उस समय गौड़ और वङ्ग-देश छोटे छोटे स्वाधीन वा सामन्तराज्योंमें विभक्त था । इस समय दण्डभुक्ति वा दण्डबिहार (वर्त्तमान बिहार) में धर्मपाल, वङ्गमें गोविन्द चन्द्र, दक्षिणराढ़में रणशूर और उत्तरराढ़में महीपाल राज्य करते थे । राजेन्द्र-चोलने महीपाल आदि उक्त राजाओंको परास्त किया था । प्रायः ९५४ शक (१०३२ ई०)-में महीपालको पराजय हुई । प्रत्नतत्त्ववित् कनिंहमने महीपालको ४८ वर्षा-ङ्कित खोदित लिपि पाई है । तारानाथके मतसे मही-पालने ५२ वर्ष राज्य किया । घोषरावांके वज्रासन-विहारके ध्वंसावशेषसे महीपालदेवको मुद्रा पाई गई है । उनके राजत्वकालमें सुप्रसिद्ध बौद्धतान्त्रिक दीप-ङ्कर श्रीज्ञानने ख्याति लाभ की । महीपालने उन्हें विक्रमशिला बुलाया और वहांके सर्वप्रधान आचार्य-पद पर अभिषिक्त किया । उस समय विक्रमशिलामें ५७ प्रधान पण्डित रहते थे । मुर्शिदाबाद आदि नाना स्थानोंमें महीपालप्रतिष्ठित अनेक पुष्करिणी हैं । मुर्शिदा-बादके अन्तर्गत गैसाबादके निकट 'महीपाल' नामक एक अति प्राचीन ग्राम है । प्रवाद है, कि यहां महीपालकी राजधानी थी । तिब्बतके बौद्ध ऐतिहासिकों-के मतसे गौड़ाधिप महीपाल भोटराज ला-लामाके सम-सामयिक थे ।

नयपालदेव ।

१म महीपालके बाद नयपालदेव राजा हुए । मदनपालके ताम्रशासनमें ये 'बहुगुणशाली' स्निग्धप्रकृति और अनुरागके आधार माने गये हैं । श्रीज्ञान-अतीशके जीवनवृत्त-लेखक भोटदेशीय पण्डितोंके मतसे नयपाल-राज दीपङ्कर श्रीज्ञानको प्रधान इष्टदेव समझते थे और अनेक बार विक्रमशिला जा कर उनके पदतलमें बैठ परमार्थ उपदेश सुनते थे । नयपालके उत्साह और श्रीज्ञानके यत्नसे इस समय तान्त्रिक मतका गौड़में तमाम प्रचार हो गया था । तिब्बत आदि दूर दूर देशोंसे सैकड़ों पण्डित तान्त्रिक उपदेश ग्रहण करनेके लिये विक्रमशिला आते थे । क्या हिन्दू, क्या बौद्ध सभी तान्त्रिक तारादेवी (शक्ति)-की उपासना और तान्त्रिक गूढ़ साधनमें आग्रह प्रकाश करते थे । श्रीज्ञानके जीवनीलेखकने लिखा है, कि इस समय कार्णराजके साथ मगधाधिप नयपालका घोरतर संग्राम चल रहा था । पहले मगध-सैन्यदलने ही शत्रुके हाथसे अपनी पराजय स्वीकार की । शत्रुगण राजधानी तक अग्र-सर हुए थे । अन्तमें मगधाधिपकी विजय हुई । श्रीज्ञानके विशेष यत्नसे सन्धि स्थापित हुई और दोनों राजा मित्रतापाशमें आबद्ध हुए । श्रीज्ञानने नयपालको जो सत्र सारगर्भ उपदेश दिया, वह श्रीज्ञानके 'विमल-रत्न-लेखन' नामक ग्रन्थमें लिखा है । यह ग्रन्थ तिब्बतीय भाषामें अनुवादित हुआ है ।

नयपालके राजत्वकालमें श्रीज्ञानने तिब्बतकी यात्रा की और वहीं १०५३ ई०में इस लोकका परित्याग किया ।

३य विग्रहपालदेव ।

नयपालके बाद ताम्रशासनमें ३य विग्रहपालका नाम पाया जाता है । दिनाजपुरके अन्तर्गत आमगाछसे उक्त ३य विग्रहपालका ताम्रशासन पाया गया है । मदनपालके ताम्रशासनमें लिखा है—'जो सर्वदा स्मररिपुकी पूजामें अनुरक्त थे, जिनका बाहुबल किसीसे

किया नहीं था, अत्यन्त युद्धकारी शत्रुकुलके जो काल-स्वरूप थे, जो चारों वर्णके आश्रय थे, जिनकी यशोराशिसे दिङ्मण्डल धवलित हुआ था, उन्हींके ताम्रशासनसे जाना जाता है, कि बौद्धधर्मावलम्बी होने पर भी उन्होंने वेदान्त-न्याय-मीमांसा आदि शास्त्रविद् ब्राह्मणको शासन द्वारा ग्राम दान किया है।

२य महीपालदेव।

मदनपालके ताम्रशासनसे जाना जाता है, कि विग्रहपालके बाद उनके लड़के २य महीपाल राजसिंहासन पर बैठे। धीरे धीरे इनकी कीर्त्ति तमाम फैल गई। दिनाजपुर और रङ्गपुरके नाना स्थानोंमें द्वितीय महीपालप्रतिष्ठित ग्राम और सैकड़ों सरोवर आज भी शोभा पाते हैं। चैतन्यदेवके आविर्भावके पूर्व पर्यन्त इस महीपालकी कीर्त्तिगाथा बङ्गालमें घर घर गाई जाती थी। रङ्गपुर अञ्चलमें प्रवाद है, कि राजा होनेके कुछ वर्ष बाद ही महीपालने संन्यासधर्म ग्रहण किया।

२य शूरपालदेव।

२य महीपालके बाद ३य शूरपालने राज्यलक्ष्मी प्राप्त की। मदनपालके ताम्रशासनके मतानुसार शूरपाल इन्द्रके समान महिमाशाली, प्रतापश्रीके आधार, अद्वितीय, महासाहसी और गुणस्वरूप थे। इनके राज्यकालके १२वें वर्षमें उत्कीर्ण एक शिलालिपि पाई गई है।

रामपालदेव।

२य शूरपालके बाद उनके भाई रामपाल सिंहासन पर बैठे। उक्त ताम्रशासनमें लिखा है—उनके पिता जगत्पालनमें निरत रहते थे। शैशवकालसे ही वे अपने तेज द्वारा शत्रुओंको चमत्कृत करते आ रहे थे। गौड़ और बङ्गके नाना स्थानोंमें रामपालकी कीर्त्ति देखी जाती है। विक्रमपुरके अन्तर्गत रामपाल नामक प्राचीन ग्राम इन्हीं रामपालके नामकी घोषणा करता है। यह स्थान मदनपालके ताम्रशासन और सेकशुभोदया नामक ग्रन्थमें रामावती नगरी नामसे प्रसिद्ध है। कामरूपपति वैद्यदेवके ताम्रशासनमें लिखा है, कि पालराज रामपालने मिथिलाधिपति भीमको विनाश किया था। रामपालचरित नामक एक ऐतिहासिक काव्य पाया गया है जिसमें रामपालदेवकी कीर्त्तिगाथा वर्णित है। उनके मन्त्रीका नाम था योगदेव। सेकशुभोदयामें लिखा है, कि रामपालकी मृत्युके बाद विजयसेन राजा हुए।

कुमारपालदेव।

रामपालके बाद उनके लड़के कुमारपाल राज्याधिकारी हुए। इनके राजत्वकालमें सेनवंशप्रदीप महाराज विजयसेनका अभ्युदय हुआ। इस समय गौड़राज्यका उत्तरांश पालराजके अधिकारभुक्त होने पर भी गौड़का दक्षिणांश उत्तरराढ़प्रदेश सेनराजाके अधिकारमें था। कुमारपालको निज पितृराज्यरक्षाके लिये सेनराजके साथ विपुल संग्राम करना पड़ा था। मदनपालके ताम्रशासनमें लिखा है, कि उन्होंने अपने आयतभुजवीर्य द्वारा बलवान् शत्रुओंका यशःसागर पान किया था और नरेन्द्रवधुओंके कपोल पर कर्पूरके पत्र और मकरीके चित्रण विषयमें विपुल कीर्त्ति लाभ की थी। देवपाड़ाके शिलाफलकमें लिखा है, कि विजयसेनने गौड़पतिको आक्रमण करनेके लिये उनका पीछा किया था और कामरूप पतिको मार भगाया था।

वैद्यदेवके ताम्रशासनमें लिखा है, कि कुमारपालने अपने मन्त्री बोधिदेवके पुत्र (पूर्वोक्त योगदेवके पौत्र) वैद्यदेवको तिग्म्यदेवके स्थान पर प्राच्यप्रदेशका शासन करनेके लिये नियुक्त किया। बहुत सम्भव है, कि प्राग्‌ज्योतिष (कामरूप) प्रदेशके शासनकर्त्ता तिग्म्यदेव जब विजयसेनसे परास्त हुए, तब उन पर विरक्त हो कर पालराज कुमारपालने उनके स्थान पर वैद्यदेवको नियुक्त किया होगा।

३य गोपालदेव।

कुमारपालके बाद उनके लड़के ३य गोपालदेव राजा हुए। शैशवकालसे ही इनकी प्रतिभा चमकती थी। राजा हो कर इन्होंने खूब नाम कमा लिया।

मदनपालदेव।

३य गोपालके बाद उनके पितृव्य और रामपालके पुत्र मदनपाल सिंहासन पर बैठे। उनके ताम्रशासनसे जाना जाता है, कि रामावती (वर्त्तमान रामपाल)

नगरमें उनकी राजधानी थी। उनकी प्रिय महिषी चित्रमतिकाने पण्डितसे महाभारतका आद्योपान्त पाठ सुना था। मदनपालने उक्त भारतपाठकी दक्षिणामें पण्डित भूषण वटेश्वर स्वामीको कोष्ठगिरि नामक ग्राम दान किया था। बुद्धोपासक हो कर भी वे ब्राह्मण पण्डितों-का यथेष्ट आदर करते थे। गयासे ले कर रामपाल तक उनके अधिकारमें था। लेकिन इस समय गौड़ और वङ्गका समस्त दक्षिणांश सेनराजाओंके दखलमें था।

महेन्द्रपालदेव।

मदनपालके बाद ठीक कौन राजा पालसिंहासन पर अभिषिक्त हुए थे, किसी शिलालिपि वा ताम्रशासन-से उसका प्रमाण नहीं मिलता। पर हां, गुणरिया और रामगयासे महेन्द्रपालदेवको ८म और ८म वर्षमें उत्कीर्ण शिलालिपिके आकारसे ऐसा अनुमान किया जाता है, कि उन्होंने मदनपालके समयमें अथवा उस-के कुछ समय बाद ही राज्यलाभ किया।

गोविन्दपालदेव।

नाना प्राचीन हस्तलिपि और शिलालिपिमें गोविन्द-पालको पालवंशीय शेष राजा बतलाया है। अध्यापक बेण्डल साहबने लिखा है, कि मुसलमानोंने ११९८ ई०में शेष बौद्धराज गोविन्दपालको परास्त कर मगध पर अधिकार जमाया। इसीसे उनके परवर्त्तीकालमें लिखित बौद्ध हस्तलिपियोंमें "गोविन्दपालदेवानां विनष्टराज्ये" ऐसा लिखा है। किन्तु तवकात्-ई-नासिरी आदि सामयिक मुसलमानी इतिहासमें अथवा गोविन्दपालके विनष्ट राज्यमें लिखित शिलालिपिसे ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे जाना जाय कि कौन बौद्धराज मुसलमानसे परास्त हुए थे।

गयाकी एक चतुर्भुजा कुमारीकी मूर्त्तिके पाद-देशमें ऐसा लिखा है।

"ओं स्वस्ति नमो भगवते वासुदेवाय। ब्रह्मणो द्वितीय-परार्द्धे बराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतिमे युगे कलौ पूर्वसन्ध्यायां सम्वत् १२३२ विकारिसम्वत्सरे श्रीगोविन्दपाल-देवगतराज्ये चतुर्दशसम्वत्सरे गयायां।"

उक्त शिलालिपिसे मालूम होता है, कि विकारी-सम्व-त्सर १२३२ सम्वत् (११७५ ई०)में गोविन्दपालदेवका राज्य गत होनेके बाद १४ वां वर्ष बीत गया था। इस हिसाबसे १२१८ सम्वत् (११६१ ई०)में उनका राज्य विगत वा शेष हुआ था। मछेरामकी गिरिलिपिमें लिखा है, कि १२२५ सम्वत् वा ११६८ ई०में कन्नौजके राठोर राजाओंने पालराज्यभुक्त कारुषदेश पर अधिकार किया। इससे ज्ञात होता है, कि गोविन्दपालकी नाम-निर्देशक जिन सब लिपियोंमें 'अतीत', 'गत' वा 'विनष्ट' है, वह पालराजलक्ष्मीके अन्तर्धानका वर्षज्ञापक है, इसमें सन्देह नहीं। जिस प्रकार वर्त्तमान पारसी लोग पारस्यके शासन-वंशीय शेष राजा यजदेजादके राज्य विलुप्त होनेके बादसे 'अब्दका' निर्णय करते आ रहे हैं, उसी प्रकार बौद्धगण मगधके बौद्धपालराजके राज्य लुप्त होनेके बादसे 'गोविन्दपालदेवके अतीताब्द'-का निर्णय कर गये हैं। वरेन्द्रभूमि अधिक काल तक पालराजाओंके अधिकारभुक्त थी। अधिक सम्भव है कि बल्लालसेनने ११६१ ई०में शेष पालराज गोविन्दपाल-को परास्त कर मिथिलासे समस्त उत्तर गौड़ वा वरेन्द्र भूमि अपने अधिकारमें कर ली थी। वरेन्द्रभूमि पर अधि-कार करनेके बाद बल्लालसेन वारेन्द्र ब्राह्मणोंके मध्य कौलिन्यमर्यादा संस्थापनमें समर्थ हुए थे। जो कुछ हो, ११६१ ई०में गोविन्दपालसे ही पालगौरवरवि अस्त हुआ, इसमें सन्देह नहीं।

उपरोक्त विवरणसे पालराजाओंकी राज्यकाल-निर्दे-शक एक तालिका इस प्रकार स्थिर हो सकती है—

राजाओंके नाम		राज्यकाल।
१। गोपाल	(मगधमें)	७७५-७८५ ई०
२। धर्मपाल	(मगध और गौड़में)	७८५-८३० ,,
३। देवपाल	,,	८३०-८६५ ,,
४। शूरपाल १म	,,	८६५-८७५ ,,
५। विग्रहपाल १म	,,	८७५-९०० ,,
६। नारायणपाल	,,	९००-९२५ ,,
७। राज्यपाल	,,	९२५-९५० ,,
८। गोपाल २य	,,	९५०-९७० ,,
९। विग्रहपाल २य	,,	९७०-९८० ,,
१०। महीपाल १म	,,	९८०-१०३६ ,,
११। नयपाल	,,	१०३६-१०५३ ,,

१२। विग्रहपाल ३य (मगध और गौड़में) १०५३-१०६८ ई०
१३। महीपाल २य „ १०६८-१०७८ „
१४। शूरपाल २य „ १०७८-१०८१ „
१५। रामपाल (मगध और उत्तरगौड़में) १०८१-११०३ „
१६। कुमारपाल „ ११०३-१११० „
१७। गोपाल ३य „ १११०-१११५ „
१८। मदनपाल „ १११५-११३० „
१९। महेन्द्रपाल „ ११३०—११४० „
२०। गोविन्दपाल „ ११४०—११६१ „

वैद्यदेवके ताम्रशासनमें लिखा है, कि पालराजगण 'मिहिर' वा सूर्यवंशीय थे।

पालल (सं॰ त्रि॰) पललस्य तिलचूर्णस्य विकारः अण्। तिलचूर्ण-पिष्टक।

पाललहरा—उड़ीसाके मध्य एक देशीय राज्य। यह अक्षा॰ २१° ८´ से २१° ४१´ और देशा॰ ८५° ३´ से ८५° २४´ पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४५२ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः २२३५१ है। इस राज्यके उत्तरमें छोटानागपुरका बोनाई राज्य, पूर्वमें केवञ्झर राज्य, दक्षिणमें तालचेर और पश्चिममें बामरा राज्य है। इसके उत्तरमें बहुतसे पहाड़ हैं जिनमेंसे मलयगिरि सर्वप्रधान है। यहांके जंगलमें सर्वोत्कृष्ट शालवृक्ष पाये जाते हैं। इस राज्यमें शस्यादिकी उपज संतोषजनक नहीं है। लाहरमें स्थानीय राजाका वास है। पहले यह राज्य केवञ्झर राज्यके अधीन था। किन्तु एक समय केवञ्झरके राजाने पाललहराके राजाको स्त्रीवेशमें नाच करनेको बाध्य किया, इस पर दोनोंमें विवाद खड़ा हुआ। फलतः पाललहरा राज्य केवञ्झर राजाकी अधीनतासे मुक्त हो गया। यहांके राजा अभी अङ्गरेज गवर्मेण्टको जो कर देते हैं, वह केवञ्झर राजाके नामसे जमा कर लिया जाता है। १८६७ ई॰में जब केवञ्झरमें विद्रोह उपस्थित हुआ था, तब पाललहराके राजाने अंगरेजोंकी अच्छी सहायता की थी। इस कारण वृटिश-गवर्मेण्टने इन्हें 'राजा' बहादुरकी उपाधि दी है। राजाके ६७ सैन्य और ५७ पुलिस कर्मचारी हैं।

पालवंश (सं॰ पु॰) पालराजवंश देखो।

पालव (हिं॰ पु॰) १ पल्लव, पत्ता। २ कोमल पत्ता।

पालवणिज् (सं॰ पु॰) पाले कन्या रक्षणे वणिक्। कन्यापाल।

पालहल्ली—महिसुर-राज्यके मध्य महिसुर जिलेका एक ग्राम। यह कावेरी नदीके किनारे अवस्थित है। पहले यह स्थान चीनीके कारखानेके लिये प्रसिद्ध था। अभी यह व्यवसाय प्रायः उठ गया है।

पाला (हिं॰ पु॰) १ हवामें मिश्रित वाष्पके अत्यन्त सूक्ष्म अणुओंकी तह जो पृथ्वीके बहुत ठंढा हो जाने पर उस पर सफेद सफेद जम जाती है, हिम। २ ठंढसे ठोस जमा हुआ पानी, बर्फ। ३ ठंढ, सरदी। ४ व्यवहार करनेका संयोग, वास्ता, साबिका। ५ दस पांच आदमियोंके उठने बैठनेकी जगह। ६ प्रधान स्थान, पीठ, सदर मुकाम। ७ कबड्डीके खेलमें हदके निशानके लिये उठाया हुआ मट्टीका धुस। ८ सीमा निर्दिष्ट करनेके लिये मट्टीका उठाया हुआ मेड़ या छोटा भीटा। ९ अनाज भरनेका बड़ा बरतन। यह प्रायः कच्ची मिट्टीका गोल दीवारके रूपमें होता है। १० कुश्ती लड़ने या कसरत करनेकी जगह, अखाड़ा।

पालागन (हि॰ स्त्री॰) प्रणाम, दण्डवत, नमस्कार।

पालागल (सं॰ पु॰) १ दूत। २ मिथ्या संवाद-दाता।

पालान (हि॰ पु॰) पलान देखो।

पालार—महिसुर राज्यसे निर्गत एक नदी। इसकी लम्बाई २५० मील है। पैनी और चेयर इसकी प्रधान शाखा है। इस नदीके किनारे कृष्णपुर, वनियेम्नदी, अम्बुर, वेलूर, आर्काट, चिङ्गलपतन आदि नगर बसे हुए हैं। इस नदीसे नहर काट कर जल लाया जाता है। तामिल भाषामें पाला शब्दका अर्थ दुग्धनदी है।

पालाश (सं॰ क्ली॰) पलाशस्येदमिति अण्। १ तमालपत्र, तेजपत्ता। पलाशस्य विकारः अवयवो वा अण्। २ पलाशावयव, आषाढ़दण्ड। ३ तद्विकार। पलाशः तद्वर्णं अस्त्यस्येति अण्। (पु॰) ४ हरिद्वर्ण। (त्रि॰) ५ हरिद्वर्णविशिष्ट, हरे रंगका।

पालाशक (सं॰ त्रि॰) पलाशस्य अदूरदेशादि वराहादित्वात् कक्। (पा ४।२।८०) पलाश सन्निकृष्ट देशादि।

पालाशखण्ड (सं० पु०) १ मगधदेश। २ पलाशसमूह।

पालाशि (सं० पु०) पलाशगोत्रप्रवर ऋषिभेद।

पालाशी (सं० पु०) क्षीरीवृक्ष, खिरनी।

पालाश्य (सं० त्रि०) पलाशेन निर्वृत्तं सङ्काशादित्वात् ण्य। पलाशनिर्वृत्त, पलाश द्वारा निर्वृत्त।

पालिंहिर (सं० पु०) मण्डलिसर्पभेद।

पालि—प्राचीनकालमें एशिया महादेशमें जो सब भाषाएं प्रचलित थीं 'पालि' उन्हींको अन्यतम है। पश्चिममें वल्किया (वाह्लिक)से पूर्वमें कम्बोज (कम्बोडिया) तक एक समय यह भाषा प्रचलित थी, प्राचीन शिला-लिपिसे उसका यथेष्ट प्रमाण मिलता है। कहते हैं, कि ईसाजन्मके पहले ६ठी शताब्दीमें बुद्धदेव और उनके शिष्यगण इसी भाषामें धर्मप्रचार करते थे। अभी धर्मशास्त्रशिक्षाके लिये हम लोग जिस प्रकार संस्कृत भाषाकी आलोचना किया करते हैं, सिंहल, ब्रह्म, श्याम आदि प्रदेशोंके पण्डितगण भी उसी प्रकार पालिभाषाकी आलोचना करते हैं।

पालिभाषाके वर्णोंकी संख्या ४१ है, मतान्तरसे ३८। इनमेंसे ८ स्वर और ३१ व्यञ्जनवर्ण हैं।

स्वरवर्ण यथा,—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ।

व्यञ्जनवर्ण यथा,—

क, ख, ग, घ, ङ।
च, छ, ज, झ, ञ।
ट, ठ, ड, ढ, ण।
त, थ, द, ध, न।
प, फ, ब, भ, म।
य, र, ल, व।
स, ह।

ये सब वर्ण कण्ठज, तालुज, ओष्ठज, मूर्द्धज, दन्तज, कण्ठतालुज, कण्ठोष्ठज दन्तोष्ठज इत्यादि भेदसे आठ श्रेणियोंमें विभक्त हैं।

पालिभाषामें पुं, स्त्री और क्लीव ये तीन लिङ्ग; उत्तम, मध्यम और प्रथम ये तीन पुरुष; एक और बहु ये दो वचन तथा पठमा (कर्त्ता), कम्म (कर्म), करण, सम्पदान (सम्प्रदान), अपादान, सामी (सम्बन्ध), ओकासो वा आधारो (अधिकरण) और आलपन (सम्बोधन) ये आठ कारक विद्यमान हैं।

दो पदार्थोंके मध्य एकका उत्कर्ष जाननेमें विशेषणके उत्तर "तर" वा "इयो" प्रत्यय और बहुतोंके मध्य एकका उत्कर्ष जाननेमें "तम" वा "इट्ठ" प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे—पापतरो, पापियो; पापतमो, पापिट्ठो।

सभी धातु भवादि (भ्वादि), रुधादि, दिवादि, स्वादि, कियदि (क्र्यादि), तनादि और चुरवादि (चुरादि) इन्हीं सात गणोंमें विभक्त हैं। धातुविशेषके उत्तर पर-स्सपद (परस्मैपद) वा अत्तनोपद (आत्मनेपद) लगाया जाता है।

वत्तमाना (वर्त्तमाना), हीयत्तनी (ह्यस्तनी), परोक्खा (परोक्षा) अज्जतनी, (अद्यतनी), भविस्सन्ती (भविष्यत्) और कालातिपत्ति इन छः प्रकारकी विभ-क्तियोंकी सहायतासे कालका व्यवहार निष्पन्न होता है।

सभी धातु कत्तृ, कर्म और भाववाच्यमें व्यवहृत होते हैं। जैसे— था (स्था) धातुका भाववाच्यमें थीयते ऐसा रूप होगा।

पौनःपुन्यार्थमें धातुका द्वित्व होता है, जैसे लप् धातुसे लालप्पति और गम् धातुसे जंगमति इत्यादि। इच्छार्थमें सन्नन्त और प्रेरणार्थमें णिजन्त धातुका प्रयोग होता है।

सन्नन्त यथा,—पिवासति (पा), बुभुक्खति (भुज्)।

णिजन्त यथा—गमयति, गमेति, गच्छापेति गच्छा-पयति (गम्)।

विशेष्य शब्दसे नाम धातुकी उत्पत्ति होती है, जैसे—पुत्तीयति (पुत्त, पुत्र)।

संस्कृतमें जहां शतृ प्रत्ययका प्रयोग होता है, पालि-भाषामें वहां अत् और अन्त तथा जहां शानच् प्रत्ययका प्रयोग होता है, वहां मान और आन लगाया जाता है। जैसे—गच्छन्तो इत्यादि।

अतीत कालबोधक संस्कृत "क्त" प्रत्ययके बदलेमें पालिभाषामें "त" और "न" प्रयुक्त होता है, जैसे कतो (कृतः), दिन्नो (दत्तः) इत्यादि। फिर "त" और "न"-के उत्तर "वत्" वा "वन्त" प्रत्ययका योग करनेसे ही "क्तवतु" प्रत्ययका कार्य निष्पन्न होता है। जैसे हुत-वन्तो इत्यादि।

विध्यर्थमें य, तव्य (तव्व, तब्बं) और अनीय प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे—भव्वो इत्यादि।

अनन्तर अर्थमें त्वा, य, त्वान और तून प्रत्यय लगता है; जैसे—अतिसित्वा (अतिसृत्वा), निच्छेय्य (निश्चाय्य), कत्वान, कातुन (कृत्वा)।

निमित्तार्थमें तुं, तवे और तुये लगाया जाता है। जैसे—गन्तुं, सोतवे (श्रोतुं), गणेतुये (गणयितुं) इत्यादि।

तो (तस्), त्र, था, दा, धा, सो (शस्) इत्यादि तद्धितप्रत्यय विभिन्न अर्थोंमें प्रयुक्त होते हैं; जैसे—ततो (ततः), तत्र, तथा, कदा, एकधा, बहुसो (बहुशः)।

अति, अधि, अनु, अप, अपि, अभि, अव, आ, उ (उद्), उप, दु, निर्, नि, प (प्र), पटि (प्रति), परा, परि, वि, सम् और सु ये बीस विसर्ग हैं।

पालिभाषामें द्वन्द्व, तप्पुरिस (तत्पुरुष), कम्मधारय (कर्मधारय), दिगु (द्विगु), अव्ययोभाव, बहुब्बीहि (बहुव्रीहि) इत्यादि समास विद्यमान हैं।

पालिभाषामें जो सब व्याकरण देखनेमें आते हैं उनमेंसे कुछके नाम नीचे दिये जाते हैं;—

१। कच्चायन (कात्यायनका) सुसन्धिकप्पम् (सुगन्धिकल्प)।

२। मोग्गल्लायन (मौद्गल्यायन) प्रणीत व्याकरण।

३। रूपसिद्धिव्याकरण।

४। चूलनीति व्याकरण।

५। शब्दनीति व्याकरण।

६। पदसाधनी व्याकरण।

७। बालावतार व्याकरण।

इन सब व्याकरणोंमें कच्चायनो (कात्यायन)-प्रणीत सुगन्धिकल्प व्याकरण ही प्राचीनतम है। अब यह जानना चाहिये, कि कात्यायन कब उत्पन्न हुए। उनके व्याकरणकी व्याख्या लिखते समय टीकाकारोंने मुक्तकण्ठसे कहा है, कि कात्यायन भगवान् बुद्धके अन्यतम शिष्य थे। बुद्धदेव जिस भाषामें धर्मोपदेश दिया करते थे, वह कालक्रमसे रूपान्तरित और दुर्बोध हो जायगी, इस आशङ्कासे उन्होंने अपने शिष्य कात्यायनको उस भाषाकी रीति और नियम सूत्राकारमें अङ्कित करके एक व्याकरण लिखनेका आदेश किया।

सम्बन्ध निरूपण करनेके लिये बहुतेरे पण्डितोंने अपनी प्रतिभाका परिचय दिया है। किसीका कहना है, कि संस्कृतभाषासे पालिभाषाकी उत्पत्ति हुई है। फिर [illegible] वर्ष पहले जैन[illegible] तथा ५४२ [illegible] संस्कृतभाषा[illegible]ग किया। अतएव कात्यायन ईसा-जन्मके पहले छठी शताब्दीमें विद्यमान थे।

सिंहल, ब्रह्म और श्यामदेशके प्रवाद और धर्मग्रन्थसे जाना जाता है, कि बुद्धनिर्वाणके बाद ४५० वर्ष तक पण्डितगण कात्यायन व्याकरणको पुरुषानुक्रमसे मुखस्थ करते आ रहे थे। ईसाजन्मके ८३ वर्ष पहले वह व्याकरण सबसे पहले लिपिबद्ध हुआ।

कात्यायनव्याकरणके द्वितीय अध्यायके तृतीय परिच्छेदके १७वें सूत्रमें निम्नलिखित वाक्य दृष्टान्तस्वरूप उद्धृत हुए हैं।

"क्व गतोसि त्वम् देवानम् पिय तिस्स!"

हे देवताओंके प्रिय तिष्य! तुम कहां गये हो?

पूर्वोक्त महावंश-ग्रन्थ पढ़नेसे मालूम होता है, कि 'देवानम् पियतिस्स' (तिष्य) ३०७ ई०सन्के पहले सिंहलमें राज्यशासन करते थे। अशोकराजके पुत्र महेन्द्र इस समय बौद्धधर्मप्रचारके लिये मगधसे सिंहलमें तिस्स (तिष्य) राजाके समीप गये थे।

उद्धृत वाक्यमें "देवानम् पिय तिस्स" इस नामका उल्लेख देख कर बहुतेरे अनुमान कर सकते हैं, कि तिस्स अर्थात् ईसा-जन्मके पहले ३०७ ई०के परवर्त्तीकालमें कात्यायन प्रादुर्भूत हुए थे। किन्तु यह प्रमाण सङ्गत-सा प्रतीत नहीं होता। क्योंकि पहले ही कहा जा चुका है, कि आदिकल्पमें कात्यायनका व्याकरण लोगोंके स्मृतिपथ पर विचरण करता था। ईसा-जन्मके ८३ वर्ष पहले यह व्याकरण पहले पहल लिपिबद्ध हुआ। उसके पहले ही किसी पण्डितने उदाहरणके बहाने उद्धृत वाक्य प्रक्षिप्त किया था।

बुद्धघोष ईसा-जन्मके ३८७ वर्ष पहले कात्यायन-व्याकरण ले कर ब्रह्मदेश गये। वहां उन्होंने ब्राह्मीभाषामें उसका अनुवाद किया। इस समय पालिभाषामें उन्होंने एक टीका भी रची थी।

परलोकगत डाक्टर बुह्लरके मतसे कात्यायनप्रणीत

पालाशखण्ड (सं० पु०) १ मगधदेश। २ पलाशसमूह
पालाशि (सं० पु०) पलाशगोत्रप्रवर ऋषिभेद।
पालाशी (सं० पु०) चोरीवृक्ष, खिरनी। ...काल
(पालाश्य (सं० त्रि अशोकराजनिर्मित एक विहारमें कच्चायनप्रणीत एक धर्मग्रन्थ देखा था। वह ग्रन्थ बुद्धजन्मके २०० वर्ष पीछे रचा गया था, यही चीन-परिव्राजकका मत है। उनका कहना है, कि बुद्धदेव ईसा-जन्मके पहले ८५० ई०में उत्पन्न हुए थे। सुतरां वह धर्मग्रन्थ ईसा-जन्मके पहले ५५० ई०में रचा गया था। जो कुछ हो, उस धर्मग्रन्थके प्रणेता कच्चायनो और पालिव्याकरणके रचयिता कात्यायन ये दोनों एक व्यक्ति थे वा नहीं, इसका पता नहीं चलता।

किसी किसीका कहना है, कि पालिव्याकरणके प्रणेता कात्यायनो और प्राकृतप्रकाश, (प्राकृत व्याकरण)-के रचयिता वररुचि एक ही व्यक्ति थे। बृहत्कथाके वृत्तान्तसे पता चलता है, कि वररुचिका दूसरा नाम कात्यायन था। ये नौ रत्नोंमें अन्यतम रत्न थे, अतएव कालिदासके समसामयिक थे। किन्तु पालिसाहित्यकी सम्यक् आलोचना करनेसे यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि वररुचि और कात्यायन एक व्यक्ति नहीं थे। बृहत्कथामें जिस कात्यायन-वररुचिका उल्लेख है, वे पालिव्याकरणके प्रणेता नहीं हैं।

कात्यायनके पालिव्याकरणमें निम्नलिखित विषय आलोचित हुए हैं;—

१म	अध्यायमें	वर्ण और सन्धि।
२य	„	शब्दरूप।
३य	„	कारक।
४र्थ	„	समास।
५म	„	तद्धित प्रत्यय।
६ष्ठ	„	धातु।
७म	„	तिङन्तप्रत्यय।
८म	„	उणादिप्रत्यय।

(१) डाक्टर बुह्लरका यह मत समीचीन नहीं है, क्योंकि पाणिनिने कहीं भी कात्यायनका नाम वा उनका पालिव्याकरण उद्धृत नहीं किया। पाणिनिके समय पालिभाषा प्रचलित ही नहीं हुई थी। पाणिनि देखो।

द्वितीय व्याकरणके रचयिता मोग्गल्लायन (मौद्गल्यायण) ११५८-११८६ ई०में जीवित थे।

अभी पालिग्रन्थ भारतवर्षमें नागरी अक्षरमें, सिंहलमें सिंहली अक्षरमें, ब्रह्मदेशमें ब्राह्मी अक्षरमें, श्यामदेशमें काम्बोज वा चम्पा अक्षरमें और यूरोपमें नागरी तथा रोमक अक्षरमें मुद्रित होते हैं। प्राचीनकालमें पालिभाषाके ग्रन्थ किस अक्षरमें लिखे जाते थे। अच्छी तरह मालूम नहीं। लेकिन इतना तो अवश्य कह सकते हैं, कि यह नागरी, सिंहली वा ब्राह्मी अक्षरमें नहीं लिखे जाते थे। उड़ीसा, विहार, इलाहाबाद, दिल्ली, पञ्जाब, गुजरात, अफगानिस्तान आदि प्रदेशोंमें जो सब खोदित लिपियां आविष्कृत हुई हैं उनमें ईसा-जन्मके पूर्व ३री और ४थी शताब्दीके पालि अक्षरका निदर्शन पाया जाता है। बक्त्रियाके राजा ईसाजन्मके पहले दूसरी शताब्दीमें बक्त्रिया राज्यमें व्यवहृत मुद्राके एक पार्श्व पर पालि अक्षर और दूसरे पर ग्रीक अक्षर सन्निवेशित करते थे। जिस समय अलेकसन्दर (Alexander)ने भारत पर आक्रमण किया, उसके बहुत पहले करनन्द नामक राजा मगधमें राज्य करते थे। करनन्दके समयकी अनेक मुद्राएं पाई गई हैं जिनके एक पार्श्व पर भारतीय पालि और दूसरे पर सेमितिक पालि अक्षर खोदित हैं। निनिभोनगरके इष्टकफलकमें जिस प्रकार फिनिकीय अक्षर खोदित थे, यह सेमितिक-पालि अक्षर भी उसी प्रकारके हैं। आसुर (Assyrian) अक्षरके 'र' आदिके साथ प्रस्तरफलकखोदित 'र' आदि पालि अक्षरोंका सौसादृश्य देख कर बहुतेरे अनुमान करते हैं, कि पालि अक्षर कोलरूपी लिपिसे निकले हैं। जो कुछ हो, यह निःसन्देह कहा जा सकता है, कि दो हजार वर्ष पहले काम्बोजसे काबुल पर्यन्त समस्त प्रदेशोंमें पालि अक्षर व्यवहृत होते थे। वर्णमाला देखो।

प्राचीन ताम्रशासन, प्रस्तरलिपि, इष्टकलिपि आदिका पर्यवेक्षण करके पाश्चात्य पण्डितोंने सिद्धान्त किया है, कि प्राचीन पालि अक्षर सरलरेखा, त्रिभुज, समकोणी चतुर्भुज, वृत्त और विन्दु आदिकी आकृतिके सदृश थे। फिर कण्ठ, तालू, ओष्ठ, दन्त इत्यादिके साथ भी इन सब आकृतियोंका यथासम्भव सामञ्जस्य है।

पालि शब्दके प्रकृतिप्रत्ययका निरूपण करनेके लिये सैकड़ों पण्डितोंने चेष्टा की है, पर कोई भी अभ्रान्त सत्य पर पहुँच नहीं सके हैं। किसीका कहना है, कि मगधका प्राचीन नाम पालाश है; इसी पालाश प्रदेशकी भाषा पालिभाषा है। कोई कोई पल्लीको भाषाको ही पालिभाषा कहते हैं और पल्ली शब्दके अपभ्रंशसे पालि शब्द निकला है। किसीका अनुमान है, कि दुर्गवाचक पालि शब्दसे भाषावाचक पालि शब्दकी उत्पत्ति हुई है। कोई कोई पालेष्टाइन, पालाटाइन, पल्लवी और पाल्टिर नगरसे पालिभाषाकी उत्पत्ति मानते हैं। पाटलीपुत्रकी * भाषाको भी पालिभाषा कह सकते हैं। ग्रीक लोग पाटलीपुत्रको पालिबोथरा कहते थे। किसीका मत है, कि पाटली शब्दके अपभ्रंशसे पालि शब्दकी उत्पत्ति होना असम्भव नहीं है।

कोई कोई पालि शब्दका अर्थ श्रेणी बतलाते हैं, यथा—"आवासपालि व्याधानां तदा आसि निवेसित।" अर्थात् राजाके व्याधोंके लिये गृहश्रेणी बनाई गई थी। किसीका कहना है, कि जो भाषा सत्य अर्थकी रचा करती है, उसे पालिभाषा कहते हैं। कोई कोई पालिशब्दका अर्थ मूलग्रन्थ, मूलपाठ, मूलपद इत्यादि बतलाते हैं। यथा—

"नेव पालियं न अट्ठकथायां दिस्सति।"

अशोकराजाके समयमें लिखित जो एक प्रस्तर पाया गया है, उसमें इस प्रकार लिखा है:—

"हेवम् च हेवम् च में पालियो वदेथ।"

इस प्रकार तुम लोग हमारा शासन विज्ञापन करो।

बहुतोंका कहना है, कि ईसा-जन्मके पहले ३०७ ई०में अशोकराजके पुत्र महेन्द्र पालिग्रन्थोंको सिंहल ले गये। उस समय सिंहल-वासियोंने उन सब ग्रन्थोंका सिंहली भाषामें अनुवाद किया। अनुवादके बाद सिंहलमें पालिग्रन्थ मूलग्रन्थ समझा जाने लगा। तभीसे पालि शब्दका अर्थ मूलग्रन्थ पड़ा है।

कई वर्ष हुए, संस्कृत और पालिभाषाका परस्पर सम्बन्ध निरूपण करनेके लिये बहुतेरे पण्डितोंने अपनी प्रतिभाका परिचय दिया है। किसीका कहना है, कि संस्कृतभाषासे पालिभाषाकी उत्पत्ति हुई है। फिर कोई कहते हैं, कि पालिभाषासे ही संस्कृतभाषाकी उत्पत्ति हुई है। इन सब परस्पर विरोधी मतसमूहके मध्य सामञ्जस्य संस्थापन करके पण्डितोंने कहा है, कि संस्कृत और पालि दोनों सहोदर भगिनी हैं। ये दोनों भाषा एक आर्य (वैदिक) भाषासे निकली हैं।

पालि और मागधी एक भाषा है वा नहीं, इसका भी निरूपण नहीं हुआ है। साहित्यदर्पण नामक संस्कृत अलङ्कार ग्रन्थके भाषाविभागवर्णन अध्यायमें इस प्रकार लिखा है:—

"अत्रोक्ता मागधी भाषा राजान्तःपुरचारिणाम्।
चेटानां राजपुत्राणां श्रेष्ठिनां चार्द्धमागधी॥"

(साहित्यदर्पण)

नाटकके अभिनयकालमें राजाके अन्तःपुरचारियोंको मागधी भाषामें और चेट, राजपुत्र तथा वणिकोंको अर्द्धमागधी भाषामें कथोपकथन करना चाहिये।

यहां पर दर्पणकारने अर्द्धमागधी शब्दसे पालि भाषाका लक्ष्य किया है, यह प्रतीत नहीं होता।

कितने पालिग्रन्थोंके मतसे पालि और मागधी एक भाषा नहीं है। मगध देशकी भाषाको मागधी और साकेत अर्थात् अयोध्याप्रदेशकी भाषाको 'साकेत' (सकट) कहते हैं। पालिटीकाकारोंने लिखा है, कि सकटभाषा ही संस्कृत भाषा है। मागधी सकटभाषासे तथा पालि मागधी और सकट इन दोनोंसे पृथक् है। बुद्ध और बोधिसत्त्वोंकी भाषा ही पालि है। यह मानवकी भाषा नहीं है। शेष बुद्धने मगधराज्यमें वास किया था, इस कारण बहुतोंने मागधी और पालि इन दोनोंको एक भाषा माना है और बहुतोंने पालि मागधी इस नामसे पालिभाषाका लक्ष्य किया है। किन्तु यह मत भ्रमपूर्ण है। धर्मग्रन्थमें साफ साफ लिखा है, कि मागधीभाषा मानवकी और पालिभाषा देवगण तथा बुद्धगणकी भाषा है।

इस मतके स्वपक्ष पर पालिग्रन्थोंमें निम्नलिखित आख्यायिका पाई जाती है:—

* Vide Journal of the Royal Asiatic Society for 1900, part 1.

"प्रथम बुद्धके आविर्भावके पहले स्त्रीरूपिणी आद्या-देवताने जगत्-सृष्टिकी इच्छा प्रकट की। इन्होंने पहले नौ जन्तुओंकी सृष्टि करके उनका अलग अलग नाम रखा। उन्होंने जिस भाषामें उन नवोंका नाम रखा था वही पालिभाषाका प्रथम प्रकाश है। अनन्तर बुद्धोंने आविर्भूत हो कर वही भाषा ग्रहण की और उसी भाषाकी सहायतासे उनका धर्म प्रचारित हुआ।

कुछ समय हुए, उक्त देवताने तीन मनुष्योंकी सृष्टि की जिनमेंसे एक पुरुष, एक स्त्री और एक क्लीव था। स्त्री और पुरुष दोनों ही क्लीवको घृणा करते थे। इस कारण क्लीवने ईर्ष्यावशतः पुरुषको मार डाला। उस पुरुषके ७ पुत्र और ६ कन्या थीं। मृत्युके पहले वह पुरुष आद्यादेवताके प्रथम सृष्ट नौ जन्तुओंको अपनी सन्तानके समीप लाया था। सन्तानगण उन नौ जन्तुओंके साथ क्रीड़ा करती थीं और उन्हें देख कर जिन नौ नामोंका उच्चारण किया था, वही मागधीभाषा-की भित्ति है। अतएव मागधीभाषा मानवसे उत्पन्न हुई है। पहले ही कहा जा चुका है, कि आद्यादेवीने स्वयं जिन नौ नामोंका उच्चारण किया था उन्हींसे पालि-भाषाकी उत्पत्ति हुई है। सुतरां पालिभाषा देवभाषा है।

उक्त ग्रंथमें ग्रंथकारने पालि और मागधीका पर स्पर प्रभेद दिखलानेके लिये छः उदाहरण दिये हैं—

संस्कृत	पालि	मागधी।
शश	सस	सो।
सुप्लव	सुपव	सन्।
कुक्कु (ट)	कुकु	रो।
अश्व	अस्स	स'ग।
श्वन्	सुन्	सच्।
व्याघ्र	व्याक्खी	षी।

उल्लिखित उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट प्रतीत होगा, कि मागधी और पालि एक भाषा नहीं है। बहुतोंका कहना है, कि मगधमें तीन चार भाषा प्रचलित थीं, पालि उन्हींकी अन्यतम है। यह भाषा पहले नगण्य थी, पीछे स्वयं बुद्धदेवने जब इस भाषामें धर्मप्रचार किया, तब यह अमर हो गई।

फिर 'प्रयोगसिद्धि', 'पट्टिसम्भिदा अतुवाव' 'विभङ्ग अतुवाव' आदि पालि ग्रन्थोंमें वर्णित है, कि पालि और मागधी एक ही भाषा है और वही जगत्‌की मूलभाषा है। पालिसे ही अन्यान्य भाषाओंकी उत्पत्ति हुई है।

कच्चायन (कात्यायन)-ने इस भाषाके सम्बन्धमें लिखा है—

> "सा मागधी मूलभाषा नरा या आदिकप्पिका।
> ब्राह्मणा च अस्सुतालापा सम्बुद्धा चापि भासरे॥"
> (कच्चायन)

जगत्‌में एक ही भाषा है जो सभी भाषाओंकी जड़ है। पहले इसके सिवा और कोई भी भाषा न थी। कल्पके प्रारम्भमें मनुष्य और ब्राह्मणगण इसी भाषामें बोल-चाल करते थे। बुद्धगण भी इसी भाषाको काममें लाते थे। इसका नाम मागधी-भाषा है।

'विभङ्ग अतुवाव' नामक पालिग्रन्थमें निम्नलिखित युक्तियां उद्धृत हुई हैं :—

'सन्तान पितामाताकी गोदमें प्रतिपालित होती है। माता पिता आदि अभिभावकगण शिशुसन्तानोंके सामने तरह तरहकी कथाएं बोलते हैं। सन्तान पिता-माताके उच्चारित शब्दोंको बारम्बार सुन कर उन्हें हृद-यङ्गम करती हैं। इस प्रकार वे पिता माताके अनु-करण पर सभी भाषा सीख लेती हैं। दमिल (द्राविड़) देशीय स्त्रीके साथ यदि अन्धकदेशीय किसी पुरुषका विवाह हो, तो दोनोंके संयोगसे जो सन्तान उत्पन्न होगी, वह किस भाषामें बोल-चाल करेगी? यदि वह सन्तान माताके समीप रहे, तो दामिल-भाषामें और यदि बचपन ही पिताके यत्नसे पालित हो, तो अन्धक भाषामें बोलेगी। यदि वह सन्तान पिता और माता किसीके भी समीप न रहे, तो स्वभावतः मागधी भाषामें बोलेगी। फिर भी, यदि कोई शिशु निर्जन वनमें रक्षित हो, तो वह भी आपसे आप मागधीभाषा ही उच्चारण करेगा। यह भाषा स्वर्ग और नरक सभी जगह प्रचलित है। किरात, अन्धक, योनक, दमिल आदि और जो अठा-रह भाषा प्रचलित हैं वे सभी कालक्रमसे परिवर्त्तित होंगी, पर मागधी भाषा स्थिर और अपरिवर्त्तनीय है। ब्राह्मण और आर्यगण इसी भाषाको काममें लाते हैं। बुद्धगणने भी इसी भाषामें त्रिपिटककी रचना की

है। बौद्धधर्मका निगूढ़ तत्त्व मागधीके सिवा और किसी भी भाषामें सुन्दररूपसे प्रकाशित नहीं हो सकता।"

पालि और मागधी एक भाषा है वा नहीं, इस सम्बन्धमें कोई सिद्धान्त आज तक प्रकाशित नहीं हुआ।

फिलहाल पालि मृत भाषा हो गई है। यहांका बङ्गला, महाराष्ट्री आदि भाषामें पालिभाषाका निदर्शन लक्षित होता है। सिंहल, ब्रह्म, श्याम, चीन आदि देशोंमें आज कल अनेक प्राचीन पालिग्रन्थ आविष्कृत हो रहे हैं।

१६८७ और १६८८ ई०में सम्राट् १४वें लुई (Luis)-ने महात्मा लालुबर (Laloubre)-को दूत बना कर श्यामदेश भेजा था। इसी समय यूरोपवासियोंने सबसे पहले पालिभाषाका अनुसन्धान पाया। तभीसे इङ्गलैण्ड, जर्मनी, फ्रान्स, रूसिया आदि देशोंके पण्डितगण पालिभाषा और बौद्धशास्त्र ले कर समालोचना करते आ रहे हैं। ये लोग पालिसाहित्यका जिससे पुनः प्रचार हो, इसके लिये विशेष चेष्टा करते हैं।

पालि (सं० स्त्री०) पाल्यते इति पाल पालने इण् (बाहुलकात शलतिपलतिभ्याश्च। उण् ४।१२८) १ कर्णलताग्र, कानकी लौ, कानके पुटके नीचेका मुलायम चमड़ा। २ कर्णरोगभेद, कानका एक रोग।

पुटके जिस निचले भागमें छेद करके बालियां आदि पहनी जाती हैं उसे पालि कहते हैं। कान छेदते समय अज्ञानतावशतः यदि शिरादि विद्ध हो जाय, तो उसमें नाना प्रकारके उपद्रव होते हैं।

कर्णके पालिदेशमें जो सब रोग होते हैं, उनका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है,—वायु, पित्त और कफ इन तीनोंमेंसे दो अथवा सबके कुपित होनेसे कर्णके पालिदेशमें नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। जैसे, उत्पाटक जिसमें चिरचिराहट होती है, कण्डु जिसमें खुजली होती है, ग्रन्थिक जिसमें जगह जगह गांठें-सी पड़ जाती हैं, श्याव जिसमें चमड़ा काला हो जाता है, स्रावी जिसमें बराबर खुजली होती और पनछा बहा करता है।

उत्पाटक रोगमें—अपाङ्, धूना, पढ़ार, अकवनकी छाल इन सबको जलके साथ एकत्र पीस कर प्रलेप देनेसे अथवा इनके द्वारा तैल पाक करके देनेसे ये सब रोग प्रशमित होते हैं।

श्यावरोगमें—रास्ना, श्यामालता, हरिद्रा, अनन्तमूल इन सबका प्रलेप देनेसे अथवा पाक तैलका व्यवहार करनेसे श्यावरोग जाता रहता है।

कण्डुरोगमें—अकवन, रसाञ्जन, मधु और उष्ण कांजी इन सब द्रव्योंको एकत्र पीस कर प्रलेप देना होता है।]

२ अश्रि, कोना। ३ पङ्क्ति, श्रेणी, कतार। ४ अङ्कप्रभेद। ५ जातश्मश्रु स्त्री, वह औरत जिसको दाढ़ीमें बाल हों। ६ प्रान्त, किनारा। ७ सेतु, पुल। ८ कल्पितभोजन, वह बंधा हुआ भोजन जो छात्र या ब्रह्मचारीको गुरुकुलमें मिलता था। ९ प्रशंसा, तारीफ। १० उत्सङ्ग, गोद। ११ सीमा, हद। १२ मेंड़, बांध। १३ देग, बटलोई। १४ एक तौल जो एक प्रस्थके बराबर होती थी। १५ परिधि। १६ जूं या चीलर।

पालि—राजपूतानेके योधपुर राज्यका एक नगर। यह अक्षा० २५°४७´ उ० और देशा० ७३°१९´ पू० बांदीनदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारसे ऊपर है। पश्चिम राजपूतानेके मध्य यह एक प्रधान वाणिज्यस्थान है। पहले यह नगर दीवारसे घिरा था; किन्तु राजपूत राजाओंके परस्पर युद्धसे अभी तहस नहस हो गया है। नगरकी वर्त्तमान आय दश लाख रुपयेकी है। १८८२ ई०में यह नगर राजपूताना-मालव रेलवेकी एक शाखासे संयुक्त हुई है।

पालि—१ अयोध्याके अन्तर्गत हरदोई जिलान्तर्गत शाहाबाद तहसीलका एक परगना। इस परगनेके पूर्व हो कर गारा नदी बह गई है। नदीके चरमें अफीम, तमाकू, साग सब्जीकी फसल अच्छी लगती है। परगनेका अन्यान्य स्थान जङ्गलसे पूर्ण है। भूपरिमाण ७३ वर्गमील है।

२ उक्त तहसीलका एक नगर और पालि परगनेका सदर। यह अक्षा० २७°३१´ उ० और देशा० ७९°५३´ पू०के मध्य अवस्थित है। देशीय राजाओंके समयमें यह

समृद्धिशाली नगर था, किन्तु अभी श्रीनश्री हो गया है। यहां दो मसजिद और एक हिन्दू-मन्दिर है। शहरमें मोटा कपड़ा तैयार होता है।

पालि—कोच जातिकी एक शाखा। मालदह अञ्चलमें इन लोगोंका वास है। कोच देखो।

पालिक (सं० पु०) १ पलंग, चारपाई। २ पालकी।

पालिका (सं० स्त्री०) पालिरेव, स्वार्थे कन् टाप्, च। १ असि, छुरका कोना। २ कर्णपत्र। ३ दधयादि छेदनी, दही आदि काटनेका औजार। पर्याय—कुन्तलिका। ४ पालनकर्त्री, पालन करनेवाली।

पालिखेरा—मथुराके सेनानिवेशसे ३ मीलकी दूरी पर अवस्थित एक गण्डग्राम। यहां एक प्राचीन स्तूप है जिससे कितने पुरातन भग्नस्तम्भ और एक नागिनीमूर्त्ति पाई गई है।

पालिगञ्ज—पटना जिलेका एक छोटा नगर। यह शोणनदीके किनारे अवस्थित है। यहां एक थाना है।

पालित (सं० त्रि०) पाल-क्त। १ रक्षित, पाला हुआ। (पु०) २ क्रौष्टुवंशीय नृपभेद। ३ देशभेद। ४ शाखोटवृक्ष, सहोड़ा। स्त्रियां टाप्। ५ कुमारानुचर मातृभेद। ६ कायस्थोंकी उपाधिविशेष।

पालिताना—१ बम्बईप्रदेशके अन्तर्गत काठियावाड़ गोहेलवार विभागका एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २१° २३' से २१° ४२' उ० और देशा० ७१° ३१' से ७२° पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २८८ वर्गमील है। इसके दक्षिणमें बड़ोदा राज्य; उत्तर, पूरब और पश्चिममें भौनगर राज्य है। राज्यके मध्य हो कर शत्रुञ्जी नदी और उसकी शाखा राजवल तथा खारी बहती है। यहांका जलवायु शुष्क है और ज्वरका प्रादुर्भाव अत्यन्त अधिक देखा जाता है। यहांके राजा गोहेलराजपूत वंशके हैं। इन्हें ९ सलामी तोपें मिलती हैं और पोष्यपुत्र लेनेका अधिकार है। १८०५ ई०में राजा ठाकुर साहब पांच वर्षके एक पुत्रको छोड़ परलोक सिधारे। जब तक राजकुमार बालिग न हुआ, तब तक पालिताना-राज्य ब्रटिश-गवर्मेण्टकी देखरेखमें रहा। अभी ये ही पालिताना राज्यसिंहासन पर सुशोभित हैं। इनका जन्म १९०० ई०की ३री अप्रिलको हुआ था। 'ठाकुर साहब गोसल श्रीबहादुर सिंहजी मानसिंहजी' इनका पूरा नाम है। जनसंख्या ५८००० है। सब प्रकारका अनाज, ईख और रुई यहांकी प्रधान उपज है। राज्यकी आमदनी लगभग सात लाख रुपयेकी है जिनमेंसे (१०३६४) रु० बड़ोदाके गायकवाड़ और जूनागढ़के नवाबको करमें देने पड़ते हैं। राज्यके मध्य अश्वारोही और पदातिसेना मिला कर ११३ है। १९०३ ई०में यहां एक कारागार भी स्थापित हुआ है जिसमें २६ कैदी रखे जाते हैं। राज्य भरमें १८ स्कूल और १ अस्पताल है।

२ उक्त पालिताना राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २१° ३१' उ० और देशा० ७१° ५३' पू०के मध्य, अहमदाबादसे १२० मील, बड़ोदासे १०५ और बम्बईसे भी १०५ मील दूर शत्रुञ्जय नामक पहाड़के पाददेश पर अवस्थित है। जनसंख्या १२८०० है। यह स्थान समुद्रपृष्ठसे १९७७ फुट ऊंचा है। जैनोंके जो पांच पवित्र पर्वत हैं, उनमेंसे शत्रुञ्जय सर्वश्रेष्ठ है। यहां तीर्थङ्कर आदिनाथका मन्दिर है। शत्रुञ्जय पर्वतका ऊपरी भाग मन्दिरोंसे विभूषित है। यहां चौमुख नामक जो मन्दिर है वह २५ मील दूरसे देखा जाता है। समय समय पर यहां बहुसंख्यक तीर्थयात्री समागम होते हैं। आदिनाथका मन्दिर रहनेसे प्रायः प्रत्येक जैन तीर्थदर्शनकी इच्छासे कमसे कम एक बार यहां अवश्य आते हैं। जैनमन्दिर छोड़ कर शत्रुञ्जय पर्वत पर हिन्दू और मुसलमान पीर हेङ्गरका मन्दिर है। पर्वत पर चढ़नेके लिये सीढ़ी लगी हुई है। सभी मन्दिर मर्मर पत्थरके बने हुए हैं। इन सब मन्दिरोंका शिल्पनैपुण्य और इस स्थानको प्राकृतिक शोभा देखनेसे मन आनन्दसागरमें गोता खाने लगता है। शिल्पशास्त्रवित् फार्गुसन् इन सब मन्दिरोंकी शोभा देख कर विमुग्ध हो गये थे और कहा भी था, कि हिन्दुओंने ये सब मन्दिर बनवानेमें नूतनत्व और शिल्पनैपुण्यकी जैसी पराकाष्ठा दिखलाई है, वैसी यूरोपमें मध्ययुगके बादसे और कभी भी नहीं देखी गई। शत्रुञ्जय देखो।

पालितामंदार (हिं० पु०) एक मझोला पेड़। इसकी शाखाओं और टहनियोंमें काले रंगके कांटे होते हैं।

इसकी पत्तियां एक सोंकके दोनों ओर लगतीं और तीन तीन एक साथ रहती हैं। फूलके दल छोटे बड़े और क्रमविहीन होते हैं। यह पेड़ बङ्गालमें समुद्र तटके पास लगता है। मन्द्राज और बरमामें भी इसकी कई जातियां होती हैं। पारिभद्र देखो।

पालित्य (सं० क्लो०) पलितस्य भावः पलित-ष्यञ्। १ केशकी शुभ्रतादि, बालकी सफेदी। पालितस्य अदूरदेशादि सङ्काशादित्वात् ण्य। २ पलितके सन्निकट-देशादि।

पालिधा (सं० स्त्री०) पारिभद्रवृक्ष, फरहदका पेड़।

पालिन् (सं० त्रि०) पालयति पालि-णिनि। १ पालक, पालन करनेवाला। २ रक्षा करनेवाला, रखनेवाला। (पु०) ३ पृथुके पुत्रका नाम।

पालिन्द (सं० पु०) पालयतीति पालि बाहुलकात् किन्द च्। कुन्दुरुक, कुंदुरु नामक सुगन्ध द्रव्य।

पालिन्दी (सं० स्त्री०) पालिन्द गौरादित्वात् ङीष्। १ श्यामालता। २ भार्गी, बरङ्गी। ३ श्वेत अपराजिता। ४ त्रायमाणा लता। ५ मालविकाविवृता। ६ कारवेल्ल, करेला।

पालिया—१ अयोध्याके खेरी जिलान्तर्गत लक्ष्मीपुर तह-सीलका एक परगना। यह सुहेल और सारदा नदीके बीच अवस्थित।

२ उक्त परगनेका प्रधान नगर और सदर। यह अक्षा० २४° २६´ उ० तथा देशा० ८०° पू०के मध्य अव-स्थित है। यहां दो हिन्दू-मन्दिर हैं।

पालियाड़—बम्बईप्रदेशके अन्तर्गत काठियावाड़के झला-वर विभागका एक क्षुद्र देशीय राज्य। परिमाण-फल २२७ वर्गमील है। राज्यका राजस्व ४००८) रु० है जिनमेंसे ८८७) रु० अंगरेज गवर्मेण्टको और २०६) रु० जूनागढ़के नवाबको करमें देने पड़ते हैं।

पालिश (अं० स्त्री०) १ चिकनाई और चमक, ओप। २ रोगन या मसाला जिसके लगानेसे चिकनाई और चमक आ जाय।

पालिशायन (सं० पु०) गोत्रप्रवर ऋषिभेद।

पाली (सं० त्रि०) १ पालिन् देखो। (स्त्री०) पालि-कृदिकारादिति वा ङीष्। २ युका। ३ सश्मश्रुयोषित्। ४ श्रेणी। ५ स्थाली।

पाली (हिं० स्त्री०) १ वह स्थान जहां तीतर, बुलबुल, बटेर आदि पक्षी लड़ाए जाते हैं। २ बरतनका ढक्कन, पारा, परई। ३ एक प्राचीन भाषा जिसमें बौद्धके धर्मग्रन्थ लिखे हुए हैं। विशेष विवरण पालि शब्दमें देखो।

पाली—अयोध्याके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। प्रसिद्ध चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्गने लिखा है, कि यहां युवराज सुदानने अपने पिताका हाथी ब्राह्मणोंको दान कर दिया था, इस कारण वे पितासे तिरस्कृत और निर्वासित हुए थे। नगरके समीप एक सङ्घाराम है जिसमें ५५ बौद्ध-पुरोहित रहते हैं। ये सभी हीनयान-मतावलम्बी हैं। पहले ईश्वर नामके एक आचार्यने यहां 'संयुक्तअभिधर्महृदयशास्त्र' प्रणयन किया। नगर-के पूर्वद्वारके बाहर एक और सङ्घाराम था जिसमें ५० महायान आचार्य रहते थे। यहां राजा अशोकने एक स्तूप बनवाया था। पालिनगरसे प्रायः ४ मील उत्तर-पूर्वमें दन्तालोक पहाड़ है। सुदान पितासे निर्वासित हो कर इसी पहाड़ पर रहते थे।

पाली—बिलासपुर जिलेमें रतनपुरसे १२ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित एक क्षुद्रग्राम। इस ग्रामके दक्षिण-पूर्वमें जो पुष्करिणी है उसके किनारे अनेक प्राचीन मन्दिर प्रतिष्ठित हैं। अधिकांश मन्दिर अभी तहस-नहस हो गया है। सभी मन्दिर सम्भवतः १०वीं शताब्दीमें बनाये गये थे। मन्दिरगात्रमें देव-देवीकी प्रतिमूर्त्ति खोदित है और मन्दिरके मध्य शिव, ब्रह्मा तथा विष्णुकी मूर्त्ति स्थापित है।

पाली—ओझसे थोड़ी दूर पूरब गया जानेके रास्ते पर अवस्थित एक क्षुद्र ग्राम। इस ग्रामके पूर्व भागमें दो मन्दिरोंका भग्नावशेष देखनेमें आता है। ये दोनों मन्दिर एक समय अत्यन्त प्रकाण्ड थे। यहां जो शिव-लिङ्ग है उसकी परिधि ५ फुट ७ इञ्च है। ग्रामके दूसरे भागमें पार्वतीकी दो प्रतिमूर्त्ति और एक शिव मन्दिरका भग्नावशेष देखनेमें आता है।

पाली—योधपुर राज्यके अन्तर्गत एक नगर। पहले यह नगर प्राचीरवेष्टित था, किन्तु अभी टूट फूट गया है। पालीनगर दो भागोंमें विभक्त है। एक भागको जूनापाली वा प्राचीनपाली और दूसरे भागको पिट-

पाली वा आधुनिकपाली कहते हैं। प्राचीनपालीमें ११ सुन्दर मन्दिर हैं जिनमेंसे सोमनाथका मन्दिर सर्व-प्रधान और सर्वप्राचीन है। मन्दिरमें शिवलिङ्ग और उसकी बगलमें नन्दी तथा वृषभमूर्त्ति दण्डायमान है। मन्दिरके प्राङ्गणमें अन्नपूर्णा, एकलिङ्ग प्रभृति देवताओंके कितने छोटे छोटे मन्दिर देखनेमें आते हैं। इनके सिवा प्राङ्गणमें मुसलमानोंकी एक मसजिद और पिटपालीमें अनेक सुन्दर जैनमन्दिर हैं।

पालीकुट (सं० पु०) चित्रकवृक्ष।

पालीवत (सं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़का नाम। वृहत्संहितामें द्राक्षा, बिजौरा आदि काण्डरोप्य पेड़ोंमें इसका नाम आया है।

पालीव्रत (सं० क्ली०) भविष्य पुराणोक्त व्रतभेद।

पालीशोष (सं० पु०) कर्णरोगविशेष, कानका एक रोग।

पालुपाड़े—कुर्गके अन्तर्गत किगगत्नाद तालुकका एक प्राचीन दुर्ग। पहले कुर्गके राजा कोलतिङ्ग और व्योमक्षत्र यहां रहते थे। १७वीं शताब्दीके शेष भागमें कुर्गाधिपतिने यहां महिसुरके राजाको युद्धमें परास्त किया था। अभी केवलमात्र दुर्गपरिखा और कुछ छोटे छोटे मन्दिर वर्त्तमान हैं। अवशिष्ट भागमें कहवेकी खेती होती है।

पालू (हिं० वि०) पालतू, पाला हुआ।

पाली (हिं० पु०) पांच रुपये भरका बाट या तौल।

पालोहय (सं० पु०) गोत्रप्रवर ऋषिभेद।

पाल्य (सं० त्रि०) पाल-यत्। पालनीय, पालने योग्य।

पाल्लक (सं० त्रि०) पल्ली-धूमादित्वात् वुञ्। (पा ४।२।१२७) पल्लीभव।

पाल्लवा (सं० स्त्री०) दो पल्लव द्वारा क्रीड़ा।

पाल्वल (सं० त्रि०) पल्वल-अण्। १ पल्वलसम्बन्धीय, तलैया या गड्ढा सम्बन्धी। २ पल्वलभव, तलैयामें होनेवाला, तलैयाका। (पु०) ३ पल्वलवारि, तलैयाका पानी।

पावं (हिं० पु०) वह अंग जिससे चलते हैं, पैर।

पावंचप्पी (हिं० स्त्री०) थकावट दूर करने या आराम पहुंचानेके लिये पैर दबानेकी क्रिया।

पावंड़ा (हिं० पु०) पैर रखनेके लिये फैलाया हुआ कपड़ा, पायंदाज।

पावंड़ी (हिं० स्त्री०) १ पादत्राण, खड़ाऊं। २ उपानह, जूता। ३ गोटा पट्ठा बुननेवालोंका एक औजार। इसे बुनते समय पैरोंसे दबाना पड़ता है जिससे कि तानेका बादला नीचे ऊपर होता है। यह काठका पटरा-सा होता है; इसमें दो खूंटियां लगी रहती हैं। इन दोनों खूंटियोंके बीच लोहेकी एक छड़ लगी रहती है जिसमें एक एक बालिश्त लम्बी, नुकीले सिरे पर ५-६ लकड़ियां लगी रहती हैं। बादला बुननेमें यह प्रायः वही काम देता है जो करघेमें राछ देती है।

पावंरी (हिं० स्त्री०) पावड़ी देखो।

पाव (हिं० पु०) १ चतुर्थ भाग, चौथाई। २ एक सेरका चौथाई भाग, चार छटांकका मान।

पावक (सं० पु०) पुनातीति पू-ण्वुल्। १ अग्नि।

"अपावनानि सर्वाणि वह्निसंसर्गतः क्वचित्।
पावनानि भवन्त्येव तस्मात् स पावकः स्मृतः॥"
(काशीखण्ड ९ अ०)

अपवित्र वस्तु अग्निके संसर्गसे पवित्र होती है, इसीसे अग्निको पावक कहते हैं। २ वैद्युताग्नि। ३ सदाचार। ४ अग्निमन्थवृक्ष, अगेथूका पेड़। ५ चित्रकवृक्ष, चीतेका पेड़। ६ भल्लातक, भिलावां। ७ विड़ङ्ग, वायविड़ङ्ग। ८ रक्तचित्रक। ९ कुसुम्भ। १० वरुण। ११ सूर्य। १२ ऋषिभेद। महाभारत वनपर्वमें लिखा है, कि २७ पावकऋषि ब्रह्माके अंगसे उत्पन्न हुए जिनके नाम ये हैं—१ अङ्गिरा, २ दक्षिण, ३ गार्हपत्य, ४ आहवनीय, ५ निर्मन्थ्य, ६ वैद्युत, ७ शूर, ८ संवर्त्त, ९ लौकिक, १० जाठर, ११ विषग, १२ क्रव्यात्, १३ क्षेमपान, १४ वैष्णव, १५ दस्युमान, १६ बलद, १७ शान्त, १८ पुष्ट, १९ विभावसु, २० ज्योतिष्मान्, २१ भरत, २२ भद्र, २३ स्विष्टकृत्, २४ वसुमान्, २५ क्रतु, २६ सोम और २७ पितृमान्।

तिथितत्त्वोद्धृत गृह्यपरिशिष्टके मतानुसार क्रिया-भेदसे पावकाग्निके पृथक् पृथक् नाम पड़े हैं, यथा—लौकिक कर्ममें पावक, गर्भाधानमें मारुत, पुंसवनमें चन्द्र, शुङ्गकर्ममें शोभन, सीमन्तकार्यमें मङ्गल, जात-

कर्म में प्रगल्भ, नामकरणमें पार्थिव, अन्नप्राशनमें शुचि, चूड़ाकरणमें सत्य, व्रतकर्म में समुद्भव, गोदानाख्य-संस्कारमें सूर्य, (क्षत्रियोंके विवाहके पहले केशच्छेद-रूप एक संस्कार होता है, उसीका नाम गोदान है), केशान्तकर्म में अग्नि, विसर्ग में वैश्वानर, विवाहमें योजक, चतुर्थीहोममें शिखी, धृतिहोमादिमें धृति, प्रायश्चित्तहोममें विधु, पाकयज्ञमें साहस, लक्षहोममें वह्नि, कोटिहोममें हुताशन, पूर्णाहुतिमें मृड़, शान्ति-कर्म में वरद, पौष्टिककर्म में बलद, अभिचारकार्य में क्रोध, कोष्ठमें जठर और भक्षणमें क्रव्याद। इन सब कार्यों में पावकाग्निका पूर्वोक्तरूप नामकरण करके पूजादिके साथ होम करना होता है। यथा—अन्न-प्राशनमें पावकाग्निका 'शुचि' नाम दे कर पूजन और होमादि करने होते हैं। इसी प्रकार सभी कार्यों में जानना चाहिए। पृथक् पृथक् कार्य में इस प्रकार बिना नाम दिये पावकाग्निका पूजन और होमादि करने-से वह निष्फल होता है।

पावः पवनं शुचित्वं कायतीति कै क, स्त्रियां टाप्। १३ सरस्वती। (त्रि०) १४ शोधक, शुद्ध करने वाला, पवित्र करनेवाला।

पावकमणि (सं० पु०) सूर्यकान्तमणि, आतशी शीशा।

पावकवत् (सं० त्रि०) पावक मतुप्, मस्य व। १ पावक-विशिष्ट। (पु०) २ अग्नि।

पावकवर्चस् (सं० त्रि०) पावकं वर्चः यस्य। शोधक दीप्ति।

पावकवर्ण (सं० त्रि०) अग्निके समान तेजस्वी।

पावकशोचिस् (सं० त्रि०) पावकदीप्तिशाली।

पावका (सं० स्त्री०) सरस्वती।

पावकात्मज (सं० पु०) पावकस्य आत्मजः। १ कार्त्ति-केय। २ इक्ष्वाकुवंशीय दुर्योधनकी कन्या सुदर्शनाके पुत्र। पावकि देखो।

पावकारणि (सं० पु०) पावकाय वह्न्युत्पादनार्थं अरणिरिव। अग्निमन्थवृक्ष।

पावकि (सं० पु०) पावकस्य अपत्यं पावक-इञ्। १ कार्त्तिकेय, पावकात्मज। २ इक्ष्वाकुवंशीय दुर्योधनकी कन्या सुदर्शनाके गर्भजात पावकका पुत्र। महाभारतके अनुशासनपर्व में लिखा है, कि मनुके पुत्र इक्ष्वाकुवंशीय सुदुर्जयके दुर्योधन नामका एक पुत्र हुआ जिसे सुद-र्शना नामकी एक कन्या थी। कन्याके रूपलावण्य पर मुग्ध हो कर पावक अग्निदेव रूप बदल कर दुर्योधनके यहां आये और कन्याके लिये प्रार्थना की। राजाने विवाह करनेकी सलाह न दी। पावक देवता निराश हो कर चले गये। एक बार राजाने यज्ञ किया जिसमें अग्नि हो प्रज्वलित न हुई। राजा और ऋत्विक् लोगोंने अग्निकी बहुत उपासना की। पावकने प्रकट हो कर फिर कन्या मांगी। इस पर दुर्यो-धनने कन्याका विवाह उनके साथ कर दिया। अग्नि-देव उस कन्याके साथ मूर्त्ति धारण कर माहिष्मती पुरीमें रहने लगे। पावकसे जो पुत्र सुदर्शनाको हुआ उसका नाम सुदर्शन पड़ा। सुदर्शन सभी वेदशास्त्रोंमें पारदर्शी और धार्मिकोंमें अग्रणी थे।

विशेष विवरण सुदर्शन शब्दमें देखो।

पावकुलक (हिं० पु०) पादाकुलक छन्द, चौपाई।

पावकेश्वर (सं० पु०) १ तीर्थभेद। (क्ली०) २ काशी-स्थित शिवलिङ्गविशेष। काशीमें अग्निदेवने जो शिव-लिङ्ग स्थापित किया, वह पावकेश्वर कहलाता है।

पावकोषन् (सं० पु०) सूर्यकान्तमणि।

पावदान (हिं० पु०) १ पैर रखनेके लिये बना हुआ स्थान या वस्तु। २ गाड़ीके भीतर पैर लटकानेका स्थान। ३ इक्के गाड़ी आदिकी बगलमें लटकाई हुई लोहेकी छोटी पटरी जिस पर पैर रख कर नीचेसे गाड़ी पर चढ़ते हैं। ४ काठकी छोटी चौकी जो कुरसी पर बैठे हुए आदमीके पैर रखनेके लिये मेजके नीचे रखी जाती है।

पावन (सं० पु०) पावयतीति पू-णिच् ल्यु। १ व्यास। २ पावक। ३ सिह्लक, सिलारस। ४ पीतभृङ्गराज, पीली भंगरैया। ५ विष्णु। ६ सिद्ध। ७ जल। ८ गोमय, गोबर। ९ रुद्राक्ष। १० कुष्ठौषध, कुट। (क्ली०) ११ चित्रकवृक्ष, चीता। १२ अध्यास। १३ चन्दन। १४ प्राय-श्चित्त। (त्रि०) १५ पवित्र, शुद्ध, पाक। १६ पवित्र करने-वाला, शुद्ध करनेवाला। १७ पवन या हवा पी कर रहनेवाला।

पावनगढ़—बम्बईप्रदेशके अन्तर्गत कोल्हापुर राज्यमें एक पार्वत्य दुर्ग। १८४४ ई०में अङ्गरेजोंने इसे अपने अधिकारमें किया।

पावनता (सं० स्त्री०) पवित्रता।

पावनत्व (सं० क्ली०) पावनस्य भावः, त्व। पावनका भाव, पावनका धर्म।

पावनध्वनि (सं० पु०) पावनः पवित्रजनको ध्वनिर्यस्य। १ शङ्ख। शङ्खकी ध्वनि बहुत पवित्र मानी गई है। २ पवित्र ध्वनि।

पावना (हिं० पु०) १ दूसरेसे रुपया आदि पानेका हक, लहना। २ रुपया जो दूसरेसे पाना हो, रकम जो दूसरेसे वसूल करनी हो।

पावनि (सं० पु०) पवनस्यापत्यं इञ्। पवनपुत्र, हनुमान् आदि।

पावनी (सं० स्त्री०) पावन-ङीप्। १ हरीतकी, हड़। २ तुलसी। ३ गाभि, गाय। ४ गङ्गा। ५ गङ्गाका अंश-विशेष। गङ्गाके स्रोत सात और विभक्त हैं जिनमेंसे नलिनी, ह्लादिनी और पावनी पूर्वकी ओर चली गई है। ५ शाकद्वीपस्थित नदीविशेष, शाकद्वीपकी एक नदीका नाम। (त्रि०) ६ पवित्र करनेवाली, शुद्ध या साफ करनेवाली। ७ पवित्र, शुद्ध, पाक।

पावमान (सं० त्रि०) पवमानमधिकृत्य प्रवृत्तं अण्। १ पवमान वह्न्यादिके अधिकारमें प्रवृत्त सूक्त। स्त्रियां ङीप्। २ ऋक्भेद, वेदकी एक ऋचा।

पावमुहर (हिं० स्त्री०) शाहजहांके समयका सोनेका एक सिक्का। इसका मूल्य एक अशरफी या एक मुहरका चौथाई होता था।

पावल (हिं० स्त्री०) पायल देखो।

पावली (हिं० स्त्री०) एक रुपयेका चौथाई सिक्का, चार आनेका सिक्का, चवन्नी।

पावस (हिं० स्त्री०) वर्षाकाल, सावन भादोंका महीना, बरसात।

पावा—गोरखपुर जिलेका एक बड़ा गांव। यह गण्डक-नदीसे १२ मील पश्चिम और गोरखपुरसे ४० मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यहां बुद्ध भगवान् कुछ दिन ठहरे थे और बुद्धके निर्वाणके पीछे पावाके लोगोंको भी बुद्धके शरीरका अंश मिला था जिसके ऊपर उन्होंने एक स्तूप उठाया था। यह गांव अब भी इसी नामसे पुकारा जाता है।

पावागढ़-बम्बईप्रदेशके अन्तर्गत पांचमहालका एक पार्वत्य दुर्ग। यह अक्षा० २२° ३१´ उ० और देशा० ७३° ३६´ पू०, बड़ोदासे २८ मील पूर्वमें अवस्थित है। पर्वत बड़े दुर्गों से आवृत है, इस कारण दुर्गमें प्रवेश करना बहुत कठिन है। पर्वतके ऊपरी भाग पर कुछ हिन्दू-मन्दिर और दो प्रस्तरप्राचीरसे वेष्टित मुसलमान-मन्दिर हैं। प्राचीन खोदित लिपिमें यह पार्वत्य दुर्ग 'पावकगढ़' नामसे प्रसिद्ध है। राजपूतानेके चाँद कविके समयमें तुआर-वंशीय रामगौड़ पावकगढ़के राजा थे। १३०० ई०के प्रारम्भमें चौहान राजपूतोंने इस दुर्ग पर अधिकार किया था। अहमदाबादके मुसलमान राजाओंने इस दुर्गको जीतनेके लिये अनेक बार चेष्टा की थी, किन्तु वे कृतकार्य न हो सके थे। अन्तमें १४८५ ई०को सुलतान महमूदने प्रायः दो वर्ष तक घेरा डाले रहनेके बाद इसे जीता था। १५७३ ई०में यह दुर्ग अकबरके हाथ लगा। १७२७ ई०में कृष्णाजीने इस स्थान पर सहसा अधिकार जमा लिया। पीछे यह दुर्ग सिन्धियाके अधिकारमें आया। सिन्धियासे अंगरेजोंने १८०३ ई०में इसे छीन लिया। पीछे १८०४ ई०में यह पुनः सिन्धियाको लौटा दिया गया। अन्तमें १८५३ ई०को पाँचमहालका शासन-भार ग्रहण करनेके समय यह फिरसे अंगरेजोंके हाथ लगा। ग्रीष्मकालमें इस स्थानकी आबहवा शीतल रहनेके कारण बड़ोदाके अंगरेज कर्मचारी यहीं आ कर रहते हैं।

पावापुरी—पटना जिलेके मध्य एक क्षुद्र ग्राम। यह जैनोंका अति पवित्र तीर्थस्थान है। जैनशास्त्रमें यह स्थान अपापपुरी नामसे वर्णित हुआ है। जैनोंके शेष तीर्थङ्कर महावीर स्वामीने इसी स्थान पर निर्वाण लाभ किया था। महावीर देखो। इसीसे यहां अनेक जैन तीर्थयात्री समागम होते हैं। यहां दो जैन-मन्दिर हैं जिनमेंसे एक पुष्करिणीके मध्य अवस्थित है। मन्दिरमें जानेके लिये पुल बना हुआ है। दोनों मन्दिर आधुनिक होने पर भी इनमें बहुत सी अति प्राचीन प्रतिमूर्त्तियां देखी जाती हैं।

पावास (सं॰ पु॰) क्षुद्रपणस।

पावित (सं॰ क्ली॰) छन्दोभेद।

पावित्रायण (सं॰ पु॰ स्त्री॰) पवित्रस्य ऋषेर्गोत्रापत्यं अश्वादित्वात् फञ्। पवित्रऋषिका गोत्रापत्य।

पावी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी मैना। इसकी लम्बाई १७-१८ अङ्गुल होती है। यह ऋतुके अनुसार रंग बदला करती है और पंजाबके अतिरिक्त सारे भारतमें पाई जाती है। यह प्रायः ४ या ५ अंडे देती है।

पावीरवी (सं॰ स्त्री॰) १ शोधयित्री। २ दिव्यावाक।

पाव्य (सं॰ त्रि॰) पवित्राहं, पाक करने लायक।

पाश (सं॰ पु॰) पश्यति बध्यतेऽनेनेति पश-घञ्। १ शस्त्रभेद, आर्य जातियोंका एक प्रकारका युद्धास्त्र। वैशम्पायनीय धनुर्वेदमें लिखा है—

"पाशः सुसूक्ष्मावयवो लौहधातुस्त्रिकोणवान्।
प्रादेशपरिधिः सीस-गुलिकाभरणान्वितः॥"

इसके अवयव अति सूक्ष्म सूक्ष्म लौह द्वारा निर्मित, त्रिकोणयुक्त, प्रादेशपरिमित परिधियुक्त और सीसक गुलिका द्वारा सुशोभित रहते हैं।

आग्नेय धनुर्वेदमें पाशके जो लक्षण हैं; वह देखनेसे साफ साफ प्रतीत होता है, कि यह पाशास्त्र दो प्रकारका है। महाभारतादि ग्रन्थमें भी वारुणपाश और पाश इन दो पृथक् पाशास्त्रोंका उल्लेख है; अतएव वैशम्पायनोक्त पाशास्त्र और आग्नेय धनुर्वेदोक्त पाशास्त्र भिन्न है, इसमें सन्देह नहीं।

आग्नेयधनुर्वेदोक्त लक्षण—

"दशहस्तो भवेत् पाशो वृत्तः करमुखस्तथा।
गुणकार्पासमुञ्जानामर्कस्नायवचर्मणाम्॥
अन्येषां सुदृढानाञ्च सुकृतं परिवेष्टितम्।
तथा त्रिंशत्समं पाशं बुधः कुर्यात् सुवर्त्तितम्॥"
(अग्निपु॰)

पाशको दश हाथ लम्बा बनाना चाहिये। यह वृत्त अर्थात् गोल रहे। इसका गुण कार्पासरज्जु, मुञ्ज नामक तृणरज्जु, पशुविशेषके स्नायु, आकन्दत्वक् सूत्र वा चर्मविशेष द्वारा प्रस्तुत हो। एतद्भिन्न अन्यान्य दृढ़ सूत्रोंसे इसे तैयार कर सकते हैं। खूब बारीक ३० तन्तुओंको भलीभांति पाक कर यह प्रस्तुत करना होता है।

पाशास्त्रकी क्रिया इस प्रकार है—युद्धकालमें इस पाशको कक्षदेश पर रखे। प्रयोगके समय कुन्तलाकृति करके मस्तकके ऊपर एक बार घुमा कर निक्षेप करे। इस पाश प्रयोगकी तीन प्रकारकी गति है;—वलगण, प्लवन और प्रव्रजन। इन सब गतियों द्वारा इच्छानुरूप बन्धन करके समीपमें लाया जाता है। इसके अलावा और भी ग्यारह प्रकारकी क्रियाएं हैं, यथा—परावृत्त, अपावृत्त, गृहीत, लघुसंज्ञित, ऊर्ध्वक्षिप्त, अधःक्षिप्त, मन्धारित, विधारित, श्येनपात, गजपात और ग्राहग्राह्य। वैशम्पायनके मतसे—

"प्रसारणं वेष्टनञ्च कर्त्तनञ्चेति ते त्रयः।
योगाः पाशाश्रिताः लोके पाशाः क्षुद्रसमाश्रिताः॥"
(वैशम्पायनोक्त धनुर्वेद)

पहले प्रसारण, पीछे उससे शत्रुको वेष्टन, अनन्तर अस्त्रान्तर द्वारा कर्त्तन, पाशको यही तीन प्रकारकी क्रियाएं कही गई हैं, किन्तु वे क्षुद्र योद्धाओंको आश्रित हैं।

एक और प्रकारका पाश है जिसका युद्धशास्त्रविशारदोंने पांच प्रकारके कार्य स्थिर किये हैं। यथा—ऋजु, आयत, विशाल, तिर्यक् और भ्रामित। इसमाद्रिके परिशिष्टमें औशनसशास्त्रोक्त पाशका विशेष विवरण लिखा है।

२ मृगविहगादि बन्धनरज्जुभेद, पशुपक्षियोंको फंसानेका जाल या फंदा। ३ रज्जुमात्र, डोरी, रस्सी। ४ शब्दके बाद पाश शब्द रहनेसे उसका अर्थ समूह होता है, यथा—केशपाश केशसमूह। कर्णशब्दके बाद पाश शब्द रहनेसे शोभनार्थ होता है, यथा—कर्णपाश शोभनकर्ण अर्थात् उत्तमकर्ण। निन्दा अर्थमें छात्रादि शब्दके उत्तर पाशप् प्रत्यय लगता है। यथा—छात्रपाश अपकृष्ट छात्र। ५ योगविशेष। ग्रहपञ्चकमें राशियोंके रहनेसे पाशाख्य योग होता है।

स्वप्नमें पाश देखनेसे आपद, रोग और धनक्षय होता है और रोगी यदि पाशस्वप्न देखे, तो उसकी मृत्यु होती है।

"कार्पासभस्मास्थिकपालशूलं चक्रञ्च पाशस्त्वथवा प्रपश्येत्।
तस्यापदं रोगधनक्षयं वा रोगी मृतिं वा तनुतेऽतिकष्टम्॥"
(हारीत द्वितीय स्था॰ २ अ॰)

कुलार्णव तन्त्रमें पाश शब्दका पारिभाषिक अर्थ इस प्रकार लिखा है—घृणा, शङ्का, भय, लज्जा, जुगुप्सा, कुल, शील और जाति, यही आठ प्रकारके पाश हैं।

"घृणा शंका भयं लज्जा जुगुप्सा चेति पञ्चमी।
कुलं शीलं तथा जातिरष्टौ पाशाः प्रकीर्त्तिताः॥"

(कुलार्णव)

पाशक (सं० पु० पाशयति पीड़यतीति पश-णिच्-ण्वुल्। १ द्यूतविशेष, एक प्रकारका जूआ, पासा, चौपड़। संस्कृत पर्याय—अक्ष, देवन, सारि, शारि, सार, शार, पाश।

पाशकेरली—ज्योतिषकी एक गणना जो पासे फेंक कर की जाती है। यूनान, फारस आदि पश्चिमी देशोंमें पुराने समयमें इसका बहुत प्रचार था। सम्भवतः वहींसे दक्षिण भारतके केरल प्रदेशमें यह विद्या आई हो।

पाशक्रीड़ा (सं० स्त्री०) पाशैः क्रीड़ा। पाशा द्वारा क्रीड़ा, पासा खेलना।

पाशचन्द्र—सूत्रकृताङ्ग नामक जैन शास्त्रके वार्त्तिककार।

पाशद्युम्न (सं० पु०) नृपभेद।

पाशधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच्, पाशस्य धरः। पाशधारी, वरुणदेवता।

पाशन (सं० क्लो०) पाशि-भावे ल्युट्। बन्धन।

पाशपाणि (सं० पु०) पाशः पाणौ यस्य। वरुण।

पाशबन्ध (सं० पु०) पाशे बन्धः। पाशबन्धन।

पाशबन्धक (सं० पु०) व्याध, बहेलिया।

पाशबन्धन (सं० क्लो०) पाशे बन्धनं ७ तत्। पाशबन्ध।

पाशभृत् (सं० पु०) पाशं बिभर्त्ति भृ-क्विप् तुगागमः। १ वरुण। (क्लो०) २ तद्देवताक शतभिषानक्षत्र। (त्रि०) ३ पाशधारिमात्र।

पाशमुद्रा (सं० स्त्री०) तन्त्रसारोक्त मुद्राभेद। यह दहने और बाएं हाथकी तर्जनीको मिला कर प्रत्येकके सिरे पर अंगूठा रखनेसे बनती है।

पाशव (सं० त्रि०) पशोरिदं अण्। १ पशुसम्बन्धी, पशुओंका। २ पशुओंका-सा। (क्लो०) ३ तन्त्रोक्त आचारभेद, पश्वाचार। पशूनां समूहः अण्। ४ पशुसमूह।

पाशवत् (सं० त्रि०) पाशः विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। १ पाशधारी, पाशवाला। (पु०) २ वरुण।

पाशवान् (हिं० वि०) पाशवत् देखो।

पाशवपालन (सं० क्लो०) पाशवं पशुसंघं पालयतीति पालि ल्युट्। तृण, घास।

पाशवासन (सं० क्लो०) आसनभेद। कर्परके अग्रभागमें निज मस्तक और पृष्ठदेशमें दोनों हाथ बांधनेसे यह आसन होता है। इस आसनके सिद्ध होनेसे साधक पशुपतिके सदृश हो जाता है।

पाशवीज (सं० क्लो०) 'आं' वीज।

पाशहस्त (सं० पु०) पाशः हस्ते यस्य। १ वरुण। २ शतभिषानक्षत्र। (त्रि०) ३ हस्तस्थित पाशक।

पाशादि (सं० पु०) पाणिन्युक्त शब्दगणभेद। इस पाशादिगणके उत्तर 'य' प्रत्यय होता है। गण यथा—पाश, तृण, धूम, वात, अङ्गार, पाटल, पोत, गल, पिटक, पिटाक, शकट, हल, नट और वन।

पाशान्त (सं० पु०) पार्श्वस्यान्तः पृषोदरादित्वात् साधुः। वस्त्रका पार्श्वान्त, कपड़ेका किनारा।

पाशिक (सं० त्रि०) पाशः प्रहरणमस्य ठक्। पाशबन्धनरूप प्रहरणयुक्त मृगयु, फंदे या जालमें चिड़िया फंसानेवाला, बहेलिया।

पाशित (सं० त्रि०) पाश-क्त। पाशयुक्त, बद्ध, बंधा हुआ।

पाशिन् (सं० पु०) पाशोऽस्त्यस्येति पाश-इनि। १ वरुण। २ व्याध, बहेलिया। ३ यम। ४ प्राणदण्ड पाए हुए अपराधियोंके गलेमें फांसीका फंदा लगानेवाला चाण्डाल। (त्रि०) ५ पाशधारीमात्र, पाशवाला।

पाशिल (सं० त्रि०) पाशस्यादूरदेशादि काशादित्वादिल। (पा ४।२।८०) पाशके सन्निकृष्ट देशादि।

पाशिवाट (सं० पु०) देशभेद।

पाशी (सं० स्त्री०) पाशधारिणी।

पाशीकृत (सं० त्रि०) अपाशः पाशः कृतः अभूततद्भावे च्वि। पाशबद्ध। जो पहले पाशबद्ध नहीं था पीछे पाशबद्ध हुआ, उसीको पाशीकृत कहते हैं।

पाशुक (सं० पु०) पशोर्यागज्ञापकग्रन्थस्य व्याख्यानो

ग्रन्थः इति ठक्। १ पशुयागव्यापक ग्रन्थव्याख्यान। पशोरिदं ठक्। (त्रि०) २ पशुसम्बन्धी।

पाशुपत (सं० पु०) पशुपतिर्देवताऽस्येति (सास्य-देवता। पा ४।२।२४) अण्। १ वकपुष्प, अगस्तका फूल। २ पशुपति-अधिदेवता। ३ पशुपतिदेवताके भक्त या उपासक। ४ अथर्ववेदके अन्तर्गत उपनिषद् विशेष। ५ पशुपति कर्त्तृक उपदिष्ट शास्त्र। (त्रि०) ६ पशुपति सम्बन्धी, शिवसम्बन्धी, पशुपतिका।

पाशुपतदर्शन—भारतीय दर्शनोंके अन्तर्गत दर्शनभेद। माधवाचार्यने सर्वदर्शनसंग्रहमें इस दर्शनका जो सारसंग्रह किया है, वह इस प्रकार है—

इस दर्शनके मतसे जीवमात्र ही पशुपदवाच्य है। जीवोंके अधिष्ठाता पशुपति शिव हैं। पशुपति शिव ही परमेश्वर हैं। पशुपति सम्बन्धीय होनेके कारण इस दर्शनका नाम पाशुपत पड़ा है। इसका दूसरा नाम नकुलीश-पाशुपत-दर्शन है।

साधारण जीव हस्तपदादिकी सहायताके बिना कोई काम नहीं कर सकता अर्थात् जो कोई काम करना होता है, वह हाथ अथवा पैरसे ही किया जाता है। जीवमें केवल इच्छासे ही कार्य सम्पादन करनेकी क्षमता नहीं है। बिना साधनके कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। भगवान् पशुपतिने बिना किसी वस्तुकी सहायताके ही इस जगत्का निर्माण किया है। इसीसे पशुपति शिव स्वतन्त्रकर्त्ता हैं। हम लोगोंसे जो सब कार्य सम्पन्न होते हैं, उसके कारण भी परमेश्वर हैं। इसीसे उन्हें सर्वकार्यके कारण भी कह सकते है।

यहां पर कोई कोई आपत्ति करते हैं, कि यदि सभी कार्योंके कारण पशुपति शिव हों, तो एक समय भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान तीनों कालके कार्य क्यों नहीं होते? जब कारणस्वरूप जगदीश्वर हमेशा सब जगह विराजमान हैं, तब जनसमूह मुक्तिकी इच्छा करके घोरतर तपस्या और पारलौकिक सुखाभिलाषसे यज्ञादिका अनुष्ठान क्यों करते हैं? जब भगवान्की इच्छाके बिना कोई काम हो ही नहीं सकता, तब वे सब कार्य उनके निरर्थक हैं; किन्तु जो इस प्रकारकी आपत्ति करते हैं, वे यह नहीं सोचते, कि जब भगवान्के इच्छानुसार ही कार्य होता है, तब उनकी जब जिस विषयमें इच्छा होगी, तब ही वह विषय सम्पन्न होगा; अतः इस प्रकारकी जो आपत्ति की जाती है, सो व्यर्थ। सभी कार्य एक समय हों अथवा सब समय, इस प्रकार परमेश्वरकी इच्छा नहीं होती, इसलिये भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानके कार्य एक समय नहीं होते। ईश्वर यदि चाहें, तो वे सब कार्य एक समयमें भी हो सकते हैं। उन्होंने जैसी इच्छा की है, जगत् भी उस भावमें चलता है। उन्हींकी इच्छासे सृष्टि, स्थिति और लय हुआ करता है। मुमुक्षुव्यक्ति योगाभ्यासमें, स्वर्गाभिलाषी यज्ञादि कार्यमें और सांसारिक सुखेच्छु धनपार्जनादिमें प्रवृत्त होवें, ऐसी ही परमेश्वरकी इच्छा है; इसीसे उन सब विषयोंमें उक्त व्यक्तियोंकी प्रवृत्त होना पड़ता है। उनकी इच्छा कभी भी वृथा नहीं जाती। परमेश्वर सबोंके प्रभुस्वरूप हैं और उनकी इच्छा आदेशस्वरूप। सुतरां प्रभुका आदेश उल्लङ्घन करनेमें असमर्थ हो कर सभी प्राणियोंको उन सब विषयोंमें प्रवृत्त होना पड़ता है, यह युक्तिविरुद्ध भी नहीं है। परमेश्वर इसी प्रकार स्वेच्छाक्रमसे सभी कार्य सम्पादन करते हैं, इस कारण उन्हें स्वेच्छाचारी भी कहते हैं।

इस दर्शनके मतसे मुक्ति दो प्रकारकी है, सब दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति और पारमैश्वर्यप्राप्ति। अन्यान्य दार्शनिकोंने दुःखका अत्यन्त निवृत्तिरूप मोक्ष है, ऐसा बतलाया है। किन्तु इन लोगोंके मतसे जो दुःखके निवृत्त होनेसे ही मुक्ति होती है, सो नहीं; उसके साथ साथ ऐश्वर्यलाभ भी प्रयोजनीय है।

दुःखात्यन्तनिवृत्तिरूप मुक्ति होनेसे फिर कभी कोई दुःख नहीं होता; इसीसे उस मुक्तिको चरमदुःख-निवृत्ति कहते हैं। दृक्‌शक्ति और क्रियाशक्तिभेदसे पारमैश्वर्य मुक्ति दो प्रकारकी है। दृक्‌शक्ति द्वारा कोई विषय अविज्ञात नहीं रहता। जितना ही सूक्ष्म क्यों न हो, जितना ही व्यवहित वा जितनी ही दूरमें क्यों न रहे, वह स्थूल, अव्यवहित और अदूरवर्त्ती वस्तुकी तरह दृष्टिगोचर होता है और वस्तुका जो गुण वा दोष है, वह भी जाना जाता है। दृक्‌शक्तिमान् व्यक्ति सभी विषयोंके ज्ञानपथके पथिक होते हैं।

क्रियाशक्ति होनेसे जब जिस विषयमें अभिलाषा होती है, उसी समय वह सुसम्पन्न होता है। क्रियाशक्तियुक्त व्यक्तिको केवल इच्छाकी ही अपेक्षा करती है। मुक्त व्यक्तिकी इच्छा होनेसे किसी भी कारणकी अपेक्षा न कर बहुत जल्द उसका मनोरथ पूर्ण होता है। यह दृक्शक्ति और क्रियाशक्तिरूप मुक्ति परमेश्वरकी तत्तत्शक्तिके सदृश है, इसीसे उसका नाम पारमैश्वर्य मुक्ति पड़ा है।

पूर्ण प्रज्ञदर्शनमें जो मुक्ति कही गई है, इस दर्शनमें वह मत नितान्त अयौक्तिक और अश्रद्धेय माना गया है। पूर्ण प्रज्ञदर्शनमें कथित भगवद्दासत्वप्राप्तिको मुक्ति कहना विडम्बना मात्र है। कारण, मुक्त व्यक्तिको यदि दासत्वरूप अधीनताके शृङ्खलमें बद्ध होना पड़ा, तो उसे किस प्रकार मुक्त कह सकते ? क्योंकि अमूल्यमणिमाणिक्यरत्नादि-विनिर्मित शृङ्खलाबद्ध व्यक्तिको भी बद्ध ही कहते हैं—कोई भी उसे मुक्त नहीं कहता। अतएव अन्धको पद्मपलाशलोचन कहनेकी तरह भगवद्दासत्वरूप अधीनता पाशमें बद्ध व्यक्तिको मुक्त कहना युक्तिविरुद्ध और हास्यास्पद है, इसमें सन्देह नहीं।

इस मतमें प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम यही तीन प्रकारका प्रमाण है। प्रधान धर्मसाधनको चर्याविधि कहते हैं। यह चर्या दो प्रकारकी है, व्रत और द्वार। त्रिसन्ध्या भस्मस्नान, भस्मशय्या पर शयन और उपहार इन तीनोंको व्रत कहते हैं। ह, ह, हा करके हास्यरूप हसित, गान्धर्व शास्त्रानुसार महादेवका गुणगानरूप गीत, नाट्यशास्त्रसम्मत नर्त्तनरूप नृत्य, पुङ्गवके चीत्कारकी तरह चीत्काररूप हुड़ुक्कार, प्रणाम और जप इन छः कर्मोंको उपहार कहते हैं।

इस प्रकारका व्रत जनसमाजमें न कर छिपके करना होता है। यह चर्या क्राथन, स्पन्दन, मन्दन, शृङ्गारण, अवितत्करण और अवितद्भाषणके भेदसे छः प्रकारकी है। सुप्त न हो कर सुप्तकी तरह प्रदर्शनको क्राथन, वायु सम्पर्कसे कम्पितकी तरह शरीरादिके कम्पनको स्पन्दन, खञ्जव्यक्तिके समान गमनको मन्दन, परम रूपवती स्त्रीको देख कर वास्तविक कामुक नहीं होने पर भी कामुककी तरह कुत्सित व्यवहार दिखलानेको शृङ्गारण, कर्त्तव्याकर्त्तव्य पर्यालोचनाशून्यकी तरह विगर्हित कर्मानुष्ठान अवितत्करण और निरर्थक वा बाधितार्थक शब्दोच्चारणको अवितद्भाषण कहते हैं। इस मतमें तत्त्वज्ञान ही मुक्तिका कारण है। दूसरे शास्त्रोंमें भी तत्त्वज्ञानको मुक्तिका कारण तो बतलाया है, पर अन्य शास्त्रमें इस प्रकार तत्त्वज्ञान होनेकी सम्भावना नहीं। इसीसे पाशुपतके मतानुसार यही शास्त्र मुमुक्षुका एकमात्र अवलम्बनीय है।

विशेषरूपमें सभी वस्तुओंसे जानकार नहीं होनेसे तत्त्व नहीं होता। किन्तु सभी वस्तुओंका विशेषरूपमें ज्ञान शास्त्रान्तर द्वारा होनेकी सम्भावना नहीं; कारण, शास्त्रान्तरमें सभी विषय विशेषरूपमें निर्दिष्ट नहीं हुए हैं। अन्यान्य शास्त्रोंमें केवल दुःखनिवृत्ति ही मुक्ति है और योगका फल केवल दुःखनिवृत्ति है। कार्यजात अनित्य और कारणस्वरूप परमेश्वर कर्मादि सापेक्ष है, ऐसा ही निर्दिष्ट है। किन्तु इस पाशुपतदर्शनके मतसे दुःखनिवृत्ति और उसके साथ साथ पारमैश्वर्यप्राप्ति ही मुक्ति है और परमेश्वर स्वतन्त्र कर्त्ता हैं।

माधवाचार्यने बहुत संक्षेपमें इस दार्शनिकका सारसङ्कलन किया है। शैव शब्दमें अपरापर विवरण देखो।

पाशुपतरस (सं॰ पु॰) रसेन्द्रसारसंग्रहोक्त औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—एक भाग पारा, दो भाग गंधक, तीन भाग लौहभस्म और तीनोंके बराबर विष ले कर चीतेके काढ़ेमें भावना दे। फिर उसमें ३२ भाग धतूरेके बीजको भस्म मिलावे। इसके बाद सोंठ,—पीपल, मिर्च, लौंग प्रत्येक तीन भाग, जावित्री और जायफल आधा भाग तथा विट, सैंधव, सामुद्र, उद्भिद्, सोंचर, सज्जी, एरंड, इमली, जवाखार, हींग, जीरा, सोहागा सब एक एक भाग मिला कर नीबूके रसमें भावना दे और घुंघचीके बराबर गोली बना ले। भिन्न भिन्न अनुपानके साथ सेवन करनेसे अग्निमन्द, अपच और हृदयके रोग दूर होते हैं तथा हैजेमें तुरन्त फायदा होता है। तालमूलीके रसमें देनेसे उदरामय, मोचरसके साथ अतीसार, मट्ठे और सेंधा नमकके साथ ग्रहणी, सौवच ललवण, पीपर और सोंठके साथ शूल, केवल मट्ठेके साथ अर्श, पीपरके साथ यक्ष्मा, सोंठ और सौवच ललवणके साथ वातरोग,

धनिये और चोनोके साथ पित्तरोग तथा पोपर और मधुके साथ सेवन करनेसे श्लेषा आदि रोग दूर होते हैं। स्वयं धन्वन्तरिने इस औषधका उपदेश दिया है।

(रसेन्द्रसारसं० अजीर्णाधि०)

पाशुपतव्रत (सं० क्लो०) पाशुपतं पशुपतिसम्बन्धि व्रतं। १ पशुपतिसम्बन्धीय व्रतविशेष।

"यथा पशुपतिर्नित्यं हृत्वा सर्वमिदं जगत्।
न लिप्यते पुनः सोऽपि यो नित्यं व्रतमाचरेत्॥
इहजन्मकृतं पापं पूर्वजन्म कृतञ्च यत्।
तं पाशुपतं नाम कृत्वा हन्ति द्विजोत्तम॥"

(अग्निपु० पाशुपतव्रतदानाध्याय)

पाशुपतव्रतानुष्ठानसे इहजन्म और परजन्मकृत पाप विनष्ट होते हैं। यह व्रत यदि करना हो, तो द्वादशीके दिन उपवास, त्रयोदशीके दिन ययाचित भक्षण, चतुर्दशीके दिन नक्तभोजन, पीछे अमावस्यामें यह व्रत करे। इस व्रतमें सुवर्ण, रौप्य अथवा ताम्र द्वारा वृष प्रस्तुत करके सुवर्णका पत्र बनावे। उस पत्रके ऊपर उमा और महेश्वरको मूर्त्ति अङ्कित करके यथाविधान पूजा करे। पूजादिके शेष होने पर निम्नलिखित मन्त्रसे प्रार्थना करनी होती है। मन्त्र यथा—

"गंगाधर महादेव सर्वलोक चराचर।
जहि मे सर्वपापानि पूजितस्त्विह शंकर॥
शंकराय नमस्तुभ्यं सर्वपापहराय च।
यथा यमं न पश्यामि तथा मे कुरु शंकर॥
यममार्गं यथा शम्भो न पश्यामि कदाचन।
सम्पूजितो मया भक्त्या तथा मे कुरु शंकर॥
गंगाधर धराधीश परात्पर वरप्रद।
श्रीकण्ठ नीलकण्ठस्त्वमुमाकान्त नमोऽस्तुते॥"

इस प्रकार प्रार्थना करके ब्राह्मणको वृषादि दान करना होता है। इस व्रतके करनेसे किसीको भी यमद्वारका भय नहीं रहता। इस व्रतानुष्ठाताके सभी पाप दूर होते हैं और अन्तमें उन्हें स्वर्गकी प्राप्ति होती है। (अग्निपु० पाशुपतव्रत-दानाध्याय)

शिवपुराणकी वायुसंहितामें लिखा है—

"रहस्यं वः प्रवक्ष्यामि सर्वपापनिकृन्तनम्।
व्रतं पाशुपतं श्रौतमथर्वशिरसि श्रुतम्॥" (शिवपु०)

चैत्रमासकी पौर्णमासीमें यह व्रत करना होता है। यथाविधान सङ्कल्प करके उसीके अनुसार शिव-पूजा और होमादि करने होते हैं। होमावसान पर होमकी भस्म शरीरमें अवश्य लगावे। यह व्रत पापनाशक माना गया है।

शिवपुराणकी वायुसंहिताके पूर्वखण्डके २८वें अध्यायमें इस व्रतका विशेष विवरण लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे वह यहां नहीं लिखा गया।

२ योगविशेष। इस योगका आश्रय करनेसे शीघ्र ही मुक्तिलाभ होता है। शिवपुराणमें लिखा है, "ऋषियोंने वायुसे पूछा था, श्रेष्ठ तत्त्व क्या है? जिसके करनेसे मोक्षको प्राप्ति होती है।" इस पर वायुने उत्तर दिया था, 'पाशुपत योग ही श्रेष्ठ है। पाशुपत योगी सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त होते हैं। पशुपति शिव ही एकमात्र परम तत्त्व हैं। ये साक्षात् मोक्षप्रद हैं। क्रिया, तपस्या, जप, ध्यान और ज्ञान इन पांच कर्मों द्वारा उनकी प्राप्ति होती है। क्रियादि पञ्च कर्म द्वारा इन्हें प्राप्त कर सकने पर भी ये एकमात्र ज्ञानगम्य हैं। यह ज्ञान परोक्ष और अपरोक्षके भेदसे दो प्रकारका है। इस मतमें श्रुतिप्रतिपादित परम और अपरम भेदसे धर्म भी दो प्रकारका है। इन दोनोंमेंसे योग ही परमधर्म है, तद्भिन्न धर्म अपरमपदवाच्य है। आगम दो प्रकारका है, श्रौत और अश्रौत। इनमेंसे जो श्रुतिसारमय है, वह श्रौत और तद्भिन्न अश्रौत। रुरु, दधीच, अगस्त्य और उपमन्यु इन चार परमर्षियोंने युगागममें पाशुपत ज्ञानका उपदेश दिया था। महादेवने स्वयं उन सब रूपोंमें आविर्भूत हो कर उन लोगोंके द्वारा इस शास्त्रका उपदेश दिया। इसीसे यह पाशुपतयोग सर्वश्रेष्ठ है।

यह पाशुपतयोग नामाष्टकमय है जो स्वयं शिवसे कीर्त्तित हुआ है। इस योगानुष्ठानसे शैवी प्रज्ञा उत्पन्न होती है। प्रज्ञाके उत्पन्न होनेसे अति शीघ्र ज्ञानलाभ होता है। जब शिव उनके प्रति प्रसन्न होते हैं, तब योगी मुक्त हो कर शिवके समान हो जाते हैं। शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह, संसार-

वेद्य, सर्वज्ञ और परमात्मा ये ८ शिवाष्टक हैं। यही परमयोग है। इस योगसे मोक्ष मिलता है।

(शिवपु० वायुस० २१ अ०)

पाशुपतास्त्र (सं० क्लो०) पाशुपतं पशुपतिसम्बन्धि अस्त्रं। पशुपतिका शूलास्त्र। महादेवका यह अस्त्र बहुत प्रचण्ड था। अर्जुनने कठोर तपस्या करके महादेवसे यह पाशुपतास्त्र प्राप्त किया था। यह अस्त्र बहुत बड़ा था और इसकी प्रभा युगान्तकालकी अग्नि सदृश थी। इस अस्त्रके पञ्चवक्त्र, दशबाहु और तीन नेत्र थे।

पाशुपाल्य (सं० क्लो०) पशुपालस्य भावः कर्म वा पशुपाल-ष्यञ्। वैश्यवृत्ति। वैश्योंको कृषि और पशुपालन द्वारा जीविकानिर्वाह करना चाहिये।

"दानमध्ययनं यज्ञो वैश्यस्यापि त्रिधेवसः।
वाणिज्यं पाशुपाल्यञ्च कृषिञ्चैवास्य जीविका॥"

(मार्क०पु० २८।६ अ०)

पाशुबन्धक (सं० क्लो०) पशुबन्धः प्रयोजनमस्य ठञ्। १ वह स्थान जहां यज्ञका बलिपशु बांधा जाता है। स्त्रियां टाप्, कापि अत इत्वं। २ वेदी।

पाश्चात्य (सं० त्रि०) पश्चात्-त्यक्। (दक्षिणापश्चात् पुरसस्त्यक्। पा ४।२।९८) १ पश्चाद्भव, पीछे होनेवाला। २ पीछेका, पिछला। ३ पश्चिमदेशजात, पश्चिमदेश या दिशाका।

पाश्चात्यदर्शन—इस देशमें दर्शनशास्त्र कहनेसे जो समझा जाता है, अङ्गरेजी और अन्यान्य यूरोपीय भाषामें उसका प्रतिशब्द "फिलोजाफी" (Philosophy) है। "फिलोजाफी' शब्दका व्युत्पत्तिगत अर्थ ज्ञानानुराग है। कहते हैं, कि प्राचीन ग्रीकदार्शनिक पीथागोरस (Pythagoras)-ने इस शब्दका प्रचार किया। पण्डितप्रवर सक्रेटिस स्वभावसिद्ध विनयवशतः अपनेको ज्ञानी न कह कर ज्ञानानुसन्धित्सु (Philosopher) बतलाते थे। पहले फिलोजाफी कहनेसे सभी प्रकारको विद्याका बोध होता था; जड़विज्ञान, साहित्य इत्यादि विद्यामात्र ही 'फिलोजाफी' नामसे अभिहित होती थी। दार्शनिक प्लेटोके ग्रन्थमें ही सबसे पहले उक्त शब्दका अधुना प्रचलित अर्थमें प्रयोग देखनेमें आता है। प्लेटोने दार्शनिकको "अविनश्वर पदार्थ ज्ञानविशिष्ट" वा "पदार्थोंके स्वरूप निर्णयविषयमें ज्ञानी" ऐसी आख्या प्रदान की है। प्लेटोकी प्रवर्त्तित संज्ञाके साथ आधुनिक संज्ञाओंका सामञ्जस्य रहने पर भी उनके ग्रन्थमें धर्मके साथ दार्शनिक तत्त्वका जटिल संमिश्रण है, इस कारण तत्कृत निर्देश अपेक्षाकृत अस्पष्ट है। निखिल ज्ञानसम्पन्न दार्शनिक अरिष्टटलने दर्शनशास्त्रकी सीमाकी अपेक्षाकृत सुस्पष्ट और इसके अन्यान्य शास्त्रोंसे विविक्त बतलाया है। सक्रेटिसके पूर्ववर्त्ती दार्शनिकोंके मध्य दर्शनशास्त्रकी परिधि ब्रह्माण्डतत्त्वमें (Cosmology) पर्यवसित हुई थी। जगत्‌के उत्पत्तितत्त्व परमाणुवाद आदि वर्त्तमान जड़विज्ञानके आलोच्य सभी विषय उनके अन्तर्भुक्त थे। पीछे सक्रेटिसने नीति और ज्ञानतत्त्वको दर्शनशास्त्रकी सीमाके मध्य सन्निवेशित किया। इस प्रकार बहिर्जगत् और अन्तर्जगत्‌के सामञ्जस्यविधानकी आंशिक चेष्टा की गई। प्लेटोने सक्रेटिसका पदानुसरण करके तर्कशास्त्रनीति, धर्मप्रभृतिको दर्शनशास्त्रके अन्तर्भूत बतलाया है।

दार्शनिक अरिष्टटलकी सर्वभेदिनी प्रतिभाने इस जटिल संमिश्रणसे दर्शनशास्त्रका उद्धार किया। अरिष्टटलके विभिन्न शास्त्रोंका प्रतिपाद्य विषय और उसकी सीमा निर्देश करने पर नीतिशास्त्र, तर्कशास्त्र, विज्ञान आदि विभिन्न शास्त्र समझे जाते हैं। तत्त्वनिर्णय (Metaphysics)-का नाम अरिष्टटलने First philosophy वा मुख्यदर्शन रखा था। फिलोजाफी शब्दका प्रयोग वर्त्तमान समयमें अरिष्टटलके मतानुयायी चला आ रहा है।

फिलोजाफी वा दर्शनशास्त्रमें सर्ववादिसम्मत लक्षणका निर्देश करना बड़ा ही कठिन है। भिन्न भिन्न श्रेणीके दार्शनिकोंने अपने अपने साम्प्रदायिक मतानुसार इसके विभिन्न लक्षण निर्देश किये हैं। फिलोजाफी शब्दके व्यवहारिक प्रयोगमें भी विलक्षण शिथिलता देखी जाती है। दर्शनकी संज्ञाके सम्बन्धमें मतका पार्थक्य रहने पर भी दर्शनशास्त्रका आलोच्य विषय क्या क्या है, इसके सम्बन्धमें सबोंका प्रायः एक मत नहीं है।

किसी किसीका कहना है, कि जगत्, जीव और ब्रह्मके सम्बन्धनिर्णयात्मक शास्त्रको दर्शनशास्त्र कहते

हैं। किसीका यह भी मत है, कि पदार्थ समूहके तत्त्व निर्णायक शास्त्रका नाम दर्शनशास्त्र है (Philosophy is the thinking consideration of things)। किसी किसी सम्प्रदायके मतसे दर्शनशास्त्र विज्ञानशास्त्रसमूह-का सामञ्जस्यविधायक शास्त्रविशेष है (Philosophy is the science of sciences *i. e.* Systematiser of sciences)। दार्शनिक कोमत (Comte) और हवर्टस्पेन्सर (Herbert Spencer) ही शेषोक्त संज्ञा पर अपना अपना दर्शन बना गये हैं। कोमत-दर्शन विज्ञानसमूह स्तरविन्यासके सिवा और कुछ भी नहीं है। स्पेन्सरने भी क्रमाभिव्यक्ति मतका अवलम्बन करके विज्ञानकी भित्तिके ऊपर अपने अपने दर्शनकी भित्ति स्थापन की है। दोनों दार्शनिकोंमेंसे कोई भी अतीन्द्रिय पदार्थके अस्तित्व वा उक्त पदार्थके ज्ञेयत्वमें विश्वासशाली नहीं है। अज्ञेयवाद स्पेन्सरका दार्शनिक मत है। वे जागतिक व्यापारके अन्तस्तलमें एक महा-शक्ति (Force)-का अस्तित्व स्वीकार कर गये हैं। किन्तु इस महाशक्तिको उन्होंने अज्ञात और अज्ञेय (Unknown and Unknowable) बतलाया है। कोमत ऐसी किसी भी अतीन्द्रिय शक्तिको स्वीकार नहीं करते। उनके मतसे ज्ञान प्रत्यक्षके मध्य सीमाबद्ध है। कोई कोई सम्प्रदाय मनोविज्ञानको दर्शनशास्त्रकी एक श्रेणीमें रख कर कहते हैं, कि मनोविज्ञान (Psychology) "ज्ञानतत्त्वका पंथा" है और उक्त शास्त्रकी सीमा ही ज्ञानकी सीमा निर्देश करती है। ये लोग Metaphysics-की आवश्यकता स्वीकार नहीं करते। दार्शनिक ह्यूम और तत्प्रवर्त्तित पथानुसारी जनष्टु-यार्ट मिल इस मतके प्रधान परिपोषक हैं। स्काटिश दर्शनके प्रधान पृष्ठपोषक दार्शनिक हेमिल्टन (Hamilton) अपने Metaphysics नामक ग्रन्थमें मनो-विज्ञानको दर्शनशास्त्रका मूलग्रन्थ बतला गये हैं। हेमिल्टनका दार्शनिकमत वास्तववाद (Natural Realism) होने पर भी वे दर्शनशास्त्रके तत्त्वनिर्णय-विषयक अंश (Ontology or Metaphysics)-को आवश्यकता अस्वीकार नहीं करते। इङ्गलैण्डीय दार्शनिक सम्प्रदाय (English School of Philosophy, the Empirical or the Sensationist School as represented by Hume and Mill) प्रधानतः अज्ञेयवाद (Agnosticism)के ऊपर प्रतिष्ठित है। सुतरां उनके मतसे इन्द्रियज ज्ञान (Sensation)की समष्टि नहीं है, ऐसा तत्त्वनिर्णायक कोई शास्त्र (Metaphysics) नहीं हो सकता। इसीसे अनेक जर्मन पण्डितों-ने इङ्गलैण्डीय दर्शनको मनोविज्ञानके अन्तर्गत ले लिया है। जर्मनदेशीय दर्शन इसका विपरीत भावा-पन्न है, प्रधानतः जर्मन तत्त्वनिर्णयविषयमें ही (Ontology) नियोजित हुआ है। अतः उस देशमें दर्शनशास्त्रके प्रतिपाद्य विषयमें विभिन्नमत प्रचलित है।

इन समस्त विरोधी मतसमूहके संघर्ष तथा इनके सामञ्जस्य विधानकी चेष्टासे ही दर्शनशास्त्रकी उन्नति और परिपुष्टि साधित हुई है। दर्शनशास्त्रकी उन्नतिका क्रम इस प्रकार है;—जब किसी दार्शनिक मत-विशेषका प्रचार हुआ, तब ही एकदेशदर्शित्वके लिये उक्त मत-का विरोधी मतवाद संस्थापित हुआ है। अन्तमें दोनों मतके एकदेशदर्शित्व-खण्डन और उनका साम-ञ्जस्य विधान करके मतान्तरकी सृष्टि हुई है। जग-त्तत्त्वकी समालोचना कर देखनेसे मालूम पड़ेगा, कि उन्नतिका क्रम ही इस प्रकार है। पन्था और मतका अनैक्य रहने पर भी दर्शनशास्त्रका प्रतिपाद्य क्या है, इस सम्बन्धमें विभिन्न सम्प्रदायके मध्य विशेष प्रभेद नहीं देखा जाता।

विज्ञान और दर्शनशास्त्रका प्रभेद।

विज्ञान और दर्शन दोनों शास्त्रोंके आलोच्य विषयमें क्या प्रभेद है, यह मालूम होनेसे ही दोनोंकी पृथकता जानी जायगी।

विज्ञानका आलोच्य विषय क्या है? चेतन और जड़प्रकृति ही विज्ञानका आलोच्य विषय है। यह स्थावरजङ्गमात्मक जगत् चेतन और जड़प्रकृति ले कर गठित है। इसकी कार्यावली सनातन नियमानुसार साधित होती है। विज्ञान इन प्राकृतिक नियमोंका आविष्कार है। यह उनके कार्यप्रणालीनिर्णय और उक्त नियमावलीकी सहायतासे मानवकी जातीय उन्नति-में सहायता पहुंचाता है। स्थावर, जङ्गम, चेतन और

अचेतनके भेदसे जिस प्रकार प्रकृतिका भिन्न भिन्न विभाग है, प्राकृतिक नियमके भी उसी प्रकार श्रेणी विभाग है। नियमके विभिन्न श्रेणीविभागानुसार एक एक विज्ञानकी भित्ति स्थापित हुई है। जैसे, पदार्थविद्या (Physics)-का आलोच्य विषय पदार्थ मात्रका जो साधारण धर्मों वा गुणावलीका अवधारण है। किस किस नियम (Laws)-के वशवर्त्ती हो कर पदार्थ की अवस्थान्तरप्राप्ति होती है वा पदार्थ मात्र ही किस किस नियमके अधीन है, इन सबोंका निर्द्धारण है ताप (Heat). तड़ित् (Electricity) आदि शक्तियोंका कार्य प्रणाली-निर्णय इत्यादि। रसायन (Chemistry)-का आलोच्य विषय है मौलिक पदार्थों (Elements)-का आविष्कार और इन सब मौलिक पदार्थोंके संयोगसे किस प्रकार यौगिक पदार्थोंकी उत्पत्ति हुई हैं, उसका निर्णय एवं दो वा ततोधिक मौलिक पदार्थोंके संयोगसे अभिनवगुणयुक्त विभिन्न पदार्थोंका उद्भावन इत्यादि। एतद्भिन्न किस प्रकार भूमण्डल पर जीवका आविर्भाव, संस्थिति और उन्नति साधित होती है, उनका तत्त्वनिर्णय जीवतत्त्वशास्त्र (Biology)-के अधीन है।

जीव और जड़की नियमावली जाननेके लिये जिस प्रकार जड़ और प्राणीविज्ञान प्रवर्त्तित हुआ है, मनोजगत्की नियमावली निर्णयके लिये उसी प्रकार मनोविज्ञानकी सृष्टि हुई है।

उक्त विवरणसे देखा जाता है, कि दर्शन और विज्ञानका उद्देश्य तथा गन्तव्य पथ विभिन्न है। सत्यान्वेषण दोनोंका उद्देश्य होने पर भी दार्शनिक और वैज्ञानिक सत्य एक जातिका नहीं है। विज्ञानके हिसाबसे जो सत्य है, दर्शनके हिसाबसे वह सत्य होगा ही, ऐसा कोई नियम नहीं है। विज्ञान जागतिक व्यापार (Facts or Phenomena)के सत्यासत्य निर्द्धारणमें व्यस्त है। विज्ञानके मतसे प्रत्यक्ष प्रमाण ही (Observation) सत्यासत्य निर्द्धारणका एकमात्र उपाय है। वैज्ञानिक सत्य प्रत्यक्षसिद्ध है। प्रत्यक्षरूपसे जो स्थायी नहीं हुआ, विज्ञान वैसा सत्य ग्रहण नहीं करता। दार्शनिक सत्य अन्य प्रकारका है। दर्शन प्रत्यक्षको नित्यसिद्ध नहीं मानता, अगर माने भी तो क्यों? प्रत्यक्षके मध्य कितने सत्य निहित हैं, प्रत्यक्षका मूल कहां है? इन सब विषयोंके तत्त्वान्वेषणसे दर्शनशास्त्रका आविर्भाव हुआ है।

अभी देखा जाता है, कि विज्ञानके मूल पर दर्शनका अधिकार है। प्रत्यक्ष प्रमाण विज्ञानकी कसौटी है, किन्तु दर्शनका आलोच्य विषय है। दर्शनशास्त्रका मूल और भी नीचे है। सुतरां विज्ञान और दर्शनशास्त्र एक है अथवा दर्शन और विज्ञान शास्त्रसमूहके मेलसे समुत्पन्न नहीं है। दर्शनकी मूलभित्ति प्रज्ञा (Reason) है और विज्ञानकी भित्तिभूमि प्रत्यक्षज्ञान (Experience)।

कोई कोई दार्शनिक और मनोविज्ञानशास्त्रकी पृथकता स्वीकार नहीं करते; उनके मतसे दर्शनशास्त्र (Metaphysics) अतीन्द्रिय ज्ञान (Super sensuous knowledge)-विषयक कोई शास्त्र नहीं हो सकता। उनका कहना है, कि मनोविज्ञानशास्त्र (Psychology) द्वारा ही दर्शनका कार्य साधित हुआ करता है। ह्यूम, मिल, बैन आदि दार्शनिकगण इसी सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त हैं। दार्शनिकप्रवर हैमिल्टन भी अपने ग्रन्थमें (Lectures on Metaphysics, Vol. I) दर्शनशास्त्रको मनोविज्ञान-मूलक (Psychological) बतला गये हैं। यहां पर यह कह देना आवश्यक है, कि दोनों ही मत अपनी अपनी साम्प्रदायिक दार्शनिक भित्तिके ऊपर प्रतिष्ठित हैं।

मनोविज्ञानशास्त्रका आलोच्य विषय क्या है? इसकी पर्यालोचना करनेसे ही मालूम पड़ेगा, कि दर्शन और मनोविज्ञान दोनों शास्त्रोंका अधिकारभूत विषय एक नहीं है। नामसे ही जाना जाता है, कि मनोविज्ञानशास्त्र (Empirical Psychology) अधुना अन्यान्य विज्ञानशास्त्रोंके साथ समश्रेणीभुक्त किया गया है। जड़प्रकृति जिस प्रकार प्राकृतिक नियमके अधीन है, मानसिक जगत्में भी उसी प्रकार कितने सार्वभौमिक नियम हैं। प्रकृतिकी कार्य-कारण-प्रणाली और नियमावलीका निर्णय जिस प्रकार जड़विज्ञानका लक्षीभूत विषय है, मनोजगत्की कार्य-कारणप्रणाली और नियमावलीका निर्णय उसी प्रकार मनोविज्ञानका आलोच्य विषय है।

आधुनिक पाश्चात्य विज्ञानविदोंके मतानुसार मन (Mind) जड़जगत्‌की क्रमोन्नतिका एक स्तरमात्र है। सुतरां अन्यान्य विज्ञानशास्त्र जिस प्रणाली (Methods of investigation)-का अवलम्बन करता आ रहा है, मनोविज्ञान शास्त्रमें भी वही प्रणाली अवलम्बित हुई है। प्रत्यक्षज्ञान (Observation) और परीक्षा (Experiment) इन दो अनुसन्धान-प्रणालीके ऊपर निर्भर करके जड़विज्ञान-शास्त्रकी उन्नति भी उक्त दोनों प्रणालीके अवलम्बन पर साधित होती है।

वे जड़जगत्‌का जो प्रदेश किसी विशेष विज्ञान (Special Science)के अधिकार भुक्त है, उस प्रदेशके विषयीभूत व्यापारों (Facts)-के प्रति प्रथमतः लक्ष्य करते हैं। उन सबके ऊपर निर्भर करके उनके कार्य-कारण-सम्बन्ध और जिन सब प्राकृतिक शक्तियोंसे उक्त व्यापार सम्पन्न होते हैं, उनका वे निर्णय करते हैं। प्राकृतिक व्यापारोंके विज्ञानानुमोदित कार्यकारण-सम्बन्धका निर्णय व्यतिरेकी युक्ति (Induction)-के आश्रयसे साधित हुआ करता है। सुतरां देखा जाता है, कि जड़विज्ञानकी उन्नति प्रत्यक्षके ऊपर निर्भर करके ही साधित हुई है।

मनोविज्ञान (Empirical Psychology)-की उन्नतिका क्रम भी इसी प्रकार है। इस शास्त्रमें मनको अतीन्द्रिय कोई पदार्थ विशेष (as super-sensuous object or noumenon) न मान कर अन्यान्य इन्द्रियग्राह्यपदार्थ (as sensuous object or Phenomenon) माना है। मनका व्यापार (States of Consciousness) प्रथमतः पर्यवेक्षण करके किस किस नियमके अनुसार उक्त व्यापार निर्वाहित होता है, उसके सम्बन्धमें अनुसन्धान और आलोचना की गई है। मनकी गति और मानसिक विकाशका क्रम (Development of mind) किस प्रकार है, मानसिक उन्नति किस किस अवस्थाके सापेक्ष है, मनकी क्रियाएं किस किस नियमके अधीन हैं, इन सब विषयोंकी मीमांसा मनोविज्ञानका आलोच्य विषय है। जिस परीक्षाप्रणाली (Experimental)-का आश्रय करके अन्यान्य जड़विज्ञानशास्त्रोंने उन्नति की है, मनोविज्ञानशास्त्रमें भी यह पन्था बिलकुल उपेक्षित नहीं हुआ। मनके साथ शरीरका सम्बन्ध-निर्णय अनेक परीक्षा द्वारा मीमांसित हुआ है। मनके साथ शरीरका कैसा घनिष्ठ सम्बन्ध है, शारीरिक अवस्था और प्रकृतिके ऊपर मानसिक अवस्था और प्रकृति किस परिमाणमें निर्भर करती है, मस्तिष्ककी विकृति (Abnormal condition of the brain)के साथ मानसिक विकृतिका कोई साक्षात् सम्बन्ध है वा नहीं, स्नायु और मस्तिष्कके किसी अङ्गकी विकृति होने पर तज्जन्य किस प्रकार मानसिक विकृति होती है और शारीरविज्ञानकी सहायतासे मनकी क्रिया एवं प्रकृतिनिर्णयके सम्बन्धमें और भी कितने विषय मनोविज्ञानशास्त्रमें आलोचित हुए हैं। इस श्रेणीके मनोविज्ञानशास्त्रका नाम शारीरविज्ञानमूलक मनोविज्ञान (Physiological Psychology) एवं शारीरविज्ञान और मनोविज्ञानशास्त्रके मध्यवर्त्ती विषय इसके अधिकारभुक्त हैं।

मनोविज्ञानशास्त्रके सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें मतद्वैध नहीं रहने पर भी भिन्न भिन्न श्रेणियोंके दार्शनिकोंने उक्त सिद्धान्त भिन्न भिन्न भावमें ग्रहण किया है। जड़वादी पण्डितोंने (Materialists) मनको जड़का रूपान्तर माना है; सुतरां उनके मतसे शरीर और मनमें कोई प्रकृतिगत पृथक्‌ता नहीं रह सकती। मानसिक शक्ति (Mental Energy) जड़ीयशक्ति (Physical Energy)-से उत्पन्न हुई है। मन मस्तिष्कका व्यापारमात्र (A function of the brains) है। मनोविज्ञानके सिद्धान्तसम्बन्धमें अन्यमत नहीं रह सकता, किन्तु मन जड़का रूपान्तर है, ऐसा बहुतेरे दार्शनिक स्वीकार नहीं करते। सहजज्ञानवादी दार्शनिकगण (Realists) शरीर और मनकी घनिष्ठताके सम्बन्धमें सन्देह तो नहीं करते, पर दोनोंके तात्त्विक एकत्व (Essential identity)-सम्बन्धमें उन्हें गुरुतर आपत्ति है। उनका कहना है, कि मन जड़से उत्पन्न नहीं होता, दोनोंका प्रभेद प्रकृतिगत है लेकिन देह और मनमें क्रियागत सङ्गति देखी जाती है, उसका

कारण दुर्ज्ञेय और स्रष्टाके इच्छाधीन है। देह और मनका सम्बन्ध किस प्रकार स्थापित हुआ है उसके सम्बन्धमें जो भिन्न भिन्न दार्शनिक मत है, वह यथास्थान आलोचित होगा।

क्रमोन्नति वा अभिव्यक्ति (Evolution)-वादीके मतसे मन क्रमविकाशका एक स्तर वा सोपान है। प्रकृतिराज्यमें उन्नतिसोपानके मध्य कहीं भी क्रमभङ्ग नहीं है। जड़से उद्भिद्, उद्भिद्से प्राणी, प्राणी-जगत् (Life)से मनोजगत् (Mind)-का विकाश धारावाहिक रूपमें साधित हुआ है। दार्शनिक हर्बार्ट स्पेन्सरने अपने क्रमाभिव्यक्तिमूलक दर्शन (Synthetic Philosophy)-के अन्तर्गत मनोविज्ञान नामक (Principles of Psychology) ग्रन्थमें किस प्रकार उन्नतिके स्तरके अनुसार मनका विकाश साधित हुआ है, उसे दिखानेकी चेष्टा की है। अभिव्यक्तिवाद (Evolution Theory as held by the Materialists)-को यदि सत्य मान लिया जाय, तो जड़से मनका विकाश है, यह सिद्धान्त अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। स्पेन्सर अभिव्यक्तिवादी होने पर उक्त मतका सम्पूर्ण रूपसे समर्थन नहीं कर सकते। स्पेन्सरने स्वीकार किया है, कि मनोजगत् और जड़जगत्में जमीन आसमानका फर्क है; एकसे दूसरेके उत्पत्तिसम्बन्धमें कुछ निर्धारण नहीं किया जाता। लेकिन अपने दर्शनमें उन्होंने यह दिखाया है, कि जगत्के सभी स्तरोंमें उन्नतिका क्रम एक तरह है। प्रकृतिराज्य और मनोराज्यकी उन्नति एक ही प्रणालीके अवलम्बन पर साधित हुई है। किन्तु मन और जड़ दोनोंमें प्रकृतिगत कोई सामञ्जस्य विधान नहीं किया जाता। हकसलि (Huxley) और टिण्डल आदि अन्यान्य जड़वादी पण्डितगण उक्त मतका सम्पूर्ण रूपसे समर्थन नहीं करते। वे लोग जड़से मनकी उत्पत्ति हुई है, इस पर विश्वास करते हैं और उक्त मतमें कुछ भी असामञ्जस्य नहीं देखते। वे मनको जड़की क्रमपरिणति मानते हैं।

मन और जड़का सम्बन्धनिर्णय दर्शनशास्त्रका आलोच्य विषय है, मनोविज्ञानका अन्तर्भूत विषय नहीं। मनोविज्ञान केवल मनके प्रति लक्ष्य रखता है। मनके व्यापारके प्रति (What is mind) वा जड़के साथ मनका सम्बन्ध क्या है, इन सब प्रश्नोंकी मीमांसा मनोविज्ञानशास्त्रके अन्तर्गत नहीं है। इसके अलावा मनोविज्ञान हम लोगोंके प्रत्यक्षसिद्धज्ञान (Conscious Experience)-के यथार्थ और अयथार्थ विषयमें सन्देह नहीं करता। इसका तत्त्वनिराकरण दर्शनशास्त्रके द्वारा ही हुआ करता है। फलतः किस प्रणाली वा क्रमका अवलम्बन करके मन उक्त ज्ञान पर पहुंचा है वही पन्था निराकरण मनोविज्ञानका उद्देश्य है।

दर्शनशास्त्र और मनोविज्ञानके उद्देश्य, अधिकार और पन्थाके सम्बन्धमें विस्तर प्रभेद दिखलाया गया एवं विज्ञानप्रभृति अन्यान्य शास्त्रोंके साथ दर्शनशास्त्रका प्रभेद क्या है, यह पहले ही कहा जा चुका है; सुतरां दर्शनशास्त्रके उद्देश्य और पन्थाके सम्बन्धमें संशय करनेका कोई विशेष कारण नहीं रहा। इसके बाद धारावाहिकरूपमें पाश्चात्यदर्शनका इतिहास और विभिन्न दार्शनिक मतोंका उल्लेख किया जाता है।

मानवजातिके आविर्भावके कितने समय बाद दार्शनिक सत्य मानवके मनमें प्रस्फुटित हुआ, इसके सम्बन्धमें इतिहास-लेखकने साफ साफ नहीं लिखा है। इतिहासमें उल्लिखित दर्शनयुग और मानव-मनमें दार्शनिक सत्यका आभास दोनों कालके मध्य अधिक प्रभेद प्रतीत होता है। सृष्ट जीवजन्तुओंमें मानवका स्थान बहुत ऊँचा है। मानव सृष्ट हो कर भी सृष्टिके नियन्ता हैं और प्राकृतिकशक्तिको नियन्त्रित करके अपने इच्छानुसार नियोजित करते हैं। मानवको यह शक्ति विभुदत्त है। सृष्टिके आदिसे मानव इस अधिकारका उपभोग करते आ रहे हैं।

मानवका ज्ञान ऐशीशक्तिका अंशविशेष है और इसी शक्तिके प्रभावसे मानव जगत्के मध्य सर्वापेक्षा क्षमताशाली हैं। समस्त जगत् मानवके पदानत है।

प्रज्ञाजात मानवकी इस महाशक्तिका प्रसार बहुत विस्तृत है। मानवकी शक्ति केवल वहिर्जगत्को ही नियन्त्रित करके तृप्त नहीं होती, केवल क्षमताशाली मानव जीवजगत्में उच्चस्थान नहीं पाते, शुद्ध क्षमता केवल प्राकृतिक शक्तिकी ही परिचायक है।

मानवकी ज्ञान-परिधि और भी बहुत दूर तक विस्तृत है। मानव केवल चमताशाली जीव ही नहीं हैं, आध्यात्मिक जीव (Spiritual being) भी हैं। इसी आध्यात्मिक शक्तिबलसे मानवका देवभाव है, इसी शक्तिबलसे मानव-जगत्के मध्य श्रेष्टजीव हैं और इसी शक्तिसे मानव आजन्म दार्शनिक (Born philosopher) हैं। मानवका धर्म और नैतिक जीवन (Religion and Morality) इसी आध्यात्मिक शक्तिसे उत्पन्न है।

मानव-सृष्टिके आदिसे ही दार्शनिक है। इतिहासके किसी भी स्तरका अनुसन्धान करनेसे मालूम पड़ेगा कि सभी युगोंमें आध्यात्मिक विकाशकी ओर मानवकी चेष्टा प्रधावित हुई हैं। मनुष्य कहांसे आया, उसका कर्त्तव्य क्या है, उसका भविष्यत् क्या है, पृथ्वीके साथ उसका कैसा सम्बन्ध है, यह प्रश्न मानवके मनमें अति प्राचीन कालमें उदित हुआ था। वस्तुत: इस प्रश्नका मनमें एक बार भी उदय नहीं हुआ, ऐसा मानवजीवन असम्भवकल्पनाका विषय है। दार्शनिक स्पेन्सर द्वारा उल्लिखित आदिम मनुष्य (Primitive man)के ऐतिहासिक अस्तित्व नहीं है, वह स्पेन्सरका मन:कल्पित पदार्थविशेष है। मानवकी प्रज्ञाशक्तिके साथ मानवके दार्शनिक ज्ञानका नित्य सम्बन्ध है। युग और व्यक्तिपरम्परासे वह केवल विकाशलाभ करता आ रहा है। पर हां, व्यक्तिगत प्रतिभा और आलोचना द्वारा दार्शनिक ज्ञानका जो विकाश साधित हुआ है, उसका धारावाहिक रूपमें लिपिबद्ध करना ही दर्शनशास्त्रके इतिहासका उद्देश्य है।

प्रतीच्य सभ्यताकी लीलाभूमि ग्रीसदेशमें प्रतीच्य दर्शनका प्रथम उदय हुआ। समस्त यूरोप जब अज्ञान अन्धकारसे आच्छन्न था, उस समय सभ्यताका आलोक ग्रीसदेशमें उज्ज्वलरूपसे विकीर्ण होता था। शौर्य, वीर्य, ज्ञान और धर्ममें ग्रीसने यूरोप भरमें शीर्ष स्थान प्राप्त किया था। ग्रीस ही युरोपीय सभ्यताका अग्रणी और शिक्षागुरु है। यूरोप आज भी उसका पदानुसरण करता है। साहित्य, शिल्प, दर्शन और राजनीतिकी दीक्षा ग्रीससे यूरोपने पहले पहल प्राप्त की है। होमरके महाकाव्यको यूरोप आज तक नहीं भूल सकता। एथेन्सका फोर्म थियेटर और अन्यान्य सौधराजि आज भी स्थापत्यशिल्पकी चरमोन्नतिका साक्ष्य प्रदान करती है। प्लेटो और अरिष्टटलके अभावने पूर्वापेक्षा और भी अनेक प्रसारलाभ किया है।

अभी ग्रीसके दुर्बल, आत्मरक्षणमें असमर्थ और यूरोपीय शक्तिपुञ्जके मध्य नगण्य गिने जाने पर भी यदि यूरोपीय सभ्यताके मूलका अन्वेषण किया जाय, तो ग्रीकदेशमें ही उसका अनुसन्धान लेना होगा। वर्त्तमान समयमें जो जो राज्यशासनप्रणाली यरोपके विभिन्न देशोंमें प्रचलित हैं, यदि देखा जाय, तो वह मूलतः रोम और ग्रीकदेशीय विभिन्न कालीन शासनतन्त्रकी छायामात्र है।

ग्रीकदर्शन।

पण्डित थेलिस (Thales)-के अभ्युदयके साथ ग्रीक देशमें अथवा यूरोपमें पहले पहल दर्शनशास्त्रका प्रचार हुआ।

ग्रीकदर्शन प्रधानतः निम्नलिखित तीन युगोंमें विभक्त किया जा सकता है।

१। सक्रेटिसका पूर्वकालीन दार्शनिक युग (थेलिससे लेकर सोफिष्ट सम्प्रदाय तक)।

२। सक्रेटिस प्रवर्त्तित दार्शनिक युग (प्लेटो और अरिष्टटल-दर्शन इसके अन्तर्गत है।

३। अरिष्टटलका परवर्त्ती दार्शनिक युग।

सक्रेटिसका पूर्ववर्त्ती दार्शनिक युग।

जागतिक प्रकृतिका मूलान्वेषण ही सक्रेटिसके पूर्ववर्त्ती दार्शनिकोंका मुख्य लक्ष्य था। सुतरां तत्कालीन दर्शनशास्त्रसमूह भी विशेषतः योन-दर्शन (Ionic Philosophy) जगत्तत्त्वनिर्णायक शास्त्र (Cosmogony)-के रूपमें परिणत हुआ था।

मानवका नयन पृथिवी पर आविर्भूत होते ही प्राकृतिक सौन्दर्यभण्डार मानव-मनको आकृष्ट करता है। सृष्ट मानव प्रकृतिके इस नग्न सौन्दर्य पर मग्न हो कर अपनी आत्माको खो बैठना है। मानव-मनकी यह विभोर अवस्था जगत्के काव्ययुगकी प्रवर्त्तक है।

पीछे इस सौन्दर्योन्मादके दूर होने पर मानव-

मन प्रकृतिका तथ्य ग्रहण करनेमें अग्रसर होता है। परिवर्त्तनशीला लीलामयी प्रकृतिका मूल क्या है? यह प्रश्न आपसे आप मानवमनमें उदित होता है। भिन्न भिन्न दार्शनिक सम्प्रदायकने भिन्न भिन्न रूपोंमें इस प्रश्नकी मीमांसा करनेकी चेष्टा की है।

पण्डितप्रवर थेलिस इस दार्शनिक मतके प्रवर्त्तक थे। जगत्का मूल पदार्थ क्या है, इस तथ्यका निर्णय ही इस श्रेणीके दार्शनिकोंका मुख्य उद्देश्य है। इसीसे किसी किसी दर्शनशास्त्रके ऐतिहासिकने इस सम्प्रदायको दार्शनिक सम्प्रदाय न मान कर वैज्ञानिक श्रेणीभुक्त किया है। किन्तु यदि यथार्थमें देखा जाय, तो जगत्तत्त्व निर्णय ही दर्शनशास्त्रका मूल है और योनदार्शनिकगण वैज्ञानिकके हिसाबसे उक्त तथ्य अन्वेषण नहीं करते। वे लोग प्रकृतिका मूलतत्त्व (Ultimate underlying Principle) अन्वेषण कर गये हैं। प्रकृतिगत तथ्यका निरूपण करनेमें वैज्ञानिकको कोई अधिकार नहीं है, केवल प्रक्रिया-वर्णनमें विज्ञानको अधिकार है (Science deals how and not why in the domain of nature); सुतरां योन-दर्शन यथार्थमें विज्ञान श्रेणीभुक्त नहीं किया जा सकता।

प्राचीन ऐतिहासिकोंने दार्शनिक थेलिसका आविर्भाव काल खृ०पू० छठीं शताब्दीके मध्यसे खृ० पू० पांचवीं शताब्दीके मध्यकाल तक माना है। थेलिस प्राचीन सप्त तत्त्वज्ञानियों (Seven Sages) मेंसे अन्यतम थे। दार्शनिक थेलिसके मतसे जल ही जागतिक पदार्थोंका मूल है। जलसे सभी पदार्थ उत्पन्न हो कर पीछे जलमें ही लीन हो जाते हैं। उक्त मतवाद थेलिसके बहुत पहलेसे प्रचारित रहने पर भी लौकिक विश्वास वा किंवदन्ती स्वरूप माना जाता था। पण्डितप्रवर थेलिसने ही सबसे पहले इसे दार्शनिक भावमें प्रतिपन्न करनेकी चेष्टा की। थेलिस किस प्रकार उक्त सत्य पर पहुंचे, उसका कोई विवरण नहीं मिलता। थेलिसके परकालवर्त्ती किसी किसी पण्डितके मतसे थेलिस जगत्के एकत्व, जगत्कारणशक्ति (World-soul or World-forming spirit) आदि मतोंका प्रवर्त्तन कर गये हैं, किन्तु इस सम्बन्धमें कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता।

मिलेतस नगरवासी दार्शनिक अनाक्सिमन्दर (Anaximander of Miletus) को बहुतोंने थेलिसके समकालवर्त्ती एवं शिष्य बतलाया है। अनाक्सिमन्दरके मतसे जगत्का मूलपदार्थ असीम (Infinite), नित्य (Eternal) और अनिर्दिष्ट (Indefinite) है। इस मूल पदार्थसे क्रमशः सभी पदार्थ उत्पन्न हो कर फिर उसीमें लीन हो जाते हैं। आधुनिक पण्डितोंके मतसे अनाक्सिमन्दर-कथित मूल पदार्थ वर्त्तमान जड़-पदार्थको पूर्वावस्था है। ताप और शैत्य द्वारा इस मूल पदार्थका अवस्थान्तर साधित होता है। इससे साफ साफ जान पड़ता है, कि यह मूलपदार्थ जागतिक मूलपदार्थों (Elements)-का अव्याकृत अवस्था मात्र है।

दार्शनिक अनाक्सिमिनिस (Anaximenes) अनाक्सिमन्दरके शिष्य कह कर विख्यात हैं। इनके मतसे सर्वव्यापी सदागति वायु ही (All-entrancing ever moving air) जगत्का मूल उपादान है। वायु ही सूक्ष्म हो कर अग्निमें और घनीभूत हो कर मट्टी, जल आदिके पदार्थोंमें परिणत हुआ करती है।

योन-दार्शनिकोंके मध्य उपरि-उक्त तीन ही व्यक्ति समधिक विख्यात हैं और जड़प्रकृतिका मूलतत्त्व निर्णय ही इस दार्शनिक सम्प्रदायका मुख्य उद्देश्य है।

पीथागोरीय-दर्शन (Pythagorean Philosophy)

दार्शनिक पीथागोरस (Pythagoras) इस दार्शनिक सम्प्रदायके प्रवर्त्तक थे। खृ०पू० छठीं शताब्दीके मध्यभागमें पीथागोरस विद्यमान रहे, ऐसा बहुतेरे अनुमान करते हैं। इनकी जीवनीके सम्बन्धमें बहुत कम जाना गया है। पीथागोरसके चरिताख्यायक परफाइरी (Porphyry) और इयमब्लिकस (Iamblichus) ने उनकी जीवनीको अतिमानुष-घटनावलीपरिपूर्ण उपाख्यानमें परिणत किया है। इसके अलावा पीथागोरसके स्वसम्प्रदायस्थ पण्डितोंके रहस्यपूर्ण (Esotoric) आख्यानों पर विश्वास नहीं किया जाता। पर हां, उनके जीवनके निम्नलिखित घटना-सम्बन्धमें कुछ परिमाण सत्य हो सकते हैं। पीथागोरसके जीवनका अधिकांश इटलीके दक्षिण

भागके अन्तर्गत क्रोटोना (Crotona) नगरमें बीता था। राजनीतिक विप्लवमें विध्वस्त दक्षिण इटलीके राजनीतिक अभ्युत्थानके लिये उन्होंने एक सम्प्रदाय गठन किया। पवित्र जीवन-यापन और परस्परके प्रति अकृत्रिम प्रणय इस सम्प्रदायके लोगोंका अवश्य प्रतिपाल्य विषय था। उक्त सम्प्रदाय राजनीतिक किसी उन्नतिसाधनमें कृतकार्य हुआ था नहीं, उसके सम्बन्धमें कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता। पीथागोरसके जीवनकी प्रमाणयोग्य घटना यहीं पर पर्यवसित होती है। इसके अतिरिक्त जो सुननेमें आता है, वह किंवदन्ती मात्र है।

पीथागोरसके दार्शनिक मतके सम्बन्धमें भी नाना प्रकारका मतभेद देखा जाता है। पीथागोरस स्वकीय दर्शनकी कहाँ तक उन्नति कर गये हैं, उसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु इनके सम्प्रदायसे उसकी जैसी परिणति साधित हुई है, उसका विवरण मिलता है। फाइलोलस (Philolaus), आरकीटस (Archytas) और यूरीटस (Eurytas) इन तीन दार्शनिक पण्डितोंसे उक्त दर्शनके सम्बन्धमें कोई कोई ज्ञातव्य तथ्य अवगत हो जाता है और यही दार्शनिक पण्डित उक्त दर्शनके सम्बन्धमें जहां तक उन्नति विधान कर गये हैं, उनकी उन्नति वहीं तक पर्यवसित होती है।

पीथागोरीय दर्शनके मतसे संख्या ही (Number) जागतिक वस्तुसमूहका प्रकृत स्वरूप है। पदार्थमात्र ही किसी न किसी प्रकार आकारविशिष्ट है और वह आकार संख्या द्वारा निर्दिष्ट हो सकता है; सुतरां पदार्थमात्र ही संख्याके अधीन है अर्थात् संख्या ही उसका प्रकृत स्वरूप है।

पीथागोरीय दार्शनिकगण सख्या कहनेसे संख्या द्वारा निर्दिष्ट पदार्थ (Actually material principle) अथवा वस्तुमात्रका ही अतीन्द्रिय सूक्ष्मतत्त्व (Ideal Principle) समझते थे, इसके सम्बन्धमें विभिन्न मत है। किन्तु उक्त दार्शनिकोंके मतका अस्पष्टतानिबन्धन किसी स्थिर सिद्धान्त पर नहीं पहुंचता।

केवल पीथागोरीय दर्शन ही नहीं, बल्कि सक्रेटिसके पूर्वकालीन समस्त दार्शनिक मतोंका विशेष लक्षण यह है, कि प्रकृतिके बहिःप्रकाशके ऊपर (The eternal aspect of nature) अर्थात् प्रकृतिकी जो दिशा सबसे पहले मानसचक्षु पर प्रतिभात होती है, उसीके ऊपर इन लोगोंका विभिन्न मत प्रतिष्ठित है। जगत्के प्रति दृष्टिपात करनेसे जगत्की विचित्रता पर लक्ष्य होना पड़ता है। पीछे और कुछ देखनेसे इस विचित्रताके मध्य सुन्दर सामञ्जस्य देखा जाता है और विचित्रताके मध्य यह जो सामञ्जस्य (Harmony) है उसी पर जगत्का सौन्दर्य है। पीथागोरीय दार्शनिकोंकी दृष्टि जगत्के इस सामञ्जस्य (Harmony and Proportion)-की ओर आकृष्ट हुई है और इस सामञ्जस्यके ऊपर दृष्टि रख कर उनके संख्यावाद (Number theory) प्रतिष्ठित हुए हैं।

पीथागोरीय पण्डितोंका जगत्तत्त्व भी (Cosmology) इसी सामञ्जस्यवाद-भित्तिके ऊपर स्थापित है। सौर और नक्षत्रजगत्के मध्य भी सुन्दर सामञ्जस्य (Harmony) है। जगत्का विभिन्न राशिचक्र (Spheres) एक अग्निमय केन्द्रको वेष्टन करके अपने अपने कक्षपथ (Orbit) पर परिभ्रमण करता है। इस अग्निमय केन्द्रसे ताप, आलोक और जीवन (Life) जगत्के अन्यान्य अंशोंमें परिव्याप्त हुआ है।

पीथागोरीय दर्शनका संख्यावाद (Number theory) अन्तमें सङ्कीर्ण सङ्केतवाद (Symbolism)में पर्यवसित हुआ था। संख्या ही वस्तुकी स्वरूप है, इस तत्त्वके ऊपर निर्भर करके उक्त दार्शनिकगण आत्मा (Soul), न्याय (Justice) आदि शब्दोंको भी संख्या द्वारा अभिहित कर गये हैं। जैसे—किसी किसी पण्डितके मतसे ३ संख्या द्वारा न्याय शब्द समझा जाता है और किसीके मतसे ४ संख्या उक्त शब्दको बोधक है इत्यादि। कहना नहीं पड़ेगा, कि इस प्रकार अर्थशून्य भित्तिके ऊपर स्थापित दर्शनका किसी तरह स्थायित्व नहीं रह सकता।

पीथागोरीय दर्शनके नीतितत्त्व (Ethics)-के सम्बन्धमें भी उल्लेखयोग्य विशेष कुछ भी नहीं है। आत्मसंयम (Self-control asceticism) और पवित्र

जीवन (Pure life) ये दो तत्त्व पीथागोरीय सम्प्रदायस्थ लोगोंके व्यक्तिगत जीवनमें प्रतिफलित देखनेमें आता है।

पीथागोरियोंके मतमें देह आत्माके कारागारस्वरूप है। देहावसान होने पर मृतव्यक्तिकी आत्मा पूर्व शरीरका परित्याग कर पशुशरीरमें प्रवेश करती है और केवल धार्मिक व्यक्तिकी आत्मा ही पशुशरीरसे मुक्तिलाभ करती है। परलोकमें शास्ति सम्बन्ध पर जो विश्वास है, वह भी पीथागोरियोंके मध्य प्रचलित था।

इलीयदर्शन (Eleatic Philosophy)

एशिया माइनरस्थ कलोफन (Colophon) नगरनिवासी दार्शनिक जेनोफेनिस (Zenophanes) इस दार्शनिक मतके प्रवर्त्तक थे। वे इलीयनगर (Elea) में जा कर रहते थे; इसीसे उक्त नगरके नामानुसार उक्त दर्शनका इलीय (Eleatic) नाम पड़ा है।

पीथागोरीय दर्शनकी दृष्टि जिस प्रकार जगत् प्रकृतिके वहिःप्रकाशकी ओर आकृष्ट हुई थी, इलीय दर्शनकी दृष्टि भी उसी प्रकार प्रकृतिके तात्त्विक एकत्वकी ओर निवद्ध देखी जाती है। जगत्‌का परिवर्त्तन और वैचित्र्यका भित्तिभूमिनिरूपण ही इलीय-दर्शनका उद्देश्य है। इस उद्देश्य साधनमें वे कहां तक कृतकार्य हुए हैं, उनके दार्शनिक मतके प्रति दृष्टिपात करनेसे ही मालूम हो जायगा।

इलीय दार्शनिकोंके मतसे जगत्‌में एकमात्र सत् ही विद्यमान है, असत्‌के अस्तित्व नहीं है (Only being is, non-being is not at all)। यह सत् निरुपाधि (characterless), निर्विकार, अखण्ड और अद्वितीय (Whole and sole), अनन्त एवं समस्त वस्तुओंका मूल है। इसके विकाश नहीं (No becoming) है, केवलमात्र सत्ता वा अस्तित्व (Being) है; सुतरां संसारमें उत्पत्ति, विलय, जन्म, मृत्यु, जरामरण आदि किसी प्रकार परिवर्त्तन नहीं है। वाह्यजगत् और जागतिक परिवर्त्तन आडम्बरशून्य दृश्यमात्र है, यथार्थमें इसके किसी प्रकारका अस्तित्व नहीं है।

इलीय-दर्शन यथार्थमें अद्वैतवाद होने पर भी द्वैतवादके हाथसे उद्धारलाभ नहीं कर सकता। वाह्य जगत्‌को भ्रम कहनेसे भी इस भ्रमको उत्पत्ति कहांसे हुई है, उसका निर्देश किये विना उसका अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जाता। इलीयदर्शन जगत्‌भ्रमको उत्पत्तिका निर्देश नहीं कर सकता। अतएव वाह्य जगत्‌का अस्तित्व इलीयदर्शनको दूसरी तरहसे स्वीकार करना पड़ा है।

जीनोफेनिस (Zenophanes)-के मतमें एक भिन्न सत्ता है ही नहीं (All is one)। किन्तु एकका प्रकृतस्वरूप क्या है, साफ साफ वे कुछ भी नहीं कहते। अरिष्टटलका कहना है, कि एक कहनेसे उन्होंने अद्वितीय ईश्वरका निर्देश किया है। जीनोफेनिसके मतसे ईश्वर सर्वतः पाणिपाद, सर्वतोक्षिशिरोमुख और सर्वभूतोंके आश्रय हैं। ईश्वरकी कल्पनासे ससीम उपाधि (Predicates) वर्जन करके उन्होंने ईश्वरका निरुपाधित्व प्रख्यापन किया है।

जीनोफेनिस यथायथभावसे अपना मत प्रतिपन्न नहीं कर गये हैं। दार्शनिक परमिनाइड्‌स (Perminides)-ने इस दर्शनकी प्रकृत उन्नति की है। परमिनाइड्‌स अपना दार्शनिक मत एक काव्यग्रन्थमें प्रकाशित कर गये हैं। इसके प्रथमांशमें सत्‌का प्रकृतस्वरूप (The Doctrine of being) क्या है, वही वर्णित है। उनके मतमें सत् उत्पत्तिविनाशहीन अखण्ड, सर्वस्थान और सर्वकालव्यापी एवं स्वप्रकाश है। सत् चैतन्यस्वरूप है। सुतरां इस मतसे सत्ता और सम्बित्‌में कोई प्रभेद नहीं है (Thought and being are to him one and the same)। इन्द्रिय-ज्ञानको जो परिवर्त्तनशीलता और विचित्रता देखी जाती है, वह भ्रमात्मक है।

परमिनाइड्‌सके ग्रन्थके द्वितीयांशमें वे जगत्‌भ्रम वा असत्‌के उत्पत्ति-विषय (The doctrine of non-being)में मीमांसा कर गये हैं। उनका यह द्वितीयांश असम्पूर्ण अवस्थामें मिलती है और इस अंशमें उन्होंने युक्तिको अपेक्षाकल्पनाका आश्रय माना है। परमिनाइड्‌सने पृथिवी पर तापको सत् (Being)-का अंश स्वीकार किया है। इसके सिवा सभी असत् (Non-being) हैं। जागतिक सभी पदार्थ विपरीत

गुणके संमिश्रणसे उत्पन्न हुए हैं। जिस पदार्थके मध्य जो ताप वा अग्नि निहित है, वह उसी परिमाणमें जीवनी-शक्तिसम्पन्न है, वही परिमाण चैतन्ययुक्त है और जिस परिमाणमें तापहीन है उसी परिमाणमें जीवन और चैतन्यहीन हैं। मनुष्यकी आत्मा और देह अभिन्न है।

दार्शनिक जेनो (Zeno) इलीय-दर्शनको चरम-उन्नति साधित करते हैं। व्यतिरेकी प्रमाणका आश्रय ग्रहण करके जेनो सत्का अस्तित्व प्रमाणित कर गये हैं।

परमिनाइड्सने जो दिखलाया है कि जगत्में एकके सिवा दूसरे पदार्थके अस्तित्व नहीं है, जेनोने परोक्षभावमें उसे प्रमाणित किया है, कि यदि एकके सिवा दूसरी वस्तुका अस्तित्व स्वीकार किया जाय, तो बहुत विरोध (Contradictions) आ खड़ा होता है।

जेनोने दिखलाया है, कि बहुत्व, गति (Movement) आदि पदार्थोंके अस्तित्व नहीं है। जैसे—बहुका अस्तित्व स्वीकार करने पर बहुको अनेक एककी समष्टि मानना पड़ेगा। किन्तु यह एक भी परिमाणविशिष्ट (Having magnitude) है, सुतरां बहुकी समष्टि है। इस प्रकार जब तक परिमाण रहेगा, तब तक उसे बहुकी समष्टि मानना पड़ेगा। किन्तु प्रकृत जो एक (Actual unit) है अर्थात् जो बहुकी समष्टि नहीं है, वह अविभाज्य है; किन्तु परिमाण रहनेसे ही उसे विभाज्य मानना होगा; अतएव बहु, जो इस प्रकार कितने परिमाणशून्य एककी समष्टि है, वह भी परिमाणशून्य है। किन्तु ऐसा निर्देश असङ्गत है, इस कारण बहुका (Many) अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। जेनोका गति-सम्बन्धीय प्रमाण भी इसी आशयका है। विस्तारके भयसे उसका उल्लेख नहीं किया गया। अरिष्टटल जेनोको तर्कशास्त्र (Dialectics)का प्रवर्त्तक मान गये हैं। जेनो ही इलीयदर्शनके उल्लेखयोग्य शेष दार्शनिक हैं।

हेराक्लाइटस (Heraclitus) प्रवर्तित दार्शनिक मत।

एफिसस (Ephesus)-निवासी दार्शनिक हेराक्लाइटसने इस मतका प्रचार किया। खृ० पू० ५वीं शताब्दीमें हेराक्लाइटस वर्त्तमान थे। ये दार्शनिक परमिनाइड्सके समकालवर्त्ती रहे। सक्रेटिसके पूर्वकालवर्त्ती दार्शनिकोंके मध्य हेराक्लाइटस सबसे प्रसिद्ध थे। उनका दर्शनग्रन्थ (On nature) जटिलता-विषयमें प्रसिद्ध था।

इलीय दर्शन सत् (Being), असत् (Non-being), एक (One) और अनेक (Many)के मध्य सामञ्जस्य-विधान नहीं कर सका। सुतरां अद्वैतवाद स्थापनको चेष्टा रहते हुए भी उसमें द्वैतवादकी छाया आ पड़ी है। हेराक्लाइटसने इन दो विरोधी पदार्थोंका सामञ्जस्य करनेकी चेष्टा की है।

हेराक्लाइटसका दार्शनिक मत विकाशवाद (The doctrine of becoming) है। हेराक्लाइटसका कहना है, कि जागतिक पदार्थमात्र ही परिणाम-स्वभावयुक्त और नियत परिवर्त्तनशील (In eternal flux) है। जगत्में कोई भी पदार्थ मुहूर्त्त मात्र भी एक अवस्थामें नहीं रहता; जागतिक पदार्थका स्थायित्व (Permanence) भ्रममात्र है। परिवर्त्तन ही जगत्का सनातन नियम है। जन्मसे मृत्यु और मृत्युसे जन्मलाभ होता है, ऐसे परिवर्त्तनसे ही जगत् चलता है। जगत्का यह परिवर्त्तनविरोधी दो पदार्थोंके संयोगसे (Oppossing adversatives) साधित होता है। इसीसे हेरोक्लाइटसने कहा है, कि द्वन्द्व ही सभी पदार्थोंका जनक है (Strife is the father of things)। जगत्का बहुत्व ले कर ही जगत्का एकत्व है; कारण बहुत्व वा द्वित्व नहीं रहनेसे एकत्व नहीं हो सकता।

हेरोक्लाइटस अग्निको जागतिक परिवर्त्तनका शक्तिभूत मान गये हैं। अग्निसे सभी पदार्थोंकी उत्पत्ति है। अग्निमें ही पदार्थमात्रका लय है और सभी पदार्थोंमें अग्नि प्रच्छन्नभावसे विद्यमान है। क्रमशः यह निहित अग्नि उद्दीप्त हो कर फिर निर्वापित हो जाती है। यही अग्नि रुद्रगति हो कर जागतिक पदार्थोंमें परिणत होती है।

हेरोक्लाइटसका कहना है, कि हम लोग इन्द्रिय ज्ञानके वशीभूत न होकर प्रज्ञा (Reason)का आश्रय ग्रहण करेंगे। प्रज्ञाजनित ज्ञानसे ही हम लोगोंके

मननेसे सत्यज्ञानका उदय होता है और व्यापारका प्रकृत तात्पर्य जाननेमें आता है।

इलीय-दर्शन (Eleatic Philosophy) और हैरो-क्लाइटस-प्रवर्त्तित दर्शन परस्पर विरुद्धमतावलम्बी है। इलीयदार्शनिकगण एकमात्र सत् (Being)का अस्तित्व स्वीकार कर और सभी भ्रमको उड़ा देना चाहते हैं। हेराक्लाइटसका कहना है, कि जगत्में शुद्ध सत् (Pure being, existence pure and simple) किसी पदार्थका अस्तित्व नहीं है। परिवर्त्तन वा विकार ही (Becoming) जगत्का नियम है। इलीय-दर्शनके मतसे वाह्यजगत्के मध्य जो परिवर्त्तन और वैचित्र्य देखा जाता है, वह भ्रम है; केवल सत् ही (Being) वर्त्तमान है। हेरोक्लाइटस यह भी कहते हैं, कि जागतिक पदार्थोंके स्थायित्व (Permanence)-में विश्वास भ्रममात्र है। परवर्त्ती विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायने इन दो विरोधी मतोंका सामञ्जस्य स्थापन करनेकी कोशिश की है। इनमेंसे ग्रीक दार्शनिक एम्पिडक्लिस (Empedocles) प्रधान है।

एम्पिडक्लिसका दार्शनिक मत।

ख० पू० ४४४ ई०में दार्शनिक एम्पिडक्लिस विद्यमान थे। इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी कह कर प्रसिद्ध थी। वे राजनीतिज्ञ, कवि, वाग्मी, विज्ञानवित् और दार्शनिक थे।

एम्पिडक्लिसने अपने दर्शनमें इलीय-दर्शन और हैराक्लाइटीयदर्शनका विरोध भञ्जन करनेकी चेष्टा की है। उनका कहना है, कि जो जो वस्तु पहले न थी, उसकी उत्पत्ति हो ही नहीं सकती और उत्पन्न वस्तुका विनाश भी असम्भव है। इसीसे एम्पिडक्लिसने पहले-से ही क्षिति, अप्, तेज और मरुत् (इन चार मूल पदार्थोंका अस्तित्व स्वीकार कर लिया है। एम्पिडस-क्लिसके ये चार मूलपदार्थ उनके मतसे इलीयदर्शनोक्त सत् (Being)के स्थानीय हैं। वाह्यजगत् इन ही चार पदार्थोंके योगसे उत्पन्न हुआ है। इस योगसाधनमें दो कार्यकारी शक्तियोंका प्रयोजन पड़ा है। इनमेंसे एक आकर्षणशक्ति है जिसका एम्पिडक्लिसने प्रेम वा सौहार्द्य (Love or friendship) नाम रखा है, दूसरा द्वन्द्व या वियोग (Strife) विकर्षण-शक्ति है। एम्पिडक्लिसके बतलाये हुए आदिम जगत् (Primitive world)का नाम स्फेयरस (Sphairos) है। यह आदिमजगत् पहले आकर्षणशक्ति (Friendship)के अधीन था, पीछे विकर्षण-शक्ति (Stribe)-ने इस जगत्के मध्य प्रवेश लाभ करके जगत्का वैचित्र्य और बहुत्वसाधन किया। यह विकर्षण शक्ति (Strife) हेराक्लाइटसकथित परिणाम (Heraclitean flux)के स्थानीय है।

एम्पिडक्लिस-कथित ये चार मूलपदार्थ योन-दार्शनिकोंके कथित मूलपदार्थके समस्थानीय नहीं हैं। एम्पिडक्लिसके मूलपदार्थका किसी प्रकार परिवर्त्तन नहीं हो सकता। केवल एक दूसरेके साथ अपनी स्वाधीनता खोये बिना मिल सकता है। जगत्-की उत्पत्ति और विनाश-प्रणाली इन चार पदार्थोंके योग वियोगके कारण हुआ करती है।

परमाणुवाद (Atomism)।

दार्शनिक लिउसिपस (Leucippus) और डिमो-क्रिटस (Democritus) इस दार्शनिक मतको स्थापना कर गये हैं। इनके मध्य डिमोक्रिटस ही समधिक प्रसिद्ध थे। उन्होंने ख० पू० ४८३में आवडेरा (Abdera) नगरमें जन्मग्रहण किया। एम्पिडक्लिसकी तरह वे लोग भी उपरि-उक्त विरोधी दोनों मतोंके सामञ्जस्य विधानमें प्रयासी हुए थे।

इनके मतानुसार सूक्ष्म जड़ीय परमाणु ही जगत्का मूल है। सभी परमाणु परिवर्त्तनहीन और अविभाज्य सूक्ष्म जड़ पदार्थ हैं। इनमें गुणका कोई प्रभेद नहीं है, केवल आकृति, परिमाण और गुरुत्वका पार्थक्य है। परन्तु पृथिवी पर जो विभिन्न गुण और धर्मविशिष्ट पदार्थोंका समावेश देखनेमें आता है, वह इसी एक धर्मविशिष्ट परमाणुसमूहके विभिन्न समावेश (Combination or change of position)-से उत्पन्न हुआ है। सुतरां इनके मतसे उत्पत्ति वा विकाश (Becoming) परमाणुसमूहका स्थानपरिवर्त्तनमात्र है।

परमाणुसमूहकी गति वा स्थानका परिवर्त्तन किस प्रकार होता है, उसके विषयमें डिमोक्रिटसने कहा है, कि विभिन्न आकृतिविशिष्ट परमाणु शून्य-सागरमें (Vacuum) बहते थे। इस परमाणु-समूहके गतिविशिष्ट होनेसे वे एक दूसरेके साथ प्रतिहत हो कर (Collided) शून्यमें भ्रमण करते हैं और एक आकृतिविशिष्ट (Like shaped) परमाणु मिल कर भिन्न धर्माक्रान्त एवं नाना जातीय पदार्थोंकी सृष्टि करते हैं। उन्होंने परमाणुसमूहकी गतिका कारण बतलाते समय कहा है, कि परमाणुसमूहके अन्तर्निहित धर्म से ही यह मत संघटित हुआ है। नियति वा दैव (Necessity or chance) व्यतीत परस्परका कोई दूसरा मूल निर्दिष्ट नहीं किया जाता। डिमक्रिटस निरीश्वरवाद (Atheism) और प्रकृतिवाद (Naturalism)-की सूचना कर गये हैं। उनका कहना है, कि प्रचलित बहुदेववाद (Polytheism) भयसे उत्पन्न हुआ है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि परमाणुवादमें भी इलीय और हेराक्लाइटीय-दर्शनके सामञ्जस्यविधानकी चेष्टा की गई है। डिमोक्रिटसोक्त परमाणु दोनों मतके मध्य स्थानीय है। सभी परमाणुके अविभाज्यताके कारण वे इलीयदर्शनोक्त सत् (Being)के, फिर उनके परस्पर मिश्रणजनित परिवर्त्तनके कारण हेराक्लाइटिसके विकाश वा परिणाम (Becoming)के स्थानीय हैं। परमाणुसमूहका संयोगवियोग छोड़ कर उत्पत्तिविनाश जगत्‌में नहीं है। यही मत इलीयदर्शनके मतसे मिलता है। फिर परमाणुसमूहकी गति और परस्परके साथ मिलते समय यह हेराक्लाइटसके दर्शनोक्त नामके स्थानीय हैं।

अनाक्सगोरस (Anaxgoras)-का दार्शनिक मत।

अनाक्सगोरस खृ० पू० ५०० ई०में क्लेजोमिनि (Clazomenae) नगरमें उत्पन्न हुए थे। पारस्य युद्धके बाद वे एथेन्सनगरमें जा कर रहने लगे। पीछे प्रचलित धर्ममतके विरुद्ध अपना मत प्रकाशित करनेके कारण वे एथेन्स नगर छोड़ देनेको बाध्य हुए। अनन्तर उन्होंने अपने जीवनका अवशिष्ट समय लैम्पसैकस (Lampsacus) नगरमें व्यतीत किया। दार्शनिक अनाक्सगोरसने ही सबसे पहले एथेन्स नगरीको दर्शनशास्त्रको केन्द्रभूमिमें परिणत किया।

परमाणुवादी दार्शनिकोंकी तरह अनाक्सगोरस पदार्थका उत्पत्ति-विनाश स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है, कि उत्पत्तिविनाश कहनेसे हम लोग जो समझते हैं, वह पदार्थका संयोग वियोगमात्र है। शक्ति (force)के संयोगसे यह संयोगवियोग साधित होता है। अनाक्सगोरसके मतसे यह शक्ति परमाणुवादियोंके कथित जड़शक्ति वा दैव (necessity) नहीं है, यह इच्छामय-शक्ति है।

अनाक्सगोरसने इस शक्तिका 'नौस' (Nous) नाम रखा है। वे इस शक्तिको सब जगह वर्त्तमान और सब वस्तुओंकी सारभूत-कार्यकारी शक्तियोंका मूल मान गये हैं। इस इच्छामय शक्ति द्वारा नियन्त्रित हो कर जगत्‌व्यापार चलता है। जिस भावमें अनाक्सगोरसने इस शक्तिकी अवतारणा की है, उससे बोध होता है, कि वे यथार्थमें जगत्‌के विधाता नहीं हैं। उन्होंने केवल जगत्‌की सूचना कर दी है। अनाक्सगोरसको 'नौस' गति वा शक्ति नियन्ता है, उसने शक्तिहीन जड़में केवल शक्ति प्रदान की है (Mover of matter)। इसीसे प्लेटो अरिष्टटल आदि दार्शनिकोंने कहा है, कि अनाक्सगोरसने शिल्पज्ञानके हिसाबसे सृष्टितत्त्वकी व्याख्या की है (Mechanical explanation of the world)।

अनाक्सगोरसके मतसे सृष्टिके प्राक्कालमें जागतिक सभी पदार्थ अति सूक्ष्मभावमें एक दूसरेके साथ मिश्रित थे। पीछे 'नौस'ने इन विभिन्न पदार्थोंको वियोग करके सृष्टिकार्य शेष किया। पहले इन मिश्रित पदार्थोंके मध्य (Chaotic mass) आवर्त (Vortez) उत्पन्न होते हैं और आवर्त्तके वेगसे एक जातीय पदार्थ इस पदार्थ समष्टिसे वियुक्त हो कर एकत्र मिल जाते हैं। इसी प्रकार विभिन्न पदार्थोंकी सृष्टि होती है। प्राणियोंमें भी नौस विभिन्न मात्रा और विभिन्न शक्तिका आश्रय ले कर विद्यमान है। इस प्रकार देखा जाता है, कि नौस वा इच्छामय शक्ति सृष्टितत्त्वका-विधान करके इस सृष्टिके मध्य अनुप्रविष्ट की हुई है।

अनमें सत्य ज्ञानका उदय होता है और व्यापारका प्रकृत तात्पर्य जाननेमें आता है।

इलीय दर्शन (Eleatic Philosophy) [illegible] [illegible]र हुआ उसको क्लाइटस-प्रवर्त्तित दर्शन परस्पर [illegible] है। इलीयदार्शनिकगण [illegible] और पूर्व दार्शनिकोंके अस्तित्व स्वीकार [illegible] कुछ भी सौसादृश्य नहीं है। इस [illegible]तका नाम सोफिज्म (Sophism) और है। [illegible]सके मतावलम्बी दार्शनि[illegible]ोंका नाम सोफिष्ट (Sophist) है।

सोफिज्म।

सोफिजम कहनेसे कोई एक विशेष मतविशिष्ट दार्शनिक सम्प्रदाय नहीं समझा जाता है। विभिन्न मतावलम्बी विभिन्न दार्शनिकगण इस आख्यासे प्रसिद्ध हैं। सोफिष्टोंका दार्शनिक मत कभी भी प्रकृष्ट सम्मान लाभ न कर सका। सोफिष्ट आख्याधारी अनेक गभीर ज्ञानविशिष्ट पण्डित विद्यमान तो थे, पर उस सम्प्रदायमें भी अधिकांश मनुष्य वैसे प्रतिभासम्पन्न और सत्यानुसन्धित्सु नहीं होनेके कारण सोफिष्टोंका मत कुतर्कके वागुरास्वरूप कथित हुआ करता है। सोफिष्ट शब्दका वर्त्तमान अर्थ कुतर्ककारी है।

समय विशेषका चित्र जातीय जीवनमें, शिल्पसाहित्यमें प्रतिफलित हुआ करता है। प्राचीन समयके प्रति दृष्टिपात करनेसे, दर्शनकी अवनतिका कारण स्पष्ट रूपमें मालूम नहीं हो सकता। उस समय ग्रीकजातीय जीवनने अधोगतिके निम्न स्तरमें अवतरण किया था। समाजबन्धन, नैतिकबन्धन और राजनीतिकबन्धन शिथिल हो गया था। हिंसा, द्वेष, आत्मम्भरिता और अन्तर्विवादने समाजको उत्सन्नप्राय कर डाला था। राजनैतिक पुरुष अपनी अपनी प्रधानता स्थापन करनेमें यत्नवान् थे। साधारण लोग स्वातन्त्र्यावलम्बी थे, दूसरेकी अधीनता स्वीकार करना नहीं चाहते थे; सुतरां इस समयका चित्र बड़ा ही शोचनीय था।

सोफिष्टोंका दार्शनिक मत।

पूर्व दार्शनिक सम्प्रदायोंके मतसे मनुष्य जगत्का क्षुद्र अंशविशेष है। मनुष्यका अस्तित्व जगत्के अस्तित्वके [illegible] [illegible]र करता है। जगत्के नियमसे मनुष्य नियन्त्रित होता आ रहा है। जगत्के असंख्य अन्यान्य पदार्थोंके मध्य मनुष्य भी एक पदार्थमात्र है। पहले जगत्का अस्तित्व है, पीछे मनुष्यका। मनुष्यको मन-बुद्धि प्रभृति जागतिक व्यापारपरम्पराके मध्य एक व्यापारविशेष है। किन्तु सोफिष्टोंका मत इसके विपरीत है। उनके अपने अस्तित्वके ऊपर अन्यान्य वस्तुओंका अस्तित्व निर्भर करता है (The principle of subjectivity)। स्वयं मेरे नहीं रहने पर मेरे निकट जगत्का अस्तित्व नहीं रह सकता। मेरे निकट जगत् जिस प्रकार प्रतीयमान होता है, जगत्को मैं उसी प्रकार जानता हूं। ज्ञान प्रत्येक व्यक्तिका निजायत्त है। दो व्यक्ति एक भावमें एक वस्तुको नहीं देखते, सुतरां कोई साधारण ज्ञान (Universal knowledge) अर्थात् जो ज्ञान दोनों ही व्यक्तिके पक्षमें है, ऐसा ज्ञान हो ही नहीं सकता। नैतिक और सामाजिक जीवनके सम्बन्धमें भी उनका मत इसी प्रकार है। सुतरां वे सामाजिक उच्छृङ्खलताका एक प्रकारसे समर्थन कर गये हैं। मानवका मन जगत्के नियमपर न चल कर जगत्के ऊपर नियम स्थापन करना चाहता है। हेराक्लाइटसका परिवर्त्तनवाद (Flux) और जिनोके वाह्यजगत्को अस्तित्व-प्रमापक तर्कयुक्ति एवं अनाक्सगोरस-प्रवर्त्तित वस्तुके ऊपर ज्ञानकी प्रधानता (Nous) इस दार्शनिक मतकी सूचना कर गई है। सोफिष्टदर्शनमें प्रधान दोष यह है, कि इसका सत्यांश भी कुतर्कराजिके मध्य ढक गया है। जनसाधारण इसका सत्यांश स्वीकार नहीं करते, केवल जिन सब तर्कोंका आश्रय करके उक्त दार्शनिकगण इस मतके स्थापनमें प्रयासी हुए हैं, उन्हींका दोष वे ग्रहण करते हैं। सोफिष्टोंकी कुतर्कप्रियता और व्यक्तिगत नैतिक अवनति इसके लिये बहुत कुछ दायी हैं।

अनेक सोफिष्ट पण्डित सर्वशास्त्रविशारद थे और सभी विषयोंके अध्यापनाकार्यमें नियुक्त रहते थे। धन ले कर वे शिक्षा देते एवं धन और सम्मान लाभकी आशासे सभी कार्य सम्पन्न करते थे। इन्हीं

सब कारणोंसे सोफिष्टोंके द्वारा ग्रीकदेशमें शिक्षाका प्रचार हुआ। सोफिष्ट-पण्डितोंके मध्य निम्नलिखित व्यक्ति समधिक विख्यात हैं।

प्रोटागोरस।

ये नीतिशास्त्रके प्रधान शिक्षक माने जाते थे। ४४० खृ० पूर्वाब्दमें आवडेरा नगरमें इनका जन्म हुआ था। एथेन्स नगरमें ये शिक्षाकार्यमें नियुक्त थे, धर्मद्रोहके कारण वहांसे निकाल दिये गये। उनका दार्शनिक मत है 'मनुष्य ही सभी पदार्थोंमें प्रमितिस्वरूप हैं' (Man is the measure of all things) अर्थात् सब पदार्थोंके अस्तित्व अनस्तित्व मनुष्यके ज्ञानके ऊपर निर्भर है। इन्द्रिय जनितज्ञान लेकर हम लोगोंके साथ वाह्यजगत्‌का सम्पर्क है और इन्द्रियजनित ज्ञान भी सबके समान नहीं है, भिन्नव्यक्तिका भिन्न प्रकारका है। जिसे जैसा ज्ञान है, उसके लिये वही सत्य है। एक वस्तुके सम्बन्धमें विभिन्न मत व्यक्त होने पर भी दोनोंको ही सत्य मानना पड़ेगा; क्योंकि प्रत्येकका ज्ञान अपने अपने अनुभवसिद्ध है। नीतिके सम्बन्धमें भी इसी प्रकार भला बुरा कह कर किसीका अस्तित्व नहीं है। परन्तु सबोंने मिल कर वा प्रभुत्वशाली व्यक्तिने अपने सुखको दुःखके साथ मिलाकर कितने नियम (Positive Statute) विधिबद्ध किये हैं और वही नियम सुख-दुःखानुसार भले बुरे कहे जाते हैं। नीतिके सम्बन्धमें प्रोटागोरसका मत पूर्वोक्त रूपका होने पर भी उनका जीवन निष्कलङ्क था।

जार्जियस् (Georgias)

ये राजनीतिज्ञ और अलङ्कार शास्त्रवित् थे। ये सिराक्यस (Syracuse)-से प्रपीड़ित अपनी जन्मभूमि सिसिलीके अन्तर्गत लियन्टियम (Leontium) नगरका उद्धार करनेकी इच्छासे ४२ खृ० पूर्वाब्दमें एथेन्स नगर आये। उनकी वक्तृतामाला भाषाकी उच्छ्वास और आलङ्कारिक छटाके लिये प्रसिद्ध थी। दर्शनके सम्बन्धमें वे इलीय-सम्प्रदायोक्त दार्शनिक जिनोके मतावलम्बी थे। उनके दार्शनिक ग्रन्थका नाम प्रकृति वा असत् था (Of the Non-existent, or of Nature)। इस ग्रन्थमें उन्होंने दिखलाया है, कि किसी वस्तुका अस्तित्व नहीं रह सकता। क्योंकि जिन सब वस्तुओंके अस्तित्व है, उनकी या तो उत्पत्ति हुई है (originated) या वे उत्पत्तिहीन (not originated) हैं। दोनों प्रकारकी कल्पना ही असम्भव है। कारण जिस वस्तुके अस्तित्व है उसकी उत्पत्ति असम्भव है और जिस वस्तुके अस्तित्व नहीं है अथच उसकी उत्पत्ति नहीं होती, ऐसी धारणा भी असम्भव है। सुतरां किसी भी पदार्थका अस्तित्व नहीं रह सकता। (Because something existent must have either originated or not originated neither of which alternative is possible to thought.—Vide Schwegler, p. 26)

अपरापर सोफिष्ट पण्डितोंके मध्य प्रोडिकस (Prodicus)-के सिवा और कोई भी उतने प्रसिद्ध नहीं हैं, अन्यान्य सभी वितण्डाडम्बरपूर्ण, उच्छृङ्खल व्यक्ति थे। ऐहिक मङ्गल, जन्ममृत्यु प्रभृति विषयोंमें प्रोडिकसकी दार्शनिक मीमांसा देखनेमें आती है। प्रोडिकसके ग्रन्थमें नैतिक विषयका विशेष प्रकर्ष देखा जाता है। इसीसे किसी किसीने उन्हें सक्रेटिसको गुरु (predecessor) माना है।

ग्रीक साहित्यशिल्पकी उन्नति सोफिष्ट पण्डितोंके द्वारा बहुत कुछ साधित हुई है। भाषाकी उन्नतिसाधन सम्बन्धमें सोफिष्ट पण्डितगण विशेष यत्नवान् थे।

सक्रेटिस-प्रवर्त्तित दर्शन (Socratic Philosophy)।

आत्मबोध (Self-consciousness)-के समर्थनमें ही सोफिष्टोंके दार्शनिक मतका विशेषत्व है। किन्तु उक्त दार्शनिकोंका कथित आत्मबोध तात्त्विक आत्मज्ञान (absolute subjectivity) नहीं है; वह व्यक्तिगत और व्यवहारिक बोध मात्र (empirical, egoistic subjectivity) है। सुतरां इस मतानुसार केवल आत्मज्ञानके ऊपर सत्यासत्य निर्भर नहीं करता; व्यक्तिगत बोधके ऊपर निर्भर करता है। अतएव सत्य प्रतीतिके निकट स्वतन्त्र है, भ्रम नामका कोई पदार्थ संसारमें नहीं है।

इस प्रकार दुर्बलभित्ति पर किसी प्रकार सत्य प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। सक्रेटिसने इस व्यक्तिगत बोधकी असारता दिखलाई है। उन्होंने कहा है, कि सत्यासत्यका निर्णय तुम्हारे अथवा हमारे विशेष ज्ञानके

ऊपर निर्भर नहीं करता। सत्यान्वेषण ही ज्ञानका धर्म है। यह ज्ञान (Reason) सार्वजनिक (Universal) है ; सत्य भी तुम्हारे लिये एक और अन्यके लिये अन्यरूप है, यह भी सर्वसाधारणकी शक्ति है। व्यक्तिगत निजस्व सम्पत्ति होने पर सत्य कह कर किसी पदार्थका अस्तित्व नहीं रह सकता था और रहने पर भी वह जनसाधारणका बोधगम्य नहीं होता। प्रत्येक मनुष्यका विश्वास है, कि जो उसके निकट सत्य नामसे प्रतीयमान होता है, वह केवल उसीके लिये सत्य है, सो नहीं, अन्य ज्ञानविशिष्ट व्यक्तिके लिये भी (Rational being) सत्य है। सुतरां सक्रेटिसके ज्ञानकी प्रकृति पर ही सत्यका मूल निहित है। सक्रेटिस ज्ञानके सार्वभौमत्व (Universality) और वास्तवता (Objectivity) को प्रमाणित करके वास्तवज्ञानवाद (philosophy of objective thought)की प्रतिष्ठा कर गये हैं।

उन्होंने सोफिष्टोंके दर्शनका एकदेशदर्शित्व प्रमाणित करके उक्त दर्शनका अभाव पूर्ण किया है। सक्रेटिसका दार्शनिक मत सोफिष्टोंकी दार्शनिक भित्तिके ऊपर प्रतिष्ठित है। इसीसे कोई कोई उन्हें सोफिष्टदलभुक्त मानते हैं।

सक्रेटिसके अभ्युदयके साथ ग्रीकदर्शनके द्वितीय युगका आरम्भ होता है। प्लेटो और अरिष्टटलका दर्शन सक्रेटिसके दार्शनिक मतकी चरमपरिणति है।

सक्रेटिसके दार्शनिक मतकी अपेक्षा सक्रेटिसके व्यक्तिगत जीवनके साथ जनता समधिक परिचित है। उनके जीवनमें उनका दार्शनिक मत प्रतिफलित हुआ था। प्राचीनकालमें जो सब महापुरुष जन्मग्रहण करके यूरोपकी पुण्यभूमि बना गये हैं, उनकी कथा स्मृतिपथ पर उदित होनेसे सबसे पहले ज्ञानशिरोमणि सक्रेटिसका ही स्मरण होता है। सक्रेटिस यूरोपवासीको आदर्श जीवनकी पराकाष्ठा दिखा गये हैं। इस महिमामण्डित महापुरुषकी ज्ञानप्रतिभाने तदनीन्तन ज्ञानराज्यमें किस प्रकार प्रभुता विस्तार की थी, वह तत्परवर्त्ती दार्शनिक मत देखनेसे ज्ञात हो जाता है और दार्शनिक प्लेटोने ही उसे विस्तारपूर्वक दिखानेकी चेष्टा की है।

सक्रेटिस ४६९ ई०सन्के पहले सोफ्रोनिसकस (Sophroniscus) नामक एक भास्करके औरस और फिनारिटि (Phaenarete) नामक धात्रीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। शैशवकालमें उन्होंने पितृव्यवसाय अवलम्बन किया। ग्रीसके आक्रपलिस (Acropolis)-में उनकी खोदित तीन मूर्त्तियां बहुत समय तक विद्यमान थीं।

सक्रेटिसके बचपनका हाल अधिक मालूम नहीं है। कहते हैं, कि उन्होंने सोफिष्ट प्रोडिकस (Prodicus) और सङ्गीतज्ञ डामन (amon)-से बाल्यशिक्षा पाई थी। किन्तु वह शिक्षा उनके जीवनकी स्थायी भित्ति स्वरूपमें न हुई। सक्रेटिसका दार्शनिक मत किसी दर्शनसम्प्रदाय वा व्यक्तिविशेषके निकट गृहीत नहीं है। अपनी मानसिक उन्नति उन्होंने अपनी तीक्ष्णधी और अध्यवसायके गुणसे साधन की थी। थोड़ी ही उमरसे सक्रेटिस साधारण शिक्षाकार्यमें नियुक्त हुए।

हाट, बाजार, जिमनासियम (Gymnasium) आदि प्रकाश्य स्थानोंमें सभी श्रेणीके लोगोंके साथ वे अपने दार्शनिक मतमें बहस करते थे। उनकी शिक्षाप्रणाली अभिनव-ढंगकी थी ; अन्यान्य दार्शनिकोंकी तरह वे वागाडम्बरके साथ अपने मतके प्रचारमें प्रवृत्त नहीं होते थे। पहले अज्ञताका भान करके जिस किसी व्यक्तिके निकट वे धर्मविषयक सामाजिक वा वैषयिक कोई प्रश्न उठाते थे, यदि जिज्ञासित व्यक्ति उसका उत्तर दे देता, तो उसका सत्यासत्य विचार करनेके लिये तर्कजाल विस्तार करके वे उक्त व्यक्तिकी अज्ञता उसीके द्वारा प्रमाणित कराते थे। सक्रेटिसके इस अज्ञता-भावको 'सक्रेटिसका श्लेष' (Socratic Irony) कहते हैं। सक्रेटिस अपने इस प्रचारकार्यमें दुरूह वा जटिल विषयको सरल भावमें समझते थे। इसीसे उनके समयमें जनसाधारणका शिक्षाविस्तारकार्य उनके लिये अत्यन्त सुगम हो उठा। साधारण युवकोंका मन अपेक्षाकृत सरल होता है, सुतरां सत्यग्रहणमें पराङ्मुख नहीं जान कर उन्होंने युवकोंके मध्य अपना प्रचारकार्य अधिक परिमाणमें विस्तारित किया। अनेक सम्भ्रान्त-वंशीय आथेनीय

युवक उनके शिष्य बन गये थे। आलसिबियाडिस (Alcibiades), जिनोफन (Zenophon) और प्लेटो उनमेंसे अन्यतम थे।

किन्तु सक्रेटिसका यह साधु उद्देश्य जनताने यथाभावमें ग्रहण न किया, जनसाधारणने उन्हें धर्मद्रोही और नूतन धर्मस्थापक समझ लिया था। कवि अरिष्टफेनिस (Aristophanes)-ने अपने "क्लाउड्स" (Clouds) नामक ग्रन्थमें सक्रेटिसको इस भावमें चित्रित किया है। इसके २४ वर्ष बाद सक्रेटिस धर्मद्रोह और युवकोंको स्वकल्पित अपधर्म शिक्षादानके अपराध पर अभियुक्त हुए। सच पूछिये तो सक्रेटिसने किसी नूतन धर्मका प्रचार न किया—वे प्रचलित धर्ममतके ही पक्षपाती थे लेकिन अपनी प्रतिभाके गुणसे उन्होंने धर्मके अन्तर्निहित सत्यको और भी उज्ज्वल कर दिया था। उक्त अपराध पर सक्रेटिसको विष पिला कर मार डालनेकी आज्ञा हुई। अपने जीवनके शेष कालमें उन्होंने अपनी नैतिक उन्नतिका चरम उत्कर्ष दिखाया है। यदि वे क्षमा-प्रार्थी होते तो निश्चय था कि वे प्राणदण्डाज्ञासे मुक्तिलाभ कर सकते थे। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया, केवल इतना ही कहा, कि जिसे उन्होंने सत्य समझ कर विश्वास किया है, उसके लिये वे जनसाधारणके निकट धन्यवादके पात्र हैं, न कि क्षमाभिखारीके। पलायन द्वारा प्राणरक्षाकी सुविधा रहते हुए भी उन्होंने सत्तर वर्षकी अवस्थामें अम्लानवदनसे विषपान करके इस नश्वर देहका त्याग किया।

सक्रेटिसका दार्शनिक मत।

सक्रेटिस अपने दार्शनिक मतके सम्बन्धमें कोई भी ग्रन्थ न रच गये हैं। उनके जीवनका उद्देश्य भी वही था, ऐसा प्रतीत नहीं होता। प्रचलित संस्कारकार्यमें ही वे व्यस्त रहते थे। जिनोफिन-प्रणीत तदीय जीवनचरित (Memorabilia) और प्लेटोके ग्रन्थमें उनके दार्शनिक मतका आभास पाया जाता है। प्लेटोके निज दार्शनिक मतके साथ सक्रेटिसका मत मिश्रित होना सम्भव था, इस कारण जिनोफनका ग्रन्थ ही अधिक प्रामाण्य है।

पूर्वप्रचलित दर्शनसम्प्रदायसमूहके विशेषतः सोफिष्टोंके दार्शनिक मतसमूहके खण्डनमें सक्रेटिसके दर्शनशास्त्रका अधिकांश नियोजित हुआ है। सक्रेटिसके समयसे दर्शनशास्त्रकी दृष्टि वहिर्जगत्से अन्तर्जगत् (Mind or Microcosm)में लाई गई है। आत्मज्ञान ही (Know Thyself) सक्रेटिसके मतमें दर्शनशास्त्रका मूल है। दर्शनशास्त्रके इस अन्तस्तत्त्वकी ओर सक्रेटिसकी इतनी दूर तक दृष्टि थी, कि वे वाह्यजगत्की सम्पूर्ण उपेक्षा कर गये हैं। उनके मतमें वाह्य जगत्से कुछ भी सीखनेको नहीं है। सक्रेटिसका दर्शन जगत्तत्त्वकी ओर जरा भी अग्रसर न हुआ; मानवजीवन ही सक्रेटिसके दर्शनका आलोच्य विषय था, इसीसे उनके दर्शनमें नीतितत्त्व (morality)-ने प्रधान स्थान प्राप्त किया है। उनके मानवजीवनका नैतिक भाग ही अपेक्षाकृत परिस्फुट है।

सोफिष्टोंके विरुद्ध मतावलम्बी होने पर भी सक्रेटिसने उनका मत अधिक परिमाणमें ग्रहण किया है। सोफिष्टोंका मत है, कि सभी नैतिक कार्य ज्ञानकृत (Conscious action) हैं। उनके मतमें कोई भी इच्छापूर्वक अन्याय नहीं करता। यह मत अधिकांशमें सोफिष्ट मतके जैसा है।

सक्रेटिसके मतानुसार ज्ञान ही धर्मका स्वरूप (Knowledge is virtue) है, अधर्म अज्ञानकृत है। सक्रेटिसके इस धर्माधर्मकी व्याख्याको आधुनिक पण्डितगण विकृत समझते हैं। उन लोगोंका कहना है, कि सक्रेटिस मनकी इच्छावृत्तिकी ओर (Impulsive side of mind) दृष्टिपात नहीं करते, किन्तु सक्रेटिसका मत हिन्दूदर्शनके साथ मिलता है। हिन्दूदर्शनके मतमें प्रकृत ज्ञान और अधर्मका एकत्र अवस्थान असम्भव है। सक्रेटिसके मतानुसार सत्यासत्य जैसा सार्वजनिक (Universal) है, नीतिज्ञान भी वैसा ही है। यह व्यक्तिगत इच्छा वा बोध (Opinion)-के ऊपर निर्भर नहीं करता, सार्वभौमिकता इसकी प्रकृतिगत है।

अरिष्टटलका कहना है, कि सक्रेटिस ही तर्कशास्त्रानुमोदित संज्ञाप्रणाली (Logical definition)के

प्रथम प्रवर्त्तक थे। सबसे आरम्भ करनेसे पहले सक्रेटिस उसी वस्तुका नाम ले कर विचार करते थे। एक जातिकी वस्तुओंमें जिन जिन साधारण धर्मोंके रहनेसे वे एक नामसे पुकारी जाती हैं, वही साधारण गुण (The Universals, the notion) उस नामके प्रवर्त्तक हैं। एतद्भिन्न अन्योन्य संश्रयात्मक युक्तिप्रणाली (The Method of induction)-का उन्होंने ही प्रवर्त्तन किया।

इसके पहले कहा जा चुका है, कि सक्रेटिस किसी विशेष साम्प्रदायिक मतकी गठन नहीं कर गए थे। पूर्व दर्शन सम्प्रदायोंकी एकदेशदर्शिता देख कर उसीमेंसे सत्यांशको ग्रहण करना ही उनका उद्देश्य था। अलावा इसके जिन सब दार्शनिक मतोंका वे प्रचार कर गये हैं, मनुष्यके आध्यात्मिक और नैतिक जीवनके सम्बन्धमें ही उनमेंसे अधिकांश प्रयुक्त हुआ है। अतएव सक्रेटिसके दर्शनमें किसी साम्प्रदायिक एकताके नहीं रहनेसे उनकी मृत्युके बाद उनके शिष्य विभिन्न सम्प्रदायोंमें विभक्त हो गये हैं। इनमेंसे निम्नलिखित चार सम्प्रदायोंने विशेष ख्याति प्राप्त की है:—

(१) अण्टिसथिनिस (Antisthenes)-प्रवर्तित सिनिक सम्प्रदाय (Cynics)।

(२) अरिष्टिपस (Aristippus)-स्थापित सिरेनिक सम्प्रदाय (Cyrenaics)।

(३) युक्लिड-स्थापित मेगारिक सम्प्रदाय (Megarics)।

(४) एवं प्लेटो, ये सक्रेटिसके मतको सर्वांशमें ग्रहण करते हैं।

सिनिक-सम्प्रदाय।

दार्शनिक अण्टिसथिनिस इस मतके प्रवर्त्तक थे। ये पहले सोफिष्ट दलमें रहे, पीछे सक्रेटिसके मतावलम्बी हुए। एथेन्सके सिनोसरगेस (Cynosarges) नामक स्थानमें उन्होंने दर्शनचतुष्पाठीकी स्थापना की, इस कारण उसीके नामानुसार उक्त सम्प्रदायका सिनिक नाम पड़ा है।

अण्टिसथिनिस दार्शनिक भाषामें सक्रेटिसके नैतिक आदर्शका प्रचार कर गये हैं (An abstract expression of Socratic moral ideal)। उनके मतमें विषयवासनासे मुक्तिलाभ करना ही धर्मका स्वरूप है और अमङ्गलसे मुक्तिलाभ करना ही जीवनका उद्देश्य है। लोभने विषयके प्रति हम लोगोंकी दृष्टिको आवद्ध कर रखी है। ज्ञानी व्यक्ति इस विषय-वासनासे मुक्त हो कर ही परमपुरुषार्थ ज्ञान प्राप्त करते हैं। वे स्वाधीन हैं—विषय-वासनाके दास नहीं हैं; वे स्पृहाहीन हैं। देश, वंश, धन, मान आदि विषयोंमें आसक्तिहीन हैं। ऐसे ज्ञानि व्यक्ति ही अण्टिसथिनिसके मतसे प्रकृत सुखी हैं।

अण्टिसथिनिसने सक्रेटिसके मतका एकांशमात्र ग्रहण किया है। उनके दर्शनमें सक्रेटिसके दर्शनकी तरह सार्वभौमत्व नहीं देखा जाता। सक्रेटिसका दर्शन कभी भी ऐसी वैराग्यप्रवणताको आश्रय प्रदान नहीं करता। सक्रेटिसके मतसे सुख वा शान्तिका मूल धर्मकी भित्तिके ऊपर प्रतिष्ठित है, इसके लिये संसारवैराग्यकी आवश्यकता नहीं है। धर्म-प्रतिष्ठित सुख संसारके सभी स्तरोंमें पाया जा सकता है। सिनिकोंकी यह वैराग्य-प्रवणता उत्तरोत्तर वृद्धि लाभ करके संसारद्वेषमें परिणत हुई थी। यहां तक कि ज्ञानोपार्जन उन सबके लिये निष्फल समझा जाता था। सिनोपी नगरवासी दार्शनिक डायोजिनिस (Diogenes of Sinope) अपने जीवनमें इस संसारद्वेषकी पराकाष्ठा दिखला गये हैं।

सिरेणिक सम्प्रदाय (The Cyaranaics)।

इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक अरिष्टिपस, Aristppus) सिरिणी (Cyrene) नामक स्थानमें रहते थे, इस कारण इस स्थानके नामानुसार उक्त सम्प्रदायका नाम पड़ा है। अरिष्टटल इन्हें सोफिष्टदलभुक्त बतला गये हैं। यदि यथार्थमें देखा जाय, तो इनके साथ सक्रेटिसका मत कुछ भी नहीं मिलता। अरिष्टिपसके मतसे सुखभोग ही जीवनका चरम उद्देश्य है। सुख कहनेसे वे दैहिक भोगवासना समझते थे। वे अपने जीवनमें इसका प्रकृष्ट परिचय दे गये हैं। उनके मतसे जो नैतिक बन्धन सुखको अन्तरायके स्वरूप है,

उसका कोई रूप सारवत्ता नहीं है। किन्तु आरिष्टपस आत्मोत्कर्ष, आत्मसंयम, मिताचार प्रभृतिको सुखका सेतु बतला गये हैं। इस सम्प्रदायभुक्त दार्शनिक थिओडोरस (Theodoras)-का कहना है, कि साधु उद्देश्यसे प्रणोदित हो कर कार्य करनेसे मनमें जो आनन्दका उदय होता है, वही प्रकृत सुख है। हिजियस (Hegias)-का कहना है, कि पृथिवी पर सुखलाभ असम्भव है; दुःखनिवृत्ति ही सुखको स्थानीय है।

मेगरिक-सम्प्रदाय।

सक्रेटिसके शिष्य यूक्लिड (Euclid) से यह दार्शनिक मत प्रवर्त्तित हुआ है। वे ग्रीसके अन्तर्गत मेगरा (Megra)-में अध्यापना करते थे, इसी कारण इस सम्प्रदायका मेगरिक नाम पड़ा है। सक्रेटिसके दर्शनमें दर्शनांश (Metaphysical part)-को अपेक्षा नैतिक अंश (Ethical heart) ही अधिक है। यूक्लिडने अपने दार्शनिक मतका दर्शनांश इलीयदर्शन (Eleatic School) से ग्रहण किया है। उनके दर्शनमें सक्रेटिसदर्शन के साथ इलीयदर्शनका समन्वय विधान किया गया है।

यूक्लिडके मतमें जिसका अस्तित्व है अर्थात् जो सत् है, वही नैतिक हिसाबसे मङ्गलनिदान है (That which is biint, self-identical, is good)। संसारमें मङ्गल ही स्थायी अर्थात् सत् है, अमङ्गलके अस्तित्व नहीं है, वह भ्रममात्र है। उस सम्प्रदायके दार्शनिक ष्टिलपो (Stilpo)-के मतसे ज्ञानार्जन ही जीवनका प्रकृत उद्देश्य है और यही जीवनका स्थायी मङ्गल है। यूक्लिड और इस सम्प्रदायके अन्यान्य दार्शनिकोंके मतसम्बन्धमें इसके सिवा और कुछ भी जाना नहीं जाता।

प्लेटो।

दार्शनिक प्लेटोको ही सर्वाङ्गीणरूपमें सक्रेटिसके शिष्य कह सकते हैं। दूसरा कोई भी सम्प्रदाय सक्रेटिसके मतको समग्रभावमें ग्रहण नहीं करता, केवल प्लेटोने ही उसे अच्छी तरह ग्रहण करके उसका सामञ्जस्य-विधान और उन्नतिसाधन किया है। प्लेटोके दर्शनसे ही सक्रेटिसके दर्शनका सर्वावयव पूर्ण हुआ है।

प्लेटो और अरिष्टटल ग्रीक-दार्शनिक जगत्के चन्द्र-सूर्य विशेष हैं। उन दोनोंका दार्शनिक मत आज तक भी पाश्चात्य-दर्शनके ऊपर अक्षुण्णभावसे प्रभुत्वविस्तार करता आ रहा है। मध्ययुगको कुज्झटिका अन्तर्हित हो कर वे उज्ज्वलतारूपमें प्रकाश पाते हैं। यूरोपका नवयुग कुछ अंशोंमें (Renaissance) ग्रीकदर्शन, साहित्य और शिल्प (Revival of Classical Literature and Art)-के अनुशीलनके फलसे प्रवर्त्तित हुआ था।

ज्ञानि-शिरोमणि प्लेटो ४२८ खृ० पूर्वाब्दमें एथेन्सके किसी विशिष्ट भद्रवंशमें उत्पन्न हुए। सम्भ्रान्त वंशमें जन्म लेनेके कारण बचपनसे ही उन्हें शिक्षा दी जाने लगी। बीस वर्षकी अवस्थामें उन्होंने सक्रेटिसका शिष्यत्व ग्रहण करके आठ वर्ष तक उन्हींसे शिक्षा प्राप्त की। उच्च वंशीय होने पर भी उस समयके राजनैतिक जीवनको अवनतिके लिये उन्होंने राजनैतिक जीवनमें प्रविष्ट होनेका सङ्कल्प त्याग दिया। ३९९ खृ०पूर्वाब्दमें सक्रेटिसकी मृत्युके बाद वे एथेन्स छोड़ कर मेगर नगरमें जा बसे। यहीं उनकी यूक्लिड-स्थापित मेगरिक दार्शनिक सम्प्रदायके साथ घनिष्ठता हुई। पीछे वहांसे उन्होंने सिरिणी (Cyrene), इजिप्ट, इटलीके दक्षिणस्थ मेगना-ग्रिसिया (Magna) Graecia) और सिसिली द्वीपमें परिभ्रमण किया। मेगना-ग्रिसियामें भ्रमणके समय उन्होंने पीथागोरीय दर्शनके सम्बन्धमें अभिज्ञता लाभ की। पीथागोरीय दर्शन उनके दार्शनिक मतके ऊपर कैसा कार्यकारी हुआ था, वह उनके शेष जीवनका दार्शनिकग्रन्थ पढ़नेसे मालूम होता है। पीथागोरियोंके साथ परिचय हो जानेके बादसे उन्होंने राजनीति सम्बन्धमें आलोचना करना आरम्भ किया। सिसिली (Sicily)-में भ्रमण करते समय वे सिराक्यूस (Cyracuse)-के राजा ज्येष्ठ डायनिसियस और उनके साले डायवन (Younger)-से परिचित हुए। वहां रहते समय डायनिसियसके साथ मतद्वैध हो जानेसे उनका जीवन अतिशय विपन्न हो गया था। डायनकी चेष्टासे वे उस विपद्से मुक्तिलाभ करके प्रायः

दश वर्षके बाद एथेन्समें लौट आये। यहां वे नगरके उपकण्ठस्थित ऐकडेमी (Academy) नामक स्थानमें अपना दार्शनिकमत प्रचार करने लगे। अनन्तर दो बार सिसिली जानेके सिवा वे अवशिष्ट काल जीवनके शेष मुहूर्त्त तक अध्यापनाकार्यमें नियुक्त रहे। सिराक्यूज (Syracuse)-के वृद्ध डायनिसियसके मरने पर उनके लड़के डायनिसियस (Younger Dionysius)राजा हुए। प्लेटो उनके द्वारा अपने राजनैतिक मत (Political Theories)-को कार्यमें परिणत करनेकी इच्छासे दो बार सिसिली गये। कृतकार्य होना तो दूर रहे, एक बार वे क्रीतदास समझ कर बिक भी गये थे। यही दो बार सिसिली जानेके सिवा प्लेटोने फिर कभी भी एथेन्स नहीं छोड़ा।

प्लेटोने सक्रेटिसकी तरह दर्शनशास्त्रको साधारणके आलोच्य विषयमें परिणत नहीं किया। सक्रेटिस जिस प्रकार प्रकाश्य स्थानमें व्यक्तिमात्रको बुला कर दार्शनिक तर्कमें प्रवृत्त होते थे, उस प्रकार प्लेटो अपना मत प्रचार करनेके लिये कहीं नहीं गये। उन्होंने नगरके बाहर एक निर्जन स्थानमें अपनी चतुष्पाठी स्थापित की। उनके मतसे दार्शनिकतत्त्व जनसाधारणके बोधगम्य नहीं है, इसके लिये शिक्षा और संयमका प्रयोजन है। अपने शिष्य मण्डलीमें जिन्हें वे तत्प्रवर्त्तित शिक्षा और संयमके अधिकारी नहीं देखते थे उन्हें दर्शनकी शिक्षा कदापि नहीं देते थे। दार्शनिक अरिष्टटल इस शिष्यवर्गके अन्यतम थे। शिष्यवर्ग और साधारणकी असीम भक्तिके पात्र पाश्चात्य तत्त्वज्ञानीके चरमादर्श प्लेटोने इकासी वर्षकी अवस्थामें (ख० पु० ३२७) मानवलीला शेष की। ऐकेडेमीके पास ही सिरामिकस (Ceramricus) नामक स्थानमें उनकी समाधि हुई।

अन्यान्य दर्शनोंके प्रभावानुसार प्लेटोके दर्शन ग्रन्थोंको तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है इन ग्रन्थोंका पौर्वापर्य देखनेसे उनके दर्शनकी उन्नतिका क्रम स्थिर किया जाता है।

(१) प्रथम युगमें सक्रेटिसके मतका प्रभाव देखनेमें आता है। इसका नाम सक्रेटिक युग है।

(२) द्वितीय युगका नाम हेराक्लाइटीय-इलीय युग (Heraclitico-Eleatic) है।

(३) तृतीय युगका नाम है पीथागोरीय युग।

प्रथमयुगमें प्लेटोके ग्रन्थमें सक्रेटिसकी अनुकरणप्रियताका प्राबल्य देखनेमें आता है। सक्रेटिस जिस प्रथासे दर्शनका प्रचार करते थे, उसी प्रथाके अनुसार अर्थात् कथोपकथनके बहाने और नाटकाकारमें प्लेटोने अपना मत प्रकाशित करनेकी चेष्टा की है। इस समयके ग्रन्थ देखनेसे मालूम होता है, कि उन्होंने उस समय अन्यान्य दर्शनसम्प्रदायोंके मतको अच्छी तरह आयत्त नहीं किया, सक्रेटिसकी तरह उन्होंने नैतिक और सामाजिक विषय ले कर ही इस समयके ग्रन्थोंकी रचना की।

चारमाइडिस (Charmides) नीतिविषयक ग्रन्थ है। लाइसिस (Lysis) नामक ग्रन्थमें बन्धुत्वके सम्बन्धमें मीमांसा है और लेकिस (Laches)-में दृढ़ता सम्बन्धमें। अलावा इसके उन्होंने आलसिबाइडिस माइनर प्रभृति (The first Alcibiades), हिपियस माइनर प्रभृति कुछ नीतितत्त्वविषयक ग्रन्थ रचे हैं।

जार्जियस (Georgias) और प्रोटागोरस (Protagorus) नामक ग्रन्थोंमें उन्होंने सोफिष्टोंके नैतिक मतका खण्डन किया है। धर्म (Virtue)-का प्रकृत स्वरूप कैसा है? धर्मकी शिक्षा दी जाती है वा नहीं? धर्म और सुख एक नहीं है, ये सब विषय उक्त ग्रन्थोंमें सन्निवेशित हैं।

प्लेटो-दर्शनके द्वितीय युगके ग्रन्थमें प्रथम युगकी तरह कल्पनाप्राचुर्य और नैतिक विषयका बाहुल्य नहीं देखा जाता। मेगारिक और अन्यान्य दार्शनिक सम्प्रदायोंके साथ साक्षात् सम्बन्धमें परिचय हो जानेसे प्लेटोने पूर्वकालीन दार्शनिक मतोंका अनुशीलन करना आरम्भ किया। इसी समयसे शुद्ध नीतितत्त्व छोड़ कर अन्यान्य दार्शनिकोंके विषय विशेषतः ज्ञानतत्त्वकी ओर उनकी दृष्टि पड़ी और अन्यान्य दार्शनिक मतोंके साथ संघर्ष होनेसे उनके निज दार्शनिक मतका सत्यनिरूपण और यथायथ व्याख्याकी इच्छा बलवती

हुई। इसी समयसे उन्होंने अपना तथा अपने गुरु सक्रेटिसके मतका वैज्ञानिक प्रणालीमें प्रचार करना आरम्भ किया। सक्रेटिस सरल उपायसे अपने ज्ञान तत्त्वका प्रचार कर गये हैं। प्लेटोने उन्हें विज्ञानसम्मत प्रणालीसे प्रतिपन्न करनेकी चेष्टा की है।

सक्रेटिसके मतमें पदार्थका ज्ञान पदार्थके नोशन वा धारणासे उत्पन्न होता है (Cognition through notion) अर्थात् एक जातिके दो या दोसे अधिक पदार्थ देख कर उन पदार्थोंके मध्य क्या क्या सादृश्य है हम लोग उसे समझ सकते हैं और इस सादृश्य-वशतः ही वे एक जातिकी वस्तु हैं, ऐसा प्रतीत होता है। एक जातिकी वस्तुके मध्य यह जो प्रकृतिगत सादृश्य है, इसीका नाम उक्त वस्तुमात्रका नोशन भाव वा धारणा है। सक्रेटिसके मतानुसार यदि वस्तु देख कर हम लोगोंके मनमें ऐसी धारणा वा नोशनका उदय न होता, तो वस्तुज्ञान हो ही नहीं सकता। ज्ञानके मध्य ऐसा एक "साधारण भाव" (Universal i. e. conceptual element) है जो इन्द्रियज ज्ञानके मध्य ऐक्य साधन करता है, ऐसे एक पदार्थका रहना आवश्यक है। वस्तुके इस साधारण भाव (General notion)का निर्देश करनेसे ही सक्रेटिसके मतानुसार वस्तुकी संज्ञा निर्देश की जाती है। प्लेटोने सक्रेटिसके इस मतको अपने भाववादतत्त्व (Doctrine of ideas)में सप्रमाणित किया है।

इस समयका सर्वप्रथम ग्रन्थ थियेटिटस् (Theaetetus) है। इस ग्रन्थमें सोफिष्ट प्रोटागोरसके ज्ञानतत्त्वसम्बन्धमें समालोचना करके उसका दोष प्रतिपन्न किया गया है। सोफिष्ट (Sophist) नामक ग्रन्थमें माया वा भ्रम (Appearonce)-की आलोचना है। परमिनाइड्स ग्रन्थमें उनके मतकी समालोचना देखी जाती है।

प्लेटोके दार्शनिक मत विस्तारके तृतीयस्तरमें प्रथम युगका कल्पनाप्राचुर्य और वर्णन-प्रणाली तथा द्वितीय युगकी दार्शनिक गवेषणा इन दोनोंका समावेश देखनेमें आता है। इस समयका ग्रन्थ देखनेसे साफ साफ ज्ञात होता है, कि प्लेटोने सक्रेटिस-प्रवर्त्तित मतको बहुत अनुरागके साथ ग्रहण किया है। द्वितीय युगमें सक्रेटिसका प्रभाव बहुत कुछ ह्रास हो गया था। तृतीय स्तरमें पीथागोरीय दार्शनिक मतोंका परिचय प्राप्त करनेसे उनके मतकी प्रचारप्रणाली और भी परिस्फुट हो उठी। सक्रेटिसके नैतिक मत, इलियाके दार्शनिक मत और पीथागोरीय जड़तत्त्व-विषयक मतका सामञ्जस्य विधान करके उन्होंने सम्बन्धके समावेशमें एक मत स्थापन करनेकी चेष्टा की। द्वितीय स्तरमें वे भाववाद (Theory of ideas)-को अवतारणा करके उसका केवल प्रकृत अस्तित्व (Objective reality) प्रतिपन्न कर गये हैं। तृतीय-स्तरमें उन्होंने मनस्तत्त्व, नीतितत्त्व और जड़विज्ञान-शास्त्र सम्बन्धमें इस भाववादका प्रयोग दिखलाया है।

प्लेटोने Phedrus और Banquet नामक दोनों ग्रन्थमें प्रचलित आलङ्कारिक व्याख्याप्रणालीका किस प्रकार वैज्ञानिक रीतिसे प्रयोग करना होगा, उसकी मीमांसा की है और यह प्रतिपन्न किया है, कि अन्तर्निहित 'आइडिया' वा भाव (The true Eros or Idea)-के प्रति दृष्टि नहीं रखनेसे किसी विषयकी प्रकृत विज्ञानसम्मत मीमांसा नहीं होती। फिडो (Phaedo) नामक ग्रन्थमें आत्माके अमरत्व सम्बन्धमें आलोचना है। फिलेबस (Philebus) नामक ग्रन्थमें प्लेटोने परममङ्गल क्या है? इस तत्त्वकी मीमांसा की है और रिपब्लिक (Republic) तथा टिमियस (Timaeus) नामक दोनों ग्रन्थोंमें अपने राजनैतिक मतकी अवतारणा की है।

प्राचीन पण्डितोंने प्लेटोके दर्शनको विभिन्न प्रणालीके अनुसार विभक्त किया है। किन्तु दार्शनिक अरिष्टटलने प्लेटोके दर्शनको न्यायविषयक (Dialectics or logic), जड़तत्त्वविषयक (Physics) और नीतितत्त्व-विषयक (Ethics) इन तीन भागोंमें बांटा है।

प्लेटोने न्याय वा तर्कशास्त्र (Dialectic) इस आख्याका अति विस्तीर्ण भावमें प्रयोग किया है। उनका न्यायशब्द दर्शनशास्त्रका नामान्तरमात्र है। बीच बीचमें उन्होंने न्यायशास्त्रको दर्शनका शाखास्वरूप मान लिया है। इस न्यायशास्त्रमें प्लेटोने वस्तुके प्रकृत स्वरूपसम्बन्धमें

आलोचना की है (The Science or what absolutely is, or of the ideas) ।

प्रकृत ज्ञानका लक्षण क्या है, उसका विचार इस अंशमें किया गया है। दार्शनिक प्रोटागोरसके मतसे व्यक्तिगत इन्द्रियजज्ञान (Sensuous perception) प्रकृत ज्ञान है। प्लेटोने थियेटिटस (Theaetetus) ग्रन्थमें लिखा है, कि ऐसी प्रतिज्ञाको यदि सत्य मान लिया जाय, तो अनेक असामञ्जस्य उपस्थित होते हैं। यदि व्यक्तिगत ज्ञानको ही सत्यका मानस्वरूप मान लिया जाय, तो प्रत्येक पशुके असम्पूर्ण ज्ञानको सत्य स्वीकार करना पड़ेगा। प्रत्येक व्यक्तिका ज्ञान उसके पक्षमें सत्य कह कर स्वीकार करनेसे सत्यनिरूपण वृथा है। भ्रम कह कर किसी पदार्थका अस्तित्व नहीं रहता। इसके अतिरिक्त प्रोटागोरस अपने विरुद्ध मतावलम्बीको भ्रान्त नहीं कह सकते, क्योंकि उनके मतसे सभी व्यक्तिका ज्ञान उसके लिये सत्य है।

द्वितीयतः प्रोटागोरसका मत स्वीकार करनेसे इन्द्रियजनित ज्ञान (Perception) उत्पन्न हो ही नहीं सकता। इन्द्रियजनित ज्ञान द्रष्टा और दृष्ट वस्तुके संयोगसे उत्पन्न होता है। किन्तु प्रोटागोरसका कहना है, कि वाह्यवस्तु इतनी परिवर्त्तनशील है, कि इन्द्रिय द्वारा उसका मुहूर्त्त भर भी अनुभव नहीं किया जा सकता। ऐसा होनेसे उनका तथाकथित इन्द्रियज्ञान प्रकृत ज्ञान नहीं है, ऐसा स्वीकार करना पड़ेगा। तब क्या व्यक्तिगत इन्द्रियज ज्ञानकी स्वाधीनता रही? तृतीयतः प्रोटागोरस किस प्रकार हम लोगोंके इन्द्रियज ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे विश्लेष कर नहीं देखते। हम लोग पृथक् पृथक् इन्द्रियसे जो सब विषय ग्रहण करते हैं, मन उन सब विषयोंका सामञ्जस्य विधान करके उन्हें उसी विषयके ज्ञानमें परिणत करता है। केवल इन्द्रियबोधसे ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। सुतरां इन्द्रियजज्ञानसे ज्ञातवस्तुका प्रकृत स्वरूप हम लोग नहीं जान सकते। प्रोटागोरसके मतका अनुसरण करनेसे सत्यका निर्णायक आदर्श (Standard of truth) नहीं रह सकता। इस प्रकार युक्तिपरम्परा द्वारा प्लेटोने प्रोटागोरसके मतकी असारता प्रतिपन्न करके इन्द्रियज ज्ञान और विज्ञान का पार्थक्य निर्देश किया है।

प्लेटोके मतसे ज्ञानका पन्थ दो प्रकारका है, इन्द्रियज ज्ञान और विज्ञान। इन्द्रियज ज्ञान अस्थायी और परिवर्त्तनशील है तथा वाह्यजगत्से गृहीत होनेके कारण असम्पूर्ण है। सृष्टिका यह परिणाम जिसके ऊपर कार्यकारी नहीं है, जो अपरिवर्त्तन, अनादि, अनन्त है उसी पदार्थके प्रति विज्ञानकी (Rational thought) दृष्टि निबद्ध है। विशुद्धज्ञान वाह्य वस्तुके ऊपर निर्भर नहीं करता। वाह्य वस्तुके संस्रवहीन परम पदार्थका ज्ञान ही विशुद्ध ज्ञान है। सुतरां प्लेटोके मतानुसार ज्ञान (Thought) और विज्ञान (Science) में प्रभेद यह है, कि ज्ञान अर्थात् इन्द्रियज ज्ञान अनित्य और विज्ञान नित्य ज्ञान है।

प्लेटो प्रवर्त्तित भाववाद (Ideal Theory) है। इलीयदर्शनके अन्तर्विरोधके सामञ्जस्यके लिये प्लेटोने अपने भाववादकी अवतारणा की है। इलीयदर्शन सम्प्रदायभुक्त पण्डितोंने वाह्य जगत् वा असत्का अस्तित्व अस्वीकार करके भी दूसरी तरहसे उसे फिर स्वीकार किया हैं। सक्रेटिसने अपने परमिनाइडस (Parminides) नामक ग्रन्थमें उक्त मतकी समालोचना करते समय कहा है, कि असत् (Non-being)-को बिलकुल अस्वीकार नहीं कर सकते। इलीय-दर्शनके मतसे सत् एक ही है; बहुका (Manifold, multiples exists) अस्तित्व नहीं है। इलीयदर्शन इस एक (One) और बहु (Many)-का सामञ्जस्य विधान नहीं कर सकता। प्लेटोका कहना है, कि दोनोंका विच्छेद नहीं किया जा सकता। एकके नहीं रहने पर अनेकका अस्तित्व ज्ञान असम्भव है। क्या अनेकका ज्ञान नहीं होनेसे एकका स्वरूप नहीं जाना जा सकता? यदि एकका अस्तित्व स्वीकार किया जाय, तो बहुका अस्तित्व स्वीकार करना ही पड़ेगा। इलीयदर्शनके मतानुसार एक ही सत् है, एक ही नित्य है, बहु अनित्य है, वह भ्रम वा माया है। किन्तु प्लेटोने जिस प्रकार एक और बहुका सम्बन्ध दिखाया है उससे बहुको असत् मान कर उड़ा देनेसे काम नहीं चलेगा। सत् (Being)-का जैसा अस्तित्व है, वैसा असत्का भी। भ्रम वा माया होने पर भी उस मायाका अस्तित्व

स्वीकार करना पड़ेगा। असत्‌के नहीं रहने पर असत्‌की सम्बन्धमें धारणा किसी प्रकार हम लोगोंमें नहीं रह सकती। लेकिन ऐसा जो कहा जाता है, कि असत्‌ वा वस्तुका अस्तित्व नहीं है। वह केवल सत्‌के साथ तुलना करनेसे जाना जाता है। असत्‌का अस्तित्व अन्य प्रकारका (Different order of existence) है। इलीय-दर्शनकी समालोचनाके उपलक्षमें प्लेटोने तत्‌-प्रवर्त्तित 'आइडिया' क्या है, उसका परिचय दिया है। प्लेटोका 'आइडिया' इलीय-दर्शनके सत्‌के अनुरूप है। वाह्यजगत्‌के अस्तित्वके मध्य हो कर आइडियाके नोशन वा मापका अस्तित्व सूचित होता है और जिस परिमाणमें आइडिया वा नोशन वाह्यजगत्‌के साथ संश्लिष्ट है, वाह्यजगत्‌ भी उसी परिमाणमें सत्य है।

आइडियाका स्वरूप—प्लेटोके मतसे आइडिया वा भाव जगत्‌ वैचित्र्यका एकत्वसूचक है; अर्थात्‌ आइडियाके रहनेसे एक जातीयपदार्थके मध्य एकत्व है और इस आइडिया (Notion or bound of Unity) की उपलब्धि होने पर उनके एक जातीयत्व सम्बन्धमें हम लोगोंका ज्ञान उत्पन्न होता है (in a subjective reference, the ideas are principles of cognition)। आइडियाके अस्तित्व सम्बन्धमें प्लेटोका मत उतना सुस्पष्ट नहीं है। प्लेटोने आइडियाको तदन्तर्गत पदार्थोंकी आदर्श-प्रतिकृति (Archetypes) और इन आदर्श प्रतिकृतियोंका अशरीरी अस्तित्व स्वीकार किया है। उन्होंने टेबिलका आइडिया, शय्याका आइडिया, बलका आइडिया, सौन्दर्यका आइडिया, मङ्गलका आइडिया आदि पदार्थ जगत्‌मात्रके ही आइडियाका उल्लेख किया है। यही सब आइडिया वाह्यजगत्‌के वस्तुजातके मध्य अनुप्रविष्ट हो कर अपने अस्तित्वके भित्तिस्वरूप हो गये हैं।

इन सब आइडियाओंमें जो आइडिया अन्यान्य आइडियाका मूल है, जिसका अस्तित्व स्वीकार करनेसे अन्यान्य आइडियाओंका अस्तित्व आपसे आप प्रतिपन्न होता है, वही आइडिया सर्वश्रेष्ठ है। 'शिव' (The good) यही प्लेटोके मतानुसार सर्वश्रेष्ठ आइडिया है। एक मङ्गलका अस्तित्व स्वीकार करनेसे सत्य और सुन्दर (The true and the beautiful) इन दो भावोंके एवं यावतीय अन्यान्य भावोंके आइडियाका अस्तित्व स्वीकार करना पड़ता है। प्लेटोका कहना है, कि सूर्य जिस प्रकार केवल हम लोगोंकी ही दृष्टि-शक्ति नहीं है, पदार्थमात्रकी ही उत्पत्ति और वृद्धिका कारण हैं, उसी प्रकार मङ्गल (The idea of the good) केवल हम लोगोंकी विज्ञानशक्ति (Scientific cognition)की ही नहीं, पदार्थमात्रके ही अस्तित्वका निदान है। सूर्य जिस प्रकार दृष्टिके हेतु हो कर भी अपनी दृष्टिके वहिर्भूत हैं, मङ्गल भी उसी प्रकार विज्ञानशक्तिका हेतु हो कर स्वयं विज्ञानके वहिर्भूत है।

प्लेटोने इस मङ्गलमय स्वरूपको (The idea of the good) ईश्वर बतलाया है। इस मङ्गलमय स्वरूपका व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य (Personality) उनके दर्शनसे अच्छी तरह जाना नहीं जाता। सगुण ईश्वर (Personal God)के सम्बन्धमें उन्होंने कुछ भी स्पष्टभावमें निर्देश नहीं किया।

प्लेटोका जड़तत्त्व (Physics)।

डाइलेकटिक वा दर्शनके न्यायभागके जैसा प्लेटोने मनोयोग और यत्नके साथ जड़तत्त्वका अनुशीलन नहीं किया। उन्होंने पहले ही कहा है, कि जड़तत्त्व इन्द्रियज ज्ञानसापेक्ष है, प्रज्ञाशक्ति (Reason) यहां कार्यकारी नहीं है। टिमियस (Timaeus) नामक ग्रन्थमें प्लेटोने अपने जड़तत्त्वकी अवतारणा की है। इस ग्रन्थके अधिकांशको उपाख्यानमूलक समझ कर इसके दर्शनांशका निर्णय करना कठिन है। प्लेटोने पहले ही जगत्‌-निर्माणकारी डेमियर्गस (Demiurgus) नामक एक विधातृपुरुषका अस्तित्व स्वीकार किया है। इस पुरुषकी बुद्धि और निर्माणकौशलसे जगत्‌ने इस प्रकार सम्पूर्णता लाभ की है। यह डेमियरगस जगत्‌की उद्भावनी शक्ति (The Moving deliberating principle—the world-former) है। पहले जगत्‌का कुछ भी न था, केवल जगत्‌का आदिकारणस्वरूप जगत्‌का आइडिया वर्त्तमान था एवं आकार और सीमाहीन प्रकृति विद्यमान थी। उक्त विधाता पुरुषने इस 'जड़राशि'के मध्य

शृङ्खला स्थापित करके सृष्टि विधान करनेके लिये विश्व-प्राण वा जगत्‌शक्ति (World-soul)की सृष्टि की। इस विश्वप्राणने जड़राशिके मध्य गति (Motion) और शृङ्खलाका उद्बोधन करके ग्रह, नक्षत्र, पृथ्वी और अन्त-रीक्षकी रचना की है। जड़राशिसे क्षिति, अप्, तेज और मरुत् ये चार भूत पदार्थ विकाश लाभ करके पीछे उद्भिज्ज और प्राणीजगत्‌की सृष्टि हुई है। जगतकी विकाशप्रणाली समयके पौर्वापर्यके अनुसार साधित हुई है वा एक ही बारमें सृष्टि हुई है, इसके सम्बन्ध-में प्लेटोने कुछ भी साफ साफ नहीं बतलाया। प्लेटो-के मतसे मङ्गलके स्वानुभवके लिये जगतकी सृष्टि (The self-realisation of the idea of the good) हुई है।

प्लेटोके मतानुसार आत्मा (Soul) जड़ और आइ-डियाके मध्यवर्त्ती है। आत्मा ही इन दोनोंके मध्य बन्धन स्थापित करती है। प्रज्ञाशक्तिवशतः आत्मामें दैवभाव (Divine element) वर्त्तमान है; फिर देह संयुक्त होनेके कारण आत्मा सम्पूर्ण मुक्त नहीं हैं। आत्मा देहके सुख पर सुखी और दुःख पर दुःखी है, सुतरां वह बद्ध है। प्रज्ञा रहनेसे आत्मा इस बद्धावस्थासे मुक्ति लाभ करके अपना स्वभाव (Ideal state) पानेके लिये चेष्टा करती हैं। देहबद्ध होनेके कारण आत्माके वासना उत्पन्न होती है। वासना-विरहित विशुद्ध आत्मा (Pure soul) देहत्यागके बाद अपनी स्वरूप अवस्था पाती है। आत्माका धर्म प्रज्ञा (Reason) है और आत्माके देहाभिमानसे इन्द्रियज ज्ञान (Sensuous knowledge) उत्पन्न होता है। प्लेटोने इसी प्रकार विषय-ज्ञान (Senge) और प्रज्ञाकी उत्पत्ति बतलाई है।

नीतितत्त्व (Ethics)

जीवनका चरम उद्देश्य क्या है? इस विषयका निर्णय करना ही प्लेटोके नीतितत्त्व (thies)-का उद्देश्य है। प्लेटोके मतसे मङ्गल ही जीवनका परम पुरुषार्थ है। परममङ्गल क्या है, (What is the summumbonum) नीतितत्त्वके प्रथमांशमें वे इस विषयकी मीमांसा कर गये हैं। उन्होंने अपने नैतिक विषयकी मीमांसामें भी भाववाद (Ideal Theory)-का प्रयोग किया है। जीवनका परमपुरुषार्थ क्या है, इसकी मीमांसामें उन्होंने कहा है, कि "आइडियल" अवस्था (Exalta-tion into the ideal being) अर्थात् देह विमुक्त अवस्थामें आत्मा जिस आइडिया स्वरूप अवस्था-में विद्यमान रहती है, वैसी आध्यात्मिक अवस्थाका प्राप्त होना जीवका परमपुरुषार्थ है, और यही जीवका परम मङ्गल है।

प्लेटोने कहा है, कि धर्म द्वारा (Virtue) यह परममङ्गल लाभ होता है। उन्होंने पहले सक्रेटिसके मतका अनुसरण करके कहा है, कि धर्म ज्ञानके ऊपर निर्भर करता है और अन्यान्य विषयकी तरह धर्म भी शिक्षाका विषय हो सकता है। पीछे उन्होंने यह मत परिवर्त्तन करके नूतन मतका प्रचार किया। इस मतसे धर्मवृत्ति चार है, प्रज्ञा (Reason)के धर्म ज्ञान (Wisdom) है, ज्ञान ही हम लोगोंको सदसत् विषयका पार्थक्य समझा देता है। साहसिकता (Courage) हृदय (Heart)का और मिताचारिता (Tempe-rance) इन्द्रियवृत्तिका धर्म है। ४र्थ न्यायवृत्ति (Justice) आत्माकी नियामक है और वह अन्यान्य धर्मवृत्तियोंको नियन्त्रित करती है, धर्मवृत्तियोंके मध्य यही सर्वश्रेष्ठ है।

रिपब्लिक (Republic) नामक ग्रन्थमें प्लेटोने अपने राजनैतिक मतका प्रतिपादन किया है। राज-नीति (Politics) ही प्राचीन ग्रीक दार्शनिकोंके मतसे नीतितत्त्वकी शेष सीमा है। प्राचीन ग्रीसमें व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य (Individualism) नामक कोई पदार्थ नहीं था। बालुकण जिस प्रकार बालुकाराशिका छोटा अंश है, व्यक्तिगत जीवन भी उसी प्रकार जातीय जीवनका एक छोटा अंशभूत था। सारे शरीरकी तुलनामें जिस प्रकार किसी अङ्गविशेषकी आवश्यकता है, उसी प्रकार जातिकी तुलनामें व्यक्तिगत जीवनकी भी है। निज क्षुद्र परिधिके मध्य व्यक्तिका जो अपना कोई विशेष अधिकार है तथा उस अधिकारमें जो जातीय क्षमता हस्तक्षेप नहीं कर सकती, प्राचीन ग्रीसमें यह धारणा नहीं थी।

प्लेटोने अपना राजनैतिक शासनतन्त्र (Ideal state) इसी आदर्श पर गठित किया है। उन्होंने जो शासनतन्त्रकी छवि अपने ग्रन्थ (Republic)में अङ्कित की है, वह यथार्थमें तद्देश और कालोपयोगी है, इसमें सन्देह नहीं। मालूम पड़ता है, कि ग्रीक जातिकी उस समयकी अधोन्नतिके लिये उक्त आदर्श आकाश-कुसुमवत् हो गया था। प्राचीन स्पार्ट (Sparta) और एथेन्सके सामाजिक नियमोंके प्रति दृष्टिपात करनेसे ज्ञात होता है, कि इनमें भी प्लेटोके शासनतन्त्रकी तरह व्यक्तिगत स्वातन्त्र्यका स्थान नहीं है। प्लेटोके मतसे शासनप्रणाली (State)-ने व्यक्तिगत जीवनके पिता, माता और शिक्षकका स्थान अधिकार किया है। शासनतन्त्र ही साधारण शिक्षागार और साधारण धर्मालय है। शासनतन्त्र ऐसे उच्चाधिकारकी प्रज्ञाशक्ति द्वारा नियन्त्रित होना आवश्यक है। ऐसी शासनप्रणालीमें व्यक्तिगत स्वार्थ वा स्वेच्छाचारिताका अवकाश नहीं है; समस्त व्यक्तित्वको जातीयत्वमें परिणत करना होगा। जो जाति (State)-का नहीं है, वह व्यक्तिका भी नहीं हो सकता। यहां तक कि धर्मजीवन और धर्मवृत्ति जातीय जीवनसे व्यक्तिगत जीवनमें केवल प्रतिफलित होती है। उनका उत्पत्ति-स्थल जातीय जीवन और प्रकाशस्थल व्यक्तिगत जीवन है।

प्लेटोने अपने साधारण तन्त्रमें व्यक्तिगत सम्पत्ति (Private property) और गार्हस्थ्य जीवनकी आवश्यकता स्वीकार नहीं की है। लोगोंकी शिक्षा स्टेटसे निर्वाहित होगी और कौन किस व्यवसायका अवलम्बन करेगा, स्टेट ही उसका निर्देश कर देगा। विवाह प्रभृति सभी व्यापारोंमें स्टेटसे अनुमति ली जायगी। उच्च श्रेणीभूत लोगोंको व्यायाम, सङ्गीतशास्त्र, अङ्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र और युद्धविद्या आदि सीखनी होगी। प्लेटोने स्त्रीजातिको व्यायाम और युद्धविद्यामें शिक्षा देनेकी आज्ञा दी है। यहां तक कि किस समय विवाह करना होगा, किस समय सन्तानोत्पत्ति और गर्भधारण विधेय है। इन सब विषयोंमें भी स्टेटसे अनुमति लेनी पड़ेगी।

प्लेटोकी अनुमोदित शासनप्रणाली आभिजात्यमूलक (Aristocratic) है। एथेन्स प्रजातन्त्र (Democracy)-की शासनप्रणालीकी दुरवस्था देख कर वे उक्त शासनतन्त्रके विशेष पक्षपाती न थे। स्वीय अनुमोदित शासनतन्त्रको प्लेटोने वंशगत आभिजात्यके ऊपर प्रतिष्ठित नहीं किया। उनके मतसे ज्ञानी व्यक्ति दार्शनिक हैं और जो प्रज्ञाचक्षु हैं, वे इन्द्रियके दास नहीं हैं—वे शासक होनेके उपयुक्त पात्र हैं। मनस्तत्त्वमें प्लेटोने जिस प्रकार ज्ञान (intellect), हृद्वृत्ति (feeling or heart) और इन्द्रियबोध (sense) इन तीन विभागोंका निर्देश किया है। अपने शासनतन्त्रमें भी इन तीन वृत्तियोंमेंसे एक एकके आधिक्यानुसार प्रजाके मध्य उसी प्रकार तीन श्रेणीविभाग किया है, यथा— शासकश्रेणी, सामरिक सम्प्रदाय और श्रमजीविसम्प्रदाय। इन तीन श्रेणियोंसे तीन धर्मवृत्तियों (Virtues)-ने विकाश लाभ किया है। शासकश्रेणी ज्ञान (Reason)-के योद्धसम्प्रदाय वीरत्व (Courage)-के और श्रमजीवी सम्प्रदाय मिताचार (Temperance)-के प्रतिभू हैं। अवशिष्ट धर्म न्याय (Justice)ने उन तीन धर्मोंको नियन्त्रित करके राज्यके मध्य शृङ्खला स्थापित की है।

प्लेटोने इन सब राजनैतिक नियमों द्वारा जातीय-मङ्गलके सेतुस्वरूप ज्ञानके विकाशका पथ प्रशस्त कर दिया है।

उपरिउक्त प्रस्तावसे यह देखा गया, कि प्लेटोके समयमें दर्शनशास्त्र सर्वाङ्गसम्पन्न हो उठा था। उन्होंने सक्रेटिसके दर्शनमतका अनुसरण कर उक्त भित्तिके ऊपर विज्ञानसम्मत उपायसे अपना दर्शन प्रतिष्ठित किया। सक्रेटिसने जिस सत्यका आभासमात्र प्रदान किया है, प्लेटोकी प्रतिभा उसे भास्वर करके भूल गई है।

प्लेटोकी मृत्युके बादसे ही उनकी दर्शन-चतुष्पाठी (older Academy)-की अवनतिका सूत्रपात हुआ। उनके शिष्योंने उत्तरोत्तर प्लेटोका मत त्याग कर पीथागोरसका मत विशेषतः तत्प्रवर्तित संख्यावाद आदि मत ग्रहण किया। उनमेंसे बहुतेरे ग्रहपूजक हो गये हैं। कुछ समय बाद प्लेटोका मत फिरसे जाननेकी इच्छा हुई। दार्शनिक क्रान्टर (Crantor)-ने

सबसे पहले प्लेटोके मतकी विवृति की। यथार्थमें अरिष्टटलको ही प्लेटोका शिष्य कह सकते हैं।

अरिष्टटल (Aristotle)

दार्शनिकेश्वरो अरिष्टटलने ३८४ खृ०पूर्वाब्दमें थ्रेस (Thrace) देशके ष्टाजिरा (Stagira) नगरमें जन्मग्रहण किया। उनके पिता निकोमेकस (Nichomachus) माकिदनके राजा आमिण्टस (Amyntas)-के चिकित्सक थे। कच्ची उमरमें पितृहीन हो कर अरिष्टटलने सत्तरह वर्षकी अवस्थामें एथेन्स जा प्लेटोका शिष्यत्व ग्रहण किया और वहां वे बीस वर्ष तक ठहरे। गुरुशिष्यका परस्पर कैसा सम्बन्ध था, उसके विषयमें विभिन्न मत है। कोई कहते हैं, कि अरिष्टटल प्लेटोके अत्यन्त प्रिय थे। किसी किसीने अरिष्टटलको अकृतज्ञतादोषसे दोषी बनाया है। जो कुछ हो, प्लेटोकी मृत्युके बाद अरिष्टटल आटर्न्यसके (Prince of Atarneus) राजा हारमियसकी सभामें गये।

वहां आ कर उन्होंने राजाकी बहन पीथियस (Pythias)का पाणिग्रहण किया। पीथियसकी मृत्युके बाद उन्होंने पुनः हारपिलस नामक एक रमणीको ब्याहा। इस रमणीके गर्भसे उनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम निकोमेकस (Nicomachus) रखा गया। ३४३ खृ० पूर्वाब्दमें माकिदन-अधिपति फिलिपने अरिष्टटलको अपने पुत्र आलेकसन्दरकी शिक्षकतामें नियुक्त किया। अरिष्टटल फिलिप और आलेकसन्दर दोनोंके ही भक्ति और सम्मानके पात्र बन गये। आलेकसन्दर जब पारस्यविजयको बाहर निकले, तब अरिष्टटलने एथेन्स आ कर लीसियम (Lyceum) नामक चतुष्पाठीमें अध्यापना कार्य आरम्भ कर दिया। तेरह वर्ष अध्यापनाके बाद एथेन्सवासियोंके असन्तुष्ट होने पर वे एथेन्स छोड़ कर चले गये। ३२२ खृ० पूर्वाब्दमें उन्होंने यूबियाके अन्तर्गत काल्सिस (Chalcis) नगरमें देहत्याग किया।

अरिष्टटल यद्यपि प्लेटोके शिष्य थे, तो भी दोनोंका दार्शनिक मत एक नहीं है और दोनोंकी दार्शनिक मतप्रचार-प्रणालीमें विशेष विभिन्नता देखी जाती है। अरिष्टटलके ग्रन्थोंमें प्लेटोकी तरह कल्पनामाधुर्य देखनेमें नहीं आता। प्लेटोने प्रज्ञाशक्तिबलसे और अरिष्टटलने बुद्धिबलसे अर्थात् चिन्ता और शक्ति द्वारा अपने दार्शनिक मतका प्रचार किया था। प्लेटोके दर्शनकी गति आध्यात्मिकता (Idealism)-की ओर है। उन्होंने आध्यात्मिकताको स्वतःसिद्ध करके उससे अन्यान्य समस्त पदार्थोंकी उत्पत्ति निर्देश (deduce)-की है। अरिष्टटलने वास्तवताकी ओर लोगोंकी दृष्टि आकर्षण की है, बाह्यजगत्‌को सत्य माना है, बाह्य जगत्‌का वैचित्र्य उनके निकट वास्तव पदार्थ है, जगत्‌का कोई भी पदार्थ उनकी उपेक्षाका विषय न था। बाह्यजगत्‌की व्याख्या अरिष्टटलके दर्शनका प्रधान आलोच्य विषय है। इस सर्वतः प्रसारिणी दृष्टिवशतः अरिष्टटल अनेक प्रकारके विज्ञान शास्त्रोंकी प्रवर्त्तना कर गए हैं। उन्होंने केवल तर्कशास्त्र (Logic) ही प्रणयन न किया, बल्कि प्रकृतिविज्ञान (Natural History), मनोविज्ञान (Empirical Psychology) और नीतितत्त्व (Theory of morals) उन्हींकी कीर्त्ति है।

मेटाफिजिक्स (Metaphysics) नामक ग्रन्थमें अरिष्टटलने अपने दर्शनके तत्त्वज्ञानमूलक अंशकी अवतारणा की है। मेटाफिजिक्स यह नाम अरिष्टटलके भाष्यकारोंने ही रखा है। अरिष्टटल इसे प्रथम वा मूल दर्शन बतला गये (First philosophy) है। विज्ञानशास्त्रके साथ दर्शनके पार्थक्यसम्बन्धमें अरिष्टटलने कहा है, कि विशेष विशेष विज्ञानका अधिकार प्रकृतिकी विशेष सीमा द्वारा निर्दिष्ट है; दर्शनका अधिकार इसी जड़ प्रकृतिके मूल पर है। पदार्थमात्रका ही अस्तित्व ले कर विज्ञानका अधिकार है। किन्तु केवल जड़ प्रकृति ले कर सृष्टि पर्यवसित नहीं हुई। यावतीय जागतिक अस्तित्वका मूलस्वरूप जड़के अतिरिक्त एक तात्त्विक पदार्थ (Essence)-का अस्तित्व है। यह तात्त्विक पदार्थ ईश्वर ही हैं। अरिष्टटलने इन्हीं ईश्वरको दर्शनका प्रतिपाद्य विषय कहा है। इसीसे अरिष्टटलने अपने दर्शनका ईश्वरतत्त्व (Theology) नाम रखा है।

अरिष्टटल अपने दर्शन (Metaphysics) और न्याय इन दो शास्त्रोंकी सीमा स्पष्टरूपसे निर्देश नहीं कर गये हैं। उन्होंने प्रत्येकका आलोच्य विषय एक दूसरेके मध्य सन्निविष्ट किया है। अरिष्टटलका न्याय मत (Logic) उनके आरगेनन (Organon) नामक ग्रन्थमें लिपिबद्ध है।

मेटाफिजिक्स ग्रन्थमें अरिष्टटल अपने आलोच्य विषयको निर्दिष्ट प्रणालीके अनुसार सन्निवेश न कर सके। मूल उद्देश्यके प्रति लक्ष्य रहने भी विषयोंमें क्रमभङ्ग और आपेक्षिक सम्बन्धका अभाव देखा जाता है। मेटाफिजिक्सके प्रथमांशमें आरिष्टटलने पूर्ववर्त्ती दर्शनमतोंकी समालोचना की है। पीछे उनके अपने मतानुसार दर्शनशास्त्रकी मूलप्रतिज्ञाओंका सन्निवेश किया गया है। तृतीय भागमें अन्योन्यविरोध-प्रणाली (The principle of contradiction) और संज्ञाप्रणालीके सम्बन्धमें आलोचना है। पदार्थ (otion of substance) क्या है ? पदार्थ मात्रका स्वरूप (Essence) कैसा है ? विरामावस्था (Potentiality) और विकाशावस्था (Actuality) क्या है ?

अरिष्टटल और प्लेटो दोनोंके दार्शनिक मतमें क्या पार्थक्य है, वह अरिष्टटल द्वारा प्लेटोके भाववाद (Ideal Theory)-की समालोचना देखनेसे ही जाना जा सकता है। अरिष्टटलका कहना है, कि प्लेटोने अपने भाववादमें इन्द्रियग्राह्य पदार्थोंके ऊपर अमरत्व और अनादित्व आरोप किया है अर्थात् प्लेटोने जिस भावमें आइडियाओंका अस्तित्व प्रतिपन्न किया है उससे वे इन्द्रियग्राह्य-पदार्थ (Things of sense immortalised and eternalised) समझे जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्लेटो-कथित आइडियाओंमें क्रियाशक्ति (Movement) नहीं है। जड़जगत्‌के साथ इनका सम्बन्ध किस प्रकार स्थापित हुआ है, प्लेटोने उसका कोई उपयुक्त कारण नहीं बतलाया। प्लेटोने कहा है, कि प्रत्येक जागतिक पदार्थ तदन्तर्गत 'आइडिया'-में अंशीभूत (Participate in the ides) है, किन्तु आरिष्टटलका कहना है कि प्लेटोकथित आइडिया जड़जगत्‌में नहीं है; सुतरां जड़पदार्थमात्र ही इनके अंशीभूत हैं, यह किस प्रकार मालूम हो सकता है। आइडिया सम्पूर्ण क्रियाहीन वस्तु हैं; इनमें कोई कार्यकरी क्षमता नहीं है। सुतरां जड़पदार्थके साथ इनका कोई संयोगसाधन करनेमें किसी एक तृतीय पदार्थकी आवश्यकता है, प्लेटो ऐसे किसी पदार्थका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। आरिष्टटलके मतसे आइडियाओंका अस्तित्व स्वीकार करनेका कोई प्रयोजन नहीं, क्योंकि आइडियाओंमें तदन्तर्गत जड़पदार्थकी अपेक्षा अतिरिक्त कोई गुण वा शक्ति नहीं है। ऐसे अनावश्यक पदार्थका अस्तित्व स्वीकार करना विडम्बनामात्र है। अरिष्टटलके मतानुसार ये सब आइडिया (Ideas or notions) कोई जड़ातिरिक्त पदार्थ नहीं (Transcendent) है, उनका अस्तित्व जड़पदार्थके अन्तर्निहित (Immanent) है। प्लेटोकी तरह अरिष्टटलने भी स्वीकार किया है, कि वस्तुके भावसे ही वस्तुका ज्ञान उत्पन्न होता है अर्थात् वस्तुके अन्तर्निहित आइडिया वा भाव दर्शकके मनमें उद्बुद्ध हो कर उस वस्तुमें ज्ञान उत्पन्न करता है (The true nature of a thing is known and shown only in the notion)। दार्शनिक सक्रेटिस पहले पहल यही मत प्रचार कर गये हैं। प्लेटोने सक्रेटिस-कथित इस नोशन (Notion)-से तथा इसके जड़ातिरिक्त स्वतन्त्र अस्तित्व (Objective reality)-को प्रतिपन्न करके अपना भाववाद (Ideal Theory) स्थापित किया।

प्लेटोके आइडिया और इन्द्रियग्राह्य पदार्थके परस्पर सम्बन्धकी समालोचना की जगह अरिष्टटलने पदार्थ (Matter) और मूर्त्ति (Form) यही सम्बन्ध निर्णय किया है। अरिष्टटलने मूर्त्ति (Form)-को प्लेटोके आइडियाके स्थान पर रखा है। मूर्त्ति पदार्थसे स्वतन्त्र नहीं है और मूर्त्ति ही वस्तुका स्वरूप निर्देश करती है। अरिष्टटलने चार प्रकारके कारण बतलाये हैं, फारमल वा वाह्यकारण (Formal cause), समवाय कारण (Material cause), जिस शक्तिके सहयोगसे समवाय साधित हुआ है वह निमित्त कारण (Efficient cause) और जिस उद्देश्यसे यह समवाय

साधित हुआ है, वह अन्तर्निहित उद्देश्य भी नैमित्तिक कारण (Final cause) है। इन चार कारणोंका विश्लेषण करनेसे मूर्त्ति (Form) और पदार्थ (Matter) ये दो विषय मूलमें देखनेमें आते हैं। समवायकारण और निमित्त-कारणद्वय (Efficient and final cause) मूर्त्ति (Form)के स्थानीय हैं और समवायकारण पदार्थ (Matter)-को निर्देश करता है। भास्कर हो खोदित मूर्त्तिको आकृति और उक्त मूर्त्तिका कारण है। सुतरां भास्कर निमित्त कारण, मूर्त्तिकी आकृति बाह्य और मूर्त्ति कारण, इन तीनोंको एक स्थानमें मान सकते हैं। भास्कर प्रस्तरखण्डका कारण नहीं है, सुतरां वह एक समवायकारण (Material cause) है।

अरिष्टटलके मतसे प्रत्येक जागतिक पदार्थ रूप (Form) और जड़ (Matter)के समावेशसे गठित हुआ है। रूपहीन पदार्थ (Matter without form) जगतमें कल्पनाकी सामग्री है, केवल अस्तित्व छोड़कर इसके कोई विशेषण वा उपाधि नहीं है (Without predication or determination)। जागतिक प्रत्यक पदार्थका मूलस्वरूप है ऐसे निरुपाधि पदार्थका अरिष्टटलने मूलपदार्थ (Materia prima) नाम रखा है। रूपहीन पदार्थ जिस प्रकार नहीं देखा जाता, पदार्थहीन रूप भी (Form without matter) उसी प्रकार है। शुद्धरूप (Pure form) नामका अर्थात् जो कोई विशेषरूप नहीं है, ऐसा पदार्थ जगत्‌में नहीं मिलता। विषय वा पदार्थ रूप (Form) को विशुद्धावस्था (in pure notion)में रहने नहीं देता।

अरिष्टटलने रूप और जड़के सम्बन्धसे जगत्‌की विकाशप्रणाली (development)-की व्याख्या की है। वह सम्बन्ध अविकाशावस्थाके साथ विकाशावस्थाका सम्बन्धमात्र (The relation of potentiality to actuality) है। विषयके रूप ग्रहणका नाम विकाश (becoming) है ; बीजके मध्य वृक्ष कारणावस्था (as potentiality) है। यह बीज जब वृक्षमें परिणत होता है, तब वह बीजकी विकाशावस्था (Actual existence) है। अन्तर्निहित फारम कारणावस्थाका उद्बोधन करके विकाशावस्थामें परिणत करता है। अरिष्टटलका फारम वा रूप कहनेसे इन्द्रियको विषयोभूत बाह्य आकृतिका बोध नहीं होता। अरिष्टटलके मतानुसार फारम कहनेसे विकाशशक्ति वा विकाशका कारण समझा जाता है। भास्करको कल्पनाप्रसूत देवमूर्त्ति पश्चात् खोदित देवमूर्त्तिका कारण है। इसी जगह प्लेटो और अरिष्टटलके मतका प्रकृत पार्थक्य देखनेमें आता है। प्लेटोके आइडियाकी तरह अरिष्टटलका फारम वा आइडिया कार्यकरी शक्तिशून्य नहीं है। फारमको सूक्ष्मावस्था ही (Potentiality) विकाशावस्थाको परिणति (Actuality) साधन करती है।

सूक्ष्म और विकाशावस्थाके सम्बन्धसे ही अरिष्टटलने ईश्वरका अस्तित्व सप्रमाणित किया है। तीन श्रेणीको युक्तिका अवलम्बन करके वे अपना मत प्रतिपन्न कर गये हैं।

जगत्तत्त्वसे अरिष्टटलने दिखलाया है, कि अव्यक्तावस्थासे विकाशावस्थाको साधन करनेके लिये एक विकाशशक्तिको आवश्यकता स्वीकार करनी पड़ेगी। क्योंकि विकाशसाधक शक्तिके नहीं रहनेसे सूक्ष्मावस्था किस प्रकार हो सकती यह मालूम नहीं होता। ईश्वर ही यह विकाशसाधक शक्ति हैं। जागतिक शक्तियोंका कार्यकारित्व स्वीकार करनेसे, इस शक्तिको नियामक एक शक्ति (Principle of movement) अवश्य वर्त्तमान है, ऐसा मानना होगा; कारण अनियन्त्रित शक्ति विशेष फलोत्पादक नहीं है। द्वितीय प्रस्ताव (Ontological argument)में अरिष्टटलने दिखाया है, कि यह शक्ति सम्पूर्ण विकाशमान (Pure actuousity) है, क्योंकि अविकाशावस्था (potentiality)में उनके ऊपर असम्पूर्णता आरोप की जाती है। जिसका विकाश अब भी नहीं हुआ है, उसका विकाश अनिश्चित हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। सुतरां जो वस्तु विनाशहीन है वह विकाशमान है और अमरत्व ईश्वरका स्वरूप है। अतएव नैतिक हिसाब (Moral argument)से भी

ईश्वरको सम्पूर्णता और विकाशावस्था स्वीकार करनी पड़ेगी; कारण जो वस्तु अविकाशावस्थामें है, उसके सम्बन्धमें दो विरुद्ध भाव ही आरोप किये जा सकते हैं। जो अविकाश साधु असाधु दोनों ही हो सकते हैं, किन्तु जो विकाशमान है, उनके सम्बन्धमें ऐसे परस्पर-विरोधी दो विशेषण बिलकुल प्रयुक्त नहीं हो सकते। अतएव विकाशावस्था अविकाशावस्थाकी अपेक्षा उत्कृष्ट हैं; ईश्वर सम्पूर्ण हैं, सुतरां विकाशमान हैं और इसलिये विरोधावस्थाके अतीत हैं। ईश्वर तीनों कारणों (the efficient, the notional, the final) के भेदसे शक्तिस्वरूप (the prime-mover) ज्ञानस्वरूप (purely intelligible) और मङ्गल-स्वरूप ज्ञान (primitive good) हैं।

पहले ही कहा जा चुका है, कि अरिष्टटलके मतसे यावतीय जागतिक व्यापारमें विकाशका एक धारा वाहिक क्रम है। जड़ (Matter)-की रूप (Form)-से रूपान्तरमें परिणति, यही विकाशप्रणालीका मूल है। मनुष्य ही इस विकाशकी चरम परिणति हैं। अरिष्टटलके मतानुसार पुरुष (Man male)-की परिणति द्वारा प्राकृतिक परिणति सम्पूर्णता प्राप्त होती है; स्त्रीजाति असम्पूर्ण है। जड़ प्रकृतिकी समग्र चेष्टा इस पुरुष-विकाशकी ओर धावित होती है। जो कोई वस्तु इसके भीतर है, उसका जीवन व्यर्थ समझना चाहिये।

अनन्तर अरिष्टटलने गति (Motion), देश वा स्थान (Space) और काल (Time) इन तीन वस्तुओं-की प्रकृतिके सम्बन्धमें आलोचना की है। गति (Motion) द्वारा विकाश-व्यापार (Transition from potentiality to actuality) साधित हुआ करता है। गति शक्तिका प्रसार भी स्थानसापेक्ष है, इसीसे स्थान वा देश-को अरिष्टटलने गतिका सम्भाव्य पदार्थ (Possibility of motion) कहा है। काल गतिका परिमापक (Measure of motion) है। ये तीनों ही असीम हैं।

अरिष्टटलने अपने जगतत्त्व (Cosmology) सम्बन्धीय ग्रन्थमें कहा है, कि गतिशक्तिकी प्रकृति और प्रक्रियानुसार जगन्निर्माण कार्य साधित हुआ है। उनके मतानुसार अव्याहत (Uninterrupted), स्वसम्पूर्ण (Self-complete) और वृत्ताकार (Circular) गति ही सबसे श्रेष्ठ है। जगत्‌का जो गोलक (Sphere) सर्वापेक्षा इस गतिके सापेक्ष है, वह सर्वापेक्षा सम्पूर्ण है और जो गोलक इस गतिके अनपेक्ष है, वह गोलक सर्वापेक्षा असम्पूर्ण है। स्वर्ग जगत्‌के प्रान्तदेश (Periphery)-में अवस्थित है, इस कारण यह सर्वापेक्षा सम्पूर्ण है और पृथिवी केन्द्र पर अवस्थित है; इस कारण गतिका प्रभाव अत्यन्त अल्प होनेसे यह सर्वापेक्षा असम्पूर्ण है। नक्षत्रगण स्वर्गके निकट रहनेके कारण अपेक्षाकृत सम्पूर्ण है और ग्रहगण पृथिवीके निकट रहनेके कारण नक्षत्रकी अपेक्षा असम्पूर्ण हैं। स्वर्गके सभी पदार्थ सम्पूर्ण हैं, वहां जड़पदार्थ नहीं है। व्योम (Ether) स्वर्गका मूल पदार्थ है और वहांके सभी पदार्थ अमर हैं। स्वर्ग जगत्‌की नियामक शक्ति (Prime mover)-के साक्षात् प्रभावाधीन है। पृथिवीके इस शक्तिसे दूर रहने कारण यह स्थान असम्पूर्णताका आधार है। यहांके पदार्थ स्थूल जड़ और यावतीय द्रव्य ही उत्पत्ति-विनाशशील है।

अरिष्टटलने प्राकृतिक विकाशके स्तरभेद बतलाते समय कहा है कि अचेतन पदार्थ इस विकाशप्रणालीसे सर्वापेक्षा निम्नस्तर है। अचेतन पदार्थसमूह विभिन्न पदार्थोंके मिश्रणसे उत्पन्न हुआ है। यह मिश्रणमूलक उत्पत्तिविकाशके निम्नस्तरकी सूचना करता है। चेतन पदार्थ इसके ऊर्ध्वस्तरमें अवस्थित है। यहां पर विकाश-प्रणाली बाह्य विषयके ऊपर निर्भर नहीं करती। यहां गतिशक्ति जीवनी और संरक्षणीशक्तिस्वरूप (Animating and conservative principle) कार्य करती है। उद्भिद्‌जगत्‌में आत्मा केवल संरक्षण और पुष्टिसाधनके शक्तिस्वरूपमें वर्त्तमान है। प्राणीजगतके निम्नस्तरमें इन्द्रियबोध (Sensation)-का उदय हुआ है। इस विकाशकी मनुष्यमें परिणति हुई है। मनुष्यमें इन सब शक्तियों अर्थात् जीवनी, संरक्षणी और बोधशक्ति (Reason)-के अतिरिक्त एक चौथी शक्तिका विकाश पाया जाता है जिसका नाम है प्रज्ञा-शक्ति (Reason)। यह शक्ति स्वप्रकाश है, जड़से अव-

च्छिन्न है। सुतरां देहके साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। देहान्त होने पर प्रज्ञा विनष्ट नहीं होती। ईश्वरके साथ प्रकृतिका जैसा सम्बन्ध है, आत्मा (Soul)-के साथ प्रज्ञा (Reason)का भी वैसा ही सम्बन्ध है।

अरिष्टटलका दर्शन वास्तव-वादमूलक (Realism) भित्तिके ऊपर प्रतिष्ठित होनेके कारण उन्होंने प्लेटोकी तरह नीतितत्त्व और जड़तत्त्वका सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं किया। मङ्गलका स्वरूप कैसा है, उसे निर्देश करनेमें प्लेटोने मङ्गलके आध्यात्मिक स्वरूप आइडिया (The idea of the good)-की अवतारणा की है। अरिष्टटल उक्त मतका अनुमोदन नहीं करते। हम लोगोंका प्रकृत मङ्गल क्या है, जीवनसे इस तत्त्वका वे अविष्कार कर गये हैं। अरिष्टटलने विज्ञानके हिसाबसे नीतितत्त्वका प्रचार किया है; मानवके पक्षमें यथार्थमें हितजनक क्या (Morality in the life of man) है केवल वही विचार किया है; जगत्में मङ्गलका स्वरूप क्या (not the good in relation to the universe) है, इस तथ्यकी मीमांसा नहीं की। नैतिक जीवन, उनके मतसे अति प्राकृतिक (Supernatural) जीवन नहीं है, यह जीवनका ही विकाशमात्र है।

सक्रेटिसके मतसे ज्ञान ही धर्मवृत्तिका स्वरूप (Virtue is knowledge) है। इसकी समालोचनामें अरिष्टटलने कहा है, कि ज्ञानकी प्रधानता स्थापन करनेमें सक्रेटिस सहजात वृत्ति (Natural instincts) कह कर जो कुछ जीवनोंकी नियामकवृत्ति है, उस ओर लक्ष्य नहीं करते। इन्हीं प्रवृत्तियोंके वशसे हम लोग कभी कभी ज्ञानके विपरीत कार्य किया करते हैं। ज्ञान द्वारा अनियन्त्रित हो और स्वभावको अतिक्रम करके ये वृत्तियां जो कार्य करती हैं, वही नैतिक हिसाबसे अमङ्गलजनक है। इन वृत्तियोंके रहनेसे ज्ञानके विपरीत कार्य करना सक्रेटिसने जैसा असम्भव समझा है, वैसा असम्भव नहीं है। मनुष्यकी प्रवृत्तियां ही स्वभावतः हितसाधक हैं, इनका यथायथ प्रयोग होनेसे ही मङ्गलकी उत्पत्ति होती है। केवल ज्ञानसे मङ्गलकी उत्पत्ति नहीं है। सुतरां केवल ज्ञानचर्चामें धर्म नहीं है, प्रवृत्तिके अनुशीलनमें धर्म है। ज्ञान प्रवृत्तियोंका नियामकमात्र है। सक्रेटिसने तत्त्वदृष्टिको ही (Rational insight) धर्मका नियन्तास्वरूप माना है। अरिष्टटलके मतसे तत्त्वदृष्टि नैतिक जीवन का फलस्वरूप है। जीवनका श्रेष्ठ मङ्गल क्या है (What is the summum bonum of life), इस तत्त्वके आलोचनाकालमें उन्होंने कहा है कि सुख ही (Happiness) जीवनका श्रेष्ठ मङ्गल है। सुखकी प्रकृति एक तरहकी है जिसका निर्देश करते समय उन्होंने कहा है, कि विभिन्न प्रकृतिके अनुसार सुख भी विभिन्न है। मनुष्यके लिए इन्द्रियजात सुख प्रकृत सुख नहीं है। कारण, पशु भी इस सुखके अधिकारी हैं। प्रज्ञाजात सुख मानवका प्रकृत सुख है, प्रज्ञानियन्त्रित कार्य (Rational)से जो सुखोत्पत्ति होती है अर्थात् जो सुख इस कर्मके फलस्वरूप है (Result and not the end in view) वही प्रकृत सुख है।

धर्मवृत्ति वा सद्गुण (Notion of virtue) क्या है, इसके सम्बन्धमें अरिष्टटलने कहा है, कि प्रज्ञाजातकर्मके पुनः पुनः अनुशीलनसे जिस गुण वा प्रकृतिका उदय होता है, वही धर्मवृत्ति (Virtue) है; प्रत्येक कार्य यथायथ फलाकाङ्क्षा करके साधित हुआ करता है; किन्तु कार्यका फल यदि यथायथ न हो कर मात्रामें थोड़ा (Defect) अथवा बहुत (Excess) हो, तो कार्य असम्पूर्ण हुआ, ऐसा कहना होगा। फलकी अल्पता और अधिकता इन दोनोंका मध्यपथ अनुसरण (Observance of a due mean) धर्मवृत्तिकी प्रकृतिका स्वरूप है। यह मध्यराशि (Mean) सबोंके पक्षमें समान नहीं है। सुतरां धर्म सबोंके पक्षमें एक प्रकारका नहीं है। पुरुषका धर्म एक प्रकार, स्त्रीका अन्य प्रकारका और बालकका धर्म दोनोंके धर्मसे स्वतन्त्र है।

जीवनके भिन्न भिन्न अवस्थानुसार धर्मवृत्तियां भी भिन्न भिन्न हैं। अवस्थाके वैचित्र्यके हेतु समस्त धर्मवृत्तियोंका निर्णय करना कठिन है, इसीसे जीवनके स्थायी भावोंसे प्रधान प्रधान धर्मोंका अरिष्टटलने निर्देश किया है। जैसे सुख और दुःख दोनों ही पदार्थ संसारमें देखनेमें आते हैं। इन दोनोंको नैतिक

मध्यावस्था (Moral mean) निर्देश करनेमें यह कहना पड़ेगा, कि दुःखसे भय करना भी अनुचित है और बिलकुल भय नहीं भी करना अनुचित है; इन दोनोंका मध्यपथ दृढ़ता (Fortitude) है। सुखके प्रति औदासीन्य भी वाञ्छनीय नहीं है और सुखके प्रति अत्यासक्ति भी उसी प्रकार है। इन दोनोंका मध्यपथ मिताचार (Temperance) है। ऐसे उपायका अवलम्बन करके अरिष्टटलने धर्मवृत्तियोंका निर्देश और उनका श्रेणीविभाग किया है। उन्होंने वैज्ञानिक हिसाबसे इनकी आलोचना नहीं की, केवल साधारण भावसे आलोचना की है।

धर्म अथवा सुख अरिष्टटलके मतसे सामाजिक अथवा राजनैतिक जीवन भिन्न व्यक्तिगत जीवनमें असम्भव है। मानवका धर्माधर्म अन्यान्य मानवोंके साथ सम्बन्धसे उत्पन्न हुआ करता है, मानवका सुख भी उसी प्रकार अन्यान्य मानवसापेक्ष है। समाज भिन्न मनुष्यके मनुष्यत्व कहां? वह अन्यान्य प्राणियोंकी तरह एक प्राणीमात्र है। मनुष्य जन्मसे ही एक सामाजिक जीव (Corporate being) है; इसीसे ष्टेट वा राज्यतन्त्र व्यक्ति वा वंश (Family)-की अपेक्षा महान् है। व्यक्तिगत जीवन इस राजनैतिक जीवनका समान्य अंशमात्र है। प्लेटोकी तरह अरिष्टटलके मतमें मानवजीवनकी नैतिक उन्नति और सम्पूर्णताका विधान करना राज्यतन्त्रका अवश्य कर्त्तव्य है। लेकिन इसके लिये वे व्यक्तिगत और वंशगत स्वाधीनताको बिलकुल विलुप्त कर डालनेके पक्षपाती नहीं हैं। राज्यतन्त्र उनके मतसे एक सम्प्रदाय नहीं (Unity of being) है—सम्प्रदाय-समूहके मेलसे उत्पन्न है। ज्ञानी व्यक्तियोंके द्वारा ही शासनतन्त्र परिचालित होना उचित है। अरिष्टटल राजतन्त्र (Monarchy) और अभिजाततन्त्र (Aristocracy) शासनप्रणालीके पक्षपाती थे। उनका कहना है, कि जो राज्य धर्मपरिचालित है, चाहे एक द्वारा हो चाहे अधिक द्वारा, वही राज्य उत्तम है। दार्शनिक हिसाबसे शासनतन्त्र उत्तम है, उसका निर्णय करनेकी उन्होंने कोशिश नहीं की। उन्होंने देश-काल-पात्रानुसार शासनतन्त्रका नियोग करने कहा है।

अरिष्टटलकी मृत्युके बाद उनके सम्प्रदायभुक्त पण्डितगण दर्शनकी विशेष उन्नति न कर सके। अरिष्टटलके स्थापित दर्शनसम्प्रदायका नाम पेरिपेटिटिक सम्प्रदाय (Peripatetic school) है। दर्शनकी अपेक्षा जड़विज्ञानका प्रभाव इस सम्प्रदायमें विशेषरूपसे लक्षित होता है। पण्डित ष्ट्राटो (Strato) अरिष्टटलोक्त द्वैतवादका परिहार कर प्रकृति (Nature)को ही सभी पदार्थोंका कारण और नियन्ता कह गये हैं।

अरिष्टटलके बाद जिन सब दार्शनिक सम्प्रदायोंकी सृष्टि हुई, उन सब सम्प्रदायोंमें प्लेटो और अरिष्टटलके दर्शनकी तरह सार्वभौम भाव नहीं देखा जाता। सोफिष्टोंकी तरह उनके दर्शनमें भी आत्मा (Self or subject) ही प्रधान लक्ष्य है। किन्तु सोफिष्टोंकी तरह इस आत्माका प्रकार सङ्कीर्ण व्यक्तित्वमें पर्यवसित नहीं होता। इन सब दर्शन-सम्प्रदायके मतसे सभी जागतिक पदार्थ आत्मसम्प्रसारणके सहायभूत हैं। जो पदार्थ आत्माके पक्षमें आवश्यक नहीं है, उसका अस्तित्व निष्फल है। इस प्रकार दार्शनिक मत सङ्कीर्ण और एकदेशदर्शी होने पर भी पहले जिस प्रकार दर्शनमतवाद और मनुष्यका धर्म तथा सामाजिक जीवन स्वतन्त्र था, अरिष्टटलके परवर्त्ती दर्शन सम्प्रदायोंमें दर्शन उसी प्रकार केवल ज्ञानप्रदायक शास्त्रविशेष न हो कर जीवनके साथ एकीभूत हुआ था।

अरिष्टटलके परवर्त्ती चार दार्शनिक सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं,—ष्टोइक दर्शन, एपिक्युरीयदर्शन, स्केप्टिकदर्शन और न्यु प्लेटोनिक दर्शन। यथाक्रम इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

ष्टोइक (Stoic) दर्शन।

दार्शनिक जीनो (Zeno) इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक थे। उन्होंने ३४० खृ० पूर्वाब्दमें साइप्रस द्वीपके अन्तर्गत सिटियम (Citium) नगरमें जन्मग्रहण किया था। वे पहले अनेक दर्शन सम्प्रदायभुक्त हुए थे। सिनिक (ynic), मेगरिक (Megaric) और ऐकेडेमिक (Academic) इन कई एक सम्प्रदायोंका

प्रिंपात्व ग्रहण करनेके बाद स्वाधीनभावमें वे अपने मतका प्रचार करने लगे। एथेन्सके ष्टोग्रा (Stoa) नामक एक घरमें उनकी दर्शनचतुष्पाठी थी, इसी स्थानके नामानुसार उनके दर्शन मतका ष्टोइकदर्शन नाम पड़ा है। यहां ५८ वर्ष अध्यापना करके अति वृद्धावस्थामें उन्होंने देहत्याग किया। उनका पवित्र जीवन ग्रीक लोगोंके दृष्टान्तका स्थल था।

पहले ही कहा जा चुका है, कि इन सब सम्प्रदायोंके मतसे दर्शनशास्त्र जीवनकी उन्नतिका उपायस्वरूप था। जीवनके पक्षमें जो प्रयोजनीय नहीं है, ऐसे ज्ञान वा विद्याकी आवश्यकता इस श्रेणीके पण्डितगण स्वीकार नहीं करते। तर्कशास्त्र (Logic) ष्टोइकोंके मतसे सत्यज्ञान लाभ करनेका साधनस्वरूप है, प्रकृतितत्त्व (Physics) जगत्प्रकृतिका तथ्य निर्णयकारी और नीतितत्त्व (Ethics)-का लक्ष्य है,—इन सब तत्त्वोंका जीवनमें प्रयोग करके जीवनका उद्देश्य साधन करना। ष्टोइकदर्शनमें न्याय और जड़तत्त्व (Logic and physics)-को नीतितत्त्व (Ethics)-का पक्षस्वरूप (subsidiary) बतलाया गया है।

न्यायशास्त्रमें ष्टोइक पण्डितोंने सत्य और मिथ्याका स्वरूप निर्णय करनेकी चेष्टा की है। इन्द्रियज ज्ञानको ही उन्होंने सत्यज्ञान माना है। विश्वास (Power of conviction) ही सत्यका द्योतक है। जो सत्य है उस पर बिना विश्वास किये हम लोग नहीं रह सकते।

जड़तत्त्व सम्बन्धमें भी ये सब जड़वादी (Materialist) हैं। जड़ भिन्न द्वितीय पदार्थका अस्तित्व ये लोग स्वीकार नहीं करते। सभी वस्तु शरीरधारी हैं, यहां तक कि आत्मा भी (Soul) एक प्रकारकी जड़ है, लेकिन यह सूक्ष्म और स्थूल जड़से स्वतन्त्र पदार्थ है। ईश्वर जगत्से स्वतन्त्र नहीं हैं, एकके सिवा दूसरेका अस्तित्व सम्भवपर नहीं है। इस जगत्में ईश्वर सभी विषयोंके नियामकस्वरूप हैं। जागतिक नियमपरम्परासे विधाताका स्वरूप है एवं वे सुख और दुःखके मूल कारण अनन्त ज्ञानमयरूपमें विराजमान हैं। हेराक्लाइटसकी तरह यह सम्प्रदाय भी कभी कभी ईश्वरको अग्नि वा तापस्वरूप, कभी जागतिक आध्यात्मिक प्राणस्वरूप (Spiritual breath) बतला गया है। जिस प्रकार हेराक्लाइटसके मतमें अग्निसे सभी पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है, फिर वे सब पदार्थ अग्निमें ही लय हो जाते हैं, उसी प्रकार ईश्वरसे ही सभी पदार्थोंकी उत्पत्ति है और पीछे ईश्वरमें ही वे लय हो जाते हैं। ष्टोइक पण्डितोंने युगोत्पत्ति और प्रलय (Cycles) स्वीकार किया है।

ष्टोइक सम्प्रदायका नीतितत्त्व भी (Ethics) इस जड़तत्त्वकी भित्तिके ऊपर स्थापित है। जगत्की शृङ्खला और जगत्के अन्तर्निहित ज्ञानका अनुवर्त्तन करना ही ष्टोइकोंके मतसे जीवनका चरम लक्ष्य है। प्रकृतिका अनुवर्त्तन करो (Follow nature) अर्थात् प्रकृतिदत्त स्वाभाविक वृत्तियोंके नियोगानुसार चलो, यही ष्टोइक नीतिका मूलसूत्र है। प्रज्ञाशक्ति (Reason) तुम्हारी प्रकृतिदत्त शक्ति है, सुतरां प्रज्ञाके नियमानुसार चलो (Follow reason); ऐसा होनेसे ही तुम प्रकृतिके अनुसार चल सकोगे। ष्टोइकोंके मतसे धर्मवृत्ति (Virtue) और सुखमें (Happiness) कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। परन्तु सुख नैतिक जीवनका हानिकारक है। प्रकृतिके मध्य सुखका कोई स्थान नहीं है, सुख प्रकृतिका लक्ष्य नहीं है, इत्यादि। उपरिउक्त नैतिक सूत्रोंसे ही ष्टोइकोंके नैतिक मतकी कठोरताका विलक्षण परिचय पाया जाता है। व्यक्तिगत सुख दुःख नैतिक जीवनका लक्ष्य नहीं है, जो प्रकृतगत नहीं है, वह नीतिके विषयीभूत नहीं हो सकता। सुतरां सुखप्राप्तिके दिन दुःखविमोचनके आशय पर जो सब कार्य किये जाते हैं उनको ष्टोइकोंके मतसे नैतिक कार्यमें गिनती नहीं हो सकती। केवल एकमात्र धर्म (Virtue)से सुख (Right) सम्भव है। सुख बाह्य विषयके ऊपर निर्भर नहीं करता। प्रज्ञानुवर्त्ती हो कर चलना ही धर्मका स्वरूप है, प्रज्ञा नियोगके प्रतिकूल चलनेसे पाप (Vice) होता है—प्रज्ञासे जरा भी विपरीत चलनेसे वह पाप गिना जायगा। सभी कर्म पाप और पुण्यके मध्यवर्त्ती हैं। पुण्यकर्म एक भावमें अच्छा (Right) और सभी पापकर्म भी एक ही

भावमें खराब है। मात्राका किसी प्रकार तारतम्य नहीं है, इन्हें ष्टोइकोंका कूटसूत्र (Stoical paradox) कहते हैं। ज्ञानबलसे वासनाका दमन करना ही यथार्थ धर्म है। मनुष्यका कर्त्तव्य दो प्रकारका है, एक अपने प्रति और दूसरा दूसरेके प्रति। आत्मरक्षण धर्म प्रवृत्तिका अनुवर्त्तन इत्यादि अपने प्रति तथ यथायथ भावमें न्याय और दयादाक्षिण्यके साथ सामाजिक जीवन निर्वाह करना दूसरेके प्रति कर्त्तव्य है। राजा वा शासनतन्त्र मनुष्यके सामाजिक जीवनका विकाश-मात्र है।

ष्टोइकोंके मतसे ज्ञानी व्यक्ति सृष्टिका सारभूत है। ज्ञानीसे कुछ भी छिपा नहीं है। वे प्रकृतिके प्रत्येक तथ्यसे अवगत हैं। ज्ञानी व्यक्ति नैतिक हिसाबसे सम्पूर्ण हैं। वे भय, द्वेष, अमर्ष आदि रिपुओंके वशीभूत नहीं हैं—किसी भी विषयमें बद्ध नहीं है, इस कारण वे सम्पूर्ण स्वाधीन हैं। उन्होंने यह दिखानेकी चेष्टा की है, कि प्रज्ञा और धर्म ज्ञानियोंमें प्रतिष्ठित है इस कारण वे ही प्रकृत सुखी हैं। जीवनकी नैतिक पराकाष्ठाका प्रचार करना ष्टोइक-दर्शनका उद्देश्य है और ग्रीकजातिके अधःपतनके समय भी उन्होंने इस नैतिक आदर्शको बिलकुल अक्षुण्ण रखा है।

एपिक्यूरीय दर्शन (Epicurian Philosophy)

दार्शनिक एपिक्युरस इस दर्शन-सम्प्रदायके प्रवर्त्तक थे। उन्होंने ३४२ खृ० पूर्वाब्दमें स्वामस् नामक द्वीपमें जन्म लिया था। उनके पिता एथेन्स छोड़ कर उक्त द्वीपमें आ कर रहने लगे थे। ३६ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने एथेन्स आ कर अपने दार्शनिक मतका प्रचार करना आरम्भ किया। जीवनके शेषकाल तक वे इसी कार्यमें लगे रहे। २७० खृ० पूर्वाब्दमें उनका देहान्त हुआ।

एपिक्यूरसने दर्शनशास्त्रकी जो संज्ञा प्रदान की है, उसीसे उनका दार्शनिक मत उपलब्ध होता है। उनके मतसे तर्क और ज्ञानका आश्रय करके सुखान्वेषण ही दर्शनशास्त्रका उद्देश्य है। सुतरां ष्टोइकोंकी तरह इनके मतमें भी दर्शनशास्त्र केवल ज्ञानप्रदायक शास्त्र ही नहीं है, जीवनका नित्य करणीय विषय भी है। इनके मतमें सुख ही जीवनका चरम लक्ष्य है और उसे प्राप्त करनेके लिये मनुष्यको प्राणपनसे चेष्टा करना उचित है। सुतरां दर्शनशास्त्रका अङ्गीभूत न्याय वा तर्कशास्त्र (Logic) और जड़तत्त्व नीतितत्त्वका साधनमात्र है। एपिक्यूरीय दर्शनका मत अनेकांशमें ष्टोइक-दर्शनका विरोधी है।

पहले कहा जा चुका है, कि एपिक्यूरस सुखको ही (happiness) जीवनका परम मङ्गलस्वरूप बतला गये हैं। अरिष्टटलकी तरह उन्होंने क्षणमात्रस्थायी इन्द्रियगत सुखको प्रकृत सुख नहीं माना है। दुःखमय परिणामहेतु इन्द्रियसुखको प्रकृत सुख नहीं कह सकते।

स्थायि-पराशान्ति (Permanent tranquil satisfaction) प्रकृत सुख है। इस सुखकी क्षयवृद्धि नहीं है, यह दुःख-संभिन्न है; क्योंकि यह बाह्यविषयके ऊपर निर्भर नहीं करता। प्रकृत सुख प्राप्त करनेमें धारणाका आश्रय लेना होगा, इन्द्रियका दास हो कर रहनेसे काम नहीं चलेगा। ज्ञानी अनित्य विषयसुखका परित्याग कर इस नित्य सुखलाभमें व्रती रहते हैं। यह पराशान्ति अध्यात्मपदार्थके जैसा बाह्यविषयकी उन्नति अवनति अर्थात् परिवर्त्तनके सापेक्ष नहीं है। ज्ञानी व्यक्तिको शक्ति दैहिक यन्त्रणाके मध्य भी अव्याहत रहती है। धर्म सुखका सेतुस्वरूप है; बिना धर्मके प्रकृतसुख प्राप्त नहीं हो सकता। सुखके बाह्य विषयसापेक्ष नहीं होने पर भी इन्द्रियजात सुख बिलकुल उपेक्षाका विषय नहीं है। जो आमोद निर्दोष है, उसका उपभोग करनेमें कोई पाप नहीं। मनुष्यकी स्वाभाविक चेष्टा दुःख-निवृत्तिकी ओर दौड़ गई है। दुःखकी निवृत्ति ही सुख है, इस दुःखनिवृत्तिका नाम शान्ति है; शान्तिको ही प्रकृत सुख कहते हैं। निवृत्तिमूलक सुख (Negative pleasure) इसी शान्तिका नामान्तर है, प्रवृत्तिमूलक सुख (Positive pleasure) दुःखासंभिन्न नहीं है।

स्केप्टिक दार्शनिक सम्प्रदाय।

पूर्वोक्त दार्शनिक दोनों मतोंकी तरह व्यक्तिगत जीवनका परम पुरुषार्थ निर्णय करना इस सम्प्रदायका

भी उद्देश्य है। एलिस नामक स्थानके अधिवासी दार्शनिक पाइरो (Pyrroh of Elis) इस मतके प्रतिष्ठाता थे। इस सम्प्रदायके मतमें भी सुख ही जीवनका लक्ष्य है। सुखसे जीवन व्यतीत करनेमें जागतिक समस्त पदार्थोंके प्रकृत तथ्यसे जानकार होना आवश्यक है। किन्तु इस सम्प्रदायके मतसे मनुष्यका ज्ञान सीमाबद्ध है। बाहर वस्तुओंका प्रकृतस्वरूप क्या है, हम लोग उसे नहीं जान सकते। वे जिस भावमें हम लोगोंके निकट प्रतिभात होती हैं (as they appear to us) केवल वही हम लोग जानते हैं। किसी पदार्थ सम्बन्धमें निश्चित रूपसे कुछ भी जाना नहीं जाता, इसीसे एक ही वस्तुके सम्बन्धमें दो परस्पर विरोधी मतोंकी उत्पत्ति सम्भव है। ज्ञानकी ऐसी अनिश्चयताके कारण किसी प्रकारका मत प्रकाशित नहीं करना ही प्रकृत ज्ञानी व्यक्तियोंका कर्त्तव्य है और यही स्कोपटिकोंके मतसे सुखका साधन है। क्योंकि किसी प्रकारका मत प्रकाशित नहीं करनेसे ही चिन्ताकी स्वाधीनता अक्षुण्ण रहती है; चिन्ताकी स्वाधीनता ही आत्माकी शान्ति है। इन्द्रियज्ञानको पृथकताके दश कारण हैं, यह इसी श्रेणीके दार्शनिकोंने निर्देश किया है। वे सब कारण स्कोपटिक-ट्रोप (Sceptical tropes नामसे प्रसिद्ध हैं। विस्तार हो जानेके भयसे उनका सविस्तार उल्लेख नहीं किया गया। उनका संक्षेप मर्म यह, कि इन्द्रियज्ञानकी विभिन्नता, व्यक्तिविशेषकी इन्द्रियशक्तिकी विभिन्नता, पदार्थसमूहका स्थानविपर्यय, दर्शकको तत्कालिक मानसिक अवस्था, वर्ण, ताप आदिके योग तथा वस्तुदर्शनकी विभिन्नता आदि कारणोंसे एक वस्तुके सम्बन्धमें विभिन्न धारणाकी उत्पत्ति होती है।

प्राचीन कालमें जिन सब स्कोपटिक पण्डितोंने जन्म ग्रहण किया, उनमें मध्य एनिसिडिमस (Ænesidemus), आग्रिपा (Agrippa), सेक्सटस एम्पिरिकस (Sextus Empiricus) आदि विख्यात हैं।

न्युप्लेटानिक दर्शन (Neoplatonism)

द्वैतवादीको आपत्तिको दूर कर प्लेटो और अरिष्टटलको तरह उक्त द्वैतवादके मूलतत्त्व प्रतिपादन दर्शन (Absolute philosophy)-का प्रचार करना ही इस सम्प्रदायका उद्देश्य है। इजिप्टके अन्तर्गत लाइकोपोलिस (Lycopolis)-निवासी दार्शनिक प्लोटिनस (Plotinus) इस मतको पूर्वसूचना कर गये हैं।

प्लोटिनसने (२०५-२७० ई०को) अलेकसन्द्रिया (Alexandria) नगरमें दार्शनिक आमनियस सेकस (Ammonius Saccas)के निकट दर्शनशास्त्र अध्ययन किया। ४० वर्षको उमरमें वे रोमनगर आ कर अध्यापनाकार्यमें नियुक्त हुए। वे दर्शनके सम्बन्धमें कितने ही ग्रन्थ रच गये हैं; उनको मृत्युके बाद उनके शिष्य प्रसिद्ध दार्शनिक परफाइरी (Porphyry)-ने उक्त ग्रन्थ प्रकाशित किये। ४थी शताब्दीमें न्युप्लेटानिकदर्शन रोमसे एथेन्समें प्रचारित हुआ। थिओसोफी (Theosophy), इन्द्रजाल और भोजविद्या (Theurgy) इन सब विषयोंका प्रभाव न्युप्लेटानिक दर्शनमें विशेषरूपसे लक्षित होता है।

स्कोपटिक दर्शनमें ज्ञान और सब विषयोंके प्रति औदासीन्य ही शान्तिका निदान विवेचित हुआ था। किन्तु न्युप्लेटानिक पण्डितोंके मतसे यह शान्तिका प्रकृत स्वभाव नहीं है, ऐसे औदासीन्यसे शान्तिलाभ नहीं किया जा सकता, अशान्ति प्रच्छन्न भावमें रह जाती है। संशयच्छेद नहीं होनेसे प्रकृति शान्तिलाभ नहीं किया जा सकता। किसी ज्ञान द्वारा यह संशयच्छेद सम्भव पर नहीं है। न्युप्लेटानिक पण्डितोंके मतसे आत्माको आनन्दमय अवस्था (ecstasy or rapture) द्वारा संशयच्छेद होनेसे यह शान्तिलाभ किया जाता है। इस अवस्थामें ज्ञाता और ज्ञेय, द्रष्टा और दृश्य पदार्थोंमें पृथकता नहीं रहती। सभी द्वैतभावरहित हो जाते हैं, यही प्रकृत ज्ञानकी अवस्था है। प्लोटिनसके मतसे प्रमाण द्वारा वस्तुका प्रकृत ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि उनके मतमें प्रकृत ज्ञानसे द्वैतभाव नहीं रह सकता। विशुद्ध ज्ञानसे प्रज्ञाशक्ति (Reason)-का सभी जगह आत्मप्रसार देखा जाता है। एक प्रज्ञा भिन्न अन्यान्य पदार्थोंका अस्तित्व नहीं रहता। ईश्वरमें समाधि (absorption into divinity) इसी अवस्थाका

नामान्तर है। इस समाधि अवस्थाको उक्त दार्शनिकगण आनन्दमय अवस्था बतला गये हैं। इस अवस्थाकी प्राप्ति ही जीवका चरम लक्ष्य है और इसीको प्रकृत शान्ति कहते हैं। सिर्फ वैराग्य (Sceptical apathy)-से शान्ति प्राप्त नहीं होती।

न्युप्लेटानिक पण्डितोंने अपने जगत्तत्त्वमें जगत्‌का विश्वप्राण (World-soul) और जगत्‌की विश्वप्रज्ञा (World-reason) इन दो शक्तियोंके अतिरिक्त एक तीसरी शक्तिका भी अस्तित्व स्वीकार किया है। यही शक्ति अपर दो शक्तियोंकी जड़ है। प्रज्ञाशक्ति द्वैतभावके ऊपर प्रतिष्ठित है, इसमें ज्ञाता और ज्ञेय ये दोनों ही भाव वर्त्तमान रहते हैं। सुतरां जगत्‌में बहुत्व (Manifold)से प्रज्ञाशक्ति युक्त नहीं है। प्लोटिनस इस मूल शक्तिका यथार्थ स्वरूप स्पष्टरूपसे नहीं बतला गये हैं। उनका मत संक्षेपतः इस प्रकार है:—यह मूलशक्ति ज्ञान (Thought) और इच्छास्वरूप (will) नहीं है। क्योंकि ईश्वरमें ज्ञानका आरोप करनेसे उनको भी ज्ञेय पदार्थ है, ऐसा स्वीकार करना पड़ता है। उनमें इच्छाशक्ति आरोप करनेसे भी उनके ऊपर कार्यजनित फललाभकी चेष्टा आरोप की जाती है; दोनों ही अभावसूचक हैं, सुतरां वे असम्पूर्णतासूचक हैं। इसीसे उनमें किसीका भी आरोप नहीं किया जाता। किसी भी प्रकारका विशेषण (Predicate) इस शक्तिके सम्बन्धमें प्रयुज्य नहीं हो सकता; क्योंकि विशेषण मात्र ही गुण है और इसीसे सीमासूचक है। इस प्रकार प्लोटिनस ईश्वरके निर्गुणत्वका प्रतिपादन कर गये हैं।

इस निर्गुणत्वसे किस प्रकार इस गुणमय जगत्‌की सृष्टि हुई है, उसके सम्बन्धमें मीमांसा करते समय प्लोटिनस अपने विकीरणवाद (Theory of emanation)का प्रतिपन्न किया है। अग्निसे जिस प्रकार ताप विकीर्ण होता है, उसी प्रकार ईश्वरसे जगत्‌का विकाश हुआ है। ईश्वरसे पहले ही प्रज्ञाशक्ति (Reason) विकीर्ण हुई है। बाह्य-जगत्‌के सभी पदार्थ आइडिया स्वरूप प्रज्ञाशक्तिमें अन्तर्निहित हैं। यहां पर न्युप्लेटानिक पण्डितोंने प्लेटोके भाववाद (Theory of ideas)का प्रयोग किया है। इस प्रज्ञाशक्तिसे पुनः विश्वप्राण (Worldsoul) विकीर्ण हुआ है। इस विश्वप्राणने आइडियोंके अनुरूप बाह्य पदार्थोंकी सृष्टि करके जगत्‌का विकाश साधन किया है। मानवकी आत्मा प्रज्ञाजगत् और बाह्य-जगत् इन दोनोंकी मध्यवर्त्ती है। इसीसे मानवकी आत्मामें भी आध्यात्मिक और सांसारिक वा बहिर्जागतिक (World of sense) इन दोनों भावका समावेश देखा जाता है। मानवात्मा आध्यात्मिक पदार्थ है। केवल नियतिवश (through inner necessity)से उसने बाह्यजगत्‌में प्रवेश किया है। मानवात्माके पक्षमें यह बद्धावस्था है। इस बद्धावस्थासे मुक्त हो कर आध्यात्मिक प्रवेशलाभ करना ही मानवात्माका परमपुरुषार्थ है। बाह्य वस्तुसे इन्द्रियवृत्तियोंको निरोध करनेपर इस बद्धावस्थासे मुक्त हो सकते हैं। अध्यात्मजगत् (World of ideas)में प्रवेशलाभ करनेसे निखिल सौन्दर्य और मङ्गलके आकारस्वरूप ईश्वरमें लयप्राप्ति, ब्रह्मानन्दलाभ और निर्वाणमोक्ष लाभ होता है ("Our soul reaches thence the ultimate end of every wish and longing, ecstatic vision of the One, union with God, unconscious asorption, disappearance in God")। सुतरां देखा जाता है, कि अद्वैतवाद स्थापनके लिये न्युप्लेटानिकका मत प्रतिष्ठित हुआ था।

न्युप्लेटानिक दर्शन ग्रीक दर्शनकी शेष सीमा है। ईसाधर्मका प्रभाव जब दिनों दिन बढ़ता गया, तब ज्ञानराज्यमें विप्लव खड़ा हुआ। नूतन धर्मके प्रखर-स्रोतसे प्राचीन मत धीरे धीरे विलुप्त होता गया। धर्मके ज्वलन्त दृष्टान्तसे मनुष्य शुष्क और जीवनीशक्तिहीन ज्ञानचर्चामें वीतश्रद्ध हो पड़े। जगत्‌में बहुत समयके बाद ऐसा कोई परिवर्त्तन होनेसे उसी ओर स्रोत लौट जाता है; एकदेशदर्शिता उस समयकी विशेष लक्षण हो जाती है। प्राचीन मतोंके सत्यांशको भी मनुष्य उस समय ग्रहण करेगा, ऐसी आशा नहीं की जाती। सुतरां ऐसी अवस्थामें ग्रीकदर्शनकी अवनति और विलोप अवश्यम्भावी है। अलावा इसके राजनैतिक अधःपतन

ज्ञानराज्यकी अवनतिका एक विशेष कारण है, व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनका अधःपतन सम्भवपर नहीं है। ऐसी अवस्थामें जानना होगा, कि जो जाति आध्यात्मिक अवनतिकी निम्नतम सोपान पर गिर पड़ी है, उस जातिके साहित्यशिल्पदर्शनकी सजीवता नहीं रह सकती। ग्रीक जातिने अपनी स्वाधीनता खो कर रोमकी अधीनता स्वीकार की थी, किन्तु रोमने भी दर्शनमें किसी प्रकारकी उन्नति न की। रोममें केवल प्राचीन ग्रीकदर्शनका ही अनुशीलन होता था। रोमी पण्डितगण ग्रीकदर्शन मतोंका सामञ्जस्य विधान करनेकी चेष्टा करते थे। दार्शनिक सिसेरो (Cicero) इनके मध्य विशेष प्रसिद्ध हुए।

ईसाधर्मके प्रादुर्भावकालमें प्लेटोका दार्शनिक मत सर्वतः आदृत हुआ था। ईसाधर्मावलम्बी पण्डितगण इसका अनुशीलन और गवेषणा कर गये हैं। ८वीं शताब्दीमें स्काटस एरिगन (Scotus Erigena) नामक किसी पण्डितने ईसाधर्मके साथ न्यप्लेटानिक दर्शनका सामञ्जस्य विधान करनेकी चेष्टा की। इसके बाद ११वीं शताब्दीके पहले तक दर्शन शास्त्रकी विशेष चर्चा और उन्नति नहीं हुई।

स्कालष्टिक दर्शन।

११वीं शताब्दीके प्रारम्भसे पुनः दार्शनिक युगका अभ्युदय हुआ। इस समयसे ले कर १५वीं शताब्दी तक जो सब दर्शन मतों प्रचारित हुआ, उसका नाम रखा गया स्कालष्टिक दर्शन (Scholastic Philosophy)। धर्मके साथ स्वाधीन-युक्तिका समन्वय विधानकी चेष्टा स्कालष्टिक दर्शनका विशेषत्व है। धर्ममत जब शिक्षाका विषय हो जाता है, तब यह अन्धविश्वासके विषयीभूत अभ्रान्त सत्यस्वरूपमें गृहीत न हो कर चिन्ताके आलोक-प्रसारण द्वारा इसके तथ्यनिर्णयमें चेष्टा की जाती। जब है तक यह अन्धविश्वास युक्तिकी अधीनता स्वीकार न करेगा, तब तक मनुष्यका मन उसे ग्रहण करनेमें स्वीकृत न होगा। पिटर्स लम्बार्डस (Petrus Lombardus) नामक एक पण्डित इस विषयके अग्रणी थे। स्कालष्टिक दर्शनका कोई भी सम्प्रदाय ईसाधर्ममतोंके याथार्थ्य सम्बन्ध पर सन्देह नहीं करते, केवल युक्तिकी सहायतासे उन्होंने इसकी अभ्रान्तता प्रतिपादन करनेकी चेष्टा की है। विख्यात पण्डित आनसेलम (Anselm) स्कालष्टिक दर्शनके प्रथम प्रवर्त्तक थे। कांटरबेरीके वे आर्चबिशप थे और १०३५-८३ तक विद्यमान रहे। दार्शनिक चिन्ताके गाम्भीर्यकी अपेक्षा न्यायशास्त्रकी सूक्ष्म तर्कप्रणाली इन सब सम्प्रदायोंकी विशेष लक्षण थी। अरिष्टटलके दर्शनका इस समय विशेष आदर था। अनेक स्कालष्टिक पण्डित अरिष्टटलके दर्शनकी टीका बना गये हैं। इस समय अरबोंमें भी उक्त दर्शनने विशेष प्रसिद्धि लाभ की। टामस आकुइनस (Thomas Aquinas) और डन्स-स्कोटस (Duns Scotus) इन दो दार्शनिकोंके समय स्कालिष्टक दर्शन उन्नतिकी चरमसीमापर पहुंच गया। उक्त दोनों दार्शनिक दो साम्प्रदायिक मतके प्रवर्त्तक थे। आकुइनिस बुद्धिशक्ति (Intellect)की और डन्स-स्कोटस इच्छाशक्ति (Volition)-की प्रधानता स्वीकार कर गये हैं। नामवाद (Nominalism) और वास्तववाद (Realism) इन दोनों मतोंकी मीमांसामें स्कालष्टिक दर्शनका अनेकांश व्ययित हुआ है।

नामवाद सम्बन्धमें न्यायशब्दमें पाश्चात्यन्याय देखो।

पण्डित रासेलिनस (Roscelinas) नामवादके और पण्डित एनसेलम (Anselm) वास्तववादके समर्थक थे। पण्डित एबेलार्ड (Abelard) इन दोनोंके मध्यवर्ती मतावलम्बी थे। नामवादी पण्डितोंके मतसे वस्तुके सम्बन्धमें जो सब साधारण संज्ञा प्रयुक्त हुई हैं, वे सब संज्ञा कितनी वस्तुओंके साङ्केतिक चिह्न-विशेष हैं। उन सब संज्ञाओंके जैसे साधारण पदार्थ नहीं है। साधारणभाव (General notion) कहनेसे हम लोग जो समझते हैं, वह हम लोगोंके ही मनकी अवस्था-विशेषमात्र है। यथार्थमें इसका कोई वस्तुगत अस्तित्व नहीं है। पृथक् वस्तुका सादृश्य देख कर साङ्केतिक चिह्नस्वरूप संज्ञा (General name or notion)-की सृष्टि हुई है। वास्तववादी पण्डितोंके मतसे संज्ञा काल्पनिक चिह्नमात्र नहीं है। संज्ञाके निर्दिष्ट पदार्थोंका साधारणत्व है। अन्य कहनेसे किसी

एक विशेष अश्वका बोध नहीं होता—अश्वजातिका ही बोध होता है। अश्व कहनेसे समस्त अश्वजातिका बोध क्यों होता है? इसके उत्तरमें इस सम्प्रदायके पण्डितोंका कहना है, कि अश्वजातिके अन्तर्गत प्रत्येक जीवमें ही एक साधारण गुणका अस्तित्व है, इस कारण अश्वसंज्ञा उक्त जातिभुक्त प्रत्येक वस्तुको बोधक है। इस साधारण गुणका नाम स्वरूपत्वसूचक गुण (Essence) है। वास्तववादी इस साधारण गुणसमूह (Universals)-के अस्तित्व पर विश्वास करते थे, इस कारण वे स्वरूपवाद (Doctrine of essence)-की प्रतिष्ठा कर गये हैं।

पण्डित ऐबेलार्डने इन दोनों मतका सामञ्जस्य साधन करते समय कहा है, कि संज्ञा मनःप्रसूत होने पर भी बिलकुल कल्पनाकी सामग्री नहीं है, वाह्य जगत्‌में इसका अस्तित्व है। उसके नहीं रहनेसे इस सम्बन्धमें हम लोगोंको किसी प्रकारकी धारणा नहीं हो सकती थी। जो तर्क द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है, उसका वस्तुगत अस्तित्व वाह्यजगत्‌में है। यही विश्वास स्कालष्टिक दर्शनका मूलसूत्र है और इस विश्वासके अधःपतनके साथ ही उक्त दर्शनके अधःपतनकी सूचना होती है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि ज्ञान और धर्मविश्वासका ऐक्यस्थापन ही स्कलाष्टिक दर्शनका मूलसूत्र है। मध्ययुगमें विद्याचर्चा याजकसम्प्रदायके मध्य ही सीमाबद्ध थी, सुतरां दर्शनशास्त्रकी आलोचना भी वे ही लोग करते थे। जो सब धर्ममत वे लोग युक्तिकी सहायतासे प्रमाणित नहीं कर सकते थे उन्हें ही अभ्रान्त सत्य बतला कर स्वीकार कर लेते थे। युक्तिके साथ ऐक्य नहीं रहनेसे वह प्रमाणसापेक्ष अथवा युक्तिका अतीत नहीं समझा जाता। युक्ति और विश्वासका इस प्रकार अस्वाभाविक संयोग स्थायी नहीं हो सकता। याजक-सम्प्रदायके शासनाधीनमें स्वाधीन चिन्ता एक प्रकारसे विलुप्त हो गई थी। स्वाधीनचिन्ताके अभ्युदयके साथ लोगोंने समझा कि युक्ति अन्धविश्वासका क्रीतदास नहीं है, वरं युक्तिकी कसौटी पर विश्वासके शुद्धाशुद्धकी परीक्षा करना आवश्यक है।

जिस कारण समूहके मेलसे यूरोपके धर्म और ज्ञानराज्यमें युगान्तर साधित हुआ, उसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

लुथरप्रवर्त्तित धर्मसंस्कार (Reformation) इस कारण समूहका अन्यतम है महात्मा लुथरने ही सबसे पहले याजक सम्प्रदायके ऐहिक स्वार्थसाधनके मूलीभूत प्रचलित धर्ममतके विरुद्ध अपनी महीयसी क्षमता नियोजित की। जिस निर्भीकता और आध्यात्मिक तेजसे महात्मा लुथर समस्त याजकसम्प्रदायके विरुद्ध खड़े हुए थे, आज उसीके फलसे सारा यूरोप आध्यात्मिक स्वाधीनताका भोग कर रहा है। यही कारण है, कि अब याजक-सम्प्रदायका स्वेच्छानुगत मत दैववाणीस्वरूप गृहीत नहीं होता। याजकसम्प्रदायके विरुद्धमतकी घोषणा करनेके लिये सत्यप्राण महापुरुषोंका पैशाचिक हत्याकाण्ड अब अभिनीत नहीं होता। स्वाधीन-चिन्ताका प्रसार विशेषरूपसे फैल गया है, सुतरां इस समय दर्शनशास्त्र अभिनवभावमें प्रयोजित होगा, इसमें आश्चर्य नहीं।

स्वाधीन चिन्ताके अभ्युदयके फलसे साहित्यकी चर्चा आरम्भ हुई। प्लेटो और अरिष्टटलका दर्शन ग्रीकभाषामें पढ़ा जाता है, इसलिये अबसे पहलेकी तरह लाटिन भाषामें रूपान्तरित अरिष्टटलका दर्शन विकृतभावमें गृहीत होनेकी सम्भावना नहीं। इरासमस (Erasmus), मेलाङ्कथन प्रभृति पण्डितोंने ग्रीक साहित्यकी चर्चाका विशेषभावमें प्रचार किया। मुद्रायन्त्रके हो जानेसे इन सब ग्रन्थोंका प्रचार और भी सहज हो गया। सुतरां पहलेकी तरह चिन्ताकी और बन्दी दशा रहने न पाई—इसकी दृष्टि सर्वतोमुखी हो पड़ी।

जड़विज्ञानशास्त्रोंकी चर्चा इस समय विशेष प्रचलित हो कर भ्रान्त मतोंकी अपनोदन करती है। कोपार्णिकस, गैलिलियो, केपलर आदि मनीषियोंके आविष्कृत तथ्य संसारको विस्मयाविष्ट कर देते हैं और याजक सम्प्रदायसे प्रचलित मत जो भित्तिहीन है, उसके सम्बन्धमें और कोई सन्देह नहीं रहता। स्कालष्टिकदर्शनने शुष्क न्यायकी तार्किकतामें व्यापृत रह कर वाह्यजगत्‌की

विस्मृत कर दिया था। पीछे विज्ञानकी उन्नतिने जगत्‌की ओर दर्शनकी दृष्टि आकर्षित की। वर्त्तमान दर्शनशास्त्रके प्रतिष्ठाता बेकन (Bacon) का मत विज्ञानकी भित्तिके ऊपर प्रतिष्ठित है। जो अभिज्ञतामूलक (based upou experience) है, वही सत्य है, यही मत प्रबल हो उठा। चिरानुगत विश्वासके विरुद्ध प्रतिक्रियाकी प्रवर्त्तना होनेसे यह प्रतिक्रिया यथोचित सीमाको पार कर और भी बहुत दूर आगे बढ़ गई है। दार्शनिक बेकन (Becon) और देकार्ट (Descartes) दोनोंके ही दर्शनमें इस प्रतिक्रियाका प्राबल्य देखा जाता है। इसीसे दोनों ही अपने अपने प्रतिष्ठित प्रथानुसार अभिनव निदर्शनकी प्रतिष्ठा कर गये हैं। वे लोग अतीत विश्वाससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखते। बेकनके मतसे प्रकृत तत्त्वको पर्यालोचना अन्धविश्वास और भ्रम अपनोदन करनेका प्रकृष्ट उपाय है। देकार्टने संशयको ही सत्यपथका प्रदर्शक बतलाया है।

बेकन-प्रवर्त्तित-दर्शन।

दार्शनिक लार्ड बेकनने १५६१ ई०में जन्मग्रहण करके १६२६ ई०में मानवलीला शेष की। वे इङ्गलैण्डके अभिजात-वंशीय थे। विद्याध्ययनके बाद संसारमें प्रविष्ट हो कर वे उच्च राजकार्यमें नियुक्त हुए थे। असाधारण धीशक्तिसम्पन्न और ज्ञानी होने पर भी उनका नैतिक जीवन निष्कलङ्क न था। उनके ग्रन्थपाठ और चरित्रकी पर्यालोचना करनेसे दोनोंमें बहुत पृथक्‌ता देखी जाती है। मित्रद्रोह, विश्वासघातकता और अवैध उपायसे अर्थग्रहण करके वे अपने जीवनको जगत्‌के निकट हेय कर गये हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि बेकनका दर्शन अभिज्ञतामूलक है। बेकनका कहना है, कि उनके समयमें विज्ञानशास्त्र अवनतिकी चरमसीमा तक पहुंच गया था। इस समयका दर्शनशास्त्र भी न्यायशास्त्रके मकड़ेके जाल स्वरूप था। इस प्रकारके दर्शन और विज्ञानसे सत्यका प्रचार होना असम्भव है और भ्रान्त मतोंका आमूल संशोधन भी उसी प्रकार असाध्यसाधन है। सुतरां नूतनप्रथा प्रवर्त्तित दर्शनका प्रचार अवश्यम्भावी हुआ था। इसी उद्देश्यसे प्रणोदित हो कर बेकनने अपने दर्शनका प्रचार किया।

बेकनने दर्शनशास्त्रका नूतन पथ (Method) दिखलानेके सिवा और किसी नूतन दार्शनिक तथ्यका प्रचार नहीं किया। प्रचलित पन्थासमूहके दोषक्षालनका उपाय तथा सत्यान्वेषणका प्रधान अन्तराय क्या है उन सबका निर्णय करनेमें ही उनके दर्शनका अधिकांश खप गया है। वाह्यजगत्‌के प्रति उपेक्षा बेकनके मतसे सत्यान्वेषणके पथ पर कण्टकस्वरूप है और विज्ञानशास्त्रोंकी अवनतिके अन्यान्य कारणोंमेंसे यही प्रधानतम कारण है। अन्यान्य जिन सब कारणोंमेंसे विज्ञानकी अवनति हुई है, उनमेंसे निम्नलिखित प्रधान हैं। प्रथमतः जड़पदार्थकी ओर मनुष्यकी दृष्टि आकृष्ट होनेसे मनुष्यकी आध्यात्मिक अवनति होगी, ऐसा विश्वास जड़वस्तुके प्रति अवज्ञाभाव, ऐसे विश्वासका कारण है।

द्वितीयतः लौकिक और धर्मजात कुसंस्कार सत्यान्वेषणका प्रधान शत्रु है। विशेषतः जब याजक-सम्प्रदायका विशेष प्रभाव था, उस समय वे विज्ञानचर्चामें विशेष बाधा देते थे।

तृतीयतः प्राचीनतत्त्वके प्रति लोगोंका प्रगाढ़ विश्वास और कतिपय दार्शनिक मतोंका प्रभाव विज्ञानचर्चाका कण्टकस्वरूप हो गया था। अलावा इसके जिन सब कारणोंसे भ्रमप्रमादकी उत्पत्ति होती है, उसका बेकनने 'आइडल्स' (Idols) नाम रखा है। भ्रान्ति-उत्पादक आइडल चार प्रकारका है, जातिगत भ्रम (Idols of the tribe) अर्थात् मनुष्यजातिमात्र ही जिस भ्रमके अधीन है, वही भ्रम; व्यक्तिगत भ्रम (Idols of den) अर्थात् जो भ्रम देश, काल, पात्रके ऊपर निर्भर करता है; स्थानीय भ्रम (Idols of the market-place)—शब्दार्थके अनिश्चयत्व हेतु इन सब भ्रमोंकी उत्पत्ति होती है अर्थात् एक ही शब्द विभिन्न व्यक्तियोंसे विभिन्न अर्थमें व्यवहृत हो कर एक दूसरेके मध्य भ्रम उत्पन्न करता है। भ्रान्त दार्शनिक सम्प्रदायसे जो सब भ्रम रङ्गालयमें अभिनेतृवर्गकी तरह सत्यस्वरूप प्रचारित होते हैं, वही भ्रम साम्प्रदायिक भ्रम (Idols of the theatre) है।

नूतन दार्शनिक तथ्यको अपेक्षा नूतन दार्शनिक पन्थके लिये हो पाश्चात्य जगत् बेकनके निकट उपकृत है। उन्होंने अपने दर्शनके शेषभागमें निज दार्शनिक पन्थ बतलाया है। बेकनके मतसे सत्यज्ञानका प्रसार अभिज्ञता-सापेक्ष है। अभिज्ञता इन्द्रियज्ञान (Observation) और युक्ति (Reflection) इन दोनों विषयोंके ऊपर निर्भर करती है। इन्द्रिय द्वारा वाह्यजगत्से जो सब विषय हम लोग ग्रहण करते हैं, युक्ति द्वारा उनका सत्यासत्य निरूपण करना आवश्यक है। उनके मतसे इण्डक्सन् (Induction) अर्थात् व्याप्तिमूलक युक्तिकी सहायतासे हो सभी विषयोंका सत्यासत्य निरूपित होता है। इसका विस्तृत विवरण न्याय शब्दके पाश्चात्य न्यायप्रसंगमें देखो।

दार्शनिक बेकनने इस इण्डक्सन् युक्तिका यथायथ प्रयोग करनेके लिये अपने नव्यन्यायग्रन्थमें (Novum organum) जो सब पन्थ बतलाये हैं, उन सब पन्थोंको इण्डक्सनका मूलसूत्र कहते (Canons of induction) हैं। विस्तृत विवरण न्याय शब्दमें देखो।

बेकन-प्रवर्त्तित दर्शनकी समस्त भित्ति इसी इण्डक्सनके ऊपर प्रतिष्ठित होनेके कारण उनके दर्शनको इण्डक्टिभ दर्शन (Inductive philosophy) कहते हैं। इस दर्शनके मतसे अभिज्ञता (Experience) दर्शनका मूल होनेके कारण यह दार्शनिक सम्प्रदायका नामान्तर एम्पिरिकल वा अभिज्ञतासापेक्ष दर्शन (Empirical or esperiential philosophy) है। बेकन-प्रतिष्ठित दर्शनकी वर्त्तमान आख्या अंगरेजी दर्शन (English philosophy) है। बेकनसे उद्भूत होने पर भी हयूम और मिल (Hume and J. S. Mill) द्वारा इस दर्शनकी परिणति साधित हुई थी।

पहले कहा जा चुका है, कि बेकनने सिर्फ अभिनव प्रथाके अनुसार दर्शनचर्चाका पथ प्रदर्शन किया है। उनके मतका अनुसरण करके दार्शनिक तत्त्वका उद्घाटन तत्परवर्त्ती दार्शनिक पण्डितों द्वारा साधित हुआ था।

लाक (John Locke)।

पण्डितवर जान लाक (John Locke) बेकनके प्रदर्शित पथका अवलोकन करके अपना दर्शन बना गये हैं। ये १६३२ ई०को ब्रिटेन नगरमें उत्पन्न हुए थे। इन्होंने पहले चिकित्साशास्त्रका पढ़ना आरम्भ किया। तन्दुरुस्त नहीं रहनेके कारण इन्होंने चिकित्साका व्यवसाय छोड़ दिया और साहित्यसेवामें अपना जीवन व्यतीत किया। इस समयके प्रसिद्ध राजपुरुष शेफटेसबरी (Earl of Shaftesbury)-के आश्रयमें आ कर वे तत्कालीन विद्वज्जन समाजसे सुपरिचित हुए। १६७० ई०में कुछ बन्धुओंके कहनेसे वे अपना दार्शनिक मत "Essay concerning human understanding" नामक ग्रन्थमें लिपिबद्ध करनेको तैयार हो गये। १६९० ई०में उनका यह रचनाकार्य समाप्त हुआ। १७०४ ई०में लाककी मृत्यु हुई। आपकी दार्शनिक रचना बड़ी ही प्राञ्जल है। आपने सरल और विज्ञानसम्मतके आधार पर अपना मत प्रचार किया है।

ज्ञानतत्त्व ही (Theory of knowledge) लाक प्रवर्त्तित दर्शनका प्रधान आलोच्य विषय है। ज्ञानका उत्पत्तिनिर्णय करनेमें लाकने दो विषयोंकी अवतारणा की है। प्रथमतः इनेट आइडिया अर्थात् कितनो सहजात धारणा जो मनसे ही उद्भुत है और जो वाह्य विषयसे उत्पत्तिलाभ नहीं करती, लाक ऐसे इनेट-आइडिया (innate idea)-का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। द्वितीयतः उनके मतसे ज्ञान (Knowledge) मात्र ही अभिज्ञतासे उत्पन्न हुई है।

इनेट थ्यूरीके सम्बन्धमें लाकका कहना है मनुष्य जो विश्वास करते हैं, कि आत्मा जन्मग्रहणकालमें कितनी ही धारणा ले कर जन्म लेती है, ये धारणा स्वतःसिद्ध है—इसमें प्रमाणकी कोई जरूरत नहीं। ये सब धारणा जो मनकी प्रकृतिगत हैं, इनके सार्वजनिकत्व (universality) ही उसका एक प्रमाण है। लाक कहते हैं, कि इनके सार्वजनिकत्वको तर्कस्थल पर मान लेने पर भी यदि अन्य किसी उपायसे इनका सार्वजनिकत्व प्रतिपन्न किया जा सके, तो इन्हें इनेट कहनेकी आवश्यकता नहीं; किन्तु यथार्थमें ये सार्वजनिक नहीं हैं। लाकके मतानुसार किसी भी विषयका सार्वजनिकत्व नहीं है। नैतिक नीतियां भी सर्ववादीसम्मत नहीं

है। ज्ञानराज्यके मूलसूत्र (यथा एक वस्तुका एक समयमें रहना और नहीं रहना असम्भव है, जिसका अस्तित्व है, वह वर्त्तमान (what is is) इत्यादि) विषयोंको भी इनेट वा मनःप्रकृतिसिद्ध नहीं कह सकते। यदि ऐसा होता, तो बालक और आजन्म-निर्बुद्ध मनुष्योंको भी ये सब तथ्य मालूम हो सकते थे। अलावा इसके जो इनेट है, वह ज्ञान विकाशके पहले ही प्रतिभात हुआ करता है। किन्तु उपरि-उक्त तथ्योंका विकाश समयसापेक्ष है सुतरां ये इनेट नहीं; क्योंकि जो मनमें है (To be in the mind) वह एक प्रकारसे ज्ञानके विषयीभूत है। हम लोगोंके मनमें ये भाव वर्त्तमान हैं अथच हम लोग इनसे अवगत नहीं हैं। लाक इस युक्तिको आत्मविरोधी (Contradiction) समझते हैं। हम लोगोंको ज्ञानशक्तिके उद्बोधनकालमें विशेष विशेष विषय (Particular facts of knowledge)-का ज्ञान ही लाभ होता है। फिर जिसे हम लोग साधारण-ज्ञान कहते हैं वह विशेष विशेष विषयके ज्ञानके सामञ्जस्यसे उत्पन्न हुआ करता है। वह इण्डक्सन (Induction)-का फल है।

परन्तु हम लोगोंके मानसिक भावोंकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है, उसे लाकने सविस्तार दिखानेकी चेष्टा की है। संक्षेपमें उनके मतका सारोद्धार करके लिखा जाता है।

लाकने कहा है, कि हम लोगका मन वा बुद्धिवृत्ति आद्यावस्थामें अलिखित प्रस्तरखण्ड (Tabula rasa)-अथवा स्वच्छ दर्पणकी तरह रहती है—इसमें कोई पूर्व संस्कार नहीं रहता। समस्त ज्ञान जन्मके परवर्त्ती समयमें अर्जित होता है। संस्कारविहीन स्वच्छ पदार्थस्वरूप मनमें किस प्रकार ज्ञानका उदय होता है, उसकी मीमांसाके समय लाकने कहा है, कि ज्ञानका उदय अभिज्ञतासापेक्ष है और अभिज्ञता दो प्रकारसे कार्यकारी होती है; प्रथमतः अनुभूति (Sensation) द्वारा; द्वितीयतः अनुध्यान (Reflection) द्वारा। दर्पणके प्रतिबिम्बकी तरह इन्द्रियके सहयोगसे हम लोगोंके मनमें विषयकी मानस प्रतिकृतिका उदय होता है और आत्मा हम लोगोंकी अन्तर्दृष्टि (introspection)-का उद्बोधन करके मनकी प्रक्रियाओंके प्रति दृष्टि आकर्षण करती है। मानस प्रतिकृतिको ही लाकने 'आइडिया' (Idea) कहा है। लाकके मतसे आइडिया दो प्रकारका है, सरल (Simple) और जटिल (Complex)। सरल आइडियाओंमेंसे कोई तो एक इन्द्रिय-ज्ञानसम्भूत, कोई दो वा उनसे अधिक इन्द्रियज्ञानकी समष्टिसे उत्पन्न हुआ है। कोई कोई आइडिया इन्द्रिय-ज्ञान और अनुध्यान (Reflection) इन दो वृत्तियोंके सहयोगसे और कोई केवल अनुध्यानसे ही उत्पन्न हुआ है। जटिल आइडियाओं (Complex idea)-मेंसे कितने सरल आइडियाके संयोगसे पैदा हुए हैं। इन जटिल आइडियाओंको लाकने तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया है, पदार्थसमूहका प्रकृतिबोधक (Ideas of modes)', पदार्थ समूहका स्वरूपबोधक (deas of substances) और पदार्थ समूहका सम्बन्धबोधक (Ideas of relations)। द्रव्यसमूहका दूरत्व, आकृति, परिमाण प्रभृति स्थान और कालपरिमाण-सम्बन्धीय तथा अनुभूति (Perception), स्मृति (memory) प्रभृति मानसिक वृत्तिसम्बन्धीय समस्त आइडिया प्रथम श्रेणीके अन्तर्गत हैं अर्थात् वे सब पदार्थ-समूहके प्रकृति-सूचक आइडिया (Ideas of modes) हैं। पदार्थ समूहका स्वरूप कैसा है, इसका तत्त्वनिर्णय करनेमें लाकने कहा है, कि इन्द्रियज्ञानसे हम लोग केवल कितने गुणों (Qualities)का अस्तित्व जान सकते हैं। ये सब गुण समवेत-भावमें हम लोगोंके निकट प्रकाशित होते हैं और वे गुण फिर ऐसे भावमें एक दूसरेके साथ संयुक्त देखे जाते हैं, कि उनकी उत्पत्ति एक समझी जाती है। इन सब गुणोंको स्वाधीन वा स्वप्रकाश नहीं कहा जा सकता। यही कारण है, कि दार्शनिक लाकने गुणसमूहके आधारको (Substratum) द्रव्य (Substance) कहा है। लाकके मतसे द्रव्य गुणसमूहके बन्धनीस्वरूप हैं और वे गुण द्रव्यत्वके विकाशसाधक हैं। गुणके अभावमें हम लोगोंको द्रव्योंकी किसी प्रकार धारणा नहीं हो सकती। गुणको आधार समझ कर हम लोग द्रव्यका

जो ज्ञान पाते हैं, उसके अतिरिक्त वाह्यजगत्में उसका अस्तित्व कैसा है, वह हम लोग नहीं जानते। लाक का कहना है, कि जिस प्रकार विभिन्न अक्षरोंके योगसे शब्दकी उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार परस्पर सम्बन्धके कारण सरल और जटिल आइडियाओंके सहयोगसे हम लोगोंको ज्ञानोत्पत्ति हुआ करती है।

उपरि-उक्त विवरणसे यह देखा जाता है, कि लाकके मतानुसार इन्द्रियज्ञान ही समस्त ज्ञानका मूल है। इस दार्शनिक मतका मूलसूत्र (जो इन्द्रियमूलक नहीं है, मनोजगत्में उसका अस्तित्व नहीं है), (Nihil est in intellecta, quod non furit in sensu) इस विषयमें साक्ष्य प्रदान करता है। इसी भित्तिसे लाकने अपने दर्शनको विस्तारित किया है। लाकके दर्शनके शेष भागमें जड़वाद (Materialism)-का प्रभाव विलक्षण देखा जाता है। लाकने आत्माको भी एक प्रकारका पदार्थ विशेष माना है। वे जड़पदार्थके अतिरिक्त किसी प्रकार आध्यात्मिक पदार्थका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। उन्होंने ऐसे मतका भी प्रचार किया है, कि ईश्वरने जड़ (matter)-में ज्ञानशक्ति (intellect) निहित की है ('It is not remote from our comprehension to concieve that God should super-add to matter another substance with a faculty of thinking.')

लाकके दर्शनमें जड़वादकी पूर्वसूचना रहने पर भी इसमें ह्यम प्रवर्तित संशयवाद (Scepticism)-का बीज अन्तर्निहित है। द्रव्यका स्वरूप निर्णय करते समय (what is the notion of substance) लाकने कहा है, कि द्रव्यको हम लोग गुणका आधार मानते हैं। इसके अलावा अर्थात् गुणके मध्य हो कर इसका जो अंश प्रकाश पाता है, उसके अतिरिक्त द्रव्यके स्वरूप सम्बन्धमें हम लोग और कुछ भी अधिक नहीं जान सकते; केवल इतना ही जानते हैं, कि द्रव्य (Matter) हमसे स्वतन्त्र पदार्थ है। इसका अस्तित्व वाह्यजगत्में और गुणकी सहायतासे हम लोगोंके मनोराज्यमें अपने अस्तित्वका ज्ञान उद्बोध कर देता है। द्रव्य-समूहके गुणोंका स्वरूप कैसा है अर्थात् वे हम लोगोंके निकट जिस प्रकार प्रतीयमान होते हैं, वाह्य जगत्में क्या उनका अस्तित्व भी उसी प्रकार है? आइडिया (Ideas) क्या सभी वस्तुओंको यथायथ प्रतिकृति (Resemblance) है? इन प्रश्नोंकी मीमांसा करते समय लाकने गुणसमूहका अपर प्रथानुयायी विभाग बतलाया है। उन्होंने कहा है, कि द्रव्यजातगुण (Sensible qualities of matter) आदिम (primary) और अवान्तर (secondary) के भेदसे दो प्रकारका है। आदिम गुण वस्तुका स्वरूप निर्देश करते हैं। वस्तुसमूहका दैर्घ्य, विस्तार, वेध प्रभृति आकृति सम्बन्धीय जितने गुण हैं, वे इसी श्रेणीके अन्तर्गत हैं। अवान्तर गुणों (Secondary qualities)के साथ वाह्यवस्तुओंका किसी प्रकार सादृश्य (Resemblance) नहीं है, केवल वाह्यवस्तुके साथ कार्यकारणगत सम्बन्ध रहनेसे सिर्फ सामञ्जस्य (Correspondence) ही है। ये अवान्तर गुण इन्द्रियसमूहके ऊपर वाह्यवस्तुकी क्रिया (Sense affections)से उत्पन्न होते हैं। वाह्यवस्तुके साथ इनका सादृश्यगत कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसे पदार्थसमूहका वर्ण (colour) इत्यादि। ये सब लाकके मतसे वस्तुकी आकृतिकी तरह वस्तुकी यथायथ प्रतिकृति नहीं है; वस्तुसे उत्पादित इन्द्रियज्ञानमात्र (Sense affections) है। लाकके परवर्त्ती दार्शनिक बार्कलीने अपने दृष्टिज्ञानतत्त्व (Theory of vision)में उनके इन दो प्रकारके विभागोंका असारत्व प्रतिपन्न करके अपने मतकी प्रतिष्ठा की है।

बार्कली।

किसी किसी दर्शन-इतिहासविद्ने दार्शनिक बार्कली (Berkeley)को लाकके परवर्त्ती और इम्पिरिकलदर्शन सम्प्रदायभुक्त (Empirical philosophy) न मान कर लिबनिजके परवर्त्ती और आइडियलिष्ट-दर्शनसम्प्रदायभुक्त माना है। बार्कलीका दार्शनिक मत आइडियलिज्म वा विज्ञानवाद (Idealism) होने पर भी लाककी दार्शनिक भित्तिसे वे उक्त मत पर पहुंचे हैं, इस कारण हम लोगोंने उन्हें लिबनिज (Leibnitz)-के परवर्त्ती और तत्प्रवर्त्तित दर्शन-सम्प्रदायभुक्त न

मान कर लाकको परकालवर्त्ती माना है। बार्कलीके दर्शनके ऊपर लिबनिजके दर्शनका प्रभाव कैसा है तथा लाकके दर्शनका ही प्रभाव किस प्रकार है, उसके प्रति लक्ष्य करनेसे इस मीमांसाका याथार्थ्य उपलब्ध होता है।

बार्कलीने आयरलैण्डके अन्तःपाती किलकेनी (Kilkenny) काउण्टीमें १६८५ ई०को जन्मग्रहण किया। १७०० ई०में वे डबलिन नगरके ट्रिनिटी कालेजमें भर्त्ती हुए। यहां उन्होंने १३ वर्ष विद्याध्ययनमें बिताये। इस समय ट्रिनिटी कालेजमें बेकन और डेकार्टका दर्शन तथा न्युटन और लिबनिजकी आविष्क्रियाका विषय पढ़ाया जाता था। लाकको दर्शन-पुस्तक (Essay on human understanding) इसी स्थानमें प्रचलित हुई। बार्कली न्युटन, डेकार्ट और मलब्रान्स (Malebranche)के ग्रन्थोंसे विशेष परिचित थे; यह उनको पूर्व रचनासे जाना जाता है।

डब्लिनमें रहते समय उन्होंने अपने दर्शन मतके स्वपक्ष पर तीन पुस्तक बनाई। १७०८ ई०में उनकी दृष्टि-तत्त्व (Essay towards a new theory of Vision) और १७१० ई०में ज्ञानतत्त्व (Principles of Human Knowledge) नामक पुस्तक प्रचारित हुई।

१७१३ ई०में बार्कली लण्डन गये। तभीसे ले कर बीस वर्ष तक उन्होंने इङ्गलैण्ड और यूरोपके अन्यान्य प्रदेशोंमें तथा अमेरिकामें भ्रमण किया। १७२४ ई०में वे डेरीनगरके धर्माचार्य (Dean of Derry) नियुक्त हुए। उन्होंने बार्मुडसद्वीप (Bermudas Island)में सभ्यता और धर्मप्रचार करनेके लिए कालेज खोलना चाहा; इसी उद्देश्यसे वे ४५ वर्षकी अवस्थामें उक्त द्वीप गये। जब कर्त्तृपक्ष उक्त कालेजका व्ययभार ग्रहण करनेमें राजी न हुए, तब वे तीन वर्ष रोडद्वीपमें रह कर विफलमनोरथ हो स्वदेश लौटे। अपने जीवनका शेष बीस वर्ष उन्होंने आयरलैण्डके क्लायनी (Cloyne) नामक स्थानके बिशपपद पर व्यतीत किया। १७५३ ई०को आक्सफोर्ड नगरमें आपका देहान्त हुआ।

बार्कलीका जीवन भी उनके दार्शनिक मतके अनुरूप था। आजीवन वे आध्यात्मिकतामें निमग्न रहे। ध्यानमग्न योगीकी तरह वे व्यवहारिक हिसाबसे भी बाह्यजगत्का अस्तित्व नहीं मानते थे। उनका जीवन नैतिक पवित्र जीवनका आदर्शस्थल था। ज्ञान और धर्ममें उनका जीवन देवभावसे पूर्ण हुआ था।

पहले कहा जा चुका है, कि लाकके दर्शनके ऊपर बार्कलीने अपने दर्शनकी भित्ति प्रतिष्ठित की है। लाक जड़जगत्का अस्तित्व अस्वीकार नहीं करते थे। उन्होंने कहा है, कि जड़जगत्का सचमुच प्रकृत अस्तित्व है। बार्कलीने, जड़जगत्का अस्तित्व है वा नहीं पहले इस प्रश्नका उत्थापन न करके प्रकृत अस्तित्व (Real existence) किसे कहते हैं, उसका स्वरूप कैसा है, इसी विषयकी मीमांसा की है। इसी मीमांसासे उनके प्रवर्त्तित ज्ञानतत्त्व (Theory of knowledge)-का प्रचार हुआ है। लाकने कहा है, कि बाह्यजगत् हम लोगोंके ज्ञानका विषय और निदान दोनों ही है। अनेक वस्तुका समूह ही हम लोगोंको इन्द्रियोंके ऊपर कार्य करके हम लोगोंमें अनुभूति (Perception) उत्पन्न कर देता है। बार्कलीने लाकके उक्त दर्शनमतका असारत्व प्रतिपन्न किया है बार्कलीका कहना है, कि लाकके मतानुसार आइडिया वा मानसिक प्रतिकृति ही (Ideas) पदार्थ समूहको ज्ञानसूचक है और आइडिया मनोजगत्की वस्तु है, किन्तु वे कहते हैं, कि बाह्य पदार्थोंने इन मानसिक प्रतिकृतियोंकी सृष्टि की है। मानसिक प्रतिकृति (Idea) और बाह्यजगत्के मध्य कार्य-कारणका सम्बन्ध है, एक दूसरेका जनयिता है। बार्कली लाकका यह जन्यजनकत्व सम्बन्ध स्वीकार नहीं करते। बार्कलीने कहा है, कि गुणके अतीत कोई भी पदार्थ (Abstract matter) हम लोगोंके ज्ञानका विषय नहीं है, हम लोग किसी भी तरह इसका अस्तित्व नहीं जान सकते। अपने मनोजगत्को छोड़ कर अन्य किसी पदार्थके अस्तित्वसे अवगत होना हम लोगोंके लिये असम्भव है। बाह्य शब्दका स्वरूपार्थ क्या है, बार्कली उसका निर्द्धारण कर गये हैं। बार्कलीने कहा है, कि बाह्यजगत् मनोजगत्की ही कल्पनाकी वस्तु है।

वाह्यजगत्के सम्बन्धमें हम लोगोंके प्रत्यक्षज्ञान नहीं है, हम लोगोंका यह विश्वास बार्कलीके मतसे अमूलक है। इन्द्रिय ज्ञानसे हम लोग साक्षात् सम्बन्धमें वाह्य जगत्का ज्ञानलाभ करते हैं; यह विश्वास प्रायः अविसंवादितरूपमें गृहीत हुआ करता है।

बार्कलीका कथन है, कि इस विश्वासका मूल गौर कर देखनेसे इसका असारत्व प्रतिपन्न होगा। अनुभूति (Perception) कहनेसे हम लोग क्या समझते हैं? अनुभूति क्या हम लोगोंके मनकी अवस्था विशेष नहीं है? यदि नहीं है, तो वाह्यजगत्का अस्तित्व कहांसे आया? लाक प्रभृति दार्शनिकोंका कहना है, कि वाह्यजगत्ने ही हम लोगोंके ज्ञानेन्द्रिय समूहका विकार साधन करके हम लोगोंके मनमें वाह्य जगत्के ज्ञानका विकाश कर दिया है। बार्कलीने इस मतके विरुद्ध दो आपत्ति की है। वाह्यजगत्ने जो हम लोगोंके इन्द्रियज्ञानका उद्बोध कर दिया है, इस प्रकार कार्यकारण सम्बन्धका स्वीकार बार्कलीके मतसे असम्भव है।

वाह्यवस्तु जो मनोराज्यके दूसरे किनारे है, वह किस प्रकार मनके ऊपर कार्यकारी होगी। बार्कली उसे बुद्धिका अतीत समझ कर विश्वास करते हैं। जड़ और मन (Matter and mind)-का कार्यकारण-सम्बन्ध ज्ञान मायोपहित ज्ञान है। वाह्यजगत् कहनेसे मनुष्य जो समझते हैं, यथार्थमें यदि देखा जाय, तो मनके व्यतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है; वह मनका भाव विशेष है, इसलिये मनोजगत्की वस्तु है। बोधका विषयमात्र ही मनोराज्यकी वस्तु है। वाह्यजगत् भी हम लोगोंके बोधका विषय है। सुतरां यह भी हम लोगोंके मनोराज्यके अन्तर्हित है। द्वितीयतः बार्कली कहते हैं—लोगोंका प्रचलित विश्वास इस प्रकार है, कि दर्पणमें प्रतिविम्बकी तरह हम लोगोंके मनमें वाह्यजगत्की प्रतिकृति पड़ती है। दर्पणका प्रतिविम्ब जिस प्रकार अपनी वस्तुके अनुरूप है, वाह्यजगत्का मानसिक चित्र भी उसी प्रकार वाह्यजगत्के अनुरूप है। बार्कलीका कहना है, कि लाकने उनके इस मतका प्रतिपन्न करते समय अपने मतमें ही अनन्य विरोध (Contradiction) दोषोंकी प्रतिष्ठा की है। लाक सेकण्डरी वा अवान्तर गुणों (Secondary qualities) को मनकी अवस्थाविशेष मान गये हैं। किन्तु प्राइमरी वा आदिम गुणोंको (Primary qualities) उन्होंने केवल मनकी अवस्था ही नहीं कहा, बल्कि उन्हें वाह्यवस्तुकी यथायथ प्रकृति निर्देश की है। बार्कली प्राइमरी गुणोंका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है, कि हम लोग जिन्हें वाह्य-वस्तुका गुण समझ कर विश्वास करते हैं, वह गुणमात्र ही मनकी अवस्थाविशेष है। इनके मध्य प्राइमरी और सेकण्डरी ऐसा पार्थक्य निर्देश नहीं किया जाता। पुनः प्राइमरी वा आदिम गुण वस्तुकी यथायथ प्रतिकृति प्रदान करता है; ऐसे निर्देशका यथार्थमें कोई अर्थ ही हो नहीं सकता। आइडिया वा मानसिक-भाव किस प्रकार वाह्यवस्तुकी प्रतिकृति हो सकता है? इस वाक्यके स्वरूपकी उपलब्धि नहीं की जाती। मनकी क्रिया मनके ऊपर ही सम्भव है, वाह्यवस्तु आइडिया वा मानसिक भाव इनके मध्य किस प्रकार यथायथ सादृश्य (Resemblance) रह सकता है। उक्त प्रकारकी युक्तियोंका प्रयोग करके बार्कलीने यह प्रतिपन्न किया है, कि वाह्यजगत् और मन इन दो विभिन्न प्रकृतिक पदार्थोंके मध्य किसी प्रकारकी क्रिया नहीं हो सकती। सुतरां मोमके ऊपर कठिन पदार्थकी छापकी तरह हम लोगोंके मनके ऊपर वाह्यजगत्का संस्कार पड़ता है, ऐसा प्रचलित विश्वास भित्तिहीन है।

पर हां, वाह्यजगत्का यह दृश्यपट कहांसे आया? हम लोगोंकी अनुभूतिकी उत्पत्ति कहांसे हुई? इस प्रश्नकी मीमांसा बार्कली कर गये हैं। बार्कलीका कहना है, कि वाह्यजगत्का ज्ञान मनसे आप ही आप उद्भूत नहीं होता, मन स्वयं इनका सृष्टिकर्त्ता नहीं है, दूसरे किसी महत्तर मनसे हम लोग ये सब ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसका दूसरा नाम ईश्वर है। वाह्य-जगत् कह कर जो हम लोगोंका विश्वास है, ईश्वरमें वह आइडियास्वरूपमें विराजमान है। वे इन्द्रियोंके उन्मेष (Sensation) द्वारा हम लोगोंके मनमें इस

आइडियाका उद्बोधन कर देते हैं। सुतरां बार्कलीके मतसे बाह्यजगत् वस्तुतः कल्पनाकी सामग्री नहीं है, इसका प्रकृत अस्तित्व है, पर यह अस्तित्व प्रचलित विश्वाससङ्गत अस्तित्व नहीं है—यह आध्यात्मिक अस्तित्व (Ideal existence) है।

इस प्रकार दार्शनिक मतानुसार वस्तुके स्वरूप सम्बन्धमें कैसा मत होगा, वह सहजमें ही अनुमान किया जा सकता है। बार्कलीका कहना है, कि वस्तुका ज्ञान ही उसका स्वरूप (Esse is percipii) है; अलावा इसके वस्तुका किसी प्रकार अतिमानस अस्तित्व (Extra-mental existence) नहीं है। बार्कलीने अपने दृष्टितत्त्व (Theory of vision)में प्रचलित विश्वासके असारत्वको प्रमाणित किया है। लौकिक विश्वास इस प्रकार है, कि दृष्टिशक्ति ही वस्तुके दूरत्व, आकृति आदिका ज्ञान उत्पन्न कर देती है। बार्कलीने दृष्टिशक्तिके ऊपर इस प्रकार आस्था स्थापन करनेमें सतर्क कर दिया है। उनका कहना है, कि वर्णबोध (Colour-sensation)-के सिवा दृष्टिशक्ति और किसी विषयके साक्षात् सम्बन्धमें कुछ भी नहीं बतला सकती। परन्तु हम लोग जो दृष्टियोगसे दूरत्वका निर्णय करते हैं, वह केवल अनुमान (Inference)के ऊपर निर्भर करके। यथार्थमें मांसपेशियोंकी क्रियाएं हम लोगोंको दूरत्वका बोध बहुत कुछ कर देती हैं। दृष्टिशक्ति केवल इन क्रियाओं (Muscalar exertion)-की स्मृतिको बढ़ाती है।

बार्कलीने इसी प्रकार महत् अध्यात्म-दर्शनकी सृष्टि की है, इसमें जड़का कोई स्थान नहीं है। केवल परमात्मा (The great spirit) और सभी जीवात्मा (Spirits) वर्त्तमान हैं। समस्त जीवात्माका ज्ञान परमात्मासे उत्पन्न होता है। जगत्‌में इस ज्ञानके विकाशके सिवा और दूसरा पदार्थ नहीं है। यदि देखा जाय तो बार्कलीका दर्शन भारतीय-वेदान्तदर्शनका समस्थानीय है—दोनों ही मतमें बाह्यजगत् भ्रम वा माया है। किन्तु इस मायाका भी अस्तित्व है—यह भी ईश्वरसृष्ट है। बार्कलीने बाह्यजगत्का आध्यात्मिक अस्तित्व स्वीकार किया है।

ह्यूमके दर्शनसे ही एम्पिरिकल दर्शन (Emperical philosophy)-की परिणति साधित हुई थी। पीछे जेम्स मिल (James Mill), जान ष्टुयार्ट मिल (John Stuart Mill) और अलेकसन्दर बेन (Alexander Bain)-से ह्यूमका ही दार्शनिक मत पुनः प्रवर्त्तित हुआ था। सामान्य उन्नति और परिवर्त्तन व्यतीत इन लोगोंने ह्यूमका मत सर्वतोभावमें अनुवर्त्तन किया है।

यथार्थमें ह्यूमको ही लाकके प्रकृत अनुवर्त्तक कह सकते हैं। बार्कलीने लाकके दर्शनका अन्तर्विरोध लक्ष्य करके जिस दार्शनिक मतका प्रचार किया है, उसे आइडियलिज्म (Idealism) भिन्न एम्पिरिज्म वा सेनसेसनिज्म (Empirism or sensationism) कहते हैं। केवल ऐतिहासिक पौर्वापर्यके प्रति लक्ष्य रख कर हम लोगोंने बार्कलीका नाम लाकके बाद सन्निविष्ट किया है।

लाकने जिस भित्तिके ऊपर अपना समस्त दर्शन गठित किया है उससे उनके पक्षमें बाह्यजगत्का अस्तित्व प्रतिपन्न करना एक प्रकारसे असम्भव है। दार्शनिक ह्यूमने लाकके दर्शनकी यह असङ्गति प्रतिपन्न करके अपने दर्शनकी प्रतिष्ठा की है। बार्कलीने लाकके दर्शनकी असङ्गति देख कर उसे निराकरणकी इच्छासे जिस दर्शनका प्रचार किया है, दार्शनिक ह्यूमके मतमें वह भी भ्रान्तिमूलक है।

डेभिड ह्यूम (David Hume)

डेभिड ह्यूम (David Hume)ने १७११ ई०-को एडिनबरा नगरमें जन्म लिया। आईन-व्यवसायी होनेके उद्देश्यसे उन्होंने प्रथमतः आईन पढ़ना आरम्भ किया, किन्तु अन्तमें वे वाणिज्य कार्यमें लग गये। १७५२ ई०में वे एडिनबराके साधारण पुस्तकालयके अध्यक्षके पद पर नियुक्त हुए। यहां उन्होंने इङ्गलैण्डका इतिहास (History of England) नामक विख्यात ग्रन्थकी रचना की। इसके बाद वे दो एक उच्चकार्यों पर भी नियुक्त हुए थे। १७६७ ई०-में उन्होंने अण्डर सेक्रेटरी-आव स्टेट (Under-Secretary of State)का पद ग्रहण किया। अपने

जीवनका शेष भाग उन्होंने दर्शन और इतिहासकी आलोचनामें बिताया। १७७६ ई०में उनकी मृत्यु हुई।

ह्यूमके दर्शनमें अज्ञेयवाद और संशयवाद (Agnosticism and Scepticism)-का शेष स्थान पाया है। ह्यूमने वाह्यजगत्, ईश्वर और आत्मा इन तीनोंके अस्तित्वको बिलकुल अस्वीकार किया है। उनका कहना है, कि इन तीन वस्तुओंका अस्तित्व स्वीकार करनेका कोई कारण भी देखनेमें नहीं आता और न इनके अस्तित्वके सम्बन्धमें कोई प्रमाण ही मिलता है।

कार्यकारण-ज्ञान (Theory of causality)-के सम्बन्धमें नूतन मतका प्रचार करके ह्यूमने अपने दार्शनिक मतकी प्रतिष्ठा की है।

ह्यूमका कहना है, कि केवल इन्द्रियज्ञान (Sensation)-के सम्बन्धमें हम लोगोंके साक्षात् सम्बन्धमें अभिज्ञता है, किन्तु इससे वाह्यजगत्के अस्तित्व पर किस प्रकार विश्वास आया? लाकका मत अवलम्बन करनेसे यह कहना पड़ेगा कि वाह्यजगत् ही इस ज्ञानका कारण है। किन्तु ह्यूमके निकट उक्त मत समीचीन नहीं समझे जानेके कारण उन्होंने कार्यकारण ज्ञानका स्वरूप कैसा है, इस सम्बन्धमें आलोचना की है।

ह्यूम कहते हैं, कि प्रचलित विश्वास-मतसे जन्य-जनकका सम्बन्ध कार्यकारणके सम्बन्धका प्रकृत स्वरूप है। कारणसे कार्यकी उत्पत्ति हुई है, यह लौकिक विश्वास अमूलक है। एककी दूसरेसे उत्पत्ति हुई है, यह जानना हम लोगोंके पक्षमें असम्भव है। हम लोग केवल घटनाके पौर्वापर्यका अवलोकन करते हैं।

केवल घटनाका पौर्वापर्य अवलोकन करके हम लोग एक घटना दूसरीका जनक है, ऐसे कार्यकारण सम्बन्ध ज्ञान पर पहुंचते हैं। कारणमें कोई अन्तर्निहित शक्ति है, यही शक्ति कार्यकी उत्पादक है, ऐसा विश्वास अमूलक है। ह्यूमका कहना है, कि हम लोगोंका शारीरिक अङ्गप्रत्यङ्ग मनके इच्छाधीन है, अर्थात् हम लोग इच्छानुसार अङ्गकी चालना कर सकते हैं। इस आत्मशक्तिसे हम लोग अपर वस्तुकी अन्तर्निहित शक्ति पर विश्वास करते हैं। ह्यूम शक्ति नामक किसी पदार्थ पर विश्वास नहीं करते। उनका कहना है, कि जिस जिस घटनाको हम लोग शक्ति-साधित समझ कर विश्वास करते हैं, विश्लेषण कर देखनेसे उनमें पौर्वापर्य सम्बन्ध व्यतीत और कुछ भी देखनेमें नहीं आता शक्ति किस प्रकार कार्य उत्पादन करती है, उसके सम्बन्धमें हम लोगोंके कोई ज्ञान नहीं है, केवल पौर्वापर्य ज्ञानसे हम लोगोंको शक्तिमें विश्वास हुआ है। हम लोग जब चाहें, हाथ पैरका सञ्चालन कर सकते हैं। साधारण विश्वासके मतसे इच्छा ही शक्तिकी प्रयोजक है, किन्तु विषयका सूक्ष्मरूपसे विश्लेषण करके देखनेसे उक्त मतका असारत्व प्रतिपन्न होगा। हम लोग इच्छानुसार हाथका संचालन कर सकते हैं। इस व्यापारसे दो घटना लक्षित होती हैं. पहली घटना हम लोगोंकी इच्छा वा मानसिक भाव और दूसरी हस्तसञ्चालन-कार्य है। इन दोनों घटनाके पौर्वापर्यके अव्यभिचारित्वके ऊपर निर्भर करके हम लोगोंको शक्ति नामक अज्ञेय पदार्थ पर विश्वास हुआ है। जिस समय हस्तसञ्चालनकी इच्छा हुई, उसी समय हस्तसञ्चालनकार्य भी सम्पन्न हुआ है। ऐसी घटनाकी बार बार अनुवृत्ति (Repetition)-से हम लोगोंको विश्वास होता है, कि हमने आत्मनियोजित शक्ति द्वारा ही हस्तसञ्चालन कार्य सम्पन्न किया है। जागतिक अन्यान्य कार्यकारणकी जगह शक्तिप्रयोग करनेसे विश्वास इसी प्रकारकी आत्मशक्तिके उपमान (Analogy) पर पैदा हुआ है। जिसे साधारण वाक्यमें कार्यकारण सम्बन्धका अव्यभिचारित्व (Necessity or invariability) कहते हैं, ह्यूमके मतसे कार्यकारणका वह अव्यभिचारित्वज्ञान अभ्यासजात (Due to custom) है। हम लोगोंने किसी पूर्ववर्त्ती घटनाविशेषके बाद ही परवर्त्ती घटनाका सङ्घटन बार बार देखा है, इसी कारण पूर्वके होनेसे परवर्त्ती होगा ही इस प्रकार विश्वास करते हैं। इसके अतिरिक्त नियति नामक किसी अज्ञेयशक्तिके दुरुच्छेद्य बन्धनको ह्यूम स्वीकार नहीं करते। दार्शनिक जान ष्टुयार्ट मिल, बेन आदि दार्शनिक पण्डितोंने आंशिक परिवर्त्तनके साथ ह्यूमका यह मत ग्रहण किया है। न्याय शब्दमें पाश्चात्यन्याय देखो।

दार्शनिक कोमत (Comte)-ने कार्यकारण-ज्ञानके सम्बन्धमें यही मत ग्रहण किया है और कितने वैज्ञानिक पण्डितोंका मत भी ऐसा ही है। वस्तुतः जो अतीन्द्रिय और अतिमानस पदार्थका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते, उन्होंने ही यह मत ग्रहण किया है। बार्कलेकी नाईं ह्यूमका भी कहना है, कि लाककी तरह केवल इन्द्रियजज्ञान (Sensation) और आइडियाओं (Ideas)-का अस्तित्व स्वीकार करनेसे ही बाह्यजगत्के अस्तित्वसूचक ज्ञानपर नहीं पहुंच सकते। किन्तु ह्यूम कहते हैं, कि बार्कलेने इस विषयकी जो मीमांसा की है वह भ्रान्तिविजृम्भित है। ह्यूमके मतसे हम लोगोंके इन्द्रियज्ञानका उद्बोध (Sensation) प्रत्यक्षसिद्ध सत्य है, इसमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं। किन्तु सेन्सेशन हम लोगोंके मनोराज्यके अन्तर्गत है, अतः इन सबसे बाह्यजगत्के अस्तित्व सम्बन्धमें कुछ भी जाना नहीं जाता। पर हां, बाह्यजगत्के सम्बन्धमें जो हम लोगोंके प्रत्यक्ष ज्ञान है, यह विश्वास हम लोगोंके मानसिक भावोंके परस्पर सम्बन्ध (Relations of ideas)-से उत्पन्न हुआ है। हम लोगोंके मानसिक भावोंका परस्पर साहचर्य (Associaton of ideas) हम लोगोंके इस विश्वासका मूल है। मानसिक भावोंका यह परस्पर सम्बन्ध किसी प्रज्ञाशक्ति द्वारा नियन्त्रित (Reason directed) प्रक्रिया नहीं है—अन्धनियमका फलमात्र है। रासायनिक प्रक्रियानुसार जिस प्रकार विभिन्न पदार्थोंके संयोगसे अभिनव धर्माक्रान्त स्वतन्त्र एक पदार्थकी उत्पत्ति होती है, ह्यूमके मतसे उसी प्रकार सेन्सेशन वा मानसिक क्रियाओंके परस्पर योगसे हम लोगोंके सभी ज्ञानों (knowledge)-की उत्पत्ति हुई है। प्रज्ञाशक्ति भी (Reason) ह्यूमके मतानुसार मनकी रासायनिक प्रक्रियासे उत्पन्न हुई है।

ह्यूमने आत्माका भी अस्तित्व स्वीकार नहीं किया है। उनका कहना है, कि ज्ञानके अलावा किसी पदार्थका जिससे अपनापन ज्ञानकी उत्पत्ति हुई है, अस्तित्व स्वीकार करनेसे आत्माका अतिमानस-अस्तित्व (Extramental existence) है अर्थात् आत्मा मनसे स्वतन्त्र एक पदार्थविशेष है, यह स्वीकार किया जाता है। ह्यूमका कहना है, कि मनसे अतिरिक्त आत्माका अस्तित्व स्वीकार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं देखी जाती। लौकिक विश्वाससे जिसको आत्मा कहते हैं, वह यथार्थमें विज्ञानस्रोत (Stream of consciousness) मात्र है और यही विज्ञानस्रोत ह्यूमके मतसे मन तथा आत्माका प्रकृत स्वरूप है। यह विज्ञानस्रोत हम लोगोंके मानसिक भावोंके अविच्छिन्न संयोगसे उत्पन्न हुआ है। आत्माके अस्तित्व पर विश्वास बाह्यजगत्के अस्तित्व पर विश्वास करनेकी तरह अमूलक है। ह्यूमका कहना है, कि बार्कलेने जो आत्माका आध्यात्मिक अस्तित्व (Ideal or spiritual existence) स्वीकार किया है, वह एक इन्द्रियज्ञान व्यतीत 'मैं' कह कर स्वतन्त्र किसी पदार्थका अस्तित्व ज्ञानगोचर नहीं होता।

बाह्यजगत् और आत्माके अस्तित्व सम्बन्धमें ह्यूमने जैसा मत प्रचार किया है, ईश्वरके अस्तित्व पर उनका विश्वास भी वैसा ही है। उन्होंने ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार करनेका कोई कारण नहीं पाया। बार्कलेने ईश्वरको हम लोगोंके यावतीय ज्ञानका मूलाधार बतलाया है। ह्यूमके मतसे ऐसा निर्देश भित्तिहीन और मनुष्यकी क्षुद्रबुद्धिके पक्षमें साहसिकता का परिचायक है। मनुष्यज्ञानका क्षुद्र परिधि ऐसे विषयके निर्देश करनेको अधिकारी नहीं है। ईश्वरके अस्तित्व सम्बन्धमें हम लोगोंको कोई ज्ञान वा धारणा नहीं है। हमारी क्षुद्र अभिज्ञता (Experience)-के मध्य ऐसे निर्देशकी कोई भित्ति पाई नहीं जाती, ईश्वरका अस्तित्व निर्देश काल्पनिक निर्देशमात्र है। ईश्वरसे हम लोगोंके सभी ज्ञानोंकी उत्पत्ति हुई है, ऐसा मत असङ्गत और भित्तिहीन है। जिस विषयमें हम लोगोंको साक्षात् सम्बन्धमें कोई अभिज्ञता नहीं है, उसे निर्देश करनेके हम लोग अधिकारी नहीं हैं।

उपरि-उक्त विवरणसे देखा जाता है, कि अभिज्ञतामूलक दर्शन (Empericism) लाक कर्तृक प्रवर्त्तित हो कर ह्यूमप्रवर्त्तित नास्तिकता और संशयवादमें पर्यवसित हुआ है। लाकने जिस भित्तिके

ऊपर अपने दर्शनकी प्रतिष्ठा की थी, ह्यूमने अपने दर्शनमें उसका न्यायानुमोदित शेष फल (Logical result) किस प्रकार खड़ा रहता है, उसे दिखलाया है। लाकने वाह्यजगत्, आत्मा और ईश्वर इन तीनों पदार्थ-का अस्तित्व स्वीकार किया था। ह्यूमने यह दिखाया है, कि लाकके दर्शनका मूल भाग स्वीकार करनेसे इन तीनों पदार्थ का अस्तित्व प्रतिपन्न नहीं किया जाता। ह्यूमका कहना है, कि मनके व्यापारसे ही समस्त पदार्थोंके ज्ञानकी उत्पत्ति हुई है। मनके ऊपर वाह्य पदार्थ की क्रिया द्वारा वाह्यजगत्‌के अस्तित्व पर ज्ञानलाभ नहीं होता, मनने ही अपनी नियमानुगत क्रिया द्वारा वाह्यजगत्‌के ज्ञानकी सृष्टि की है। परमाणु-के संयोगसे वाह्यजगत्‌की उत्पत्ति हुई है, ऐसा विश्वास साधारण है। ह्यूमके मतमें मानसिक क्रियाके योगसे हम लोगोंके सभी ज्ञानोंकी उत्पत्ति हुई है। हम लोगोंके मानसिक भावोंका परस्पर जैसा सम्बन्ध (relation of idea) है, उन उन भावोंके साथ संश्लिष्ट वाह्यजगत्‌में भी वस्तुसमूहके परस्पर सम्बन्धका अस्तित्व (Corresponding relations of facts) है वा नहीं, उन सबका ज्ञान होना ह्यूमके मतसे असम्भव है। जेम्समिल, जान ष्टुआर्ट मिल और वेन इन सब मतोंको अपने अपने ग्रन्थमें प्रतिपन्न कर गये हैं।

मध्ययुगमें दर्शनशास्त्रकी अधोगतिका प्रतिकार करनेकी इच्छासे दर्शनशास्त्रके आमूल संशोधनकी चेष्टा बेकन और देकार्ट से प्रवर्त्तित हुई थी। बेकनके दर्शनका संक्षिप्त इतिहास इसके पहले ही लिखा जा चुका है। यहां पर देकार्ट (Descartes)के दर्शनका संक्षिप्त इतिहास दिया जाता है।

देकार्ट (Descartes)

देकार्टने जिस पन्थका अवलम्बन करके अपने दर्शनका प्रचार किया, वह बेकनप्रवर्त्तित पन्थसे बिलकुल विभिन्न है। सुतरां दोनोंने जिन दो दर्शनसम्प्रदायोंकी सृष्टि की, उनमें मतका कोई सादृश्य नहीं है। बेकनने वाह्यजगत्‌का अस्तित्व स्वतःसिद्ध स्वरूप मान कर अभिज्ञता (experience)की भित्तिके ऊपर अपने दर्शनकी प्रतिष्ठा की है; पर देकार्टने बेकनकी तरह कोई भी विषय स्वतः-सिद्ध मान कर ग्रहण नहीं किया। जो सहज विश्वासके जैसा परिगणित है, उन सब विषयोंके अस्तित्व सम्बन्धमें भी भ्रान्तिको दूर करनेके लिये देकार्टने संशयकी प्रतिष्ठा की है। देकार्टका कहना है, कि तत्पूर्ववर्त्ती दर्शनसम्प्रदायसमूह विशेषतः स्कालष्टिक दर्शन जैसे भ्रान्तिजालमें जड़ित है, वैसी हालतमें सत्य-निर्णय करते समय मनको पूर्वमतसमूहके कवलसे रक्षा करना सर्वापेक्षा अधिक आवश्यक है। देकार्टके मतसे मनकी ऐसी निरपेक्ष अवस्था नहीं होनेसे सत्य-ज्ञान लाभका अधिकार उत्पन्न नहीं होता। मनको इस निरपेक्ष अवस्थाप्राप्तिके लिये सब विषयोंमें संशयविस्तार ही प्रकृष्ट पन्थ है। इस सार्वभौम संशयके दूर होनेसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है।

देकार्टके मतानुसार प्रमाण भिन्न सामान्य विषय भी ग्रहण करना अविधि है। किन्तु प्रमाणकी एक ऐसी स्वतःसिद्ध भित्तिकी आवश्यकता है जिसे प्रमाणकी जरूरत ही नहीं—वह प्रमाणके अतीत है। देकार्टका कहना है, कि आत्मसम्वित् वा आत्मबोधक (Self-consciousness) ही संशयरहित भित्ति है। सभी विषयोंमें संशय उपस्थित हो सकता है, केवल आत्मबोधमें नहीं। मैं संशय करता हूं, इस ज्ञानको और आत्मबोधकी प्रतीति-को उत्पन्न कर देता है। मैं चिन्ता करता हूं, अतएव मेरा अस्तित्व है (Cogito erg'o sum)। देकार्टने इस सूत्रसे यह प्रतिपादन किया है, कि मेरा संशय ही मेरे अस्तित्व पर विश्वास पैदा करता है।

देकार्टने आत्मज्ञान (Self-consciousness)-की भित्तिके ऊपर अपने दर्शन मनकी प्रतिष्ठा की है, इस कारण तत्प्रवर्त्तित दर्शन-सम्प्रदाय आइडियलिष्टिक दर्शन-सम्प्रदाय कहलाता है। देकार्टके नामानुसार इस दर्शनका नामान्तर कार्टेसियनदर्शन (Cartesion Philosophy) है। स्पिनोजा और लिवनिजका दर्शन देकार्टके दर्शनसे विभिन्न तो है, पर इन दोनोंके दर्शनोंकी अन्तर्निहित भित्ति देकार्टसे प्रवर्त्तित हुई है, यह साफ साफ मालूम पड़ता है। देकार्ट-प्रवर्त्तित दर्शनसम्प्रदायका कहना है, कि आध्यात्मिक प्रकृति (Spiritual nature)ने जड़प्रकृतिके ऊपर

प्रधानता प्राप्त की है ; यहां तक कि जड़प्रकृतिका अस्तित्व आध्यात्मिक प्रकृतिको ही निर्देश कर देता है। बेकन-प्रवर्त्तित दर्शनसम्प्रदायका पथ इससे बिलकुल विपरीत है। इस दर्शनमें अभिज्ञता (experience) ही हम लोगोंके ज्ञानकी भित्तिभूमि बतलाई गई है। किन्तु हम लोगोंकी अभिज्ञताकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है और इसके मध्य कितना सत्यांश है, बेकनने इन सब विषयोंकी मीमांसा नहीं की। उन्होंने अभिज्ञताको स्वतःसिद्ध मान लिया है। डेकार्टके मतसे अभिज्ञता ज्ञानकी मूलभित्ति (ultimate principle) नहीं है; वह एक क्रियामात्र है और इसका एक कर्त्ता है, यही कर्त्ता ज्ञानका मूलाधार है। अतएव अभिज्ञता मूलज्ञान नहीं है, अहंज्ञान (Self consciousness) ही सर्व ज्ञानका मूल है।

रेना डेकार्ट (Rene' Descartes)ने १५८६ ई०को फ्रान्सके टूरेन (Touraine) प्रदेशके अन्तःपाती ला-हे (La Haye) नामक स्थानमें जन्मग्रहण किया। ला-फ्लेचो (La Fleche) नामक स्थानमें जेसुट सम्प्रदायसे प्रतिष्ठित एक विद्यालयमें उन्होंने पढ़ना लिखना सीखा। कुछ काल पेरिसमें रह कर वे नीदरलैण्ड (Netherlands)-के सामरिक विभागमें प्रविष्ट हुए। पीछे उन्होंने बभेरियाके सामरिक विभागमें भी कुछ दिन तक कार्य किया। १६२५ ई०में पेरिस लौटनेके बाद उन्होंने ज्ञानतत्त्वकी आलोचनामें ध्यान दिया। ज्ञानचर्चाके व्याघातके भयसे उन्होंने अपना वासस्थान छिपा रखा। पेरिसमें प्रायः ४ वर्ष रहनेके बाद वे हालैण्ड देश गये और वहां बीस वर्ष तक ठहरे। इतने दिनों तक वे असाधारण मनोयोगके साथ दर्शनशास्त्रकी आलोचनामें नियुक्त रहे। १६४८ ई०में स्वीडनकी रानी क्रिष्टीना (Queen Christina)से आमन्त्रित हो कर वे ष्टाकहालम नगर गये और वहां कुछ दिन रहनेके बाद १६५० ई०को मृत्युमुखमें पतित हुए।

दार्शनिक डेकार्ट अनन्यसाधारण प्रतिभाके अधिकारी थे। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। वे दार्शनिक, शारीरतत्त्वविद्, ज्योतिर्विद् और गणितशास्त्रज्ञ थे। उक्त विषयोंकी उन्होंने उन्नति भी खूब की थी। विशेषतः गणितशास्त्रकी उन्नतिके लिये सारा संसार डेकार्टके निकट चिरऋणी है। वर्त्तमान समयकी विश्लेषणमूलक सूचीच्छेद-सम्बन्धीय ज्यामिति (Analytical Geometry of Conics) डेकार्टकी ही बनाई हुई है।

डेकार्टके दर्शन ग्रन्थोंमेंसे पन्थाविचार (Discourse on Method), दर्शनतत्त्व (Principles of Philosophy) और दर्शनचिन्ता वा दर्शनविवेक (Meditation of the First Philosophy) यही सब ग्रन्थ प्रधान हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि डेकार्टने आत्मज्ञान (self consciousness)को सर्वज्ञानमूल और संशयरहित नित्यज्ञान बतलाया है तथा इसी आत्मज्ञानकी भित्तिसे अन्यान्य पदार्थोंका अस्तित्व निर्णय किया है। डेकार्टका कहना है, कि आत्मज्ञानके अस्तित्वसे हम लोग पहले ईश्वरके अस्तित्व और पीछे बाह्यजगत्के अस्तित्वज्ञान (Nature) पर पहुंचते हैं।

प्रथमतः जिस पन्थका अवलम्बन करके डेकार्टने ईश्वरका अस्तित्व सप्रमाणित किया है, वही संक्षेपमें नीचे लिखते हैं।

हम लोगोंका मानसिक भाव या आइडिया (ideas) डेकार्टके मतसे तीन श्रेणियोंमें विभक्त है। पहला इन्द्रियजात मानसिक भाव (adventitious ideas) है, यह भाव हम लोगोंके मनके ऊपर बाह्यजगत्के संस्कारसे उत्पन्न हुआ है। अतएव ये सब भाव हम लोगोंके इच्छाधीन वा मनके स्वभावज नहीं हैं। दूसरा काल्पनिक मानसिक भाव है। ये भाव बाह्य जगत्की क्रियासे नहीं, मनकी क्रियासे उत्पन्न हुए हैं। तीसरा मनके सांसिद्धिक भाव (innate ideas) है। ये भाव न तो बाह्यजगत्से और न शुद्ध मनकी क्रिया ही (activities of the mind)से उत्पन्न हुए हैं— ये हम लोगोंके सहजात (inborn) हैं; हम लोगोंके मनःप्रकृतिके अन्तर्गत हैं।

डेकार्टके मतसे ईश्वरज्ञान उपरोक्त तीन श्रेणियोंमें-से शेषोक्त श्रेणीके अन्तर्गत है अर्थात् ईश्वरज्ञान मनकी सांसिद्धिक वा इनेट (innate) ज्ञान है। सांसिद्धिक ज्ञानका विशेष लक्षण यह कि यह ज्ञान प्रमाणके

प्रतीत और संशयरहित है। सांसिद्धिक ज्ञान मात्र ही अस्तित्वज्ञापक है। ज्ञान ही ज्ञेय पदार्थका अस्तित्व बतला देता है (the mere idea involves its own objective truth)।

ईश्वरज्ञान किस प्रकार सांसिद्धिक ज्ञान है, देकार्टने निम्नलिखित युक्तिसे वह दिखला दिया है। देकार्टका कहना है, कि ईश्वरको पूर्णताका आधार समझ कर हम लोग विश्वास करते हैं। किन्तु अस्तित्व (existence) पूर्णता (perfection) का एक अङ्ग है। क्योंकि जिसका अस्तित्व नहीं है, उसके सम्बन्धमें सम्पूर्ण शब्द प्रयुक्त नहीं हो सकता और जो अस्तित्व-हीन हुआ, उसको पूर्णता ही किस प्रकार रही। ईश्वर सम्पूर्ण हैं, इसलिये ईश्वर हैं ऐसा अवश्य कह सकते हैं।

उपरि-उक्त युक्तिके सिवा देकार्टने एक और स्वतन्त्र युक्तिकी अवतारणा की है। ईश्वरका अनादि, अनन्त, नित्य, पूर्ण इत्यादि कह कर जो ज्ञान है, देकार्ट कहते हैं, कि उस ज्ञानकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? वाह्य-जगत्से इस ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हुई, क्योंकि वाह्य-जगत्में सभी असीम और असम्पूर्ण हैं। मानसिक कल्पनासे भी यह ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ है, कारण कल्पना भी अभिज्ञतासापेक्ष है। सुतरां यह ज्ञान हम लोगोंका सहजात (inborn) है। किन्तु यह ज्ञान सांसिद्धिक होने पर भी, इसका उत्पत्तिस्थल कहां है, इस विषयकी मीमांसामें देकार्टने कहा है, कि कारणके तारतम्यानुसार कार्यका तारतम्य हुआ करता है। सुतरां ईश्वर अनादि, अनन्त, सम्पूर्ण हैं; ऐसे ज्ञानका मूल अनादि, अनन्त और सम्पूर्ण ईश्वरके सिवा और कोई भी वस्तु नहीं हो सकती। ईश्वरज्ञान ईश्वरका अस्तित्व बतला देता है। यह ज्ञान स्वप्रकाश है।

देकार्टने उपरि-उक्त जिन सब युक्तियोंका अव-लम्बन करके ईश्वरका अस्तित्व सप्रमाणित किया है उन्हें साधारणतः अण्टोलाजिकल वा अध्यात्ममूलक युक्ति (Ontological arguments) कहते हैं।

ईश्वरके अस्तित्वसे देकार्टने वाह्यजगत्का अस्तित्व प्रमाणित किया है। देकार्टका कहना है, कि जो सम्पूर्ण जीव हैं वे नैतिक हिसाबसे भी सम्पूर्ण हैं; अतएव वे हम लोगोंके मनमें भ्रम पैदा नहीं करेंगे। ईश्वरने हम लोगोंको जो कुछ ज्ञान वा विश्वास दिया है, वह ज्ञान कभी भी मिथ्या नहीं हो सकता। कारण ईश्वर नैतिक हिसाबसे सम्पूर्ण हैं। वाह्यजगत्के अस्तित्व पर जो विश्वास है वह भी देकार्टके मतसे इसी श्रेणीका है; सुतरां यह भी मिथ्या नहीं हो सकता। देकार्टने ईश्वरकी इस स्वाभाविक निष्ठाको 'ईश्वरकी नैतिक निष्ठा' (Veracity of God) कहा है।

ईश्वरने हम लोगोंके मनमें वाह्यजगत्के ज्ञानका उदय कर दिया है। अतएव देकार्टके मतसे यह ज्ञान मिथ्या नहीं हो सकता। अब यह जानना है, कि भ्रमकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? इस तत्त्वके प्रसङ्गमें उन्होंने कहा है, कि अज्ञान और हम लोगोंके मानसिक भावोंकी अस्पष्टता (Want of clearness and distinctness)-से भ्रमकी उत्पत्ति हुई है। सत्यासत्यका यही आदर्श है, कि मनका जो भाव जिस परिमाणमें स्पष्ट है वह उसी परिमाणमें सत्य है। हमें लोगोंको सतासे वञ्चित करनेके अभिप्रायसे ईश्वरने हम लोगोंकी मानसिक वृत्तियोंकी सृष्टि नहीं की। मानसिक भावोंके परस्पर संमिश्रणसे अस्पष्टताका ज्ञान हो कर भ्रमकी उत्पत्ति हुआ करती है।

वाह्यजगत्का अस्तित्व प्रतिपन्न करके वाह्यजगत्-का स्वरूप क्या है, इस सम्बन्धमें देकार्ट कहते हैं, कि विस्तृति (extension) वाह्यजगत्का प्रकृतिगत विशेष लक्षण है। वाह्य पदार्थके वर्ण, आकृति आदि गुण अस्थायी हैं, किन्तु विस्तृतिके स्थायित्व वा नाशकी सम्भावना नहीं है। विस्तृति (extension) जड़का स्वरूप लक्षण है, इस कारण देकार्टके मतानुसार जड़पदार्थविहीन स्थान (vacuum or empty space) जगत्में नहीं है। जहां विस्तृति है, वहां जड़पदार्थ भी विद्यमान है। अतएव देकार्टके मतसे सारा संसार अवच्छेदविहीन जड़राशिसे परिपूर्ण है। यही कारण है, कि देकार्टने परमाणु नामक छोटे छोटे जड़बिन्दुओंका अस्तित्व अस्वीकार किया है। किन्तु सारा संसार यदि जड़राशिसे पूर्ण रहे, तो गति

(Movement) किस प्रकार सम्भव है? इस प्रश्नके उत्तरमें देकार्टने कहा है, कि जगत्की यह समुद्रोपम जड़राशि आवर्त्त (Vortex) वेगसे घूमती है और यही आवर्त्तसमूह जागतिक गतिका कारण है। यह उपग्रहादि इसी आवर्त्तवेगसे चालित होते हैं। देकार्टके मतसे यह गतिशक्ति जड़में आप ही आप उत्पन्न नहीं हुई, किसी दूसरी शक्तिने नियोजित हुई है। ईश्वरने ही आवर्त्तयोगसे जड़पदार्थमें गतिशक्ति दी है।

विस्तृति जिस प्रकार जड़का स्वरूप लक्षण है, उसी प्रकार ज्ञान (Thought) वा सम्वित् अथवा चेतन्य मनका स्वरूप लक्षण है। किन्तु चैतन्य (Thought) और विस्तृति (Extension)-के मध्य कोई सम्बन्ध नहीं है। जो चैतन्य है वह व्यापक पदार्थ नहीं है। व्यापक पदार्थ भी चैतन्यका स्वरूप नहीं है। सुतरां मन और जड़ इन दो विभिन्न प्रकृतिक पदार्थोंका सम्बन्ध किस प्रकार साधित हुआ है? देकार्टके मतमें मस्तिष्ककी सहायतासे शरीर और मनका सुतरां जड़ और मनका सम्बन्ध है अर्थात् परस्परके ऊपर क्रिया प्रतिक्रिया स्थापित हुई है। मस्तिष्कके केन्द्रस्थान पर 'पिनियल ग्लाण्ड' (Pineal gland) नामक एक स्थान है। यहां मस्तिष्कके दो भाग परस्पर संयुक्त हुए हैं। देकार्टका कहना है, कि इसी पिनियलग्लाण्डसे मनके साथ शरीरका संयोग हुआ है। मनमें किसी प्रकारकी इच्छाका उदय होनेसे वह इच्छा उक्त स्थान पर आकर शारीरिक चेष्टामें पर्यवसित होती है। फिर वाह्यशरीरके ऊपर अपनी अपनी क्रिया दिखलानेसे शरीरका वह व्यापार पिनियलग्लाण्डमें पहुंच कर वाह्यवस्तुका ज्ञान और उसके क्रियाजनित सुख दुःखका ज्ञान उत्पन्न कर देता है।

मन और जड़का पूर्वोक्त यही एकमात्र सम्बन्धके सिवा दूसरा और कोई सम्बन्ध नहीं है। ये दो सम्पूर्ण विभिन्नप्रकृतिक पदार्थ हैं और अपने अपने नियमानुसार चालित होते हैं। इसी कारण देकार्ट जड़ प्रकृतिकी कार्यावली पर किसी आध्यात्मिक शक्ति (Spiritual agency)-को स्वीकार नहीं करते। जागतिक समस्त व्यापार ही जड़प्रकृतिके नियमानुसार (Mechanical laws) साधित होता है और जड़जगत् यन्त्रशक्ति-समूहका नियोगस्थल (Automaton) विशेष है। जीवशरीर जड़जगत्के अन्तर्गत है, इस कारण देकार्टने उसे भी इसी श्रेणीके अन्तर्गत मान लिया है। देकार्टके मतसे प्राण जड़प्रकृतिका अंशविशेष है, मनके साथ इसका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। सुतरां प्राणकी रक्षाके लिये जो सब शारीरिक क्रियाएं साधित हुई हैं, वे मनके अज्ञातसारसे यन्त्रकी तरह साधित हुआ करती हैं। हम लोगोंके भुक्तद्रव्योंका परिपाक और रक्तसञ्चालन क्रिया किस प्रकार साधित होता है वह हम लोग नहीं जानते। जीवशरीरकी यान्त्रिकता (Animal automatism) सम्बन्धीय इस मतको तत्परवर्त्ती किसी किसी दार्शनिक और विज्ञानविद्ने ग्रहण किया है।

देकार्टने अपने दर्शनके जिस अंशमें मनस्तत्त्व (Psychology)-की आलोचना की है, उसी अंशमें मानसिक क्रियाओंका श्रेणीविभाग भी बतलाया है। उन्होंने हम लोगोंकी ज्ञानवृत्तिको (Cogitatio) प्रथमतः कार्यकारक (Actio) और भावमूलक (Passio) इन दो विभागोंमें विभक्त किया है। उपरिउक्त दो विभागोंका पुनः श्रेणीविभाग करके उन्होंने मनकी क्रियाओंको कुल निम्नलिखित ६ श्रेणियोंमें विभक्त किया है:—(१) ज्ञानेन्द्रियसमूह, (२) स्वाभाविक वृत्तियां (Natural appetites), (३) भावमूलक वृत्तियां (The passions), (४) कल्पनाशक्ति (imagination), (५) प्रज्ञाशक्ति (Reason or intellect) और (६) इच्छाशक्ति (The will)। जिन पन्थका अवलम्बन करके ये सब विभाग साधित हुए हैं, उन्हें निर्देश करते समय देकार्टने कहा है, कि ज्ञानमूलक वृत्तियोंका वाह्यजगत्के साथ सम्बन्ध है। ये सब वाह्यजगत्की प्रतिकृति प्रदान करते हैं। इच्छामूलक तथा भावमूलक क्रियाएं (olitions and passions) परोक्षभावमें वाह्यजगत्के साथ संसृष्ट होने पर भी मुख्यतः आत्माके ऊपर निर्भर करती हैं।

अनुभूतिमूलक वृत्तियों (Passions)-की आलो-

चनाके समय देकार्ट मनस्तत्त्वके क्षेत्रसे नीतितत्त्व (Ethics) पर पहुंचे हैं। देकार्टके मतसे भाव-मूलक वृत्तियां छः है, विस्मय (Wonder), प्रेम (Love), विद्वेष वा घृणा (Hate), वासना (Desire), आनन्द (Joy) और दुःख (Sorrow)। अस्वाभाविक घटना नयनगोचर होने पर विस्मयका आविर्भाव होता है। विस्मय हम लोगोंके मनमें विषयानुसार होता है और भक्तिरस अथवा अवज्ञाको बढ़ाता है। मङ्गलजनक पदार्थके प्रति हम लोगोंका मन आकृष्ट होनेसे हम लोगोंके मनमें प्रेम (Love)-का विकाश होता है और अमङ्गलजनक वा अहितकर पदार्थके प्रति जो विरक्ति उत्पन्न होती है, वह हम लोगोंके मनमें घृणाका सञ्चार किया करती है। वासनासे आशा (Hopes) और आशा पूर्ण होनेके सम्बन्धमें संशयके उपस्थित होने पर उससे भय (Fear)-का सञ्चार होता है। आशाके पूर्ण होनेसे आनन्द (Joy)-की उत्पत्ति होती है और आशाके भङ्ग होनेसे विषाद (Grief)-का सञ्चार होता है। आनन्द जीवनके पक्षमें मङ्गलकर और विषाद दुःखजनक है। जब आनन्द ही जीवनका सर्वश्रेष्ठ मङ्गल है, तब आनन्दलाभ ही जीवनका मुख्य उद्देश्य है। देकार्टके मतसे आनन्द निवृत्तिमूलक है। प्रवृत्तियोंको संयत करनेसे (subjections of the passions) आनन्द-की उत्पत्ति होती है।

देकार्टके मतसे विवेकज्ञानजनित शान्ति सुख ही (Peace of conscience) प्रकृत सुख है और धर्म द्वारा ही यह सुख प्राप्त किया जा सकता है।

देकार्टने अपने दर्शनमें मन और जड़की परस्पर क्रियाके सम्बन्धमें युक्तिसङ्गत मीमांसा नहीं की है। उन्होंने मन और जड़ दोनोंको ही दो स्वतन्त्र, स्वाधीन, विभिन्न प्रकृतिक पदार्थ स्वीकार किया है अथच एक दूसरेके ऊपर अपनी क्रियाशक्ति दिखलाता है उसकी जो व्याख्या उन्होंने की है, उसे प्रकृत मीमांसा नहीं कह सकते। उनके परवर्त्ती दार्शनिक ज्यूलिंकस (Geu-linex)-ने पहले ही यह आपत्ति उत्थापन की है।

ज्यूलिंकस।

ज्यूलिंकस स्वयं इस विषयमें जिस सिद्धान्त पर पहुंचे हैं, उसका नाम निमित्तवाद (Occassionalism) है। ज्यूलिंकसका कहना है, कि मन और जड़ ये दोनों विभिन्न प्रकृतिके हैं तथा स्वतन्त्र और स्वाधीन पदार्थ हो कर अपनेसे एक दूसरे पर क्रियाशक्ति प्रकाश करता है, ऐसा विश्वास असङ्गत है। मन जड़के ऊपर अथवा जड़ मनके ऊपर बिन्दुमात्र भी क्रियाशाली नहीं है। किन्तु प्रचलित लौकिक विश्वास है, कि हम लोग इच्छामात्र जड़जगत्‌में परिवर्त्तन साधन कर सकते हैं, पर्यालोचना करनेसे इस बातका प्रकृत तात्पर्य मालूम हो जायगा। मैं इच्छामात्र हस्तसञ्चालन कर सकता हूं, इस वाक्यका प्रकृत तात्पर्य क्या है, पहले यही देखना चाहिये। हस्तसञ्चालन करनेकी इच्छा मनकी एक क्रिया विशेष है और हस्तसञ्चालनक्रिया जड़जगत्‌की क्रिया है। अब प्रश्न यह उठता है, कि हम लोगोंकी क्रिया किस प्रकार जड़जगत्‌की क्रियाका उत्पादन कर सकती है? ज्यूलिंकसका कहना है, कि ईश्वर ही इन दोनोंकी क्रिया उत्पत्तिके निमित्त वा साधन हैं। साक्षात् सम्बन्धमें मन और जड़के मध्य किसी प्रकारकी क्रिया नहीं हो सकती। जब हमारे मनमें हस्तसञ्चालन करनेकी इच्छा होती है, तब ही ईश्वर हमारे हाथमें यह क्रियानुयायी गतिशक्ति प्रदान करते हैं और कार्य इतना जल्द सम्पन्न हो जाता है, कि इस गतिशक्तिकी मनुष्यने स्वयं ही प्रवर्त्तना की है, ऐसा विश्वास उत्पन्न कर देते हैं। बाह्यजगत्‌की क्रियावलीका ज्ञान भी इसी प्रकार हुआ करता है। हम लोगोंकी इच्छा और प्राकृतिक व्यापार केवल ईश्वरकी कार्यशक्तिको बढ़ा देता (Causal occasionals) है।

ज्यूलिंकसके दर्शनने किस प्रकार स्पिनोजा (Spinoza)-प्रवर्त्तित अद्वैतवादका पथ परिष्कार कर दिया वह उनके दर्शनका शेषांश पढ़नेसे मालूम हो जाता है। ज्यूलिंकसने समस्त संसारके मध्य एकमात्र ईश्वरकी ही क्रियाशक्ति बतलाया है। अन्यान्य सभी पदार्थ ससीम और असम्पूर्ण हैं, इस कारण वे क्रियाशाली नहीं (Passive) हैं। सुतरां जागतिक

जो सब क्रियाएं सम्पन्न होती हैं, वे ईश्वर-प्रणोदित हैं जीवात्मा (Finite spirit) परमात्माका अंशविशेष है। हम लोगोंके मनमें सोमत्वका ज्ञान नहीं रहनेसे हम लोगोंको आत्मसाक्षात्कार लाभ होता है अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा एक हैं, यही ज्ञान उत्पन्न होता है।

ज्यूलिंक्सका नीतितत्त्व भी उनके साधारण मतका अनुयायी है। जब संसारमें हम लोगोंके कार्यकारी क्षमता नहीं है, तब हमें उद्देश्यप्रणोदित हो कर कार्य करनेकी इच्छा होना अनुचित है। ज्यूलिंक्सके मतसे इस संसारक्षेत्रमें हम लोग दर्शकवृन्द मात्र हैं। ईश्वर हम लोगोंके मनके सदसत्भाव (dispositions) व्यतीत हम लोगोंके निकट क्रियाकी प्रत्याशा नहीं करते, क्योंकि क्रिया वा कर्मफलके ऊपर हम लोगोंका कोई कर्तृत्व नहीं है। विषयवासनाका परिहार कर ईश्वरके ऊपर निर्भर करके जीवनयापन करना जीवनका स्थायी उद्देश्य है। ईश्वरमें निष्काम प्रेम (Self-renouncing love) और प्रज्ञानुवर्त्ती हो कर चलना धर्मका स्वरूप है। ईश्वरके प्रति वश्यभाव (humility) धर्मसमूहका शिरोभाग है। मानव साधारणतः सुखान्वेषी हैं, इस कारण वे असुखी हैं। सुखका छायाकी तरह अनुगमन करनेसे वह अन्तर्हित हो जाता है। धर्मजनित विमल आनन्द ही प्रकृत सुख है। सुख धर्मका फलस्वरूप (result) है, धर्मका उद्देश्य (aim) नहीं है। ज्यूलिंक्सका नैतिक मत स्पिनोजा (Spinoza) और काण्ट (Kant)के नैतिक मतोंके जैसा है। स्पिनोजाकी तरह उन्होंने भी ईश्वर प्रेमको ही सब धर्मोंका सार बतलाया है तथा काण्टके मतानुयायी नैतिक नियमोंका अव्यभिचारित्व स्वीकार किया है।

ज्यूलिंक्स जगत्‌में एकमात्र ईश्वरका कार्यकारित्व प्रतिपादन करके जिस अद्वैतवादकी सूचना कर गये हैं वह अनेकांशमें ईश्वरतत्त्वमूलक है। किन्तु दार्शनिक स्पिनोजाने जिस अद्वैतवादकी प्रतिष्ठा की, वह प्रकृतिवादमूलक (of a naturalistic character) है।

स्पिनोजा (Spinoza)

दार्शनिक बेनिडिक्टस स्पिनोजा (Benedictus de Spinoza)ने १६३२ ई०को हलैण्डके अन्तर्गत आमष्टरडम नगरमें जन्मग्रहण किया। वे यहूदी-वंशके थे। धर्मनिर्यातनके डरसे उनके पूर्वपुरुष स्पेन अथवा पुर्तगाल देशसे भाग कर हलैण्डमें रहने लगे थे। स्पिनोजाने बचपनमें पैतृकधर्मानुमोदित प्रणालीके अनुसार शिक्षा प्राप्त की थी। पीछे उन्होंने भानडेन एण्ड (Vanden Ende) नामक किसी भाषावित् चिकित्सकसे लैटिन भाषा सीखी। इसके बादसे उनका धर्ममत परिवर्त्तित होने लगा। इसीसे उनके स्वजातियोंने प्रकाश्यसभामें उन्हें विधर्मी ठहराया। इस घटनाके बाद नाना स्थानोंमें परिभ्रमण कर १६७७ ई०को हेगानगरमें उनका देहान्त हुआ।

स्पिनोजाने जो सब दर्शनग्रन्थ बनाये हैं उनमें 'एथिक्स' (Ethics) नामक ग्रन्थ ही विशेष प्रामाण्य है। इस ग्रन्थमें उन्होंने अपना दर्शन सविस्तार लिपिबद्ध किया है।

देकार्टका दार्शनिक मत पढ़नेसे स्पिनोजाको दर्शनशास्त्रमें अनुराग उत्पन्न होता है। ज्यूलिंक्सकी तरह उन्होंने भी देकार्ट दर्शनके असङ्गत अंशका प्रतिवाद किया। गणितशास्त्रोंका प्रमाण अकाट्य समझ कर स्पिनोजाने गणितशास्त्रोक्त प्रमाणोंको ही प्रमाणका आदर्श स्वीकार किया है। गणितशास्त्रोक्त प्रमाणके अनुयायी दर्शनग्रन्थके प्रचारकी इच्छा उनकी बलवती हुई। उनका मत है, कि ऐसे भावोंमें दर्शनशास्त्रका प्रणयन करनेसे उस सम्बन्धमें और किसी प्रकारका मतवैषम्य नहीं रहेगा। इसी विश्वासके वशवर्त्ती हो कर उन्होंने अपने दर्शनमें भी इस प्रथाका अनुवर्त्तन किया है। ज्यामितिशास्त्रमें जिस प्रकार संज्ञा, स्वीकृत विषय और स्वतःसिद्धकी सहायतासे समस्त प्रतिज्ञाएं सप्रमाणित की गई हैं, उसी प्रकार स्पिनोजाने भी कुछ अविसंवादित मूलसूत्रोंका अवलम्बन करके उनसे सभी अन्यान्य विषयोंको प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है। इससे यह साफ साफ मालूम होगा, कि स्पिनोजाका दर्शनविज्ञान सम्मत उपायका अवलम्बन करके बनाया

गया था। गणितशास्त्रके अनुकरण पर दर्शनशास्त्रकी रचना करनेसे उक्त शास्त्रका उद्देश्य किस परिमाणमें साधित होगा, उस सम्बन्धमें बहुतेरे सन्देह करते हैं। स्पिनोजा-प्रवर्त्तित इस प्रथाके फलसे यह ज्ञात हुआ है, कि स्पिनोजाने जिस मूलसूत्रका अवलम्बन करके जिन जिन विषयोंकी मीमांसा करनेमें कोशिश की है उस मूलसूत्रसे जितना प्रमाण वा अनुमान सम्भवपर है, उसे उन्होंने अच्छी तरह दिखानेकी चेष्टा की है। किन्तु ऐसी प्रथाके फलसे उनकी मीमांसामें एकदेशदर्शिताका दोष उत्पन्न हुआ है। दर्शनका मीमांसित विषय गणितके मीमांसित विषयकी तरह नहीं है, यह केवल संख्याके ऊपर निर्भर नहीं करता। ऐसे विषयको एक ओरसे देखनेसे उनकी यथायथ मीमांसा नहीं होगी। एक ही विषयको भिन्न भिन्न ओरसे देख कर उस विषयका याथार्थ्य मालूम हो जायगा। किन्तु फलसे यह साबित होता है, कि स्पिनोजा एक ही विषयकी मीमांसामें एक सूत्रका अवलम्बन करके जिस सिद्धान्त पर पहुंचे हैं, अपर सूत्रका अवलम्बन करके उसी विषयके विपरीत सिद्धान्त पर उपनीत हुए हैं। इस प्रकार उनके मतोंमें अनन्य विरोध दोष लगते हैं। गणितके अनुकरण पर दर्शनका रचा जाना ही उक्त दोषोंका कारण है।

स्पिनोजाका दार्शनिक मत उनके जीवितकालमें कालोपयोगी नहीं होनेसे उसका विशेषरूपसे आदर नहीं हुआ। वर्त्तमान शताब्दीके प्रथम भागमें काण्टके परवर्त्ती दर्शनसम्प्रदायोंके आविर्भावके बादसे मतके ऐक्यनिबन्धनने स्पिनोजाके दर्शनसुधीमण्डलकी दृष्टि आकर्षण की है। स्पिनोजाके दर्शनमें स्पेन्सर, बेन आदि प्रणीत मनोविज्ञानशास्त्रके अनेक पूर्वाभास भासते हैं।

स्पिनोजाने अपने दर्शनमें आलोचित विषयोंको निम्नलिखित ५ भागोंमें बांटा है।

(१) ईश्वर और जगत्।

(२) आत्माकी प्रकृति और उत्पत्ति-निर्णय।

(३) मानसिक भावों (feelings)-की उत्पत्ति और प्रकृतिनिर्णय।

(४) मानव प्रकृतिकी अधीनता और कार्यावली (of human conduct as determined by feelings or passions)।

(५) मानवप्रकृतिकी स्वाधीनता (of human conduct as determined by self)।

स्पिनोजाने पहले ही देकार्ट प्रवर्त्तित मन और शरीरके सम्बन्धविषयक मतोंका प्रतिवाद किया है। देकार्टका मत यदि यथायथ भावमें ग्रहण किया जाय, तो उससे यही प्रतिपन्न होता है, कि मन और शरीरका परस्पर क्रियासम्बन्ध होनेमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु किस प्रकार उक्त सम्बन्ध स्थापित हुआ है, वह हम लोग नहीं जानते। ज्यूलिंकसने ईश्वरको मन और जड़को परस्पर क्रियाका साधनभूत बतला कर जो मीमांसा की है, स्पिनोजाके मतसे वह भी देकार्टके मतकी एक प्रकारकी प्रतिध्वनि है। उनका कहना है, कि "ईश्वर करते हैं" और "मैं नहीं जानता हूं" ये दो प्रायः समार्थसूचक हैं। स्पिनोजा उपरि-उक्त विषयको जिस मीमांसा पर पहुंचे हैं, वह दोनोंसे स्वतन्त्र है। वे कहते हैं, कि मन और जड़ नामक दो पृथक् पदार्थ (substance) विद्यमान नहीं है; यह एक ही पदार्थके दो विभिन्न दिक्‌मात्र है। सुतरां हम लोगोंके निकट जो मनके ऊपर जड़की क्रिया वा जड़के ऊपर मनकी क्रियाके जैसा प्रतीयमान होता है, वह हम लोग एक पदार्थको विभिन्न ओरसे देखते हैं, इसलिये ऐसा मालूम पड़ता है। एक ओर देखनेसे जो विस्तृतिशाली (जड़) (Extension) है वही दूसरी ओर ज्ञानशाली (चित्) (Thought) प्रतीयमान होता है। स्पिनोजाके मतसे जगत्‌में दो स्वाधीन अथच परस्पर क्रियाविशिष्ट पदार्थोंका अस्तित्व नहीं रह सकता। क्योंकि परस्पर क्रियाशाली होनेसे उनकी स्वाधीनताका अस्तित्व रहा कहां? स्पिनोजाके मतसे जगत्‌में एकमात्र पदार्थ (Substance) विद्यमान है। और जागतिक सभी पदार्थ इसी पदार्थके विभिन्न गुणाश्रयका विकाशमात्र है। संसारमें जो नानात्व कह कर हम लोगोंका विश्वास है, वह भ्रममात्र है।

ईश्वरतत्त्वकी आलोचनाके समय स्पिनोजाने पहले ही

पदार्थ (Substance)-की संज्ञा प्रदान की है। स्पिनोजाके मतसे जो स्वाधीन और स्वप्रकाश है अर्थात् जिसका अस्तित्व और किसी पदार्थके अस्तित्व पर निर्भर नहीं करता तथा जो अन्य किसी वस्तुकी सहायतासे प्रकाशित नहीं होता, वह द्रव्य कहलाता है ("By substance I mean that which exists in or by itself and is conceived in or by itself")। ईश्वर शब्द स्पिनोजाके मतसे इस पदार्थका नामान्तरमात्र है। पदार्थ एक एवं अद्वितीय और अनन्त है। क्योंकि सान्त होनेसे पदार्थ वा ईश्वरमें सीमाका आरोप किया गया। जो असीम है उसके स्वाधीनत्व कहां? अतएव वह पदार्थ नहीं कहला सकता। पदार्थ सब विषयोंका कारण हो कर भी स्वयं कारणरहित (Uncaused) है। पदार्थ स्वयं ही अपने अस्तित्वका कारण (causasive) है। स्पिनोजाने ईश्वरको जो संज्ञा प्रदान की है उससे उन्होंने ईश्वरको अनादि एवं अनन्त पदार्थ बतलाया है।

ईश्वरसे किस प्रकार जगत्‌की उत्पत्ति हुई है, उसकी मीमांसामें स्पिनोजाने कहा है, कि ईश्वरने जगत्‌की सृष्टि नहीं की अर्थात् जगत् ईश्वरसे स्वतन्त्र एक सृष्ट पदार्थ नहीं है। जगत् ईश्वरकी प्रकृतिका मलीभूत है और प्रकृतिके साथ जड़ित है। जगत् प्रकृतिका धर्म है, एकको दूसरेसे विच्युत करनेका उपाय नहीं है।

अब प्रश्न उठ सकता है, कि यदि एक पदार्थ वा ईश्वर भिन्न द्वितीय सत्ताका अस्तित्व नहीं है, तो जगत्‌में विभिन्न धर्माक्रान्त विभिन्न पदार्थोंका अस्तित्व कहांसे आया? स्पिनोजाके मतसे इस प्रश्नकी मीमांसा यह कि जगत्‌में जो सब पदार्थ विभिन्न समझे जाते हैं, वे स्वरूपतः विभिन्न नहीं हैं, एक ही पदार्थके विभिन्न गुणयोगमें विकाशमात्र हैं।

गुण (Attributes) किसे कहते हैं और इस गुणसमूहका स्वरूप कैसा है? स्पिनोजाने इस विषयका ऐसा सिद्धान्त किया है। बुद्धि द्वारा जिसे हम लोग पदार्थका सार समझते हैं अर्थात् जिसको ले कर पदार्थका पदार्थत्व है, उसीका नाम गुण है ("By attribute I mean that which the intellect perceives as contributing the essence of substance")। गुणावली नहीं रहनेसे हम लोग पदार्थका स्वरूप नहीं जान सकते थे। गुणके रहनेसे ही पदार्थ हम लोगोंके निकट प्रकाश पाता है। पदार्थ अनादि और अनन्त होनेके कारण गुणावलम्बी भी अनादि तथा अनन्त है। ईश्वरमें प्रत्येक गुण ही अनादि अनन्तरूपमें विराजमान है। ईश्वरका गुण अनन्त है, इसीलिये हम लोग समस्त गुण नहीं जानते, केवल दो गुणोंसे हम लोग अवगत हैं। पहला विस्तृति (extension) है। यह हम लोगोंके निकट वाह्यजगत्‌रूपमें प्रतिपन्न होती है। दूसरेका नाम ज्ञान (Thought) है, यह हम लोगोंके मनोराज्यके अस्तित्वकी गवाही देता है।

स्पिनोजाने एक जगह ईश्वर वा पदार्थको निरुपाधि (indeterminate) कहा है। कारण ईश्वरमें यदि उपाधिका आरोप किया जाय, तो उनमें सीमाका निर्देश किया जाता है। क्योंकि उपाधिमात्र ही सीमासूचक (Every determination is limitation) है। फिर दूसरी जगह उन्होंने ईश्वरको अनन्तगुणका आधार बतलाया है। अतएव उनके मतसे ईश्वर अनन्त उपाधिविशिष्ट हैं। इन दोनों मतका किस प्रकार सामञ्जस्य विधान किया जाता है, इस विषयकी मीमांसामें भिन्न भिन्न पण्डितोंने भिन्न भिन्न मत प्रकाशित किया है। एक श्रेणीके पण्डितोंका मत है, कि जिसे हम लोग गुण कहते हैं, यथार्थमें उसका ईश्वरमें अस्तित्व नहीं है। हम लोगोंके मनने ही ईश्वरमें केवल गुणावलीका आरोप किया है। अर्थात् हम लोग ईश्वरका अस्तित्व उपलब्ध करते समय जिस गुण द्वारा उसका अनुभव करते हैं वह हम लोगोंके मनकी क्रिया वा धर्मविशेष है। दूसरी श्रेणीके पण्डित कहते हैं, कि गुण केवल हम लोगोंके मनका धर्म वा अवस्था ही नहीं है, ईश्वरमें इनका अस्तित्व भी है। स्पिनोजा स्पष्टभावमें गुणावलीको पदार्थका प्रकृतस्वरूप कह गये हैं। फिर स्पिनोजा जब पदार्थ वा ईश्वरको अनन्त गुणके अनन्त आधारके

स्वरूप बतला गये हैं, तब ऐसे निर्देशसे ससीमत्वका आरोप नहीं हो सकता। शेषोक्त मत अनेकांशमें समीचीन होने पर भी स्पिनोजाके दर्शनमें जो इन विभिन्न मतोंकी सूचना है, उसमें सन्देह नहीं।

अभी प्रश्न यह हो सकता है, कि जब ईश्वर एक अद्वितीय और अनन्त गुणके आधार हैं एवं जगत्‌में अन्य पदार्थका अस्तित्व नहीं है, तब जगत्‌में इन समस्त गुणमय ससीम पदार्थोंका आविर्भाव किस प्रकार हुआ? इस प्रश्नके उत्तरमें स्पिनोजाने कहा है, कि जगत्‌में जो सब वस्तु हम लोगोंके निकट पृथक् पृथक् तथा स्वाधीन समझी जाती हैं, स्वरूपतः वे पृथक् नहीं हैं और जगत्‌में एक भिन्न दो स्वाधीन द्रव्यों (Substance)-का अस्तित्व सम्भवपर नहीं है। इसलिये वे सब उस एक तथा अद्वितीय पदार्थकी विभिन्न अवस्था (Modes) मात्र हैं। सीमाविशिष्ट होनेसे जागतिक सभी पदार्थ स्वप्रकाश नहीं हैं, अन्य पदार्थोंकी सहायताके बिना ये सब स्वयं हम लोगोंके निकट व्यक्त नहीं हो सकते। इस श्रेणीकी सभी वस्तुएं ससीम हैं, इसलिये वे एक दूसरीकी सीमा निर्देश कर देती हैं और उनमेंसे प्रत्येककी निर्दिष्ट सीमासे हम लोगोंको इन वस्तुओंका ज्ञान उत्पन्न होता है। यथार्थमें यदि देखा जाय, तो ऊर्मिमाला जिस प्रकार समुद्रकी है, जागतिक सभी पदार्थ भी उसी प्रकार ईश्वरकी ही अवस्था विशेष है।

पहले कहा जा चुका है, कि ईश्वरके अनन्त गुणके मध्य विस्तृति (Extension) और ज्ञान (Thought) इन दोनोंसे हम लोग अवगत हैं। गति (Motion) और स्थिति (Rest) ये दो विस्तृति गुणकी दो विशिष्ट अवस्था (Modes) हैं। बुद्धि और इच्छा (Undertanding and will) ज्ञान वा चैतन्यकी अवस्था मात्र है। ये सब वस्तु विकार और नियतिके अधीन है। ईश्वर सभी विषयोंके नियन्ता हैं, उन्हें नियन्त्रित करनेको कोई वस्तु विद्यमान नहीं है। ईश्वर आदि प्रकृति हैं—वे बुद्धि, इच्छाशक्ति, गतिशक्ति आदि परिवर्त्तनमूलक गुणके अतीत हैं। सुतरां स्पिनोजाके मतसे "ईश्वर जगत्‌के आदि पदार्थस्वरूप (Substance) हैं। वे जगत्‌के एकमात्र कारणस्वरूप वा शक्तिस्वरूप (Power) तथा चैतन्यस्वरूप (Universal consciousness) हैं।"

बाह्य और अन्तर्गतके समस्त व्यापार स्पिनोजाके मतसे कार्यकारण-सम्बन्धके सहयोगसे नियन्त्रित होते आ रहे हैं। गुणमय जगत्‌का कोई भी व्यापार स्वनियन्त्रित नहीं है। बाह्य और अन्तर्जगत्‌की कार्यावलीके प्रति दृष्टिपात करनेसे यह अच्छी तरह समझा जाता है, कि कार्यकारणका शृङ्खल आदिसे ले कर अन्त तक विस्तृत है। गुणमय जगत्‌का कारणसमूह आदि कारण (First or ultimate cause) नहीं है, ये सब अवान्तर कारणमात्र (Second causes) हैं। बाह्य और अन्तर्जगत्‌का कार्यकारणशृङ्खल समानान्तर भावमें चलता है, किन्तु एकके ऊपर दूसरेकी कोई कार्यकारी क्षमता नहीं है। जड़जगत्‌में कारणमात्र ही जड़ है और मनोजगत्‌में एक मानसिक भाव दूसरे मानसिक भावका कारण है। मानसिकभावका जड़कारण नहीं हो सकता; लेकिन दोनोंके मध्य जो सम्बन्ध है, स्पिनोजाके मतसे वह परस्पर दोनोंके प्रति कार्यकारित्वशक्तिके लिये नहीं है। एक ही पदार्थके दो दिक् मात्र हैं, इसीसे ऐसे सम्बन्धका ज्ञान उत्पन्न होता है। यदि एक हिसाबसे देखा जाय, तो जो मनोजगत् है वही दूसरे हिसाबसे जड़जगत्‌के जैसा प्रतीयमान होगा। चैतन्य और जड़ एक ही पदार्थका विभिन्न प्रकाशमात्र है, सुतरां उनके मध्य यदि एकता भी रहे, तो आश्चर्य ही क्या!

आत्माका स्वरूप कैसा है? इस सम्बन्धमें स्पिनोजाका कहना है, कि जिस प्रकार विभिन्न जड़परमाणुके संयोगसे शरीरकी उत्पत्ति हुई है, उसी प्रकार विभिन्न मानसिक भावोंके संयोगसे आत्माका उद्‌भव हुआ है। स्पिनोजाने मन और जड़का जैसा सम्बन्ध निर्णय किया है, उससे दोनोंको बिलकुल एक दूसरेसे विच्युत करना असम्भव है। जहां एक रहेगा, वहां दूसरेका अस्तित्व अवश्यम्भावी है। जहां जड़ है वहां मन भी है और जहां मन है वहां जड़का अस्तित्व ध्रुव निश्चित है। अतएव स्पिनोजाके मतसे आत्माका स्वरूप भी बिलकुल जड़जगत्‌से विच्युत नहीं है। स्पिनोजा आत्माको शरीरकी मानसिक प्रतिकृति (idea of actual body)

बतला गये हैं। उनके मतसे शरीर भी मानसिक-भावा-नुयायी प्रतिक्षतिके नियमानुसार जड़जगत्‌की विस्तृति-मात्र है। स्पिनोजाने आत्माका जैसा स्वरूप बतलाया है, उससे आत्माकी स्वतन्त्रताकी रक्षा किसी भी मतसे नहीं की जाती। मानसिक भावसमष्टि (Totality of idea) ले कर यदि आत्माका अस्तित्व सम्पूर्ण हुआ, तो आत्मचैतन्य (Self-consciousness)-का स्थान रहा कहां? आत्मज्ञान ही सर्वज्ञानका मूल है। स्पिनोजाके मतसे आत्मामें आत्मज्ञानका अस्तित्व स्वीकार करनेका कोई उपाय नहीं है।

ज्ञानार्जनी वृत्तियों (Cognitive faculties)-की आलोचना कालमें स्पिनोजाने कहा है, कि हम लोगों-की ज्ञानार्जनोवृत्तियोंकी क्रिया साधारणतः तीन श्रेणियोंमें विभक्त की जा सकती है।

प्रथम इन्द्रियजात ज्ञान, द्वितीयतः प्रज्ञाजात ज्ञान, तृतीयतः सहज वा स्वतःसिद्ध ज्ञान। इनमेंसे द्वितीय और तृतीय श्रेणीका ज्ञान—प्रज्ञाजात (rational knowledge) और सहज (intuitive knowledge) ये दोनों ही अभ्रान्त और सत्यनिर्णायक हैं। तृतीय श्रेणीके ज्ञान अर्थात् इन्द्रियजात ज्ञानसे हम लोगोंके भ्रमकी उत्पत्ति हुई है। इन्द्रियजात ज्ञानमात्र ही असम्पूर्ण है, क्योंकि इन्द्रियजात ज्ञान पदार्थका एक-देशदर्शी है। किन्तु इन्द्रियजात ज्ञान असम्पूर्ण होनेके कारण बिलकुल भ्रमपूर्ण नहीं है। इस असम्पूर्ण ज्ञानको जब हम लोग सम्पूर्ण समझ कर ग्रहण करते हैं, तब ही भ्रमका उदय होता है। इन्द्रिय जात ज्ञान हमलोगोंको पदार्थसमूहकी केवल अवस्था ज्ञान करता है, उसका स्वरूप जानने नहीं देता। प्रकृतज्ञान हम लोगोंको असीमत्वके परिचयसे वस्तुका स्वरूप निर्देश करता है। इन्द्रियजात ज्ञानसे ऐसे ज्ञानके उदय होनेकी सम्भावना नहीं; प्रज्ञा (reason)-से ही ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है।

भावमूलक वृत्तियों (Passions and emotions)-की आलोचनाकालमें स्पिनोजाने बहुत कुछ देकार्टके मतका अनुवर्तन किया है। किन्तु दोनोंमें प्रधान प्रभेद यही है, कि देकार्टने जिस प्रकार इच्छाशक्तिकी स्वतन्त्रता और स्वाधीनता (Freedom of the will) स्वीकार की है, स्पिनोजा उस प्रकार इच्छाशक्तिकी स्वाधीनताको स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है, कि जागतिक सभी वस्तु नियन्त्रित होती आ रही हैं, कोई भी वस्तु नियन्ता नहीं है। मानवकी इच्छा-शक्ति भी इसी श्रेणीकी अन्तर्गत है, इसका व्यतिक्रम नहीं है। बाह्यजगत्‌में जिस प्रकार प्रत्येक वस्तु-का कारण विद्यमान है, अन्तर्जगत्‌में उस प्रकार नहीं है।

जगत्‌में जितनी वस्तुएं हैं सबोंकी अपने अपने जीवनके स्थायित्वकी ओर विलक्षण चेष्टा है। किसी भी वस्तुका विनाश स्वयंमें प्रवर्त्तित नहीं होता, बाह्यकारण द्वारा संघटित हुआ करता है। मनुष्यकी इच्छाशक्ति (Voluntas)-की स्वाभाविक गति भी इसी ओर है। यह इच्छाशक्ति जब मानसिक प्रवृत्ति-मात्र है, तब इसका नाम भालण्टस वा वासना (Desire) है और इच्छाशक्तिकी जीवन संरक्षणी चेष्टा जब बहि-र्जगत्‌में प्रकाश पाती है, तब इसे स्वाभाविक वृत्ति (appetite) कहते हैं।

एतद्व्यतीत सुख दुःखबोध वासनाके साथ जड़ित है। स्पिनोजाके मतसे सुख (pleasure) जीवनीशक्तिकी वृद्धि और दुःख जीवनीशक्तिका ह्रास करता है। हम लोगोंकी समस्त शारीरिक वृत्तियों द्वारा जीवनसंरक्षण-कार्य साधित होता है और सुखदुःख-बोध विषयकी मात्रा निर्देश कर देता है। यही कारण है, कि हम लोग स्वभावतः सुखकामना और दुःखनिवृत्तिकी चेष्टा करते हैं। जिस वस्तु द्वारा हम लोगोंके सुखकी वृद्धि होती है उसके प्रति अनुराग (love) और जो हम लोगोंके सुखका अन्तराय अथवा दुःखका प्रवर्त्तक है उसके प्रति द्वेष वा विराग (hate) उत्पन्न होता है।

मनुष्यकी सभी कार्यावली क्या आत्मस्वार्थकी ओर नियोजित है? परार्थपरता क्या मानवकी स्वभाव-गत नहीं है? इस प्रश्नके उत्तरमें स्पिनोजाने कहा है, कि मानवजीवनका परम मङ्गल अन्यान्य सुखोंके साथ जड़ित है और सबोंके सुखवर्द्धन व्यतीत वह प्राप्त नहीं होता।

स्पिनोजाने नैतिक उद्देश्यसे प्रणोदित हो कर अपने दर्शनशास्त्रका प्रणयन किया है। उनके मतसे दर्शनशास्त्र मनमें तत्त्वज्ञानका उन्मेष करके हम लोगोंको नैतिक उन्नतिको ओर ले जाता है और नैतिक सम्पूर्णता ही स्पिनोजाके मतसे जीवनका सार उद्देश्य है। इसीसे उन्होंने अपने दर्शनके मलग्रन्थका 'एथिक्स' (ethics) वा नीतिशास्त्र नाम रखा है। उनके ग्रन्थका दर्शनांश नैतिकांशका सहायक मात्र है।

स्पिनोजाके मतमें मानवजीवनकी सम्पूर्णता (Perfection) नैतिक कार्यावलीकी जड़ है। यह सम्पूर्णता किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है, उसके उत्तरमें उन्होंने कहा है, कि सम्पूर्णता लाभ प्रयत्नसापेक्ष है; जिस वस्तुका जिस परिमाणमें प्रयत्न (Activity) है, वह उसी परिमाणमें सम्पूर्ण है। किन्तु प्रयत्नका मूल कहां है? इसके उत्तरमें उनका कहना है कि जिस वस्तुकी कार्यावली जिस परिमाणमें स्वनियन्त्रित है, वह वस्तु उस परिमाणमें क्रियाशील है। मानव-मनकी ज्ञानार्जन वृत्तियां (Cognitive faculties) क्रियाशील, किन्तु भावमूलक वृत्तियां (Affections or passions) क्रियाशक्तिहीन हैं।

स्पिनोजाने हम लोगोंकी इच्छाशक्ति (will)को ज्ञानमूलक बतलाया है। इच्छामें ज्ञानको नियन्त्रित करनेकी क्षमता नहीं है, परन्तु वह ज्ञान द्वारा नियन्त्रित हुआ करती है। किसी विषयकी सम्मति वा असम्मति इच्छाकी क्षमतासापेक्ष है। जिसे सत्य समझ कर उपलब्ध कर सकते हैं उसे सत्य मान कर स्वीकार (Affirm) नहीं करना स्पिनोजाके मतसे असम्भव है। इच्छाके दो अंश हैं, वासना (desire) और चेष्टा (volition)। इनमेंसे वासना इन्द्रियजात और कल्पना मूलक ज्ञान (perception and imaginary) द्वारा नियन्त्रित हुआ करती है एवं चेष्टा (volition proper) प्रज्ञानियन्त्रित है। वासनामूलक ज्ञान विनश्वर वस्तुकी ओर दौड़ता है; किन्तु अविनश्वर पदार्थ प्रज्ञामूलक ज्ञानका विषय है। असम्पूर्ण ज्ञानसे हम लोगोंके विषय-वासना उत्पन्न होती है। जब प्रज्ञाशक्ति द्वारा हम लोग इस ज्ञानका असम्पूर्णत्व प्राप्त करते हैं, तब हम लोगोंकी विषयवासनाकी निवृत्ति होती है। सत्यासत्यनिर्णायक ज्ञान भी ईश्वरोपलब्धि प्रज्ञाशक्तिसापेक्ष है। मानवका मन जितनी ही वस्तुओंका स्वरूपत्व उपलब्ध करता है, उतनी ही उसकी प्रकृति ईश्वरकी ओर दौड़ती है। ईश्वरके साथ वस्तुओंका सम्बन्ध क्या है? इसका निर्णय कर सकनेसे ही वस्तुओंके स्वरूप ज्ञानकी उपलब्धि होती है।

प्रज्ञासे ईश्वरके प्रति जो प्रेम उत्पन्न होता है ('intellectual love towrards God") वही स्पिनोजाके मतसे सब धर्मका सार है। धर्मके समान दूसरा कुछ भी नहीं है, इसीसे धर्मका पुरस्कार धर्म ही है। ईश्वरप्रेमसे मनमें शान्तिका विकाश होता है और इसी प्रेमसे प्रकृत स्वाधीनता लाभ की जाती है। ऐसी अवस्थामें आत्माका विनाश नहीं है। क्योंकि ईश्वरके प्रति मानवका जो प्रेम है वह ईश्वरके अपने ही प्रति अपना प्रेममात्र है और ईश्वरका निजके प्रति प्रेम अविनश्वर है।

पहले कहा जा चुका है, कि सक्रेटिसकी तरह स्पिनोजाने अपने नैतिकतत्त्वको ज्ञानमूलक भित्तिके ऊपर प्रतिष्ठित किया है। स्पिनोजाने जागतिक अन्यान्य क्रियाकलापोंकी तरह नीतिकतत्त्व व्यापारोंकी भी वैज्ञानिक व्याख्या की है। संसारकी अन्यान्य घटनाओंके सदृश नैतिक जीवनकी घटनावली स्पिनोजाके मतसे घटना मात्र है, उनका प्रकृतिगत विशेषत्व कुछ भी नहीं है। अन्यान्य घटनाओंकी उत्पत्ति जिस प्रकार कारण सहयोगसे हुआ करती है, नैतिक घटनामें भी उस नियमका कुछ व्यतिक्रम नहीं है। इस हिसाबसे धर्माधर्मका स्वरूप कैसा है, स्पिनोजाने उसे निर्णय करनेकी चेष्टा की है। स्पिनोजाके मतसे जो जीवनके पक्षमें हितकर है, वही धर्म है। जीवनके पक्षमें हितकर कहनेसे हम लोग क्या समझते हैं? इसके उत्तरमें उन्होंने कहा है, कि जो हम लोगोंके आत्मसंरक्षणमें सहायता पहुंचाता है, जो हम लोगोंके जीवनको सम्पूर्णताकी ओर ले जाता है और जो हम लोगोंके ज्ञानकी वृद्धि करता है, वही हम लोगोंके पक्षमें हितकर तथा मङ्गल-जनक है। ज्ञानका अन्तरायमात्र ही हम लोगोंके

पक्षमें अमङ्गलजनक हैं। कारण, ज्ञान ही इच्छाशक्ति-को नियन्त्रित करके हम लोगोंके जीवनको सम्पूर्णता-की ओर ले जाता है।

जीवनकी नैतिक त्रुटि स्पिनोजाके मतसे जागतिक अन्य असम्पूर्णताकी तरह असम्पूर्णतामात्र है। अज्ञानसे नैतिक त्रुटि उत्पन्न होती है। पाप ज्ञानकृत नहीं है, तमःसे यह उत्पन्न हुआ है। अतः पाप भ्रम विशेष मात्र है।

स्पिनोजाने इच्छाशक्तिकी सम्पूर्ण स्वाधीनता (Freedom of the Human will) स्वीकार नहीं की है। उनका कहना है, कि मानव जब जगत्का एक अंश विशेष है, तब इसकी सम्पूर्ण स्वाधीनता स्वीकार करना असम्भव है। परन्तु मनुष्यजीवनका एक भावी उद्देश्य है और बाधा विघ्नका अतिक्रम करके उस उद्देश्यको सफल करनेके लिये उसकी स्वाभाविक चेष्टा है। मनुष्य-जीवन जिस परिमाणमें प्रज्ञानियन्त्रित अर्थात् स्वनियन्त्रित (Self-determined) है, उसी परि-माणमें उसे स्वाधीन कह सकते हैं। स्पिनोजाके मतसे स्वाधीनता शब्दका प्रकृत अर्थ आत्म-नियन्त्रण (Self-determinism) है। हम लोगोंका मन प्रज्ञा-नियन्त्रित हो कर जो हम लोगोंके पक्षमें मङ्गलजनक ज्ञान करता है, उसके प्रति वह हम लोगोंकी प्रवृत्ति पैदा कर देता है।

व्यक्तिगत अमरत्व (Immortality of the in-dividual)के सम्बन्धमें स्पिनोजाके ग्रन्थमें किसी प्रकार-का स्पष्ट निर्देश नहीं मिलता। आत्माकी सभी कार्यावली ईश्वरमें पर्यवसित होती है, इस कारण ईश्वरमें आत्माका लय नहीं हो सकता (exist eter-nally in god)। किन्तु यहां पर आत्मामें व्यक्ति-गत स्वतन्त्र अस्तित्व रह सकता है वा नहीं, इस विषय-में स्पिनोजाने कुछ भी नहीं कहा है।

स्पिनोजाके मतसे जगत् मङ्गलमय ईश्वरका स्वरूप है, इस कारण जगत्में अमङ्गल नामक किसी पदार्थ-का अस्तित्व नहीं है। जगत्की प्रत्येक क्रिया मङ्गलाभिमुखी है। जगत्में अमङ्गल (evil)का अस्तित्व स्वीकार करनेसे ईश्वरको अमङ्गलका कर्त्ता मानना पड़ता है। हम लोग भ्रमवशतः जगत्में अमङ्गलकी सत्ता विद्यमान देख सकते हैं। अमङ्गल नामक किसी पदार्थकी मात्रा निर्देश नहीं की जा सकती। जो एकके लिये अमङ्गलजनक है, वही जगत्के लिये मङ्गलजनक हो सकता है; फिर जो एक व्यक्तिके पक्षमें अमङ्गलजनक है, वह पीछे उसीके पक्षमें मङ्गलजनक भी है। अकपर कष्टदायक बतला कर हम लोग अनेक परिणाममधुर पदार्थोंको भी अमङ्गल कहा करते हैं। जगत्में कोई भी पदार्थ बिलकुल अमङ्गल नहीं है। यहां तक कि पाप जो अमङ्गलका आधार समझा जाता है, वह भी सम्पूर्णरूपसे मङ्गलसे विच्छिन्न नहीं है; पर हां, पुण्यकी तुलनामें वह मङ्गलसे बहुत कुछ कम है, इसीसे पापका स्वरूप इतना घृणित समझा गया है। सत् (good) और असत्में (bad) में भी ऐसा ही प्रभेद देखा जाता है। पहले ही कहा जा चुका है, कि स्पिनोजाके मतसे जगत्में अमङ्गलका अस्तित्व नहीं है; इसीसे स्पिनोजाने जिस वस्तुका जिस परिमाणमें अस्तित्व है, उसे उसी परिमाणमें मङ्गलजनक कहा है। पुण्यका अस्तित्व पापकी अपेक्षा अधिक (possess greater degree of reality) है। इस कारण पुण्य पापकी अपेक्षा अधिक मङ्गलजनक है और पाप भी बिलकुल अस्तित्वविहीन नहीं है; अतएव पापमें भी मङ्गलका अंश है। फिर भी व्यक्तिगत जीवनके पक्षमें जो सब अमङ्गल समझे जाते हैं, वे अपरिहार्य हैं। यह अमङ्गल हम लोगोंके स्वभावगत ससीमत्व (finitude)का अवश्य फल है। जिन सब पदार्थों द्वारा हम लोगोंका जीवन सीमाबद्ध है, वही सब पदार्थ हम लोगोंके ऊपर अपनी अपनी क्रिया-शक्ति विस्तार कर हम लोगोंको गन्तव्य पथसे विच्युत करके अमङ्गल उत्पादन करते हैं। मनुष्यकी पाप-प्रवृत्ति बाह्यजगत्के कार्यसे उद्भूत हुई है और जो व्यक्ति जिस परिमाणमें प्रज्ञाधीन है, वह उसी परिमाणमें पापविमुक्त है।

पहले कहा जा चुका है, कि स्पिनोजाके मतमें जो व्यक्तिगत अमङ्गल है, जगत्के पक्षमें वह अमङ्गल

नहीं है। ईश्वर सुसम्पूर्ण हैं, अतएव उनसे जो जगत् उत्पन्न हुआ है, वही सर्वोत्कृष्ट है। इससे उत्कृष्ट जगत्की कल्पना करना भी हम लोगोंके पक्षमें असम्भव है।

उपरि-उक्त संक्षिप्त विवरणमें स्पिनोजाके रचित अद्वैतवाद (Pantheism) और इस अद्वैतवादके अनुसार वे अन्यान्य विषयोंमें जिस मीमांसा पर पहुंचे हैं, उसका थोड़ा आभास दिया गया। दार्शनिक मलब्रान्स (Malebranche)का दर्शन डेकार्टके दर्शनके आधार पर प्रणीत होने पर भी ऐतिहासिक क्रमके अनुरोधसे उनका दार्शनिक मत स्पिनोजाके दर्शनके बाद सन्निविष्ट किया गया।

मलब्रान्स।

मलब्रान्सके दार्शनिक मतके साथ बार्कलेका मत बहुत कुछ मिलता जुलता है। मलब्रान्सके मतसे हम लोगोंको ईश्वरोपलब्धि मनोषायोग (intuitively)से साक्षात् सम्बन्ध (immediately) साधित हुआ करती है।

ज्ञान ही मानवात्माका प्रकृत स्वरूप है। ज्ञानमय आत्मा बाह्यजगत्के विषयोंसे अवगत है,—इस विषयकी मीमांसामें मलब्रान्सने कहा है, कि आइडिया वा मानसिक प्रतिकृति (idea) द्वारा हम लोगोंको बाह्यजगत्का ज्ञानलाभ होता है। किन्तु बाह्यजगत्की प्रतिकृति किस प्रकार हम लोगोंके मनमें उदित होती है? इसके उत्तरमें उनका कहना है, कि ये सब हम लोग ईश्वरसे प्राप्त करते हैं। ईश्वरने जिस आदर्श पर बाह्यजगत्की सृष्टि की है, बाह्यजगत्की उसी आदर्शानुरूप मानसिकप्रतिकृति (Idea) ईश्वरकी आध्यात्मिक प्रकृति (Spiritual nature)के अन्तर्निहित है एवं अपनी आध्यात्मिक प्रकृतिवशतः हम लोग इन सब मानसिक प्रतिकृतियोंके योगसे बाह्यजगत्का विषय जानते हैं, नहीं तो साक्षात् सम्बन्धमें हम लोगोंके बाह्यजगत्का कुछ भी ज्ञान न रहता। अतएव मलब्रान्सके मतसे ईश्वर ही समस्त ज्ञानका मूल है और ईश्वरमें ही समस्त ज्ञानकी परिणति हुई है।

मलब्रान्सका नैतिकमत भी पूर्वोक्त मतके अनुरूप है। व्यक्तिगत ज्ञानकी परिणति जिस प्रकार साधित होती है, नैतिक जीवनकी परिणति भी उसी प्रकार है। हम लोगोंके व्यक्तिगत जीवनके अन्तस्तलमें ईश्वरके प्रति स्वाभाविक अनुराग है। ईश्वरानुराग हम लोगोंके नैतिक जीवनका मूल उद्देश्य है और यही हम लोगोंका परममङ्गल (highest good) है। हम लोगोंका इस स्वाभाविक प्रवृत्तिके रहते हुए भी मतिविपर्यय क्यों होता है? इसके उत्तरमें उन्होंने कहा है, कि देह-सम्बन्ध रहनेसे ही हम लोग पाप और भ्रमके अधीन होते हैं। शत्रु रहनेके लिये हम लोग पापके वशवर्त्ती नहीं हैं, शत्रुके अधीन होनेसे हम लोग पापके वशवर्त्ती होते हैं। हम लोगोंकी शारीरिक कार्यावली हम लोगोंकी प्रवृत्तियोंका कारण नहीं है, उपलक्ष (Occasion) मात्र है। शरीर और मनके सम्बन्ध विषयमें मलब्रान्स ज्यूलिंकस-प्रतिष्ठित निमित्तवाद (Occasionnalism)-का समर्थन कर गये हैं। जागतिक अन्यान्य घटनाओंकी तरह ईश्वर हम लोगोंकी शारीरिक क्रियाओंके भी कारण हैं। ईश्वरके प्रति मनुष्यका जो प्रेम है, मलब्रान्सके मतसे वह ईश्वरके अपने प्रति अपनी आनुरक्तिका नामान्तर मात्र है। क्योंकि मानवात्मा समूह परमात्माका अंशविशेष है। अंशसमूहका सम्पूर्णके प्रति तथा सम्पूर्णका अंशके प्रति जो प्रेम है, वह सम्पूर्णके अपने प्रति प्रेमके दो विभिन्न दिक् मात्र हैं।

उपरि-उक्त मतवाद अद्वैतवादका परिपोषक है। मलब्रान्सने धर्मकी ओर (From the theological stand-point)से इस मतकी प्रतिष्ठा करनेकी कोशिश की है।

लिबनिज (Leibnitz)।

पहले कहा जा चुका है, कि स्पिनोजाके परवर्ती दार्शनिकोंके मध्य लिबनिज (Leibnitz)-का दर्शन विशेष उल्लेखयोग्य है। स्पिनोजाने जिस प्रकार अपने दर्शनमें एक (one)से किस प्रकार बहुत्व (many)-का विस्तार हुआ है, उसे दिखानेकी चेष्टा की है, लिबनिजने इसका विपरीत पन्था अवलम्बन करके बहुत्व

(Many)-का स्वरूप क्या है तथा बहुत्वके संयोगसे हो जो एकत्वका ज्ञान हुआ है, उसे सप्रमाणित करने-को कोशिश की है।

जड़वाद (Materialism)-की ओरसे लिबनिजने अपना दर्शन प्रचार नहीं किया। उनके मतमें बहु (Many) जड़वादी पण्डितोंसे और एपिक्यूरियन दार्शनिक पण्डितोंसे प्रचलित परमाणु नहीं है। लिबनिजका दर्शन अध्यात्मवादमूलक-(Idealistic) है। उन्होंने जड़जगत्‌को परमाणुसमूहको समष्टि न मान कर आध्यात्मिक शक्तियोंका विकाशस्थल माना है। जो जड़जगत् जड़वादी पण्डितोंके मतसे चैतन्यहीन है, लिबनिजके मतसे वही जगत् चैतन्य-का आधार है। जड़वादी पण्डितोंके मतसे मन जड़पदार्थका रूपान्तर मात्र है। एपिक्यूरियन दर्शनके मतसे मन प्रथमावस्थामें क्रियाशून्य है। बाह्यजगत्‌ने मनमें अपनी क्रिया फैला कर मनका जड़त्व दूर किया है तथा मनको चैतन्ययुक्त और क्रियाशील बना डाला है। लिबनिज प्रभृति अध्यात्मपण्डितोंके मतसे मन जड़-प्रकृतिका रूपान्तरमात्र नहीं है, प्रत्युत जड़प्रकृतिका अस्तित्व और ज्ञान हम लोगोंके मन-सापेक्ष हैं। सम्पूर्ण जड़वाद और सम्पूर्ण अध्यात्मवाद ये दोनों ही मत एकदेशदर्शी हैं। प्रथमोक्त मतावलम्बी पण्डितोंने मनका स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार किया है। उनके मतसे एक जड़ पदार्थ छोड़ कर जगत्‌में दूसरी वस्तुका अस्तित्व है ही नहीं। द्वितीय श्रेणीके पण्डितोंने उसी प्रकार मनके सिवा अन्य किसी पदार्थका अस्तित्व स्वीकार नहीं किया है। यह शेषोक्त दार्शनिक मत अध्यात्म-वाद (Idealism) कहलाता है। साधारणतः यह एक नामसे परिचित होने पर भी इसके मध्य अनेक साम्प्रदायिक प्रकारभेद हैं। लिबनिजका विशेष दार्श-निक मत क्या है, वह संक्षेपमें लिपिबद्ध किया जाता है।

दार्शनिक गाटफ्रियेड विलहेलम लिबनिज (Gott fried Wilhelm Leibnitz)-ने १६४६ ई०में लिपजिग नगरमें जन्मग्रहण किया। उनके पिता उक्त स्थानमें अध्यापनाका कार्य करते थे। आईन व्यवसायी होनेके अभिप्रायसे उन्होंने १६६१ ई०में आईन पढ़ना आरम्भ कर दिया। १६६३ ई०को दर्शनशास्त्रमें व्युत्पत्तिसूचक उपाधि पानेके लिये उन्होंने एक प्रबन्ध लिख कर Ph D.की आख्या प्राप्त की।

इस प्रबन्धमें उनके भावी दर्शनमतका अनेक आभास पाया जाता है। लिपजिकसे वे जेना (Jena) और पीछे जेनासे आल्टडर्फ (Altdorf) नगरको गये। यहां उन्होंने आईन परीक्षामें उत्तीर्ण हो कर डि० एल० (D. L.)-की उपाधि पाई थी। लिबनिजने जीविका निर्वाहके लिये किसी विशेष वृत्तिका अवलम्बन न किया। वे जर्मनी और भियेना आदि स्थानोंकी राज-सभामें जा कर राजसभासद् तथा दौत्यकर्म प्रभृति अनेक उच्च राजकीय कार्योंमें नियुक्त हुए थे। १६७२ ई०में फ्रान्सके सम्राट् १४वें लुई (Louis XIV)-को जर्मनी पर आक्रमण करनेसे रोकने तथा मिश्र पर आक्रमण करनेका परामर्श देनेके लिये लिबनिज पेरिस नगर गये। वहांसे वे लण्डन था कर विद्यानुरागी ड्यूक जान फ्रेडरिक (John Frederic)-के सन्निस्वरूप नियुक्त हो हेनोभर (Hanover) नगरमें पधारे। उनके जीवनकी शेषावस्थाका अधिकांश इसी स्थानमें व्यतीत हुआ।

१७१६ ई०में उनकी मृत्यु हुई। लिबनिज प्रूसिया-की विदुषी रानी सोफिया चार्लट (Sophia Charlotte)-के विशेष प्रीतिभाजन थे और इनके प्रवर्त्तनवशतः ही उन्होंने अपनी थियडिसी (Theodicae) नामक दार्श-निक ग्रन्थकी रचना की। भियेना नगरीमें रहते समय प्रिन्स यूजिन (Prince Eugene)-ने उन्हें अपने मतानुयायी एक दर्शन ग्रन्थ बनानेके लिये अनुरोध किया। तदनुसार मनाडोलाजी (Monadologie) नामक दर्शनग्रन्थ रचा गया। लिबनिजके जैसे सभी शास्त्रों-में व्युत्पन्न पण्डित प्रायः दृष्टिगोचर नहीं होते। केवल दर्शनशास्त्र ही नहीं, इतिहास, गणित आदि अन्यान्य विषयोंमें भी वे अनेक ग्रन्थ बना गये हैं। सम्पूर्णभावमें न्यूटन (Newton)-के साहाय्यनिरपेक्ष हो कर उन्होंने अपने प्रथानुसार डिफरेनसियल-कालकुलस (Differen-tial-calculus) नामक गणितशास्त्रके नूतन तत्त्वका उद्भावन किया।

डेकार्ट और स्पिनोजाकी तरह लिवनिजने भी पदार्थका (substance) स्वरूप कैसा है? इस तत्त्वको ले कर अपना दर्शन आरम्भ किया है। डेकार्ट-विस्तृति (extension)-को पदार्थका स्वरूप बतला गये हैं। स्पिनोजाके मतसे हम लोग ईश्वर कहनेसे जो समझते हैं, वही प्रकृत पदार्थ (substance) है और जगत्‌में एक ही पदार्थ विद्यमान है, दूसरे पदार्थका अस्तित्व ही नहीं है। लिवनिजका मत इन दोनों मतसे विभिन्न है। उनके मतमें पदार्थ एक भी नहीं है और विस्तृति भी पदार्थका प्रकृत स्वरूप नहीं है। संसारमें असंख्य पदार्थ विद्यमान हैं। इन संख्यातीत पदार्थोंका लिवनिजने मनाड (Monad) नाम रखा है।

लिवनिज द्वारा अभिहित ये मनाड जड़वादी पण्डितोंके कथित परमाणुसमूह (Atoms)-के स्थानीय नहीं हैं। जड़ीय-परमाणु क्षुद्रादपि क्षुद्र होने पर भी जड़पदार्थ कह कर व्याप्ति रहनेसे उनका पुनः विभाग किया जा सकता है, किन्तु मनाड विभाज्य नहीं हैं; इनका सूक्ष्म अस्तित्व विभाज्य नहीं है। इसीसे लिवनिजने इन मनाडको जड़ातीत सूक्ष्मपदार्थ-विशेष (Metaphysical points) स्वीकार किया है। इसके अलावा परमाणुसमूहके मध्य जिस प्रकार गुणानुसार कोई श्रेणी विभाग नहीं है, सभी परमाणु एकस्वभावाक्रान्त हैं, किन्तु मनाड उस प्रकार नहीं है, मनाडोंके गुणानुसार पार्थक्य है; एक मनाड दूसरेके अनुरूप नहीं है। संसारमें किसी दो वस्तुमें स्वभावगत एकता नहीं है। यह मनाड सभीमें स्वनियन्त्रित है, एकके ऊपर दूसरेकी क्रियाशक्ति नहीं है।

मनाडका प्रकृतस्वरूप लिवनिजके मतसे स्वाधीन अर्थात् अनन्य-निरपेक्ष है। किन्तु स्वाधीन अस्तित्व (Independent existence) स्वनियन्त्रित कार्यावली (Self-activity)-के ऊपर निर्भर करता है। शक्ति (Eorce or power) स्वनियन्त्रित कार्यावलीकी जड़ है; सुतरां शक्ति स्वाधीन अस्तित्वकी अङ्गभूत है, अतएव मनाडसमूहका प्रकृतस्वरूप है। लिवनिजके मतसे प्रत्येक मनाडके मध्य शक्ति अन्तर्निहित है। धनुसकी डोरीके टूटनेसे प्रच्छन्न शक्ति बाधाविमुक्त हो जाती है; उस समय धनुस जिस प्रकार पहलेकी तरह सीधा हो जाता है उसी प्रकार मनाडोंकी अन्तर्निहित शक्ति भी बाधाविमुक्त हो कर कार्यक्षम हो जाती है।

पहले कहा जा चुका है, कि लिवनिजके मतसे जगत्‌में मनाड व्यतीत अन्य पदार्थका अस्तित्व नहीं है। सारा संसार मनाडसमूहकी समष्टिमात्र है। निर्जीव जड़पदार्थसे ले कर शक्तिके आधारस्वरूप ईश्वर तक सभी लिवनिजके मतसे एक एक मनाड है। पहले लिखा गया है, कि एक मनाडके ऊपर दूसरेकी क्रियाशक्ति नहीं है। यदि ऐसा हो, तो किस प्रकार परस्पर क्रियाकी प्रतीति उत्पन्न होती है? इसके उत्तरमें लिवनिजने कहा है, कि एक मनाडसे जगत्‌के समस्त चित्र प्रतिफलित हुए हैं ("Mirrors the whole universe")। किन्तु मनाडके प्रकृतिगत गुणानुसार ऐसी शक्तिका भी तारतम्य है।

लिवनिजकथित मनाड आध्यात्मिक पदार्थ विषयमें जगत्‌में कहीं भी चैतन्यका बिलकुल विलोप नहीं है। केवल मनाडोंके प्रकृतिगत पार्थक्यानुसार चित्‌शक्तिके विकाशकी पृथकता है। लिवनिजके मतसे मानवात्मा (Human-soul) एक मनाडविशेष है, इसमें चित्‌शक्तिका विकाश अनेकांशमें सम्पूर्ण है। फिर जिन्हें हम लोग निर्जीव जड़पदार्थ कहते हैं, लिवनिजके मतमें वे मोह वा निद्रावशसे लुप्तचैतन्य मानाडसमूहविशेष (Sleeping monads) हैं। इन सबमें उत्तरोत्तर क्रमसे चितशक्तिका क्रम विकाश साधित हो कर पीछे ईश्वरमें इनका पूर्णविकाश साधित हुआ है। शक्ति मनाडोंका प्रकृत स्वरूप है, इस कारण जगत्‌में कहीं भी शक्तिके अस्तित्वका अभाव नहीं है। यह शक्ति विभिन्न प्रकृतिके मनाडोंमें विभिन्न क्रिया उत्पादन करती है। चेतनविहीन जड़में यह शक्ति गतिका काम (Motion) देती है; फिर उद्भिद् जगत्‌में यह जीवन-संवर्द्धनी और जीवनसंरक्षणी शक्तिस्वरूप कार्य करती है। इतर प्राणीजगत्‌में चित्‌शक्तिका विकाशमात्र हुआ है, सुतरां यह शक्ति प्राणीजगत्‌में चित्‌शक्तिस्वरूप स्फुरित है। मानवमें इस शक्तिका नामान्तर प्रज्ञा (Reason) है।

(Many)-का स्वरूप क्या है तथा बहुत्वके संयोगसे हो जो एकत्वका ज्ञान हुआ है, उसे सम्प्रमाणित करने-की कोशिश की है।

जड़वाद (Materialism)-की ओरसे लिवनिजने अपना दर्शन प्रचार नहीं किया। उनके मतमें बहु (Many) जड़वादी पण्डितोंसे और एम्पिरिकाल दार्शनिक पण्डितोंसे प्रवर्त्तित परमाणु नहीं है। लिवनिजका दर्शन अध्यात्मवादमूलक-(Idealistic) है। उन्होंने जड़जगत्‌को परमाणुसमूहको समष्टि न मान कर आधग्रात्मिक शक्तियोंका विकाशस्थल माना है। जो जड़जगत् जड़वादी पण्डितोंके मतसे चैतन्यहीन है, लिवनिजके मतसे वही जगत् चैतन्य-का आधार है। जड़वादी पण्डितोंके मतसे मन जड़पदार्थका रूपान्तर मात्र है। एम्पिरिकाल दर्शनके मतसे मन प्रथमावस्थामें क्रियाशून्य है। बाह्यजगत्‌ने मनमें अपनी क्रिया फैला कर मनका जड़त्व दूर किया है तथा मनको चैतन्ययुक्त और क्रियाशील बना डाला है। लिवनिज प्रभृति अध्यात्मपण्डितोंके मतसे मन जड़-प्रकृतिका रूपान्तरमात्र नहीं है, प्रत्युत जड़प्रकृतिका अस्तित्व और ज्ञान हम लोगोंके मन-सापेक्ष हैं। सम्पूर्ण जड़वाद और सम्पूर्ण अध्यात्मवाद ये दोनों हो मत एकदेशदर्शी हैं। प्रथमोक्त मतावलम्बी पण्डितोंने मनका स्वतन्त्र अस्तित्व स्वोकार किया है। उनके मतसे एक जड़ पदार्थ छोड़ कर जगत्‌में दूसरी वस्तुका अस्तित्व है हो नहीं। द्वितीय श्रेणीके पण्डितोंने उसी प्रकार मनके सिवा अन्य किसी पदार्थका अस्तित्व स्वीकार नहीं किया है। यह शेषोक्त दार्शनिक मत अध्यात्म-वाद (Idealism) कहलाता है। साधारणतः यह एक नामसे परिचित होने पर भी इसके मध्य अनेक साम्प्रदायिक प्रकारभेद हैं। लिवनिजका विशेष दार्श-निक मत क्या है, वह संक्षेपमें लिपिबद्ध किया जाता है।

दार्शनिक गाटफ्रियेड विलहेलम लिवनिज (Gott fried Wilhelm Leibnitz)-ने १६४६ ई०में लिवनिज नगरमें जन्मग्रहण किया। उनके पिता उक्त स्थानमें अध्यापनाका कार्य करते थे। आईन व्यवसायी होनेके अभिप्रायसे उन्होंने १६६१ ई०में आईन पढ़ना आरम्भ कर दिया। १६६२ ई०को दर्शनशास्त्रमें व्युत्पत्तिसूचक उपाधि पानेके लिये उन्होंने एक प्रबन्ध लिख कर Ph D.की आख्या प्राप्त की।

इस प्रबन्धमें उनके भावी दर्शनमतका अनेक आभास पाया जाता है। लिपजिकसे वे जेना (Jena) और पीछे जेनासे आल्टडर्फ (Altdorf) नगरको गये। यहां उन्होंने आईन परोक्षामें उत्तीर्ण हो कर डि० एल० (D. L.)-की उपाधि पाई थी। लिवनिजने जीविका निर्वाहके लिये किसी विशेष वृत्तिका अवलम्बन न किया। वे जर्मनी और भियेना आदि स्थानोंको राज-सभामें जा कर राजसभासद् तथा दौत्यकर्म प्रभृति अनेक उच्च राजकीय कार्योंमें नियुक्त हुए थे। १६७२ ई०में फ्रान्सके सम्राट् १४वें लुई (Louis XIV)-को जर्मनी पर आक्रमण करनेसे रोकने तथा मिश्र पर आक्रमण करनेका परामर्श देनेके लिये लिवनिज पेरिस नगर गये। वहांसे वे लण्डन आ कर विद्यानुरागी डयूक जान फ्रेडरिक (John Frederic)-के मन्त्रिस्वरूप नियुक्त हो हेनोभर (Hanover) नगरमें पधारे। उनके जीवनकी शेषावस्थाका अधिकांश इसी स्थानमें व्यतीत हुआ।

१७१६ ई०में उनकी मृत्यु हुई। लिवनिज प्रूसिया-की विदुषी रानी सोफिया सार्लट (Sophia Charlotte)-के विशेष प्रीतिभाजन थे और इनके प्रवर्त्तनवशतः ही उन्होंने अपनी थियडिसी (Theodicae) नामक दार्श-निक ग्रन्थकी रचना की। भियेना नगरीमें रहते समय प्रिन्स यूजिन (Prince Eugene)-ने उन्हें अपने मतानुयायी एक दर्शन ग्रन्थ बनानेके लिये अनुरोध किया। तदनुसार मनाडोलाजी (Monadologie) नामक दर्शनग्रन्थ रचा गया। लिवनिजके जैसे सभी शास्त्रों-में व्युत्पन्न पण्डित प्रायः दृष्टिगोचर नहीं होते। केवल दर्शनशास्त्र ही नहीं, इतिहास, गणित आदि अन्यान्य विषयोंमें भी वे अनेक ग्रन्थ बना गये हैं। सम्पूर्णभावसे न्यूटन (Newton)-के साहाय्यनिरपेक्ष हो कर उन्होंने अपने प्रथानुसार डिफरेनसियल-कालकुलस (Differen-tial-calculus) नामक गणितशास्त्रके नूतन तत्त्वका उद्भावन किया।

डेकार्ट और स्पिनोजाकी तरह लिबनिजने भी पदार्थका (substance) स्वरूप कैसा है? इस तत्त्वको लेकर अपना दर्शन आरम्भ किया है। डेकार्टविस्तृति (extension)-को पदार्थका स्वरूप बतला गये हैं। स्पिनोजाके मतसे हम लोग ईश्वर कहनेसे जो समझते हैं, वही प्रकृत पदार्थ (substance) है और जगत्में एक ही पदार्थ विद्यमान है, दूसरे पदार्थका अस्तित्व ही नहीं है। लिबनिजका मत इन दोनों मतसे विभिन्न है। उनके मतमें पदार्थ एक भी नहीं है और विस्तृति भी पदार्थको प्रकृत स्वरूप नहीं है। संसारमें असंख्य पदार्थ विद्यमान हैं। इन संख्यातीत पदार्थोंका लिबनिजने मनाड (Monad) नाम रखा है।

लिबनिज द्वारा अभिहित ये मनाड जड़वादी पण्डितोंके कथित परमाणुसमूह (Atoms)-के स्थानीय नहीं हैं। जड़ीय-परमाणु क्षुद्रादपि क्षुद्र होने पर भी जड़पदार्थ कह कर व्याप्ति रहनेसे उनका पुनः विभाग किया जा सकता है, किन्तु मनाड विभाज्य नहीं हैं; इनका सूक्ष्म अस्तित्व विभाज्य नहीं है। इसीसे लिबनिजने इन मनाडको जड़ातीत सूक्ष्मपदार्थ-विशेष (Metaphysical points) स्वीकार किया है। इसके अलावा परमाणुसमूहके मध्य जिस प्रकार गुणानुसार कोई श्रेणी विभाग नहीं है, सभी परमाणु एकस्वभावाक्रान्त हैं, किन्तु मनाड उस प्रकार नहीं है, मनाडोंके गुणानुसार पार्थक्य है; एक मनाड दूसरेके अनुरूप नहीं है। संसारमें किसी दो वस्तुमें स्वभावगत एकता नहीं है। यह मनाड सभीमें स्वनियन्त्रित है, एकके ऊपर दूसरेको क्रियाशक्ति नहीं है।

मनाडका प्रकृतस्वरूप लिबनिजके मतसे स्वाधीन अर्थात् अनन्य-निरपेक्ष है। किन्तु स्वाधीन अस्तित्व (Independent existence) स्वनियन्त्रित कार्यावली (Self-activity)-के ऊपर निर्भर करता है। शक्ति (Eorce or power) स्वनियन्त्रित कार्यावलीकी जड़ है; सुतरां शक्ति स्वाधीन अस्तित्वकी अङ्गभूत है, अतएव मनाडसमूहका प्रकृतस्वरूप है। लिबनिजके मतसे प्रत्येक मनाडके मध्य शक्ति अन्तर्निहित है। धनुसको डोरीके टूटनेसे प्रच्छन्न शक्ति बाधाविमुक्त हो जाती है; उस समय धनुष जिस प्रकार पहलेकी तरह सीधा हो जाता है, उसी प्रकार मनाडोंकी अन्तर्निहित शक्ति भी बाधाविमुक्त हो कर कार्यक्षम हो जाती है।

पहले कहा जा चुका है, कि लिबनिजके मतसे जगत्में मनाड व्यतीत अन्य पदार्थका अस्तित्व नहीं है। सारा संसार मनाडसमूहकी समष्टिमात्र है। निर्जीव जड़पदार्थसे ले कर शक्तिके आधारस्वरूप ईश्वर तक सभी लिबनिजके मतसे एक एक मनाड है। पहले लिखा गया है, कि एक मनाडके ऊपर दूसरेकी क्रियाशक्ति नहीं है। यदि ऐसा हो, तो किस प्रकार परस्पर क्रियाकी प्रतीति उत्पन्न होती है? इसके उत्तरमें लिबनिजने कहा है, कि एक मनाडसे जगत्के समस्त चित्र प्रतिफलित हुए हैं ("Mirrors the whole universe")। किन्तु मनाडके प्रकृतिगत गुणानुसार ऐसी शक्तिका भी तारतम्य है।

लिबनिजकथित मनाड आध्यात्मिक पदार्थ विषयमें जगत्में कहीं भी चैतन्यका बिलकुल विलोप नहीं है। केवल मनाडोंके प्रकृतिगत पार्थक्यानुसार चित्शक्तिके विकाशकी पृथक्ता है। लिबनिजके मतसे मानवात्मा (Human-soul) एक मनाडविशेष है, इसमें चित्शक्तिका विकाश अनेकांशमें सम्पूर्ण है। फिर जिन्हें हम लोग निर्जीव जड़पदार्थ कहते हैं, लिबनिजके मतमें वे मोह वा निद्रावशसे लुप्तचैतन्य मानाडसमूहविशेष (Sleeping monads) हैं। इन सबमें उत्तरोत्तर क्रमसे चित्शक्तिका क्रम विकाश साधित हो कर पीछे ईश्वरमें इनका पूर्णविकाश साधित हुआ है। शक्ति मनाडोंका प्रकृत स्वरूप है, इस कारण जगत्में कहीं भी शक्तिके अस्तित्वका अभाव नहीं है। यह शक्ति विभिन्न प्रकृतिके मनाडोंमें विभिन्न क्रिया उत्पादन करती है। चेतनविहीन जड़में यह शक्ति गतिका काम (Motion) देती है; फिर उद्भिद् जगत्में यह जीवनसंवर्द्धिनी और जीवनसंरक्षणी शक्तिस्वरूप कार्य करती है। इतर प्राणीजगत्में चित्शक्तिका विकाशमात्र हुआ है, सुतरां यह शक्ति प्राणीजगत्में चित्शक्तिस्वरूप स्फुरित है। मानवमें इस शक्तिका नामान्तर प्रज्ञा (Reason) है।

लिवनिजके मतसे जागतिक प्रत्येक वस्तु मनाड-समूहके योगसे उत्पन्न हुई है। प्रत्येक मनाडमें जो चित्‌शक्तिका अस्तित्व है, इस प्रकार सहजमें यह अनुमान किया जा सकता है, कि मनाडसमष्टिको समष्टि करके प्रत्येक जागतिक पदार्थ चैतन्ययुक्त है। लिवनिजके मतसे पूर्वोक्त प्रकारका सिद्धान्त भ्रमपूर्ण है। उनका कहना है, कि मत्स्यपूर्ण पुष्करिणीके मत्स्योंके जीवित रहने पर भी जिस प्रकार पुष्करिणी-को जीवित नहीं कह सकते, पूर्वोक्त मतसम्बन्धमें भी उसी प्रकारकी युक्ति प्रयोज्य है।

इसके पहले कहा जा चुका है, कि लिवनिजके मतमें एक मनाडके ऊपर अन्य मनाडकी क्रियाशक्ति नहीं है, किन्तु हम लोग पृथिवी पर जो कार्यकारण सम्बन्ध तथा परस्पर क्रियाशक्तिका विकाश देखते हैं, उसकी उत्पत्ति कहांसे है? इस प्रश्नके उत्तरमें लिव-निजने कहा है, कि इन सब मनाडोंके मध्य पूर्वप्रति-ष्ठित एक सुन्दर सामञ्जस्य (Pre-established harmoney) है। इस अन्तर्निहित धर्मवशतः एकको दूसरेके ऊपर कार्यकारी क्षमता नहीं रहने पर भी यथायथरूप कार्यकारण सम्बन्धकी तरह कार्य करती है और इसीसे प्रचलित विश्वास है, कि एक वस्तुकी की दूसरी वस्तुके ऊपर कार्यकारी क्षमता है। अब ऐसा प्रश्न हो सकता है, कि यदि एक वस्तुके ऊपर दूसरी वस्तुकी किसी प्रकारकी क्षमता नहीं है, तो मन (Mind) और जड़ (matter) का सम्बन्ध किस प्रकार स्थापित हुआ? लिवनिजने इस विषय-की मीमांसा अपने साधारण दर्शनमतके अनुसार की है। उन्होंने कहा है, कि मन और जड़का सम्बन्ध तीन उपायसे प्रतिष्ठित हुआ है, यह कल्पना की जा सकती है। प्रथमतः डेकार्टके मतसे मन और जड़ दोनोंके ऊपर दोनोंकी ही क्रियाशक्ति (inter-action) है; लिवनिज इस मतकी सारवत्ता स्वीकार नहीं करते। द्वितीयतः ज्यूलिंकस (Geulinox) प्रतिष्ठित निमित्त-वाद (Occasionalism) है; इस मतके अनुसार मन और जड़के मध्य साक्षात्-सम्बन्धमें कोई सम्पर्क नहीं है, ईश्वर ही एकके अनुयायी परिवर्त्तन दूसरे-में साधन करते हैं। लिवनिज इस मतको भी समीचीन नहीं समझते। उनके मतसे ईश्वरके प्रतिष्ठित नियमानुसार जब सभी व्यापार साधित होते हैं, तब सामान्य कार्यावलीसे उन्हें साधनभूत उपायस्वरूप deus ex machina) प्रतिष्ठित करना ईश्वर नामका अव-माननासूचक है। लिवनिजने निज प्रवर्त्तित सामञ्जस्य-वाद (Theory of pre established harmony)-के अनुसार इस विषयकी मीमांसा की है। उनका कहना है, कि मन और जड़के मध्य एक ऐसा सम्बन्ध पहलेसे प्रतिष्ठित है, कि एक समय मिलित दो घटिका-यन्त्रकी तरह वे एक ही नियमसे चलते हैं। मन और जड़ दोनों ही अलग अलग नियमानुसार चलते हैं, एककी दूसरेके ऊपर कोई क्रियाशक्ति नहीं है, अथच पूर्वप्रति-ष्ठित सामञ्जस्यके गुणसे एककी क्रिया ठीक दूसरेकी अनुरूप है। आत्माके अमरत्व पर जो विश्वास है, वह इस दार्शनिक मतसे सहजमें अनुमित हो सकता है। लिवनिजके मतसे आत्मा अमर है और प्रचलित विश्वासके मतमें मृत्यु कहनेसे जो समझा जाता है, वह केवल शरीर है जो मनाडोंके योगसे बना है। उन सब मनाडोंसे आत्माके विच्युत होनेको लोग मृत्यु कहते हैं

अपने ग्रन्थोंकी तत्त्वज्ञानमूलक (Ontological) अंशमें जिस प्रकार लिवनिजने स्पिनोजाका विरुद्ध मत अवलम्बन किया है, उसी प्रकार ज्ञानतत्त्व (Theory of knowledge)-के सम्बन्धमें उन्होंने लोक (Locke)-के विपरीत मतका प्रचार किया है। लिवनिजने एक प्रबन्धमें लाकका मत खण्डन करके इनेट आइडिया वा स्वतःसिद्ध मानसिक भावों (Innate ideas)-का अस्तित्व सप्रमाणित करनेकी चेष्टा की है।

लिवनिजके मतसे लाक प्रकृतरूपमें इनेट आइडि-याओंका स्वरूप ग्रहण न कर सके। इनेट आइ-डिया प्रथमावस्थासे मनमें सम्पूर्ण भावमें नहीं रहता, अव्यक्त वा अविकशित अवस्थामें रह कर क्रमशः पूर्णता प्राप्त करता है। लिवनिजके मतमें ज्ञानजगत्‌का समस्त व्यापार एक हिसाबसे इनेट है, क्योंकि बाह्य-जगत्‌की जब मनके ऊपर कोई कार्यकारी शक्ति नहीं है, तब सभी ज्ञान मनसे उत्पन्न हुए हैं।

लिवनिजने थिओडिसो (Theodicae) नामक ग्रन्थमें अपने धर्मतत्त्वमूलक मतको लिपिबद्ध किया है। उनके जितने दर्शन ग्रन्थ हैं, उनमेंसे यही ग्रन्थ अत्यन्त निकृष्ट है। ईश्वरका स्वरूप कैसा है ? इस सम्बन्धमें लिवनिजके मतको कोई एकता नहीं देखी जाती। एक जगह उन्होंने ईश्वरको सम्पूर्ण मनाड (Perfect monad) बतलाया है और दूसरी जगह कहा है, कि अग्निसे जिस प्रकार स्फुलिङ्ग निकलते हैं, उसी प्रकार ईश्वरसे समस्त मनाडोंकी उत्पत्ति हुई है। मालूम होता है, कि उनके मनाडलाजी (Monadlogie) ग्रन्थकी असम्पूर्णता ऐसे असामञ्जस्यका कारण है।

जगत्‌के साथ ईश्वरका सम्बन्ध क्या है ? इस विषयकी आलोचनामें लिवनिजने जागतिक व्यापारमें ईश्वरका ज्ञान, कौशल और ऐश्वरिक प्रज्ञाका अस्तित्व प्रतिपन्न करनेकी चेष्टा की है। स्पिनोजाकी तरह लिवनिजने भी प्रत्येक कार्यमें ईश्वरके मङ्गलमयत्वकी सूचना दिखाई है।

अमङ्गलकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? इस प्रश्नकी मीमांसामें लिवनिजने तीन श्रेणीके अमङ्गलका उल्लेख किया है। प्रथमतः आधिदैविक—दैव अमङ्गल (Metaphysical evil) है। इस श्रेणीके अमङ्गल अपरिहार्य हैं, क्योंकि ये सब हम लोगोंकी शक्तिके ससीमत्व तथा असम्पूर्णत्व (Finitude and imperfection) से उत्पन्न हुए हैं। सुतरां ये हम लोगोंके स्वभावके अन्तर्निहित हैं। द्वितीयतः आधिभौतिक अमङ्गल वा दुःख (Physical evil), जो अपरिहार्य नहीं है। हम लोगोंको पापसे निवृत्त करनेके अभिप्रायसे ईश्वरने शास्तिस्वरूप इन सब दुःखोंका विधान किया है।

तृतीयतः नैतिक अमङ्गल (Moral evil) है, ईश्वरने इस जातिके अमङ्गलका विधान नहीं किया है। यदि इस श्रेणीका अमङ्गल ईश्वरानुमोदित नहीं है, तो इनका उत्पत्तिस्थल कहां है ? इस विषयकी मीमांसाकालमें लिविनिजने विभिन्न श्रेणीके तर्कोंकी अवतारणा की है। एक जगह उन्होंने कहा है, कि नैतिक अमङ्गल हम लोगोंकी स्वाधीन इच्छाशक्ति (Free-will) का अवाच्छर फलमात्र है। यदि इच्छाशक्तिकी स्वाधीनता न रहे, तो हम लोगोंके कार्यावलीके दायित्व रहने पर भी हम लोग पापपुण्य और धर्माधर्मके लिये दायी नहीं हैं। सुतरां नैतिक अमङ्गल धर्मका सेतुस्वरूप है फिर दूसरी जगह उन्होंने नैतिक अमङ्गलको आधिदैविक अमङ्गल (Metaphysical evil) बतलाया है। नैतिक-अमङ्गलका प्रकृत अस्तित्व नहीं है, यह जीवनका छायामय अंशविशेष है। बिना वस्तुके छायाका जिस प्रकार अस्तित्व नहीं रहता, पापके अस्तित्वने भी उसी प्रकार वैसादृश्यके कारण पुण्यको और भी उज्ज्वल कर दिया है।

दार्शनिक उल्फ।

लिवनिजके मतानुवर्त्ती दार्शनिकोंके मध्य उल्फ (Wolff)-हीका नाम समधिक विख्यात है। क्रिश्चियन उल्फ (Christian Wolff) ने १६७९ ई०में जर्मनीके अन्तःपाति ब्रेसल (Breslan) नामक स्थानमें जन्मग्रहण किया। वे हालो (Halle) नगरमें दर्शनशास्त्रके अध्यापकके पद पर नियुक्त थे। ईसाधर्मके विरुद्ध मत प्रकाशित करनेके अपराधमें दो दिनके अन्दर उन्हें प्रसिया राज्य छोड़ देनेका हुकुम हुआ। सम्राट् २य फ्रोडरिक (Fredric II) जब प्रूसियाके सिंहासन पर बैठे, तब उन्होंने दार्शनिक उल्फको अपने राज्यमें बुलाया। पीछे राजाने उन्हें बेरन (Baron)-की उपाधि दे कर अभिजात-श्रेणीयुक्त किया था। १७५४ ई०में उनकी मृत्यु हुई।

उल्फने लिवनिजका दार्शनिक मत ही साक्षात्‌सम्बन्धमें ग्रहण किया है। उन्होंने किसी भी नूतन दार्शनिक-मतका प्रचार नहीं किया। उल्फने ही सबसे पहले दर्शनशास्त्रका सङ्कीर्ण सीमासे उद्धार कर सभी विषयोंको दर्शनशास्त्रके अन्तर्भूत मान कर प्रचार किया था। जर्मन भाषामें दर्शनशास्त्रका प्रचार उल्फ द्वारा ही पहले पहल प्रवर्त्तित हुआ।

उल्फने दर्शनशास्त्रको सम्भाव्य विषयका ज्ञानदायक शास्त्र (The Science of the possible) बतलाया है। उनके मतसे जो विषय सम्भव-सा प्रतीत होता है, वह विरोधके अतीत (involves no contradiction) है। उल्फने दर्शनशास्त्रको दो भागोंमें विभक्त

किया है ;—पहला दर्शनशास्त्रका तत्त्वज्ञानमूलक अंश (Practical philosophy or metaphysics) और दूसरा दर्शनशास्त्रका एक अंश जो मानव मनकी प्रवृत्तिमूलक अंश (Volitional faculties)के ऊपर प्रतिष्ठित हुआ है। इस अंशका उल्फने कार्यमूलक दर्शन (practical philosophy) नाम रखा है। वस्तुतत्त्व (Ontology), जगत्तत्त्व (Cosmology), मनस्तत्त्व (Psychology), प्राकृतिक धर्मतत्त्व (Natural theology) ये सब प्रथमांशके अर्थात् तत्त्वज्ञानमूलक दर्शन (Theoretical philosophy)-के अन्तर्गत हैं। नीतितत्त्व (Ethics), अर्थनीतितत्त्व (Economics) और राजनीति-तत्त्व (Politics) द्वितीयांश अर्थात् कार्यमूलक दर्शन (practical philosophy)-के अन्तर्गत माने गये हैं।

अपने दर्शनके वस्तुतत्त्वमूलक अंश (Ontological portion)-में उल्फने कैटिगरी (Categories) अर्थात् पदार्थ समूहके साधारण लक्षणानुसार उनके श्रेणीविभागके सम्बन्धमें आलोचना की है न्याय शब्दके पाश्चात्य-न्यायप्रसंगमें विशेष विवरण देखो।

उल्फके मतसे जगत् परिवर्त्तनशील वस्तुओंकी समष्टिमात्र है। किन्तु ये सब वस्तु परस्पर सम्बन्धसूत्रमें आवद्ध हैं, एक वस्तुका मूल वा भित्ति दूसरेके ऊपर निहित है। जिस प्रथा (mode)का अवलम्बन करके यह विश्व रचा गया है, उस प्रथाका कोई भी रूप परिवर्त्तन नहीं है, वह सदा एक भावसे रहता है विश्वकी यह अन्तर्निहित कार्यप्रणाली जगत्-प्रकृतिका प्रकृत स्वरूप है। उल्फने लिबनिज-कथित मनाडोंके सम्बन्धमें साफ साफ कुछ भी नहीं कहा है। उन्होंने जिनको वस्तुमात्र (Simple being) स्वीकार किया है, वे अनेकांशमें जड़वादियोंके परमाणुस्थानीय हैं। नीतितत्त्व (Ethics)-में उन्होंने 'सुखवाद (Happiness-theory) अर्थात् सुखलाभ हम लोगोंके जीवनके प्रत्येक कार्यका, सुतरां नीतिककार्यका भी उद्देश्य है, इस मतका खण्डन करके यह प्रतिपन्न करनेकी चेष्टा की है, कि सुसम्पूर्णतालाभ (The attainment of perfection) हम लोगोंके जीवनका परम उद्देश्य है और प्रत्येक नैतिक कार्यकी भित्ति इस उद्देश्यके प्रति लक्ष्य रख कर प्रतिष्ठित है। अपने धर्मतत्त्व (Theology)-में उन्होंने जगत्तत्त्वमूलक युक्ति (Cosmological argument)-का अवलम्बन करके ईश्वरका अस्तित्व प्रमाणित किया है। जगत् ईश्वरसृष्ट है, ईश्वरने निज सम्पूर्णता लाभके लिये विश्वकी सृष्टि की है।

उल्फके मतानुवर्त्ती पण्डितोंके मध्य बमगार्टेन (Baumgarten), बिलफिंगर (Bilfinger), थमिं (Thumming) और बमिष्टर (Baumeister) ही समधिक विख्यात हैं।

लिबनिज और उल्फके दार्शनिक मत-प्रचारके बाद १५वीं शताब्दीके मध्य भागमें जर्मन देशोंमें एक दार्शनिक सम्प्रदायका आविर्भाव हुआ जिसका नाम था जर्मन इलुमिनेशन (German illumination) वा जर्मन-ज्ञानालोक। इस दार्शनिक सम्प्रदायने दर्शनशास्त्रकी कोई विशेष उन्नति न की और न कोई परिवर्त्तन ही किया। दर्शनशास्त्रलब्ध ज्ञानसमूह जीवनमें प्रयोग करके जीवनकी उन्नति करना ही इस सम्प्रदायके विशेष लक्ष्यका विषय था। दार्शनिकमत-विषयमें यह सम्प्रदाय फरासी-इलुमिनेशन (French illumination)के सम्पूर्ण विपरीत मतावलम्बी थे। फ्रान्सके उक्त दार्शनिक-सम्प्रदाय जड़वादका प्रचार कर गये हैं। जर्मन पण्डितगण अध्यात्मवाद (idealism)-की चरम सीमा पर पहुंचे हैं। सोफिष्टोंकी तरह इस सम्प्रदायके पण्डितोंके मतमें भी व्यक्तिगत आत्मा ही सब विषयोंका प्रधान लक्ष्य subject) है। अतएव दर्शनशास्त्रमें भी इस व्यक्तिगत आत्मत्व (empirical subjectivity)-के ऊपर लक्ष्य रख कर सभी विषय आलोचित हुए हैं। आत्माका अमरत्व इस दार्शनिक सम्प्रदायका एक प्रधान आलोच्य विषय था। ईश्वरके सम्बन्धमें आलोचना इस दार्शनिक सम्प्रदायने प्रवर्त्तित नहीं की, क्योंकि उनके मतसे ईश्वरका स्वरूप ज्ञानके विषयीभूत नहीं है। दार्शनिक मतोंका इस समय जनतामें प्रचार हो जानेसे दार्शनिक चिन्तावलीकी गभीरताका ह्रास हुआ था। इस सम्प्रदायसे दर्शनशास्त्रकी कोई विशेष उन्नति नहीं हुई।

थामस एवट (Thomas Abbt), एञ्जेल (Engel), ष्टिनवाट (Stienbat) आदि पण्डितगण इसी सम्प्रदायके अन्तर्गत थे। मेण्डेलसन (Mendelssohn) और रिमारस (Reimarus) इस सम्प्रदायके मध्य सर्वापेक्षा समधिक प्रसिद्ध रहे। अनेक दर्शन-इतिहासवेत्ताने दार्शनिक लेसिं (Lessing)को भी इसी सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त किया है।

लेसिंने स्पिनोजा और लिवनिजके मतका सामञ्जस्यविधान करनेकी चेष्टा की है। लेसिंने ईश्वरको सर्वव्यापी सर्वतोमहीयान बतलाया है। उनके अद्वितीय होने पर भी सभी वस्तु उन्हींमें निहित हैं।

लेसिं (Lessing)-के ग्रन्थोंमें दर्शनांश अति सामान्य है। प्रचलित ईसाधर्मका प्रकृतस्वरूप और आध्यात्मिक तात्पर्य क्या है, इन्हीं सब धर्मतत्त्व और शिल्पसौन्दर्य (Aesthetics)की आलोचनामें उनके ग्रन्थका अधिकांश शेष हुआ है।

काण्ट (Kant)

दार्शनिक काण्टके आविर्भावसे यूरोपीय दर्शनजगत्‌में युगान्तर उपस्थित हुआ। काण्टके आविर्भावके पहले विभिन्न दर्शन-सम्प्रदायसमूह एकदेशदर्शित्वकी चरम सीमा पर पहुंचे हुए थे। वास्तववाद (Realism) जड़वादमें और प्रवर्त्तित अध्यात्मवाद भी (Idealism) व्यक्तिगत आत्मवाद (Empirical egoism or subjectivity)में परिणत हुआ था। इन दोनों मतका एकदेशदर्शित्व परिहार करके सामञ्जस्य विधानके लिये काण्टने अपने दर्शनकी रचना की।

काण्टने स्वयं कहा है, कि ह्यूमके अज्ञेयवाद (Scepticism)-ने उनके दार्शनिक मतको उद्बुद्ध कर डाला है। ह्यूमके प्रवर्त्तित दार्शनिकमतकी प्रतिक्रिया (Reaction) दो भागोंमें विभक्त हो कर प्रसारित हुई थी। इनमेंसे दार्शनिक काण्ट एक मतके और स्काटलैण्डदेशीय दार्शनिक रीड (Reid) दूसरे मतके प्रवर्त्तक थे। यही साधारण स्काटिशदर्शन (Scottish Philosophy) नामसे अभिहित हुआ करता है।

अब काण्ट-प्रवर्त्तित दर्शनका संक्षिप्त विवरण दिया जायगा। ऐतिहासिक नियमसे यदि देखा जाय, तो काण्ट एक ओर लिवनिज और उल्फ तथा दूसरी ओर ह्यूमके परवर्त्ती थे। किन्तु उनका दार्शनिकमत पूर्वोक्त किसी दार्शनिक मतसे उद्भूत नहीं है और वे किसीके भी दार्शनिक मतके अनुवर्त्ती नहीं हुए। वे स्वावलम्बित पन्थानुसार अपने दर्शनका प्रचार कर गये हैं।

इमानुएल काण्ट (Immanual Kant)-ने १७२४ ई०में कनिग्सवर्ग नगरमें जन्मग्रहण किया। उनके पिता चर्मव्यवसायी थे। माता उनकी धर्मशीला, गुणवती और बुद्धिमती रमणी थीं। काण्ट भी मातृप्रकृतिसे ही इन सब गुणोंके अधिकारी हुए थे।

१७४० ई०में धर्मशास्त्र सीखनेके अभिप्रायसे वे स्थानीय विश्वविद्यालयमें भर्त्ती हुए। किन्तु धर्मतत्त्वमूलक ग्रन्थावलीका समूहका एकदेशदर्शित्व, अन्धविश्वास और अयौक्तिक मीमांसा उनके पक्षमें प्रीतिजनक नहीं होनेके कारण उन्होंने दर्शनशास्त्र, गणित, जड़विज्ञान आदिकी बहुत सावधानीसे आलोचना की। विश्वविद्यालयकी शिक्षा समाप्त होने पर वे कनिग्सवर्गके निकटवर्त्ती कितने भद्र परिवारोंके गृहशिक्षकरूपमें नियुक्त हुए। १७५५ ई०में वे स्वयं प्रवृत्त हो कर कनिग्सवर्ग नगरमें दर्शन, न्याय, गणित, विज्ञान आदि शास्त्रोंके अध्यापनाकार्यमें लग गये। १७७० ई०में काण्ट विश्वविद्यालयकी ओरसे दर्शनशास्त्रके अध्यापक नियुक्त हुए और १७८७ ई० तक इस पद पर प्रतिष्ठित रह कर वार्द्धक्यवशतः इस पदको छोड़ देनेमें बाध्य हुए। जीवनका अवशिष्टकाल उन्होंने एक निभृत स्थानमें ज्ञानचर्चामें बिताया था। हालि (Halle), एनलारजेन (Enlargen) आदि स्थानोंसे दर्शनाध्यापकका पद ग्रहण करनेका अनुरोध आने पर भी वे कनिग्सवर्ग छोड़ कर कहीं जानेको राजी न हुए। उनका भौगोलिक ज्ञान उतना संकीर्ण न था, यह उनकी प्राकृतिक भूगोलविषयक वक्तृता पढ़नेसे साफ साफ प्रतीत होता है। जीवितकालमें ही काण्टको ख्याति इतनी दूर तक फैल गई थी, कि बहुत दूरसे

पण्डितवृन्द उनके दर्शनके लिये कोनिग्सवर्ग आते थे। १८०४ ई०में अस्सी वर्षको अवस्थामें आपकी मृत्यु हुई। काण्टका नैतिक जीवन पवित्रताका आदर्शस्वरूप था। उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्यका अवलम्बन किया था। उनके जीवनमें कलङ्क कभी छू तक नहीं गया था।

काण्टके दर्शनका प्रथमांश १७८१ ई०में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तकका नाम है 'क्रिटिक आव प्योर-रिजन' (The Critique of Pure Reason) वा 'शुद्ध प्रज्ञाशक्तिका विचार'। इस अंशमें ज्ञानतत्त्व (theory of knowledge or cognition)-की आलोचना करके काण्टने अपने मतकी प्रतिष्ठा की है। ग्रन्थके उक्त नामकरण-सम्बन्धमें काण्टने कहा है, कि शिक्षित दार्शनिकोंका मत एकदेशदर्शी है। उन लोगोंने समस्त ज्ञानको प्रज्ञाजात बतला कर अविसंवादितभावमें ग्रहण किया है। किन्तु इन्होंने उक्त ग्रन्थमें प्रज्ञाकी प्रकृति, सीमा और उत्पत्तिके सम्बन्धमें मीमांसा की है और प्रत्येक अंशका समालोचना वा Critique नाम रखा है।

अभी उनके दर्शनके प्रथमांशकी अर्थात् ज्ञानतत्त्वकी आलोचना की जायगी। ज्ञानतत्त्वका विश्लेषण करनेसे यह देखा जाता है, कि किसी विषयका ज्ञान दो पदार्थके योगसे उत्पन्न हुआ है। ज्ञाता (knowing subject) और ज्ञेयपदार्थ (known object) इन दोनोंमेंसे एकका अभाव होनेसे ज्ञान कह कर किसी विषयका अस्तित्व नहीं रहता। इन दोनोंके परस्पर योगसे हम लोगोंके ज्ञानकी उत्पत्ति हुआ करती है। ज्ञेयपदार्थ वाह्यवस्तु (external object) है। यह हम लोगोंके ज्ञानके उपादान स्वरूप (Materials of knowledge) है और ज्ञाता मनके सांसिद्धिक मूर्त्ति-सहयोग (Apriori forms of knowledge)-से वाह्यवस्तुसे गृहीत ज्ञानके उपादानको ज्ञानमें परिणत कर लेता है।

काण्टके मतसे मनके अनेक सांसिद्धिक भाव (Apriori notions) हैं जिनका नाम उन्होंने रखा है 'इन्द्रियजज्ञानका आकार' (Forms of knowledge or forms of sensuous representation)। हम लोगोंका वाह्यवस्तुविषयक ज्ञान ज्ञानकी मूर्त्ति (forms of knowledge) और ज्ञानके उपादान (material of knowledge)-से उत्पन्न हुआ है। इनमेंसे ज्ञानकी मूर्त्ति मनका स्वाभाविक धर्म है और ज्ञानका उपादान वाह्यजगत्‌से गृहीत होता है। काण्टके मतसे वाह्यजगत्‌का प्रकृत स्वरूप क्या है, सो हम लोग नहीं जानते। वाह्यजगत् हम लोगोंके निकट जो प्रतिभात होता है, वह वाह्यजगत्‌का प्रकृतस्वरूप नहीं है। क्योंकि हम लोगोंका वाह्यवस्तुविषयक ज्ञान दो पदार्थोंके सहयोगसे उत्पन्न होता है, इसलिये यह वाह्यजगत्‌की यथार्थ प्रतिकृति (exact representation) नहीं हो सकता। काण्टने प्रकृत वाह्यवस्तुको (external object as it really is) नोमेनन Noumenon) अर्थात् इन्द्रियज्ञानका वहिर्भूत विषय बतलाया है। उन्होंने ज्ञानतत्त्वके सम्बन्धमें जो मत प्रचार किया है, उसे यदि स्वीकार करें, तो वाह्यजगत्‌का प्रकृतज्ञान लाभ करना हम लोगोंके पक्षमें असम्भव हो जायगा। क्योंकि एक तरहसे वाह्यजगत्‌के हम लोगोंके ज्ञानराज्यके अन्तर्भुक्त होनेमें उसे अपने मनके भीतर ही कर लाना होगा। किन्तु मनके स्वाभाविक धर्मोंके वशसे यह अविकृत भावमें हम लोगोंके ज्ञानराज्यमें उपस्थित नहीं हो सकता; मनकी क्रिया द्वारा यह रूपान्तरित हुआ करता है। फिर केवल यदि वाह्यजगत्‌का ही अस्तित्व रहे, मनके सांसिद्धिक धर्म न रहे, तो इन्द्रियज अनुभूतिका वहुत्व (manifold of senses) ज्ञानके एकत्व (unity of perception)-में परिणत नहीं होता। किन्तु मनके मध्य प्रवेश करनेमें वाह्यवस्तु अविकृत अवस्थामें प्रवेशलाभ नहीं कर सकती। सुतरां वाह्यजगत्‌का प्रकृत ज्ञान-लाभ हम लोगोंके लिये असाध्य है।

उपरि-उक्त विवरणसे यह साफ साफ प्रतीत होता है, कि काण्टने दोनों तरहसे एकदेशदर्शित्वका परिहार किया है। उन्होंने वाह्यजगत्‌का अस्तित्व अस्वीकार करके मनको सब विषयोंका मूलाधार नहीं माना है। उन्होंने मन और जगत् दोनोंका अस्तित्व

स्वीकार किया है। परन्तु साधारण विश्वासके मतानुसार जगत् कहनेसे जो समझा जाता है तथा जगत्का ज्ञान हम लोगोंको पूर्णरूपसे है, ऐसे विश्वासको जो कोई भित्ति नहीं है, उसे उन्होंने दिखानेकी चेष्टा की है।

ज्ञानवृत्तिको (Cognitive faculty) काण्टने सामान्यतः दो अंशोंमें विभक्त किया है। इन्द्रियज ज्ञान वा इन्द्रियबोध (Sense) और प्रज्ञाजनितज्ञान (Understanding)। "क्रिटिक आव प्योर रिजन"के प्रथमांशमें उन्होंने इन्द्रियज ज्ञानकी आलोचना की है। इस अंशका नाम है ट्रानसेनडेण्टल एसथेटिक (transcendental aesthetic) वा अनुभूतितत्त्व और दूसरेका ट्रानसेनडेण्टल एनालिटिक (transcendental analytic) वा बुद्धितत्त्व।

ट्रानसेनडेण्टल एसथेटिक नामक अंशमें काण्टने पहले हो काल (Time) और देश (Space)के स्वरूप सम्बन्धमें मीमांसा की है। काण्टके मतसे देश और कालका वस्तुगत कोई अस्तित्व (extramental existence) नहीं है। वाह्यविषय ग्रहण करनेके लिये मनके उक्त दो सांसिद्धिक धर्मविशेष (Innate forms of sensuous intuition) हैं। जिन सब युक्तियोंका अवलम्बन करके काण्टने इन दो पदार्थोंका वस्तुगत अनस्तित्व प्रमाणित किया है, विस्तार हो जानेके भयसे उनका उल्लेख यहां संक्षेपमें किया जाता है। देशके सम्बन्ध (Space)-में उन्होंने जो युक्ति निकाली थी, उसीका उल्लेख यहां दिया जाता है।

काण्टका कहना है, कि वाह्यजगत्का ज्ञान जो (Experience) देशका मानसिक अस्तित्व सप्रमाणित करता है। वाह्यवस्तु कहनेसे साधारणतः क्या समझा जाता है, इसका अनुसन्धान करनेसे उक्त रहस्य अच्छी तरह मालूम हो जायगा। वाह्यवस्तु कहनेसे मैं साधारणतः मुझे छोड़ कर और किसी पदार्थ (something external to me)का अस्तित्व नहीं समझते। 'मुझ'से पृथक्, यह जो ज्ञान है, वह देशके अस्तित्वकी सूचना करता है। हम लोगोंके वाह्यविषयका ज्ञान होनेके पहले 'वाह्य' कहनेसे क्या समझा जाता है (notion of externality) ? वाह्य इस शब्दका ज्ञान यदि हम लोगोंके पहले उत्पन्न नहीं होता, तो वाह्यवस्तु कहनेसे किसी पदार्थका ज्ञान नहीं हो सकता था। किन्तु वाह्य एक शब्दका ज्ञान भी देश (Space)-का ज्ञाननिर्देशक है। देशका ज्ञान नहीं रहनेसे वाह्य शब्दका प्रकृत अर्थ हम लोग नहीं समझ सकते थे। सुतरां देशका ज्ञान (notion of space) वाह्यजगत्से गृहीत नहीं हुआ है, वरन् वह वाह्यवस्तुबोधका सोपानस्वरूप है।

काण्टने और भी कहा है, कि यदि देश और कालका ज्ञान वाह्यजगत्से गृहीत होता, तो हम लोगोंका देश और काल सम्बन्धीय ज्ञान इन्द्रियगत छोटे छोटे ज्ञानकी समष्टिके योगसे उत्पन्न होता। काण्टके मतसे देश और कालज्ञान इस प्रकार समष्टिमूलक ज्ञान (Totality) नहीं है, देश और कालका समस्त ज्ञान हम लोगोंके मनमें पहलेसे ही हुआ करता है। जिसे हम लोग देश और कालका अंश समझते हैं, वह इस समस्त ज्ञानको सीमाबद्ध करके उत्पन्न हुआ है। अतएव देश और कालज्ञान अंश ज्ञानसमूहकी समष्टि नहीं है, समस्त ज्ञानको सीमाबद्ध करनेसे अंश विशेषका अर्थात् छोटे छोटे देश और कालज्ञानकी उत्पत्ति होती है। देश और कालज्ञान काण्टके मतसे, मानो मनके पत्तले दो नील और लालवर्ण विशिष्ट चश्मेके कांच हैं;—वाह्यजगत्का विषय जाननेमें इन चश्मोंकी सहायतासे देखना होगा। किन्तु ऐसे पदार्थके मध्य हो कर वाह्यजगत्का ज्ञान अविकृतभावमें नहीं आ सकता, वर्णकी विकृति होती है। यह वर्णविकृति हम लोगोंके पक्षमें इतनी दूर तक स्वाभाविक हो गई है, कि इसीको हम लोग वस्तुका स्वरूप जान कर ग्रहण करते हैं। देश और कालकी सांसिद्धिकता प्रमाणित करनेमें काण्टने अन्य युक्तिका अवलम्बन किया है। उनका कहना है, कि देश और कालको सांसिद्धिकता स्वीकार नहीं करनेसे विशुद्ध गणितशास्त्र (pure mathematics)-का अस्तित्व सम्भवपर नहीं होता। गणितशास्त्रके मीमांसित विषयको यदि अभ्रान्त सत्य मान लिया जाय, तो उसका ऐसी भित्तिके ऊपर प्रति-

ष्ठित होना आवश्यक है, जो भित्ति स्थायी और परिवर्त्तन विहीन है। कारण, काण्टके मतसे देश और कालकी सांसिद्धिकता (Apriority) गणितशास्त्रकी स्थायी भित्ति है। पूर्वोक्त विषय छोड़ कर एसथिटिक (Æsthetic) नामक ग्रंथमें और किसी विषयको आलोचना नहीं है।

ट्रांनसेनडेण्टल एनालिटिक (Transcendentental Analytic) नामक ग्रंथमें कैटिगरी (Categories) वा पदार्थसमूहके सांसिद्धिकत्व सम्बन्धमें आलोचना है।

न्याय शब्दके पाश्चात्य न्याय प्रसंगमें विशेष विवरण देखो।

काण्टने १२ कैटगरी वा पदार्थका उल्लेख किया है। ये कैटिगरि वाह्य जगत्सम्बन्धीय पदार्थ नहीं हैं, मनके अन्तर्निहित भावविशेष (Pure notions) हैं। वाह्य जगत् जब हम लोगोंके मनमें प्रवेश करता है, तब यह अन्ध इन्द्रियबोधमात्र (Manifold of senses) है। पीछे उसके ऊपर कैटिगरी अर्थात् मानसिक भावोंके आरोप होनेसे यह इन्द्रियबोध वस्तुज्ञानमें परिणत हो जाता है।

अभी प्रश्न यह उठता है, कि कैटिगरी जब हम लोगोंके मनकी प्रकृतिगत हैं, तब ये वाह्यवस्तुके ऊपर किस प्रकार कार्यकरी होती हैं। इसके सम्बन्धमें काण्टने ऐसा सिद्धान्त किया है—इन्द्रिययोगसे वाह्यवस्तुको हम लोगोंके मनके ऊपर जो क्रिया (Affections of the mind) होती है, वह इन्द्रियानुभूतिमात्र है। मनके प्रज्ञाजात भावोंका समन्वय किस प्रकार इनके साथ साधित होता है? इस विषयकी मीमांसामें काण्टने एक और तत्त्वकी आलोचना की है। इन्द्रियगत अनुभूति (The sensuous element of knowledge) और मनके सांसिद्धिक भावों (Apriori notion)का समन्वयविधान करनेमें एक और तृतीय पदार्थका अस्तित्व स्वीकार करना पड़ेगा। इस तृतीय पदार्थको प्रकृतिका उपरि-उक्त दोनों प्रकृतिसे मध्यपर्याययुक्त होना आवश्यक है। इस समन्वयकारक तृतीय पदार्थका काण्टने स्कीमा (Schema) नाम रखा है। स्कीमा शब्दका व्युत्पत्तिगत अर्थ आकृति (Ftame) है। काण्टके मतसे देश (Space) और काल (Time) इन दोनों पदार्थके योगसे हम लोगोंको इन्द्रियगत अनुभूति (manifold of senses) वस्तुज्ञानमें परिणत होती है। देश और कालके योगसे ही हम लोग कैटिगरीको वाह्यवस्तुके ऊपर आरोप कर सकते हैं। कालका जो गुण रहनेसे (the quality of time) हम लोग वाह्यजगत्के विषयसे जानकार हुए हैं, काण्टने उसके उस गुणको स्कीमा कहा है। काण्टके मतानुसार हम लोगोंके संख्याज्ञान है जो कालके इसी स्कीमासे उत्पन्न होता है। स्रोतकी तरह अवच्छिन्नभावसे चलनेके कारण कालके धर्म और कालकी इस श्रेणीबद्ध गति (series in time)से संख्याज्ञानकी उत्पत्ति हुई है। संख्यासमूह कितने एकत्व (unit)की समष्टिमात्र है। किन्तु यह एकत्व ज्ञान किस प्रकार उत्पन्न हुआ ? इस प्रश्नके उत्तरमें काण्टका कहना है, कि यदि मनकी क्रिया आरम्भ होनेके साथ ही अवरुद्ध हो जाय, तो एकत्वका ज्ञान उत्पन्न होता है (If the movement of thought is arrested in the very beginning thence arises the notion of unity) और यदि चिन्तागतिका प्रसार रुद्ध न करके कुछ काल तक उक्त अवस्थामें देखा जाय, तो परम्पराक्रमसे इन्द्रियज्ञानजनित अभिज्ञता समूह (A succession of sensuos experiences)से बहुत्वज्ञान (notion of plurality)की तथा इस अभिज्ञतासमूहकी समष्टिसे साकल्य (Tolality) ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। काण्टने इस संख्याज्ञानकी काल संख्यासूचक स्कीमा (schema of time) कहा है। हम लोगोंकी मानसिक प्रक्रिया मात्र ही कालसे साधित होती है; मनकी ऐसी अवस्थाकी कल्पना करना दुरूह है, जिस समय हम लोगोंका मन किसी भी विषयकी चिन्ता नहीं करता है। मनकी इस चिन्ताका विषय सभी कालमें एक नहीं है। चिन्ताके विषयका तारतम्य, विषयके गुणकी विभिन्नता अर्थात् जो सब वस्तु तत्सामयिक चिन्ताकी विषयीभूत हैं वैसी वस्तुओंका तारतम्य निर्देश किया जाता है। समयसे वस्तुसम्बन्धके गुणसम्बन्धमें हम लोगोंकी जिस धारणाकी उत्पत्ति हुई है, काण्टने उसे गुणसूचक स्कीमा (Schema of qua-

lity) बतलाया है। फिर भी मनके प्रक्रियाकालमें हम लोग देखते हैं, कि कोई विषय अल्प वा अधिक कालके लिये हम लोगोंके मनमें अधिकार किये हुए है (Persisting for a longer or shorter period); मनकी ऐसी अवस्था (This passive state) होनेसे हम लोगोंको द्रव्यत्वकी धारणा (notion of substance) होती है। वे कहते हैं, कि मनकी ऐसी अवस्था होनेसे हम लोग इसके ऊपर द्रव्यत्वकी केटिगरी प्रयोग करते हैं और उससे हम लोगोंको वस्तुका अस्तित्व ज्ञान (notion of substantiality or reality) उत्पन्न होता है।

हम लोगोंकी चिन्ताके विषय भी हम लोगोंके मनके समीप बिलकुल पहुंचने नहीं पाते। उनके मध्य एक पौर्वापर्य है। जहां यह पौर्वापर्यभाव दृढ़बद्ध है, वहां हम लोगोंके कार्यकारण ज्ञान (notion of causality)-की उत्पत्ति होती है अर्थात् हम लोग कार्यकारण ज्ञान सूचक केटिगरीका आरोप करते हैं।

इस प्रकार काण्टने दिखाया है कि एक कालज्ञानने ही केटिगरीके साथ इन्द्रियगत वाह्य अनुभूति (sensuous experience)-का समन्वय साधन किया है। कालज्ञान वाह्यजगत्से मनोजगत्में प्रवेश करनेका सेतु-स्वरूप है। काण्टने इस कालज्ञानको अन्यान्य पदार्थों (Category)-के साथ किस प्रकार समन्वित किया है विस्तारके भयसे उसका उल्लेख नहीं किया गया।

सुतरां काण्टका मत अनुसरण करनेसे हम लोग देखते हैं, कि वाह्यजगतसे हम लोग केवल इन्द्रिय अनुभूति प्राप्त करते हैं, वाह्यजगत् सिर्फ हम लोगोंके इन्द्रियबोधका उद्बोधन कर देता है और कुछ भी नहीं। केवल इन्द्रियजात अनुभूति ही ज्ञानप्रदायक नहीं है, इससे हम लोग कोई भी विषय नहीं जान सकते। वाह्यजगत्का अस्तित्व छोड़ कर (Bare existence) हम लोग वाह्यजगत्के और किसीसे अवगत नहीं हैं। काण्ट इसी प्रकार अज्ञेयवाद (Agnosticism)-की सूचना कर गये हैं। जिसे हम लोग वाह्यजगत् समझते हैं, वह हम लोगोंका मनःकल्पित पदार्थमात्र है। कोपार्निकस (Copernicus) ज्योतिषके सम्बन्धमें जो जो मत प्रचार कर गये हैं, काण्टका दर्शनमत भी तद्रूप है। कोपार्निकसने जिस प्रकार सूर्यको ही सौरजगत्का केन्द्र बतलाया है, उसी प्रकार काण्टने भी जड़जगत्को सब विषयोंका केन्द्र न मान कर मनको ही केन्द्र स्थिर किया है। सौरजगत्का अवस्थान जिस प्रकार सूर्यकी लक्ष्य करके निर्दिष्ट होता है, उसी प्रकार मनके नियमानुसार हम लोगोंके ज्ञान-राज्यका स्वरूप निर्दिष्ट हुआ करता है।

देश (Space), काल (Time) और केटिगरी (Pure notions or the categories of the understanding) हम लोगोंकी इन्द्रियज अनुभूति (sensations)के ऊपर प्रयुक्त हो कर परस्परके संयोगसे किस प्रकार वाह्यजगत्का ज्ञान उत्पन्न करता है, वह इसके पहले लिखा जा चुका है। किन्तु अभिज्ञता (experience) वाह्यजगत्के ऊपर निर्भर नहीं करती है और न यह वाह्यजगत्की समष्टिमात्र (Heap of perceptions) ही है। अभिज्ञताके मध्य एक सामञ्जस्य और ऐक्य (Harmony and co-ordination) है। इस सामञ्जस्यकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है, काण्टकी तत्-सम्बन्धीय मीमांसा संक्षेपमें लिपिबद्ध की जाती है।

प्रथमतः काण्टका कहना है, कि हम लोगोंके वाह्यजगत्-सम्बन्धीय ज्ञानमात्र ही देश और काल-मापित है। किन्तु देश और काल दोनोंको ही विस्तृति (Have extensive magnitude) है। सुतरां हम लोगोंके वाह्यजगत्-सम्बन्धीय ज्ञानमात्र ही विस्तृति-मूलक है। हम लोग इन्द्रिययोगसे जिन सब पदार्थोंका विषय जानते हैं, उन समस्त पदार्थोंको विस्तृति है, इस स्वतःसिद्ध प्रतिज्ञाने काण्टके मतसे गणित-शास्त्रकी भित्तिकी प्रतिष्ठा की है। काण्टने उक्त प्रतिज्ञाका नाम रखा है इन्द्रियज्ञान-विषयक स्वतःसिद्ध प्रतिज्ञा (The axiom of sensible representation)। कहना नहीं पड़ेगा, कि यह प्रतिज्ञा हम लोगोंके वाह्य-जगत्सम्बन्धीय ज्ञानमात्रके सम्बन्धमें ही प्रयोज्य हो सकती है।

किन्तु उपरि उक्त विस्तृतिमूलक दिक् (Extensive magnitude) हम लोगोंको अभिज्ञताको एक दिक्

मात्र है, इसके अपरापर दिक् भी हैं। वाह्य वस्तु केवल विस्तृतिज्ञापक नहीं है, वाह्यवस्तुके मध्य गुणका तारतम्य और पार्थक्य है। हम लोगोंके मनके ऊपर वस्तुओंके विभिन्न क्रियानुसार हम लोग वस्तुओंके गुणसे अवगत होते हैं। सुतरां वाह्यवस्तुमात्र हो हम लोगोंके ज्ञानगोचर होनेमें हम लोगोंके मनके ऊपर क्रिया उत्पादन करेगी हो (All phenomena have intensive force or degree)। वाह्यवस्तुओंके मनके ऊपर यह क्रियाशक्ति लक्ष्य करके काण्टने इन्द्रियबोधके पूर्वाभास (anticipations of sensation) इस तत्त्वकी अवतारणा की है। उक्त तत्त्वके नामकी सार्थकता यह है, कि मनके ऊपर वाह्यवस्तुकी क्रिया पहलेसे स्वीकार नहीं कर लेनेसे इन्द्रियानुभूति (Sensation) हो नहीं सकती। फिर हम लोगोंकी इन्द्रियग्राह्य ज्ञानराशिके मध्य सम्बन्ध नहीं रहनेसे अभिज्ञताका अस्तित्व रह नहीं सकता। अभिज्ञता हम लोगोंका वर्त्तमान ज्ञान है और पूर्वसञ्चित ज्ञानके मध्य सम्बन्धकी सूचना करती है। काण्टके मतसे हम लोगोंकी ज्ञानराशिके मध्य तीन प्रकारका सम्बन्ध विद्यमान है। पहला द्रव्यसमूहका स्थायित्व-सम्बन्ध (Substantiality) है। जगत् परिवर्त्तनशील होने पर भी इसके मध्य यदि स्थायित्वसूचक अंश (Permanent element) न रहे, तो अभिज्ञताके मध्य किसी प्रकार सम्बन्धकी प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। द्रव्यत्वज्ञान यह जागतिक परिवर्त्तनके मध्य एक सम्बन्धसूचना करता है। द्रव्य (Snbstance) कहनेसे साधारणतः गुणका आधार समझा जाता है। गुणसमूह परिवर्त्तनशील है, किन्तु गुणका आधार परिवर्त्तनशून्य है। गुणकी तरह यदि गुणका आधार भी परिवर्त्तनशील होता, तो हम लोगोंके वस्तुज्ञान हो नहीं सकता था। दूसरा कार्यकारण-सम्बन्ध ज्ञान भी (The relation of causality) हम लोगोंकी ज्ञानराशिके मध्य सम्बन्धकी प्रतिष्ठा करता है। जागतिक परिवर्त्तनके मध्य शृङ्खला नहीं रहनेसे जगत्सम्बन्धमें हम लोगोंके कोई भी ज्ञान नहीं हो सकता था। परिवर्त्तनके मध्य पौर्वापर्यमूलक जो सम्बन्ध है, वही कार्यकारण सम्बन्ध है। तीसरा अन्योन्य कार्यकारित्व-सम्बन्ध (The relation of reciprocity) अभिज्ञताके मध्य अन्तर्निहित है। दो वा दोसे अधिक वस्तु एक दूसरेके ऊपर अपना प्रभाव फैलाती है, इस प्रकारका सम्बन्धसमवाय जगत्में दुर्लभ नहीं है। काण्टने उपरिउक्त तीन प्रकारके सम्बन्धको अभिज्ञतामूलक सादृश्यज्ञान (analogies of experience) बतलाया है। इसका अर्थ यह, कि ये तीन प्रकारके सम्बन्ध हम लोगोंके वाह्यजगत्के ज्ञानसम्बन्धमें ही प्रयुज्य हो सकते हैं, प्रकृत वाह्यजगत् सम्बन्धमें नहीं। प्रकृत वाह्यजगत् हम लोगोंकी ज्ञानसीमाके वहिर्भूत है। पूर्वोक्त तीन सम्बन्धोंके हम लोगोंके ज्ञानराज्यके अन्तर्गत होने पर भी हमारा विश्वास है, कि वाह्यजगत्में भी हम लोगोंके विश्वासानुरूप सम्बन्धका अस्तित्व है।

वाह्यवस्तुसमूहके अस्तित्व सम्बन्धमें हम लोगोंके मनमें जो स्वतःसिद्ध धारणा (The categories of modality) हैं, उन मानसिक भाव वा धारणासे जिन सब साधारण सूत्र वा प्रतिज्ञाकी उत्पत्ति हुई है, काण्टने उन प्रतिज्ञाका "इन्द्रियग्राह्यज्ञानका मूलसूत्र" (he postulates of empirical thought) नाम रखा है। वस्तुओंका अस्तित्व हम लोगोंके मनके किस किस अवस्थानुसार सूचित होता है, वही लिपिबद्ध किया गया है। काण्टका कहना है, कि वस्तुसमूहके अस्तित्व सम्बन्धमें हम लोगोंके तीन प्रकारके ज्ञान रह सकते हैं, यथा सम्भाव्य-अस्तित्व (Possible existence), वास्तव वा प्रकृत अस्तित्व (actual existence) और ध्रुव वा संशयरहित अस्तित्व (Necessary existence)। अब देखना चाहिये, कि सम्भाव्य अस्तित्व किसे कहते हैं अर्थात् मनकी कैसी अवस्था होनेसे हम लोग किसी पदार्थका अस्तित्व सम्भव (Possible) समझ सकते हैं। काण्टके मतमें हम लोगोंकी अभिज्ञताके साथ जिस विषयका वाह्य-सामञ्जस्य रहता (whatever agrees with the formal conditions of experience) है अर्थात् जिस विषयका अस्तित्व स्वीकार करनेसे वह अभिज्ञताके विरुद्ध होनेके कारण प्रतिपन्न नहीं होता, वही सम्भाव्य-अस्तित्व है

अर्थात् ऐसा अस्तित्व अस्वाभाविक नहीं है। पर हां, उसके प्रकृत अस्तित्व है या नहीं यह अनिश्चित है। वास्तव वा प्रकृत अस्तित्व (Actual existence)-के लक्षण सम्बन्धमें काण्टका कहना है, कि हम लोगोंकी अभिज्ञताके साथ यदि वस्तुका उपादानगत ऐक्य रहे (What agrees with the material conditions of experience) तो ऐसे अस्तित्वको वास्तव वा प्रकृत अस्तित्व कहते हैं। 'कोई वस्तु वास्तवमें विद्यमान है' इस वाक्यका साधारण तात्पर्य यह, कि उक्त वस्तुका अस्तित्व केवल हम लोगोंकी अभिज्ञताके विरोधी नहीं है, इस कारण जो इसका अस्तित्व स्वीकार किया जाता है सो नहीं। अभिज्ञताके साथ इसका उपादानगत ऐक्य है अर्थात् ऐसा ही पदार्थ है और वर्त्तमान स्थलमें यही पदार्थ हम लोगोंके इन्द्रियगोचर होता है, इस प्रत्यक्ष ज्ञानके ऊपर निर्भर करके इसका अस्तित्व स्वीकृत होता है।

उपरि-उक्त विवरणसे यह देखा जाता है, कि हम लोगोंके वाह्यज्ञानके मध्य इन्द्रियगत ज्ञानका स्वतःसिद्ध विषय (axioms of sensible representation) है। इन्द्रियबोधके पूर्वाभास (anticipations of sensation) प्रभृति जो सब साधारण भाव अन्तर्निहित हैं, उन ही सब साधारण भावोंने हम लोगोंकी वाह्यज्ञानराशिके मध्य सामञ्जस्य और ऐक्यका विधान करके हम लोगोंकी अभिज्ञता (Experience)-की सृष्टि की है। यहां पर यह कह देना आवश्यक है, कि हम लोगोंके वाह्यजगत् सम्बन्धीय ज्ञानका जो एकत्व और सामञ्जस्य है, वह वाह्यजगत्के एकत्वके लिये नहीं है, वाह्यजगत्के प्रकृतस्वरूप सम्बन्धमें हम लोगोंको कोई ज्ञान हो नहीं है। वाह्यजगत् केवल हम लोगोंकी इन्द्रियानुभूतिको उद्बोधन कर देता है। हम लोगोंकी प्रज्ञाशक्तिने निज नियमानुसार ज्ञानराज्यमें एकता और शृङ्खलाका विस्तार किया है। ज्ञान (reason)-की इसी समन्वयकारी शक्ति (Synthesis of apprehension)-से हम लोग अभिज्ञताके मध्य ऐसी शृङ्खला और एकता देख पाते हैं। वाह्यजगत्के साथ इसका कोई सम्पर्क नहीं है।

हम लोगोंकी अभिज्ञताके प्रत्येक पदमें हम आत्मबोधके एकत्व (unity of self-consciousness)-का परिचय पाते हैं। मैं सब ज्ञानका कर्त्ता हूं।—कर्त्ताका एकत्व नहीं रहनेसे कर्त्तृ प्रवर्त्तित कार्य और ज्ञानावलीका भी एकत्व नहीं रह सकता, हम लोगोंके प्रति कार्यसे ही इस विषयमें प्रतीयमान होता है। कर्त्तृत्वज्ञान, भोक्तृत्वज्ञान प्रभृति सब ज्ञानके समाहार (synthesis) आत्मज्ञानके एकत्वके ऊपर निर्भर करता है। दश वर्ष पहले जो मैं था और आज जो मैं वर्त्तमान हूं, दोनों ही एक हूं, इसका प्रमाण क्या? इस विषयमें आत्मबोधके पूर्वापर अस्तित्व ज्ञान ही (continuity of self-consciousness) एक मात्र प्रमाण है। इन्द्रियग्राह्य ज्ञानावलीके मध्य हम लोगोंका एकत्वज्ञान (unity of consciousness) अन्तःसलिला फल्गु नदीकी तरह अन्तर्निहित रहनेके कारण हम वाह्यज्ञानका एकत्व (unity of knowledge) अनुभव करते हैं। आत्मज्ञानके इस एकत्वके भी (unity of consciousness) दो स्वरूप हैं; निर्गुण एकत्व (analytic unity) और सगुण एकत्व (synthetic unity)। सगुण एकत्वने हम लोगोंके इन्द्रियग्राह्यज्ञान (knowledge)-की प्रतिष्ठा करके हम लोगोंके ज्ञानसमूहके मध्य एक एकत्व (organic unity) स्थापन किया है। निर्गुण-एकत्व सगुण एकत्वका मूलस्वरूप है, यह परिवर्त्तनहीन (immutalible) है, शुद्ध (pure) और ज्ञानका मूलाधार केवलमात्र चैतन्यस्वरूप है। काण्टका यह निर्गुण-एकत्व (analytic unity) वेदान्तोक्त आत्माके स्थानीय है। काण्टने डाइलेकटिक ग्रन्थ (Transcendental dialectic)में उल्फ आदि दार्शनिकोंकी आत्माका अस्तित्वज्ञान (substantiality and personality of the soul)को भ्रमात्मक बतला कर प्रतिपन्न किया है। उनका कहना है, कि आत्माके सम्बन्धमें कोई भी ज्ञान हम लोगोंको नहीं रह सकता, सुतरां आत्मा अविनश्वर प्रभृति वाक्य अर्थहीन है।

काण्टने प्रज्ञाशक्ति (reason)-से साधारण बुद्धिवृत्ति (understanding)-की पृथकता दिखलाई है।

जिस प्रकार कैटिगरी (categories) वा पदार्थ हम लोगोंकी बुद्धिशक्तिके अन्तर्गत है, उसी प्रकार हम लोगोंकी प्रज्ञाशक्तिके भी (reason) कितने निर्दिष्ट आइडिया हैं। बुद्धितत्त्वको जिस प्रकार कैटिगरी (understanding)-के प्रयोगसे अभिज्ञताके मूलस्वरूप स्वतःसिद्ध प्रतिज्ञा (axioms of the understanding)की उत्पत्ति हुई है, उसी प्रकार प्रज्ञाशक्तिके आइडियाके प्रयोगसे बुद्धिजात स्वतःसिद्ध प्रतिज्ञाके मूलस्वरूप और ऐक्यको साधनभूत प्रतिज्ञा (principle)-को सृष्टि हुई है। प्रज्ञाशक्तिको यह साधारण क्रिया (principles) बुद्धिजात प्रक्रियाका मूल (in which the axioms of the understanding reach their ultimate unity) है। हम लोगोंकी बुद्धिशक्ति के योगसे कैटिगरी जिस प्रकार वास्तवमें ज्ञान प्रदान करती है, उस प्रकार हम लोगोंकी प्रज्ञाशक्तिके योगसे आइडिया किसी विशेष ज्ञानका जनक नहीं है, केवल बुद्धिशक्ति (understanding)-की प्रक्रियाका नियामकमात्र (regulative principles of the understanding) है। हम लोगोंकी इन्द्रियजात ज्ञानमात्र ही सीमाबद्ध (conditions) है। इस सीमाबद्ध ज्ञानके असीमत्वको ओर निर्देश करके ज्ञानका सामञ्जस्य विधान करना प्रज्ञाशक्तिका कार्य है (to find for the conditioned knowledge of the understanding the unconditioned and so completed the unity of knowledge in general)।

प्रज्ञाशक्तिके एकत्व सम्बन्धीय ज्ञानसे हम लोगोंके भ्रमकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। कैटिगरीका अपप्रयोग वा अयथाप्रयोग होनेसे ही भ्रमकी उत्पत्ति होती है। जो वस्तु अभिज्ञताके विषयीभूत है, उसीके सम्बन्धमें कैटिगरी प्रयुक्त हो सकती है। जो वस्तु अभिज्ञताके विषयीभूत नहीं है उसके सम्बन्धमें प्रयुक्त होनेसे भ्रमको उत्पत्ति होती है। इस भ्रम वा मायाको काण्टने झलपट (transcendental show) कहा है। कैटिगरीकी प्रज्ञानियन्त्रित अपप्रयोगसे निम्नलिखित तीन भ्रमकी उत्पत्ति हुई है। प्रथम आत्माकी अस्तित्वसे हम लोग अवगत हैं अर्थात् यह हम लोगोंके ज्ञानके विषयीभूत है। इस भ्रमात्मक विश्वासको काण्टने मनस्तत्त्वमूलक आइडिया वा ज्ञान (the psychological idea) कहा है। द्वितीयतः जगत्‌ज्ञान अर्थात् जगत् सम्बन्धमें हम लोगोंके प्रकृतज्ञान है, यही विश्वास (the cosmological idea); तृतीयतः ईश्वरके अस्तित्वसे हम लोग अवगत हैं, ऐसा विश्वास (the theological idea of God)। काण्टने कहा है, कि ज्ञानकी ओर हो कर देखनेसे इन तीनोंके अस्तित्व सम्बन्धमें कोई प्रमाण नहीं है, किन्तु इनके अस्तित्वके विषयसे हम लोग अवगत हैं। हम लोगोंका यह जो विश्वास है, सो भ्रमात्मक है। काण्टके मतसे आत्माके अविनश्वरत्व प्रभृति जो सब प्रमाण प्रदर्शित हुआ करते हैं सो भ्रमात्मक हैं।

काण्टका कहना है, कि मैं सोचता हूं वा मेरे चैतन्य है (I think) इसके सिवा आत्मासम्बन्धमें हम लोगोंको और कोई ज्ञान नहीं है। मैं सोचता हूं इसलिये मैं वा आत्मा नामक किसी पदार्थका अस्तित्व है। इस प्रकारकी युक्ति भ्रमपूर्ण है। मेरी जेबमें सौ रुपये हैं, ऐसी कल्पना तथा यथार्थमें सौ रुपयेका अस्तित्व, इन दोनों विषयमें विस्तर प्रभेद है। आत्माके जड़ातीत अस्तित्व है, यह विश्वास और आत्माका वास्तविक जड़ातीत अस्तित्व ये दोनों एक नहीं हैं। किन्तु इस भ्रमात्मक युक्तिके अनुसार ज्ञान और प्रकृत अस्तित्वके मध्य कोई पृथकता नहीं बतलाई जाती, ज्ञानको ही प्रकृत अस्तित्वस्वरूप माना गया है। फिर यथार्थमें आत्माका ऐसा अस्तित्व रहने पर भी, वह हम लोगोंके ज्ञानको विषयीभूत नहीं हो सकती। आत्माको हम लोगोंके ज्ञानके विषयीभूत होनेमें अन्यान्य पदार्थोंकी तरह इसे भी कैटिगरीसमूहके अधीन होना पड़ेगा। किन्तु इस प्रकारकी अवस्था प्राप्त होना असम्भव है। स्वयं ज्ञाता निज ज्ञानके विषयीभूत नहीं हो सकती। आत्माको ज्ञानके विषयीभूत होनेमें एक ही मुहूर्त्तमें उसे ज्ञाता और ज्ञानका विषय होना पड़ता है। इस प्रकारकी धारणा सम्पूर्ण अयौक्तिक है। कल्पनाबलसे शरीर और आत्माको पृथकता अनु-

मित हो सकती है। किन्तु इसलिये अशरीरी आत्माका प्रकृत अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। उपरि-उक्त युक्तियोंकी सहायतासे काण्टने यह प्रतिपन्न किया है, कि आत्माका अस्तित्व हम लोगोंके ज्ञानके विषयीभूत नहीं है और आत्माका ऐसा अस्तित्व स्वीकार करके उस भित्तिके ऊपर जो मनोविज्ञानशास्त्र (Rational psychology)-की प्रतिष्ठा हुई है, ऐसे मनोविज्ञानकी मीमांसा भी भ्रमात्मक है। परन्तु ऐसे शास्त्रकी सार्थकता यह है, कि यह हम लोगोंको प्रज्ञाशक्तिकी सीमा निर्देश (Limits) कर देती है।

काण्टके मतसे जगत् और जागतिक पदार्थोंके स्वरूपसे हम लोग अवगत नहीं हो सकते। इन सब अतीन्द्रिय पदार्थोंके सम्बन्धमें जो हमारे ज्ञानके विषयीभूत नहीं हैं, कैटिगरी प्रयुक्त होनेसे कितने परस्पर विरोधिमतों (antinomies)की उत्पत्ति होती है। जैसे—जगत्के देशतः और कालतः आदि हैं (has beginning in time and limits in space) तथा जगत्के देश और काल सम्बन्धमें आदि नहीं है। इन दोनों विरोधी मतोंकी जगत्सम्बन्धमें सार्थकता समान है। विस्तार हो जानेके भयसे सभी प्रकारकी आण्टिनोमियों (antenomies)-का उल्लेख नहीं किया गया। इन सब विरोधी मतोंकी अवतारणा करके काण्टने यह प्रतिपादन किया है, कि जो सब वस्तु हम लोगोंके ज्ञानकी विषयीभूत हैं, उन्हींके सम्बन्धमें कैटिगरी प्रयुक्त हो सकती है। जो ज्ञानके अविषय हैं, उन समस्त अतिमानव पदार्थों (extra-mental existences)-के सम्बन्धमें यदि कैटिगरीका प्रयोग किया जाय, तो पूर्वोक्त रूपसे विरोधकी उत्पत्ति होती है। सुतरां जगत्का प्रकृत-स्वरूप काण्टके मतसे ज्ञानके विषयीभूत नहीं है।

ईश्वरके अस्तित्व सम्बन्धमें भी काण्टका मत पूर्वोक्त प्रकारका है। ज्ञानकी ओर देखनेसे ईश्वरके अस्तित्वका कोई प्रमाण नहीं मिलता। साधारणतः ईश्वरका अस्तित्व प्रमाणित करनेके लिये जो सब युक्तियां प्रयुक्त हुआ करती हैं, वे भ्रमात्मक है। काण्टका कहना है, कि ईश्वरका अस्तित्व प्रमाणित करनेके लिये साधारणतः तीन श्रेणियोंकी युक्तिकी अवतारणा देखी जाती है। प्रथम तत्त्वज्ञानमूलक वा अण्टोलाजिकल युक्ति (Ontological argument)। इस युक्ति यह है—हम लोगोंके मनमें सर्वापेक्षा नित्य और सत्य पदार्थ (a being the most real of all)-के अस्तित्व सम्बन्धमें धारणा वा विश्वास है। किन्तु जो सत्य है, उसका अस्तित्व भी अवश्यम्भावी है, सुतरां ईश्वरका अस्तित्व है। काण्टका कहना है, कि केवल अस्तित्वमात्र (Bare existence) कहनेसे उस वस्तुका कोई ज्ञान हमलोगोंको नहीं होता। फिर 'अण्टोलाजिकल' युक्तिपूर्ण भ्रम क्यों है ? इसके उत्तरमें काण्टने कहा है, कि यह युक्ति ईश्वरके अस्तित्व सम्बन्धीय धारणामात्रसे ईश्वरका प्रकृत अस्तित्व (from idea to actual existence) प्रतिपादन करनेकी कोशिश करती है। ईश्वर सत्य हैं, ऐसी हम लोगोंकी धारणा है, सुतरां इस धारणाका अस्तित्व स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु धारणाके अस्तित्वसे धारणाकी निर्दिष्ट वस्तुका अस्तित्व स्वीकार करनेका कोई कारण देखनेमें नहीं आता। द्वितीयतः ईश्वरका अस्तित्व सप्रमाणित करनेके लिये जगत्स्वरूपमूलक युक्तियां (cosmological argument) प्रयुक्त हुआ करती हैं। इस श्रेणीकी युक्तिमें जागतिक कार्यकारण सम्बन्धसे ईश्वरका अस्तित्व प्रतिपन्न किया है। जागतिक सभी कार्यावली कारण-संयोगसे संघटित हुई हैं। जागतिक व्यापार कार्यकारणकी शृङ्खलामात्र है और ईश्वर इस कार्यकारण शृङ्खलके शिरोदेश पर वर्त्तमान हैं। वे आदिकारण स्वरूप (the first-cause) हैं। ईश्वर स्वयं कारणके विषयीभूत नहीं हैं। काण्टका कहना है, कि कार्यकारण शृङ्खलाको अनन्त न कह कर उसके बदले ईश्वर शब्दका ही प्रयोग किया गया है। कार्यकारणसम्बन्ध-ज्ञान (Category of Causality) हम लोगोंके इन्द्रियज ज्ञानके लिए ही प्रयुक्त हो सकता है; किन्तु इन्द्रियज ज्ञानसे हम लोग किस प्रकार ईश्वरज्ञानको समझ सकेंगे, यही विवेच्य विषय है। परन्तु एक आदिकारणके अस्तित्वका स्वीकार करनेसे ही 'ये ईश्वर हैं' ऐसा प्रतिपन्न करनेमें पुनः तत्त्वज्ञानमूलक वा अण्टोलाजिकल युक्ति (Ontological argument)का आश्रय लेना पड़ता है,

पर इसका असारत्व पहले ही प्रतिपादित हुआ है।

ईश्वरका अस्तित्व प्रतिपादन करनेके लिये एक और श्रेणीकी युक्तिकी अवतारणा की गई है जिसका संक्षिप्त मर्म इस प्रकार है,—जागतिक सभी कार्य किसी न किसी उद्देश्यसे प्रणोदित हो कर चलते हैं। संसारमें किसी भी पदार्थकी उत्पत्ति व्यर्थ नहीं है। जागतिक कार्यावलीकी प्रकृति पर्यालोचना करनेसे यह साफ साफ देखनेमें आता है, कि पदार्थसमूहके संयोग, वियोग, विकार इत्यादि व्यापार उद्देश्य साधनोद्देश्यसे ही निर्वाहित होते हैं; किन्तु उद्देश्यमात्र ही ज्ञानमूलक है; जगत्के अन्तर्निहित यह उद्देश्यस्रोत आप ही आप प्रवाहित नहीं होता। इसके एक मूल है और ईश्वर ही इसके मूलस्वरूप हैं। ईश्वरने जगत्को अपने अभिप्रायानुरूप करके सृष्टि की है और जगत्की समस्त कार्यावलीमें ही इस अभिप्रायका निदर्शन पाया जाता है। सुतरां इस श्रेणीकी युक्तिके अनुसार जगत्कार्यावलीकी प्रकृति पर्यालोचना करके कारणका निर्देश किया गया है। यह टेलिओलाजिकल युक्ति (teleological argument) नामसे प्रसिद्ध है।

काण्टने ईश्वरसम्बन्धीय अन्यान्य युक्तिकी तरह इस युक्तिकी भी सारवत्ता स्वीकार नहीं की। उनकी प्रथम आपत्ति यह है, कि इसमें ईश्वरको मानवके आदर्श पर गठित किया गया है (it is an anthropomorphic conception)। भास्कर जिस प्रकार उपादानके संयोगसे अपने अभिप्रायानुसार मूर्ति बनाते हैं, ईश्वरने भी उसी प्रणालीके अनुसार जगत्का निर्माण किया है। इसमें जगत् मानो ईश्वरके शिल्पनैपुण्यका परिचयस्वरूप है और ईश्वरको शिल्पीस्वरूप प्रतिपन्न किया गया है। काण्टके मतसे जगत्के शिल्पनैपुण्य वा जगत्कार्यावलीकी उद्देश्य-प्रवणताका कारण निर्देश करनेमें ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार करनेका कोई प्रयोजन नहीं देखा जाता। जड़शक्तिसमूहके संयोगसे ही जागतिक क्रियावली निर्वाहित होती है। परन्तु जागतिक व्यापार समूहके मध्य जो शिल्पनैपुण्य वा उद्देश्य अन्तर्निहित देखा जाता है, वह हम लोगोंकी तरह ज्ञानात्मकशक्तिका कार्य है, अन्यशक्तिका कार्य नहीं है, ऐसा किसने कहा? हम लोग आत्मसादृश्य कल्पना करके ईश्वरका अस्तित्व प्रतिपादन करते हैं। जड़शक्तिसमूहके एकत्र हो कर कार्य करनेसे उसका फल यह होता है, कि वह ज्ञानमूलक कार्यकी तरह दिखाई नहीं देता, ऐसा किसने कहा? अतएव इस प्रकार एक ज्ञानमय अतिप्राकृतिक शक्तिका अस्तित्व स्वीकार करनेकी आवश्यकता ही क्या? तर्कके समय जगत्के एक विधाता पुरुष (artificer or designer)का अस्तित्व स्वीकार कर लेने पर भी उन्हें सर्वशक्तिसम्पन्न ईश्वर कहनेका कोई कारण देखनेमें नहीं आता। प्रथमतः अन्यान्य शिल्पीकी तरह उन्होंने उपादान संग्रह करके सृष्टिका गठनकार्य सम्पन्न किया है, इस कारण वे सृष्टिकर्त्ता हैं, उसका कोई प्रमाण नहीं है। द्वितीयतः, जगत्‌संघटनी शक्तिका ईश्वरत्व प्रतिपादन करनेमें यह शक्ति जो असीम (infinite) है, उसे प्रमाणित करना होगा। किन्तु इसका असीमत्व प्रतिपन्न करनेमें फिर अण्टोलाजिकल युक्तिका आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। किन्तु काण्टने पहले इसका भी असारत्व दिखलाया है। सुतरां काण्टके मतसे ईश्वरका अस्तित्व सप्रमाणित करनेके लिये जिन तीन प्रकारकी युक्तियोंका आश्रय लेना पड़ा है, वे सभी युक्तियां भ्रमात्मक हैं।

अभी यह प्रश्न उठ सकता है, कि जगत्, ईश्वर और आत्माके सम्बन्धमें यदि हम लोगोंके यथार्थमें कोई ज्ञान नहीं है, तो हम लोगोंके इस सम्बन्धमें जो आइडिया हैं, उनकी सार्थकता क्या है? इस पर काण्टका कहना है, कि इनकी सार्थकता अस्वीकार करनेका कोई उपाय नहीं है। हम लोगोंके प्रज्ञाशक्ति-प्रवर्त्तित आइडिया वा भावों (the ideas of reason)-के अनुयायी पदार्थोंका ज्ञान हम लोगोंमें नहीं रह सकता। किन्तु ये सब भाव हम लोगोंके ज्ञानराज्यके मध्य शृङ्खला विधान करते हैं (though not constitutive, they are regulative principles)। जिस प्रकार हम लोगोंको मानसिकवृत्तियोंका श्रेणीविभाग करते समय आत्माका अस्तित्व मान लेनेसे उनके मध्य शृङ्खला स्थापित होती है, उसी प्रकार जगत् और ईश्वरका अस्तित्व मान लेनेसे हम लोगोंके चिन्ता करनेके

पंथ सुगम हो जाते हैं। ये तीनों आइडिया हम लोगोंके ज्ञानराज्यमें ऐक्य स्थापनके साधनभूत हैं।

अभी यह स्मरण रखना चाहिये, कि आत्मा, जगत् और ईश्वर हम लोगोंके ज्ञानके वहिर्भूत होने पर भी उनका जो अस्तित्व नहीं है, यह निर्देश नहीं किया जा सकता। ये हम लोगोंके ज्ञानके विषयीभूत नहीं हैं, इसका प्रकृत तात्पर्य यह, कि ये सब हम लोगोंके ज्ञानके नियमाधीन नहीं हैं। ज्ञानके हिसाबसे इनका अस्तित्व अवगत नहीं होने पर भी, काण्टने दूसरे हिसाबसे इसका अस्तित्व प्रतिपादन किया है।

इसके बाद "प्रज्ञाशक्तिका ज्ञान विचार" (critique of the pure speculative Reason) नामक ग्रन्थका संक्षिप्त सार दिया जाता है। इससे यह देखा जायगा, कि ज्ञानतत्त्व (theory of knowledge) प्रतिपादन ही इस अंशका मुख्य उद्देश्य है और ज्ञान मूलक वृत्ति ही (cognitive faculties) इसका प्रधान आलोच्य है। "प्रज्ञाशक्तिकी क्रियाशक्तिका विचार" (Critique of Practical Reason) नामक ग्रन्थमें हम लोगोंकी इच्छावृत्ति (Conotion or Volition)-के प्रकृतिसम्बन्धमें पर्यालोचना की गई है।

इच्छा प्रज्ञाशक्तिकी प्रकृति निर्देश कर देती है। प्रज्ञा इच्छाके सहयोगसे क्रियाशील हो कर क्रियासमूह-की सृष्टि करती है।

प्रज्ञाशक्तिका कार्य यहां पर सृष्टिस्थानीय (Creative, not regulative) है। प्रज्ञाशक्ति अपनी इच्छा-शक्तिका उद्बोधन करके अपनी इच्छाको कार्यमें परिणत करती है। सुतरां इच्छा वाह्यवस्तु-प्रणोदित होगी।

पहले यह प्रतिपन्न हुआ है, कि काण्टके मतानुसार प्रज्ञाका ज्ञानमूलक अंश (Speculative reason) वस्तुका स्वरूपज्ञान प्रदान नहीं कर सकता। किन्तु प्रज्ञाकी क्रियाशक्ति (Practical reason) किस प्रकार इस ज्ञानात्मक मायाकी वहिर्भूत है और किस प्रकार हम लोगोंको स्वरूपज्ञान देती है, काण्टने अपने ग्रन्थके इस अंशमें उसका प्रतिपादन किया है।

वाह्यजगत्को यदि हम लोग अपने ज्ञानके विषयीभूत मान लें, तो उसे अपने मानसिक नियमोंके अधीन करना होगा। अतएव वह उसी अवस्थामें रूपान्तरित हो कर हम लोगोंके मनोराज्यमें प्रवेशलाभ करता है। यथार्थमें वाह्यजगत् कह कर हम लोगोंका जो विश्वास है, वह मनःकल्पित है। केवल अस्तित्व छोड़ कर हम लोग इसका और कोई विषय नहीं जानते। किन्तु हम लोगोंको इच्छामूलक कार्यवली हम लोगोंके मनमें उत्पन्न हो कर केवल वाह्यजगत्में प्रकाश पाती है। इसी कारण हम लोगोंकी इच्छावृत्ति आत्माका प्रकृत-स्वरूप निर्देश करती है।

वाह्यज्ञानकी उत्पत्ति मन और वाह्यजगत्के संयोगसे हुई है। किन्तु इच्छामूलक कार्यावली (vountary actions)की उत्पत्तिका हेतु आत्मा है। प्रायः देखनेमें आता है, कि हम लोगोंकी इच्छावृत्ति सभी समय प्रज्ञानियन्त्रित हो कर कार्य नहीं करती। वाह्यवस्तुओंमें भी अनेक समय हम लोगोंकी इच्छाकी गतिको नियन्त्रित करती है। काण्टका कहना है, कि हम लोगोंकी प्रकृति सर्वथा प्रज्ञाशील (Rational) नहीं है। इन्द्रियवृत्तिके अधीन होनेके कारण (Sensuous nature) वाह्यवस्तु हम लोगोंकी इच्छाके ऊपर प्रभाव डालती है। हमारी सुखलाभकी इच्छा वाह्यवस्तुप्रवर्तित है। किन्तु नैतिक नियमावली ही (moral laws) हम लोगोंकी इच्छावृत्तिकी प्रधान नियामक है। इच्छावृत्तिके पक्षमें नैतिकशासन अनतिक्रमणीय है। इसकी क्षमता और सारवत्ता अस्वीकार करनेका कोई उपाय नहीं। नैतिकशासन प्रभुकी तरह इच्छावृत्तिके ऊपर आदेश करता है और यह आदेश संशयको अपेक्षा नहीं रखता (the moral law is a categorical imperative)। नैतिकशासन सिर्फ व्यक्तिगत इच्छाके नियामक नहीं है, प्रज्ञाशीलमात्रको ही इच्छावृत्ति नैतिक नियमके शासनाधीन है। अतएव नैतिक नियम सार्वभौम (universal) है। नैतिक शासन प्रज्ञाशक्तिका स्वप्रवर्तित नियममात्र (antonomy of practical raason) है। काण्टने नैतिक कार्यके निम्नलिखित लक्षण बतलाये हैं,—किसी कार्यको सम्पन्न करनेसे उस कार्यका प्रवर्तक इच्छाकी अन्तर्हित भित्ति वा नैतिक सूत्र यदि सार्वभौमरूपमें

प्रणोदित हो, तो वह कार्य यथार्थमें नीतिच्युत होगा।

नैतिकशासन सुखदुःखनिरपेक्ष है। सुखलाभकी आशासे वा दुःखनिवृत्तिके लिये काण्टका मत है, कि नीतिककार्य अनुष्ठित नहीं होता। हम लोगोंकी इच्छावृत्ति जब वाह्यवस्तु-प्रणोदित होती है, तब सुख-लाभ ही हमारी कार्यावलीका चरम लक्ष्य हो जाता है। सुखलाभके उद्देश्यसे कार्यनिर्वाहक व्यवसायात्मिका-बुद्धिमूलक नीतिके नियमको अलंघ्यशासन लाभालाभके ऊपर दृष्टिपात नहीं करता, यह सर्वथा निष्काम है। यदि कणमात्र व्यक्तिगत सुखदुःखकी छाया नैतिक-कार्यके ऊपर पतित हो, तो उसी समय कार्यकी नैतिक प्रकृति विनष्ट हो जाती है। अपने प्रति मानवकी जो स्वाभाविकी प्रीति (self-love) है, उसे भी काण्टने एक सद्वृत्ति नहीं बतलाया है। नैतिक शासन सुख-का हेतु नहीं है; इस कारण काण्टके मतानुसार नैतिक-शासन स्वतः ही हम लोगोंके प्रेमकी सामग्री नहीं है, भक्तिकी सामग्री है। उसी प्रकार कर्त्तव्यकार्यका भी हम लोग अनिच्छाके साथ पालन करते हैं।

नैतिक शासनके अस्तित्वसे काण्टने आत्मा और ईश्वरका अस्तित्व प्रतिपन्न किया है। काण्टका कहना है, कि जीवनका सर्वश्रेष्ठ मङ्गल क्या है? इस प्रश्नके उत्तरमें शुद्धधर्मको (Virtue) जीवनका परममङ्गल नहीं कह सकते। सुखावच्छिन्न धर्म मङ्गलपदवाच्य नहीं है। सुतरां सुखसम्मिलित धर्म ही जीवनका सर्वश्रेष्ठ मङ्गल है। काण्टने पहले ही कहा है, कि धर्म अर्थात् नैतिक कार्यावलीके साथ सुखका कोई प्रकृतिगत सम्बन्ध नहीं है; धर्म सुखका जनक नहीं है। किन्तु जीवनका जो चरममङ्गल है, वह धर्म और सुख दोनोंकी पराकाष्ठा (Supreme virtue and Supreme felicity) है। किन्तु अभी प्रश्न यह हो सकता है, कि इस प्रकार दो विभिन्न प्राकृतिक पदार्थों-का संयोग किस प्रकार साधित हुआ है? काण्टका कहना है, कि इस प्रश्नकी यथायथ मीमांसा करनेमें ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार करना पड़ेगा (Postulate the existence of God)। नैतिक आदेशका पालन हम लोगोंको अवश्य कर्त्तव्य है। अथच इन सब कार्योंका परिणाम यदि सुखमय न हो, तो नैतिक जीवनकी कोई भित्ति नहीं रहती। कारण, परिणाम-विरस पदार्थके प्रति मानव हृदयका स्वाभाविक आक-र्षण नहीं रह सकता। इसीसे ईश्वरने धर्म और सुखके मधुर संयोग स्थापन कर दिया है। सुखलाभ-के लिये धर्म अनुष्ठित नहीं होता। सुख अनुष्ठित शुभकर्मका फलमात्र (Felicity not the motive but result of virtuous action) है।

धर्मतत्त्वमें काण्टने आत्माका अमरत्व (Immorta-lity of the soul) प्रतिपन्न किया है। धर्मकी पराकाष्ठा वा सम्पूर्णतालाभ यदि जीवनका चरम उद्देश्य हो, तो इस प्रकारकी अवस्थाप्राप्ति काण्टके मतसे एक जन्ममें लभ्य नहीं है, जन्मान्तरका अस्तित्व अवश्य स्वीकार्य है। मनुष्य इन्द्रियदास है, एक जन्ममें धर्मकी सामान्य उन्नति ही जीवनमें सम्भव है। एक जीवनकी उन्नतिकी मात्रास्वरूप मान लेनेसे असंख्य जन्ममें हम लोग धर्मकी आदर्शस्थानीय पूर्ण-मात्रा पर पहुंच सकते हैं। यह असंख्य जन्मग्रहण एक ही आत्माके पक्षमें विधेय है। सुतराँ परममङ्गल प्राप्ति यदि यथार्थमें जीवनका लक्ष्यस्थानीय हो, तो आत्माका अमरत्व अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा।

उपरि-उक्त प्रस्तावसे देखा जाता है, कि काण्टने तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे जिन सब पदार्थोंका अस्तित्व अस्वी-कार किया है, नैतिकज्ञानकी सहायतासे उनका अस्तित्व प्रतिपन्न किया है। इसीसे काण्टका अनुमो-दित ज्ञान और नैतिक जगत्का पार्थक्य प्रतीयमान होता है।

काण्टने अपने नीतितत्त्वमें जिस प्रकार नैतिक जीवनका प्रज्ञानियन्त्रित भाव (Rationalistic side) परिस्फुट कर दिया है, धर्मतत्त्व सम्बन्धमें काण्टका मत भी उसी प्रकार है। "Religion within the Limits of Mere Reason" नामक ग्रन्थमें काण्टने धर्मके स्वरूप व्याख्यामें नैतिक शासनको ही धर्मका प्रकृतस्वरूप बतलाया है। कर्त्तव्य पालन ही काण्ट-के मतसे धर्मका सार है। किसी कर्त्तव्यकर्मको ईश्वरका आदेश जान कर पीछे उसका पालन करनेसे

उसे आदिष्ट धर्म (Revealed Religiou) और किसी कर्मको कर्त्तव्य समझ कर उसके अनुष्ठान करनेके पीछे यदि कर्मको ईश्वरादिष्ट समझा जाय, तो उक्त रूपके धर्मको प्राकृतिक-धर्म (natural religion) कहते हैं। धर्मसम्प्रदाय (church) काण्टके मतसे ईश्वर-प्रवर्त्तित नैतिकशासनाधीन सभासमाज (Union of all good men under the moral government of God) है। प्रज्ञासम्मत विश्वास (rational belief) धर्मसम्प्रदाय (church)-की भित्ति स्वरूप है और इसी प्रकारका विश्वास धर्मसम्प्रदायके सार्वभौमत्वकी सूचना करता है। क्योंकि जो विश्वास प्रज्ञासम्मत है, वह सर्ववादीसम्मत है। इस प्रकार मतभेद होनेके कारणका एकान्त असद्भाव है। इनके बाद काण्टने प्रकृत धर्मसम्प्रदायके लक्षण बतलाये हैं जिनका उल्लेख विस्तार हो जानेके भयसे नहीं किया गया।

काण्टने 'क्रिटिक आव प्योर रिजन' (The Critique of Pure Reason) नामक ग्रन्थांशमें हम लोगोंकी ज्ञानवृत्तिके सम्बन्ध (understanding) में आलोचना की है। उनके दर्शनके द्वितीयांशमें प्रज्ञाकी क्रियाशक्ति (will)के सम्बन्धमें तथा उक्त ग्रन्थके तृतीय भाग "अनुभूति-वृत्तिका विचार" (The Critique of Judgment) नामक अंशमें अनुभूति (feelings) के सम्बन्धमें आलोचना की गई है। यह अंश पूर्ववर्त्ती दोन अंशका संयोग विधान करता है। क्योंकि हम लोगोंकी अनुभूतिवृत्ति (feeling) बुद्धिवृत्ति और इच्छावृत्ति (Cognition and volition)-की मध्यपर्यायसुक्त है। अनुभूति वृत्तिमूलकज्ञान (Judgment) बुद्धिवृत्ति (Understanding) और प्रज्ञा (reason)को मध्यस्थानीय है। बुद्धिवृत्ति वाह्यजगत्का ज्ञान और प्रज्ञाकी क्रियाशक्ति नैतिकजगत्की क्रियावलीका परिचय देती है। दोनोंमें किसी विशेष सम्बन्धका अस्तित्व नहीं देखा जाता। किन्तु अनुभूतिमूलक ज्ञान (Judgment) सार्वभौमके हिसाबसे किसी विशेष पदार्थमें रह कर उसकी प्रकृति निरूपण करता है।

इस वृत्तिके अर्थात् अनुभवमूलक ज्ञानवृत्ति (Judgment)के वशसे हम लोग वाह्यप्रकृतिके बहुत्वके मध्य एकत्वका मूल (ground of unity) देख पाते हैं। प्रकृतिमें एकत्व किस प्रकार प्रकाश पाता है, इसकी पर्यालोचना करनेसे यह जाना जाता है, कि प्रकृतिमें अन्तर्निहित शिल्पकौशल (the notion of design in nature) प्रकृतिके एकत्वका परिचय देता है। साधारणतः शिल्पकौशल या design कहनेसे हम लोग जो समझते हैं, वह मालूम हो जानेसे ही उक्त प्रकृतिके एकत्व वाक्यका याथार्थ्य प्रतिपन्न होगा। ज्ञानकी ओरसे देखनेसे (on the subjective side) शिल्पकौशल या डिजाइन का अर्थ होता है एक स्वसम्पूर्ण और उद्देश्यज्ञोतकभाव (a definite idea) प्रकृतिमें उस भावकी अभिव्यक्ति ही प्रकृतिको अन्तर्निहित शिल्पकौशलका प्रकृत स्वरूप है। किन्तु प्रकृतिमें इस अभिव्यक्तिकी प्रक्रिया किस प्रकार होती है? हम लोग साधारणतः जहां शिल्प कौशल देख पाते हैं, वहां एक अन्तर्निहित उद्देश्य (end)-का अस्तित्व भी अवश्यम्भावी है और अन्तर्निहित यह उद्देश्य सभी प्रक्रियाओंका बन्धनीशक्तिस्वरूप (bond of unity) है। मूलउद्देश्य नहीं जाननेसे हम लोग केवल प्रक्रिया वा अंश देख कर शिल्पकौशलका हाल नहीं जान सकते। शिल्पीका उद्देश्य क्या है तथा इस उद्देश्यकी कार्यपरिणति कहां तक साधित हुई है, यह जाने बिना केवल प्राणशून्य अंश देख कर विषयका यथार्थ तथ्य जानना असम्भव है। सुतरां अन्तर्निहित उद्देश्यका विकाश ही शिल्पकौशलका मूल और उपादान उद्देश्य विकाशका साधनभूत है।

जगत्में साधारणतः उद्देश्य और तत्साधनभूत उपादानका सामञ्जस्य (adoptation of means to end) प्रायः दृष्टिगोचर हुआ करता है। काण्टके मतमें यह प्राकृतिक सामञ्जस्य दो प्रकारसे गृहीत हो सकता है, प्रथमतः हम लोगोंकी मनोवृत्तिके ऊपर उनका कार्य किस प्रकार है, उसका निर्णय (subjectively conceived), द्वितीयतः पदार्थगत प्रकृतिनिर्णय (objectively conceived)। पहलेसे हम लोगोंके सौन्दर्य ज्ञान (aesthetic judgment)-की और दूसरेसे उद्देश्यमूलक ज्ञान (teleological judgment) की उत्पत्ति हुई है।

सौन्दर्यज्ञानविचार (Critique of aesthetic judgment) नामक ग्रंथमें सौन्दर्यकी प्रकृतिके सम्बन्धमें आलोचना है। काण्टका कहना है, कि सौन्दर्यज्ञान जब हमलोगोंकी उपलब्धिके ऊपर शक्तियोंमें निर्भर करता है, तब सौन्दर्यका प्रकृततत्त्व जाननेमें हम लोगोंके सौन्दर्यज्ञानका विश्लेषण आवश्यक है। काण्टकी मीमांसाका फल बहुत संक्षेपमें लिखा जाता है;

पहला, सुन्दर वस्तु (the beautiful) मनमें आपही आप स्वार्थसंस्रवहीन आनन्दको बढ़ाती है। जो हमारे तथा दूसरे व्यक्तिके पक्षमें हितकर वा मनोमद है उसमें हम लोगोंका स्वार्थ संस्रव है। सुन्दर वस्तु देखनेसे जो आनन्द उत्पन्न होता है, उसमें ऐसा भाव नहीं है। सुन्दर वस्तु आप ही आप आनन्द देती है। केवल आनन्द देती है, इसी कारण सुन्दर वस्तु जो हम लोगोंको प्रीतिजनक है सो नहीं, प्रीतिजनकत्व इसका स्वभावगत है। दूसरा, सुन्दर वस्तु देखनेसे जो आनन्द होता है, वह सार्वजनिक (universal) है, व्यक्तिगत आह्लाद नहीं है। जो वस्तु मेरे पक्षमें प्रीतिकर है, वह दूसरेके पक्षमें प्रीतिकर नहीं भी हो सकती है। किन्तु जो सुन्दर है, वह सबोंके पक्षमें प्रीतिजनक है। तीसरा, वस्तु विशेषका उद्देश्य (end) सौन्दर्यका स्वरूप नहीं है, आकारगत सामञ्जस्य सौन्दर्यका प्रकृतिस्वरूप है। चौथा, सुन्दर वस्तुकी हृदयग्राहिता अवश्यम्भावी (necessary) है। सौन्दर्यके उपरि-उक्त लक्षण बतला कर काण्टने महामहिम वस्तु (the sublime)-का स्वरूप निर्देश किया है। उन्होंने कहा है, कि महामहिमत्व (sublimity) प्रकृतिका अन्तर्निहित भाव नहीं है, यह केवल हम लोगोंके मानसिकभाव प्रकृति पर प्रतिबिम्बित है। वात्यान्दोलित समुद्र विस्मय और महिमामण्डित नहीं है, उसे देख कर हम लोगोंके मनमें जो भाव उदय होता है, वही महामहिम (sublime) है। विस्तार हो जानेके भयसे अन्यान्य लक्षणोंका उल्लेख नहीं किया गया।

उद्देश्यसूचक ज्ञानविचार नामक ग्रंथ (critique of teleological judgment)में उद्देश्य और तत्-साधनभूत उपादानके सामञ्जस्य (objective adaptation) सम्बन्धमें पर्यालोचना की गई है, प्राकृतिक सामञ्जस्य दो प्रकारका है, बाह्य (external adaptation) और आभ्यन्तरीण (internal adaptation)। एक उद्देश्यके प्रति लक्ष्य करके तत्साधनोद्देश्यसे विभिन्न वस्तुओंके मध्य सम्बन्ध स्थापित होनेसे उसे बाह्य सामञ्जस्य कहते हैं। जैसे, समुद्रतीरस्थ बालुकाराशि पाइनवृक्षकी वृद्धिकी उपयोगी है। आभ्यन्तरीण सामञ्जस्यके बिना विभिन्न पदार्थयोगका उद्देश्य साधित नहीं होता, उद्देश्य (end) अन्तर्निहित रह कर तत्साधनभूत उपादानोंको नियन्त्रित करता है और प्राणीके शरीरमें इस अंशोंका सामञ्जस्य देखनेमें आता है। शरीरके सभी कार्य प्राण संस्थितिके ऊपर लक्ष्य करके निर्वाहित होते हैं और प्राण शरीरके ऊपर प्रभाव डाल कर अपनी क्रिया नियन्त्रित करता है। इसी प्रकार दोनोंकी क्रिया और प्रतिक्रियाके सामञ्जस्यकी सृष्टि हुई है।

काण्टके दर्शनने यूरोपीय दार्शनिकजगत्‌में जैसी अपनी गोटी जमाई थी, अन्य किसी दर्शनके भाग्यमें वैसा बदा न था। दार्शनिक प्रथाके अभिनव मतके वैचित्र्यके कारण शिक्षित व्यक्तिमात्रकी ही दृष्टि दर्शनशास्त्रकी ओर आकृष्ट हुई थी। काण्टके मतानुवर्त्ती पण्डितोंके मध्य रिनहोल्ड (Reinhold), बार्डिली (Bardili), सुलज (Schulze), फ्राइज (Fries), क्रुग (Krug), बाउटरवेक (Bouterweck) आदि पण्डित ही विशेष प्रसिद्ध हैं। उपरि-उक्त पण्डितगण काण्टीय दर्शनका समर्थन और व्याख्या कर गये हैं।

काण्टकी दार्शनिक भित्तिके ऊपर जो अपने दर्शनकी प्रतिष्ठा कर गये हैं, उन दार्शनिकोंके मध्य फिकटे (Fichte)-का नाम सविशेष प्रसिद्ध है।

फिकटे-प्रवर्त्तित दर्शन काण्टके दर्शनका साक्षात् फलस्वरूप है। काण्टके प्रवर्त्तित दार्शनिकोंके मध्य द्वैतवाद (Dualism)-का समावेश देखा जाता है। फिकटेके मतानुसार काण्टके दर्शनकी मूलभित्ति ज्ञानतत्त्व (Theory of knowledge)-की पर्यालोचना करनेसे इस द्वैतवादका अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। फिकटेने कहा है, कि काण्ट-दर्शनकी मूलभित्तिसे यदि न्यायसङ्गत प्रथानुसार मीमांसा की

जाय, तो फिकटेके स्वप्रवर्त्तित मत अर्थात् तत्प्रवर्त्तित अद्वैतवाद पर पहुंचना पड़ेगा।

फिकटेका दर्शन काण्टीय दर्शनके ऊपर प्रतिष्ठित है, यह पहले ही कहा जा चुका है। अतः फिकटेको काण्टके साथ एक श्रेणीके दार्शनिकोंमें गिन सकते हैं, किन्तु इस श्रेणीके दार्शनिकगण काण्टके दार्शनिक मतको कुछ भी ग्रहण नहीं करते। दार्शनिक जैकबि (Jacobi) इस सम्प्रदायके अग्रणी हैं। काण्टने अपने दर्शन (Critic of Pure Reason)में जिस अज्ञेयवादका प्रचार किया है, उससे लोगोंके मनमें आशङ्का और भीतिका सञ्चार होता है। ज्ञान (empirical knowledge) ईश्वर और आत्माके अस्तित्वका विषय कुछ भी नहीं जानता, मानवके मनमें यह विश्वास निराशा और विपदका सञ्चार करता है। यद्यपि 'प्रैकटिकल रिजन' अंशमें काण्ट ईश्वर और आत्माके अस्तित्वकी प्रतिष्ठा कर गये हैं, किन्तु वह प्रमाण द्वारा गृहीत न हो कर स्वीकृत विषयके जैसा गृहीत हुआ है, इस कारण ऐसे अस्तित्व-स्वीकारमें मनुष्योंके मनकी परिपुष्ट नहीं कर सकता। जैकवि (Jacobi)-प्रवर्त्तित दर्शन काण्टीय दर्शनकी प्रतिक्रियासे उत्पन्न हुआ है। काण्टके मतसे जो प्रमाणके विषयीभूत है, वह विश्वासयोग्य नहीं है अर्थात् उसके ऊपर हम लोगोंका विश्वास नहीं हो सकता। जैकविने इसका विपरीत मत प्रचार किया है। उनका कहना है, कि जो हमारे ज्ञानकी उच्चसीमा पर अवस्थित है, जैसे आस्तिक्य ज्ञान इत्यादि, वह प्रमाणके अतीत है; प्रमाणकी प्रक्रियावली इस स्थान पर पहुंच नहीं सकती। सुतरां इन सब विषयोंका ज्ञान हम लोगोंका अनुभूतिमूलक ज्ञान (feeling) है, मनका सांसिद्धिक आस्तिक्य बुद्धि (belief or intuetive tognition)-के ऊपर निर्भर करता है। जैकविने काण्टदर्शनका प्रतिवाद करके स्वप्रवर्त्तित इस आस्तिक्य विश्वासमूलक दर्शन (Faith philosophy)-का प्रचार किया है।

फिकटे-प्रवर्तित दर्शन (Fichtean Philosophy)।

काण्ट वाह्यजगत्के अस्तित्वको सम्पूर्णरूपसे अस्वीकार न कर सके थे। वाह्यजगत्का स्वरूप हम लोगोंके अज्ञेय होने पर भी वाह्यजगत् हम लोगोंके मनके ऊपर अपना प्रभाव डालता है। वाह्यजगत्की प्रकृति नहीं जानने पर भी मनके ऊपर क्रिया (Outer impact) हम लोग उपलब्ध कर सकते हैं। फिकटेके मतसे काण्टके निर्दिष्ट वाह्यजगत्का अस्तित्व भ्रमात्मक है। हम लोगोंसे स्वतन्त्र तथा विभिन्न प्रकृतिक वाह्यजगत् नामक किसी पदार्थका अस्तित्व निर्देश करना असङ्गत है। जिस प्रकारकी युक्तिका अवलम्बन करके फिकटे उपरि उक्त तत्त्व पर पहुंचे हैं, संक्षेपमें उसका उल्लेख किया जाता है।

हम लोगोंके इन्द्रियज्ञानके प्रत्येक कार्यमें (in every perception) ज्ञाता (subject or ego) और ज्ञानका विषय (Object or non-ego) ये दोनों अंश विद्यमान हैं। ये दोनों ही अंश द्वैतवादकी सूचना करते हैं तथा इन दोनोंमेंसे एक दूसरेका रूपान्तर है वा दूसरेसे आविर्भूत हुआ है, यदि इसे प्रमाणित कर सकें, तो अद्वैतवाद मतकी प्रतिष्ठा होगी। यदि ज्ञाता अर्थात् मन (ego) ज्ञेय पदार्थ अर्थात् वाह्यजगत् (non-ego)-से उत्पन्न हुआ है, यदि यह प्रतिपन्न किया जाय अर्थात् मन जड़का विकारमात्र है, स्वतन्त्र कोई पदार्थ नहीं है यह दिखाया जाय तो जड़वाद (materialism)की प्रतिष्ठा होगी। अथवा ज्ञेयपदार्थ (non-ego) ज्ञातासे उत्पन्न हुआ है अर्थात् वाह्यजगत् मनसे कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है, यह प्रतिपन्न होनेसे अध्यात्मवाद वा आइडियालिज्म (idealism)की प्रतिष्ठा हुई ऐसा समझना चाहिये। फिकटे शेषोक्त मतके प्रवर्तक हैं। उन्होंने कहा है, कि काण्टने जिन वस्तुके स्वरूप (things in themselves)का अस्तित्व स्वीकार किया है। उसका मूल क्या है? काण्टका कहना है, कि वस्तुके स्वरूपने हम लोगोंको इन्द्रियानुभूति (sensation)का उद्बोधन किया है। फिकटे कहते हैं, कि इन्द्रियानुभूतिसमूह (sensation) के कारण निर्देश करनेमें वाह्यवस्तुकी अस्तित्व-कल्पना भ्रमात्मक है। वाह्यवस्तु जो मनसे स्वतन्त्र पदार्थ है, किस प्रकार मनके ऊपर अपनी क्रिया फैला सकती

है ? सुतरां बाह्यजगत् मनःसृष्ट पदार्थ है, अति-मानसिक पदार्थ नहीं (not-e tramental thing) है ।

फिकटेका कहना है, कि आत्मा (ego) सब विषयोंका मूलाधार है और इसीसे सभी विषयोंकी उत्पत्ति हुई है । यह आत्मा कहनेसे व्यक्तिगत आत्म-ज्ञान (individual ego)-का बोध नहीं होता, विश्वजनिक ज्ञानके मूलस्वरूप परमात्मा वा मूलप्रज्ञा-शक्ति (universal ego or universal reason)-का बोध होता है। दार्शनिक फिकटे ही सबसे पहले डाइलेक्टिक प्रथा (Dialectic method)का सूत्र-पात कर गये हैं। काण्टने अपने दार्शनिक मतके प्रचार-में फिकटेकी तरह किसी एक तत्त्व (principle)को अवलम्बनसे अन्यान्य तत्त्वोंका अस्तित्व प्रमाणित (deduce) न करके अभिज्ञतामूलक प्रथा (Empirical method)-के ऊपर बिलकुल निर्भर किया है। फिकटेके मतसे ज्ञानका क्रम इस प्रकार है, दो विरोधी पक्षों वा प्रतिज्ञाओंके समन्वय (synthesis)-से तृतीय पक्षकी अर्थात् समन्वय पक्षकी उत्पत्ति हुई है । यह तृतीय प्रतिज्ञा अपर दोनोंको समाहारमात्र (mere juxtaposition) नहीं है। तृतीय प्रतिज्ञा नूतनतत्त्व-की अवतारणा करती है। इसी प्रकार द्वितीय समन्वय पक्षको विरोधी प्रतिज्ञाका स्थापन करके दोनोंके योगसे फिर तृतीय समन्वय पक्ष (third synthesis)-की उत्पत्ति होती है। ज्ञानका परवर्त्तीक्रम भी इसी प्रकार है । फिकटेने एकत्वज्ञान (the principle of idenitity)-को हम लोगोंके ज्ञानका मूल बतलाया है। एकत्वज्ञान संशयसे अतीत है, इसके नहीं रहनेसे हम लोगोंके ज्ञानमात्र ही नहीं रह सकता । फिकटे-प्रव-र्त्तित यह मूल क=क, इसी आकारमें निर्दिष्ट किया जा सकता है । आपनापन=आपनापन, इस प्रतिज्ञा द्वारा आपनापन जो सर्वज्ञानका मूल है, वह सूचित होता है। यह प्रतिज्ञा आत्मज्ञानका कर्त्ता और विषय दोनों ही है । द्वितीय तत्त्व भी फिकटेने निम्नलिखित आकारमें प्रकाशित किया है, अ—क नहीं है—क (Non—A is not = A) उपरि-उक्त प्रतिज्ञा सर्वतो-भावसे निरपेक्ष नहीं है, क्योंकि अ — क, अर्थात् क-से स्वतन्त्र वस्तुके अस्तित्वकी यदि कल्पना की जाय, तो पहले क-का अस्तित्व स्वीकार करना पड़ेगा । क्योंकि क क्या है, यह नहीं जाननेसे अ-क-के ज्ञानकी सम्भा-वना नहीं। अनात्म वस्तु नहीं है=आत्मा (non-ego is not=ego); इस प्रतिज्ञासे यह जाना जाता है, कि आत्मासे स्वतन्त्र वस्तुका अस्तित्वज्ञान आत्मज्ञानके ऊपर निर्भर करता है । क्योंकि आत्मा (ego) क्या है, यह ज्ञान पहले नहीं होनेसे अनात्मवस्तु (non ego)-का ज्ञान हो ही नहीं सकता। सुतरां आत्माके अस्तित्व ज्ञान (ego)-को पहले प्रतिष्ठा करनी होगी। उपरोक्त दो प्रतिज्ञा, फिकटेके मतसे यथाक्रम पूर्वपक्ष (thesis) और उत्तरपक्ष (antithesis)-को स्थानीय है। सुतरां देखा जाता है, कि फिकटेने द्वितीय प्रतिज्ञामें आत्म ज्ञान और अनात्मज्ञानमूलक (ego and non ego) द्वैतवादका सन्निवेश किया है । यदि आत्मज्ञान ही सभी ज्ञानोंका मूल हो और आत्माका अन्य निरपेक्ष अस्तित्व सबसे पहले स्वीकार करना पड़े, तो अनात्म-वस्तु (non-ego)-के अस्तित्वज्ञानकी उत्पत्ति किस प्रकार साधित हुई है ? अनात्म वस्तुका अर्थ आत्माका विपरीत धर्माक्रान्त है । किन्तु अस्तित्व यदि एकमात्र स्वीकार ही न किया जाय, तो अनात्म वस्तु आत्माके ही अन्तर्गत है, ऐसा स्वीकार करना पड़ेगा। किन्तु अनात्म कहनेसे आत्माका विपरीतप्रकृतिक पदार्थ समझा जाता है, इसीसे दोनोंकी एकत्र संस्थिति (position and contraposition) अन्योन्यविरोधको सूचना करती है । फिकटेने द्वितीय प्रतिज्ञाकी अवता-रणाके समय इस द्वैतज्ञानमूलक विरोधतत्त्व (the principle of contradiction)का सन्निवेश किया है । तृतीय प्रतिज्ञामें उन्होंने प्रथम प्रतिज्ञा पूर्वपक्ष और द्वितीय प्रतिज्ञा उत्तरपक्ष, इन दोनों पक्षका समन्वय साधन किया है । द्वितीय प्रतिज्ञामें विरोध-समन्वयका स्थूल मर्म इस प्रकार है,—अनात्म वस्तु (non-ego) यथार्थमें आत्मातिरिक्त कोई पदार्थ नहीं है । यह आत्माका ही अंश विशेष है। हम लोगोंके ज्ञानराज्यमें ज्ञाता और ज्ञेय, आत्म और अनात्म ये दो भेद लक्षित होते हैं। फिकटेके मतसे यह भेदज्ञान परात्माका निजज्ञान

है। ज्ञानराज्यमें आत्माने स्वयं ही इस भेदज्ञानकी सृष्टि की है ("In the ego I oppose to the divisible ego a divisible non-ego")। सुतरां बाह्यजगत् आत्माकी स्वनियन्त्रित सीमामात्र है अर्थात् आत्मा अपनेको ही सीमाबद्ध करके बाह्यजगत्‌रूपमें प्रतीयमान हुई है।

फिकटेके मतका सार यों है—आदि कारणस्वरूप एकमात्र परमात्मा (absolute ego) विद्यमान है; चैतन्य ही इनका स्वरूप है। किन्तु चिन्ता रहनेसे चिन्ताके विषयका अस्तित्व भी उसके साथ साथ स्वीकार करना होगा। परमात्मा स्वयं ही निज चिन्ताके विषय हैं; प्रकृति (nature) और पुरुष (mind) ज्ञेय और ज्ञातारूपमें परमात्मा-दर्पणमें प्रतिबिम्बकी तरह आत्मस्वरूपका अनुभव करते हैं। आत्मस्वरूपानुभव आत्मज्ञान (Self consciousness)-सापेक्ष है; जीवात्मा-(finite egos)में आत्मज्ञानका विकाश हुआ है। किन्तु परमात्मा (absolute egos) जीवात्मासमूहकी समष्टिमात्र है, सुतरां जीवात्मासमूह आत्मज्ञानलाभ होनेसे ही परमात्माकी स्वरूपानुभूति नहीं होती। अनन्त आत्मज्ञान (infinite and absolute selfconsciousness)का उदय होनेसे परमात्माकी आत्मानुभूतिकी सम्पूर्णता होती है। इसी उद्देश्यका लक्ष्य करके विकाश कार्य चलता है।

फिकटेने अपने दर्शनके क्रियातत्त्वमूलक अंश (Practical Philosophy)-में ज्ञानतत्त्वमूलक अंशका तत्त्वसमूह व्यक्तिगत जीवनके क्रियाकलापमें आरोप किया है। उनके दर्शनके इस अंशमें नीतितत्त्व, समाजतत्त्व और राजनीति सम्बन्धमें आलोचना है।

धर्मतत्त्वकी आलोचनाके समय फिकटेने जगत्‌की नैतिक शृङ्खलाको ईश्वरका स्वरूप (God is the moral order of the universe) बतलाया है। उनके मतसे ईश्वरका अन्य स्वरूप हम लोगोंकी धारणाके बहिर्भूत है। धर्मानुमत कार्य द्वारा हम लोगोंके अन्तर्निहित ईश्वरत्व जाग्रत हुआ करता है। काण्टकी तरह फिकटे नीति (morality)को ही धर्म (religion) का मूल बतलाया है। धर्मनीतिसे स्वतन्त्र दूसरा कोई पदार्थ ही नहीं है। ईश्वरोपलब्धि नीतिका ही उद्देश्य है। नैतिकजीवनमें कार्य द्वारा और आध्यात्मिक जीवनमें विश्वासके बलसे ईश्वरकी प्राप्ति होती है।

परवर्ती पाश्चात्य दार्शनिकोंका मत यूरोपीयदर्शन शब्दमें देखो।

पाश्चात्यवैदिक (सं॰ पु॰) पाश्चात्यः वैदिकः कर्मधा॰। १ पश्चिमदेशभव वेदाध्यायी अथवा वेदवित् ब्राह्मण, पश्चिम देशके वेद पढ़नेवाले अथवा वेद जाननेवाले ब्राह्मण। २ बङ्गवासी ब्राह्मणश्रेणीभेद, बङ्गालमें रहनेवाले ब्राह्मणकी एक श्रेणी।

वैदिक कुलमञ्जरीमें लिखा है, कि पूर्व समयमें गौड़ देशमें त्रिविक्रम नामक चन्द्रवंशीय एक बड़े प्रतापी राजा रहते थे। साक्षात् लक्ष्मीकी तरह रूपगुणवती उनकी एक स्त्री थी। उस स्त्रीके गर्भसे विमलसेन नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उपयुक्त समयमें विमलसेन विविध विद्यागुणसे विभूषित हो पैतृक सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। ये प्रजाओंका भलीभांति प्रतिपालन करते हुए सुखपूर्वक पृथिवीका शासन करने लगे। कुछ दिन बाद राजा विमलसेनके औरस और महिषी गुणवती मालतीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हुए। इनमेंसे बड़ेका मल्लवर्मा और छोटेका श्यामल वर्मा नाम रखा गया। मल्लवर्मा राजोचित धैर्य वीर्यादि निखिल गुणके आकर थे, अतः पिताकी मृत्युके बाद ये ही सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। श्यामल वर्मा भी अपने बड़े भाईकी तरह नाना गुणोंसे सम्पन्न थे। इन्होंने बड़े भाई मल्लवर्माको पितृपद पर अभिषिक्त देख दिग्विजय करनेका सङ्कल्प किया। पीछे वे बहुत-सी सेना इकट्ठी कर अपनी पुरीसे बाहर निकले और देशदेशान्तरके राजाओंके साथ युद्ध कर जयलाभ करने लगे। अन्तमें अपने तीव्र पराक्रमसे अनेक राजाओंको पराजित कर ये स्वदेश लौटे। यहां गौड़के अन्तर्गत विक्रमपुर नामक स्थानमें रमणीय उपान्त भागमें एक पुरी निर्माण कर प्रजापालन करते हुए सुखसे रहने लगे। उस समय काशीनगरीमें वीरसिंह नामक सर्वगुण सम्पन्न एक राजा राज्य करते थे। एक दिन इन्होंने अपनी कन्याके विवाहके सम्बन्धमें उपयुक्त पात्र तथा पात्रके विषयमें पण्डितोंसे पूछा। पण्डितगण

राजोंके कुलशीलसे अभिज्ञ थे, अतः उन्हींको बात सुन कर कहने लगे, "राजन्! श्यामलवर्मा नामक एक चन्द्रवंशीय राजा राजोचित सभी गुणोंसे विभूषित हैं। हम लोगोंको तो वे ही आपकी कन्याके उपयुक्त वर जँचते हैं।" राजा नीलकण्ठने ब्राह्मण-पण्डितोंके मुखसे श्यामलवर्माको वंशो कीर्त्तिकथा सुन कर सानन्दचित्तसे उन्हींको कन्या प्रदान करनेकी इच्छा प्रकट की और तत्क्षणात् कई एक कार्यकुशल दूतोंको गौड़देश भेजा। दूतगण यथासमय वहां पहुंचे और विनीत भावसे गौड़ाधिपतिका स्तव करने लगे। राजा श्यामलवर्माने उनके नाम धाम तथा आनेका कारण पूछा। इस पर दूतोंने सब वृत्तान्त निवेदन कर अन्तमें विवाहका प्रस्ताव किया। राजा श्यामलके सम्मत होने पर नीलकण्ठकी सुन्दरी कन्याके साथ उनका विवाहकार्य सम्पन्न हुआ। विवाह कर श्यामलवर्मा काशीसे गौड़को आए। कुछ दिन बाद एक समय दिनमें ही उनके प्रासादके शिखर पर शकुनि नामक एक पक्षी आ बैठा। उसी समयसे राज्यमें नाना प्रकारकी अशान्तिका सञ्चार होने लगा। इस पर राजा श्यामलवर्माने कुछ प्रधान प्रधान पण्डितोंसे घर पर शकुनिके बैठनेसे क्या क्या अमङ्गल हो सकता है, इस विषयमें प्रश्न किया। बाद उनसे गृहोपरि गृध्रपतन ही उत्पातका कारण है, ऐसा सुन कर इन्होंने गौड़वासी ब्राह्मणोंसे शान्तिविधान करनेका अनुरोध किया। राजाकी प्रार्थना पर तदानीन्तन गौड़वासी ब्राह्मणोंने उत्तर दिया, "साग्निक ब्राह्मणके सिवा शान्ति संस्थापित होना असम्भव है।" राजा क्रमशः नाना प्रकारके विघ्नोंका प्रादुर्भाव देख बड़े ही चिन्तित हुए और परामर्श कर पत्नीके साथ ससुराल काशीधाम पहुंचे। वहां अपने श्वशुर काशीपतिके निकट इन्होंने उक्त घटना प्रकाशित की। काशीपतिने यह भीषण वृत्तान्त सुन कर कई एक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको बुलवा मंगाया और उन लोगोंसे शान्तिविधानके लिए गौड़ जानेका अनुरोध किया। उन ज्वलदग्निसदृश ब्राह्मणोंके गौड़ आनेमें सम्मत होने पर पहले गौड़ेश्वर स्वदेश आए और एक यज्ञका आयोजन करने लगे। पीछे उन्होंने उन पञ्चगोत्रोद्भव अशेषगुणशाली पांच ब्राह्मणोंको गुणराशि प्रत्यक्ष करते हुए उन्हें स्वदेश बुलाया। उन पांच ब्राह्मणोंके नाम ये थे—यशोधर, वेदगर्भ, रत्नगर्भ, श्रीमान् और वेदान्तवागीश। इनमेंसे यशोधर ऋग्वेदी शुनकगोत्रीय, वेदगर्भ शाण्डिल्य गोत्रीय, रत्नगर्भ वशिष्ठ गोत्रीय, वेदान्तवागीश सावर्णगोत्रीय और श्रीमान् सामवेदी भरद्वाजगोत्रीय थे। वे सबके सब ब्रह्मविद्या और निखिलशास्त्रमें पारदर्शी थे। १००१ शकको गौड़देशमें उन पांचोंका पदार्पण हुआ। राजाने उन सब ब्राह्मणों द्वारा यथाविधि यज्ञ कर स्वराज्यमें शान्तिविधान किया। वे पांच ब्राह्मण ही वर्त्तमान श्रेय पाश्चात्य वैदिकोंके आदिपुरुष माने जाते हैं।

राजा श्यामलवर्माने उन पांच ब्राह्मणोंको वङ्गदेशमें बसानेके लिए यज्ञके दक्षिणास्वरूप उनको सामन्तसार, जयारि, अलाधि, दधीचि, मध्यभाग, मरीचि, शान्ताली, ब्रह्मपुर, आखरा, पानकुण्ड, कोटालीपाड़, चन्द्रद्वीप, नवद्वीप और गौराली ये चौदह ग्राम दिए। उक्त ब्राह्मणगण यज्ञके समाप्त होने पर अपने देशको चले गए; किन्तु वहांके ब्राह्मणोंने इन लोगोंका पूर्ववत् सम्मानादर न किया। अतः वे अपने अपने पुत्रकलत्रादिको साथ ले वहांसे पुनः वङ्गदेश आए। उन लोगोंके अपने देशसे लौट आने पर राजाने पूर्वप्रदत्त चौदह ग्रामोंमेंसे यशोधरको चन्द्रद्वीप, कोटालीपाड़ा और सामन्तसार; वेदगर्भको मध्यभाग, आखरा और पानकुण्ड; रत्नगर्भको आलाधि, गौरालि और जयारि श्रीमान्को दधीचि और नवद्वीप तथा वेदान्तवागीशको मरीचि शान्ताली और ब्रह्मपुर विभाग कर दिये। बाद उनमेंसे यशोधर सामन्तसारमें, वेदगर्भ आखरामें, रत्नगर्भ गौरालीमें, श्रीमान् नवद्वीपमें और वेदान्तवागीश शान्तालीमें रहने लगे।

उक्त कुलमञ्जरीमें दूसरी जगह लिखा है, कि शुनक और शौनक एक नहीं थे। शुनकगोत्रीय यशोधर अपने पुत्रकलत्रादिके साथ सामन्तसारमें वास करते थे। इसी समय एक दिन इनके पूर्व मित्र यशोधर नामक शौनक-गोत्रीय एक दूसरे ब्राह्मण वहां पहुंचे। शुनकयशोधर बहुत दिनोंके बाद अपने मित्रको देख कर बड़े आनन्दित हुए। बाद शौनकगोत्री यशोधरने कहा,

"मित्र! बहुत दिनों तक आपसे मुलाकात न होनेके कारण मेरा चित्त व्याकुल हो गया था। विशेषतः सम्प्रति मैं स्त्री-पुत्रहीन हो और भी व्याकुल हो गया हूं। अब कहां जाऊं, क्या करूं इत्यादि चिन्तासे मेरा चित्त हमेशा सन्तप्त रहता है, इसीलिये मैं निरुपाय हो आपके दर्शनके लिये गौड़ देश आया हूं। अब मेरी क्या गति होगी, कृपया बतला दें।" इस पर प्रथमोक्त यशोधरने अपने घरमें वास करनेके लिये उनसे अनुरोध किया। शेषोक्त यशोधर मित्रकी बात सुन अपने देशका परित्याग करने और बन्धु बान्धवसे आबद्ध हो वहीं रहनेको राजी हुए। ये भी शास्त्रज्ञ, पुण्यात्मा और धार्मिक थे। इन्होंने वर्मवंशीय बङ्गराजको शूद्र समझ उनका दान ग्रहण नहीं किया था। इसके बाद शुनक-गोत्रीय यशोधरने अपने मित्र शौनकगोत्रीय यशोधरको अपना वासस्थान सामन्तसार प्रदान किया और राजानु-मन्त्रित हो वहांके अन्यान्य ब्राह्मणोंसे कहा, "ये मेरे मित्र हैं तथा सर्वशास्त्रमें व्युत्पन्न और देवभक्त भी हैं। इनकी मति सर्वदा धर्मकार्यमें लिप्त रहती है। आप लोग इन्हें मुझ ही जैसा समझेंगे। ये शौनकगोत्रीय होने पर भी मेरे गोत्रकी तरह सम्मानित होंगे तथा हम लोगोंके सभी कुलवृत्तान्त पुस्तकाकारमें लिख रखेंगे। ऐसा होनेसे ही इनके साथ हम लोगोंकी परस्पर प्रीति रहेगी।" शुनक यशोधरकी बात सुन समागत सभी ब्राह्मण इस विषयमें सम्मति प्रकाश कर अपने अपने स्थानको चल दिए। अनन्तर कुछ दिन बाद रथीतर-गोत्रीय एक ब्राह्मण स्त्रीपुत्रादिको ले कर गौड़देशमें वास करनेके लिए आए। उनके एक परम सुन्दरी कन्या थी। शौनकगोत्रीय यशोधर उस कन्याका पाणिग्रहण कर मित्रानुग्रहसे सामन्तसारमें ही वास करने लगे तथा मित्रके आदेशानुसार वैदिकोंका कुल वृत्तान्त लिख रखना ही इनका प्रधान कार्य ठहराया गया।

उक्त कुलमञ्जरीमें और एक जगह पञ्चगोत्र विषयमें इस प्रकार लिखा है,—

पञ्चगोत्रीय ब्राह्मणोंके आनेके बाद जो कान्यकुब्ज प्रभृति स्थानोंसे आ कर गौड़देशमें रहने लगे, वे षड्गोत्रीय कहलाये। ये सब ब्राह्मण भी वेदवित् और धर्मनिष्ठ थे तथा क्रियाकर्मके भेदसे उत्तम, मध्यम और नीच इन तीन प्रकारमें विभक्त हुए हैं। कृष्णात्रेय, भरद्वाज, वशिष्ठ, शौनक, काश्यप, वात्स्य, घृतकौशिक और गौतम ये कई एक गोत्र हैं। इनके अलावा पराशर, अग्निवेश्य, सङ्कर्षण, रथीतर, आत्रेय और कौशिक आदि गोत्र भी देखे जाते हैं।

उपर्युक्त गोत्रोंके मध्य कृष्णात्रेय सामवेदी, शौनक ऋग्वेदी, भरद्वाज यजुर्वेदी तथा गौतम सामवेदी और यजुर्वेदी हैं। वशिष्ठ, काश्यप, वात्स्य और रथीतर ये सभी यजुर्वेदी माने जाते हैं।

यजुर्वेदी मौद्गल्य, ऋग्वेदी गौतम और वशिष्ठ प्रभृति कई एक गोत्र गङ्गातीरवासी हैं।

समाजपतियोंके कुलग्रन्थमें उक्त विवरण कुछ भिन्न रूपमें देखा जाता है। सामन्तच क्रामणिरचित श्यामलचरितमें लिखा है,—"गौड़ेश्वर श्यामलवर्माने काशीश्वर जयचन्द्रकी कन्याका पाणिग्रहण किया। दैवात् एक दिन उनके प्रासादके ऊपर गिद्ध बैठा। इसीलिए राजाने गौड़वासी ब्राह्मणोंको ला कर शान्तिकार्य कर-वाया, किन्तु उससे भी घोरतर उत्पात दूर न हुआ। बाद ब्राह्मणोंने राजासे कहा, "हमने सुना है, कि यह निरग्निक देश है; अतः आप जल्द ही साग्निक ब्राह्मणोंको मंगावें, तब यह उत्पात दूर होगा।" राजा जानते थे, कि साग्निक ब्राह्मण इस देशमें नहीं आवेंगे, अतः उन्होंने अपनी स्त्रीको पित्रालय भेज दिया। कुछ दिन बाद वहां रह कर राजाने पत्नीके व्रतस्वस्त्ययनादि सम्पन्न करनेके बहानेसे अपनी स्त्री द्वारा काशी-श्वरके निकट एक साग्निक ब्राह्मणकी प्रार्थना की। काशीश्वरने कन्याके साथ एक वेदवित् ब्राह्मणको भेज दिया जिनका नाम यशोधर था। वे कनौजीय, शौनक-गोत्रसम्भव, ऋग्वेदी और साङ्गवेदपारदर्शी थे। वारा-णसीके पश्चिमांशमें अवस्थित कर्णावती नामक समाजमें उनका वास था। १००१ शकमें वैशाख मासके शुक्ल-पक्षकी दशमी तिथिको यशोधर स्त्रीपुत्रके साथ बङ्गके अन्तर्गत कुन्तल पधारे। यहां उन्होंने मङ्गलार्थ यज्ञ आरम्भ कर दिया। मन्त्रके प्रभावसे वह पूर्वपतित गृध्र

पुन: प्रासाद पर लाया गया और यज्ञस्थलमें उसे मार कर जीवित कर दिया गया। इस प्रकार यज्ञके सुसम्पन्न होने पर सभी उत्पात दूर हुए। अब श्यामलवर्माने अत्यन्त सन्तुष्ट हो उन्हें ताम्रशासन द्वारा रहनेके लिये ग्राम दान किया। अब वहीं पर यशोधर पुत्रदारादिके साथ रहने लगे, किन्तु वहां और साग्निक ब्राह्मण न रहनेके कारण इन्होंने राजासे कहा, कि साग्निक ब्राह्मणके बिना किस प्रकार मेरो सन्तानका विवाह होगा? इस पर राजा प्रसन्न हो बोले, "आप अपनी इच्छानुसार साग्निक ब्राह्मणोंको ला सकते हैं। मैं उन्हें रहनेके लिए भी स्थान दूंगा।" बाद यशोधर पुन: निज देश जा कर १००२ शकमें बन्धु और परिवारादिके साथ चार गोत्रके चार सामवेदी साग्निक ब्राह्मणोंको लाये जिनके नाम ये थे,—शाण्डिल्यगोत्रके वेदगर्भ, वशिष्ठगोत्रके कार्त्तिक, सावर्णगोत्रके पद्मनाभ और भरद्वाजगोत्रके जितामित्र। राजाने इन चार ब्राह्मणोंके मध्य वेदगर्भ और उनके पुत्रादिको आलाधि, पानकुण्ड, आखड़ा और मध्यभाग ये चार ग्राम; वशिष्ठगोत्रीय कार्त्तिक और उनके तीन पुत्रोंको जयारि, गोराखि, शान्तरु, ब्रह्मपुर और चन्द्रद्वीप; सावर्णगोत्रीय पद्मनाभको नवद्वीप और दधीचि तथा भरद्वाजगोत्रीय जितामित्रको कोटालिपाड़ और दधीचि नामक ग्राम वासार्थ प्रदान किये। यशोधरको सामन्तसार ग्राम मिला और वे ही सबोंके समाजप्रधान वा समाजपति हुए।"

जटाधरकृत पाश्चात्यकुलदीपिकामें लिखा है,—"पञ्चगोत्रके आगमनके बहुत दिन बाद पाश्चात्यवैदिकों की अन्य शाखा षष्ठगोत्रीय छः मनुष्य कान्यकुब्जसे आये थे। उनमेंसे कृष्णात्रेयगोत्र रूपराम १२०४ शकको जयारि नामक स्थानमें, गौतम गोत्रज वैष्णवानन्द १२०५ शकको कोटालोपाड़ामें, काश्यपगोत्रज रामनारायण १२०७ शकको नवद्वीपमें, वात्स्यगोत्रीय कृपाचार्य (कपाट) १२०८ शकको चन्द्रद्वीपमें, वत्सगोत्रज मुकुन्द आचार्य १२०८ शकको मध्यभाग नामक स्थानमें और रथीतरगोत्रज माधवमिश्र १२१० शकको नवद्वीप समाजमें उपस्थित हुए थे। इनके मध्य रूपराम, वैष्णवानन्द और रमनारायण ये तीन मनुष्य सामवेदी तथा कृप, मुकुन्द और माधवमिश्र ये तीन यजुर्वेदी थे। इन लोगोंने सामन्तसारके शौनकगोत्रीय समाजपतियोंका आश्रय ग्रहण किया। उन लोगोंके यत्नसे ये पूर्वागत पाश्चात्यवैदिकोंके साथ सम्बन्धसूत्रमें आबद्ध हुए। बल्लालसेनने जिस प्रकार राढ़ी और वारेन्द्रके मध्य कुलीन और श्रोत्रियविभाग किया है, उसी प्रकार पाश्चात्यवैदिकसमाजमें पञ्चगोत्र कुलीन होनेके कारण माननीय और षष्ठगोत्र उनसे सम्मानमें कुछ हीन हैं।"

शान्तरु-समाजके रूपरामकृत वैदिक कुलराशिमें आखड़ा-समाजके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है,—

किसी समय आखड़ेमें चण्डोदास नामक एक शाण्डिल्यगोत्रीय सम्मानित ब्राह्मण रहते थे। सृष्टिधर, नारायण और गङ्गेश नामक उनके तीन पुत्र थे। इन तीन पुत्रोंमेंसे गङ्गेश सबोंकी अपेक्षा रूपवान् थे। हाजी नामक किसी मुसलमानने उनके साथ अपनी कन्याका विवाह कर उन्हें यवनसमाजभुक्त कर लिया। गङ्गेश जातिभ्रष्ट हो यवनसमाजमें जगन्नाथ कारफरमा नामसे प्रसिद्ध हुए। नारायणके पुत्र ध्रुवानन्द मुसलमानोंके भयसे भीत हो कर भोजेश्वरमें जा रहने लगे। चण्डोदासके ज्येष्ठ पुत्र सृष्टिधर कहीं दूसरी जगह न जा कर अपनी जातियोंको परित्यक्त सम्पत्तिके लाभसे आखड़ेमें ही बस गए। सृष्टिधर यवनसंसर्गसे दूषित हुए हैं, ऐसा समझ कर तदानीन्तन वैदिकोंने सम्बन्धादि द्वारा उन्हें फिर समाजभुक्त न किया। अतः सृष्टिधर विशेष चिन्तित हुए। क्रमशः सृष्टिधरकी दो कन्याएं विवाहयोग्य हो गईं। उसी समय एक सुन्दर ब्राह्मण सृष्टिधरके यहां अतिथि हुए। सृष्टिधरने विधिपूर्वक परिचर्या कर उस ब्राह्मणका परिचय पूछा। इस पर उसने कहा, 'मेरा नाम हरिहर है और अद्यापि मेरी शादी नहीं हुई है।' सृष्टिधरने ऐसा जान उन्हींको कन्या प्रदान करना चाहा और हरिहरसे अपना अभिप्राय प्रकाश कर उन्हें अपने घर पर ही रहनेका अनुरोध किया। हरिहर वहीं रहने लगे। इधर सृष्टिधर समाजशोधनमें उत्सुक हो चौदह समाजस्थ [illegible]दिकोंके समीप गए और विनीत हो बोले, कि यव[illegible]नके संसर्ग[illegible]ने सृष्टि[illegible] से खुद वे दूषित नहीं हुए हैं। वैदिको[illegible] [illegible]

धरको बात सुन उन्हें दोषी न ठहराया और सब मिल कर कावड़ाको चले। वहां आ कर भी सृष्टिधर दोषी नहीं हैं, ऐसा उन्हें मालूम हुआ। बाद सृष्टिधरके घर आ कर उन लोगोंने कन्या-विवाहको तैयारी देख सृष्टिधरसे पात्रका परिचय पूछा। सृष्टिधरने अपनी दो कन्याओंके भावी वर हरिहरका आमूल परिचय दिया। हरिहरका परिचय सुन समागत वैदिकोंने क्रुद्ध हो वहांसे चल देना ही स्थिर किया, परन्तु चले जानेसे सृष्टिधर पूर्ववत् दोषी ही रहेगा, ऐसा सोच उनमेंसे अधिक रह गए। पर शौनकगोत्रीयोंमेंसे एकने भी ऐसे गर्हित कार्यमें योग न दिया, वे सबके सब चल ही दिये। इधर शौनकगोत्र भिन्न अन्य जिन सब वैदिकोंने सृष्टिधरके घरका परित्याग न किया, वे अज्ञात कुलशील हरिहरको कन्या देना युक्तिसङ्गत है या नहीं, ऐसा सोच ही रहे थे, कि इतनेमें सामवेदी भरद्वाजगोत्रीय जगन्नाथ नामक एक ब्राह्मण सभामें बैठे हुए सबोंसे हरिहरका परिचय कहने लगे। उससे यह जाना गया, कि हरिहरके पूर्वपुरुषने कान्तिकके कथानुसार यजुर्वेदी भारद्वाज गोत्रीय रत्नगर्भ शुनक-यशोधरको अपनी कन्या प्रदान की थी। उस कन्याके गर्भसे यशोधरके हरिभाम प्रभृति अनेक पुत्र उत्पन्न हुए जिनमेंसे ज्येष्ठ पुत्रका नाम था वत्सराज। वत्सराजका पुत्र दिनकर, दिनकरका पशुपति और पशुपतिका पुत्र श्रीपति था। यही श्रीपति नवद्वीपसे कोटालीपाड़में आ कर रहने लगे। इनके पुत्र राघवानन्द सिंहने गोतमगोत्रीय वैष्णवानन्द मिश्रकी कन्यासे विवाह किया जिसके गर्भसे रामभद्र और जनार्दन नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनमेंसे बड़े रामभद्रके पुत्र ही हरिहर थे। जगन्नाथ इस प्रकार परिचय दे अन्तमें सभामें बैठे हुए सबोंको लक्ष्य कर कहने लगे, "आप लोगोंसे मेरी एक प्रार्थना यह है, कि मेरे दो लड़कोंके वैराग्यावलम्बनसे मेरा कुलक्षय हुआ है। अतः यह शुनकगोत्रीय हरिहर हम लोगोंके समाजावलम्बनसे पञ्चगोत्रके मध्य परिगणित हों।" उनकी प्रार्थना पर सभास्थ वैदिकोंने सम्मत हो कहा, 'तब इस हरिहरको ही हम लोगोंने गोष्ठीपति बनाया। अबसे ये ही पञ्चगोत्र और हम लोगोंके तुल्य आदरणीय हुए।' ऐसा कह कर उन सबोंने सृष्टिधरको हरिहरके साथ कन्याका विवाह करनेकी अनुमति दी। सृष्टिधरने अनुमति पा कर गङ्गा और काशी नामकी दोनों कन्याएं हरिहरको समर्पण कीं। हरिहर दो पत्नीके साथ स्वदेश आए। सृष्टिधर निरुद्वेग हो आखड़ेमें ही रहने लगे। शौनकगोत्रीय यह वृत्तान्त सुन कर शुनकोंको कभी भी पञ्चगोत्र कह कर स्वीकार नहीं करेंगे और न उनके साथ आदान प्रदान ही करेंगे, सबोंने परस्पर ऐसी प्रतिज्ञा की।

(वैदिक कुलार्णव)

कोटालीपाड़के शुनकोंकी अनुमोदित कुलमञ्जरीमें लिखा है,—"हरिहरके विवाहमें चौदहों समाजने योगदान किया था। ये राजा श्यामलवर्मा द्वारा लाये हुए यशोधरमिश्रके प्रकृत वंशधर थे, इसलिए सबोंने इन्हींको गोष्ठीपतित्वका वरण किया। उसी समयसे हरिहरके पुत्रादि ही गोष्ठीपति कह कर समाजमें सम्मानित हुए। इससे सामन्तसारके शौनक-गोत्रीय समाजदारोंकी अभीष्टसिद्धि न होनेके कारण वे हरिहरकी वृथा निन्दा करने लगे। यथार्थमें कोटालीपाड़के शुनक और सामन्तसारके शौनकके मध्य आज तक प्रतिद्वन्द्विताका ह्रास नहीं हुआ है। अब भी वे एक दूसरेकी निन्दा करनेमें मुंह नहीं मोड़ते हैं। पाश्चात्य वैदिकोंमेंसे बहुतोंका कहना है, कि सामन्तसारके समाजपति ही पूर्वापद वैदिकोंके कुलशास्त्रकी रक्षा करते थे; किन्तु हरिहरका गोष्ठीपतित्व तथा उसके लिए उनसे मनोमालिन्य होनेके लिये समाजपतियोंने शुनकादिका कुलग्रन्थ छिपा रखा है।

षष्ठगोत्रके आनेके बाद और भी कितने गोत्र आ कर पाश्चात्यवैदिक समाजमें मिल गए हैं। किन्तु पञ्चगोत्र और षष्ठगोत्रके साथ उनका विशेष सम्बन्ध नहीं है। दो एक जगह सम्बन्ध होने पर भी वह अत्यन्त निकृष्ट ही समझा जाता है। वर्त्तमान समयमें भी देखा जाता है, कि जहां जहां पञ्चगोत्रका वास है वहां पञ्चगोत्रके सिवा और सभी षष्ठगोत्र कहलाते हैं। परन्तु जहां पञ्चगोत्र नहीं हैं, वहां साधारणतः सभी वैदिक नामसे प्रसिद्ध हैं।

पश्चगोत्रीय अपनी प्रधानता जमानेके लिए कहा करते हैं—

'पश्चगोत्र वैदिक पश्चगोत्रसे कभी भी धन ग्रहण नहीं कर सकते, वरं पश्चगोत्रीय ही पश्चगोत्रीयको धन देंगे, ऐसी रीति समाजमें प्रचलित है। पश्चगोत्रस्थ वैदिकगण सदा सत्कर्मपरायण होनेके कारण सर्वापेक्षा श्रेष्ठ हैं। क्रमशः पश्चगोत्रीय वैदिकोंमेंसे कार्यानुसार किसीने उत्कर्षता वा किसीने हीनता लाभ की है। समाजके बहुत दिन पीछे इस पश्चगोत्रीयोंके मध्य जो दूसरेके अधीन हो रहते थे, वे यदि स्वधर्मपरायण हों, तो वे मध्यम हैं।

समाजवासी पश्चगोत्रीय वैदिकगण यदि निन्दित आचारपरायण हों, तो वे स्वाधीन होने पर भी अधम होंगे।

वैदिकगण कन्याग्रहणमें कुल नहीं देखते, किन्तु दानके समय कुल, शील और विद्या आदिका विचार करते हैं। भले बुरेकी विवेचना न कर कन्यादान करनेसे वे समाजमें निन्दनीय और शुल्कभृत् कहलाते हैं। इसीलिए सभी उनका परित्याग भी करते हैं। यदि कोई दैवात् हीनवंशमें दश वर्षकी कन्या दान करें, तो वे पाश्चात्य वैदिकोंके मध्य निन्दित होते हैं। दश वर्षके अभ्यन्तर ही शीलादिका विचार करना चाहिए; किन्तु कन्या जब बारह वर्षकी हो जाय, तब कुछ विचारनेकी जरूरत नहीं, सिर्फ ब्राह्मण देख कर कन्यादान करना उचित है। कर्त्तास्वयं विवाहका सम्बन्ध न करें किसी सामाजिक बन्धु द्वारा उसका अनुष्ठान कराना चाहिए। यदि कोई ऐसा न करे, तो वह निन्दित और अव्यवहार्य होता है।

प्रवरादिके भेदसे शुनक दो प्रकारके हैं। वैदिकोंके मध्य यदि कोई कन्या विक्रय करे, तो वह पतित तथा समाजत्यक्त होगा और यदि कोई पाश्चात्यवैदिक बारह वर्षकी कन्या दान न करे, तो उसे वैदिकगण समाजमें स्थान नहीं देते, ऐसा आचार व्यवहार आज भी प्रचलित है। विशेष विवरण कुलीन शब्दमें देखो।

पाश्चात्याकरसम्भव (सं० क्ली०) पाश्चात्ये पश्चिमदिग्भवे आकरे सम्भव उत्पत्तिर्यस्य। साम्भरी लवण। पर्याय—रोमक, रामलवण।

पाशा (सं० स्त्री०) पाशानां समूहः पाश—य (पाशादिभ्यो यः पा ४।२।४९) । पाशसमूह।

पाषक (सं० पु०) पषति बध्नातीति चरणौ पश बन्धे-ण्वुल्। पादाभरणविशेष, पैरोंमें पहननेका एक गहना।

पाषण्ड (सं० पु०) पापं सनोति दशनकर्मादिना ददातीति षण्-ड पृषोदरादित्वात् साधुः, वा पाति रक्षति दुष्कृतिभ्य इति पाः क्विप्, पा वेदधर्मस्तं षण्डयति खण्डयति, निष्फलं करोतीति अच्। १ वेदाचारपरित्यागी, वेदविरुद्ध आचरण करनेवाला, मिथ्याधर्मी, झूठा मत माननेवाला। पाषण्डका लक्षण—

"पालनाच्च त्रयीधर्मः पाशब्देन निगद्यते।
तं षण्डयति ते यस्मात् पाषण्डास्तेन हेतुना॥
नानाव्रतधरा नाना-वेशाः पाषण्डिनो मताः॥"

त्रयी धर्म अर्थात् वैदिक धर्मपालन करनेको 'पा' कहते हैं। जो इस पा (वेदाचार)-का खण्डन करते, वे पाषण्ड कहलाते हैं। पाषण्डी लोग नाना प्रकारके वेश और व्रत धारण कर इधर उधर घूमा करते हैं। बौद्ध और जैनोंके लिए प्रायः इस शब्दको व्यवहार हुआ है। पर्याय—बौद्ध क्षपणकादि, सर्वलिङ्गिन्, कौलिक और पाषण्डिक। बौद्ध लोग वैदिक मतको प्रामाण्यरूपमें स्वीकार नहीं करते, इसलिए वे ब्राह्मणों द्वारा पाषण्ड कहे जाते हैं।

शास्त्रकारोंने पाषण्डियोंसे बोलनेका निषेध किया है। यथार्दर्शित हो कर इन लोगोंके साथ बातचीत करने अथवा इनको छूनेसे क्रियाहानि होती है। यदि अकस्मात् इनसे भेंट हो जाय, तो सूर्य-दर्शन कर लेना उचित है। शास्त्रज्ञ व्यक्ति मात्र ही पाषण्डियोंसे अलग रहते हैं। सभी पाषण्ड वकधर्मी और नाना वेशधारी होते हैं; अतः उनका संसर्ग यत्नपूर्वक छोड़ देना चाहिए।

"त्यज पाषण्डसंसर्गं सङ्गं भज सतां सदा।
कामं क्रोधञ्च लोभञ्च मोहञ्च दूरतस्त्यज॥"
(पद्मपु० क्रियायोगसा० १६ अ०)

मनुने कहा है, कि कितव, जुआरी, नटवृत्तिजीवि, क्रूरचेष्ट चौरादि और पाषण्ड (बौद्धादि वेदविरोधी)
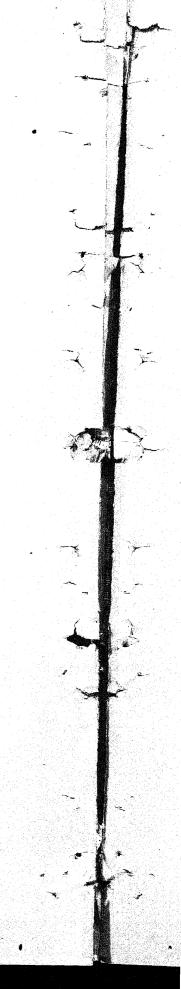
को राज्यसे निकाल देना चाहिये। ये प्रच्छन्न तस्कर राज्यमें रह कर भले मानुसोंको कष्ट दिया करते हैं।

(मनु ८।२२५-२६)

जो स्वधर्मभ्रष्ट हैं और नाना प्रकारके निषिद्ध कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, अथवा जो धर्मका बाहरी आडम्बर दिखा कर छिपे रूपसे अधर्म करते हैं; शास्त्रकारोंने उन्होंको पाषण्ड बतलाया है।

२ धर्मध्वजी, कपटवेशधारी, ढोंगी आदमी, झूठा आडम्बर खड़ा करनेवाला, लोगोंको ठगने और धोखा देनेके लिए साधुओंका-सा रूप रंग बनानेवाला। ३ सम्प्रदाय, मत, पन्थ।

अशोकके शिला लेखोंमें इस शब्दका व्यवहार इसी अर्थमें प्रतीत होता है। यह अर्थ प्राचीन जान पड़ता है, पीछे इस शब्दको बुरे अर्थमें लेने लगे। पाषण्डका विशेषण बनता है पाषण्डी। इससे इसका सम्प्रदायवाचक होना सिद्ध होता है। नये नये सम्प्रदायोंके खड़े होने पर शुद्ध वैदिक लोग साम्प्रदायिकोंको तुच्छ दृष्टिसे देखते थे।

पाषण्डक (सं० पु०) पाषण्ड एव स्वार्थे कन्। पाषण्ड।

पाषण्डिन् (सं० पु०) पा-त्रयीधर्मं षण्डयतीति षण्ड णिनि। पाषण्ड, वेदाचार परित्यागी, वेद विरुद्ध मत और आचरण ग्रहण करनेवाला, झूठा मत माननेवाला।

"पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकान् शठान्।
हैतुकान् वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥"

(मनु० ४।३०)

पद्मपुराणमें उत्तरखण्डके ४२वें अध्यायमें पाषण्डियोंके आचरणका विषय इस प्रकार लिखा है,—

जो अज्ञानमोहित हो भगवान् नारायण भिन्न अन्य देव वन्दनीय हैं, ऐसा कहें, जो कपालमें भस्म और अस्थिधारण करें जो अवैदिक लिङ्गी अर्थात् वेदोचित चिह्न धारण न करें तथा वेदाचार न मानें, जो वानप्रस्थाश्रम छोड़ जटावल्कल धारण करें, सर्वदा अवैदिक क्रियाकर्मके अनुष्ठानमें लगे रहें, जो ब्राह्मण हरिके प्रियतम शङ्ख, चक्र और ऊर्ध्वपुण्ड्रादिके चिह्न धारण न करें तथा जो श्रुति और स्मृति-उक्त आचारके अनुसार न चलें, जो यज्ञमें विष्णुको छोड़ दूसरेके उद्देश्यसे होमदान करें, जो नारायणको ब्रह्मा और रुद्रादिके तुल्य मानें, जो भक्तिहीन हो वेदविहित यज्ञादिका अनुष्ठान करें तथा जो मन, वाक्य, काय और कर्मद्वारा भगवान्के प्रति अनास्था दिखावें, वे सब पाषण्डी कहलाते हैं। फिर भी, जो जीवहिंसक, जीवभक्षक, असत्प्रतिग्रहरत, देवल, ग्रामयाजक, भ्रष्टाचार, नानादेवता पूजक, देवताका उच्छिष्ट और श्राद्धादिभोजी शूद्रकी तरह क्रियारत, विविध असत्कर्मशील, अभक्ष्यभोजी लोभ, मोह, मद, क्रोध और कामादियुक्त तथा पारदारिक हैं, वे भी पाषण्डी हैं। जो आश्रमके धर्मका प्रतिपालन नहीं करते हैं, जो ब्राह्मण सभी चीजें खाते वा बेचते हैं, जो अश्वत्थ, तुलसी, तीर्थस्थलादि, महागुरु, सरस्वती तथा गङ्गादि नदीकी सेवा नहीं करते हैं, उनकी भी गिनती पाषण्डियोंमें है। असिजीवी, मसीजीवी, धावक, पाचक और मादक द्रव्यभोजी से ब्राह्मण पाषण्डी कहलाता है।

पाषण्डीका संसर्ग वा उसके गृहमें पान और भोजनादि निषिद्ध है। यदि दैवात् लोभ वा मोहवशत: उसके यहां अन्नपानादि भोजन किया जाय, तो परम वैष्णव भी इस पापसे पाषण्ड होंगे। असत्का संसर्ग करनेसे पाप और नाना प्रकारके अनिष्ट होते हैं। इसलिए पाषण्डियोंका संसर्ग इतना निन्दित बतलाया है। युक्तिकल्पतरुके मतसे पाषण्डियोंको परराष्ट्रमें भेज देना चाहिये।

"आकृष्टांश्च तथा लुब्धान् दृष्टार्थातत्त्वभाषिणः।
पाषण्डिनस्तापसादीन् परराष्ट्रेषु योजयेत्॥"

(युक्तिकल्पतरु)

पाषाण (सं० पु०) पषति पीड़यत्यनेनेति पष-पीड़ने बाहुलकात् आनच् (पषेर्णिच्च। उण् २।१०) सच णित्। १ प्रस्तर, पत्थर, शिला। पर्याय—ग्राव, उपल, अश्मन्, शिला, दृषद्, दृशद्, प्रस्तर, पाराकुक, पारटीट, मृषलक, काचक। २ देवताप्रतिमा। देवताप्रतिमा पाषाणको बनाई जाती है, इसीसे पाषाण शब्दसे देवप्रतिमाका भी बोध होता है। ३ गन्धक। ४ पन्ने और नीलमका एक दोष। ५ धातक्यादिमोदक।

पाषाणकदली (सं० स्त्री०) कदलीभेद, पहाड़ी केला।

पाषाणकुन्दक (सं० पु०) पाषाणभेदक।

पाषाणगर्द्दभ (सं० पु०) हनुसन्धिजात क्षुद्ररोगविशेष, दाढ़ सूजनेका रोग। वायु और कफके बिगड़नेसे हनके सन्धिस्थानमें यह रोग होता है। इसमें दाढ़ सूज जाती और बहुत पीड़ा होती है। भावप्रकाशमें इसका लक्षण और चिकित्सा इस प्रकार हैं,—वायु और कफके प्रकोपसे हनुदेशकी सन्धिमें अल्पवेदनायुक्त स्थिर अथच स्निग्ध जो शोथ होता है, उसे पाषाण-गर्द्दभ कहते हैं।

इसकी चिकित्सा—सुचिकित्सक पाषाणगर्द्दभरोगमें पहले स्वेदप्रदान, पीछे मनःशिला, बेर, हरिद्रा, हरिताल और देवदारु इन सबको पीस कर प्रलेप दें तथा वात-श्लेष्मिक शोथनाशक अन्यान्य कल्कका भी प्रलेप प्रयोज्य है। इससे सूजन बहुत जल्द दब जाती है। यदि यह पक जाय, तो शस्त्रप्रयोग करके व्रणकी तरह चिकित्सा करनी होती है। अपक्व अवस्थामें जलौका (जोंक) द्वारा रक्तमोचन करानेसे बिना औषधके ही यह रोग प्रशमित हो जाता है।

(भावप्रकाश चतुर्थभा० क्षुद्ररोगा०)

पाषाणगैरिक (सं० क्ली०) गिरिमृत्तिका, गेरू।

पाषाणचतुर्द्दशी (सं० स्त्री०) पाषाणसाध्या पाषाणवत् पिष्टकभोजनसाधा चतुर्द्दशी। अग्रहायण मासकी शुक्लाचतुर्द्दशी। इस तिथिको स्त्रियां गौरीका पूजन करके रातको पाषाण (पत्थरकी ढोंकी)के आकारकी बड़ियां बना कर खाती हैं।

पाषाणजतु (सं० क्ली०) शिलाजतु।

पाषाणदारक (सं० पु०) दारयति विदारयतीति दृ-णिच्-ण्वुल्, पाषाणस्य दारकः। टङ्क, टांकी, छेनी।

पाषाणदारण (सं० पु०) दारयतीति दृ-णिच्-ल्यु, पाषाणस्य दारणः विदारकः। पाषाणभेदनास्त्र, टांकी, छेनी।

पाषाणभिद् (सं० पु०) १ पाषाणभेद। २ कुलत्थ, कुलथी।

पाषाणभिन्न (सं० पु०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—१ पल पारा, २ पल गन्धक, १ पल शिलाजित इन सबको एक साथ मिला कर यथाक्रम श्वेतपुनर्णवा, अडूस और श्वेतअपराजिताके रसमें एक दिन तक भलीभांति घोंटे। पीछे एक बरतनमें रख कर दोलायन्त्रका स्वेद दे। तदनन्तर भूआंवला और खीरेकी जड़को दूधके साथ पीस कर दो रत्तीकी गोली बनावे। कुलथीके काढ़ेके साथ इसका सेवन करनेसे अश्मरीरोग शान्त होता है। इससे पाषाणरोग निराकृत होता है, इस कारण इसका पाषाणभिन्न नाम पड़ा है। (भैषज्यरत्न० अश्मरी अधि०)

पाषाणभेद (सं० पु०) एक पौधा जो अपनी पत्तियोंकी सुन्दरताके लिये बगीचोंमें लगाया जाता है।

पाषाणभेदन देखो।

पाषाणभेदन (सं० पु०) पाषाणं अश्मरीं भिनत्तीति भिद्-ल्यु। वृक्षविशेष, पथरचूर, पथरचट। पर्याय—अश्मघ्न, शिलाभेद, अश्मभेदक, श्वेता, उपलभेदी, पलभित्, शिलगर्भज। इसका गुण—मधुर, तिक्त, मेह, तृष्णा, दाह, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरीनाशक।

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—कषाय, वस्तिशोधन, भेदन, अर्श, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, हृद्रोग, योनिरोग, प्रमेह, प्लीहा, शूल और व्रणनाशक।

पाषाणभेदिन् (सं० पु०) पाषाणं अश्मीरं भिनत्तीति भिद्-णिनि। वृक्षविशेष, पखानभेद, पथरचूर। पर्याय—अश्मभेद, शिलाभिद, अश्मभिद्। भिन्न भिन्न देशमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है, यथा—बङ्गालमें पाथरचूर, पाथरकुचा, हिमसागर; हिन्दी, महाराष्ट्री और बम्बई अञ्चलमें पथरचूर; तैलङ्गमें पिप्पिडचेट्ट; अङ्गरेजीमें (Coleus aromaticus)।

यूरोपीय उद्भिद्वेत्ताओंके मतसे इस वृक्षका आदिस्थान मलक्काद्वीप है। अभी भारतवर्षके सभी स्थानोंमें यह वृक्ष देखा जाता है। ग्रीष्मकालमें इसका शीतल जल बहुतसे लोग पीते हैं। इसीसे इसका हिमसागर नाम पड़ा है, ऐसा अनुमान किया जाता है। इसकी शाखा और पत्तियोंमें एक प्रकारकी गन्ध है। इसीसे बहुतेरे पत्तियोंको भुन कर खाते हैं और उनका रस देशीय शराबमें व्यवहृत करते हैं।

भारतवासी बहुत पहलेसे इस पेड़के गुणागुणसे अवगत हैं। चरक (११४ अ०)-में इसका उल्लेख है। राजनिघण्टुके मतसे पाषाणभेदी तीन प्रकारका है, यथा—वटपत्री, शिलावल्क और पाषाणभेदी। इन

तीनोंका गुण—मधुर, तिक्त, मेहघ्न, तृष्णा, दाह, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरीनाशक तथा शीतल है। भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—शीतल, तिक्त, कषाय, वस्तिशोधक, भेदक, अर्श, गुल्म, कृच्छ्र अश्मरी हृद्रोग, योनिरोग, प्रमेह, प्लीहा, शूल और व्रणनाशक, श्वासहर, सञ्चित-श्लेष्मा, अपस्मार और आक्षेपरोगमें हितकर तथा वात-शान्तिकर। (भावप्रकाश)

कोचोनचोनमें यह पेड़ श्वास, कास, पुरातन श्लेष्मा, मृगी और अपरापर आक्षेपक रोगोंमें व्यवहृत होता है। डाक्टर ह्वाइटके मतसे इसमें मादकता-शक्ति यथेष्ट है। देशी डाक्टर अजीर्णरोगमें इसका व्यवहार करते हैं। डाक्टर डाइमक इसकी मादकता स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है, कि बम्बई अञ्चलवासी जिस परिमाणमें इसे काम लाते हैं, उससे कुछ भी नशा नहीं आता। पर हां, अधिक व्यवहार करनेसे नशा अवश्य आ सकता है। देशीय किसी किसी डाक्टरके मतसे चक्षुके योजकत्वक रोगमें चक्षुकी पलकके ऊपर और नीचे इसका प्रलेप दिया जाता है। पुरातन अजीर्णरोगमें यह विशेष उपकारी माना गया है।

पाषाणरोग (सं॰ पु॰) अश्मरीरोग, पथरी।

पाषाणवज्रकरस (सं॰ पु॰) अश्मरी-रोगाधिकारमें औषध-विशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—एक भाग पारद, दो भाग गन्धककी श्वेत पुनर्णवाके रसमें एक दिन मर्दन करके पुटबद्ध करे। पीछे उसे भूधरयन्त्रमें पाक करके दो रत्तीकी गोली बनावे। गुड़ और गोखरूके साथ इसका सेवन करनेसे अश्मरी और वस्तिशूल निराकृत होता है। (रसेन्द्रसारसं॰ अश्मर्यधिका॰)

पाषाणविष (सं॰ क्ली॰) दारुमोचभेद।

पाषाणसम्भववल्ली (सं॰ स्त्री॰) प्रवाल, मूंगा।

पाषाणान्तक (सं॰ पु॰) अश्मान्तकवृक्ष।

पाषाणी (सं॰ स्त्री॰) पाषाण अल्पार्थे ङीष्। क्षुद्र-पाषाण, पत्थरका टुकड़ा जो तौलनेके काममें आवे, बाट, बटखरा।

पाषी (सं॰ स्त्री॰) पाष्यते बध्यते अनया पाष-बन्धे करणे घञ् ङीप्। १ शक्ति। २ शिला।

पाष्ठौह (सं॰ क्ली॰) सामभेद।

पासंग (फा॰ पु॰) १ तराजूकी डांड़ी बराबर न होना। २ वह बोझ जिसे तराजूके पल्लोंका बोझ बराबर करनेके लिये तराजूकी जोतीमें हलके पल्लेकी तरफ बांध देते हैं।

पास (सं॰ पु॰) १ पाश। २ पास, जाल धमाका।

पास (हिं॰ पु॰) १ बगल, ओर, तरफ। २ सामीप्य, निकटता, समीपता। ३ अधिकार, कब्जा। (अव्य॰) ४ निकट, समीप, बगलमें। ५ अधिकारमें, कब्जेमें। ६ सम्बोधन करके किसीके प्रति, किसीसे। (अं॰ पु॰) ७ गमनाधिकारपत्र, राहदारीका परवाना (वि॰) ८ पार किया हुआ, ते किया हुआ। ९ इम्तिहानमें कोई निर्दिष्ट स्थिति पार किया हुआ, किसी दरजेसे आगे गया हुआ। १० उत्तीर्ण, सफलीभूत, इम्तहानमें कामयाब। ११ स्वीकृत, मंजूर। १२ प्रचलित, चलता, जारी। १३ आंवेके ऊपर उपले जमानेका काम। १४ भेड़ोंके बाल कतरनेकी कैंचीका दस्ता।

पासना (हिं॰ क्रि॰) थनोंमें दूध आना।

पासनी (हिं॰ स्त्री॰) अन्नप्राशन, बच्चेको पहले पहल अनाज चटानेकी रीति। अन्नप्राशनके दिन बालकके सामने अनेक वस्तुएं रख कर शकुन देखते हैं, कि किस वस्तु पर उसका पहले हाथ पड़ता है। उससे यह समझा जाता है, कि बड़ी उसकी जीविका होगी।

पासबंद (हिं॰ पु॰) दरी बुननेके करघेकी वह लकड़ी जिससे वे बंधी रहती हैं और जो नीचे ऊपर आया करती है।

पासबुक (अं॰ पु॰) १ वह पुस्तक जिसमें किसी प्रकारके लेन देनका हिसाब किताब हो। २ वह बही या किताब जिसमें सौदागर उधार ली गई चीजोंके नाम लिख कर खरीदारके पास दस्तखत करानेके लिये भेजता है। ३ वह किताब जिसमें किसी बैंकका हिसाब किताब रहता है।

पासा (हिं॰ पु॰) १ हाथीदांत या हड्डीके उंगलीके बराबर छः पहले टुकड़े। इन टुकड़ोंके पहलों पर बिंदियां बनी होती हैं और इन्हें चौसरके खेलमें खेलाड़ी बारी बारी फेंकते हैं। जिस बल ये पड़ते हैं

उसीके अनुसार बिसात पर गोटियाँ चली जाती हैं और अन्तमें हार जीत होती है। २ मोटो वस्तुके आकारमें लाई हुई वस्तु, कांसो, गुल्ला। ३ वह खेल जो पासों से खेला जाता है, चौसरका खेल। चौसर देखो। ४ पीतल या काँसेका चौखूटा लम्बा ठप्पा। इसमें छोटे छोटे गोल गड्ढे बने होते हैं। घुंघरू या गोल घुंडी बनानेमें सुनार सोनेके पत्तरको इसी पर रख कर ठोंकते हैं।

पासासार (हिं० पु०) १ पासेकी गोटी। २ पासेका खेल।

पासिका (हिं० स्त्री०) पाश, फंदा, जाल।

पासी (हिं० पु०) १ जाल या फंदा डाल कर चिड़िया पकड़नेवाला, बहेलिया। २ एक नीच और अस्पृश्य जाति। इस जातिके लोग मथुराके पूरबकी ओर पाये जाते हैं। ये लोग सूअर पालते और कहीं कहीं ताड़ परसे ताड़ी निकालनेका काम करते हैं। प्राचीन कालमें इनके पूर्वज प्राणदण्ड पाये हुए अपराधियोंके गलेमें फाँसीका फंदा लगाते थे, इसीसे यह नाम पड़ा। (स्त्री०) ३ पाश, फंदा, फाँसी। ४ घास बाँधनेकी जाली। ५ घोड़ेके पैर बाँधनेकी रस्सी, पिछाड़ी।

पास्त्य (सं० त्रि०) पस्त्ये गृहे वसति ञ्य किकोरण,। गृहवासी।

पाह (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका पत्थर। इससे लौंग, फिटकरी और अफीमको घिस कर आँख पर चढ़ानेका लेप बनाते हैं।

पाहन (हिं० पु०) प्रस्तर, पत्थर।

पाहरा—बुन्देलखण्डके अन्तर्गत एक क्षुद्र राज्य। यहांके राजा चौबे-वंशोद्भव हैं। राज्यका परिमाण १० वर्ग-मील है। राजस्व प्रायः १३०००) रु० हैं। पाहरखास इस राज्यकी राजधानी है।

पाहा (हिं० पु०) पानको बेलों या किसी ऊंची फसलके खेतोंके बीचका रास्ता, मेंड़।

पाहाड़ (सं० पु०) ब्रह्मदारुवृक्ष।

पाहात (सं० पु०) पाहं अततीति अत अच्,। ब्रह्मदारु-वृक्ष, शहतूतका पेड़।

पाहि—एक संस्कृत पद जिसका अर्थ है, 'रक्षा करो' 'बचाओ'।

पाही (हिं० स्त्री०) वह खेती जिसका किसान दूसरे गाँवमें रहता हो।

पाहुना (हिं० पु०) १ अतिथि, अभ्यागत। २ जामाता, दामाद।

पाहुनी (हिं० स्त्री०) १ स्त्री अतिथि, मेहमान औरत। २ आतिथ्य, मेहमानदारी, अतिथिका आदर सत्कार, खातिर तवाजा।

पाहुर (हिं० पु०) १ भेंट, नजर। २ वह वस्तु या धन जो किसी सम्बन्धी या इष्ट मित्रके यहां व्यवहारमें भेजा जाय, सौगात।

पाह्न (हिं० पु०) मनुष्य, व्यक्ति, शख्स।

पिंगूरा (हिं० पु०) रस्सियोंके आधार पर टंगा हुआ खटोला जिस पर बच्चोंको सुला कर इधरसे उधर झुलाते हैं, झूला, पालना।

पिंजड़ा (हिं० पु०) पिंजरा देखो।

पिंजरा (हिं० पु०) लोहे, बांस आदिकी तीलियोंका बना हुआ झाबा जिसमें पक्षी पाले जाते हैं।

पिंजरापोल (हिं० पु०) पशुशाला, गोशाला जहां पालने-के लिये गाय, बैल आदि चौपाए रखे जाते हैं।

पिंजारी (हिं० स्त्री०) त्रायमाण नामकी ओषधि, गुर-बियानी।

पिंजियारा (हिं० पु०) रूई ओटनेवाला।

पिंडखजूर (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी खजूर जिसके फल मीठे होते हैं और इन फलोंका गुड़ भी बनता है, खरक, सेंधी।

पिंडरी (हिं० स्त्री०) पिंडली देखो।

पिंडली (हिं० स्त्री०) टांगका ऊपरी पिछला भाग जो मांसल होता है, घुटनेके पीछेके गड्ढेसे नीचेका भाग जिसमें चढ़ाव उतार होता है।

पिंडवाही (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका कपड़ा।

पिंडा (हिं० पु०) १ गोल मटोल टुकड़ा, ढेला या लोंदा, लुगदा। २ ठोस या गीली वस्तुका टुकड़ा। ३ शरीर, देह। ४ मधु तिल मिली हुई खीर आदिका गोल लोंदा जो श्राद्धमें पितरोंको अर्पित किया जाता है। ५ स्त्रियोंकी गुप्तेन्द्रिय, धरन। ६ पिण्डा देखो।

पिंडारा (हिं० पु०) १ एक शाक जो वैद्यकमें शीतल

और पित्तनाशक माना गया है। २ दक्षिणकी एक जाति जो बहुत दिनों तक मध्यप्रदेश तथा और और स्थानोंमें लूट पाट किया करती थी। पिण्डारी देखो

पिंडारी (हिं० पु०) दक्षिणकी एक जाति जो पहले कर्णाट, महाराष्ट्र आदिमें बसती और खेती बारी करती थी, पीछे अवसर पा कर लूट मार करने लगी और मुसलमान हो गई। विशेष विवरण पिण्डारी शब्दमें देखो।

पिंड़िया (हिं० स्त्री०) १ गीली भुरभुरी वस्तुका मुट्ठीसे बांधा हुआ लम्बोतरा टुकड़ा, लम्बोतरी पिंडी। २ लपेटे हुए सूत, सुतली या रस्सीका छोटा गोला। ३ गुड़की लम्बोतरी भेली, मुट्ठी।

पिंशन (हिं० स्त्री०) पेनशन देखो।

पिअ (हिं० वि०) १ प्रिय देखो। (पु०) २ पिय देखो।

पिअरवा (हिं० पु०) १ पति देखो। (वि०) २ प्यारा देखो।

पिअरिया (हिं० पु०) पीले रंगका बैल जो बहुत मजबूत और तेज चलनेवाला होता है।

पिअरी (हिं० स्त्री०) १ हल्दीके रंगसे रंगी हुई धोती जो विवाहके समयमें वर या वधूको पहनाई जाती है। २ पीली रंगी हुई वह धोती जो प्रायः देहाती स्त्रियां गंगाजीको चढ़ाती हैं। (वि०) ३ पीली देखो।

पिआज (हिं० पु०) प्याज देखो।

पिआना (हिं० क्रि०) पिलाना देखो।

पिआनो (हिं० पु०) पियानो देखो।

पिआर (हिं० पु०) प्यार देखो।

पिआरा (हिं० वि०) प्यारा देखो।

पिआस (हिं० स्त्री०) प्यास देखो।

पिआसा (हिं० वि०) प्यासा देखो।

पिउ (हिं० पु०) पति, खाविंद।

पिउनी (हिं० स्त्री०) पूनी देखो।

पिक (सं० पु०) अपि कायति शब्दायते इति अपि-कै-क (आतश्चोपसर्गे। पा ३।१।१३६) अपेरकार लोपः। कोकिल, कोयल। मीमांसाके भाष्यकार शवर स्वामीने पिक, तामरस, नेम आदि कुछ शब्दोंको म्लेच्छ भाषासे गृहीत बतलाया है।

पिकदेव (सं० पु०) आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

पिकप्रिय (सं० पु०) १ वसन्तकाल। २ आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

पिकप्रिया (सं० स्त्री०) १ महाजम्बू, बड़ा जामुन। पिकस्य प्रिया। २ कोकिला।

पिकबन्धु (सं० पु०) पिकानां बन्धुरिव। आम्रवृक्ष, आमका पेड़। इसका पर्याय पिकबान्धव है।

पिकभक्षा (सं० स्त्री०) भूमिजम्बूवृक्ष, बन-जामुन।

पिकमहोत्सव (सं० पु०) पिकानां महोत्सवो यत्र। आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

पिकराग (सं० पु०) पिकानां रागोऽनुरागो यत्र। वा पिको राज्यते यत्र, रञ्ज-घञ्। आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

पिकवल्लभ (सं० पु०) पिकानां वल्लभः। आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

पिकाक्ष (सं० पु०) पिकस्य अक्षिलोचनं तद्वत् वर्णो यस्य षच् समासान्तः। १ रोचनोवृक्ष। २ ताल-मखाना। (त्रि०) पिकस्य अक्षीव अक्षि यस्य। ३ पिकवत् रक्तनेत्र-युक्त, जिसकी आंखें कोयलकी तरह लाल हों।

पिकाङ्ग (सं० पु०) पिकस्य अङ्गमिव अङ्ग यस्य। चातक पक्षी।

पिकानन्द (सं० पु०) पिकानामानन्दो यस्मिन्। वसन्त ऋतु।

पिकिन—चीन-साम्राज्यकी राजधानी। चीन देखो।

पिकी (सं० स्त्री०) पिक-स्त्रियां ङीष्। कोकिला, कोयल।

पिकुरस (सं० पु०) मद्य, शराब।

पिकेक्षणा (सं० स्त्री०) पिकस्य ईक्षणं लोचनं तद्वत् वर्णो यस्य। १ ताल-मखाना। (त्रि०) २ जिसकी आंखें कोयलकी-सी हों।

पिक्क (सं० पु०) पिक् इत्यव्यक्तशब्देन कायतीति कै-क। वा पिक इव कायतीति कै-क, पृषोदरादित्वात् साधु-रित्येके। हस्तिशावक, हाथीका बच्चा।

पिक्का (सं० स्त्री०) मुक्ताका परिमाणभेद।

पिखुवा—युक्तप्रदेशके मीरट जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २८° ४२´ ४५″ उ० और देशा० ७६° ३´ पू०के मध्य, मीरटसे १८ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहांकी म्युनिसपलिटीकी वार्षिक आय ३६५०) रु० की है। यहां कपड़े बुननेका कल है और चमड़ा तथा जूता भी प्रस्तुत होता है। सिपाही-विद्रोहके बाद मीचेल साहबने

निकटवर्त्ती १३ ग्रामोंके साथ साथ इस नगरको भी खरीदा था। यहां दो हिन्दू मन्दिर, थाना, डाकघर और दो सराय हैं।

पिघलना (हिं० क्रि०) १ द्रवीभूत होना, तापके कारण किसी घन पदार्थका द्रवरूपमें होना, गरमीसे किसी चीजका गल कर पानीसा हो जाना। २ चित्तमें दया उत्पन्न होना, किसीकी दशा पर करुणा उत्पन्न होना, पसीजना।

पिघलाना (हिं० क्रि०) १ दयार्द्र करना, किसीके मनमें दया उत्पन्न करना। २ किसी कड़े पदार्थको गरमी पहुंचा कर द्रव रूपमें लाना, किसी चीजको गरमी पहुंचा कर पानीके रूपमें लाना।

पिङ्ग (सं० क्ली०) पिञ्जतोति पिजि वर्णे अच्, न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वम्। १ बालक, बाला। २ हरिताल, हरताल। ३ भैंसा। (पु०) ४ चूहा, मूसा। ५ पिङ्गलवर्ण, पीला रंग। (त्रि०) ६ पीला, पीलापन लिए भूरा। ७ दीपशिखाके रंगका, भूरापन लिए लाल, तामड़ा।

पिङ्गकपिशा (सं० स्त्री०) पिङ्गा कपिशा च। 'वर्णो वर्णेनेति समासः। १ तैलपायिका, तैलपायी, तेलचटा, झुवरैलेके आकारका एक कीड़ा जिसका रंग काला और तामड़ा होता है। २ पिङ्गलवर्णयुक्त या कपिशवर्णयुक्त, पीले या भूरे रंगका।

पिङ्गचक्षुस् (सं० पु०) पिङ्गे चक्षुषी यस्य। १ कुम्भीर, नक्र नामक जलजन्तु, नाक। (त्रि०) २ पिङ्गनेत्र, जिसकी आंखें भूरे या तामड़े रंगकी हों।

पिङ्गजट (सं० पु०) पिङ्गा पिङ्गलवर्णा जटा यस्य। शिव, महादेव।

पिङ्गतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

पिङ्गभास (सं० पु०) गौधेरक जातिभेद।

पिङ्गमूल (सं० क्ली०) गर्जर, गाजर।

पिङ्गर (सं० पु०) पिङ्गल।

पिङ्गल (सं० पु०) पिङ्गो वर्णोऽस्यास्तीति पिङ्ग (सिध्मादिभ्यश्च। पा ५।२।९७) इति लच्। १ पिङ्गलवर्ण, नीला और पीला मिला हुआ रंग। पर्याय—कड़ार, कपिल, पिङ्ग, पिशङ्ग, कद्रु, नीलपीत, रोचनाभ, कनकपिङ्गल। (शब्दरत्ना०) पिशङ्ग, रोचना, पाण्डु, कद्रु और कनकपिङ्गल। (नाममाला) २ नागभेद, एक नागका नाम। ३ रुद्र। ४ चण्डांशुपारिपार्श्विक, सूर्यका एक पारिपार्श्विक या गण। ५ निधिभेद, एक निधिका नाम। ६ कपि, बन्दर। ७ अग्नि। ८ मुनिविशेष, एक मुनिका नाम। ९ नकुल, नेवला। १० स्थावरविषविशेष, एक प्रकारका स्थावर विष। ११ उल्लू पक्षी। १२ यक्ष विशेष, एक यक्षका नाम। १३ पर्वतविशेष, एक पहाड़का नाम। १४ प्रभवादि षष्टिवर्षके अन्तर्गत एक पञ्चाशत्तम वर्ष। पिङ्गल संवत्सरमें देशभङ्ग और नर्मदानदीके किनारे अकाल होता है। १५ पिङ्गलाचार्यकृत संस्कृत छन्दोग्रन्थ विशेष। पिङ्गलने प्राकृत भाषामें भी एक छन्दोग्रन्थ प्रणयन किया है। प्राकृतछन्दोग्रन्थके मध्य यही ग्रन्थ सर्वोत्कृष्ट है। पिङ्गल नागके नामसे प्रसिद्ध थे। इनका छन्दोग्रन्थ वेदाङ्गके मध्य गिना जाता है। किसीका कहना है, कि पिङ्गलाचार्य ही महाभाष्यकार पतञ्जलि हैं। किन्तु यह केवल प्रवादसा प्रतीत होता है। पिङ्गलके छन्दःसूत्रकी बहुत-सी टीका पाई जाती हैं जिनमेंसे निम्नलिखित उल्लेख योग्य हैं—

लक्ष्मीनाथसुत चन्द्रशेखरकृत पिङ्गलभावोद्योत; चित्रसेन, पद्मप्रभसूरि, पशुपति, वाणीनाथ श्रीपति, मथुरानाथ शुक्ल और मनोहर शर्मारचित पिङ्गलटीका, रविकरकृत पिङ्गलसारविकाशिनी, राजेन्द्रदशावधानरचित पिङ्गलतत्त्व प्रकाशिका, लक्ष्मीनाथकृत (१६०० ई०में रचित) पिङ्गलप्रदीप, वंशीधरका पिङ्गलप्रकाश, वामनाचार्यका पिङ्गलप्रकाश, विद्यानिवाससुत विश्वनाथकृत पिङ्गलमतप्रकाश, हलायुधकी मृतसञ्जीवनी, पिङ्गलभाष्य और पिङ्गलवार्त्तिक। १६ कई एक प्राचीन ऋषियोंके नाम। १७ भारतके उत्तर पश्चिममें अवस्थित एक देश। (क्ली०) १८ पित्तल, पीतल। १९ हरिताल, हरताल। २० पेचक, उल्लू। २१ उशीर, खस। २२ रास्ना। २३ मण्डलिक सर्प विशेष, एक प्रकारका फनदार सांप। २४ कपि, बन्दर। (त्रि०) २५ पीत, पीला, भूरापन लिए लाल, दीपशिखाके रंगका तामड़ा। २६ भूरापन लिए पीला, सुंघनी रंगका, जर्द रंगका।

पिङ्गलक (सं० पु०) पिङ्गल-स्वार्थे कन्। १ पिङ्गलशब्दार्थ। २ यक्षभेद, एक देवताका नाम।

पिङ्गलनामक (सं० पु०) शिलारस ।

पिङ्गलपत्तन—चन्द्रद्वीपके अन्तर्गत एक गण्डग्राम । इसके समीप ही पिङ्गलानदी बहती है ।

पिङ्गललोह (सं० क्लो०) पिङ्गलं लोहमिव नित्य कर्मधा० । पित्तल, पीतल ।

पिङ्गला (सं० स्त्री०) पिङ्गल-टाप् । १ वामनाख्य दक्षिण-दिग्गजकी स्त्री । २ लक्ष्मीका एक नाम । ३ वेश्या-विशेष ।

'कपौ मुनौ निधिभेदे पिंगला कुमुदस्त्रियाम् ।
करापिकायां वेश्यायां नाड़ीभेदे...॥' (हेम)

सांख्यदर्शनके सूत्रमें पिङ्गला नामक वेश्याका नामोल्लेख देखनेमें आता है । निराशः सुखी पिंगलावत्' (सांख्यदर्शन ४ परि') आशाका परित्याग करनेसे ही सुख मिलता है, जिस प्रकार पिङ्गलाने आशाविरहित हो सुख प्राप्त किया था ।

भागवतके एकादश स्कन्ध अष्टम अध्यायमें इस पिङ्गला वेश्याकी आख्यायिका इस प्रकार लिखी है—विदेहनगरमें पिङ्गला नामक एक वेश्या रहती थी । एक दिन वह अपने कान्तको रतिस्थानमें लिये जा रही थी, इसी बीचमें किसी धनी व्यक्ति पर उसकी निगाह पड़ी । उसे देखते ही वह धन पानेकी आशासे कभी घर कभी बाहर होने लगी, पर वह कान्त नहीं आया । आशाकी वशवर्त्ती हो कर वह रात भर उसीकी चिन्तामें पड़ी रही । कान्तके नहीं आनेसे पिङ्गलाके निर्वेद उपस्थित हुआ और वह इस प्रकार चिन्ता करने लगी—"कान्तार्थिनी हो कर मैंने रात भर जग कर बिताया, तिस पर भी कान्त-समागम-सुख मेरे भाग्यमें न बदा । किन्तु मैं कैसी नासमझ हूं, कि पासमें कान्त रहते उसे पहचान न सकी । जिसके समागमसे सभी प्रकारके अभिलाष सिद्ध हो सकते थे, वैसे कान्तका परित्याग कर मैंने अज्ञानान्ध हो अकामद दुःखमय शोक तथा मोहप्रद कान्तके लिये इतना कष्ट उठाया ।' अन्तमें पूर्वजन्मकी सुकृतिके कारण पिङ्गलाने मोहरहित हो आत्मज्ञान लाभ किया । पीछे उसे इस प्रकार ज्ञान हो गया, कि "आशा ही सारे दुःखोंका मूल है । जिन्होंने सब प्रकारकी आशा छोड़ दी है, वे ही सुखी हैं । मैं आशामें प्रलुब्ध हो कर दुःखभोग कर रही थी, अब आशाविरहित हो सुखी हुई ।" इस प्रकार पिङ्गला भगवान्‌के प्रति चित्त समर्पण कर सुखसे सोई थी ।

महाभारतके शान्तिपर्वमें इस प्रकार लिखा है—

भीष्मदेवने युधिष्ठिरको मोक्षधर्मका उपदेश देते समय इस पिङ्गला वेश्याका उदाहरण दे कर कहा था, "पहिले पिङ्गला नामक एक वेश्या सङ्केत-स्थानमें अपने प्रियतमसे वञ्चित हो नितान्त दुःखित बैठी थी । इसी क्लेशके समय उसे आत्मज्ञान हो गया और बहुत क्षोभ करके कहने लगी, जो सर्वान्तर्यामी निर्विकार पुरुष मेरे हृदयमें वास करते हैं, मैंने कामादि द्वारा उन्हें अब तक समाच्छन्न कर रखा था । एक दिन भी मैं हृदयानन्दकर परमात्माकी शरणापन्न न हुई । आज मैं आत्मज्ञान बलसे अज्ञानस्तम्भयुक्त नवद्वार-सम्पन्नगृह समाच्छन्न करूंगी । पहले मैं जिन कान्तोंके प्रति अनुरक्त हुई थी, वे यदि इस समय आ जांय, तो कभी भी मैं उन्हें कान्त समझ कर प्यार नहीं कर सकती । अभी मुझे आत्मज्ञान हो गया है । अतएव वे नरकरूपी धूर्त्त फिरसे मुझे वञ्चना नहीं कर सकते । दैववल और जन्मान्तरीण पुण्यफलसे अनर्थ भी अर्थरूपमें परिणत होता है । आज मैंने ज्ञानबलसे विषयवासनाका परित्याग और जितेन्द्रियता प्राप्त की है । आशाविहीन महात्मा ही स्वच्छन्दतासे सोते हैं । आशा-परित्यागकी अपेक्षा परमसुखका कारण और कुछ भी नहीं है ।" पिङ्गला इस प्रकार आशाका परित्याग कर परमसुखसे सोई थी । (भारत शांतिपर्व १७४ अ०)

पिङ्गलाके अन्याय कर्म द्वारा जीवनयात्रा करने पर भी उसे पूर्वजन्मकी सुकृतिके कारण ऐसा वैराग्य उत्पन्न हुआ था और इसीसे वे पीछे परमसुखसे रहने लगी थी ।

४ नाड़ीभेद, शरीरमें पिङ्गला, इड़ा पिङ्गला और सुषुम्ना नामकी तीन प्रधान नाड़ियां हैं ।

"दक्षिणांशः स्मृतः सूर्यो वामभागो निशाकरः ।
नाडीदशविदुस्तासु मुख्यास्तिस्रः प्रकीर्त्तिताः ॥
इडा वामे तनोर्मध्ये सुषुम्ना पिंगलापरे ।
मध्या तास्वपि नाडी स्यादग्निसोमस्वरूपिणी ॥"
(सारदातिलक)

नाड़ी दश हैं जिनमें इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना यही तीन प्रधान हैं। शरीरके वाम भागमें इड़ा नाड़ी, मध्यको ओर सुषुम्ना और दक्षिण की ओर पिङ्गला नाड़ी अवस्थित है।

निरुत्तर तन्त्रके प्रथम पटलमें लिखा है, कि इड़ा आदि ले कर दश नाड़ियां हैं जिनमेंसे इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूपिणी हैं। योगार्णवमें लिखा है, कि पिङ्गलानाड़ी सितरक्ताभा है और दक्षिण पार्श्वदेशमें अवस्थित है।

दूसरे तन्त्रमें लिखा है, कि इड़ानालीमें चन्द्र और पिङ्गलानाड़ीमें सूर्य रहते हैं।

जब पिङ्गलानाड़ीका कार्य होता है, तब दक्षिण नासिका पुट हो कर श्वास निकलता है। इस पिङ्गला-नाड़ीके वहनकालमें कौन कौन कार्य करनेसे शुभ होता है, उसका विषय प्राणतोषिणीमें इस प्रकार लिखा है,—

कठिन और क्रूर विद्यादिका पठन और पाठन, स्त्रीसङ्ग, वेश्यागमन, नौकादिरोहण, सुरापान, वीरमन्त्र उपासन, शत्रुओंका नगर ध्वंस और विषदान, शास्त्रा-भ्यास और गमन, मृगादि पशुविक्रय, काष्ठ, पाषाण और रत्नादिका घर्षण, गीताभ्यास, दुर्ग और पर्वतारोहण, द्यूत, गजाश्वादि रथवाहन, मारण, मोहन, स्तम्भन, विद्वेष, उच्चाटन, वशीकरण, क्रय, विक्रय, प्रेरण, आक-र्षण, राजदर्शन आदि कार्य करनेसे शुभ होता है।

(प्राणतोषिणी)

पिङ्गलानाड़ीके देवता शिव हैं और गुण उष्ण है। इसका उदयकाल दिवाभाग माना गया है। स्थिति चार दण्डमात्र है।

५ पक्षिभेद। ६ राजनीति। ७ शिंशपावृक्ष, शीशमका पेड़। ८ गोरोचन।

पिङ्गलाक्ष (सं० पु०) पिङ्गला पक्षी।

पिङ्गलानदी—१ राजमहलके उत्तर अंशसे निकली हुई एक स्रोतस्वती जो गङ्गामें मिल गई है। २ नदीभेद, एक नदीका नाम।

पिङ्गलातन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रविशेष, एक तन्त्रका नाम।

पिङ्गलिका (सं० स्त्री०) पिङ्गलो वर्णोऽस्त्यस्या इति पिङ्गल-ठन्। १ बलाका, बगला। २ कीटविशेष, मक्खी-की जातिका एक कीड़ा जिसके काटनेसे जलन और सूजन होती है।

पिङ्गलित (सं० त्रि०) पिङ्गलो तद्वर्णोऽस्यस्य, तारकादि-त्वादित च्। पिङ्गलवर्णयुक्त, पिङ्गल वर्णका।

पिङ्गलेश्वर (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

पिङ्गलोचन (सं० त्रि०) पिङ्गे लोचने यस्य। पिङ्गल-वर्ण चक्षुयुक्त, पिङ्गाक्ष।

पिङ्गवर्णक (सं० क्लो०) गर्जरमूल, गाजरकी जड़।

पिङ्गसार (सं० पु०) पिङ्गमेव सारो यस्य। हरिताल, हरताल।

पिङ्गस्फटिक (सं० पु०) पिङ्गः पिङ्गल वर्णः स्फटिकः। गोमेदमणि।

पिङ्गा (सं० स्त्री०) पिङ्गो वर्णोऽस्या इति अच्, टाप् च। १ गोरोचन। २ हिङ्गु, हींग। ३ नालिका। ४ चण्डिका देवी। ५ हरिद्रा, हल्दी। ६ वंशलोचन। ७ स्वनामख्याता तपस्विनी। पिङ्गा जिस आश्रममें रहती थी, कालक्रमसे वह तीर्थमें गिना जाने लगा है। यह तीर्थ अत्यन्त ही पवित्र है और इसमें स्नानादि करनेसे सभी पाप जाते रहते हैं तथा सैकड़ों कपिला धेनुदानका फललाभ होता है। उज्जानक देखो। ८ रक्त-वाहिनी नाड़ी। (पु०) ९ वह पुरुष जिसके पैर टेढ़े हों।

पिङ्गाक्ष (सं० पु०) पिङ्गे अक्षि यस्य, षच् समासान्तः। १ शिव, महादेव। २ कुम्भीर, नक्र नामक जलजन्तु, नाक। ३ विड़ाल, बिल्ली। (त्रि०) पिङ्गलनेत्र, जिसकी आंखें भूरी या तामड़े रंगकी हों।

पिङ्गाक्षी (सं० स्त्री०) कुमारानुचर-मातृभेद, कुमारकी अनुचरी एक मातृका।

पिङ्गाश (सं० पु०) कांच।

पिङ्गाश (सं० पु०) पिङ्गं वर्णमश्नुते इति अण्। १ पल्लीपति, गांवका मुखिया या चौधरी। २ मत्स्यभेद, एक प्रकारकी मछली। इसे बङ्गालमें पाङ्गाश कहते हैं। ३ जात्यस्वर्ण, चोखा सोना।

पिङ्गाशी (सं० स्त्री०) पिङ्गाश-ङीष्। नीलिका, नील-का पेड़।

पिङ्गास्य (सं० पु०) पिङ्गास्यं वदनमस्य। पिङ्गाश नामकी मछली।

पिङ्गाक्ष (सं० पु०) पक्षिविशेष, एक चिड़ियाका नाम।

पिङ्गी (सं० स्त्री०) पिङ्गो वर्णोऽस्त्यस्या इति अच्; ततो गौरादित्वात् ङीष्। शमीवृक्ष, शमीका पेड़।

पिङ्गेक्षण (सं० पु०) पिङ्गानि पिङ्गलवर्णानि ईक्षणानि यस्य। १ शिव, महादेव। २ कुम्भीर, नक्र नामक जल-जन्तु, नाक। (त्रि०) पिङ्गलनेत्र।

पिङ्गेश (सं० पु०) अग्निका नामान्तर, अग्निका एक नाम।

पिचक (हिं० स्त्री०) पिचकारी देखो।

पिचकना (हिं० क्रि०) फूले या उभरे हुए तलका दब जाना।

पिचकवाना (हिं० क्रि०) पिचकानेका काम दूसरेसे कराना, किसी दूसरेको पिचकानेमें प्रवृत्त करना।

पिचका (हिं० पु०) बड़ी पिचकारी।

पिचकाना (हिं० क्रि०) फूले या उभरे हुए तलको भीतरकी ओर दबाना।

पिचकारी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका नलदार यन्त्र जिसका व्यवहार जल या किसी दूसरे तरल पदार्थको (नलमें) खींच कर जोरसे किसी ओर फेंकनेमें होता है। यह प्रायः बांस, लोहे, पीतल, शीशे, टीन आदि पदार्थोंकी बनी होती है। इसमें एक लम्बा खोखला नल होता है जिसमें एक ओर बहुत छोटा छेद होता है और दूसरी ओरका मुंह खुला रहता है। इस नलमें एक डाट लगा दी जाती है जिसके ऊपर उसे आगे पीछे हटाने या बढ़ानेके लिये दस्ते समेत कोई छड़ लगी रहती है। जब पिचकारीका बारीक छेदवाला सिरा पानी अथवा किसी दूसरे तरल पदार्थमें रख कर दस्ते-की सहायतासे भीतरवाली डाटको ऊपरकी ओर खींचते हैं, तब नीचेके बारीक छेदमेंसे तरलपदार्थ उस नलमें भर जाता है और जब पीछेसे उस डाटको दबाते हैं, तब नलमें भरा हुआ तरलपदार्थ जोरसे निकल कर कुछ दूरी पर जा गिरता है। साधारणतः इसका प्रयोग होलियोंमें रंग अथवा महफिलोंमें गुलाब-जल आदि छोड़नेके लिये होता है। किन्तु आज कल मकान आदि धोने और आग बुझानेके लिये बड़ी बड़ी पिचकारियों और जख्म आदि धोनेके लिये छोटी पिचकारियोंका भी उपयोग होने लगा है। इसके अलावा फिलहाल एक ऐसी पिचकारी चली है जिसके आगे एक छेददार सूई लगी होती है। इस पिचकारीकी सूईको शरीरके किसी अङ्गमें जरासा चुभा कर अनेक रोगोंकी औषधियोंका रक्तमें प्रवेश भी कराया जाता है।

पिचण्ड (सं० पु०) अपि चण्डतेऽनेनेति अपि चडि-कोपे घञ्, अपेरल्लोपः। १ पशुका अवयव। २ उदर, पेट।

पिचण्डक (सं० त्रि०) पिचण्डे कुशलः आकर्षादित्वात् कन्। (पा ५।२।६४) १ उदरम्भरि, उदरपूरणमें कुशल, पेटू। २ कोकिलाक्षवृक्ष।

पिचण्डिक (सं० त्रि०) पिचण्डोऽस्यास्तीति तुन्दादित्वात् ठन् (तुन्दादिभ्य इलच्। पा ५।२।११७) तुन्दिल, तोंद-वाला।

पिचण्डिन (सं० त्रि०) पिचण्ड अस्त्यर्थे तुन्दादित्वात् इनि (पा ५।२।११७) तुन्दिल, तोंदवाला।

पिचण्डिल (सं० त्रि०) पिचण्ड अस्त्यर्थे इलच्। तुन्दिल, बड़े पेटवाला।

पिचपिचा (हिं० वि०) चिपचिपा देखो।

पिचपिचाना (हिं० क्रि०) घाव या किसी और चीजमेंसे बराबर थोड़ा थोड़ा पदार्थ रसना, पानी निकलना।

पिचपिचाहट (हिं० स्त्री०) गीले वा आर्द्र रहनेका भाव, पिचपिचानेका भाव।

पिचरिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका छोटा कोल्हू जिसकी कोठी बहुत छोटी होती है।

पिचलना (हिं० क्रि०) कुचलना देखो।

पिचवय (हिं० पु०) वटवृक्ष।

पिचव्य (सं० पु०) पिचवे तुलाय साधुः पिचु-यत्। कार्पास, कपास।

पिचिण्ड (सं० पु०) १ उदर, पेट। २ पशुका अवयव।

पिचिण्डवत् (सं० त्रि०) पिचिण्ड-मतुप्, मस्य व। पिचिण्डयुक्त।

पिचिण्डिका (सं० स्त्री०) पिचिण्ड इव पिण्डाकृतिरस्त्य-स्येति, पिचिण्ड-ठन्। पिण्डिका, पाँवकी पिण्डी।

नाड़ी दश हैं जिनमें इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना यही तीन प्रधान हैं। शरीरके वाम भागमें इड़ा नाड़ी, मध्यको ओर सुषुम्ना और दक्षिण की ओर पिङ्गला नाड़ी अवस्थित है।

निरुत्तर तन्त्रके प्रथम पटलमें लिखा है, कि इड़ा आदि ले कर दश नाड़ियां हैं जिनमेंसे इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना ब्रह्म, विष्णु और शिवरूपिणी हैं। योगार्णवमें लिखा है, कि पिङ्गलानाड़ी सितरक्ताभा है और दक्षिण पार्श्वदेशमें अवस्थित है।

दूसरे तन्त्रमें लिखा है, कि इड़ानालोमें चन्द्र और पिङ्गलानाड़ीमें सूर्य रहते हैं।

जब पिङ्गलानाड़ीका कार्य होता है, तब दक्षिण नासिका पुट हो कर श्वास निकलता है। इस पिङ्गलानाड़ीके वहनकालमें कौन कौन कार्य करनेसे शुभ होता है, उसका विषय प्राणतोषिणीमें इस प्रकार लिखा है,—

कठिन और क्रूर विद्यादिका पठन और पाठन। मदन-स्त्रीसङ्ग, वेश्यागमन, नौकारोह... ...पालका पेड़।

की जातिका एक कीड़ा जिसके काटनेसे जलन और सूजन होती है।

पिङ्गलित (सं० त्रि०) पिङ्गलो तद्वर्णोऽस्त्यस्य, तारकादित्वादित च्। पिङ्गलवर्णयुक्त, पिङ्गल वर्णका।

पिङ्गलेश्वर (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

पिङ्गलोचन (सं० त्रि०) पिङ्गे लोचने यस्य। पिङ्गलवर्ण चक्षुयुक्त, पिङ्गाक्ष।

पिङ्गवर्णक (सं० क्ली०) गजरमूल, गाजरकी जड़।

पिङ्गसार (सं० पु०) पिङ्गमेव सारो यस्य। हरिताल, हरताल।

पिङ्गस्फटिक (सं० पु०) पिङ्गः पिङ्गल वर्णः स्फटिकः। गोमेदमणि।

पिच्चा (सं० स्त्री०) पिच्च... शरीरके किसी भाग पर किसी भारी च। १ ... चोट लगने अथवा दाब पड़नेके कारण होता है। जो स्थान दबता है वह फैल कर चिपटा हो जाता है और प्रायः उस स्थानकी हड्डीकी भी यही दशा होती है, चमड़ा कट जाता है और कटा हुआ भाग रुधिर तथा मज्जासे चिपचिपा बना रहता है। २ वह वस्तु जो दब कर पिचक गई हो या चिपटी हो गई हो। (त्रि०) ३ पिचका हुआ, दबा हुआ, जो दब कर चिपटा हो गया हो।

पिचुकिया (हिं० स्त्री०) १ छोटी पिचकारी। २ वह गुझिया (कचा) जिसमें केवल गुड़ और सोंठ भरी जाती है।

पिचुकीय (सं० त्रि०) पिचुक उत्करादित्वात्-छ (उत्करादिदेशादिभ्यश्छः। पा ४।२।९०) पिचुकका अदूरभव।

पिचुका (हिं० पु०) १ गोलगप्पा। २ पिचकारी।

पिचुतूल (सं० क्ली०) पिचोस्तूलम्। तूल, रुई।

पिचुमर्द (सं० पु०) पिचुं कुष्ठविशेषं मर्दयति मृद्नातीति वा, मृद-अण्। निम्बवृक्ष, नीमका पेड़। पर्याय—कैटर्य, निम्ब, अरिष्ट, वरत्वचा, दद्रुघ्न, हिङ्गु निर्यास और सर्वतोभद्र।

"असतामुपकाराय दुर्जनानां विभूतयः।
पिचुमर्दः फलाढ्योऽपि काकैरेवोप भुज्यते॥"
(देवीभा० २।४।६२)

पिचुल (सं० पु०) पिचुं लातीति ला-क। १ झावुकवृक्ष, झाऊका पेड़। २ जलवायस। ३ समुद्रफल। ४ रुई। ५ गोताखोर।

पिचुवर्त्ति (सं० स्त्री०) तूलवर्त्ति, रुईकी बत्ती।

पिचू (हिं० पु०) कर्ष, १६ माशेकी तौल। पर्याय—

पिच्ची (हिं० वि०) पिच्चित देखो।

पिच्छ (सं० पु०) पिच्छतीति पिच्छ अच्। १ लाङ्गूल, ऐसी पूंछ जिस पर बाल हों, किसी पशुकी पूंछ। २ मयूरपुच्छ, मोरकी पूंछ। पर्याय—शिखण्ड, बर्ह, शिखिपुच्छ और शिखण्डक। ३ चूड़ा, मोरकी चोटी। ४ मोचरस।

पिच्छक (सं० पु०) पिच्छ-कन्। १ मोचरस। २ लाङ्गूल, पूंछ। (क्ली०) ३ मयूरपुच्छ, मोरकी पूंछ।

पिच्छतिका (सं० स्त्री०) शीशम, शिंशिपा।

पिच्छन (सं० क्ली०) अत्यन्त पीड़न, किसी वस्तुको बहुत दबाना, दबा कर चिपटा करनेकी क्रिया।

पिच्छपादिन् (सं० त्रि०) तन्नामक पादरोगाक्रान्त अश्व, पिच्छपाद रोगयुक्त घोड़ा।

पिच्छबाण (सं० पु०) पिच्छं बाण इव यस्य। श्येनपक्षी, बाज।

पिङ्गास्य (सं० पु०) पिङ्गास्यं वदनमस्य। पिङ्गाश नामकी मछली।

पिङ्गाक्ष (सं० पु०) पक्षिविशेष, एक चिड़ियाका नाम।

पिङ्गी सं० स्त्री०) पिङ्गो वर्णोऽस्त्यस्या इति अच्; ततो गौरादित्वात् ङीष्। शमीवृक्ष, शमीका पेड़।

पिङ्गेक्षण (सं० पु०) पिङ्गानि पिङ्गलवर्णानि ईक्षणानि यस्य। १ शिव, महादेव। २ कुम्भीर, नक्र नामक जलजन्तु, नाक। (त्रि०) पिङ्गलनेत्र।

पिङ्गेश (सं० पु०) अग्निका नामान्तर, अग्निका एक नाम।

पिचक (हिं० स्त्री०) पिचकारी देखो।

पिचकना (हिं० क्रि०) फूले या उभरे हुए तलका दब

पिच्छलबीज (सं० पु०) वनेपण

पिच्छा (सं० स्त्री०) पिच्छ अजादित्वात् टाप् दूसरेसे शाल्मली। २ पूग, सुपारी। ३ कोष। ४ मोचरस। ५ भक्तसम्भूतमण्ड, भात या चावलका मांड़। ६ पंक्ति। ७ अश्वपदामय, पिच्छलपाद। ८ चोलिका। ९ फणिमाला। १० शिंशपावृक्ष, शीशम। ११ कतकवृक्ष, निर्मलीका पेड़। १२ आकाशलता, अकाशबेल। १३ मट्ठा। १४ नारंगीका पेड़।

पिच्छादि (सं० पु०) पाणिनि-उक्त गणभेद। गण यथा—पिच्छा, उरस्, ध्रुवक, ध्रुवक, वर्ण, उदक, पङ्क और प्रज्ञा।

पिच्छावस्ति (सं० स्त्री०) पिच्छिल वस्ति

पिच्छिका (सं० स्त्री०) पिच्छं मयूर-वर्ह अस्त्यत्रेति, पिच्छ-ठन्। १ चामर, चंवर। २ मोरछल। ३ ऊनकी चंवरी जो जैन साधु अपने पास रखते हैं।

पिच्छितिका (सं० स्त्री०) शिंशपा, शीशम।

पिच्छिल (सं० त्रि०) पिच्छा भक्तसम्भूतमण्डं अस्त्यस्येति पिच्छादित्वादिलच्। १ भक्तमण्डयुक्त, भातके माँड़से चुपड़ा हुआ। २ सरस और स्निग्ध (द्रव्य), गीला और चिकना। ३ मण्डयुक्त भक्त, मांड़ मिला हुआ भात। ४ जलयुक्त व्यञ्जन, पानी मिली हुई तरकारी। पर्याय—विजिल, विजयिन, विजिन, विज्जल, इज्जल और लालसीक। ५ पिच्छिल, फिसलनेवाला, जिस पर पड़नेसे पैर रपटे, जिस पर कोई वस्तु ठहर

धोने और आग बुझानेके लिये बड़ी बड़ी पिचकारियों और कुमकुम आदि धोनेके लिये छोटी पिचकारियोंका भी उपयोग होने लगा है। इसके अलावा फिलहाल एक ऐसी पिचकारी चली है जिसके आगे एक छेददार सूई लगी होती है। इस पिचकारीकी सूईको शरीरके किसी अङ्गमें जरासा चुभा कर अनेक रोगोंकी औषधियोंका रक्तमें प्रवेश भी कराया जाता है।

पिचण्ड (सं० पु०) अपि चण्ड्यतेऽनेनेति अपि चड़ि-कोपे घञ्, अपेरलोपः। १ पशुका अवयव। २ उदर, पेट।

पिचण्डक (सं० त्रि०) पिचण्डे कुशलः आकर्षादित्वात् कन्। (पा ५।२।६४) १ उदरम्भरि, उदरपूरणमें कुशल, पेटू। २ कोकिलाक्षवृक्ष।

पिचण्डिक (सं० त्रि०) पिचण्डोऽस्यास्तीति तुन्दादित्वात् ठन् (तुन्दादिभ्य इलच। पा ५।२।११७) तुन्दिल, तोंद-वराह, मो

सबके केवलमात्र सद्योजात रक्त वा तुन्दादित्वात् कार्यमें प्रयोग करना होगा। ऐसे वस्तिप्रयोगका नाम पिच्छिलवस्ति है। (सुश्रुत चिकि० ३८ अ०)

भावप्रकाशके मतसे—भूमि कुष्माण्ड, नारङ्गी और शाल्मलीवृक्षके अङ्कुरको दूधके साथ सिद्ध कर मधु और रक्तके साथ जो वस्ति प्रयोग की जाती है, उसे पिच्छिल-वस्ति कहते हैं। छाग, मेष और कृष्णसार मृगके रक्तके साथ पिच्छिलवस्ति प्रयोज्य है। इसकी मात्रा बारह पल या डेढ़ सेर बतलाई गई है। (भावप्र० पूर्वख०)

पिच्छिलसार (सं० पु०) पिच्छिलः सारो यस्य। मोचरस।

पिच्छिला (सं० स्त्री०) पिच्छा इलच्, ततष्टाप्। १ पोतिका, पोईकी बेल। २ शिंशपा, शीशम। ३ शाल्मली सेमल। ४ कोकिलाक्ष, तालमखाना। ५ वृश्चिकाक्षुप, वृश्चिकाली जड़ी। ६ शूलीतृण, शूलाघास। ७ अतसी। ८ उपोदिका, पोईसाग। ९ अगर। १० अरवी। ११ कामरूपके अन्तर्गत एक क्षेत्र। (त्रि०) १२ पिच्छिल देखो।

पिछड़ना (हिं० क्रि०) १ श्रेणीमें आगे या बराबर न रहना। २ पीछे रह जाना, साथ साथ, बराबर या आगे न रहना।

पिछलगा (हिं० पु०) १ सेवक, नौकर, खिदमतगार। २

आश्रित, अधीन, वह मनुष्य जो किसीके पीछे पीछे चले। ३ अनुगामी, अनुवर्त्ती, शिष्य, वह मनुष्य जो अपने स्वतन्त्र विचार या सिद्धान्त न रखता हो, बल्कि हमेशा किसी दूसरेकी सलाहके अनुसार काम करे। किसीका मतानुयायी, शागिर्द, चेला।

पिछलगी (हिं० स्त्री०) १ पिछलगा देखो। २ अनुवर्त्तन, अनुसरण, अनुयायी होना, अनुगमन करना।

पिछलगू (हिं० पु०) पिछलगा देखो।

पिछलना (हिं० क्रि०) पीछेकी ओर हटना या मुड़ना।

पिछलपाई (हिं० स्त्री०) १ जादूगरनी। २ चुड़ैल। इसके सम्बन्धमें लोगोंकी धारणा है, कि इनके पैरोंमें एड़ी आगे और पञ्जे पीछेकी ओर होते हैं।

पिछला (हिं० वि०) १ पश्चाद्वर्त्ती, अन्तके भाग या अर्द्धांशका, अन्तकी ओरका, किसी वस्तुके उत्तर भागसे सम्बन्ध रखनेवाला। २ अगलाका उलटा, पीछेकी ओरका, जो किसी वस्तुकी पीठकी ओर पड़ता हो। ३ जो घटना, स्थिति आदिके क्रममें किसीके अथवा सबके पीछे पड़ता हो, जिसके पहले या पूर्वमें कुछ और हो चुका हो, बादका, पहलाका उलटा, अनन्तरका। ४ गत बातोंमेंसे अन्तिम या अन्तकी ओरका, सबसे निकटस्थ भूतकालका, उस भूतकालका जो वर्त्तमानके ठीक पहले रहा हो। ५ गत, बीता हुआ, पुराना, गुजरा हुआ। (पु०) ६ वह खाना जो रोजेके दिनोंमें मुसलमान लोग कुछ रात रहते खाते हैं, सहरी। ७ एक दिन पहलेका पढ़ा हुआ पाठ, पिछले दिनका पढ़ा हुआ सबक, आमोख्ता।

पिछवाई (हिं० स्त्री०) पीछेकी ओर लटकनेका परदा।

पिछवाड़ा (हिं० पु०) १ किसी मकानके पृष्ठभागसे मिली हुई जमीन, घरके पीछेका स्थान या जमीन, घरकी पीठकी ओरका खाली स्थान। २ घरका पृष्ठ भाग, घरका वह भाग जो मुख्य द्वारकी विरुद्ध दिशामें हो, किसी मकानका पीछेका भाग।

पिछवारा (हिं० पु०) पिछवाड़ा देखो।

पिछाड़ी (हिं० स्त्री०) १ पृष्ठ भाग, पिछला भाग, पीछेका हिस्सा। २ वह रस्सी जिससे घोड़ेके पिछले पैर बांधते हैं। ३ पंक्तिमें सबसे अन्तका व्यक्ति।

पिछान (हिं० स्त्री०) पहचान देखो।

पिछानना (हिं० क्रि०) पहचानना देखो।

पिछारी (हिं० स्त्री) पिछाड़ी देखो।

पिछौंड़ (हिं० वि०) किसीके मुंहकी ओर जिसकी पीठ पड़ती हो, किसी वस्तुको न देखता हुआ, जिसने अपना मुंह पीछे कर लिया हो।

पिछौंड़ा (हिं० वि०) पीछेकी ओर।

पिछौंता (हिं० क्रि० वि०) पीछेकी ओर।

पिछौंहो (हिं० स्त्री०) पिछौरी देखो।

पिछौंहे (हिं० क्रि० वि०) पीछेकी ओरसे, पीछेकी तरफ।

पिछौरा (हिं० पु०) पुरुषोंकी चादर, मरदाना दुपट्टा।

पिछौरी (हिं० स्त्री०) १ स्त्रियोंकी चादर, स्त्रियोंका वह वस्त्र जिसे वे सबसे ऊपर ओढ़ती हैं। २ ओढ़नेका वस्त्र, कोई कपड़ा जो ऊपरसे डाल लिया जाय।

पिजवन (सं० पु०) स्वर्द्दनीयजय विश्वामित्रयाज्य नृपभेद। इनके पुत्रका नाम सुदास था।

पिज्वल (सं० पु०) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम। पिज्वलस्य गोत्रापत्यं अश्वादित्वात् फञ् (पा ४।१।११०) पैज्वलायन—पिज्वल ऋषिकी सन्तति या अपत्य।

पिञ्ज (सं० क्ली०) पिञ्ज वले, ततो भावे घञ्। १ बल, ताकत। २ वध। ३ कर्पूरभेद, एक प्रकारका कपूर। (त्रि०) ४ व्याकुल।

पिञ्जक (सं० क्ली०) हरिताल, हरताल।

पिञ्जट (सं० पु०) पिञ्जयति नेत्रं दूषयति पिजि-अटन् नेत्र मल, कीचड़, आंखका मल।

पिञ्जन (सं० क्ली०) पिञ्जतेऽनेनेति पिजि-स्फोटने करणे ल्युट्। कार्पासस्फोटनधनु, वह धनुस या कमान जिससे धुनिये रुई धूनते हैं, धुनकी। पर्याय—विहनन, तूलस्फोटनकार्मुक।

पिञ्जर (सं० क्ली०) पिजि-दीप्तौ वर्णे वा बाहुलकात् अरः, (उज्ज्वलदत्त ३।१३१) १ हरिताल, हरताल। २ स्वर्ण, सोना। ३ नागकेशर। ४ पक्षी प्रभृतिका बन्धनगृह, पिंजड़ा। ५ कायास्थिबन्द, शरीरके भीतरका इन्द्रियोंका ठट्ठर, पंजर। (पु०) ६ अश्वभेद, एक प्रकारका घोड़ा। ७ पीतरक्त वर्ण, पीला और लाल रंग। ८ सुमेरुके पश्चिमपार्श्व स्थित पर्वतविशेष, सुमेरुके पश्चिम इसी नामका एक पहाड़। (त्रि०) ९ पीत, पीला,

१० ललाई या भूरापन लिए पीला, सुंघनिया जर्दे रंगका। ११ भूरापन लिए लाल रंगका।

पिञ्जर—बरारके अन्तर्गत अकोला जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा० २०° ३३' उ० और देशा० ७७° १७' पू०के मध्य, अकोला नगरसे २४ मील पूर्वमें अवस्थित है। १७२७ ई०में माधोजी भोंसलाने इस स्थानके अधिवासियों पर अधिक कर लगा दिया था जिससे इस ग्रामकी अवनति देखी गई थी। यहां एक सुन्दर मन्दिर है जिसमें अनेक खोदित लिपियां हैं।

पिञ्जरक (सं० क्लो०) पिञ्जरमेव स्वार्थे कन्। १ हरिताल, हरताल। (पु०) २ पर्वतविशेष, एक पहाड़का नाम।

पिञ्जरता (सं० स्त्री०) पिञ्जरस्य भाव: पिञ्जर-तल्। पिञ्जरका भाव या धर्म।

पिञ्जरा—बम्बई प्रदेशवासी मुसलमान जातिभेद। यह रूई धुन कर जीविका निर्वाह करती है, इसीसे इसका नाम "पिञ्जरा" पड़ा। इस देशमें इसे धुनियां कहते हैं। ये सब पहले हिन्दू थे; लेकिन औरङ्गजेबके प्रभावसे उन्होंने मुसलमानी धर्म ग्रहण किया है। इनकी रहन-सहन और पहरावा बहुत कुछ मराठी कुनबियोंसे मिलता जुलता है। सब काजीकी भक्ति करते हैं। विवाहके समय काजीके निकट नाम लिखाना पड़ता है तथा सामाजिक गोलमाल काजी ही मिटा देते हैं।

पिञ्जल (सं० क्लो०) पिजि हिंसायां वर्णे च कलच्। १ कुशपत्र। २ हरिताल, हरताल। (पु०) ३ अत्यन्त व्याकुल सैन्यादि। ४ जलबेतस, जलबेंत। (त्रि०) ५ व्याकुल, घबराया हुआ, जिसका चेहरा पीला या फीका पड़ गया हो।

पिञ्जलक (सं० त्रि०) अत्यन्त व्याकुल, बहुत घबराया हुआ।

पिञ्जली (सं० स्त्री०) पिञ्जल स्त्रियां ङीष्। कुशान्तर-वेष्टित प्रादेशमात्र साग्रकुशपत्रद्वय, नोक सहित एक एक बोतेके एकमें बंधे हुए दो कुशोंकी जूरी जिसका काम श्राद्ध या होममें पड़ता है।

पिञ्जा (सं० स्त्री०) १ हरिद्रा, हलदी। २ तूला, रूई।

पिञ्जान (सं० क्लो०) स्वर्ण, सोना।

पिञ्जिका (सं० स्त्री०) पिञ्जयतीति पिजि-ण्वुल्, टापि अत इत्वं। तूलनालिका, रूईकी पोली बत्ती जिससे कातने पर बढ़ बढ़ कर सूत निकलते हैं, पूनी।

पिञ्जिल (सं० क्लो०) पिञ्जयतीति पिजि इलच् (पिञ्जादिभ्य ऊरोलचौ। उण् ४।९०) तूलवर्त्तिका, रूईकी बत्ती।

पिञ्जूष (सं० पु०) पिञ्जयति हिनस्ति कर्णौ इति पिजि बाहुलकात् ऊषण्। कर्णमल, कानकी मैल, खूंट।

पिञ्जेट (सं० पु०) पिञ्जट पृषोदरादित्वात् साधुः। नेत्रमल, आंखका कीचड़।

पिञ्जोला (सं० स्त्री०) पिञ्जयतीति पिजि बाहुलकात् ओल-टाप्। पत्रकाहला।

पिञ्जोर—पञ्जाब प्रदेशके पटियाला राज्यके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह अक्षा० ३०° ४८' उ० और देशा० ७६° ५८' पू० कग्गा नदीके सङ्गम पर अवस्थित है। यहां पटियालाराजका प्रमोदभवन और केलिकानन्द है। अब नगरकी वैसी पूर्वश्री नहीं है। चारों ओर विस्तर स्थापत्य और शिल्पनैपुण्ययुक्त प्राचीन कीर्त्तिका ध्वंसावशेष पड़ा है। यहां एक पुरातन दुर्ग था जिसे सिन्धियाके फरासी सेनानायकने तहस नहस कर डाला है।

पिटंत (हिं० स्त्री०) पीटनेकी क्रिया या भाव, मारकूट, मारपीट।

पिट (सं० क्लो०) पेटति संहतो भवति पिट-क। १ ढाल। (पु०) पेटति द्रव्यान्तरै: सहितो भवतीति पिट-क। २ पेट, पिटारा।

पिटक (सं० पु० क्लो०) पेटतीति पिट-क्वन्। १ वंश-वेत्रादिमय समुद्गक, बांस, बेंत आदिका बना पिटारा। पर्याय—पेटक, पेड़ा, मञ्जूषा, पेट, पेटिका, तरि, तरी और पेड़िका। २ विस्फोट, फुड़िया, फुंसी। स्थान-विशेषमें पिटक होनेसे शुभाशुभफल होता है। बृहत्संहितामें इसके फलका विषय इस प्रकार लिखा है,—

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको यथाक्रम श्वेत, रक्त, पीत और कृष्णवर्ण पिटक होनेसे शुभ, किन्तु अन्यरूप होनेसे अशुभ होता है। यह पिटकसमूह रमणीय और सुचिक्कन दीख पड़ता है।

मस्तक पर पिटक होनेसे धनसञ्चय, मूर्द्धदेशमें होनेसे

सौभाग्यलाभ और भ्रू युगलमें होनेसे दुर्भाग्य तथा प्रियजनसे वियोग होता है। इसी प्रकार दोनों भौंहोंके बीच या नयनपुटगत होनेसे शोक, ललाटाग्रिदेश में होनेसे प्रव्रज्या, अश्रुजल निपतन स्थान पर होनेसे चिन्ता, नासिका तथा गण्डदेशमें होनेसे वसन और सुख-फल, दोनों ओष्ठ पर होनेसे लाभ, चिबुकतलगत होनेसे अन्नलाभ, कर्णदेशमें होनेसे कर्णभूषण और आत्मज्ञान लाभ होता है। मस्तक, सन्धि, ग्रीवा, हृदय, कुच (स्तनाग्र) पार्श्व और वक्षःस्थलमें पिटक होनेसे यथाक्रम अर्थोपात, आघात, सुत, तनयलोभ, शोक और प्रियप्राप्ति होती है। स्कन्ध पर होनेसे बारम्बार भिक्षार्थ भ्रमण और विनाश तथा कक्षमें होनेसे बहुविध सुख, बाहुयुगलमें होनेसे दुःख और शत्रुनाश, मणिबन्धमें होनेसे संयम, दोनों बाहुके निकटस्थ होनेसे भूषणादि लाभ, करदेश, अङ्गुलि वा उदरमें पिटक होनेसे क्रमशः धनप्राप्ति, सौभाग्य और शोक होता है।

नाभिमें पिटक होनेसे उत्तम पान और अन्नलाभ तथा उसके नीचे होनेसे चोरों द्वारा धननाश, वस्तिमें होनेसे धनधान्य लाभ, मेढ्रमें होनेसे युवती और सुन्दर तनय लाभ, जरुद्वयस्थ होनेसे यान और आसन लाभ, जानुद्वयस्थित होनेसे शत्रु द्वारा क्षति, दोनों जङ्घामें होनेसे शस्त्राघात और गुल्फदेशमें होनेसे बन्धनज क्लेश होता है।

स्फिक् पार्ष्णि और पादजातमें होनेसे धननाश तथा अगम्यागमन, अङ्गुलिसमूहमें होनेसे बन्धन और अङ्गुष्ठ में होनेसे ज्ञातिलोक द्वारा पूजित होता है।

अङ्गविशेषमें पिटक होनेसे इसी प्रकार फल होता है। पहले जो ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि जातिका विषय उल्लिखित हुआ है, उसे जन्मनक्षत्रानुसारसे जानना होगा, वर्णानुसारमें नहीं।

पुरुषको दाहिनी ओर जो पिटक होता है उसे 'उत्पातगण्ड' और बाईं ओरके पिटकको 'अभिघात' कहते हैं। पुरुषोंके लिये ऐसे पिटक शुभप्रद हैं, किन्तु स्त्रियोंके सम्बन्धमें इसका विपरीत फल जानना चाहिए। उनके वामभागस्थ पिटक ही शुभप्रद हैं। ३ बौद्धशास्त्रभेद, बौद्धोंका एक शास्त्र। त्रिपिटक देखो। ४ आभूषण जो ध्वजामें लगाया जाता है।

पिटका (सं० स्त्री०) पिड़का, पिटारी। २ मसूरिका, वसन्त, फुंसी।

पिटक्या (सं० स्त्री०) पिटकानां समूहः, पाशादित्वात् य (पा ४।२।५९) स्त्रियां टाप्। पिटकसमूह, फुंसी।

पिटङ्गाश (सं० पु०) पर्वतोर्मि मत्स्य, एक प्रकारकी मछली।

पिटङ्कोकी (सं० स्त्री०) इन्द्रवारुणी-लता, इन्द्रायन।

पिटना (हिं० क्रि०) १ आघात सहना, मार खाना, ठोंका जाना। २ आघात पा कर आवाज करना, बजना। (पु०) ३ एक औजार जिससे किसी वस्तुको विशेषतः चूने आदिकी बनी हुई छतको राज लोग पीटते हैं, पीटनेका औजार, थापी।

पिटपिट (हिं० स्त्री०) किसी छोटी चीजके गिरने या हलके आघातका शब्द, पिट पिट शब्द।

पिटरिया (हिं० स्त्री०) पिटारी देखो।

पिटवाना (हिं० क्रि०) १ दूसरेको पीटनेमें प्रवृत्त करना, पीटनेका काम किसी दूसरेसे कराना। २ अन्यके द्वारा किसी पर आघात कराना, किसीके पिटने या मारे जानेका कारण होना, मार खिलवाना, कुटवाना, ठोंकवाना। ३ बजवाना। जैसे, ढोंढी पिटवाना।

पिटाई (हिं० स्त्री०) १ प्रहार, आघात, मारकूट। २ पीटनेका काम या भाव। ३ पिटवानेकी मजदूरी। ४ पीटनेकी मजदूरी। ५ मारनेका पुरस्कार।

पिटापिट (हिं० स्त्री०) किसी वस्तुको कुछ समय तक बराबर पीटना, मारपीट, मारकूट।

पिटारा (हिं० पु०) बेंत, बांस, मूंज आदिके नरम छिलकोंसे बना हुआ एक प्रकारका एक बड़ा संपुट या ढक्कनेदार पात्र। झांपा जिसका घेरा गोल, तल बिलकुल चिपटा और ढकना ढालुवां गोल अथवा बीचमें उठा हुआ होता है। पहले इसका व्यवहार बहुत होता था, पर तरह तरहके ट्रंकोंका प्रचार हो जानेसे इसका व्यवहार घटता जाता है। बांस आदिकी अपेक्षा मूंज और बेंतका पिटारा अधिक मजबूत होता है। मजबूतीके लिए अकसर इसको चमड़े या किसी मोटे कपड़ेसे मढ़वा देते हैं। आज कल लोहेके पतले गोल तारोंसे भी पिटारे बनाते हैं।

पिटारी (हिं० स्त्री०) १ छोटा पिटारा, झांपी । २ पान-दान, पान रखनेका बरतन ।

पिट्टक (सं० क्ली०) किट्टकं पृषोदरादित्वात् कस्य पः । दन्तकिट्टक, दाँतकी मैल ।

पिट्टस (हिं० स्त्री०) शोक या दुःखसे छाती पीटनेकी क्रिया ।

पिट्टिक (सं० त्रि०) पिट्ट-इन्, स्वार्थे कन् । कुट्टन द्वारा अधःप्रवेशन ।

पिट्टू (हिं० त्रि०) मार खानेका अभ्यस्त, जो प्रायः पीटा जाय ।

पिट्ठी (हिं० स्त्री०) पीठी देखो ।

पिट्ठू (हिं० पु०) १ सहायक, मददगार । २ अनुयायी, पीछे चलनेवाला, पिछलगा । ३ एक साथ मिल कर खेलनेवाला, खेलमें साथ रहनेवाला । ४ किसी खेलाड़ी-का वह कल्पित साथी जिसकी बारीमें वह स्वयं खेलता है । जब दोनों पक्षोंके खेलाड़ियोंकी संख्या बराबर नहीं होती, तब न्यून संख्यक पक्षके एक दो खेलाड़ी अपने अपने साथ एक एक पिट्ठू मान लेते हैं और अपनी बारी खेल चुकने पर दूसरी बार उस पिट्ठू-की बारी ले कर खेलते हैं ।

पिठ (सं० पु०) १ पीड़ा, दुःख । २ देवनल ।

पिठर (सं० क्ली०) पिठं रातीति रा-का । १ मुस्ता, मोथा । २ मन्थनदण्ड, मथानी । (पु०) पिठ्यते क्लिश्यतेऽनेनेति पिठ करन् । ३ गृहभेद, एक प्रकारका घर । पर्याय—कुट्टङ्क, उद्घाट । ४ स्थाली, थाली । ५ अग्निविशेष । ६ दानवविशेष, एक दानव ।

पिठरक (सं० पु०) १ एक नागका नाम । २ थाली ।

पिठरपाक (सं० पु०) भिन्न भिन्न परमाणुओंके गुणोंमें तेजके संयोगसे फेर फार होना ।

पिठरिका (सं० स्त्री०) स्थाली, पात्र, थाली ।

पिठरी (सं० स्त्री०) पिठर स्त्रियां ङीष् । १ स्थाली, थाली । २ राजमुकुट ।

पिठवन (हिं० स्त्री०) पृष्ठिपर्णी, पिठौनी, एक प्रसिद्ध लता जो औषधके काममें आती है । पर्याय—कलशल, कदला, क्रोष्टुक, दीर्घपर्णी, चित्रपर्णी, तन्वी चक्रपर्णी, चक्र-कुल्या, पञ्चिका, कलशी, व्याघ्रक मेखला, धमनी, पृथक्-पर्णी, सिंहपुच्छी, पृश्निपर्णी, त्रिपर्णी, पिष्टपर्णी, गुहा, ब्रह्मपर्णी, लाङ्गुलिका, सिंहपुष्पी, अंघ्रिपर्णी, विष्णु-पर्णी, लाङ्गुली, शृगालवृन्ता, अतिगुहा और घष्टिला ।

यह पश्चिम और बङ्गालमें बहुतायतसे पाई जाती है, परन्तु दक्षिणमें नहीं दिखाई पड़ती । इसके पत्ते छोटे, गोल गोल होते हैं तथा एक एक डांड़ीमें तीन तीन लगते हैं । इसके फूल सफेद और गोल होते हैं । जड़ कम मिलनेके कारण इसकी लता ही प्रायः काममें लाई जाती है । वैद्यकमें इसको वीर्यजनक, धारक, मधुर, त्रिदोषनाशक, उष्ण, कटु, तिक्त तथा दाह, ज्वर, श्वासवमन, वातरक्त, तृषा, व्रण, रक्तातिसार और उन्माद आदिका नाशक बतलाया है ।

पिठापुर—१ मन्द्राजप्रदेशके अन्तर्गत गोदावरी जिलेका एक तालुक या उपविभाग । भूपरिमाण २०० वर्गमील है । यहांके राजाके पूर्वपुरुष अयोध्यासे आये थे ।

२ उक्त तालुकका प्रधान नगर । यह अक्षा० १७°७´ उ० और देशा० ८२°१८´ पू०के मध्य अवस्थित है । पिठापुरके जमींदार यहीं रहते हैं ।

पिठायीपुर—१ चट्टलके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम । २ कामरूपके अन्तर्गत एक ग्राम ।

पिठी (हिं० स्त्री०) पिट्ठी देखो ।

पिठीनस (सं० पु०) एक ऋषि ।

पिठौनी (हिं० स्त्री०) पिठवन देखो ।

पिठौरी (हिं० स्त्री०) पीठीकी बनी हुई खानेकी कोई चीज ।

पिड़क (सं० पु०) पीड़यति पीड़-ण्वुल्, निपातनात् साधुः । स्फोटक, छोटा फोड़ा, फुंसी ।

पिड़का (सं० स्त्री०) पीड़यतीति पीड़-ण्वुल्-टाप्, निपातनात् साधुः । स्फोटकविशेष, छोटा फोड़ा, फुंसी । छोटा छोटा जो व्रण निकलता है उसे पिड़का कहते हैं । सुश्रुतादि वैद्यकग्रन्थमें रोगभेदसे नाना प्रकारकी पिड़काका उल्लेख है । सुश्रुतमें भगन्दररोगमें लिखा है, कि गुदामार्गमें जो कभी कभी सूजन पड़ जाती और शीघ्र ही दब भी जाती है, उसे पिड़का कहते हैं । यह पिड़का भगन्दरसे भिन्न है । किसी किसी पिड़कामें भगन्दर होता है । जो दो अङ्गुलि परिमित स्थानमें निकलता है । इसमें ज्वर भी आ जाता है ।

इस प्रकार प्रमेह रोगमें भी दश प्रकारकी फुंसियां होती हैं जिसके नाम ये हैं,—शराविका, कच्छपिका, जालिनी, विनता, अलजी, मसूरिका, सर्षपिका, पुत्रिणी, विदरिका और विद्रधि। कुष्ठरोगमें भी इसी तरह नाना प्रकारकी पिड़काएं उत्पन्न होती हैं।

पिड़कालिका (सं० स्त्री०) नेत्रमल, आंखका कीचड़।

पिड़कावत् (सं० त्रि०) पिड़का विद्यतेऽस्य पिड़का मतुप्, मस्य व। पिड़का-अस्त्यर्थे इनि। पिड़कारोगयुक्त, जिसे फोड़ा फुंसी हुई हो।

पिड़किन् (सं० त्रि०) पिड़का अस्त्यर्थे इनि। पिड़का रोगयुक्त, जिसे पिड़काकी बीमारी हुई हो।

पिड़ुगुराला—दाक्षिणात्यके कृष्णाजिलान्तर्गत दाचेपल्लीसे १२ मील दक्षिणपूर्वमें अवस्थित एक अति प्राचीन ग्राम। यहां बहुतसे पुराने मन्दिरोंका ध्वंसावशेष और कुछ एक प्राचीन शिवमन्दिर हैं। अमरावतीके बौद्धस्तूपकी तरह यहां भी एक स्तूप निकला है। विस्तृत विवरण Sewell's List of Autiquarian Remains Vol. I. appendix. ph. XXVI ff. में देखो।

पिढ़ई (हिं० स्त्री०) १ किसी छोटे यन्त्रका आधार जो छोटे पीढ़ेके समान हो, वह ढांचा जिस पर कोई छोटा यन्त्र रखा रहे। २ छोटा पीढ़ा या पाटा।

पिढ़ी (हिं स्त्री०) १ मचिया। २ पीढ़ी देखो।

पिण्ड (सं० पु० क्ली०) पिण्डते संहतो भवतीति पिडि संहतौ अच्। १ आजीवन। २ श्राद्धशेष द्रव्यनिर्मित बिल्वफलाकार पितरादिके उद्देशसे देय अन्न, वह अन्न जो श्राद्धके बचे हुए द्रव्यसे बिल्वफलके आकारका पिता आदिके उद्देशसे दिया जाता है। कात्यायनने यजुर्वेदियोंके श्राद्धादि स्थल पर पिण्ड शब्दको क्लीवलिङ्ग और गोभिलने सामवेदियोंके लिये पुंलिङ्ग निर्देश किया है।

श्राद्धादिमें यथाविधान श्राद्ध कर पिता और पितामह आदिको पिण्डदान करना होता है। पिण्डदानादिसे पितृलोक परितुष्ट होते हैं, इसीलिए पितृलोकको पिण्डदान करना पुत्रका अवश्य कर्तव्य है। शास्त्रमें पुत्रोत्पादनके लिए दारक्रिया और पिण्डके लिए पुत्रकी आवश्यकता है। पुत्र यदि यथाविधान पितृगणके उद्देशसे पिण्डदान करे, तो पितृगण पुन्नाम नरकसे उद्धार पाते हैं।

"मध्वाज्यतिलसंयुक्तं सर्वव्यञ्जनसंयुतम्।
उष्णमादाय पिण्डन्तु कृत्वा बिल्वफलोपमम्॥
दद्यात् पितामहादिभ्यो दर्भमूलाद् यथाक्रमम्॥"
(श्राद्धतत्त्व)

कुछ उष्ण अन्नमें मधु, घी और तिलके साथ सब प्रकारके व्यञ्जनोंको मिला कर उसे बिल्वफलके प्रमाणका बनावे। पिण्ड प्रस्तुत कर यथाविधान पितृप्रभृतिके उद्देशसे कुशमूल पर दान करना होता है। पूर्वोक्त श्लोकमें जो पितामह पद प्रयुक्त हुआ है, उसे पितृपद समझना होगा। पिण्डकी आकृति गोल होनेके कारणसे ही इसका नाम पिण्ड पड़ा है। श्राद्धादिमें पहले अग्निदग्धको पिण्डदान करना होता है, बाद पिता और पितामह आदि को। शास्त्रमें पिण्डका अष्टाङ्ग नाम रखा है।

"तिलमन्नञ्च पानीयं धूपं दीपं पयस्तथा।
मधुसर्पिः खण्डयुक्तं पिण्डमष्टांगमुच्यते॥" (त्रिस्थलीसेतु)

तिल, अन्न, पानीय, धूप, दीप, दूध, मधु, सर्पिः और खण्ड (गुड़) ये सब पिण्डके अङ्ग हैं। पिण्डमें उरद निषिद्ध है। ब्राह्मणोंके लिये मद्य जैसा अस्पृश्य है, पिण्डमें उरद भी वैसा ही है।

"ब्राह्मणेषु यथा मद्यं तथा माषोऽग्निपिण्डयोः॥"
(स्मृतिसार)

पिण्डका परिमाण—बिल्व, कपित्थ (कैथ) वा मुरगीके अण्डेके सदृश अथवा आंवले वा बेर फलके जैसा करना चाहिये। अन्त्येष्टिपद्धतिमें भट्टने लिखा है, कि सपिण्डीकरण और एकोद्दिष्ट श्राद्धमें कपित्थप्रमाणका पिण्ड, प्रत्यब्द और मासिक श्राद्धमें नारिकेल फलके सदृश पिण्ड, तीर्थादिस्थल पर या अमावस्यामें जो श्राद्ध होता है, उसमें मुरगीके अंडेके सदृश तथा महालया और गयाश्राद्धमें आंवलेके सदृश पिण्ड बनाना चाहिये।*

* पिंडप्रमाणभेदः, हेमाद्रावंगिराः—
"कपित्थबिल्वमात्रान् वा पिंडान् दद्यात् विधानतः।
कुक्कुटाण्डप्रमाणान् वामलकैर्बदरैः पुमान्॥"
अन्त्येष्टिपद्धतौ भट्टास्तु—
"एकोद्दिष्टे सपिंडे तु कपित्थन्तु विधीयते।
नारिकेलप्रमाणन्तु प्रत्यब्दे मासिके तथा॥

पिण्डदान द्रव्य।—सघृत पायस, सत्तु, चरु, सतिल तण्डुल और गोधूम द्वारा पिण्डदान किया जाता है।

"पायसेनाज्ययुक्तेन सक्तुना चरुणा तथा।
पिण्डदानं तण्डुलैश्च गोधूमैस्तिलमिश्रितैः॥"

देवीपुराणमें—

"सक्तुभिः पिण्डदानञ्च संयावैः पायसेन च।
कर्त्तव्यमृषिभिः प्रोक्तं पिण्याकेन गुडेन वा॥"

(निर्णयसिन्धु)

अन्न आदिके अभावमें फलादि द्वारा भी पिण्ड दिया जा सकता है। श्राद्धतत्त्वधृत अयोध्याकाण्डीय वचनमें लिखा है—

"ऐंगुदं बदरीन्मिश्रं पिण्याकं दर्भसंस्तरे।
न्युप्य पिण्डं ततो राम इदं वचनमब्रवीत्॥
इदं भुंक्ष्व महाराज! प्रीतो यदशना वयं।
यदन्नाः पुरुषा राजंस्तदन्नाः पितृदेवताः॥"

रामचन्द्रने फल द्वारा पितृपिण्ड दिया था। मनुष्य जो खाते हैं, उसी द्वारा पितरोंको पिण्डदान करें और वही वस्तु उनके परम आदरकी होती है। दक्षिण वा पश्चिममुखमें पितादिके उद्देशसे पिण्डदान देना होता है।

मृत्युके बाद प्रेतोद्देशसे पूरक पिण्ड देना होता है। मानवकी श्मशानानलमें इस षाट्कौषिक देहके भस्मीभूत होनेके बाद एक एक पिण्ड द्वारा उसके सभी अङ्ग पूरण करने होते हैं। दश पिण्डदान करनेसे मृत-व्यक्तिके सभी अङ्ग पूरे हो जाते हैं।

तीर्थे दर्शे च संप्राप्ते कुक्कुटाण्ड प्रमाणतः।
महालये गयाश्राद्धे कुर्य्यादामलकोपमम्॥
यत्र स्युर्बहवः पिण्डास्तत्र विल्वफलोपमाः।
अत्र चैको भवेत् पिण्डस्तत्र लांगलिसन्निभः॥
प्रेतपिण्डस्तु दैर्घ्येण द्वादशांगुल उच्यते॥" (हेमाद्रि)
"ब्राह्मणे दशपिण्डास्तु क्षत्रिये द्वादश स्मृताः।
वैश्ये पञ्चदश प्रोक्ताः शूद्रे त्रिंशत् प्रकीर्त्तिताः॥"
इत्युक्तं तथापि—
"प्रेतेभ्यः सर्वभूतेभ्यः पिण्डान् दद्यात् दशैव तु॥"
(हेमाद्रिधृत पारस्कर-वचन)

हेमाद्रिमें लिखा है,—ब्राह्मणको दश, क्षत्रियको बारह, वैश्यको पन्द्रह और शूद्रको तीस पूरकपिण्ड देने चाहिये। शास्त्रमें ऐसी उक्ति रहने पर भी यह मत सर्ववादी सम्मत नहीं है। दूसरे वचनमें लिखा है,—सभी वर्णके प्रेतोंके दश पिंड द्वारा पूरक पिंड होता है। यही मत शास्त्रसम्मत है और इस देशमें प्रचलित भी देखनेमें आता है।

दशपिंडका अन्यान्य विषय दशपिण्डमें देखो।

गयाक्षेत्रमें जा कर पितृपितामह आदिको पिण्ड-दान करनेके बाद अपना पिंड दिया जा सकता है। इस प्रकार पिंडदान द्वारा भी पितृगण प्रेतलोकसे मुक्तिलाभ कर सकते हैं। ४ संहत। ५ घन। ६ बोल, सुरमकी। ७ बल। ८ देहैकदेश। ९ गृहैकदेश। १० देहमात्र। ११ पके हुए चावल खीर आदिका हाथसे बांधा हुआ गोल लोंदा जो श्राद्धमें पितरोंको अर्पित किया जाता है। १२ गोल, कोई गोल द्रव्यखंड, गोल मटोल टुकड़ा। १३ सिह्लक। १४ जवापुष्प। १५ छन्द यथा—अब्दपिण्ड। १६ कवल। १७ गजकुम्भ। १८ मदनवृक्ष। १९ निवाप। २० उपरत्नविशेष। यह कुछ लाल, पाटल और हरित् इन तीन वर्णका तथा बहुत मजबूत होता है। २१ जीविका, आहार, भोजन।

पिण्डक (सं० क्ली०) पिंड इव कायतीति कै-क। १ बोल, सुरमकी। २ पिंडमूल, पिंडालु। ३ गोल। ४ गर्भस्थ बालकको तीसरे महीनेमें हाथ, पैर और मस्तकका पञ्चपिंड होता है। (पु०) ५ शिह्ल नामक गन्धद्रव्य, शिलारस। ६ पिशाच। ७ पिंडालू। पिंड स्वार्थे कन्। ८ कवल।

पिण्डकन्द (सं० पु०) पिण्डाकारः कन्दः। पिंडालू।

पिण्डककंटी (सं० स्त्री०) बिलायती पेठा।

पिण्डका (सं० स्त्री) मसूरिका, छोटी चेचक।

पिण्डखर्जूर (सं० पु०) पिण्डवत् खर्जूरः। स्वनामख्यात खजूर, पिंडखजूर। खजूर देखो।

पिण्डखर्जूरी (सं० स्त्री०) पिण्डखर्जूर स्त्रियां ङीष्। पिण्डखजूर, पिंडखजूर। पर्याय—दीप्या, स्वपिण्डा, मधुरस्रवा, फलपुष्पा, स्वादुपिण्डा, हयभक्ष्य, पिण्ड-खर्जूरिका, राजजम्बू और पिण्डा। इसका गुण—शीत्य,

शीतल, पित्त, दाहशान्ति, श्वास और भ्रमनाशक तथा वीर्य वृद्धिकर।

भावप्रकाशके मतसे—पिण्डखजूर पश्चिमी देशोंमें उत्पन्न होता है। इसका गुण—शीतवीर्य, मधुर रस, मधुर विपाक, स्निग्ध, रुचिकारक, हृदयग्राही, क्षत और क्षयनाशक, गुरु, तृप्तिकर, रक्तपित्तनाशक, पुष्टिकर विष्टम्भी, शुक्रवर्द्धक, बलकारक एवं कोष्ठगत वायु, वमि, कफ, ज्वर, अतीसार, क्षुधा, तृष्णा, कास, श्वास, मत्तता, मूर्च्छा, वातपैत्तिक और मदात्ययरोगनाशक है।

एक और प्रकारकी पिण्डखजूरी है जिसे सुनेपाला कहते हैं। पर्याय—मृदुका और दलहीनफला। गुण—श्रान्ति, भ्रान्ति, दाह, मूर्च्छा और रक्तपित्तनाशक। (भावप्रकाश) खर्जूर देखो।

पिण्डगुडूचिका (सं॰ स्त्री॰) कन्दगुडूची।

पिण्डगोल (सं॰ पु॰) पिंडवत् संहतो गोलः। गन्धरस।

पिण्डज (सं॰ पु॰) वह जन्तु जो गर्भसे अंडेके रूपमें न निकले, बने बनाए शरीरके रूपमें निकले, सब अङ्गोंके बनने पर गर्भसे सजीव निकलनेवाला जन्तु।

पिण्डतगर (सं॰ पु॰) तगरपुष्प, तगरका फूल।

पिण्डतर्कक (सं॰ पु॰) पिंडं तर्कयति तर्क बाहु॰ उक। पिंडलेपभागि वृद्धप्रपितामहादि तीन पुरुष।

पिण्डतैल (सं॰ क्ली॰) तैल-औषधभेद। यह वात-रक्ताधिकारमें प्रयोज्य है। प्रस्तुत प्रणाली—कटु तैल एक डब्बा तथा मोम, मञ्जिष्ठा, धूना और अनन्तमूल प्रत्येक एक छटांक ले कर यथाविधान इस तैलको प्रस्तुत करे। इसकी मालिश करनेसे वातरक्तरोग जाता रहता है।

पिण्डतैलक (सं॰ पु॰) पिंडवत् तैलं यस्य कप्। १ तुरुष्क। २ सिह्लक, शिलारस।

पिण्डत्व (सं॰ क्ली॰) पिंडस्य भावः। पिंडका भाव, पिण्डका धर्म।

पिण्डद (सं॰ पु॰) पिंडं ददातीति दा-क। १ पिंडदान-कर्त्ता, पिण्डदान करनेवाला।

"लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः।
पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्॥"
(शुद्धितत्त्व)

२ पिण्डदातामात्र, जो यथार्थमें पिण्डदानका अधिकारी हो।

पिण्डदातृ (सं॰ त्रि॰) पिंड-दा-तृच्। पिण्डदाता, पिण्ड देनेवाला।

पिण्डदादन खाँ—पञ्जाबके झेलम जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा॰ ३२° २६ से ३२° ४८ उ॰ और देशा॰ ७२° ३२ से ७३° २२ पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ८८७ वर्गमील है। इसमें २४४ ग्राम और एक शहर लगते हैं। कृषिजात द्रव्यके मध्य गेहूं, बाजरा, जौ, ज्वार, चना, रूई और शाकसब्जी प्रधान है। देशशासनके लिए एक कमिश्नर, तहसीलदार और मुन्सफ नियुक्त हैं। तहसीलके मध्य पिंडदादन खाँ नगर ही सर्वापेक्षा समृद्धिशाली, वाणिज्य-प्रधान और सदर है। यह अक्षा॰ ३२° ३५ उ॰ और देशा॰ ७३° ५´ २०˝ पू॰के मध्य, साल्टरेंज (लवण पर्वत)से ५ मील दूरमें अवस्थित है। १६२३ ई॰में दादन खाँने इस नगरको बसाया। उनके वंशधर आज भी इस नगरमें रहते हैं। लोकसंख्या १५०५५ है। म्युनिसिपालिटीकी आय तीस हजार रुपये से भी ज्यादा है। निकटवर्त्ती पर्वतसे प्रचुर परिमाणमें नमक मिलता है। इस नगरमें सुन्दर बरतन तैयार होते हैं जिनका पंजाबमें सब जगह आदर होता है। आमदनी द्रव्यके मध्य विलायती चीज, धातुओं लोहा, जस्ता, रेशम, पशमीना द्रव्य आदि प्रधान हैं। रफ्तनी द्रव्योंमें घी, शस्य और तैलादि ही प्रधान है। यहां बहुत अच्छी नाव तैयार की जाती है। मियानीमें रेल हो जानेके कारण इस स्थानके वाणिज्यकी विशेष अवनति हुई है। प्रधान प्रधान अट्टालिकाओंमेंसे सरकारी कचहरी, खृष्टधर्म-प्रचारगृह और चिकित्सालय ही उल्लेखयोग्य है।

पिण्डदान (सं॰ क्ली॰) पिंडस्य दानं। पिंडप्रदान, पितरोंके उद्देशसे पिंड देनेका काम जो श्राद्धमें किया जाता है।

पिण्डनिर्वपण (सं॰ क्ली॰) पिण्डस्य निर्वपणम्। पिण्डदानार्थ पार्वणविधि द्वारा कृत श्राद्ध, वह श्राद्ध जो पिण्डदानके लिये पार्वणकी विधिसे किया जाय।

"सहपिण्डक्रियायान्तु कृतायामस्य धर्मतः।
अनयैवावृता कार्यं पिण्डनिर्वपणं सुतैः॥" (मनु ३।२४८)
"पिण्डनिर्वपणं पार्वणविधिना श्राद्धं॥" (कुल्लूक)

पिण्डपद (सं० क्लो०) पिंडस्य संहतस्य पदम्। १ अङ्कविशेष, एक प्रकार का अङ्क।

"रूपाष्टकैर्विनिहतो भवनस्य बन्धः
कर्तुः स्वमृक्षमिह युगमशरैकनिघ्नम्।
एकीकृतं रसनिशाकरयुग्म भुक्त-
शेषं ततो भवति पिंडपदं गृहस्य॥" (ज्योतिस्तत्त्व)

२ पिण्डस्थान, पिण्डको जगह।

पिण्डपात (सं० पु०) १ पिंडदान। २ भिक्षादान।

पिण्डपात्र (सं० क्लो०) पिण्डस्यपात्रम्। १ पिण्डप्रदानपात्र, वह बरतन जिसमें पिंड दिया जाता है। कुशको बिछा कर उसके ऊपर पिंडदान करना होता है। २ भिक्षापात्र।

पिण्डपाद (सं० पु०) पिंड इव पादो यस्य। हस्ती, हाथी।

पिण्डपितृयज्ञ (सं० पु०) पिंडैः पितॄणां यज्ञः। साग्निक गृहस्थोंका कर्त्तव्य पितृउद्देशक पिंडदानात्मक यज्ञभेद। अमावस्याके अपराह्णमें साग्निकोंको इस यज्ञका अनुष्ठान करना चाहिए। इस यज्ञमें पितरोंके उद्देशसे पिंडदान करना होता है इसीलिए इसका नाम पिंडपितृयज्ञ पड़ा है।

"अपराह्णे पिंडपितृयज्ञश्चन्द्रादर्शनेऽमावास्यायां॥"
(कात्या० श्रौ० ४।१।१)

पिण्डपुष्प (सं० क्लो०) पिंड इव पुष्पं पुष्पगुच्छो यस्य। १ अशोकपुष्प, अशोकका फूल। २ जवापुष्प, अड़हुल, देवीफूल। ३ पद्मपुष्प, कमलका फूल। ४ तगरपुष्प, तगरका फूल। ५ दाड़िमवृक्ष, अनारका पेड़।

पिण्डपुष्पक (सं० पु०) पिंडपुष्पमिव प्रतिकृतिः (इवे प्रतिकृतौ। पा ५।३।९६) इति कन्। वास्तूक, बथुआ साग।

पिण्डफल (सं० क्लो०) कद्दू।

पिण्डफला (सं० स्त्री०) पिंड इव फलं यस्याः। कटुतुम्बी, कड़ुई तूंबी, कड़ुआ घीआ, तितलौकी।

पिण्डबीज (सं० पु०) कर्णिकाका वृक्ष, कनेरका पेड़।

पिण्डबीजक (सं० पु०) पिंडवत् बीजानि यस्य कप्। कर्णिकावृक्ष, कनेरका पेड़।

पिण्डभाज (सं० त्रि०) पिंडं भजते भज-ण्वि। पिंडभोजी, पिंड खानेवाला।

पिण्डभूति (सं० स्त्री०) जीवनधारणोपाय, जीविका।

पिण्डमय (सं० त्रि०) पिंडस्वरूपे मयट्। १ पिंडस्वरूप, पिंडके जैसा। २ गोल मटोल टुकड़ा।

पिण्डमात्रोपजीविन् (सं० त्रि०) पिंडमात्रेण उपजीवति उप-जीव-णिनि। पिंडमात्र-भोजी, जो केवल पिंड खा कर जीविका निर्वाह करता हो।

"हृताधिकारां मलिनां पिंडमात्रोप जीविनीम्।
परिभूतामधःशय्यां वासयेद्व्यभिचारिणीम्॥"
(याज्ञ० १।७०)

पिण्डमुस्ता (सं० स्त्री०) पिंडवत् स्थूला मुस्ता। नागरमुस्ता, नागर मोथा।

पिण्डमूल (सं० क्लो०) पिंडमिव मूलं यस्य। १ गाजर, गाजर। २ मूलकभेद, एक प्रकारका मूल, शलगम। पर्याय—गजान्न, पिंडक और पिंडमूलक। गुण—कटु, उष्ण, गुल्म और वातादि दोषनाशक।

पिण्डयज्ञ (सं० पु०) पिंडेन यज्ञः। पिंडदानरूप यज्ञ, श्राद्ध। श्राद्धमें पिंडदान करना होता है, इसलिए उसका नाम पिंडयज्ञ पड़ा।

पिण्डयोनि (सं० स्त्री०) योनिरोग भेद।

पिण्डरोग (सं० पु०) १ कुष्ठ, कोढ़। २ वह रोग जो शरीरमें घर किए हो।

पिण्डरोगी (सं० त्रि०) रुग्न शरीरका।

पिण्डरोहिणक (सं० पु०) विकङ्कतवृक्ष, कंटाई, बंज।

पिण्डल (सं० पु०) पिडि संहतौ बाहुलकात् कलच्। सेतु, पुल।

पिण्डलेप (सं० पु०) पिंडस्य लेपः करसंलग्नांशभेदः। १ करसंस्थपिंडांशभेद। २ तद्भागी वृद्धप्रपितामहादि तीन पुरुष, पिंडदानमें पिंडका एक विशेष भाग जो वृद्धपितामह आदि तीन पुरखोंको दिया जाता है।

पिण्डलोप (सं० पु०) पिंडस्य लोपः। पिंडका लोप, वंशलोप, निर्वंश। वंशलोप होनेसे हो पिंडका लोप होता है, इसी कारण पिंडलोप शब्दसे वंशलोप समझा जाता है।

पिण्डशर्करा (सं० स्त्री०) खटोशकरा।

पिण्डस (सं० पु०) पिण्डेन परदत्तग्रासेन सनोति जीवतीति सन-ड। भिक्षाशी, भिक्षोपजीवी, भिक्षा द्वारा जीविका निर्वाह करनेवाला।

पिण्डसम्बन्ध (सं० पु०) पिण्डेन देहेन देयपिण्डेन वा सम्बन्धः। १ देहके साथ जन्यजनकतारूप सम्बन्ध। २ देय पिंडके दातृत्वभोक्तृत्वका अन्यतर सम्बन्ध।

पिण्डसम्बधिन् (सं० त्रि०) पिंडसम्बन्धोऽस्यास्तीति इनि। पिण्डसम्बन्धयुक्त पिता और पितामहादि।

"पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।
पिंडसम्बन्धिनो ह्येते विज्ञेयाः पुरुषास्त्रयः॥"
(मार्कं०पु० ३१।३)

पिण्डसेव्य (सं० पु०) नागभेद, एक प्रकार का नाग।

पिण्डस्थ (सं० त्रि०) पिण्ड-स्था-क। संयुक्त, एकत्र मिश्रित, एक साथ मिला हुआ।

पिण्डहरिद्रा (सं० स्त्री०) ग्रन्थिहरिद्रा।

पिण्डा (सं० स्त्री०) पिण्ड-टाप्। १ पिण्डायस, इस-पात। २ कस्तूरीभेद, एक प्रकारकी कस्तूरी। ३ हरिद्रा, हल्दी। ४ वंशपत्री-तृण।

पिण्डाकार (सं० त्रि०) गोल बंधे हुए लौंदेके आकारका, गोल।

पिण्डाञ्जन (सं० क्ली०) अञ्जनविशेष, एक प्रकारका अञ्जन।

पिण्डात (सं० पु०) पिंड इव अतति सादृश्यमनुकरोति अत-अच्। सिह्लक, शिलारस।

पिण्डान्वाहार्यक (सं० क्ली०) श्राद्धभेद। साग्निक ब्राह्मणोंको अमावस्यामें पितृयज्ञ समाप्त कर पिण्डान्वाहार्यक नामक श्राद्ध करना चाहिए। पितृपिण्डयज्ञके बाद यह अनुष्ठित होता है इसीलिए इसका नाम पिण्डान्वाहार्यक पड़ा है।

पितृलोकके उद्देशसे मास मासमें जो श्राद्ध विहित है पण्डित लोग उसे ही अन्वाहार्य श्राद्ध कहते हैं। यह श्राद्ध आमिषादि द्वारा करना होता है।

पिंडान्वाहार्यकश्राद्ध अवश्य कर्त्तव्य है। इस श्राद्धके दैवकार्यमें दो और पितृकार्यमें तीन ब्राह्मण, अथवा दैवपक्षमें एक ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये। धनवान् होने पर भी इससे अधिक ब्राह्मणोंको भोजन नहीं कराना चाहिये। क्योंकि अनेक ब्राह्मण होनेसे उनकी सेवा, देशकाल शुद्धाशुद्ध और पात्रापात्रविचार इन पांचोंके सम्बन्धमें कोई नियम नहीं रहता। विशेष विवरण श्राद्ध शब्दमें देखो।

पिण्डापा (सं० स्त्री०) नाड़ीहिङ्गु।

पिण्डाभा (सं० स्त्री०) शर्कराभेद, एक प्रकारका गुड़।

पिण्डाभ्र (सं० क्ली०) पिंडवत् अभ्रं मेघजलसम्बधि द्रव्यम्। घनोपल, ओला।

पिण्डामृता (सं० स्त्री०) कन्दगुडूची।

पिण्डाम्ल (सं० क्ली०) चाङ्गेरी, लकुच, अम्लवेतस, जम्बीर, कपूर, नारङ्गफल और षाड़व इन सब द्रव्योंके बराबर बराबर भागको मिलानेसे पिंडाम्ल बनता है।

पिण्डायस (सं० क्ली०) पिंडं संहतमायसम्। तीक्ष्ण-लौह, इसपात।

पिण्डार (सं० क्ली०) पिंडं संहतमृच्छतीति ऋ-अण्। (कर्मण्यण्, ३।२।१) १ फलशाकविशेष, एक प्रकारका फलशाक, पिंडारा। इसका गुण—शीतल, बलकर, पित्तनाशक और रुचिकारक तथा पाकमें लघु एवं विषनाशक होता है। २ क्षपणक। ३ गोप, गाय, भैंसका चरवाहा। ४ द्रुमभेद। ५ विकङ्कत वृक्ष। ६ एक सर्पका नाम। ७ कृष्णमदनवृक्ष। ८ तीर्थ-विशेष, एक तीर्थका नाम। पिण्डारक देखो।

पिण्डारक (सं० पु०) १ नागभेद, एक नागका नाम। २ वृष्णिभेद। ३ वसुदेव और रोहिणीके एक पुत्रका नाम। ४ पुण्यतोया नदभेद, एक पवित्र नदका नाम। ५ महाभारतवर्णित एक प्राचीन तीर्थ। यह गुजरातकी प्रान्तसीमा पर समुद्रकूलसे एक कोस दूरमें बसा हुआ है और अभी भी पिंडारक नामसे प्रसिद्ध है। स्कन्दपुराणके प्रभासखंड, लिङ्गपुराण और जैनियोंके बृहत्हरिवंशमें इस तीर्थका माहात्म्य वर्णित है। यह अक्षा० २२° १८' उ० और देशा० ६९° २४' गुज-रात उपद्वीपके मध्य ठीक उत्तर-पश्चिम प्रान्तमें अव-स्थित है। इस तीर्थमें एक प्रस्रवण है। प्रवाद है कि पांडवगण वनवासके समय इसी तीर्थमें स्नान कर गो-हत्याजनित पापसे मुक्त हुए थे।

पिण्डारा—कर्णाटकवासी तृणविक्रयी जातिविशेष। घास काट कर बेचना ही इनका कार्य और एकमात्र उप-जीविका है। ये लोग पहले हिन्दू थे, पीछे मुसलमान हो गये हैं। ये अपनेको सुन्नी शाखाके हनिफी सम्प्रदायभुक्त बतलाते हैं। १८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें इन्होंने इस

बांध कर भारतवर्षके प्रायः सभी स्थानों पर आक्रमण किया और लूट पाट तथा घरमें आग लगा कर लोगोंको तबाह कर डाला था। विशेष विवरण पिण्डारी शब्दमें देखो। ये लोग स्त्रीपुरुष दोनों ही लम्बे, सुदृढ़ और काले होते हैं। वेशभूषा उतना खराब नहीं है। दोनों कर्मठ और परिश्रमशील होते हैं। अतिरिक्त शराब पीना और अपरिष्कार रहना इनका स्वाभाविक गुण है।

अपनी जातिमें ही विवाह शादी चलती है। विवाह और श्राद्धमें ही ये लोग काजीको बुलाते हैं, दूसरे कामोंमें नहीं। मुसलमानोंसे इनमें यह भेद है, कि ये गो मांस नहीं खाते और देवताओंकी पूजा तथा व्रत, उपवास आदि करते हैं। नाना जातिके मिश्रणसे इस सङ्कर जातिकी उत्पत्ति हुई है।

पिण्डारी – कर्णाटकवासी निम्नश्रेणीकी जातिविशेष। नाना जातियोंसे यह सङ्कीर्ण जाति उत्पन्न हुई है। पिंडारियोंमेंसे बहुतोंका कहना है, कि अतिशय मद्यपायी होनेके कारण इनका यह नाम पड़ा है।

एक समय समस्त मध्य भारत इस दुर्दान्त दस्यु-जातिके उत्पातसे व्यतिव्यस्त हो गया था।

पिंडारीके अत्याचार, देशलुंठन और दस्युवृत्तिको भारतवासी आज भी भूले नहीं हैं।

१६८९ ई०को औरङ्गजेबके शासनकालके इतिहासमें सबसे पहले 'पुनप्पा पिंडारी'का नाम आया है। इस पिंडारीसरदारने जुलफिकर आदि औरङ्गजेबके सेनापतियोंसे घमसान युद्ध किया था। फिरिस्ताने लिखा है, कि इस दस्यु-सरदारने शाहजीके राज्यकालमें कर्णाटकको लूट कर वेलूर पर अधिकार किया था। इसी समयसे सामान्य दस्युवृत्ति द्वारा ये लोग धीरे धीरे मरहठोंकी सेनामें भर्त्ती हो कर विषम अत्याचारी और निदारुण प्रजापीड़क हो उठे। जिस समय मुगल लोग दाक्षिणात्यमें आधिपत्य फैला रहे थे, उस समय पिंडारी मरहठोंसे मिल गये थे। पानीपतकी लड़ाईमें चिङ्गली और हुल नामक दो पिंडारीसरदार पन्द्रह हजार सवारोंके साथ उपस्थित थे।

पुनप्पाके समयसे ही यह दस्युसम्प्रदाय कई एक दलोंमें विभक्त हो कर चारों ओर घोर लूट पाट करने लगा था। पानीपतकी लड़ाईके बादसे इन्होंने मालवके निकट आ कर उपनिवेश बसाया।

१८वीं शताब्दीके शेष भागमें हीरू और बारण नामक दो सरदारोंके अत्याचारकी कथा सुनी जाती है। दोनोंके पुत्रोंने भी पैतृक व्यवसायमें खूब नाम कमा लिया था। परन्तु किसी सम्भ्रान्त जातिके जैसा वंशपरम्परासे कोई सरदार नहीं हो सकता था। इनमेंसे जो विशेष चतुर, बुद्धिमान, बलशाली और दस्युतामें सिद्धहस्त होता, वही प्रायः सरदार होता था।

पहले ये लोग कर्णाटक और महाराष्ट्रमें खेती बारी करते थे, पीछे अवसर पा कर लूट मार करने लगे और मुसलमान हो गये। कोई सम्भ्रान्त मरहठा इस निम्न श्रेणीका साथ नहीं देता था। मरहठा जातिके अभ्युदयके समय ये लोग किसी महाराष्ट्र सरदारकी सेवामें रहते थे और बिना वेतनके ही काम काज किया करते थे। दोनोंमें यह बात पक्की हो गई थी, कि इन्हें सरदारको नजर और लूटके मालका आधा हिस्सा देना होगा। मरहठोंसे आश्रय पा कर ये लोग धीरे धीरे दुर्वृत्त और भीतिजनक हो उठे। पिंडारियोंके मध्य कमसे कम चार सौ अश्वारोही रहते थे। प्रत्येक अश्वारोहीके हाथमें बांसका बना हुआ ८से १२ हाथ लम्बा एक तेज बरछा और पन्द्रह आदमीके भीतर एकके हाथमें बन्दूक रहती थी। अलावा इसके और सभी पिंडारी प्रायः अशिक्षित और टट्टू पर जाते थे। इन लोगोंका काम था लूटका माल ढोना, चिल्ला चिल्ला कर लोगोंको डराना, घरमें आग लगाना और चारों ओर रह कर संवाद देना। ऐसे अशिक्षित मनुष्य साथ ले कर भी ये इतनी तेजीसे चलते थे, कि उसे सोचनेसे विस्मित होना पड़ता है। किसी किसी अंगरेज सेनाध्यक्षने इन दस्यु लोगोंका पीछा करके देखा है, कि सभी दुर्गम प्रदेशोंमें जहां कोई अश्वारोही नहीं जा सकता, वैसे पहाड़ी प्रदेशोंमें भी ये लोग घोड़े पर चढ़ कर एक दिनमें २० कोस तक चले गये हैं। इस क्षिप्रगामिताके कारण कोई भी इन्हें सहजमें नहीं पकड़ सकता था। इसी कारण मालूम होता है, कि तुकाजीराव होलकर और माधोजी सिन्धियाने इन्हें अपने यहां सेनामें भर्ती किया था। दोनों दलको

पिंडारी सेना यथाक्रम 'होलकरशाही' और 'सिन्दिया-शाही' नामसे प्रसिद्ध हो गई थी।

सिन्दियाशाही पिंडारियोंके मध्य चीतू और करीम खाँ नामक दो विख्यात सरदार थे। चीतूका जाटकुलमें जन्म हुआ था। दुर्भिक्षके समय एक पिंडारी-दलपतिने इसे खरीदा था और उसीसे चीतूने अपने भावी जीवनकी वृत्ति सीखी थी। कालक्रमसे वह भी एक दलपति हो गया। दौलतराव सिन्दियाने प्रसन्न हो कर उसे एक जागीर और 'नवाब'की उपाधि दी थी। इसके साथ साथ उसका भाग्य चमक उठा और कई एक स्थानों पर अधिकार करके इसने अच्छी रकम इकट्ठी कर ली। अब इसके अभ्युदयसे सिन्दिया तक भी कांप उठा। दौलतरावने उच्च सम्मान देनेका लोभ दिखा कर अपने शिविरमें उसे बुलाया और कैद कर लिया। चितूने सिन्दियाको सात लाख रुपये देकर ४ वर्षके बाद मुक्ति पाई थी। मुक्तिलाभ करते ही उसके हृदयमें प्रतिहिंसानल धधक उठा। उसने बातकी बातमें १२००० अश्वारोही संग्रह कर लिये और सिन्दियाके अधिकृत प्रदेशों पर दारुण अत्याचार आरम्भ कर दिया। अन्तमें सिन्दियाने भूपालके पश्चिम प्रान्तवर्ती प्रदेशमें और भी पांच जागीर दे कर उससे पिंड छुड़ाया। नर्मदाके किनारे निमारमें चीतूका किला था, किन्तु निकटवर्ती शतवास (शतवर्ष) नामक स्थानमें ही वह हमेशा रहा करता था। किसी किसी अंग्रेज ऐतिहासिकने लिखा है, कि यदि इस चीतूके साथ उपयुक्त राजनीति और समरनीतिकुशल मनुष्य रहता, तो सारे भारतवर्ष पर अशान्ति फैल जाती, इसमें सन्देह नहीं। अन्तमें चीतूके ऊपर ब्रटिश-गवर्मेण्टकी दृष्टि पड़ी। अंगरेजीसेनाने जा कर उस पर आक्रमण कर दिया। चीतू प्राणके भयसे अपने बाल बच्चोंके साथ जंगल भागा जहां वह जंगली बाघका शिकार बन गया।

पिंडारियोंके दूसरे प्रधान सरदारका नाम था करीम खाँ। यह रोहिला जातिका था। जिस समय निजामने दौलतराव सिन्दियासे युद्धमें हार खा कर कुर्दलामें उनसे सन्धि कर ली, उस समय करीम खाँने सिन्दियाके दलमें रह कर प्रभूत धनसञ्चय द्वारा भावी सौभाग्यका उपाय कर रहा था। भूपाल राजवंशकी एक कुमारीके साथ उसका विवाह हुआ। अब यह क्रमशः अनेक अश्वारोही, पदाति और कुछ कमान संग्रह कर अत्यन्त प्रबल हो उठा। दौलतराव तक भी इसके डरसे कांपने लग गये थे। यहां तक, कि उन्होंने आखिर करीमको उच्चसम्मान देनेका लोभ दिखा कर कैद कर लिया। उस समय करीमकी माता सुजादलपुरमें थी। पुत्रका यह दारुण संवाद पाते ही वह अपनी विपुल धनसम्पत्तिके साथ कोटाके जालिमसिंहकी शरणमें पहुंची। आखिर करीमने छः लाख रुपये दे कर सिन्दियाके कारागारसे छुटकारा पाया।

अपने दलमें शामिल होते ही करीमने अपनी मूर्त्ति धारण कर ली। चीतूने भी उसका साथ दिया। इस बार दोनोंने मिल कर सिन्दियाका यथोचित अनिष्ट करनेमें एक भी कसर उठा न रखी। विजयादशमीके दिन उन्होंने प्रायः ६०००० सेना इकट्ठी कर ली। इस प्रकार प्रभूत अर्थ और बल सञ्चय करके करीम खाँने राघोजी भोंसलाके राज्य पर अधिकार करनेकी इच्छा की थी। राघोजीने चीतूको कुछ जागीर भेंट दी जिसे उसने स्वयं अपना लिया, करीमको उसका कुछ भी अंश नहीं दिया। इस पर दोनों सरदारमें मनमुटाव हो गई। आखिर दोनोंका जो अधःपतन हुआ, उसका कारण भी यही था।

जब दोनों दलमें विवाद चल रहा था, तब सिन्दियाके सेनापति जवापूने करीम पर हमला कर दिया। चीतू भी इस समय छिपके सिन्दियाकी सहायता पहुंचा रहे थे। करीम परास्त हो कर पहले कोटा भागा। जब वहां भी सुविधा नहीं देखी, तब अमीर खाँकी शरण ली। किन्तु अमीर खाँने कौशलसे उसे कैद कर होलकरके हाथ सुपुर्द कर दिया। इस समय करीमके दलका बहुत कुछ दलभङ्ग हो गया। तीन वर्ष बाद मुक्ति पा कर करीम अपने अवशिष्ट दलको ले कर होल-सरदारके पुत्र दोस्त महम्मद और वासिलमहम्मदसे जा मिला। इस समय चीतूके दलमें १५०००, करीम खाँ दलमें ४००० और दोस्त तथा वासिल महम्मदके दलमें ७००० सेना थी। अलावा इसके छोटे छोटे सरदारोंका

मिला ले कर पिंडारी दस्यु लोगोंकी संख्या प्रायः ३४००० हो गई थी।

१८०८ और १८१२ ई०में पिंडारियोंने वृटिश-राज्यमें घुस कर दस्युवृत्ति और लुण्ठन द्वारा सैकड़ों ग्राम जला डाले। इनका बदला लेनेके लिये वृटिश-गवर्मेण्ट भी बिलकुल तैयार हो गई। १८१२ ई०में दोस्त और वासिल महम्मदके दलको ध्वंस करनेके लिये बड़े लाट हेष्टिंसने रेवा और बुन्देलखण्डमें सेना भेजी। पीछे करीम खाँको पकड़नेके लिये कर्णल मालकोम भेजे गये। उनके उद्योगसे मध्यभारतमें जो पिंडारीका भारी अत्याचार होता था, सो दूर हुआ। करीम खाँने निरुपाय हो कर्णल मालकोमके निकट आत्मसमर्पण किया। किन्तु इतना होने पर भी दूसरे दूसरे स्थानोंमें पिंडारी-अत्याचार पूर्ववत् चल ही रहा था। १८१५ ई०में प्रायः ८००० पिंडारी नर्मदा पार कर मंजर फ्रेजर पर टूट पड़े और पीछे कृष्णाके किनारे पहुंचे। यहां नदी पार करनेको सुविधा न थी, इस कारण वे सबके सब टिड्डी दलकी तरह बड़े बड़े नगरों और ग्रामोंमें घुस कर लूट पाट करने लगे। इस समय गोदावरी और वरदा किनारेके प्रायः सभी जनपद इन दुर्वृत्तोंके चङ्गुलमें आ फंसे थे। इस बार किसीने भी उनकी गति रोकनेका दुस्साहस नहीं किया। फलतः वे प्रचुर धनरत्न ले कर बे-रोकटोक घर लौटे। इस बार वे और भी उत्साहित हो गये और प्रायः दश हजार पिंडारी अश्वारोही मसलीपत्तनकी सीमा पर जा धमके। ११वीं माच को एक दिनमें ३२ मील चल कर उन्होंने ९२ ग्रामोंको उजाड़ डाला और निरस्त्र अधिवासियोंका यथासर्वस्व छिननेके लिये ऐसा भीषण अत्याचार किया था, कि उसका वर्णन करनेमें लेखनी रुक जाती है। इस समय सैकड़ों ग्राम विध्वस्त, दग्ध और यथासर्वस्वहीन हो गये थे। कहते हैं, कि १२ दिनके भीतर दस्युलोगोंके हाथसे १८२ मनुष्य बड़ी बुरी तरह मारे गये, ५०५ घायल हुए और ३६०३ मनुष्य उनके घोर अत्याचारसे तंग तंग आ गये थे। राहमें अंगरेजी सेनाने उन्हें रोका तो सही, पर कुछ कर न सकी। लूटके मालके साथ वे बड़ी धूमधामसे घर लौटे।

अभी वृटिश-गवर्मेण्टने उन्हें समूल नष्ट करनेके लिये देश देशमें सेना भेजी, केवल इतना ही नहीं, दुरारोह पर्वत प्रदेशमें, निविड़ अरण्यप्रदेशमें, जहां जहां पिंडरियोंका सन्धान मिलता था, वहां वहां कड़ा पहरा बैठा दिया। उस समय मार्किस आव हेष्टिंस बड़े लाट थे। उनका यह कार्य देशहितकर होने पर भी विलायतसे शासनसभाके सभापति कैनिङ्गने उनके प्रति विरक्त हो कर कहला भेजा, "पिंडारियोंकी निर्मूल करनेके अनिश्चित अभिप्रायसे भूल कर भी संग्राम नहीं करना। ऐसे कार्यमें अपर देशीय राजाओंके सन्देहका कारण हो सकता है और उससे हम लोगके विपक्ष शत्रुका दल उठ सकता है।" बड़े लाटने भी जो उसका यथोचित उत्तर दिया था, वह यों है, "इन दस्यु लोगोंका जब तक दमन नहीं किया जायगा, तब तक न तो प्रजा सुखसे रहेगी और न वृटिशराज्यकी प्रभुताकी जड़ ही मजबूत हो सकती है। आशा है, कि पिंडारियोंको समूल नष्ट करनेके लिये अस्त्रधारण करनेकी अनुमति देंगे। बड़े लाट अलमायराने भी पिंडारियोंको दमन करनेका नया कानून चलाया था। उस समय पिंडारी-सरदारोंमेंसे बहुतोंने महाराष्ट्र सामन्तोंकी शरण ली थी और बहुतेरे वृटिशके हाथसे यमराजके मेहमान बने थे। वृटिश-गवर्मेण्टके हाथसे महाराष्ट्र जातिके अधःपतनके साथ यह पिंडारी दस्युदल क्रमशः विलुप्त हो गया।

पिण्डालु (सं० पु०) पिंडवत् स्थूल आलुः। १ कन्दगुड़ची, एक प्रकारका शफतालू या रतालू। २ कन्दभेद, एक प्रकारका कन्द या सकरकन्द जिसके ऊपर कड़े कड़े सूतसे होते हैं। यह खानेमें मीठा होता है और उबाल कर खाया जाता है, सुथनी पिंडिया। संस्कृत पर्याय—ग्रन्थिला, पिंडकन्द, ग्रन्थि, रोमश, रोमकन्द, रोमालु, ताम्बूलपत्र, नानाकन्द और पिंडक। गुण—मधुर शीतल, मूत्रकृच्छ्र, दाह, शोष और प्रमेहनाशक, बलकर सन्तर्पण तथा गुरु। इसे महाराष्ट्र देशमें पेंडालु, कलिंगमें जिलिहेंडल और उत्कलमें धरा-आलू कहते हैं। इसे कोई पिंडाल भी कहा करते हैं।

पिण्डालुक (सं० क्ली०) पिंडालुरिव प्रतिकृतिः इवार्थे

कन्। आलू विशेष, एक प्रकारका आलू। इसका गुण—कफनाशक, गुरु और वातप्रकोपण है।

पिण्डावकरण—तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम। यहां धन्यादेवी प्रतिष्ठित हैं।

पिण्डाश (सं० पु०) भिक्षुक, भिखारी।

पिण्डाशिन (सं० पु०) १ पिंडभोजी, पिंड खानेवाला। २ भिक्षुक, भिखारी।

पिण्डासव (सं० पु०) ग्रहणी रोगमें प्रयुज्य आसवविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—चरक चिकित्सा स्थानमें १८वें अध्यायमें लिखा है, कि पिप्पलीकल्क, गुड़ और मधु इन सबोंका दो दो भाग ले कर चार भाग पानीके साथ एक बरतनमें इक्कीस दिन अथवा एक महीना तक जौके मध्य रखना चाहिए।

पिण्डाह्व (सं० क्लो०) तगरपादुक।

पिण्डाह्वा (सं० स्त्री०) पिंडां कस्तूरीविशेषमाह्वयते स्पर्द्धते स्वगन्धेनेति ह्वे-क। नाड़ीहिङ्गु।

पिण्डि (सं० स्त्री०) पिण्ड्-संहतौ इन्। पिंडिका पांवका ठेला।

पिण्डिका (सं० स्त्री०) पिंडान्ते संहतानि भवन्ति, पिंडान्ते राशी-क्रियन्ते वा अराणि यस्यां, पिंड-वञ्, गौरादित्वात् ङीष्, ततः कन्, ह्रस्व। १ रथनाभि, पहियेके बीचका वह गोल भाग जिसमें धुरी पहनाई जाती है। २ पिंड, गोल मटोल टुकड़ा, पिंडी। ३ पिचिंडिका। ४ खेताम्बिका, इमली। ५ पीठ, वेदी, वह पिंडी जिस पर देवमूर्त्ति स्थापित की जाती है। इसे यत्नपूर्वक बनाना चाहिये।

अग्निपुराणमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—पिंडिका प्रतिमाके बराबर लम्बी, प्रतिमाके आधेके बराबर ऊंची और चौसठ पदयुक्त होनी चाहिए। इसको पश्चास्थित दो पंक्ति छोड़ कर उसके ऊर्ध्वमें उभय पार्श्वके मध्यस्थित सभी कोष्ठ और ऊपरकी दो पंक्ति छोड़ कर अधोदेशमें जो सब कोष्ठ हैं, उनके मध्य उभय पार्श्वस्थित कोष्ठका मध्यदेश समभागमें मार्जित करना चाहिए। अनन्तर उस उभय कोष्ठके मध्यगत चतुष्कद्वयको मार्जित कर ऊर्ध्व दो पंक्तियोंको चार भागमें विभक्त करे। एक भागमात्र मेखला और उसके बाद परिमाणमें खात तथा दोनों पार्श्वमें बराबर बराबर करके एक एक भाग छोड़ देना होता है। इस प्रकारकी पिंडिका नाना प्रकारकी होती है।

देवताकी पिंडिका किस प्रणालीसे बनानी चाहिए उसका विषय कहा जाता है।

पिण्डिका लम्बाईमें प्रतिमाके समान और चौड़ाईमें उसकी आधी या तीन भागका एक भाग होगी। इस पिंडिकाके तीन भागका एक भाग मेखला-निर्माण और उत्तर भाग कुछ ऊंचा कर उसीके बराबर गड्ढा बनाना चाहिए। लम्बाईके चतुर्थ भागमें प्रणालीका निर्गमस्थान और तृतीयांशमें जलनिर्गम मार्ग प्रस्तुत करना होगा। पिंडिका प्रतिमाकी आधी वा बराबर भी बनाई जा सकती है।

हरिकी पिंडिका जिस प्रकार बनानेसे सुशोभन हो, उसी प्रकार विधेय है। सभी देवोंकी पिंडिका विष्णुपिंडिकाकी जैसी और देवियोंकी लक्ष्मीपिंडिकाकी जैसी होगी। (अग्निपु० ५५ अ०)

किस भागमें प्रतिमा तथा कौन कौन पिंडिका स्थापित करनी चाहिए, उसका विवरण अग्निपुराणके ६०वें अध्यायमें, मत्स्यपुराणमें तथा हयग्रीव पञ्चरात्रमें लिखा है। ६ लिङ्गपीठ। ७ गोरोचक। ८ छोटा ढेला या लोंदा, लुगदी।

पिण्डित (सं० त्रि०) पिंडि-क्त। १ गणित। २ घन, पिंडके रूपमें बंधा हुआ, दबा कर घनीभूत किया हुआ। ३ संहत पिंडीके रूपमें लपेटा हुआ। ४ गुणित, गुणा किया हुआ। (पु०) ५ तुरुष्क, शिलारस। ६ कांस्यधातु, कांसा।

पिण्डितमूल्य (सं० क्लो०) ज्यादा दाम।

पिण्डिततैल (सं० क्लो०) शिलारस।

पिण्डिन् (सं० त्रि०) पिंडोऽस्यास्तीति इनि। शरीरी।

"यथा सूर्यं विना भूमिर्गृहं दीपविवर्जितम्।
पिण्डहीनो यथा पिण्डी जय श्रीस्त्वां विना तथा॥"

पिण्डिनी (सं० स्त्री०) गिरिकर्णिक, अपराजितालता।

पिण्डिराज—सह्याद्रिखंडवर्णित राजभेद, कामुंकराजके पुत्रका नाम।

पिण्डिरिका (सं० स्त्री०) १ मञ्जिष्ठा, मजीठ। २ तण्डु-लीयक, चौलाईका साग।

पिण्डिल (सं० पु०) पिण्डवदाकृतिरस्त्यस्येति पिण्ड-इलच्। १ सेतु। २ गणक।

पिण्डिला (सं० स्त्री०) पिण्डिल-टाप्। कर्कटीभेद, ककड़ी।

पिण्डी (सं० स्त्री०) पिण्डाकारोऽस्त्यस्या इति अच्, ततो ङीष्। १ पिंडीतगर, एक प्रकारका तगर फूल, हजारा तगर। २ अलावु, कद्दू, लौकी, घीया। ३ खजूर-विशेष, एक प्रकारको खजूर। ४ स्नान-निष्पणार्थ-कोपन्यास। ५ पिंडिका, चक्रनेमि। ६ पिंड, ठोस या गोली वस्तुका छोटा गोल मटोल टुकड़ा, छोटा ढेला या लोंदा, लुगदी। ७ कस कर लपेटे हुए सूत, रस्सी आदिका गोल लच्छा। ८ वह वेदी जिस पर वलिदान किया जाता है।

पिण्डीकरण (सं० क्ली०) अपिंडः पिंडः सम्पद्यमानः, पिंड अभूततद्भावे च्वि। पहले जो पिंड नहीं था, उसे पिंड करना।

पिण्डीजङ्घ (सं० पु०) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम। तस्य गोत्रापत्य इञ्। पैंडिजङ्घि, पिंडीजङ्घकी सन्तान।

पिण्डीतक (सं० पु०) पिंडीस्वल्पपिंडं तनोतीति तन-ड, संज्ञाया कन्। १ मदनवृक्ष, मैनफल। २ कृष्ण-मदन। ३ पिंडीतगर, तगरपादुका, हजारा तगर।

पिण्डीतगर (सं० पु०) पिंड्या पुष्पावच्छेदेन स्वल्पपिण्डेन उपलक्षितस्तगरः। तगरविशेष, हजारा तगर।

पिण्डीतगरक (सं० पु०) पिंडीतगर-स्वार्थे संज्ञायां वा कन्। तगर, हजारा तगर।

पिण्डीतरु (सं० पु०) पिंड्या उपलक्षितस्तरु। महापिण्डी-वृक्ष।

पिण्डीपुष्प (सं० पु०) पिंडीवत् पुष्पं पुष्पस्तवको यस्य। अशोकवृक्ष।

पिण्डीर (सं० पु०) पिंडीवत् पिंडाकाराणि फलानि ईरयतीति ईर-णिच्-अण्। १ दाड़िम्बवृक्ष, अनार। २ समुद्रफेन। (त्रि०) ३ नीरस।

पिण्डीशूर (सं० पु०) पिंड्यां पिंडव्यापारे भोजने एव शूरः अतिनिपुणः नान्यत्र कार्यादाविति भावः। १ खण्टह-में अवस्थान कर परद्वेषी, घर हीमें बैठे बैठे बहादुरी दिखलानेवाला, बाहर आ कर कुछ न कर सकनेवाला। पर्याय—गेहेनर्दी, गेहेशूर।

२ केवल भोजन विषयमें शूर, खानेमें बहादुर, पेटू।

पिण्डोद्भवा (सं० स्त्री०) सुरा, मदिरा।

पिण्डोपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद।

पिण्डोलि (सं० स्त्री०) १ भुक्तसमुज्झित, थाली या पत्तल परका अन्न जो खानेसे बचा हो, जूठन। (पु०) २ उष्ट्र, ऊंट।

पिण्या (सं० स्त्री०) पण्यते स्तूयते रोगहन्तृत्वेन पण-य निपातनादत इत्। ज्योतिष्मतीलता, मालकंगनी।

पिण्याक (सं० पु० क्ली०) पिनष्टीति पिष संचूर्णने, (पिणाकादयश्च। उण् ४।१५) इति आक-प्रत्ययेन निपात-नात् साधुः। १ तिलकल्क, तिल या सरसोंकी खली। २ तैलकिट्ट। इसका गुण—ग्लानिकर, रूक्ष, विष्टम्भी और दृष्टिविघातक है। शास्त्रमें पिण्याक खाना निषिद्ध है; खानेसे प्रायश्चित्त करना होता है। ३ हिङ्गु, हींग। ४ वाह्लीक, केसर। ५ सिह्लक, शिलारस। ६ शिलाजीत।

पितपापड़ा (हिं० पु०) एक क्षुप या झाड़ जिसका उपयोग औषधके रूपमें होता है। इसे दवनपापड़ा भी कहते हैं। संस्कृत पर्याय—रक्तपुष्पक, पित्तारि, शीत-वल्लभ, कटुपत्र, नक्र, प्रगन्ध, सुतिक्त, पर्पट, वरतिक्त, पांशुपर्याय, कवचनामक, त्रियष्टि, तिक्त, चरक, वरक, अरक, शीत, तृष्णारि, रेणु, शीतप्रिय, पांशु, कल्पाङ्ग, वर्मकण्टक और कृष्णशाख।

यह दो प्रकारका होता है—एकमें लाल फूल लगते हैं और दूसरेमें नीले। लाल फूलवाला अधिक गुणदायक माना जाता है। वैद्यकमें इसको शीतल, कड़ुवा, मल-रोधक, वातको कुपितकारक, हलका तथा भ्रम, मद, प्रमेह, तृषा, पित्त, कफ, ज्वर, रक्तविकार, अरुचि, दाह, ग्लानि और रक्तपित्तको नष्ट करनेवाला माना है।

पितर (हिं० पु०) मृत पूर्वपुरुष, मरे हुए पुरखे जिनके नाम पर श्राद्ध या जलदान किया जाता है।

विशेष पितृ शब्दमें देखो।

पितरपति (हिं० पु०) यमराज।

पितराइंध (हिं० स्त्री०) पीतलका कसाव, किसी खाद्य

वस्तुकी स्वाद और गन्धमें वह विकार जो पीतलके बरतनमें अधिक समय तक रखे रहनेसे उत्पन्न हो जाय।

पितराई (हिं० स्त्री०) पीतलका स्वाद, पीतलका कसाव, पितराइंध। जैसे, दहीमें पितराई उतर आई है।

पितरिशूर (सं० पु०) पितरि शूरः, पात्रे समितादित्वाद-लुक्समासः। पितृविषयमें शूर, पिताके निकट वीर, वह जो पिताके सामने खूब उछले कूदे, परन्तु वैसा काम न करे।

पतरिहा (हिं०वि०) १ पीतलका बना हुआ, पीतलका। (पु०) २ पीतलका घड़ा।

पितससुर (हिं० पु०) पितिया ससुर देखो।

पिता (हिं० पु०) जन्म दे कर पालन पोषण करनेवाला, बाप, जनक। विशेष विवरण पितृ शब्दमें देखो।

पितापुत्र (सं० पु०) पिता पुत्रश्च द्वन्द्वे पूर्वपदे आनङ्। १ पिता और पुत्र, बाप और बेटा। महाभारतमें शान्ति पर्वके मोक्षधर्मपर्वाध्यायमें पितापुत्रका एक इतिहास लिखा है। (त्रि०) २ पिता तथा पुत्रसे आगत।

पितामह (सं० पु०) पितुः पितेति (पितृव्यमातुलमातामह-पितामहाः। पा ४।२।३६) इत्यत्र 'मातृपितृभ्यां पितरि डामहच्' इति वार्त्तिकोक्त्या डामहच्। १ ब्रह्मा, विधाता। मरीचि आदि पितृगणके पिता ब्रह्मा हैं। २ पिताका पिता, दादा। ३ शिव, महादेव। ४ धर्मशास्त्रकार ऋषिभेद, एक ऋषि जिन्होंने एक धर्मशास्त्र बनाया था। यह धर्मशास्त्र मदनपारिजात, रघुनन्दन, कमलाकर आदिके ग्रन्थमें उद्धृत हुआ है। ५ ज्योतिःशास्त्रकार। इनका ज्योतिष हेमाद्रिप्रभृतिके ग्रन्थमें उद्धृत हुआ है। ६ भीष्म। ७ मुञ्जतृण, मूंज घास।

पितामही (सं० स्त्री०) पितामह-ङीष्। पितामहपत्नी, पितामहकी स्त्री, दादी।

"मातामही मातुलानी तथा मातुश्च सोदराः।
श्वश्रूः पितामही ज्येष्ठा धात्री च गुरवः स्त्रीषु॥"

(कौर्म उ० ११ अ०)

पौत्र यदि पितामहका धन आपसमें बांटे, तो पितामहीको मातृतुल्य भाग देना होगा।

"असुताश्चपितुः पत्न्यः समानांशाः प्रकीर्त्तिताः।
पितामह्यश्च सर्वास्ता मातृतुल्याः प्रकीर्त्तिताः॥"

(दायभागधृत व्यासवचन)

पितारी—१ अयोध्याप्रदेशके उनाव जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह उनावसे दो कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। उनाव नगरके स्थापयिता उनवन्तसिंहके समयसे ही यह प्राचीन ग्राम प्रसिद्ध है। २ उक्त नगरमें सम-श्रेणी ब्राह्मणका एक गांव।

पितिया (हिं० पु०) पिताका भाई, चाचा, चचा।

पितियानी (हिं० स्त्री०) चाचाकी स्त्री, चाची, चची।

पितियाससुर (हिं० पु०) स्त्री या पतिका चाचा, ससुरका भाई, चचिया ससुर।

पितियासास (हिं० स्त्री०) स्त्री या पतिकी चाची, ससुरके भाईकी स्त्री, चचिया सास।

पितिहारा—सागर जिलेका एक छोटा राज्य। भूपरिमाण १२० वर्गमील है। यहांकी आय लगभग २४७२०) रुपयेकी है। इसमें ८६ ग्राम लगते हैं। पहले यह देवलीके अन्तर्गत था। प्रायः १७३० ई०में गोंडझा-मारके गोंड़राजने देवली पर अधिकार जमाया। बाद मरहठोंने उन्हें मार भगाया। इस पर उनके पुत्र राज्यके चारों ओर लूट पाट मचाने लगे। उन्हें शान्त करनेके लिये मरहठा-सरदारने उनको पितिहारा, सुआरे, केशली और तरारा आदि नामक आठ गांवकी सम्पत्ति दी। १७४७ ई०में गोड़पतिकी मृत्यु हुई। बाद उनके पौत्र किरात सिंहने महाराष्ट्रोंसे १७५८ ई०में बल्लाई आदि ५३ गांव प्राप्त किए।

१८१८ ई०में वृटिश-सरकारके सागर जिले पर दखल करने पर भी उन्होंने गोंडराजकी सम्पत्तिमें हाथ नें डाला। किन्तु उनके मरने पर बल्लाईके अन्तर्गत ३० गांव वृटिश-सरकारने अपने कब्जेमें कर लिये तथा बची खुची सम्पत्ति गोंडराजके पुत्र बलवन्तसिंहके पास रही। नर्मदाके किनारे पितिहारा ग्राममें राजप्रासाद है। इस गांवमें प्रायः हजार मनुष्योंका वास है।

पितु (सं० पु०) पा-रक्षणे तुम् पृषोदरादित्वात् साधुः। पक्व, अनाज।

पितु (हिं० पु०) पिता देखो।

पितुःपुत्र (सं० पु०) पितुः पुत्रः ततोऽलुक्समासः। विख्यात पितासे उत्पन्न पुत्र, योग्य पिताका योग्य पुत्र।

पितुःष्वसृ (सं० स्त्री०) पितुः स्वसा, अलुक्समासः, ततः षत्वं। पितृभगिनी, पिताकी बहन, फोफी।

पितुक्षत् (सं० स्त्री०) अत्यन्त अन्नसाधक।

पितुभाज (सं० त्रि०) अन्नयुक्त।

पितुभृत् (सं० त्रि०) पितुना अन्नेन बिभर्त्ति, भृ-क्विप्, तुकुच्। अन्न द्वारा जगत्धारणकारी।

पितुमत् (सं० त्रि०) पितु मतुप्। हविर्लक्षण अन्नयुक्त अन्नोपेत।

पितुस्तोम (सं० पु०) ऋक्संहिताके प्रथम मण्डलके १८७ सूक्तका नाम।

पितृ (सं० पु०) पाति रक्षयपत्यं यः, पा तृच्। (नप्तृनेष्टृहोतृपोतृभ्रातृजामातृपितृदुहिता। उण् २।९६) इति तृच्प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। १ उत्पादक, पिता, बाप, जनक, जो पुत्रका पालन-पोषण करता है। पर्याय-तात, जनक, प्रसविता, वप्ता, जनयिता, गुरु, जन्मद, जन्य, जनित, बीजी और वप्र।

संसारमें पिता सर्वापेक्षा पूजनीय हैं। उन्हींके प्रभावसे मनुष्य इस संसारका दर्शन करते हैं। वे जन्म दाता होनेके कारण जनक, रक्षण करनेके कारण पिता और विस्तार करनेके कारण तात कहलाते हैं।

"मान्यः पूज्यश्च सर्वेभ्यः सर्वेषां जनको भवेत्।
अहो यस्य प्रसादेन सर्वान् पश्यति मानवः॥
जनको जन्मदाता च रक्षणाच्च पिता नृणाम्।
तातो विस्तीर्णकरणात् कलया सा प्रजापतिः॥"

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० गणपतिख०)

उपाध्याय, ज्येष्ठभ्राता, महीपति, मातुल, श्वशुर, रक्षक, और ज्येष्ठ पितृव्य ये सब पिताके तुल्य हैं। इन सबोंके साथ पिताके जैसा व्यवहार रखना उचित है। पिता, माता और आचार्य ये तीनों महागुरु हैं।

तन्त्रसारमें लिखा है, कि उत्पादक पिताकी अपेक्षा मन्त्रदाता पिता अधिक श्रेष्ठ हैं।

"उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान् ब्रह्मदः पिता।
तस्मान्मन्येत सततं पितुरप्यधिकं गुरुम्॥"

(तन्त्रसार)

चाणक्यने पांच प्रकारका पिता बतलाया है,—

"अन्नदाता भयात्त्राता यस्य कन्या विवाहिता।
जनयिता चोपनेता च, पञ्चैते पितरःस्मृताः॥"

अन्नदाता, भयत्राता, श्वशुर, जनक, और उपनेता यही पांच पिता हैं।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें सप्तपिताका विषय लिखा है,—

"कन्यादातान्नदाता च ज्ञानदाता भयप्रदः।
जन्मदो मन्त्रदो ज्येष्ठभ्राता च पितरः स्मृताः॥"

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० श्रीकृष्णज० ३५ अ०)

कन्यादाता, अन्नदाता, ज्ञानदाता, अभयदाता, जन्मदाता, मन्त्रदाता और ज्येष्ठभ्राता ये सात पिताके सदृश हैं।

गरुड़पुराणमें इकतीस प्रकारके पिता निर्दिष्ट हैं, यथा,—विश्व, विश्वभुक्, आराध्य, धर्म, धन्य, शुभासन, भूमिद, भूमिकृत्, भूति, कल्याण, कल्यद, कल्यतर, कल्यतराश्रय, कल्यताहेतु, अनघ, वर, वरेण्य, वरद, पुष्टिद, विश्वपाता, धाता, महान्, महात्मा, महित, महिमावान्, महाबल, सुखद, धनद, अन्य, धर्मद और भूमिद।

पिताके जीवित रहने पर दोनों बाहुमें तिलकधारण नहीं करना चाहिए।

"न बाह्वोस्तिलकं कुर्यात् यस्य जीवन् पिता स्थितः
तथा ज्येष्ठः सोदरश्च यस्य जीवति स तथा॥"

(वृहद्धर्मपु०)

पुत्रके पुण्य वा पाप करने पर पिता भी उसके भागी होते हैं। मार्कण्डेयपुराणके ८६वें अध्यायमें पितृगणकी स्तुति और नामसंख्या आदिका विषय निर्दिष्ट है। विस्तारके भयसे यहां नहीं लिखा गया।

२ किसी व्यक्तिके मृत बाप, दादा परदादा आदि। ३ किसी व्यक्तिका ऐसा मृत पूर्वपुरुष जिसका प्रेतत्व छुट चुका हो।

अन्त्येष्टि-कर्म वा प्रेतकर्म सम्बन्धी ग्रन्थोंमें लिखा है, कि मृत्यु और शवदाहके बाद मृत व्यक्तिको आतिवाहिक देह मिलती है। इसके उपरान्त जब उसके पुत्रादि उसके निमित्त दशगात्रका पिंडदान करते हैं, तब दशपिंडोंसे क्रमशः उसके शरीरके दश अङ्ग गठित

कर उसको एक नया शरीर प्राप्त होता है। इस देहमें उसको प्रेत संज्ञा होती है। षोडश श्राद्ध और सपिण्डनके द्वारा क्रमशः उसका यह शरीर भी छूट जाता है और वह एक नया भोगदेह प्राप्त कर अपने बाप, दादा और परदादा आदिके साथ पितृलोकमें वास करते हैं अथवा कर्म संस्कारानुसार स्वर्ग नरक आदिमें सुख दुःख आदिका भोग करता है। इसी अवस्थामें उसे पितृ कहते हैं। जब तक प्रेतभाव बना रहता है, तब तक मृत व्यक्ति पितृ संज्ञा पानेका अधिकारी नहीं होता। इसीलिए सपिण्डीकरणके पहले जहां जहां जरूरत पड़ती है प्रेत नामसे ही उसका सम्बोधन किया जाता है। पितरों अर्थात् प्रेतत्वसे छूटे हुए पूर्वजोंको तृप्तिके लिए श्राद्ध, तर्पण आदि करना पुत्रादिका कर्त्तव्य माना गया है।

विशेष विवरण श्राद्धमें देखो।

४ एक प्रकारके देवता जो सब जीवोंके आदिपूर्वज माने गये हैं। मनुस्मृतिमें लिखा है, कि ऋषियोंसे पितर, पितरसे देवता और देवताओंसे सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गमजगत्‌की उत्पत्ति हुई है। ब्रह्माके पुत्र मनु हुए। मनुके मरीचि, अग्नि आदि पुत्रोंकी पुत्रपरम्परा ही देवता, दानव, दैत्य, मनुष्य आदिके मूल पुरुष या पितर हैं। विराट्‌पुत्र सोमसद्‌गण साध्यगणके; अत्रिपुत्र बर्हिषद्‌गण दैत्य, दानव, यक्ष, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, सुपर्ण, किन्नर और मनुष्योंके; कविपुत्र सोमपा ब्राह्मणोंके; अङ्गिराके पुत्र हविर्भुज क्षत्रियोंके; पुलस्त्यके पुत्र आज्यपा वैश्योंके और वशिष्ठपुत्र कालिन शूद्रोंके पितर हैं। ये सब मुख्य पितर हैं। इनके पुत्र पौत्रादि भी अपने अपने वर्गके पितर हैं। द्विजोंके लिए देवकार्यसे पितृकार्यका अधिक महत्व है। पितरोंके निमित्त जलदानमात्र करनेसे भी अक्षय सुख मिलता है।

पितृऋण (सं० पु०) धर्मशास्त्रानुसार मनुष्यके तीन ऋणोंमेंसे एक जिसे ले कर वह जन्मग्रहण करता है। पुत्र उत्पन्न करनेसे इस ऋणसे मुक्ति होती है।

पितृक (सं० त्रि०) पितुः सम्बन्धि पितुरागतं वेति पितृकम् वा पैत्रिक पृषोदरादित्वात् साधुः। १ पितृसम्बन्धी, पैतृक, पिताका। २ पितृदत्त, पिताका दिया हुआ।

पितृकर्मन् (सं० क्ली०) पितॄनुद्दिश्य कर्म। श्राद्धादि। पितृगणके उद्देशसे तथा पितामह, माता और मातामह आदिके उद्देशसे जो श्राद्ध तर्पण आदि किये जाते हैं उन्हें पितृकर्म कहते हैं।

पितृकल्प (सं० पु०) पितॄनुद्दिश्य कल्पो विधानं। १ पितरोंके श्राद्धादि कार्य। २ पितरोंकी उत्पत्ति आदिके ज्ञापक ग्रन्थभेद। (त्रि०) पितॄणामीषदूनः कल्पच्। ३ पितृतुल्य, पिताके सदृश।

पितृकानन (सं० क्ली०) पितॄणां काननमिव। श्मशान।

पितृकार्य (सं० क्लो०) पितॄनुद्दिश्य कार्यं। पितृकर्म, श्राद्धादि।

पितृकुल (सं० पु०) पिताके वंशके लोक, बाप, दादा, परदादा या उनके भाई बन्धुओं आदिका कुल, बापकी ओरके सम्बन्धी।

पितृकुल्या (सं० स्त्री०) पितृकृता कुल्या। तीर्थभेद, महाभारतमें वर्णित एक तीर्थस्थान।

पितृकृत (सं० त्रि०) पित्रा कृतः। पितृपुरुष द्वारा अनुष्ठित, पूर्वपुरुषों द्वारा किया हुआ।

पितृकृत्य (सं० क्लो०) पितॄनुद्दिश्य कृत्यं। पितृकार्य, श्राद्धादि।

पितृगण (सं० पु०) पितॄणां गणः ६-तत्। मनुपुत्र मरीचि आदिके पुत्र। विशेष विवरण पितृ शब्दमें देखो।

पितृगाथा (सं० स्त्री०) पितृभिः पठिता गाथा। पितृगण द्वारा पठित श्लोक समुदाय, पितरों द्वारा पठित कुछ विशेष श्लोक या गाथा। भिन्न भिन्न पुराणोंके मतसे ये गाथाएं भिन्न भिन्न हैं। मार्कण्डेयपुराणके ३२वें अध्यायमें पितृगाथा इस प्रकार लिखी है,—

> पितृगाथास्तथैवात्र गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः।
> या गीताः पितृभिः पूर्वमैलस्यासीन् महीपतेः॥
> कदा नः सन्ततावग्र्यः कस्यचिद्भविता सुतः।
> यो योगिभुक्तशेषान्नो भुवि पिण्डं प्रदास्यति॥
> गयायामथवा पिण्डं खड्गमांसं महाहविः।
> कालशाकं तिलाढ्यं वा कृसरं मासतृप्तये॥
> वैश्वदेवञ्च सौमञ्च खड्गमांसं महा हविः।
> विषाणवर्ज्यं स्वर्गेत्वा आसूर्यञ्चाद्नुवामहे॥
> दद्यात् श्राद्धं त्रयोदश्यां मघासु च यथाविधि।
> मधुसर्पिःसमायुक्तं पायसं दक्षिणायने॥"

पितृगीता (सं॰ स्त्री॰) पिताको माहात्म्यसूचक गीता, एक विशेष गीता जिसमें पितरोंका माहात्म्य दिया गया है। यह वराहपुराणमें वर्णित हुई है।

पितृगृह (सं॰ क्लो॰) पितॄणां गृहं। १ श्मशान। २ पितृवेश्म, बापका घर, पीहर, नैहर, मायका।

पितृग्रह (सं॰ पु॰) १ स्कन्दानुचर ग्रह भेद, सुश्रुतके अनुसार कार्त्तिकेयके उन अनुचरोंमेंसे एक जो कुछ रोगोंके उत्पादक माने गए हैं। २ बालरोगभेद।

पितृघात (सं॰ पु॰) पिताको हत्या करना, बापको मार डालना।

पितृतर्पण (सं॰ क्लो॰) पितॄणां तर्पणं वा पितॄणां तर्पणं तृप्तिर्यस्मात्। १ पितरोंके उद्देशसे किया जानेवाला जलदान। तर्पण द्वारा पितृगण परितृप्त होते हैं।

विशेष विवरण तर्पण शब्दमें देखो।

२ पितृतीर्थ। तर्जनी और अङ्गुष्ठके मध्यभागमें पितृतीर्थ है। पितरोंके उद्देशसे जो दानादि क्रिया जाता है, उसे पितृतीर्थ द्वारा करना चाहिये। ३ तिल।

पितृतिथि (सं॰ स्त्री॰) पितृप्रिया तिथिरिति मध्यलो॰। अमावस्या। पितरोंको अमावस्या बहुत प्रिय है और श्राद्ध आदि कार्य इसी तिथिको करने चाहिये और इसीलिए इसका नाम पितृतिथि है।

पितृतीर्थ (सं॰ क्लो॰) पितृप्रियं तीर्थं। गया। गयामें पिण्डदान करनेसे पितृगण प्रेतलोकसे उद्धार पाते हैं, इसीलिए गया पितृलोकका अत्यन्त प्रिय तीर्थ है।

मत्स्यपुराणमें श्राद्धकल्पके २२वें अध्यायमें गया आदि २२२ पितृतीर्थोंका उल्लेख देखनेमें आता है। यथा—१ गया, २ वाराणसी, ३ विमलेश्वर, ४ प्रयाग, ५ वटेश्वर, ६ दशाश्वमेध, ७ गङ्गाद्वार, ८ नन्दा, ९ ललिता, १० मायापुरी, ११ मित्रपद, १२ केदार, १३ गङ्गासागर, १४ ब्रह्मसरोवर, १५ नैमिष, १६ गङ्गोद्भव, १७ यज्ञवराह, १८ नैमिषारण्य, १९ इक्षुमती, २० कुरुक्षेत्र, २१ सरयू, २२ इरावती, २३ यमुना, २४ देविका, २५ काली, २६ चन्द्रभागा, २७ दृषद्वती, २८ वेणुमती, २९ वेत्रवती, ३० जम्बूमार्ग, ३१ नीलकण्ठ, ३२ रुद्रसर, ३३ मानसरोवर, ३४ मन्दाकिनी, ३५ अच्छोद, ३६ विपाशा, ३७ सरस्वती, ३८ मित्रपद, ३९ वैद्यनाथ, ४० शिप्रा, ४१ महाकाल, ४२ कालञ्जर, ४३ वंशोद्भेद, ४४ हरोद्भेद, ४५ गङ्गोद्भेद, ४६ भद्रेश्वर, ४७ विष्णुपद, ४८ नर्मदाद्वार, ४९ ओङ्कार, ५० कावेरी, ५१ कपिलोदक, ५२ सम्भेद, ५३ चण्डवेगा, ५४ अमरकण्टक, ५५ शुक्रतीर्थ, ५६ कायावरोहण, ५७ चर्मण्वती, ५८ गोमती, ५९ वरुणा, ६० औशनस, ६१ भैरव, ६२ भृगुतुङ्ग, ६३ गौरीतीर्थ, ६४ वैनायक, ६५ भद्रेश्वर, ६६ पापहर, ६७ तपती, ६८ मूलतापी, ६९ पयोष्णी, ७० पयोष्णीसङ्गम, ७१ महाबोधि, ७२ पाटला, ७३ नागतीर्थ, ७४ अवन्तिका, ७५ वेणा, ७६ महाशाल, ७७ महारुद्र, ७८ दशार्णा, ७९ शतरुद्र, ८० शताह्वा, ८१ विश्वपद, ८२ अङ्गारवाहिका, ८३ शोण, ८४ घर्घरा, ८५ कालिका, ८६ वितस्ता, ८७ द्रोणी, ८८ वाटनदी, ८९ धारा, ९० क्षीरनदी, ९१ गोकर्ण, ९२ गजकर्ण, ९३ पुरुषोत्तम, ९४ द्वारका, ९५ कृष्णतीर्थ, ९६ अर्बुदसरस्वती, ९७ मणिमती, ९८ गिरिकर्णिका, ९९ धूतपापा, १०० दक्षिणसमुद्र, १०१ मेघकर, १०२ मन्दोदरी तीर्थ, १०३ चम्पा, १०४ सामलनाथ, १०५ महाशाल नदी, १०६ चक्रवाक, १०७ चर्मकोट, १०८ जन्मेश्वर, १०९ अर्जुन, ११० त्रिपुर, १११ सिद्धेश्वर, ११२ श्रीशैल, ११३ शाङ्कर, ११४ नारसिंह, ११५ महेन्द्र, ११६ श्रीरङ्ग, ११७ तुङ्गभद्रा, ११८ भीमरथी, ११९ भीमेश्वर, १२० कृष्णवेणा, १२१ कावेरी, १२२ कुंडला, १२३ गोदावरी, १२४ त्रिसन्ध्यातीर्थ, १२५ त्रैयम्बक, १२६ श्रीपर्णी, १२७ ताम्रपर्णी, १२८ जयातीर्थ, १२९ मत्स्यनदी, १३० शिवधार, १३१ भद्रतीर्थ, १३२ पम्पातीर्थ, १३३ रामेश्वर, १३४ एलापुर, १३५ अलंपुर, १३६ अङ्गभूत, १३७ अमलपुर, १३८ आम्रातकेश्वर, १३९ एकाम्रक, १४० गोवर्द्धन, १४१ हरिश्चन्द्र, १४२ क्रपुचन्द्र, १४३ पृथूदक, १४४ सहस्राक्ष, १४५ हिरण्याक्ष, १४६ कदलीनदी, १४७ रामाधिवास, १४८ सौमित्रिसङ्गम, १४९ इन्द्रकील, १५० महानद, १५१ प्रियमेलक, १५२ बाहुदा, १५३ सिद्धवन, १५४ पाशुपत, १५५ पार्वतिका, १५६ सर्वान्तरजलावहा, १५७ जामदग्न्यतीर्थ, १५८ हव्यकव्यसरोवर, १५९ सहस्रलिङ्ग, १६० राघवेश्वर, १६१ सेन्द्रफेना, १६२ पुष्कर, १६३

शालग्राम, १६४ सोमपान, १६५ सारस्वत, १६६ स्वामो-तीर्थ, १६७ मलन्दरा, १६८ कौशिकी, १६९ चन्द्रिका, १७० वैदर्भी, १७१ वेरा, १७२ पयोष्णी, १७३ कावेरी, १७४ जालन्धर, १७५ लोहदंड, १७६ चित्रकूट, १७७ विन्ध्ययोग, १७८ नदीतट, १७९ कुब्जाम्र, १८० उत्र शो-पुलिन, १८१ संसारमोचन, १८२ ऋणमोचन, १८३ अट्टहास, १८४ गौतमेश्वर, १८५ वशिष्ठतीर्थ, १८६ हारीत, १८७ ब्रह्मावर्त्त, १८८ कुशावर्त्त, १८९ हयतीर्थ, १९० पिंडारक, १९१ शङ्खोद्धार, १९२ घण्टेश्वर, १९३ बिल्वक, १९४ नीलपर्वत, १९५ धरणीतीर्थ, १९६ राम-तीर्थ, १९७ अश्वतीर्थ, १९८ वेदशिरा, १९९ मोघवती, २०० वसुप्रद, २०१ छागलांड, २०२ बदरीतीर्थ, २०३ गणतीर्थ, २०४ जयन्त, २०५ विजय, २०६ शुक्रतीर्थ, २०७ श्रीपतितीर्थ, २०८ रैवतक, २०९ शारदातीर्थ, २१० भद्रकालेश्वर, २११ वैकुण्ठतीर्थ, २१२ भीमश्वर, २१३ मातृगृह, २१४ करवीरपुर, २१५ कुशेश्वर, २१६ गौरी-शिखर, २१७ नकुलेशतीर्थ, २१८ कदमाल, २१९ दंडिपुण्यकर, २२० पुंडरीकपुर, २२१ सप्तगोदावरीतीर्थ और २२२ सब तीर्थेश्वरेश्वर।

इन सब तीर्थों का नामोच्चारण और सब तीर्थों में जा कर पितरोंका पिंडदान करनेसे वे अक्षयस्वर्ग को चले जाते हैं।

पितृत्व (सं॰ क्ली॰) पितृ-भावे त्व। पिताका भाव या धर्म, पितृ या पिता होनेकी स्थिति।

पितृदत्त (सं॰ पु॰) पिता द्वारा दत्त या अर्पित।

पितृदान (सं॰ क्ली॰) पितरि पित्रे वा दानम्। पित्रादि-के उद्देश्यसे अन्नवस्त्रादि दान, पितरोंके उद्देश्यसे किया जानेवाला दान, वह दान जो मृत पूर्वजोंके उद्देश्यसे किया जाय। पर्याय—निवाप, निवपन, और पितृदानक।

पितृदानक (सं॰ क्ली॰) पितृदान स्वार्थे कन्। पितृ-उद्देश्यक दान, पितरोंके उद्देश्यसे किया जानेवाला दान।

पितृदाय (सं॰ पु॰) पितुः दायः धनं। पितृधन, पितासे प्राप्त धन वा सम्पत्ति, बपौती।

पितृदिन (सं॰ क्ली॰) पितॄणां दिनं। १ अमावस्या। २ पक्षद्वयात्मक तत्सम्बन्धीय दिन।

पितृदेव (सं॰ पु॰) पितृभिष्ठाता देवः। पितृगणके अधिष्ठाता देवता, अग्निष्वात्तादि पितृगण। पिताएव देवः। पितृदेवता, पिता देवतास्वरूप हैं।

पितृदेवत (सं॰ त्रि॰) पितृदेवता-सम्बन्धीय, पितृ-देवतादिकी प्रीतिकामनाके लिए अनुष्ठित यज्ञादि, पितरोंकी प्रसन्नताके लिए किया जानेवाला यज्ञका अनुष्ठान आदि।

पितृदेवत्य (सं॰ त्रि॰) पितृदेवत।

पितृदैवत (सं॰ पु॰) १ मघानक्षत्र। २ यम।

पितृदैवत्य (सं॰ त्रि॰) पितृदेवता सम्बन्धीय।

पितृनाथ (सं॰ पु॰) १ यमराज। २ अर्यमा नामक पितर जो सब पितरोंमें श्रेष्ठ माने जाते हैं।

पितृपक्ष (सं॰ पु॰) पितृप्रियः पक्षः। १ गौण आश्विन-का कृष्णपक्ष, आश्विन या कुआरका कृष्णपक्ष, आश्विन-की कृष्ण प्रतिपदासे अमावास्या तकका समय, प्रेत-पक्ष।

यह पक्ष पितरोंको अतिशय प्रिय माना गया है। कहा जाता है, कि इसमें उनके निमित्त श्राद्ध आदि करनेसे वे अत्यन्त सन्तुष्ट होते हैं। इसीसे इसका नाम पितृपक्ष हुआ है। प्रतिपदासे अमावास्या तक नित्य उनके निमित्त तिलतर्पण और अमावास्याको पार्वण-विधिसे तीन पीढ़ी ऊपर तकके मृत पूर्वजोंका श्राद्ध किया जाता है। भिन्न भिन्न पूर्वजोंकी मृत्युतिथियोंको भी उनके निमित्त इस पक्षमें श्राद्ध करते हैं। पर यह श्राद्ध एकोद्दिष्ट न हो कर त्रैपुरुषिक ही होता है। इन पन्द्रह दिनोंमें आहार और विहारमें प्रायः अशौचके नियमोंका-सा पालन किया जाता है। २ पितृकुल, पिताके सम्बन्धी, पिताकी ओरके लोग।

पितृपति (सं॰ पु॰) पितॄणां पतिः। यम। यम पितरोंके प्रभुस्वरूप हैं।

पितृपद (सं॰ पु॰) १ पितृत्व, पितर होनेकी स्थिति या भाव। २ पितरोंका लोक या देश।

पितृपितृ (सं॰ पु॰) पितुः पिता। पितामह, पितरोंके पिता, ब्रह्मा।

पितृपूजन (सं॰ क्ली॰) पितॄणां पूजनं यत्र। श्राद्धादि कार्य।

पितृपैतामह (सं० त्रि०) पिता और पितामहसम्बन्धीय, जिसका सम्बन्ध बाप दादोंसे हो, बाप दादोंका, पिता और पितामह द्वारा अनुष्ठित।

पितृपैतामहिक (सं० त्रि०) पिता और पितामहादि-सम्बन्धीय।

पितृप्रसू (सं० स्त्री०) पितृणां प्रसूः मातेव। १ सन्ध्या। पितृकृत्यमें सन्ध्यागामिनी तिथिको ग्राह्यता और प्रेत-कार्यमें माताकी नाईं उपकारिणी होनेके कारण सन्ध्या-का नाम पितृप्रसू हुआ है। पितुः प्रसूः ६-तत्। २ पितामही, बापकी मां, दादी।

पितृप्रिय (सं० पु०) पितृणां प्रियः। १ भृङ्गराज, भंगरैया, भंगरा। (स्त्री०) २ अगस्त्यवृक्ष।

पितृबन्धु (सं० पु०) पितुर्बन्धुः। पितामह, पितामहीके भगिनीपुत्र और पिताके मातुल-पुत्र, ये सब शास्त्रोक्त पितृबन्धु हैं। पिताके साथ जिसकी अच्छी जान पहचान है, उसे भी पितृबन्धु कहते हैं।

पितृबान्धव (सं० पु०) पितुर्बान्धवः। पितृबन्धु।

पितृभक्ति (सं० स्त्री०) १ पिताकी भक्ति, पितामें पूज्य बुद्धि। २ पुत्रका पिताके प्रति कर्त्तव्य।

पितृभूति—कात्यायनश्रौतसूत्रके एक प्राचीन भाष्यकर। याज्ञिकदेव और अनन्तने कात्यायनश्रौतसूत्रके भाष्यमें तथा देवभद्र.प्रयोगसारमें इनका मत उद्धृत किया है।

पितृभोजन (सं० पु०) पितृभिर्भुज्यते इति भुज, कर्मणि ल्युट्। १ माष, उरद। पितृउद्देश्यक दानमें यह प्रशस्त होनेके कारण इसका नाम पितृभोजन पड़ा है। भुज, भावे ल्युट्, पितृणां भोजनं। (क्ली०) २ पितरोंकी भोज्य वस्तु।

पितृभ्रातृ (सं० पु०) पितुर्भ्राता ६-तत्। पितृव्य, बापका भाई, चाचा, चचा।

पितृमत् (सं० त्रि०) पिता विद्यतेऽस्य मतुप्। पितृयुक्त, जिसके बाप हो।

पितृमन्दिर (सं० क्ली०) पितृगृह, पिताका घर।

पितृमेध (सं० पु०) पितृ-उद्देश्यसे अनुष्ठित अन्त्येष्टि कर्म-भेद।

पितरोंकी मृत्युके बादसे दशरात्रके मध्य यह यज्ञ किया जाता है। यह श्राद्धसे भिन्न है। अग्निदान अथवा दग्ध पिंडदान आदि कर्म भी इसी पितृमेधके अन्तर्गत हैं। इसमें भी वैदिक मन्त्रपाठ होता है।

अन्त्येष्टि क्रिया देखो।

तैत्तिरीय आरण्यक और कात्यायन श्रौतसूत्र (२१।३।१)में इसका प्रथम आभास पाया जाता है। गौतम और हिरण्यकेशी प्रणीत पितृमेधसूत्रमें, गार्ग्य गोपालकृत पितृमेधभाष्यमें और गोपालयज्वा, वेङ्कटनाथ तथा वैदिक-सार्वभौम प्रणीत पितृमेधप्रयोग वा पितृमेधसार ग्रन्थमें इस यज्ञका विस्तृत विवरण लिखा है।

पितृयज्ञ (सं० पु०) पितृभ्यः पितृनुद्दिश्य यो यज्ञः। पितृतर्पण, तर्पणादि। पितरोंके उद्देश्यसे जो तर्पण किया जाता है उसे पितृयज्ञ कहते हैं। यह पञ्च महायज्ञके अन्तर्गत है। प्रतिदिन इस यज्ञका करना उचित है।

पितृयाण (सं० पु०) पितरो यान्ति अनेन या-करणे ल्युट्, संज्ञात्वात् णत्वं। १ पितरोंका चन्द्रलोकगमन मार्ग, मृत्युके बाद जीवके जानेका वह मार्ग जिससे वह चन्द्रमाको प्राप्त होता है, वह मार्ग वा रास्ता जिससे जा कर मृत व्यक्तिको निश्चित कालतक स्वर्ग आदिमें सुखभोग कर पुनः संसारमें आना पड़ता है। छान्दोग्य उपनिषद्में इसका विवरण इस प्रकार लिखा है,—

पितरोंके चन्द्रलोकप्रापक कर्म और यानप्रकार विषय इस प्रकार है,—जो गृहस्थ इष्टापूर्त्त और दान अर्थात् अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म, वापी-कूप-तड़ागादि निर्माण तथा यथाशक्ति पूज्योंको द्रव्य सम्भोग प्रतिपादन इत्यादिरूपसे उपासना करते हैं, वे पहले धूमाभिमानिनी देवताको प्राप्त होते हैं। बाद वहांसे रात्रि अर्थात रात्रिदेवता और रात्रिसे दूसरे देवताको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार कृष्णपक्ष और दक्षिणायन षण्मासाभिमानिनी देवताओंको भी प्राप्त हो कर, पीछे वहांसे वे पितृलोक जाते हैं। पितृलोकमें अवस्थान कर वहांसे आकाश और आकाशसे एकबारगी चन्द्रमाको हो प्राप्त होते हैं। अन्तरीक्षमें परिदृश्यमान यह चन्द्रमा ब्राह्मणोंके राजा और इन्द्रादि देवगणके अन्न-स्वरूप हैं। देवगण इन्हें खाते हैं, अतएव कर्मिगण धूमादिसे जा कर चन्द्रस्वरूप होनेके कारण देवताओंसे भी खाये जाते हैं अर्थात् देवताओंके उपभोग्य हो वे उनके साथ सुखसे विहार करते हैं।

२. पितृलोक-गमनमार्ग, पितरलोक जानेका रास्ता।

पितृराज (सं० पु०) पितॄणां राजा टच् समासान्तः। यम।

पितृरिष्ट (सं० पु०) पितुः रिष्टं अमङ्गलं यत्र। पिताका अमङ्गल-जनक योगविशेष। ऐसे योगमें जन्म होनेसे जात बालकके पिताकी मृत्यु होती है, इसी कारण इसको पितृरिष्ट कहते हैं। पञ्चस्वरा-मतमें पितृरिष्टका विषय इस प्रकार लिखा है। दिनमें प्रसव होनेसे सूर्य और रात्रिमें प्रसव होनेसे शनि बालकके पिता होते हैं। दिवा-प्रसवमें शनि पिता और रात्रि प्रसवमें रवि पिताके भाई होते हैं।

जात बालकके छठें और आठवें स्थानमें रवि यदि मङ्गल द्वारा देखे जांय और यदि वृहस्पति तथा शुक्रकी दृष्टि न रहे, तो जातबालकके पिताकी मृत्यु होती है। लग्नके आठवें स्थानमें चन्द्र, दूसरे स्थानमें शुक्र तथा राहु और शनि एवं मङ्गलके मित्रक्षेत्रमें रहनेसे सप्ताहके अन्दर ही जातबालकके पिताकी मृत्यु होती है। जन्म-लग्नके आठवें स्थानमें यदि मङ्गल, बारहवें स्थानमें दो वा तीन पापग्रह रहें और इन सब स्थानमें यदि शुभग्रहकी दृष्टि न पड़ती हो, तो जातबालकके पिताकी मृत्यु होगी। यदि सूर्य जातबालकके लग्नके आठवें स्थान अथवा राहुके साथ मिल कर जन्मलग्नमें रहें, तो चाहे बालकके पिताकी या उसीकी मृत्यु होती है। (पञ्चस्वरा)

ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है,—जातबालकके लग्नके दशवें स्थानमें शनि, छठें स्थानमें चन्द्र यदि शुभग्रह द्वारा अदृष्ट अथवा अयुक्त हो कर तीन पापग्रहों द्वारा दृष्ट हो, तो जातबालकके पिताकी मृत्यु होती है। यदि जन्मलग्नके चौथे स्थानमें शनि, दशवें अथवा सातवें स्थानमें मङ्गल रहें, तो जातबालककी माताकी और यदि मङ्गल दशवें किंवा सातवें स्थानमें न रह कर लग्नमें रहें, तो बालकके पिताकी मृत्यु होती है।

जन्मकालमें जिस राशिमें रवि रहते हैं, उससे यदि सातवें राशिमें शनि और मङ्गल रहें, तो जातबालकके पिताकी मृत्यु होगी, ऐसा जानना चाहिये।

इसके अलावा सोमसिद्धान्त और जातकाभरण-प्रभृतिमें भी इस पितृरिष्टका विस्तृत विवरण तथा रिष्टभङ्गका विषय लिखा है। विस्तारके भयसे यहां नहीं दिया गया।

पितृरूप (सं० पु०) ईषदूनः जनकः, पितृरूप शिवः। शिव, महादेव। रुद्र सबोंके पिता हैं, इसलिए ये पितृरूप हैं।

पितृलोक (सं० पु०) पितॄणां लोकः। पितरोंका लोक, वह स्थान जहां पितृगण रहते हैं। यह चन्द्रलोकके ऊपर अवस्थित है। अथर्ववेदमें जो उदन्वती, पीलुमती और प्रद्यौ ये तीन कक्षाएं द्युलोककी कही गई हैं उनमें चन्द्रमा प्रथम कक्षामें और पितृ लोक या प्रद्यौ तीसरी कक्षामें कहा गया है।

पितृवत् (सं० अव्य०) पिताइव, इवार्थे वति। पितृतुल्य, पिताके सदृश।

पितृवन (सं० क्ली०) पितॄणां वनमिव। श्मशान।

पितृवनेचर (सं० पु०) पितृवने श्मशाने चरतीति (चरेष्ठ। पा ३।२।१६) चर-ट, अलुक् समासः। श्मशानवासी शिव, श्मशानमें बसनेवाले शिव।

पितृवर्त्ती (सं० पु०) ब्रह्मदत्त नामक नृपभेद, ब्रह्मदत्त नामका एक राजा।

पितृवसति (सं० स्त्री०) पितॄणां वसतिर्यत्र। शवशयन-स्थान, श्मशान।

पितृवित्त (सं० क्ली०) पितादिपरम्परालब्ध धन, पैतृक-धन, बाप दादोंकी सम्पत्ति, मौरूसी जायदाद।

पितृव्य (सं० पु०) पितुर्भ्राता (पितृव्य-मातुल-मातामह-पितामहाः। पा ४।२।३६) इत्यत्र वार्त्तिकोक्त्या पितृ-व्यत्। पिताके भ्राता, पिताके भाई, चाचा, काका।

पितृशर्मन् (सं० पु०) दानवभेद, एक राक्षसका नाम।

पितृश्रवण (सं० त्रि०) जिस पुत्र द्वारा पिता प्रथित होते हैं।

पितृषद् (सं० पु०) षद्-विशरणादिषु पितृ-षद्-क्विप्। १ पितृसमीप, पितृगृह, बापका घर, मैका, पीहर।

पितृषदन (सं० क्ली०) पितरः सीदन्ति उपविशन्त्यत्र सद्-आधारे ल्युट्, वेदे षत्वं। कुश।

पितृष्वसृ (सं० स्त्री०) पितुः स्वसा भगिनी (मातापितृभ्यां स्वसा। पा ८।३।८४) इति षत्वं। पिताकी बहन, फूफी, बूआ।

पितृष्वस्रीय (सं० त्रि०) पितृष्वसुरपत्यं पितृष्वसृ-छ। पितृ-भागिनेय, पिताका भांजा, बूआका बेटा, फुफेरा भाई।

पितृसन्निभ (सं० पु०) सम्यक् निभातीति सन्निभस्तुल्यः, पितुः सन्निभः। पितृतुल्य, पिताके सदृश। पर्याय—मनोजव, मनोयवस्।

पितृसू (सं० स्त्री०) सूते इति सूः जननी, पितॄणां सुः जननीव। १ सन्ध्या। पितरं सूते क्विप्। २ पितामही, दादी।

पितृसूक्त (सं० पु०) एक वैदिक मन्त्रसमूह।

पितृहा (सं० पु०) पितॄन् हन्ति हन-क्विप्। पितृहन्ता, पितृघाती, पिताकी हत्या करनेवाला।

पितृहू (सं० पु०) पितॄनाह्वयत्यनेनेति पितृ-ह्वे करणे क्विप्। १ दक्षिणकर्ण, दाहिना कान। २ पितरोंको देय वस्तु, पितरोंको देने योग्य वस्तु।

पितृहूय (सं० क्लो०) परलोकगत पितरोंका आह्वान, पितरोंको बुलाना।

पित्त (सं० क्लो०) अपि दीयते प्रकृतावस्थया रक्ष्यते विकृतावस्थया नाश्यते वा शरीरं येनेति दें पालने दो छेदने वा क्त, (अच् उपसर्गात्तः। पा ७।४।४७)। इति तादेशः अपेरल्लोपः। शरीरस्थ धातुविशेष। पर्याय—मायु, पलज्वल, तेजस्, तिक्तधातु, ऊष्मन्, अग्नि, अनल।

पित्त तिक्त, अम्लरस, सारक, उष्ण, द्रव और तीक्ष्ण होता है। वसन्तकालमें, वर्षान्त समयमें अर्द्धरात्रि और मध्याह्निकको पित्त बिगड़ जाता है।

वायु, पित्त और कफ ये तीनों ही शरीरपोषणके मूल हैं। इन तीनों धातुके प्रशमित रहनेसे किसी प्रकारकी व्याधि नहीं होती। इन तीनों धातुका वैषम्य ही पीड़ाका हेतु है। श्लेष्मा और वायुका विषय श्लेष्मा और वायु शब्दमें देखो। इन तीन धातुओंमेंसे प्रत्येकका प्रत्येकके साथ सम्बन्ध है। किन्तु इन तीनमेंसे जब जिसकी अधिकता होती है, तब उसीके अनुसार शारीरिक लक्षण दीख पड़ते हैं।

सुश्रुतमें लिखा है,—राग, पाक, ओजः अथवा तेजः, मेधा और उष्णकारिता, पित्त इन पांच गुणोंमें विभक्त होकर अग्निकार्य द्वारा शारीरिक कार्य सम्पादन करता है। शरीरमें पित्तका क्षय होनेसे अग्निकी उष्णता मन्द होती है। इससे शरीर प्रभाहीन हो जाता है। जो सब वस्तु पित्तवर्द्धक हैं उनका सेवन करनेसे पित्त प्रशमित होता है। पित्तकी वृद्धि होनेसे शरीरमें पीतवर्ण आभा, सन्ताप, शीतल द्रव्यमें अभिलाष, निद्राकी अल्पता, बलहानि, मूर्च्छा, इन्द्रियकी दुर्बलता, विष्ठा, मूत्र और चक्षु पीतवर्ण हो जाते हैं। ऐसी अवस्थामें पित्तनाशक द्रव्य सेवनीय है।

शरीरमें पित्त पांच जगह रहता है। यथा—यकृत-प्लीहा, हृदय, दृष्टि, त्वक् और आमाशयका मध्यस्थान। जिस प्रकार चन्द्र, सूर्य और वायु ये तीनों चरण, आकर्षण और सञ्चालनक्रिया द्वारा इस जगत्‌रूप विराट-देहको धारण किये हुए हैं, उसी प्रकार वायु पित्त और कफ प्राणियोंकी देहको धारण करता है।

अभी देखना चाहिये, कि देहमें पित्तके अतिरिक्त और कोई अग्नि है वा नहीं, या पित्त ही अग्नि है? इस पर यह स्थिर हुआ है, कि पित्त छोड़ कर देहमें और किसी प्रकारकी अग्नि नहीं है। पित्त आग्नेय पदार्थ है। दहन और परिपाक विषयमें पित्त ही अधिष्ठित रह कर अग्निकी तरह कार्य करता है, इसीको अन्तराग्नि कहते हैं। कारण, पहले देहमें अग्निका मान्द्य होनेसे जिससे पित्तकी वृद्धि हो, ऐसा ही द्रव्य सेवन किया जाता है और अग्निकी अत्यन्त वृद्धि होनेसे शीतल क्रिया द्वारा ही उसका प्रतिकार करना होता है। दूसरे, आगमादिमें लिखा है, पित्त भिन्न देहमें और किसी प्रकारकी अग्निका अधिष्ठान नहीं है। पक्वाशय और आमाशयके मध्य रह कर पित्त किस प्रणालीसे चारों प्रकारके आहारको परिपाक करता है और किस प्रणालीके अनुसार आहारजनित रसको परिपाक तथा मूत्र और पुरीष आदिको एक दूसरेसे पृथक् करता है, यह प्रत्यक्ष तो नहीं होता, पर पित्त ही ये सब कार्य सुचारुरूपसे करता है, यह स्थिर हो चुका है। पित्त उक्त स्थानमें रह कर ही अग्निक्रिया द्वारा देहमें शेष चार पित्त स्थानको क्रियाकी सहायता पहुंचाता है। उस पक्व और आमाशयके मध्यस्थित पित्तमें पाचक नामकी अग्नि रहती है। यकृत और प्लीहाके मध्य जो पित्त रहता है, उसे रञ्जक-

अग्नि कहते हैं। यही रञ्जकाग्नि आहारसम्भूत रसको लाल बना देती है। जो पित्त हृदयस्थानमें संस्थित है उसे साधकाग्नि कहते हैं। इस साधकाग्निसे मनके सभी अभिलाष पूर्ण होते हैं। जो पित्त दृष्टिस्थानमें अधिष्ठित है, उसका नाम आलोचक अग्नि है। इसी आलोचक अग्नि द्वारा पदार्थका रूप अथवा प्रतिबिम्ब गृहीत होता है। जो पित्त त्वकमें रहता है, उसका नाम भ्राजक अग्नि है। तैलमर्दन, अवगाहन, आलेपन आदि क्रिया द्वारा जो सब स्नेह आदि द्रव्य शरीरमें लिप्त होते हैं, इस पित्त द्वारा उन सब द्रव्योंका परिपाक और देहकी छायाका प्रकाश होता है।

पित्त तीक्ष्ण गुण और प्रतिगन्धविशिष्ट, नील अथवा पीतवर्ण तथा तरल है। पित्त जब उष्ण होता, तब वह कटुरसविशिष्ट और जब विदग्ध होता तब अम्लरस विशिष्ट हो जाता है।

पित्त बिगड़नेके कारण—क्रोध, शोक, चिन्ता, उपवास, अग्निदाह, मैथुन, उपगमन अथवा कटु, अम्ल, लवण, तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, विदाही, तिलतैल, पिण्याक, कुलत्थ, सर्षप, गोधा, मत्स्य, छाग वा मेषमांस, दधि, तक्र, छेना, कांजी, सुरा वा सुराकी कोई विकृति और अम्लरसविशिष्ट, मट्ठा और रौद्रका उत्ताप इन सब द्वारा पित्त बिगड़ जाता है। विशेषतः उष्ण क्रिया करनेसे वा उष्णकाल होनेसे मेघावसानमें, मध्याह्नकाल वा अर्द्धरात्रमें तथा भुक्तद्रव्य परिपाक होनेके समय पित्तका प्रकोप होता है। पित्तका प्रकोप होनेसे ही रक्त कुपित हो जाता है। पित्तके कुपित होनेसे शरीरकी उष्णता, सर्वाङ्गदाह और धूमोद्गार होता है।

(सुश्रुत सूत्रस्थान ८१ अ०)

भावप्रकाशके मतसे पित्तका स्वरूप,—पित्त, उष्ण, द्रव, पीत और नीलवर्ण अर्थात् निरामपित्त पीतवर्ण, सामपित्त नीलवर्ण, रजोगुणात्मक, सारक, कटुरस, लघु, स्निग्ध और अम्लविपाक है।

शरीरके मध्य स्थानविशेषमें रहने और उस अङ्गकी क्रियाके कारण पित्तके पांच स्वतन्त्र नाम पड़े हैं। यथा—पाचकपित्त अग्न्याशयमें, रञ्जकपित्त यकृतप्लीहामें, साधक हृदयमें, आलोचक दोनों नेत्रमें और भ्राजक सर्वशरीरस्थित चर्ममें अवस्थित है।

पाचकपित्त भुक्तद्रव्यका परिपाक करता है, अपरापर अग्निका अर्थात् भूताग्नि और धात्वग्निका बल बढ़ाता है तथा रस, मूत्र और मलको विरेचन कर डालता है। यह पित्त आमाशय और पक्वाशयस्थ भोज्य, भक्ष्य, चर्व्य, लेह्य, चोष्य और पेय इस षड्‌विध आहारका परिपाक करता है तथा रस, मूत्र और मलको पृथक् कर देता है। अग्न्याशयस्थ पित्त अपनी शक्ति द्वारा रसको रञ्जित करता, हृदस्थित कफ और तमोगुणको हटाता, रूपग्रहण करता, मृगनाभि आदि अङ्गलेपादिको परिपाक करता, देहकी शोभाको बढ़ाता तथा विशेष विशेष पित्तके स्थानोंमें सहायता पहुंचाता है। रञ्जकादि अवशिष्ट पित्त (आवासस्थान) यकृत्प्लीहादि स्थानमें उपस्थित हो कर उस उस स्थानके रसरञ्जनादि कार्य द्वारा उपकार करता है तथा शेषाग्नि अर्थात् भौम प्रभृति पञ्चमहाभूताग्नि और सप्तधात्वग्निका बल बढ़ाता है।

चरकमें पञ्चमहाभूताग्निका विषय उल्लिखित है, यथा—भौमाग्नि, आपाग्नि, तैजस अग्नि, वायव्य अग्नि और बाभट अग्नि। बाभटमें लिखा है, कि दोष, धातु और मल इनकी उष्मा ही अग्नि है। अतएव पाचक अग्नि सप्तधातुगत ऊष्मअग्निका भी बल बढ़ाती है। जिस प्रकार गृहस्थित रत्न (सय कान्तादि) रविकी तरह दूर देश तक प्रकाश करता है और दीपके आलोक द्वारा दूरदेश प्रदीप्त होता है, उसी प्रकार पाचक पित्त अग्न्याशयमें रह कर स्वकीय अग्निके तेज द्वारा अपरापर अग्निके बलकी वृद्धि करता है।

बाभटने और भी कहा है, कि सभी प्रकारकी अग्नियोंमें अन्नको पचानेवाली पाचक अग्नि ही श्रेष्ठ है। यह पाचक अग्नि अपर अग्निका आधार-स्वरूप है। क्योंकि इस अग्निके वृद्धिक्षयसे अपर अग्निकी वृद्धि और क्षय हुआ करता है। बाभटने फिर भी कहा है, कि पाचकाग्नि तिलप्रमाण है। जब यह अग्नि विकृत नहीं होती है, तब क्षुधा, तृष्णा, रुचि, सौन्दर्य, मेधा, बुद्धि, शौर्य और देहको कोमलता उत्पादन तथा पाक वा ऊष्मादि द्वारा आनुकूल्य करती है।

पित्त पांच प्रकारका है, यह पहले ही कहा जा चुका है। इनमेंसे पक्वाशय और आमाशयके मध्यस्थानमें जो

पित्त रहता है, वह पृथिव्यादि पञ्च भूतात्मक होने पर भी अग्निगुणकी अधिकताके कारण जलीयभागहीन हो कर पाकादि कर्म सम्पादन करता है। इसीसे इसका अग्नि नाम पड़ा है। जो पित्त अन्नको पचाता है और अन्नके सारभाग तथा मलभागको पृथक् पृथक् करता है अथच पक्वाशय और आमाशयके मध्य रह कर अवशिष्ट पित्तको अधिकतर बल प्रदान कर उनका उपकार करता है, वह आग्मपाचक नामसे मशहूर है।

सभी जगह पित्तको अग्नि बतलाया है। इससे यह सन्देह हो सकता है, कि पित्त भिन्न अग्नि पृथक् पदार्थ है अथवा पित्त ही अग्नि है। इस सन्देहको दूर करनेके लिये यह कहा गया है, कि पित्तकी उष्णादि क्रिया द्वारा आहार परिपाक, रसरञ्जन, रूपदर्शन आदि कार्य देखनेसे यह निश्चय ही बोध होता है, कि पित्त व्यतीत अन्य अग्नि है ही नहीं। इसीसे अग्निस्वरूप पित्तका स्थानभेदसे पाचक, रञ्जक, साधक, आलोचक और भ्राजक नाम निर्दिष्ट हुआ है। यहां पर यह आपत्ति होती है, कि यदि पित्त और अग्नि अभिन्न है, तो स्थानविशेषमें जो लिखा है, कि घृत-पित्तनाशक और अग्निका उद्दीपक, मत्स्य पित्तकारक अथच अग्निदीप्तिकर नहीं है। पित्तकी अधिकता होनेसे तीक्ष्णाग्नि एवं पित्त और वायुकी समता होनेसे समाग्नि होती है। फिर जो लिखा है, कि पित्त द्रव, स्निग्ध और अधोगामी है। अग्नि इसको विपरीत है अर्थात् अद्रव, रूक्ष और ऊर्द्धगामी है। ये सब पित्त और अग्नि यदि एक हों, तो ये सब वाक्य किस प्रकार सङ्गत हुए?

इसके उत्तरमें केवल यही कहना पर्याप्त होगा, कि पित्त ही अग्निका आधार है। अन्य अन्य ग्रन्थोंमें इसका विशेष प्रमाण भी मिलता है। अग्नि और पित्त दोनों ही विभिन्न गुणयुक्त हैं। ऐसे विवाद पर यही स्थिर हुआ है, कि तेजोमय पित्तको उष्मा ही अग्नि है। कुक्षिस्थित वह अग्नि धमनीद्वारा सारे शरीरमें सञ्चारण करती है। यही कायाग्नि, कायोष्मा, पक्ता, जीवन और अनन्यगति आदि नामोंसे पुकारी जाती है।

फिर किसी किसीका कहना है, कि नाभिके किञ्चित वामपार्श्वमें सोममण्डल है। इस सोममण्डलके भीतर सूर्यमण्डल है। इस सूर्यमण्डलमें काचपात्राच्छादित दीपकी तरह जरायु द्वारा आच्छादित हो कर अग्नि रहती है।

वैद्यक मधुकोषमें लिखा है, कि संयुक्त द्रवभाग और तेजोभाग इस समुदायात्मक पित्तका तेजोभाग ही अग्नि है। इस कारण पित्तको भी अग्नि कहा जाता है। जिस प्रकार अत्यन्त अग्निसन्तप्त लौह है, उसी प्रकार तेजोयुक्त पित्त ही अग्नि नामसे प्रसिद्ध है। स्थूल अग्नि पित्तसे भिन्न पदार्थ है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

शरीरको नाभिके मध्य सोममण्डल है जिसके भीतर फिर सूर्यमण्डल है। उसी सूर्यमण्डलके मध्य प्रदीपकी तरह मनुष्यको जठराग्नि रहती है। जिस प्रकार सूर्य स्वर्गमें रह कर अपनी प्रखर किरण द्वारा समस्त पल्वल और सरोवरादिको सुखा देता है, उसी प्रकार देहियोंकी नाभिसंश्रित अग्निशिखा द्वारा समस्त भुक्त-द्रव्य परिपाक होता है। यह अग्नि स्थूलकाय व्यक्तियोंके शरीरमें यवप्रमाण और क्षीणकायोंके शरीरमें तिलप्रमाण है। कृमि कीट और पतङ्ग आदिके शरीरमें यह बालुका कण प्रमाणमें रहती है।

रञ्जक पित्त—जिस पित्त द्वारा आहारजात रस रञ्जित अर्थात् रक्ताकारमें परिणत होता है, उसीका नाम रञ्जक पित्त है।

साधक पित्त—जिस पित्त द्वारा बुद्धि मेधा और स्मृति उत्पन्न होती है, उसे साधक पित्त कहते हैं।

आलोचक पित्त—जिस पित्त द्वारा रूपदर्शनक्रियाका निर्वाह होता है, उसका नाम आलोचक पित्त है।

भ्राजक पित्त—भ्राजक पित्त शरीरकी शोभाको बढ़ाता और प्रलेपन तथा अभ्यङ्ग द्रव्यको पचाता है।

पित्तप्रकोपका कारण—कटुरस, अम्लरस और लवणयुक्त द्रव्य, उष्णद्रव्य, विदाही (जिस द्रव्यका सेवन करनेसे अम्लोद्गार, पिपासा और हृदयमें दाह होता है तथा देरीसे पचता है, उसे विदाही कहते हैं), तीक्ष्ण द्रव्यभोजन, क्रोध, उपवास, रौद्र, स्त्रीप्रसङ्ग, क्षुधा और तृष्णाका वेग धारण, व्यायाम अर्थात् मद्यप्रभृतिका सेवन करनेसे पित्त बिगड़ जाता है।

शरत् और ग्रीष्म ऋतुमें दो पहर दिन और दो पहर रातको पित्तका प्रकोप होता है। उरद, तिल, कुलथी, मछली, भैंसका दही, और गायका मट्ठा सेवन करनेसे पित्त बिगड़ जाता है।

पित्त-प्रशमनका उपाय—तिक्त, मधुर और कषाय रस, शीतलवायु, छाया, रात्रि, व्यजन, चन्द्रकिरण, भूमिगृह, शीतलवायु, क्षीरा, जल, पद्म, स्त्रीका गात्रस्पर्श, घृत, दुग्ध, विरेचन, परिषेक, रक्तमोक्षण और प्रदेह आदि (आहार, विहार और औषध सेवन) द्वारा पित्त प्रशमित होता है।

पित्तकी वृद्धि होनेसे मल, मूत्र, नेत्र और शरीर पीतवर्ण, इन्द्रियकी क्षीणता, शीताभिलाष, सन्ताप, मूर्च्छा और सूत्रकी अल्पता होती है। पित्तक्षीण होनेसे तिल, माष और कुलथी, पिष्टकादि, दहीका पानी, अम्लशाक, तक्र, काँजी, दही, कटु अम्ल और लवणरस, उष्ण द्रव्य, तीक्ष्ण और विदाहिद्रव्य, क्रोध, उष्णकाल तथा उष्णदेश आदि सेवन करनेकी पित्तक्षीण रोगीकी इच्छा बनी रहती है। ऐसी अवस्थामें पित्तवर्द्धक वस्तुका सेवन करनेसे पित्तकी शमता होती है।

"पित्तप्रकृतिको यादृक् तादृशोऽथ निगद्यते।
अकालपलितो गौरः क्रोधी स्वेदी च बुद्धिमान्॥
बहुभुक् ताम्रनेत्रश्च स्वप्ने ज्योतींषि पश्यति।
एवंविधो भवेद्यस्तु पित्तप्रकृतिको नरः॥" (भावप्र०)

पित्तप्रकृतिक लोगोंका विषय लिखा जाता है। केशका अकालमें शुक्लवर्ण होना, सर्वदा स्वेदनिर्गम और चक्षु रक्तवर्ण, गौर वर्ण, क्रोधशील, बुद्धिमान्, अधिक भोजन शक्तिसम्पन्न और स्वप्नावस्थामें नक्षत्रादि ज्योतिर्मय पदार्थ दर्शन ये सब लक्षणक्रान्त होनेसे पित्तप्रकृतिक जानना होगा।

पित्त स्वयं अग्निस्वरूप है, इसकी उत्पत्ति अग्निसे होती है। पित्ताधिक्यवशतः व्यक्तिमात्र ही तीव्र तृष्णा और तीक्ष्णक्षुधाविशिष्ट हो जाता है, उसका अङ्ग गौरवर्ण और स्पर्श करनेसे उष्ण मालूम पड़ता है। हस्त, पद और चक्षु ताम्र वर्णके-से हो जाते हैं तथा वह पराक्रमशाली, अभिमानी, केश पिङ्गलवर्ण और शरीर अल्परोमविशिष्ट दिखाई देता है। स्त्रीप्रसङ्ग, पुष्पमाल्यादिधारण और सुगन्धित द्रव्योंका अनुलेपन करनेकी उसकी प्रबल इच्छा रहती है तथा वह सच्चरित्र, पवित्र हृदय, आश्रित-प्रतिपालक, सम्पत्तिविशिष्ट, साहसी और बलवान् होता है। भीत शत्रुओंकी भी सहायता पहुंचानेसे वह कुण्ठित नहीं होता। मेधावी और उसकी सन्धिका बन्धन तथा गात्रमांस अत्यन्त शिथिल भावापन्न हो जाता है। ऐसा मनुष्य प्रायः स्त्रियोंका प्रिय नहीं होता। वह अल्प शुक्रविशिष्ट और अल्प रमणेच्छु होता है। पित्तकी अधिकतासे बाल सफेद हो जाते हैं और व्यङ्ग तथा नीलिकारोग उत्पन्न होता है। वह मधुर, कषाय, तिक्त और शीतल द्रव्य खाना पसन्द करता है। गर्मी बरदाश्त नहीं कर सकता, शरीरसे हमेशा दुर्गन्धित पसीना निकलता रहता है। मल, क्रोध, पान, भोजन और ईर्षा अधिक रहती है। स्वप्नमें वह कर्णिकाका फूल, पलाशफूल, दिग्दाह, उल्कापात, विद्युत, सूर्य और अग्नि देखता है। उसका चक्षु पिङ्गलवर्ण, चञ्चल, सूक्ष्म और अल्प अक्षिलोमविशिष्ट होते हैं। चक्षुमें ठण्ढ लगनेसे सुख मालूम होता है, क्रोध आने पर, शराब पीने पर और सूर्यकी किरण लगने पर चक्षु उसी समय लाल हो जाते हैं। पित्तप्रकृतिक व्यक्ति मध्यम परमायुविशिष्ट और मध्यम बलयुक्त होते हैं। शास्त्रादिमें पण्डित और क्लेशभीरु, व्याघ्र, भल्लूक, बानर, बिड़ाल और भूतादिको पित्तप्रकृतिका बतलाया है। (भावप्र० पूर्व और मध्यख०)

चरकमें पित्तका विकार ४० प्रकारका निर्दिष्ट हुआ है। विस्तार हो जानेके भयसे उसका उल्लेख नहीं किया गया। (चरक सू० ४० अ० और विमान ८ अ०)

राजवल्लभमें पित्तगुणको जगह इस प्रकार लिखा है,—

"सर्वं पित्तमपस्मार कुष्ठदुष्टव्रणापहम्।
चक्षुष्यं कटुतीक्ष्णोष्णमुन्मादक्रिमिनाशनम्॥"
(राजवल्लभ)

सभी प्रकारका पित्त अपस्मार, कुष्ठ और दुष्टव्रणनाशक, चक्षुष्य, कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, उन्माद और क्रिमिनाशक है।

पाश्चात्यके मतसे पित्त शरीराभ्यन्तरस्थ तेजोवृद्धिकर धातुविशेष है। संस्कृतमें इसका दूसरा नाम पाचकाग्नि

भी है। इसका वर्ण पीत और नील है। यह रस तिक्ताम्ल सारक, उष्ण और द्रव-पदार्थ है। आयुर्वेदके मतसे पित्तका यथायथ लक्षण ऊपर लिखा जा चुका है। डाक्टरी मतसे शरीरमें पित्तरसका सञ्चार होनेसे नाना प्रकारकी पीड़ा उत्पन्न होती है ; किन्तु वह रसाधिक्य साधारणतः यकृतके मध्य आकृष्ट हो कर विशेष विशेष रोग उत्पादन करता है। वर्षाऋतुके बाद अर्थात् भाद्र मासमें साधारणतः मनुष्यके शरीरमें पित्तकी अधिकता देखी जाती है। इसीसे उक्त समयमें दोपहर दिन और दोपहर रातको भोजन करना मना है। सूर्योदयके कुछ पहले जलयोग नहीं करनेसे पित्त उत्पन्न होता है। भाद्रमासमें खीरा खानेसे पित्तवृद्धि होती है।

किस किस औषधका व्यवहार करनेसे पित्तवृद्धि और पित्तनाश होता है, नीचे उसकी एक तालिका दी गई है,—

पित्तनिःसारक औषध (Cholagogues) यथा—ब्लु-पिल, ग्रे-पाउडर, कैलमेल, पडफिलन, एलोज, जुलाप, कलसिन्थ, इलचिकम्, इपिकाकुआना, नाइट्रो-हाइड्रोक्लोरिक एसिडडिल, सलफेट और फस्फेट आव-सोडियम, बेंजयेट, आव सोडियम वा एमोनियम, सालि-सिलेट आव सोडियम, इउनिमिन, आइरिडिन, इनिडि-लिन, जगन्याण्डिन्, क्रोटनआएल, सेना, टाटारेट आव सोडा, टैराकसेकम्, हाइड्राष्टिन इत्यादि।

पित्तदमनकारक औषध (Anti-cholagogues) अफीम, मर्फिया, एसिटेट आव लेड प्रभृति।

पित्तनाशके लिये देशीयमतानुसार कितनी टोटका औषधियां व्यवहृत होती हैं। पित्तजनित हस्तपदके प्रदाहमें हिंचा सागका रस और कच्चा दूध हितकर माना गया है। धनिये और पलतेको एकत्र सिद्ध कर उसका प्रतिदिन सेवन करनेसे तथा चिरायतेका जल और मिश्रीका शरबत और नीमकी पत्तियां आदि तिक्त द्रव्यों-का व्यवहार करनेसे पित्तनाश होता है।

पित्तस्रावकी स्वल्पता वा अवरुद्धताके कारण रक्तके साथ पित्त मिल कर चक्षुके योजकत्वक्, चर्म और मूत्रको पीला बना देता है। किसी किसी चिकित्सकके मतसे पित्तका वर्णज पदार्थ और पित्ताम्ल यकृतमें उत्पादित होता है। यदि अवरुद्धताके कारण पित्तकोष वा पित्तकी नलियाँ पित्तसे परिपूर्ण हो जांय, तो शिरा और लसीका नाड़ी (Lymphatic) द्वारा पित्तका रंग शोषित हो कर चर्म और निःसृत पित्तको विकृत कर देता है। अपरापर चिकित्सकोंके मतसे स्वभावतः ही शोणितमें पित्तका वर्णज पदार्थ रहता है और वह यकृत हो कर निकल जाता है। यदि किसी कारणवश यकृतकी क्रियाका व्यतिक्रम हो जाय, तो रक्तमें क्रमशः वर्णज पदार्थ सञ्चित हो कर सम्पूर्ण शरीरको पीतवर्ण बना देता है। हेपाटिक डाक्ट वा यकृतप्रणालीके मध्य पित्ताश्मरी वा गाढ़े पित्तके अवरुद्ध अवस्थामें रहनेसे पाण्डु रोगकी उत्पत्ति होती है।

पेरि हिपाटाइटिस (Peri Hepatitis) वा यकृ-तोष रोगमें यकृतके आवरक झिल्ली और ग्लीसन्स कैपसिउलमें या कभी लिगेमेण्टके मध्य जलन दे कर स्फोटक उत्पन्न होता है। स्फोटकके बीचकी पीप रक्त पित्तके मेलसे विकृत हो कर नाना वर्णोंकी दीख पड़ती है। सपुरेटिभ हिपाटाइटिस (Suppurative Hepatitis) रोगमें यकृतके हिपाटिक डाक्टके मध्य पित्तपथरीके संस्थापन हेतु पित्तकोषमें जलन और पीपका सञ्चार होता है। पित्तकोषमें जलन देनेसे जो स्फोटक पैदा होता है वह मठाकृति (Pyriform)-सा दीख पड़ता है। पित्ताधारका प्रबल प्रदाह होनेसे शरीरमें तरह तरहकी पीड़ा आ पहुंचती है। पित्तपथरी द्वारा सिस्टिक डाक्ट अवरुद्ध होनेसे उक्त व्याधि होनेकी सम्भा-वना है। इस समय पित्ताधारके निकट अत्यन्त वेदना और कुछ उच्चता मालूम होती है। स्पर्श करनेसे वेदना बढ़ती है और अभ्यन्तरस्थ तरल पदार्थकी अवनति और वृद्धि समझी जाती है। पीछे उनके मध्य पीपका सञ्चार होनेसे शीत और कम्प द्वारा ज्वर आ जाता है। पित्ताधार जब पीपसे भर जाता है, तब यह कभी कभी विदीर्ण हो कर गुरुतर हो जाता है। पित्ताधारमें जलन देनेके पहले पित्तपथरीसञ्चयके सभी लक्षण पहुंच जाते हैं। किन्तु कमला अथवा यकृतका विवर्द्धन नहीं देखा जाता।

पित्ताधारके बहुकालस्थायी प्रदाह वा शोथरोग

(Hydrops Vesicae Felleae)-का कारण–सिष्टिक-डाक्ट अधिक दिन तक अवरुद्ध रहनेसे पित्ताधारके मध्य सिरम् वा म्युकोइडल रसके जैसा तरल पदार्थ सञ्चित होता है और उसीसे वह क्रमशः वृद्धि पा कर फैल जाता है। इस समय पित्ताधारके निकट एक मठाकार (Pyriform) उच्चता दीख पड़ती है। इस स्थान पर आघात करनेसे रोगी कमलामें वेदना अनुभव करता है। ज्वर अथवा यकृतका विवर्द्धन नहीं रहता। किन्तु बीच बीचमें उक्त सञ्चित रसके सूख जाने पर पित्ताधार सङ्कुचित हो जाता है।

चिकित्सकगण पित्त (Bile) की परीक्षामें निम्न-लिखित दो उपायका अवलम्बन करते हैं;—

जिमेलिन्स टेष्ट (Gemelin's test)-एक कांचके बरतनमें पित्तयुक्त मूत्रको कुछ बूंद रख कर उसमें एक बूंद नाइट्रिकएसिड डालनेसे वह रामधनुषके जैसा विविध वर्णका हो जाता है अर्थात् पहले सब्ज, पीछे नील और अन्तमें लोहित वर्ण हो कर अदृश्य हो जाता है।

पेटेन्कफार्स टेष्ट (Pettenkofer's test)—एक ट्यूबमें कुछ मूत्र ले कर उसमें ५।७ बूंद ष्ट्रंसलफि-उरिक एसिड और १।२ ग्रेन चीनी मिलावे। पीछे उस ट्यूबमें धीमी आंच दे। यदि वह पहले लाल और पीछे बैंगनी रंगमें पलट जाय, तो उसमें पित्ताम्ल है, ऐसा जानना चाहिये। मूत्रमें सिष्टिन, लिवसिन और टाइरोसिन रहनेसे मूत्रका निम्नभाग सवर्ण दीख पड़ता है।

आयुर्वेदके मतसे पित्तज रोग दो प्रकारका है—शीतपित्त और अम्लपित्त। शीतपित्तरोगमें हरिद्राखण्ड और वृहत् हरिद्राखण्ड ही उत्कृष्ट औषध है। अलावा इसके हरिद्रा और दूर्वाको एक साथ पीस कर प्रलेप देनेसे अथवा यवक्षार और सैन्धवसंयुक्त तैल लगानेसे रोग नष्ट हो जाता है। गणियारीका मूल पीस कर घृतके साथ ७ दिन सेवन करनेसे अथवा गव्यघृत २ तोला और मिर्च २ तोला सबेरे खानेसे शीतपित्त आरोग्य होता है। उदर्द (Erysipelas) आदि पित्तज रोगोंमें भी ये सब प्रयुक्त हो सकते हैं। अम्लपित्ताधि-कारमें दशाङ्ग, पञ्चनिम्बादि चूर्ण, अविपत्तिकर चूर्ण, पिप्पलीखण्ड, वृहत् पिप्पलीखण्ड, शुण्ठीखण्ड, शतावरी घृत, नारायणघृत, सितामण्डूर, सौभाग्यशुण्ठीमोदक, अम्लपित्तान्तकमोदक, सर्वतोभद्रलौह, पानीय भक्तवटी और वटिका, वृहत् क्षुधावतीगुड़िका, स्वल्पक्षुधावती गुड़िका, लीलाविलास, अम्लपित्तान्तकलौह, पञ्चानन-गुड़िका, भास्करामृताभ्र, त्रिफलामण्डूर और बिल्वतैल आदि औषधोंका यथायोग्य मात्रामें सेवन वा मर्दन करनेसे विशेष उपकार होता है। ऊर्द्धगत अम्लपित्त रोगमें वमन और अधोगत अम्लपित्तमें मृदु विरेचन, स्नेहक्रिया और अनुवासन यथार्थमें व्यवस्थेय है। चिरोत्पन्न अम्लपित्तमें निरूहण (पिचकारी)-का प्रयोग करे। इस रोगमें तिक्तप्रधान आहार और पानीय विशेष उपकारक है। कफप्रधान अम्लपित्तमें पटोलपत्र, निम्ब पत्र, मदनफल, मधु और सैन्धवलवण द्वारा वमन करावे। विरेचनकी जरूरत होने पर मधु और आंवलेके रसके साथ निसोथका चूर्ण खानेको दे। वातप्रधान अम्ल-पित्तमें चीनी और मधुके साथ खोईका चूर्ण खिलावे। भूसी रहित जौ, अडूसका पत्ता और आँवला कुल मिला कर दो तोला, पाकार्थ जल ऽ॥ सेर, शेष आध पाव प्रक्षेप दारचीनी, तेजपात, इलायचीका चूर्ण और मधु इस औषधका पान करनेसे अम्लपित्त दूर हो जाता है। इसका पथ्य मूंगका जूस है। पटोलपत्र और सोंठके समान भागमें अथवा उक्त द्रव्यको धनियेके साथ सिद्ध करके काढ़ा सेवन करनेसे कफपित्त आरोग्य हो जाता है। पटोलपत्र, सोंठ, गुलञ्च और कटकीके समान भागको या जौ, पीपर और पटोलपत्र कुल मिला कर दो तोलेको सिद्ध करके मधुके साथ काढ़ा पीनेसे अम्लपित्त जनित शूल, दाह, वमि, अरुचि आदि रोग जाते रहते हैं। इस रोगमें पुराना चावल, जौ, गेहूं, जंगली मांसका जूस, गरम जलको ठंढा करके पीना, चीनी और मधुके साथ सत्तू, बेल, करेला, परवल, बेंतका अग्रभाग, पक्का कुम्हड़ा, मोचा, वास्तुकशाक, अनार आदि सभी प्रकारके तिक्तद्रव्य पथ्य हैं

पित्तज्वरमें (Bilious fever) जौ, परवल, पर्पटादि काथ, धान्यशर्करा आदि औषध देवे। पित्तज्वरसन्ताप

व्यक्तिके लिये शैत्यक्रिया उपकारी है। पित्तज्वरीको चित करके सुला दे। पीछे उसके नाभिमूल पर तांबे या कांसेके बरतनसे ठंढा जल गिराते रहे, ऐसा करनेसे दाहशक्ति घट जाती है। पलाशपुष्प वा नीमकी हरी पत्तियोंको कांजीके साथ पीस कर फेन निकाले। पीछे इस फेनको रोगीके शरीरमें लगानेसे दाह निवृत्त हो जाता है।

वातपित्त ज्वरमें नवाङ्गक्काथ, गुडूच्यादि क्काथ, बृहत् गुडूच्यादि, वनचन्दनादि और मुस्तादि औषधका प्रयोग कर विशेष लाभ पाया गया है।

पित्ताक्त ज्वरमें अमृताष्टक और कण्टकार्यादि औषधके प्रयोगसे दाह, तृष्णा, अरुचि, वमि, काश और पार्श्वमूल दूर होता है। पाकाशयसे जब रक्त निकलता है, तब उसे रक्तपित्त (Haematemesis) कहते हैं। रक्तपित्त देखो।

पित्तकफज्वर (सं० पु०) पित्तश्लेष्मज्वर, पित्त और कफका बुखार।

पित्तकर (सं० त्रि०) पित्तजनक द्रव्य, पित्तको बढ़ाने या उत्पन्न करनेवाला द्रव्य। जैसे, बांसका नया कल्ला आदि।

पित्तकास (सं० पु०) पित्तजन्य कासरोगभेद, पित्तके दोषसे उत्पन्न खांसी या कास रोग। छातीमें दाह, ज्वर मुंह सूखना, मुंहका स्वाद तीता होना, प्यास लगना, शरीरमें जलन होना, खांसीके साथ पीला और कड़वा कफ निकलना तथा क्रमशः शरीरका पाण्डुवर्ण होते जाना आदि इस रोगके लक्षण हैं।

पित्तकासान्तकरस (सं० पु०) औषधविशेष, एक प्रकारकी दवा। प्रस्तुत प्रणाली—ताम्र, अभ्र और कान्तलौहको कालकासुन्दके रसमें पीस कर बकपुष्प और अम्लवेतसके रसमें दो दिन तक भावना देना चाहिए। इस औषधके सेवनसे पित्तकास, श्वासकास, अग्निमान्द्य और क्षयरोग जाता रहता है। (रसेन्द्र० कासाधि०)

पित्तगदिन् (सं० त्रि०) पित्तगद-अस्त्यर्थे इनि। पित्तरोगी, पित्तरोगयुक्त, जिसे पित्तकी बीमारी हुई हो।

पित्तघ्न (सं० त्रि०) पित्तं हन्ति, हन् टक्। १ पित्तनाशक द्रव्य, जिसके सेवनसे पित्त जाता रहे। मधुर, तिक्त और कषाय द्रव्यमात्र पित्तघ्न हैं। (क्ली०) २ घृत, घी।

पित्तघ्नी (सं० स्त्री) पित्तघ्न स्त्रियां टाप्। गुडूच।

पित्तज्वर (सं० पु०) पित्तनिमित्तको ज्वरः। पित्तजन्यज्वर, पित्तवृद्धिसे उत्पन्न ज्वर, वह ज्वर जो पित्तके दोष या प्रकोपसे उत्पन्न हो, पैत्तिक ज्वर।

कोमल नारियलके सेवनसे पित्तज्वर और मूत्रदोष जाता रहता है। (राजनि०)

भावप्रकाशमें लिखा है, कि इस रोगमें पित्तवृद्धि होती है। आहार और विहार द्वारा वर्द्धित पित्त आमाशयमें जाता है और कोष्ठस्थ अग्निको वहांसे निकाल कर बाहरको ओर फेंकता तथा रसको दूषित कर ज्वर पैदा करता है।

यही कारण है, कि पित्तपङ्गु (जड़पिण्ड) कोष्ठस्थित अग्निको बाहर निकाल नहीं सकता। वैद्यकशास्त्रमें लिखा है, कि पित्त, कफ, मल और धातु ये सब गतिशक्तिहीन हैं। ये मेघकी तरह वायु द्वारा जिस स्थान पर लाये जाते हैं उसी स्थान पर रह जाते हैं। पित्त वायुकी सहायतासे ज्वर उत्पादन करता है।

पित्तज्वर होनेके पहले दोनों आखोंमें जलन और ज्वरका सामान्य लक्षण दिखाई पड़ता है। यह ज्वर अत्यन्त तीक्ष्ण और वेगवान् है। अतीसार, निद्राकी अल्पता, कण्ठ, ओष्ठ, मुख और नाकका पका-सा जान पड़ना, पसीना निकलना, प्रलाप, मुंहका स्वाद कड़ुवा हो जाना, मूर्च्छा, दाह, मत्तता, प्यास, मल, मूत्र और आंखोंमें हल्दीकी-सी रंगत होना तथा भ्रम होना, आदि इस ज्वरके लक्षण हैं। इस ज्वरमें जब पित्त कफके स्थानमें जाता है, तब वमन होता है। सुश्रुतके मतानुसार पित्तज्वरमें दश दिन तक उपवास कर औषध सेवन विधेय है।

तिक्तादिक्काथ, पर्पटादि क्काथ, द्राक्षादिक्काथ, पटोलादि क्काथ, गुडूच्यादि क्काथ, ह्रीवेरादि क्काथ प्रभृति औषधके सेवनसे पित्तज्वर प्रशमित होता है। अत्यन्त दाह होनेसे सुशोभित कुचयुगसमन्विता प्रशस्तनितम्बवती चन्दनचर्चिता शीतलाङ्गी स्त्रीके आलिङ्गनसे दाह जाता रहता है। अन्यान्य विशेष विवरण ज्वर शब्दमें देखो।

पित्तड़कल—बम्बईप्रदेशके बिजापुर जिलान्तर्गत बदामी तालुकका एक ग्राम। यह अक्षा० १५° ५७´ उ० और देशा० ७५° ५२´ पू० बदामी शहरसे ८ मील पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या हजारसे ऊपर है। यहां हिन्दू और जैनके बहुत मन्दिर हैं जिनमें १७वीं वा १८वीं शताब्दीके लेख उत्कीर्ण हैं। अनेक मेधावियोंका कहना है, कि ये सब मन्दिर द्राविड़-भास्करशिल्पके प्रकृष्ट दृष्टान्त हैं।
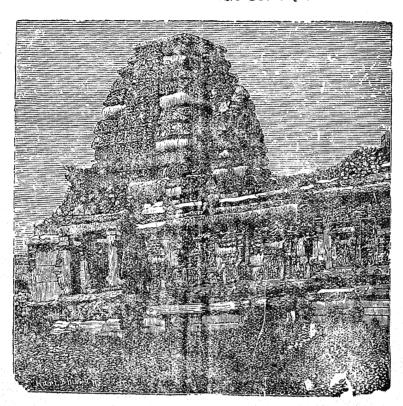
पित्तड़कलमें पापनाथका प्राचीन मन्दिर।

पित्तद्राविन् (सं० पु०) पित्तं द्रावयतीति द्रु-णिच्, णिनि। १ मधुर जम्बीरवृक्ष, मीठा नीबू। (त्रि०) २ पित्तद्रवकारिमात्र, पित्तको पिघलानेवाला।

पित्तधरा (सं० स्त्री०) सुश्रुतोक्त कलाभेद। सुश्रुतके अनुसार पक्वाशय और आमाशयके बीचमें स्थित एक कला या झिल्ली है। उसी झिल्लीको ग्रहणी कहते हैं।

पित्तनाड़ी (सं० स्त्री०) १ दन्तमलगतरोग। २ पित्तजन्य नाड़ीव्रण, एक प्रकारका नाड़ीव्रण जो पित्तके कुपित होनेसे पैदा होता है।

पित्तपथरी (हिं० स्त्री०) एक रोग जिसमें पित्ताशय अथवा पित्तवाहक नालियोंमें पित्तकी कंकड़ियां बन जाती हैं। अङ्गरेजीमें इसे गैलष्टोन (Gallston) वा बिलियरी कैलकुली (Biliary calculi) कहते हैं। ये कंकड़ियां पित्तके अधिक गाढ़े हो जाने, उसमें कोलष्टाइट नामक द्रव्यको अधिकता अथवा उसके उपादानोंमें कोई विशेष परिवर्तन होनेसे उत्पन्न होती हैं। फिर भी पित्तमें अधिक पित्ताम्ल रहनेसे सोडाघटित लवणसमूह-के मध्य बहुत परिवर्तन होता है और कोलष्टीन तथा पित्त रंग अधःक्षेप हो कर पित्तपथरीका मूलस्वरूप बन जाता है। इसके अलावा वयोवृद्ध, स्त्री, शिथिल-स्वभाव, साधारणतः कोष्ठबद्ध, बहुत मांस खाना वा शराब पीना, यकृत्, पित्ताधार वा पित्तनालीको पीड़ाएं, अत्यन्त मनस्ताप, कस कर कपड़े पहनना और बार-म्बार गर्भ प्रभृति जितने विषय इसके पूर्व कारण हैं।

प्रधानतः उक्त पथरी पित्ताधारमें उत्पन्न होती है, किन्तु कभी कभी यह यकृत् और पित्तनालीके अभ्यन्तर भी देखी जाती है। एकसे सौ या हजार पित्तपथरी पित्ता-धारमें रह सकती हैं। वे सब प्रायः गोल होती हैं, पर

कभी चिपटी भी देखी जाती हैं। पित्तनालीके मध्य होनेसे यह दीर्घाकार और शाखाप्रशाखाविशिष्ट होती हैं। यह देखनेमें पाटल वा पीताभ और तरुणावस्थामें कुछ जलमग्न होती हैं। किन्तु सूखने पर सभी पानीके ऊपर बहने लगती और छूनेसे तैलाक्त-सी मालूम पड़ती हैं। रासायनिक परीक्षा द्वारा इसमें प्रायः कोलस्ट्रीन, पित्तरंग तथा कुछ लाइम और मैगनीसिया पाई जाती है। विशेष परीक्षा कर देखनेसे फसफेटस और कार्बनेटस एवं लोहा, ताँबा और मैंगनिस आदि धातु दिखाई पड़ती है।

लक्षण—पित्ताधार वृहत्, दृढ़ और कहीं कहीं लोष्ट्राकार और छूनेसे थैलीमें छोटी छोटी कंकड़ी-सी मालूम होती है। इस रोगमें आहारके अन्तमें अथवा अङ्गसञ्चालसमें पीड़ा और पित्ताशयमें जलन होती है तथा उसमें पीप जमा हो कर यह फोड़ाके रूपमें हो जाती है। कभी कभी फट कर पेरिटोनाइटिस भी पैदा करती है। कुछ समय तक इस रोगकी स्थिति होनेसे कमला, आँतोंके कार्यमें रुकावट और यकृत्‌में फोड़ा आदि अन्य रोग होते हैं। दुर्बलप्रकृति मनुष्यके यकृत्‌में वेदनाजनित हेपटलजिया (Hepatalgia) रोग होता है। पित्ताशयमें पित्तपथरीका होना ही इसका एकमात्र कारण है। आँतोंमें पित्तपथरीके जानेसे जो वेदना होती है, उसे पित्तशूल कहते हैं।

पित्तशूल देखो।

यह रोग आयुर्वेदीय ग्रन्थोंमें नहीं मिलता, इसका पता पाश्चात्य डाक्टरोंने लगाया है।

पित्तपाण्डु (सं० पु०) पित्तजन्य पाण्डुरोग, एक पित्तजनित रोग। इसमें रोगीका मूत्र, विष्ठा, नेत्र पीला हो जाता है और उसे दाह, तृष्णा तथा ज्वर रहता है।

पित्तपापड़ा (हिं० पु०) पितपापड़ा देखो।

पित्तप्रकृति (सं० त्रि०) जिसकी प्रकृति पित्तकी हो, जिसके शरीरमें वात और कफकी अपेक्षा पित्तकी अधिकता हो। वैद्यकके अनुसार पित्तप्रकृति व्यक्तिको भूख और प्यास बहुत लगती है। उसका रंग गोरा होता है, हथेली, तलवे और मुंह पर ललाई होती है, केश पाण्डुवर्ण और रोएं कम होते हैं, वह बहुत शूर, मानी, पुष्प चन्दनादिके लेपसे प्रीति रखनेवाला, सदाचारी, पवित्र, आश्रितों पर दया करनेवाला, वैभव साहस और बुद्धिबलसे युक्त होता है। भयभीत शत्रुकी भी रक्षा करता है, उसकी स्मरणशक्ति उत्तम होती है, शरीर खूब कसा हुआ नहीं होता, मधुर, शीतल, कड़वे और कसैले भोजन पर रुचि रहती है, शरीरसे बहुत पसीना और दुर्गन्धि निकलती है, विष्ठा भोजन, जलपान, क्रोध और ईर्ष्या अधिक होती है, वह धर्मका द्वेषी और स्त्रियोंको प्रायः अप्रिय होता है, नेत्रोंकी पुतलियां पीली और पलकोंमें बहुत थोड़े बाल होते हैं, स्वप्नमें कनेर, ढाक आदिके पुष्प, दिग्दाह, उल्कापात, बिजली, सूर्य तथा अग्निको देखता है, क्लेश, भीत, मध्यम आयु और बलवान होता है और बाघ, रीछ, बन्दर, बिल्ली, भेड़िए आदिसे उसका स्वभाव मिलता है।

पित्तप्रकोपी (सं० त्रि०) पित्तवर्द्धक पान और अन्न पित्तको बढ़ाने या कुपित करनेवाला, जिसके भोजनसे पित्तकी वृद्धि हो। तक्र, मद्य, मांस, उष्ण, खट्टी, चरपरी आदि वस्तुएं पित्तप्रकोपी हैं।

पित्तप्रवर्त्तन (सं० क्ली०) ऊर्ध्व और अधोमार्ग द्वारा पित्तनिर्गम, ऊपर और नीचे रास्ते हो कर पित्तका निकलना।

पित्तभेषज (सं० क्ली०) मसूर, मसूरकी दाल।

पित्तरक्त (सं० क्लो०) पित्तसंसृष्टं रक्तमिति मध्यलो० कर्मधा०। रोगविशेष, एक प्रकारका रोग। पर्याय—रक्तपित्त, पित्तास्र और पित्तशोणित।

विशेष विवरण रक्तपित्तमें देखो।

पित्तरोगी (सं० त्रि०) पित्तरोग अस्त्यर्थे इनि। पित्तरोगयुक्त, जिसे पित्तकी बीमारी हुई हो।

पित्तरोहिणी (सं० स्त्री०) पित्तजन्यगलरोग, गलेका एक रोग जो पित्तके बिगड़नेसे होता है।

पित्तल (सं० क्ली०) पित्तं तद्वर्णं लातीति ला-क। १ धातुविशेष, पीतल नामक धातु। पर्याय—आरकूट, रीति, पतिकावेर, द्रव्यदारु, रीती, मिश्र, आर, राजरीति, ब्रह्मरीति, कपिला, पिङ्गला, क्षुद्र, सुवर्ण, सिंहल, पिङ्गलक, पीतलक, लोहितक, पिङ्गलोह और पीतक।

ताम्र और यशद (जस्ते)के संयोगसे इसको

उत्पत्ति है। इस उपधातुमें तांबा और जस्ता मिले रहने पर भी प्रयोजनानुसार उनका भाग भिन्न भिन्न हुआ करता है। दो भाग तांबा और एक भाग जस्ता मिलनेसे साधारण पीतल तैयार होता है।* इसमें एक प्रकारका जरद पदार्थ मिलानेसे सफेद पीतल (Yellow brass) बनता है। बन्दूक आदिके लिए जो पीतल तैयार किया जाता है, उसमें १०वां भाग टीन या लोहा मिलाना पड़ता है। वर्त्तमान समयमें जिस पीतलका ज्यादा इस्तेमाल देखनेमें आता है, वह सिलेमाइन (Celamine) कार्बनेट-आव जिङ्क (Carbonate of Zinc), चारकोल (Charcoal) और पतले तांबेके चूर्णको एक साथ गलानेसे बनता है। इसका रंग जरद और बढ़िया पालिशके लायक होता है। ठंढा होने पर इसे पीट कर लम्बा किया जा सकता है, किन्तु तांबेकी अपेक्षा यह मजबूत होता है।

भिन्न भिन्न स्थानोंमें इस धातुके भिन्न भिन्न नाम हैं। चीन—होयांतुङ्ग; ओलन्दाज—(Missing, Messing, Gilkoper वा Geelkoper; फरासी—Cuivre, Jaune, Laiton; जर्मन—Messing; हिब्रु—Nehest; इटली—Ottone; लैटीन—Orichalcum, Aurichalcum; रूस—Selenoimjed; स्पेन—Laton, Azofar, मलय—कुनिङ्गन लोयाङ्ग, तम्बगकुनिङ्ग; तामिल पित्तल; तेलगू—इताड़ि।

साधारणतः पित्तल दो प्रकारका होता है, भरण और रांगा। भरण पित्तल पिङ्गलवर्ण और कठिन तथा रांगा पित्तल मृदु और स्वर्णवर्ण होता है। राजनिघण्टुके मतानुसार शुक्लवर्ण और स्वर्णवर्णके भेदसे यह दो प्रकारका है। उनमेंसे जो शुक्लवर्ण है वह स्निग्ध, मृदु, सुरङ्ग और उससे सूक्ष्म तार प्रस्तुत होता है तथा जो स्वर्णवर्ण है, वह स्वच्छ और प्रकृत रीतिका होता है।

* धातुतत्त्वविदों (Metalurgists)के मध्य पीतल धातु ले कर बहुत गोलमाल है। सैकड़े पीछे ६३ से ७१ अंश तांबा और शेष अंश जस्ता मिलानेसे बढ़िया पीतल बनता है। केवल स्थलविशेषमें उसमें १।२ भाग टीन वा सीसा मिलाया जा सकता है।

बन्दूकादिके सिवा कलकलोंमें दृढ़ पीतलकी जरूरत पड़ती है। पदक वा प्रतिमूर्त्ति बनानेमें जो पित्तल काममें आता है, उसे ब्रोंज (Bronze) कहते हैं। इसका व्यवहार बहुधा थाली, कटोरे, गिलास, गगरे, हंडे आदि बरतन बनानेमें होता है। पञ्जाब प्रदेशमें छोटे छोटे द्रव्यादि प्रस्तुत करनेके लिये वहांके अधिवासी गलानेके समय नाना भागोंमें 'क्रुच' 'बाथ' आदि निकृष्ट पित्तल प्रस्तुत करते हैं। परन्तु गगरी आदि प्रस्तुत करनेके लिए वे यूरोपसे लाये हुये पीतलकी चदरोंको काममें लाते हैं। सुमधुर बाद्यके लिए 'फूल वा खनि" और घण्टेके लिए 'रौंद्रि' नामक पीतल ढालते हैं। इस प्रकार आवश्यकीय द्रव्य बनानेके लिये देशीय कसेरे भिन्न भिन्न भागमें उसी उसी द्रव्यकी धातु प्रस्तुत करते हैं। यथा—लोकम (Gunmetal) रूपजस्ता (Pewter), कांसा (Bell-metal) इत्यादि। करताल बनानेमें पीतलके साथ रौप्यका मिश्रण आवश्यक है। पीतलको बार बार गलानेसे उसमें जस्तेका भाग कम हो जाता है और धातु अपेक्षाकृत मुलायम हो जाती है। यही कारण है, कि कसेरे लोग अकसर पुराने बरतनकी तलाशमें इधर उधर घूमा करते हैं। रांगेका भाग अधिक होनेसे पीतलमें कुछ सफेदी और सीसेका भाग अधिक होनेसे लाली आ जाती है। परन्तु इसमें यदि निकलका मेल दिया जाय, तो इसका रंग जर्मनी सिलवर (German silver)-के समान हो जाता है।

तेजसादिके लिए पित्तलके पत्तरके सिवा इससे तार तैयार किया जाता है जो चूड़ी आदि अलङ्कारका उपयोगी होता है। बारीक तार आलपीन, माथेकी पिन, सितार प्रभृति वाद्ययन्त्रादिको तन्त्रिरूपमें व्यवहृत होता है। चीन देशसे एक प्रकारका सूक्ष्म पित्तल-पत्र प्रस्तुत हो कर आता है जिसमें स्वर्णवर्ण फूल काट कर गाछ पर बैठाया जाता और विवाह तथा पार्वणादिमें बेचनेके लिए नगरों या गांवोंमें लाया जाता है। चीनवासी इस स्वर्णपुष्पसे देवादिकी पूजा भी करते हैं।

पित्तलका आयुर्वेद-सङ्क्रान्त गुणागुण और उसकी शोधनप्रणाली लिखी जाती है।

वैद्यकके मतसे इसका गुण—तिक्त, शीतल, लवण-

रस, शोधन, पाण्डु, वात, क्रमि, प्लीहा और पित्तनाशक है। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे—राजपित्तलको कपिला और ब्रह्मपित्तलको पिङ्गला कहते हैं। पीतल तांबा और जस्ता इन दोनों धातुओंको उपधातु है। सुतरां इसका गुण उपादान-कारणकी तरह संयुक्त रहनेसे इसमें अतिरिक्त गुण है। पित्तल भलीभांति विशोधित नहीं होनेसे वह विषके समान अनिष्टप्रद, किन्तु उत्तमरूपसे शोधित होनेसे वह गुणयुक्त होता है। इसका गुण—रूक्ष, तिक्त, लवणरस, शोधनकारण, पाण्डु और क्रमिरोगनाशक तथा अतिशय लेखन, गुणयुक्त नहीं है।

रसेन्द्रसारसंग्रहके मतसे—पीतल यदि शोधना हो, तो नीचे लिखी प्रणालीके अनुसार उसे शोधना चाहिए। पहले पीतलको पीट कर उस पर नमक और आकन्दके दूधका लेप चढ़ावे और तब आगमें दग्ध करे। बाद सम्हालूके पत्तोंके रसमें डाल देनेसे वह शोधित होता है।

मतान्तरसे—पित्तलके पत्तरको गोमूत्रमें डाल कड़ी आंचमें एक पहर तक पाक करनेसे उत्तम शोधन होता है।

दो गुण गन्धकके साथ पारदको घृतकुमारीके रसमें पीस कर उसे पीतलके पत्तर पर लगा दे। पीछे लवणयन्त्रमें चार पहर तक पाक करे। ठंढा हो जानेके बाद उसे चूर कर रोगविशेषमें प्रयोग कर सकते हैं।

रसेन्द्रसारसंग्रहमें इसको शोधन-प्रणाली ताम्रको तरह है। ताम्र शब्द देखो।

२ भूर्जपत्र, भोजपत्र। ३ हरिताल, हरताल। (स्त्री०) ४ शालपर्णी, सरिवन। ५ जलपिप्पली, जल पीपर। (त्रि०) ६ पित्तयुक्त। ७ पित्तवृद्धिकर, जिससे पित्तदोष बढ़े, जिससे पित्तका उभाड़ हो।

पित्तला (सं० स्त्री०) योनिरोगविशेष, योनिका एक रोग जो दूषित पित्तके कारण उत्पन्न होता है। इसका लक्षण—योनि अत्यन्त दाह और पाकविशिष्ट होती है। (सुश्रुत०)

भावप्रकाशके मतसे—जो योनि अत्यन्त दाह और पाकयुक्त हो तथा रुग्नको बहुत ज्वर हो, उसे पित्तला कहते हैं। लोहितचरा प्रभृति योनिरोग भी पित्तके दूषित होनेसे उत्पन्न होते हैं। योनिरोग देखो।

"अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता।
चतसृष्वपि चाद्यासु पित्तलिंगोच्छ्रयो भवेत्॥"

२ तोयपिप्पली, जल पीपर।

पित्तवत् (सं० त्रि०) पित्त-मतुप् मस्य व। पित्तयुक्त।

पित्तवर्ग (सं० पु०) पित्तानां वर्गः। पित्तसमूह, पञ्चविध पित्त। यथा—मत्स्य, गो, अश्व, रुरु और वहि इन पांच प्रकारके जीवोंके पित्तको पित्तवर्ग कहते हैं। मतान्तरसे—सुअर, बकरे, भैंसे, मछली और मोरके पित्त पित्तवर्गके अन्तर्गत माने गए हैं।

पित्तवल्लभा (सं० स्त्री०) कृष्णातिविषा, काला अतीस।

पित्तविदग्धदृष्टि (सं० पु०) पित्तेन विदग्धा दृष्टिर्यत्र। दृष्टिरोगविशेष, आंखका एक रोग जो दूषित पित्तके दृष्टिस्थानमें आ जानेसे होता है। इसमें दृष्टिस्थान पितवर्ण हो जाता है और साथ ही सारे पदार्थ भी पीले दिखाई पड़ने लगते हैं। दोष आंखके तीसरे पटल या परदेमें रहता है। इससे रोगीको दिनमें नहीं सुझाई पड़ता, वह केवल रातमें देखता है।

पित्तविनाशन (सं० त्रि०) पित्तघ्न, पित्तनाशक द्रव्य, पित्तको नाश करनेवाली चीज।

पित्तविसर्प (सं० पु०) पित्तजन्य विसर्परोग भेद, विसर्परोगका एक भेद। विसर्परोग देखो।

पित्तव्याधि (सं० पु०) पित्तजन्य रोग, पित्तदोषसे उत्पन्न रोग, पित्तके बिगड़नेसे पैदा हुई बीमारी।

पित्तशूल (सं० क्ली०) पित्तजन्य शूलरोग। इसका लक्षण—वायु, मूत्र और पुरीषका वेगधारण, अतिभोजन, परिपाक नहीं होने पर पुनः भोजन आदि कारणों से वायु कुपित हो कर कोष्ठदेशमें शूल उत्पन्न करती है। यह अत्यन्त कष्टदायक है। यह शूल पित्तज होनेसे तृष्णा, दाह, मद, मूर्च्छा, तीव्रशूल और शीतल द्रव्यमें अभिलाष तथा शीतल क्रियासे यातनाकी शान्ति होती है। पित्तशूलमें यही सब लक्षण देखे जाते हैं।

पित्तशूलकी चिकित्सा—पित्तज शूलमें शीतल अन्नपान और सभी प्रकारके उष्ण द्रव्य वर्जनीय हैं। जहां वेदना होती हो, वहां मणि, रजत वा ताम्रपात्रको

शीतल जलसे पूर्ण कर उसको ऊपर रख देनेसे वेदना कम हो जाती है। गुड़, धान, जौ, दूध वा घृत पान, विरेचन और जंगली मांसका भोजन विशेष उपकारक है। इस रोगमें सभी प्रकारके पित्तनाशक द्रव्योंका सेवन और पित्तवर्द्धक द्रव्योंका त्याग विधेय है। पलाशका जूस, फालसा, दाख, खजूर और जलजात द्रव्य शृङ्गाटक प्रभृतिका शर्कराके साथ पान करनेसे भारी उपकार मालूम पड़ता है। (सुश्रुत उत्तरत० ४२ अ०) शूलरोग देखो।

भावप्रकाशके मतसे इसका लक्षण—क्षार, अत्यन्त तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही, कटु और अम्लरसयुक्त द्रव्य, तैल, राजमाष, सर्षपादिका कल्क, कुलथीका जूस, सौवीर, विदग्ध द्रव्य भक्षण, क्रोध, अग्निसेवन, परिश्रम, रौद्रसेवन और अतिरिक्त मैथुन इन सब कारणोंसे पित्त प्रकुपित हो कर नाभि देशमें शूल उत्पन्न करता है। यह शूल पित्तसे उत्पन्न होता है, इस कारण इसे पित्तशूल कहते हैं। इसमें रोगीके पिपासा, दाह, स्वेदोद्गम, भ्रम और शोथ उत्पन्न होता है। मध्याह्नमें, रात्रिके मध्यभागमें, ग्रीष्म और शरत् कालमें यह रोग बढ़ जाता है। शीतकालमें शीतल उपचार और सुमधुर पथ्य शीतल द्रव्य भक्षण द्वारा यह प्रशमित होता है। (भावप्र०)

डाक्टरी मतसे, (Hepatic colic) सिष्टिक वा हिपाटिक डाक्ट हो कर अंतड़ीके मध्य पित्तपथरीके जानेसे अथवा उक्त नली हो कर गाढ़े पित्तके निकलनेसे जो वेदना उत्पन्न होती है, वही इसका कारण है। खानेके प्रायः दो घंटे बाद अर्थात् जिस समय पित्ताधारसे डिउडिनमके मध्य पित्त आता है, तथा कभी कभी अङ्ग चालनके बाद रोगी पाकाशयकी क्रियाके व्यतिक्रम हेतु उदरोर्द्ध देशमें और दक्षिणस्थ पाकयन्त्र वा यकृतकी क्रियाके व्यतिक्रम हेतु उपपशु का प्रदेशमें पर्याय क्रमसे वेदना अनुभव करता है। वह वेदना ज्वलन वा विदारणवत् है तथा शरीरके पश्चाद्भागमें और दक्षिण स्कन्ध तक फैल जाती है। हिपाटिक प्लेकसस के साथ फ्रेमिक नाभका संयोग रहनेसे उक्त प्रकारको दूरवर्त्ती वेदना उत्पन्न होती है। उदरमें मांसपेशीका आक्षेप और उसके मध्य आकृष्टवत् वेदना उपस्थित होनेसे रोगी बेचैन हो कर जमीन पर लोट जाता है। कुछ समय बाद वेदनाका ह्रास तो होता है, पर १।२ दिन तक उस स्थान पर सामान्य वेदना मालूम पड़ती है। वेदनाके समय उक्त स्थान पर दबाव देनेसे वेदना बहुत कुछ दूर हो जाती है। सिष्टिक डाक्टसे कामन डाक्टमें पित्तपथरीके छूट आनेसे भी वेदना घट जाती है। यदि उक्त पदार्थ फिरसे डिउडिनमके निकट आवे, तो वेदना बढ़ जाती है। एक बड़ी पित्तपथरीके निकलनेके बाद बहुत सी छोटी छोटी पथरियां ऐसे सुयोगमें बाहर निकल आती हैं। अलावा इसके कभी कभी पित्ताधारके मध्य पित्तपथरीके फिरसे आनेसे वेदना सहसा उपशमित होती है। अन्यान्य लक्षणोंके मध्य वमन, शीत, कम्प, मूर्च्छा और आक्षेप तथा सामान्य जण्डिस् वर्त्तमान रहता है। रोग कठिन होने पर वमन, हिक्का, हिमाङ्ग और अन्यान्य गुरुतर लक्षण दिखाई देने लगते हैं। यदि अनुसन्धान किया जाय, तो मलके साथ पित्तपथरी पाई जा सकती है। इस समय ज्वर कुछ भी नहीं रहता।

इस रोगमें आरोग्य होनेकी सम्भावना ही अधिक है। कभी कभी उत्कट उपसर्ग हो जाता है। पित्तपथरीको निकालनेके लिये मृदुविरेचकका प्रयोग आवश्यक है। वेदना दूर करनेके लिये बहिःस्थान पर फोमेण्ट, पुलटिस, लिनिमेण्ट बेलेडोना वा ओपियाई मर्दन एवं आभ्यन्तरिक बेलेडोना, अफीम और हाइओसायमस आदि व्यवस्थेय हैं। किसी किसी चिकित्सकका मत है, कि आलिभआयल, टार्पेण्टाइन, इथरमिक्श्चर, क्लोरोफारम और क्षारयुक्त औषध तथा लिथुया आदि कई प्रकारके जलका व्यवहार करनेसे पित्तपथरी गल जाती है। हिमाङ्ग, वमन आदि लक्षण उपस्थित होने पर उत्तेजक औषधका प्रयोग करे। अत्यन्त यन्त्रणा उपस्थित होने पर रोगीको मर्फिया और क्लोरल-हाइड्रेसका सेवन करावे। डा० प्राउटने बाइकार्बनेट आव सोडाको उष्ण जलके साथ सेवन करानेमें विशेष उपकार पाया है। यदि पीपका सञ्चार हो जाय, तो पित्तपथरीको ट्रोकर वा अस्त्र द्वारा काट डाले। पित्ताधारसे पित्तपथरीको निकालनेके लिये वर्त्तमान कालमें कलिसिष्टोटमि आपरेसनका आरम्भ हुआ है।

पित्तश्लेष्मज्वर (सं॰ पु॰) पित्तकफप्रधान ज्वरभेद, वह ज्वर जो पित्त और कफ दोनोंकी अधिकता अथवा प्रकोपसे हुआ हो। मुखका कड़ुवापन, तन्द्रा, मोह, खांसी, अरुचि, तृष्णा, क्षणिकदाह, और कुछ ठंढा लगना आदि इसके लक्षण हैं।

पित्तश्लेष्मोल्वण (सं॰ पु॰) एक प्रकारका सन्निपात ज्वर। इसमें शरीरके भीतर दाह और बाहर ठंढा रहता है। प्यास बहुत अधिक लगती है, दाहिनी पसलियों, छाती, सिर और गलेमें दर्द रहता हैं, कफ और पित्त बहुत कष्टसे बाहर निकलता है। मल पतला हो कर निकलता है, सांस फूलती है और हिचकियां आती हैं।

पित्तसंशमनवर्ग (सं॰ पु॰) पित्तशान्तिकर द्रव्यगण भेद, ओषधियोंका एक वर्ग या समूह जिसमेंकी ओषधियां प्रकुपित पित्तको शान्त करनेवाली मानी जाती हैं। द्रव्यगण—चन्दन, रक्तचन्दन, नेत्रबाला, खस, अर्कपुष्पी, बिदारीकन्द, सतावर, गोंदी, सिवार, सफेद कमल, कुईं, नीलकमल, केला, कंवलगट्टा, दूब, मरोरफली (मूर्वा), काकोल्यादिगण, न्यग्रोधादिगण और तृणपञ्चमूल। (सुश्रुत सूत्रस्थ॰ ३९ अ॰)

पित्तस्थान (सं॰ क्ली॰) शरीरके वे पांच स्थान जिनमें वैद्यकग्रन्थोंके अनुसार पाचक, रञ्जक आदि पांच प्रकारके पित्त रहते हैं। ये स्थान आमाशय-पक्वाशय, यकृत्प्लीहा, हृदय, दोनोंनेत्र और त्वचा हैं।

पित्तस्राव (सं॰ पु॰) नेत्रसन्धिगत रोगभेद, एक नेत्र-रोग जिसमें नेत्र सन्धिसे पीला या नीला और गरम पानी बहता है। (सुश्रुत उत्तरत॰ २ अ॰) नेत्ररोग देखो।

पित्तहन् (सं॰ पु॰) पित्त हन्ति हन्-क्विप्। १ पर्पटक, पित्तपापड़ा। २ पित्तनाशक द्रव्य।

पित्तहर (सं॰ पु॰) हरतीति हरः, पित्तस्य हरः। १ काकोल्यादि गण। २ उशीर, खस।

पित्तहा (सं॰ पु॰) पित्तहन् देखो।

पित्ता (हिं॰ पु॰) १ पित्ताशय, जिगरमें वह थैली जिसमें पित्त रहता है। पित्ताशय देखो। २ साहस, हिम्मत, हौसला। जैसे, उसका कितना पित्ता है जो दो दिन भी तुम्हारे मुकाबिले ठहर सके।

पित्ताण्ड (सं॰ पु॰) अश्वका अण्डस्कन्ध रोग, घोड़ोंके अंडकोशमें होनेवाला एक रोग।

पित्तातिसार (सं॰ पु॰) पित्तजन्य अतीसार रोग, वह अतिसार रोग जिसका कारण पित्तका प्रकोप या दोष होता है। मलका लाल, पीला अथवा हरा और दुर्गन्धयुक्त होना, गुदाका पक जाना, तृषा, मूर्च्छा और दाहकी अधिकता इस रोगके लक्षण हैं।

पित्तानुबन्ध (सं॰ पु॰) पित्तानुबल।

पित्ताभिष्यन्द (सं॰ पु॰) सर्वगताक्षिरोगभेद, आंखका एक रोग, पित्तकोपसे आंख आना। आंखोंका उष्ण और पीतवर्ण होना, उनमें दाह और पकाव होना, उनसे धुआं उठना-सा जान पड़ना और बहुत अधिक आंसू गिरना इस रोगके प्रधान लक्षण हैं। (भावप्र॰ नेत्ररोगा॰)

इसकी चिकित्सा—इस पित्ताभिष्यन्दमें रक्तस्राव और विरेचन विधेय है। पित्तज विसर्परोगाधिकारोक्त सभी ओषध इस रोगमें लाभदायक हैं। प्रियङ्गु, शालि, शैवाल, शैलज, दारुहरिद्रा, इलायची, उत्पल, लोध, अभ्र, पद्मपत्र, शर्करा, कुश, इक्षु, ताल, वेतस, पद्मकाष्ठ, द्राक्षा, मधु, चन्दन, यष्टिमधु, हरिद्रा और अनन्तमूल इन सब द्रव्योंमेंसे जो कुछ मिले, उनके द्वारा घी और बकरीका दूध पाककर तर्पण, परिषेचन और नस्य प्रयोग हितकर है। इस रोगमें सब प्रकारकी पित्तनाशक क्रिया, तीन दिन बाद उजले सरसोंका नस्य, शङ्खको वा मधुशर्कराके साथ पलाश वा शोणितका अञ्जन और मधुशर्कराके साथ पालिन्दी वा यष्टिमधुकी रसक्रिया प्रशस्त है। वैदुर्य, स्फाटिक, वैद्रुम, मौक्तिक, शङ्ख, चाँदी या सोनेका अञ्जन भी हितकर माना गया है।

(सुश्रुत उ॰ १० अ॰)

चरक आदि ग्रन्थमें इस रोगकी चिकित्साका विशेष विवरण लिखा है। विस्तारके भयसे वह यहां लिखा नहीं गया। नेत्ररोग देखो।

पित्तारि (सं॰ पु॰) पित्तानामरिर्नाशकः। १ पर्पट, पितपापड़ा। २ लाक्षा, लाख। ३ बर्बरचन्दन, पीला चन्दन।

पित्ताशय (सं॰ पु॰) पित्तकोष, पित्तकी थैली। यह यकृत या जिगरमें पीछे और नीचेकी ओर होता है। यकृत्में पित्तका जितना अंश भोजन पाककी आवश्यकतासे अधिक होता है वह इसीमें आ कर जमा रहता है।

इसका आकार अमरूद या नासपातीका-सा होता है।

पिच्छिका (सं० स्त्री०) शतपदीभेद, एक प्रकारकी ओषधि।

पित्ती (हिं० स्त्री० १ लाल लाल महीन दाने जो पसीना मरनेसे गरमीके दिनोंमें शरीर पर निकल आते हैं, अंभौरी। २ एक रोग जो पित्तकी अधिकता अथवा रक्तमें बहुत अधिक उष्णता होनेके कारण होता है। इसमें शरीर भरमें छोटे छोटे ददोरे पड़ जाते हैं और उनके कारण त्वचामें इतनी खुजली होती है, कि रोगी जमीन पर लोटने लगता है। (पु०) ३ पितृव्य, चचा, काका।

पित्तोत्क्लिष्ट (सं० पु०) नेत्रवर्त्मगतरोगभेद, आंखकी पलकोंका एक रोग जिसमें पलकोंमें दाह, क्लेद, और अत्यन्त पीड़ा होती है, आंखें लाल और दिखनेमें असमर्थ हो जाती हैं।

पित्तोदर (सं० क्ली०) पित्तजन्य उदररोग, पित्तके बिगड़नेसे होनेवाला एक उदररोग। इस रोगमें शोष, तृष्णा, दाह और ज्वरका प्रकोप होता है। नेत्र, मल, मूत्र, नख और शरीरका वर्ण पीला हो जाता है। (पु०) मध्यविध-वृश्चक जाति।

पत्तोल्बण (सं० त्रि०) पित्ताधिक।

पित्तोल्वणसन्निपात (सं० पु०) आशुकारि-सन्निपात ज्वर, एक प्रकारका सन्निपात ज्वर। इसका लक्षण है—अतीसार, भ्रम, मूर्च्छा, मुंहमें पकाव, शरीरमें लाल लाल दानोंका निकल आना और अत्यन्त दाह होना।

पित्र्य (सं० पु०) पितरो देवता अस्येति पितृ-यत् (वाय्वृतुपित्रुषसो यत्। पा ४।२।३१) ततो रीङादेशश्च। (रीङृतः। पा ७।४।२७) १ मधु, शहद। मधु पितृदेवताओंके दानमें प्रशस्त है। २ पितृतीर्थ। ३ तर्जनी और अंगूठेका अन्तिम भाग। (त्रि०) पितुरिदं पितुरागतं वा यत्। (पितुर्यत्। पा ४।३।७९) ४ पितृसम्बन्धी। ५ आहार, श्राद्ध करने योग्य, जिसका श्राद्ध हो सके। (पु०) पितुस्तुल्यः बाहुलकात् यत्। ६ ज्येष्ठ भ्राता, बड़ा भाई। पितॄणां प्रियः इति यत्। ७ माष, उरद।

पित्र्या (सं० स्त्री०) पित्र्य-टाप्। १ मघानक्षत्र। २ पौर्णमासी, पूर्णिमा। ३ अमावस्या।

पित्र्यावत् (सं० त्रि०) पित्र्यः तत्सम्बन्धि अस्त्यस्य मतुप् मस्य व दीर्घश्च। १ पितृसम्बन्धियुक्त। स्त्रियां ङीष्। २ कन्या, लड़की।

पित्सत् (सं० पु०) पतितुमिच्छतीति पत्-सन् सनि-इस् (सनिमीमाघुरभलभशकपतपदामच इस्। पा ७।४।५४) अभ्यासस्य लोपः, ततः पित्स शतृ। १ पक्षी, चिड़िया। (त्रि०) २ प्रतिपन्न।

पित्सल (सं० क्ली०) पततयनेति पत (सलःपते रविद्धा। उण् २।२८२) इति अधिकरणे सल-अत् इत्। पन्था, मार्ग, रास्ता।

पित्सु (सं० त्रि०) पत-सन्-अभ्यासस्य लोपः, ततो सन्नन्तादु। १ पक्षी, चिड़िया। २ पतनेच्छु, गिरनेकी इच्छा करनेवाला। पित्सु और पिपतिषु ये दो पद होते हैं।

पिथोरा—पृथ्वीराजका दूसरा नाम। पृथ्वीराज देखो।

पिथोरागढ़—युक्तप्रदेशके कुमायूं जिलान्तर्गत एक थाना। यह अक्षा० २९° ३५´ २६´´ उ० और देशा० ८०° १४´ ३०´´ पू०के मध्य शेष उपत्यकाके पादेशमें अवस्थित है। नेपाल-प्रान्तसे शत्रुकी गति रोकनेके लिये यहां एक दल गोरा रहता है। समुद्रपृष्ठसे यह स्थान ५३३४ फुट ऊंचा है।

पिथोरिया—मध्यप्रदेशके सागर जिलान्तर्गत एक राज्य। भूपरिमाण ५१ वर्गमील है। इसमें २६ ग्राम लगते हैं।

१८१८ ई०में जब सागर जिला पेशवाके हाथसे वृटिश-शासनाधीन हुआ, उस समय राव रामचन्द्र नामक एक दश वर्षका बालक देवरी पञ्चमहलका भोग करता था। १८१९ ई०में पञ्चमहल सिन्धियाको छोड़ देना पड़ा और इसके बदलेमें रावकी माताके लिये मासिक १२५०) रु०की वृत्ति नियत कर दी गई। उनकी मृत्युके बाद रामचन्द्र रावने वृटिश-गवर्मेण्टसे मासिक वृत्तिके बराबरकी सम्पत्ति मांगी। इस पर सरकारने रावको पिथोरियाके साथ साथ १८ ग्राम दिये; किन्तु उनसे उपयुक्त आय न होनेके कारण इन्हें ७ ग्राम और मिले। इन सब ग्रामोंमें पिथोरिया ग्राम ही प्रधान है। यह अक्षा० २४° ४´ उ० और देशा० ७८° ३८´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां एक दुर्ग है। सागरके महाराष्ट्र शासनकर्त्ता गोविन्दपण्डितने उमरावसिंह एक राज-

पूतको यह ग्राम प्रदान किया। उन्होंने ही लगभग १७५० ई०में यह दुर्ग बनवाया। यहां प्रत्येक बृहस्पतिवारको हाट लगती है।

पिदड़ी (हिं० स्त्री०) पिद्दी देखो।

पिद्दा (हिं० पु०) १ गुलेलकी तांतमें वह निवाड़ आदिकी गद्दी जिस पर गोलीको फेंकनेके समय रखते हैं, फटकना। २ पिद्दी देखो।

पिद्दी (हिं० स्त्री०) १ बयाकी जातिकी एक सुन्दर चिड़िया जो बयासे कुछ छोटी और कई रंगोंकी होती है। आवाज इसकी मीठी होती है। अपने चञ्चल स्वभावके कारण यह एक स्थान पर क्षण भर भी स्थिर हो कर नहीं बैठती, फुदकती रहती है, इसीसे इसे 'फुदकी' भी कहते हैं। २ बहुत ही तुच्छ और अगण्य जीव।

पिधातव्य (सं० त्रि०) अपि-धा-तव्य, अपेरकारलोपः। आच्छादनीय, ढकने लायक।

पिधान (सं० क्ली०) अपि-धा-ल्युट्। १ आच्छादन, आवरण, पर्दा, गिलाफ। २ छदन, ढक्कन, ढकना। ३ किवाड़। ४ खड्गकोष, तलवारका म्यान।

पिधानक (सं० पु०) पिधान-क। खड्गकोष, तलवारका म्यान।

पिन (अं० स्त्री०) आलपीन, लोहे या पीतल आदिकी बहुत छोटी कील जिससे कागज इत्यादि नत्थी करते हैं।

पिनकना (हिं० क्रि०) १ ऊंघना, नींदमें आगेको झुकना। २ अफीमके नशेमें सिरका झुका पड़ना, अफीमचीका नशेकी हालतमें आगेको और झुकना या ऊंघना।

पिनकी (हिं० पु०) पिनकनेवाला अफीमची, वह व्यक्ति जो अफीमके नशेमें पीनक लिया करे।

पिनपिन (हिं० स्त्री०) १ रोगी या दुर्बल बच्चेका रोना, बार बार धीमो और अनुनासिक आवाजमें रोना, नकिया कर और ठहर ठहर कर रोना, पिनपिन करके रोना। २ बच्चोंका अनुनासिक और अस्पष्ट स्वरमें ठहर ठहर कर रोनेका शब्द, रोगी या दुर्बल बच्चेके रोनेका शब्द, नकिया कर धीमे और थोड़ा रुक रुक कर रोनेकी आवाज।

पिनपिनहां (हिं० पु०) १ रोगी या दुर्बल बालक, कमजोर या बीमार बच्चा। २ पिनपिन करनेवाला बच्चा, वह बालक जो हर समय रोया करे।

पिनपिनाना (हिं० क्रि०) १ धीमी आवाजमें और रुक रुक कर रोना, रोगी अथवा कमजोर बच्चेका रोना, चिल्लाकर रोनेमें असमर्थ बालकका रोना। २ रोते समय नाकसे स्वर निकालना, पिनपिन शब्द करना।

पिनपिनाहट (हिं० स्त्री०) १ पिनपिन करके रोनेकी क्रिया या भाव। २ पिनपिन करके रोनेका शब्द।

पिनस (सं० पु०) पीनस देखो।

पिनसन (हिं० स्त्री०) पेंशन देखो।

पिनसिन (हिं० स्त्री०) पेंशन देखो।

पिनाक (सं० पु० क्ली०) पाति रक्षति पनाय्यते स्तूयते वा पाल वा पन-आक प्रत्ययेन निपातनात् साधुः (पिनाकादयश्च। उण् ४।१५) १ शिवधनुः, महादेवका धनुष जिसे श्रीरामचन्द्रजीने जनकपुरमें तोड़ा था, अजगव। २ शूल, त्रिशूल। ३ कोई धनुष। ४ नीलाभ्र, नीला अभ्रक, एक प्रकारका अभ्रक।

पिनाकिन (सं० पु०) पिनाकोऽस्त्यस्येति इनि। १ शिव, पिनाकधारी, महादेव। २ रुद्रभेद। ३ एक प्रकारका प्राचीन बाजा जिसमें तार लगा रहता था और जो उसी तारको छेड़नेसे बजता था।

पिनाकिनी—दाक्षिणात्यमें प्रवाहित एक नदी। यह नन्दीदुर्गसे निकली है। ब्रह्माण्डपुराणीय पिनाकिनी-माहात्म्यमें इस पुण्यसलिलाका माहात्म्य वर्णित है। पेन्नार देखो।

पिनस (हिं० स्त्री०) पीनस देखो।

पिन्ना (हिं० वि०) १ जो सदा रोता रहे, रोनेवाला, रोना। (पु०) २ धुनकी। ३ पींजन देखो।

पिन्नी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मिठाई जो आटे या और अन्नचूर्णमें चीनी या गुड़ मिला कर बनाई जाती है।

पिन्यास (सं० क्लो०) अपि गतौ विन्यासौ व्यञ्जनत्वात् न्यासो यस्य अपेरल्लोपः। हिङ्गु, हींग।

पिन्व (सं० त्रि०) उभयपदी, पिन्वति-ते, पिपिन्व-न्वे। सिञ्चन, परिपूरण।

पिन्व (सं० त्रि०) पर्याप्त, प्रसारित।

पिन्वन (सं० क्लो०) यज्ञकर्ममें व्यवहार्य पात्रभेद, वह बरतन जिसका यज्ञके काममें इस्तेमाल हो।

पिन्हाना (हिं॰ क्रि॰) पहनना देखो।

पिपतिषत् (सं॰ त्रि॰) पतितुमिच्छतीति पत-सन्-शतः शतृ । १ पतनेच्छु, गिरनेकी इच्छा करनेवाला। (पु॰) २ विहङ्गम, पक्षी, चिड़िया ।

पिपतिषु (सं॰ पु॰) पतितुमिच्छतीति पिपतिस्-उ (सनाशंसभिक्ष उः। पा ३।२।१६८) १ पक्षी, चिड़िया। २ पतनेच्छु, गिरनेकी ख्वाहिश रखनेवाला ।

पिपरमिंट (अं॰ पु॰) पुदीनेकी जातिका पर रूपमें उससे भिन्न एक पौधा जो यूरोप और अमेरिकामें होता है। इसकी पत्तियोंमें एक विशेष प्रकारकी गन्ध और ठंढक होती है जिसका अनुभव त्वचा और जीभ पर बड़ा तीव्र होता है। इसका व्यवहार औषधमें होता है। पेटके दर्द में यह विशेषतः दिया जाता है। इसका पौधा भांगके पौधेसे बहुत कुछ मिलता जुलता है। टहनियां दूर तक सीधी जाती हैं जिनमें थोड़े थोड़े अन्तर पर दो दो पत्तियां और फलके गुच्छे होते हैं। पत्तियां भांगकी पत्तियोंकी-सी होती हैं।

पिपरामूल (सं॰ पु॰) पिप्पलीमूल, पीपलकी जड़ ।

पिपराही (हिं॰ पु॰) पीपलका वन, पीपलका जंगल।

पिपली (हिं॰ स्त्री॰) एक पेड़ जो नेपाल, दार्जिलिङ्ग आदिमें होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और किवाड़, चौकठे, चौकियां आदि बनानेके काममें आती है।

पिपाठक (सं॰ पु॰) पर्वतभेद, एक पहाड़का नाम ।

पिपासत् (सं॰ त्रि॰) पा-सन् ततः शतृ। पिपासायुक्त, वह जिसे प्यास लगी हो।

पिपासा (सं॰ स्त्री॰) पातुमिच्छेति पा-सन्-अ ततष्टाप् । १ पानेच्छा, पीनेकी इच्छा, प्यास। पर्याय—तृष्णा, तर्ष, उपलासिका, तृट्, तृषा और उदन्या। भूख और प्यास मनुष्यको स्वाभाविक हैं। २ लोभ, लालच। ३ रोगभेद, एक प्रकारकी व्याधि। सुश्रुतमें इसे तृष्णा रोग कहा है। हमेशा पानी पीनेसे तृप्ति न होनेको ही तृष्णा कहते हैं। संक्षोभ, शोक, श्रम, मद्यपान, रूक्ष, अम्ल, शुष्क, उष्ण और कटु द्रव्यके खाने, धातुक्षय लङ्घन और तापसे पित्त और वायुवृद्धि हो कर जलीय धातुवाही स्रोतोंको दूषित करता है। स्रोतःपथके दूषित होनेसे अत्यन्त प्यास लगती है। यह सात प्रकारका है। विशेष विवरण तृष्णामें देखो।

पिपासावत् (सं॰ त्रि॰) पिपासा विद्यतेऽस्य, मतुप् मस्य व । पिपासित, पिपासायुक्त, प्यासा ।

पिपासित (सं॰ त्रि॰) पिपासा जाता अस्येति पिपासा तारकादित्वादितच् । पिपासायुक्त, तृषित, प्यासा।

पिपासु (सं॰ त्रि॰) पातुमिच्छुः पा-सन-उ। पानेच्छु, तृषित, प्यासा। पर्याय—तृषित, और तृष्णक।

पिपिली (सं॰ स्त्री॰) पिपीलिका, चींटी, चिउंटी।

पिपीतक (सं॰ पु॰) एक ब्राह्मण। इन्होंने पिपीतकी द्वादशीका व्रत पहले पहल किया था (भविष्यपुराण)

पिपीतकी (सं॰ स्त्री॰) पिपीतको ब्राह्मणविशेषः प्रवर्त्तकतयाऽस्त्यस्येति, अच्, ततो गौरादित्वात् ङीष् । वैशाखमासकी शुक्ला द्वादशी। इस द्वादशीके दिन पिपीतकी द्वादशीका व्रतानुष्ठान करना होता है, इसीसे इस व्रतका नाम पिपीतकीव्रत पड़ा है। भविष्यपुराणमें पिपीतकीव्रतका विवरण इस प्रकार लिखा है—

शतानीकने नारदसे पूछा था, 'प्रभो! पहले किस महात्माने इस पिपीतकी व्रतका अनुष्ठान किया तथा इसका पिपीतकी नाम क्यों पड़ा और इसका विधान किस प्रकार है? कृपा कर कहिये।' इसके उत्तरमें नारदने इस प्रकार कहा था,—

"पुराकालमें पिपीतक नामक एक धर्मपरायण ब्राह्मण रहते थे। वे अरण्यमें रह कर सर्वदा धर्माचरण किया करते थे। बहुत दिन हुए उनकी मृत्यु हो गई। यमदूतगण उन्हें यमालय ले गये। वहां वे पापियोंको बहुत तरहकी यन्त्रणाएं भुगते देख समोहित हो पड़े। उस समय उन्हें बड़ी प्यास लगी, इसलिये उन्होंने किङ्करोंसे जल मांगा। किङ्करोंने उनकी बात पर कुछ भी ध्यान न दिया, वरं वे उन्हें बहुत तकलीफ देने लगे और बोले, 'तुमने ऐसा कोई पुण्य नहीं किया जिससे तुम्हें यहां जल मिल सके।' इस पर ब्राह्मण प्याससे कातर हो आर्त्तनाद करने लगे।' यम उसी समय उनके समीप पहुंचे और बोले, 'ब्राह्मण!

क्यों रोता है? इस पर ब्राह्मण यमराजका स्तव करने लगे। स्तवसे सन्तुष्ट हो कर यमने कहा, 'ब्राह्मण! मैं तुझ पर प्रसन्न हूं, अभिलषित वर मांगो। ब्राह्मण विनीतभावसे बोले 'प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मुझे जिससे थोड़ा जल मिले, वही उपाय कर दीजिये।' यमराजने कहा, तुम घर जा कर एक व्रतका अनुष्ठान करो उसीसे तुम्हारा जलजन्यक्लेश दूर हो जायगा। व्रतका विधान इस प्रकार है,—वैशाखमासकी शुक्लाद्वादशी वैष्णवी तिथि है। इस द्वादशीमें सुशीतल जल द्वारा विष्णुस्नान और यथाशक्ति उनकी पूजा कर ब्राह्मणोंको जलपूर्ण कलसदान करना। इस व्रतके प्रथम वर्षमें चार कुम्भ और कुम्भके मुखको शुक्लवस्त्र द्वारा आवृत कर उसमें लवण और यज्ञोपवीत संयुक्त करके दान करना होगा।

द्वितीय वर्षमें ८ कुम्भ, दधि और शर्करासंयुक्त करके, तृतीय वर्षमें १२ कुम्भ तिलमोदकके साथ और १६ कुम्भ दुग्ध तथा लड्डूके साथ ब्राह्मणको दान देना। इसके साथ भोज्य और यथाशक्ति दक्षिणा भी उन्हें देनी होगी। यह व्रत चार वर्षमें समाप्त होता है। यमके कथनानुसार घर लौट कर ब्राह्मणने इस व्रतका अनुष्ठान किया। पीछे ब्राह्मण अन्तकालमें स्वर्ग जा कर परम वैष्णव पदको प्राप्त हुए। पिपीलकने पहले पहल इस व्रतका अनुष्ठान किया था, इसीसे इस व्रतका पिपीलको व्रत नाम पड़ा है। जो स्त्री वा पुरुष इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह इस लोकमें पुत्र पौत्रादि धनसम्पत्ति और अन्तकाल स्वर्ग लोकमें परमभक्ति पाता है। उसे कहीं भी जल-कष्ट भुगतना न पड़ेगा।"

व्रतप्रतिष्ठाके विधानानुसार इस व्रतकी प्रतिष्ठा करनी होती है। रघुनन्दनने तिथितत्त्वके द्वादशी कृत्यमें इस व्रतकी व्यवस्थादिका विषय निर्देश किया है। व्रतानुष्ठान करके व्रतकी कथा सुननी होती है। विस्तारके भयसे यहां व्रतकथा नहीं लिखी गई।

पिपीलक (सं० पु०) अपिपीलतीति, अपि-पील स्तम्भने-ण्वुल्, अपेरल्लोपः। पीलक, चींटा, चिउंटा।

पिपीलिक—जातिभेद। महाभारतके सभापर्व (५३ अ०)में लिखा है, कि कैलासके निकट इनका वास है। ये लोग खानोंको खोद कर सोना निकालते हैं। पुराविदोंके मतानुसार स्वर्ण-उत्तोलनकारी हिमालयवासी प्राचीन भोट जाति ही इस नामसे प्रसिद्ध थी।

पिपीलिका (सं० स्त्री०) पिपीलक-टाप्, टापि अत इत्वं। छोनाङ्गी, चिंउटी। संस्कृत पर्याय—पिपीलिक, पिपील, पिपीलक, पिपीली, पिपिञ्जी, छोरा।

"श्रुत्वा तु याच्यमानां तां क्रुद्धां सूक्ष्मपिपीलिकाम्।
ब्रह्मदत्तो महाहासमकस्मादेव चाहसत्॥"

(हरिवंश २४।४)

पिपीलिकाकी कीटजातिमें गिनती की गई है। अङ्गरेजीमें इसे Ant कहते हैं। एतद्भिन्न अरबी—नामला; फरासी—Fourme; पारस्य और मलय—समुत्; तामिल—यारम्बु, इरुम्बु; तेलगू—चिमा; तुर्की—नेमल; हिन्दी-चिउँटी। बहुत पहलेसे ही प्राणीतत्त्वविद्गण पिपीलिका जातिका परिश्रम, सहिष्णुता, कार्यतत्परता और मितव्ययिता देख कर विमोहित हुए हैं। तभीसे भिन्न भिन्न व्यक्ति भिन्न भिन्न जातिकी कार्यावलीके ऊपर दृष्टि रख कर जीवतत्त्वमें वे सब विषय लिपिबद्ध कर गये हैं।

इस विश्वब्रह्माण्डके भिन्न भिन्न अंशोंमें कितनी जातिकी पिपीलिका है, उसका निर्णय करना कठिन है। मन्द्राजके सुविज्ञ डाक्टर जर्डन (Dr. Jerdon)-ने एकमात्र दक्षिण भारतमें ही ४७ विभिन्न प्रकारकी* पिपीलिकाओंका उल्लेख किया है। सिंहलद्वीपके पश्चिम अंशसे और कलम्बोके चारों ओरसे संग्रह कर प्रायः ७० विभिन्न जातिकी पिपीलिका, एम निटनर साहब (M. Neitner)-ने बार्लिनके जादूघरमें भेज दी थी। डाक्टर जर्डनने प्राणीतत्त्वविद् बौंकों और सेण्ट-फार्गो (St. Fargeau)-का पदानुसरण करके इस कीटको प्रधानतः चार श्रेणियोंमें विभक्त किया है। १म Les myrmicites—इस जातिकी पिपीलिका स्त्रीजातीय हैं। इनके डंक होते और उदरके प्रथम भागमें दो ग्रन्थि रहती हैं। २य Ponerites—डंकसंयुक्त स्त्रीजाति, उदरमें एक ग्रन्थिविशिष्ट है। ३य Les Formicites-डंकविहीन एक ग्रन्थियुक्त स्त्रीजाति।

* Annals of Natural History XVII.

४थ भारतीय नानाजाति, यह उक्त तीन श्रेणियोंके अन्तर्भुक्त नहीं हो सकती।

यह कीट जाति किस प्रकार अंडे पारती और सन्तानादि द्वारा सन्तानोत्पादन करती है, जब तक यह मालूम न हो जायगा, तब तक उनके परिश्रम, अध्यवसाय और विभिन्न कार्यावलीके प्रकृततत्त्वका निरूपण करना बहुत मुश्किल है।

सभी श्रेणियोंकी पिपीलिकाके मध्य पुरुष, स्त्री और नपुंसकके भेदसे तीन भाग हैं। मधुमक्षिकाकी तरह इस जातिके नरको चार पंख होते हैं। मादाके पंख नरसे बड़े होते हैं*। नपुंसकगण पक्षविहीन हैं और साधारणतः कर्मचारी और धात्री (Nurse ants) नामसे परिचित हैं। निदारुण ग्रीष्मके अवसानसे ले कर शरत्‌के शेष तक किसी समय यदि एक वल्मीक (Ant-bill)-की परीक्षा की जाय, तो उसके मध्य कितने पंखदार नर और मादा तथा कितनी पंखहीन पिपीलिका नाना कार्यों में व्यस्त देखी जाती हैं। नर और मादा जातिकी पिपीलिकामें मधुमक्खीकी तरह राजा और रानी तो नहीं हैं, पर वे सर्वदा अपने घरके भीतर नजरबंदी रहते हैं। नर घरके बाहर आ भी सकता है, पर मादा वह भी नहीं। जब कभी वल्मीकको एक जगहसे दूसरी जगह ले जाना होता है, तब नपुंसक कीट प्रहरीरूपमें उनका पदानुसरण करते हैं। यदि कोई भूलसे अथवा साधारणके अज्ञातसारसे घरसीमाके बाहर निकल जाय, तो सतर्क प्रहरीकी कार्यकारी पिपीलिकाओंके हाथसे उसका निस्तार नहीं। तीन चार प्रहरी मिल कर जिस किसी उपायसे क्यों न हो, उसे पैर, पंख आदि पकड़ कर खींच लाते हैं।

जब पक्षयुक्त कीटकी संख्या अधिक रहती है, तब कोई दूसरा उपाय न देख वे रास्ता छोड़ देते हैं। नरकी अपेक्षा मादाका स्वधर्म ही इस प्रकार है, कि वे गर्भिणी होने पर अपना घर छोड़ कर बाहर निकल जाती हैं, फिर लौट कर नहीं आतीं। गर्भिणीके बाद एक एक कर नर-कीट भी वल्मीक छोड़ देते हैं। धीरे धीरे वह वल्मीक बिलकुल शून्य हो जाता है, इस कारण वल्मीकके बाहर जब मादा गर्भ ग्रहण करती हैं, तब प्रहरी विशेष सतर्कतासे उन्हें घर ले आते हैं। जो सब गर्भिणी पिपीलिका प्रहरीके आयत्तसे बाहर हो जाती हैं, वे एक दूसरा घर बना लेती हैं। गर्भाधानके बाद नर-कीट मर जाता है अथवा उसके पंख आदि झड़ जानेसे वह बिलकुल सामर्थ्यहीन हो जाता है। ऐसी दुरवस्थामें रहने पर भी श्रमशील नपुंसक कीट उसे वल्मीकमें नहीं ले जाते।

मादा पिपीलिका एक साथ बहुतसे अंडे पारती हैं। उनके अंडे अन्यान्य कीटोंकी तरह राल जैसे पदार्थोंसे संयुक्त नहीं रहते। गर्भिणी अंडे देनेके पहले जो स्थान पसन्द करती है, वहीं एक गड्ढा बना कर उसे गरम बनाये रहती हैं। ये अत्यन्त सूखी जगह पर अंडे नहीं देतीं। स्थानकी शुष्कता निबन्धन अथवा सूर्यके उत्तापसे पीछे डिम्बके मध्यस्थित कुसुम सूख जाते हैं। इसी भयसे वे डिम्बको अपेक्षाकृत गीली जगह पर ले जा रखती हैं। डिम्बके फूटनेसे जब जीव कीट बाहर निकल आते हैं, तब इस प्रकार जलवायुके उत्ताप और सूर्यकिरणसे उनकी रक्षा करना माताका एकमात्र कर्त्तव्य कर्म है। विशेष सावधानी नहीं रखनेसे सन्तान नष्ट हो जानेकी सम्भावना रहती है। डिम्ब-प्रसवके पहले नूतन वासस्थान बनानेके समय धात्री-पिपीलिकासे सहायता नहीं पाने पर भी गर्भिणीको स्वयं सभी कार्य करने होते हैं। इस प्रकार सभी जगह प्रसूत कीटोंके भरणपोषणका भार धात्रीके ऊपर सौंपा जाता है, किन्तु जहां धात्री-पिपीलिकाका अभाव है, वहां माताको ही उनकी सेवा करनी पड़ती है।

कबूतर आदि पक्षियोंकी तरह ये भी पेटके भीतरसे एक प्रकारका तरल पदार्थ निकाल कर शावकोंकी उदरपूर्ति करती हैं। शावक कीट इतने क्षुधातुर रहते हैं, कि सभी समय वे मातासे उक्त तरलपदार्थ ग्रहण करते हैं। इसीसे गर्भिणीको सब समय अपना उदर रसपूर्ण रखना पड़ता है।

* पहले विश्वास था, कि किसी न किसी समय सभी पिपीलिकाओंके पर निकलते हैं। किन्तु हुबरसाहबने लिखा है, कि सबसे पहले मादाके पर निकलते है, पर पीछे वे गिर पड़ते हैं। Eng. cyclo. Nat. His. I. 217

गर्भ कीट जब बड़े होते हैं, तब हरिद्राभ श्वेतवर्ण के सूक्ष्म झिल्लीवत् पदार्थ द्वारा जौके आकारमें अपने लिये बहुत-सी गोली बनाते हैं। डिम्ब अथवा गर्भ कीटकी तरह उन गोलियोंको मध्यस्थ पिपीलिका भी बहुत यत्नसे उत्ताप और हिमके समय धात्री कीटसे रक्षित होती हैं। जर्मन देशमें ये सब गोलियां पालित पक्षियोंको खिलाई जाती हैं।

रक्तवर्ण पिपीलिका (Myrmica rubra) और धूसरवर्ण पिपीलिका (Formica fusca साधारणतः उद्यान तथा क्षेत्रादिमें देखी जाती हैं। ये सचराचर एक स्थानसे दूसरे स्थानमें अपना घर उठा ले जाती हैं, किन्तु जरदवर्ण की पिपीलिका (F. flave) और काष्ठ-पिपीलिका (F. rufa कभी भी अपने पूर्व वासको नहीं छोड़तीं। एक ही वल्मीकमें ८।१० वर्ष तक रहती हैं।

अच्छी तरह गरमी पहुंचाने (in due degrees of temperature), डिम्ब, गर्भकीट और गोलीकी रक्षा करने, उद्वारित रसके सवन और यथासमय गोलीके कोषसे गर्भकीट को बाहर निकालनेके सिवा धात्री कीटके और भी नाना प्रकारके कार्य हैं। वे वल्मीकके मध्य ऐसी चतुराईसे रास्ता, सीढ़ी, बारामदा आदि बनाती हैं, कि देखनेसे ही चमत्कृत होना पड़ता है। प्रत्येक घरमें सीढ़ी लगी रहती हैं। राइन नदीके तीरवर्ती तृणाच्छादित प्रदेश (heath)-से F. Sanguinanai नामक एक जातिकी पिपीलिका १८३२ ई०में इङ्गलैण्ड लाई गई थी। ८ इञ्च खोद कर उनके घरमें देखा गया, कि प्रत्येक घरमें १ से ३ इञ्च लम्बी सीढ़ी है। शीतकालमें ये कोई काम नहीं करतीं। वृष्टिका जल जिससे उनके घरमें घुसने न पावे, इस भयसे वे घास द्वारा रास्ता बन्द कर देती हैं। शीतकालमें ये अपने घरके मध्य ऐसे निश्चलभावमें रहते हैं, कि किसी चीजसे आहट पहुंचाने पर भी वे नहीं उठतीं। घासको वे अपने वल्मीकके मध्य इस प्रकार सजाये रहती हैं, कि उसे देखनेसे ही सूत्रधरोंके कारुकार्य की कथा याद आ जाती हैं। काठचिंउटी और 'एमेण्ट' (Emment = F. Fuliginosa) नामक कृष्णवर्ण की एक प्रकारकी पिपीलिका है जो वृक्षकी डालमें गड्ढा बना कर अपना घर बनाती हैं। डालके भीतरके घरोंका परस्पर व्यवधान एक मामूली कागजकी तरह पतला रहता है। वे बड़े ही कौशलसे दांत गड़ा कर काठ खोदती हैं। भारतीय कृष्ण पिपीलिका (Formica compressa) और लालवर्णकी पिपीलिका (F. smaragdina)की कमर अन्यान्यकी अपेक्षा बड़ा और पृष्ठदण्ड सीधा होता है। किसीके पृष्ठमें कांटा, किसी जातिके पृष्ठमें चित्र अङ्कित रहता है। मलय द्वीपपुञ्जमें सवर्णकी जो पिपीलिका (Ecophylla smaragdina) पाई जाती है उसकी आकृति सबोंसे बड़ी होती है और देखनेसे ही वे परिश्रमी और चतुर मालूम पड़ती हैं। जमीनके अंदर घर बनानेके सिवा वे बहुत-सी पत्तियोंको एक साथ मिला कर उसीके अन्दर अपना सुन्दर घर बना लेती हैं। आम, जामुन, कटहल, लीची आदि पेड़ों पर सचराचर इनके घर देखनेमें आते हैं। यदि कोई पेड़ पर चढ़ कर उनका घर नष्ट कर दे, तो वे दल बांध कर बाहर निकलतीं और आततायी पर टूट पड़ती हैं।

पूर्वोक्त प्रकारके शिल्पनैपुण्य भिन्न ये कभी कभी झुण्डका झुण्ड आ कर निकटवर्ती दलके साथ युद्ध करती हैं। (Wood Ant, Amazon Ant (F. rufescens) और राइन तीरवर्त्ती Sauguniary Ant विशेष समरदक्ष हैं। लड़ते समय ये विपक्षियों पर इस प्रकार टूट पड़ती हैं, कि उनके मुखसे जो विषाक्त रस निकलता, उससे विपक्ष दलकी कितनी मरी पिपीलिकाएं देखी गई हैं। कभी कभी तो ये युद्धशेष हो जाने पर विपक्षदलसे क्रीतदासके लिए डिम्ब और गोली आदि छीन लाती हैं। भाग जानेके डरसे ये बड़ी बड़ी पिपीलिकाओं नहीं लातीं।

पिपीलिकागण साधारणतः मृतकीट, मक्षिका, पशु, पक्षी, सरीसृपादिका मांस खाती हैं। अलावा इसके फलादि सभी आहार्य द्रव्य इनके भक्ष्य हैं। मधु वा मिष्टान्न इनका सर्वप्रीतिकर आहार है। ईख और वंशजातीय तृण (Honey dew)से ये मधु संग्रह करती हैं।

टिड्डीकी तरह पिपीलिका भी आकाशमें उड़ती देखी गई हैं। डा० रोगेटने लिखा है, कि कभी कभी इतनी

पिपीलिका आकाशमें उड़ती देखी जाती हैं, कि वे एक बड़ी काली घटा-सी मालूम पड़ती हैं और जिस देशमें जा पड़ती हैं, वहां बहुदूरव्यापी स्थान अपना लेती हैं।

जर्मन-पण्डित Gleditschने अपने 'बार्लिन विश्वविद्यालयका इतिहास' नामक ग्रन्थमें १७४९ ई०को लिखा है, कि इस समय जर्मनमें कृष्णवर्णकी एक दल पिपीलिका स्तम्भाकारमें शून्यमार्ग हो कर उड़ी थी। जब वह स्तम्भ बहुत ऊपर चला गया, तब पिपीलिकावृन्दकी अत्याश्चर्य आभ्यन्तरिक ज्योतिसे प्रकम्पित हो कर वह सौमगिरि (Aurora borialis)-की तरह चमकीला दिखाई देने लगा। ओसकी नगरके धर्मयाजक Mr. Acoluttने इस प्रकार एक और श्रेणीबद्ध पिपीलिकाकी गतिका उल्लेख किया है। वह देखनेमें ठीक एक धूमस्तम्भसे जैसा था। जब वह स्तम्भ निकटवर्त्ती गिर्जाघर और अट्टालिकाके ऊपर टूट पड़ा, तब एक एक जगह थोकके थोकमें पिपीलिका पाई गई थी। डा० चार्लस रेगर (Dr. charles Rayger) Ephemerides नामक जर्मन ग्रन्थमें पोसेन नगरसे दानियुब नदीतीर तक एक पिपीलिका श्रेणीका गमनवृत्तान्त लिख गये हैं। पोसेन नगरमें ऐसा पिपीलिका-पात हुआ था, कि प्रत्येक कदमसे ३०।४० पिपीलिकाको कुचले बिना कोई भी घरसे बाहर न निकल सके थे। १७९० ई० को माण्टपिलर (Montpellier) नगरमें दिनके समय इसी प्रकारका एक और दृश्य देखा गया था। सन्ध्याके समय क्रमशः वह स्तम्भ टूट कर भूमिसात् हो गया था। वे सब पिपीलिका Formianigra श्रेणीभुक्त थे। बङ्गालमें कभी कभी पंखदार एक प्रकारकी पिपीलिका आकाशमें उड़ती देखी जाती है जो बादला पोका नामसे प्रसिद्ध है। जब ये ऊपर उठती हैं, तब काकादि पक्षिगण उन्हें पकड़ कर खाते हैं। जो घरके मध्य जा पड़ती हैं, वे भी प्रदीपके ऊपर पड़ कर जीवन गंवाती हैं। कहावत भी है, कि 'चीँटीके पर निकले और मौत आई।'

सुश्रुतमें लिखा है, कि पिपीलिका छः प्रकारकी है—स्थूलशीर्ष, सम्बाहिका, ब्रह्मणिका, अङ्गुलिका, कपिलिका और चित्रवर्णा। इन सब पिपीलिकाओंके डंसनेसे स्वयथु, अग्नि स्पर्शकी तरह दाह और शोथ आदि उपद्रव होते हैं। (सुश्रुत कल्पस्था० ८ अ०)

पिपीलिकाभुक—स्वनामख्यात चतुष्पाद जन्तुविशेष। प्राणीतत्त्ववित् पण्डितोंने इन्हें जीवजगतके Myrmecophaga श्रेणीभुक्त किया है। आकृतिगत सादृश्यके भेदसे इनके मध्य फिर तीन स्वतन्त्र जातियां हैं। साधारणतः पिपीलिका द्वारा जीविका निर्वाह करनेके कारण इनका यह नाम पड़ा है। भेक, सर्प, टिकटिकी आदि सरीसृप तथा कोई कोई पक्षी पिपीलिका भक्षण करता है, इस कारण उन्हें इस श्रेणीके अन्तर्भुक्त नहीं कर सकते।

एशियाखण्ड, अफ्रिका और भारतवर्षमें और भी एक स्वतन्त्र पिपीलाभुक् (Manis pentadactyla = Pangolin) जाति है जो एक दन्त (Edantata) श्रेणीभुक्त मानी गई है। भारतवर्षमें हिमालयके निम्नतम प्रदेशमें और मलयद्वीपमें इनकी संख्या अधिक है। सूर्यास्तके बाद ये जन्तु बाहर निकलते हैं, इस कारण कोई इन्हें देख नहीं सकता। ग्रीकवीर अलेकसन्दरने जब भारतवर्ष पर आक्रमण किया, उस समय उनके साथी इलियन (Aelian)ने इस प्राणीको देखा था। भारतके नाना स्थानोंमें इनके विभिन्न नाम हैं। बङ्गालमें—वज्रकीट; मलय—तङ्गलिन, तरङ्गिलिन्, पङ्गलिन; तेलगू—अरियालेर; अंगरेजी—Scaly Ant-eater वा Pangolin। पाङ्गलिन देखो।

वर्त्तमान भिन्न भिन्न पिपीलिकाभुक श्रेणीके अस्थितत्त्वकी आलोचना करनेसे यह देखा जाता है, कि भूगर्भनिहित Magatherium, Megalongri और Mylodon की प्रस्तरास्थिके साथ इनका अनेक सादृश्य देखा जाता है। इस लुप्त जीवजातिका आकृतिगत सादृश्य देख कर बहुतोंने इन्हें भी पिपीलिकाभुक श्रेणीबद्ध किया है। अमेरिका प्रदेशमें जो सब पिपीलिकाभुक् देखनेमें आते हैं उनके मध्य Myrmecodophaga jubataश्रेणी ही सर्वापेक्षा बड़ी है। पुर्त्तगीज लोग इन्हें Tamandua और अंगरेज लोग Ant-bear कहते हैं। पूर्णावयव जीवोंके नासाग्रभागसे ले कर गुह्यदेश तक ४॥० फुट लम्बा, पूंछ २॥० फुट, नासारन्ध्रसे कर्णविवर

१३॥० इञ्च और चञ्चु पर्यन्त १०॥० इञ्च होता है। चक्षुके ठीक नीचे इनके मुखकी परिधि १४ इञ्च है। किन्तु इस जगहसे मुखविवर कोणाकार होता गया है। मुखाग्रको परिधि ५।० इञ्च है। इनके सामनेके दोनों पैर बड़े और पीछेके भालूकी तरह चिपटे और छोटे होते हैं। इसीसे खड़े होनेके समय स्कन्धकी ऊंचाई ३।० फुट और चूतड़की ऊंचाई २ फुट १० इञ्च होती है। कान छोटे और गोल तथा चक्षुकोटर प्रविष्ट और पक्ष-विहीन होते हैं। मस्तकसे लेकर नासाग्र तकका भाग हाथीकी सूंड़के जैसा होता है। मुखविवरका व्यास १ इञ्चसे अधिक नहीं होगा। दोनों चिबुकास्थि समान रहती हैं। जिह्वा मांसल और गोलाकार है, बाहर निकलने पर इसकी लम्बाई १६।१८ इञ्च देखी गई है। पैरकी चारों उंगली असमान और विशेष उपकारी नहीं हैं। शरीर और पूंछ देखनेसे ये न्युफाउण्डलैण्ड कुत्तेके जैसे मालूम पड़ते हैं।

ये साधारणतः निरीह और आलसी होते हैं, हमेशा निद्रामें ही दिन बिताते हैं। निद्राकालमें ये लोमके मध्य नासाग्र छिपाते और शरीरको पूंछसे ढंक लेते हैं। इनके केवल एक सन्तान होती है जो हमेशा माताके पीछे पीछे चलती है। वानरादिकी तरह इनके दो स्तन होते हैं। अमेरिकाके पारागुई राज्यमें कोई कोई इन्हें पालते हैं। दूध, रोटी और छोटे छोटे मांसके टुकड़े खिलाकर स्पेनदेशमें अनेक पशु भेजे गये थे।

दक्षिण अमेरिकाके कलम्बियासे ले कर पारागुई तक तथा अटलाण्टिक समुद्रतटसे ले कर आन्दिज-पर्वतमालाके पाददेश तक जलपूर्ण स्थानोंमें इनका वास है। इनकी गति मन्थर और दोदुल्यमान है। मस्तक हमेशा झुका रहता है, मानो किसीकी तलाश कर रहा है। पूंछ पीछेकी ओर लम्बभावमें लटकी रहती है जो झाड़का काम करती है। इस कारण शिकारी उनका पदानुसरण करनेमें सक्षम हैं। ये न तो सरपट दौड़ते और न वृक्ष पर चढ़ ही सकते हैं। शिकारीसे आक्रान्त पशु जब दौड़ नहीं सकता, तब पिछले पैर पर भार दे कर भालूकी तरह घूम कर खड़ा हो जाता है और जो आततायी पशु है वह मनुष्यको सामनेके पंजेसे इस प्रकार मजबूतीसे पकड़ता है, कि उसका निस्तार नहीं। इनका मांस सुस्वादु होता है। मार्किणवासी निग्रो और यूरोपीयगण भी इनका मांस बड़े चावसे खाते हैं। इसमें मृगनाभिकी तरह एक तीव्रगन्ध है।

तमन्दुआजाति (M. Tamandua) अपेक्षाकृत छोटी होती है। आकृति ठीक बिड़ाल-सी है। शरीरके रोएं छोटे और चमकीले रेशमके जैसे लगते हैं। मुखांश कोणाकृति है सही, पर वह बहुत कुछ देशीय छछूंदरसे मिलता जुलता है। इनके मुखसे ले कर कर्ण तक ५ इञ्च, मुखविवरसे गुह्यदेश तक २ फुट २ इञ्च, पूंछ १ फुट ४॥ इञ्च हैं। कर्णके निकट इनके मस्तककी परिधि ८ इञ्च है। आंख छोटी, कर्णविवर छोटा और गोल होता है। चारों पैर छोटे और हृष्टपुष्ट होते हैं। शरीरसे तीव्र गन्ध निकलती है जो बहुत दूर तक फैल जाती है। ब्रेजिलवासी पुत्त गीजसे तमन्दुआ नाम रखा गया है। फरासी नाम Fourmillier और अङ्गरेजी नाम Little Ant-bear है।

दो अङ्गुलिविशिष्ट पिपीलिकाभुक (M. Didoctyla) सबसे छोटा होता है और बहुत कुछ यूरोपीय काठबिड़ालसे मिलता जुलता है। इसके पिछले पैरमें चार नख और सामनेमें केवल दो नख तथा उंगली देखी जाती है। शरीरकी आकृति तमन्दुआ-सी होने पर भी मुखाकृति मेंढ़े सी होती है और सारे शरीरमें बड़े और घने रोंगटे रहते हैं। मुखाग्रसे गुह्यदेश ६ इञ्च लम्बा है जिसमें २ इञ्चके करीब मस्तक है। पूंछ लग भग ७। इञ्च लम्बी और सुंड़ाकारकी होती है। आंख छोटी, कर्णविवर छोटे और रोएंसे ढके रहते हैं। चारों पैर छोटे और दृढ़ होते हैं। पिछला पैर अपेक्षाकृत चिपटे दीख पड़ते हैं। इनमें चार स्तन हैं जिनमेंसे दो वक्ष पर और दो उदर पर रहते हैं। प्राचीन वृक्षके कोटरादिमें इनका वास देखा जाता है। ये केवल एक बच्चे जनते हैं। आक्रमणके समय ये पिछले पैर पर खड़े हो कर सामने पैरके नखसे आघात करते हैं।

पिपीलिकामध्य (सं० क्ली०) पिपीलिकाया मध्यमिव मध्यं यस्य। चान्द्रायणभेद।

पिपीलिकामातृकादोष (सं॰ पु॰) एक बालरोग जो जन्मके दिनसे ग्यारहवें दिन, ग्यारहवें महीने या ग्यारहवें वर्ष होता है। इसमें बालकको ज्वर होता है और उसका आहार छूट जाता है।

पिपीली (सं॰ स्त्री॰) अपि पीलतीति पील-अच, अपेर-लोपः, ततो गौरादित्वात् ङीष्। पिपीलिका, चिउंटी, चींटी।

पिपृच्छिषु (सं॰ त्रि॰) प्रष्टुमिच्छुः, प्रच्छ-सन्, सन्नन्तात् उ। जिज्ञासा करनेमें इच्छुक।

पिप्पका (सं॰ स्त्री॰) पक्षी, चिड़िया।

पिप्पटा (सं॰ स्त्री॰) खाद्यद्रव्यविशेष, एक प्रकारकी मिठाई। पर्याय—गुडशर्करा।

पिप्पल (सं॰ क्ली॰) पिपर्त्ति इति पा-अलच्, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ जल, पानी। २ वस्त्रखण्डभेद। (पु॰) पिप्पलं जलं सिच्यमानत्वेनास्त्यस्य मुलाच्छेदे इति पिप्पल अर्शादित्वादच्। ३ अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़ (Ficus religiosa)। इस वृहत् वृक्षका इस देशमें देवताकी तरह पूजन और आदर होता है। बहुत बचपनसे ही हिन्दूबालिकागण पीपलके पत्तेको सिर पर रख कर व्रतका पालन करती हैं। बैशाखमें जब कड़ी धूप पड़ती है, उस समय सब कोई तुलसी और पीपलके पेड़में जल देते हैं। पुराणमें भी इस वृक्षके सम्बन्धमें अनेक प्रवाद लिखे गये हैं। बालखिल्य मुनिने कहा है, कि अश्वत्थके साथ तुलसीका विवाह हुआ है। यही पीपल देवताओंकी शापान्तरित मूर्त्ति है। देवताओंने किस प्रकार अश्वत्थमूर्त्ति ग्रहण की, अश्वत्थ शब्दमें उसका विशेष विवरण लिखा जा चुका है।

अश्वत्थ देखो।

बेल, अश्वत्थ, निम्ब, आमलकी और बट यही पञ्चबट हिन्दूके पूजनीय हैं। पश्चिमाञ्चलमें पिप्पल, गूलर, बरगद, पाकड़ और आम्र यही पञ्चवृक्ष श्रेष्ठ माने गये हैं। धर्मप्राण हिन्दूगण पीपलवृक्षका ५ बार और रमणीगण १०८ बार प्रदक्षिण करती हैं। उनका विश्वास है, कि इसकी जड़में ब्रह्मा, छालमें विष्णु और गङ्गादेवी, डालमें महादेव और पत्रादिमें देवगण विराजमान हैं। हिन्दू लोग इस वृक्षको इतना पवित्र मानते हैं, कि उनके घरके ऊपर यदि यह उत्पन्न हो, तो कोई भी उसे काटनेका साहस नहीं करता। इसके रोपण करनेका अक्षय पुण्य लिखा है। प्रवाद है, कि इस लोकमें अश्वत्थवृक्षकी छायातलमें जिस प्रकार मानवगण स्वच्छन्दतासे भ्रमण कर सकते हैं, उसी प्रकार वपनकर्त्ता मृत्युके बाद यमलोक जाते समय विराम और विश्रामसे स्निग्ध हो नियःश्वासकाशमें पहुंचेगी। यमलोकका निदारुण उत्ताप वा यन्त्रणा उन्हें छू भी न सकेगी। पद्मपुराणके अनुसार पार्वतीके शापसे जिस प्रकार शिवको बरगद और ब्रह्माको पाकड़के रूपमें अवतार लेना पड़ा उसी प्रकार विष्णुको पीपलका रूप ग्रहण करना पड़ा। भगवद्गीतामें भी श्रीकृष्णने कहा है, कि वृक्षोंमें मुझे पीपल जानो। हिन्दु-लोग इसकी लकड़ी जलाना वा काटना पाप समझते हैं। दो तीन विशेष संस्कारोंमें जैसे, मकानकी नींव रखना, उपनयन आदिमें इसकी लकड़ी काममें लाई जाती है। बौद्ध लोग भी पीपलको परम पवित्र मानते हैं क्योंकि बुद्धको संबोधिकी प्राप्ति पीपलके पेड़के नीचे ही हुई थी। यह वृक्ष बोधिद्रुम नामसे भी प्रसिद्ध है।

यह वृक्ष ऊंचाईमें बरगदके समान ही होता है, पर इसमें उसकी तरह जटाएं नहीं फूटतीं। पत्ते इसके गोल होते हैं और आगेकी ओर लम्बी गावदुम नोक होती है। इसकी छाल सफेद और चिकनी होती है। छालसे एक प्रकारका लसीला सफेद दूध निकलता है। इस दूधमें तीसीका तेल और धूना मिला कर पांच मिनट तक आंच पर चढ़ानेसे जो गाढ़ा दूध बनता है उसे चिड़ीमार अपने काममें लाते हैं। पेड़के नीचे धूनेकी तरह गोंद निकलता है जो लाहकी तरह होता और चीठी आदि साटनेके काममें आता है। स्वर्णकार अलङ्कारादिके मध्यस्थित छिद्र वा पोल स्थानको भरने तथा हस्तिदन्तका दाग उठानेमें इसका व्यवहार करते हैं। इसकी छाल और पत्तियां चमड़े तथा कभी कभी तसर, रेशम और पशमीने रंगाये जाते हैं। इसके रेशेको फिटकिरीके साथ जलमें सिद्ध करनेसे फीका लाल रंग प्रस्तुत होता है जिससे सूती कपड़ेमें छाप दी जाती है।

छालसे सूतेकी तरह रेशे निकलते हैं जिससे ब्रह्मा-वाले एक प्रकारका हरा कागज बनाते हैं।

छाल पुष्टिकर और धारकताशक्तिसम्पन्न है। प्रमेह रोगमें यह विशेष उपकारी है। फल मृदु विरेचक और पाचक माना गया है। सूखे फलको अच्छी तरह चूर कर जलके साथ १४ दिन तक सेवन करनेसे हबशी बन्द हो जाती है और स्त्रियोंके गर्भ रह जानेकी सम्भावना देती जाती है। बीज शीतल और धातुशोधक तथा कच्ची पत्तियां विरेचक मानी जाती हैं। मुलायम छाल और नये निकले हुए पत्ते पुराने प्रमेहकी उत्तम औषध है। छालको आगमें जला कर उसे कुछ काल तक जलमें डुबोये रखनेके बाद यदि हिक्कारोगी-को उस जलका सेवन कराया जाय, तो बहुत उपकार होता है। शोषयुक्त घाव पर नवोद्गत पत्रकी भस्म लगाने-से घावकी अवस्था बहुत परिवर्त्तित हो जाती है।

हाथी, भैंस, बकरे, ऊंट आदि बड़े चावसे इसके पत्ते और डाल खाते हैं। साधारणतः इस पेड़में लक्षाकीट उत्पन्न होता है। तामसी निद्रा (coma) और निद्रा-लुतारोगमें पीपल और मिर्चको सुंघनी लेनेसे भारी उपकार होता है। कटिस्नायुशूल, शूल-वेदना और अर्द्धाङ्गक्षेपरोगमें पीपल और अदरकके साथ एक प्रकार-के चर्मप्रदाहक तैलमर्दनकी व्यवस्था चक्रदत्त लिख गये हैं। हकीमके मतसे इसका गुण—श्लेष्मानाशक, प्लीहा और यकृतका तेजःवृद्धिकर, पाचक, कामोद्दीपक, मूत्रकारक और रजोनिःसारक। पक्षाघात, गेठिया वात, कटिवात आदि रोगोंमें फल और रेशा विशेष उपकारी है। पीपलका काजल लगानेसे रतौंधी जाती रहती है। विषाक्त सरीसृपके दंशित स्थान पर इसे पीस कर लगानेसे जलन बन्द हो जाती है। त्रिवाङ्कुड़ प्रदेशमें प्रसवके बाद प्रसूतिको मधुके साथ पीपलका मूल खिलाया जाता है। इससे जरायूकुसुम बहुत जल्द निकल पड़ता है। कहीं कहीं तो इसे ज्वर और वेदनाका प्रतिबन्धक समझ कर प्रसूतिको खिलाया जाता है। इससे भी अधिक रक्तस्राव नहीं होता। सूतिकावस्थामें रमणीके गर्भको स्वाभाविक अवस्थामें लानेके लिये देशीय धात्री अन्यान्य औषधोंके साथ पीपल खिलाती हैं। डा० काम्पबेलने लिखा है, कि छोटानागपुरमें रमणियोंकी रजोविकृतिके कारण छर्दिजड़ित रोगमें अश्वत्थमूल व्यवहृत होता है। इसके बीचमें एक प्रकारका तैलज पदार्थ, सर्जरस (धूना) और पिपारिन (Piperin) है।

भारतवर्षके नाना स्थानोंमें तथा ब्रह्मके अन्त-वर्त्ती जंगलोंमें पेड़के ऊपर एक प्रकारका पीपल उत्पन्न होता है। इसका नाम गजपिप्पल वा पीपल (Scindapsus officinalis) है। इसका संस्कृत पर्याय—गजपिप्पली, करिपिप्पली, कपिवल्ली, कोलवल्ली, श्रेयसी, वशीर। गुण—उत्तेजक, कृमि और श्लेष्मा-नाशक, विरेचक। वातरोगमें गजपीपरकी पीस कर प्रलेप देनेसे शान्ति होती है। व्यञ्जनादिके साथ कहीं कहीं कच्चे वा सूखे पीपलका व्यवहार होता है।

"वनराजीस्तु पश्येमाः पिप्पलानां मनोरमाः।
लोध्राणांच शुभाः पार्थ ! गौतमौकःसमीपजाः॥"

(भारत २।२१।८)

अश्वत्थवृक्षकी प्रदक्षिणा करनेसे अशुभ जाता रहता और अनेक प्रकारका मङ्गल होता है।

विशेष विवरण अश्वत्थमें देखो।

४ नग्नव्यक्ति, नंगा आदमी। ५ पक्षिभेद। ६ रेवतीसे उत्पन्न मित्रका एक पुत्र। ७ अंगे आदि-की बाँह या आस्तीन।

पिप्पलक (सं० क्लो०) पिप्पल-संज्ञायां कन्। १ स्तन-मुख। २ सीवनसूत्र।

पिप्पलयाङ्ग (सं० पु०) चीन और जापानमें होनेवाला एक पौधा जो अब भारतवर्षमें भी फैल गया है और गढवाल, कमाऊं और कांगड़ेकी पहाड़ियोंमें पाया जाता है। इसके फलोंके बीजके ऊपर चरबी-सा चिकना पदार्थ होता है जिसे चीनी मोम कहते हैं, मोमचीनी।

पिप्पलाद—एक अथर्ववेदशाखाप्रवर्त्तक ऋषि। स्कन्द-पुराणीय नागरखण्डके १६४वें अध्यायमें इनका चरित लिखा है। किसीका मत है, कि इन्होंने पिप्पलादसूत्र और पिप्पलादोपनिषत्‌का प्रचार किया था।

पिप्पलायन—ये ऋषभदेवके पुत्र बड़े भागवत थे। ऋषभ-

देवने बहुत प्रयत्न किया था कि उनके लड़के धार्मिक और भगवद्भक्त हों। वे अपने प्रयत्नमें सफल भी हुए।

पिप्पलि (सं॰ स्त्री॰) पिपर्त्तीति पृ-पूर्त्तौ, बाहुलकात् अलच्, ततो गौरादित्वात् ङीष् ह्रस्वश्च। पिप्पली, पीपल।

पिप्पली (सं॰ स्त्री॰) पिप्पल-ङीष्, पृषोदरादित्वात् साधुः। लताविशेष, पीपल (Piper longum)। हिन्दी—पीपर वा पीपल; महाराष्ट्र—पिप्पली; कालिङ्ग—हिप्पली; तैलङ्ग—पिप्पलिचेट्टु; बम्बई—बङ्गालिपिप्परि; तामिल—पिपलि। पिप्पली, वनपिप्पली और सिंहपिप्पली, नामक कई प्रकारकी पिप्पली हैं। संस्कृत पर्याय—कृष्णा, उपकुल्या, वैदेही, मागधी, चपला, कणा, उषणा, शौण्डी, कोला, ऊषणा, पिप्पलि, कृकला, कटुबीजा, कोरङ्गी, तिक्ततण्डुला, श्यामा, दन्तफला, मगधोद्भवा। गुण—ज्वरनाशक, वृष्य, स्निग्ध, उष्ण, कटु, तिक्त, दीपन, वायु, श्वास, काश, श्लेष्मा और क्षयनाशक, स्वादुपाक, रसायन, लघु, पित्तल और रेचन; कुष्ठ, प्रमेह, गुल्म, अर्श, प्लीहा, प्लीहाशूल और आमनाशक। आर्द्रकयुक्त पिप्पलीका गुण—कफप्रद, स्निग्ध, शीतल, मधुर, गुरु और पित्तनाशक। मधुयुक्त पिप्पलीका गुण—मेद, कफ, श्वास, कास और ज्वरनाशक, बलकर, मेधा तथा अग्निवर्द्धक। गुड़पिप्पलीका गुण—जीर्णज्वर और अग्निमान्द्यमें प्रशस्त तथा कास, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, हृदय, पाण्डु और कृमिनाशक। वैद्यकके मतसे गुड़पिप्पलीमें द्विगुण पिप्पलीचूर्ण और एक भाग गुड़ मिलाना पड़ता है।

(भावप्रकाश)

भारतके नाना स्थानोंमें विशेषतः नदीतीरवर्त्ती जलमय स्थानमें यह लता आपसे आप उगती है। किसी खास समयमें इसकी खेती नहीं करनी होती। उत्तरमें नेपालकी पूरबी सीमासे लेकर पूर्वमें आसाम, खासिया पर्वतमाला, बङ्गालप्रदेश; पश्चिममें बम्बई नगर तक तथा दक्षिणमें त्रिवाङ्कुड़, सिंहल और मलक्का द्वीपसमूह-में यह लता पाई जाती है। इसके फलके लिये लोग इसकी खेती करते हैं। इसके पत्ते पानके समान होते हैं, कलियां तीन चार अंगुल लंबी शहतूतके आकारकी होती है और उनका पृष्ठभाग भी वैसा ही दानेदार होता है। रंग मटमैला और स्वाद तीखा होता है। छोटी कलियोंको छोटी पीपल और बड़ी तथा किंचित मोटी कलियोंको बड़ी पीपल कहते हैं। औषधके लिये अधिकतर छोटी ही काममें लाई जाती है।

पिप्पली—१ बालेश्वर जिलान्तर्गत एक प्राचीन बन्दर। यह अक्षा॰ २१° ३४´ उ॰ तथा देशा॰ ८७° २२´ पू॰ सुवर्णरेखानदीके समुद्रसङ्गमस्थल पर अवस्थित है। १६वीं शताब्दीके प्रथमभागमें यहां पुर्त्तगीज लोग रहते थे। १६३४ ई॰में मुगल-सम्राट्‌के फरमानानुसार अंगरेज वणिकोंने सबसे पहले उड़ीसाके उपकूलमें इसी स्थान पर कोठी खोली। उस समय अंगरेजोंका जहाज बङ्गालमें प्रवेश नहीं कर सकता था। अभी नदीके मुंह पर बालू भर जानेसे नगर तहस नहस हो गया है। वर्त्तमान मनुयागढ़ ग्रामके निकट नदीके दक्षिणकूल-से प्रायः २ कोसकी दूरी पर एक कब्र और स्तम्भादिके कुछ चिह्न देखनेमें आते हैं। स्थानीय लोगोंका कहना है, कि यहां पहले फिरंगी और मुगलोंका वास था। सुवर्णरेखाके उत्तरोत्तर गतिपरिवर्त्तनसे यथार्थ स्थान-का निरूपण करना मुश्किल है। नदीकी बाढ़से कब्र और मन्दिर बह गये हैं। १८वीं शताब्दीके प्रथमांशमें अंगरेज और पुर्त्तगीजकी जो सब प्राचीन कीर्त्तियां लक्षित होती थीं, अभी उनका एक भी निदर्शन नहीं है। केवलमात्र आस पासके दो एक ग्राम आज भी पिप्पली कहलाते हैं।

२ पञ्जाब प्रदेशके अम्बाला जिलान्तर्गत एक तह-सील। भूपरिमाण ७४५ वर्गमील है। इसमें ४८५ ग्राम और नगर लगते हैं। वृष्टि और सरस्वती नदीकी बाढ़ पर यहांकी खेती बारी निर्भर करती है।

३ एक नदी जो ऋक्षपाद पर्वतसे निकली है।

(वामन १३ अ॰)

४ ऋष्यवन्तपर्वतसे निःसृत एक नदी।

"तमसा पिप्पली श्येनी तथा चित्रोत्पलापि च।"

(मत्स्यपु॰ ११४।२५)

पिप्पिलीका (सं॰ स्त्री॰) अश्वत्थीवृक्ष, पीपलका पेड़।

पिप्पलीखण्ड (सं॰ पु॰) औषधविशेष, एक प्रकारकी औषध। यह स्वल्प और बृहत्‌के भेदसे दो प्रकारका

है। प्रस्तुत प्रणाली—पीपलका चूर्ण ४ पल, घी ६ पल, शतमूलीका रस ८ पल, चीनी ऽ२ सेर और दूध ऽ८ सेर इन द्रव्योंको यथानियम पकावे। बाद उसमें तेजपत्र, इलायची, मोथा, धनियां, सोंठ, वंशलोचन, जीरा, कालाजीरा, हड़ और आंवला प्रत्येकका चूर्ण डेढ़ तोला डाले और ठंढे होने पर ३ पल मधु भी मिला दे। इस औषधका उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे अम्लपित्त, शूल, अरुचि, हृल्लास, वमि, पित्तशूल और अम्लशूल जाता रहता है तथा अत्यन्त अग्निवृद्धि होती है।

वृहत् पिप्पलीखण्डकी प्रस्तुत प्रणाली—पीपल चूर्ण आध सेर, घी ऽ१ सेर, चीनी ऽ२ सेर, शतमूलीका रस ऽ१ सेर, आंवलेका रस ऽ२सेर और दूध ऽ८ सेरको पाक कर उसमें गुड़त्वक्, तेजपत्र, इलायची, हड़, कालाजीरा, धनियां, मोथा, वंशलोचन और आंवला प्रत्येक २ तोला, जीरा, कुट, सोंठ और नागेश्वर प्रत्येक १ तोला डाल दे। पाक समाप्तिके बाद ठंढे होने पर जायफलचूर्ण, मिर्चचूर्ण और मधु प्रत्येक ३ पल मिला दे। इस औषधका सेवन करनेसे अम्लपित्त, हृल्लास, अरुचि, और वमि आदि रोग शान्त होते हैं और अग्निकी वृद्धि हो कर देहकी तृप्ति होती है।

(भैषज्यरत्ना० अम्लपित्ताधि०)

पिप्पलीघृत (सं० क्ली०) घृतौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—घी ऽ४ सेर, दूध ऽ१६ सेर, कल्कार्थ पीपल ऽ१ सेर यथानियम पाक करना चाहिए। इसके सेवनसे यकृत्, प्लीहा और अग्निमान्द्यादि प्रशमित होता है।

(भैषज्यरत्ना० प्लीहायकृदधि०)

अन्यविध—घी ऽ४ सेर, पीपलका क्वाथ ऽ१६ सेर, कल्कार्थ पीपल ऽ१ सेरको मिला कर पाक करे। खूब ठंढा होने पर उसमें ऽ१ सेर मधु मिला दे। इसका अनुपान आध पाव दूध है। इसके सेवनसे परिणामशूल जाता रहता है। (भैषज्यरत्ना शूलाधि०)

पिप्पलीद्वय (सं० क्ली०) पिप्पली और गजपिप्पली ये दोनों द्रव्य।

पिप्पलीमूल (सं० क्ली०) पिप्पल्या मूलमिव मूलं यस्य। स्वनामख्यात मूलविशेष, पिपरामूल। इसे महाराष्ट्रमें पिप्पलीमूल; कालिङ्गमें पिप्पलि येवरु; तेलङ्गमें पिप्पलीदुम्प कहते हैं। संस्कृत पर्याय—ग्रन्थिक, चटिकाशिरः, षड्ग्रन्थि, मूल, कोलमूल, कटुग्रन्थि, कटुमूल, कटूषण, सर्वग्रन्थि, पत्राढ्य, विरूप, शौण्डीमूल, सुगन्धि, ग्रन्थिल और उषण। गुण—दीपन, कटु, पाचन लघु, रूक्ष, पित्तकर, भेदक कफ, वात, उदर, आनाह, प्लीहा, गुल्म, कृमि, श्वास और क्षयनाशक तथा उष्ण और रोचन। (राजनि०)

पिप्पलीरसायन (सं० क्ली०) मेधाकर रसायनविशेष। पिप्पलीको किंशुकक्षारमें भावना दे कर पीछे उसे घीमें भून ले। यह मधु और घीके साथ भोजन करनेके पहले तीन बार पूर्वाह्णमें खानेसे रसायन होता है।

(चरकचिकित्सा १ अ०)

पिप्पलीवर्द्धन (सं० क्ली०) रसायनविशेष। इसका क्रम इस प्रकार है—पहले दिन १० पीपल, दूसरे दिन २०, तीसरे दिन ३०, चौथे दिन ४०, इसी प्रकार हर रोज दश दश बढ़ा कर दूधके साथ क्रमागत १० दिन तक सेवन करे। बाद ११वें दिनसे फिर दश दश घटा कर पूर्ववत् दशकी वृद्धि करनी होगी। इस प्रकार वृद्धि कर हजार तक पिप्पलीका सेवन किया जा सकता है। प्रत्येक दिन दश दश कर बढ़ानेसे प्रधान योग, छह छह कर बढ़ानेसे मध्यम और पांच पांच कर सेवन करनेसे अधम योग होता है। कहीं कहीं पर पांच पांच कर बढ़ानेका नियम है। इसका सेवन करनेसे बल और आयुकी वृद्धि होती तथा प्लीहादिरोग जाता रहता है।

पिप्पल्यादिकषाय (सं० पु०) कषायभेद। यह वातज्वरमें हितकर है।

पिप्पल्यादिगण (सं० पु०) सुश्रुतोक्तगणभेद, सुश्रुतके अनुसार औषधियोंका एक वर्ग। यथा—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चीता, अदरख, मिर्च, गजपिप्पली, हरेणु, इलायची, अजवायन, इन्द्रजौ, आकनादि, जीरा, सरसों, बकायन, हींग, भार्गी, मधुर, अतिविषा, वच, विडङ्ग और कटकी ये सब द्रव्य पिप्पल्यादिगण हैं। यह कफ, प्रतिश्याय, वायु और अरुचिनाशक, अग्निदीप्तिकर, गुल्म और शूलघ्न तथा आमपरिपाककर है।

पिप्पल्याद्यचूर्ण (सं० क्ली०) चूर्णौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—पीपल, त्रिफला, देवदारु, सोंठ और पुनर्नवा प्रत्येक एक पल, विडङ्गचूर्ण १२ पल इन सब द्रव्योंको

एक साथ पीसनेसे यह औषध प्रस्तुत होती है। सेवन-मात्रा दो तोला और इसका अनुपान कांजी है। इस औषधके सेवनकालीन पथ्यापथ्यका कोई नियम नहीं है। इसके सेवनसे श्लीपद और वातरोग आदि जाते रहते हैं।

पिप्पल्याद्यतैल (सं० क्ली०) तैलौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—तिलतैल ७४ सेर, दूध ७८ सेर, कल्कार्थ पीपल, यष्टि-मधु, सोंठ, सौंफ, मदनफल, वच, कुट, पुष्करमूल, चितामूल और देवदारु कुल मिला कर एक सेर। तैलपाकके नियमानुसार इस तैलको प्रस्तुत करना चाहिये। इस तैलको पिचकारी देनेसे अर्श और आनाह आदि रोगोंकी पीड़ा जाती रहती है।

पिप्पल्याद्यलौह (सं० क्लो०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पीपल, आंवला, द्राक्षा, बेर-बीजका गूदा, मधु, चीनी, विड़ङ्ग, कुट इत्यादि प्रत्येकका चूर्ण एक तोला, लौह आठ तोला इन सबको जलमें पीस कर पांच रत्ती-के बराबरकी गोली बनानी चाहिए। दोषकी विवेचना कर अनुपानविशेषसे इसका सेवन करनेसे हिक्का और महाश्वास आरोग्य होता है। हिक्कारोगकी यह एक उत्कृष्ट औषध है।

पिप्पल्याद्यासव (सं० पु०) आसव औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पीपल, मिर्च, चई, हरिद्रा, चितामूल, मोथा, विड़ङ्ग, सुपारी और लोध, आकनादि, आंवला, एलवालुक, खसकी जड़, लालचन्दन, कुट, लवङ्ग, तगर-पादुका, जटामांसी, गुड़त्वक्, इलायची, तेजपत्र, प्रियङ्गु और नागेश्वर प्रत्येकका चूर्ण ४ तोला, जल १२८ सेर, गुड़ ३७॥ सेर, धवईफूल और दशमूलद्राक्षा ६० पल इन सब द्रव्योंको मिला कर मिट्टीके बरतनमें एक मास तक रख छोड़े। बाद उसका द्रवांश छान ले। इसी नियमसे यह आसव प्रस्तुत होता है। अग्निके बलकी विवेचना कर इसकी मात्रा ठीक करनी चाहिए। इस आसवके सेवनसे क्षय, गुल्मोदर, काश, ग्रहणी, पाण्डु आदि रोग जाते रहते हैं। ग्रहणीरोगमें यह आसव विशेष उपकारी है।

पिप्पिका (सं० स्त्री०) दन्तमल, दांतकी मैल।

पिप्पीक (सं० पु०) पक्षिभेद, एक पक्षी। शिखी, श्रीकण्ठ, पिप्पीक और रुरु आदि पक्षियोंका दाहिनेमें रहना शुभ है।

पिप्रीषा (सं० स्त्री०) पिप्रीष-टाप्। प्रीतिकामना, प्रीतीच्छा।

पिप्रीषु (सं० त्रि०) पिप्रीष सन्नन्तात् उ। प्रीतिकामना करनेमें इच्छुक, प्रीतिके अभिलाषी।

पिप्रु (सं० पु०) असुरभेद, एक राक्षसका नाम।

पिप्लियानगर—मध्य भारतके भूपाल एजेन्सीके अन्तर्गत एक सामन्त राज्य। यहांके राजवंशियोंकी उपाधि 'ठाकुर' है। मालव प्रदेशमें शान्ति स्थापित होने पर पिण्डारिदस्यु चीतूके भाई राजन खाँ मासिक वेतन पर उक्त स्थानके अधिकारी हुए। अपने शेष जीवन तक इन्होंने अंग्रेजोंके साथ मित्रता-भाव रखा और इसी कारण अंग्रेजोंने उक्त सम्पत्ति तथा जारिया भील, जारिया और काजूरी प्रदेश इनके पुत्रोंमें बाँट दिये थे।

पिप्लु (सं० पु०) अपि प्लवते देहोपरि इति अपि-प्लु-डु, अपेरल्लोपः। जतुमणि।

पिब्दन (सं० त्रि०) अपि-शब्दे क्युट्, पृषोदरादित्वात् साधुः। अव्यक्तरूपसे शब्दायमान।

पिब्दमान (सं० त्रि०) अपि-शब्दे शानच्, पृषोदरादित्वात् साधुः। अव्यक्त शब्दायमान, जोरसे आवाज होना।

पिम्परी (पिम्प्रि)—खान्देश जिलेके दाङ्ग प्रदेशके अन्त-र्गत एक भीलराज्य। दाङ्ग देखो।

पिम्पलगांवराज—बेरार राज्यके बुलदाना जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २०° ४३' उ० और देशा० ७६°३० पू०के मध्य अवस्थित है। पीरतसिंह नामक एक अहीर-राज द्वारा यह नगर ८०० वर्ष पहले दयागङ्गा नदीके किनारे बसाया गया है। विगत शताब्दीके शेष भागमें दस्युके उपद्रवोंसे उक्त नगर क्रमशः श्रीहीन हो गया। अन्तमें १७९० ई०में महादोजी सिन्धियाने गुलाम कादर बेगको परास्त कर पूना जाते समय इस नगरसे चौथ वसूल किया था। इससे नगरकी पूर्व समृद्धि एकबारगी विनष्ट हो गई। यहां पर्वतके ऊपर एक देवमन्दिर है। १६१८ ई०में विख्यात पण्डित गणेश-देवाध्याय यहां वर्त्तमान थे। उनकी लिखी पुस्तकें अब भी देखी जाती हैं।

पिम्पलनेर—१ बम्बई प्रदेशके खान्देश जिलेका एक उपविभाग। यह सह्याद्रिके ऊपर और नीचे अवस्थित है। भूपरिमाण १३३८ वर्गमील है। इसमें कुल २२६ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका सदर और प्रधान नगर। यहां घाससे जो तेल तैयार होता है, वह विक्रयार्थ सूरत भेजा जाता है। यहां एक प्राचीन दुर्ग अब भी वर्त्तमान है।

पिम्पड़वट्टख—सतारा जिलेके अन्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यहां नारायण पोवर नामक एक नौ वर्षका कृषकबालक विषधर सांपको पकड़नेमें विशेष पटुता दिखाने और दैववाक्यसे रोगियोंको व्याधिमुक्त करनेके कारण बम्बई, कोलावा, रत्नगिरि यहां तक कि सारे दाक्षिणात्य प्रदेशमें प्रसिद्ध हो उठा। लोग इसे नारायणका अवतार मानने लगे। इस भ्रमात्मक विश्वासके वशीभूत हो चारों ओरसे मूर्ख लोग इस नतन देवता-दर्शनके लिए आने लगे। १८३० ई०में छः महीने तक जनसाधारणको मुग्ध कर सांपके काटनेसे उक्त बालककी प्राणवायु उड़ गई। दाक्षिणात्यवासियोंको विश्वास था, कि समाधिसे यह बालक पुनः देहावलम्बन कर ख्यातिलाभ करेगा; किन्तु उनकी आशा निराशामें परिणत हुई। अभी भी इस समाधि-मन्दिरमें बालक देवताके व्यवहार्य जूते, छड़ी और वस्त्र रखे हुए हैं।

पिम्पलवन्दो—पूना जिलेके अन्तर्गत एक गण्ड ग्राम।

पिम्पलादेवी—खान्देश जिलेके अन्तर्गत भोलोंका एक सामन्त राज्य। दाङ्ग देखो।

पिय (हिं० पु०) स्वामी, स्त्रीका पति।

पियदसी—सम्राट् अशोकका नामान्तर। प्रियदर्शी देखो।

पियर (हिं० वि०) पीयर वा पीला देखो।

पियरई (हिं० स्त्री०) पोलापन।

पियराई (हिं० स्त्री०) पोलापन, जर्दी।

पियरो (हिं० वि०) १ पीली देखो। (स्त्री०) २ पोली रंगी हुई धोती। ३ पोलापन। ४ एक प्रकारका पोला रंग जो गायको आमको पत्तियां खिला कर उसके मूतसे बनाया जाता है।

पियरोला (हिं० पु०) पोले रंगकी एक चिड़िया जो मैनासे कुछ छोटी और जिसकी बोली बहुत मीठी होती है।

पियली (हिं० स्त्री०) नारियलकी खोपरीका वह टुकड़ा जिसे बढ़ई आदि बरमेके ऊपरी सिरेके कांटे पर इसलिए रख लेते हैं जिसमें छेद करनेके लिए बरमा सहजमें घूम सके।

पियला (हिं० पु०) १ दूधका बच्चा। २ पियरोला देखो।

पियवास (हिं० पु०) पियाबांसा देखो।

पिया (हिं० पु०) पिय देखो।

पियादा (हिं० पु०) प्यादा देखो।

पियाना (हिं० क्रि०) पिलाना देखो।

पियानो (अं० पु०) एक प्रकारका बड़ा अंग्रेजी बाजा जो मेजके आकारका होता है। इसके भीतर स्वरोंके लिए कई मोटे पतले तार होते हैं जिनका सम्बन्ध ऊपरकी पटरियोंसे होता है। पटरियोंपर ठोकर लगनेसे स्वर निकलते हैं।

पियाबांसा (हिं० पु०) कुरवक, कटसरैया।

पियार (हिं० पु०) १ एक प्रकारका पेड़। यह मझोले आकारका और देखनेमें महुवेके पेड़-सा जान पड़ता है। पत्ते भी इसके महुवेके पत्तोंसे मिलते जुलते हैं। वसन्तऋतुमें इसमें आमकी-सी मंजरियां लगती हैं जिनके झड़ने पर फालसेके बराबर गोल गोल फल लगते हैं। इन फलोंमें मीठे गूदेकी पतली तह होती है। जिसके नीचे चिपटे बीज होते हैं। इन बीजोंकी गिरी स्वादमें बादाम और पिस्तेके समान मीठी होती है और मेवोंमें गिनी जाती है। यह गिरी चिरौंजीके नामसे बिकती है। इसके पेड़ भारतवर्ष भरके विशेषतः दक्षिणके जङ्गलोंमें होते हैं। हिमालयके नीचे भी थोड़ी ऊंचाई तक इसके पेड़ मिलते हैं, पर यह विशेषतः विन्ध्यपर्वतके जङ्गलोंमें पाया जाता है। इसके धड़में चीरा लगानेसे एक प्रकारका बढ़िया गोंद निकलता है जो पानीमें बहुत कुछ घुल जाता है। कहीं कहीं यह गोंद कपड़ेमें माड़ी देनेके काममें आता है और छीपी इसका व्यवहार करते हैं। छाल और फल अच्छे वारनिशका काम दे सकते हैं। इसकी लकड़ी उतनी मजबूत नहीं होती पर लोग उससे खिलौने, मुठिया और दरवाजेके चौखटे आदि भी बनाते हैं। पत्तियां चारेके काममें आती हैं। यह पेड़ जङ्गलोंमें

आपसे आप उगता है, कहीं लगाया नहीं जाता। इसे कहीं कहीं अचार भी कहते हैं। २ प्यार देखो। (वि०) ३ प्यारा।

पियारा (हिं० वि०) प्यारा देखो।

पियारीबानो—दिल्ली-सम्राट् शाहजहान्‌के पुत्र शुजाकी दूसरी पत्नी। यह जैसी रूपवती थीं वैसी ही बुद्धिमती भी थीं। बङ्गालके स्थान स्थानमें विशेषतः चट्टग्राम और आराकान अञ्चलमें उनके सौन्दर्यका उल्लेख कर अनेक गीत आज भी सुननेमें आते हैं। आराकानमें शुजाकी मृत्यु होने पर पियारीने प्रस्तरखण्डमें अपना सिर पटक कर आत्महत्या की। उनकी दो कन्याएं भी इस निदारुण सम्वाद पर विष खा कर परलोकको सिधार गईं। आराकान राजने उनकी तीसरी लड़कीसे विवाह किया था। पियारीके गर्भ और शुजाके औरससे दो सन्तान और भी उत्पन्न हुई थी

पियारु (सं० पु०) पी-हिंसायां बाहुलकात् आरुक्। हिंस्र।

पियाल (सं० पु०) पीयति तर्पयतीति पीय-कालन् ह्रस्वश्च (पीयुकणिभ्यां कालन् ह्रस्वः सम्प्रसारणञ्च। उण् ४।७६) वृक्षविशेष, चिरौंजीका पेड़। महाराष्ट्र—चारोली; पञ्जाबी—चिरोली; उत्कल—चर; तामिल—काटमरा। संस्कृत पर्याय—राजदन, सन्नकद्रु, धनुष्पट, राजातन, सन्न, कद्रु, धनु, पट, ह्रस्वक, धन्वपट, पियालक, खरस्कन्ध, चार, बहुलवल्कल और तापसेष्ट। इसका गुण—पित्त, कफ और अस्त्रनाशक है। फलका गुण—मधुर, स्निग्ध, वृंहण, वात और पित्तनाशक, गुरु, दाहज्वर और तृष्णाप्रशान्तिकर। इसकी मज्जाका गुण—मधुर, वृष्य, पित्त तथा वायुनाशक, हृद्य, अतिदुर्जर, स्निग्ध, विष्टम्भी और आमवर्द्धक है। (भावप्र० पूर्वख०) इसका तेल बिभीतक तैलकी तरह गुणयुक्त है। गोंद उदरामयनाशक और ग्रीवा, मांस, ग्रन्थि तथा सुजनमें हितकर है। विशेष विवरण पियार शब्दमें देखो।

पियाला (हिं० पु०) प्याला देखो।

पियालास्थिज (सं० पु०) पियालफलमज्जा, पियार-वीजका गूदा।

पियाली—२४ परगनेके अन्तर्गत एक शाखा नदी। यह भगीरथपुरके निकट विद्याधरीसे निकल कर मातलामें गिरी है। विद्याधरके निकट इसकी चौड़ाई २८० हाथ है परन्तु क्रमशः बढ़ते बढ़ते यह फिर ५८० हाथ हो गई है। इस नदीमें जो पुल है उस पर हो कर मातलाकी रेलगाड़ी गई है।

पियास (हिं० स्त्री०) प्यास देखो।

पियासा (हिं० वि०) प्यासा देखो।

पियासाल (हिं० पु०) बहेड़े या अर्जुनकी जातिका एक बड़ा पेड़। संस्कृत पर्याय—पीतसाल, पीतसार, प्रियक, पीतसालक, असन और महासर्ज।

यह पेड़ भारतवर्षके जङ्गलोंमें सब जगह पाया जाता है। इसके पत्ते भी बहेड़ेके पत्तोंके समान चौड़े चौड़े होते हैं जो शिशिर ऋतुमें झड़ जाते हैं। फल भी बहेड़ेके समान होते और कहीं कहीं चमड़ा सिझानेके काममें आते हैं। लकड़ी इसकी मजबूत होती और मकानोंमें लगती है। मूसल, गाड़ी और नाव भी इस लकड़ीकी अच्छी होती हैं। इसकी छालसे पीला रंग बनता है। रंगके अतिरिक्त छाल दवामें काम आती है। लाख भी इसमें लगता है। छोटानागपुर और सिंहभूमिके आस पास टसरके कीए पियासालके पेड़ों पर पाले जाते हैं। वैद्यकमें पियासाल कोढ़, विसर्प, प्रमेह कृमि, कफ और रक्तपित्तको दूर करनेवाला तथा त्वचा और केशोंको हितकारी माना गया है। इसे सज भी कहते हैं।

पियूख (हिं० पु०) पीयूष देखो।

पियूष (हिं० पु०) पीयूष देखो।

पिरकी (हिं० स्त्री०) फुंसी, फोड़िया।

पिरता (हिं० पु०) पत्थर या काठका टुकड़ा जिस पर रूईकी पूनी रख कर दबाते हैं।

पिरन (हिं० पु०) चौपायोंका लंगड़ापन।

पिराक (हिं० पु०) एक पकवान, गोझा, गोझिया। मैदेकी पतली लोईके भीतर सूजी, खोवा, मेवे आदि मीठेके साथ भरते हैं और उसे अर्द्धचन्द्राकार मोड़ कर घीमें तल कर निकाल लेते हैं।

पिराना (हिं० क्रि०) १ पीड़ा अनुभव करना, सहानुभूति करना, दुःख समझना। २ पीड़ित होना, दर्द करना, दुखना।

पिरिच (हिं॰ पु॰) कटोरा, तश्तरी।

पिरिया (हिं॰ पु॰) १ एक प्रकारका बाजरा। २ कुएंसे पानी निकालनेका रहट।

पिरीता (हिं॰ वि॰) प्रिय, प्यारा।

पिरीज (हिं॰ पु॰) कटोरा, तश्तरी।

पिरोजन (हिं॰ पु॰) बालकके कान छेदनेकी रीति, कनछेदन।

पिरोजा (फा॰ पु॰) हरापन लिए एक प्रकारका नीला पत्थर। फीरोजा देखो।

पिरोड़ा (हिं॰ स्त्री॰) पीली कड़ी मिट्टीकी भूमि।

पिरोना (हिं॰ क्रि॰) १ तागे आदिको छेदमें डालना, सूत, तागे आदिको किसी छेदके आर-पार निकालना। २ छेदके सहारे सूत तागे आदिमें फंसाना, सूत तागे आदमें पहनाना, गूथना, पोहना।

पिरोला (हिं॰ पु॰) पियरोला पक्षी।

पिरोहना (हिं॰ क्रि॰) पिरोना देखो।

पिलई (हिं॰ स्त्री॰) बरवट, तापतिल्ली

पिलक (हिं॰ पु॰) १ अबलक कबूतर। २ पीले रंगकी एक चिड़िया जो मैनासे कुछ छोटी होती है और जिसका कण्ठस्वर बहुत मधुर है। यह ऊंचे पेड़ों पर घोंसला बनाती है और तीन चार अंडे देती है, पियरोला, जर्दक।

पिलकना (हिं॰ क्रि॰) १ लुढ़काना, ढकेलना। २ गिराना।

पिलकिया (हिं॰ पु॰) पीलापन लिए खाकी रंगकी एक छोटी चिड़िया जो जाड़के दिनोंमें पञ्जाबसे आसाम तक दिखाई देती है। यह चट्टानोंके नीचे बच्चे देती है।

पिलखन (हिं॰ पु॰) पाकरका पेड़।

पिलखना—युक्तप्रदेशके अलीगढ़ जिलान्तर्गत सिकन्दरराबकी तहसीलका एक शहर। यह अक्षा॰ २७° ५१´ उ॰ और देशा॰ ७८° १७´ पू॰ अलीगढ़ शहरसे ११ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या ५१०८ है।

पिलखूवा—युक्तप्रदेशके मीरट जिलान्तर्गत एक नगर, यह अक्षा॰ २८° ४३´ उ॰ और देशा॰ ७७° ४२´ पू॰के मध्य मीरटसे ८॥ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहांके अधिवासी अकसर रूईके कपड़े बुनते हैं और इसीके लिए यहां लगभग १०० तांत हैं। इसके अलावा यहां जूते और चमड़ेका भी कारबार है। सिपाही-विद्रोहके बाद मसूरी कोठीके अध्यक्षने इस नगरके साथ साथ १३ ग्राम और भी खरीदे थे। यहां हिन्दुओंके दो बड़े देवालय हैं।

पिलड़ी (हिं॰ स्त्री॰) कीमा, मसालेदार कीमा।

पिलचना (हिं॰ क्रि॰) १ तत्पर होना, लीन होना, किसी काममें खूब लग जाना। २ दो आदमियोंका खूब भिड़ना, लिपटना, गुथना।

पिलना (हिं॰ क्रि॰) १ एकबारगी प्रवृत्त होना, एकबारगी लग जाना, भिड़ जाना, लिपट जाना। २ पेरा जाना, तेल निकालनेके लिए दबाना। ३ किसी ओर एकबारगी टूट पड़ना, ढल पड़ना; झुक पड़ना, धंस जाना।

पिलपिल (हिं॰ वि॰) पिलपिला देखो।

पिलपिला (हिं॰ वि॰) इतना नरम और ढीला, कि दबानेसे भीतरका रस या गूदा बाहर निकलने लगे, भीतरसे गीला और नरम।

पिलपिलाना (हिं॰ क्रि॰) भीतरसे रसदार या गूदेदार वस्तुको दबाना जिससे रस या गूदा ढीला हो कर बाहर निकलने लगे।

पिलपिलाहट (हिं॰ स्त्री॰) दब कर गूदे या रसके ढीले होनेके कारण आई हुई नरमी।

पिलवाना (हिं॰ क्रि॰) १ पिलानेका काम करना, दूसरेको पिलानेमें लगाना। २ पेलने या पेरनेका काम कराना, पेरवाना।

पिलाना (हिं॰ क्रि॰) १ पान कराना, पीनेका काम कराना। २ पीनेको देना। ३ किसी छेदमें ढाल देना, भीतर करना।

पिलिन्दवत्स (सं॰ पु॰) शाक्यबुद्धके एक शिष्यका नाम।

पिलिप्पिल (सं॰ त्रि॰) चिक्कण, चिकना।

पिलिभित्—पीलीभीत देखो

पिलुंडा (हिं॰ पु॰) पुलिंदा देखो।

पिलु (सं॰ पु॰) रागिणीविशेष, एक रागिनी। यह सुबहमें गाया जाता है। पीलु देखो।

पिलुक (सं॰ पु॰) अपि लातीति अपि-ला-आहुलकात् उ अपेरल्लोपः, ततः कन्। पीलु का पेड़।

पिलुनी (सं० स्त्री०) मूर्वा, मरोड़फली ।

पिलुपर्णी (सं० स्त्री०) पिलोरिव पर्णमस्याः ङीष् । मूर्वा ।

पिल्ल (सं० पु०) क्लिन्ने चक्षुषी यस्येति (इनच् पिटचिकचि च । पा ५।२।३३) इत्यत्र "क्लिन्नस्य चिल्पिल्लश्चास्य चक्षुषी" इति वार्त्तिकोक्त्या पिल्लादेशः । १ क्लेदयुक्त चक्षु, एक नेत्ररोग जिसमें आंखोंसे थोड़ा थोड़ा कीचड़ बहा करता है और वे चिपचिपाती रहती हैं ।

ताम्रपात्र पर गुञ्जामूल, सिन्धूत्थ और मिर्च युक्त आरनाल घिसे । इस प्रकार जो अञ्जन प्रस्तुत होता है, उसे आंखमें लगानेसे पिल्लरोग जाता रहता है । (त्रि०) २ पिल्लरोगयुक्त ।

पिल्लका (सं० स्त्री०) पिल्लेन क्लेदयुक्त-चक्षुषा कायतीति कै-क-टाप् । हस्तिनी, हथिनी ।

पिल्ला (हिं० पु०) कुत्ते का बच्चा ।

पिल्लू (हिं० पु०) बिना पैरका सफेद लम्बा कीड़ा जो सड़े हुए फल या घाव आदिमें देखा जाता है ।

पिव (हिं० पु०) पिय देखो ।

पिवाना (हिं० क्रि०) पिलाना

पिश (सं० त्रि०) पिश-क । १ पापनिर्मुक्त, पापसे छुटकारा पाया हुआ । (क्ली०) २ बहुरूप । (पु०) ३ रुरु ।

पिशङ्ग (सं० पु०) पिंशतीति पिश (पिशादिभ्यः कित् । उण् १।१२०) इति सूत्रेण अङ्गच्, स च कित् । १ पिङ्गलवर्ण, पीलापन लिए भूरा रंग, धूमला रंग । २ नागभेद, एक नागका नाम । ३ मनुभेद । (त्रि०) ४ पिङ्गलवर्णयुक्त, भूरेपीले रंग का ।

पिशङ्गक (सं० पु०) पिशङ्ग-स्वार्थे क । १ पिशङ्ग देखो । २ विष्णु, भगवान् ।

पिशङ्गभृष्टि (सं० त्रि०) भ्रस्ज-कर्मणि-क्तिच्, पिशङ्ग इव भृष्टिः सारभूतो यस्य । ईषद्रक्तवर्ण, कुछ लाल रंगका ।

पिशङ्गराति (सं० त्रि०) पिशङ्गः बहुरूपो रातिर्धनं यस्य बहुधनस्वामी, बहुत धनका मालिक ।

पिशङ्गरूप (सं० त्रि०) पिशङ्गः रूपं यस्य । हिरण्यरूप, पीतवर्ण, पीले रंगका ।

पिशङ्गसंदृश । (सं० त्रि०) नाना रूप, अनेक प्रकारका रूप ।

पिशङ्गाश्व (सं० पु०) पिङ्गलवर्ण अश्व, पीलापन लिये भूरे रंगका घोड़ा ।

पिशङ्गिला (सं० स्त्री०) पिशं बहुरूपं गिलतीति गिल-ख-मुम् च । १ रीति, पित्तल, पीतल । २ माया ।

पिशाच (सं० पु०) पिशितं मांसमश्नातीति पिशित-अश-अण्, ततः पृषोदरादित्वात् शितभागस्य लोपः अशभागस्य शाचादेशः । १ देवयोनिविशेष, एक हीन देवयोनि । पिशाचगण यक्ष और राक्षससे निकृष्ट हैं । ये अत्यन्त अशुचि, मरुदेशनिवासी और गन्दे कहे गए हैं । २ प्रेत, भूत ।

शुद्धितत्त्वमें लिखा है—अशौचान्तके दूसरे दिन जिसके उद्देश्यसे वृष उत्सृष्ट नहीं होता, उसके उद्देश्यसे यदि सैकड़ों श्राद्धका अनुष्ठान क्यों न हो, तो भी उसे पिशाचयोनिमें जन्म लेना पड़ता है ।

"अशौचान्ताद्द्वितीयेऽह्नि यस्य नोत्सृज्यते वृषः ।
पिशाचत्वं भवेत्तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥"
(शुद्धितत्त्व)

पिशाचक (सं० त्रि०) पिशाचः तन्निवारणे कुशलः, आकर्षादित्वात् कन् । १ पिशाच-निवारण-कुशल, भूत प्रेत आदिको भगानेवाला ओझा । पिशाच इव कायति-कै-क । २ पिशाचतुल्य यक्ष गुह्यक आदि । ३ पर्वतविशेष, एक पहाड़ जहां धनाधिपति कुबेरका वास है ।

पिशाचकपुर—नगरभेद, एक नगरका नाम ।

पिशाचकिन् (सं० पु०) पिशाचाः सन्त्यस्येति (वातातीसाराभ्यां कुकच् । पा ५।२।१२९) इत्यत्र 'पिशाचाच्च' इति वार्त्तिकोक्त्या इनिः कुक् च । कुबेर ।

पिशाचवृक्ष (सं० पु०) शाखोटवृक्ष, सिहोरका पेड़ ।

पिशाचग्रह (सं० पु०) भूतग्रहविशेष । इस ग्रह द्वारा आक्रान्त होनेसे कृश, परुषभाषी, अचिरप्रलापी, शरीरमें दुर्गन्ध, अत्यन्त अशुचि और चञ्चल, बहुभोजनशील, विजनवनान्तरोपसेवी और कभी घूमता या कभी रोता है ।

पिशाचघ्न (सं० पु०) पिशाचं हन्ति हन-टक् । १ श्वेतसर्षप, पीली सरसों । पीली सरसोंसे भूतपिशाच भाग जाता है, इसीलिये इसका नाम पिशाचघ्न पड़ा है । (त्रि०) २ पिशाचोंको नष्ट या दूर करनेवाला ।

पिशाचचर्या (सं० स्त्री) श्मशान-सेवन, जैसा शिवजी करते हैं।

पिशाचता (सं० स्त्री) पिशाचस्य भावः तल्, स्त्रियां टाप्। पिशाचत्व, पिशाचका भाव या धर्म।

पिशाचद्रु (सं० पु०) पिशाचानां द्रुः, पिशाचप्रियः द्रुर्वा, निविड़त्वादन्धकारत्वात् अशुचिस्थान-जातत्वाच्च। शाखोटवृक्ष, सिहोरका पेड़।

पिशाचमोचन (सं० क्लो०) स्कन्दपुराणोक्त प्राचीन तीर्थ-भेद। पराशरनन्दन व्यास घण्टाकर्ण ह्रदके समीप व्यासेश्वरकी पूजा कर इस तीर्थमें कपर्द्दीश्वर लिङ्गदर्शनके लिए आए थे। यहां स्नान, देवपितृतर्पण और कपर्दी-श्वर लिङ्गकी पूजा करनेसे रुद्रलोककी प्राप्ति होती है।

पिशाचवृक्ष (सं० पु०) पिशाचानां वृक्षः, पिशाचप्रियो वृक्षो वा। शाखोटवृक्ष, सिहोरका पेड़।

पिशाचसभ (सं० क्लो०) पिशाचानां सभा, समासे क्लोवत्वं। पिशाचोंकी सभा।

पिशाचालय (सं० पु०) पिशाचानामालय। पिशाचोंका घर।

पिशाचि (सं० पु०) पिशाचविशेष।

पिशाचिका (सं० स्त्री०) सूक्ष्म जटामांसी, छोटी जटा-मासी।

पिशाची (सं० स्त्री०) पिशाच-ङीष्। १ पिशाच-स्त्री। पिशाचवद्गन्धोऽस्त्यस्या इति अच्, ततो ङीष् तद्वद् गन्ध-युक्तत्वात् तथात्वं। २ गन्धमांसी, जटामासी।

पिशिक (सं० पु०) देशविशेष, एक देशका नाम। वृहत्-संहितामें इसका उल्लेख आया है। यह देश कूर्म-विभागके १२, १३ और १४ नक्षत्रमें अवस्थित है।

पिशित (सं० क्लो०) पिंशति अवयवीभवति पिश-इतन्, सच कित् वा पिश्यते स्मेति क्त। मांस, गोश्त।

पिशितभुज् (सं० त्रि०) पिशित भुज्-क्विप्। मांसाशी, मांस खानेवाला।

पिशितरोहिणी (सं० स्त्री०) मांसरोहिणी।

पिशिता (सं० स्त्री) पिशितवद्गन्धोऽस्त्यस्या इति अच्, टाप्। जटामांसी, जटामासी।

पिशिताशन (सं० त्रि०) मांसभोजी, गोश्त खानेवाला।

पिशिताशिन् (सं० त्रि०) मांसभक्षक, गोश्त खानेवाला।

पिशितोदक (सं० क्लो०) कुङ्कुम, केसर।

पिशिनी (सं० स्त्री०) पिशी देखो।

पिशी (सं० स्त्री०) पिंशतीति पिश-क, गौरादित्वात् ङीष्। जटामांसी, जटामासी।

पिशील (सं० क्लो०) पिश बाहु-ईल। मृण्मयपात्र, मिट्टीका प्याला या कटोरा।

पिशुन (सं० क्लो०) पिंशतीति पिश-उनन्, स च कित्। (क्षुधिपिशिमिथः कित्। उण् ३।५५) १ कुङ्कुम, केसर। पर्याय—घुसृण, रक्त, काश्मीर, पीतक, सङ्कोच, पिशुन, धीर, बाह्लीक और शोणित। २ कपिवक्त्र, नारद। ३ काक, कौआ। ४ अङ्गधूपका पुत्र। ५ कौशिकके एक पुत्रका नाम। ६ परस्पर भेदशील, दुर्जन, इधरकी उधर लगाने-वाला, एककी बुराई दूसरेसे करके भेद डालनेवाला, चुगलखोर, खल। संस्कृत पर्याय—द्विजिह्व, सूचक, कर्णेजप, दुर्जन, दुर्विध, विश्वकद्रु और खल तथा अनौ-चित्यप्रबोधक। ७ क्रूर, दुष्ट। ८ तगर। ९ कार्पास, कपास।

पिशुनता (सं० स्त्री०) पिशुनस्य भावः तल्, स्त्रियां टाप्। क्रूरता, खलता, चुगलखोरी।

पिशुना (सं० स्त्री०) पिशुन-टाप्। पृक्का, असवर्ग।

पिशोन्माद (सं० पु०) एक प्रकारका उन्माद या पागल-पन जिसमें रोगी प्रायः ऊपरको हाथ उठाए रहता है, अधिक बकता और भोजन करता है, रोता तथा गंदा रहता है।

पिशौर (हिं० पु०) हिमालयकी एक झाड़ी जिसकी टहनियोंसे बोझ बांधते हैं और टोकरे आदि बनाते हैं।

पिषीन्—दक्षिण अफगानिस्तानका एक जिला। यह अक्षा० ३०° १०´ से ३१° १५´ उ० और देशा० ६६° १०´ से ६७° ५०´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३६०० वर्गमील है। सारा जिला समतल और समुद्रपृष्ठसे प्रायः ५ हजार फुट ऊंचा है। उत्तर और पूर्वांशवर्त्ती उपविभाग अपेक्षाकृत उच्चतर हैं। पूर्वदिकस्थ ख्वाजा अमरान नामक गिरिशृङ्ग ८८६४ फुट और उत्तरका तोवा नामक शृङ्ग प्रायः ८००० फुट ऊंचा है। अलावा इसके उत्तरमें काकड़ और दक्षिणमें तकातु नामक पर्वत आकाशसे बातें कर रहा है।

१८वीं शताब्दीमें यह स्थान अहमदशाह दुरानीके अधिकारमें था। १७७० ई०में अहमदशाहने इसका कुछ अंश खोलातके मोर नासिर खाँको अर्पण किया। सदोजाई वंशके अधःपतनके बाद पोण्डा खाँ बरकजाईके पुत्रोंमें राज्यविभक्त हो गया। इस समय पिषीन् प्रदेश कन्धारके सरदारोंके अधिकारमें आया। १८७६ ई०में कोएटा नगर अङ्गरेजोंके अधिकारभुक्त हो जाने पर काबुलके अमीरने अपना सत्त्व नष्ट हो जानेके भयसे खूब आन्दोलन किया। किन्तु उनके विशेष चेष्टा करने पर भी इस प्रदेश हो कर वे अङ्गरेजी-सेनाका आना जाना बन्द कर न सके। १८७८ ई०में ब्रुटिश-सेनाने पिषीन् पर अधिकार किया। १८७९ ई०की २५वीं मई-को गण्डामकसन्धिके अनुसार यह प्रदेश अङ्गरेजोंके हाथ लगा। जबसे यह प्रदेश अङ्गरेजी अधिकारमें आया है, तबसे यहां कोई उल्लेखयोग्य घटना नहीं घटी है। केवल १८८० ई०में कन्धार नगरमें याकुब खाँसे अङ्गरेजी सेना अवरुद्ध होने पर क्वाजा अम्रान-पर्वतवासी आचकजाई जातियां अङ्गरेजके विरुद्ध खड़ी हुईं। पीछे उक्त याकुब खाँकी पराजयके साथ साथ ब्रिगेडियाके जनरल बेकर द्वारा यह विद्रोह शान्त हुआ था।

इस प्रदेशमें आचकजाई, तरिन, सैयद और काफर जाति ही प्रधान हैं। आचकजाई जाति दुरानी अंशोभुक्त और बरकजाई शाखासम्भूत है। तरिनगण उक्त जातिके तोर शाखाभुक्त हैं। सैयद और काफर जाति वाणिज्य तथा कृषिजीवि हैं। देशीय व्यवहार्य लवणके सिवा यहां वाणिज्यार्थ कोई द्रव्य प्रस्तुत नहीं होता है। काकर, आचकजाई और तरिनगण प्रायः कार्योपलक्षमें भारतवर्ष आया करते हैं। सैयदोंके मध्य अश्वविक्रय ही प्रधान व्यवसाय है। गवर्नर जनरलके बेलुचिस्तान-एजेण्टके अधीनस्थ एक पोलिटिकल एजेण्ट द्वारा यह जिला शासित होता है। पिषीन् नगरके नया बाजारमें एजेण्टका आवास है। यहां सैनानिवास, तत्संक्रान्त राजकोष और तहसीलदारी कचहरी आदि हैं। अधिवासियोंके मध्य आचकजाई और सैयदगण किसी प्रकारका कर नहीं देते हैं। ग्रीष्म ऋतुमें क्या यूरोपीय, क्या देशीय दोनोंमें अकसर उदरामय, अजीर्ण और यकृतकी विकृति प्रभृति रोग फैल जाते हैं। शीतकालमें साधारणतः फेफड़ेके मध्य जलन और यक्ष्मादि फेफड़ेसे उत्पन्न रोग देशीय लोगोंके मरात्मक हैं। इङ्गलैण्डकी नाईं यहां भी चार ऋतु हैं; किन्तु ग्रीष्मके सामान्य उत्तापसे दारुण शीतके प्राबल्यके कारण सहजमें ही कठिन रोग हो जाता है।

पिष्ट (सं० क्लो०) पिष्यते स्मेति पिष-क्त। १ सीसक, सीसा। २ पिष्टक, पिट्ठी, पीठी।

"अन्नादष्ट गुणं पिष्टं पिष्टादष्ट गुणं पयः
पयसोऽष्टगुणं मांसं मांसादष्टगुणं घृतम्।
घृतादष्टगुणं तैलं मर्दनात् न च भक्षणात॥"
(राजवल्लभ)

अन्नसे पिष्टक आठ गुणा फलप्रद है, उसी तरह पिष्टसे दुग्ध, दुग्धसे मांस और मांससे घी आठ गुणा अधिक गुणयुक्त है। शरीरमें तेल लगानेसे घीसे भी आठ गुणा अधिक उपकार होता है। ३ कचौरी या पूआ, रोट। (त्रि०) ४ चूर्णीकृत, पिसा हुआ।

पिष्टक (सं० क्लो०) पिष्टमिव प्रतिकृतिः इवार्थे कन्। १ तिलचूर्ण। (पु०) पिष्टानां विकारः (संज्ञायां। पा ४।३।१४२) इति कन्। २ पिष्ट, पीठी, पिट्ठी। पर्याय—पूप, आपूप, अपूप और पिष्ट। पिष्टक बहुत तरहका होता है। राजवल्लभके मतसे पिष्टकका गुण—प्राणकर, रुच, विदाही, गुरु और दुर्जर है। शालि द्वारा जो पिष्टक प्रस्तुत होता है वह कफ और पित्तनाशक है। दालकी पीठी गुरु, विष्टम्भी और वायुवर्द्धक; सगुड़ तिल, पिष्टक बलकर, गुड़, बृंहण और हृद्य; गेहूंका पिष्टक गुरु, तर्पण, हृद्य और बलवर्द्धक तथा क्षीर, घृत और नारियल द्वारा प्रस्तुत पिष्टक कफकारक, रक्त और मांसवर्द्धक, रक्तपित्तनाशक, हृद्य, स्वादु, पित्तनाशक और अग्निप्रद है। ३ कचौरी या पूआ, रोट।

४ शुक्लगत अक्षिरोगभेद, एक प्रकारका नेत्ररोग, फूला, फली। लक्षण—अक्षिगोलकमें जलकी तरह सफेद गोलाकार विन्दु होनेसे उसे पिष्टक कहते हैं।
(सुश्रुत उत्तरत० ४ अ०)

भावप्रकाशके मतसे—वायु पित्तके बिगड़नेसे जब शुक्लमण्डलमें पिष्टतण्डुलकी तरह श्वेत अथच मलिन

दूप पातुल्य स्वच्छ और उन्नत मांसवृद्धि होती है, तब उसे पिष्टकाख्य नेत्ररोग कहते हैं।

इसको चिकित्सा—पीपल, सफेद मिर्च, सैन्धव और नागर इन सब द्रव्योंका बराबर हिस्सा ले एक साथ पीसना चाहिए। बाद उसे मातुलङ्ग रस द्वारा अञ्जन प्रस्तुत कर आंखमें देनेसे पिष्टक रोग जाता रहता है।

"वैदेही सितमरिचं सैन्धवं नागरं समं।
मातुलंगरसैः पिष्टमञ्जनं पिष्टकापहम्॥"
(वैद्यकचक्रपाणि)

५ सीसक, सीसा धातु। ६ अस्थिभङ्गविशेष, विशेष प्रकारका अस्थिभङ्ग। ७ नन्दिवृक्ष।

पिष्टप (सं० पु०-क्ली०) विशन्त्यत्र सुकृतिन इति (विटपपिष्टपविशिपोलपाः। उण् ३।१४५) इति कप्-प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। भुवन, लोक।

पिष्टपचन (सं० क्ली०) पच्यतेऽनेति पच आधारे ल्युट्, पिष्टस्य पचनम्। पिष्टपाकपात्र, पीठो पकानेका बरतन। पर्याय—ऋजीष, ऋचीष और पिष्टपाकभृत।

पिष्टपाकभृत् (सं० क्ली०) पिष्टपाकं तदभिहितो भावः द्रव्यवत् प्रकाशते इति न्यायात् पच्यमानपिष्टं बिभर्त्ति भृ-क्विप् तुक् च। पिष्टपाकपात्र, पीठो पकानेका बरतन।

पिष्टपिण्ड (सं० पु०) पुरोडाश, पिष्टक, पीठी।

पिष्टपुर—मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत एक जमींदारी और प्रधान नगर। यह काकनाड़ासे ६ कोस उत्तर-पूर्व अक्षा० १७° ६' उ० और देशा० ८२° १८' पू०के मध्य अवस्थित है। इसका वर्त्तमान नाम पिट्ठपुरम् है। यह नगर बहुत पुराना है। ध्वंसावशेष ही इसका निदर्शन है। महाराज समुद्रगुप्तके इलाहाबाद-स्तम्भलिपिपाठसे जाना जाता है, कि उन्होंने दक्षिणापथभ्रमणके समय पिष्टपुरराज महेन्द्रको पराजित किया था। पहले चालुक्यवंशके प्रतिष्ठाता कुब्जविष्णुवर्द्धनके भाई राजा सत्याश्रयके राजत्वकाल (५८४ ई०)में उत्कीर्ण शिलालिपिमें पिष्टपुर दुर्गके अधिकारकी कथा लिखी है। इसके बाद ५५६ शकसंवत्में यह राज्य पश्चिम चालुक्यराज २य पुलकेशीके अधिकारभुक्त हुआ। यहां एक प्राचीन देवीमूर्त्ति प्रतिष्ठित थी। स्थानविशेषसे वे पिष्टपुरी वा पिष्टपुरिका देवीके नामसे प्रसिद्ध थीं। उड़्छ्रासे १३।० कोस दक्षिण-पूर्व मानपुर नगरमें उनका पीठ था जिसे जनसाधारण पवित्र तीर्थस्थान मानते थे। यहांके प्राचीन सर्वप्रधान मन्दिरके ध्वजस्तम्भमें १११२ शकमें चोलराज द्वारा, ११०८ और ११२४ शकमें राजा (विमलादित्यके जमाता) राजराजके समयमें उत्कीर्ण तीन प्राचीन शिलालिपि हैं।

पिष्टपूर (सं० पु०) पिष्टैः पूर्यते इति पूरि कर्मणि अप्। १ वटक, बड़ी, बरी। २ पिष्टकविशेष, एक प्रकारकी पीठी। पर्याय—घृतपुर, घृतवर और घार्त्तिक।

पिष्टपेषण (सं० पु०) १ पिसे हुएको पीसना। २ कही बातको फिर फिर कहना।

पिष्टमय (सं० त्रि०) पिष्टस्य विकारः मयट्। पिष्टविकार भस्मादि।

पिष्टप्रमेह (सं० पु०) पिष्टमेह देखो।

पिष्टमेह (सं० पु०) प्रमेहरोगविशेष, एक प्रकारका प्रमेह जिसमें चावलके पानीके समान पदार्थ मूत्रके साथ गिरता है। यह पिष्टमेह श्लेष्माके कारण हुआ करता है।

हरिद्रा और दारुहरिद्राके साथ कसैली चीजका सेवन करनेसे पिष्टमेह जाता रहता है।

पिष्टमेहिन् (सं० पु०) पिष्टमिव मेहति मिह-णिनि। पिष्टमेहरोगग्रस्त, वह जिसे पिष्टमेह नामक रोग हुआ हो।

पिष्टयोनि (सं० पु०) खर्परपोलिका, रोट, कचौरी या पूआ।

पिष्टवत् (सं० त्रि०) पिष्ट-मतुप्, मस्य व। शुक्ल, उजला, सफेद।

पिष्टवर्त्ति (सं० पु०) वर्त्तयतीति वर्त्ति-इन्। मुद्ग तथा मसूरादिका पिष्ट, मूंग और मसूर आदिकी पीठी। पर्याय—चमसि।

पिष्टवेक्रत (सं० क्ली०) पिष्टान्न, पीठीका अन्न।

पिष्टसौरभ (सं० पु०) पिष्टेन पेषणेन सौरभं यस्य। चन्दन। इसे पीसनेसे सुगन्ध निकलती है, इसी कारण इसका नाम पिष्टसौरभ पड़ा है।

पिष्टात (सं० पु०) पिष्टं अतति गच्छतीति अत-अण्। पटवासचूर्ण, वस्त्रादि रंगानेके लिए गन्धद्रव्यचूर्ण।

गुलाल, अबीर। पर्याय—पटवासक, धूलिगुच्छक।

पिष्टातक (सं० पु०) गन्धचूर्ण।

पिष्टालिका (सं० स्त्री०) चन्दन।

पिष्टिक (सं० क्ली०) पिष्टमुत्पत्तिकारणत्वेनास्त्यस्येति ठन्। चावलोंसे बनाई हुई तबासीर या बंसलोचन।

पिष्टिका (सं० स्त्री०) पिष्टं पेषणं साधनतया अस्त्यस्या इति पिष्ट-ठन्, ततष्टाप्। पिष्टविदल, पीठो, दालको पिट्ठी। दालको पानीमें भिगो कर उससे भूसी निकाल लेनो चाहिए। बाद उसे शिला पर पीसनेसे पिष्टिका तैयार होती है।

पिष्टोड़ी (सं० स्त्री०) श्वेताम्लीका पौधा।

पिष्टोदक (सं० क्ली०) पिष्टमिश्रितमुदकम्। चूर्ण-तण्डुलमिश्रित जल, पोसे हुए चावलका पानी।

पिसङ्ग (सं० पु०) पिस-अङ्गच, किच। पिशङ्ग देखो।

पिसनहारी (हिं० स्त्री०) आटा पोसनेवाली, वह स्त्री जिसकी जीविका आटा पोसनेसे चलती हो।

पिसना (हिं० क्रि०) १ पिस कर तैयार होनेवाली वस्तुका तैयार होना। २ रगड़ दबावसे टूट कर महीन टुकड़ोंमें होना, दाब या रगड खा कर सूक्ष्म खण्डोंमें विभक्त होना, चूर्ण होना, चूर कर धूल-सा हो जाना। ३ परिश्रमसे अत्यन्त क्लान्त होना, अत्यन्त श्रान्त, थक कर बेदम होना। ४ कुचल जाना, दब जाना। ५ पीड़ित होना, घोर कष्ट, दुःख या हानि उठाना।

पिसवाना (हिं० क्रि०) पोसनेका काम कराना।

पिसाई (हिं० स्त्री०) १ पोसनेकी क्रिया या भाव। २ आटा पोसनेका धंधा, चक्की पोसनेका काम। ३ पोसनेको मजदूरी। ४ पोसनेका व्यवसाय या काम। ५ अत्यन्त अधिक श्रम, बड़ी कड़ी मिहनत। जैसे, वहां नौकरी करना बड़ी पिसाई है।

पिसाच (हिं० पु०) पिशाच देखो।

पिसान (हिं० पु०) अन्नका बारीक पिसा हुआ चूर्ण, धूलकी तरह पिसी हुई अनाजकी बुकनी, आटा।

पिसिया (हिं० पु०) एक प्रकारका छोटा और मुलायम गेहूं। —आ

पिसी (हिं० स्त्री०) गेहूं।

पिसुन (हिं० पु०) पिशुन देखो।

पिसुराई (हिं० स्त्री०) सरकंडेका एक छोटा टुकड़ा जिस पर रुई लपेट कर पूनी बनाते हैं।

पिसेरा (हिं० पु०) एक प्रकारका हिरन। इसके ऊपरका हिस्सा भूरा और नीचेका काला होता है। इसकी ऊंचाई १ फुट और लम्बाई २ फुट होती है। यह दक्षिण भारतमें पाया जाता है। यह बड़ा डरपोक होता और सुगमतासे पाला जा सकता है। यह दिनको बाहर कहीं नहीं निकलता और पत्थरकी चट्टानोंकी आड़में रहता है।

पिसौनी (हिं० स्त्री०) १ परिश्रमका काम, कठिन काम। २ पोसनेका काम, चक्की पोसनेका धंधा।

पिस्त (सं० क्ली०) पिस्ता।

पिस्तई (फा० वि०) पिस्तेके रंगका, पोलापन लिए हरा।

पिस्ता (हिं० पु०) काकड़ाकी जातिका एक छोटा पेड़। यह दमिश्क, शाम, खुरासान और इटाकसे ले कर अफगानिस्तान तक थोड़ा बहुत होता है और इसके फलकी गिरी अच्छे मेवोंमें है। पत्ते इसके गुलचीनोंके पत्तोंके जैसे चौड़े चौड़े होते हैं और एक सींकमें तीन तीन लगे रहते हैं। पत्तों पर नसें बहुत स्पष्ट होती हैं। फल देखनेमें महुवेके-से लगते हैं। रूमी मस्तगीके समान एक प्रकारका गोंद उस पेड़से भी निकलता है। पिस्तेके पत्तों पर भी काकड़ासींगीकी तरह एक प्रकारकी लाही सी जमती है जो विशेषतः रेशमकी रंगाईमें काम आती है। पिस्तेके बीजसे बहुत-सा तेल निकलता है जो दवाके काममें आता है।

पिस्तौल (हिं० स्त्री०) छोटो बंदूक, तमंचा।

पिस्सी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका गेहूं।

पिस्सू (हिं० पु०) उड़नेवाला एक छोटा कीड़ा जो मच्छड़ोंकी तरह काटता और रक्त पीता है, कुटकी।

पिहकना (हिं० क्रि०) मोर, कोयल और पपीहे आदि सुन्दर कण्ठवाले पक्षियोंका बोलना।

पिहरा (हिं० पु०) पासके ऊपर जो पत्ती बिछाई जाती है।

पिहान (हिं० पु०) बरतनका ढक्कन, ढांकनेकी वस्तु, ढकना।

पिहानी—१ अयोध्या प्रदेशके हरदोई जिलेके अन्तर्गत शाहाबाद तहसीलका एक परगना।

२ उक्त शाहाबाद तहसीलका सदर और प्रधान नगर। यह अक्षा० २९° ३७´ १५´´ उ० और देशा० ८०° १४´ २५´´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां पूर्व-समृद्धिके बहुत-से निदर्शन पाये जाते हैं। अकबर शाहके प्रधान-मन्त्री सदर-जहानकी बनाई एक मस्जिद और कब्र आज भी टटी फूटी अवस्थामें पड़ी है। मुसलमानोंके समयमें यहां सबसे अच्छी तलवार और 'दस्तार' नामक मशहूर पगड़ी बनाई जाती थी। अभी पूर्वकी समृद्धि जाती रही तथा तलवार बनानेके उपयोगी इस्पात और देखे नहीं जाते।

पिहित (सं० त्रि०) अपि धीयते स्मेति धा-क्त, (दधातेर्हिः। पा ७।४।४२) इति ह्यादेशः, अपेरल्लोपः। १ आच्छादित, छिपा हुआ। पर्याय—संवीत, रुद्ध, आवृत, संवृत, छन्न, स्थगित, अपवारित, अन्तर्हित और तिरोधान। (पु०) २ अर्थालङ्कार जिसमें किसीके मनका कोई भाव जान कर क्रिया द्वारा अपना भाव प्रकट करना वर्णन किया जाय।

पिहुवा (हिं० पु०) एक चिड़िया।

पिहेज—गायकवाड़ राज्यके बरोदा विभागके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २२° ४०´ उ० और देशा० ७२° ४८´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ५२८८ है। यहां एक वर्णाक्यूलर स्कूल है।

पिहोली (हिं० पु०) एक प्रकारका पौधा। यह मध्यप्रदेश और बरारसे ले कर बम्बईके आस पास तक होता है। यह पानके बाड़ोंमें लगाया जाता है। इसकी पत्तियोंसे बड़ी अच्छी सुगन्ध निकलती है। इन पत्तियोंसे इत्र बनाया जाता है जो पचौलीके नामसे मशहूर है। पचौली देखो।

पिहोवा—कर्णाल जिलेका एक देश। पेहोवा देखो।

पींग (हिं० स्त्री०) पेंग देखो।

पींजना (हिं० क्रि०) रूई धुनना।

पींजरा (हिं० पु०) पिंजड़ा देखो।

पींड (हिं० पु०) १ किसी गीली वस्तुका गोला, पिंडी, पिंड। २ चरखेका मध्य भाग, बेलन। ३ पिण्डखजूर नामक फल। ४ देह, शरीर, पिंड। ५ वृक्षदेह, वृक्षका धड़, तना, पेड़ी। ६ कोल्हू के चारों ओर गीली मिट्टीका बनाया हुआ घेरा जिससे ईखकी अंगारियां या छोटे टुकड़े छटक कर बाहर नहीं निकलने पाते। ७ पीढ़ देखो।

पींडी (हिं० स्त्री०) पिंडी देखो।

पींडुरी (हिं० स्त्री०) पिण्डुली देखो।

पी (हिं० पु०) १ पपीहेकी बोली। २ पिय देखो।

पीक (हिं० स्त्री०) १ पानके रंगसे रंगा हुआ थूक, थूकसे मिला हुआ पानका रस, चबाए हुए बीड़े या गिलौरीका रस। २ पहली बारका रंग, वह रंग जो कपड़ेकी पहली बार रंगमें डुबोनेसे चढ़ता है। ३ असमतल, ऊंच नीच, ऊबड़खाबड़, नाहमवार।

पीकदान (हिं० पु०) एक विशेष प्रकारका बना हुआ वह बरतन या पात्र जिसमें पानकी पीक या थूकी डाली जाती है, उगालदान।

पीकना (हिं० क्रि०) पिहकना, पपीहे या कोयलका बोलना।

पीका (हिं० पु०) पल्लव, किसी वृक्षका नया कोमल पत्ता, कोंपल।

पीच (सं पु०) अधरचिबुक, नीचेका जबड़ा।

पीच (हिं० स्त्री०) भातका पसाव, मांड़।

पीचू (हिं० पु०) १ करीलका पका फल, पका कचड़ा या टेंटी। २ एक प्रकारका झाड़, जरदालू, चोलू।

पीछ (हिं० स्त्री०) १ पीच, मांड़। २ पक्षियोंकी दुम।

पीछा (हिं० पु०) १ पश्चात् भाग, किसी मनुष्य या वस्तुका वह भाग जो सामनेकी विरुद्ध दिशामें हो, किसी व्यक्ति या वस्तुके पीछेकी ओरका भाग, पुश्त। २ पीछे पीछे चल कर किसीके साथ लगे रहनेका भाव। ३ किसी घटनाका पश्चात्‌वर्त्ती काल, किसी घटनाके बादका समय।

पीछ (हिं० क्रि० वि०) पीछे देखो।

पीछे (हिं० अव्य०) १ अन्तमें, आखिरमें। २ आगेकी अथवा पीठकी विरुद्ध दिशामें, पीछेकी ओर कुछ दूर पर। ३ जिधर मुंह हो उसकी विरुद्ध दिशामें, आगे या सामनेका उलटा, पीठकी ओर। ४ किसीकी अविद्यमानता, किसीकी अनुपस्थिति या अभावमें, पीठ पीछे। ५ देश या काल क्रममें किसीके पश्चात् या उपरान्त, स्थिति या घटनाके विचारसे किसीके अनन्तर कुछ दूर या कुछ देर बाद,

किसी वस्तु या व्यापारके पश्चाद्वर्ती स्थान या कालमें। ६ मरणोपरान्त, मर जाने पर, इस लोकमें न रह जानेकी दशामें। ७ निमित्त, कारण, बदौलत, वास्ते, लिए, खातिर, अर्थ।

पीजन (हिं॰ पु॰) भेंड़ोंके बाल धुनकनेकी धुनकी।

पीजर (हिं॰ पु॰) पिंजड़ा देखो।

पीजरा (हिं॰ पु॰) पिंजड़ा देखो।

पीटन (हिं॰ पु॰) पिटना देखो।

पीटना (हिं॰ क्रि॰) १ आघात पहुंचा कर किसी वस्तुको फैलाना या बढ़ाना, चोटसे चौड़ा या चिपटा करना। २ किसी वस्तु पर चोट पहुंचाना, मारना। ३ येन केन प्रकारेण उपार्जित करना, किसी न किसी प्रकार प्राप्त कर लेना, फटकार लेना। ४ प्रहार करना, किसीके शरीरको चोट अथवा पीड़ा पहुंचाना, किसी जीवधारी पर आघात करना, मारना, ठोंकना। ५ येन केन प्रकारेण किसी कामको समाप्त या सम्पन्न कर लेना, किसी न किसी प्रकार कर डालना या कर लेना। (पु॰) ६ आपद्, मुसीबत, आफत। ७ मृत्युशोक, मातम, पिट्टस।

पीटविलियम— विलियमपिट देखो।

पीठ (सं॰ क्ली॰) पेठन्त्यपविशन्त्यस्मिन्निति, पिठ-घञ्। (हलश्च। पा ३।३।१२१) बाहुलकात् इकारस्य दीर्घः अथवा पीयतेऽत्रेति पीङ् पाने बाहुलकात् ठक्। १ उपवेशनाधार, पीढ़ा, चौकी। पर्याय—आसन, उपासन, पैठो, विष्टर। २ व्रतियोंके कुशासन प्रभृति आसन। पर्याय—विष्टर, वृषी। अभ्यागत साधुओंको पहले ही पीठ-दान करना होता है।

"पीठं दत्त्वा साधवेऽभ्यागताय आनीयापः परिनिर्णिज्य पादौ।
सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थां ततो दद्यादन्नमवेक्ष्य धीरः॥"

(महाभारत ५।३८।२)

युक्तिकल्पतरुमें लिखा है,—पीठ तीन प्रकारका है, धातुपीठ, शिलापीठ और काष्ठपीठ। सब प्रकारकी धातु, शिला और काष्ठ द्वारा पीठ प्रस्तुत होता है। इनमेंसे कौन विहित और कौन निषिद्ध है, उसका शास्त्रानुसार विचार कर व्यवहार करना कर्त्तव्य है।

पीठमान।-साधारणतः जिस पीठकी लम्बाई दो हाथ, चौड़ाई एक हाथ और ऊंचाई आध हाथ हो, उसे सुखपीठ कहते हैं। अलावा इसके सुख, जय, शुभ, सिद्धि और सम्पत् नामक और भी पांच पीठ हैं। इन पांचोंमेंसे प्रत्येक पीठ क्रमशः धन, भोग, सुख, ऐश्वर्य और वाञ्छितफलदायक है। जो पीठ लम्बाई और चौड़ाईमें समान है, वही सुखदायक है, अन्यथा विघ्न उत्पादन करता है।

जो पीठ लम्बाई चौड़ाईमें दो हाथ और ऊंचाईमें आध हाथ हो, उसे जारक तथा जो लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाईमें चार हाथ हो, उसे राजपीठ कहते हैं। यह राजपीठ सभी प्रकारका अर्थ-प्रदान करता है और इसी पर राजाओंका शास्त्रसङ्गत अभिषेक होता है। लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाईमें जो पीठ छः हाथ हो, उसका नाम केलिपीठ है। यह केलिपीठ राजाओंके चित्तविनोदके लिये ही बनाया जाता है।

लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाईमें जो पीठ ८ हाथ हो, उसे शङ्कपीठ कहते हैं। यह पीठ विशेष सुखदायक माना गया है। राजपीठ कनक द्वारा और जय तथा सुखपीठ रौप्य द्वारा बनाना चाहिये। उक्त तीनों पीठ केवल राजाओंके ही व्यवहार्य हैं। राजपीठसे आयु बढ़ती है और जयपीठसे पृथ्वी जीती जाती है। जारकसे शत्रुनाश होता है और सुखपीठसे सुख मिलता है। रौप्यपीठसे कीर्त्ति और धनवृद्धि तथा ताम्रपीठसे तेज और शत्रुक्षय होता है। लौहपीठ उच्चाटन कार्यमें तथा अन्यान्य सभी कार्योंमें समर्थ है। इसके अतिरिक्त पीतल, सीसे और रांगे आदि अपरापर धातुओंसे बने हुए पीठ शत्रुनाशरूप फल प्रदान करते हैं।

शिलापीठ।—शिलापीठका भी पूर्वोक्त धातुपीठकी तरह गुण और परिमाण जानना चाहिये। शिलानिर्मित राजपीठ केवल इन्द्रका ही होता है, दूसरे किसीका भी नहीं। इसी प्रकार सूर्यचन्द्रादिका भी एक एक पीठ है। इनमेंसे सूर्यका पीठरागसे, चन्द्रका चन्द्रकान्तसे, राहुका मरकतसे, शनिका नीलकान्तसे, बुधका गोमेदकसे, बृहस्पतिका स्फटिकसे, शुक्रका वैदुर्यसे और मङ्गलका पीठ प्रवालसे बनाया जाता है। अलावा इसके उक्त ग्रहोंमेंसे जो व्यक्ति जिस ग्रहकी दशामें जन्म लेगा उसका उसी ग्रहके सम्बन्धमें निर्दिष्ट पीठ व्यवहार्य

होगा, किन्तु स्फटिकपीठ क्षितिपतियोंके ही व्यवहार्य हैं। राजाओंके अभिषेक, यात्रा उत्सव, जय, कार्य अथवा संग्राम आदि विषयोंमें अयस्कान्तरचित पीठ ही प्रशस्त है। राजाओंको वर्षाकालमें गारुड़रचित पीठ पर तथा मेघ-गर्जनके समय विशुद्ध रत्नमय पीठ पर बैठना चाहिये। एतद्भिन्न विलासकालीन उनके साधारण प्रस्तरनिर्मित पीठ ही प्रशस्त हैं।

काष्ठपीठ।—काष्ठपीठका भी पहलेकी तरह परिमाण जानना चाहिये। गाम्भारीनिर्मित जयपीठ सम्पत्ति और सुखकर, जारक रोगनाशक, सुख शत्रुनाशक, सिद्धिसर्वार्थ साधक और वैरिनिवारक है। गाम्भारी वृक्षकी तरह पनस, चन्दन और बकुल आदि वृक्षोंसे भी जय, जारक और शुभादि नामक पीठ बनता है। इन सब पीठोंका भी क्रियाविशेषसे विशेष विशेष फल कहा गया है। एतद्भिन्न सुगन्धि कुसुमशाली जो सब सारवान् वृक्ष हैं, उनसे प्रस्तुत पीठोंका भी बकुलकी तरह गुणागुण जानना चाहिये। इसी प्रकार मृदु अथवा लघु जो सब शुष्क काष्ठ हैं, तन्निर्मित पीठोंका भी गाम्भारी-काष्ठजात पीठोंकी तरह कार्य और गुण है। इसके बाद जो सब वृक्ष फलवान्, सारवान और रक्तवर्ण-सारविशिष्ट हैं, उनसे प्रस्तुत पीठको भी पानसपीठके जैसे गुणशाली समझना चाहिये।

निषिद्ध पीठ।—सब प्रकारके धातुजात पीठोंके मध्य लौहनिर्मित पीठको ही शास्त्रोंमें निन्दित बतलाया है। इसी प्रकार शिलापीठमें शार्कर और कर्कंरपीठ वर्जनीय हैं। काष्ठपीठके मध्य सारहीन और अत्यन्त सारवान तथा विषवृक्षजातपीठ दोषाढ्य है।

"विज्ञेयो निन्दितः पीठो लौहात्थः सर्वधातुजे।
शिलोत्थः शार्करो वर्ज्यः कर्करश्च विशेषतः॥
काष्ठजेषु च पीठेषु नासारा नातिसारिणः।" तथाहि—
"आम्रजम्बुकदम्बानामासनं वंशनाशनम्॥"
(युक्तिकल्पतरु)

भोजका मत कुछ और है। उनका कहना है, कि गुरुपीठ ही गौरवजनक और लघुपीठ लाघवकर है।

"गुरुः पीठो गौरवाय लघुर्लाघवकारकः।" (भोज)

पीठके सम्बन्धमें पराशरने इस प्रकार कहा है,—जो पीठ न तो ग्रन्थिहीन है और न अत्यन्त ग्रन्थिशाली ही है, वही सुख और सम्पत्तिका कारण होता है। शिल्पीगण धातु, शिला और काष्ठ द्वारा पीठकी तरह अन्य जो सब वस्तु बनाते हैं, उनका भी गुण दोष और परिमाण साधारण पीठकी तरह ही आदिष्ट हुआ है। जो विधिके अनुसार पीठके गुण दोष पर विचार कर व्यवहार करते हैं, वे ही लक्ष्मी पाते हैं। लक्ष्मी कभी भी उनका घर नहीं छोड़ती। जो व्यक्ति अज्ञान अथवा मोहवशतः शास्त्रविधिका लङ्घन कर पीठके सम्बन्धमें अन्यथा व्यवहार करते हैं, उनकी लक्ष्मी, आयु, बल और कुल एकबारगी विनष्ट हो जाता है।—

"नाग्रन्थिर्नातिग्रन्थिश्च ना गुरुर्नासमाकृतिः।
पीठः स्यात् सुखसम्पत्यै नातिदीर्घो न वामनः॥
ये चान्ये पीठसदृशा दृश्याः शिल्पिविनिर्मिताः।
गुणान्दोषांश्च मानञ्च तेषां पीठवदादिशेत्॥
विचार्यानेन विधिना यः शुद्धपीठमाचरेत्।
तस्य लक्ष्मीरियं वेश्म कदाचिन्न विमुञ्चति॥
अज्ञानादथवा मोहात् योऽन्यथा पीठमाचरेत्।
एतानि तस्य नश्यन्ति लक्ष्मीरायुर्बलं कुलं॥"
(युक्तिकल्प० पराशर)

हयशीर्षपञ्चरात्र और ज्ञानरत्नकोषमें इस पीठका विषय बहुत बढ़ा चढ़ा कर लिखा है।

२ मन्त्रसिद्धिके निमित्त जपस्थान-भेद। जिन सब स्थानोंमें रह कर जपादि करके सिद्ध होते हैं, वे सब स्थान पीठ नामसे प्रसिद्ध हैं। ४ दक्षयज्ञके बाद विष्णुके चक्रसे सतीका अङ्गप्रत्यङ्ग जहां जहां गिरा था, वह स्थान देवीपीठ नामसे ख्यात हुआ है। इन सब स्थानोंकी पूज्यता और पवित्रताके सम्बन्धमें पुराणादिमें इस प्रकार लिखा है,—सत्ययुगमें एक समय दक्षप्रजापतिने शिवसे अवमानित हो बृहस्पति नामक एक यज्ञका आरम्भ किया। प्रजापति दक्षने उस यज्ञमें शिव और अपनी कन्या सतीको छोड़ कर यावत् त्रिभुवन-वासीको निमन्त्रण किया। पितालयमें महासमारोहसे यज्ञ हो रहा है, यह सुन कर सतीने निमन्त्रण नहीं पाने पर भी पितृगृह जा यज्ञ देखना चाहा और महादेवके निकट अपना अभिप्राय प्रकट किया। शिवजी तो पहले

राजी न हुए, पर पीछे सतीके विशेष आग्रह करने पर उन्हें जानेकी अनुमति दे दी। सती अनुचरोंके साथ पितृगृह पहुंची तो सही, पर पिता दक्षने किसी प्रकार उनका आदर न किया। केवल इतना ही नहीं, वे क्रोधसे अधीर हो उन त्रिलोकपति भगवान् भूतभावन भवानीपतिकी यथेष्ट निन्दा करने लगे। भगवती सती-की पिताके मुखसे पतिकी उस प्रकार निन्दा सुनना असह्य हुआ। वे यज्ञकुण्डमें कूद पड़ी और इस प्रकार उन्होंने सतीत्वकी पराकाष्ठा दिखलाई। शिवजी यह वृत्तान्त सुनते ही उद्भ्रान्तकी तरह वहां पहुंच गये और वीरभद्रादि अनुचरोंके साथ जा कर दक्षको मार डाला और इनका यज्ञ विध्वंस कर दिया। इस निखिल जगत्‌के एकमात्र परमेश्वर हो कर भी शिवजी धीर न रह सके। वे शोकसे विमुग्ध हो सतीकी मृतदेहको कंधे पर रख चारों ओर उन्मत्तभावमें नाचते हुए घूमने लगे। यह देख कर भगवान् विष्णुने अपने चक्रसे सतीका अङ्गप्रत्यङ्ग काट डाला। विष्णुचक्र-छिन्नके अङ्ग प्रत्यङ्ग इकावन खण्डोंमें विभक्त हो जिस जिस स्थान पर गिरे थे, वहां एक एक भैरव और एक एक शक्ति नाना प्रकार-की मूर्त्ति धारण कर अवस्थान करती हैं। इसीसे उन सब स्थानोंका नाम महापीठ पड़ा है। किस किस स्थान पर कौन कौन अङ्ग गिरा था तथा कौन कौन भैरव और शक्ति वहां रहती हैं, तन्त्रचूड़ामणिमें इस विषयमें जो कुछ लिखा है, उसकी तालिका नीचे दी गई है।

स्थानके नाम।	अङ्ग और अङ्गभूषणके नाम।	शक्ति।	भैरव।
१। हिङ्गुला	ब्रह्मरन्ध्र	कोट्टरीशा	भीमलोचन।
२। शर्कराार	तीनचक्षु	महिषमर्दिनी	क्रोधीश।
३। सुगन्धा	नासिका	सुनन्दा	त्र्यम्बक।
४। काश्मीर	कण्ठदेश	महामाया	त्रिसन्ध्येश्वर।
५। ज्वालामुखी	महाजिह्वा	सिद्धिदा	उन्मत्तभैरव।
६। जलन्धर	स्तन	त्रिपुरमालिनी	भीषण।
७। वैद्यनाथ	हृदय	जयदुर्गा	वैद्यनाथ।
८। नेपाल	जानु	महामाया	कपाली।
९। मानस	दक्षिणहस्त	दाक्षायणी	अमर।
१०। उत्कलमें विरजाक्षेत्र	नाभिदेश	विमला	जगन्नाथ।
११। गण्डकी	गण्डस्थल	गण्डकी	चक्रपाणि।
१२। बहुला	वामबाहु	बहुलादेवी	भीरुक।
१३। उज्जयनी	कूर्पर	मङ्गलचण्डिका	कपिलाम्बर।
१४। त्रिपुरा	दक्षिणपद	त्रिपुरसुन्दरी	त्रिपुरेश।
१५। चट्टल	दक्षिण बाहु	भवानी	चन्द्रशेखर।
१६। त्रिस्रोता	वामपाद	भ्रामरी	भैरवेश्वर।
१७। कामगिरि※	योनिदेश	कामाख्या	उमानन्द।
१८। प्रयाग	हस्ताङ्गुलि	ललिता	भव।
१९। जयन्ती	वामजङ्घा	जयन्ती	क्रमदीश्वर।
२०। युगाद्या	दक्षिणाङ्गुष्ठ	भूतधात्री	क्षीरखण्डक।
२१। कालीपीठ	दक्षिण-पादाङ्गुलि	कालिका	नकुलीश।
२२। किरीट	किरीट	विमला	सम्वर्त्त।
२३। वाराणसी	कर्णकुण्डल	विशालाक्षी मणिकर्णी	कालभैरव
२४। कन्याश्रम	पृष्ठ	सर्वाणी	निमिष।
२५। कुरुक्षेत्र	गुल्फ	सावित्री	स्थाणु।
२६। मणिवन्ध	दो मणिवन्ध	गायत्री	सर्वानन्द।
२७। श्रीशैल	ग्रीवा	महालक्ष्मी	शम्बरानन्द
२८। काञ्ची	अस्थि	देवगर्भा	रुरु।
२९। कालमाधव	नितम्ब	काली	असिताङ्ग।
३०। शोणदेश	नितम्बक	नर्मदा	भद्रसेन।
३१। रामगिरि	अन्यस्तन	शिवानी	चण्डभैरव
३२। वृन्दावन	केशपाश	उमा	भूतेश।
३३। शुचि	ऊर्द्धदन्त	नारायणी	संहार।
३४। पञ्चसागर	अधोदन्त	वाराही	महारुद्र।

※ यहां देवी श्री भैरवी, नक्षत्रदेवता, प्रचण्डचण्डिका, मातंगी, त्रिपुराम्बिका, बगला, कमला, भुवनेशी और सुधुमिनी ये सब पीठ और दश भैरव हैं। (तन्त्रचू०)

† यहां देवी सर्वदा विहार करती हैं, यहां मुक्ति निःसन्देह है। इस स्थानके दर्शनमात्रसे ही मन्त्रसिद्धि होती है और मंगलवार चतुर्दशीके दिन दोपहर रातको यदि कोई साधक इस पीठको नमस्कार और प्रदक्षिण करे, तो उसका भी मन्त्र सिद्ध होता है। (तन्त्रचू०)

३५। करतोयातट तल्प अपर्णा वामनभैरव
३६। श्रीपर्वत दक्षिणगुल्फ श्रीसुन्दरी सुन्दरानन्द-भैरव।
३७। विभाष वामगुल्फ कपालिनी सर्वानन्द।
३८। प्रभास उदर चन्द्रभागा वक्रतुण्ड।
३९। भैरवपर्वत ऊर्द्ध्वओष्ठ अवन्ती लम्बकर्ण।
४०। जनस्थल दोनों चिबुक भ्रामरी विकृताक्ष।
४१। सर्वशैल* वामगण्ड राकिनी वत्सनाभ†।
४२। गोदावरीतीर गण्ड विश्वेशी दण्डपाणि।
४३। रत्नावली दक्षिणस्कन्ध कुमारी शिव।
४४। मिथिला वामस्कन्ध उमा महोदर।
४५। नलहाटी नला कालिकादेवी योगेश।
४६। कर्णाट कर्ण जयदुर्गा अभीरु।
४७। वक्रेश्वर मनः महिषमर्दिनी वक्रनाथ।
४८। यशोर पाणिपद्म यशोरेश्वरी चण्ड।
४९। अट्टहास ओष्ठ फुल्लरा विश्वेश।
५०। नन्दिपुर कण्ठहार नन्दिनी नन्दिकेश्वर
५१। लङ्का नूपुर इन्द्राक्षी राक्षसेश्वर
विराट पादाङ्गुलि अम्बिका अमृत।
मगध दक्षिणजङ्घा सर्वानन्दकरी व्योमकेश।

किसी किसी पुस्तकमें शेषोक्त दो पीठोंका उल्लेख नहीं है। इक्कावन पीठ ही अनेक पुस्तकोंमें गृहीत हुए हैं। तन्त्रोक्त इन सब पीठोंके अधिदेवताको छोड़ कर यदि कोई वहां अन्य देवताका पूजन करे तो उसको वह पूजा भैरवगण अपहरण कर लेते हैं। अतः उस पूजासे कोई फल नहीं होता। किस पीठकी कौन शक्ति और कौन भैरव है यह जाने बिना यदि कोई जप अथवा उपासनामें प्रवृत्त हो जाय, तो वह भी निष्फल है। (कालिकापुराणके १८वें अध्यायमें इसका विवरण विशेष रूपसे लिखा है।)

देवीभागवतमें एक सौ आठ पीठस्थानोंका उल्लेख देखनेमें आता है। उक्त ग्रन्थके ७।३० अध्यायमें लिखा है, कि भगवान् शङ्करने उस चिद्रूपिनी सतीको हुताशनमें दग्ध होते देख अपने कंधे पर उठा लिया और नाना देशोंमें भ्रमण करने लगे। यह देख कर ब्रह्मादि देवगण चिन्तित हो पड़े। भगवान् विष्णुने सतीके सभी अवयवोंको शरसे काट डाला। वे सब अवयव नाना स्थानोंमें जा गिरे। भगवान् शङ्कर उन सब स्थानोंमें नाना प्रकारकी मूर्त्ति धारण कर रहने लगे और देवताओंसे बोले, 'यदि कोई इन सब स्थानोंमें भक्तिपूर्वक भगवती शिवाकी आराधना करे, तो उसके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। यहां भगवती अम्बिका अपने अङ्गमें सर्वदा सन्निहित रहती हैं। मानवगण यदि इस स्थानमें रह कर पुरश्चरण विशेषतः मायावीजका जप करें, तो उनके वे सब मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं।' विरहातुर शङ्कर इतना कह कर जप, ध्यान और समाधि द्वारा उन सब स्थानोंमें रह कालयापन करने लगे। *

तन्त्रचूड़ामणिमें स्थान, अङ्ग, भैरव और शक्ति नामका जैसा विशेषरूपसे उल्लेख किया है, इस देवीभागवतमें वैसा नहीं है। इसमें महर्षि वेदव्यासने जन्मेजयके प्रश्नानुसार पीठस्थान और वहांके अधिदेवताका नाम उल्लेख किया है, सुतरां तत्कथित् स्थान और देवताके नाम ही नीचे दिये गये हैं:—

* दूसरे ग्रन्थमें गोदावरी-तीर।

† दूसरे ग्रन्थमें अमायी।

* "अपश्यत्तां सतीं वह्नौ दह्यमानान्तु चित्कलां।
स्कन्धेऽध्यारोपयामास हा सतीति वदन मुहुः॥
बभ्राम भ्रान्तचित्तः सन्नानादेशेषु शंकरः।
तदा ब्रह्मादयो देवाश्चिन्तामापुरनुत्तमाम्॥
विष्णुस्तु त्वरया तत्र धनुरुद्यम्य मार्गणैः।
चिच्छेदावयवान् सत्यास्तत् स्थानेषु तेऽपतन्॥
तत् तत् स्थानेषु तत्रासीन्नानामूर्त्तिधरो हरः।
उवाच च ततो देवान् स्थानेष्वेतेषु ये शिवाम्॥
भजन्ति परया भक्त्या तेषां किंचिन्न दुर्लभम्।
नित्यं सन्निहिता यत्र निजांगेषु पराम्बिका॥
स्थानेष्वेतेषु ये मर्त्याः पुरश्चरणकर्मिणः।
तेषां मन्त्राः प्रसिध्यन्ति मायाबीजं विशेषतः॥
इत्युक्त्वा शंकरस्तेषु स्थानेषु विरहातुरः।
कालं निन्ये नृपश्रेष्ठ जपध्यान समाधिभिः॥"
(देवीभागवत ७।३०।४४-५०)

	स्थानके नाम	देवताके नाम ।
१।	वाराणसी	विशालाक्षी।
२।	नैमिषारण्य	लिङ्गधारिणी।
३।	प्रयाग	ललिता।
४।	गन्धमादन	कामुकी।
५।	दक्षिण मानस	कुमुदा।
६।	उत्तर मानस	विश्वकामा।
७।	गोमन्त	गोमती।
८।	मन्दर	कामचारिणी
९।	चैत्ररथ	मदोत्कटा।
१०।	हस्तिनापुर	जयन्ती।
११।	कान्यकुब्ज	गौरी।
१२।	मलय	रम्भा।
१३।	एकाम्र	कीर्त्तिमती।
१४।	विश्व	विश्वेश्वरी।
१५।	पुष्कर	पुरुहूता
१७।	हिमवत्पृष्ठ	मन्दा।
१८।	गोकर्ण	भद्रकर्णिका।
१९।	स्थानेश्वर	भवानी।
२०।	विल्वक	बिल्वपत्रिका।
२१।	श्रीशैल	माधवी।
२२।	भद्रेश्वर	भद्रा।
२३।	वराहशैल	जया।
२४।	कमलालय	कमला।
२५।	रुद्रकोटि	रुद्राणी।
२६।	कालञ्जर	काली।
२७।	शालग्राम	महादेवी।
२८।	शिवलिङ्ग	जलप्रिया।
२९।	महालिङ्ग	कपिला।
३०।	माकोट	मुकुटेश्वरी।
३१।	मायापुरी	कुमारी।
३२।	सन्तान	ललिताम्बिका।
३३।	गया	मङ्गला।
३४।	पुरुषोत्तम	विमला।
३५।	सहस्राक्ष	उत्पलाक्षी।
३६।	हिरण्याक्ष	महोत्पला।
३७।	विपाशा	अमोघाक्षी।
३८।	पुण्ड्रवर्द्धन	पाटला।
३९।	सुपार्श्व	नारायणी।
४०।	त्रिकूट	रुद्रसुन्दरी।
४१।	विपुल	विपुला।
४२।	मलयाचल	कल्याणी।
४३।	सह्याद्रि	एकवीरा।
४४।	हरिश्चन्द्र	चन्द्रिका।
४५।	रामतीर्थ	रमणी।
४६।	यमुना	मृगावती।
४७।	कोटतीर्थ	कोटवी।
४८।	मधुवन	सुगन्धा।
४९।	गोदावरी	त्रिसन्ध्या।
५०।	गङ्गाद्वार	रतिप्रिया।
५१।	शिवकुण्ड	शुभानन्दा।
५२।	देविकातट	नन्दिनी।
५३।	द्वारवती	रुक्मिणी
५४।	वृन्दावन	राधा।
५५।	मथुरा	देवकी।
५६।	पाताल	परमेश्वरी।
५७।	चित्रकूट	सीता।
५८।	विन्ध्य	विन्ध्याधिवासिनी
६०।	विनायक	उमादेवी।
६१।	वैद्यनाथ	आरोग्या।
६२।	महाकाल	महेश्वरी।
६३।	उष्णतीर्थ	अभया।
६४।	विन्ध्यपर्वत	नितम्बा।
६५।	माण्डव्य	माण्डवी।
६६।	माहेश्वरीपुर	स्वाहा।
६७।	छगलण्ड	प्रचण्डा।
६८।	अमरकण्टक	चण्डिका।
६९।	सोमेश्वर	वरारोहा।
७०।	प्रभास	पुष्करावती।
७१।	सरस्वती	देवमाता।
७२।	तट	पारावारा।
७३।	महालय	महाभागा।

७४। पयोष्णी — पिङ्गलेश्वरी।
७५। कृतशौच — सिंहिका।
७६। कार्त्तिक — अतिशाङ्करी।
७७। उत्पलावर्त्तक — लोला।
७८। शोणसङ्गम — सुभद्रा।
७९। सिद्धवन — लक्ष्मी।
८०। भरताश्रम — अनङ्गा।
८१। जालन्धर — विश्वमुखी।
८२। किष्किन्ध्यपर्वत — तारा।
८३। देवदारुवन — पुष्टि।
८४। काश्मीरमण्डल — मेधा।
८५। हिमाद्रि — भीमादेवी, तुष्टि, विश्वेश्वरी।
८६। कपालमोचन — शुद्धि।
८७। कायावरोहण — माता।
८८। शङ्खोद्धार — धरा।
८९। पिण्डारक — धृति।
९०। चन्द्रभागा — कला।
९१। अच्छोद — शिवधारिणी।
९२। वेणा — अमृता।
९३। बदरी — उर्वशी।
९४। उत्तरकुरु — ओषधि।
९५। कुशद्वीप — कुशोदका।
९६। हेमकूट — मन्मथा।
९७। कुमुद — सत्यवादिनी।
९८। अश्वत्थ — वन्दनीया।
९९। कुवेरालय — निधि।
१००। वेदवदन — गायत्री।
१०१। शिवसन्निधि — पार्वती।
१०२। देवलोक — इन्द्राणी।
१०३। ब्रह्ममुख — सरस्वती
१०४। सूर्य्यविम्ब — प्रभा।
१०५। मातृमध्य — वैष्णवी।
१०६। सतीमध्य — अरुन्धती।
१०७। स्त्रीमध्य — तिलोत्तमा।
१०८। चित्तमें — ब्रह्मकला और शरीरियोंकी शक्ति।

एकान्तमनसे पीठ नामोंके और पीठके देवताओंका स्मरण करनेसे देहिमात्र ही निखिल पापसे मुक्त हो कर देवी लोक जाते हैं। यात्रा करके इन सब स्थानोंमें जा कर यदि कोई पुरश्चरण आदि सत्कार्य करें, तो उनके सभी कार्य सिद्ध होते हैं। (देवीभा० ७।३० अ०)

कुब्जिकातन्त्रके ७म पटलमें जो सब स्थान सिद्ध-पीठ बतलाये गये हैं, उनके नाम नीचे दिये जाते हैं—

मायावती, मधुपुरी, काशी, गोरक्षचारिणी, हिङ्गुला, जलन्धर, ज्वालामुखी, नगरसम्भव, रामगिरि, गोदावरी, नेपाल, कर्णस्वर्ण, महाकर्ण, अयोध्या, कुरुक्षेत्र, सिंहल, मणिपुर, हृषीकेश, प्रयाग, तपोवन, बदरी, त्रिवेणी, गङ्गासागरसङ्गम, नारिकेला, विरजा, कमला, विमला, माहेष्मतीपुरी, वाराही, त्रिपुरा, वाग्मती, नीलवाहिनी, गोवर्द्धन, विन्ध्यगिरि, कामरूप, घण्टाकर्ण, अश्वग्रीव, माधव, क्षीरग्राम और वैद्यनाथ। एतद्भिन्न पुष्कर, गया-क्षेत्र, अक्षयवट, वराहपर्वत, अमरकण्टक, नर्मदा, यमुना, पिङ्गा, गङ्गाद्वार, विल्वक, आनीलपर्वत, कलम्ब, कुब्जिक, भृगुतुङ्ग, केदार, कैलास, ललिता, सुगन्धा, शाकम्भरीपुर, कर्णतीर्थ, महागङ्गा, तपिङ्काश्रम, कुमार, प्रभास, सरस्वती, अगस्त्याश्रम, कन्याश्रम, कौशिकी, सरयू, ज्योतिसर, कालोदक, उत्तरमानस, वैद्यनाथ, कालञ्जरगिरि, रामोद्भेद, गङ्गोद्भेद, भद्रेश्वर, लक्ष्मी-द्भेद, कावेरी, सोमेश्वर, शुक्लतीर्थ, पटना, महाबोधि, नगतीर्थ, रामेश्वर, मेघवन, ऐन्द्रियवन, गोवर्द्धन, अज-प्रिय, हरिश्चन्द्र, पृथूदक, इन्द्रनील, महानाद, मैनाक, पद्मासर, पञ्चवटी, पर्वटिका, गङ्गाविलयप्रसङ्ग, प्रियनाद-वट, गङ्गा, गयाचल, कर्णमोचन, गौतमेश्वर तीर्थ, वशिष्ठतीर्थ, हारित, ब्रह्मावर्त्त, कुशावर्त्त हंसतीर्थ, पिण्डारकवन, हरिद्वार, बदरीतीर्थ, रामतीर्थ, जयन्त, विजयन्त, विजया, सारदातीर्थ, भद्रकालेश्वर, अश्वतीर्थ, ओघवती नदी, अश्वपदतीर्थ, सप्तगोदावर, लिङ्गतीर्थ, किरीटतीर्थ, विशालतीर्थ, वृन्दावन और गणेश्वरतीर्थ।

इन सब स्थानोंमें देवगण, महर्षिगण, पितृगण और अन्यान्य सिद्धगण हमेशा वास करते हैं। श्रद्धा और भक्ति-युक्त हो कर इन सब स्थानोंमें धर्म कर्म करनेसे शीघ्र ही सिद्धिलाभ होता है। कुब्जिकातन्त्रमें पूर्वोक्त पीठस्थान

तथा और भी जो सब स्थान एवं तदधिष्ठात्री देवताओंके नाम हैं, वे भी लिपिबद्ध किये गये हैं:—

स्थान	देवता
पुष्कर	कमलाक्षी।
गया	गयेश्वरी।
अक्षयवट	अक्षया।
अमरकण्टक	अमरेशी।
वराहपर्वत	वाराही।
नर्मदा	नर्मदा।
यमुनाजल	कालिन्दी।
गङ्गा	शिवामृता।
देहलिकाश्रम	श्रद्धा।
सरयूतीर	शारदा।
शोण	कनकेश्वरी।
समुद्रसङ्गम	ज्योतिर्मयी।
श्रीपर्वत	श्री।
कालोदक	काली।
महातीर्थ	महोदरी।
उत्तरमानस	नीला।
मतङ्ग	मातङ्गिनी।
विष्णुपाद	शुभार्चिः।
स्वर्गमार्ग	स्वर्गदा।
गोदावरी	गवेश्वरी।
गोमती	विमुक्ति।
विपाशा	महाबला।
शतद्रु	शतरूपा।
चन्द्रभागा	चन्द्रभागा
ऐरावती	ऐरावती
सिद्धितीर	सिद्धिदा
पञ्चनद	दक्षा, दक्षिणा।
श्रौजस	वीर्यदा।
तीर्थसङ्गम	सङ्गमा।
बाहुदा	अनन्ता।
कुरुक्षेत्र	अरुणेक्षणा।
भरताश्रम	भारती।
नैमिषारण्य	सुकथा।
पाण्डु	पाण्डरामना।
विशाला	विशालाक्षी।
मुण्डपृष्ठ	शिवात्मिका।
कनखल	श्रद्धा, मनोश्वरी, शुद्धबुद्धि।
मानस सरोवर	सुवेशा, सुमला, गौरी।
नन्दापुर	महानन्दा।
ललितापुर	ललिता।
ब्रह्मशिरः	ब्रह्माणी।
इन्दुमती	पूर्णिमा।
सिन्धु	अतिप्रिया।
जाह्नवी-सङ्गम	तृप्ति, स्वधा।
बहुसिता	पुण्या।
प्रपा	पापनाशिनी।
शङ्खसंहरण	घोररूपा
स्वर्गोद्भेद	महाकाली।
महावन	प्रबला।
भद्रेश्वर	भद्रा, भद्रकाली।
विष्णुपद	विष्णुप्रिया।
नर्मदोद्भेद	दारुणा।
कावेरी	कपिलेश्वरी।
कृष्णवेणा	भेदिनी।
संभेद	शुभवासिनी।
शुक्रतीर्थ	श्रद्धा।
प्रभास	ईश्वरी।
महाबोधि	महाबुद्धि।
पाटल	पाटलेश्वरी।
नागतीर्थ	सुबला, नागेशी।
मदन्ति	मदन्ती, प्रमदा, मदन्तिका।
मेघवास	मेघस्वना, विद्युत्, सौदामिनी।
रामेश्वर	महाबुद्धि।

ऐलापुर	वीरा।
पियालमार्ग	दुर्गा, सुवेशा, सुरसुन्दरी।
गोवर्द्धन	कात्यायनी, महादेवी।
हरिश्चन्द्र	शुभेश्वरी।
पुरश्चन्द्र	पुरेश्वरी।
पृथूदक	महावेगा।
मैनाक	अखिलवर्द्धिनी।
इन्द्रनील	महाकान्ता, रत्नवेशा।
महानाद	माहेश्वरी।
महावन	महातेजा।
अच्छोदसर:	सारङ्गा।
पञ्चवटी	तपस्विनी।
वटिका	वटीशी।
सर्ववर्ण	सुरङ्गिणी।
सङ्गम	विन्ध्यगङ्गा।
विन्ध्य	विन्ध्यवासिनी।
नन्दवट	महानन्दा।
गङ्गवाटाचल	शिवा।
आर्य्यावर्त्त	महार्य्या।
ऋणमोचन	विमुक्ति।
अट्टहास	चामुण्डा।
तन्त्र	श्रीगौतमेश्वरी। वेदमयी। ब्रह्मविद्या।
वशिष्ठ	अरुन्धती।
हारित	हरिणाची।
ब्रह्मावर्त्त	ब्रजेश्वरी। गायत्री। सावित्री।
कुशावर्त्त	कुशप्रिया।
महातीर्थ	हंसेश्वरी।
पिण्डारकवन	सुरमा। धन्या।
गङ्गाद्वार	नारायणी। वैष्णवी।

बदरीतीर्थ	श्रीविद्या।
रामतीर्थ	महाधृति।
जयन्त	जयन्ती।
वैजयन्त	अपराजिता। विजया। महाशुद्धि।
सारदा	सारदा।
सुभद्र	भद्रदा।
भद्राकालेश्वर	भव्या, महाभद्रा महाकाली।
हयतीर्थ	गर्वेश्वरी।
विदिशा	वेददा।
वेदमस्तक	वेदमाता।
युवती	महाविद्या।
महानदी	महोदया।
त्रिपाद	चण्डा।
छागलिङ्ग	बलिप्रिया।
मालदेश	जगन्माता।
करवीरपुर	सती।
मानव	रङ्गिणी।
सप्तगोदावरतीर्थ	परमेश्वरी।
देवर्षि	अखिलेश्वरी।

अयोध्या—भवानी, जयमङ्गला।

मथुरा—माधवी, देवकी, यादवेश्वरी।

वृन्दावन—वृन्दा, गोपेश्वरी, राधा, कात्यायनी, महामाया, भद्रकाली, कलावती, चन्द्रमाला, महायोगा, महायोगिन्यधीश्वरी, वज्रेश्वरी, यशोदा, ब्रजगोकुलेश्वरी।

काञ्ची	कनककाञ्ची।
अवन्ती	अतिपावनी।
विद्यापुर	विद्या।
नीलपर्वत	विमला।
सेतुबन्ध	रामेश्वरी।
पुरुषोत्तम	विमला।
नागपुरी	विरजा।
भद्राश्व	भद्रकर्णिका।
तमोलिप्ति	तमोघ्नी।

सागरसङ्गम	स्वाहा।
मङ्गलकोट	मङ्गला।
राढ़	मङ्गलचण्डिका।
शिवापीठ	ज्वालामुखी।
मन्दर	भुवनेश्वरी।
कालीघाट	गुह्यकाली, महेश्वरी।
करीट	किरीटेश्वरी, महादेवी।

इसके बाद अन्यान्य पीठस्थान और तदधिष्ठित शिव तथा शक्तिके नाम दिये जाते हैं—

स्थान।	देवता।	शिव।
अमरेश	चण्डिका, माहेश्वरी	कुशतुङ्गार।
प्रभास	पुष्करेक्षणा	सोमनाथ।
निमिष	प्रज्ञा, शिवानी	महेश्वर।
पुष्कर	पुरहूता	राजगन्धि।
श्रीपर्वत	मायावी, शङ्करी	त्रिपुरान्तक, श्रीशङ्कर।
जल्पेश्वर	त्रिशूलिनी	त्रिशूली।
आम्रातकेश्वर	सूक्ष्मा	सूक्ष्म।
गयाक्षेत्र	मङ्गला	प्रपितामह।
कुरुक्षेत्र	स्थाणुप्रिया	स्थाणु।
इष्टनाभ	स्वायम्भुवा	स्वयम्भु।
कनखल	शिववल्लभा	उग्र।
अट्टहास	महानन्दा	महानन्द।
विमलेश्वर	विश्वप्रिया	विश्वशम्भु।
महेन्द्र	महान्तका	महान्तक।
भीमपीठ	भीमेश्वरी	भीमेश्वर।
वस्त्रापथ	भुवनेश्वरी	भव।
अद्रिकूट	रुद्राणी	महायोगी।
अविमुक्त	विशालाक्षी	महादेव।
महामाया	महाभागा	रुद्र।
भद्रकर्ण	भद्रा, कर्णिका	महादेव।
सुपर्ण	उत्पला	सहस्राक्ष।
स्थाणुपीठ	श्रीधरा	स्थाणु।
कमलाक्षयपीठ	कमलाक्षी	कमल।
अरण्य	सन्ध्या	ऊर्द्धरेता।
माकोट	मुण्डेश्वरी	महाकोट।

(कुब्जिकातन्त्र ७ प०)

पीठके नाम-सम्बन्धमें इस प्रकार नाना ग्रन्थोंमें नाना प्रकारके मत देखे जाते हैं। दुःखका विषय है, कि इन सब ग्रन्थोंमें कुछ भी एकता नहीं है। चूड़ामणि आदि तन्त्रोंमें जो इक्कावन पीठोंकी कथा है, वह पहले ही कहा जा चुका है, किन्तु उसके साथ अन्नदा-मङ्गलकी पीठ-संख्या नहीं मिलती। भारतचन्द्रके ग्रन्थमें जिन सब पीठोंके नाम प्रकाशित हुए हैं, उनमेंसे ८का बिलकुल उल्लेख नहीं है। उसका कारण भी साफ साफ मालूम नहीं होता। उन्होंने दश उंगलीको दश पीठ माना है और पीठ स्थानमें दश महाविद्यादेवी और दश भैरवको देवरूपमें निर्देश किया है। किन्तु इस सम्बन्धमें अनेक मतभेद देखा जाता है। तन्त्रके मतसे जहां दशाङ्गुलि गिरी हैं, वहां भैरवीका नाम कमला वा कल्याणी और भैरवका नाम वेणीमाधव पड़ा है। फिर उक्त चूड़ामणि-तन्त्रमें लिखा है, कि कामाख्यामें ही केवल दश महाविद्याकी मूर्त्ति है। प्रवाद है, कि फाल्गुन और चैत्रमास छोड़ कर अन्य समयमें उनके दर्शन नहीं होते।

शिवरचित नामक ग्रन्थमें नाना ग्रन्थोंका अवलम्बन करके कुल ७७ पीठोंका वर्णन है जिनमेंसे ५१ महापीठ और शेष २६ उपपीठ हैं। यथा—

महापीठ।

	अङ्गके नाम	जहां वे गिरे हैं	भैरवीके नाम	भैरवके नाम
१	ब्रह्मरन्ध्र	हिङ्गुला	कोट्टरी	भीमलोचन
२	त्रिनेत्र	सर्कर	महिषमर्दिनी	क्रोधीश
३	नेत्रांशतारा	तारा	तारिणी	उन्मत्त
४	वामकर्ण	करतोयातट	अपर्णा	वामेश
५	दक्षिणकर्ण	श्रीपर्वत	सुन्दरी	सुन्दरानन्द
६	नासिका	सुगन्धा	सुनन्दा	त्र्यम्बक
७	मनः	वक्रनाथ	पापहरा	वक्रनाथ
८	वामगण्ड	गोदावरी	विश्वमातृका	विश्वेश
९	दक्षिणगण्ड	गण्डकी	गण्डकीचण्डी	चक्रपाणि
१०	ऊर्द्धदन्त	अनल	नारायणी	संक्रूर
११	अधोदन्त	पञ्चसागर	वाराही	महारुद्र
१२	जिह्वा	ज्वालामुखी	अम्बिका	वटकेश्वर
१३	कण्ठ	काश्मीर	महामाया	त्रिसन्ध्य

१४	ग्रीवा	श्रीहट्ट	महालक्ष्मी	सर्वानन्द
१५	ओष्ठ	भैरवपर्वत	अवन्ती	लम्बकर्ण
१६	अधर	प्रभास	चन्द्रभागा	वक्रतुण्ड
१७	मर्म	प्रभासखण्ड	सिद्धेश्वरी	सिद्धेश्वर
१८	चिबुक	जनस्थान	भ्रामरी	विकृताक्ष
१९	छिन्नहस्ताङ्गुलि	प्रयाग	कमला	वेणीमाधव
२०	दक्षिण हस्तार्द्ध वा वामहस्त	मान॰ सरोवर	दाक्षायणी	हर
२१	दक्षिण॰ हस्तार्द्ध	चट्टग्राम	भवानी	चन्द्रशेखर
२२	वामस्कन्ध	मिथिला	महादेवी	महोदर
२३	दक्षिणस्कन्ध	रत्नावली	शिवा	शिव वा कुमार
२४	वाममणिबंध	मणिबन्ध	गायत्री	शङ्कर वा सर्वान
२५	दक्षिण-मणिबन्ध	मणिवेद	सावित्री	स्थाणु
२६	वामकूर्पर	उज्जानि	मङ्गलचण्डी	कपिलाम्बर
२७	दक्षिण॰ कूर्पर	रणखण्ड	बहुलक्ष्मी	महाकाल
२८	वामबाहु	बहुला	बहुला	भीरुक
२९	दक्षिणबाहु	वक्रेश्वर	वक्रेश्वरी	वक्रेश्वर
३०	वामस्तन	जालन्धर	त्रिपुरमालिनी	भीषण
३१	दक्षिणस्तन	रामगिरि	शिवानी	चण्ड
३२	हृदय	वैद्यनाथ	नवदुर्गा वा जयदुर्गा	वैद्यनाथ
३३	पृष्ठ	वैवस्वत	त्रिपुटा	शमनकर्मा
३४	नाभि	उत्कल	विजया	जय
३५	जठर	हरिद्वार	भैरवी	वक्र
३६	कुक्षि	कोंकामुख	कोंकेश्वरी	कोंकेश्वर
३७	कक्ष	काञ्चीदेश	वेदगर्भा	रुरु
३८	वामनितम्ब	कालमाधव	काली	असिताङ्ग
३९	दक्षिण-नितम्ब	नर्मदा	शोणाक्षी	भद्रसेन
४०	महामुद्रा	कामरूप	कामाख्या देवी वा नीलपार्वती	वारानन्द वा उमानन्द
४१	वामजानु	मालव	शुभचण्डी	ताम्र
४२	दक्षिणजानु	त्रिस्रोता	चण्डिका	सदानन्द
४३	वामजङ्घा	जयन्ती	जयन्ती	क्रमदीश्वर
४४	दक्षिणजङ्घा	नेपाल	महामाया वा नवदुर्गा	कपाली
४५	वामपद	तिरहुत	अमरी	अमर
४६	दक्षिणपद	त्रिपुरा	त्रिपुरा	नल
४७	दक्षिण॰ पदाङ्गुष्ठ	क्षीरग्राम	योगाद्या	क्षीरखण्ड
४८	दक्षिण-पदाङ्गुलि	कालीघाट	कालिका	नकुलेश
४९	वामगुल्फ	विभास	भीमरूपा	कपाली
५०	दक्षिणगुल्फ	कुरुक्षेत्र	सम्बरी वा विमला	सम्वर्त्त
५१	वामपदा॰ ङ्गुलि	विन्ध्यशिखर	विन्ध्यवासिनी	पुण्यभाजन

उपपीठ।

	अङ्गका नाम	जहां वे गिरे हैं	देवीके नाम	भैरवके नाम
१	किरीट	किरीटकोणा	भुवनेशी	किरीटी
२	केश	केशजाल	उमा	भूतेश
३	कुण्डल	वाराणसी	विशालाक्षी	कालभैरव
४	वामगण्डांश	उत्तरा	उत्तरिणी	उत्सादन
५	दक्षिणगण्डांश	नलस्थान	भ्रमरी	विरूपाक्ष
६	ओष्ठांश	अट्टहास	फुल्लरा	विश्वनाथ
७	दन्तांश	संहर	शूरेशी	शूरेश
८	उच्छिष्ट	नीलाचल	विमला	जगन्नाथ
९	कण्ठहार	अयोध्या	अन्नपूर्णा	हरिहर
१०	हारांश	नन्दीपुर	नन्दिनी	नन्दीश्वर
११	ग्रीवांश	श्रीशैल	सर्वेश्वरी	चर्चितानन्द
१२	शिरोंश	कालीपीठ	चण्डेश्वरी	चण्डेश्वर
१३	अस्त्र	चक्रद्वीप	चक्रधारिणी	शूलपाणि
१४	पाणिपद्म	यशोर	यशोरेश्वरी	प्रचण्ड
१५	करांश	सतीचल	सुनन्दा	सुनन्द
१६	स्कन्धांश	वृन्दावन	कुमारी	कुमार
१७	चर्बी	गौरीशेखर	युगाद्या	भीम
१८	शिरानलि	नलहाटी	सेफालिका	योगीश
१९	कर्णांश	सर्वशैल	विश्वमाता	दण्डपाणि
२०	नितम्बांश	शोण	भद्रा	भद्रेश्वरी
२१	पदांश	त्रिस्रोता	पार्वती	भैरवेश्वर
२२	नूपुर	लङ्का	इन्द्राक्षी	रक्षेश्वर
२३	चर्मांश	कटक	कटकेश्वरी	वामदेव
२४	लोम	पुण्ड्र	सर्वाणी	सर्व
२५	लोमखण्ड	तैलङ्ग	चण्डदायिका	चण्डेश
२६	भग्नांश	श्वेतबन्ध	जया	महाभीम

पहले जिन सब पीठस्थानोंके नाम लिखे गये हैं, मानवमात्र हो यदि इन सब स्थानोंमें जा कर दान, होम, जप और स्नान करें, तो वे अक्षयपुण्य सञ्चय कर सकते हैं।

(कालिकापुराण १८, ५० और ६१ अध्यायमें पीठके विषयमें अनेक कथाएं लिखी हैं।)

५ किसी मूर्त्तिके नीचेका आधारपिण्ड, मूर्त्तिका वह आसनवत भाग जिसके ऊपर वह खड़ी रहती है। ६ किसी वस्तुके रहनेकी जगह। ७ सिंहासन, राजासन, वेदी, देवपीठ। ८ प्रदेश, प्रान्त। ९ बैठनेका एक विशेष ढंग, एक आसन। १० कंसके एक मन्त्रीका नाम। ११ एक विशेष असुर। १२ वृत्तके किसी अंशका पूरक।

पीठ (हिं॰ स्त्री॰) प्राणियोंके शरीरमें पेटकी दूसरी ओरका भाग जो मनुष्यमें पीछेकी ओर और तिर्यक पशुओं, पक्षियों, कीड़े मकोड़े आदिके शरीरमें ऊपरकी ओर पड़ता है। पृष्ठ देखो। २ किसी वस्तुकी बनावटका ऊपरी भाग, पेटका उलटा।

पीठक (सं॰ पु॰) १ आसन, चौकी, पीढ़ा। २ पृष्ठस्थ आसन।

पीठकामोजा (हिं॰ पु॰) कुश्तीका एक पेंच। इसमें जब जोड़ कंधे पर बायां हाथ रखने आता है, तब दाहिने हाथसे उसको उठा कर उलटा देते हैं और कलाईके ऊपरके भागको इस प्रकार पकड़ते हैं, कि अपनी कोहनी उसके कंधेके पास जा पहुंचती है, फिर झट पैतरा बदल कर जोड़की पीठ पर जानेके इरादेसे बढ़ते हुए बाएं हाथसे बाएं पांवका मोजा उठा कर गिरा देते हैं।

पीठकेंडि (हिं॰ पु॰) कुश्तीका एक पेंच। इसमें जब खिलाड़ी जोड़की पीठ पर होता है, तब शत्रुकी बगलसे ले जा कर दोनों हाथ गर्दन पर चढ़ाने चाहिये और गर्दनको दबाते हुए भीतरी अड़ानी टांग मार कर गिराना चाहिये।

पीठकेलि (सं॰ पु॰) पीठे आसने केलिः नर्मादि यस्य। पीठमर्द-नायक।

पीठग (सं॰ त्रि॰) पीठे गच्छतीति गम-ड। १ पीठगामी, पीठसे चलनेवाला। २ पीठसर्प, खञ्ज, लंगड़ा।

पीठगर्भ (सं॰ पु॰) १ देवमूर्त्तिकी प्रतिष्ठाके लिए मूलदेशस्थ गर्त्त, वह गड्ढा जो मूर्त्तिको जमानेके लिए पीठ (आसन) पर खोद कर बनाया जाता है। २ पीठविवर।

पीठचक्र (सं॰ पु॰) रथविशेष, प्राचीनकालका एक प्रकारका रथ।

पीठदेवता (सं॰ स्त्री॰) आधारशक्ति आदि देवता।

पीठनायिका (सं॰ स्त्री॰) १ किसी पीठस्थानकी अधिष्ठात्रीदेवी। २ भगवती, दुर्गा।

पीठन्यास (सं॰ पु॰) पीठे न्यासः। तन्त्रसारोक्त न्यासभेद, एक प्रकारका तन्त्रोक्त न्यास जो प्रायः सभी तान्त्रिक पूजाओंमें आवश्यक है। आधारशक्ति आदि पीठदेवताके प्रणव आदि नमोऽन्त द्वारा अर्थात् मन्त्रके आदिमें ओं और अन्तमें नमः शब्द उच्चारण कर न्यास करना होता है। प्रायः सभी पूजाओंमें पीठन्यास आवश्यक है। तन्त्रसारमें इस न्यासका विशेष विवरण लिखा है।

न्यास शब्द देखो।

पीठपुरि—दाक्षिणात्यके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम।

पिष्टपुर देखो।

पीठभू (सं॰ स्त्री॰) प्राकारसमीपस्थ भूभाग, प्राचीरके आस पासकी जमीन।

पीठमर्द (सं॰ पु॰) मृद्नातीति मृद्-अच्, पीठस्य आसनस्य मर्दः। १ नायकविशेष, नायकके चार सखाओंमेंसे एक जो वचनचातुरीसे नायिकाका मानमोचन करनेमें समर्थ हो। पीठमर्द नायक नायकसे साधारण गुणसे अल्प गुणविशिष्ट और नायकका प्रधान सहायक है। यथा, रामचन्द्र, सुग्रीव आदि। इसका लक्षण—

"दूरानुवर्त्तिनि स्यात् तस्य प्रासंगिकेऽतिवृत्ते तु।
किञ्चित्तद् गुणहीनः सहाय एवास्य पीठमर्दाख्यः॥"
(साहित्यदर्पण)

रसमञ्जरीके मतसे—यह नायक कुपित, स्त्रीप्रसादक और नर्मसचिव है। २ नायकप्रिय। ३ अति धृष्ट, बहुत ढीठ।

पीठविवर (सं॰ पु॰) पीठगर्भ देखो।

पीठसर्प (सं॰ त्रि॰) पीठे सर्पति सृप-अण्। खञ्ज, लंगड़ा।

पीठसर्पिन् (सं० त्रि०) पीठेन सर्पतीति सृप-णिनि। खञ्ज, लंगड़ा। पर्याय—पांशुर।

पीठस्थान (सं० क्ली०) पीठस्य स्थानम्। १ देवताधिष्ठित देश। पीठ देखो। २ सिंहासनवत्तीसीके अनुसार प्रतिष्ठान (आधुनिक झूंसी)का एक नाम।

पीठा (हिं० पु०) एक पकवान। यह आटेकी लोइयोंमें चने या उरदकी पीठी भर कर बनाया जाता है। पीठीमें नमक, मसाला आदि दे कर आटेकी लोइयोंमें उसे भरते हैं और फिर लोईका मुंह बन्द कर उसे गोल, चौकोर, या चिपटा कर लेते हैं। फिर उन सबको एक बरतनमें पानीके साथ आग पर चढ़ा देते हैं। कोई कोई उसे पानीमें न उबाल कर केवल भाप पर पकाते हैं। घीमें चुपड़ कर खानेसे यह अधिक स्वादिष्ट हो जाता है। पूरबकी तरफ इसको फरा या फारा भी कहते हैं। कदाचित् इस नामकरणका कारण यह हो कि पक जाने पर लोईका पेट फट जाता है और पीठी झलकने लगती है। २ पीढ़ी। ३ पठा देखो।

पीठि (हिं० स्त्री०) पीठ देखो।

पीठिका (सं० स्त्री०) १ आसन, चौकी, पीढ़ी। २ मूर्त्ति वा स्तम्भादिका मूलभाग। ३ अंश, अध्याय।

पीठी (सं० स्त्री०) पीठ स्वल्पार्थे ङीष्। १ आसन, पीढ़ी।

पीठी (हिं० स्त्री०) पानीमें भिगो कर पीसी हुई दाल विशेषतः उरद या मूंगकी दाल जो बरे, पकौड़ी आदि बनाने अथवा कचौरीमें भरनेके काममें आती है।

पीड़ (हिं० स्त्री०) १ सिर या बालों पर बांधा जानेवाला एक प्रकारका आभूषण। २ पीड़ा देखो। ३ मिट्टीका आधार जिसे घड़ेको पीट कर बढ़ाते समय उसके भीतर रख लेते हैं।

पीड़क (सं० पु०) १ यन्त्रणादाता, दुःखदायी, पीड़ा देने या पहुंचानेवाला। २ अत्याचारी, उत्पीड़क, सतानेवाला। ३ व्रण चक्र आदि चर्मरोगविशेष। बालक और बालिकादिके तालुदेशमें पीड़क रोग होता है। तालुपीडक देखो

पीड़न (सं० क्ली०) पीड़-बाधे अवगाहे वा भावे-ल्युट्। १ शस्यादिसम्पन्न देशको परचक्र द्वारा पीड़न, परराष्ट्रपीड़न, आक्रमण द्वारा किसी देशको बर्बाद करना। २ दुःख देना, यन्त्रणा पहुंचाना, तकलीफ देना। ३ मर्दन, दबानेकी क्रिया, किसी वस्तुको दबाना, चांपना। ४ उच्छेद, विनाश। ५ अभिभव, तिरोभाव, लोप। ६ सामहग्रहण, सूर्य, चन्द्र आदिका ग्रहण। ७ निपीड़न, पेरना, पेलना। ८ किसी वस्तुको भलीभांति पकड़ना, दबोचना। ९ फोड़ेको पीब निकालनेके लिए दबाना। १० उत्पीड़न, अत्याचार।

पीड़नीय (सं० त्रि०) पीड़-अनीयर्। १ पीड़ाई, पीड़न करने योग्य, दुःख पहुंचाने लायक। (पु०) २ मन्त्री और सेनासे रहित राजा। ३ चार प्रकारके शत्रुओंमें एक।

पीड़ा (सं० स्त्री०) पीड़नमिति पीड़-अङ्। शारीरिक या मानसिक क्लेशका अनुभव, वेदना, व्यथा, तकलीफ। संस्कृत पर्याय—बाधा, व्यथा, दुःख, अमानस्य, प्रसूतिज, कष्ट, कृच्छ्र, आभील, अबाधा, आमानस्य, रुज, वेदना, आर्त्ति, तोद, रुजा।

शरीरादिमें अनेक तरहके रोग हैं। शरीरगत रोग ही पीड़ा कहलाता है। पीड़ामात्र ही कष्टदायक है। शास्त्रोक्त नियमोंका लङ्घन करनेसे पीड़ा उत्पन्न होती है। आत्माके पीड़नको ही पीड़ा कहते हैं। दुःखमात्र ही पीड़ा पदवाच्य है। यह दुःख वा पीड़ा आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिकके भेदसे तीन प्रकारकी है। आध्यात्मिक प्रभृति दुःखका विवरण दुःख शब्दमें देखो।

पीड़ाका मूलकारण अधर्म है। अधर्म आचरणसे दुरदृष्ट उत्पन्न होता है। दुरदृष्टवशतः ही रोग, शोक आदि तरह तरहकी पीड़ाएं होती हैं। जिससे दुरदृष्ट उत्पन्न न हो सके, ऐसा ही आचरण विधेय है।

वात, पित्त और श्लेष्मा ही सभी रोगों वा पीड़ाओंका मूल है। सभी पीड़ाओंमें इनका लक्षण देखनेमें आता है। यह जगत् जिस प्रकार सत्त्व, रजः और तमः इन तीन गुणोंके बिना नहीं रह सकता, उसी प्रकार देहस्थित रोग वायु, पित्त और कफ ये तीन छोड़ कर और किसीसे भी उत्पन्न नहीं होता। दोष, धातु और मलके परस्पर संसर्गभेद, स्थानभेद और कारणभेदसे देहस्थ रोग अनेक प्रकारका होता है। सप्तधातुके

दूषित होनेसे जो सब रोग उत्पन्न होते हैं, वे रसज, रक्तज, मांसज, मेदज, अस्थिज, मज्ज और शुक्रज आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे रसधातुके दूषित होनेसे अन्नमें अश्रद्धा, अरुचि, अपाक, अङ्गमर्द, ज्वर, हृल्लास, अक्षुधा, शरीरकी गुरुता, पाण्डु, हृद्रोग, मार्गका उपरोग, कृशता, मुखकी विरसता, अवसन्नता. अकालमें चमड़ेका सिकुड़ना और बालका पकना आदि विकार उत्पन्न होते हैं। शोणितके दूषित होनेसे कुष्ठ, पीड़क, विसर्पनीलिका, तिल, व्यङ्ग, न्यच्छ, इन्द्रलुप्त, प्लीहा, गुल्म, वातरक्त, अर्शः और रक्तपित्त आदि रोगोंकी उत्पत्ति होती है। मांसके दूषित होनेसे अधिमांस, अर्बुद, अधिजिह्वा, गलगण्डिका आदि मांस संघात आदि विकार; मेदके दूषित होनेसे ग्रन्थि, वृद्धि, गलगण्ड, अर्बुद, ओष्ठप्रकोप, मधुमेह, अतिस्थूलता और अतिशय घर्मनिर्गम प्रभृति विकृति; अस्थिके दूषित होनेसे अध्यस्थि, अधिदन्त, अस्थितोद और कुनखआदि विकार; मज्जाके दूषित होनेसे तमोदृष्टि, मूर्च्छा, भ्रम, शरीरकी गुरुता, उरु और जङ्घाकी स्थूलता आदि पीड़ा; शुक्रके दूषित होनेसे क्लीवता, शुक्राश्मरी और शुक्रमेह प्रभृति पीड़ा तथा मलाशयके दूषित होनेसे त्वक्‌रोग, मलरुद्ध वा अतिशय निःसरण आदि पीड़ा उत्पन्न होती है।

शारीरिक किसी इन्द्रिय स्थानके दूषित होनेसे इन्द्रिय-कार्यकी अप्रवृत्ति अथवा अस्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। दोष कुपित हो कर शरीरके सब स्थानोंमें दौड़ता है। शरीरके मध्य जिस स्थानमें उस कुपित दोषके संसर्गसे अन्य दोष विगुण हो जाता है, उसी स्थानमें पीड़ाकी उत्पत्ति देखी जाती है।

इस प्रकार सन्देह होता है, कि ज्वरप्रभृति रोग वायु, पित्त तथा कफ इन तीनों दोषोंका नित्य आश्रय किया करते हैं। किन्तु निरन्तर आश्रय एकान्त असम्भव है, क्योंकि ऐसा होनेसे सभी प्राणियोंको नित्य पीड़ित रहना पड़ता है। वायु, पित्त और कफ ज्वरका प्रकृत लक्षण होने पर भी वह अवान्तरभावमें ज्वरादिमें हमेशा लिप्त नहीं रहता। जिस प्रकार विद्युत, वात, वर्षा और वज्र ये सब आकाश छोड़ कर अन्यत्र प्रकाश नहीं पाते, अथच वे नित्य आकाशमें नहीं रहते, किसी अन्य कारणके योगसे आकाशमें उद्भूत होते हैं, ज्वर भी उसी प्रकार अन्य कारणसे वायु, पित्त और कफका आश्रय ले कर प्रकाश पाते हैं। तरङ्ग अथवा बुदबुद जिस प्रकार जलसे भिन्न नहीं है अथच जलके रहनेसे ही उसमें निरवच्छिन्न तरङ्ग वा बुदबुद नहीं रहता, अन्य कारणसे वे जलमें उत्पादित होते हैं, उसी प्रकार ज्वरादि पीड़ा भी अन्य कारणयोगसे वायु, पित्त और कफके बिगड़नेसे प्रकाशित होती है।

पुरुषमें जब दुःखसंयोग होता है तब उसे पीड़ा कहते हैं। पहले लिखा जा चुका है, कि दुःख तीन प्रकारका है, आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक। ये तीनों प्रकारके दुःख सात प्रकारकी व्याधियोंमें प्रवर्तित होते हैं। उनके नाम हैं आदिबलजात, जन्मबलजात, दोषबलजात, संघातबलजात, कालबलजात और स्वभावबलजात। शुक्रशोणित दोषसे कुष्ठ अर्श प्रभृति जो सब पीड़ा होती है, उसे आदिबलजात कहते हैं। आदिबलजात पीड़ा दो प्रकारकी है—मातृ और पितृदोषजात। मातृदोष प्रयुक्त जन्मान्ध, बधिर, मूक और वामन प्रभृति। मातृदोष दो प्रकारका है, रस और दौहृदजनित। आतङ्क अथवा मिथ्या-आहार विहार-जनित रोग ही दोषबलजात है। यह रोग दो प्रकारका है, शारीरिक और मानसिक। शारीरिक दोषके भी फिर दो भेद हैं, आमाशय आश्रित और पक्वाशय आश्रित। ये सब पीड़ा आध्यात्मिक नामसे प्रसिद्ध हैं।

आगन्तु रोग ही संघातबलजातव्याधि है। आगन्तु व्याधि दो प्रकारकी है—शस्त्राघातजनित और हिंस्रजन्तुकृत। आगन्तु पीड़ा ही आधिभौतिक है। शीत, उष्ण, वात, वर्षा आदि कारणोंसे जो पीड़ा होती है, उसे कालबलजात पीड़ा कहते हैं। यह पीड़ा फिर दो प्रकारकी है—ऋतुविपर्यय और स्वाभाविक ऋतुजनित। देवद्रोह और अभिशापप्रयुक्त अथवा अथर्ववेदोक्त अभिचार तथा उपसर्गजनित पीड़ा दैव बलजनित कहलाती है। आधिदैविक पीड़ा भी दो प्रकारकी है—वज्राघात और पिशाचादिकृत। क्षुधा, पिपासा, जरा, मृत्यु और निद्रा आदि स्वभावबलजात पीड़ा है। फिर इसके भी दो भेद हैं, कालकृत और अकालकृत।

लाख यत्न करने पर भी जिसका निवारण नहीं किया जा सकता, वह कालजन्य और जो बिना यत्नके ही होती है, वही अकालसम्भूत पीड़ा है।

(सुश्रुत सूत्रस्था० २४ अ०)

२ कृपा, दया। ३ शिरोमाला, सिरमें लपेटी हुई माला। ४ एक सुगन्धित औषधि, धूप सरल।

"पीड़ा कृपा शिरोमाला ऽपमर्दसरलद्रुषु।" (मेदिनी)

पीड़ाभञ्जीरस (सं० पु०) रसौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—अभ्रभस्म तीनभाग, पारद एक भाग, गन्धक एक भाग, जायफल बीज दो भाग, टङ्कणक्षार तीन भाग इन सब द्रव्योंको जम्बीरीके रसमें पीस कर औषध तैयार करनी चाहिए। इसकी मात्रा बेरके बराबर तथा अनुपान गुड़काञ्जिक है। इसके सेवनसे शूलरोग जाता रहता है।

पीड़ास्थान (सं० क्लो०) पीड़ायाः स्थानं ६-तत्। पीड़ाका स्थान। राशिके उपचय अर्थात् लग्नसे तीसरे, छठें, दशवें और ग्यारहवें स्थानके अतिरिक्त स्थानको पीड़ास्थान कहते हैं, अशुभ ग्रहोंके स्थान।

पीड़ित (सं० त्रि०) पीड़-क्त अथवा पीड़ाऽस्य जातेति तारकादित्वादितच्। १ व्यथित, दुःखित, जिसे व्यथा या पीड़ा पहुंची हो, क्लेशयुक्त। २ पीड़ायुक्त, रुग्न, रोगी, बीमार। ३ उच्छिन्न, नष्ट किया हुआ। ४ मर्दित, दबाया हुआ, जिसपर दाब पहुंचाया गया हो। भावे-क्त। (क्लो०) ५ पीड़ा, दुःख। ६ स्त्रियोंके कानका छेद, कर्णभेद। (पु०) ७ तन्त्रसारोक्त मन्त्रभेद, तन्त्रसारमें दिए हुए एक प्रकारके मन्त्र।

पीड़ुरी (हिं० स्त्री०) पिंडली देखो।

पीढ़ा (हिं० पु०) चौकीके आकारका आसन विशेषतः हिन्दू लोग इस पर भोजन करते समय बैठते हैं। इसकी लम्बाई डेढ़ दो हाथ, चौड़ाई पौन या एक हाथ और ऊंचाई चार छः अङ्गुलसे लगभग अधिक नहीं होती। अधिकतर यह आमकी लकड़ीसे बनाया जाता है। धनी लोग संगमरमर और राजा महाराज सोने चाँदी आदिके भी पीढ़े बनवाते हैं, पीठक पीठ।

पीढ़ी (हिं० स्त्री०) १ किसी वंश या कुलमें किसी विशेष व्यक्तिसे आरम्भ करके उससे ऊपर या नीचेके पुरुषोंका गणनाक्रमसे निश्चित स्थान, किसी विशेष कुलकी परम्परामें किसी विशेष व्यक्तिकी सन्ततिका क्रमागत स्थान, किसी व्यक्तिसे या उसकी कुलपरम्परामें किसी विशेष व्यक्तिसे आरम्भ करके बाप, दादे, परदादे आदि अथवा बेटे, पोते, परपोते आदिके क्रमसे पहला दूसरा चौथा आदि कोई स्थान, पुश्त। पीढ़ीका हिसाब ऊपर और नीचे दोनों ओर चलता है। किसी व्यक्तिके पिता और पितामह जिस प्रकार क्रमसे उसकी पहली और दूसरी पीढ़ीमें हैं, उसी प्रकार उसके पुत्र और पौत्र भी हैं। परन्तु अधिकतर स्थलोंमें अकेला पीढ़ी शब्द नीचेके क्रमका ही बोधक होता है; ऊपरके क्रमका सूचक बनानेके लिए प्रायः इसके आगे "ऊपरको" ऐसा विशेषण लगा देते हैं। यह शब्द मनुष्यों होके लिए नहीं अन्य सब पिण्डज तथा अण्डज प्राणियोंके लिए भी प्रयुक्त हो सकता है।

२ किसी जाति, देश अथवा लोकमण्डल मात्रमें बीच किसी कालविशेषमें होनेवाला समस्त समुदाय, कालविशेषमें किसी विशेष जाति, देश अथवा समस्त संसारमें वर्त्तमान व्यक्तियों अथवा जीवों आदिका समुदाय, किसी विशेष समयमें वर्गविशेषके व्यक्तियोंकी समष्टि, सन्तति। ३ किसी विशेष व्यक्ति अथवा प्राणीका सन्तति समुदाय। ४ छोटा पीढ़ा।

पीत (सं० क्लो०) पा भावे-क्त। १ पान। पीतो वर्णोऽस्यास्तीति अच् पीतास्त्वादस्य तथात्वं। २ हरिताल, हरताल। ३ हरिचन्दन।

(पु०) पिवति वर्णान्तरमिति पा कर्त्तरि औणादिकः क्त। ४ वर्णविशेष, पीला रंग, हल्दी रंग। पर्याय—गौर, हरिद्राभ, कुसुम्भ, अक्षोठ, शाखोट और पुष्पराग। कविकल्पलतामें पीली वस्तुका इस प्रकार नामोल्लेख देखनेमें आता है—१ ब्रह्मा, २ जीव, ३ इन्द्र, ४ गरुड़, ५ ईश्वरदृग, ६ जटा, ७ गौरी, ८ द्वापर, ९ गोमूत्र, १० मधु, ११ वीररस, १२ रजः, १३ हरिद्रा, १४ रोचना, १५ रीति, १६ गन्धक, १७ दीप १८ चम्पक, १९ किञ्जल्क, २० वल्कल, २१ शालि, २२ हरिताल, २३ मनःशिला, २४ कर्णिकार, २५ चक्रवाक, २६ वानर, २७ शारिकामुख, २८ केशवांशुक, २९ मण्डूक, ३० सराग और ३१ कनकादि। काव्यमें ये सब पीतवर्ण कह कर वर्णित हुए हैं।

पीतश्वेतवाचक शब्द—गौर, द्विजराज, कपर्द, शम्भु, हरि, तार्क्ष्य, हैमवतीम, अष्टापद, महारजत, चन्द्र और कलधौत। पीतश्यामवाचक—कृष्णाम्बर, मधुजित, ध्वान्तजित्, विद्युत्कान्त, ध्वान्तद्वेषी, हरि और स्वर्णवच्छाया। ५ पर्वतविशेष, एक पहाड़का नाम। ६ बेंतसलता, बेंतकी लता। ७ पुष्परागमणि, पुखराज। ८ शनिध्यानविशेष। ९ नन्दिवृक्ष, तुन। १० सोमलताभेद, एक प्रकारकी सोमलता। ११ पीतभिण्टी, पीली कटसरैया। १२ पद्मकाष्ठ, पदमाख। १३ पीतोशीर, पीला खस। १४ कुसुम्भ, कुसुम। १५ प्रवाल, मूंगा। १६ पीतचन्दन। १७ अङ्कोल या ढेरेका पेड़। १८ सिहोराका पेड़। १९ धूपसरल। २० कपिलवर्ण, भूरा रंग।

(त्रि०) पीतवर्णोऽस्यास्तीति, अच्। २१ पीतवर्णयुक्त, पीले रंगका। पाकर्म णि-क्त। २२ कृतपान, पिया हुआ, जिसका पान किया गया हो। २३ कपिल, भूरे रंगका।

पीतक (सं० क्ली०) पीत (यावादिभ्य कन्। पा ५।४।२९) इति स्वार्थे कन्। १ हरिताल, हरताल। २ पीतेन पीतवर्णेन कायतीति कै-क। २ कुङ्कुम, केसर। ३ अगुरु, अगर। ४ पद्मकाष्ठ, पदमाख। ५ पित्तल, पीतल, ६ माक्षिक, सोनामाखी। ७ नन्दिवृक्ष, तुन। ८ पीतशाल। ९ श्योणाकवृक्ष, सोनापाठा। १० हरिद्रु, हलदुआ। ११ किङ्किरातवृक्ष। १२ विजयसार। पीतेन पीतवर्णेन कमिति पीत (लाक्षारोचनात् ठक् च। पा ४।२।२) इत्यस्य पीतात् कन्, इति वार्त्तिकोक्त्या कन्। १३ पीतवर्णरञ्जित, पीले रंगसे रंगा हुआ। १४ पीतवर्णविशिष्ट। (पु०) पीत स्वार्थ कन्। १५ पीतवर्ण, पीला। १६ बबूरभेद, एक प्रकारका बबूल। १७ मधु, शहद। १८ गजरमूल, गाजर। १९ पीत जीरक, सफेद जीरा। २० पीतलोध्र, पीलो लोध। २१ किरातत्तिक्त, चिरायता।

पीतकचूर्ण (सं० क्ली०) चूर्णौषधभेद, एक प्रकारकी औषध। प्रस्तुत प्रणाली—मैनसिल, यवक्षार, हरिताल, सैन्धव और दार्वीत्वक् इन सबोंका बराबर बराबर भाग चूर्ण कर सोनामाखीके साथ मिलावे। बाद घृतमण्ड द्वारा मुर्च्छित करनेसे यह चूर्ण प्रस्तुत होता है। यह मुखरोगमें विशेष उपकारक है।

(चरक चिकित्सितस्थान २६ अ०)

पीतकटुकी (सं० स्त्री०) पीतरोहिणी।

पीतकदली (सं० स्त्री०) पीता कदलीति नित्यकर्मधा०। स्वर्णकदली, चम्पककदली, सोनकेला।

पीतकद्रुम (सं० पु०) पीतको द्रुमः। हरिद्रुवृक्ष, हलदुआ।

पीतकन्द (सं० पु०) पीतः कन्दोऽस्य। गर्जरमूलक, गाजर।

पीतकरवीरक (सं० पु०) पीतः करवीर इति नित्यकर्मधारयः, ततः स्वार्थे कन्। पीतवर्ण करवीरपुष्पवृक्ष, पीला कनेर, पीले फूलको कैना। पर्याय—पीतप्रसव, सुगन्धिकुसुम। यह सामान्य करवीरके जैसा गुणयुक्त है।

पीतका (सं० स्त्री०) पीतक-टाप्। १ हरिद्रा, हल्दी। २ दारुहरिद्रा। ३ स्वर्णयूथिका, सोनजूही। ४ कुष्माण्ड। ५ घोषालता। ६ कटसरैया। ७ स्पृक्का, पोई साग। ८ शतपदी नामक कीट। इसके काटनेसे शरीरमें पीड़ा होती है तथा वमन, शिरःशूल और दोनों आंखोंका लाल होना आदि उपद्रव होते हैं। इसमें कुटज, खसकी जड़, पद्मकाष्ठ, अशोक, शिरीष, शेलु, अपामार्ग, कदम्ब और अर्जुनत्वक् ये सब हितकर हैं। (सुश्रुत-कल्पस्था० ८ अध्याय) इसका नामान्तर पीतिका है।

पीतकाञ्चन (सं० पु०) पीतपुष्प काञ्चनभेद। गुण—ग्राही, दीपन, व्रणरोपण, मूत्रकृच्छ्र, कफ और वायुनाशक।

पीतकायता (सं० स्त्री०) पित्तजरोगभेद, पित्तको एक बीमारी। इसमें शरीर पीला हो जाता है।

पीतकावेर (सं० क्ली०) कुत्सित वेर शरीर कावेरं, पीत कावेरं कुत्सितशरीरमपि यस्मात्। १ कुङ्कुम, केसर। २ पित्तल, पीतल।

पीतकाष्ठ (सं० क्ली०) पीतकाष्ठमिति नित्यकर्मधा०। १ पीतचन्दन, पीला चन्दन। २ पद्मकाष्ठ, पद्माख।

पीतकीला (सं० स्त्री०) पीता कीला कीलतुल्या लतेति। आवर्त्त कीलता, भगवतवल्ली।

पीतकुरवक (सं० पु०) पीतः कुरवकः। पीतभिण्टी क्षुप, पीली कटसैरया।

पीतकुरण्ट (सं० पु०) पीली कटसरैया

पीतकुष्माण्ड (सं० क्ली०) पीत कुष्माण्ड कर्मधा० वैदेशिक कुष्माण्ड, पीला कुम्हड़ा। इसकी तरकारी खाई

जाती है। गुण—गुरु, अत्यन्त पित्तवर्द्धक, अग्निमान्द्यकर, स्वादु, श्लेष्मनाशक और वायुवृद्धिकर।

पीतकुसुम (सं० पु०) पीतझिण्टीक्षुप, पीली कटसरैया।

पीतकेदार (सं० पु०) एक प्रकारका धान।

पीतगन्ध (सं० क्ली०) पीतमथ च गन्धं गन्धयुक्तं। १ पीतचन्दन, पीला चन्दन, हरिचन्दन।

पीतगन्धक (सं० पु०) गन्धक।

पीतघोषा (सं० स्त्री०) पीतानि पुष्पाणि सन्त्यस्या इति पीता, पीतपुष्पा, पीता घोषा कर्मधा०। पीतपुष्प, एक प्रकारकी तुरई।

पीतचन्दन (सं० क्ली०) पीतं पीतवर्णं चन्दनमिति कर्मधा०। पीतवर्ण चन्दन, पीला चन्दन। यह चन्दन द्राविड़ देशमें कम्बलक कहलाता है। पर्याय—पीतगन्ध, कालेय, पीतक, माधवप्रिय, कालेयक, पीतकाष्ठ और वर्व्वर। (राजनि०) कालीयक, कालीय, पीताभ, हरिचन्दन, हरिप्रिय, कालसार, कालानुसार्यक। यह लाल चन्दन जैसा गुणविशिष्ट है। (भावप्र०)

राजनिघण्टुके मतसे इसका गुण—शीतल, तिक्त, कुष्ठ, श्लेष्म, कण्डू, विचर्चिका, दद्रु और कृमिनाशक तथा कान्तिकर।

पीतचम्पक (सं० पु०) पीतं चम्पकमिव शिखा यस्य। १ प्रदीप, दीया, चिराग। पीतं चम्पकं तत् पुष्पमस्य। २ पीतवर्ण, चम्पकपुष्पवृक्ष, पीली चंपा।

पीतचोप (सं० पु०) पलासका फूल, टेसू।

पीतजाति (सं० स्त्री०) स्वर्णजातिवृक्ष।

पीतझिण्टी (सं० स्त्री०) १ पीतपुष्प झिण्टीक्षुप, पीले फूलवाली कटसरैया। २ क्षुरिका वृहती, एक प्रकारकी कटाई।

पीततण्डुल (सं० पु०) पीतस्तण्डुलो यस्य। १ कङ्गुनीधान्य, कांगुन धान। २ सर्जतरु, सालवृक्ष।

पीततण्डुला (सं० स्त्री०) पीततण्डुल-टाप्। चरिका वृक्ष, एक प्रकारकी कटाई।

पीततण्डुलिका (सं० स्त्री०) सर्ज या शालवृक्ष, साल।

पीतता (सं० स्त्री०) पीतस्य भावः, पीत-तल-टाप्। हरिद्राभता, पीतका भाव, पीलापन, जर्दी।

पीततुण्ड (सं० पु०) पीतं तुण्डं यस्य। कारण्डव पक्षी, बया पक्षी। पर्याय—चञ्चसूचि और सुग्टह।

पीततैला (सं० स्त्री०) १ ज्योतिष्मतीलता, मालकंगनी। २ महाज्योतिष्मती, बड़ी मालकंगनी।

पीतत्व (हिं० पु०) पीतता देखो।

पीतदन्तता (सं० स्त्री०) पित्तजन्य दन्तरोगविशेष, दांतोंका एक पित्तज रोग जिसमें दांत पीले पड़ जाते हैं।

पीतदारु (सं० क्ली०) पीतञ्च तत् दारु चेति कर्मधा०। १ देवदारु, देवदार। २ सरलकाष्ठ, धूपसरल। ३ हरिद्रा, हल्दी। ४ हरिद्रवृक्ष, हलदुआ। ५ किरातितिक्त, चिरायता। ६ पूतिकरञ्ज, कायकरंज।

पीतदीप्ता (सं० स्त्री०) बौद्धोंके एक देवता।

पीतदुग्धा (सं० स्त्री०) १ स्वर्णक्षीरी, चोक। २ क्षीरिणी, एक प्रकारकी कटेहरी। ३ सातला, एक प्रकारका थूहड़। पीतं दुग्धं यस्याः। ४ आहितागवी, धेनुष्या, जिस गायका दूध बन्धक रखा हो।

पीतद्रु (सं० पु०) पीतो द्रुरिति नित्यकर्मधारयः। १ देवदारुभेद, एक प्रकारका देवदार, धूपसरल। २ दारुहरिद्रा, दारुहलदी।

पीतद्रुम (सं० पु०) पीतद्रु देखो।

पीतधातु (हिं० पु०) गोपीचन्दन, रामरज।

पीतन (सं० क्ली०) पीतं करोतीति तत्करोतीति णिच्, ततो ल्यु वा पीतं पीतवर्णं नयतीति नी-ड। १ कुङ्कुम, केशर। २ हरिताल, हरताल। ३ देवदारु। ४ आम्रातकवृक्ष, आमड़ा। ५ प्लक्षवृक्ष, पाकड़।

पीतनक (सं० पु०) पीतन एव, पीतन-स्वार्थे कन्। पीतन देखो।

पीतनखता (सं० स्त्री०) पित्तजन्य नखरोगभेद।

पीतनाश (सं० पु०) क्षुद्र पनस, बड़हर, लकुच।

पीतनी (सं० स्त्री०) पीतन-स्त्रियां ङीष्। शालपर्णी, सरिवन।

पीतनील (सं० पु०) १ नीले और पीले रंगके संयोगसे बना हुआ रंग, हरा रंग। (त्रि०) २ हरितवर्ण, हरे रंगका।

पीतनेत्रता (सं० स्त्री०) पीतं नेत्रं यस्य, तस्य भावः, तल्-टाप्। पित्तजन्य नेत्ररोग।

पीतपराग (सं० पु०) पद्मकेसर, कमलका केसर, किञ्जल्कक।

पीतपर्णी (सं० स्त्री०) पीतानि पीतवर्णानि पर्णानि यस्याः ङीष्। विश्वघ्नी, वृश्चिकाली।

पीतपाकिन् (सं० पु०) वात्यालकभेद।

पीतपाठिन् (सं० पु०) चित्रकवृक्ष।

पीतपादप (सं० पु०) १ श्योनाकवृक्ष, सोनापाठा। २ लोध्रवृक्ष, लोधवृक्ष।

पीतपादा (सं० स्त्री०) पीतौ पादौ यस्याः। १ शारिका पक्षी, मैना। (त्रि०) २ पीतचरणयुक्त, जिसके चरण पीले हों।

पीतपुष्प (सं० क्ली०) पीतानि पुष्पाणि यस्य। १ आहुल्य-वृक्ष। २ कुष्माण्ड, घिया तोरई। ३ हरिद्राभ कुसममात्र। (पु०) ४ कर्णिकारवृक्ष, कनेर। ५ चम्पकवृक्ष, चंपा। ६ पीतझिण्टी, पीले फूलकी कटसरैया। ७ इङ्गुदीवृक्ष, हिंगोट। ८ पिण्डीतकभेद, तगर। ९ राजकोषातकी, रगनामक क्षुप। १० काञ्चनारवृक्ष, लाल कचनार। ११ पेठा।

पीतपुष्पक (सं० पु०) १ बबूरवृक्ष, बबूलका पेड़। २ पीतपुष्प देखो।

पीतपुष्पका (सं० स्त्री०) पीतपुष्पक स्त्रियां टाप्। कर्कटीभेद, जंगली ककड़ी।

पीतपुष्पा (सं० स्त्री०) पीतं पुष्पं यस्याः। १ इन्द्र-वारुणीलता, इंद्रायण। २ कोषातकीलता, तोरई। ३ पीतपुष्पवाट्टालक, सहदेवी। ४ पीतझिण्टी, पीले फूल-की कटसरैया। ५ झिंझिरीटा। ६ आढ़की, अरहर। ७ पीतकरवीर, पीले फूलका कनेर। ८ स्वर्णयूथिका, सोनजुही। ९ गणिकारिका, गनियारका पेड़।

पीतपुष्पी (सं० स्त्री०) पीतं पुष्पं यस्याः, जातित्वात् ङीष्। १ महाबला। २ त्रपुषी, खीरा। ३ इन्द्रवारुणी-लता, इन्द्रायण। ४ शङ्खपुष्पी, श्वेत अपराजिता। ५ महाकोषातकी, बड़ी तोरई। ६ पीतयूथिका, सोनजुही। ७ अतिबला। ८ महाशणवृक्ष, सहदेई।

पीतपृष्ठा (सं० स्त्री०) वराटिकाभेद, एक प्रकारकी कौड़ी जिसकी पीठ पीली होती है।

पीतप्रसव (सं० पु०) १ पीतकरवीर वृक्ष, पीला कनेर। २ भिङ्गुपत्र।

पीतफल (सं० पु०) पीतानि फलानि यस्य। १ शाखोट-वृक्ष, सिहोर। २ धववृक्ष। ३ कमरङ्गवृक्ष, कमरख।

पीतफलक (सं० पु०) पीतफल एव स्वार्थे कन्। १ रीठा। २ पीतफल देखो।

पीतफेन (सं० पु०) अरिष्टकवृक्ष, रीठा।

पीतबलि (सं० पु०) गन्धक।

पीतबालुका (सं० स्त्री०) पीता बालुकेव चूर्णनरजो यस्याः। १ हरिद्रा, हलदी। २ पीतवर्ण सिकता, पीला बालू।

पीतबीजा (सं० पु०) पीतं बीजं यस्याः। १ मेथिका, मेथी। (त्रि०) २ पीतवर्ण बीजयुक्त, पीले रंगका बीजवाला।

पीतभद्रक (सं० पु०) देवबबूर वृक्ष, एक प्रकारका बबूल।

पीतभस्मन् (सं० क्ली०) पीतं भस्म। पारेको भस्म कर उसे पीला करना। पारेको इस प्रकार भस्म करना होता है जिससे यह भस्म पीतवर्णका हो जाय।

विशेष पारद शब्दमें देखो।

पीतभृङ्गराज (सं० पु०) पीतो भृङ्गराजः। पीतपुष्प भृङ्ग-राजक्षुप, पीला भंगरा। पर्याय—स्वर्णभृङ्गार, हरि-प्रिय, देवप्रिय, नन्दनीय, पावन। गुण—तिक्त, उष्ण, चक्षुष्य, केशरञ्जन, कफ, आम और शोफनाशक।

पीतम (हिं० वि० पु०) प्रियतम देखो।

पीतमणि (सं० पु०) पीतो मणिरिति कर्मधा०। पुष्पराग-मणि, पुखराज।

पीतमण्डो—राढ़ीयश्रेणी ब्राह्मणोंका एक गांव।

पीतमण्डलदर्शन (सं० पु०) पित्तजन्यरोग।

पीतमण्डूक (सं० पु०) पीत मण्डूकः, कर्मधा०। स्वर्णमण्डूक, सोना बेंग।

पीतमस्तक (सं० पु०) पीतं मस्तकं यस्य। वृद्ध श्येन पक्षी, एक प्रकारका बाज।

पीतमाक्षिक (सं० क्ली०) पीतं माक्षिकम्। स्वर्ण-मक्षिक, सोनामाखी।

पीतमुण्ड (सं० पु०) पीतं मुण्डं यस्य। हरिभेद, एक प्रकारका हरिन।

पीतमुद्ग (सं० पु०) पीतः पीतवर्णो मुद्गः। मुद्गविशेष, एक प्रकारका मूंग, सोनामूंग। पर्याय—वसु, खण्डीर, प्रवल, जय और शारद।

पीतमूत्रता (सं० स्त्री०) पीतं मूत्रं यस्य, तस्य भावः, तल्-टाप्। पित्तज मूत्ररोगभेद। इस रोगमें पेशाब पीला उतरता है।

पीतमूलक (सं० क्ली०) पीतं मूलं यस्य, कप्। गर्जर, गाजर।

पीतमूली (सं० स्त्री०) रेचक मूलविशेष, रेवंदचीनी। इसका गुण—बलकर, मृदुरेचक, अजीर्ण, अतीसार, अग्निमान्द्य और अरुचिनाशक है।

"गन्धिनी पीतमूली च बल्या सामृदुरेचनी।
हन्त्यजीर्णमतीसारं वह्निमान्द्यमरोचकम्॥"
(वैद्यकनि०)

पीतयूथी (सं० स्त्री०) पीता यूथी। स्वर्णयूथी, सोना-जूही।

पीतर (हिं० पु०) पीतल देखो।

पीतरक्त (सं० क्ली०) पीतं रक्तञ्चेति 'वर्णो वर्णेनेति' समासः। १ पुष्परागमणि, पुखराज। २ पद्मकाष्ठ, पद्माख।

पीतरत्न (सं० पु०) पीतमणि, पुखराज।

पीतरम्भा (सं० स्त्री०) पीता रम्भा यत्र। सुवर्णकदली-वृक्ष।

पीतरस (सं० पु०) कशेरु, केसरू।

पीतराग (सं० क्ली०) पीतो रागो वर्णो यस्य। १ किञ्जल्क, पद्मकेसर। २ सिक्थक, मोम। (पु०) ३ पीतवर्णयुक्त, पीलेरंगका, पीला।

पीतरोहिणी (सं० स्त्री०) पीता सती रोहतीति रुह-णिनि ङीप्। १ पीतकटकी, पीली कुटकी। २ कुम्भेर, गंभीरी।

पीतल (सं० पु०) पीतं लातीति ला-क। १ पीतवर्ण, पीलारंग। २ पित्तल, एक धातुका नाम। (त्रि०) ३ पीतवर्णविशिष्ट, पीले रंगका।

पीतल (हिं० पु०) एक प्रसिद्ध उपधातु जो तांबे और जस्तेके संयोगसे बनती है। इसमें कभी कभी रांगे या सीसेका भी कुछ अंश मिलाया जाता है। यह तांबेकी अपेक्षा कुछ अधिक दृढ़ होती है। इससे थाली, कटोरे, गिलास, हंडे, गगरे आदि बरतन बनाये जाते हैं। देवताओंकी मूर्त्तियां, सिंहासन, घंटे, अनेक प्रकारके वाद्य, यन्त्र, ताले, कलोंके कुछ पुरजे और गरीबोंके लिए गहने भी पीतलसे बनाये जाते हैं। पीतलकी बनी चीजें लोहेकी चीजोंकी अपेक्षा कुछ अधिक टिकाऊ होती हैं, कारण उनमें मोरचा नहीं लगता। विशेष विवरण पित्तल शब्दमें देखो।

पीतलक (सं० क्ली०) पीतलेन पीतेन वर्णेन कायति प्रकाशते इति कै-क। पित्तल, पीतल।

पीतलोह (सं० क्ली०) पीतं लोहमिति नित्यकर्मधा०। पित्तल, पीतल।

पीतवर्ण (सं० पु०) १ स्वर्णमण्डूक, पीला मेंढक। २ तालवृक्ष, ताड़। ३ कदम्बवृक्ष, कदम्ब। ४ हरिद्रवृक्ष, हलदुआ। ५ काञ्चनवृक्ष, लाल कचनार। (क्ली०) ६ मनःशिला, मैनसिल। ७ पीतचन्दन। ८ कुङ्कुम, केसर।

पीतवल्ली (सं० स्त्री०) आकाशलता, आकाशबेल।

पीतवान (हिं० पु०) हाथीकी दोनों आंखोंके बीचकी जगह।

पीतवालुका (सं० स्त्री०) हलदी।

पीतवासस् (सं० पु०) पीतं वासो वस्त्रं यस्य। १ श्रीकृष्ण। (त्रि०) २ पीतवस्त्रयुक्त, पीले कपड़े पहनने-वाला।

पीतविट्कता (सं० स्त्री०) पित्तविकारज रोग।

पीतविन्दु (सं० पु०) विष्णुके चरण-चिह्नोंमेंसे एक।

पीतबीजा (सं० स्त्री०) मेथी।

पीतवृक्ष (सं० पु०) पीतो वृक्षः। १ श्योनाकवृक्ष, सोना-पाठा। २ पीतलोध्रवृक्ष। ३ सरलदेवदारु, धूपसरल।

पीतशाल (सं० पु०) असनवृक्ष, विजयसार। इसकी छालका क्वाथ उदरामयनाशक और प्रलेप नाड़ीव्रणमें हितकर है।

पीतशालक (सं० पु०) पीतशाल देखो।

पीतशालि (सं० पु०) पीतः शालिः। सूक्ष्मधान्य, महीन धान।

पीतससुरा (हिं० पु०) ससुरका भाई, चचिया ससुर।

पीतसहाचर (सं० पु०) पीतझिण्टी, पीली कटसरैया।

पीतसार (सं० क्ली०) पीतः सारो यस्य। १ पीतवर्ण चन्दनकाष्ठ, हरिचन्दन। (पु०) २ मलयज, मलयागिरि चन्दन। ३ गोमेदकमणि। ४ अङ्कोटवृक्ष, अङ्कोल,

ढेरा। ५ तुरुष्क। ६ बीजक। ७ सिह्लक, शिलारस।

पीतसारक (सं० पु०) पीतः सारो यस्य, कप्। १ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़। २ अङ्कोठवृक्ष, ढेरेका पेड़।

पीतसारि (सं० क्ली०) पीतं पीतवर्णं सरति प्राप्नोतीति-सृ-णिनि। स्रोतोऽञ्जन, काला सुरमा।

पीतसारिक (सं० पु०) पीतसारि देखो।

पीतसाल (सं० पु०) विजयसार।

पीतसालक (सं० पु०) पीतसाल देखो।

पीतस्कन्ध (सं० पु०) पीतः स्कन्धो यस्य। १ हरिद्राभ स्कन्धयुक्त वृक्षभेद। २ शूकर, सुअर।

पीतस्फटिक (सं० पु०) पीतः स्फटिकः। पुष्परागमणि, पुखराज।

पीतस्फोट (सं० पु०) पीतः स्फोट। १ पीतवर्ण स्फोटक, खुजली, खसरारोग। २ दद्रु, दाद।

पीतहरित (सं० पु०) पीतञ्च, हरितञ्च 'वर्णोवर्णेनेति' समासः। पीत और हरिद्वर्ण, पीला और हरा रंग।

पीता (सं० स्त्री०) पीतो वर्णोऽस्त्यस्या इति अच्, टाप्। १ हरिद्रा, हलदी। २ दारुहरिद्रा दारुहलदी। ३ महाज्योतिष्मतीलता, बड़ी मालकंगनी। ४ गोरोचना। ५ प्रियङ्गु। ६ वनबीजपूरक, जंगली बिजौरा-नीबू। ७ कपिलशिंशपा, भूरे रंगका शीशम। ८ अतिविषा, अतीस। ९ स्वर्णकदली, पीला केला। १० हरिताल, हरताल। ११ पीतजाति फूलका शाक, जद चमेली। १२ धूनक, राल। १३ देवदारु, देवदार। १४ शालपर्णी। १५ अश्वगन्धा, असगंध। १६ आकाशलता अकासबेल। (त्रि०) १७ पीतवर्णयुक्त, पीले रंगकी, पीले रंगवाली।

पीताङ्ग (सं० पु०) पीतं अङ्गं यस्य। १ श्योनाकवृक्ष, सोनापाठा। २ पीतलोध्रवृक्ष। ३ पीतमण्डूक, पीला मेढ़क। ४ नागरङ्गवृक्ष, नारंगीका पेड़। (स्त्री०) ५ हरिद्रा, हलदी।

पीताब्धि (सं० पु०) पीतः अब्धिः समुद्रो येन। अगस्त्यमुनि। अगस्त्यमुनि समुद्रको पी गये थे, इसीसे वे पीताब्धि कहलाते हैं। अगस्त्य शब्दमें देखो।

पीताभ (सं० पु० क्ली०) १ पीतचन्दन, पीला चन्दन। पीतस्य पीतवर्णस्य आभा इव आभा यस्य। (त्रि०) २ पीतवर्ण आभायुक्त, जिसमेंसे पीली आभा निकलती हो, पीतवर्ण, पीला।

पीताभ्र (सं० क्ली०) पीतं अभ्रं। पीतवर्ण अभ्रभेद, एक प्रकारका अभ्रक जो पीला होता है।

पीताम्बर (सं० पु०) पीतं अम्बरं वस्त्रं यस्य। १ विष्णु, कृष्ण। २ शैलूष, नट। (क्ली०) पीतं अम्बरं कर्मधा०। ३ पीतवसन, पीला कपड़ा। ४ मरदानी रेशमी धोती जिसे हिन्दू लोग पूजापाठ, संस्कार, भोजन आदिके समय पहनते हैं। इस वस्त्रका व्यवहार भारतमें बहुत प्राचीनकालसे होता है। पहले शायद पीली रेशमी धोतीको ही पीताम्बर कहते थे पर अब लाल, पीली, हरी आदि रंगोंकी रेशमी धोतियां भी पीताम्बर कहलाती हैं। (त्रि०) ५ पीतवस्त्रयुक्त, पीले कपड़ेवाला, पीताम्बर धोती।

पीताम्बर—कई एक संस्कृत ग्रन्थकारोंके नाम। १ सक्तिकर्णामृतधृत एक कवि। २ अनुपममञ्जरीके प्रणेता। ३ गीतगोविन्दकी टीकाके रचयिता। ४ दुर्गासन्देहभेदिका नामक देवी माहात्म्यके एक टीकाकार। ५ रत्नमञ्जरी-टीकाके रचयिता। ६ सत्कीर्त्तिचन्द्रोदयके प्रणेता। ७ गाथा सप्तशतीके एक टीकाकार। ८ यदुपतिके पुत्र और विट्ठलेशके शिष्य। इन्होंने वल्लभाचार्यके पुष्टिप्रवाह मर्यादाभेद नामक ग्रन्थकी एक टीका लिखी है। भागवततत्त्व दीपप्रकाशावरणभङ्ग नामक ग्रन्थ भी इन्हींका बनाया है।

पीताम्बरभट्ट—काश्यपके पुत्र। इन्होंने धर्मार्णव नामक एक संस्कृत ग्रन्थकी रचना की है।

पीताम्बरमित्र—सुप्रसिद्ध राजा राजेन्द्रलाल मित्रके प्रपितामह। बड़िसाके मित्रवंशमें इन्होंने जन्मग्रहण किया था। इनके पितामह अयोध्याराम और प्रपितामह रामराम दोनोंने ही मुर्शिदाबाद नवाबके यहां दीवान पद पर नियुक्त हो कर रायबहादुरकी उपाधि पाई थी। पीताम्बरने अपनी बुद्धिमत्ता और धीशक्तिके प्रभावसे थोड़ी ही उम्रमें पारस्यभाषामें पाण्डित्य लाभ किया था। आप पहले दिल्लीके दरबारमें अयोध्याके नवाब वजीरके यहां वकील नियुक्त हुए। दिल्लीश्वर शाह आलमने आपकी कार्यदक्षता पर मुग्ध हो कर आपको 'तैह-

जारी-मनसबदार' अर्थात् तीन हजार सेनाका अधिनायक बनाया और राजबहादुरकी उपाधि प्रदान की। पीछे आपकी मर्यादा-रक्षाके लिये ही दोआबके अन्तर्गत करा नामक जिला जागीरस्वरूप दिया। आपके दो सहोदर भाई बादशाहके अनुग्रहसे रायबहादुर हुए थे।

१६८४ ई०में काशीराज चेतसिंहने जब अंगरेजोंके विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी तब आपने अंगरेज सेनापति जनरल पामरके साथ ले रामनगर दुर्गमें घेर डाला। इस समय आपने अंगरेजराजकी गौरव-रक्षाके लिए कोई कसर उठा न रखी। युद्ध समाप्त होने पर आप १७८७ या १७८८ ई०में कलकत्ते लौटे। इसके तीन वर्ष बाद ही आपने वैष्णवधर्म ग्रहण किया।

आप जिस समय दिल्ली दरबारसे अलग हुए, उस समय अयोध्याके नवाब शुजा-उद्दौलाके यहां आपका ८००००) रु० पावना था। उसे वसूल कर आप कलकत्ते आये। आपके कराकी जागीरसे भी लगभग ढ़ाई लाख रुपयेकी आय थी, किन्तु महाराष्ट्र युद्धके समय वह जागीर हाथसे जाती रही।

राजा पीताम्बरने वैष्णवोंकी पोशाक धारण कर अपना मकान जो कलकत्तेके मछुआबाजारमें था छोड़ दिया और सूंड़ा बागानमें जा कर रहने लगे। इस समय आपको शास्त्रचर्चा और ईश्वरचिन्ताके सिवा और कोई काम न था। १८०६ ई०में आप वृन्दावनचन्द्र नामक एक पुत्र छोड़ परलोक सिधारे।

पीताम्बरशर्मा—छात्रव्युत्पत्ति और सारसंग्रहके रचयिता।

पीताम्बर सिंह—आवाके अधिपति। इन्होंने खेरा कुण्डलपुरका बौद्ध-मन्दिर तोड़ कर आवामें अपने मकानके समीप कई एक मन्दिर और घर बनवाये थे।

पीताम्लान (सं० पु०) पीतझिण्टी क्षुप, पीली कटसरैया।

पीतारुण (सं० पु०) पीतः अरुणः 'वर्णो वर्णेनेति' समासः। १ पीत और अरुणवर्ण, पीलापन लिए हुए लालरंग। (त्रि०) २ पीतरक्तमिश्रित वर्णयुक्त, पीलापन लिए हुए लाल रंगका।

पीतावलोकन (सं० पु०) पीतं अवलोकनं यस्य। पित्तजन्य दृष्टिरोग। इस रोगके होनेसे दृष्टि पीली हो जाती है।

पीताश्मन् (सं० पु०) पीतः अश्मा पुष्परागमणि, पुखराज।

पीताम्र (सं० पु०) सर्जरस, राल।

पीति (सं० पु०) पिबतीति पा-क्तिच् (घुमास्थागापेति। पा ६।४।६६) इति इत्वं। १ घोटक, घोड़ा। (स्त्री०) पा-भावे क्तिन्। २ पान, पीना। पीयतेऽनयेतिकरणे क्तिन। ३ शुण्डा, सूंड़। ४ गति।

पीतिका (सं० स्त्री०) पीतवर्णोऽस्त्यस्या इति ठन्। १ हरिद्रा, हल्दी। २ दारुहरिद्रा, दारुहलदी। ३ स्वर्णयूथी, सोनजूही।

पीतिन् (सं० पु०) पीतं पानं प्राचुर्येणास्त्यस्येति, इनि। १ पीति। २ घोटक, घोड़ा।

पीतिनी (सं० स्त्री०) पीतिन् स्त्रियां ङीप्। शालपर्णी क्षुप।

पीती (सं० पु०) पीतिन् देखो।

पीतु (सं० पु०) पीबति रसादीनिति पा-क्तुन् (पा किच उण् १७१) स च कित् कित्वात् ईत्वं। १ सूर्य। २ अग्नि। ३ यूथपति।

पीतुदारु (सं० पु०) पीतुरिव अग्नि-तुल्यं सूर्याभं वा दारु यस्य। १ उदुम्बर, गूलर। २ देवदारु, देवदार।

पीत्वास्थिरक (सं० त्रि०) पीत्वा स्थिरः, मयूरव्यंसकादित्वात् समासः कन्। पानोत्तर स्थिरीभूत।

पीथ (सं० क्ली०) पीयते इति पा-थक् (पातृतुदीति। उण् २।७)। १ जल, पानी। २ घृत, घी। पिबती रसादीनिति पा-कर्त्तरि थक्। ३ सूर्य। ४ अग्नि। ५ काल।

पीथि (सं० पु०) पीति पृषोदरादित्वात् तस्य थ। पीति, घोड़ा।

पीथिन् (सं० त्रि०) पीतिन् पृषोदरा० साधुः।
पीतिन् देखो।

पीदड़ी (हिं० स्त्री०) पिद्दी देखो।

पीन (सं० त्रि०) प्याय वृद्धौ क्त (ओदितश्च। पा ८।२।४५) इति निष्ठातकारस्य नः, ततो दीर्घः। १ स्थूल, मोटा, कठिन। २ प्रवृद्ध, पुष्ट। ३ सम्पन्न, भरा पूरा। (क्ली०) भावे क्त। ४ स्थूलता, मोटाई।

पीनक (हिं० स्त्री०) १ अफीमके नशेमें ऊंघना, नशेकी हालतमें अफीमचीका आगेको ओर झुक झुक पड़ना।

२ ऊंघना, नींदके आनेसे आगेकी ओर झुक झुक पड़ना।

पीनता (सं० स्त्री०) पीनस्य भावः, भावे तल्-टाप्। स्थूलता, मोटाई।

पीनद्रु (सं० पु०) सरलवृक्ष।

पीनना (हिं० क्रि०) पीजना देखो।

पीनर (सं० त्रि०) पीनस्य अदूरदेशादि अश्मादित्वात् र (पा ४।२।८०)। पीन-सन्निकृष्ट देशादि।

पीनस (सं० पु०) पीनं स्थूलमपि जनं स्यति नाशयतीति सो-क। नासिकारोगविशेष, नाकका एक रोग। पर्याय—प्रतिश्याय, अपीनस, प्रतिश्या और नासिकामय।

इसका लक्षण—इसमें नाकके नथने शुष्क, कफसे भरे हुए और क्लिन्न अर्थात् गीले रहते हैं तथा उनमें जलन भी रहती है और नाककी घ्राण या बास पहचाननेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। इस पीनसरोगमें वात और कफके प्रकोपवाले जुकामके लक्षण प्रायः मिलते हैं।

आमपीनसका लक्षण—मस्तककी गुरुता, अरुचि, नासिकासे स्राव, स्वरभङ्ग और बारम्बार निष्ठीवन होनेसे उसे अपक्व पीनस कहते है।

पक्वपीनसका लक्षण—पूर्वोक्त आमपीनसके लक्षणके जैसा कफ गाढ़ा हो कर नासारन्ध्रमें संलग्न और स्वर प्रसन्न तथा श्लेष्माका वर्ण विशुद्ध होनेसे पक्वपीनस समझना चाहिए। (भावप्र०)

गरुड़पुराणमें लिखा है—

"पिप्पली त्रिफला चूर्णं मधुसैन्धवसंयुतम्।
सर्वरोगज्वरश्वास-शोषपीनसहृद्-भवेत्॥"

पिप्पली और त्रिफलाचूर्णका मधु तथा सैन्धवके साथ प्रयोग करनेसे पीनसरोग जाता रहता है।

चरक चिकित्सितस्थान २६वें अध्यायमें और उत्तरतन्त्रके २४वें अध्यायमें इस पीनसरोगकी चिकित्सादिका विशेष विवरण लिखा है। नासारोग देखो।

पीनस (हिं० स्त्री०) पालकी।

पीनसा (सं० स्त्री०) पीनस-टाप्। ककटी, ककड़ी।

पीनसिन् (सं० त्रि०) पीनस अस्त्यर्थे इन्। पीनसरोगी, पीनससे पीड़ित, जिसे पीनसरोग हुआ हो।

पीना (हिं० क्रि०) १ पेय पदार्थको मुख द्वारा ग्रहण करना, जल या जल सदृश वस्तुको मुंहके द्वारा पेटके भीतर पहुंचाना, किसी तरल वस्तुको घूंट घूंट करके गलेके नीचे उतारना, पान करना, घूंटना। २ किसी मनोविकारका कुछ भी अनुभव न करना, मनोभावहीन रहने देना, कुछ भी शेष या बाकी न रखना। ३ किसी मनोविकारको भीतर ही भीतर दबा देना, मनोभावको बिना प्रकट किये ही नष्ट कर देना, मारना। ४ किसी सम्बन्धमें सर्वथा मौन धारण कर लेना, किसी कार्यके सम्बन्धमें वचन या कार्यसे कुछ न करना, किसी घटनाके सम्बन्धमें अपनी स्थिति ऐसी कर लेना जिससे उससे पूर्ण असम्बन्ध प्रकट हो, पूर्ण उपेक्षा करना, किसी किसी बातको दबा देना। ५ अपमान, गाली आदि पर क्रोध या उत्तेजना न प्रकट करना, सह जाना, बरदाश्त करना। ६ सुरापान करना, मद्य पीना, शराब पीना। ७ शोषण करना, सोखना, चूसना। ८ धूम्रपान करना, हुक्के, चुरुट आदिका धुआं भीतर खींचना। (पु०) ९ तिल, तीसी आदिकी खली। १० डाट, डट्टा।

पीनी (हिं० स्त्री०) पोस्त, तीसी या तिल आदिकी खली।

पीनोध्नी (सं० स्त्री०) पीनं स्थूलमूधो यस्याः (बहुव्रीहेरूधसो ङीष्। पा ४।१।२५) इति ङीष्, (उधसोऽनङ्। पा ५।४।१३१) इति ऊधोऽस्यस्य बहुव्रीहेरनङादेशः। पीवरस्तनी गाभि, वह गाय जिसका थन बहुत बड़ा हो।

पीप (हिं० स्त्री०) फूटे फोड़े या घावके भीतरसे निकलनेवाला सफेद लसदार पदार्थ। यह दूषित रक्तकी रूपान्तर है। इसमें रक्तके श्वेतकण ही अधिकतासे होते हैं। इनके अलावा इसमें शरीरके सड़े हुए और नष्ट घटकों और तन्तुओंका भी कुछ लाल अंश रहता है। शरीरके किसी भागमें इस पदार्थके जमा हो जानेसे ही व्रण या फोड़ा होता है और जब तक यह निकल नहीं जाता, तब तक बहुत कष्ट होता है।

पीपर (हिं० पु०) पीपल देखो।

पीपरपर्न (हिं० पु०) कानमें पहननेका एक आभूषण।

पीपरामूल (हिं० पु०) पीपलामूल।

पीपरि (सं० पु०) अपि पिपर्तीति पृ-इन्, अपरेर्लोपः दीर्घश्च। ह्रस्व प्लक्ष, छोटा पाकड़।

पीपरि (हिं॰ पु॰) पीपल देखो।

पीपल (हिं॰ पु॰) १ बरगदकी जातिका एक प्रसिद्ध वृक्ष जो भारतमें प्रायः सभी स्थानोंमें बहुतायतसे पाया जाता है। विशेष विवरण पिप्पल शब्दमें देखो। (स्त्री॰) २ एक लता जिसकी कलियां प्रसिद्ध ओषधि हैं।

पिप्पली देखो।

पीपलामूल (हिं॰ पु॰) एक प्रसिद्ध ओषधि जो पीपल-ओषधिकी जड़ है। आयुर्वेदके अनुसार पीपलामूल गरम, तीखा, चरपरा, रूखा, दस्तावर, पाचक, पित्तको कुपित करनेवाला, रेचक तथा प्लीहा, उदररोग, गुल्म, श्वास, कृमि, वात, कफ, आनाह, क्षयरोग, आम, खांसी और शूलको दूर करनेवाला माना जाता है। इसे पीपरामूल भी कहते हैं।

पीपा (हिं॰ पु॰) बड़े ढोलके आकारका या चौकोर काठ या लोहेका बरतन। इसमें शराब तेल आदि तरल पदार्थ रखे और चालान किये जाते हैं। बरसातके सिवा अन्य दिनोंमें बड़े बड़े पीपोंको पंक्तिमें बिछा कर नदियों पर पुल भी बनाये जाते हैं।

पीपाजी—गाङ्गरोलके एक हिन्दू राजा पहले ये महाशाक्त थे। एक दिन एक वैष्णवी साधु उनके यहां अतिथि हुए। राजाने उनकी अवहेला करके सामान्य खाद्यद्रव्य खाने को दिया। साधुने उसे खा तो लिया, पर तृप्त न हुए। राजाको कृष्णभक्तिहीन जान कर और वैष्णव सेवामें उनका अनुराग नहीं है, ऐसा देख कर वे मन ही मन बड़े क्षुब्ध हुए। साधु, राजाको देवीका कृपापात्र समझ कर, देवीकी स्तुति करने लगे, 'देवि! यदि राजाकी मति पलट जाय और कृष्ण तथा काली यह भेदज्ञान जाता रहे, तो मानवजन्म, धन, राज्य सभी सफल होगा अन्यथा सभी वृथा। फिर क्या था, प्रार्थना सुनते ही भगवती डाकिनी, योगिनी और शङ्खिनीको साथ ले राजाके वक्षस्थल पर चढ़ बैठीं और क्रोधसे बोलने लगीं, 'रे मूढ़! तूने आत्माभिमानसे कृष्णभक्त साधुकी अवहेला की है। इस कारण कल सवेरे बिछावनसे उठ कर पापके प्रायश्चित्तस्वरूप वैष्णवचरणमें प्रणिपात करना और अपना अपराध स्वीकार कर क्षमा मांगना, नहीं तो तुझ पर आपदका पहाड़ टूट गिरेगा।' स्वप्नादिष्ट राजा ज्यों ही सवेरे बिछावन परसे उठे, त्यों ही उन्होंने वैष्णवके चरणोंमें प्रणाम कर क्षमा प्रार्थना की। देवीके अनुग्रहसे कृष्णभक्ति लाभ करके राजाके दिव्य चक्षु खुल गये। उन्होंने राज्यसम्पदको अनर्थका मूल समझ कर संसाराश्रम त्याग करनेका सङ्कल्प किया। किन्तु अपनी आराध्य महामायाको सूचित किये बिना गृहत्याग करना उन्होंने युक्तियुक्त न समझा और जिनकी कृपासे वे इस साधनका उपभोग कर सकें, ऐसे गुरु कहां मिलेंगे, उसके लिये महामायाकी प्रार्थना की। देवीने राजाको काशीधाममें रामानन्दका शिष्यत्व ग्रहण करनेका उपदेश दिया। तदनुसार राजा वहां गये और रामानन्दसे दीक्षित हुए। गुरुकी कृपासे उन्होंने परमपद प्राप्त किया। अनन्तर राजा गुरुके आदेशानुसार घर लौट कर हरिकी सेवामें लग गये। अन्तःपुरचारिणी रमणियोंके पारत्रिक मङ्गलविधानके लिये उन्होंने रामानन्दको काशीधामसे बुलाया। गुरुने आ कर रमणियोंको दीक्षा दी। सातों रानी वैराग्यका अवलम्बन करके राजाके साथ चलनेके लिए इच्छुक हुईं। राजाने सबोंको नग्नवेशमें उनके साथ चलनेको कहा। सबसे पहले सीता नामकी छोटी रानी अलङ्कार और जरीके कपड़ेको फेंक कर कृष्णविरहमें उन्मत्त हो राजाकी अनुगामिनी हुई। पहले वे दोनों द्वारका आये। यहां कृष्णको न देख राजा क्षिप्तप्राय हो गये और लोगोंसे पूछने लगे, कृष्ण कहां? उन्होंने उत्तर दिया, कृष्णलीलाकी सातवीं रातके बाद द्वारावती कृष्णके साथ सागरगर्भमें लीन हो गई है। यह सुनते ही राजा और रानी जलमें कूद पड़ीं। नारायणने युगलरूपमें उन्हें दर्शन दिये। बाद कृष्णकी आज्ञासे वे पुनः द्वारकाके किनारे उतरे। राजा द्वारकापुरीको प्रकाश करनेके लिए रणछोड़जी और चीकमजी नामक दो विग्रह मूर्त्तिकी स्थापना कर तीर्थपर्यटनको निकले।

जङ्गलमें भ्रमण करते समय एक व्याघ्र उन्हें पकड़ने आया। राजाने उसके कानोंमें कृष्णमन्त्र फूंक दिया और वह भाग चला। वृन्दावनके पथयात्रोंमें रानी समेत राजा श्रीधर नामक एक दरिद्र वैष्णवब्राह्मणके घर अतिथि हुए। उस समय ब्राह्मणके घरमें खानेको

कोई चीज न थी। ब्राह्मणोंने परिधेय वस्त्रको बेच कर अतिथिका सत्कार किया और आप नंगे हो रहीं। आहारके समय चारों आदमी एक साथ भोजन करेंगे, इसके लिये पीपाजीने ब्राह्मणसे अनुरोध किया। किन्तु ब्राह्मणी नंगी थी, लज्जासे बाहर निकल न सकीं। सोताने उन्हें खींच कर बाहर किया और अपना आधा कपड़ा दे कर उनकी लाज बचाई। लौटते समय उन्होंने साधु वैष्णवके दारिद्र्य मोचनके लिये श्रीकृष्णकी स्तुति की।

पीपाबाई—एक विदुषी। ये बहुत सी अच्छी २ कविताएं बना गई हैं। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं,—

करत प्रपञ्च इन पंचनके बस पर्‌यो परदारारत भय
आनत बुराई कौ।
परधन हरे परजीवनकी करत घात मद्य मांस खात लवलेस
न भलाई कौ॥
होइगो हिसाब तब मुखते न आवे ज्वाब सुन्दर कहत लेखा
लेत राई राई कौ।
इहां तौ करे विलास यमकी न माने त्रास यों मति आने
उहां राज पीपाबाई कौ॥

पीव (हिं॰ पु॰) पीप देखो।

पीय (हिं॰ पु॰) पिय देखो।

पीयत्नु (सं॰ त्रि॰) पी हिंसायां बाहुलकात् क्तनु। हिंसाशील शत्रु, जानी दुश्मन।

पीयर (हिं॰ वि॰) पीला देखो।

पीया (हिं॰ पु॰) पिय देखो।

पीयु (सं॰ पु॰) पिबतीति पा-कु, निपातनात् युगागमः, ईत्वं चान्तादेशः (खरु शङ्कु पीयु नीलंगु लिगु। उण् १।३७) १ काल, समय। २ सूर्य। ३ निष्ठीवन, थूक। ४ काक, कौआ। ५ पेचक, उल्लू। (त्रि॰) ६ हिंसक, हिंसा करनेवाला। ७ प्रतिकूल, विरुद्ध।

पीयक्षा (सं॰ स्त्री॰) वृक्षभेद, एक प्रकारका पाकड़। पायूक्षा शब्दके बाद वन शब्दका 'न' णत्व होता है। यथा, 'पीयूक्षावणम्'।

पीयचिल (सं॰ त्रि॰) पीयुक्षा तस्याः अदूरदेशादि काशादित्वादिल (पा ४।२।८०) पीयुक्षाके समीप देशादि।

पीयख (हिं॰ पु॰) पीयूष देखो।

पीयूष (सं॰ क्ली॰) पीयते इति पीय सौत्रधातु ऊषन्। (पीयेरूषन्। उण् ४।७६) १ अमृत, सुधा। २ दुग्ध, दूध। ३ नवप्रसूता गाभिका सप्तदिनाभ्यन्तरीण दुग्ध, नई ब्याई हुई गायका प्रथमसे सातवें दिन तकका दूध, उस गायका दूध जिसे ब्याए सात दिनसे अधिक न हुआ हो। वैद्यकमें लिखा है, कि ऐसा दूध दाहकारक, रूखा, रक्तको कुपित करनेवाला और पित्तकारक होता है। ऐसा दूध अकसर लोग नहीं पीते क्योंकि वह स्वास्थ्यके लिए हानिकारक माना जाता है।

पीयूषमहस् (सं॰ पु॰) पीयूषममृतमयं महः किरणं यस्य, वा पीयूषमिव महो यस्य। चन्द्र, चांद। इनकी किरण अमृततुल्य है।

पीयूषरुचि (सं॰ पु॰) पीयूषं पीयूषमयी रुचिर्यस्य। १ चन्द्र, चांद। पीयूषे अमृते रुचिर्यस्य। २ अमृतप्रिय, अमृतका चाहनेवाला।

पीयूषवर्ष (सं॰ पु॰) पीयूषं वर्षति वृष-अण्। १ चन्द्रमा, चांद। २ कपूर, कपूर। ३ चन्द्रलोक नामक अलङ्कारग्रन्थके प्रणेता। ४ एक छन्दका नाम जिसके प्रत्येक चरणमें १०—९ विश्रामसे १९ मात्राएं और अन्तमें गुरु लघु होता है। इसे आनन्दवर्द्धक भी कहते हैं।

पीयूषवल्लीरस (सं॰ पु॰) रसौषधविशेष, एक प्रकारकी दवा। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, अबरख, रौप्य, लौह, सोहागा, रसाञ्जन और माक्षिक प्रत्येक आध तोला; लवङ्ग, चन्दन, मोथा, आकनादि जीरा, धनिया वराहक्रान्ता, अतीस, लोध, कूटज, इन्द्रजौ, दारुचीनी, जायफल, सोंठ, बेलसोंठ, सुगन्धवाला, अनारकी छाल, धवईफूल और कुट प्रत्येक एक तोला, इन सब द्रव्योंको सतावरीके रसमें भावना दे। बाद बकरीके दूधमें पीस कर चनेके बराबर गोली बनावे। इसका अनुपान आगेमें पकाया बेल और गुड़ है। इस औषधका सेवन करनेसे सभी प्रकारका अतीसार और ग्रहणी रोग जाता रहता है। यह आमपाचक और अग्निदीपक है।

(रसेन्द्रसारसं॰ ग्रहणीचिकित्सा)

पीयूषसिन्धुरस (सं॰ पु॰) रसौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—बालुकायन्त्रमें षड्गुण गन्धकके साथ भस्म किया हुआ पारद, स्वर्ण, लौह भस्म, अभ्रभस्म और गन्धक इन

सब द्रव्योंका बराबर भाग ले कर शूरण (ओल), दन्तीमूल, मुण्डोरी, काकमाची, भृङ्गराज, आकन्द और चित्रक इन सब द्रव्योंके रसमें सात बार पीस कर गोली बनावे। इस औषधके सेवनसे शूलरोग प्रशमित होता है। (रसचिन्तामणि)

पीयूषोत्था (सं० स्त्री०) शालम् मिस्री (Eulophia campestris)। यह बलकर माना गया है।

पीर—मुसलमानोंके धर्मगुरु। जो आजीवन ईश्वर चिन्तामें अपना समय बिताते हैं, ऐसे संसारत्यागी मुसलमान संन्यासीको पीर कहते हैं। पारस्यके खुद गण वृद्ध और वृद्धा नरनारीमात्रको ही पीर कहा करते हैं। साधु पीर-गण अभ्यागत आतुरोंको औषधादि दे कर और साधारण व्यक्तियोंको ईश्वरतत्त्वका उपदेश तथा भविष्यवाणी बतला कर पूज्य हो गये हैं। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान सभी पीरोंकी पूजा करते हैं। यहां तक कि, कोई कोई हिन्दू पीरका प्रसाद तक भी खा लेते हैं। कहीं कहीं वन्ध्या रमणियां सन्तानके लिये पीरकी पूजा करतीं अथवा सिरनी चढ़ाती हैं। जहां जहां मुसलमान साधु-गण रहते थे, वह स्थान तथा उनके समाधिस्तम्भ जन-साधारणके आदरणीय हैं। इन सब समाधिक्षेत्रोंमें कहीं कहीं वार्षिक मेला भी लगता है जिसमें लाखसे ऊपर आदमी इकट्ठे होते हैं। पीर-मुर्शिद शब्दका अर्थ मोक्ष पथप्रदर्शक तथा पीर-ओ-मुर्शिद शब्दका अर्थ माननीय धर्मोपदेशक है। कहीं कहीं धनी और मानी व्यक्तियोंको इसी उपाधिसे सम्बोधन करते हैं। नीचे कुछ मुसलमान पीरोंके नाम और उनकी दरगाह लिखी जाती है।

१। पीर फद्दू—मैनपुरी जिलेके राप्रीग्राममें।

२। पीर धाङ्कब—मुजफ्फरनगर जिलेके भैंसवाल ग्राममें। यहां एक मेला लगता है।

३। पीर कषानी—अजीमगढ़ जिलेकी महम्मदाबाद और गोहन तहसीलमें।

४। पीर मरदनासाहिद—सहरानपुर जिलेके सिरसिवा पत्तनमें। ये किलकिला साहब नामसे परिचित हैं। यहां ये गोगा चौहान और मुसलमान-समाजमें गोगा पीर वा पीर जाहिर नामसे पूजित होते हैं।

५। पीर मुबारकशाह—हमीरपुर जिलेकी महोवा तहसीलमें।

६। पीर महम्मद—मुजफ्फरनगर जिलेके भावन थानेमें सम्राट् आलमगीरने ११२४ हिजरीमें इनके स्मरणार्थ एक मसजिद बनवाई थी।

७। पीर सर्वाणी—जलाउन जिलेके औरोई नगरमें।

८। पीर ताजबाज—ललितपुर जिलेके तालबहात नगरमें।

९। पीर एकदिलसाहब—२४ परगनेके काजी-पाड़ा ग्राममें।

१०। पीर बदरउद्दीन—बारासात, पृथिवी।

११। पीर अली—खुलना जिलेमें।

१२। पीर मंघो—कराचीसे ५ कोस पश्चिममें। यहां प्रतिवर्ष बहुसंख्यक मुसलमान जमा होते हैं। यहांका गरम सोता और मकर-तालाब भी देखने लायक हैं।

१३। पीर-पीरण, पीरण-इ-पीर वा पीर-इ-दस्तगीर—एक विख्यात मुसलमान फकीर। ये सर्वत्र पूजित हैं। ये घिलानवासी और सुफिमतके प्रचारकर्त्ता थे। बागदादमें जब ये पढ़ने गये तब वहीं उनकी मृत्यु और समाधि हुई थी। प्रसिद्ध कवि सादीके आप गुरु थे। प्रतिवर्ष ११वीं रवि उस्सानीमें इनके स्मरणार्थ एक मेला लगता है।

१४। पीर गाजीसाहब—२४ परगनेके बारुईपुरमें।

दाक्षिणात्यमें बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत बीजापुर, धारवाड़, पूना, सिन्धु, अहमदाबाद आदि जिलोंमें अनेक साधु व्यक्तियोंके समाधिमन्दिर वा मसजिद हैं। जिनमेंसे निम्नलिखित दरगाह विशेष मशहूर हैं।

पीर आमीन—बीजापुर, १५५७ ई०में अली आदिल शाहसे निर्मित।

पीर असरफशाह, पीर फजलशाह, पीर हबीबशाह, पीर ईमानशाह, पीर कायमदिन, पीर कायमशाह पीर कुमालशाह, पीर लालशोभा, पीर महम्मदशाह, पीर महम्मदजमान, पीर नूरुहोतामी, पीर पादशाह।

किसी व्यक्तिको उच्चधार्मिक समझ कर जब हम लोग उनकी हंसी उड़ाते हैं, तब कहते हैं महाशय "पीर न पैगम्बर"। मुसलमान धर्मशास्त्रमें दोनों ही स्वतन्त्र बतलाये गये हैं। पैगम्बर देखो।

भारतवर्षके नाना स्थानोंमें अनेकों पीर वा फकीर-

की दरगाह देखनेमें आती हैं। एक एक पीरका माहात्म्य सीमाबद्ध है और जहां तक उनकी महिमा जाहिर है, वहां तक उनका आदर है। बङ्गाल वा चट्टग्रामके पीर अपने ही स्थानमें विशेष आदरसे पूजित होते हैं। कभी भी युक्तप्रदेश वा विहारवासी आ कर उसमें योग नहीं देते। किन्तु पांच पीरोंकी कथा भारतवर्षमें किसीसे भी छिपी नहीं है। कौन कौन पांच पीर ले कर ये पांच पीर हुए हैं, इस विषयमें मतभेद है। पांचपीर देखो।

कोई कोई बराइच नगरके गाजी मीयां, उनके भांजे पीर हथिलो, लखनऊवासी पीर जहल, जौनपुरके पीर महम्मद तथा एक और ले कर पञ्चपीरकी कल्पना करते हैं।

पीर (हिं० स्त्री०) १ दूसरेकी पीड़ा या कष्ट देख कर उत्पन्न पीड़ा, दूसरेके दुःखसे दुःखानुभव सहानुभूति, करुणा, दया, हमदर्दी। २ पीड़ा, दुःख, दर्द, तकलीफ। ३ प्रसव-पीड़ा, बच्चा जननेके समयकी पीड़ा।

यद्यपि ब्रजभाषा, खड़ी बोली और उर्दू तीनों भाषाओंके कवियोंने बहुतायतसे इस शब्दका प्रयोग किया है और स्त्रियोंकी बोलचालमें अब भी इसका बहुत व्यवहार होता है, तथापि गद्यमें इसका व्यवहार प्रायः नहीं होता।

(पु०) ४ मुसलमानोंके धर्मगुरु। ५ परलोकका मार्गदर्शक, धर्मगुरु।

पीर (फा० पु०) १ चन्द्रवार, सोमवारका दिन। (वि०) २ महात्मा, सिद्ध। ३ धूर्त्त, चालाक, उस्ताद। ४ वृद्ध, बूढ़ा, बड़ा बुजुर्ग।

पीरअली—एक मुसलमान साधु। इनका प्रकृत नाम था महम्मद ताहिर। ये वङ्गाधिप खाँ जहान्‌के दीवान थे। सम्भवतः १४५८ ई०में खाँ जहान्‌के पूर्व और परवर्त्तीकालमें ये विद्यमान थे। वागेरहाट नगरमें खाँ जहान्-गढ़के पश्चिम इनका समाधिमन्दिर है।

पीरअलीइजविरोगेव—एक मुसलमान ग्रन्थकार, कसफ-उल-माजुब नामक ग्रन्थके रचयिता। १०६४ ई०में लाहोरनगरमें इनकी कब्र हुई।

पीरएकदलासाहब—एक मुसलमान साधु। बारासत उपविभागके आनरपुर परगनेके अन्तर्गत काजीपाड़ा ग्राममें इनकी दरगाह है। प्रतिवर्ष पौषमासमें इनके उद्देशसे एक बड़ा मेला लगता है जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही समागम होते हैं। इनके जन्म-सम्बन्धमें इस प्रकार प्रवाद है;—शाहनील नामक एक राजा थे। उनके कोई सन्तान न रहनेके कारण रानी अधिकनूरी बहुत चिन्तित रहती थीं। अतः पुत्रकी कामनासे वे मक्का आदि तीर्थक्षेत्र गई और वहां २६ वर्ष तक ईश्वरकी स्तुति करती रहीं। बादमें एक दूतने आ कर रानीसे कहा, 'तुम केवल ढाई दिनके लिये एक पुत्र पा सकती हो।' देवदूतके अन्तर्हित होने पर रानी घर लौटीं। यथासमय रानीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसे ढाई दिनके बाद देवदूत शृगालरूप धारण कर उठा ले गया और एक मुल्लाके घर रख दिया। मुल्लाने बड़े यत्नसे आठ वर्ष तक उस शिशुका पालन पोषण किया। एक दिन वे बाघ पर सवार हो आनरपुरको गये। वहां गङ्गा पार कर उन्होंने ओझापुरमें चाँद खाँके घर भोजन करना चाहा। चाँदके भाई नूर खाँने ऐसे मोटे तगड़े आदमीको भोजन न दिया और कहा, 'जाओ हम लोगोंकी मसजिदमें काम करो, तब खाना मिलेगा।' बालकने अपनी अलौकिक क्षमता दिखानेके लिये एक बीस मन पत्थरको उठा कर मसजिदके शिखर पर रख दिया। पीछे वह दिलमहम्मद नाम धारण कर काजीपाड़ामें छोटी मीयांके घर गये और मवेशी चरानेमें नियुक्त हुए। क्रमशः उनके उपद्रवसे उत्यक्त हो छोटी मीयांने उन्हें दण्ड देना चाहा, पर बालकके चातुरी जालसे एकान्त अभिभूत हो अन्तमें हार मान ली। एकदलाकी मृत्युके बाद कब्रके ऊपर मसजिद बनाई गई। मसजिदका खर्च चलानेके लिये छोटी मीयांके वंशधरोंने प्रायः १००० बीघा निष्कर जमीन दी है।

पीरजादा (फा० पु०) किसी पीर या धर्मगुरुकी सन्तान।

पीरडार—नामरूपके अन्तर्गत एक स्थान।

पीरनगर—अयोध्याप्रदेशके सीतापुर जिलान्तर्गत एक परगना। भूपरिमाण ४४ वर्गमील है। इसमें कुल

५४ ग्राम लगते हैं, जिनमेंसे ४८में चत्रिय, ३में ब्राह्मण, २-में कायस्थ और १ गांवमें मुसलमान बसते है।

पीरनाबालिग (फा० वि०) बुद्धिभ्रष्ट बूढ़ा, ऐसा वृद्ध जो बच्चोंकेसे काम और बातें करे, सठियाया हुआ बुड्ढा।

पीरपञ्जाल—(साधुपर्वत) काश्मीर राज्यके अन्तर्गत एक पर्वतमाला। उक्त राज्यके दक्षिण-पश्चिममें पञ्जाबके सीमान्त पर यह अवस्थित है। बारमूला गिरिसङ्कटसे नन्दनसार वा पीरपञ्जाल तक यह २० कोस विस्तृत है। इसका सर्वोच्चशिखर समुद्रपृष्ठसे १६४०० फुट ऊंचा है। पीरपञ्जाल गिरिपथ पर किसी मुसलमान साधु वा पीरकी कब्र है। धर्मप्राण मुसलमान पथिकगण अपने अपने अभीष्ट द्रव्य उत्सर्ग करनेके लिए इस पवित्र क्षेत्रमें आते हैं। यहांसे काश्मीर-गुजरात तक एक सीधा रास्ता चला गया है। पीरहियनके ऊपरका रास्ता सुन्दर दृश्यपूर्ण अधित्यकामय है जिसे हिन्दू लोग "सोनागली" कहते हैं। परिव्राजकोंको पैदल जानेके लिए यही पथ विशेष सुविधाजनक है। वर्ष भरमें प्रायः ३ मास तक यह रास्ता बन्द रहता है। चैत्र वा बैशाखमासमें इस राहसे लोगोंको आने जानेमें कोई कष्ट नहीं पहुंचता। काश्मीरके शालिमर उद्यान और लाहोरके शाहदेरा मिनारसे यह रास्ता दिखाई देता है।

पीरपैंती—बिहार और उड़ीसाके भागलपुर जिलान्तर्गत एक समृद्धिशाली ग्राम। यह अक्षां० २५° १८' उ० और देशा० ८७° २५' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां इष्ट-इण्डिया रेलवेका एक स्टेशन है। स्टेशनसे १ कोसकी दूरी पर ग्राम और प्रायः आध कोस विस्तृत एक बाजार है। इस बाजारमें स्थानीय द्रव्योंकी खासी आमदनी और रफ्तनी देखी जाती हैं। यहां पत्थरको काट कर बिक्रीके लिये तैयार किया जाता है। पीर (बाबा) पैंतीके नामसे इस स्थानका नाम पड़ा है। उक्त पीरकी मसजिद बड़ी ही सुन्दर है और आज तक भी विद्यमान है। जनसंख्या करीब तीन हजार है।

पीरबदर—एक मुसलमान फकीर। बङ्गालके अन्तर्गत चट्टग्राममें इनका समाधिमन्दिर विद्यमान हैं। जिस प्रस्तरखण्डके ऊपर बदर साहब बैठते थे, वहां आज भी नाना स्थानोंसे मनुष्योंका समागम होता है।

पीरबाबा—बूनेर नगरस्थित एक मुसलमान तीर्थ। यहां उक्त साधुकी समाधिमन्दिरमें ४।५ सौ फकीर रहते हैं।

पीरब्बुस—मन्द्राजप्रदेशके गञ्जाम जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। वेमन सिंहराज-प्रतिष्ठित यहांका वैद्यनाथेश्वर शिवमन्दिर लगभग ६५० वर्षका प्राचीन है।

पीरमहम्मद—जहाङ्गीरमिर्जाके पुत्र और अमीर तैमूरके प्रपौत्र। इन्होंने पितामहके भारतागमनके पहले ७८८ हिजरीमें भारतवर्ष आ कर मुलतानप्रदेश पर अधिकार किया था। तैमूर उपर्युक्त पौत्रको राजमुकुट प्रदान कर परलोक सिधारे। उस समय महम्मद कन्धारमें थे। उनका भाई खलील सुलतान सैन्यदलभुक्त था। अतः उसने सैन्यदल और अपरापर सरदारोंको अपने दलमें मिला कर राजधानी समरकन्द नगर पर चढ़ाई कर दी। दोनों भाइयोंमें घोरतर युद्ध छिड़ा। युद्धमें सुलतानकी जीत हुई। महम्मद अपने मन्त्रीके षड़यन्त्र-कुचक्रमें फंस कर तैमूरकी मृत्युके छः मास बाद ८०८ हिजरीमें इस लोकसे चल बसे।

पीरमहम्मदअघर खाँ—एक मुसलमान-सेनापति। ये औरङ्गजेबके अधीन राजपुत्र शुजाके विरुद्ध आसाम और काबुल-प्रदेशमें युद्धकार्यमें नियुक्त थे। नूहर-वंशधर जाफेट (याफिस)-से ये अपनी उत्पत्ति बतलाते हैं। दिल्लीके निकटवर्त्ती अघराबाद ग्राम इन्होंसे बसाया गया है।

पीरमहम्मद खाँ—शाल्लोक नामक जनपदका एक मुसलमान राजा। ये ९५२ हिजरीमें विद्यमान थे। जब दिल्लीश्वर हुमायुनने कामरान् पर आक्रमण किया था, तब इन्होंने दल बलके साथ बदाकसान जा कर उन्हें सहायता पहुंचाई थी। मुगलसेनाके भाग जाने पर घोरी और बकालन मोर्जा कामरान्के अधिकारभुक्त हुए। सम्राट् हुमायुन पीरमहम्मदके आचरण पर क्रुद्ध हो शाल्लोक पर चढ़ाई करनेको उद्यत हुए। दोनोंमें घमसान युद्ध हुआ। अन्तमें पीरमहम्मद परास्त हो कर राजधानीको चम्पत हुए।

पीरमहम्मदशाह—एक पीरजादा। १०९८ ई०में इनकी मृत्यु हुई थी।

पीरमहम्मदशिर्वाणी—खानखाना बहराम खाँके वकील-इ मुतालक अर्थात् व्यवस्थासचिव। खानखाना उक्त

दरिद्र बालकको कन्धारसे लाये थे। पहले जब वे शिकारमें थक गये थे, तब इसी व्यक्तिने उन्हें दलबल समेत अच्छी तरह भोजन कराया था। इस उपकारका स्मरण करके उन्होंने शिर्वाणीको खाँ और सुलतानको उपाधि दी थी। अमीर उमराव, सेनापति आदि राजकीय कर्मचारियोंको इन्हींके पास आवेदनपत्र भेजने होते थे। इस उच्च सम्मानसे भूषित हो इनका मस्तिष्क गरम हो गया। अब वे घरसे बाहर तक भी नहीं निकलते थे। जब कोई व्यक्ति आवेदनपत्र ले कर उनके समीप जाता था, तब वे उस पर ध्यान हो नहीं देते थे। एक दिन खानखाना स्वयं उनको ड्योढ़ी पर गये और पीरसे मुलाकात करना चाहा। परन्तु द्वारपालने भीतर जानेसे मना किया और उसी जगह तब तक ठहरने कहा, जब तक वह पीरको इसकी खबर दे कर लौट न आवे। इस पर बहराम बड़े बिगड़े और उन्होंने पीरके राजकीय कर्म और उपाधि छीन ली तथा उसके साथ साथ पताका, आसासोटा और जयढक्का आदि मानसूचक असबाब वापिस देनेको कहला भेजा। पीरमहम्मद उनके पैरों पर गिर पड़े और अनुनय विनय करने लगे, पर उन्होंने एक भी न सुनी। कुछ समय तक इसी अवस्थामें रख कर खानखानाने उन्हें बयानादुर्गमें बुलवाया और वहांसे मक्काको भेज दिया। किन्तु जब वे गुजरात पहुंचे, तब उन्हें मालूम पड़ा, कि बहराम खाँकी पदच्युति हो गई। अब फिर क्या था, वे उसी समय राजप्रासादको लौटे और दिल्ली आ कर उन्होंने नासिर-उल-मुल्ककी उपाधि तथा पताकादि वापस पाई। पदच्युतिके बाद खानखाना मक्काको ओर भाग रहे थे, उन्हें पकड़नेके लिये एक दल सेना भेजी गई।

१५६१ ई०में उन्होंने सारङ्गपुरके निकट मालवराज बाजबहादुरको युद्धमें परास्त किया। युद्धके बाद उनकी पत्नी रूपमतीने यवनके हाथ पतित होनेके भयसे आत्महत्या कर डाली। विजयसम्वादके दिल्ली पहुंचते ही ८६८ हिजरीमें सम्राट् स्वयं मालवकी ओर अग्रसर हुए। पीरमहम्मद मालवके जागीरदारोंको साथ कर सम्राट्के सामने हुए। इस समय सबोंको राजपरिच्छद और अश्वादि इनाममें मिले थे। इसके बाद ८६९ हिजरी (१५६२ ई०)में वे मालवके शासनकर्त्ता-पद पर अधिष्ठित हो आशी (खान्देश) बुरहानपुरसे विद्रोहदमनको गये। पहले उन्होंने बीजागढ़दुर्गमें घेरा डाला और उसे जीत कर आशीको ओर जाते समय सुलतानपुरको दखल कर लिया। नर्मदानदी पार कर इन्होंने राहमें अनेकों ग्राम और नगरको जला डाला, बुर्हानपुर नगर पर चढ़ाई करके मार काटका आम हुक्म दे दिया। सैकड़ों मुल्ला, पण्डित और सैयदके मस्तक उनके सामने काट कर ढेर कर दिये गये। इस समय आशी और बुर्हानपुरके शासनकर्त्ताने तथा पूर्वतन मालवराज बाजबहादुर और स्थानीय जमींदारोंने मिल कर पीरमहम्मदके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। बचावका कोई उपाय न देख पीरमहम्मद माण्डुको ओर भाग गये। किन्तु नर्मदा नदी पार करते समय वे जलमें डूब मरे। अकबरके राजत्वके प्रथम वर्ष (१५५६ ई०)-में उन्होंने अलवर पति हाफिज खाँके विरुद्ध युद्धयात्रा की थी। इस युद्धमें हाजीके भाग जाने पर भी पीछे कितने पलातक मुसलमान परिवार उनको करालअसिके शिकार बने, उसकी शुमार नहीं।

पीरमान (हिं० पु०) परवान, अड्डंडा। मस्तूलके ऊपर बंधे हुए वे डंडे जिनके दोनों सिरों पर लट्टू बने रहते हैं और जिन पर पाल चढ़ाई जाती है।

पीरमुरशिद (फा० पु०) गुरु, पूजनीय, महात्मा अथवा अपनेसे दरजेमें बहुत बड़ा। इनके अलावा राजाओं, बादशाहों और बड़ोंके लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है।

पीरमेद—मन्द्राज प्रदेशके त्रिवाङ्कुड़ राज्यका एक पर्वतीय स्वास्थ्यनिवास। यह अक्षा० ९° ३६´ उ० और देशा० ७७° पू०के मध्य अवस्थित है। यहांकी उपत्यका प्रायः तीन हजार फुट ऊँची है। इसके चारों ओर लगभग २५ हजार बीघे जमीनमें काफी चाय उपजती है। आल्लपी, त्रिवन्द्रम् और मदुरा जानेका रास्ता बड़ा ही सुन्दर है। यहां बहुत-से अङ्गरेजोंका वास है और काफी सञ्चयकी एक बड़ी आढ़त है।

पीररोशनाई—एक हिन्दुस्थानवासी सैनिक। इन्होंने मूर्ख

अफगानोंको अपना धर्ममत समझा कर शिष्य बना लिया था। बाद उक्त नाम ग्रहण कर इन्होंने विशेष प्रसिद्धि पाई थी।

पोरबक्सदोना—नोआखाली जिलान्तर्गत एक नदी। ज्वारके समय इसमें बड़ी बड़ी नावें आ जा सकती हैं।

पोरशाह—बङ्गालके अङ्गराज्यान्तर्गत करणदुर्गके मध्यस्थ एक मुसलमान फकीरकी कब्र।

पोराई (हिं० पु०) एक जाति जिसकी जीविका पीरोंके गीत गानेसे चलती है, डफाली।

पोरामीड—इजिप्त देशके अन्तर्गत नील नदीके तीरवर्त्ती कितने कोणाकार प्रस्तर-निर्मित समाधिस्तम्भ। इजिप्तके प्राचीनतम राजाओंकी मृतदेह पहले इसीके गर्भमें निक्षिप्त होती थी। इनके निर्माण-सम्बन्धमें बहुतोंका मतभेद है। वस्तुतः इजिप्तवासियोंके धर्मग्रन्थके आदेशानुसार धनी व्यक्तिगण ये सब महाकीर्त्तियां कब्ररूपमें निर्माण कर गये हैं। उनका विश्वास है, कि ऐसे स्थानमें निहित होनेसे वे पुनः जगतीतल पर लौट सकते हैं।

नीलनदीके डेलटासे ले कर दक्षिण मेमफी जातिकी कब्रभूमि सक्कर तक विस्तृत भूमि पर अब भी प्रायः ७० पोरामीड वर्त्तमान हैं। आधुनिक राजवंशीयगण कितने पोरामिडोंको तोड़ फोड़ कर उनके प्रस्तरादिसे नई अट्टालिकाएं बना रहे हैं। नीलनदीके पश्चिमकूल पर कायरो नगरके समीप सबसे बड़े तीन पोरामीड देखे जाते हैं। इन सबको प्राचीनता, उच्चता और भित्तिके विषयकी आलोचना करनेसे आश्चर्यान्वित होना पड़ता है। इसीसे वह जगतकी नौ अलौकिक कीर्त्तियोंमेंसे एक कीर्त्ति समझी गई है। मेदुमका पोरामीड ईसा जन्मके पांच हजार वर्ष पहलेका बना हुआ है। पोरामीडकी आकृति △ त्रिकोणकी तरह है।

पार्वत्य और बालुकामय स्थान पर भी पोरामीड-निर्मित देखे जाते हैं। जोजे नामक स्थानका पोरामीड ४६१ फुट ऊंचा और तलदेश ७४६ फुट लम्बा है। इसके पत्थर बहुत बड़े बड़े हैं। एक आदमी एक पत्थर नहीं उठा सकता। 'दि ग्रेट पीरामीड' खुफुर (Cheops of Dynasty iv) मसजिद नामसे प्रसिद्ध है।

सक्करके निकट जो पीरामीड हैं, उनमेंसे प्रत्येकके अभ्यन्तर एक एक समाधिगर्भ है और प्रवेशद्वार उत्तरकी ओर है। ग्रीक ऐतिहासिक हिरोदोतसने लिखा है, कि इसके एक पत्थरको दो हजार मनुष्य तीन वर्षमें कर्म-स्थान पर ढो कर लाये थे। वह पत्थरका टुकड़ा १२ हाथ लम्बा और १४ हाथ चौड़ा था।

पोराली—बङ्गालके राढ़ीय ब्राह्मणोंका एक थाक। मुसलमान संसर्गसे इस थाककी उत्पत्ति हुई है। केवल ब्राह्मणोंमें नहीं, कायस्थ, नापित आदि जातियोंमें भी पोराली-थाक है। किन्तु ब्राह्मणोंके मध्य इस थाककी जैसी स्वतन्त्रता है, वैसी और किसी जातिमें नहीं है।

इस थाककी उत्पत्तिके विषयमें नाना प्रकारकी किम्बदन्ती प्रचलित है। किन्तु उनमेंसे जिसके साथ ऐतिहासिक कथाका संस्रव है, वंशगत कथाका मेल है, उसीका उल्लेख यहां किया जाता है। प्रायः पाँच सौ वर्ष पहले खाँ जहान्‌अली नामक एक व्यक्ति दिल्ली दरबारसे सुन्दरवनको आबाद करनेकी सनद ले कर यशोर आये। ये यशोरके एक प्रान्तसे रास्ता निकाल कर दोनों ओर वन काटते हुए अग्रसर होने लगे। जङ्गल पथमें जलका अभाव होनेसे प्रति आध कोसकी दूरी पर एक एक पुष्करिणी खोदी गई। इस प्रकार वर्त्तमान खुलना जिलेके बागर-हाट महकूमे तकका स्थान परिष्कार कर उन्होंने यहां जमींदारी बसाई। इनकी जमींदारीके आस-पास यशोरके चेंगुटिया परगनेके जमींदार राय-चौधरीके सिवा और कोई भी प्रबल जमींदार न थे। खाँ जहान्‌अलीने जमींदारीकी स्थापना करके उसका कुल भार इन्हीं चौधरीके हाथ सुपुर्द किया। खाँ जहान्‌अली अति विस्तीर्ण जङ्गलके अधिपति होनेसे शीघ्र ही नवाब खाँ जहान्‌अली हो उठे। अब उन्हें हिन्दूको मुसलमान बनानेकी धुन लगी। एक ब्राह्मण इस समय नवाब खाँ जहान्‌के अति प्रियपात्र बन गये थे। इन्होंने ही अन्तमें नवाबके अनुरोधसे मुसलमानी धर्म ग्रहण किया और अपना नाम महम्मद-ताहिर रखा। महम्मद-ताहिर बड़े ही कट्टर मुसलमान हो गये। इनके उद्योगसे नवाब खाँ जहानअलीने इस अंशमें तीन सौ साठ मसजिदें तथा अन्यान्य कीर्त्तियोंकी स्थापना की। धीरे धीरे महम्मद ताहिर नवाबके

वजीर बन गये। मुसलमान लोग इन्हें पीरअली कहा करते थे, कारण इन्होंने इस्लाम-धर्मकी खूब श्रीवृद्धि की थी।

पीरअलीने वजीर बन कर राय चौधरी वंशके बहुतोंको प्रधान प्रधान कर्मों पर और अपने आत्मीयको निम्न कर्म पर नियुक्त किया। राय चौधरीघरानेके मध्य कामदेव राय चौधरी और जयदेव राय चौधरी अच्छे ओहदे पर थे। एक दिन रोजाके समय पीरअली बरामदे पर बैठे हुए थे। कामदेव, जयदेव भी उनके पास ही खड़े थे। इसी बीचमें किसी कर्मचारीने अपने बगीचेसे छूतकलम्बा नीबू ला कर पीरअलीको भेंट किया। नीबू सूंघ कर पीरअलीने कहा, आह, कैसी सुगन्ध! राय चौधरी निष्ठावान हिन्दू थे। वे अपने धर्मकी तरह दूसरे धर्मको भी श्रद्धा करते थे। कामदेव राय चौधरीने रोजाके दिन पीरअलीको नीबूका आघ्राण लेते देख कर कहा, 'हुजुर! आपने यह क्या किया? रोजाके दिन नीबूका आघ्राण क्यों लिया?' 'इसमें दोष क्या है' वजीरने पूछा। कामदेवने उत्तर दिया, 'हम लोगोंका शास्त्र कहता है, कि घ्राण अर्द्धक भोजनके समान है।' यह सुन कर पीरअली बड़े बिगड़े, पर थोड़ी ही देर बाद शान्त हो गये। उन्होंने समझा, कि कामदेव उन्हें पूर्व ब्राह्मणत्वका स्मरण दिला कर हंसी उड़ाते हैं। इस कारण पीरअलीने इसका बदला चुकाना चाहा। उस दिनकी मजलिस टूट जाने पर वजीर दोनों राय चौधरीके सर्वनाशमें लग गये। उन्होंने चौधरीके शत्रुओंसे परामर्श कर यह स्थिर किया, कि उन्हें जातिच्युत करना ही ठीक प्रतिशोध लेना होगा।

यह परामर्श स्थिर हो जाने पर वजीर पीरअलीने एक दिन हिन्दू मुसलमान समस्त कर्मचारी तथा धनी प्रजाको दरबारमें बुलाया। दरबार-घरके पास ही एक बड़े कमरेमें उन्होंने सुगन्धित मसाले, लहसुन, प्याज आदि डाल कर गोमांस पकानेका हुकुम दिया। दरबार-गृह उस गन्धसे आमोदित हो उठा। प्रजा, कर्मचारी तथा और जो सब वहां मौजूद थे सबोंने गन्धके मारे कपड़ेसे अपनी अपनी नाक बंद कर ली। कामदेव और जयदेव भी उसी अवस्थामें बैठे हुए थे, अधिकन्तु वजीरके सामने विरक्ति-प्रकाश करने लगे। पीरअलीने मुसकुरा कर कहा, 'चौधरी! बात क्या है?' कामदेवने मुंह चिढ़ा कर उत्तर दिया, 'मांसकी गन्ध आती है।' इस पर वजीरने कहा, जब पहले गन्ध ले कर पीछे मुखमें कपड़ा दिया, तब आधा भोजन हो गया। इस कारण आज सबोंकी जाति गई, क्या हिन्दू शास्त्र ऐसा ही कहता है न?' चौधरीके विद्वेषी दलने उनका पक्ष समर्थन किया। फिर क्या था, वजीर तो यह चाहते ही थे, उन्होंने हुकुम दिया, "जमादार! पकड़ो इन दोनों बदमाशोंको।" वे दोनों पकड़े गये और उनके मुंहमें गोमांस ठूस दिया गया। गुरुतर विपद् समझ कर वहां और जितने बैठे थे, सबके सब भाग चले। ग्रामस्थ जातक्रोध लोगोंने सुयोग पा कर राय चौधरीवंशको पतित ठहराया और उनके साथ आचार व्यवहार बन्द कर दिया। कामदेव और जयदेवके मुंहमें गोमांस दिया गया है, यह सुन कर दोनों भाइयोंको देश व जातिवर्गने भी छोड़ दिया। अन्तमें मुसलमान बन कर उन्होंने नवाबकी शरण ली। नवाब खां जहानअलीने उनका यथाक्रम कमालउद्दीन खां चौधरी और जमालउद्दीन खां चौधरी नाम रखा तथा यशोरसे ५ कोस दूर सिंदिया ग्राममें जागीर दे कर उन्हें बसाया।

कमालउद्दीन खां और जमालउद्दीन खां चौधरी निष्ठावान हिन्दू थे। सुतरां वे मुसलमान हो कर भी हिन्दू-आचारसे ही चलने लगे। उनका वंश आज भी उस ग्राममें मौजूद है। बहुत समय तक इनके वंशमें गोपाल खां, हरादन खां आदि नाम रखे गये थे। विवाहमें पीढ़ा चित्रित होता था, वृद्धा स्त्रियां तुलसीवृक्षमें जल देती थी, षष्ठीव्रत और शिवरात्रि करती थीं। अन्य मुसलमानोंके साथ आदान प्रदान नहीं होता था; दोनों भाइयोंके वंशमें ही विवाह चलता था। क्रमशः उन दोनों भाइयोंका वंश सतचीरा, मागुरा, बसुन्दिया कालड़ा, हुसेनपुर और सिंदिया आदि स्थानोंमें फैल गया है। सिर्फ तीस चालीस वर्ष हुए, कि इनके मध्य हिन्दू-नाम और हिन्दू-आचार व्यवहारका लोप हो गया है।

इस गोलमालमें रायचौधरी वंश ही आत्मीय स्वजनोंसे परित्यक्त हो जानेके कारण एक स्वतन्त्र थाक में हो गये। पीरअलीके उत्पातसे यह गोलमाल हुआ था, इस कारण लोगोंने रायचौधरी वंशका 'पीराली' नाम रखा।

पीरी (फा॰ स्त्री॰) १ वृद्धावस्था, बुढ़ापा। २ हुकूमत, इजारा, ठेका। ३ अमानुषिक शक्ति या उसके कार्य, चमत्कार, करामात। ४ धूर्त्तता, चालाकी। ५ गुरुवाई, चेला मूड़नेका धंधा या पेशा।

पीरो (हिं॰ वि॰) पीली देखो।

पीरू (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका मुर्ग। इस शब्दका पुराना रूप 'पीलू' है; पर अब इसी रूपमें ही अधिक प्रचलित है।

पिरोजपुर—बङ्गालके बाखरगंज जिलेका एक उपविभाग। भूपरिमाण ६८२ वर्गमील और जनसंख्या ८४५ है। काञ्चना नदीमें दस्युवृत्तिदमनके लिए ही यह उपविभाग स्थापित हुआ। पीरोजपुर, मठवाड़ी, भाण्डारिया और स्वरूपकाटी नामक स्थानमें पुलिसका अड्डा है।

पीरोजा (हिं॰ पु॰) फीरोजा देखो।

पीरोत्तर वा पीरान—मुसलमान साधु वा फकीरोंकी अधिकृत निष्कर जमीन। यह जमीन सम्पत्तिशाली मुसलमानोंने समय समय पर दान की है।

पील (फा॰ पु॰) १ हस्ति, गज, हाथी। २ शतरंजके खेलका एक मोहरा जो तिरछा चलता और तिरछा ही मारता है। इसको फील, फीला, पीला और ऊंट भी कहते हैं। विशेष विवरण शतरंज शब्दमें देखो।

पील (हिं॰ पु॰) १ कीड़ा। २ पील्ल देखो।

पीलक (सं॰ पु॰) पीलति स्तभ्नातीति पील-ण्वुल्। १ रोधक। २ पिपीलिका, कीड़ा। ३ कायस्थोंकी एक पद्धति।

पीलक (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका पीले रंगका पक्षी जिसके डैने काले और चोंच लाल होती है।

पीलखा (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका वृक्ष।

पीलपाल (हिं॰ पु॰) हाथीवान, पीलवान, महावत।

पीलपांव (हिं॰ पु॰) श्लीपद, एक प्रसिद्ध रोग, फीलपा। इस रोगमें घुटनेके नीचे एक या दोनों पैर सूज जाते हैं। सूजन जब पुरानी हो जाती है, तब उसमें खुजली और घाव भी हो जाता है। सूजन पहले पैरके पिछले भागसे शुरू होती है, फिर धीरे धीरे सारी टांगमें व्याप्त हो जाती है। पहले ज्वर और जिस पैरमें यह रोग होनेवाला रहता है उसके पट्ठेमें गिलटी निकलती है जिसमें असह्य पीड़ा होती है। वातकी अधिकतामें सूजन काली, फटी, रूखी और तीव्र वेदनायुक्त, पित्तकी अधिकतामें पीली, कोमल और दाहयुक्त तथा कफकी अधिकतामें चिकनी, कठिन, सफेद या पाण्डुवर्ण और भारी होती है। यदि बहुत जल्दी इसका उपाय न किया जाय, तो यह रोग असाध्य हो जाता है। सोड़-वाले देशोंमें यह रोग अधिक होता है। कई आचार्यों-का मत है, कि गला, नाक, कान, होंठ, हाथ आदिकी सूजन भी इसीके अन्तर्गत है।

पीलवान (हिं॰ पु॰) पीलवान देखो।

पीलवान (हिं॰ पु॰) हाथीवान, फीलवान, महावत।

पीला (सं॰ स्त्री॰) १ होमीय द्रव्यभेद। २ पिपीलिका।

पीला (हिं॰ पु॰) १ एक प्रकारका रंग जो हलदी या सोनेके रंगसे मिलता जुलता है और जो हलदी, हरसिंगार आदिसे बनाया जाता है। २ शतरंजका एक मोहरा। पील देखो। (वि॰) ३ पीतवर्ण, जिसका रंग पीला हो, जर्द। ४ कान्तिहीन, निस्तेज, रक्तका अभाव-सूचकश्वेत, ऐसा सफेद जिसमें सुर्खी या चमक न हो, धुंधला सफेद।

पीलाकनेर (हिं॰ पु॰) कनेरके दो भेदोंमेंसे एक। इसका फूल पीला और आकारमें घंटीके समान होता है। लाल कनेरकी अपेक्षा इसका पेड़ कुछ अधिक ऊंचा होता है। वैद्यकके अनुसार इसके गुण भी सफेद कनेरके समान ही होते हैं। कनेर देखो।

पीलाजी—पेशवा बाजीरावके एक महाराष्ट्रीय जादुनका पुत्र। महम्मद शाहके राजत्वके सत्तरहवें वर्षमें इति-मदुद्दौला, कामरुद्दीन खाँ और पथरतजंगके साथ नरवार प्रदेशमें इनका भीषण संग्राम छिड़ा। युद्धमें इन्हींकी जीत हुई। रुस्तम अलीको परास्त कर इन्होंने अह-मदाबाद और बड़ोदाके पार्श्ववर्त्ती जिलोंको लूटा।

मालय अधिकृत होने पर यमुना और गङ्गाके अन्तर्वर्त्ती अन्तर्वेद (दोआब) राज्य पर इन्हें अधिकार करनेका आदेश मिला। उसी समय नवाब बुर्हानुल-मुल्क अन्तर्वेद पार कर आगरा जा रहे थे। राहमें ही दोनों दलमें मुठभेड़ हो गई। पीछे पीलाजी अहमदशाह अबदालीके विरुद्ध तीन हजार सेना ले युद्धयात्रा कर दी। पानीपतके मैदानमें दुरानीके साथ युद्धमें इनकी जीवन-लीला शेष हुई।

पीलाधतूरा (हिं० पु०) सत्यनासी, भंडभाड़, ऊँटकटारा, घमोय।

पीलापन (हिं० पु०) पीतता, पीला होनेका भाव, जर्दी।

पीलाबरेला (हिं० पु०) बरियारा, बनमेथी।

पीलाम (हिं० पु०) साटन नामका कपड़ा।

पीलाशेर (हिं० पु०) अफ्रिकामें मिलनेवाला एक प्रकारका बाघ। इसका रंग कुछ पीला होता है।

पीलिया (हिं० पु०) कमला रोग जिसमें मनुष्यकी आँखें और शरीर पीला हो जाता है।

पीलीचमेली (हिं० स्त्री०) चमेली देखो

पीलीचिट्ठी (हिं० स्त्री०) विवाहका निमन्त्रणपत्र जिस पर प्रायः केसर आदि छिड़का रहता है।

पीलीजुही (हिं० स्त्री०) सोनजुही।

पीलीभीत—युक्तप्रदेशके छोटे लाटके अधीन रोहिलखण्ड विभागके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० २८° ६´ से २८° ५३´ उ० तथा देशा० ७९° ३७´ से ८०° २७´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १३५० वर्गमील है। इसके उत्तरमें नैनीताल, उत्तर-पूर्व और पूर्वमें नेपाल-राज्य और खेरी जिला, दक्षिणमें खेरी और शाहजहानपुर तथा पश्चिममें बरेली है। तराई प्रदेशका कुछ अंश इसमें आ गया है। जिलेका सर्वांश समतल है। इसके मध्य हो कर अनेक नदियां बह गई हैं। जिलेका दक्षिणांश वनाकीर्ण है, कहीं कहीं आम्र-कानन और नाना फलवृक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। नदियोंमें सरदा और देवहा नदी प्रधान है। ये नदियां कुमाउन गिरिमालाके मध्य हो कर १५० मील जानेके बाद बर्मदेव नामक समतल क्षेत्रमें गिरती हैं। यहांसे फिर १० मीलका रास्ता ते कर प्राचीन दुर्गके निकट दो शाखाओंमें विभक्त हुई हैं और पुनः १४ मील जानेके बाद एक दूसरेसे मिल गई है। देवहा वा नन्दा कुमाउन प्रदेशके भावर नामक स्थानसे निकली है। इसी नदीके ऊपर पीलीभीत नगर बसा हुआ है। इस जिलेको पार कर देवहा हरदोई जिलेमें, रामगङ्गाके साथ मिल गई है और वहां इसका गड़ा नाम पड़ा है। कैलास, अवसर, लोहिय और खन्ना नामकी इस जिलेमें इसकी अनेक शाखाएं हैं। देवहा नदीके किनारे वृष्टिके बाद पर्वत धुल जानेसे चूना जम जाता है। इस चूनेकी पीलीभीत, बरेली और शाहजहानपुरमें खासी बिक्री होती है।

पीलीभीतके पूर्वतन इतिहासके विषयमें कोई विशेष हाल मालूम नहीं। रोहिला अफगानोंके आधिपत्यके पहले यहां अहीर, बंजार और बाछल तथा कठेरिया राजपूतगण क्रमशः राज्य कर गये हैं। उनके राजत्वकालमें जो सब कीर्त्तियां स्थापित हुई थीं, उनमें एक मृत्तिका दुर्गका ध्वंसावशेष, बड़ी बड़ी पुष्करिणी और नहर आज भी वर्त्तमान हैं। नौ सौ वर्षकी एक प्राचीन शिलालिपि आज भी उस गौरवकीर्त्तिकी रक्षा करती है। यहांके पूर्वतन राजगण बार बार मुसलमानी आक्रमणसे व्यतिव्यस्त हो अपना अपना सिंहासन मुसलमानोंके हाथ सौंपनेको बाध्य हुए। १८वीं शताब्दीमें रोहिला सरदार हाफिज रहमत खाँने पीलीभीत पर अधिकार किया और उन्हींके समयसे यह नगर सौधमालासे विभूषित हो सर्वत्र विख्यात था।

१७५४ ई० में रहमत् खाँके पूर्णाधिपत्यके समय पीलीभीत नगरमें रोहिलखण्डकी राजधानी थी। हाफिज खाँने इस नगरको पहले मट्टी और पीछे ईंटोंकी दीवारसे सुरक्षित कर दिया। अलावा इसके दिल्लीकी जुमामसजिदके अनुकरण पर उन्होंने जुमामसजिद और हम्माम नामक एक साधारण स्नानागार स्थापन किया। आज भी ये दो कीर्त्तियां रक्षित हैं और इन्हें देखनेके लिये दूर दूर देशोंसे लोग आते हैं।

१७७४ ई०में नवाबके वजीर सुजाउद्दौलाके साथ रोहिलाओंका मिरणकाटरामें जो लड़ाई छिड़ी उसीमें हाफिज रहमतकी मृत्यु हुई थी। इसी समयसे उक्त प्रदेश नवाबके अधिकारभुक्त हुआ। इसके बाद

हाफिजके पुत्र कुरमत खाँ २० हजार लोगोंके साथ बागी हो गये । राजा गुरुदासने ससैन्य जा कर उन्हें परास्त किया ।

१८०१ ई०में नवाबने उपढौकन-स्वरूप उक्त प्रदेश अंगरेजोंके हाथ सुपुर्द किया। १८३३ ई०में यह नगर उक्त तहसीलका सदर और उत्तर बरेली विभागका प्रधान नगर गिना जाने लगा। १८४२ ई०में यह फिर बरेली जिलेका महकूमा हो गया।

१८५७ ई०में सिपाही विद्रोहके समय यहांके मुसलमानों तथा निम्नश्रेणीके लोगोंने उत्तेजित हो तहसीलको लूट लिया। इस कारण वहांके मजिष्ट्रेट करमाइकल साहबने जब भद्र-अधिवासियोंके प्रति दोषारोपण किया, तब वे सबके सब विद्रोही हो उठे। क्रमशः नगर भरमें रक्तपात और अनाचार आदि विभत्स घटनाएं घटने लगीं। करमाइकल साहब कोई दूसरा उपाय न देख नैनीतालको भाग गये। १८५८ ई०में विद्रोह-शान्ति और अंगरेजाधिकारके पुनः स्थापनके पहले पीलीभीत् उपविभाग परस्पर विरोधी जमींदारोंका क्रीड़ास्थल बन गया था। अयथा कर-संग्रह और लूट मार करना उनका एकमात्र कर्म था। इस समय विषम गोलमाल देख कर नगरवासिगण हाफिज रहमतके पौत्र विद्रोही नवाब खाँ बहादुर खाँकी अवनति स्वीकार करनेको वाध्य हुए। अंगरेजी शासनके पुनः स्थापनके बाद १८७१ ई०में हिन्दू और मुसलमानोंके बीच भारी दंगा हुआ जिसमें अंगरेजोंको गोली चलानी पड़ी थी। १८७९ ई०के बादसे यह स्वतन्त्र जिलामें गिना जाने लगा है।

इसमें ५ शहर और १०५६ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या पांच लाखके करीब है। सैकड़े पीछे ८२ हिन्दू तथा शेषमें मुसलमान और अन्यान्य जातियां हैं। खेती-बारीमें यहांके लोगोंका विशेष ध्यान है। उपज भी अच्छी होती है। ईखकी खेती और चीनी बनाना, यही दो यहांका प्रधान व्यवसाय है। अलावा इसके चावल, सोहागी, गरम-मसाले, चीनी, चकोर काष्ठ, चमड़े, गाय भैंस, गोंद, धूने, नाना प्रकारके शस्य, लवण, वस्त्र, पीतल तथा लोहेके बरतनोंको आमदनी और रफ्तनी होती है। देवहा और शारदाकी बाढ़से यहांके मवेशी तथा शस्यादिके बह जानेसे प्रजाको बड़ी तकलीफ होती है। वाणिज्यकी सुविधाके लिये नगरके चारों ओर हो कर रास्ते गये हैं। अवध-रोहिलखण्डका रेलपथ बरेली हो कर पीलीभीत नगर गया है।

जिलेमें दो म्युनिसपलिटी हैं, एक पिलीभीतमें और दूसरी बिलासपुरमें। यहां सोसे ऊपर स्कूल और पांच अस्पताल हैं। जलवायु उतना खराब नहीं है। सभी समय ज्वरका प्रादुर्भाव देखा जाता है, पर शीतकालमें कुछ कम रहता है।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २८°२८´से २८° ५३´ उ० और देशा० ७९° ३७´से ८०° ३०´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४७४ वर्गमील और जनसंख्या १८४९२२ है। इसमें ३ शहर और ३९० ग्राम लगते हैं। देवहा, कटन तथा और भी कितनी उपनदियां तहसील हो कर बह गई हैं।

३ युक्तप्रदेशके उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २८° ३८´ उ० और देशा० ७९° ४८´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या तीस हजारसे ऊपर है। नगरके इतिहास और प्राचीन कीर्त्तियोंका विषय यथास्थानमें लिखा जा चुका है। दाक्षिणात्यमें महाराष्ट्र सिंहके गर्जनसे जब दिल्लीका सिंहासन भी कंपने लगा था, ठीक उसी समय इस स्थानने कुछ समयके लिये महाराष्ट्रोंकी अवनति स्वीकार की थी। यहां दो बाजार हैं जिनमेंसे ड्रमनगंजका बाजार ही बड़ा है। नेपाल, कुमायुन आदि पार्वत्य देशोंसे यहां वाणिज्यके लिये पशम, मोम, मधु, सोहागी, चावल, कालीमिर्च आदि द्रव्योंकी आमदनी होती है। शारदाके ऊपर तीरवर्ती तराई प्रदेशसे पहले यहां काठकी आमदनी होती थी, किन्तु जब यह नेपालराजके अधिकारमें आया, तबसे इसकी आमदनी बन्द हो गई है और नौका-निर्माण व्यवसायका बिलकुल ह्रास हो गया है। नगरका पश्चिमांश सर्वापेक्षा उत्कृष्ट है। यहां रोहिल-सरदार हाफिजका राजप्रासाद, उनकी बनाई हुई जुमामसजिद, हम्माम और राजकर्मपरिचालनोपयोगी वाटिकादि

विद्यमान हैं। शहरमें म्युनिसपलिटीकी ओरसे ८ स्कूल स्थापित हुए हैं।

पीलोमिट्टी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी चिकनी, कड़ी और पीले रंगकी मिट्टी।

पीलु (सं० पु०) पीलति प्रतिष्टम्नातीति पील-कु (मृगय-वादयश्च। उण् १।३७) १ प्रसून, पुष्प, फूल। २ परमाणु। ३ मतङ्गज, हाथी। ४ अस्थिखण्ड, हड्डीका टुकड़ा। ५ तालकाण्ड, तालवृक्षका तना। ६ वाण। ७ क्रमि। ८ कोङ्कणादि देशमें प्रसिद्ध फलदार वृक्ष जिसे पील या पीलू कहते हैं। इसका अंगरेजी नाम Tooth-bruss tree है। इसे महाराष्ट्रमें पीलु; तैलङ्गमें गोलु, गुचेट, पिन्नवरगोण्ड; बम्बईमें ककइन और तामिलमें कोकू कहते हैं। संस्कृत पर्याय—गुड़फल, स्रंसी, शीतसह, धानी, विरेचन, फलशाखी, श्याम और करभवल्लभ। इसके फलका गुण—श्लेष, वायु और गुल्मनाशक तथा पित्तद और भेदक है। जो पीलु मधुर और तिक्तरस होता है, वह अतिशय उष्ण और त्रिदोषनाशक माना जाता है।

"पीलु श्लेष्म समीरघ्नं पित्तलं भेदि गुल्मनुत्।
स्वादु तिक्तञ्च यत् पीलु तन्नात्युष्णं त्रिदोषहृत्॥"
(भावप्रकाश)

यह मेह, पित्त और सन्निवातनाशक (अत्रिस० १७ अ०), स्वादु, तिक्त, कटु, उष्ण, कफ और वायुनाशक है। (सुश्रुत सूत्र ३८ अ०) इसका तैल मूलकतैलके समान गुणयुक्त है। ८ कच्छुकशाक, चनेका साग। १० शरतृणपुष्प, सरकंडे या सरपतका फल। ११ किङ्किरात वृक्ष, लाल कटसरैया। १२ अक्षोट वृक्ष, अखरोटका पेड़। १३ करतल, हथेली; १४ काञ्चन देशीय गिरिजाचोड़ फल, कांचन देशका अखरोट। बृहत्संहितामें लिखा है, कि पीलुवृक्षकी परिपूर्ण देखनेसे आरोग्यलाभ होता है। १५ रत्नविशेष। इससे औषध खानेके लिए उत्तम उत्तम खल, दुग्धपानपात्र और तलवारकी मूठ आदि प्रस्तुत होती हैं। यह धूम्र, शुक्ल वा श्वेत आभायुक्त, हरिद्वर्णविशिष्ट, कठिन, अस्वच्छ और अल्प प्रभाशाली है।

पीलुआ (हिं० वि०) मछली पकड़नेका एक बड़ा जाल।

पीलुक (सं० पु०) पीलुरिव कायति कै-क। क्रमिभेद, एक प्रकारका कीड़ा।

पीलुकुन (सं० क्ली०) पीलूनां पाकः, पीलवादित्वात् कुणच् (पा ५।२।२४) पीलुपाक।

पीलुनी (सं० स्त्री०) पील बाहुलकात् उन्, गौरादित्वात् ङीष्। १ मूर्वा, चुरनहार। २ कच्छुकशाक, चनेका साग।

पीलुपत्र (सं० पु०) पीलुयुक्तं पत्रं यस्य। १ मोरटलता, चीरमोरट। २ अश्मन्तक वृक्ष।

पीलुपत्रा (सं० स्त्री०) चीरमोरट, मोरटलता।

पीलुपर्णिक—तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

पीलुपर्णी (सं० स्त्री०) पीलुरिव पर्णान्यस्याः, ततो ङीष् (पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलवालोत्तरपदाच्च। पा ४।१।६४) १ मूर्वा, चुरनहार। २ तुण्डिका। ३ मोरट। ४ बिम्बिका। ५ औषधिभेद।

पीलुमूल (सं० क्ली०) पीलोर्मूलम्। १ पीलुवृक्षकी जड़। २ शतमूली, सतावर। ३ शालपर्णी।

पीलुमूला (सं० स्त्री०) तरुणीगाभि, जवान गाय।

पीलुवह (सं० त्रि०) पीलुं वहतीति वह-अच्। पीलुवाहि जलादि।

पीलुसार (सं० पु०) पर्वतविशेष, एक पर्वतका नाम।

पीलू (हिं० पु०) सफेद लम्बे कीड़े जो सड़ने पर फलों आदिमें पड़ जाते हैं। २ एक प्रकारका राग जो दिनको २१ दण्डसे २४ दण्ड तक अर्थात् तीसरे पहरमें गाया जाता है। इसमें ऋषभ और गान्धारका मेल रहता है और सब शुद्ध-स्वर लगते हैं।

३ दक्षिण भारतमें बहुतायतसे मिलनेवाला एक प्रकारका कांटेदार वृक्ष। यह छोटे और बड़ेके भेदसे दो प्रकारका होता है। इसमें एक प्रकारके छोटे छोटे लाल या काले फल लगते हैं जो वैद्यकके मतसे वायु और गुल्मनाशक, पित्तद तथा भेदक माने जाते हैं। इसकी हरे डंठलोंकी दतवन अच्छी होती है। पुराणानुसार इसके फूले हुए वृक्षोंको देखनेसे मनुष्य नीरोग होता है। पीलु देखो।

पीलूषणा (सं० स्त्री०) पीलुका फल।

पीव (हिं० पु०) १ पीप देखो। २ स्थूल, पुष्ट, मोटा।

पीवन् (सं० त्रि०) प्यायते इति क्वनिप् (स्नाप्योः सम्प्र-

षारणञ्च। उण ४।११४) इति सम्प्रसारणञ्च (हलः। पा ३।१।६१) इति दीर्घः। १ स्थूल, मोटा।

"पीवानं श्मश्रुलं प्रेष्ठं मीढ्वांसं याभकोविदम्।
स एकोऽजवृषस्तासां बह्वीनां रतिवर्द्धनः॥"

(भागवत ९।१९।६)

२ (क्ली०) बलयुक्त, ताकतवाला। ३ वायु।

पीवना (हिं० क्रि०) पीना देखो।

पीवर (सं० त्रि०) प्यायते वर्द्धते इति प्यैङ्‌ ष्वरच, सम्प्रसारणं दीर्घश्च (छित्वरच्छत्वरधीवरपीवरेति। उण, ३।१) १ उपचितावयव, मोटा, तगड़ा। पर्याय—पीन, पीवन् और स्थूल। २ गुरु, भारी।

"भयपिहितं बालायां पीवरमूरुद्वयं स्मरोविद्रः।
निद्रायां प्रेमार्द्रः पश्यतिःनिश्वस्य निःश्वस्य॥"

(आर्यासप्त० ४२०)

(पु०) ३ तामस मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एक ऋषिका नाम। ४ कच्छप, कछुवा। ५ जटा।

पीवर—क्रौञ्चद्वीपके अन्तर्गत एक वर्ष।

पीवरत्व (सं० क्ली०) पीवरस्य भावः भावे त्व। स्थूलत्व, मोटापन।

पीवरस्तनी (सं० स्त्री०) बड़े स्तनवाली गाय।

पीवरा (सं० स्त्री०) पीवर-टाप। १ अश्वगन्धा, असगन्धा। २ शतावरी, सतावर। (त्रि०) ३ स्थूला, मोटा।

पीवरी (सं० स्त्री०) पीवर ङीप्। १ शतमूली। २ शालपर्णी, सरिवन। ३ तरुणी, युवती स्त्री। ४ गाभि, गाय। ५ वर्हिषद नामक पितृगणकी मानसी कन्याओंमेंसे एक।

पीवस (सं० त्रि०) पीन, स्थूल, मोटा, तगड़ा।

पीवस्पाक (सं० त्रि०) जिसके द्वारा मेदका पाक हो।

पीवस्वत् (सं० त्रि०) पीवस मतुप, मस्य व। प्रवृद्ध।

पीवा (सं० स्त्री०) पीयते इति पी-बाहुलकात् व ततष्टाप। उदक, जल, पानी।

पीवा (हिं० वि०) स्थूल, पुष्ट, मोटा।

पीविष्ठ (सं० त्रि०) पीवन्-इष्ठ। सातिशय स्थूल बहुत मोटा।

पीवोऽश्व (सं० त्रि०) प्रभूत अश्वयुक्त।

पीवोऽश्व (सं० त्रि०) प्रभूत वा स्थूल अश्वयुक्त।

पीवोपवसन (सं० त्रि०) पीवसः उपवसनं समीपस्थितिरस्य पृषोदरादित्वात् सलोपः। सूक्ष्म, पतला।

पीसनगांव—राजपूतानेके अजमेर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° २५´ उ० और देशा० ७४° २५´ पू०के मध्य, अजमेर बन्दरसे ११ कोस दूरमें अवस्थित है। यहां स्थानीय 'इस्तिमरारदार' वास करते हैं। मारवाड़के निकटवर्त्ती स्थानसे ले कर उक्त गांव तक रुई और तम्बाकूका प्रधान केन्द्र है। यहां सरस्वती और सागरमती नदीके सङ्गमस्थल पर 'प्रियसङ्गम' नामक एक जैन मन्दिर है।

पीसना (हिं० क्रि०) १ कुचल देना, दबा कर भुरकुस कर देना, पिलपिला कर देना। २ कठोर श्रम करना, कड़ी मिहनत करना, जान लड़ाना। ३ सूखी या ठोस वस्तुको रगड़ या दबाव पहुंचा कर चूर चूर करना, किसी वस्तुको आटे, बुकनी या धूलके रूपमें करना, चक्की आदिमें दल कर या सिल आदि पर रगड़ कर किसी वस्तुको अत्यन्त महीन टुकड़ोंमें करना। ४ किसी वस्तुको जलकी सहायतासे रगड़ कर मुलायम और बारीक करना। (पु०) ५ उतना काम जो किसी एक आदमीके लिए अलग कर दिया गया हो, किसी एक आदमीके हिस्से या जिम्मेका काम। ६ पीसी जानेवाली वस्तु, वह वस्तु जो किसीको पीसनेको दी जाय। ७ उतनी वस्तु जो किसी एक आदमीको पीसनेको दी जाय, एक आदमीके हिस्सेका पीसना।

पीसू (हिं० पु०) एक प्रकारका परदार छोटा कीड़ा। यह मच्छरोंकी तरह काटता है, पशुओंको बहुत तंग करता है और उनके रोएंमें बड़ी शीघ्रतासे रेंगता है।

पीह (हिं० स्त्री०) चरबी।

पीहर (हिं० पु०) स्त्रियोंके माता पिताका घर, स्त्रियोंका मायका, मैका।

पीहू (हिं० पु०) पीसू देखो।

पुंख (हिं० पु०) एक प्रकारका बाज पक्षी,

पुंगफल (हिं० पु०) पुङ्गीफल देखो।

पुंगीफल (हिं० पु०) पुङ्गीफल देखो।

पुंछल्ला (हिं० पु०) पुंछाला देखो।

पुंछवाना (हिं० क्रि०) पुछवाना देखो।

पुंछार (हिं० पु०) मयूर, मोर।

पुंछाला (हिं० पु०) १ पूंछकी तरह जोड़ी हुई वस्तु, पुछल्ला, दुंबाला। २ साथमें लगी या जुड़ी हुई वस्तु या व्यक्ति जिसकी उतनी आवश्यकता न हो। ३ आश्रित, चापलूस, खुशामदसे पीछे लगा रहनेवाला। ४ साथ न छोड़नेवाला, बराबर साथमें दिखाई पड़नेवाला।

पुंज (सं० पु०) पुञ्ज देखो।

पुंजा (हिं० पु०) १ समूह, गुच्छा। २ पूला, गट्ठा।

पुंजातुक (सं० पु०) जीवनवृक्ष।

पुंजी (हिं० स्त्री०) पूंजी देखो।

पुंड (हिं० पु०) दक्षिणकी एक जाति जो पहले पहल रेशमके कीड़े पालनेका काम करती थी। पुण्ड्र देखो।

पुंडरिया (हिं० पु०) पुंडरीका पौधा।

पुंडरी (हिं० पु०) पुण्डरिन् देखो।

पुंध्वज (सं० पु०) मूषिक, चूहा।

पुंमन्त्र (सं० पु०) वह मन्त्र जिसके अन्तमें स्वाहा या नमः न हो।

पुंयान (सं० क्ली०) पुंसो यानं। पुरुषयान, पुरुका वाहन।

पुंयोग (सं० पु०) पुंसो योगः। पुरुषयोग।

पुंरत्न (सं० क्ली०) पुमान् रत्नमिव। पुरुषरत्न, पुरुषश्रेष्ठ।

पुंराशि (सं० पु०) पुमान् राशिः, कर्मधा०। पुरुषराशि, विषमराशि, मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ ये सब राशियां पुंराशि हैं।

पुंरूप (सं० क्ली०) पुंसो रूपं। पुरुषका रूप।

पुंलक्षणा (सं० स्त्री०) पुंसो लक्षणं यस्याः। पुरुषलक्षणा नपुंसक स्त्री।

पुंलिङ्ग (सं० क्ली०) पुंसो लिङ्गं चिह्नं। १ पुंचिह्न, पुरुषका चिह्न। २ शिश्न।

"किञ्चित्कालान्तरं दास्ये पुंलिंग स्वमिदं तव।
आगन्तव्यं त्वया कालेऽलत्कचैव वदस्व मे॥"
(भारत ५।१९४।३)

(पु०) ३ शब्दवाचकता, पुरुषवाचक शब्द। पुंसो लिङ्गमस्येति। (त्रि०) ४ पुंलिङ्गविशिष्ट।

"पुंलिंगा इव नार्यस्तु स्त्रीलिंगाः पुरुषाभवन्।
दुर्योधने तदा राजन् पतिते तनये तव॥"
(भारत ९।५८।५७)

पुंवत् (सं० अव्य०) पुंस इव, इवार्थे वति। १ पुंलिङ्गकी तरह, पुरुषतुल्य। २ पुंवत् भाव, पुरुष शब्दकी तरह।

पुंवत्स (सं० पु०) पुमान् वत्सः। पुरुषरूप वत्स।

पुंवत्सा (सं० स्त्री०) पुमान् वत्सो यस्याः। पुरुषप्रसविनी, वह स्त्री जिसने केवल पुत्रसन्तान प्रसव की हो।

पुंवृष (सं० पु०) पुमानिव वर्षतीति वृष-क। गन्धमूषिक, छछूंदर।

पुंवेश (सं० पु०) पुंसः वेशः। १ पुरुषका वेश। (त्रि०) पुंसः वेशइव वेशः यस्य। २ पुरुषकी तरह वेशधारी। (स्त्री०) स्त्रियां टाप। पुंसः वेशइव वेशो यस्याः। पुरुषवेशधारिणी स्त्री।

पुंश्चल (सं० पु०) पुंश्चलीव, उपचारात् पुंस्त्वं। व्यभिचारी, वह पुरुष जो व्यभिचार करता हो।

पुंश्चली (सं० स्त्री०) पुंसो भर्त्तुः सकाशात् चलति पुरुषान्तरं गच्छतीति चल-अच, गौरादित्वात् ङीष्। असती, वेश्या। पर्याय—धृष्टा, दुष्टा, धर्षिता, लङ्का, निशाचरी, त्रपारण्डा। पुंश्चलीके चरित्रदोषादिका विषय ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

त्रिभुवनमें पुंश्चलीका मन दुर्ज्ञेय है अर्थात् कोई भी व्यक्ति इनके मनका भाव नहीं जान सकता। जो पुंश्चलीका विश्वास करते हैं, वे विधिसे विडम्बित और यश, धर्म तथा कुलसे वहिष्कृत होते हैं। पुंश्चलीको जब नूतन उपपति मिल जाता है, तब वह अपने पुरातन पतिको मार डालती हैं। इनके निकट कोई भी प्रिय वा अप्रिय नहीं है। ये केवल अपना मतलब निकालनेमें लगी रहती हैं। देव वा पैतृकर्म तथा पुत्र, बन्धु और भर्त्ता आदिके प्रति इनका चित्त अति कठोर रहता है। ये केवल शृङ्गार कार्यमें व्यस्त रहती हैं। रतिज्ञ पुरुषको प्राणसे बढ़ कर चाहती हैं। रतिअनभिज्ञ पुरुष यदि रत्नप्रद भी हो, तो उसे पुंश्चली विषदृष्टिसे देखती हैं। सभी व्यक्तियोंका एक एक निर्दिष्ट स्थान है, किन्तु पुंश्चलियोंका कहीं भी स्थान नहीं है। सभी व्यक्ति

पापपुरुषका कर्मभोग कर निष्कृति लाभ करते हैं, पर जब तक सूर्य चन्द्रमा रहेंगे, तब तक पुंश्चलियोंका निस्तार नहीं। अन्य कामिनियोंको एक सामान्य कीट मारनेमें जैसी दया है, पुंश्चलियोंको अपने स्वामी-हननमें भी वैसी दया नहीं। ये रतिज्ञ नूतन पुरुषको पाते ही पुरातनको विषतुल्य समझती हैं और उसे अवलीलाक्रमसे मार डालती हैं। पृथ्वी पर जितने प्रकारके पाप हैं, वे सभी पाप एक पुंश्चलीमें अवस्थित हैं। पुंश्चली जो अन्नपाक करती हैं, वह पातकमिश्रित है। इनका पक्वान्न देव वा पैत्र कर्ममें देना उचित नहीं। पुंश्चलियोंका अन्न विष्ठातुल्य और जल मूत्रवत् है। यदि कोई देव वा पैत्र कर्ममें इनका अन्न वा जल व्यवहार करे अथवा स्वयं भोजन करे, तो वह नरकगामी होता है। यदि कोई व्यक्ति हठात् पुंश्चलीका अन्न खा ले, तो उसका सप्तजन्मार्जित पुण्य विनष्ट होता है तथा आयु, श्री और यशकी हानि होती हैं।

यात्राकालमें यदि पुंश्चलीका दर्शन हो जाय, तो शुभ होता है, इनके स्पर्शसे ही पाप है। यदि दैवात् स्पर्श हो जाय, तो तीर्थस्नान द्वारा विशुद्धि लाभ होती है। पुंश्चलियोंके तीर्थस्नान, दान, व्रत, पूजादि सभी विफल हैं, यहां तक कि उनका जीवन ही निष्फल है।

यदि कोई पुंश्चली सकामा हो कर किसी पुरुषके निकट छुपकेसे पहुंच जाय, तो उसका परित्याग करना उचित नहीं। धर्मके भयसे यदि परित्याग कर दे, तो वह नरकगामी होता है। किन्तु ये यदि तपस्वियोंके पास जाय तो वे भूल कर भी इनका अभिलाष पूर्ण न करें; यदि करें, तो तपस्विधर्मसे भ्रष्ट तथा लोकमें निन्दनीय होंगे।*

पुंश्चलियां मानवके धन, आयु, प्राण और यशको हरनेवाली हैं तथा जितने प्रकारकी विपद हैं, ये ही उनके बीजस्वरूप हैं। इन पर विश्वास करनेसे पद पदमें विपदकी आशङ्का रहती है। ये हिंस्रजन्तुसे भी बढ़ कर भयानक हैं। प्रत्येक बुद्धिमान् व्यक्तिको जिससे इनकी छाया तकका भी स्पर्श न हो, वही करना उचित है।

पुंश्चलीय (सं० पु०) वेश्यापुत्र, वेश्या या कुलटाका लड़का।

पुंश्चल (सं० स्त्री०) पुंश्चलति चल-क्विप्। पुंश्चली स्त्री, व्यभिचारिणी स्त्री, कुलटा नारी।

पुंश्चिह्न (सं० क्ली०) पुंसः पुरुषस्य चिह्नं। शिश्न, लिङ्ग।

पुंसवन (सं० क्ली०) पुमांसमिव सूते बलप्रदानेन पुरुषवत् जनयत्यनेनेति सू-करणे ल्युट्। १ दुग्ध, दूध। पुमांसं सूतेऽनेनेति षू-करणे ल्युट्। २ संस्कार विशेष।

"यथाक्रमं पुंसवनादिकाः क्रियाः
धृतेश्च धीरः सदृशीर्व्यधत्त सः॥" (रघु० ३।१०)

यह संस्कार दश प्रकारके संस्कारोंमेंसे दूसरा संस्कार है। गर्भ रह जाने पर जिससे गर्भिणी पुत्र-सन्तान प्रसव करे, इसीलिये यह संस्कार किया जाता है। इस संस्कारका पुंसवन नाम पड़नेका यही कारण है।

गर्भके तृतीय मासमें यह संस्कार विधेय है। संस्कारतत्त्वमें लिखा है, कि गर्भग्रहणके तृतीय मासके दश दिनके मध्य ज्योतिषोक्त दिनमें पुंसवन करना होता है।

गोभिलः। तृतीयस्य गर्भमासस्यादिमदशे पुंसवनस्य कालः।
गर्भे सति तृतीयमासस्य आदिमदशे दशम दिनाभ्यन्तरे ज्योतिःशास्त्रोक्तकाले पुंसवनं कार्यं।" (संस्कारत०)

विशुद्ध दिनमें पुंसवन करनेको लिखा है।

पुंसवनके दिन—रवि, मङ्गल और बृहस्पतिवारमें अर्थात् प्रतिपद एकादशी, षष्ठी, भद्रा, द्वितीया, द्वादशी और सप्तमी तिथिमें; कुम्भ, सिंह, धनु, मीन और मिथुन

---

* "पुंश्चलीदर्शने पुण्यं यात्रासिद्धिर्भवेद् ध्रुवं।
स्पर्शने च महापापं तीर्थस्नानाद्विशुध्यति॥"
उपस्थितसकामपुंश्चलीत्यागे दोषः, यथा—
"रहस्युपस्थितां कामात् पुंश्चलीं यो जितेन्द्रियः।
परित्यजेद्धर्मभयादधर्मो नरकं व्रजेत्॥"
सर्वदैव तस्याः तपस्विनां त्याज्यत्वं—
"उपस्थिता वा योषिदत्याज्या रागिणामपि।
श्रुतौ श्रुतमिति त्याज्या सर्वदैव तपस्विनाम्॥
अहो सर्वैः परित्याज्या पुंश्चली च विशेषतः।
धनायुः प्राणयशसां नाशिनी दुःखदायिनी॥"
(ब्रह्मवैवर्तपु० श्रीकृष्णजन्मख० ३२ अ०)

लग्नमें; गर्भिणी स्त्रीको चन्द्र और तारा विशुद्धिमें; पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, पुष्या, पुनर्वसु, मूला, आर्द्रा, रेवती, हस्ता, श्रवणा और मृगशिरा नक्षत्रमें दशयोगभङ्ग, विष्टिभद्रा, त्र्यहस्पर्श आदिका परित्याग कर पुंसवन कार्य करना होता है।* इस प्रकार दिन स्थिर करके पुंसवन संस्कार विधेय है।

गर्भ स्पन्दन होनेके पहले ही पुंसवन-संस्कारका समय है, चतुर्थ मासमें गर्भस्पन्दन होता है, इसलिये गर्भाधानके तृतीय मासमें ही पुंसवन प्रशस्त है।

"गर्भाधानमृतौ पुंसः सवनं स्पन्दनात् पुरा।
षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तः प्रसवे जातकर्म च॥"

सामवेदी छोड़ कर सबोंको पुंसवन संस्कारमें नान्दीमुख श्राद्ध करना होता है। क्योंकि संस्कारतत्त्वमें लिखा है,—

"निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा।
ज्ञेयं पुंसवने चैव श्राद्धं कर्माङ्गमेव च॥"

गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन और पुंसवन आदि संस्कारकार्योंमें वृद्धिश्राद्ध उन सब संस्कार कर्मोंका अङ्गस्वरूप है। किन्तु यह कर्माङ्गश्राद्ध छन्दोगेतरोंके लिए है। इसीसे भवदेवभट्टने भी इसके विषयमें कुछ नहीं लिखा हैं। किन्तु सामगगण यदि इसमें वृद्धिश्राद्ध कर भी लें, तो कोई दोष नहीं।

पुंसवनका विधान—विशुद्ध दिनमें पति नित्य क्रियादि और वृद्धिश्राद्ध समाप्त करके 'चन्द्र' नामक अग्निकी स्थापना करे। पीछे विरूपाक्षजपान्त कुशण्डिका करे। अनन्तर कृतस्नाता स्त्रीको अग्निके पश्चिम तथा अपनी दाहिनी ओर कुशके ऊपर पूरब मुख करके बिठावे। अब प्रकृत कर्मारम्भमें प्रादेश प्रमाणके घृताक्त समिधको तुष्णीम्भावमें अग्निमें आहुति दे। पीछे महाव्याहृति होम करे। तदन्तर पति उठ कर स्त्रीके दक्षिण स्कन्धको छू ए और दक्षिण हस्तसे उसका नाभिदेश छू कर निम्नलिखित मन्त्र पढ़े।

"प्रजापतिऋषिरनुष्टुप् छन्दो मित्रावरुणाग्निवायवो देवताः पुंसवने विनियोगः।
ओं पुमांसौ मित्रावरुणौ पुमांसावश्विनावुभौ।
पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे॥"

इसी प्रणालीसे प्रथम पुंसवन, पीछे द्वितीय पुंसवन करना होता है। अशक्त होने पर एक ही दिन दोनों प्रकारके पुंसवन कर सकते हैं। विधान इस प्रकार है—

इस पुंसवन कार्यमें वटवृक्षकी पूर्वोत्तर शाखाकी टहनीसे दो फलोंवाले सिरे (शुङ्गा, फुनगी)को जौ या उरद दे कर ७ बार मन्त्र पढ़ कर क्रय करना होता है। मन्त्र यथा—

प्रजापतिऋषिः सोमवरुण-वसुरुद्रादित्यमरुद् विश्वेदेवा देवता न्यग्रोधशुङ्गा परिक्रयणे विनियोगः।

"ओं यद्यसि सौमी सोमाय त्वा राज्ञे परिक्रीणामी।
इति गुडकत्रयेण एकं क्रयणं॥ (१)
ओं यद्यसि वारुणी वरुणाय त्वा राज्ञे परिक्रीणामि।
इति गुडकत्रयेण द्वितीयं क्रयणं॥ (२)
ओं यद्यसि वसुभ्यो वसुभ्यस्त्वा परिक्रीणामि।
इति गुडकत्रयेण तृतीयं क्रयणं॥ (३)

इस प्रकार रुद्र, आदित्य, मरुत् और विश्वदेव देवताका उल्लेख कर परिक्रमण करे। पीछे निम्नलिखित मन्त्र द्वारा वृक्षसे आहरण करना होता है। मन्त्र यथा—

"प्रजापतिऋषिरोषध्यो देवता न्यग्रोध-शुङ्गाच्छेदने विनियोगः॥"

इस प्रकार वटशुङ्गाको छेदन कर रखना होता है। पीछे कृतशोभन नामक अग्निके उत्तर शिलाको अच्छी तरह प्रक्षालन करके उस पर वटशुङ्गाको नीहारजलसे पीसे। अनन्तर उस पेषित वटशुङ्गाको ग्रहण कर अग्निके पश्चिम उत्तराग्र कुश पर पश्चिमकी ओर मुख किये पत्नीको बिठावे। अनन्तर पत्नीके पीछे खड़े हो कर दक्षिण हस्तकी अनामिका और अङ्गुष्ठ द्वारा पत्नीके दक्षिण नासा-विवरमें शुङ्गारस निम्नलिखित मन्त्र पाठ करके निःक्षेप करे। मन्त्र यथा—

* "कुर्यात् पुंसवनं शुभयोगकरणे नन्दे शुभद्रे तिथौ।
भाद्रीषाढनृपेश्वरेषु नृदिने वेधं विमेन्दौ शुभे॥
अक्षीणे नवपञ्चककण्टकगते सौम्येशुभवृद्धिषु।
श्री शुद्धया चद्युग्मसूर्ये गुरुभेशुधस्तु मासत्रये॥
नृदिनेषु महवारे। वेधो दशयोगभंगः वृद्धिरूपचयस्थानं॥"
(ज्योतिस्तत्त्वं पुंसवन)

"प्रजापतिऋ विरनुष्टुप् छन्दोऽग्नीन्द्रबृहस्पतयो देवतान्य-श्रोधशुङ्गारसस्य दाने विनियोगः ।

"ओँ पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान् देवो बृहस्पतिः ।
पुमांसं पुत्रं विन्दस्व तं पुमान मनुजायताम् ॥"

इसके बाद महाव्याहृतिहोम और अग्निमें मन्त्रहीन घृताक्त समिध दान करे। पीछे प्रकृत कर्म, शाट्यायन होमादि, वामदेव्यगानान्त कर्म समाप्त करके इस कर्मका शेष करे। सबके अन्तमें पुरोहितको दक्षिणा दे कर विदा करे। (दशकर्मपद्धति भवदेवभट्ट)

इसी प्रणालीके अनुसार पुंसवन संस्कार करना होता है। विस्तार हो जानेके भयसे सभी मन्त्रादिका विषय यहां नहीं लिखा गया।

यदि कोई मोहवशतः गर्भके तृतीय मासमें पुंसवन-संस्कार न करे, तो जिस दिन सीमन्तोन्नयन संस्कार होगा, उस दिन पहले प्रायश्चित्तस्वरूप महाव्याहृति होम करके पुंसवन करे, पीछे सीमन्तोन्नयन करना होता है।

आज कल यह पुंसवन और सीमन्तोन्नयन संस्कार विलुप्तप्राय हो गया है। निकृष्ट जाति और किसी किसी भद्र पुरुषके मध्य सीमन्तोन्नयन संस्कार रहने पर भी पुंसवन संस्कार किसीमें भी लक्षित नहीं होता।

३ व्रतभेद। भागवतमें इस व्रतका विषय इस प्रकार लिखा है। राजा परीक्षित्‌ने जब शुकदेवसे पुंसवनव्रतका विषय पूछा, तब उन्होंने इस प्रकार कहा था:—अग्रहायण मासको शुक्लाप्रतिपद तिथिको स्त्रियां स्वामीको अनुज्ञा ले कर इस व्रतका आरम्भ करे। पहले ब्राह्मणके निमन्त्रण कर विशुद्धचित्तसे मरुद्गणका जन्म-विवरण सुने। पीछे शुभ्रवसन पहन और अलङ्कृत हो भगवान् नारायणका पूजन करे। अनन्तर निम्नलिखित मन्त्रसे प्रणाम करना होता है। मन्त्र यथा—

"अलं ते निरपेक्षाय पूर्णकाम नमोस्तु ते ।
महाविभूतिपतये नमः सकलसिद्धये ॥
यथा त्वं कृपया भूत्या तेजसा महिमौजसा ।
जुष्ट ईशगुणैः सर्वैस्ततोऽसि भगवान् प्रभुः ॥
विष्णुपत्नि महामाये महापुरुषलक्षणे ।
प्रीयेथा मे महाभागे लोकमातर्नमोऽस्तु ते ॥"

इस प्रकार लक्ष्मी और नारायणको प्रणाम कर पीछे पाद्यार्घ्य आदि द्वारा भगवानको पूजा करे। पूजा शेष हो जाने पर भगवान्‌के उद्देशसे होम करे। 'ओं नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहा' इस मन्त्रसे बारह बार आहुति देनेके बाद लक्ष्मी और नारायणका स्तव करे।

इस प्रकार लक्ष्मीके साथ भगवानका स्तव करके आचमनीयादि करे, पीछे फिरसे पूजा और स्तव-पाठ विधेय है। अनन्तर गृहीतव्रता स्त्री अपने पतिको ईश्वर समझ कर अच्छी अच्छी वस्तु खानेको दे और तन मनसे उनकी सेवा करे।

इसी प्रकार यह व्रतानुष्ठान करना होता है। स्त्री और पुरुष दोनों ही इस पुंसवन-व्रतके अधिकारी हैं। यह व्रत करनेसे सन्तानविच्छेद नहीं होता। स्त्री यदि यह व्रत न कर सके, तो उसका पति भी कर सकता है। इस व्रतमें ब्राह्मण और सधवाकी पूजा तथा लक्ष्मी और नारायणकी आराधना करनी होती है। व्रतके शेष हो जाने पर उपहार इत्यादि ब्राह्मणको दे, पीछे कुछ प्रसाद आप भी ग्रहण करे। बारह मास तक उक्त नियमसे इस व्रतका अनुष्ठान करके कार्त्तिक मासके अन्तमें इस व्रतको प्रतिष्ठा करनी होती है। उस दिन उपवास करके दूसरे दिन सवेरे चरुपाक करना होता है। उस चरु द्वारा पति १२ आहुति प्रदान करे। पीछे जिससे सत्पुत्र और सौभाग्य लाभ हो इसके लिये पति पत्नीको चरुशेष प्रदान करे।

पुरुष यदि भगवान् विष्णुका यह व्रत यथाविधान करे, तो उसे अभीष्टलाभ; स्त्रीको सौभाग्य, सम्पद्, सुसन्तान, अवैधव्य और यशोलाभ; अनूढा कुमारीको समस्तलक्षणाक्रान्त वर और अवीरा स्त्रीको पापक्षय पूर्वक स्वर्गति तथा मृतवत्सा स्त्रीको जीवत्पुत्र लाभ होता है। दुर्भगा नारी सुभगा और विरूपा नारी मनोहारिणी होती है। रोगी यदि इस व्रतका अनुष्ठान करे, तो वह रोगसे मुक्तिलाभ करता है। (भागवत ६।१९ अ०)

विस्तार हो जानेके भयसे इस व्रतका विषय बहुत संक्षेपमें लिखा गया। पुंसवत् सूयते इति कर्मणि ल्युट्। ४ गर्भ। (त्रि०) ५ पुत्रोत्पादक।

"सा तत् पुंसवनं राज्ञी प्राश्य वै पत्युरादधे ।
गर्भं काल उपावृत्ते कुमारं सुषुवे प्रजाः ॥"
(भाग० ४।१३।३८)

पुंसवत् (सं० त्रि०) पुत्रसन्तानविशिष्ट, पुत्रवाला ।

पुंसवान् (हिं० वि०) पुत्रवाला ।

पुंसानुज (सं० पु०) पुंसानुजः, समासे तृतीयायाः अलुक् । वह जिसका अनुज पुरुष हो ।

पुंसुवन (सं० क्लो०) पुंसवन ।

पुंस्कटी (सं० स्त्री०) पुरुषकी कटी ।

पुंस्कामा (सं० स्त्री०) पुमांसं कामयते कामि-अण्, पुंसोऽल्लोपे कृते बाहुल्यात् रो: सः । पुरुषकामा स्त्री, वह स्त्री जो पुरुषका अभिलाष करती हो ।

पुंस्कोकिल (सं० पु०) पुमान् कोकिलः कर्मधा० । पुरुषकोकिल, पुरुषपिकपक्षी ।

पुंस्ति (सं० क्लो०) सामभेद ।

पुंस्त्व (सं० क्लो०) पुंसः पुरुषस्य भावः, पुमस्-त्व । १ शुक्र, वीर्य । २ पुरुषत्व, पुरुषका धर्म ।

"सौम्या सौम्यैस्तथा शान्तैः पुंस्त्वं स्त्रीत्वञ्च स प्रभुः ।
बिभेद बहुधा देवः पुरुषैरसितैः सितैः ॥"
(मार्क०पु० ५०।१२)

(पु०) ३ भूतृण, गन्धतृण । ४ पुरुषकी स्त्रीसहवासकी शक्ति ।

पुंस्त्वदा (सं० स्त्री०) १ लक्षणाकन्द । (त्रि०) २ पुंस्त्वदायीमात्र ।

पुंस्त्वनाशन (सं० पु०) तृणभेद, एक प्रकारकी घास ।

पुंस्त्वविग्रह (सं० पु०) पुंस्त्वस्य शुक्रस्येव विग्रहो यस्य । भूतृण, एक सुगन्धयुक्त घास ।

पुंस्पुत्र (सं० पु०) पुमान् पुत्रः कर्मधा० । पुरुषपुत्र ।

पुंस्प्रजनन (सं० क्लो०) पुंलिङ्ग ।

पुंस्वत् (सं० त्रि०) पुं-विशिष्ट ।

पुआ (हिं० पु०) मीठे रसमें सने हुए आटेकी मोटी पूरी या टिकिया ।

पुआई (हिं० स्त्री०) सदाबहार नामक एक प्रकारका पेड़ । इसकी लकड़ी मजबूत, चिकनी और पीले रंगकी होती है । यह घरोंमें लकड़ी, कुरसी, मेज आदि बनानेके काममें लाई जाती है । लकड़ी प्रति घनफुट १७ या १८ सेर तौलमें होती है । यह पेड़ सिक्किम दार्जिलिङ्ग, भोटान आदि पहाड़ी प्रदेशोंमें आठ हजार फुटकी ऊंचाई तक होता है । डिडिया नामक पेड़ इससे बहुत कुछ मिलता जुलता है जिसके पत्तोंमें एक प्रकारकी सुगन्ध होती है ।

पुआल (हिं० पु०) १ ऊंचा जंगली पेड़ जिसकी लकड़ी पीली और बहुत मजबूत होती है तथा इमारतोंमें लगती है । यह पेड़ दार्जिलिङ्ग, भोटान और सिक्किमके जंगलोंमें मिलता है । २ पयाल देखो ।

पुक (सं० पु०) पु-बाहुलकात् कक् । पवित्र ।

पुकलन्ति—दाक्षिणात्यवासी एक कवि । ये मदुराराज वरगुण पाण्ड्यके सभापण्डित थे । इन्होंने नलवेनप नामक नलदमयन्तीका उपाख्यान और इरलिन सुरुकम नामक एक दूसरे रूपकालङ्कारकी रचना की है ।

पुकार (हिं० स्त्री०) १ रक्षा या सहायताके लिए चिल्लाहट, बचाव या मददके लिए दी हुई आवाज, दुहाई । २ अपनी ओर ध्यान आकर्षित करनेके लिये किसीके प्रति ऊंचे स्वरसे सम्बोधन, किसीका नाम लेकर बुलानेकी क्रिया या भाव, हांक, टेर । ३ मांगकी चिल्लाहट, गहरी मांग । ४ किसीसे पहुंचे हुए दुःख या हानिका उससे निवेदन जो दण्ड या पूर्त्तिकी व्यवस्था करे, प्रतिकारके लिए चिल्लाहट, नालिश, फरियाद ।

पुकारना (हिं० क्रि०) १ रक्षाके लिए चिल्लाना, छुटकारेके लिए आवाज लगाना, गोहार लगाना । २ ध्यान आकर्षित करनेके लिए कोई बात जोरसे कहना, घोषित करना, चिल्ला कर कहना । ३ नामका उच्चारण करना, धुन लगाना, रटना । ४ किसीका इसलिए जोरसे नाम लेना जिसमें वह ध्यान दे या सुन कर पास आए, नाम ले कर बुलाना, हांकना आवाज लगाना, टेरना । ५ किसी वस्तुको पानेके लिए आकुल हो कर बार बार उसका नाम लेना, चिल्ला कर मांगना । ६ संज्ञा द्वारा निर्देश करना, अभिहित करना, नामकरण करना । किसीसे पहुंचे हुए दुःख या हानिको उससे कहना जो दण्ड या पूर्त्तिकी व्यवस्था करे, प्रतिकारके लिए किसीसे चिल्ला कर कहना, फरियाद करना, नालिश करना ।

पुक्कश (सं० पु०) पुक कुत्सितं कशति गच्छतीति कश-अच । १ चण्डाल ।

"अकृतज्ञोऽधमः पुंसां विमुक्तो नरकान्नरः।
मत्स्यस्तु वायसः कूर्मः पुक्कशो जायते ततः॥"
(मार्क०पु० ५०।१२)

२ निषादसे शूद्रागर्भजात जातिविशेष। मनुस्मृति-के मतसे निषाद पुरुष और शूद्राके गर्भसे तथा उशनाके मतसे शूद्रपुरुष और क्षत्रिया स्त्रीके गर्भसे इस जातिकी उत्पत्ति है।

पुक्कष (सं० पु०) पुक् कुत्सितं कषतीति कष-गतौ अच्। चण्डाल।

पुक्कस (सं० पु०) पुक् कुत्सितं कसतीति कस-अच्। १ चण्डाल। पुक्कस जातिके साथ संसर्गादि करनेसे पतित होना पड़ता है। इसका संसर्ग वर्जनीय है। पुक्कश देखो। (त्रि०) २ अधम, नीच।

पुक्कसी (सं० स्त्री०) १ कालिका, कालापन। २ नीली, नीलका पौधा। ३ पुष्पकालिका। पुक्कस जातौ ङीष्। ४ पुक्कस-स्त्री।

पुख (हिं० पु०) पुष्य देखो।

पुखता (हिं० वि०) पुख्ता देखो।

पुखराज (हिं० पु०) एक प्रकार रत्न या बहुमूल्य पत्थर जो प्रायः पीला होता है, पर कभी कभी कुछ हलका नीला-पन या हरापन लिये भी होता है। स्थानभेदसे इसके भिन्न भिन्न नाम हैं। यथा, फरासी—Topase, जर्मन और रूस—Topas; हिन्दी-पुखराज, पोखराज, इटली—Topazio, मलयाल—रत्नचम्पक, पारस्य—जबरजाद, शिङ्गापुर—पुष्परागम्, स्पेन—Topacio, तामिल और तेलगू—पुष्पोयरागम्, बङ्गला—पोखराज, संस्कृत-पुष्प-राग, पीतरत्न पीतरत्नक, मञ्जुमणि, वाचस्पतिवल्लभ।

कुछ पीलापन लिये मनोहर पाण्डुवर्ण प्रस्तरको पुष्पराग कहते हैं। जो पुष्पराग कुछ पीलापन लिए लाल रंगका हो, उसे कौरुण्ट और जो कुछ ललाई लिए पीले रंगका हो, उसे काषायक कहते हैं। जो कुछ ललाई लिए सफेद हो, वह सोमलक, जो बिलकुल लाल हो वह पद्मराग और जो नीला हो, वह इन्द्रनील है। ब्राह्म-णादि जातिभेदसे पुष्पराग भी चार प्रकारका है। साधा-रणतः इन सब स्फटिकोंसे शुक्ल, पीत, ईषत् शुक्ल और कृष्णवर्णकी छाया निकलती है, इसीसे इनके चार भेद निर्दिष्ट हुए हैं। रत्नशास्त्रविदोंका कहना है, कि पुष्परागका मूल्य और धारण फल वैदुर्यमणिके सदृश है। किन्तु इसमें विशेष गुण यह है, कि इसके धारणसे बन्ध्या स्त्री भी पुत्रवती हो सकती है। यह शणपुष्पकी तरह कान्तियुक्त, स्वच्छभाव और चिकना होता है। इस में धनी और पुत्रवान बनानेका गुण है। रत्नकोविदगण ईषत् पीत, छायायुक्त, स्वच्छ और मनोहर कान्तिविशिष्ट पुष्परागको ही उत्कृष्ट तथा अत्यन्त पवित्र मानते हैं। जो व्यक्ति उत्तम छायाविशिष्ट, पीतवर्ण, गुरु, विशुद्ध-वर्ण, स्निग्ध, निर्मल, सुवृत्त और सुशीतल पुष्पराग धारण करता है, उसकी कीर्त्ति, शौर्य, सुख, अर्थ और आयु बढ़ती है। कृष्णविन्दुचिह्नाङ्कित, पक्ष धवल अथच मलिन, वजनमें लघु, छायाविहीन और शर्करायुक्त पुष्पराग ही दोषयुक्त है। इसका गुण—अम्लरस, शीतल, वायुनाशक, अग्निवृद्धिकर तथा यश, लक्ष्मी और अभि-ज्ञताप्रदायक है।

वैज्ञानिक परीक्षा और आलोचना द्वारा यह जाना गया है, कि इसका आपेक्षिक गुरुत्व हीरककी अपेक्षा ३.६ से ४.२ अधिक है, पर उससे कुछ कोमल है। हीरेकी तरह नाना आकारोंमें काट कर इसका व्यवहार करते हैं। उक्त मणिकी तरह यह भी समधिक स्वच्छ, उज्ज्वल, दीप्तिशाली और द्विधा ज्योतिर्विस्फारक है। उत्ताप वा घर्षणसे इसमें वैद्युतिक शक्तिका आभास पाया जाता है। सामान्य अग्निके उत्तापसे इसको विशेष क्षति नहीं होती। अत्यन्त अधिक उत्ताप देनेसे यह फूट जाता और सोहागा देनेसे कांचकी तरह गल जाता है। सालफुरिक एसिडमें डुबोनेसे हाइड्रोक्लोरिक एसिड पाया जाता है, किन्तु मुरिएटिक एसिडमें मिलनेसे इसका कोई व्यतिक्रम नहीं दीख पड़ता। पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने पुखराजको दो श्रेणियोंमें विभक्त किया है। १म Oriental वा पूर्वदेशजात, यह एक मात्र फिटकरी धातुका रूपान्तरमात्र है। २य Occi-dental वा पाश्चात्यदेशोद्भव, इसमें केवलमात्र ५७ भाग फिटकरी और अवशिष्टांश शिलिका तथा क्लोरिन है। भारतप्रभृति पूर्वदिग्वर्त्ती देशोंमें जो पुष्परागमणि खानमें पाई जाती है, वही सर्वोत्कृष्ट और समधिक

प्रभाविशिष्ट है। इसके बाद पश्चिमदिग्वर्त्ती अमेरिकाके अन्तर्गत ब्रेजिल देशोत्पन्न पुष्पराग ही जनसाधारणकी आदरकी वस्तु है। एतद्भिन्न इङ्गलैण्ड, जर्मनी, रूस आदि यूरोपके नाना स्थानोंमें तथा सिंहल आदि भारतीय द्वीपोंमें निकृष्ट गुणविशिष्ट नाना वर्णोंके पुखराज देखनेमें आते हैं।

प्राचीन हिब्रू ग्रन्थमें पुखराज पित्तदो (Pittdoh) नामसे उल्लिखित है। पण्डितवर आरनपिक् इसे संस्कृत पीत शब्दसे उत्पन्न बतलाते हैं। क्योंकि कितने पुखराज भी पीताभ वर्णके देखे जाते हैं। उक्त महात्माने यह भी कहा है, कि ग्रीकोंका तोपाजियन (Topazion) हिब्रू (Pittdoh or Tipdoh) शब्दका रूपान्तरमात्र है। किन्तु उनका तोपाजियन (वर्त्तमान Perdot) अंग्रेजी Topaz (पुष्पराग)से स्वतन्त्र है। प्राचीन सभ्यजगत्‌में रोमन और ग्रीकोंके मध्य भारतीय पुखराज Chrysolite नामसे प्रसिद्ध था। बाइबल ग्रन्थमें भी इस पत्थरका उल्लेख है। मध्ययुगमें यह साधु जेम्स (Apostle James the younger)-का चिह्न समझा जाता था। हीरकादि मणिकी तरह इसे भी इच्छानुरूप आकारोंमें कल द्वारा काटते और पालिश करते हैं। विस्तृत विवरण हीरक शब्दमें देखो।

पत्थर आदिको सुन्दर आकारमें सुचारुरूपसे काट कर उसकी ज्योति बढ़ानेके लिये अनेक नियम प्रचलित हैं। पूर्वकालमें हीरक, पुखराज, चूना पत्थर आदि मूल्यवान्‌पत्थरोंके ऊपर नक्काशी काढ़ी जाती थी। उस समयके नक्काश ऐसे सुकौशलसे उसके ऊपर नाम अथवा और कोई विषय खोदते थे, कि उसे देख कर विस्मयान्वित होना पड़ता था। किन्तु अभी उनका वह हुनर जाता रहा। ग्रीकोंके मध्य अभी नाना मूर्त्ति वा चित्रखोदित पुखराज-पत्थर देखे जाते हैं। सम्राट् हाड्रियन (Hadrianus Guildmus of Naples)-के पुष्परागनिर्मित मोहरकी एक अंगूठी थी। उस अंगूठी पर 'Natura deficit Fortuna mutatur Deus omina Cernit' आदि बातें तीन पंक्तियोंमें लिखी हैं। पेरिसशहरके राजकीय पुस्तकागारमें पुखराज निर्मित २य फिलिपकी एक अंगूठी (signet-ring) और डान कारलोकी प्रतिमूर्त्ति तथा एक और पत्थरकी मूर्त्ति विद्यमान है। सेण्टपिटर्स महानगरीमें पत्थरके एक टुकड़े पर नाना कारुकार्योंके मध्य एक नक्षत्र मण्डल (constellation of serius) चित्रित हैं। एक पारसी जहौरीके पास पुखराजका एक तावीज है जिसके ऊपर अरबी अक्षरमें 'ईश्वर ही सिद्धका मूल है' ऐसा लिखा है। सेलनी (cellini)-ने लिखा है, कि जब वे (१५२४-२७ ई०में) रोमनगर आये, तब उन्होंने सरस्वतीमूर्त्ति-खोदित एक पत्थर पाया था।

हीरकादिकी तरह पुखराज भी अन्धकारमें प्रकाश देता है। लेडी हिल्डगार्ड (Lady Hildegarde, wife of Theodoric Count of Holland)ने जो पुखराज मोन्सियर एडेलवार्ट (Monsieur Adelbert) को दिया था उसमें ऐसी ज्योति थी, कि बिना प्रदीपालोकके गानकी किताबें आदि पढ़ी जाती थीं।

प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रके मतसे पुखराजका गुण—अम्ल, शीतल, वातघ्न और दीपन। शोधित रत्नभक्षणमें मधुर, सारक, चक्षुका हितकर, शीतवीर्य और विषनाशक आदि गुण देखा जाता है। हाथमें पहननेसे आयु, श्री और प्रज्ञाकी वृद्धि होती है। यह मङ्गलजनक, मनोज्ञ और ग्रहदोषविनाशक है। रत्नमालाकारके मतमें वृहस्पतिके सन्तोषार्थ पुष्पराग प्रदान करनेसे दोषका प्रतिकार होता है। विषसंस्पर्शसे यह विवर्ण हो जाता है तथा उत्तप्त जलमें डुबो देनेसे यह उसका ताप विनष्टकर डालता है। उत्तमरूपसे चूर्ण कर मदिराके साथ सेवन करनेसे हिक्का, अनिद्रा आदि रोग जाते रहते हैं।

उज्ज्वलता, स्वच्छता, रङ्ग आदि देख कर इसका मोल होता है। भ्रमणकारी टेभरनियर जब १६६५ ई०में सम्राट् औरङ्गजेबकी सभामें आये थे, तब उन्होंने १८१ रत्ती वा १५७ कैरेट वजनका एक पुखराज देखा था। गोआबन्दरमें सम्राट्‌ने वह पत्थर १ लाख ८० हजार रुपयेमें खरीदा था।

पुखीकवि—मैनपुरीके रहनेवाले एक ब्राह्मण कवि। इन्होंने सम्वत् ८०३में जन्मग्रहण किया था। इनकी गिनती तोष कविकी श्रेणीमें की गई है। यों तो ये कई एक ग्रन्थ बना गये हैं, पर अभी एक भी ग्रन्थ देखनेमें नहीं आता।

पुगाना (हिं० क्रि०) १ गोलीके खेलमें गोलीका गड्ढेमें डालना। २ पूरा करना, पुजाना

पुगाम—ब्रह्मदेशान्तर्गत ऐरावतीनदी-तीरवर्त्ती एक प्राचीन नगर। पगमा देखो।

पुघा—काश्मीर राज्यके अन्तर्गत एक उपत्यका। यहां सोहागा (Borax) से परिपूर्ण एक छोटा ह्रद है। इस ह्रदके जिस भागमें सोहागा और बोरेट-आव-सोडा मिलता है, वहां सिन्धुगामी एक जलस्रोतके सिवा कई उष्ण प्रस्रवण हैं जिनसे जलसिञ्चनका काम होता है। ह्रदगर्भ और तीरवर्त्ती समतलभूमीमेंसे जो सोहागा और श्वेत लवण खोद कर लाया जाता है उसमें कई चीजें मिली रहती हैं। प्रति वर्ष यहाँसे लगभग २० हजार मन सोहागा निकाला जाता और शोधनार्थ नरपुर, रामपुर और कुलू आदि स्थानोंमें भेजा जाता है। वहां यह आगमें शोधित हो कर प्रकृत सोहागेके आकारमें बाजारमें बिकता है। अभी तिब्बत और चीनसाम्राज्यके अन्तर्गत रोदक नामक स्थानसे अपेक्षाकृत उत्कृष्ट श्वेत लवण और सोहागा मिलने लगा है जिससे पुघाके वाणिज्यका ह्रास हो गया है। रोदकका सोहागा ऐसा निर्मल होता है, कि उसे शोधने की आवश्यकता नहीं पड़ती। नीति नामक गिरिपथ हो कर उक्त लवण और सोहागा भारतवर्षमें और यहांसे यूरोपखण्डमें भेजा जाता है।

पुङ्खीर (सं० क्ली०) पुंप्रियं चोरं। पुरुषप्रिय चोर।

पुङ्ख (सं० पु०) पुमांसं खनतीति खन ड। १ बाण-मूल, बाणका पिछला भाग जिसमें पर खोंसे रहते थे। २ मङ्गलाचार।

पुङ्खतीर्थ (सं० क्ली०) रामकृत तीर्थभेद।

पुङ्खित (सं० त्रि०) पुङ्ख-इतच्। पुङ्खयुक्त शर, जिसमें पर लगे हों।

पुङ्खिलतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद, रामतीर्थ।

पुङ्गट (सं० पु०) पुंनचल।

पुङ्ग (सं० पु० क्ली०) पुञ्ज पृषोदरादित्वात् साधुः। समूह।

पुङ्गनूर—मन्द्राज प्रदेशके उत्तर आरकोट जिलान्तर्गत एक तहसील और जमींदारी। यह अक्षा० १३° १०' से १३° ४०' उ० तथा देशा० ७८° २२' से ७८° पू० पहाड़के ऊपर अवस्थित है। भूपरिमाण ६४८ वर्गमील और जनसंख्या लाखके करीब है। इसमें एक नगर और ५६४ ग्राम लगते हैं। जमींदारी १३वीं शताब्दीमें स्थापित हुई है। यहांके जमींदारने महिसुरकी लड़ाईमें कार्नवालिसको रसद दे कर सहायता पहुंचाई थी। उन्होंने तथा उनके उत्तराधिकारियोंने बहुत दिनों तक मुस्ताजिरोंके रूपमें राज्यशासन किया। १८३८ ई०में उक्त जमींदारको निःसन्तानावस्थामें मृत्यु हुई, पीछे राजगद्दीके लिये आपसमें तकरार उठी। अन्तमें जमींदारीके यथार्थ उत्तराधिकारी उनके भाई ठहराये गये। १८६१ ई०में बृटिश गवर्मेण्टकी ओरसे उन्हें स्थाई सनद दी गई। यहां के जमींदार लिङ्गायत श्रेणीके हैं।

२ उक्त जमींदारी और तहसीलका सदर। यह अक्षा० १३° २२' उ० और देशा० ७८° ३५' पू०के मध्य समुद्रपृष्ठसे २००० फुट ऊंचे में अवस्थित है। पहले एक समय इस नगरने अपूर्व श्री धारण की थी। वर्त्तमान जमींदारके राजभवन इसी नगरमें विद्यमान है। एक पुरातन किला, राजप्रासाद और मसजिद आज भी भग्नावस्थामें पड़ी है, किन्तु उनमें उतना शिल्पचातुर्य दिखाई नहीं देता। एतद्भिन्न काशीविश्वेश्वर, सोमेश्वर, माणिक्यवरदराज, रामस्वामी आदि मन्दिरोंमें तथा 'कोनेरू' स्नानकुण्ड और पान्थशालामें कई एक शिलालिपियां हैं। कहते हैं, कि माणिक्यवरदराजस्वामीका मन्दिर राजा जनमेजयका बनाया हुआ है।

१३वीं शताब्दीके मध्यभागमें सीताप्प गौनी बाबू नामक वर्त्तमान वंशके कोई पूर्वपुरुष प्रचुर सम्पत्ति लाभ कर इस प्रदेशमें बस गये। १२४८ ई०में उन्होंने पुङ्गनुर नगर और दुर्ग बनवाया। १४१८ ई०में उक्त वंशके प्रधान व्यक्ति तिमप्पगौनि बाबूने कोलर नगर और दुर्गकी स्थापना की थी। उनकी मृत्युके बाद उनके लड़के इम्मड़ि तिम्मय्य राजगद्दी पर बैठे। इस समय राजा कृष्णदेवराय विजय नगरमें राज्य करते थे। इम्मड़िने आदिलशाही राजाओंके विपक्षमें घमसान युद्ध किया और अपने अधिकारको अक्षुण्ण रखनेके लिये १५१० ई०में ३ दुर्ग बनवाये। उनके लड़के चिक्कराय तिम्माय्य राजसम्मानित हुए और अपने बाहुबलसे अनेक स्थानों

पर अधिकार कर बैठे। उन्हींके राजत्वकालमें पुङ्गनुर नगर बसाया गया। उनकी मृत्युके बाद उनके लड़के चिक्कराय वासव सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। १६३८ ई०में मुसलमानोंने इस सम्पत्तिका कुछ अंश दखल कर लिया और अवशिष्टांशके लिये उन्हें एक सनद दे दी। १६४२ ई०में मरहठोंने इस राज्य पर अधिकार जमाया। मुसलमानराजने उनके लड़के वीर चिक्कराय-के साथ अच्छा सद्व्यवहार किया था, किन्तु उसके बदले-में जब जमींदार इम्मड़ि चिक्कराय राजकर देनेमें असमर्थ हो गये, तब उनको पूर्वतन सम्पत्तिका कुछ अंश राजकोषमें ले लिया गया। १७१३ ई० में कड़ापा-के नवाबने मरहठोंके कवलसे यह स्थान छीन लिया। १७५५ ई०में मरहठोंके साथ कड़ापा नगरमें युद्ध छिड़ा। इम्मड़िके पुत्र नवाबके पक्षमें लड़ कर प्राण गंवाये। १७०८ ई०में हैदरअलीने यहांके पोलिगरको ससैन्य परास्त कर पुङ्गनूर पर अधिकार किया। अनेक गोलमालके बाद १७७८ ई०में अंगरेजी सहायतासे यहांके पोलिगरने अपनी सम्पत्तिका पुनरुद्धार किया। १७८० ई०में हैदरके साथ फिरसे पुङ्गनूर जमींदारका युद्ध छिड़ा। युद्धमें जमींदारके मारे जाने पर उनके लड़के उक्त सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हुए। किन्तु राज-कर देनेमें असमर्थता प्रकट कर वे भाग गये और अंगरेजोंके साथ मिल कर टीपू सुलतानके विरुद्ध युद्ध ठान दिया। विख्यात वन्दिवासके युद्धमें इन्होंने अंग्रेजों-की सहायता की थी। टीपूकी मृत्युके बाद उन्होंने पैतृक सम्पत्तिका अधिकार पाया। किन्तु सम्पत्तिका इन्हें खजाना देना पड़ता है। अभी नगरकी दिनों दिन उन्नति होती जा रही है। प्रतिवर्ष वैशाखमें यहां एक भारी मेला लगता है जिसमें दूर दूर स्थानोंके मवेशी बिकनेके लिये आते हैं। जमींदारप्रासादके प्राङ्गणमें जीवित और मृत पशुपक्षी आदि रक्षित हैं।

पुङ्गल (सं० पु०) पुङ्गं देहसमूहं लाति आदत्ते इति पुङ्ग-ला-क। आत्मा।

पुङ्गव (सं० पु०) पुमान् गौः (गोरद्धितलुकि पा ५।४।९२) इति टच्। १ वृष, बैल। पुङ्गव शब्द उत्तर पदस्थ होनेसे अर्थात् यह शब्द किसी पद या शब्दके आगे लगनेसे श्रेष्ठका अर्थ देता है। यथा, नरपुङ्गव, वीरपुङ्गव। २ औषधभेद, एक औषधका नाम।

पुङ्गवकेतु (सं० पु०) पुङ्गवः वृषः केतुरस्य। वृषध्वज, शिव।

पुचकार (हिं० स्त्री०) प्यार जतानेके लिए ओठोंसे निकाला हुआ चूमनेका-सा शब्द, चुमकार।

पुचकारना (हिं० क्रि०) चूमनेका-सा शब्द निकाल कर प्यार जताना, चुमकारना।

पुचकारी (हिं० स्त्री०) प्यार जतानेके लिए ओठोंसे निकाला हुआ चूमनेका सा शब्द, चुमकार।

पुचरस (हिं० पु०) कई धातुओंका मेल, ऐसी धातु जिसमें मिलावट हो।

पुचारना (हिं० क्रि०) पोतना, पुचारा देना।

पुचारा (हिं० पु०) १ भींगे कपड़ेसे पोंछनेका काम, किसी वस्तुके ऊपर पानीसे तर कपड़ा फेरनेकी क्रिया। २ वह गीला कपड़ा जिससे पोतते या पुचारा देते हैं। ३ हलकी पुताई या लिपाई, पतला लेप करने-का काम, पोता। ४ लेप करने या पोतनेके लिए पानीमें घोली हुई वस्तु। ५ किसी वस्तुके ऊपर कोई गीली वस्तु फेर कर चढ़ाई हुई पतली तह, हलका लेप। ६ प्रसन्न करनेवाले वचन, किसीको अनुकूल या मनानेके लिए कहे हुए मीठे और सुहाते वचन। ७ दगी हुई बन्दूक या तोपकी गरम नलीको ठंढी करनेके लिए उस पर गीला कपड़ा डालनेकी क्रिया। ८ किसी ओर प्रवृत्त करनेवाले वचन, उत्साह बढ़ानेवाली बात, बढ़ावा। ९ झूठी प्रशंसा, ठकुरसुहाती, चापलूसी, खुशामद।

पुच्छ (सं० क्ली० पु०) पुच्छतीति पुच्छ-अच्। १ लाङ्गूल, पूंछ, दुम। २ पश्चाद्भाग, किसी वस्तुका पिछला भाग। ३ लोमवत् लाङ्गूल, रोएंदार पूंछ। ४ कपाल।

पुच्छकण्टक (सं० पु०) पुच्छे कण्टको यस्य। वृश्चिक।

पुच्छटि (सं० क्ली०) पुच्छं प्रमादे अटतीति अटगतौ इन्। अङ्गुलिमोटन, उंगली मटकाना।

पुच्छटी (सं० स्त्री०) पुच्छटि-स्त्रियां ङीष्। उंगली मटकाना।

पुच्छदा (सं० स्त्री०) पुच्छमिव ददातीति दा-क। लक्ष्मणा-कन्द।

पुच्छधि (सं॰ पु॰) पुच्छं धीयतेऽत्र पुच्छ-धाकि। रोम-युक्त अवयव, रोएंदार अङ्ग।

पुच्छन्तक (सं॰ पु॰) तक्षकवंशीय नागभेद।

पुच्छफल (सं॰ पु॰) बदरीवृक्ष, बेरका पेड़।

पुच्छमूल (सं॰ क्लो॰) पुच्छस्य मूलं। पुच्छका मूल, पूंछकी जड़।

पुच्छल (हिं॰ वि॰) पूंछदार, दुमवाला।

पुच्छिका (सं॰ क्लो॰) माषपर्णी, जंगली उड़द।

पुच्छिन् (सं॰ पु॰) पुच्छ-इनि। १ अर्कवृक्ष, आक, मदार। २ कुक्कुट, मुर्गा। (त्रि॰) ३ लाङ्गूलयुक्त दुम-दार, पूंछवाला।

पुच्छी (हिं॰ पु॰) पुच्छिन् देखो।

पुच्छेश्वर (सं॰ पु॰) तीर्थस्थानभेद, एक तीर्थका नाम।

पुछला (हिं॰ पु॰) १ आश्रित, चापलूस, पिछलग्गू, खुशामदसे पीछे लगा रहनेवाला। २ साथ न छोड़ने-वाला, बराबर पीछे लगा रहनेवाला, हमेशा साथमें दिखाई पड़नेवाला। ३ साथमें जुड़ी या लगी हुई वस्तु या व्यक्ति जिसकी उतनी आवश्यकता न हो। ४ लम्बी दुम, बड़ी पूंछ। ५ पूंछकी तरह जोड़ी हुई वस्तु। ६ लपे-टनकी बाईं ओरका खूंटा।

पुछार (हिं॰ पु॰) १ आदर करनेवाला, पूछनेवाला, खोज खबर लेनेवाला। २ पुंछार देखो।

पुछिया (हिं॰ पु॰) दुंबा मेढ़ा।

पुछैया (हिं॰ पु॰) ध्यान देनेवाला, पूछनेवाला, खोज खबर लेनेवाला।

पुजना (हिं॰ क्रि॰) १ आराधनाका विषय होना, पूजा करना। २ सम्मानित होना, आदृत होना।

पुजवाना (हिं॰ क्रि॰) १ आराधन कराना, पूजन कराना, पूजा करनेमें प्रवृत्त करना। २ अपनी सेवा-शुश्रूषा कराना, आदर सम्मान कराना। ३ पूजाप्रतिष्ठा लेना, अपनी पूजा कराना।

पुजाई (हिं॰ स्त्री॰) १ पूजनेकी मजदूरी या दाम। २ पूजनेका भाव या क्रिया। ३ पूजा करनेकी क्रिया या भाव। ४ पूजा करनेकी मजदूरी।

पुजाना (हिं॰ क्रि॰) १ पूजामें प्रवृत्त या नियुक्त करना, दूसरेसे पूजा कराना। २ अपनी पूजाप्रतिष्ठा कराना, आदर सम्मान प्राप्त करना, भेंट चढ़वाना। ३ धन वसूल करना। ४ किसी घाव गड्ढे आदिको बराबर करना, भर देना। ५ परिपूर्ण करना, सफल करना। ६ पूर्त्ति करना, पूरा करना, कमी दूर करना।

पुजापा (हिं॰ पु॰) १ देवपूजनकी सामग्री, पूजाका सामान, जैसे नैवेद्य, पञ्चपात्र, फूलपत्र, अरघा इत्यादि। २ पूजाकी सामग्री रखनेकी झोली, पुजाहो।

पुजारी (हिं॰ पु॰) किसी देवमूर्त्तिकी सेवा-शुश्रूषा करनेवाला, पूजा करनेवाला, जो पूजा करता हो।

पुजाहो (हिं॰ स्त्री॰) पूजाकी सामग्री रखनेका पात्र वा थैली।

पुजेरी (हिं॰ पु॰) पुजारी देखो।

पुजैया (हिं॰ पु॰) १ पूरा करनेवाला, भरनेवाला। २ पूजा करनेवाला। (स्त्री॰) ३ पुजाई देखो।

पुजौरा (हिं॰ पु॰) १ पूजनके समय देवताको अर्पित करनेका सामान। २ पूजा, अर्चा।

पुञ्च—काश्मीर राज्यके पुञ्चजागीरका एक प्रसिद्ध शहर। यह अक्षा॰ ३३° ४५´ उ॰ और देशा॰ ७४° ६´ पू॰ समुद्र-पृष्ठसे ३३०० फुट ऊंचेमें बसा हुआ है। जनसंख्या आठ हजारसे ऊपर है। शहरके दक्षिण-पश्चिम कोनेमें एक दुर्ग है। उस दुर्गमें राजा रहते हैं। यहांकी आब-हवा अच्छी है, पर गर्मी हदसे ज्यादा पड़ती है।

पुञ्ज (सं॰ पु॰) पिञ्जते पिञ्जयतीति वा पिजि-अच्, पृषोदरादित्वात् साधुः। समूह, राशि, स्तूप, ढेर।

पुञ्ज—गुजरातवासी एक राजपूत राजा। इदारपुरमें इनकी राजधानी थी। इनके पिता राजा रणमल्लने ८१४ हिजरीमें दिल्लीके पठान-सम्राट् सुलतान नासीरउद्दीन अहमदके विरुद्ध अस्त्रधारण किया था। उस युद्धमें उनकी पूरी हार हुई थी। अन्तमें उन्होंने अपनी भूल स्वीकार कर सुलतानको यथासम्भव कर दे उनसे क्षमा-प्रार्थना की। पिताके मरने पर पुञ्जराज इदारपुरके सिंहासन पर बैठे। उस समय उनके अधीन लगभग २००० अश्वारोही सेना थी। ८१६ हिजरीमें सम्राट् नासीरउद्दीनके हाथसे गुजरातका अधिकार लेनेके लिये मालवराज सुलतान होसङ्गने एक षड़यन्त्र रचा।

इसमें पुञ्जराज आदि हिन्दू-राजाओंने भी साथ दिया। ८१८ हिजरीमें सुलतान अहमद स्वयं दलबलके साथ पहुंचे और विद्रोहका दमन किया। पुञ्जराज आदि हिन्दू-राजाओंने बचावका कोई रास्ता न देख दिल्लीश्वरकी शरण ली। किन्तु ८२८ हिजरीमें सुलतान अहमदने पुनः इदारपुर पर आक्रमण कर दिया। इस बार पुञ्जराज अपनी जान ले कर पर्वतमय जङ्गलको भागे। दिल्लीश्वरके आदेशानुसार उनका राज्य मरुभूमिमें परिणत किया गया। ८३१ हिजरीमें इन्होंने फिर अपना मस्तक उठाया इस बार शत्रुदलको हार [illegible] सबोंने मिल कर पुञ्जराजको तंग तंग कर हुई। आखिर [illegible] डाला। पुञ्जराज एक सङ्कीर्ण गिरिपथमें जा छिपे हाथी पर सवार हो विपक्ष सेनाने बड़ी तेजीसे उनका पीछा किया। पुञ्जका घोड़ा हाथीको देख कर भड़क उठा और गिरिगह्वरमें आरोही समेत कूद पड़ा। यहीं पर पुञ्जकी जीवलीला शेष हुई। दूसरे दिन सुबहको एक काठुरिया पुञ्जका मस्तक काट कर सम्राट्‌के पास लाया। सम्राट्‌ने पुञ्जराजको देख अपने मन्त्रीके समीप उनकी खूब प्रशंसा की थी। बाद इदर पर दखल जमा कर सम्राट्‌ने वहांका शासन-भार उनके पुत्र वीर रायके हाथ समर्पण किया।

पुञ्जदल (सं० क्लो०) सुनिषण्ण शाक, सुसनाका साग।

पुञ्जराज (सं० पु०) पुञ्जानां राजा, टच्समासान्तः। १ दलपति, सरदार। २ एक ग्रन्थकार। ये मलवारके श्रीमालवंशसम्भूत थे। इनके पिताका नाम था जीवनेन्द्र। इन्होंने ध्वनिप्रदीप, शिशुप्रबोधालङ्कार और सारस्वतप्रक्रिया टीका नामक तीन ग्रन्थ और हेलराजकी सहायतासे हरिकारिका-टीका रची है। ३ ग्रन्थहीराप्रकाशके प्रणेता।

पुञ्जशस् (सं० अव्य०) पुञ्ज धारार्थे चशस। पुञ्ज पुञ्ज, राशि राशि, ढेरका ढेर, बहुत-सा।

पुञ्जाजि—चापोत्कटवंशीय एक राजा। चापोत्कट और चावड़ा देखो।

पुञ्जातुक (सं० पु०) वृक्षभेद, जीवन नामक पेड़।

पुञ्जि (सं० पु०) पिञ्जयति पिजि हिंसाबलदाननिकेतने इन् पृषोदरादित्वात् साधुः। समूह, ढेर।

पुञ्जिक (सं० पु०) पुञ्जीभूत तुषार, जमी हुई बर्फ।

पुञ्जिकस्थला (सं० स्त्री०) अप्सरोभेद, एक अप्सराका नाम।

पुञ्जिकास्तना (सं० स्त्री०) अप्सरोभेद, एक अप्सरा।

पुञ्जिष्ठ (सं० पु०) पुञ्जो तिष्ठति स्था-क, अम्बाम्बेत्यादिना षत्वं। पक्षिपुञ्जघातक।

पुञ्जोल (सं० पु०) पिजि बाहुलकात् इल, पृषोदरादित्वात् साधुः। पिञ्जल।

पुट (सं० क्लो०) पुटतीति पुट, संश्लेषे-क। १ जातीफल, जायफल। २ खुर, घोड़ेकी टाप। ३ दोना, कटोरा। ४ आच्छादन, ढाकनेवाली वस्तु। ५ दोनेके आकारकी वस्तु, कटोरेकी तरहकी चीज। ६ कटोरेके आकारके दो बराबर बरतनोंको मुंह मिला कर जोड़नेसे बना हुआ बंद घेरा, संपुट। ७ अन्तःपट, अंतरौटा। ८ एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरणमें दो नगण, एक मगण और एक यगण होता है। ९ औषध पकानेका पात्र विशेष।

भावप्रकाशके मतसे—रसप्रदीपोक्त धात्वादि मारणोपयुक्त पुटका विधान इस प्रकार है। मारित लौहादि यद्यपि फिरसे किसी तरह प्रकृतिस्थ नहीं किया जाता और जलमें गिरानेसे तैरने लगता है, तो भी यही प्रकृति मारित और श्रेष्ठगुणदायक है। यह गुण पुट द्वारा ही होता है। निम्नलिखित प्रणालीसे पुट करना होता है।

दो हाथ लम्बा, दो हाथ चौड़ा, दो हाथ गहरा एक चौखूंटा गड्ढा खोद कर उसमें बिना पथे हुए हजार उपले डाल दे। उपलोंके ऊपर औषधका मुंहबन्द बरतन रख दे और ऊपरसे भी चारों ओर पांच सौ उपले डाल कर आग लगा दे। दवा पक जायगी। इस प्रणालीसे जो पुट किया जाता है, उसे महापुट कहते हैं। अलावा इसके गजपुट, कौक्कुटपुट और भाण्ड पुट हैं। सवा हाथ लम्बा, सवा हाथ चौड़ा, सवा हाथ गहरा एक गड्ढा बना कर उसमें पांच सौ उपले डाल दे। पीछे औषधका मुंहबन्द बरतन उन उपलों पर रख दे। अनन्तर ऊपरसे और पांच सौ उपले डाल कर आग लगा दे। इसे गजपुट कहते हैं। सब प्रकारके पुटोंमें गजपुट श्रेष्ठ है।

कौक्कुटादिपुट—अरत्नि (कनिष्ठाङ्गुल भिन्न मुष्टि-परिमाण) कुण्डमें पाक करनेसे वाराहपुट, वितस्ति परिमाण कुण्डमें पाक करनेसे कौक्कुटपुट, किन्तु किसी किसी पण्डितके मतसे १६ अङ्गुल कुण्डमें पाक करनेसे भी कौक्कुटपुट होता है।

कपोतपुट—अष्टकोण कुण्डके मध्य पुट द्वारा जो पाक किया जाता है, उसे कपोतपुट कहते हैं। गोचारण-भूमिस्थ गोके खुर द्वारा कुचले हुए गोमय चूर्णको गोबर कहते हैं। यह गोबर रससाधनमें प्रशस्त है।

वृहत्भाण्डस्थित औषधका गोबर द्वारा जो पुटपाक किया जाता है, उसे गोवरपुट कहते हैं। गोवरपुटसे पारा भस्म हो जाता है। तुषपूर्ण एक बड़े बरतनमें दवा रख कर उसमें अग्नि डाल दे। ऊपरसे एक दूसरा बरतन ढक दे। इस प्रकार जो पाक किया जाता है उसे भाण्डपुट कहते हैं। (भावप्र० द्वितीयभाग पुटविधि)

पुट (हिं० पु०) १ किसी वस्तुसे तर करने या उसको हलका मेल करनेके लिये डाला हुआ छींटा, हलका छिड़काव। २ अल्पमात्रामें मिश्रण, बहुत हलका मेल देनेके लिये घुले हुए रंग या और किसी पतली चीजमें डुबाना।

पुटक (सं० क्ली०) पुटवत् कायतीति कै-क। १ पद्म, कमल। २ पुट देखो।

पुटकन्द (सं० पु०) पुटमिव कन्दोयस्य। कोलकन्द, वाराहीकन्द।

पुटकित (सं० त्रि०) पुटक-इतच्। आवद्ध, आवृत।

पुटकिनी (सं० स्त्री०) पुटकानि सन्त्यत्रेति पुटक-इनि। (पुष्करादिभ्यो देशे। पा ५।२।१३५) स्त्रियां ङीप्। १ पद्म-युक्त देश, कमलोंसे भरा हुआ देश। २ पद्मिनी, कमलिनी। ३ पद्मसमूह। ४ पद्मलता।

पुटकी (हिं० स्त्री०) १ दैवी आपत्ति, वज्रपात, आफत, गजब। २ आकस्मिक मृत्यु, मौत जो एकबारगी आ पड़े। ३ पोटली, गठरी। ४ बेसन या आटा जो तर-कारीके रसेको गाढ़ा करनेके लिए मिला दिया जाता है, आलन।

पुटग्रीव (सं० पु०) पुटमिव ग्रीवा यस्य। १ गगरी, गगरी। २ ताम्रकुम्भ, तांबेका घड़ा।

पुटपत्री (सं० स्त्री०) एक प्रकारका पत्रशाक।

पुटपाक (सं० पु०) पुटेन पाकः। १ पुट द्वारा औषध पाक, पत्तेके दोनेमें रख कर औषध पकानेका विधान। भाव-प्रकाशमें पुटपाकका विषय इस प्रकार लिखा है—

"पुटपाकस्य कल्कस्य स्वरसो गृह्यते यतः।
अतस्तुपुटपाकानां युक्तिरत्रोच्यते मया॥" (भावप्र०)

पुटपाक करके किस किस द्रव्यका स्वरस ग्रहण करना होता है, नीचे उसका विधान लिखा जाता है।

पकाई जानेवाली औषधको गंभारी, बरगद, जामुन, आदिके पत्तोंमें चारों ओरसे लपेट दे और कस कर बांध दे। फिर पत्तोंके ऊपर गीली मिट्टीका दो अंगुल मोटा लेप कर दे। फिर उस पिण्डको उपलेकी आगमें डाल दे। जब मिट्टी पक कर लाल हो जाय, तब समझे कि दवा पक गई। पीछे एक पल उसका रस ले कर उसमें एक कर्ष मधु डाल दे।

२ नेत्रप्रसाधनका उपायविशेष।

"सेक आश्चोतनं पिण्डी विडालस्तर्पणं तथा।
पुटपाकोऽञ्जनञ्चैभिः कल्पैर्नेत्रमुपाचरेत्॥" (भावप्र०)

सेक, आश्चोतन और पुटपाकप्रभृति द्वारा नेत्रका प्रसाधन करना चाहिए।

इसका विधान इस प्रकार है—स्निग्ध मांस २ पल, दूसरा द्रव्य एक पल और द्रवपदार्थ ४ पल, इन सब द्रव्यों-को एक साथ पीस कर आलोड़न करे। पीछे पुटपाकके विधानानुसार पत्र द्वारा वेष्टन कर पाक करे। अनन्तर रोगीको चित सुला कर तर्पणोक्त विधानानुसार उसका रस रोगीके नेत्रमें डाल दे।

यह पुटपाक तीन प्रकारका है—स्नेहन, लेखन और रोपण। अत्यन्त रूक्ष व्यक्तिके पक्षमें स्निग्ध पुटपाक, स्निग्ध व्यक्तिके पक्षमें लेखन पुटपाक और दृष्टिबल जननार्थ रक्त-पित्तव्रण और वायु प्रशमनके लिये रोपण-पुटपाक विधेय है। स्नेह, मांस, चरबी, मज्जा, मेद और मधुर औषध द्वारा स्नेहन पुटपाक प्रस्तुत करके दो सौ उच्चारण करने-में जितना समय लगता है उतने समय तक उसे नेत्रमें धारण किये हुए रहे। जंगली प्राणीका यकृत और मांस लेखन-गुणयुक्त द्रव्य, कृष्णलौहचूर्ण, ताम्र, शङ्ख, प्रवाल, सैन्धव, समुद्रफेन, हिराकस, रसाञ्जन और दहीका पानी

इन सब द्रव्यों द्वारा पुटपाक प्रस्तुत करके, सौ उच्चारण करनेमें जितना समय लगता है, उतने समय तक तथा दुग्ध, जंगली प्राणीकी मज्जा और घृत एवं तिक्त द्रव्य द्वारा रोपण पुटपाक प्रस्तुत करके तीन सौ वाक्योच्चारण समय तक नेत्रमें धारण करे। तिक्त द्रव्य ये सब हैं—गुलञ्च, अड़ूस, परवल, नीम और कण्टकारी।

अनियमित पुटपाकके प्रयोग द्वारा यदि कोई उपद्रव हो जाय, तो तर्पणोक्त क्रिया द्वारा उसका प्रतिकार करना होता है। तर्पण अथवा पुटपाक-प्रयोगके बाद तेजस्कर पदार्थ तथा वायु, आकाश, दर्पण और दीप्तिशील पदार्थ नहीं देखना चाहिये। (रसेन्द्रसार)

रसेन्द्रसारसंग्रहके मतसे—एक हाथका गड्ढा बना कर उपले, भूसी अथवा काठसे उसका अर्द्धांश भर दे। पीछे उसके ऊपर लोहा और भूसी आदि डाल कर आग लगा दे। चार पहर दिन वा रात तक इस प्रकार पुटपाक करके द्रव्यको भस्म करना होता है। पुटपाकमें जो द्रव्य ऊपरमें रहता है वह भस्म हो जाता है और नीचेका द्रव्य ग्रहण करनेसे औषध स्वल्पवीर्य होती है। जब यह सुशीतल हो जाय तब राखको अलग फेंक कर औषध ग्रहण करे।

रसायनमें पुटपाक—भूमिकुष्माण्ड, पिण्डखजूर, शतमूली, भृङ्गराज, चौरिशा, भिलावाँ, गुड़ूची, चीता, हस्तिकर्ण, पलाश, तालमूली, यष्टिमधु, मुण्डिरी और केशराज ये सब पदार्थ रसायनमें पुट देने होते हैं। (रसेन्द्रसारसंग्रह)

चक्रपाणि आदिके वैद्यक ग्रन्थोंमें भी इस पुटपाकका विशेष विवरण लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे उसका उल्लेख यहां नहीं किया गया।

पुटभिद् (सं० त्रि०) पुटभिद्-क्विप्। पुटभेदक पाषाण।

पुटभेद (सं० पु०) पुटं संश्लिष्टं भिनत्तीति भिद्-अण् (कर्मण्यन्। पा ३।२।१) । १ नदीचक्र, नदी आदिका चक्राकार जलावर्त्त, जलका भंवर।

"प्रायेणैव हि मलिना मलिनानो माश्रयत्वमुपयान्ति।
कालिन्दीपुटभेदः कालियपुटभेदनं भवति॥"
(आर्यासप्त० ३९८)

२ पत्तन, नगर। ३ आतोद्य।

पुटभेदक (सं० क्ली०) पुटभिद् पाषाण, पत्थर जो आधा पुरसा खोदने पर जमीनके भीतर मिले। जगह खोदनेसे जल निकलेगा इसका विचार जिस उदकार्गल प्रकरणमें है, उसीमें इसका उल्लेख है।

पुटभेदन (सं० क्ली०) पुटस्खखुरै भिद्यते इति भिद्-ल्युट्। नगर।

पुटरिया (हिं० स्त्री०) पोटली देखो।

पुटरी (हिं० स्त्री०) पोटली।

पुटापुटिका (सं० स्त्री०) पूर्वं पुटा संश्लिष्टो पश्चात् अपुटिका मध्यलो०। पहले संश्लिष्ट और पीछे असंश्लिष्ट।

पुटालु (सं० पु०) पुटः संश्लिष्ट आलुः। कोलकन्द।

पुटास (हिं० पु०) पोटाश देखो।

पुटिका (सं० स्त्री०) पुटं अस्त्यस्या इति ठन्। १ एला, इलायची। २ सम्पुट, पुड़िया।

पुटित (सं० क्ली०) पुटं जातमस्येति पुट-इतच्, वा पुट-क्त। १ हस्तपुट। (त्रि०) २ पाटित, फटा हुआ। ३ स्यूत, सिला हुआ। ४ बंद। ५ जो सिमट कर दोनेके आकारका हो गया हो। ६ सङ्कुचित, सुकड़ा हुआ। ७ आद्यन्त प्रणवादियुक्त मन्त्रादि, जिस मन्त्रके आदि और अन्तमें प्रणवादि रहें।

पुटिनी (सं० स्त्री०) फेनी नामकी मिठाई।

पुटिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी मछली।

पुटिया—१ बङ्गालके अन्तर्गत राजशाहीका एक उपविभाग।

२ उक्त उपविभागका एक नगर। यह बोयालिया और नाटोरके मध्यभागमें अवस्थित है। यहांके सम्पत्तिशाली राजवंशीयगण ठाकुर कहलाते हैं। सुविशाल पद्मानदीके उभय तीरवर्त्ती लस्करपुर परगना ही इनकी प्रधान सम्पत्ति है। कहते हैं, कि मुर्शिदाबाद राजसरकारके अधःतन कर्मचारी शेख लस्कर द्वारा उन्होंने उक्त सम्पत्ति पाई है। पुटिया-राजवंशकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें एक गल्प इस प्रकार प्रचलित है। पहले पुटियानगरमें वत्साचार्य नामक एक ऋषितुल्य ब्राह्मण रहते थे। कुछ समय बाद संसारी सुख पर लात मार उन्होंने वानप्रस्थ अवलम्बन किया। अब वे अपना सारा समय ईश्वर चिन्तामें बिताने लगे। इस समय लस्कर खाँको दिल्लीश्वरसे लस्करपुर परगनेकी जागीर सनद मिली। लस्करकी

मृत्युके बाद उक्त स्थानका करसंग्रह कष्टदायक हो गया था। क्रमशः सूबेदारोंने षड़यन्त्र करके दिल्लीके राजकोषमें कर भेजना बन्द कर दिया। सूबेदारोंका दमन करनेके लिये सम्राट्ने एक सेनाध्यक्ष भेजा। वे दल बलके साथ वत्साचार्यके आश्रममें पहुंचे। उक्त देवतुल्य ब्राह्मणने अतिथि-सत्कार अच्छी तरह किया, पीछे आनेका कारण पूछा। ब्राह्मणके आशीर्वादसे युद्धमें सेनापतिकी जीत हुई। पीछे उन्होंने सम्राट्से लस्करपुरका अधिकार पा उक्त ब्राह्मणको दान दे दिया। आचार्य ठाकुरने जमींदारी तो ग्रहण कर ली, पर विषय-मदमें लिप्त रह कर उन्होंने अब अपने त्याग जीवनको उच्छृङ्खल करना न चाहा। अतः उसके लड़के पीता बरने कौशल क्रमसे उक्त सम्पत्तिका भोग किया। उनकी मृत्यु होने पर उनके छोटे लड़के नीलाम्बर सम्पत्तिके अधिकारी हुए। इन्हींके समयमें उक्त जमींदारीकी श्रीवृद्धि हुई थी। उनके आत्मज आनन्दने सम्राट्से राजाका खिताब पाया। पीछे उनके लड़के रतिकान्त अपने कर्मदोषसे राजाकी उपाधि न पा सके। उनके अधीनस्थ व्यक्ति उन्हें ठाकुर कहा करते थे। उनके लड़के रामचन्द्रने राधागोविन्दकी मूर्त्ति स्थापित की नरनारायण, दर्पनारायण और जयनारायण ठाकुर नामके रामचन्द्रके तीन पुत्र थे। नाटोरराजवंशके प्रतिष्ठाता रघुनन्दनके पिता कामदेव नरनारायणके अधीन बाड़ईहाटीके तहसीलदार पद पर नियुक्त थे। नरनारायणके मरने पर दर्पनारायण सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हुए। उनके अधीन उक्त रघुनन्दनने पुण्यचयसे क्रमशः मुर्शिदाबाद दरबारमें वकालती-पद प्राप्त किया। नाटोर देखो।

ठाकुर आनन्दनारायणने लार्ड कार्नवालिससे लस्करपुर परगनेका चिरस्थायी बन्दोबस्त कर लिया। उनके वंशधर राजनारायणने वृटिश-गवर्मेण्टसे राजा बहादुरकी उपाधि पाई। १२१४ सालमें राजा जगन्नारायणने पुखुरियां, काजीहाट, भवानन्ददिया, कालिग्राम कालिताफा आदि और भी कितनी सम्पत्ति खरीदी। वाराणसीधाममें उनका निर्मित घाट और अतिथिशाला आज भी वर्त्तमान है। विहार प्रदेशमें फल्गू नदीके किनारे जो अतिथिशाला है, वह उन्हीं की कीर्त्ति है। १२१६ सालमें उन्होंने राजाकी उपाधि वंशगत कर ली। १२२२ सालमें उनकी मृत्यु होनेके बाद उनकी विधवा पत्नीने पुटियामें एक शिवमन्दिर बनवाया। मृत राजा योगेन्द्रनारायण रायकी विधवा पत्नीका नाम महारानी शरत्सुन्दरी था। दानकर्ममें वे मुक्तहस्त थीं। दुर्भिक्षके समय तथा दातव्यसमितिमें उक्त महाशया प्रचुर धन दान कर गई हैं।

पुटी (सं॰ स्त्री॰) पुटतीति पुट-क, गौरादित्वात् ङीष्। १ कौपीन, लंगोटी। २ आच्छादक ३ छोटा कटोरा, छोटा दोना। ४ पुड़िया।

पुटीन (अं॰ पु॰) किवाड़ोंमें शीशे बैठाने या लकड़ीके जोड़, छेद, दरार आदि भरनेमें काम आनेवाला एक मसाला। यह मसाला जो अलसीके तेलमें खरिया मिट्टी मिला कर बनाया जाता है।

पुटोटज (सं॰ क्ली॰) पुटं संश्लिष्टमुटजमिव। श्वेतच्छत्र।

पुटोदक (सं॰ पु॰) पुटे अन्तर्युञ्जपात्रमध्ये उदकं यस्य। नारिकेल, नारियल।

पुट्टी (हिं॰ स्त्री॰) मछलियोंके पकड़नेका झाबा।

पुट्ठा (हिं॰ पु॰) १ चौपायों विशेषतः घोड़ोंका चूतड़। २ चूतड़का ऊपरी कुछ कड़ा भाग। ३ किसी पुस्तककी जिल्दका पिछला भाग। ४ पुट्ठे परका मजबूत चमड़ा। ५ घोड़ोंकी संख्याके लिए शब्द।

पुट्ठी (हिं॰ स्त्री॰) बैलगाड़ीके पहिएके घेरेका एक भाग जिसमें आरा और गज घुसे रहते हैं। किसी पहिएमें चार किसीमें छः ऐसे भाग मिल कर पूरा घेरा बनता है।

पुठवाल (हिं॰ पु॰) १ पृष्ठरक्षक, मददगार, भले बुरे काममें किसीका साथ देनेवाला। २ चोरोंके दलका वह बलिष्ठ आदमी जो सेंधके मुंह पर पहरेके लिए खड़ा रहता है।

पुड़ा (हिं॰ पु॰) १ बड़ी पुड़िया या बंडल। २ वह चमड़ा जिससे ढोल मढ़ा जाता है।

पुड़िया (हिं॰ स्त्री॰) १ आधार स्थान, भण्डार, खान। २ मोड़ या लपेट कर संपुटके आकारका किया हुआ कागज या पत्ता जिसके भीतर कोई चीज रखी जाय। ३ पुड़ियामें लपेटी हुई दवाकी एक खुराक या मात्रा।

पुड़ी (हिं॰ स्त्री॰) वह चमड़ा जिससे ढोल मढ़ा जाता है।

पुण्ड (सं॰ पु॰) पुंड्यते इति पुड़ि मर्दे घञ्। १ तिलक,

टीका, चन्दन, केसर आदि पोत कर मस्तक या शरीर पर बनाया हुआ चिह्न। २ दक्षिणकी एक जाति जो पहले पहल रेशमके कीड़े पालनेका काम करती थी।

पुण्डकवि—संस्कृत और हिन्दीके एक प्राचीन कवि। ये उज्जैनके रहनेवाले थे और सं० ७७० में इनका जन्म हुआ था। उस समय के अवन्ती-राज मानसिंहके ये दरबारी कवि थे। राजासे ही इन्होंने काव्यकी शिक्षा पाई थी। पहले पहल इन्होंने ही हिन्दी भाषामें कविता की। क्योंकि इनके पहलेके अन्य किसी कविका पता नहीं लगता। इनका दूसरा नाम पुष्पभाट था।

पुण्डरिन् (सं० पु०) पुण्ड' तिलकमस्त्यस्तीति अट-णिनि। क्षुद्रविटप, पुंडरिया। पर्याय—पौण्डरीक, पुण्डरीक, पुण्डरीयक, प्रपौण्डरीक, चक्षुष्य, पौण्डर्य, तालपुष्पक, सानुपुष्प, हृष्टिकृत्, स्थलपद्म और मालक। इसकी पत्तियां शालपर्णीकी पत्तियोंकी सी होती है। इसमें एक प्रकारकी सुगन्ध रहती है। यह पौधा हाथी और मनुष्यके चक्षुरोगमें हितकर है।

पुण्डरीक (सं० क्ली०) पुण्ड मर्दे (फर्फरीकादयश्च। उण् ४।२०) इति ईकन् प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। १ श्वेतपद्म, सफेद कमल। पर्याय—सिताम्भोज, शतपत्र, महापद्म, सिताम्बुज। विशेष विवरण श्वेतपद्ममें देखो।

"पुण्डरीकातपत्रस्तं विकसत्काशचामरः।
ऋतुर्विडम्बयामास न पुनः प्राप तच्छ्रियम॥"
(रघु० ४।१३)

२ पद्ममात्र, कमल। ३ श्वेतच्छत्र, सफेद छाता। ४ भेषजभेद, एक प्रकारकी दवा। ५ सात प्रकारके कुष्ठमेंसे एक श्वेत कुष्ठ, सफेद कोढ़। इसका लक्षण—

"सश्वेतं रक्तपर्यन्तं पुण्डरीकं दलोपमम्।
सोत्सेधञ्च सरागञ्च पुण्डरीकं तदुच्यते॥" (निदान)

जिस कुष्ठमें उन्नत मण्डल लाल कमलके पत्तेकी तरह श्वेत और रक्तवर्ण होते हैं, उसे पुण्डरीक कुष्ठ कहते हैं। (पु०) पुण्डरीकवद् वर्णोऽस्त्येति अच्। ६ अग्निकोणस्थित दिग्गज, अग्निकोणके दिग्गजका नाम। ७ व्याघ्र, बाघ। ८ कोषकारभेद, रेशमका कीड़ा। ९ बाज पक्षी। १० जैनियोंके एक गणधर। ११ राजिलसर्प, सफेद रंगका सांप। १२ गजज्वर, हाथियोंका ज्वर। १३ दमनकवृक्ष, दौनेका पौधा। १४ शाल्यविशेष, एक प्रकारका धान। १५ कमण्डलु। १६ श्वेतवर्ण, सफेद रंग। १८ क्रौञ्चद्वीपस्थित पर्वतविशेष, क्रौञ्चद्वीपका एक पर्वत। १९ तिलक। २० एक प्रकारका आम, सफेदा। २१ सफेद रंगका हाथी। २२ अग्नि, आग। २३ वाण, शर। २४ आकाश।

२५ तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम। शुक्लपक्षकी दशमी तिथिको इस पुण्डरीकतीर्थमें स्नानदानादि करनेसे अशेष पुण्य होता है।

"शुक्लपक्षे दशम्यांच पुण्डरीकं समाविशत्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् पुण्डरीकफलं लभेत॥"
(भागवत ३।२०।१७)

२६ यक्षविशेष, एक यक्ष। २७ नागविशेष, एक नागका नाम। २८ रामचन्द्रवंशीय नृपविशेष। २९ शर्करा, चीनी। ३० आज्य, घी। ३१ इक्षु, एक प्रकारकी ईख। (स्त्री०) ३२ वशिष्ठकी कन्या। ३३ एक अप्सरा। (त्रि०) ३४ पुण्डरीकविशिष्ट।

पुण्डरीक—१ नाटकलक्षण नामक काव्यके रचयिता।

२ रक्षाची देवताके भक्त और भद्रमुनिके कुलोद्भव एक क्षत्रिय राजा।

३ पोद, जैलिया और कैवर्त्तोंकी पदवी।

पुण्डरीकप्लव (सं० पु०) प्लवजातीय जलचरभेद। यह पक्षी संघातचारी है। इसके मांसमें रक्तपित्तनाशक, शीतल, स्निग्ध, वृष्य, वायुनाशक और मलमूत्र वर्द्धक गुण माना गया है।

पुण्डरीकपुर—जनपदभेद। स्कन्दपुराणान्तर्गत पुण्डरीकपुर माहात्म्यमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है।

पुण्डरीकमुखी (सं० स्त्री०) निर्विष जलोकाभेद, विषरहित जोंक। जिस जोंकका मूंगकी तरह रंग तथा कमलकी तरह मुंह रहता है, उसे पुण्डरीकमुखी कहते हैं।

पुण्डरीकविट्ठल—एक विख्यात पण्डित। ये कर्णाटकवासी माधवसिंह राजके पुत्र और सम्राट् अकबरके सभापण्डित थे। इन्होंने नर्त्तननिर्णय, रागमञ्जरी, शीघ्रबोधिनी, नाममाला और षड्रागचन्द्रोदय नामक पांच सङ्गीतविषयक ग्रन्थ बनाये हैं।

पुण्डरीकविद्यानिधि—चट्टग्रामवासी महाप्रभुके एक प्रधान भक्त। स्वरूपनिर्णयमें ये वृषभानु राजाके स्वरूप कहे गए हैं। श्रीमहाप्रभु राधाभावमें इन्हें 'पिता' कह कर सम्बोधन करते थे।

पुण्डरीकाक्ष (सं० क्ली०) पुण्डरीकवदक्षिणी यस्मात्, षच्, समासान्तः। १ पुण्डर्य, पुण्डरीक। (पु०) पुंडरीकवदक्षिणी नेत्रे यस्य। २ विष्णु, नारायण।

"पुण्डरीकं परं धाम नित्यमक्षरमव्ययः।
तद्भावात् पुण्डरीकाक्षो दस्युत्रासाज्जनार्दनः॥"
(भारत ५।७०।६)

जो अपवित्र अथवा पवित्र किसी भी अवस्थामें पुण्डरीकाक्षका स्मरण करता है, उसको वाह्य और अभ्यन्तर-शुचि होती है।

"अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स वाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥"
(वामनपु० ३३ अ०)

पूजादि प्रत्येक कार्य करनेके पहले यह मन्त्र पाठ करना होता है। ३ जलचर पक्षिविशेष, एक प्रकारका जलचर पक्षी। ४ रेशमके कीड़े पालनेवाली एक जाति। (त्रि०) ५ जिसके नेत्र कमलके समान हों।

पुण्डरीकाक्ष—१ एक पण्डित। इनके पिताका नाम श्रीकण्ठ था। इन्होंने कलापदीपिका नामक एक भट्टिकाव्यकी टीका, कातन्त्रपरिशिष्ट टीका और वक्तव्यविवेक नामक ग्रन्थ बनाये हैं।

२ मुनिविशेष। इनका विवाह ज्यायसीके साथ हुआ था।

३ पोदजातिकी एक शाखा। पोदा देखो।

पुण्डरीयक (सं० क्ली०) स्थलपद्म, पुण्डरीका पौधा।

पुण्डर्य (सं० क्ली०) प्रपौण्डरीक, पुण्डरीका पौधा।

पुण्डाक—विहारवासी शाकद्वीपि ब्राह्मणोंका एक पुरका थाक।

पुण्ड्राय (सं० क्ली०) पुंडतीति पुडि-अच्, तस्यार्यः प्रधानः, शकन्ध्वादित्वात् साधुः। प्रपौंडरीक, पुंडरीका पौधा। पुण्डरीक देखो।

पुण्ड्र (सं० पु०) पुंड्यते गुड़शर्करादयर्थं चूर्णीक्रियत इति पुडि मर्द्दने रक्, (स्फायितञ्चीति। उण् २।१३) १ इक्षुभेद, एक प्रकारकी ईख, पौंडा। २ दैत्यविशेष, एक राक्षसका नाम। ३ अतिमुक्तक, तिनिशवृक्ष। ४ माधवीलता। ५ चित्र। ६ क्रमि, कीड़ा। ७ पुंडरीक। चन्दन केसर आदिकी रेखाओंसे शरीर पर बनाया हुआ चिह्न, तिलक, टीका। ८ भूमन्। ९ तिलकवृक्ष, तिलका पेड़। १० इक्षुमूल, पाकर, पेकड़। ११ श्वेतकमल। १२ अश्वदेहस्थित चिह्नविशेष।

विशेष विवरण पुण्ड्रक शब्दमें देखो।

१३ बलिराजका क्षेत्रज पुत्रविशेष, बलि राजाके पुत्र एक दैत्यका नाम जिसके नाम पर देशका नाम पड़ा। बलिराजके अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, पुंड्र और सुह्म नामक पुत्र थे। ये पुत्रगण जिस जिस स्थानमें वास करते थे, वह स्थान उसी उसी नामसे प्रसिद्ध हुआ और इसी प्रकार अङ्ग, वङ्ग आदि देश हुए हैं।

पुण्ड्र—पुराणादिवर्णित जनपदविशेष और उस जनपदमें रहनेवाली एक जाति। ऋग्वेदके ऐतरेय-ब्राह्मणमें सबसे पहले इसी जातिका उल्लेख पाया जाता है। ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखा है—

'ऋषि विश्वामित्रके सौ पुत्र थे जिनमेंसे पचास मधुच्छन्दाकी अपेक्षा उमरमें बड़े और शेष पचास उनसे छोटे थे। ज्येष्ठगण शुनःशेपके अभिषेक पर सन्तुष्ट नहीं हुए, इस पर विश्वामित्रने उन्हें शाप दिया, 'तुम लोगोंके वंशधरगण अन्त्यज होंगे।' ये ही सब अन्ध्र, पुंड्र, शवर, मूतिव इत्यादि अति नीच जातिके हुए। इसी प्रकार विश्वामित्रके पुत्रोंसे दस्युगण उत्पन्न हुए हैं।

महाभारतमें भी पुण्ड्र जातिकी दस्युमें गिनती की गई है, यथा—

"यवना किराता गान्धाराश्चीनाः शवरवर्वराः।
शकास्तुषाराः कंकाश्च पह्लवाश्चान्ध्रमद्रकाः॥
पौंड्राः पुलिन्दा रमठाः काम्बोजाश्चैव सर्वशः।
ब्रह्मक्षत्रप्रसूताश्च वैश्याः शूद्राश्च मानवाः॥
कथं धर्मांश्चरिष्यन्ति सर्वेविषयवासिनः।
मद्विधैश्च कथं स्थाप्याः सर्वे वै दस्युजीविनः॥"
(शान्तिप० ६५ अ०)

यवन, किरात, गान्धार, चीन, शवर, वर्वर, शक, तुषार, कङ्क, पह्लव, अन्ध्र, मद्रक, पौण्ड्र, पुलिन्द, रमठ

और काम्बोज, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रसे प्रसूत मानवगण कैसे धर्मका आचरण करेंगे तथा दस्यु-जीवियोंको हो मैं किस नियमसे शासन करूंगा? दस्यु-का धर्म दस्यु शब्दमें देखो।

मनुसंहिताके मतसे सभी पौंड्रादि पूर्व समयमें क्षत्रिय थे, पीछे संस्कार और ब्राह्मणके अभावसे वृष-लत्वको प्राप्त हुए हैं।

"शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥
पौंड्रकाश्चोड्रद्रविड़ाः काम्बोजा यवनाः शकाः।
पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः॥"

(मनु० १० ४०-४४)

महाभारतकारने भी पौंड्रको एक जगह वृषलत्व-प्राप्त क्षत्रिय जाति बतलाया है। किन्तु सभापर्वमें फिर तीन प्रकारके पुण्ड्रोंका उल्लेख है। यथा—

"पौंड्रिकाः कुक्कुराश्चैव शकाश्चैव विशाम्पते।
अंगा वंगाश्च पुंड्राश्च शाणवत्या गयास्तथा॥
सुजातयः श्रेणिमन्तः श्रेयांसः शस्त्रधारिणः।
आहर्षुः क्षत्रियाः वित्तं शतशोऽजात शत्रवे॥
वंगाः कलिंगाः मगधास्ताम्रलिप्ताः सुपुंड्रकाः।
दौवालिकाः सागरकाः पत्रोर्णाः शैशवास्तथा॥
कर्णप्रावरणाश्चैव बहवस्तत्र भारत।
तत्रस्था द्वारपालैस्तैः प्रोच्यन्तं राजशासनात्॥
कृतकालाः सुवलयस्ततो द्वारमवाप्स्यथ॥"

(सभापर्व ५२।१६-१८)

पौंड्रिक, कुक्कुर और शक प्रभृतिने, अङ्ग, वङ्ग, पुंड्र, शाणवत्य और गय नामक जनपदवासी सुजातिने तथा गोष्ठीमन्त, श्रेष्ठ तथा शास्त्रधारी क्षत्रियोंने युधिष्ठिरके निमित्त प्रचुर धन इकट्ठा किया था। किन्तु जब वङ्ग, कलिङ्ग, मगध, ताम्रलिप्त, सुपुंड्रक, दौवालिक, पत्रोर्ण, शैशव और बहु-संख्यक कर्णप्रावरणगण उसे ले कर राजदरबारमें पहुंचे, तब द्वारपालोंने कहा था, 'तुम लोग यदि कुछ काल ठहर जाओ और सुन्दर उपहार हमें भी दो, तो द्वार खोलेंगे, अन्यथा नहीं।

महाभारतके उक्त प्रमाणसे पौंड्रिक, पुण्ड्र और सुपुण्ड्रक इन तीन जातियोंका उल्लेख पाया जाता है। इनमेंसे पौण्ड्रकगण शक, दरदादिके साथ मिले रहनेके कारण मनुसंहितावर्णित पौण्ड्रक नामक वृषलत्वप्राप्त क्षत्रिय समझे जाते हैं। किन्तु अपर पुण्ड्रगण स्पष्ट सु-क्षत्रिय कह कर ही वर्णित हुए हैं, इसी कारण द्वार-पालने इन्हें भीतर जानेसे नहीं रोका था। परन्तु सागर कादि नीच जातिके साथ सुपुंड्रकोंको द्वारपालने भीतर जानेसे रोका था। इस हिसाबसे सुपुण्ड्रक हीन-जातिके प्रतीत होते हैं।

कर्णपर्वमें लिखा है, कि कुरु, पाञ्चाल, शाल्व, मत्स्य, नैमिष, कोशल, काश, पौण्ड्र, कलिङ्ग, मगध और चेदिदेशीय सभी महात्मा पुरुष पुरातन धर्मसे अच्छी तरह जानकार हैं और तदनुसार कार्य करते हैं।

कर्णपर्वोक्त पौण्ड्रगण सुजातीय समझे जाते हैं। सम्भवतः इनके साथ वृषलत्वप्राप्त पौंड्रिकों अथवा नीच सुपुण्ड्रकोंका सम्बन्ध नहीं है।

फिर महाभारतके आदिपर्वमें लिखा है,—'क्षत्रिय-राज बलिके एक भी पुत्र न था। एक दिन गङ्गाके किनारे आ कर उन्होंने देखा कि एक अन्ध ऋषि नदी-स्रोतमें बहते आ रहे हैं। धार्मिक राजा उसी समय उन्हें जलसे निकाल अपने घर ले गये। उन अन्ध-ऋषिका नाम दीर्घतमा था। राजाने उन्हें अपने क्षेत्रमें पुत्रोत्पादन करनेका अनुरोध किया। ऋषिके सहमत होने पर राजाने रानी सुदेष्णाको उनके पास भेजा। किन्तु ऋषिको अन्ध और वृद्ध देख कर राजमहिषीने स्वयं न जा कर एक दासीको उनके पास भेज दिया। ऋषिने उस शूद्रायोनिसे ११ पुत्र उत्पादन किये। बलि-राजको जब रानीका आचरण मालूम हुआ, तब उन्होंने फिर ऋषिको प्रसन्न कर सुदेष्णाको उनके पास भेज दिया। ऋषि दीर्घतमाने सुदेष्णा देवीका अङ्गस्पर्श कर कहा, 'तुम्हारे गर्भसे आदित्यके समान तेजस्वी पांच पुत्र उत्पन्न होंगे। वे पांच पुत्र अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, पुंड्र और सुगन्ध नामसे प्रसिद्ध होंगे। इस भूमण्डल पर उनके नाम पर एक एक देश विख्यात होगा।" इसी प्रकार महर्षिजात बलिराजका वंश प्रसिद्ध हुआ था।

हरिवंशमें लिखा है, कि उक्त महाराज बलि एक परमयोगी थे। उनके वंशधर पांच पुत्र हुए—अङ्ग, वङ्ग, सुह्म, पुंड्र और कलिङ्ग। ये ही पांच महाराज बलिके

क्षत्रिय सन्तान थे, किन्तु वंशधर पुत्रोंने कालक्रमसे ब्राह्मणत्व प्राप्त किया।

आदिपर्व और हरिवंशसे यह स्पष्ट जाना गया, कि मनुप्रोक्त पौण्ड्र के सिवा एक और पौण्ड्र था। वे बलिके पुत्र पुण्ड्रके वंशधर थे। सभापर्वमें वे ही लोग सुजाति और क्षत्रिय माने गये हैं। बलिपुत्र पुण्ड्रसे पुण्ड्र देशका नाम पड़ा था और यहां उनके वंशधर रहते थे, इस कारण यह स्थान पौण्ड्र कहलाया। मत्स्य, मार्कण्डेय और ब्रह्माण्डपुराणमें यह जनपद प्राच्यदेश वा पूर्व-भारतके अन्तर्गत माना गया है।

"प्राग्ज्योतिषाश्च पौंड्राश्च विदेहास्तामलिप्तकाः।
माला मागधगोनन्दाः प्राच्यां जन दाःस्मृताः॥"

(ब्रह्मांड १।४८।५८, वामन १३।४५, मार्कपु० ५८।१२, मत्स्यपु० ११३।४५)

इधर विष्णु और मार्कण्डेयपुराणमें दाक्षिणात्योंके साथ पुण्ड्र देशका वर्णन है,—

"पुंड्राश्च करेलाश्चैव गोलांगुलास्तथैव।" (मार्कपु० ५७)
"पुंड्राः कलिंगा मगधा दाक्षिणात्याश्च सर्वशः॥"

(विष्णुपु० २।३।१५)

भविष्यत्पुराणके ब्रह्माण्डखण्डमें लिखा है, कि भारतका पूर्वांश पुण्ड्र देश सात खण्डोंमें विभक्त है, यथा—गौड़, वरेन्द्र, निवृत्ति, सुह्मके निकट वनसमाच्छन्न वारिखण्ड, वराहभूमि, वर्द्धमान और विन्ध्यपादस्थित विन्ध्यपार्श्व।

उक्त भागोंके निर्देशसे पता लगता है, कि इसके उत्तरमें ब्रह्मपुत्र और हिमालयका प्रदेश, पश्चिममें विहार, रेवा और बुन्देलखण्ड तथा दक्षिणमें गङ्गासागर है। इसके मध्य मुर्शिदाबाद, राजशाही, दिनाजपुर, रङ्गपुर, नदियाका कुछ अंश, वीरभूम, वर्द्धमान, मेदिनीपुरका कुछ अंश, जङ्गलमहल, रामगिर, पञ्चकूट और पलामूका कुछ अंश है।

ब्रह्माण्डखण्डका वर्णन पढ़नेसे यह १५वीं अथवा १६वीं शताब्दीकी रचना है, ऐसा प्रतीत होता है। इस प्रकार ब्रह्माण्डखण्डका सीमा-निर्देश सावधानीसे ग्रहण करना उचित है। विभिन्न पौण्ड्रदेशोंको विभिन्न समयकी सीमा ब्रह्माण्ड-खण्डकारने एक एक करके प्रकाशित की है। पहले ही लिखा जा चुका है, कि महाभारतमें पौण्ड्रिक, पुंड्र और सुपुंड्रक इन तीन जनपदोंका उल्लेख है। इसके मध्य विष्णुपुराणमें दाक्षिणात्यके साथ जिस पुंड्रका उल्लेख है, सम्भवतः वही पुंड्र सभापर्वमें सुपुंड्रक नामसे वर्णित है। फिर विश्वामित्रके पुत्र पुंड्रगण ऐतरेय ब्राह्मणमें 'दस्युन्' अर्थात् अत्यन्त नीच जातिमय' बतलाये गये हैं।

ब्राह्मणपुराणमें लिखा है,—

उदग् हिमवतः शैलादुत्तरस्य च दक्षिणे।
पुंड्रं नाम समाख्यातं नगरं तत्र वै स्मृतम्॥"

(अनु०बंगाय ५५।४८)

उत्तरदिग्वर्त्ती हिमालयके दक्षिण पुंड्र नामक एक नगर है। सम्भवतः मनुप्रोक्त वृषलत्व प्राप्त पौंड्र जाति उसी उत्तर दिशाकी होगी। सभापर्वमें ये शकादिके साथ उक्त हुए हैं। पुंड्र नामक क्षत्रिय जातिके निवासभूत प्राच्यदेशान्तर्वर्त्ती पौण्ड्र अङ्ग और बङ्गका मध्यवर्त्ती माना जाता है। अभी ब्रह्माण्डखण्डकी सहायतासे तीन पुण्ड्रकी वर्त्तमान अवस्थिति इस प्रकार स्थिर कर सकते हैं,—

१। पौण्ड्रिक वा पौण्ड्रक—दिनाजपुर और रङ्गपुरके उत्तर तथा हिमालय प्रदेशके पूर्वमें।

२। पुण्ड्र वा पौण्ड्र—पश्चिममें अङ्ग वा भागलपुर जिला, पूर्वमें बङ्ग (ढाका और मैमनसिंह जिला), उत्तरमें दिनाजपुरका कुछ अंश, मालदह, राजशाही, मुर्शिदाबाद, वीरभूम और वर्द्धमानका कुछ अंश।

३। सुपुण्ड्रक—(दक्षिणपुण्ड्र) वर्द्धमानका दक्षिणांश, जङ्गलमहल और मेदिनीपुरका पश्चिमांश।

पुण्ड्र वा पौण्ड्र शब्दके अपभ्रंशसे पूंड़ा, पेंड़ो, पोण्ड्रुआ इत्यादि नाम पड़े होंगे। आज भी वर्द्धमानमें पूंड़ा, २४ परगनेमें पेंड़ो मानभूममें पांडरा, पटनाके निकट पांडरक आदि नामावली प्राचीन पुंड्र वा पौंड्रका ही आभास देती हैं। जो कुछ हो, इनमेंसे पुंड्र वा पौंड्र नामक जनपद ही विशेष प्रसिद्ध है। इसीकी राजधानी पुंड्रवर्द्धन वा पौंड्रवर्द्धन है।

पुंड्रवर्द्धन और पाण्डुआ देखो।

अभी पौण्ड्रिकजातिका निदर्शन नहीं मिलता है। पौण्ड्रकी प्राचीनतम राजधानी पुंड्रवर्द्धन वा पंडुआका भग्नावशेष आज भी देखनेमें आता है, किन्तु पुंड्र नामक क्षत्रिय जाति भी कालगर्भमें विलीन हो गई है। २४ परगने और मालदह जिलेमें इक्षुजीवी और कृषिजीवी पूंड़ा नामकी एक नीच जाति देखी जाती है। इनमेंसे बहुतेरे अपनेको प्राचीन पौंड्र जातिकी सन्तान बतलाते हैं। पोद जातिके मध्य भी एक थाक अपनेको प्राचीन पौण्ड्रजातिका बतलाता है। किन्तु ये सब निम्न श्रेणी-भुक्त जातियां महाभारतोक्त सुपुंड्रक जाति समझी जाती हैं। पौण्ड्रक वासुदेव देखो।

पुण्ड्रक (सं० पु०) पुंड्र इव प्रतिकृतिः (इव प्रतिकृतौ। पा ५।३।९६) इति कन्। १ माधवीलता। २ तिलकवृक्ष। पुंड्र-स्वार्थे कन्। ३ इक्षुभेद, एक प्रकारकी ईख, पौंड़ा। पर्याय—रसाल, इक्षुवाटी और इक्षुयोनि। गुण—मधुर, शीतल, रुचिकारक, मृदु, पित्तदाहनाशक, वृष्य और तेजोबलविवर्द्धक। ४ तिलक, टीका। ब्राह्मणको ऊर्ध्व-पुंड्रक करना चाहिए। तिलक देखो। (क्ली०) ५ अश्वशरीरस्थित चिह्नविशेष, घोड़ेके शरीरका एक चिह्न जो रोएंके रंगके भेदसे होता है। अश्ववैद्यकमें इस चिह्नका विषय इस प्रकार लिखा है,—शुक्ति, शङ्ख, गदा, खड्ग, पद्म, चक्र, अङ्कुश और शरासन सदृश चिह्न-को पुंड्रक कहते हैं। मत्स्य, भृङ्गार, प्रासाद, माला, वेदी, धूप और श्रीवृक्ष सदृशाकार जो सब पुंड्रक चिह्न हैं, वे भी शुभफलद होते हैं। जिस घोड़ेके मस्तक, ललाट और वदन पर सरल पुंड्रक रहता है, वह घोड़ा अत्यन्त प्रशस्त माना जाता है। पर्वत, इन्दु, पताका और स्रक्‌दाम सदृश चिह्नवाले घोड़े भी मङ्गलसूचक हैं। अशुभ पुंड्रकका विषय इस प्रकार लिखा है,—काक, कङ्क, कबन्ध, अहि, गृध्र तथा गोमायुसदृश, असित, पीत और रक्तवर्ण, तिर्यकगामी, विच्छिन्न, शृङ्खल तथा पाशसदृश, शूलाग्र और वाम देहस्थित जो पुंड्रक होते हैं, वे शुभदायक नहीं हैं। जिस घोड़ेकी जिह्वा कल्मष और रूक्ष होती तथा जिसके भस्मवर्ण सदृश पुंड्रीक होते वह अप्रशस्त माना गया है। पुंड्रदेशका राजा।

पुण्ड्रका (सं० स्त्री०) पुंड्रक-टाप्। १ माधवीलता। २ तिलकवृक्ष। ३ शुक्लजाति पुष्पवृक्ष।

पुण्ड्रकेलि (सं० पु०) पुंड्र इक्षुविशेषे केलिर्यस्य। हस्ती, हाथी।

पुण्ड्रनगर (सं० क्ली०) पुंड्रदेशकी राजधानी।

पुण्ड्रवर्द्धन—पुंड्रदेशकी प्राचीन राजधानी। पाणिनिकी अष्टाध्यायीके मध्य यह स्थान 'गौड़पुर' नामसे प्रसिद्ध है। प्राचीन ग्रन्थमें पुंड्रवर्द्धन और पौंडवर्द्धन दोनों ही नाम देखे जाते हैं।

अब प्रश्न उठता है, कि गौरवस्पर्द्धी गौड़की राज-धानी पुंड्रवर्द्धन कहां है? उस पौंड्रवर्द्धनके वर्त्तमान अवस्थिति-निर्णयके सम्बन्धमें प्रत्नतत्त्वविदोंका एक मत नहीं है। कोई कहते हैं, कि रङ्गपुरके मध्य पौंड्र-वर्द्धन अवस्थित था। फिर किसीका कहना है, कि वर्द्धनकुटी नामक स्थान ही प्राचीन पौंड्रवर्द्धनका बहुत कुछ निर्देश करता है। कोई यहांके पावना शहरको ही प्राचीन पौंड्रवर्द्धन बतलाते हैं। किसीका मत है, कि करतोया नदीके किनारे बगुड़ासे ७ मील उत्तर और वर्द्धनकुटीसे १२ मील दक्षिण महास्थानगढ़ नामक जो एक अति प्राचीन स्थान है, वही पहले पौंड्रवर्द्धन नामसे प्रसिद्ध था। किन्तु हम लोगोंके ख्यालसे इनमेंसे एक भी ठीक नहीं है।

कलहणकी राजतरङ्गिणी पढ़नेसे जाना जाता है, कि ८वीं शताब्दीमें गौड़ नामक भूभागकी राजधानीका नाम था पौंड्रवर्द्धन। कथासरित्सागर पढ़नेसे मालूम होता है, कि पौंड्रनगरसे गङ्गासे थोड़ी ही दूर पर अवस्थित थी। चीनपरिव्राजक युएनचवङ्गने इस नगरमें आ कर अनेक नौकालय देखे थे। उन्होंने गङ्गा पार कर पौंड्रवर्द्धन राज्यमें प्रवेश किया था। राजतरङ्गिणीमें लिखा है, कि जयादित्य गङ्गाके किनारे तक सेनाओंको विदा कर छद्मवेशमें गौड़की राजधानी पौंड्रवर्द्धन नगर पहुंचे। ऊपरमें जो सब विभिन्न मत उद्धृत किये हैं, पावना व्यतीत और कोई भी स्थान गङ्गाके निकटवर्त्ती नहीं है। फिर पावनाके पुरा-तत्त्व और भूतत्त्वकी आलोचना करनेसे यह अति प्राचीन स्थानके जैसा प्रतीत नहीं होता।

प्रसिद्ध मालदह नगरसे दो कोस उत्तर-पूर्व और गौड़नगरसे ८ कोस उत्तर फिरोजाबाद नामका एक अति प्राचीन स्थान है। स्थानीय लोग इस स्थानको पोंड़ोवा वा पांड़ुआ कहा करते हैं। इस स्थानसे एक कोस उत्तरपश्चिम और मालदहसे ढाई कोस उत्तरमें बारदोआरी पुंड़ोवाका भग्नावशेष विद्यमान है। पोंड़ोवा अथवा पांड़ुआ शब्द पौंड्रवर्द्धन अथवा पुंड्रवर्द्धन शब्दका ही अपभ्रंश समझा जाता है। स्थानीय लोगोंका कहना है, कि यहां अनेक हिन्दू राजगण आधिपत्य कर गये हैं। प्राचीन हिन्दू कीर्त्तिका ध्वंसावशेष, बहुतों भास्कर और शिल्पसमायुक्त भग्नमन्दिरादिका निदर्शन और बहुसंख्यक कूपतड़ागादिका प्राचीन गर्भ यहांके हिन्दूराजत्वको अतीत कीर्त्तिको विशेषरूपसे घोषणा करता है। यह ध्वंसावशेष पुंड़ोवाके बारदोआरीसे दक्षिण पश्चिम गङ्गातट पर्य्यन्त प्रायः १२ कोस तक फैला हुआ है।

चीनपरिव्राजक युएनचुवङ्ग जब पौंड्रवर्द्धन राजधानी आये, उस समय इसका आयतन प्रायः २॥ कोस विस्तृत था। उस समय यहां तड़ाग-वाटकादि समाच्छादित तथा बहुसंख्यक लोगोंका वास था। उन्होंने यहां होनयान और महायान मतावलम्बी बौद्धोंके प्रायः २० सङ्घाराम, सैकड़ों हिन्दू देवालय, अनेकों हिन्दू दार्शनिकोंका समावेश और बहुसंख्यक दिगम्बर निर्ग्रन्थोंका वास देखा था। चीन-परिव्राजकने पौंड्रवर्द्धनकी यथेष्ट समृद्धि तो देखी थी, पर उस समय पौंड्रवर्द्धन स्वाधीन राज्य नहीं समझा जाता था और आयतनमें भी छोटा ही था। काश्मीरराज जयादित्यने भी यहां आ कर प्रचुर विभूति संदर्शन की थी। उस समय भी गौड़ाधिप जयन्त एक सामान्य राजा समझे जाते थे। किन्तु जब वे पञ्चगौड़के अधीश्वर हुए, उस समय उनके राज्यकी समृद्धि चरमसीमा तक पहुंच गई थी, इसमें सन्देह नहीं। वर्त्तमान पुंड़ोवा नामक स्थान, जिसे हम लोग प्राचीन पौण्ड्रवर्द्धन नगर कहते हैं गङ्गास्रोतसे प्रायः ७-८ कोस दूर हट गया है। किन्तु यहांकी नदीकी अवस्था जैसी आज कल है, वैसी पहले न थी। वर्त्तमान मालदा शहरके परपारमें जो कालिन्दी नदी बहती है, एक समय भागीरथी इसी पथ हो कर बहती थी। मालदहसे दो कोस पश्चिम भागीरथीपुर नामक एक गण्डग्राम है। वहांसे थोड़ी दूर पर भागीरथी नामक एक छोटी स्रोतस्वती दक्षिणकी ओर बहती हुई बूढ़ी गङ्गामें मिल गई है। बहुतोंका विश्वास है, कि पहले इसी भागीरथी हो कर गङ्गाका मूलस्रोत बहता था और मालदहके पार्श्वमें प्रवाहित महानन्दासे थोड़ी ही दूर पर कालिन्दीके साथ मिल गया था। सुतरां बहुजनाकीर्ण विख्यात पौंड्रवर्द्धन नगर गङ्गाके समीप तथा महानन्दाके तटसे वर्त्तमान बारदोआरी पर्य्यन्त सुविस्तृत था, यह असम्भव नहीं। पुंड़ोवाके बारदोआरीसे एक कोस उत्तर-पूर्वमें होमदीघी वा होमदीघी नामक एक प्राचीन स्थान है। किसी किसीका कहना है, कि यहां आदिशूरसे लाये हुए पांच ब्राह्मण होम करते थे।

हिन्दू, बौद्ध और जैन इन तीनों सम्प्रदायके निकट पुंड्रवर्द्धन एक समय पवित्र पुण्यस्थान समझा जाता था। स्कन्दपुराणीय प्रभासखण्डमें लिखा है, कि यहां 'मन्दार' नामक शिवमूर्त्ति विद्यमान है। देवीभागवतके मतानुसार सतीके खण्डित देहांशसे जो १०८ पीठ उत्पन्न हुए उनमेंसे पुंड्रवर्द्धन एक है। यहां पाटला नामक देवीमूर्त्ति अवस्थान करती है। (दे०भा० ७।३० अ०) इधर स्कन्दपुराणीय रेवाखण्डमें पुंड्रवर्द्धनको यज्ञकारी चक्रवर्त्ती राजाओंका प्राचीन निवासस्थान बतलाया है। ७वीं शताब्दीमें जिस समय चीनपरिव्राजक युएनचुवङ्ग यहां आये, उस समय पूर्वभारतके अनेक विख्यात बौद्धाचार्य्य यहां रहते थे। पुंड्रवर्द्धन नगरसे प्रायः ढाई कोस पश्चिम गगनस्पर्शी चूड़ाविलम्बित वाशिभा-सङ्घारामके निकट उन्होंने अशोकराजनिर्म्मित स्तूप और सुवृहत् बोधिसत्त्वमूर्त्ति समन्वित एक बौद्ध विहार देखा था। इस चीनपरिव्राजकने लिखा है, कि जहां अशोकराजने स्तूप बनवाया है, वहां पहले तथागत (बुद्ध)-ने तीन मास तक धर्मोपदेश दिया था। चातुर्मास्यमें यहां चारों ओर उज्ज्वल आलोक दृष्टिगोचर होता है। पहले लिखा जा चुका है, कि चीनपरिव्राजकने यहां सर्वापेक्षा बहुसंख्यक निर्ग्रन्थ (जैन) देखे थे। यथार्थमें जैनोंके कल्पसूत्र नामक धर्मग्रन्थमें 'पुंड्र-

वर्द्धनीय' नामक एक जैन शाखाका उल्लेख मिलता है। ईसा-जन्मके दो सौ वर्ष पहले इस शाखाकी उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार जाना जाता है, कि इसके भी बहुत पहले पुण्ड्रवर्द्धन नगर स्थापित हुआ था। एक समय भारतके अपर प्रान्तमें पुण्ड्रवर्द्धनवासी ब्राह्मणोंका खूब आदर था। राष्ट्रकूटराज नित्यवर्षने ८५५ शकमें केशवदीक्षित नामक एक पुण्ड्रवर्द्धनवासी कौशिक गोत्रीय ब्राह्मणको स्वराज्यमें बुला कर भूमि दान की थी।

पुण्ड्रशर्करा (सं॰ स्त्री॰) पुण्ड्रेक्षुभवशर्करा। १ ईखका गुड़। गुण—स्निग्ध, क्षीण, क्षय तथा अरुचिमें हितकर। २ पञ्चविधेक्षु शर्करा।

पुण्ड्राह्व (सं॰ पु॰) पुंडरीकवृक्ष, पुंडरिया।

पुण्य (सं॰ क्ली॰) पूयतेऽनेनेति पू-यत् णुगागमः ह्रस्वश्च (पुञोषण्णुकह्रस्वश्च। उण् ५।१५) १ शुभादृष्ट, भला काम, धर्मका कार्य। पर्याय—धर्म, श्रेयः, सुकृत, वृष। जिस किसी कार्यका अनुष्ठान किया जाय, उसके लिए एक अदृष्ट उत्पन्न होता ही है। जिस कर्मका अनुष्ठान शुभादृष्ट होता है, उसे पुण्य और अशुभादृष्टजनकको पाप कहते हैं। पापका विषय पाप शब्दमें देखो।

पाप तथा पुण्य धर्म और अधर्मपद वाच्य है। पुण्य कर्मका परिणाम सुख है और पापका दुःख। पुण्यकर्मके अनुष्ठानसे स्वर्गादिका भोग होता है। बाद पुण्यके क्षीण होनेसे पृथिवी पर जन्मग्रहण करना पड़ता है। श्रुतिमें लिखा है,— "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।" सुखाभिलाषी मनुष्यमात्रको ही पुण्यकर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। पुण्य कारण है और सुखभोग उसका कार्य।

अपने किये हुए पुण्यको लोगोंके सामने प्रकट नहीं करना चाहिए; करनेसे उसका क्षय होता है।

पुण्यकर्म कर उसका विषय स्वयं कीर्त्तन करनेसे आत्माभिमान बढ़ता है; इसीलिए शास्त्रकारोंने वैसा करनेसे निषेध किया है। ब्राह्मण-प्रभृति चार वर्णोंके यथाशास्त्र आश्रमधर्मका प्रतिपालन करनेसे पुण्य और शास्त्र विधानका लङ्घन करनेसे ही पाप होता है। अर्थात् धर्मकार्यके अनुष्ठानसे, शास्त्रानुसार चलनेसे पुण्य और इसका प्रतिकूल चलनेसे पाप होता है। धर्मकार्यका विशेष-विवरण धर्म शब्दमें देखो। २ शोभनकर्म, शुभ कर्मका सञ्चय। ३ पावन, शुद्धि। (त्रि॰) ४ धर्मविहित, शुभ, पवित्र, भला, अच्छा। ५ सुन्दर। ६ सुगन्धि।

पुण्यक (सं॰ क्ली॰) पुण्याय कायति कै-क। १ व्रत, अनुष्ठान आदि जिनसे पुण्य होता है। २ विष्णु।

पुण्यकव्रत (सं॰ क्ली॰) पुण्यकं नामव्रतं। स्त्रीकर्त्तव्य व्रतविशेष।

इस व्रतका अनुष्ठान करनेसे स्त्रियां हरितुल्य पुत्र लाभ करती हैं। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इस व्रतका विधान इस प्रकार लिखा है,—विशुद्धकालमें माघमासकी शुक्ला-त्रयोदशीको इस व्रतका आरम्भ करके एक वर्ष तक करना होता है। व्रतके पूर्व दिन उपवास रह कर व्रतके दिन स्नानादि करनेके बाद यथानियम प्रातःकृत्यादि समापन करे। पीछे पुरोहितको वरण और स्वस्ति वाचन करके कृष्णका षोड़शोपचारसे पूजन और होम आदि करे। इस व्रतका आरम्भ करके एक वर्ष तक पहले ६ मास हविष्यान्न भोजन, पीछे ५ मास फलादि भोजन, १५ दिन हविर्भोजन और उसके बाद १५ दिन जल पी कर रहना पड़ता है। इस व्रतानुष्ठानके समय सभी प्रकारकी विलासिता विशेषरूपसे निषिद्ध है। लोभ, मोह, काम, क्रोध, भय, शोक, विवाद और कलह आदिका परित्याग करना होता है। व्रतारम्भके समय यदि किसी तरह इन्द्रियादिके अधीन हो, तो व्रतका कोई फल नहीं होता। यथानियम व्रतप्रतिष्ठा करके ब्राह्मणको दक्षिणा देवे।

जो भक्तिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करती हैं, उन्हें हरिके प्रति दृढ़-भक्ति उत्पन्न होती है, हरिके सदृश पुत्रलाभ होता है तथा सौन्दर्य, स्वामिसौभाग्य, ऐश्वर्य और विपुल धन हाथ लगता है एवं जन्म जन्ममें सभी प्रकारके अभिलाष सिद्ध होते हैं।

अति संक्षेपमें यह व्रतविधान लिखा गया। विशेष विवरण गणपतिखण्डके ३-४ अध्यायमें लिखा है।

हरिवंशमें इस व्रतका विधान इस प्रकार लिखा है,—सोमनन्दिनी अरुन्धतीने जब पार्वतीसे इस पुण्य

व्रतका विषय पूछा, तब उन्होंने कहा था, 'तपके प्रभावसे मैंने इस व्रतका विधान जैसा देखा है, वही कहती हूं',— जो नारी यह व्रत करना चाहे, वह बहुत सवेरे विछावनसे उठ कर पहले स्वामीसे अनुमति ले। पीछे श्वसुरके चरणोंमें वन्दना कर अक्षत और कुशयुक्त उमरके पत्तको ग्रहण करके धेनुके दक्षिण शृङ्गमें अभिषिक्त करे। अनन्तर उस जलको ले कर पहले स्वामीके, पीछे अपने मस्तक पर छिड़क दे। कारण, यह जल सभी तीर्थोंके जलसे पवित्र है। व्रतके दिन पहले शुक्लाम्बर परिधान करना ही विधेय है, किन्तु उसके नीचे जरुदेश तक आच्छादन करके एक और वस्त्र पहने। पादरक्षार्थं तृणमय पादुकाका भी व्यवहार किया जा सकता है।

अवलागण इसी नियमसे १ वर्ष, ६ मास वा १ मास रहनेके बाद ग्यारह साध्वी स्त्रियोंको स्वयं निमन्त्रण दे कर बुलावें। उनके आने पर प्रथमतः देशकालानुसार मूल्य दे कर उन्हें खरीद लें। अनन्तर मल्लिकप्रोक्षण द्वारा उन सब स्त्रियोंको आचार्यको दे दें। फिर आचार्यसे निष्क्रय-दानमें उन्हें खरीद कर अपने अपने स्वामीके हाथ अर्पण करें। पीछे एक मास बीत जाने पर शुक्लनवमी तिथिको यथाविधि पूजादि समाप्त कर व्रत उद्यापन करना होता है।

यह व्रत तीन दिन तक करनेका नियम है। व्रतके दिन स्वामीको भी क्षौरकर्म कराके विवाहकी तरह एकत्र स्नान, एकत्र अलङ्कार परिधान और मालाधारण विधेय है। स्नानके समय व्रतधारणी जलपूर्ण कलस अपने हाथमें ले कर स्वामीके चरणोंमें प्रणाम करे और यथाविहित मन्त्रसे उन्हें स्नान करावे। स्नान करा चुकनेके बाद स्वामीको स्वयं कृत सूत्रनिर्मित युगल वस्त्र दे। यदि किसी विघ्नवशतः ऐसा न हो सके, तो वे स्वकृत सूत्रमिश्रित अत्युत्कृष्ट एक शुभ्रवर्ण वस्त्र दे सकती हैं।

अनन्तर शुद्धाचार जितेन्द्रिय ब्राह्मणको भर्त्ताके साथ भोजन करावे। पीछे उस ब्राह्मणको वस्त्रयुगल, शय्या, पान, गृह, धान्य, दासदासी, यथाशक्ति अलङ्कार प्रभृति देवे। दानकी जितनी वस्तुएं हों उनमें धान और तिल मिला करके विविध वर्णके वस्त्रोंसे आच्छादन कर दान करना कर्त्तव्य है। समर्थ होने पर हाथी और घोड़े भी दान करे। अभावमें गो-दान अवश्य कर्त्तव्य है। इस व्रतमें मेरो (पार्वतीको) और महेश्वरकी पूजा करनी होती है। लवण, नवनीत, गुड़, मधु, सुवर्ण, सभी प्रकारके गन्धद्रव्य, सभी प्रकारके रस तथा किसी भी अभिप्सित द्रव्य द्वारा पूजन करना चाहिए है। काल, देश और विभवके अनुसार थोड़ा या बहुत जो कुछ दान करना हो, भर्त्तासे अनुमति ले ले। तिलपात्र, कपिलधेनु, कांस्य, कृष्णाजिन, सवस्त्रजलपात्र, दर्पण और मयूरपुच्छ ये सब वस्तु अवश्य देनी होती हैं। व्रतोपलक्षमें इन सब वस्तुओंका दान करनेसे सभी अभिलाष पूर्ण होते हैं। जो स्त्री उक्त वस्तु दान कर सकती हैं, वे पुरनारियोंमें श्रेष्ठा, पुत्रवती, धनशालिनी, सौभाग्य और रूपवती तथा मुक्तहस्ता होती हैं। इच्छानुसार वे कन्यारत्न भी पा सकती हैं। आगे चल कर वह कन्या भी गुणमें उन्हींके समान होगी।

यह पुण्यकव्रत सबसे पहले मैंने किया था; इसीसे इसका दूसरा नाम उमाव्रत भी है। स्त्रियोंके लिये यह व्रत अति उत्कृष्ट और सब प्रकारके अभीष्ट फलदायक माना गया है। अतएव स्त्रीमात्रको ही इसका अनुष्ठान विधेय है। व्रतकी समाप्ति पर स्त्रियोंको भोजन करावे और देशकालानुसार उन्हें अभिलषित वस्तु प्रदान करे। व्रतके निमित्त जो सब द्रव्यादि लाये जायंगे, उनमेंसे कोई एक द्रव्य वे ब्राह्मणको जो पसन्द करें दे दे। अनन्तर उन्हें पायस भोजन कराके यथाशक्ति दक्षिणा देनी होती है।" विशेष विवरण हरिवंश १३५-१३८ अध्यायमें देखो।

पुण्यकर्त्तृ (सं॰ पु॰) पुण्यानां कर्त्ता इ-तत्। पुण्यकर्मकारक, पुण्य या शुभ काम करनेवाला।

पुण्यकर्मन् (सं॰ क्ली॰) पुण्यं पुण्यजनकं कर्म। १ शुभकर्म। जिस कार्यके अनुष्ठानसे पुण्य होता है, उसे पुण्यकर्म कहते हैं। (त्रि॰) पुण्यं कर्म यस्य। २ पुण्यकर्मकारी, पुण्य या शुभ काम करनेवाला।

पुण्यकाल (सं॰ पु॰) पुण्यनिमित्तं कालः कालभेदः। पुण्यजनक काल, शुभ समय। सूर्य प्रभृतिकी राशिविशेषमें

प्रवेशनिबन्धन जो पवित्र काल होता है, उसे पुण्यकाल कहते हैं। ऐसे समयमें स्नान दान आदि शुभ कर्म करने होते हैं। संक्रान्ति प्रभृतिके पुण्यकालका विषय तत्तद् शब्दमें देखो।

पुण्यकालता (सं॰ स्त्री॰) पुण्यकालस्य भावः, तल्-टाप्। पुण्यकालत्व, पुण्यकालका कार्य वा धर्म।

पुण्यकीर्त्तन (सं॰ पु॰) पुण्यं पुण्यजनकं कीर्त्तनं यस्य। १ विष्णु। (क्ली॰) पुण्यस्य कीर्त्तनं। २ पुण्य-कथन। (त्रि॰) ३ पुण्यजनक कीर्त्तनयुक्त।

पुण्यकीर्त्ति (सं॰ पु॰) पुण्या कीर्त्तिर्यस्य। १ पुण्य-श्लोक, जिसके कीर्त्तनसे पुण्य होता है। २ विष्णु। ३ बुद्धका नामान्तर। (स्त्री॰) पुण्या कीर्त्तिः। ४ पुण्य-जनिका कीर्त्ति।

पुण्यकृत् (सं॰ त्रि॰) पुण्यं करोति स्मेति पुण्य कृ क्विप्। (सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः। पा ३।२।८९) ततो तुगागमः। पुण्यकर्त्ता, धार्मिक, जो धर्मशील पुण्य कर्म करता हो।

पुण्यकृत्या (सं॰ स्त्री॰) पुण्यकर्म, शुभ काम।

पुण्यक्षेत्र (सं॰ क्ली॰) पुण्यस्य क्षेत्रं ६-तत्। १ पुण्य-भूमि, आर्यावर्त्त। २ पुण्यजनक स्थान, जहां जानेसे पुण्य होता है, तीर्थ। ३ शाक्यबुद्धका नामान्तर।

पुण्यगन्ध (सं॰ पु॰) पुण्यः पवित्रो हृद्यश्च गन्धो यस्य। १ चम्पक, चंपा। पुण्यः गन्धः। २ पवित्र गन्ध।

पुण्यगन्धा (सं॰ स्त्री॰) पुण्यगन्ध-टाप्। स्वर्णयूथिका, सोनाजूहीका फूल।

पुण्यगन्धि (सं॰ त्रि॰) पुण्यः शुभावहः गन्धो लेशोऽस्य इत्समासान्तः। १ शुभावहलेशयुक्त। २ पवित्र गन्धयुक्त।

पुण्यगर्भा (सं॰ स्त्री॰) गङ्गा।

पुण्यगृह (सं॰ क्ली॰) पुण्यं पवित्रं गृहं। पुण्यशाला, पवित्र गृह।

पुण्यजन (सं॰ पु॰) पुण्यः विरुद्धलक्षणया पापो चासौ जनश्चेति। १ राक्षस। पुण्याश्रितो जनः। २ सज्जन, धर्मात्मा। ३ यक्ष।

पुण्यजनेश्वर (सं॰ पु॰) पुण्यजनानां यक्षानामीश्वरः। कुबेर।

पुण्यजित (सं॰ पु॰) पुण्येन जितः आयत्तीकृतः। चन्द्र-लोकादि जिनकी प्राप्ति पुण्य द्वारा होती है। पुण्यके क्षीण होने पर चन्द्रलोकादिसे पुनः पृथ्वी पर जन्मग्रहण करना पड़ता है।

पुण्यता (सं॰ स्त्री॰) पुण्यस्य भावः, तल्-टाप्। पुण्यत्व, पुण्यकार्यका भाव।

पुण्यतृण (सं॰ क्ली॰) पुण्यं पवित्रं तृणं। श्वेत-कुश।

पुण्यदर्शन (सं॰ त्रि॰) पुण्यं शुभजनकं दर्शनं यस्य। १ जिसके दर्शनसे पुण्य हो, जिसके दर्शनका फल शुभ या अच्छा हो। २ चाषपक्षी, नीलकण्ठ। विजया दशमी-के दिन इसके दर्शनसे लोग पुण्य मानते हैं।

पुण्यदुह (सं॰ त्रि॰) पुण्यधुक्, पुण्यदाता।

पुण्यनाथ (सं॰ पु॰) वैयाकरणभेद।

पुण्यनामन् (सं॰ पु॰) १ कुमारानुचरभेद, कार्त्तिक-के अनुचरका नाम। (त्रि॰) २ पुण्यसाधक नाम।

पुण्यपुरुष (सं॰ पु॰) १ सत्लोक, साधु व्यक्ति। २ पवित्रचेता व्यक्ति।

पुण्यप्रताप (सं॰ पु॰) पुण्यबलसे बलवान्।

पुण्यप्रद (सं॰ त्रि॰) पुण्यं प्रददातीति दा-क। पुण्यदान-कारी, पुण्य देनेवाला।

पुण्यप्रसव (सं॰ पु॰) बौद्धोंके एक देवताका नाम।

पुण्यफल (सं॰ पु॰) पुण्यानि शुभानि फलानि यस्य। १ लक्ष्मी-आवास वनभेद, लक्ष्मीके रहनेका वन। इसका दूसरा नाम लक्ष्म्याराम भी है। पुण्यस्य फलं पुण्यजन्य फलमिति भावः। (क्ली॰) २ धर्मजन्य फल, पुण्यकर्मके अनुष्ठानका फल।

पुण्यभाज (सं॰ त्रि॰) पुण्यं भजतीति भज-ण्वि। पुण्य-शिष्ट, पुण्यात्मा।

पुण्यभू (सं॰ स्त्री॰) पुण्यस्य पुण्योत्पादिका वा भूर्भूमिः। आर्यावर्त्त देश। शास्त्रमें आर्यावर्त्त देश पुण्यभूमि नामसे प्रसिद्ध है।

पुण्यभूमि (सं॰ स्त्री॰) पुण्यस्य पुण्योत्पादिका वा भूमिः। १ आर्यादेश। २ पुत्रेसू, पुत्रवती स्त्री।

पुण्यमय (सं॰ त्रि॰) पुण्यस्वरूपे मयट्। पुण्यस्वरूप।

पुण्यमित्र—बौद्धोंके सत्ताईसवें धर्मगुरु वा स्थविर। ये दाक्षिणात्यवासी एक क्षत्रिय-सन्तान थे। भारतके पूर्ववर्त्ती देशोंमें भ्रमण कर ये ३८८ ई॰में परलोकको सिधार गए।

पुण्ययशस् (सं॰ पु॰) १ बौद्धोंके ग्यारहवें धर्मगुरु। ये चीनदेशके कुंपुत् नगरमें धर्म प्रचारकके मध्य मशहूर थे तथा इनका चीनदेशीय नाम फु-न-य-चौ था। (त्रि॰) २ पुण्ययशोयुक्त।

पुण्यराज—भर्तृहरिकृत वाक्यपदीय ग्रन्थके टीकाकार।

पुण्यरात्र (सं॰ पु॰) पुण्या रात्रिः अच् समासान्त, रात्रान्तात् पुंस्त्वं। पुण्या रात्रि, पवित्र रजनी, शुभप्रद रात।

पुण्यलोक (सं॰ पु॰) पुण्यप्राप्यः लोकः। १ पुण्यद्वारा प्राप्त लोक, चन्द्रलोकादि। पुण्यकर्मके करनेसे जिस लोकमें गति होती है, उसे पुण्यलोक कहते हैं। पुण्यः लोकः कर्मधा॰। २ धर्मनिष्ठ मनुष्य, धार्मिक व्यक्ति।

पुण्यवत् (सं॰ त्रि॰) पुण्यमस्यास्तीति पुण्य मतुप्, मस्य व। पुण्ययुक्त, धर्मात्मा। पर्याय—सुकृती, धन्य, सुकृत्, पुण्यकृत्, धर्मवान्, श्रेयस्वान्, वृषवान् इत्यादि।

पुण्यवर्मन् (सं॰ पु॰) विदेहराजके पुत्रका नाम।

पुण्यवान् (हिं॰ वि॰) धर्मात्मा, पुण्य करनेवाला।

पुण्यशकुन (सं॰ क्ली॰) पुण्यसूचकं शकुनं। १ शुभसूचक शकुन, शुभ चिह्न। (त्रि॰) २ शुभ साधन।

पुण्यशाला (सं॰ स्त्री॰) पुण्याशाला गृहं कर्मधा॰। पवित्र गृह, पाक घर।

पुण्यशील (सं॰ त्रि॰) पुण्यं शीलयतीति शील-अच्, वा पुण्यं पवित्रं शीलं स्वभाव यस्य। १ नियतपुण्यानुष्ठायी, पुण्य स्वभाव, अच्छा चालचलन वाला।

पुण्यशीला (सं॰ स्त्री॰) पुण्यशील-टाप्। गायत्री।

पुण्यश्लोक (सं॰ पु॰) पुण्यः पुण्यदायकः श्लोकोयश चरित्रं वा यस्य। १ विष्णु। २ युधिष्ठिर। ३ नल राजा। (त्रि॰) ४ पुण्य चरित्र या आचरणवाला, जिसका सुन्दर चरित्र या यश हो, जिसका जीवनवृत्तान्त पवित्र और शिक्षादायक हो।

पुण्यश्लोका (सं॰ स्त्री॰) पुण्यश्लोक-स्त्रियां टाप्। १ द्रौपदी। २ सीता।

पुण्यसम (सं॰ अव्य॰) पुण्यं समं यत्र, तिष्ठद्गु अव्ययी॰। तुल्यपुण्य, पुण्यके जैसा।

पुण्यसहम (सं॰ क्ली॰) नीलकण्ठताजिकोक्त सहमभेद। नीलकण्ठ ताजिकमें ५० प्रकारके सहम हैं जिनमेंसे पुण्यसहम प्रथम है। इसका आनयनप्रकार इस तरह है—दिवा और रात्रि दोनों समय सहमका साधन किया जा सकता है। दिनको सहम साधन करनेमें पहले चन्द्रस्फुट करे, पीछे उसमेंसे रविस्फुट घटा कर अवशिष्टाङ्कमें लग्नस्फुट जोड़ दे और रात्रिकालमें रविस्फुटमेंसे चन्द्रस्फुट घटा कर अवशिष्टमें लग्नस्फुट जोड़नेसे जो फल होता है, उसका नाम पुण्यसहम है। किन्तु शोध्यराशि अर्थात् जिसे वियोग किया गया है, उससे ले कर शुद्ध राशि (जिस राशिमेंसे वियोग किया गया है) तक यदि लग्न न रहे, तो उक्त सहममें एक जोड़ना होता है। फिर शोध्य और शुद्धराशिके मध्य यदि लग्न रहे, तो एकका योग देना नहीं पड़ेगा।

पुण्यसहम—जन्मकालमें षष्ठ, अष्टम और द्वादशस्थ हो कर वर्षप्रवेश कालमें यदि पापग्रहसे दृष्ट वा युक्त हो, तो उस वर्षमें धर्म, अर्थ और सुखकी हानि होती है। परन्तु सहमाधिपतिके अस्तगत होने पर भी उक्त प्रकारका फल नहीं होता। जन्मकालमें अथवा वर्षप्रवेशकालमें यदि पुण्यसहम बलवान् निज स्वामी वा शुभग्रह द्वारा दृष्ट अथवा युक्त हो, तो धर्मवृद्धि और धनागम होता है। इसका विपरीत होनेसे फल भी विपरीत मिलता है। पुण्यसहम यदि लग्नके षष्ठ, अष्टम वा द्वादशस्थ हो, तो धर्म, भाग्य और यशकी हानि होती है। इस समय शुभग्रह वा सहमाधिपतिकी दृष्टि वा योग रहनेसे वर्षके शेषभागमें सुख और धर्मादि होता है। पुण्यसहम यदि पापयुक्त शुभग्रहसे दृष्ट हो, तो पहले अशुभ और पीछे शुभ और यदि अशुभयुक्त तथा पापदृष्ट हो तो पहले शुभ और पीछे अशुभ होता है।

जिस वर्षमें पुण्यसहम शुभ होगा, उस वर्षका फल भी शुभ जानना चाहिये। अशुभ होनेसे फल भी अशुभ होता है। वर्षप्रवेश और कोष्ठीसे इस सहम फलादिकी गणना की जाती है। सहम देखो।

पुण्यसागर (सं॰ पु॰) पुष्करमूल।

पुण्यसागर महामहोपाध्याय—एक जैन पण्डित। ये जिनहंससूरिके शिष्य थे। जसलमीराधिपति भीमराजके राजत्वमें १६७५ संवत्‌को इन्होंने जम्बुद्वीपप्रज्ञप्ति नामक जैनग्रन्थकी एक टीका और वृत्तिकी रचना की।

पुण्यसुन्दरगणि—एक जैनग्रन्थकार। इन्होंने हेमचन्द्र-विरचित धातुपाठका अक्षरवर्णानुक्रम नामक एक सरल व्याख्या रची है।

पुण्यसेन (सं० पु०) उज्जयिनीके एक राजा।

पुण्यस्तम्भकर (सं० पु०) पुण्यतामकर, आत्मतत्त्वजाति-विचार और साहश्यवादके रचयिता।

पुण्यस्थान (सं० क्ली०) पुण्यनिमित्तं स्थानं। १ पुण्योत्पादनसाधन स्थानभेद, तीर्थस्थान, पवित्रस्थान। २ लग्नावधि नवम स्थान, जन्मकुण्डलीमें लग्नसे नवां स्थान जिसमें कुछ ग्रहोंके होनेसे पुण्यवान् या पुण्यहीन होनेका विचार किया जाता है। बहुत संक्षेपमें इसका ज्योतिषोक्त मत लिखा जाता है,—

जन्मकालमें सूर्यके नवमस्थ होनेसे पुण्यहीन और वह नवम स्थान यदि सूर्यका उच्च स्थान हो, तो जातबालक पुण्यशील होता है। पूर्णचन्द्र नवमस्थ होनेसे जातबालकको पुण्यवान् और चन्द्रक्षीण होनेसे पुण्यहीन समझना चाहिये। जात बालकके नवम स्थानमें शुभग्रह रहनेसे वा शुभग्रह द्वारा दृष्ट होनेसे वह पुण्यशील और अशुभग्रह वा अशुभग्रहकी दृष्टि रहनेसे पुण्यहीन होगा। पुण्यादिका विषय स्थिर करनेमें ग्रहगणके बलाबलकी विशेष रूपसे परीक्षा करनी होती है। धर्मस्थान देखो।

पुण्या (सं० स्त्री०) १ तुलसी। २ पुनपुना नदी।

पुण्यात्मन् (सं० त्रि०) पुण्यः आत्मा स्वभावो यस्य। पुण्यशील, जिसकी प्रवृत्ति पुण्यकी ओर हो। पद्मपुराणके क्रियायोगसारमें इस प्रकार लिखा है—पुण्यात्माओंके सभी पन्थ उपद्रवरहित होते हैं और उनके गमनकालमें कहीं तो गन्धर्वकन्या गान करती हैं, कहीं अप्सरायें नाचती हैं, कहीं वीणाध्वनि सुनाई देती है, कहीं पुष्पवृष्टि होती है और कहीं सुशीतल वायु बहती है। इस प्रकार नाना प्रकारके सुखभोग करते हुए पुण्यात्मगण स्वर्ग जाते हैं। कोई पुण्यात्मा हाथी, कोई घोड़े और कोई रथ पर सवार हो स्वर्ग जाते हैं। जाते समय देव और गन्धर्वगण उनकी स्तुति करते हैं। किसीको तो देवकन्यागण चामर आदि डुलाती हुई ले जाती हैं। राहमें पुण्यात्मा व्यक्ति अपने इच्छानुसार द्रव्य भोजन कर परम सुखसे यमपुर जाते हैं। इनके यमपुर पहुंचने पर यमराज और यमकिङ्करगण नारायणकी मूर्त्ति धारण करके मीठी मीठी बातोंसे उनका सम्भाषण और मित्रकी तरह पूजन करते हैं। पीछे उन्हें अच्छी तरह खिला पिला कर निम्नोक्त वाक्यसे उन्हें प्रसन्न करते और दिव्यरथ पर चढ़ा कर नारायणपुर भेज देते हैं। वाक्य यथा—

'आप लोग सभी महात्मा हैं, नरकका क्लेश बिलकुल नहीं सह सकते। अभी अपने अपने पुण्यकर्मके प्रभावसे परमपदको प्राप्त करें। संसारमें जन्म ले कर जो व्यक्ति पुण्यसञ्चय करते हैं, वे हमारे पिता, भ्राता, बन्धु और सुहृद हैं।'

यमके इस प्रकार कहे जाने पर पुण्यात्मागण विष्णुपुर गमन करते हैं। (पद्मपु० क्रियायोगसार २२ अ०)

पुण्याई (हिं० स्त्री०) पुण्यका फल वा प्रभाव।

पुण्यानन्दराय—कामकलाविलास नामक ग्रन्थके रचयिता।

पुण्यालङ्कृत (सं० त्रि०) पुण्येन अलङ्कृतः। पुण्य द्वारा अलङ्कृत, पुण्यात्मा, जिनका पुण्य ही एकमात्र अलङ्कारस्वरूप है।

पुण्याह (सं० क्ली०) पुण्यञ्च तदहश्चेति, ततोऽच् समासान्तः (उत्तमैकाभ्याञ्च। पा ५।४।९०) इति न अह्नादेशः। पुण्य दिन, मङ्गलका दिन।

किसी पूजादि शुभ कार्यके अनुष्ठानमें जब स्वस्तिवाचन करना होता है, तब पहले ही 'पुण्याहवाचन' विधेय है। स्वस्तिवाचन देखो।

पुण्याहवाचन (सं० क्ली०) पुण्याहस्य वाचनं ६-तत्। पुण्याह शब्दका वाचन, देवादिकर्ममें मङ्गलके लिये 'पुण्याह' इस शब्दका तीन बार कथन। जिस दिन देव आदि कर्मोंका अनुष्ठान करना होता है, उस दिन पहले पुण्याह अर्थात् आज शुभदिन है, इस प्रकार तीन बार कहना होता है। ब्राह्मणको ओङ्कारके साथ और क्षत्रिय तथा वैश्यादिको निरोङ्कार पुण्याहवाचन करना चाहिये।

पुण्योदका (सं० स्त्री०) पुण्यं पुण्यजनकं स्नानदानादावुदकं यस्याः। नदीभेद, एक नदीका नाम।

पुण्योदय (सं० पु०) पुण्यानामुदयः। पुण्यकर्मका उदय।

पुत् (सं० क्लो०) पुन्नाहुलकात् डुति पृषोदरादित्वात् साधुः। १ नरकभेद। पुत्रोत्पत्ति द्वारा इस नरकसे मानवगण निष्कृति लाभ करते हैं। (त्रि०) २ कुत्सित, खराब।

पुतरिया (हिं० स्त्री०) पुतली देखो।

पुतरी (हिं० स्त्री०) पुतली देखो।

पुतला (हिं० पु०) लकड़ी, मिट्टी, धातु, कपड़े आदिका बना हुआ पुरुषका आकार या मूर्त्ति, विशेषत: वह मूर्त्ति जो विनोद या क्रीड़ाके लिये हो।

पुतली (हिं० स्त्री०) १ लकड़ी, मिट्टी, धातु, कपड़े आदिकी बनी हुई स्त्रीकी आकृति या मूर्त्ति, गुड़िया। २ आँखका काला भाग। इसके बीचमें एक छेद होता है जिसमें हो कर प्रकाशकी किरणें भीतर जाती हैं और पदार्थोंका प्रतिविम्ब उपस्थित करती हैं। दूसरेकी आँख पर दृष्टि गड़ा कर देखनेवालेको इस काले मण्डलके बीचके तिलमें अपना प्रतिविम्ब पुतलीके आकारका दिखाई पड़ता है, इसीसे यह नाम पड़ा है। ३ घोड़ेकी टापका वह मांस जो मेठककी तरह निकला होता है। ४ कपड़ा बुननेकी कल या मशीन। ५ किसी स्त्रीकी सुकुमारता और सुन्दरता सूचित करनेके लिये व्यवहृत शब्द, जैसे, वह स्त्री क्या है, पुतली है।

पुताई (हिं० स्त्री०) १ किसी गीली वस्तुकी तह चढ़ानेका काम, पोतनेकी क्रिया या भाव। २ दीवार आदि पर मिट्टी गोबर चूना आदि पोतनेका काम। ३ पोतनेकी मजदूरी।

पुतारा (हिं० पु०) १ किसी वस्तुके ऊपर पानीसे तर कपड़ा करनेकी क्रिया, भीगे कपड़ेसे पोछनेका काम। २ पोतनेका तर कपड़ा।

पुतुर—दाक्षिणात्यमें मलवार जिलेके कालिकट तालुकान्तर्गत एक नगर। यह कालिकटसे ६। कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यहांके मन्दिरमें प्राचीन तामिल अक्षरमें लिखी हुई एक शिलालिपि है।

पुत्त—एक राजपूत-सामन्त। सोलहवर्षकी अवस्थामें इन्होंने चित्तोर-रक्षाका भार ग्रहण किया था। इसी समय इनका विवाह हुआ, नवपरिणीता प्रियतमा वधूको छोड़ कर वे जो रणक्षेत्रमें उतर पड़े, इस पर उनकी वीरमाता डर गईं, कि शायद कहीं उनके हृदयमें क्लेश और चाञ्चल्य स्थान न ले ले। इस आशङ्कासे वे बालिका वधूमाताको रणसाजसे सज्जित कर समरप्राङ्गणमें उपस्थित हो गईं। आक्रमणकारियोंके कराल कवलसे राजपूतानेकी प्रधान राजधानी चित्तोर नगरीका रक्षा-भार एक मात्र बालक पुत्र, राजमाता और कुमारी राजपूत बालिकाके उत्साह पर सौंपा गया। निर्भीक राजपूत योद्धृगण दोनों रमणियोंको असीम वीरतासे उत्साहित हो जातीय गौरवरक्षाके लिये प्राणपणसे कोशिश करने लगे। उन्होंने उक्त वीररमणियोंको घोरतर युद्ध करके शत्रुके शोणित अस्त्रसे जीवन दान करते देखा था। अन्तमें सोलह वर्षके बालक पुत्त माता और स्त्रीको निहत देख दिगविदिग ज्ञान शून्य उन्मत्तकी तरह रणसमुद्रमें कूद पड़े। इस युद्धमें पुत्तने आत्मजीवन दान करके इस लोककी ज्वालासे निष्कृति लाभ की थी।

पुत्तल (सं० पु०) पुत्त-गतौ भावे घञ्, पुत्तं गमनं लाति अन्यस्मादिति ला-क। पत्रादि निर्मित प्रतिमूर्त्ति, पुतला।

पुत्तलक (सं० पु०) पुत्तल संज्ञायां कन्। पुत्तल शब्दार्थ, पुतला।

पुत्तलिका (सं० स्त्री०) पुत्तली एव स्वार्थे कन्, टाप, ततो ईकारस्य ह्रस्वः। तृण, काष्ठ, मृत्तिका, प्रस्तर धातु वा रत्नादि निर्मित प्रतिमूर्त्ति, लकड़ी, मिट्टी, धातु, कपड़े आदिकी बनी हुई मूर्त्ति, गुड़िया।

पुत्तली (सं० स्त्री०) पुत्तल-ङीष्। मृदादिनिर्मित प्रतिमूर्त्ति।

पुत्तलीपूजक (सं० पु०) पुत्तलीनां पूजकः। वह जो पुतलीकी पूजा करते हैं। जो देवप्रतिमाका पूजन करते हैं, उन्हें विधर्मी लोग पुत्तलीपूजक कहते हैं।

पुत्तलीपूजा (सं० स्त्री०) पुत्तलीनां पूजा। पुतलीकी पूजा।

पुत्तिका (सं० स्त्री०) पुत्तं इतस्ततो भ्रमणमस्त्यस्या इति पुत्तठन्, ततष्टाप। १ मधुमक्षिकाविशेष, एक प्रकारकी मधुमक्खी। इसका पर्याय पतङ्गिका है। २ पिपीलिकाभेद, दीमक। पुत्तिका जिस प्रकार थोरे

धीरे वल्मीक प्रस्तुत करती हैं, मानवगणको परलोकके लिये उसी प्रकार धीरे धीरे धर्मसञ्चय करना चाहिये।

पुत्तूर—१ मन्द्राजप्रदेशके दक्षिणकणाड़ा जिलान्तर्गत उप्पिनाङ्गदी तालुकका प्रधान नगर और सदर। यह अक्षा० १२° ४६' उ० और देशा० ७५° १२' पू०के मध्य अवस्थित है। पहले कूर्गराज्यकी सीमान्त रक्षाके लिये इसकी सैन्यसमावेशस्थानमें गिनती होती थी। १८३७ ई०में यहां घोर राष्ट्रविप्लव हुआ था। उत्तेजित विद्रोही दलके अत्याचार और नररक्तसे नगरने धीरे धीरे वीभत्सस्वरूप धारण कर लिया था। इसके बाद १८५८ ई०में अंगरेज राजने यहां सेना रखनेका अड्डा बनाया है। यहांके प्राचीन मन्दिरमें एक अस्पष्ट शिलालिपि खोदित है। जनसंख्या चार हजारके करीब है।

२ मालवार जिलेके कोट्टयम तालुकके अन्तर्गत एक ग्राम। यहां पर्वतके ऊपर गुहा देखनेमें आता है।

३ उक्त जिलेके पालघाट तालुकका एक नगर। यह पालघाटसे १ कोस उत्तर रेलवे-स्टेशनके समीप अवस्थित है। यहांके प्राचीन विश्वनाथ-मन्दिरके पूर्व प्रकारमें एक शिलालिपि है।

४ मन्द्राजप्रदेशके मदुरा जिलान्तर्गत तिरुमङ्गलम् तालुकाका प्रधान नगर।

पुत्र (सं० पु०) १ लग्नसे पञ्चम स्थान। पुनाति पित्रादीनिति पू-क्त, धातोश्च ह्रस्वश्च। (पुवो ह्रस्वश्च। उण ४।१६४) स्वजन्यपुरुष, बेटा, लड़का। पर्याय—तनय, सूनु, आत्मज, दायाद, सुत, तनुज, कुलाधारक, नन्दन, आत्मजन्मन्, द्वितीय, प्रसूति, स्वज, अपत्य।

'पुत्र' शब्दकी उत्पत्तिके लिये यह कल्पना की गई है, कि जो पुन्नाम नरकसे उद्धार करे, उसकी संज्ञा पुत्र है।

स्वयं ब्रह्माने कहा है, कि सुत पिताको पुन्नाम नरकसे त्राण करता है, इसीसे पुत्र नाम पड़ा है।

मनुसंहितामें लिखा है—

पुत्रके उत्पन्न होनेसे स्वर्गादि लोकोंकी प्राप्ति होती है, पुत्रके पुत्र अर्थात् पौत्र उत्पन्न होनेसे सदाके लिये स्वर्गलोकमें वास होता है। पीछे यदि प्रपौत्र उत्पन्न हो, तो आदित्य लोककी प्राप्ति होती है।

मनुने बारह प्रकारके पुत्र कहे हैं, यथा—औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गूढ़ोत्पन्न, अपविद्ध, कानीन, सहोढ़, क्रीत, पौनर्भव, स्वयंदत्त और शौद्र।

इनमेंसे विवाहिता स्त्री सवर्णा स्त्रीके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसे औरसपुत्र कहते हैं। औरस ही सबसे श्रेष्ठ और मुख्य पुत्र है। पुत्रहीन अवस्थामें मृत, नपुंसक अथवा प्रसव विरोधी व्याधियुक्त व्यक्तिकी भार्या स्वधर्मके अनुसार गुरुजन द्वारा नियुक्त हो कर जो पुत्र उत्पन्न करती है, वह पुत्र क्षेत्रज है। गोद लिया हुआ पुत्र दत्तक कहलाता है। किसी पुत्रगुणोंसे युक्त व्यक्तिको यदि कोई अपने पुत्रके स्थान पर नियत करे तो वह कृत्रिम पुत्र होगा। जिसकी स्त्रीका किसी स्वजातीय या घरके पुरुषसे ही पुत्र उत्पन्न हो, पर यह निश्चित न हो, कि किससे, तो वह उसका गूढ़ोत्पन्न पुत्र कहा जायगा। जिसे माता पिता दोनोंने या एकने त्याग दिया हो और तीसरेने ग्रहण किया हो वह उस ग्रहण करनेवालेका अपविद्ध पुत्र होगा। जिस कन्याने अपने बापके घर कुमारी अवस्थामें ही गुप्तसंयोगसे पुत्र उत्पन्न किया हो, उस कन्याका वह पुत्र उसके विवाहित पतिका कानीन पुत्र कहा जायगा। पहलेसे गर्भवती कन्याका जिस पुरुषके साथ विवाह होगा, गर्भजात पुत्र उस पुरुषका सहोढ़ पुत्र होगा। माता पिताको मूल्य दे कर जिसे मोल लें वह क्रीत पुत्र कहलाता है। जो स्त्री पति द्वारा त्यागी अथवा विधवा या स्वेच्छाचारिणी हो कर पर पुरुषसंयोग द्वारा पुत्र उत्पन्न करती है, उसे पौनर्भव पुत्र कहते हैं। मातृपितृविहीन अथवा माता पिताका त्यागा हुआ यदि किसीसे स्वयं जा कर कहे कि, "मैं आपका पुत्र हुआ" तो वह स्वयंदत्त पुत्र कहलाता है। विवाहिता शूद्रा और ब्राह्मणके संयोगसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसे पारशव वा शौद्र पुत्र कहते हैं।

ये जो बारह प्रकारके पुत्र कहे गये, उनमेंसे औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गूढ़ोत्पन्न और अपविद्ध अर्थात् परित्यक्त ये सब दायाद और बान्धव हैं। शेष कानीन, सहोढ़, क्रीत, पौनर्भव, स्वयंदत्त और शौद्र ये सब पैतृक धनके अधिकारी नहीं हो सकते। ये केवल बान्धव अर्थात् श्राद्धादिके अधिकारी मात्र हैं।

उक्त बारह प्रकारके पुत्रोंमेंसे औरस पुत्र ही सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है। मनुने कहा है,—

मनुष्य जिस प्रकार बेड़ेके द्वारा समुद्र पार करनेमें मन्द फल पाते हैं अर्थात् डूब जाते हैं, उसी प्रकार क्षेत्रजादि निन्दित पुत्र द्वारा पापसे उत्तीर्ण होनेमें मन्द फल प्राप्त होता है अर्थात् घोर पापमें लिप्त होना पड़ता है।

क्षेत्रजादि जिन ग्यारह पुत्रोंका उल्लेख किया गया है, शास्त्रकारोंने उन्हें औरस पुत्रके प्रतिनिधि बतलाया है ; अर्थात् श्राद्धतर्पणादिका जिससे लोप न हो, इसीलिये पण्डितोंने क्षेत्रजादि ग्यारह पुत्रोंकी विधि प्रदान की है।

औरस-पुत्र प्रसङ्गमें क्षेत्रजादि अन्य वीर्योत्पन्न जो सब पुत्र कहे गये हैं, यदि कोई गृहस्थ औरस पुत्रके रहते वे सब पुत्र ग्रहण करें, तो वे गृहीताके पुत्र न हो कर उत्पादकके ही पुत्र होंगे। एक पितासे उत्पन्न सहोदरोंके मध्य यदि एक पुत्रवान् हो, तो उस भ्रातुष्पुत्र द्वारा सभी पुत्रवान् होंगे अर्थात् भ्रातुष्पुत्रके रहते अन्य पुत्रप्रतिनिधि करना कर्त्तव्य नहीं है, क्योंकि भ्रातुष्पुत्र ही उनका पिण्डप्रद और अंशहर है।

इसी प्रकार स्त्रियोंमें भी यदि एक पत्नी पुत्रवती हो तो उस पुत्र द्वारा वे सभी पुत्रवती होंगी अर्थात् सपत्नी पुत्र रहते स्त्रियोंको और कोई दत्तकादि पुत्र रखना उचित नहीं।

पद्मपुराणके प्रकृति खंडमें और भी चार प्रकारके पुत्रोंका उल्लेख देखनेमें आता है, यथा—ऋणसम्बन्धी पुत्र, न्याससम्बन्धी पुत्र, रिपुपुत्र और प्रियपुत्र।

न्याससम्बन्धी पुत्र।—यदि कोई व्यक्ति पूर्व वा इस जन्ममें किसीके निकट कोई वस्तु न्यास (थाती) रखे और जिसके निकट न्यास रखा जाय, वह यदि न्यासस्वामीको ठग कर गच्छित वस्तु स्वयं ले ले, तो न्यासस्वामी परजन्ममें उसके यहां पुत्ररूपमें जन्म लेता है और रूपगुणसम्पन्न हो कर भक्तिपूर्वक प्रतिदिन प्रियवाक्यसे पिताको प्रसन्न रखता है। पिता भी पुत्रके पुत्रोचित व्यवहार और समधिक स्नेहममतासे पुत्रगतप्राण हो सर्वदा आनन्द-सागरमें गोता खाते हैं। इस प्रकार क्रमशः पुत्ररूपी न्यासस्वामी जब देखता है, कि उसके प्रति पिताका गहरा प्रेम हो गया और उसके भरण-पोषणसे गच्छित धनका उपभोग भी कर चुका, तब वह अकालमें अपना देहत्याग कर देता है। इस प्रकार न्यासापहरणमें जैसा दुःख उसे हुआ था, पितृरूपी न्यासापहारकको वैसा ही कष्ट दे कर वह चला जाता है। पिता पुत्रकी मृत्यु देख जब हा पुत्र कह कर रोते हैं, तब वह 'कौन किसका पुत्र है' यह कह कर हास्य करता है और कहता है, 'पहले तुमने मेरा न्यासापहरण कर मुझे जैसा कष्ट दिया है, उसके प्रतिफलमें आज मैं तुम्हें वैसा ही दुःख और पिशाचत्व प्रदान कर अपने घर जाता हूं—मैं किसीका पुत्र नहीं हूं।'

ऋणसम्बन्धी पुत्र।—यदि कोई मनुष्य किसीसे ऋण ले कर मर जाय, तो ऋणदाता उसके यहां पुत्र, भाई अथवा पितृरूपमें जन्म लेता है। वह बाहरसे तो उसका मित्र, पर भीतरसे शत्रु बना रहता है। पुत्ररूपी ऋणदाता सर्वदा क्रूरता और निष्ठुरताका आश्रय लेता है, किसीका भी गुण नहीं समझता। वह माता, पिता आदि स्वजनोंके प्रति निरन्तर निष्ठुर वाक्यका प्रयोग किया करता है, प्रतिदिन मिष्टभोजन और नाना प्रकारकी विलासितामें लगा रहता है। वह पुत्र सब समय द्यूतादि निन्दित कार्यों में आसक्त हो कर घरसे द्रव्यादि चुरा ले जाता है। इस पर माता पिता यदि पुत्रको निषेध करें, तो वह उनकी एक भी नहीं सुनता, उलटे माता पिताको ही दुर्वाक्य कहता है। यहां तक कि कोड़े चाबुक आदिकी मार भी दे कर उन्हें जर्जरित कर डालता है। ऋणसम्बन्धी पुत्र दिनों दिन मातापिताको तरह तरहके कष्ट देता है और कहा करता है, कि इस गृहक्षेत्रादिमें जो कुछ वस्तु है, वह मेरी है, तुम लोगोंका इसमें कोई अधिकार नहीं है। मातापिता पुत्रके ऐसे व्यवहार पर हमेशा दुःखसे समय बिताते हैं। माता पिताके मरने पर भी वह पुत्र घृणा और स्नेहशून्य हो कर उनकी पारलौकिक श्राद्धादि किसी भी कार्यका अनुष्ठान नहीं करता।

रिपुपुत्र।—रिपुपुत्र बचपनसे ही रिपुकी तरह व्यस-

हार करता है, क्रीड़ा करते करते भी मातापिताको मार कर हंसता हुआ भाग जाता है और फिर कुछ देरके बाद उनके पास लौट आता है। रिपुपुत्र कभी भी शान्त-प्रकृतिका नहीं होता, हमेशा क्रोधी हो कर वैर कर्म किया करता है। इस प्रकार पूर्व वैरिताका स्मरण कर वह पिता और माताको मार कर चला जाता है।

प्रियपुत्र।—प्रियपुत्र जातमात्र ही बाल्यकालसे लालन और क्रीड़न द्वारा माता पिताका प्रीतिभाजन होता है, पीछे वयःप्राप्त हो कर भक्ति, शुश्रूषा, स्नेह और प्रिय सम्भाषण आदि द्वारा उन्हें प्रसन्न रखनेकी कोशिश करता है। अनन्तर माता पिताकी मृत्यु होने पर भी वह स्नेहवशतः रोता है और भक्तिपूर्वक दुःखित चित्तसे उनका श्राद्ध और पिण्डदान आदि और्द्धदेहिक कर्म विशेषरूपसे करता है।

इन चार पुत्रोंके अलावा उदासीन पुत्र नामक एक और भी पुत्रका उल्लेख देखनेमें आता है। यह पुत्र रात दिन उदासीन भावमें रहता है, किसीसे कोई वस्तु नहीं मांगता और न किसीको कुछ देता ही है। इसके किसी विषयमें क्रोध अथवा परितुष्टि नहीं है। उदासीन पुत्र एक स्थानका त्याग कर किसी दूसरे स्थानमें चला भी नहीं जाता, सभी विषयोंमें उदासीनता प्रकट करता है।

पुत्र जिस प्रकार ऋणसम्बन्धी होता है, उसी प्रकार भार्या, पितामाता, बन्धुवर्ग, भृत्यगण एवं तुरग, गज, महिषी और दासी ये सब भी ऋणसम्बन्धी हो कर रहते हैं अर्थात् ऋणग्रहण कर मर जाते हैं। ऋणदाता जिस प्रकार परजन्ममें ऋणग्रहीताके पुत्ररूपमें रहता है, भार्या, पितामाता आदि भी उसी प्रकार जन्म लेते हैं।

"यथा पुत्रास्तथा भार्या पितामाताश्च बान्धवाः।
भृत्याश्चान्ये समाख्याताः पशवस्तुरगास्तथा।
गजा महिष्यो दास्यश्च ऋणसम्बन्धिनस्त्वमी॥" *

(पद्मपुराण भूमिख० १२ अ०)

भूमिखण्डमें दूसरी जगह सुपुत्रके लक्षणके सम्बन्धमें भगवान् वशिष्ठने कहा है,—जो पुत्र ज्ञानी, बुद्धिमान्, तपस्वी और वाग्मी होगा, जिसकी आत्मा पुण्यकार्य और सत्यधर्ममें आसक्त रहेगी, जो पुत्र सभी कार्योंमें धैर्यावलम्बी, वेदाध्ययनमें तत्पर, सभी शास्त्रोंका वक्ता, देवता और ब्राह्मणका पूजक, दाता, त्यागी, प्रियभाषी, सतत विष्णुध्यानपरायण और सर्वदा शान्त, दान्त, सुहृद्, मातापिताका शुश्रूषाकारी, स्वजनवत्सल, कुल-तारक और कुलका परिपोषक होगा, वही पुत्र सुपुत्र और सर्वजनका सुखदाता है।

शास्त्रमें सुपुत्रको भी जङ्गमतीर्थ बतलाया है। पुत्र-तीर्थ सभी तीर्थोंमें श्रेष्ठ तीर्थ है। सत्पुत्ररूप परम तीर्थ पा कर पूर्वपुरुषगण मुक्तिलाभ करते हैं और पिता भी पितृऋणसे मुक्त होते हैं। कहते हैं, कि पुराकालमें वेण राजा वैष्णवद्वेषी थे और कोई धर्म नहीं मानते थे; तो भी वे पृथुरूप परमपवित्र पुत्रतीर्थ द्वारा पूत हो कर परमपदमें प्रलीन हो गये थे।

पुत्रके वैष्णव होने पर पूर्वपुरुषगण त्राण पाते हैं। केवल इतना ही नहीं, उसके अधस्तन वंशधर भी अति पवित्र हो कर उद्धार पाते हैं।

"वैष्णवो यदि पुत्रः स्यात् स तारयति पूर्वजान्।
पितृनर्त्तिना वंशास्तारयत्यतिपावनाः॥"

(पद्मपु० भूमिखण्ड)

सुपुत्रके जन्म लेने पर मनुष्य जिस प्रकार सभी विषयोंमें सुख पाते हैं, कुपुत्रके जन्म लेने पर उसी प्रकार वे पद पदमें दुःख भोगते हैं। कुपुत्र द्वारा मातापिता अपनी जीवद्दशामें ही तरह तरहके कष्ट पाते हैं, पीछे परकालमें भी उन्हें नरककी प्राप्ति होती है। कुपुत्रके जन्म लेने पर पूर्वपुरुषगण अति दुःखितभावमें बारम्बार घोर नरकमें पतित होते हैं। जिस प्रकार कोई मूढ़ व्यक्ति मन्द बेड़ा द्वारा नदी पार होते समय जलमें डूब जाता है, उसी प्रकार पिता भी कुपुत्र द्वारा नरकसे त्राण तो क्या पावेंगे, अन्धतमस नामक घोर नरकमें निमग्न होते हैं। पुत्रके जन्म लेते ही पितामहगण सन्दिग्ध हो यह सोचते हैं, कि "यह पुत्र क्या कुपुत्र हो कर हम लोगोंको नरकमें गिरावेगा अथवा वैष्णव हो कर स्वर्ग पहुंचावेगा।"

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके प्रकृतिखण्डमें सात प्रकारके पुत्रोंका उल्लेख है। यथा—वरज, वीर्य्यज, क्षेत्रज, पालक, विद्याग्रहीता, मन्त्रग्रहीता और कन्याग्रहीता।

"वरजो वीर्यजश्चैव क्षेत्रजः पालकस्तथा ।
विद्यामन्त्रसुतानाञ्च ग्रहीता सप्तमः सुतः ॥"

(प्रकृतख० ५६ अ०)

पुत्रका मुख देखनेसे मातापिताको पुण्य होता है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके गणपतिखण्डमें लिखा है—

पार्वतीने पुत्रप्रसवके बाद महादेवसे कहा था, "हे प्राणेश्वर! तुम कल्प कल्पमें जिसकी कामना करते हो, आज घर आ कर तपस्याके फलस्वरूप उस पवित्र पुत्र-मुखके दर्शन कर जाओ। पुत्र पिताको पुन्नाम नरक और इस संसारसे परित्राण करता है। सर्व तीर्थोंमें स्नान, दक्षिणापूर्वक यज्ञसम्पादन, विधिमत दान, पृथिवी-प्रदक्षिण, सर्वविध तपस्या, अनशनव्रत, देवताकी सेवा और ब्राह्मणभोजन ये सब कार्य करनेसे जो पुण्य होता है, सत्पुत्रप्राप्तिसे उससे भी अधिक पुण्य प्राप्त होता है।

धनधान्यादि सभी वस्तु पुत्रहेतुक हुआ करती है। पुत्र जिसका उपभोग नहीं करता, वह निष्फल है। एक वापी सौ कूपसे अधिक है, एक सरोवर सौ वापीके समान है और सौ सरोवरसे एक यज्ञ अधिक है। किन्तु एकमात्र सत्पुत्र सौ यज्ञोंसे भी अधिक है। अपने प्राणसे भी बढ़ कर सत्पुत्र सुख प्रदान करता है। पिता-माताके सम्बन्धमें सत्पुत्र भिन्न और कोई श्रेष्ठ बान्धव न कभी हुआ है और न होगा।

मातापिता सत्पुत्रसे पराजित हो कर भी परम आनन्दित होते हैं।

"नन्दः सपुलको हृष्टं सभार्या साश्रुलोचनं ।
आनन्दयुक्ता मनुजा यदि पुत्रैः पराजिताः ॥"

(ब्रह्मवै० श्रीकृष्णजन्मख० २१ अ०)

एक पुत्रके विद्यमान रहने पर भी अनेक पुत्रोंकी कामना करना उचित है। क्योंकि अनेक पुत्र रहनेसे उनमेंसे यदि एक भी पुत्र सुपुत्र निकले, तो वह गया-तीर्थगमन प्रभृति सत्क्रिया द्वारा अपने पितरोंका उद्धार कर सकता है।

"एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्यप्येको गयां व्रजेत् ।
यजेद् वा अश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥"

(मत्स्यपु० २२ अ०)

गुणहीन अनेक पुत्र न हो कर यदि गुणशाली एक ही पुत्र हो, तो उसीसे कुल भूषित होता है।

"एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना ।
वनं सुवासितं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा ॥
एकोहि गुणवान् पुत्रो निर्गुणेन शतेन किम् ।
चन्द्रो हन्ति तमांस्येको न च ज्योतिः सहस्रशः ॥"

(गरुड़पु० ११४-१५ अ०)

पांच वर्ष तक पुत्रका लालन-पालन करे, दश वर्ष तक ताड़ना करे, पीछे सोलह वर्षकी उमरमें पुत्रके साथ मित्र-सा आचरण करना उचित है।

पुत्र जन्म ले कर यदि क्रमशः सद्गुणसम्पन्न हो और परिमितकाल तक जीवित रहे, तो वही पितामाताका आनन्दप्रदायक होता है। अन्यथा पुत्र प्रायः सभी विषयोंमें उन्हें दुःख पहुंचाता है।

"लालयेत् पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि ताड़येत् ।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ॥
जायमानो हरेद्दारान् वर्द्धमानो हरेद्धनम् ।
म्रियमाणो हरेत् प्राणान् नास्ति पुत्रसमोरिपुः ॥"

(गरुड़पु० ११४-१५ अ०)

मार्कण्डेयपुराणमें साधारणतः उत्तम, मध्यम और अधम इन तीन प्रकारके पुत्रोंका उल्लेख है। इनमेंसे जो पुत्र पूर्वोपार्जित पैतृकधन, वीर्य और यशको अक्षुण्ण-भावसे रक्षा कर सकता है, उसे मध्यम; जो अपनी शक्तिसे पिताके उपार्जित धनकी वृद्धि कर सकता है, उसे उत्तम और जो पुत्र पैतृक धन, वीर्य और यशको धीरे धीरे नष्ट कर डालता है, उसे अधम कहते हैं।

"यद्वुपात्तं यशः पित्रा धनं वीर्यमथापि वा ।
तन्न ह्रापयते यस्तु स नरो मध्यमः स्मृतः ॥
तद्वीर्य्यभ्यधिकं यस्तु पुनरन्यत् स्वशक्तितः ।
निष्पादयति तं प्राज्ञा वदन्ति नरमुत्तमं ॥
यः पित्रा समुपात्तानि धनवीर्य्ययशांसि च ।
न्यूनतां नयति प्राज्ञास्तमाहुः पुरुषाधमम् ॥"

(मार्कण्डेयपु०)

मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि पुत्र अनेक रहने पर भी कनिष्ठपुत्र यदि पिता माताका आज्ञाकारी हो, तो वही पुत्र पैतृक राज्यका अधिकारी हो सकता है।

२ सहमभेद। पुत्रसहम देखो।

पुत्रक (सं° पु°) पुत्र स्वार्थे संज्ञयामनुकम्पायां वा कन्। १ पुत्र, बेटा। २ शरभ, टिड्डी। ३ शैलविशेष। ४ पतङ्ग, फतिङ्गा। ५ अनुकम्पान्वित व्यक्ति। ६ दमनकवृक्ष, दौनेका पौधा। ७ मूषिकभेद, एक प्रकारका चूहा। इसके काटनेसे शरीर अवसन्न और पांडुवर्ण हो जाता है तथा अङ्गमें मूषिकसावकसदृश ग्रन्थि पड़ जाती है। इसमें शिरीष और इङ्गुदिकी छालका मधुके साथ लेप देना चाहिये।

पुत्रकन्दा (सं° स्त्री°) पुत्रप्रदो कन्दोऽस्याः। लक्ष्मणाकन्द। इसके सेवनसे गर्भदोष दूर होते हैं, इसीसे इसका नाम पुत्रकन्दा पड़ा है।

पुत्रकर्मन् (सं° क्ली°) पुत्रार्थं कर्म, पुत्रस्य कर्म वा। १ पुत्रके निमित्त कर्म। २ पुत्रका कार्य।

पुत्रका (सं° स्त्री°) पुत्र स्वार्थे संज्ञायां वा कन्, ततष्टाप्। (न यासयो। पा ७।३।४५) इत्यस्य 'सूतकापुत्रिकावृन्दारकानां वेति वक्तव्यं' इति वार्त्तिकोक्त्या ङीन्, इवर्णस्य पक्षेऽकारः। पुत्रिका, बेटी। पुत्रिका देखो।

पुत्रकाम (सं° त्रि°) पुत्रं कामयते काम-अच्। पुत्राभिलाषी।

पुत्रकामेष्टि (सं° स्त्री°) एक यज्ञ जो पुत्रकी इच्छासे किया जाता है।

पुत्रकाम्या (सं° स्त्री°) आत्मनः पुत्रमिच्छति पुत्रकाम्यच्, भावे टाप्। अपनी पुत्रेच्छा।

पुत्रकार्य (सं° क्ली°) पुत्रस्य कार्यं। पुत्रका कर्म।

पुत्रकृतक (सं° त्रि°) जिसे पुत्र बनाया गया हो, दत्तकपुत्र।

पुत्रकृत्य (सं° क्ली°) पुत्रस्य कृत्यं। पुत्रका कार्य, पुत्रत्व।

पुत्रकृथ (सं° त्रि°) कृ-भावे थक्। पुत्राणां कृथाः। पुत्रोत्पादक।

पुत्रघ्नी (सं° स्त्री°) पुत्रं हन्ति हन-टक्-ङीष्। १ योनिरोगविशेष, योनिका एक रोग जिसके कारण गर्भ नहीं ठहरता। योनिरोग देखो। २ पुत्रघातिनी स्त्री।

पुत्रजग्धी (सं° स्त्री°) पुत्रोजग्धो यया ततो ङीष्। पुत्रभक्षणकर्त्री स्त्री, वह स्त्री जो अपने पुत्रका विनाश करती हो।

पुत्रजननी (सं° स्त्री) पुत्रदात्रीलता।

पुत्रजात (सं° त्रि°) जातः पुत्रो यस्य, आहिताग्न्यादित्वात् पुत्रशब्दस्य पूर्वनिपातः। (पा २।२।३७) जातपुत्र, जिसके पुत्र हुआ हो।

पुत्रजीव (सं° पु°) पुत्रं गर्भं जीवयतीति जीवि-अण्। वृक्षविशेष। भिन्न भिन्न देशमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है, यथा,—हिन्दी—पितौंजिया, महाराष्ट्र—जीवनपुत्र, बम्बई—जीवनपुतर, मलयालम—पोङ्गोलम्, पञ्जाबी—पुतजन, तामिल—करुपली, तेलगू—कुदुरुजीवी, यारला, पुत्रजीवी और महापुत्रजीवी तथा अङ्गरेजी—Wild olive (Nageia putranjiva or P Roxburghii)

संस्कृत पर्याय—श्लीपदापह, पुत्रजीव, कुमारजीव, पुत्रञ्जीवक, पवित्र, गर्भद, सुतजीवक।

यह सुन्दर बड़ा वृक्ष हिमालयसे ले कर सिंहल तक होता है। यह बहुत कुछ इङ्गुदीसे मिलता जुलता है। कहीं इसकी खेती होती है और कहीं यह आपसे आप उगता है। इसकी लकड़ी कड़ी और मजबूत होती है। इसके एक घनफुटका वजन २४ सेर होता है। यह चैत वैशाखमें फूलता है और पूसमें इसके फल पकते हैं। फल भी इङ्गुदीके फलोंके ऐसे होते हैं। बीज सूख कर रुद्राक्षकी तरहके हो जाते हैं, इससे बहुतेरे साधु उसकी माला पहनते हैं। बालक-बालिका जिससे पीड़ाग्रस्त न हो, इस भयसे मातापिता अपनी अपनी सन्तानके गलेमें उक्त माला पहना देते हैं।

इसके बीजोंसे तेल भी निकलता है जो जलानेके काममें आता है। पञ्जाबमें कहीं कहीं इसके बीज, छाल और पत्ते औषधमें व्यवहृत होते हैं।

वैद्यकके मतसे इसका गुण—हिम, बलकारक, श्लेष्मावर्द्धक, गर्भजीवप्रद, चक्षुका हितकर, पित्तनाशक, दाह और तृष्णानाशक तथा गुरु, वात, मल और मूत्रकारक, स्वादु, पटु और कटु होता है।

पुत्रञ्जीवक (सं° पु°) पुत्रं गर्भं जीवयतीति जीवि-खच्, द्वितीयायाः अलुक्। १ पुत्रजीववृक्ष। (त्रि°) २ पुत्रका जीवक।

पुत्रता (सं० स्त्री०) पुत्रस्य भावः, पुत्रभावे तल टाप्। पुत्रका भाव, पुत्रका धर्म, पुत्रका कार्य।

पुत्रदा (सं० स्त्री०) पुत्र गर्भ ददाति सेवनेनेति दा-क ततष्टाप्। १ वन्ध्याकर्कोटकी, बांझ ककोड़ा। २ लक्ष्मणाकन्द। ३ गर्भदात्री क्षुप। ४ श्वेतकण्टकारी, सफेद भटकटैया। ५ जीवन्ती।

पुत्रदात्री (सं० स्त्री०) पुत्रं ददाति सेवनेनेति दा-तृच्-ङीष्। मालवप्रसिद्ध लताविशेष, एक लता जो मालवामें होती है। पर्याय—शातारी, भ्रमरी, श्वेतपुष्पिका, वृत्तपत्रा, अतिगन्धालु, वेगीजाता, सुवल्लरी। गुण—वात, कटु, उष्ण और कफनाशक, सर्वदा पथ्य और वन्ध्यादोषनाशक। २ वन्ध्याकर्कोटकी। ३ श्वेतकण्टकारी।

पुत्रपिच्छट (सं० क्ली०) रङ्ग, रांगा।

पुत्रपुत्रदिनी (सं० स्त्री०) धर्ममाता।

पुत्रपौत्र (सं० क्ली०) पुत्रश्च पौत्रश्च तयोः समाहारः, गवाश्वादित्वात् समाहारद्वन्द्वः। (पा २।४।११) पुत्र और पौत्रका समाहार।

पुत्रपौत्रिन् (सं० त्रि०) पुत्रपौत्रक्रमिक, पुरुषानुक्रमिक, वंशपरम्परासे।

पुत्रपौत्रीण (सं० त्रि०) पुत्रपौत्रं तदनुभवति ख। (पा ५।२।१०) पुत्रपौत्र पर्यन्तगामी।

पुत्रपौत्रीणता (सं० स्त्री०) पुत्रपौत्रीण-भावे तल तत्-टाप्। पुत्रपौत्रगामिता।

पुत्रप्रदा (सं० स्त्री०) १ चर्विका, बरहंटा। २ श्वेतकण्टकारि, सफेद भटकटैया। ३ वन्ध्याकर्कोटकी, बांझ ककोड़ा।

पुत्रप्रिय (सं० पु०) १ पक्षीभेद। पुत्रस्य प्रियः। २ पुत्रका प्रिय।

पुत्रभद्रा (सं० स्त्री०) पुत्रस्य भद्रं यस्याः। वृहज्जीवन्ती लता, बड़ी जीवन्ती।

पुत्रभाव (सं० पु०) पुत्रस्य भावः। १ पुत्रत्व। २ ज्योतिषोक्त पञ्चम भाव।

लग्नसे पञ्चमस्थानको पुत्रस्थान कहते हैं। इस पञ्चमस्थानमें ज्योतिषज्ञ पण्डितोंको बुद्धि, संसार, पुण्य, मन्त्र, विद्या, विनय और नीति आदिकी आलोचना करनी चाहिये। इस पुत्रभाव द्वारा किसके कितने पुत्र वा कन्या होगी तथा कौन व्यक्ति निःसन्तान होगा, यह जाना जाता है। यदि लग्नपति लग्नमें, द्वितीय अथवा तृतीय गृहमें रहे, तो प्रथममें पुत्र और यदि वह लग्नाधिप चतुर्थ भवनमें रहे, तो द्वितीयमें पुत्र होगा। यदि चतुर्थ गृहमें शुक्र रहे अथवा उसकी दृष्टि पड़े, तो पुत्रयोग होता है। इसका विपरीत होनेसे अर्थात् अशुभग्रहका अवस्थान वा दृष्टि रहनेसे अपुत्रका योग होता है। यदि पुत्रभावमें तदधिपति ग्रह वा अन्य किसी शुभग्रहकी दृष्टि पड़े अथवा शुभग्रह उस स्थानमें रहे, तो पुरुषके अनेक सन्तान होती है। वह स्थान यदि तत् स्वामीसे दृष्ट न हो कर क्रूरग्रहसे दृष्ट हो, तो सन्तानकी हानि हुआ करती है। लग्नाधिपति यदि लग्नमें द्वितीय अथवा तृतीय स्थानमें रहे, तो द्वितीय और तृतीयादि गर्भमें पुत्र उत्पन्न होगा। शुक्र, मङ्गल और चन्द्र ये तीनों ग्रह यदि द्व्यात्मक राशिमें रहे, तो प्रथम गर्भमें पुत्र होता है। किन्तु यदि उक्त तीनों ग्रह धनुराशिगत हों, तो प्रथम वा शेषमें पुत्र नहीं होता। पुत्रभावमें जितने ग्रहोंकी दृष्टि पड़ती है, मनुष्यके उतनी ही सन्तान होती है। इसमें विशेषता यह है, कि पुंग्रहकी दृष्टिसे पुत्र और स्त्रीग्रहकी दृष्टिसे कन्या होती है। किसीका मत यह भी है, कि सन्तानभावके अङ्कके समान संख्यक सन्तान होती हैं। पञ्चम स्थानमें जिस जिस ग्रहकी दृष्टि पड़ती है, वे यदि उच्च और मित्र गृहस्थित हों, तो शुभफल और यदि नीच मङ्गल गृहगत हों, तो अशुभ फल होता है। पञ्चमस्थानके नवांशसंख्यक अथवा उस स्थानमें जितने शुभ ग्रहोंकी दृष्टि है, उससे दूनी सन्तान उत्पन्न होती है। सुतभवनमें पापग्रहकी दृष्टि वा योग द्वारा सन्तान क्षय वा नष्ट होती है। शुभाशुभ ग्रहके योग वा दृष्टिसे मध्यविध सन्तान हुआ करती है।

यदि शुभभवन किसी पापग्रहका गृह हो, उसमें किसी पापग्रहका योग रहे और शुभग्रहकी दृष्टि नहीं पड़ती हो, तो उस व्यक्तिके कोई सन्तान नहीं होती। जिसके जन्मकालमें लग्नके सप्तम स्थानमें शुक्र, दशममें चन्द्र और चतुर्थ स्थानमें पापग्रह रहे, तो वह व्यक्ति निश्चय ही सन्तानविहीन होता है।

यदि पुत्रभाव शुक्रका नवांश हो और उस पर शुक्रकी

दृष्टि पड़ती हो, तो अनेक सन्तान अथवा उस अंशके समान सन्तान होती है। ये सब सन्तान अलंकृत, पीड़ित और दास्यकर्ममें निरत रहेगी, ऐसा जानना होगा। सन्तान-स्थानका अधिपति ग्रह जिस स्थानमें रहेगा, उस स्थानसे पञ्चम, षष्ठ वा द्वादश गृहमें यदि कोई अशुभ ग्रह रहे, तो मनुष्यके पुत्र नहीं होता और यदि हो भी जाय, तो वह जीवित नहीं रहेगा। यदि बलवान् पञ्चम स्थानका अधिपति हो कर दशम स्थानमें रहे और चतुर्थाधिपति एकादश गृहमें तथा उस एकादश गृहमें यदि पापग्रह रहता हो और वह पापग्रह नवम तथा तृतीयस्थान स्थित हो, तो पुत्र जन्म नहीं लेता। यदि चन्द्रमासे पञ्चमस्थानमें बुध रहे और वह स्थान यदि पापग्रहका गृह हो, तो पुत्र वा कन्या कुछ भी नहीं होगी। चन्द्रमासे पञ्चम स्थानमें यदि पापग्रह रहे, तो पुत्रकी और यदि पञ्चम वा एकादश स्थानमें रहे, तो कन्याकी हानि होती है। शुभभवन शुक्र वा चन्द्रके वर्ग अथवा शुक्र वा चन्द्रसे वीक्षित वा युक्त होनेसे तथा वह स्थान समराशिका वर्ग होनेसे कन्या और विषम राशिका वर्ग होनेसे पुत्र होता है। जिसका पुत्रस्थान शनिका गृह हो और शनियुक्त हो वा शनिकी दृष्टि पड़ती हो, वह व्यक्ति दत्तकपुत्र लाभ करेगा। इसी प्रकार बुधके पञ्चमाधिपति और पञ्चम गृहस्थित अथवा पञ्चमगृह पर दृष्टि पड़नेसे मनुष्य क्रीत पुत्र प्राप्त करता है। यदि पुत्रभवनमें शनिके वर्ग पर कोई ग्रह रहता हो और उस पर चन्द्रकी दृष्टि पड़ती हो, वा रवि कर्त्तृक दृष्ट शुक्रके वर्ग पर किसी ग्रहका संस्थान हो, तो पुनर्भव पुत्र लाभ होता है। पुत्रभाव यदि शनिका गृह हो और उस पर रवि, बुध वा मङ्गलकी दृष्टि पड़ती हो अथवा उस स्थानमें शनि कर्त्तृक दृष्ट बुधका वर्गीभूत कोई ग्रह रहता हो, तो क्षेत्रज पुत्रलाभ होता है। किसी पुरुषके पञ्चम भावके नवांशमें शुभग्रहकी दृष्टि न पड़ कर जितने पाप ग्रहोंकी दृष्टि पड़ती हो, उतनी ही बार उस पुरुषकी पत्नीका गर्भपात होता है। बृहस्पति कर्त्तृक दृष्ट पुत्रभवनका मङ्गल पुनः पुनः जात बालकको नष्ट कर डालता है, फिर यदि उक्त मङ्गल ग्रह पर शुक्रकी दृष्टि पड़े, तो प्रथम जातबालक नष्ट हो जाता है। (जातकाभरण)

इसी प्रकार पुत्रभावके सभी विषय जाने जाते हैं। जिस जिस ग्रहादिका विषय लिखा गया, उनका स्फुट करके फलका विचार करना होता है, क्योंकि ग्रहादिकी स्फुट गणना किये बिना फल ठीक ठीक नहीं निकलता।

पुत्रस्थानमें किस ग्रहके रहनेसे और किस ग्रहकी दृष्टिसे कैसा फल होता है, उसका भी विषय अति संक्षेपमें लिखा जाता है।

जन्मकालमें यदि पञ्चम गृहमें सूर्य हो और वह गृह निजका हो, तो उस व्यक्तिका प्रथम पुत्र नष्ट होता है, किन्तु अन्यान्य पुत्र जीवित रहते हैं। वह पञ्चमस्थ सूर्य यदि रिपुगृहगत हों, तो गर्भमें ही सन्तान विनष्ट हो जाती है। सूर्यके पुत्रस्थानमें रहनेसे मानव बाल्यकालमें सुखभोगी होता है, पर वह धनवान् कभी नहीं होता और यौवनकालमें हमेशा दुःख भोगता है। उसके केवल एक पुत्र होता है, वह भी गुणरहित, चञ्चलचित्त, निर्लज्ज, छिद्र और मलिनवस्त्रपरिधायी तथा क्रूरकर्मा।

जन्मकालमें चन्द्रमाके पुत्रस्थानमें रहनेसे मानव ऐश्वर्यशाली, सुखी और बहुपुत्रसम्पन्न होता है तथा उसे परमरूपवती भार्या प्राप्त होती है। किन्तु उस चन्द्रमाके क्षयशील होनेसे वा वह स्थान पाप वा शत्रुगृह होनेसे उसका सब सुख जाता रहता है।

जन्मकालमें यदि मंगल पुत्रस्थानमें हो और वह मंगल शत्रु कर्त्तृक दृष्ट हो कर शत्रुभावमें रहे अथवा नीच स्थानस्थित हो, तो उस व्यक्तिके पुत्रशोक होता है। मङ्गलके पुत्रस्थानमें रहनेसे वह पुत्रहीन, धनहीन और दुःखभोगी होता है। किन्तु यदि वह स्थान निजगृह-तुङ्ग स्थान हो, तो उसके मायावी मलिनचित्त एक पुत्र उत्पन्न होता है।

जन्मकालमें यदि बुध पुत्रस्थानमें रह कर पापग्रहसे दृष्ट अथवा पापग्रहयुक्त हो, तो सुशील पुत्र जन्म लेता है। इसका विपरीत होनेसे पुत्र या तो मर जाता या बिलकुल होता ही नहीं।

जन्मकालमें बृहस्पतिके पुत्रस्थानमें रहनेसे मनुष्य धनशाली, बहुभार्या और पुत्रयुक्त तथा समृद्धि सम्पन्न होता है।

जन्मकालमें शुक्रके पुत्रस्थानमें रहनेसे मनुष्य बहु-कन्याविशिष्ट, अल्पपुत्रयुक्त, दाता, भोक्ता, गुणवान्, धनवान् और सतत सम्मानित होता है। जन्मकालमें शनि यदि पुत्रस्थानमें हो और वह पुत्रस्थान यदि शनिका शत्रुगृह हो, तो सभी पुत्र नष्ट हो जाते हैं। वह पुत्र-स्थान यदि शनिका उच्चस्थान हो और शनि सम्पूर्ण बलवान् रहे, तो केवल एक रुग्नपुत्र जन्म लेता है।

जन्मकालमें राहुके पुत्रस्थानमें रहनेसे मनुष्यके केवल एक मलिन दीन पुत्र होगा ऐसा जानना चाहिये। किन्तु पञ्चम स्थान यदि चन्द्रका गृह हो, तो एक भी सन्तान नहीं होती। (ज्योतिःकल्पलता)

पुत्रमञ्जरी (सं० स्त्री०) पुत्रदात्री।

पुत्रमय (सं० त्रि०) पुत्रस्वरूपे मयट्। पुत्रस्वरूप, पुत्रके समान।

पुत्रवत् (सं० त्रि०) पुत्रो विद्यतेऽस्य मतुप्, मस्य व। १ पुत्रयुक्त। २ पुत्रतुल्य, पुत्रसदृश।

पुत्रवता (सं० त्रि०) जिसको पुत्र हो, पुत्रवाली।

पुत्रवत्सल (सं० त्रि०) पुत्रे वत्सलः। पुत्रके प्रति अतिशय स्नेहयुक्त।

पुत्रवधू (सं० स्त्री०) पुत्रस्य वधूः। पुत्रकी पत्नी, पतोहू।

पुत्रवल (सं० त्रि०) पुत्रोऽस्यस्य वलच्। पुत्रयुक्त, जिसके पुत्र हो।

पुत्रविद्य (सं० क्ली०) पुत्रलाभ।

पुत्रशृङ्गी (सं० स्त्री०) पुत्रं पवित्रं शृङ्गमिव पुष्पं यस्याः गौरादित्वात् ङीष्। अजशृङ्गी, मेढ़ासिंगी।

पुत्रश्रेणी (सं० स्त्री०) १ मूषिकपर्णी, मूसाकानी। २ कृष्णादन्तीक्षुप। ३ अजशृङ्गी।

पुत्रसख (सं० पु०) पुत्राणां सखा, ततष्टच्, समासान्तः। पुत्रका सखा, मित्र, दोस्त।

पुत्रसङ्करिन् (सं० पु०) पुत्रे पुत्रोत्पादने सङ्करी। वह जो दूसरेकी स्त्रीसे पुत्रोत्पादन करता है।

पुत्रसहम (सं० क्ली०) नीलकण्ठताजिकोक्त सहमभेद। नीलकण्ठने ५० प्रकारके सहम बतलाये हैं जिनमेंसे पुत्रसहम एक है।

दिन अथवा रातको बृहस्पतिस्फुटमेंसे चन्द्रस्फुट वियोग करके अवशिष्ट अङ्कको लग्नस्फुटके साथ योग करनेसे जो फल होगा वही पुत्रसहम है।

पुत्रसहममें शुभग्रह और उसके स्वामिग्रहका योग तथा दृष्टि रहनेसे पुत्रलाभ होता है। फिर पापयुक्त और शुभग्रहके योगविशेषसे पहले पुत्र दुःख और पीछे सुख पाता है। पापयुक्त और पापग्रहके साथ इसराफ योग होनेसे पुत्रनाश होता है। सहमाधिपतिके अस्तगत और दुर्बल रहने पर भी पुत्रका अशुभ अवश्यम्भावी है। जन्मकालमें पुत्रस्थानाधिपति यदि वर्षप्रवेशकालमें पुत्रसहमाधिपति हों और उस पुत्रसहममें यदि शुभग्रह की स्नेहदृष्टि पड़ती हो, तो समझना चाहिये कि उस वर्षमें अवश्य पुत्रलाभ होगा। (नीलकंठताज०) सहम देखो। वर्षप्रवेशमें उन सब सहमादिका विचार करके फलाफल स्थिर करना होता है।

पुत्रसू (सं० स्त्री०) पुत्रं सूते इति सू-क्विप्। पुत्रजनिका।

पुत्रहत (सं० त्रि०) १ जिसका पुत्र मारा गया हो। (पु०) २ वशिष्ठ।

पुत्राचार्य (सं० पु०) पुत्र आचार्योऽध्यापको यस्य। वह जो पुत्रके निकट अध्ययन करता है।

पुत्रादिन् (सं० पु०) पुत्रमत्ति, अद-णिनि। पुत्रभक्षक, बेटेको खानेवाला।

पुत्रान्नाद (सं० त्रि०) पुत्रस्य अन्नं तदुपहृतमन्नमत्तीति अद-अण्। पुत्रान्नभोजी, पुत्रका अन्न खानेवाला। इन-का पर्याय कुटीचक है।

पुत्रिका (सं० स्त्री०) पुत्री स्वार्थे कन्, टाप्। (केऽणः। पा ७।४।१३) इति ह्रस्वः। १ कन्या, बेटी। पर्याय—आत्मजा, दुहिता, पुत्री, तनुजा, सुता, अपत्य, पुत्रका, स्वजा, तनया, नन्दिनी। २ पुत्रके स्थान पर मानी हुई कन्या।

"अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम्।
यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात् स्वधाकरं॥
अनेन तु विधानेन पुरा चक्रेऽथ पुत्रिकाः।
विवृद्ध्यर्थं स्ववंशस्य स्वयं दक्षः प्रजापतिः॥"
(मनु ९।१२८)

अपुत्र अर्थात् जिसके पुत्र न हो, वह कन्याको पुत्रिका अर्थात् पुत्ररूपमें ग्रहण कर सकता है। इसका विधान मनुने इस प्रकार बतलाया है। विवाहके समय वह जामातासे यह निश्चय कर ले कि 'कन्याका जो पुत्र होगा वह मेरा 'स्वधाकर' अर्थात् मुझे पिण्ड देनेवाला और मेरी सम्पत्तिका अधिकारी होगा। दक्ष प्रजापतिने निज वंशवृद्धिके लिये इसी प्रकार धर्मको दश और कश्यपादिको अनेक कन्याएं दान की थीं। उन कन्याओंसे जिन सब पुत्रोंने जन्मग्रहण किया था, वे पीछे दक्षके पिण्डप्रद हुए थे। इस नियमसे यदि कन्या दान न की जाय, तो कन्या ही पिण्डाधिकारिणी होगी। किन्तु पुत्रिका बना कर यदि कन्याका विवाह किया जाय, तो उस कन्याका पुत्र पिण्डाधिकारी होता है।

इस नियमसे पुत्रिका बना कर उसके बाद यदि उस व्यक्तिके स्वयं पुत्र हो जाय, तो पुत्र और पुत्रिका दोनोंको ही समान धन मिलेगा। पुत्र कह कर उसको कोई प्रधानता न रहेगी। किन्तु कन्या यद्यपि बड़ी है, तो भी उद्धार विषयमें अर्थात् पुन्नामनरकसे त्राण करनेमें उसकी श्रेष्ठता न रहेगी, क्योंकि स्त्रियोंका ज्येष्ठत्व आदरणीय नहीं है।

"पुत्रिकायां कृतायान्तु यदि पुत्रोऽनुजायते।
समस्तत्र विभागः स्यात् ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः॥"

(मनु ८।१३४)

पुत्रिका यदि अपुत्र अवस्थामें अर्थात् बिना कोई सन्तान छोड़े मर जाय, तो उसका स्वामी सारी सम्पत्तिका अधिकारी होगा।

"अपुत्रायां मृतायान्तु पुत्रिकायां कथञ्चन।
धनं तत्पुत्रिका भर्ता हरेतैव विचारयन्॥"

(मनु ८।१३५)

पुत्रिका न बना कर यदि विवाह किया जाय, तो उसका स्वामी किसी प्रकार धनाधिकारी नहीं हो सकता। पुत्रीव प्रतिकृतिरस्याः इति (इवे प्रतिकृतौ। पा ५।३।१६) इति कन् ह्रस्वश्च। ३ पुत्तलिका, पुतली, गुड़िया। ४ आँखकी पुतली। ५ स्त्रीका चित्र, स्त्रीकी तसवीर।

पुत्रिकापुत्र (सं० पु०) पुत्रिकायाः पुत्रः वा पुत्रिकव पुत्रः, पुत्रिकायाः जातिऽस्याः पुत्रो य हि मदीयः पुत्रो भविष्यतीति पुत्रस्वरूपत्वेन ज्ञातायाः सुतायाः पुत्रः। कन्याका पुत्र जो पुत्रके समान माना गया हो और सम्पत्तिका अधिकारी हो।

"अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम्।
अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति॥"

(वशिष्ठ)

अभ्रातृका अलंकृता यह कन्या तुम्हें दान करता हूं। इस कन्याके गर्भसे जो पुत्र होगा, वह मेरा पुत्रस्वरूप होगा, अथवा पुत्रका ही पुत्र होगा। क्योंकि पुत्र और कन्या एक आत्मासे उत्पन्न होती है, इसलिये दोनों ही समान हैं। पुत्रका पुत्र और दुहिताका पुत्र अर्थात् पौत्र और दौहित्र इन दोनोंमें कोई प्रभेद नहीं है।

मिताक्षरा और दायभाग आदिमें यह मीमांसित हुआ है, कि पुत्रिका पुत्रधन पा सकती है।

मनुवचनमें लिखा है, कि पुत्रिका बना लेनेके बाद यदि वह अपुत्रा वा मृतपुत्रा हो कर परलोक गमन करे, तो उसका स्वामी सम्पत्तिका अधिकारी हो सकता है। मनुका यह मत दायभागमें खण्डित हुआ है, क्योंकि पैठीनसि वचनमें लिखा है,—

"प्रेतायां पुत्रिकायां तु न भर्ता द्रव्यमर्हति।
अपुत्रायां कुमार्यां वा स्वस्रा ग्राह्यं तदन्यथा॥"

शङ्ख और लिखित वचनके अनुसार "प्रेतायाः पुत्रिकायान्तु न भर्त्ता द्रव्यमर्हत्यपुत्रायाः।" पुत्रिकाको मृत्यु होने पर उसका स्वामी सम्पत्तिका अधिकारी नहीं होगा; ऐसा होनेसे परस्पर विरुद्ध मत प्रतीत होता है। क्योंकि मनुने कहा है, कि उसका स्वामी बिना किसी प्रकारका विचार किये ही धनग्रहण कर सकता है। किन्तु शङ्ख-लिखितादि वचनमें इसका विपरीत देखा जाता है। इसीसे दायभागमें इसकी मीमांसा इस प्रकार की है। अपुत्र व्यक्ति पुत्रिका कर सकता है, कारण उसके पुत्र सन्तान नहीं होनेसे पुत्रिकाके गर्भसे जो पुत्र होगा वह उसका स्वधाकर अर्थात् पिंड देने वाला होगा; इससे वह व्यक्ति निश्चय ही पुम्‌नरकादिसे

निष्कृति पावेगा। यही कारण है, कि वह पुत्र सम्प्रदाधिकारी होता है। किन्तु पुत्रिकाको यदि निःसन्तानावस्थामें मृत्यु हो जाय, तो फिर पिंडादिकी सम्भावना नहीं रहती। इस कारण उसका स्वामी धनका अधिकारी नहीं हो सकता। जिस मुख्य उद्देश्यसे उसने पुत्रिका बनाई, उसका वह उद्देश्य फलीभूत नहीं हुआ, इस कारण पुत्रिकाका स्वामी धनका किसी हालतसे अधिकारी नहीं हो सकता (दायभाग)। इसका विशेष विवरण मिताक्षरा और दायभाग आदिमें लिखा है। आज कल पुत्रिकाकरणकी प्रथा प्रचलित नहीं है। मनु आदि धर्मशास्त्र छोड़ कर पुरातन काव्य और इतिहास आदिमें भी यह प्रसङ्ग देखनेमें नहीं आता।

पुत्रिकाभर्त्तृ (सं॰ पु॰) पुत्रिकायाः भर्त्ता। पुत्रिकाका स्वामी।

पुत्रिकाप्रसू (सं॰ स्त्री॰) पुत्रिकाया: कन्यायाः प्रसूर्जननी। पुत्रिका-जननी। इसका पर्याय धनसू है।

पुत्रिकासुत (सं॰ पु॰) पुत्रिकायाः सुतः। पुत्रिकाका पुत्र। पुत्रिकापुत्र देखो।

पुत्रिन् (सं॰ पु॰) पुत्रोऽस्या अस्तीति पुत्र-इनि-ङीप। पुत्रयुक्त, पुत्रवान्।

पुत्री (सं॰ स्त्री॰) पुत्र ङीन् (शार्ङ्गरवाद्यञोङीन्। पा ४।१।७३) वा गौरादित्वात् ङीष्। सुता, कन्या, बेटी।

पुत्रीय (सं॰ स्त्री॰) पुत्रस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा 'पुत्राच्छ' इति छ। १ पुत्रनिमित्त संयोग। २ पुत्रनिमित्त उत्पात। पुत्रस्येदं छ। ३ पुत्रसम्बन्धी।

पुत्रीया (सं॰ स्त्री॰) पुत्रलाभकी इच्छा।

पुत्रीयित (सं॰ त्रि॰) पुत्रीय-क्त। पुत्रेच्छु, पुत्राभिलाषी।

पुत्रेष्टि (सं॰ स्त्री॰) पुत्रनिमित्तका इष्टिरिति मध्यपदलोपि कर्मधा॰। पुत्रनिमित्तक यागविशेष, एक प्रकारका यज्ञ जो पुत्रकी कामनासे किया जाता है।

आश्वलायन श्रौतसूत्र (२।१०।८)-में इस यज्ञका विधान लिखा है। पुत्राभिलाषीको यह यज्ञ अवश्य करना चाहिये।

पत्नीके ऋतु होने पर पुत्राभिलाषी यथाविधान पुत्रेष्टि कार्य करके पत्नीके साथ सहवास करें। चरकके शारीरस्थान ८म अध्यायमें इस पुत्रेष्टिका विषय लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां उसका उल्लेख नहीं किया गया।

पुत्रेष्टिका (सं॰ स्त्री॰) पुत्रेष्टि स्वार्थे कन् टाप्, च। पुत्रनिमित्तक यागविशेष।

पुत्रैषणा (सं॰ स्त्री॰) पुत्रस्य एषणा। पुत्रेच्छा।

पुत्रोत्सव—पुत्रके जन्मादिमें किये जानेका उत्सव। पुत्रके जन्मादि उपलक्षमें जो सब कार्य किये जाते हैं उसे और पुत्रके अन्नारम्भसे ले कर विवाह तक पुत्रसम्बन्धीय सभी कार्यों को पुत्रोत्सव कहते हैं। बहु प्राचीन कालसे ही हिन्दू-समाजमें यह पुत्रोत्सव प्रथा चली आ रही है। वर्त्तमान समयमें दाक्षिणात्य आदि देशोंमें ही इसका विशेष प्रचलन देखा जाता है। दाक्षिणात्यवासी ब्राह्मणोंके घर पुत्र जन्म लेने पर उस दिन आत्मीय बन्धुबान्धव और अभ्यागतोंको चीनी मिश्री आदि मिष्टान्नदान पिताका एकान्त कर्त्तव्य है। ग्यारहवें दिन प्रसूतिके शरीरमें तिलतैल लगा कर स्नान कराया जाता है, इसी दिन अशौचान्त भी होता है। उक्त दिन 'पुण्याह वाचनम्' नामसे प्रसिद्ध है। अनन्तर जातबालकका 'नामकरण' करके उस दिन अभ्यागत बन्धुबान्धवोंके सामने माताकी गोदमें पुत्रको सुला रखते हैं और उपस्थित सभी व्यक्ति हरिद्रारञ्जित चावल प्रभृति और पुत्रके मस्तक पर छिड़क कर आशीर्वाद करते हैं। अनन्तर दरिद्रोंको भिक्षादान और आत्मीय स्वजनोंको भोज देना होता है। इस दिन नाच गान तथा तरह तरहके आमोद-प्रमोद होते हैं। कन्याके जन्म लेने पर इस प्रकारका उत्सव नहीं होता। कारण उनका विश्वास है, कि एकमात्र पुत्रसे ही मनुष्य 'स्वर्गलोक' वा इन्द्रपुरी जा सकते हैं। अन्नाशनादि देखो।

पुत्र्य (सं॰ त्रि॰) पुत्रस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वेति, पुत्र-यत्। १ पुत्रीय, पुत्रनिमित्त संयोग। २ पुत्रनिमित्त उत्पात।

पुद्लपट्ट—उत्तर अर्काट जिलेके चित्तूर तालुकका एक नगर। यह अयिराल और पोयिनी नदीके सङ्गमस्थल पर अवस्थित है। यहां नदीके किनारे चोलराजकृत एक मन्दिर और उसमें उत्कीर्ण शिलालिपि आज भी विद्यमान है।

पुदीना (फा० पु०) एक छोटा पौधा। यह कहीं जमीन पर फैलता है और कहीं अधिकसे अधिक एक या डेढ़ बित्ते ऊपर जाता है। इसकी पत्तियां दो ढाई अङ्गुल लम्बी और डेढ़ पौने दो अङ्गुल तक चौड़ी तथा किनारे पर कटावदार और देखनेमें खुरदुरी होती हैं। पत्तियोंसे अच्छी गन्ध निकलती है, इसीसे लोग उन्हें चटनी आदिमें पीस कर डालते हैं। पुदीनेका बीज नहीं बोया जाता. यह डंठलोंसे ही लगाया जाता है। पुदीनेका फूल सफेद होता है और बीज छोटे छोटे होते हैं। पुदीना तीन प्रकारका होता है; साधारण, पहाड़ी और जलपुदीना। जलपुदीनेकी पत्तियां कुछ बड़ी होती हैं। पुदीना रुचिकारक, अजीर्णनाशक और वमनको रोकनेवाला है। यह पौधा हिन्दुस्तानमें बाहरसे लाया गया है। प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका उल्लेख नहीं मिलता है। यह पिपरमिंटकी जातिका ही पौधा है।

पुदुकोट्टाई—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। यह अक्षा० १०° ७´से १०° ४४´ उ० तथा देशा० ७८° २५´ से ७९° १२´ पू० के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तर और पश्चिममें त्रिचिनापल्ली जिला, दक्षिणमें मदुरा और पूर्वमें तञ्जोर है। भूपरिमाण ११७४ वर्गमील है।

जिलेका अधिकांश स्थान समतल है और बीच बीचमें पर्वतमाला भी शोभा देती है। इन सब पर्वतों पर कुछ प्राचीन दुर्ग भी विद्यमान हैं। राज्य भरमें प्रायः तीन हजार पुष्करिणी होंगी। कृषिकार्य छोड़ कर यहां वस्त्र, कम्बल, चटाई और रेशमी वस्त्र भी प्रस्तुत होते हैं। यहां जगह जगह लोहेकी खान पाई जाती है, पर कोई भी उसे काममें नहीं लाते। यहांका जलवायु स्वास्थ्यकर है। ग्रीष्म ऋतुमें उतनी गरमी नहीं पड़ती, कारण यह राज्य समुद्रके बहुत समीप बसा हुआ है। वार्षिक वृष्टिपात ३५ इञ्च है।

यहांके सरदार तोण्डमान नामसे परिचित हैं। १७५३ ई० में त्रिचिनापल्लीके अवरोधके समय इन्होंने वृटिश गवर्मेण्टको खासी सहायता पहुंचाई थी। इस कारण दोनोंके बीच विश्वास और घनिष्टताकी वृद्धि हुई। जब कर्णाटक अंगरेजोंके हाथ आया, तब मदुरा जिलेमें छिवगङ्गा ले कर बोलगारों और अंगरेजोंके बीच जो युद्ध छिड़ा उसमें भी इन्होंने अंगरेजोंकी अच्छी सहायता की थी। १८०३ ई० में तञ्जोरराज प्रतापसिंहसे प्राप्त किलनेल्लीजिला और दुर्ग पानेकी आशासे पुदुकोट्टाईराजने वृटिश गवर्मेण्टसे निवेदन किया। कर्णल ब्रेथवेट, जेनरल कूट और लार्ड मेकार्टिनको युद्धमें सहायता देनेके कारण मन्द्राज गवर्मेण्टने उनकी मांग पूरी की थी। किन्तु शर्त यह ठहरी, कि यदि राजा भविष्यमें प्रजाके ऊपर अत्याचार करेंगे, तो कोर्ट, आव-डिरेक्टरके आदेशानुसार उनकी सम्पत्ति छीन ली जायगी।

राजा रामचन्द्र तोण्डमान बहादुरने अंगरेजोंसे एक सनद पाई थी। वे अपने राज्यमें सभी कार्य स्वाधीन भावसे करते थे। किन्तु अंगरेजोंके मित्ररूपमें रहकर वे अंगरेजोंके परामर्शानुसार सभी काम करनेको बाध्य थे।

वर्त्तमान राजा रामचन्द्रके नाती हैं। इनका नाम है 'हिज हाइनेस राज श्रीमार्तण्ड भैरव तोण्डमान बहादुर।' इनका जन्म १८७५ ई० को २७वीं नवम्बरको हुआ था। राजा रामचन्द्रने इन्हें १८७७ ई०में गोद लिया था। इनकी नाबालगीमें स्वर्गीय ए० सेशय शास्त्री, के० सि० एस० आई० दीवान थे। इन्हें ११ तोपोंकी सलामी मिलती है। इनके अधीन १२६ पदातिक, २१ अश्वारोही और ३२६० मिलिशिया सेना है। एतद्भिन्न अस्त्रधारी रक्षक और पहरूदार भी हैं। वंशानुक्रमसे बड़े लड़के ही राज्याधिकार पाते हैं। राजाको दत्तकग्रहणका अधिकार है।

इस राज्यमें १ शहर और ३७७ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या चार लाखके करीब है। सैकड़े पीछे ८३ हिन्दू, और शेषमें मुसलमान, ईसाई तथा अन्यान्य जातियां हैं। राज्यमें बड़ी बड़ी और परिष्कृत सड़कें हैं। राज्यकार्य सभा द्वारा परिचालित होता है। उस सभामें राजा, दीवान और कान्सेलर प्रधान व्यक्ति हैं। कठिनसे कठिन मामलेमें ही वृटिश गवर्मेण्टकी सलाह लेनी पड़ती है। राज्यमें विशेषतः सरकारी सिक्केका प्रचार है। छोटका तांबेका सिक्का भी चलता है जिसे अम्मनकासु कहते हैं। यह सिक्का सरकारी अन्नी सिक्केका बीसवां भाग समझा

जाता है। उस सिक्केके एक पृष्ठ पर 'विजय' और दूसरे पृष्ठ पर राजलक्ष्मी 'बृहदम्बा'का चित्र अङ्कित है। राज्यकी आय कुल मिला कर ११२८००० रु०की है। यहां २५५ प्रायमरी, १२ सेकेण्ड्री और ६ स्पेसल स्कूल, कारागार तथा १ बड़ा अस्पताल और ७ चिकित्सालय हैं।

२ उक्त सामन्तराज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० १०° २३´ उ० और देशा० ७८° ४८´ पू० त्रिचनापल्लीसे ३३ मील दूरमें अवस्थित है। जनसंख्या बीस हजारसे ऊपर है जिनमेंसे हिन्दूकी संख्या ही अधिक है। नगर परिष्कार परिच्छन्न और सौधमालासे विभूषित है। राजा विजय रघुनाथ राजाबहादुरने इसे बसाया है। सर ए० सेशय शास्त्री, के० सी० एस० आई०के समयमें यह नगर उन्नतिकी चरमसीमा तक पहुंच गया था। शहरके बाहर जो सरकारी मकान हैं, वे उन्हींके बनाये हुए हैं। इनमेंसे नूतन प्रासाद, पब्लिक आफिस, अस्पताल, कारागार, कालेज, रेसिडेन्सी और ग्रीष्मावास प्रधान है। शहरमें दो बड़े बड़े तालाब हैं।

पुदुगुड़ि—मन्द्राज प्रदेशके तिन्नेवेल्ली जिलान्तर्गत एक नगर। यह ताम्रपर्णी नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। यहांका विष्णु-मन्दिर बहुत पुराना है। कितने ही प्रस्तरनिर्मित प्राचीन युद्धास्त्रके निदर्शन इस स्थानसे पाये गये हैं।

पुदुपालेयम—तिन्नेवेल्ली जिलेके श्रीवल्लीपुत्तूर तालुकका एक नगर। यहांके शिव और विष्णु-मन्दिर दोनों ही सवप्रधान हैं।

पुदुवेलिंगोपुरम्—शिल्पकुशल चीनवासियोंका सुचूड़ मन्दिर। यह नागपत्तन नगरसे तीन पाव उत्तरमें अवस्थित है। जनसाधारणमें यह चीन-पागोड़ा, कृष्ण पागोड़ा और पुराण पागोड़ा वा जैन पागोड़ा नामसे प्रसिद्ध है। विख्यात प्रत्नतत्त्ववित् बुर्नेल साहबने इसे विमान बतलाया है।

पुदुशेरी—मलवार जिलेके पालघाट तालुकके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह पालघाट सदरसे २ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां एक प्राचीन दुर्ग आज भी विद्यमान है।

पुद्गल (सं० पु०) पुरात् पूर्णात् गलनात् गलः कर्मधारयः। १ देह, शरीर। देहकी वृद्धि और ह्रास होता है, इसीसे पुद्गल शब्दसे देहका बोध होता है। २ आत्मा। ३ परमाणु। ४ जैनशास्त्रानुसार छः द्रव्योंमेंसे एक, जगत्के रूपवान् जड़पदार्थ। जैनदर्शनमें षड् द्रव्य माने गये हैं—जीवास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल। ५ गन्धतृण, रामकपूर।

पुद्गलास्तिकाय (सं० पु०) संसारके सभी रूपवान् जड़ पदार्थोंकी समष्टि।

पुनः (हिं० अव्य०) १ फिर, दोबारा, दूसरी बार। २ उपरांत, पीछे, अनन्तर।

पुनःखुरिन् (सं० पु०) घोड़ोंके पैरका एक रोग। इसमें उनकी टाप फैल जाती है और वे लड़खड़ाते चलते हैं।

पुनःपद (सं० क्ली०) पुनरुक्त पद।

पुनःपराजय (सं० पु०) फिरसे हार।

पुनःपाक (सं० पु०) पुनर्वार पाक, दूसरी बार पाक।

पुनःपुनर् (सं० अव्य०) पुनर् वीप्सायां द्वित्वं। बार बार। पर्याय—मुहुः, शश्वत्, अभीक्ष्ण, असकृत्, बार बार, पौनःपुन्य, प्रतिक्षण।

पुनःपुना—दक्षिण विहार वा मगधराज्यके अन्तर्गत एक नदी। पुनपुना देखो।

पुनःप्रत्युपकार (सं० पु०) फिरसे प्रत्युपकार।

पुनःप्रवृद्ध (सं० त्रि०) फिरसे वृद्धिप्राप्त।

पुनःश्रवण (सं० क्ली०) बौद्ध भिक्षुकोंका श्रमक्रमभेद।

पुनःसंस्कार (सं० पु०) पुनः पुनर्वारकृतः संस्कारः। द्वितीय बार उपनयनादि संस्कार, उपनयनादि संस्कार जो फिरसे किये जांय। मनुने लिखा है—

"अज्ञानात् प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः॥
वपनं मेखला दण्डो भैक्ष्यचर्या व्रतानि च।
निवर्त्तन्ते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि॥"

(मनु)

अज्ञानपूर्वक ब्राह्मणादि तीनों वर्ण यदि विष्ठा वा मूत्र भोजन अथवा सुरासंसृष्ट अन्नादि भक्षण करें, तो उनका फिरसे संस्कार अर्थात् उपनयन होना चाहिये।

इस पुनःसंस्कारमें शिरोमुण्डन, मेखला तथा दण्ड-धारण, भैक्ष्य और ब्रह्मचर्यकी आवश्यकता नहीं होती।

पुन (हिं० पु०) पुण्य, धर्म, सवाब।

पुनक—भूटानराज्यकी हैमन्तिक राजधानी। यह अक्षा० २७° ३५' और देशा० ८९° ५१' पू०, बुगनी नदीके बाएं किनारे अवस्थित है।

पुनना (हिं० क्रि०) बुरा भला कहना, बुराई खोल खोल कर कहना।

पुनपुना—दक्षिण विहार वा प्राचीन मगध राज्यकी एक नदी। यह गया जिलेके दक्षिण प्रान्तसे निकलती है और पवित्र मानी जाती है। इसके किनारे लोग पिण्ड-दान करते हैं। वर्षाकाल छोड़ और सभी ऋतुओंमें इसमें जल नहीं रहता।

पुनमल्ल—मन्द्राज प्रदेशके चेङ्गलपट जिलान्तर्गत सैदा-पेट तालुकका प्रधान नगर और सैन्यावास। यह अक्षा० १३° २' ४०" उ० और देशा० ८०° ८' ११" पू० मन्द्राज महानगरीसे प्रायः ६॥ कोस पश्चिममें अवस्थित है। मन्द्राज और ब्रह्मदेशस्थ अंगरेजी सेनाके मध्य जब कोई बीमार पड़ता है, तब उसे चिकित्सार्थ इसी नगरके अस्पतालमें लाते हैं। इसीलिए पुराने दुर्गके ऊपर एक सुन्दर अस्पताल भी बनाया गया है। कर्णाटक युद्धके समय इस दुर्गके सामने घोरतर युद्ध हुआ था; उसी समय इसकी चारों ओरकी खाई आदि नष्ट भ्रष्ट गई थीं।

पुनर् (सं० अव्य०) पनाय्यते स्तूयते इति पन बाहुलकात् अर्, अस्य उत्वञ्च। १ अप्रथम, द्वितीय। २ भेद। ३ अवधारण। ४ पक्षान्तर। ५ अधिकार। ६ विशेष।

पुनरपगम (सं० पु०) पुनर्भूयः अपगमः। पुनर्वार गमन, फिरसे जाना।

पुनरपि (सं० अव्य०) भूयोऽपि, फिरसे।

पुनरभिधान (सं० क्ली०) पुनर्भूयः अभिधानं कथनं। पुनर्वार कथन, फिरसे कहना।

पुनरभिषेक (सं० पु०) पुनः अभिषेकः। पुनर्वार अभिषेक।

पुनरर्थिता (सं० स्त्री०) पुनर्भूयः अर्थिता। पुनर्वार प्रार्थिता, फिरसे प्रार्थना करनेवाली।

पुनरसु (सं० पु०) पुनरसुर्जीवनं सम्भवोऽस्य। पुनर्जात।

पुनरागत (सं० त्रि०) पुनर्वार आगत, प्रत्यागत।

पुनरागम (सं० पु०) पुनर्वार आगमन, फिरसे आना।

पुनरागमन (सं० क्ली०) पुनः पुनर्वारं आगमनं। १ द्वितीय बार आगमन, फिरसे आना। २ फिर जन्म लेना, संसारमें फिर आना।

पुनरागामिन् (सं० त्रि०) फिरसे आनेवाला।

पुनरादाय (सं० अव्य०) पुनर्ग्रहण, फिरसे लेना।

पुनरादि (सं० त्रि०) प्रथम, पहला।

पुनराधान (सं० क्ली०) पुनर्भूयः आधानं। पुनर्वार आधान, श्रौत या स्मार्त्त अग्निका फिरसे ग्रहण।

"भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्नीनन्त्यकर्मणि।
पुनर्दारक्रियां कुर्यात् पुनराधानमेव च॥"

(मनु ५।१६८)

पत्नीकी मृत्यु होने पर उसके दाहकर्ममें अग्नि अर्पित करके गृहस्थ फिरसे विवाह और अग्नि ग्रहण कर सकता है।

पुनराधेय (सं० क्ली०) पुनर्भूयः आधेयं अग्न्याधानं। १ श्रौतकर्मभेद, पुनर्वार अग्न्याधान। २ सोमयाग-भेद।

पुनराधेयक (सं० क्ली०) पुनराधेय स्वार्थे कन्। पुनरा-धानकारी।

पुनराधेयिक (सं० त्रि०) पुनराधेय, पुनर्वार अग्न्याधान सम्बन्धीय।

पुनरायन (सं० क्ली०) पुनरागमन, फिरसे आना।

पुनरालम्भ (सं० क्ली०) १ पुनर्ग्रहण, फिरसे पकड़ना। २ मारण, हिंसा।

पुनरावर्त्त (सं० क्ली०) १ पुनर्वार आवर्त्त, पुनरा-गमन। २ घूर्णन, चक्कर।

पुनरावर्त्तिन् (सं० त्रि०) पुनः पुनर्वारमावर्त्तते आ-वृत-णिनि। भूयोभूयः आगन्ता, फिर फिर कर आने-वाला। जीव एक बार मरता है, फिर जन्म लेता है। इस प्रकार बार बार जन्म लेनेके कारण मानवको पुन-रावर्त्ती कहते हैं।

"आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥"

(गीता ८।१६)

ब्रह्मसे भुवनवासी सभी मनुष्य फिरसे जन्मग्रहण करते हैं। किन्तु जो भगवान्‌के साथ मिल सकते हैं, उनका पुनर्वार जन्म नहीं होता।

पुनरावृत्त (सं० त्रि०) १ पुनरुच्चारित, फिरसे कहा हुआ। २ फिरसे घूमा हुआ, फिरसे घूम कर आया हुआ।

पुनरावृत्ति (सं० स्त्री०) पुनः आवृत्तिः। १ पुनर्जन्म, फिरसे जन्म लेना। २ पुनरुच्चारण, दोहराना। ३ किये हुए कामको फिर करना। ४ फिरसे घूम कर आना।

पुनराहार (सं० पु०) पुनः पुनर्वा आहारो भोजनं। द्वितीय बार भोजन, फिरसे खाना।

पुनरुक्त (सं० क्ली०) वच-भावे क्त पुनः पुनर्वा उक्तं। १ पुनर्वार कथन, फिरसे कहना। २ पुनर्वार कथित शब्द और अर्थ।

"शब्दार्थयोः पुनर्वचनं पुनरुक्तमन्यत्रानुवादात्।"

(गौतम ५।५७-५८)

शब्द और अर्थका जो पुनः कथन होता है, उसका नाम पुनरुक्त है। एक शब्दका दो बार प्रयोग करनेसे अथवा एक अर्थ भिन्न शब्द द्वारा दो बार अभिहित होनेसे पुनरुक्त होता है। इस प्रकारका पुनरुक्त शास्त्रमें दूषणीय है। (त्रि०) ३ फिरसे कहा हुआ। ४ एक बारका कहा हुआ।

पुनरुक्तजन्मन् (सं० पु०) पुनरुक्तं जन्म यस्य। द्विजाति, ब्राह्मण। ब्राह्मणोंका मौञ्जीबन्धन द्वारा पुनर्वार जन्म होता है, इसीसे पुनरुक्तजन्मन् शब्दसे द्विजातिका बोध होता है।

पुनरुक्तता (सं० स्त्री०) पुनरुक्तस्य भावः तल्-टाप्। पुनरुक्तका भाव, पुनरुक्तका कथन। साहित्यदर्पणमें पुनरुक्तताको दोष बतलाया है। एक वाक्यका पुनर्वार कथन होनेसे ही यह दोष होता है। काव्यादिमें यह दोष निन्दनीय है।

पुनरुक्तवदाभास (सं० पु०) पुनरुक्तवत् आभासो यत्र। वह अलङ्कार जिसमें शब्द सुननेसे पुनरुक्ति-सी जान पड़े, परन्तु यथार्थमें न हो। इसका लक्षण—

"आपाततो यदर्थस्य पौनरुक्त्यावभासनम्।
पुनरुक्तवदाभासः स भिन्नाकार शब्दगः॥"

(साहित्यद० १०म परि०)

आपाततः जहां भिन्नाकार शब्द द्वारा पौनरुक्तकी तरह कथन हो, वहीं यह अलङ्कार होता है। यथार्थमें जो पुनरुक्त नहीं है, विभिन्न शब्दके प्रयोगसे पुनरुक्त-सा बोध होता है, ऐसे अलङ्कारको पुनरुक्तवदाभास कहते हैं। इसका उदाहरण इस प्रकार है—

"भुजङ्गकुण्डली व्यक्त शशिशुभ्रांशुशीतगुः
जगन्त्यपि सदापायादव्याच्चेतोहरः शिवः॥"

(साहित्यद० १०म परि०)

भुजङ्ग और कुण्डली दोनों ही शब्दका अर्थ सर्प है। आपाततः देखनेसे पुनरुक्तसा बोध होता है, पर यथार्थमें सो नहीं है, 'भुजङ्गकुण्डली'का यहां पर ऐसा अर्थ होगा, भुजङ्गरूप कुण्डल विद्यमान हैं जिसके, वे ही भुजङ्गकुण्डली हैं। यह महादेवका विशेषण है। किन्तु यहां पर पुनरुक्तका आभास हो जानेसे यह अलङ्कार हुआ। इसी प्रकार शशी, शुभ्रांशु और शीतगु, 'हर और शिव' 'पायात्' और 'अव्यात्' इत्यादि शब्द आपाततः एकार्थकी तरह प्रतीयमान होनेके कारण पुनरुक्तवदाभास अलङ्कार हुआ।

पुनरुक्ति (सं० स्त्री०) एक बारकी कही हुई बातको फिर कहना, कहे हुए वचनको दोहराना।

पुनरुत्पत्ति (सं० स्त्री०) पुनर्वार उत्पत्ति, पुनर्जन्म। सिद्धान्तकारोंका कहना है, कि उत्पन्नको पुनर्वार उत्पत्ति नहीं हो सकती।

पुनरुत्सृष्ट (सं० पु०) पशुभेद।

पुनरुत्स्यूत (सं० त्रि०) फिरसे योजित, फिरसे जोड़ना।

पुनरुपागम (सं० पु०) पुनरागमन।

पुनर्गमन (सं० क्ली०) पुनर्वार गमन।

पुनर्ग्रहण (सं० क्ली०) १ फिरसे लेना। २ पुनरुक्ति।

पुनर्जन्म (सं० क्ली०) पुनर्भूयो जन्म। फिरसे उत्पत्ति, एक शरीर छूटने पर दूसरा शरीर धारण।

पुनर्जात् (सं० त्रि०) फिरसे उत्पन्न।

पुनर्णव (सं० पु०) नख, नाखून।

पुनर्नवा (सं० स्त्री०) छिन्नायां पुनरपि नवा, वा पुनर्भूयोभूयः नूयते स्तूयते इति नु-अप्, ततष्टाप्, क्षुभ्नादित्वात् न णत्वं। शाकविशेष, एक छोटा पौधा जिसकी पत्तियां चौलाईकी पत्तियोंकी-सी गोल गोल होती हैं। संस्कृत पर्याय—शोथघ्नी, वर्षाभू, प्रावृषायणी, कठिल्लक। श्वेत पुनर्नवाके पर्याय—वृश्चिरा, विश-

टिका, विशाख, कठिल्ल, शशिवाटिका, पृथ्वी, सितवर्षा-भू, घनपत्र, कठिल्लक।

फूलोंके रंगके भेदसे यह पौधा तीन प्रकारका होता है, श्वेत, रक्त और नील। श्वेत पुनर्नवाको विषखपरा और पुनर्नवाको साँठ या गदहपूरना कहते हैं। श्वेत पुनर्नवा या विषखपरेका पौधा जमीन पर फैला होता है, ऊपरकी ओर बहुत कम जाता है। इसमें फल सफेद लगते हैं। साँठ या गदहपूरना ऊसर और कंकरीली जमीन पर अधिक उपजती है। इसके फूल लाल, डंठल लाल और पत्ते भी किनारे पर कुछ ललाई लिये होते हैं। पुनर्नवाकी जड़ मूसला होती है और नीचे दूर तक गई होती है। औषधमें इसी जड़का व्यवहार अधिकतर होता है। इसमें उष्ण, तिक्त, कफ, कास, हृद्रोग, शूल, अस्त्र, पाण्डु, शोफ और वायुनाशक तथा भेदक, रसायन, श्वास, व्रण और उदररोगनाशक गुण माना गया है।

भावप्रकाशके मतसे श्वेतमूला पुनर्नवाका गुण— कटु, कषाय, रुचिकर, शोथ, अर्श और पाण्डुरोग नाशक तथा दीपन, शोफ, वायु, श्लेष्म, व्रण और उदर-रोगनाशक।

रक्त पुनर्नवाका गुण—तिक्त, कटुपाक, शीत, लघु, वातल, ग्राहक, श्लेष्मा, पित्त और रक्तनाशक।

इसके शाकका गुण—वीर्यवर्द्धक, उष्ण, भेदक और रसायन। मूलके क्वाथका गुण—भेदक, उदरामयनाशक, शीतल, श्वासरोगमें हितकर और वमनप्रद। इसकी जड़को पीसे और घिस कर घी आदिके साथ अंजनकी तरह लगाते भी हैं। कहते हैं, कि इसके सेवनसे आँखें नई हो जाती हैं।

पुनर्नवागुग्गुलु (सं॰ पु॰) गुग्गुलु औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—श्वेतपुनर्नवाका मूल १२॥ सेर, भेरेण्डामूल १२॥ सेर, सोंठ २ सेर इन सब द्रव्योंको एक मन चौबीस सेर जलमें सिद्ध करके आठवां भाग जल रह जाने पर उतार लेते हैं। पीछे उसे छान लेते और तब एक सेर गुग्गुल मिला कर पाक करते हैं। अनन्तर उसमें एरण्डतैल आध सेर, निसोथका चूर्ण ढाई पाव, दन्तीमूलचूर्ण एक पाव, त्रिफला-चूर्ण तीन छटाक, चीताचूर्ण तीन छटाक, सैन्धव, मिलावां और विडङ्ग आध पाव करके, स्वर्णमाक्षिक दो तोला, पुनर्नवाचूर्ण आध पाव, इन सब द्रव्योंका चूर्ण डाल कर उतार लेते हैं। शीतल होने पर इसका प्रयोग किया जाता है। इसकी मात्रा दो तोला है। रोगीके बलानुसार अथवा चिकित्सक जैसा बतलादें तदनुसार मात्राका व्यवहार कर सकते हैं। इस औषध-के सेवनसे वातरक्त, वृद्धि, जङ्घा, ऊरु, पृष्ठ, त्रिक और वस्तिजात तथा कठिनसे कठिन आमवात भी बहुत जल्द आराम हो जाता है। वातरक्तको यह एक उत्कृष्ट औषध है। (भावप्रकाश वातरक्ताधि॰)

पुनर्नवातैल—तैलौषधभेद। तिलतैल ४ सेर, पुनर्नवा १०० पल, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। कल्कार्थ—त्रिफला, त्रिकटु, ककटश्रृंगी, धनिया, कायफल, कचूर, दारु हरिद्रा, प्रियङ्गु, देवदारु, रेणुक, कुट, पुनर्नवामूल, अजवायन, कृष्णजीरा, इलायची, पद्मकाष्ठ, तेजपत्र और नागकेशर प्रत्येक २ तोला। इस तैलके लगानेसे कामला, पाण्डु, हलीमक, रक्तपित्त, प्रमेह, कास, भगन्दर, प्लीहा, उदर और जीर्णज्वर आदि रोग जाते रहते हैं तथा कान्तिवृद्धि और अग्नि प्रदीप्त होती है।

पुनर्नवादिक्वाथ (सं॰ पु॰) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पुनर्नवा, दारुहरिद्रा, कटकी, पटोलपत्र, हरीतकी, नीम, मोथा, सोंठ और गुलञ्च कुल मिला कर दो तोला, जल आध सेर, शेष आध पाव। इस क्वाथमें गोमूत्र और गुग्गुल डाल कर प्रातःकालमें सेवन करनेसे सर्वाङ्गगत शोथ, उदर, कास, शूल, श्वास और पाण्डु-रोग प्रशमित होते हैं। (भावप्रकाश उदरा॰)

पुनर्नवादिगुग्गुलु (सं॰ पु॰) वैद्यकोक्त औषधभेद। पुनर्नवा, हरीतकी, देवदारु और गुलञ्च प्रत्येक द्रव्य एक एक तोला ले कर चूर्ण करे, पीछे ४ तोला महिषाक्ष, गुग्गुल और एरण्डतैलके साथ निष्पेषण करके उल्लिखित चूर्ण उसमें मिला दे। यह गोमूत्रके साथ उपयुक्त मात्रामें सेवनीय है। इससे त्वक्की विकृति, शोथ और उदरी आदि नाना प्रकारकी पीड़ा जाती रहती है। (भैषज्यरत्ना॰ शोथ॰)

पुनर्नवादिलेह—औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—पुनर्नवा-

गुलञ्च, देवदारु और दशमूल कुल मिला कर ८ सेर, पाक का जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, अदरकका रस ४ सेर, १२॥ सेर पुराने गुड़को घोल कर छान ले और दोनों रसमें डाल कर पाक करे। अनन्तर जब वह गाढ़ा हो जाय, तब उसमें त्रिकटु, एलायची, तेजपत्र, गुड़त्वक् और चई प्रत्येकका चूर्ण २ तोला मिला दे। शीतल होने पर १ सेर मधु मिला कर उतार ले। इस औषधके सेवनसे शोथ आदि नाना प्रकारके रोग जाते रहते हैं और वर्ण तथा अग्निकी वृद्धि होती है।

पुनर्नवाद्यघृत (सं० क्ली०) घृतौषधभेद। प्रस्तुत-प्रणाली—दशमूल ६० पल, जल ५१२ पल, शेष १२८ पल, घृत ३२ पल, कल्कार्थ पुनर्नवामूल, चित्रकमूल, देवदारु, पञ्चकोल, यवक्षार और हरीतकी प्रत्येक ८ तोला उसमें मिलावे। पीछे यथानियम यह औषध प्रस्तुत करे। इस घृतके सेवनसे शोथ प्रशमित होता है।

पुनर्नवाष्टक (सं० पु०) शोथरोगमें कषाय औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पुनर्नवा, निम्बमूलकी छाल, पटोलपत्र, सोंठ, कटकी, गुलञ्च, दारुहरिद्रा और हरीतकी, कुल मिला कर २ तोला, जल आध सेर, शेष आध पाव। इस क्वाथका पान करनेसे सर्वाङ्गिक शोथ, उदरी, पार्श्वशूल, श्वास और पाण्डु रोग अच्छे हो जाते हैं।

पुनर्नवादिचूर्ण (सं० क्ली०) चूर्णौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—पुनर्नवा, देवदारु, हरीतकी, भाकनादि, बिल्वमूल, गोक्षुर, वृहती, कण्टकारी, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, पीपल, गजपीपल, चीतामूल और अडूसकी छाल इन सबका समान चूर्ण करे। पीछे उपयुक्त मात्रामें गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे शोथ, उदरी और व्रण प्रशमित होते हैं।

पुनर्नवादितैल (सं० क्ली०) तैलौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—तैल ४ सेर, क्वाथार्थ पुनर्नवा १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। कल्कद्रव्य—त्रिकटु, त्रिफला, कर्कटशृङ्गी, धनिया, कटफल, कचूर, दारुहरिद्रा, प्रियङ्गु, पद्मकाष्ठ, रेणुक, कुट, पुनर्नवा, यमानी, कृष्णजीरा, इलायची, गुड़त्वक, लोध, तेजपत्र, नागेश्वर, वच, पिपरामूल, चई, चीतामूल, सोया, गुलशकरी, मञ्जिष्ठा, रास्ना, दुरालभा प्रत्येक दो तोला। पीछे यथानियम इस तैलका पाक करे। इस तैलके लगानेसे शोथ, पाण्डु और उदररोग आदि नाना प्रकारकी पीड़ाएं दूर होती हैं। (भैषज्यरत्ना० शोथ ०।०)

पुनर्निष्कृत (सं० त्रि०) पुनर्वार संस्कृत, जीर्ण संस्कार।

पुनर्बाल (सं० त्रि०) पुनर्वार बालकत्व प्राप्त, वृद्धावस्थामें बालककी तरह भावप्रकाश।

पुनर्भव (सं० पु०) छिन्नोऽपि पुनर्भवतीति भू-अच्। १ नख, नाखून। २ रक्त पुनर्नवा। ३ पुनरुत्पत्ति, फिर होना। (त्रि०) पुनर्भवतीति भू-अच्। ४ पुनर्वार जात, जो फिर हुआ हो।

पुनर्भविन् (सं० पु०) पुनर्भवः पुनः पुनरुत्पतिरस्त्यस्येति पुनर्भव इनि। आत्मा। आत्मा बार बार जन्म लेती है, इसीसे 'पुनर्भविन्' शब्दसे आत्माका बोध होता है।

पुनर्भाव (सं० पु०) पुनर्वार जन्म, मृत्युके बाद फिरसे जन्म।

पुनर्भाविन् (सं० त्रि०) फिरसे जन्मयुक्त।

पुनर्भू (सं० स्त्री०) पुनर्भवति जायात्वेनेति भू-क्विप्। १ विरूढ़ा, वह विधवा स्त्री जिसका विवाह पहले पतिके मरने पर दूसरे पुरुषसे हो। इसका पर्याय दिधिषु है। अमरटीकाकार भरतने (२।६।२३में) पुनर्भू शब्दकी इस प्रकार व्युत्पत्ति की है—

"अक्षतयोनित्वात् विधवा पुनरुह्यते इत्यस्यावन्यस्य भूत्वा अन्यस्य अनर्भवतीति क्विपि पुनर्भूः॥" विवाहिता स्त्री विधवा हो कर यदि फिरसे विवाह करे, तो उसे पुनर्भू कहते हैं। मिताक्षराके अनुसार पुनर्भू तीन प्रकारकी होती है। जिसका पहले पतिसे केवल विवाह भर हुआ हो, समागम न हुआ है, दूसरा विवाह होने पर वह अक्षतयोनि स्त्री प्रथमा पुनर्भू होगी। विधवा हो जाने पर जिसके चरित्रके बिगड़नेका डर गुरुजनोंको हो उनका यदि वे पुनर्विवाह कर दें, तो वह द्वितीया पुनर्भू होगी। विधवा हो कर व्यभिचार करनेवाली स्त्रीका यदि फिर विवाह कर दिया जाय, तो वह तृतीया-पुनर्भू होगी। इस पुनर्भूको शास्त्रमें विशेष निन्दित बतलाया है। (त्रि०) २ पुनर्वार जात, जो फिरसे हुआ हो। (स्त्री०) ३ पुनर्नवा। ४ मद्रा।

पुनर्मघ (सं० त्रि०) पुनःपुनः अभिवृद्ध धन।

पुनर्मन्य (सं० त्रि०) अतिशय स्तोतव्य, बहुत प्रशंसा करने लायक।

पुनर्मृत्यु (सं० पु०) पुनर्भूयो मृत्युः। भूयोभूयः मरण, बार बार मृत्यु।

पुनर्यज्ञ (सं० पु०) भूयः यज्ञकार्य, वह यज्ञ जो फिरसे किया जाय।

पुनर्यात्रा (सं० स्त्री०) १ पुनर प्रथमा यात्रा, फिरसे जाना। २ जगन्नाथदेवकी पुनर्वार रथयात्रा। आषाढ़ मासकी शुक्लाद्वितीयाको रथयात्रा और नववें दिन अर्थात् शुक्ला दशमीको पुनर्यात्रा होती है। यात्रा देखो।

"पुनर्यात्रा विधातव्या तथैव नवमेहनि।" (तिथितत्त्व)

पुनर्युवन् (सं० त्रि०) पुनर्वार युवा, तरुण, जवान।

पुनर्लाभ (सं० पु०) पुनर्भूयः लाभः। पुनर्वार प्राप्ति, खोई हुई वस्तु फिरसे पाना।

पुनर्वक्तव्य (सं० त्रि०) पुनः भूयः वक्तव्यः। पुनर्वार वक्तव्य, फिरसे कहने लायक।

पुनर्वचन (सं० क्ली०) पुनर्भूयो वचनं। पुनर्वार वचन, बार बार वाक्यप्रयोग।

पुनर्वत् (सं० त्रि०) पुनः पुनशब्दोऽस्त्यस्य मतुप्, मस्य व। पुनः शब्दयुक्त।

पुनर्वत्स (सं० पु०) १ गायका वह बछड़ा जो जन्म ले कर थन पीने लगा है। २ ऋक्वेदके ८ मण्डलके ७म सूक्त द्रष्टा ऋषि।

पुनर्वरण (सं० क्ली०) १ फिरसे वरण। २ मनोनीत करण। (कात्या० श्रौ० २५।११८)

पुनर्वसु (सं० पु०) पुनः पुनः शरीरेषु वसति चेतन्य-रूपेणेति पुनर-वस-उ। १ विष्णु। २ शिव। ३ कात्यायन मुनि। ४ लोकभेद। ५ धनारम्भ। ६ नक्षत्र विशेष, सत्ताईस नक्षत्रोंमेंसे सातवाँ नक्षत्र। इसकी आकृति धनुसकी तरह है। इस नक्षत्रमें पांच तारे हैं। अदिति इसकी अधिष्ठात्री देवी है। इस नक्षत्रके प्रथम त्रिपादमें जन्म लेनेसे मिथुनराशि और शेष पादमें कर्कट राशि होती है। इस नक्षत्रमें जो जन्म लेता है, वह सुहृन्मित्रयुक्त, शास्त्राभ्यासमें यत्नवान्, उत्तम रत्नाभिलाषी, उत्तम भूषणान्वित, दाता, प्रतापी और भूस्वामी होता है। ७ कुकुरवंशीय नृपभेद। (हरिवंश ४२ अ०)

पुनर्विवाह (सं० पु०) पुनर्वार विवाह। दूसरी बार दारपरिग्रह करनेसे उसे पुनर्विवाह कहते हैं।

पुनर्हन् (सं० त्रि०) पुनर-हन-क्विप्। १ पुनर्वार हन्ता।

पुनर्हवि (सं० क्ली०) यज्ञमें पुनः पुनः घृत समर्पण।

पुनलपाड़ो—दक्षिण आरकाट जिलेके अर्णी सदरका एक गण्डग्राम। यहांके अयना मन्दिरके समीप विजय-नगराधिप वेङ्कटपतिदेवके राजत्वकाल (१५१५ शक) में उत्कीर्ण एक शिलालिपि विद्यमान है।

पुनलूर—मन्द्राजके त्रावङ्कुड़ राज्यके पत्तनपुरम तालुकका सदर। यह अक्षा० ८° १' उ० और देशा० ७६° ५८' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या तीन हजारके करीब है। तिन्नेवेल्ली-क्युलन रेलवेका यह एक स्टेशन है। आस-पासके जंगलमें कीमती लकड़ी पाई जाती है।

पुनश्चरण (सं० क्ली०) पुनः पुनः चर्वण वा रोमन्थन।

पुनश्चिति (सं० स्त्री०) पुनः पुनः संग्रह।

पुनावा—गया जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह गयाधामसे ७ कोस पूरब दो छोटे छोटे पर्वतोंकी मध्य-वर्त्ती अधित्यका भूमि पर बसा हुआ है। यहां बुद्धकर-ताल और करमारताल नामक दो पुण्य सलिला दीर्घिका विद्यमान हैं। त्रिलोकनाथका मन्दिर रहनेके कारण यह स्थान समधिक विख्यात है। उस मन्दिरमें त्रिचूड़ मुकुटधारी बुद्धमूर्त्ति विराजमान हैं और उनके दोनों पार्श्वमें जो विभिन्न मूर्त्तियां हाथ जोड़े खड़ी हैं। पर्वत-के नीचे असंख्य प्रस्तरमयी मूर्त्ति और प्रस्तरस्तम्भ इधर उधर पड़े हैं। उन पर जो अक्षर दिखाई देते हैं वे हजार वर्ष पहलेके होंगे, इसमें सन्देह नहीं। निकटस्थ ६० फुट उच्च चौकोन स्तूपके ऊपर वज्र वाराहीका भग्न मन्दिर है। देवीमूर्त्तिके दो मुख मनुष्यके जैसे और तीसरा वराहमुखी है। उस समय बौद्धगण देवीमूर्त्तिकी पूजा बड़ी श्रद्धाभक्तिसे करते थे। पीठके ऊपर सात शूकरमूर्त्ति हैं। नातिदूर मन्दिर के समीप और भी अनेक भग्नस्तम्भ तथा मूर्त्ति देखी जाती हैं।

पुनाशा—मध्यभारतके नीमार जिलेका एक नगर। यह

अक्षा० २२° १४' उ० तथा देशा० ६७° २६' पू०के मध्य खण्डवा नगरसे १६ कोस दूरमें अवस्थित है। तुअर-वंशीय राजपूत-सरदारोंके अधीन इस नगरने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की थी। १७२० ई०में सरदार रामकुशल-सिंह यहां एक दुर्ग बना गये हैं। १८५७ ई०के गदरमें अंगरेजोंने इस नगरमें आश्रय लिया था। पिण्डारियोंके अत्याचारसे यह नगर श्रीहीन हो गया। १८४६ ई०में कप्तान फ्रेश यहांकी पुष्करिणीका जीर्ण संस्कार कर गये हैं। प्रति शनिवारको यहां एक हाट लगती है।

पुनि (हिं क्रि० वि०) फिर फिरसे, दोबारा।

पुनी (हिं० स्त्री०) पूर्णिमा, पूनी।

पुनीत (हिं वि०) पवित्र, पाक।

पुन्ताम्बा—बम्बई प्रदेशके अहमदनगर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १९° ४६' उ० तथा देशा० ७४° ३७' पू० कोपरगांव शहरसे १२ मील दक्षिण-पूर्व गोदावरीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ५९८० है। यहां गोदावरीके किनारे प्रायः १४ प्रधान मन्दिर हैं, सबोंकी सीढ़ी गोदावरीमें लगी हुई है। उक्त मन्दिरोंमेंसे इन्दोरकी रानी अहल्याबाई (१७६५-८५ ई०में) और शिवरामदुमल-प्रतिष्ठित मन्दिर ही सुन्दर है। दाक्षिणात्यके विख्यात साधु चङ्गदेवका बनाया हुआ मन्दिर सबसे प्रधान है। एतद्भिन्न अन्नपूर्णा, बालाजी, भद्रकाली, शङ्कर, गोपालकृष्ण, जगदम्बा, कालभैरव, काशीविश्वेश्वर, केशवराज, महारुद्र शङ्कर, रामचन्द्र, रामेश्वर और त्रिम्बकेश्वर नामक देवालय भी देखनेमें आते हैं।

पुन्दोर (पुण्डार)—राजपूत जातिकी एक शाखा जो दहिमा श्रेणीके अन्तर्भुक्त है। सात सौ वर्ष पहले दहिमा राजपूतगण विशेष प्रतिपत्ति और सम्भ्रमके साथ अपनी वीरता दिखला गये हैं। राजस्थानके सुप्रसिद्ध कविगण आज भी इन दहिमा-राजपूतोंकी गुणगरिमा गाथा करते हैं। जब चौहान-सम्राट् पृथ्वीराज दिल्लीके सिंहासन पर अधिरूढ़ थे, उस समय उक्त दहिमागण बयाना नामक स्थानका शासन करते रहे। ये लोग सम्राट् पृथ्वीराजके अधीनस्थ सामन्तोंमें सर्व-प्रधान थे। उक्त दहिमावंशकी तीन भाइयोंने दिल्लीश्वरके अधीन उच्च पद प्राप्त किया था। ज्येष्ठ कौमास महामन्त्रीके पद पर, मध्यम पुन्दीर-अधिनायक हो कर ससैन्य लाहोरके सीमान्त पर नियुक्त थे और तृतीय वा कनिष्ठ चाँदराय, कग्गार नदीके किनारे जो लड़ाई होती थी, उसीमें पृथ्वीराजके प्रधान सहकारी थे। तबकाती-नासिरी पढ़नेसे जाना जाता है, कि साहबुद्दीनके जीवनीलेखक मुसलमान ऐतिहासिकोंने विख्यात दहिमा-वीर चाँदरायको खाण्डेराव नामसे भी उल्लेख किया है। चौहान राजपूतोंकी अवनतिके साथ साथ प्रतिभाशाली पराक्रान्त दहिमावंशका भी चिराग बुझ गया। सम्भवतः सीमान्तवासी पुन्दीर वंशोद्भव राजपूतगण पुन्दीर नामसे अपना परिचय दिया करते हैं।

थानेश्वर, कुरुक्षेत्र, कर्णाल और अम्बाला आदि स्थानोंमें जो सब पुन्दीर-राजपूत पहले वास करते थे, अभी वे पञ्जाबदेशीय-पुन्दीर कहलाते हैं। पुण्ड्री, रभा, हाबी और पुण्डूक नगर उनके अधिकारभुक्त था। चौहान-राज राना हरराय‍ने उन्हें भगा कर उक्त स्थानको अपने अधीन कर लिया। इस कारण वे यमुनाके दूसरे किनारे जा कर रहनेको बाध्य हुए। इसी समयसे इस प्रदेशमें पुन्दीर-राजपूत रहने लगे।

दोआबवासी पुन्दीरोंका कहना है, कि उनके राजा सरदार दामरसिंह अलीगढ़ जिलेके आकाबाद परगनेके अन्तर्गत गम्भीर नगरमें रहते थे। उन्होंने नगररक्षाके लिये अपने भाई विजयके नामानुसार उक्त नगरमें विजयगढ़ नामक एक दुर्ग बनवाया था। १८०३ ई०में कर्नल गार्डन तथा और भी कितने अंगरेज सेनापतियोंकी मृत्युके बाद विजयगढ़ दुर्ग अंगरेजोंके हाथ लगा। पीछे अङ्गरेजराजने उसे आकाधिपतिको दान दे दिया। पुन्दीर लोग उच्च श्रेणीके सभी राजपूत-घरोंमें आदान-प्रदान करते हैं।

उत्तर-दोआबवासी पुन्दीरगण बरगूजर, चौहान, गहलोत, काठिया, तोमर, छोकर और भट्टीराजपूतोंके घरमें लड़की देते तथा उक्त सात घर छोड़ कर बैजवंशीय राजपूतोंकी लड़की लेते हैं। युक्त प्रदेशमें प्रायः ५६ हजार पुन्दीर राजपूतोंका वास है जिनमेंसे २७ हजारने इसलाम धर्मका आश्रय ग्रहण किया है।

पुन्द्री—पञ्जाब प्रदेशके कर्णाल जिलान्तर्गत एक नगर।

यह अक्षा० २८° ४६' उ० तथा देशा० ७६° ३४' पू० पुरुष्क तालाब नामक विस्तीर्ण पुष्करिणीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या छः हजारके करीब है। इसके चारों ओर इतिकाप्राचीर चार प्रवेशद्वार विद्यमान है। म्युनिसपलिटीके अधीन रहनेके कारण नगर परिष्कार परिच्छन्न रहता है। कुछ सुबृहत् अट्टालिका और सराय नगरकी शोभा बढ़ाती है। यहां एक मिडिल वर्नाक्यूलर स्कूल है।

पुन्नाग (सं० पु०) पुमान् नाग इव श्रेष्ठत्वात्। १ स्वनामख्यात वृहत् पुष्पवृक्षविशेष (Calophyllum inophyllum or Alexandrian Laurel)। भिन्न भिन्न देशमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है, यथा—हिन्दी—सुलतानचम्पा, महाराष्ट्र—पुन्नाग, कलिङ्ग—सुराहोनका भेड़, तैलङ्ग—सुरपोन्नचेट्, तामिल—पिन्नय, उत्कल—पुनां, बम्बई—उदि। संस्कृत पर्याय—पुरुष, तुङ्ग, केशर, देववल्लभ, कुम्भोक, रक्तकेशर, पुन्नामन्, पाटलद्रुम रक्तपुष्प, रक्तरेणु, अरुण। इसका पुष्पगुण—मधुर, शीतल, सुगन्धि, पित्तनाशक, अतिशयद्रावक और देवताप्रसादन, कषाय, कफ और रक्तनाशक। इसकी छालके ऊपर चोट देनेसे धूनेकी तरह एक प्रकारका काला गोंद निकलता है। इससे एक प्रकारकी अच्छी गन्ध निकलती है। यह परिष्कृत सुरासारसे गलाया जाता है जो विलायती बाजारमें ताकामहाका गोंद (Tacamahaca gum of commerce) नामसे बिकता है। बोर्बो द्वीपमें इसकी जड़से भी गोंद निकाला जाता है।

इसके ताजे बीजसे तेल निकलता है। उसका वर्ण कभी हरिताभ जरद, कभी गाढ़ा हरिद्वर्ण देखा जाता है। बीजके तारतम्यानुसार तेलका यह वर्ण विपर्यय हुआ करता है। जब तेल निकालनेकी इच्छा होती है, तब भाद्र और माघ मासमें दो बार बीज संग्रहीत करते हैं। तेलकी गन्ध उतनी खराब नहीं होती। बङ्गाल, बम्बई, तिन्नवेली, त्रिवाङ्कोड़ और मन्द्राज आदि देशोंमें लोग इस तेलको दीप जलानेके काममें लाते हैं। पहले इसके तेल और बीजकी सिंहल तथा सिङ्गापुर द्वीपोंमें रफतनी होती थी। कलकत्तेमें अंडी तेलकी प्रतियोगिता नहीं करने पर भी ब्रह्म देशमें यह तेल अंडीकी अपेक्षा चौगुने दाममें बिकता है। दक्षिणभारतमें इस तेलको अपेक्षा अण्डी तेलकी ही अधिक खपत है, इस कारण यह वहां सस्ते दरमें मिलता है। कुछ साहबने लिखा है, कि जहाजका मोरचा दूर करनेके लिये यह तेल विशेष उपकारी है। अलावा इसके गंठिया वाताश्रित स्थानमें लगानेसे भी विशेष उपकार होता है।

कुछ दिनों तक एक बरतनमें तेल रख देनेसे पेंदीमें चर्बीकी तरह दृढ़ पदार्थ जम जाता है। नारियल तेलकी तरह थोड़ी ठंढ लगनेसे ही यह जम जाता है। यूरोपमें इस तेलको दोम्बा कहते हैं। भारतके स्थान विशेषमें भी यह दोम्बा, पुन वा पिन्ने कहलाता है। तेल प्रस्तुत-प्रणाली ठीक रेंडीकी तरह है। तेल जैसा वातरोगमें उपकारी है, वहुदिनस्थायी नाली घावमें गोंद भी वैसा ही फलप्रद है। वृक्षमें चोट देनेसे ही अश्रुविन्दुकी तरह जो तरल निर्यास निकलता है, वह तथा फल वमनकारक और विरेचक है। निर्यासमें पत्र और डाल मिला कर जलमें डुबो देनेसे जो तेल ऊपर उठ आता है, वह चक्षुदाहमें शान्ति प्रदान करता है। यवद्वीपवासिगण इसका मूत्रवर्द्धक औषधरूपमें व्यवहार करते हैं। पत्रको जलमें भिगो कर आंखोंमें देनेसे ज्वाला प्रशमित होती है। इसकी छाल धारकतागुणविशिष्ट है। यह आभ्यन्तरिक रक्तस्राव और क्षतरोगमें उपकारी माना गया है। कच्ची छालका रस विरेचक है।

लकड़ीका रङ्ग सिन्दूर-सा लाल होता है। जहाजके मस्तूल, रेललाइनकी पटरी, गृहव्यवहार्य द्रव्यादि एवं जहाज, नौका आदि बनानेमें इसकी लकड़ी व्यवहृत होती है। भारतके समुद्रोपकूलवर्त्ती स्थानोंमें इसकी खेती होती है। उड़ीसा, दक्षिणभारत, सिंहल, ब्रह्म, अन्दामन आदि स्थानोंमें यह आपसे आप उगता है। मलय, अष्ट्रेलिया, पोलिनेसिया और पूर्व-अफ्रिकामें भी इसकी खेती होती है। समुद्रोपकूलवर्त्ती बालुकामय स्थानमें जहां एक भी उद्भिद उगनेकी सम्भावना नहीं, वहां पुन्नाग ही फलपुष्पसे भूषित हो कर विराज करता है।

२ सितोत्पल। ३ जातिफल। ४ पाण्डुनाग। ५ नरश्रेष्ठ। (क्ली०) ६ पुन्नागका फूल।

पुन्नागकेशर (स० क्लो०) पुन्नागस्य केशरं । पुन्नाग-पुष्पका किञ्जल्क, पुन्नागफूलका पराग ।

पुन्नागपुष्प (सं० क्लो०) पुन्नागकुसुम ।

पुन्नाट (सं० पु०) पुन्नाड़ पृषोदरादित्वात् डस्य ट । १ चक्रमर्द, चकवंडका पौधा । इसको पत्तियोंका रस दादमें लगानेसे दाद जाती रहती है । २ कर्नाटकके पास एक देश । ३ दिगम्बर जैन सम्प्रदायका एक संघ । जैनहरिवंशके कर्त्ता जिनसेनाचार्य इसी संघके थे ।

पुन्नाड़ (सं० पु०) पुमांसं नाडयतीति नड़-भ्रंशे अण् । (कर्मण्यण । पा ३।२।१) चक्रमर्द, चकवंड़ ।

पुन्नाड़—एक प्राचीन हिन्दूराज्य । यहां जिस वंशके राजा राज्य करते थे, वह वंश पुन्नाड़ूवंश कहलाता है । वर्त्तमान कब्बणि और कावेरी नदीके सङ्गमस्थलके समीप हदिनाड़ू ग्राममें आज भी अनेक प्राचीन कीर्त्तियोंका निदर्शन देखनेमें आता है । पुन्नाड़ू राजवंशमें महिसुरराजवंशीय राजगण अपनी उत्पत्ति बतलाते हैं । ६ठी शताब्दीके एक शासनमें निम्नलिखित पुन्नाट राजाओंके नाम पाये जाते हैं,—१ काश्यपराष्ट्रवर्मा, २ उनके पुत्र नागदत्त, ३ नागदत्तके पुत्र सिंहवर्मा, ४ सिंहवर्माके पुत्र (नाम मालूम नहीं), ५ सिंहवर्माके पौत्र रविवर्मा ।

एक समय पुन्नाट-राजवंश राष्ट्रकूट राजाओंके अधीन थे । अन्य शिलालिपि पढ़नेसे मालूम होता है कि गङ्गराजने स्कन्दवर्माको परास्त कर उनकी कन्यासे विवाह किया और उनका राज्य अपने अधिकारमें कर लिया ।

पुन्नामन् (सं० पु०) १ पुन्नागवृक्ष । पुदिति नामा अस्य । २ नरकभेद, पुन्नाम नरक ।

पुन्नामनरक (सं० पु०) पुन्नामा चासौ नरकश्चेति । नरक-विशेष । पुत्रोत्पत्ति द्वारा मानवगण इस नरकसे निष्कृति लाभ करते हैं ।

वामनपुराण (५८ अ०)में लिखा है, कि सोलहप्रकारके कारणोंसे मनुष्य इस नरकका भोग करते हैं-परदारगमन, पापसेवा और समस्त भूतोंके प्रति परुषता, इससे प्रथम पुन्नाम नरक होता है । फलस्तेय, फलाद्द वस्तु और वृक्षका उत्पाटन, इससे द्वितीय नरक; निन्दनीय वस्तुका ग्रहण, अवध्यका वध वा बन्धन और अहैतुक विवादसे तृतीय नरक; सभी जीवोंके प्रति भय प्रदर्शन, मानवका ऐश्वर्यनाश और निजधर्मका नाश, इससे चतुर्थ नरक; मारण, मित्रके प्रति कौटिल्य, मिथ्याभिशाप और मिष्टवस्तु एकाकी भक्षण, इससे पञ्चम नरक; यन्त्रकार प्ररोहण, गोगनाश, शमन, सुखशयानके हरण आदिसे षष्ठ नरक; राजभागका हरण, राजजायाभिषेवण और राज्यका अहितकारित्व, इससे सप्तम नरक; स्तब्धता, लोलुपता और लब्धधर्मका अपनाशन तथा नाना प्रकारके कर्म करनेसे अष्टम नरक; ब्रह्मस्वहरण, ब्राह्मणकी निन्दा और ब्राह्मणके विरोधसे नवम नरक; शिष्टाचारविनाश, मित्रद्वेष, शिशुवध, शास्त्रचौर्य और धर्मशून्यता, इससे दशम नरक; षड़ङ्गनिधन और षाड़्गुण्यका प्रतिषेध, इससे एकादश नरक; अनाचार, अमङ्क्रिया और संस्कार-हीनता, इससे द्वादश नरक; धर्मार्थकामकी हानि, अप-वर्गका हरण और स्वर्ण हरण करनेमें बुद्धिदान, इससे त्रयोदश नरक; जो वर्जनीय और दोषज है, उसका अनुष्ठान और धर्महीनता, इससे चतुर्दश नरक; निष्ठाहीनता, अज्ञान, अशुभावह, अशौच, असत्य-वचन और निन्दनीयका अनुष्ठान करनेसे पञ्चदश नरक; आलस्य, सबोंके प्रति आक्रोश, आततायिता, गृहमें अग्निदान, परदारमें इच्छा, ईर्षाभाव और सभ्य-जनके प्रति औद्धत्य, इससे षोड़श नरक होता है ।

पूर्वोक्त पाप करनेसे यही सोलह प्रकारके पुन्नाम-नरक होते हैं । यह नरक अत्यन्त कष्टप्रद है ॥ पुत्र जन्म ले कर इन सब पापोंसे त्राण करता है ।

पुन्य (हिं० पु०) पुण्य देखो ।

पुन्यपाल—जयसलमेरके एक राजाका नाम । इनके पिताका नाम था लाखनसेन । पिताकी मृत्यु होने पर ये जयसलमेरके सिंहासन पर बैठे । परन्तु ये बड़े क्रोधी और रूखे स्वभावके थे । इनके व्यवहारोंसे सभी सामन्त अप्रसन्न रहा करते थे, इसलिए इनको सामन्तोंने राज्यसे अलग कर दिया । राज्यच्युत हो कर ये जयसलमेरके पास किसी गांवमें जा कर रहने लगे । इनका समय १३वीं सदीका अन्तिम भाग है ।

पुपली (हिं० स्त्री०) बांसकी पतली पोली नली ।

पुष्पुगाम—विशाखपत्तन जिलेके नवरङ्गपुर तालुकका एक नगर। यह जयपुरसे ८ मील उत्तर अवस्थित है। यहां गङ्गवंशीय राजाओंका बनाया हुआ एक प्राचीन मन्दिर और पुष्करिणी विद्यमान है।

पुप्पुट (सं० पु०) १ दन्तपुटगतरोग। २ तालुगतरोगभेद।

पुप्फुल (सं० पु०) पुप-फुल-पृषोदरादित्वात् सस्य लत्वं। उदरस्थ वायु, जठरवात।

पुप्फुस (सं० पु०) पुप-फुसवत् आकृतिरस्यास्तीति अच्। १ पद्मबीजाधार, कमलगट्टेका छत्ता। पर्याय—बीजकोष, वराटक। पुप-फुस इति शब्दोऽस्त्यस्येति। २ वामपार्श्वस्थ मलाशय। पर्याय—क्लोम, रक्तफेनज, तिलक, क्लोम।

फुसफुस देखो।

पुमनुजा (सं० स्त्री०) पुमांसमनुरुध्य जायते अनु-जन-ड, पुमांसमनुरुध्य जाता पुमनुजा। पुरुषान्तरजाता भगिनी, वह बहन जो दूसरे पुरुषसे पैदा हुई हो।

पुमपत्य (सं० क्ली०) पुंरूपमपत्यं। पुरुषरूप अपत्य।

पुमर्थ (सं० पु०) पुरुषार्थ।

पुमस् (सं० पु०) पाति रक्षतीति पा-डुमसुन् (पातेर्डुमसुन्। उण् ४।१७७) डित्वात् टिलोपः। १ मनुष्यजातिपुरुष। पर्याय—पञ्चजन, पुरुष, पूरुष, ना।

किसी किसीने 'पुमस' शब्दका अर्थ मनुष्यजाति बतलाया है। अमरटीकाकार भरतने इसका उल्लेख किया है। (अमर २।६।१) २ पुलिङ्गमात्र। ३ कूटस्थ पुरुष।

"सदक्षरं ब्रह्म य ईश्वरः पुमान् गुणोर्मिसृष्टिस्थितिकालसंलयः।
प्रधानबुद्ध्यादिजगत्प्रपञ्चसूः स नोऽस्तु विष्णुर्विभुतिमुक्तिदः॥"
(विष्णुपु० १।१।२)

"अक्षरमिति विकारं निराकरोति पुमान् कूटस्थः।" (स्वामी)

पुमाख्य (सं० पु०) पुमांसमाख्याति आ-ख्या-क। १ पुरुषवाचक शब्द। स्त्रियां टाप्। २ पुरुषसंज्ञा।

पुमाचार (सं० पु०) पुरुषका आचार।

पुमान् (सं० पु०) १ पुरुष, नर, मर्द। २ पुन्नागवृक्ष।

पुम्भूमन् (सं० पु०) पुंलिङ्ग बहुत्व।

पुयार—एक राजपूत-राजवंश। ये लोग सूर्यवंशीय तथा परिहार नामसे प्रसिद्ध हैं। पहले ग्वालियरराज्यमें ये राज्य करते थे। उक्त राज्यमें प्रवाद है, कि पूर्वतन कच्छवहवंशीय राजाको परास्त कर पुयार या परिहार राजाओंने यहां राज्यस्थापन किया। यथार्थमें कच्छवहवंशीयगण ही ग्वालियरमें राज्य करते थे।

कच्छवह शब्द देखो।

कच्छपघातवंशीय नरपतिगण कच्छवह राजाओंको परास्त कर ग्वालियर-दुर्गके अधिकारी हुए। ग्वालियरमें प्राप्त शिलाप्रशस्ति पढ़नेसे मालूम होता है, कि कच्छपघातवंशतिलक लक्ष्मणने निज बाहुबलसे ग्वालियर तक राज्य फैला लिया था। किन्तु उनके पुत्र वज्रदामने ही सबसे पहले गोपगिरि दुर्ग पर अधिकार कर तूर्यध्वनिसे नगरवासियोंके हृदयमें भीतिका सञ्चार किया था और विजयपताका फहरा कर बाहुबलका सम्यक् परिचय दिया था। वज्रदामके पहले उनके पिता अथवा उनके पूर्ववर्ती किसी राजाने कच्छवाहोंको परास्त किया था, इस कारण वर्त्तमान आख्या उनकी वंशगत हो गई है। पुयारकर्त्तृक कच्छवहविजय और इतिहासमूलक वज्रदामकर्त्तृक गोपगिरि-जयकी कथा आलोचना करनेसे उन्हें निःसन्देह पुयारवंशके मुकुट कह सकते हैं। ऐतिहासिक टिफेनथेलर (Pere Teffenthaler)-ने ग्वालियरमें पुयार-अधिकारका समर्थन करते हुए कई एक राजाओंके नाम दिये हैं, जो वर्तमान शिलालिपिसे बिलकुल पृथक् हैं। किन्तु ग्वालियरसे प्राप्त शिलालिपिका अनुसरण करनेसे जाना जाता है, कि महाराजाधिराज वज्रदामने ग्वालियर प्रवेश करनेके पहले विन्ध्यनगराधिपको परास्त किया। एक जैनप्रतिमूर्त्तिके मूलदेशमें खोदितलिपि पढ़नेसे मालूम होता है, कि महाराज वज्रदामने सुचारुरूपसे राजकार्य करके १०३४ सम्वत्‌से (९७७ ई०)-में इस प्रस्तरमयी मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की थी। अतएव उक्त सम्वत्‌के पूर्ववर्त्ती किसी समय उनके राज्याधिकारका समय निरूपित होगा, इसमें सन्देह नहीं। उनकी मृत्युके बाद उनके लड़के पितृपद पर अभिषिक्त हुए। उन्होंने पितृपुरुषसेवित जैनधर्मका परित्याग कर विष्णुकी उपासनामें अपना जीवन उत्सर्ग किया। उनके वंशधर कीर्त्तिराजने निज बाहुबलसे मालव जीत कर अपने

राज्यमें मिला लिया। वे शैव थे। सिंहपानिया नगरमें पार्श्वतीपतिकी प्रतिष्ठाके लिये उन्होंने जो मन्दिर बनवाया, वह उनके जीवनको अपूर्व कीर्त्ति है। उनके पुत्र मूलदेव निज महिमागुणसे भुवनपाल नामसे प्रसिद्ध हुए। उनके आत्मज देवपाल दानमें कर्ण, रणमें अर्जुन और सत्यमें धर्मराज सदृश थे। पिताके मरनेके बाद पद्मपालने छत्र और राजदण्ड प्राप्त किया। बाद दाक्षिणात्यविजयमें जा कर वे अनार्योंके साथ लड़े। शिव, ब्रह्मा, विष्णु, लक्ष्मी और नरसिंह मूर्त्ति स्थापन तथा अपत्य निर्विशेषसे राज्य पालन करके वे प्रजावर्गके प्रीतिपात्र हो उठे। अन्तमें अनुष्ठित क्रियाकलापके फललाभसे यशस्वी हो अपुत्रक अवस्थामें उन्होंने इस नश्वर देहका परित्याग किया। पीछे उनके भाई सूर्यपालके पुत्र श्रीमन्महाराज महीपालदेव राजसिंहासन पर बैठे। उन्होंने नाना प्रकारके सत्कर्मानुष्ठान करके अच्छा नाम कमा लिया और पद्मनाथ नामक एक विष्णुग्रहकी स्थापना करके मन्दिरके खर्चके लिये ब्रह्मपुर जिला दान कर दिया।

वज्रदामकी जैनमूर्त्तिके पाददेशमें लिखित १०३४ सम्वत् और महीपालदेवके समयमें उत्कीर्ण शिलालिपिकी तारीख ११५० सम्वत् है—इन दोनोंके व्यवधानको कल्पना करनेसे पुयारवंशका राजत्वकाल ११६ वर्षसे कुछ अधिक होता है। कारण, वज्रदामके राज्याधिकार और मृत्युका समय हम लोगोंको मालूम नहीं। डा० कनिंहमने उपरि-उक्त हिसाबसे ७ राजाओंके राजत्वकी एक तालिका* दी है—

महीपालके बाद उनके पुत्र भुवनपाल उर्फ मनोरथ पितृसिंहासन पर बैठे। वे कायस्थ प्रतिपालक थे। वैष्णवधर्ममें दीक्षित हो वे मथुराधाममें जा कर रहने लगे थे। कुछ वर्ष राज्य करनेके बाद उन्होंने अपने पुत्र मधुसूदन पर राज्यभार अर्पण किया। मधुसूदन सिंहासन पर कब बैठे, ठीक ठीक मालूम नहीं। केवल मात्र ११६१ विक्रम सम्वत्में महादेव-मन्दिर प्रतिष्ठाके उपलक्षमें तत्प्रदत्त एक शिलालिपि उत्कीर्ण है। इससे बहुत कुछ अनुमान किया जाता है, कि महीपालदेवके राजत्वके कमसे कम १२ वर्ष बाद मधुसूदनने राज्य-शासन किया था। मधुसूदनके अधस्तन वंशधरोंने प्रायः सौ वर्ष तक राज्य किया। किन्तु उनका प्रकृत इतिहास नहीं मिलता। इसके बाद ग्वालियरराज्यमें तोमर वंशीय राजपूतोंका अभ्युदय हुआ†। तोमर देखो।

* लक्ष्मण ८२५ ई०में; वज्रदाम ९५०-९८० ई०में। इनके राज्यकालमें कच्छपघातवंशके आधिपत्यका प्रकृत सूत्रपात हुआ। मंगलराज ९८० ई०; कीर्त्तिराज ९९५ ई०; भुवनपाल १०१० ई०; देवपाल १०३० ई०; पद्मपाल १०५० ई०; महीपालदेव १०७५-९२ ई०; भुवनपाल उर्फ मनोरथ १०९५ ई०; मधुसूदन ११०४ ई०।

पुरः (हिं० अव्य०) १ आगे। २ पहले।

पुरःसर (हिं० वि०) १ अग्रगण्य, अगुआ। २ संगी, साथी। ३ समन्वित, सहित। (पु०) ४ अग्रगमन। ५ साथ।

पुर (सं० क्लो०) पिपर्त्तीति मूलविभूजादित्वात् क अथवा पुरति अग्रे गच्छति पुर-क (इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः। पा ३।१।१३५) १ वह बड़ी बस्ती जहां कई ग्रामों या बस्तियोंके लोगोंको व्यवहार आदिके लिये आना पड़ता हो, नगर, शहर, कसबा। संस्कृत पर्याय—पुर, पुरी, नगर, पत्तन, स्थानीय, कटक, पट्ट, निगम, पुटभेदन। पुरको किस प्रकार सुरक्षित रखना होता है, उसका विषय मनुने इस प्रकार लिखा है,—

"धनुर्दुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा।
नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत् पुरम्॥",
(मनुसं० ७।७०)

सहस्राधिपति ही पुरका भोग कर सकते हैं। मनुसंहितामें लिखा हैं,—

"दशी कुलन्तु भुञ्जीत विंशी पञ्चकुलानि च।
ग्रामं ग्रामशताध्यक्षः सहस्राधिपतिः पुरम्॥" (७।११९)

† टिफेनथेलरका कहना है, कि दिल्लीश्वर श्यामसुद्दीनने पुयारोंसे ग्वालियर छीन कर तोमर राजपूतोंके हाथ लगा दिया। फिरिस्तामें लिखा है, कि कुतब-उद्दीनने ११९३ ई०में ग्वालियर दुर्ग पर दखल जमाया। कुतबकी मृत्युके बाद एक तोमरराजने अलतमसकी स्वाधीनता स्वीकार कर उनसे उक्त प्रदेशका शासन कर्तृत्व प्राप्त किया। किन्तु कुतबके आक्रमणके पहले यहां कच्छपघातवंशीय मधुसूदनके वंशधर राज्य करते थे या अन्य किसी वंशके राजा, इसका ठीक ठीक पता लगाना कठिन है।

पुरमें चोर आदिका रहना निषिद्ध है। राजाको अपने पुरमें चोरो आदि दुष्कर्मीका दमन करना चाहिये।

"यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक्।
न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक्॥"

(८।३८६)

पुरके मध्य कभी भी कितवोंको स्थान न दे। मनुने नगरसे उन्हें निकाल देनेकी व्यवस्था दी है।

"कितवान् कुशीलवान् क्रूरान् पाषण्ड स्थांश्चमानवान्।
विकर्मस्थान् शौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत् पुरात्॥"

(मनु ८।२२५)

कविकल्पलतामें लिखा है—पुरका वर्णन करनेमें हट्ट, प्रतोली, परिखा, तोरण इत्यादिका भी वर्णन करना होता है।

"पुरे हट्टप्रतोली च परिखातोरणध्वजाः।
प्रासादाध्वप्रपारामैवापी वैश्यासतीश्वरी॥"

(कविकल्पलता)

प्रियते पूर्यते इति पृलि पूर्त्तौ-क। २ आगार, गृह, घर। जैसे, अन्तःपुर, नारीपुर। ३ गृहोपरि गृह, कोठा, अटारी। ४ देह, शरीर। ५ नगरभेद। ६ पाटलिपुत्र नगर। ७ नागरमोथा। ८ कुसुमदलावृत्ति। ९ चर्म, चमड़ा, मोट, चरसा। १० पोतभिण्टी, पोली कटसरैया। ११ राशि, पुंज। १२ नक्षत्रपुञ्ज। १३ दैत्यभेद। १४ गन्धद्रव्यविशेष। १५ गुग्गुल नामका गन्धद्रव्य। १६ दुर्ग, किला, गढ़। १७ चांगा। (त्रि०) १८ पूर्ण, भरा हुआ। स्त्रीलिङ्गमें पुरा और पुरी दोनों प्रकारका ही प्रयोग देखा जाता है। पुरादिका निर्माण किस प्रकार करना चाहिये, उसका विशेष विवरण पुरी शब्दमें लिखा है। पुरी देखो।

पुर—१ राजपूतानेके उदयपुर राज्यके अन्तर्गत भीलवार जिलेका एक प्राचीन नगर। यह अक्षा० २५° १८´ उ० और देशा० ७४° ३३´ पू०के मध्य उदयपुर शहरसे ७२ मील उत्तर-पूर्व और भीलवार रेलवे स्टेशनसे ७ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या चार हजारसे ऊपर है। इस भागका राजस्व राजपरिवारभुक्त बालकबालिकाओंके भरण पोषणार्थ खर्च होता है। इसके पूर्वमें नीलवर्ण स्लेट पत्थरका एक पहाड़ है। मारवाड़ राज्यके मध्य यह नगर सबसे प्राचीन है। राजाविक्रमके राजत्वके बहुत पहले यह नगर स्थापित हुआ था।

२ पूना जिलेके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह सासवाड़से ३ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहांके कालभैरव मन्दिरमें माघीपूर्णिमाको तथा नारायणेश्वर मन्दिरमें उक्त मासकी कृष्णात्रयोदशीको दो मेले लगते हैं।

३ उक्त जिलेका एक गण्डग्राम। यह जुन्नार उपविभागसे ६ कोस पश्चिम पर्वतकी उपत्यका पर अवस्थित है। यहांका जलवायु सुखजनक है। ककुदी नदीके किनारे हेमाड़ पन्थियोंके ककुदेश्वरका भग्नमन्दिर विराजमान है। अभ्र पर्वतमाला और घाटगढ़ उपत्यका पार कर कुकुदीश्वरमें मन्दिरके सामने जाते हैं। गठनकार्य देख कर पुरातत्त्वविद्गण उसे ११वां वा १२वीं शताब्दीका निर्मित बतलाते हैं। मन्दिरका घेरा पूर्व पश्चिममें ५२ फुट और उत्तर-दक्षिणमें ३० फुट है। मन्दिराभ्यन्तरस्थ कुण्डोंके मध्यउत्तरका और चामुण्डा और शिव शवके ऊपर नृत्य करते हैं। दक्षिण और वहिर्मुखको मूर्त्तियां नष्ट हो गई हैं। इसके अलावा हिरण्याक्ष-दलनकारी वराहावतार-मूर्त्ति, हरगौरीमूर्त्ति और अपर विष्णुमूर्त्ति विद्यमान है। प्रति वर्ष शिवचतुर्दशीके दिन महाशिवरात्रके उपलक्षमें यहां एक मेला लगता है। घाटगढ़से कुकुदी आनेके रास्ते पर कलञ्ज नामक दो लिङ्गमूर्त्ति प्रतिष्ठित हैं। पांगलिग्रामके कोलीजातिके लोग इस देवताकी उपासना करते हैं।

४ युक्त प्रदेशके मुजफ्फरनगर जिले और तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २९° ३८´ उ० और देशा० ७७° ५१´ पू० मुजफ्फरनगर शहरसे १६ मील उत्तर अवस्थित है। जनसंख्या छः हजारसे ऊपर है। शहर चारों ओर जंगलसे घिरा है। इस कारण यहांका दृश्य बड़ा ही मनोरम है।

पुरएत (सं० त्रि०) अग्रगामी, अगुआ।

पुरकोट्ट (सं० क्लो०) पुरदुर्ग।

पुरखा (हिं० पु०) १ पूर्वज, पूर्व पुरुष, जैसे—बाप, दादा, परदादा, इत्यादि । २ घरका बड़ा, बूढ़ा ।

पुरग (सं० त्रि०) पुरं गच्छतीति गम-ड । नगरगामी ।

पुरगावण (सं० पु०) वनभेद ।

पुरगुप्त—गुप्तवंशीय एक राजा । ये स्कन्दगुप्तके कनिष्ठ भ्राता थे ।

पुरगुर (हिं० पु०) एक पेड़ जो बंगालके उत्तर-पूर्व होता है यह पेड़ धौलीसे बहुत कुछ मिलता जुलता है । इसकी लकड़ी खेतीके सामान और खिलौने आदि बनानेके काम आती है ।

पुरग्राम—दाक्षिणात्यके अन्तर्गत एक ग्राम ।

पुरचक (हिं० स्त्री०) १ चुमकार, पुचकार । २ उत्साह-दान, बढ़ावा । ३ पृष्ठपोषण, वाहवाही, हिमायत, तरफ-दारी । ४ प्रेरणा, उसकावा ।

पुरच्छद (सं० पु०) १ उलप, तृणविशेष । २ स्तनाग्र ।

पुरजा (फा० पु०) १ खण्ड, टुकड़ा । २ चिड़ियोंके महीन पर, रोईं । ३ कतरन, धज्जी, फटा, टुकड़ा, कत्तल । ४ अवयव, अङ्ग, अंश, भाग ।

पुरजित् (सं० पु०) १ एक राजा । पुरं त्रिपुरासुरं जितवान् । २ त्रिपुरारि, शिव । ३ कृष्णके एक पौत्र जो जाम्बवतीसे उत्पन्न हुए थे ।

पुरज्योतिस् (सं० पु०) पुरं प्रचुरं ज्योतिरस्य । अग्नि । आग ।

पुरञ्जन (सं० पु०) पुरं देहमेव जनयतीति जनि बाहुल-कात् ख । जीव ।

श्रीमद्भागवतमें इस पुरञ्जनका उपाख्यान अति विस्तृतभावमें वर्णित है । यहां पर संक्षेपमें उनका विषय लिखा जाता है ।

नारदने प्राचीनवर्हिके पुत्र प्रचेताओंसे यह उपा-ख्यान वर्णन करते हुए कहा था, 'हे राजन् ! पञ्चाल-देशमें पुरञ्जन नामक महायशस्वी एक राजा रहते थे । उनके एक मित्र थे, जिनका नाम और काम कोई नहीं जानता था । पुरञ्जनने अपने भोगस्थानका अन्वेषण करते हुए सारी पृथ्वी पर भ्रमन किया, किन्तु उपयुक्त स्थान उन्हें कहीं भी न मिला । पृथ्वी पर जितने स्थान उन्होंने देखे, एक भी पसन्दमें न आया । तब वे निराश हो पुनः पर्यटन करने लगे । एक समय हिमा-लयके दक्षिण सानुस्थ कर्मक्षेत्र भारतवर्षका पुर उनके नयनगोचर हुआ । वह पुर सर्वलक्षणसम्पन्न था । वहां त्वक् आदि अवयवरूप प्राचीर और उपवन अट्टा-लिकासे सुशोभित था । इन्द्रियरूपगवाक्ष और वहिर्द्वार देदीप्यमान होता था । आधार चक्रादिरूप स्वर्णरौप्य और लौहमय शिखरयुक्त गृह सर्वतोभावमें शोभा देता था । सब मिला कर पुरकी शोभा अति मनोहारिणी थी, इसमें सन्देह नहीं ।

उस वनके वहिर्भागमें भी एक बहुत मनोरम उपवन था । पुरञ्जनने इस उपवनमें आ कर एक उत्तम प्रमदाको देख पाया । उस प्रमदाके साथ दश भृत्य थे । प्रत्येक भृत्य सैकड़ों नायिकाका पति था । वह प्रमदा अप्रौढ़ा और कामरूपिणी थी । पांच मस्तक-वाला एक सर्प द्वारपाल हो कर उसका रक्षणावेक्षण करता था । वह प्रमदा किसी दूसरे कामके लिये नहीं वरन् पतिकी खोजमें ही उस उपवनमें आई हुई थी । वह असामान्य रूपवती और रमणीजनललामभूता थी । पुरञ्जन इस प्रमदाको देख अधीर हो उठे और परिचय पूछ कर उससे कहा, 'हे सुन्दरि ! मैं श्रेष्ठवीर हूं और मेरा काम अति महत् है । लक्ष्मी विष्णुकी तरह तुम मेरे साथ रह कर इस पुरीको अलङ्कृत करती रहो । तुम्हें देख कर मैं नितान्त अधीर हो गया हूं ।' इस पर वह हंसती हुई बोली, हे पुरुषश्रेष्ठ ! मेरा और आपका कर्त्ता कौन है, सो मैं नहीं जानती, जिससे गोत्र और नाम होता है, मैं उससे भी अवगत नहीं ; किन्तु जब आपने मुझसे पूछा है, तब इसका उत्तर देती हूं, ध्यान दे कर सुनिये ।'

'ये सब मेरे सखा हैं और ये नारियां मेरी सखी हैं । यह सर्प इस पुरीका पालनकर्त्ता है, जब मैं सो जाती हूं तब यह पहरा देता है । जो कुछ हो, आज मेरा परम भाग्य है जो आप यहां पधारे हैं, आपको ही यह नवद्वारविशिष्ट पुरी है । आप सौ वर्ष तक यहां सुखसे रहिये । मैं आपका अभिलषित भोग ला देती हूं, आप ग्रहण कीजिये ।' इस प्रकार उस दम्पतिने जिस पुरीमें प्रवेश किया, उसमें पृथक् पृथक् विषयका अनु-

भव करनेके लिये दो द्वार हैं, एक ऊपर और एक नीचे। पुरञ्जन इसी नवद्वार द्वारा सभी विषयोंका उपभोग करते रहे। पुरञ्जन जिस समय अन्तःपुरमें घुसे, उस समय सर्वतोमुख जो मन है उसके साथ मिल कर वे कभी मोह, कभी प्रसन्नता और कभी हर्षको प्राप्त हुए। ये सब मोहादि उनके पुत्र और कलत्रसे उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार पुरञ्जन कर्ममें आसक्त हो कर अज्ञके समान पड़े रहे। उस समय वे सम्पूर्णरूपसे वनिताके करायत्त हो गये। पुरञ्जनके इस प्रकार अपनी वनिता कर्तृक प्रतारित होनेसे उनके असङ्गलादि रूपस्वभावरहित हो गये। सुतरां परतन्त्र हो जानेसे इच्छा नहीं रहने पर भी वे क्रीड़ामृगके समान हो वनिताका अनुसरण करने लगे।

पीछे पुरञ्जन एक दिन रथ पर सवार हो जहां पांच शत्रु हैं, उसी वनमें शिकारको निकले। उनका शरासन बहुत बड़ा था। जिस रथ पर वे बैठे थे, वह बड़ा ही विचित्र था। उसमें पांच घोड़े लगे हुए थे और वह दो दण्डोंसे निबद्ध था। इसमें चक्र दो, अक्ष एक, ध्वजा तीन, बन्धन पांच, प्रग्रह एक, सारथि एक, रथिका उपवेशन स्थान एक और युगबन्धन स्थान दो थे। उसका आभरण और गति पांच प्रकारकी थी। यह सुवर्ण निर्मित आभरणसे अलङ्कृत था। पुरञ्जन मृगयाकारीके वेशमें उस रथ पर बैठे हुए थे। उनके शरीर पर स्वर्णमय कवच और पृष्ठदेश पर अक्षय तूण शोभा देता था। ग्यारह नायक उनके सेनापति हो कर चले। पुरञ्जनकी धर्मपत्नीने उन्हें जानेसे बहुत ही रोका, पर उन्होंने एक भी न सुनी और उसका परित्याग कर वे शिकारको चल ही दिये। जङ्गलमें नाना प्रकारका पशुवध करके वे क्षुधा और तृष्णासे कातर हो घर लौटे। घर पहुंच कर जब उनकी क्षुत्पिपासा दूर हुई, तब वे पत्नीके साथ क्रीड़ामें नियुक्त हुए। इस प्रकार कामासक्तचित्त हो महिषीके साथ क्रीड़ा करते करते पुरञ्जनकी नई उमर मुहूर्त्त भरमें बीत गई। इस समय उन्होंने अपनी रमणी पुरञ्जनीके गर्भसे ग्यारह सौ पुत्र और एक सौ दश कन्याएं उत्पादन कीं। ये सभी पौरञ्जनी नामसे प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार पुरञ्जन संसारमें आसक्त हो कर समय बिताने लगे। इसी बीच जो काल नारीप्रिय व्यक्तिका अतिशय अप्रिय था, वह आ कर उपस्थित हुआ। यह काल चण्डवेग नामसे प्रसिद्ध और गन्धर्वोंका अधिपति है। इसके अधीन दिन और रात्रिरूप ३६० गन्धर्व हैं जिनका वर्ण शुक्ल और कृष्ण है। ये सब गन्धर्व मिथुनभावमें रहते हैं और परिभ्रमण करके समस्त कामनाओंके साथ निर्मित पुरी (देह)का अपहरण करते हैं। चण्डवेग कालका अनुचर है। इन सब गन्धर्वमिथुनोंने जब पुरञ्जनकी पुरीका हरण करना आरम्भ किया, तब वहांकी प्रजा उन्हें निषेध करके बाधा देने लगी, किन्तु कृतकार्य न हो सकी। कालके आक्रमण करनेके पहले इसकी कन्या जरा पुरञ्जनको अपना पति वर चुकी थी। कालकन्याके आक्रमण करनेसे उनके शरीरकी श्री भ्रष्ट हो गई और वे धीरे धीरे कालकवलित हुए।

पुरञ्जनने अन्तकालमें अपनी प्रमदाका स्मरण करके प्राणत्याग किया था। अतएव उन्होंने यमालयमें अपने कर्मफलका भोग करके फिरसे विदर्भराजकन्याके रूपमें जन्म लिया। मलयध्वजके साथ इनका विवाह हुआ। महाभागवत मलयध्वजने भी उस वैदर्भीके गर्भसे एक कन्या और सात पुत्र उत्पन्न किये। मलयध्वजकी प्रथमा कन्याका नाम दृढ़व्रती था जिसका विवाह महामुनि अगस्त्यके साथ हुआ। मलयध्वजके पुत्र पौत्रादि होने पर उन्होंने उनके ऊपर मेदिनीका भार समर्पण किया और आप पत्नीके साथ तपस्यामें लग गए। वैदर्भी भी अनन्यकर्मा हो तपस्या करने लगी। तपस्या करते करते जब मलयध्वजके प्राणपखेरू उड़ गये, तब उनकी पत्नीने शोकातुरा हो उनका अनुगमन करना चाहा। वहां प्राचीन कोई एक आत्मवान् ब्राह्मण रहते थे। वे मलयध्वजके सखा थे। मलयध्वजपत्नीको इस प्रकार सहमरणोद्यता देख ब्राह्मण मीठी मीठी बातोंसे कहने लगे, 'हे सुन्दरि! तुम कौन हो, किसकी लड़की हो, वह पुरुष हो कौन है जिसके लिये तुम शोक करती हो इसका तथ्य मैं समझा कर कहता हूं, ध्यान देकर सुनो, आजसे आप आत्मज्ञान हो जायगा, तब फिर यह वृथा शोक रहने नहीं पायगा। ब्राह्मणने

उन्हें पूर्वतन पुरुषभावका स्मरण दिला कर कहा, 'सखे ! तुम अपनेको क्या समझते हो ? क्या किसी भी एक व्यक्तिके साथ तुम्हारी मित्रता थी, ऐसा स्मरण होता है ? तुम मुझे परित्याग करके स्थानकी खोज करते करते संसारके भोगमें रत हो गये थे। मैं और तुम दोनों ही मानससरोवरमें दो हंसके रूपमें रहते थे। हम दोनों बिना घरके ही सहस्र वर्ष अर्थात् महाप्रलय तक एक साथ रहे। तुम कौन हो, सो मैं जानता हूं। तुम्हें सुखभोगकी इच्छा हुई थी इसीसे तुमने मुझे छोड़ दिया था। पीछे तुमने पृथ्वी पर पर्यटन किया, उस समय किसी एक अबलाके स्थान पर तुम्हारी निगाह पड़ी, क्या यह तुम्हें स्मरण है ? वह स्थान बड़ा ही चमत्कार था; उसमें पांच उपवन, नौ द्वार और एक पालन-कर्त्ता, तीन कोष्ठ और छः कुल थे। वहां हट्ट पांच और उसकी प्रकृति पांच तथा बुद्धिरूप एक स्त्री उसकी स्वामिनी थी। पांच इन्द्रियविषय ही उक्त पाचों उपवन थे, प्राण उसके द्वार थे, तेज, जल और अन्न ये तीनों तीन कोष्ठ थे। सभी इन्द्रियां वहांके कुल थीं। क्रियाशक्ति ही पांच हट्ट थीं और पञ्चभूत ही पांच प्रकृति थे। पुरुष प्रकृतिके वशवर्त्ती हो कर ही वहां प्रविष्ट होते हैं, सुतरां आत्माको पहचान नहीं सकते। तुमने वहां उस स्त्रीसे सहवास किया था, इसीसे तुम्हारा ब्रह्मत्व जाता रहा। उस नारीके सङ्गमसे ही तुम्हारी ऐसी हालत हुई है। तुम विदर्भराजकी दुहिता वा मलयध्वजकी पत्नी नहीं हो। ये सब मुझसे सृष्ट मायाके विलासमात्र हैं। तुम अपनेको पूर्व जन्मका पुरुष और अभी स्त्री समझते हो, पर तुम न तो पुरुष हो और न स्त्री। तुम और हम दोनों ही शुद्ध तथा ज्ञानस्वरूप हैं। तुम हमसे भिन्न नहीं हो और न हम ही तुमसे भिन्न हैं। इस पर यदि तुम कहो, कि हम दोनों एक हैं अथच तुम सर्वज्ञ और हम असर्वज्ञ हैं, तो ऐसे प्रभेदका कारण क्या है ? किन्तु हे सखे ! यदि थोड़ा गौर कर देखो, तो यह आशङ्का अमूलक प्रतीत होगी। कारण, पुरुष अपनी एक देहको आदर्शमें निर्मल, महत् और स्थिर देखता है और जन-साधारणको इसका विपरीत दिखाई देता है। इस प्रकार देह यदि उपाधिभेदसे भिन्न हो, तो हम दोनोंकी विभिन्नता भी उसी प्रकार होगी।" इस प्रकार उपदेश देनेके बाद उनका अज्ञान दूर हुआ और पूर्वजन्मका स्मरण हो जानेसे पूर्वतन सभी वृत्तान्त आपसे आप याद आने लगे।

पुरञ्जनके उपाख्यानमें आत्माका संसार और उसका मोक्ष ये दोनों ही दिखाये गये। अब इस उपाख्यानका प्रकृतस्वरूप कहा जाता है जो रूपककी तौर पर वर्णित हुआ है। इसमें जो पुरञ्जन बतलाये गए हैं उनका नाम पुरुष है। वे पुरुष अर्थात् देहको प्रकटित करते हैं, इसीसे उनका नाम पुरञ्जन पड़ा है। वह पुरुष नाना प्रकारके हैं। जो अविज्ञात शब्दसे अभिहित हुए हैं, वे ईश्वर हैं, पुरुषके सखा हैं। ईश्वर अज्ञेय हैं, कोई उन्हें नामादिसे जान नहीं सकता, इस कारण वे अविज्ञेय हैं। पुरुषका यद्यपि पुरमात्र प्रकटित करानेके कारण पुरञ्जन नाम पड़ा है, तो भी वे जब प्रकृतिके समस्त गुण सम्पूर्णरूपसे ग्रहण करना चाहते हैं, तब नवद्वारयुक्त पुर ग्रहण करते हैं। पुरञ्जनकी स्त्री प्रमदाकी जो बात कही गई है, वह प्रमदा बुद्धि है। बुद्धिसे ही 'हम' और 'हमारा' आदि ज्ञान होता है। पुरञ्जन उस बुद्धिमें अधिष्ठित हो कर ही देहमें इन्द्रियगण द्वारा उन सब विषयोंका भोग करते हैं। फिर सखा और सखी नामसे जो अभिहित हुए हैं, उसका अर्थ इस प्रकार है—सभी इन्द्रियां उसकी सखा हैं और इन्द्रियोंकी वृत्ति ही उसकी सखी है। ज्ञान और कर्म उन्हींसे उत्पन्न होता है। पञ्चशिरा सर्पका अर्थ प्राण है। प्राणकी पांच प्रकारकी वृत्तियां हैं, इसीसे वह पञ्चशीर्ष सर्पके समान है। ग्यारह नायकका अर्थ मन है। पञ्चाल शब्दसे शब्दादि पांच विषयोंका बोध होता है। पुरञ्जनने जिस अन्तःपुरमें प्रवेश किया, उस अन्तःपुर शब्दका अर्थ हृदय है और सर्वतोमुख जिस मनका उल्लेख किया गया है उसका गुण है सत्त्व, रजः और तमः। इन्हीं तीनोंसे पुरुष मोह वा प्रसन्नताको प्राप्त होता है। बुद्धि जिस भावमें दिखाई देती है, पुरुष भी उसी भावमें दीखता है।

पुरञ्जन जिस रथ पर सवार हो शिकारको निकले थे, वह रथ यही देह है, इन्द्रियां उस रथके अश्व हैं।

रथका चक्र पाप और पुण्य है। सत्त्व, रजः और तमः ये तीनों गुण उसी रथकी ध्वजा है और पञ्चप्राण उसके पांच बन्धन हैं। मन उस रथकी रश्मि है, बुद्धि उसकी सारथि है, हृदय रथीका उपवेशन स्थान है। उसके युगन्धर दो (शोक और मोह) हैं, उसी पर इन्द्रियोंके पांच विषय प्रक्षिप्त होते हैं। पुरुष उसी रथ पर चढ़ कर मृगतृष्णारूप मृगयाको निकलते हैं। ग्यारह इन्द्रियां ही पुरुषकी सेना हैं जिनमेंसे पञ्चइन्द्रिय द्वारा वे विषयकी सेवा करते हैं। चण्डवेग ही सम्वत्सर है, उसीके दिन गन्धर्व हैं और रात्रि गन्धर्वी। इन सब दिनोंकी संख्या ३६० है। वे निरन्तर भ्रमण करके पुरुषकी परमायुको हरण करते हैं। कालकन्या शब्दका अर्थ जरा है। आधि और व्याधि मृत्युकी सञ्चारिसेना है। वह सेना बहुत बलवती है। देही अज्ञानसे आवृत हो कर इस देहमें तरह तरहका कष्ट झेलते हुए सौ वर्ष तक ठहरता है। आत्माका निर्गुणस्वभाव है, पर मोहवशतः प्राणके धर्म क्षुधा तृष्णादि, इन्द्रियके धर्म कामादि और मनके धर्म सङ्कल्पादिके इसमें आरोपित रहनेसे लोगोंको 'हम' और 'हमारा' ऐसा ज्ञान हुआ करता है।

पुरुषके अज्ञानहेतु ही अनथपरम्परारूप संसार होता है। पीछे वासुदेवमें दृढ़ भक्ति हो जानेसे, वह संसार निवृत्त हो जाता है। पुरञ्जनके उपाख्यान द्वारा रूपकमें इन सब संसार और संसारनिवृत्तियोंका विषय कहा गया। (भाग० ४।२५से २९ अ०)

पुरञ्जनी (सं० स्त्री०) पुरञ्जन-गौरादित्वात् ङीष्। बुद्धि।

पुरञ्जय (सं० पु०) पुरं शत्रुपुरं जयतीति जि-खच्। १ सूर्यवंशीय एक राजा। ये महाराज विकुक्षिके पुत्र थे।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि पुराकालमें देवासुर-संग्राममें परास्त हो कर देवताओंने वैकुण्ठपति विष्णुकी शरण ली। गोलोकविहारी श्रीमधुसूदनने उन्हें पुरञ्जयसे सहायता मांगनेके लिये उनके पास भेज दिया और यह भी कहा, कि वे पुरञ्जयके शरीरमें प्रवेश करके दैत्यनाश करेंगे। भगवान्‌ने भक्तोंकी मनोवाञ्छा पूरी की। यशोलक्ष्मीने आ कर उनका भट्टपट खोल दिया। जब सब देवता पुरञ्जयके पास आये, तब उन्होंने शचीपति इन्द्रसे बैल बननेके लिये कहा। बैलके ककुद (डील) पर बैठ कर पुरञ्जयने युद्ध किया और दैत्योंको परास्त कर दिया, इसीसे उनका नाम काकुत्स्थ' पड़ा। भागवतपुराणमें लिखा है, कि उन्होंने पश्चिमदिग्वर्त्ती दैत्यपुरीको जीता था, इसी कारण वे पुरञ्जन कहलाये।

२ पुरुवंशीय सृञ्जयपुत्र और जनमेजयके पिता। ३ भजमान और सृञ्जरीके पुत्र। ४ शशादके पुत्र। ५ विन्ध्यशक्तिके पुत्र। ६ ऐरावत गजका एक पुत्र। ७ मेधावीका नामान्तर। पुरं जयतीति पुर-जि-खच्। (त्रि०) ८ पुरजयकर्त्ता, पुरको जीतनेवाला।

पुरट (सं० क्ली०) पुरति अग्रे गच्छतीति पुर बाहुलकात् अटन्। सुवर्ण, सोना।

पुरण (सं० पु०) पिपर्त्ति पूर्य्यते वेति पॄ-क्यु, उत्वं रपरत्वञ्च (कॄ-पॄ-वृजिमन्दिनिधाञः क्युः। उण् २।८०) समुद्र।

पुरतटी (सं० स्त्री०) पुरस्य तटीव। क्षुद्र हट, छोटा बाजार।

पुरतस् (सं० अव्य०) पुरति अग्रे गच्छतीति पुर-बाहुल० अतसुच्। अग्रतः, आगे।

पुरत्राण (सं० पु०) प्राकार, परकोटा, शहरपनाह।

पुरद्वार (सं० क्ली०) पुरस्य द्वारम्। नगरद्वार, शहर-पनाहका फाटक।

पुरद्विष् (सं० पु०) पुरं द्वेष्टीति-द्विष्-क्विप्। शिव। इन्होंने मयनिर्मित पुर जला डाला था, इस कारण इनका पुरद्विष् नाम पड़ा है।

पुरनियां (हिं० वि०) वृद्ध, बुड्ढा।

पुरनी (हिं० स्त्री०) १ छल्ला, अंगूठेमें पहननेका गहना। २ तुरही, सिंहा। ३ बंदूकका गज।

पुरन्दर (सं० पु०) पुरोणां पुरो दारयतीति दॄ-णिच् (पूः सर्वयोर्दारिसहोः। पा ३।२।४१) इति खच्, ततः (वाचंयमपुरन्दरौ च। पा ६।३।६९) इति निपातितः। १ इन्द्र। इन्होंने शत्रुका नगर तोड़ा था, इस कारण इनका पुरन्दर नाम पड़ा है। २ चोर, चोर। ३ चविका, चई। ४ मिर्च। ५ ज्येष्ठानक्षत्र। ६ विष्णु। (त्रि०) ७ पुर, नगर या घरका तोड़नेवाला।

पुरन्दर—१ एक प्राचीन हिन्दू राज। ये महादेवके उपासक और क्षपमुनिके कुलजात थे। मेधावीके बाद ये राजसिंहासन पर बैठे। (सह्यादि ३३।८४) २ बङ्गालके अन्तर्गत एक छोटी नदी।

पुरन्दरचाप (सं० पु०) इन्द्रका धनुष।

पुरन्दरदास—कर्णाट देशवासी एक कवि।

पुरन्दरपुरी (सं० पु०) इन्द्रपुरी।

पुरन्दरा (सं० स्त्री०) पुरं दारयति प्रवाहैरिति, दारि-खच, ततष्टाप। गङ्गा।

पुरन्धर—१ बम्बई प्रदेशके पूना जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० १८° ६' से १८° २७' उ० और देशा० ७३° ५१' से ७४° १९' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४७० वर्गमील है और जनसंख्या सत्तर हजारसे ऊपर है। इसमें कुल १ शहर और ८० ग्राम लगते हैं। पर्वतोपरिस्थ शासवड़नगर ही इसका सदर है। सह्याद्रिकी दोनों शाखाएं उत्तर पूर्व और दक्षिण-पश्चिममें विस्तृत हो जानेके कारण समस्त अपरी भाग उपत्यका भूमिमें परिणत हो गया है। भीमा और नीरा तथा कढ़ा और गञ्जौनी नामक नदी पहाड़के मध्य हो कर बहती है। पर्वतके भिन्न भिन्न शिखरों पर मलहारगढ़ और भूलेश्वर तथा धवलेश्वर देवमन्दिर निर्मित है। दक्षिणदिग्वर्त्ती शिखरोंपर अवस्थित पुरन्धर और वजीरगढ़ नामक दुर्ग अपना सिर उठाये देश-गौरवकी रक्षा करता है। नदी आदिके सिवा खेती बारीके लिये यहां १६७७ कूप हैं। यहां ईखसे प्रस्तुत चीनी अत्युत्कृष्ट होती है। समुद्रपृष्ठसे उच्चस्तर पर अवस्थान, निरवच्छिन्न जल-संस्थापन और जलमय पार्वत्य उपत्यकादिके अधिष्ठान हेतु यह स्थान जिला भरमें अतीव मनोरम और सर्वापेक्षा स्वास्थ्यकर है।

२ उक्त पुरन्धर और वजीरगढ़ दुर्गाधिष्ठित स्थान। यह अक्षा० १८° १६' २२" उ० तथा देशा० ७४° ०' ४५" पू०के मध्य समुद्रपृष्ठसे ४४७२ और समतल क्षेत्रसे २५६ फुट ऊंचेमें अवस्थित है।

पूर्वोक्त दोनों दुर्गके मध्य पुरन्धर ही समधिक विख्यात है। दुर्ग प्राकारका कोई कोई भाग टूट फूट कर पहाड़ पर ही इधर उधर गिर पड़ा है। पुरन्धर पर्वतके दो शिखर हैं। सर्वोच्च शिखर पर महादेव मन्दिर प्रतिष्ठित है और इसी अंशमें पुरन्धर दुर्गका उच्चतम अंश स्थापित है। मन्दिरसे ३०० फुट नीचे उत्तरदिकस्थ पर्वतगात्र पर सरल सोपान सदृश भूमि है। इस सुविस्तृत समतल स्थान पर सेनाओंकी छावनी है। इसके पूर्व भागमें सेनाका वासभवन और पश्चिमभागमें पीड़ित सेनावृन्दका आरोग्य मन्दिर है। शत्रुके हाथसे देश-रक्षा करनेके लिये उसका उत्तर भाग प्राचीरपरिवेष्टित तथा बुर्ज-परिशोभित है। द्वारदेशके दोनों पार्श्वमें बुर्ज है। सोपानस्तरका किला 'माची' कहाता है। थोड़ा चक्कर मारनेसे 'दिल्ली' द्वार मिलता है। उसके ठीक सामने ही बुर्ज विद्यमान है। एतद्भिन्न खड्डा दरवाजा, चोर-दिण्डी दरवाजा, गणेशद्वार और 'बावता' या पताका बुर्ज, फतेबुर्ज, कोङ्कणी बुर्ज, हाथी और शेण्डीबुर्ज नामक और भी अनेक बुर्ज हैं। १६४८ ई०में शिवाजीके पिता शाहजी गणेशद्वारके निकटवर्त्ती एक छोटे घरमें महमूदसे कारावद्ध हुए थे। पताका बुर्जके समीप आबाजी पुरन्दरका प्रासाद और साहुनिर्मित राजभवन देखनेमें आता है। माचीसोपानन्तरसे अवतरण करके पताका-बुर्जके नीचे भैरवदरवाजा और सबसे नीचे बीनी-द्वार वर्त्तमान है। यहां महाराष्ट्र सेनापति बीनीवाला (Quarter-master General) की अट्टालिका थी। अभी वह एक बड़े बंगलेमें परिणत हो गई है। अलाउद्दीन होसेन गङ्ग बाह्मणीके राजत्वकालसे ही पुरन्धरदुर्गका उल्लेख मिलता है। उक्त मुसलमान-राजने कावेरी नदीसे ले कर पुरन्धर गिरिमाला तक विस्तृत महाराष्ट्रक्षेत्रको अपने अधिकारमें कर लिया और १३५० ई०में पुरन्धर दुर्ग-परिखा तथा प्राकारादि द्वारा उसे सुरक्षित किया। १३८४ ई०में बाह्मणीराज १म महमूद कर्त्तृक इसका जीर्णसंस्कार तथा जगह जगह बुर्ज परिशोभित हुआ। १४८६ ई०में निजाम-शाहीराज अहमदने इस दुर्ग पर अधिकार जमाया। प्रायः सौ वर्ष तक यह निजामशाहियोंके ही अधीन रहा*।

---

* शेण्डी बुर्ज बनानेके समय बार बार टूट जाया करता था। एक दिन बिदरराजको स्वप्न हुआ, कि किसीके ज्येष्ठ पुत्र और

कुछ समय बाद यह अहमदनगर और बीजापुरराजके अधिकारमें आया। पीछे अहमदनगरपति बहादुर निजाम शाहने (१५९६-१५९८ ई०में) जब शिवाजीके पितामह मालोजीको सूपा और पूना नगर दान किया, उस समय यह स्थान भी उन्हींके अधिकारमें था। १६२७ ई०में शाहजीसे मुगलोंने यह दुर्ग छीन लिया। १६३७ ई०में शाहजीने बीजापुरके अधीन सेनापतिके पद पर नियुक्त हो कर मुगलसेनाको युद्धमें परास्त किया। पीछे दोनोंमें सन्धि हो जानेके बाद यह बीजापुरके हाथ लगा। इसी समयसे हिन्दू-सेनापतियोंके हाथ इसका कुल भार सौंपा गया। सेनानायक दादाजी कोण्डदेवकी मृत्युके बाद दुर्गाधिकार ले कर उनके तीन पुत्रोंमें विवाद खड़ा हुआ। पीछे इस तकरारको निबटानेके लिये शिवाजी बुलाये गये। उन्होंने तीनों भाइयोंका मनोभाव समझ कर रात भरमें अपने अधीनस्थ मावली सैन्य द्वारा दुर्ग पूरा करा दिया। अतएव तीनों भाई उनके अधीन रहनेको बाध्य हुए। इधर १६६५ ई०में मुगलसेनापति राजा जयसिंहके आदेशसे दिलावर खाँ पुरन्धर पर छापा मारनेके लिये भेजे गये। कुछ दिन अविश्रान्त युद्धके बाद जब शिवाजीने देखा, कि दुर्ग हाथसे जाना चाहता है, तब वे स्वयं दुर्गकी ताली ले कर जयसिंह और दिलावरके सामने खड़े हो गये। १६७० ई०में यह पुनः मरहठोंके अधिकारमें आया। १७०५ ई०में सम्राट् औरङ्गजेबने मरहठों पर आक्रमण कर पुरन्धर जीत लिया। किन्तु उनकी मृत्युके बाद १७०७ ई०में राजारामकी पत्नी ताराबाईके पृष्ठपोषक शङ्करजी नारायणने उक्त दुर्ग पर पुनरधिकार किया। उसी साल शिवाजीके पौत्र साहुने सम्राट् बहादुरशाहके आदेशसे स्वाधीनता प्राप्त की और पूना जा कर पन्थसचिव शङ्करजीको दुर्ग लौटा देनेके लिये कहा। किन्तु सचिवने उनकी बातकी उपेक्षा कर कुछ भी जवाब नहीं दिया।

१७१० ई०में निजाम सेनापति चन्द्रसेन यादवकी नायकतामें मरहठोंके साथ गोदावरीके किनारे निजाम सेनाका घोर संघर्ष उपस्थित हुआ। अन्तमें मरहठागण भीमानदीके किनारे भाग गये। साहुने कोई दूसरा उपाय न देख पेशवा वंशके आदिपुरुष बालाजीविश्वनाथको देशीय सेनाकी सहायतामें भेजा। अब मरहठा सेनाने मिल कर पुरन्धर पर धावा बोल दिया। युद्ध जीतने पर भी जीत न हुई। इधर दमाजी थोरतने पन्थसचिवको हिङ्गनग्राममें कैद कर रखा। बालाजी सुयोग समझ कर १७१४ ई०में उन्हें छुड़ा लाये। इस उपकारके पारितोषिकस्वरूप शङ्करजीकी माताने बालाजीको पुरन्धर दुर्ग दान कर दिया। साहुने भी इस दानका अनुमोदन किया। १७६२ ई० तक यह स्थान पेशवाओंके अधिकारमें रहा। किन्तु ४र्थ पेशवा माधवरावके चचा रघुनाथ रावने यह दुर्ग पुरन्धरके वंशधरोंको दान कर दिया। (१७७२-७३ ई०में) पञ्चम पेशवा नारायणकी हत्याके बाद नानाफड़नविश और हरिपन्थफड़केने नारायणकी गर्भवती पत्नीको पुरन्धर दुर्गमें अवरुद्ध कर रखा, यहां गङ्गाबाईने एक पुत्र प्रसव किया जिसका नाम रखा गया माधोराव। रघुनाथरावकी पेशवा होनेकी जो आशा थी, वह जाती रही। इस कारण वे षड़यन्त्र करके उन्हें दमन करनेका उद्योग कर ही रहे थे, कि इसी समय उन लोगोंको इसकी खबर लग गई और वे शासवड़से दुर्गकी ओर रवाना हो गये। १७७५ ई०में नाना और सखाराम बापूपुरन्धरसे ही सभी काम करने लगे। १७७६ ई०में पुरन्धरके सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर किया गया। शर्तके अनुसार युद्धका कुल खर्च तथा सालसेट (Salsette) और भरोच अंगरेजराजको देने पड़े। रघुनाथको राजकोषसे मासिक वेतन मिलने लगा। १७७८ ई०में नानाफड़नविश अपने भाई मोरोबाके डरसे पुरन्धरको भाग आये। महादजी सिन्धिया और हरिपन्थफड़के पुरन्धर जा कर नानाके साथ मिल गये। नानाने नौ लाख रुपये दे कर होलकरराजको वशीभूत कर लिया। १७९५ ई०में सिन्धियाके आक्रमणसे डर

पुत्रबधूको इस स्थानमें गाड़े बिना यह बुर्ज कभी भी खड़ा नहीं हो सकता। इस भ्रान्तविश्वासके वशीभूत हो कर राजाने सुबह होते ही इसाजी-नायकजीको बुलवा भेजा और आश्विन मासकी कृष्णाष्टमीको उसे स्त्री समेत गड़वा दिया। पीछे मृत-बालकके माता पिताके भरणपोषणके लिये उन्होंने दो ग्राम दान दिये।

(Trans. Bom. Geo. Soc. Vol. I. 191-258)

कर नानाने दुर्गमें आश्रय लिया । १८१७ ई०में त्रिम्बकजी देङ्गलियाके बदलेमें अंगरेज शासनकर्त्ता मि० एल्फिन्ष्टोनने बाजीरावसे यह दुर्ग बन्धकस्वरूप प्राप्त किया । कुछ मासके बाद ही बाजीरावने उसे पुनः वापिस कर दिया । मरहठोंके शेष युद्धमें सिंहगढ़ दुर्ग हाथ आ जानेसे अंगरेजोसेना पुरन्धर और बज्रगढ़की ओर अग्रसर हुई । इधर सुदृढ़ शालवद्ध दुर्गके भीतरसे अरबी और हिन्दुस्तानी सेनाने असीम साहससे युद्ध किया था । अन्तमें बज्रगढ़ अंगरेजोंके हाथ आ गया । कोई दूसरा उपाय न देख पुरन्धर दुर्गके अध्यक्ष अंगरेजी अधीनता स्वीकार करनेको बाध्य हुए । राघोजी भाङ्गियाके अधीनस्थ दुर्वृत्त विद्रोही दल उत्तेजित हो कर पीछे दुर्गवासियों के प्रति अत्याचार न कर सके, इस भयसे १८४५ ई०में ब्रुटिश गवर्मेण्टने वहां एक दल सेना रख छोड़ी ।

पुरन्धि (सं० स्त्री०) १ इष्टका समूहधारक । २ प्रभूता-बुद्धि । ३ द्यावा पृथिवी, स्वर्ग और पृथिवी ।

पुरन्धिवत् (सं० त्रि०) पुरन्धिः अस्त्यस्येति मतुप्, मस्य वा । बुद्धियुक्त, धीमत्, अक्लमन्द ।

पुरन्धि् (सं० स्त्री०) पुरन्ध्री देखो ।

पुरन्ध्री (सं० स्त्री०) स्वजनसहितं पुरं धारयतीति धृञ्-खच् । गौरादित्वात् ङीष्, पृषोदरादित्वात् ह्रस्वो वा । १ पति पुत्र दुहितादियुक्ती, पति, पुत्र कन्या आदिसे भरी पूरी स्त्री । इसका पर्याय कुटुम्बिनी है । २ स्त्री-मात्र ।

पुरपाल (सं० पु०) पुरं नगरं देहं वा पालयतीति पालि-अण् । १ नगरपाल, कोतवाल । २ देहपालक जीव ।

पुरबला (हिं० वि०) पूर्वका, पहलेका । २ पूर्वजन्म-सम्बन्धी, पूर्वजन्मका ।

पुरबा (हिं० स्त्री०) पुरवा देखो ।

पुरबिया (हिं० वि०) पूर्वदेशमें उत्पन्न वा रहनेवाला, पूरबका ।

पुरबिहा (हिं वि०) पुरबिया देखो ।

पुरबी (हिं० वि०) पुरबी देखो ।

पुरभिद् (सं० पु०) पुराणि त्रिपुरासुरपुराणि भिनत्ति भिद्-क्विप् । महादेव, शिव । इन्होंने असुरोंका त्रिपुर नाश किया था, इस कारण इनका पुरभिद् नाम पड़ा है ।

पुरमण्डन—चन्द्रवंशीय एक नरपति । आप कामाक्षी देवताके भक्त और कश्यप मुनिके कुलके थे ।

पुरमण्डल—राजपूतानेके अन्तर्गत एक जनपद ।

पुरमथन (सं० पु०) पुरं त्रिपुरासुरं मथ्नाति मथ ल्यु । शिव, महादेव ।

पुरमथनवल्लभ (सं० पु०) दारुगुरु ।

पुरमार्ग (सं० पु०) पुरस्य मार्गः । नगरका पथ ।

पुरमालिनी (सं० स्त्री०) नदीभेद ।

पुरय (सं० पु०) नृपभेद, एक राजाका नाम ।

पुररक्ष (सं० पु०) पुरं रक्षति रक्ष-अण् । नगररक्षक ।

पुररक्षिन् (सं० त्रि०) पुर-रक्ष-णिनि । पुररक्षाकारी, नगरकी रक्षा करनेवाला ।

पुरला (सं० स्त्री०) दुर्गा ।

पुरवइया (हिं० स्त्री०) पुरवाई देखो ।

पुरवट (हिं० पु०) चमड़ेका बहुत बड़ा डोल । इसे कुएंमें डाल कर बैलोंकी सहायतासे खेतकी सिंचाई आदिके लिये पानी खींचते हैं, चरसा, मोट ।

पुरवा (हिं० पु०) १ छोटा गांव, पुरा, खेड़ा । २ पूर्व दिशासे चलनेवाली वायु, पूरबकी हवा । ३ पशुओंका एक रोग जो पुरबकी वायु चलनेसे उत्पन्न होता है । इसमें पशुका गला फूल आता है और उसके पेटमें पीड़ा होती है । ४ मिट्टीका कुल्हड़, कुल्हिया ।

पुरवाई (हिं० स्त्री०) पूर्वकी वायु, वह हवा जो पूर्वसे चलती है ।

पुरवाना (हिं० क्रि०) पूरा कराना ।

पुरवाल—उड़ीसावासी बनिया जातिकी एक शाखा । वाराणसी धाममें भी इनका वास है । २० थाक इनमें देखे जाते हैं, जिनमेंसे कुछ वैष्णव और शेष सभी जैन हैं । हिन्दूकी संख्या ३१ हजार और जैनकी १६ हजार है ।

पुरवासिन् (सं० त्रि०) पुरे वसति वस-णिनि । नगर-वासी, नगरमें रहनेवाली ।

पुरवैया (हिं० स्त्री०) पुरवाई देखो ।

पुरशासन (सं० पु०) पुरं शास्ति शास्-ल्यु । महादेव ।

पुरश्चरण (सं० क्ली०) पुरस्-चर भावे ल्युट् । १ अयत

आचरण, किसी कार्यकी सिद्धिके लिये पहलेसे ही उपाय सोचना और अनुष्ठान करना। २ मन्त्रग्रहणपूर्वक उसकी सिद्धिके निमित्त प्रयोगविशेष।

पुरश्चरणका विषय योगिनीहृदयमें इस प्रकार लिखा है,—पवित्रचेता मानव गुरुकी आज्ञा ले कर मन्त्रसिद्धिकी इच्छासे मन्त्रका पुरश्चरण करे। पुरश्चरण भिन्न मन्त्रसिद्धिका और कोई उपाय नहीं है। जीवहीन देहीके जिस प्रकार किसी विषयमें क्षमता नहीं रहती, उसी प्रकार पुरश्चरणहीन मन्त्रकी भी कोई सामर्थ्य नहीं है। अतः गृहीतमन्त्र व्यक्ति प्रथमतः स्वयं ही पुरश्चरण करे अथवा गुरुसे करावे। गुरुका यदि अभाव हो, तो सर्वजनप्रियकारी किसी एक ब्राह्मण, गुणशाली शास्त्रज्ञ मित्र अथवा सद्गुणशालिनी पुत्रवतीको पुरश्चरण कार्यमें नियुक्त करे।

पुरश्चरण करनेमें जो सब स्थानतन्त्रमें प्रशस्त बतलाये गये हैं, उन ही सब स्थानोंमें रह कर पुरश्चरण करना कर्त्तव्य है। तन्त्रमें लिखा है,—पुण्यक्षेत्र, नदीतीर, गुहा, पर्वत शिखर, तीर्थ स्थान, सिन्धुसङ्गम, पवित्र वन, पवित्र उद्यान, विल्वमूल, गिरितट, तुलसीकानन, वृषशून्य गोष्ठ, शिवालय, अश्वत्थमूल, आमलकीमूल, गोशाला, जलमध्य, देवायतन समुद्रकूल अथवा निजगृह यही सब स्थान पुरश्चरणके लिये प्रशस्त हैं। अथवा जिस स्थानमें मन प्रसन्नता लाभ करे, वैसे ही स्थानमें बैठ कर पुरश्चरण करना कर्त्तव्य है।

मन्त्री व्यक्ति घरमें बैठ कर यदि जप करे, तो शतगुण पुण्य होता है। इसी प्रकार गोष्ठमें लक्षगुण, देवालयमें कोटिगुण और शिवसन्निधानमें बैठ कर जप करनेसे अनन्त पुण्य लाभ होता है।

"गृहे शतगुणं विद्याद्गोष्ठे लक्षगुणं भवेत्।
कोटिर्देवालये पुण्यमनन्तं शिवसन्निधौ॥"

(योगिनीहृदय)

जहां म्लेच्छ नहीं है, जहां दुष्ट जन्तु और भुजङ्ग आदिकी आशङ्कासे आकुलित नहीं होना पड़ता तथा जो स्थान सुभिक्ष, निरुपद्रव और भक्तजनोंसे परिपूर्ण है, तापस व्यक्तिको ऐसे ही रमणीय धार्मिक देशमें वास करना चाहिये। एतभिद्भ्न गुरुके निकट अथवा जहां चित्तकी एकाग्रता उत्पन्न हो, वैसे स्थानमें रह कर ही जप करना चाहिये। मन्त्री व्यक्ति उक्त स्थानोंमेंसे जिस किसी स्थान पर बैठ कर जप करना चाहें उस स्थानको वे कूर्मचक्ररूपमें समझें।

"यत्र ग्रामे जपेन्मन्त्री तत्र कूर्मं विचिन्तयेत्।"

(योगिनीहृदय)

गौतमीय तन्त्रमें लिखा है,—पर्वत, सिन्धुतीर, पुण्यारण्य और नदी तट इन सब स्थानोंमें पुरश्चरण करनेसे कूर्मचक्रकी चिन्ता नहीं करनी होती।

"पर्वते सिन्धुतीरे वा पुण्यारण्ये नदीतटे।
यदि कुर्यात् पुरश्चर्यां तत्र कूर्मं न चिन्तयेत्॥"

(गौतमीयतन्त्र)

वैशम्पायनसंहितामें लिखा है,—पुण्यक्षेत्र, तीर्थ, देवालय, नदीतीर, सिन्धुसङ्गम, पर्वतगुहा, पर्वतशिखर, विल्वमूल, वन और उद्यान इन सब स्थानोंमें रह कर जप करनेसे कूर्मचक्रकी चिन्ता नहीं करनी होती। यदि ग्राम वास्तु अथवा गृहमें रह कर जप किया जाय, तो कूर्मचक्रकी अवश्य चिन्ता करनी होगी।

गौतमीयतन्त्रमें लिखा है,—पुरश्चरण करनेवाला व्यक्ति विशेषरूपसे भक्ष्याभक्ष्यका विचार किये बिना यदि अप्रशस्त भक्ष्य भोजन करे, तो उसकी सिद्धि नहीं होती है। सुतरां प्रशस्त भक्ष्य भोजन करना ही कर्त्तव्य है।

अगस्त्यसंहितामें लिखा है,—दधि, क्षीर, घृत, इक्षु, तिल, सितमुद्ग, केमुकके सिवा अन्य कन्द, नारिकेल, कदली, लवली, आम्र, आमलकी, पनस और हरितकी ये सब हविष्य कार्यमें प्रशस्त हैं।

हैमन्तिक सिताखिन्न धान्य, मुद्ग, तिल, यव, उरद, कङ्गु, नीवार, वास्तुक, हिलमोचिका, षष्ठिका, कालशाक, केमुक छोड़ कर अन्य कन्द, सैन्धव और सामुद्र-लवण, गव्य, दधि, घृत और अनुद्धृतसार दुग्ध, पनस, आम्र, हरितकी, पिप्पली, जीरक, नागरङ्ग, तिन्तिड़ी, कदली, लवली और धात्री तथा इक्षु, गुड़ और अतैलपक्व द्रव्य, इन्हें मुनियोंने हविष्यान्न बतलाया है। पुरश्चरणकामी हविष्यान्न अथवा विहितशाक, यावक, दुग्ध, मूल और फल इनमेंसे जो जहां मिले वही भक्षण करे। फलके मध्य रम्भा, तिन्तिड़ी और नागरंग भिन्न अन्य सभी फल वर्जनीय हैं।

एतद्भिन्न मधु, क्षार, लवण, तैल, ताम्बूल, कांस्यपात्र, दिवाभोजन, मांस, गृञ्जन, माष, आढ़क, मसूर, कोद्रव, चणक, पर्युषित अन्न और स्नेहशून्य अथवा कोटदूषित वस्तु भी परित्याज्य है। (योगिनीतन्त्र)

रामार्चनचन्द्रिकामें लिखा है,—पुरश्चरणाभिलाषी मानव मैथुन, मैथुनगोष्ठी और उसकी बातकी समालोचनाका बिलकुल परित्याग करे। ऋतुकाल व्यतीत स्त्रीसङ्गम न करे तथा क्षौरकर्म, तैलमर्दन, बिना निवेदन किये भोजन, असङ्कल्पित कार्य और मर्द्दनादिका त्याग विधेय है। एतद्भिन्न पञ्चगव्य द्वारा स्नान, मन्त्रजप्त जल और अन्न द्वारा स्नान, आचमन और भोजन तथा यथाविधि त्रिसन्ध्यादेवकी अर्चना करे। कहनेका तात्पर्य यह कि पवित्रतासे रह कर मन्त्रजप करना होता है। जपके समय किसी भी प्रकार शब्दका उच्चारण करना निषिद्ध है।

"अपवित्रकरो नग्नः शिरसि प्रावृतोऽपि वा।
प्रलपन् प्रजपेद्यावत् तावत् निष्फलमुच्यते॥"
(रामार्चनचन्द्रिका)

नारदीयतन्त्रमें लिखा है,—साधक व्यक्ति मृदु, उष्ण, सुपक्व और लघु तथा जिससे इन्द्रियकी वृद्धि न हो, वैसी ही वस्तु भोजन करे।

"मृदु सोष्णं सुपक्वञ्च कुर्यादै लघुभोजनम्।
नेन्द्रियाणां यथावृद्धिस्तथा भुञ्जीत साधकः॥"
(नारदीयतन्त्र)

भिक्षादि निज अन्न द्वारा जीवन रक्षा करके धर्मकर्म करना ही कर्त्तव्य है।

धर्मशील व्यक्ति परान्नका बिलकुल त्याग कर दे। परान्नसे परिपुष्ट हो कर धर्मसञ्चय करनेसे सम्पूर्ण फल लाभ नहीं किया जा सकता। चाहे पुरश्चरण हो या अन्य कोई धर्म कर्म क्यों न हो, परान्नसे पालित हो कर उसका कोई भी कार्य करना सङ्गत नहीं है। यदि कोई परान्नपुष्ट धर्मसञ्चय करना चाहे, तो उसके सञ्चित धर्मका आधा फल अन्नदाताको प्राप्त होता है।

परान्नादिको जो सिद्धिविषयमें प्रतिकूल बतलाया है, वह कुलार्णवमें लिखित हरपार्वतीवाक्यसे भी जाना जाता है, यथा—

"जिह्वा दग्धा परान्नेन करौ दग्धौ प्रतिग्रहात्।
परस्त्रीभिर्मनो दग्धं कथं सिद्धिर्वरानने॥" (कुलार्णव)

केवल अन्न ही नहीं, अग्नि छोड़कर दूसरेसे कोई भी वस्तु ग्रहण करना साधुओंका कर्त्तव्य नहीं है। एकान्त असम्भव होने पर पूर्णिमा पर्वदिन छोड़ कर तीर्थक्षेत्रके बाहर जा साधु कोई भी सत्प्रतिग्रह कर सकते हैं। यदि वे इसमें भी असमर्थ हों, तो प्रतिदिन किसी पवित्र दातासे दिन भरका भोजन मांग लिया करें। यदि वे रागाभिभूत हो अधिक भोजन संग्रह करें, तो शतकल्पमें भी सिद्धिलाभ नहीं होता।

"विहाय वह्निं नहि वस्तु किञ्चित् प्राह्यं परेभ्यः सति सम्भवे च।
असम्भवे तीर्थबहिर्विशुद्धात् पर्वातिरिक्तं प्रतिगृह्य जप्यात्॥
तत्रासमर्थोऽनुदिनं विशुद्धात् याचेत यावद्दिनमात्रभैक्ष्यं।
गृह्णाति रागादधिकं न सिद्धिः प्रजायते कल्पशतैरमुष्य॥"
(कुलार्णवतन्त्र)

जपते समय यदि एक बार भी अन्य किसी शब्दका उच्चारण किया जाय, तो जपकर्त्ता प्रणव उच्चारण करें और यदि पारशव शब्द उच्चारित हो, तो उसी समय प्राणायाम कर लेवें।

"सकृदुच्चरिते शब्दे प्रणवं समुदीरयेत्।
प्रोक्ते पारशवे शब्दे प्राणायामं समाचरेत्॥"
(कुलार्णवतन्त्र)

जाप पर बैठ कर प्रलाप करनेसे पुनः आचमन और अङ्गन्यास करके जप करना होता है। क्षुत् और अस्पृश्य स्थान छूनेमें भी वही नियम पालनीय हैं। पुरश्चरणकृत व्यक्ति उक्त नियमादिका कभी भी उल्लङ्घन न करे। विष्ठा, मूत्रत्याग और शङ्कादियुक्त होकर यदि कोई धर्मकर्म करे, तो उसके जपार्चनादि सभी कार्य अपवित्र होते हैं। यदि जपकर्त्ताका वस्त्र और केशादि मलिन हो तथा मुखसे दुर्गन्ध निकलती हो, तो उसके आराध्य देवता ही उसे दग्ध करनेमें प्रवृत्त हो जाते हैं। जपमें प्रवृत्त हो कर आलस्य, जृम्भण, निद्रा, क्षुत्, निष्ठीवन, भय, नीचाङ्गस्पर्शन और कोप करना निषिद्ध है।

जपकर्त्ता पुरश्चरणसिद्धिके लिये जपके समय और वा द्रुतभावका परित्याग कर यथोक्त संख्यक जप करनेमें प्रवृत्त हो जावें। बुद्धिपूर्वक देवता, गुरु और

मन्त्र इन तीनोंकी एकता समझ कर सवेरेसे दोपहर दिन तक एकान्त मनसे जप करना होता है तथा प्रथम दिन जितना जप कर सकें, अन्यान्य दिन भी उतना ही जप करना होगा। अन्यथा अर्थात् न्यूनाधिक करनेसे व्रत-भ्रष्ट होना पड़ता है।

मुण्डमालातन्त्रमें भी लिखा है, कि प्रथम दिनके अनुसार, जब तक जप समाप्त न हो जाय, सभी दिन उतना ही जप करना होगा। न्यूनाधिक करना कर्त्तव्य नहीं है और कलिमें यथोक्त संख्याका चतुर्गुण जप प्रशस्त है।

"यत् संख्यया समारब्धं तत् जप्तव्यं दिने दिने।
न्यूनाधिक्यं न कर्त्तव्यमासमाप्तं सदा जपेत्॥
प्रजपेदुक्तसंख्यायाश्चतुर्गुणजपं कलौ॥" (मुण्डमा०)

फिर दूसरी जगह इस प्रकार लिखा है,—

"कृते जपस्तु कथोक्तस्त्रेतायां द्विगुणो मतः।
द्वापरे त्रिगुणः प्रोक्तश्चतुर्गुणजपः कलौ॥" (मुण्डमा०)

कुलार्णवतन्त्रमें लिखा है, कि यथाविधान कर्म करनेसे ही फललाभ होता है, न्यूनातिरिक्त करनेसे कदापि फल नहीं मिलता।

"न्यूनातिरिक्तकर्माणि न फलन्ति कदाचन।
यथाविधिकृतान्येव सत्कर्माणि फलन्ति हि॥"
(कुलार्णव)

मन्त्रसिद्धि करनेमें प्रथमतः भूमिशय्या, ब्रह्मचर्य, मौनावलम्बन, आचार्यसेवा, नित्यपूजा, नित्यदान, देवताकी स्तुति और कीर्त्तन, नित्य त्रिसन्ध्यास्नान, नीच कर्मका परित्याग, नैमित्तिक पूजा, गुरु और देवतामें विश्वास तथा जपनिष्ठा इन बारह धर्मोंका प्रतिपालन करना एकान्त विधेय है। मन्त्रसिद्धिकामी मिथ्या वा वक्र उक्तिका त्याग करें, विशेषतः जप, होम और पूजाकालमें मिथ्यावाक्यका बिलकुल प्रयोग न करें। कारण, जपहोमादि कोई भी सत्कर्म क्यों न किया जाय, एकमात्र असत्य प्रयोग करनेसे वे सभी विफल होते हैं।

कुलार्णवतन्त्रमें लिखा है, पुरश्चरणके समय कोई मृताशौच वा जाताशौच होने पर भी व्रतसङ्कल्प व्यक्ति इस व्रतका परित्याग नहीं कर सकता।

"पुरश्चरणकाले तु यदि स्यान्मृतसूचकं।
तथा च कृतसंकल्पो व्रतं नैव परित्यजेत्॥" (कुलार्णव)

ऐसा व्यक्ति कुशशय्या पर शयन, सर्वदा शुचिवस्त्र परिधान और प्रतिदिन शय्याक्षालन करे तथा शयनकालमें निःशङ्कचित्तसे अकेला ही सोवे। एतद्भिन्न गीतवाद्यादि श्रवण, नृत्यदर्शन, अभ्यङ्ग, गन्धलेपन, पुष्पधारण, उष्णोदकमें स्नान और अन्य देवताकी पूजा ये सब काम उसके लिये निषिद्ध हैं।

"शयीत कुशशय्यायां शुचिवस्त्रधरः सदा।
प्रत्यहं क्षालयेत् शय्यामेकाकी निर्भयः स्वपेत्॥
असत्यभाषणं वाचं कुटिलां परिवर्जयेत्।
वर्जयेद्गीतवाद्यादिश्रवणं नृत्यदर्शनं॥
अभ्यङ्गं गन्धलेपञ्च पुष्पधारणमेव च।
त्यजेदुष्णोदकस्नानमन्यदेवप्रपूजनं॥" (योगिनीहृदय)

एक अथवा अनेक वस्त्र धारण करके जप करना निषिद्ध है।

"नैकवासाजपेन्मन्त्रं बहुवासाकुलोऽपि वा॥"
(योगिनीहृ०)

वैशम्पायनसंहितामें लिखा है,-पुरश्चरणकामी मोहवश भी कभी ऊपरी, नीचे वा बाहरके वस्त्रका विपर्यय न करे तथा पतित वा अन्त्यज व्यक्तिका दर्शन और तत्कथा श्रवण, क्षुत, पायु-वायुनिःसरण एवं जृम्भण होनेसे जपका त्याग कर दे। पीछे षडङ्गक प्राणायाम अथवा सूर्य, अग्नि वा ब्राह्मण-दर्शन करके अवशिष्ट जप समाप्त करे।

क्या पुरश्चरण, क्या अन्य विषयक जप, सभी जपोंमें तन्त्रके मतानुसार उष्णीष वा कञ्चुक धारण करके जप न करे तथा नग्न, मुक्तकेश, जनतावृत, अपवित्र हस्त अथवा स्वयं अशुद्ध हो कर जप करना बिलकुल निषिद्ध है। अलावा इसके आसनहीन अवस्थामें वा शयन करके अथवा राह चलते या भोजन करते समय तथा अनाच्छादित करसे भी जप निषिद्ध है। क्षुब्ध, भ्रान्त अथवा क्षुधान्वित अवस्थामें जप करना बिलकुल मना है।

रथ्या, अमङ्गल स्थान, अन्धकारगृह, यज्ञकाष्ठ, पाषाण अथवा किसी प्रकारके उत्कट आसन वा भूमि पर बैठ कर जप न करे। जपके समय पादुकाधारण, यानशय्यासे गमन वा पाद-प्रसारण निषिद्ध है।

जपके समय यदि मार्जार, कुक्कुट, क्रौंच, कुक्कुर, शूद्र, वानर अथवा गर्द्दभ पर दृष्टि पड़ जाय, तो पुनर्वार आचमन करके जप करना होता है तथा इन्हें स्पर्श करनेसे भी स्नान करके पवित्र होना उचित है।

सभी प्रकारके जपकर्मोंमें इसी नियमका पालन करना होता है। किन्तु मानसजपमें कोई नियम पालन करनेकी जरूरत नहीं। मानसजपमें मन्त्री व्यक्ति चाहे शुचि रहें या अशुचि, राह चलते हों अथवा सो रहे हों, एकमात्र अपने मन्त्रका ही वे अवलम्बन कर के सर्वदा मनही मन अभ्यास करते हैं। मानसरूपमें देश वा काल-विषयमें भी किसी नियमका पालन करनेकी जरूरत नहीं। सभी देशोंमें सभी समय जप किया जा सकता है, इसमें कोई दोष नहीं।

जप-फलका विषय शिवधर्ममें इस प्रकार लिखा है,—द्विज यदि जपनिष्ठ हों, तो वे सभी यज्ञोंका फल लाभ कर सकते हैं। सर्वदा जप द्वारा देवताका स्तव करनेसे देवता प्रसन्न हो कर सभी अभिलाष पूरा करते और शाश्वती मुक्ति देते हैं।

"जपनिष्ठो द्विजश्रेष्ठोऽखिलयज्ञफलं लभेत्।
सर्वेषामेव यज्ञानां जायतेऽसौ महाफलः॥
जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति।
प्रसन्ना विपुलान् कामान् दद्यान्मुक्तिञ्च शाश्वतीं॥"
(शिवधर्म)

पद्मपुराणमें इस प्रकार लिखा है—यक्ष, राक्षस, पिशाच, ग्रह अथवा भयङ्कर सर्प इनमेंसे कोई भी जप-निरत व्यक्तिका अनिष्ट नहीं कर सकता, बल्कि वे भीत हो कर इधर उधर भाग जाते हैं।

"यक्षरक्षः पिशाचाश्च ग्रहाः सर्पाश्च भीषणाः।
जापिनं नोपसर्पन्ति भयभीताः समन्ततः॥" (पद्मपु०)

सब प्रकारके कर्म, यज्ञ और तपस्यामें जपयज्ञ ही श्रेष्ठ है। उक्त माहात्म्य केवल वाचिक जपयज्ञके सम्बन्धमें ही निर्दिष्ट हुआ है। उपांशु और मानस-जपयज्ञका माहात्म्य उससे भी अधिक है।

"यावन्तः कर्मयज्ञाः स्युः प्रदिष्टानि तपांसि च।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोड़शीं॥
माहात्म्यं वाचिकस्यैतज्जपयज्ञस्य कीर्त्तितं।
तस्माच्छतगुणोपांशुः सहस्रो मानसः स्मृतः॥"
(पाद्म और नार० पु०)

वाचिक, उपांशु और मानस इन तीन प्रकारके जपोंमें वाचिक मारणमें, उपांशु पुष्टिकाममें और मानस जप सिद्धिकामनामें प्रशस्त है।

"मानसः सिद्धिकामानां पुष्टिकामैरुपांशुकः।
वाचिको मारणे चैव प्रशस्तो जप ईरितः॥" (तन्त्र)

अक्षरावृत्तिका नाम जप है। यह जप मानस, उपांशु और वाचिकके भेदसे तीन प्रकारका है। इन तीन प्रकारके जपोंमें बुद्धिपूर्वक वर्णस्वर और पदसम्बलित अक्षर-श्रेणीकी अर्थचिन्ता करके जो उच्चारण किया जाता है, उसे मानसजप कहते हैं। मानसजपको ही सबोंमें श्रेष्ठ बतलाया गया है।

"जपः स्यादक्षरावृत्तिर्मानसोपांशुवाचिकैः।
उच्चरेदर्थमुद्दिश्य मानसः स जपः स्मृतः॥" (गौतमीय)

मन्त्रनिर्णयमें लिखा है—मन ही मन मन्त्रवर्णकी चिन्ता करनेका नाम मानसजप है। देवताके प्रति चित्तसमर्पण करके जिह्वा और ओष्ठ दोनोंकी कुछ परिचालना तथा जपकालमें मन्त्रवर्णोंकी कुछ कर्णगोचरता होनेसे उसे उपांशु जप कहते हैं। एतद्भिन्न वाक्य द्वारा जो मन्त्र उच्चारण किया जाता है, उसका नाम वाचिक जप है।

"मानसं मन्त्रवर्णस्य चिन्तनं मानसः स्मृतः।
जिह्वौष्ठे चालयेत् किंचित् देवतागतमानसः॥
किञ्चित् श्रवणयोग्यः स्यात् उपांशुः स जपः स्मृतः।
मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकः स जपः स्मृतः॥"
(मन्त्रनिर्णय)

फिर दूसरी जगह लिखा है, कि जो जप निज कर्णका अगोचर है उसे मानस, जो निज कर्णका गोचरीभूत है, उसे उपांशु और जो उच्चारित वाक्य अन्य व्यक्ति भी सुन सके, उसे वाचिक जप कहते हैं।

"निजकर्णागोचरो यो मानसः स जपस्मृतः।
उपांशुर्निजकर्णस्य गोचरः स प्रकीर्त्तितः॥
निगदस्तु जनैर्बोद्धविधोऽयं जपः स्मृतः॥" (तन्त्रान्तर)

इन तीन जपोंमें वाचिक अधम, उपांशु मध्यम और मानस जप उत्तम बतलाया गया है।

"उच्चैर्जपोऽधमः प्रोक्त उपांशुर्मध्यमः स्मृतः।
उत्तमो मानसो देवि! त्रिविधः कथितो जपः॥"
(तन्त्रान्तर)

मनको सभी विषयोंसे निवृत्त करके मन्त्रका अर्थ भलीभांति समझना और तब नातिह्रस्व और नातिदीर्घभावसे जप करना कर्त्तव्य है। अतिह्रस्व वा अति दीर्घभावसे कभी भी जप न करे। कारण, अतिह्रस्व जपसे व्याधि और अतिदीर्घ जपसे धनकी हानि होती है। इसीसे जपकर्त्ताको मौक्तिकहारकी तरह मन्त्रका अक्षर अक्षर संयोग करके जप करना चाहिये। जप करते समय जो मुखसे मन्त्रोच्चारण करके मन ही मन स्तोत्रका स्मरण करते हैं उनका मन्त्र वा स्तव दोनों ही भिन्नभाण्डनिहित जलकी तरह व्यर्थ हो जाते हैं।

"अतिह्रस्वो व्याधिहेतुरतिदीर्घो वसुक्षयः।
अक्षराक्षरसंयुक्तं जपेन्मौक्तिकहारवत्॥
मनसा यः स्मरेत् स्तोत्रं वचसा वा मनुं जपेत्।
उभयं निष्फलं याति भिन्नभाण्डोदकं यथा॥"

जपादि करनेमें मन ही मन शिव और शक्ति आदिकी चिन्ता करनी होती है। अन्यथा शतकोटिकल्पमें भी सिद्धिलाभ नहीं होता।

"मनोऽन्यत्र शिवोऽन्यत्र शक्तिरन्यत्र मारुतः।
न सिद्ध्यति वरारोहे! कल्पकोटिशतैरपि॥"
(कुलार्णवतन्त्र)

गौतमीयमें लिखा है, कि शक्तिके अनुसार त्रिसन्ध्या ही स्नान करे। दो या एक बार स्नान करनेसे भी काम चल सकता है। किन्तु पूजा और जप तीनों शाम करना कर्त्तव्य है।

"शक्त्या त्रिसवनं स्नानमन्यथा द्विः सकृच्चरेत्।
त्रिसन्ध्यां प्रजपेन्मन्त्रं पूजनं तत्समं भवेत्॥"
(गौतमीय)

मन्त्रका जप करनेमें जिस देवताका मन्त्र जपा जाता है, उस देवताकी पूजा कर लेनी होती है। बिना पूजा किये कभी भी जप करना कर्त्तव्य नहीं है। जपके आरम्भ अथवा शेषमें किसी भी समय देवताको जा कर सकते हैं।

"एकदा वा भवेत् पूजा न जपेत् पूजनं विना।
जपान्ते वा भवेत् पूजा पूजान्ते वा जपेन्मनुं॥"
(गौतमीय)

कुलार्णवमें लिखा है,—मन्त्र जप करनेके पहले जातसूतक और अन्तमें मृतसूतक हो जाय, तो मन्त्रकी सिद्धि नहीं होती। इसीसे मन्त्रमुक्त करके जप करना होता है। उक्त दोनों सूतकोंसे मुक्त होने पर मन्त्रकी सिद्धि अवश्य होती है। मन्त्रसिद्धि करनेमें मन्त्रका अर्थ और मन्त्रचैतन्य जानना आवश्यक है।

कुलार्णवतन्त्रमें लिखा है,—मन्त्रका अर्थ और मन्त्रचैतन्य जाने बिना जप करनेसे शतकोटि जप करने पर भी सिद्धिलाभ नहीं होता। लुप्त बीज और चैतन्यहीन मन्त्रसे कोई भी फल नहीं है। चैतन्ययुक्त मन्त्र ही सब सिद्धिका कारण है। मन्त्र चैतन्यहीन होनेसे लक्षकोटि जपसे भी फल प्राप्त नहीं होता। मन्त्र यदि केवल एक बार चैतन्ययुक्त हो, तो भी प्रभूत फल लाभ होता है। इसमें सहसा हृदयग्रन्थि विद्ध हो जाती है, नेत्रसे आनन्द-जल पतित हो कर जपकर्त्ताका शरीर पुलकित होने लगता है और उसके मुखसे गदगदभावमें वाक्य निकलते हैं।

उसी कुलार्णवतन्त्रमें दूसरी जगह लिखा है,—भूतलिपि द्वारा मन्त्रको सम्पूटित करके एक मास तक यदि जप किया जाय, तो अवश्य ही मन्त्रसिद्धि लाभ हो सकती है।

भूतलिपि करनेमें प्रथमतः पांच ह्रस्ववर्ण, चार सन्धि वर्ण और व्योम, अग्नि, जल तथा धरा इनके बीजकी योजना करनी होगी; अर्थात् अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ ह य र व ल तथा पञ्चवर्गके अक्षर समुदाय क्रमशः अन्त, आद्य, द्वितीय, चतुर्थ और मध्यम वर्णत्रय यथा—"ङ क ख घ ग ञ च छ झ ज ण ट ठ ढ ड न त थ ध द म प फ भ ब श ष स" इन चौबीस वर्णोंको स्वेन्दुसह मन्त्र उच्चारण करनेके पहले और पीछे आवृत्ति कर लेनी होती है। इसीको भूतलिपि कहते हैं।

गौतमीयमें लिखा है—उक्त भूतलिपि द्वारा सम्पूटित मन्त्रका यथोक्त नियमसे पहले जप करे, पीछे कुश, पुष्प, अर्घ्य और जल द्वारा जिस देवके उद्देश्यसे जप

किया जाय, उसीके दक्षिण हस्तमें वह जप समर्पण करना होता है। किन्तु शक्ति विषय होनेसे गन्ध, अक्षत और कुशोदक द्वारा देवताके वामहस्तमें जप समर्पण करना कर्त्तव्य है। जपके आदि और अन्तमें जपका उद्देश्य समझ कर तीन तीन बार प्राणायाम करना पड़ता है।

जप करनेमें जपकी संख्या रखनी होती है। अक्षत, हस्तपर्व, धान्य, चन्दन, पुष्प वा मृत्तिका इन सबसे जपकी संख्या रखना निषिद्ध है। लाक्षा, कुशोद, सिन्दूर, गोमय और करीष इन सबको मिश्रित कर गोली बनावे, पीछे उसी गोलीसे जपकी संख्या रखना कर्त्तव्य है।

जपकर्त्ता प्रतिदिन जितना जप करेंगे, जप शेष हो जाने पर प्रत्येक दिन उसके दशांशानुक्रमसे होम, तर्पण और अभिषेक करना होता है। जपके न्यूनाधिक्यप्रशमनके लिये प्रतिदिन ब्राह्मण भोजन कराना विधेय है।

मुण्डमालातन्त्रमें लिखा है,—जिस देवताका जिस परिमाणमें जप बतलाया गया है, जपके अन्तमें प्रतिदिन उसके दशांशानुक्रमसे उस देवताका यथोक्त होमादि करना होगा।

पुरश्चरणचन्द्रिकामें लिखा है,—प्रतिदिन जिस परिमाणमें जप हो, उसका दशांश होम करे; अथवा लक्ष जप पूर्ण होने पर ही होम करना चाहिए।

सनत्कुमारीयके मतसे,—जपकर्त्ता जपका जो जो अङ्ग हीन होगा, उसका दूना जप करें। यह नियम ब्राह्मणके लिये ही जानना चाहिये। किन्तु यदि होम न कर सके, तो ब्राह्मणपत्नीको होमसंख्याका चौगुना जप विधेय है। एतद्भिन्न क्षत्रिय और वैश्यपत्नियोंको क्रमशः छः और आठगुना जप करना प्रशस्त है। शूद्र यदि ब्राह्मण वा क्षत्रिय अथवा वैश्यका आश्रित हो, तो जिसके आश्रयमें रह कर जप किया जायगा, उसके सम्बन्धमें जो नियम निर्दिष्ट हुआ है, उसे भी उसी नियमसे चलना होगा। परन्तु शूद्र यदि किसीके भी आश्रयमें न रह कर जप करे, तो उसे दशगुण जप करना होगा। शूद्र यदि ब्राह्मणका भृत्य हो, तो उसके पक्षमें ब्राह्मणपत्नीके समान जप प्रशस्त है।

सार बात यह है, कि होमाभावमें ब्राह्मणको द्विगुण, ब्राह्मणपत्नीको चार गुण, तथा क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रको क्रमशः तीन, चार और पांच गुण जप करना होगा। सभी जगह स्त्रियोंको पुरुषसे दूना जप करनेको लिखा है।

इधर योगिनीहृदय और कुलार्णवमें भी लिखा है, कि ब्राह्मण यदि होमकर्ममें असक्त हों, तो उन्हें द्विगुण जप करना होगा। ब्राह्मण भिन्न इतरवर्ण अर्थात् क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके लिये क्रमशः तीन, चार और पांच गुण जप करना विधेय है।

"होमकर्मण्यशक्तानां विप्राणां द्विगुणो जपः।
इतरेषान्तु वर्णानां त्रिगुणादिः समीरितः॥"
(योगिनीहृदय)

"यद्यदङ्गं विहीनं स्यात् तत्संख्याद्विगुणो जपः।
कुर्वीत त्रिचतुःपञ्च यथासंख्यं द्विजादयः॥"
(कुलार्णवतन्त्र)

अगस्त्यसंहिताके मतसे,—यदि जपकर्त्ता होम, पूजा अथवा तर्पण करनेमें भी असमर्थता प्रकट करे, तो निर्दिष्ट संख्यक जप और ब्राह्मणाराधन, ये दो कर्म करनेसे भी उनका पुरश्चरण सिद्ध होता है।

"यदि होमेऽप्यशक्तः स्यात् पूजायां तर्पणेऽपि वा।
तावत् संख्यजपेनैव ब्राह्मणाराधनेन च।
भवेदंगद्वयेनैव पुरश्चरणमार्य्य वै॥" (अगस्त्यस०)

वीरतन्त्रके मतसे,—जपविषयमें स्त्रियोंको पूजादि किसी भी नियमका पालन करनेकी आवश्यकता नहीं। केवल जप करनेसे ही स्त्रियोंको मन्त्रसिद्धि होगी। पूजादिके जितने नियम हैं, वे सभी पुरुषके लिये निर्दिष्ट हुए हैं।

"नियमः पुरुषे ज्ञेयो न योषित्सु कदाचन।
न न्यासो योषितामत्र न ध्यानं न च पूजनं।
केवलं जपमात्रेण मन्त्राः सिद्ध्यन्ति योषितां॥"
(वीरतन्त्र)

वीरतन्त्रमें ही दूसरी जगह लिखा है, कि गुरुको यथायोग्य दक्षिणा और अन्नवस्त्रादि द्वारा परितुष्ट करना चाहिये। गुरुके सन्तुष्ट होनेसे ही मन्त्रसिद्धि होगी।

"गुरवे दक्षिणां दद्यात् भोजनाच्छादनादिभिः।
गुरुसन्तोषमात्रेण मन्त्रसिद्धिर्भवेद्ध्रुवं॥" (वीरतन्त्र)

योगिनीहृदयके मतसे,—गुरुके अभावमें गुरुपुत्र

अथवा गुरुपत्नीको दक्षिणादि दे। यदि उनका भी अभाव हो, तो ब्राह्मणको ही दान देवे। यथानियम जप, होम, तर्पण, अभिषेक और ब्राह्मणभोजन इन पञ्चाङ्ग द्वारा जो एक मन्त्रकी सिद्धि कर सकेंगे, उनका अन्यान्य कोई भी मन्त्र असिद्ध रहने नहीं पायगा। सभी मन्त्रोंमें वे सिद्धिलाभ कर सकते हैं। इन पुरश्चरण आदि तान्त्रिक कार्योंमें एकमात्र गुरुको ही मूल जानना चाहिये। बिना गुरुके ये सब कार्य कभी भी सम्पन्न नहीं हो सकते। गुरु यदि एक ग्राममें रहते हों, तो प्रतिदिन गुरु-गृह जा कर उनकी चरणवन्दना करे। एकमात्र गुरुको ही परमब्रह्म जान कर उनकी अर्चना करनी चाहिए। साधक व्यक्ति कार्य शेष हो जाने पर महती पूजा करके सुभाषिणी कुमारीको विविध भूषणोंसे भूषित और बहुविध मिष्टान्न द्वारा बान्धवोंके साथ भोजन करे। इस प्रकार अनुष्ठान करनेसे उसे सभी अभिलषित वस्तु प्राप्त होती हैं।

वशिष्ठने कहा है,—पुरश्चरणमें यदि कोई अङ्गहीन हो, तो उसे पूरा करनेके लिये जितना जप निर्दिष्ट है, भक्तिपूर्वक उससे दूना जप करना होता है। यह नियम केवल अशक्ति पक्षमें है। शक्तिपक्षमें अङ्गहानि न करके यथोक्त नियमसे सम्पन्न करना ही उत्तम है। फिर केवल ब्राह्मण भोजनसे भी अङ्गहीनता लुप्त हो जाती है। क्योंकि जहां ब्राह्मण भोजन करते हैं, वहां मानो स्वयं भगवान् हरि ही भोजन करते हैं।

शास्त्रमें लिखा है, कि स्त्री और शूद्रको होमादि किसी प्रकारके वैदिक कर्ममें अधिकार नहीं है। किन्तु पूर्वोक्त सनत्कुमारीय, योगिनीहृदय और कुलार्णव-तन्त्रके कुछ वचनों द्वारा स्त्री और शूद्रको होमाधिकारी बतलाया है। अभी इन दोनों विधानोंकी मीमांसाके सम्बन्धमें पहले होमकुण्डका विषय कहा जाता है,—

"वणिजामर्द्धशशांककोणं त्र्यस्रं भवति शूद्राणां"

(नागभट्टनिबन्ध)

है, उ... पूजा किये हु वैश्यका होमकुण्ड अर्द्धचन्द्र कोणाकृति और ... जपके आरम्भ अथवा ...कृतिका होना चाहिये। स्त्रियोंका होम-... जा कर सकते हैं। ...धेय है। किन्तु वाराहीतन्त्रमें ...तलाया गया है।

"यदि कामी भवत्येव शूद्रोऽपि होमकर्मणि।
वह्निजायां परित्यज्य हृदयान्तेन होमयेत्॥"

(वाराहीतन्त्र)

अर्थात् शूद्र यदि होम करनेकी इच्छा करे, तो 'स्वाहा' शब्दका परित्याग कर उसकी जगह नमः शब्द-का उच्चारण करके होम कर सकता है।

नारायण कल्पमें लिखा है, कि स्त्री और शूद्रके लिये प्रणवादि मन्त्र भी उच्चारण करना निषिद्ध है।

पुरश्चरणके कालसम्बन्धमें वाराहीतन्त्रमें इस प्रकार लिखा है,—चन्द्र ताराकी शुद्धि देख कर शुक्लपक्षमें और शुभदिनमें पुरश्चरणका आरम्भ करे, किन्तु हरिशयनमें निषिद्ध है।

"चन्द्रताराऽनुकूले च शुक्लपक्षे शुभेऽहनि।
आरभेत पुरश्चर्यां हरौ सुप्ते न चाचरेत्॥" (वाराही)

रुद्रयामलमें फिर इस वचनका प्रतिप्रसव देखनेमें आता है। यथा—

"कार्त्तिकाश्विनवैशाखमाघेऽथ मार्गशीर्षके।
फाल्गुने श्रावणे दीक्षा पुरश्चर्या प्रशस्यते॥" (रुद्रयामल)

अन्य तन्त्रमें लिखा है, कि ग्रस्तास्त और ग्रस्तोदयमें दीक्षा अथवा पुरश्चरण कुछ भी नहीं करना चाहिये। कारण, इस समय पुरश्चरणादि करनेसे आयु, लक्ष्मी, पुत्र और सम्पद् नष्ट हो जाती है।

"ग्रस्तास्ते द्युविते नैव कुर्याद्दीक्षां जपं प्रिये।
कृते नाशो भवेदाशु आयुःश्रीपुत्रसम्पदाम्॥" (तन्त्र)

पुरश्चरण करनेमें पहले पुण्यक्षेत्रादि किसी एक स्थानका निर्णय करना होता है, पीछे वहां जा कर, "मैंने अमुक मन्त्र पुरश्चरण सिद्धिके लिये इस स्थानका ग्रहण किया, मेरा मन्त्र सिद्ध हो" ऐसा कहे। अनन्तर पुरश्चरणक्रियाके पहले तीसरे दिनमें क्षौरादि कार्य कर डाले। बादमें वेदिकाके चारों ओर आहारविहारादिके लिये एक या दो कोस परिमित स्थान निर्दिष्ट करके वहां कूर्मचक्रानुरूप एक मण्डल बनावे और वहीं एकाहार रहे। अनन्तर दूसरे दिन स्नानादि करके विशुद्धभावसे वेदिकाके चारों ओर अश्वत्थ, उडुम्बर या वटवृक्षके वित्ते भरके दश कीलक प्रस्तुत करे और तब 'ओं नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्' इस मन्त्रसे १०८ बार उन्हें

अभिमन्त्रित करके निम्नलिखित पाठ द्वारा दशों दिशाएं खनन करे। मन्त्र यथा—

"ओं ये चात्र विघ्नकर्त्तारो भुवि दिव्यन्तरीक्षगाः ।
विघ्नभूताश्च ये चान्ये मम मन्त्रस्य सिद्धिषु ॥
मयैतत् कीलितं क्षेत्रं परित्यज्य विदूरतः ।
अपसर्पन्तु ते सर्वे निर्विघ्नं सिद्धिरस्तु मे ॥"

अनन्तर उन दश कीलकों पर 'ओं नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्' इस मन्त्र द्वारा अस्त्रकी पूजा करके पूर्वादि क्रमसे इन्द्रादि लोकपालोंका आह्वान करे। पीछे पञ्चोपचारसे पूजा करके मध्यस्थलमें क्षेत्रपालकी पूजा और सङ्कल्प करनेके बाद सर्वविघ्नविनाशके लिये वेदीके मध्य पञ्चोपचार द्वारा गणपतिकी पूजा करनी होती है। सङ्कल्प यथा,—ओं अद्येत्यादि अमुक गोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा मत्कर्त्तव्यामुकमन्त्रपुरश्चरणकर्मणि सर्वविघ्नविनाशार्थं गणेशपूजामहं करिष्ये।

अनन्तर माषभक्तादि द्वारा पूजित देवताओंको बलि चढ़ावे। पीछे

"ओं ये रौद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः ।
मातरोऽप्युग्ररूपाश्च गणाधिपतयश्च ये ॥
विघ्नभूताश्च ये चान्ये दिग्विदिक्षु समाश्रिताः ।
सर्वे ते प्रीतमनसः प्रतिगृह्णन्त्विमं बलिं ॥"

इस मन्त्रका पाठ करनेके बाद दशदिकस्थ भूतोंको बलि प्रदान करके गायत्री जप करना होता है।

"प्रातः स्नात्वा तु गायत्र्याः सहस्रं प्रयतो जपेत् ।
ज्ञाताज्ञातस्य पापस्य क्षयार्थं प्रथमं ततः ॥"
(विद्याधराचार्य)

इस गायत्री जपमें भी पहले सङ्कल्प कर लेना होता है। सङ्कल्प यथा—"ओं अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेव शर्मा ज्ञाताज्ञातपापक्षयकामोऽष्टोत्तरसहस्रगायत्रीजपमयुतगायत्रीजपं वा अहं करिष्ये।" इस प्रकार सङ्कल्प करके गायत्री जप करे। उस दिन उपवास या हविष्य खा कर रहना पड़ता है। दूसरे दिन ब्राह्ममुहूर्त्तमें स्नानादि सभी कार्य करके स्वस्तिवाचनपूर्वक पुरश्चरणका सङ्कल्प करना होता है, यथा,—

'विष्णुः ओम् अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुक देवताया अमुकमन्त्रसिद्धिप्रतिबन्धकताशेषपापक्षय पूर्वकतन्मन्त्रसिद्धिकामोऽद्यारभ्य यावताकालेन सेत्स्यति तावत्कालममुक देवताया अमुकमन्त्रस्यैतत्संख्यजपतद्दशांशहोमतद्दशांश तर्पणतद्दशांशाभिषेकतद्दशांश ब्राह्मणभोजनरूपपुरश्चरणमहं करिष्ये।'

यह सङ्कल्प करके पीछे भूतशुद्धि, प्राणायामादि तथा जो जिस देवताके उपासक हैं, वे उसी देवताके मुद्राबन्धन तथा पूजनके अनुसार पूजा करे। पीछे प्रदीप प्रज्वलित कर प्रातःकालसे ले कर मध्यन्दिन पर्यन्त जप करते रहें। अनन्तर दशांशानुक्रमसे होम, तर्पण, अभिषेक और ब्राह्मण भोजन कराना आवश्यक है।

तर्पणके सम्बन्धमें लिखा है, कि भक्तियुक्त हो कर जलके मध्य देवताका आह्वान करे और जल द्वारा ही पाद्यादि दानसे परिवारके साथ पूजा करे। पीछे चन्दनमिश्रित तीर्थजल द्वारा होमके दशांशसे परदेवताका तर्पण और संख्या पूर्ण हो जाने पर अङ्गादि परिवार को भी फिरसे एक एक अञ्जलि दान दे कर विसर्जन करना होता है।

विष्णुका तर्पण करनेमें पहले मूलमन्त्रका उच्चारण करके "श्री अमुकं तर्पयामि नमः" इस वाक्य द्वारा तर्पण करना होता है।

"आदौ मन्त्रं समुच्चार्य श्रीपूर्वं कृष्णमित्यपि ।
तर्पयामि पदरूच्चोक्त्वा नमोऽन्तं तर्पयेन्नरः ॥"
(गौतमीय)

शक्ति विषयमें भी पहले मूलमन्त्रका उच्चारण करके 'अमुक देवतां तर्पयामि' इस वाक्यसे तर्पण करना चाहिए।

"तर्पयामि पदरूच्चोक्त्वा मन्त्रान्ते स्वेषु नामसु ।
द्वितीयान्तेषु चैत्येवं तर्पणस्य मनुर्मतः ॥" (गौतमीय)

उक्त शक्तिविषयक तर्पणवाक्यसम्बन्धमें नीलतन्त्र और विशुद्धेश्वरतन्त्रमें कुछ पृथकता देखी जाती है। उक्त दोनों तन्त्रोंमें लिखा है, कि पहले मूलतन्त्रका उच्चारण करके पीछे 'अमुकीं तर्पयामि स्वाहा' यह वाक्य कहना होता है।

"मन्त्रान्ते नाम चोच्चार्य तर्पयामि ततः परं ।
कुर्याच्चैव वरारोहे ! स्वाहान्तं तर्पणे मतं ॥"

(नीलतन्त्र)

"विद्यां पूर्वं समुच्चार्य तदन्ते देवताभिधां ।
तर्पयामीति सम्प्रोक्त्वा स्वाहान्तं तर्पणे मतः ॥"

(विशुद्धेश्वर)

इस प्रकार तर्पणके बाद अभिषेकके समय भी अन्तमें नमः शब्दका उच्चारण करते हैं और तब 'अमुक देवताममिषिञ्चामि' इस वाक्य द्वारा कुम्भमुद्रा करके मस्तक पर अभिषेक करना होता है ।

'नमोऽन्तं मूलमुच्चार्य तदन्ते देवताभिधां ।
द्वितीयान्तामहं पश्चात् अभिषिञ्चाम्यनेन तु ।
अभिषिञ्चेत् स्वमूर्द्धानं तोयैः कुम्भाख्यमुद्रया ॥"

(गौतमीयतन्त्र)

शक्तिविषयमें पहले देवताका मन्त्र और पीछे नाम उच्चारण करके 'सिञ्चामि नमः' इस वाक्य द्वारा तर्पण करना चाहिये ।

"मन्त्रान्ते नाम चोच्चार्य सिञ्चामीति नमः पदं ॥"

(नीलतन्त्र)

अभिषेकके शेष होने पर ब्राह्मणभोजन करा कर पुरश्चरणको दक्षिणा दे और पीछे अच्छिद्रावधारण करे ।

तन्त्रोल्लिखित एक प्रकारके पुरश्चरणका विषय लिखा गया । अब दूसरे तन्त्रमें ग्रहण-पुरश्चरणके सम्बन्धमें जैसा लिखा है वह भी नीचे देते हैं ।

रुद्रयामलमें लिखा है, कि यदि सूर्य अथवा चन्द्र-ग्रहण लगे, तो पुरश्चरणाभिलाषीको पूर्व दिन पवित्र-भावमें उपवास रहना आवश्यक है । पीछे किसी एक समुद्रगामिनी नदीके मध्य आनाभि जलमें मग्न रह कर स्पर्शसे ले कर विमुक्ति तक अनन्यचित्तसे मन्त्र जप करना होता है । यदि नदीके मध्य नक्र प्रभृति किसी दुष्ट जलजन्तुकी आशङ्का रहे, अथवा नदीका अभाव हो, तो पवित्र जलमें स्नान कर समाहितचित्तसे किसी [illegible]स्थानमें रह कर ग्राससे मोक्ष तक जप करता है, [illegible] पूजा किये [illegible] जपके आरम्भ [illegible] जा कर सकते हैं [illegible] यामलमें दूसरी जगह लिखा है, कि यदि [illegible] समर्थ हो, तो ग्रहणकालमें स्नान करके संयतचित्तसे ग्राससे मोक्ष पर्यन्त जप करना होगा । पीछे जितना जप किया जायगा उसके दशांशानुक्रमसे होम और तर्पण करना होता है । ऐसा करनेसे मन्त्रकी सिद्धि होती है । किन्तु गोपालमन्त्रका पुरश्चरण करनेमें ब्राह्मणादि सभी वर्णोंको होमसंख्याके अनुसार तर्पण करना विधेय है ।

योगिनीहृदयमें लिखा है,—मन्त्री व्यक्तिको जप करनेके बाद यथोक्त विधानसे होमादि सभी कार्य अथवा उसके दशांशानुक्रमसे होमादि करना चाहिये ।

"कल्पोक्तविधिना मन्त्री कुर्य्याद्धोमादिकं ततः ।
अथवा तद्दशांशेन होमादींश्च समाचरेत ॥"

(योगिनीहृदय)

जप सम्पूर्ण करके गुरुको परितोष और ब्राह्मण भोजन कराना नितान्त आवश्यक है ।

"ततो मन्त्रस्य सिद्ध्यर्थं गुरुं सम्पूज्य तोषयेत् ।
एवञ्च मन्त्रसिद्धिःस्यात् देवता च प्रसीदति ॥
विप्राराधनमात्रेण व्यंगं साङ्गं भवेद् ध्रुवं ।
सर्वथा भोजयेद्विप्रान् कृतसांगत्वसिद्धये ॥"

(योगिनीहृदय)

क्रियासारके मतसे जिन्होंने दीक्षा नहीं ली है, उन्हें भोजन कराना निषिद्ध है ।

"दीक्षाहीनान् पशून यस्तु भोजयेद्वा स्वमन्दिरे ।
स याति परमेशानि ! नरकानेकविंशतिं ॥"

(क्रियासार)

ग्रहणपुरश्चरणमें भी सङ्कल्प कर लेना होता है, यथा—'ओं अद्येत्यादि राहुग्रस्ते निशाकरे दिवाकरे वा अमुक गोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकदेवताया अमुकमन्त्रसिद्धिकामो ग्रासाद्विमुक्तिपर्य्यंतं अमुक देवताया अमुकमन्त्रजपरूपपुरश्चरणमहं करिष्ये ।' इस प्रकार संकल्प करके पीछे उसी दिन अथवा दूसरे दिन स्नान कर चुकनेके बाद और भी एक सङ्कल्प इस प्रकार करना होता है । "अद्येत्यादि अमुक देवताया अमुक मन्त्रस्य कृतैतत्ग्रहणकालीन इयत्संख्यजपतद्दशांशहोमतद्दशांश तर्पणतद्दशांशाभिषेकतद्दशांशब्राह्मणभोजनकर्माण्यहं करिष्ये ।" (तन्त्रसार) अनन्तर होमादि करके दक्षिणादि पूर्ववत् ही करनी होगी । (तन्त्रसार)

सनत्कुमारीय मतसे—ग्रहण होने पर जप करना

एकान्त आवश्यक है। श्राद्धादिके अनुरोधसे यदि कोई व्यक्ति जप न करे, तो वह देवताद्रोही सात पीढ़ी तक अधोगामी होता है।

"श्राद्धादेरनुरोधेन यदि जप्यं त्यजेन्नरः
स भवेत् देवताद्रोही पितॄन् सप्त नयत्यधः॥"

(सनत्कुमारीय)

यथार्थमें उक्त वचनकी मीमांसामें ऐसा निर्द्धारित हुआ है, कि यदि पुरश्चरणका आरम्भ हो जानेके बाद ग्रहण लगे और उस समय यदि कोई श्राद्धादि करनेकी आवश्यकता आन पड़े, तो जपका परित्याग न करे।

क्रियासागरके मतसे जप होमादि पञ्चाङ्ग-उपासनाको ही पुरश्चरण बतलाया है। किन्तु ग्रहण-कालमें पुरश्चरण शब्दको गौण समझना चाहिये। ग्रहणमें जप ही प्रधान है।

ये दो प्रकारके पुरश्चरण छोड़ कर तन्त्रादिमें और भी नाना प्रकारके पुरश्चरणोंका उल्लेख देखनेमें आता है। इनमेंसे महादेवने पार्वतीके पूछने पर राशि, नक्षत्र और तिथ्यादिविशेषसे जितने जपोंके नियमानुसार जितने प्रकारके पुरश्चरणोंका उल्लेख किया है, वही नीचे देते हैं—

राशीके नाम	जपसंख्या।
मेष	दश सहस्र।
वृष	दो अयुत।
मिथुन	तीन अयुत।
कर्कट	प्रत्यह सहस्र।
सिंह	दो अयुत।
कन्या	१२ सहस्र।
तुला	प्रत्यह सहस्र।
वृश्चिक	एक अयुत। यह जप शय्या पर बैठ कर करना होता है।
धनुः	१ अयुत।
मकर	४ अयुत।
कुम्भ	१ अयुत।
मीन	२ अयुत।

नक्षत्रविशेषसे जप यथा—

नक्षत्रके नाम	जपसंख्या।
अश्विनी	१ हजार।
भरणी	२ हजार।
कृत्तिका	३ हजार।
रोहिणी	१ हजार अथवा १ सौ।
मृगशीर्ष	५ हजार।
आर्द्रा	६ हजार।
पुनर्वसु	१ हजार।
पुष्या	७ हजार।
अश्लेषा	६ हजार।
मघा	१० हजार।
पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, पूर्वफल्गुनी	११ हजार।
उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, उत्तरफल्गुनी	१२ हजार।
हस्ता	१३ हजार।
चित्रा	२ हजार।
विशाखा	४ हजार।
अनुराधा	४ हजार।
ज्येष्ठा	२ हजार।
मूला	५ हजार।
शतभिषा	२ हजार।
रेवती	४ हजार।

(स्वतन्त्रतन्त्र)

देवताभेदसे मन्त्रादि और जपसंख्यादिको विभिन्नता निर्दिष्ट हुई है। मन्त्र शब्द देखो।

पुरश्छद (सं० पु०) पुरश्छदति छादयतीति छद अच्, वा पुरोऽग्रतश्छदाः पत्राण्यस्य। तृणविशेष, कुश या डाभकी तरहकी एक घास। पर्याय—दर्भ, शस्त, सोमपत्र, परातप्रिय।

पुरषा (हिं० पु०) पुरखा देखो।

पुरस् (सं० अव्य०) पूर्वस्मिन् पूर्वस्मात् पूर्वं एवं पूर्वस्याः पूर्वस्यामित्यादि पूर्व-असि-तद्योगेन पुर् इत्यादेशश्च। (पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषां। पा ५।३।३९) १ अग्रतः, पहले, आगे। २ पूर्वकी ओर, पूर्वकालमें, पूर्वदेशमें। ३ प्रथमकालमें। ४ पुरार्थ। ५ अतीतार्थ।

पुरसंस्कार (सं० पु०) पुरस्य संस्कारः ६-तत्। नष्टदुर्ग-का संस्कार, पुरका संस्कार।

पुरसा (हिं० पु०) ऊंचाई या गहराईकी एक माप। इसका विस्तार हाथ ऊपर उठा कर खड़े हुए मनुष्यके बराबर होता है।

पुरस्कर्त्तव्य (सं० त्रि०) पुरस्-कृ तव्य। १ जो पहले किया जाय। २ भक्ति वा मान्यके विषयमें पहले सम्पाद-नीय।

पुरस्कार (सं० पु०) पुरस्करणमिति पुरस्-कृ—भावे घञ्। १ पुरस्क्रिया, आगे करनेकी क्रिया। २ आदर, पूजा। ३ प्रधानता। ४ स्वीकार। ५ पारितोषिक, उपहार, इनाम। ६ अभिशाप। ७ अरिग्रहण। ८ अग्रकरण। ९ सेक, सींचनेकी क्रिया।

पुरस्कार्य (सं० त्रि०) अग्र करणीय, जो पहले किया जाय।

पुरस्कृत (सं० त्रि०) पुरस्क्रियते स्मेति पुरस्-कृ-क्त। १ अभिशप्त। २ अरिग्रस्त। ३ अग्रकृत। ४ पूजित। ५ स्वीकृत। ६ सिक्त।

पुरस्क्रिया (सं० स्त्री०) पुरस्कार, इनाम।

पुरस्ताज्जप (सं० पु०) अग्रवर्त्ती जप।

पुरस्ताज्ज्योतिस् (सं० त्रि०) त्रिष्टुभ छन्दोभेद। इसके प्रथम पादमें आठ चरण रहते हैं।

पुरस्तात् (सं० अव्य०) १ आगे, सामने। २ पूर्व दिशामें। ३ पूर्वकालमें, पहले। ४ अग्रदेशमें।

पुरस्तात्न (सं० त्रि०) अग्रवर्त्ती।

पुरस्तादुद्धार (सं० पु०) उद्धारानुमानमें पहले प्रदत्त।

पुरस्ताद्धोम (सं० पु०) होम करनेके पहले उत्सर्गादि।

पुरस्ताद्बृहती (सं० स्त्री०) बृहती छन्दोभेद।

पुरःसद् (सं० त्रि०) १ पूर्वदिक्स्थित। (पु०) २ पहले उपविष्ट पुरुष।

पुरःसर (सं० स्त्री०) पुरः अग्रतोसरतीति। १ अग्रगन्ता, [illegible]। २ संगी, साथी। ३ सम्बलित, समन्वित। [illegible] (त्रि०) ४ अग्र, पहले।

पुरःस्थात (सं० पु०) दलपति।

पुरहत (हिं० पु०) वह अन्न और द्रव्यादि जो विवाह आदि मंगल कार्योंमें पुरोहित या प्रजाको किसी कृत्य-के करनेके प्रारम्भमें दिया जाता है, आखत।

पुरहन् (सं० पु०) पुरहन्ता विष्णु, शिव।

पुरहा (हिं० पु०) वह पुरुष जो पुर चलते समय कुएं पर पुटके पानीको गिरानेके लिये नियत रहता है।

पुरा (सं० अव्य०) पुरति अग्रे गच्छतीति पुर-बाहुलकात् का १ प्रबन्ध। २ अतीतभूत, चिरातीत। ३ इतिहास और पुरावृत्त। ४ निकट, सन्निहित। ५ आगामिक। ६ अना-गत। ७ निकटागामिक। ८ भविष्यदावृत्ति। ९ भीरु। १० प्राक्, प्रथम। (स्त्री०) पुरतीति पुर वा टाप्। ११ पूर्व-दिक्। १२ सुगन्धिगन्धद्रव्य, मुरा। पर्याय—गन्धवती, दिव्या, गन्धाढ्या, गन्धमादिनी, सुरभि, भूरिगन्धा, कुटी, गन्धकुटी। गुण—तिक्त, कटु, शीत, कषाय, कफ, पित्त, श्वास, अस्र, विष, दाहार्त्ति, भ्रम, मूर्च्छा और तृष्णा-नाशक।

पुरकथा (सं० स्त्री०) पुरा प्राचीना कथा। इतिहास।

पुराकल्प (सं० पु०) पुरा पुराणः कल्पः। १ प्राचीन-कल्प, पहलेका कल्प २ अर्थवादभेद, एक प्रकारका अर्थवाद जिसमें प्राचीनकालका इतिहास कह कर किसी विधिके करनेकी ओर प्रवृत्त किया जाय। अर्थवाद देखो। ३ प्राचीन काल।

पुराकृत (सं० त्रि०) पुरा पूर्वस्मिन् काले वा कृतं। १ प्रारब्ध, पूर्वजन्ममें किया हुआ। २ पूर्वकालमें किया हुआ। (पु०) ३ पूर्वजन्ममें किया हुआ पाप या कर्म।

पुराग (सं० त्रि०) पुरा गच्छतीति गम-ड। पूर्वगामी।

पुराज (सं० त्रि०) पुरा जायते जन-ड। पूर्वकालमें जात, जो पूर्वकालमें हुआ हो।

पुराटङ्क (सं० पु०) मुनिभेद।

पुराण (सं० पु०) १ ब्रह्मा। २ शिव, महादेव। ३ कार्षापण। ४ प्राचीन आख्यान, पुरानी कथा। (त्रि०) ५ पुरा-तन, पुराना। (क्ली०) पुरा भवमिति पुरा-ट्यु (सायं चिरं प्राह्णे प्रागेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च। पा ४।३।२३)। वा पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन। पा २।१।४९) इति निपातनात् तुडभावः। यद्वा (पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु। पा ४।३।१०५) इति निपातितः; अथवा पुरा नीयते नी-ड, णत्वञ्च। ६ हिन्दुओंके धर्मसम्बन्धी आख्यान ग्रन्थ जिनमें सृष्टि, लय, प्राचीन ऋषियों,

मुनियों और राजाओंके वृत्तान्त आदि रहते हैं, पुरानो कथाओंको पोथी।

पुराण शब्दका अर्थ पूर्वतन है। तदनुसार पहले 'पुराण' कहनेसे प्राचीन आख्यायिकादि-सम्बलित ग्रन्थ-विशेष समझा जाता था। अथर्ववेद, शतपथब्राह्मण, बृहदारण्यक, छान्दोग्योपनिषत्, तैत्तिरीय आरण्यक, आश्वलायनगृह्यसूत्र, आपस्तम्बधर्मसूत्र, मनुसंहिता, रामायण, महाभारत आदि आर्य जातियोंके सुप्राचीन शास्त्रग्रन्थोंमें पुराणप्रसङ्ग है।

उत्पत्ति—निर्णय

अथर्वसंहिताके मतमें 'यज्ञके उच्छिष्टसे यजुर्वेदके साथ ऋक्, साम, छन्द और पुराण उत्पन्न हुआ था।' (१)

शतपथब्राह्मणमें लिखा है, 'पुराण वेद है, यह वही वेद है; ऐसा कह कर अध्वर्यु पुराणका कीर्त्तन किया करते हैं।' (२)

बृहदारण्यक और शतपथब्राह्मणमें दूसरी जगह लिखा है, 'आर्द्र काष्ठसे उत्पन्न अग्निसे जिस प्रकार पृथक् पृथक् धूम निकला करता है, उसी प्रकार इस महान् भूतके निश्वाससे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरस, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषत्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान और अनुव्याख्यान निकले हैं—ये सभी इनके निश्वास हैं।' (३)

यहां पर बृहदारण्यकभाष्यमें शङ्कराचार्यने निश्वास का अर्थ लगाया है, 'जो विना यत्नके पुरुषसे उत्पन्न हो।' (४)

छान्दोग्योपनिषद्के मतसे—इतिहास और पुराण वेदसमूहका पञ्चम वेद है। (५)

पुराण कहनेसे जैसा हम लोगोंको आधुनिक शास्त्रका बोध होता है, उक्त वैदिक प्रमाण देखनेसे वह वैसा आधुनिक प्रतीत नहीं होता। वैदिककालमें 'पुराण' प्रचलित था और वेदकी तरह आर्यसमाजमें उसका आदर होता था, इसीसे पुराणको पञ्चमवेद स्वरूप माना गया था। उपरोक्त बृहदारण्यक और शाङ्कर-भाष्यकी आलोचना करनेसे ऐसा मालूम पड़ता है, कि भगवान्के अयत्नसे जिस प्रकार चारों वेद उत्पन्न हुए थे, पुराणकी उत्पत्ति भी उसी प्रकार है।

ब्रह्मसूत्रभाष्यमें मीमांसकके मुख (पूर्वपक्ष)-में शङ्कराचार्य कहते हैं, 'इतिहासपुराणमपि पौरुषेयत्वात् प्रमाणान्तरमूलतामाकांक्षते' (१।३।३२) अर्थात् इतिहास और पुराणको भी पौरुषेयके जैसा प्रमाणान्तरमूलता (अर्थात् वेदके बाद गौणप्रमाणके जैसा) स्वीकार करना होगा।'

सायणाचार्यने वेदभाष्यमें लिखा है,—

"देवासुराः संयत्ता आसन्नित्यादय इतिहासाः। इदं वा अग्रे-णैव किञ्चिदासीदित्यादिकं जगतः प्रागवस्थानुपक्रम्य सर्गप्रति-पादकं वाक्यजातं पुराणम्।" (ऐतरेय ब्राह्मणोपक्रम)

वेदके अन्तर्गत देवासुरके युद्ध-वर्णन इत्यादिका नाम इतिहास है। इसके और पहले यह असत् था और कुछ भी न था, इत्यादि जगत्‌को प्रथम अवस्थाका आरम्भ करके सृष्टिप्रक्रिया विवरणका नाम पुराण है।

शङ्कराचार्यने भी बृहदारण्यक भाष्यमें लिखा है—

"इतिहास इत्युर्वशीपुरूरवसोः संवादादिरुर्वशीहाप्सरा इत्यादि ब्राह्मणमेव पुराणमसद्वा इदमग्र आसीदित्यादि।"

(बृहदारण्यकभाष्य २।४।१०)

उर्वशी और पुरूरवाके कथोपकथनादिस्वरूप ब्राह्मण-भागका नाम इतिहास है और 'सबसे पहले एकमात्र

(१) "ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।"

(अथर्व ११।७।२४)

(२) "अध्वर्युस्तार्क्ष्ये वै पश्यतो राजेत्याह······पुराणं वेदः सोऽयमिति किञ्चित् पुराणमाचक्षीत।"

(शतपथब्राह्मण १३।४।३।१३)

(३) "स यथा आर्द्रैन्धाग्नेरभ्याहितात् पृथग्धूमा विनिश्चरन्ति एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद् यहग्वेदो युजर्वेदं सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि अस्यैव एतानि सर्वाणि निश्वसितानि॥" (बृहदारण्यक २।४।१० = शतपथ १४।६।१०।६)

(४) "निश्वसितमिव निश्वसितम्। यथा अप्रयत्नेनैव पुरुष-निश्वासो भवत्येवं वा। ...... पुराणं असद् वा इदमग्रे आसीत् इत्यादि।" (शांकरभाष्य)

(५) "स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्।" वा

(छान्दोग्य उ०

जैनप्रसङ्ग

वर्त्तमान थे।

असत् था' इत्यादि सृष्टिप्रक्रियाघटित विवरणका नाम पुराण है।

अब यह जाना गया, कि 'सृष्टिप्रक्रियाघटित विवरण मूलकपुराण' वैदिकयुगमें प्रचलित था। विष्णु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य आदि महापुराणोंमें पुराणके पांच लक्षण निर्दिष्ट हुए हैं—

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥"

सर्ग वा सृष्टितत्त्व, प्रतिसर्ग वा पुनःसृष्टि और लय, देव और पितरोंकी वंशावली, समस्त मन्वन्तर अर्थात् किस किस मनुका कब तक अधिकार है तथा वंशानुचरित वा सूर्य और चन्द्रवंशीय राजाओंका संक्षिप्त विवरण, पुराणके यही पांच लक्षण हैं; किन्तु पहले ही दिखलाया जा चुका है, कि शङ्कराचार्य आदिके मतसे वैदिकपुराणमें केवल सृष्टितत्त्व लिखा था; तो फिर क्या, शेष चार परवर्त्ती कालमें पुराणके विषयीभूत हुए थे?

प्राचीनतम पुराणका प्रतिपाद्य विषय।

प्राचीनतम पुराणादिमें सृष्टितत्त्वके अलावा दूसरे दूसरे विषय भी वर्णित थे, यह महाभारत, रामायण और नाना पुराणोंसे ही जाना गया है। यथा—

महाभारतके आदिपर्वमें महर्षि शौनकने कहा है,—

"पुराणे हि कथा दिव्या आदिवंशाश्च धीमताम्।
कथ्यन्ते हि पुरास्माभिः श्रुतपूर्व पितुस्तव॥"
(भारत १।५।२)

पुराणमें मनोहर कथाओं और बुद्धिमान् व्यक्तियोंके आदिवंशका वृत्तान्त है। भारतवक्ता उग्रश्रवाने कहा था—

"इमं वंशमहं पूर्वं भार्गवं ते महामुने।
निगदामि यथायुक्तं पुराणाश्रयसंयुतम्॥"
(भारत १।५।६-७)

यहां तक कि, महाभारतमें आदिपर्वके प्रथमाध्यायमें साफ साफ लिखा है, 'पूरु, कुरु, यदु, शूर, विष्वगश्व, अणुह, युवनाश्व, ककुत्स्थ, रघु, विजय, वीतिहोत्र, अङ्ग, भव, श्वेत, बृहद्गुरु, उशीनर, शतरथ, कङ्क, दुलिदुह, द्रुम, दम्भोद्भव, वेन, सगर, सङ्कृति, निमि, अजेय, परशु, पुण्ड्र, शम्भु, देवावृध, ... [illegible] ... व्रत, शान्तभय, सुमित्र, सुबल, जानुजङ्घ, अनरण्य, अर्क, प्रियभृत्य, बलबन्धु, निरामर्द, केतुशृङ्ग, बृहद्बल, धृष्टकेतु, बृहत्केतु, दीप्तकेतु, अविक्षित्, चपल, धूर्त्त, कृतबन्धु, दृढेषुधि, महापुराणसम्भाव्य, प्रत्यङ्ग, परहा, श्रुति इत्यादि हजारों राजाओंके कर्म, विक्रम, दान, माहात्म्य, आस्तिक्य, सत्य, शौच, दया और आर्जवादिका विवरण विद्वान् सत्कवियोंसे पुराणमें वर्णित हुआ है।'

(महाभारत आदि १।२३२-२४२)

उक्त पुराणसे यह स्पष्ट जाना जाता है, कि वर्त्तमान महाभारतरचित होनेके पहले भी विभिन्न लक्षणाक्रान्त और विभिन्न कविरचित पुराण प्रचलित थे। पीछे दिखलाया जायगा, कि अभी जो सब पुराण प्रचलित हैं, उनका भी पूर्ववर्त्ती प्राचीनतम पुराण देखकर सङ्कलन हुआ है।

मनुसंहितामें भी स्पष्ट लिखा है—

"स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च॥"
(३।२३२)

श्राद्धादि पितृकार्यमें वेद, धर्मशास्त्रसमूह, आख्यानावली, इतिहास, समस्त पुराण और खिल (परिशिष्ट) सुनाने होंगे। आश्वलायनगृह्यसूत्रमें भी यही बात देखनेमें आती है।

"आयुष्मतां कथाः कीर्त्तयन्तो मांगल्यानीतिहासपुराणानीत्याख्यापयमानाः।" (आश्वलायनगृह्य ४।६)

पुराणके रचयिता कौन हैं?

वैदिकयुगमें पुराणका प्रचार रहने पर भी पुराण किसका बनाया हुआ है, उसका स्पष्ट आभास नहीं मिलता। बृहदारण्यकभाष्यका अनुसरण करनेसे यह कहना पड़ेगा, कि वेद जिस प्रकार आर्य ऋषियोंके हृदयाकाशसे समुदित हुए थे, पुराणको भी उसी प्रकार बिना आयासके ही आर्य ऋषियोंने प्राप्त किया था। फिर मनुसंहिता, आश्वलायन-गृह्यसूत्र और महाभारतके वचन लक्ष्य करनेसे कहना पड़ेगा, कि पुराण अनेक थे।

आदि मंगल कार्योंमें ... [illegible] ... कृत्यके करनेके प्रारम्भमें दिया जाता है; आकल्प।

... [illegible] ... अथवा पुरा नीयते नी-ड, पत्वञ्च। ६ हिन्दुओंके धर्मसम्बन्धी आख्यान ग्रन्थ जिनमें सृष्टि, लय, प्राचीन ऋषियों,

स्मृत्वा जगाद च मुनीन् प्रति देवश्चतुर्मुखः ।
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्ततः ॥
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो मुने ।
व्यासरूपं विभुं कृत्वा संहरेत् स युगे युगे ॥
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा ।
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रभाष्यते ॥
अद्यापि देवलोके तच्छतकोटौ प्रविस्तरम् ।
तदर्थोऽत्र चतुर्लक्षसंक्षेपेन निवेशितः ॥
पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते।"
(रेवामाहात्म्य १।२३-३०)

इस रेवामाहात्म्यमें साफ लिखा है, कि सत्यवतीनन्दन व्यास अष्टादश-पुराणके वक्ता हैं।

"अष्टादश पुराणानां वक्ता सत्यवतीसुतः।" (रेवाखण्ड)

पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें भी रेवामाहात्म्य समर्थित हुआ है—

"प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्तदा ।
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः ॥
व्यासरूपो तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे ।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे विभुः ।
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाशते ॥"
(सृष्टिख० १ अ०)

उपरोक्त पुराणवचनके ऊपर निर्भर करके बहुतेरे कृष्णद्वैपायन वेदव्यासको ही अठारह पुराणके रचयिता मानते हैं। क्या सचमुच १८ पुराण एक व्यक्तिके बनाये हुए हैं? पण्डितवर स्वर्गीय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाशयने लिखा है,—

"सभी पुराणोंकी अपेक्षा विष्णुपुराणकी रचना प्राचीन प्रतीत होती है। जितने पुराण हैं सभी वेदव्यासप्रणीत कह कर प्रसिद्ध हैं; पर उनकी रचनामें एक दूसरेके साथ इतनी विभिन्नता है, कि वे एक व्यक्तिके रचे हुए प्रतीत नहीं होते। विष्णुपुराण, भागवत और ब्रह्मवैवर्त्तपुराणका एक एक अंश पढ़नेसे मालूम होता है, कि ये तीनों एक लेखनीके मुखसे विनिर्गत नहीं हो सकते। विष्णुपुराण आदिके साथ महाभारतकी रचनामें इतनी विभिन्नता है, कि जिन्होंने विष्णु-पुराण, अथवा भागवत या ब्रह्मवैवर्त्तपुराणकी रचना

"पुराणामेकमेवासीत् तदा कल्पान्तरेऽनघ ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥
निर्दग्धेषु च लोकेषु वाजिरूपेण वै मया ।
अङ्गानि चतुरो वेदाः पुराणं न्यायविस्तरम् ॥
मीमांसा धर्मशास्त्रञ्च परिगृह्य मया कृतम् ।
मत्स्यरूपेण च पुनः कल्पादावुदकार्णवे ॥"
(५३।४-७)

मत्स्यपुराणमें साफ साफ लिखा है, कि सबसे पहले केवल एक पुराण था। उसी एकसे धीरे धीरे १८ पुराण उत्पन्न हुए हैं, पहले १८ पुराण थे और व्यासने जो उन अठारहोंकी रचना नहीं की, इस सम्बन्धमें परवर्ती विष्णुपुराण और ब्रह्माण्डपुराणका विवरण पढ़नेसे ही संदेह दूर हो जायगा।

ब्रह्माण्डपुराणमें(६) इस प्रकार लिखा है—

"प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः ॥"
(१।५८)

सभी शास्त्रोंके पहले ब्रह्मासे पुराणकी उत्पत्ति हुई है। पीछे उनके मुखसे सभी वेद निकले। फिर दूसरी जगह (६५ अ०में) लिखा है, कि वेदव्यासने ही एक मात्र पुराणसंहिताका प्रचार किया। (७)

विष्णुपुराणमें स्पष्ट लिखा है—

सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि ... निश्वसितानि ॥" (बृहदारण्यक २।४।१०=शतपथ १४।६।१०।६)

(४) "निश्वसितमिव निश्वसितम् । यथा अप्रयत्नेनैव पुरुष-

(६) अध्यापक विलसन और राजा राजेन्द्रलालप्रमुख आदि पुराविद् इस [पु]राणको वायुपुराण समझ कर महा भ्रममें पड़ गये हैं। अभी जो सब पुराण प्रचलित हैं, उनमेंसे एक ही पुराण सर्वतोभावमें पञ्चलक्षणाक्रान्त और सर्व प्राचीन है, ऐसा बहुतोंने स्वीकार किया है।

(७) ब्रह्माण्डपुराणमें चार संहितामूलक पुराणसंहिताका प्रसंग है, किन्तु उसमें अष्टादश पुराणका कुछ भी प्रसंग नहीं है। विष्णुपुराणके टीकाकार श्रीधरस्वामीके मतसे "एतेषु संहितानां चतुष्टयेन सारोद्धाररूपमिदं विष्णुपुराणं ...... केचित् संहितानां चतुष्टयेन इदमाद्यं ब्राह्ममुच्यते इति वदन्ति।" अर्थात् इन चार संहिताओंके सारोद्धारस्वरूप यह विष्णुपुराण है। ... पञ्च-
किसीका कहना है, कि इन चार संहिताओंके ... का
वेदं चतुर्थमितिहासपु... वेदम्" ...
(छान्दोग्य उ...

ग्रहण किया है। उनसे पहले यदि पुराण-विभाग वा नाना पुराणोंका प्रचार नहीं रहता, तो वे भविष्यत्पुराणका नाम ले कर निर्दिष्टपुराणका उल्लेख क्यों करते ? इस हिसाबसे उनके पहले एकाधिक पुराण रचा गया था, इसमें सन्देह नहीं। इसके पहले विष्णुपुराणसे दिख लाया गया है, कि भविष्यत्पुराण ९म है अर्थात् उसके पहले ८ पुराण प्रचलित हो चुके थे।

आपस्तम्बधर्मसूत्रके सुप्रसिद्ध अनुवादक डाक्टर बुहलर (Dr. Buhler) साहबने हो कहा है, कि आपस्तम्ब-धर्मसूत्र ईसा-जन्मके पहले ३री शताब्दीके बादका रचा हुआ नहीं है। यहां तक कि, यह पाणिनिके पहलेका भी रचित हो सकता है। किन्तु आपस्तम्ब-धर्मसूत्रमें बौद्ध वा जैन प्रभावका कुछ भी उल्लेख न रहनेके कारण ईसा-जन्मसे ५वीं वा छठीं शताब्दीसे भी पहले यह धर्मसूत्र प्रचलित हुआ था, ऐसा हम लोग निःसन्देह स्वीकार कर सकते हैं। उसके भी पहले विभिन्न पुराणोंकी उत्पत्ति अनायास कल्पना की जा सकती है। आपस्तम्ब-धर्मसूत्रके प्रमाणसे हम लोगोंको यह मालूम हुआ, कि सर्ग और प्रतिसर्गका वर्णन करना पुराणका प्रधान उद्देश्य है तथा पूर्वकालमें भविष्यत् प्रभृति कोई कोई पुराण वैदिक और लौकिक भाषाके मिश्रणसे रचा गया था। शङ्कराचार्यने छान्दोग्योपनिषद्-भाष्य (५।१८)में जो पौराणिक वचन उद्धृत किये हैं, वह इस प्रकार है,—

"ये प्रजामीषिरे धीरास्ते श्मशानानि भेजिरे।
ये प्रजां नेषिरे धीरास्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे॥"

सम्भव है, कि केवल भविष्यत्पुराणके प्रसङ्गसे बहुतेरे तृप्त नहीं भी हो सकते, इस कारण दो एक और पुराणोंकी प्राचीनताका प्रमाण देते हैं। प्रचलित प्रायः सभी पुराणोंके मतसे १८वें वा शेषपुराणका नाम ब्रह्माण्ड है। अब इस पुराण पर ही थोड़ी आलोचना की जाती है।

ऊपरमें ब्रह्माण्डपुराणसे जो सब श्लोक उद्धृत कर धर्मसूत्रोक्त पुराण-वचनके साथ मिलानेकी चेष्टा की गई है, उन्हीं श्लोकोंसे ब्रह्माण्डपुराणके वे सब अंश अति प्राचीन हैं, यह प्रतिपन्न होता है। अब देखना चाहिये, अपरापर अंश कितना प्राचीन है।

५वीं शताब्दीमें अर्थात् आजसे चौदह सौ वर्ष पहले भारतीय हिन्दुओंने यवद्वीपमें पदार्पण किया था। उस समय वे ब्रह्माण्डपुराण, रामायण, महाभारत आदि संस्कृत ग्रन्थ अपने साथ ले गये थे। यवद्वीपसे वालिद्वीपमें और पीछे ब्राह्मणोंके मध्य इन सब संस्कृत ग्रन्थोंका प्रचार हुआ। हर्षका विषय है, कि उस ब्रह्माण्डपुराणका आज भी वालिद्वीपके शैवब्राह्मणोंके मध्य वेदके जैसा आदर होता है (१)। बहुत दिन हुए, यह ब्रह्माण्डपुराण यवद्वीपकी कविभाषामें अनुवादित हुआ है।

डाक्टर फ्रीडरिक साहबने ओलन्दाज भाषामें सबसे पहले इस कविब्रह्माण्डपुराणका विस्तृत विवरण प्रकाशित किया (२)। उन्होंने कविब्रह्माण्डपुराणसे कुछ श्लोक भी उद्धृत किये हैं—

"अग्रे ससर्ज भगवान्मानसमात्मनः समाम्।"

फिर दूसरी जगह कविब्रह्माण्डसे यह श्लोक उद्धृत हुआ है,—

"ततो देवासुरपितॄन् मनुष्यांश्चाऽसृजत् प्रभुः॥"

यह श्लोक भी आज कलके ब्रह्माण्डपुराण (८।२) में मिलता है।

फ्रीडरिक साहबने कविब्रह्माण्डपुराणके सृष्टि-वर्णनाप्रसङ्गमें जगदुत्पत्ति, ब्रह्माको तपस्यासे सनकसनन्दादि मानसप्रजाकी सृष्टि, माहेश्वरप्रादुर्भाव, कल्पवर्णन, देवासुरोत्पत्ति, मन्वन्तर और युगादिनिर्णय, सप्तद्वीपके विवरण आदि जो सब कथाएँ लिखी हैं, वे ही हम लोगोंके ब्रह्माण्डपुराणमें यथायथ वर्णित हुई हैं। सुतरां यवद्वीपके ब्रह्माण्डपुराण और भारतीय ब्रह्माण्डपुराणकी अभिन्नताके सम्बन्धमें अब फिर कोई सन्देह नहीं रहता।

अभी देखते हैं, कि ब्रह्माण्डपुराणके अध्यापक विलसनप्रमुख पण्डितोंने जैसा आधुनिक ग्रन्थ प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है, यथार्थमें यह ग्रन्थ वैसा आधुनिक

(१) An account of Bali by R. Friederich, in the Essay's Relating cochin-china (Trubuner's oriental Series) Vol. II. p. 74.

(२) Verhandelingen Van het Bataviasch Genootschap, Vols. xxii—xxiii. (1849—50)

नहीं है। करीब डेढ़ दो हजार वर्ष हुए, यह ग्रन्थ यव-
द्वीप लाया गया। उसके भी पहले यह पुराण सङ्कलित
हुआ था, इसमें सन्देह नहीं।

पण्डितवर विलसन, वेबर आदि पण्डितगण स्कन्द-
पुराणको पुराणके मध्य स्थान देना ही नहीं चाहते। उन-
के मतसे बहुखण्डात्मक यह ग्रन्थ नितान्त आधुनिक है।
किन्तु हम लोग इस ग्रन्थको किसी हालतसे अप्राचीन
नहीं मान सकते। सम्प्रति महामहोपाध्याय हरप्रसाद
शास्त्री महोदयने नेपालसे ७वीं शताब्दीका लिखा हुआ
स्कन्दपुराणीय नन्दिकेश्वर माहात्म्य का एक ग्रन्थ पाया
है। विश्वकोषकार्यालयमें भी ८२३ शकका लिखा हुआ
स्कन्दपुराणीय काशीखण्डका एक ग्रन्थ मौजूद है। इन
सब प्रमाणोंसे आज कलके प्रचलित मूल स्कन्दपुराणको
नितान्त आधुनिक नहीं मान सकते। स्कन्दपुराण जो
७वीं शताब्दीसे भी पहले प्रचलित हुआ था, इसमें
सन्देह नहीं।*

एतद्भिन्न शङ्कराचार्यकर्त्तृक मार्कण्डेयपुराणसे (१)
वचन, ७वीं शताब्दीमें बाणकर्त्तृक मार्कण्डेयपुराणके
देवीमाहात्म्यसे विषयसंग्रह और पवनप्रोक्तपुराणका
उल्लेख (२) बाणके समसामयिक मयूरभट्टकर्त्तृक
सौरपुराणसे सूर्यशतकका विवरणसंग्रह, उसी समय
ब्रह्मगुप्तसे विष्णुधर्मोत्तरपुराणके आधार पर ब्रह्मसिद्धान्त-
रचना, ११वीं शताब्दीमें अलवेरुणी कर्त्तृक आदित्य,
वायु, मत्स्य, विष्णु और विष्णुधर्मोत्तरपुराणसे प्रमाण
उद्धार, १२वीं शताब्दीमें गौड़ाधिप बल्लालसेन कर्त्तृक
उनके दानसागरमें ब्रह्ममत्स्य, मार्कण्डेय, अग्नि,
भविष्य, वराह, कूर्म और विष्णुधर्मोत्तरपुराण तथा
आद्य, कालिका, नन्दि, नारसिंह और शाम्बउपपुराणसे
नाना वचन प्रमाणादि द्वारा यह अवश्य स्वीकार करना
पड़ेगा, कि अध्यापक विलसन और अक्षयकुमारप्रमुख
पण्डितोंका मत ग्राह्य नहीं है। अष्टादशपुराण जो
शङ्कराचार्य, बाणभट्ट आदिसे भी पहले सङ्कलित हुए थे,
इसमें सन्देह नहीं। विष्णुपुराणोक्त अष्टादशपुराणका
उत्पत्ति-पारम्पर्य यदि प्रकृत हो, तो अन्ततः आपस्तम्ब-
धर्मसूत्र रचित होनेके पहले ही मूल ८ पुराण
सङ्कलित हुए थे, यह स्वीकार किया जा सकता है। ऐसा
होनेसे प्रधान प्रधान पुराणोंका प्रथम सङ्कलनकाल
वैदिकयुगके कुछ बाद ही पड़ता है।

अभी प्रश्न उठता है, कि जो अष्टादश महापुराण
अभी प्रचलित देखे जाते हैं, वे क्या वर्त्तमानरूपयुक्त
आद्योपान्त उस पूर्वतन कालमें भी प्रचलित थे? वर्त्त-
मानपुराणोंकी आलोचना करनेसे यह कभी स्वीकार
नहीं किया जा सकता।

प्रकृत पञ्चलक्षणाक्रान्त ब्रह्माण्ड, विष्णु और मत्स्य
पुराणमें भविष्यराजवंशप्रसङ्गमें जो सब ऐतिहासिक
कथाएं विवृत हुई हैं उन्हें पढ़नेसे उक्त मूल तीन पुराण-
को किसी हालतसे ६ठीं शताब्दीके पहलेका नहीं कह
सकते। उन तीनोंमें गुप्तसम्राट् और उनके समसाम-
यिक राजाओंका स्पष्ट प्रसङ्ग है। ६ठीं शताब्दीके मध्य-
भागमें गुप्तसम्राटोंका गौरवरवि अस्त हुआ था।
सम्भवतः इसी समय पुराणीय भविष्य-राजवंशाख्यान
लिखा गया होगा। विशेषतः तत्परवर्त्ती कालके राज-
वंशका प्रसङ्ग नहीं रहनेके कारण उस समय (६ठीं
शताब्दीमें) वह अंश रचा गया था, इसमें कोई सन्देह रहने
नहीं पाता। अब प्रश्न यह है, कि जब छठीं शताब्दीकी
कथा उन तीन पुराणोंमें मिलती है, तब किस प्रकार
कहा जायगा, कि उक्त पुराण आपस्तम्बधर्मसूत्र-रचित
होनेके पहले वैदिकयुगके निकटवर्त्ती समयमें सङ्क-
लित हुए थे? इसका उत्तर इस प्रकार है—

बालिद्वीपसे जो ब्रह्माण्डपुराण पाया गया है, उसमें
भविष्यराजवंशप्रसङ्ग नहीं है। उस ब्रह्माण्डपुराणमें
पाण्डुवंशीय जनमेजयके प्रपौत्र अधिसोमकृष्णका केवल
नाम तक पाया जाता है। पहले कहा जा चुका है, कि
५वीं शताब्दीमें भारतसे ब्रह्माण्डपुराण यवद्वीप गया था।
अतएव ५वीं शताब्दीमें जो ब्रह्माण्डपुराण प्रचलित
रहा, उसमें भविष्यराजवंशविषयक अंश नहीं था।
हम लोगोंको ब्रह्माण्डपुराणके जो सब प्राचीन ग्रन्थ मिले
हैं, उनमें भविष्यराजवंश-वर्णनके पहलेको इस प्रकार
श्लोकावली देखी जाती है—

* पीछे स्कन्दपुराणका विवरण द्रष्टव्य।

(१) Prof. Deussen's Das System Des Vendanta p. 36.

(२) बाणभट्टका श्रीहर्षचरित ९५ पृष्ठ।

"तस्य पुत्रः शतानीको बलवान् सत्यविक्रमः।
ततः सुतः शतानीकं विप्रास्तमभ्यषेचयत्॥
पुत्रोऽश्वमेधदत्तोऽभूत् शतानीकस्य वीर्यवान्।
पुत्रोऽश्वमेधदत्ताद्वै जातः परपुरञ्जयः॥
अधिसोमकृष्णो धर्मात्मा साम्प्रतोऽयं महायशाः।
यस्मिन् प्रशासति महीं युष्माभिरिदमाहृतम्॥
दुरापं दीर्घसत्रं वै त्रीणि वर्षाणि पुष्करम्।
वर्षद्वयं कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्यां द्विजोत्तमाः॥"
(ब्रह्माण्ड-उपसंहारपाद)

जनमेजयके पुत्र शतानीक बलवान् और सत्यविक्रम थे। अनन्तर ब्राह्मणोंने शतानीकको राजसिंहासन पर अभिषिक्त किया। शतानीकके अश्वमेधदत्त नामक एक वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हुए जो परपुरजयकारी धर्मात्मा अधिसोमकृष्ण थे। यही अभी पृथ्वी पर शासन करते हैं। आप लोगोंने इन्हींके शासनकालमें त्रिवर्षव्यापी पुष्करमें और दो वर्ष तक दृषद्वतीके किनारे कुरुक्षेत्रमें दीर्घ यज्ञका अनुष्ठान किया है।

ब्रह्माण्डपुराणका उक्त अंश पढ़नेसे मालूम होगा, कि जनमेजयके पौत्र अधिसोमकृष्णके समयमें ब्रह्माण्ड-पुराणका यह अंश रचा गया था, नहीं तो उसमें वर्ष-कालका प्रयोग रहेगा ही क्यों?

अभी विष्णुपुराणके भविष्यराजवंशका अंश छोड़ कर उसके कुछ पहलेका अंश देखिये—

"अभिमन्योरुत्तरायां परिक्षीणेषु कुरुष्वश्वत्थामप्रयुक्तब्रह्मास्त्रेण गर्भएव भस्मीकृतो भगवतः सकलसुरासुरवन्दितचरणयुगलस्यात्मेच्छाकारणमानुषरूपधारिणोऽनुभावात् पुनर्जीवितमवाप्य परिक्षित् यज्ञे॥ योऽयं साम्प्रतमेतद्भूमंडलं खण्डितायतिधर्मेण पालयतीति।" (विष्णुपु० ४।२०।१२-१३)

मत्स्यपुराणमें भी इस प्रकार लिखा है—

"अथाश्वमेधेन ततः शतानीकस्य वीर्यवान्।
यज्ञेऽधिसोमकृष्णाख्यः साम्प्रतं यो महायशाः॥
तस्मिन् शासति राष्ट्रन्तु युष्माभिरिदमाहृतम्।
दुरापं दीर्घसत्रं वै त्रीणि वर्षाणि पुष्करे।
वर्षद्वयं कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्यां द्विजोत्तमाः॥"
(मत्स्यपु० ५०।६६-६७)

इसके बाद ही मत्स्यपुराणमें भी भविष्यराजवंशका वर्णन है।

गरुड़पुराणमें भी लिखा है—

"सुतोऽनीकोऽभिरमितश्च परीक्षिदभिमन्युजः।
जनमेजयोऽस्य च सुतो भविष्यांश्च नृपान् शृणु॥"
(गरुड़ १४४।४२)

यहां जनमेजयके बाद भविष्यराजवंश वर्णित हुआ है। उपरोक्त प्रमाण द्वारा यह जाना जाता है, कि आदिविष्णुपुराण परीक्षित्के समय, गरुड़पुराण परीक्षित्पुत्र जनमेजयके बाद और मत्स्य तथा ब्रह्माण्डपुराण जनमेजयके पौत्र अधिसोमकृष्णके समयमें सङ्कलित हुआ था।

भविष्यराजवंशका अंश परवर्त्तीकालमें संयोजित हुआ है। आदिमपुराणोंके जो पञ्चलक्षण निर्दिष्ट हुए हैं, उनमें भविष्यराजवंश-कीर्त्तन जो पुराणका एक प्रधान अङ्ग है, यह बोध नहीं होता। इन पञ्चलक्षणके मध्य वंशानुचरित एक है। प्रथित राजा और उनके वंशधरोंके चरितवर्णनका नाम वंशानुचरित है। वंशानुचरितमें भविष्यवंश रहेगा, यह विष्णु, मत्स्य अथवा ब्रह्माण्डादि प्राचीनतम पुराणोंमें निर्दिष्ट नहीं हुआ है। आधुनिक श्रीमद्भागवतमें (१) वंशानुचरित शब्दका भूत, भविष्य और वर्त्तमान इन तीन कालोंका वंशाख्यान, ऐसा अर्थ स्थिर हुआ है (२)। किन्तु भागवतकी यह कथा सुप्राचीन नहीं है। वंशानुक्रमण और भावीकथन ये दोनों शब्द स्वतन्त्र हैं, कुमारिलके तन्त्रवार्त्तिकमें यह स्पष्ट लिखा है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि छठी शताब्दीके राजाओंका प्रसङ्ग पुराणके भविष्यराजवर्णनकी जगह लिखा है। असम्भव नहीं, कि भारतके पूर्वतन हिन्दूराजाओंने अपने अपने नाम और वंशको चिरस्मरणीय रखनेके लिये पौराणिकोंकी सहायतासे पुराणके मध्य अपना अपना वंशविवरण सन्निविष्ट कर दिया हो। यद्यपि यवद्वीपके प्रथम शताब्दीके ब्रह्माण्ड पुराणमें भविष्यराजवंशकी कथा नहीं है, तो भी उसी समयसे भविष्यराजवंशावली विभिन्न पुराणके मध्य जो सन्निविष्ट होती थी, सुप्रसिद्ध कुमारिलभट्टके तन्त्र-

(१) श्रीमद्भागवतका विवरण बादमें लिखा है।

(२) "राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः।
वंशानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये॥" (१२।७।१२)

परन्तु ... निषधाधिपति ...
... सोक, बृहद्रथ, सुक्रतु, निषधाधिपति ...

वार्त्तिकसे उसका प्रमाण मिलता है। भट्टकुमारिलने एक जगह लिखा है, 'पृथिवीविभाग, वंशानुक्रमण, देशकाल-परिमाण, भावीकथन इत्यादि पुराणके विषय हैं।' (१)

विभिन्न पुराण विभिन्न सम्प्रदायके हाथमें पड़ कर असली चीजमें नकली चीज डालनेके समान हो गया है। खादको जला कर शुद्ध सोना निकाल लेना साधारण बात नहीं है। अष्टादशपुराण प्रथमावस्थामें कैसा था, मत्स्य-पुराणमें उसका परिचय है। परवर्ती संशोधितरूपका परिचय नारदीयपुराणके उपविभागखण्डमें बहुत बढ़ा चढ़ा कर लिखा है (२), यथास्थान उसके परिचयादि लिखे जायंगे।

पुराणकी प्रामाणिकता।

सुप्रसिद्ध अक्षयकुमारदत्त महाशयने लिखा है, "पुराणमें सृष्टि, विशेष सृष्टि, वंशविवरण, मन्वन्तर और प्रधान प्रधान वंशोद्भव व्यक्तियोंके चरित्रविषयका वृत्तान्त सन्निवेशित था। धर्मसंक्रान्त क्रियाकलापादिका उपदेश देना इसके एक भी विषयका उद्देश्य नहीं है। किन्तु आज कलके प्रचलित पुराण और उपपुराण देव-देवीके माहात्म्यकथन, देवार्चना, देवोत्सव और व्रत-नियमादिके विवरणसे ही परिपूर्ण हैं। उनमें पूर्वोक्त पञ्चलक्षणके अन्तर्गत जो जो विषय मिलते हैं, वे आनु-षङ्गिकमात्र हैं। यदि धर्मोपदेशदान इदानीन्तन प्रच-लित पुराणकी तरह पूर्वतम पुराणका भी उद्देश्य रहता, तो वह सूतजातिका व्यवसाय न हो कर अधुनातन ब्राह्मणकथककी तरह षट्कर्मशाली ब्राह्मणवर्णको ही वृत्तिविशेषके जैसा व्यवस्थित होता। ऋषि, मुनि और अपर साधारण ब्राह्मणोंको धर्मशिक्षादान सूतादि निकृष्टजातिका व्यवसाय होना कभी भी सम्भव नहीं है।" (३)

संस्कृतविद् मुइरसाहबने आलोचना करके कहा है,—"इतिहास और पुराणको प्राचीनतम संस्कृत ग्रन्थ कभी भी नहीं मान सकते। कारण, जब ये सब ग्रन्थ सङ्कलित हुए थे, उसके पहले अनेक प्राचीन ग्रन्थ और गाथा प्रचलित थी, यह सभी ग्रन्थोंसे जाना जाता है।" "इतिहास और पुराणसंहितासे वैदिक मन्त्र अति प्राचीन हैं। वेदसे भारतके अति प्राचीन इतिवृत्तका प्रकृत ज्ञानलाभ होता है। किन्तु इतिहास और पुराण-संग्रहमें अनेक प्रकृत प्राचीन प्रवादमाला और ऐति-हासिकतत्त्वका समावेश रहने पर भी आधुनिक लेखकों-के इच्छानुसार उनमें अनेक कल्पित कथाएं सन्निविष्ट हुई हैं। किन्तु वेदमें ऐसी घटना नहीं है। वेदमें प्राचीनतम कालसे ले कर आज तक कोई हेर फेर नहीं हुआ है।"*

उपरोक्त प्रमाण देखनेसे क्या पुराणोंको प्रामाणिक ग्रन्थ मान सकते हैं? क्या यथार्थमें पुराण उपदेशमूलक ग्रन्थ नहीं है? क्या प्राचीनतम पुराणोंकी प्रकृत धर्म-ग्रन्थके हिसाबसे रचना नहीं हुई है? तब फिर वृहदा-रण्यक, छान्दोग्य आदि उपनिषदोंमें पुराणको किस प्रकार पञ्चमवेद माना गया? मनुसंहितामें साफ साफ लिखा है, कि—श्राद्धकालमें ब्राह्मणोंको पुराण सुनाना चाहिये। पुराणको यदि धर्म वा उपदेशमूलक ग्रन्थमें गिनती नहीं होती, तो उसमें ऐसा प्रसङ्ग क्यों आया?

पुराण सूतमुखनिर्गलित होने पर भी प्रामाणिक और अष्टादशविद्याके अन्तर्गत हैं। भट्टकुमारिलने पुराणोंकी प्रामाणिकता स्वीकार की है। भगवान् शङ्कराचार्यने इस विषयमें जो आलोचना की है, वह इस प्रकार है,—

"इतिहासपुराणमपि व्याख्यातेन मार्गेण सम्भवन् मन्त्रार्थवादमूलत्वात् प्रभवति देवताविग्रहादि प्रपञ्चयितुम्। प्रत्यक्षमूलमपि सम्भवति। भवति हि अस्माकमप्रत्यक्षमपि चिरन्तनानां प्रत्यक्षम्। तथा च व्यासादयो देवताभिः प्रत्यक्षं व्यवहरन्तीति स्मर्यते। यस्तु ब्रूयादिदानीन्तनानामिव पूर्वेषामपि नास्ति देवादिभिर्व्यवहर्तुं सामर्थ्यमिति स जगद्वैचित्र्यं प्रतिषेधत्। इदानीमिव च नान्यदाऽपि सार्वभौमः क्षत्रियोऽस्तीति ब्रूयात्। ततश्च राजसूयादिचोदना उपरुन्ध्यात्। इदानी-मिव च कालान्तरेऽप्यव्यवस्थितप्रायान् वर्णाश्रमधर्मान् प्रति-

(१) तन्त्रवार्त्तिक ७९ पृष्ठ (वाराणसीसे प्रकाशित)।

(२) परवर्त्तीविवरण द्रष्टव्य।

(३) उपासकसम्प्रदाय २य भाग १७० पृः।

* Muir's Sanskrit Texts.

आनीत ततश्च व्यवस्थाविधायि शास्त्रमनर्थकं कुर्यात्, तस्माद्धर्मोत्कर्षवशाच्चिरन्तना देवादिभिः प्रत्यक्षं व्यवजह्रुरिति श्लिष्यते। अपि च स्मरन्ति स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोग इत्यादि। योगोऽपणिमाद्यैश्वर्यप्राप्तिफलकः स्मर्यमाणो न शक्यते साहसमात्रेण प्रत्याख्यातुम्। श्रुतिश्च योगमाहात्म्यं प्रत्याख्यापयति। पृथिव्यप्तेजोऽनिलखेसमुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते। न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरमिति। ऋषीणामपि मन्त्रब्राह्मणदर्शिनां सामर्थ्यं नास्मदीयेन सामर्थ्येनोपमातुं युक्तं, तस्मात् समूलमितिहासपुराणं।"

(शारीरकभाष्य १।३।३३)

इतिहास और पुराण जिस भावमें व्याख्यात हुआ है, मन्त्र भी उसी भावमें अर्थवादमूलकको जैसा देवताविग्रहादिके प्रपञ्चनिर्णयमें समर्थ है। यह भी सम्भवपर है, कि वे सब प्रत्यक्षमूलक हैं। हम लोगोंके पक्षमें अप्रत्यक्ष होने पर भी प्राचीनोंके प्रत्यक्ष हुए थे। इसी कारण स्मृतिमें कहा गया है, कि व्यास आदि देवताओंके साथ प्रत्यक्षरूपमें व्यवहार किया था। जो कहते हैं, कि आज कलके लोगोंकी तरह प्राचीनोंको भी देवताओंके साथ व्यवहारमें सामर्थ्य न थी, वे जगत्‌वैचित्र्यका प्रतिषेध करेंगे और कहेंगे, कि अभी जिस प्रकार कोई भी क्षत्रिय सार्वभौम नहीं है उसी प्रकार दूसरे समय भी कोई सार्वभौम राजा न था। यही समझ कर कोई राजसूय-यज्ञादिका शास्त्रवाक्य स्वीकार नहीं करेंगे और अभी वर्णाश्रमकी जैसी अव्यवस्था है, पहले वैसी ही थी, यह समझ कर वे व्यवस्थाविधायी शास्त्रको भी अनर्थ समझ सकते हैं। यथार्थमें धर्मोत्कर्षके वशसे प्राचीन लोग देवताओंके साथ प्रत्यक्ष व्यवहार करते थे और इसीलिये स्मृतिमें कहा गया है, कि 'स्वाध्यायादि द्वारा ही देवताके साथ सम्प्रयोग होता है इत्यादि।' इस प्रकार जब स्मृतिमें योगको ही अणिमादि ऐश्वर्यप्राप्तिफलक बतलाया गया है, तब यह उक्ति साहसमात्र होनेके कारण प्रत्याख्यानयोग्य नहीं है। श्रुतिमें भी योगमाहात्म्य इस प्रकार है—"पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश समुत्थित पञ्चात्मक योग गुण प्रवृत्त है और योगप्राप्त व्यक्तिके निमित्त शरीर है, उसके रोग, जरा वा मृत्यु नहीं है।" इस प्रकार मन्त्रब्राह्मणदर्शी ऋषियोंकी सामर्थ्यके साथ हम लोगोंकी सामर्थ्यकी तुलना करना युक्तियुक्त नहीं है। इसी कारण इतिहास और पुराण समूलक अर्थात् प्रामाणिक हैं।

साम्प्रदायिक ग्रन्थ।

आदि पुराणसंहिता सार्वजनिक ग्रन्थ होने पर भी वर्त्तमान पुराण पढ़नेसे वह फिर वैसा प्रतीत नहीं होता। प्रत्येक पुराण ही मानो किसी विशेष उद्देश्यसाधनके लिये रचा गया है, नहीं तो जब हम लोग देखते हैं, कि एक पुराणका मूल विषय सभी पुराणोंमें वर्त्तमान है, जब प्रत्येक मूल पुराणका ही उद्देश्य पञ्च प्रकारके विषयकी वर्णना है, तब ये सब पुराण क्यों रचे गये?

हम लोगोंका विश्वास है, कि पञ्च लक्षण सभी पुराणोंका मुख्य उद्देश्य होने पर भी एक एक पुराणमें एक एक विषयका विस्तृतभावसे वर्णन करना ही प्रथमतः सार्वक अष्टादश पुराणोंका उद्देश्य था। केवल इतना ही नहीं, विभिन्न पुराणमें विभिन्न सम्प्रदायका प्रभाव भी लक्षित होता है। किसी किसी सम्प्रदायका उद्देश्य साधन करनेके लिये कोई कोई पुराण रचा गया है। पुराणकी नाममात्र आलोचना करनेसे ही उसका यथेष्ट प्रमाण मिलता है।

पहले कहा जा चुका है, कि धर्मसूत्ररचनाके समय अर्थात् वैदिक युगके अन्तमें अष्टादश पुराण सङ्कलित हुए थे। ब्राह्म, शैव, वैष्णव, भागवत आदि पुराणोंके नाम पढ़नेसे वे सब पुराण शिवादि सम्प्रदायके ग्रन्थ समझे जाते हैं। अभी प्रश्न उठता है, कि उस प्राचीनतम धर्मसूत्रयुगमें क्या वे सब नाना सम्प्रदाय प्रबल हो उठे थे? उनके निजसम्प्रदायके मतकी घोषणा करनेके लिये ही क्या इन सब पुराणोंकी सृष्टि हुई?

धर्मसूत्र ठीक किस समय रचे गये, उसे जाननेका कोई उपाय नहीं है। पर हां, जैन और बौद्ध धर्मकी उत्पत्तिके पहले ये सब धर्मग्रन्थ प्रचलित हुए, इसमें सन्देह नहीं। ७७७ ई०में जैनधर्मप्रचारक पार्श्वनाथ स्वामीका निर्वाण हुआ। इनकी जीवनीमें ब्रह्मा, शिव, विष्णु आदि देवताओंके उपासकका नाम पाया

जाता है। इसी प्रकार बौद्धधर्म प्रवर्त्तक शाक्य बुद्धकी जीवनीमें भी शिव, ब्रह्मा, नारायण आदिके उपासकका प्रसङ्ग है। ईसा-जन्मके पहले ३री शताब्दीमें रचित ललितविस्तार और उससे भी पहले रचित पालि बौद्ध-ग्रन्थोंमें भी शिव ब्रह्मादि हिन्दू देवताओंका नामोल्लेख है। जैनोंके प्राचीन अङ्गमें भी ऐसा ही पाया जाता है। इन सब प्रमाणोंसे यह कह सकते हैं, कि जैन और बौद्धधर्मकी उत्पत्तिके पहले अन्ततः खृष्टपूर्व ८वीं शताब्दीमें शिव, ब्रह्मा आदि देवोपासक वर्त्तमान थे। यहां तक कि आनाम और कम्बोडियासे जो सब प्राचीन हिन्दू-शिलालिपि आविष्कृत हुई हैं उनसे स्पष्ट प्रमाण मिलता है, कि खृष्टपूर्व पहली शताब्दीके भी बहुत पहले उस सुदूर पूर्व उपद्वीपके पूर्वप्रान्तमें शिव ब्रह्मादिकी उपासना प्रचलित थी।

एक प्रकारसे हम लोग कह सकते हैं, कि ईसा-जन्मके पहले ८वीं शताब्दीमें शिवब्रह्मादिकी उपासना भारतवर्षमें प्रचलित थी और प्रत्येकदेवके उपासक एक एक विभिन्न सम्प्रदाययुक्त थे, यह भी असम्भव नहीं। सुतरां उन सब सम्प्रदायोंके मतपरिपोषक पुराण उस समय प्रचलित हो सकते हैं।

पुराणमें अवतारवाद।

अवतारवाद पुराणका एक प्रधान अङ्ग है। प्रायः सभी पुराणोंमें अवतारप्रसङ्ग है। शैवमतपरिपोषक पुराणमें शिवके नाना अवतारकी वर्णना है। इसी प्रकार वैष्णवपुराणोंमें विष्णुका नाना अवतार कीर्त्तित हुआ है। बहुतोंका विश्वास है, कि अवतारवाद अधिक पुरातन नहीं है। जिस समय बुद्धदेव हिन्दू-समाजमें देवताके जैसे गण्य हुए, उसी समय अवतारवाद प्रवर्त्तित हुआ है। दशावतारके सम्बन्धमें यह बात बहुत कुछ लग सकती है। किन्तु प्रकृत अवतारवादकी सूचना, उसके भी बहुत पहले वैदिक ग्रन्थमें ही देखी जाती है।

शतपथब्राह्मण (१।८।१।१०)में मत्स्यावतार, तैत्तिरीय आरण्यक (१।२३।१) और शतपथब्राह्मण (७।३।३।५)-में कूर्मावतारका प्रसङ्ग, तैत्तिरीयसंहिता (७।१।५।१), तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।१।३।५) और शतपथ-ब्राह्मण (१४।१।२।११)में वराहावतारका विषय, कठक संहिता, (१।२२।१७) और शतपथब्राह्मण (१।२।५।१-७)-में वामन अवतार, ऐतरेय-ब्राह्मणमें रामभार्गवेय, छान्दोग्योपनिषद् (३।१७)-में देवकी-पुत्र कृष्ण और तैत्तिरीय आरण्यक (१०।१।६)-में वासुदेव श्रीकृष्णका विवरण है। अधिकांश वैदिक ग्रन्थोंके मतसे कूर्मवराहादि जिन अवतारोंकी कथा लिखी है, वह ब्रह्माके अवतार हैं। किन्तु वैष्णवीय पुराणमें वही विष्णुका अवतार कह कर वर्णित हुआ है।

फिर ब्रह्माण्डादि शैवपुराणमें शिवके भी अनेक अवतार माने गये हैं। इसी प्रकार भविष्यादि किसी किसी और पुराणमें सूर्यका अवतारप्रसङ्ग नहीं छोड़ा गया है। जिस प्रकार इधर ब्राह्म, वैष्णव, शैव और सौरगणने अपने अपने उपास्य देवताओंके महिमाघोषणार्थ उनके नाना अवतारोंकी कथा कीर्त्तन की है, उसी प्रकार मार्कण्डेयादि शाक्त पुराणमें भी देवी अवतारके प्रसङ्गकी कमी नहीं है।

पाश्चात्य पण्डितों तथा देशीय पण्डितोंमेंसे किसी किसीका विश्वास है, कि वैदिक ब्रह्मोपासना ही सर्व प्राचीन है; विष्णु, शिवादिकी उपासना वैसी प्राचीन नहीं है। इसी कारण वैदिक ग्रन्थमें विष्णु और शिवकी उपासनाका कहीं भी वर्णन नहीं है। वैदिक ग्रन्थमें ब्रह्माको ही नारायण माना गया है, किन्तु पश्चात् अप्राचीनतरग्रन्थमें वे ही विष्णुकी नामावलीके मध्य गृहीत हुए हैं।

वेदमें विष्णुका प्रसंग।

ब्रह्म ही आर्यसन्तान सन्ततिके प्राचीनतर उपास्य देवता हैं, इसी कारण विष्णु, शिव आदिकी उपासना उतनी अप्राचीन नहीं है।

ऋक संहिताके १।२२।१६-२१, १।८५।७, १।९०।५-९, १।१५४।२-६, १।१५५।१-६, १।१५६।१-५, १।१६४।३६, १।१८६।१०, २।१।३, २।२२।१, ३।६।४, ३।५४।१४, ४।५५।१०, ४।२।४, ४।३।७, ४।१८।११, ८।८९।१२, इत्यादि सैकड़ों मन्त्रमें विष्णुका प्रसङ्ग देखनेमें आता है। सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेदमें भी विष्णुमाहात्म्यप्रकाशक मन्त्रोंका अभाव नहीं है।

केवल चतुर्वेदके संहिताभागसे ही यह प्रमाणित किया जाता है, कि विष्णु भारतीय आर्योंके एक अति प्राचीन उपास्य देवता हैं। वेदका ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्के समय ब्रह्मकी उपासना बहुत कुछ प्रबल हो उठी थी, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु उनके भी बहुत पहले जब वेदकी संहिताका प्रचार हुआ उस समय विष्णुका आर्य ऋषियोंके हृदयमें जैसा उच्चासन था, वैसा ब्रह्मका था या नहीं इसमें सन्देह है।

वेदमें महादेवका प्रसंग।

ऋक्संहितामें महादेव रुद्र नामसे प्रसिद्ध हैं। ऋक्, यजुः, साम और अथर्व इन चार वेदसंहिताओंमें रुद्रकी स्तुति देखी जाती है। इन सब स्तुतियोंके मध्य यजुर्वेदके अन्तर्गत रुद्री (१) वा रुद्राध्याय विशेष प्रसिद्ध है। यद्यपि अधुनातन वेदवित् पाश्चात्य पण्डितगण वर्त्तमान महादेव और वैदिक रुद्रको एक नहीं मानते, तो भी वाजसनेयसंहितामें शतरुद्रोंके मध्य जब शिव, गिरिश, पशुपति, नीलग्रीव, सितिकण्ठ, भव, शर्व, महादेव इत्यादि नाम देखनेमें आते हैं, तब फिर रुद्रदेवको महादेव माननेमें कोई आपत्ति नहीं। विशेषतः अथर्वसंहितामें 'महादेव' (८।७।७) 'भव' (६।८।३।१), 'पशुपति' (८।२।५) आदि नाम देखनेसे भी क्या कोई सन्देह रहने पाता? शतपथब्राह्मण (६।१।३।७-१८) में तथा शाङ्खायनब्राह्मण (६।१।१-८) में रुद्रदेवकी उत्पत्ति जिस भावमें वर्णित हुई है, आधुनिक मार्कण्डेयपुराण (५२।२) और विष्णुपुराणको एक साथ मिला कर यदि देखा जाय, तो वैदिक रुद्र और लौकिक रुद्रमें कोई विशेष पृथकता नहीं होती।

वेदमें सूर्यका प्रसङ्ग।

विष्णु और रुद्रकी उपासना जैसी अति प्राचीन है, सूर्य वा आदित्यकी उपासना भी वैसी ही प्राचीन है। ऋक्, यजुः, साम और अथर्व इन चारों संहितामें कई जगह आदित्यदेवका स्तव देखा जाता है। सुतरां इस सम्बन्धमें अधिक आलोचना निष्प्रयोजन है।

सूर्य देखो।

वेदमें शक्तिका प्रसङ्ग।

जो लोग शिव दुर्गाका नाम सुन कर ही उन्हें आधुनिक कालके देव और देवी समझते हैं उन्हें यह जान लेना उचित है, कि दुर्गा वा शक्तिकी उपासना यथार्थमें आधुनिक नहीं है। दुर्गा देखो। वाजसनेयसंहितामें 'अम्बिका' (३।५७) और 'शिवा' (१६।१), तलवकार उपनिषद् (३।११-१२,४।१-२) में ब्रह्मविद्यारूपिणी 'उमा हैमवती', तैत्तिरीय आरण्यकमें (१० प्र) 'कन्याकुमारी' 'कात्यायनी', 'दुर्गी', इत्यादि प्रसङ्ग पढ़नेसे शिवसीमन्तिनी दुर्गाकी ही कथा याद आ जाती है। उसी प्राचीन समयसे ब्रह्मस्वरूपिणी आद्याशक्तिके पूजनकी सूचना होती थी, यह वैदिक ग्रन्थ पढ़नेसे ही मालूम होता है।

वेद और पुराणमें देवतत्त्व।

वैदिक ग्रन्थमें जिसकी सूचना है, पुराणमें उसकी विस्तृति और परिणति देखी जाती है। उपाख्यानकी ऐसी विस्तृति और परिणति देखनेसे ही बहुतेरे पुराणको आधुनिक समझने लगते हैं। पूर्व पश्चोयगणका विश्वास था कि, "वैदिक ग्रन्थमें देवतत्त्वका जैसा आभास है, पुराणमें सम्पूर्ण विकृत हो कर वह विपुल आयतनका हो गया है। फलतः पूर्वतन देवताविशेषके अनेकानेक उपाख्यानोंको बादमें रूपान्तरित और परिवर्द्धित करके पौराणिक विष्णुके महिमाप्रकाश-उद्देशसे नियोजित किया गया है। यह हिन्दूशास्त्रमें कहीं जगह देदीप्यमान देखनेमें आता है। भक्त लोगोंने दूसरेके दिये हुए सुशोभन अलङ्कारको चुरा कर अपने अपने इष्टदेवकी मनोमत सज्जा प्रस्तुत कर दी है।"

उन्होंने जिस परिवर्त्तन और परिवर्द्धनको पुराणमें लक्ष्य किया है, हम लोग वैदिक ग्रन्थमें भी परिवर्त्तन और परिवर्द्धनके अनेक प्रमाण पाते हैं। यहां इसके लिये केवल एक ही प्रमाण पर्याप्त है—

ऋक्संहितामें—

"इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं।
समूढमस्य पांसुरे॥" (१।२२।१७)

---

(१) तैत्तिरीय और वाजसनेय इन दोनों ही संहितामें रुद्राध्याय है।

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥" (१।२२।१८)

विष्णु ने इस जगत् पर तीन पद विक्षेप किये थे ; सारा संसार उनके धूलियुक्त पद द्वारा व्याप्त है । दुर्धर्ष और समस्त जगत्के रक्षाकारी विष्णुने धर्मरक्षणार्थ पृथिवी आदि स्थानों पर तीन पद विक्षेप किये थे ।

निरुक्तकारके उक्त दो ऋकोंको सौरकीर्त्ति रूप रूपक व्याख्या करनेमें प्रयासी होने पर भी शतपथब्राह्मणमें जो स्पष्ट उपाख्यान है, वह इस प्रकार है—

"देवाश्च वा असुराश्च उभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे । ततो देवा अनुव्यमिवासुरथहासुरा मेनिरेऽस्माकमेवेदं खलु भुवनमिति ॥१॥

ते होचुर्हन्तेमां पृथिवीं विभजामहैतां विभज्योपजीवा मेति । तामौक्ष्णैश्चर्मभिः पश्चात्प्राञ्चो विभजमाना अभीयुः ॥२॥

तद्वै देवाः शुश्रुवुर्विभजन्ते ह वा इमामसुराः पृथिवींप्रेत तदेष्यामो यत्रेमामसुरा विभजन्ते । के ततः स्याम यदस्यै न भजेमहीति । ते यज्ञमेव विष्णुं पुरस्कृत्येयुः ॥३॥

ते होचुः अनुनोऽस्यां पृथिव्यामाभजतास्त्वेव नोऽप्यस्यां भाग इति । तेऽसुरा असूयन्त इवोचुर्यावदेवैष विष्णुरभिशेते तावद्वोऽदद्म इति ॥४॥

वामनो हि विष्णुरास । तद्देवा न जिहीडिरे महद्वै नोऽदुर्ये नो यज्ञसम्मितमदुरिति ॥५॥

ते प्राञ्चं विष्णुं निपाद्य छन्दोभिरभितः पर्यगृह्णन् गायत्रेण त्वाच्छन्दसा परिगृह्णामीति दक्षिणतस्त्रैष्टुभेन त्वाच्छन्दसा परिगृह्णामीति पश्चाज्जागतेन त्वाच्छन्दसा परिगृह्णामीत्युत्तरतः ॥६॥

तं छन्दोभिरभितः परिगृह्य अग्निं पुरस्तात् समाधाय तेनार्चन्तः श्राम्यन्तश्चेरुस्तेनेमां सर्वां पृथिवीं समविन्दन्त ॥"

(शतपथ० १।२।५।७)

देवता और असुर दोनों प्रजापतिकी सन्तान हैं । उन्होंने आपसमें विवाद किया था जिसमें देवताको हीनहार हुई थी । असुरोंने समझा, कि यह पृथिवी निश्चय ही हम लोगोंकी है । पीछे उन्होंने कहा था, 'आवो ! हम लोग पृथिवीको आपसमें बांट लें और उसीसे जीविकानिर्वाह करें ।' वे वृषचर्मसे पूर्व-पश्चिममें विभाग करने लगे । यह सुन कर देवताओंने आपसमें कहा, 'असुरगण पृथिवीका विभाग कर रहे हैं, हम लोग भी उसी स्थान पर चलें ।' देवगण यज्ञरूपी विष्णुको आगे करके उस स्थान पर पहुंचे और असुरोंसे बोले, 'हम लोगोंको भी पृथिवीका भाग दो ।' इस पर असुरोंने कहा, 'विष्णु जहां तक स्थान छेंक सकेंगे, उतना ही स्थान आप लोगोंको मिलेगा ।' विष्णु वामन थे । देवताओंने यह बात स्वीकार कर ली । ये लोग आपसमें कहने लगे, कि असुरोंने हम लोगोंको यज्ञपरिमित स्थान दान कर दिया है, सुतरां यही यथेष्ट है । पीछे उन्होंने (देवताओंने) विष्णुको पूर्वकी ओर रख कर छन्द परिवृत किया और कहा, 'तुमको दक्षिणकी ओर गायत्रीछन्दसे, पश्चिमकी ओर त्रिष्टुभछन्दसे और उत्तरकी ओर जगतीछन्दसे हम लोग परिवेष्टित करते हैं ।' इस प्रकार उन्हें चारों ओर छन्दसे परिवेष्टित करके उन्होंने अग्निको पूर्वकी ओर प्रतिष्ठित किया । अनन्तर वे उनका पूजन और श्रम करते हुए आगे बढ़ने लगे । इस पर उन्होंने समस्त भुवन अपने अधिकारमें कर लिया ।

पाश्चात्य पण्डितोंका विश्वास है, कि उक्त सौरकीर्त्ति और यज्ञमहिमाप्रतिपादक वैदिक उपाख्यानसे वैकुण्ठवासी विष्णुकी बल-छलना और वामनावतार-विषयक क्या ही अद्भुत उपाख्यानकी सृष्टि हुई है !

सभी पौराणिकगण यह स्वीकार करते हैं, कि पुराणोक्त अधिकांश उपाख्यान रूपक है । ऊपरमें जो वैदिक प्रसङ्ग उद्धृत हुआ है, वामनपुराणमें उसी उपाख्यानका त्रिविक्रम नामक वामन-अवतार प्रसङ्गमें विस्तृतभावमें वर्णन किया गया है । वामनपुराणसे जाना जाता है, कि भगवान् विष्णुने एकाधिकबार वामनरूप धारण किया था । त्रिविक्रम नामक वामन अवतारमें उन्होंने धुन्धु असुरको छल कर त्रिपादसे समस्त भुवन अधिकार कर लिया था । विस्तृतभावमें किसी आख्यायिकाका कीर्त्तन करना वेदका उद्देश्य नहीं है । वेदमें जो कथा अति संक्षेपमें किसी विशेष उद्देश्य पर लिखी है, पुराणमें वही कथा विस्तृत आख्यायिकारूपमें वर्णित हुई है । पौराणिक कवियोंके हाथसे जनसाधारणके कौतूहल उत्पादनके लिये छोटा विषय बड़ी आख्यायिकामें परिणत हो गया हो यह कोई बड़ी बात नहीं है । इस बड़ी

आख्यायिकामें अनेक अवान्तर कथाएँ आवेंगी, यह भी कुछ असम्भव नहीं है। यह भी सम्भव है, कि वेदव्याससे वेद संगृहीत होनेके पहले भी अनेक उपाख्यान आर्यों की जबानीसे चले आ रहे थे। इन सब उपाख्यानोंका आभासमात्र वेदमें देखा जाता है। कारण, वेद उपाख्यानमूलक ग्रन्थ नहीं है। वेदमें कहीं कहीं उदाहरणस्वरूप उपाख्यान दिया गया है। किन्तु पुराणमें उन सब उपाख्यानोंको एक साथ समावेश करनेकी चेष्टा हुई थी, इसी कारण वेदकी अपेक्षा पुराणमें आख्यायिकाकी भरमार देखी जाती है। विशेषतः अनेक कालके एक रूपक उपाख्यानको बहुत दिन बाद लिपिबद्ध करनेमें जो अनेक काल्पनिक कथाओंकी जरूरत पड़ती है, यह स्वतःसिद्ध है। वेदके एक छोटे प्रसङ्गने पुराणमें एक बड़ा रूप धारण किया है। इसी कारण हम लोग वेद और पुराणमें सामान्य वैलक्षण्य देखते हैं। यह जान कर हम शेषोक्त आख्यायिकाको अद्भुत उपाख्यान वा नितान्त आधुनिक पदार्थ समझ कर उसका परित्याग नहीं कर सकते।

विभिन्न सम्प्रदायके विभिन्न पुराण।

जब यह देखा जाता है, कि अति प्राचीन कालसे ही नाना देवदेवियोंके उपासकको उत्पत्ति हुई है, तब उसके साथ साथ जो पृथक् पृथक् देवोपासक विभिन्न धर्म-सम्प्रदायको सूचनासे आरम्भ हुआ है, इस देशके धर्मनैतिक इतिहास पढ़नेसे उसका आभास मिलता है। मैं जिसे प्राणके समान चाहता हूं, उसे दूसरे भी उसी प्रकार चाहें, ऐसी किसको इच्छा नहीं होती? जिस ऋषिने जिस देवकी आराधनासे अभीष्ट लाभ किया है, वे जो उनकी भक्ति करेंगे—प्राणके समान मानेंगे, यह स्वभावसिद्ध है। दूसरे भी जिससे उनके इष्टदेवकी उसी प्रकार भक्ति-श्रद्धा करें, अपने समान देखें, यह भक्तमात्रका ही हृदयका अभिलाष है। इसी प्रकार भक्ति वा प्रेमसे एक ऋषि वा उनके अनुवर्त्ती शिष्य सम्प्रदाय द्वारा एक एक देवकी उपासना प्रचलित हुई है। इस प्रकार भिन्न भिन्न देवभक्त ऋषियोंके अनुगामी शिष्यसम्प्रदायसे परवर्त्ती कालमें नाना धर्म-सम्प्रदायकी सृष्टि हुई है।

सम्प्रदाय शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

वेद साधारणकी सम्पत्ति नहीं है। ऋत्विक, होता, उद्गाता आदि विभिन्न याज्ञिकोंकी उपजीव्य सम्पत्ति है। किन्तु इतिहास और पुराण नरनारी साधारणको सम्पत्ति है। प्राचीन आख्यान, उपाख्यानादि वर्णनाच्छलसे नाना विषयोंका उपदेश देनेके लिये पुराणकी सृष्टि हुई है। इसी कारण ब्रह्माण्ड पुराणमें लिखा है—

"यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
न चेत् पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः॥
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥
यस्मात् पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत्स्मृतं।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥"

(ब्रह्माण्डपु॰ प्रक्रियापाद १ अ॰)

जिन ब्राह्मणोंने अङ्ग और उपनिषद् समेत चारों वेदका अध्ययन करके भी पुराणका अध्ययन नहीं किया, वे विचक्षण नहीं हो सकते। कारण, इतिहास और पुराणमें ही वेद उपबृंहित है अर्थात् इतिहास और पुराणने ही वेदका विस्तार किया है। यहां तक कि पुराणादि ज्ञानविहीन अल्पज्ञ व्यक्तिसे ही वेद भय खाते हैं, क्योंकि ऐसे ही व्यक्ति वेदकी अवमानना करते हैं। यह अति प्राचीन और वेदका निरुक्तस्वरूप है, इस कारण इसका नाम 'पुराण' पड़ा है। जो यह पुराण जानते हैं, उनके मानो सभी पाप दूर हो गये हैं।

यथार्थमें विभिन्न सम्प्रदायने अपने अपने इष्टदेवकी पूजन और माहात्म्य-प्रचारके उद्देश्यसे वेद विभिन्न उपाख्यानोंको अपने अपने मतानुयायी करके उनका प्रचार किया है। इसी कारण मालूम पड़ता है, कि प्राचीन आख्यान सभी पुराणोंमें ठीक एकसे नहीं हैं।

विभिन्न पुराण जो विभिन्न सम्प्रदायका धर्मग्रन्थ समझा जाता था, इस सम्बन्धमें अनेक प्रमाण भी मिलते हैं। बालिद्वीपमें हिन्दूधर्मावलम्बी जो सब ब्राह्मण-पण्डित रहते हैं, वे सभी शैव हैं। वे शिवमाहात्म्य-प्रकाशक ब्रह्माण्डपुराणको अति गुह्य शास्त्र समझ कर उसकी रक्षा करते तथा ब्राह्मण छोड़ कर और किसी दूसरी जातिको यह पुराण देखने नहीं देते हैं। उनका विश्वास है, कि केवल यही एक ब्रह्माण्डपुराण है, दूसरा पुराण है ही नहीं। ब्रह्माण्डपुराण छोड़ कर और जो १७

महापुराण हैं, इस ओर उनका ध्यान नहीं है अथवा दूसरे पुराणका नाम भी उन्होंने कभी सुना नहीं है। कहनेका तात्पर्य यह, कि यदि पूर्वकालमें सभी सम्प्रदाय सभी पुराणोंका अभ्यास करते थे, तो यवद्वीपागत शैव ब्राह्मण निश्चय ही दूसरे २ पुराणोंके विषय जान सकते थे? पूर्वकालमें प्रत्येक शाखा वा सम्प्रदाय अपनी शाखा वा सम्प्रदायके आलोच्य शास्त्रादिको ही आजीवन अध्ययन और तदनुसार क्रियादिका अनुष्ठान करते थे। दूसरी शाखा वा सम्प्रदायके ग्रन्थको वे आलोच्य वा अवश्य पाठ्य नहीं समझते थे। इसी कारण यवद्वीपगामी भारतीय ब्राह्मणगण दूसरे पुराणको अपने साथ नहीं ले गये। वे लोग शैव थे, इस कारण शिवमाहात्म्य-प्रधान ब्रह्माण्डपुराणको अपने साथ ले गये थे। यथार्थमें विष्णु, मत्स्य आदि पुराणोंमें जिस प्रकार अष्टादश पुराणका नामोल्लेख है, ब्रह्माण्डपुराणके मध्य उस प्रकार ब्रह्माण्ड छोड़ कर शेष सत्तरह पुराणोंके नाम भी देखनेमें नहीं आते। इस हिसाबसे ५वीं शताब्दीके पहले विष्णु, मत्स्यादि पुराणोंमें अपरापर पुराणोंका उल्लेख था वा नहीं, सन्देह है।

एक पुराणमें जो अष्टादश पुराणोंका उल्लेख है, वह परवर्त्तीकालकी योजना है, इसमें सन्देह नहीं।

विभिन्न शास्त्र जो विभिन्न सम्प्रदायकी सम्पत्ति है, भविष्य पुराणसे उसका बहुत कुछ आभास प्राप्त होता है,—

"जयोपजीवी यो विप्रः स महागुरुरुच्यते।
अष्टादश-पुराणानि रामस्य चरितं तथा॥
विष्णुधर्मादित्यधर्माः शिवधर्माश्च भारत।
कार्ष्णं वेदं पञ्चमन्तु यन्महाभारतं स्मृतं॥
सौराश्च धर्मा राजेन्द्र नारदोक्ता महीपते॥
जयेति नाम एतेषां प्रवदन्ति मनोषिणः॥"

(भविष्य० २ अ०)

जय जिसकी उपजीविका है, उस ब्राह्मणको महागुरु कहते हैं। हे भारत! अष्टादश पुराण और रामचरित, विष्णुधर्म, आदित्यधर्म और शिवधर्म वा पञ्चमवेद कार्ष्णस्वरूप महाभारत तथा नारदकथित सौरोंका धर्म है (यह भविष्यपुराणमें कीर्त्तित हुआ है।) मनीषियोंने इन सब शास्त्रोंका जय नाम रखा है।

उक्त श्लोकसे मालूम होता है, कि वैष्णवादि विभिन्न सम्प्रदायोंके लिये पुराणादि विभिन्न धर्मग्रन्थ प्रचलित थे।

स्कान्दपुराणीय केदारखण्डमें स्पष्ट लिखा है—

"अष्टादश-पुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः।
चतुर्भिर्भगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवी तथा हरिः।"

(केदार १ अ०

१८ पुराणोंमेंसे दश पुराणोंमें शिव, चारमें ब्रह्मा, दोमें देवी भगवती और दोमें विष्णुमाहात्म्य कीर्त्तित हुआ है।

इस सम्बन्धमें स्कान्दपुराणीय शिवरहस्यखण्डके अन्तर्गत सम्भवकाण्डमें लिखा है—

"तत्र शैवानि शैवञ्च भविष्यञ्च द्विजोत्तमाः।
मार्कण्डेयं तथा लैङ्गं वाराहं स्कान्दमेव च॥
मात्स्यमन्यत्तथा कौर्मं वामनञ्च मुनीश्वराः।
ब्रह्माण्डञ्च दशेमानि त्रीणि लक्षाणि संख्यया॥
ग्रन्थानां महिमा सर्वैः शिवस्यैव प्रकाश्यते।
असाधारणया मूर्त्या नाम्ना साधारणेन च॥
वदन्ति शिवमेतानि शिवस्तेषु प्रकाश्यते।
विष्णोर्हि वैष्णवं तच्च तथा भागवतं तथा॥
नारदीयपुराणञ्च गारुड़ं वैष्णवं विदुः।
ब्राह्मं पाद्मं ब्रह्मणोर्द्दे अग्नेराग्नेयमेककं॥
सवितुर्ब्रह्म वैवर्त्तमेवमष्टादश स्मृतं।
चत्वारि वैष्णवानीशविष्णोः साम्यपराणि वै॥
ब्रह्मादिभ्योऽधिकं विष्णुं प्रवदन्ति जगत्पतिं।
ब्रह्मविष्णु महेशानां साम्यं ब्राह्मे पुराणके॥
अन्येषामधिकं देवं ब्राह्मणं जगतां पतिं।
प्रवदन्ति दिनाधीशं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।"

(सम्भवकाण्ड २।३०-३८)

शैव, भविष्य, मार्कण्डेय, लैङ्ग, वाराह, स्कान्द, मात्स्य, कौर्म, वामन और ब्रह्माण्ड ये दश पुराण शैव हैं। इन दशोंकी श्लोकसंख्या तीन लाख है। इन सब ग्रन्थोंमें शिवकी महिमा गाई गई है। वैष्णव, भागवत, नारदीय और गारुड़ ये चार वैष्णव ग्रन्थ हैं। इनमें विष्णुमहिमा प्रकाशित हुई है। ब्राह्म और पाद्म दो ब्रह्माके, एकमात्र आग्नेय-पुराण अग्निके और ब्रह्मवैवर्त्त सविताके महिमा प्रका-

थक हैं। यही १८ पुराण हैं। चारों वैष्णवपुराणमें महादेव और विष्णुका साम्य प्रतिपादित है। लेकिन उनमें ब्रह्मादिकी अपेक्षा जगत्पति विष्णुको, ब्रह्मपुराणमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीनोंका साम्य वर्णित होने पर भी दूसरे सबोंकी अपेक्षा ब्रह्माको श्रेष्ठ और सूर्यको ब्रह्मविष्णुशिवात्मक बतलाया गया है।

विभिन्न पुराण विभिन्न सम्प्रदायकी सम्पत्ति होने पर भी वैष्णव, शैव और शाक्तपुराणमें अष्टादश पुराणके पाठका फल वर्णित हुआ है—

"अष्टादशपुराणानां नामधेयानि यः पठेत्।
त्रिसन्ध्यं जपते नित्यं सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥"
(मार्कण्डेय)

"यस्त्वेतानि समस्तानि पुराणानीह जानते।
भारतं च महाबाहो! स सर्वज्ञोमतो नृणाम्॥"
(भविष्यपु० २अ०)

जो कुछ हो, मार्कण्डेयादि पुराणोंमें अष्टादशपुराणपाठकी प्रशंसा रहने पर भी प्रत्येक पुराण जो किसी विशेष उद्देश्यसे रचा गया है और प्रत्येक पुराणमें जो कोई विशेष साम्प्रदायिक भावनिहित है, इसमें सन्देह नहीं। यही कारण है, कि शैवपुराणकार (१) महादेवका ब्रह्मा और विष्णुके स्रष्टा, वैष्णवपुराणकार (२) विष्णुको ब्रह्मा और महादेवके जनक, शाक्तग्रन्थकार (३) भगवतीको ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन तीनोंकी प्रसविनी तथा सौरगण सूर्यको ही सबोंके प्रसविता बतला कर वर्णन कर गये हैं। (४)

आनन्दगिरिरचित शङ्करविजयमें लिखा है, कि भगवान् शङ्कराचार्यने अद्वैतमतका स्थापन करनेके लिये शैव, भागवत, वैष्णव, पञ्चरात्र, वैखानस, कर्महीन वैष्णव, हैरण्यगर्भ, अग्निवादी, सौर, महागणपति, गाणपत्य, उच्छिष्टगणपति, शाक्त, कापालिक, चार्वाक, सौगत, जैन, बौद्ध, मल्लारि, विष्वक्सेन, मान्मथ, कौवेर, ऐन्द्र, वारुण, शून्यवादी, गुणवादी, सांख्य, योगी, पीलु, चान्द्र, भौमादि ग्रहवादी, क्षपणक, शेष, गारुड़, सिद्ध, भूतवेताल इत्यादि विभिन्नमतावलम्बियोंका मत खण्डन किया था। शङ्कराचार्यके शारीरक भाष्यमें भी भागवत, पाञ्चरात्र, पाशुपत, सौर, सांख्य, काणाद, सौगत, आर्हत प्रभृति नाना धर्मसम्प्रदाय और उनके मतका उल्लेख देखा जाता है। इससे जाना जा सकता है, कि विभिन्न सम्प्रदायके मतप्रतिपाद्य अष्टादश पुराण और कोई कोई उपपुराण शङ्कराचार्यके पहले सङ्कलित हुए थे। (५)

अष्टादश पुराणका मुख्य उद्देश्य।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन तीन मूर्त्तियोंका उपासना-

(१) लिङ्गपुराणमें (१७।१-२)—

"अथोवाच महादेवः प्रीतोऽहं सुरसत्तमौ।
पश्य तं मां महादेव भयं सर्वं विमुञ्च तम्॥
युवां प्रसूतौ गात्राभ्यां मम पूर्वं महाबलौ।
अयं मे दक्षिणे पार्श्वे ब्रह्मा लोकपितामहः।
वामे पार्श्वे च मे विष्णुर्विश्वात्मा हृदयोद्भवः॥"

अनन्तर महादेवने कहा, 'हे सुरसत्तम ब्रह्मा और विष्णु! मैं सन्तुष्ट हुआ हूं। मैं ही महादेव हूं, निर्भय हो मेरे दर्शन करो। पहले तुम्हीं दोनों महाबल मेरे शरीरसे उत्पन्न हुए हो। यह लोकपितामह ब्रह्मा मेरे दक्षिण पार्श्वसे और जगत्का आत्मास्वरूप हृदयोद्भव विष्णु मेरे वाम पार्श्वसे उत्पन्न हुए हैं।'

इस लिंगपुराणमें शिव 'बत्स' 'बत्स' कह कर विष्णुको स्नेहभावसे सम्बोधन करते हैं—

"वत्स वत्स हरे विष्णो पालयैतच्चराचरम्॥" (१७।११)

(२) परमवैष्णव भागवतपुराणकारने लिखा है—

"सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः।" (२।६।३०)

मैं ब्रह्मा हूं, विष्णुसे नियुक्त हो कर सृष्टि करता हूं और महादेव उनके कहनेसे संहार करते हैं।

(३) मार्कण्डेयपुराणमें (देवीमाहात्म्यमें)—

"विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्॥"

हे देवि! तुमने मेरा (अर्थात् ब्रह्माका), विष्णुका और ईशानका शरीर उत्पादन किया है। अतएव कौन तुम्हारा स्तव कर सकता है।

(४) भविष्यपुराणमें (४१ अध्याय) में

"भूतग्रामस्य सर्वस्य सर्वहेतुर्दिवाकरः।
अस्यैवेच्छया जगत् सर्वमुत्पन्नं सचराचरम्॥"

(५) पद्म आदि किसी किसी पुराणमें शंकराचार्यके परवर्ती कालकी कथा मिलती है। उनमें ये सब श्लोक प्रक्षिप्त हैं, इसमें सन्देह नहीं।

प्रचार, विशेषतः शिव, विष्णु और उनके शक्तियोंका महिमाकीर्त्तन तथा पूजन-प्रचार वर्त्तमान पुराणोंका प्रधान उद्देश्य है। भगवान् शङ्कराचार्यके आविर्भावके बहुत पहलेसे ही उक्त उद्देश्यसाधनार्थ अष्टादशपुराण प्रचलित हुए थे। उन अष्टादश पुराणोंके लक्षण मत्स्य और नारदीयपुराणमें बहुत विस्तृत भावमें वर्णित हुए हैं। प्रत्येक पुराणके आलोचना प्रसङ्गमें उस उस पुराणका विशेषत्व, ऐतिहासिकता और साम्प्रदायिकता निर्णय किया जायगा।

परस्पर पुराणमें विरोध।

साम्प्रदायिकता ही परस्पर पुराणवचनकी विरोधिताका कारण है। एक सम्प्रदायने जैसा समझा है, उस सम्प्रदायके अवलम्बित पुराणमें वैसा ही मत प्रचारित हुआ है। इसीलिये एक पुराणमें किसी विषयकी जैसी अवतारणा देखी जाती है दूसरे पुराणमें वही भिन्नरूपमें वर्णित है। वर्त्तमान पौराणिक कहते हैं, कि कल्पभेदसे इस प्रकार रचनाभेद ही इस विरोध-भञ्जनका कारण है। इस पर वे एक श्लोक देते हैं—

"क्वचित् क्वचित् पुराणेषु विरोधो यदि लभ्यते।
कल्पभेदादिभिस्तत्र व्यवस्था सद्भिरिष्यते॥"

नीचे १८ पुराणोंके अध्यायानुसार विषयानुक्रम और प्रत्येक पुराणकी संक्षिप्त समालोचना दी गई है।

१म ब्रह्मपुराण।

इसके १म* मङ्गलाचरण, नैमिषारण्यवर्णन, लोमहर्षणका पुराणकथनोपक्रम, सृष्टिकथनारम्भ ; २ स्वायम्भुव मनुके साथ शतरूपाका विवाह, प्रियव्रतोत्तानपादकी उत्पत्ति, कामाख्यकन्याका जन्म, उत्तानपादवंश, पृथुजन्म, प्रचेताओंकी उत्पत्ति, दक्षका जन्म और दक्षसृष्टिकथन ; ३ देवादिकी उत्पत्ति, हर्यश्व और शवलाश्वजन्म, दक्ष कर्त्तृक षष्टिकन्यासृष्टि, षष्टिकन्याकी सन्तति और मरुद्गणकी उत्पत्ति ; ४ ब्रह्मकर्त्तृक देवताओंका अपने अपने प्रदेशमें अभिषेक और पृथुचरित ; ५ मन्वन्तरकथारम्भ, महाप्रलय और अल्प प्रलयकथन ; ६ सूर्यवंशकथन, छाया और संज्ञाका चरित तथा यमुनादि सूर्यकन्याओंका वर्णन ; ७ वैवस्वतमनुवंश, कुवलयाश्वचरित, धुन्धुमार और तद्वंशीय राजाओंका संक्षिप्त वर्णन, सत्यव्रत और गालवचरित-कथन ; ८ सत्यव्रतका त्रिशङ्कु नाम पड़नेका कारण, हरिश्चन्द्र, सगर और भगीरथका विवरण, गङ्गाका भागीरथी नामकरण; ९ सोम और बुधचरित ; १० पुरूरवाचरित तथा पुरूरवाका वंश, गाधिचरित, जमदग्नि, परशुराम और विश्वामित्रोत्पत्त्यादिकथन ; ११ आयुके पञ्चपुत्रकी उत्पत्ति और रजिचरित्रवर्णन, अनेनाका वंश, धन्वन्तरिका जन्म और आयुर्वेदविभाग, १२ ययातिवंश, १३ पूरुवंश, कार्त्तवीर्यार्जुनका विवरण और तत्प्रति आपव मुनिका शाप, १४ वसुदेवजन्म और उनकी पत्नियोंका नामकीर्त्तन, १५ ज्यामघचरित्र, बभ्रु और देवावृधकी महिमा, देवकका सप्तकुमारीलाभ और कंसजन्मकथन, १६ सत्राजितचरित्र, स्यमन्तकोपाख्यान, कृष्णके साथ जाम्बवती और सत्यभामाका विवाह, १७ शतधन्वा कर्त्तृक सत्राजितवध-निरूपण और अक्रूरके निकट स्यमन्तकमणि रखनेकी कथा, १८ भूगोलवर्णनमें सप्तद्वीपवर्णन, १९ भारतवर्षवर्णन, २० प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्करद्वीप एवं लोकालोकपर्वतकथन, २१ पातालादि सप्तलोक वर्णन, २२ रौरवादि नरक, स्वर्गनरकव्याख्या, २३ आकाश और पृथ्वीका प्रमाण, सौरादिमण्डल और भूरादि सप्तलोकका प्रमाण, महदादिका उत्पत्तिवर्णन, २४ शिशुमारचक्र और ध्रुवसंस्थाननिरूपण, २५ शारीरीकतीर्थकथन, २६ कृष्णद्वैपायनसंवाद, २७ भरतखण्ड और तदन्तर्गत गिरिनदी देशादि वर्णन, २८ ओड्रदेशस्थ ब्राह्मणप्रशंसा, कोणादित्य और रामेश्वरलिङ्गवर्णन, २९ सूर्यपूजामाहात्म्य, ३० सूर्यसे सर्वजगदुत्पत्ति, द्वादशादित्य मूर्त्तिकथन और मित्र नामक सूर्य तथा नारदसंवाद, ३१ चैत्रादिक्रमसे द्वादशादित्यका नामकथन, ३२ अदितिकी सूर्याराधना, अदितिका सूर्यदर्शन, अदितिके गर्भसे सूर्यका जन्म, इत्यादि सूर्यचरितवर्णन, ३३ ब्रह्मादि देवताओंको सूर्यका वरदान और सूर्यका अष्टोत्तरशतनाम, ३४ रुद्रमहिमा, दाक्षायणी संवाद, पार्वतीका आख्यान, ३५ उमानिदशसंवाद, शिवपार्वतीसंवाद,

* सुविधाके लिये पहले विषयके प्रत्येक 'अध्याय' न लिख कर केवल अध्याय-संख्या लिखी गई है।

३६ पार्वतीस्वयम्बरकथन, स्वयम्बरमें देवादिका आगमन, शिवपार्वतीविवाह, ३७ देवकृत महेश्वरस्तव, महेश्वरका स्वस्थानमें वास, ३८ हरनेत्रानलसे मदनदाह, रतिका शिवके वरसे दृष्टदेशमें गमन, पार्वतीके कोपशान्तयर्थ महेश्वरका नर्मसम्भाषण, ३९ दक्षयज्ञारम्भ, दधीचिदक्षसंवाद, उमामहेश्वरसंवाद, वीरभद्रोत्पत्ति और उसका दक्षयज्ञभङ्ग, क्रुद्ध गणेशके ललाटस्वेदबिन्दुसे अग्न्युत्पत्ति, तत्कर्त्तृक यज्ञविध्वंस, शिवको यज्ञभागदान और उनसे दक्षका वरलाभ, दक्षकृत शिवाष्टसहस्रनाम, ४० शिवकर्त्तृक ज्वरविभाग, ४१ एकाम्रक्षेत्रवर्णन, ४२ विरजाक्षेत्र और तदन्तर्गत अपर तीर्थ तथा पुरुषोत्तमादि तीर्थवर्णन, ४३ अवन्तिमाहात्म्य, ४४ इन्द्रद्युम्नाख्यान, ४५ विष्णुकृत सृष्टिवर्णन, पुरुषोत्तमक्षेत्रस्थ न्यग्रोध और उसके दक्षिण पार्श्वस्थ विष्णुमूर्त्तिवर्णन, ४६ पुरुषोत्तमक्षेत्र, तत्रस्थ चित्रोत्पला नदी और नदी उभयतीरस्थ ग्राम तथा ग्रामवासीका वर्णन, ४७ इन्द्रद्युम्नकृत प्रासादारम्भ, यज्ञकार्य और प्रासादनिर्माण, ४८ प्रतिमाप्राप्तिकी आशा इन्द्रद्युम्नका सर्वभोगत्याग, ४९ तत्कर्त्तृक विष्णुस्तव, ५० चिन्तातुर राजाके स्वप्नमें भगवद्दर्शन और प्रतिमाप्राप्ति-उपायकथन, विश्वकर्म कर्त्तृक मूर्त्तित्रयनिर्माण, ५१ इन्द्रद्युम्नके प्रति विष्णुका वरदान, पुरुषोत्तमक्षेत्रमें मूर्त्तित्रयका आनयन, ५२ राजाका विष्णुपदलाभ, ब्रह्मकर्त्तृक पुरुषोत्तमान्तर्गत पञ्चतीर्थ वर्णन, ५३ मार्कण्डेयाख्यान और कल्पवटदर्शन, मार्कण्डेयका भगवद्दर्शन और तत्प्रति भगवान्‌का आश्वास, ५४ भगवान्‌के उदरमें मार्कण्डेयका प्रवेश और उदरस्थ पृथिवीदर्शन, ५५ मार्कण्डेयका वहिरागमन और तत्कर्त्तृक बालमुकुन्दस्तुति, ५६ भगवान्‌का अन्तर्धानवर्णन, ५७ मार्कण्डेयह्रदप्रशंसा और पञ्चतीर्थवर्णन, ५८ नरसिंहपूजाविधि, ५९ कपालगौतम ऋषिके मृत पुत्रोंको बचानेके लिये श्वेतनृपकी प्रतिज्ञा, श्वेतमाधवस्थापनप्रसङ्ग और श्वेतप्रति विष्णुका वरदान, ६० नारायणकवच और समुद्रस्नानविधि, ६१ कायशुद्धि और पूजाविधिकथन, ६२ समुद्रस्नानमाहात्म्य, ६३ पञ्चतीर्थमाहात्म्य, ६४ महाज्येष्ठाप्रशंसा, ६५ कृष्णको स्नानविधि और स्नानमाहात्म्य, ६६ गुण्डिचायात्रामाहात्म्य, ६७ प्रतियात्रा और द्वादशयात्राफल निरूपण, ६८ विष्णुलोकवर्णन, ६९ पुरुषोत्तम माहात्म्य, ७० चतुर्विंशति तीर्थलक्षण और गौतमीमाहात्म्य, ७१ गङ्गोत्पत्तिकथोपक्रम, तारकासुरका प्रसङ्ग, मदनभस्म, ७२ हिमवद्वर्णन, शम्भुविवाह, गौरीका रूप देख कर ब्रह्माका वीर्यपात, उस वीर्यसे वालखिल्योंकी उत्पत्ति, शिवसे ब्रह्माकी कमण्डलुप्राप्ति, ७३ वलि और गङ्गाका महेशकी जटामें गमन, ७४ गङ्गाका द्वैरूप्यकथन, गौतमका गोवधपाप और उस पापसे मुक्तिलाभ, गौतमका कैलासगमन, ७५ तत्कृत उमामहेश्वरस्तव, गौतमकी गङ्गाप्रार्थना, ७६ पञ्चदशाकृतिसे गङ्गाका निर्गमन और गोदावरीस्नानविधिकथन, ७७ गौतमीका श्रेष्ठताकथन, ७८ वशिष्ठवरसे पुत्रप्राप्ति, सगरका अश्वमेध, कपिलकोपसे सगरपुत्रनाश, असमञ्जका देशत्याग, भगीरथका जन्म और गङ्गानयन, ७९ वाराहतीर्थवर्णन, ८० लुब्धकचरित्र, ८१ स्कन्दकी विषयासक्ति और भोगार्थ आहूत स्त्रियोंके मातृरूपतादर्शनसे विषयनिवृत्ति, कुमारतीर्थकथन, ८२ कृत्तिकातीर्थवर्णन ८३ दशाश्वमेधतीर्थकथन, ८४ केशरिवानरका दक्षिणार्णवमें गमन, अञ्जना और अद्रिकाका पुत्रजन्मकथन तथा पैशाचतीर्थकथन, ८५ क्षुधातीर्थ उत्पत्तिकथन, ८६ विश्वधर वैश्यकथा और चक्रतीर्थोत्पत्तिकीर्त्तन, ८७ अहल्याप्राप्तिके लिये गौतमका पृथ्वीप्रदक्षिण, अहल्या और इन्द्रसंवाद, गौतमका अभिशाप, अहल्याकी पूर्वरूपप्राप्ति, इन्द्रतीर्थाख्यायिका, ८८ वरुणयाज्ञवल्क्यसंवाद और जनस्थानतीर्थकीर्त्तन, उषासूर्यसमागम और दोनोंके वीर्यसे गङ्गामें अश्विनीकुमारोत्पत्ति, त्वष्टाके प्रति सूर्यसम्भाषण, ८९ शेषपुत्र मणिनागकर्त्तृक शिवस्तुति, ९० विष्णुकर्त्तृक गरुड़का दर्पचूर्ण, गरुड़की विष्णुस्तुति, गङ्गास्नानसे गरुड़को वज्रदेहप्राप्ति और विष्णुप्राप्ति, ९१ गोवर्द्धनतीर्थाख्यायिका, ९२ धौतपापतीर्थोत्पत्ति, ९३ विश्वामित्र वा कौशिकतीर्थस्वरूपकथन, ९४ श्वेताख्यान और यमका पुनर्जीवनप्राप्तिकथन, ९५ शुक्रकर्त्तृक शिवस्तुति और शिवसे उनको मृतसञ्जीवनीविद्याप्राप्ति, ९६ मालवदेशाभिधानहेतुकथन, ९७ रावण

कर्त्तृक कुवेरपराभव और कुवेरकी शिवस्तुति, ९८ अग्नितीर्थोत्पत्तिकथन, ९९ कक्षीवानके पुत्रोंके प्रति ऋणत्रयमोचनार्थ दारसंग्रहमें उपदेश, उन लोगोंकी उपेक्षा, उनके प्रति पितरोंका गौतमीस्नानमें आदेश, १०० वालखिल्योंकी काश्यपके प्रति पुत्रोपादनकथा, सुपर्णका जन्म, ऋषिसत्रमें कद्रु और सुपर्णका गमन, तत्प्रति 'नदी हो जा' ऐसा कह कर ऋषियोंका अभिशाप, १०१ पुरूरवा-उर्वशी संवाद, सरस्वतीके प्रति ब्रह्माका अभिशाप और स्त्रीस्वभाववर्णन, १०२ मृगरूपधारी ब्रह्माके प्रति मृगव्याधरूपधारी शिवकी उक्ति, सावित्र्यादि पञ्च नद का ब्रह्माके समीप गमन, १०३ शम्यादितीर्थवर्णन, १०४ हरिश्चन्द्राख्यान, वरुणप्रसादसे हरिश्चन्द्रको पुत्रप्राप्ति, उनके पुत्र रोहितको ले जानेके लिये वरुणकी प्रार्थना, रोहितका वनगमन, अजीगर्त्तका पुत्रविक्रय, अजीगर्त्तके पुत्र शुनःशेपका विश्वामित्रानुग्रहलाभ और विश्वामित्र द्वारा शुनःशेपका ज्येष्ठपुत्रत्वकथन, १०५ गङ्गासङ्गत नदनदीवर्णन, १०६ देवदानवकी मन्त्रणा, समुद्रमन्थन, अमृतोत्पत्ति, विष्णुकर्त्तृक राहुका, शिरश्छेद, राहुका अभिषेक, १०७ वृद्धागौतमसंवाद, गङ्गाके वरसे वृद्धाकी यौवनप्राप्ति और वृद्धागौतमसहवास, १०८ इलातीर्थवर्णन और उसके प्रसङ्गमें इलाचरितकीर्त्तन, १०९ चक्रतीर्थवर्णन और उसके प्रसङ्गमें दक्षयज्ञकथन, ११० दधीचि, लोपामुद्रा और दधीचिपुत्र पिप्पलादचरित और पिप्पलेश्वरतीर्थवर्णन, १११ नागतीर्थकथन और उसके प्रसङ्गमें सोमवंशीय शूरसेनराजाख्यान, ११२ मातृतीर्थवर्णन, ११३ ब्रह्मतीर्थवर्णन, उसके प्रसङ्गमें ब्रह्माका पञ्चममुखविदारण और शिवका ब्रह्मशिरोधारणवृत्तान्त, ११४ अविघ्नतीर्थवर्णन, ११५ शेषतीर्थवर्णन, ११६ वड़वादितीर्थवर्णन, ११७ आत्मतीर्थवर्णन और तदुपलक्षमें दत्ताख्यान, ११८ अश्वत्थादितीर्थकीर्त्तन और तदुपलक्षमें अश्वत्थ और पिप्पल नामक राक्षसाख्यान, ११९ सोम तीर्थवर्णन और उसके उपलक्षमें गङ्गा-द्वारा सोम और औषधीका विवाहवृत्तान्त, १२० धान्यतीर्थवर्णन, १२१ भरद्वाजकृत रेवतीके साथ कठका विवाह, १२२ पूर्णतीर्थवर्णन, तदुपलक्षमें धन्वन्तरिसंवाद और वृहस्पतिकृत इन्द्राभिषेक, १२३ रामतीर्थवर्णन और तदुपलक्षमें रामचरितप्रसङ्ग, १२४ पुत्रतीर्थवर्णन और तदुपलक्षमें परमेष्ठिपुत्राख्यान, १२५ यमतीर्थ और अग्निकृततीर्थवर्णन, १२६ तपस्तीर्थवर्णन, १२७ देवतीर्थवर्णन और तदनुसार आर्ष्टिषेणनृपाख्यान, १२८ तपोवनादि तीर्थवर्णन और संक्षेपमें कार्त्तिकेयाख्यान, १२९ गङ्गाफेना-सङ्गमवर्णन और तदुपलक्षमें इन्द्रमाहात्म्यप्रसङ्गमें फेन नामक नमुचिवध, हिरण्यदैत्यपुत्र महाशनि वध और इन्द्रवर्णित वृषाकप्यादिका माहात्म्य, १३० आपस्तम्बतीर्थ और तदुपलक्षमें आपस्तम्बचरितकीर्त्तन, १३१ यमतीर्थवर्णन और तदुपलक्षमें सरमाख्यान, १३२ यक्षिणीसङ्गममाहात्म्य और तदुपलक्षमें विश्वावसुभार्याख्यान तथा दुर्गातीर्थवर्णन, १३३ शुक्रतीर्थाख्यायिका और तदुपलक्षमें भरद्वाजयज्ञवर्णन, १३४ चक्रतीर्थाख्यान और तदुपलक्षमें वशिष्ठप्रमुखमुनिगणकृत यज्ञविवरण, १३५ वाणीसङ्गमाख्यान और तदुपलक्षमें ज्योतिर्लिङ्गप्रसङ्ग, १३६ विष्णुतीर्थवर्णन और तदुपलक्षमें मौद्गल्याख्यान, १३७ लक्ष्मीतीर्थादि षट्सहस्रतीर्थाख्यान, तदुपलक्षमें लक्ष्मी और दरिद्राख्यान, १३८ भानुतीर्थवर्णन और उसके प्रसङ्गमें शर्यातिराजचरित, १३९ खड्गतीर्थवर्णन और तत्प्रसङ्गमें कवषसुत ऐलूषमुनिचरित, १४० आत्रेयतीर्थवर्णन और उसके प्रसङ्गमें आत्रेय ऋषिका आख्यान, १४१ कपिलासङ्गमतीर्थवर्णन और तत्प्रसङ्गमें कपिलामुनि और पृथुराजका संक्षेपचरितकथन, १४२ देवस्थान नामक तीर्थ और उसके प्रसङ्गमें सैंहिकेय राहुपुत्र मेघहास दैत्यका चरितवर्णन, १४३ सिद्धतीर्थ और उसके प्रसङ्गमें रावणतपप्रभाववर्णन, १४४ परुष्णीसङ्गमतीर्थ और उसके प्रसङ्गमें अत्रि ऋषि तथा उनकी कन्या आत्रेयीका चरितवर्णन, १४५ मार्कण्डेयतीर्थ और तत्प्रसङ्गमें मार्कण्डेयप्रभाववर्णन, १४६ कालञ्जरतीर्थ और उसके प्रसङ्गमें ययातिचरित, १४७ अप्सरोयुगसङ्गमतीर्थ और उसके प्रसङ्गमें अप्सरोयुगके विश्वामित्रका तपोभङ्ग तथा विश्वामित्रके शापसे नदीरूपप्राप्ति, १४८ कोटितीर्थ और उसके प्रसङ्गमें कण्वसुत वाह्लीकचरित, १४९ नारसिंहतीर्थ और तत्प्रसङ्गमें नारसिंहकर्त्तृक हिरण्यकशिपुका वधाख्यान, १५० पैशाचतीर्थ और उसके प्रसङ्गमें शुनः—

शिवके जन्मदाता अजीगर्त्ताख्यान, १५१ उर्वशीत्यक्त पुरूरवाके प्रति वशिष्ठका उपदेश, १५२ चन्द्रकर्त्तृक ताराहरण और तारा-उद्धार, १५३ भावतीर्थादि सप्ततीर्थ-वर्णन, १५४ सहस्र कुण्डादि तीर्थप्रसङ्गमें रावणका वध करके सपरिवार रामका अयोध्यागमन, सीताका वनवास और रामाश्वमेधमें लवकुशवृत्तान्त, १५५ कपिलासङ्गमादि दश तीर्थ और उनके प्रसङ्गमें अङ्गिराको आदित्यका भूमिदानवर्णन, १५६ शङ्खतीर्थादि अयुततीर्थ और उसके प्रसङ्गमें ब्रह्मभक्षणमें आये हुए राक्षसोंका विष्णुचक्रसे हननकी कथा, १५७ किष्किन्ध्यातीर्थमहिमा और उसके प्रसङ्गमें रावणवधके बाद सीतादिके साथ रामका गौतमीप्रत्यागमनवर्णन, १५८ व्यासतीर्थ और उसके प्रसङ्गमें आङ्गिरसाख्यायिका, १५९ वञ्जरासङ्गम और तत्प्रसङ्गमें गरुड़ाख्यानवर्णन, १६० देवागमतीर्थ और तत्प्रसङ्गमें देवासुरयुद्धवर्णन, १६१ कुशतर्पणतीर्थ और तदुपलक्षमें ब्रह्मा तथा विराड़ोत्पत्त्यादिवर्णन, १६२ मन्युपुरुषाख्यान, १६३ ब्रह्मरूपधारी परशु नामक राक्षस और शाकल्यमुनिप्रसङ्ग, १६४ पवमाननृप और चिचिकपक्षिसंवाद, १६५ भद्रतीर्थ और उसके प्रसङ्गमें कन्याविवाहविषयक सूर्यविकार तथा हर्षणका यमालय-गमन इत्यादि वर्णन, १६६ पतत्रितीर्थवर्णन, १६७ भानु आदि शततीर्थ और तत्प्रसङ्गमें अभिष्टुतराजका हयमेधाख्यान, १६९ वेद नामक द्विज और शिवपूजक व्याधप्रसङ्ग, १७० चक्षुतीर्थ और उसके प्रसङ्गमें गौतम तथा कुण्डलक नामक वैश्याख्यान, १७१ उर्वशीतीर्थ और उसके प्रसङ्गमें इन्द्रप्रमतिका वृत्तान्त, १७२ सामुद्रतीर्थप्रसङ्गमें गङ्गासागरसम्वाद, १७३ भीमेश्वरतीर्थ और तत्प्रसङ्गमें सप्तधा प्रवाहिता गङ्गा और ऋषियज्ञमें देवरिपु विश्वरूपवृत्तान्त, १७४ गङ्गासागरसङ्गम सोमतीर्थ और बार्हस्पत्यादि तीर्थवर्णन, १७५ गौतमीमाहात्म्यसमाप्तिप्रसङ्गमें गङ्गावतारवर्णन, १७६ अनन्तवासुदेवमाहात्म्य और उसके प्रसङ्गमें देवताओंके साथ रावणसंग्राम तथा रामरावणयुद्धवर्णन, १७७ पुरुषोत्तममाहात्म्य-कीर्तन, १७८ कण्डुमुनिका चरित, १७९ बादरायणके प्रति श्रीकृष्णावतारप्रश्न, १८० कृष्णचरितारम्भ, १८१ अवतारप्रयोजन और कंसकर्तृक देवकीका कारागारप्रसङ्ग, १८२ भगवान्‌के आदेशसे देवकीका गर्भ आकर्षण कर रोहिणीके उदरमें मायाका गर्भस्थापन, देवकीके उदरमें भगवत्प्रवेश, देवकीके प्रति भगवदुक्ति, वसुदेवका गोकुल जा कर पुत्रस्थापन, मायाका स्वरूपधारणपूर्वक स्वर्गगमन और कंसकी भर्त्सना, देवताओं द्वारा मायास्तुति, १८३ कंसका बालविनाशके लिये दैत्योंके प्रति आदेश और वसुदेव-देवकीका कारामोचन, १८४ वसुदेव और नन्दका आलाप, पूतनावध, शकटपातन, गर्गकर्तृक बालकका नामकरण, यमलार्जुनभङ्ग, कृष्णका बाल्यलीलावर्णन, १८५ कालियदमन, १८६ धेनुकवध, १८७ रामकृष्णका बहुलीला-कीर्तन, प्रलम्बासुरवध, गोवर्द्धनाख्यायिकाका आरम्भ, १८८ इन्द्रका गोकुलनाशार्थ मेघप्रेरण, भक्तोंके दुःख दूर करनेके लिये कृष्णका गोवर्द्धनधारण, इन्द्रकी कृष्णस्तुति, इन्द्रके प्रति कृष्णकी भूभारहरण-कथा, गोवर्द्धनयोगसमाप्ति, १८९ रासक्रीड़ावर्णन और कृष्णकृत अरिष्टासुरवध, १९० कंसनारदसम्वाद, अक्रूरप्रेरण, केशिवधवर्णन, १९१ नन्दगोकुलमें अक्रूरागमन, १९२ कृष्णाक्रूरसम्वाद और मथुरामें रामकृष्णका गमन, १९३ कुब्जाके साथ कृष्णका आलाप, चाणूरमुष्टिकवध, कंसवध, वसुदेवकृत भगवत्स्तुति, १९४ देवकी-वसुदेवके निकट कृष्णका आगमन, उग्रसेनका राज्याभिषेक, रामकृष्णकी सान्दीपनिके निकट अस्त्रप्राप्ति और सान्दीपनिकी पुत्रप्राप्ति, १९५ रामकृष्णका जरासन्धके साथ युद्ध और जरासन्धकी पराजय, १९६ कालयवनोत्पत्ति, मुचुकुन्द कर्तृक कालयवनवध और मुचुकुन्दकृत भगवद्दर्शन, १९७ मुचुकुन्दको भगवान्‌का वरदान गोकुलमें बलदेवागमन, १९८ वरुणवारुणी और यमुनाबलदेवसंवाद, मथुरामें बलदेवका गमन, १९९ कृष्णका रुक्मिणीहरण, प्रद्युम्नोत्पत्ति, २०० शम्बरासुरकर्तृक प्रद्युम्नहरण, शम्बरासुरवध, प्रद्युम्नका द्वारका-आगमन, श्रीकृष्णनारदसंवाद, २०१ रुक्मिणी-पुत्रों और कृष्णभार्याओंके नाम तथा बलदेवकर्तृक रुक्मिवध, २०२ कृष्णका प्राग्ज्योतिषपुरमें गमन और नरकासुरवध, २०३ कृष्णादितिसंवाद, कृष्ण-

अनिरुद्ध-विवाहकथन, चित्रलेखाका आलेख्यनिर्माण-कौशल, २०५ वाणपुरमें अनिरुद्धको लाना, २०६ कृष्ण-बलदेवका युद्धार्थ आगमन, कृष्णके साथ शङ्करका युद्ध, कृष्णका अनिरुद्धके साथ द्वारका-आगमन, २०७ पौण्ड्रक-वासुदेववृत्तान्त, पौण्ड्रक और काशिराजवध, कृष्णचक्रसे वाराणसीदाह, पुनः कृष्णके हाथसे चक्रागमन, २०८ शाम्ब कर्त्तृक दुर्योधनकन्याहरण, दुर्योधनादिकर्त्तृक शाम्ब-निग्रह, बलदेवके साथ कौरवोंका युद्ध और बलदेवका हस्तिनापुर-अधिकार, कौरवोंको प्रार्थना, २०९ बलदेव-कर्त्तृक द्विविध वानरवध, २१० कृष्णका द्वारकात्याग, प्रभासमें यदुवंशध्वंस, २११ कृष्णके अनुग्रहसे लुब्धकोंका स्वर्गगमन, २१२ रुक्मिणी आदिका अवसान, आभीरोंके साथ अर्जुनका युद्ध, म्लेच्छकर्त्तृक यादवस्त्रीहरण, अर्जुनविषाद और व्यासार्जुनसंवाद, अष्टावक्रचरित कीर्त्तन, अर्जुनके मुखसे सभी वृतान्त सुन कर युधिष्ठिरका बान्धव समेत महाप्रस्थानोपक्रम, परीक्षितको राज्य सौंप कर युधिष्ठिरादिका वनगमन, कृष्णचरित समाप्ति, २१३ वराहावतार, नृसिंहावतार, वामना-वतार, दत्तात्रेयावतार, जामदग्न्यावतार, दाशरथि रामावतार, श्रीकृष्णावतार और कल्क्यवतारवर्णन, २१४ नरक और यमलोकवर्णन, २१५ दक्षिणमार्गमें जानेवाले प्राणियोंका क्लेशवर्णन, चित्रगुप्तकृत पाप-वर्णन, पातकानुसार नरकप्राप्तिकथन, २१६ व्यासकथित धर्माचरण और सुगतिप्राप्तिवर्णन, २१७ नाना योनिमें जन्म प्रसङ्ग, २१८ अन्नदानसे शुभप्राप्तिकथा, २१९ श्राद्धविधि निरूपण, २२० प्रतिपदादि श्राद्धकल्प और पिण्डदान-कथन, २२१ सदाचार और विप्रवसतियोग्य देशसमूह-कथन, सूतकविचार २२२ वर्णधर्मकथन २२३ ब्राह्मणों-की शूद्रत्वप्राप्ति और शूद्रादिका उत्तम गतिप्राप्तिकथन, सङ्करजातिलक्षण, २२४ मानवधर्मफलकथन, २२५ देव-लोकप्राप्ति और निरयप्राप्तिकारण, २२६ वासुदेवमहिमा, मनुवंश और वासुदेवपूजाकथन, २२७ विष्णुपूजाकथन-प्रसङ्गमें उक्त गो-मूर्ख ब्राह्मणसंवाद और शकटदानकथन, २२८ कपालमोचनतीर्थ और तत्प्रसङ्गमें सूर्यादिको आरा-धना, कामदसमाख्यान और मायाप्रादुर्भाव, २२९ महा-प्रलयवर्णन और कलिगत भविष्यकथन, २३० द्वापरयुगान्त और भविष्यकथन, २३१ प्राकृतसर्ग, कल्पमान और नैमि-त्तिकलयस्वरूपकथन, २३२ प्राकृतलयस्वरूपकथन, २३३ आत्यन्तिक लय, आध्यात्मिक तापत्रय, आधिभौतिक ताप और आधिदैविक तापवर्णन, मुक्तिज्ञानमहिमा, २३४ योगा भ्यासफल, २३५ योग और सांख्य निरूपण, २३६ मोक्ष प्राप्ति और पञ्चमहाभूतकथन, २३७ सर्वधर्मका विशिष्ट धर्मनिरूपण, २३८ योगविधि-निरूपण, २३९ सांख्यविधि-निरूपण, २४० क्षराक्षरविचारनिरूपण और चतुर्विंशति तत्त्व प्रतिपादन, २४१ अभिमानियोंका बहुविधिसाधन-कथन, २४२ सांख्यज्ञान और क्षेत्रक्षेत्रज्ञलक्षणकथन, २४३ अभेदमें सांख्ययोगकथन, २४४ जनकके प्रति वशिष्ठको ब्रह्मके समीप महाज्ञानप्राप्ति और ज्ञानप्राप्तिपरम्परा-कथन, २४५ व्यासप्रशंसा, ब्रह्मपुराणश्रवण-फल और धर्मप्रशंसा।

पहले ही कहा जा चुका है, कि विलसन प्रमुख पाश्चात्य पण्डितगण उक्त ब्रह्मपुराणको न तो पञ्चलक्षण-क्रान्त पुराण और न मत्स्यपुराणवर्णित ब्रह्मपुराण ही मानते हैं। अभी देखना चाहिये, कि मत्स्यपुराणमें ब्राह्मका कैसा लक्षण निर्दिष्ट हुआ है।

"ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये।
ब्राह्मं त्रिदशसाहस्रं पुराणं परिकीर्त्तते॥"

(५३।१२)

पुराकालमें ब्रह्माने मरीचिसे यह पुराण कहा था, इस कारण इसका ब्राह्म नाम पड़ा है। इसकी श्लोक संख्या १३००० है। इधर प्रचलित ब्रह्मपुराणके १म अध्यायमें ही लिखा है—

"कथयामि यथापूर्वं दक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः।
पृष्टः प्रोवाच भगवानब्जयोनिः पितामहः॥"

(१।३३)

इस वचनके अनुसार अध्यापक विलसनने समझा था, कि ब्रह्माने दक्षको जब यह पुराण सुनाया था, तब मरीचिश्रुत ब्राह्म और दक्षश्रुत ब्राह्म एक नहीं हो सकता। परन्तु आजकलके प्रचलित ब्राह्मपुराण (२६।२६)-का निम्नलिखित श्लोक पढ़नेसे और कोई सन्देह रहने नहीं पाता;—

"मरीच्याद्यास्तदा देवं प्रणिपत्यपितामहम् ।
इममर्थं मृषिवराः पप्रच्छुः पितरं द्विजाः ॥" (२६।२६)

उक्त श्लोकसे जाना जाता है, कि मरीचि आदिने ब्रह्मासे पुराणाख्यान सुना था। परवर्त्ती श्लोक देखनेसे उस सम्बन्धमें और कोई सन्देह नहीं रहता—"ब्रह्मोवाच।

शृणुध्वं मुनयः सर्वे यद्वो वक्ष्यामि साम्प्रतम् ।
पुराणं वेद सं बद्धं भक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥"

यथार्थमें प्रचलित ब्राह्मपुराणके २७वें अध्यायसे ले कर शेष पर्यन्त ब्रह्मा वक्ता और मरीच्यादि मुनिगण श्रोता हैं। सुतरां मत्स्यवर्णित ब्राह्मके साथ आधुनिक ब्रह्मपुराण कुछ भी नहीं मिलता है, ऐसा नहीं कह सकते। नारदपुराणके पूर्वभागमें ब्रह्मपुराणका जो विषयानुक्रम दिया गया है, उसे पढ़नेसे पूर्वतन ब्रह्मपुराणका सादृश्य देखा जायगा—

"ब्राह्मं पुराणं तत्रादौ सर्वलोकहिताय च ।
व्यासेन वेदविदुषा समाख्यातं महात्मना ॥
तद्वै सर्वपुराणाग्र्यं धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
नानाख्यानेतिहासाढ्यं दशसाहस्रमुच्यते ॥

(तत्पूर्वभागमें)

देवानामसुराणाञ्च यत्रोत्पत्तिप्रकीर्त्तिताः ।
प्रजापतीनाञ्च तथा दक्षादीनां मुनीश्वर ! ॥
ततो लोकेश्वरस्यात्र सूर्य्यस्य परमात्मनः ।
वंशानुकीर्त्तनं ब्राह्मं महापातकनाशनम् ॥
यत्रावतारः कथितः परमानन्दरूपिणः ।
श्रीमतोरामचन्द्रस्य चतुर्व्यूहावतारिणः ॥
ततश्च सोमवंशस्य कीर्त्तनं यत्र वर्णितम् ।
कृष्णस्य जगदीशस्य चरितं कल्मषापहम् ॥
द्वीपानाञ्चैव सिन्धूनां वर्षाणां वाप्यशेषतः ।
वर्णनं यत्र पातालस्वर्गाणाञ्च प्रदृश्यते ॥
नरकाणां समाख्यानं सूर्य्यस्तुतिकथानकम् ।
पार्वत्याश्च तथा जन्म विवाहश्च निगद्यते ॥
दक्षाख्यानं ततः प्रोक्तमेकाम्रक्षेत्रवर्णनम् ।
पूर्वभागोऽयमुदितः पुराणस्यास्य मानद ! ॥

(तदुत्तर भागमें)

अस्योत्तरविभागे तु पुरुषोत्तमवर्णनम् ।
विस्तरेण समाख्यातं तीर्थयात्राविधानतः ॥
अत्रैव कृष्णचरितं विस्तरात् समुदीरितम् ।
वर्णनं यमलोकस्य पितृश्राद्धविधिस्तथा ॥
वर्णाश्रमाणां धर्माश्च कीर्त्तिता यत्र विस्तरात् ।
विष्णुधर्मयुगाख्यानं प्रलयस्य च वर्णनम् ॥
योगानाञ्च समाख्यानं सांख्यानाञ्चापि वर्णनम् ।
ब्रह्मवाद समुद्देशः पुराणस्य च शंसनम् ॥
एतद्‌ब्रह्मपुराणन्तु भागद्वयसमर्चितम् ।
वर्णितं सर्वपापघ्नं सर्वसौख्यप्रदायकम् ॥"

(नारदपु० ४र्थ, ९२ अ०)

महात्मा वेदवित् व्यास द्वारा पहले सर्वसाधारणकी भलाईके लिये यह पवित्र पुराण समाख्यात हुआ है। यह सभी पुराणोंमें श्रेष्ठ है। यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नाना प्रकारके आख्यान और इतिहासयुक्त तथा दश सहस्र श्लोकोंसे परिपूर्ण है। हे मुनिश्वर! पहले इसमें देवासुर और प्रजापति दक्षादिकी उत्पत्ति हुई है, पीछे लोकेश्वर परमात्मा सूर्य्यदेवका महापातकनाशन वंशानुकीर्तन हुआ है। इसमें परमानन्दरूपी चतुर्व्यूहावतार श्रीरामचन्द्रका अवतार कथित हुआ है और उसके बाद सोमवंशका कीर्त्तन तथा जगदीश्वर श्रीकृष्णका पापहर चरित्र वर्णित हुआ है। इसमें अशेष प्रकारसे समस्त द्वीप, सिंधु, वर्ष, पाताल और स्वर्गका वर्णन देखनेमें आता है तथा सभी नरकोंके नाम, सूर्य्यकी स्तुति, पार्वतीके जन्म और विवाहका उल्लेख है। अनन्तर इसमें दक्षका आख्यान और एकाम्रक्षेत्र वर्णित है। हे मानद! इस पुराणका पूर्वभाग कहा गया। अब उत्तर भागका हाल कहते हैं। इसके उत्तर भागमें तीर्थयात्राविधानानुसार पुरुषोत्तमका वर्णन विस्तृत भावमें किया गया है। फिर इस भागमें भी कृष्णचरित खूब बढ़ा चढ़ा कर लिखा है। बाद यमलोकवर्णन, पितृश्राद्धविधि और वर्णाश्रमधर्म आदि सविस्तर कीर्त्तित हुए हैं। विष्णुधर्म, युगाख्यान, प्रलयवर्णन, ब्रह्मवादसमुद्देश और पुराणशासनका भी अच्छी तरह वर्णन किया गया है। यह ब्रह्मपुराण दो भागोंमें विभक्त तथा सर्वपापहर और सर्वसौख्यदायक है।

नारदपुराणमें ब्रह्मपुराणकी जो सूची दी गई है, आधुनिक प्रचलित ब्रह्मपुराणमें उसके किसी भी विषयका अभाव नहीं है। इस हिसाबसे वर्त्तमान आकारका ब्रह्मपुराण नारदीयपुराण सङ्कलित होनेके पहले प्रचलित हुआ था, वह अवश्य स्वीकार किया जा सकता है।

पाश्चात्य पण्डितोंका कहना है, कि प्रचलित ब्रह्मपुराणमें पुराणके पञ्च लक्षण नहीं हैं; क्या सचमुच यह ठीक है? किन्तु प्रचलित ब्रह्मपुराणकी ध्यानपूर्वक आलोचना करनेसे पञ्चलक्षणके सम्बन्धमें कोई सन्देह रहने नहीं पाता। १म चार अध्यायमें सर्ग और प्रतिसर्ग वर्णन, ५म अध्यायमें मन्वन्तरकथा, तत्परवर्त्ती शताधिक अध्यायोंमें वंश और वंशानुचरित कीर्त्तित हुआ है।

आजकलका ब्रह्मपुराण कितना प्राचीन है? पाश्चात्य पण्डितोंने यह स्थिर किया है, कि १३वीं शताब्दीमें ब्रह्मपुराण सङ्कलित हुआ है। किन्तु यह ठीक नहीं जचता। कारण, १२वीं शताब्दीमें रचित दानसागरमें, हलायुधके ब्राह्मणसर्वस्वमें और उसके बाद हेमाद्रिके परिशेषखण्डमें प्रचलित ब्रह्मपुराणके श्लोक उद्धृत हुए हैं। इस हिसाबसे किस प्रकार कहा जा सकता है, कि प्रचलित ब्रह्मपुराण १३वीं शताब्दीमें रचा गया है?

इस पुराणके १७६वें अध्यायमें अनन्तवासुदेवमाहात्म्य वर्णित है। उत्कलके सुप्रसिद्ध भुवनेश्वरक्षेत्रमें आज भी इन अनन्तवासुदेवका मन्दिर विद्यमान है। बङ्गालके सामवेदियोंके पद्धतिकार अद्वितीय पण्डित भवदेवभट्टने ११वीं शताब्दीको उक्त मन्दिर निर्माण किया था। बड़े ही आश्चर्यका विषय है, कि ब्रह्मपुराणमें उक्त अनन्तवासुदेवमूर्त्तिकी उत्पत्ति और माहात्म्यका वर्णन रहने पर भी मन्दिरका प्रसङ्ग कुछ भी नहीं है। उक्त माहात्म्य रचित होनेके समय यदि मन्दिरका निर्माण हुआ रहता, तो निश्चय है, कि पुराणमें इस विषयका प्रसङ्ग रहता—छूटने नहीं पाता। इसके द्वारा भी माहात्म्यका रचनाकाल ११वीं शताब्दीके पूर्ववर्त्ती होता है। पुरुषोत्तम-माहात्म्यप्रसङ्गमें पुरुषोत्तमप्रासादकी कथा रहने पर भी वह वर्त्तमान प्रासादके जैसा प्रतीत नहीं होता। 'गाङ्गेय' ग्रन्थमें लिखा है, कि वर्त्तमान पुरुषोत्तम मन्दिर गङ्गेश्वर चोड़गङ्गसे बनाया गया है। चोड़गङ्ग ९९८ शक अर्थात् १०७७ ई०में कलिङ्गके सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। उनका चरित्र पढ़नेसे मालूम होता है, कि इसके २०५ वर्ष पीछे उन्होंने उत्कल पर आक्रमण किया था। इस हिसाबसे ११०७से १११२ ई०में उनके द्वारा पुरुषोत्तमका मन्दिर निर्मित हुआ होगा। चोड़गङ्ग और गौड़ाधिप बल्लालसेन दोनों समसामयिक थे। साथ साथ बल्लालसेनने अपने दानसागरमें प्रचलित ब्रह्मपुराणसे वचन उद्धृत किये हैं। इस हिसाबसे यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा, कि वर्त्तमान प्रासाद निर्मित होनेके पहले ब्रह्मपुराण निःसन्देह प्रचलित हुआ था। सेनराज लक्ष्मणकी शिलालिपिमें भी इस पुरुषोत्तमक्षेत्रका उल्लेख है। ७वीं शताब्दीमें चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्ग चि-लि-ति-लो (चित्रोत्पल, वर्त्तमान पुरीमें) आ कर पांच प्रासादोंको उच्चचूड़ा देख गये हैं। इनमेंसे कोई एक चूड़ा पुरुषोत्तमप्रासादकी हो सकती है, असम्भव नहीं। जगन्नाथ शब्द ७०९ पृष्ठ देखो।

देशीय और विदेशीय प्रायः सभी पण्डितोंका कहना है, कि अभी जो विष्णुपुराण प्रचलित है वह ब्रह्म आदि सभी पुराणोंकी अपेक्षा प्राचीन है। किन्तु हम इसका समर्थन नहीं कर सकते, वरन् ब्रह्मपुराणका कृष्णचरित और विष्णुपुराणका कृष्णचरित दोनोंका पाठ तथा ब्रह्मपुराणका पुरुषोत्तम माहात्म्य और नारदीय महापुराणका पुरुषोत्तममाहात्म्य मिला कर देखनेसे मालूम पड़ेगा, कि ब्रह्मपुराणके श्लोक ही अविकल परिवर्द्धित आकारमें विष्णु और नारदपुराणमें लिये गये हैं। इस हिसाबसे ब्रह्म, विष्णु और नारद इन तीन पुराणोंमें ब्रह्मपुराणको ही आदि और सर्वप्राचीन पुराण स्वीकार किया जा सकता है। ब्रह्मपुराण जो अष्टादश पुराणके मध्य सर्वप्रथम है, यह विष्णुपुराणमें ही वर्णित है। ब्रह्मपुराण देख कर ही विष्णुपुराणमें कृष्णचरित और नारदपुराणमें पुरुषोत्तममाहात्म्य वर्णित हुआ है, यह पहले ही कहा जा चुका है।

केवल इतना ही नहीं, इस ब्रह्मपुराणके अनेक प्रसङ्ग महाभारतके अनुशासनपर्वमें अविकल उद्धृत हुए हैं, इस ब्रह्मपुराणके २२३से २२५ अध्याय और अनुशासनपर्वके १४३से १४५ अध्यायके साथ तथा ब्रह्मके २२६ अध्याय और अनुशासन पर्वके १४६ अध्यायके प्रत्येक श्लोकमें अविकल मेल है। ये सब उद्धृत श्लोक देख कर कोई कोई यह भी कह सकते हैं, कि महाभारतसे

ही ब्रह्मपुराणमें ये सब श्लोक सन्निवेशित हुए हैं।

किन्तु अनुशासनीक्त—"इदं चैवापरं देवि ब्रह्मण्य समुदाहृतं।" (१४३।१६) और "पितामहमुखोत्सृष्टं प्रमाणमिति मे मतिः।" (१४३।१८) इत्यादि महाभारतीय श्लोक देखनेसे ब्रह्मका वचन महाभारतमें उद्धृत हुआ है, इसमें और कोई सन्देह नहीं रहता। वेदको बढ़ाना ही पुराणका उद्देश्य है, यह पहले ही कहा जा चुका है। इस ब्रह्मपुराणमें भी लिखा है—

"प्रादुर्भावाः पुराणेषु गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः।
यत्र देवा विमुह्यन्ति प्रादुर्भावानुकीर्त्तने॥
पराणं वर्त्तते यत्र वेदश्रुतिसमाहितम्।
एतदुद्देशमात्रेण प्रादुर्भावानुकीर्त्तनम्॥"

(२१३।१६६-१६७)

यथार्थमें इस ब्रह्मपुराणके तीर्थवर्णनाप्रसङ्गमें सैकड़ों वैदिक उपाख्यान वा वंशानुचरित कीर्त्तित हुए हैं। ऋक्संहिता, ऐतरेयब्राह्मण, शाङ्खायन ब्राह्मण, शतपथब्राह्मण तथा वृहद्देवतामें जो सब वैदिक उपाख्यान हैं, उन्होंके अनेक उपाख्यान इस ब्रह्मपुराणमें संस्कृत वा वर्द्धिताकारमें लिपिबद्ध हुए हैं। इनमेंसे बलि और वामनाख्यान, अहल्यासंवाद, पुरूरवा-उर्वशीसंवाद, हरिश्चन्द्र और शुनःशेप-उपाख्यान, कठोपाख्यान, आर्ष्टिषेण और देवापि-उपाख्यान, वृषाकपिका वृत्तान्त, सरमाख्यान, शर्याति-राजचरित, कवष-ऐलूषचरित, आत्रेय और उनकी कन्या आत्रेयीकी कथा, अजीगर्त्ताख्यान, आङ्गिरस, शाकल्य, अभिष्टुत आदिका आख्यान पढ़नेसे मालूम होगा, कि ये सभी वैदिक ग्रन्थसे संग्रहीत हो कर पीछे पुराणमें विस्तृत हुए हैं।

ऐतरेयब्राह्मण (७।३ अ०) और शाङ्खायनब्राह्मण (१५-१७)में जिस प्रकार राजा हरिश्चन्द्र, उनके लड़के रोहित और शुनःशेपकी कथा वर्णित हुई है, वही कथा कुछ बढ़ा चढ़ा कर ब्रह्मपुराणमें वर्णित देखी जाती है। यथार्थमें ऐतरेयब्राह्मण और ब्रह्मपुराणके विवरणमें जैसी एकता है, दूसरे किसी भी ग्रन्थमें वैसी एकता नहीं है। यहां तक कि, ब्रह्मपुराणमें इस प्रकारके उपाख्यानभागमें ऐसी अनेक वैदिक कथाएं हैं जिनका अर्थ करनेमें साधारण पौराणिक अपारक हैं। जिन्होंने समाग्रवेदका ब्राह्मणभाग नहीं पढ़ा है वे सहजमें उक्त उपाख्यान हृदयङ्गम कर सकेंगे, ऐसा बोध नहीं होता।

उपरोक्त प्रमाणादि द्वारा यह प्रतिपन्न होता है, कि आदि ब्रह्मपुराण बहुत पहले, यहां तक कि आपस्तम्बधर्मसूत्र रचित होनेके भी पहले रचा गया था। इसीसे इस पुराणमें अनेक प्राचीन वैदिक उपाख्यान और कहीं कहीं आर्षप्रयोगपरिपूर्ण सुप्राचीन संस्कृत भाषाका प्रयोग है।

अब प्रश्न यह होता है, कि हम लोग अभी जो ब्रह्मपुराण देखते हैं, क्या इसी आकारमें उस समय यह महापुराण प्रचलित था? यथार्थमें आलोचना करनेसे वे सब अंश उतने प्राचीन प्रतीत नहीं होते। तीर्थमाहात्म्यका उपक्रम और उसके प्रसङ्गमें वर्णित प्राचीन आख्यायिका, इन दोनोंकी भाषागत आलोचना करनेसे उन्हें एक समयकी रचना नहीं कह सकते। यथार्थमें स्थानमाहात्म्यका ऐसे विस्तृतभावमें वर्णन करना प्राचीनतम पुराणोंका उद्देश्य था, ऐसा मालूम नहीं पड़ता। अधिक सम्भव है, कि बौद्धधर्मको प्रधान
ह्रास होनेसे ब्राह्मण्यधर्मके पुनरभ्युदयसे ही
माहात्म्य-रचनाओंका सूत्रपात है। प्राचीन
और बौद्धपरिव्राजकोंका भ्रमणवृत्तान्त पढ़ने
तरह जाना जाता है, कि बौद्धधर्म हिमाल
कुमारिका तक फैल गया था। उस
बौद्धोंने भारतीय प्रायः सभी जनपदोंमें शाक्यबुद्ध
बोधिसत्वोंका आविर्भाव-प्रसङ्ग उत्थापन करके सभी स्थानोंको एक प्रकारसे बौद्धपुण्यक्षेत्रमें परिणत कर डाला था। किन्तु उसके बाद जब ब्राह्मणोंका अभ्युदय हुआ, तब उन्होंने भी इसका उचित प्रतिशोध लिया। बौद्धोंने जहां एक तीर्थ स्थापन किया था, ब्राह्मणोंने अपने अपने प्राधान्य और उद्देश्यकी सिद्धिके लिये वहां सैकड़ों तीर्थ आविष्कार किये और जनसाधारणकी भक्तिश्रद्धा आकर्षण करनेके लिये प्राचीन पुराणाख्यानके साथ ये तीर्थमाहात्म्य योजित करने लगे। यथार्थमें ब्राह्मणधर्मके पुनरभ्युदयके साथ जितनी देवमूर्त्तियां प्रतिष्ठित होती थीं, उनका पूजा-प्रचार और उसके साथ ब्राह्मणोंको नाना प्रकारसे इष्टसिद्धिकी सम्भावना रहनेसे अनेक

माहात्म्य भी रचित होते थे। इस प्रकार प्राचीन पुराणोंमें नाना माहात्म्यका समावेश हुआ।

अधिकांश पुराणोंके मतानुसार ब्रह्मपुराणकी श्लोक-संख्या १०००० है। किन्तु प्रचलित ब्रह्मपुराणमें १३७८७ श्लोक देखे जाते हैं। अब देखना चाहिए, कि ब्रह्मपुराणमें ३१८३ अधिक श्लोक आये हैं। इस हिसाबसे तीर्थमाहात्म्यप्रसङ्ग-प्रचलित पुराणमें प्रायः ४००० श्लोक प्रक्षिप्त हुए हैं। सुतरां प्रक्षिप्तका अंश उतना कम नहीं है। अब प्रश्न हो सकता है, कि प्रक्षिप्त अंश संयुक्त हो कर कितने दिन हुए कि ब्रह्मपुराणने वर्त्तमान आकार धारण किया है?

इस पुराणके २१वें अध्यायमें रामकृष्णादि अवतारके साथ कल्किो अवतारका भी प्रसङ्ग है। किन्तु बड़े ही आश्चर्यका विषय है, कि उसमें बुद्धावतारका कुछ भी प्रसङ्ग नहीं है। प्रसिद्ध प्रत्नतत्त्ववित् बुल्लर साहबने प्रमाणित किया है, कि ८वीं शताब्दीमें बुद्धदेव हिन्दुओंके दशावतारमें गण्य हुए। सुतरां बुद्धदेवका हिन्दूसमाजमें अवतार माने जानेके बहुत पहले यह पुराण सङ्कलित हुआ था, इसमें सन्देह नहीं। १ली शताब्दीको दाक्षिणात्यमें ब्राह्मणभक्त सातवाहनवंशीय राजगण राज्य करते थे। महाराष्ट्रसे ले कर मन्द्राज तक इनका आधिपत्य फैला था। इस वंशके पूर्ववर्त्ती दाक्षिणात्य राजाओंमेंसे अधिकांश बौद्धधर्मानुरागी वा बौद्धधर्मावलम्बी थे। किन्तु सातवाहनवंशके समय दाक्षिणात्यमें बौद्धप्रभावका ह्रास नहीं होने पर भी इन लोगोंने जिस प्रकार ब्राह्मण्यधर्म पर अनुराग दिखलाया था, जिस प्रकार हजारों ब्राह्मणोंने इनसे वृत्ति पाई थी तथा सैकड़ों हिन्दूदेवालय प्रतिष्ठित हुए थे, उसीसे मालूम होता है, कि उस बौद्धप्रभावके समयमें ही ये लोग ब्राह्मण्यधर्म स्थापन करनेमें अग्रसर हुए थे।

इसी समय पुड़मायी, उषवदात, गौतमीपुत्र शातकर्णी आदि अनेक राजा 'द्विजवरकुटुम्बविवर्द्धन', 'ब्राह्मण' इत्यादि विशेषणोंसे विशेषित हुए हैं। वे सब राजन्यवर्ग देवब्राह्मणके उद्देशसे हजारों गोदान, सैकड़ों ग्राम और मन्दिर दान कर कीर्त्ति स्थापन कर गये हैं। यद्यपि वे लोग बौद्ध भिक्षुकोंका भी सम्मान करते थे, तो भी देवब्राह्मणके ऊपर उनकी प्रगाढ़ भक्ति और अनुराग था—यहां तक कि, राजा उषवदातने प्रभासक्षेत्रमें आठ ब्राह्मणोंको आठ कन्या देनेमें जरा भी सङ्कोच न किया था। सुतरां इसी समयसे ब्राह्मण्यधर्मके पुनरभ्युदयका सूत्रपात कह सकते हैं। इसी समय 'रामतीर्थ' आदि किसी किसी तीर्थने ख्याति लाभ की थी, उस समयकी शिलालिपिसे इसका यथेष्ट प्रमाण मिलता है। हम लोग अनुमान करते हैं, कि इसी समयसे ब्राह्मण्यधर्मके पुनरभ्युदयके साथ साथ नाना तीर्थोंकी उत्पत्ति और नाना तीर्थमाहात्म्योंकी रचना हुई होगी। इस सातवाहनवंशकी एक प्रधान रानीका नाम गौतमी था। इस वंशके कुछ राजा भी गौरवके साथ 'गौतमीपुत्र' नामसे परिचित हुए हैं। यह भी असम्भव नहीं, कि रूपकप्रिय पौराणिक ब्राह्मणोंने गोदावरीमाहात्म्यको इसीलिये 'गौतमीमाहात्म्य'से परिचित किया हो। ब्रह्मपुराणके सभी माहात्म्य एक समयमें सङ्कलित हुए थे, ऐसा बोध नहीं होता। पर हां, बुद्धदेवका हिन्दूसमाजमें अवतार माने जानेसे पहले प्रायः ४र्थ शताब्दीके मध्य सभी माहात्म्यका ब्रह्मपुराणमें समावेश अवश्य हुआ था।

पहले यह पुराण ब्राह्म अर्थात् ब्रह्ममाहात्म्यसूचक ही कहलाता था, स्कन्दपुराणसे इसका प्रमाण मिलता है। किन्तु इस नवकलेवरके धारणकालमें यह वैष्णवका पुराण कहलाने लगा;—

"पुराणं वैष्णवं त्वेतत् सर्वकिल्विषनाशनम्।"
(२४५।२०)

परवर्त्तीकालमें दाक्षिणात्य ब्राह्मणोंने ऋषिपञ्चमीव्रत, कर्मविपाकसंहिता, कालहस्तीमाहात्म्य, चम्पाषष्ठीव्रत, नासिकोपाख्यान, प्रयागमाहात्म्य, वित्रखण्डमें मल्लारिमाहात्म्य, मार्त्तण्डमाहात्म्य, मायापुरीमाहात्म्य, ललिताखण्ड, वेङ्कटगिरिमाहात्म्य, श्रीरङ्गमाहात्म्य, श्वेतगिरिमाहात्म्य, हस्तिगिरिमाहात्म्य आदि माहात्म्योंको ब्रह्मपुराणके अन्तर्गत लानेकी चेष्टा की है, किन्तु उनका मूल ब्रह्मपुराणमें स्थान नहीं है। वे सब माहात्म्य ११वीं वा १२वीं शताब्दीकी रचना प्रतीत होते हैं।

२य पद्मपुराण।

आजकलके प्रचलित पद्मपुराण सृष्ट्यादि पांच खण्डोंमें विभक्त हैं जिनकी सूची नीचे दी गई है :—

१ सृष्टिखण्डमें—१म सूतके प्रति ऋषियोंको पुराणकथनाज्ञा, नैमिषारण्याख्यान, सूतशौनकसंवाद, पुराणप्रसङ्गमें सूतव्यासादिका उत्पत्तिकथन, व्यासके पुराण बनानेका कारणवर्णन, २ सृष्टिखण्डोक्त विषयकी परिगणना, पुलस्त्यभीष्मसंवादमें सृष्टिकथन और अहङ्कारादि यावतीय पदार्थोंका उत्पत्तिवर्णन, ३ मन्वन्तरादिका परिमाणकथन, प्रलयवर्णन, जलमें निमज्जमाना पृथ्वीकी विष्णुस्तुति, वराहरूपमें भगवान् द्वारा पृथ्वीका उद्धार, प्रजापतिका नवधा सृष्टिकथन, देवताओंका दिवाभागमें और असुरोंका रात्रिकालमें बलाधिक्य कारणकथन, ब्राह्मणादिका उत्पत्तिकथन, ब्रह्मक्रोधसे रुद्रोत्पत्तिकथन, स्वायम्भुवादिका उत्पत्तिकथन, ४ इन्द्रके प्रति दुर्वासाका अभिशाप, समुद्रमन्थन, भृगुशप्त विष्णुके साथ ब्रह्माका कथोपकथन, नारदका ब्रह्मस्तोत्र और वरप्राप्ति, ५ दक्षयज्ञविनाशकथन, दक्षकी शिवस्तुति और वरलाभ, ६ देवदानव गन्धर्वोरगरक्ष आदिका सृष्टिकथनारम्भ, प्रचेता-दक्षसंवादमें पूर्व सृष्टिकी हेतुत्वजिज्ञासा, देवता, वसु, रुद्र, द्वादश आदित्य और हिरण्यकशिपुप्रमुख दैत्येन्द्रादिकी उत्पत्तिकथा, बाणासुरचरिताख्यान, विनताके गर्भसे गरुड़का उत्पत्तिकीर्त्तन, सम्पाति और जटायुका उत्पत्तिवृत्तान्त, मुनि, अप्सरा, किन्नर, और गन्धर्वादिका उत्पत्तिकथन, ७ ज्यैष्ठपूर्णिमाव्रतकथा, दितिके गर्भमें इन्द्रकर्त्तृक भ्रूणच्छेद, मरुत्का उत्पत्तिवृत्तान्त, प्रतिसर्गकथन, मन्वन्तरवर्णन, ८ पृथूपाख्यान, आदित्यवंशकथन, सावर्णि मनुका उत्पत्तिवर्णन, छायाका उपाख्यान और रवितेज-हरणवृत्तान्त, अश्विनीकुमारका उत्पत्तिवर्णन, शनिकी ग्रहत्वसम्प्राप्तिकथा, इलोपाख्यान और इलकी स्त्रीत्वप्राप्ति तथा बुधाश्रममें वास, ऐलका उत्पत्तिकथन, इक्ष्वाकु आदिका वंशवर्णन, भगीरथवंशकथन, दिलीप-वंशकथन, ९ पितृवंशकथा, अग्निकरणवर्णन, श्राद्धप्रशंसा, निषिद्धवस्तुवर्णन, श्राद्धकालनिर्णय, विषुवायन दिनमें साधारण श्राद्धविधान, १० एकोद्दिष्टविधि, सपिण्डविधान, अशौचादिनिर्णय, श्राद्धका फलाफलकथन, ११ श्राद्धप्रशस्त देशकालकथा, नैमिष, गया और तीर्थक्षेत्रादिमें श्राद्धप्रशस्तता, विष्णुदेहसे कुशतिलादिकी उद्भवकथा, १२ सोमोपाख्यान, बुधकी जन्मकथा, इलाके गर्भसे पुरूरवाका जन्म और चरिताख्यान, नहुषवंशकथन, कार्त्तवीर्योपाख्यान और नहुषवंशकीर्त्तन, १३ क्रोष्टुवंशकथा, स्यमन्तोपाख्यान, कुन्त्याख्यान, त्रिपुरुषसे अर्जुनकी उत्पत्ति, माद्रवतीके गर्भसे नकुल सहदेवकी उत्पत्ति, श्यामकृष्णका उपाख्यान, कृष्णकी जन्मकथा, वसुदेव-देवकी नन्द और यशोदाका पूर्वजन्मवृत्तान्त, कृष्णवंशचरित, दशावताररूप धारणका कारणनिर्देश, शुक्रकृत तपश्चर्या, देवपराजित दैत्योंका काव्यमाताके निकट गमन, शुक्रमातासे देवपराभव, विष्णु द्वारा शुक्रमाताका वधवर्णन, भृगुदत्त विष्णुशापवर्णन भृगुकृत मातृसञ्जीवनवर्णन, शुक्रकी तपस्या भङ्ग करनेके लिये इन्द्र द्वारा जयन्तीकन्याका प्रेरण, शुक्रका शिववरलाभ, जयन्तीके साथ शुक्रका शतवर्षरतिवर्णन, शुक्रके वेशमें बृहस्पतिका दानवके निकट गमन, नास्तिक मत प्रचार और दीक्षादान, दानवोंके प्रति शुक्रका अभिशाप, १४ शिवकृत शिरश्छेदरुष्ट ब्रह्माके स्वेदसे पुरुषकी उत्पत्ति, स्वेदके भयसे डर कर शङ्करका विष्णु समीप गमन और विष्णुकी दक्षिण भुजाका त्रिशूल द्वारा छेदन, भूजोत्पन्न रक्तसे अपर पुरुषकी उत्पत्ति, दोनोंका युद्ध, स्वेदजका पराभव, दोनोंका क्रमशः सुग्रीव और वालीरूपमें जन्म, उक्त दोनों पुरुषोंका कर्णार्जुनरूपमें पुनर्जन्मवृत्तान्त, शिवकृत ब्रह्मशिरश्छेदकारणवर्णन, शङ्करकृत ब्रह्मस्तोत्र, ब्रह्महत्याक्षालनके लिये शङ्करके प्रति विष्णुका उपदेश, रुद्रकृत समस्त तीर्थगमन, पुष्करमें रुद्रकृत कापालिकव्रतकथा और ब्रह्मवरप्राप्ति, कपालमोचनतीर्थोत्पत्ति, वाराणसीमाहात्म्यवर्णन और ब्रह्माकी आज्ञासे शिवका काशीधाम गमन, १५ मेरुशिखरस्थ कान्तिमतीसभामें ब्रह्माका चिन्तावर्णन, ब्रह्माका वनगमन, पुष्करोत्पत्तिकथन, वहां देवतासम्मिलन, पुष्करतीर्थवासियोंका धर्माचार, चन्द्रायण और व्रतका फलकथन, ब्राह्मणलक्षणवर्णन और भिक्षुधर्मकथन, १६ ब्रह्मकृत यज्ञानुष्ठान और तत्कर्त्तृक गोपकन्याका पाणिग्रहण, १७ ब्रह्मयज्ञमें रुद्रका भिक्षार्थ आगमन, ब्रह्मरुद्रसम्वाद,

परशु, पु...
...नीका, बृहद्रथ, सुक्रतु, निषधावत...

गोपकन्याके साथ यज्ञमें प्रवृत्त ब्रह्माके प्रति सावित्रीका शापदान, विष्णुकृत सावित्रीस्तोत्र, विष्णुका सावित्रीवरलाभ, कार्त्तिकी पौर्णमासीको गायत्रीके उपदेशसे ब्रह्माका व्रत, रुद्रकृत गायत्रीस्तव और वरलाभ, १८ ब्रह्मयज्ञकथा, दानवोंके साथ विष्णुका कलह, पुष्करस्नानसे सुखविरूप ऋषिकी सुरूपताप्राप्ति, प्राचीन सरस्वतीचरित, मङ्कणक ब्राह्मणका उपाख्यान, सरस्वतीमाहात्म्यकथन, प्रसङ्गक्रमसे उतङ्काश्रममें आगमन, गङ्गासंवाद, समुद्रगमन और वड़वानल ग्रहवर्णन, सरस्वतीकी नन्दा नाम प्राप्ति, प्रभञ्जन राजाका उपाख्यान और नन्दाका प्रसङ्ग, १९ तीर्थविभागवर्णन, वृत्रासुरोपाख्यान, दधीचिका आख्यान, वृत्रवधवर्णन, कालकेयोंकी समुद्रस्थिति, अगस्त्याख्यान, विन्ध्यपर्वतकी मस्तकनति, अगस्त्यकृत समुद्रपान, कालेयवधवृत्तान्त, पुष्करमाहात्म्यप्रसङ्ग आख्यायिकारम्भ, अन्नदानादिप्रशंसा, मध्यम पुष्करप्रशंसा, २० दानप्रशंसाप्रसङ्गमें पुष्पवाहन नृपतिका आख्यान, २१ धर्ममूर्त्ति नामक राजाख्यान, सौरधर्मकथन, विशोकादि सप्तमीव्रतकथा, २२ अगस्त्यचरित, गौरीव्रत और सारस्वतव्रतविधि, २३ भीमद्वादशीव्रतकथनमें कल्याणिनियोंके तथा दाल्भ्यसंवाद, दाल्भ्यकर्त्तृक वेश्याधर्मकथन, २४ अशून्यशयनव्रतविधि, तत्प्रसङ्गमें वीरभद्रोत्पत्तिकथन, आदित्यरोहिणी, ललिता और सौभाग्यशयनव्रतविधि, २५ वामनावतारकथन, २६ नागतीर्थोत्पत्ति, उसके प्रसङ्गमें शिवदूतका आख्यान, २७ प्रेतपञ्चकका आख्यान, सुधावटतीर्थवर्णन, २८ मार्कण्डेयोत्पत्तिकथन, रामका रेवागमनादिवर्णन, २९ ब्रह्मकृत यज्ञकालवर्णन, ऋत्विक परिमाणकथन, पुष्करमाहात्म्य, ३० क्षेमङ्करीका उपाख्यान, क्षेमङ्करीस्तोत्र, ब्रह्मविष्णुरुद्र शक्ति समूहका बहुभेदकथन, ३१ वैष्णवी और चामुण्डारूपी शक्तिका दैत्यवधवर्णन, महिषासुरवध, नवग्रह व्रत और ब्रह्माण्डदानविधि, ३२ रामकृत शूद्रक-वधाख्यान, ३३ राम-अगस्त्यसंवादमें क्षत्रियका प्रतिग्रहाधिकार और श्वेत नामक राजोपाख्यान, ३४ दण्डोलूकाख्यान, ३५ कान्यकुब्जमें रामकर्त्तृक वामनप्रतिष्ठादि कथा, ३६ विष्णुकी नाभिसे हिरण्मयपद्मोत्पत्ति-कथा, ३७ मधुकैटभवध, प्राजापत्यसृष्टि, तारकामयसंग्राम, ३८ विष्णुकर्त्तृक इन्द्रादिका अधिकारप्रदान, ३९ तारकासुरकथा, ४० हिमालय पार्वत्युत्पत्तिकथा, पार्वतीका विवाहवर्णन, ४१ कार्त्तिकेयोत्पत्ति और तारकासुरवधकथा, ४२ हिरण्यकशिपुवधाख्यान, ४३ अन्धकासुराख्यान, गायत्री जपविधि, ४४ अधम ब्राह्मण लक्षण, तत्प्रसङ्गमें गरुड़ोत्पत्तिकथन, ४५ अग्निद-गरदादि ब्राह्मणवधमें पापाभावकथन, सत्य और गोमाहात्म्य, ४६ सदाचारकथा, ४७ पितृसेवाप्रशंसाकथनमें मूक, प्रतिव्रता, तुलाधार और मद्रोहक उपाख्यान, श्राद्धप्रशंसा, ४८ पतिव्रताकथनमें माण्डव्यचरित, ४९ सहगमनविधि और स्त्रीधर्म, ५० तुलाधारचरित, अलोभ प्रशंसामें शूद्राख्यान, ५१ अहल्याधर्षण, ५२ परमहंसाख्यान और लौहित्यमाहात्म्य, ५३ पञ्चाख्यान, ५४ जलदानप्रशंसा, ५५ अश्वत्थादिदानविधि, ५६ सेतुबन्धकथा, श्रोत्रियगृहकरण फल, ५७ रुद्राक्षमाहात्म्य और उसकी आख्यायिका, ५८ धात्रीफल और तुलसीमाहात्म्य, ५९ तुलसीस्तव, ६० गङ्गामाहात्म्य, ६१ गणेशकी अग्रपूजाकथा, गणेशस्तोत्र, ६२ नान्दीमुखादि गणेशपूजा करनेमें फल और देवासुरसंग्राममें चित्ररथकर्त्तृक कालकेयवधवृत्तान्त, ६४ कालकेयवधकथा, ६५ बलनमुचिवध, ६६ मुचिवध, ६७ कार्त्तिकके हाथसे तारेयवध, ६८ दुर्मुखवध, ६९ २य नमुचिवध, ७० मधुदैत्यवध, ७१ वृत्रासुरवध, ७२ गणेशकर्त्तृक त्रिपुरीवध, ७३ वराहरूपधारी विष्णुका हिरण्याक्षवध, ७४ दैत्यस्वभाववर्णन, प्रह्लादादिकी सुरत्वप्राप्ति, भीष्म-कर्ण-द्रोणादिका देवकथन, ७५ सूर्यचरित, ७६ बहुविध सूर्यव्रतकथा, ७७ सूर्यमाहात्म्यमें भद्रेश्वर राजाख्यान, ७८ सोमपूजा और सोमोद्देशसे दानविधि, ७९ भौम (मङ्गल)-की उत्पत्ति और पूजाकथन, ८० चण्डिकामाहात्म्य, ८१ दुर्गापूजापद्धति, ८२ बुध-गुरु शुक्रादिकी पूजाविधि, नवग्रहमन्त्र, पद्मपुराणपठनका फल, सृष्टिखण्डका श्रवणश्रावण पठन-फल।

२य भूमिखण्डमें—१ प्रह्लादका जन्मान्तर, शिवशर्मापुत्र विष्णुशर्मादिका आख्यान, २ धर्म और धर्मशर्मा संवाद, ३ मेनका और विष्णुशर्मासंवाद, ४ सोम-

शर्मादिको पितृभक्ति और शिवशर्माको गोलोकप्राप्ति, ५ इन्द्रका इन्द्रत्वलाभप्रसङ्ग, ६ कश्यपभार्या दिति और दनुकी कथा, ७ दितिके प्रति कश्यपका आत्मज्ञानकथन, ८-१० कश्यप और हिरण्यकशिपुसंवाद, ११ सुव्रतोपाख्यान, १२ वृत्तसम्बन्धी पुत्र और पुण्यधर्मादिकथन, १३ ब्रह्म-चर्यलक्षण, १४ धर्माख्यान, १५ पापियोंका मरणवृत्तान्त, १६ वशिष्ठके निकट सोमशर्माका विभिन्न पुत्रलक्षणश्रवण १७ विप्रत्वप्राप्तिका कारण, १८ सोमशर्माको विष्णुदर्शन, १९ सोमशर्मा और सुमनासंवाद, सोमशर्माका सुपुत्रलाभ, २० सुव्रतचरित, २१ सुव्रतका पूर्वजन्म, रुक्मभूषणा-ख्यान, २२ सृष्टितत्त्वकथन, २३ वृत्राख्यान, २४ वृत्रका इन्द्रत्वलाभ, सुरापानसे वृत्रका पतन और उसी समय वज्रप्रहारसे इन्द्रकर्तृक वृत्रसंहार, २५ दितिका शोक और मरुत्-उत्पत्ति, २६ पृथुचरितारम्भ, २७ पृथुका जन्मादिकथन, २८ पृथुधरित्रीसंवाद, २९ वेणचरित, ३० अत्रिपुत्र अङ्गसंवाद, ३१ अङ्गको वासुदेवदर्शन, ३२ सुशङ्खगन्धर्व और सुनीथाचरित, ३३ सुशङ्खके प्रति शाप-वर्णन, ३४ इन्द्रसम्पदको देख कर उसके समान पुत्रलाभके लिये अङ्गको तपस्या, ३५ अङ्गको सुनीथाके साथ विवाह, ३६ वेणका पापप्रसङ्ग और उसके प्रसङ्गमें जैनधर्मकथन, ३७ ऋषिगणकर्तृक वेणका दक्षिणपाणिमन्थन और पृथुका जन्म, ३८ वेणका स्वर्गप्राप्तिकथन, ३९ दान-कालकथन, ४० नैमित्तिक दानकथन, ४१ पुत्रभार्यादि-रूपतीर्थप्रसङ्गमें कृकल नामक वैश्योपाख्यान, ४२ सदा-चारप्रसङ्गमें इक्ष्वाकु और उनकी पत्नी सुदेवाकी कथा, ४३-४५ शूकरोपाख्यान, ४६ शूकरके जीवन लाभप्रसङ्गमें गीत-विद्याधरकथा, ४७ श्रीपुरस्थवसुदत्तद्विजकथा, ४८-४९ उग्रसेनाख्यान, ५० पद्मावती गोभिलसंवाद, ५१ पद्मावती-का गर्भ और कंसजन्मकथन, ५२ शिव शर्मा द्विजसंवाद, ५३-५६ सुकला-विष्णुसंवाद, ५७ सुकला कामसंवाद, ५८ सुकलाका निजगृहमें आगमन और पतिलाभ, ५९ धर्म-कर्तृक पतिका कर्त्तव्याकर्त्तव्यनिर्णय, ६० धर्मादेशसे कृकल नामक वैश्यका स्वगृहमें आगमन और भार्या-तीर्थलाभ, ६१ पितृतीर्थ-प्रसङ्गमें कुण्डलपुत्र सुकर्मा और कश्यपकुलोद्भव पिप्पलकी कथा, ६२ सुकर्माका मातृके निकट पिप्पलका ज्ञानलाभ, ६३ सुकर्माकर्तृक

पितृमातृसेवामें अशेष पुण्यकथन, ६४ नहुष और ययाति-का आख्यान, ६५-६६ ययाति और मातलिसंवाद, मातलि कर्तृक गर्भवासादि कायदुःखकथन, ६७ मातलि कर्तृक कर्मविपाकवर्णन, ६८ दानफल, ६९ शिवधर्म-कथन, ७० यमपीड़ाकथन, ७१ शिव, विष्णु, और ब्रह्म इन तीनोंका अभेदकथन, ७२ ययातिका शरीरत्याग पूर्वक इन्द्रपुर जानेमें अस्वीकार, ७३ नामामृतकथन, ७४ हरिनाम प्रचार, ७५ विष्णुनामकथन, ७६ ययातिचरितमें ययातिकी वैष्णवधर्म प्रचारकथा, ७७ विशाला-ययाति संवादवृत्तान्त, ७८ पुत्रोंके प्रति ययातिका जराग्रहण-का आदेश, पुरुका पितृजराग्रहण, ७९ काम कन्याके साथ ययातिका विवाह और विहार, ८० ययातिकर्तृक यदुके प्रति मातृशिरश्छेदनका आदेश, ८१ ययातिकी कृष्णभक्ति, ८२ पुरुसे ययातिका फिरसे जराग्रहण और पुरुका राज्याभिषेक, ८३ ययातिका स्वर्गारोहण, ८४ गुरुतीर्थ प्रसङ्गके च्यवनचरितमें कुञ्जल नामक शुकाख्यान और प्लक्षद्वीपराजकन्या दिव्यादेवीकी कथा, ८५ दिव्यादेवीका पूर्वजन्माख्यान, ८६ जयादिव्रतभेदकथन, ८७ उज्ज्वल पक्षी और दिव्यादेवीसंवाद, दिव्यादेवीका विष्णुदर्शन, समुज्ज्वल पक्षी कर्तृक हिमालयका हंसाख्यान, ९० इन्द्रनारदसंवादमें तीर्थप्रशंसा, ९१ पाञ्चालदेशवासी विदुर नामक क्षत्रियकथा, ९२ वाराणस्यादि तीर्थस्नान माहात्म्य, ९३ विज्ज्वलपक्षीकर्तृक आनन्दकाननस्थ दम्पतीवर्णन, ९४ कुञ्जलपक्षीकर्तृक कर्मफल और जैमिनि कर्तृक अन्नदानफलकथन, ९५ स्वर्गगुण-वर्णन, ९६ कर्मफलसे सुगति और दुर्गतिकथन, ९७ धर्मा-धर्मगतिवर्णन, ९८ वासुदेवस्तोत्र, ९९ स्तोत्रपाठफल, १०० कुञ्जलाख्यानसमाप्त, १०१ कपिञ्जल पक्षीकर्तृक रत्नेश्वरप्रसङ्ग, १०२ शिवपार्वती संवादमें अशोकसुन्दरी कथा, १०३ अशोक सुन्दरीका उपाख्यान, १०४ इन्दुमती दत्तात्रेयसंवाद, १०५ इन्दुमतीके गर्भसे नहुषजन्म और नहुषका अस्त्रशिक्षादि कथन, १०६ इन्दुमती और आयुका शोकसंवाद, १०७ आयुके प्रति नारदका आश्वा-सन, १०८ वशिष्ठनहुषसंवाद, १०९ नहुषकी मृगया, ११० हुण्डदानवनिधनार्थ नहुषकी यात्रा, १११ नहुषका नन्दनगमन, ११२ नहुषके लिये अशोकसुन्दरीका विरह,

परशु, पुरु, ...
...शोक, बृहद्रथ, सुक्रतु, निषधाधिपति

११३ नहुषके निकट अशोक सुन्दरीका गमन, ११४ नहुषके साथ दानवोंका युद्ध, ११५ नहुषकर्तृक हुण्डदानव-वध, ११६ इन्दुमतीका नहुषपुत्रलाभ, ११७ अशोक-सुन्दरीके साथ नहुषका विवाह, ११८ हुण्डपुत्र विहुण्डाख्यान, ११९ कामोदोत्पत्तिकथन, १२० कामोदाख्य-पुरवर्णन, १२१ विहुण्डवध, १२२ कुञ्जलपक्षीच्यवन-संवाद, १२३ वैणाश्रममें वेणकी ज्ञानप्राप्ति, १२४ पृथुके प्रति वेणका आदेश, १२५ वेणका स्वर्गलाभ और भूमिखण्डपाठफल।

३य स्वर्गखण्डमें—१ स्वर्गखण्डविषयानुक्रम, शिववात्स्या-संवादमें दुष्मन्तचरित, शकुन्तलाका उपाख्यान, २ कण्व-शकुन्तलासंवाद, शकुन्तलाका दुष्मन्तपुरमें आगमन, ३ दुष्मन्तका शकुन्तला ग्रहणमें अस्वीकार, शकुन्तलाका दुष्मन्तपुरत्याग, मेनकाशकुन्तलासंवाद, ४ मेनकाके साथ शकुन्तलाका स्वर्गगमन, ५ धीवरसे दुष्मन्तकी अङ्गुरी प्राप्ति, अङ्गुरी (अंगूठी) देख कर दुष्मन्तका पूर्वकथा-स्मरण और शकुन्तलाके लिये दारुण मनस्ताप, भरत-दुष्मन्तसंवाद, शकुन्तलाका समागम, ६ सपरिवार दुष्मन्तका निजालय गमन, भरतका अभिषेक, भरताख्यान, चन्द्रसूर्यादिका मण्डल परिमाण और दूरत्वादिकथन, भूलोकादिका परिमाण, ७ भूतपिशाचगन्धर्वादि लोक-वर्णन, अप्सरालोकवर्णनमें उर्वशी पुरूरवाका आख्यान, ८ सूर्यलोकवर्णन, परमेष्ठिब्रह्माका शम्भुपुत्ररूपमें प्रादु-र्भावाख्यान, रुद्रसर्गवर्णन, संयमनीपुरी, वरुणोपाख्यान, १० गन्धवतीपुरी और वायुका आख्यान, कुबेर और रावणोत्पत्तिवर्णन, ११ नक्षत्र, तारा और ग्रहलोकादि-वर्णन, १२ ध्रुवलोकवर्णनमें ध्रुवचरित्रोल्लेख, १३ ध्रुव-चरित, १४ स्वर्लोक और महर्लोकवर्णन, १५ वैकुण्ठ-लोकवर्णन, सगराख्यान कपिलशापसे सगरपुत्रनाश-वृत्तान्त, अंशुमानकी उत्पत्ति, असमञ्जका अभिषेक, १६ भगीरथका जन्म और गङ्गानयन, १७ धुन्धुमारचरित, १८ शिवि और उशीनराख्यान, १९ मरुत्तचरित, २० मरुत्त सम्वर्त्तसंवाद, मरुत्तराजका यज्ञारम्भ, २१-२२ मरुत्तके यज्ञमें देवताओंका आगमन और मरुत्तकी स्वर्गलोक-प्राप्ति, २३ दिवोदासचरित, २४ हरिश्चन्द्रचरित, २५ मान्धाताका उपाख्यान, २६ नारदमान्धातृसंवादमें ब्राह्मणादिकी उत्पत्ति और वर्णधर्मकथन, २७ आश्रमधर्मनिरूपण और योगकथन, २८ चातुर्वर्ण्यको धर्मप्रशंसा, २९ चातुर्वर्ण्यका आह्निककृत्यवर्णन, शालग्रामशिलामाहात्म्य, ३० परलोकसाधन, सदाचार, ३१ ब्राह्मणोंका भक्ष्याभक्ष्य सदाचारनिर्णय, ३२ ब्रह्म-केतुका उपाख्यान, ३३ दक्षयज्ञ, सतीका देहत्याग, दक्षशापवर्णन, ३४ परलोकवर्णन, ३५ श्राद्धपात्रनिर्णय, ३६ राजाका कर्त्तव्य, ३७ राजधर्मनिरूपण, ३८ राज-साधारण धर्मकथन, ३९ प्रलयलक्षण, सोभरिप्रोक्तविवाह, मान्धाताका स्वर्गगमन, स्वर्गखण्डका अनुक्रम-वर्णन।

४र्थ पातालखण्डमें—१ सूतशौनकसंवाद, शिवके प्रति वात्स्यायनका रामचरितप्रश्न, रावणवधके बाद रामका अयोध्याभिमुख गमन, सीताके साथ रामके भरता-वास नन्दिग्रामदर्शन, २ श्रीरामभरतसमागम और भरतके साथ रामका अयोध्या-आगमन, ३ रामका मातृ-दर्शन और पौराङ्गणासंवाद, ४ रामका राज्याभिषेक, ५ रामकर्तृक सीतानिर्वासन और रामके निकट अगस्त्यका आगमन, ६ अगस्त्यकर्तृक रावण कुम्भकर्ण विभीषणादिका जन्मकथन, रावणकी माताके समीप प्रतिज्ञा, ७ रावणादिका उग्रतप, ब्रह्माका वरदान, रावणाक्रान्त, देवताओंका ब्रह्मलोकगमन, देवताओंके साथ ब्रह्मा और शिवका वैकुण्ठगमन विष्णुस्तुति, विष्णुका रामरूपमें अवतार, ८ रावणवधजनित ब्रह्महत्यासे निष्कृति पानेके लिये रामका अश्वमेधयज्ञ, ९ अश्वमेधयाग, अश्व-लक्षण, रामके प्रति ऋषियोंका वर्णाश्रमधर्मकथन, १० रामको यज्ञदीक्षा, स्वर्णसीतासह रामका कुण्डमण्डपादि-करण, अश्वरक्षाके लिये शत्रुघ्नका गमन, ११ पुष्कला-गमन और अश्वनिर्गम, १२ अहिच्छत्रामें अश्वागमन, कामाक्षाचरित, उसके प्रसङ्गमें सुमदराजचरित, १३ सुमदको कामाक्षादर्शन, सुमदशत्रुघ्न समागम, शत्रुघ्नका अहिच्छत्रापुरीप्रवेश, १४ अश्वके साथ शत्रुघ्नका च्यवनाश्रममें गमन, च्यवनसुकन्याचरित, १५ सुकन्याके साथ च्यवनका तपोभोगवर्णन, १६ शर्यातिसुकन्या-चरित, च्यवनका रामयज्ञ देखनेके लिये गमन, १७ अश्वका वाजीपुरमें गमन, वाजीपुराधिप विमल-राजका शत्रुघ्नको सर्वस्व प्रदान, नीलगिरिमाहात्म्य

और उसके प्रसङ्गमें रत्नग्रीवराजचरित, १८ नीलगिरि-वास-पुरुषमें चतुर्भुजत्वप्राप्तिकथन, १९ नीलगिरियात्रा-विधि, २० गण्डकी माहात्म्यमें शालग्राम शिलामाहात्म्य और पुल्कस नामक शबरचरित, २१ रत्नग्रीवकृत पुरुषोत्तमस्तोत्र, २२ रत्नग्रीवको चतुर्भुजप्राप्ति, नील-पर्वतके समीप अश्वागमन, २३ पीछे सुबाहुराजका चक्राङ्कनगरगमन, सुबाहुपुत्र दमनकर्तृक प्रतापाग्रवध, २४ पुष्कलविजय, २५ सुबाहु सेनापतिका क्रौञ्चव्यूह-निर्माण, २६ लक्ष्मीनिधिके साथ सुकेतुका युद्ध, सुकेतु-वध, २७ पुष्कलके साथ चित्राङ्गका युद्ध, चित्राङ्गवध, २८ सुबाहुके साथ हनुमान्का युद्ध, सुबाहुको मूर्च्छा और स्वप्नमें रामदर्शन, २९ शत्रुघ्नविजय, ३० अश्वके साथ शत्रुघ्नका तेजपुरमें आगमन, ऋतम्भर नामक नृपाख्यान, जनकोपाख्यान, ३१ जनकका नरकदर्शन कारण, ऋतम्भर ऋतुपर्ण समागम, ३२ सत्यवानका आख्यान, शत्रुघ्न सत्यवानसंवाद, ३३ रावणसुहृद विद्युन्मालीका अश्व-हरण, ३४ विद्युन्मालीवध, ३५ अश्वका आरण्यक ऋषिके आश्रममें गमन, आरण्यक ऋषिका आख्यान, ३६ लोमश कर्तृक आरण्यके प्रति रामचरित्रनिरूपण, ३७ आरण्यक मुनिको सायुज्यप्राप्ति, ३८ नर्मदाह्रदमें अश्वनिमज्जन, यमुनाह्रदमें शत्रुघ्नको मोहनास्त्रविद्याप्राप्ति, ३९ अश्वका देवपुर नामक वीरमणि नगरमें प्रत्यागमन, वीरमणि-पुत्रकर्तृक अश्वग्रहण, शिववीरमणिसंवाद, ४० सुमति-के निकट शत्रुघ्नका वीरमणिचरितश्रवण, दोनोंपक्षमें युद्धोपक्रम, ४१ रुक्माङ्गद और पुष्कलका युद्ध, ४२ पुष्कल-विजय, ४३ वीरभद्रके साथ पुष्कलका युद्ध, पुष्कलवध, वीरभद्रशत्रुघ्नयुद्ध, शत्रुघ्नपराजय, ४४ हनुमानके साथ शिवका युद्ध, हनुमानके प्रति शिवका वरदान, हनुमान-का द्रोणाचल आनयन, मृत सञ्जीवनी औषधके प्रभावसे सबोंका जीवनलाभ, शिवके निकट शत्रुघ्नकी पराजय, युद्धमें श्रीरामका आगमन, ४५-४६ श्रीरामशिव समागम, रामदर्शनसे सबोंको आनन्द, हय-प्रस्थान, ४७ हयका हेमकूटगमन और हयगात्रस्तम्भ, शौनककर्तृक हयस्तम्भकारणनिवेदन, ४८ शौनक कर्तृक विविध कर्मविपाककथन, हयके स्तम्भनसे मुक्ति, ४९ सुरथके कुण्डल नामक नगरमें हयका गमन, सुरथ-चरित, ५० सुरथअङ्गदसंवाद, ५१ चम्पकके साथ पुष्कल-का युद्ध, पुष्कलबन्धन, चम्पकपराजय, पुष्कलमोचन, ५२ सुरथहनुमत्संवाद, सुरथके युद्धमें शत्रुघ्नकी पराजय, ५३ सुग्रीवके साथ सुरथका तुमुल युद्ध, रामास्त्रसे सुरथ-कर्तृक रामपक्षके सबोंको बांध कर निज पुरमें लाना, हनुमान कर्तृक रामस्तव, श्रीरामका आगमन, सुरथराम समागम, सबोंकी मुक्ति, वाल्मीकिके आश्रममें अश्वागमन, ५४ लवकर्तृक अश्वबन्धन, ५५ वात्स्यायनकर्तृक सीतात्यागाख्यानकथनमें रामकीर्त्ति श्रवणार्थ नगरमें चारगणका आगमन, ५६ रामके निकट चारकर्तृक रजकदुरुक्ति निवेदन, रामभरतसंवाद। ५७ रजकका पूर्वजन्मचरित, ५८ सीतात्यागार्थ शत्रुघ्नके प्रति रामाज्ञा, शत्रुघ्नरामसंवाद, लक्ष्मणके प्रति सीता-त्यागनार्थ आदेश, सीताका वनगमन, वनमें गङ्गादर्शन, ५९ वाल्मीकि-आश्रममें सीताका गमन, वाल्मीकि-कर्तृक सीतासान्त्वन, कुशलवकी जन्मकथा, ६० शत्रुघ्न-सेनापति कालजितके साथ लवका युद्ध, कालजितका मरण, ६१ हनूमानके साथ लवका युद्ध, रणमें हनू-मानकी मूर्च्छा, ६२ शत्रुघ्नके साथ लवका तुमुल युद्ध, लवकी मूर्च्छा, ६३ लव-पतन पर शोक, कुशका आग-मन, कुशके साथ युद्धमें शत्रुघ्नकी मूर्च्छा, ६४ हनूमान् और सुग्रीवके साथ लवका युद्ध, दोनोंका बन्धन, कुशलव-का सीताके निकट युद्धवृत्तान्त कथन और बद्ध कपि-दर्शन, सीताकर्तृक रामसैन्यसञ्जीवन, कुशलवका शत्रुघ्नके निकट हयत्याग, ६५ शत्रुघ्नादिका घोड़ेके साथ अयोध्या आगमन और सुमतिकर्तृक रामके निकट आमूल वृत्तान्तकथन, ६६ रामवाल्मीकिसंवाद, सीताको लानेके लिये लक्ष्मणका गमन, सीताके आदेशसे लक्ष्मणके साथ कुशलवका अयोध्या-गमन, वाल्मीकिकी आज्ञासे कुशलवका रामचरितगान, रामका अपने दोनों पुत्रोंको अङ्कमें लगाना, रामायण-रचना-कारण और वाल्मीकिका पूर्वचरितवर्णन, ६७ सीताको लानेके लिये वनमें लक्ष्मण-का फिर जाना, राम-सीता समागम, यज्ञारम्भ, रामाश्व-मेधयज्ञवर्णन, ६८ रामाश्वमेधसमाप्ति और रामाश्वमेध श्रवण-पठनफल, ६९ श्रीकृष्णचरितारम्भ, वृन्दावनादि कृष्णक्रीड़ास्थलवर्णन, वृन्दावनमाहात्म्य, ७० श्रीकृष्ण

परशु, पु...
...सोका, बृहद्रथ, सुक्रतु, निबधाविव...

पार्षदगण निरूपण, राधामाहात्म्य, गोपिकागण मध्यस्थ, परब्रह्म कृष्णस्वरूपवर्णन, ७१ वृन्दावनमथुरादिस्थितमहिमा गोपगणकी उत्पत्ति, ७२ प्रधान कृष्णवल्लभोंका वर्णन, ७३ मथुरावृन्दावनमहिमा, ७४ अर्जुनका राधालोक दर्शन, स्त्रीत्वप्राप्ति, ७५ नारदके राधालोकदर्शन, स्त्रीत्वप्राप्ति, ७६ संक्षेपमें कृष्णचरित्रकीर्त्तन, ७७ कृष्णतीर्थ और कृष्णरूपगुणवर्णन, ७८ शालग्रामनिर्णय, ७९ शालग्राममहिमा, वैष्णवोंकी तिलकविधि और वैष्णवोंका विविध नियम-निरूपण, ८० कलिसन्तारक हरिनाममहिमा और हरिपूजाविधि, ८१ कृष्णमन्त्रदीक्षा, विधान और मन्त्रशब्दार्थ निरूपण, ८२ मन्त्रदीक्षाविधि, ८३ कृष्णका वृन्दावनमें नैनन्दिनचर्यानिरूपण, तत्प्रसङ्गमें राधाविलासादिवर्णन, वृन्दावनमाहात्म्य-समाप्ति, ८४ वैशाख-माहात्म्य आरम्भ, वैष्णवधर्म-कथन, ८५ अम्बरीषनारदसंवादमें भक्तिलक्षण और माधव-मासमहिमा, ८६-८७ माधवमासव्रतविधि, वैशाखस्नान-माहात्म्य, ८८ पापप्रशमनार्थ स्तोत्र, तत्प्रसङ्गमें मुनिशर्म चरित, ८९ वैशाख मासमें विविध व्रतनियमकथन, ९० विष्णुपूजाविधि, ९१ माधवमासमें माधवपूजाजनित पुण्य-महिमा, तत्प्रसङ्गमें ब्राह्मणयमसंवाद, ९२-९३ नारकियोंका पाप और स्वर्गियोंका पुण्य-निरूपण, वैष्णवोंका विविध नियमनिर्णय, ९४ माधव-मास-स्नानप्रसङ्गमें धनधर्माविप्रचरित, ९५-९६ महीरथराजचरित, वैशाखस्नान पुण्यादिवर्णन, ९७ विविध पापपुण्यकथन, ९८ महीधरदत्त पुण्यफलसे नारकियोंकी मुक्ति, ९९ विष्णुध्याननिरूपण, वैशाखमाहात्म्य समाप्ति, १०० रामचरितनिरूपणमें शिवका राम-मन्दिरागमन, रामका विभीषणबन्धनवार्त्ताश्रवण, अष्टादशपुराणनिवेदन, पुराणश्रवणविधि, विभीषण-मोचन, विप्रावज्ञाजनित पापज दुःखकथन, १०१ श्रीरामका पुष्पकारोहणसे श्रीरङ्गनगरमें गमन, रामका वैकुण्ठगमन, रामलक्ष्मीसंवाद, श्राद्धकाल-निर्णय, शिवलिङ्गस्थापन, पूजनविधि, भस्ममहिमा, भस्ममाहात्म्यप्रसङ्गमें धनञ्जय नामक विप्रचरित, भस्म-स्नान, १०२ भस्ममहिमासे कुक्करकी मुक्ति, सहगामिनी स्त्रीमाहात्म्यवर्णनप्रसङ्गमें वध्ययाचरित, १०३ त्र्यायण-मन्त्राख्यान, १०४ भस्मोत्पत्ति, भस्मादानधारण पुण्यकथन, १०५ शिवलिङ्गार्चननियम, १०६ अग्निमुख नामक शिवगण कथनप्रसङ्गमें कालाङ्किका नाम्नी वेश्या-चरित, १०७ हरनाममाहात्म्यप्रसङ्गमें विधृतराजचरित, १०८ शिवनामप्रसङ्गमें देवरातसुता कलाकाचरित, १०९ पुराणश्रवणमहिमा और पौराणिकपूजाविधि, ११०-१११ शिवपूजावर्णन, पुराणश्रवणपठनक्रममें भारतश्रवणविधि, महापुराण और उपपुराणका संख्याकथन, ११२ राम-जाम्बवत् संवादमें पुराकल्पीय रामायणकथन, ११३ देवपूजादि धर्मपुण्यप्रसङ्गमें सङ्कर्षणपुत्र, श्राकश्यका चरित, रामकृत कौशल्याकी श्राद्धविधि, रूपकराक्षसचरित, उपहृत द्रव्यपूजाकथनमें चेकितानिब्राह्मण और मन्दचरित, पातालखण्डश्रवणफल, पुराणवक्ताका सत्कारकथन।

५म उत्तरखण्डमें—नारदमाहेश्वरसंवाद, उत्तर-खण्डोक्त विषयानुक्रम, २ बदरिकाश्रमवर्णन, ३ जालन्धर उपाख्यान, जालन्धरको ब्रह्माके निकट वरप्राप्ति, ४ जालन्धरका विवाहादि वर्णन, ५ इन्द्रके निकट जालन्धरका दूतप्रेरण, ६ जालन्धरपक्षीय दैत्योंके साथ देवताओंका युद्ध, ७ बलसे हीरकादि नानाधातुकी उत्पत्ति, ८ जालन्धरके निकट इन्द्रका पराभव, विष्णुकी मूर्च्छा और विष्णुका जालन्धरगृहवासवर्णन, जालन्धरका राज्य-वर्णन, १० शङ्करकृत समस्तदेव तेजोमयचक्रविधाननिर्माण ११ कीर्त्तिमुखोत्पत्तिवर्णन, १२ जालन्धरसैन्यपराभव, १३ शङ्करयुद्धमें दैत्योंका पराभव, १४ मायाशङ्कर और पार्वतीसंवाद, १५ जालन्धरपत्नी वृन्दाका स्वप्नवर्णन, वृन्दाका राक्षसके हाथसे पतन, १६ तापसवेशधारी विष्णुकर्त्तृक वृन्दाका मोचन, माया-जालन्धररूपमें विष्णुका वृन्दासह सङ्गम, वृन्दाका देहत्याग और वृन्दावन नामकथन, १७ भार्याका पातिव्रत्यभङ्ग सुननेके बाद जालन्धरका युद्धमें गमन, १८ जालन्धरके साथ शङ्करका युद्ध, शुक्र कर्त्तृक मृतदैत्यकी पुनर्जीवनप्राप्ति, १९ जालन्धरकी शिवसायुज्यप्राप्ति और तुलसीमाहात्म्य वर्णन, २० श्रीशैलमाहात्म्य, २१-२२ हरिद्वारमाहात्म्य, २३ गङ्गामाहात्म्य और गयामाहात्म्य, २४ तुलसीमाहात्म्य, २५ प्रयागमाहात्म्य, २६ तुलसीत्रिरात्रव्रत, २७ अन्नदान-माहात्म्य, २८ इतिहासपुराणादिकी पठनविधि, २९ इति-

हास और पुराणपठनमें महाफलप्राप्ति, २० गोपीचन्दन माहात्म्य, ३१ दीपव्रतविधान, ३२ जन्माष्टमीव्रत, ३३ दानप्रशंसा, ३४ दशरथकृत शनिस्तोत्र, ३५ त्रिस्पृशै-कादशीव्रत, ३६ शात्रैकादशी और त्याज्यैकादशी, ३७ उन्मीलन्यैकादशीव्रत, ३८ पक्षवर्द्धिन्यैकादशीव्रत, ३९ एकादशीमाहात्म्य, ४० जयाविजया और जयन्त्येकादशी, ४१ अग्रहायणमासकी शुक्लपक्षीय मोक्षा नाम्नी एकादशीका माहात्म्य, ४२ पौषकृष्णा सफला नाम्नी एकादशी माहात्म्य, ४३ पौषशुक्ला पुत्रदा एकादशीमाहात्म्य, ४४ माघकृष्णा षट्तिला एकादशीमाहात्म्य, ४५ माघशुक्ला जया एकादशीमाहात्म्य, ४६ फाल्गुन कृष्णाविजया एकादशीमाहात्म्य, ४७ फाल्गुन शुक्ला आमलकी एकादशीमाहात्म्य, ४८ चैत्र कृष्ण पापमोचनी एकादशीमाहात्म्य, ४९ चैत्रशुक्ला कामदा एकादशीमाहात्म्य, ५० वैशाख कृष्ण वरुथिनी एकादशी माहात्म्य, ५१ वैशाखशुक्ला मोहिनी एकादशी माहात्म्य, २ ज्यैष्ठकृष्णापरा एकादशीमाहात्म्य, ५३ ज्यैष्ठशुक्ला निर्जला एकादशी माहात्म्य, ५४ आषाढ़ कृष्णायोगिनी एकादशीमाहात्म्य, ५५ आषाढ़शुक्ला शयनी एकादशीमाहात्म्य, ५६ श्रावण-शुक्ला पुत्रदा एकादशीमाहात्म्य, ५७-५८ भाद्रपदकृष्णा अजा एकादशीमाहात्म्य, ५९ भाद्रपदशुक्ला पद्मनाम एकादशीमाहात्म्य, ६० आश्विनकृष्णा इन्दिरा एकादशी-माहात्म्य, ६१ आश्विनशुक्ला पापांकुश एकादशीमाहात्म्य, ६२ कार्त्तिककृष्णा रमा एकादशीमाहात्म्य, ६३ कार्त्तिकशुक्लाप्रबोधिनी एकादशीमाहात्म्य, ६४ पुरुषोत्तम मासकी कृष्णा कमला एकादशीका माहात्म्य और एकादशीमाहात्म्यसमाप्ति, ६५-६६ चातुर्मास्यव्रत-विधि, ६७ चातुर्मास्य व्रतोद्यापनविधि, ६८ मुद्गल-मुनिका आख्यान, वैतरणी व्रतविधि और गोपीचन्दन-माहात्म्य, ६९ वैष्णवलक्षण और प्रशंसा, ७० श्रवण-द्वादशीव्रतविधि और तत्प्रशंसाबोधक आख्यायिका, ७१ नदीत्रिरात्र व्रतविधान, ७२ भगवानका नाम-माहात्म्यकथन, पार्वती और महेश्वरसंवादमें विष्णुका-सहस्रनामस्तोत्रकथन तथा रामसहस्र नामके साथ तुल्यता, ७३ विष्णुसहस्रनामकी प्रशंसा, ७४ पार्वतीमहेश्वरसंवादमें रामरक्षास्तोत्रकथन, ७५ धर्म-प्रशंसा और अधर्महेतु अधोगतिवर्णन, ७६ गण्डिकानदी माहात्म्य और वसुस्नानप्रशंसा, ७७ आभ्युदयिक-स्तोत्र, पाठविधि और फलकथन, ७८ ऋषिपञ्चमीव्रतफल और आख्यायिका, ७९ अपामार्जनस्तोत्र, ८० अपा-मार्जन स्तोत्रपठनफल और धारणप्रणाली तथा बालकों-की जीवनरक्षाके लिये स्तोत्रपाठका विधान, ८१ विष्णु-माहात्म्य, विष्णुकी महामन्त्रप्रशंसा, विष्णुमाहात्म्य ज्ञापक पुण्डरीकाख्यान, नारदकर्त्तृक पुण्डरीकके प्रति शास्त्ररहस्यउपदेश, ८२ संक्षेपमें गङ्गामाहात्म्य, ८३ वैष्णवलक्षण, विष्णुमूर्त्ति और शालग्रामपूजाफल-कथन, ८४ दासवैष्णव और भक्तका लक्षण, शूद्रादिका दासत्व, नारदादिका वैष्णवत्व और प्रह्लाद आदिका भक्तिवर्णन, ८५ चैत्रशुक्ला एकादशीकी दोलोत्सव-विधि, ८६ चैत्रशुक्ला द्वादशीको दमनकोत्सवविधि, ८७ देवशयनी उत्सव, ८८ श्रावणमें पवित्रारोपणविधि, प्रसङ्ग-क्रममें पवित्र करनेका प्रकारवर्णन। ८९ चैत्रादि मासमें चम्पकादि पुष्प द्वारा विष्णुपूजाविधि और फल, ९० कार्त्तिकका माहात्म्यारम्भ, नारदानीत कल्पवृक्षपुष्प नहीं देनेसे क्रुद्ध सत्यभामाको कृष्णकर्त्तृक स्वर्गस्थ कल्पवृक्षप्रदान, सत्यभामाकृत तुलापुरुषदान और कार्त्तिकप्रशंसाबोधक सत्यभामाका पूर्वजन्मकथन, ९१ सत्यभामाका पूर्ववृत्तान्तकथन, ९२ शङ्खा-सुराख्यानप्रसङ्गमें शङ्खासुरकर्त्तृक वेदहरण और देव-ताओंके प्रति विष्णुकृत कार्त्तिकप्रशंसावर्णन, ९३ मत्स्यरूपधारी विष्णुकर्त्तृक शङ्खासुरवध, प्रयागोत्पत्ति-वर्णन, कार्त्तिकव्रतियोंका शौचप्रत्याचारकथन, ९५ कार्त्तिकस्नानविधिकथन, ९६ कार्त्तिकव्रतियों-का नियमकथन और प्रशंसावर्णन, ९७ कार्त्तिक-व्रतका उद्यापन, ९८ तुलसीमाहात्म्य, जलन्धरा-ख्यायिका, शङ्करको नीलकण्ठत्वप्राप्ति, जलन्धरो-त्पत्तिवर्णन, ९९ जलन्धरकर्त्तृक देवताओंको पराजय, १०० देवकृत विष्णुस्तोत्र, विष्णुजलन्धरयुद्ध, स्त्रीसह जलन्धरगृहमें विष्णुका वासाङ्गीकार, १०१ नारदके मुखसे पार्वतीका रूपातिशय सुन कर जलन्धरकर्त्तृक शंकरके समीप राहुको दूतरूपमें प्रेरण, कीर्त्तिमुखो-त्पत्ति, उसको पूजा नहीं करनेसे शिवपूजाका निष्फ-

लत्व राहुका ववर्रदेशोत्पत्तिवर्णन, १०२ समस्त देवताओंके तेज द्वारा शङ्करकर्तृक सुदर्शननिर्माण और दैत्योंके साथ शिवसैन्यका युद्ध, १०३ नन्दी आदि-का कालनेमि आदि असुरोंके साथ द्वन्द्वयुद्ध, १०४ शिव-कृत दैत्यपराभव, शिव और जलन्धरका युद्ध, गान्धर्व-मायासे शिवको मुग्ध करके शिवरूपमें जलन्धरका पार्वतीके समीप गमन, पार्वतीका अन्तर्द्धान और स्मरण मात्रसे विष्णुका पार्वतीके समीप आगमन, यह वृत्तान्त सुन कर वृन्दाका सतीत्व नष्ट करनेके लिये विष्णुका संकल्प, १०५ विष्णुकर्तृक जलन्धररूपमें वृन्दाका सतीत्वनाश, रतिके बाद विष्णुरूप देख कर वृन्दाका क्रुद्ध होना और विष्णुके प्रति राक्षसकृत भार्याहरणरूप अभिशाप तथा वृन्दाका अग्निप्रवेश, चिताभस्म लगा कर विष्णुका चिता पर वास, १०६ शङ्करकर्तृक जलन्धरवध, शङ्करके आदेशसे विष्णुका मोह दूर करनेके लिये देवकृत आदिमायास्तोत्र, १०७ स्त्रीरूपधारि धात्री प्रभृतिको देख कर विष्णुका भ्रम, मालतीका वर्वरीशाखशप्राप्ति निर्देश, धात्री और तुलसीमाहात्म्य, जलन्धराख्यान समाप्ति, १०८ कार्त्तिकप्रशंसाबोधक कलहोपाख्यानारम्भ, १०९ धर्म-दत्तकर्तृक द्वादशाक्षर मन्त्र पढ़नेके बाद तुलसीयुक्त जलाभिषेचनसे राक्षसीको दिव्य देहप्राप्ति, ११० विष्णु-दास ब्राह्मण और चोल नृपतिका आख्यान, १११ विष्णुदास और चोल नृपतिका वैकुण्ठगमन, मुद्गल गोत्रीयगणको शिखाशून्यत्वका कारणकथन, ११२ कार्त्तिकप्रशंसावोधक जय और विजयका पूर्वजन्म वृत्तान्त, कलहाको वैकुण्ठप्राप्ति, ११३ कृष्णवेण्यादि नदीकी उत्पत्ति कहनेमें ब्रह्माकर्तृक यज्ञाख्यान-वर्णन, अपूज्यपूजनसे दुर्भिक्ष, मरण और भय, इसके अन्यतमकी प्राप्ति तथा कृष्णवेण्यादिमाहात्म्य, ११४ श्रीकृष्णसत्यभामासंवाद, ११५ महापातकी धनेश्वर-का विप्राख्यान, ११६ धनेश्वरका नरकदर्शन और कार्त्तिकव्रतफलसे यक्षलोकमें गमन, ११७ कार्त्तिकव्रत-की विधि, अश्वत्थ और वटव्रतविधि, ११८ शनिवार भिन्न अन्य वारमें अश्वत्थवृक्ष स्पर्श नहीं करनेका कारण-निर्देश, ११९ कार्त्तिकस्नानविधि और वायव्यादि चतु-विधस्नानकथन, १२० कार्त्तिकमें तिलधेनु आदि दानमें महाफल, कार्त्तिक व्रतियोंका पराव्रतशागादि नियम तथा कार्त्तिकमें पूजादिविधिकथन, १२१ माघस्नान और शूकरक्षेत्र माहात्म्य तथा मासविधि उपवासमें व्रतका विधान, १२२ शालग्रामशिलार्चनविधि और शालग्राममें वासुदेवादि मुर्त्तिका लक्षण, १२३ धात्री-च्छायामें पिण्डदानप्रशंसा, कार्त्तिकमें केतक्यादि द्वारा पूजाविधि, दीपदानविधि और तदाख्यायिका, १२४ त्रयोदश्यादि द्वितीया पर्यन्त दीपावलीदान-विधि, राजकर्त्तव्य और यमद्वितियाकथन, १२५ प्रबोधिनीमाहात्म्य और तद्व्रतविधि, भीष्मपञ्चक व्रतविधि और कार्त्तिकमाहात्म्यश्रवणफल, १२६ विष्णु-भक्तिका माहात्म्य और लक्षण एवं तद्धीनकी निन्दा, १२७ शालग्राम शिलापूजाका फल, १२८ अनन्तवासुदेव-का माहात्म्य और विष्णुस्मरणका प्रकार, १२९ जम्बू-द्वीपस्थ सभी तीर्थ और माहात्म्यकथन, १३० वेत्रवती-माहात्म्य, १३१ साभ्रमती और तत्तीरस्थ नीलकण्ठादि तरुगणका माहात्म्य, १३२ नन्दि और कपालमोचन-तीर्थका माहात्म्य, १३३ विकीर्णतीर्थ, श्वेततीर्थादिका माहात्म्य, १३४ अग्नितीर्थमाहात्म्य और तत्प्रसङ्गमें कुकर्दम नृपाख्यान, १३५ हिरण्यासङ्गमतीर्थ और धर्मावतीसाभ्रमतीसङ्गम, तत्प्रसङ्गमें माण्डव्याख्यान, १३६ काम्बुप्रभृति तीर्थमाहात्म्य, मङ्कितीर्थमाहात्म्यमें मङ्कि नामक ऋषिका आख्यान, १३७ ब्रह्मवल्ली और खण्डतीर्थमाहात्म्य, १३८ सङ्गमेश्वरतीर्थमाहात्म्य, १३९ रुद्रमहालयतीर्थ, १४० खड्गतीर्थमाहात्म्य, १४१ चित्राङ्गवदनतीर्थमाहात्म्य, १४२ चन्दनेश्वर-माहात्म्य, १४३ जम्बूतीर्थमाहात्म्य, १४४ इन्द्रग्रामतीर्थ और धवलेश्वरतीर्थमाहात्म्य, तत्प्रसङ्गमें किरातख्यायिका, १४५ कण्वमुनि-कन्या और वृद्धमहिमाख्यान, १४६ दुर्द्धर्षेश्वरमाहात्म्य, तत्प्रसङ्गमें पाशुपत अस्त्र द्वारा इन्द्र-कर्त्तृक वृत्रवधाख्यान, १४७ खड्गधारतीर्थमाहात्म्य, तत्प्रसङ्गमें चण्डकिराताख्यान, १४८ दुग्धेश्वरतीर्थ-माहात्म्य, १४९ चन्द्रभागामाहात्म्य, १५० पिप्पलाद-तीर्थमाहात्म्य, १५१ पिचुमर्दार्कतीर्थमाहात्म्य, १५२ सिद्धक्षेत्रमाहात्म्यमें कोटराक्षीस्तोत्र, १५३ तीर्थराजतीर्थ-

माहात्म्य, १५४ सोमतीर्थ, १५५ कपोततीर्थ, १५६ गोतीर्थ माहात्म्य, १५७ काश्यपतीर्थ माहात्म्य, १५८ भूतालयतीर्थ माहात्म्य, १५९ घटेश्वरमाहात्म्य १६० वैद्यनाथमाहात्म्य, १६१ देवतीर्थ माहात्म्य, १६२ चक्रतीर्थ माहात्म्य, १६३ गाणपत्यतीर्थ, १६४ ब्रह्मतीर्थ माहात्म्य, १६५ वराहतीर्थ, १६६ वक्रमतीर्थ, १६७ आदित्यतीर्थ, १६८ नीलकण्ठतीर्थ, १६९ साभ्रमती-सागरसङ्गममाहात्म्य, १७० नृसिंहतीर्थ माहात्म्य, १७१ गीतामाहात्म्य, १७२ गीताके द्वितीयाध्यायमाहात्म्यमें देवशर्माख्यान, १७३ तृतीयाध्यायमाहात्म्यमें जड़ाख्यान, १७४ चतुर्थाध्यायमाहात्म्यमें बदरीमोचन, १७५ पञ्चमाध्यायमाहात्म्यमें कन्याख्यान, १७६ षष्ठाध्यायमाहात्म्यमें जानश्रुति नृपाख्यान, १७७ सप्तमाध्यायमाहात्म्यमें तत्ताख्यान, १७८ अष्टाध्यायमाहात्म्यमें भावशर्माख्यान, १७९ नवमाध्यायमाहात्म्य १८० दशमाध्यायमाहात्म्य, १८१ विश्वरूपनामक गीतैकादशाध्यायमाहात्म्य और तदाख्यायिका, १८२ द्वादशाध्याय माहात्म्य १८३ त्रयोदशाध्यायमाहात्म्यमें दुराचाराख्यान, हरिदीक्षितपत्नीका व्यभिचारप्रसङ्ग, १८४-१८८ चतुर्दशसे अष्टादश अध्यायमाहात्म्य, १८९ भागवतमाहात्म्य और उसके प्रसङ्गमें भविष्यद्वृत्तकथन, १९० नारदकृत भक्तिमाहात्म्यकथन, १९१ भक्तिका हरिदासचित्तमें स्थिति-वर्णन, १९२ गोकर्णाख्यान, १९३ भागवतश्रवणमें गोकर्ण मुक्तिवर्णन, १९४ भागवतप्रशंसा, १९५ कालिन्दी माहात्म्य, १९६ विष्णुशर्माकी पूर्वजन्मस्मृति, भिल्लसिंहका मुक्तिकथन, १९७ निगमोद्बोधतीर्थ प्रसङ्गमें शरभ नामक वैश्याख्यान, १९८ देवलकृत दिलीपाख्यान, १९९ रघुद्वितीय सर्ग प्रसिद्ध दिलीपका गोप्रसादवर्णन, २०० शरभका इन्द्रप्रस्थगमन और वैकुण्ठप्राप्तिकथन, २०१ इन्द्रप्रस्थमाहात्म्य, शिवशर्मा विष्णुशर्माकी वैकुण्ठ प्राप्तिकथन, २०२ द्वारकामाहात्म्य और उसके प्रसङ्गमें पुष्पेषु-द्विजका आख्यान, २०३ विमलाख्यान और शिव-लक्षण, २०४ मरुदेशस्थ राक्षसियोंके प्रसङ्गमें उत्तम-लोकप्राप्तिवर्णन, २०५-२०६ इन्द्रप्रस्थगत कोशला-माहात्म्यमें मुकुन्दाख्यान, २०७ चण्डक नामक नापितका ब्राह्मणवधके कारण सर्पयोनिमें जन्म और कोशलाप्रभाव-से उसकी मुक्ति, २०८ कोशलाप्राप्त दाक्षिणात्य ब्राह्मणकृत विष्णुस्तोत्र और दाक्षिणात्योंका वैकुण्ठगमन, २०९ कालिन्दीतीरस्थ मधुवनगत विश्रान्तितीर्थ-माहात्म्य और तत्प्रसङ्गमें व्यभिचारिणी कुशलपत्नीका आख्यान और उसकी गोधायोनिप्राप्ति, २१० उक्त गोधा देख कर किसी मुनिपुत्रको मातृत्वज्ञान और गोधाकी उत्तमगतिप्राप्ति, २११ क्षयरोगी होनेके कारणकथनप्रसङ्गमें चन्द्रकृत गुरुभार्याहरणप्रसङ्ग, २१२ इन्द्रप्रस्थगत बदरी-माहात्म्यमें देवदास नामक ब्राह्मणाख्यान, २१३ हरि-द्वारमाहात्म्यमें कालिङ्ग-चण्डालाख्यान, २१४ पुष्कर-माहात्म्यमें पुण्डरीकाख्यान, २१५ भरतकृत पूर्वपुण्य-और पुण्डरीककी सायुज्यप्राप्ति, २१६ प्रयागमाहात्म्यमें मोहिनीवेश्याका आख्यान, २१७ वीरवर्माकी महिषीका आख्यान, २१८ काशी, गोकर्ण, शिवकाञ्ची, द्वारका और भीमकुण्डादिकामाहात्म्य, चैत्रकृष्णचतुर्दशीमें इन्द्रप्रस्थ-प्रदक्षिण फल, २१९ माघमाहात्म्यमें देवलादि मुनिके साथ सूतसंवाद, २२० माघमाहात्म्यमें दिलीपमृगया और माघस्नानमाहात्म्य, २२१ माघस्नानसे विद्या-धरकी सुमुखत्वप्राप्ति, २२२ कुत्समुनिपुत्र वत्साख्यान, २२३ उद्वाहयोग्य कन्यालक्षण और अयोग्या कन्याविवाह में महापातक, २२४ उचथ्य मुनिकन्याका सखीके साथ माघस्नान, मृगशृङ्ग संवाद, मृगशृङ्गका मृत्युस्तोत्र, गजमुक्ति, २२५ मृगशृङ्गकृत यमस्तोत्र और उचथ्य-कन्याकी पुनर्जीवनप्राप्ति, २२६ यमपुरीवृत्तान्त, २२७ पापियोंका नरकभोग और कीटयोनि प्राप्तिकथन, २२८ शालग्रामपूजाका एकादश्यादि व्रतकरणरूप साधन-कथन, २२९ सततादिक्रमसे चतुर्युगवर्णन, यमलोक-गत पुष्कर नामक विप्रका फिरसे मृत्युलोकप्राप्ति आख्यान, २३०-२३१ रामकर्तृक वृद्ध ब्राह्मण सान्दी-पनिपुत्रका पुनरुज्जीवन और कृष्णसमागम, २३२ उचथ्यकन्या सुव्रता और उसकी तीन सखियोंके साथ मृगशृङ्गका विवाह, ब्राह्मादि अष्टविध विवाहलक्षण और तत्प्रसङ्गमें सौभरिकर्तृक पचास राजकन्याओंका पाणिग्रहणाख्यान, २३३ गृहस्थाश्रमधर्म, २३४ पति-व्रताधर्म, २३५ मृगशृङ्गका चार पुत्रोंकी उत्पत्ति, श्वेत-वराहकल्पमें ऋभुका अवतार, मृगशृङ्गपुत्र मृकण्डुका

स्वमातृगणसह काशीगमन और काशीप्रशंसा, २२६ मृकण्डुका आख्यान, मार्कण्डेयोत्पत्ति, मार्कण्डेयकर्तृक मृत्युञ्जयस्तोत्र, माघस्नानादि पुण्यकथन, २२७ प्रधान प्रधान तीर्थमें माघस्नानविधि, माघमें विष्णुपूजाविधि, २३८ उत्तमगति-प्राप्तिका उपाय और पापकर्मनिरूपण, २३९ भीमैकादशी व्रतकथा, २४० शिवरात्रिमाहात्म्य और उसके प्रसङ्गमें निषादका उपाख्यान, २४१ शिव-रात्रिव्रतविधि, २४२ तिलोत्तमाख्यानमें सुन्द और उप-सुन्दवधाख्यान, २४३ कुण्डल और विकुण्डलका आख्यान, २४४ विकुण्डलयमसंवादमें यमलोक-गमनाभावकारण, तुलसीप्रशंसा और नरकप्राप्तिकर धर्मनिरूपण, २४५ विकुण्डलयमसंवादमें गङ्गाप्रशंसा, स्वर्गप्राप्तिका कारण, शालग्रामशिलाको मूल्य दे कर खरीदनेमें महापातक, एकादशीव्रतनिबन्धन दुर्गतिनाश, विकुण्डलकर्तृक नरकपतित स्वबन्धुओंका उद्धार और श्रीकुण्डल तथा विकुण्डलका स्वर्गगमनकथन, २४६ माघस्नानमाहात्म्य-प्रसङ्गमें काञ्चनमालिनीकृत माघस्नान पुण्यसे राक्षसका मुक्तिकथन, २४७ माघस्नानप्रशंसा और गन्धर्वकन्या-ख्यान, २४८ गन्धर्वकन्याकर्तृक कामुक ऋषिपुत्रका पिशाचयोनि-गमनरूपशाप, लोमशका माघस्नानोपाय-कथन और ऋषिपुत्रको शापमुक्ति, २४९ प्रयागस्नान-माहात्म्यमें भद्रक नामक ब्राह्मणाख्यान, देवद्युतिकृत योगसारस्तोत्र, २५० वेदनिधिलोमशसंवाद, वेदनिधि-का गन्धर्वकन्याके साथ विवाह, माघमाहात्म्यसमास, २५१ विष्णुमन्त्रप्रशंसा, तप्तशङ्खचक्राङ्कनविधि, ब्रह्म-शरीरमें विष्णुकर्तृक चक्राङ्कनकथन, द्वैत और तदधि-कारियोंका परम धर्मकथन, २५२ विष्णुभक्तिनिरूपण, शङ्खचक्राङ्कविहीनकी निन्दा, २५३ ऊर्द्धपुण्ड्रधारण-विधि, २५४ उपदिष्ट अवैष्णवको पुनर्वैष्णव मन्त्र-ग्रहणविधि, द्वैताभ्यासका महत्वकथन, अष्टाक्षरमन्त्र, २५५ विष्णुस्वरूपकथन, त्रिपाद्विभूतिस्वरूपकथन, २५६ महामायाकी प्रार्थनासे विष्णुकर्तृक सृष्टिवचन, २५७ सविस्तार सृष्टिकथन, योगनिद्राभिभूत विष्णुके नाभि-पङ्कजसे ब्रह्माके कपालके स्वेदसे रुद्र, नेत्रसे चन्द्र-सूर्यादि, मुखादिसे ब्राह्मणादिकी उत्पत्ति, दशावतार, वैकुण्ठलोक और अष्टाक्षर-जपमें वैकुण्ठप्राप्तिकथन, २५८ मत्स्यावतारचरित, २५९ कूर्मावतारचरित, २६० समुद्रमन्थनाख्यान, २६१ विष्णुकर्तृक एकादशी और द्वादशीप्रशंसा तथा देवताओंकी कूर्मावतारस्तुति, २६२ एकादशीव्रतविधि, २६३ पाषण्डिलक्षण और तामस-दर्शनस्मृति तथा पुराणादिका त्याज्यत्वकथन, २६४ वराहावतारचरित, २६५ नृसिंहावतारवर्णन, २६६ वामनावतारचरित, कश्यपके पुत्ररूप विष्णुका प्रादुर्भावसङ्कल्प, २६७ अदितिगर्भमें विष्णुका वामन-रूपमें प्रादुर्भाव और बलिछलना, २६८ परशुराम-चरित, २६९ रामचरित, २७०-२७१ लङ्काप्रत्यागत रामका राज्याभिषेक, शिवकृत रामसीतास्तुति, रामका परलोकगमन, २७२ श्रीकृष्णचरित, २७३ रामकृष्णके उपनयन संस्कारसे ले कर मुचुकुन्द कृष्णसंवाद पर्यन्त, २७४ रामकृष्णके साथ जरासन्धका युद्ध और रुक्मिणी-हरणप्रसङ्ग, २७५ स्यमन्तक और पारिजातहरणउपा-ख्यान, २७६ उषा-अनिरुद्धका आख्यान, २७७ कृष्ण-कर्तृक पौण्ड्रवासुदेव और तत्सुतवध, २७८ जरा-सन्धवध, शिशुपालवध, दन्तवक्रवध, सुदामाचरित, मुषलोत्पत्ति, यदुध्वंस, कृष्णका देहत्याग, अर्जुनका द्वारकागमन, अर्जुनसहगामिनी कृष्णपत्नियोंका हरण, कृष्णजन्ममहिमा इत्यादि कथन, २८० वैष्णवाचारकथन, २८१ पार्वतीकृत विष्णुकी पूजा, रामचन्द्रका अष्टोत्तर-शतनाम, २८१ विष्णुका सर्वोत्तमवर्णन, विष्णुपूजाके बाद दिलीपका हरिपदगमन।

ऊपरमें पद्मपुराणका जो विषयानुक्रम दिया गया है उसके पातालखण्ड और उत्तरखण्डके विषयोंको यदि पर्यालोचना की जाय, तो उसका अनेकांश कभी भी पुराणश्रेणीमें नहीं गिना जा सकता। आदिपद्मपुराणमें इन सब विषयोंका वर्णन था, ऐसा बोध नहीं होता। अभी यह देखना चाहिये, कि मूलपद्मपुराणका लक्षण क्या है? और उसमें कौन कौन विषय वर्णित थे।

मत्स्यपुराण (५३।१४)में लिखा है—

'एतदेव यदा पद्ममभूद्धैरण्मयं जगत्।
तद्वृत्तान्ताश्रयं तद्वत् पाद्ममित्युच्यते बुधैः॥
पाद्मं तत् पञ्चपञ्चाशत् सहस्राणीह पठ्यते।"

इस पद्मकी श्लोकसंख्या ५५००० है। इसमें हिर-

समयपद्मसे जगदुत्पत्तिवृत्तान्त वर्णित है, इसीसे इस पुराणको पण्डितगण पाद्म कहते हैं।

मत्स्यपुराण पद्मपुराणके जो सब लक्षण निर्देश करते हैं, आजकलके प्रचलित पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें उसका अभाव नहीं है। सृष्टिखण्डके ३९वें अध्यायमें इस हिरण्मयपद्म और उसके मध्य जगदुत्पत्तिकी कथा विस्तृत भावमें वर्णित हुई है।

इस पद्मपुराणके अन्तर्गत सृष्टिखण्डमें लिखा है—

"एतदेव च वै ब्रह्मा पाद्मं लोके जगाद वै।
सर्वभूताश्रयं तच्च पाद्ममित्युच्यते बुधैः॥
पाद्मं तत्पञ्चपञ्चाशत् सहस्राणीह पठ्यते।
पञ्चभिः पर्वभिः प्रोक्तं संक्षेपाद्व्यासकारणात्॥
पौष्करं प्रथमं पर्व यत्रोत्पन्नः स्वयं विराट्।
द्वितीयं तीर्थपर्वस्यात् सर्वग्रहगणाश्रयम्॥
तृतीय पर्व ग्रहणे राजानो भूरिदक्षिणाः।
वंशानुचरितश्चैव चतुर्थं परिकीर्त्तितम्॥
पञ्चमे मोक्षतत्त्वं च सर्वतत्त्वं निगद्यते।
पौष्करे नवधा सृष्टिः सर्वेषां ब्रह्मकारिका॥
देवतानां मुनीनाञ्च पितृवर्गस्तथाऽपरः।
द्वितीये पर्वतनाञ्च द्वीपाः सप्त च सागराः॥
तृतीये रुद्रसर्गन्तु दक्षशापस्तथैव च।
चतुर्थे सम्भवो राज्ञां सर्ववंशानुकीर्त्तनम्॥
अपवर्गस्य संस्थानं मोक्षशास्त्रानुकीर्त्तनम्।
सर्वमेतत् पुराणेऽस्मिन् कथयिष्यामि वो द्विजाः॥"
(सृष्टिखण्ड १।५४।६०)

इस पुराणमें ब्रह्माने सर्वभूताश्रय पद्मसम्बन्धीय कथा लोकमें प्रकाशितकी थी, इसीसे इसका नाम पाद्म पड़ा है। इस पाद्मपुराणमें ५५००० श्लोक हैं। व्यासके लिये संक्षेपमें यह पांच पर्वोंमें विभक्त है। प्रथम पौष्कर-पर्व, इस पर्वमें विराट् पुरुषकी उत्पत्ति विवृत हुई है। द्वितीय तीर्थपर्व, इसमें सभी ग्रहोंका वर्णन है, तृतीय पर्वमें प्रभूतदानकारी राजाओंका विवरण, चतुर्थ पर्वमें वंशानुचरित, पञ्चम पर्वमें मोक्षतत्त्व और सर्वतत्त्व निरूपित हुआ है। पौष्कर वा प्रथमपर्वमें ब्रह्मकृत नौ प्रकारकी सृष्टिवर्णना, देवता मुनि और पितरोंकी कथा, द्वितीयपर्वमें पर्वतसमूह, समस्त द्वीप और सप्तसागरका वर्णन, तृतीयपर्वमें रुद्रसर्ग और दक्षशाप, चतुर्थ पर्वमें राजाओंकी उत्पत्ति तथा सर्ववंशानुकीर्त्तन एवं पञ्चम पर्वमें अपवर्गसाधन मोक्षशास्त्रका परिचय वर्णित है।

सृष्टिखण्डमें इस प्रकार पञ्चपर्वात्मक पद्मपुराणका उल्लेख रहने पर भी अभी हम लोगोंको पद्मपुराणमें ऐसा कोई पर्व देखनेमें नहीं आता। सृष्टिखण्डमें इस प्रकार वर्णित होने पर भी उत्तरखण्डमें खण्डविभागका कुछ और तरहसे परिचय मिलता है। यथा—

दाक्षिणात्यमें प्रचारित पद्मपुराणीय उत्तरखण्डमें—

प्रथमं सृष्टिखण्डञ्च द्वितीयं भूमिखण्डकम्।
पातालञ्च तृतीयं स्याच्चतुर्थं पुष्करं तथा।
उत्तरं पञ्चमं प्रोक्तं खण्डान्यनुक्रमे वै।
एतत् पद्मपुराणन्तु व्यासेन च महात्मना॥
कृतं लोकहितार्थाय ब्राह्मणश्रेयसे तथा॥"
(१।६६-६८)

१म सृष्टिखण्ड, २य भूमिखण्ड, ३य पातालखण्ड, ४र्थ पुष्करखण्ड और पञ्चम उत्तरखण्ड है। लोकहित और ब्राह्मणके श्रेयकारण महात्मा व्यास द्वारा खण्डानुक्रम पद्मपुराण रचा गया है।

अभी जो पञ्चखण्डका उल्लेख किया गया है, आजकलके प्रचलित पद्मपुराणमें पुष्करखण्डका बिलकुल अभाव है। प्रचलित पद्मपुराणमें सृष्टिखण्डके कुछ अध्यायोंमें पुष्कर माहात्म्य वर्णित है।

फिर गौड़ीय उत्तरखण्डमें इस प्रकार लिखा है—

"एतदादि पुराणं वः कथितं बहुविस्तरम्।
पद्माख्यं सर्वपापघ्नं पञ्चपर्वात्मकं द्विजाः॥
प्रथमं सृष्टिखण्डन्तु द्वितीयं भूमिखण्डकम्।
तृतीय स्वर्गखण्डञ्च तुर्यं पातालखण्डकम्॥
पञ्चमन्तूत्तरं खण्डं प्रत्येकं मोक्षदायकम्।
परिशिष्टं क्रियायोगसारं वक्ष्यामि वः पुनः॥"

यह आदिपुराण बहु विस्तृत है। इसका नाम पद्म है। यह पञ्चपर्वात्मक और सर्वपापनाशक है। इसके पांच खण्ड हैं, प्रथम सृष्टिखण्ड, द्वितीय भूमिखण्ड, तृतीय स्वर्गखण्ड, ४र्थ पाताल खण्ड और ५म उत्तरखण्ड, इनमेंसे प्रत्येक खण्ड मोक्षदायक है। इसका परिशिष्ट क्रियायोगसार है।

गौड़ीय पाद्मोत्तर खण्डमें जिस प्रकार खण्डविभागका वर्णन है, नारद पुराणमें भी ठीक उसी प्रकार पञ्चखण्डात्मक पद्मपुराणका विषयानुक्रम दिया गया है जो इस प्रकार है—

"शृणु पुत्र ! प्रवक्ष्यामि पुराणं पद्मसंज्ञिकम् ।
महत्पुण्यप्रदं नृणां शृण्वतां पठतां मुदा ॥
यथा पञ्चेन्द्रियः सर्वः शरीरीति निगद्यते ।
तथेदं पञ्चभिः खण्डैरुदितं पापनाशनम् ॥
(१म सृष्टिखंडमें)
पुलस्त्येन तु भीष्माय सृष्ट्यादिक्रमतो द्विज ।
नानाख्यानेतिहासाद्यैर्यत्रोक्तो धर्मविस्तरः ॥
पुष्करस्य तु माहात्म्यं विस्तरेण प्रकीर्त्तितम् ।
ब्रह्मयज्ञ विधानञ्च वेदपाठादिलक्षणम् ॥
दानानां कीर्त्तनं यत्र व्रतानाञ्च पृथक् पृथक् ।
विवाहः शैलजायाश्च तारकाख्यानकं महत् ॥
माहात्म्यञ्च गवादीनां कीर्त्तितं सर्वपुण्यदम् ।
कालकेयादि-दैत्यानां वधो यत्र पृथक् पृथक् ॥
ग्रहाणां अर्चनं दानं यत्र प्रोक्तं द्विजोत्तम् ।
तत्सृष्टिखण्डमुद्दिष्टं व्यासेन सुमहात्मना ॥
(२य भूमिखंडमें)
पितृमात्रादिपूज्यत्वे शिवशर्मकथा पुरा ।
सुव्रतस्य कथा पश्चात् वृत्रस्य च वधस्तथा ॥
पृथोर्वेणस्य चाख्यानं धर्माख्यानं ततः परम् ।
पितृशुश्रूषणाख्यानं नहुषस्य कथा ततः ॥
ययाति चरितञ्चैव गुरुतीर्थनिरूपणम् ।
राज्ञा जैमिनिसंवादो बह्वाश्चर्य कथायुतः ॥
कथाह्यशोकसौन्दर्या हुण्डदैत्यवधाश्रिता ।
कामोदाख्यानकं तत्र विहुण्डवधसंयुतं ॥
कुण्डलस्य च संवादश्च्यवनेन महात्मना ।
सिद्धाख्यानं ततः प्रोक्तं खण्डस्यास्य फलोहनम् ॥
सूतशौनकसंवादं भूमिखण्डमिदं स्मृतम् ।
(३य स्वर्गखण्डमें)
ब्रह्माण्डोत्पत्तिरुदिता यत्रर्षिभिश्च सौतिना ।
सभूमिलोकसंस्थानं तीर्थाख्यानं ततः परम् ॥
नर्मदोत्पत्तिकथनं तत्तीर्थानां कथा पृथक् ।
कुरुक्षेत्रादि तीर्थानां कथाः पुण्याः प्रकीर्त्तिताः ॥
कालिन्दी पुण्यकथनं काशीमाहात्म्यवर्णनम् ॥
गयायाश्चैव माहात्म्यं प्रयागस्य च पुण्यकम् ।
वर्णाश्रमानुरोधेन कर्मयोगनिरूपणम् ॥
व्यास जैमिनिसंवादः पुण्यकर्म कथाचितः ।
समुद्रमथनाख्यानं व्रताख्यानं ततः परम् ॥
ऊर्जं पञ्चाहमाहात्म्यं स्तोत्रं सर्वापराधनुत् ।
एतत् स्वर्गाभिधं विप्र सर्वपातकनाशनम् ॥
(४र्थ पातालखंडमें)
रामाश्वमेधे प्रथमं रामराज्याभिषेचनम् ।
अगस्त्याद्यागमश्चैव पौलस्त्यान्वयकीर्त्तनम् ॥
अश्वमेधोपदेशश्च हयचर्या ततः परम् ।
नाना राजकथाः पुण्या जगन्नाथानुवर्णनम् ॥
वृन्दावनस्य माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
नित्यलीलानुकथनं यत्र कृष्णावतारिणः ॥
माधवस्नानमाहात्म्ये स्नानदानार्च्चने फलम् ।
धरावराहसंवादो यमब्राह्मणयोः कथा ॥
संवादो राजदूतानां कृष्णस्तोत्र निरूपणम् ।
शिवशम्भु समायोगो दधीच्याख्यानकन्ततः ॥
भस्ममाहात्म्यमतुलं शिवमाहात्म्यमुत्तमम् ।
देवरातसुताख्यानं पुराणज्ञ प्रशंसनम् ॥
गौतमाख्यानकञ्चैव शिवगीता ततः स्मृता ।
कल्पान्तरी रामकथा भरद्वाजाश्रम स्थितौ ॥
पातालखण्डमेतद्धि शृण्वतां ज्ञानिनां सदा ।
सर्वपापप्रशमनं सर्वाभिष्टफलप्रदम् ॥
(५म उत्तरखण्डमें)
पर्वताख्यानकं पूर्वं गौर्य्यै प्रोक्तं शिवेन वै ।
जालन्धरकथा पश्चाच्छ्रीशैलाद्यनुकीर्त्तनम् ॥
सगरस्य कथा पुण्या ततः परमुदीरितम् ।
गङ्गाप्रयागकाशीनां गयायाश्चाधिपुण्यकम् ॥
आम्रादिदानमाहात्म्यं तन्महाद्वादशीव्रतम् ।
चतुर्विंशैकादशीनां माहात्म्यं पृथगीरितम् ॥
विष्णुधर्मसमाख्यानं विष्णुनामसहस्रकम् ।
कार्त्तिकव्रतमाहात्म्यं माघस्नानफलन्ततः ॥
जम्बुद्वीपस्य तीर्थानां माहात्म्यं पापनाशनम् ।
साभ्रमत्याश्च माहात्म्यं नृसिंहोत्पत्तिवर्णनम् ॥
देवशर्मादिकाख्यानं गीतामाहात्म्यवर्णने ।
भक्ताख्यानञ्च माहात्म्यं श्रीमद्भागवतस्य ह ॥
इन्द्रप्रस्थस्य माहात्म्यं बहुतीर्थकथाचितम् ।
मन्त्ररत्नाभिधानञ्च त्रिपाद्भूत्यनुवर्णनम् ॥
अवतारकथा पुण्या मत्स्यादीनामतः परम् ।
रामनामशतं दिव्यं तन्माहात्म्यञ्च वाडव ॥
परीक्षणञ्च भृगुणा श्रीविष्णोर्वैभवस्य च ।
इत्येतदुत्तरं खण्डं पञ्चमं सर्वपुण्यदम् ॥"

ब्रह्माने कहा, हे पुत्र ! मनुष्योंका अधिकपुण्यजनक पद्मपुराण नामक पुराण कहता हूं, सुनो ।

जिस प्रकार पञ्च इन्द्रियविशिष्ट सभी शरीरी कहलाते हैं, उस प्रकार पापनाशकारी यह पद्मपुराण पांच खण्डोंमें वर्णित हुआ है । इनमेंसे प्रथम सृष्टिखण्डमें पुलस्त्यकर्त्तृक भीष्मको सृष्ट्यादिक्रमसे नानाख्यान और इतिहासके साथ विस्तर धर्मकथन, पुष्करमाहात्म्य, ब्रह्मयज्ञविधान, वेदपाठादिका लक्षण, दान और पृथक् पृथक् व्रत, शैलजाका विवाह और तारकाख्यान,

तारोंकी कथा इस संस्करणमें वर्णित हुई है। ११वीं और १२वीं शताब्दीमें जब रामानुज और मध्वाचार्यका मत विशेष रूपसे प्रचलित हुआ, तब उसके साथ साथ पद्मपुराणके ४र्थ संस्करणका सूत्रपात हुआ। पाखंडलक्षण, मायावादनिन्दा, तामसपुराण वर्णना, ऊर्द्धपुण्ड्र आदि वैष्णव चिह्न धारणकी कथा और द्वैतवादकी सुख्याति इत्यादिका वर्णन ३य संस्करणमें नहीं था। किन्तु इस ४र्थ संस्करणकालमें उन सब आधुनिक कथाओंका समावेश हुआ। इस चतुर्थ संस्करणके उत्तर खंडमें (२६३।६६-८८) लिखा है—

'रुद्रने कहा, हे देवि! तामस शास्त्रकी कथा, श्रवण करो। यह शास्त्र श्रवण करनेसे ही ज्ञानियोंके पातित्य उत्पन्न होता है। मैंने पहले शैव पाशुपतादि शास्त्र कहा था। पीछे मेरी शक्तिमें आसक्त विप्रोंने जो सब तामस शास्त्र कहे थे, वही सुनो। कणादने वैशेषिक शास्त्र, गौतमने न्याय, कपिलने सांख्य, धिषणाने अतिगर्हित चार्वाकमत और दैत्योंके विनाशार्थ बुद्धरूपी विष्णुने नग्न नीलवस्त्रधारियोंका असत् बौद्ध शास्त्र कहा था। मायावादरूप असत्-शास्त्र प्रच्छन्न बौद्धके जैसा गण्य है। कलिकालमें मैंने ही ब्राह्मण-रूपमें इस मायावादका प्रचार किया है। उसमें लोकगर्हित श्रुति वाक्योंका कदर्थ, कर्मस्वरूप परित्याग, सर्वकर्मपरिभ्रष्टरूप विधर्मीकी कथा, परमात्माके साथ जीवकी एकता, ब्रह्मका निर्गुणरूप इत्यादि प्रतिपादित हुआ है। कलिकालमें लोगोंको मुग्ध करनेके लिये ही जगत्‌में इन सब शास्त्रोंका प्रचार हुआ है। मैं जगत-नाशके लिये इन सब अवैदिक वेदार्थवत् महाशास्त्रकी रचना करता हूं। पूर्वकालमें जैमिन ब्राह्मणने भी निरीश्वरवादका प्रचार करनेके लिये वेदको कदर्थयुक्त पूर्वमीमांसा की है। मात्स्य, कौर्म, लैंग, शैव, स्कान्द और आग्नेय यही छः तामसपुराण हैं। वैष्णव, नारदीय, भागवत, गरुड़, पाद्म और वाराह ये छः सात्विक एवं ब्रह्मांड, ब्रह्मवैवर्त्त, मार्कण्डेय, भविष्य वामन और ब्राह्म ये छः राजस शास्त्र हैं। सात्विक पुराण मोक्षदायक, राजस स्वर्गदायक और तामसपुराण नरकप्राप्तिका कारण है। इसी प्रकार वशिष्ठ, हारीत, व्यास, पराशर, भरद्वाज और कश्यप रचित छः स्मृत ही सात्त्विक हैं। याज्ञवल्क्य, आत्रेय, तैत्तिर, दाक्ष, कात्यायन और वैष्णव ये स्मृतियां स्वर्गदायक राजस तथा गौतम, वार्हस्पत्य, साम्बर्त्त, यम, शाङ्ख और उशनस स्मृतियां निरयप्रद तामस मानी गई हैं।

उक्त विवरण किसी श्रीसम्प्रदायी वा किसी माध्वमतावलम्बीकी रचना है। इन दोनों सम्प्रदायके लोग शङ्कराचार्य-प्रवर्त्तित मायावादकी यथेष्ट निन्दा करते हैं। शङ्कराचार्यने उपनिषद्भाष्यमें जो श्रुतिव्याख्या की है, ये लोग उसे अवैदिक समझते हैं। ११वीं और १२वीं शताब्दीमें उक्त दोनों मत बहुत प्रबल हो उठा। विशेषतः १४वीं शताब्दीमें विज्ञानभिक्षुने "मायावादमसच्छास्त्र" इत्यादि श्लोकावली अपने सांख्यप्रवचनभाष्यमें उद्धृत की है। इस हिसाबसे उसके पहले वे सब श्लोक पद्मपुराणमें प्रक्षिप्त हुए थे, इसमें सन्देह नहीं। इस प्रकार १२वीं वा १४वीं शताब्दीके किसी समय पद्मपुराणने वर्त्तमानरूप धारण किया था, इसमें भी सन्देह नहीं होता। दाक्षिणात्यके पद्मपुराणमें जिस प्रकार बहुसंख्यक श्लोक प्रक्षिप्त हुए हैं, गौड़ीय पद्मपुराणमें उतने श्लोक प्रक्षिप्त न हो सके। दोनों स्थानके पद्मपुराणकी अध्याय-संख्या नीचे दी जाती है।

गौड़ीयपद्मपुराणमें	दाक्षिणात्यपद्मपुराणमें
सृष्टिखण्डमें ४६ अध्याय	सृष्टिखण्डमें ८२ अ०
भूमिखण्डमें १०३ "	भूमिखण्डमें १२५ "
पातालखण्डमें ११२ "	पातालखण्डमें ११३ "
उत्तरखंडमें १७४ "	उत्तरखंडमें २८२ "

गौड़ीयपाद्मके स्वर्गखंडमें केवल ४० अध्याय हैं। दाक्षिणात्यके पाद्ममें इस स्वर्गखंडके बदले आदिखंडमें ६२ अध्याय और ब्रह्मखंडमें २६ अध्याय देखे जाते हैं। गौड़ीय पद्मपुराणके कुछ ग्रन्थोंकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि नारदपुराणमें पद्मपुराणका जो आकार वर्णित हुआ है, गौड़ीय पद्मपुराणमें भी अधिक काल तक वैसा ही रूप था। गौड़ीय वैष्णवोंके प्रादुर्भावकालमें दाक्षिणात्य वैष्णवोंके संस्रवसे आजकलका पद्मपुराण भी विकृत हुआ था, इसमें सन्देह नहीं। इसी कारण अभी गौड़ीय स्वर्गखंड भी बहुत कुछ रूपा-

आदिखण्ड, भूमिखण्ड, ब्रह्मखंड, पातालखंड, सृष्टि-खंड और उत्तरखंड, इन छः खंडोंमें पद्मपुराणको विभक्त कर लिया है।

(पूनाके आनन्दाश्रमसे जो पद्मपुराण प्रकाशित हुआ है, वह इन्हीं छः खण्डोंमें विभक्त है। इसके आदिखण्ड और ब्रह्मखण्डको गौतीय पौराणिकोंमेंसे कोई भी ग्राह्य कह कर नहीं मानते। उक्त आदि और ब्रह्मखण्ड देखनेसे तो वह नितान्त आधुनिक ग्रन्थके जैसा प्रतीत होता है। नीचे इन दो खण्डोंकी विषयसूची दी गई है—

आदिखण्डमें—१ पद्मपुराणके खण्डविभाग, निर्णय और पाठफल, २ प्राकृत सर्गवर्णन, ३ जनपद, नदी और पर्वतादिवर्णन, ४ उत्तरकुरु प्रभृतिवर्णन, ५ रमणकादि वर्षनिर्णय, ६ भारतवर्षवर्णन, ७ भारतका चतुर्युगवर्णन, ८ शाकद्वीपादिवर्णन, ९ शाल्मलि और क्रौञ्चद्वीपवर्णन, १० दिलीपोपाख्यान, ११ पुष्करतीर्थ-माहात्म्य, १२ जम्बूमार्गादि तीर्थकथन, १३-१५ नर्मदा माहात्म्य, १६ कावेरीसङ्गममाहात्म्य, १७-१८ नर्मदा-कुलस्थ तीर्थसमूहवर्णन, १९ शुक्लतीर्थवर्णन, २० भृगुतीर्थमाहात्म्य, २१ नर्मदास्थ अश्वतीर्थादि बहुतीर्थ-वर्णन, २२ नर्मदातीर्थमाहात्म्य, २३ नर्मदास्नान-माहात्म्य, २४ चर्मण्वतीप्रभृति नदीतीरस्थ तीर्थ-वर्णन, २५ वितस्तामाहात्म्य, २६ कुरुक्षेत्रमाहात्म्य, २७ स्यमन्तपञ्चकमाहात्म्य, २८ धर्मतीर्थ, नागतीर्थादि माहात्म्य, २९ कालिन्दीतीर्थमाहात्म्य, ३०-३१ विकुण्डलाख्यान, ३२ सरस्वती, गोमती आदि तीरस्थ तीर्थप्रसङ्ग, ३३ वाराणसीमाहात्म्य, ३४ ओंकार-माहात्म्य, ३५ कपालमोचनमाहात्म्य, ३६ मध्यमेश्वर माहात्म्य, ३७ वाराणसीस्थ तीर्थमाहात्म्य, ३८-३९ गया प्रभृति अनेक तीर्थकथन, ४० तीर्थसेवादिफल, ४१-४२ प्रयागमाहात्म्य, ४३ प्रयागयात्राविधि, ४४ प्रयागयात्रा-फल, ४५ अनाशक फलवर्णन, ४६-४९ प्रयागमाहात्म्य, ५० तीर्थकृत कर्मभोगकथन, ५१ कर्मयोग, ५२ नरकतर निर्णय, ५३ साध्वाचार, ५४ द्विजकर्मकथन, ५५ वैष्णवा-चार, ५६ द्विजका अभक्ष्यनिर्णय, ५७ दानधर्म, ५८ वानप्रस्थाश्रमवर्णन, ५९ संन्यासवर्णन, ६० भिक्षा-चर्या, ६१ विष्णुरहस्य ६२ पुराणावयवकथनमें पाद्म-काश्रेष्ठताकथन।

ब्रह्मखंडमें—१ सूतशौनकसंवादमें हरिभक्तिवर्णन और वैष्णवका निरूपण, २ हरिमन्दिर लेपनमहिमा, दण्डक नामक चोरचरित, ३ व्यासजैमिनिसंवादमें कार्त्तिक-माहात्म्यारम्भ, दीपदानमाहात्म्य, ४ ब्रह्मनारदसंवादमें जयन्तीव्रतमहिमा, ५ पुत्रजन्मोपाय, श्रीधरनामक द्विज-चरित, ६ वारनारीचरित, ७ राधाजन्माष्टमी, राधाजन्मा-ष्टमीके प्रभावसे कलावती नामक वाराङ्गणाका उद्धार, समुद्रमथन कथारम्भ, इन्द्रके प्रति दुर्वासाका शाप, विष्णुके आदेशसे समुद्रमथनोपक्रम, ९ कूर्मके रूपमें हरिका गिरिधारण, हरका विषपान और अलक्ष्मीकी उत्पत्ति, ऐरावत, महालक्ष्मी और अमृतकी उत्पत्ति, विष्णुका मोहिनीरूपधारण, राहुका शिरच्छेद, समुद्रमथनकथा समाप्त, ११ गुरुवारव्रत और तत्प्रसङ्गमें भद्रश्रवराज-कन्या श्यामबालाका चरित, दीननाथराजका चरित, गालवकर्तृक नरमेधयज्ञनिरूपण, १३ कृष्णजन्माष्टमी-व्रतमाहात्म्य और तत्प्रसङ्गमें चित्रसेन राजचरित, १४ ब्राह्मणमहिमा और उसके प्रसङ्गमें भीम नामक शूद्र-चरित, १५ एकादशीमाहात्म्य और उसके प्रसङ्गमें वल्लभ-वैश्य और उसकी पत्नी महारूपाका चरित, पूर्णिमामें विष्णुपूजाव्रत और उसके प्रसङ्गमें कालद्विजचरित, १७ हरिचरणोदकवर्णन, उसके प्रसङ्गमें सुदर्शन विप्र-चरित, १८ अगम्यागमन प्रायश्चित्त, १९ अभक्ष्यभक्षण प्रायश्चित्त, २० कार्त्तिकमहिमा, कार्त्तिकमें राधादामो-दरपूजा, उसके प्रसङ्गमें शङ्कर और उनकी पत्नी कलि-प्रियाका चरित, २१ कार्त्तिकमासव्रतविधि, २२ तुलसी और धात्रीमहिमा, २३ विष्णुपञ्चकविधि और उसके प्रभावसे दंडकचौरोद्धार, कार्त्तिकमाहात्म्यसमाप्ति, २४ नानाविधि दान और तत्फल, २५ हरिनाम महिमा और पुराणश्रवणफल, २६ प्रतिज्ञाखंडनदोष वर्णन-में सुन्दरचरित, ब्रह्मखंडश्रवणफल।)

पद्मपुराणका प्रथम संस्करण धर्मसूत्रके रचनाकाल-में और द्वितीय संस्करण ब्रह्मण्य धर्मके पुनरभ्युदयकालमें प्रचलित हुआ था। तृतीय संस्करणका रूप नारदपुराण-में वर्णित हुआ है। जिस समय ब्रह्मदेव हिन्दू समाज में भगवदवतार कह कर गण्य हुए थे, सम्भवतः उसी समय यह संस्करण हुआ होगा। कारण, विष्णुके सभी अव-

कीर्त्तिप्रद और सर्वपुण्यप्रद गयादिका माहात्म्य तथा कालकेयादि दैत्यका वध, ग्रहगणकी अर्चना और दान इत्यादि पृथक् पृथक् रूपमें व्यास द्वारा इस सृष्टिखण्डमें निर्दिष्ट हुए हैं।

द्वितीय भूमिखण्डमें—पितामातादिकी पूजा, शिवशर्मकथा, सुव्रतकी कथा, वृत्रवधकथा, पृथु और वेणराजोपाख्यान तथा धर्माख्यान, पितृशुश्रूषा, नहुषवृत्तान्त, ययाति, गुरु और तीर्थनिरूपण, राजा और जैमिनिसंवाद, अत्याश्चर्य हुण्डदैत्यचरित, अशोक सुन्दरीकी कथा, विहुण्डवधसंयुक्त कामोदाख्यान और माहात्म्य च्यवनकुण्डलसंवाद है। तदनन्तर सिद्धाख्यान, सूतशौनकसंवादमें इस भूमिखण्डका विषय विवृत हुआ है।

तृतीय स्वर्गखण्डमें—सौति ऋषिसंवाद, ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, भूमिके साथ लोकसंस्थान, तीर्थाख्यान, नर्मदाका उत्पत्ति-कथन, उस तीर्थकी पृथक् कथा, कुरु क्षेत्रादि सभी तीर्थोंकी पवित्रकथा, कालिन्दीकी पुण्यकथा, काशीमाहात्म्य, पवित्र गयामाहात्म्य, प्रयागमाहात्म्य, वर्णाश्रमके अनुरोधसे कर्मयोगनिरूपण, पुण्यकथायुक्त व्यास और जैमिनिसंवाद, समुद्रमथनाख्यान, व्रताख्यान, ऊर्ज और पञ्चाहमाहात्म्य, सर्वापराधभञ्जनस्तोत्र प्रभृति सर्वपातकनाशन कार्यका उल्लेख है।

चतुर्थ पातालखण्डमें—रामाश्वमेध, रामका राज्याभिषेक, अगस्त्यका आगमन, पौलस्त्यचरित, अश्वमेधोपदेश, हयचर्या, नाना राजकथा, जगन्नाथाख्यान, वृन्दावनमाहात्म्य, कृष्णावतारमें नित्यलीलाकथन, माधवस्नान, दान और पूजाफल, धरणीवराहसंवाद, यम और ब्राह्मणकी कथा, राजदूतोंका संवाद, कृष्णस्तोत्र, शिवशम्भुसमायोग, दधीचिका आख्यान, भस्ममाहात्म्य, शिवमाहात्म्य, देवरातसुताख्यान, पुराणज्ञप्रशंसा, गौतमाख्यान, शिवगीता, भरद्वाजाश्रमस्थ कल्पान्तरी रामकथा, सर्वपापनाशक और सर्वाभिष्ट-फलप्रद आदिका वृत्तान्त है।

पञ्चम उत्तरखण्डमें—गौरीके प्रति शिवप्रोक्त पर्वताख्यान, जालन्धरकथा, श्रीशैलमाहात्म्य, सगरकी कथा, गङ्गाप्रयाग काशी और गयाकी पुण्यकथा, २४ प्रकारकी एकादशीकथा, एकादशीमाहात्म्य, विष्णुधर्म, विष्णुका सहस्रनाम, कार्त्तिकव्रतमाहात्म्य, माघस्नानफल, जम्बूद्वीपके अन्तर्गत पापनाशक तीर्थोंका माहात्म्य, साभ्रमतीमाहात्म्य, नृसिंहोत्पत्ति, देवशर्मादिकी कथा, गीतामाहात्म्य, भक्ताख्यान, श्रीमद्भागवतका माहात्म्य, इन्द्रप्रस्थमाहात्म्य, बहुतीर्थकथा, मन्त्ररत्न, त्रिपाद्विभूतिवर्णन, मत्स्यादिक्रमसे पुण्यमयी अवतारकथा, रामशतनाम और तन्माहात्म्य, भृगुकी परीक्षा तथा श्रीविष्णुका वैभव, इन सब पुण्यदायक विषयोंका उल्लेख है।

ऊपर जो सब प्रमाण उद्धृत हुए हैं, उन्हें आजकलके प्रचलित पद्मपुराणके साथ मिला कर देखनेसे हम लोगोंको मालूम होता है, कि आदि पद्मपुराणके लक्षण और विषयादिका प्रचलित पद्मपुराणमें अभाव नहीं है। मत्स्य और नारदपुराणमें जो सब लक्षण निर्दिष्ट हुए हैं उनमेंसे प्रायः सभी लक्षण प्रचलित पद्मपुराणमें मिलते हैं अर्थात् आदि पद्मपुराणके अनेक विषय प्रचलित पद्मपुराणमें दिये हुए हैं। किन्तु पहले पद्मपुराणका जैसा खण्डविभाग था, अभी उसका सम्पूर्ण परिवर्त्तन हो गया है।

आजकलका पद्मपुराण देखनेसे ही हम लोग पद्मपुराणके तीन संस्करणोंका परिचय पाते हैं,—१म संस्करणमें पौष्करादि करके पांच पर्वमें पद्मपुराण विभक्त था, पांच खण्डमें नहीं। सृष्टिखण्डसे हम लोग इस पञ्चपर्वात्मक पाद्मका सन्धान पाते हैं। विष्णुपुराणमें तत्पूर्ववर्त्ती जिस पद्मपुराणका उल्लेख है, सम्भवतः वही पञ्चपर्वात्मक था। १म संस्करणमें पौष्कर प्रथम पर्वके जैसा गिने जाने पर भी, द्वितीय संस्करणमें पौष्कर फिर द्वितीयखण्डके मध्य परिगणित होता है तथा सृष्टिखण्ड प्रथम पर्वका स्थान लेता है। दाक्षिणात्यमें प्रचलित पाद्मोत्तरखण्डसे उसका प्रमाण मिलता है। तृतीय संस्करणमें पौष्करखण्डका लोप हुआ, सम्भवतः यह सृष्टिखण्डके पुष्करमाहात्म्यके अन्तर्गत रखा गया, स्वर्गखण्डने उसका स्थान दखल किया। गौड़ीय पद्मपुराण और नारदपुराणसे इस ३य संस्करणके लक्षणादि मिलते हैं। किन्तु इसके बाद भी ४र्थ संस्करण हुआ। दाक्षिणात्यगण स्वर्गखण्डको नहीं मानते। उन्होंने स्वर्गखण्डकी जगह ब्रह्मखण्ड माना है तथा यथाक्रम

न्तरित हो गया है, । नारदोक्त स्वर्गखंडके साथ सभी विषयोंमें उसका मेल नहीं खाता ।

क्रियायोगसार पद्मपुराणका परिशिष्टस्वरूप है। इसमें वैष्णवोंके क्रियाकांड और चिह्नादि धारणकी कथा वर्णित हुई है । अध्यापक विलसनका विश्वास है, कि यह १५वीं शताब्दीमें किसी बङ्गालीसे रचाया गया है । किन्तु जब उस समयके चैतन्यभक्त अनेक वैष्णव ग्रन्थकारोंने इस क्रियायोगसारसे प्रमाण उद्धृत किये हैं, तब यह ग्रन्थ उसके बहुत पहले रचा गया था, इसमें सन्देह नहीं ।

आजकलके किसी भी पद्मपुराणमें ५५००० श्लोक नहीं मिलते। बम्बई प्रान्तमें जो पद्मपुराण मुद्रित हुआ है, उसमें ४८४५२ श्लोक देखे जाते हैं। पर हां, इसके साथ स्वर्गखंड और क्रियायोगसारके श्लोकोंकी एकत्र गणना करनेसे ५५००० हो सकते हैं। इतना होने पर भी यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि आदि पद्मपुराणका अधिकांश श्लोक लुप्त है और उसमें अनेकानेक अभिनव श्लोक संयोजित हुए हैं । स्कन्दपुराणके शिवरहस्य खंडसे जाना जाता है, कि एक समय पूर्वतन पद्मपुराण ब्रह्मका माहात्म्यसूचक अर्थात् ब्रह्मग्रन्थके जैसा गण्य था किन्तु अभी ब्रह्माका माहात्म्य लोप हो जानेसे यह कट्टर वैष्णवोंका ग्रन्थ हो गया है ।

निम्नलिखित क्षुद्र ग्रन्थ पद्मपुराणके अन्तर्गत माने गये हैं,—

अष्टमूर्त्तिपर्व, अयोध्यामाहात्म्य, उत्पलारण्यमाहात्म्य, कदलीपुरमाहात्म्य, कमलालयमाहात्म्य, कपिलगीता, करवीरगीता, कर्मगीता, कल्याणकाण्ड, कायस्थोत्पत्ति और कायस्थस्थितिनिरूपण, कालञ्जरमाहात्म्य, कालिन्दीमाहात्म्य, काशीमाहात्म्य, श्रीकृष्णनवलमाहात्म्य, केदारकल्प, गणपतिसहस्रनाम, गौतमीमाहात्म्य, चित्रगुप्त कथा, जगन्नाथमाहात्म्य, तप्तमुद्राधारणमाहात्म्य, तीर्थमाहात्म्य, त्र्यम्बकमाहात्म्य, देविकामाहात्म्य, धर्मारण्यमाहात्म्य, ध्यानयोगसार, पञ्चवटीमाहात्म्य, पुष्करखंडोक्त पायिणीमाहात्म्य, प्रयागमाहात्म्य, भक्तवत्सलमाहात्म्य, भर्ममाहात्म्य, भागवतमाहात्म्य, भीमामाहात्म्य, भूतेश्वरतीर्थमाहात्म्य, मलमासमाहात्म्य, मल्लारिसहस्रनामस्तोत्र, यमुनामाहात्म्य, राजराजेश्वरयोगकथा, रामसहस्रनामस्तोत्र, रुक्माङ्गदकथा, रुद्रहृदय, रेणुकासहस्रनाम, विकृतजननशान्तिविधान, विभूतिमाहात्म्य, विष्णुसहस्रनाम, वृन्दावनमाहात्म्य, वेङ्कटस्तोत्र, वेदान्तसार शिवसहस्रनाम, वैश्योपाख्यान, वैतरिणीव्रतोद्यापनविधि, वैद्यनाथमाहात्म्य, वैशाखमाहात्म्य, शताश्वविजय, शिवगीता, शिवालयमाहात्म्य शिवसहस्रनामस्तोत्र, शीतलास्तोत्र, शोणीपुरमाहात्म्य, श्वेतगिरिमाहात्म्य, सङ्कटानामाष्टक, सतोपाख्यान, सरस्वताष्टक, सिन्धुरागिरिमाहात्म्य, सुदर्शनमाहात्म्य, हनुमत्कवच, हरिश्चन्द्रोपाख्यान, हरितालिकाव्रतकथा, हर्षेश्वरमाहात्म्य, होलिकामाहात्म्य इत्यादि ।

३य विष्णुपुराण ।

प्रचलित विष्णुपुराणमें विषयानुक्रम इस प्रकार देखा जाता है:—

प्रथमांशमें—१म मङ्गलाचरण, पराशरके प्रति मैत्रेयको प्रश्नजिज्ञासा, तत्प्रति पराशरका उत्तरवाक्य, २ विष्णुस्तुति, सृष्टिप्रक्रिया, ३ ब्रह्माका सर्गादि कर्त्तृत्वशक्तिका विवरण, ब्रह्माका आयुकथन, कल्पान्तमें स्वर्गवर्णन, ५ देवदानवादि सृष्टिकथन, स्थावरादिको सृष्टिकथा, ६ ब्राह्मणादि सृष्टिकथा, क्रियावान् ब्राह्मणादिवर्णनका स्थाननिरूपण, ७ मानसप्रजासृष्टिवर्णन, रुद्रसृष्टिकथन, मुनिसृष्टिकथन, चतुर्विध प्रलयवृत्तान्त, ८ लक्ष्मीसे भृगुका उत्पत्तिकीर्त्तन, ९ इन्द्रके प्रति दुर्वासाको शापकथा, त्रैलोक्यके श्रीहीनत्वहेतु यज्ञादिका विघ्न देख कर देवताओंका ब्रह्माके समीप गमन, विष्णुस्तुति, समुद्रमन्थन, श्रीका समुत्थान, इन्द्रकी लक्ष्मीस्तुति, १० भृगुवंशसे अपरापरवंशका उत्पत्तिकथन, ११ ध्रुवोपाख्यान, १२ ध्रुवका मधुनामक यमुनातटमें गमन, ध्रुवको उत्कृष्ट तपस्यासे त्रासित-देवताओंका भगवत्के समीप गमन, ध्रुवको भगवद्वरप्राप्ति, १३ ध्रुववंशकथन, वेणनामक राजाका उपाख्यान, पृथुचरित्रकथन, १४ प्रचेता कर्त्तृक समुद्रजलमें तपश्चर्या, १५ प्रचेताको तपस्यासे प्रजाक्षय, कण्डुमुनिका चरित, मैथुनधर्मकी सहायतासे दक्षको प्रजासृष्टि, १६ मैत्रेयका प्रह्लादविषयक प्रश्न, १७ प्रह्लादचरित्र-

कथा, १८ प्रह्लादवधमें हिरण्यकशिपुकर्तृक सूदादिका नियोग, १९ प्रह्लादके प्रति हिरण्यकशिपुका वाक्य, प्रह्लादकी विष्णुस्तुति, प्रह्लादस्तवसे परितुष्ट भगवान्‌का प्रह्लादको स्वरूपदर्शनदान, हिरण्यकशिपु-वध, २१ प्रह्लादकी वंशआख्या, २२ विष्णुका विभूति-वर्णन, परमात्माका चतुःप्रकारत्व-कथन।

२य अंशमें—१ प्रियव्रतके दश पुत्रोंमेंसे तीनका योगपरत्व कीर्त्तन, दूसरेका सप्तद्वीपाधिपतित्वकथन, जम्बूद्वीपपति अग्नीध्रका शालग्रामक्षेत्रमें गमन, भरत वंशविस्तार, २ भूमण्डलवर्णन, ३ भारतवर्षनिरूपण, ४ प्लक्षद्वीप-वर्णन, शाल्मली द्वीपवर्णन, कुशद्वीपकथन, क्रौञ्चद्वीपकथन, शाकद्वीपविवरण, पुष्करद्वीपकथन, लोकालोकपर्वतवृत्तान्त, ५ सप्तपातालकथन, अनन्त गुणवर्णन, ६ नरकवर्णन, हरिनामस्मरणमें सर्वप्रायश्चित्त और पापक्षयकथा, ७ सूर्यादिग्रहका संस्थानकथन, भूर्लोक और भुवर्लोकादिका संस्थानवर्णन, ८ सूर्यरथ संस्थान, सूर्यका उदयास्तकथन, भानुका रश्मिभेद कथन, कालगणना और गङ्गाका उत्पत्तिवर्णन, ९ वृष्टिका कारणनिर्देश, १० सूर्यरथाधिष्ठातृगणका विवरण, ११ सूर्यरथ पर त्रयीमयी विष्णुशक्तिका अवस्थानकथन, १२ चन्द्ररथवर्णन, चन्द्रका ह्रास और वृद्धिकथन, बुधादि-ग्रहका रथवर्णन, प्रवह वायुकथन, विष्णुमहिमा, १३ जड़भरतोपाख्यान, सौवीरके प्रति भरतका तत्त्वज्ञानोपदेशारम्भ १४ भरतके प्रति सौवीरको आत्मविषयक प्रश्नजिज्ञासा, भरतका उत्तरप्रदान, १५ ऋभुनिदाघ-संवाद, १६ ऋभुके समीप निदाघका पुनर्गमन, आत्म-तत्त्व विषयक उपदेश।

३य अंशमें—मन्वन्तरकथाश्रवण पर मैत्रेयका प्रश्न, अतीत छः मनुका नामकथन, स्वारोचिषादि मन्वन्तर-कथा, २ भविष्य मन्वन्तरविषयिणी जिज्ञासा, सूर्यपत्नी छायाका विवरण, सावर्णि मन्वन्तरकथन, कल्पपरिमाण, ३ वेदव्यासका अष्टाविंशति नामकथन, कृष्णद्वैपायन-माहात्म्य, निरुक्तिकथन, ५ यजुर्वेदशाखाविभाग, याज्ञवल्क्यकृत सूर्यस्तोत्र, ६ सामवेदका शाखाविभाग, अथर्ववेदका शाखाविभाग, अष्टादशपुराणकथन, पुराणफल, चतुर्दश विद्या, अष्टादशविद्या, ऋषित्रय-कथन, ७ यमगीता, ८ विष्णुआराधनफल, जम्बू पूजाकी फलश्रुति, ब्राह्मणादिवर्णका ध्य, साभ्रमती ब्रह्मचर्याकथन, गार्हस्थ्य-धर्मकथन, ा, गीता और भिक्षाश्रमवर्णन, १० जातय, इन्द्रप्रस्थ विवाहयोग्या कन्याका लक्षण, ११ गृहस्थक तिवर्णन, कथन, मूत्रपुरीषोत्सर्गविधि, धनोपार्जनविमशतनाम विधि, १२ गृहस्थका विविधाचारकथन, १३ ोविष्णुका कथन, प्रेतदाहविधि, अशौचप्रकरण, एकों। सपिण्डकरणविधि, १४ श्राद्धफलश्रुति, विशेष श्राद्धकाल-कथन, पितृगीता, १५ श्राद्धभोजी ब्राह्मणोंका लक्षण, श्राद्धके बाद निषिद्ध कर्मकथन, मातामहश्राद्धविधि, श्राद्धप्रकरण, पितृपिण्डदाननियम, योगीप्रशंसा, १६ श्राद्धमें मधुमांसादि दानफल, वृषादिके श्राद्धदर्शन-में दोषकथन, १७ नग्नलक्षण, भीष्मवशिष्ठसंवाद, देवताओंकी विष्णुस्तुति, मायामोहोत्पत्ति, १८ असुरोंके प्रति मायामोहकी उपदेशकथा, आर्हतदर्शनोत्पत्ति-कथन, बौद्धधर्मोत्पत्तिकथन, नग्नसम्पर्क दोषकथन, शतधनुनामक राजोपाख्यान।

४र्थ अंशमें—१ वंशविस्तार, प्रश्नजिज्ञासा, मनु-वंशस्मरण और श्रवणफल, ब्रह्माकी उत्पत्ति, दक्षादि की उत्पत्ति, बुधके औरस और इलाके गर्भसे पुरूरवा-का जन्मकथन, रेवतके वंशमें रेवतीकी उत्पत्तिकथा, रेवतीके साथ बलदेवका विवाह, २ इक्ष्वाकुका जन्म, ककुत्स्थवंशविस्तारकथन, युवनाश्वोपाख्यान, सौभरिका उपाख्यान, ३ सौभरिका वनगमन, सौभरिचरित्रश्रवणमें फलकथन, सर्पविनाशमन्त्र, अनरण्यका वंशविस्तार, त्रिशङ्कुवंशमें सगरोत्पत्तिकथा, ४ सगरवंशधरोंका जन्म-विवरण, सगरको अश्वमेधयज्ञकथा, सगरपुत्रोंका मरण-वृत्तान्त, भगीरथका गङ्गानयन, रामादिका जन्मकथन, ५ निमिका यज्ञानुष्ठान, निमि और वशिष्ठका परस्पर शापसे देहत्याग, मित्रावरुणके प्रभावसे पुनः वशिष्ठका जन्म, सीताकी उत्पत्ति, कुशध्वजवंशाख्यान, ६ चन्द्र-वंशकथा, चन्द्रका गुरुपत्नी हरणवृत्तान्त, ताराका गर्भ, बुधकी उत्पत्ति, यज्ञमें अग्नित्रयकी उत्पत्ति, ७ पुरूरवाका वंशकीर्त्तन, जह्नुकर्तृक गङ्गापान, जह्नुका वंशविवरण, जमदग्निविश्वामित्र आदिका जन्मकथन,

लीक, बृहद्रथ, सुमा

[illegible]ायुवंशकथन, धन्वन्तरिका जन्म और तद्वंशविस्तार[illegible]न, ९ इन्द्रसाहाय्यार्थ रजका दैत्यके साथ [illegible], क्षत्रवृद्धका वंशावलीकथन, १० नहुषवंशानु[illegible]त, ययातिका उपाख्यान, ११ यदुका वंश, [illegible]र्त्तवीर्यार्जुनका जन्म, १२ क्रष्टुका वंश, १३ [illegible]मन्तकोपाख्यान, कृष्णके साथ जाम्बवतीका विवाह, [illegible]शाकटङ्क सत्यभामाका पाणिग्रहण, गान्दिनीका उपाख्यान, १४ शिनिका वंशावली कोर्त्तन, अन्धक-वंशविस्तार, श्रुतश्रवाका वंशकथन, शिशुपालोत्पत्ति, १५ शिशुपालका मुक्तिकारणकथन, वसुदेवपत्नियोंका नामकीर्त्तन, श्रीकृष्णजन्मकथा, यदुवंशीयगणका संख्यानिरूपण, १६ तुर्वसुका वंश, १७ द्रुह्युका वंशविवरण, १८ अनुका वंशकथन, कर्णोत्पत्ति, १९ जनमेजयका वंशकथन, भरतका जन्मवृत्तान्त, वृहदिषुका जन्म, कृपोकृपकी उत्पत्ति, जरासन्धकी उत्पत्ति, २० जह्नुका वंश, पाण्डुवंशाख्यान, २१ भविष्यभूपालोंका वंशाख्यान, परोक्षित्‌वंशकथन, २२ इक्ष्वाकुवंशीय भविष्यभूपालोंका आख्यान, २३ वृहद्रथवंशीय भविष्यभूपालगण, २४ प्रद्योतवंशीय भविष्यभूपालविवरण, नन्द (मौर्य) वंशका इतिहास, भविष्यकालके विविधराजवंशका विवरण, कालप्रभावसे राजाओंका चरित्रान्तरहेतुनिर्णय, कृतयुगारम्भसमय, कलिका प्रादुर्भाव-कालनिर्णय।

५म अंशमें—१ वसुदेवकर्त्तृक देवकीका पाणिग्रहण, कंसके भारसे निपीड़ित पृथ्वीका देवके समीप गमन, ब्रह्माकृत विष्णुस्तोत्र, विष्णुका कंसवधमें अङ्गीकार, २ यशोदागर्भसे योगनिद्राका जन्म, देवकीगर्भमें भगवान्‌का प्रवेश, देवगणकृत देवकीस्तुति, ३ श्रीकृष्णकी जन्मकथा, वासुदेवका गोकुलगमन, कंसके प्रति शून्यमार्गप्रस्थायी महामायाका उपदेशवाक्य, ४ आत्मरक्षार्थ कंसका उपायचिन्तन, देवकीवसुदेवका बन्धनमोचन, ५ पूतनावध, ६ बालकरूपी कृष्ण द्वारा शकटपरिवर्त्तन, कृष्णबलरामका नामकरण, ७ कालियदमन, ८ धेनुकवध, प्रलम्बासुरवधोपाख्यान, १० शक्रोत्सववर्णन, कृष्णके आदेशसे गिरिपूजा, ११ इन्द्रका कोप, महावृष्टिकथन, गोवर्द्धनधारण, १२ श्रीकृष्णके समीप देवराजका आगमन, अर्जुनरक्षार्थ देवराजका उपदेश, १३ रासवर्णन, गोपियोंका सङ्गीतादिकथन, १४ अरिष्टवध, १५ कंसके समीप नारदका कृष्णगुणकीर्त्तन, १६ केशिवध, १७ अक्रूरका वृन्दावनगमन, १८ श्रीकृष्णाक्रूरसंवाद, श्रीकृष्णको मथुरायात्रा, राहमें यमुनाके जलमें अक्रूरके रामकृष्णमूर्त्तिदर्शन, श्रीकृष्णस्तोत्र, १९ रामकृष्णका मथुराप्रवेश, रजकवध, मालाकारगृहमें गमन, २० कुब्जासे चन्दनादि अनुलेपग्रहण, धनुर्यागप्रवेश, रङ्गभूमिमें प्रवेश और कंसवध, २१ कंसपत्नियोंका विलाप, उग्रसेनाभिषेक, इन्द्रसे सुधर्मको प्रार्थना, २२ जरासन्धपराभव, २३ कालयवनकी उत्पत्ति, कालयवनका मथुरागमन, कालयवनवध, २४ बलदेवका वृन्दावनमें आगमन, २५ बलदेवकी वारुणीप्राप्ति, यमुनाकर्षण, रेवतीपरिणय, २६ रुक्मिणीहरण, प्रद्युम्नोत्पत्ति, २७ प्रद्युम्नहरण, मत्स्यजठरमें मायावतीकी प्रद्युम्नप्राप्ति, शम्बरवध, २८ रुक्मिवध, २९ देवराजका द्वारकागमन, श्रीकृष्णको षोड़शसहस्र कन्याप्राप्ति, ३० कृष्णका स्वर्गगमन, पारिजातहरण, इन्द्रादिके साथ श्रीकृष्णका युद्ध, देवगणकी पराजय, ३१ देवराजकी क्षमाप्रार्थना, श्रीकृष्णका द्वारकामें प्रत्यागमन, ३२ कृष्णमहिषियोंकी सन्तानोत्पत्ति, बाणयुद्धविवरण, ऊषाका स्वप्नदर्शन, ३३ अनिरुद्धहरण, बाणपुरीअवरोध, शिवकृष्णका युद्ध, बाणका बाहुच्छेद, ३४ पौण्ड्रक काशिराजवध, वाराणसीदाहन, ३५ शाम्बबन्धन, बलदेवका हस्तिनापुरगमन, बलदेवकी कोपशान्ति, ३६ द्विविदका दौरात्म्य, द्विविदवध, ३७ मुषलोत्पत्तिकथन, यदुवंशीयगणका प्रभासतीर्थमें गमन, यदुकुलक्षयकथन, श्रीकृष्णका कलेवरत्याग, ३८ अर्जुनकर्त्तृक यादवगणका सत्कारकथन, कलिका आगमनवृत्तान्त, आभीराक्रमण, अर्जुनके प्रति व्यासका उपदेश, परोक्षितका अभिषेक।

६ष्ठ अंशमें—१ कलिका स्वरूपवर्णन, कलिधर्मकथन, २ अल्प धर्ममें अधिक फललाभ, ३ [illegible] ब्रह्माका दिननिर्णय, ४ प्रलयमें ब्रह्माका [illegible] प्रलय, ५ त्रिविध दुःखकथन, गर्भजन[illegible] नरकयन्त्रणा, दुःखध्वंसकरीमुक्ति, ब्रह्म[illegible]

६ स्वाध्याययोगकथन, योगनिरूपण, केशिध्वजोपाख्यान, धर्मधेनुविनाश, प्रायश्चित्तपरिज्ञानार्थ खाण्डिक्याभिगमन, मन्त्रिगणके साथ खाण्डिक्यकी मन्त्रणा, ७ केशिध्वजका आत्मज्ञानकथनारम्भ, देहात्मवादियोंकी निन्दा. योगविषयकप्रश्न, त्रिविध भावना, ब्रह्मज्ञानकथन, निराकारधारणा, साकार धारणा, केशिध्वजका गृहागमन, खाण्डिक्य और केशिध्वजकी मुक्तिलाभ, ८ सर्वशास्त्रापेक्षा विष्णुपुराणका श्रेष्ठत्व, पराशरके समीप मैत्रेयका प्रश्न, कथितविषयका संक्षेपकथन, विष्णुनामस्मरण-माहात्म्य, विष्णुपुराणविषयक फलस्तुति, विष्णुमाहात्म्यकीर्त्तन।

विष्णुधर्मोत्तरमें—शतानीक जनमेजयसंवादमें श्रीकृष्णाराधनोपयोगी क्रियायोगकथन, भगवन्माहात्म्यकीर्त्तन, इन्द्ररूपधारी उपेन्द्रके साथ तपस्वारी अम्बरीष संवाद-कथनप्रसङ्गमें भक्तियोगमाहात्म्यकीर्त्तन, भक्तियोगका क्रियायोगाश्रितत्वकथन, शुक्रप्रह्लाद संवादमें भक्तियोगवर्णन, उपवासलक्षण, उपवासमें भगवत् प्रीत्याधायकत्वकथन, तत्प्रसङ्गमें सुगतिद्वादशी व्रतविधानकीर्त्तन, याम्यक्लेशविमुक्तिकारणकथन, एकभक्तव्रतविधिकथा, द्वादशमासिक कृष्णाष्टमीव्रतविधि, चातुर्मास्यव्रतविधि, कुलाभिद्वादशीव्रतविधिकथन, विजयद्वादशीव्रतविधि, जयन्त्यष्टमीव्रतविधान, अजितैकादशीव्रतविधान, सूत द्वारा विष्णुस्वपनविधि, विष्णुव्रतविधि, सम्प्राप्ति द्वादशीव्रतविधि और गोविन्द-द्वादशीव्रतविधि, अखण्डद्वादशीव्रतविधि, पापनाशिनी द्वादशी, पदद्वयव्रतविधि, मनोरथ द्वादशीव्रतकथा, अशोक पौर्णमासीव्रतविधान, सुकलत्रप्राप्तिव्रतविधान, पतिव्रता धर्मादिकथन, स्त्रीधर्मव्रतकथन, नरकवर्णन, पाप विशेषमें नरकविशेषकी कथा, नरकद्वादशीव्रतकथन, पाखण्डोंका स्वरूपवर्णन, उनके साथ आलाप करनेमें प्रायश्चित्तविधान, मासर्क्षपूजाविधि, साम्भरायणका उपाख्यान, सर्वबाधाप्रशमनविधि, नक्षत्रपुरुषव्रतविधान, माहात्म्यविधि, देवगृहलेपनविधि, देवगृहमें दीपवलक्षकीर्त्तन, देवादिस्तुतिप्रशंसाकथन, तिलद्वादशी· अष्टवक्र अनुनभगवत्संवादमें स्तोत्रमाहात्म्यकथन, पुराणस्तोत्र, सुव्रतद्वादशीव्रतकथा, अश्विपुरूरवा आदिका मङ्गलस्तोत्रकथन, ब्रह्माख्यानकीर्त्तन, अशून्यशयनद्वितीयाव्रत, संसारहेतु मुक्ताख्यानकथन, श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवादमें याम्यपथाख्यानकीर्त्तन, गोदान माहात्म्यादिकथन, दानमौन-ब्रह्मचर्यादि नियम-फलकथन, द्रव्यदानविशेषमें विशेष फलकीर्त्तन, वृथादान निरूपण, विप्रकी अवमानना और पूजाफल, विप्र माहात्म्यकीर्त्तन, दानप्रशंसा, तपः प्रशंसा, सत्रप्रशंसा, उपवासप्रशंसा, एकभक्तादि प्रशंसा। ब्राह्मणादि वर्णान्यत्वप्राप्तिकारणवर्णन, सुवर्णदानमाहात्म्यकीर्त्तन, विशेषरूपमें गोदानमाहात्म्यकथन. भूमिदानमाहात्म्य-कीर्त्तन, संग्राममाहात्म्यकीर्त्तन, दण्डनीतिकथन, हरिभक्तिमाहात्म्यकथन, युधिष्ठिरचण्डालप्रश्नसंवाद, जनकगीताकथन, जन्मरहस्यकथन, गजेन्द्रमोक्षविवरण, अनुस्मृतिकीर्त्तन, विप्रपञ्जरकथन, सारस्वतस्तव, विष्णवष्टककथन. वस्वसुरसंवादकथन, भक्तिमाहात्म्यादिवर्णन, विष्णुश्रीसंवाद, स्वधर्माचरणप्रशंसा, अदितिस्तवकथन, वामनस्तवकथन, बलिबन्धनविवरण, चक्रस्तवकीर्त्तन, उत्क्रान्तिस्मरणकथन, वैवस्वतगाथा-कीर्त्तन. पुष्पादिविभागकीर्त्तन, मान्धाताका राज्यप्राप्ति हेतुकथन, त्रिविक्रमव्रतकथा, पदत्रय-व्रतकथन, गोदान-विधि, तिलधेनुदानविधि, घृतधेनुकल्पविधि, जलधेनुदानविधि, कथनप्रसङ्गमें पुङ्गवगाथाकीर्त्तन, शुद्धिव्रतकथन, देवकीव्रतकथन, प्रह्लादबलिसंवाद, पापप्रशमनस्तवकीर्त्तन, अन्यविधपापप्रशमनस्तव कथन, ब्रह्माद्वैतरूपादिकीर्त्तन, पापक्षयोपायकथन, योगस्वरूपादिकथन, यमनियमादिसमाख्यान-निरूपण, वर्णाश्रम-धर्मकथन, नरनारायणाख्यान-प्रसङ्गमें उर्वशीका सम्भवादिकथन, विश्वरूपदर्शनप्रसङ्ग, चतुर्युगावस्थाकथन, विस्तारपूर्वक कलिधर्मकथा, तत्प्रसङ्गमें नरगणका चरित्रवर्णन, शास्त्रमाहात्म्यकीर्त्तन, अनुक्रमणिका कथन।

अब देखना चाहिये, कि विष्णुपुराणके लक्षण दूसरे दूसरे पुराणोंमें किस प्रकार निर्दिष्ट हुए हैं ? मत्स्यपुराणके मतसे वराहकल्पवृत्तान्तका आरम्भ करके पराशरने जिसमें अखिल धर्मकथा प्रकाशित की है, वही वैष्णव है। पंडित लोग इसकी श्लोकसंख्या २३०००

...., पुष्क, ..., निषधाधिपति ....
....क, बृहद्रथ, सुक्रतु, ...

बतलाते हैं। (१) नारदपुराणमें इस प्रकार अनुक्रम है—

"शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं वैष्णवं महत्।
त्रयोविंशतिसाहस्रं सर्वपातकनाशनम्।
यत्रादिभागे निर्दिष्टाः षडंशाः शक्तजेन ह।
मैत्रेयायादिमे तत्र पुराणस्यावतारिका॥
प्रथमांशमें—आदिकारणसर्गश्च देवादीनाञ्च सम्भवः।
समुद्रमथनाख्यानं दक्षादीनां ततोऽन्वयाः॥
ध्रुवस्य चरितं चैव पृथोश्चरितमेव च।
प्रचेतसं तथाख्यानं प्रह्लादस्य कथानकम्॥
पृथग्राज्याधिकाराख्या प्रथमोंऽश इतीरितः॥
द्वितीयांशमें—प्रियव्रतान्वयाख्यानं द्वीपवर्षनिरूपणम्।
पातालनरकाख्यानः सप्तस्वर्गनिरूपणं॥
सूर्यादिचारकथनं पृथग्लक्षणसंयुतम्।
चरितं भरतस्याथ मुक्तिमार्गनिदर्शनम्॥
निदाघऋतु संवादो द्वितीयोंऽश उदाहृतः।
तृतीयांशमें—
मन्वन्तरसमाख्यानं वेदव्यासावतारकम्।
नरकोद्धारकं कर्म गदितञ्च ततः परम्॥
सगरस्यौर्वसंवादे सर्वधर्मनिरूपणम्।
श्राद्धकल्पं तथोद्दिष्टं वर्णाश्रमनिबन्धने॥
सदाचारश्च कथितो मायामोहकथा ततः।
तृतीयोंऽशोऽयमुदितः सर्वपापप्रणाशनः॥
चतुर्थांशमें—
सूर्यवंशकथा पुण्या सोमवंशानुकीर्त्तनम्।
चतुर्थेंऽशे मुनिश्रेष्ठः नानाराजकथाचितम्॥
पञ्चमांशमें—
कृष्णावतारसंप्रश्नो गोकुलीयकथा ततः।
पूतनादिवधो बाल्ये कौमारेऽघादिहिंसनम्॥
कैशोरे कंसहननं माथुरं चरितं तथा।
ततस्तु यौवने प्रोक्ता लीलाद्वारवतीभवा॥
सर्वदैत्यवधो यत्र विवाहाश्च पृथग्विधाः।
यत्रस्थित्वा जगन्नाथः कृष्णयोगेश्वरेश्वरः॥
भूभारहरणं चक्रे परस्वहननादिभिः।
अष्टावक्रीयमाख्यानं पञ्चमोंऽश इतीरितः॥
षष्ठांशमें—
कलिजं चरितं प्रोक्तं चातुर्विध्यं लयस्य च।
ब्रह्मज्ञानसमुद्देशः खाण्डिक्यस्य निरूपितः॥
केशिध्वजेन चेत्येष षष्ठोऽंशः परिकीर्त्तितः॥
उत्तरभागमें—
अतःपरन्तु सूतेन शौनकादिभिरादरात्।
पृष्टेनचोदिताः शश्वद्विष्णुधर्मोत्तराह्वयाः॥
नानाधर्मकथाः पुण्या व्रतानि नियमाः यमाः।
धर्मशास्त्रं चार्थशास्त्रं वेदान्तं ज्योतिषं तथा॥
वंशाख्यानप्रकरणात् स्तोत्राणि मनवस्तथा।
नानाविद्याश्रयाः प्रोक्ताः सर्वलोकोपकारकाः॥
एतद्विष्णुपुराणं वै सर्वशास्त्रार्थसंग्रहं॥

अर्थात्—हे वत्स! सुनो, मैं तुमसे यह सर्वपापहर त्रयोविंशतिसहस्र श्लोकपूर्ण वैष्णव महापुराण कहता हूं। प्राचीनकालमें शक्तृनन्दनने इसके आदिभागमें मैत्रेयके निकट पुराणकी अवतारिकाको छः अंशोंमें निर्दिष्ट किया था।

आदिकारण, सृष्टि, देवादिकी उत्पत्ति, समुद्रमथन और दक्षादिका वृत्तान्त, ध्रुव और पृथुचरित, प्रचेताका आख्यान, प्रह्लादकथा और पृथक् पृथक् राज्याधिकारवृत्तान्त, ये सभी प्रथमांशमें उक्त हुए हैं।

प्रियव्रताख्यान, द्वीप और वर्ष निरूपण, पाताल और नरकाख्यान, सप्तसर्गनिरूपण, पृथक् पृथक् लक्षणयुक्त सूर्यादिका चारकथन, भरतचरित, मुक्तिमार्गनिदर्शन और शौनकऋतुका संवाद, द्वितीयांशमें यही सब उद्धृत हुए हैं।

मन्वन्तराख्यान, वेदव्यासका अवतार, नरकोद्धारक कर्म, इसके बाद सगर और और्वसंवादमें सर्वधर्मका निरूपण, वर्णाश्रमनिबन्धनमें श्राद्धकल्पनिर्देश, सदाचार और मायामोहकथा, इन सबका वर्णन तृतीयांशमें है। यह अंश सर्वपापनाशक माना गया है। हे मुनिश्रेष्ठ! सूर्यवंशकी पवित्रकथा और सोमवंशका अनुकीर्त्तन तथा नाना प्रकारके राजाओंका वृत्तान्त भी इस चतुर्थांशमें वर्णित हुआ है।

प्रथमतः कृष्णावतारविषयक प्रश्न, पीछे गोकुलीय कथा, बाल्यकालमें पूतना प्रभृतिका वध, कौमारमें अघासुरादिकी हत्या, कैशोरमें कंसविनाश और माथुरचरित,

(१) वराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः।
यत्प्राह धर्मानखिलांस्तदुक्तं वैष्णवं विदुः॥
त्रयोविंशतिसाहस्रं तत्प्रमाणं विदुर्बुधाः।"
(मत्स्य)

यौवनमें द्वारकापुरीकृत लीला, सर्वदैत्यवध, पृथक पृथक् प्रकारका विवाह, द्वारकापुरीमें रह कर कृष्ण कर्त्तृक शत्रुघ्नादि द्वारा भूभारहरण-कारण और अष्टावक्रीय आख्यान आदि पञ्चम अंशमें विवृत हुए हैं।

कलिजातचरित, लयकी चतुर्विध अवस्था एवं केशिध्वजके साथ खाण्डिक्यका ब्रह्मज्ञान-समुद्देश इत्यादि षष्ठांशमें परिकीर्त्तित हुए हैं।

अनन्तर सूतशौनकादिकर्त्तृक यत्नपूर्वक जिज्ञासित हो कर विष्णुधर्मोत्तर नामक परम पवित्र नाना प्रकारको धर्मकथा, व्रत, नियम, यम, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, वेदान्त, ज्योतिष, वंशाख्यान, स्तोत्र, मन्त्र और सर्वलोकोपकारक नानाविध विद्या आदिका वर्णन इस अंशमें कीर्त्तित हुआ है।

मत्स्यमें विष्णु पुराणके जो सब लक्षण निर्दिष्ट हुए हैं प्रचलित विष्णुपुराणमें उनका अभाव नहीं है। यथार्थमें वराहकल्पप्रसङ्गके बाद ही (१।३।२५) यह पुराण आरम्भ हुआ है।

अनन्तर नारदपुराणमें जो विषयानुक्रम दिये गये हैं, वे भी यथायथ वर्णित देखे जाते हैं। किन्तु प्रधान गोलमाल श्लोक ले कर २३०००के मध्य अध्यापक विलसनने केवल ७००० श्लोक पाये हैं। उन्होंने विष्णुधर्मोत्तरको विष्णुपुराणका उत्तर भाग नहीं माना है। इसीसे बोध होता है, कि इतने कम श्लोक हुए हैं। किन्तु उद्धृत नारद पुराणीय वचन तथा अलवेरुणीकी उक्ति पढ़नेसे विष्णुधर्मोत्तरको विष्णुपुराणका उत्तरभाग माननेमें कोई आपत्ति नहीं रहती। आजकलके विष्णुपुराण और विष्णुधर्मोत्तरको एकत्र करनेसे १६०००से अधिक श्लोक नहीं मिलते। इस पर भी न्यूनाधिक ७००० श्लोकोंकी कमी रह जाती है। इतने श्लोक कहां गये, इसका निर्णय करना हम लोगोंकी क्षुद्र बुद्धिसे बाहर है। परन्तु आजकलका प्रचलित विष्णुधर्मोत्तर सम्पूर्ण ग्रन्थके जैसा प्रतीत नहीं होता। नारदपुराणमें जो लक्षण निर्दिष्ट हुए हैं, उसके भी सभी लक्षण आजकलके विष्णुधर्ममें नहीं मिलते। जिस विष्णुधर्मोत्तरका ज्योतिषांश ले कर ब्रह्मगुप्तने ब्रह्मसिद्धान्तकी रचना की है। नारदपुराणमें उसका परिचय रहने पर भी आजकलके विष्णुधर्मोत्तरमें उसके अधिकांशका अभाव है।

अध्यापक विलसन और उनके अनुवर्त्ती अक्षयकुमारदत्त महाशयका कहना है, कि इस पुराणमें बौद्ध और जैनसम्प्रदायकी निन्दा है। बौद्धधर्मका यदि उस समय प्रचार नहीं रहता, तो ऐसे विद्वेष भावका समावेश नहीं होता। बौद्ध लोग १२वीं शताब्दी तक भारतवर्षके किसी स्थानमें विद्यमान थे। इस हिसाबसे उसके कुछ पहले विष्णुपुराणका सङ्कलित होना सम्भव है।

आदि वैष्णपुराण धर्मसूत्रके रचनाकालमें प्रचलित था, यह पहले ही कहा जा चुका है। किन्तु आजकलके प्रचलित विष्णुपुराणमें जैन और बौद्धप्रसङ्ग रहनेके कारण उसे किसी हालतसे उस धर्मसूत्रयुगका ग्रन्थ नहीं मान सकते। पर हां, अध्यापक विलसनप्रमुख पण्डितोंने विष्णुपुराणका जो काल निरूपण किया है, उसे भी ठीक नहीं मान सकते। कारण, ६२८ ई०में प्रसिद्ध आर्यज्योतिर्विद् ब्रह्मगुप्तने विष्णुधर्मोत्तरके आधार पर ब्रह्मसिद्धान्तकी रचना की है। एतद्भिन्न भविष्यराजवंशवर्णनकी मगध गुप्त और तत्सामयिक राजाओंका प्रसङ्ग रहनेके कारण उसे ६ठीं शताब्दीके पहलेकी रचना नहीं कह सकते। फिर अध्यापक विलसनकी उक्तिके ऊपर निर्भर करके उसे १२वीं वा उसके कुछ पूर्ववर्त्तीकालकी रचना भी नहीं मान सकते। क्योंकि, बौद्ध और जैनोंका प्रभाव ईसाजन्मके बहुत पहलेसे ही लक्षित होता है। अतएव भविष्यराजवंश और ब्रह्मगुप्तकर्त्तृक विष्णुधर्मोत्तरका उल्लेख रहनेसे हम लोग, विष्णुपुराणने ६ठी शताब्दीके किसी समय वर्त्तमान आकार धारण किया होगा, ऐसा कह सकते हैं।

कन्याकृष्णमाहात्म्य, कलिस्वरूपाख्यान, कृष्णजन्माष्टमीव्रतकथा, जड़भरताख्यान, देवीस्तुति, महादेवस्तोत्र, लक्ष्मीस्तोत्र, विष्णुपूजन, विष्णुशतनामस्तोत्र, सिद्धलक्ष्मीस्तोत्र, सुमनःसोधन, सूर्यस्तोत्र, इत्यादि नामधेय छोटे छोटे ग्रन्थ विष्णुपुराणके अन्तर्गत माने जाते हैं। किन्तु ये सब ग्रन्थ आधुनिक कालके बने हुए हैं, ऐसा मालूम पड़ता है।

हेमाद्रि और स्मृतिरत्नावलीकारने वृहद्विष्णु-पुराणसे श्लोक उद्धृत किये हैं; किन्तु यह पुराण अभी नहीं मिलता।

विष्णुपुराणकी बहुसंख्यक टीका देखी जाती हैं जिनमेंसे चितसुखमुनि, जगन्नाथपाठक, नृसिंहभट्ट, रत्नगर्भ, विष्णुचित्ति, श्रीधरस्वामी और सूर्यकरमिश्र-की टीका उल्लेखयोग्य है।

४र्थ शैव वा वायु।

किसीका कहना है, कि शैव और वायुपुराण एक है। फिर कोई कहते हैं, कि ये दोनों भिन्न पुराण हैं। विष्णु, पद्म, मार्कण्डेय, कूर्म, वराह, लिङ्ग, ब्रह्म-वैवर्त्त, भागवत और स्कन्दपुराणमें 'शिव' तथा मत्स्य, नारद और देवीभागवतमें शैवकी जगह 'वायवीय'का एवं मुक्तलपुराणमें शिव और वायु दोनोंका उल्लेख है। वायुपुराणीय रेवामाहात्म्यमें लिखा है—

"पुराणं यन्मयोक्तं हि चतुर्थं वायुसंज्ञितम्।
चतुर्विंशतिसाहस्रं शिवमाहात्म्य संयुतम्॥
महिमानं शिवस्याह पूर्वे पाराशरः पुरा।
अपरार्द्धे तु रेवाया माहात्म्यमतुलं मुने॥
पुराणेषूत्तमं प्राहुः पुराणं वायुनोदितं।
यस्य श्रवणमात्रेण शिवलोकमवाप्नुयात्।
यथाशिवस्तथा शैवं पुराणं वायुनोदितम्।
शिवभक्तिसमायोगान्नामद्वयविभूषितम्॥"

चतुर्थ पुराणका नाम वायु है। इसमें २४००० श्लोक और शिवमाहात्म्य हैं। पराशरसुत कृष्णद्वैपायनने इसके पूर्वभागमें शिवकी महिमा और अपरार्द्धमें वा उत्तर भागमें अतुलनीय रेवाका माहात्म्य प्रकाशित किया था। सभी पुराणोंमें यह वायुप्रोक्त पुराण श्रेष्ठ माना जाता है। इसकी कथा सुननेसे ही शिवलोककी प्राप्ति होती है। शिव और वायुप्रोक्त शिवपुराण एक है। शिवभक्ति-समायोगके कारण दो नाम पड़े हैं। रेवामाहात्म्यके आरम्भमें भी ऐसा ही कहा गया है—

"चतुर्थं वायुना प्रोक्तं वायवीयमिति स्मृतं।
शिवभक्तिसमायोगात् शैवं तच्चापराख्यया॥
चतुर्विंशति संख्यातं सहस्राणि तु शौनक।
चतुर्भिः पर्वभिः प्रोक्तं॥"

रेवाखण्डके उक्त वचनसे जाना जाता है, कि वायु और शिवपुराण एक ही है। यह पूर्व और उत्तरभाग तथा चार पर्वोंमें विभक्त है। नारदपुराणमें वायुपुराण-का विषयानुक्रम इस प्रकार दिया गया है—

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुराणं वायवीयकम्।
यस्मिन् श्रुते लभेद्धाम रुद्रस्य परमात्मनः॥
चतुर्विंशति साहस्रं तत् पुराणं प्रकीर्त्तितम्।
श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान्यत्राह मारुतः॥
तद्वायवीयमुदितं भागद्वयसमाचितम्।
(पूर्वभागमें)
सर्गादिलक्षणं यत्र प्रोक्तं विप्र सविस्तरम्।
मन्वन्तरेषु वंशाश्च राज्ञां वै यत्र कीर्त्तिताः।
गयासुरस्य हननं विस्तरात् यत्र कीर्त्तितम्॥
मासानाञ्चैव माहात्म्यं माघस्योक्तं फलाधिकम्।
दानधर्मा राजधर्मा विस्तरेणोदितास्तथा॥
भूपातालककुब्व्योमचारिणां यत्र निर्णय।
व्रतादिनाञ्च पूर्वोऽयं विभाग समुदाहृतः॥
(तद्वदुत्तरभागमें)
उत्तरे तस्य भागे तु नर्मदातीर्थ वर्णनम्।
शिवस्य संहिताख्या वै विस्तरेण मुनीश्वर॥
यो देवः सर्वदेवानां दुर्विज्ञेय सनातनः।
स तु सर्वात्मना यस्यास्तीरे तिष्ठति सन्ततम्॥
इदं ब्रह्मा हरिरिदं साक्षाच्चेदं परोहरः।
इदं ब्रह्म निराकारं कैवल्यं नर्मदाजलं।
ध्रुवं लोकहितार्थाय शिवेन स्वशरीरतः।
शक्तिः कापि सरिद्रूपा रेवेयमवतारिता॥
ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रस्यानुचरा हि ते।
वसन्ति याम्यतीरे ये लोकं ते यान्ति वैष्णवम्॥
ओङ्कारेश्वरमारभ्य यावत्पश्चिम सागरम्।
सङ्गमाः पञ्च च त्रिंशन्नदीनां पापनाशनाः॥
दशैकमुत्तरे तीरे त्रयोविंशति दक्षिणे।
पञ्चत्रिंशत्तमः प्रोक्ता रेवासागरसङ्गमः॥
सङ्गमैः सहितान्येवं रेवातीरद्वयेऽपि च।
चतुःशतानि तीर्थानि प्रसिद्धानि च सन्ति हि॥
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्य मुनीश्वर।
सन्ति चान्यानि रेवायास्तीरयुग्मे पदे पदे॥
संहितेयं महापुण्या शिवस्य परमात्मनः।
नर्मदाचरितं यत्र वायुना परिकीर्त्तितम्॥"

हे विप्र! मैं तुमसे वायवीय पुराण कहता हूं, सुनो। इसके सुननेसे परमात्मा रुद्रका लोक प्राप्त होता है। इस पुराणमें चौबीस हजार श्लोक हैं। श्वेत-

कल्पप्रसङ्गमें वायुने यह पुराण कहा है। वायुपुराण दो भागोंमें विभक्त है। इसके पूर्व भागमें सर्गादि लक्षण, मन्वन्तर और राजाओंका वंश विशेषरूपसे कीर्त्तित हुआ है। पीछे गयासुरविनाश, सभी मासोंका माहात्म्य, माघ मासका फलाधिक्य, दानधर्म, राजधर्म और भूमि, पाताल, दिक् तथा आकाश चारियोंका निर्णय एवं व्रतादिका नियम वर्णित है।

हे मुनीश्वर! इसके उत्तरभागमें नर्मदातीर्थ-वर्णन, शिवसंहिताख्यान और जो देव सर्व देवकी दुर्विज्ञेय तथा सनातन हैं, वे सब प्रकारसे जिसके किनारे सर्वदा विराजमान हैं एवं जिस नर्मदाका जल साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव और मोक्षस्वरूप हैं, उसका वर्णन कीर्त्तित हुआ है। निश्चय ही लोकहितके लिये भगवान् शिवने अपने शरीरसे सरित्‌रूपमें किसी एक शक्तिस्वरूप इस रेवाको अवतारित किया है। जो इसके उत्तरी किनारे पर वास करते हैं, उन्हें विष्णु-लोक प्राप्त होता है। ओङ्कारेश्वरसे ले कर पश्चिम सागर पर्यन्त नदीके पैंतीस पापनाशन सङ्गम हैं। उत्तरी किनारे ग्यारह और दक्षिणी किनारे तेईस सङ्गम हैं। उनमेंसे यही रेवासागरसङ्गम पैंतीसवां सङ्गम कहलाता है। रेवाके दोनों किनारे सङ्गमसह प्रसिद्ध चार सौ तीर्थ विराजमान हैं। हे मुनीश्वर! रेवाके दोनों किनारे पद पद पर और भी साठ हजार तीर्थ विद्यमान हैं। महात्मा शिवकी यह महापुण्यसंहिता है। इसमें वायुकर्तृक नर्मदाचरित कीर्त्तित हुआ है।

नारदीयपुराणमें जो वायुपुराणकी अनुक्रमणिका देखी जाती है, उसके साथ रेवाखण्डवर्जित वायु वा शैवका विशेष पार्थक्य नहीं है। केवल इतना ही है, कि रेवामें गयामाहात्म्यका प्रसङ्ग देखनेमें नहीं आता है। फिर नारदपुराणका कहना है, कि पूर्व भाग ही गया-माहात्म्य है। किन्तु दुर्भाग्यक्रमसे हम स्वतन्त्र आकारमें ही वायुपुराणीय गयामाहात्म्य और रेवा वा नर्मदा-माहात्म्य पाते हैं। परन्तु एकत्र रेवामाहात्म्यवर्णित चतुष्पर्वात्मक वायुपुराणका संधान तक भी नहीं मिलता।

कलकत्तेको एशियाटिक सोसाइटीसे एक वायुपुराण नामका ग्रन्थ निकला है (१) किन्तु इसमें भी चार पर्व नहीं हैं अथवा पूर्वभागमें गया माहात्म्यकी वर्णना नहीं है। सम्पादकने अपनी इच्छासे इसके शेषमें गयामाहात्म्य जोड़ दिया है। अलावा इसके 'शिवसंहिता' वा रेवामाहात्म्यका कोई जिक्र ही नहीं है। बम्बईनगर और कलकत्तेमें शिवपुराण मुद्रित हुआ है। दुर्भाग्यक्रमसे हमने उसमें भी पूर्वोत्तर भाग और चार पर्व नहीं पाये। इस शिवपुराणकी वायुसंहितामें लिखा है—

"तत्र शैवं तुरीयं यच्छार्वं सर्वार्थसाधकम्।
ग्रन्थलक्षप्रमाणं तद्व्यस्तं द्वादशसंहितम् ॥ ४१ ॥
निर्मितं तच्छिवेनैव तत्र धर्मः प्रतिष्ठितः।
तदुक्तेनैव धर्मेण शैवास्त्रैवर्णिका नराः ॥
एकजन्मनि मुच्यन्ते प्रसादात् परमेष्ठिनः।
तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् शिवमेव समाश्रयेत् ॥
तमाश्रित्यैव देवानामपि मुक्तिर्न चान्यथा।
यदिदं शैवमाख्यातं पुराणं वेदसम्मितम् ॥
तस्य भेदान् समासेन ब्रुवतो मे निबोधत।
विद्येश्वरं तथा रौद्रं वैनायकमनुत्तमम् ॥
औमं मातृपुराणञ्च रुद्रैकादशकं तथा।
कैलासं शतरुद्रञ्च कोटिरुद्राख्यमेव च ॥
सहस्रकोटीरुद्राख्यं वायवीयं ततः परम्।
धर्मसंज्ञं पुराणञ्चेत्येवं द्वादशसंहिताः ॥ ४७ ॥
विद्येशं दशसाहस्रमुदितं ग्रन्थसंख्यया।
रौद्रं वैनायकञ्चौमं मातृकाख्यं ततः परम् ॥
प्रत्येकमष्टसाहस्रं त्रयोदश सहस्रकम्।
रुद्रैकादशकाख्यं यत् कैलासं षट्सहस्रकम् ॥
शतरुद्रं दशप्रोक्तं कोटीरुद्रं तथैव च।
सहस्रकोटीरुद्राख्यं दशसाहस्रकं तथा ॥
यदेतद्वायुना प्रोक्तं चतुःसाहस्रमीरितम्।
तथा पञ्च सहस्रन्तु यदेतद्धर्मनामकम्।
तदेवं लक्षमुद्दिष्टं शैवं शाखाविभेदतः।" ॥५२॥
(वायुस० १ अ०)

पुराणोंमें शैवपुराण चौथा है। यह शार्व वा शिवमहिमासूचक तथा सर्वार्थसाधक है। इसकी ग्रन्थसंख्या लाख है और यह बारह संहिताओंमें विभक्त है। शैवधर्म प्रकाशार्थ शिव द्वारा यह रचा गया है। तदुक्त धर्मप्रभावसे त्रैवर्णिक शैवगण एक

(१) ब्रह्माण्डपुराणके विचारप्रसंगमें इसकी विस्तृत समालोचना की गई है।

परशु, ... लोक, हृद्रथ, सुक्रतु, निषधाधिप

हो जन्ममें मुक्ति लाभ कर सकते हैं। वेदसम्मित शैव नामका जो पुराण है, वह विद्येश्वर, रौद्र, विनायक, औम, मातृ, एकादश-रुद्र, कैलास, शतरुद्र, कोटिरुद्र, सहस्र कोटिरुद्र, वायवीय और धर्म इन बारह संहिताओंमें विभक्त हैं। इनके मध्य—

विद्येश्वरसंहिता	ग्रन्थसंख्या	१००००
रौद्रसंहिता	,,	८०००
विनायकसंहिता	,,	८०००
औमसंहिता	,,	८०००
मातृसंहिता	,,	८०००
रुद्रैकादशसंहिता	,,	१३०००
कैलाससंहिता	,,	६०००
शतरुद्रसंहिता	,,	१००००
कोटीरुद्रसंहिता	,,	१००००
सहस्रकोटीरुद्रसंहिता	,,	१००००
वायुप्रोक्तसंहिता	,,	४०००
धर्मसंहिता	,,	५०००
	मोट ग्रन्थसंख्या	१०००००

ऊपर जो १२ बारह संहिताओंका उल्लेख किया गया, वह बारह संहिताओंका शिवपुराण अभी प्रचलित नहीं है। रौद्रसंहिता, विनायकसंहिता, मातृसंहिता और चार प्रकारकी रुद्रसंहिता ये सब संहिताएं मुद्रित शिवपुराणमें नहीं है। बम्बईसे जो शिवपुराण मुद्रित हुआ है, उसमें विद्येश्वर, औम वा ज्ञान, कैलास, वायवीय और धर्म आदि संहिताएं देखी जाती है। अलावा इसके सनत्कुमार नामक एक और अतिरिक्त संहिता है। नारदपुराणमें जो उक्त रुद्रसंहिताएं हैं, मालूम होता है, कि वे ही शिवसंहिता नामसे प्रसिद्ध हुई हैं। नर्मदामाहात्म्य, जहां तक सम्भव है, उक्त किसी संहिताके अन्तर्गत होगा। माघमाहात्म्य और सोममाहात्म्य स्वतन्त्र पाया जाता है, किसी शिव पुराणके मध्य नहीं है।

प्रचलित शिवपुराणका विषयानुक्रम इस प्रकार है,—

ज्ञानसंहिता।

१ सूतके प्रति ऋषियोंका प्रश्न, ब्रह्मनारद संवादमें ज्योतिर्लिङ्ग प्रादुर्भावकथन, २ ओङ्कार-प्रादुर्भाव, शिवका शब्दमयत्व, ब्रह्मा और विष्णुके साथ शिवकी उक्ति प्रयुक्ति, ४ शिवप्रसाद, विष्णुकृत शिवका स्तव, ब्रह्मा और विष्णुके प्रति शिवका वरदान, ५ ब्रह्मा और विष्णुके हंसवराहरूप धारणका कारणनिर्देश, ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, ६ सृष्टिनिरूपणके लिये ऋषियोंकी सृष्टि, ७ संक्षेपमें दाक्षायणीका देहत्यागकथन, शिवपूजा विधान, ८ पावमानमन्त्रादि द्वारा शिवपूजाविधि, ९ तारक उपाख्यानमें ब्रह्माके समीप देवताओंका गमन, १० ब्रह्मा और देवताओंका संवाद, शिवकी तपश्चर्या, ११ मदनभस्म और पार्वतीका प्रत्यावर्त्तन, १२ पार्वती तपस्या, १३ पार्वतीकी कठोर तपस्यासे उत्सन्नदेवता और ऋषियोंका शिवके समीप गमन एवं शिवका ब्रह्मचारी-वेशमें पार्वतीके समीप आगमन और पार्वतीके प्रति शिवकी उक्ति, १४ हरपार्वतीसंवाद, १५ शिवविवाह-का उद्योग, १६ विवाह-व्यापारमें वर तथा उसके अनु-यात्रियोंका हिमालय नगरमें गमन, १७ शिवका विरूप देख कर मेनकाका खेद और पार्वतीके प्रति ज्ञानउप-देश, १८ पार्वतीका परिणय, कार्त्तिकका जन्म, उनका देवसेनापतित्व, तारकवध, २० त्रिपुरनाशके लिये विष्णु-का उपायनिर्द्धारण, २१ विष्णुसृष्ट मुण्डितदैत्यका मोहउत्पादन, २२ विष्णुप्रभृति देवताओंका शिवस्तव, २३ विश्वकर्मा विनिर्मित देवमय रथ पर आरोहण करके शिवका त्रिपुरनाश, देवताओंका शिव-स्तव और देवताओंकी वरप्राप्ति, २५ शिवकर्त्तृक लिङ्गार्चन-विधिकथन, २६ देवताओंके प्रति ब्रह्माका शिवपूजा-विधिकथन, २७ आह्निक कर्त्तव्य शिवपूजाविधि, २८ षोड़शोपचारसे शङ्करपूजाकथन, २९ धान्यादि द्वारा शिवपूजाका फलविशेषकथन, ३० जानकीके शापसे शिवपूजामें केतकीकुसुमव्यवहार निषिद्ध और राम-चरित्रवर्णन, ३१ ब्राह्मण और चम्पककुसुमके प्रति नारदका शाप, ३२ गणेशचरित्र, ३३ गणेशकर्त्तृक शिव-गणकी पराजय और शिवकर्त्तृक गणेशका शिरश्छेदन, ३४ गणेशकी शिरश्छेदवार्त्ता सुन कर देवीका क्रोध, शिवकर्त्तृक गणेशका जीवनदान और गाणपत्यप्रदान, ३५ 'मैं पहले विवाह करूंगा' यह ले कर गणेश और कार्त्तिकका विवाद तथा गणेशकी जय, ३६ गणेशका

विवाह सुन कर रागान्वित कार्त्तिकका क्रौञ्चपर्वत पर गमन, ३७ रुद्राक्षधारण माहात्म्यवर्णन, ३८ प्रधान प्रधान ज्योतिर्लिङ्ग और उपलिङ्गका नाम तथा स्थानका माहात्म्यकीर्त्तन, ३९ नन्दिकेशतीर्थ माहात्म्य-प्रसङ्गमें गोवत्ससंवाद, ४० नन्दिकेश तीर्थमाहात्म्य, ४१ उत्तमलिङ्गकथाप्रस्तावमें अत्रीश्वरमाहात्म्यवर्णन, ४२ ज्योतिर्लिङ्ग भिन्न अन्यान्य लिङ्गोंका इतिहासवर्णन एवं शिवलिङ्गका माहात्म्यवर्णन, ४३ अन्धकेश्वरवर्णना-प्रसङ्गमें अन्धकमर्दनादिकथन, ४४ शिवरात्रिका व्रत नष्ट हो जानेसे दधीचि तनयका दोषकथन, ४५ सोमेश्वरकथा और ज्योतिर्लिङ्गकी उत्पत्ति, ४६ महाकाल और ओङ्कारेश्वरका प्रादुर्भाव, ४७ केदारेश्वरोपाख्यान, ४८ भीमशङ्कर प्रादुर्भावकथा, ४९ विश्वेश्वरमाहात्म्य, पञ्चक्रोश्यादिकथा, ५० गौरीके प्रति शिवका काशीक्षेत्र-माहात्म्यकीर्त्तन, ५१ काशीमें मरणमात्र मोक्षप्राप्तिका विवरण, ५२ गौतमतपस्या, गौतमक्षेत्रमाहात्म्यकथन, ५३ गौतमपोड़नार्थ विप्रोंकी गणेशपूजा, गौतमचरित, ५४ गौतमप्रशंसा, गङ्गाश्रुति, कुशावर्त्तस्तम्भ, त्र्यम्बक-माहात्म्य, ५५ रावणतपस्या, वैद्यनाथकी उत्पत्ति, ५६ नागेशमाहात्म्य, ५७ रामेश्वरमाहात्म्य, ५८ घुश्मेश्वर शिवमाहात्म्य, ५९ वराहरूपमें विष्णुका हिरण्याक्षवध और प्रह्लादचरित्र, ६० प्रह्लादचरितमें प्रह्लाद और हिरण्यकशिपुसंवाद, ६१ हिरण्यकशिपु वध, नृसिंह-चरित, ६२ नलजन्मान्तरकथा, ६३ पाण्डवगणकर्त्तृक दुर्वासाका सन्तोषविधान, ६४ व्यासकी आज्ञासे अर्जुन-की इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या और इन्द्रसमागम, ६५ शिवार्जुनकर्त्तृक शूकररूपी मूक-दैत्यवध, ६६ बाण-शिवार्थ अर्जुनके साथ निज भृत्यका विवाद सुन कर शिवका भिल्लरूपमें वहां गमन, ६७ भिल्लरूपी शिवके साथ अर्जुनका संग्राम, अर्जुनके प्रति शिवका वरदान, ६८ पार्थिव-शिवपूजन-विधि, ६९ बिलेश्वरमाहात्म्य, ७० शिव कर्त्तृक विष्णुको सुदर्शनचक्रदान, ७१ शिवका सहस्रनाम, ७२ विष्णुके प्रति शिवका शिवरात्रि-व्रतकथन, ७३ शिवरात्रिव्रत उद्यापनविधि, ७४ व्याधकर्त्तृक शिवरात्रिव्रतकी प्रशंसा, ७५ शिवरात्रि-व्रतफल सुन कर महापापी वेदनिधि विप्रकी मुक्ति, ७६ चार प्रकारकी मुक्ति और ब्रह्मलक्षणकथन, ७७ शिव-कर्त्तृक विष्णु आदि देवताओंका उत्पत्तिकथन, ७८ शिवभक्ततत्त्वानुसन्धित्सु साधकवृन्दका साधनेकलभ्यत्व-कथन, ज्ञानसंहितासमाप्ति।

विद्येश्वरसंहिता*।

१ साध्यसाधन-निरूपण, २ मननादिस्वरूपकथन, ३ श्रवणादि असमर्थपक्षमें लिङ्गपूजनरूपसाधनकथन, ४ ब्रह्मा और विष्णुको युद्धमें प्रवृत्त देख कर देवताओंका शिवके समीप आगमन, तेजोमय शिवलिङ्गका प्रादुर्भाव, उसे देख कर ब्रह्मा और विष्णुको विवादशान्ति, ६ शिवसृष्ट भैरवकर्त्तृक ब्रह्माका शिरश्छेद, ब्रह्माके प्रति शिवका अनुग्रह, ७ ब्रह्मा और विष्णुकी शिवपूजा, उनके प्रति शिवका लिङ्गपूजाप्रकरणकथन, ८ ब्रह्मा और विष्णुके प्रति शिवका सृष्ट्यादि स्वीयकृत्यपञ्चक प्रणवादिस्वरूपकथन, ९ लिङ्गनिर्माण, तत्प्रतिष्ठाविधि और मूर्त्तिपूजाप्रकारकथन, १० शिवक्षेत्रतीर्थसेवनादि माहात्म्य, ११ विप्रगणका सदाचार और नित्यकर्त्तव्य-विषयकथन, १२ पञ्चमहायज्ञ-कथन, वासरविशेषमें देवपूजाका कर्त्तव्यताविधान, १३ देशविशेषमें पूजा-फल वर्णन, १४ पार्थिवप्रतिमापूजाविधि, १५ प्रणव-षड्लिङ्गमाहात्म्य और शिवभक्तका पूजाकथन, बन्धन और मोक्षका स्वरूपकथन, लिङ्गक्रमकथन, विद्येश्वर-संहितासमाप्ति।

कैलास-संहिता।

१ वाराणसीमें मुनियोंके प्रति सूतका प्रणवार्थ कथनारम्भ, २ कैलासमें शिवके प्रति देवीको प्रणवार्थादि जिज्ञासा, ३ प्रणवोद्धार और मन्त्रदोषादिकथन, प्रणवार्थ प्रकाशक यन्त्रलिखनपरिपाटी, ५ प्रणवोद्धार, विविध पूजन और न्यासान्तरादिविधि, ६ शङ्खपूजा और गुर्वादि-पूजा, तदनन्तर सगणशिवपूजाविधि, ७ गुहके प्रति वामदेवके प्रणवार्थ प्रश्नजिज्ञासा, ८ वामदेव मुनिके प्रति गुहका प्रणवोपासनादिकीर्त्तन, ९ गुहके उपदिष्ट मार्गसे प्रणवोपासना और सन्न्यासविधि, १० षड्-

---

* 'विघ्नेश', 'विघ्नेश्वर' ऐसा नामान्तर भी लिया जाता है।

विधार्थ परिज्ञान और विस्तृतप्रणवार्थ कालान्तरवादि विवृति, ११ योगपट्टादिकथन, १२ यतियोंका अन्त्येष्टि-कर्म गतिकथन, कैलाससंहितासमाप्ति।

सनत्कुमारसंहिता।

१ नैमिषारण्यमें सनत्कुमारका आगमन, व्यासादि मुनिका समागम, ऋषियोंका शिवपूजाविषयक प्रश्न, २ पृथिव्यादिका संस्थानक्रमादिकथन, ३ प्रकृतिसे महदादिक्रममें जगत्सृष्टि, सप्तद्वीपवर्णन, ४ अधोलोक-वर्णन, नरकादि विवृत्ति, ५ ऊर्द्धलोकयोगमाहात्म्यवर्णन, ६ रुद्रमाहात्म्य, विस्तृतरूपमें पञ्चमूर्त्तिवर्णन, ७ रुद्रकीर्त्तनफल, रुद्रका स्तव, ८ सनत्कुमार-चरिता-ख्यानमें उनका परम सिद्धिप्राप्तिकथन, ९ सनत्कुमारका शिवसर्वज्ञादिकथन, १० ब्रह्मलोक, विष्णुलोक और रुद्रलोक निरूपण, ११ रुद्रध्यान-सप्तककथन, १२ सर्व-श्रेष्ठ रुद्रध्यानकथन, १३ विभीषणमहेश्वरसंवाद, १४ लिङ्गपूजा और शिवनामककीर्त्तनफलकथन, १५ स्थान-माहात्म्यकथन, १६ तीर्थादिकथन, १७ पूर्वाध्यायमें कथित तीर्थमाहात्म्य, १८ व्यासके प्रश्न पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इन तीनोंमें कौन प्रधान हैं, इस विषयमें सनत्कुमारका उत्तरकथन, शिवलिङ्गका माहात्म्यादि-कथन, १९ लिङ्गस्थापनका फल, २० शिवसन्तोषकर पूजाविधि, २१ शिवदेय पुष्पादि निरूपण, २२ विस्तृत-रूपमें सप्रसङ्ग अनशनविधिकथन, २३ संक्षेपमें शिव-प्रीतिकर धर्मका उपदेश, २४ लक्षणाष्टमीव्रत, २५ अन्न-दानमाहात्म्य, दानान्तरप्रशंसा, २६ विविध धर्मकार्य-का उपदेश, २७ विस्तृतरूपमें नियमफलकीर्त्तन, २८ पार्वतीके प्रश्नानुसार शिवका चन्द्रमण्डलधारण और विषभोजन-कारणकथन, २९ भस्मप्रशंसा और भस्म-धारणफल, ३० निज पूजाफलकथन, शिवकर्तृक निज श्मशानवासहेतुनिर्देश, ३१ शिवविभूतिकथन, शिव-ध्यानफलकीर्त्तन, ३२ प्रणवोपासनाका फल और देवता-कीर्त्तन, ३३ सप्रपञ्चध्यानादिक्रमकथन, ३४ दुर्वासाके प्रति शिवका ध्यानयोग-उपदेश, ३५ फिरसे ध्यानवर्णन, अशक्तके पक्षमें काशीवासविधि, ३६ वायुनाड़िकादि-निरूपण, ३७ ध्यानविधि प्रशंसा, ३८ प्राणायामलक्षण और प्रणव उपासनाकथन, ३९ शरीरके सर्वदेवमयत्व-कीर्त्तन, ४० सनत्कुमारकर्तृक नाड़ीविस्तारकथन, ४१ हरपार्वतीसंवादमें काशीमाहात्म्य, ४२ शिवानुग्रहसे हरिकेशगुह्यकका दण्डपाणित्व-कीर्त्तन, ४३ माण्डूक्या-ख्यान, पुत्रसह प्रतापमुकुट राजाका ओङ्कारेश्वर दर्शनके लिये काशीपुर आगमन और ओंकार-स्तव, ४४ सविस्तर ओंकारेश्वरकी वर्णना, ४५ ओंकारेशस्थानवासी पुष्प-वाहनका इतिहासकीर्त्तन, ४६ नन्दिकी दुष्कर तपस्या, ४७ नन्दिके प्रति शिवका वरदान, ४८ महादेवका स्मरण कर देवताओंका उनके समीप आगमन, ४९ शिवकी आज्ञासे देवगण कर्तृक नन्दिका गाणपत्यमें अभिषेक, स्तवकथन, ५० नन्दिका विवाह, ५१ नील-कण्ठमाहात्म्यकीर्त्तन, ५२ त्रिपुरवृत्त, देवताओंकी स्तुतिसे महेश्वरकी तुष्टि, ५३ त्रिपुरनाशोद्योग, नारदकी मन्त्रणासे मयादिका युद्धोद्योग, ५४ त्रिपुरदाह, ५५ पार्वतीके प्रश्नानुसार शिवका विप्रमाहात्म्यवर्णन, ५६ सनत्कुमारका पाशुपतयोगकथन, ५७ देहाश्रित नाड़ी-विवरण, ५८ विमलज्ञानसे ईशपदप्राप्ति प्रकार, ५९ शिवस्थितिलोककथन, सनत्कुमारसंहिता-समाप्ति।

वायवीयसंहिता।

पूर्वभागमें—१ महादेवके प्रसादसे कृष्णका पुत्रलाभ, वेदादिकी व्यवस्था, पुराणादिकी प्रशंसा, २ ऋषियोंका ब्रह्माके निकट शैवतत्त्व सुन कर ब्रह्मोक्तयज्ञकरणार्थ नैमिषारण्यमें गमन, ३ नैमिषारण्यमें जा कर वायुके प्रति कुशल प्रश्नजिज्ञासा, ४ पाशुपततत्त्व, मायास्वरूपवर्णन, ५ वायुकर्तृक सविस्तर शम्भुका कालरूपत्वप्रकटन, ६ कालमानकथन, ७ संक्षेपमें ईशकर्तृक शक्त्यादि सृष्टि-कथन, पुरुषाधिष्ठित प्रकृतिसे सृष्टिकथन, ८ ब्रह्माका वराहरूपमें प्रादुर्भाव और जगत्का व्यवस्थापन, १० शिवानुग्रहसे ब्रह्माकी जगत्सृष्टि, ११ ब्रह्मा, विष्णु और शिव एक दूसरेका वशवर्त्तित्व, ब्रह्माकी रुद्रोत्पत्ति, १२ रुद्रसृष्टिके बाद ब्रह्माके प्रति सृष्टिका आदेश, १३ प्रजावृद्धिके लिये ब्रह्माके स्तवसे अर्द्धनारीश्वरप्रसाद-लाभ, १४ ब्रह्माके प्रार्थनानुसार रुद्रकर्तृक शक्ति-रूपिणी स्त्रियोंकी सृष्टि, १५ शिवके वरसे ब्रह्माकर्तृक स्वायम्भुवादि द्वारा मैथुनसृष्टि, १६ दक्षयज्ञवृत्तान्तमें पितरोंका दक्षके प्रति अभिशाप, सतीदेहत्याग, १७ दक्ष-

यज्ञध्वंसके लिये शिवके वीरभद्र और भद्रकालीकी सृष्टि, १८ दक्षयज्ञनाश, १९ शिवके प्रसादसे वीरभद्रकर्त्तृक विष्णवादिकी पराजय, २० ब्रह्मादिस्तुत वीरभद्रकर्त्तृक देवतादिका शिवके समीप आनयन, दक्षके छागमुण्डका विषयकथन, २१ शुम्भनिशुम्भवधके लिये गौरीका कौशकी रूपमें आविर्भाव, २२ व्याघ्रके प्रति पार्वतीका अनुग्रह, २३ देवीका शिवके समीप गमन और व्याघ्रका सोमनन्दी नामकरण, २४ देवीके समीप शिवका अग्निषोमात्मक विश्वप्रपञ्चकथन, २५ त्रिविध शब्दार्थकथन, जगतमें तद्रूपत्वकीर्त्तन, २६ महर्षियोंका शिवचरित्रानुवाद, २७ ऋषिके प्रश्नानुसार वायुका सविस्तर शिवतत्त्व और मुक्तिकारण-ज्ञानोपदेश, २८ कर्मादि द्वारा पाशुपतयोगमें मुक्तिलाभकथन, २९ पाशुपतव्रतकथन, भस्ममाहात्म्यवर्णन, ३० शिवके प्रसादसे ऋषिकुमारको क्षीरसमुद्रप्राप्ति, वायवीय-संहिता पूर्वभाग-समाप्ति।

उत्तरभागमें—१ श्वेतकल्पमें वायुकथित शिवमाहात्म्यप्रसङ्गमें प्रयागमें मुनियोंके प्रश्न पर सूतकी उक्ति, २ श्रीकृष्णके प्रति उपमन्युका पाशुपतज्ञानकथन, ३ सुरेन्द्रादिपरीक्षा, ४ ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओंका शिवरूपत्वकथन, ५ उमामहेश्वर स्त्रीपुंसात्मक जगत् प्रपञ्चत्वकथन, ६ परापरादि भेदसे द्विविध ब्रह्मरूपका वास्तविकत्वकथन, ७ प्रणवका रूपकथन, ८ मनुष्यादिभक्तसाधन द्वारा शिवप्राप्तिक्षमत्वकथन, ९ ब्रह्मादि देवदेवोंके प्रति शङ्करका वेदसारज्ञानका उपदेश, १० द्वादशाधिकशत शिवावतारकल्पयोगेश्वरकथन, ११ देवीके प्रति शिवका सर्ववर्णोचित शिवधर्मकथन, १२ शिवपञ्चाक्षरमन्त्रस्वरूप माहात्म्यकीर्त्तन, १३ शिवमन्त्रग्रहणादिकथा, १४ दीक्षाप्रयोग, १५ षड्ध्वशुद्धिशिवपूजाविधि, दहनपावनादिकथन, १६ शैवोंको मन्त्रसाधनविधि, १७ अभिषेकादि संस्कारकथन, १८ शैव लोगोंका आह्निक कर्म, १९ अन्तर्याग और बहिर्यागकथनक्रम, २० नानाविध विधानसे हरपार्वतीको पूजाविधि, २१ होमकुण्डमानादिनिर्णय, २२ मासादि विशेषमें नैमित्तिक शिवपूजाकथन, २३ काम्य शिवपूजाकथन, २४ शिवस्तोत्र, २५ प्रकारान्तरमें शिवपूजा, २६ शिवपूजाके फलसे ब्रह्मादिको स्व स्व पदप्राप्ति, २७ ब्रह्मा और विष्णुको लिङ्गसाक्षात्कारकथा, २८ शिवप्रतिष्ठासम्प्रोक्षणविधि, २९ योग उपदेश, ३० मुनियोंके समीप शिवचरित्रवर्णन और वायुका अन्तर्ध्यान, नन्दिसमागम, नन्दिका शिवकथावर्णन, वायवीय-संहितोत्तर-भागसमाप्ति।

धर्मसंहिता।

१ शिवमाहात्म्यनिरूपण, २ श्रीकृष्णको शिवमन्त्रदीक्षा, ३ त्रिपुरदाहवर्णन, ४ अन्धकमर्दन, ५ शुक्रका शिवजठरमें गमन, शुक्रके प्रति देवीका अनुग्रह, अन्धकसिद्धि, ६ रुरुदैत्यवध, ७ गौरीके वेशमें अप्सराओंका महादेवके साथ विहार, ऊषा-अनिरुद्ध सङ्गम, बाणयुद्धवर्णन, ८ कामतत्त्वादि निरूपण, ९ काम-प्रकार, १० कालीतपस्या, आडिदैत्यका वृत्तान्त, वीरका नन्दिके रूपमें जन्म लेनेका कारण, शिवका कामचार, लिङ्गोद्भवकथन, ११ कामविक्रम-कथनमें शक्रादिका कामविक्रमत्वकथन, १२ महात्मगणको कामक्षोभकथा, १३ विश्वामित्र आदिका कामवश्यताकीर्त्तन, १४ श्रीरामका कामाधीनत्वप्रस्ताव, १५ नित्यनैमित्तिक शिवपूजाविधि, १६ शङ्करक्रियायोग और उसका फलकथन, १७ शिवभक्तपूजादिफलकथन, १८ विविध पापकथन, १९ पापफलकथन, २० धर्मप्रसङ्ग, २१ अन्नदानविधि, २२ जलदान, तप और पुराणपाठका माहात्म्यकथन, २३ धर्मश्रवणमाहात्म्य, २४ महादानकथन, धर्मप्रसङ्ग, २५ सुवर्णादि पृथ्वीदानकथा, २६ कान्तारहस्तिदानकथा, २७ एक दिनको आराधनासे शङ्करकी प्रसादकथा, २८ शिवके सहस्र नाम, २९ धर्मोपदेश और तुलापुरुषदानविधि, ३० परशुरामको तुलापुरुषदानकथा, ३१ ब्रह्माण्डप्रसङ्ग, ३२ नरकादि कीर्त्तन, ३३ द्वीपादिकथन, ३४ भारतवर्षादिको वर्णना, ३५ ग्रहादिकथा, मृत्युञ्जयकी उद्धारकथा, ३६ मन्त्रराजप्रभावकीर्त्तन, ३७ पञ्चब्रह्माख्यान, ३८ पञ्चब्रह्मविधान, ३९ तत्पुरुष-विधान, ४० अघोरकल्प, वामदेवकल्प, सद्योजातकल्पादिकथन, ४१ ब्राह्मण कार्य, संग्राममाहात्म्य, युद्धमें मरे हुए व्यक्तिको सद्गतिलाभकथा ४२ संसारकथा, ४३ स्त्रीस्वभावादिकथन, ४४ अरुन्धतीदेवगणसंवाद, ४५ विवाहकथा, ४६ मृत्युचिह्न, आयु प्रमाणादिकथन, ४७ कालजयादि

कथा, ४८ छायापुरुषलक्षण, ४९ धार्मिक-गतिकथा, लिङ्गपूजाका कारणनिर्देश, ५० विष्णुकृत्तक शिवका स्तव, लिङ्गपूजाफलकथन, ५१ सृष्टिकथन, ५२ प्रजापतिकृत सर्गकथन, ५३ पृथुपुत्रादिकथा, ५४ देवदानव गन्धर्वोंका विस्तृतरूपसे सृष्टिकथन, ५५ आधिपत्यकल्पना, ५६ ध्रुववंशकथन, ५७ पृथुचरित, ५८ मन्वन्तरादिकीर्त्तन, ५९ संज्ञा और छायादिकी कथा, ६० सूर्यवंशवर्णना, ६१ सूर्यवंशवर्णन प्रसङ्गमें सत्यव्रत और सगरादिकी कथा, ६२ पितृकल्पश्राद्धादि कथन, ६३ पितृसप्तकवर्णन, मुनियोंका जात्यन्तरप्राप्तिकथन, ६४ साधुसङ्गसे उनका परमगतिलाभ, ६५ व्यासका पूजाप्रकारकथन, धर्मसंहिता समाप्ति।

अब प्रश्न यह होता है, कि उक्त विषयीभूत शिवपुराणको हम लोग महापुराण मान सकते हैं वा नहीं?

मत्स्यपुराणमें लिखा है—

"श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान् वायुरिहाब्रवीत्।
यत्र तद्वायवीयं स्याद्रुद्रमाहात्म्य संयुक्तम्।
चतुर्विंशत् सहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते॥"

(५३।१८)

जिसमें श्वेतकल्प-प्रसङ्गमें वायुने धर्मकथा और रुद्रमाहात्म्यको वर्णना को है, वही वायु है। इसकी श्लोकसंख्या २४००० है।

शिवपुराणमें जिस वायुसंहिताका नाम पहले कहा जा चुका है उस वायुसंहितामें वायुकर्त्तृक श्वेतकल्पप्रसङ्ग और रुद्रमाहात्म्य वर्णित है। एशियाटिक-सोसाइटीसे मुद्रित जाली वायुपुराणमें श्वेतकल्पप्रसङ्गमें वायुकर्त्तृक कोई भी विषय नहीं है और न वह रेवामाहात्म्य, नारदपुराण आदिके लक्षणोंसे ही मिलता है। इसीसे हम लोग उसे वायुपुराण कह कर नहीं मानते। किन्तु इस समय वायुसंहिताके ४थे अध्यायके पाठसे मालूम पड़ता है, कि श्वेतकल्पप्रसङ्गमें ही यह वायवीय रुद्रमाहात्म्य वर्णित हुआ है (१)। इस वायवीयसंहिताके उत्तरभाग १म अध्यायमें साफ साफ लिखा है:—

"वक्ष्यामि परमं पुण्यं पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।
शिवज्ञानार्णवं साक्षाद्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥
शब्दार्थन्यायसंयुक्तैरागमार्थैर्विभूषितम्।
श्वेतकल्पप्रसङ्गेन वायुना कथितं पुरा (१।२४)

इस वायुसंहितामें शिव और वायुपुराणके प्राचीन लक्षण हैं। किन्तु इसकी श्लोकसंख्या चार हजारसे अधिक नहीं होगी। जो शिवपुराण मुद्रित हुआ है उसकी श्लोकसंख्या प्रायः १८००० है। किन्तु इसके मध्य भी वायुसंहिता-वर्णित अनेक संहिताएं हैं। जहां तक मालूम होता है, कि सभी संहिताओंको एकत्र करनेसे उनकी संख्या २४ हजारसे अधिक हो सकती है। परन्तु इस संहितायुक्त शिवपुराणके जो लाख श्लोकोंकी कथा लिखी गई है, वह आड़म्बरसूचक परवर्त्तीकालकी योजनाके जैसा प्रतीत होता है। रेवामाहात्म्यमें जिस पूर्वोत्तर भाग और षट्पर्वात्मक शिवपुराणका उल्लेख है, वही सम्भवतः २४००० ग्रन्थात्मक शिवपुराण है। रेवामाहात्म्य उस षट्पर्व वा षट्संहिताके मध्य किसी पर्वके अन्तर्गत है। (१) आदि शिव वा वायुपुराण एक है वा नहीं ऐसा तर्कवितर्क जब चल रहा था, मालूम होता है, उसी समय यह रेवामाहात्म्य सङ्कलित हुआ है। (२) किन्तु इस समय गयामाहात्म्ययुक्त वा द्वादशसंहितात्मकके जैसा शिवपुराण नहीं माना जाता है।

---

(१) एकोनविंशतिकल्पो विज्ञेयः श्वेतलोहितः।
तस्मिन्कल्पे चतुर्वक्त्रः स्रष्टुकामोऽतपत् तपः
श्वेती नाम मुनिर्भूत्वा दिव्यां वाचमुदीरयन्।
दर्शनं प्रददौ तस्मै देवदेवो महेश्वरः॥" (४।५)

(१) एक शिवपुराणीय उत्तरखण्ड पाया गया है। इसके मतसे—

"यत्र पूर्वोत्तरे खण्डे शिवस्य चरितं बहु।
शैवमेतत् पुराणं हि पुराणज्ञो वदन्ति हि॥"

किन्तु इसे हम लोग शैव उपपुराणके जैसा समझते हैं। इसका विवरण पीछे दिया गया है।

(२) इस रेवा वा नर्मदामाहात्म्यमें विषयानुक्रम इस प्रकार देखा जाता है—

पुराणोत्पत्ति, युधिष्ठिरमार्कण्डेयसंवादमें नर्मदामाहात्म्य, कल्पसमुद्भव, मायूरकल्प, कूर्मकल्प, वककल्प, मात्स्यकल्प और वाराहकल्पसमुद्भव, कपिलापूर्व और विशल्यासम्भव, विशल्यासङ्गम, करमर्दासङ्गम, नीलगङ्गासङ्गम प्रभृति माहात्म्य, मधकव्रत, त्रिपुरविध्वंसमें

गयामाहात्म्य किस प्रकार शैव वायुपुराणमें संयुक्त हुआ, यह जानना कठिन है। वैष्णवोंने विशेष उद्देश्य साधनके लिये इस माहात्म्यकी रचना की है। यह उद्देश्य और कुछ भी नहीं है, सिवा इसके कि गयामें बौद्धप्रभाव-ध्वंस होनेके बाद जब विष्णुप्रभाव-का प्रसार हुआ, तब बौद्धरूपी गयासुरके ऊपर विष्णु-

---

ज्वालेश्वरतीर्थ, रेवाकावेरीसङ्गम, वाराहीसङ्गम, चण्ड-वेगासङ्गम, एरण्डीसङ्गम, पितृतीर्थ, ओङ्कारोत्पत्ति, कोटीतीर्थ, काकह्रद, जम्बुकेश्वरतीर्थ, सारस्वततीर्थ और कपिलासङ्गममाहात्म्य, नरकवर्णन, शरीरव्यवस्था, अमरेश्वरतीर्थप्रसङ्गमें गोदानमहिमा, अशोकवनिका-तीर्थ, मतङ्गतीर्थ, मृगवनतीर्थ, मनोरथतीर्थ, अङ्गार-गर्त्तासङ्गम, कृष्णारेवासङ्गम, विल्वाम्रक, सुवर्णद्वीप, हिरण्यगर्भासङ्गम, अशोकेश्वरतीर्थ, वागुरेवासङ्गम, सहस्रावर्त्तकतीर्थ, सौगन्धिकवन, सरस्वती, ब्रह्मोद, शाङ्कर, सोम, सहस्रयज्ञ, कपालमोचन, अग्नि, आदती-श्वर, वाराह, देवपथ, शुक्ल, दीप्तिकेश्वर, विष्णु, योधन-पुरमें मारुतेश्वर, रोहिणी, योगेश्वर, दारु, ब्रह्मावर्त्त, पत्ते-श्वर, आदित्य, मेघनाद, नर्मदेश्वर, कपिला, करञ्जेश्वर, कुलेश्वर, पिप्पलाद, विमलेश्वर, पुष्करिणीसङ्गममाहात्म्य, शूलभेदप्रशंसा, अन्धकवरदान, अन्धकयुद्धमें शची-ग्रहण, गौर्वाणस्नान, अन्धकवध, शूलभेदोत्पत्ति, पात्र-परीक्षा, दानधर्म, दीर्घतपाका आख्यान, ऋषिशृङ्गका स्वर्गगमन, दीर्घतपाका स्वर्गगमन, काशीराजमोक्ष, व्याधवाक्य, व्याधस्वर्गगमन, शूलभेदमाहात्म्यसमाप्ति, आदित्येश्वर, शक्रेश्वर, करोटेश्वर, कुमारेश्वर, अगस्त्ये-श्वर, व्यासेश्वर, वैद्यनाथ, केदार, आनन्देश्वर, मातृ, नर्मदा, मुण्डेश्वर, अनङ्गवाहीसङ्गम, भोगेश्वर, अर्जुन-श्वर, धर्मेश्वर, लुकेश्वर, धनद, जटेश्वर, रवि, कामे-श्वर, मङ्गलेश्वर, कपिलेश्वर, गोपालेश्वर, मणीश्वर, तिलके-श्वर, गोमतेश्वर, शङ्खचूड़ेश्वर, केदार, पराशरेश्वर, भीम-श्वर, चन्द्रेश्वर, अश्वपर्णीसङ्गममें वह्नीश्वर, नारदेश्वर, वैद्यनाथ, तेजोनाथ, वानरेश्वर, रामेश्वर, कुम्भेश्वर, मेघेश्वर, मधुच्छन्द, नन्दिकेश्वर, वरुणेश्वर, पावकेश्वर, कुबेर, कपि, हनुमन्तेश्वर, पूतिकेश्वर, सोमनाथ, नन्दा, पिङ्गलेश्वर, ऋणमोचन, कपिलेश्वर, चक्र, जलशायी, चण्डादित्य, यमहासेश्वर, कह्लोड़ागङ्गेश्वर, नन्दिकेश्वर, वदारकेश्वर, नलेश्वर, मार्कण्डेश्वर, व्यास, कोटीश्वर, प्रमे-श्वर, शुक्रेश्वर, नागेश्वर, सङ्कर्षणेश्वर, जनकेश्वर, मनमथे-श्वर, अनसूया, एरण्डीसङ्गम, सुवर्णशिलेश्वर, अम्बिके-श्वर, करञ्जेश्वर, भरतेश्वर, नागेश्वर, मुकुटेश्वर, सौभाग्यसुन्दरी, धनदेश्वर, रोहिणीश्वर, सेनापुरमें चक्रतीर्थ, उत्तरेश्वर, भोगेश्वर, केदार, निष्क-लङ्क, मार्कण्डेश्वर, धूतपापेश्वर, आङ्गिरसेश्वर, कोटी-श्वर अयोनिजेश्वर, अङ्गारकेश्वर, स्कन्देश्वर, नर्मदेश्वर, ब्रह्मेश्वर, धातकी, वाल्मीकीश्वर, रूपालेश्वर, पाण्डु, त्रिलोचनेश्वर, कपिलेश्वर, कम्बुकेश्वर, चन्द्रप्रभास, कोह-लेश्वर, इन्द्रेश्वर, वाहकेश्वर, देवेश, शक्रेश्वर, नागेश्वर, गौतमेश्वर, अहल्येश्वर, रामेश्वर, मोक्ष, नर्मदेश्वर, कपर्दीश्वर, कामेश्वर, धौतादित्य, अयोनिज, कोटिकापुरमें अग्नि, कपिलेश्वर, भृग्वीश्वर, आदिवराह, कौबेर, याम्य, वातेश्वर, रामेश्वर, कर्कटेश्वर, सक्रेश्वर, सोम, नन्दा-ह्रद, द्वादशी, जयवाराह, शिव, योधनीपुरमें रामकेशव, रुक्मिणी, अनाहकेश्वर, सिद्धेश्वर, तापेश्वर, सिद्धेश्वर, वारुणेश्वर, अङ्गारक, लिङ्गवाराह, अङ्कोल, कुसुमेश्वर, कलकलेश्वर, श्वेतवाराह, भार्गलेश्वर, आदित्येश्वर और हुङ्कार इत्यादि तीर्थमाहात्म्य, चाणक्यनृपसिद्धि, मधुमती-सङ्गमेश्वर, नर्मदेश्वर, कनकेश्वर, सर्पेश्वर, गोपेश्वर, मार्कण्डेश्वर, कुटुम्बीसङ्गम, सोरतीर्थ, शाम्बादित्य, सिद्धेश्वर, गोपेश्वर, कपिलेश्वर, वैद्यनाथेश्वर घोड़ेश्वर, पिङ्गलेश्वर, भूलीश्वर, गङ्गावराह, शङ्खोद्धार, गौतमेश्वर, दशाश्वमेध, भृगुकच्छ, केदार, धूतपापा, एरण्डी, कनके-श्वरी, जालेश्वर, कालाग्निरुद्र, शालग्राम, चन्द्रहास, उद्दीर्णवराह, चन्द्रप्रभास, द्वादशादित्य, सिद्धेश्वर, कपिलेश्वर, त्रिविक्रम, विश्वरूप, नारायण, मूलश्रीपति, चौलश्रीपति, हंस, प्रभा, भास्कर, मूलस्थान, कण्ठे-श्वर, अट्टहासेश्वर, भूर्भवेश्वर, शूलेश्वर, सरस्वती, दारु-केश्वर, अश्विनीकुमार, गोनागोजी, सावित्री, मातृ, मत्स्येश्वर, देव, शिखि, कोटी, पितामह, मार्कण्डेयेश्वर, अक्रूरेश्वर, सिद्धरुद्रेश्वर, भटभटमात, कुरवेश्वर, टोटिका, क्षेत्रपाल, सुकन्या, स्वर्णविन्दु, ऋणमोचन, भार-भूति, मुण्डेश्वर, एकशालाका डिण्डिमेश्वर, अप्सरेश्वर, सुन्यालय, मार्कण्डेश्वर, गणितादेवी, आमलीश्वर, कण्ठेश्वर, आखाटीश्वर, शृङ्गीश्वर, वल्केश्वर, कपालेश्वर, एरण्डीसङ्गम, रामपुष्कल, जमदग्नि, रेवासागर, लुण्ठ-नेश्वर, लुठेश्वर, हंसेश्वर, तिलदेश्वर, वासवेश्वर, कोटी-श्वर, अलिका, विमलेश्वर और ओङ्कार इत्यादि अनेक तीर्थमाहात्म्य।

नारदपुराणमें जो माघ और माससमाहात्म्येश्वरका उल्लेख है, उन दोनोंसे केवल माघमाहात्म्य पाया जाता है। माघमाहात्म्य ३० अध्यायमें सम्पूर्ण है।

माघमाहात्म्यमें—१ ब्रह्मनारदसंवादमें माघस्नान-प्रशंसा, २ माघकृत्य, ३-४ सुधर्मकन्या रोचिष्मती-

रूपी गदाधरका पादपद्म स्थापन करके विष्णुमाहात्म्य कीर्त्तित हुआ। जिस समय ब्राह्म, पद्म आदि विभिन्नसम्प्रदायके पुराणमें विष्णु वा वैष्णवमाहात्म्यसूचक श्लोकावली प्रक्षिप्त हो कर प्रत्येक पुराणने नवकलेवर धारण किया था, सम्भवतः उसी समय वा उसके बाद अनेकांश सङ्कलित हुआ होगा। इसी समय गयामाहात्म्य रचा गया शिव वा वायुपुराणके मध्य प्रक्षिप्त करनेकी चेष्टा की गई। अधिक सम्भव है, कि वायुसंहिता ही वायु वा शिवपुराणका प्राचीनतम रूप है। धीरे धीरे इसमें नाना संहिता और माहात्म्य संयुक्त हो कर इसने विराटरूप धारण किया था। वैष्णवप्रधान नारदपुराणमें गयामाहात्म्य और माघमाहात्म्यको वायुके अन्तर्गत करनेसे भी किसी शैवग्रन्थमें गयामाहात्म्य वा माघमाहात्म्य शिवपुराणके अन्तर्गत नहीं माना गया है। राजा राजेन्द्रलाल मित्रने यह दिखलाया है, कि ८वीं शताब्दीके बाद गयामाहात्म्य रचा गया है, किन्तु ७वीं शताब्दीके प्रथम भागमें बाणभट्टके ग्रन्थमें वायुप्रोक्त पुराणका उल्लेख है।

महाकवि कालिदासने इसी शिवपुराणकी सहायता से अपने कुमारसम्भवकी रचना की है। ज्ञानसंहितामें ९से ले कर २४ अध्याय तकमें कुमारसम्भवका प्रसङ्ग है। मुद्रित शिवपुराणमें १२ संहिता नहीं रहने पर भी एकादशरुद्र, कोटिरुद्र, शतरुद्र आदि संहिताएं स्वतन्त्र आकारमें पाई जाती हैं।

निम्न लिखित ग्रन्थ वायुपुराणके अन्तर्गत माने गये हैं—

आनन्दकानन वा काशीमाहात्म्य, केदारमाहात्म्य, गीतामाहात्म्य, गोस्तनीमाहात्म्य, तिलपद्मदानप्रयोग, तुलसीमाहात्म्य, द्वारकामाहात्म्य, माघमाहात्म्य, राजगृहमाहात्म्य, रुद्रकवच, लक्ष्मीसंहिता, वेङ्कटेश्वरस्तोत्र, श्रवणद्वादशीविधि, सीतातीर्थमाहात्म्य, हनूमत्कवच।

फिर निम्नलिखित छोटे छोटे ग्रन्थ शिवपुराणके अन्तर्गत हैं।

अविमुक्तमाहात्म्य, आदिचिदम्बरमाहात्म्य, ज्येष्ठललिताव्रत, तृतीयाव्रत, बदरीवनमाहात्म्य, बिल्ववनमाहात्म्य, भीमसंहिता, मयूरपुरमाहात्म्य, व्यासपूजनसंहिता, साध्यसाधनखण्ड, हेमसभानाथमाहात्म्य।

किन्तु उक्त ग्रन्थ देखनेसे मालूम होता है, कि वे आजकलके बने हैं, इस कारण उन्हें पुराणके अन्तर्गत मानना युक्तियुक्त नहीं है।

५म भागवत।

इस भागवतके महापुराणत्व और मौलिकत्वके सम्बन्धमें नाना मत प्रचलित हैं। वैष्णव लोग विष्णुमहिमाप्रकाशक श्रीमद्भागवतको तथा शाक्त लोग शक्तिमाहात्म्यपूर्ण देवीभागवतको ही महापुराण मानते हैं। इस सम्बन्धमें आलोचना करनेसे पहले दोनों भागवतमें कौन कौन विषय हैं, यह जान लेना आवश्यक है। क्योंकि इससे विचार करनेमें पीछे सहायता मिलेगी।

श्रीमद्भागवत।

१म स्कन्धमें—१ मङ्गलाचरण, नैमिषीयोपाख्यान, ऋषिप्रश्न, २ ऋषिप्रश्नका उत्तर और भगवद्वर्णन, ३ अवतारकथन-प्रसङ्गमें भगवान्‌का चरित्रवर्णन, ४ तपस्यादि द्वारा चित्तसन्तोष नहीं होनेसे वेदव्यासकी भागवतारम्भप्रवृत्ति, ५ वेदव्यासके चित्तप्रसादार्थ नारदकर्त्तृक हरिसंकीर्त्तनका गौरव-वर्णन, ६ भगवत् परिचर्याका असाधारण फलकथन, उसके विषयमें वेदव्यासके विश्वास जननार्थ नारदकर्त्तृक कृष्णसंकीर्त्तनजनित पूर्वजन्मसम्भूत स्वीय सौभाग्यवर्णन, ७ भागवतश्रोता राजा परीक्षितका जन्मवृत्तान्तवर्णन, निद्रित बालकवधके लिये अश्वत्थामाका दण्डवर्णन, ८ क्रोधान्ध अश्वत्थामाके अस्त्रसे श्रीकृष्णकर्त्तृक परीक्षितकी रक्षा, कुन्तीका स्तव और राजाका शोकवर्णन, ९

का आख्यान, लोमशके शापसे सर्पयोनिप्राप्त श्वेतगुह्यककी माघस्नानहेतु मुक्ति, ६-७ शुभ दिन और पुण्यदेवकथा, ८ शूद्रशतवलीपुत्रभद्र और सुभद्रका उपाख्यान, ९ ऋषि प्रगाधशिष्य परिधिकी कथा, १०-११ कौशिकीस्नानप्रसङ्गमें जाबालि और शाण्डिल्य-शिष्य सुयज्ञकी कथा, १२-१३ सप्तकुष्माण्ड और डाकिनीगणाख्यान, १४ तुण्डिल ऊर्मिल, तीन गृध्रशिर और दो औदुम्बराश्रयकी कथा, १५ सुयज्ञसंवादमें निसर्गकथन, शाण्डिल्यका शिष्यान्वेषण, १६-२४ प्रकृत विष्णुपूजाकथन, २५-३० गालवमुनि कर्त्तृक विष्णुमाहात्म्य और विष्णुपूजादिकथन।

युधिष्ठिरको निकट भीष्मका धर्मनिरूपण, तत्कर्त्तृक श्रीकृष्णस्तुति और उनका मुक्तिवर्णन, १० कृतकार्य हो श्रीकृष्णका हस्तिनापुरसे द्वारकागमन, स्त्रीगणकर्तृक स्तव, ११ द्वारकावासी जनगण कर्त्तृक स्तूयमान श्रीकृष्णका पुरीप्रवेश, उनका रतिवर्णन, १२ परीक्षितका जन्मविवरण, १३ विदुरके कहनेसे धृतराष्ट्रका महाप्रस्थानार्थ निर्गम, १४ अरिष्टदर्शनके लिये राजा युधिष्ठिरकी शङ्का, अर्जुनके मुखसे श्रीकृष्णका तिरोधानवार्त्ता-श्रवण, १५ अवनीमण्डल पर कलिका प्रवेश होते देख परीक्षितके हाथ राज्यभार सौंप कर राजा युधिष्ठिरका स्वर्गारोहण, १६ कलि द्वारा खिन्न हो कर पृथिवी और धर्मका परीक्षितके समीप आगमन, १७ परीक्षित् द्वारा कलिनिग्रह, १८ परीक्षितके प्रति ब्रह्मशाप और उनका वैराग्य, १९ गङ्गामें देहपरित्यागके लिये मुनिगणावृत राजा परीक्षितका प्रायोपवेश और उनके समीप शुकदेवका आगमन।

२य स्कन्धमें—१ कीर्त्तनश्रवणादि द्वारा भगवान्की धारणा और महापुरुषसंस्थान-वर्णन, २ स्थूल धारणा द्वारा जित मनके सर्वान्तर्यामी विष्णुधारणाकी कथा, ३ विष्णुभक्तकी विशेष कथा सुन कर राजाका तद्भक्त्युद्रेक, ४ श्रीहरिचेष्टित सृष्ट्यादि विषयमें राजा परीक्षितका प्रश्न, ब्रह्मनारद-संवादमें तदुत्तर दानार्थ शुकदेवका मङ्गलाचरण, ५ नारदके पूछने पर ब्रह्माकी सृष्ट्यादि, हरिलीला और विराटसृष्टिकथन, ६ अध्यात्मादिके भेदसे विराटपुरुषका विभूतिकथन, पुरुषसूक्त द्वारा पूर्वोक्त विषयोंका दृढ़तासम्पादन, ७ ब्रह्मा कर्त्तृक नारदके समीप भगवान्का लीलावतारकथन, तत्तदवतारका कर्मप्रयोजन और गुणवर्णन, ८ राजा परीक्षितका पुराणार्थविषयक प्रश्न, ९ परीक्षितके प्रश्नका उत्तर देनेके लिये शुकदेवकर्त्तृक भगवदुक्त भागवतकथन, १० भागवतव्याख्या द्वारा शुकदेवका राजप्रश्नोत्तरदानारम्भ।

३य स्कन्धमें—विदुर और उद्धवका संवाद, २ श्रीकृष्णके विच्छेदसे शोकार्त्त उद्धवका विदुरके समीप श्रीकृष्णका बाल्यचरित्रवर्णन, ३ उद्धवकर्तृक श्रीकृष्णका मथुरा आगमन, कंसवधादि और द्वारकाका कार्यवर्णन, ४ बन्धुका निधन सुन कर आत्मज्ञानलिप्सु विदुरका उद्धवोपदेशसे मैत्रेयके निकट गमन, ५ विदुरके प्रश्न पर मैत्रेयकर्त्तृक भगवल्लीला और महदादि सृष्टिकथन, श्रीकृष्णका स्तव, ६ महदादिके ईश्वरमें आविष्ट होनेके कारण विराट् पुरुषकी सृष्टि, भगवत्कृत आधिदैवादिभेदकथन, ७ मैत्रेय मुनिके वचन सुन कर आनन्दित विदुरका नाना प्रश्न, ८ जलशायिभगवान्के नाभिपद्मसे ब्रह्माका उद्भव, ब्रह्माकर्त्तृक भगवान्की तपस्या, ९ लोकसृष्टिकी कामनासे ब्रह्माकर्त्तृक भगवत्स्तुति, भगवत्सन्तोष, १० प्राकृतादि भेदसे दश प्रकारकी सृष्टिका वर्णन, ११ परमाणु आदिके लक्षण द्वारा कालनिरूपण, युग और मन्वन्तरादिका कल्पमानादिकथन, १२ ब्रह्माका सृष्टिवर्णन, १३ वराहरूपी भगवान्कर्त्तृक जलमग्ना धराका उद्धार, हिरण्याक्षवध, १४ दितिकी कामनासे कश्यप द्वारा सन्ध्याकालमें उसको गर्भोत्पत्ति, १५ ब्रह्माकर्तृक वैकुण्ठस्थ दो विष्णुभृत्योंका शापवृत्तान्तकथन, १६ भगवान्कर्त्तृक अनुतप्त विप्रोंकी सान्त्वना, दोनों भृत्योंके प्रति हरिका अनुग्रह, वैकुण्ठसे उनका पतन, १७ भगवद्भृत्योंका असुररूपमें जन्म, हिरण्याक्षका अद्भुत प्रभाव, १८ पृथिवी-उद्धारकारी महावराहके साथ हिरण्याक्षका युद्ध, १९ ब्रह्माकी प्रार्थनासे आदिवराहकर्त्तृक हिरण्याक्षवध, २० पूर्वप्रस्तावित मनुवंशवर्णनार्थ सृष्टिप्रकरणानुस्मरण, २१ भगवान्के प्रसादसे कर्दम ऋषिकी मनुकन्याकी विवाहघटना, २२ भगवान्के आदेशानुसार मनुकर्तृक कर्दमके हाथ कन्यासम्प्रदान, २३ तपके प्रभावसे विमानदेशमें कर्दम और देवहूतिका विहार, २४ देवहूतिके गर्भसे कपिलका जन्म और कपिलके कहनेसे कर्दमका ऋणत्रययुक्त प्रव्रज्यागमन, २५ जननीसे पूछे जाने पर कपिलका बन्धविमोचनकारी भक्तिलक्षणकथन, २६ प्रकृतिपुरुषविवेचनार्थ सांख्यतत्त्वनिरूपण, २७ पुरुष और प्रकृतिका विवेक द्वारा मोक्षरीतिवर्णन, २८ ध्यानशोभित अष्टाङ्गयोग द्वारा सर्वोपाधिविनिर्मुक्त स्वरूप ज्ञानकथन, २९ भक्तियोग, वैराग्योत्पादनार्थ काल, बल और घोर संसार-वर्णन, ३० पुत्रकलत्रादिमें

पराः ...
...लोक, बृहद्रथ, सुक्रतु, निषधा...

आसक्तचित्त कामियोंके तामसी गतिका विवरण, ३१ मिश्रित पुण्यपाप द्वारा मनुष्ययोनि प्राप्तिरूप राजसी गतिका विवरण, ३२ धर्मानुष्ठान द्वारा सात्विकगणकी ऊर्द्ध्वगति और तत्वज्ञानविहीन व्यक्तिको पुनरावृत्तिका विवरण, ३३ भगवान् कपिलके उपदेशसे देवहूतिका ज्ञानलाभ और जीवन्मुक्ति ।

४र्थ स्कन्धमें—१ मनुकन्याओंका पृथक् पृथक् वंशवर्णन, २ भव और दक्षके परस्पर विद्वेषके मूल विश्वस्रष्टाओंका यज्ञवृत्तान्त, ३ दक्षयज्ञदर्शनार्थ सतीको पितृगृहमें गमनप्रार्थना, ३ गिरिशकर्त्तृक निवारण, ४ भवके वाक्यका उल्लङ्घन करके भवानीका पितृगृहमें गमन और पिताके अपमानसे देहत्याग, ५ सतीका देहत्याग सुन कर शङ्करका क्रोध, वीरभद्रसृष्टि, यज्ञनाश और दक्षवध, ६ दक्षादिके जीवनदानार्थ देवगण-परिवृत ब्रह्माकी भव-सान्त्वना, ७ दक्षभवादिके स्तवसे भगवान् विष्णुका आविर्भाव, उनकी सहायतासे दक्ष द्वारा यज्ञनिष्पादन, ८ विमाताके वाक्य पर क्रोधित हो कर पुरनिष्क्रान्त ध्रुवकी तपस्या और हरिप्रीतिलाभ, ९ भगवान्की आराधनासे वरप्राप्त ध्रुवका प्रत्यागमन और पितृराज्यपालन, १० ध्रुवका पराक्रमवर्णन, ११ यक्षगणका क्षय देख कर मनुका रणक्षेत्रमें आगमन और तत्त्वोपदेश द्वारा ध्रुवको संग्रामसे रोकना, १२ कुवेरकर्त्तृक अभिनन्दित ध्रुवका स्वपुर प्रत्यागमन और यज्ञानुष्ठान, तदनन्तर हरिधाममें आरोहण, १३ ध्रुववंशमें पृथुजन्मकथाप्रसङ्गमें वेण-पिता अङ्गका वृत्तान्त, १४ अङ्गराज्यका प्रव्रज्यागमन, ब्राह्मणगणकर्त्तृक वेणका राज्याभिषेक, वेणचरित्र, ब्राह्मणगणकर्त्तृक वेणवध, १५ विप्रगणकर्तृक मथ्यमान वेणवाहुसे पृथुका जन्म और राज्याभिषेक, १६ मुनियोंके नियोगसे सूतादिकर्त्तृक सभायं पृथुका स्तव, १७ प्रजागणको क्षुधाकातर देख धरणीवधार्थ पृथुका उद्योग, धरणीकर्त्तृक पृथुका स्तव, १८ पृथु प्रभृति कर्त्तृक वत्सपात्रादिभेदसे क्रमशः पृथिवीदोहन, १९ अश्वमेधयज्ञमें अश्वापहारी इन्द्रवधार्थ पृथुका उद्यम, ब्रह्माकर्त्तृक तन्निवारण, २० यज्ञमें वरदानप्रसङ्गमें भगवान्कर्त्तृक पृथुके प्रति साक्षात् उपदेश, पृथुका स्तव, परस्परकी प्रीति, १२ महायज्ञमें देवता आदिकी सभामें पृथुकर्त्तृक प्रजाका अनुशासन, २२ भगवानके आदेशसे पृथुके प्रति सनत्कुमारका परम ज्ञानोपदेश, २३ भार्याके साथ वनप्रस्थान करके समाधिप्रभावसे पृथुका वैकुण्ठगमन, २४ पृथुवंशकथा, पृथुपौत्र प्राचीनवर्हिसे प्रचेतादिको उत्पत्ति और उनका रुद्रगीताश्रवण, २५ प्रचेतागणके तपस्यामें प्रवृत्त होने पर प्राचीनवर्हिके समीप नारदागमन और पुरञ्जन-कथाच्छलसे विविधसंसारकथन, २६ पुरञ्जनका मृगयावर्णच्छलसे स्वप्न और जागरणावस्थाकथन, संसार प्रपञ्चकथन, २७ पुत्रकलत्रादिमें आसक्त रहनेके कारण पुरञ्जनका आत्मविस्मरण, गन्धर्वयुद्ध, कालकन्यादिके उपाख्यान द्वारा ज्वरारोगादिवर्णन, २८ पुरञ्जनका पूर्वदेहत्याग, स्त्रीचिन्ताहेतु स्त्रीत्वप्राप्ति और अदृष्टवशतः ज्ञानोदयसे मुक्तिलाभ, २९ उपाख्यानको अर्थव्याख्या द्वारा संसार और मुक्तितात्पर्यकथन, ३० तपस्यासे तुष्ट विष्णुका वर पानेके बाद प्रचेतागणका दारपरिग्रह, राज्यकरण और पुत्रोत्पादन, ३१ दक्षके हाथ राज्यभार सौंप कर प्रचेतागणका वनगमन और नारदोक्त मोक्षकथन ।

५म स्कन्धमें—१ प्रियव्रतका राज्यभोग और ज्ञाननिष्ठा, २ अग्नीध्र चरितवर्णन, पूर्वचित्तिनामक अप्सराके गर्भसे उनका पुत्रोत्पादन, ३ अग्नीध्रपुत्र नाभिका मङ्गलावहचरित्र, यज्ञमें तुष्ट भगवान्का अपना पुत्रत्वस्वीकार, ४ मेरुवतीके गर्भसे नाभिपुत्र ऋषभका जन्म और राज्यवर्णन, ५ ऋषभकर्तृक पुत्रोंके प्रति मोक्षधर्मोपदेश और परमहंसज्ञानकथन, ६ ऋषभदेवका देहत्यागक्रमकथन, ७ राजा भरतका विवाह और हरिक्षेत्रमें हरिभजनकथा, यागादिमें हरिपूजा, ८ भगवद्भक्तिपरायण भरतका मृगशिशुरक्षणमें आसक्त रहनेके कारण राजाको मृगत्वप्राप्ति और देहत्याग, ९ प्रारब्ध कर्मफलसे भरतका जड़ विप्ररूपमें जन्मग्रहण, १० जड़भरत और रहूगणउपाख्यान, ११ रहूगणकर्त्तृक जिज्ञासित जड़भरतका तत्प्रति ज्ञानोपदेश, १२ रहूगण राजासे पुनः जिज्ञासा करने पर जड़भरतकर्त्तृक उनका सन्देहभञ्जन, १३ रहूगण राजाके वैराग्यदार्ढ्यार्थ भरतकर्त्तृक भवाटवीवर्णन, १४ रूपकरूपमें वर्णित भवाटवीको व्याख्या, १५ जड़भरतवंशमें उत्पन्न

राजाओंका विवरण, १६ प्रियव्रतके चरित्रप्रसङ्गमें द्वीपादिका वर्णन, वह विषय जाननेकी इच्छासे परीक्षितका प्रश्न और भुवनकोषवर्णन, जम्बुद्वीपकथन प्रस्तावमें मेरुका अवस्थान वर्णन, १७ इलावृतवर्षके चारों ओर गङ्गागमन और रुद्रकर्त्तृक सङ्कर्षणस्तव, १८ सुमेरुके पूर्वादिक्रमसे तीन और उत्तरवर्षत्रय, सेव्यसेवकवर्णन, १९ किम्पुरुषवर्ष और भारतवर्षका सेव्यसेवककथन तथा भारतवर्षका श्रेष्ठत्वनिरूपण, २० सप्तसह प्लक्षादि छः द्वीप और अन्तर वहिर्भागादिके परिमाणानुसार लोकालोकपर्वतका स्थितिवर्णन, २१ कालचक्रयोगसे भ्रमणशील सूर्यकी गति, राशिसञ्चार और तद्द्वारा लोकयात्रानिरूपण, २२ खगोलके मध्य सोमशुक्रादिका अवस्थान और उनकी गतिके अनुसार मानवगणका इष्टानिष्टफल, २३ ज्योतिश्चक्रका आश्रय, ध्रुवस्थान और शिशुमारके स्वरूपमें भगवान्‌का स्थितिकथन, २४ सूर्यके नीचे राहु आदिका अवस्थान और अतलादि अधोभुवन तथा तन्निवासीका विवरण, २५ पातालके अधोभागमें शेषनाग अनन्त किस प्रकार हैं, उसका विवरण, २६ पातालके अधोभागस्थ नरकोंका विवरण और वहां पापियोंका दण्ड।

६ष्ठ स्कन्धमें—१ अजामिल-कथा, अजामिल-मोचनार्थ आगत विष्णुदूतके प्रश्न पर यमदूतकर्तृक धर्मादि लक्षणकथन और अजामिलका पापवर्णन, २ विष्णुदूतगणकर्त्तृक यमदूतोंके निकट हरिनाममाहात्म्यवर्णन, अजामिलकी विष्णुलोकप्राप्ति, ३ यमकर्त्तृक वैष्णव धर्मोत्कर्षवर्णन और स्वीय दूतगणकी सान्त्वना, ४ प्रजासृष्टिके लिये दक्षकर्तृक हंसगुह्याख्य स्तोत्र द्वारा हरिका आराधन, ५ नारदके कूटवाक्यसे पुत्रनाशका वृत्तान्त सुन कर उनके प्रति दक्षका अभिशाप, ६ दक्षसृष्ट कन्याओंका वंशवर्णन, विश्वरूपोत्पत्ति, ७ वृहस्पतिकर्त्तृक परित्यक्त इन्द्रका दैत्यभय दूर करनेके लिये ब्रह्मोपदेशसे देवगण द्वारा विश्वरूपका पौरोहित्यमें वरण, ८ त्रिशिरूपकर्त्तृक इन्द्रके प्रति नारायण कवचोपदेश, तद् द्वारा इन्द्रकी दानवजय, ९ इन्द्रकर्त्तृक रोषवशतः विश्वरूपहत्या, तत्पश्चात् वृत्रासुरसृष्टि, भीत देवगणकी भगवत्स्तुति, १० भगवदादेशसे दधीच मुनिका अस्थिनिर्मित वज्रधारण करके वृत्रासुरसह देवेन्द्रका संग्राम, ११ वज्रधारी इन्द्रके साथ युध्यमान वृत्रासुरकी भक्ति, ज्ञान और विक्रमसंक्रान्त विचित्रकथा, १२ महायुद्धमें स्वयं वृत्रकर्त्तृक उत्साहित हो कर महेन्द्रका वृत्रवध, १३ वृत्रवधके बाद ब्रह्महत्याके भयसे इन्द्रका पलायन, भगवान्‌कर्तृक उनकी रक्षा, १४ वृत्रका पूर्वजन्मकथन, वृत्रासुरवध पर चित्रकेतु राजाका शोक, १५ नारद और अङ्गिराके तत्त्वोपदेशसे चित्रकेतुका शोकापनोदन, १६ मृत पुत्रकी उक्तिसे चित्रकेतुका शोक ह्रास और तत्प्रति नारदका अनन्तहितैषिणी महाविद्योपदेश, १७ चित्रकेतुका महादेवके प्रति उपहास और उमाशापसे वृत्रत्वप्राप्ति, १८ त्वष्टृवंशप्रसङ्गमें आदित्य और अन्यान्य देववंशकीर्त्तन, १९ दितिके प्रति कश्यपका लोकहितार्थ हरितोषणव्रतकथा।

७म स्कन्धमें—विष्णुभक्त प्रह्लादके प्रति हिरण्यकशिपुका शत्रुतामूलक पूर्ववृत्तान्त, २ हिरण्याक्षवध पर क्रुद्ध हिरण्यकशिपुका त्रिजगत्‌विप्लावन, हिरण्यकशिपुकर्त्तृक माधुओंके कदनार्थ दानवोंके प्रति उपदेश, तत्त्वकथन द्वारा आत्मीय और बान्धवोंका शोकापनोदन, ३ हिरण्यकशिपुकी उग्र तपस्यासे जगत्‌का सन्ताप देखनेके लिये ब्रह्माका आगमन और स्तुत हो कर तत्प्रति वरदान, ४ वरलाभान्तर हिरण्यकशिपुका अखिल लोकजय और विष्णुद्वेषी सर्वजनपीड़न, ५ गुरूपदेशका परित्याग कर प्रह्लादकी विष्णुस्तवमें मति, हस्तिसर्पादि द्वारा उसके प्राण लेनेके लिये हिरण्यकशिपुका यत्न, ६ दैत्यबालिकाओंके प्रति प्रह्लादका नारदोक्त उपदेश, ७ दैत्यबालिकाओंके विश्वासार्थ प्रह्लादकर्त्तृक मातृगर्भमें रहते समय नारदोपदेशश्रवण वृत्तान्तकथन, ८ प्रह्लादके वधमें उद्यत हिरण्यकशिपुका नृसिंहके हाथसे आत्मविनाश, ९ नरसिंहका कोपशान्त करनेके लिये ब्रह्माके कहनेसे प्रह्लादकर्त्तृक भगवान्‌का स्तव, १० प्रह्लादके प्रति भगवान्‌का अनुग्रह और अन्तर्धान, प्रसङ्गतः रुद्रके प्रति अनुग्रह-विवरण, ११ सामान्यतः मनुष्यधर्म और विशेषरूपसे वर्णधर्म, तथा स्त्रीधर्म कथन, १२ ब्रह्मचारी और वानप्रस्थका असाधारण धर्म एवं चारों आश्रमका साधारण धर्म-

कथन, १३ साधक और यतिका धर्म एवं अवधूतके इतिहासकथन द्वारा सिद्धावस्थावर्णन, १४ गृहस्थका धर्म एवं देशकालादिभेदसे विशेष विशेष कर्म, १५ सारसंग्रह पूर्वक सर्व वर्णाश्रमनिबन्धन मोक्षलक्षण वर्णन।

८म स्कन्धमें—१ स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम और तामस इन चार मनुओंका निरूपण, २ गजेन्द्रमोक्षण, हस्तिनीके साथ क्रीड़ा करते हुए गजेन्द्रका दैवात् ग्राहसे पकड़ा जाना और गजेन्द्रका हरिस्मरण, ३ स्तवसे तुष्ट हो कर भगवान्‌कर्त्तृक गजेन्द्रका मोक्षण और देवलके शापसे ग्राहको मुक्तिकरण, ४ ग्राह और गजेन्द्रके मध्य ग्राहको फिरसे गन्धर्वत्वप्राप्ति और गजेन्द्रका भगवत्पार्षद हो कर तत्पदलाभ, ५ पञ्चम और षष्ठ मनुका विवरण तथा विप्रके शापसे श्रीभ्रष्ट देवगणसह ब्रह्माकर्त्तृक हरिस्तव, ६ विष्णुका आविर्भाव होनेके बाद पुनः देवगणकर्त्तृक उनको स्तुति एवं असुरोंके साथ अमृतोत्पादनार्थ उद्यम, ७ क्षीरोदमथनमें कालकूटोत्पत्ति एवं उससे अखिल लोगोंका भय देख रुद्रकर्त्तृक तत्पान, ८ समुद्रमथनमें लक्ष्मीका विष्णुको वरण और धन्वन्तरिके साथ अमृतोत्थान, तदन्तर विष्णुका मोहिनीरूपधारण, ९ मुग्ध दानवगण कर्त्तृक मोहिनीके हाथ अमृतपात्रार्पण और दानवोंकी वञ्चना कर मोहिनीरूपमें देवताओंको अमृतदान, १० मत्सरके कारण देवताओंके साथ दानवोंका समर और विपन्न देवताओंके मध्य विष्णुका आविर्भाव, ११ दानव-संहार देख कर देवर्षिकर्त्तृक देवताओंको निवारण तथा शुक्राचार्य द्वारा मृत दैत्योंका पुनर्जीवन, १२ मोहिनीरूप धारण करके भगवान् द्वारा त्रिपुरारीका मोहन, १३ सप्तमादि षड्‌विध मन्वन्तरका पृथक् पृथक् विवरण, १४ भगवद्वशवर्त्ति सभी मन्वादिका पृथक् पृथक् कर्मादिवर्णन, १५ बलिका विश्वजित यज्ञ और तत्कर्त्तृक स्वर्गजय, १६ देवगणके अदर्शन होने पर देवमाता अदितिका शोक और उनकी प्रार्थनासे कश्यपकर्त्तृक पयोव्रतोपदेश, १७ अदितिके पयोव्रत द्वारा उनकी कामना पूरी करनेके लिये भगवान् हरिका उनका पुत्र स्वीकार, १८ वामनरूपमें अवतीर्ण हो कर भगवान्‌का बलियज्ञमें गमन और बलिका उन्हें सत्कार करके वरदान, १९ वामनकर्त्तृक बलिके समीप त्रिपादपरिमित भूमि-याचन, दानार्थ बलिका अङ्गीकार, भृगुका तन्निवारण, २० भगवान्‌की कपटता जान लेने पर भी अनृत भयसे बलिका प्रतिश्रुत दान, तदनन्तर सहसा अद्भुतरूपमें वामनकी वृद्धि, २१ लोकके मध्य बलिका उत्कर्ष प्रकाशित करनेके लिये तृतीय पादपूरणच्छलसे विष्णुकर्त्तृक बलिका बन्धन, २२ पातालमें प्रस्थानानन्तर न्यूनता जान कर बलिके प्रति वरदानपूर्वक भगवान्‌का तद्‌द्वारपालतास्वीकार, २३ पितामहके साथ बलिका सुतल जाने पर इन्द्रका उपेन्द्रसह स्वर्गारोहणपुरःसर पूर्ववत् ऐश्वर्यभोग, २४ मत्स्यरूपी भगवान्‌का लीलावृत्तान्त।

९म स्कन्धमें—१ वैवस्वतपुत्रके वंशवर्णनप्रसङ्गमें इलोपाख्यान, २ करूषादिपञ्च मनुपुत्रका वंशविवरण, ३ सुकन्याख्यान और रैवताख्यान समेत शर्यातिका वंशविवरण, ४ मनुपुत्र नाभाग और नाभागके पुत्र अम्बरीषकी कथा, ५ विष्णुचक्रको प्रसन्न करके अम्बरीषकी कथा, ६ शशादसे ले कर मान्धातृ पर्यन्त अम्बरीष वंशवृत्तान्त और प्रसङ्गक्रमसे मान्धातृतनयपति सौभरिका उपाख्यान, ७ मान्धाताके वंशवृत्तान्तप्रसङ्गमें पुरुकुत्स और हरिश्चन्द्रका उपाख्यान, ८ रोहिताश्ववंश तथा कपिलाक्षेपमें सगर-सन्तानोंका विनाशवृत्तान्त, ९ खट्वाङ्गसे अंशुमद्वंश और भगीरथका गङ्गानयन, १० खट्वाङ्गवंशमें श्रीरामचन्द्रका जन्म और रावणका वध करके अयोध्यागमन पर्यन्त उनका चरित्र, ११ रामको अयोध्यामें स्थिति, अश्वमेध यज्ञादिका अनुष्ठान, १२ श्रीरामसुत कुश और इक्ष्वाकुपुत्र शशादका वंशविवरण, १३ इक्ष्वाकुपुत्र निमिका वंशविवरण, १४ बृहस्पतिकी वनिता और सोमके सम्भोगसे बुधका जन्म, बुधके औरस और उर्वशीके गर्भसे आयुमुख्य प्रभृतिका उत्पत्तिकथन, १५ ऐलपुत्रके वंशमें गाधिका जन्म, गाधिके दौहित्र सन्तान रामसे कार्त्तवीर्यवध, १६ जमदग्निहनन, परशुरामकर्त्तृक बार बार क्षत्रियवध, विश्वामित्र वंशानुचरित, १७ आयुके पांच पुत्रोंमेंसे क्षत्रवृद्धादि चारका वंशविवरण, १८ नहुषसुत ययातिका उपाख्यान, १९ ययातिका वैराग्यादय और निर्वेदार्थ प्रियाके

प्रति आत्मवृत्तान्तकथन, २० पुरुवंशविवरण और तद्वंशीय दुष्मन्ततनय भरतका यशःकीर्त्तन, २१ भरतका वंशविवरण और प्रसङ्गक्रमसे रन्तिदेव, अजमीढ़ादिका कीर्त्तिवर्णन, २२ दिवोदासका वंश, ऋक्षवंशीय जरासन्धयुधिष्ठिरदुर्योधनादिका विवरण, २३ अनु, द्रुह्यु और तुर्वसुका वंश तथा ज्यामघकी उत्पत्ति, यदुवंश विवरण, २४ रामकृष्णका उद्भव, विदर्भसुततयोत्पन्न विविधवंश।

१०म स्कन्धमें—१ देवकीके पुत्रके हाथसे कंसकी निज मृत्युकथा सुन कर तत्कर्त्तृक देवकीके छः गर्भनाश, २ कंसवधार्थ देवकीके गर्भमें भगवान् हरिका जन्म, ब्रह्मादिकर्त्तृक उनका स्तव, देवकी सान्त्वना, ३ भगवान्‌का निजरूपमें उद्भव, मातापिताकर्त्तृक उनकी स्तुति और वासुदेवकर्त्तृक गोकुलमें आनयन, ४ चण्डिका वाक्य सुन कर कंसका भय और मन्त्रियोंकी कुमन्त्रणासे बालकादिकी हिंसामें प्रवृत्ति, ५ पुत्रजातोत्सव-समाप्त होनेके बाद नन्दका मथुरागमन और वासुदेव-समागमोत्सव, ६ गोकुल-प्रत्यागमनकालमें नन्दका मृत-राक्षसीदर्शन और उनका विस्मय, ७ आकाशमें शकटोत्क्षेपण, मुखके मध्य विश्वप्रदर्शन प्रभृति कृष्णलीला कथन, नन्दनन्दनका नामकरण, बालक्रीड़ाके बहाने मृद्भक्षणाभियोगरूपमें विश्वरूप निरूपण, ८ भाण्डभङ्गादि देख कर गोपीकर्त्तृक श्रीकृष्णका बन्धन, उनके उदर-स्थित विश्वगिरीक्षणसे विस्मय, १० श्रीकृष्णकर्त्तृक जमलार्जुनभङ्ग, उन दोनोंका स्वरूपधारण, श्रीकृष्णका स्तव, ११ वृन्दावनमें श्रीकृष्णका गोचारण, श्रीकृष्ण कर्त्तृक वत्सासुर और वकासुरवध, १२ अघासुरकर्त्तृक सर्पशरीरधारण, गोवत्सग्रास, श्रीकृष्णकर्त्तृक उसका वध, १३ ब्रह्ममायासे गोपबालक और गोवत्स-हरण, श्रीकृष्णकर्त्तृक संवत्सर पूर्ववत् भाव-रक्षा, १४ श्रीकृष्णकर्त्तृक धेनुकासुरमर्दन, कालिय-नागसे गोपबालकोंकी रक्षा, १६ यमुनाह्रदमें श्रीकृष्ण-कर्त्तृक कालियनिग्रह, उसकी पत्नियोंके स्तवसे श्रीकृष्णका करुणा-प्रकाश, १७ नागालयसे कालियका निर्गमन, श्रीकृष्णकर्त्तृक आत्मसुमवन्धुगणको दावानलसे परित्राण, १८ श्रीकृष्णकर्त्तृक बलभद्र द्वारा प्रलम्बासुरवध, १९ श्रीकृष्णकर्त्तृक मुञ्जारण्यमें गोप और गोकुलवासियोंको अरण्याग्निसे रक्षाकरण, २० वर्षा और शरत् ऋतुका शोभावर्णन, गोपगणसह रामकृष्णकी प्रावृट्कालीन क्रीड़ा, २१ शरत्कालीन रम्यवृन्दावनमें श्रीकृष्णका प्रवेश, उनकी वंशीध्वनि सुन कर गोपियोंका गीत, २२ वस्त्रहरणलीला, गोपकन्यादिके प्रति श्रीकृष्ण-का वरदान, तदनन्तर यज्ञशालामें गमन, २३ यज्ञदीक्षितों-के निकट गोपालगणको अन्नभिक्षा, उनका अनुताप, २४ श्रीकृष्णका इन्द्रार्चननिवारण, श्रीकृष्णकर्त्तृक गोवर्द्धनोत्सवप्रवर्त्तन, २५ इन्द्र द्वारा व्रजविनाशार्थ भयङ्कर वारिवर्षण, श्रीकृष्णका गोवर्द्धनधारण और गोकुल रक्षा, २६ श्रीकृष्णका अद्भुतकर्म देख कर गोपियोंका विस्मय, नन्द द्वारा गर्गकथित कृष्णका ऐश्वर्यवर्णन, २७ श्रीकृष्णका प्रभातावलोकनमें सुरभि और सुरेन्द्रकर्त्तृक अभिषेक-महोत्सव, २८ वरुणालयसे नन्दानयन, गोपोंका वैकुण्ठदर्शन, २९ कृष्णसंवादमें गोपीरासविहारकथन, रासरम्भमें श्रीकृष्णका अन्तर्धान, ३० गोपियोंका उन्मत्त-भाव, श्रीकृष्णान्वेषण, ३१ गोपियोंका कृष्णगान और तदागमनप्रार्थना, ३२ श्रीकृष्णका आविर्भाव और गोपियोंके प्रति सान्त्वना, ३३ गोपीमण्डलमध्यस्थ श्रीकृष्णकी यमुना और वनकेलि, ३४ भगवान्‌कर्त्तृक सर्पग्रस्त नन्दका मोचन और शङ्खचूड़वध, ३५ गोकुलमें बालकोंका कृष्णगुणगान, ३६ अरिष्टवध, नारदवाक्यसे रामकृष्णको वासुदेव-पुत्र जान कर कंसकर्त्तृक तद्वधमन्त्रणा और कृष्णको पकड़ लानेके लिये अक्रूरके प्रति आदेश, ३७ श्रीकृष्णकर्त्तृक केशीवध, व्योमासुर संहार, ३८ अक्रूरका गोकुलगमन और श्रीकृष्णकर्त्तृक उसका सम्मान, ३९ अक्रूरके साथ श्रीकृष्णकी मथुरा यात्रा, गोपियोंकी खेदोक्ति, यमुनामें अक्रूरका विष्णु-लोकदर्शन, ४० श्रीकृष्णको ईश्वर जान कर सगुण-निर्गुणके भेदसे अक्रूरका स्तव, ४१ श्रीकृष्णका मथुरा-सन्दर्शन, पुरीप्रवेश, रजकवध, सुदामाके प्रति वरदान, ४२ कुब्जाको ऋजुकरण, धनुर्भङ्ग और रक्षिवधादि, ४३ गजेन्द्रवध, रामकृष्णका मल्लरङ्गमें प्रवेश, चाणूरके साथ सम्भाषण, ४४ मल्लकंसादिका मर्दन, कृष्ण-कर्त्तृक कंसपत्नियोंके प्रति आश्वासदान, रामकृष्ण

कर्त्तृक पितृमातृदर्शन, ४५ श्रीकृष्णकर्त्तृक पितामाताको सान्त्वना और उग्रसेनाभिषेक, ४६ उद्धवको व्रजपुरमें प्रेरण, श्रीकृष्णकर्त्तृक यशोदानन्दादिका शोकापनोदन, ४७ कृष्णके आदेशसे उद्धवकर्त्तृक गोपियोंके प्रति तत्त्वोपदेश, ४८ कुब्जाके साथ विहार, अक्रूरका मनोपूरण और पाण्डवसान्त्वना, ४९ अक्रूरका हस्तिनापुरगमन, तत्कर्त्तृक पाण्डवोंके प्रति धृतराष्ट्रका वैषम्यव्यवहारदर्शनानन्तर प्रत्यागमन, ५० श्रीकृष्णका जरासन्धके भयसे समुद्रमें दुर्ग निर्माण, शङ्कटदानव-वधान्तर जरासन्धजय, ५१ मुचुकुन्दकर्त्तृक यवनवध, ५२ श्रीकृष्णका गमन, ब्राह्मणके मुखसे रुक्मिणीका संवादश्रवण, ५३ श्रीकृष्णका विदर्भनगर गमन, रुक्मिणीहरण, ५४ श्रीकृष्णकर्त्तृक रुक्मिणीको निजपुरीमें आनयन और रुक्मिणीका पाणिग्रहण, ५५ श्रीकृष्णसे प्रद्युम्नका जन्म और शम्बरकर्त्तृक प्रद्युम्नहरण, शम्बरवध, ५६ श्रीकृष्णका मणिहरण, जाम्बवान और शत्राजितकी कन्याप्राप्ति, अनन्तर अन्य दारग्रहण और स्यमन्तकहरणादि द्वारा अर्थका अनर्थता-कथन, ५७ शतधन्वावध, अक्रूरकर्त्तृक आहृत मणिवृत्तान्त, ५८ श्रीकृष्णकी कालिन्दीप्रभृति पञ्चकन्याका पाणिग्रहण, तपस्विनी कालिन्दीका विवाहार्थ इन्द्रप्रस्थमें गमन, ५९ श्रीहरिकर्त्तृक भौमहनन, तदाहृत सहस्र कन्या और स्वर्गसे पारिजातहरण, सहस्र कन्यासहवास, ६० श्रीकृष्णके परिहाससे रुक्मिणीका कोप, प्रेमकलहमें उनको सान्त्वना, प्रेमकलहका ऐश्वर्यवर्णन, ६१ श्रीकृष्णकी पुत्रपौत्रादि सन्तति और अनिरुद्धविवाहमें बलरामकर्त्तृक रुक्मिकालिङ्गवध, सोलह हजार एक सौ आठ स्त्रियोंसे समुद्भूत कोटी पुत्रपौत्रादिका विवाहवर्णन, ६२ ऊषाके साथ रममाण अनिरुद्धका बाणकर्त्तृक अवरोध, अनिरुद्धके लिये बाणयादवयुद्धमें श्रीकृष्णकी हरजय, बाणराजका बाहुच्छेदन, ६३ बाणयादवयुद्धमें माहेश्वरकर्त्तृक बाणबाहुच्छेत्ता हरिकी स्तुति, ६४ श्रीकृष्णकर्त्तृक नृगका शापमोचन और ब्रह्मस्वहरणदोषउक्ति, विभूतिमदोन्मत्त यदुगणको नृगोद्धारप्रसङ्गमें शिक्षादान, ६५ बलरामका गोकुलागमन और गोपियोंके साथ रमण, मत्ततावशतः कालिन्दी आकर्षण, बलरामका चरित्रवर्णन, ६६ श्रीकृष्णका काशीमें आगमन, पौण्ड्रक और काशीराजवध, सुदक्षिणवध, ६७ बलरामकी रैवत पर्वत पर स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा, द्विविद वानरवध, ६८ युद्धमें कौरवकर्त्तृक शाम्बरोध, शाम्बमोचनार्थ बलरामका गमन, ६९ नारदकर्त्तृक श्रीकृष्णका स्तव, ७० श्रीकृष्णके दैनन्दिन कर्म उपलक्षमें दूत और नारदको कार्यमें कार्यमन्त्रविचार और जगदीश्वरका आह्निक तथा जगन्मङ्गलचरित्र देख कर नारदकी उक्ति, ७१ उद्धवको मन्त्रणासे श्रीकृष्णका इन्द्रप्रस्थगमन, ७२ श्रीकृष्ण और भीमका जरासन्धवध, ७३ श्रीकृष्णकर्त्तृक राजाओंका मोचन और निजरूप सन्दर्शन, ७४ राजसूय यज्ञानुष्ठान, उस यज्ञमें पहले पूजाप्रसङ्गमें चैद्यराज शिशुपालवध, ७५ युधिष्ठिरका अवभृथसम्भ्रम और दुर्योधनका मानभङ्ग, ७६ वृष्णिशाल्व महायुद्धमें द्युमद गदाप्रहारसे प्रद्युम्नका रणक्षेत्रसे अपसरण, ७७ श्रीकृष्णकर्त्तृक शाल्ववध, ७७ दन्तवक्र और विदूरथहत्या, श्रीकृष्णकर्त्तृक तत्पुरी आक्रमण, बलरामकर्त्तृक सूतवध, ७८ बल्वलहनन और पीछे तीर्थस्नानादि द्वारा बलदेवकी सूतहत्याजनित पापमुक्ति, ८० श्रीकृष्णकर्त्तृक श्रीदाम नामक ब्राह्मणकी पूजा, ८१ श्रीकृष्णकर्त्तृक स्वीय सखा श्रीदाम ब्राह्मणका पृथक तण्डुलभोजन और उन्हें इन्द्रदुर्लभसम्पत्तिदान, ८२ कुरुक्षेत्रमें रविग्रहसे वृष्टिसमावेश और भूपगणकी परस्पर कृष्णकथा, श्रीकृष्णका कुरुक्षेत्रमें गमन, ८३ श्रीकृष्णभार्याओंको द्रौपदीके निकट अपनी अपनी उद्वाहविषयक उक्ति, ८४ मुनिःसमागम और वसुदेवादिका प्रस्थान, ८५ पितामाताकी प्रार्थनासे श्रीकृष्ण बलरामकर्त्तृक पिताको ज्ञानदान और माताका मृतपुत्र प्रदान, तत्प्रसङ्गमें तत्त्वज्ञानोपदेश, ८६ अर्जुनकर्त्तृक सुभद्राहरण, श्रीकृष्णका मिथिलागमन, भक्त नृप और विप्रको सद्गति प्रदान, ८७ नारदनारायणसंवाद, वेदकर्त्तृक नारायणकी स्तुति, ८८ विष्णुभक्तकी मुक्ति और अन्य देवताभक्तका विभूतिप्राप्तिकथन, ८९ भृगुकर्त्तृक मुनियोंके निकट विष्णुका उत्कर्षतावर्णन, ९० पुनर्वार संक्षेपमें कृष्णलीला और यदुवंशवर्णन।

११श स्कन्दमें—यदुवंशनाशहेतु मौषल कथाका उपक्रम, २ नारदनिमिजयन्तसंवाद, तत्प्रसंगमें वसुदेवके निकट भागवतधर्मप्रकाश, ३ मुनिगणकर्त्तृक माया,

तदुत्तरण, ब्रह्म और कर्म इन चार प्रश्नोंका उत्तरप्रदान, ४ जयन्तीनन्दन द्रविड़सत्तमकर्त्तृक अवतारघटित कार्य-विषयक प्रश्नका उत्तर, ५ युग युगमें भक्तिहीन कनिष्ठाधिकारियोंकी निष्ठा और उपयुक्त विष्णुपूजाविधि, ६ ब्रह्मधामगमनार्थ उद्धवको हरिसे प्रार्थना, ७ उद्धवकी आत्मज्ञानसिद्धिके लिये श्रीकृष्णकर्त्तृक अवधूत इतिहासोक्त अष्ट गुरुका विषयवर्णन, ८ अवधूत इतिहासप्रसङ्गमें श्रीकृष्णकर्त्तृक अवधूतशिक्षावर्णन, ९ श्रीकृष्णकर्त्तृक कुररादिसे शिक्षा करके यदुराजका कृतार्थतावर्णन, १० चतुर्विंशति गुरुका उपाख्यान सुन कर विशुद्धचित्त उद्धवका आत्मतत्त्वज्ञानसाधनरूप देहसम्बन्धविचार और आत्म संसारस्वरूप नहीं है, यह मत-निराश, ११ बद्धमुक्त साधु और भक्तका लक्षण, १२ साधुसङ्गकी महिमा और कर्मानुष्ठान, कर्मत्यागरूप व्यवस्थावर्णन, १३ सत्त्वशुद्धि-द्वारा ज्ञानोदयका क्रम, हंसइतिहास द्वारा चित्तगुणविश्लेषवर्णन, १४ भक्तिका साधनश्रेयत्वकथन, साधनासह ध्यानयोगवर्णन, १५ विष्णुपदप्राप्तिका बहिरङ्ग-साधन, चित्तधारणानुगत अणिमादि अष्टैश्वर्यकथन, १६ ज्ञानवीर्यप्रभावादि विशेष द्वारा हरि आविर्भावयुक्त विभूतिवर्णन, १७ ब्रह्मचारी और गृहस्थोंका भक्ति-लक्षण, स्वधर्म विषयक उद्धवके प्रश्न पर भगवान्‌कर्त्तृक हंसोक्त धर्मरूप वर्णाश्रमविभागकथन, १८ वाणप्रस्थ और यतिधर्मनिर्णय, अधिकारविशेषमें धर्मकथन, १९ पूर्व निर्णीत ज्ञानादिके परित्यागरूपश्रयोकथन, २० अधिकारीविशेषमें गुणदोषव्यवस्था, तत्प्रसङ्गमें भक्ति-योग, ज्ञानयोग और क्रियायोगकथन, क्रियायोग, ज्ञान-योग और भक्तियोगमें अनधिकारी कामासक्त व्यक्तियोंके सम्बन्धमें द्रव्यदेशादिका गुणदोषकथन, २२ तत्त्वसंख्याका अविरोध, प्रकृतिपुरुषविवेक और जन्ममृत्युकथन, २३ भिक्षुगीताकथन, तिरस्कार-सहनोपाय और बुद्धि द्वारा मनका संयमवर्णन, २४ आत्मा और अन्य सभी पदार्थोंकी आविर्भाव-तिरोभावचिन्ता, तत्प्रसङ्गमें सांख्ययोगनिरूपण द्वारा मनका मोहनिवारण, २५ भगवान्‌कर्त्तृक अन्तःकरणसम्भूत सत्त्वादिगुणका वृत्ति-निरूपण, २६ दुष्ट संसर्गसे योगनिष्ठाका व्याघात और साधुसङ्गसे तन्निष्ठाका पराकाष्ठावर्णन, दुष्टसंसर्गनिवृत्त्यर्थ ऐलगीतवर्णन, २७ संक्षेपमें क्रियायोगवर्णन, परमार्थनिर्णय, ज्ञानयोगका संक्षेपवर्णन, २८-२९ पूर्वकथित भक्तियोगका पुनर्वार संक्षेपवर्णन और योगको अति क्लेशकर जान कर उद्धवकर्त्तृक तद्विषयमें सुखोपायप्रश्नजिज्ञासा, ३० मुषलोत्पत्तिकी कथा, श्रीकृष्णकी निजधाम गमनेच्छा, उसी मुषलच्छलसे निज कुल संहार, ३१ यदुवंशकी पुनर्वार देवभावप्राप्ति, श्रीकृष्णका सशरीर निज धाम गमन और वसुदेवादिका उनका अनुगमन।

१२श स्कन्धमें—१ कलिप्रभाववर्णन, वर्णसाङ्कर्य-कथन, भावी मागधवंशीय राजाओंका नामकीर्त्तन, कृष्णभक्ति व्यतीत मुक्तिका कोई अन्य पथ नहीं है, इसका वर्णन, २ कलिकी दोषवृद्धि, कल्कि अवतार और अधार्मिकोंका नाश, पुनर्वार सत्ययुगागमवर्णन, ३ भूमिगीत द्वारा राज्यका दोषादिवर्णन, दोषपूर्ण कलिमें हरिका स्तवकथन, ४ नैमित्तिकादि चार प्रकार लय-कथनपूर्वक हरिसंकीर्त्तन द्वारा संसार निस्तारवर्णन, ५ संक्षेपमें परब्रह्मोपदेश द्वारा राजाका तक्षककर्त्तृक मृत्युभयनिवारण, ६ राजा परीक्षितको मोक्षप्राप्ति, उनके पुत्र जनमेजयका सर्पयज्ञ और शाखाविभागकथन द्वारा व्यासदेवका वर्णन, ७ अथर्ववेदका विस्तार, पुराण विभाग और तल्लक्षण, भागवतश्रवणफलकथन, ८ मार्कण्डेयका तपस्याचरण, कामादिसे अमोहनारायणकी स्तुति, ९ मार्कण्डेय मुनिका प्रलयसमुद्रमें मायाशिशुदर्शन, मुनिका शिशु अन्तरमें प्रवेश और निर्गमवर्णन, १० शिवका आगमन और मार्कण्डेयसम्भाषण, तत्प्रति शिवका वरदान, ११ महापुरुषवर्णन, प्रतिमास पृथक् पृथक् पूजामें हरिके अवतारव्यूहका आख्यान, मानव हो कर भी मार्कण्डेयने जिस प्रकार अमृत पाया था, उस क्रिया-योगका साङ्गोपाङ्गवर्णन, १२ इस पुराणके प्रथम स्कन्धसे ले कर उक्त सभी अर्थोंका सामान्य विशेषरूपसे एकत्र-कथन, १३ यथाक्रम पुराणसंख्याकथन, श्रीमद्भागवत ग्रन्थका दानमाहात्म्यवर्णन।

देवीभागवत।

अब देवीभागवतकी विषयसूची दी जाती है—

१म स्कन्धमें—१ सूतके समीप शौनकादि ऋषियोंका

पुराणप्रश्न, पुराणश्रवणप्रशंसा, भागवतप्रशंसा, २ भगवतीकी स्तुति, ग्रहका संख्यानिर्देश, पुराणलक्षण, शौनकादि मुनिगणकर्तृक नैमिषारण्यका माहात्म्यवर्णन, ३ अष्टादश महापुराणका नाम और संख्याकथन, उपपुराणका नामकथन, जिस जिस द्वापरमें जिस जिस व्यासकी उत्पत्ति हुई है, उसका विषय, भागवतमाहात्म्यकथन, ४ सूतके समीप शुकदेवजन्मविषयक प्रश्न, व्यासदेवकी अपुत्रनिबन्धन चिन्ता, व्यासके समीप नारदका आगमन, पुत्रके लिये नारदके निकट व्यासका प्रश्न, हरिको ध्यानस्थ देख कर ब्रह्माका संशय, विष्णुकर्तृक शक्ति ही सबोंका कारण है, इस विषयका वर्णन, देवीमाहात्म्यवर्णन, ५ ऋषियोंका हयग्रीवविषयक प्रश्न, देवताओंका निद्रागत विष्णुके समीप गमन, ब्रह्मादिदेवगणकर्तृक भगवान्के निद्राभङ्गमें मन्त्रणा, वम्रीनाम कीटकी उत्पत्ति, विष्णुके छिन्नमस्तकका अन्तर्द्धान, दुःखित देव और देवगणकर्तृक जगदम्बिकाकी स्तुति, देवताओंके प्रति आकाशवाणी, विष्णुमस्तकच्छेदनका कारण, दैत्य हयग्रीवकी तपस्यादि, हयग्रीव दैत्यका मस्तकच्छेदन और विष्णुके ग्रीवादेशमें संयोजन, ऋषियोंका मधुकैटभयुद्धविषयक प्रश्न, मधुकैटभकी उत्पत्ति, दोनों दैत्योंकी निजोत्पत्तिका कारणानुसन्धान, दोनों दैत्योंके वाग्बीजकी उपासना, उनका विष्णुनाभि कमलोत्पन्न ब्रह्माका दर्शन, युद्धके लिये उनकी ब्रह्माके निकट प्रार्थना, ब्रह्माकर्तृक विष्णुका स्तव, विष्णुका निद्राभङ्ग नहीं होनेसे ब्रह्माकर्तृक भगवतीका स्तव, विष्णुके शरीरसे योगनिद्राका निःसरण और पार्श्वमें अवस्थान, ८ सूतके समीप ऋषियोंका शक्तिविषयकप्रश्न, शक्तिका प्रधानवर्णन, विष्णुका निद्राभङ्ग, विष्णुके साथ मधुकैटभका युद्धोद्योग, विष्णुकर्तृक महामायाका स्तव, मधुकैटभवध, १० ऋषियोंका शुकदेवोत्पत्ति विषयकप्रश्न, व्यासदेवका भगवतीकी आराधनामें गमन, व्यासका घृताची अप्सराका दर्शन, ११ वृहस्पतिपत्नी ताराके साथ चन्द्रका मिलन, चन्द्रके प्रति वृहस्पतिका तिरस्कार, चन्द्रकर्तृक वृहस्पतिनिराकरण और इन्द्रकर्तृक प्रत्याख्यान, चन्द्रकर्तृक इन्द्रदूतका निराकरण, चन्द्रके साथ इन्द्रका युद्धोद्योग, बुधकी उत्पत्ति, ११ सुद्युम्न राजाका वनगमन, सुद्युम्न राजाका रमणीत्वलाभ, सुद्युम्नराजाकी इलानामप्राप्ति, इलाके साथ बुधका मिलन, पुरूरवाकी उत्पत्ति, इलाकर्तृक भगवतीका स्तव, सुद्युम्नको मुक्ति, १२ पुरूरवाके समीप उर्वशीका नियम, उर्वशीको लानेके लिये गन्धर्वगणका आगमन, उर्वशीका अन्तर्धान, कुरुक्षेत्रमें पुरूरवाका फिरसे उर्वशीदर्शन, १४ घृताचीका शुकीरूपधारण, शुकोत्पत्ति, शुकको गृहस्थाश्रमका अवलम्बन करनेके लिये व्यासका अनुरोध, शुकदेवका विवाह करनेमें अस्वीकार, १५ शुकदेवका वैराग्य, व्यासके प्रति शुकदेवकी उक्ति, शुकदेवसे भागवतका अध्ययन करनेके लिये व्यासका अनुरोध, वटपत्रशायी भगवान्का श्लोकार्द्ध श्रवण, विष्णुके समीप भगवतीका प्रादुर्भाव, १६ विष्णुको विस्मित देख कर भगवतीकी उक्ति, विष्णुकर्तृक श्लोकार्द्ध विषयमें प्रश्न, श्लोकार्द्धका माहात्म्यवर्णन, ब्रह्माके निकट विष्णुकर्तृक भगवतीमाहात्म्यकीर्त्तन, भागवतका लक्षण, शुकदेवको चिन्तित देख कर जीवन्मुक्त जनकके निकट गमनार्थ व्यासका उपदेश, शुककी मिथिला गमनेच्छा, १७ शुकका मिथिलागमन, शुकके साथ द्वारपालका कथोपकथन, शुकदेवका जनकगृहमें विश्राम, १८ शुककी आगमनवार्त्ता सुन कर सत्कार करनेकी इच्छासे राजा जनकका उनके समीप गमन, शुकका आगमनकारणवर्णन, शुकके प्रति जनकका उपदेश, जनकके साथ शुकका विचार, १९ शुकदेवका सन्देहनिराकरण, शुकदेवका विवाह, शुककी तपस्या और अन्तर्धान, व्यासदेवको 'पुत्र पुत्र' पुकारने पर पर्वतादिका प्रत्युत्तर दान, व्यासके समीप महादेवगमन, व्यासदेवकर्तृक शुकका छाया दर्शन, २० पुत्रविरहातुर व्यासदेवका स्वजन्मस्थान द्वीपके मध्य आगमन और दाशराजके साथ मिलन, सरस्वतीके किनारे व्यासका वास, शन्तनुराजका मृत्युवर्णन, चित्राङ्गदको राज्यप्राप्ति, चित्राङ्गदके साथ गन्धर्वचित्राङ्गदका युद्ध, चित्राङ्गदकी मृत्यु और विचित्रवीर्यको राज्यप्राप्ति, स्वयम्बरमें भीष्मकर्तृक परित्यक्त काशीराजका कन्यात्रयहरण, भीष्मकर्तृक काशीराजकी ज्येष्ठकन्याका शाल्वके समीप गमन, भीष्म

और शाल्वकर्त्तृक निराकृत काशीराजकन्याका तपस्यार्थ वनगमन, विचित्रवीर्यकी मृत्यु, धृतराष्ट्र आदिकी उत्पत्ति।

२य स्कन्धमें—१ ऋषियोंका सत्यवतीविषयक प्रश्न, उपरिचर नृपतिवृत्तान्त, मत्स्यराज और मत्स्यगन्धाकी उत्पत्ति, २ पराशर मुनिका आगमन, कामार्त्त पराशरके प्रति मत्स्यगन्धाकी उक्ति, मत्स्यगन्धाकी योजनगन्धानाम-प्राप्ति, व्यासदेवकी उत्पत्ति, ३ महाभिष नृपतिका ब्रह्म-सदनगमन, महाभिष और गङ्गाके प्रति ब्रह्माका अभिशाप, अष्टवसुका वशिष्ठाश्रममें गमन, द्यो नामक वसुकर्त्तृक वशिष्ठका गोहरण, वसुगणके प्रति वशिष्ठका शाप, गङ्गा और वसुगणका मिलन, शन्तनुराजकी उत्पत्ति, ४ शन्तनु-राजकर्त्तृक मानवरूपधारिणी गङ्गाका विवाह, सप्त-वसुगणकी क्रमान्वय गङ्गागर्भसे उत्पत्ति और तत्कर्त्तृक जलमें निक्षेप, भीष्मकी उत्पत्ति, भीष्मको ग्रहण करके गङ्गाका अन्तर्द्धान, शन्तनुराजको गङ्गासे पुनः भीष्म-प्राप्ति, ५ शन्तनुराजका सत्यवती दर्शन, शन्तनुका दाशगृहमें गमन, दाशके निकट सत्यवतीकी प्रार्थना, दाशके वाक्य पर शन्तनुकी चिन्ता और गृह-प्रत्यागमन, शन्तनुके प्रति भीष्मकी उक्ति, भीष्मका दाशगृहगमन, भीष्मकी प्रतिज्ञा और सत्यवती आनयन, ६ कर्णोत्पत्ति विवरण, दुर्वासामुनिका कुन्तिभोजगृहमें आगमन, कुन्ती-को दुर्वासाका मन्त्रदान, कुन्तीकर्त्तृक सूर्यका आह्वान, कर्णकी उत्पत्ति, मञ्जुषाकर्त्तृक कर्णको गङ्गाजलमें परित्याग, पाण्डुके साथ कुन्तीका विवाह, पाण्डुके प्रति मृगरूपी मुनिका शाप, युधिष्ठिर प्रभृतिकी उत्पत्ति, पाण्डुकी मृत्यु, पुत्रोंके साथ कुन्तीका हस्तिनापुर गमन, ७ परीक्षितकी उत्पत्ति, धृतराष्ट्रका वनगमन, विदुरकी मृत्यु, देवीप्रसादसे युधिष्ठिर आदिको मृत दुर्योधनादि-दर्शन, धृतराष्ट्रकी मृत्यु, यादवगण और रामकृष्णकी मृत्यु, अर्जुनका द्वारकागमन और दस्युकर्त्तृक कृष्ण-पत्नीहरण, परीक्षितकी राज्यप्राप्ति, परीक्षितकर्त्तृक शमीकमुनिके गलेमें सर्पप्रदान, परीक्षितके प्रति ब्रह्मशाप रुरुवृत्तान्तवर्णन, ८ रुरुका विवाहोद्योग, रुरुपत्नीकी सर्पदंशनसे मृत्यु, रुरुकर्त्तृक पत्नीके जीवनदानका उद्योग, रुरुपत्नीका जीवनलाभ, परीक्षितकी तक्षकभय निवारणकी चेष्टा, १० तक्षकका आगमन और राहमें कश्यप ब्राह्मणके दर्शन, तक्षकका न्यग्रोध-वृक्ष-दर्शन, कश्यपकर्त्तृक वृक्षका जीवदान, कश्यपका गृहप्रत्यागमन, परीक्षितको मन्त्रादि द्वारा वेष्टित देख तक्षककी चिन्ता, अनुचर सर्पोंका ब्राह्मणके वेशमें परीक्षितके समीप गमन, ब्राह्मणरूपधारी सर्पके समीप राजाका फलग्रहण, राजाकी तक्षकदंशनसे मृत्यु, ११ जनमेजयको राज्यप्राप्ति, जनमेजयका विवाह, उतङ्कमुनिका हस्तिनापुर आगमन, उतङ्कमुनिके साथ जनमेजयका कथोपकथन, रुरुको सर्पहननमें प्रतिज्ञा, डुण्डुभ सर्पके साथ रुरुका कथोपकथन, सर्पयज्ञारम्भ, आस्तीककर्त्तृक सर्पयज्ञनिवारण, १२ जरत्कारुमुनि-कर्त्तृक गर्त्तमें लम्बमान पितृगणका दर्शन, आदित्य-अश्व देख कर विनता और कद्रुका कथोपकथन, सर्पगणके प्रति कद्रुका शाप, गरुड़का इन्द्रलोकसे अमृत आहरण, वासुकि प्रभृति सर्पगणका ब्रह्माके समीप गमन, जरत्-कारुमुनिका दारपरिग्रह, आस्तीकको उत्पत्ति, जनमे-जयके प्रति भागवतश्रवणके लिये व्यासका आदेश।

३य स्कन्धमें—१ ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरके विभूतिकथनमें व्यासके समीप जनमेजयका प्रश्न, व्यास-देवका उत्तर, २ ब्रह्माके निकट नारदका आराध्यनिर्णय-प्रश्न, ब्रह्माका स्वकारण अन्वेषणार्थ पद्मसे नीचे आगमन, ब्रह्माको शेषशायिजनार्दन दर्शन, ब्रह्मा और विष्णुके समीप रुद्रका आगमन, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रके प्रति देवीको उक्ति, देवीदत्त विमान पर ब्रह्मादिका आरोहण, ३ विमान पर आरोहण कर ब्रह्मादिका नानाविध वस्तु-दर्शन, अन्य ब्रह्मादर्शन, अन्य शिवदर्शन, अन्य विष्णु-दर्शन, ब्रह्मादिका देवीदर्शन, ४ भगवतीके समीप गमनोद्यत ब्रह्मादिको रमणीत्वप्राप्ति, देवीपादपद्ममें विश्व-ब्रह्माण्डदर्शन, विष्णुकर्त्तृक भगवतीको स्तुति, ५ शिव-कृत भगवतीस्तव, ब्रह्माकर्त्तृक भगवतीस्तव, ६ ब्रह्मादि-के प्रति भगवतीका उपदेश, ब्रह्माको महासरस्वती प्रदान, विष्णुको महालक्ष्मीप्रदान, महादेवको महाकाली प्रदान, ब्रह्माको पुनर्वार पुरुषत्वप्राप्ति, ७ निर्गुणतत्त्व-कथन, गुणभेद द्वारा तत्त्वस्वरूपवर्णन, ८ गुणसमूहका रूपसंस्थानवर्णन, ९ गुणनिकरका लक्षण, जनमेजयके

...लोक, वृहद्रथ, सुक्रतु, निघना...

समीप व्यासकर्तृक आराध्यनिर्णय, १० मुनिसमाजमें आराध्यनिर्णयमें सन्दिहान जमदग्निका प्रश्न, लोमश द्वारा पूर्वप्रश्नकी मीमांसा, सत्यव्रत ऋषिका उपाख्यान, विप्र-देवदत्तका पुत्रकामनासे यज्ञारम्भ, देवदत्तके प्रति गोभिलका शाप, देवदत्तको पुत्रोत्पत्ति, उतथ्यका वैराग्य-लाभके लिये वनगमन, ११ उतथ्यकी सत्यव्रतनामप्राप्ति, सत्यव्रतके सरस्वतीवोजका उच्चारण, वोजमाहात्म्यमें सर्वज्ञत्वप्राप्ति, देवीमाहात्म्य, १२ अम्बायज्ञविधिवर्णन, जनमेजयके प्रति अम्बायज्ञ करनेके लिये वेदव्यासका उपदेश, विष्णुके प्रति दैववाणी, १४ ध्रुवसन्धिराजका वृत्तान्त, ध्रुवसन्धिकी मृत्यु, नृपपुत्र सुदर्शनको राज्यप्रदानको मन्त्रणा, युधाजितका आगमन, वीरसेनका आगमन, १५ युधाजित और वीरसेनका युद्ध, वीरसेनकी मृत्यु, सुदर्शनको ले कर लीलावतीका प्रस्थान, सुदर्शनका भरद्वाजाश्रममें वास, सुदर्शनविनाशकी इच्छासे युधाजितका भरद्वाजाश्रममें वास, १६ सुदर्शन-विनाशकी इच्छासे युधाजितका भरद्वाजाश्रममें गमन, जयद्रथका द्रौपदीहरण-वृत्तान्त, १७ विश्वामित्रकथा, युधाजितका स्वपुरप्रत्यागमन, सुदर्शनको कामराजवीजप्राप्ति, काशीराजकन्या शशिकलाका सुदर्शनके प्रति अनुराग, १८ शशिकलाका स्वयंवरोद्योग, १९ सुदर्शनके प्रति शशिकलाका गाढ़ानुरागवर्णन, सुदर्शन और अन्यान्य राजाओंका काशीमें आगमन, २० सुदर्शन और नृपगणका कथोपकथन, शशिकलाकी स्वयम्बरसभामें आनेकी इच्छा, २१ काशीपतिके मुखसे उनकी कन्याका अन्य नृपतिको वरण करनेकी अनिच्छा सुन कर युधाजितका तिरस्कार, युद्धकी आशङ्कासे काशीपतिकी कन्याके प्रति उक्ति, २२ सुदर्शनका विवाह, काशीपतिकर्तृक राजाओंकी बिदाई, २३ काशीसे सुदर्शनकी विदाई, युद्धकी इच्छासे अन्य राजाओंका आगमन, सुदर्शनके साथ राजाओंका युद्ध और देवीका आविर्भाव, युधाजितकी मृत्यु, काशीपति कर्तृक देवीका स्तव, २४ दुर्गाका काशीमें वास, सुदर्शनका अयोध्या आगमन, २५ सुदर्शनका अयोध्यामें देवीस्थापन, २६ नवरात्रव्रतविधि, कुमारीविधिवर्णन, २७ वर्जनीय-कुमारीवर्णन, सुशीलवणिकका उपाख्यान, २८ राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नकी उत्पत्ति, रामका दण्डकारण्यमें गमन, मायामृगवध, भिक्षुकके वेशमें रावणका परिचयदान, २९ सीताहरण, रामका जानकी अन्वेषणका उद्योग, जटायुदर्शन, सुग्रीवके साथ रामचन्द्रकी मित्रता, शोकान्वित रामके प्रति लक्ष्मणकी उक्ति, ३० राम और लक्ष्मणके समीप नारदका आगमन, नवरात्रव्रत करनेका उपदेश, रामचन्द्रका व्रतविधान, रामके प्रति भगवतीका वाक्य, रावणवध।

४र्थ स्कन्धमें—१ वेदव्यासके समीप जनमेजयकर्तृक कृष्णावतारादि विषयका प्रश्न, २ कर्मफलका प्राधान्यनिर्णय, ३ कश्यपकर्तृक वरुणका धेनुहरण, कश्यपके प्रति ब्रह्माका शाप, पुत्रके निमित्त दितिका व्रतकरण, अदितिके प्रति दितिका शाप, दितिकी सेवाके लिये उनके समीप इन्द्रका गमन, इन्द्रकर्तृक वज्र द्वारा दितिका गर्भच्छेदन, ४ कृष्णका चौरवृत्तान्त सुन कर जनमेजयका संशय, मायाका प्राधान्यकीर्त्तन, ५ नरनारायणवृत्तान्त, ऋषिद्वयकी तपस्या देख कर इन्द्रकी चिन्ता, तपस्याभङ्ग करनेके लिये इन्द्रका अप्सरागणको प्रेरण, ६ नरनारायणके आश्रममें सहसा वसन्तऋतुका आविर्भाव, अकालवसन्त देख कर नारायणकी चिन्ता, ऋषिद्वयके सामने अप्सरागणका आगमन, उर्वशीकी उत्पत्ति, ७ समस्त ब्रह्माण्डका अहङ्कारावृततावर्णन, ८ प्रह्लादका राज्यलाभ, प्रह्लादके समीप च्यवनकी तीर्थविषयक उक्ति, प्रह्लादका नैमिषारण्यमें आगमन, ९ प्रह्लादका नरनारायणदर्शन, प्रह्लादके साथ नरनारायण ऋषिका युद्ध, प्रह्लादके समीप विष्णुका आगमन, प्रह्लादके प्रति विष्णुकी उक्ति, १० प्रह्लादका इन्द्रके साथ युद्ध और पराजय तथा तपस्याके लिये गमन, पराजित दैत्योंका शुक्रके समीप गमन, ११ शुक्राचार्यका पुत्रलाभके लिये महादेवके समीप गमन, शुक्रको तपस्या, देवपीड़ित दैत्योंका शुक्रजननीके समीप गमन, शुक्रजननीके साथ देवताओंका युद्ध, शुक्रजननीवध, १२ विष्णुके प्रति भृगुका शाप, शुक्रजननीका जीवनलाभ, इन्द्रकर्तृक शुक्रके समीप स्वकन्या जयन्तीका प्रेरण, जयन्तीकर्तृक शुक्रकी परिचर्या, शुक्राचार्यका वरलाभ, शुक्रका जयन्तीको पत्नीत्वमें वरण, दैत्यगणके समीप शुक्रके रूपमें

प्रति देवीका आराधनविषयक उपदेश, ३६ सुरथ और समाधिकी देवी-उपासना, देवीका प्रत्यक्ष आगमन, सुरथ और समाधिकी वरप्राप्ति।

६ष्ठ स्कन्धमें—१ ऋषिगणके समीप सूतका वृत्रासुर-वृत्तान्तकथन, विश्वरूपकी उत्पत्ति, विश्वरूपकी तपस्या, २ विश्वरूपका वध करनेके लिये इन्द्रका गमन, विश्वरूपकी मृत्यु, विश्वरूपकी छेदनार्थ इन्द्र और तष्टाका कथोपकथन, वृत्रासुरकी उत्पत्ति, ३ इन्द्रविजयके लिये वृत्रासुरका स्वर्गगमन, वृहस्पतिके साथ इन्द्रकी मन्त्रणा, इन्द्रका युद्धगमन, देवगणका पलायन, वृत्रासुरका तपस्याके लिये गमन, ४ वृत्रासुरके प्रति ब्रह्माका वरदान, वृत्रासुरके साथ देवगणका पुनर्वार युद्ध, जृम्भिकाकी सृष्टि, देवताओंका पलायन और वृत्रासुरका स्वर्गराज्य-लाभ, वृत्रासुरवधके निमित्त सब देवोंका वैकुण्ठगमन, ५ देवगणके प्रति विष्णुकी उक्ति, देवीकी आराधनाके लिये विष्णुका उपदेश, देवगणकर्त्तृक भगवतीकी स्तुति, देवगणको देवीका वरदान, ६ इन्द्रके साथ वृत्रका बन्धुता स्थापनार्थ ऋषियोंका गमन, वृत्रके साथ इन्द्रका कपट-बन्धुत्वस्थापन, समुद्रके समीप इन्द्रकर्त्तृक वृत्रासुरवध, ७ इन्द्रके प्रति त्वष्टाका शापप्रदान, देवगणकर्तृक इन्द्रकी निन्दा, इन्द्रका स्वपदपरित्यागपूर्वक मानससरोवरमें गमन, नहुषकी इन्द्रत्वप्राप्ति, ८ नहुषकी शचीलाभेच्छा, नहुषके साथ शचीका नियमकरण, शचीकी भगवतीपूजा, शचीके प्रति भगवतीका वरदान, ९ इन्द्रके साथ शचीका मिलन, नहुषका सप्तर्षियान पर आरोहण, नहुषके प्रति अगस्त्यमुनिका शाप, इन्द्रकी पुनः स्वर्गराज्यप्राप्ति, १० कर्मफलाफलकथन, ११ युगभेदसे धर्म-कथन, कलियुगका माहात्म्यकीर्त्तन, १२ तीर्थनामकथन, जनमेजयके आड़ीबकयुद्धकी कारणजिज्ञासा, संक्षेपमें हरिश्चन्द्रका उपाख्यान, वरुणके प्रति हरिश्चन्द्रकी छलना, १३ हरिश्चन्द्रके प्रति वशिष्ठके क्रीतपुत्र द्वारा स्नानकरणका उपदेश, यज्ञपशुके लिये शुनःशेपको आनयन, शुनःशेपके क्रन्दन पर विश्वामित्रकी करुणा, वशिष्ठ और विश्वामित्रका परस्पर शापप्रदान, आड़ीबकका युद्ध, वशिष्ठ और विश्वामित्रकी शापमुक्ति, १४ वशिष्ठके मैत्रावरुणि नामका हेतुकथन, निमिकी यज्ञकरणेच्छा, निमिके प्रति वशिष्ठका शाप, वशिष्ठके प्रति निमिका शाप, अगस्त्य और वशिष्ठकी उत्पत्ति, १५ सब प्राणियोंके नेत्र पर निमिका वास, जनककी उत्पत्ति, कामक्रोधादिका दुर्जयत्व-कथन, १६ हैहयगण द्वारा भृगुवंशीयगणके निकट धनप्रार्थना, हैहयगण द्वारा भृगुवंशीयका विनाश, लोभनिन्दाकथन, १७ हैहयपत्नीगणकी गौरीपूजा, और्व ऋषिकी उत्पत्ति, हैहयगणकी शान्ति, लक्ष्मीका रैवन्तदर्शन, लक्ष्मीके प्रति नारायणका शाप, १८ लक्ष्मीका वड़वारूप धारणपूर्वक शङ्करको आराधना, लक्ष्मीकर्त्तृक हरि और हरका ऐक्यभावकथन, लक्ष्मीके प्रति शङ्करका वरदान, १९ हरकर्तृक विष्णुके समीप चित्ररूपका प्रेरण, विष्णुके समीप दूतकी उक्ति, विष्णुका घोटकरूप धारण और लक्ष्मीके निकट गमन, हैहयकी उत्पत्ति, लक्ष्मीका नवजातपुत्रपरित्याग और वैकुण्ठगमन, २० चम्पाख्य विद्याधरको शिशुप्राप्ति, विद्याधरका शिशु ले कर इन्द्रके निकट गमन, इन्द्रवाक्य पर विद्याधरकर्तृक शिशुको स्वस्थानमें रक्षण, तुर्वसुके निकट नारायणका गमन, तुर्वसुका पुत्रलाभ, २१ हैहयको राजसिंहासन पर स्थापन करनेके बाद तुर्वसुका वनगमन, २२ कालकेतुकर्त्तृक एकावलीका हरण, एकावलीका हैहय-वरणेच्छाकथन, हैहयका कालकेतु भवनमें गमन, कालकेतुके साथ हैहयका युद्ध और कालकेतुकी मृत्यु, एकावलीके साथ हैहयका विवाह, २४ जनमेजयकर्त्तृक विष्णुकी अश्वयोनिप्राप्तिकी कारणजिज्ञासा, नारदके समीप व्यासका संसार-विषयक प्रश्न, व्यासके साथ सत्यवतीका कथोपकथन, २५ काशीराजसुताकी पुत्रोत्पत्ति, नारदके समीप व्यासकी मोहकारण जिज्ञासा, २६ संसारके सभी प्राणी मोहके अधीन हैं, इस वृत्तान्तका कथन, सञ्जयके गृहमें पर्वत नारदकी अवस्थिति, नारदके प्रति दमयन्तीका अनुराग, पर्वतके शापसे नारदकी वानर मुखप्राप्ति, नारदके साथ दमयन्तीका विवाह, पर्वतके वरसे नारदका चारुवदन प्राप्ति, महामायाका बलकथन, २८ नारदका श्वेतद्वीपमें विष्णुके समीप गमन, विष्णुकर्त्तृक नारदके समीप मायाका अजेयत्वकथन, नारदकी मायादर्शनेच्छा, नारदकी स्त्रीरूपप्राप्ति, नारदका तालध्वज नृपदर्शन,

२९ नारदके साथ तालध्वज राजाका विवाह, नारदको पुत्रोत्पत्ति, नारदका मायामग्नतावर्णन, नारदका पुत्रमृत्यु सुन कर विलाप और नारायणका ब्राह्मणवेशमें वहां आगमन, नारदको पुनर्वार पुरुषत्वरूपप्राप्ति, ३० तालध्वज नृपतिका पत्नी विरहमें विलाप, तालध्वजके प्रति भगवान्‌का उपदेश, महामायाका महिमावर्णन, ३१ नारदको विषस देख कर ब्रह्माको जिज्ञासा, ब्रह्माके समीप नारदका स्ववृत्तान्तकथन, व्यासकर्त्तृक गुणमाहात्म्य कीर्त्तन।

७म स्कन्धमें—१ चन्द्र और सूर्यवंशका कथारम्भ, दक्षप्रजापतिकर्त्तृक प्रजासृष्टि, नारदकर्त्तृक दक्षपुत्रोंका दूरीकरण, नारदके प्रति दक्षका शापप्रदान, २ सूर्यवंशवर्णन, च्यवनमुनिका उपाख्यान, शर्यातिदुहितृकर्त्तृक च्यवनका नेत्रविद्धकरण, च्यवनके निकट शर्यातिका अनुनय, च्यवनकर्त्तृक शर्यातिको कन्याप्रार्थना, कन्याप्रदानविषयमें मन्त्रियोंके साथ राजाको मन्त्रणा, शर्यातिका च्यवनऋषिको कन्यादान, ४ शर्याति-कन्याकी पतिसेवा, अश्विनीकुमारका च्यवन-पत्नीदर्शन, अश्विनीकुमारको च्यवनपत्नीके प्रति उक्ति, ५ च्यवनको यौवनप्राप्ति, च्यवन और अश्विनीकुमारद्वयको समानाकृतिदर्शन करके सुकन्याकी भगवती स्तुति, भगवतीके प्रसादसे सुकन्याका च्यवनलाभ, ६ शर्यातिका च्यवनाश्रममें गमन, शर्यातिके प्रति यज्ञ करनेके लिये च्यवनकी उक्ति, शर्यातियज्ञमें अश्विनीकुमारका सोमपान, ७ शर्याति-यज्ञमें इन्द्रके साथ च्यवनका विवाद, च्यवनविनाशके लिये इन्द्रका वज्रत्याग, इन्द्रविनाशके लिये च्यवनकर्त्तृक महासुरका उत्पादन, च्यवनके निकट इन्द्रकी क्षमाप्रार्थना, रैवत नृपतिकी उत्पत्ति, रैवतका स्वकन्या रेवतीको ग्रहण करके ब्रह्मलोकमें गमन, ८ ब्रह्माके समीप रैवतकी स्वकन्याकी वरजिज्ञासा, बलदेवको रेवतीका वरनिर्देश, रैवतनृपतिका बलदेवको कन्यादान, इक्ष्वाकुका जन्मकथन, ९ इक्ष्वाकुके स्वपुत्र विकुक्षिकी शशाद नामप्राप्ति, ककुत्स्थका राज्यलाभ, इन्द्रका ककुत्स्थ नृपतिका वाहनत्व, ककुत्स्थका वंशकीर्त्तन, यौवनाश्वका पुत्रके लिये ऋषियोंके समीप गमन, यौवनाश्वसे मान्धाताकी उत्पत्ति, १० मान्धाताका वंशकीर्त्तन, सत्यव्रतकी उत्पत्ति, सत्यव्रतका राज्यत्याग, विश्वामित्रके पुत्र गालवका वृत्तान्त, सत्यव्रतकर्त्तृक वशिष्ठकी धेनुहत्या, वशिष्ठके शापसे सत्यव्रतकी त्रिशङ्कु नामप्राप्ति, ११ सत्यव्रतका मनस्तापसे मृत्युयोग, सत्यव्रतके प्रति भगवतीकी प्रसन्नता, नृपतिकर्त्तृक सत्यव्रतकी अयोध्यामें आनयन, सत्यव्रतके प्रति नृपतिका उपदेश, १२ त्रिशङ्कुकी राज्यप्राप्ति, त्रिशङ्कुकी स्वशरीरसे स्वर्गगमनके लिये वशिष्ठके प्रति उक्ति, वशिष्ठके शापसे त्रिशङ्कुकी चाण्डालत्वप्राप्ति, त्रिशङ्कुका राज्यत्याग, हरिश्चन्द्रका राज्यलाभ, १३ विश्वामित्रकी चण्डालगृहमें कुक्कुरमांसभक्षणेच्छा, आपद्कालमें देहरक्षाविधिकथन, विश्वामित्रके समीप उनकी पत्नीका दुर्भिक्ष विवरण, त्रिशङ्कुकृत उपकारवर्णन, त्रिशङ्कुके प्रत्युपकारार्थ विश्वामित्रका उनके समीप गमन, १४ त्रिशङ्कुका स्वर्गगमन, हरिश्चन्द्रको पुत्रके लिये वरुणकी तपस्या, हरिश्चन्द्रके प्रति वरुणका वरदान, हरिश्चन्द्रकी पुत्रोत्पत्ति, हरिश्चन्द्रकी पुत्र द्वारा यज्ञ करनेकी प्रतिज्ञा, १५ हरिश्चन्द्रगृहमें वरुणका आगमन, हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहितका नामकरण, हरिश्चन्द्रके गृहमें पुनर्वार वरुणका आगमन, रोहितका पलायन, वरुणके शापसे हरिश्चन्द्रकी जलोदररोगप्राप्ति, हरिश्चन्द्रके गृहमें पुनर्वार वरुणका आगमन, १६ रोहितके साथ इन्द्रका कथोपकथन, हरिश्चन्द्रके प्रति वशिष्ठका क्रीतपुत्र द्वारा यज्ञ करनेका उपदेश, अजीगर्त्तका पुत्रविक्रय, शुनःशेफका क्रन्दन, शुनःशेफको परित्याग करनेके लिये विश्वामित्रका उपदेश, शुनःशेफका परित्याग करनेमें हरिश्चन्द्रका अस्वीकार, १७ शुनःशेफको विश्वामित्रका वरुणमन्त्रप्रदान, वरुणकी शुनःशेफमुक्ति और राजाको नीरोगकरण, विश्वामित्रका पुत्र बन कर शुनःशेफका उनके साथ गमन, रोहितके साथ हरिश्चन्द्रका मिलन, हरिश्चन्द्रको ले कर वशिष्ठ और विश्वामित्रका विवाद, १८ हरिश्चन्द्रकर्त्तृक वनके मध्य रोती हुई स्त्रीका दर्शन, विश्वामित्रकी लोकपीड़ाकर तपस्या करनेसे हरिश्चन्द्रका निषेध, विश्वामित्रकर्त्तृक हरिश्चन्द्रभवनमें मायाशूकरप्रेरण, शूकरकर्त्तृक राजाका उपवनभङ्ग, शूकरका अनुसरण करते हुए राजाका गहन-वनमें

प्रवेश, हरिश्चन्द्रके समीप वृद्ध ब्राह्मणके वेशमें विश्वामित्रका आगमन, १९ पुत्रविवाहके लिये ब्राह्मणवेशधारी विश्वामित्रकी धनप्रार्थना, विश्वामित्रको हरिश्चन्द्रका राज्यदान, हरिश्चन्द्रके समीप विश्वामित्रकी दक्षिणाप्रार्थना, हरिश्चन्द्रका पुत्र और भार्याके साथ राज्यपरित्याग, २० दक्षिणाके लिये विश्वामित्रका उत्पीड़न, हरिश्चन्द्रका वाराणसीगमन, पत्नीविक्रयकथा सुन कर राजाका मोह, २१ हरिश्चन्द्रके निकट विश्वामित्रकी पुनर्बार दक्षिणाप्रार्थना, हरिश्चन्द्रपत्नीका किसी भी ब्राह्मणके यहाँ धनप्रार्थना करनेका अनुरोध, क्षत्रियका भिक्षा-निषिद्धत्वकथन, २२ हरिश्चन्द्रका पत्नीविक्रयार्थ राजमार्ग हो कर गमन, ब्राह्मणके वेशमें विश्वामित्रका राजपत्नीक्रय, मातृविरहमें रोहितका क्रन्दन, ब्राह्मणका राजपुत्रक्रय, हरिश्चन्द्रका विलाप, विश्वामित्रको हरिश्चन्द्रका दक्षिणादान, अल्प धन देख कर विश्वामित्रका क्रोध, २३ आत्मविक्रयार्थ हरिश्चन्द्रका गमन, हरिश्चन्द्रको खरीदनेके लिये चण्डालका आगमन, चण्डालके हाथ बिकनेमें अनिच्छा देख विश्वामित्रकी कटूक्ति, विश्वामित्रका दक्षिणा ले कर प्रस्थान, २४ हरिश्चन्द्रकी काशीस्थ श्मशानरक्षा, हरिश्चन्द्रका अनुताप, २५ रोहितको सर्पदंशन, राजपत्नीको रोती हुई देख कर ब्राह्मणका तिरस्कार, राजपत्नीका विलाप, नगरपालकर्तृक राजपत्नीकी अवमानना, चण्डालकर्तृक हरिश्चन्द्रको राजपत्नीवध करनेका आदेश, हरिश्चन्द्रका स्त्रीवध करनेमें निषेध, २६ पुनः चण्डालके कहनेसे स्त्रीवध करनेमें हरिश्चन्द्रका उद्योग, हरिश्चन्द्रका नाम ले कर राजपत्नीका विलाप, राजा और रानीका परस्पर प्रत्यभिज्ञान, राजाका विलाप, २७ चितामें पुत्रको रख कर राजाकी भगवतीस्तुति, हरिश्चन्द्रके समीप देवताओंका आगमन, राजपुत्रका जीवनलाभ, हरिश्चन्द्रके साथ इन्द्रादिका कथोपकथन, हरिश्चन्द्रके प्रभावसे प्रजागणका स्वर्गगमन, रोहितका राज्याभिषेक, २८ शताक्षीका माहात्म्यकथन, दुर्गम नामक दानवका यज्ञादिनाशकरण, शतवर्षव्यापी अनावृष्टि, ऋषिगणकर्तृक भगवतीकी पूजा, भगवतीको शाकम्भरी नामप्राप्ति, दुर्गमासुरका युद्धमें आगमन, देवीके शरीरसे शक्तिगणका आविर्भाव, दुर्गमासुरका वध, भगवतीको दुर्गानामप्राप्ति, २९ भुवनेश्वरीरूपकथन, हरि और हरको शक्तिशून्यता, ब्रह्माकर्तृक सनकादिके प्रति महाशक्तिकी आराधना करनेका आदेश, ३० सनकादिका तपस्याके लिये गमन, सनकादिके समीप देवीकी उक्ति, हरि और हरका प्रकृतिस्थ होना, दक्षके गृहमें सतीकी उत्पत्ति, दक्षका शिवविद्वेषकारणनिर्णय, विष्णुकर्तृक सतीका देहच्छेद, पीठस्थानकथन, पीठस्थानमाहात्म्य, ३१ तारकासुरका विवरण, देवगणकी देवीपूजा, देवगणके समीप देवीका आविर्भाव, देवगणकी देवीस्तुति, हिमालयगृहमें देवीका जन्मग्रहणकथन, ३२ सुरगणके समीप देवीका आत्मतत्त्वप्रकाश, सृष्टिप्रक्रियाकथन, पञ्चीकरण, ३३ तत्त्वदृष्टिसे मायाका अभावत्वकथन, देवगणको देवीका विराट् मूर्त्तिप्रदर्शन, देवीके प्रति देवगणकी स्तुति, ३४ जन्मग्रहणका कर्मजन्यत्वकथन, ज्ञानका श्रेष्ठत्वकथन, वेदान्तदर्शनका सारनिरूपण, ओङ्कार-बीजका स्वरूपवर्णन, ३५ योगस्वरूपवर्णन, योगासनकथन, प्राणायामकथन, प्रत्याहारादिकथन, मन्त्रयोगकथन, षट्चक्रादिका स्थाननिर्णय, ३६ ब्रह्मतत्त्वनिरूपण, ब्रह्मज्ञानोपदेशका पात्रनिर्देश, ब्रह्मज्ञान-दाताका गुरुत्वकथन, ३७ भक्तिस्वरूपादिकीर्त्तन, ज्ञानका मुक्तिकारणत्व-कथन, ३८ शक्तिमूर्त्तिके साथ देवीका स्थानकीर्त्तन, देवीनामपाठका फलकीर्त्तन, ३९ देवीपूजानिरूपण, देवीका ध्यान, ४० देवीका बाह्यपूजाक्रमकीर्त्तन।

८म स्कन्धमें—१ नारदनारायणसंवाद, नारदके प्रति नारायणका देवीस्वरूपवर्णन, स्वायम्भुव मनुकी देवीस्तुति, मनुके प्रति देवीका वरदान, २ ब्रह्माकी नासिकासे वराहकी उत्पत्ति, वराहकर्तृक पृथिवीका उद्धार, ब्रह्माकी वराहमूर्त्तिकी स्तुति, हिरण्याक्षवध, ३ स्वायम्भुव मनुकी पृथ्वीप्राप्ति, स्वायम्भुवका प्रजासर्ग, ४ प्रियव्रतवंशकीर्त्तन, सप्तद्वीपका सामान्य विवरण, ५ जम्बूद्वीपका विवरण, इलावृतादि वर्षका वृत्तान्त, ६ जाम्बूनद सुवर्णकी उत्पत्ति, नदनदी और देवीमूर्त्तिका वृत्तान्त, ७ सुमेरुगिरिका विवरण, ध्रुवनक्षत्रवृत्तान्त, गङ्गाधारावृत्तान्त, ८ इलावृतवर्षका विवरण, भद्राश्ववर्षका

…नीक, वृहद्रथ, सुक्रतु, निषधा…

विवरण, ९ हरिवर्ष-वृत्तान्त, केतुमालवर्षका विवरण, रम्यकवर्ष-वृत्तान्त, १० हिरण्मयवर्ष-विवरण, उत्तर-कुरुका विवरण, किम्पुरुषवर्षकथन, ११ भारतवर्षवृत्तान्त, पर्वत और नदीका विवरण, भारतवर्षका प्राधान्य-कथन, १२ प्लक्षद्वीपवृत्तान्त, शाल्मलद्वीपवृत्तान्त, कुश-द्वीप विवरण, १३ क्रौञ्चद्वीपविवरण, शाकद्वीपवृत्तान्त, पुष्करद्वीप विवरण, १४ लोकालोकगिरिवर्णन, उत्तरायणादिकथन, १५ सूर्यगतिवर्णन, सूर्यरथवर्णन, १६ मासादिका विषयवर्णन, चन्द्रस्थितिकथन, चन्द्रगति-वर्णन, शुक्रादिग्रहगणका गतिवर्णन, १७ ध्रुवसंस्थान-कीर्त्तन, ज्योतिश्चक्रवर्णन, १८ राहुका स्थितिकीर्तन, पृथ्वी और अतलादिका परिमाणनिर्णय, १९ अतलका विवरण, वितलका विवरण, सुतल-वृत्तान्त, २० तलातल और महातलका वृत्तान्त, रसातल और पाताल-का विवरण, अनन्तमूर्त्तिका माहात्म्यकथन, २१ सना-तनकृत अनन्तस्तुति, नरकनामकथन, २२ विशेष पापके कारण विशेष विशेष नरकको प्राप्ति, २३ अवीचि-प्रमुख नरकवर्णन, २४ तिथिविशेषमें देवीपूजाविधि, वार और नक्षत्रविशेषमें देवीपूजाविधि, योग, करण और मासविशेषमें देवीपूजाविधि, देवीस्तुति।

९म स्कन्धमें—१ परमब्रह्मरूपिणी प्रकृति, सृष्टिविषय-में गणेशजननी, दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री आदिका पञ्चविध रूपधारणविषयक वर्णन, नित्यप्रकृतिवर्णन, गणेशजननी, दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सर-स्वती और सावित्री इन पञ्चप्रकृतियोंका वर्णन, प्रकृति-की अंशरूपिणी गङ्गा, तुलसी, मनसा, षष्ठी, मङ्गल-चण्डिका, काली और वसुन्धरादिका वर्णन, प्रकृतिकी कलारूपिणी वह्निपत्नी स्वाहा, यज्ञपत्नी दक्षिणा, दीक्षा, स्वधा, स्वस्ति, पुष्टि, तुष्टि, सम्पत्ति, धृति, सती, दया, प्रतिष्ठा, कीर्त्ति, क्रिया, मिथ्या, शान्ति, लज्जा, बुद्धि, मेधा, धृति, मूर्त्ति, शोभानुरूपा लक्ष्मी और निद्रादिका वर्णन, दुर्गा, सावित्री और लक्ष्मी आदिकी प्रथमपूजा-विधि, ग्राम्यदेवियोंका पूजाकथन, २ मूलप्रकृतिका विषय और भगवतीका पञ्चप्रकृतिरूपधारणविषयक वर्णन, गोलोकस्थित प्रकृति-पुरुषवर्णन, प्रकृतिमें श्रीकृष्णका वीर्याधान, कमला और राधिकाकी उत्पत्ति, दुर्गाका आविर्भाव, श्रीकृष्णका गोपिकापति और महादेव-मूर्त्तिधारण, ३ मूलशक्तिप्रसूत डिम्बका विवरण, महाविराट्‌की उत्पत्ति, विष्णु और महादेवकी उत्पत्ति, ४ नारदकी दुर्गादि पञ्चप्रकृति और कला प्रकृतिविषयक प्रश्न, सरस्वतीकी पूजा, स्तोत्र और कवचादिवर्णन, विश्वजय नामक सरस्वतीकवचधारण-का फल, ५ याज्ञवल्क्यकृत सरस्वती-महास्तोत्र, ६ गङ्गाके शापसे सरस्वतीका नदीरूपमें पृथिवी पर अव-तरण और उस नदीका माहात्म्यवर्णन, विस्तारितरूपसे सरस्वतीका अवतरणवर्णन, पद्माके प्रति रानीका अभि-शाप, लक्ष्मी, गङ्गा और सरस्वतीका भूलोक पर सरिदादि रूपमें अवतरण, ७ शापोद्धारार्थ नारायणके निकट सर-स्वती, गङ्गा और कमलाका निवेदन, सरस्वती, गङ्गा और लक्ष्मीका शापमोचन, भक्तलक्षण-कथन, ८ सरस्वती-प्रभृतिका भारतमें गमन, कलिका विवरण, कल्कि अव-तारवर्णन, पुनः सत्ययुगप्रभृतिवर्णन, प्राकृत प्रलयवर्णन, ९ सच्चिदानन्द परमात्मासे ब्रह्मादि समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति, वसुन्धराका उत्पत्तिविवरण, वराहकर्तृक पृथिवीका उद्धारकथन, पृथिवीका पूजा विवरण, पृथिवी-का ध्यान, स्तव और मन्त्रादि कथन, १० पृथिवीके प्रति अपराध करनेसे नरकादि फलप्राप्ति, भूमि और पृथिवी प्रभृति शब्दकी व्युत्पत्ति, ११ गङ्गाकी उत्पत्ति और माहात्म्यवर्णन, भगीरथकी गङ्गापूजा, १२ कण्व-शाखोक्त गङ्गाका ध्यान, विष्णुपदी नामक गङ्गास्तोत्र, गोलोकसे गङ्गाका प्रथोमत्पत्तिवर्णन, १३ गङ्गादेवी किस प्रकार विष्णु-पादपद्मसे उत्पन्न हुईं, किस प्रकार ब्रह्माके कमण्डलुमें रहने लगीं और किस प्रकार शिवकी प्रेयसी बनीं इस विषयमें नारदका प्रश्न, गङ्गा किस प्रकार नारायणप्रिया हुईं, तद्विषयक वृत्तान्तवर्णन, कृष्णके प्रति राधाका तिरस्कार, राधिकाके भयसे गङ्गा-का कृष्णचरणमें प्रवेश, ब्रह्मा, विष्णु और शिवादिका गोलोक गमन, ब्रह्मा और महेश्वरके प्रति कृष्णकी उक्ति, कृष्णपादपद्मसे गङ्गाका वहिर्गमन, गङ्गावारिका कुछ अंश ब्रह्माकर्तृक अपने कमण्डलुमें और कुछ अंश शिव-के मस्तक पर धारण, १४ जाह्नवीके नारायणपत्नीत्वका कारणनिर्देश, १५ तुलसीका उपाख्यान, उस विषयमें

नारदका प्रश्न, वृषध्वजका उपाख्यान, १६ कुशध्वजपत्नी मालावतीके गर्भसे लक्ष्मीकी वेदवतीरूपमें जन्मग्रहण कथा, वेदवतीकी तपस्या, रावणके प्रति वेदवतीका अभिशाप, वेदवतीका सीतारूपमें जन्मग्रहण और रामका वनगमन, मायासीताकी उत्पत्ति, रावणका मायासीताहरण, सीताका द्रौपदीके रूपमें जन्मग्रहण, द्रौपदीके पञ्चपति होनेका कारण, १७ धर्मध्वजका निज पत्नी माधवीके साथ विहार, धर्मध्वजके औरससे तुलसीकी उत्पत्ति और उनकी नामनिरुक्ति, तुलसीकी तपस्या, तुलसीका वृक्षरूपत्ववर्णन, १८ तुलसीका मदनावस्था वर्णन, शङ्खचूड़का तुलसीके साथ कथोपकथन, तुलसीको ग्रहणार्थ शङ्खचूड़के प्रति ब्रह्माका उपदेश, १९ शङ्खचूड़के साथ तुलसीका विवाह, देवगणके प्रति शङ्खचूड़का उपद्रव, देवगणका वैकुण्ठगमन, शङ्खचूड़का वृत्तान्त-कथन, २० महादेवकर्तृक चित्ररथको दूतके रूपमें शङ्खचूड़के निकट प्रेरण, महादेवके साथ स्कन्दवीरभद्रादि, इन्द्रयमादि और शक्तिगणका सम्मिलन तुलसीके साथ शङ्खचूड़का कथोपकथन, २१ शङ्खचूड़का युद्धोद्योग, शङ्खचूड़का महादेवके निकट गमन, शङ्खचूड़के प्रति महादेवकी उक्ति, महादेवके प्रति शङ्खचूड़की प्रत्युक्ति, शिवका पुनः कथन, २२ देवगणके साथ असुरोंका परस्पर युद्धारम्भ, स्कन्दके साथ असुरोंका युद्ध, कालीके साथ शङ्खचूड़का युद्ध, महादेवके निकट कालीका संग्रामसंवाद-प्रदान, २३ शिवके साथ शङ्खचूड़का संग्राम, हरिकर्तृक वृद्ध ब्राह्मणवेशमें शङ्खचूड़का कवचहरण और उनका तुलसीके निकट गमन, शङ्खचूड़वध, २४ नारायणका शङ्खचूड़रूप-धारण और तुलसीके निकट गमन, तुलसीके साथ नारायणका सहवास, नारायणके प्रति तुलसीका अभिशाप, तुलसीका माहात्म्यवर्णन, गण्डकी-जात शालग्रामशिलासमूहका विवरण और उनका माहात्म्यवर्णन, २५ महामन्त्रसहित तुलसीपूजा, २६ सावित्रीका उपाख्यान जाननेके लिये नारायणके निकट नारदका प्रश्न, अश्वपतिका वृत्तान्तकथन, गायत्रीजपका फल और जपका प्रकारनिर्देश, सावित्रीव्रतकथन, सावित्रीका ध्यान, सावित्रीस्तव, २७ अश्वपतिकन्यारूपमें सावित्रीका जन्मग्रहण, यमसावित्रीसंवाद, २८ यमके निकट सावित्रीका धर्मकर्मादि विषय पर प्रश्न, धर्मकर्मादि विषय पर यमका प्रत्युत्तरप्रदान, कौन कौन कर्म करनेसे जीवगण कैसी गति पाते हैं उस विषयमें धर्मके प्रति सावित्रीका प्रश्न, २९ सावित्रीके प्रति धर्मका वरदानाभिप्रायप्रकाश, धर्मके निकट सावित्रीको सत्यवानके औरससे शतपुत्रादिकी प्राप्ति और जीवका कर्मविपाक सुननेके लिये प्रार्थना, सावित्रीके प्रति धर्मका वरदान, जीवके कर्मविपाक और दानधर्मादिका फलकथन, ३० किस किस कर्म द्वारा स्वर्गलाभ और किस किस कर्म द्वारा मानवगणको पुत्रलाभ होता है इस विषयमें धर्मके प्रति सावित्रीका प्रश्न और यमके तद्विषयक उत्तरमें दानादिका फलकथन, जन्माष्टमी और शिवरात्रि प्रभृति व्रतफलकथन, हरिपूजा और शिवपूजादिका फलकथन, ३१ यमका सावित्रीको शक्तिमन्त्र प्रदान, ३२ पापियोंके पापका फल भोगनेके लिये नरककुण्डकथन, ३३ भिन्न भिन्न पातकियोंका भिन्न भिन्न कुण्डपातवर्णन, ३४ विविध पापफलकथन, विविध नरककुण्डवर्णन, ३५ पापियोंके निमित्त अवशिष्ट कुण्डवर्णन, ३६ कुण्ड कैसा है? पातकी उसमें किस प्रकार रहते हैं? इस विषयमें यमके प्रति सावित्रीका प्रश्न, कर्मबन्धन किस प्रकार विनष्ट होता है और यमपुरीका भय नहीं रहता धर्मका तद्विषय-कीर्त्तन, जीवके भोगदेहका कथन, ३७ षड़शीतिकुण्ड संख्या और उनका लक्षणनिर्देश, ३८ यमके निकट सावित्रीकी देवीभक्तिप्रार्थना, यमका सावित्रीके प्रति शक्तिभक्तिका वरदान, देवीका गुणकीर्त्तन और देवीका उत्कर्षवर्णन, ३९ महालक्ष्मीका उपाख्यान, ४० नारायणके निकट लक्ष्मीकी समुद्रकन्या होनेके विषयमें नारदका प्रश्न और नारायणका उत्तर, इन्द्रके प्रति दुर्वासाका अभिशापवर्णन, इन्द्रका स्वर्गराज्यभ्रंश, इन्द्रके प्रति बृहस्पतिका उपदेश, राज्यभ्रंश निवेदनार्थ इन्द्रका ब्रह्माके निकट गमन, ४१ समस्त देवताओंके साथ ब्रह्माका विष्णुके समीप गमन, लक्ष्मीके परित्याज्यस्थानोंका कथन, समुद्रमें जन्म लेनेके लिये लक्ष्मीके प्रति विष्णुका आदेश, सागरमन्थन और

लक्ष्मीकी उत्पत्ति, ४२ महालक्ष्मीका अर्चनाक्रम, महालक्ष्मीका ध्यान, महालक्ष्मीका स्तोत्र, ४४ स्वाहाका उपाख्यान, राधाके भयसे कृष्णका पलायन, दक्षिणाके प्रति राधाका अभिशाप, कृष्णविरहमें राधाकी खेदोक्ति, लक्ष्मीके अङ्गसे दक्षिणाकी उत्पत्ति, दक्षिणाका ध्यान, और पूजाविधि, ४६ नारायणके निकट नारदकी षष्ठी, मङ्गलचण्डी और मनसाका विवरणजिज्ञासा, प्रियव्रतके साथ षष्ठीदेवीका साक्षात्, षष्ठीदेवीकर्तृक प्रियव्रतके मृतपुत्रका जीवनदान, षष्ठीपूजाविधि, षष्ठीस्तोत्र, ४७ मङ्गलचण्डीकी पूजा और कथा, मनसाका उपाख्यान, ४८ मनसाका ध्यान और पूजाविधि, जरत्कारु और मनसाका विवरण, आस्तीकका जन्म, मनसामाहात्म्य और पूजादि, ४९ सुरभिका उपाख्यान, सुरभिपूजा, सुरभिस्तोत्र, ५० राधा और दुर्गामाहात्म्यवर्णन, राधाके बीजमन्त्रादि, राधास्तोत्र, दुर्गादेवीका माहात्म्य और उनका पूजादि विवरण।

१०म स्कन्धमें—१ स्वायम्भुव मनुके वृत्तान्तकथन पर देवीमाहात्म्यकथन, स्वायम्भुव मनुकी उत्पत्ति और उनकी देवी-आराधना, २ स्वायम्भुव मनुके प्रति देवीका वरदान, देवीका विन्ध्यापर्वत पर गमन, विन्ध्याचलका वृत्तान्तकथन, ३ विन्ध्याचलका सूर्यगतिनिरोध, ४ देवताओंका शिवके समीप गमन और सूर्यगतिनिरोधकथन, ५ देवताओंका विष्णुके निकट गमन और विष्णुस्तुति, देवताओंके प्रति विष्णुका अभयदान, ६ देवताओंका विष्णुके समीप सूर्यगतिनिरोधकथन, अगस्त्यके निकट गमनार्थ देवताओंके प्रति विष्णुका उपदेश, देवताओंका वाराणसीगमन, कार्यसिद्धि करनेके लिये अगस्त्यका अङ्गीकार, ७ अगस्त्य द्वारा विन्ध्याचलका उन्नतिनिवारण, ८ स्वारोचिष मनुकी उत्पत्ति और वृत्तान्तकथन, ९ चाक्षुष मनुकी उत्पत्ति और वृत्तान्तकथन, चाक्षुष मनुको देवीका राज्यप्रदान, १० वैवस्वत मनु और सावर्णि-मनुका वृत्तान्तकथन, सुरथ नृपतिका उपाख्यान, ११ महाकालीका चरित्रकथन, मधुकैटभवधार्थ ब्रह्माका महामायास्तव, मधुकैटभवध, १२ सावर्णि मनुके वृत्तान्तकथन पर महिषासुरवध, शुम्भ और निशुम्भवध-वर्णन, १३ अवशिष्ट छः मनुओंके वृत्तान्तकथन पर करूष, पृषध्र, नाभाग, दिष्ट, शर्याति और त्रिशङ्कु, इन छः राजाओंकी भ्रामरीशक्तिकी आराधना, उक्त छः राजाओंकी मन्वन्तराधिपत्य प्राप्तिका वर दे कर भ्रामरीदेवीका अन्तर्धान, भ्रामरीदेवीका वृत्तान्तकथन, भ्रामरीवृत्तान्त-श्रवणकी फलश्रुति।

११श स्कन्धमें—१ सदाचारकथनमें, प्रातःकृत्यवर्णन, प्राणायामविवरण, २ शौचादिविधि, ३ स्नानविधि, रुद्राक्षमाहात्म्य और रुद्राक्षधारणविधि, ४ एकमुख, द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख और पञ्चमुखादि चतुर्दशमुख पर्यन्त रुद्राक्षधारणका फल, देहके किस किस स्थान पर कितने रुद्राक्ष धारण करने होते हैं, उसका विवरण, ५ जपमालाका विधान, रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णन, ६ रुद्राक्षका आत्यन्तिक माहात्म्यवर्णन, ७ एकमुखादि रुद्राक्षधारणका माहात्म्य, ८ भूमिशुद्धिका विवरण, ९ शिरोव्रत विधानवर्णन, १० गौणभस्मका विवरण ११ गौणभस्मका त्रिविधित्व-कारणकथन, त्रिपुण्ड्रधारणका विवरण, १२ भस्मधारणमाहात्म्यवर्णन, १३ भस्ममाहात्म्यकीर्त्तन, १४ विभूतिधारणमाहात्म्य, १५ त्रिपुण्ड्रधारणमाहात्म्य, दुर्वासाके ललाटभूत भस्मपतनहेतु कुम्भीपाकनरकस्थ पापियोंकी सुख और आनन्दकी प्राप्ति, कुम्भीपाकका पुण्यतीर्थकथन, पुनर्वार अन्य कुम्भीपाक-निर्माण, ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणमाहात्म्य, १६ सन्ध्याविधि, गायत्रीकी उपासना, आचमनविधि, रेचक, पूरक और कुम्भककालमें जो जो देवता ध्येय हैं उनका विवरण, सन्ध्योपासना द्वारा सूर्यभक्षक मन्देह नामक त्रिंशत्कोटि राक्षस-दाहनविवरण, सिद्धासनवर्णन, न्यासविधि, गायत्रीका चतुर्विंशति मुद्राप्रकरण, १७ त्रिविधागायत्रीका विवरण, गायत्रीकी आराधना, पुष्पसमूहके देवदेवीविशेषका प्रियत्वकथन, १८ देवीपूजाका विशेषविधान, देवीपूजाकालमें देय पुष्पादिका संख्यानिर्देश और फललाभ, देवीपूजामाहात्म्य, १९ मध्याह्नसन्ध्याकथन, २० ब्रह्मयज्ञादिकीर्त्तन, सायाह्नसन्ध्यावर्णन, २१ गायत्रीका पुरश्चरण, २२ वैश्वदेवादि पञ्चयज्ञका विवरण, प्राणाग्निहोत्र, २३ भोजनके बाद पात्रान्नप्रदान, प्राजापत्य, कृच्छ्र, सान्तपनादि, पारक और चान्द्रायणादिका लक्षणनिरूपण, २४ गायत्रीका शान्तिकथन, दोष और रोगादि-

की शान्ति, होम और जपादि द्वारा जय और इष्टादि-लाभ, गायत्रीजप द्वारा अणिमादि ऐश्वर्य, इन्द्र और ब्रह्मत्वादिप्राप्ति, गायत्रीजप द्वारा पञ्चमहापातकसे मुक्ति-लाभ।

१२श स्कन्धमें—नारायणके निकट नारदके सुख-साध्य पुण्य कर्मोंका प्रश्न, गायत्रीके मध्य अधिक पुण्य-प्रद मुख्यतम क्या है और गायत्रीके ऋषि तथा छन्द प्रभृति विषयों पर प्रश्न, गायत्रीजपका सर्वश्रेष्ठत्ववर्णन, गायत्रीका छन्द और देवतादिकथन, २ गायत्रीके प्रत्येक वर्णका शक्तिकथन, गायत्रीके वर्णोंका तत्त्वकथन, गायत्रीवर्णकी मुद्रा, ३ गायत्रीकवच, ४ अथर्ववेदोक्त गायत्रीहृदय, ५ गायत्रीस्तोत्र, ६ गायत्रीका सहस्र नाम स्तोत्र, ७ दीक्षाके विषयमें नारदका प्रश्न, दीक्षा शब्दकी व्युत्पत्ति और दीक्षाविधिकथन, तत्प्रसङ्गमें भूतशुद्ध्यादि-कथन, मण्डललिखन, सर्वतोभद्रमण्डल, कुण्डसंस्कार, स्रुकस्रुवादि और आज्यसंस्कार, होमविधि, पूर्णाहुति, मन्त्रग्रहण, ८ शक्ति भिन्न द्विजगणके अन्य उपासकत्वका-कारण, जगदम्बिकाका यक्षरूपमें आविर्भाव, यक्षके निकट इन्द्रकर्तृक वह्निको प्रेरण, यक्षके निकट वह्नि-का तृणचालनमें असामर्थ्यकथन, इन्द्रकी आज्ञासे यक्षके निकट वायुका गमन, यक्षके निकट वायुका तृणचालनमें असामर्थ्यकथन, यक्षके निकट इन्द्रका गमन, यक्षका अन्तर्धान, इन्द्रके प्रति मायाबीजके लिये आकाशवाणी, इन्द्रके उमामूर्त्तिदर्शन, इन्द्रके निकट भगवतीके मायाधिष्ठित ब्रह्ममूर्त्तिका सर्वविषयक कारणत्ववर्णन, शक्ति-उपासनाका नित्यत्ववर्णन, ९ गौतमके शापसे ब्राह्मणोंकी अन्य देवताकी उपासनामें श्रद्धा, दुर्भिक्षके कारण ब्राह्मणोंका गौतमके निकट गमन, गौतमस्तवसे सन्तुष्ट गायत्रीका गौतमको पूर्णपात्रप्रदान, पूर्णपात्र द्वारा गौतमका समस्त लोगोंको अन्नदान, नारदका गौतमकी सभामें आगमन, ब्राह्मणोंके प्रति गौतमका गायत्री-भक्तिरहितार्थ अभिशाप, ब्राह्मणोंका वेद और गाय-त्र्यादि विस्मरण, १० मणिद्वीपवर्णन, ११ पद्मरागादि प्राकार और उसके मध्य सेना तथा शक्ति आदिका सन्नि-वेशवर्णन, १२ चिन्तामणिगृहादिवर्णन, देवीका ध्यान, चिन्तामणिगृहके परिमाणादि, १३ जनमेजयकृत देव-मुखवर्णन, १४ देवीभागवतपुराणपाठका फलवर्णन, मुनियोंसे सूतकी पूजाप्राप्ति, नैमिषारण्यसे सूतका निर्गमन।

ऊपर दोनों भागवतकी सूची उद्धृत हुई। बड़े ही आश्चर्यका विषय है कि दोनों ही भागवतकी श्लोक-संख्या १८००० है और दोनों ही द्वादश स्कन्धोंमें विभक्त हैं। इस हिसाबसे किस भागवतको महा-पुराण और किसको उपपुराण माना जायगा! बड़ी ही विषम समस्या है! मत्स्यपुराणके मतसे—

"यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः।
वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते ॥
सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ये स्युर्नरामराः।
तद्वृत्तान्तोद्भवं लोके तद्भागवतमुच्यते ॥...
अष्टादशसहस्राणि पुराणं तत्प्रकीर्त्तितम्।"

जिस ग्रन्थमें गायत्रीका अवलम्बन करके सविस्तार धर्मतत्त्व वर्णित हुआ है और जो वृत्रासुरवधके वृत्तान्त-से पूर्ण है, वही भागवत नामसे प्रसिद्ध है। सारस्वत-कल्पके मध्य जिन सब नरों वा अमरोंकी कथा है, वही ग्रन्थ भागवत कहलाता है।...इसकी श्लोकसंख्या १८००० है।

पद्मपुराणमें लिखा है—

"पुराणेषु च सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम्।
यत्र प्रतिपदं कृष्णो गीयते बहुधर्षिभिः॥ ३...
श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कृष्णेन भाषितम्।
परीक्षितः कथां वक्तुं सभायां संस्थिते शुके।" १५॥
(उत्तरखण्ड १८८ अ०)

सभी पुराणोंकी अपेक्षा श्रीमद्भागवत ही श्रेष्ठ है, इसके प्रतिपदमें ऋषिगणकर्तृक नाना प्रकारसे कृष्ण-माहात्म्यकीर्त्ति हुए है। कलिकालमें कृष्णभाषित यही भागवतशास्त्र है। इस शास्त्रकी कथा परीक्षितको सभामें रह कर शुकदेवने उन्हें आद्योपान्त सुनाई थी।

फिर नारदपुराणमें भागवतका जो संक्षिप्त विषयानु-क्रम दिया गया है, वह इस प्रकार है—

"मरीचे शृणु वक्ष्यामि वेदव्यासेन यत्कृतम्।
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्॥
तदष्टादशसाहस्रं कीर्त्तितं पापनाशनम्।

सुरपादरूपोऽयं स्कन्धे द्वादशभियुतः ॥
भगवानेव विप्रेन्द्र विश्वरूपो समीरितः ।
तत्र तु प्रथमे स्कन्धे सूतर्षीणां समागमः ॥
व्यासस्य चरितं पुण्यं पाण्डवानां तथैव च ।
पारिक्षितमुपाख्यानमितीदं समुदाहृतम् ॥
परीक्षिच्छुकसंवादे सृतिद्वयनिरूपणम् ।
ब्रह्मनारदसंवादेऽवतारचरितामृतम् ॥
पुराणलक्षणञ्चैव सृष्टिकारणसम्भवः ।
द्वितीयोऽयं समुदितः स्कन्धो व्यासेन धीमता ॥
चरितं विदुरस्याथ मैत्रेयेणास्य सङ्गमः ।
सृष्टिप्रकरणं पश्चात् ब्रह्मणः परमात्मनः ॥
कापिलं साङ्ख्यमप्यत्र तृतीयोऽयमुदाहृतः ।
सत्याश्चरितमादौ तु ध्रुवस्य चरितं ततः ॥
पृथोः पुण्यसमाख्यानं ततः प्राचीनबर्हिषः ।
इत्येष तुर्योगदितो विसर्गे स्कन्ध उत्तमः ॥
प्रियव्रतस्य चरितं तद्वंश्यानाञ्च पुण्यदम् ।
ब्रह्माण्डान्तर्गतानाञ्च लोकानां वर्णनन्ततः ॥
नरकस्थितिरित्येष संस्थाने पञ्चमीमतः ।
अजामिलस्य चरितं दक्षसृष्टिनिरूपणम् ॥
वृत्राख्यानं ततः पश्चान्मरुतां जन्मपुण्यदम् ।
षष्ठोऽयमुदितः स्कन्धो व्यासेन परिपोषणे ॥
प्रह्लादचरितं पुण्यं वर्णाश्रमनिरूपणम् ।
सप्तमो गदितो वत्स वासनाकर्मकीर्त्तने ॥
गजेन्द्रमोक्षणाख्यानं मन्वन्तरनिरूपणम् ।
समुद्रमथनञ्चैव बलिवैभववन्धनम् ॥
मत्स्यावतारचरितं अष्टमोऽयं प्रकीर्त्तितः ।
सूर्यवंशसमाख्यानं सोमवंशनिरूपणम् ॥
वंशानुचरिते प्रोक्तो नवमोऽयं महामते ।
कृष्णस्य बालचरितं कौमारञ्च व्रजस्थितिः ॥
कैशोरं मथुराख्यानं यौवनं द्वारकास्थितिः ।
भूभारहरणञ्चात्र निरोधे दशमः स्मृतः ॥
नारदेन तु संवादो वसुदेवस्य कीर्त्तितः ।
यदोश्च दत्तात्रेयेण श्रीकृष्णेनोद्धवस्य च ॥
यादवानां मिथोऽन्तश्च मुक्तावेकादशः स्मृतः ।
भविष्यकलिनिर्देशो मोक्षो राज्ञः परीक्षितः ॥
वेदशाखाप्रणयनं मार्कण्डेयतपः स्मृतं ।
सौरीविभूतिरुदिता सात्वती च ततः परम् ॥
पुराणसंख्याकथनमाश्रये द्वादशोह्ययम् ।
इत्येवं कथितं वत्स श्रीमद्भागवतं तव ॥'

"हे मरीचे ! सुनो, मैं तुमसे वेदव्यासप्रणीत श्रीमद्भागवत नामक ब्रह्मसम्मित पुराण कहता हूं। यह अठारह हजार श्लोकोंमें पूर्ण और पापनाशक है। यह द्वादशस्कन्धयुक्त और कल्पवृक्षस्वरूप है। हे विप्रेन्द्र! इस पुराणमें विश्वरूपी भगवानका ही कीर्त्तन किया गया है।

इसके प्रथम स्कन्धमें सूत और ऋषियोंका समागम, पुण्यजनक व्यास और पाण्डवोंका चरित तथा परीक्षितका उपाख्यान है। परीक्षित् और शुकसंवाद, सृतिद्वयनिरूपण, ब्रह्म और नारदसंवादमें अवतारचरित, पुराणलक्षण और सृष्टिकारणसम्भव, ये सब धीमान् व्यासकर्तृक द्वितीयस्कन्धमें उक्त हुए हैं। विदुरचरित और विदुरका मैत्रेयसह समागम, पीछे परमात्मा ब्रह्मका सृष्टिकरण और कपिलका सांख्ययोग कीर्त्तित हुआ है। पहले सतीचरित, पीछे ध्रुवचरित और पृथु तथा प्राचीनबर्हिका पुण्याख्यान इन चारोंका वर्णन चतुर्थ स्कन्धमें है। प्रियव्रत और तद्वंशोत्पन्न बहुतोंका पुण्यप्रद चरित, ब्रह्माण्डान्तर्गत लोकसमूहका वर्णन एवं नरकस्थिति प्रभृति पञ्चम स्कन्धमें वर्णित हुआ है। अजामिलचरित, दक्षसृष्टिनिरूपण, वृत्राख्यान और पुण्यप्रद मरुद्गणका जन्म षष्ठ स्कन्धमें कीर्त्तित हुआ है। ७म स्कन्धमें पुण्यमय प्रह्लादचरित और वर्णाश्रम निरूपित हुआ है। गजेन्द्रका मोक्षणाख्यान, मन्वन्तर-निरूपण, समुद्रमन्थन, बलिबन्धन, मत्स्यावतार चरित प्रभृति कथाएं अष्टममें कीर्त्तित हुई हैं। नवम स्कन्धमें सूर्यवंशाख्यान, सोमवंशनिरूपण और वंशानुचरित प्रभृति कहे गये हैं। कृष्णका बाल्य और कौमारचरित, व्रजमें स्थिति, कैशोरमें मथुरावास, यौवनमें द्वारकावास और भूभारहरण ये सब विषय दशममें वर्णित हैं। वसुदेवनारदसंवाद, दत्तात्रेयके साथ यदुका और उद्धवके साथ श्रीकृष्णका संवाद तथा यदुगणका परस्पर विनाश आदि कथाएं एकादशमें कीर्त्तित हुई हैं। भविष्यकलिनिर्देश, राजा परीक्षितका मोक्ष, वेदशाखाप्रणयन, मार्कण्डेयकी तपस्या, सौरी और सात्वती विभूति एवं पुराणसंख्याकथन द्वादश स्कन्धमें वर्णित हुए हैं। हे वत्स! यह द्वादश स्कन्धात्मक श्रीमद्भागवत मैंने तुमसे कह सुनाया।"

मत्स्य, नारद और पद्मपुराणमें भागवतके जो सब लक्षण निर्दिष्ट हुए हैं, श्रीमद्भागवतमें उनका अभाव

नहीं है। नारदीयके वचनानुसार यह कहा जा सकता है, कि प्रचलित श्रीमद्भागवत ही प्रकृत महापुराणमें गण्य हो सकता है। कारण, नारदीयकी उक्तिमें श्रीमद्भागवतके लक्षण ही निर्दिष्ट हुए हैं, देवी भागवतके नहीं, किन्तु मत्स्यवर्णित विस्तृतभावमें सारस्वत-कल्पप्रसङ्ग श्रीमद्भागवतमें नहीं है। श्रीमद्भागवतमें 'पाद्म कल्पमथो शृणु' इस प्रकार पाद्मकल्पका प्रसङ्ग ही विवृत हुआ है। इस हिसाबसे फिर श्रीमद्भागवतको यदि सारस्वत-कल्पाश्रित महापुराण मान लें, तो भी आपत्ति होती है।

फिर भी शैवपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा है—

"भगवत्याश्च दुर्गायाश्चरितं यत्र विद्यते।
तत्तु भागवतं प्रोक्तं नतु देवीपुराणकम्॥"

जिस ग्रन्थमें भगवती दुर्गाका चरित वर्णित है, वही देवीभागवत नामसे प्रसिद्ध है, परन्तु वह देवीपुराण नहीं है।

शैवनीलकण्ठधृत कालिकापुराणके हेमाद्रि-प्रस्ताव-में लिखा है—

"यदिदं कालिकाख्यं तन्मूलं भागवतं स्मृतम्॥"

कालिका नामक जो उपकरण है उसका मूल भागवत है। देवीयामलमें इस प्रकार लिखा है—

"श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं वेदसम्मितम्।
परीक्षितायोपदिष्टं सत्यवत्यङ्गजन्मना॥
यत्र देव्यवताराश्च बहवः प्रतिपादिताः।
इदं रहस्यचरितं राधोपासनमुत्तमम्॥
व्यासाय मम भक्ताय प्रोक्तं पूर्वं मयाद्रिजे।
मत्तो रहस्यं ज्ञात्वैव राधोपासनमुत्तमम्॥
एतस्य विस्तरं चक्रे श्रीमद्भागवते तथा।
नारदे ब्रह्मवैवर्त्ते लोकानां हितकाम्यया॥"

श्रीमद्भागवतपुराण वेदसम्मित है; सत्यवतीके सुत व्यासने परीक्षित्पुत्र जनमेजयको यह पुराण सुनाया था। इस ग्रन्थमें देवीका नानावतार, देवीका रहस्य और चरित तथा राधाकी उपासना वर्णित हुई है। हे अद्रिजे! मैंने पूर्वकालमें अपने भक्त व्यासको इस राधाकी उपासना कही थी। इस रहस्यमें मत्त हो कर व्यासने लोगोंको भलाईके लिये श्रीमद्भागवत, नारद और ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इस राधाकी कथाका सविस्तार वर्णन किया है।

चित्सुखके भागवतकथासंग्रहमें इस प्रकार उद्धृत है—

"ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कन्धसम्मितः।
हयग्रीवब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा॥
गायत्र्या च समारम्भस्तद्वै भागवतं विदुः।"

जिस ग्रन्थमें १८००० श्लोक और १२ स्कन्ध हैं, जिसमें हयग्रीवके ब्रह्मविद्यालाभकी कथा और वृत्रवधकथा वर्णित है तथा गायत्रीका अवलम्बन करके जो पुराण आरम्भ हुआ है, वही भागवत है।

ऊपर जो सब प्रमाण दिये गये हैं, उनसे फिर देवी-भागवत ही महापुराण माना जा सकता है।

देवीभागवतके प्रथममें ही त्रिपदागायत्री है, पर विष्णु-भागवतमें गायत्रीका 'धीमहि' केवल यही अंश है। दोनों पुराणमें वृत्रासुरवधकी कथा रहने पर भी विष्णु-भागवतमें हयग्रीवके नाममात्र (५।१८।१)का ही उल्लेख है, उसके ब्रह्मविद्यालाभकी कथा कुछ भी नहीं है। देवीभागवत (१।५ अ०)में हयग्रीव नामक दैत्यकी ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी महामायाकी तपस्या और हयग्रीव-रूपधारी विष्णुका माहात्म्य प्रभृति विशेषरूपसे वर्णित हुआ है। पहले ही कहा जा चुका है, कि मात्स्योक्त सारस्वतकल्पका प्रसङ्ग विष्णुभागवतमें नहीं है। स्कन्द-पुराणीय नामखण्डमें लिखा है, "सारस्वतस्तु द्वादश्यां शुक्लायां फाल्गुनस्य च।" अर्थात् फाल्गुनकी शुक्लद्वादशी-तिथिमें सारस्वतकल्पका आविर्भाव हुआ है।

शिवपुराणीय श्रीमसंहितामें लिखा है—

"ब्रह्मणा संस्तुता सेयं मधुकैटभनाशने।
महाविद्या जगद्धात्री सर्वविद्याधिदेवता॥
द्वादश्यां फाल्गुनस्यैव शुक्लायां समभून्नृप।"

हे राजन्! ये ही समस्त विद्याकी अधिष्ठात्री जगद्धात्री महाविद्या हैं। ये मधुकैटभविनाशके लिये ब्रह्माकर्तृक स्तुत हो कर फाल्गुन शुक्लाद्वादशीको आविर्भूत हुई थीं। श्रीमसंहिताके उक्त वचनानुसार देवीभागवतके १म स्कन्धके ७म अध्यायमें ब्रह्मस्तुति और मधुकैटभनाशार्थ देवीका प्रादुर्भाव पढ़नेसे मालूम होता है, कि यही देवीभागवत सारस्वतकल्पाश्रित पुराण है।

परग, पुष्प, ... सुक्रतु, निषधावध...
...लोक, बृहद्रथ, सुक्रतु, ...

जो कुछ हो, अभी दोनों ही मत पाये जाते हैं। नारद और पाद्मके मतसे विष्णुभागवत तथा मत्स्यादिके मतसे देवीभागवत ही महापुराणमें गिना जाता है। इस प्रकार मतभेद होनेका कारण क्या है? उपपुराण-को तालिकासे जाना जाता है, कि 'भागवत' नामक एक उपपुराण भी है; यथा—

"आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमतःपरम्।
पराशरोक्तं प्रवरं तथा भागवताह्वयम्॥"

नीलकण्ठधृत गरुड़पुराणमें तत्त्वरहस्यके द्वितीयांश-धर्मखण्डमें लिखा है—

"पुराणं भागवतं दौर्गं नन्दिप्रोक्तं तथैव च।"

अर्थात् दुर्गामाहात्म्यसम्वलित भागवत और नन्दि-केश्वरप्रोक्त पुराणादि उपपुराणमें गिने जाते हैं।

रामाश्रमको दुर्जनमुखचपेटिकामें भी पद्मपुराणकी दुहाई दे कर एक श्लोक उद्धृत हुआ है—

"शैवं भागवतं दौर्गं भविष्योत्तरमेव च।"

इसी प्रकार मधुसूदन सरस्वतीके सर्वशास्त्रार्थ-संग्रहमें, नागोजीभट्टके निबन्धमें, दुर्जनमुखपद्मपादुका-में और पुरुषोत्तमके 'भागवतस्वरूप-विषयशङ्कानिराश-त्रयोदश' आदि ग्रन्थोंमें देवीभागवतके उपपुराणत्व और विष्णुभागवतके महापुराणत्व स्थापनकी चेष्टा हुई है।

इधर मिताक्षराके टीकाकार प्रसिद्ध बालम्भट्ट श्री-मद्भागवतको पुराण नहीं मानते।

इस देशके अनेक लोगोंका विश्वास है, कि विष्णु-भागवत सुप्रसिद्ध वोपदेवका विरचित है। यथार्थमें वोपदेवरचित भागवतानुक्रम भी पाया गया है। बड़े ही आश्चर्यका विषय है, कि कोलब्रुकप्रमुख अनेक पाश्चात्य पण्डित भी वोपदेवको भागवतके रचयिता मानते हैं। १२वीं शताब्दीके शेष भागमें वोपदेव देव-गिरिमें वर्त्तमान थे। उन्होंने मुक्ताफल नामक भागवत-का तात्पर्यार्थज्ञापक एक ग्रन्थ भी लिखा है। उनके आश्रयदाता हेमाद्रिने भी श्रीमद्भागवतसे वचन उद्धृत किये हैं। इस हिसाबसे वोपदेव भागवतके रचयिता हैं, ऐसा विश्वास नहीं होता।

अब देखना चाहिये, कि विष्णुभागवत और देवी-भागवत दोनों ग्रन्थोंकी आलोचना करनेसे हम लोगों-को सचमुच कौन-सा महापुराणके जैसा जंचता है।

श्रीमद्भागवतके प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधरस्वामीने प्रारम्भमें ही लिखा है—"भागवतं नामान्यदित्यपि नाशङ्क-नीयम्।"

अर्थात् भागवत नामको अन्य पुस्तक है, इस प्रकार शङ्का करना उचित नहीं। श्रीधरस्वामीकी इसी उक्ति द्वारा मालूम होता है, कि उनके समयमें भी इस भाग-वतका पुराणत्व ले कर बहस चल रही थी और उस समय एक दूसरा भागवत भी प्रचलित था, नहीं तो वे ऐसा क्यों कहते?

श्रीधरस्वामीने इस टीकोपक्रममें लिखा है;—

"द्वात्रिंशत्त्रिशतञ्च यस्य विलसत्" अर्थात् जिसकी अध्यायसंख्या ३३२ है।

काशीनाथ (दुर्जनमुखमहाचपेटिकामें) ने पुराणा-र्णवसे चित्सुखोद्धृत उक्त श्लोकके साथ ये चार चरण उद्धृत किये हैं—

"स्कन्धा द्वादश एवात्र कृष्णेन विहिताः शुभाः।
द्वात्रिंशत्त्रिशतं पूर्णमध्यायाः परिकीर्त्तिताः॥"

इस ग्रन्थमें कृष्णकर्त्तृक द्वादश स्कन्ध विहित हैं और ३३२ अध्याय परिकीर्त्तित हुए हैं।

श्रीधरस्वामीकी उक्ति और पुराणार्णवका उक्त वचन पढ़नेसे विष्णुभागवतको ही महापुराणके जैसा स्वीकार कर सकते हैं।

विष्णुभागवतमें तदुत्पत्तिके सम्बन्धमें लिखा है, 'चार वेदविभाग और पञ्चमवेदस्वरूप इतिहास-पुराणों-का सङ्कलन, तथा स्त्री, शूद्र और निन्दित ब्राह्मणोंके लिये महाभारतकी रचना करके भी वेदव्यासका मन तृप्त न हुआ। अन्तमें उन्होंने नारदके उपदेशसे हरिकथामृतरूप भागवतकी रचना करके परम तृप्ति लाभ की थी।' (१म स्क० ४र्थ-६ष्ठ अ०) भाग-वतके उक्त प्रमाणानुसार जाना जाता है, कि पुराण-इतिहासादि रचित होनेके बाद यह श्रीमद्भागवत रचा गया है। किन्तु पहले ही कहा जा चुका है, कि विष्णु प्रभृति पुराणके अनुसार भागवत पञ्चमपुराण कह कर गण्य है। इस हिसाबसे सबके शेषमें रचित विष्णु-

भागवत पञ्चमेतर पुराण होता है। इस विष्णु भागवतमें पुराण-लक्षण-कथन पर इस प्रकार लिखा है—

"सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्तिरक्षान्तराणि च।
वंशोवंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः॥
दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः।
केचित् पञ्चविधं ब्रह्मन् महदल्पव्यवस्थया॥
अव्याकृत गुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः।
भूतसूक्ष्मेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते॥
पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः।
विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद्बीजं चराचरम्॥
वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराचरमचराणि च।
कृता स्वेन नृणां तत्र कामाच्चोदनयापि वा॥
रक्षाऽच्युतावतारेहा विश्वस्यानुयुगे युगे।
तिर्यङ्मर्त्यर्षिदेवेषु हन्यन्ते यैस्त्रयीद्विषः॥
मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वराः।
ऋषयोंऽशावताराश्च हरेः षड्विधमुच्यते॥
राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः।
वंशानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये॥
नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिको लयः।
संस्थेति कविभिः प्रोक्तश्चतुर्धास्य स्वभावतः॥
हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः।
यञ्चानुशायिनं प्राहुरव्याकृतमुतापरे॥
व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत् स्वप्नसुषुप्तिषु।
मायामयेषु तद्ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः॥
पदार्थेषु यथा द्रव्यं सन्मात्रं रूपनामसु।
बीजादिपञ्चतान्तासु ह्यवस्थासु युतायुतम्॥
विरमेत यदा चित्तं हित्वा वृत्तित्रयं स्वयम्।
योगेन वा तदात्मानं वेदेहाया निवर्त्तते॥
एवं लक्षणलक्ष्याणि पुराणानि पुराविदः।
मुनयोऽष्टादश प्राहुः क्षुल्लकानि महान्ति च॥"
(भा० १२।७।९-२२)

(सर्ग, विसर्ग, संस्था, रक्षा, मन्वतर, वंशकथन, वंशानुचरित, प्रलय, हेतु और अपाश्रय पुराणके ये दश लक्षण पण्डितोंने निर्देश किये हैं। कोई कोई पञ्चलक्षणयुक्त ग्रन्थोंको भी पुराण कहते हैं। उनकी व्यवस्था यह है, कि दशलक्षण महपुराणके और पञ्च लक्षण उपपुराणके हैं। प्रकृतिके गुणत्रय समाहारसे महान, उससे त्रिगुणात्मक अहङ्कार, भूत और सूक्ष्मेन्द्रिय तथा तज्जन्य जो स्थूल सृष्टि है उसका नाम सर्ग है। ईश्वरानुगृहीत महदादिके पूर्व वासनामय बीजसे बोजोत्पत्तिकी तरह समाहाररूप चराचर उत्पत्तिको विसर्ग वा अवान्तर सृष्टि कहते हैं। चरभूतका काम-विषय चराचररूप और मनुष्योंका स्वभावतः तथा कामकृत वा विधिबोधित जो जीवनोपाय है, उसका नाम संस्था वा स्थिति है। विश्वके मध्य युग युगमें वेदद्वेषी दैत्यकर्त्तृक देव, तिर्यक, मनुष्य और ऋषियोंके कार्यनाशोपक्रमसे नारायणका जो विशेष विशेष अवतार है, उसका नाम रक्षा है। मनु, देवगण, मनुपुत्रगण, सुरेश्वरगण और ऋषिगण ये सब हरिके अंशावतार हैं। इनके द्वारा अधिकार कालको मन्वन्तर कहते हैं। ब्रह्मा-प्रसूत पुरुष और राजाओंके भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान इस त्रैकालिक पुरुष परम्पराके वर्णनका नाम वंशकथन तथा उनके वंशमें उत्पन्न वंशधरोंके चरित्रवर्णनका नाम वंशानुकथन है। नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यन्तिक, स्वभावतः हो चाहे ईश्वर-मायानुरूपसे हो, इन चार प्रकारके लयका नाम प्रलय है। अज्ञानवशसे कर्मकर्त्ता जीव इस विश्वके जन्म, स्थिति और नाशका कारण है, इसीका नाम हेतु है। मायामय विश्व तैजस प्रज्ञादि जीवनिष्ठ जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थामें साक्षिरूपमें जिनका अन्वय है और समाधिकालमें उन सब अवस्थाओंमें जिनका व्यतिरेक है, उस अधिष्ठानका नाम अपाश्रय है। जिस प्रकार घटादि पदार्थमें मृत्तिकादि द्रव्य है और रूपनामादिमें सत्तामात्र है, उसी प्रकार बीजसे ले कर पञ्चत्व तक जीवकी सभी अवस्थाओंमें जो युक्त और अयुक्त हैं, वे ही अपाश्रय हैं। पुराणवेत्ता पण्डितोंने ये सब लक्षणयुक्त अष्टादश महापुराण और अष्टादश उपपुराण निर्णय किये हैं।)

पहले ही कहा जा चुका है, कि सभी प्रधान पुराणोंके मतसे महापुराण पञ्चलक्षणाक्रान्त हैं। अमरसिंहादि-प्रमुख अभिधानकारकोंने भी पुराणोंके पञ्चलक्षण स्वीकार किये हैं। वे श्रीभागवत और ब्रह्मवैवर्तको छोड़ कर और किसी भी पुराणके दशलक्षण ग्रहण नहीं करते। भागवतके उक्त लक्षण-निर्देशसे भी उसके अमरकोषका परिवर्त्तित्व प्रतिपादन होता है। उक्त लक्षण द्वारा भी भागवतको प्राचीन पुराणश्रेणीमें गण्य नहीं कर सकते।

परशु, पुरु...
...नीक, बृहद्रथ, सुक्रतु, निषधाधिप...

भागवतमें 'वंश' लक्षणकी जैसी निरुक्ति दी गई है, वह भी प्राचीन शास्त्रसम्मत नहीं है। पहले ही कहा गया है, कि कुमारिलभट्टके समय भी वंशानुक्रम और भावीकथन ये दोनों स्वतन्त्र विषय हैं; किन्तु जिस समय भविष्यराजवंशवर्णन पुराणका विषयीभूत हो गया था, भागवत उसके बाद रचा गया है, यह उक्त निरुक्ति द्वारा प्रतिपन्न होता है। भविष्यराजवंशप्रसङ्गमें ७वीं शताब्दीकी भी कथाएं मिलती हैं। उक्त विभिन्न प्रमाण द्वारा भागवतको ७वींसे ८वीं शताब्दीका दर्शनपरिपोषक पौराणिक ग्रन्थ मान सकते हैं। इसमें अति प्राचीन पुराणख्यायिका और अभाव नहीं है।

हिन्दूसमाजमें पुराण, भागवत और महाभारत एक व्यक्तिके लिखे हुए हैं, ऐसा प्रवाद प्रचलित है। किन्तु भाषाकी आलोचना करनेसे ऐसा बोध नहीं होता। ब्रह्म, विष्णु, ब्रह्माण्ड और महाभारतकी भाषा जैसी सरल, ओजस्वी और बीच बीचमें गाम्भीर्यशाली है, भागवतकी भाषा वैसी नहीं है। भागवतमें कई जगह कठिन, अलङ्कृत, विविध छन्दोविशिष्ट और गभीर चिन्तासमुद्भूत हैं। भागवतकी निज उक्तिके अनुसार भागवत महापुराण नहीं हो सकता कारण, उसके पहले महाभारत तथा सभी पुराण प्रचलित हुए थे, यह भागवतकारने ही स्वयं स्वीकार किया है। यह पञ्चम पुराण है, ऐसा भागवतकारने कहीं भी प्रकाशित नहीं किया है, वरन् उन्होंने अष्टादश पुराण-गणनाकालमें अष्टादश पुराणान्तर्गत भागवतको कभी ८म और कभी ५म पुराण माना है।

पुराणार्णवके श्लोकानुसार फिर विष्णुभागवतको ही महापुराण मान सकते हैं। यथार्थमें यह श्रीभागवत नानाख्यानयुक्त एक वैष्णवीय दार्शनिक ग्रन्थ है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने जो अपूर्व मत प्रकाशित किया है, पाञ्चरात्र और भागवतगणने जो दार्शनिक मत स्वीकार किया है, वैदान्तिक मतसे उन सब तत्त्वोंको नाना उपाख्यानादि द्वारा भलीभांति समझानेके लिये भागवतकी सृष्टि हुई है। इसी कारण दार्शनिक जगत्‌में भागवतका समधिक आदर है। यही कारण है, कि शैव सभी पुराणोंकी अपेक्षा इस भागवतके ऊपर हिन्दू-साधारणका प्रगाढ़ अनुराग, यथेष्ट सम्मान और अचला भक्ति लक्षित होती है। विशुद्ध वेदान्त मत इस भागवतमें बहुत अच्छी तरह विवृत हुआ है। इसी कारण भागवतकारने लिखा है—

"सर्ववेदान्तसारं हि श्रीभागवतमिष्यते ।
तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित् ॥"
(१२।१३।१५)

अब देवीभागवतके मूलकी आलोचना करनेसे क्या फल मिलता है, यही देखना चाहिये। देवीभागवतके द्वितीय अध्यायमें लिखा है—

"पुराणमुत्तमं पुण्यं श्रीमद्भागवताभिधम् ।
अष्टादशसहस्राणि श्लोकास्तत्र तु संख्यया ॥
स्कन्धा द्वादश एवात्र कृष्णेन विहिताः शुभाः ।
त्रिशतं पूर्णमध्याया अष्टादशयुताः स्मृताः ॥ १२ ॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥" (१।२।१८)

यह श्रीमद्भागवत नामक पुराण सर्वोत्तम और पुण्यप्रद है। यह अष्टादशसहस्र-संख्यक विशुद्ध श्लोकमाला सम्वलित, ३१८ अध्यायोंमें पूर्ण और मङ्गलमय १२ स्कन्धविशिष्ट है। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंशावली, मन्वन्तर और वंशानुचरित इस पुराणके यही पांच लक्षण हैं।

पञ्चलक्षण कहनेसे देवीभागवत भी महापुराण समझा जाता है। मत्स्य प्रभृति पुराणोक्त लक्षण भी इस देवीभागवतमें हैं। पुराणार्णवके वचनानुसार भागवतमें ३३२ अध्याय हैं; किन्तु देवीभागवतके मतसे ३१८ हैं। इस कारण अध्यायकी संख्या ले कर फिर महापुराणके सम्बन्धमें गोलमाल रह ही जाता है।

विष्णुभागवतमें जिस प्रकार भद्रकालीका माहात्म्य सूचित हुआ है, इस देवीभागवतमें उसी प्रकार राधाका माहात्म्य वर्णित है।

विष्णुभागवत जिस प्रकार दार्शनिक-प्रधान है, यह देवीभागवत उसी प्रकार तन्त्रानुसारी है। इनमें यथेष्ट तन्त्रका प्रभाव लक्षित होता है, इसी कारण देवीयामल आदि तान्त्रिक ग्रन्थोंमें इस देवीभागवतकी प्रधानता स्वीकृत हुई है। तन्त्रप्रधान कहनेसे कोई ऐसा न समझ

हैं, कि देवीभागवत नितान्त आधुनिक है। नेपालमें ६ठीं शताब्दीमें लिखित तन्त्रग्रन्थकी पुस्तक पाई गई है। अभी यह प्रमाण मिलता है, कि १लो शताब्दीमें भी तान्त्रिक मतका विशेष प्रचार था। देवतादिकी मूर्त्ति बना कर उसको प्रतिष्ठा, यह तान्त्रिक प्रभावके समयमें ही प्रवर्त्तित हुई है। देवीभागवत नामधेय श्रीमद्भागवतमें अनेक प्राचीन कथाएं रहने पर भी तान्त्रिक प्रभावके समय इसका पुनर्संस्कार हुआ था, इसमें सन्देह नहीं। राधाकी उपासना भी तान्त्रिक प्रभावका फल है। विष्णुभागवतमें सविस्तर श्रीकृष्णचरित और गोपीगणका प्रसङ्ग रहने पर भी, उसमें राधाचरित नहीं है, यहां तक कि राधाका नाम भी देखनेमें नहीं आता। विष्णुभागवतके रचनाकालमें यदि राधाकी उपासना प्रचलित होती, तो उसमें राधामाहात्म्य अवश्य रहता। इससे मालूम होता है, कि उस समय भी वैष्णवसमाजमें राधा गृहीत नहीं हुई। इस हिसाबसे देवीभागवतके जिस अंशमें राधाचरित है, वह अंश विष्णुभागवतकी रचनाके बाद रचा गया है, इसमें संदेह नहीं। अतएव देवीभागवतका कोई अंश विष्णुभागवतको अपेक्षा प्राचीन होने पर भी, विष्णुभागवत सम्पूर्ण होनेके बाद ८वीं से ११वीं शताब्दीके मध्य देवीभागवतने वर्त्तमान आकार धारण किया है। शैव नीलकण्ठ और स्वामीने इस देवीभागवतकी टोका लिखी है।

उपरोक्त दोनों प्रकारके भागवतकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि पूर्वकालमें एक भागवत ही सम्भवतः भागवतोंका ग्रन्थ कह कर आदृत था। बौद्धप्रभावसे ब्राह्मणधर्मके शोचनीय परिणामके साथ इस पुरातन भागवतका बिलकुल लोप हो गया था। पीछे जब ब्राह्मणधर्मका अभ्युदय हुआ तब उसके साथ साथ वैष्णवादि नाना सम्प्रदाय प्रबल हो उठे। उस समय वैष्णव-शाक्तनिकोंने उस पुरातन भागवतका आकार ले कर श्रीमद्भागवतका और शाक्त पौराणिकोंने देवीभागवतका प्रचार किया। इस कारण दोनों ग्रन्थमें पूर्वतन भागवतके लक्षण विद्यमान हैं। पूर्वतन भागवत १८००१ ग्रन्थविशिष्ट था, इस कारण दोनों पक्षवालोंने अपने अपने भागवतमें १८००० श्लोकोंकी रचना की थी। अन्तमें यह भी कह देना उचित है, कि देवीभागवतमें मण्डलचण्डी, षष्ठी, मनसा आदि आधुनिक देवीपूजाका प्रसङ्ग रहनेके कारण, यदि इसको प्राचीन पुराण श्रेणीमें गिनती की जाय, तो घोर संदेह उपस्थित होगा।

६ष्ठ नारदपुराण।

१-४ नारद-सनत्कुमारसंवाद, ५ भागवतको मृकण्डु-पुत्ररूपताका कथन, ६-११ गङ्गाकी उत्पत्ति और माहात्म्यादि वर्णन, १२ वर्णसमूहके मध्य ब्राह्मणका दानपात्रत्वकथन, १३ देवतायतनस्थापनमें पुण्यकथन, १४ धर्मशास्त्रनिर्देश, १५ नरकवर्णन, १६ भगीरथका गङ्गानयन वृत्तान्त, १७-२३ विष्णुव्रतकथन, २४-२५ वर्णाश्रमाचारकथन, २६ स्मार्त्तधर्मकथन, २७-२८ श्राद्धविधि, २९ तिथ्यादिनिर्णय, ३० प्रायश्चित्तनिर्णय, ३१ यममार्गनिरूपण, ३२ भवाटवीनिरूपण, ३३-३४ हरिभक्ति लक्षण, ३५ ज्ञाननिरूपण, ३६ विष्णुसेवाप्रभाव, ३७-४० विष्णुमाहात्म्य, ४१ युगधर्मकथन, ४२ सृष्टितत्त्व निरूपण, ४३ जीवतत्त्वकथन, ४४ परलोकनिरूपण, ४५ मोक्षधर्मनिरूपण, ४६ आध्यात्मिकादि दुःखत्रयनिरूपण, ४७ योगस्वरूपवर्णन, ४८-४९ परमार्थनिरूपण, ५० वेदाङ्गशिक्षादिशास्त्र, ५१ कल्पशास्त्रनिरूपण, ५२ व्याकरणशास्त्रनिरूपण, ५३ निरुक्तशास्त्रनिरूपण, ५४-५६ ज्योतिःशास्त्रनिरूपण, ५७ छन्दःशास्त्रनिरूपण, ५८ शुकोत्पत्तिकथन, ५९ ब्राह्मणकर्त्तव्य कर्मनिरूपण, ६० वायुका उत्पत्त्यादिवर्णन, ६१ शान्तिकरशास्त्रनिरूपण, ६२ मोक्षशास्त्र समादेश, ६३ भागवततन्त्रनिरूपण, ६४-६६ दीक्षाविधि, ६७ अभीष्टदेवपूजाविधि, ६८ गणेशमन्त्रनिरूपण, ६९ त्र्योमूर्त्तिनिरूपण, ७०-७२ विष्णुमन्त्रनिरूपण, ७३ राममन्त्रनिरूपण, ७४ हनुमन्मन्त्रनिरूपण, ७५ हनुमद्दीपविधान, ७६ कार्त्तवीर्यार्जुन मन्त्रपूजादिविधान, ७७ कार्त्तवीर्यकवच, ७८ हनुमत्कवच, ७९ हनुमच्चरित, ८०-८१ कृष्णमन्त्रनिरूपण, ८२ पूर्वजन्ममें नारदका महादेवके समीप कृष्णतत्त्वप्राप्तिवृत्तान्तकथन, ८३ राधांशावतारनिरूपण, ८४ मधुकैटभोत्पत्तिविवरण, ८५ कालीमन्त्रनिरूपण, ८६ सरस्वत्यवतारवर्णन, ८७ दुर्गावतारवर्णन, ८८ राधावतारचरितवर्णन, ८९ शक्ति-

सहस्रनामकथन, ९० शक्तिपटल, ९१ महेशमन्त्रनिरूपण, ९२ पुराणाख्याननिरूपण, ९३ ब्रह्म और पद्मपुराणानुक्रमणिका, ९४ विष्णुपुराणानुक्रमणिका, ९५ वायुपुराणानुक्रमणिका, ९६ भागवतानुक्रमणिका, ९७ नारद पुराणानुक्रमणिका, ९८ मार्कण्डेयपुराणानुक्रमणिका, ९९ आग्नेयपुराणानुक्रमणिका, १०० भविष्यपुराणानुक्रमणिका, १०१ ब्रह्मवैवर्त्तपुराणानुक्रमणिका, १०२ लिङ्गपुराणानुक्रमणिका, १०३ वराहपुराणानुक्रमणिका, १०४ स्कन्दपुराणानुक्रमणिका, १०५ वामनपुराणानुक्रमणिका, १०६ कूर्मपुराणानुक्रमणिका, १०७ मत्स्यपुराणानुक्रमणिका, १०८ गरुड़पुराणानुक्रमणिका, १०९ ब्रह्माण्डपुराणानुक्रमणिका, ११० प्रतिपद्व्रतनिरूपण, १११ द्वितीयाव्रतनिरूपण, ११२ तृतीयाव्रतनिरूपण, ११३ चतुर्थीव्रतनिरूपण, ११४ पञ्चमीव्रतनिरूपण, ११५ षष्ठीव्रतनिरूपण, ११६ सप्तमीव्रतनिरूपण, ११७ अष्टमीव्रतनिरूपण, ११८ नवमीव्रतनिरूपण, ११९ दशमीव्रतनिरूपण, १२० एकादशीव्रतनिरूपण, १२१ द्वादशीव्रतनिरूपण, १२२ त्रयोदशीव्रतनिरूपण, १२३ चतुर्दशीव्रतनिरूपण, १२४ पूर्णाव्रतनिरूपण, १२५ पुराणमहिमा।

उत्तरभागमें—१ द्वादशीमाहात्म्य, २ तिथिविचार, ३ विष्णुका भक्ताधीनत्वकथन, ४ नियोगाचरणनिरूपण, ५ यमविलाप, ६ यमके प्रति ब्रह्माका वाक्य, ७ लोकमाहनार्थ ब्रह्माकर्त्तृक मोहिनी प्रमदाको उत्पत्ति, ८ मोहिनीचरित, ९ राजा रुक्माङ्गदका मृगयामें गमन और तत्पुत्र धर्माङ्गदका राज्याभिषेक, १० मृगयादि वारणोद्देशसे राजा रुक्माङ्गदके प्रति ऋषि साधर्मोपदेश, ११ रुक्माङ्गद राजाका मृगयाके लिये वनगमन और मोहिनीदर्शन, १२ मोहिनीके साथ रुक्माङ्गदकी विवाहप्रतिज्ञा, १३ रुक्माङ्गदके साथ मोहिनीका विवाह, १४ रुक्माङ्गद कर्त्तृक गृहगोधाविमुक्ति, १५ रुक्माङ्गदका स्वनगर प्रस्थान, १६ पतिव्रतोख्यान, १७ माताके प्रति धर्माङ्गदका प्रबोधवाक्य, १८ मातृगणको सन्तोषार्थ धर्माङ्गदका विविध अर्थप्रदान, १९ मोहिनीके प्रणयसे मुग्ध हो राजाका मोहिनीके साथ पुनर्विहारार्थ पुत्रको राज्यार्पण, २० धर्माङ्गदको दिग्विजय, २१ कामपीड़ित राजकर्त्तृक मोहिनीको वित्तदान, २२-२७ हरिवासरके दिन राजाको खिलानेके लिये मोहिनीका अनुरोध और रुक्माङ्गद राजाका हरिवासरमाहात्म्यवर्णन, २८-३४ मोहिनीकर्त्तृक स्वामी रुक्माङ्गदको बहुतर क्लेशदानवृत्तान्त, ३५-३७ मोहिनीके प्रति वसुगणका शापदान, शापसे उद्धारके लिये तीर्थसेवादि उपदेश, ३८-४३ गङ्गामाहात्म्य, ४४-४७ गयामाहात्म्य, ४८-५१ काशीमाहात्म्य, ५२-६१ पुरुषोत्तममाहात्म्य, ६२-६३ प्रयागमाहात्म्य, ६४-६५ कुरुक्षेत्रमाहात्म्य, ६६ हरिद्वारमाहात्म्य, ६७ बदरिकाश्रममाहात्म्य, ६८ कामोदामाहात्म्य, ६९ कामाख्यामाहात्म्य, ७० प्रभासतीर्थमाहात्म्य, ७१ पुष्करमाहात्म्य, ७२ गौतमाश्रममाहात्म्य, ७३ त्र्यम्बकमाहात्म्य, ७४ गोकर्णतीर्थमाहात्म्य, ७५ लक्ष्मणमाहात्म्य, ७६ सेतुमाहात्म्य, ७७ नर्मदातीर्थमाहात्म्य, ७८ अवन्तीमाहात्म्य, ७९ मथुरामाहात्म्य, ८० वृन्दावनमाहात्म्य, ८१ वसुका ब्रह्मके समीप गमनवृत्तान्त, ८२ मोहिनीतीर्थ सेवनवृत्तान्त।

नारदपुराणमें ही नारदमहापुराणका विषयानुक्रम इस प्रकार है—

"शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुराणं नारदीयकं ।
पञ्चविंशतिसाहस्रं बृहत्कल्पकथाश्रयम् ॥
सूतशौनकसंवाद सृष्टिसंक्षेपवर्णनम् ।
नाना धर्मकथाः पुण्याः प्रवृत्ते समुदाहृताः ॥
प्राग्भागे प्रथमे पादे सनकेन महात्मना ॥
द्वितीये मोक्षधर्माख्ये मोक्षोपायनिरूपणम् ।
वेदाङ्गानाञ्च कथनं शुकोत्पत्तिश्च विस्तरात् ॥
सनन्दनेन गदिता नारदाय महात्मने ॥
महातन्त्रे समुद्दिष्टं पशुपाशविमोचनम् ।
मन्त्राणां शोधनं दीक्षा मन्त्रोद्धारश्च पूजनम् ॥
प्रयोगाः कवचं नामसहस्रं स्तोत्रमेव च।
गणेशसूर्यविष्णूनां नारदाय तृतीयके ॥
पुराणं लक्षणञ्चैव प्रमाणं दानमेव च।
पृथक् पृथक् समुद्दिष्टं दानकालपुरःसरम् ॥
चैत्रादि सर्वमासेषु तिथिनाञ्च पृथक् पृथक्।
प्रोक्तं प्रतिपदादीनां व्रतं सर्वाघनाशनम् ॥
सनातनेन मुनिना नारदाय चतुर्थके ।
पूर्वभागोऽयमुदितो बृहदाख्यानसंज्ञितः ॥

अस्योत्तरविभागे तु प्रश्न एकादशीव्रते ।
वशिष्ठेनाथ संवादो मान्धातुः परिकीर्त्तितः ॥
रुक्माङ्गदकथा पुण्या मोहिन्युत्पत्ति कर्म च ।
वसुशापश्च मोहिन्यै पश्चादुद्धारणक्रिया ॥
गङ्गाकथा पुण्यतमा गयायात्रानुकीर्त्तनम् ।
काश्या माहात्म्यमतुलं पुरुषोत्तमवर्णनम् ॥
यात्राविधानं क्षेत्रस्य बह्वाख्यानसमन्वितम् ॥
प्रयागस्याथ माहात्म्यं कुरुक्षेत्रस्य तत्परम् ।
हरिद्वारस्य चाख्यानं कामोदाख्यानकं तथा ॥
बदरीतीर्थमाहात्म्यं कामाख्यायास्तथैव च ।
प्रभासस्य च माहात्म्यं पुराणाख्यानकं तथा ॥
गौतमाख्यानकं पश्चाद्वेदपादस्तवस्ततः ।
गोकर्णक्षेत्रमाहात्म्यं लक्ष्मणाख्यानकं तथा ॥
सेतुमाहात्म्यकथनं नर्मदातीर्थवर्णनम् ।
अवन्त्या चैव माहात्म्यं मथुरायास्ततः परम् ।
वृन्दावनस्य महिमा वसोर्ब्रह्मान्तिके गतिः ।
मोहिनीचरितं पश्चादेवं वै नारदीयकम् ॥"

(हे विप्र ! सुनो, नारदीय पुराण कहता हूं। इस पुराणमें पचीस हजार श्लोक और वृहत् कल्पकी कथाएं हैं।

इसके पूर्व भागके प्रथमपादमें जहां सूतशौनकसंवाद है वहां संक्षिप्त सृष्टिवर्णन और महात्मा सनकादिक नाना प्रकारकी धर्मकथाएं हैं।

मोक्षधर्माख्य द्वितीय पादमें मोक्षका उपायनिरूपण, वेदाङ्ग समुदायका कथन और विस्तृतरूपसे शुककी उत्पत्ति, ये सब माहात्म्य नारदसे सदानन्दने कहे हैं।

महातन्त्रोद्दिष्ट पशुपाशविमोक्षण, मन्त्रसमुदायका शोधन, दीक्षा उद्धार, पूजा और प्रयोग तथा गणेश, सूर्य और विष्णु, सहस्रनामस्तोत्र, पुराणके लक्षण और प्रमाण, दान और दानका पृथक् पृथक् फल-उद्देश तथा चैत्रादि मासमें प्रतिपदादि तिथिक्रमसे पृथक् पृथक् व्रत-निरूपण, ये सब वृत्तान्त सनातन मुनिने नारदसे चतुर्थ भागमें कहे हैं।

इसके उत्तर भागमें एकादशीव्रत विषयमें प्रश्न, वशिष्ठ-के साथ मान्धाताका संवाद, पवित्र रुक्माङ्गदकथा, मोहिनीकी उत्पत्ति और कर्म, मोहिनीके प्रति वसुशाप, पश्चात् उद्धारक्रिया, पुण्यतम गङ्गाकथा, गयायात्राकीर्त्तन, काशीमाहात्म्य, पुरुषोत्तमवर्णन, बहु आख्यानयुक्त पुरुषोत्तमक्षेत्रका यात्राविधान, प्रयागमाहात्म्य, कुरुक्षेत्र-माहात्म्य, हरिद्वाराख्यान, कामोदाख्यान, बदरीतीर्थ-माहात्म्य, कामाख्यामाहात्म्य, प्रभासमाहात्म्य, पुराणा-ख्यान, गौतमाख्यान, वेदपादस्तव, गोकर्णक्षेत्रमाहात्म्य, लक्ष्मणाख्यान, सेतुमाहात्म्य, नर्मदातीर्थवर्णन, अवन्ती और मथुराका माहात्म्य, वृन्दावनमहिमा, ब्रह्माके निकट वसुका गमन और पुनः मोहिनीचरित, ये सब नारदीय पुराणमें कीर्त्तित हुए हैं।)

नारदपुराणोक्त विषयानुक्रमके साथ नारदीयपुराणकी पूर्वोद्धृत सूची बिलकुल मिलती जुलती है। जिस नारद-पुराणके ग्रन्थमें सूची और समस्त पुराणका विषयानु-क्रम दिया गया, उस नारदीयपुराणकी ग्रन्थसंख्या प्रायः २२००० है।

अध्यापक विलसन साहबने नारदपुराणके केवल ३००० श्लोक पाये हैं। मालूम होता है, कि उन्होंने सम्पूर्ण नारदपुराण नहीं देखा था। उनका विवरण पढ़नेसे ज्ञात होता है, कि नारदपुराणके उत्तरभागमें १से ३७ अध्याय तकमें जो अंश है, वही अंश उन्होंने पाया है। इसीसे मालूम होता है, कि उन्हें नारद-पुराणमें पुराणके पञ्च लक्षण नहीं मिले और इसी कारण उन्होंने इसे पुराण कह कर स्वीकार नहीं किया। अब देखना चाहिये, कि इस वृहत् पुराणको हम लोग महा-पुराणके जैसा स्वीकार कर सकते हैं वा नहीं?

मत्स्यपुराणके मतसे—

"यत्राह नारदो धर्मान् वृहत्कल्पाश्रयानिह ।
पञ्चविंशत् सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते ॥"

जिस ग्रन्थमें नारदने वृहत्कल्पप्रसङ्गमें नाना प्रकार-की धर्मकथाएं कही हैं, वही २५००० श्लोकयुक्त नारदपुराण है।

शिव उपपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा है—

"नारदोक्तं पुराणन्तु नारदीयं प्रचक्षते।"

नारदोक्तपुराण ही नारदीय नामसे प्रसिद्ध है।

उक्त लक्षणके अनुसार हम लोगोंमें जो नारदपुराण पाया है, वह नारदीय महापुराण कह कर ग्रहण हो सकता है।

परशु, ... निषधाधिप ...
...नीक, वृहद्रथ, सुक्रतु, ...

अध्यापक विलसन इस नारदपुराणको १६वीं वा १७वीं शताब्दीमें रचित भक्तिग्रन्थके जैसा अनुमान करते हैं। किन्तु ११वीं शताब्दीमें अलवेरुणीकर्तृक नारदके उल्लेखमें और १२वीं शताब्दीमें गौड़ाधिप बल्लालसेनके दानसागरमें इस नारद पुराणके वचन उद्धृत हुए हैं। विशेषतः नारदपुराणके विषयकी आलोचना करनेसे इसे केवल भक्तिग्रन्थ ही नहीं कह सकते, तान्त्रिक वैष्णवोंके अनुष्ठानादि और नाना प्रकारके सम्प्रदायका विधान भी इस पुराणमें वर्णित देखा जाता है। इस ग्रन्थके उत्तर भागकी आलोचना करनेसे यह वैष्णवसम्प्रदाय विशेषके ग्रन्थ जैसा प्रतीत तो होता है, पर पूर्व भागके नाना विषयोंको आलोचना करनेसे यह कोई विशेष साम्प्रदायिक ग्रन्थ जैसा प्रतीत नहीं होता। इसमें जिस प्रकार सभी पुराणोंके विषयानुक्रम दिये गये हैं, उससे बोध होता है, कि दो एक छोड़ कर सभी पुराणोंके वर्त्तमान आकार धारण करनेके बाद यह पुराण सङ्कलित हुआ है। सुतरां एक समय छठे पुराणमें इसकी गिनती होने पर भी, अभी बहुत कुछ हेर फेर हो गया है। सम्भवतः इस पुराणका अधिकांश प्राचीन भाग ही विलुप्त हो गया है। विशेषरूपसे तान्त्रिक मतका प्रचार होनेके बाद नारदपुराणने वर्त्तमान आकार धारण किया है। अलवेरुणीके 'भारत' वर्णित विवरणसे जाना जाता है, कि उस समय भारतमें तान्त्रिक और पौराणिक सभी प्रकारकी देवप्रतिष्ठा, मन्त्र और दीक्षादि प्रचलित थीं। इस नारदपुराणका पाठ करनेसे ऐसी कोई विशेष बात नहीं मिलती जिससे इसको तत्परवर्त्ती कालकी रचना मान सकें।

इसके पहले पद्मपुराणकी आलोचनामें यह दिखलाया गया है, कि आजकलके पद्मपुराणमें जिस प्रकार पाषण्डिलक्षण और मायावादकी निन्दा है, नारदपुराणके सङ्कलनकालमें पद्मपुराणके मध्य उस प्रकारका कोई विषय न था। अलावा इसके यह भी दिखलाया गया है, कि श्रीसम्प्रदाय वा माध्वसम्प्रदायके द्वारा ही पाषण्डिलक्षण और मायावाद-निन्दाका अंश रचा गया है। इस हिसाबसे ११वीं शताब्दीके पहले नारदपुराणने वर्त्तमान आकार धारण किया था, इसमें सन्देह नहीं।

बृहन्नारदीयपुराण नामसे भी एक वैष्णवग्रन्थ मुद्रित हुआ है। यह महापुराण नहीं है, उपपुराणश्रेणीमें गिना जा सकता है। लघुबृहन्नारदीय पुराण नामका भी एक छोटा ग्रन्थ मिलता है जो न तो पुराण और न उपपुराणमें ही गिना जा सकता है।

कार्त्तिकमाहात्म्य, दत्तात्रेयस्तोत्र, पार्थिवलिङ्ग-माहात्म्य, मृगव्याधकथा, यादवगिरिमाहात्म्य, श्रीकृष्ण-माहात्म्य, सङ्कटगणपतिस्तोत्र इत्यादि नामधेय ग्रन्थ नारदपुराणके अन्तर्गत माने जाते हैं।

७म मार्कण्डेयपुराण।

१ मार्कण्डेयके समीप जैमिनिका भारतविषयक प्रश्न, उसके उत्तरमें मार्कण्डेयका वपुशापकथन, २ कन्धर और विद्युद्रूपका युद्धवर्णन, चटकका उत्पत्ति-कथन, ३ शमीकमुनिके निकट पिङ्गाक्षि विहगोंका शाप-कारणवर्णन, उनकी विन्ध्याचलप्राप्ति, ४ विन्ध्याचलस्थ पक्षिचतुष्टयके समीप गमनपूर्वक जैमिनीका प्रश्न-चतुष्टयकथन, उत्तरमें उनके प्रति चतुर्व्यूहावतार-वर्णन, ५ द्रौपदीके पञ्चस्वामीका कारण, इन्द्रविक्रिया-कथन, ६ बलदेवकृत ब्रह्महत्याका कारणकथन, ७ विश्वामित्रके क्रोधसे हरिश्चन्द्रकी राज्यच्युति, द्रौपदीका विवरण, ८ हरिश्चन्द्रका उपाख्यान, ९ आड़िवकयुद्धप्रस्ताव, १० पक्षिगणके समीप जैमिनिका प्राणिजन्मादि विषयक प्रश्न, ११ पिताके समीप पुत्रका निषेकादि वृत्तान्त-वर्णन, १२ महारौरवादि नरकवृत्तान्तवर्णन, १३ वैश्यराज एवं यमपुरुषसंवाद, १४-१५ वैश्यराजके प्रति यमपुरुषका कर्मफलकथन, वैश्यराजका स्वर्गगमन, १६ पतिव्रतामाहात्म्य, अनसूयाका वरलाभ, १७ दत्तात्रेयको उत्पत्ति, १८ कार्त्तवीर्यार्जुनके प्रति गर्गका उपदेश कथनपूर्वक दत्तात्रेय-वृत्तान्तवर्णन, १९ दत्तात्रेय और कार्त्तवीर्यका संवाद, २० नागराजाश्वतरके समीप उनके पुत्र कुवलयाश्वका वृत्तान्तवर्णनप्रारम्भ, २१ कुवलयाश्वका स्वबाणविद्ध पातालकेतु दैत्यके अनुसरणमें पातालगमन, वहां मदालसाका पाणिग्रहण, ससैन्य पातालकेतुवध, २२ मदालसा-वियोग, २३ अश्वतरकी तपश्चरण द्वारा मदालसाप्राप्ति, कुवलयाश्वका नागराज-भवनमें गमन, २४ कुवलयाश्वका पुनः अश्वतरके समीप

मदालसालाभ, २५ मदालसाका बालोल्लापन, २६ मदालसाके पुत्रत्रयका तपश्चरण, पुत्र अलर्कके प्रति उनका उल्लापणवाक्य, २७ मदालसाका पुत्रानुशासन, २८ अलर्कके प्रति मदालसाका आश्रम-चतुष्कके धर्म कर्मादिका कथन, २९ विस्तारितभावमें गार्हस्थ्यधर्मनिरूपण, ३० नित्य नैमित्तिकादि श्राद्धकल्प, ३१ पार्वण श्राद्धकल्प, ३२ श्राद्धकल्प, ३३ काम्यश्राद्धफलकथन ३४ सदाचारादि व्यवस्थानिरूपण, ३५ वर्ज्यावर्ज्यादि निरूपण, ३६ मदालसाका निजपुत्रको अङ्गुरीयकदान, ३७ अलर्कका आत्मविवेक, ३८ दत्तात्रेय और अलर्कका संवाद, ३९ योगाध्याय, ४० योगसिद्धि, ४१ योगचर्या, ४२ अङ्कारका रूपकथन, ४३ अरिष्टकथन, ४४ सुबाहु और काशीराजका कथोपकथन, ४५ क्रौष्टकिके प्रति मार्कण्डेयका ब्रह्मोत्पत्तिकथन, ४६ कालनिरूपण, ब्रह्मायुका परिमाण, ४७ प्राकृत वैकृत सर्गविधान, ४८-४९ विस्तारित भावमें देवादि सृष्टिकथन, ५० यज्ञानुशासन, ५१ दौःसहोत्पत्ति, ५२ रुद्रसर्ग, ५३ स्वायम्भुव मन्वन्तरकथन, ५४-५५ भुवनकोष-कथनप्रसङ्गमें जम्बूद्वीप-वर्णन, ५६ गङ्गावतार, ५७ भारतवर्षविभाग, ५८ कूर्मसंस्थान, ५९-६० वर्षवर्णन, ६१ स्वारोचिष मन्वन्तरकथन-प्रारम्भ, ६२ कलि-वरूथिनी समागम, ६३ स्वारोचिषके साथ मनोरमाका विवाह, ६४ स्वारोचिषके साथ मनोरमाकी दो सखियोंका विवाह, ६५ चक्रवाक और मृगके प्रति स्वारोचिषका तिरस्कार, ६६ स्वारोचिषकी उत्पत्ति, ६७ स्वारोचिष मन्वन्तरकथन, ६८ निधिनिर्णय, ६९ उत्तममन्वन्तर-कथन-प्रारम्भ, उत्तमका पत्नीपरित्याग, द्विजका भार्यान्वेषण, ७० द्विजका भार्यानयन, ७१ राजा और राक्षसका संवाद, ७२ राजमहिषीका आनयन, औत्तम मुनिकी उत्पत्ति, ७३ औत्तममन्वन्तरकथन, ७४ तामस-मन्वन्तरकथन, ७५ रैवतमन्वन्तरकथन, ७६ चाक्षुष-मन्वन्तरकथन, ७७ वैवस्वत मन्वन्तरकथन, वैवस्वत-मनुकी उत्पत्ति, सूर्यशातन, ७८ देवर्षिकृत सूर्यस्तव, अश्विनीकुमारका उत्पत्ति-कथन, ७९ वैवस्वत मन्वन्तर, ८० सावर्णिक मन्वन्तरकथन, ८१ देवी महात्म्यारम्भ, मधुकैटभवध, ८२ महिषासुर सैन्यनिधन, ८३ महिषासुर-वध, ८४ शक्रादिमाहात्म्य, ८५ देवीदूतसंवाद, ८६ धूम्रलोचनवध, ८७ चण्डमुण्डवध, ८८ रक्तबीजवध, ८९ निशुम्भवध, ९० शुम्भवध, ९१ देवीस्तुति, ९२ देवीका वरदान, ९३ देवीमाहात्म्यफलश्रुति, ९४ देवीमाहात्म्य समाप्ति, ९५ सर्वसावर्ण मन्वन्तर, ९६ रुचिका उपाख्यान, ९७ पितृगणकर्तृक रुचिका वरप्रदान, ९८ रौच्यमनुकी उत्पत्ति, ९९-१०० भौत्यमन्वन्तर-कथन, १०१ भूपालवंशानुकीर्त्तन, मार्त्तण्डोत्पत्ति, १०२ ब्रह्माकी सृष्टि और भास्वत उत्पत्ति, १०३ ब्रह्मकृत दिवाकर स्तुति, १०४ काश्यपान्वयकीर्त्तन, अदितिकृत सूर्यस्तुति, १०५ भास्वानका वरदान, अदितिके गर्भसे उनका जन्म, १०६ सूर्यका तनुलिखन, १०७ विश्वकर्मा कृत सूर्यस्तव, १०८ मन्वन्तरश्रवणफल, १०९ भानुसन्तति सम्भूति वर्णनमें राजवर्द्धनाख्यान, ११० भानुमाहात्म्य, १११ सूर्य-वंशानुक्रम, ११२ पृषध्रको शूद्रताप्राप्ति, ११३ नाभाग-चरित, ११४ प्रमतिशाप, ११५ नाभागचरित, ११६ भलन्दन वत्सप्रीचरित, ११७-११९ खनित्रचरित, १२० विविंशचरित, १२१ खनीनेत्रचरित, १२२ करन्धम-चरित, १२३ अवीक्षितचरित और तत्कर्तृक वैशालिनीहरण, १२४ अवीक्षितका बन्दीत्व, १२५-१२६ अवीक्षितका उद्धार और वैराग्यप्राप्ति, माताके किमिच्छिकव्रतमें अवीक्षितका पौत्र मुखप्रदर्शनार्थ पितृ समीपमें अङ्गीकार, १२७ दानवके हाथसे अवीक्षितका वैशालिनीपरित्राण, १२८ अवीक्षितका वैशालिनी-विवाह और मरुत्तका जन्म-कथन, १२९ मरुत्ताभिषेक, १३०-१३२ मरुत्त-चरित, १३३ नरिष्यन्तचरित, १३४ सुमनास्वयम्बर, १३५ नरिष्यन्तवध, १३६ वपुष्मत्वधार्थ दमवाक्य, १३७ वपुष्मद्वध और दमचरित, १३८ मार्कण्डेयपुराणफल-श्रुति।

प्रचलित मार्कण्डेयपुराणकी विषयसूची दी गई। अब यह देखना चाहिये, कि अपरापर पुराणोंमें मार्कण्डेयका कैसा लक्षण निर्दिष्ट हुआ है:—

नारदपुराणके मतसे—

"अथात संप्रवक्ष्यामि मार्कण्डेयाभिधं मुने।
पुराणं सुमहत् पुण्यं पठतां शृण्वतां सदा॥
यस्याधिकृत्य शकुनीन् सर्वधर्मनिरूपणम्।
मार्कण्डेयेन मुनिना जैमिनेः प्राक् समोरितम्॥
पक्षिणां धर्मसंज्ञानां ततो जन्मनिरूपणम्।

पूर्वजन्मकथा चैषां विक्रिया च दिवस्पतेः ॥
तीर्थयात्रा बलस्यातो द्रौपदेयकथानकम् ।
हरिश्चन्द्रकथा पुण्या युद्धमाडीबकाभिधम् ॥
पितापुत्रसमाख्यानं दत्तात्रेयकथा ततः ।
हैहयस्याथ चरितं महाख्यानसमन्वितम् ॥
मदालसाकथाप्रोक्ता ह्यलर्कचरिताचिता ।
सृष्टिसंकीर्त्तनं पुण्यं नवधा परिकीर्त्तितम् ॥
कल्पान्तकालनिर्देशो यक्षसृष्टिनिरूपणम् ।
रुद्रादिसृष्टिरप्युक्ता द्वीपवंशानुकीर्त्तनम् ॥
मनूनाञ्च कथा नाना कीर्त्तिताः पापहारिकाः ।
तासु दुर्गा कथात्यन्तं पुण्यदा चाष्टमेऽन्तरे ॥
तत्पश्चात् प्रणवोत्पत्तिस्त्रयीतेजसमुद्भवः ।
मार्कण्डेयस्य जन्माख्या तन्माहात्म्यसमन्विता ॥
वैवस्वतान्वयश्चापि वत्सप्रीचरितं ततः ।
खनित्रस्य ततो प्रोक्ता कथा पुण्या महात्मनः ॥
अविक्षिच्चरितं चैव किमिच्छव्रतकीर्त्तनम् ।
नरिष्यन्तस्य चरितमिक्ष्वाकुचरितं ततः ॥
तुलस्याश्चरितं पश्चाद्रामचन्द्रस्य सत्कथा ।
कुशवंश समाख्यानं सोमवंशानुकीर्त्तनम् ॥
पुरूरवः कथा पुण्या नहुषस्य कथाद्भुता ।
ययातिचरितं पुण्यं यदुवंशानुकीर्त्तनम् ॥
श्रीकृष्ण बालचरितं माथुरं चरितं ततः ।
द्वारकाचरितञ्चाथ कथा सर्वावतारजा ॥
ततः सांख्य-समुद्देशः प्रपञ्चासत्त्वकीर्त्तनम् ।
मार्कण्डेयस्य चरितं पुराणश्रवणे फलम् ।"

(हे मुने! इसके बाद तुमसे मार्कण्डेयपुराण कहता हूं। इस पुराणके श्रोता और पाठक दोनोंको ही अशेष पुण्य लाभ होता है। इसमें शकुनियोंका अवलम्बन करके मार्कण्डेय मुनिने समस्त धर्मोंका निरूपण किया है। इसमें पक्षियोंको धर्मसंज्ञा, जन्मनिरूपण, और पूर्वजन्मकथा, दिवास्पतिकी विक्रिया, बलदेवकी तीर्थयात्रा, द्रौपदकी कथा, हरिश्चन्द्रकी कथा, आड़ीबका-भिधयुद्ध, पितापुत्र-समाख्यान, दत्तात्रेयकथा, हैहयचरित, मदालसाकथा, अलर्कचरित, नवधा सृष्टिकीर्त्तन, कल्पान्तकालनिर्देश, यक्षसृष्टिनिरूपण, रुद्रादिसृष्टि, द्वीपवंशानुकीर्त्तन, मनुओंकी नानाविध पापहारक कथा, उनमेंसे अष्टम मन्वन्तरमें अत्यन्त पुण्यप्रद दुर्गाकी कथा, प्रणवोत्पत्ति, त्रयीतेज-उद्भव, मार्कण्डेयका समाख्यान और उसका माहात्म्य, वैवस्वतचरित तथा वत्सप्री चरित। इसके बाद पुण्यदायक खनित्रकथा, अविक्षित्-चरित, किमिच्छव्रतकीर्त्तन, नरिष्यन्तचरित, इक्ष्वाकु-चरित, तुलसीचरित, रामचन्द्रकी सत्कथा, कुशवंश-समाख्यान, सोमवंशानुकीर्त्तन, पुरूरवाकी कथा, नहुषकथा, ययातिचरित, यदुवंशकीर्त्तन, श्रीकृष्णका बाल्य और माथुरचरित, द्वारकाचरित, सांख्यसमुद्देश, प्रपञ्चासत्वकीर्त्तन एवं मार्कण्डेय-चरित, यही सब कीर्त्तित हुए हैं।)

मत्स्यपुराणके मतसे—

"यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्माधर्मविचारणाम् ।
व्याख्यातं वै मुनिप्रश्ने मुनिभिर्धर्मचारिभिः ॥
मार्कण्डेयेन कथितं तत्सर्वं विस्तरेण तु ।
पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते ॥"

(५३।२६)

जिस ग्रन्थमें धर्माधर्म विचारज्ञ पक्षियोंसे प्रसङ्गसे आरम्भ हो कर धार्मिक मुनिगण कर्त्तृक व्याख्यात सभी विषय मुनिके प्रश्नानुसार मार्कण्डेय द्वारा कहे गये हैं, वही ८००० ग्रन्थयुक्त मार्कण्डेयपुराण है।

स्कन्दपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा है—

"यत्र वक्ताऽभवत्साक्षान्मार्कण्डेयो महामुनिः ।
मार्कण्डेय-पुराणं हि तदाख्यातञ्च सप्तमम् ॥"

हे तपस्वि! जिस पुराणमें महामुनि मार्कण्डेय वक्ता हुए थे, वह सप्तम मार्कण्डेयपुराण नामसे प्रसिद्ध है। मत्स्य नारदादिपुराणोंमें मार्कण्डेयपुराणके जो लक्षण निर्दिष्ट हुए हैं, प्रचलित मार्कण्डेयपुराणमें उनका कुछ भी अभाव नहीं है।

क्या देशीय, क्या अध्यापक विलसन-प्रमुख पाश्चात्य पण्डितगण सभी एक स्वरसे इस मार्कण्डेयपुराणकी मौलिकता स्वीकार करते हैं। अध्यापक विलसनने लिखा है, कि प्रचलित मार्कण्डेयपुराणमें ६९०० श्लोक देखे जाते हैं। यदि ऐसा हो, तो २१०० श्लोक कहां गये? इसका कोई भी उपयुक्त उत्तर नहीं देते। किसी किसी पण्डितने लिखा है, कि जो अंश मिलता है, वह प्रथम खण्ड है। अब शेष खण्ड कहां गया? नारदपुराणसे विषयानुक्रमसे मालूम होता है, कि नरिष्यन्त-चरितके बाद इक्ष्वाकुचरित, तुलसीचरित, रामचन्द्रकथा, कुशवंश, सोमवंश, पुरूरवा, नहुष और ययाति-चरित,

यदुवंश, श्रीकृष्णका बाल्य और माथुरलीला, द्वारका-चरित, सांख्यकथा, प्रपञ्चसत्त्व और मार्कण्डेय-चरित वर्णित था। किन्तु प्रचलित मार्कण्डेय-पुराणमें नरिष्यन्तिचरितके परवर्ती विषय बिलकुल नहीं हैं। इन सब विषयोंको एकत्र करनेसे मार्कण्डेय-पुराणकी श्लोकसंख्या पूरी होगी, इसमें सन्देह नहीं।

इस पुराणमें साम्प्रदायिक भाव नहीं है। इसमें बहुत-सी ऐसी कथाएं हैं जो किसी भी पुराणमें नहीं मिलतीं। बड़े ही आश्चर्यका विषय है, कि इस पुराण-में वेदव्यासका नाम तक भी नहीं आया है। प्रचलित पुराणोंमें जिस प्रकार बनावटी बातें दी गई हैं, उस प्रकार इस महापुराणमें नहीं है। इसका देवी वा चण्डीमाहात्म्य सभी हिन्दू सम्प्रदायकी अवश्य अव-लम्बनीय और अत्यमूल्य सम्पत्ति है। हिन्दूके सभी प्रधान धर्मकर्मोंमें इस देवीमाहात्म्यका पाठ नहीं करनेसे कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता। विपद्‌में हिन्दूके घर पर मार्कण्डेय-पुराणीय सप्तशती चण्डीका पाठ होता है।

इसका प्राचीनत्व स्वीकार करते हुए भी अध्यापक विलसनने ९वीं वा १०वीं शताब्दीमें इसका रचना-काल स्थिर किया है। किन्तु शङ्कराचार्य, बाण और मयूरभट्टकर्तृक इस मार्कण्डेयपुराणका उल्लेख होनेके कारण इसे बहुत प्राचीन ग्रन्थ स्वीकार कर सकते हैं। बड़े ही आश्चर्यका विषय है, कि बौद्धगण भी सप्तशती चण्डीका आदर करते हैं। नेपालसे एक बौद्धाचार्यकी हस्तलिखित ८०० वर्षकी पुरानी सप्तशती पाई गई है। सम्भवतः बौद्धप्रभावके समय भी यह पुराण भ्रष्ट नहीं हुआ था। अतः हम लोग इसे निःसन्देह प्राचीन तथा शुद्ध पुराण मान सकते हैं।

८म आग्नेयपुराण।

अभी दो प्रकारका अग्नि वा वह्निपुराण प्रचलित देखा जाता है। नीचे दोनों प्रकारके आग्नेयकी विषय-सूची दी गई है :—

१म वह्निपुराणमें—१ ऋषिप्रश्न, २ अग्निस्तव, ३ ब्रह्म-स्तुति, ४ स्नानविधि, ५ आह्निकस्नानविधि, ६ भोजन-विधि, ७ आग्निकतपः, ८ आश्वमेधिक (वेणुकथा), ९ पृथुका उपाख्यान, १० गायत्रीकल्प, ११ ब्राह्मणप्रशंसा, १२ सर्गानुशासन, १३ गणभेद, १४ योगनिर्णय, १५ सत्र-कथन, १६ सर्गानुकीर्त्तन, सतीदेहत्याग, १७ वरस्वर्ग, १८ काश्यपीय प्रजासर्ग, १९ काश्यपीयवंश, २० प्रजा-पतिसर्ग, २१-२३ वराहप्रादुर्भाव, २४-२७ नरसिंह-प्रादुर्भाव, २८ देवाम्बरीषसंवाद, २९ वैष्णवधर्ममें युगानुकीर्त्तन, ३० वैष्णवधर्ममें क्रियायोगविधि, ३१ वैष्णवधर्ममें शुचिव्रत, ३२ सुनामद्वादशी, ३३-३५ धेनु-माहात्म्य, ३६ घृतधेनुविधि, ३७ वृषदान, ३८ पाशुपतदान ३९ पापनाशन वृषदान, ४० भद्रनिधिदान, ४१ शिविका-दान, ४२ विद्यादान, ४३ गृहदान, ४४ दासीदान, ४५ ब्राह्मणकथन, ४६ अन्नदान, ४७ प्रेतोपाख्यान, ४८ दीप-मालिकाख्यापन, ४९ च्यवननहुषसंवाद, ५० तुलापुरुष-दान, ५१ शर्मिष्ठोपाख्यान, ५२-५३ तड़ागवृक्षप्रशंसा, ५४ दानादि यज्ञकरण, ५५ वारुणारामप्रतिष्ठा, ५६-६० वामनप्रादुर्भाव, ६१ क्रियायोग, ६२ कामधेनुप्रदान, ६३ मुद्गलोपाख्यान, ६४ शिवका उपाख्यान, ६५ दानावस्था-निर्णय, ६६ संग्रामप्रशंसा, ६७ रोहिणी का अष्टमी कल्प, ६८ वैवस्वतानुकीर्त्तन, ६९ सगरोपाख्यान, ७०-७१ गङ्गावतार, ७२ गङ्गामाहात्म्य, ७३-७४ सूर्यवंश माहात्म्यकीर्त्तन, ७५ सौदासशापकथन, ७६ वैश्रवण-वरदान, ७७ कपिलदर्शन, ७८ राक्षसयुद्ध, ७९ विश्वा-मित्रयज्ञ, ८० अहल्याशापमोचन, ८१ सीताका विवाह, ८२ सुमन्त्रप्रेषण, ८३ रामनिर्गम, ८४ जनसंलाप, ८५ चित्रकूटनिवास, ८६ कैकेयीवाक्य, ८७ नन्दिग्रामवास, ८८ त्रिशिरावध, ८९ खरवध, ९० रावणवाक्य, ९१ अशोकवनितापवेश, ९२ वनगवेषण, ९३ रामक्रोध, ९४ जटायुदर्शन, ९५ जटायुका सत्कार, ९६ अयोमुखकी मुक्ति, ९७ कबन्धदर्शन ९८ कबन्धवाक्य, ९९ कबन्धोप-देश, १०० सुग्रीवदर्शन, १०१ सुग्रीववाक्य, १०२ हनू-मानवाक्य, १०३ रामवाक्य, १०४ वालिसंग्राम, १०५ वालिका वाक्य, १०६ सुग्रीवाभिषेक, १०७ वर्षानिवृत्ति, रामविषाद, १०८ लक्ष्मणका क्रोध, १०९ वानरसैन्य-समागम, ११० सुग्रीववाक्य, १११ वानरयूथप्रत्यागमन, ११२ हनुमन्तप्रस्थान, ११३ वानरप्रत्यागमन, ११४ वन-विवरण, ११५ राघवचरितप्रसङ्गमें वानरविवाद, ११६

प्रायोपवेशन, ११७ सीतावार्त्तोपलब्धि, ११८ सम्पातिपक्ष विनाश, ११९ वानरप्रत्यागमन, १२० हनूमानका गर्जन, १२१ लङ्कावलोकन, १२२ लङ्कान्वेषण, १२३ अवरोध दर्शन, १२४ सीतोपलम्भन, १२५ राक्षसीसमादेश, १२६ सीताविलाप, १२७ स्वप्नदर्शन, १२८ सीतासम्बोधन, १२९ सीताप्रश्न, १३० वनभङ्ग, १३१ किङ्करवध, १३२ अमात्यवध, १३३ सेनापतिवध, १३४ अक्षकुमारवध, १३५ रावणवाक्य, १३६ पुच्छनिर्वापन, १३७ लङ्कादाह, १३८ सीतासंआश्वासन, १३९ हनूमत्कथन, १४० मधुभक्षण, १४१ सीतावाक्य, १४२ सुग्रीववाक्य, १४३ सेनानिवेश, १४४-१४६ विभीषणवाक्य, १४७ विभीषणगमन, १४८ सेतुबन्धप्रारम्भ, १४९ सेतुबन्धन, १५० मायामय रामदर्शन, १५१ सीताका प्रलाप, १५२ प्रहस्तवध, १५३ सुग्रीवविग्रह, १५४ कुम्भकर्णवध, १५५ नरान्तकवध, १५६ त्रिशीर्षवध, १५७ अतिकायवध, १५८ इन्द्रजित्का युद्ध, १५९ औषधानयन, १६० कुम्भवध, १६१ निकुम्भवध, १६२ मकराक्षवध, १६३ मायामय सीतावध, १६४ इन्द्रजिद्धोम, १६५ रामोत्थापन, १६६ इन्द्रजिनदर्शन, १६७ विरथीकरण, १६८ इन्द्रजित्वध, १६९ विजयाख्यापान, १७० सुपार्श्ववाक्य, १७१ परिवेदन, १७२ विरूपाक्षवध, १७३ महापार्श्ववध, १७४ शक्तिभेद, १७५ रामरावणयुद्ध, १७६ रावणशिरश्छेद, १७७ विभीषणाभिषेक, १७८ विमानारोहण, १७९ अयोध्यापुरमें रामचन्द्रका प्रवेश, १८० रामाभिषेक, १८१ राज्यवर्णन श्रवणफल, अनुक्रमणिकावर्णन, अग्निपुराण-पठनफल ।

२य अग्निपुराणमें —१ अग्निपुराणारम्भकप्रश्न, २ मत्स्यावतारकथन, ३ कूर्मावतारकथा, ४ वराहाद्यवतारवर्णन, ५ रामायणकी आदिकाण्डकथा, ६ अयोध्याकाण्डकथा, ७ अरण्यकाण्डवर्णन, ८ किष्किन्ध्याकाण्डवर्णन, ९ सुन्दरकाण्डवर्णन, १० लङ्काकाण्डवर्णन, ११ उत्तरकाण्डवर्णन, १२ हरिवंशकथन, १३ भारताख्यानमें आदिपर्वसे उद्योगपर्व तक कथन, १४ आश्वमेधिक पर्व पर्यन्त कथन, १५ आश्रमिक पर्वके शेष पर्यन्त कथन, १६ बुद्धकल्पसे अवतारकथन, १७ जगत्सृष्टि, १८ स्वायम्भुवादिकृत सृष्टिकथन, १९ कश्यपसृष्टिकथन, २० सृष्टिविभाग, भृग्वादिकृत सृष्टिकथन, २१ विष्णु प्रभृतिका पूजाकथन, २२ स्नानविधिकथन, २३ पूजाविधि, २४ अग्निकार्यादि, २५ मन्त्रप्रदर्शन, २६ मुद्राप्रदर्शन, २७ दीक्षाविधिकथन, २८ अभिषेकविधि, २९ मण्डलादि लक्षण, ३० मण्डलादिवर्णन, ३१ कुशापमार्जनात्मक रक्षाविधि, ३२ अष्टाचत्वारिंशत् संस्कारकथन, ३३ पवित्रारोहणप्रसङ्ग, ३४ पवित्रारोहणमें अग्निकार्यकथन, ३५ पवित्र अधिवास, ३६ विष्णुपवित्रारोहण, ३७ संक्षेप पवित्रारोहण, ३८ देवालयादिका माहात्म्यवर्णन, ३९ प्रतिष्ठादिकार्य, भूपरिग्रहकथन, ४० अर्घ्य दानविधि, ४१ शिलाविन्यासविधि, ४२ प्रासादलक्षण, ४३ देवताओंके प्रासादमें शान्त्यादि स्थापनवर्णन, ४४ वासुदेवादि प्रतिमालक्षण, ४५ पिण्डिकालक्षणकथन, ४६ शालग्राम इत्यादि मूर्त्तिलक्षण, ४७ शालग्रामादि पूजा, ४८ चतुर्विंशति मूर्त्तिका स्तव, ४९ दशावतार-प्रतिमालक्षण, ५० देवीप्रतिमालक्षण, ५१ सूर्यादि प्रतिमालक्षण, ५२ योगिन्यादि प्रतिमालक्षण, ५३ लिङ्गलक्षण, ५४ लिङ्गमानादिकथन, ५५ प्रतिमापिण्डिकालक्षण, ५६ दिक्पाल-यागकथन, ५७ कलसाधिवासविधि, ५८ स्नपनादिविधि, ५९ अधिवासलक्षणप्रकारकथन, ६० पिण्डिकादि स्थापनके लिये भागनिर्णय और प्रतिष्ठादिकथन, ६१ ध्वजारोहण, ६२ लक्ष्मीस्थापन, ६३ तार्क्ष्यादि प्रतिष्ठाकथन, ६४ कूपवापीतड़ागादिका प्रतिष्ठाकथन, ६५ सभादि स्थापन, ६६ साधारण प्रतिष्ठा, ६७ जीर्णोद्धारकथन, ६८ यात्रोका उत्सवादिकथन, ६९ अवभृथस्नानविधि, ७० वृक्षारामप्रतिष्ठा, ७१ गणेशपूजा, ७२ स्नान तर्पणादिकथन, ७३ सूर्यपूजा, ७४ शिवपूजाविधि, ७५ अग्निस्थापनादिविधि, ७६ शिवपूजाशेष-चण्डपूजाविधि, ७७ कपिलादि पूजनविधि, ७८ पवित्रारोहणमें अधिवास प्रकार निर्णय, ७९ पवित्रारोहणविधि, ८० दमनकारोहणविधि, ८१ समयदीक्षाविधि, ८२ संस्कारदीक्षाविधि, ८३ निर्वाणदीक्षाके प्रति दीक्षाधिवासनविधि, ८४ निवृत्तिकलाशोधन, ८५ प्रतिष्ठाकलाशोधन, ८६ विद्याकलाशोधन, ८७ शान्तिकलाशोधन, ८८ निर्वाणदीक्षासमाप्ति, ८९ एकतत्त्वदीक्षाविधि, ९० अभिषेकादिकथन, ९१ नाना मन्त्रादिकथन,

९२ प्रतिष्ठाविधिविधकथन, ९३ वास्तुपूजा, ९४ शिला-विन्यासकथन, ९५ प्रतिष्ठोपकरणकथन ९६ अधिवासन-विधि, ९७ शिवप्रतिष्ठाकथन, ९८ गौरीप्रतिष्ठाकथन, ९९ सूर्यप्रतिष्ठा, १०० द्वारप्रतिष्ठा, १०१ प्रासादप्रतिष्ठा, १०२ ध्वजारोहणविधान, १०३ जीर्णोद्धारक्रिया, १०४ सामान्य प्रासादलक्षण, १०५ गृहादि वास्तुकथन, १०६ नगरादि वास्तुकथा, १०७ स्वायम्भुवसर्गकथन, १०८ भुवनकोषवर्णन, १०९ तीर्थमाहात्म्यकथन, ११० गङ्गा-माहात्म्य, १११ प्रयागमाहात्म्य, ११२ काशीमाहात्म्य, ११३ नर्मदादिमाहात्म्य, ११४ गयामाहात्म्य, ११५ गया-माहात्म्य विविध विषय, ११६ गयामाहात्म्य कथाकी समाप्ति, ११७ श्राद्धकल्प, ११८ जम्बूद्वीपवर्णन, ११९ द्वीपान्तरवर्णन, १२० ब्रह्माण्डवर्णन, १२१ ज्योतिः-शास्त्रानुसार दिनदशाविवेकादि, १२२ कालगणना, १२३ विविधयोगकथन, १२४ युद्धजयार्णवकथन, १२५ युद्ध-जयार्णवमें नानाचक्रकथन, १२६ नक्षत्रनिर्णय, १२७ बलनिर्देश, १२८ कोटचक्रकथन, १२९ अर्घकाण्डकथन, १३० मण्डलनिरूपण, १३१ घातचक्रादि, १३२ सेवा चक्रादि, १३३ नानाफलकथन, १३४ त्रैलोक्यविजय-विद्या, १३५ संग्रामविजयविद्या, १३६ नक्षत्रचक्र, १३७ महामायाविद्या, १३८ षट्कर्मकथन, १३९ षष्टिसंव-त्सरकथन, १४० वश्यादियोगकथन, १४१ षट्‌त्रिंशत्-पदकज्ञान, १४२ मन्त्रौषधादिकथन, १४३ कुब्जिकाक्रम-पूजा, १४४ कुब्जिकापूजा, १४५ षोढान्यासादिकथन, १४६ अष्टाष्टकदेवीकथन, १४७ त्वरितापूजादि, १४८ संग्राम-विजयपूजा, १४९ अयुत-लक्ष-कोटी-होमकथन, १५० मन्व-न्तरकथन, १५१ वर्णाश्रमेतर धर्मकथन, १५२ गृहस्थ-वृत्तिकथन, १५३ ब्रह्मचर्यधर्म, १५४ विवाहप्रकरण, १५५ आचाराध्याय, १५६ द्रव्यशुद्धि, १५७ शावाद्यशौच-कथन, १५८ स्रावाद्यशौचकथन, १५९ शौचकथन, १६० वानप्रस्थधर्म, १६१ यतिधर्म, १६२ धर्मशास्त्र, १६३ श्राद्धविधि, १६४ ग्रहयज्ञविधि, १६५ नानाधर्मकथन, १६६ वर्णधर्मादिकथन, १६७ त्रिविधग्रहयज्ञकथन, १६८ महापातकादिकथन, १६९ महापातकादि प्रायश्चित्त-कथन, १७० संसर्गादि प्रायश्चित्तकथन, १७१ रह-स्यादि प्रायश्चित्तकथन, १७२ पापनाशस्तोत्र, १७३ हननादिनिरूपण, प्रायश्चित्त विशेषविधि, १७४ पूजा-लोपादिमें प्रायश्चित्तविशेषका उपदेश, १७५ व्रतपरिभाषा, १७६ प्रतिपद्व्रत, १७७ द्वितीयाव्रत, १७८ तृतीया-व्रत, १७९ चतुर्थीव्रत, १८० पञ्चमीव्रतकथन, १८१ षष्ठीव्रतकथन, १८२ सप्तमीव्रतकथन, १८३ जयन्त्यष्टमी-व्रत, १८४ अष्टमीव्रतकथन, १८५ नवमीव्रतकथन, १८६ दशमीव्रतकथन, १८७ एकादशीव्रतकथन, १८८ द्वादशी-व्रतकथन, १८९ श्रवणद्वादशीव्रतकथन, १९० अखण्ड-द्वादशीव्रतकथन, १९१ त्रयोदशीव्रतकथन, १९२ चतुर्दशी-व्रतकथन, १९३ शिवरात्रिव्रत, १९४ पूर्णिमाव्रतकथन, १९५ वारव्रतकथन, १९६ नक्षत्रव्रतकथन, १९७ दिवस-व्रतकथन, १९८ मासव्रतकथन, १९९ ऋतुव्रतकथन, २०० दीपदानव्रतकथन, २०१ नक्तव्रतपूजा, २०२ पुष्पा-ध्याय, २०३ नरकका रूपवर्णन, २०४ मासउपवासव्रत, २०५ भीष्मपञ्चकव्रत, २०६ अगस्त्यार्घ्यदान, २०७ कौमुद-व्रत, २०८ सामान्यव्रतदानकथन, २०९ दानधर्म और दानपरिभाषाकथन, २१० महादानकथन, २११ गोदाना-दिविविधधर्मकथन, २१२ मेरुदानकथन, २१३ पृथिवी-दानकथन, २१४ मन्त्रमहिमा, २१५ सन्ध्याविधि, २१६ गायत्र्यर्थ, २१७ गायत्रीनिर्वाण, २१८ राज्याभिषेकप्रकार, २१९ राज्याभिषेकका मन्त्रकथन, २२० सहायसम्पत्ति, २२१ राजाके समीप अनुजीविवृत्तिकथन, २२२ राजधर्म, २२३ ग्राम्यादि रक्षाका उपायविधान, २२४ स्त्रीरक्षा, कामशास्त्रकथन, २२५ राजकर्त्तव्य निर्देश, २२६ सामा-द्युपायनिर्देश, २२७ दण्डप्रणयन, २२८ युद्धयात्रा, २२९ स्वप्नाध्याय, २३० माङ्गल्याध्याय, २३१ शकुनविभेदस्वरूप-कीर्त्तन, २३२ शकुनकथन, २३३ यात्रामण्डलचिन्तादि, २३४ उपायषड्‌गुणकथन, २३५ राजनित्यकर्मनिर्देश, २३६ संग्रामदीक्षा, २३७ लक्ष्मीका स्तव, २३८ राम-कथित नीति, २३९ राजधर्मकथन, २४० षड्‌गुणकथन, २४१ प्रभावादि शक्तिनिर्देश, २४२ रामकथित नीतिशेष, २४३ स्त्रीपुरुषलक्षणविचारमें पुरुषलक्षणनिर्देश, २४४ स्त्रीलक्षणकथन, २४५ खड्गादिलक्षणकथन, २४६ रत्न-लक्षणकथन, २४७ वास्तुलक्षणकथन, २४८ पुष्पादिकी महिमा, २४९ धनुर्वेदकथारम्भ, २५० अस्त्रशिक्षाप्रकरण, २५१ वाहनारोहणप्रकार, २५२ गतिस्थित्यादिकथन,

लोक, वृहद्रथ, सुक्रतु,

२५३ व्यवहारनिर्णय, २५४ ऋणादिविचार, २५५ दिव्य-कथन, २५६ दायभाग, २५७ सीमाविवादादिप्रकरण, २५८ वाक्‌पारुष्यादि दण्ड, २५९ ऋग्विधान, २६० यजुर्विधान, २६१ सामविधान, २६२ अथर्वविधान, २६३ शोधनादिविशेषनियम, २६४ देवपूजा, वैश्वदेवादि, २६५ दिक्‌पालस्नान, २६६ विनायकस्नान, २६७ माहेश्वर-स्नान, २६८ नोराजन, २६९ छत्रादि मन्त्रकथन, २७० विष्णुपञ्जरकथन, २७१ वेदशाखादिकीर्त्तन, २७२ दान-माहात्म्यकथन, २७३ सूर्यवंश, २७४ चन्द्रवंश, २७५ यदुवंश, २७६ द्वादशसंग्रामकथन, २७७ तुर्वसु, अनु और द्रुह्यु वंशकीर्त्तन, २७८ पुरुवंश, २७९ आयुर्वेदमें सिद्धौषधकीर्त्तन, २८० सर्वरोगहर औषधकीर्त्तन, २८१ रसादि भेषजगुणकथन, २८२ वृक्षायुर्वेदकीर्त्तन, २८३ औषधप्रकरण, २८४ विष्णुनाममन्त्रकीर्त्तन, २८५ सिद्धयोगकीर्त्तन, २८६ मृत्युञ्जयकल्पकथन, २८७ हस्तिचिकित्सा, २८८ अश्वचिकित्सा, २८९ अश्वलक्षण, २९० अश्वशान्ति, २९१ गजशान्ति, २९२ गोशान्ति, २९३ मन्त्रपरिभाषा, २९४ नागलक्षण, २९५ नागदष्टचिकित्सा, २९६ पञ्चाङ्गरुद्रविधि, २९७ विषहरण मन्त्रादिकथन, २९७ गोनसादि चिकित्सा, २९९ बालग्रहचिकित्सा, ३०० बालग्रहका मन्त्रकथन, ३०१ सूर्यकी अर्चना, ३०२ विविधमन्त्रकथन, ३०३ अष्टाक्षरपर्चना, ३०४ पञ्च-अक्षरादि पूजाका मन्त्र, ३०५ पञ्चपञ्चाशत विष्णुनाम-कीर्त्तन, ३०६ नारसिंहादि मन्त्रकथन, ३०७ त्रैलोक्य-मोहनमन्त्रकथन, ३०८ त्रैलोक्यमोहिनी लक्ष्म्यादिपूजा, ३०९ त्वरितापूजा, ३१० त्वरितामन्त्रकथन, ३११ त्वरिता-मूलमन्त्रकथन, ३१२ त्वरिताविद्याकथन, ३१३ विना-यकपूजादिकथन, ३१४ त्वरिताज्ञान, ३१५ स्तम्भनादि-मन्त्रकीर्त्तन, ३१६ सर्वकर्मकर मन्त्रादिकथन, ३१७ सकलादि मन्त्रोद्धार, ३१८ गणपूजा, ३१९ वागीश्वरी-पूजा, ३२० सर्वतोभद्रमण्डलकीर्त्तन, ३२१ अघोरा-स्त्रादि शान्तिकल्प, ३२२ पाशुपतास्त्रशान्ति, ३२३ षडङ्गा-घोरास्त्रकथन, ३२४ शिवशान्ति, ३२५ पंशुकादिकीर्त्तन, ३२६ गौर्यादिपूजा, ३२७ देवालयमाहात्म्य, ३२८ छन्दो सार आरम्भ, ३२९ गायत्रीभेदकथन, ३३० छन्दोजाति-निरूपण, ३३१ वैदिकलौकिक छन्दोभेदकथन, ३३२ विषमवृत्तकथन, ३३३ अर्द्धसमवृत्तनिरूपण, ३३४ सम-वृत्तनिरूपण, ३३५ प्रस्तावनिरूपण, ३३६ शिक्षानिर्देश, ३३७ काव्यादिलक्षण, ३३८ नाटकनिरूपण, ३३९ रस-निरूपण, ३४० रीतिनिर्देश, ३४१ नृत्यादि रङ्गकर्म-निरूपण, ३४२ अभिनयादिनिरूपण, ३४३ शब्दालङ्कार-कथन, ३४४ अर्थालङ्कारकथन, ३४५ शब्दार्थालङ्कारकथन, ३४६ काव्यगुणविवेक, ३४७ काव्यदोषनिरूपण, ३४८ एकाक्षराभिधान, ३४९ व्याकरणारम्भ, ३५० सन्धिसिद्ध-रूपकथन, ३५१ सुब्विभक्तिरूपकथनमें पुंलिङ्ग शब्दसिद्ध-रूपकथन, ३५२ स्त्रीलिङ्ग शब्दसिद्धरूपकथन, ३५३ नपुं-सकशब्दसिद्धरूपकथन, ३५४ कारक, ३५५ समास, ३५६ तद्धित, ३५७ उणादि सिद्धरूपकथन ३५८ तिङ्‌विभक्ति सिद्धरूपकथन, ३५९ कृत्‌सिद्धरूपकथन, ३६० स्वर्ग-पातालादिवर्ग, ३६१-३६३ भूमिवनौषध्यादिवर्ग, ३६४ मनुष्यवर्ग, ३६५ ब्रह्मवर्ग, ३६६ क्षत्र-विट-शूद्रवर्ग, ३६७ सामान्यनामलिङ्गादि, ३६८ नित्यनैमित्तिक प्राकृत प्रलय, ३६९ आत्यन्तिकलय, गर्भोत्पत्त्यादि, ३७० शरीरा-वयव, ३७१ नरकनिरूपण, ३७२ यमनियम, ३७३ आसनप्राणायामप्रत्याहार, ३७४ ध्यान, ३७५ धारणा, ३७६ समाधि, ३७७-३७९ ब्रह्मज्ञान, ३८० अद्वैतब्रह्म-विज्ञान, ३८१ गीतासार, ३८२ यमगीता, ३८३ आग्नेय-पुराणमाहात्म्यकथन।

ऊपर जिन दो श्रेणियोंके अग्निपुराणकी सूची दी गई है, उनमेंसे केवल एक मुद्रित हुआ है। अब देखना चाहिये, कि इन दोनोंमेंसे कौन-सा प्रकृत दस पुराण हो सकता है।

नारदपुराणमें आग्नेयका विषयानुक्रम इस प्रकार दिया गया है—

"अथातः संप्रवक्ष्यामि तवाग्नेयपुराणकम्।
ईशानकल्पवृत्तान्तं वशिष्ठायानलोऽब्रवीत्॥
तत्पञ्चदशसाहस्रं नाम्ना चरितमद्भुतम्।
पठतां शृण्वताञ्चैव सर्वपापहरं नृणाम्॥
प्रश्नपूर्वं पुराणस्य कथा सर्वावतारजा।
सृष्टिप्रकरणं चाथ विष्णुपूजादिकं ततः॥
अग्निकार्यं ततः पश्चान्मन्त्रमुद्रादि लक्षणम्।
सर्वदीक्षाविधानञ्च अभिषेकनिरूपणम्॥
लक्षणं मण्डलादीनां कुशाया मार्जनं ततः।

पवित्रारोपणविधिर्देवालयविधिस्ततः ।
शालग्रामादिपूजा च मूर्त्तिलक्ष्म पृथक् पृथक् ।
न्यासादीनां विधानञ्च प्रतिष्ठापूर्त्तका ततः ॥
विनायकादिदीक्षाणां विधिर्वयस्ततः परम् ।
प्रतिष्ठा सर्वदेवानां ब्रह्माण्डस्य निरूपणम् ॥
गङ्गादितीर्थमाहात्म्यं जम्बादद्वीपवर्णनम् ।
ऊर्द्ध्वाधोलोकरचना ज्योतिश्चक्रनिरूपणम् ॥
ज्योतिषञ्च ततः प्रोक्तं शास्त्रं युद्धजयार्णवम् ।
षट्कर्म च ततः प्रोक्तं मन्त्रयन्त्रौषधीगणः ॥
कुब्जिकादिसमर्चा च षोढ़ान्यासविधिस्तथा ।
कोटिहोमविधानञ्च तदन्तरनिरूपणम् ॥
ब्रह्मचर्यादिधर्माश्च श्राद्धकल्पविधिस्ततः ।
ग्रहयज्ञस्ततः प्रोक्तो वैदिकस्मार्त्तकर्म च ॥
प्रायश्चित्तानुकथनं तिथीनाञ्च व्रतादिकम् ।
वारव्रतानुकथनं नक्षत्रव्रतकीर्त्तनम् ॥
मासिकव्रतनिर्देशो दीपदानविधिस्तथा ।
नवव्यूहार्चनं प्रोक्तं नरकाणां निरूपणम् ॥
व्रतानाञ्चापि दानानां निरूपणमिहोदितम् ।
नाड़ीचक्रसमुद्देशः सन्ध्याविधिरनुत्तमः ॥
गायत्र्यर्थस्य निर्देशो लिङ्गस्तोत्रं ततः परम् ।
राजाभिषेकमन्त्रोक्तिर्धर्मकृत्यञ्च भूभुजाम् ॥
स्वप्नाध्यायस्ततः प्रोक्तः शकुनादिनिरूपणम् ।
मण्डलादिकनिर्देशो रणदीक्षाविधिस्ततः ॥
रामोक्तनीतिनिर्देशो रत्नानां लक्षणं ततः ।
धनुर्विद्या ततः प्रोक्ता व्यवहारप्रदर्शनम् ॥
देवासुरविमर्दाख्या ह्यायुर्वेदनिरूपणम् ।
गजादीनां चिकित्सा च तेषां शान्तिस्ततः परम् ॥
गोनसादि चिकित्सा च नाना पूजास्ततः परम् ।
शान्तयश्चापि विविधा छन्दःशास्त्रमतः परम् ॥
साहित्यञ्च ततः पश्चादेकार्णादि समाह्वयाः ।
सिद्धशिष्टानुशिष्टिश्च कोषः स्वर्गादिवर्गके ॥
प्रलयानां लक्षणञ्च शारीरकनिरूपणम् ।
वर्णनं नरकाणाञ्च योगशास्त्रमतः परम् ॥
ब्रह्मज्ञानं ततः पश्चात् पुराणश्रवणे फलम् ।
एतदाग्नेयकं विप्र पुराणं परिकीर्त्तितम् ।"

(इसके बाद तुमसे आग्नेयपुराण कहता हूं। अग्निने वशिष्ठसे यह ईशानकल्पवृत्तान्त कहा था। इसका श्रवण वा पाठ करनेसे मानवगणके सभी पाप दूर होते हैं। इसमें प्रश्नपूर्वक सभी अवतारोंकी कथा है। इसके आदिमें सृष्टिप्रकरण, पीछे विष्णुपूजादि और क्रमशः अग्निकार्य, मन्त्रमुद्रादिका लक्षण, समस्त दीक्षाविधान, अभिषेकनिरूपण, मण्डलादिका लक्षण, कुशामार्जन, पवित्रारोपणविधि, देवालयविधि, शालग्रामादि पूजा, पृथक् पृथक् मूर्त्तिचिह्न, न्यासादिका विधान, प्रतिष्ठा, पूर्त्तक, विनायकादिकी दीक्षाविधि सर्वदेव-प्रतिष्ठा, ब्रह्माण्डनिरूपण, गङ्गादि तीर्थमाहात्म्य, जम्बू प्रभृति द्वीपवर्णन, ऊर्द्ध्व और अधोलोकरचना, ज्योतिश्चक्र-निरूपण, ज्योतिष, मन्त्र और यन्त्रौषधिसमूह, षट्कर्म, युद्धजयशास्त्र, कुब्जिकादि समर्चा, षोढ़ान्यासविधि, कोटि-होमविधान, तदन्तर-निरूपण, ब्रह्मचर्यादि धर्म, श्राद्ध-कल्पविधि, ग्रहयज्ञ, वैदिक और स्मार्त्तकर्म, प्राय-श्चित्तानुकथन, तिथिके अनुसार व्रतादि, वारव्रतानुकथन, नक्षत्रव्रतकीर्त्तन, मासिकव्रत, निर्देश, दीपदानविधि, नवव्यूहार्चन, नरक समुदायको निरूपण, व्रत और दान समुदायका निरूपण, नाड़ीचक्र समुद्देश, सन्ध्या-विधि, गायत्र्यर्थका निर्देश, लिङ्गस्तोत्र, राजाओंका धर्मकार्य, स्वप्नाध्याय, शकुनादिनिरूपण, मण्डलादिका निर्देश, रणदीक्षाविधि, रामोक्तनीतिनिर्देश, रत्नसमूह-का लक्षण, धनुर्विद्या और व्यवहार प्रदर्शन, देवासुर-विमर्दाख्यान, आयुर्वेदनिरूपण, गजादिकी चिकित्सा, उनकी शान्ति, गोनसादि चिकित्सा, नानाविध पूजा, विविध प्रकारकी शान्ति, छन्दःशास्त्र, साहित्य, एका-र्णादि समाह्वय सिद्ध, शिष्टानुशिष्ट, स्वर्गादिवर्ग विशिष्ट-कोष, प्रलय समुदायका लक्षण, शारीरिकनिरूपण, नरक-वर्णन, योगशास्त्र, ब्रह्मज्ञान और पुराणश्रवणफल, ये सब आग्नेयपुराणमें वर्णित हैं। हे विप्र! आग्नेय-पुराण यहीं पर शेष होता है।)

मत्स्यपुराणमें लिखा है—

"यत् तदीशानकं कल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य च ।
वसिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं तत् प्रचक्षते ॥
तच्च षोड़शसाहस्रं सर्वक्रतुफलप्रदम् ॥" (५३।२८)

ईशानकल्पके वृत्तान्तप्रसङ्गमें अग्निने वशिष्ठसे जो पुराण कहा है, वही आग्नेय नामसे प्रसिद्ध है। यह १६००० श्लोकयुक्त और सर्वयज्ञफलप्रद है।

नारदपुराणोक्त विषयानुक्रम आजकलके मुद्रित अग्निपुराणमें मिलते तो हैं, पर इसमें ईशानकल्प वृत्तान्त अथवा मात्स्योक्त कोई लक्षण ही नहीं है। वरन् प्रचलित अग्निपुराणके २७१ अध्यायमें लिखा है—

पराग, पु... लोक, बृहद्रथ, सुक्रतु, निघ...

"प्राग् कल्पेऽथ वाराहे कूर्मरूपोऽभवद्धरिः।"

इसप्रकार वाराहकल्पका प्रसङ्ग है। सुतरां वाराहकल्प प्रसङ्गाधीन अग्निपुराणको हम लोग प्राचीनतम 'आग्नेय' पुराण नहीं कह सकते। वह्निपुराण नामक जिस स्वतन्त्र १म पुराणको सूची दी गई है, उसमें ईशान-कल्प वा वशिष्ठके साथ अग्निकी कथाका कोई भी प्रसङ्ग नहीं है। ब्रह्माके पुत्र मरीचिसे द्वादश वार्षिक सत्रमें अग्निसे जिन धर्मानुष्ठानका उपदेश पाया था, उसीके अवलम्बन पर इस पुराणका प्रथमांश आरम्भ है।

दोनों पुराणमें प्राचीन लक्षणका अभाव होने पर भी सर्गादि पञ्चलक्षणोंके द्वारा निज महापुराणत्व प्रति-पादनकी चेष्टा है।

नारदपुराणके विषयानुक्रम और प्रचलित अग्नि-पुराणकी विषयसूचीको मिलानेसे यह सहजमें जाना जाता है, कि ईशानकल्प और अग्निवशिष्ठसंवाद छोड़ कर और सभी कथाएं आजकलके अग्निपुराणमें दी हुई हैं। सम्भवतः यही अग्निपुराणका संशोधित रूप है। इसकी ग्रन्थसंख्या १५००० है। परन्तु वह्निपुराणके साथ इसका मेल तो नहीं है, पर इसमें भी अनेक प्राचीन कथाएं हैं। स्कन्दपुराणीय शिवरहस्यखण्डमें लिखा है, कि अग्निका माहात्म्य प्रकाशित करना ही आग्नेय-पुराणका उद्देश्य है। किन्तु इस विषयका हम लोग कोई प्रमाण २य अग्निपुराणमें नहीं पाते। परन्तु १म वह्निपुराणके प्रथम अध्यायमें ही वेदमन्त्र द्वारा अग्नि-माहात्म्य कीर्त्तित हुआ है। वल्लालसेनके दानसागरमें अग्निपुराणसे जो सब श्लोक उद्धृत हुए हैं, उनमेंसे कुछ श्लोक इस वह्निपुराणमें पाये गये हैं। किन्तु वे सब श्लोक प्रचलित अग्निपुराणमें नहीं मिलते। इन सब प्रमाणों द्वारा यह वह्निपुराण भी उपेक्षा योग्य नहीं है। पुराणोद्धारकालमें यह संशोधितरूप प्रकाशित होने पर भी आदिपुराणके अनेक विषय इस वह्निपुराणमें दिये हुए हैं।

९म भविष्य।

यह भविष्यपुराण ले कर बड़ी गड़बड़ी है। हम लोग चार प्रकारके भविष्यपुराण पाते हैं। इन चारोंमें भविष्यपुराणका कोई कोई लक्षण दिखाई देता है। इस-लिये समालोचना करनेके पहले उन चारोंके अध्याय और विषयसूची नीचे दी गई हैं;—

१ भविष्य।

ब्राह्मपर्वमें—१ सुमन्तु-शतानीकसंवादमें वेदपुरा-णादि शास्त्रप्रसङ्ग, महाभारतशतानीका अवस्थावर्णन, ब्रह्माण्डोत्पत्ति विवरण, सर्ग और प्रतिसर्गविवरण, मन्वन्तर विभाग, सत्यत्रेतादि युगधर्मकथन, ब्राह्मणादि चतुर्वर्णका कर्त्तव्यतानिरूपण और ब्राह्मणोंके ब्रह्मण्यो-त्पादक ४० प्रकारका संस्कारकथन, २ ब्राह्मणादि तीनों वर्णका संस्कार कालनियम और उपनयनाङ्ग द्रव्यभेद-कथन, शौचलक्षणप्रसङ्गमें उच्छिष्टभोजन-निषेध और आचमनविधि, ३ सावित्र्युपदेशनियम, ब्रह्मचारि-ब्राह्मण कर्त्तव्य गुरुशिष्य कर्त्तव्यकथन, ४ नारियोंका शुभाशुभ-लक्षणनिर्देश, ५ निर्धनको दारपरिग्रहविडम्बना, भार्या-हीन निर्धन गृहस्थको त्रिवर्ग साधनमें अधिकारलोप-कथा, ६ विवाहयोग्या कन्यानिरूपण, अष्टविध विवाह-लक्षण और पुण्यदेश विवरण, ७ वासोचित स्थाननिर्णय, नारीचरित्र, पतिका कर्त्तव्यताकथन, ८ शास्त्रसे विहित निषिद्ध कार्यादि जाननेका नियम, ९ चरित्रभेदसे स्त्रियोंके उत्तममध्यमादिसंज्ञाभेद, कुलस्त्रियोंका कर्त्त-व्यतानिरूपण, १०–१४ स्त्रियोंका कर्त्तव्यनिर्णय, १५ प्रतिपदादि पञ्चदशतिथिमें विशेष विशेष द्रव्याहाररूप-व्रतविधान, १६ ब्रह्मार्चनमाहात्म्य, १७ तिथिविशेषमें ब्रह्माका रथयात्रादीपदानादि विशेषकर्मविधान, १८ शर्याति-दुहिता सुकन्याके साथ च्यवनका विवाह, सुरूप-पुत्राभिलाष और शर्यातिकृत यज्ञकथा, कार्त्तिक शुक्ला द्वितीयाव्रतविधि, १९ अशून्य-शयनद्वितीयाव्रतविधि, २० तृतीयागौरीव्रतविधि, २१ विनायकव्रतविधि, २२–२५ पुरुषोंका शुभाशुभलक्षण, २६ नारियोंका शुभाशुभ लक्षणनिरूपण, २७ विनायकका मूर्त्तिगठनमें परिमाण-भेद, होममें द्रव्यभेद और मन्त्रभेदकथन, २८ अङ्गारक-चतुर्थीव्रत, २९-३० नागपञ्चमीव्रतविधान, सर्पदंशन और सर्पजातिभेदकथन, सर्पदंशनके अष्टविधहेतु और लक्षणादिकथन, सर्पदंशितकी मृत्यु, जीवनप्राप्तिकारण, उसका निर्देश और समयादिनिरूपण, ३१-३२ नाग-गणका जातिकुलवर्णनिरूपण, सर्पदष्टगणके रक्षादि-

गणेश चतुर्थीव्रतकथन, २३-२४ भाद्रपद और आश्विन-पञ्चमीमें नागपूजाविधान, २५ कार्त्तिकषष्ठ्यादि स्कन्द-पूजाविधि, २६-४१ सविस्तार ब्राह्मणको दशविधसंस्कार-कथा, ४२ भाद्रपद षष्ठीमें स्नानदानादिप्रशंसा, कार्त्ति-केयपूजामाहात्म्य, ४३ शाकसप्तमीव्रतविधि, ४४ वासु-देवशाम्बसंवादमें सूर्यमाहात्म्य, ४५ सूर्यार्चनविधि, ४६ ब्रह्मयाज्ञवल्क्यसंवादमें सूर्यका परमात्मस्वरूपकथन, ४७ सुमेरुके चारों ओर सूर्यरथका परिभ्रमण, दो दो मास करके सूर्यरथका गन्धर्व यक्षादिकोंमें अवस्थान, ४८ सूर्यके चन्द्रमण्डलमें अमृतोत्पत्ति कारणत्व और ओषधि प्रभृतिका हेतुत्व कीर्त्तन, उदयास्तमय आङ्ग मध्यरात्रादि समयमें संयमनीपुर्यादिमें सूर्यरथका अवस्थानकथन, ४९ ब्रह्मा-याज्ञवल्क्यसंवादमें सूर्य माहात्म्य कीर्त्तन, ५० सूर्यको रथयात्राविधि, ५१-५२ सूर्यरथयात्राका कीर्त्तन, नवग्रह और गणपत्यादिको एक एक नैवेद्य-दानविधि, ५३ रथशोभाकर द्रव्यकथन, सुवर्ण द्वारा रथ-निर्माणकथन, ५४ रथसप्तमीव्रतविधि, ५५ ब्रह्ममहर्षि-संवादमें सूर्याराधन और तत्फलकीर्त्तन, ५६ ब्रह्म-हत्यापापक्षयके लिये तथा क्रियायोगानुष्ठानके लिये दण्डिनके प्रति तपःप्रीत सूर्यका आदेश, ५८-५९ ब्रह्माके समीप दण्डीका क्रियायोगश्रवण, ६०-६८ अङ्गिरससंवादमें सूर्यको रथयात्रा और पूजाविधि, ६९ शाम्बका कुष्ठ-रोगविवरण, ७०-७१ कृष्णनारदसंवादमें शाम्बको कुष्ठ-मुक्तिका उपायनिर्द्धारण, ७२ कृष्णके आदेशसे शाम्बका द्वारकागमन और नारदके समीप कुष्ठरोगशान्तिका उपाय प्रपञ्चावधारण, ७३ कुष्ठरोगशान्तिके लिये सूर्यो-पासनात्मक उपायकथन, ७४ नारदशाम्बसंवादमें सूर्य-माहात्म्यकीर्त्तन, सूर्यका जन्मकर्मविवरण, सूर्यके पुत्रोंका जन्मविवरण, ७६ नारदशाम्बसंवादमें सूर्य-पूजाविधि, द्रव्यविशेषमें पूजामाहात्म्य, ७७ समयविशेष-में जयाविजया आदि संज्ञाकथन, विजयालक्षण, सूर्या-र्चनमें विशेषफलकीर्त्तन, ७८ आदित्योपासनमें नन्दादि द्वादशवारकथन, नन्दातिथिमें सूर्यपूजाको विशेषविधि, ७९ भद्रामें पूजाविधि और फल, ८० सौम्यवारलक्षण और पूजाफलकीर्त्तन, ८१ कामदलक्षणकथन और पूजा-फल, ८२ पुत्रदलक्षण और पूजाफल, ८३ जयलक्षण और पूजाफल, ८४ जयन्तलक्षण और पूजाफल, ८५-८८ यथा-क्रम विजय आदित्य-रोगहर-महाश्वेतवारलक्षण और पूजाफल, ८९-९० देशकालभेदसे कर्मानुष्ठान और द्रव्य विशेषोपहारमें मार्त्तण्डपूजाको फलश्रुति, ९१-९६ जया, जयन्ती, अपराजिता, महाजया, नन्दा, भद्रादिलक्षण और उन तिथियोंमें सूर्यार्चनका विशेषफलकथन, ९७ तिथिनक्षत्र और देवताकथन, स्व स्व तिथिनक्षत्रमें उन सब देवताओंका पूजाविधिकथन, ९८ सूर्यको पूजा करनेमें फलश्रुति और नहीं करनेमें दोषकथन, ९९ कामदसप्तमी-व्रतकथा, १०० पापहरसप्तमीव्रतविधि, १०१ सूर्यपूजामें गणाधिपसप्तमीकथा, १०२ मार्त्तण्डसप्तमीव्रतकथा, १०३ नतसप्तमी, १०४ अभ्यङ्गसप्तमीव्रत, १०५ भानुफलकीर्त्तन, पदसप्तमीव्रत, १०६ विजयसप्तमीव्रत, १०७ सूर्यप्रतिष्ठा १०८ सूर्याराधनासे कौशल्याको स्वर्गादि गमनरूप फल प्राप्ति, सूर्यपूजामें देयपुष्पादिनिरूपण १०९-११० राजा सत्राजित् और उनकी पत्नीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त; सम्मार्जनादि कर्मफलसे राजा और राजपत्नीत्वप्राप्तिकी कथा, पराबसुसे सुवर्णसूत्र हो कर राजा सत्राजितका फिरसे सूर्यार्चनमें मनन और पराबसुसे सूर्यार्चनविधि-श्रवण, १११ भद्रोपाख्यान, ११२ सूर्यगृहमें दीपदान-माहात्म्य, ११३ सूर्यपूजासे फलश्रुति, ११४ आदित्य-स्तवकथन, ११५ सूर्यका तेजोहरण-विवरण, तेजसे विष्णुचक्रविनिर्माणकथन, मेरुशृङ्गमें इन्द्रादि देवताओंका वासस्थाननिर्माण, ११६ सूर्योपासनासे शाम्बको कुष्ठ-रोगशान्ति, ११७ सूर्यस्तवकथन, ११८ चन्द्रभागानदीमें स्नानार्थागत शाम्बका उस नदीसे सूर्य प्रतिमाप्राप्तिविव-रण, ११९ नारदके मुखसे शाम्बका सूर्यादि देवताओंके गृहनिर्माणविधि श्रवण, १२० देवप्रतिमाकरणमें सुव-र्णादि अष्टविध वस्तुनिर्देश, प्रतिमायोगमें वृक्षनिरूपण, वृक्षछेदनविधिकथन, १२१ सूर्यप्रतिमानिर्माणमें अङ्ग-प्रत्यङ्गादि परिमाणकथन, तत् प्रतिमाका शुभाशुभलक्ष-णादिकथन, १२२ सूर्यके अधिवासगृहनिर्माणको विधि, सूर्यके शरीरमें सब देवका अधिष्ठानकीर्त्तन, १२३ सूर्यप्रतिमाका प्रतिष्ठासमयनिरूपण, मण्डलविधि-कथन, १२४-१२६ सूर्यप्रतिमा-प्रतिष्ठाविधि, १२७ ध्वजारोपणविधि, १२८ प्रतिष्ठित सूर्यके परिचर्यार्थ

परशु, पुष्ठ,
...ोंका, वृहद्रथ, सुक्रतु, निषधा...

अधिकारित्वविवेचन, तत्प्रसङ्गमें मग, भोजक, अग्नि और रविपुत्रादिका उत्पत्तिविवरण, मगभोजकव'शोय-गणका निवासस्थानकथन, १२८ अव्यङ्गस'ज्ञक वस्तु-विशेषका उत्पत्तिकथन, धारणमें फलकीर्त्तन, १३० भोजकगणका ज्ञानोत्कर्ष कीर्त्तन, १३१-१३३ भोजकगण-का महत्त्वकीर्त्तन, आदित्यमाहात्म्यश्रवणफल ।

२ भविष्य ।

१ पुराणोपक्रममें व्यासऋषिगणस'वाद, राजा अज-मीढ़की धर्मशास्त्रकथनार्थ अभ्यर्थित व्यासशिष्यस'वाद, भविष्यपुराण प्रस्ताव, ब्राह्म-ऐन्द्र-याम्य-रौद्र-वायव्य वारुणसावित्र-वैष्णवभेदसे अष्टविधव्याकरणकथन, महापुराणका नामकीर्त्तन, भविष्यपुराणका ५० हजार श्लोकसंख्याकथन, २ महापुराण-लक्षण, चतुर्दशविद्या-लक्षण, अष्टादशविद्याकथन, सृष्टिकथनप्रसङ्गमें ब्रह्माका जन्मादिकथनप्रसङ्गक्रमसे प्रथम जलसृष्टिकथन, कालसंख्या निरूपण, ब्राह्मणके ४८ प्रकार संस्कारोंका निर्णय, क्षमा-शौचादिलक्षण, ३-६ जातकर्मादिनिरूपण, ब्राह्मणक्षत्रियका नामलक्षण, वेदाध्ययनके बाद कृतसमावर्त्तनका विवाह-विधान, स्त्रीलक्षण, अर्थहीनका विवाहादि विड़म्बनाकथन, अर्थोपार्जनकी आवश्यकता, भार्याहीनका सब कामोंमें अयोग्यताकथन, असदृश विवाहसम्बन्ध निषेध, ७-१२ वास्तुनिर्माणयोग्य देशादिनिरूपण, स्त्री-रक्षोपायवर्णन, स्त्रियोंका वृत्तिनिरूपण, देवर और पतिके मित्रके साथ उनका विविक्तदेशावस्थान और परिहासादि वर्ज-नीयता-कथन, उनका सर्वत्र स्वातन्त्र्यनिषेध, गार्ह-स्थ्यधर्मनिरूपण, भृत्योंकी वेतनदानव्यवस्था, साध्वी-कर्त्तव्यनिरूपण, दुर्भगाके लक्षणादि, स्वामिदोषसे स्त्रीका दुर्भगत्वकथन, आश्रमधर्मनिर्देश, १४-२० प्रतिपदादि तिथिनियम, विधातृपूजाका कर्त्तव्यता-विधान, कार्त्तिकपौर्णमासीमें ब्रह्माकी रथयात्राविधि, कार्त्तिककी अमावस्यामें दीपदानविधि, ययातिदुहिता सुकन्याके साथ च्यवनका विवाह, अश्विनीकुमारकी प्रार्थनासे च्यवनके साथ उनका जलप्रवेश, श्रावण-द्वितीयामें अशून्यशयनव्रतविधि, वैशाख तृतीयामें वीर-तृतीयाव्रत, गणेश और कार्त्तिकेयके विरोधप्रसङ्गमें समुद्रगर्भमें स्त्री पुरुषलक्षणज्ञानशास्त्रनिक्षेप वृत्तान्त-कीर्त्तन, विनायकका एकदन्तप्राप्तिकथन, २१-३१ गणेशका विघ्नराजत्व प्राप्तिकथन, दुःस्वप्नदर्शनशान्ति-कथा, सामुद्रिकशास्त्रोत्पत्तिकथन, सामुद्रिकमें स्त्री और पुरुष-लक्षणकथन, श्वेतार्कमूलमें गणेशप्रतिमूर्त्ति-निर्माणपूर्वक पूजाविधानादिकथन, श्वेतकरवीरनिर्मित गणेशपूजाविधान, भाद्रमासमें शिवाचतुर्थीव्रतविधान, माघमासमें शान्ताचतुर्थीव्रतविधान, अङ्गारकसुखावह चतुर्थीव्रतविधि, ३२-३३ नागपञ्चमीविधान, कद्रुका अभिशाप, सर्पभय-निवारणार्थ भाद्रपञ्चमीमें नागपूजा-विधान, ज्येष्ठ वा आषाढ़में नागिनियोंका गर्भाधान, चार मास गर्भधारण और कार्त्तिकमासमें २४० करके अण्डप्रसवकथन, प्रसूति कर्तृक प्रसूतसर्पशावकका भक्षणादिभागनिरूपण, उनका १२० वर्ष परमायुकथन, दन्तोद्भेद और कञ्चुकत्यागादि कालनिरूपण, सन्धि-स्थापनस'ख्याकथन, अकालजात सर्पका निर्विषत्व-कथन, द्विजिह्व और द्वात्रिंशद्दशनत्वकथन, चारदन्तका विषावहत्वकथन और तल्लक्षणादि निरूपण, ३५-३६ दन्तमें विषागमप्रकारकथन, सर्पदंशनकारणनिरूपण, दष्टस्थानलक्षण, कालदष्टलक्षण, विषवेगनिरूपण, त्वग-गतत्व हेतु विषका औषधत्वनिरूपण, रक्तादिगत विष-लक्षण, तदावस्थाका औषधकथन, मृतसञ्जीवनी औषध-कथन, ३७-४० स्त्री-पुरुष नपुंसकसर्पदंशितगणका लक्षण, ब्राह्मण क्षत्रियादि जातीय सर्पदंशितगणका लक्षण, सर्पगणका वासस्थानादिभेदकथन, फणियोंका ६४ प्रकारकथन, सर्पभयनिवारणार्थ द्वारके उभय-पार्श्वमें गोमयरेखादानकर्त्तव्यताकथन, भाद्रशुक्ल-पञ्चमीमें नागपूजाविधान, कार्त्तिकमासमें षष्ठीव्रत-विधान, ब्राह्मणत्वजातिनिरूपण और सङ्केतकथन, जातिभेद कारणादिकथन, दशविध संस्कारयुक्त ब्राह्म-णत्वकथन, ४१-४६ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदिका साधारण प्रवृत्तिकथन और कृत्यनिरूपण, शीलादिसम्पन्न शूद्रका ब्राह्मणकी अपेक्षा आधिक्यकथन, भाद्रशुक्ल-षष्ठीमें षष्ठीपूजाविधि, मार्त्तण्डपत्नी दाक्षायणीकी वड़-वारूपमें उत्तर कुरुवर्षमें तपस्या, छायाके गर्भसे शनि और तपतीका उत्पत्तिकथन, यमुना और तपतीके पर-स्पर शापसे नदीभावप्राप्ति, छायाके शापसे यमकी प्राप्ति-

हिं सकत्वप्राप्ति, विश्वकर्माकर्तृक सूर्याङ्गच्छेदनादि द्वारा प्रकाश्य रूपप्रकटन, करवीरपुष्प और रक्तचन्दनप्रलेप-दानसे वेदनाकातर सूर्यका प्रकृतिस्थ होना और तत्-पुष्पादिका सूर्यप्रियत्वकथन, अश्वरूपधारी रविके वड़वा गर्भसे अश्विनीकुमारकी उत्पत्ति, शाकसप्तमीव्रतविधि, ४७-५७ श्रीकृष्णशाम्बसंवादमें सूर्यमाहात्म्यकीर्त्तन, सवि-स्तार सूर्यपूजाविधि, रथसप्तमीव्रतविधान, ग्रहचक्रका सूर्यरथत्वनिरूपण, सूर्यकिरणसे आकर्षित जलसे मेघकी उत्पत्ति, उदयास्तसमयादिनिरूपण, जगत्का आदित्य-मूलकत्वकथन, सूर्यरथयात्राविधान, ग्रहशान्तिविधि, ब्रह्मशिवसूर्यादिका प्रियवस्तुनिरूपण, ५८-६६ ब्रह्मर्षि-गणसंवादमें सूर्योपासनाका मोक्षसाधकत्वकथन, डिण्डिसूर्यसंवादमें क्रियायोगकथन, द्वादशमासिक-व्रतविधि, ब्रह्मडिण्डिसंवादमें रहस्यसप्तमीव्रतविधि, नीलवस्त्रपरिधानमें ब्राह्मणका दोषकीर्त्तन, शङ्खभोज-कुमारसंवाद, शाम्बकृतसूर्योपासनविवरण, सूर्यका ऐश्वर्यवर्णन, ६७-७५ उपचारविशेषमें सूर्यपूजाका फलविशेषकथन, स्वप्नदर्शनका शुभाशुभनिर्णय, आदित्य-सर्षपव्रतविधान, आदित्यादिस्तोत्र, शाम्बके प्रति दुर्वासा-का अभिशापवृत्तान्त, शाम्बके सौन्दर्य पर मुग्ध किसी किसी कृष्णमहिषीका कृष्णदत्तशापविवरण, शाम्बको कुष्ठरोगप्राप्ति, शाम्बकृत सूर्यप्रतिमाप्रतिष्ठा, नारदका सूर्यलोकगमन, ७६-८५ सूर्यका जन्मादिवृत्तान्तकथन, पुरुषनामनिर्वचन सूर्यमण्डलका विस्तारकथन, सूर्य-का तेजोमय गोलोकत्वकथन, सूर्यकिरणजालसे समुद्र-तड़ागादिसे जलाकर्षण, रश्मिका नामभेदकथन, कार्यभेदनिरूपण, मरीचिवृहस्पति आदिका जन्मवृत्तान्त, संज्ञाके गर्भसे सूर्यका पुत्रोत्पादन, विजयसप्तमीव्रत, सौम्यसप्तमीव्रत और कामदसप्तमीव्रतविधि, परिजयविधि, जयन्तविधि, जयविधि, ८६-९६ उदयसे अस्त तक आदि-त्याभिमुखसे स्थितिविधान, आदित्यहृदयपाठविधि, रहस्यविधि, महाश्वेतावारविधि, सूर्यगृहमें दीप-दानादिविधि, पुराणपाठविधि, कार्त्तिकेयब्रह्मसंवादमें धनपाल नामक वैश्यका उपाख्यान, सूर्यप्रदक्षिण-माहात्म्य, जयासप्तमीव्रतविधान, जयन्तीसप्तमीव्रत-विधान, अपराजितासप्तमीव्रतविधि, महाविजयासप्तमी-व्रतविधान, नन्दाकल्पकथन, ९७-१०७ भद्राकल्पकथन, प्रतिपदादि तिथिका देवताविशेषमें प्रियत्वकथन, उस दिन उस देवताका पूजाफल, नक्षत्रविशेषमें देवता-विशेषका पूजाफल, सूर्यगृहमाहात्म्यकीर्त्तन, कामदा-सप्तमीविधान, पापनाशिनीसप्तमीविधान, भानुपदद्वय-व्रतविधान, सर्वार्थाप्तिसप्तमीव्रतविधि, मार्त्तण्डसप्तमी-व्रतविधि, अव्यङ्गसप्तमीव्रतविधि, अनन्तसप्तमीव्रत-विधि, विजयसप्तमीव्रतविधि, १०८-११७ सूर्यप्रतिमा-निर्माणादिफलकथन, घृतादि द्वारा सूर्यप्रतिमास्नपन-फल, गौतमीकौशल्यासंवाद, आदित्यवारमाहात्म्यकथन, सत्राजित् नृपतिका उपाख्यान, उपलेपनमाहात्म्यकथन, पुराणपाठश्रवणादिफलकीर्त्तन, दीपदानकथाप्रसङ्गमें भद्रोपाख्यानकथन, ब्रह्माविष्णुसंवादमें सूर्यमाहात्म्य-कीर्त्तन, भविष्यपुराणविवरण, ११८-१२७ देवगणकृत सूर्यस्तोत्र, देवगणकी प्रार्थनासे विश्वकर्मा द्वारा सूर्यतेजःशातन, सूर्यका परिजनादिकीर्त्तन, प्रवर-कथन, पृथिवीसे सूर्यका दूरत्वनिरूपण, अन्तरीक्षलोक-वर्णन, व्योममाहात्म्यवर्णन, सुमेरुसंस्थानादिकीर्त्तन, शाम्बकृत सूर्याराधन, सूर्यस्तवराजकीर्त्तन, शाम्बकृत सूर्यप्रासादलक्षण, १२८-१३७ सूर्यके सात विभिन्न प्रकारोंका प्रतिमानिर्माणकथन, दारुपरीक्षादिनिरूपण, प्रतिमालक्षणकीर्त्तन, अधिवासविधान, मण्डलविधि, प्रतिष्ठितमूर्त्तिका स्नानादिविधान, ध्वजारोपणविधि, गौरमुखशाम्बसंवादमें ध्वजाङ्कमुनिका उपाख्यान, भोजक-गणका उत्पत्तिकथन, अव्यङ्गादिविधान, १३८-१५१ ऋतुविशेषमें देवताओंका सूर्यरथावस्थाननिरूपण, सूर्यपूजकगणका निर्मोकधारणमें फलाधिक्य, अव्यङ्गो-त्पत्तिकथन, धूपविधि, वासुदेवके सामने कंसकर्तृक भोजकज्ञानस्वरूपवर्णन, भोज्यार्ह ब्राह्मणनिरूपण, सूर्यका प्रियोपासकलक्षण, सुदर्शनचक्रागमविवरण, सूर्यमन्त्रदीक्षाविधान, पुराणेतिहास श्रवणादिविधि, पाठप्रकारकीर्त्तन, आदित्यमाहात्म्य श्रवणविधि।

विष्णुपर्वके पूर्वभागमें—१५१ अष्टमीकल्पमें शिव-माहात्म्य, १५२ प्रतिष्ठाविधान, १५३ लिङ्गप्रतिष्ठा-विधान, १५४ महादेवमाहात्म्य, १५५ लिङ्गप्रतिष्ठाविधि, १५६ लिङ्गलक्षण, १५७ लिङ्गार्चनविधि, १५८-१७१

लिङ्गप्रतिष्टासमाप्ति, १७२-१७८ विष्णु और सनत्कुमारसंवाद, १८० अष्टकाष्टमी, १८१ दाम्पत्यपूजन, १८२-१८३ विष्णुसनत्कुमारसंवाद, १८४ विष्णुकृतस्तव, १८५ व्रतकद्रोय, १८६ महादेवमाहात्म्य, १८७ महादेवको रथयात्रा, १८८ महादेवरूपावत, १८९ महाव्रत, १९०-१९३ महाव्रतविधि, १९४ पुष्पाध्याय, १९५-१९६ महाष्टमी, १९७ जयन्त्यष्टमी, १९८-२०२ गौरीमाहात्म्य, २०३-२०४ गौरीविवाह, २०५-२०६ चित्रसेनकृत स्तव, २०७-२१० ब्रह्महत्याको प्रायश्चित्तविधि, २११-२१३ ब्रह्महत्या-प्रायश्चित्त, २१४ सुरापानप्रायश्चित्तविधि, २१५-२१८ नवमीकल्पमें दुर्गामाहात्म्य, २१९ भगवतीस्तोत्र, २२०-२२१ चण्डिकाराधन, २२२ चण्डिकास्तव, २२३-२२४ दुर्गास्नानकल्प, २२५-२३० दुर्गामाहात्म्य, २३१ दुर्गामाहात्म्यमें उभयनवमी, २३२ भगवतीनवमी, २३३ रथनवमी, २३४ विष्णुकृत भगवतीका स्तव, २३५-२३७ महानवमी, २३८-२४० सर्वमङ्गलार्चनविधि, २४१ मन्त्रोद्धार, २४२-२४७ भगवतीयज्ञ, २४८-२४९ सिद्धाध्याय, २५० रुरुवध, २५१-२५२ कोलम्बवध, २५३ कुम्भानुकुम्भवध, २५४ निकुम्भवध, २५५ कुम्भवाहवध, २५६ सुकुम्भवध, २५७-२५८ घण्टाकर्णवध, २५९ रुद्रधर्मवध, २६० मेघनादवध, २६१ जम्भासुरवध, २६२ रुरुउपाख्यान, २६३ रुरुवध, २६४ मङ्गलविधि, २६५-२६७ मातृमण्डलविधान, २६८ देवीका नामविधान, २६९ रथयात्रा, २७० दुर्गायात्रा समाप्ति, २७१-२७३ मन्त्रोद्धार, २७४-२७५ आनन्दनवमीकल्प, २७६ नन्दिनीनवमी, २७७ नन्दानवमी, २७८ नन्दाकल्प, २७९ नन्दिनीप्रतिष्ठा, २८० महानवमी कल्पसमाप्ति, २८१ प्रतिष्ठातन्त्रमें भूमिपरीक्षा, २८२ प्रासादलक्षण, २८३ शिलालक्षण, २८४ ब्रह्मणार्चालक्षण, २८५ प्रतिमालक्षण, २८६ प्रतिष्ठा मन्त्रसे अधिवासविधि, २८७ नवमीकल्पसमाप्ति।

मध्यतन्त्रके उपरिभागमें—१ सूतऋषिसंवादमें उपरिभागप्रसङ्ग, २-३ पातालवर्णना, ४ ज्योतिश्चक्र, ५-६ गुरुमाहात्म्यकथन, ७ पुस्तकादि मानलक्षण, ८-९ यूपनियम, १०-१७ प्रतिमालक्षण, १८ षोड़शोपचारविधि, १९ अग्निनाम, २० द्रव्यपरिमाण, २१ द्रवनिर्णय, २२-२४ मण्डलकथन, २५ मण्डलाध्यायकथन।

मध्यतन्त्रके द्वितीय भागमें—१ मूल्यकथन, २-५ तिथिखण्ड, ६ व्रतादिकथन, ७ प्रवरकथन, ८ वास्तुनिर्णय, ९-१० अर्घ्यदानविधि, ११-२२ मध्यप्रतिष्ठाविधि, २३ क्षुद्रारामप्रतिष्ठाविधि, २४-२५ अश्वत्थप्रतिष्ठाविधि, २६ वटप्रतिष्ठाविधि।

तृतीयभागमें—१-५ पुष्पारामप्रतिष्ठाविधि, ६-७ सेतुप्रतिष्ठाविधि, ८-११ यज्ञहोमविधि, १२-१४ प्रतिष्ठाविधि, १५-१६ महालक्ष्मीव्रतप्रतिष्ठाविधि, १७ एकादशीव्रतप्रतिष्ठाविधि, १८ पवित्रविधान, १९ ध्वजारोपण, २० कुम्भदानविधि, २१-२२ प्रासादप्रतिष्ठाविधि।

चतुर्थभागमें—१ दानविधि, २-७ धेनुदानविधि, ८-१० प्रायश्चित्तविधि, ११ सुरापानप्रायश्चित्त।

३ भविष्य।

प्रथमभागमें—१ सूतके साथ ऋषियोंके संवादमें उत्तरविभाग प्रतिज्ञादिकथन, गार्हस्थ्याश्रमप्रशंसा, २ धर्ममाहात्म्यकथन, प्रवृत्तिनिवृत्तिभेदसे द्विविध कर्मनिरूपण, निवृत्तिप्रशंसा, शमदमादि सोलह प्रकारके गुणोंका निरूपण, ब्राह्मणोंका गुणनिरूपण, रुद्रसे जगत्‌सृष्टिप्रक्रियाकथन, विशेषरूपसे सेश्वरसांख्यका मतप्रतिपादन, रुद्रसे ब्रह्मा और विष्णुका उत्पत्तिकथन, युगमन्वन्तरकालादिनिरूपण, ३-४ महर्लोक और तपोलोकादिका संस्थानादिनिरूपण, उस उस स्थानका अधिवासिकथन, ब्रह्मलोकादिवर्णन, रुद्रलोकवर्णन, सप्तपातालवर्णन, जम्बू और प्लक्षप्रभृति सप्तद्वीपका वर्णन, जम्बूद्वीपका संस्थानादिकथन, उस स्थानके वर्ष और पर्वतादिका स्थाननिर्देश, ज्योतिश्चक्रनिरूपण, सूर्य और चन्द्रका शीघ्रगामित्वनिरूपण, उनका नीचोच्चादिकथन, ५ ब्राह्मणप्रशंसा, ब्राह्मणके मुखसे देवपितृलोकप्रभृतिका भोगकालकथन, ब्राह्मणको देख कर अभिवादन नहीं करनेसे प्रत्यवायकथन, मनुष्यके मध्य तीन प्रकारका अधम लक्षणकथन, द्विविध विषमलक्षण, चतुर्विध पशुलक्षण, त्रिविध पापलक्षण,

त्रिविध पापिष्ठलक्षण, सप्तविध नष्टलक्षण, पञ्चविध भ्रष्टलक्षण, द्विविध कष्टलक्षण, षष्ठविध दुष्टलक्षण, द्विविध पुष्टलक्षण, अष्टविध क्रूष्टलक्षण, द्विविध आनन्दलक्षण, द्विविध करालक्षण, सरण्डलक्षण, त्रिकुष्ठलक्षण, चण्ड-चपलमलीमसादिका लक्षण, दण्ड-पण्ड-खल-नीच-वाचाल-कर्दम आदिका लक्षण और इनका अवान्तर-भेदकथन, ६-७ गुरुनिरूपण, द्वादशी और अमावस्या तिथिमें दानविधान, अपरपक्षमें तर्पणविधि, पितृ-स्तोत्रकथन, ज्येष्ठ भ्राताका पितृतुल्यकथन, पुराणश्रवणफलकथन, उनका क्रमकथन, धर्मशास्त्र-आगमतन्त्रजामल-डामर-पारायण प्रभृतिका अधिष्ठातृ-देवताकथन, मधुक्षीरयवक्षीरादिका परिभाषाकथन, रुद्रके पहले वासुदेवके गुणकीर्त्तनमें फलकथन, दुर्गाके पहले वासुदेवके गुणकीर्त्तनमें दोषकथन, पुस्तकादि हरणका दोषकीर्त्तन, पुराणादि लिखनेका नियमादिकथन, अब्राह्मणके लिखित ग्रन्थका निष्फलत्व-कथन, लिपिकरणमें दिङ्निरूपण और निषिद्ध दिन-कथन, लिपिकरणवेतनग्रहणादिमें प्रत्यवायकथन, पुस्तक परिमाणादिकथन, ताड़ित-अगुरु-भूर्जपत्रादिविधान, पुराणपाठमें स्वरादिविधिकीर्त्तन, शूद्रका धर्मशास्त्र-कथननिषेध, पुराणवाचककी व्यासउपाधि, ८-१२ अन-ध्यायकालनिरूपण, छात्रलक्षण, अध्यापना प्रकारकथन, म्लेच्छभाषाशास्त्रादि परित्यागका आवश्यकताकथन, कलिमें निगमज्योतिषवेद प्रभृतिके संग्रहमें दोषकथन, अन्तर्वेदि-बहिर्वेदि कर्मनिरूपण, देवगृह निर्माणादि-का विधिकथन, पुष्करिणी और दीर्घकादि परिमाण-कथन, प्रासाद पुष्करिणी आदिकी प्रतिष्ठा नहीं करनेका दोषकथन, पतित देवगृहादि संस्करणका फलकथन, जलाशयदानादि माहात्म्यकीर्त्तन, शिवलिङ्गचालनादि निषेधकथन, पुष्करिणीकरणयोग्यस्थाननिरूपण, जला-शयकी प्रतिष्ठाका यूपादिनिरूपण, भूमिशोधनादिविधि-कीर्त्तन, मुद्गादिसप्तव्रीहिकथन, जलाशय और गृहादि-के आरम्भमें वास्तुबलिदानादिकथन, वृक्षरोपणादि विधि-कथन, नदीके किनारे श्मशानमें और घरके दक्षिण और तुलसीवृक्षरोपणदोषकीर्त्तन, अश्वत्थ और अशोकवृक्ष-रोपणफलकथन, वृक्षच्छेदनका दोषकीर्त्तन, उद्भिज्ज-विद्याकथन, वृक्षोंका दोहदादिकथन, १३-२० कूपादि-प्रतिष्ठाविधि, प्रतिमालक्षणकथन, उसके अङ्गप्रत्यङ्गादि-का परिमाणकथनपूर्वक निर्माणप्रकारकीर्त्तन, कुण्ड-निर्माणप्रकारकथन, होमविशेषमें होमसंख्यानिरूपण, कुण्डसंस्कारविधिकथन, होमविधिकथन, वह्निजिह्वा-कथन, होमावसानमें पूजाविधान, षोड़शोपचारमन्त्र-कथन, होमभेदसे वह्निनामभेदकीर्त्तन, होमद्रव्यपरि-माणकथन, छिन्नभिन्न विल्वपत्र द्वारा होमकरणमें दोष-कथन, २१-२२ प्रतिष्ठाका वृक्षादिनिरूपण, स्रुक्स्रुवादि-निर्माणप्रकारकथन, होमसंख्या करनेके लिये गङ्गा-मृत्तिका-गुटिकादिविधान, उसके आसनादिका निरूपण, देवताभेदसे मण्डलनिर्माणप्रकारकथन, वेदीनिर्माण-प्रकारकथन, मण्डपनिर्माणप्रकारकथन, मण्डपकी द्वारादिकरणविधि, पद्मादिनिर्माणप्रकार, क्रौञ्चप्राण-निर्माणप्रकारकीर्त्तन, प्रासादमें मयूर-वृषभ-सिंहादि-मूर्त्तिनिर्माणका फलश्रुतिकथन, सर्वतोभद्रमण्डलादि-निर्माणप्रकारकथन, राजद्रव्यप्रमाणकीर्त्तन, यज्ञका स्वर्णदक्षिणादिपरिमाणकथन, दक्षिणादानका आवश्य-कताकथन, पुराणपाठका दक्षिणानिरूपण।

द्वितीयभागमें—१-४ शालग्रामदानका दक्षिणाकथन, पूर्णपात्रपरिमाणादिकथन, कुण्डलादिनिर्माणवेतनादि-निरूपण, पुष्करिणीप्रभृति खननका परिमाण और वेत-नादिनिरूपण, वस्त्रनिर्माणादिका वेतनकथन, नरवाह-नादिका वेतनादिनिरूपण, शान्तिकलसादिनिरूपण, उसमें पञ्चपल्लवादिदानका आवश्यकतादिकथन, कलसस्थापनका विधिकीर्त्तन, चन्द्र-सूर्यादिका चतुर्विधपरिमाणलक्षण-कथन, कर्मविशेषमें मासविशेषका नियम, मलमासमें प्रेतक्रियाविधानकथन, सपिण्डनादिविधिकीर्त्तन, शुक्रका उदय और अस्तकाल, युद्धादिकथन, द्विराषाढ़ादिनिरूपण, ५-१० पूर्वाह्णमें दैवकार्यकर्त्तव्यता, मध्याह्नमें एको-द्दिष्टादिकर्त्तव्यता, खर्वदर्पादि त्रिविधतिथिलक्षणादि-कीर्त्तन, शुक्लकृष्णतिथिव्यवस्थाकथन, युग्मादितिथि-व्यवस्थाकथन, तिथिका उपवासव्यवस्थाकथन, अम्बुवट-श्राद्धविधि, भार्यापुत्ररहितका यज्ञानुष्ठानादिमें अनधि-कारकथन, कार्त्तिकमासादिमें स्नानदानादिका फलश्रुति-कथन, अशून्यशयनव्रतविधान, श्रावणपञ्चमीमें मनसा-

पूजा, भाद्रमासमें षष्ठीपूजा और जन्माष्टमीव्रतकथा, दशहराकथन, एकादशीका उपवासकथन, विष्णुशृङ्खलादिनिरूपण, शक्रोत्थानविधि, रटन्तीचतुर्दशी, शिवचतुर्दशी, चैत्रादिपूर्णिमामें स्नानदानादिका फलश्रुतिकथन, ११-१७ काश्यप, गौतम, मौद्गल्य, शाण्डिल्यप्रभृति गोत्रोंका प्रवरकीर्त्तन, वास्तुयागविधानकथन, मण्डपनिर्माणादिकथन, वास्तुयागमें कथित समस्त देवताओंका ध्यानादिकथन, उनका पूजाविधिकथन, अर्घ्यदानविधान, गृह्याग्निविधिकीर्त्तन, होमविधानकथन, वह्निजिह्वाका ध्यानकथन, देवादिप्रतिष्ठाके पूर्वदिनमें अधिवासविधिकथन, होतृआचार्यादि वरणविधिकीर्त्तन, सर्वत्रयज्ञादिमें सङ्कल्पका आवश्यकतानिरूपण, सङ्कल्पविधिकथन, प्रतिष्ठादिका मासतिथिनक्षत्रवारादिनिरूपण, मण्डपवेदीप्रभृतिनिर्माणप्रकारकथन, जलाशयप्रतिष्ठादि वृद्धिश्राद्धकर्त्तव्यताकीर्त्तन, जलाशयप्रतिष्ठाविधानकथन।

तृतीय विभागमें—१-११ आरामादि प्रतिष्ठाविधिकीर्त्तन, गोप्रचारविधानकथन, अनाथमण्डपदानविधिकथन, प्रपादानविधिकथन, क्षुद्रारामप्रतिष्ठाविधिकथन, अश्वत्थवृक्षप्रतिष्ठाविधिकथन, पुष्करिणीप्रतिष्ठाप्रयोगकथन, वटस्थानविधिकथन, बिल्वप्रतिष्ठाविधिकथन, शिलादारुमयादि मण्डपप्रतिष्ठाविधि, पुष्पारामप्रतिष्ठाविधि, तुलसीप्रतिष्ठाविधिकथन, सेतुप्रतिष्ठाविधिकथन, भूमिदानविधिकथन, सामान्यप्रकारसे अधिवासनविधिकथन, दुर्निमित्तनिरूपण, उत्तरविभागका अनुक्रम।

४ भविष्योत्तर।

१ व्यासागमन, २ ब्राह्मणोत्पत्ति, ३ वैष्णवीमायाकथन, ४ संसारदोषख्यापन, ५ पापोत्पादक कर्मभेदकथन, ६ शुभाशुभकर्मफलनिर्देश, ७ शकटव्रतकथन, ८ तिलकव्रतकथा, ९ कोकिलव्रत, १० बृहत्तपोव्रत, ११ नरव्रत, पञ्चाग्निसाधन, १२ रम्भातृतीयाव्रतकथा, १३ गोष्पदतृतीयाव्रत, १४ हरिकालाव्रत, १५ ललितातृतीयाव्रत, १६ अवियोग तृतीयाव्रत, १७ उमामहेश्वरव्रत, १८ रम्भातृतीयाव्रत, १९ सौभाग्याष्टकतृतीयाव्रत, २० अनन्ततृतीयाव्रत, २१ रसकल्याणिनीव्रत, २२ आर्द्रानन्दकरीव्रत २३ चैत्रभाद्रपदमाघतृतीयाव्रत, २४ अनन्ततृतीयाव्रत, २५ अक्षयतृतीयाव्रत, २६ अङ्गारकचतुर्थीव्रत, २७ विनायकस्नपनचतुर्थीव्रत, २८ नागशान्तिव्रत, २९ सारस्वतव्रत, ३१ पञ्चमीव्रत, ३२ श्रीपञ्चमीव्रत, ३३ अशोकषष्ठीव्रत, ३४ फलषष्ठीव्रत, ३५ मन्दारषष्ठीव्रत, ३६ ललिताषष्ठीव्रत, ३७ कार्त्तिकेयषष्ठीव्रत, तत्प्रसङ्गमें स्कन्दपुराणीय कपिलाषष्ठीव्रतकथा, ३८ महातपःसप्तमीव्रत, ३९ विजयासप्तमीव्रत, ४० आदित्यमण्डपविधि, ४१ त्रयोदशवर्ज्यासप्तमीव्रत, ४२ कुक्कुटीमर्कटीव्रत, ४३ उभयसप्तमीव्रत, ४४ कल्याणसप्तमीव्रत, ४५ सप्तमीव्रत, ४६ कमलासप्तमीव्रत, ४७ शुभसप्तमीव्रत, ४८ आदित्यस्नपनसप्तमीव्रत, ४९ अचलासप्तमीव्रत, ५० उभासप्तमीव्रत, उसके प्रसङ्गमें सूर्यपुराणान्तर्गत पुत्रकामकृष्णपञ्चमीव्रत, ५१ सोमाष्टमीव्रत, ५२ दूर्वाष्टमीव्रत, ५३ कृष्णाष्टमीव्रत, ५४ बुधाष्टमीव्रत, ५५ अनघाष्टमीव्रत, ५६ सोमाष्टमीव्रत, ५७ श्रीवृक्षनवमीव्रत, ५८ ध्वजनवमीव्रत, ५९ उल्कानवमीव्रत, ६० दशावतारदशमीव्रत, ६१ आशादशमीव्रत, ६२ तारकद्वादशीव्रत, ६३ अरण्यद्वादशीव्रत, ६४ रोहिणीचन्द्रव्रत, ६५ रविहरहरिश्च प्रभाकरादिका अवियोगव्रत, ६६ गोवत्सद्वादशीव्रत, ६७ द्वादशजनोत्थापन, द्वादशीव्रत, ६८ नीराजनद्वादशीव्रत, ६९ भीष्मपञ्चकव्रत, ७० मल्लद्वादशीव्रत, ७१ भीमद्वादशीव्रत, ७२ वणिक्व्रत, ७३ श्रवणद्वादशीव्रत, ७४ सम्प्राप्तिद्वादशीव्रत, ७५ गोविन्दद्वादशीव्रत, ७६ अखण्डद्वादशीव्रत, ७७ मनोरथद्वादशीव्रत, ७८ तिलद्वादशीव्रत, ७९ सुकृतद्वादशीव्रत, ८० धरणीव्रत, ८१ विशोकद्वादशीव्रत, धेनुविधान, ८२ विभूतिद्वादशीव्रत, ८३ अनङ्गद्वादशीव्रत, ८४ अङ्गपादव्रत, ८५ श्वेतमन्दारनिम्बार्ककरवीरार्कव्रत, ८६ यमादर्शनत्रयोदशीव्रत, ८७ अनङ्गत्रयोदशीव्रत, ८८ पालीव्रत, ८९ रम्भाव्रत, ९० आनन्दचतुर्दशीव्रत, ९१ श्रवणिकाव्रत, ९२ चतुर्दश्यष्टमीनक्तव्रत, ९३ शिवचतुर्दशीव्रत, ९४ सर्वफलत्यागचतुर्दशीव्रत, ९५ जयपूर्णिमाव्रत, ९६ वैशाखी कार्त्तिकी माघी (पूर्णिमा)-व्रत, ९७ युगादितिथिमाहात्म्य, ९८ सावित्रीव्रत, ९९ कार्त्तिकमें कृत्तिकाव्रत, १०० पूर्णमनोरथव्रत, १०१ अशोकपूर्णिमाव्रत, १०२ अनन्तफलव्रत, १०३ साम्ब-

रायणोव्रत, १०४ नक्षत्रपुरुषव्रत, १०५ शिवनक्षत्रपुरुषव्रत १०६ सम्पूर्णव्रत, १०७ कामदानवेश्याव्रत, १०८ ग्रहनक्षत्रव्रत, १०९ शनैश्चरव्रत, ११० आदित्यदिननक्तविधि, १११ संक्रान्त्युद्यापनव्रत, ११२ विष्टिव्रत, ११३ अगस्त्यार्घ्यविधिव्रत, ११४ अभिनवचन्द्रार्घ्यविधिव्रत, ११५ शुक्रबृहस्पत्यर्घ्य, ११६ व्रतपञ्चाशीति, ११७ माघस्नानविधि, ११८ नित्यस्नानविधि, ११९ रुद्रस्नानविधि, १२० चन्द्रादित्यग्रहणस्नानविधि, १२१ अनशनव्रतविधि, १२२ वापीकूपतड़ागोत्सर्गव्रतविधि, १२३ वृक्षोद्यापनविधि, १२४ देवपूजाफल, १२५ दीपदानविधि, १२६ वृषोत्सर्गविधि, १२७ फाल्गुनोत्सवविधि, १२८ आन्दोलकविधि, १२९ दमनकान्दोलकरथयात्रोत्सवविधि, १३० मदनमहोत्सव, १३१ भूतमातोत्सव, १३२ श्रावणीपूर्णिमामें रक्षाबन्धविधि, १३३ महानवमी-उत्सवविधि, १३४ महेन्द्रमहोत्सव, १३५ कौमोदकीनिर्णय, १३६ दीपोत्सवविधि, १३७ लक्षहोमविधि, १३८ कोटिहोमविधि, १३९ महाशान्तिविधि, १४० गणनाथशान्तिक, १४१ नक्षत्रहोमविधिप्रसङ्गमें ब्रह्मपुराणान्तर्गत अपराधशतव्रत और गरुड़पुराणीय विष्णुसंवादमें काञ्चनव्रतकथा, १४२ कन्याप्रदान, १४३ ब्राह्मणविधिशुश्रूषा, १४४ वृषदानविधि, १४५ प्रत्यक्षधेनुदानविधि, १४६ तिलधेनुदानविधि, १४७ जलधेनुविधि, १४८ घृतधेनुविधि, १४९ लवणधेनुविधि, १५० सुवर्णधेनुविधि, १५१ रत्नधेनुविधि, १५२ उभयमुखीधेनुविधि, प्रसङ्गक्रमसे आदिवराहपुराणोक्त कपिलादानमाहात्म्यकथा, १५३ महिषीदानविधि, १५४ अविदानविधि, १५५ भूमिदानमाहात्म्य, १५६ पृथिवीदानमाहात्म्य, १५७ हलपङ्क्तिदानविधि, १५८ अपाकदानविधि, विष्णुपूजा, रुद्रप्रार्थनामन्त्र, स्कन्दपुराणोक्त अर्द्धोदयव्रतकथा और वराहपुराणोक्त अर्द्धोदय, पितृस्तव, १५९ गुर्वष्टमीव्रतप्रसङ्गमें स्कन्दपुराणीय शिवरात्रिव्रतकथा, १६०-१६१ उमामहेश्वरसंवादमें शिवरात्रिव्रतोद्यापनविधि, उसके प्रसङ्गमें श्रीविश्वरूपनिबन्धमें दानखण्डोक्त बृहस्पतिसंवादमें चन्द्रसहस्रोद्यापनविधि, तथा बृहस्पति-वशिष्ट-संवादमें भीमरथीव्रत और स्कन्दपुराणीय सिद्धिविनायकपूजनविधि, १६२ भौमस्तुति, १६३ गृहदानविधि, १६४ अन्नदानमाहात्म्य, १६५ स्थालीदानविधि, १६६ दासीदानविधि, १६७ प्रपादानविधि, १६८ अग्निकाष्ठिका-दानविधि, १६९ विद्यादानविधि, १७० तुलापुरुषदानविधि, १७१ हिरण्यगर्भ-दानविधि, १७२ ब्रह्माण्डदानविधि, १७३ कल्पवृक्षदान, १७४ कल्पलतादान, १७५ गजरथाश्वदानविधि, १७६ कालपुरुषदानविधि, १७७ सप्तसागरदानविधि, १७८ महाभूतघटदानविधि, १७९ शय्यादानविधि, १८० आत्मप्रकृतिदानविधि, १८१ हिरण्याश्वदानविधि, १८२ हिरण्यरथदानविधि, १८३ कृष्णाजिनदानविधि, १८४ विश्वचक्रदानविधि, १८५ हेमहस्तिरथदानविधि, १८६ भुवनदानप्रतिष्ठाविधि, १८७ नक्षत्रविशेषमें द्रव्यविशेषकी दानविधि, १८८ तिथिविशेषमें द्रव्यविशेषकी दानविधि, १८९ वराहदानविधि, १९० धान्यपर्वतदानविधि, १९१ लवणपर्वतदानविधि, १९२ गुड़ाचलदानविधि, १९३ हेमपर्वतदानविधि, १९४ तिलाचलदानविधि, १९५ कार्पासाचलदानविधि, १९६ घृताचलदानविधि, १९७ रत्नाचलदानविधि, १९८ रौप्याचलदानविधि, १९९ शर्कराचलदानविधि।

भविष्यपुराणके जो चार प्रकारके ग्रन्थ मिले हैं, उनकी विषयसूची दी गई। पर अब कहना यह है, कि इन चारोंमें हम लोग किसे आदि भविष्य मान सकते हैं।

मत्स्यपुराणके मतसे—

"यत्राधिकृत्य माहात्म्यमादित्यस्य चतुर्मुखः।
अघोरकल्पवृत्तान्तप्रसङ्गेन जगत्स्थितम्॥
मनवे कथयामास भूतग्रामस्य लक्षणम्।
चतुर्दश सहस्राणि तथा पञ्चशतानि च॥
भविष्यचरितप्रायं भविष्यं तदिहोच्यते॥"

जिस ग्रन्थमें चतुर्मुख ब्रह्माने सूर्यका माहात्म्य-वर्णन करके अघोरकल्पवृत्तान्तप्रसङ्गमें जगत्की स्थिति और भूतग्रामका लक्षण वर्णन किया है, जिसमें अधिकांश भविष्यचरित वर्णित और १४५०० श्लोकसमन्वित है, वही भविष्यपुराण नामसे प्रसिद्ध है।

शैवउत्तरखण्डके मतसे—"भविष्योक्तेर्भविष्यकम्" अर्थात् भविष्य उक्तिका वर्णन रहनेके कारण भविष्य-पुराण नाम पड़ा है।

लोक, बृहद्रथ, सुबाहु

नारदपुराणमें भविष्यानुक्रमणिका इस प्रकार है—

"अथात संप्रवक्ष्यामि पुराणं सर्वसिद्धिदम् ।
भविष्यं भवतः सर्वलोकाभीष्टप्रदायकम् ॥
यत्राहं सर्वदेवानामादिकर्त्ता समुद्यतः ।
सृष्ट्यर्थं तत्र सञ्जातो मनुः स्वायम्भुवः पुरा ॥
स मां प्रणम्य पप्रच्छ धर्मं, सर्वार्थसाधकम् ।
अहं तस्मै तदा प्रातः प्रोवाच धर्मसंहिताम् ॥
पुराणानां यदा व्यासो व्यासञ्चक्रे महामतिः ।
तदा तां संहितां सर्वां पञ्चधा व्यभजन् मुनिः ॥
अघोरकल्पवृत्तान्तनानाश्चर्यकथाचिताम् ।
तत्रादिमं स्मृतं पर्व ब्राह्मं यत्रास्त्युपक्रमः ॥
सूतशौनकसंवादे पुराणप्रश्नसंक्रमः ।
आदित्यचरितप्रायः सर्वाख्यानसमाचितं ॥
सृष्ट्यादिलक्षणोपेतः शास्त्रसर्वस्वरूपकः ।
पुस्तलेखकलेख्यानाँ लक्षणञ्च ततः परम् ॥
संस्काराणाञ्च सर्वेषां लक्षणञ्चात्र कीर्त्तितम् ।
पक्षत्यादितिथीनाञ्च कल्पाः सप्त च कीर्त्तिताः ॥
अष्टम्याद्याः शेषकल्पा वैष्णवे पर्वणि स्थिताः ।
शैवे च कामतो भिन्नाः सौरे चान्त्यकथाचयः ॥
प्रतिसर्गाह्वयं पश्चान्नानाख्यानसमाचितम् ।
पुराणस्योपसंहारसहितं पर्वपञ्चमम् ॥
एषु पञ्चसु पूर्वस्मिन् ब्रह्मणः महिमाधिकः ।
धर्मे कामे च मोक्षे तु विष्णोश्चापि शिवस्य च ॥
द्वितीये च तृतीये च सौरो वर्गचतुष्टये ।
प्रतिसर्गाह्वयं त्वन्त्यं प्रोक्तं सर्वकथाचितम् ॥
सभविष्यं विनिर्दिष्टं पर्वव्यासेन धीमता ।
चतुर्दशसहस्रं तु पुराणं परिकीर्त्तितम् ॥
भविष्यं सर्वदेवानां साम्यं यत्र प्रकीर्त्तितम् ।
गुणानां तारतम्येन समं ब्रह्मेति हि स्रुतिः ॥"

(अनन्तर सर्वाभिष्ट और सब सिद्धिदायक भविष्य-पुराण तुमसे कहता हूं, सुनो। इस पुराणमें मैं ही ब्रह्मा सब देवताओंका आदि माना गया हूं। पुराकालमें स्वायम्भुव मनुने सृष्टिके लिये जन्मग्रहण किया। उन्होंने मुझे प्रणाम करके सर्वार्थसाधक धर्मका विषय पूछा था। मैंने प्रसन्न हो कर कुल धर्मसंहिता उन्हें कह दी थी। महामति व्यासदेव जब पुराणोंको विभक्त कर रहे थे, उस समय उन्होंने मेरे कही हुई उस संहिताको पांच प्रकारमें विभक्त किया था। इसमें नानाविध आश्चर्य कथायुक्त अघोरकल्पका वृत्तान्त है। इसके आदिमें ब्राह्मपर्व है, इसी पर्वमें इसका उपक्रम है। इसके आरम्भमें सूत और शौनकसंवादमें पुराणप्रश्न, सर्वाख्यानयुक्त आदित्यचरित, सृष्टिप्रभृतिका लक्षणयुक्त शास्त्रस्वरूप, पुस्तकलेखक और लेखका लक्षण, सभी संस्कारोंका लक्षण, प्रतिपदादि तिथियोंका सप्त-कल्प पर्यन्त वर्णित हुआ है।

वैष्णवपर्वमें अष्टमी प्रभृति शेषकल्प, शैवपर्वमें कामानुसार विभिन्नता, सौरपर्वमें अन्तकथासमूह और पुराणका उपसंहारसमेत प्रतिसर्गपर्वमें नानाख्यान, इसी प्रकार पञ्चपर्व कीर्त्तित हुए हैं।

द्वितीय विष्णुपर्वमें धर्म, काम और मोक्षका विषय, तृतीयपर्वमें शिवका और चतुर्थमें सूर्यका विषय तथा प्रतिसर्गनामक शेषपर्वमें अवशिष्ट सभी विषय कहे गये हैं। धीमान् व्यासने भविष्यमें इस प्रकार पर्व निर्दिष्ट किये हैं। इस पुराणमें चौदह हजार श्लोक हैं और सभी देवताओंकी कथा समभावमें लिखी गई है।)

उद्धृत प्रमाणके अनुसार—४र्थ वा भविष्योत्तर छोड़ कर शेष १म, २य, और ३य भविष्यमें कितने कितने प्राचीन भविष्योंके लक्षण दिये गये हैं। इन तीनों अंशोंके भविष्यमें आदित्यमाहात्म्य वर्णित होने पर भी अघोरकल्पवृत्तान्त अथवा ब्रह्माकर्त्तृक मनुके निकट जगत्स्थितिका प्रसङ्ग नहीं है।

नारदपुराणके अनुक्रमानुसार भविष्य पांच पर्वोंमें विभक्त है, ब्राह्म, वैष्णव, शैव, सौर और प्रतिसर्गपर्व। हम लोगोंके आलोच्य १म भविष्यके उपक्रममें भी इस पञ्चपर्वकी कथा देखनेमें आती है। अभी नारदीयके मतसे उस १म भविष्यके केवल ब्राह्मपर्वका पता लगता है, शेष चार पर्वका नहीं। मत्स्योक्त चतुर्मुख-कथित आदित्यमाहात्म्य इस ब्राह्मपर्वमें लक्षित होता है।

नारदके मतसे—अष्टमीकल्पसे वैष्णवपर्वका आरम्भ है। २य भविष्यके १५१ अध्यायसे विष्णुपर्व और अष्टमी-कल्पका आरम्भ देखा जाता है। किन्तु इस २य भविष्य-के आरम्भमें जो सब कथाएं हैं उनका १म भविष्यके साथ कहीं कहीं मेल होने पर भी अधिकांश जगह मेल नहीं है। सम्भवतः इस अंशका अधिकांश ही प्रक्षिप्त वा परवर्त्तीकालमें संयोजित है।

कहीं १म भविष्यके ब्राह्मपर्वमें १३१ अध्याय हैं। किन्तु २य भविष्यमें विष्णुपर्वके पूर्वांशमें १५० अध्याय मिलते हैं। अधिकांश पुराणोंके मतसे भविष्यकी श्लोक-संख्या चौदह हजार है। किन्तु २य भविष्यके १म अध्यायमें लिखा है, कि भविष्यपुराणकी श्लोकसंख्या पचास हजार है। शिवपुराणकी वायुसंहितामें परि-वर्द्धित और नवकलेवरप्राप्त शिवपुराणकी जिस प्रकार लाख श्लोकसंख्या बतला कर आडम्बर किया गया है, २य भविष्यकी उक्ति भी ठीक उसी प्रकार अत्युक्ति प्रतीत होती है। इस अंशमें अनेक विषय संयोजित हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं। इसी कारण रुरुवध (२५० अ०) आदि कोई कोई विषय एकसे अधिक बार वर्णित देखा जाता है। पहले कहा जा चुका है, कि नारदपुराणके मतानुसार अष्टमीकल्पसे विष्णुपर्वका आरम्भ है। किन्तु २य भविष्यमें अष्टमीकल्पसे ही विष्णुपर्व निर्दिष्ट होने पर भी इस पर्वमें विशेषरूपसे रुद्रमाहात्म्य वर्णित है, इस कारण इसके साथ शैवपर्व भी सम्मिलित हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है। शेषांशमें सौरपर्वके विषयका भी अभाव नहीं है। किन्तु उसमें प्रतिसर्गपर्व नहीं मिला है।

पुराणप्रबन्धके उपक्रममें यह दिखलाया गया है, कि आपस्तम्ब-धर्मसूत्रमें भविष्यत्पुराणका प्रसङ्ग है। आलोच्य २य भविष्यके २य अध्यायमें उक्त विषयका समावेश देखा जाता है। इससे जाना जाता है, कि इस अंशमें अनेक विषय प्रक्षिप्त होने पर भी आदि-पुराणकी अनेक बातें दी हुई हैं।

उपरोक्त दो भविष्यकी अपेक्षा तीसरे भविष्यमें ही कुछ अधिक बनावटी बातें हैं। इसमें भविष्यका कोई कोई लक्षण रहने पर भी इसका तृतीयांश परवर्त्ती कालका रचा हुआ प्रतीत होता है। जिस समय समस्त भारतमें तान्त्रिक प्रभाव फैला हुआ था, यह ३य भविष्य शायद उसी समयकी रचना है। ३य भविष्य-के ७म अध्यायमें आगम, तन्त्र, जामल और डामरादि-की कथाओंका वर्णन है। इस अध्यायमें एक विशेष उल्लेखयोग्य कथा यह है—'पुराणवाचककी व्यास उपाधि'। जनसाधारण विश्वास करते हैं, कि वर्त्तमान सभी पुराण व्यासके कृत हैं। पर अभी हम लोग देखते हैं, कि पुराणकथकों द्वारा प्राचीन पुराणाख्यानादि वर्त्तमान आकारमें सङ्कलित हुआ है इस कारण पुराण व्यासकी रचना है, यह प्रवाद जाता रहा।

मात्स्यके मतानुसार भविष्यपुराणमें अनेक भविष्य कथाएं हैं। १म और ३य भविष्यमें उसका बहुत कुछ परिचय मिलता है। ३य भविष्यके ९म अध्यायमें म्लेच्छोंका शास्त्रादि परित्यागकी कथा तथा १०म अध्याय-में कलिमें निगम ज्योतिष और वेदके संग्रहमें दोषकथन तथा मनसा षष्ठी, दशहरा आदि पूजाओंकी कथा हैं। इस पुराणमें वैज्ञानिकोंका भी एक ज्ञातव्य विषय है। 'उद्भिज्जविद्याका वृत्तान्त' (Botany)। दूसरे किसी भी पुराणमें उद्भिज्जविद्याका ऐसा प्रसङ्ग नहीं है।

नारदपुराणका आश्रय लेनेसे यह कहना पड़ेगा, कि १म भविष्य अर्थात् ब्राह्मपर्व उतना विशुद्ध नहीं है, अधिकांश विशुद्ध है। इस ब्राह्मपर्वमें एक अति गुरु-तर ऐतिहासिक कथाकी आलोचना पाई गई है, वह इस प्रकार है—

शाम्बने सूर्यमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की। किन्तु उन्हें उपयुक्त पूजक न मिला। इस पर नारदके आदेशानु-सार उन्होंने शाकद्वीपसे १८ प्रकारके कुलीन ब्राह्मणोंको बुलाया जो 'मग' कहलाते थे। श्रीकृष्णके कहनेसे उन मग ब्राह्मणोंने यादव-कन्याका पाणिग्रहण किया। उन्होंके गर्भसे भोजकोंकी उत्पत्ति हुई और वे ही सूर्य-पूजाके एकमात्र अधिकारी ठहराये गये। प्राचीनकाल-में अरब और पारस्यमें सौर वा अग्निपूजकगण 'मघ' नामसे ही प्रसिद्ध थे। सम्भवतः उन्हींकी कोई शाखा भारतीयके साथ मिल कर शाकद्वीपी ब्राह्मण कह-लाने लगी। मग और शाकद्वीपी ब्राह्मण देखो।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण।

प्रचलित ब्रह्मवैवर्त्तपुराणकी विषयसूची इस प्रकार है,—

ब्रह्मखंडमें—१ मङ्गलाचरण, सौतिशौनकसंवाद, २ परब्रह्मनिरूपण, ३ सृष्टिनिरूपण, कृष्णदेहमें नारायणादि-का आविर्भाव और श्रीकृष्णका स्तव, ४ सावित्र्यादिका आविर्भाव, ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, महाविराड़्जन्मकथन,

परख, ... ोक, हृहद्रथ, सुक्रतु,

५ आलस ख्यान, रासमण्डलमें राधाकी उत्पत्ति, राधा-कृष्ण शरीरमें गोपी, गोप और गवादिका आविर्भाव, शिवादिका वाहनदान, गुह्यकादि उत्पत्ति-कथन, ६ श्रीकृष्णका शङ्करको वरदान, शिवनामनिरुक्तिकथन, सृष्टिके लिये ब्राह्मणके प्रति नियोग, ७ पृथिवीप्रभृति ब्रह्मसृष्टिकथन, ८ ब्रह्मसर्ग, वेदादि शास्त्रकी उत्पत्ति, स्वायम्भुव मनु और ब्रह्ममानसपुत्र पुलस्त्यादिकी उत्पत्ति, ब्रह्मनारद-शापोपलम्भन, ९ कश्यपादिकी सृष्टि, धरागर्भसे मङ्गलकी उत्पत्ति, कश्यपवंशवर्णन, चन्द्रके प्रति दक्षका अभिशाप, शिवशरणापन्न चन्द्रका विष्णुवरलाभ और दक्षके साथ गमन, १० जातिनिर्णयप्रस्तावमें घृताची और विश्वकर्माका परस्पर शापोपलम्भन, सम्बन्धनिरूपण, ११ आश्विनेय शापविमोचन प्रस्तावमें विष्णु, वैष्णव और ब्राह्मणप्रशंसा, १२ उपवर्हण गन्धर्वरूपमें नारदका जन्म, १३ ब्राह्मणके शापसे उपवर्हणका प्राणविसर्जन, मालावतीका विलाप, १४ ब्राह्मण-बालक वेशमें विष्णुका मालावतीके समीप आगमन, ब्राह्मण और मालावती-सम्वादमें कर्मफलकथन, १५ मालावती-काल-पुरुषादिका सम्वाद, १६ चिकित्साशास्त्र-प्रणयन, १७ ब्राह्मण-देववृन्दसम्वादमें विष्णुकी प्रशंसा, १८ मालावतीकृत महापुरुषस्तोत्र, उपवर्हणकी पुनर्जीवनप्राप्ति, १९ महापुरुष-ब्रह्माण्ड पावनकवच, वाणासुरकृत शङ्करका स्तव, २० उपवर्हण गन्धर्वका शूद्रायोनिमें जन्म, २१ नारद प्रभृतिकी उत्पत्ति, नारदका शापविमोचन, २२ नारदादि ब्रह्मपुत्रगणकी नामनिरुक्ति, २३ ब्रह्म-नारद-संवाद, २४ मन्त्रग्रहणके लिये शिवलोकमें गमन, नारदके प्रति ब्रह्माका उपदेश, २५ शिव और नारद-सम्मिलन, २६ महादेवका नारदको कृष्णमन्त्र-दान, आह्निक-प्रकरणकथन, २७ भक्ष्याभक्ष्यादिनिरूपण, २८ ब्रह्मनिरूपण, लब्धवर नारदका शिवकी आज्ञासे नारायणाश्रममें गमन, २९ नारायण और ऋषिगणके प्रति नारदका प्रश्न, ३० भगवत्स्वरूपकथन।

प्रकृतिखण्डमें—१ प्रकृतिचरितसूत्र, २ शक्त्यादिशब्द-निरुक्ति, ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, देवदेवीगणका आविर्भाव, ३ विश्वनिर्णयवर्णन, ४ सरस्वतीपूजाविधि, ध्यान-कवचादिकथन, ५ याज्ञवल्क्योक्त वाणीस्तव, ६ वाणी, लक्ष्मी और गङ्गाका परस्पर विवाद कर एक दूसरेके प्रति अभिशाप तथा उनकी नदीरूपप्राप्ति, ७ काल-कलीश्वर-गुणनिरूपण, ८ वसुधाकी उत्पत्ति, उसकी पूजाविधि, ध्यान और स्तोत्रादिकथन, ९ पृथिवीके उपाख्यानमें भूमिदानके लिये पुण्यादिका कथन, १० भागीरथी उपाख्यानमें भगीरथका गङ्गा आन-यन और देवीका स्तव तथा पूजादिका कथन, ११ गङ्गा-का विष्णुपदी नामहेतु, श्रीकृष्णके प्रति राधाकी भर्त्सना और क्रोधपूर्वक राधाके गङ्गाको पान करनेमें उद्यत हो जाने पर गङ्गाका श्रीकृष्ण-चरण-शरण-ग्रहण और ब्रह्मादिकी प्रार्थनानुसार श्रीकृष्णके पादपद्मसे गङ्गाकी निष्क्रान्ति, १२ गङ्गा और नारायणका विवाह, १३ तुलसीके उपाख्यानमें उसका आभिजात्यादिकथन, १४ वेदवतीका उपाख्यान, समासमें रामायणकथन, १५ तुलसीका जन्म, वदरिकाश्रममें तपश्चरण और ब्रह्माका वरलाभ, १६ तुलसीके आश्रममें शङ्खचूड़का आगमन, उनका कथोपकथन, विवाह, हृताधिकार देवगणका वैकुण्ठ जा कर विष्णुके समीप शङ्खचूड़का वृत्तान्त निवेदन तथा उसका वध करनेके लिये महादेवको विष्णुसे शूलप्राप्ति, १७ युद्धके निमित्त शङ्खचूड़के निकट महादेवका दूतप्रेरण, तुलसी और शङ्खचूड़-सम्भोग, शङ्खचूड़का युद्धमें गमन तथा शिव और शङ्खचूड़-संवाद, १९ देव और दानव-सैन्यका द्वैरथयुद्धवर्णन, स्कन्द-पराभव, काली और शङ्खचूड़युद्धकथन, २० वृद्ध ब्राह्मण-के वेशमें विष्णुका शङ्खचूड़के समीप गमन और कवच-ग्रहण, महादेवकर्तृक शङ्खचूड़वध और शङ्खचूड़की अस्थिसे शङ्खकी उत्पत्ति, २१ विष्णुका शङ्खचूड़रूप-धारण और तुलसीसम्भोग, तुलसीपत्रका माहात्म्यकीर्त्तन, शालग्रामचक्रनिर्देश और उनका गुणवर्णन, २२ तुलसी-के अष्टनाम और उनकी पूजाविधि, २३ अश्वपतिके प्रति पराशरका उपदेश, सावित्रीका ध्यान और पूजा-विधानादि कीर्त्तन, ब्रह्मा कृत उनका स्तोत्रकथन, २४ सावित्री-सत्यवान्‌का विवाह, सत्यवान्‌की पञ्चत्वप्राप्ति और सावित्रीके समीप यमकर्तृक कर्म ही सबकी जड़ है, ऐसा प्रस्ताव, २५ सावित्री और यम-संवाद, २६-२७ यमका सावित्रीके प्रति वरदान, शुभकर्मविपाक-

२८ सावित्रीकर्तृक यमका स्तव, २९ नरककुण्ड-संख्या, ३०-३१ पापभेदसे नरकादिका भेद, ३२ श्रीकृष्णकी सेवामें कर्मच्छेद और शिवदेहनिरूपण, ३३ नरककुण्डलक्षणकथन, ३४ श्रीकृष्णका माहात्म्यादि-कथन, सत्यवान्‌का जीवनलाभ और सावित्री शब्द-निरुक्ति, ३५ लक्ष्मीस्वरूपकथन और उनका पूजाकीर्त्तन, ३६ इन्द्रके प्रति दुर्वासाका शाप और श्रीभ्रष्ट इन्द्रका उनके निकट ज्ञानलाभ तथा वरलाभ, ३७ सुरगुरुके समीप इन्द्रका गमन और उनके प्रति गुरुका प्रवोध-दान, ३८ गुरुके साथ इन्द्र और देवताओंका ब्रह्मलोक-में गमन, ब्रह्माके साथ उनका वैकुण्ठधाममें नारायणके समीप गमन, नारायणकर्तृक लक्ष्मीव्याख्यानकीर्त्तन और उनके उपदेशसे समुद्र-मन्थनपूर्वक लक्ष्मीप्राप्तिकथन, ३९ इन्द्रकर्तृक लक्ष्मीके पूजाप्रस्तावमें महालक्ष्मीका मन्त्रध्यान-स्तव और पूजाविधि, ४० स्वाहोपाख्यान, ४१ स्वधोपाख्यान, ४२ दक्षिणोपाख्यान, यज्ञकृत दक्षिणा और स्तवप्रभृतिकथन, ४३ षष्ठीदेवीके उपाख्यानमें प्रियव्रत नृपकृत षष्ठीका पूजन और स्तवादि कथन, ४४ मङ्गलचण्डीका उपाख्यान और उसका ध्यानपूजन, मन्त्र और स्तोत्रकथन, ४५ मनसाउपाख्यानमें उनकी मनसा प्रभृति द्वादशनामनिरुक्ति, ४६ जरत्कारुका मनसादेवीसे विवाह, आस्तीकका जन्म, ब्रह्मशापग्रस्त परीक्षित्‌के परलोकगमनके बाद जनमेजयकर्तृक नाग-यज्ञ, आस्तीककर्तृक नागकुलरक्षण, महेन्द्रकृत मनसा-देवीका स्तव प्रभृति कथन, ४७ सुरभ्युपाख्यान और उसका स्तव, ४८ पार्वतीके प्रति शिवका राधाशब्द निरुक्तिपूर्वक राधाका उपाख्यानवर्णन आरम्भ, ४९ विरजाके साथ विहारमें प्रवृत्त श्रीकृष्णका राधाके भयसे अन्तर्द्धान, विरजा गोपीको नदीरूपत्वप्राप्ति, राधा और सुदामाका विवाद तथा परस्पर अभिसम्पात, ५० सुयज्ञ-राजाके प्रति ब्रह्मशाप, ५१-५२ अतिथिविनयच्छलसे ऋषियोंका राजाके प्रति उपदेश, ५३ राजकर्तृक अतिथि-का प्रसादन और प्रत्युपदेशकथन, ५४ श्रीकृष्णस्वरूप-वर्णन-प्रसङ्गमें कालमानकथन, विप्रपादोदक-प्रशंसा, तपस्या द्वारा सुयज्ञका राधा-कृष्ण-साक्षात्कार, ५५ राधिकाकी पूजाविधि, श्रीकृष्णकृत स्तव, ५६ राधिका-कवच, ५७ दुर्गोपाख्यान, दुर्गाका दुर्गाप्रभृति षोडश-नामनिरुक्ति, ५८ देवीमाहात्म्यमें सुरथवंशवर्णनप्रसङ्गमें ताराहरणवृत्तान्तकथन, शरणागत चन्द्रका शापविमोचन, ५९ श्रीकृष्णकी आज्ञासे शक्रादि देवताओंकी नर्मदाके किनारे अवस्थिति और सुरगुरुका कैलास-गमन, ६० शिव और जीवका कथोपकथन, उनका नर्मदाके किनारे गमन, विष्णु एवं दैत्यकर्ममें नियुक्त ब्रह्माका शुक्रालय-में गमन, ६१ ब्रह्माकी प्रार्थनासे शुक्रका तारकाप्रत्यर्पण, बुधजन्म, बृहस्पतिका तारालाभ, सुरथ और वैश्यवंश-का परिचय, ६२ सुरथ और मेध-संवाद, ६३ समाधित वैश्यका प्रकृतिसाक्षात्कार लाभ, अनन्तरमुक्ति, ६४ सुरथकृत प्रकृतिपूजा-क्रमकीर्त्तन, ६५ प्रकृति-पूजाका फल-काल-परिकीर्त्तन, ६६ दुर्गाका स्तव और उसका कवच।

गणेश-खण्डमें—१ हरपार्वतीसम्भोगभङ्ग, २ शङ्करके समीप पार्वतीका खेद, ३ पार्वतीके प्रति शङ्करका पुण्यकव्रत उपदेश और गङ्गाके किनारे उन्हें हरिमन्त्र-दान, ४ पुण्यकव्रतविधानकथन, ५ व्रतकथाप्रकरण, ६ व्रतमहोत्सव और व्रत-आज्ञाग्रहण, ७ व्रतानुष्ठान, श्रीकृष्णके आदेशसे कुमारी पार्वतीके पतिदक्षिणादान और प्रतिप्राप्तिके लिये पार्वतीकृत फिरसे श्रीकृष्णका स्तव, पार्वतीको श्रीकृष्णसे वरप्राप्ति, सनत्कुमारके निकट फिरसे शङ्करप्राप्ति और गणेशजन्मकथन, ९ हर-पार्वतीका गणेशसन्दर्शन, १० गणेशके मङ्गलके लिये मङ्गलाचार, ११ पार्वती और शनैश्चरसंवाद, १२ गणेशविघ्न उपशमन, १३ गणेशका नामकरण, पूजा-स्तोत्र और कवचादि कथन, १४ कार्त्तिक-प्रवृत्तिप्राप्ति, १५ कार्त्तिककी लानेके लिये नन्दिकेश्वरादि शिव दूत-गणकी कृत्तिकाभवनमें प्रेरण, कार्त्तिकेय और नन्दि-केश्वरका कथोपकथन, १६ कार्त्तिकेयका कैलास-आग-मन, १७ कार्त्तिकेयका अभिषेक और कार्त्तिकेय-गणेश-का परिणय, १८ गणेशके शिरःशून्यताकारण-प्रदर्शन प्रसङ्गमें शङ्करके प्रति कश्यपका अभिशाप, १९ श्रीसूर्य-स्तव और कवचादि कथन, २० गणेशके गजाननत्वका कारण, २१ शक्रका लक्ष्मीप्राप्तिकथन, २२ शक्रको हरि-महालक्ष्मीस्तव और कवचादि दान, २३ लक्ष्मीचरित

कथन, २४ गणेशका एकदन्त होनेका कारण बखान करनेमें जमदग्नि और कार्त्तवीर्यका संवाद, २५ कापिलसैन्ययुद्धमें कार्त्तवीर्यका पराभव-कथन, २६ जमदग्निके समीप कार्त्तवीर्यका पराभव, २७ कार्त्तवीर्ययुद्धमें जमदग्निका प्राणत्याग और परशुरामकी प्रतिज्ञा, २८ भृगु और रेणुकासंवाद, ब्रह्मलोकमें ब्रह्मा और परशुरामका कथोपकथन, २९ ब्रह्मासे वरप्राप्त भार्गवका शिवलोकगमन, वहां तत्कृत शिवका स्तव, ३० शङ्कर और परशुरामसंवाद, ३१ भार्गवके प्रति शङ्करका त्रैलोक्यविजयकवचदान, ३२ भार्गवको शङ्करका भगवन्मन्त्रस्तवादिदान, ३३ भार्गव-की युद्धयात्रा, स्वप्नदर्शन, ३४ कार्त्तवीर्यके समीप भार्गवका दूतसम्प्रेरण, स्वभार्या मनोरमाके प्रति कार्त्त-वीर्यका स्वप्नदर्शनवृत्तान्तवर्णन, ३५ मनोरमाका पर-लोक गमन, भार्गव और कार्त्तवीर्यसंवाद, मत्स्यराज और परशुरामयुद्धवर्णनावसरमें शिवकवचकथन, ३६ राजा सुचन्द्रके साथ परशुरामयुद्ध-वर्णनावसरमें भृगुकृत कालीका स्तवकथन, ब्रह्म और भार्गवसंवाद, सुचन्द्रवध-कथन, ३७ भद्रकालीकवचकथन, ३८ पुष्कराक्ष और पर-शुरामयुद्धवर्णनप्रसङ्गमें महालक्ष्मीकवचकथन, ३९ दुर्गा-कवचकथन, ४० कार्त्तवीर्य और परशुरामके युद्धमें कार्त्तवीर्यसे महादेवका छलपूर्वक कवचहरण, राजा और भार्गवका कथोपकथन, कार्त्तवीर्यका परलोकगमन, ब्रह्मा और परशुरामसंवाद, ४१ परशुरामका कैलासगमन, ४२ गणेशभार्गवसंवाद, ४३ भार्गवके युद्धमें गणेशका दन्तभङ्ग, ४४ पार्वतीकर्त्तृक तिरस्कृत परशुरामके प्रति श्रीविष्णुका उपदेशकथन और गणेशस्तोत्रकथन, ४५ परशुरामकृत भगवतीका स्तव, ४६ बिना तुलसीके भार्गवकृत गणेशपूजाकथनप्रसङ्गमें तुलसी और गणेशका परस्पर अभिसम्पातकथन।

श्रीकृष्णजन्मखण्डमें—१ नारायणऋषिके प्रति नारद-का हरिकथाविषयक प्रश्न और उसके प्रति नारायणका उन सब कथोपकथन प्रसङ्गोंमें विष्णु और वैष्णवगुण-कथन, २ श्रीकृष्णका विरजाके साथ विहार, राधिका-के भयसे श्रीकृष्णका अन्तर्द्धान और विरजाकी नदीरूपत्व प्राप्ति, ३ श्रीकृष्णके प्रति राधिकाका अभिशाप, राधिका और श्रीदामका परस्पर अभिशाप; ४ स्वीय भारहरण करनेके प्रस्तावके लिये क्षितिका ब्रह्मलोकगमन, ब्रह्माके समीप उनका निवेदन, देववृन्दका हरिभवनमें गमन, और गोलोकवर्णना, ५ ब्रह्मा प्रभृतिका गोलोकगमन, ब्रह्मकृत श्रीहरिका स्तव, श्रीकृष्णका आविर्भाव, ब्रह्मादि-कर्त्तृक भगवान्‌का स्तव, भगवान्‌के साथ उनका कथोप-कथन, ७ पूर्वजन्मपरिचयपूर्वक देवकी और वासुदेव-परिचयवृत्तान्तकीर्त्तन, कंसकर्त्तृक उनका छः पुत्र निधन, ब्रह्मादिकर्त्तृक श्रीकृष्णका स्तव, भगवतीका जन्मवृत्तान्तवर्णन, वसुदेवकृत श्रीकृष्णका स्तव और योगमायावृत्तान्तकथन, ८ जन्माष्टमीव्रतादिका निरूपण, ९ नन्दीका स्तवकथन, १० पूतनामोक्षण प्रस्ताव, ११ तृणावर्त्तासुरवध, १२ शकटभञ्जन, कवचकथन, १३ गर्ग और नन्दसंवाद, श्रीकृष्णका अन्नप्राशन तथा नामकरण प्रस्ताव, १४ यमलार्जुनभञ्जन और कुबेरतनयका शाप-कारण, १५ श्रीराधाकृष्णसंवाद, ब्रह्माभिगमन, ब्रह्माकर्त्तृक श्रीराधाका स्तवकथन, राधाकृष्णका विवाहवर्णन, १६ वक, केशी और प्रलम्बासुरवध, वसुदेवादि गन्धर्वोंका शङ्करशाप उपलक्षन तथा वृन्दावनगमन प्रस्ताव, १७ वृन्दावन-निर्माण, कलावतीके साथ वृषभानुका परिणय-वृत्तान्त, वृन्दावन नामकारणकथन, राधाकी षोडश नाम निरुक्ति, श्रीनारायणकर्त्तृक श्रीराधाका स्तव, १८ विप्र-पत्नी मोक्षण, विप्रपत्नीकृत कृष्णका स्तव, वह्निका सर्व-भक्षत्वबीजकथन, १९ कालीयदमन, कालीयकृत श्रीकृष्ण-का स्तव, नागपत्नीकृत श्रीकृष्णका स्तव, दावाग्निमोक्षण, गोप और गोपीकृत श्रीकृष्णका स्तव, २० ब्रह्माकर्त्तृक गोवत्सादि हरण और ब्रह्मकृत श्रीकृष्णका स्तव, २१ इन्द्रयागभञ्जन, नन्दकृत इन्द्रका स्तव, श्रीकृष्णका गोव-र्द्धनधारण, इन्द्र और नन्दकर्त्तृक श्रीकृष्णका स्तव, २२ धेनुकवध तथा धेनुककृत श्रीकृष्णका स्तव, २३ प्रसङ्ग-क्रमसे तिलोत्तमा और बलिपुत्रका ब्रह्मशाप-विवरण, २४ दुर्वासाका विवाह और पत्नीवियोग, २५ उर्व्वशीके शापसे दुर्वासाका पराभव, तत्कर्त्तृक श्रीकृष्णका स्तव और उसका मोक्षण, २६ एकादशीव्रतविधान, २७ गोप-कन्याकृत श्रीकृष्णका स्तव, गोपिका वस्त्रहरण, राधिका-कृत श्रीकृष्णका स्तव, गौरीव्रतविधान, व्रतकथा,

...का स्तव, उसके बाद पार्वतीका वरदान, २८ ...लीलावर्णन, २९ अष्टावक्रमोक्षण, तत्कर्तृक श्रीकृष्णका स्तव, ३० राधिकाके प्रति श्रीकृष्णके अष्टावक्र उपाख्यान-वर्णनप्रसङ्गमें असितकृत शिवस्तवकथन और रम्भाके अभिशापसे देवलका अष्टाङ्ग-वक्रताकीर्त्तन, ३१ ब्रह्मा और मोहिनीके समागममें मोहिनीकृत कामका स्तव, ३२ ब्रह्मा और मोहिनीका कथोपकथन, ब्रह्मकृत श्रीकृष्णका स्तव, ३३ ब्रह्माके प्रति मोहिनीका अभिशाप, ब्रह्माका दर्पभङ्ग, ३४ गङ्गाका जन्म, उनकी भागीरथ्यादि नामनिरुक्ति और उनका माहात्म्यकीर्त्तन, ३५ गङ्गास्नानसे ब्रह्माका शापमोचन, उनका भारती-सम्भोग, रति और कामका जन्म, कन्दर्पके बाणसे ब्रह्माका चित्तविकार, उन सब ऋषियोंको नारायणका उपदेशप्रदान, ३६ हरका दर्पभङ्गकथन और उनका ऐश्वर्य-वर्णन, ३७ पार्वतीके शापसे शिवनैवेद्यका अग्राह्यता-कथन और शिवकर्तृक पार्वतीका स्तव, ३८ दुर्गादर्प-भङ्ग-प्रस्तावमें दर्पनाशके लिये सतीदेवीका देहत्याग, पार्वतीका जन्म और हर-गिरिसमागम, ३९ हिमालय पर पार्वतीका शिवसन्दर्शन और मदनभस्मवृत्तान्त, ४० पार्वतीका तपश्चरण, विप्रबालकरूपमें उनके समीप शङ्करका आगमन, उनका कथोपकथन, पार्वतीके पितृगृह जानेके बाद शङ्करका भिक्षुकवेशमें पार्वतीके निकट गमन, बृहस्पतिके साथ देवगणकी मन्त्रणा, ४१ हिमालयके समीप ब्राह्मणके वेशमें शङ्करकी शिवनिन्दा, अरुन्धतीप्रभृतिके साथ सप्तऋषिका हिमालयके समीप गमन, उनके निकट कन्यादानकथाप्रसङ्गमें वशिष्ठका अनरण्यो-पाख्यानकथन, ४२ वशिष्ठका पद्मा और धर्मसंवाद-कथन तथा सतीका देहत्यागकथन, ४३ शङ्करविरह-शोकापनोदनकथन, ४४ महादेवकी विवाहयात्रा, हिमालयकर्तृक शिवका स्तव, ४५ शिवविवाहवर्णन, ४६ हरगौरीविलासवर्णन और सर्वमङ्गलवर्णन, ४७ इन्द्रका दर्पभङ्ग, ४८ सूर्यका दर्पभङ्ग, ४९ वह्निका दर्पभङ्ग, ५० दुर्वासाका दर्पभङ्ग, ५१ धन्वन्तरिका दर्प-भङ्ग और मनसाविजय, ५२ राधिकाका खेद, राधानामनिरुक्ति, ५३ राधा-कृष्णका विहार, ५४ समासमें श्रीकृष्णका चरित्रवर्णन, ५५ श्रीकृष्णका प्रभाववर्णन, ५६ महाविष्णु आदिका दर्पभङ्ग, देवगन्धर्वकर्तृक लक्ष्मीका स्तव, ५७ कृष्णविच्छेदसे प्राणत्यागमें उद्यत राधिकाके साथ ब्रह्माका वैकुण्ठधाम-गमन, ५८ संक्षेपमें राधा-विरहकथन, ५९ इन्द्रके दर्पभञ्जनकथाप्रसङ्गमें शची और नहुषका विरुद्ध संवाद, ६० बृहस्पति और दूत-संवाद, नहुषकी सर्पत्वप्राप्ति और शक्रमोक्षणकथन, ६१ इन्द्र और अहल्यासंवाद, इन्द्रका अहल्याधर्षण, उनका गौतमशाप उपलम्भन, ६२ समासमें रामायण वर्णन, ६३ कंसका दुःस्वप्नदर्शन, ६४ कंसयज्ञकथन, ६५ अक्रूरानन्दकथन, ६६ राधिकाशोक-अपनोदन, ६७ राधिकाके प्रति श्रीकृष्णका आध्यात्मिक योगकथन, ६८ राधाशोकविमोचन, ६९ ब्रह्माके साथ श्रीकृष्णका कथोप-कथन और श्रीकृष्णके प्रति रत्नमालावाक्य, ७० अक्रूर-स्वप्नदर्शनवृत्तान्तवर्णन, उसके कर्तृक श्रीकृष्णका स्तवकथन और गोपीविषयवर्णन, ७१ श्रीकृष्णके मथुरा जानेके लिये मङ्गलाचार, ७२ श्रीकृष्णका मथुरा-प्रवेश, पुरीदर्शन, रजकका निग्रह, कुब्जाका प्रसाद, कंसनिधन और देवकी तथा वासुदेवका मोचन, ७३ श्रीकृष्णकर्तृक नन्दप्रभृतिका शोकविमोचन, ७४ कर्म-निगड़च्छेद उपदेश, ७५ सांसारिक ज्ञान-उपदेश, ७६ शुभदर्शन पुण्यकथन और दानफलकीर्त्तन, ७७ सुस्वप्न-फलकथन, ७८ आध्यात्मिक उपदेश और अशुभ दर्शनके कारण पापकथन, ७९ सूर्यग्रहण बीजकथन, ८० चन्द्र-ग्रहणादिकारणकथनमें चन्द्रके प्रति ताराका अभिशाप-कथन, ८१ ताराका उद्धारकीर्त्तन, ८२ दुःस्वप्नकथन, उसका शान्तिकथन, ८३ चातुर्वर्ण्यका धर्मनिरूपण, ८४ गृहस्थ-धर्मनिरूपण, स्त्रीचरित-कीर्त्तन, भक्तलक्षण-कथन और समासमें ब्रह्माण्डका वर्णन, ८५ भक्ष्याभक्ष्य-निरूपण और कर्मविपाककथन, ८६ केदार-राजकन्या-का वृत्तान्त, ब्राह्मणरूपी धर्मके प्रति उसका अभि-शम्पात और वहां उपस्थित देवताओंके अनुरोधसे उसका शापमुक्तिकरण, ८७ भगवान्के समीप पुलहादि ऋषिका समागम और उनके साथ भगवान्का संलाप, ८८ इन्द्र राजाके प्रति भगवान्की उक्ति, ८९ युगधर्म-कथन, ९१ भगवान्के साथ देवकी और वासुदेवका संवाद, ९२ श्रीकृष्णप्रेरित उद्धवका वृन्दावनमें आगमन, वृन्दावन-

परशु, ...
...नीक, बृहद्रथ, सुक्रतु, ...

दमन और तत्कर्त्तृक श्रीराधिकाका स्तव, ९३ राधिका और उद्धवका कथोपकथन, ९४ उद्धवके प्रति राधाकी सखीकी उक्ति, उद्धवका कलावती उपाख्यान-कथन, ९५ राधिकाका खेदवर्णन, ९६ उद्धवके प्रति राधाका उपदेश, ९७ राधा और उद्धवका संवाद, ९८ मथुरामें उद्धवका प्रत्यागमन, भगवान्‌के समीप उनका वृन्दावन-वार्त्ताकथन, ९९ वसुदेवके समीप गर्गका राम और कृष्णका उपनयनप्रस्ताव, वहां ऋषियोंका गमन, वसुदेवकर्त्तृक प्रकृतिवृत्तान्तकथन, १०० वसुदेवके समीप देवदेवीका समागम, १०१ श्रीकृष्ण और बलरामका उपनयन, वहां समागतोंका स्व स्वगृहगमन, १०२ सान्दीपनि मुनिके निकट कृष्ण और बलरामका वेद अध्ययन, मुनिपत्नीकृत उनका स्तव और गुरुदक्षिणादान, १०३ द्वारावती निर्माणके लिये विश्वकर्माके प्रत्युपदेशकथन-प्रसङ्गमें श्रीकृष्णका वास्तुशुभाशुभ विवरणादिकथन, १०४ श्रीकृष्णके समीप ब्रह्मा और सनत्कुमारप्रभृति देवताओंका समागम, श्रीकृष्णका द्वारकाप्रवेशपूर्वक उग्रसेनप्रभृतिके साथ कथोपकथन, १०५ रुक्मिणीके विवाहमें भीष्मकराजके प्रति शतानन्दवाक्य और उसे सुन कर रुष्ट रुक्मिणीका वाक्य, १०६ रेवती और बलदेवका विवाह, श्रीकृष्णका कुण्डिन नगरमें गमन और शाल्व राजाका भगवदधिक्षेप, १०७ हलधरकर्त्तृक रुक्मिणीकी पराजय, श्रीकृष्णका अधिवास, विवाहप्राङ्गणमें शुभागमन, भीष्मकराजकृत श्रीकृष्णका स्तव, १०८ रुक्मिणीसम्प्रदान, १०९ श्रीकृष्णके साथ अरुन्धतीप्रभृतिका कथोपकथन, बरयात्रियोंका वधू और वर ले कर द्वारकामें गमन, ११० भगवान्‌के निकटसे नन्द और यशोदाका कदलीवन-गमन, राधा और यशोदाका संवाद, ११ यशोदाके प्रति राधिकाका भक्तिज्ञान उपदेश और कृष्णका रामप्रभृति नामनिरुक्तिकथन, ११२ रुक्मिणीका गर्भाधान, कामजन्म, कामकर्त्तृक शम्बर दैत्यवध, रति और कामका द्वारका गमन, श्रीकृष्णका सोलह हजार कामिनियोंके साथ विवाह, उनकी अपत्यसंख्या, दुर्वासाको श्रीकृष्णका कन्या-सम्प्रदान और दुर्वासाकृत श्रीकृष्णका स्तव, ११३ कैलासगत दुर्वासाका पार्वतीके उपदेशसे पुनः द्वारकागमन, श्रीकृष्णका हस्तिनापुर-गमन, जरासन्ध और शाल्ववध, शिशुपाल और दन्तवक्र-वध, कुरु-पाण्डवके युद्धमें भूभार-हरण, स्वमाताको मृतपुत्रप्रदान, पारिजात-हरण, सत्यभामाको पुण्यकव्रत अनुष्ठानकथन, ११४ ऊषा और अनिरुद्धका स्वप्नसमागम, चित्रलेखाकर्त्तृक अनिरुद्ध-हरण और ऊषा तथा अनिरुद्धका गन्धर्व-विवाह, ११५ रक्षकके मुखसे ऊषाका गर्भवृत्तान्त सुन कर रुष्ट बाणके प्रति महादेव आदिका हित उपदेश, वाणासुरकी युद्धयात्रा और वाण तथा अनिरुद्धका संवाद, ११६ वाणके प्रति अनिरुद्धका द्रौपदीके पञ्चस्वामित्व-हेतुकीर्त्तन, शम्बरकर्त्तृक रतिहरण-वृत्तान्त-कथन और अनिरुद्धकर्त्तृक वाण-पराजय, ११७ गणेश्वरके प्रति महादेवका अनिरुद्ध-पराक्रमकीर्त्तन, ११८ दूतके मुखसे श्रीकृष्णका आगमन-संवाद सुन कर महादेव और पार्वतीका कर्त्तव्य विषयक परामर्श, ११९ वाणकी सभामें बलिका आगमन, हर और बलिके कथोपकथनमें हरकर्त्तृक वैष्णवोंकी प्रशंसा, हरि और बलिके कथोपकथनमें बलिकृत श्रीकृष्णका स्तव और श्रीकृष्णका बलिको अभयदान, १२० यादव और असुरसैन्यकी युद्धवर्णना, वैष्णवज्वरउत्पत्तिकथन तथा श्रीकृष्णके निकट वाणका पराभव, १२१ शृगालराजमोक्षण, १२२ स्यमन्तक-उपाख्यान, १२३ सिद्धाश्रममें राधाकर्त्तृक गणेशपूजा, १२४ राधिकाके प्रति गणेशवाक्य, उन्हें पार्वतीका वरदान, पार्वतीकी आज्ञासे सखीगणकर्त्तृक राधाका सुवेशादिकरण, राधिकाके तेजसे विस्मित हो सिद्धाश्रमवासी देवताओंका उनके समीप आगमन और ब्रह्मादिकृत राधिकाका स्तव, १२५ महादेवकर्त्तृक वासुदेवका ज्ञानलाभ, राजसूय-यज्ञका अनुष्ठान, १२६ राधाकृष्णका फिरसे सम्मेलन, राधाकर्त्तृक श्रीकृष्णका स्तवादिकथन, श्रीकृष्णके प्रति राधिकाका विनयगर्भ विविधप्रश्न और उनके प्रति कृष्णका आध्यात्मिक ज्ञानोपदेशकथन, १२७ राधाकृष्णका विहार और यशोदाका आनन्द, १२८ नन्दके प्रति श्रीकृष्णका कलिधर्मकथन, गोकुलवासीका राधाके साथ गोलोकगमन, १२९ भाण्डीरवनमें आगत ब्रह्मादिकर्त्तृक श्रीकृष्णका स्तव, यदुकुलध्वंस, पाण्डवोंका स्वर्गारोहण, भागीरथीके प्रति भगवतीका वरदान और

गोलोकारोहण, १३०-नारदका वदरिकाश्रमसे ब्रह्मलोक-गमन, सृञ्जय-कन्याके साथ विवाह और विहार, सनत्कुमारके उपदेशसे तपस्याके लिये गमन, उसके प्रति शम्भुका उपदेशवाक्य और नारदकी मुक्ति, १३१ वह्नि और सुवर्णका उत्पत्तिकथन, १३२ समासमें ब्रह्मादि-खण्डचतुष्टयार्थ निरूपण, १३३ महापुराण और उप-पुराणका लक्षणकथन, महापुराणकी श्लोकसंख्या, उपपुराणका नामकीर्त्तन, ब्रह्मवैवर्त्तका नामनिरुक्ति-कथन, उसका माहात्म्यवर्णन श्रवणफल तथा श्रवण-क्रमसे यथाक्रम अनुकीर्त्तन ।

अब प्रश्न उठता है, कि उक्त ब्रह्मवैवर्त्तको प्रकृत पुराण वा आदि ब्रह्मवैवर्त्तपुराण मान सकते हैं वा नहीं ?

मत्स्यपुराणके मतसे—

"रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य यत् ।
सावर्णिना नारदाय कृष्णमाहात्म्यसंयुतम् ॥
यत्र ब्रह्मवराहस्य चरितं वर्ण्यते मुहुः ।
तदष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्त्तमुच्यते ॥"

रथन्तरकल्पके वृत्तान्तप्रसङ्गमें सावर्णिने नारदसे जिस ग्रन्थमें कृष्णमाहात्म्य और ब्रह्मवराहका चरित विस्तृतभावसे वर्णन किया है, वही अष्टादशसहस्र ब्रह्मवैवर्त्तपुराण है ।

शैवपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा है—

"विवर्त्तनाद् ब्रह्मणस्तु ब्रह्मवैवर्त्तमुच्यते ।"

ब्रह्माके विवर्त्तप्रसङ्गहेतु इस पुराणको ब्रह्मवैवर्त्त कहते हैं ।

नारदपुराणमें इसकी अनुक्रमणिका इस प्रकार दी गई है—

"शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं दशमं तव ।
ब्रह्मवैवर्त्तकं नाम वेदमार्गानुदर्शकम् ॥
सावर्णिर्यत्र भगवान् साक्षाद्देवर्षयेऽर्थितः ।
नारदाय पुराणार्थं प्राह सर्वमलौकिकम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां सारं प्रीतिर्हरौ हरे ।
तयोरभेदसिद्ध्यर्थं ब्रह्मवैवर्त्तमुत्तमम् ॥
रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तं यन्मयोदितम् ।
शतकोटिपुराणे तत् संक्षिप्य प्राह वेदवित् ॥
व्यासश्चतुर्धा संव्यस्य ब्रह्मवैवर्त्तसंज्ञितम् ।
अष्टादशसहस्रन्तत् पुराणं परिकीर्त्तितम् ॥
ब्रह्मप्रकृतिविघ्नेशकृष्णखण्ड-समाचितम् ।
तत्र सूतर्षिसंवादे पुराणोपक्रमो मतः ॥
सृष्टिप्रकरणं त्वाद्यं ततो नारदवेधसोः ।
विवादः सुमहान् यत्र द्वयोरासीत् पराभवः ॥
शिवलोकगतिः पश्चात् ज्ञानलाभः शिवान्मुनेः ।
शिववाक्येन तत्पश्चात् मरीचेर्नारदस्य च ॥
मननञ्चैव सावर्णेः ज्ञानार्थं सिद्धसेविते ।
आश्रमे सुमहापुण्ये त्रैलोक्याश्चर्यकारिणि ॥
एतद्धि ब्रह्मखण्डं हि श्रुतं पापविनाशनम् ।
ततः सावर्णि-संवादो नारदस्य समीरितः ॥
कृष्णमाहात्म्यसंयुक्तो नानाख्यानकथोत्तरः ।
प्रकृतेरंशभूतानां कलानाञ्चापि वर्णितम् ॥
माहात्म्यं पूजनाद्यञ्च विस्तरेण यथास्थितम् ।
एतत् प्रकृतिखण्डं हि श्रुतं भूति-विधायकम् ॥
गणेशजन्मसंप्रश्नसपुण्यकमहाव्रतम् ।
पार्वत्याः कार्त्तिकेयेन सह विघ्नेशसम्भवः ॥
चरितं कार्त्तवीर्यस्य जामदग्न्यस्य चाद्भुतम् ।
विवादः सुमहान् पश्चाज्जामदग्न्यगणेशयोः ॥
एतद्विघ्नेशखण्डं हि सर्वविघ्नविनाशनम् ।
श्रीकृष्णजन्मसंप्रश्नो जन्माख्यानं ततोऽद्भुतम् ॥
गोकुले गमनं पश्चात् पूतनादिवधोऽद्भुतः ।
बाल्यकौमारजा लीला विविधास्तत्र वर्णिताः ॥
रासक्रीड़ा च गोपीभिः शारदी समुदाहृता ।
रहस्ये राधया क्रीड़ा वर्णिता बहुविस्तरा ॥
सहाक्रूरेण तत्पश्चान्मथुरागमनं हरेः ।
कंसादीनां वधे वृत्ते स्यादस्य द्विजसंस्कृतिः ॥
काश्यां सन्दीपनेः पश्चाद्विद्योपादानमद्भुतम् ।
यवनस्य वधः पश्चाद्द्वारकागमनं हरेः ॥
नरकादिवधस्तत्र कृष्णेन विहितोऽद्भुतः ।
कृष्णखण्डमिदं विप्र नृणां संसारखण्डनम् ॥"

(हे वत्स ! सुनो, ब्रह्मवैवर्त्त नामक वेदपथानु-दर्शक दशम पुराण कहता हूं जिसमें साक्षात् भगवान् सावर्णिने प्रार्थित हो कर देवर्षि नारदसे अलौकिक-पुराणका अर्थ कहा था । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन सबका सार और भगवान् हरि तथा हरमें प्रीति, इन दोनोंका अभेद सिद्ध करनेके लिये ही यह उत्तम ब्रह्मवैवर्त्त प्रवर्त्तित हुआ है । मैंने रथन्तरकल्पका जो वृत्तान्त कहा है, वेदवित् व्यासने उसे शतकोटि पुराणमें संक्षेपसे वर्णन किया है । वेदवित् व्यासने इस ब्रह्म-वैवर्त्त पुराणको ब्रह्म, प्रकृति, गणेश और कृष्णखण्ड नामक चार भागोंमें विभक्त कर अष्टादश सहस्र श्लोक

लोक, बृहद्रथ, सुक्रतु,